अमृत वाणी (भाग-२)

(प्रशममूर्ति पूज्य बहेनश्री चंपाबहेन की आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा)

ट्रेक-००४

हाँ, वह तो शरीर किया करता है। शरीर भिन्न और आत्मा, दोनों वस्तु भिन्न है। विभाव आकुलता हो लेकिन वह अपना स्वभाव नहीं है।

प्रश्न :- हो जाती है।

समाधान :- वह अपना स्वभाव नहीं है। विभाव स्वयं ही आकुलतास्वरूप है, वह दुःखरूप है, उससे आत्मा भिन्न है। उससे आत्मा को भिन्न पहिचानना, भेदज्ञान करना, उसका प्रयास करना, वही कर्तव्य है, जीवन में वही करने जैसा है। सुख और शान्ति उसमें ही है, बाहर कहीं भी सुख-शान्ति है ही नहीं।

प्रश्न :- बाह्य सुख में माताजी! इतनी भ्रान्ति रहती है। स्वाध्याय करते समय लगे कि ज्ञायक में ही सुख भरा है। लेकिन बाहर में थोड़े भी अनुकूल संयोग मिले, इससे तो अच्छा हुआ, ऐसी भ्रान्ति में अनुकूलता लगती है। विभाव में ही रहना होता है। वह क्यों नहीं छूटता है?

समाधान :- अनादि का अभ्यास है, एकत्वबुद्धि अनादि का अनादि का है। उससे भिन्न होना वह स्वयं प्रयास करे तो छूटे। निरंतर उसका अभ्यास करना पड़े, निरंतर, निरंतर, निरंतर करना पड़े। तो होता है। अनादि का प्रवाह है उसमें दौड़ता

है। स्वयं जाननेवाला अन्दर भिन्न ही है। जाननेवाले में ही सब भरा है। वस्तु ही वही है। जाननेवाला है उसमें ही पूरा महत्त्व और पूर्ण आश्चर्य भरा है। बाहर में कहीं भी आश्चर्य नहीं है। लेकिन उसको बाहर में एकत्वबुद्धि के कारण दोड़ जाता है, बाहर में आश्चर्य लगता है। बाहर में कहीं भी आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य तो अन्दर आत्मा ही आश्चर्यरूप वस्तु है, वही अनुपम है। उसके जैसा कोई नहीं है। यह सब तो परपदार्थ है। जगत में अनुपम और आश्चर्यकारी पदार्थ हो तो आत्मा ही है। उसका बार-बार अभ्यास, उसकी महिमा, उसके-तत्त्व के-वस्तु के विचार (करना)। वह नहीं हो तबतक शुभभाव में जिनेन्द्रदेव, गुरु और शास्त्र की महिम (करनी)। बाकी अन्दर शुद्धात्मा, ध्येय तो एक शुद्धात्मा का होना चाहिये। आत्मा ही सर्वस्व है।

प्रश्न :- ज्ञायक में एकत्वबुद्धि कैसे करनी? माताजी!

समाधान :- वह तो स्वयं प्रयास करे तो होती है, बिना प्रयास होती नहीं। पर के साथ एकत्वबुद्धि प्रतिक्षण ऐसी अनादि की भ्रान्ति के कारण उसके साथ एकमेक हो गया है। उतना प्रयास अन्दर अपना स्वभाव है उसमें करे तो एक क्षण में हो ऐसा है। लेकिन नहीं हो तबतक उसका निरंतर अभ्यास करना चाहिये। वह तो ऐसे ही चौबीसों घण्टे एकत्वबुद्धि चल रही है। बारंबार उससे भिन्न होने का प्रयत्न करे तो होता है। दूसरे का मैं कर सकता हूँ और मेरा दूसरा कर सकता है, ऐसी अनेक प्रकार की भ्रान्ति कर्ताबुद्ध की, एकत्वबुद्धि की अनेक प्रकार की (चलती है)। उसमेंसे मैं तो ज्ञायक हूँ, इसप्रकार ज्ञायक की ओर झुकना अपने हाथ की बात है। रुचि करे।

प्रश्न :- माताजी! एक प्रश्न की मुझे हमेशा उलझन रहती है कि अनुभूति के काल में जब अपनी दृष्टि वहाँ होती है, उसमें एकाकार हो, उस वक्त उसे पर का भी ज्ञान होता है या उस वक्त मात्र स्व का ही अर्थात् मैं ज्ञायक चिदानंद का ही ज्ञान होता है या पर का भी साथ में (होता है)? उस वक्त उपयोग तो अन्दर है, अनुभूति के काल में, तो उस वक्त पर का ज्ञान (कैसे हो)?

समाधान :- पर की ओर उपयोग नहीं है, शुद्धात्मा की ओर उपयोग है। स्वानुभूति.. स्व की ओर उपयोग है इसलिये स्व की ओर का ज्ञान (है)। पर ओर का ज्ञान, उस ओर उपयोग नहीं है। वह सब उसे गौण हो गया, छूट गया है। पर ओर के बुद्धिपूर्वक के विकल्प छूट गये हैं। उस ओर-पर ओर उसका उपयोग ही नहीं है। अपनी स्वानुभूति में उपयोग है।

प्रश्न :- साधकदशा में दृष्टि वहाँ हो लेकिन साधकदशा में स्व और पर दोनों

का ज्ञान...

समाधान :- स्वानुभूति के काल में नहीं है। स्वानुभूति के काल में विकल्प छूट गया इसलिये..

प्रश्न :- नहीं, माताजी! अनुभूति के काल में नहीं और अनुभूतिमें-से बाहर आया उस वक्त..

समाधान :- उस समय तो सब ज्ञान होता है। वह तो अपनी ज्ञायक की परिणति भिन्न परिणमती है और उसके साथ उपयोग बाहर जाता है इसलिये सब ख्याल है। स्व और पर दोनों का जानता है। स्वयं को ज्ञायक को जानता है और विभाव को भी जानता है। जो-जो विकल्प आते हैं उन सब को जानता है।

प्रश्न :- जानता है, तदाकार (नहीं होता)। मात्र ज्ञायक जाननेवाला है उतना ही सम्यग्दृष्टि को रहता है।

समाधान :- एकत्वबुद्धि नहीं है, प्रतिक्षण भेदज्ञान वर्तता है।

प्रश्न :- अनुभूति काल में स्वपरप्रकाशक आत्मा का ज्ञायक का गुण है तो उस वक्त परप्रकाशक में वह मैं नहीं, उस प्रकार का ज्ञान तो वर्तता होगा न?

समाधान :- उस वक्त उसका उपयोग ही नहीं है। स्वभाव तो स्वपरप्रकाशक है ही, लेकिन वह कार्य में नहीं है, उपयोग स्वसन्मुख है और छद्मस्थ है। केवलज्ञानी को निर्मलता हो गई है इसलिये स्वपरप्रकाशक प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया। छद्मस्थ का उपयोग है वह एक समय में एक ही ओर काम करता है। इसलिये स्वानुभूति के काल में जो स्वपरप्रकाशक उसका स्वभाव है, उस स्वभाव का नाश नहीं हुआ है। लेकिन उपयोग उसका स्वसन्मुख है। उस ज्ञान का नाश नहीं हुआ, वह है उसे। लब्ध में है, उसे शक्ति में है, नाश नहीं होत। छद्मस्थ का उपयोग एक समय में एक ओर ही होता है।

संसार का रस अन्दर एकत्वबुद्धि तोड़कर अन्दर आत्मा की रुचि लगे, आत्मा की महिमा लगे तो होता है। आत्मा कोई अपूर्व वस्तु, अनुपम वस्तु है। अनन्त जन्म-मरण करते-करते मनुष्यदेह मिले उसमें यह आत्मा कोई अनुपम तत्त्व है। उसकी श्रद्धा पहले तो अन्दरसे हो। उसे पहिचानने का प्रयत्न करे तो होता है। नहीं हो तबतक विचार, वांचन, देव-गुरु-शास्त्र की महिमा (आती है), लेकिन ध्येय एक (होता है कि) मुझे आत्मा कैसे पहिचानने में आये? उसकी गहरी जिज्ञासा अन्दर करनी चाहिये। बाहर का रस न्यून हो जाय। अन्दर चैतन्य की महिमा वृद्धिगत हो तो होता है।

अनन्त कालसे जीवने बाह्य क्रिया में धर्म मान लिया है, बाहरसे धर्म मान लिया

है, धर्म तो अन्दर आत्मा में है। स्वभाव को पहिचाने तो धर्म होता है। अपने स्वभाव में धर्म रहा है। धर्म बाहर नहीं है। जहाँ अपना जानन स्वभाव है, वहीं उसका धर्म रहा है। उसे पहिचाने, उसकी श्रद्धा करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो मुक्ति का मार्ग प्रगट होता है।

... वह सब तो बाहर का है। अन्दर आत्मा को पहिचाने तो होता है। अन्दर आत्मा की महिमा लगे, रुचि लगे, आत्मा को पहिचाने तो होता है। अन्दरसे भेदज्ञान करे। सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र को ग्रहण करे, उसकी महिमा करे। लेकिन करना तो खुद को ही है, कोई कर नहीं देता। वह सब शुभभाव है, लेकिन जबतक आत्मा पहचाना नहीं जाये तबतक अशुभभावसे बचने के लिये शुभभाव आते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की महिमा इत्यादि शुभभाव आते हैं। लेकिन उन सबसे आत्मा भिन्न है अन्दर। स्वयं प्रयत्न करे तो होता है। शुद्धात्मा कैसे पहिचाना जाय, ध्येय उसका होना चाहिये।

कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता। सब के पुण्य-पाप के उदय अनुसार होता है। स्वयं भाव करे कि मैं इसका अच्छा करुं, बाकी उसके पुण्य-पाप के उदय अनुसार होता है। खुद तो भाव करके निमित्त बनता है। बाकी सामनेवाले का उदय होता है, उसके रजकण स्वतंत्र है, शरीर के, रोग के। वह खुद कुछ कर नहीं सकता, भाव करे तो निमित्त होता है। किसी भी द्रव्य का कोई कार्य कर नहीं सकता। यह क्या इसमें आता है? आत्मा का स्वरूप क्या? तत्त्व का क्या, द्रव्य-गुण-पर्याय का क्या स्वरूप है, उसका स्वाध्याय करे। पंचमकाल में जन्म लेकर महान उपकार किया है। गुरुदेवने सब को आत्मस्वरूप की पहचान करवाई। हिन्दी, गुजराती सभी को जागृत किये। महान उपकार गुरुदेव का।

प्रश्न :- उस वक्त उपयोग बाहर आया हो, धर्मात्मा को उसका वेदन जो चालू रहता है वह ज्ञान में पकड़ में आता है?

समाधान :- पकड़ में आता है, बराबर पकड़ में आता है। स्वानुभूतिमें-से बाहर आता है फिर उसे जो ज्ञायक की शुद्ध परिणति वर्तती है, वह शुद्ध परिणति उसे बराबर पकड़ में आती है।

मुमुक्षु :- वेदन पकड़ में आता है?

समाधान :- हाँ, वेदन पकड़ में आता है। नहीं पकड़ में आये तो वह साधकदशा ही नहीं है।

प्रश्न :- उपयोग बाहर में है न।

समाधान :- उपयोग बाहर है, लेकिन अन्दर परिणति चालू है।

प्रश्न :- परिणति का वेदन है?

समाधान :- हाँ, परिणति का वेदन है। उपयोग भले ही बाहर है, परन्तु परिणति कार्य करती है। खुद भिन्न ही रहता है, उपयोग बाहर जाता है तो भी स्वयं ज्ञायक की धारा भिन्न ही (रहती है)। कोई भी विकल्प आये, वहाँ उपयोग बाहर में रुकता है तो भी एकत्वबुद्धि टूट गई है, भेदज्ञान की धारा वर्तती है और ज्ञायक की परिणति भिन्न वर्तती है। उस परिणति का उसे वेदन है। आंशिक शान्ति-समाधि वर्तती है। पहले की भाँति एकमेक आकूलतारूप नहीं हो जाता, भिन्न रहता है। उस परिणति का उसे वेदन है। उसका उपयोग भले ही बाहर है इसलिये खुद को स्वयं का वेदन नहीं है या जान नहीं सकता, उपयोग वहाँ जाये तो ही जाने ऐसा नहीं है, उसकी परिणति वहाँ कार्य करती है।

प्रश्न :- शान्ति का वेदन उसे सहजरूपसे चालू ही है और वह उसे अनुभव में आ रहा है।

समाधान :- सहजपने चालू ही रहता है। निर्विकल्प का आनन्द वह एक अलग चीज है, लेकिन वर्तमान धारा में शान्ति का वेदन उससे वर्तता ही रहता है।

प्रश्न :- माताजी! इन दोनों के बीच में क्या फ़र्क़ पड़ता है? निर्विकल्प के समय जो आह्लाद का अनुभव होता है और परिणति में जो शान्ति का वेदन होता है, इन दोनों के बीच क्या अन्तर है?

समाधान :- विकल्प छूटकर आनन्द आता है वह आनन्द अलग है। विकल्प ओर का उपयोग छूट गया और मात्र आत्मा रह गया। उपयोग आत्मा में जम गया और वह जो आनन्द आता है, विकल्प छूटकर जो आनन्द आता है, आत्मा पर दृष्टि तो थी लेकिन उसमें जो लीन हो गया, वह लीन होकर जो आनन्द आता है वह अलग है। भेदज्ञान की धारा के बीच सविकल्पदशा में वह आनन्द नहीं होता। उसे शान्ति होती है।

प्रश्न :- वह आह्लाद अलग प्रकार का है।

समाधान :- वह आह्लाद अलग प्रकार का है। बीच में जो रहता है वह शान्ति का वेदन रहता है। सविकल्पता। वह शान्ति का जो वेदन है, वैसा शान्ति का वेदन एकत्वबुद्धि में नहीं होता। भ्रान्ति की दशा में वह शान्ति का वेदन नहीं होता। सम्यग्दृष्टि को भेदज्ञान की धारा में जो शान्ति का वेदन है, वैसा वेदन, वह वेदन एकत्वबुद्धि में, भ्रान्ति में नहीं होता। वह वेदन अलग है। लेकिन उससे भी जो निर्विकल्पदशा का आह्लाद है वह आह्लाद अलग है। विकल्प छूटकर जो आता है, आकुलता, जो अस्थिरता थी वह अस्थिरता भी गौण हो गई, अबुद्धिपूर्वक हो गई, इसलिये अस्थिरता

भी नहीं है। मात्र उपयोग जम गया, खुद आत्मा में एकाकार हो गया। इसलिये वह आनन्द अलग है। और सविकल्पता में आंशिक अस्थिरता है। इसलिये जितनी दशा भेदज्ञान की धारा की जो चालू है उस शान्ति का उसे वेदन है।

प्रश्न :- जात एक ही है कि अलग कही जाती है? जात तो एक ही है न?

समाधान :- जात माने शान्ति अलग है। शान्ति और आनन्द, ये दोनों अलग चीज है। है सब पर्याय शान्ति, आनन्द की पर्यायें हैं, लेकिन वह आनन्द अलग है और यह शान्ति अलग है।

प्रश्न :- अतीन्द्रिय के समय वह अलग प्रकार का है।

समाधान :- वह जाति अलग है। सविकल्पता में जो शान्ति है उससे निर्विकल्प दशा का आनन्द अलग चीज है, वह अलग है, एक नहीं है। यह थोड़ा है और वह अधिक हो गया, ऐसा भी नहीं है। वह जाति अलग है। अनुपम है, जिसे उपमा लागू नहीं होती। वह अलग है। मात्र आत्मा के आश्रयसे जो लीनता आती है वह अलग आती है, अन्दर लीन होकर आती है। वह सिद्धदशा के समान आनन्द है। वह अलग है। सविकल्पता की और उसकी जाति दोनों अलग है। सब एक चारित्रदशा की पर्याय कही जाती है, लेकिन वह जाति अलग है। वह सिद्धदशा का नमूना कहा जाता है, वह सविकल्पता में नहीं है। वह अतीन्द्रिय नहीं है, शान्ति का वेदन है, ज्ञायक का वेदन है।

प्रश्न :- आत्मा में यदि अंतर्मुहूर्त स्थिर हो तो सीधा केवलज्ञान प्राप्त कर ले, इतना उग्र है। वह आनन्द की जाति भी अलग..

समाधान :- वह आनन्द की जाति भी अलग और उसमें यदि स्थिर हो जाय, अंतर्मुहूर्तसि अधिक स्थिर होवे, अंतर्मुहूर्त का ही उपयोग है, उसमें लीनता बढ़कर चारित्र की ओर यदि श्रेणी जाये तो केवलज्ञान होता है। चारित्रदशा नहीं है अभी, जो मुनिओं की दशा होती है वैसी दशा (नहीं है)। शिवभूति मुनि को वह दशा अंतर्मुहूर्त में आ गयी तो केवलज्ञान प्रगट हुआ। अंतर में ही यदि चारित्र की दशा आ जाये तो हो। लेकिन उसे अंतर में मुनिदशा चाहिये, तो केवलज्ञान होता है।

प्रश्न :- सम्यग्दर्शन की भूमिका में जो शान्ति की धारा चल रही है, वह परिणति अतीन्द्रिय परिणति नहीं कही जाती है न? इन्द्रियाधीन...?

समाधान :- इन्द्रियों की आधीन वह नहीं है, खुद के आधीन है।

प्रश्न :- अतीन्द्रिय परिणति को अतीन्द्रिय शब्द.. अतीन्द्रिय परिणति चल रही है, ऐसा कह सकते हैं?

समाधान :- इन्द्रियों के आधीन नहीं है, उसमें इन्द्रियों का आश्रय नहीं है इसलिये

अतीन्द्रिय कहें। उसे आश्रय आत्मा का है, शान्ति के वेदन को, उसे इन्द्रियों का आश्रय नहीं है। अतीन्द्रिय है, है अतीन्द्रिय, लेकिन अभी उसका उपयोग बाहर है न, इसलिये जो निर्विकल्प दशा का आनन्द है वैसा आनन्द नहीं आता।

प्रश्न :- कहलाये अतीन्द्रिय, फिर भी दोनों के बीच..

समाधान :- उपयोग नहीं हुआ है न, परिणति अतीन्द्रिय है, उपयोग नहीं है, उपयोग बाहर है। बाहर उपयोग में सब आश्रय छूट जाय, मात्र चैतन्य में उपयोग जम जाय तो सिद्धदशा का आनन्द आता है।

प्रश्न :- माताजी! मुनि जो बारंबार निर्विकल्प निर्विकल्प निर्विकल्प.. बाह्य शुभाशुभ भाव में तो इतनी ताकत नहीं है, तो यह परिणति-शुद्ध परिणति वहन कर रही है वह उपयोग को लाती होगी न?

समाधान :- शुद्ध परिणति स्वयं की ओर उपयोग को खींच लेती है। प्रयत्नरूप दशा उसकी चालू है। शुद्ध परिणति जो आंशिक प्रगट हुई है वह परिणति उपयोग को अपनी ओर खींच लेती है। अंतर्मुहूर्त अंतर्मुहूर्त में खींच लाती है। उसकी दशा ही ऐसी है कि ज्यादा टिक ही नहीं पाता। विकल्प की धारा में मुनि की परिणति टिक ही नहीं पाती। बारबार परिणति स्वरूप में जम जाती है। ऐसी उनकी पुरुषार्थ की धारा सहज है। परिणति बार-बार उपयोग को खींच लेती है।

प्रश्न :- उपयोग बाहर में हो तब शुद्ध परिणति को लब्ध है ऐसा कह सकते हैं?

समाधान :- हाँ, उसे लब्ध कहते हैं।

प्रश्न :- वैसे तो ज्ञान में ही लब्धपना होता है। लब्ध और उपयोग तो परिणति को ही...

समाधान :- लब्ध कह सकते हैं। लेकिन वह लब्ध ऐसा नहीं है कि एक ओर पड़ा है। उसका लब्ध उघाडरूप है। उसे ख्याल में आये इसप्रकार कार्य करता है। लब्ध ऐसा है। उपयोग की अपेक्षासे लब्ध कहते हैं, बाकी परिणति कार्य करती है। इसलिये लब्ध है वह ख्याल में नहीं आये ऐसा नहीं है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-००५

मुमुक्षु :- ... सामान्य जीव जो दिव्यध्वनि सुनते होंगे, वे भी वही बात सुनते हैं और कम समझते हैं ऐसा है कि कोई दूसरी बात है?

समाधान :- ... भगवान कहते हैं ऐसा समझते हैं लेकिन सबकी शक्ति अनुसार समझते हैं, उसके अनुसार ग्रहण करते हैं।

मुमुक्षु :- बात तो एक ही है।

समाधान :- बात एक (है)। भगवानकी बहुत अपेक्षासे बात आती हो और जिसकी शक्ति हो उस अनुसार समझते हैं।

मुमुक्षु :- बहुत बार ऐसा कहनेमें आता है कि उत्तर प्राप्त हुआ, वह क्या है?

समाधान :- प्रश्न तो कोई दिव्यध्वनिका काल हो तब नहीं, परंतु दूसरे प्रसंगोंमें वह खास-खास प्रश्न पूछते हैं। दूसरे प्रश्न नहीं पूछते। कोई गणधर, कोई मुनि, कोई चक्रवर्ती, कोई ऐसे राजा (हो तो) वैसे प्रश्न पूछते हैं।

मुमुक्षु :- दूसरे कोई जीव प्रश्न नहीं पूछ सकते?

समाधान :- उसे प्रश्न उत्पन्न हो तो उसे समाधान ही हो जाये। प्रश्न पूछना रहता ही नहीं। जिसे जो प्रश्नका विकल्प होता है, वह भगवानकी वाणीमें सब आ जाता है। उसके प्रश्नका समाधान ही हो जाता है। दिव्यध्वनिमें सब आ जाता है। जिसे जो प्रश्न विकल्प उत्पन्न हो, वह सब आ जाता है।

यहाँ गुरुदेवकी वाणी कैसी थी? उनकी वाणीमें जिसे जो प्रश्न उत्पन्न हो वह गुरुदेवकी वाणीमें आ जाता। भगवानकी दिव्यध्वनिमें (ऐसा होता है)। जिसे प्रश्न उत्पन्न होते हो वह सब भगवानकी वाणीमें समाधान आ जाता है। प्रश्न करने जैसा किसीको रहता नहीं।

मुमुक्षु :- प्रश्न दूसरे महाराज पूछते हैं, और वह बात इनको सुनाई देती है? सामान्य जीवोंको भी सुनाई देता है कि इन्द्र हो उनको ही सुनाई देता है?

समाधान :- नहीं, सबको समझमें आता है। सुनाई देता है?

मुमुक्षु :- जो-जो प्रश्नका उत्तर हो, वह दूसरे जीवोंको भी (सुनाई) देता है?

समाधान :- हाँ, सुनाई देता है। ग्रहण उसकी शक्ति अनुसार करते हैं।

प्रश्न :- उसका समय भिन्न-भिन्न होता है? प्रश्नका और व्याख्यानका? चौदह पूर्व, बारह अंगका भिन्न-भिन्न समय होता है?

समाधान :- दिव्यध्वनि छूटती ही रहती है। उसमें बीचमें कोई प्रश्न नहीं पूछता। भगवानको इच्छा कहाँ है, सहज वाणी छूटती है। बिना इच्छा। दिव्यध्वनिका काल हो तब दिव्यध्वनि छूटती है। प्रश्न तो जिसके पुण्य हो वह प्रश्न करे और वाणीमें उत्तर आता है। बाकी सबको बहुभाग तो समाधान ही हो जाता है। प्रश्न पूछना नहीं पड़ता।

मुमुक्षु :- मुख्य विषय तो मात्र अध्यात्मका ही होता है कि दूसरा भी होता है?

समाधान :- जो मुक्तिका मार्ग है, भगवानकी वाणीमें सब आता है। चौदह ब्रह्मांडका स्वरूप पूरा आता है भगवानकी वाणीमें। सब आता है। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, अध्यात्म आदि सबकुछ आता है। करणानुयोग। कुछ कम नहीं आता, सब आता है। उसमें मुख्य क्या है, मुक्तिका मार्ग क्या है, सबकुछ भगवानकी वाणीमें आता है।

मुमुक्षु :- यहाँ कहनेवाला क्रमपूर्वक कहता है, वहाँ तो ऐसा कुछ नहीं है।

समाधान :- सब एकसाथ आता है। भगवानका आशय क्या है वह समझ लेते हैं। .. सब आता है। .. भगवानकी वाणीमें बहुत आता है, उतना ग्रहण नहीं होता। भगवानकी वाणीमें चौदह ब्रह्मांडका पूरा स्वरूप आता है।

मुमुक्षु :- सामान्य जीव पूर्ण ग्रहण कर नहीं पाते।

समाधान :- गणधर आदि सब कहते हैं, प्रभु! आपकी दिव्यध्वनिको मैं पहुँच नहीं पाता। उन्हें चौदह पूर्वका ज्ञान प्रगट होता है। प्रभु! कहाँ मेरा ज्ञान और कहाँ आपका ज्ञान! कहाँ आपकी वाणी! आपके गहन रहस्योंको मैं पहुँच नहीं पाता। वे भी ऐसा कहते हैं। आपकी अपूर्व वाणीको मैं पहुँच नहीं सकता। ऐसे गणधर, इन्द्रो, मुनिन्द्रो सब ऐसा कहते हैं। सामान्य तो क्या जो शक्तिशाली हैं वे सब ऐसा कहते हैं। कहाँ प्रभु आपका ज्ञान एक समयमें लोकालोकको जाननेवाला, उसमें द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप लोकालोकको एक समयमें जानते हो। अनन्त द्रव्य, अनन्त द्रव्यके गुण-पर्याय, स्व और पर सबको एक समयमें जानते हो। भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यकाल सब एक समयमें आपकी वाणीमें आता है। ऐसी आपकी वाणीको इस ज्ञानमें-क्षयोपशम ज्ञानमें-ग्रहण नहीं कर सकते हैं। अपूर्व वाणी! प्रभु! मैं आपको पहुँच नहीं पाता हूँ। हमारा अल्पज्ञान आपकी अपूर्व वाणी गहनतासे भरी, हम पहुँच नहीं पाते। गणधरको पूर्ण श्रुतज्ञान प्रगट होता है तो भी वे ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- कम पकड़में आता है उसमें भी उतना ही आनन्द आता है?

समाधान :- उन्हें आनन्द आता है। प्रभुकी दिव्य वाणी कुछ अपूर्व कहती है, अपूर्वतासे पूर्ण, भगवानकी अगाध रहस्योंसे भरी हुई वाणी है। कोई आत्माका चमत्कार दर्शानेवाली, चैतन्यका स्वरूप दर्शानेवाली कोई अपूर्व वाणी है। अपूर्व महिमा आती है।

यहाँ गुरुदेवकी वाणीमें सब एकसमान ग्रहण कर सकते थे? गुरुदेवकी वाणीका सभीको आश्चर्य लगता था और महिमा आती थी। जो जीव कुछ नहीं समझते थे, कोई अनजान आकर बैठे तो भी ऐसा लगता कि यह वाणी कोई अलग है, ऐसा आश्चर्य लगता था। सब एकसमान समझते नहीं थे तो भी सबको आश्चर्य लगता था।

ये तो भगवानकी वाणी है। एक समयमें लोकालोकको जाननेवाला उनका ज्ञान, ऐसी उनकी भूमिका, एक समयमें जाननेवाला जो केवलज्ञान, उसमेंसे परिणमित होकर जो दिव्यध्वनि छूटती है, उस वाणीकी क्या बात करनी!? सबको एकदम आश्चर्य लगता है। जगतसे निराला कोई अलौकिक उन्हें लगता है। वाणी अभेद-भेद किये बिना निकलती है। जगतसे निराली वाणी। सब क्रमसे बोलते हैं, (उन्हें) क्रम नहीं पड़ता, एकसाथ अगाध स्वरूपको कहनेवाली (है)। भगवान भिन्न, उनकी वाणी भिन्न, सब भिन्न (है)। इच्छापूर्वक (वाणी) नहीं निकलती। सब मुग्ध हो जाते हैं, मुग्ध होकर सुनते हैं।

मुमुक्षु :- एक समयमें चौदह ब्रह्माण्डका स्वरूप आ जाता होगा? चौदह ब्रह्माण्डका स्वरूप एक समयमें वाणीमें आ जाता है?

समाधान :- एक समयमें भगवान जानते हैं, वाणीमें जो आता है वह बहुत स्वरूप आता है, पूर्णरूपसे आता है, तो भी आत्मा भिन्न है और वाणी भिन्न है। तो भी उसका रहस्य पूरा आ जाता है। चौद ब्रह्माण्ड। अपूर्ण कुछ भी नहीं रहता, पूर्ण आता है। लेकिन आत्मा भिन्न है और वाणी भिन्न है।

... नहीं पड़ता, लेकिन वाणीमें आता है पूर्ण, तो भी जो चैतन्यमें भरा है वह सब वाणीमें नहीं आता है। अन्दर जो अनुभवपूर्व, भगवानकी अनुभूति केवलज्ञानपूर्वककी, (जिसमें) समुद्र-दरिया भरा है, वह सब वाणीमें (नहीं) आता है, तो भी अनन्त आता है।

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो।

अन्दर अनुभव जो केवलज्ञान, स्वरूप रमणता जो पूर्ण है वह पूर्ण चैतन्य उछलकर वाणीमें नहीं आता, तो भी पूर्ण आता है, अपूर्ण कुछ नहीं रहता। आता है वह सब पूर्ण आता है, लेकिन उसमें चैतन्यका तल नहीं आ जाता। उसका पूरा रहस्य आ जाता है।

मुमुक्षु :- एक समयमें रहस्य पूर्ण आ जाता है, फिर भी केवलज्ञानमें जो अनुभूति होती है वह सब नहीं आती।

समाधान :- वह वाणीमें थोड़े ही आता है, वाणी और वह भिन्न-भिन्न वस्तु है। वह दर्शाया नहीं जा सकता। तो भी उसका आश्चर्य (लगता है), तो भी दर्शाती है। भगवानकी वाणी चौदह ब्रह्माण्डका स्वरूप दर्शाती है, मुक्तिका मार्ग दर्शाती है, चैतन्यका चमत्कार दर्शाये, चैतन्य कोई अपूर्व वस्तु है, वह सब दर्शाती है।

भगवानकी वाणी सुनकर कितने ही मुनि केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, कोई मुनि बन जाते हैं, कोई सम्यग्दृष्टि होते हैं, कितने ही समवसरणमें हो जाते हैं। कितने ही अंतर्मुहूर्तमें हो जाते हैं। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। भगवानकी वाणी ऐसी जोरदार है कि एकदम हो जाता है। तो भी भगवानकी वाणीकी ऐसी महिमा है।

उनको (गुरुदेवको) स्वयंको आश्चर्य लगता था कि इसमें आचार्यदेवको बहुत कहना है। फिर स्वयं आहा..! करते थे, तो भी उनकी वाणीमें बहुत आता था। गुरुदेव कहते थे, ओहो..! इसमें आचार्यदेवको बहुत (कहना है), ओहो..! इसमें तो बहुत भरा है। तो भी उनको जो कुछ कहना है वह सब मानो अन्दर रह जाता था, तो भी बहुत आता था।

मुमुक्षु :- वाणीमें ऐसा कह सकते हैं कि पूरा आता है, फिर भी बहुत बाकी रह जाता है।

समाधान :- तो भी अन्दर रह जाता है। दो द्रव्य भिन्न है इसलिये। चैतन्य और वाणी (भिन्न-भिन्न हैं)। केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, कितने ही जीव मुनि बन जाते हैं, कितने ही जीव श्रावक बन जाते हैं, कितने ही जीव सम्यग्दृष्टि बनते हैं, कितने! लाखों-लाखों! केवलज्ञानीकी कुछ संख्या होती है, मुनिओंकी कुछ (संख्या होती है), श्रावकोंकी तो कितनी बड़ी संख्या होती है। धर्मकाल वर्तता है।

मुमुक्षु :- अलौकिक बातें और आश्चर्य उत्पन्न हो ऐसी बातें हैं।

समाधान :- भगवानका बोलना अलग, भगवानका चलना अलग, पूरे जगतसे निराला। और वाणी छूटती है। उपयोग तो अन्दर स्वरूपमें जम गया है। निराधार बैठते हैं। सिंहासन, कमल आदि सबकी रचना इन्द्र करते हैं, फिर भी भगवान तो निराधार होते हैं।

मुमुक्षु :- सब आश्चर्यकारी है।

समाधान :- आश्चर्यकारी। पूर्णता प्राप्त हो गयी इसलिये उनका सब अलग हो जाता है, जगतसे अलग होता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ वर्धमान होनेका कारण होना चाहिये, जीवको ऐसा हो जाता है कि मुझे तो अब धर्मात्माका योग हो गया है, ऐसा होता है, यह गलत है न?

मुझे तो धर्मात्माका योग हो गया है, अब मैं पार हो जाऊँगा, मुझे मोक्ष जानेमें कोई दिक्कत नहीं आयेगी, ऐसा करके पुरुषार्थ कम हो जाये, ऐसा होता है? ऐसा नहीं होना चाहिये।

समाधान :- ऐसा नहीं होना चाहिये। धर्मात्मा मिले लेकिन स्वयंको पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थ करे तो होता है।

मुमुक्षु :- ऐसा नहीं बनता होगा कि पुरुषार्थ किये बिना कोई जीव धर्मात्माके संगसे, संगके कारण प्राप्त कर ले?

समाधान :- पुरुषार्थ किये बिना प्राप्त हो जाये ऐसा नहीं बनता। मात्र संगसे (नहीं होता)।

मुमुक्षु :- मात्र संग कार्यकारी नहीं होता।

समाधान :- मात्र संग (कार्यकारी नहीं होता)। पुरुषार्थ तो स्वयंका (होता है)। निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है कि स्वयंके पुरुषार्थमें सरल हो जाये या मार्ग दर्शाये, उनके सान्निध्यसे स्वयंके परिणाम पुरुषार्थकी ओर मुड़े, पुरुषार्थ स्वयंको करना रहता है। लेकिन वह मान ले कि मुझे तो बाहरसे सब निमित्त मिल गये हैं, मुझे कहाँ तकलीफ है? ऐसा करे तो ऐसे प्राप्त नहीं होता। लेकिन उसे देव-गुरु-शास्त्र और सत्संग एवं संतोंकी महिमा आयी हो तो उसे संतकी ऐसी महिमा अन्दरसे हो तो उसे पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं, लेकिन उसे संतकी महिमा ही नहीं आयी है।

गुरुदेवकी महिमा अन्दर आये तो गुरुदेव जो मार्ग दर्शाते हैं, उस मार्गपर उसकी पुरुषार्थकी परिणति मुड़े तो ही उसने उस महात्माका स्वीकार किया है, तो उसने गुरुदेवका स्वीकार किया है। वह ऐसा विचार करे कि अब मुझे कहाँ तकलीफ है? तो फिर वह मार्ग समझा नहीं है। वह समझे कि मेरा प्रमाद है, इतना तो उसे ख्यालमें रहना चाहिये न? करना तो स्वयंको ही है। उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है, लेकिन करना तो स्वयंको है। पुरुषार्थकी ओर उसकी गति चले। भले ही धीरे-धीरे (बढ़े), लेकिन मुड़े बिना रहे नहीं, यदि सच्ची महिमा आयी हो तो।

मुमुक्षु :- आत्माका आनन्द जब अनुभवमें आये तो उसे कैसे मालूम पड़े कि सूक्ष्म आत्माको ग्रहण किया है, अब उसे आनन्दका अनुभव आता है। और पहले जो दुःखका वेदन होता था, उससे यह अलग लगता है, ऐसा उसे कैसे ख्यालमें आये?

समाधान :- वह ख्यालमें आ जाता है। स्वयंका वेदन अन्दर है, स्वयं अनुभव कर सकता है। आत्माको ग्रहण किया, फिर आत्मामें लीनता करता है कि यह ज्ञायक है। स्थूल उपयोगसे ज्ञायक ग्रहण नहीं होता। बाह्य उपयोग जो स्थूल है, राग-द्वेष आकूलतायुक्त उपयोग है, जो उपयोग बाहर खण्ड-खण्ड (होकर) एक के बाद एक ज्ञेयको ग्रहण

(करता है), उस उपयोगसे (ग्रहण नहीं होता)। लेकिन वह उपयोग स्वयंकी ओर मुड़े तब सूक्ष्म होता है। उपयोग जो बाहर जा रहा है वह स्थूल है, स्वयंकी ओर मुड़नेवाला उपयोग, चैतन्य अरूपी है उस अरूपीको ग्रहण करनेवाला उपयोग सूक्ष्म है। स्वयंको-ज्ञायकको ग्रहण करे कि यह ज्ञायक है, इसकि सिवाय यह सब जो है वह मुझसे भिन्न है। यह विकल्प है, वह सब आकूलता है। इसप्रकार ज्ञायकको ग्रहण करके, उसकी प्रतीति करके, उसमें लीनता करके विकल्प छूट जाये और स्वयं आत्मामें लीन हो जाये, उपयोग अंतरमें लीन हो जाता है। जो आनन्दका अनुभव होता है उसे वह बराबर पकड़ सकता है। उसे ख्याल (आ जाता है), दोनों भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

स्वयं स्थूलरूपसे वेदन करे तो सुख-दुःखका वेदन उसे होता है। शरीरमें शाता अथवा अशाता होती है उसका वेदन उसे होता है कि, शरीरमें कोई रोग है, उसका वेदन होता है, उसका दुःख होता है। वह उसे ख्यालमें आता है। निरोगता हो तो उसे ख्याल आता है कि अभी रोग नहीं है। वैसे, जैसे राग-द्वेषका ख्याल आता है कि यह दुःख है, यह सुख है। ऐसा तो स्थूल ज्ञानमें भी पकड़ता है। तो अरूपी आत्माको ग्रहण करे, अन्दर लीन होता है तब सब विकल्प छूट जाते हैं। विकल्प छूटकर आत्माको ग्रहण करता है और बराबर स्वयंके आनन्दको पकड़ सकता है। उपयोग निर्मल हो गया। स्वयंके आनन्दका अनुभव, स्वयं स्वयंको जान सकता है। आकूलता छूट गयी और निराकूलता (वेदनमें आयी)। आनन्दस्वरूप आत्मा प्रगट हो, वह आनन्द छिपता नहीं।

मुमुक्षु :- चाहे जैसे भयंकर दुःख हो, जब उसे पकड़में आता है, उस वक्त उसे शाता होती है? अन्दरसे जो आनन्द आना चाहिये, जो लक्ष्य छूटना चाहिये, उस रोगके प्रति जो उसने अनादिका अभ्यास किया है, भयंकर रोग हो उस वक्त भी वह भेदज्ञान करके आत्माकी ओर मुड़े तो उसे उस वक्त अन्दर थोड़ी शान्ति होती है, तो वह लक्ष्य छूटता है तब उसे ख्याल आता है कि आत्मा है, परन्तु अभी पकड़ा नहीं है। तब थोड़ा-थोड़ा ख्याल आता है। लेकिन वह सच्चा नहीं है। जब वह बराबर आत्माको पकड़े तब ही आनन्दका वेदन होता है।

समाधान :- आत्मामें लीन होता है तब ही आनन्द होता है। अन्दरसे स्वयंको ग्रहण करे। अभी स्थूलरूपसे ग्रहण करता है तो उसे शान्ति (लगती है, वह) आकूलता मन्द होती है, लेकिन यथार्थ शान्ति आत्मामें-से नहीं आयी है। रोगमेंसे विकल्प पलटे कि यह सब रोग शरीरमें है, मेरेमें नहीं है। इसप्रकार भावनासे, विकल्पसे शान्ति रखे। लेकिन वह अलग शान्ति है-मन्द कषायकी शान्ति है। अंतर आत्मामेंसे जो शान्ति आती है वह अलग ही आती है। विकल्प छूटकर जो शान्ति आये, विकल्प छूटकर जो

आनन्द आता है, वह आनन्द कोई अनुपम है। सिद्ध भगवानकी जातिका आनन्द है। वह आनन्द अलग ही है। उस आनन्दका स्वयं अनुभव कर सकता है। वह उसे अलग ही हो जाता है कि यह भिन्न ही था और भिन्न ही है। भेद हो जाता है। यह अलग है। आकूलतास्वरूप है उसका उसे भेद हो जाता है। आत्मा है उसका स्वरूप भिन्न है, ऐसा उसे विकल्प छूटकर जो निर्विकल्पताका आनन्द आता है, वह उसे अन्दर भिन्न रूपसे वेदनमें आता है।

मन्द कषाय अथवा भयंकर रोगके कालमें विकल्प करके शान्ति रखे कि मैं जाननेवाला हूँ, यह शरीर मेरा नहीं है, यह विकल्प मैं नहीं हूँ, ऐसी भावना करे तो मन्दरूपसे आकूलता कम होती है, ऐसे विचारमें थोड़ी शान्ति लगे। लेकिन वह शान्ति अन्दरसे भिन्न होकर आनी चाहिये, वह शान्ति नहीं आयी है।

ज्ञानी तो सविकल्प दशामें हो, उनका उपयोग बाहर हो तो भी उनको अमुक प्रकारसे उनको शान्ति तो रहती है। विकल्प छूटकर जो आनन्द आता है, वह आनन्द तो अलग ही होता है। दोनों भिन्न-भिन्न हो जाते हैं कि यह आत्मा भिन्न, जगतसे भिन्न-निराला (है)। उसका स्वरूप आनन्दमय गुणोंसे अद्‌भूत स्वरूपसे भरा आत्मा भिन्न ही है, ये सब भिन्न हैं। उसे अनुभवमें आता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-००६

मुमुक्षु :- साक्षात् ज्ञानीकी वाणी ... ऑडियो यानी टेपमें जो वाणी है अथवा टी.वी.में-विडीयोमें वाणी हो, वह सम्यग्दर्शनमें निमित्त हो, उसे साक्षात् कह सकते हैं?

समाधान :- नहीं कह सकते। परन्तु पहले जो वाणी स्वयंने साक्षात् सुनी हो, साक्षात् सत्पुरुषसे-गुरुदेवकी वाणी स्वयंने साक्षात् पहले सुनी हो वह स्वयंको असर करे, उसके साथ मिलान करे। लेकिन अनादिसे सर्वप्रथम जिसे सत्पुरुष मिले नहीं, अनादि कालमें सर्वप्रथम टेपमें सुने, वह असर (और) साक्षात्की असर अलग होती है।

मुमुक्षु :- उसे साक्षात् नहीं कह सकते।

समाधान :- साक्षात् नहीं कह सकते। साक्षात् चैतन्यमूर्तिकी वाणी नहीं कह सकते। स्वयं साक्षात् एक बार सुना हो, उसके बाद वह सब असर करता है।

मुमुक्षु :- अर्थात् एकबार सत्पुरुषका साक्षात्...

समाधान :- साक्षात् जिनेन्द्रदेव अथवा सत्पुरुष, कोई भी उसे मिलने चाहिये। एकबार साक्षात् मिले और अन्दर संस्कार पड़ जाये, फिर सब असर करता है।

मुमुक्षु :- ऐसा क्यों है? माताजी! ऐसे देखे तो विडीयोमें अथवा टेपमें तो वही वाणी है, वही .. है, फिर भी इतना अंतर क्यों है?

समाधान :- चैतन्यमूर्ति उसमें नहीं है। चैतन्यदेव बिराजे और उसमें जो वाणी आये, उस वाणीकी असर कोई अलग होती है। उनकी मुद्रा, उनके भाव, वे कहाँ-से कहते हैं, किसप्रकार भेदज्ञानसे आत्माकी कोई अपूर्वता दर्शाते हैं, यह उनकी मुद्रा एवं भाव आदि सबके उसे दर्शन हो, वह दिखायी दे और उसमेंसे सुनकर जो असर होती है, वह असर अलग होती है। देशनालब्धि होती है वह साक्षात् सत्पुरुषसे प्राप्त होती है।

मुमुक्षु :- सामने प्रत्यक्ष चैतन्य होना चाहिये।

समाधान :- प्रत्यक्ष चैतन्य होना चाहिये।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प दशामें जो आनन्द होता है और सविकल्प दशामें जो शान्तिका वेदन होता है, तो आत्मा तो अतीन्द्रिय है, फिर भी उसमें आप जो भेद करते हो उसमें किसप्रकार निर्विकल्प दशाके कालमें निर्भेल आनन्द है और इसमें शान्ति है?

समाधान :- विकल्प छूटकर जो आनन्द आता है, उस आनन्दमें अकेला आत्मा

है। कहीं भी (उपयोग नहीं है)। अकेले आत्मामें लीनता है। एक आत्माके सिवा (कहीं उपयोग नहीं है)। उसमें जो आनन्दकी परिणति प्रगट होती है वह अलग है। सविकल्प दशामें भेद तो रहता ही है। ज्ञायक स्वयं जो निर्विकल्प (अवस्थाके) कालमें है, वही ज्ञायक सविकल्प दशामें वही ज्ञायक है, साथ-साथ विकल्प है। विकल्प है इसलिये भिन्न रहता है। एकत्वबुद्धिकी आकूलता नहीं है, भिन्न रहता है। भिन्न रहता है, उस अपेक्षासे उसे शान्तिका वेदन रहता है, शान्ति है। मन्द कषायकी शान्ति नहीं, भिन्न रहकर शान्तिका वेदन वेदता है। आत्माका जो अद्भूत स्वरूप है, आत्माका अद्भूत स्वरूप है वह उसमें प्रगट नहीं है। उसका उघाड़ है। (निर्विकल्पताके कालमें) उपयोगात्मक है।

मुमुक्षु :- उपयोगात्मक है इसलिये स्पष्ट ख्यालमें आता है।

समाधान :- अन्दर वेदन, एकाग्रताकी लीनता एक आत्मामें ही है, आत्माका ही वेदन कर रहा है, बाहर कहीं भी उसका लक्ष्य ही नहीं है, कहीं भी उपयोग नहीं है। कोई विकल्पमें उपयोग नहीं है, कहीं भी नहीं है। उपयोग एक स्वरूपमें जम गया है। उसका जो स्वरूप है उस स्वरूपमें ही उपयोग जमा है, इसलिये स्वरूपका ही वेदन करता है। जगतसे, सब विकल्पसे भिन्न होकर, विभावके लोकसे भिन्न होकर एक स्वभावलोकमें चला गया है। विभावका लोक है या नहीं, उसका उसे भान भी नहीं है। एक स्वभावमें ही रहता है, स्वभावका ही वेदन है। स्वभावको ही देखता है, स्वभावका ही वेदन करता है, उस समय स्वभावको ही जानता है।

सविकल्प दशामें स्वभावकी ओर परिणति है। स्वभावकी ओर परिणति है, स्वभावकी ओर शान्ति है, स्वभावकी ओर ज्ञायककी धारा है, परन्तु स्वभावमें वैसा लीन नहीं है। विभाव और स्वभाव, दोनों साथमें उसे ज्ञानमें ज्ञात हो रहे हैं। विभाव और स्वभाव दोनोंका ज्ञान होता है। स्वयं भिन्न रहकर जानता है। लेकिन स्वरूपमें उपयोग लीन नहीं हुआ है। उपयोग लीन नहीं हुआ है। लीन नहीं है अर्थात् उसका वेदन भी उसप्रकारका नहीं है।

उसमें तो एक ही है-निर्विकल्पदशाका आनन्द और सविकल्पदशाकी (शान्ति) दोनों अलग ही है। शान्ति-वह शान्ति, एकत्वबुद्धिमें मन्द कषायकी शान्ति होती है, उससे ज्ञायकधाराकी शान्ति अलग है। वह मन्द कषायकी शान्ति नहीं है। उसे भिन्नताकी शान्ति है। लेकिन निर्विकल्पदशाका आनन्द और वह शान्ति दोनों अलग है। गृहस्थाश्रममें हो तो भी ऐसा है और चारित्रदशा बढ़े तो मुनिदशामें भी बाहर आये तो निर्विकल्पदशा अलग है और सविकल्पदशा, दोनों दशा ही अलग है। दोनोंमें अन्तर है। मुनिदशामें कुछ अलग हो जाता है, ऐसा भी नहीं है।

सविकल्पदशामें उपयोग बाहर विकल्पकी ओर आया, तो ज्ञायककी परिणति, चारित्रसहितकी परिणति है। मुनिको विशेष चारित्र है। उन्हें सविकल्पताके कालमें भी अमुक कषायका नाश हो गया है, लीनताका एकदम ज़ोर वर्तता है, तो भी उपयोग बाहर है। उपयोग स्वरूपमें लीन हो (तब तो) स्वयं स्वरूप चैतन्यलोकमें चला गया। उसका वेदन ही एक चैतन्यकी ओर है। बाहर विभावकी ओर...

केवलज्ञानीकी बात अलग है। स्वयं स्वरूपमें लीन हो गये, उपयोग जम गया, ज्ञानकी ऐसी निर्मलता (प्रगट हो गयी)। सब विकल्प छूट गये, अबुद्धिपूर्वकका भी सब छूट गया, इसलिये सहजपने लोकालोकका ज्ञान होता है। तो भी स्वयं निर्मलपने स्वयंमें लीन हैं। उसमें उनका अद्‌भूत आनन्द तो वैसा ही रहता है। लोकालोक ज्ञात हो तो भी रहता है। उन्हें लोकालोक नुकसान नहीं करता।

... और रागका कर्ता अनादिसे मानता है। कौन करवाता है? स्वयं करता है। स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे स्वयं करता है। पुद्‌गल निमित्त है और रागकी पर्याय, अशुद्ध पर्याय स्वयं एकत्वबुद्धिसे अनादिसे कर रहा है। पर पुद्‌गल उसे नहीं करवाता। स्वयं करता है।

मुमुक्षु :- होता तो है जीवके परिणाममें?

समाधान :- हाँ, जीवके परिणाममें होता है।

मुमुक्षु :- पुद्‌गलद्रव्य उसका निमित्त है?

समाधान :- पुद्‌गलद्रव्य निमित्त है। जीवके परिणाममें राग होता है।

मुमुक्षु :- दृष्टान्तमें ऐसा ले कि लाल रंग फूलका स्वभाव है और स्फटिकमणिमें वह झलकता है।

समाधान :- झलकता है, परन्तु स्फटिककी योग्यतासे झलकता है। स्फटिककी योग्यतासे (झलकता है)। लाल और हरे फूल है, उसका जबरजस्ती प्रतिबिंब नहीं झलकता। (यदि ऐसा हो तो) दूसरी वस्तुमें भी होना चाहिये, लोहेमें अथवा दूसरी वस्तुमें नहीं होता। जिसका स्वभाव प्रतिबिंबरूप झलकनेका है, जिसकी योग्यता है उसमें वह होता है। इसलिये जीवमें वैसी पुरुषार्थकी मन्दता है तो स्वयं वैसी मन्दतासे रागरूप परिणमता है।

जड़ राग और चैतन्य राग, ऐसे उसके दो भेद हैं। जीवक्रोध और जड़क्रोध, ऐसा कहनेमें आता है। पुद्‌गल, क्रोधरूप कदापि नहीं होता। लेकिन उसे जड़क्रोध और जीवका क्रोध कहनेमें आता है। चैतन्यमें भी क्रोध होता है, जड़क्रोध, ऐसे उसके दो भेद है। शास्त्रमें आता है।

मुमुक्षु :- समयासरमें आता है, रागी तो पुद्‌गल है, व्यवहारसे जीवके परिणाम

कहनेमें आता है।

समाधान :- रागी पुद्गल है अर्थात् जीवका स्वभाव राग नहीं है। रागी पुद्गल है यानी राग एकान्तसे पुद्गल है ऐसा नहीं है। एकान्तसे पुद्गल ही राग है और जीवका कुछ है ही नहीं, ऐसा नहीं है। व्यवहार यानी जीव कुछ करता ही नहीं है और एकान्तसे शुद्ध ही है, तो फिर उसे मोक्ष-केवलज्ञान होना चाहिये, उसे शुद्धताका वेदन होना चाहिये। शुद्धताका वेदन तो है नहीं। द्रव्यदृष्टिसे शुद्ध है परन्तु पर्यायमें रागकी परिणति स्वयं करता है। द्रव्यदृष्टिसे ऐसा कहनेमें आता है कि राग है वह पुद्गल है। रागको जड़ कहा, द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे। परन्तु पर्याय अपेक्षासे जीवमें-चैतन्यमें वह परिणति-रागकी परिणति होती है। पर्याय अपेक्षासे पर्याय है ही नहीं ऐसा नहीं है। अशुद्ध पर्याय होती ही नहीं हो तो शुद्धताका वेदन होना चाहिये। शुद्धताका वेदन तो है नहीं। इसलिये पर्यायदृष्टिसे जीव स्वयं रागका कर्ता होता है। अज्ञान अवस्थासे।

मुमुक्षु :- मैं प्रतिसमय जाणन.. जाणन.. जाणन.. स्वभावी हूँ, वहाँ तक पकड़में आता है, फिर आगे पकड़में नहीं आता। मैं जाननेवाला हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, इतना बुद्धिपूर्वक विचार हो सकता है कि जो जाननेवाला है, इस विकल्पके पीछे जो जाननेवाला ज्ञान है, यहाँ तक विचार होता है, फिर आगे नहीं चलता।

समाधान :- जाननहारमें ही सब भरा है। ज्ञान लक्षण आत्माका असाधारण है। असाधारण लक्षण है यानी उस ज्ञान लक्षण द्वारा आत्मा पहचानमें आता है। लेकिन उस ज्ञायक लक्षणमें, उस लक्षणसे ज्ञायक पहचानमें आता है। ज्ञायक अद्भुत स्वरूप है, ज्ञायक अनन्त गुणसे भरा अद्भुत स्वरूपी ज्ञायक है। ज्ञान लक्षण उसे वास्तविक ग्रहण हो तो उसे ज्ञायककी महिमा आये बिना नहीं रहती। ज्ञानलक्षण यथार्थरूपसे ग्रहण होना चाहिये। स्वयं विचारसे नक्की करे कि यह ज्ञानलक्षण है, यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह विभाव मैं नहीं हूँ, ये शुभाशुभ विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। पुरुषार्थकी मन्दतासे चैतन्यमें होता है, लेकिन वह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप तो जो ज्ञायक जाननेवाला है वही मैं हूँ।

उसे पहचानकर अन्दरसे यथार्थ प्रतीति होवे, अन्दरसे पहचानकर आये तो ज्ञायककी महिमा आये बिना नहीं रहती। ज्ञायक अद्भुत महिमासे भरा है। उसकी प्रतीति करके मैं ज्ञानलक्षण हूँ, यह ज्ञायक है वही मैं हूँ, ऐसी निःशंकरूपसे प्रतीति आये तो उसका भेदज्ञान हो। तो उसका भेदज्ञान निरंतर वर्ते कि यह विकल्प मैं नहीं हूँ, लेकिन मैं यह ज्ञायक हूँ। ज्ञायकका ज़ोर बढ़ता जाये तो उसमें विकल्प टूटकर स्वानुभूति हो तो उसे चैतन्यस्वरूप अनुभवमें आये। उसकी यथार्थ प्रतीति होनी चाहिये।

ज्ञानलक्षणसे यथार्थ लक्षणसे लक्ष्य पहचानमें आना चाहिये। वह लक्षण गुणमात्र नहीं,

वह लक्षण भेदरूप नहीं, परन्तु जो ज्ञायक है उस लक्षण द्वारा पूरा ज्ञायक पहचाननेमें आना चाहिये कि ज्ञायक है वह मैं हूँ, पूर्ण द्रव्य है वह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- आपने तो बहुत दिया है, परन्तु वहीं उलझन होती है।

समाधान :- वहाँसे आगे बढ़ना चाहिये। लक्षण है वह गुणमात्र नहीं है, परन्तु पूरा गुणी है वह मैं हूँ, पूर्ण अस्तित्व-ज्ञायकका अस्तित्व है वही मैं हूँ, यह लक्षण है उतना नहीं, परन्तु मैं पूर्ण ज्ञायक, एक ज्ञायक अस्तित्व, पूर्ण ज्ञायकसे भरा ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञायकसे परिपूर्ण ऐसा द्रव्य है वही मैं हूँ। ऐसी वस्तु जो गुण-पर्याययुक्त है, वह वस्तु ही मैं हूँ। ऐसे वस्तुके अस्तित्व पर उसका ज़ोर आना चाहिये।

मुमुक्षु :- विचारपूर्वक?

समाधान :- हाँ, विचारपूर्वक नक्की करके फिर प्रतीतिका ज़ोर आना चाहिये। उसे अंतरसे लक्ष्य ग्रहण होना चाहिये।

मुमुक्षु :- आगे नहीं बढ़ा जाता उसमें स्वयंके पुरुषार्थकी (कमी है)?

समाधान :- स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दता है। स्वयंको उतनी जिज्ञासा, तैयारी हो तो आगे बढ़ सकता है। विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं चैतन्य हूँ, कोई अद्भूत स्वरूपी हूँ, अनन्त गुणसे भरा चैतन्य ज्ञायक, चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, ऐसी महिमा आये, अन्दर उसकी जिज्ञासा जागृत हो, प्रतिक्षण उसकी भावना जागृत होती रहे तो आगे बढ़े, पुरुषार्थ करे। प्रतिक्षण उसे ज्ञायकका ज़ोर आना चाहिये। प्रतिक्षण। ये जो विकल्प आते हैं, वह मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ। उसे प्रतिक्षण प्रत्येक कार्यमें ज्ञायक हूँ, ज्ञायककी महिमापूर्वक ज्ञायक आना चाहिये, मात्र बोलनेरूप नहीं। प्रथम विचारसे आये लेकिन उसे महिमापूर्वक मैं तो ज्ञायकदेव हूँ, मैं यह नहीं हूँ। ज्ञायककी महिमापूर्वक अन्दरसे प्रतीतिका ज़ोर आना चाहिये। ऐसा पुरुषार्थ करे तो होता है।

मुमुक्षु :- ऐसा पुरुषार्थ करनेपर निर्विकल्पदशा प्रगट होती है?

समाधान :- पुरुषार्थ करे तो होती है। अन्दरसे उतनी लगन लगनी चाहिये। दिन-रात उसके पीछे पड़ जाये, दिन-रात मुझे ज्ञायकदेव कैसे पहचानमें आये? मुझे चैतन्यदेव कैसे पहचानमें आये? बाहर कहीं चैन नहीं पड़े, विभावमें कहीं भी सुख नहीं लगे। सुख मेरे आत्मामें ही है। ऐसा बारंबार पुरुषार्थ करता रहे। उसकी लगनी लगे कि यह ज्ञायक है वही मैं हूँ, अन्य कुछ भी मैं नहीं हूँ। ज्ञायककी प्रतीतिका बारंबार ज़ोर आये तो होता है।

मैं ज्ञायक शुद्धात्मा हूँ। उसके साथ जो विभावकी अशुद्ध पर्याय होती है वह मेरा स्वरूप नहीं है। पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। होता है मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे, कोई पुद्गल नहीं करवाता, लेकिन मैं उससे भिन्न द्रव्य-शुद्धात्म द्रव्य हूँ। बारंबार उसका पुरुषार्थ

चले तो भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, स्वानुभूति प्रगट हो, ज्ञाताधारा प्रगट हो तो भी उसे अल्प अस्थिरता बाकी रहती है। वह पुरुषार्थकी मन्दतासे (रहती है)।

द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे, जो समयसारमें आता है कि (राग) आत्माका नहीं है, वह द्रव्यदृष्टिके ज़ोरसे (कहा है)। लेकिन अमृतचंद्राचार्य कहते हैं न कि मैं इस समयसारकी टीका रचता हूँ। मैं द्रव्यदृष्टिसे तो शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ, लेकिन अनादिसे मेरी परिणति कल्माषित मैली हो रही है, उसकी शुद्धि होओ, ऐसा कहते हैं। वह परिणति स्वयंकी है और स्वयं पुरुषार्थ द्वारा सिद्धि हो, ऐसी भावना भाते हैं। मैं तो द्रव्यदृष्टिसे शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ, परन्तु पुरुषार्थ द्वारा मेरी शुद्धि प्राप्त होओ, आचार्यदेव ऐसी भावना भाते हैं।

अल्प अस्थिरता है, मुनिकी दशा है तो भी ऐसा कहते हैं कि अभी भी अल्प अस्थिरता है। संज्वलनका इतना कषाय है वह भी पुसाता नहीं। उससे छूटकर केवल वीतरागदशा कैसा प्राप्त हो, उसकी भावना भाते हैं। पुनः द्रव्यदृष्टिकी बात आये और आचार्यदेवको इतनी अल्प अस्थिरता है उसे भी तोड़नेकी बात प्रारंभमें करते हैं। दोनों बात समझमें आये द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतापूर्वक, कहाँ अशुद्धता रहती है, उन दोनोंकी संधि समझकर आगे बढ़े तो उसकी साधकदशा यथार्थ प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- साधनसंपन्न और सानुकूलतावाले लोग धर्म कर सके और प्राप्त कर सके, परन्तु गरीब हो, दलित हो, जिसे खाने-पीनेका ठिकाना नहीं है, वह इस धर्ममें कैसे शुरूआत कर सके?

समाधान :- सब कर सकते हैं। यहाँ पैसेवाले हो या सानुकूलतावाले हो वही कर सके ऐसा कुछ नहीं है। गरीब भी कर सकते हैं। धर्म तो अंतरमें है। उसे बाह्य सामग्रीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अंतरमें चैतन्यको पहचाने, मेरा चैतन्यद्रव्य कैसा अद्भुत है, उसे पहचानकर अन्दरसे भेदज्ञान करे कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, बाह्य धन तो कहाँ अपना है, उस धनके साथ कहाँ सम्बन्ध है, बाह्य सुख-संपत्तिके साथ उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उससे आत्माका निभाव नहीं होता। आत्मा स्वयं अपनेसे, स्वयंका अस्तित्व अनादिसे रक्षित ही है, वह बाहरसे रक्षित हो ऐसा नहीं है।

आत्मा अनादि-अनन्त है। (आत्महित) तो गरीब भी कर सकता है। प्रत्येकका आत्मा एकसमान है। गरीब भी, यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह विभाव मैं नहीं हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि तोड़कर चैतन्यदेव-ज्ञायकदेवकी महिमा लाकर उसकी प्रतीति लाये, स्वानुभूति करे तो गरीब भी कर सकता है। पैसेवाले भी कर सकते हैं, सब कर सकते हैं।

शास्त्र जो कहते हैं, उन्होंने जो मार्ग दर्शाया उसे स्वयं अन्दर ग्रहण करे। शुद्धात्मा भिन्न है, लेकिन उसका मार्ग दर्शानेवाले जिनेन्द्रदेव, गुरु साक्षात् चैतन्यमूर्ति दर्शाते हैं,

उसे स्वयं ग्रहण करे तो मार्ग प्राप्त हुए बिना रहता नहीं। ग्रहण स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- गरीबोंको क्या करना? यहाँ सभी साधनसंपन्न सुखी लोग ही धर्म पालते हैं।

समाधान :- ऐसा कुछ नहीं है। यहाँ साधनसंपन्न लोग पालते हैं ऐसा नहीं है। यहाँ सब साधनसंपन्न लोग ही है ऐसा नहीं है। सब पालते हैं। सोनगढ़में तो सभी प्रकारके लोग रहते हैं।

मुमुक्षु :- समवसरणमें तो सभी आते हैं।

उत्तर :- सब आते हैं। तिर्यंत भी आते हैं और सब आते हैं। देव भी आते हैं, मनुष्य भी आते हैं, चक्रवर्ती भी आते हैं, निर्धन भी आते हैं और सधन भी आते हैं। निरोगी भी कर सके और रोगी भी कर सके, निर्धन भी कर सके और सब कर सकते हैं।

मुमुक्षु :- मेरे मित्र क्रिश्चियन हैं, उनके समाजमें अग्रणी कार्यकर्ता है।

समाधान :- इस कालमें जन्म हुआ, महाभाग्यकी बात है, (गुरुदेवने) बहुत लोगोंको जागृत किये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-००७

मुमुक्षु :- क्या उनकी मर्मज्ञ दृष्टि है! मूलको पकड़े, डिगे नहीं, लाख कोशिष करो, हिंमतभाईकी उस बातमें.. सभी शास्त्रका गुजरातीकरण, हरिगीत घर-घरमें गाते हो, पढते हो.. कुन्दकुन्दाचार्यका उपकार तो मानते ही हैं, उसमें शंका नहीं है। अमृतचन्द्राचार्यका (उपकार मानते हैं), लेकिन गुजरातीमें तो हिंमतभाईने ही सब किया है। अद्‌भुत!

समाधान :- गुरुदेवने स्पष्ट किया है।

मुमुक्षु :- वह तो स्पष्ट किया है, गुरुदेवने तो स्पष्ट किया ही है, लेकिन ये तो उससे भी विशेष आपकी वाणीको भी विशेष स्पष्ट की है, परन्तु इन्होंने जो किया है वह अलग ही है। भले ही उन्होंने गुरुदेवकी वाणीको ही उसमें उतारी है, लेकिन वाणीको उतारना वह आसान काम नहीं है, आसान काम नहीं है।

मुमुक्षु :- आपको पण्डितजीका पक्षपात है।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रका पक्षपात है और सत्यका भी पक्षपात है, ऐसा यदि कहना हो तो मैं संपूर्णरूपसे स्वीकार करता हूँ। गलत प्रशंसा करनेमें कभी किसीका माना नहीं है, परन्तु वह अद्‌भुत है।

समाधान :- विचार करते थे। उनको पहलेसे ही विचार (चलते थे)। सबको समझानेका (भाव) पहलेसे ही है। छोटे थे तबसे है।

मुमुक्षु :- समझन तो है ही, परन्तु उससे भी विशेष मीठास है। कोई यदि नहीं समझे तो कुछ नहीं, उन्हें कुछ नहीं।

समाधान :- गुरुदेवके प्रतापसे यह सब यहाँ है। गुरुदेवका प्रताप। जो महापुरुष होते हैं उनके पीछे सब होता है। वे महापुरुष ही ऐसे हुए इसलिये सब खींचकर यहाँ आये। जो भी यहाँ आते हैं, सब ऐसी पात्रतावाले (आते हैं), गुरुदेवका तीर्थंकर द्रव्य था इसलिये उनके पीछे ऐसी शक्तिवाले सब आते हैं। वह सब गुरुदेवके चरणमें ही (अर्पित) है, हमने कुछ नहीं किया है।

मुमुक्षु :- ऐसा कहा जाता है, गणधर गूंथे... दिव्यध्वनि खिरती ही रहती है।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनका पुस्तक है, इसमें लिखा है कि साधकका ज्ञान हो, ज्ञानका स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें राग समाता नहीं। वह तो रागसे

भिन्न सदा ज्ञायक ही है। इसमें कहा कि केवलज्ञान और साधकका ज्ञान दोनोंको एक कहा। केवलज्ञान हो या साधकका ज्ञान हो, तो किस अपेक्षासे उस ज्ञानको एक कहा है?

समाधान :- ज्ञान तो सम्यक् की अपेक्षासे कहा है। परन्तु केवलज्ञानी तो लोकालोकको जाननेवाले हैं। उन्हें तो पूर्ण ज्ञान प्रगट हो गया है। इन्हें पूर्ण ज्ञान नहीं प्रगट हुआ है। केवलज्ञानीको तो वीतरागदशा हो गयी है। उन्हें रागका तो क्षय हो गया है। द्रव्यदृष्टिपूर्वक उन्हें तो चारित्रदशा होकर केवलज्ञान प्रगट हुआ है। स्व-परको जाननेवाला ऐसा ज्ञान प्रगट हुआ है। स्वयंको स्वयंके स्वभावमें रहकर सहज स्वभावसे सब जानते हैं। लेकिन केवलज्ञानीका ज्ञान और सम्यग्दृष्टिका ज्ञान, सम्यक्ताकी अपेक्षासे (एक) कहा है। यह जो सम्यक् है वह ज्ञायककी अपेक्षासे। केवलज्ञानीका ज्ञान ज्ञायकको जाननेवाला है और सम्यग्दृष्टिका ज्ञान भी ज्ञायकको जानता है। उस अपेक्षासे है। बाकी सर्व अपेक्षासे नहीं है।

केवलज्ञानीका ज्ञान तो प्रत्यक्ष है, सम्यग्दृष्टिका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है। वह तो स्वरूपप्रत्यक्ष है। सर्व प्रत्यक्ष नहीं है, सम्यग्दृष्टिका ज्ञान सर्वप्रत्यक्ष नहीं है। एक ज्ञायकको जाननेवाला है। ज्ञायककी अपेक्षासे एक कहा है। सम्यक्की अपेक्षासे एक कहा है। सर्व प्रत्यक्षकी अपेक्षासे एक नहीं है। अपेक्षा अलग है। दोनों अपेक्षा समझनी।

इनका द्रव्य और उनका द्रव्य समान है। सम्यग्दृष्टिको जो ज्ञान प्रगट हुआ, वह ज्ञायकको जाननेवाला ज्ञान है और सम्यक् है, उस अपेक्षआसे कहा है। ऐसे तो सिद्ध भगवानका अनुभव और सम्यग्दृष्टिका अनुभव एक जातिका है, सिद्धकी जातिका (है)। वह तो एक जातिकी अपेक्षासे (कहा)। ये तो अंश है। केवलज्ञानीको तो सर्वांशसे प्रगट हुआ है। अंश अपेक्षासे (है)। यह ज्ञान भी ज्ञायकताको जानता है और सम्यक् है, इसलिये। बाकी सर्व अपेक्षासे नहीं है। केवलज्ञानीका ज्ञान तो प्रत्यक्ष है और यह परोक्ष है। उसका अनुभव-स्वानुभूतिकी अपेक्षासे, सम्यक्की अपेक्षासे, ज्ञायककी अपेक्षासे कहा है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप वीतरागी दशा प्रगट होती है, उसे भी क्षणिक शुद्ध उपादान कहनेमें आता है। यहाँ त्रिकाली द्रव्यको शुद्ध उपादान लेना है। क्षणिक शुद्ध उपादान जो लिया वह सम्यग्दर्शनकी पर्याय ली।

समाधान :- उसमें तीनों लिया न। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों लिये हैं न उसमें तो। क्षणिक यानी वह तो पर्याय अपेक्षासे लिया है।

मुमुक्षु :- क्षणिक शुद्ध उपादानसे कथंचित् सहित हूँ।

समाधान :- कथंचित्..?

मुमुक्षु :- सहित हूँ, ऐसा आये। क्षणिक अशुद्ध उपादानसे कथंचित् सहित हूँ, ऐसा लेनेसे क्या दोष आता है?

समाधान :- क्या है उसमें? कथंचित् शुद्ध हूँ? द्रव्यदृष्टिसे क्या लिया है?

मुमुक्षु :- यहाँ त्रिकाली द्रव्यको शुद्ध उपादान लिया है। अब, जो त्रिकाली शुद्ध उपादान है वह क्षणिक शुद्ध उपादानसे कथंचित् सहित है। द्रव्य, पर्याय सहित है, ऐसा आया।

समाधान :- कथंचित् अशुद्ध है ऐसा भी कहनेमें आता है। उसमें दोष नहीं है। कथंचित् कोई अपेक्षासे अशुद्ध पर्यायवाला जीवको कहनेमें आता है और शुद्ध पर्यायवाला भी कहनेमें आता है। शुद्ध पर्याय जो दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी रत्नत्रय पर्याय प्रगट होती है वह पर्याय है, इसलिये उसे कथंचित् द्रव्यसे अभिन्न कहनेमें आती है। लेकिन वह पर्याय है इसलिये। पर्याय, द्रव्यका ही स्वरूप है। लेकिन द्रव्य और पर्यायका भिन्न स्वरूप बताते हैं, इसलिये उसे कथिंचत् कहा है। कथंचित् अशुद्ध भी कहनेमें आता है। उसमें दोष नहीं आता। वह अपेक्षा है।

अनादिकालसे जीव राग-द्वेष करता है, उसे कथंचित् कहनेमें आता है-कथिंचत् द्रव्य अभिन्न कहनेमें आता है। अभिन्न शब्द है न?

मुमुक्षु :- क्षणिक उपादान।

समाधान :- हाँ, क्षणिक उपादान कहनेमें आता है। कथंचित् अशुद्ध उपादान कहनेमें आता है, उसे अशुद्ध उपादान कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- फिर उसमें आगे आता है कि शुद्ध उपादान तो त्रिकाल है, लेकिन उसके लक्ष्यसे जो वर्तमान दशा प्रगट होती है, वह भी कर्ता-भोक्तापनेसे शून्य है। जो त्रिकालको पकड़े ऐसी जो आनन्दकी दशा, उस रूप परिणत जीव, वह भी शुभा-शुभरागका, परपदार्थके कर्तृत्व-भोक्तृत्वसे शून्य है। तो पर्यायका कर्ता तो पर्याय है, ऐसा आता है। पर्यायमें क्रिया होती है। यहाँ तो पर्यायका भी अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व किसप्रकार कहा है?

समाधान :- पर्यायका अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व द्रव्यकी अपेक्षासे अकर्ता-अभोक्ता है। पर्याय पर्यायमें तो कर्ता-भोक्ता है, पर्याय अपेक्षासे। द्रव्य, पर्यायका अकर्ता-अभोक्ता द्रव्यदृष्टि अपेक्षासे कहनेमें आता है। लेकिन द्रव्य और पर्यायको कथंचित् अभेदरूप कहो तो उसे कर्ता-भोक्ता कहनेमें आता है। उस अपेक्षासे है। द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे अकर्ता-अभोक्ता कहा है। पर्यायदृष्टिसे उसे कर्ता-भोक्ता कहनेमें आता है और द्रव्यदृष्टिसे उसे अकर्ता-अभोक्ता कहनेमें आता है। पर्यायदृष्टिसे उसे कहनेमें आता है। द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे बात है।

मुमुक्षु :- द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे पर्यायमें भी अकर्तृत्व कहा है।

समाधान :- पर्यायका जीव अकर्ता द्रव्यदृष्टिसे कहा जाता है। पर्यायका अकर्तृत्व नहीं अर्थात् पर्याय है ही नहीं, ऐसा नहीं। पर्यायका जीव अकर्ता और अभोक्ता (है), वह द्रव्यदृष्टिसे पर्यायका अकर्ता (है)। पर्यायका कर्तृत्व है, पर्याय तो है, पर्याय नहीं है ऐसा नहीं। द्रव्यदृष्टिसे नहीं है ऐसा कहनेमें आता है। द्रव्यकी अपेक्षासे। पर्यायकी अपेक्षासे तो कर्तृत्व-भोक्तृत्व है। द्रव्यदृष्टिसे अकर्ता-अभोक्ता। द्रव्य और पर्यायको अभेद करो तो पर्यायका कर्ता-भोक्ता द्रव्य है। पर्याय निराधार लटकती है और द्रव्य निराधार लटकता है, ऐसा नहीं है। पर्याय द्रव्यके आधार बिना निराधार होती है और द्रव्य कहीं दूसरी जगह रह जाता है, ऐसा नहीं है।

आम है, तो आमका रस अलग रह जाता है, रसकी पर्याय और आमका रंग दूर रहता है, और आम भिन्न रहता है, ऐसा नहीं है। आमका रस, रूप सब मिलाकर आम है। लेकिन उसके लक्षण भिन्न-भिन्न करो कि रस ऐसा है-खट्टा-मीठा रस, हरा-पीला आम, इसप्रकार उसके रंगको लक्षणभेदसे भिन्न करो तो उसे भिन्न कह सकते हैं और आमका पूरा पिण्ड लो, इसप्रकार भिन्न है। आम, रसका कर्ता नहीं है, रसका कर्ता रस है, आम भिन्न है। ऐसा अपेक्षासे कह सकते हैं। उसे अभेद करके कहो तो आम ही रसरूप है, आम ही गंधरूप है, आम ही रंगरूप है, आम ही है।

इसप्रकार द्रव्य-पर्यायको अभेद करके कहो तो द्रव्य ही स्वयं अशुद्ध पर्यायरूप परिणमता है, द्रव्य स्वयं अशुद्ध पर्यायका कर्ता है, द्रव्यदृष्टिसे उसका कर्ता नहीं है। उसे अभेद करके कहो तो उसे ऐसा भी कह सकते हैं और द्रव्यदृष्टिसे कहो तो उसका वह कर्ता (नहीं है)।

द्रव्यदृष्टिसे आमको ऐसा कहो कि रसको रस करे, रंगको रंग करता है। लेकिन वह सब भिन्न-भिन्न जगह लटकते हैं ऐसा नहीं है। वह तो अपेक्षासे कहनेमें आता है। रस भी आममें है, रंग भी आममें है, गन्ध भी आममें है।

इसप्रकार ज्ञानगुणकी पर्याय भी द्रव्यमें है, आनन्दकी पर्याय भी द्रव्यमें है, सब द्रव्यमें है। उससे भिन्न लटकते हो तो द्रव्यका अनुभव कैसे हो? आनन्दका अनुभव किसे हो? ज्ञानको जाननेका अनुभव किसे हो? द्रव्य और पर्याय उस अपेक्षासे एक है। उसे क्षणिक और त्रिकालकी अपेक्षासे भिन्न कहनेमें आता है। पर्याय पलटती रहती है और द्रव्य शाश्वत है, उस अपेक्षासे। बाकी उस द्रव्यकी ही वह पर्याय है और उस द्रव्यका ही वह गुण है। लेकिन द्रव्य अपेक्षासे उसे भिन्न करके कहनेमें आता है। पर्याय और द्रव्यको अभेद करके कहो तो द्रव्य उस रूप परिणमता है। ऐसा कहनेमें आता है।

मूल द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे भिन्न करनेमें आता है। उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वह पर्याय कहीं और है और द्रव्य भिन्न हो गया। तो अनुभव किसे होगा? सिद्धका अनुभव किसे होगा? सब गुण भिन्न-भिन्न हो गये, पर्याय भिन्न हो गयी, फिर द्रव्य कहाँ रह गया? तो द्रव्य शून्य हो गया। अपेक्षा समझनी चाहिये।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर।

समाधान :- सब भिन्न-भिन्न करो तो फिर द्रव्य कहाँ रहता है? तो अनुभव किसे होगा? आनन्दका अनुभव। राग-द्वेषका अनुभव होता है। उस रागको जड़ ही कहोगे तो राग और द्वेषकी कलुषितता होती है वह मुझे नहीं होती है। नहीं होती है, द्रव्य अपेक्षासे। लेकिन उससे भिन्न पड़ना, आनन्द प्रगट करना, वह वेदन किसे होगा? यदि सब भिन्न-भिन्न लटकता हो तो।

मूल वस्तुका स्वभाव समझना है। पानीकी शीतलता समझनी है। लेकिन पानी मलिन हुआ ही नहीं है तो शुद्ध करना रहेगा ही नहीं। पानी मलिन हुआ है, वह पर्याय अपेक्षासे। परन्तु मूल शीतलता हो तो शीतलता आती है। पानी गर्म होता है, लेकिन वास्तविक गर्म नहीं हुआ है, उसकी शीतलता चली नहीं गयी, पुनः शीतल हो जाता है। मूल स्वभावको पहचानना। पर्यायकी मलिनता कोई भी अपेक्षासे नहीं है ऐसा नहीं होता। कोई अपेक्षासे भिन्न है और कोई अपेक्षासे अभिन्न है। दोनों अपेक्षा (समझनी चाहिये)।

जिसका जितना वज़न हो, पर्यायकी अपेक्षा पर्याय जितनी, द्रव्यकी अपेक्षा द्रव्य जितनी। द्रव्य मूल स्वभाव है, पर्याय प्रतिक्षण बदलती है। परन्तु द्रव्यकी ही पर्याय होती है, निराधार नहीं लटकती।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेवकी कृपासे और आपके आशीर्वादसे तत्त्व थोड़ा समझमें आता है, बार-बार घोलनमें आता है, ... कहाँ अटकना होता है?

समाधान :- अन्दर स्वयंके पुरुषार्थकी क्षति है। अन्दर जिज्ञासा, अन्दर उतनी गहराईसे आत्माकी ओर झुकना, आत्माका लक्षण पहचाननेके लिये। आत्मा क्या है, उसका स्वभाव क्या है, उसे पहचाननेके लिये उतना प्रयत्न जो अन्दर चाहिये, उतना प्रयत्न चलता नहीं। प्रयत्नकी क्षति है। स्वयंकी उतनी जिज्ञासा, अन्दर रुचि होनेपर भी अभी जो विशेष दृढ़ता अन्दर होनी चाहिये, रुचिकी अधिक दृढ़ता, प्रयत्न सबमें क्षति रहती है, इसीलिये आगे नहीं बढ़ सकता है।

मुमुक्षु :- विकल्पमें बराबर भासित होता है। घण्टों तक बैठनेके बाद भी कहाँ अटकना होता है?

समाधान :- प्रयत्नकी क्षति है। अनादिकी एकत्वबुद्धि है, उस एकत्वबुद्धिका अनादिसे

ऐसा अभ्यास हो रहा है कि यह शरीर, ये विकल्प सबके साथ एकत्वबुद्धि (हो रही है)। स्थूलबुद्धिसे शरीरसे भिन्नता करे कि ये शरीर जड़ है, कुछ जानता नहीं। लेकिन विकल्पके साथ जो एकत्वबुद्धि हो रही है, उसमें ज्ञायक भिन्न है, उस ज्ञायकको ग्रहण करने हेतु सूक्ष्म होकर स्वयं ज्ञायकको भिन्न करे तो भिन्नता होती है।

उतना सूक्ष्म नहीं होता, उतना प्रयत्न करता नहीं, उसे उतनी अन्दरमें लगी नहीं, उतनी लगनी लगे तो होता है। उसके बिना कहीं चैन नहीं पड़े, सुहाये नहीं, अन्दरसे उतनी लगनी चाहिये। भले बहुत बार अभ्यास करे, घण्टों तक बैठे, लेकिन अन्दर गहराईसे उसे जोप्रयत्न चलना चाहिये, वह प्रयत्न चलता नहीं। बार-बार वहीं खड़ा हो जाता है। एकत्वबुद्धि होनेसे मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, ऐसी भावना करे, लक्षणको पहचाने कि ये जाननेवाला मैं हूँ, इसप्रकार विकल्पसे नक्की करे, लेकिन उस रूप परिणति हो जानी चाहिये, उस रूप जीवन हो जाना चाहिये, अन्दरकी परिणति ऐसी हो जानी चाहिये कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ, प्रतिक्षण मैं ज्ञायक हूँ। बैठकर अभ्यास करे यानी प्रतिक्षण मैं ज्ञायक ही हूँ।

जैसे विकल्पकी जाल लगातार चलती है, वैसे उसे प्रतिक्षण ऐसा सहज हो जाना चाहिये कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ, इसप्रकारका प्रयत्न अन्दर चलता नहीं। जीवन उस रूप हो जाना चाहिये अर्थात् ऐसा सहज हो जाना चाहिये कि मैं ज्ञायक हूँ। उसकी उतनी महिमा आये, उतना प्रयत्न चले, उस रूप जीवन हो जाये कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ। सहजरूपसे। विकल्परूप चले वह अलग है, लेकिन मैं ज्ञायकरूप ही हूँ, यह शरीर मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ। ज्ञायककी ओर ही दृष्टि रहे और ज्ञायक ही उसे भास्यमान हो, बाकी सब मुझसे भिन्न है। (राग) पर्यायमें है, लेकिन वह मेरे स्वभावसे भिन्न है। इसप्रकार जीवनमें ऐसी परिणति उतनी दृढ़ हो जानी चाहिये, जैसे एकत्वबुद्धिकी परिणति (चलती है), उससे भी... यह तो स्वयं ही है, उसे सहज हो जाना चाहिये, अन्दर तद्गत परिणाम (होने चाहियि कि) ज्ञायक ही हूँ। ऐसा नहीं होता, ऐसा प्रयत्न नहीं चलता है।

जागते-सोते, स्वप्नमें, खाते-पीते, चलते-फिरते हर वक्त मैं ज्ञायक ही हूँ। ऐसी अन्दर परिणति दृढ़ होनी चाहिये। और ऐसा अभ्यास करते-करते जब उसे सहज हो जाये, तब उसे यथार्थ भेदज्ञान होकर अन्दर विकल्प छूटकर निर्विकल्प दशामें आगे बढ़े। तबतक जा नहीं सकता। उसके जीवनमें ऐसी एक परिणति दृढ़ हो जाये। उतना प्रतीतिका बल (आये), उतनी परिणति दृढ़ होनी चाहिये, तो होता है। ऐसा हुए बिना (नहीं होता)।

कितनोंको हो तो ऐसा अंतर्मुहूर्तमें ऐसा हो जाता है और नहीं हो तो लम्बे समय

पर्यंत अभ्यास करे तो भी नहीं होता, तो उसके प्रयत्नकी क्षति है। उसका अभ्यास करता रहे, उसमें थकान नहीं लगे, उसके पीछे लगे, लम्बे समयसे करते हैं फिर भी क्यों नहीं होता है? नहीं होता है, उसका कारण स्वयंके प्रयत्नके क्षति है।

ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, उसकी महिमा, उसकी रुचि, ज्ञायकका लक्षण बारंबार पहचानकर लक्षण परसे लक्ष्य (पहचाने)। गुण और गुणी दोनों अभेद है, ज्ञायकका बारंबार अभ्यास करता रहे। ज्ञायकदेव महिमावंत है, ज्ञायकदेवकी महिमा उसे छूटे नहीं। बारंबार जीवनमें ऐसी परिणति दृढ़ होवे, जीवन उस रूप हो जाये तो प्रतिक्षण उसे ज्ञायक ही लगे, ऐसा अभ्यास दृढ़ हो तो अन्दरसे प्रगट होता है। प्रयत्नकी क्षति है।

गुरुदेव कहते थे न? 'निज नयननी आळसे निरख्या नहि हरि'। स्वयंके प्रमादके कारण आलसके कारण। प्रयत्न करे तो भी उसे प्रमाद रह जाता है, तो भी क्षति रह जाती है। प्रतिक्षण जो विकल्प सहज आ जाते हैं तो उसी क्षण मैं भिन्न हूँ, उसप्रकारकी परिणतिका अभ्यास होना चाहिये, तो होता है। और तो उसे वह दृढ़ता होते-होते विकल्प छूटकर स्वानुभूति होनेका प्रसंग बने। बारंबार उसका अभ्यास, दृढ़ता होनी चाहिये। उसमें थकना नहीं, बारंबार अभ्यास करता रहे तो स्वयं ही ज्ञायक है, वह प्रगट हुए बिना रहे नहीं। उसका अभ्यास करता रहे, जबतक नहीं हो तबतक।

मुमुक्षु :- कई बार आभासमें ऐसा लगता है कि वस्तुमें पकड़मे आ जायेगी। पुनः चली जाती है।

समाधान :- उसके समीप जाये, बार-बार करे। उसे ऐसा लगे कि अब पकड़में आ जायेगा, उतना ज़ोर आये, लेकिन वह टिकता नहीं, इसलिये (छूट जाता है ऐसा लगे)। पुरुषार्थकी गतिमें फेरफार होता रहता है। कभी तीव्र पुरुषार्थ चले, कभी मन्द पड़ जाये, कभी मध्यम हो जाये। पुरुषार्थकी गतिमें फेरफार होनेसे ऐसा लगे कि पकड़में आ जायेगा, फिर मन्द पड़े, फिर मध्यम पड़े। लेकिन इसीप्रकार उसका प्रयत्न करते रहनेसे वह पकड़में आये बिना रहता नहीं। स्वयं ही, दूसरा नहीं है।

मुमुक्षु :- उसे छोड़ना नहीं।

समाधान :- हाँ, उसे छोड़ना ही नहीं। क्यों नहीं होता? ऐसी उलझनमें नहीं आना, धैर्य रखना। धैर्य रखनेसे पकड़में आये बिना नहीं रहता। उसकी महिमा छूटे नहीं, उसमें शुष्कता आये नहीं। उसकी महिमा और उसमें ही आनन्द, उसमें ही सुख, सब सर्वस्व उसमें है। अनादिकालके जो जन्म-मरण है और ये विभावका जो दुःख है, उस विभावके दुःखसे छूटने हेतु ज्ञायक सर्वस्व है, उस ज्ञायकमें ही सब आनन्द और सुख है। बाहर कहीं नहीं है। ऐसी प्रतीति, ज्ञायकदेवकी महिमा, अभ्यास करनेमें थकना नहीं, शुष्कता आये नहीं, उसकी महिमा छूटे नहीं तो आगे बढ़े बिना रहे

नहीं।

बाहरसे भगवानके मन्दिरमें जाये तो भगवानके द्वार पर जैसे टहेल लगाता है, ऐसे ज्ञायकके द्वार पर टहेल मारते ही रहना, थकना नहीं। चाहे जितना समय लगे लेकिन उसे छोड़ना नहीं।

मुमुक्षु :- कालके सामने नहीं देखना।

समाधान :- कालके सामने नहीं देखना। उसका अभ्यास करनेसे उसे प्रगट हुए बिना रहे ही नहीं। स्वयं ही है, उसमें ही सब भरा है। उसकी प्रतीतिका ज़ोर रखकर प्रयत्न करते ही रहना, थकना नहीं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-००८

मुमुक्षु :- अस्तिके अधिक विचार बारंबार करने?

उत्तर :- ... नहीं हूँ, ऐसा साथमें आ जाता है। मैं कौन हूँ? मैं आत्मा ज्ञायक हूँ, चैतन्यरूप हूँ, अनंत गुणसे, अनंत महिमासे भरा मैं चैतन्य हूँ और ये जो विभावकी परिणति (है), वह मेरा स्वभाव नहीं है। पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, लेकिन वह मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव चैतन्यमय है, मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायकके अस्तिके ज़ोरमें मैं यह नहीं हूँ, ऐसा साथमें आता है। क्योंकि यह मैं नहीं हूँ, ऐसा साथमें आये, वह साथमें आये बिना नहीं रहता।

मैं कौन हूँ? ज्ञायक हूँ, इसलिये यह मैं नहीं हूँ। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा बारंबार आये, उसके साथ यह मैं नहीं हूँ, मैं नहीं हूँ, इसप्रकार दोनों साथमें आते हैं। यह मैं हूँ और यह मैं नही हूँ, एकसाथ आता है। 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन'। जो सिद्ध हुए, वे भेदविज्ञानसे हुए हैं, नहीं हुए हैं वे भेदविज्ञानके अभावसे नहीं हुए हैं। भेदविज्ञानमें चैतन्यका अस्तित्व और परका नास्तित्व, दोनों साथमें आ जाते हैं।

द्रव्य पर दृष्टि करके द्रव्यदृष्टि और परसे भिन्न, दोनों साथमें ज्ञानमें आते हैं और दृष्टिमें ज्ञायक आता है। ज्ञान दोनोंका विवेक करता है कि द्रव्यदृष्टिसे मैं यह द्रव्य हूँ और ये विभावकी पर्याय होती है, उससे मैं भिन्न हूँ। वह मेरा स्वभाव नहीं है, लेकिन पुरुषार्थकी मन्दतासे मेरेमें होता है। इसप्रकार दोनोंका विवेक ज्ञानमें रहता है और दृष्टि एक चैतन्यके अस्तित्व पर रहती है। और ज्ञायककी ओर स्वयं प्रतीतका ज़ोर करके उस ओर परिणतिको दृढ़ करनेका प्रयत्न करे।

मुमुक्षु :- दृष्टि और ज्ञानमें तो निर्विकल्पता ही पकड़में आती है? जब आत्मा पकड़में आता है, तब दृष्टि और ज्ञान तो निर्विकल्प होते हैं।

समाधान :- विकल्प छूटकर जब निर्विकल्प होता है, पहले तो उसे सविकल्पतामें मैं एक ज्ञायक हूँ, ऐसा पकड़में आया। लेकिन जो निर्विकल्प हुआ, ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण किया, फिर उसमें लीनता बढ़ाकर उसका उपयोग स्वरूपमें स्थिर हो जाये, तब ज्ञायक पर दृष्टि है और ज्ञान है वह सब जानता है। ज्ञान स्वयं द्रव्यको जानता है

कि द्रव्य शुद्ध अभेद है, ऐसा जानता है। और पर्यायमें जो शुद्ध पर्याय प्रगट हुयी, उसका जो वेदन हुआ उस वेदनको भी जानता है। ज्ञान दोनों जानता है। ज्ञान चैतन्य अखण्डको जानता है। द्रव्य एक अभेद द्रव्य है उसे जानता है और पर्यायमें जो वेदन हुआ, उस गुणकी महिमा और पर्यायका वेदन-आनन्दका वेदन कोई अपूर्व, अनुपम होता है, उसे भी ज्ञान जानता है। उस वेदनको जाननेवाला कौन है? ज्ञान है। उस स्वानुभूतिको जाननेवाला ज्ञान है। ज्ञान सब जानता है।

विकल्पसे छूटकर जो चैतन्यकी स्वानुभूति हुयी, चैतन्यकी अनुभूति हुयी, कोई अपूर्व जो अनन्त कालसे नहीं प्रगट हुआ था, जो सिद्ध भगवानके जातिका है, जो सिद्ध भगवानका अंश है, ऐसी जो अनुभूति हुयी उसे ज्ञानमें जानता है और दृष्टि एक द्रव्य पर रहती है।

मुमुक्षु :- दृष्टिका अभ्यास बारंबार करना?

समाधान :- दृष्टिका अभ्यास और ज्ञानमें विवेक रखे कि यह है, यह नहीं है ऐसा नहीं, मैं उससे भिन्न हूँ।

मुमुक्षु :- ... भेदविज्ञानमें सहजरूपसे होना चाहिये?

समाधान :- पहले अभ्यास करते-करते सहज होता है। पहले विकल्प साथमें आता है।

मुमुक्षु :- घूटते-घूटते सहज होता है?

समाधान :- घूटते-घूटते सहज होता है। प्रयत्न करनेसे। पहलेसे सहज नहीं होता। सहज स्वभाव है, परन्तु स्वयं प्रयत्न करे तो होता है। ... वहाँ-से आगे बढ़ता है। स्वानुभूति प्रगट हुयी यानी मुक्तिका मार्ग प्रगट हो गया। आंशिक मोक्ष और मुक्तिकी पर्याय प्रगट हुयी। उसमेंसे साधना हो और अभी अस्थिरता है इसलिये वह बाहर आये तो उसकी भेदज्ञानकी धारा वैसे ही चालू रहती है। और उसमें लीनता बढ़ानेका प्रयत्न करे। आगे बढ़नेपर उसकी लीनता बढ़नेसे चारित्रकी दशा अंतरमें (होती है)। फिर अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूतिकी दशा प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- लीनताके लिये भी पुरुषार्थका यही प्रकार है?

समाधान :- एक ही है।

मुमुक्षु :- पहले और बादमें?

समाधान :- जो मार्ग सम्यग्दर्शनका है, वही मार्ग लीनताका मार्ग है, वही चारित्रका है। दृष्टिके बलसे लीनता बढ़ाता है। सम्यग्दृष्टिको लीनता कम है तो दृष्टिके बलसे लीनता बढ़ाता है, वह मार्ग है। लीनताकी कमी है। स्वरूपमें स्थिरता होनेकी कमी है।

मुमुक्षु :- भावना तो यही होती है कि कब पूर्ण हो जाऊँ।

समाधान :- भावना तो एक ही है, कब पूर्ण हो जाऊँ। ये कुछ नहीं चाहिये। यह सब विकल्प और विभाव है, वह विभाव सब प्रकारसे त्यागने योग्य है, हेय है। नौ-नौ कोटिसे सब त्यागने (योग्य है)। दृष्टिमें उतना बल है कि इन सबका दृष्टिमें त्याग वर्तता है। परन्तु वह अस्थिरतामें रहता है। इसलिये यदि अभी पूर्णता होती हो तो यह कुछ नहीं चाहिये। लीनता यदि बढ़ जाये तो स्वरूपमें जम जाऊँ, ऐसी भावना है। लेकिन उतनी लीनता बढ़ती नहीं, उपयोग बाहर आता है। जो स्वानुभूति प्रगट हुयी उसकी उसे इतनी महिमा है कि बस, इसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये। दृष्टिमें तो सबका सब प्रकारसे त्याग हो गया है।

ज्ञान प्रत्यख्यान है। दृष्टिमें त्याग हो गया, लेकिन अस्थिरतामें अभी त्यागकी कमी है। (इसलिये) लीनता बढ़ाता जाता है। मुनिदशामें भी अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें जमते जाते हैं। उसमें ही उनकी श्रेणीका प्रारंभ होता है। उसीमें केवलज्ञान प्रगट होता है। द्रव्य-गुण-पर्यायका प्रयोजनभूत ज्ञान हो तो भी आत्माको पहचान सकता है।

मुमुक्षु :- विशेष ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है?

समाधान :- विशेष ज्ञान हो अथवा बहुत शास्त्र पढ़ा हो या बहुत अभ्यास किया हो उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। मूल प्रयोजनभूत द्रव्य-गुण-पर्याय (का स्वरूप जाने), यह विभाव भिन्न है और मेरा स्वभाव भिन्न है। प्रयोजनभूत जाने तो उसमें मुक्तिका मार्ग शुरू हो जाता है। फिर जो आगे नहीं बढ़ सकता है तो फिर उसे विशेष ज्ञान जानने हेतु, विशेष स्पष्टता हेतु शास्त्रका अभ्यास दृढ़ताके लिये करे तो उसमें तो लाभका कारण है।

मुमुक्षु :- ऐसा अभ्यास करनेसे स्वयंको भास होता है कि अब प्राप्त करूँगा ही, विशेष समीप आते-आते?

समाधान :- भास होता है स्वयंके पुरुषार्थको लेकर। स्वयंकी हूँफ स्वयंको आये, लेकिन पुरुषार्थ करे तो होता है। उसे ऐसा होता है कि मैं पुरुषार्थ करूँगा ही। परन्तु उसे पुरुषार्थमें देर लगे तो शान्ति और धैर्यसे पुरुषार्थ करे। उलझनमें नहीं आता।

मुमुक्षु :- .. शंका नहीं होती, इसप्रकार ही प्राप्त होता है।

समाधान :- यह एक ही प्रकार है। मैं ज्ञायक हूँ, उस ज्ञायकको पहचाने। मैं चैतन्य हूँ, वह स्वयं स्वयंको पहचान ले, स्वयं स्वयंकी दृढ़ता करे और स्वयं स्वयंमें लीनता करे। निज घरमें वास करे और स्वयंकी दृढ़ प्रतीत करे और विभावसे छूटकर उसका भेदज्ञान करे, उससे भिन्नता करे, वह एक ही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। .. गुण क्या, पर्याय क्या, ऐसा प्रयोजनभूत ज्ञान उसमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- ७३ वर्षके जीवनमें आज पहली बार सूत्र सुना कि ज्ञायकके द्वार पर

टहेल लगानी। आज तक दूसरी टहेल लगानेका सुना था, परन्तु ज्ञायकके द्वार पर टहेल लगाना तो आपने ही बताया।

समाधान :- वही टहेल लगानी है। ज्ञायकके द्वार पर ही टहेल लगानी है, तो ही प्राप्त होता है।

मुमुक्षु :- आप आशीर्वाद दीजिये, हम टहेल लगाये।

समाधान :- यही करना है। गुरुदेवने यही मार्ग बताया है और यही करना है। ज्ञायक.. ज्ञायक। गुरुदेव कहते थे, तू चैतन्य भगवान है। सुबह आता है न? तू परमात्मा है, तू परमात्मा है ऐसा नक्की कर। गुरुदेवने यही कहा है और यही करना है। ज्ञायकदेवकी महिमा करके उसके द्वार पर टहेल लगानी है।

मुमुक्षु :- माताजी! पुरुषार्थ थोड़ा मन्द हो और दृढ़ता सच्ची हो तो भयभीत होने जैसा है? पुरुषार्थ थोड़ा मन्द हो और दृढता पूर्ण हो तो?

समाधान :- पुरुषार्थ ज्यादा करना। दृढ़ता है ऐसा लगे, परन्तु जो दृढ़ता अन्दरसे गहराईसे आनी चाहिये, उसमें सहज दृढ़ता अलग होती है, विकल्प सहितकी दृढ़ता अलग होती है। तो भी स्वयंको लगता है दृढ़ता तो बराबर है, यही मार्ग है, ऐसा लगे स्वयंने दृढ़ता की हो तो। स्वयं प्रयत्न नहीं कर सकता है, प्रयत्न करे, टहेल लगाये, बारंबार प्रयत्न करे, नहीं हो तो। बहुत लोगोंको ऐसा लगे कि दृढ़ता तो बराबर है कि यही मार्ग है, लेकिन होता नहीं है। स्वयंके प्रयत्नकी कमी है।

उसमें भक्ति साथमें आ जाती है। ज्ञायककी महिमा, ज्ञायककी भक्ति जिसे हो वह आगे बढ़े बिना नहीं रहता। ज्ञायक.. ज्ञायक.. मुझे ज्ञायकके सिवा कुछ नहीं चाहिये। ऐसी ज्ञायककी भक्ति अन्दर आनी चाहिये। मैं देखुँ तो ज्ञायक, मुझे निद्रामें ज्ञायकको देखना है, मुझे बैठते हुए, खाते-पीते मुझे ज्ञायक ही चाहिये। ज्ञायकदेवकी महिमा, ज्ञायककी भक्ति, ज्ञायककी स्तुति, ज्ञायकको देखना है, ज्ञायकके दर्शन करने हैं, वह ज्ञायककी भक्ति है।

जैसे भगवानके द्वार पर मुझे भगवानके दर्शन करने हैं, भगवानकी स्तुति करुँ, भगवानकी पूजा करुँ। उसी प्रकार मुझे गुरुदेवकी वाणी सुननी है, गुरुदेवके दर्शन करने हैं, गुरुदेवके दर्शन करुँ, गुरुदेवको देखता ही रहूँ, ऐसा होता है।

वैसे मैं ज्ञायकको ही देखता रहूँ, ज्ञायकके गुणग्राम करुँ, ज्ञायककी पूजा करुँ। ज्ञायक तो ज्ञायककी भक्तिसे प्रगट हुए बिना रहे नहीं, वैसे भक्ति हो तो। ज्ञायकको पहचानकर कि यही ज्ञायक है, दूसरा नहीं है। ज्ञायकका लक्षण पहचानकर नक्की करे के यही ज्ञायक है। अब, मुझे ज्ञायक ही चाहिये। जैसे जिनेन्द्रदेव, गुरुके लक्षणसे पहचानकर नक्की करे कि यही सत्पुरुष है, यही गुरु है और यही देव है। फिर इस देवकी पूजा

करनी है, इस देवकी भक्ति करनी, गुरुकी भक्ति करनी है। इसप्रकार परीक्षा करके नक्की करके फिर उनका स्तवन करे, गुणग्राम करे, गुरु क्या कहते हैं, उनका आशय समझनेका प्रयत्न करे।

वैसे यह ज्ञायक ही है, ऐसा लक्षणसे पहचानकर नक्की करे। फिर उसकी भक्ति और उसकी स्तुति, ज्ञायकके पीछे लगे तो प्रगट हुए बिना रहे नहीं। वह भक्तिमार्ग है। ज्ञायककी भक्ति अन्दर साथमें आनी चाहिये। देव-गुरु-शास्त्रकी भक्तिके साथ ज्ञायककी भक्ति आनी चाहिये, परन्तु लक्षणको पहचानकर। लक्षण पहचानना चाहिये कि यह ज्ञायक ही है। यह लक्षण ज्ञायकका है, दूसरेका नहीं है, ऐसा आये तो उसे ज्ञायककी भक्ति कहते हैं। लक्षणको पहचानकर होनी चाहिये।

समझनपूर्वककी भक्ति होनी चाहिये, ज्ञानपूर्वक भक्ति होनी चाहिये। समझे बिना ऐसे ही बाहरसे भक्ति करता रहे ऐसे नहीं। ज्ञायककी भक्ति साथमें आनी चाहिये, गुरुकी भक्तिके साथ। गुरुकी भक्ति किसे कहें? देव और गुरुकी। कि ज्ञायककी भक्ति साथमें आये तो वह भक्ति है।

मुमुक्षु :- बाह्य भक्ति।

समाधान :- मात्र बाह्य नहीं।

मुमुक्षु :- माताजी! ज्ञानीको जब शुभराग आता है उसमें तो उसे खटक लगती है। बराबर है? तो जब वह शुभरागमें जुड़ता है तब उत्साहपूर्वक जुड़ता है कि दुःखपूर्वक जुड़ता है?

समाधान :- जिस वक्त वह जुड़ता है उस समय उसे भेदज्ञान वर्तता है। मेरे पुरुषार्थकी कमज़ोरीके कारण जुड़ना होता है, अन्दर लीनता नहीं होती है इसलिये शुभरागमें जुड़ता है। लेकिन जिस समय शुभराग उठता है, उस समय ऐसा विकल्प नहीं करता है कि यह शुभराग है, शुभराग है। ऐसे नहीं होता। सहज शुभराग आता है और उसे भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। ज्ञायक भिन्न ही रहता है और शुभरागमें ऐसे तन्मय नहीं हो जाता कि वह ज्ञायकको भूल जाये। ज्ञायक भिन्न रहकर उसे शुभराग आता है कि मैं तो भिन्न ही हूँ। यह शुभराग है। ये तो विभावकी ओरका भाग है, मेरा ज्ञायकका भाग, मेरे स्वघरका भाग भिन्न है और यह शुभरागका भाग है वह भाग विभावका घर है। वह भिन्न है। ऐसा ज्ञान बराबर है। उससे भिन्न रहकर शुभराग (आता है)। उसमें एकत्व नहीं होता, उसमें आकूल-व्याकूल नहीं होता।

उसका बहुत उत्साह दिखाई दे। दूसरेसे उसका उत्साह अधिक दिखाई दे, उसकी भावना वैसी दिखती है, लेकिन वह भिन्न ही रहता है। उसमें वैसे एकत्व तन्मय नहीं हो जाता कि स्वयंको भूल जाये। ऐसे भिन्न रहता है। बार-बार विकल्प नहीं करता

है कि अरे..! यह दुःख है। ऐसे बार-बार विकल्प नहीं करता। उसकी धारा ही भिन्न वर्तती है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकका लक्षण है उसे..

समाधान :- ज्ञायकका लक्षण ज्ञान लक्षण है। ज्ञान लक्षण ऐसा असाधारण लक्षण है। गुजरातीमें बोलती हूँ। ज्ञान लक्षण आत्माका असाधारण है और उसके द्वारा ज्ञायक पहचाना जाता है। गुणसे गुणी पहचाना जाता है। गुण-गुणीका भेद आत्मामें है, वह वास्तविक भेद नहीं है, लक्षणभेदसे भेद है। लेकिन उस लक्षणसे-गुणसे गुणी पहचाननेमें आता है। वह ज्ञानलक्षण-गुण ऐसा असाधारण है कि उस ज्ञान द्वारा आत्मा गुणी-ज्ञायक है, वह पहचाना जा सकता है। और गुरुदेवने बहुत दर्शाया है।

आत्मा जाननेवाला है, ज्ञायक है, आत्मामें सब भरा है, आत्मा अपूर्व है और यही करने जैसा है। सम्यग्दर्शन होते ही मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। ज्ञान लक्षणसे ही आत्मा पहचाना जाता है। आत्माका लक्षण ही वह है। ये सब लक्षण दिखाई दे वह बाह्य लक्षण है। ये सब जड़ परपदार्थका लक्षण है। यह जड़ शरीर कुछ जानता नहीं, जाननेवाला एक आत्मा ही है। उस आत्माको पहचानना। ज्ञायक लक्षण। उसमें अखण्ड ज्ञायकको पहचानना।

ज्ञायककी भक्ति यानी अन्दर ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये। ज्ञायक कौन है? ज्ञायक कोई अपूर्व वस्तु है, अनुपम है, वह कोई अलग चीज है। उसकी भक्ति, उसकी महिमा आनी चाहिये। ज्ञायक कोई अनुपम है।

गुरुदेव कहते थे, वास्तविक प्रभात-अन्दर नया प्रभात अन्दर सम्यग्दर्शन होता है तब प्रगट होता है। और उस प्रभातमेंसे पूरा केवलज्ञान-सूर्य उसमेंसे प्रगट होता है। इस पंचमकालमें गुरुदेव पधारे और पंचमकालमें गुरुदेव यहाँ पधारे वही इस जैनशासनमें गुरुदेव पधारे वही प्रभात था। कोई कुछ जानते नहीं थे, कुछ नहीं जानते थे। क्या मार्ग है, स्वानुभूतिका मार्ग जानते नहीं थे। स्वानुभूतिको कोई नहीं पहचानते थे। वैसेमें स्वानुभूतिका पंथ बताया।

अंधकार व्याप्त हो गया था। स्वानुभूतिका नाम किसीको नहीं आता था कि अन्दर स्वानुभूति हो वही यथार्थ मुक्तिका मार्ग है। कोई जानता नहीं था। मुक्तिका मार्ग सब क्रियासे जानते थे। बाहरसे थोडे सामायिक, प्रतिक्रमण कर ले, थोड़ा सीख ले तो माने कि इससे मोक्ष हो जायेगा। मोक्षको कोई पहचानते नहीं थे। स्वानुभूतिका पंथ गुरुदेवने प्रकाशित किया। स्वानुभूति गुरुदेवने बतायी, मुनिका स्वरूप गुरुदेवना बताया, केवलज्ञानीका स्वरूप गुरुदेवने बताया। सब गुरुदेवने बताया। जिनेन्द्रदेव कैसे होते हैं, यह गुरुदेवने बताया। सच्चे शास्त्र कैसे हो वह गुरुदेवने बताया। सब गुरुदेवने बताया।

जिनेन्द्र भगवान जगतमें सूर्य समान हैं और उनकी जो प्रतिमा हैं, उनका प्रतिबिंब, वह प्रतिमा भी गुरुदेवके प्रतापसे पधारे हैं। सब गुरुदेवका प्रताप है। गुरुदेव जैनशासनमें इस भरतक्षेत्रमें पधारे वही एक प्रभात है। सूर्य समान गुरुदेव ही थे। देव-गुरु-शास्त्र ही इस जगतमें सुप्रभात है और उनके निमित्तसे अन्दर जो उपादान तैयार होकर जो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह अन्दरमें एक सुप्रभात है। नूतन वर्ष वह प्रगट होता है।

गुरुदेव एक नवीनता इस भरतक्षेत्रमें ले आये कि जो कोई नहीं जानता नहीं था। सत्य पंथ बता दिया। उस सत्य पंथ पर सब मुड़े हैं। सत्य पंथकी एक नवीनता आयी है, वही वास्तविक नवीनता है। सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वहाँसे केवलज्ञान प्रगट होता है। यहाँ अंधकार व्याप्त हुआ था, उसमेंसे सम्यग्दर्शनका पंथ, स्वानुभूतिका पंथ दर्शाया है। यह एक नवीनता है।

गुरुदेवने इतने सालसे जो उपदेश दिया है और जो उपदेशकी जमावट करके अन्दरमें स्वयंने जमावट की और उस पंथ पर स्वयं प्रयाण करे वही एक नवीनता है। और वही पंथ ग्रहण करना, वही एक नवीनता है। वास्तविक सुप्रभात तो सम्यग्दर्शनसे होता है, लेकिन उसके पहले भी गुरुदेवने यह पंथ बताया और उस उपदेशकी जमावट की उसे स्वयं ग्रहण करे तो उस रास्ते पर चले। वही अन्दरमें एक नवीनता प्रगट करनेके पंथ पर स्वयं चले तो भी अच्छा है। वास्तविकरूपसे ज्ञायकका पंथ ही ग्रहण करने जैसा है। ज्ञायकका पंथ, उसका निमित्त कौन? सच्चे देव-गुरु-शास्त्र।

जो भगवानको पहचानता है, वह स्वयंको पहचाने। स्वयंको पहचाने वह भगवानको पहचानता है, ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। बाहरसे देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति और अन्दर ज्ञायककी भक्ति, ज्ञायककी महिमा आये तो ज्ञायककी ओर मुड़ता है। गुरुकी भक्ति आये, गुरु क्या स्वानुभूतिका मार्ग बताते हैं! गुरुदेव क्या अनुपम आत्माका स्वरूप बताते हैं! ऐसे आत्माकी भक्ति और महिमा स्वयंको आये तो उस ओर स्वयं मुड़ता है। मैं ऐसे आत्माके कैसे दर्शन करूँ, आत्माको कैसे निरखता रहूँ, कैसे देखुँ, इसप्रकार भक्तिसे ज्ञायककी ओर मुड़े तो मुड़ सकता है। मात्र आत्मा ज्ञानलक्षण, ज्ञानलक्षण (है), ऐसे विचारसे नक्की करे, परन्तु उसकी महिमा नहीं आये तो उस ओर मुड़ नहीं सकता।

गुरु कैसे ग्रहण हो? कि गुरु जो कहते हैं, द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप कोई अपूर्व रीतिसे स्वयं ग्रहण करे तो उसे गुरुकी कुछ महिमा आये, तो उसने गुरुको ग्रहण किये हैं। गुरुकी महिमा, जिनेन्द्रदेवकी महिमा। गुरुदेवने शास्त्र बताये हैं। शास्त्रको कोई जानता नहीं था। दूसरे सब श्वेतांबरके शास्त्र थे उसे सब शास्त्र मानते थे। सच्चे शास्त्र कौन-से हैं, वह भी गुरुदेवने बताया है। गुरुदेवका ही परम उपकार है। और उसी पंथ पर प्रयाण करके उसमें ही नवीनता लानी, ज्ञायकके पंथ पर चलना वही वास्तविक

नवीनता है और वही करने जैसा है।

बारंबार ज्ञायक.. ज्ञायक करता हुआ ज्ञायकके पीछे लगकर, यह शरीर तो भिन्न ही है, वह तो जड़ है। अन्दर विभाव होते हैं वह विभाव भी स्वयंका स्वरूप नहीं है, विकल्पकी कतार चले वह भी स्वयं नहीं है। उससे भिन्न आत्मा कोई अनुपम है। उस आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करे वह यथार्थ है, वही जीवनमें करने जैसा है। बाकी सब तो चलते ही रहता है। हेतु एक आत्मार्थका, आत्माका प्रयोजन होना चाहिये। ज्ञायक.. ज्ञायक करता हुआ आगे बढ़े तो ज्ञायक प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- प्रसन्न होता है?

समाधान :- ज्ञायकदेव प्रसन्न होता है। बाहरसे जैसे गुरु प्रसन्न होते हैं, वैसे अन्दर ज्ञायक प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- गुरुकी कृपा जैसे होती है, वैसे ज्ञायककी कृपा होती है।

समाधान :- हाँ, ज्ञायककी भी कृपा होती है।

मुमुक्षु :- अर्थात् ज्ञायकका जीवन जीनेकी तैयारी करनी चाहिये।

समाधान :- ज्ञायकका जीवन जीनेकी तैयारी करनी चाहिये। वही सत्य है। देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य, अन्दर ज्ञायकका सान्निध्य कैसे प्राप्त हो, उस ओर कैसे प्रयाण हो, वही करने जैसा है। भले ही यथार्थ बादमें प्रगट होता है, लेकिन उसके लिये स्वयं पुरुषार्थ, महिमा आदि लाकर करे तो हुए बिना नहीं रहता। जिसे मार्ग प्रगट हुआ उन्हें पहलेसे भेदज्ञान नहीं था, पहले एकत्वबुद्धि थी, उसमेंसे ही भेदज्ञान करके आगे बढे हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-००९

मुमुक्षु :- माताजी! देव-गुरु-शास्त्रकी भक्तिका तो ख्याल आता था कि भगवानकी इसप्रकार भक्ति (करनी), गुरुकी इसप्रकार भक्ति करनी। ज्ञायककी भक्ति, आप यह एक नया ही प्रकार दो दिनसे समझाते हो।

समाधान :- उसकी महिमा आये बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता। मात्र शुष्कतासे आगे बढ़े तो वहाँ अटक जाता है। ज्ञायककी महिमा आये तो ही आगे बढ़ सकता है। ज्ञायककी भक्ति आये तो ही आगे जा सकता है।

मुमुक्षु :- आपने एक बात बहुत सुन्दर की थी, ज्ञायकका लक्षण ... मात्र शुष्कता हो जायेगी तो प्राप्त नहीं होगा। महिमापूर्वक..

समाधान :- महिमापूर्वक होना चाहिये। बहुत लोग कहते हैं न कि भक्तिसे.. अन्दर ज्ञायककी भक्ति आनी चाहिये, तो आगे जा सकता है। वह भक्ति पहचानकर, ज्ञानपूर्वककी भक्ति, ज्ञायकको पहचानकर भक्ति आये। ज्ञायकका लक्षण पहचानकर, यही ज्ञायक हूँ, इसप्रकार उसकी भक्ति आनी चाहिये।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें यह बोल था, कल बात की उसमें, उतना ख्याल नहीं आता था, जितना इन दो दिनोंमें आया। उस वचनामृतमें-१५३ नंबरके वचनामृतमें तीन पंक्ति है, ज्ञायकके (द्वार पर) टहेल लगानी। उसमें दूसरी तरहसे लिखा है। लेकिन कल आपने विस्तार किया तब ख्याल आया कि इसमें इतना भरा है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें लिखा है, वह दूसरी तरहसे है। ज्ञायककी टहेल लगानी। राजाके दरबारमें...

समाधान :- हाँ, टहेल लगानी, ज्ञायककी टहेल लगानी। आत्माका द्रव्य क्या, आत्माका गुण क्या, आत्माकी पर्याय क्या, सबका विचार करके स्वयं उसकी महिमा लाये।

मुमुक्षु :- महिमापूर्वक भक्ति आनी चाहिये।

समाधान :- महिमापूर्वक आनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ज्ञायककी भक्ति आनी चाहिये।

समाधान :- ज्ञायककी आनी चाहिये।

मुमुक्षु :- गुरुदेव निश्चयसे अंधकारमें प्रकाशरूप ही हैं।

समाधान :- अंधकारमें प्रकाश व्याप्त हो गया, गुरुदेव पधारे। गुरुदेव इस जिनशासनमें बिराजते थे, वह एक प्रकाश था, एक प्रभात उदित हुआ। सूर्य समान! लेकिन उन्होंने जो वाणीकी वर्षा की है, बहुत मुमुक्षुओंके हृदयमें जो उपदेश दिया, सबके हृदयमें छा गया है। उसे स्वयं ग्रहण करे तो भी उसमेंसे कल्याण हो ऐसा है।

मुमुक्षु :- जैसे पद्मनंदी आचार्य कहते हैं न कि, ऐसी उपदेशकी जमावट की है, उसके आगे तीन लोकका राज..

समाधान :- तीन लोकका राज (तुच्छ है)। उसके आगे मुझे तीन लोक, मेरे गुरुने जो उपदेशकी जमावट की है, उसके सामने मुझे ये तीन लोकका राज प्रिय नहीं है। इस लोकका-पृथ्वीका राज तो क्या, पृथ्वीका राज तो नहीं, अपितु तीन लोकका राज हो तो भी वह मुझे प्रिय नहीं है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। मुझे इस पंचमकालमें एक गुरु मिले और गुरुका जो उपदेश प्राप्त हुआ, उसके सामने सब तुच्छ है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। जिस उपदेशकी जमावट गुरुदेवने की है, ऐसी उपदेशकी जमावट करनेवाले इस कालमें मिलना बहुत दुर्लभ है।

मुमुक्षु :- सुनते ही धर्मकी प्रतीति होने लगे।

समाधान :- हाँ, धर्मकी प्रतीति होती है। उनकी वाणी ऐसी थी।

मुमुक्षु :- आपके पास आते हैं तब आपके मुखसे निरंतर ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक..

समाधान :- सब पूछते हैं इसलिये। करना एक ही है। चारों पहलूसे जानना रहता है, करना एक ही है।

मुमुक्षु :- ज्ञायक और गुरु महिमा।

समाधान :- द्रव्य-गुण-पर्याय, निश्चयनय, व्यवहारनय, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, कथानुयोग-सबका जानना होता है, जबतक नहीं होता तबतक जानना होता है, लेकिन करना एक ही है-ज्ञायक-ज्ञायकको पहचानना, ज्ञायकको भिन्न करना। ज्ञायक द्रव्य स्वयं एकत्वबुद्धिमें रहा है, उस आकुलतामें (रहा है), उससे भिन्न (पड़े), स्वयं भिन्न ही है, परन्तु भ्रान्तिसे एकत्व हो रहा है, उसे भिन्न करके और स्वयं अपने स्वभावरूप परिणमित हो जाये। जो अपना स्वभाव है उस रूप हो जाना, वही उसे करना है। जो अपना स्वभाव है, उस रूप नहीं रहता है और विभावरूप परिणमता है। निज स्वभावरूप हो जाना वही एक करना है। ज्ञायकका ज्ञायकरूप हो जाना। वह कैसे हो? उसकी महिमा आये तो होता है, उसे पहचाने तो होता है। उसे पहचाने, उसकी ओर रुचि लगे, उस रूप जीवन करे, उसकी महिमा आये तो होता है। उसमें थके नहीं होता है। बाहरमें लौकिकका एक ही कार्य करना हो तो उसमें ऐसे ही

घूटता रहता है, रसपूर्वक करता रहता है। तो इस ज्ञायकमें थकना नहीं चाहिये, उसका रस कम नहीं होना चाहिये, उसमें रुखापन नहीं आना चाहिये, तो वह आगे बढ़े।

एक निर्णय उसे अन्दरसे (करना चाहिये)। भले सच्चा निर्णय तो बादमें होता है, सम्यग्दर्शन (होता है तब), परन्तु पहले उसे ऐसा दृढ़ निर्णय होना चाहिये कि करने जैसा तो यही है, सारभूत तो यही है, बाकी सब निःसार है। ऐसा उसे अन्दरसे आना चाहिये।

मुमुक्षु :- आप एक जगह कहते हो कि शाश्वत वहीं चलने जैसा है।

समाधान :- शाश्वत वहीं जाये, फिर बाहर ही नहीं आना पड़े। जो शाश्वत आत्मा है, पर्याय भी उस ओर लीन होकर आगे बढ़नेपर उसमें समाकर बाहर हीं नहीं आये। 'समज्या ते समाई गया'। समा जाते हैं, बस, फिर बाहर नहीं आते। केवलज्ञानी समा गये, साधना बढ़ते-बढ़ते। सम्यग्दर्शन और मुनिदशामें समाकर बाहर (आते थे), पूर्ण समा गये। 'समज्या ते समाई गया'।

मुमुक्षु :- यह भी संस्कार एकबार जवाब देंगे, ऐसा लगता है। अभी जो संस्कार पड़ते हैं, वह संस्कार एकबार अवश्य जवाब देंगे।

समाधान :- गुरुदेवने जो देशना दी, वह जो संस्कार पड़े, अन्दरसे स्वयंकी भावना हो, स्वयं उस ओर जाता हो, स्वयंकी परिणति उसे चाहती हो, उसे प्रगट हुए बिना नहीं रहता। स्वयं है, दूसरा कोई नहीं है। स्वयंको परद्रव्यकी इच्छा हो तो परद्रव्य स्वयंके हाथकी बात नहीं है। ये तो स्वद्रव्य स्वयं ही है। स्वयं ही उसे चाहता हो, स्वद्रव्यको, वह प्रगट हुए बिना रहे ही नहीं। बारंबार उसके संस्कार ग्रहण करे।

एक शुभभाव आये तो उसका ऐसा पुण्यबंधन होता है कि जो पर बाहर है, जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र भी प्राप्त हो जाते हैं। तो फिर ये ज्ञायकदेव क्यों नहीं प्राप्त होंगे?

मुमुक्षु :- आपने कहा है न, भावना हो तो फले बिना रहती ही नहीं।

समाधान :- भावना फले बिना रहती ही नहीं।

मुमुक्षु :- एक शुभभावमें परपदार्थ नहीं मिल सकता, वह भी प्राप्त हो जाता है।

समाधान :- वह भी प्राप्त होता है, वह अपने हाथकी बात नहीं है। तो भी जो स्वयंकी अन्दरसे भावना है, वह भावना.. शुभभाव ऐसी जातिके होते हैं कि जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र आदि सब प्राप्त होते हैं। लौकिक इच्छा हो वह अलग बात है। उसमें पापका कारण बनता है।

मुमुक्षु :- वहाँ स्वयंका अधिकार भी नहीं है।

समाधान :- वह तो नहीं प्राप्त हो, ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री कहते हैं कि इसमें भी अधिकार नहीं है, फिर भी शुभभाव..

समाधान :- इसमें भी अधिकार तो नहीं है, तो भी..

मुमुक्षु :- प्राप्त होता है। तो ज्ञायक क्यों नहीं?

मुमुक्षु :- तू पारम है और परमात्मा नहीं कहते हैं, तू परमात्मा है और परमात्मा कहते हैं।

समाधान :- पामर नहीं है आत्मा। गुरुदेव तो कहते हैं, तू परमात्मा है। गुरुदेव तो सबको भगवान ही कहते थे। तू पामर है, ऐसा तो पर्यायमें कहनेमें आता है, द्रव्य पामर नहीं है। गुरुदेव कहते हैं, द्रव्य तो तेरा पूर्ण भरा है। परमात्मा ही हो। परमात्मामेंसे परमात्मा होता है। पर्याय अपेक्षासे पामर है।

भावनावाला ऐसा कहता है कि मैं पामर हूँ। प्रभु! मुझ पामरको आपने प्रभु बनाया, ऐसा कहे। परन्तु अपनेमें प्रभुता भरी है, उसमेंसे प्रभुता आती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें ऐसा विवेक साथमें रखना चाहिये।

समाधान :- ज्ञानमें विवेक आये बिना रहता ही नहीं। स्वयंकी परिणतिमें जो लाभ हो उसप्रकारसे, ऐसी नम्रता आये बिना रहती ही नहीं। पर्यायमें अधूरापन है, उसे देखता है कि पर्यायमें अधुरापन है। द्रव्यदृष्टिसे द्रव्य परिपूर्ण है, परन्तु पर्यायमें अधुरापन है, इसलिये पामर हूँ, ऐसा कहे। भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, सम्यग्दर्शन हो तो भी कहे कि मैं पामर हूँ। अभी साधकदशा मुनिदशा नहीं है। गृहस्थाश्रममें है। प्रभु! मैं पामर हूँ। पर्यायमें अभी अस्थिरता है, उसे आगे करके कहता है। स्वानुभूतिके पंथ पर स्वानुभूति प्रगट हुई, तो भी पर्याय अपेक्षासे ऐसा कहते हैं।

द्रव्यकी अपेक्षासे कहते हैं कि मैं प्रभु हूँ। सब अपेक्षा समझनी है। अपेक्षा अनुसार उसकी परिणति.. जैसा वस्तुका स्वरूप है ऐसा समझना है। उसी अपेक्षासे। जैसा वस्तुका स्वरूप है, उसी अनुसार अपेक्षा होती है। ऐसी ही उसकी अपेक्षा होती है। उस अपेक्षासे उसका ज्ञान वैसा ही कार्य करे, जैसा वस्तुका स्वरूप है, ऐसा ज्ञान, ऐसी साधना। द्रव्य पर दृष्टि और ज्ञान सब विवेक करता है। जैसा वस्तुका स्वरूप है, उसी अनुसार उसका मुक्तिका मार्ग, साधकका मार्ग उसप्रकारसे चलता है।

विवेक यानी मात्र विवेक करना है ऐसा नहीं है। उसमें उसकी वैसी द्रव्य और पर्यायकी परिणति है। पर्यायमें अधुरापन है और द्रव्य पूर्ण है, ऐसा वस्तुका स्वरूप है। इसलिये अब ज्ञान-सम्यक्ज्ञान करता है।

मुमुक्षु :- वही विवेक है।

समाधान :- वह विवेक है।

... अल्प ज्ञानमें भी नक्की कर सके ऐसा है। जो गुरुदेवने समझाया है, तत्त्वकी बात, बहुत अपूर्व मार्ग समझाया है। अल्प ज्ञानमें भी मैं भगवान हूँ, ऐसा नक्की कर सकता है। विचार करके जिसे जिज्ञासा लगनी हो वह विचार कर सकता है। जो मूल तत्त्व अनादिअनंत शाश्वत है, उसमें कोई विभाव नहीं हो सकता, वह तो शुद्ध है। उसमें पर निमित्तसे जो विभाव राग-द्वेष आदि होते हैं, वह अपना स्वरूप नहीं है। जिससे दुःख हो, जिससे स्वयंको आकूलता हो, वह अपना मूल स्वभाव नहीं है। वह तो पर निमित्तसे स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। इसलिये जो आकूलता होती है, वह अपना (मूल स्वरूप नहीं है)।

लेकिन जो स्वरूप सुखरूप हो, जैसे स्वयंका ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञान जाननेवाला है, जाननेवाला है वह अनादिअनंत है। वह जाननस्वरूप है वह उसे दुःखरूप नहीं है। जाननेवालेमें सुख, आनन्द आदि अनन्त गुण भरे हैं। और जो अनादिअनंत तत्त्व है, उसमें जो ज्ञान है वह पूर्ण होता है। जो जाननेवाला है, उसकी कोई सीमा नहीं होती। जो जाननेवाला है वह पूर्ण जाननेवाला है। जो तत्त्व है वह पूर्ण स्वभावसे भरपूर ही होता है। उसमें कोई अपूर्णता (नहीं है)। स्वतःसिद्ध आत्मामें अपूर्णता होती ही नहीं। पूर्ण भगवान जैसा है।

जैसे अग्निमें उष्णता है, तो उसका उष्ण स्वभाव है। यह दृष्टांत है। पानीका शीतल स्वभाव है, तो उसकी शीतलता कितनी है? उसकी कोई मर्यादा नहीं है। उष्णता-जो उष्ण है वह उष्ण (बेहद ही होती है)। जो जाननेवाला है, वह स्वयं जाननेवाला ही है। पूर्ण जाननेवाला है। उसमें इतना जाने और इतना नहीं जाने ऐसी अल्पता उसमें नहीं है। परन्तु वह विभावकी ओर गया है, इसलिये ज्ञानकी शक्ति अटक गयी है। बाकी मूल शक्तिमें पूर्ण भरा हुआ है।

यदि राग-द्वेष छूटकर, एकत्वबुद्धि छूटकर, उससे स्वयं भिन्न होकर ज्ञायककी परिणति प्रगट हो, उसकी श्रद्धा-प्रतीत हो और उसमें लीनता करे तो उसका ज्ञानस्वभाव पूर्ण प्रगट होता है। ज्ञानसे पूर्ण है, उसी तरह आनन्दसे पूर्ण है, ऐसे अनन्त गुणोंसे पूर्ण है। उसे सीमा नहीं होती। जो तत्त्व स्वयं स्वतःसिद्ध है, जिसे किसीने बनाया नहीं है, वह पूर्ण ही होता है, उसमें अल्पता नहीं होती। स्वयं विचार करे, उसकी प्रतीत करे, सूक्ष्मतासे विचार करे कि वह पूर्ण ही है, भगवान जैसा आत्मा है। जैसे भगवान हैं, वैसा स्वयं है। प्रत्येक आत्मा सिद्ध भगवान समान ही है। उसमें अपूर्णता नहीं है।

... जाना पड़े, सुख या आनन्द बाहर लेने जाना पड़े, उसे तत्त्वकी पूर्णता नहीं कहते। स्वयं तत्त्व स्वतःसिद्ध पूर्ण ही होता है। उसमें सब पूर्ण भरा है। तत्त्वका सूक्ष्म

दृष्टिसे विचार करे तो समझमें आये ऐसा है। तत्त्व है वह कभी नाश नहीं होता। वह किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ है, जो किसीसे नाश नहीं होता। ऐसा पूर्ण ज्ञानस्वभाव ज्ञायक, ऐसा आनन्द स्वभाव, ऐसा चैतन्यदेव परिपूर्ण है। वह भगवान ही है। परिपूर्ण शक्ति (संपन्न) स्वयं भगवान है।

उसमें जिसमें विभाव नहीं है, जिसमें मलिनता नहीं है, जिसमें अपूर्णता नहीं है। उसकी ज्ञानशक्ति बाहर जाती है इसलिये अटकी हुई दिखायी देती है, बाकी परिपूर्ण (है), निज स्वभावसे परिपूर्ण भगवान जैसा है। चैतन्यस्वरूप भगवान हैं, वैसा ही स्वयं है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही स्वयं है। प्रत्येक आत्मा समान हैं।

मुमुक्षु :- आलम्बन लेना माने क्या?

समाधान :- आलम्बन यानी उसकी दृष्टि, उसपर दृष्टि देनी। वह स्वयं ही है। स्वयं ही स्वयंका आलम्बन करना। स्वयं ही है, उसे आलम्बन लेने जाना नहीं पड़ता, वह तो स्वतःसिद्ध स्वयं ही है। स्वयंको अपना आलम्बन कैसे लेना? जो दृष्टि बाहर है, वह दृष्टि बाहरमें जैसे यह शरीर मैं हूँ, विभाव मैं हूँ, ऐसा हो गया है। दृष्टि पलटकर मैं ये नहीं हूँ, मैं तो शुद्धात्मा हूँ, इसप्रकार दृष्टि उसपर स्थापित करनी कि ये चैतन्य है वही मैं हूँ। उसे शुद्धात्माको ग्रहण किया ऐसा कहनेमें आता है। उसे ग्रहण किया, उसका आलम्बन लिया।

मुमुक्षु :- ... अभिप्रायका विषय कहते हैं? ध्यानका विषय कहते हैं? कि ज्ञानका विषय है?

समाधान :- ज्ञान और दृष्टि दोनों उसमें आते हैं। ध्यान तो साथमें (होता है), लीनता करे तो ध्यान होता है। .. सामान्य स्वयं .. है, ज्ञान साथ रहता है। ज्ञानमें विशेष जानना होता है। दृष्टि एक अभेदको ग्रहण करे कि मैं यह आत्मा हूँ। यह अस्तित्व है वह मैं हूँ, इसप्रकार ग्रहण करे। दृष्टिके साथ ज्ञान आ जाता है। लेकिन जो विशेष जानता है वह ज्ञान है। दृष्टि विशेष नहीं जानती। दृष्टि सामान्य जानती है। और दृष्टि श्रद्धाका विषय है। श्रद्धा, उसमें-दृष्टिमें श्रद्धा होती है।

मुमुक्षु :- कोई-कोई उसे अंधी कहते हैं, यह बात बराबर नहीं है?

समाधान :- अंधी यानी श्रद्धाका विषय है, उस अपेक्षासे अंधी। दृष्टि कुछ जानती नहीं, परन्तु उसके साथ ज्ञान जुड़ा ही रहता है। ज्ञान और दृष्टि दोनों अलग नहीं होते। दोनों साथ ही रहते हैं। दृष्टि सामान्य पर जाती है इसलिये उसे अंधी कहते हैं। वह भेद (नहीं करती), भिन्न-भिन्न भेद करे या पर्यायको भिन्न करके नहीं जानती। इसलिये उसे अंधी कहते हैं।

मुमुक्षु :- .. उसमें शंकारहित होता है, ...

समाधान :- पहले निर्णय होता है वह कच्चा यानी उसे शंका नहीं है। एकदम समीपमें जिसे स्वानुभूति होनेवाली है, उसे पहले जो निर्णय होता है, उसे कच्चा शंकावाला नहीं कहते। परन्तु अभी उसे स्वानुभूति नहीं हुयी है, इसलिये उसे व्यवहार कहनेमें आता है। श्रद्धाका बल जो अनुभूतिके बाद जो श्रद्धाका बल आता है, वैसा बल नहीं है। लेकिन वह शंकायुक्त नहीं है। उसके बलमें कुछ अंतर है। शंकायुक्त नहीं है।

मुमुक्षु :- वचनामृतके बोलमें है, पक्का निर्णय अनुभवके पहले भी हो सकता है।

समाधान :- हाँ, हो सकता है, पक्का हो सकता है, लेकिन जो परिणतिपूर्वकका निर्णय (होता है), वह अलग है। उसकी अपेक्षासे उसका बल कम है, भले ही पक्का कहें तो भी। अनिश्चित नहीं है, ऐसा निर्णय नहीं है, अनिश्चित है ऐसा नहीं है। पक्का कहनेमें आता है, परन्तु परिणतिकी अपेक्षासे, जो साक्षात् अनुभूति होकर जो प्रतीति होती है, उस प्रतीतिका बल कुछ अलग ही होता है। इसे व्यवहार कहते हैं।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्रका निर्णय पक्का और मैं यह ज्ञायक हूँ, विभाव मेरा स्वभाव नहीं, यह सब निर्णय उसे पक्का होता है। निर्णय पक्का है, लेकिन परिणति प्रगट नहीं हुयी है।

मुमुक्षु :- द्रव्यकी स्वतंत्रता भी उसे बराबर... द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे अस्तिरूप है, परद्रव्यसे नास्तिरूप है। ऐसा होनेसे जब सब्जीको छूरीसे काटते हैं, तब छूरीसे टूकड़े नहीं होते हैं, ऐसा जो निर्णय, इसप्रकारका निर्णय अनुभव पूर्व उसे विकल्पात्मकमें पक्का होना चाहिये?

समाधान :- प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, ऐसा उसे आ जाये, उसमें सभी पहलू आ जाते हैं। फिर बार-बार उसके विकल्प करने नहीं बैठता कि यह छूरीसे होते हैं, या सब्जी भिन्न है और छूरीके सभी पुद्गल भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा बार-बार विकल्प (नहीं करता), परन्तु उसे प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं, ऐसी श्रद्धा उसे हो गयी है।

मुमुक्षु :- विकल्पकी बात नहीं है, लेकिन उसे निर्णय तो...

समाधान :- स्वतंत्र है, कोई किसीका कुछ नहीं कर सकता। मैं मेरा कर सकता हूँ, दूसरे पुद्गल पुद्गलका (कार्य करता है)। प्रत्येक पुद्गल-पुद्गल स्वतंत्र है। यह सब उसे बैठ गया है। मात्र एकदूसरेके निमित्तसे होते हैं, वह सब निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे होता है। यह सब उसे बैठ गया है।

मुमुक्षु :- ऐसा भावमें बराबर बैठे तो वह आगे बढ़ सकता है।

समाधान :- उसे भावमें आ जाना चाहिये। प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रता आनी चाहिये।

मैं स्वतंत्र और पुद्गल स्वतंत्र, इतना तो आ जाना चाहिये। पुद्गल द्रव्य मुझे कुछ कर सकता है और मैं उसे कुछ कर सकता हूँ, ऐसी बुद्धि है तबतक आगे नहीं बढ़ सकता। वह मेरेमें कुछ कर सके या मैं उसमें कुछ कर सकूँ, ऐसी अन्दर यदि किसी प्रकारकी मन्दता हो तो वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे ज़ोर आना चाहिये कि मैं स्वयं स्वतंत्र हूँ। पुद्गल मेरा कुछ नहीं कर सकता। ऐसा ज़ोर उसे अन्दर आना चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०१०

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रके विषयमें जो निर्णय होता है और अनुभूतिके बाद देव-गुरु-शास्त्रका निर्णय, उसमें तो फ़र्क़ नहीं पड़ता।

समाधान :- .. निर्णय होता है, परन्तु अनुभूतिके बाद जो उसकी लाईन है वह अलग है।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रके विषयमें भी..

समाधान :- सब अलग है। भिन्न पड़ जाये और बादमें उसकी जो प्रतीत होती है, देव-गुरु-शास्त्र पर जो भाव आये, वह भिन्न रहकर कैसे आती है, वह तो श्रद्धा जोरदार होती है। वह सब भिन्न परिणतिमें आता है, वह अलग कहनेमें आता है। पहले आता तो है।

जो द्रव्यलिंगी मुनि होता है, उसे देव-गुरु-शास्त्रकी ऐसी श्रद्धा होती है कि चलायमान करने आये तो भी चलित नहीं हो। ऊपरसे इन्द्र आये, चाहे जितने उपसर्ग, परिषह आये, ऐसी उसकी श्रद्धा होती है। यद्यपि उसे आगे जानेमें तो उसमें उसने मान लिया है, परन्तु ऐसी श्रद्धा होती है। देव-गुरु-शास्त्रमें ऐसा अडिग होता है। और ये जिज्ञासु है वह भी अडिग होता है।

भेदज्ञानपूर्वककी धारासे जो आता है, उसकी लाईन अलग है। उसे जो शुभभाव आता है, उसकी रस-स्थिति होती है वह अलग होती है। उसकी स्थिति कम होती है और रस अधिक होता है। भेदज्ञानपूर्वक ऐसा होता है। (जिज्ञासुको) भेदज्ञान हुआ नहीं है, भले ही भावना है। लेकिन उसमें अभी ये सब फेरफार नहीं होते हैं। उसकी परिणति न्यारी हो गयी है तो रस, स्थिति सबमें फेरफार हो जाता है। और शुभभाव ऐसे उच्च होते हैं तो भी स्थिति लम्बी नहीं पड़ती। रस अधिक होता है।

अंतरसे सर्वस्वता नहीं होती, परन्तु भक्ति आदि सब बहुत आती है, ऐसा दिखायी दे। प्रथम भूमिकामें उसे भक्ति आये। देव-गुरु-शास्त्रके लिये उपसर्ग, परिषह सहन करनेके लिये तैयार हो, ऐसा होता है। उसे ऐसा होता है।

समाधान :- इतने शास्त्र कंठस्थ किये, तत्त्वार्थ सूत्र या (अन्य), वह ज्ञान हो गया, ऐसा सब मानते थे। अन्दर आत्मामें सब भरा है, आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय और

आत्मामें कोई अपूर्व आनन्द और अनुपन स्वानुभूति अन्दर होती है, वह किसने बताया? वह गुरुदेवने ही बताया है। समयसारके रहस्य किसने खोले हैं? गुरुदेवने ही खोले हैं।

मुमुक्षु :- लोग भड़के तो शुरूआतमें गुरुदेव एक-दो दिन नहीं ले।

समाधान :- .. स्वयं बिराजते थे। उनकी वाणी... और जो अभी हो रहा है वह गुरुदेवके प्रभावमें ही हो रहा है, ऐसा ही मानना चाहिये। वही आत्मार्थीताकी शोभा है और वही आत्माका प्रयोजन है। दूसरा सब कुछ स्वयं करे वह कुछ नहीं। जो करता है वह स्वयंके लिये करता है। सच्ची श्रद्धा हो, ज्ञाताकी धारा हो, उसके साथ विरक्ति हो, ज्ञायकता प्रगट हो और आस्रव नहीं छूटे ऐसा नहीं बनता। ज्ञायकता प्रगट हुयी उसे कहें कि उसे विज्ञानघन वस्तु ... ज्ञायकता हो उसके साथ अभी अस्थिरता शुभभाव होता है। उसकी भूमिकाके योग्य, भूमिका अनुसार सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति, कार्यो, उस अनुसार उसे अमुक प्रकारके शुभभाव साथमें होते ही हैं।

.. आत्माकी बहुत बात आये, शास्त्रमें-समयसार आदिमें। यह मनुष्यजीवन मुश्किलसे मिले, उसमें ये सब योग मिलना महामुश्किल है। गुरुदेवने जो मार्ग बताया वह मार्ग कैसे ग्रहण हो? वह करना है। यह शरीर पदार्थ भिन्न है, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न है, आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न है और अन्दर विभाव होता है वह स्वयंका स्वभाव नहीं है। वह भिन्न आत्मा कैसे जाननेमें आये वही निश्चयसे करना है। समयसार पढ़ ले, स्वाध्याय कर ले, लेकिन करना तो अंतरमें है। निश्चयसे जब अंतरमें ऊतरे और स्वयंकी परिणति कैसे पलटे तो भवका अभाव होता है। सीखे वह ठीक है कि स्वयंको जानकारी प्राप्त होती है कि मुक्तिका मार्ग क्या है, परन्तु अंतरमें उतारे तो उसमें भवका अभाव होता है। अन्दर आत्माकी प्राप्ति होती है। मनुष्यजीवनमें वही करना है।

आत्माकी रुचि कैसे प्रगट हो? निश्चयसे तो वह करना है। बाकी सब बाहरका है। अंतरमें होवे वह निश्चय है। अनंतकालमें किया है, सब किया, स्वयं अनंत बार मुनि हुआ, सब हुआ लेकिन आत्माको पहचाना नहीं। आत्मा कैसे पहचानमें आये? सत्य तो वह है। देव-गुरु-शास्त्र (के प्रति) शुभभावमें उनकी भक्ति (आती है), लेकिन अंतरमें आत्मा कैसे पहचानमें आये? आत्मा भिन्न पड़े तो भवका अभाव होता है। आत्मा जाननेवाला ज्ञायकस्वभाव है। अन्दरसे पहचाने। मात्र बुद्धिसे विचार करे वह अलग है और अंतरमें पहचानमें आये, तो अंतरसे भवका अभाव होता है। बाहरसे नहीं होता। अंतर परिणति पलटे तो होता है।

जगतमें सर्वोत्कृष्ट (है)। जिनप्रतिमा जिन सारखी। जिनेन्द्र भगवानके दर्शन हो और अन्दर आत्माके विचारसे सर्व दुःख खत्म हो जाते हैं। जिनेन्द्र देव सर्वोत्कृष्ट हैं। शुभभावमें एक जिनेन्द्र देव और गुरु, जिनेन्द्र देवके आश्रयसे और अन्दर आत्माका आश्रय लेनेसे

सब दुःख (टल जाते हैं)। अनादिकालका विभाव टल जाता है तो सब दुःख टल जाते हैं। इसलिये आत्माका आश्रय लेना और बाहरसे जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्रका आश्रय, वह सत्य आश्रय है। जिनेन्द्र देव जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं, गुरु जो साधना करे, गुरुदेव इस जगतमें पंचमकालमें सर्वोत्कृष्ट थे। तत्त्वकी बात आये, वह सब सर्वोत्कृष्ट है, उसका आश्रय लेना और अन्दर आत्माका आश्रय लेना।

यह विचार करना, आत्मा ज्ञायक है। उसमें कोई परवस्तु तो उसकी है ही नहीं, ये शरीर भी उसका नहीं है, तो कोई वस्तु कहाँ स्वयंकी होनेवाली है? और हुई भी नहीं है। उससे अत्यंत भिन्न है। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न, स्वयंके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न। शरीरके साथ भी जीवको सम्बन्ध नहीं है तो अन्य किसीके साथ कहाँ-से सम्बन्ध होगा? अन्दर विभाव स्वभाव भी स्वयंका नहीं है। वह स्वयंका स्वभाव नहीं है। स्वयं अकेला ज्ञायक है, लेकिन ज्ञायक महिमासे चैतन्यदेव है, उसमें उसे अन्दर रुचि लगे और आनन्द हो ऐसा आत्मा है। वही निश्चयसे करना है। अन्दर उपयोग नहीं आये तो बाहरमें जिनेन्द्र देव-गुरु और शास्त्रका आश्रय, वह जीवको कल्याणकारी और मंगलकारी है और वही सुखका कारण है।

(अनन्त काल) गया उसमें जन्म-मरण करते-करते यह मनुष्यभव मिलता है, उसमें ऐसे गुरुदेव मिले तो वह एक आश्रय लेने जैसा है। वह धर्मका आश्रय वह सत्य आश्रय है। आपने तो बहुत समझा है, आपको बहुत रुचि है, गुरुदेवका बहुत सुना है तो फिर वही करने जैसा है। वह भूलना ही होगा। (दुःख) लगे तो पलट देना, चित्तको (बदल देना)। अन्दर आत्मा पहचानमें नहीं आये और उसमें नहीं मुड़े तो बाहरसे जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्रमें चित्त लगाये।

आत्मा सबसे भिन्न ज्ञायक शुद्धात्मा (है)। शुद्धात्मा महिमाका भण्डार है, अनंत गुणोंसे भरपूर है, उसका स्मरण करना, उसका स्वभाव शास्त्रमें (कहे) तत्त्वका विचार करना, वह करना है।

सबको (लगनी) लगायी कि आत्मा अलग है। गुरुदेवसे कोई अपूर्वता सबको लगी। अब तो गुरुदेवने जो कहा वही कहना है। बाकी सबमें गुरुदेव जो अपूर्वता ले आये हैं, पूरा परिवर्तन, कोई अलग ही परिवर्तन (हो गया)। स्थानकवासी, देरावासी, दिगंबरों सबमें कोई अलग ही प्रकारका परिवर्तन ले आये। बहुत किया है। उन्हें किसीके साथ की जरूरत नहीं पड़ती, वे तो महापुरुष थे।

मुमुक्षु :- प्रभावना बढ़ती जाती है।

समाधान :- गुरुदेवका प्रभाव है। पूरा परिवर्तन करके गये हैं। अन्दर जिन्होंने ग्रहण किया है उसकी प्रभावना होती है। पूरा परिवर्तन गुरुदेव ले आये। सब कोई क्रियामें

पड़े थे, कोई कहीं थे, कोई बाहरसे धर्म मानते थे, बाहरसे शुद्धि-अशुद्धि पड़ी थी, कोई शास्त्र पढ़े, सीख ले, पढ़ ले तो धर्म हो जाये अथवा उपवास या दूसरा कुछ कर ले अथवा (बाह्य) शुद्धि-अशुद्धि आदि अनेक प्रकारमें पड़े थे। गुरुदेवने पूरा परिवर्तन कर दिया। भावनाप्रधान। क्रियासे कुछ नहीं है, गुरुदेवने अंतर दृष्टि करवायी।

मुमुक्षु :- प्रथम ही प्रवचन सुने और दूसरे दिनसे दिगम्बर।

समाधान :- सब लोग विचार करने लगे कि ये कुछ अलग कहते हैं। द्रव्यदृष्टिकी प्रधानतापूर्वक अन्दर साथमें सब आता था, चारों पहलूसे कहते थे। .. पूर्वक अन्दर वैराग्य, महिमा, भक्ति आदि सब उनकी वाणीमें आता था।

... द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतापूर्वक सब उसे ख्याल होता है, अस्थिरता आदि सबका ख्याल हो तो साधना होती है। ... मुख्य रखकर भेदज्ञानकी धारा, उसमें अल्प अस्थिरताका उसे ख्याल है, तो उसे साधन (होती है)। कछु है ही नहीं, ऐसा मान ले तो द्रव्यदृष्टि ही सम्यक् नहीं होती।

मुमुक्षु :- शुष्कता आ जाये।

उत्तर :- शुष्कता आ जाये। द्रव्यदृष्टिकी प्रधानतापूर्वक ज्ञानमें सबका ख्याल होता है।

मुमुक्षु :- द्रव्यदृष्टिकी प्रधानतापूर्वक ज्ञानमें सब ख्याल है।

समाधान :- सबका ख्याल है।

मुमुक्षु :- अस्थिरताका भी ख्याल है।

समाधान :- ख्याल है। कमी है, अधूरापन है, सब ख्याल है। अभी करनेका बाकी है, अभी लीनता बाकी है, सबका ख्याल है। द्रव्यदृष्टिसे भले द्रव्य शुद्ध है, ऐसे द्रव्यदृष्टिकी प्रधानता होनेके बावजूद पर्यायमें अशुद्धता है उसका ख्याल है। गुरुदेवकी वाणीमें सब आता था, चारों पहलू।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- अभी उनको राग है, उस प्रकारका प्रशस्त राग है, भक्ति है, आये बिना नहीं रहता। शुभराग है देव-गुरु-शास्त्र(का), जानते हैं। भेदज्ञान है कि यह मेरा स्वरूप नहीं है, राग है। लेकिन भूमिका है इसलिये आता है। जानते हैं, परन्तु साधना अभी बाकी है, इसलिये पुरुषार्थ डोर भी साथमें है। मर्यादा छोड़कर बाहर नहीं जाता। एकत्व नहीं होता, एकत्व नहीं होता, वैसी आकूलता नहीं है, फिर भी ख्याल है कि आता है। स्वयं भिन्न रहता है। अस्थिरता है उसका ख्याल है। ख्याल है और पुरुषार्थकी डोर हाथमें है। पुरुषार्थकी डोर छोड़ते नहीं है। सहज दशा होती है। ज्ञायककी ज्ञाताधारा सहज द्रव्यदृष्टि चालू रहती होनेपर भी साथमें पुरुषार्थकी डोर हाथमें है। मर्यादासे

अधिक बाहर नहीं जाता। उसकी सम्यग्दर्शनकी भूमिका है, उस अनुसार (राग आता है)। पंचम गुणस्थान वाले उनकी भूमिका अनुसार पुरुषार्थकी डोर (होती है), आगे बढ़ते जाते हैं। छठ्ठे-सातवें गुणस्थान वाले अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें लीन होते हैं, तो भी बाहर आते हैं तब उन्हे देव-गुरु-शास्त्रके शुभ परिणाम आते हैं, शास्त्र लिखते हैं। पद्मनंदी आचार्यको भक्तिके परिणाम आये तो भक्तिके श्लोक लिखे। अनेक प्रकारके शास्त्र लिखते हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें अन्दर जाते हैं।

मुमुक्षु :- परिणति परमें जाये तो खेद होता है।

समाधान :- खेद होता है। परन्तु जानते हैं कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है। इसमें जुड़ना होता है, मुझे तो पूर्ण होना है, तो भी पुरुषार्थकी डोर हाथमें है।

मुमुक्षु :- ज्ञाताधारा तो अविरतरूपसे चालू रहती है। फिर भी जानते हैं और पुरुषार्थकी डोर भी उनके हाथमें है।

समाधान :- ज्ञाताधारा चालू है तो भी अस्थिरताका ख्याल (है), पुरुषार्थकी डोर हाथमें है। मर्यादासे अधिक बाहर नहीं जाता।

मुमुक्षु :- ज्ञानीका हृदय आपने खोल दिया।

मुमुक्षु :- जानते हैं, फिर भी मर्यादामें..

समाधान :- वह तो उसे विकल्पपूर्वक है तो भी उसकी मर्यादा बाहर परिणति नहीं होती। ज्ञान .. वह तो भेदज्ञानकी धारा है, पुरुषार्थकी डोर (हाथमें है)। जिसे आत्माका प्रयोजन साधना है, उसकी अमुक प्रकारके मर्यादा बाहर नहीं जाते। उसे विभाव परिणति चाहिये ही नहीं। आत्मार्थीका जो प्रयोजन है, आत्माको साधना है, आत्माकी लगनी लगी है, विभाव परिणतिमें उसे एकत्व छूटा नहीं है, तो भी वह मर्यादा बाहर नहीं जाता। तो ही आत्माको साध सकता है, नहीं तो कहाँ-से साधे? तो ही उसे आत्मा मिले, नहीं तो कहाँ-से मिले?

मुमुक्षु :- आत्मार्थी मुमुक्षु भी अपनी मर्यादाके बाहर नहीं जाता।

समाधान :- तभी उसकी पात्रता कही जाती है। नहीं तो आत्माका प्रयोजन है तो आत्मा कहाँ-से मिले? अमुक पात्रता तो होनी ही चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०११

समाधान :- .. अशुद्धता नहीं हुई है, मात्र पर्यायमें हुई है और पर्याय पलटती है। पर्यायमें जो राग होता है, वह स्वयंके पुरुषार्थसे होता है। और आत्मा वस्तु स्वभावसे शुद्ध है। उस पर दृष्टि करके पर्यायको शुद्ध कैसे करना, पुरुषार्थकी डोर कैसे प्रगट करनी, यह सब उसमें आता है। द्रव्य, गुण और पर्यायमें पूरा वस्तुका स्वरूप आ जाता है। द्रव्यके साथ अनंत गुण रहे हैं और पर्याय शुद्ध हो सकती है, उसमें यह सब आ जाता है। पूरा वस्तुका स्वरूप आ जाता है।

स्फटिक स्वभावसे निर्मल है। निमित्त हो तो निमित्तके कारण होती है, परन्तु होती है स्वयंसे, अपनी योग्यताके कारण होता है। निमित्त उसे कछु नहीं करता, परन्तु स्वयंकी ऐसी योग्यता है, इसलिये होता है। लेकिन स्फटिक स्वभावसे निर्मल है।

वैसे आत्मा द्रव्यसे शुद्ध है, पर्यायमें मलिनता है, यह सब उसमें आ जाता है। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे ज्ञायककी धारा प्रगट हो और उसमें लीनता करनेसे पर्याय भी शुद्ध होकर शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। सब आ जाता है। और उसी पंथ पर स्वानुभूति, उसी पंथ पर मुनिदशा, उसी पंथ पर केवलज्ञान, सब उसमें आ जाता है। नौ तत्त्व, द्रव्य-गुण-पर्याय सब उसमें आ जाता है। बाहरसे नहीं होता है, बाह्य क्रियाओंसे नहीं होता, अंतर दृष्टि करनेसे होता है। बीचमें शुभभाव आता है, इसलिये बीचमें वह सब क्रिया आती है, लेकिन उससे कोई मुक्तिमार्ग नहीं है। पूरा स्वरूप आ जाता है। एक आत्माको पहचाने और स्वानुभूति प्रगट करे उसमें सब आ जाता है।

कोई मतमें द्रव्य एकान्तसे शुद्ध है, पर्याय नहीं है, कोई कहता है, क्षणिक है, कोई कहता है, नित्य है। वह सब पहलू स्वानुभूतिमें आ जाते हैं। अनेकान्तका पूरा स्वरूप आ जाता है। द्रव्यदृष्टि मुख्य है, लेकिन यह सब साथमें होता है। ज्ञायकको पहचाना, उसके साथ विरक्ति, महिमा सब साथमें होता है। प्रत्येक पहलू आ जाते हैं। उसके भावमें सब आ जाता है। फिर बाहरमें वह कितना कह सके वह अलग बात है, उसके भावमें सब आ जाता है।

मुमुक्षु :- अनुभूति होनेपर भी शास्त्रका रहस्य वाणीमें आना चाहिये, ऐसी वाणी नहीं भी हो।

उत्तर :- कोई बहुत विस्तार नहीं कर सके ऐसा बनता है। अन्दर स्वयंको स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हुई हो, आनन्द दशा प्रगट हुई हो। बाहरमें मूल प्रयोजनभूत कह सके, परन्तु उसके सब न्याय और युक्ति द्वारा कोई वादविवाद करे तो उसमें वह पहुँच नहीं पाये, ऐसा भी बन सकता है। उसकी वाणी सब काम करे, सब कह सके ऐसा नहीं भी हो। उसकी वाणी द्वारा सब विचार करके सबको युक्ति, न्यायमें पहुँच सके ऐसा उसका बाहरका उदय हो, ऐसा नहीं बन सकता। उसे ज्ञानमें जाने जरूर।

मुमुक्षु :- शास्त्रमें आता है कि, उसे शास्त्र पढ़नेकी अटक नहीं है।

समाधान :- मूल प्रयोजनभूत जान लिया, स्वानुभूति, आनन्द दशा प्रगट हुयी, फिर अधिक शास्त्र पढ़े हो तो ही वह आगे बढ़ता है, ऐसा नहीं है। अभी लीनता कम है, चारित्रदशा नहीं हुई है तो उसमें बीचमें शुभभाव आये तो वह शास्त्रमें रुकता है, शास्त्रका अभ्यास करे, शास्त्रका विचार करे, श्रुतका विचार करे, द्रव्य-गुण-पर्यायका विचार करे, परन्तु इतना ज्ञान होना ही चाहिये, इतने शास्त्रोंका अभ्यास किया हो तो ही वह आगे बढ़े, तो ही उसकी शुद्धि हो और उसकी भूमिका बढ़ती जाये, ऐसा शास्त्रके साथ सम्बन्ध नहीं है।

अंतरमें वह भिन्न होता जाये और लीनता बढ़ती जाये, विरक्ति बढ़ती जाये तो उसकी दशा आगे बढ़ती जाये। उसे ज्ञानके साथ अथवा शास्त्रके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सब जाने।

मुमुक्षु :- भावभासन सबका..

समाधान :- भावभासन पूरा है। वाणी या बोलना अथवा विस्तार करना ऐसा नहीं है, अन्दर सबका भावभासन है। कितनोंको नाम नहीं आते परन्तु भाव है कि मैं यह आत्मतत्त्व हूँ। यह विभाव है, ये दुःखरूप है, उससे मैं भिन्न हूँ। यह मेरा स्वरूप नहीं है, दुःखरूप मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न होकर अन्दर शान्ति हेतु निज स्वभाव-घरमें जाता है कि शान्ति तो यहाँ है, इसमें नहीं है। इसप्रकार शान्ति हेतु अंतरमें जाता है। और मैं तो यह जाननेवाला हूँ। यह शरीर आदि सब मुझसे भिन्न है। ये विभाव, सब विकल्प आये वह सब आकूलतामय हैं। सब भाव उसे आते हैं।

(शिवभूति मुनिको याद) नहीं रहता था, ऐसा था। गुरुने कहा तो शब्द याद नहीं रहे और भाव याद रह गया कि मेरे गुरुने ऐसा कहा है कि तू भिन्न है और ये सब विभाव आदि भिन्न हैं। ये सब छिलका है और तू कस है। वह औरत दाल धोती थी। (उसे देखकर स्मरण हुआ कि), मेरे गुरुने ऐसा कहा था, जैसे छिलका अलग है, वैसे तू भिन्न है और ये सब तुझसे भिन्न है। ऐसा अन्दरसे आशय ग्रहण

(कर लिया)। मातुष, मारुष शब्द भूल गये और भाव याद रह गया।

मुमुक्षु :- तिर्यंचको ऐसा ख्याल आता होगा कि इसमेंसे ही मेरी पूर्ण शान्ति प्रगट होगी, मुझे केवलज्ञान प्रगट होगा?

समाधान :- केवलज्ञान शब्द नहीं आता हो, परन्तु इसमें रहनेसे ही मुझे शान्ति और इसमें रहनेसे ही मुझे आनन्द है। बाहर जानेसे शान्ति या सुख नहीं है। ये मेरा कुछ नहीं है, ये मेरा स्व-घर है। उसमें शान्ति और आनन्द लगे। इसमें ही स्थिर हो जाऊँ, विकल्प छूट जाये और रागादि कुछ नहीं, मात्र वीतराग दशा हो और पूर्ण तत्त्वमें स्थिर हो जाऊँ। उसमें मेरा पूर्ण ज्ञायक प्रगट हो जाये। मैं लोकालोक जानूँ ऐसा इच्छा नहीं होती। मेरी पूर्ण वीतरागता हो जाओ। अर्थात् मेरी पूर्णता हो जाओ। ऐसा ख्याल है। इसमें ही स्थिर होनेसे मेरी पूर्णता हो जाओ, ऐसा ख्याल है।

जाननेवाला आत्मा है वह पूर्ण जाननेवाला ही है। उसमें सब जानना होता ही है, ऐसा भाव उसमें है। आत्मा पूर्ण जान सकता है, जाननेवाला किसे नहीं जाने? सब जाननेवाला है, उसमें स्थिर हो जाऊँ। तो उसका जानना और वीतराग दशा एवं सब, इसमें स्थिर हो जाऊँ तो परिपूर्ण हो जाये, ऐसा भाव उसे होता है। जाननेवाला है, वह सब जान सकता है। कुछ नहीं जाने ऐसा नहीं है। लेकिन इसमें स्थिर हो जाऊँ तो यह जाननेवाला सब जाने, सहजरूपसे जाने ऐसा है। वीतराग हो जाऊँ तो यह सब छूट जाये ऐसा है।

मुमुक्षु :- अर्थात् मुझे इसमेंसे मेरी शान्ति मिलती ही रहे, ऐसी भावना उसे होती है?

समाधान :- बस, शान्ति मिलती रहे। अन्दर ज्ञायककी धारा और शान्ति प्राप्त होती रहे, मैं तो जानने वाला ही हूँ। ये सब दुःखरूप है, वह मेरा स्वरूप ही नहीं है। मैं तत्त्व ही अलग हूँ, मैं भिन्न ही हूँ। यह तिर्यंचका शरीर मैं नहीं हूँ, मैं तो अन्दर कोई भिन्न आत्मा ही हूँ। ऐसा भावभासन है। मैं तो कोई अद्भुत आत्मा हूँ।

(किसीको) ऐसा ज्ञान होता है कि वादविवादमें पहुँच जाये। अकलंक आचार्य आदि सबको वैसा शास्त्रका ज्ञान था। पहुँच जाये, कोई मुनि वादविवादमें पहुँच जाये, ऐसी युक्तिसे (वादविवाद करे)। ऐसा नहीं कर सके तो ऐसे प्रसंगमें पड़ते ही नहीं। जिसमें (स्वयं) पहुँच नहीं पाये वैसे प्रसंगमें नहीं पड़ते। स्वयंको स्वयंका प्रयोजन साधना है। स्वयंको निजात्माका करना है।

प्रश्न :- ... कल्पनासे लगे, पशुको ऐसे चैतन्यगोला भिन्न लगे।

समाधान :- पशु भी आत्मा है न। जाननेवाला आत्मा है। कहनेमें पशु है, लेकिन अन्दर जाननेवाला है। उसे सभी प्रकारका अन्दर वेदन है। जाननेवाला है। उसे शरीर

तर्यंचका मिला, वह आत्मा कोई अलग नहीं हो गया है। तिर्यंचका शरीर है, परन्तु अन्दर वह आत्मा है। भगवानके समवसरणमें तिर्यंच आदि आते हैं। सिंह, बाघ आदि आत्मा है। गाय, भैंस, बकरे आदि सब आते हैं। आत्मा है, जानते हैं कि ये भगान हैं, ऐसा सब अन्दर जानते हैं। कोई-कोई शब्दोंका कुछ ज्ञान तो होता है। कुछ भावका (भासन), थोड़ा शब्दका ज्ञान (है)। ये भगवान हैं, कुछ अलग कहते हैं। वाणी सुनकर अन्दर सम्यग्दर्शन होता है। आत्मा है।

महावीर भगवानका सिंहका भव था। मुनि आकर कहते हैं, अरे..! शार्दूल! ये क्या करता है? आत्मा है न, अन्दर समझ गये। मैंने भगवानके पास सुना था, तू तीर्थंकर होनेवाला है। मुनिने ऐसे कहा तो अन्दर समझ गया। आँखमें आँसु आये, सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ। पूरा का पूरा, संपूर्ण आत्मा, प्रत्येकका आत्मा ऐसी ही शक्तिवाला और ऐसी ही ऋद्धिवाला आत्मा प्रत्येकमें है। तिर्यंचमें भी है। ऐसा लगे कि ये तिर्यंच क्या समझते होंगे? परन्तु तिर्यंच भी आत्मा है। वर्तमानमें सबकी शक्ति क्षीण हो गई। वर्तमान तिर्यंचमें कुछ दिखाई नहीं दे, लेकिन वह सब आत्मा है। चतुर्थ कालमें और अच्छे कालमें तो सब तिर्यंच ऐसी बुद्धिवाले और ऐसी शक्तिवाले (होते हैं)।

तिर्यंच हो तो भी वह आत्मा है न। मनुष्योंमें दुर्लभ हो गया है, तिर्यंचकी क्या बात (करे)? उसमें तो चतुर्थ काल हो, भगवान विराजते हो, लाखों मुनि, श्रावक और श्राविका, हज़ारो मुनि, लाखो श्रावक एवं श्राविका.. इतना धोख मुक्तिका मार्ग होता है। उसमें तिर्यंच भी प्राप्त करते हैं। तिर्यंचको पंचम गुणस्थान होता है। रामचंद्रजीका हाथी पंचम गुणस्थान (में) खाता नहीं, पीता नहीं। अन्दर समझता है। व्रत धारण किया है। सम्यग्दर्शन है।

समाधान :- ... इस लोकमें जितने परमाणु थे, ... एक-एक आकाशके प्रदेशमें अनन्त जन्म-मरण किये हैं। इस कालद्रव्यके जितने समय हैं, उन समयमें अनन्त बार स्वयंने जन्म-मरण किये। उतना काल। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी, अनन्त बार जन्म (धारण किये)। उतने ही प्रकारके विभावके अध्यवसाय अनन्त किये। ऐसे परावर्तन उसने अनन्त बार किये, परन्तु अब तक उसके भवका अभाव नहीं हुआ।

भवका अभाव बतलाने वाले गुरुदेव मिले। मनुष्यजीवनमें वही करना है। बाकी तो संसार ऐसा ही है। जीव स्वयं शाश्वत मानता है, परन्तु शाश्वत तो कुछ नहीं है। शाश्वत तो एक आत्मा ही है। आयुष्य पूरा होता है तब चले जाते हैं। जीव मानता है कि सब मेरा है। कुछ भी अपना नहीं है। देवलोकका सागरोपमका आयुष्य होता है। वह सागरोपम इतना बड़ा कहलाता है, ऐसे सागरोपमका आयुष्य भी, देवोंको अमरापुरी कहते हैं। एक सागर जितना आयुष्य होता है। सागरोपमका आयुष्य भी पूरा हो जाता

है। देवोंका आयुष्य पूरा हो जाता है तो मनुष्यका आयुष्य किस हिसाबमें है? मनुष्यका जीवन तो सौ-पचास सालका आयुष्य का क्या हिसाब है? जन्म-मरण चलते ही रहते हैं।

ऐसा संसार देखकर बड़े-बड़े राजा और तीर्थंकर, संसार छोड़कर मुनि हो जाते थे। वह संसार तो ऐसा ही है। एक पानीके बिन्दु समान, जैसे ओसका बिन्दु सुबह दिखाई दे और तुरन्त विलिन हो जाते हैं। बिजलीके चमकारे जैसा मनुष्यजीवन है। उसमें आत्माका कर लेने जैसा है। बाकी संसार तो ऐसा ही है। तीर्थंकर भी मुनि बनकर नीकल जाते थे। वर्तमानमें ऐसी दशा नहीं हो सके तो स्वयं अन्दर आत्मा कैसे प्राप्त हो? सम्यग्दर्शन कैसे हो? स्वानुभूति कैसे हो? वब करने (जैसा है)। संसार तो ऐसा ही है। विचारकर, सब पलटकर शांति रखने जैसी है। राग होता है उतना दुःख होता है, परन्तु सब पलटने जैसा है। संसार तो ऐसा ही है।

.. संसारमें कोई उसका साथी नहीं होता। स्वयंके किये हुए कर्म स्वयं अकेला ही भोगता है। जो पुण्य-पाप कर्म बान्धे वह अकेला भोगता है, अकेला मोक्ष जाता है और संसारमें अकेला रखड़ता है, उसका कोई साथीदार नहीं होता। इसलिये स्वयं ही स्वयंका कर लेना। ऐसा यह संसार है। गुरुदेवने यह मार्ग बताया, वही करने जैसा यह एक ही है।

अन्दर शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? वह करने जैसा है। आयुष्य पूर्ण होता है तो एक क्षणमें। चतुर्थकालमें भी आयुष्य पूरे होते थे। चक्रवर्तीओंके, राजाओंके, सबके आयुष्य पूर्ण होते थे।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०१२

उससे पुण्य बन्धता है। स्वयंने उसने उतना राग छोड़ा, खाना-पीना ... आत्माका स्वभाव, यही आत्माका स्वरूप है। आत्मा खाता-पीता नहीं। उसने त्याग किया, ठीक है, शुभभावसे पुण्य बन्धता है। लेकिन ...

एक मनुष्यको कहीं जाना हो तो किस रास्तेसे जाना है, उस मार्गको जानना चाहिये। यहाँसे भावनगर जाना हो तो उस रास्ते पर मार्गको जानकर चले तो वहाँ पहुँचता है। उलटे रास्ते पर चले, दूसरे रास्ते पर जाये तो दूसरे गाँव पहुँचता है। मार्ग जाने। मार्ग जाने बिना ऐसी ही धूपमें तप्त हो जाये तो मार्ग हाथ नहीं लगता, मार्गको जानना चाहिये। जाने तो आगे बढ़े। उसे जानना तो चाहिये कि मैं कहाँ जाऊँ? आत्मा क्या है? क्या स्वरूप है? क्या मोक्ष है? सुख कहाँ है? दुःख क्यों है? किस कारणसे है? उसके कारण खोजे। आत्माका सुख कैसे प्रगट हो? वह जाने। जानकर अन्दर निरसता आ जाये। संसारमां उसे रस नहीं होता। अन्दरसे रस एकदम छूट जाये और उदासीनता आ जाये। उदासीनता आये परन्तु वह जाने के इस रास्ते पर जानेसे-आत्माको पहचाननेसे (आगे बढ़ा जायेगा)। निरस हो जाये, आत्मामें लीन हो जाये। आत्माको पहचानकर अन्दर लीन हो, तो मार्ग मिलता है। मात्र भागता रहे तो वह शुभभाव है, पुण्यबन्ध होता है।

मुमुक्षु :- किसके द्वारा यह सब प्राप्त हो सकता है?

समाधान :- जो जानता हो (उनसे)। भगवानने जो मार्ग दर्शाया, भगवानने क्या कहा है उसे जाने और आचार्य क्या कहते हैं, मुनिओने क्या कहा है, गुरु क्या कहते हैं, उनके द्वारा मार्ग मिले। परन्तु स्वयं तैयार हो तो मार्ग मिले। गुरुके मार्ग पर चले। सत्संगसे समझमें आता है। साक्षात् गुरु मिले, साक्षात् आचार्य, मुनि कोई मिले (तो) उनसे मार्ग मिलता है। अनादिका अनजाना मार्ग समझे बिना स्वयं ऐसे ही करे तो ऐसा तो उसने अनेक बार किया है। त्याग किया, सब किया, लेकिन पुण्यबन्ध हुआ। उससे देव हुआ, परन्तु भवका अभाव नहीं हुआ। पुण्य बान्धे तो देवका भव मिले, अच्छे भाव रखे तो देवका भव मिले। यदि भाव अच्छे नहीं हो, मात्र आहार छोड़कर भाव यदि बराबर नहीं हो तो पुण्यबन्ध नहीं होता है। परन्तु भाव अच्छे हो तो पुण्यबन्ध

होकर देव होता है। भवका अभाव नहीं होता। देव तो अनन्त बार हुआ है। ऐसा देव अनन्त बार हुआ, पशु अनन्त बार हुआ, मनुष्य अनन्त बार हुआ, अनन्त बार सब हुआ, परन्तु भवका अभाव नहीं हुआ। उसी मार्गमें शुभभावमें रहा, परन्तु उससे मार्ग भिन्न है। आत्माको जाना नहीं, इसलिये अन्दरसे आत्मा प्रगट नहीं होता। अन्दरसे निरसता आनी चाहिये, अन्दरसे वैराग्य आना चाहिये। आत्माको पहचाननेके लिये प्रयत्न करे तो आत्मा प्राप्त होता है।

मुमुक्षु :- प्रथम भूमिकामें क्या करना चाहिये?

समाधान :- क्या करना? आत्माको (पहचानना)। सब निरस (है), ऐसा आत्मामें नक्की करना। आत्माकी ओर रुचि बढावे, आत्माकी ओर ... करे, सच्चा मार्ग क्या है, तो उस मार्ग पर जा सकता है। और आत्माकी ओरका प्रयत्न करे, श्रद्धा करे, प्रतीत करे, उसमें लीनता करे तो स्वानुभूति होती है।

समाधान :- ... अंतर आत्मामें.. गुरुदेवने जो कहा है, जो मार्ग दर्शाया है, वही मार्ग (है)। वांचन करना, शास्त्र-स्वाध्याय करना। आत्मा अनन्त गुणोंसे भरपूरे है, उसे पहचाननेका प्रयत्न करना। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न, परवस्तु (के भिन्न)। शास्त्र-स्वाध्याय करे। पढ़नेमें जो आसान लगे वह पढ़ना। भावना, जिज्ञासा रखनी। अन्दर विकल्प होते हैं वह भी अपना स्वभाव नहीं है, उससे आत्मा भिन्न है। आत्माका भेदज्ञान कैसे हो, स्वभाव और विभाव दोनों भिन्न चीज है, उसका भेदज्ञान हो। भेदज्ञान कैसे हो, उसके लिये लगनी लगानी, जिज्ञासा करनी।

आत्मा सर्वस्व है, बाहरमें कहीं भी सुख नहीं है। सब निःसार वस्तु है, सारभूत कोई नहीं है। (परिभ्रमण करते-करते) मनुष्यभव मुश्किलसे मिलता है। ऐसा मनुष्यभवमें ऐसे गुरुदेव मिले, ऐसा मार्ग मिला, घूटन-मनन करता रहे। सब स्वयंको ही करना रहता है। आत्माको लक्षणसे पहचानना कि आत्मा ज्ञान (स्वरूपी है)। ज्ञानको पहचाननेका प्रयत्न करना। ज्ञायक महिमावंत है। ज्ञायकमें सब भरा है।

मुमुक्षु :- संकल्प-विकल्प आते हैं, उसे छोड़नेके लिये क्या करना?

समाधान :- उसे छोड़नेके लिये, यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो आत्मा-शुद्धात्मा हूँ। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा मैं हूँ। .. स्वयं तो आत्माको पहचाने तब होता है, तबतक विचारकरके (नक्की करे कि), यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। बारंबार उसका विचार करे। और अशुभसे बचने हेतु शुभभावमें विचार करे, अच्छे विचार करे। अच्छे विचार करनेमें रुकना वह भी शुद्धात्मा प्राप्त नहीं होत तबतक शुभभावमें रुकनेका प्रयत्न करे। मेरेमें नहीं है। विकल्पसे भिन्न अन्दर मैं शुद्धात्मा हूँ। परिणामको शास्त्रमें रोके, देव-गुरु-शास्त्र शुभभावमें रुके। अन्दर शुद्धात्मा निर्विकल्प वस्तु है, उसमें

कोई विकल्प नहीं है, विकल्प बिनाका आत्मा-ज्ञायक है। विकल्पसे (शून्य) आत्मा है। उसमें आनन्द भरा है, उसमें ज्ञान भरा है। जन्म-मरण उससे टलते हैं, आत्माको पहचाने तो टलते हैं, बाकी नहीं टलते।

जीवने बाहरका सब अनन्तकालमें किया। बाहरकी क्रिया (करके) देवमें जाये, परन्तु देवमेंसे (निकलकर भी) जन्म-मरण तो वैसे ही रहते हैं, भवका अभाव नहीं होता। भवका अभाव तो आत्माको पहचाने तो होता है। आत्माको कैसे पहचानुं, उसके लिये उसकी लगनी, जिज्ञासा हो तो होता है।

मुमुक्षु :- निद्रासे जागने पर भक्ति आदि तो याद आ जाती है, वह शुरू हो जाती है, परन्तु आत्मा सम्बन्धित विचार, आत्मा कैसा है, उसके विचार नहीं आते हैं, तो क्या करना?

समाधान :- .. लगे तो होता है। अशुभसे बचनेको शुभभाव आये, भक्ति आये, सब आये। अन्दर आत्माकी लगनी लगे और आत्माकी महिमा लगे तो होता है। तो आत्माके विचार आते हैं। आत्माकी महिमा लगनी चाहिये। आत्माको पहचाने नहीं तबतक भक्तिके विचार आये, भक्तिकी भावना आये, शुभभाव आये, परन्तु आत्मा भी महिमावंत है, ऐसे आत्माकी महिमा आये तो उस ओरके (विचार चले)। आत्माकी महिमा आनी चाहिये। आत्मा भी एक देव, ज्ञायकदेव है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा आत्मा है।

... समझमें नहीं आता। तो क्षपण श्रेणि लगाकर आगे (जाते हैं)। आता है न? क्षपक श्रेणि यानी आत्मा ऐसी श्रेणी चढ़ता है। प्रथम तो सम्यग्दर्शन हो तब स्वानुभूति होती है। बाहरमें विकल्प आते थे, फिर भी अन्दरसे उनका आत्मा न्यारा ही रहे, आत्मा भिन्न ही रहे, निरंतर ऐसी दशा उनकी हो जाती है। ज्ञायक-ज्ञायक ऐसी ज्ञाताधारा हो जाती है। अन्दर स्वानुभूति होती है। कभी लीन हो जाते हैं। इसीप्रकार वह गृहस्थाश्रममें ही आगे बढ़ते-बढ़ते ऐसी भावना हो जाती है कि यह सब छोड़कर मैं मुनि कैसे बन जाऊँ। जब मुनि हो जाते हैं, तब अन्दर आत्मामें बार-बार लीन हो जाते हैं। यथार्थ मुनिपना। बाहरसे छोड़ दे, अभी छोड़ देते हैं ऐसे नहीं, अन्दर यथार्थ भावसे हो जाये। गृहस्थाश्रममें रह नहीं सके, ऐसी उसकी दशा हो जाती है। फिर अन्दर मुनिपना लेकर आत्मामें (लीन हो जाते हैं)। क्षण-क्षणमें आत्मामें लीन होते हैं।

भगवानके दर्शन करे, देव-गुरु-शास्त्रके विचार करे, बाकी सब तो उन्हें छूट गया है। वह करते हैं, फिर भी अन्दरमें क्षण-क्षणमें अंतर्मुहूर्तमें आत्मामें चले जाते हैं। क्षण-क्षणमें स्वानुभूतिमें लीन होते हैं। चलते-फिरते कई बार क्षण-क्षणमें लीन हो जाते हैं। सोये हो तो क्षण-क्षणमें अंतरमें चले जाते हैं। ऐसी उनकी दशा हो जाती है। आत्माकी

स्वानुभूति करते-करते ऐसे लीन हो जाते हैं कि आत्माकी लीनतामें ऐसी उनकी श्रेणी हो जाती है, जिसे क्षपण श्रेणि कहते हैं, ऐसे लीन हो जाते हैं। कर्म अपनेआप ही क्षय होने लगते हैं। इसलिये क्षपक श्रेणि (कहते हैं)। कर्म इसप्रकार क्षय होते हैं कि फिरसे उदय ही नहीं आता। कर्म इसप्रकार क्षय होते हैं और अन्दरसे श्रेणि ऐसी चढ़ते हैं कि वापस ही नहीं आते। स्वानुभूतिमें ऐसे लीन हो जाते हैं कि वापस नहीं आते और लीनतामें ही स्वानुभूतिमें लीन होकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। अर्थात् पूर्ण हो जाते हैं। वीतरागदशा। क्षपक श्रेणीमें ऐसे चढ़ जाते हैं कि उसके फलमें केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है और आत्मामें लीन हो जाते हैं।

केवलज्ञान अर्थात् समस्त लोकालोकको जाने और आत्माको जाने, सबको जाने ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है और अन्दर अपनी स्वानुभूतिमें लीन रहे। बाहर नहीं आते। उन्हें जाननेकी इच्छा भी नहीं होती, सहज जाननेमें आ जाये, ऐसा आत्माका स्वभाव है। आत्माका अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है, आत्माका ज्ञान प्राप्त होता है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। आत्मज्ञान तो गृहस्थाश्रममें प्राप्त हुआ है, परन्तु केवलज्ञान हो जाता है। ऐसी क्षपक श्रेणी (है)। ऐसी श्रेणी चढ़ते हैं कि फिर बाहर ही नहीं आते। लीन हो गये तो हो गये। ऐसा केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है। आत्माके आनन्दमें... आता है न? 'सादि अनन्त अनन्त समाधिसुखमां', बस! समाधि सुखमें अनन्त काल तक (रहते हैं)।

मुमुक्षु :- तभी वीतरागता पूर्ण..

समाधान :- हाँ, क्षपक श्रेणी चढ़नेके बाद वीतराग (होते हैं)। 'क्षपण श्रेणी करीने आरूढ़ता...' आता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप कैसा है?

समाधान :- द्रव्य-आत्मा एक वस्तु है। जैसे यह पुद्गल वस्तु है, वैसे आत्मा एक वस्तु है। उसका मुख्य गुण है कि सबको जाने। सबको जाने यानी उसका जाननेका स्वभाव है। वह ज्ञेयको जाननेवाला ही है। यह जड़ वस्तु कुछ नहीं जानती, वैसे आत्मा सबको जाने ऐसा उसका स्वभाव है। जाननेवाली एक वस्तु है। वह उसका गुण है। उसमें अनन्त गुण हैं। जैसा ज्ञान है, वैसा आनन्दगुण है, वैसे अनन्त गुण हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व आदि (सामान्य गुण है)। ज्ञान जाननेका कार्य करे, आनन्द आनन्दका कार्य करे, शांति शांतिका कार्य करे, ऐसे कार्य करे उसे पर्याय कहते हैं।

समाधान :- ... सम्यग्दर्शन आत्माका गुण है और वह आत्मामें है। बाहरसे नौ तत्त्वकी श्रद्धा करनी ऐसा आता है। जैनदर्शन-स्थानकवासी, देरावासी सबमें आता है। नौ तत्त्वकी श्रद्धा करे उसे सम्यग्दर्शन, ऐसा आता है। शास्त्र पढे यानी ज्ञान (हो गया)।

त्यागी हो जाये, साधु हो जाये यानी चारित्र (हुआ, ऐसा) माने। भाव कदाचित् ठीक रखे तो वह चारित्र वास्तविक चारित्र नहीं है। आत्मा स्वयं है, उस आत्माकी प्रतीत करनी, यथार्थ श्रद्धा करनी कि मैं आत्मा हूँ और शरीर नहीं हूँ। और यह विकल्प होते हैं वह मेरा स्वरूप नहीं है। सिद्ध भगवान जैसा मेरा स्वरूप है। ऐसी स्वयंकी परिणति प्रगट हो, ऐसे अन्दरसे बार-बार ऐसा ही लगे कि मैं इन सबसे भिन्न हूँ। भिन्न हूँ-भिन्न हूँ ऐसा करते (परिणति) हो, आनन्द प्रगट होता है। सिद्ध भगवान तो पूर्ण हो गये। ... तो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वही मुक्तिका मार्ग है।

उसे अन्दरसे सब छूट जाता है। इस संसारका स्वरूप... उसे अन्दरसे ऐसा (लगे) कि यह कुछ भी मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप भिन्न है, ऐसा अंतरसे (हो)। अनादिका अभ्यास है, राग-द्वेषमें पड़ा है, एकत्वबुद्धि है। बारंबार उसके लिये प्रयत्न करे तो होता है। नहीं तो वह नहीं होता। मैं भिन्न ज्ञायक हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसे भेदज्ञान करे तो होता है। बारंबार मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ। आत्माको पहचानकर होना चाहिये कि यह जाननेवाला है वही मैं हूँ, यह शरीर कुछ नहीं जानता, ऐसे होना चाहिये। बहुत शास्त्रोंको जान लिया, ऐसे नहीं। आत्माको जाने तो उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आत्माको जाने, उसके साथ भले ही नौ तत्त्व आदि जाने, परन्तु मुख्यरूपसे आत्माको जानना चाहिये। नौ तत्त्वको जाने, शास्त्रकी श्रद्धा होती है, जिनेन्द्र देव जो वीतराग होते हैं वह देव हैं, जो गुरु आत्माकी साधना करते हों, वे गुरु। इसप्रकार सच्चे देव-गुरु-शास्त्र (को जाने)। शास्त्र, जिसमें आत्माकी बातें आती हो, वह शास्त्र है। लेकिन अन्दर आत्माकी श्रद्धा साथमें होनी चाहिये, तो वह सम्यक् है। मात्र बाहरका हो तो वह स्थूल श्रद्धा है। उसे व्यवहार कहते हैं।

भले वह नहीं हो तबतक सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी (श्रद्धा करे, लेकिन मात्र उससे) मोक्ष नहीं होता, मोक्षा तो आत्माको पहचाने तो ही होता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आत्माको जाने वह ज्ञान, आत्मामें लीनता करे, बाहरसे छूटकर आत्माका जो स्वभाव है, उसमें स्वयं लीन हो तो वह चारित्र है। बाहरसे व्रत धारण किये, सब किया परन्तु अन्दर स्वयं आत्मामें लीन नहीं हो तो वह चारित्र सिर्फ बाहरका है। बहुत लोग चारित्र लेते हैं, भावमें कुछ नहीं होता। ऐसा चारित्र नहीं।

सच्चा चारित्र तो ऐसा आता है कि आत्मामें बारंबार लीन होता है और बाहर आये तो उसे शुभभाव होते हैं। देव-गुरु-शास्त्र, नौ तत्त्व आदि, शास्त्र के विचार आते हैं। वह तो शुभभाव है, लेकिन अन्दर आत्मामें बारंबार लीन हो तो वह चारित्र है। उसके साथ भले उसे त्याग हो, मुनिदशा हो, सब होता है, परन्तु आत्माका (आश्रय) हो तो वह चारित्र कहलाता है। आत्माको समझे बिना बाहरसे चारित्र ले, वह वास्तविक

चारित्र नहीं है, उससे मोक्ष नहीं होता। मोक्ष तो आत्मामें लीन हो, ऐसा चारित्र प्रगट हो तो ही मोक्ष होता है, नहीं तो उसे मोक्ष नहीं होता।

मुमुक्षु :- जीव एकबार मोक्षमें जानेके बाद वापस नीचे नहीं आता है न?

समाधान :- मोक्षमें जानेके बाद वापस नहीं आता। अन्दर स्वयं आत्मा मोक्षस्वरूप ही है। उसमें स्वयं लीनता करे तो मोक्षकी पर्याय यहीं प्रगट होती है। फिर तो वह एक क्षेत्रमें जाता है। यहाँ जीव था, वह सिद्धक्षेत्रमें गया। वहाँ जानेके बाद वापस नहीं आता। उसे भव नहीं होते। जन्म-मरणका नाश हो जाता है। फिर जन्म नहीं होता। लेकिन अन्दर वैसी तैयारी स्वयं यहीं कर लेता है। आत्मामें ऐसा लीन हो जाता है कि बाहर ही नहीं आता।

मुमुक्षु :- ..जितने कर्म बन्धे हैं, वह सब नष्ट हो जाते हैं?

समाधान :- हाँ। आत्माको पहचाने तो क्रोड़ो वर्षोंके सभी कर्म क्षय हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- ऐसा कहते हैं न कि चौरासी लाखके चक्कर काटने पड़े। वह सब..

समाधान :- सबका नाश हो जाता है। एक आत्माको पहचाने, आत्माकी श्रद्धा करे, आत्मामें लीन हो तो सब टूट जाता है। उसे तोड़ने नहीं जाना पड़ता। बाहरसे उपवास करे, त्याग करे, सब करे तो कर्मका नाश हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- ... सबको ऐसी भावना होती है कि वर्षीतप करे, कर्मनाशके हेतु, वह जूठी मान्यता है?

समाधान :- वैसे कर्मका नाश नहीं होता। कर्म तो अन्दर आत्मामें आत्मा प्रगट हो तो कर्मका नाश होता है। वह मान्यता है वह समझ बिनाकी मान्यता है। अज्ञानी जो कर्म लाख-क्रोड़ भवमें नाश करे, वह ज्ञानी एक सांसमें क्षय करता है। आत्माका ज्ञान होनेसे एक सांस ले उतनी देरमें उसके कर्म क्षय हो जाते हैं और लाख-क्रोड़ भव पर्यंत अज्ञानी जो कर्मका नाश नहीं कर सकता, वह ज्ञानी एक क्षणमात्रमें क्षय करता है। आत्माको समझे बिना कर्मका नाश नहीं होता। आत्माका ज्ञान जिसे होता है, उसे त्यागादि सब होता है। लेकिन कर्मका नाश तो ज्ञानसहित हो तो होता है। अज्ञानीको कर्मका नाश होता है और फिर नये बान्धता है। वास्तविक रूपसे तो छूटते ही नहीं। त्याग करे, साथमें नये-नये साथमें बान्धता है और माने कि इससे मुझे धर्म होता है। साथमें जूठी मान्यता है, इसलिये नये कर्म बान्धता है।

(ज्ञानीको) कर्म क्षय इसप्रकार होते हैं कि जो क्षय होनेके बाद नया बन्ध नहीं होता। इसप्रकार ज्ञानीको क्षय होता है। नये बन्धते ही नहीं। मक्खनमेंसे घी होता है, फिर घीमेंसे पुनः मक्खन नहीं होता। वैसे जो अन्दरसे वीतराग हो गया, स्वानुभूतिमें लीन हो गया, केवलज्ञान हो गया, उसका फिरसे मक्खन नहीं होता।

मुमुक्षु :- बीजज्ञान यानी क्या? वह केवलको बीज ज्ञानी कहे...

समाधान :- केवलको बीजज्ञानी यानी सम्यग्दर्शनको बीजज्ञान कहते हैं। बीजज्ञान प्रगट होता है इसलिये केवलज्ञान होता है। आता है, वह केवलको बीजज्ञानी (कहे)। ... सच्चा मार्ग मिले न, गुरु बिना मार्ग कौन बताये? बिना गुरु अपने ही आप समझ करे, बिना समझके, तो जूठा मार्ग ग्रहण करता है। सच्चे प्रत्यक्ष गुरु मिले वे मार्ग बताये तो वह सत्य मार्ग पर चले। गुरु बिना उसे मार्ग कौन बताये? गुरु बिना होता नहीं।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- वह गुरु तो कुछ नहीं समझते, मात्र वेष धारण किया होता है। कुछ समझते नहीं।

मुमुक्षु :- सच्चे गुरुको किसे कहते हैं?

समाधान :- सच्चे गुरु, जिसे सम्यग्दर्शन हुआ हो, जिसे आत्माकी स्वानुभूति हुई हो और जो अन्दरसे यथार्थ... जैसे गुरुदेव यहाँ विराजते थे, उन्हें सम्यग्दर्शन स्वानुभूतिपूर्वक (हुआ था)। उनका ज्ञान, उनका ज्ञान भी कोई अलग था। वैसा ज्ञान हो, जिसकी अपूर्व वाणी हो, जो वाणीपरसे पहचाने जाये कि ये सच्चे गुरु है, आत्माकी ही बात करते हो। लेकिन आत्माकी बातें भी मात्र बोलने जितनी नहीं, अंतरसे बातें करते हो। आत्मस्पर्शी जिनकी वाणी हो, उसे गुरु कहते हैं। उन्हें देखकर, उनकी वाणी सुनकर ऐसा लगे कि ये तो आत्माकी कोई गहरी बातें करते हैं। ये तो आत्मामें बसते हो ऐसा लगता है। ऐसा लगना चाहिये, तो गुरु कहते हैं। मात्र बाहरकी बातें करते हो, आत्माकी कोई बात नहीं हो, उसे गुरु कैसे कहें? गुरुदेवको आपने देखा नहीं है। देखा है?

मुमुक्षु :- देखा है। हमारे घर पधारे थे।

समाधान :- उनकी वाणी सुनी है।

मुमुक्षु :- घाटकोपर सर्वोदय होस्पिटलमें आये थे, तब सुना है।

समाधान :- उनकी वाणी कोई अलग थी। लोगोंको ऐसा लगे कि कुछ अलग ही कहते हैं। आत्मस्पर्शी वाणी हो। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०१३

समाधान :- उपादान यानी मूल वस्तु, मूलमें स्वयं उपादान। उपादानकारण यानी स्वयंका कारण। जो वस्तु है, वह मूल वस्तु उपादान और साथमें हो उसे निमित्त कहते हैं। स्फटिक स्वयं मूल वस्तु है। उसमें हरे-पीले रंगका प्रतिबिंब उठे वह बाहर है, वह निमित्त और स्वयं मूल वस्तु है वह उपादान। उसके उपादानकी योग्यता ऐसी है कि उसमें लाल-पीले रंगका प्रतिबिंब उठता है, वह उसका उपादान। बाहर है वह निमित्त। निमित्त कुछ करता नहीं, स्वयंके कारण ऐसा होता है। परन्तु उसका मूल स्वभाव है, उसका नाश नहीं होता।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- जली हुई डोरी होती है, वैसे कर्म अभी बाकी है। केवलज्ञानीको कर्मका नाश हो गया, कर्मका तो क्षय हो गया है। फिर जो थोड़े कर्म बाकी है वह कर्म ऐसे हैं, जली हुई डोरी होती है न? जली हुई रस्सी होती है न? खाट भरते हैं न? जली हुई रस्सी जैसे कर्म (बाकी है), एकदम टूट जाये ऐसे हैं। थोड़ी देरमें खत्म हो जाते हैं। उन्हें, घातिकर्म जो केवलज्ञानको रोके, जो अन्दर आत्माके पुरुषार्थके रोके, वैसे निमित्तरूप, कोई रोकता नहीं है, अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे रुका है। केवलज्ञानी भगवानको जो ऐसे कर्म थे, वह तो क्षय हो गये। परन्तु बादमें जो बाकी रहे, अभी शरीर छूटा नहीं, ऐसे जो कर्म बाकी है, वह कर्म जली हुई रस्सीके समान है, जल्दी नाश हो जाये ऐसे कर्म (हैं)। केवलज्ञानी शरीरसहित हो तो केवलज्ञानीको सब कर्म क्षय हो गये हैं, परन्तु बाकी जो रहे हैं वह जली हुई रस्सीके समान है। जब सिद्ध होंगे तब वह सब छूट जायेंगे। आयुष्य आदि कर्म है, वह सब कर्म जली हुई रस्सीके समान बाकी रहे हैं। नामकर्म है, गोत्रकर्म है ऐसे कर्म (बाकी हैं)।

मुमुक्षु :- घनघाती कर्म यानी क्या?

समाधान :- घनघाती, जो आत्माके गुणोंके घातमें निमित्त हो, उसे घनघाती कहते हैं। जैसे केवलज्ञानको रोकनेवाला, केवलदर्शनको, अन्दर पुरुषार्थको उन सबको रोकनेवाले कर्मको घनघाती कहते हैं। आत्माके गुणको घात करनेमें निमित्त। अर्थात् वह घात नहीं करते, परन्तु निमित्त है।

जैसे स्फटिक है, बाहर होते हैं न? हरे-पीले फूल, उसके भाँति। कर्म उसमें निमित्त है इसलिये घनघाति कहते हैं। कुछ कर्म ऐसे होते हैं कि जो गुणका घात नहीं करते, मात्र शरीर प्राप्त हो, आयुष्य होता है, उन सब कर्मोंको घनघाती नहीं कहते, उसे अघाति कहते हैं। वह आत्माके गुणोंका घात नहीं करते। शरीर मिले, आयुष्य हो उन सबको अघाति कहते हैं।

मुमुक्षु :- ...छठ्ठा आरा आया, मतलब?

समाधान :- उसे काल कहते हैं, आरो यानी चतुर्थ काल, पंचम काल, ऐसे काल। जगतमें ऐसा काल आता है कि जिसमें ऐसे जन्म लेते हैं कि उसे चतुर्थ काल (कहते हैं)। अच्छे-अच्छे जीवका जन्म होता हो, जो मोक्षमें जानेवाले हो, ऐसी उनकी पात्रता हो, केवलज्ञान प्राप्त करे, कोई सम्यग्दर्शन (प्राप्त करे), कोई मुनि बने, ऋद्धिधारक मुनि बने, ऐसे कालको चतुर्थ काल कहते हैं। जिसमें तीर्थंकरका जन्म हो, जिसमें केवलज्ञानी विचरते हो, उसे चतुर्थ काल कहते हैं-चतुर्थ आरा। जिसमें भगवान तीर्थंकरका जन्म हो, उसे चतुर्थ-अच्छा काल कहते हैं। कहा न? अच्छा काल आया है। लोकमें ऐसा कहते हैं न कि अपने लिये यह अच्छा काल है कि यह पुण्यका काल आया तो अब उन्नति होती है। किसीका धन कम हो जाये तो कहे कि अब हिन काल आया, किसीको शरीरमें रोग आये तो कहे कि हिन हो गया है, अनुकूलता होवे तो कहे अब उन्नतिका समय आया। वैसे चतुर्थ काल। आरो यानी चतुर्थकालमें अच्छे-अच्छे जीवोंकी उन्नति होती है इसलिये उसे चतुर्थ काल, चतुर्थ आरा कहते हैं।

मुमुक्षु :- उसमें भी मर्यादा होती होगी?

समाधान :- हाँ, कुछ काल तक ऐसे जीवोंका ही जन्म होता है। अच्छे जीव होते हैं वह दूसरे क्षेत्रमें जन्म लेते हैं। पंचमकाल आये तो उसमें अमुक प्रकारके जीव जन्म लेते हैं। धर्म तो रहता है, अमुक प्रकारका धर्म तो रहता है, परन्तु देखिये, अभी तो कपट, मायाचारी आदि बढ़ गया है। ऐसे लोगोंका जन्म हो उसे पंचमकाल कहते हैं। पंचम आरा। छठ्ठे आरेमें तो उतना होगा कि हिंसा बढ़ जायेगी। उसे छठ्ठा काल कहते हैं।

समाधान :- ... आत्मा बन्धा नहीं है। अबद्ध यानी बन्धा हुआ नहीं है। गाथामें है, हरिगीत है न? आत्मा किसी भी कर्मसे वास्तविकरूपसे बन्धा हुआ नहीं है, आत्मा भिन्न ही है। मकड़ीकी जाल होती है उसमें मकड़ी भिन्न ही है। वैसे आत्मा भिन्न ही है। कर्मसे वैसे नहीं बन्धा है कि वह भिन्न नहीं हो सके। अन्दर भिन्न ही है। अबद्ध है, अस्पृष्ट है। वह किसीसे स्पर्शित नहीं हुआ है। जैसे कमल पानीमें हो, पानीमें कमल हो तो ऐसे दिखता है कि मानो पानीमें और कीचड़में लिप्त हो गया

हो। परन्तु वह कमल लिप्त नहीं होता है, कमल तो भिन्न ही रहता है।

ऐसे आत्मा तो अन्दर भिन्न ही है। अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य। आत्मा अन्य कोई भी शरीररूप नहीं हो जाता। जन्म-मरण करे। मनुष्य, नारकी, देव आदि रूप हो नहीं जाता। आत्मा तो आत्मा ही रहता है। आत्मा अन्य-अन्य, अलग-अलग नहीं हो जाता। अनन्य-एकरूप जो अपना स्वरूप है वैसा ही रहता है। भिन्न-भिन्न अवस्था धारण करे, अलग-अलग पर्याय हो, आत्मा वैसा ही रहता है।

मुमुक्षु :- .. शुद्धतामें केलि करे, उसका मतलब क्या?

समाधान :- केलि यानी उसमें खेलते हैं, लीला करते हैं, ऐसा नहीं कहते? शुद्धतामें केलि करे, शुद्धता रस बरसे, अमृतधारा बरसे। आत्मामें सम्यग्दर्शन हो, आगे बढ़े, स्वानुभूतिमें खेलता हो तो शुद्धतामें केलि करे, अमृतरस बरसे। केलि-खेलता है, केलि यानी खेलता है।

मैं शुद्ध ही हूँ। शुद्धताको ध्यावे, शुद्धताका ध्यान करे, शुद्धतामें केलि करे, शुद्धतामें खेल करे, अमृतधारा बरसे। ऐसा करनेसे अन्दर अमृतकी धारा बरसती है। शुद्धताका ध्यान करता है।

मुमुक्षु :- गणधरदेवको ऐसी ऋद्धि होती है कि बारह अंगको गूंथते हैं। हमें ऐसी कोई ऋद्धि दीजिये कि हम विरोधियोंके बीचमें रहते हुए भी ज्ञानीके प्रति शंका उत्पन्न न हो और हमारी शांति भंग न हो, ऐसी कोई ऋद्धि दे दीजिये।

समाधान :- वह तो अपने पुरुषार्थके हाथकी बात है। विरोधियोंके बीचमें रहकर भी आत्माकी आराधना करना (कि) मैं ज्ञायक हूँ। बाहर नहीं आना। ज्ञायकस्वरूप आत्मा हूँ, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमाकी आराधना, आत्माकी आराधना। ऐसी भावना, पुरुषार्थ करना। भीतरमें लक्षण पहचानकर दृढ़ता करनी। बाहरकी बात सुन-सुनकर नक्की नहीं करना। प्रत्यक्ष देखे बिना कोई बात नक्की नहीं करना। जो प्रत्यक्ष देखा हो उसे ही नक्की करना। आत्माका स्वभाव भी अपना लक्षण पहचानकर नक्की करना। .. स्वाध्याय करना, दूसरी बातोंमें नहीं पड़ना।

मुमुक्षु :- वादविवादमें भी नहीं पड़ना?

समाधान :- वादविवादमें भी नहीं पड़ना। किसीमें नहीं पड़ना। अपनी उतनी शक्ति नहीं हो तो वादविवादमें नहीं पड़ना। आत्मा है तो पुरुषार्थ कर सकता है। आत्माका प्रयोजन साधना अपने हाथकी बात है। उसे कोई रोक नहीं सकता। न्यारे रहकर अपने आत्माकी साधना पुरुषार्थ करनेसे हो सकती है।

मुमुक्षु :- माताजी! कोई, ज्ञानियोंके लिये या गुरुदेवके लिये या किसीके भी लिये मानों कि दो-चार ऊलटे-सीधे शब्द बोले तो हम तो संसारी हैं, ऐसा भक्तिका राग

आ जाये कि गुरुदेवके लिये ऐसा क्यों? अथवा दूसरे ज्ञानीके लिये ऐसा क्यों बोले? ऐसा विकल्प आये तो... माताजी! हम तो अज्ञानी हैं, ऐसे समयमें क्या करना?

समाधान :- ऐसे विकल्प नहीं करना, ऐसे विकल्प नहीं करना। (मुमुक्षुका) कार्य है कि मर्यादाके बाहर नहीं जाना। मर्यादासे बाहर जाये तो...

मुमुक्षु :- माताजी! अपने कोई भी मुमुक्षु मर्यादाकी हदका उल्लंघन करे, ऐसे हैं ही नहीं। गुरुदेवका अपार उपकार और आपका अपार उपकार है कि मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते हैं। परन्तु सामनेवाले उल्लंघन करके यहाँ आ जाये और अपनेको कुछ भी करे तो क्या खड़े रह जाना?

समाधान :- सामनेवाला मर्यादाका उल्लंघन करे तो उसका वह जाने, स्वयं मर्यादाका उल्लंघन नहीं करे। ...

मुमुक्षु :- बहिनश्री! कुन्दकुन्दस्वामी केवलज्ञानका स्वरूप जब गाथामें वर्णन करते हैं, तब तो सब अनुभवसिद्ध वर्णन करते हैं। केवलज्ञानका स्वरूप शास्त्रके आधारसे वर्णन करते हैं या उसप्रकारकी तर्कणासे केवलज्ञानका स्वरूप ख्यालमें लेते हैं? अनुभव तो केवलज्ञान..

समाधान :- आचार्योंकी क्या बात करनी, कैसे वर्णन करते हैं। आचार्य हैं सो आचार्य हैं। उनकी शक्ति तो कोई अलग ही होती है। उसमें भी कुन्दकुन्दाचार्यकी क्या बात! उन्हें तो अन्दर श्रुतज्ञान कोई अलग ही था। उनके अन्दर ऐसी कोई शक्ति थी, स्वयं अन्दरसे समझ सके। स्वानुभूतिमें केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ है, परन्तु सम्यग्दर्शनपूर्वक उनकी दशा अन्दर कहाँ तक टिकती है, छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हुए मुनि (हैं)। और उनका ज्ञान यानी इस पंचमकालमें चारों ओर कुन्दकुन्द आम्नाय, कुन्दकुन्द आम्नाय (हो गया)। उनकी शक्ति कोई अलग थी। मात्र ऊपरसे विचार करके (कहते हैं), ऐसा नहीं। उनकी बात यानी बस... अंतर श्रुतज्ञान उनका कोई अलग था। श्रुतज्ञानसे बात करते हैं।

आता है न? श्रुतज्ञान और केवलज्ञान, दोनोंमें कोई नहीं देखना। मात्र प्रत्यक्ष, परोक्षका अंतर है। केवलज्ञानी प्रत्यक्ष देखते हैं, श्रुतज्ञानी परोक्ष देखते हैं। लेकिन दोनों समान है, ऐसा शास्त्रमें आता है। उसमें आचार्योंकी बात क्या करनी! आचार्योंने उसका रहस्य समझाया है। केवलज्ञानी सब प्रत्यक्ष देखते हैं, तो श्रुतज्ञानी सब परोक्ष देखते हैं।

मुमुक्षु :- उसमेंसे ऐसा अर्थ निकले कि केवलज्ञानीकी साक्षात् भेंट हुई थी?

समाधान :- उसमेंसे विचार करे तो निकले कि केवलज्ञानीकी भेंट हुई थी। भेंट हुई थी, मानों नहीं भी हुई हो तो श्रुतज्ञानका स्वरूप ही ऐसा है कि श्रुतज्ञानी और

केवलज्ञानी दोनों समान हैं, ऐसा शास्त्रमें आता है। उनका श्रुतज्ञान ऐसा है। प्रवचनसारमें भी केवलि भगवानके पास गये थे वह बात तो गाथाओंमेंसे निकलता है। वर्तमान क्षेत्रमें विचरते सीमंधर भगवान एवं प्रत्येक-प्रत्येक सबको वन्दन करता हूँ, आदि सब आता है। निकलता है क्या, कितने ही आचार्योंने लिखा है कि कुन्दकुन्दचार्य विदेहक्षेत्रमें गये थे। ऐसे लेख आते हैं, उसके सब शिलालेख आते हैं। उसका तो विचार करना पड़े ऐसा कहाँ है? शिलालेखोंमें, पंचास्तिकायमें, देवसेनाचार्य आदि सब कहते हैं। उनकी लेखनीके बारेमें कहाँ विचार करना पड़े ऐसा है। उनकी गाथाओंमें (आता है), प्रत्येक-प्रत्येकको विदेहक्षेत्रमें विचरते भगवंतोंको नमस्कार करता हूँ।

मुमुक्षु :- उनकी वाणीमें ॐ ही आता है, ऐसा है क्या?

समाधान :- केवलज्ञानीकी वाणीमें ॐ आता है। आचार्योंकी वाणीमें ॐ नहीं आता। भगवानकी वाणीमें ॐ आता है। भगवानको इच्छा टूट गई है, वीतराग हो गये हैं, इसलिये वाणीमें ॐ आता है। आचार्य तो मुनि हैं, शास्त्रमें द्रव्य-गुण-पर्यायका विस्तार करके वर्णन करते हैं। भगवानकी वाणीमें ॐ आता है, परन्तु उसमें अनन्त रहस्य आता है। पूरे लोकालोकका स्वरूप आता है।

मुमुक्षु :- आपश्री केवलज्ञानका स्वरूप बताते हो तब ऐसा लगता है कि आपको भी भेंट हुई हो और सुना हो, ऐसे ही कहते हो।

समाधान :- जिसको जैसा अर्थ करना हो वैसा करे।

मुमुक्षु :- माताजी! लोगोंको तो शिलालेक आदिका आधार लेना पड़ता है, हमें तो साक्षात् आपका आधार मिला है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ पधारे थे, आपने साक्षात् देखा है, इससे बढकर और क्या आधार चाहिये? हम तो अधिक भाग्यशाली हैं, आप साक्षात् मोजूद हैं। लोगोंको मात्र शिलालेख देखने मिलते हैं, आप तो साक्षात् हमें प्राप्त हुए हैं।

समाधान :- शास्त्रमें सब प्रमाणभूत है। शिलालेख है, सब टीकाओंमें है, सब प्रमाणभूत है। जैनसमाजमें, दिगम्बर समाजमें (आधारभूत है)। आप सब मानते हो वह माने।

मुमुक्षु :- माताजी! हमें तो आपका मानना है, दूसरोंको जो मानना है वह माने, हमें क्या? हमने एक ज्ञानीको पकड़े हैं, दूसरेको क्यों पकड़ना? बकरेका झुंड होता है, सिंहका नहीं होता।

समाधान :- .. चतुर्थ गुणस्थान यानी सम्यग्दर्शनकी भूमिका है। सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, उसे चतुर्थ गुणस्थान कहते हैं। स्वानुभूति हो, भेदज्ञान हो, आत्माकी स्वानुभूति होती है वह चतुर्थ गुणस्थान है।

मुमुक्षु :- साथ-साथ सम्यग्दर्शन होता है, तीनों साथमें होता है?

समाधान :- सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, चतुर्थ गुणस्थानमें अभी चारित्र नहीं है। वास्तविक चारित्र मुनिदशामें (होता है)। ये तो गृहस्थाश्रममें होते हैं इसलिये थोड़ी लीनता है। बाकी चारित्रदशा रत्नत्रय नहीं, सम्यग्दर्शन कह सकते हैं। स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं। लेकिन जो मुनि होते हैं, ऐसा चारित्र नहीं।

मुमुक्षु :- पौन सेकण्डसे अधिक निद्रा नहीं होती, ऐसा कैसे?

समाधान :- छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें आत्मामें जाते हैं। उसमें निद्रा कैसे हो? क्षण-क्षणमें जागृत होते हैं, क्षण-क्षणमें जागृत होते हैं।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन यानी क्या? और उसे प्राप्त करनेके लिये इस पामर जीवको ... कैसे हो?

समाधान :- सम्यग्दर्शनका स्वरूप, इस पंचमकालमें गुरुदेवने यहाँ पधारकर कितना विस्तार करके समझाया है। समझना मुश्किल, प्राप्त करना मुश्किल, सब मुश्किल था। परन्तु गुरुदेवने कितना मार्ग (स्पष्ट किया)।

.. आत्माकी ओर देखता भी नहीं। बाहरमें ही उसकी दृष्टि है। बाहरसे धर्म होता है, सबकुछ बाहरसे ही मान लिया है। बाहरसे ज्ञान आता है, बाहरसे सुख आता है, बाहरसे सब आता है। दृष्टि बाहर ही है, इसलिये उसे दुर्लभ हो गया है। अंतर दृष्टि करे तो पहचान सकता है। अंतर दृष्टि किये बिना जन्म-मरण होते ही रहते हैं। ज्यादासे ज्यादा शुभभाव करे, बाह्य क्रिया करे, कुछ करे, कुछ छोड़े, कुछ करे, (उसमें भी) शुभभाव हो तो पुण्यबन्ध होता है। पुण्यसे देवमें जाता है। परन्तु भवका अभाव तो होता नहीं। भवका अभाव तो एक आत्माको पहचाने कि मैं चैतन्यतत्त्व अनादिसे क्यों रखड़ा? मेरा क्या स्वरूप है? और ये विभावका दुःख कैसे टले? अन्दर विचार करे, अन्दर जिज्ञासा करे, लगनी लगाये, उसे इस संसारकी थकान लगे तो अंतरमें जाये। उसे थकान नहीं लगी और अन्दरसे उसे छूटनेकी इच्छा हो कि मैं कैसे छूटूं? अंतरमेंसे मार्ग मिल जाता है। स्वयं ही है, गुप्त नहीं है, स्वयं नहीं है। मार्ग अंतरसे मिल जाता है।

आत्मा जाननेवाला ज्ञायक है। उसका ज्ञानलक्षण है, ज्ञानलक्षणसे पहचानमें आये ऐसा है। और उसका स्वरूप गुरुदेवने बहुत बताया है। उसे समझानेवाले गुरुदेव प्रत्यक्ष थे और उनकी वाणी मूसलाधार बरसती थी। आत्माका स्वरूप क्या है? उसके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? पुद्गलके क्या है? दोनों वस्तु अत्यंत भिन्न हैं। अंतर आत्मा अनन्त गुणोंसे विराजमान अनुपम तत्त्व है। लेकिन उसे पहचाने तो अंतरमें जाये। उसकी लगनी लगाये, उसकी जिज्ञासा करे तो होता है। जिज्ञासा हुए बिना, अंतर लगनी लगे बिना,

उसका स्वरूप पहचाने बिना आगे नहीं जा सकता। उसका स्वरूप पहचाननेका प्रयत्न करना चाहिये। उसका स्वरूप पहचाननेके लिये विचार करे, वांचन करे, शास्त्र स्वाध्याय करे, गुरुदेवने क्या कहा है, उसका विचार करे तो आगे बढ़ सकता है।

मुमुक्षु :- ऐसी शक्ति स्वयंमें है कि जिसके आधारसे वह आगे बढ़ सके।

समाधान :- है, स्वयं अनन्त शक्तिसे भरा आत्मा है। कोई दे तो हो जाये, ऐसा नहीं है। स्वयं ही है, स्वतंत्र है। वह पराधीन नहीं है कि कोई कर दे तो हो जाये। स्वयंमें अनन्त शक्ति है। जैसे भगवान हैं, वैसा स्वयं है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, जैसे तीर्थंकरदेव हैं, उनका जैसा आत्मा है, वैसा ही स्वयंका आत्मा है। उसमें और इसके स्वभावमें कुछ भी अंतर नहीं है।

भगवानने जो प्राप्त किया वह स्वयं कर सके ऐसा है। अंतरमें पुरुषार्थ करे तो (होता है)। उतनी अनन्त शक्तिसे भरा चैतन्यदेव विराजता है। उसमें अनन्त शक्ति भरी है। लेकिन पुरुषार्थ करे तो होता है, पुरुषार्थ किये बिना (नहीं होता)। बारंबार उसका पुरुषार्थ करना चाहिये। क्षण-क्षणमें उसका विचार करना चाहिये, उसकी लगनी लगाये। छाछमेंसे मक्खन बनाना हो तो बारंबार उसे बिलोये तो ऊपर आता है। बिना प्रयत्न नहीं आता।

इसप्रकार भिन्न होनेके लिये, विभावसे भिन्न होनेके लिये... अंतरमें भिन्न ही है, लेकिन एकत्वबुद्धि (हो गयी है)। बारंबार उसका विचार करे, मंथन करे, बारंबार करे, लगनी लगाये तो भिन्न हो सकता है। अनन्त शक्तिसे भरा है।

मुमुक्षु :- शक्ति तो प्रगट हो तब आती है न?

समाधान :- अन्दर अनन्त शक्ति भरी है। प्रगट हो तब आये, ऐसा नहीं। उसमें शक्ति भरी ही है। स्वयं प्रयास करे तो होता है। पानी स्वभावसे निर्मल ही है। कीचड़के कारण मैला दिखता है, परन्तु उसका स्वभाव निर्मल है। उसमें निर्मली औषधि डाले तो निर्मल होता है। वैसे स्वयं स्वभावसे निर्मल है। अनन्त शक्तिसे भरा है। पुरुषार्थ करके, अन्दर यथार्थ ज्ञान करके, ज्ञानकी औषदि डाले, प्रज्ञाछैनी प्रगट करे तो आत्मा अन्दरसे प्रगट हो ऐसा है।

मुमुक्षु :- आपने दो बात कही, शक्ति भरी भी है और पुरुषार्थ भी करना पड़े।

समाधान :- भरी है, परन्तु उसे कार्यान्वित नहीं की है। कार्यमें रखे तो होता है। शक्ति तो भरी ही है। स्वयं करता नहीं है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०१४

मुमुक्षु :- कर्मका नाश करना चाहते हैं, परन्तु बन्धते ही जाते हैं, बन्धते ही जाते हैं, उसका अंत कहाँ है?

समाधान :- कर्म बन्धते ही जाते हैं उसमें स्वयंका कारण है। स्वयं एकत्वबुद्धि करके अटका है। अन्दर जो राग और द्वेष (होते हैं), उसके साथे एकत्वबुद्धि की है। कर्मको स्वयं बान्धने नहीं जाता है, कर्मको स्वयं छोड़ने नहीं जाता। परन्तु स्वयं अन्दर जो विकल्पकी जालमें फँसा है, अन्दरमें एकत्वबुद्धि करके अन्दरसे स्वयं भिन्न पड़ता है इसलिये कर्म छूटते नहीं है। स्वयं अन्दरसे विकल्पसे छूट जाये और उससे मैं भिन्न हूँ, ऐसे अपने तत्त्वको ग्रहण करे तो अन्दरसे स्वयं छूट जाता है, तो कर्म छूट जाते हैं। स्वयं अन्दरसे छूटता नहीं है, इसलिये कर्म भी नहीं छूटते हैं।

मुमुक्षु :- वह कैसे?

समाधान :- स्वयं अन्दरसे भिन्न पड़ना चाहिये कि मैं तो आत्मा हूँ, मैं तो चैतन्य जाननेाला हूँ। यह शरीर मैं नहीं हूँ। शरीरके साथ एकत्वबुद्धि (हो रही है)। भले उसे अभी एकदम नहीं छूटे, अन्दरसे ज्ञान करके, विचार करके मैं तो चैतन्य ज्ञायक हूँ, यह जड़ शरीर मैं नहीं हूँ, मैं तो जाननेवाला हूँ, यह राग-द्वेष मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो जाननेवाला आनन्दसे भरा आत्मा हूँ। इसप्रकार बारंबार विचार करके उसका स्वभाव पहचाने और बारंबार उससे निर्लेप रहनेका प्रयत्न करे, उससे भिन्न रहनेका प्रयत्न करे। बारंबार अन्दरसे यदि स्वयं निर्लेप रहे और भिन्न रहनेका प्रयत्न करे तो स्वयं भिन्न ही है। परन्तु अन्दर स्वयं फँसा है कि मैं बन्धा हूँ, राग-द्वेष और शरीर मैं, शरीर मैं और मैं शरीर, ऐसी एकत्वबुद्धि हो गयी है। यह शरीर है वही मैं हूँ और शरीर ही मेरा स्वरूप है, ऐसी एकत्वबुद्धि और यह कल्पनाकी जाल होती है वह सब मैं ही हूँ, उससे मैं भिन्न हूँ ऐसा ज्ञान करे तो छूट सकता है।

स्वयं अन्दरसे भिन्न पड़े तो कर्म छूट जाते हैं। स्वयं भिन्न पड़ता है इसलिये कर्म बन्धते जाते हैं। शरीर मैं नहीं हूँ, मैं तो जाननेवाला हूँ। अन्दर विचार करे तो ख्याल आये कि मैं तो जाननेवाला हूँ। इससे मैं भिन्न ही हूँ, इसप्रकार स्वयं भिन्नताकी भावना करे, उसका प्रयत्न करे तो छूट सकता है। स्वभावसे भिन्न ही है, परन्तु बन्ध गया

हूँ ऐसा मान लिया है कि मैं बन्ध गया हूँ।

पहले प्रयत्न करके भिन्न होवे, भावना करे, लेकिन द्रव्य तो भिन्न ही है। लेकिन स्वयं ऐसी परिणति करे, भिन्नता रूप स्वयं परिणमन करता जाये तो फिर भिन्न पड़ जाता है। कर्म छूट जाते हैं, भवका अभाव हो जाता है, अन्दरसे छूट जाये।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शनको ही ध्येय रखना या गौणरूपसे दूसरा भी कोई ध्येय पड़ता है?

समाधान :- सम्यग्दर्शन यानी आत्माकी प्राप्ति करनी वही एक ध्येय रखना है। दूसरा ध्येय क्या? दूसरा कोई ध्येय रखने जैसा नहीं है। उसमेंसे उसे कोई आत्माकी सिद्धि, सुख नहीं मिलने वाला है। बाहरका तो सब पुण्याधीन है, वह अपने हाथकी बात नहीं है। बाहरसे मैं पैसे प्राप्त करुँ, दूसरा कोई कार्य करुं या दूसरेका कुछ करुँ, वह अपने हाथकी बात नहीं है। वह तो स्वयंके पुण्य अनुसार, दूसरेके पुण्य अनुसार होता रहता है, दूसरेके पापके उदयके कारण जैसा होना हो वैसा होता रहता है। स्वयंके पुण्य-पापके उदय अनुसार होता रहता है, वह कुछ नहीं कर सकता। मात्र भाव करता है, राग करता है, द्वेष करता है, वह सब करता है, बाकी कुछ नहीं कर सकता। एक ही कार्य कर सकता है कि स्वयं आत्मा है, उस आत्माकी प्राप्ति कर सके। दूसरा बाहरका कुछ नहीं कर सकता, मात्र मानता है कि मैं बाहरका कर सकता हूँ।

मुमुक्षु :- जीवनमें एक ही ध्येय रहा कि स्वरूप समझना।

समाधान :- एक आत्माकी ही प्राप्ति। जिसे आत्मा चाहिये, उसके लिये आत्माकी प्राप्ति। नहीं चाहिये उसके लिये तो संसार तो है ही। वह तो अनादिका है। जिसे आत्मा चाहिये, आत्मदेवके दर्शन जिसे करने हैं, उसके लिये उसे ध्येय रखना है। जिसे वह नहीं है, जिसे उसकी इच्छा नहीं है, उसे संसार है ही। उसके लिये तो संसारके सभी कार्य है ही। वह तो अनादिसे है ही। शुभाशुभ दोनों है।

.. जबतक नहीं हो तबतक भावना करे, विचारादि सब करे। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रको उसके हृदयमें रखे। जिनेन्द्रदेव, गुरु, शास्त्र, जो आत्माको दर्शानेवाले हैं, जिसने आत्माकी साधना की है, जो पूर्ण हो गये हैं, जो मुनि साधना करते रहते हैं, जो आत्माकी साधना करते हैं, शास्त्रमें जो आत्माकी बातें आती हैं, उन सबकी महिमा रखे। वह शुभभाव है। परन्तु ध्येय तो एक आत्म-प्राप्तिका रखना।

मुमुक्षु :- ... उस परिणतिमें निर्विकल्प हो। विकल्प चलते हैं तबतक तो वास्तविक रूपसे तो भिन्न नहीं पड़ सकता।

समाधान :- विकल्प होते हैं तबतक भिन्न नहीं पडता है, परन्तु उस ओर दृष्टि

करे, उसकी प्रतीत करे, उसकी भावना करे और उसके मार्ग पर चलनेका प्रयत्न करे। ऐसा सब पहले करे। वास्तविक रूपसे तो जब निर्विकल्प होता है तब भिन्न पड़ता है। पहले प्रतीतमें भिन्न पड़े, निर्विकल्प स्वानुभूतिमें भिन्न पड़े। परन्तु वास्तविक तो जब सम्यग्दर्शन होता है तब ही भिन्न पड़ता है। परन्तु उसके पहले उसकी भावना करे, प्रयास करे, लगनी लगाये, वह सब कर सकता है। उसके समीप जानेका प्रयत्न करे, उसे पहचाननेका प्रयत्न करे।

मुमुक्षु :- माताजी! जब समझाते हो उस वक्त तो इतना सरल लगता है कि मानो सब समझमें आ गया है, सब ख्याल आता है। जब प्रयोगमें रखनेका पुरुषार्थ करते हैं तब ऐसा लगता है कि दिन बीतते हैं परन्तु कुछ होता नहीं।

समाधान :- स्वयंके पुरुषार्थका कारण है, स्वयंकी मन्दताके कारण आगे नहीं बढ़ सकता है, इसलिये ऐसा लगता है। पुरुषार्थ करे उसे क्षणमें होता है, नहीं करे तो उसे कुछ समय लगता है, परन्तु भावना, जिज्ञासा तो उसे करने जैसा है। उसे उस मार्ग पर चलने जैसा है, उसे छोड़ने जैसा नहीं है। उसमें थकने जैसा नहीं है कि प्राप्त नहीं होता है, इसलिये उसके लिये थकान लगाने जैसा नहीं है। निरंतर करते ही रहना है। लगनी, जिज्ञासा, विचार, वांचन आदि।

स्वभावसे तो भिन्न ही है, परन्तु परिणतिमें उसे प्रगट करना वह अनादिका उसे दुर्लभ हो गया है। क्योंकि अनादिका पूरा प्रवाह उसे बाहरका हो गया है। अंतर दृष्टि करनी, अंतरमें जाना उसे दुर्लभ हो गया है। क्योंकि अनादिका पूरा प्रवाह बाहरका हो गया है। इसलिये बारंबार प्रयास करके स्वयंकी ओर लाये तो होता है। निरंतर करता ही रहे।

मुमुक्षु :- ... छोड़ना नहीं है, वही प्रयास, लगनी करते ही रहना है, अवश्य प्राप्ति होगी।

समाधान :- बहुत बार कहते हैं, मन्दरके द्वार पर टहेल लगाता रहे, मन्दिरके द्वार नहीं खुलते इसलिये छोड़ना नहीं। वहीं (प्रयत्न करता रहे)। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, मैं आत्मा हूँ उसके द्वार पर निरंतर टहेल लगाता रहे। उसे छोड़ना नहीं। उसकी महिमा, उसकी प्रतीत, विचार करके मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसा बारंबार नक्की कर।

मुमुक्षु :- आपकी आज्ञाका पालन हो तो अवश्य प्राप्त होगा।

समाधान :- उसे अंतरसे महिमा हो तो प्राप्त हुए बिना नहीं रहे। सच्ची जिज्ञासा हो उसे प्राप्त हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- गुरुकी आज्ञाभक्ति लेनी पड़े?

समाधान :- उसमें आज्ञा आ जाती है। सच्ची जिज्ञासा हो, उसमें आज्ञा साथमें

आ जाती है।

मुमुक्षु :- सच्ची जिज्ञासा है वही आज्ञाका पालन है।

समाधान :- जिज्ञासा हो उसमें साथमें आज्ञा आ जाती है। जो मार्ग गुरुदेवने बताया है, उस मार्गको अन्दर विचार करके ग्रहण करे, उसमें ही गुरुदेवकी आज्ञा है। अंतरमें ज्ञायकका द्वार छोड़ना नहीं और बाहरसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र जो मिले, उस देव-गुरु-शास्त्रकी, सच्चे देव जिनेन्द्र देव जिन्होंने पूर्ण स्वरूपकी प्राप्ति की, गुरुदेव जो साधन कर रहे हैं और शास्त्रमें जो तत्त्वकी बात आये, बाहरमें उसकी आराधनामें रहे और अन्दरमें ज्ञायककी आराधनामें रहे। गुरुदेवने जो मार्ग बताया है, उस मार्गको तू ग्रहण करता रह, यही उनकी आज्ञा है।

गुरुदेवने कहा, तू इस मार्ग पर जाना। तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय तुझमें है, दूसरेके दूसरेमें है। दोनों तत्त्व अत्यंत भिन्न हैं। तू स्वतंत्र है, तेरे पुरुषार्थसे तू आगे जा सकता है। गुरुदेवने बहुत कहा है। गुरुदेवने जो मार्ग बताया, उस मार्गको स्वयं विचार करके उस मार्ग पर चलना वही उनकी आज्ञा है। जिज्ञासाके साथ वह आज्ञा रही है कि गुरुदेवने क्या मार्ग बताया है, उस मार्गको लक्ष्यमें रखकर स्वयं उस अनुसार आगे बढ़े, उसमें साथमें आज्ञा आ जाती है। देव-गुरु-शास्त्र जो कहते हैं, उसका आशय ग्रहण करके आगे बढ़ना वह आज्ञा है।

... उसमें भवका अभाव नहीं होता है। भवका अभाव तो आत्माकी रुचि करे, आत्माका स्वरूप पहचाने, भिन्न पडे। अनादिसे भिन्न ही है, परन्तु भेदज्ञान करके भिन्नता करे तो मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है, अन्यथा नहीं होता। अंतरकी रुचि लगानी चाहिये। गुरुदेवने तो बहुत स्पष्ट करके समझाया है। पूरा मार्ग स्पष्ट कर दिया है।

इस पंचमकालमें आत्माकी रुचि लगाकर आत्माका स्वरूप पहचाननेकी लगनी, जिज्ञासा लगानी। उसका वांचन, उसके विचार आदि करना चाहिये। संसारका रस कम हो जाये, आत्माकी ओरका रस बढ़ जाये। जबतक नहीं हो तबतक जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र... शास्त्रका चिंतवन करे, गुरु (एवं) देवकी महिमा करे। वह शुभभाव है, परन्तु शुद्धात्मा भिन्न है, उस शुद्धात्माको पहचाननेका अंतरमें प्रयत्न करे। (द्रव्य-गुण-पर्याय) आत्माके क्या है, पुद्गलके क्या है, (उसका) विचार करके पहचाने, उसका स्वरूप पहचाने।

समाधान :- ... यह संसार तो निःसार है। पुण्यके योगसे यह सब मिला है, बाकी अन्दर आत्मामें जो सुख है वह अनुपम है। उसके लिये बारंबार उसका विचार करना, चिंतवन करना, शास्त्र पढ़ने, गुरुदेवके प्रवचन पढ़ना। पढ़नेसे कुछ विचार चलें। लगनी लगानी, विचार करना, बाहरमें जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र, शास्त्रका चिंतवन, देव-गुरुकी महिमा रखनी। वह सब शुभभावमें (जाता है)। बाकी तो संसारके भाव, सब

विकल्प तो संसारकी जाल है। वह सब तो अशुभ विकल्प है। बाकी अन्दर उन सबसे भिन्न शुद्धात्मा है। उसे पहचाने तो भवका अभाव होता है। बाकी शुभभाव जीवने अनेक बार किये, (उससे) पुण्यबन्ध होता है, परन्तु भवका अभाव नहीं होता।

भवका अभाव तो आत्माको पहचाने तो होता है, परन्तु उसे पहचाननेके लिये उसका विचार, वांचन, लगनी लगाये, जिज्ञासा लगाये तो होता है। नहीं होता तबतक करते रहना। उसकी महेनत और बारंबार उसका मंथन करते रहनेसे अन्दर आत्मा प्रगट होता है। आत्मा तो शुद्ध ही है, शक्तिमें जैसे पूर्ण चरपराई भरी है, वैसे आत्मामें सुख और शांति, ज्ञानादि अनन्त गुणसे भरा है, परन्तु उसका उसे अनुभव नहीं है। अनुभव नहीं है तो बारंबार उसका घूटन करता रहे, बारंबार विचार, उसका मंथन आदि करता रहे तो वह प्रगट हुए बिना नहीं रहता। छोटीपीपरकी भाँति। बारंबार करते रहना, जबतक नहीं होता तबतक थकना नहीं, उसका ही विचार, वांचन, लगनी, जिज्ञासा, भावना उसकी ही करनी, थकना नहीं।

द्वार बन्ध हो तो टहेल मारते रहना, परन्तु थकना नहीं, तो भगवानके द्वार खुले, यदि स्वयंकी भावना हो तो। वैसे चैतन्य आत्मा भी भगवान है। बारंबार उसके विचार, वांचन सब करता रहे। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे बारंबार उसका मंथन, टहले मारते रहना। थकना नहीं। तो प्रगट होता है। बारंबार, जबतक नहीं होता तबतक, चाहे जितने समय तक करते रहना पड़े तो करते रहना। (गुरुदेव) बारंबार दृष्टान्त देते थे, छोटीपीपरको घिसनेसे पूर्ण चरपराई प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ... तबसे मेरे पिताजीके साथ मैं जाता था।

समाधान :- बहुत सुना है, सभीको शांति रखनी। विचारोंको बदल कर शांति रखनी। आत्माका ही करने जैसा है। गुरुदेवने बहुत कहा है। यह शरीर कहाँ आत्माका है, रोग भी आत्मामें नहीं है, वेदना आत्मामें नहीं है, उससे भिन्न आत्मा है। उसे, आत्मा मैं जाननेवाला हूँ, ये रोग होते हैं वह मेरेमें नहीं है। लेकिन उसे शरीर पर राग है इसलिये उसमें एकत्वबुद्धिसे जुड़ जाता है, परन्तु अन्दर शांति रखनी कि मैं तो जाननेवाला हूँ। ऐसा बारंबार विचार करना। उससे भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे कि मैं तो भिन्न हूँ। सदा ही भिन्न हूँ। बाहरके जो उदय आये वह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं उससे भिन्न हूँ। उसमें शांति रखनी।

गुरुदेवने कहे हुए तत्त्वका विचार करना, आत्माका स्वरूप विचारना, देव-गुरु-शास्त्रको हृदयमें रखकर मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विचार करना। मैं ज्ञायक आत्मा हूँ, यह रोग भिन्न है, मैं भिन्न हूँ। आकूलता अन्दर हो तो मैं तो आत्मा हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। शांति रखनी। बारंबार उसे याद करना-ज्ञायक आत्माको। शरीरमें रोग तो आता रहता

है, रोग शरीरमें आता है, आत्मामें नहीं आता।

(शांति) रखे कि मैं तो जाननेवाला हूँ, यह रोग मेरेमें नहीं है। ऐसे भिन्न जाने तो होता है। ये सब मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो भिन्न हूँ। सब उदय आते हैं, मैं तो भिन्न हूँ। गुरुदेवने कहा है, गुरुदेवके वाक्योंको याद करना। मैं भिन्न आत्मा हूँ। रोग तो शरीरमें आता है। सनतकुमार चक्रवर्ती थे, उन्हें भी रोग हुआ तो मुनि हो गये। अन्दर आत्मामें लीन रहते थे। रोग आये तो उसमें शांति रखनी। देवोंने कहा, मैं रोग मिटा दूँ। रोग क्या मिटाना? मेरा जो उदय है, उस उदयको कौन बदल सकता है? उन्हे स्वयंको लब्धि थी। थूक लगाये तो रोग मिट जाये। नहीं, जो रोग आया उस रोगको.... कर्म खिर जाते हैं। उतनी अन्दर शांति रखते थे। वे तो सम्यग्दृष्टि मुनि थे और आत्मामें छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते थे। रोग तो कहीं भी आता है, किसीको भी आता है। उदय तो उदयका काम करता है, परन्तु अन्दरसे मैं स्वयं ज्ञायक जाननेवाला भिन्न हूँ। शांति रखे।

... घरमें बैठकर जो हो सके वह करना। घरमें बैठकर भी हो सकता है। बाहर जानेका प्रसंग, सत्संगकी इच्छा हो, सब सुननेकी इच्छा हो, परन्तु वह नहीं बन पाये तो घरमें बैठकर भी हो सकता है। अच्छे विचार करना, वांचन करना, जो हो सके वह करना। घरमें बैठकर भी भाव अच्छे रख सकते हैं। सत्संगकी इच्छा हो, परंतु शरीर काम नहीं करे तो क्या हो सकता है? घरमें बैठकर हो सकता है।

मुमुक्षु :- खास लाभ लेने आये, लेकिन एक महिनेसे बिस्तर पर ही हूँ।

समाधान :- ... देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें आनेकी इच्छा हो, लेकिन नहीं हो तो क्या हो सकता है? अन्दर आत्मामें अच्छे विचार करना। शांति रखनी। उलझन हो जाय तो बारंबार शांति रखनी, बारंबार विचार बदलना, बारंबार विचार बदलना। उलझन हो तो भी विचार बदल देना।

समाधान :- .. जितना करे उतना कम है। गृहस्थोंको शुभभाव तो आता है। शुभभाव आये बिना नहीं रहता। शुद्धात्माके ध्येयपूर्वक, जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रकी महिमा, भक्ति सब गृहस्थोंको आता है। पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं, श्रावक बड़े उत्सव आदि करते हैं। गृहस्थाश्रममें उसे शुभभाव होते हैं।

... तीर्थंकरका द्रव्य-गुरुदेव यहाँ पधारे। पंचमकालमें यहाँ पधारे, महाभाग्यकी बात है। गुरुदेव यहाँ कैसे? महाभाग्यकी बात है। गुरुदेव पधारे, सबको उपदेश मिला, उनकी वाणी कोई अलग थी, कोई अतिशयता युक्त, सबको जागृत करे ऐसी वाणी थी। अनन्त कालमें ऐसा योग मिलना महामुश्किल है।

मुमुक्षु :- उनकी भेंट ही कहाँ-से हो?

समाधान :- कहाँ-से हो? तीर्थंकर भगवान मिले कहाँ? उनकी अपूर्व वाणीने सबको जागृत किया। उसमें इस पंचमकालमें..

मुमुक्षु :- प्रत्यक्ष हमको सुनने मिला।

उत्तर :- प्रत्यक्ष। उन्होंने सच्चा मार्ग बताया। सब कहाँ अंधकारमें पड़े थे, उन्होंने मार्ग बताया।

... जिन प्रतिमा जिन सारखी, कहते हैं। जिनेन्द्रकी प्रतिमा स्थापे। बनारसीदास कहते हैं। 'अल्प भव स्थिति जाकी, सो ही जिनप्रतिमा, परमाणे जिन सारखी।' जिसकी अल्प भवस्थिति है, वह भावकी बात है। ऐसा भाव आये। जो भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचानता है, स्वयंको पहचानता है वह भगवानको पहचानता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचानता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- .. उपादान तैयार हो उसे भवका अभाव हुए बिना नहीं रहता। ... उसे भगवानकी वाणी या गुरुकी वाणी मिलती है। भले स्वयं स्वतंत्र करता है, ऐसा निमित्त-उपादानका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। ऐसा निमित्त, यहाँ उपादान तैयार होता है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०१५

समाधान :- ... मैं चैतन्य हूँ, बाहरमें इष्ट-अनिष्ट कुछ भी नहीं है, ऐसी प्रतीति दृढ़ (हो गयी है)। ज्ञायकको ग्रहण किया, ज्ञायककी परिणति प्रगट हो गई। प्रतीतमेंसे छूट गया है, भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। अस्थिरतामें अल्प विभाव है, लेकिन वह बाह्य वस्तु इष्ट है और बाह्य वस्तु अनिष्ट है, ऐसा उसे नहीं है। अन्दर विभाव परिणति स्वयंकी है, पुरुषार्थकी मन्दतासे होती है। उसमें जो होता है, विभाव होता है उस विभावकी परिणतिके कारण, मन्दताके कारण रुकता हूँ। बाकी बाहरमें उसे इष्ट-अनिष्टपना उसे है ही नहीं। चतुर्थ गुणस्थानमें।

मुमुक्षु :- श्रद्धा अपेक्षासे निकल गया।

समाधान :- हाँ, श्रद्धा अपेक्षासे निकल गया है। अस्थिरतामें है।

मुमुक्षु :- बाह्य दृष्टिसे देखें तो बहुत ही संयोग दिखाई देते हैं।

समाधान :- दिखाई देते हैं, परन्तु उसे प्रतीतमें नहीं है, अंतरसे छूट गया है। एकत्वबुद्धि नहीं है, तन्मयता नहीं है। मैं ज्ञायक हूँ, मुझे कोई कुछ नहीं कर सकता। बाह्य वस्तु या अन्य कुछ मेरा बिगाड़ता नहीं और कोई सुधारता नहीं। मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे राग-द्वेषसे उसमें जुड़ना होता है, वह मेरी स्वयंकी भूलके कारण मैं रखड़ा और मेरे ही कारण, पुरुषार्थकी मन्दतासे इसमें जुड़ता हूँ। बाकी मेरा इष्ट-अनिष्ट कोई नहीं है। मैं स्वयं ही इष्ट हूँ। मेरे चैतन्यमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। मेरा कोई बिगाड़-सुधार नहीं कर सकता। मैं स्वयं ज्ञायक स्वतःसिद्ध अनादिअनन्त हूँ, उसमें किसीका प्रवेश नहीं है। व्यवहारमें अस्थिरताके कारण वैसा दिखाई देता है। कोई भाषा बोले तो अंतरमें उसे एकत्वबुद्धिकी परिणति या श्रद्धाकी परिणति नहीं है, अल्प अस्थिरता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- स्वयं अपनी परिणतिको समझे। उसके परिचय वाले हो वह पकड़ सकते हैं। जिसकी वैसी देखनेकी दृष्टि हो, किसीका अंतरंग देख सके ऐसी जिसकी दृष्टि हो वह देख सकता है। सच्चा आत्मार्थी, कोई मुमुक्षु हो तो वह देख सकता है। उसके परिचित। वैसी देखनेकी जिसकी शक्ति हो, वह देख सकता है। बाकी उसके

कार्य परसे दिखे। अंतर अभिप्रायमें परिणति एकत्वबुद्धि नहीं है, अंतर गहराईमें नहीं है। उसका आत्मा ऊर्ध्व ही रहता है, उसमें एकत्व होता ही नहीं। बाह्य सब संयोग पुण्य-पापके उदय अनुसार होते हैं। किसीके करनेसे कुछ नहीं होता।

मुमुक्षु :- मिथ्यादृष्टि छोड़ दे तब सम्यग्दर्शन होता है।

समाधान :- वह बात सत्य है। मिथ्यात्व जाये तो सम्यग्दर्शन होता है। अन्दर पुरुषार्थ करे तो सम्यग्दर्शन (होता है)। उसकी दृष्टि मिथ्यात्व है इसलिये उसे ऐसा लगता है किसीने मेरा बिगाड़ा, किसने सुधारा। कोई बिगाड़ता है, ऐसी दृष्टि मिथ्यादृष्टिकी होती है। सम्यग्दृष्टिको ऐसी दृष्टि नहीं है।

मुमुक्षु :- एकदम मन्द कषाय हो, उसमें कैसे भेद करना?

समाधान :- मन्द कषाय हो तो भी विकल्प है। विकल्पकी एकत्वबुद्धि (है)। मन्द कषाय हो तो भी एकत्वबुद्धि (है)। आत्माका अस्तित्व ग्रहण नहीं हुआ है, उसका ज्ञायक प्रगट नहीं हुआ है। जिसे स्वानुभूति होती है उसकी दशा तो अलग ही होती है। स्वानुभूतिके कालमें उसकी दशा आनन्दमय, अन्दर चैतन्यमय, चैतन्य चैतन्यमयरूप परिणमित हो गया, उसकी दशा अलग ही होती है। और मन्द कषाय वालेकी दशा और स्वानुभूतिकी दशा वालेके बीच प्रकाश एवं अन्धकार जितना अंतर है। भले मन्द कषाय हो तो भी।

वर्तमान भेदज्ञानकी धारा और एकत्वबुद्धि एवं मन्द कषाय हो तो भी भेदज्ञानकी धारा अलगी ही होती है। और यह मन्द कषाय हो तो उसे एकत्वबुद्धि है। उसने ज्ञायकका अस्तित्व (ग्रहण नहीं किया है)। उसे अन्दरसे जो ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण होकर अन्दरसे जो शांति आनी चाहिये वह नहीं आयी। उसकी दशा अलग होती है।

मुमुक्षु :- जिसको कभी अनुभव नहीं हुआ हो और प्रथम बार अनुभव होता है, उस वक्त वह मन्द कषायको भिन्न कर सकता है?

समाधान :- कर सकता है, कर सकता है। सच्चा आत्मार्थी हो, जिसे आत्माको ग्रहण करना है वह पकड़ सकता है। जो नहीं पकड़े उसकी दृष्टि बराबर नहीं है। पकड़े नहीं और जूठमें कल्पना कर ले, जूठमें-मन्द कषायमें संतुष्ट हो जाये, जिसे अंतरसे लगी है, उसे मन्द कषायमें संतुष्टता होती ही नहीं। अंतरमेंसे उसे शांति नहीं आये, अन्दरसे भिन्नता भासित नहीं हो, आकूलता टूटी नहीं, अंतरमेंसे आकूलता टूटी नहीं, शांति आयी नहीं, इसलिये यदि उसमें मान ले तो उसकी यथार्थ जिज्ञासा भी नहीं है। उसमें मान ले तो।

जिसे सच्ची जिज्ञासा हो वह कहीं भी भूलता नहीं और अटकता नहीं। उसे वैसे (परिणाममें) संतुष्टता ही नहीं होती। मुझे अभी तक कुछ हुआ ही नहीं है, ऐसा उसे

लगे, मन्द कषाय हो तो भी। मुझे अन्दरसे कोई अलग दशा भासित होनी चाहिये वह भासी ही नहीं। इसप्रकार भिन्न दशा नहीं हो, वह अन्दर संतुष्ट नहीं होता। संतोष हो जाये तो उसने थोड़ेमें मान लिया, इसलिये उसके पुरुषार्थकी मर्यादा आ गयी। सच्चा आत्मार्थी हो तो उसे पुरुषार्थकी मर्यादा आये ही नहीं। उसे ऐसा लगता है, अभी अन्दर करना बाकी है, अंतरसे जो शांति और बदलाव आना चाहिये, वह नहीं आया है। भले मन्द कषाय हो, परन्तु कुछ भासता नहीं। शांति लगती है लेकिन आत्माका कोई भिन्न स्वरूप हाथ नहीं आया है। जो सच्चा आत्मार्थी है, वह कभी संतुष्ट होता ही नहीं।

मुमुक्षु :- मानना नहीं हो, परन्तु माताजी! जो धोखा खा जाये तो उसका क्या? जिसे अनुभव हुआ है वह तो भेद कर सकता है कि यह मन्दसे मन्दतर कषाय है, परंतु जिसे वैसा अनुभव नहीं हुआ है, वह तो उसमें धोखा खाता है। उसे ऐसा लगता है कि मुझे तो साक्षात् अनुभव हो गया है।

समाधान :- उसे संतोष नहीं आता। सच्चा जिज्ञासु हो उसे संतोष नहीं होता। अन्दर शान्ति लगे तो भी अन्दर संतोष नहीं होता। अन्दरसे जो मुझे आकूलता छूटनी चाहिये, वह अभी छूटी नहीं है। अन्दरसे कुछ भासित नहीं हो रहा है। वह धोखा नहीं खाता। जो सच्चा आत्मार्थी है वह धोखा नहीं खाता। मेरी अभी भी कहीं भूल होती है। ऐसा उसे लगता है।

जो महापुरुष ज्ञानी और गुरुदेव एवं आचार्योंके शास्त्रमें आता है, वह जो मुक्तिके मार्गकी बात करते हैं, वैसा मुझे अन्दर नहीं लगता है। उसे वैसा संतोष नहीं होता। स्वयंने देखा नहीं है, परन्तु गुरुके पास सुना हो, शास्त्रमें स्वानुभूतिकी, भेदज्ञानकी बातें पढी हो, वह सब बातें आती है, ऐसा मुझे अंतरमेंसे उस जातिका उल्लास या वैसी शान्ति (नहीं लगती)। मुझे ऐसा लगे कि, यही मार्ग है, वैसा अन्दरसे जो निर्णय आना चाहिये ऐसा जोरदार नहीं आता। इसलिये इसमें कुछ भूल है।

सच्चा जिज्ञासु हो वह थोड़े पुरुषार्थमें अटक नहीं जाता। उसे ऐसा लगता है कि ऐसे अटक जानेसे मेरी भूल होती है, ऐसी खटक उसे निरंतर रहती है। मेरी कहीं न कहीं भूल होती होगी, इसलिये वह अन्दर अटकता नहीं। जिसे थोड़ेमें मान लेना हो कि मुझे जल्दी करना है, मुझे कुछ करना है, अब मुझे हो गया, अब मुझे हो गया, ऐसा संक्षेपमें जिसे मान लेना हो, ऐसी कल्पना करनी हो वही उसमें संतुष्ट हो जाता है।

जो सच्चा खोज करनेवाला है, मुझे आात्माका ही करना है, आत्माका ही प्रयोजन है, वह किसीको दिखानेके लिये या मुझे गलत तरीकेसे मनानेके लिये नहीं करना है,

यह तो मुझे मेरे आत्माके लिये करना है। ये अनन्त कालका परिभ्रमण कैसे मिटे और अन्दरसे मेरा सुख प्रगट हो और यह दुःख कैसे टले, ऐसा अनुपम आत्मा मुझे कैसे प्राप्त हो, यह मुझे मेरे खातिर करना है। यदि मैं संतुष्ट हो जाऊँ, मुझे कुछ लगता नहीं है, तो आगे नहीं बढ़ (पाऊँगा)। सच्ची खटक लगी हो, वह संतुष्ट नहीं होता। मात्र मुझे कर लेना है और मुझे कुछ करना है, ऐसा हेतु अन्दर हो तो संतुष्ट हो जाता है। आकूलता और अधैर्यसे पुरुषार्थ कर लूँ, ऐसी अधीरता जिसे होती है वह संतुष्ट हो जाता है।

अन्दर धोखा खानेके तो अनेक रास्ते होते हैं। जिज्ञासा हो, फिर होता ही नहीं हो तो थोड़ा पुरुषार्थ करके (मान लेता है कि), अब मुझे हो गया, अब मुझे हो गया। ऐसी कल्पना करता हो उससे (कोई कार्य हो नहीं जाता)। सच्चा आत्मार्थी हो वह अन्दर संतुष्ट नहीं होता। अन्दर उसे आत्मा यथार्थरूपसे भास्यमान होकर जो अन्दरसे यह आत्मा और यही स्वरूप, ऐसा जो अंतरसे आना चाहिये वह नहीं आता है, वह अन्दर संतुष्ट होता ही नहीं।

भले ही उसे ऐसी शांति, शांति लगे, परन्तु अन्दर एकत्वबुद्धि टूटी नहीं है और अंतरमेंसे जो भिन्न भास्यमान होना चाहिये वह होता नहीं। उसे कोई मार्ग हाथ नहीं लगा है, कोई ज्ञायक (प्राप्त) नहीं हुआ है, उस ओर जानेका अन्दर यथार्थ मार्ग नहीं मिला है। मात्र शांति-शांति लगे, उसमें अटक जाये, जो सच्चा आत्मार्थी होता है वह अटकता नहीं। बहुत लोग ध्यान करते हैं उसमें उसे ऐसी शांति लगे, विकल्प मन्द हो जाये और मानो विकल्प छूट गये, ऐसा उसे लगता है। अन्दर सूक्ष्मतासे देखे तो अन्दर मन्द विकल्प होते ही हैं। उससे भिन्न नहीं हुआ है। आत्माके अस्तित्वपूर्वक, ज्ञायकका अस्तित्व कुछ प्रगट हो उसके साथ छूटना चाहिये। वह तो छूटा नहीं। सच्चा आत्मार्थी अटकता नहीं।

समाधान :- .. यह किसीको दिखानेका मार्ग या स्वयं गलत तरीकेसे संतुष्ट हो जाना, वह मार्ग नहीं है। अंतरसे आना चाहिये। सच्चे आत्मार्थीकी दृष्टि अन्दर घुमती रहती है कि अभी कुछ नहीं लगता है। सच्चा आत्मार्थी अटकता नहीं। मेरे लिये है, अन्य किसीके लिये है क्या? अटक जाऊँ, रुक जाऊँ तो वही जन्म-मरण इत्यादि सब खड़ा ही है। मेरे लिये है या कोई और के लिये है?

मुमुक्षु :- पूर्ण सिद्धि तो द्रव्यदृष्टिसे होगी।

समाधान :- द्रव्यदृष्टि किसे कहते हैं? द्रव्यदृष्टिके साथ, द्रव्य पर दृष्टि करे उसके साथ ज्ञान सम्यक् होता है। और वह ज्ञान दोनोंको जानता है। द्रव्यको जाने और पर्यायको जाने। ज्ञान दोनोंका स्वीकार करता है। द्रव्यदृष्टिका ज़ोर रहता है, परन्तु उसके

साथ ज्ञान भी काम करता है। वह ज्ञान जानता है कि पर्यायमें मेरा अधूरापन है, पर्यायमें अभी विभाव है, द्रव्यमें शुद्धता है और वह शुद्धता-साधना करनी बाकी है। ज्ञान सब जानता है। इसलिये वह साधना करनी बाकी रहती है।

सम्यग्दृष्टि और ज्ञान, दोनों साथमें रहते हैं। द्रव्यदृष्टि, सम्यक् द्रव्यदृष्टि हो उसके साथ ज्ञान भी, द्रव्य और पर्यायका ज्ञान भी होता है। अकेली द्रव्यदृष्टि हो और ज्ञान कोई काम नहीं करे तो वह दृष्टि सम्यक् नहीं हो सकती। सम्यक् द्रव्यदृष्टि हो, भले मुख्यरूपसे हो तो भी ज्ञान उसके साथ काम करता है। उसमें पर्याय है ही नहीं और पर्यायकी अशुद्धता नहीं है, पर्यायदृष्टि यानी पर्याय नहीं है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसकी अपेक्षा अलग है। अपेक्षा यानी वस्तुमें पर्याय ही नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। पर्याय है, परन्तु उसकी अपेक्षा अलग है।

समयसारमें आता है कि भूतार्थ दृष्टिसे देखें तो कमलिनीका पत्र जो है, वह कमल निर्लेप है। अभूतार्थ दृष्टिसे देखें तो वह पानीमें है और लिप्त है। भूतार्थ दृष्टिके समीप जाकर देखें तो वह शुद्ध है। अभूतार्थ दृष्टिसे देखो तो वह कमलमें पानीमें है। जैसे वह कीचड़में रहा है, फिर भी निर्लेप है। लेकिन वह कीचड़में है ही नहीं, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

(पानी स्वभावसे) निर्मल है, शीतल है। लेकिन पानीमें किसी भी अपेक्षासे मलिनता हुई ही नहीं है, ऐसा नहीं है। मलिनता है परन्तु निर्मली औषधि डालनेसे वह निर्मलता प्रगट होती है। मूलमें स्वभाव शीतल है। स्वभावका नाश नहीं हुआ है। परन्तु वह पुरुषार्थ करनेसे प्रगट होता है। शीतलताका लक्ष्य रखकर यानी द्रव्य पर दृष्टि करके, उसे निर्मलता प्रगट करनी बाकी है। अकेली द्रव्यदृष्टि हुई, एक ही है और उसमें और कुछ है ही नहीं, तो साधना (किसकी)? तो शुद्धताका अनुभव होना चाहिये। तो जीवको अभी सिद्धदशाका अनुभव होना चाहिये। सिद्धदशाका अनुभव तो है नहीं। यदि अशुद्धता हो ही नहीं तो सिद्धदशाका अनुभव होना चाहिये। पर्याय यानी किसी भी अपेक्षासे अशुद्धता हो ही नहीं तो शुद्धताका अनुभव होना चाहिये। जीवको शुद्धताका अनुभव तो है नहीं। वस्तुस्थिति, स्वभाव उसका नाश नहीं होता।

स्वभाव पर दृष्टि करनेसे साधना तैयार होती है। परन्तु उसके साथ यदि पर्यायका ध्यान नहीं रखे तो-तो साधना हो ही नहीं सकती। यथार्थ द्रव्यदृष्टि उसे प्रगट होती है कि जिसके साथ साधना हो, जिसके साथ पर्यायमें अशुद्धता है उसका उसे ध्यान होता है कि पर्यायमें अशुद्धता है, अभी शुद्धता प्रगट करनी बाकी है। द्रव्यदृष्टिसे मैं परिपूर्ण शुद्ध हूँ, परन्तु पर्यायमें अशुद्धता है। दोनोंका उसे ध्यान रखना है। दोनों वस्तुको बराबर यथार्थ समझे तो मुक्तिका मार्ग प्रारंभ होता है।

मुमुक्षु :- सम्यक् एकान्तपूर्वक अनेकान्त..

समाधान :- हाँ, सम्यक् एकान्त। सम्यक् अेकान्तके साथ अनेकान्त होना चाहिये। सम्यक् एकान्त किसे कहते हैं? कि, जिसके साथ अनेकान्त हो तो ही उसे सम्यक् एकान्त कह सकते हैं। यह शरीर आत्माका स्वरूप नहीं है। जो कुछ रोग आता है वह शरीरमें आता है, आत्मा तो भिन्न है। आत्मा ज्ञायक जानने वाला है। उसका भेदज्ञान करे कि शरीर भिन्न है और मैं भिन्न हूँ। अन्दर जो विकल्प आते हैं, वह स्वयंका स्वभाव नहीं है। उससे आत्मा भिन्न है। उस पर दृष्टि करके, उसका भेदज्ञान करके और उसकी भावना प्रगट करनी, वही करना है। और जबतक वह नहीं होता, तबतक उसकी भावना करनी। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और अन्दर शुद्धात्माकी पहचान कैसे हो, ऐसी भावना, वही जीवनमें करने जैसा है।

समाधान :- ... अर्थात् स्वयं विभावसे भिन्न होता हुआ, ज्ञायक ज्ञायकरूपसे परिणमित होता हुआ, विभावसे भिन्न हुआ वह कर्मसे भिन्न होता है। अन्दर स्वयंकी जो विभाव परिणति है, वह विभाव परिणति स्वयंका स्वभाव नहीं है। स्वयं मन्दतासे जुड़ता है। उसे एकत्वबुद्धिमेंसे तोड़ दे। उससे भिन्न हुआ वह सबसे भिन्न होता है। उसे कर्मकी निर्जरा ही होती है। उसे उसप्रकारसे एकत्वरूप कर्म बन्ध होता ही नहीं। शरीरसे भेदज्ञान हुआ, विभावसे भेदज्ञान (हुआ), सबसे ज्ञायक भिन्न हुआ, सबसे भिन्न ही भिन्न, ज्ञायक तैरता ही रहता है। इसलिये जो कर्म आते हैं, मात्र आकर चले जाते हैं। ऐसे अल्प बंधते हैं। थोड़े रसपूर्वक बँधते हैं, तीव्र रससे उसे नहीं बँधते। ऐसी ज्ञायककी धारा उसे वर्तती ही रहती है।

निर्जरा अधिकारमें सब ज्ञायककी अपेक्षासे लिया है। ज्ञानीको अन्नका परिग्रह नहीं है, पानीका परिग्रह नहीं है, सबकुछ होनेके बावजूद, नहीं है, नहीं है ऐसा कहा है। ज्ञायक उससे भिन्न पड़ गया है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०१६

समाधान :- ... इतने साल बीत गये, उसमें कितने प्रसंग बने, वह बात याद करें तो पूरी नहीं हो सकती। कितने ही प्रसंग बने। बादमें तो एकदम तेज़ीसे गुरुदेवका प्रभावनाका योग था। यात्रा, प्रतिष्ठा आदि एकदम (होने लगे)। पहले शुरूआतमें सब शास्त्रके प्रसंग बन गये। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय आदि प्रकाशित हुए। शुरूआतमें सब शास्त्रसे ही (प्रभावना योग) शुरू हो गया। (संवत) १९९७की सालमें भगवान पधारे। सब प्रसंगकी एक-एक बात करें तो पूरी ही नहीं हो सकती।

... वह सब गुरुदेवके नामसे कहा, गुरुदेव ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते थे। कितनी बार कहते हैं। कोई अर्थ पूछे तो...

... चाहे जैसी तबियत हो, स्वाध्याय भवनमें स्वयं अकेली ही बैठती हूँ। मुझे ऐसा कुछ नहीं होता।

गुजराती समयसार प्रकाशित हुआ तब इतना सुन्दर उत्सव हुआ था कि गुरुदेव घरपर पधारे थे। सर्व प्रथम गुजराती हिंमतभाईने किया, गुरुदेवने बहुत प्रमोद (था), शास्त्रका बहुत प्रमोद था। गुरुदेवने हिंमतभाईको कहा, हिंमतभाई निकट मोक्षगामी है, ऐसा कहा। वह प्रसंग तो अलग ही है। गुरुदेवके प्रतापसे बहुत प्रसंग बने हैं, इतने वर्षोंमें।

हिंमतभाईकी आत्मार्थी तो सच्ची आत्मार्थीता है। दोपहरको बात चली थी। इसलिये वह आ गया। ... आत्मार्थीता वह है, हिंमतभाईकी तो आदर्श आत्मार्थीता है। बचपनसे सत्य शोधक, वैरागी आदि बहुत था। (अधिक) क्या कहना? उनकी आदर्शता, आदर्श आत्मार्थीता है। गुरुदेवकी बहुत कृपा, हिंमतभाई गुरुदेवके कृपापात्र हैं। दोपहरको (वह बात हुई थी), इसलिये वह आ गया।

आत्मार्थीता वह है, हिंमतभाईकी तो आदर्श आत्मार्थीता है। बचपनसे सत्य शोधक, वैरागी आदि बहुत था। (अधिक) क्या कहना? उनकी आदर्शता, आदर्श आत्मार्थीता है। गुरुदेवकी बहुत कृपा, हिंमतभाई गुरुदेवके कृपापात्र हैं।

..जिनेन्द्र देव सर्वोत्कृष्ट पूजनयी हैं, परन्तु यह जिन प्रतिमा भी सर्वोत्कृष्ट (पूजनीय हैं)। उसकी भी महिमा उतनी ही है। जिन प्रतिमा जिन सारखी। उसकी महिमा भी

उतनी ही है।

सूर्यकीर्ति भगवानकी.. उसकी बातका मेल था। लोग पूछते थे इसलिये...

वाजिंत्र बजते हैं। उसमें भगवानकी वाणीका कैसा लगता है? मैंने कहा, भगवान भिन्न। देव, देवियाँ, सभा, मुनि आदि सब होते हैं। श्रावक, श्राविका, राजा-रानीके बीचमें नीकली। वहाँ उत्सव हुआ था। समवसरणमें आनन्द छा गया।

.. आया कि यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होने वाले हैं। एक-दो बार शुरूआतमें बोली, फिर बादमें मेरे पास बुलाने लगे तो फिर मैं...

गुरुदेव बादमें तो बहुत बोलते थे, 'घट-घट अंतर जिन वसे, घट-घट अंतर जैन'। उन्हें जिनका हृदयमें (बहुत था)। 'घट-घट अंतर जिन वसे,' ऐसे ही बोलते थे। उनका अंतरंग सहज कहता था।

... गुरुदेव बोलते थे, त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, और क्या चाहिये? ऐसा बोलते थे। उनके भाव परसे जिसे मालूम हो उसे पकड़में आये, दूसरेको पकड़में नहीं आये। लेकिन उन दिनोंमें शुरूआतमें बोलते नहीं थे। कहते नहीं थे कि मुझे ऐसा होता है। मालूम नहीं था। ... उसे कहा होगा, परन्तु बाहर नहीं बोले थे। बाहरमें नहीं बोलते थे। मेरे मनमें भी ऐसा नहीं था, परन्तु मुझे एकदम आया है, ऐसा मैंने कहा। मैंने ऐसा विचार किया हो कि गुरुदेव महापुरुष तीर्थंकर जैसे लगते हैं। ऐसी कल्पना मेरे हृदयमें भी नहीं आयी थी। ये तो महापुरुष है, इतना आया था। बाकी कुछ नहीं आया था। गुरुदेवने कहा भी नहीं था, मुझे मालूम भी नहीं था।

.. गुरुदेवको कहनेसे क्या? फिर हिंमत करके कहती थी। राजकुमारकी महिमा होती थी। राजकुमार.. राजकुमार..। भरत चक्रवर्तीने ऋषभदेव भगवानको ऐसा पूछा है। भरत चक्रवर्ती थे न। चक्र (था)। भगवान! आप अभी तीर्थंकर हो, वैसे इस समवसरणमें दूसरा कोई तीर्थंकर है? कोई तीर्थंकरका जीव है? ऐसा भरत चक्रवर्तीने पूछा है। तो भगवानने कहा, तेरा पुत्र मरिचीकुमार है वह तीर्थंकर होने वाला है। इसलिये भरत चक्रवर्तीको स्वयंको उत्साह आया होगा कि मेरे पिता तीर्थंकर और मेरा पुत्र तीर्थंकर। वह चौबीसवें तीर्थंकर होंगे, ऐसा भगवानने कहा। तेरा पुत्र मरिची चौबीसवें तीर्थंकर होगा। उन्हें उत्साह आया या कुछ भी हुआ, उन्होंने तीन चौबीसीके रतन्मय बिंब बनाये। उसप्रकारका आनन्द आता है।

देवलोकका सागरोपमका काल कहलाता है, परन्तु देवोंको वह सागरोपमका काल कुछ नहीं लगता। उसका जीवन ही (वैसा होता है)। सागरोपम यानी देवोंको कुछ नहीं लगता। उनका काल एकदम व्यतीत हो जाता है। यहाँ थोड़ा समय जाये तो कितना काल चला जाता है। सागरोपमका काल (वैसे चला जाता है)। उन लोगोंको ऐसा

लगता है, कितना काल! उस प्रकारका जीवन (होता है)। जैसे अभी इस पंचमकालमें इतने आयुष्य है, परन्तु चतुर्थ कालमें बहुत होता है, क्रोड़ पूर्वका आयुष्य (हो) तो उसे ऐसा ही लगता है कि इसप्रकारका आयुष्य है। उसके शरीरका बंधारण आदि सब वैसा ही होता है।

.. क्रोड़ सागरोपमके यह छह काल है। क्रोडा-क्रोड चार क्रोड़ ऐसा कुछ आता है, दस क्रोड़ा-क्रोड़ ऐसा कुछ आता है। इस उत्सर्पिणीका गुरुदेवका आये। क्योंकि क्रोड़ा-क्रोड़ सागरोपम है न, इसलिये। देवोंका आयुष्य सागरोपमका होता है, क्रोड़ा-क्रोड़ नहीं होता। इसलिये उत्सर्पिणी-ऊँचा काल आये उसमें १७० भगवान होते हैं। उस कालमें आये, ऐसा उसका अर्थ निकलता है। १७० तीर्थंकर होते हैं, वे सब बढ़िया काल होता है उसमें होते हैं। सब जगह भगवान होते हैं। उत्सर्पिणी काल।

विदेहक्षेत्रके जितने खण्ड है, ३२ खण्ड, उन ३२ खण्डमें भगवान (होते हैं)। भरत क्षेत्रमें, ऐरावत क्षेत्रमें, पाँच भरत, पाँच ऐरावत सब जगह भगवान होते हैं। ऐसा काल आये तब सब जगह भगवान होते हैं। यहाँ पंचमकाल है इसलिये ऐसा सब हो गया है। विदेहक्षेत्रमें तो अभी बीस भगवान विचरते हैं। उसके सिवा दूसरे क्षेत्रमें केवलज्ञानी विचरते हैं। वहाँ तो अभी केवलज्ञान है, इसलिये केवलज्ञानी दूसरे क्षेत्रमें विचरते हैं। यहाँ तो केवलज्ञानी या कुछ नहीं है। मुनि भी नहीं दिखाई देते।

मैंने कोई शास्त्र नहीं पढे थे या पुराण नहीं पढे थे। उसके पहले मुझे यह सब आया है। समवसरणकी कैसी रचना पुराणोंमें आती है! मैंने कोई पुराण नहीं पढे थे। उस वक्त तो मूल शास्त्र हाथमें आये थे न। मोक्षमार्ग प्रकाशक, समयसार, प्रवचनसार आदि। ये सब पुराण उस वक्त हाथमें नहीं लिये थे। समवसरणका वर्णन नहीं पढा था।

कुन्दकुन्दचार्य, सीमंधर भगवान तीर्थंकर भगवान, तीर्थंकर होनेवाले हैं, यह सब शुरूआतसे (आता था)। वहाँ थी न इसलिये। समवसरणमें तीर्थंकरका जीव कभीकभार होता है। महावीर भगवान थे तो उनके समवसरणमें श्रेणिक राजाका जीव था। ऋषभदेव भगवानके समयमें उनकी सभामें मरिचीका जीव था। बहुभाग कहीं-कहीं आता है।

जिनेन्द्र प्रतिमा जिन सारखी है। भगवान जब होंगे तब वन्दन करेंगे, वह योग्य है। पूजा-भक्ति करनी वह बराबर है, अभी नहीं, उसका क्या मतलब है? ऐसे वादे करनेका कोई अर्थ है? भगवान सामने पधारते हैं, प्रतिमाके रूपमें। महाभाग्यकी बात कि जिनप्रतिमाके रूपमें गुरुदेवका भाविका रूप देखने मिलता है, महाभाग्यकी बात है। भावि तीर्थंकर होनेवाले हैं। वह अभी वर्तमान प्रतिष्ठित भगवान हमारे सन्मुख आये। ऐसा कुदरतका योग बना। भले विरूद्धता हुयी, परन्तु कुदरतके योगमें तो यह सब बननेवाला

ही था।

.. मैंने कहा, घातकीखण्ड द्विपमें भगवान हुए हैं और फिर यहाँ जन्म लिया है। भगवानका पूर्व भव वहाँ था। ऐसे घातकीखण्ड द्विपमें पूर्व भवमें बहुत भगवान थे और यहाँ आये हैं। यहाँ तो चार भगवानका चित्र किया है, बाकी वैसे तो बहुत भगवान घातकीखण्डमें हुए हैं। सबको ऐसा लगता है कि घातकिखण्ड द्विप क्या है? घातकिखण्ड द्विपमेंसे बहुत भगवान आये हैं, पूर्व भवमें वहाँ थे।

... पूछते हैं, प्रभु! अपराजित विमानमें तीर्थंकरोंकी... एक जाते हैं विदेहक्षेत्रमें। सर्वार्थसिद्धि या अपराजित विमान ... उसमें दो तीर्थंकरके जीव हैं। दो तीर्थंकरके जीव साथमें रहते थे। अहमिन्द्र। सर्वार्थसिद्धि हो या अपराजित विमान हो, उसमें रहते थे। एक विदेहक्षेत्रके भगवान और एक भरतक्षेत्रके भगवान। नमिनाथ भगवान यहाँ आते हैं न? एक भगवान विदेहक्षेत्रमें और एक भगवान यहाँ (आते हैं)। ऐसा कुछ आता है न? पूर्व भवका देव लेने आता है।

भगवान! अपराजित विमानमें जो तीर्थंकर भगवान साथमें रहते थे, वे कहाँ है? देवोने पूछा है। अभी वे भरतक्षेत्रमें (है)। वसंतऋतु खिली है, वहाँ वे विहार करते हैं। परन्तु वे दीक्षा लेंगे, ऐसा कुछ कहते हैं। फिर वहाँ-से देव देखने आते हैं। देवको पूछते हैं कि विदेहक्षेत्रके भगवानने कहा कि अपराजित विमानमें जो मेरे साथ थे, वे भरतक्षेत्रमें वर्तमानमें वसंतऋतु है, वहाँ विचरते हैं। इसलिये हम देखने आये हैं। तो भगवानको तुरन्त वैराग्य हो गया। अरे..! मेरे साथ जो भगवान थे उन्होंने दीक्षा ली और मैं अभी भी इसमें हूँ? उन्हें वैराग्य आया तो तुरन्त दीक्षा ले ली। ऐसा बनता है। कोई तीर्थंकर बने, कोई तीर्थंकरका जीव देवलोकमें साथमें होता है।

... राजकुमारके रूपमें थे, सीमंधर भगवानकी सभामें। वहाँ-से यहाँ आया। भगवानकी सभामें गुरुदेव सम्बन्धित वाणी निकली। वह सब कितनी महाभाग्यकी बात है! ऐसे जीव यहाँ आये। गुरुदेवका तीर्थंकरका जीव, महाभाग्य पंचमकालका कि यहाँ आये। नहीं तो यहाँ कैसे? भगवानके समवसरणमें जो हो और जो तीर्थंकरका जीव हो, वे इस पंचमकालमें आये कहाँ-से? लेकिन वह तो पंचमकालका महाभाग्य कि यहाँ पधारे। नहीं तो वे यहाँ कैसे आये? .. तीर्थंकरका जीव यहाँ पंचमकालमें कैसे आये?

... इतना ही काल गया है। भगवान जानेके बाद २५०० वर्ष हुए। कुन्दकुन्दाचार्यके समयमें भी एक नवीन हुआ। यहाँके आचार्य महाविदेहमें जाये कैसे? वह एक आश्चर्य हुआ, कुन्दकुन्दाचार्यके समयमें। कुछ नवीन ही था। यहाँ आचार्य विदेहक्षेत्रमें जाये। कहाँ विदेहक्षेत्र! वह कोई चलकर जा सके ऐसा है? विदेहक्षेत्रमें कुन्दकुन्दाचार्य पधारे। वह एक नयी बात (बनी)। गुरुदेव विदेहक्षेत्रसे यहाँ आये, वह एक नयी बात है। अभी

भगवानके चरण इस भरतक्षेत्रमें हैं, महावीर भगवानको हुए इतने ही साल हुए हैं। इसलिये यह सब बनता है। नहीं तो इस पंचमकालमें ऐसा बनना बहुत मुश्किल है।

उस वक्त कैसी नवीनता हुई होगी कि यहाँके आचार्य विदेहक्षेत्रमें जाकर वाणी सुनकर आये। साक्षात्, साक्षात् भगवानके दर्शन करके आये। गुरुदेव कहते थे, विदेहक्षेत्रकी यात्रा करके आये। ... जोरदार। मानो साक्षात् तीर्थंकर जैसी ही वाणी बरसायी! बरसों तक। यह महाभाग्यकी बात है। तीर्थंकर होऊँगा, इसलिये ऐसा कहते थे। उनके जैसा वर्तमानमें कोई दिखता है? उनकी वाणी, दिदार आदि सब कुछ अलग ही था।

प्रतिमाजी विराजमान करनेका काल आया वह भी कुछ अलग ही है। प्रतिमाजी, ऐसे निकृष्ट कालमें, इतने विरूद्ध माहोलमें प्रतिमा विराजमान करनेका काल (आया)। वह भी जैसा बनना होता है, कुदरके घरमें जैसा बनना होता है, वह बना है। वह कैसा काल आया, ऐसे पंचमकालमें।

गुरुदेवने प्रसिद्ध किया, दिगम्बर मार्ग सच्चा है। परन्तु उसमें संप्रदाय वाले इसप्रकार घुस जाते हैं।

मुमुक्षु :- वचनामृत मैंने पढ़े, जो महत्त्वपूर्ण था उसके नीचे लकीर की। बादमें फिरसे पढ़ा। फिरसे लकीर की, तीसरी बार पढ़ा तो एक भी लकीर करनी हो तो एक भी अक्षर बचा नहीं था। ऐसा पत्र उन्होंने लिखा था।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०१७

मुमुक्षु :- ... गुरुदेवके आशीर्वाद और आपके आशीर्वाद जबरजस्त! जामनगरमें अपूर्व भगवान सूर्यकीर्तिनाथ भगवानकी हमारे यहाँ स्थापना हुई, उसका अभूतपूर्व उत्साह, भक्तिभाव पूरे संघका, एक-एक मुमुक्षुका। और जो आनन्द और उल्लास था, वह पूरे शहरमें प्रवर्तता था। ऐसा ही लगता था कि मानो वास्तविक रूपसे अपने यहाँ तीर्थंकरकी स्थापना हो रही है। पूरे शहरमें। जहाँ-जहाँ रथयात्रा गयी, वहाँ अपने जिनमन्दिरसे लेकर हर जगह लोग नाचते थे, गाते थे। सूर्यकीर्ति भगवानकी जय जयकार बुलाते थे। माताजीके आशीर्वाद हमारे पर बहुत हैं। आपके आशीर्वाद हमें प्राप्त हुए। सब मुमुक्षु नाचे। हमें आशीर्वाद प्राप्त हुए।

समाधान :- गुरुदेवका प्रताप वर्तता है। गुरुदेव पर सबकी भक्ति और गुरुदेवका प्रताप वर्तता है।

मुमुक्षु :- जबरजस्त प्रताप।

समाधान :- नहीं तो होना मुश्किल था, उसमेंसे कैसे हो गया! सब कहते थे, कैसे होगा? कैसे होगा? परन्तु ऐसा योग आ गया कि हो गया।

मुमुक्षु :- हमारे यहाँ स्थापना हुई और तीर्थंकरकी स्थापना हुई, वैसा उत्साह।

समाधान :- मानो साक्षात् भगवान तीर्थंकर (पधारे)!

मुमुक्षु :- हमारे अहोभाग्य कि आपके आशीर्वादसे यह कार्य हुआ।

समाधान :- मैं कहाँ कुछ कहती हूँ।

मुमुक्षु :- माताजी! लेकिन हमको ऐसा लाभ मिला तो..

समाधान :- कल सब प्रतिष्ठा करके आये तब बोलते थे।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव ना-ना कहते थे, फिर थोड़ा-थोड़ा बोलते भी थे।

समाधान :- इस जगतमें भगवान सर्वोत्कृष्ट है। तीर्थंकरदेव ही सर्वोत्कृष्ट है। ये कुदरत, रत्नके शाश्वत प्रतिमा जगतमें होती हैं। जड़ परमाणु भी भगवान (की) प्रतिमा, जिनप्रतिमाम रूप परिणमित हो जाते हैं। कुदरत ऐसा कहती है कि जगतमें सर्वोत्कृष्ट जिनेन्द्रदेव हैं। जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा शाश्वत होती है। अपने तो प्रतिमा स्थापित करते हैं। कुदरत भगवानकी महिमा कर रही है। मनुष्य तो करे, उसमें (क्या आश्चर्य)? कुदरत

शाश्वत प्रतिमाओंकी महिमा बोल रही है।

शास्त्रमें आता है न? जिन प्रतिमा जिन सारखी। जिन प्रतिमा और जिनेन्द्र देव दोनों स्थापना निक्षेपमें समान ही होती है। उन्हें भाव होते हैं। जिनेन्द्र प्रतिमा और जिनेश्वर देव, उसमें भेद नहीं देखते।

वे स्वयं ही कहते थे कि मैं तीर्थंकर होने वाला हूँ। उनका हृदय कहता था। स्थापना करनेमें सबके भाव थे, तब शुरूआत हुई। सबने जाहिर किया। मैं तो कहीं भी बीचमें नहीं थी। फिर मुझे मालूम हुआ, तब सब लोगोंने जाहिर किया। वे तो विदेहक्षेत्रसे आये हैं। गुरुदेव स्वयं तीर्थंकरका द्रव्य है, ऐसा उनका हृदय बोलता था। बाकी विदेहक्षेत्रसे आये हैं। विदेहक्षेत्रमें गुरुदेव राजकुमार थे। भगवानकी वाणीमें आया है कि ये राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं।

मुमुक्षु :- माताजी गणधर हैं। हम तो...

समाधान :- वह बात तो अलग है, बाकी तीर्थंकर देव जो जगतमें सर्वोत्कृष्ट होते हैं। कुदरत रत्नमय प्रतिमारूप जिनबिंब, जिनप्रतिमा, तीर्थंकरके प्रतिमारूप कुदरत परिणमती है। तीर्थंकरका द्रव्य कोई अलौकिक होता है। गुरुदेव तीर्थंकर तो अब होंगे, लेकिन उनकी वाणी अभी तीर्थंकर जैसी ही थी। उनका प्रभाव वैसा था, सबकुछ ऐसा था।

मुमुक्षु :- वाणी आनेपर तो भगवान ही दिखे।

समाधान :- भगवानने कहा कि, यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होंगे। समवसरणमें सबको आनन्द व्याप्त हो गया। ये राजकुमार! सबको राजकुमारकी महिमा लग रही थी। वह कोई गुप्त बात नहीं थी। समवसरणमें उपस्थित सभी जीवोंने सुना है। सब देव, देवी, मनुष्य, राजा, रानी, मुनि आदि सब, भगवानके समवसरणमें तो कितने जीव होते हैं, लाख्खों, सबने सुना है।

गुरुदेवके नगरमें भी राजकुमार, राजकुमार ऐसे महिमा थी। राजकुमारका जीव तीर्थंकर होनेवाला है। महाभाग्य कि तीर्थंकरका द्रव्य इस भरतक्षेत्रमें गुरुदेवका जन्म हुआ और उनकी वाणी सुनी। उनका सान्निध्य प्राप्त हुआ, यह महाभाग्यकी बात है। किसीने नहीं कहा था, गुरुदेवने नहीं कहा था। (संवत) १९९३में, कितने बरसों पहले हीराभाईके बंगलेमें गुरुदेव थे तब कुछ मालूम नहीं था कि गुरुदेव स्वयं अन्दर तीर्थंकर हूँ, ऐसा मान रहे हैं अथवा उनको ऐसा आभास होता है कि मैं तीर्थंकर हूँ। तीर्थंकर होनेवाला हूँ, ऐसा नहीं, परन्तु तीर्थंकर हूँ ऐसा ही उनको अन्दर भास होता था। गुरुदेव बाहर बोलते नहीं थे, किसीको कुछ नहीं कहते थे।

मुझे ऐसा लगता था कि गुरुदेव तो महापुरुष हैं, ऐसा लगे। लेकिन ये तीर्थंकर

होनेवाले हैं, ऐसे कोई विचार नहीं आते थे। अंतरमेंसे ऐसा आया कि भगवानकी वाणीमें आया कि ये राजकुमार तीर्थंकर होनेवाले हैं। १९९३ के वर्षमें हीराभाईके बंगलेमें गुरुदेव थे, तबकी बात है।

... समयसार, प्रवचनसार आदि शास्त्र पढ़ते थे। पुराण आदि तो शुरूआतमें पढ़नेमें भी नहीं आये थे। पुराणोंमें क्या आता है, समवसरणका क्या वर्णन आता है, ऐसा कुछ पढ़नेमें नहीं आया था। वह सब तो बादमें पढ़ा। ऐसा हुआ कि गुरुदेवको कहनेसे... हिंमतसे कहा। गुरुदेव अन्दर क्या मानेंगे और कैसे मानेंगे? फिर भी हिंमत करके कहा। गुरुदेवको प्रमोद हुआ। वह तो स्वयं ही मानते थे।

गुरुदेव प्रवचनमें बाद शुरू-शुरूमें कहते थे, त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, अब क्या चाहिये? लेकिन जिसे मालूम नहीं हो (उसे पकड़में नहीं आये)। गुरुदेव उस वक्त तो बहुत गंभीर, सब अन्दर रखना था, बाहर नहीं कहना था। बादमें गुरुदेव बाहरमें कहते। पहले तो खास-खास मुमुक्षु हो उसे कहते थे। अन्दर रखनेका बहुत कहते थे। यहाँ तो कुछ कहनेका था ही नहीं। जिसे मालूम हो उसे ही पकड़में आये कि गुरुदेव क्या कहते हैं।

गुरुदेव तीर्थंकर साक्षात् भगवान होंगे, वह बात अलग, उस समयकी बात अलग। जब होंगे वह तो महाभाग्यकी बात कि वह प्रसंग बने। लेकिन अभी गुरुदेव अपने सामने जिन प्रतिमाके रूपमें आये तो उसमें मुद्दत क्यों डालनी? अभी ही पूजा, भक्ति गुरुदेवकी करें, हमारे गुरुदेव भाविके रूपमें उनकी प्रतिमा विराजमान करनेका प्रसंग बना तो उसकी मुद्दत नहीं होती कि अभी ऐसा नहीं कर सकते। पूजा, भक्ति अन्दरसे आये बिना रहे ही नहीं। ऐसी मुद्दत डालनेकी बात ही नहीं होती।

मुमुक्षु :- भाविमें होनेवाले हैं, हम तो वर्तमानमें ही तीर्थंकर मानकर हमारे यहाँ स्थापना करते हैं।

समाधान :- गुरुदेवका प्रभाव, उनकी वाणी, बहुत लोगोंके तीर्थंकर जैसा ही लगता। तीर्थंकर ही होनेवाले हैं। उनका सबकुछ पहलेसे ही तीर्थंकर जैसा ही लगता है। जिन प्रतिमा तीर्थंकर भगवानके स्वरूपमें विराजमान की। गुरुदेव मानो भाविके रूपमें पधारे हो!

मुमुक्षु :- पूरा शासन खड़ा किया। मूलमें कुछ था और पूरा शासन खड़ा किया।

समाधान :- पूरा शासन खड़ा किया। गुरुदेवने मार्ग बता दिया। सबको जागृत कर दिया। पूरे हिन्दुस्तानमें हिन्दी, गुजराती चारों ओर (जागृत हो गये)। आत्मा भगवान है, ज्ञायक और ज्ञायकदेवका चारों ओर डंका बजा दिया। क्रियामें धर्म मानते थे, उसकी जगह ज्ञायक.. ज्ञायक.. (हो गया)। छोटे बालक भी, आत्मा जाननेवाला है, ऐसा बोलने

लगे।

समाधान :- .. मार्ग बताया है, वही करना है। ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायकका रटन करना। शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न है। मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक भगवान आत्मा ज्ञायक है, उसे पहचान। ये विभावस्वभाव अपना नहीं है। एक ज्ञायक आत्माको पहचानना। ज्ञायकदेव भगवान है। उसका रटन करना और शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा श्रावकोंको आये बिना नहीं रहती। जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र। अंतरमें ज्ञायकदेवको कैसे पहचाने, उसका रटन, उसकी जिज्ञासा, उसकी भावना।

मुमुक्षु :- थोड़ी ज्यादा बात कहिये।

समाधान :- ज्यादा क्या, जो प्रयोजनभूत होता है उतना ही कहते हैं। गुरुदेवको राजकुमारका स्वप्न आया था। दीक्षा लेनेके बाद तुरन्त। मैं राजकुमार हूँ। लेकिन यह क्षेत्र वह नहीं है। राजकुमार, (वह) शरीर बड़ा, इतना इस क्षेत्र जितना शरीर नहीं। बड़ा शरीर और राजकुमार, झरीके वस्त्र। राजकुमार हूँ ऐसा स्वपन्न आया। गुरुदेवने बादमें कहा कि मैं राजकुमार हूँ, मुझे स्वप्न आया। दीक्षा लेनेके बाद।

मुमुक्षु :- बहिनश्रीने कहा कि, आप राजकुमार थे। हाँ, वह मैं। गुरुदेवने कहा, हाँ, वह मैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवको क्या कहा?

समाधान :- गुरुदेवको जो आया था वह कहा, और क्या? गुरुदेवने बहुत बातें प्रसिद्ध की है। गुरुदेव विदेहक्षेत्रमें राजकुमार थे। सीमंधर भगवानके समवसरणमें जाते थे, वाणी सुनते थे। भगवानकी वाणीमें भगवानने कहा, ये तीर्थंकर होनेवाले हैं। ये राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं।

मुमुक्षु :- यहाँ सब चिह्न भी मिल गये, निर्भिकता, निडरता, वाणी, श्रुतकी लब्धि...

समाधान :- वह सब तो दिखता था, इसी भवमें दिखता था। संप्रदायको छोड़कर जो सत्य था उसे प्रसिद्ध किया। उनकी निजरता, सिंह जैसी शौर्यता, वह सब अलग ही था। उनकी वाणीकी दहाड़, सबको भेदज्ञान हो जाये और यदि पुरुषार्थ हो तो समझ जाये, ऐसी उनकी वाणीकी दहाड़ थी। कोई समझे या नहीं समझे, लेकिन सुनते ही रहे। मुंबईमें इतना समूह इकट्ठा होता था, समझे, नहीं समझे, सुनते ही रहते थे। ये कुछ अलग ही कहते हैं। .. ऐसा ही कहते थे, सब भगवान है।

मुमुक्षु :- उनसे अधिक ज्ञानी तो कोई है नहीं। उनके श्रीमुखसे जो बात सुनी है, उससे दूसरी कोई बात हमें नहीं रुचति। उनके सिवा हमें दूसरा कुछ है ही नहीं। गुरुदेवश्रीने 'बहिनश्रीके वचनामृत' पर प्रवचन दिये।

समाधान :- .. गुरुदेव यहाँ बारंबार पधारते थे। अलग हो गये, नहीं तो सब

एक ही होते। गुरुदेव स्वयं बारंबार पधारते। ..बहनको गुरुदेव पर कितनी भक्ति थी! सबने उतनी उदारता रखी। भगवान पर तो सबको भाव होता है। गुरुदेवने मार्ग बताया है, गुरुदेवने भगवान बताये, गुरुदेवने शास्त्र (दिखाये), सब गुरुदेवने ही बताया है, सब गुरुदेवका ही उपकार है।

गुरुका स्वरूप, देवका स्वरूप, शास्त्रका स्वरूप, सब गुरुदेवने बताया है। कोई कुछ नहीं समझता था। और अन्दर ज्ञायक, सब गुरुदेवने (बताया)। स्वानुभूति, मोक्षमार्ग, मुनिका स्वरूप आदि सब गुरुदेवने बताया। मूल मार्ग पूरा गुरुदेवने बताया है।

.. इसलिये प्रतिष्ठा करनेमें सब विघ्न आते रहते हैं। आप सबकी भावना है कि गुरुदेवके प्रतापसे सब ठीक हो जाता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव पहले जामनगर पधारे थे, उस वक्त बहुत विरोध था। और बाहर सब बातें करते थे। तब गुरुदेव आते थे, उस वक्त सब विरोध शांत हो गये थे। वैसे अभी सूर्यकीर्ति भगवानकी स्थापना की तो सब विरोध शांत हो गया।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०१८

मुमुक्षु :- .. माताजीके आशीर्वाद मिल गये, जामनगरका... हमें तो उसी दिन विश्वास हो गया था।

समाधान :- ..की महिमा पूरे जगतमें है। यह तो पंचमकाल है। जिनेन्द्र प्रतिमा पर कोई मुश्किल आये तो देवका आसन चलायमान होता है। जिनेन्द्र प्रतिमा कोई कम बात नहीं है। ये तो पंचमकाल है इसलिये कोई देव नहीं आते। नहीं तो देवका आसन चलायमान होता है। जिनमन्दिर ऊपरसे कोई विमान चला जाता हो तो विमान थंभ जाता है। विमान चलता नहीं, यहाँ भगवानका मन्दिर है, मैं दर्शन करके जाऊँ। ऐसे ऊपर विमान थंभ जाता है। ऐसा कथामें, पुराणमें आता है।

जिनेन्द्र प्रतिमाकी आशातनाका फल भी उतना है, उसकी महिमा भी उतनी है। जिनेन्द्र प्रतिमाको अंजनाने उसके शोकके द्वेषके कारण थोड़ी बाहर रखी, उसका परिणाम उसमे पश्चाताप किया, कोई आर्जिका या मुनिने उपदेश दिया, उसने भगवानको फिरसे धामधूमसे विराजमान किये। पश्चाताप किया। तो भी उसके अनादरका कुछ पाप रह गया। ऐसे प्रसंग आये कि, उसके माँ-बाप घर पर नहीं रखे, ऐसा बनना तो बहुत मुश्किल होता है, माँ-बापने घरसे निकाल दिया, फिर जंगलमें जाना पड़ा। प्रतिमाका अनादर यानी भगवानको मन्दिरसे बाहर निकालना यानी महापापका कारण है। शास्त्रमें, पुराणमें आता है। यह कथाकी बात नहीं है, यह पुराणमें आता है।

वह शब्द बार-बार आता था, 'घट-घट अंतर जिन वसे, घट-घट अंतर जैन'। वह श्लोक प्रवचनमें बार-बार आता था। 'घट-घट अंतर जिन वसे'। उनका हृदय कहता था, 'घट-घट अंतर जिन वसे, घट-घट अंतर जैन', बार-बार वह श्लोक आता था। स्वयं जिन होनेवाले हैं। सब भगवान आत्मा है (ऐसा ही कहते थे)। प्रत्येक आत्मा भगवान ही है, परन्तु गुरुदेवको अंतर... प्रत्येक आत्मा भगवान है। 'घट-घट अंतर जिन वसे..' सब घटमें जिन ही बसते हैं। ...

मुमुक्षु :- .. उस वक्त माहोल कितना आनन्दमय होगा कि यह फत्तेहकुमार तीर्थंकर होनेवाले हैं, ऐसी बात समवसरणमें चारों ओर बात फैल गयी थी। ..

समाधान :- ... यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं। भगवानकी वाणी(में

आया कि), यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं। वाणी समवसरणमें प्रसर गयी थी। यह राजकुमार तीर्थंकर होनेवाले हैं, (यह सुनकर) सबको आनन्द हुआ। समवसरणमें बात प्रसिद्ध हुयी।

मुमुक्षु :- ... आनन्द-आनन्द हो गया..

समाधान :- जिसे आनन्द हो उसे होता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव पहलेसे ही कहते थे, शंका नहीं करना, यह पंचमकाल है, हजम नहीं होगी, कहीं बात मत करना।

समाधान :- स्थापना हो सकती है उसकी दलील चीमनभाई, चंदुभाई... दिगम्बर समाज पूरा विरूद्ध हो जाये। अभी उन्हें शांत रहनेका एक कारण होता है। किसीका आदर करनेमें दिक्कत नहीं है। अपने भगवान सुरक्षित रहे। कोई समाजको तकलीफ नहीं हो। अभी तो कितने भगवान होनेवाले हैं। उसके पहले यहाँ पूजा, भक्ति करनेका भाग्य मिले... ये तो आनन्दकी बात है। भगवान तो जब होंगे तब तो... अभी तो कितने भगवान होनेवाले हैं। जिस दिन भगवान होंगे उस दिन पूजा, भक्तिका ईंतजार करना, उसके बदले अभी ही पूजा, भक्ति (कर लें)। प्रसंग आया है उसे कौन दूर कर सकता है? ईंतजार करनेके बजाय अभी ही पूजा, भक्तिका प्रसंग है, उसमें जो भक्तिवाले हैं उन्हें कहीं मुद्त आड़े नहीं आती। उसे भक्ति उछलती है। .. ऐसी बात है। यह राजकुमार तीर्थंकर होनेवाले हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने स्वयं उत्सव मनाया ऐसा है क्या?

समाधान :- ऐसा कुछ नहीं है। ऐसा कोई ख्याल नहीं आता। विमलनाथ भगवानने उत्सव मनाया था। अगले भवमें होने वाले हैं, उन्होंने उत्सव मनाया है। बहुत समीप है। वहाँ-से देवमें जाकर तुरन्त तीर्थंकर होने वाले थे न। उन्होंने उत्सव मनाया। स्वयंने उत्सव मनाया। स्वयंको आनन्द हो गया है। स्वयंको ख्याल तो होता है, परन्तु भगवानने कहा इसलिये अधिक आनन्द आया, इसलिये उत्सव मनाते हैं। घातकि खण्ड द्विपमें पूर्व भवमें थे। पूर्वमें घातकी खण्डके कितने ही तीर्थंकर यहाँ पधारे हैं। दो-चार भगवानके तो यहाँ चित्र है। पूर्व भवमें घातकी खण्डमें थे, वहाँ तीर्थंकर गोत्र बाँधा, यहाँ भरत क्षेत्रमें तीर्थंकर हुए हैं। .. घातकी खण्डमें थे। ... तीर्थंकर होनेवाले हैं, तो उन्हें आनन्द हो गया है। आगामी भवमें तीर्थंकर होनेवाला हूँ, यह बात सुनकर उन्हें एकदम आनन्द आ गया। स्वयं ही उत्सव मनाते हैं। शास्त्रमें आता है, मैं तीर्थंकर हूँ, इसप्रकार उत्सव मनाया है।

मुमुक्षु :- त्रिलोकीनाथने तिलक किया।

समाधान :- गुरुदेवको वह बात कही इसलिये फिर शुरूआतमें प्रवचनमें बोलते

थे कि त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, फिर और क्या चाहिये? हीराभाईके बंगलेमें गुरुदेव थे। (संवत) १९९३ वर्षमें। प्रवचनमें तो जिसे ख्याल हो उसे मालूम पड़े। बाकी गुरुदेव बाहर कुछ नहीं बोलते थे। पहले तो बहुत ही गुप्त था। प्रवचनमें आती थी, जिसे मालूम हो उसे ख्याल आता था कि इस अर्थमें बोलते हैं। ... वे स्वयं कहते थे, तीर्थंकर हूँ। मुझे कुछ मालूम नहीं था। वे मानते हैं, ऐसा मुझे भी नहीं मालूम था कि गुरुदेव स्वयंको क्या मानते हैं।

मुझे ऐसा लगता था कि ये महापुरुष है। परन्तु ये तीर्थंकर होंगे, ऐसा मेरे दिमागमें भी नहीं था। मुझे जो आया वह गुरुदेवको कहते-कहते ऐसा लगता था कि मैं यह कहती हूँ, परन्तु गुरुदेवको क्या लगेगा? मैंने तो हिम्मत करके कहा (तो) गुरुदेवको एकदम प्रमोद आया। क्योंकि वे स्वयं तो अन्दर मानते थे। वे मानते हैं, यह मुझे मालूम भी नहीं था।

मुमुक्षु :- फिर बातका मेल हो गया।

समाधान :- हाँ, मेल हो गया। गुरुदेवने बादमें (कहा), मैं तीर्थंकर हूँ और मुझे आभास (होता है), वह सब बात की। बादमें कहा।

मुमुक्षु :- बादमें कहा।

समाधान :- बादमें। .. तीन बार ॐ आया।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- मैं तीर्थंकर हूँ, ऐसा मुझे कुछ अन्दरसे भास होता है। ऐसा गुरुदेव कहते थे। और राजकुमारका तो गुरुदेवको स्वप्न आया था, दीक्षा लेनेके बाद। मैं राजकुमार हूँ, बड़ा शरीर है। यहाँका शरीर नहीं, वह शरीर अलग था, ऐसा कहते थे। पघडी, झरीके कपड़े आदि सब।

सीमंधर भगवानने कहा कि यह राजकुमार तीर्थंकर होनेवाले हैं। .. भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं। सीमंधर भगवानकी वाणीमें आया है कि यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं।

मुमुक्षु :- माताजीने साक्षात् सुना है।

समाधान :- भगवानका समवसरण अलग, भगवान भी अलग, वाणी भी अलग और सुननेवाले सब देव, देवियाँ, गणधर, मुनि, सभा, राजा-रानियाँ, अर्जिका, लाखो श्रावक, श्राविका, वह सभा ही अलग और वह उत्साह भी अलग। ये राजकुमार तो तीर्थंकर हैं। ऐसे राजकुमार .. ये राजकुमार! ये तो तीर्थंकर हैं। भगवाननी वाणी आदि सबका मेल हो गया। भगवानकी वाणीमें आया कि ये तो तीर्थंकर होनेवाले हैं।

गुरुदेवकी गंभीरता। पहले गंभीर, गुप्त रहता था। दो शब्द भी बाहर नहीं आते

थे, सब अन्दर ही रहता था। किसीको नहीं कहते थे। कुछ-कुछ लोगोंको अन्दर-अन्दर गुरुदेव बहुत गुप्तरूपसे कहते थे।

मुमुक्षु :- मामाको कहा तो .. कैसा लगता है?

समाधान :- .. सबकी सुननेकी तैयारी.. विरुद्ध माहोलमें क्या ...

समाधान :- ... मैं त्रिकाल और यह भेद है, इतना जानता है। उसमें उतना ज़ोर नहीं है उसमें। यह तो वेदन है, मेरी स्व ओरकी पर्याय है, स्वकी ओरका भाग है। वह विभावकी ओरका भाग था। ये मेरे रिश्ते-सम्बन्धवाले हैं, उसके साथ कोई नाता या सम्बन्ध नहीं है। अपनी शुद्ध पर्याय स्वयंकी जातिकी है। निज स्वभावकी ज्ञाति वाला है। .. ज़ोर नहीं है। दृष्टिकी अपेक्षासे जानते हैं कि यह पर्याय अंश है। दृष्टिका ज़ोर द्रव्य पर है और पर्यायको वैसे भिन्न नहीं करता, वैसे ज़ोरवाला नहीं है।

मुमुक्षु :- दोनोंमे बहुत अंतर है।

समाधान :- दोनोंमें बहुत अंतर है। अपेक्षा जानता है कि द्रव्य त्रिकाल, गुण त्रिकाल है और यह प्रगट पर्याय है वह अंश है। ऐसा ज़ोर उसमें नहीं है। यह स्वभावकी ओरका भाग है, वह विभावका भाग है।

मुमुक्षु :- ३८वीं गाथामें सबको एकसाथ अत्यंत भिन्न है, ऐसा कहा। तो भी उसमें ऐसा ज़ोर-ज़ोरका अंतर रहता है?

समाधान :- अंतर रहता है। ज्ञान उसे बराबर जानता है कि यह पर्याय मेरी ओरकी है, परन्तु पर्याय है। उसमें स्वभावभेद है, अत्यंत भिन्न है। स्वभावभेद है। इसमें स्वभावभेद नहीं होता। अंशका भेद होता है। स्वभावभेद नहीं है।

मुमुक्षु :- ये मेरे रिश्तेदार है।

समाधान :- हाँ, दृष्टिकी अपेक्षासे एकमें डाल दे, लेकिन उसमें समझना पड़ता है। द्रव्यकर्म, भावकर्म, भेद वह सब आता है। भेदाभेद। सब पर्यायके भेदसे आत्मा भिन्न है। उसकी अपेक्षा समझनी पड़ती है। दृष्टिकी अपेक्षासे एकमें जाता है, सबसे भिन्न पड़ता है। उसमें जो शुद्धपर्याय है, .. यह क्षयोपशमके भेद, ये भेद तो उन सबमें अपेक्षा समझता है। क्षायिकके भेद, विभावके भेद। दृष्टिकी अपेक्षासे एकमें जाता है, परन्तु ज्ञानमें सब अपेक्षाएँ रहती है। दृष्टिकी अपेक्षामें एक तत्त्व हूँ, एक द्रव्य हूँ, ऐसा ज़ोर रहता है। परन्तु ज्ञानमें सब विवेक रहता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते थे, बिल्ली बच्चेको पकड़े और चूहेको पकड़े, दोनोंकी पकड़में फ़र्क़ है।

समाधान :- अन्दरसे न्यारा हो गया है। पकड़-पकड़में फ़र्क़ है, ऐसा गुरुदेव कहते थे। दृष्टिकी अपेक्षासे एकमें कहते हैं। इससे भिन्न, इससे भिन्न, इससे भिन्न, इससे भिन्न

किया, इससे भिन्न किया। उसमें अपेक्षा होती है। पर्यायके भेद, शुद्धपर्यायको साधनेका पुरुषार्थ रहता है। द्रव्य पर दृष्टिके ज़ोरमें सब सधता है। निर्मल पर्याय प्रगट करनेका तो पुरुषार्थ चालू है। दृष्टिकी अपेक्षासे भिन्न करता है, साधनामें उसका पुरुषार्थ करके साधता है और उस विभावको तो भिन्न करता है, निकाल देता है। इसे साधनेका प्रयत्न है। पर्यायको साधता नहीं है, परन्तु उसमें अपेक्षा आती है। द्रव्यदृष्टिके ज़ोरमें ज्ञान, दर्शन, चारित्रको साधनेका पुरुषार्थ चालू है। वीतरागदशा।

मुमुक्षु :- दृष्टिका कार्य अलग प्रकारका और पुरुषार्थ करनेका कार्य साथमें चालू है।

समाधान :- दृष्टि और ज्ञान दोनों साथ होते हैं। पुरुषार्थ भी चलता है। एक भेदज्ञानकी धारामें सब आ जाता है। एक दृष्टि और ज्ञान। उसके साथ लीनताका पुरुषार्थ, सब साथमें रहते हैं। परस्पर सम्बन्ध वाले हैं। परस्पर एक-दूसरेसे विरुद्ध कार्य करनेवाले नहीं है। दृष्टिका ज़ोर द्रव्य पर आता है, ज्ञान दोनोंका विवेक करता है। साथमें पुरुषार्थकी डोर चालू है। परस्पर एकदूसरेको किसीको तोड़ते नहीं, सब साथ रहते हैं।

मुमुक्षु :- विकल्प आये तो विकल्पको समानेके लिये क्या करना?

समाधान :- विकल्प छोड़नेके लिये? समानेके लिये। सबका एक ही उपाय है, ज्ञायकको पहचाने तो विकल्प समाते हैं। शुद्धात्माको पहचाने कि मैं तो ज्ञायक हूँ। विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, मैं निर्विकल्प तत्त्व हूँ। यह विकल्प समानेका उपाय है। लेकिन ज्ञायकको यथार्थ पहचाने तो विकल्प समाते हैं। नहीं तो उसे अशुभभावमेंसे शुभभावमें पलट सकता है।

प्रथम जिज्ञासाकी भूमिकामें दूसरे विचारमेंसे तत्त्व विचारमें, देव-गुरु-शास्त्रमें आदिमें विचारको पलटता है। बाकी विकल्प वास्तविक रूपसे कब समाते हैं? पहले मन्द शुभभावरूप हो, वास्तविक कब छूटे? ज्ञायकको पहचाने तो। भेदज्ञान करे तो विकल्प समाते हैं। विकल्पसे भिन्न पड़े तो विकल्प वास्तविक रूपसे छूटते हैं, भिन्न पड़ते हैं। वास्तवमें तो निर्विकल्प होता है, तब विकल्प छूट जाते हैं। बाकी भेदज्ञानकी धारामें विकल्प भिन्न पड़ते हैं, विकल्प मन्द हो जाते हैं। ज्ञायककी परिणति प्रगट करे तो। जबतक वह नहीं हो तबतक भावना करे कि, मैं ज्ञायक हूँ, विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसे बारंबार ज्ञायककी महिमा लाये, ज्ञायकका स्वभाव पहचानकर, मैं यह ज्ञायक हूँ, यह विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, इसप्रकार विकल्प समानेका उसका एक प्रयास चलता है। अशुभमेंसे शुभमें लाये, परन्तु वास्तविक रूपसे विकल्प उससे भिन्न पड़ते। ज्ञायकको पहचाननेका प्रयत्न करे तो वह विकल्प छूटनेका उपाय है, उससे भिन्न पड़नेका उपाय है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०१९

मुमुक्षु :- जीव, शरीरसे दिवारकी भाँति भिन्न है, (यह) परमार्थ और वह सत्य है। साथमें व्यवहारकी सन्धि रखनी जरूर है? रखनी हो तो कैसे रखनी?

समाधान :- शरीरसे तो भिन्न है, अत्यंत भिन्न है। शरीर तो जड़ है, आत्मा चैतन्य है, तो एकदम भिन्न ही है। जड़ और चैतन्य, दोनों अलग है। व्यवहारकी संधि तो उतनी ही है कि उसे अमुक भव एकक्षेत्रावगाही है, उतना व्यवहारका सम्बन्ध है। एक के बाद एक जो भव धारण करता है, वह एकक्षेत्रवगाही सम्बन्ध, क्षेत्रावगाहरमें रहे हैं उतना। यह देव है, यह नारकी ऐसा कहनेमें आता है। उसके साथ उतना व्यवहार है। शरीरके साथ उतना असद्भुत व्यवहार है। शरीर और आत्मा, जड़ और चैतन्य, दोनों विरुद्ध स्वभावी अत्यंत भिन्न हैं। जड़ है और चैतन्य है।

मुमुक्षु :- समयसारमें आता है कि..

समाधान :- भगवानकी स्तुति आदि होता है, वह आता है?

मुमुक्षु :- राखको मसलने जैसा होता है। यदि बिलकूल भिन्न परमार्थ और एकान्त हो जाये तो मच्छरको भस्मीभूत..

समाधान :- हाँ, उतना सम्बन्ध है, एकक्षेत्रावगाही है, इसलिये। सर्वथा भिन्न हो तो जैसे हिंसा करनेमें पाप नहीं है ऐसा हो जाये। उतना सम्बन्ध है, एकक्षेत्रावगाही है उतना सम्बन्ध है। तो फिर हिंसा होती ही नहीं, ऐसा हो जाये। जैसे मसलनेमें पाप नहीं है, वैसे जीव जो शरीर धारण करे उसे मसलनेमें पाप नहीं है, ऐसा अर्थ हो जाता है। सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- एकान्त हो जाता है।

समाधान :- एकान्त हो जाये तो वैसा अर्थ हो जाता है। वैसा एकान्त नहीं है। परमार्थसे भिन्न है, लेकिन एकक्षेत्रावगाहसे सम्बन्ध है। नहीं तो हिंसाका अभाव सिद्ध हो जाये। इसलिये एकक्षेत्रावगाही सम्बन्ध है। वह व्यवहार बीचमें आता है। दयाका विकल्प आये, ऐसा सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- उसे ज्ञानमें रखना है।

समाधान :- हाँ, ज्ञानमें जाने कि सम्बन्ध है, एकक्षेत्रावगाही सम्बन्ध है। नहीं

तो हिंसाका अभाव सिद्ध हो जाये। राखको मसलनेमें जैसे पाप नहीं है, वैसे जो चींटी, मंकोड़ा आदिको मसलनेमें पाप नहीं है, ऐसा अर्थ हो जाये। वैसा एकान्त नहीं लेना चाहिये। परमार्थसे भिन्न है। सर्वथा एकान्त नहीं लेना चाहिये। ज्ञानमें ख्याल रखना। दयाका शुभ विकल्प आये, उसे बचानेका विकल्प आये बिना रहता नहीं। फिर उसके आयुष्य अनुसार होता है, परन्तु स्वयंको बचानेका विकल्प आता है। नहीं तो हिंसाका अभाव सिद्ध होगा, बराबर है।

मुमुक्षु :- ऐसी सन्धि साथमें रखनी।

समाधान :- हाँ, वह सन्धि साथमें रखनी। वह हिंसाका (हुआ), वैसे स्तुतिका, भगवानकी स्तुतिका। भगवानका शरीर देखकर भगवान ऐसे हैं, भगवान ऐसे हैं, ऐसा करे। भगवानका शरीर ऐसा है, ऐसा स्तुतिमें भी आता है, शुभ (विकल्प आता है)। उतना सम्बन्ध ज्ञानमें रखना है।

मुमुक्षु :- परमात्म प्रकाशमें आता है, देहमें जीव बसा है, असद्भूत व्यवहारनयसे, जूठी नयसे...

समाधान :- असद्भूत व्यवहार है, लेकिन ऐसा व्यवहार है सही, व्यवहार है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! समयसारमें दूसरी एक बात आती है, नौ तत्त्वका शुद्धनयकी दृष्टिसे निरूपण द्वारा शुद्ध स्वरूप समझाया है, ऐसा उपोद्घातमें लिखा है।

समाधान :- क्या नौ तत्त्वका?

मुमुक्षु :- नौ तत्त्वका शुद्धनयकी दृष्टिसे निरूपण द्वारा शुद्ध स्वरूहप समझाया है, ऐसा समयसारके उपोद्घातमें लिखा है। तो इस नौ तत्त्वको शुद्धनयकी दृष्टिसे कैसे देखना?

समाधान :- शुद्धनयकी दृष्टिसे मैं शुद्ध ही हूँ। उसमें नौ का जो भेद पड़ता है, उसमें ग्रहण एक को करना। एक चैतन्यद्रव्य मैं हूँ, बाकी सब पर्याय है। मैं एक चैतन्य हूँ। इसप्रकार चैतन्यकी दृष्टिसे देखना, एक शुद्धनयसे ग्रहण कर। नौ कहनेमें आता है, लेकिन एक को ग्रहण करना। उन नौ के बीचमें रहा एक, उस एकको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- संवर, निर्जरामें उसी प्रकारसे?

समाधान :- सबमें वैसे लेना। संवर, निर्जरामें मैं एक चैतन्य अखण्ड हूँ। वह सब भेद है। साधकदशाके भेद है, मोक्षपर्यायके भेद हैं, वह सब भेद है। उन भेदके बीचमें मैं एक चैतन्य अखण्ड द्रव्य हूँ, ऐसे ग्रहण करना। मैं एक चैतन्य हूँ। नौ तत्त्वको जानकर ग्रहण एक चैतन्य शुद्धात्माको करना है। एक चैतन्य मैं हूँ। नौ तत्त्वकी परिपाटी छोड़कर हमें एक आत्मा प्राप्त हो, एक चैतन्यद्रव्य प्राप्त हो। उस एक को ग्रहण करने जैसा है। एक चैतन्यको ग्रहण कर लेना। मैं एक शुद्धात्मा हूँ। ये सब पर्यायके भेद है।

मुमुक्षु :- पर्यायके भेद ज्ञानका विषय हो जाता है?

समाधान :- हाँ, वह ज्ञानका विषय हो जाता है, परन्तु ग्रहण एक को ग्रहण करना। दृष्टि और ज्ञान साथमें ही रहे हैं। दृष्टिके साथ ज्ञान रहा है और सम्यग्ज्ञानके साथ दृष्टि रहती है। नौ तत्त्वके बीच एक आत्माको ग्रहण करना। ... दृष्टिसे जाने नौ तत्त्व, दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें रहते हैं। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें हैं। एक आत्मा ग्रहण करना।

एक आत्मा प्राप्त हो, दूसरा कुछ प्राप्त (नहीं हो)। प्राप्त हो यानी उसमें पर्यायमें आयी। परन्तु एक आत्मा, नौ तत्त्व पर दृष्टि नहीं है, अकेला आत्मा, एक आत्मा ही हमें (प्राप्त) हो, हमें और कुछ नहीं चाहिये। यह तो एक भावना है, लेकिन नौ तत्त्वमैं एक आत्माको ग्रहण करना। भूतार्थ दृष्टिसे एक आत्माको ग्रहण करना। दृष्टि एक आत्मा पर ही है। उसमें ज्ञानमें सब आ जाता है। परन्तु ग्रहण एक आत्माको करना।

मुमुक्षु :- व्यवहार द्वारा परमार्थ..

समाधान :- हाँ, परमार्थको ग्रहण करना। व्यवहार पर दृष्टि नहीं है। दृष्टि एक परमार्थ पर है।

मुमुक्षु :- .. व्यवहार द्वारा शुद्ध स्वरूपका निरूपण किया है?

समाधान :- हाँ, ऐसा भी आता है। भेद द्वारा अभेदको ग्रहण करना। 'परमार्थनो उपदेश एम अशक्य छे'। व्यवहारके बिना परमार्थका उपदेश नहीं होता। इसलिये बीचमें व्यवहार-ज्ञान, दर्शन, चारित्रका भेद पड़ता है, उसमें एक आत्माको ग्रहण करना। सीधा एक आत्माको समझकर, जो ज्ञान, दर्शन, चारित्रको प्राप्त हो वह आत्मा, ऐसा व्यवहार बीचमें आता है। ग्रहण एक परमार्थको करना, बीचमें व्यवहार (आये) उसे जानना। परमार्थ और व्यवहार दोनोंको जान लेना।

मुमुक्षु :- ग्रहणका अर्थ?

समाधान :- उस पर दृष्टि करनी, ग्रहण कर लेना एक शुद्धात्माको।

मुमुक्षु :- आलम्बन?

समाधान :- हाँ, आलम्बन। उस एकके आलम्बनसे पर्यायकी साधना होती है। ग्रहण एक परमार्थको करना, बीचमें व्यवहार आये उसे जानना। परमार्थ और व्यवहार दोनोंको जान लेना।

मुमुक्षु :- दृष्टिका, ज्ञानका, चारित्रका सबका एक ही प्रकारसे पुरुषार्थ होता है या दृष्टिमें अधिक पुरुषार्थ चाहिये?

समाधान :- एक यथार्थ दृष्टि प्रगट हो तो उसके साथ सब पुरुषार्थ आ जाता है।

मुमुक्षु :- प्रकार एक ही है?

समाधान :- पुरुषार्थका प्रकार एक ही है। एक आत्माको ग्रहण किया, उसकी श्रद्धाका बल आया, उसके साथ लीनताका बल आता है। लीनता बादमें होती है, पहले एक श्रद्धा प्रगट होती है। अनादिकालसे मार्ग अनजाना है, उस अपेक्षासे सम्यग्दर्शन दुर्लभ है। उसकी अपेक्षासे। एक सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ इसलिये उसे मार्ग सीधा और सरल हो गया। सीधे, सरल मार्गको जान लिया। इसलिये उसे अनादिकालसे दुर्लभ कहा जाता है ऐसा सम्यग्दर्शन, क्योंकि एकत्वबुद्धि थी, मार्ग जाना नहीं था, इसलिये मार्गको जाने बिना इधर-ऊधर भटक रहा है। मार्ग जाना और आत्मा हाथमें आ गया, इसलिये उसे श्रद्धा-सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ तो उसे मार्ग सीधा, सरल हो गया। पूरा भव पार ऊतर गया। अनन्त भवसागरसे पार ऊतर गया, अब थोड़ा बाकी रहा। इसलिये सम्यग्दर्शन अनन्त कालमें प्राप्त करना दुर्लभ है। वह प्राप्त हुआ तो उसके साथ सब आये बिना रहता ही नहीं। ज्ञान और चारित्र आदि सब आता है। दृष्टि-एक श्रद्धाका बाल, एक श्रद्धा प्रगट हुई तो उसके साथ लीनता हुए बिना नहीं रहती। किसीको जल्दी आये और किसीको बादमें आती है, धीरे-धीरे आये। परन्तु चारित्र आये बिना नहीं रहता। चारित्र यानी लीनता। ध्रुवके आलम्बनमें श्रद्धा आयी और ध्रुवके आलम्बनमें लीनता आयी। वह लीनताका पुरुषार्थ और वह श्रद्धाका पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ एक ही है, मार्ग एक ही है।

मुमुक्षु :- प्रथम (श्रद्धा) करनी है उस अपेक्षासे दृष्टिका पुरुषार्थ दुर्लभ है।

समाधान :- दुर्लभ है। सम्यग्दर्शन दुर्लभ है। सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ तो उसने मार्ग जान लिया। उसे लीनता होगी ही।

मुमुक्षु :- उसमें ज्ञानका पुरुषार्थ आ गया?

समाधान :- जो मूल वस्तुको जानता है, उसे अमुक ज्ञान, थोड़ा ज्ञान हो तो वह आगे जाता है। इसलिये ज्ञानका पुरुषार्थ तो बीचमें उसे विशेष निर्मलता (होनेका कारण है), द्रव्य-गुण-पर्याय (ज्ञानमें) विशेष निर्मल हो तो उसे मार्गमें सरलता रहती है। बाकी ज्ञानका कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। दृष्टिके साथ अमुक ज्ञान हो तो उसे लीनता, वीतरागता बढ़ जाये तो केवलज्ञान हो जाता है। अधिक जाने इसलिये अधिक जाननेका पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता। वह तो बीचमें आता है। सच्चे ज्ञान बिना मार्ग जाननेमें नहीं आता। इसलिये मार्ग जाननेके लिये वह जानना पड़ता है। बाकी मूल प्रयोजनभूत जाने (तो) मार्ग सीधा हो जाता है और सरल हो जाता है।

सम्यग्ज्ञान दुर्लभ है। लेकिन अधिक जानना, वह तो बीचमें किसीको अधिका जानना आता है और किसीको अधिक जानना नहीं आता है। अधिक शास्त्र जानने पड़े ऐसा उसका अर्थ नहीं है। अन्दर ज्ञानकी निर्मलता बढ़ती जाये, स्वरूप परिणति-ज्ञायककी

परिणति बढ़ती जाये, वह उसका ज्ञान है। ज्ञायककी परिणति बढ़ती जाये, ज्ञाताकी धारा बढ़ती जाये। दृष्टिका बल, ज्ञाताकी धारा बढ़ती जाये, यहाँ लीनता बढ़ती जाये, वह अन्दर है। अधिक जानना ऐसा ज्ञानका कोई अलग पुरुषार्थ नहीं है। वह तो बीचमें खड़े रहनेके लिये आता है। अन्दर लीनतामें आगे नहीं बढ़ता है इसलिये शास्त्र-श्रुतज्ञानमें-खड़ा रहता है। बीचमें श्रुतज्ञान आये बिना नहीं रहता।

दृष्टिका पुरुषार्थ और लीनताका पुरुषार्थ, दोनों होते हैं। दृष्टि-श्रद्धा ध्रुवके आलम्बनसे प्रगट हुई, उस ध्रुवके आलम्बनमें लीनताका पुरुषार्थ करता है। श्रद्धा ऐसे हुई कि ये सब कुछ आदरने जैसा नहीं है, एक चैतन्यको ग्रहण (किया), चैतन्य उसे हाथमें आ गया। उसे स्वानुभूति हो गयी, लेकिन उस स्वानुभूतिमें रहनेके लिये लीनताकी कमी है, इसलिये लीनताका पुरुषार्थ ध्रुवके आलम्बनमें विशेष-विशेष (होता जाता है)। श्रद्धाका बल बराबर है, लेकिन लीनताकी कमी है, लीनताका पुरुषार्थ करना बाकी रहता है, उसमें बीच-बीचमें ज्ञान आ जाता है। भेदज्ञानकी धारा, ज्ञेदज्ञानकी धाराकी उग्रता वह उसका ज्ञान है। बाकी अधिक जानना वह ज्ञान, वह तो बीचमें आता है। आगमज्ञान।

मुमुक्षु :- सच्चा पुरुषार्थ तो दृष्टिका पुरुषार्थ ही है।

समाधान :- दृष्टि प्रगट हुई, दृष्टिकी निर्मलता होती है और भेदज्ञानकी धारा बढ़ती जाती है और लीनता बढ़ती जाती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानका कोई अलग पुरुषार्थ है, ऐसा कुछ नहीं है।

समाधान :- ज्ञानका कोई अलग प्रकारका पुरुषार्थ नहीं है। उसका यथार्थ भेदज्ञान हो गया, आत्माको पहचान लिया, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय पहचान लिये, वस्तुको पहचान ली, उसका स्वभाव-विभाव पहचान लिया, मूल प्रयोजनभूत उसने पहचान लिया, फिर ज्यादा दलील, ज्यादा युक्ति आये, अधिक शास्त्रज्ञान (हो), ऐसा तो उसे बीचमें खड़े रहनेके लिये, अन्दरसे बाहर आये तब श्रुतज्ञानमें खड़ा रहता है। बाकी उसे अधिक जानना पड़े ऐसा नहीं है। किसीको सम्यग्दर्शन हो और अन्दर लीनता बढ़ती जाये, स्वानुभूति धारा और विरक्ति बढ़ती जाये तो गुणस्थान बढ़ता जाये, पाँचवे, छठ्ठे, सातवें गुणस्थानमें आ जाये। ऐसा बनता है।

ज्ञान यानी अंतरकी भेदज्ञानकी धारा बढ़ती जाये, बाकी दूसरा शास्त्रज्ञान ज्यादा हो, ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है। थोड़ा आता हो और श्रेणी लगाकर केवलज्ञान प्राप्त करे। किसीके साथ वादविवादमें खड़ा नहीं रह सके, युक्ति-दलीलमें खड़ा नहीं रह सके। ऐसा हो तो प्रगट हो ऐसा नहीं है। अंतरकी भेदज्ञानकी धारा और दृष्टिका एवं लीनताका बल बढ़ता जाये।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन ही मुख्य वस्तु हुई, ऐसा लगता है।

समाधान :- सम्यग्दर्शन और लीनता। सम्यग्दर्शन हो तो लीनता होती है। लीनता बिना केवलज्ञान नहीं होता। कितने सालों तक चक्रवर्तीको गृहस्थाश्रममें सम्यग्दर्शन होता है, फिर भी लीनता नहीं हो तो केवलज्ञान नहीं होता। दर्शन और चारित्र, ज्ञान बीचमें आता है। सम्यग्ज्ञान साथमें होता है। उसमें भेदज्ञानकी धाराकी उग्रता होती जाती है। ... नहीं आये तबतक ज्ञान करता रहता है।

सम्यग्दर्शनके पहले भी जिज्ञासुको विचार करना रहता है और सम्यग्दर्शन होनेके बाद उसे गृहस्थाश्रम हो तो लीनतामें देर लगती है। तो शास्त्रज्ञान, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, पूजा, भक्ति, शास्त्रज्ञान करता रहे, श्रुतज्ञान करे।

मुमुक्षु :- नहीं तो प्रमादमें चला जाये।

समाधान :- हाँ, नहीं तो चला जाये। वहाँ खड़ा रहता है, जबतक प्रगट नहीं हो तबतक। ज्ञान, यह मैं हूँ और यह नहीं, ऐसे भिन्नता करता है। मैं यह हूँ और यह मैं नहीं हूँ, ऐसे दोनों करता है। ज्ञान सब विवेक करता है। परसे भिन्न, विभावसे भिन्न और अंश जो पर्यायभेदसे भिन्न, वह दृष्टिमें रहता है। परन्तु ज्ञानके विवेकमें फ़र्क़ पड़ता है।

मुमुक्षु :- सब विविक्षा ज्ञान करता है।

समाधान :- वह ज्ञान करता है। विवेकके लिये बीचमें ज्ञान रहता है। ज्ञान, इसप्रकार साधकदशामें उपयोगी है।

मुमुक्षु :- दृष्टि तो यह मैं, यह मैं, उस ओर ही...

समाधान :- यह मैं, उस ओर ही रहती है। बीचमें ज्ञान विवेक करता है।

मुमुक्षु :- गहरा अभ्यास करनेके लिये क्या करना चाहिए? बाहरके काम छोड़ देना?

समाधान :- स्वयं अन्दरसे स्वाध्यायका समय ढूंढ लेना। काम ऐसे नहीं होने चाहिये कि स्वयंको विचार, वांचनमें अडचन करे। इतना काम होता है कि वांचनका, विचारका समय ही नहीं मिले, ऐसा हो, इतनी प्रवृत्ति हो तो कामको कम करके निवृत्ति मिले ऐसा रखना चाहिये। अपनी शक्ति अनुसार कितना छूटे, बाकी स्वयंको निवृत्ति मिले, वांचन, विचारका समय मिले इसप्रकारके मर्यादित काम होना चाहिये। गृहस्थाश्रममें अमुक प्रकारके काम तो होते हैं, परन्तु स्वयंको निवृत्ति मिले इतना (काम रखना चाहिये)। बोझा बढ़ाकर फिर समय ही नहीं मिले ऐसा तो नहीं होना चाहिये। छोड़ना, नहीं छोड़ना वह तो स्वयंकी रुचि पर आधारित है। बाकी गृहस्थाश्रममें स्वयंको विचार, वांचनका समय मिले इतना तो होना चाहिये।

पहलेसे सब छूट नहीं जाता, लेकिन अन्दर जिज्ञासा, ज्ञायकको पहचाननेका प्रयत्न

करे, शरीर भिन्न, मैं भिन्न आत्मा, ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, उसका भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे, उसे पहचाननेके लिये प्रयत्न (करे)। स्वयंके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या, दूसरेके क्या, इन सबका विचार करनेको, प्रयत्न करनेके लिये शास्त्र-अभ्यास, विचार, वांचनका समय मिले, उस प्रकारकी प्रवृत्ति गृहस्थाश्रममें होती है। बाकी अंतरसे सब छूटे वह तो यथार्थ सम्यग्दर्शन हो, अंतरसे पहले छूटता है, बादमें बाहरसे छूटता है। परन्तु जिज्ञासुको ऐसी प्रवृत्तिका बोझ नहीं होता कि जिससे निवृत्ति ही नहीं मिले, स्वाध्यायका समय ही नहीं मिले, ऐसा नहीं होना चाहिये। छूट जाये तो-तो अच्छा ही है, लेकिन छूटता नहीं हो तो वांचन, विचारका समय मिले उस अनुसार होना चाहिये। ऐसी मर्यादित प्रवृत्ति होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! शुरूआत शुभभावसे होती है या तत्त्वचिंतनसे शुरूआत करनी चाहिये?

समाधान :- तत्त्वचिंतवनसे शुरूआत होती है, उसमें शुभभाव साथमें होता है। तत्त्वचिंतवनको कोई पहचानता नहीं है तो पहले शुभभाव करके मानते हैं। अनादिका अभ्यास ऐसा है कि थोड़े शुभभाव कर लेते हैं और मैंने बहुत किया ऐसा मान लेते हैं। परन्तु शुरूआत तो तत्त्व चिंतवनसे होती है। लेकिन तत्त्व चिंतवनके साथ शुभभाव होते हैं। शुभभाव छूट नहीं जाते। शुभभाव साथमें होते हैं और तत्त्व चिंतवन होता है। तत्त्व चिंतवनके साथ शुभभाव तो होते ही हैं।

मुमुक्षु :- मुख्य तत्त्वचिंतवन।

समाधान :- ध्येय तत्त्वचिंतवनका होना चाहिये। ध्येय वह होना चाहिये। पूरा दिन उसमें टिक नहीं पाये तो फिर.... उस तत्त्वचिंतवनके साथ शुभभाव तो होते ही हैं। उसे देव-गुरु-शास्त्रके दर्शन, भक्ति, विचार, वांचन आदि भिन्न-भिन्न प्रकारके शुभभाव होते हैं। परन्तु ध्येय चिंतवनका होना चाहिये। ध्येय, आत्माको कैसे पहचानुँ, वह होना चाहिये।

मुमुक्षु :- .. बहुत अच्छी बात की थी, दृष्टिका जोर और ज्ञान तो बीचमें खड़ा रहता है, आत्मार्थीतामें, जिज्ञासाकी भूमिकामें ज्ञान खड़ा रहता है, साधकको भी ज्ञान खड़ा रहता है। निश्चयमें तो दृष्टि और लीनता, दो का ही काम है।

समाधान :- मोक्षमार्गमें वह होता है, बीचमें ज्ञान होता है। ज्ञान बीचमें विवेक करता है। फिर ज्ञान अधिक या कम, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु :- दृष्टिका जोर बढता जाये और भेदज्ञानकी धारा भी साथ-साथ बढती जाये।

समाधान :- भेदज्ञानकी धारा साथमें बढती जाये। ज्ञान उसप्रकारका बढता है कि

भेदज्ञानकी धारा बढती जाती है। भेदज्ञानकी उग्रता और लीनता और दृष्टिका जोर। ज्ञानमें भेदज्ञानकी धारा। बाकी अधिक जानना, वह नहीं। बीचमें अधिक जाने तो ठीक है। निर्मलता हो और स्वयंकी साधकदशामें एक पुष्टि, उसे समझनेका एक ज्यादा कारण होता है। ज्ञान विवेक करने वाला है, ज्ञान सब मार्ग बताने वाला है, ज्ञान साथमें हो तो कोई नुकसान नहीं है, अधिक ज्ञान हो तो। परन्तु अधिक होना ही चाहिए, ऐसा नहीं है। प्रयोजनभूत हो तो भी जाने।

वह तो ज्ञानस्वभाव आत्माका है, ज्ञान हो, किसीको क्षयोपशम हो और अधिक जाने, शास्त्र चिंतवन करे और अधिक शास्त्रको जाने तो उसमें कोई नुकसान नहीं है। लेकिन होना ही चाहिये, ऐसा नहीं है। ?

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२०

मुमुक्षु :- ... पुरुषार्थ हो, ऐसा लगता है।

समाधान :- सहज और पुरुषार्थ, दोनों है। उसकी दशा ही ऐसी है। बाहरमें ज्यादा नहीं रुक सकता। मुनिदशाकी दशा ऐसी है कि बाहरमें ज्यादा नहीं रह सकता। ऐसी सहज उसकी दशा है। परन्तु जुड़ जाता है और खींँचता है, दोनों।

... अनेक प्रकारकी बाह्य प्रवृत्ति, चक्रवर्ती होते हैं उन्हें बाहरकी अनेक प्रकारकी प्रवृत्तिमें उसके विकल्प रुकते हैं। उसमेंसे शुभमें आये, उसमेंसे स्वयं शुद्धताकी ओर अपनी डोरको खींँच लेता है। उसकी दशा हो उसके अनुरूप सहज है, बाकी खींँच लेता है। पुरुषार्थ करके आगे बढ़ता है। आगे जाते-जाते कितना समय लगे, उसका कोई नियम नहीं है। उसी भूमिकामें कितने ही साल निकल जाते हैं। फिर पुरुषार्थ बढ़े तो भूमिका पलटती है। कितनोंको जल्दी पलट जाती है, किसीको देर लगती है। कितने साल तक सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें गृहस्थाश्रममें चक्रवर्ती आदि रहते हैं। भरत चक्रवर्तीने अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है। एकदम पुरुषार्थ शुरू हो गया।

श्रुतज्ञान बीचमें आता है, परन्तु कितना श्रुतज्ञान.. कितने ही मुनिओंको श्रुतकेवली कहनेमें आता है। उतना श्रुतज्ञान उन्हें बीचमें आता है। कहते हैं न? श्रुतज्ञान और केवलज्ञानमें कोई अंतर नहीं है। परोक्ष और प्रत्यक्षका (ही अंतर है)। वह संवेदनकी अपेक्षासे कहा। ये जो श्रुतज्ञान श्रुतकेवलीको होता है, उसे भी ऐसा ही कहते हैं। वह परोक्ष है और केवलज्ञानीका प्रत्यक्ष है। परोक्ष-प्रत्यक्षका अंतर है। इसलिये केवलज्ञानी जितना श्रुतकेवली जानता है, ऐसा कहनेमें आता है। उतना (श्रुतज्ञान) बीचमें आता है। परन्तु काम तो मोक्षमार्गमें दर्शन और चारित्र(का मुख्य होता है)। ज्ञान काम तो बीचमें होता ही है, परन्तु ज्ञान विवेक करता है। अधिक जानना वह नहीं। बीचमें भेदज्ञानकी धारा (उग्र होती है)। भेदज्ञान कहाँ तक भाना? कि स्वरूपमें जबतक स्थिर नहीं हो, तबतक होता है। भेदज्ञान अत्रुट धारासे भाना। भेदज्ञान बीचमें कार्य करता है। भेदज्ञानकी उग्रता, ज्ञान वह कार्य करता है। भेदज्ञानकी उग्रता। दृष्टि द्रव्य पर है, भेदज्ञानकी उग्रता और लीनता।

मुमुक्षु :- बहुत बड़ा सिद्धान्त आ गया।

समाधान :- .. ऐसी उसे उपमा देते हैं-परोक्ष। बाकी केवलज्ञानीका प्रत्यक्ष (है)। बादमें कहते हैं न कि मेरा क्षयोपशमज्ञान कहाँ और प्रभु! आपका क्षायिक कहाँ और मैं कहाँ! ऐसा कहते हैं। अंतर्मुहूर्तमें मेरा उपयोग जानता है, आप तो एक समयमें जान सकते हो। मैं कहाँ, उसका कोई मेल नहीं है। आपका तो अनन्त (ज्ञान) और मेरा तो कितना आंशिक! उस अपेक्षासे श्रुतज्ञानको (परोक्ष) कहते हैं। यह तो क्षयोपशम क्षण-क्षणमें जानने वाला, उपयोग अंतर्मुहूर्त हो तब जाननेमें आये, आप तो एक समयमें जानते हो, उस अपेक्षासे बहुत फ़र्क़ है। केवलज्ञान अनन्त और क्षयोपशम तो एक अंतर्मुहूर्तमें जानने वाला, इसलिये थोड़ा उसका मेल नहीं बैठता इसलिये ऐसा कहते हैं। उसकी महिमामें ऐसा कहे कि श्रुतज्ञानी और केवलज्ञानी दोनों समान हैं, ऐसा कहनेमें आये। शास्त्रमें आता है, श्रुतज्ञानी और केवलज्ञान (दोनों समान हैं)। संवेदनकी अपेक्षासे आता है। परन्तु अन्दर दोनों ले सकते हैं।

समाधान :- ... मनुष्यदेह मिले, उसमें पंचमकालमें गुरुदेव मिले वह महाभाग्यकी बात है। सबको ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायककी सबको रुचि करवायी। शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न आदि गुरुदेवने ही सिखाया है। महाभाग्यकी बात है। भवका अभाव करनेका प्रसंग बना। नहीं तो समाज तो कहाँ पड़ा था। क्रिया आदि, शुभभाव। शुभाशुभ भावसे भिन्न आत्मा किसने बताया? गुरुदेवने बताया है। इसलिये सबको इतने संस्कार प्राप्त हुए हैं।

जीवने कितने जन्म-मरण किये हैं। एक-एक आकाशके प्रदेशमें, अनन्त अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी कालमें, एक-एक आकाश प्रदेशमें जन्म-मरण करते-करते बाहरके पुद्गल परमाणु लोकमेंसे जितने ग्रहण किये उतने छोड़े हैं। उतने जीवने भव धारण किये। आकाशके एक-एक प्रदेश पर जन्म-मरण, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी कालमें अनन्त जन्म-मरण धारण किये, उसमें ऐसे गुरुदेव मिले, ऐसा मार्ग मिला वह महाभाग्यकी बात है। गुरुदेवके प्रतापसे सबको यह मार्ग मिला है, महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- .. उस भावको दृढ़ करनेके लिये, उस भावमें अधिक-अधिक गहराईमें जा सके, ऐसा करनेके लिये, वांचन तो बराबर है, लेकिन साथ-साथमें .. जिससे एकदम दृढ़ हो, स्वरूपमें लीनता हो, आनन्द है...

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ। ज्ञायककी रुचि ज्यादा लगनी चाहिये। बाहरकी रुचि कम हो, अंतरकी जिज्ञासा, लगनी, भावना अन्दर बढाये। मैं तो ज्ञायक ही हूँ, यह शरीर मैं नहीं हूँ, ये शुभाशुभ विकल्प भी मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। इसप्रकार बारंबार प्रयास करता रहे। वांचन, विचार तो करे, लेकिन उसके साथ बारंबार भिन्न करनेका प्रयास करे कि मैं तो भिन्न ही हूँ। उसका स्वभाव पहचानकर कि यह जानने वाला है वही मैं हूँ। इसके सिवा

दूसरा है वह मैं नहीं हूँ। जो जानने वाला है वह मैं हूँ। और जानने वालेमें-स्वरूपमें लीन हो तो उसमें आनन्दादि अनंत गुण भरे हैं। परन्तु उसकी अनुभूति उसमें लीन हो तो होता है। परन्तु पहले उसे बराबर पहचानकर भेदज्ञानका प्रयास करे तो होता है। बारंबार भेदज्ञानका प्रयास करना पड़े। क्षण-क्षणमें, जागते-सोते, स्वप्नमें भेदज्ञानका अभ्यास बारंबार तीव्रतासे करे तो होता है।

यह चैतन्यद्रव्य है वह मैं हूँ, इसके सिवा दूसरा मैं नहीं हूँ। उसकी महिमा आये, उसे बराबर पहचाने, उसकी प्रतीति दृढ़ हो। प्रतीत दृढ़ हो तो उसमें लीनता होती है। बाहर जा रहे उपयोगको सवरूपकी ओर मोडे, उसमें लीन करे तो होता है। बारंबार उसके लिये प्रयास करना पड़े। जो चैतन्य है सो मैं हूँ, उसमें अनन्त गुण हैं और उसकी पर्यायें, अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको पहचाने और दूसरे पुद्गलके द्रव्य-गुण-पर्यायको पहचाने, फिर उसे भिन्न करे कि यह चैतन्य है वही मैं हूँ।

अनादिअनन्त शाश्वर हूँ, ये पर्याय प्रतिक्षण परिणमति है। उस पर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ, मैं तो शाश्वत आत्मा हूँ। पर्याय परिणमे, स्वयं परिणमित हो परन्तु मैं तो शाश्वत हूँ। इसप्रकार उसकी दृष्टि बारंबार द्रव्य पर जाये तो स्वरूपकी प्राप्ति हो। पहले उसका अभ्यास बारंबार करना। जबतक वह नहीं हो तबतक बाहरमें वांचन, विचार, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि शुभभावमें (जाये), परन्तु मैं तो उन सबसे भिन्न शुद्धात्मा हूँ, ऐसा ध्येय होना चाहिये। बारंबार उसका प्रयास होना चाहिये। बारंबार करते रहना। वह ऐसा है कि होता है, अपना स्वभाव है। इसलिये स्वयं करीब और समीप ही है, दूर नहीं है, परन्तु अनादिका अभ्यास विभावकी ओर हो गया है, इसलिये दूर हो गया है। अभ्यास बाहरका है, अंतरका अभ्यास बारंबार उसका प्रयास नहीं किया है, इसलिये दुर्लभ हो गया है। हो सकता है, अनन्त जीवोंने यह प्रयास करके भेदज्ञान करके स्वानुभूति करके केवलज्ञान प्रगट करके मोक्षमें गये हैं। हो सकता है। बारंबार उसका प्रयास करता रहे। नहीं हो तो छोड़ना नहीं, परन्तु बारंबार प्रयास करते रहना।

(ज्ञायकके) द्वार पर बारंबार टहेल लगाते रहे तो उसके द्वार खुल जाये। जैसे भगवानके द्वार पर टहेल लगाये तो भगवानके द्वार खुल जाते हैं। वैसे चैतन्यके द्वार पर, ज्ञायकके द्वार पर बारंबार उसका अभ्यास करनेकी टहेल लगाये तो उसके द्वार खुल जाये। उसमें थकना नहीं, बारंबार अभ्यास करते रहना।

मुमुक्षु :- रुचिका विषय तो इतना है कि मैं ज्ञायक परिपूर्ण आत्मा हूँ और बाकी सब मुझसे भिन्न है। ...

समाधान :- सच्ची प्रतीत हो तो अपनी श्रद्धा दृढ़ हो गयी, रुचिका विषय उतना हो गया। परन्तु जिसे अभी अन्दरसे सच्चा प्रगट नहीं हुआ है, भावना भाता है, उसकी

रुचि कभी मन्द पड़ती है, कभी तीव्र होती है, कभी मन्द-तीव्र हुआ करती है। इसलिये रुचिकी उग्रता करनी।

मुमुक्षु :- मेरा सबकुछ मुझमें है, उसमें कमी होनेसे ऐसा होता है? मेरा सबकुछ मुझमें है अथवा मेरा सुख और मेरा ज्ञान सब मुझमें है।

समाधान :- मुझमें है, उसकी रुचि, उसकी महिमा। बाहरमें एकत्व होकर बाहरकी रुचि बढ़ जाये, बाहरमें संतुष्ट हो जाये, ऐसा हो जाये तो रुचिकी मन्दता हो जाये। बाहरमें उसे कहीं तृप्ति नहीं हो, बाहरमें कहीं भी उसे संतुष्टपना नहीं हो और अंतरमें मुझे प्राप्त हो तो ही मुझे संतोष और तृप्ति हो। अन्दरमें ऐसी रुचि और ऐसा हुआ करे। रुचिकी उग्रता होती रहे। बाहरमें संतुष्ट नहीं हो। रुचिकी मन्दता-तीव्रता ...

जिसे यथार्थ भेदज्ञान होकर ज्ञायककी प्रतीत दृढ़ हो गयी उसे तो एकरूप हो गया, परन्तु जो अभी जिज्ञासामें है, बाहरमें संतुष्ट हो जाता है, बाहरमें तृप्त हो जाये, बाहरमें थोड़ा करे तो तृप्ति हो जाये और अंतरमें कुछ मन्दता हो जाये तो रुचिको तीव्र करे। इस अर्थमें है।

मुमुक्षु :- समझ हो कि श्रद्धान हो कि मैं अखण्ड स्वरूपसे ध्रुव तत्त्व रूप हूँ, परन्तु जबतक उसे पूर्णरूपसे नहीं प्राप्त करे, पूर्ण आनन्दकी अनुभूति नहीं हो, उस ओरकी रुचि बढ़ानी। श्रद्धान हो उसका पहला भाव कि यह मैं। उसे कैसे प्राप्त करना? मुझे मेरे गुणोंका, गुणधर्मोंका साहजिक रूपसे कैसे अनुभव हो, यही समझना, उसीका प्रयास, उसकी ही रुचि।

समाधान :- उसका ही बारंबार अभ्यास, उसका ही प्रयास करना कि मैं यह ज्ञायक हूँ। उसका यथार्थ ज्ञानस्वभाव पहचानकर, ज्ञानमात्र नहीं परन्तु पूर्ण ज्ञायकद्रव्य हूँ, उसे पहचानकर प्रतीत करे। बारंबार, यही मैं हूँ, ऐसी बारंबार दृढ़ता करके, यही मैं हूँ, दूसरा नहीं, ऐसे बारंबार (अभ्यास करे)। शरीरके साथ, विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि हो जाये, परन्तु मैं यह नहीं हूँ, मैं ज्ञायक ही हूँ। स्वयंको भूल जाये और दूसरेमें एकत्व हो जाये (तो) बारंबार, मैं यह ज्ञायक ही हूँ, इसप्रकार बारंबार दृढ़ता करे। ये जो अनन्त गुणोंसे भरपूर है वह मुझे कैसे प्राप्त हो? इसप्रकार बारंबार उसकी रुचि बढाता जाये। उसकी श्रद्धा दृढ़ करता जाये। श्रद्धा हो उसे ऐसा लगे कि श्रद्धा दृढ़ है। बाहरमें संतुष्ट हो जाये तो उसकी रुचिकी मन्दता हो जाये।

मुमुक्षु :- माताजी! उसे रुचिकी मन्दता कहना या रुचिका अभाव कहना?

समाधान :- अभाव नहीं, परन्तु उसे अन्दर थोड़ी तो खटक होती है। वह स्वयं ही अपना जान सके कि बाहरमें कितना संतुष्ट होता है और कितना अन्दर (प्रयास करता है)? स्वयं अपना जान सकता है। उतना समय हो गया, कुछ होता नहीं, ऐसा

समझकर प्रमाद हो जाये, रुचिकी मन्दता हो जाये, वह सब स्वयं ही जान सकता है। रुचिकी मन्दता, प्रयत्नकी मन्दता, वह सब साथमें है।

मेरेमें गुणोंका भेद लक्षणभेदसे है, वस्तुभेद नहीं है। उसके अनन्त गुण हैं, परन्तु वस्तु तो एक ही है। अनन्त गुणसे भरा मैं चैतन्य हूँ। ऐसा अखण्ड द्रव्य है। उस पर दृष्टि करे, यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। इसप्रकार बारंबार दृढ़ता करता रहे। बारंबार दृढ़ता करे। मैं यह हूँ और यह नहीं हूँ, एक-दो बार याद किया, फिर भूल जाये, फिर जैसा था वैसा हो जाये। रुचि तो अमुक .... करता है, लेकिन रुचिकी उग्रता हो, लगनी उग्र हो तो वह आगे बढ़ सकता है। मुझे आत्माके बिना कहीं चैन नहीं है, ऐसी उग्रता अन्दर होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ऐसी उग्रता..

समाधान :- उसप्रकारकी उग्रता होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- उसका नाम रुचिको बढ़ाते जाना।

समाधान :- हाँ, रुचिको बढ़ाते जाना, यही उसका अर्थ हुआ। अमुक प्रकारकी रुचि तो होती है। अमुक नक्की किया हो कि यह करने जैसा है, उस प्रकारकी जिज्ञासा तो उसे होती है। प्रयत्न उस ओर नहीं जाता है, इसलिये थोड़ी रुचिकी मन्दता होती है। जिसे ज्ञायककी दशा प्रगट हुयी, उसे तो एकरूप प्रतीति रहती है। फिर उसे आचरणमें आचरण विशेष नहीं होता है, इसलिये वह बाहर खड़ा है।

मुमुक्षु :- उसके पहले रुचिमें कम-ज्यादा, मन्द-तीव्र होता रहता है।

समाधान :- यथार्थ प्रगट नहीं हुआ है इसलिये।

मुमुक्षु :- पूर्ण स्वरूपकी समझ नहीं हुई है और उस ओर रुचि ज्यादासे ज्यादा हो, अभी भी अपूर्ण हूँ, इसलिये थोड़े मन्द कषाय हैं, पूर्णरूपसे प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिये ये थोड़े-बहुत बाकी है और वह तो नाश होनेके लिये है, ऐसी समझ होनी चाहिये न? जितना भी मन्द कषाय है वह तो नाश होनेके लिये है। समझ हुयी तो उसकी उग्रता बढ़ने पर...

समाधान :- पूर्ण पर्याय प्रगट हो, पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो वह छूट जानेवाला है। परन्तु अन्दर अपूर्णता (है)। द्रव्य वस्तु स्वभावसे पूर्ण है, वस्तुमें पूर्णता है, लेकिन उसकी पर्यायमें अपूर्णता है। वस्तु शक्तिमें जो है, शक्ति स्वरूप आत्मामें बाहरके विभावने अन्दर प्रवेश नहीं किया है। जैसे स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, लेकिन उसे बाहरके फूल लाल-पीले हो तो उसके कारण उसमें मलिनता दिखती है। मलिनतारूप उसका अमुक प्रकारका परिणमन होता है, कोई करवाता नहीं। स्फटिक वर्तमान लाल-पीले स्वरूप परिणमता है। परन्तु मूलमें जो स्फटिककी निर्मलता है, वह नाश नहीं हुयी है।

वैसे चैतन्य स्वभावसे स्फटिक जैसा निर्मल है। इसलिये उसमें किसी भी प्रकारका अंतरमें मूल तत्त्वमें किसी भी मलिनताने प्रवेश नहीं किया है। इसलिये अपूर्ण उसे पर्याय अपेक्षासे कहते हैं। शक्ति अपेक्षासे उसमें केवलज्ञानकी शक्ति भरी है। स्फटिक जैसे स्वभावसे निर्मल है, उसकी निर्मलताका कोई भी प्रकार शक्तिमें नाश नहीं हुआ है। स्फटिकमें किसी भी प्रकारकी अपूर्णता उसकी शक्तिमें नहीं है।

वैसे ज्ञायकमें किसी भी प्रकारकी अपूर्णता उसकी शक्तिमें नहीं है, परन्तु प्रगट वेदनमें नहीं है। जैसे स्फटिकमें प्रगटमें लाल दिखाई देता है, वैसे आत्मा शक्तिमें परिपूर्ण है, उसका कोई अंश मलिन नहीं हुआ है, लेकिन प्रगटमें उसके वेदनमें अपूर्णता है। उसे स्वानुभूतिकी लीनताका अंश (होता है)। सम्यग्दर्शन होता है तो आंशिक स्वानुभूति होती है। विकल्पसे छूटकर क्षणभर स्वयं स्वानुभूति प्रगट होती है। जिसे सम्यग्दर्शन होता है उसे स्वानुभूति निर्विकल्प दशामें आनन्दकी अनुभूति होती है। लेकिन उसे थोड़ी देर रहती है और फिरसे बाहर आता है।

ऐसे भेदज्ञान करते-करते, ज्ञायककी उग्रता करते-करते उसकी साधना बढ़ती जाये और पर्यायमें निर्मलता बढ़ती जाये, तब उसे पर्यायमें केवलज्ञानकी प्राप्ति पूर्ण होती है। स्फटिककी लाली निकल जानेपर स्फिटक प्रगट निर्मल होता है। वैसे शक्ति निर्मल है स्फटिक जैसा, परन्तु प्रगटमें उसे निर्मलताका वेदन नहीं है। इसप्रकार बारंबार स्वयं ज्ञायकको पहचानकर उसमें लीनता करता रहे तो पहले स्वानुभूति आंशिकरूपसे होती है। अभी केवलज्ञान लोकालोकको जाने वैसा केवलज्ञान नहीं हो जाता। लोकालोकका केवलज्ञान वीतरागदशा एकदम हो जाये, फिर रागका अंश भी उत्पन्न नहीं हो, रागका अंश कहाँ चला गया, था कि नहीं ऐसा हो जाये, तब वह स्वयंको पूर्ण प्रकाशित करे और अन्यको प्रकाशित करे ऐसा ज्ञान होता है। स्वानुभूतिमें वह नहीं होता। स्वभाव पूर्ण है, अभी साधना है। इसलिये निर्विकल्प दशा होती है उस वक्त स्वानुभूति, आनन्दकी अनुभूति होती है। लेकिन वह थोड़ी देर रहकर फिरसे आता है। तो भी मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी धारा उसे चलती है।

इसप्रकार बारंबार अनुभूति होते-होते उसे चारित्रदशा होती है। अंतरमें लीनता बढ़ती जाती है, मुनिदशा होती है और बादमें उसे पूर्णता होती है। फिर क्षण-क्षणमें स्वरूपमें ऐसा लीन होता है कि उसमें ऐसा लीन हो जाये कि फिर बाहर ही नहीं आये। ऐसी लीनता हो तब उसे केवलज्ञान होता है। तब अनन्त गुणसे सब प्रगट पूर्ण हो जाता है। तब पूर्णता होती है।

पहले पूर्णकी श्रद्धा होती है। और स्वानुभूति, पहले निर्विकल्प दशा होती है, उसमें स्वानुभूति-आनन्दकी अनुभूती होती है। लेकिन फिरसे बाहर आ जाता है। फिर भेदज्ञान

चालू रहता है। लेकिन वह सब समझता है कि ये सब रागकी दशा है, उससे भिन्न ही भिन्न रहता है। उसे अल्प-अल्प (राग) होता है, परन्तु वह छूटनेके लिये है। स्वयं पुरुषार्थ करके लीनता बढ़ाता जाये तो छूट जाता है। लेकिन पूर्ण तो जब केवलज्ञान होता है, मुनिदशा हो, अंतरमें मुनिदशा कैसी? बाहरसे ले ले ऐसे नहीं, अंतरमें स्वानुभूति बढ़ जाये। ऐसी बढ़ जाये कि बाहर रह नहीं सके। अंतर्मुहूर्त में आये, क्षण-क्षणमें बार-बार अन्दर जाता है, फिरसे अन्दर जाता है। ऐसी स्वानुभूति आनन्दकी लीनता होती है तब उसे केवलज्ञान होता है। उसे पूर्ण दशा कहते हैं। तब तक उसे पूर्ण है, लेकिन वह शक्तिमें पूर्ण है। शक्तिमें है तो प्रगट होता है। पानी स्वभावसे निर्मल है। लेकिन वह वर्तमान कीचड़से मलिन हुआ, लेकिन निर्मल औषधिसे निर्मल होता है। स्वभावसे-शक्तिसे आत्मा पूर्ण है। परन्तु उसे वेदन नहीं है, प्रगटता नहीं है, वेदन नहीं है, पूर्णताका।

... श्रद्धा, भावना, प्रयाससे अभी अंश प्रगट होता है और वह गृहस्थाश्रममें होता है। लेकिन उसमें बहुत आगे बढ़ जाये तब उसे एकदम ऐसी स्वानुभूति अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें आनन्दकी अनुभूति होती है, क्षण-क्षणमें होती है। फिर वह गृहस्थाश्रममें रह नहीं सकता। फिर मुनिदशा आ जाती है और फिर कोई उस भवमें, कोई दूसरे भवमें ऐसी आनन्दकी अनुभूति बढ़ जाती है, फिर पूर्ण केवलज्ञान होता है। फिर बाहर ही नहीं आता, अन्दर गया सो गया, स्वरूपमें समाये तो समा गये, फिर बाहर ही नहीं आते। फिर ऐसी वीतरागदशा हुई, रागका अंश उत्पन्न ही नहीं होता।

मैं ज्ञायक हूँ, मैं स्वभावसे पूर्ण हूँ, परन्तु अभी प्रगट नहीं है। रागका वेदन है। मैं भिन्न ज्ञायक हूँ, इसप्रकार रागसे भिन्न होते-होते, भेदज्ञान करते-करते उसे स्वानुभूतिकी दशा हो, तब उसे मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। .. पहले होता है, पूर्णता बादमें होती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२१

समाधान :- ... यहाँ बहुत रहते थे। करने जैसा यह एक ही है। (प्रतिकूल) संयोगमें शांति रखनी।

... ज्ञायक कैसे पहचानमें आये? बाहर शुभभावमें देव, गुरु और शास्त्र उसके हृदयमें होने चाहिये और अन्दरमें शुद्धात्मा सर्वसे भिन्न है उसे पहचाने तो यह करने जैसा है। गुरुदेवके प्रतापसे, पीछेसे कोई रोग आये तो शांति (रखे)।

बारंबार-बारंबार अन्दरमें गहराईमें ऐसा हो कि आत्मा ही ग्रहण करना है, आत्माके सिवा और कुछ नहीं चाहिये। ऐसी अंतरकी भावना हो और बारंबार मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी भावना रहे। अभी यथार्थ ग्रहण नहीं हुआ है, परन्तु बारंबार उसका विचार, उसीके बारंबार विचार करता रहे, उसका मंथन करता रहे, लगनी लगाये। ऐसा करे तो अन्दर संस्कार पड़ते हैं। अन्दरसे गहराईसे हो तो। ऊपर-ऊपरसे हो तो नहीं पड़ते। अन्दर गहराईसे (होना चाहिये)।

मुमुक्षु :- स्वयंको मालूम पड़ता है?

समाधान :- स्वयंको मालूम पड़े या नहीं पड़े। गहराईसे हो तो स्वयंको मालूम पड़े भी और नहीं भी पड़े। मालूम पड़े ही ऐसा कुछ नहीं है।

मुमुक्षु :- स्वयंको एक ही लगन हो तो ही पड़े?

समाधान :- तो ही पड़े। लगनी अन्दरकी गहराईसे होनी चाहिये। दूसरा कुछ भी रुचे नहीं, एक आत्मा ही रुचे। ऐसे अन्दरकी गहराईसे संस्कार हो तो पड़े, गहरी रुचि हो तो पड़ते हैं। अन्दरसे उसे रुचि जागृत हो जाती है। ऐसे कोई प्रसंग बने तो उसे ऐसा लगता है कि, मुझे यह नहीं चाहिये, मुझे कुछ और चाहिये। मुझे आत्मा चाहिये। ऐसी अंतरसे उसे स्फुरणा होती है। अंतरके गहरे संस्कार हो तो। ऐसे कोई प्रसंग देखे, देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य प्राप्त हो, उसे अन्दरसे स्फुरणा हो कि मुझे यह चाहिये। अन्दरसे रुचि जागृत हो जाये। पुरुषार्थ करे तो होता है, लेकिन रुचि जागृत हो जाये।

आता है न? 'क्रोधादि तरम्यता सर्पादिकनी मांहि, पूर्व जन्म संस्कार...' पूर्वके संस्कार हो वह अमुक भवमें स्फुरित हो जाते हैं। अमुक प्रकारकी जो स्वयंकी लायकात

हो, वह स्वयं ही अंतरसे स्फुरित होती है। ऐसे शुभभाव हो, ऐसा पुण्य बन्धे कि देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें (जाये)। अन्दरसे स्वयंकी रुचि जागृत हो जाये कि मुझे तो यही चाहिये, मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

मुमुक्षु :- ऐसा सब होनेका कारण पूर्वके संस्कार?

समाधान :- पूर्वके संस्कार (कारण) है। उसे द्रव्यदृष्टिसे नहीं कहनेमें आता, लेकिन ऐसे एक जातके संस्कार पड़ते हैं। अमुक जातके जो विभावके संस्कार चले आ रहे हैं, पूर्वमें जो होते हैं, फिरसे जो भव धारण करे उसमें उस जातके संस्कार, उस जातके शुभभाव, कषाय आदि सब होते हैं, ऐसा दिखनमें आता है। इसप्रकार अंतरमें जो स्वयंकी रुचि हो, वह रुचि उसे जागृत होनेका कारण होती है। फिर उसे बढ़ानेके लिये स्वयंका वर्तमान पुरुषार्थ काम करता है। ज्यादा कार्य करनेके लिये।

मुमुक्षु :- वर्तमानमें जिसे सुख ही नहीं है, उसे..

समाधान :- किसीको पूर्वके संस्कार हो तो .. किसीको नहीं भी हो। वर्तमान जीवकी ऐसी कोई योग्यताके कारण बैठ जाये। वैसी उसकी योग्यता, कोई प्रकारकी कोमलता लेकर आया हो उसे बैठ जाता है। बाकी किसीको संस्कार होता है और किसीको नहीं भी हो। सभीको संस्कार ही हो, ऐसा नहीं होता। तो-तो जीवको पहली बार हो तो उसे पहलेके संस्कार.. निगोदमेंसे निकलकर पहली बार होता है। संस्कार ही हो, ऐसा नहीं होता। लेकिन किसीको संस्कार होते हैं, किसीको संस्कार नहीं होते।

स्वयं वर्तमानमें तैयारी करे कि मुझे आत्मा ही चाहिये। बारंबार उसका रटन, लगनी, जिज्ञासा, विचार, उसीके विचार, वांचन आत्माके लिये करता हो। ध्येय एक आत्माका, आत्माका प्रयोजन होता है, दूसरा कोई प्रयोजन नहीं होता। बाहरका किसी भी प्रकारका प्रयोजन नहीं है। सबकुछ आत्मार्थके लिये है। अंतरसे ऐसा हो तो उसे संस्कार (पड़ते हैं)। उसके आत्माको वही रुचे, वही पोसाय, दूसरा कुछ अंतरसे नहीं रुचे, दूसरा कुछ पोसाता नहीं, ऐसा आत्माका जीवन हो जाये कि दूसरा कुछ पोसाय नहीं। एक सत्की रुचि, एक सत् आत्मा कैसे प्राप्त हो? ऐसा उसे पोसाता हो तो उसे दूसरे भवमें भी वह संस्कार स्फुरित हुए बिना नहीं रहते। ऐसा होना चाहिये। उसे वही पोसाय, दूसरा कुछ नहीं, दूसरा कुछ अंतरमें रुचे नहीं। अंतरमें उस जातकी रुचि और लगनी हो तो वह संस्कार उसे रहते हैं और स्फुरायमान भी होते हैं।

मुमुक्षु :- वह संस्कार स्फुरे बिना नहीं रहे।

समाधान :- स्फुरे बिना नहीं रहते। स्फुरे यानी उसे ऐसा लगे, कहीं भी रस नहीं आये। आत्माकी बातमें ही रस आये। ऐसा अंतरमेंसे उस जातका हो जाता है। सहज ही स्वयं ऐसा रटन वह लेकर आया है, घूटन करके आया है।

मुमुक्षु :- ... नहीं हो तो संस्कार पड़े तो भी उसे..

समाधान :- तो भी अच्छा है। सम्यग्दर्शन जितना पुरुषार्थ हो जाये तो उत्तम है, लेकिन नहीं हो तो उसकी बारंबार लगनी लगाता हो, उसीका रटन करता हो, संस्कार पड़े तो भी अच्छा है। 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।' वार्ता भी अंतरकी प्रीतिसे सुनी है तो भावि निर्वाण भाजनं। उसमें उसकी अंतरकी प्रीति, अन्दरकी रुचि और प्रीति ही काम करती है। भविष्यमें वह उसे स्फुरे बिना नहीं रहती। परिणति प्रगट हुए बिना नहीं रहती। अंतरकी प्रीतिसे बात सुनी है और अपूर्वता लगी है तो अंतरसे लगी अपूर्वता फिर जाती नहीं। आये बिना नहीं रहती।

देशनालब्धि होती है, वह उसे कहाँ.. होता नहीं। भगवानकी वाणी या गुरुदेवकी वाणी सुनकर अंतरमेंसे कोई अपूर्वता लगी और अंतरमेंसे आत्मा कुछ अलग है और ये कुछ अलग ही कहते हैं, ऐसी देशना अंतरमें ग्रहण हो गयी तो वह देशना भी काम करती है, स्वयंको कुछ मालूम नहीं होता। वह सब संस्कार ही काम करते हैं। द्रव्यदृष्टिसे उसे नहीं कहनेमें आता, फिर भी निश्चय-व्यवहारकी संधि है। वैसे वह संस्कार भी है। देशनालब्धि अंतरमें होती है, वह भी प्रगट होती है। उस वक्त उसे मालूम नहीं होता, अप्रगटरूपसे अपूर्वता लगती है। अंतरमें जो परिणति मुड़ी है वह अप्रगट है। ये कुछ अलग अपूर्व है। अपूर्वताका पोषण अन्दरसे हो गया, वह उसे आये बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- संस्कारसे मिथ्यात्व गलता होगा?

समाधान :- मिथ्यात्वका रस, दर्शनमोहनीय मन्द पडता है। दर्शनमोहनीय तो मन्द है। लेकिन दर्शनमोहनीय चला नहीं जाता। वह तो दर्शनमोहनीयकी मन्दता है। मिथ्यात्वका रस मन्द पड़ता है। अपनी ओरकी अपूर्वता लगती है तो। सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करता है तो भी दर्शनमोहनीय मन्द है। परन्तु अन्दर आत्माकी अपूर्वता लगे, उस पूर्वक जो दर्शनमोहनीय मन्द पड़ता है, वह अलग रीतसे पड़ता है। जो जूठे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करे, उससे तो जो सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करता है, उसका दर्शनमोहनीय मन्द है। परन्तु अन्दरसे अपूर्वता लगकर ग्रहण हो, वह दर्शनमोहनीय अलग प्रकारसे (मन्द) पड़ता है। अब आत्माकी ओर ही मुड़ेगा।

मुमुक्षु :- अन्दरकी भक्ति आदि ... करते हुए, आत्माकी ओरके मुडे जो संस्कार हैं, उसमें मिथ्यात्वका ज्यादा गलना होता है?

समाधान :- वह अलग प्रकारसे (होता है)। देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा भी ऐसी हो, अपूर्व रीतसे हो तो उसमें भी दर्शनमोहनीय अलग रीतसे मन्द पड़ता है। देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा भी उसे अपूर्व प्रकारसे (होती है)। ये गुरु कुछ अलग कहते हैं, देव

कुछ (अलग है), शास्त्रमें कुछ अलग आता है, इसप्रकार अलग रीतसे ग्रहण हुआ तो वह अलग रीतसे ही है। लेकिन रूढ़िगतरूपसे ग्रहण हुआ हो वह अलग है। अन्दर अपूर्व रीतसे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा ग्रहण हो, अपूर्व रीतसे, तो उसमें दर्शनमोहनीय मन्द पड़ता है। अब, अपनी ओर ही उसकी परिणति आयेगी, उस प्रकारसे मन्द पड़ता है।

मुमुक्षु :- माताजी! देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति और आत्माकी ओर वृत्ति, उसका मेल है?

समाधान :- हाँ, मेल है। आत्माकी भक्ति, ज्ञायककी भक्ति उसे शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति भी साथमें ही होती है। दोनोंका मेल है। ज्ञायककी भक्ति हो तो देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति नहीं होती, ऐसा नहीं होता। जिसे ज्ञायककी भक्ति हो उसे देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति, शुभभाव होता है। अशुभभाव छूटकर, अशुभभावसे शुभभावमें आता है। अशुभभावका नाश नहीं होता। लेकिन वह शुभभावमें खड़ा रहता है। साथमें भक्ति आये बिना नहीं रहती।

ज्ञायककी रुचि हुयी। ज्ञायककी यथार्थ श्रद्धा होती है उसे भी देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति (होती है)। सम्यग्दर्शन हो, भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, स्वानुभूति हो तो भी उसे बाहर आये तब देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति होती है। तो रुचि वालेको तो होगी ही। मुनि होते हैं, छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं, ऐसे मुनिराज, जो बारंबार स्वरूपमें लीन होते हैं, स्वानुभूतिमें, वे भी बाहर आये तो उन्हें भी देव-गुरु-शास्त्रकी उनकी भूमिका अनुसार भक्ति होती है, उन्हें शुभभाव होते हैं। उन्हें पूजा आदि कार्य नहीं होते। परन्त उन्हें शास्त्रका वांचन, शास्त्र लिखे, भक्तिके स्तोत्र रचे, ऐसी सब भक्ति होती है। पद्मनन्दि आचार्यने भक्तिके स्तोत्र रचे हैं।

मुमुक्षु :- सुखके लिये मिथ्या प्रयत्न करते हैं, फिर भी सुखी नहीं होते, उसका क्या उपाय है?

समाधान :- सुखके लिये मिथ्या प्रयत्न करता है। सुख अंतरमें है, बाहर नहीं है। बाहर ढूंढता रहे, बाहरसे सुख नहीं आता। सुख तो अंतरमें है। गुरुदेवने मार्ग बताया कि जो तत्त्व हो उस तत्त्वके अन्दर सुख (होता है)। सुख आत्माका स्वभाव है, बाहरसे नहीं मिलता। सुखसे भरा आत्मा जानने वाला, सुखसे भरा, आनन्दसे भरा आत्मा है। आत्माको पहचाने तो सुख प्राप्त होता है। और पहचाननेके लिये उसके विचार, वांचन आदि करे। अन्दर लगनी लगाये, जिज्ञासा करे तो आत्मा पहचानमें आता है। आत्मा कैसे पहचानमें आये, उसकी अंतरसे लगनी लगानी चाहिये कि सुख कैसे मिले?

बाहरसे तो अनन्त कालसे सुखके लिये बहुत व्यर्थ प्रयत्न किया, सुख मिलता नहीं। सुख जहाँ है, वहाँ मिलता है। मृग वनमें घूमता है। उसकी कस्तूरीसे वन सुगन्धित

हो जाता है, लेकिन कस्तूरी तो उसके पास ही है। अन्दर है। ऐसे आनन्दगुण स्वयंका है और स्वयं बाहर ढूंढता है। स्वयंमें आनन्द भरा है। अंतर दृष्टि करे तो मिले ऐसा है। भेदज्ञान करे कि यह शरीर भिन्न है और आत्मतत्त्व भिन्न है। आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न है, शरीरके भिन्न हैं। अन्दर विभाव होता है वह सब आकूलता है, अपना स्वभाव नहीं है। अपना स्वभाव एक जानने वाला आत्मा है। उस जानने वालेका स्वभाव पहचानकर अन्दरसे पहचानना चाहिये। उसका भेदज्ञान करना चाहिये। भेदज्ञान करनेके लिये अंतरकी लगनी लगाये, जिज्ञासा लगाये, विचार, वांचन (करे)। जब तक नहीं होता तब तक विचार, वांचन, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा शुभभावमें होती है। अंतरमें शुद्धात्माको पहचाननेकी लगनी लगाये तो वह पहचाना जाये ऐसा है। बाकी अनन्त कालसे जन्म-मरण किये, भवका अभाव होनेका यह एक ही उपाय है। आत्माको पहचानना, भेदज्ञान करना, अन्दर लगनी लगानी, जिज्ञासा लगानी। उसके लिये विचार, वांचन आदि करना।

मुमुक्षु :- ..लेकिन अन्दरमें जैसा होना चाहिये, चाहे कुछ भी करे अन्दरमें ..

समाधान :- विधि तो यही है, स्वयंको पहचानना, भेदज्ञान करना, वही रीत है। मार्ग तो एक ही है। परन्तु पुरुषार्थ स्वयंको करना है। पुरुषार्थ करे नहीं तो होता नहीं। कारण दे नहीं तो कार्य कहाँ-से आये? कारण स्वयंको देना है, पुरुषार्थकी मन्दता है, आगे जा नहीं सकता। अन्दरकी गहराईसे रुचि लगानी चाहिये, पुरुषार्थ अन्दरसे तीव्र करना चाहिये, तो होता है। पुरुषार्थकी मन्दता है, बाहर दौड़ता रहता है और अंतर दृष्टि करता नहीं, तो कहाँ-से हो? उसे दिन-रात लगनी लगनी चाहिये। कहीं चैन नहीं पड़े। एक आत्मा.. आत्माके सिवा कुछ रुचे नहीं। ऐसी अन्दरसे लगनी लगे तो स्वयंकी ओर पुरुषार्थ करे तो होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२२

मुमुक्षु :- उत्पाद और व्यय तो क्रमशः होते ही रहते हैं।

समाधान :- उत्पाद, व्यय और ध्रुव, सब एक समयमें होता है। जिस समय उत्पन्न होता है, उसी समय व्यय होता है, उसी समय ध्रुव है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव आत्माका स्वरूप है। उत्पाद, व्यय, ध्रुव, प्रत्येक द्रव्यमें उत्पाद, व्यय, ध्रुव होते रहते हैं। स्वभावकी ओर मुड़े तो स्वभावका उत्पाद हो। ये विभावकी ओर है तो विभावका उत्पाद होता है।

मुमुक्षु :- स्वभावकी ओर मुड़े तब उसे उसका उत्पाद-व्यय कैसे ख्यालमें आये?

समाधान :- स्वभाव तो अनादि अनन्त स्वयं ही शाश्वत ज्ञायक आत्मा है। वह तो ध्रव स्वरूप है। ध्रुव भी अपनी ओर मुड़कर जो उत्पाद हुआ, अपनी ओर स्वभावकी पर्याय हुयी, उसका स्वयंको वेदन हुआ, वह स्वयंका उत्पाद हुआ।

मुमुक्षु :- फिर व्यय?

समाधान :- व्यय-विभावका व्यय हुआ और स्वभावका उत्पाद हुआ।

मुमुक्षु :- स्वभावका उत्पाद और विभावका व्यय, उस समय ध्रुव?

समाधान :- उस समय ध्रुव स्वयं है।

मुमुक्षु :- यानी ज्ञायक स्वभाव?

समाधान :- हाँ, ज्ञायक ध्रुव है। सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुयी, सम्यग्दर्शनका उत्पाद हुआ और मिथ्यात्वका व्यय हुआ। मिथ्यात्वका नाश हुआ और सम्यग्दर्शनका उत्पाद हुआ और आत्मा ध्रुव है।

मुमुक्षु :- ध्रुव, पर्यायको स्पर्श नहीं करता है न?

समाधान :- ज्ञायक स्वयं ध्रुव ही है।

मुमुक्षु :- तो पर्यायार्थिक ...

समाधान :- .. उत्पाद है वह पर्याय है। पर्याय होती ही रहती है। अनादिसे। अन्दर स्वभावका उत्पाद, विभावका व्यय। फिर जिसकी दृष्टि आत्माकी ओर गयी उसे स्वभावका उत्पाद, स्वभावकी निर्मलता, स्वभावका उत्पाद होता रहता है।

मुमुक्षु :- विभावदशाका..

समाधान :- हाँ, विभावका व्यय होता जाता है।

मुमुक्षु :- इसीलिये स्थिरता..

समाधान :- स्वयंकी ओर मुड़े तो स्थिर पर्याय प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आंशिक होते हैं। चारित्र-स्वरूपाचरण चारित्र होता है। अस्थिरताकी पर्याय उसे खड़ी है।

मुमुक्षु :- .. कैसे पहचानना और कैसे प्राप्त करना? उसकी रीत (क्या)? हमारी तो अभी शुरूआत है तो कैसे उसे समझनेकी रीत है?

समाधान :- आत्मा तो जानने वाला है। यह जड़ शरीर तो कुछ जानता नहीं। जानने वाला आत्मा जानने वाला है, वह जानने वाला स्वयं है। लेकिन उस जानने वालेकी महिमा आनी चाहिये कि यह जानने वाला है वही मैं हूँ। यह शरीर मैं नहीं हूँ। अन्दर आकूलता होती है, वह मेरा स्वभाव नहीं है। जानने वाला है वही मैं हूँ। जानने वालेमें अनन्त गुण है। जानने वाला महिमावंत है। उस जानने वालेकी महिमा लाकर जानने वालेको पहचानना चाहिये। उसे पहचाननेका प्रयत्न करना चाहिये। उसके लिये आत्मा कौन है? वह द्रव्य क्या है? उसमें गुण क्या है? उसकी पर्याय क्या है? यह सब उसे पहचानना चाहिये और उसका भेदज्ञान करना चाहिये कि यह शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है। उसकी तैयारीके लिये अन्दर लगनी लगानी चाहिये, जिज्ञासा लगानी चाहिये, बाहर कहीं रुचे नहीं, अंतरमें रुचि लगे, कहीं चैन पड़े नहीं, यह उसकी विधि है। लेकिन तैयारी स्वयंको करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- उसी दशामें ध्रुव तो नित्य टिकता है, उत्पाद-व्यय सिद्धदशामें कैसे लागू होते हैं?

समाधान :- सिद्धदशामें जो वस्तु है उसका स्वभाव ही द्रव्य-गुण-पर्याय है। उसमें अनन्त गुण है। सिद्ध भगवानमें अनन्त गुण हैं। अनन्त गुणकी पर्याय होती रहती है। केवलज्ञान प्रगट हुआ, उस केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट होती ही रहती है। आनन्दकी पर्याय होती ही रहती है। आत्मा अक्रिय ध्रुव है लेकिन उसमें पारिणामिकभाव है। इसलिये क्रिया (होती है)। अक्रिय होने पर भी क्रियात्मक है। उसे परिणमन चलता ही रहता है। प्रत्येक गुणका कार्य आता है। ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है, आनन्द आनन्दरूप कार्य लाता है, ज्ञान ज्ञानरूप कार्य लाता है। चारित्र चारित्ररूपसे कार्य लाता है। ऐसे प्रभुत्व, विभुत्व आदि अनन्त गुण अपने-अपने कार्य रूप परिणमते हैं। सिद्धदशामें भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभावमें होते ही रहते हैं।

मुमुक्षु :- कारणशुद्धपर्याय है..

समाधान :- कारणशुद्धपर्याय अलग है। सिद्ध भगवानमें जो उत्पाद-व्यय-ध्रुव होते

हैं, वह तो प्रत्येक गुणका कार्य आता है। कारणशुद्धपर्याय तो अनादि अनन्त है। वह तो पारिणामिकभावरूप शुद्ध है। वह अलग है। ये तो सिद्ध भगवानमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव होते ही रहते हैं। प्रत्येक द्रव्यमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव होते हैं। परमाणुमें भी होते हैं और सिद्धमें भी होते हैं। कारणशुद्धपर्याय अलग है।

मुमुक्षु :- वह तो द्रव्यकी भाँति..

समाधान :- द्रव्यमें अनादि अनन्त त्रिकाल है, वह अलग है।

मुमुक्षु :- उसे ध्रुवकी तरह लेना?

समाधान :- ध्रुव जैसी है, अनादि अन्त है, वह अलग है।

मुमुक्षु :- उत्पाद-व्यय उसे लागू नहीं पड़ते।

समाधान :- वह नहीं, वह तो अनादि अनन्त ध्रुव है। सिद्ध भगवान स्वयं शुद्धरूप परिणमित हो गये। केवलज्ञानकी पर्याय परिणमित होती ही रहती है, आनन्दकी पर्याय (आनन्दका) कार्य लाये। प्रत्येक गुणकी पर्याय (होती ही रहती है)। उसमें अनन्त गुण हैं, अनन्त गुणकी पर्याय कार्य करती रहती है। उसमें ऐसी क्रिया होती ही रहती है, सिद्ध भगवानमें।

मुमुक्षु :- आनन्दका वेदन उन्हें होता है?

समाधान :- आनन्दका वेदन आदि क्रिया होती रहती है। सिद्ध भगवान बिलकूल कूटस्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- साथमें निर्मल पर्यायका परिणमन..

समाधान :- निर्मल पर्यायका परिणमन सिद्ध भगवानमें पूर्ण रूपसे होता रहता है। स्वानुभूतिमें अंश प्रगट हुआ और सिद्ध भगवानमें पूर्ण कार्य होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान, दर्शन, चारित्रमें ज्ञानकी पर्याय..

समाधान :- दर्शन मुख्य, कोई अपेक्षासे ज्ञानको मुख्य लेते हैं, कोई अपेक्षासे दर्शनको लेते हैं। सम्यग्दर्शन मोक्षमार्गमें कार्य करता है, इसलिये सम्यग्दर्शन (मुख्य है)। लेकिन पहले मार्ग जाननेके लिये ज्ञान होता है, इसलिये ज्ञान लेते हैं। फिर मुक्तिमार्गमें सम्यग्दर्शन मुख्य है। दोनों अपेक्षासे दोनों लेते हैं।

समधान :- गुरुदेव तो गुरुदेव थे, गुरुदेव तो कोई अलग ही थे। शाश्वत रहें, ऐसी सबकी भावना होती है। भावना अनुसार इस कुदरतके आगे किसीका कुछ नहीं चलता। वह बात कोई कह सकता है? गुरुदेवके गुणका वर्णन.. गुरुदेव तो महापुरुष इस पंचम कालमें जन्मे, महाभाग्यकी बात है। सबको उनकी वाणी मिली, कोई अतिशयतायुक्त सातिशय वाणी थी। सबको आत्मा दिखे ऐसी उनकी वाणी थी। भेदज्ञान हो जाये, स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे जीव अटकता है। बाकी उनकी वाणी तो कोई अलग ही

थी। उनका द्रव्य तीर्थंकरका, इस पंचमकालमें पधारे कहाँ-से? महाभाग्य, पंचमकालका महाभाग्य कि गुरुदेव यहाँ पधारे। उनके गुणोंका वर्णन क्या करें? गुरुदेव तो सर्वोत्कृष्ट इस पंचमकालमें थे।

मुमुक्षु :- प्रज्ञा खीले तो होता है, तो प्रज्ञा खीलानेकी कला कैसी होती है?

समाधान :- भले बुद्धिसे, विचारसे नक्की करे। पहले तो बुद्धिसे, विचारसे नक्की करना होता है। चारों ओरसे युक्तिसे, न्यायसे नक्की करे। लेकिन प्रज्ञा तो किसे कहते हैं? ज्ञायकको पहचाने तो उसे प्रज्ञा कहते हैं। ज्ञायकको पहचानकर कि यह मैं ज्ञायक, यही ज्ञायक है। जिस क्षण रागादि होते हैं, उसी क्षण यह ज्ञान है और यह राग है, ऐसे भिन्न करे तो यहाँ प्रज्ञा शुरू होती है।

मुमुक्षु :- क्षण-क्षणमें अनुभव होता जाता है।

समाधान :- हाँ, क्षण-क्षणमें उसे भेदज्ञान वर्तता ही है। उसे प्रज्ञा कहते हैं। (उसके पहले) प्रज्ञा नहीं है। पहले तो बुद्धिसे ही नक्की करना पड़ता है। पहले साधन तो उसे बुद्धि ही होती है। बुद्धिसे नक्की करे।

मुमुक्षु :- आगे बढ़नेके बाद खीलती है?

समाधान :- हाँ, बादमें होती है। बुद्धि, बुद्धिके साथ उसे ज्ञायककी महिमा होनी चाहिये। उसे विरक्ति होनी चाहिये कि इसमें कहीं भी सुख नहीं है। सुख आत्मामें है। ऐसा सब होना चाहिये। जिज्ञासा, भावना, बुद्धिसे नक्की (करना)।

मुमुक्षु :- जीवन उतना उस रूप हो जाना चाहिये।

समाधान :- हाँ। सच्चा तो उसे बादमें प्रगट होता है। पहले तो बुद्धिसे नक्की करता है। बुद्धि और बुद्धिके साथ शुष्कता नहीं होती। मुझे आत्माका करना है। ज्ञायककी महिमा आये, ये सब आकूलता है, सुख कहीं भी नहीं है। ये विकल्पकी जालमें सुख नहीं है, ऐसे उससे विराम लेकर अन्दर जाये। विराम यानी उसे उस जातका वैराग्य आता है। और बुद्धिसे नक्की करे।

मुमुक्षु :- बहुत कठिन है।

समाधान :- कठिन है, लेकिन स्वयंका है। करे तो हो सके ऐसा है। कहीं दूर नहीं है। समीप (है), स्वयं ही है। अनादिसे दूसरा अभ्यास हो गया है इसलिये कठिन लगता है। इसका अभ्यास ऐसा हो जाये, ऐसा प्रयास करे, बारंबार करे तो सहज हो जाता है। परन्तु दूसरा अभ्यास ज्यादा है और यह अभ्यास कम है, इसलिये कठिन लगता है।

मुमुक्षु :- बाहर खिँचा जाता है।

समाधान :- बाहर खिँचाव रहता है। उस प्रकारका परिचय हो गया, इसलिये

ऐसा होता है। उसके लिये सत्संग आदि हो तो होता है। तो यह संस्कार दृढ़ रहे। वहाँ मुंबईमें दूसरे क्षेत्रमें फ़र्क़ पड़ता है न। वहाँ मन्दिर आने-जानेका होता होगा? करते रहो, नक्की करो। बाहरमें सब खड़ा हो जाता है न, क्षेत्र बदले तो सब परिचय बदल जाता है। स्वयंकी उतनी दृढ़ता होनी चाहिये। स्वयंको पुरुषार्थ करना चाहिये।

गुरुदेवने सब उपदेश दिया है। आप लोगोंने उपदेश बहुत बार सुना होगा। बचपनमें उपदेश सुना होगा, वह सब याद करना। गुरुदेव इस कालमें पधारे, महाभाग्यकी बात! ऐसे सत् स्वरूपकी पहचान करवाने वाले पंचमकालमें कोई नहीं था, गुरुदेव पधारे तो सबको यह सत् स्वरूप जानने मिला। मार्ग गुरुदेवने बताया।

मुमुक्षु :- ... अन्य किसीकी राह देखनी नहीं पड़े, इस थोड़ा (स्पष्ट कीजिये)।

समाधान :- जरूरत नहीं पड़े अर्थात् द्रव्य-वस्तु उसे कहते हैं कि, वस्तु स्वयं स्वाधीन है। वस्तु स्वयं स्वतःसिद्ध है। उसे किसीने बनायी नहीं है। द्रव्य स्वरूप स्वयं द्रव्य ही है। उसके कार्यके लिये बाहरसे कुछ आये तो कार्य हो, ऐसा द्रव्य नहीं होता। द्रव्य स्वतंत्र होता है। उसका कार्य-उसकी परिणति अन्दर प्रगट हो, वह स्वतंत्र होती है। उसे कोई साधन आये या बाहरके कोई साधन मिले तो उसका कार्य हो, ऐसा नहीं होता। उसके कार्यकी तैयारी अन्दर हो तो साधन तो हाज़िर ही होते हैं। उसीका नाम द्रव्य है कि उसके लिये कोई पराधीनता नहीं होती। वह स्वयं स्वाधीन हो, उसे ही द्रव्य कहते हैं। उसके कार्यके लिये किसीकी राह नहीं देखनी पड़ती। ऐसा उसका अर्थ है। अनन्त शक्तिवान है।

चक्रवर्ती राजा उसे कहें कि सब ऋद्धि उसके पास हो। उसकी ऋद्धिके लिये किसीका इंतजार नहीं करना पड़े। चक्रवर्ती ऐसा होता है। वैसे यह चक्रवर्ती राजा, उसके कार्यके लिये अन्य किसीकी जरूरत नहीं पड़ती, अन्य साधनोंकी। स्वयं सर्व सामर्थ्यवान है। प्रत्येक द्रव्य। अब क्या करना? अब यह साधन नहीं है, तो कैसे आगे बढ़ा जायेगा? स्वयं तैयार हो तो सब साधन होते ही है। अपनी तैयारी होनी चाहिये। स्वयं स्वतंत्र परिणामी द्रव्य है। उसीका नाम द्रव्य कहते हैं।

मुमुक्षु :- सचेत और अचेत, दोनोंमें ..

समाधान :- नहीं, नहीं, वह नहीं। स्वयं स्वयंके लिये स्वतंत्र है। दूसरेके लिये नहीं, दूसरेके लिये नहीं।

मुमुक्षु :- नहीं, अचेत जड़ द्रव्य है..

समाधान :- स्वतंत्र है। जड़ जड़में स्वतंत्र, चेतन चेतनमें स्वतंत्र। सब स्वतंत्र ही है। परमाणु स्वयं स्वतंत्र। सब स्वतंत्र हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति सब द्रव्य स्वतंत्र हैं। उसके कार्यके लिये किसी भी द्रव्यकी किसीको जरूरत नहीं है। साधनोंको निमित्त-नैमित्तिक

सम्बन्ध है। बाकी उसे किसीके लिये राह नहीं देखनी पड़ती। प्रत्येक द्रव्यमें प्रत्येक स्वतंत्र है। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय स्वयं स्वतंत्र परिणमते हैं। उसका नाम ही द्रव्य है, नहीं तो द्रव्य कैसा? स्वतंत्र द्रव्य (है)। वैसा पराधीन द्रव्य जगतमें होता ही नहीं। गुरुदेव कहते थे न? भगवान आत्मा है। स्वतंत्र है। (द्रव्यमें) कुछ कम नहीं होता, सब पूरा ही होता है। वह तो पुण्य है, ये तो स्वतंत्र द्रव्य है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! ऐसा है क्या, एक बार अनुभूति हो, फिर वह जब चाहे तब अनुभूति कर सके? चाबी हाथ लग गयी, जब चाहे तब अनुभूति करे।

समाधान :- हाँ, कर सके। स्वयं अन्दर विरक्त हो तब कर सके। बाहरसे उपयोग स्वरूपमें समेट लेना वह अपने हाथकी बात है। स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे बाहर अटका है। कोई उसे रोकता नहीं। उसकी भावना उग्र हो ... भावना उग्र हो कि स्वरूपमें ही लीन होना है, तो हो सकता है। मार्ग उसने जाना है। भावना उग्र हो कि स्वरूपमें लीन होना है, बाहरमें नहीं रुकना है, तो हो सकता है। उसे कोई रोकता नहीं। स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे अटकता है। लीनतामें आगे नहीं बढ़ता तो अपने पुरुषार्थकी मन्दताके कारण।

सम्यग्दर्शन होनेके बाद तुरन्त कोई श्रेणी लगाता है। छठ्ठा-सातवाँ (गुणस्थान) मुनिदशा एकदम आती है, किसीको देर लगती है। स्वयंकी कमीके कारण है। फिर कहनेमें आता है कि कर्मका उदय है, वह सब कहनेको (कहते हैं), अन्दर स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दताके कारण अटका है।

मुमुक्षु :- ... अन्दर भावनाकी उग्रता..

समाधान :- स्वयंकी भावनाकी उग्रता हो तो स्वयं अंतरमें लीन हो सकता है, कोई उसे रोक नहीं सकता।

मुमुक्षु :- ऐसा कोई नियम नहीं है कि एक महिनेमें एक ही बार निर्विकल्प हो, पंद्रह दिनमें हो, जैसी स्वयंकी भावना...

समाधान :- हाँ, स्वयंकी उग्रता अनुसार होता है। उसमें नियम नहीं है। परन्तु उसकी भूमिका योग्य होता है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें मुनिदशामें जो होता है, वह दशा उसे गृहस्थाश्रममें नहीं आ सकती। क्योंकि वह बाहरमें ज्यादा रुका है। मुनि उसप्रकारसे बाहरमें नहीं रुके हैं, उन्हें तुरन्त (निर्विकल्पता) होती है। गृहस्थाश्रममें उसका नियम मुनिदशा जितना (नहीं हो सकता), भावना हो तो भी मुनिदशा जितना नहीं हो सकता। उतना वह छूट नहीं सकता। परन्तु उसका नियम नहीं है। एक महिनेमें हो, पंद्रह दिनमें हो, उससे भी जल्दी हो। ऐसा कोई नियम नहीं है। किसीको पंद्रह दिन, महिनमें, किसीको उससे भी जल्दी होता है। ऐसा कोई नियम नहीं है। किसीकी उग्र धारा

हो तो उससे भी जल्दी होता है। लेकिन मुनिदशा जितना नहीं।

मुमुक्षु :- एक सप्ताहमें हो, चार दिनमें हो...

समाधान :- जैसी उसकी परिणतिकी उग्रता हो उस अनुसार हो सकता है।

मुमुक्षु :- यदि उग्रता अधिक हो तो ज्यादा देर तक तत्त्व चिंतवन चलता है, उग्रता नहीं हो तो...

समाधान :- हाँ, विकल्प सहित है, उसकी उग्रता अनुसार तत्त्व चिंतवन चलता है। नहीं तो उसका उपयोग पलट जाता है।

मुमुक्षु :- उसमें पुरुषार्थ ही कारण है।

समाधान :- पुरुषार्थका कारण है। कर्म तो निमित्त है, वह तो अनादिका अभ्यास है इसलिये दौड़ा जाता है। परन्तु अपनी उग्रता यदि तत्त्व चिंतवनमें हो तो उस अनुसार रहता है। इसे तो डोर उसके हाथमें है। अपने कारणसे रुका है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२३

समाधान :- ... जुड़ रहा है, इसलिये यह सब हो रहा है। परन्तु निश्चयसे वस्तु स्वभावसे जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसे ही सबका आत्मा है। कोई फ़र्क़ ही नहीं है।

मुमुक्षु :- पर्यायका पहलु अत्यंत गौण रहता है।

समाधान :- पर्यायको गौण करके द्रव्यदृष्टिके बलमें आचार्यदेव बोल रहे हैं। द्रव्यदृष्टिज्ञके बलमें, आत्माको पहचानना हो तो द्रव्यदृष्टिसे द्रव्यसे-द्रव्य स्वरूपसे आत्मा वैसा ही है। द्रव्य स्वरूपसे प्रत्येक आत्मा वैसे ही हैं। द्रव्यदृष्टिके बलमें पर्याय गौण हो जाती है। सिद्ध भगवान जैसे ही सब आत्मा हैं। किस नयसे, कुछ फ़र्क़ नहीं दिखाई देता। तत्त्वके अन्दर तत्त्व दृष्टिसे देखता हूँ, तत्त्वमें कोई आत्मामें कुछ फ़र्क़ नहीं है। पर्यायको गौण कर दी है। पर्याय है ही नहीं, लेकिन उसे गौण कर दी है।

अनादिसे अशुद्ध जीव तो मानता ही आया है, शुद्ध स्वरूप स्वयंका पहचाना नहीं, शुद्ध स्वरूपको पहचाने तो आगे जाता है। लेकिन शुद्ध स्वरूप उस प्रकारसे पहचाने कि उसमें पर्याय और द्रव्य दोनोंको जाने, लेकिन बल द्रव्यदृष्टिका आता है। पर्यायमें भी अशुद्धता नहीं है वैसा अर्थ वहाँ नहीं है।

मुमुक्षु :- पर्यायमें अशुद्धता है तो फिर उसे भ्रान्ति क्यों कहा?

समाधान :- भ्रान्ति यानी जूठा है, ऐसा अर्थ नहीं है। अशुद्धता है वह उसकी भ्रान्ति यानी मेरा आत्मा पर स्वरूप हो गया और मैं पर स्वरूप हो गया, वह भ्रान्ति है, वह तो भ्रान्ति ही है न। वस्तु स्वरूप जैसा है वैसा मानता नहीं है और जूठी रीतसे मानता है तो भ्रान्ति है। भ्रान्ति है वह अशुद्धता है। भ्रान्ति यानी ये सब एकान्त है, शुद्ध है बाकी सब माया है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। ऐसा नहीं है। भ्रान्ति भी अशुद्धता है। भ्रान्तिके कारण सब अशुद्धता, अस्थिरता और जूठा मान ले कि कुछ नहीं है यानी पर्यायमें अशुद्धता... ऐसा जूठा स्वरूप मान लिया है इसलिये भ्रान्ति है। द्रव्य जैसा है वैसा नहीं मानता, यह उसकी भ्रान्ति है। मानो मेरा द्रव्य पर रूप हो गया, मानो पर मुझमें आ गये। वह सब जूठा है। वस्तु स्वरूपसे विपरीत माने इसलिये वह भ्रान्ति है। वस्तुको यथार्थ माने बिना मुक्तिका मार्ग प्रारंभ नहीं होता। द्रव्य जैसा है वैसा, पर्याय जैसी है वैसी (माने)।

... मुनिदशा है। स्वयंको ही अन्दर बल वर्तता है, उस बलमेंसे बोलेत हैं। वस्तु स्वरूप जैसा है वैसा बोलते हैं, द्रव्यदृष्टिसे।

मुमुक्षु :- साधनाको अधिक वेग मिले, द्रव्यदृष्टिका ज़ोर हो तो साधनाको अधिक वेग मिले ऐसा है?

समाधान :- बोलनेसे वेग मिले ऐसा अर्थ नहीं है। आचार्यको भावना आयी है इसलिये बोलते हैं। बोलनेसे वेग (नहीं आता)। वेग तो अन्दर परिणतिमें है।

मुमुक्षु :- परिणतिमें उतना ज़ोर हो तो...

समाधान :- मुक्तिके मार्ग वालेको द्रव्यदृष्टिका बल होता है, उसका ज़ोर होता है। लेकिन वह ज़ोर ऐसा नहीं होता कि उस ज़ोरका वैसा अतिरेक या पर्यायका निषेध हो जाये। ऐसा बल नहीं होता। बल होता है। द्रव्यदृष्टिके बलमें आगे बढ़ता है, लेकिन वह बल ऐसा बल नहीं होता। भाषामें कुछ भी बोले, मैं किस नयसे जानूँ? कहीं भेद नहीं दिखाई देता, ऐसा कहे, लेकिन उसकी परिणतिमें तो उसका बल जो यथास्थित मुक्तिके मार्गमें जैसा होता है वैसा ही रहता है।

मुमुक्षु :- कथनमें तो ऐसा लगे कि मानो एकान्त (हो गया)।

समाधान :- हाँ, एकान्त जैसा लगे। मुक्तिके मार्गमें बल यथास्थित जैसा है वैसा लेते हैं। ऐसी कोई भावना आये तो ऐसा बोले। कोई ऐसे प्रश्न करने वाले हो, ऐसा कोई उपदेशका प्रसंग बने, कोई शास्त्र लिखते हों, उन्हें भावना हो और वैसा कुछ कहे इसलिये (ज्ञान नहीं बदल जाता)। मार्ग अन्दरमें यथार्थ वस्तुतासे है। बोले यानी कुछ एकान्त कहना चाहते हैं, ऐसा अर्थ नहीं है। द्रव्यदृष्टिके बलके साथ उन्हें ज्ञान बराबर होता है। वे बोले इसलिये उसमेंसे कोई बिना समझे एकान्त खींच ले तो वह उसकी स्वयंकी योग्यता है।

द्रव्यदृष्टिका बल इतना हो जाये कि पर्याय है ही नहीं ऐसा मान ले तो साधनाको बहुत बल मिलता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। लीनतामें बल, आश्रयमें बल, उसका बल आता है। कोई बार आचार्यदेवको भावना आये तो ऐसा बोले, किस नयसे भेद जानूँ? सब शुद्ध है।

मुमुक्षु :- व्यवहारनयका विषय ही मानो नहीं है, व्यवहारनय है ही नहीं, कथनमें तो ऐसा लगे।

समाधान :- हाँ, कथनमें (ऐसा लगे कि) मानो व्यवहार है ही नहीं। एक ओर आचार्यदेव कहे, अरे..रे..! यह व्यवहार नय भूमिकामें बीचमें हस्तावलम्बन तुल्य आता है, अरे..रे..! खेद है। उसे लेना पड़ता है, ऐसा कहे। और एक ओर ऐसा कहे कि, मैं शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति हूँ, परन्तु मेरी परिणति कल्माषित मैली हो रही है। इसलिये

इस टीकाकी रचनामें मेरी परिणति शुद्ध होओ। ऐसा बोले। वहाँ मानो खेद होता है कि, अरे..! इस व्यवहारमें कहाँ आ गये? फिर यहाँ ऐसा कहे। मानो कथनी करनेसे मेरी शुद्धि होती हो, ऐसा बोले। अन्दर शुद्धि तो उनकी परिणति द्रव्यदृष्टि है, चिन्मात्र मूर्ति अन्दर जो है उसकी द्रव्यदृष्टिका बल है और अन्दर लीनता बढ़ती जाये। उससे शुद्धि होती है। तो कहते हैं, इस टीकासे मेरी परिणति शुद्ध होओ, ऐसा बोलते हैं। आचार्यदेवका आशय ग्रहण करना, अन्दर समझकर आशय करने जैसा है।

मुमुक्षु :- कथनको कोई एकान्तमें खींच ले तो नहीं चलता।

समाधान :- एकान्तमें खींच ले तो भूल होती है। दूसरी ओरका ख्याल रखना चाहिये। आचार्यदेवने क्यों इस पर वज़न दिया है।

मुमुक्षु :- तमाम सिद्ध शुद्ध गुण-पर्याय वाले हैं, ऐसा शब्दप्रयोग किया है।

समाधान :- शुद्ध गुण-पर्याय वाले हैं। द्रव्यदृष्टिमें सबकुछ कह सकते हैं। कुछ दिखता ही नहीं, सब शुद्ध गुण-पर्याय वाले सिद्ध जैसे हैं, ऐसा कहनेमें आये। यहाँ ज्ञानमें ख्याल है। प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं हूँ, मैं तो एक ज्ञायक ही हूँ। हर बार ज्ञायक ही हूँ। प्रमत्त-अप्रमत्त दशा नहीं है, ऐसा आचार्यदेव कहना नहीं चाहते। भूमिका तो है, लेकिन मैं तो एक ज्ञायक ही हूँ। भूमिकामें खड़े हैं, फिर भी मैं तो एक ज्ञायक ही हूँ, ऐसा कहते हैं।

ज्ञायक यानी छट्ठी-सातवीं भूमिका नहीं है, ऐसा नहीं कहना चाहते। उस भूमिकामें खड़ा हूँ, फिर भी मैं ज्ञायक ही हूँ। इसलिये साधनाकी भूमिका ही नहीं है, ऐसा नहीं कहना चाहते। द्रव्यदृष्टिका बल ऐसा है कि अन्दर वह सब आता है। पर्यायको गौण करता जाता है। लेकिन पर्याय है ही नहीं, ऐसा नहीं कहना चाहते। स्वभावमें अन्दर अशुद्धताका प्रवेश नहीं हुआ है, ऐसा कहे। सब शुद्ध ही है, शुद्ध देखते हैं। पर्यायको एकदम गौण कर देते हैं।

अनन्त कालसे द्रव्य स्वरूपको नहीं पहचाना, भ्रान्तिके कारण सब परके साथ मिश्रित होकर मानों मैं परको करुँ और पर मेरा करे, ऐसी अनादि कालसे भ्रान्ति (चलती है)। ऐसी अशुद्धता, वैसी भ्रान्ति और अशुद्धता उसे हो रही है। उसे उस प्रकारकी अस्थिरता और भ्रान्ति दोनों होते हैं। उसमेंसे छूटनेके लिये अनन्त कालसे छूटता नहीं। जीवने द्रव्य-वस्तुको पहचाना नहीं है।

द्रव्यदृष्टिके बल बिना वह आगे नहीं बढ़ता। इसलिये आचार्यदेव द्रव्यदृष्टिके बलसे समझाते हैं कि इसकी महिमा तो कर, इस पर तुझे अनन्त कालसे वज़न भी नहीं आता तो तू तेरा स्वरूप पहचान। तो उसमेंसे तेरी शुद्ध पर्याय प्रगट हो। लेकिन मूल अस्तित्वको ग्रहण किये बिना, ऐसे ही तीव्र कषाय और मन्द कषाय, शुभाशुभमें घूमता

रहता है। मूल स्वरूपको तो पहचान। इसलिये उसके बलसे, उसके ज़ोरसे कहते हैं। और वस्तु स्वरूप भी ऐसा ही है कि द्रव्यदृष्टिके बल बिना आगे नहीं बढ़ता। बाहर व्यवहारमें ऐसे ही करता रहता है, उसमें ही सब साफ करता रहता है। तीव्रमेंसे मन्द, मन्दमेंसे तीव्र करता रहता है। परन्तु द्रव्यदृष्टिके बलमें उसका निषेध नहीं हो जाये उसका ध्यान रखना। क्योंकि वह है।

द्रव्यदृष्टि क्यों प्रगट करनी है? कि स्वयं भ्रान्तिमें खड़ा है। उसका ध्यान रखना है। उसमेंसे साधना प्रगट करनी है। किसके द्वारा, किस मार्गसे यह प्रगट होता है? कि द्रव्यदृष्टिके आलम्बनसे, द्रव्यके आलम्बनसे प्रगट होता है। उसके आलम्बन बिना प्रगट नहीं होता। अपनी बात जीवने अनादि कालमें सुनी नहीं है और उसकी रुचि नहीं की है, परिचयमें आयी नहीं, ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। स्वयं ही है। स्वरूपमें एकत्व और परसे विभक्त, विभावसे विभक्त भिन्न है, उसे पहचान।

समाधान :- .. वह मिथ्यात्वके साथ होते हैं, इसलिये उसे बड़ा पाप कहा है।

मुमुक्षु :- वास्तवमें मिथ्यात्व बड़ा पाप है।

समाधान :- मिथ्यात्व बड़ा पाप है। जिसके परिणाम बिना अंकूशके हैं, जिसमें सात व्यसन आदि अंकूश बिनाके परिणाम हैं, उसे बड़ा पाप कहा है। जिसे जूठी भ्रान्ति है, मिथ्यात्वके साथ ये सात व्यसन हैं, उसके परिणाममें अंकूश नहीं है। इसलिये सात व्यसन बड़ा पाप है, ऐसा कहनेमें आता है।

सम्यग्दर्शन जिसे होता है उसे विभावका रस ऊतर जाता है। आत्मामें रस लगता है, ज्ञायककी परिणति प्रगट हुई, उसे स्वरूपकी ओर परिणति (प्रगट हुई)। स्वरूपकी मर्यादासे बाहर नहीं जाता। मिथ्यात्व भ्रान्ति है उसके साथ यह सब पाप है, इसलिये उसे बड़ा पाप कहा है। बाकी तो मिथ्यात्व बड़ा पाप है। उसके साथ ऐसे अंकूश बिनाके परिणाम हैं, इसलिये बड़ा पाप है, ऐसा कहा है।

व्यवहार मात्र, जिसका व्यवहार अच्छा हो उसे व्यसन नहीं होता। सम्यग्दर्शनकी तो बात ही अलग है, जिसका व्यवहार अच्छा है, व्यवहारसे व्यवहार धर्मकी श्रद्धा हो तो भी उसे सप्त व्यसन नहीं होते। श्रावकोंको वह सप्त व्यसन शोभते नहीं। व्यवहार धर्म जो स्वीकारते हैं, वहाँ भी सप्त व्यसन नहीं होते।

मुमुक्षु :- प्रश्न तो यह किया कि, सिद्धान्तमें सप्त व्यसनसे मिथ्यात्वको बड़ा कहा है। वह भी पाप तो है ही, लेकिन उससे बड़ा पाप मिथ्यात्वका है।

समाधान :- हाँ, मिथ्यात्व बड़ा पाप है।

मुमुक्षु :- मिथ्यात्वका सेवन हो और भले सप्त व्यसन नहीं हो, तो भी वह बड़ा पाप कर रहा है।

समाधान :- पाप तो है, हाँ, बड़ा है। सप्त व्यसनसे भी मिथ्यात्व बड़ा पाप है। यथार्थ वस्तु स्वरूपको पहचानता नहीं। जूठी भ्रान्तिमें पड़ा है। वस्तु स्वरूपको टेढा-मेढा, जैसे-तैसे स्वीकारता है, इसलिये बड़ा पाप है। अन्दर स्वरूपका घात करता है, बड़ा पाप है।

मुमुक्षु :- आश्चर्य तो इसलिये लगे कि बाहरमें शिकार करता हो..

समाधान :- बाहरसे हिंसा आदि करता हो तो वह पापी दिखता है कि ये पाप कर रहा है, ऐसा दिखे। अन्दरमें जो हो रहा है, वह उसे दिखाई नहीं देता। इसलिये वह पाप नहीं दिखता। बाहरमें स्थूल दिखता है न, इसलिये वह पाप दिखाई देता है। ... बड़ा पाप है। यथार्थ नहीं है, वस्तु स्वरूपको विपरीत रूपसे समझता है, स्वरूपका घात हो रहा है इसलिये बड़ा पाप है। (ऐसा कहा) इसलिये व्यसन करनेमें कोई बाधा नहीं है, ऐसा अर्थ नहीं है। लेकिन वह व्यसन मिथ्यात्वके साथ ही सम्बन्ध रखता है। इसलिये व्यसन तो मुमुक्षुको भी नहीं होते।

मुमुक्षु :- निश्चय और व्यवहार, दोनों साथमें होते हैं या अलग-अलग होते हैं?

समाधान :- दोनों साथमें होते हैं। यथार्थ निश्चय और यथार्थ व्यवहार, दोनों साथमें होते हैं। बाकी ये जो व्यवहार कहा जाता है, जो धर्मका व्यवहार कहा जाता है, धर्मका व्यवहारसे स्वीकार किया, वह व्यवहार तो निश्चयपूर्वकका व्यवहार नहीं है। वह तो व्यवहारमात्र व्यवहार है। उसे व्यवहार नाम दिया जाता है। बाकी अंतरमें यथार्थ निश्चय-व्यवहार साथमें होते हैं। ज्ञायककी परिणति प्रगट हो, वहाँ पर्यायका व्यवहार, शुद्ध पर्यायके साथ देव-गुरु-शास्त्रके परिणाम जो शुभभाव आदि होते हैं। अंतरमें जो परिणतिमें है, वह निश्चय-व्यवहार साथमें होते हैं। शुद्ध परिणतिका व्यवहार। उसकी भूमिका अनुसार शुभभाव होते हैं, वह सब उसके साथ यथार्थ रूपसे होते हैं। बाकी अनादिका जो व्यवहार है, वह रूढ़िगतरूपसे व्यवहार होता है। अकेला व्यवहार होता है। व्यवहाराभास कहते हैं।

मुमुक्षु :- शुभभावको व्यवहार नाम मात्र (कहा)।

समाधान :- नाममात्र है। शुभभावको व्यवहार (कहा)। उसकी यथार्थपने साधकदशा प्रगट हुयी हो उसे कहते हैं। बाकी व्यवहार नाम दिया जाता है। लेकिन जब तक नहीं होता है तब तक अशुद्ध भावसे बचनेको शुभभाव आते हैं। जिज्ञासाकी भूमिकामें भी शुभभाव होते हैं। जिज्ञासा हो, जिसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा हो, उसे भी सप्त व्यसन नहीं होते। आत्माकी जिज्ञासाके साथ देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करे। आत्माको कैसे पहचाना जाये? गुरु क्या कहते हैं? देव क्या कहते हैं? सबका आशय समझना चाहिये। अनादिका अनजाना मार्ग देव-गुरु-शास्त्रके बिना समझमें नहीं आता। और ऐसा

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। अनादिका अनजाना मार्ग, पहले उसे देव या गुरु मिले, उसे उपदेश मिले, उनकी देशना मिले। अंतरमें कोई अपूर्वता जागृत हो तो देशनालब्धि होती है। तो अंतरमें ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। बाहरसे गुरु या देव मिले, उनका उपदेश उसे अपूर्व लगे कि ये कुछ अलग कहते हैं। अन्दरमें ऐसी अपूर्वता प्रगट हो, ... और मुक्तिके मार्ग पर मुड़ता है।

मुमुक्षु :- ..अपूर्व प्रगट करे यानी?

समाधान :- उसे अपूर्वता लगे कि ये कुछ अलग कहते हैं। अन्दर उसे ऐसी देशना ग्रहण हो जाती है। अन्दर देशना लब्धि होती है। अपूर्वपने उसे अपूर्वता लग जाये कि कुछ अलग है। ऐसी कोई अन्दरमें अपूर्वता प्रगट हो वह उसे मालूम नहीं है, अन्दर देशना लब्धि होती है। अप्रगट होती है।

मुमुक्षु :- वह तो आपने कहा वह समझमें आया कि बाहरसे अपूर्वता लगे और अंतरमें..

समाधान :- अंतरमें उसे अपूर्वता लगे। ऐसी उसकी परिणति (हो जाती है)। अंतरमें ये कुछ अलग है, ऐसा उसे लगना चाहिये। देशना इसप्रकार ग्रहण होनी चाहिये। अंतरकी बात है और यह स्वरूप कुछ अलग है, आत्मा कोई अलग कहते हैं, आत्मा कोई अपूर्व अनुपम कहते हैं, इसलिये उसे देव-गुरु-शास्त्रकी महिमाके साथ आत्माकी कुछ महिमा, ऐसी कोई अपूर्वता अंतरमें लगे। देशना ऐसी ग्रहण हो जाती है, उस वक्त उसे प्रगट नहीं है, लेकिन उसे अंतरमेंसे उसकी परिणति उस ओर, जब-जब देशना मिले तब उसे अन्दर कुछ अलग कार्य करना है, ऐसा अंतरमेंसे (लगता है)। देशना हो तो अवश्य उसे उस ओर परिणति (जाती ही है)। कभी भी, भले समय लगे परन्तु अपनी ओर मुड़े बिना रहे नहीं। ऐसी देशना ग्रहण हो जाती है। उपदेश मिले वह देशना नहीं है, अंतरमें हो तो देशना है। अंतरमें ग्रहण करे तो देशना है। .. लगना चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२४

समाधान :- ... लेकिन इतना गुरुदेवका उपदेश मिला, स्वयं विचार करे कि ये कुछ अपूर्व है, ऐसा बुद्धिपूर्वक भी विचारमें लगे तो उसे अप्रगट है कि नहीं, यह विचारनेका या ढूंढनेका कोई अवकाश ही नहीं रहता है। अपनी बुद्धिमें ऐसा आता हो कि यह कुछ अपूर्व है, ऐसा स्वयंको हृदयमें लगता हो।

मुमुक्षु :- प्रगटमें लगता हो तो फिर अप्रगटमें है ही।

समाधान :- अप्रगटमें सहज ही आता है।

मुमुक्षु :- किस ... उपादान ..

समाधान :- उपादान कारण है, ध्रुव स्वयं उपादान है। मूल वस्तु उपादान है। उसका आधार द्रव्य कहते हैं और ऐसे आधार कहते हैं। गुण-पर्यायसे आत्मा पहचाननेमें आता है। पुनः उसे साधन बताया। आज प्रवचनमें आया था। मूल उपादान तो वस्तु स्वयं है। लेकिन ये तो उससे पहचानमें आता है, पर्याय द्वारा पहचानमें आता है। द्रव्य और गुण पहचानमें आते हैं। गुण द्वारा द्रव्य पहचानमें आता है। इसलिये उसे साधन कहा। मूल वस्तु तो अनादि अनन्त शाश्वत है। द्रव्य और गुण दोनों शाश्वत है।

बाहरमें उपयोग जाता है, लौकिकमें जाता है वहाँ-से थोड़ा-सा अन्दरमें जाये। अनादिका जो संस्कार है वहाँ भाग जाता है, यहाँ टिकता नहीं। इसलिये बारंबार-बारंबार उसका विचार, वांचन अन्दर बारंबार दृढ़ता करती रहनी। रुचि बढ़ानी, सत्संग हो तो सत्संगसे समझना। बारंबार करना। अनादि कालसे महा मुश्किलसे यह मनुष्यभव मिलता है। तो यह मनुष्यभव तो आत्माका कैसे हो, यहाँ आत्माको पहचाना हो तो उसे भवका अभाव होता है। भवका अभाव नहीं हो, वह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त हो तो होता है। परन्तु उसके लिये तैयारीमें जिज्ञासा, भावना, आत्माक कैसे पहचानमें आये, यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, दोनों वस्तु ही भिन्न हैं। दोनों तत्त्व भिन्न ही हैं। लेकिन उसे विचार करके नक्की करे।

अन्दर विकल्प होते हैं, वह भी स्वयंका स्वभाव नहीं है। उससे भी आत्मा भिन्न है। सिद्ध भगवान जैसा आत्मा ज्ञानानन्दसे भरा कोई अनुपम तत्त्व है। उसकी महिमा

लाये, बारंबार उसका विचार करे तो होता है। बारंबार करना। अन्दर शुभभावमें देव-गुरु, जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र (होने चाहिये)। अंतरमें आत्माको कैसे पहचानुँ? आत्माकी महिमा आये, आत्मा कोई अपूर्व है, कोई अनुपम है। ऐसा उसके हृदयमें लगे तो उसमें विचार टिके। आत्माकी उतनी महिमा आयी नहीं हो, उतनी रुचि नहीं हो, रुचिकी मन्दता होती है, इसलिये वहाँ टिक नहीं सकता।

कारण दे उतना ही कार्य आता है। स्वयंका पुरुषार्थ मन्द है इसलिये उसका कार्य उतना ही आये। जिसका उग्र पुरुषार्थ है उसे कार्य आता है। अनन्त जीव पुरुषार्थ करके मोक्ष गये हैं, भेदज्ञान कर-करके गये हैं। स्वयंकी स्वानुभूति अंतरमें आत्माकी प्रगट की है, पुरुषार्थ द्वारा भेदज्ञान किया है। शरीर भिन्न आत्मा भिन्न, ऐसा क्षण-क्षणमें जिसकी परिणति हो जाये, सहज हो जाये। एक ज्ञायक आत्माकी परिणति।

ये तो उसे एकत्वका अभ्यास हो रहा है। शरीर और मैं, दोनों एक ही हैं, ऐसा उसे भासित होता है। विकल्पसे भिन्न तो भासित नहीं होता, परन्तु शरीरसे भिन्न भासित नहीं होता। ऐसी एकत्वबुद्धि (तोड़नेको) बारंबार उसका अभ्यास करता रहे।

मुमुक्षु :- उसके लिये माताजी! स्वाध्याय पूरा-पूरा होना चाहिये?

समाधान :- हाँ, स्वाध्याय होना चाहिये, विचार होने चाहिये। स्वाध्याय करे तो उसके विचार आये कि इसमें क्या आता है? अनन्त जीव यह मार्ग प्राप्त कर मोक्ष गये हैं। गुरुदेव इस पंचमकालमें (पधारे)। बाहरमें सब थोड़ा कर ले तो मानो धर्म हो गया, ऐसा मानते हैं। लेकिन वह तो मात्र शुभभाव है, पुण्य बन्धता है, (उससे) देवलोक मिले, उससे भवका अभाव नहीं होता। भवका अभाव तो आत्माको पहचाने तो होता है। गुरुदेवने मार्ग बताया कि आत्मा कोई अपूर्व वस्तु है। मार्ग अंतरमें है, बाहरमें नहीं है। इसलिये करने जैसा वही है। अंतरमें कैसे पहचानमें आये? बारंबार विचार करना, बारंबार वांचन करना, नहीं समझमें तो किसीको पूछना, जो समझते हो उसे।

मुमुक्षु :- वहाँ अभी बन्धका स्वरूप चलता है। शुभभाव भी बान्धता है और अशुभभाव भी बान्धता है, तो पूरा दिना कौन-सा भाव करना?

समाधान :- शुभसे भी बन्ध है, अशुभसे भी बन्धन। उस भावसे भिन्न, आत्मतत्त्व भिन्न है, उस भिन्न आत्माको पहचाने तो अबन्ध परिणाम होते हैं। तो बन्धता नहीं है। शरीर और आत्माकी एकत्वबुद्धिसे बन्धा है। स्वयं ऐसा मानता है, स्वयंको भिन्न नहीं जानता। स्वयंको भिन्न जाने और स्वयंका भिन्न अनुभव करे तो बन्धका अभाव होता है। शुभ और अशुभ दोनों बन्धन करते हैं। उसमें अशुभभावसे बचनेको उसे शुभभाव गृहस्थाश्रममें होते हैं। लेकिन वह शुभभाव मन्द कषाय है, उससे पुण्य बन्धता है।

गृहस्थाश्रममें अभी आत्माको नहीं पहचाना, जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रकी भक्ति आये, उसके विचार आये, उसकी महिमा आये, वह बन्धन है, लेकिन वह आये बिना नहीं रहता। जबतक आत्मा पहचाननेमें नहीं आता, तबतक बीचमें आते ही हैं। लेकिन आत्माको जो भिन्न पहचाने, उसे पहचानकर आत्मामें लीन होवे तो वह भाव अबन्धभाव है, वह मुक्त (होता है), अन्दरसे छूटता है। लेकिन अभी आंशिकरूपसे छूटता है। सम्यग्दृष्टि होता है वह आत्माको पहचाने, वह गृहस्थाश्रममें हो तो उसे भी शुभभाव तो आता है। जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रके विचार आये। परन्तु जैसे-जैसे आगे बढ़े और स्वयं अन्दर आत्मामें लीन होते जाये, वैसे वह शुभभाव भी छूटते जाते हैं। ऐसा करते-करते मुनिदशा आती है, तब आत्मामें बहुत लीन होते हैं। क्षण-क्षणमें आत्मामें लीन होते हैं। इसलिये उन्हें शुभाशुभ दोनों भाव इतने कम हो जाते हैं, और आत्मामें लीन हो जाये तो वह शुभभाव छूट जाते हैं। आत्माको पहचानकर आत्मामें लीन होवे तो वह शुभाशुभ भावसे रहित होता है।

मुमुक्षु :- मध्यस्थ भाव.. माताजी!

समाधान :- शुभ और अशुभ दोनों बन्धनका कारण है, ऐसा बराबर जानना। सुवर्णकी बेड़ी और लोहेकी बेड़ी दोनों बन्धन करती है। परन्तु जबतक आत्माको भिन्न नहीं पहचाना है, तबतक स्वर्ण बेडीरूप जो शुभभाव है, वह बीचमें आये बिना नहीं रहते। इसलिये वह यदि गृहस्थाश्रममें शुभमें नहीं खड़ा रहेगा तो अशुभमें चला जायेगा। तो उससे तो पाप बन्धता है, उससे नरक, निगोद होता है। और इस शुभभावसे भवमें देवलोक मिले या ऐसा कुछ होता है, लेकिन वह भव तो प्राप्त होगा ही। शुभभावसे भगवान मिले, गुरु मिले परन्तु भव तो चालू ही रहेंगे। उससे रहित आत्माको पहचाने तो भवका अभाव होता है। इसलिये वह तो बीचमें आते हैं। लेकिन उससे भिन्न आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करना। कैसे पहचानमें आये? उसका अभ्यास करना, बारंबार विचार करना। उससे तीसरा भाव आत्माको पहचानना वह है।

(आत्माकी) अनुभूति हो, उसमें लीन हो जाये, बाहरकी कुछ खबर नहीं रहे, अन्दर ऐसा लीन हो जाये, वह तीसरा भाव है। परन्तु पहले वह नहीं हो तो उसकी श्रद्धा करे कि इन दोनों भावसे रहित आत्माका स्वरूप है। उससे नहीं हो सके तो पुरुषार्थ मन्द हो तो श्रद्धा तो बराबर करे। आचार्यदेव कहते हैं, तुझसे नहीं हो सकता है तो श्रद्धा बराबर करना कि ये दोनों भाव बन्धका कारण है। लेकिन उससे भिन्न भाव, जो ज्ञायक जानने वाला है, वह मोक्षका कारण है, ऐसी श्रद्धा तो बराबर करना। नहीं हो सके तो श्रद्धा तो बराबर रखना। शुभभाव जो है वह तो बीचमें आयेंगे। अशुभभावसे बचनेको वह पुण्यभाव बीचमें आयेंगे। परन्तु तू श्रद्धा बराबर रखना, नहीं

हो तो। श्रद्धामें ऐसा मत करना कि ये शुभभाव है, उससे देवलोक मिलेगा। ऐसी इच्छा मत करना। भिन्न आत्मा है, उसकी श्रद्धा करना।

मुमुक्षु :- उस श्रद्धाका फल ..

समाधान :- ऐसी श्रद्धा रखे उसमें जो विकल्प आये वह शुभभाव, पुण्यबन्धका कारण है। विकल्प पुण्यबन्धका कारण है। श्रद्धा तो उसे आगे बढ़नेका कारण बनती है। विकल्प पुण्यबन्धका कारण है।

मुमुक्षु :- इस भवमें बहुत प्रयत्न करनेके बाद भी, देव-गुरु-शास्त्र सबका योग है, फिर भी नहीं हो, जीवकी उन्नति नहीं हो तो इस परिणामसे यही चीज टिक सकती है?

समाधान :- स्वयंकी तैयारी हो तो टिक सकती है। ऐसे गहरे संस्कार डाले कि मुझे यही चाहिये। ऊपर-ऊपरसे हो तो नहीं रहता। गहरे संस्कार हो तो टिकता है। मुझे यही चाहिये, आत्मा ही चाहिये, और कुछ नहीं चाहिये। ऐसे गहरे संस्कार हो तो वह दूसरे भवमें टिकते हैं। अन्दर गहराईसे (होना चाहिये)। स्वयंको अन्दरसे रुचि होनी चाहिये तो टिकता है। और वह शुभभाव भी ऐसे होते हैं कि उसे साधन भी वैसे मिल जाते हैं। गुरु मिले, देव मिले। गहरी रुचि हो तो होता है। संस्कार गहरे होने चाहिये।

समाधान :- ... सत्य तो सरल और सुगम है, लेकिन सत्य खोजनेको चर्चा, राग-द्वेष आदि समझनेके लिये नहीं होते हैं। जिज्ञासु हो उसे समझनेके लिये होते हैं। तत्त्व क्या है उसका विचार, उसकी खोज, अन्दरसे मंथन आदि हो। विचार, वांचन (आदि होते हैं)। तत्त्व समझनेमें राग-द्वेष नहीं होते।

मुमुक्षु :- अधिकसे अधिक संघर्ष, सत्यको समझनेकी योग्यताके लिये है या किसके लिये है? हमारे जैसे भी..

समाधान :- बाहर तो शुभ विकल्प आये इसलिये... उसके लिये संघर्षमें जाना, ऐसा कुछ नहीं होता। वह तो स्वयंको स्वयंका करना है। बाहर तो शुभ विकल्प आये। स्वयंको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (ऐसे) लगे तो कहे, नहीं लगे तो नहीं कहे। उसके लिये संघर्ष करना, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। वह उसे रोकता नहीं। स्वयं विचार करके अंतरमें समझना है।

मुमुक्षु :- सत्य कोई ऐसे प्रकारसे है कि जिसे समझनेके लिये भिन्न-भिन्न मनुष्यको भिन्न-भिन्न प्रकारसे सत्य प्राप्त हो?

समाधान :- भिन्न-भिन्न प्रकारसे नहीं। अंतरमें तो मार्ग एक ही है। मार्ग अलग

नहीं है। विचार करे, वांचन करे, स्वाध्याय करे। मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको जानना चाहिये। अधिक जाने इसलिये समझमें आये या अधिक पढ़े तो समझमें आये ऐसा कुछ नहीं है। प्रयोजनभूत समझे तो आत्माको पहचाने। आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है, परपदार्थ क्या है, विभाव क्या है, स्वभाव क्या है, (ऐसा) प्रयोजनभूत समझे तो मुक्तिका मार्ग होता है। ज्यादा समझे और बहुत पढ़े, ऐसा कोई उसका अर्थ नहीं है। बीचमें अशुभभावसे बचनेको शुभभाव आते हैं, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, शास्त्र स्वाध्याय आदि होता है, तत्त्वका विचार होता है, प्रयोजनभूत तत्त्वको जाननेके लिये। विशेष जाने तो उसे ज्ञानकी निर्मलता होती है, उसमें कोई नुकसान नहीं है। लेकिन ज्यादा जाने और ज्यादा पढ़े तो ही होता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

शिवभूति मुनि कुछ नहीं जानते थे। याद नहीं रहता था। बाई दाल धो रही थी। छिलका भिन्न और दाल भिन्न, ऐसा भिन्न समझकर (याद आ गया कि), मेरे गुरुने ऐसा कहा है, ऐसा समझकर यह आत्मा भिन्न, शरीर भिन्न और विभावस्वभाव मेरा नहीं है, इसप्रकार भेदज्ञान करके अंतरमें ऊतर गये। ज्ञायकको पहचानकर, भेदज्ञान करके स्वरूपमें लीन हो गये तो उन्हें मार्ग प्राप्त हो गया। श्रेणि लगाकर केवलज्ञान हो जाये। प्रयोजनभूत जाने उसमें सब आ जाता है।

मुमुक्षु :- प्रयोजनभूतके ऊपर कोई नाम तो नहीं लिखा होता कि यह प्रयोजनभूत है। प्रयोजनभूतको नक्की कैसे करना?

समाधान :- प्रयोजनभूत-स्व-परका भेदज्ञान करना यह प्रयोजनभूत है। स्वयंके द्रव्य-गुण-पर्याय और अन्यका, परद्रव्यका स्वभाव और स्वद्रव्यके स्वभावको भिन्न करना, यह प्रयोजनभूत है। मूल वस्तु चैतन्यको पहचानना। ज्ञायक, ज्ञायक वस्तु स्वभावसे एक है। उसमें गुण और पर्याय, लक्षणभेदसे भेद है, मूलमें भेद नहीं है। उसमें गुण लक्षणसे भिन्न हैं। ऐसे द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप पहचाने। उसका परिणमन होता है वह पर्याय है। इसप्रकार मूल वस्तुको समझे। द्रव्य-गुण-पर्यायको (समझे), यह सब मूल प्रयोजनभूत है।

तत्त्वकी सब बात समझे, यह प्रयोजनभूत है। मूलभूत वस्तु। तिर्यंचको नौ तत्त्वके नाम भी नहीं आते, तो भी अन्दरमें मैं यह हूँ और यह विभाव है (ऐसा) समझता है। अन्दरमें साधकदशा प्रगट होती है। उसे संवर आ जाता है, आगे बढ़ने पर निर्जरा होती है, सब उसमें आ जाता है, नाम नहीं आते हैं फिर भी। कर्मकी सत्ता कितनी, उसकी प्रकृति, उसका क्या, उसका रस कितना, उसकी स्थिति कितनी आदि कुछ नहीं आता। उसे देवलोक क्या, नर्क क्या, उसके भेद, कहाँ-से कहाँ जाता है और कहाँ-से कहाँ जाता है, वह सब नहीं आता है। सत्ता, स्थिति, प्रकृति आदि कुछ नहीं आता है। मूल प्रयोजनभूत तत्त्व भेदज्ञान आता है।

मुमुक्षु :- पर्याय है। पारिणामिकभाव है उसमेंसे पर्याय निकलती है, उसमें समाविष्ट हो जाती है। अर्थात् केप्सुल होती है, दवाई, फिर केप्सुलमें कुछ नहीं होता, लेकिन जो दवाई उसमें भरे, वह केप्सुल उसकी कही जाती है। वैसे जो वर्तमान-वर्तमान परिणति है, पर्याय, वह उसमेंसे निकलती है और उसमें समाविष्ट हो जाती है। समा जाती है तब खाली हो जाये। अर्थात् निकलते समय और दाखिल होते समय बिलकूल खाली-खाली होती है। इसलिये पारिणामिकभावको कोई तकलीफ नहीं होती।

समाधान :- तकलीफ तो किसीको नहीं होती। वह तो भरा हुआ तत्त्व है। वह कोई खाली केप्सुल नहीं है।

मुमुक्षु :- खाली रहे फिर भर जाये। भरा हुआ कितने समय रहे? एक समय रहे? फिर खाली हो जाये?

मुमुक्षु :- अभी एक चर्चा निकली। पर्याय है वह निकलती है, फिर पर्याय फिरसे दाखिल हो जाये।

मुमुक्षु :- पर्यायका समय तो एक समय है।

समाधान :- खाली केप्सुलमें दवाई भरनी हो तो दवाई बाहर निकल जाये, फिर वही दवाई अन्दर प्रवेश कर ले, ऐसा?

मुमुक्षु :- परपदार्थके कारण रागक-द्वेष होता है। राग-द्वेष होता है उसका कारण बाह्य संयोगमें जुड़ता है। पर्याय तो रूखी ही है। फिरसे बाहर जाये तब खाली होकर जाये।

समाधान :- ... सुखसे भरा आत्मा है। वह अनन्त पारिणामिकभाव है। वह खाली भी नहीं होता और भरता भी नहीं है, जैसा है वैसा है। उसकी पर्यायें परिणमति हैं।

मुमुक्षु :- पर्यायका उत्पाद होता है और पर्यायका व्यय होता है। तो पर्याय कैसे निकलती है?

समाधान :- पर्याय अन्दर परिणमति है। उसके कार्य आते हैं। जो अनन्त गुण भरे हैं, जैसे ज्ञानलक्षण है (तो) ज्ञानका जाननेरूप कार्य आता है। वह उसका उत्पाद है। जो उसके गुण हैं, वह गुण गुणका कार्य करते हैं, वह उसकी पर्याये हैं। वह परिणमति रहती हैं। प्रकाशका प्रकाशरूप परिणमन होता है, लवणका लवणरूप-खारापनेरूप परिणमन होता है। ज्ञानका जाननेरूप परिणमन होता है। गुण स्वयं अपना कार्य करते रहते हैं।

मुमुक्षु :- विपरीतता होती है उसे कहीं-से भी दाखिल करनी है। खाली हो तो ही विपरीतताका प्रवेश हो सके न?

समाधान :- विपरीतता स्वयं स्वयंकी (है)। स्फटिक निर्मल है। बाहर निमित्त आया

तो स्फटिक स्वयं लालरूप परिणमता है। कहींसे नहीं आता।

.. घोटाला करता रहता है। स्वयं ही पुरुषार्थकी मन्दतारूप परिणमता है। पर्याय कोई घोटाला नहीं करती। द्रव्य-गुण-पर्याय वस्तुका स्वरूप ही है। एक दूसरेके बिना एक दूसरे होते ही नहीं। अनन्त गुण आत्मामें हैं। वह गुण अपना कार्य नहीं करे तो (गुण कैसा)? द्रव्य गुण बिनाका हो तो वह द्रव्य कैसा? गुण स्वयं अपना कार्य न करे तो वह गुण कैसा? द्रव्य-गुण-पर्याय, पर्याय कोई घोटाला नहीं करती।

सिद्ध भगवानको अनन्त गुण-पर्याय परिणमते रहते हैं। आनन्दगुण, ज्ञानगुण है वह परिणमता रहता है। परिणमन किया, वह पूरा हो गया इसलिये दूसरे समय खाली हो गया, ऐसा नहीं है। वह तो अनन्त काल तक परिणमता रहे तो भी थोड़ा-सा भी अन्दर खाली नहीं होता। उतनाका उतना आनन्द भरा है और उतनाका उतना ज्ञान भरा है। उत्पाद-व्यय होते ही रहते हैं। उत्पाद और व्यय। व्यय हो गया इसलिये सब खलास नहीं हो जाता। वैसाका वैसा भरा है। अनन्त भरा रहता है।

मुमुक्षु :- अनन्त सामर्थ्य वाली पर्याय होने पर भी अनन्तमेंसे कुछ खाली नहीं होता?

समाधान :- अन्दरमें कुछ खाली नहीं होता, अनन्त भरा ही है।

मुमुक्षु :- उतनाका उतना पूरा भरा रहता है?

समाधान :- पूराका पूरा भरा रहता है, थोड़ा भी खाली नहीं होता। ज्ञानने एक समयमें जान लिया, अब दूसरे समय क्या जानेगा, ऐसा नहीं है। उतनाका उतना अनन्त भरा है।

मुमुक्षु :- ... पूर्ण निकालो और पूर्णका पूर्ण रहे।

समाधान :- अनन्त कभी खत्म ही नहीं होता। स्व-परप्रकाशक ज्ञान एक समयमें लोकालोक पूरा जान लिया। तो भी दूसरे समय उतना ही जाननेका अनन्त सामर्थ्य भरा है। उतना लोकालोक है, वह ज्ञेय है उतना ही जाना (ऐसा नहीं), अनन्त लोकालोक हो तो भी उसे जाननेका अंतरमें सामर्थ्य है।

मुमुक्षु :- चमत्कारिक अमृतका घड़ा, बहिनश्रीने लिखा है।

समाधान :- .. अनुभवमें आ गया इसलिये दूसरे समय खलास हो गया, ऐसा नहीं है। अनन्त काल पर्यंत परिणमता रहे तो भी उतनाका उतना है।

मुमुक्षु :- पाँच लड्डु थे, उसमेंसे चार खाये तो एक ही बाकी रहे न?

समाधान :- वह अलग बात है। वह तो पुद्गलकी बात है, यह तो स्वभावकी बात है।

मुमुक्षु :- अक्षिण ऋद्धि वालेको भी लड्डु कम नहीं होते। लाख्खों लोग आये

तो भी पाँच लड्डुमें सबका हो जाता है।

समाधान :- मुनिओंको ऐसी ऋद्धि प्रगट होती है कि जिसके घर आहार ले, अक्षिण ऋद्धि हो तो खत्म ही नहीं हो।

मुमुक्षु :- ऐसी लालसा हमें रहा करती है कि ऐसी कुछ ऋद्ध हमें दीजिये कि जिससे..

समाधान :- ऐसी ऋद्धिको क्या करना? अन्दर आत्माकी ऋद्धि प्रगट हो, स्वभावका भेदज्ञान हो और मुक्तिका मार्ग प्रगट हो, वह ऋद्ध है। ये सब तो बाह्य (ऋद्धि हैं)। मुनिओंको अंतर दशामें सहज प्रगट हो जाती है। उन्हें उसका कोई ध्यान भी नहीं होता। मेरु पर्वत पर मुनिको वैक्रियक शरीरकी ऋद्धि प्रगट हुयी तो ध्यान भी नहीं रहा कि वैक्रियक शरीरकी ऋद्धि प्रगट हुयी है। बालि मुनिने ५०० मुनिओंको उपसर्ग दिया था। उन्हें कहा कि, ऐसा उपसर्ग है। (मुनिराजको) ऋद्धि थी यह भी मालूम नहीं था। हाथ ऐसा किया तो मालूम हुआ कि वैक्रियक शरीरकी ऋद्धि है। मुनिओंका ऋद्ध पर ध्यान भी नहीं है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२५

समाधान :-... वृद्धावस्था और दूसरा?

मुमुक्षु :- मृत्यु-मौत।

समाधान :- कुछ भय वाला नहीं है, सबको भय लगता है।

मुमुक्षु :- किसका लगता है?

समाधान :- इस शरीरका राग है एकत्वबुद्धिका, इसलिये। शरीरमें वृद्धावस्था आये वह किसीको पोसाती नहीं और मरणका भय है, इसलिये मृत्यु अच्छी नहीं लगती। स्वयंको अच्छा नहीं लगता। आत्मा तो वस्तुका स्वभाव है। शरीर धारण करे वह छूटता ही है। एक शरीर धारण करे, दूसरा करे.. जबतक भवका अभाव नहीं हुआ है तबतक शरीर धारण करेगा। परन्तु उसको स्वयंको शरीरकी एकत्वबुद्धि, शरीरका राग है। इसलिये उसे भय लगता है। शरीरसे भिन्न नहीं होना है। भिन्न ही है, परन्तु एकत्वबुद्धि ऐसी है कि उसे भिन्न नहीं होना है। इसलिये उसे भय लगता है। वृद्धावस्थां एवं मृत्यु भय नहीं करवाते, परन्तु स्वयं डरता है। स्वयंको मृत्यु अच्छी नहीं लगती, स्वयंको वृद्धावस्था अच्छी नहीं लगती।

मुमुक्षु :- वृद्धावस्था आये तो सही।

समाधान :- आये बिना नहीं रहेगी।

मुमुक्षु :- फिर भी उसका भय लगता रहता है।

समाधान :- भय लगता है। वृद्धावस्थामें शरीर काम नहीं करता, इसलिये भय लगता है। एकत्वबुद्धि है। तो भी उसे वैराग्य नहीं होता कि संसारका स्वरूप तो ऐसा ही है। वैराग्यको प्राप्त होकर आत्माका कर लेना। वृद्धावस्था आनेसे पहले आत्माका कर लेना, ऐसे पुरुषार्थ करता नहीं, वैराग्य नहीं करता और भयभीत होता है। वैराग्य लाना चाहिये। उम्र बड़ी हो इसलिये शरीर काम नहीं करता। बैठनेमें, ऊठनेमें, देखनेमें, सुननेमें सबमें तकलीफ हो जाती है। पहलेसे कर लेना है, ऐसा स्वयंको वैराग्य करना चाहिये।

मुमुक्षु :- बाकी कोई भय रखने जैसा नहीं है।

समाधान :- भय रखने जैसा नहीं है। भय किसका है? वह तो वस्तुका स्वरूप

है, ऐसा बनने वाला ही है।

मुमुक्षु :- स्वयं तो रहने वाला ही है।

समाधान :- स्वयं तो नित्य है। स्वयंको स्वयंका स्वरूप साध लेना, स्वयंके स्वरूपको सँभालकर स्वयंको आत्म स्वरूपकी प्राप्ति कर लेनी, यही करना है। वृद्धावस्था कोई नयी नहीं है, सबको दिखता ही है। ऐसा तो संसारमें बनता ही आया है। उसका भय रखना तो व्यर्थ है। वैराग्यको प्राप्त होकर स्वयंको स्वयंका कर लेना।

मुमुक्षु :- आत्माको अच्छा लगना, नहीं लगना..

समाधान :- अच्छा नहीं लगे तो भी वह तो स्वरूप ही है, वह तो बनेगा ही, अच्छा लगे या नहीं। उसमें किसीका उपाय नहीं चलता। चाहे जितने डॉक्टर बुलाये, दवाई करे तो भी वृद्धावस्था आनेवाली है, मृत्यु होगा, चाहे जैसे डॉक्टर बुलाये। बड़े-बड़े राजा और चक्रवर्ती चले जाते हैं। सागरोपमका देवोंका आयुष्य भी पूरा हो जाता है। वह तो आनेवाला ही है, अच्छा लगे या नहीं, वह तो होगा ही। सबका पूरा होता है। इसलिये स्वयंको पहचान लेना, उसका-शरीरका राग छोड़ देना। यह संसार ऐसा ही है। इसलिये वैराग्यको प्राप्त होकर आत्माका कर लेने जैसा है।

आत्मा शाश्वत है, इस जन्म-मरणसे कैसे छूटा जाये? अन्दर जो आकूलता होती है, उससे कैसे छूटे? विकल्प स्वयंका स्वभाव नहीं है, तो फिर शरीर कहाँ अपना है? अच्छा लगे या नहीं, अच्छा नहीं लगे तो भी बनने वाला है। वह तो बनेगा ही। देवोंका सागरोपमका आयुष्य भी पूर्ण हो जाता है। तो मनुष्य तो क्या हिसाबमें है? चक्रवर्तीका चतुर्थ कालमें कितना लम्बा आयुष्य था, तो वह भी पूरा हो जाता है।

मुमुक्षु :- अभी ज्यादा दुःख लगता है, हुण्डावसर्पिणी काल है इसलिये ज्यादा दुःख लगता है?

समाधान :- कालके कारण दुःख नहीं लगता, स्वयंकी क्षतिके कारण दुःख लगता है।

मुमुक्षु :- हुण्डावर्सपिणीका मतलब क्या?

समाधान :- अभी ऐसे जीव जन्म लेते हैं, वैसे ही जीव (आते हैं)। चतुर्थ कालके बहुत सीधे एवं सरल जीव थे। अभी सब परिणाम ऐसे हो गये हैं। काल क्या करता है? अपनी योग्यता ऐसी है। चतुर्थ कालमें पुण्योदय ज्यादा था, पापके कम थे। अभी पापका उदय ज्यादा हो गया और सब बढ़ गया है, उसका कारण जीव ही ऐसे (हैं), ऐसा कर्म लेकर स्वयं ही आता है, उसमें काल क्या करे?

मुमुक्षु :- असंख्यात काल चक्रवात होनेके बाद ऐसा हुण्डावसर्पिणी काल आता है। असंख्यात कालचक्रके बाद। ऐसा विषम काल आया, हुण्डावसर्पिणी जैसा।

समाधान :- काल आया, ऐसे कालमें जन्म कौन लेता है? कि जिसने ऐसे भाव

किये हों, वह जन्मता है। उसमें काल क्या करे? ऐसे भाव वाले जीव होते हैं कि ऐसे कालमें जन्मते हैं। परन्तु गुरुदेवके प्रतापसे बीचमें काल अच्छा आ गया कि गुरुदेवका जन्म हुआ, सबको मार्ग प्राप्त हुआ। बाहरके पुण्य-पापके संयोग एक ओर रह गये, बाकी गुरुदेवका जन्म हुआ वह धर्मका काल बीचमें आ गया। बीचमें चतुर्थ काल आ गया।

मुमुक्षु :- और अभी भी वर्तता ही है।

समाधान :- गुरुदेवका प्रताप अभी भी वर्तता ही है।

मुमुक्षु :- अभी तो आपका प्रताप है। सोनगढ़में चतुर्थ काल वर्तता है।

मुमुक्षु :- चीमनभाई कहते हैं, यहाँ तो सब भूल जाता हूँ। ... हाथ घुमाता रहता हूँ, धड़कन गिनता रहता हूँ, यहाँ तो सीने पर हाथ रखता हूँ तो भगवानकी गुँज उठती है। पहले हृदयकी धड़कन सुनाई देती थी, अब आत्माकी सुनाई देती है।

समाधान :- ... चारों ओर भगवानके मन्दिर हैं। चारों ओर गुरुदेवकी टेप चलती है। आत्माकी बातें हो रही है। धर्मकाल बीचमें आ गया। ऐसा मार्ग गुरुदेवने प्रकाशित किया। चारों ओर उनकी वाणी ऐसी जोरदार थी, आत्माको दर्शाये ऐसी वाणी थी। पुण्यका काल, बीचमें धर्मकाल आ गया। पंचमकालमें ऐसा-ऐसा कोई-कोई काल आ जाता है, हुण्डावसर्पिणी होनेके बावजूद भी।

मुमुक्षु :- .. असंख्यात कालचक्र होनेके बाद ऐसा हुण्ड काल आता है। असंख्यात कालचक्रमें ऐसा..

समाधान :- ऐसा योग मिला और उसमें गुरुदेव मिले। ऐसा योग भी अनन्त कालके बाद मिलता है, गुरुदेव मिले ऐसा। इस पंचमकालमें गुरुदेव कहाँ-से मिले? ऐसी वाणी, ऐसा मार्ग दर्शानेवाले कहाँ-से प्राप्त हो? और मुनिओं पहले बहुत हो गये हैं, उन्होंने कितनी वाणी बरसाई! शास्त्रोंमें अभी चली आ रही है। गुरुदेवने सब मुमुक्षुओंके बीच रहकर इतने साल वाणी बरसाई। ऐसा तो कभी-कभी बनता है। कोई जंगलमें चले जाये। ये तो मुमुक्षुओंके बीच रहकर इतने साल वाणी बरसायी, ये तो महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- आज सुबह विचार आया, स्वाध्याय मन्दिरको ५० वर्ष होंगे। स्वर्ण महोत्सव मनाना है। कोई भी मन्दिरसे स्वाध्याय श्रेष्ठ मन्दिर स्वाध्याय मन्दिर है, जहाँ केवलज्ञानका ही घूटन हुआ है और समयसारकी स्थापना हुई है। ५० वर्ष पूर्ण होंगे।

समाधान :- गुरुदेवने बरसों तक स्वाध्याय मन्दिरमें वाणी बरसायी। बरसों तक यहाँ बिराजे।

मुमुक्षु :- पोपटभाई ...ने स्वाध्याय मन्दिर नाम रखा था।

समाधान :- बरसों पहले यहाँ कुछ नहीं था। सब मन्दिर (बने)। जब स्वाध्याय मन्दिर हुआ तब वहाँ कुछ नहीं था। गुरुदेवके प्रतापसे सब वहाँ हो गया।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते थे कि, यहाँ तो भैंस घूमती थी।

समाधान :- हीराभाईकी दुकानसे लेकर यहाँ तक ऐसा लगे कि जंगलमें है। जंगलमें हैं ऐसा लगे।

मुमुक्षु :- वैराग्य एवं उदासीनता..

समाधान :- एक ही है। लगभग एक ही है। वैराग्य अर्थात् परसे भिन्न होकर अपनेमें (आये), उदासीनता भी वही है। उदास हो जाये, उसमें भी वही है।

मुमुक्षु :- उपशमपना?

समाधान :- उपशममें कषायकी उपशमता, उसमें थोड़ा फ़र्क़ है। जुड़ना नहीं, कषायके वेगमें बहना नहीं। शांत परिणाम रखे, कहीं बहे नहीं, वह उपशम। तीव्र कषाय, जो मुमुक्षुकी भूमिकाको शोभते नहीं ऐसे कषायोंमें बह नहीं जाता, वह उपशमभाव। .. उसकी क्या बात!

... (जिन) प्रतिमा जिन सारखी कहनेमें आती है। उसमें भावना वालेको एक ही दिखाई देता है, प्रतिमा और भगवानमें कुछ फ़र्क़ नहीं दिखता। भावसे देखे उसे भगवानकी प्रतिमामें फ़र्क़ नहीं दिखता। जिन प्रतिमा जिन सारखी, ऐसा शास्त्रमें आता है। अल्प भव स्थिति जाकी, सो ही जिन प्रतिमा परमानै, जिन सारखी, ऐसा आता है।

जगतमें रत्न भी भगवानरूप परिणमित हो रहे हैं। भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं तो कुदरतमें शाश्वत प्रतिमाएँ हैं। शाश्वत मन्दिर एवं शाश्वत प्रतिमाएँ। मेरुमें, नंदिश्वरमें, ऊर्ध्व, मध्य, अधोलोकमें चारों ओर हैं।

मुमुक्षु :- रत्न ऐसी प्रतिमारूप परिणमते हैं?

समाधान :- प्रतिमारूप रत्न परिणमते हैं। साधारण पत्थर नहीं, बल्कि उच्च रत्नोंके परमाणुरूप ऐसे स्कंध प्रतिमारूप परिणमित हो गये हैं। सब शास्त्रमें आता है।

मुमुक्षु :- कृत्रिम नहीं, रत्न ही ऐसे परिणमित हुए हैं।

समाधान :- ये पुद्गल रत्नरूप परिणमित होकर सब प्रतिमारूप होकर, उसके आकार प्रतिमा मानों साक्षात् भगवान ही बैठे हैं, एकमात्र वाणी नहीं, उतना। समवसरणमें बैठे हों ऐसे हूबहू। पाँचसौ-पाँचसौ धनुषकी (प्रतिमाएँ)। किसीने नहीं बनाया, अपने आप। कुदरत मानो कहती है कि जगतमें भगवान सर्वोत्कृष्ट है।

मुमुक्षु :- नंदिश्वर द्विप देखा तब आश्चर्य होता था। शाश्वत भगवान किसप्रकार होंगे? आज स्पष्ट हुआ, आज स्पष्ट हुआ।

समाधान :- पर्वत पर मन्दिर, किसीने नहीं बनाया, अपनेआप, स्वयं (ही है)। जैसे भगवान हैं बराबर वैसे, कोई फ़र्क़ नहीं।

मुमुक्षु :- उसकी यात्रा हो सकती है?

समाधान :- वह तो देव कर सकते हैं। नंदिश्वरकी यात्रा तो। मेरु पर्वतकी यात्रा विद्याधर हो वह कर सकते हैं, कोई देव ले जाये तो कर सकता है। विद्याधर हो तो जा सकते हैं। कोई शक्तिशाली मुनि हों तो जा सकते हैं। बाकी नंदिश्वरमें तो देव ही जाते हैं। मनुष्य नहीं जा सकते। नंदिश्वरमें मनुष्य नहीं होते, देव ही होते हैं।

मुमुक्षु :- ऐसा कहते हैं, यहाँ नंदिश्वरमें आते हैं न, देव हो वही आ सकते हैं। ऐसे।

समाधान :- .. सब होता है।

मुमुक्षु :- .. हमें कहते थे कि आपका भी कोई प्रताप है। हम आज गुरुदेवकी आप पर अपार कृपा थी और वह कृपा आज हमारे पर बरस रही है, आपके द्वारा। ऐसा हम मानें तो कुछ गलत है?

समाधान :- सब गुरुदेवका प्रताप है।

मुमुक्षु :- भगवान.. भगवान। कुन्दकुन्दाचार्यने भी कभी अपना नाम नहीं आने दिया। .. श्रुतंधर भद्रबाहु .. भगवान। वैसे आप भी कहीं...

समाधान :- सब मूल मार्ग तो गुरुदेवने प्रकाशित किया है। सब गुरुदेवका ही है।

मुमुक्षु :- बात बिलकूल सत्य है, परन्तु आज भी हमें गुरुदेवका स्मरण करवाने वाले भी आप ही हो न।

समाधान :- सब गुरुदेव ही है, अपन तो उनके दास हैं। आप लोग कुछ भी कहो।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! हमें ऐसा लगता है, हम गुरुदेवको देखते थे, जब वे आपको आते देखते थे और कभी .. कोई अहोभावसे देखते थे। अहोभावसे। मानो भगवानका एक नमूना आता हो! ऐसा उनको भी लगता था, ऐसा हम बराबर अनुभव करते थे। इसलिये गुरुदेवके हृदयमें आपका स्थान कोई अनेरा था, अनेरा था। आज तक उनके हृदयमें यदि किसीने स्थान जमाया हो तो एक मात्र बहिनश्री है, और कोई नहीं। अत्यंत करुणा थी। बहिनश्रीका नाम आये तो उनका हृदय उल्लसित हो जाता था। पुरुषार्थ.. पुरुषार्थ..

मुमुक्षु :- श्रीमद्का अन्दर पढा था, अगासके कोई पुस्तकमें, समीप समय अज्ञात, बस, यह रखना, समीप समय अज्ञात। ...

मुमुक्षु :- जब अकेला बैठा था तब बारंबार याद आता है कि बहिनश्री जब भाईके लिये विशिष्ट पुरुषकी बात करते हैं, तब विशिष्ट भूतकालके, वर्तमानके या भविष्यके? ये मुझे .. विशिष्ट पुरुष कहते हैं तो विशिष्टताका शब्दार्थ और समय..

समाधान :- कुछ कहना नहीं है, वह तो बोल दिया होगा।

मुमुक्षु :- स्पष्टता होगी तो उसमें किसीको कोई नुकसानका कारण नहीं होगा, लाभका कारण होगा।

समाधान :- गुरुदेवके प्रतापसे सबको आत्माकी साधना करनी है, सबको साधना करनी है।

मुमुक्षु :- ... भाई है या बहन है, ऐसा हम नहीं गिनते। पवित्र आत्माएँ हैं और पवित्र आत्माके पुरुषार्थमें...

समाधान :- आपको जैसा मानना हो वैसा मानो, मैं कुछ नहीं कहती हूँ। बोला होगा, बाकी कुछ नहीं कहना है।

समाधान :- .. धारणामें होता है, लेकिन अन्दर उतनी जिज्ञासा और लगनी हो तो अंतरमें आये। अंतरसे स्वभाव पहचानना चाहिये। अंतरसे स्वभाव नहीं पहचानता, इसलिये धारणामें रह जाता है। स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दताका कारण, रुचिकी मन्दता, पुरुषार्थकी मन्दता है इसलिये नहीं होता। तीव्र जिज्ञासा हो, तीव्र लगनी हो तो अंतरमें आता है। अंतरमें क्यों नहीं हो रहा है? विचारमें आता है, अंतरमें क्यों नहीं आता है, ऐसे लगनी लगनी चाहिये। क्यों बाहर ही बाहर रहता है? क्यों अंतरमेंसे नहीं आता? उसकी लगनी अंतरमें लगनी चाहिये, तो होता है।

(लगनी) लगे उसे थोड़ा समझे तो भी हो जाता है। शिवभूति मुनि कुछ नहीं समझते थे। मात्र प्रयोजनभूत तत्त्वको समझे कि मैं भिन्न और ये शरीर भिन्न, ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, सबसे मैं भिन्न हूँ, ऐसा भेदज्ञान किया। परन्तु जिसे अंतरसे लगा, अंतरसे आत्माको ग्रहण कर लिया। तो अंतरमें स्वयं गहराईमें ऊतरे तो होता है। गहराईमें ऊतरता नहीं इसलिये ऊपर-ऊपरसे सब चलता रहता है। यदि प्रयत्न करे, भले गहराईमें नहीं जाये परन्तु समझनेका प्रयत्न करे वह भी ठीक है, लेकिन अंतरमेंसे हो, यथार्थ तो तब होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२६

मुमुक्षु :- .. होने पर भी मात्र अशुद्धरूप क्यों परिणमता है? परका संग करता है तभी अशुद्धरूप उत्पन्न होता है। उसमें क्या कहना है?

समाधान :- पारिणामिक, स्वभाव पारिणामिक है, लेकिन वर्तमान पर्याय तो अशुद्धरूप परिणमती है। स्वयं पर ओर जाता है, अपने पुरुषार्थकी मन्दता है, इसलिये उसे जो उदय आता है, उसमें स्वयं जुड़ जाता है। सबमें पुरुषार्थकी मन्दता है। स्वयंकी ओर मुड़ता नहीं, सबमें स्वयंका ही कारण है। उसे किसीका कारण लागू नहीं पड़ता। अकारण पारिणामिक द्रव्य है। उसे कोई रोकता नहीं, कर्म रोकते नहीं, कोई नहीं रोकते। स्वयं रुका है, स्वयंसे। अपनी रुचि बाहर जाती है। निमित्तकी असर स्वयंको होनेका कारण स्वयंका है, दूसरेका नहीं है।

मुमुक्षु :- परसंग कुछ नहीं करवाता होगा?

समाधान :- परसंग कुछ नहीं करवाता, स्वयंकी क्षतिके कारण परकी असर स्वयंको होती है। परन्तु स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दता हो तो स्वयं ऐसे निमित्त, सत्संग आदि निमित्तोंमें सत्संग करे। स्वयंकी उतनी शक्ति नहीं हो, निमित्तसे छूटकर अपना कर सके ऐसी, पुरुषार्थकी मन्दता हो तो देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य हो वहाँ रहनेका विचार, उसकी भावना करे। ऐसा समागम, योह नहीं हो तो स्वयं अपने पुरुषार्थसे दृढ़ रहे।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थकी मन्दता हो तो ऐसे संगसे उसे लाभ होनेका कारण है?

समाधान :- पुरुषार्थकी मन्दता हो तो ऐसा समागम निमित्त है, तैयारी तो स्वयंको करनी है। जिसे लगनी होती है, उसे स्वयंको असर होती है। अपनी लगन लगी हो उसे भावना होती ही है कि देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य प्राप्त हो, समागम प्राप्त हो, ऐसे विचार उसे आते ही हैं, जिसे लगन लगी हो उसे। दूसरोंके परिचयमें आनेकी उसे रुचि नहीं होती, जिसे आत्माकी रुचि है उसे। फिर बाह्य संयोगके कारण आ जाये वह अलग बात है, परन्तु उसको स्वयंको रुचि नहीं होती।

मुमुक्षु :- परसंग ही करवाता है।

समाधान :- शास्त्रमें अनेक प्रकारकी बातें आती हैं। निमित्तकी ओरसे बात आये, उपादानकी ओरसे बात आये। सब प्रकारकी बात आये, उसमें नक्की स्वयंको करना

है। ज्ञायककी बात आये। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ करता नहीं ऐसा आये, द्रव्य-गुण-पर्याय अपने आपसे स्वतंत्र है। दूसरेके स्वतंत्र है। क्रिया, कर्ता एवं कर्म सब स्वयंका है, ऐसा भी आये। और निमित्त करवाता है, ऐसा भी आये। परसंग ही करवाता है, ऐसा भी आये। उन दोनोंका मेल स्वयंको करना पड़ता है। तू निमित्त छोड़, ऐसा सब आये, उसका मेल स्वयंको करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- मेल कैसे करना? दोनों शास्त्रके कथन है।

समाधान :- सब आचार्योंके कथन हैं। व्यवहार शास्त्रमें, तत्त्वार्थ सूत्र आदिमें व्यवहारकी बात आये और अध्यात्ममें अध्यात्मकी बात आये। उन सबका मेल करना पड़ता है। वह आचार्य भी छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलने वाले थे, व्यवहारकी बात करते हैं। अध्यात्मकी बात करते हैं, वह भी छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलने वाले थे। दोनों आचार्य इस प्रकार कहते हैं, इसलिये उसका स्वयंको मेल करना पड़ता है। अपेक्षा समझनी।

आचार्यदेव कहते हैं, कोई द्रव्यदृष्टिकी बात, कोई पर्यायकी बात करे, कोई निमित्तकी बात करे, कोई उपादानकी बात करे, अनेक जातकी बात आती है। (स्वयं) मेल कर लेता है, वह कोई नहीं करवाता। अन्दर लगन लगी हो वही अन्दर मेल कर लेता है। स्वयं ही। वस्तु स्वयं अनेकान्तमय मूर्ति-अनेकान्त स्वरूप है। अनन्त धर्मसे भरी अनेकान्तमय मूर्ति (है)। इसलिये उसकी सभी बातें अनेकान्तमय होती हैं। द्रव्यदृष्टिकी, पर्यायकी अनेक प्रकारकी बात होती है, उसमेंसे स्वयंको मेल करना पड़ता है।

वस्तु द्रव्य, गुण और पर्याय वाली है। अकेला द्रव्य है, गुण नहीं है, पर्याय नहीं है ऐसा नहीं है। द्रव्य, गुण, पर्याय सब द्रव्यमें है। भेद अपेक्षा आये, अभेद अपेक्षा आये।

... शास्त्रमें क्या आता है, गुरुदेवने क्या बताया है, उनके प्रवचन, मूल शास्त्र समयसार, प्रवचनसार दोनोंमें आता है कि आत्माका स्वरूप क्या है, जाननेके लिये स्वाध्याय करना प्रयोजनभूत है। वह सब होता है, परन्तु करना अंतरमें है। गुरुदेवने मार्ग दर्शाया, उसका साथमें ध्येय होना चाहिये। नहीं हो तबतक यह सब होता है। पूजा, स्वाध्याय, भक्ति। और सच्चा समझ, आगे जानेके लिये सच्ची समझ और अंतरकी लगनी और वह सच्ची समझ-सच्चा ज्ञान होनेके लिये स्वाध्याय जरूरी है। (आत्माका) ध्येय रखना, उसमें सर्वस्व नहीं मान लेना। करनेका अंतरमें है, वह जबतक नहीं होता तबतक स्वाध्याय, पूजा, भक्ति आदि होता है।

.. अनन्त कालमें बहुत हुआ। सबको ऐसा (भाव रहता है कि), आत्माका करना, लगनी लगाये, ध्येय ऐसा रहता है और स्वाध्याय आदि सब करता है। दर्शन, पूजन सब होता है। जहाँ गुरुदेवका मुमुक्षु मण्डल है वहाँ सब होता है। सर्वस्व आत्मामें

है। कल्याण अंतर दृष्टिमें है।

मुमुक्षु :- ... ज्ञानमें पर भिन्न है और मैं ज्ञायक भिन्न हूँ, राग मेरा स्वरूप नहीं है, वह भी मेरेसे (भिन्न है), ऐसा बारंबार अभ्यास करनेसे उसके प्रति विरक्ति भाव सहज ही आ जाता होगा?

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ और यह भिन्न है, राग भिन्न है। ऐसा बारंबार करनेसे विरक्ति भाव आये, ऐसा नहीं। जिसे अंतरमेंसे उसका रस छूट जाये, उसे भेदज्ञानका बारंबार अभ्यास चलता है। प्रयास करनेसे विरक्ति आये ऐसा भी होता है और विरक्ति हो तो उससे भेदज्ञानका अभ्यास हो। ज्ञायकमें सब है, सबकुछ ज्ञायकमें है, सब ज्ञायकमें है, यह राग तो आकूलतामय है। इसप्रकार रागसे स्वयं पीछे हटे तो अन्दर मैं ज्ञायक हूँ, यह मैं नहीं, मैं ज्ञायक हूँ, यह मैं नहीं। जिसे रागका रस है वह रागसे भिन्न नहीं पड़ता। जिसे रागका रस छूट जाता है, वह रागसे भिन्न होता है।

रागसे भिन्न पड़नेका प्रयत्न कब करे? कि रागका रस छूटे तो रागसे छूटनेका प्रयत्न करे। रागमें रस, एकत्वबुद्धि हो वह भिन्न नहीं पड़ता। रागका रस छूटकर अंतरमें ज्ञायकका रस लगे, ज्ञायककी महिमा लगे, ज्ञायकमें ही सबकुछ है। ज्ञायकका रस लगे, उसकी रुचि लगे और रागका रस छूटे तो उससे भिन्न पड़ता है।

मुमुक्षु :- रागका रस छूटे कि राग आकूलतारूप है,...

समाधान :- आकूलतारूप है। सुखरूप नहीं है, आकूलतामय है। मेरा स्वभाव नहीं है। स्वयंको ऐसा निश्चय हो, उसका रस छूटे, ऐसी प्रतीत आये तो उससे भिन्न पड़नेका प्रयत्न करे। सच्ची यथार्थ प्रतीति अलग है, परन्तु पहले भी उसे रागका रस छूटे, यह मेरा स्वभाव नहीं है, आकूलतारूप है, दुःखरूप है, ऐसा उसे लगे तो उससे छूटनेका प्रयत्न करे। और उससे भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे। मैं ज्ञायक जानने वाला, मैं सबसे उदासीन, यह मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसे भिन्न पड़नेका प्रयत्न करे। और इस ओर ज्ञायककी महिमा आये तो रागका रस छूटे। ज्ञायककी महिमा आये तो ही उसका रस छूटे। राग आकूलतारूप लगे। समस्त प्रकारका विभावभाव आकूलतारूप है, ऐसा उसे अंतरसे लगे।

वह आगे नहीं बढ़ सके और शुभभावमें खड़ा रहे, वह अलग बात है, परन्तु उसे प्रतीतमें ऐसा लगे कि सब आकूलतारूप ही है। अन्दरसे बराबर श्रद्धा होनी चाहिये। तो उसे भिन्न पड़नेका प्रयत्न (चले)।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- वह तो विशेषता ही है। जैनदर्शन यथार्थ है। एक-एक पक्ष। कोई आत्माको एकान्त-एकान्त कहता है। एकान्त नित्य कहे, कोई एकान्त अनित्य कहता

है, कोई किसीसे मुक्ति कहे, कोई किससे मुक्ति कहे, उसमें तो बहुत फेरफार है। जैनदर्शन तो यथार्थ है। आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय सब यथार्थ बात आती है। अपेक्षासे आत्मा नित्य शाश्वत है, उसकी पर्यायमें अनित्यता है, बाकी वास्तविक वस्तु अनित्य नहीं है। बहुत प्रकारकी (बात) अन्दर (है)। मुक्तिका मार्ग आत्माको पहचाने तो होता है। भेदज्ञान करे। बहुत फेरफार है। स्वानुभूति कैसे हो? जैनमें यथार्थ मार्ग है, ऐसा मार्ग कहीं नहीं है। सबमें फेरफार है।

मुमुक्षु :- जैनमें हम जन्मे इसलिये मान लेना कि जैन ही सत्य है।

समाधान :- जन्म हुआ इसलिये मान नहीं लेना, लेकिन विचार करके मानना कि यथार्थ जैनदर्शन सत्य ही है। विचार करे, यथार्थ जिज्ञासा हो तो आत्माका करना ही है तो यथार्थ मार्ग क्या है, उसे स्वयं पहचान सकता है। यथार्थ सत्पुरुषको पहचान ले, आत्माका स्वरूप कैसा, कौन-सा मार्ग सच्चा है, वह समझ सकता है। और अपनी उतनी शक्ति नहीं हो तो स्वयं जो महापुरुष हो गये, उनकी बातका स्वयं स्वीकार करके, स्वयं विचार करके निर्णय करे। ये वीतरागी मार्ग है। अन्यमें तो कोई-कोई फेरफार है। गुरुका, शास्त्रमें सब अलग आता है।

स्वतंत्रता जो जैनदर्शनमें आती है, ऐसी दूसरेमें आती नहीं। कोई कर देता है, किसीसे होता है, किसीको कोई देता है, ऐसी अनेक जातकी विपरीतता है। ऐसा नहीं हो सकता। आत्मा स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- सभी दर्शन वाले कहते हैं, हमारा भी सत्य है।

समाधान :- प्रत्येक दर्शन वाले कहे, लेकिन विचार करके स्वयंको नक्की करना चाहिये। मुक्ति होनेके बाद वापस आता है, ऐसा अनेक प्रकारका आता है। सब आत्मा एक है। सब एक हो तो प्रत्येकके सुख-दुःखका वेदन भिन्न-भिन्न होता है, प्रत्येककी स्वतंत्रता (है)। किसीका वेदन अन्य किसीको नहीं होता। विचार करके सब नक्की हो सके ऐसा है। पुरुषार्थ किसके लिये करना? स्वयंके लिये। स्वयं स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ कैसे करना? और भेदज्ञानकी रीत क्या है?

समाधान :- पुरुषार्थ आत्माको पहचाननेका (करन)। मैं एक जानने वाला हूँ, विचार करके नक्की करे कि ये जानने वाला जो अन्दर है वही मैं हूँ। ये जड़ कुछ नहीं जानता। अन्दर संकल्प-विकल्प राग-द्वेष होते हैं, वह भी स्वयंको नहीं जानते। उसे जानने वाला अन्दर कोई अलग ही है। पहले बचपनमें जो-जो भाव आये वह भाव तो चले गये, विकल्प (चले गये) और जानने वाला ऐसा ही खड़ा है। वह जानने वाला सब अन्दर याद करने वाला भिन्न है और ये संकल्प-विकल्प सब भिन्न हैं। शरीर भी भिन्न है, इसप्रकार विचार करके नक्की कर सकता है। अन्दर जो जानने

वाला है, वह मैं हूँ। मात्र दूसरेको जाने इसलिये जानने वाला है ऐसे नहीं, परन्तु जानने वाला स्वयं जानने वाला ही है।

जैसे यह एक जड़ वस्तु स्वयं है। वैसे आत्मा जानने वाला भी एक स्वयंसिद्ध वस्तु है। जानने वाला मैं हूँ। इसप्रकार जानने वालेको नक्की करके दृढ़ निर्णय करना कि यह जानने वाला ही मैं हूँ, उससे ये सब भिन्न है। ये जड़ शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, विकल्प आकर चले जाये वह मेरा स्वभाव नहीं है। वह सब भिन्न, मैं भिन्न। स्वयंको स्वयंसे नक्की करके भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करना। पहले उसकी प्रतीत दृढ़ करे कि ये जानने वाला है वही मैं हूँ, अन्य नहीं। ऐसा नक्की करके जानने वाला शाश्वत है, उसमें गुण है, जानने वाला ज्ञानसे भरा, आनन्दसे भरा, अनन्त गुणसे भरा आत्मा महिमावंत है। उसकी महिमा लाकर, उसकी प्रतीत लाकर दृढ़ निर्णय करे और उसका प्रयास करनेका प्रयत्न करे।

एकत्वबुद्धि अनादिसे हो रही है, उसे बारंबार प्रतिक्षण भिन्न करनेका प्रयत्न करे। विचार करके, निर्णय करके, जब तक नहीं होता तब तक शास्त्रका अभ्यास करे, स्वाध्याय करे, विचार करे, वांचन करे, बारंबार उसकी लगनी लगाये तो होता है। भेदज्ञान करनेका प्रयास करे, मैं भिन्न हूँ। उससे (-परसे) भिन्न पड़े, संकल्प-विकल्प आये उसमें एकत्व नहीं हो और रस छूट जाये। जिसे आत्माकी ओर रस लगा, उसे मन्द पड़ जाता है, सब छूट नहीं जाता, मन्द पड़ जाता है। ये जानने वाला ज्ञायक है वही मैं हूँ। भेदज्ञान करना वही मार्ग है। और उसका प्रयास करते-करते यदि अंतरसे सच्चा प्रयत्न हो तो उसे स्वानुभूति भी उसी भेदज्ञानके मार्गसे होती है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

अभी कितने ही समझे बिना ध्यान करने बैठ जाते हैं। परन्तु समझ बिनाका ध्यान तरंगरूप हो जाता है। पहले मार्ग जानना चाहिये, यथार्थ ज्ञान करना चाहिये कि जानने वाला है वही मैं हूँ। इसप्रकार जानने वालेकी प्रतीति करके उसमें लीनता करे, एकाग्र हो तो सच्चा ध्यान होता है। नहीं तो सच्चा ध्यान नहीं होता। ध्यानमें बैठे तो विकल्प मन्द पड़े, तो मानो कुछ हो गया, ऐसा मान लेता है। यथार्थ भेदज्ञान करे, आत्माको पहचाने और उसमें ध्यान हो तो यथार्थ होता है। पहले भेदज्ञान करनेका प्रयास करे। द्रव्यको पहचाननेका (प्रयास करे), द्रव्य पर दृष्टि स्थिर करे कि, यह द्रव्य है वही मैं हूँ, बाकी सब मुझसे भिन्न है। अपने द्रव्यको पहचाने, गुण और पर्याय, सबका स्वरूप पहचाने। यह चैतन्यद्रव्य है वही मैं हूँ, ऐसी दृढ़ता करे।

पहले मार्गको नक्की करना। स्वभावको बराबर विचारे। अपने हाथकी बात है, जिज्ञासु नक्की करता है। ... गुरुदेवने वाणी बरसायी, सब लोग कहाँ थे, ये वीतरागी मार्ग यथार्थ है, कितने ही रीतसे स्पष्ट कर-करके समझाया है। कहीं किसीको पूछने जाना

पड़े ऐसा नहीं है। स्वयंको प्रयत्न करना बाकी है, इतना गुरुदेवने स्वानुभूतिका मार्ग दर्शाया है। पहलेसे समझा दिया है। कोई शंका ही नहीं रहे। कोई दूसरे दर्शन क्या कहते हैं, उसकी भी शंका नहीं रहे, ऐसा उनकी वाणीमें सब स्पष्ट आता था।

मुमुक्षु :- भले सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हो, लेकिन उसके जो संस्कार है, वह कितने प्रमाणमें अपने साथ आते हैं?

समाधान :- गहरे संस्कार हो तो साथ आते हैं। ऊपर-ऊपरसे हो, जैसे बाकी सब रूढ़िगत रूपसे धर्म करते हैं कि धर्म करना चाहिये, ऐसे रूढ़िगतरूपसे हो तो साथ नहीं आते। परन्तु गहरे संस्कार हो और अन्दर सच्ची लगन लगी हो कि मुझे आत्मा प्राप्त करना ही है, मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो, ये विभाव मुझे नहीं चाहिये, ये सब आकूलतारूप है, मुझे आत्मा कैसे मिले, ऐसी अन्दरकी लगन लगी हो तो वह साथ आते हैं।

मुमुक्षु :- ऐसी लगन लगी हो, परन्तु उतना भेदज्ञान नहीं किया हो तो?

समाधान :- भले भेदज्ञान नहीं किया हो, लेकिन लगन लगी हो तो वह लगनी, स्वयंकी लगनी अंतरकी हो तो वह साथ आते हैं, भेदज्ञान भले नहीं हो।

मुमुक्षु :- .. शुरूआत करने के लिये भेदज्ञान विशेष कैसे करना?

समाधान :- पहले तो आत्माको पहचानना कि आत्मा कौन है? मैं एक आत्मा हूँ, ये जानने वाला, जानता है वह मैं हूँ, ये जानता नहीं है वह जड़ है। अन्दर जो जानने वाला है, वह मैं हूँ। जानने वाला ज्ञान, आनन्दसे भरा आत्मा है। उस आत्माका विश्वास करना कि यह आत्मा जानने वाला है वही मैं हूँ। अन्दर जो आकूलता होती है, संकल्प-विकल्प, अनेक प्रकारके विकल्प होते हैं, वह विकल्प भी मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसी अन्दर दृढ़ता करे, बारंबार उसका अभ्यास करे।

?? ?

ट्रेक-०२७

समाधान :- .. ऐसा नक्की करके बारंबार उसके विचार करे कि मैं तो भिन्न ही हूँ, ये विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसे अन्दरसे दृढ़ता करे, बारंबार उसका प्रयास करे, उसकी लगनी लगाये। खाते-पीते, जागते-सोते, स्वप्नमें सबमें उसकी लगनी होती है कि मैं तो भिन्न ही हूँ। ऐसी अंतरसे लगनी लगनी चाहिये। बारंबार मैं भिन्न हूँ। ऐसे भेदज्ञानके प्रयास सहित। यथार्थ भेदज्ञान, सच्चा भेदज्ञान बादमें होता है, परन्तु पहले उसकी लगनी लगे। तबतक विचार करे, वांचन करे, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये। गुरुदेव क्या कहते थे, भगवानने पूर्ण स्वरूप प्राप्त किया, गुरु कैसे होते हैं, गुरुका क्या स्वरूप है, गुरुदेवने क्या मार्ग बताया, यह सब नक्की करे। शास्त्रमें क्या मार्ग आता है, यह सब नक्की करे। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा करे, वह सब शुभभाव है, लेकिन वह पहले आये बिना नहीं रहते। अभी आत्मा-शुद्धात्मा प्राप्त नहीं हो, तब तक बीचमें आते हैं। परन्तु उसे ध्येय यह होता है कि मुझे शुद्धात्मा प्राप्त करना है। मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो, ऐसी अंतरसे लगनी लगनी चाहिये। उसे खटक रहा करे।

जिसकी स्वयंको इच्छा हो और वह नहीं मिलता हो तो अन्दर कैसे बार-बार याद आता है, वैसे उसे याद आये। अपनी माँ हो, तो मेरी माँ, जहाँ भी जाये कोई पूछे, तू कौन है? तेरा नाम क्या? बालक समझता नहीं हो तो (कहता है), मेरी माँ, मेरी माँ करे। मेरी माँ, मेरी माँ कैसा अंतरमें होता है?

वैसे मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो? ऐसी लगनी लगनी चाहिये। उसका प्रयास करे, बारंबर उसके भेदज्ञान करनेका अभ्यास करे, बारंबार मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ। मात्र विकल्प मात्र ऊपर-ऊपरसे करे वह अलग बात है, परन्तु अंतरसे होना चाहिये।

मुमुक्षु :- आत्मा तो अपने पास ही है, तो फिर?

समाधान :- अपने पास है, दृष्टान्त तो ऐसा ही होता है। आत्मा अपने पास है, लेकिन भूल गया है। उसे ऐसा हो गया है, मानो मैं बिछड़ गया हूँ। ऐसा उसे हो गया है। भूल गया है। आत्मा स्वयं ही है, लेकिन मैं बिछड़ गया, मानो आत्मा दूर चला गया हो और मैं भूला पड़ गया हूँ। मानो शरीरमें एकमेक हो गया, मानो गुम गया हो ऐसा उसे हो गया है। जैसे बकरीके झुंडमें सिंह आ गया और भूल

गया कि मैं सिंह हूँ, मैं बकरी हूँ, उसके जैसा हो गया है। सिंह भूल गया कि मैं कौन? ये बकरे अलग है और मेरा लक्षण अलग है, यह भूल गया। ऐसे स्वयं भूल गया है। उसमें सिंहको कोई कहनेवाला मिले कि अरे..! इस बकरेके झुंडमें तू सिंह है। लक्षणसे पहचान करवाये।

इसप्रकार गुरुदेव लक्षणसे पहचान करवाते हैं कि अरे..! तू तो आत्मा जानने वाला है, ये शरीर तू नहीं है। तू उससे भिन्न है, तू देख। अन्दर जानने वाला आत्मा है। ऐसे गुरुदेव मार्गकी पहचान करवाते हैं, उस मार्गको बारंबार दृढ़ता करके ग्रहण करना चाहिये। उसके लिये सब छोड़ दे, ऐसा कुछ नहीं होता, अन्दरकी रुचि लगनी चाहिये। उसे अंतरमें रस कम हो जाये। रस कम हो जाये। बाहर सब रहता है, बाहर सब करता हो, लेकिन अन्दर उसे रस छूट जाता है।

मुमुक्षु :- अन्दरकी रुचि कब हो? जब दुःख हो तब होती है?

समाधान :- दुःख हो ऐसा नहीं, परन्तु अन्दर नक्की हो कि गुरुदेव कहते हैं वह अलग है, आत्मा भिन्न है। भले सच्ची प्रतीत बादमें (होती है), परन्तु अन्दरसे ऐसा लगना चाहिये कि इस आत्मामें ही सब है, बाहरमें कहीं भी नहीं है। सुख बाहर कहीं नहीं है। जहाँ देखो वहाँ, खाते-पीते, सोते-जागते, घुमनेमें-फिरनेमें कहीं भी सुख नहीं है, ऐसा उसे नक्की होना चाहिये। सुख मेरे आत्मामें है। अन्दर आत्मा कोई अनुपम और अपूर्व है, ऐसा उसे नक्की हो कि आत्मा कोई अलग है, तो उसे उस ओर रुचि लगे।

लेकिन यह कौन बताये? गुरुदेव बताते हैं। मार्ग बताया है। सब लोग कहाँ पड़े थे। क्रिया करे, थोड़ा बाहरसे करे कि थोड़ा ये कर लिया, उपवास कर लिया, ये कर लिया तो धर्म हो गया। धर्म उसमें नहीं है। धर्म अन्दर आत्मामें है। वह तो शुभभाव करे। उपवास करे तो शुभभावसे पुण्य बन्धता है, देवलोक होता है, उससे भवका अभाव नहीं होता। ऐसे देवके भव जीवने अनन्त कालमें बहुत किये, परन्तु मोक्ष नहीं हुआ। भवका अभाव तो आत्माको पहचाने तो होता है। लेकिन जबतक वह नहीं होता तबतक बीचमें शुभभाव आते हैं। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि (होते हैं)। अंतरमेंसे बाहरका सब रस छूट जाये।

.. जैसे होना होगा वैसा होगा, परन्तु उसमें पुरुषार्थ साथमें होता है। स्वयंको तो ऐसा ही विचार करना है कि मैं पुरुषार्थ करुँ। पुरुषार्थका क्रमबद्धके साथ सम्बन्ध है। ऐसा माने कि जैसा होना होगा वैसा होगा। तो-तो फिर जो परिणाम आये उसमें जुड़ जाये। ये अशुभभाव, एकत्वबुद्धिसे जड़ जाता है, ऐसा जो करता है कि जैसे होना होगा वैसा होगा, तो फिर खानेमें-पीनेमें हर जगह एकत्वबुद्धि रस लेने वाला,

उसे शरीर सो मैं और मैं सो शरीर, ऐसी बुद्धि है, पुरुषार्थकी ओर जिसकी दृष्टि ही नहीं है, तो उसका क्रमबद्ध ऐसा होता है कि उसे भवका अभाव नहीं होता। परन्तु जिसके हृदयमें ऐसा हो कि मैं पुरुषार्थ करुँ, मैं मेरे भावको बदलूँ। मुझे एक शुद्धात्मा चाहिये, मुझे और कुछ नहीं चाहिये। तो उसे उस जातका क्रमबद्ध होता है कि उसे मुक्तिकी ओरका होता है।

क्रमबद्धका पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। जिसकी रुचि आत्माकी ओर जाये उसका क्रमबद्ध मोक्षकी ओर होता है। परन्तु जिसकी रुचि संसारकी ओर हो, उसे क्रमबद्ध संसारकी ओर होता है। स्वयंको तो ऐसा ही विचार करना है कि मैं पुरुषार्थ करुं। क्रमबद्ध-कुदरतमें जो होनेवाला है वह होगा, परन्तु स्वयंको ऐसा विचार करना कि मुझे-मैं पुरुषार्थ करुँ। मेरे आत्माके परिणाम बदलकर मैं ज्ञायकको पहचानुँ। स्वयंको ऐसा विचार करना चाहिये।

यदि स्वयं ऐसा विचार करे कि सब क्रमबद्ध होगा तो फिर स्वयंको कुछ करना नहीं रहता है। तो जैसे आये वैसे परिणाम चलते रहे, (क्योंकि) स्वयंको कुछ करना ही नहीं है। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्धका सम्बन्ध है। स्वयंको तो रुचि पलटकर पुरुषार्थ करना। क्रमबद्ध इसप्रकार है। क्रमबद्धका पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- क्रमबद्ध ऐसा कि कहीं जुड़ना नहीं, देखते रहना, आये उसे रोकना नहीं।

समाधान :- जुड़ना नहीं वह भी पुरुषार्थ हुआ न? जुड़ना नहीं वह अन्दर उस जातका पुरुषार्थ हुआ। मुझे जुड़ना नहीं है, ऐसा भाव आया वह पुरुषार्थ ही है कि मुझे नहीं जुड़ना है। जुड़ना नहीं है, मुझे भेदज्ञान करना है, ज्ञायकको पहचानना है। तो वह पुरुषार्थ हुआ, वह तो पुरुषार्थ हुआ।

मुमुक्षु :- यानी अच्छा किया न?

समाधान :- हाँ, वह अच्छा है, लेकिन वह पुरुषार्थ हुआ। उसके साथ क्रमबद्ध (है), पुरुषार्थके साथ क्रमबद्ध हुआ उसके साथ क्रमबद्ध अच्छा होता है। जो ऐसा कहे कि मुझे जुड़ना नहीं है, ऐसा नहीं रखे और कहे कि क्या करुँ? जुड़ जाता हूँ। क्रमबद्ध ऐसा था। ऐसा करे उसका क्रमबद्ध अच्छा नहीं होता। जुड़ जाता हूँ, क्या करुँ? कर्मका उदय है। ऐसा माने तो उसका क्रमबद्ध अच्छा नहीं होता। ऐसा कहे कि मुझे नहीं जुड़ना है, मुझे आत्माको पहचानना है, तो उसका क्रमबद्ध अच्छा होता है। आकूलता नहीं करनी, शांतिसे पुरुषार्थ करे। लेकिन पुरुषार्थकी ओर जिसकी दृष्टि हो उसका ही क्रमबद्ध अच्छा होता है।

मुमुक्षु :- क्रमबद्धमें पुरुषार्थ करना..

समाधान :- क्रमबद्धमें पुरुषार्थ करे, लेकिन स्वयंको तो ऐसा होता है न कि मैं पुरुषार्थ करुँ, मेरे भाव बदलूँ। भले क्रमबद्धमें। परन्तु स्वयंको तो ऐसा विचार आना चाहिये कि मैं पुरुषार्थ करुँ। क्रमबद्धमें पुरुषार्थ आयेगा, ऐसा विचार करे तो भी पुरुषार्थ नहीं होता। क्रमबद्धमें पुरुषार्थ होगा, ऐसा माने तो उसे पुरुषार्थ नहीं होता। मैं पलटुँ, परिणाम मेरी ओर आये, मुझे ये नहीं चाहिये। स्वयं यदि ऐसा विचार करे कि मैं पलटुँ, उसे ही क्रमबद्धमें पुरुषार्थ आता है, दूसरेको नहीं आता। स्वयंको तो ऐसा ही लेना। उसमें तो कुदरतकी पर्यायें स्वयं परिणमति है। स्वयं परिणमे उसे तुझे क्यों देखने जाना है? क्रमबद्ध अपने आप पलटता है। सभी पर्यायें कुदरती पलटती है, उसे तुझे नहीं देखना है। तू तेरे पुरुषार्थकी ओर नज़र कर।

ऐसा विचार करे कि क्रमबद्धमें पुरुषार्थ होगा तो होगा। तो उसे पुरुषार्थ नहीं चलता। ऐसा विचार करे तो भी। ऐसा विचार करे तो उसका पुरुषार्थ मन्द पड़ जाये। तो पुरुषार्थ नहीं चलता। स्वयंको तो ऐसे ही लेना है कि मैं पुरुषार्थ करुँ। तो उसका क्रमबद्ध मोक्षकी ओर आये। मुझे एक ज्ञायक चाहिये, और कुछ नहीं चाहिये। मुझे संकल्प-विकल्प आकूलतामय है, वह नहीं चाहिये। मुझे एक आत्मा अनुपम है वही चाहिये। ऐसी भावना करे। मुझे पुरुषार्थ करके मुझे ही पलटना है। ऐसे विचार आये तो उसका क्रमबद्ध पलटता है। स्वयंको ऐसे ही विचार आने चाहिये।

मुमुक्षु :- नहीं तो स्वयंको स्वंयके आधीन कोई परिणाम ही नहीं रहे और दूसरा क्रमबद्ध..

समाधान :- हाँ, स्वयं स्वाधीन नहीं रहा। कोई कर देगा ऐसा हो गया। क्रमबद्ध मुझे पुरुषार्थ कर देगा, तुझे क्या करना है? क्रमबद्ध पुरुषार्थ करेगा तो तुझे पुरुषार्थ होगा ही नहीं। तेरा पुरुषार्थ मन्द ही हो जायेगा। ऐसा विचार करना। आत्मार्थीओंको, जिसे आत्माकी लगी है, वह ऐसे विचारोंमें रुकता नहीं। बीचमें उसे वह बचावका पहलू आ जाता है। जो आत्मार्थी हैं, वह ऐसा मानते हैं कि मेरी क्षति है। मेरी क्षतिके कारण मैं रुका है, मेरी मन्दता है। मेरी मन्दता है, मेरी रुचिकी कमी है, मेरे पुरुषार्थकी कमी है, तो ही वह आगे बढ़ता है।

... कारण वह है। परद्रव्यका स्वयं कर्ता नहीं होता। परद्रव्यमें जो होना होगा वह होता है। वहाँ क्रमबद्धमें खड़ा रहे। अपने पुरुषार्थमें यदि क्रमबद्ध लेगा तो पुरुषार्थ मन्द हो जायेगा। बाहरके उदय, पुण्य-पापके उदय, बाहरके फेरफार आदि सब क्रमबद्ध (है)। अंतरमें क्रमबद्ध है, परन्तु वह क्रमबद्ध, स्वयं जिज्ञासु आत्मार्थी हितकी ओर जाने वाला अपने पुरुषार्थकी ओर ही देखने वाला होता है। और उस पुरुषार्थके साथ क्रमबद्धका सम्बन्ध है। अकेला क्रमबद्ध मोक्षकी ओर जो जाता है, वह अकेला नहीं

होता। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्धका सम्बन्ध होता है। काललब्धि, पुरुषार्थ, क्षयोपशम सबका सम्बन्ध है, उसमें पुरुषार्थ मुख्य है। जैसी पुरुषार्थकी गति मुमुक्षुकी होती है, उस अनुसार सब पलटता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ मन्द पड़े तो समझना कि क्रमबद्ध अभी बैठा नहीं है।

समाधान :- हाँ, तो क्रमबद्ध सच्चे स्वरूपमें समझा ही नहीं। क्रमबद्धको सच्चा समझा ही नहीं।

मुमुक्षु :- जैसा आप कहते हो उसमें तो पुरुषार्थ ही...

समाधान :- पुरुषार्थकी ओर ही जाना, मुख्य पुरुषार्थ है। सब कर्ताबुद्धि छुडानेकी बात है। अन्दरके पुरुषार्थकी मन्दताके लिये वह नहीं है। तू ज्ञायक हो जा। ज्ञाताकी धारा आयी, उसमें पुरुषार्थ आ गया। ज्ञायक हुआ उसमें भेदज्ञानका प्रयत्न आ गया।

मुमुक्षु :- कर सकता नहीं, तो अकर्ता स्वभाव पर लक्ष्य रखना?

समाधान :- अपनी पर्याय नहीं पलट सकता, वह बात एक ओरकी है। द्रव्यके ज़ोरमें कहता है। बाकी अपनी पर्यायको एक अपेक्षासे बदल सकता है। एकान्त नहीं बदल सकता ऐसा नहीं है। अशुभमेंसे शुभमें आये और शुभमेंसे शुद्धमें जाता है। वह अपने पुरुषार्थकी गतिसे ही होता है। वह उसे कोई नहीं कर देता। वह अपनेआप होता है, ऐसा कुछ नहीं है।

द्रव्यदृष्टिके ज़ोरमें, द्रव्यदृष्टिमें ऐसा आये कि पर्याय अपनेआप होती है। अपनेआप होती नहीं, द्रव्यके आश्रयसे पर्याय होती है। पर्याय ऊपर-ऊपर नहीं होती। उसकी रुचि जिस ओरकी हो उस जातकी पर्याय वैसी होती है। पर्यायका कर्ता स्वयं नहीं है, वह एक ओरकी बात है। द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे कहनेमें आता है। द्रव्यके आश्रयसे पर्याय होती है। पर्याय ऊपर-ऊपर नहीं होती।

... की पर्याय अपनेआप नहीं होती। जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट होते हैं, तो वह द्रव्यदृष्टिके आलम्बनमें होती है। वह आलम्बन अपनेआप नहीं हो जाता। उसका कोई कर्ता नहीं है, ऐसा नहीं है। द्रव्यके आश्रयसे होती है। द्रव्यदृष्टिके आलम्बनके बलसे होती है। उसमें ज्ञानके साथ, लीनता साथमें होती है। साधना होनी होगी तो होगी, वह पर्याय अपने आप होगी, ऐसा नहीं है। द्रव्यदृष्टिके बलमें ऐसा कहनेमें आता है। बाकी तो वह एकान्त हो जाता है।

मुमुक्षु :- ... कहते हैं तो ऐसी कोई विवक्षा है कि द्रव्यदृष्टिका..

समाधान :- नहीं, द्रव्य शाश्वत है और पर्याय अंश है। इसलिये पर्यायका परिणमन पर्याय स्वतंत्र करे, ऐसा कहनेमें आता है। कहनेमें आता है यानी वह अंश है और वह त्रिकाल है। अर्थात् वह पर्याय ऊपर-ऊपर नहीं है। कोई द्रव्यका उसे आश्रय नहीं

है, बिना आश्रय पर्याय परिणमित हो गयी, ऐसा नहीं है। द्रव्यके आश्रयसे पर्याय परिणमति है। पर्याय एक अंश है इसलिये उसे भिन्न करके पर्याय स्वयं परिणमित हुयी, ऐसा एक अपेक्षासे कहनेमें आये। परन्तु वह द्रव्यके आश्रय बिना ऊपर-ऊपरसे परिणमित हुयी, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- द्रव्यका आश्रय तो बराबर है कि पर्यायको द्रव्यका आश्रय तो होता है। परन्तु आश्रय द्रव्यका रखकर भी स्वतंत्ररूपसे परिणमती है, ऐसी कोई विवक्षा है?

समाधान :- स्वतंत्र परिणमे यानी द्रव्यके हाथमें डोर नहीं है और उसे ठीक पड़े वैसे परिणमती है, ऐसा नहीं है। मोक्षमार्गकी डोर उसके हाथमें है। विभावकी ओर जाना हो तो वह स्वतंत्र जाये और स्वभाव (की ओर जाना है तो वहाँ जाये), ऐसे पर्याय नहीं जाती। उसके हाथमें डोर है। डोरको किस ओर ले जाना, वह उसके हाथमं है। द्रव्यदृष्टिके हाथमें उसकी डोर है।

मुमुक्षु :- अकारण पारिणामिक द्रव्य।

समाधान :- अकारण पारिणामिक द्रव्य भी अलग है। इसे अन्दर पुरुषार्थसे प्रगट पर्याय होती है। ये ऐसे क्यों परिणमा? अकारण पारिणामिक है। लेकिन जो बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ होता है, उसमें उसकी डोर उसके हाथमें है। डोर हाथमें नहीं है और ठीक पड़े वैसे पर्याय परिणमती है, ऐसा नहीं है। उसकी पूरी दिशा बदल गयी है। द्रव्यदृष्टिका आलम्बन है। आलम्बनके ज़ोरमें सब पर्याय इस ओर आती है। उसके आलम्बनके ज़ोरमें आती है।

मुमुक्षु :- डोर उसके हाथमें है, वही उसकी स्वतंत्रता है।

समाधान :- वह उसकी स्वतंत्रता है। पर्याय अलग फिरती है, ऐसा नहीं है। द्रव्यके आश्रयसे (होती है)। डोर उसके हाथमें है-साधकके हाथमें। वह मुख्य रहता है। आत्मा कैसे समझना?

समाधान :- .. उसे कैसे समझमें आये, नौ तत्त्व और छह द्रव्य? ध्येय होना चाहिये।

.. उसे सुखका होता है। बाकी आत्मा कोई महिमावंत है, एक अलग तत्त्व है, उसमें अगाध ज्ञान भरा है, उसके अनन्त गुण कोई अपूर्व हैं, ऐसे भी महिमा आये। तत्त्व कोई अगाध गंभीरतासे भरा है, ऐसे भी महिमा आती है। कोई अगाध गंभीरता है। उसे एक ज्ञानसे पहचान सके ऐसा है। अन्य कोई रीतसे पहचाना नहीं जाये ऐसा है। ऐसा कोई महिमावंत पदार्थ (है)। अंतरमें जाये, उसमें दृष्टि करे, उसमें लीनता करे तो पहचानमें आये। ऐसा कोई अनुपम है कि जिसे किसीकी उपमा लागू नहीं पड़ती, ऐसा अनुपम है। ऐसे भी महिमा आती है। पदार्थकी अनुपमतासे, पदार्थकी

गंभीरतासे, पदार्थके अनन्त गुणोंसे कि जिसके गुणोंका पार नहीं है। ऐसा अगाध तत्त्व कैसा होगा? ऐसे भी महिमा आये। ... परन्तु मुख्य उसे सुख (है), भटकता है उसमें सुखकी इच्छासे बाहर भटकता है। जहाँ दुःख लगता है, वहाँ-से एकदम पीछे मुड़ जाता है। जहाँ अत्यंत दुःख और आकूलता, जहाँ दुःखके प्रसंग आये वहाँ-से भागता फिरता है। कहाँ सुख मिले, कहाँ सुख मिले?

मुमुक्षु :- वह तो जीवकी स्वाभाविक पर्याय है कि दुःख हो वहाँ-से भागना।

समाधान :- भागना, वही उसे परिणतिमें अन्दर होता है। .. लगे, फिर भले ही अपनी कल्पनासे दुःख लगा हो, परन्तु दुःख लगता है इसलिये वह भागता है। ऐसी उसे प्रतीत हो कि सुख बाहर तो नहीं है, जहाँ सुख लेने भागता हूँ, वहाँ कहीं भी सुख तो मिलता नहीं। इसलिये सुख कोई और जगह है। कोई अंतरमेंसे, ऐसा सुख अंतर तत्त्वमेंसे आ जाओ कि जो सुख अंतरमें होना चाहिये। ऐसा समझकर वापस मुड़ता है। जो शाश्वत है, जिसे बाह्य साधनकी कोई जरूरत नहीं है, जो पराधीन नहीं है, जो स्वयंसिद्ध है, जिसे कोई तोड़ नहीं सकता, जिसे कोई विघ्न नहीं आते। उसके लिये स्वयं वापस मुड़ता है। आत्मा ज्ञायक जानने वाला है, उसका ज्ञानगुण कोई अपूर्व है। ऐसा समझकर भी मुड़ता है, परन्तु मुख्य तो उसे सुखका हेतु हर जगह होता है। सुखका हेतु हर जगह होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२८

मुमुक्षु :- उसमें तो जीवको अपनेमें ज्ञान है, अस्तित्व है, ऐसा थोड़ा-थोड़ा ख्यालमें आता है।

समाधान :- दूसरा ख्यालमें नहीं आता, लेकिन उसे पदार्थकी गंभीरता भासित हो तो आये। शास्त्र (पर), महापुरुषों पर विश्वास रखे। यह तत्त्व है वह कोई अपूर्व अनन्त गंभीरतासे भरा है और स्वयं विचार करे, स्वयं उसे पकड़ नहीं सकता हो तो उसमें कोई गंभीरता भरी है, ऐसे विचार करके भी स्वयंको गंभीरता भासित हो तो आगे बढ़े। भासित हो ऐसा ही तत्त्व है।

उसका एक ज्ञानगुण ऐसा है कि एक ज्ञानगुण ही जिसे क्रम नहीं पड़ता, एक समयमें लोकालोकको जाने। भूतकाल, वर्तमान और भविष्य उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, ऐसे अनन्त-अनन्त द्रव्य, उसका भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल, जो एक समयमें जानने वाला ज्ञान कोई अगाध है। उसका पार नहीं या बुद्धिसे विचार करे तो उसे विचारमें बैठ सके। बाकी एक ज्ञानगुण ही ऐसा अगाध गंभीर है।

मुमुक्षु :- बैठे फिर भी उसकी अगाधता उसे..

समाधान :- उसकी अगाधता, गंभीरता, महिमा भासे। एक समयमें लोकालोक (जाने), ऐसे अनन्त लोकालोक हो तो भी ज्ञानमें उतनी अनन्त शक्ति है के एक समयमें सब जानने वाला। जिसमें क्रम नहीं पड़ता, एक साथ एक समयमें (जान लेता है)। क्षयोपशम ज्ञानमें तो एकका विचार करे, दूसरा भूल जाये, ऐसा होता है। इसमें तो उसे सब प्रत्यक्ष (जाननेमें आता है), कुछ भूलता नहीं, प्रत्यक्ष देखता है, जानता है। इसके सिवा उसके अनन्त गुण उसे दिखाई नहीं देते, परन्तु अमुक विचारसे नक्की करे, भले दिखाई नहीं दे। अमुक जो महापुरुषोंने कहा उसे विचारसे नक्की करे और अमुक विश्वाससे नक्की करे।

अस्तित्व ग्रहण करे, इन सबमें मैं कहीं नहीं हूँ। अपना अस्तित्व, जो ज्ञायक अस्तित्व है (उसे ग्रहण करे)। पहले उसे सुखका वेदन नहीं आता। ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करे। ज्ञानगुण ऐसा असाधारण है कि ज्ञान ज्ञायकतासे मैं स्वयं ज्ञायक हूँ, ऐसा ग्रहण होता है। लेकिन सुख आदिकी उसे अंतरमें प्रतीत आ जाती है। उसे अनुभूति

तो बादमें होती है, पहले उसे सब प्रतीत हो जाती है। और वह प्रतीत होती है कि दृढ प्रतीत (होती है) कि किसीसे चलायमान नहीं हो, ऐसी प्रतीत पहले आ जाती है। परिणतिरूप बादमें होता है, परन्तु प्रतीत आती है।

समाधान :- .. ऐसा नक्की करके बारंबार उसके विचार करे कि मैं तो भिन्न ही हूँ। ये विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा अंतरमें बारंबार उसका प्रयास करे, उसकी लगनी लगाये। खाते-पीते, जागते-सोते, स्वप्नमें उसकी लगनी होती है कि मैं तो भिन्न हूँ। ऐसी लगनी अंतरसे लगनी चाहिये, बारंबार मैं भिन्न हूँ। वह भेदज्ञानका प्रयास (है), यथार्थ भेदज्ञान, सच्चा भेदज्ञान बादमें होता है, परन्तु पहले उसकी लगनी लगती है। तबतक विचार करे, वांचन करे, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये। गुरुदेव क्या कहते थे, भगवानने पूर्ण स्वरूप प्राप्त किया, गुरु कैसे होते हैं, गुरुका क्या स्वरूप होता है, गुरुदेवने क्या मार्ग बताया है, यह सब नक्की करे, शास्त्रमें मार्ग क्या आता है, यह सब नक्की करे। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा करे, वह सब शुभभाव है, लेकिन पहले वह बीचमें आये बिना नहीं रहते। आत्मा-शुद्धात्मा प्राप्त नहीं हो तबतक बीचमें आते हैं। परन्तु ध्येय उसे यह होता है कि मुझे शुद्धात्मा प्राप्त करना है। मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो, अंतरसे लगनी लगनी चाहिये। उसे खटक रहा करे। जिसकी स्वयंको इच्छा हो और वह नहीं प्राप्त होता हो तो कैसे अन्दर खटक (रहती है), बार-बार याद आता है। वैसे उसे याद आये।

अपनी माँ हो, तो मेरी माँ। जहाँ भी जाये, कोई पूछे कि तू कौन है? तेरा नाम क्या है? बालक समझता नहीं हो तो बालक, मेरी माँ, मेरी माँ बोलता है। ऐसे मेरी माँ, मेरी माँ, कैसा अंतरमें होता है? वैसे मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो? ऐसी लगनी लगनी चाहिये। उसका बारंबार प्रयास करे, भेदज्ञानका अभ्यास करे, बारंबार मैं भिन्न हूँ, मैं भिन्न हूँ, मैं भिन्न हूँ। मात्र विकल्प ऊपर-ऊपरसे करे वह अलग बात है, परन्तु अंतरसे होना चाहिये।

मुमुक्षु :- आत्मा तो अपने पास ही है।

समाधान :- अपने पास ही है। दृष्टान्त तो ऐसा ही होता है न। आत्मा अपने पास है, परन्तु भूल गया है। बिछड़ गया हूँ, ऐसा उसे हो गया है। उसे ऐसा हो गया है, भूल गया है। आत्मा स्वयं ही है, परन्तु मैं बिछड़ गया हूँ। मानो आत्मा कहींका कहीं चला गया हो और मैं बिछड़ गया हूँ। शरीरमें एकमेक हो गया हूँ, गुम हो गया है, ऐसा उसे हो गया है।

बकरेके झुंडमें सिंह आ गया। सिंह भूल गया कि (मैं सिंह हूँ), मानो मैं बकरी हूँ, ऐसा हो गया है। सिंह भूल गया कि मैं कौन हूँ? ये बकरे भिन्न और मेरा लक्षण

भिन्न है, वह भूल गया है। इसप्रकार स्वयं भूल गया है। उसमें सिंहको कोई कहने वाला मिले कि अरे..! तू इस बकरीके झुंडमें सिंह हो। लक्षणसे पहचान करवाये।

ऐसे गुरुदेव लक्षणसे पहचान करवाते हैं कि अरे..! तू तो आत्मा जानने वाला है। यह शरीर तू नहीं है। तू उससे भिन्न है। तू देख, अन्दर जानने वाला आत्मा है। ऐसे गुरुदेव मार्गकी पहचान करवाते हैं। उस मार्गको ग्रहण करना चाहिये, बारंबार दृढ़ता करके। उसके लिये सब छोड़ दे या ऐसा कुछ नहीं है। अन्दरकी रुचि लगनी चाहिये। उसे अंतरमें रस कम हो जाये। रस कम हो जाये। बाहरका सब रहता है, बाहर सब करता हो, लेकिन अन्दर रस छूट जाता है।

मुमुक्षु :- जीवको स्वयंसे विचार करनेपर बुद्धिपूर्वक ऐसा विश्वास उत्पन्न होता है...

समाधान :- अस्तित्वको ग्रहण करना। यह मैं हूँ। मेरा जो स्वभाव, उस स्वभावकी परिणतिरूप, स्वभावरूप परिणमन हो, उसमें ही सब है। उतना विश्वास, उतना संतोष उसे आ जाता है। रुचि उठ जाती है।

मुमुक्षु :- बाहरमें कहीं भी नहीं मिलेगा, ऐसा भी उसे पक्का हो जाये।

समाधान :- हाँ, पक्का हो जाये, बाहरमें कुछ नहीं मिलने वाला नहीं है। बाहरसे जो मान्यता है वह सब जूठी है। बाहरसे सब पराधीन है। पराधीनतामें कहीं सुख नहीं है। सब बाहरका है। सब विभाविक है, स्वाभाविक नहीं है। ज्ञान बाहरसे कहींसे नहीं आता है, सुख बाहरसे कहींसे नहीं आता है। सब अपनेमें भरा है। उसे बोझ लगता नहीं, उसे याद नहीं रखना पड़ता। सब सहज जानता है।

ज्ञानगुण कोई अगाध गंभीरतासे भरा है। स्वयं शामिल होकर, भावको अपने स्वभावमेंसे नक्की कर ले। विचाररूपसे स्थूलरूपसे होता है, आगे बढ़कर अपने स्वभावके साथ मिलान करके भी प्रतीत आती है। वह भावभासनरूप (है)।

मुमुक्षु :- शास्त्रसे और ज्ञानीके वचनोंसे...

समाधान :- शास्त्रसे, ज्ञानियोंके वचनोंसे, युक्तिके अवलम्बनसे। अन्दर युक्तिके अवलम्बनसे। उसकी युक्ति ऐसी होती है कि जो कहीं टूटे नहीं, ऐसी निर्बाध युक्तिसे नक्की करे। स्वयं अपने स्वभावके साथ मिलान करके ऐसे युक्तिसे नक्की करे। स्वभाव ज्ञानका है। जो अन्दर आकूलताका वेदन हो रहा है और इस आकूलताके सिवा भी अन्दर अकेला ज्ञान है, उसमें अमुक निराकूलता है, उसमें सुख भी (है)। अमुक अपने वेदनसे जो स्वयंको भावमें वेदन हो रहा है, अपने स्वभावसे मिलान करके ऐसी युक्तिसे नक्की करे। गुरुके वचनोंका अवलम्बन, शास्त्रवचनोंका अवलम्बन लेता है।

मुमुक्षु :- .. डोर द्रव्यके हाथमें ही है और द्रव्यदृष्टि वालेको दृष्टिके हाथमें डोर है यानी कि उसीके अवलम्बनसे ही सभी पर्यायें होती है। यह बात बहुत सुन्दर आयी,

माताजी! उसका थोड़ा अधिक विस्तार करके..

समाधान :- वह तो सहज ऐसे आ गया। डोर तो द्रव्यदृष्टिके हाथमें ही है। पर्याय स्वतन्त्र परिणमती है, परन्तु उसे द्रव्यका आधार है और द्रव्यदृष्टिका आधार है। दृष्टिके आधार बिना पर्याय स्वतंत्र (ऐसे नहीं परिणमती)। जो विभावकी ओर जिसकी दृष्टि है, एकत्वबुद्धिकी ओर, उसकी सभी पर्याय वैसे ही परिणमती है, विभावकी ओर। और जिसकी दृष्टि स्वभावकी ओर गयी, जिसकी दृष्टिको द्रव्यका अवलम्बन हुआ, उसकी सभी पर्यायें स्वभावकी ओर परिणमती है। इसलिये द्रव्यदृष्टि है वही पुरुषार्थकी डोर उसके हाथ लगी है। द्रव्यदृष्टि-द्रव्यका दृष्टिमें आलम्बन लिया, वही उसका पुरुषार्थ है। वह पुरुषार्थ और फिर उसे लीनताका भी पुरुषार्थ है। दृष्टिका बल है और लीनता भी अपनी ओर (है)। यानी सभी पर्याय, दृष्टिके आलम्बनसे सभी पर्याय स्वभावकी ओर परिणमती हैं। अमुक अधुरापन है, उतना विभाव होता है। बाकी उसे दृष्टिके आलम्बनसे सभी पर्यायें होती हैं। उसकी पर्यायको क्रमबद्ध कहते हैं, लेकिन उसके साथ पुरुषार्थ साथमें है।

मुमुक्षु :- माताजी! आपकी चर्चामें पाँच बार सुनी, आपने करीब १०-१५ बार...

समाधान :- कहते थे कि दृष्टि बदल गयी, उसे ही क्रमबद्ध लागू पड़ता है। कोई उन्हें पूछते थे तो ऐसा कहते थे, तू ज्ञायक हो जा। दृष्टिके साथ क्रमबद्ध आ गया। ऐसा कहते थे। दृष्टिका आलम्बनका कहते थे उसमें साथमें पुरुषार्थ आ ही जाता है। गुरुदेवने कर्तृत्व छुड़ानेको तू कर्ता नहीं है, ऐसा कहते थे। लेकिन तेरे पुरुषार्थकी डोर तो तेरे हाथमें ही है। पुरुषार्थ बिनाका क्रमबद्ध, ऐसे अकेला क्रमबद्ध लेनेसे आत्मार्थीको कुछ करना नहीं (रहता)। आत्माका प्रयोजन जिसे उसकी नज़र पुरुषार्थकी ओर ही रहनी चाहिये। क्रमबद्ध (अनुसार) होता है ऐसा लेनेसे आत्मार्थका जो प्रयोजन है, मुझे आत्माका करना है, उसकी भावना... (क्रमबद्ध) पर वज़न देता रहे, उसे अपनी ओर मुड़ना नहीं रहता। कर्ताबुद्धि छुड़ानेको (कहते हैं) तू कुछ नहीं कर सकता। जैसे परद्रव्यके परिणाम तू बदल नहीं सकता और अंतरमें तेरे पुरुषार्थकी डोर प्रगट हुयी, पर्याय परिणमति है, ऐसा कहना है। स्वभावकी ओर। दृष्टिकी डोर उसके हाथमें ही रही है। उस प्रकारसे पर्याय परिणमती है।

मुमुक्षु :- डोर द्रव्यके हाथमें है।

समाधान :- हाँ, डोर द्रव्यके हाथमें है। जैसे ठीक पड़े वैसे पर्याय परिणमती रहे, उसमें मैं क्या करुँ? ऐसा उसमें नहीं है।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर बात आयी।

समाधान :- द्रव्यदृष्टिके आलम्बन बिना वह वैसे नहीं परिणमती। स्वभावकी ओर

पर्याय गयी, द्रव्यदृष्टिके (ज़ोरमें) स्वभावकी ओर (गयी)। अनादिसे परिणमता है, तो भी द्रव्यके आलम्बन बिना, द्रव्यके बिना पर्याय परिणमती ही नहीं। वह स्वतंत्र होनेके बावजूद द्रव्यके आश्रय बिना पर्याय परिणमती नहीं।

मुमुक्षु :- जब आपने डोर कहा, पर्यायकी डोर द्रव्यके हाथमें है, यह बात इतनी सुन्दर थी।

समाधान :- परिणमना चाहे वैसी ही पर्याय परिणमती है। उसकी डोर उसके हाथमें ही है। द्रव्य ही निश्चयसे स्वतंत्र है, परन्तु पर्याय भी एक अंश है न, वह परिणमता रहता है। पर्याय परिणमती रहती है इसलिये उस अपेक्षासे उसे स्वतंत्र कहा। लेकिन पर्याय ऐसी स्वतंत्र नहीं है कि द्रव्यके आधार बिना, द्रव्यके डोर बिना, अपनेआप जैसे ठीक पड़े वैसे परिणमन करे। ऐसी स्वतंत्रता उसे नहीं है। लेकिन वह एक अंश है और पर्याय एकके बाद एक, एकके बाद परिणमती रहती है, इसलिये पर्यायको उस अपेक्षासे स्वतंत्र कहनेमें आती है।

मुमुक्षु :- वास्तविकतासे तो द्रव्य स्वतंत्र है।

समाधान :- हाँ, वास्तविकतासे द्रव्य स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- पर्याय और द्रव्यका, दोनोंका अस्तिपना बताना हो तो इतना भेद करके..

समाधान :- हाँ, उतना भेद (होता है कि) पर्याय स्वतंत्र है। ज्ञानगुण हो तो ज्ञानमेंसे ज्ञानकी पर्याय आती है, दर्शनमेंसे दर्शनकी, चारित्रमेंसे चारित्रकी। चारित्रगुणमेंसे चारित्रकी पर्याय आती है। ऐसे जिसका जो स्वभाव है उस रूप पर्याय परिणमती है, इसप्रकार पर्याय भी एक स्वतंत्र परिणमती है। लेकिन उसकी डोर द्रव्यके हाथमें है।

मुमुक्षु :- पलटती है उसमें मैं ज्ञायक हूँ, इसप्रकार परिणामको पलटता है, तो उसमें कोई कर्तृत्व आता है?

समाधान :- कर्तृत्व नहीं आता है, स्वयं ज्ञायक है। उसमें पर्याय पलटती है। कर्ताबुद्धि नहीं होनी चाहिये। बाकी परिणमन, स्वयं परिणमता है। वह भी एक प्रकारकी उसकी क्रिया होती है। पर्यायकी भी क्रिया होती है।

मुमुक्षु :- वहाँ कर्ताबुद्धि नहीं है, परन्तु स्वयं करता है इसलिये उस अपेक्षासे स्वयं कर्ता है।

समाधान :- हाँ, कर्ता, क्रिया, कर्म। द्रव्यको कर्ता कहनेमें आता है। लेकिन वह पर्याय भी परिणमती है स्वतंत्र, इसलिये पर्यायका कर्ता पर्याय ऐसा (कहते हैं)। परन्तु पर्याय ऐसी स्वतंत्र नहीं है कि द्रव्यके आश्रय बिना, द्रव्यकी डोर बिना परिणमे। ऐसी स्वतंत्रता पर्यायमें नहीं है। (चाहे जैसे) पर्याय परिणमती रहे ऐसा नहीं है।

जो जिज्ञासु आत्मार्थी हो, उसे स्वयंकी भावना अनुसार कुछ होवे ही नहीं, ऐसा

अर्थ हो गया। पर्याय स्वतंत्र परिणमती है, अब मैं क्या करुँ? ऐसा ही होने वाला था। ऐसे नहीं। भावना, उसकी जिज्ञासा आदि पर्याय ऐसी परिणमती है। ऊपर-ऊपर नहीं परिणमती। ज्ञायक हो गया, जो साधककी ओर मुड़ गया, उसकी तो सभी पर्याय साधनाकी ओर मुड़ती है। अमुक बाधक अंश गौण है, लेकिन साधनाकी ओर उसकी पर्याय होती है।

मुमुक्षु :- उसका क्रमबद्ध अच्छा है।

समाधान :- हाँ, उसका क्रमबद्ध है। बिना पुरुषार्थ दृष्टि ही नहीं है। क्रमबद्ध ही है, क्या करुँ? ऐसा करता है उसका क्रमबद्ध (अच्छा नहीं है)। जिसे पुरुषार्थकी कोई भावना नहीं है, बचाव करे कि क्रमबद्ध है, क्या करुँ? तो उसका क्रमबद्ध वैसा है। पुरुषार्थ होनेवाला होगा, वह ये सूचित करता है, पुरुषार्थ यानी मैं कुछ करुँ। कुछ बल, कोई पराक्रम करुँ, पुरुषार्थमें वैसी ध्वनि और ऐसा भाव रहा है। फिर पुरुषार्थ होनेवाला होगा, उसका कोई अर्थ नहीं है। वह तो एक वस्तुस्थिति बतायी। तेरी भावनामें तो मैं मेरे पुरुषार्थसे, बलसे बदलूँ, इसप्रकार तेरी भावनामें तो ऐसे ही आना चाहिये। भावना बदलूँ, मैं पलटुँ, जो एकत्वबुद्धि हो रही है उसे बदलूँ। तेरी भावनामें ऐसा आना चाहिये कि मैं पुरुषार्थ करुँ। तो उसके साथ क्रमबद्ध जुड़ा ही है। उन सबमें पुरुषार्थ मुख्य है। क्रमबद्ध, स्वभाव, काललब्धि सबमें पुरुषार्थ (होता है)।

आत्मार्थीको, जिसे मोक्ष प्रगट करना है, सुख प्रगट करना है, आत्माकी स्वानुभूति प्रगट करनी है, उसका वज़न पुरुषार्थकी ओर आना चाहिये। तो वह साधनाकी ओर मुड़ सकता है। वस्तुको जाने कि मैं किसीका कुछ नहीं कर सकता। लेकिन मैं मेरी भावना कर सकता हूँ। मैं मेरे द्रव्यको पहचानकर द्रव्यकी ओर मुड़ सकता हूँ, उसमें मैं स्वतंत्र हूँ।

आत्मामें कर्ताबुद्धि छुड़ानेका उनका प्रयोजन था। तुझे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी तो सब क्रमबद्ध होता है। तू उसका कर्ता मत बन, ज्ञाता हो जा। ऐसा कहना था। दूसरा कोई पूछे तो ऐसा ही कहते थे, तुझे क्रमबद्ध ही नहीं है। तुझे ज्ञायककी दृष्टि प्रगट नहीं हुयी। जो ज्ञाता हुआ उसे ही क्रमबद्ध है, ऐसा कहते थे। और कोई काललब्धिका कुछ कहे तो गुरुदेवको वह पसन्द नहीं था, ये काललब्धिकी बात करता है, ऐसा कहते थे।

जितने भव भगवानने देखे होंगे उतने होंगे। गुरुदेवको पसन्द नहीं था। संप्रदायमें वह बात उन्हें बैठती ही नहीं थी। जितने भव होनेवाले होंगे, ऐसे पुरुषार्थ रोकनेवाली बात नहीं करनी, ऐसा कहते थे। इसमें उनका कहनेका आशय अलग था। कर्ताबुद्धि छुड़ानेको और ज्ञायकता प्रगट करने हेतु।

मुमुक्षु :- सुन्दर, आपकी शैलीमें बहुत सुन्दर रूपसे बात की।

समाधान :- द्रव्यके हाथमें डोर है। पर्याय स्वतंत्र है, परन्तु डोरी द्रव्यके हाथमें है। (नौकर) दुकानमें काम करता हो, सेठके हाथमें डोरी है। वह सब तो भिन्न-भिन्न द्रव्य है। सब डोर मालिकके हाथमें, राजाके हाथमें होती है। इसप्रकार द्रव्यके हाथमें डोर है। वह सब तो भिन्न-भिन्न द्रव्य है। ये तो पर्याय अपनी और द्रव्य स्वयं एक ही वस्तु है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०२९

मुमुक्षु :- भिन्न पड़ने पर जो विश्वास आये कि ऐसा ज्ञायक मैं हूँ, वहाँ थोड़ी दिक्कत होती है।

समाधान :- एकत्व हो रहा है, इसलिये ऐसा ख्यालमें आता है। परन्तु अन्दर मैं ज्ञायक जानने वाला हूँ, ज्ञेयको जानने वाला ऐसे नहीं, राग मिश्रित मैं नहीं, परन्तु अकेला ज्ञायक जो जानने वाला है वही मैं हूँ, अन्दर गहराईमें ऊतरकर निज स्वभावको लक्ष्यमें ले तो ले सके ऐसा है। बाकी वैसे लक्ष्यमें लेने जाये कि जानने वाला मैं, परको जाने वह मैं अथवा रागको जाने वह मैं, राग मिश्रित ज्ञान मैं, वह तो उसे स्थूलतासे पकड़में आता है। अन्दर गहराईमें जाकर ग्रहण करे, ऐसी अन्दरकी जिज्ञासा, ऐसी लगनी हो कि मैं कौन हूँ? ये सब हो रहा है, उसमें मैं कौन हूँ? स्वयं स्वयंके स्वभावको लक्ष्यमें लेकर भिन्न होकर ग्रहण करना चाहे तो कर सके ऐसा है। लेकिन अन्दर गहराईमें ऊतरे, उतनी लगन लगनी चाहिये, उतनी जिज्ञासा (होनी चाहिये) कि मैं कौन हूँ? मुझे कैसे ग्रहण हो? तो स्वयं स्वयंको ग्रहण किये बिना रहता नहीं। स्वयं ही है। स्थूलतासे राग मिश्रित ग्रहण होता है। लक्षणको भिन्न करके लक्षण स्वयं पहचान सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- अनुमान ज्ञानसे विचार करते हैं तब तो ख्यालमें आता है कि ये जानता है कौन? जानता है वह आत्मा है, वह ज्ञायक है और वह तू है। ऐसे अनुमानसे (होता है)। लेकिन जब स्वसन्मुख होकर लक्षणको ख्यालमें लेनेका प्रयत्न करते हैं, क्योंकि लक्षणसे लक्ष्यको पकड़ना है, अब लक्षण ही भिन्न नहीं पड़े और राग मिश्रित ख्यालमें आये या ज्ञेय मिश्रित ख्यालमें आये कि यह जानने वाला मैं हूँ, इसप्रकार उसमें स्थापना कैसे करनी?

समाधान :- स्वयंको अन्दर लगनी लगे तो वह स्वयं अपनी स्थापना कर सकता है और भिन्न पड़ सकता है। लेकिन स्वयं भिन्न ही नहीं पड़ता। विकल्पसे ऐसा करने जाये तो राग मिश्रित उसे ख्यालमें आता है। लेकिन अन्दरसे स्वयं भिन्न होकर ग्रहण करना चाहे तो कर सके ऐसा है। परन्तु उतना अंतरमें स्वयंको अन्दर लगना चाहिये। गहराईमें ऊतरकर ग्रहण करना चाहिये, तो होता है।

मैं-पना, मैं.. मैं.. मैं जो हो रहा है, वह मैं कौन हूँ? मैं जानने वाला हूँ। ऐसे विकल्पसे मैं जानने वाला, ऐसे नहीं, परन्तु मेरा अस्तित्व जो है, अस्तित्व है वही मैं हूँ। जिस अस्तित्वमें राग नहीं है, जिस अस्तित्वमें विकल्प नहीं है, जिस अस्तित्वमें... उस लक्षणसे विकल्पसे पहचाने कि ये जानने वाला मैं हूँ, परन्तु मेरा जो अस्तित्व मैं हूँ, राग बिनाका, विकल्प बिनाका, मात्र अकेला जानने वाला चैतन्य वही मैं हूँ, इसप्रकार स्वयं स्वयंको, जिसे लगी हो वह ग्रहण कर सकता है।

मुमुक्षु :- गहराईसे, वह उतना गहराईमें ऊतरे तो आपका ऐसा कहना है कि वह ज्ञान लक्षण भिन्न होकर उसे ख्यालमें आये?

समाधान :- भिन्न होकर अन्दर ग्रहण कर सकता है। राग होने पर भी स्वयं अन्दर भिन्न होकर स्वयं स्वयंको ग्रहण कर सकता है। अन्दर स्वानुभूतिमें स्थिर होता है वह अलग बात है, लेकिन लक्षणसे प्रतीत द्वारा भी वह पहचान सकता है। ऊतना गहराईमें जाये, उतनी लगनी लगे, अन्दर उसे ग्रहण किये बिना चैन नहीं पड़े, उतना उसे लगे तो स्वयं अन्दरसे ग्रहण हो सकता है। विकल्प नहीं, राग नहीं, बाहरसे जाने वह मैं नहीं, मैं तो मैं जानने वाला है वही मैं हूँ, इसप्रकार स्वयं जानने वाला है वही मैं हूँ। कोई अन्यके आश्रयसे, दूसरेको जानता हूँ इसलिये जानने वाला हूँ (ऐसे नहीं), मैं स्वयं ही जानने वाला हूँ। इसप्रकार स्वयं स्वयंको ग्रहण कर सकता है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो तब विचारसे नक्की होता है कि विकल्प बिनाका अनादिका ऐसा मैं ज्ञायक हूँ, वह विचारमें तो बराबर आता है, परन्तु जब वास्तवमें उसे अन्दरसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करते हैं तब, लक्षण ही भिन्न नहीं पड़ता है, कि जिसके द्वारा अन्दर (लक्ष्यको ग्रहण कर सके)।

समाधान :- .. वही मैं हूँ, यह मेरा अस्तित्व-चैतन्य अस्तित्व है वही मैं हूँ, ये सब कुछ मैं नहीं हूँ। ये सब राग, विकल्प आदि जाननेमें आते हैं वह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं अकेला जानने वाला, स्वयं जानने वाला है वही मैं हूँ। इसप्रकार स्वयं स्वयंको ग्रहण कर सकता है। स्थूलतासे ऐसे ग्रहण होता है कि ये जानता है वह मैं। ये जाना, वह जाना, रागको जाना, विकल्प होते हैं उसमें जो जानने वाला है वह मैं हूँ। बीचमें विकल्प, रागादि आये, लेकिन मैं वह नहीं, मैं अकेला उससे रहित मैं हूँ। मात्र विकल्पसे नहीं, लेकिन मैं स्वयं जानने वाला ही हूँ।

मुमुक्षु :- आप कहते हो परन्तु अभी ख्यालमें उतना आता है कि राग है, वृत्तिका उत्थान होता है वह राग है, इतना ख्यालमें आता है, परन्तु जानपना, जानपना अनुमानमें लेते हैं तो ख्यालमें आता है कि जानपना यानी स्वपरप्रकाशकपना मात्र। ऐसी त्रिकाल सामर्थ्यरूप पूर्ण वस्तु कि जिसमें दूसरे अनन्त गुण रहे हैं, वही मैं हूँ। लेकिन उससे

आगे ज्ञानमें वह लक्षण-वह भाव स्थिर रहे, ऐसा नहीं होता।

समाधान :- .. होता है इसलिये टिकता नहीं। मात्र विकल्पसे ग्रहण होता है इसलिये वह टिकता नहीं। बारंबार विचार करे तब उसे ख्यालमें आता है। वह स्थूल है। अन्दर जो जानने वाला है वही मैं हूँ, ऐसे अन्दरसे ग्रहण होना चाहिये। मेरा अस्तित्व, यही मैं हूँ। लगनी लगे तो वह ग्रहण हो ऐसा है। फिर टिके कितना वह उसके पुरुषार्थ अनुसार (होता है), परन्तु वह अन्दरसे ग्रहण हो सके ऐसा है। विकल्प, रागादि हो तो भी वह गौण होकर, यह जानने वाला मैं हूँ, ऐसे ग्रहण हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो वह ख्यालमें आता है कि, ज्ञायकका अस्तित्व तू ग्रहण कर और वह तेरा अस्तित्व..

समाधान :- ... लक्षण भिन्न नहीं है। वह स्वयं ही है। लक्षण और लक्ष्य दोनों एक ही है, दोनों भिन्न-भिन्न नहीं है। जिसका लक्षण है वह स्वयं ही है। द्रव्य स्वयं ही है, वह लक्षण द्रव्यका ही है। लक्षण और लक्ष्य दोनों एक ही है, दोनों अलग नहीं है। मात्र गुणभेद होता है। ग्रहण जो होता है वही वस्तु है। वस्तु स्वयं उस लक्षणसे भिन्न नहीं है। दोनों अभेद ही है। ... ऐसा क्रम नहीं पड़ता कि यह लक्षण, यह लक्ष्य। ऐसा भेद नहीं पड़ता। जो लक्षणको पहचानने जाता है, वह स्वयं लक्ष्यको पहचानता है। उसमें भेद नहीं पड़ता। जो यथार्थरूपसे लक्षणको पहचानता है, उसे लक्ष्य-लक्षणका भेद नहीं पड़ता। यह लक्षण है वही मेरे द्रव्यका स्वंयका है। उसे साथमें ग्रहण होता है।

गुणभेद तो एक... उसमें अनन्त गुण है, उस अपेक्षासे गुणभेद होता है। कि ये ज्ञान जाननेका लक्षण, आनन्दका आनन्द लक्षण, ऐसे लक्षण भिन्न पड़ते हैं। लेकिन ज्ञानलक्षण असाधारण है। पूर्ण ज्ञायक, जानने वाला चारों ओरसे जानने वाला ही है। वह जानने वाला है वही मैं हूँ, द्रव्य और गुण दोनों गुणभेदसे भिन्न पड़ते हैं, वस्तुभेदसे भिन्न नहीं है। इसमें तो उसे वस्तु ग्रहण करनी है। इसलिये जो लक्षणको ग्रहण करने जाये उसका ध्येय तो वस्तुको ग्रहण करनेका है। जो लक्षण ग्रहण करता है, वह लक्ष्यको साथमें ग्रहण करता है। यथार्थरूपसे हो तो।

मुमुक्षु :- आपको ऐसा कहना है कि, जिसे तीव्र लगन लगी, वह लक्षण पकड़ने जाता है वहाँ पूरा लक्ष्य ही ग्रहण हो जाता है?

समाधान :- हाँ, यथार्थ लक्षण ग्रहण करे तो लक्ष्य ग्रहण हो जाता है। अन्दर उसका ध्येय यह है कि मुझे पूर्ण द्रव्य ग्रहण करना है। मात्र लक्षण ग्रहण करनेका उसका ध्येय नहीं है। ज्ञान है वह असाधारण लक्षण है।

मुमुक्षु :- आपको ऐसा कहना है कि लक्षण ग्रहण हो तो लक्ष्य सीधा एक

साथ ही ग्रहण हो जाता है?

समाधान :- एक साथ ग्रहण हो जाता है। स्थूल है इसलिये उसे... वास्तविक भेद नहीं है। संज्ञा भेद है, कार्य भेद है, ऐसा है। आनन्दका कार्य, जाननेका कार्य, ऐसे है। वस्तु भेद नहीं है।

..यथार्थपने यदि लक्षण ग्रहण हो तो लक्ष्य और लक्षण दोनों साथमें ही ग्रहण हो जाते हैं। जो पहले सीधा द्रव्यको नहीं पहचानता है उसे ऐसा कहनेमें आता है, तू लक्षण द्वारा लक्ष्यको पहचान। कैसे पहचानना? ऐसा कहे तो जानने वालेका लक्षण दिखता है, वह जानने वाला है वही मैं हूँ। उस लक्षण द्वारा लक्ष्यको पहचान ले, ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु वह लक्षण यथार्थपने पहचाने उसे खड़ा नहीं रहना पड़ता कि यह लक्षण और यह लक्ष्य। ऐसे उसे भिन्न करके ग्रहण नहीं करना पड़ता। लक्षण ग्रहण करे उसके साथ ही उसे लक्ष्य ग्रहण हो जाता है। यथार्थपने लक्षण ग्रहण करे तो उसका लक्ष्य द्रव्य साथमें ही ग्रहण हो जाता है। पहले लक्षण ग्रहण करे, फिर द्रव्य ग्रहण करे, वह सब तो स्थूलतामें जाता है।

यथार्थपने लक्षण ग्रहण करे, लक्षणके साथ लक्ष्य ग्रहण होता है। वह भिन्न-भिन्न स्थानमें नहीं रहते। जहाँ लक्षण है, वहीं लक्ष्य है और जो लक्ष्य है, वही लक्षण है। लक्ष्य और लक्षण दोनों एकसाथ है। दोनों साथमें ग्रहण होते हैं।

समाधान :- वह भाव बीचमें होते हैं। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि होते हैं। अन्दर आत्मा तो सबसे भिन्न, उसका स्वभाव भिन्न है, उसे पहचानना। सच्चा तो वही है, गुरुदेवने बताया है, भेदज्ञान करना।

मुमुक्षु :- भूतार्थ भाव ही, जिसकी दृष्टि करके, जो सम्यग्दृष्टिको गोचर है,..

समाधान :- पारिणामिकभाव न?

मुमुक्षु :- हाँ, पारिणामिकभाव।

समाधन :- वह भाव है। उसकी दृष्टि करके यानी द्रव्य पर दृष्टि आती है। पारिणामिक भाव है उसमें कोई भेद नहीं पड़ता। उदयभाव, उपशमभाव सब अपेक्षित है, यह निरपेक्ष भाव है। पारिणामिकभावमें कोई अपेक्षा नहीं है। वह आत्माका सहज स्वरूप है। वह भाव है। इसलिये एक भाव पर दृष्टि रखनी ऐसा उसका आशय नहीं है। उसमें आशय पूर्ण द्रव्य पर दृष्टि करनेका है। पारिणामिकभावका अर्थ यह है।

पारिणामिक भावसे, प्रत्येक द्रव्य परमपारिणामिकभाव स्वरूप है। पारिणामिकभाव अनादिअनन्त है। जो द्रव्यका सहज स्वरूप है, उस सहज स्वरूपसे द्रव्य है। सहज स्वरूपरूप ही रहता है। उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब सहजरूप यानी द्रव्यरूप ही है। यानी उसमें कोई भेद नहीं है। दृष्टि रखनी यानी एक भाव पर दृष्टि करनी, ऐसा नहीं है।

उसमें पूरा द्रव्य आ जाता है। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे उसमें पारिणामिकभाव समा जाता है।

मुमुक्षु :- पारिणामिकभाव.. दोनों एकार्थ है ऐसा नहीं कह सकते?

समाधान :- एक अर्थ है ऐसा नहीं, परन्तु उस पारिणामिकभावमें द्रव्य ही आ जाता है। पूर्ण द्रव्य उसमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- क्षायिक पर्याय अथवा केवलज्ञानकी पर्याय बाहर रह जाती है, तो फिर पीछे द्रव्यकी कोई ..

समाधान :- क्षायिकभाव तो पर्याय है न, द्रव्य तो अनादिअनन्त है। क्षायिकभाव बादमें प्रगट होता है, वह अनादिअनन्त नहीं है। इसलिये उसमें पारिणामिकभाव तो अनादिअनन्त है। इसलिये द्रव्य पर दृष्टि करनेपर उसमें पारिणामिकभाव आ जाता है। उसमें क्षायिकभाव तो सादिअनन्त होता है।

मुमुक्षु :- केवलज्ञानकी पर्याय भी नहीं है।

समाधान :- केवलज्ञानकी पर्याय नहीं है। केवलज्ञानकी शक्ति है।

मुमुक्षु :- शक्ति है?

समाधान :- हाँ, शक्ति है, पर्याय नहीं है। परिणमनरूप पर्याय नहीं है, शक्ति है। सब पारिणामिकभावरूप है। सहज आत्मा सहज ज्ञानस्वरूप है, सहज दर्शनस्वरूप है, सहज चारित्रस्वरूप है। लेकिन वह चारित्र यानी कौन-सा चारित्र? पूर्ण प्रगट चारित्र, वह चारित्र नहीं। सहज चारित्र जो स्वाभाविक सहज शक्तिरूप है, वह सब उसमें आ जाता है। सहज दर्शन, सहज ज्ञान, सहज चारित्र, सहज बलस्वरूप आदि सब सहज है। वह पारिणामिकभावरूप है। पारिणामिकभाव अनादिअनन्त है। उसमें पूर्ण ज्ञायक आ जाता है। द्रव्य पर दृष्टि की उसमें पारिणामिकभाव आ जाता है। पारिणामिकभावको ग्रहण करना अथवा द्रव्यको ग्रहण करना, दोनों एक स्वरूप ही है। छहों द्रव्यमें। परन्तु पारिणामिकभाव अनादिअनन्त है। द्रव्य जैसे अनादिअनन्त है, वैसे पारिणामिकभाव द्रव्यमें अनादिअनन्त है। बाकी उदयभाव आदि सब अपेक्षित है। क्षायिकभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव आदि।

मुमुक्षु :- द्रव्यको पारिणामिकभावको कथंचित् भेद कह सकते हैं?

समाधान :- गुण-गुणीका भेद कह सकते हैं। कोई अपेक्षासे गुण-गुणी भेद कह सकते हैं।

मुमुक्षु :- पारिणामिकभावको गुण कहते हैं?

समाधान :- पारिणामिकभावको गुण कहते हैं, हाँ, गुण कहते हैं।

मुमुक्षु :- गुणोंका समूह है?

समाधान :- गुण-गुण कहते हैं। पारिणामिकभाव अनादिअनन्त है, इसलिये गुण है। वह पर्याय नहीं है।

मुमुक्षु :- जब दृष्टि आत्मा पर जाती है, तब आश्रय किया ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु केवलज्ञान होने पर आश्रय छूट जाता है?

समाधान :- दृष्टिने आत्माका आश्रय लिया। द्रव्य पर दृष्टि गयी, वह दृष्टि वहाँ शाश्वत सहज हो जाती है। पहले उसे सहज नहीं होता, पुरुषार्थ करके दृष्टि प्रगट की। जो दृष्टि प्रगट हुयी, (वह) दृष्टि शाश्वत रहती है। केवलज्ञान प्रगट होता है तब आश्रय नहीं होता, विकल्पयुक्त आश्रय नहीं होता, केवलज्ञानीको। उसे तो सहज परिणमन होता है। आश्रय छूट गया यानी उसे विकल्प छूट गये। बाकी जो परिणति स्वयंकी ओर मुड़ी सो मुड़ी, वह तो शाश्वत है। स्वयंकी ओर मुड़ गयी, ज्ञायकमें परिणति (गयी), ज्ञायकको लक्ष्यमें लिया, ज्ञायक पर जो दृष्टि थंभ गयी वह सहज है। आश्रय यानी उसे बोझ नहीं है। विकल्पका बोझ छूट गया। दृष्टि तो सहज है। दृष्टि तो सहज सदाके लिये है। दृष्टि, ज्ञान, केवलज्ञान होनेपर ज्ञान पूर्ण हो जाता है।

मुमुक्षु :- केवलज्ञान होनेपर आश्रय छूट नहीं जाता।

समाधान :- विकल्प छूट जाते हैं, आश्रय तो... उसने दिशा बदली, दृष्टि बाहर थी, अन्दर गयी। दिशा बदल दी। लक्ष्यमें लिया, आत्माकी ओर परिणति गयी वह सदा रह गयी। अपनी परिणति गयी, स्वयंका आश्रय लिया, विकल्प छूट गये इसलिये निर्विकल्प दशा शाश्वत रह गयी। दृष्टि शाश्वत और ज्ञान जैसा था वैसा पूर्ण निर्मल हो गया। सब शाश्वत परिणतिरूप हो गया। विकल्पकी उपाधि छूट गयी। निरुपाधि सहज हो गया। दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो आत्मामें प्रगट हुए वह साधनारूप थे, वह पूर्ण सहजरूप हो गये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०३०

मुमुक्षु :- महिमा आनी चाहिये, तो कितनी महिमा आनी चाहिये?

समाधान :- उसे अंतरमेंसे पूरी-पूरी महिमा आनी चाहिये। विभावसे, यह विभाव सर्वस्वरूपसे आदरणीय नहीं है, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। विभावकी महिमा सर्व प्रकारसे छूटकर आत्माकी महिमा उसे सर्व प्रकारसे आनी चाहिये। फिर उसे बाहरका कितना छूटे वह अलग बात है, लेकिन महिमा तो उसे पूरी होनी चाहिये। कोई भी अंशमें ये कुछ भी बाहरका आदरणीय है या यह ठीक है, ऐसा उसे नहीं लगना चाहिये। अंतरमेंसे सर्व प्रकारसे आत्मा ही सर्वस्व है। किसी भी प्रकारसे किसी भी विभावका कोई अंश भी अच्छा नहीं है और आत्माको सुखरूप नहीं है। कोई भी अंश, ऊच्चसे ऊच्च शुभभाव हो तो भी वह आत्माका स्वरूप नहीं है।

उच्चसे उच्च शुभभावकी महिमा (हो) कि यह मुझे ठीक है, ऐसा अंतरसे, अन्दरसे ऐसी महिमा नहीं होती। सर्व प्रकारसे आत्माकी ही महिमा आनी चाहिये। तो अपनी ओर दृष्टि मुड़े और उसे ज्ञायककी परिणति प्रगट हो। फिर स्वयं आत्मामें उतना नहीं रह सके, वह अलग बात है। उस कारणसे अशुभभावसे बचनेके लिये शुभभाव आते हैं। उसे देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये। जिसे आत्माकी महिमा लगी, इसलिये जिसने आत्मा प्रगट किया ऐसे जिनेन्द्र देव, गुरु साधना करते हैं, इसलिये उसकी महिमा उसे आये। मुझे आत्मा चाहिये, वह जिसने प्रगट किया उनकी महिमा उसे आये। परन्तु वह शुभभाव है। मुझे आदरणीय तो सर्वस्व प्रकारसे आत्मा ही है। उतनी महिमा उसे आत्माकी आनी चाहिये। फिर उसे हो नहीं सके, उसमें टिक नहीं पाये वह अलग बात है। परन्तु महिमा तो पूरी-पूरी, श्रद्धामें तो उसे पूरी-पूरी महिमा आनी चाहिये। श्रद्धा तो पूरी-पूरी आत्माकी ओर आनी चाहिये।

उसे कोई भी प्रकारसे आदरणीय या अनुमोदनीय अथवा यह करने जैसा है, बाहरका इतने अंशमें ठीक है, कोई विभावमें जुड़े तो उसकी अनुमोदना (करनी), ऐसे अंतरमें उसे श्रद्धाकी अपेक्षासे नहीं आना चाहिये। श्रद्धामें पूरी-पूरी महिमा आनी चाहिये। फिर आचरणमें वह छूट नहीं सके वह अलग बात है। शुभभावमें खड़ा रहे। अंतरकी स्वानुभूति प्रगट नहीं कर सके और अन्दर लीनता (नहीं हो सके), सम्यग्दर्शन प्रगट हो तो भी

उसे आगे जाकर चारित्र नहीं आता, लीनता कम होती है, इसलिये बाहर शुभभावमें खड़ा रहे। उसकी महिमा भी बाहरसे दिखे, भक्ति भी आये। जिनेन्द्र देवकी भक्ति करता हो, गुरुकी महिमा करता हो, सब करे, परन्तु अन्दरमें परिणतिमें, मेरा आत्मा सर्वस्व है, ऐसी श्रद्धा तो उसे होनी ही चाहिये। जिज्ञासुकी भूमिकामें भी श्रद्धा तो आत्माकी ओर होनी चाहिये। सम्यग्दर्शनमें तो यथार्थ श्रद्धा होती है। पूरी-पूरी श्रद्धा होनी चाहिये। श्रद्धान और स्वरूप महिमामें कुछ फ़र्क़ नहीं होना चाहिये।

मुमुक्षु :- विकल्पमें श्रद्धा और निर्विकल्प श्रद्धा, उसमें क्या फ़र्क़ है?

समाधान :- विकल्परूप श्रद्धामें राग मिश्रित है। राग साथमें है। निर्विकल्प श्रद्धा आत्माका यथार्थ आश्रय है। विकल्प वाली श्रद्धा है वह राग मिश्रित है।

मुमुक्षु :- विकल्प किया उसमें ही राग आ गया न?

समाधान :- विकल्पमें राग ही होता है। वह शुभराग है। मेरा आत्मा .. है, अपनी ओर मुड़ा, राग है। विकल्प है वह राग है। और जिस विकल्पमें द्वेषके विचार आये वह द्वेषका विकल्प। रागके विकल्प हैं, वह सब विकल्प, राग-द्वेषसे भरे जितने विकल्प है, उसमें मन्द हो या तीव्र, लेकिन वह राग और द्वेष (है)। विकल्प यानी उसमें राग साथमें होता है। राग और द्वेष।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान होता है वह भी विकल्पमें (ही होता है)?

समाधान :- यथार्थ भेदज्ञान, भेदज्ञानकी सहज परिणति अन्दर होती है। वह सहज परिणति (है)। विकल्प उसमें नीचे होता है। निर्विकल्प स्वानुभूतिकी बात अलग है, लेकिन भेदज्ञानकी धारामें विकल्पकी परिणति, उसे जो एकत्वबुद्धि रूप थी वह नहीं है। भेदज्ञानरूप परिणति है, इसलिये वह गौणरूप है। उसे विकल्पकी ओर आश्रयरूप नहीं है, आश्रय आत्माका है। विकल्प साथमें रहता है। भेदज्ञानकी सहज परिणति है। स्वानुभूतिपूर्वक जो भेदज्ञानकी दशा है, उसमें विकल्पका भेदज्ञान वर्तता है। विकल्प साथमें होता है, लेकिन सहज भेदज्ञान है। सहज परिणति है, विकल्प गौणरूप रहता है। भेदज्ञानकी धारा ऊर्ध्व रहती है। विकल्प गौण रहता है। सभी कार्योंमें आत्मा ही उर्ध्व होता है, दृष्टिमें आत्मा ही नजराता है, विकल्प गौण रहता है। एकत्वबुद्धि जहाँ है, उसकी दृष्टिमें आत्मा ऊर्ध्व नहीं होता, विकल्प-विकल्प होते हैं।

मुमुक्षु :- आपने एक बात कही, केवल आत्माको पहचानकर आत्माका जानपना होना वह पर्याप्त नहीं है। उसके साथ भक्ति और महिमा आये तब ही आत्माकी अनुभूति होती है।

समाधान :- केवल जानपना यानी ऐसा अर्थ है कि रुखा जानपना। ज्ञान करे लेकिन उस जातिका वैराग्य, भक्ति, उतनी महिमा आत्माकी ओर नहीं हो तो मात्र

जाननेके खातिर जान लिया। इसलिये उसने सच्चा जाना भी नहीं है। अन्दर जानपना यथार्थ किसे कहें? कि उसे अन्दरसे वैराग्य आना चाहिये कि ये विभाव मुझे आदरणीय नहीं है, मेरा आत्मा आदरणीय है। आत्मा ही महिमावंत है, विभाव महिमावंत नहीं है। यहाँकी महिमा आये और विभावकी ओरसे विरक्ति होती है, और जानपना साथमें होता है कि यह ज्ञान है सो मैं हूँ। इसके सिवा दूसरा मैं नहीं हूँ। ज्ञायक है वही मैं हूँ। ज्ञायकसे अतिरिक्त मुझसे भिन्न है। मेरा स्वभाव उससे भिन्न है। ज्ञान तो मुख्य साथमें ही होता है, लेकिन ज्ञानके साथ वैराग्य और महिमा जुड़े होने चाहिये। तो ही उसका ज्ञान साधनाकी ओर काम करता है। यदि उसे विभावसे विरक्ति नहीं आती तो साधनाकी ओर उसका ज्ञान कार्य नहीं करता। मात्र जाननेके लिये जान ले तो।

मुमुक्षु :- सच्चा जानपना ही उसका नाम है कि उसके साथ भक्ति, वैराग्य आदि जुड़े हो।

समाधान :- सब जुड़ा हो तो ही वह सच्चा ज्ञान है। साधनामें ज्ञान काम करे परन्तु उसके साथ वैराग्य और भक्ति जुड़ी होनी चाहिये। भक्तिमें भी शुभराग देव-गुरु-शास्त्रका, अंतरमें आत्माकी महिमा होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ज्ञायककी भक्ति।

समाधान :- ज्ञायककी भक्ति होनी चाहिये। ज्ञायककी जिसे महिमा आये, ज्ञायककी ही उसे महिमा आती हो। बाहरमें देव-गुरु-शास्त्र जो साधना करके पूर्ण हो गये, उनकी महिमा आती है।

मुमुक्षु :- उसीका नाम ज्ञायककी पहचान और देव-गुरु-शास्त्रकी पहचान ही उसीका नाम कि महिमा सहित ही आये।

समाधान :- महिमा सहित आये तो ही सच्ची पहचान है। मात्र बुद्धिसे पहचाने वह अलग है। अन्दर महिमासे पहचाने तो ही उसने सच्चा पहचाना है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीके प्रति भी ऐसा ही होता है कि उनकी सच्ची पहचान तब ही कहें कि सच्ची महिमा उनके प्रति हो।

समाधान :- महिमा भी साथमें ही होनी चाहिये। गुणकी महिमा आनी चाहिये। जो सच्चे मार्ग (पर) साधना प्रगट की है, पूर्ण हुए, उनके गुणकी महिमा आनी चाहिये। तो ही उसने जाना, नहीं तो वह जानपना किस कामका? मात्र जाननेके लिये जानना रह जाता है।

मुमुक्षु :- बहुत अच्छी बात हुयी, पूरी-पूरी महिमा आनी चाहिये। कितनी महिमा आनी चाहिये? कि पूरी-पूरी आनी चाहिये।

समाधान :- उसका अर्थ ऐसा है कि बाहरमें बहुत उल्लास दिखाये, ऐसा अर्थ

नहीं है। अन्दरसे पूरा आदर आना चाहिये, ज्ञायककी ओर पूरा-पूरा आदर आना चहिये।

मुमुक्षु :- बाहरमें वाणीके साथ अथवा विकल्पके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

समाधान :- उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। पूरा-पूरा आदर आना चाहिये। इतना आदर बस है, ऐसे उसकी मर्यादा नहीं होती। उसका पूरा-पूरा आदर आये तो ही वह आगे बढ़ सकता है। पूरा-पूरा आदर नहीं जा सकता। ज्ञायकका पूरा आदर आना चाहिये।

मुमुक्षु :- बहुत अच्छा। माताजी! आपके दो शब्द निकलते हैं कि इतने सुन्दर होते हैं कि आनन्द हो जाता है। इतनी अच्छी बात है।

समाधान :- श्रद्धामें तो पूरा-पूरा आदर आना चाहिये। श्रद्धामें पूरा आदर नहीं आता है तो वह आगे नहीं जा सकता।

मुमुक्षु :- अस्तिसे पूरा आदर और नास्तिसे..

समाधान :- पूरा अनादर और पूरा-पूरा आत्माका-ज्ञायकका आदर। उसके सिवा उसे कुछ भी अन्दर रुचता नहीं, कुछ पोसाता नहीं। सर्व प्रकारसे मुझे ज्ञायक ही सर्वस्व है। ऐसा उसे श्रद्धामें आना चाहिये।

मुमुक्षु :- तब अनुभूति होती है, तब आत्मा प्राप्त होता है।

समाधान :- हाँ, तब प्राप्त होता है। श्रद्धाकी अपेक्षासे नौ-नौ कोटिसे विभावको तिलांजलि दी। सर्व प्रकारसे नौ-नौ कोटिसे आत्माका श्रद्धामें आदर होता है। तो ही वह आगे बढ़ता है। चारित्रका अलग और श्रद्धाका... सर्व प्रकारसे आदर यानी उसमें कोटि आ गयी। शास्त्रमें वह भाषा नहीं आती है, लेकिन सर्व प्रकारसे आदर यानी उसका अर्थ यह हुआ कि श्रद्धामें ज्ञायक और आचरणमें ज्ञायक। मुझे हर जगह ज्ञायक ही चाहिये। सर्व प्रकारसे मुझे ज्ञायक चाहिये। शास्त्रमें वह कोटि नहीं आती है, आचरणमें ही आती है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- ज्ञायक, सबमें ज्ञायक।

मुमुक्षु :- .. तो ज्ञान, विचार करुं तो ज्ञान..

समाधान :- हाँ, सबमें ज्ञायक। सर्व प्रकारसे, आदरमें सर्व प्रकारसे ज्ञायक।

मुमुक्षु :- उत्पाद-व्यय और ध्रुवका स्वरूप नहीं मानकर, मैं अनन्त गुणस्वरूप परमानन्दी ध्रुव हूँ, ऐसी श्रद्धा और दृष्टि करे तो..

समाधान :- नहीं माने तो फ़र्क़ है, माने नहीं तो।

मुमुक्षु :- अनन्त गुणस्वरूप माने तो?

समाधान :- अनन्त गुण स्वरूप माने, लेकिन पर्याय उत्पाद-व्ययको माने नहीं

तो उसकी दृष्टिमें फ़र्क़ है। ज्ञानमें तो मानना चाहिये न। दृष्टिमें एक ध्रुव आता है, परन्तु उसके ज्ञानमें सब होना चाहिये। वैसी दृष्टि बराबर नहीं है। दृष्टि उसे कहते हैं कि दृष्टि भले द्रव्यको स्वीकारे, परन्तु उसके ज्ञानमें सब होना चाहिये। दृष्टिमें एक ध्रुव पर दृष्टि रखे कि मैं चैतन्यतत्त्व अनादिअनन्त हूँ, उसका अस्तित्व ग्रहण किया। परन्तु उत्पाद-व्यय आदि सब उसके ज्ञानमें आना चाहिये। मात्र इतना स्वीकारे कि मैं परमात्मा हूँ और पर्याय कुछ भी नहीं है, ऐसा ज्ञानमें भी यदि नहीं स्वीकारे तो दृष्टि भी यथार्थ नहीं है। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें ही रहते हैं। दोनों साथमें हैं। एकदूसरेको साथ देने वाले हैं। उसमें एकान्त हो जाये तो-तो दृष्टि भी जूठी हो जाती है। दृष्टि और ज्ञान साथमें ही रहना चाहिये।

ज्ञान-सम्यक्ज्ञान और सम्यग्दृष्टि दोनों साथमें रहने चाहिये। ज्ञानमें सबका स्वीकार आये और दृष्टि तो एक पर थँभाकर स्थिर रखता है। इसलिये दृष्टिमें वह गौण होता है। लेकिन वह है ही नहीं और उसे निकाल दे तो दृष्टि सम्यक् नहीं होती। वह है ही नहीं, ज्ञानमें भी नहीं है, ऐसा निषेध करे तो उसे दृष्टि सम्यक् नहीं है। ज्ञानमें तो साथमें रहना ही चाहिये। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें ही रहते हैं।

मुमुक्षु :- उत्पाद-व्यय-ध्रुवका ज्ञान दृष्टिको मदद करते हैं?

समाधान :- दोनों एकसाथ एकदूसरेको परस्पर मदद करते हैं। एक जगह ज़ोर देता है कि अनादि वस्तु है। फिर उसका स्वरूप क्या है? स्वरूप जानना वह ज्ञानका कार्य है। ज्ञानका स्वभाव ऐसा है कि सब जाने। और दृष्टिका वह कार्य है कि एक पर दृष्टि स्थिर करता है, अस्तित्वको ग्रहण करती है। दृष्टिका विषय ही ऐसा है कि उसमें भेद नहीं आते। उसका स्वरूप ही ऐसा है। यदि अकेली दृष्टि हो और ज्ञान साथ नहीं हो तो उसे साधकदशा होती नहीं। और मात्र जानता रहे और दृष्टि एक पर स्थिर नहीं करे तो वह साधकदशा नहीं होती। दृष्टि भले मुख्य रहती है, लेकिन यदि ज्ञान साथमें नहीं हो तो भी साधकदशा नहीं होती। और ज्ञान हो परन्तु दृष्टि स्थिर नहीं करे, अस्तित्व पर ज़ोर नहीं दे तो भी साधक दशा नहीं आती। दोनों साथ (होते हैं)।

मुमुक्षु :- ऐसे तो दोनोंमें विरोध है, दृष्टिका अभेद विषय है और ज्ञानका भेद विषय है।

समाधान :- परस्पर विरोध नहीं है। एकदूसरे-एकदूसरेको साथ देने वाले हैं। ज्ञानमें सब आता है। ज्ञानमें सिर्फ भेद नहीं आता है। ज्ञानमें अभेद और भेद दोनों आते हैं। ज्ञानमें दोनों आते हैं, दृष्टिमें एक आता है। ज्ञानमें दोनों आते हैं। लेकिन दृष्टि एक जगह स्थिर रहती है। एकको ग्रहण करके एक पर ज़ोर देती है, एक मुख्य रहनेसे

उसे साधक दशा सधती है। ज्ञानमें दोनों पहलू आये तो साधक दशा है, एकान्त हो जाये तो भी साधक दशा सधती नहीं।

पर्यायमें कुछ नहीं है, विभाव नहीं है, कुछ नहीं है ऐसा माने, एकान्त ऐसा माने तो साधक दशामें कुछ करना ही नहीं रहता। यदि एकान्त माने तो कुछ करना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें अभेद आये यानी क्या?

समाधान :- ज्ञान एक अभेद एक द्रव्यको स्वीकारता है और ज्ञान पर्यायको भी स्वीकारता है, दोनोंको स्वीकारता है। ज्ञान अकेली पर्यायको स्वीकारता है, ऐसा नहीं है। ज्ञान अभेदको भी स्वीकारता है और ज्ञान भेदको भी स्वीकारता है। ज्ञान सब स्वीकार करता है।

मुमुक्षु :- अभेदको ज्ञान स्वीकारता है वह दृष्टिका विषय अभेद है, वह द्रव्य?

समाधान :- हाँ, दृष्टिका विषय अभेद है, उसका ज्ञान स्वीकार करता है। दृष्टि जो स्वीकारती है, वही ज्ञान स्वीकारता है। ज्ञान उसे अलग नहीं स्वीकारता। केवलज्ञान प्रगट हो, मुनिदशा प्रगट हो, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब प्रगट होता है, सब पर्याय प्रगट होती है और वह सब पूजनीय कहनेमें आता है। सब पूजनीय है। सादखदशा या पूर्ण केवलज्ञान हो, सिद्धदशा हो, वह सब पर्यायमें प्रगट होता है, वह सब पूजनीय है। दृष्टि एकको ग्रहण करती है। एक पर ज़ोर आये तो ही साधकदशा सधती है।

..चारों ओर विचार करता रहे, लेकिन एक वस्तु पर स्थिर नहीं होता है तो आगे नहीं जा सकता। विचार चारों ओर करे। विचार, जाननेमें सब आता है। यहाँसे भावनगर जाना हो तो किस रास्ते पर आता है, यह नक्की कर लिया। वहाँ स्थिर होकर उस मार्ग पर चलने लगे। लेकिन ज्ञानमें सबका ख्याल रहता है। बीचमें क्या-क्या आता है और कैसे जाना, कहाँ जाना वह सब ज्ञानमें ख्यालमें रहता है। लेकिन एक बातको यदि स्थिर नहीं करे कि यहीं जाना है, एक पर स्थिर नहीं होता है तो आगे नहीं जा सकता। द्रव्य यही है और इसी द्रव्यको साधना है। यह द्रव्य जो अनादिअनन्त वस्तु है, उसकी पर्यायमें विभाव होता है। एक वस्तु शुद्धात्मा उसे ही साधना है। वहाँ एक पर दृष्टिको-प्रतीतको स्थिर करे और यदि आगे बढ़े तो जा सकता है। लेकिन ज्ञानमें उसे सब ख्याल (होता है), बीचमें क्या-क्या आता है, क्या विभाव, क्या स्वभाव सबका ख्याल रखकर दृष्टिके ज़ोरमें आगे जाता है। दोनों साथमें होना चाहिये, नहीं तो मार्ग सधता नहीं।

मुमुक्षु :- उसे ही दृष्टि मुख्य करती है।

समाधान :- उसे दृष्टि स्थिर करती है कि ज्ञानमें यह जाना, फिर दृष्टि-प्रतीतमें

स्थिर करे कि यही वस्तु है, उस पर स्थिर होकर, दृष्टिको उस पर थँभाकर आगे जाता है। वस्तु यह है, उस पर दृष्टिका ज़ोर आता है। इसलिये उसमें बाकी सब गौण होता है। चारों ओर नजर करता रहे तो (नहीं होता)। एक ध्येय बान्धे, यह दृष्टि। एक द्रव्यको ग्रहण किया, फिर उसमें क्या-क्या है और आगे जाना है, यह ज्ञान जानता है। दोनों साथमें होने चाहिये।

दृष्टिको मुख्य इसलिये कहनेमें आती है कि ज्ञान जाने, परन्तु एक वस्तुको स्थिर नहीं करे, प्रतीतमें दृढ़ता नहीं लाये कि यह एक वस्तु है, उसकी साधना करु और उस पर दृष्टि स्थिर नहीं हो तो आगे नहीं जा सकता। इसलिये दृष्टि मुख्य है। लेकिन ज्ञानमें यह सब जाने नहीं कि वस्तु क्या, उसकी पर्याय क्या, विभाव क्या, उसका स्वभाव क्या, साधकदशा क्या, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र क्या, उसे जाने नहीं तो आगे नहीं जा सकता। दृष्टि स्थिर हो गयी इसलिये अब ऐसे ही चला जायेगा। ऐसे चला नहीं जाता।

मार्गको चारों ओरसे जाने बिना चल नहीं सकता। निषेध करे, ऐसे आगे जा नहीं सकता। मैं तो एक अनादिअनन्त शुद्धात्मा हूँ, उसमें कुछ हुआ ही नहीं, अब कुछ नहीं करना है। ऐसे आगे नहीं जा सकता। ज्ञान विभावका विवेक, स्वभाव-विभावका (विवेक) न करे तो आगे नहीं जा सकता।

मुमुक्षु :- दृष्टिको समर्थन है?

समाधान :- हाँ, समर्थन देता है। दृष्टिका बल बढ़ता है। दृष्टिके बलसे आगे बढ़ा जाता है और ज्ञान सम्यक् हो वह सबको समर्थन देता है और आगे बढ़ा जाता है।

.. करना ही नहीं रहता, ऐसा उसका अर्थ हो जाता है। कुछ है ही नहीं आत्मामें, फिर क्या करना? पर्याय ही नहीं है, तो फिर क्या करना रहा? कुछ भी नहीं करना है। प्रतीतको दृढ़ किये बिना आगे नहीं जा सकता। ज्ञानमें जानता रहे कि उत्पाद-व्यय ऐसे हैं, आत्मा ऐसा है, शुद्ध ऐसा है, अशुद्ध ऐसा है, विभाव ऐसा और स्वभाव ऐसा, द्रव्य शुद्ध आदि सब विचार करे, परन्तु एक वस्तु ज्ञायकको ग्रहण करके उस पर दृष्टि स्थिर करे, प्रतीत दृढ़ करके यदि....

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०३१

मुमुक्षु :- .. दिन भी है, इसप्रकार परिवर्तन करनेमें पूज्य गुरुदेवने जो महान वीर्य प्रकट किया होगा, उसमें कौन-कौनसी शक्तिने काम किया होगा, यह आप समझाईये तो गुरुदेवके मंगल द्रव्यके बारेमें हमें कुछ ख्याल आये।

समाधान :- वह तो ऐसा है कि सब सहज आये ऐसा है। मैं कुछ कहुँ, ऐसा कछु नहीं है।

मुमुक्षु :- थोड़ा-थोड़ा...

समाधान :- एक तो गुरुदेवका क्या प्रसंग बना वह होता है, बाकी कुछ पूछे तो निकले। गुरुदेवने पहलेसे उन्हें कुछ समय बाद नक्की हो गया था कि यह संप्रदाय अलग है और सबकुछ भिन्न है। इसलिये उन्हें हृदयमें ही ऐसा हो गया था कि ये सब छोड़ने जैसा है। और नक्की किया था कि (ये छोड़ देना है)।

पहले तो स्थानकवासी संप्रदायमें बराबर उसकी क्रियायोंका पालन करते थे और बराबर (पालते थे), उसमें थोड़ा भी फ़र्क़ नहीं पड़ता था। उनके शास्त्रमें जो लिखा हो वैसे ही वे बराबर पालते थे। व्होरनेकी-आहारकी, विहारकी आदि सब क्रियाएँ जो उनके स्थानकवासी शास्त्रोंमें होती है, वैसी ही पालते थे। उसमें जितने कपड़े रखना लिखा हो, कैसे विहार करना आदि सब वैसा ही करते थे। उनकी आहरकी क्रियाएँ जैसे शास्त्रमें आता था, उस अनुसार उन्हें थोड़ा भी फ़र्क़ नहीं पड़े, इसप्रकार करते थे। दूसरे साधु कितने ही कपड़ोंका ढेर करे, कितना कुछ करे ऐसा सब गुरुदेव नहीं करते थे।

एक गाँवमें अमुक दिनोंसे ज्यादा नहीं रहना, ऐसा गुरुदेव करते थे। बराबर। स्थानकवासी संप्रदायमें तो मुख्य साधु, महान साधु कहलाते थे। आहार लेने जाय तो कुछ फ़र्क़ पड़े, कोई युवान मर जाय, कोई पानीको स्पर्श कर ले, उनके लिये बनाया है ऐसा मालूम पड़े तो तुरन्त ऐसे वापस मुड़ जाते थे, मानो बिजलीके चमकारेकी भाँति। दूसरोंको सदमा पहुँचता कि ऐसे महापुरुष हमारे घर पधारे और वापस जा रहे हैं। ऐसी उनकी क्रिया थी। आहार लेने पधारे तब सब काँपते थे कि हमसे कोई भूल न हो जाये। ऐसी सख्त क्रिया थी। और दूसरे साधु थे, ऐसा है, ऐसा है, ऐसा सब (होता था)।

गुरुदेवको कुछ नहीं था। निस्पृह जैसी उनकी क्रियाएँ स्थानकवासी संप्रदायमें जोरदार थी।

उसमें उन्हें ख्याल आया कि मुनिपना तो कोई अलग ही है, यह मुनिपना नहीं है। यह सब तो (मुनिपना नहीं है)। मुनिपना तो दिगंबरका कुन्दकुन्दाचार्यने कहा वह मुनित्व है, यह नहीं है। इसलिये उन्हें फेरफार करनेका विचार आया कि इसमें रहना और ये सब उनकी क्रियाएँ, अन्दर ये दशा! मुनिकी दशा तो अलग होती है (और) ये सब अलग है। इसलिये उन्हें फेरफार करनेका विचार आया।

मुमुक्षु :- जैसी आज्ञा हो, उस अनुसार ही था और उसमें भी किसी भी प्रकारका..

समाधान :- भगवानकी जो आज्ञा है उस आज्ञा अनुसार बराबर पालन करना। ऐसे उन्होंने अंतर वैराग्यसे दीक्षा ली थी, इसलिये वे बराबर वैसा ही पालते थे और महात्मा कहलाते थे। महान कहलाते थे। फिर उन्हें ऐसा लगा कि यह जूठा है। परन्तु उनकी ख्याति इतनी थी कि इस संप्रदायको धक्का पहुँचेगा। इसलिये बहुत विचार किया। एक साथ बोल नहीं पाती हूँ, थोड़ी देर बाद बोलती हूँ।

... स्थानकवासी संप्रदायका बन्धन न हो, शांत.. सोनगढ़में कोई नहीं था, स्थानकवासीका ऐसा कोई ज़ोर नहीं था, इसलिये यहाँ उन्होंने पसंद किया। यहाँ हरगोविंदभाई आदि थे, यहाँ हीराभाईके बंगलेमें सब नक्की किया। लेकिन छोड़नेके बाद बहुत विरोध हुआ। विरोधी अखबार बहुत निकले थे। सब भक्तोंको पूछते कि ये सब छोड़ना है। सबको बहुत प्रेम था, गुरुदेव आपको जो किया, वह बराबर है। कितने तो ऐसा ही कहते थे। फिर तो सब लोग मुड़ने लगे।

मुमुक्षु :- खासकर जो समझदार वर्ग था, वह सब..

समाधान :- समझकर ही किया होगा, ऐसा जिनके हृदयमें गुरुदेवका स्थान हो गया था, वे सबकुछ आत्मार्थके लिये ही करने वाले हैं, उनका ज्ञान कोई अलग है, ऐसा सब मानते थे। वे सब मुड़ने लगे। पहले तो खास नहीं आये। बहुत विरोधी अखबर आये न इसलिये। कुछ लोग (ऐसा कहते थे), गुरुदेव! आप जहाँ जाओगे वहाँ हम आयेंगे। आप जो कहते हो, सब क़बूल है। कितने ही भाई, कितने ही बहनें सब तैयार थे। यहाँ जोरावरनगरमें बहुत लोगोंको गुरुदेव पूछते थे। वढ़वाणके दासभाई, मगनभाई सबको कहते थे। पहले तो यहाँ जोरावरनगरमें करना था, लेकिन वहाँ चारों ओर स्थानकवासी (रहते थे), सुरेन्द्रनगरमें स्थानकवासी, वढ़वाणमें स्थानकवासी, बीचमें जोरावरनगर था। वह छोटा था, लेकिन बीचमें रहनेसे तो विरोध होगा, इसलिये यहाँ नक्की किया।

श्रीमद्के आश्रम वाले कहते थे कि हमारे आश्रममें पधारिये। लेकिन गुरुदेव कहते

थे कि मैं वैसे नहीं रह पाऊँगा। मैं तो कुन्दकुन्दाचार्यका मार्ग प्रवर्तन करुँगा, ऐसे नहीं रह पाऊँगा। वनेचंद सेठ वांकानेरके थे, उन्होंने कहा, हमारे आश्रममें-श्रीमद्के आश्रममें (रहीए)। मात्र श्रीमद्का ही नहीं, मैं तो कुन्दकुन्दाचार्यका मार्ग प्रकाशित कर सकता हूँ। बहुत विचार करनेके बाद गुरुदेवने छोड़ा। कितने ही भक्त तो मानते थे कि गुरुदेव जो कहते हैं वह बराबर है। कुछ बहनें, कुछ भाईओं।

पहले यहाँ सोनगढ़में तो बहुत लोग नहीं थे। हमेशा रहने वाले बहुत थोड़े थे। इसलिये हीराभाईके बंगलेमें (नक्की किया)। हजारोंकी जनसंख्याके बीच व्याख्यान देते थे। कहते थे, यहाँ तो अपने आत्माका करना है। बीच वाला होल था, उसमें पढ़ते थे। एक लाईन भाईओंकी, एक लाईन बहनोंकी। बहनोंकी कुछ डेढ़ लाईन होती थी। उतने लोग शुरूआतमें थे। फिर धीरे-धीरे बढ़ने लगे। प्रथम चातुर्मासमें ही बोटादसे बहुत लोग आये। फिर धीरे-धीरे बढ़ते गये। फिर हमेशा रहने वाले तो कम थे। उस कमरेमें..

मुमुक्षु :- धीरे-धीरे बोलिये, लगातार मत बोलिये।

समाधान :- फिर लोग बढ़े तो हीराभाईके दालानमें पढ़ते थे। उतनें समा जाते थे। उतनेमें गुरुदेव कहते थे, यहाँ शांति है। वहाँ सब शास्त्र बहुत पढ़ते थे। लेकिन स्थानकवासीके अखबारमें तो बहुत आता था। मुहपत्तिका परिवर्तन किया, स्थानकवासी संप्रदाय छोड़ा, कितना कुछ अखबर तो आता ही रहता था।

मुमुक्षु :- गुरुदेव चारित्राश्रममें रहे थे?

समाधान :- चारित्राश्रममें नहीं रहे हैं। वहाँ नहीं रहे। वहाँ तो गुरुदेवको निमंत्रण दे, ऐसा कोई महावीर जयंति आदिका प्रसंग हो तो उस वक्त गुरुदेवको निमंत्रण दे कि वहाँ पधारे, इसलिये गुरुदेव वहाँ जाते थे। बाकी वहाँ रहे नहीं है। उनका कोई भक्ति आदिका कार्यक्रम होता था, तब निमंत्रण देते थे। इसलिये गुरुदेव वहाँ जाते थे। बाकी वहाँ रहे नहीं।

मुमुक्षु :- वहाँ प्रवचन देते थे?

समाधान :- गुरुकुलमें। .. कि हज़ारोंकी जनसंख्यामें जो सिंह दहाड़ता था, वह सोनगढ़के छोटे एकान्त स्थानमें बैठे-बैठे स्वाध्याय करते थे।

मुमुक्षु :- अंतरकी कितनी निस्पृहता! बाहरमें इतना सन्मान हो, लेकिन मुझे मेरे आत्माका करना है, इस एक ही (ध्येय) पर पूरा..

समाधान :- पूरा फेरफार कर दिया। बाहर कुछ और अन्दर कुछ, ऐसा नहीं। छोड़ दिया।

मुमुक्षु :- स्थानकवासी वाले कहते थे कि, आप वह शास्त्र पढ़िये।

समाधान :- हाँ, स्थानकवासी वालोंने बहुत कहा, उनको राजकोटमें मालूम पड़ा,

प्राणजीवन मास्तरने कहा, यहाँ हमारे संप्रदायमें रहीये। आपको जो पढ़ना हो वह पढ़िये। आपको बंगला देते हैं, आप उसमें रहीए। गुरुदेव कहते, नहीं, मुझे नहीं चाहिये। हमारे स्थानकवासी संप्रदायको धक्का लगता है कि, यह गलत है। आपको जो करना है वह करीये। मुझे ऐसा नहीं करना। (किसीकी) निंदा नहीं, राग नहीं।

फिर तो शुरूआतमें कितने ही समय तक गुरुदेवने विहार नहीं किया। फिर विहार करे तो विरोध (करे)। पहले एक बार विरोध नहीं, लेकिन (संवत) १९९९की सालमें तो बहुत विरोध हुआ। हरएक गाँवमें गुरुदेवके भक्त आ जाते थे, जहाँ स्वागत होने वाला हो। चारों ओरसे आ जाते थे। उतना विरोध। एक पुनमचंदजी महाराज थे, वह साथ-साथ रहते थे और गुरुदेव। गुरुदेव जहाँ आहार लेने जाये, वहाँ दूसरी गलीमें वे आहार लेने जाये। गुरुदेवके साथ भक्तोंका झुंड और स्वागतमें एक ओर उनका स्वागत और एक ओर ये स्वागत। उतना विरोध था। परंतु गुरुदेवका तो ऊँचा ही था। उनके स्वागतमें बहुत लोग आते थे। आहार लेने पधारे उस समय भी उतने ही लोग। उनके साथ खास कोई नहीं था, परन्तु प्रत्येक गाँवमें आते थे, जहाँ गुरुदेव जाए वहाँ आते थे। साथ-साथ व्याख्यान रखे। लेकिन स्थानकवासीका विरोध मर्यादित था। मर्यादा छोड़कर विरोध नहीं किया।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! गुरुदेवका द्रव्य तीर्थंकर द्रव्य है, ऐसा उसी समय आपको भनक लग गयी थी? ख्याल आ गया था?

समाधान :- उस वक्त तो.. जबतक ख्यालमें नहीं था, तबतक कुछ नहीं। गुरुदेव बाहर नहीं बोलते थे कि, मुझे हृदयमें ऐसा आता है कि मैं तीर्थंकर होने वाला हूँ। गुरुदेव भी नहीं बोलते थे। गुरुदेव संप्रदायमें थे। और यहाँ हीराभाईके बंगलेमें आकर स्वयं बाहर कुछ नहीं बोलते थे। मुझे कुछ मालूम नहीं था कि गुरुदेव ऐसा कुछ कहते हैं। और मुझे स्वयंको ऐसा लगता था कि कोई महापुरुष है। ऐसा होता था, लेकिन यह तीर्थंकर द्रव्य है, ऐसा उस वक्त नहीं आया था। लेकिन आत्मामें लीनता करते हैं, ऐसा लगता था कि गुरुदेवको कहीं देखा है। ऐसा होता था। गुरुदेव तीर्थंकर होने वाले हैं, ऐसा नहीं आया था। गुरुदेवको कहीं देखा है, ऐसा होता था।

सुरत थे तब हिंमतभाईको कहती थी, मैंने गुरुदेवको कहीं देखा है। कहाँ देखा है, कुछ मालूम नहीं था। तीर्थंकरका नहीं आया था। वह तो जब अन्दर आया तब एकदम आया, ये तीर्थंकर होने वाले हैं। ऐसा एकदम कैसे आये? ये तो महापुरुष हैं, ऐसा लगता था। समवसरण आदि, स्थानकवासीमें समवसरण कैसा मानते हैं? तीन गढ़ मानते हैं, ऐसा सब मानते हैं। उस वक्त शुरूआतमें तो तत्त्वके शास्त्र पढ़ते थे। कोई पुराण आदि नहीं पढा था। समवसरणमें ऐसे वृक्ष होते हैं या ऐसा होता है,

ऐसा कुछ पढ़ नहीं था। वह सब तो अन्दरसे आया है।

(संवत) १९९३-९४में तो शास्त्र ही पढ़ते थे। समयसार, प्रवचनसार आदि पढ़ते थे। पुराण उस वक्त नहीं पढ़े थे, बादमें सब पढ़े। गुरुदेव तीर्थंकर होने वाले हैं, ऐसा गुरुदेव कहते भी नहीं थे। मुझे आया तब मैंने गुरुदेवको कहा। मुझे ऐसा लगता था कि मैं गुरुदेवको कहती हूँ तो गुरुदेवको क्या लगेगा? मुझे कुछ मालूम नहीं था कि गुरुदेव मानते हैं। मुझे मालूम नहीं था।

मुमुक्षु :- बादमें गुरुदेवने स्पष्ट किया कि मुझे..

समाधान :- बादमें स्पष्ट कहा, गुरुदेव स्वयंका हृदय कहते हैं, मुझे कुछ मालूम नहीं था। गुरुदेव तो विचार करके माने, मुझे ऐसा कहते-कहते डर लगता था कि गुरुदेव क्या कहेंगे, आप मुझे ये क्या कहते हो? गुरुदेव मान लेंगे, ऐसा नहीं था। गुरुदेवको तो अंतरसे आया था इसलिये गुरुदेवको तो एकदम प्रमोद हुआ।

मुमुक्षु :- उनको आभास होता था, उसकी दृढ़ता हो गयी, जब आपने बात की तब।

समाधान :- बहुत समयसे, मैं तीर्थंकर हूँ, (ऐसा लगता है)।

मुमुक्षु :- उस वक्त ही साथमें समवसरणकी रचना आदिका ख्याल आया?

समाधान :- सब साथमें आया। बहुत कहती नहीं हूँ, थोड़ा कहा है।

मुमुक्षु :- आजका मंगल दिन है। आपके मुखसे जितना सुनना मिलता है, वह सब आश्चर्यकारी लगता है।

समाधान :- गुरुदेव तीर्थंकर होने वाले हैं, उसका मुझे स्वयंको आश्चर्य लगा कि मुझे ये क्या आया? मुझे भी मालूम नहीं था।

मुमुक्षु :- गुरुदेवको कैसा प्रमोद आया होगा।

समाधान :- तीर्थंकर भगवानका नाम आये ... उनका स्वयंका हृदय बोलता था। प्रवचनमें आ जाये, त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, ऐसा बोलते थे। ये तो महाभाग्यकी बात है, ऐसा बोलते थे। त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, इससे विशेष क्या चाहिये? गुरुदेवको प्रमोद आ गया था।

मुमुक्षु :- हम लोगोंको सुननेसे कितना प्रमोद आता है। आपने कहा इसलिये गुरुदेवको लगा, त्रिलोकीनाथने टीका लगाया।

समाधान :- वह तो अस्पष्ट बोलते थे, किसीको समझमें आये ऐसे नहीं बोलते थे। गुरुदेव जाहिर नहीं करते थे।

मुमुक्षु :- आपने जो ख्याल आया, इसलिये ऐसा लगा कि ऐसा भाव हुआ।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके दीक्षा लेनेके बाद दो साल बाद कुछ प्रतिभास हुआ था?

समाधान :- उनको स्वप्न आया था। ऐसा कहते थे, इस क्षेत्रका शरीर नहीं, शरीर अलग (था), ऐसा कहते थे। राजकुमारका। स्पष्ट स्वप्न आया था। राजकुमारका वेष था और मैं राजकुमार हूँ।

मुमुक्षु :- वहाँ राजकुमार थे, इसलिये मुद्रा भी ...

समाधान :- मुझे यह भी मालूम नहीं था कि गुरुदेवको स्वप्न आया है, ये मुझे नहीं मालूम नहीं था। सब गुरुदेवने बादमें कहा।

मुमुक्षु :- मेल खा गया। वहाँ राजकुमार थे तो वहाँ भी मुद्रा प्रतिभाशाली होगी न?

समाधान :- वह तो वैसी ही होगी न। गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य, राजकुमार और ऊपरसे तीर्थंकरका द्रव्य, इसलिये प्रतापशाली ही होगी न। जल्दी स्वीकारे नहीं। स्वयं तो कितना विचार करके तत्त्वका निर्णय करते थे, मार्गका कितना विचार करके उन्होंने निर्णय किया। कोई कहे इसलिये मान जाये ऐसे नहीं थे। स्वयंको अंतरसे लगे तो माने।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी प्रकृतिमें वह बात नहीं थी कि किसीका मान ले।

समाधान :- मान ले ऐसे थे ही नहीं। कितने निस्पृह थे, किसीका माने क्या? अंतरसे आये तो ही माने।

मुमुक्षु :- आपने भी कब कहा, कि आपको भी जब पक्का भरोसा होनेके बाद ही आपने कहा।

समाधान :- कितना पक्का हो तो ही बाहरमें बोल सकते हैं। गुरुदेवके पास कहना वह कोई जैसी-तैसी बात नहीं थी।

मुमुक्षु :- और यह भी कोई साधारण बात नहीं थी। बोले तो भी ऐसा लगे ये क्या बोलते हैं?

समाधान :- गुरुदेवको कहूँ कैसे? गुरुदेव कहीं ऐसा कहेंगे कि, आप बहुत महिमा करते हो। ऐसा कहेंगे तो? ऐसा होता था। गुरुदेवको कहना वह तो... कितनी उतनी शक्ति और महापुरुष। बोलते समय ऐसा लगे कि गुरुदेवको कहना यानी क्या! कितना पक्का हो तभी कह सकते हैं।

मुमुक्षु :- बात अटल हो तो ही आप करो न, नहीं तो आप नहीं करते।

समाधान :- अन्दर पक्का हो तो ही बोल सकते हैं, नहीं तो बोले ही नहीं।

मुमुक्षु :- आपकी प्रकृति तो एकदम नहीं बोलनेकी प्रकृति है।

समाधान :- जो भी हो, अपने आत्माके प्रयोजनसे यहाँ आये हो तो बिना विचार किये क्या बोलना?

मुमुक्षु :- समय आ गया है, वह डायरी प्रकाशित करो तो अच्छा।

समाधान :- सब संक्षेपमें कह दिया।

मुमुक्षु :- अब तो समय आ गया है। आपने कहा था न, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देखकर करेंगे।

समाधान :- काल क्या है? माहोल कैसा हो गया है?

मुमुक्षु :- यहाँका माहोल तो बहुत अच्छा हो गया है। सब शान्त हो जाता है।

समाधान :- गुरुदेवने जाहिर कर दिया है। जो-जो कहने जैसा था, वह सब गुरुदेव सबको कहते ही थे।

मुमुक्षु :- गुरुदेव ऐसा फरमाते थे कि मेरी थोड़ी-थोड़ी बात करे और उनकी कोई बात नहीं करते, ऐसा गुरुदेव कहते थे।

समाधान :- अपने लिये क्या कहना? अपने तो गुरुदेवकी प्रभावना... गुरुदेव महापुरुष हैं, उनको कहनी रहती है, मैं क्या बोलूँ?

मुमुक्षु :- वहाँ समवसरणमें मुनिओंका समूह हो और ऐसी भावना हो, भाते हो, ऐसा होता है... ऐसा कुछ।

मुमुक्षु :- गुरुदेव यह कहते थे कि जो कहते हैं, वह तो बहुत थोड़ा कहते हैं, अन्दर तो बहुत है।

समाधान :- पोंइन्ट-पोंइन्ट गुरुदेव कहते थे।

.. तब समवसरणमें पधारे थे। समवसरण होता है.. आदि।

मुमुक्षु :- नारणभाई गुरुदेवको एक बार सुबह कहते थे, कि हम लोग मुनिओंके साथ, कुन्दकुन्दाचार्यके साथ चर्चा करते थे। उस वक्त हम चारों ओर खड़े थे।

समाधान :- कुन्दकुन्दाचार्य पधारे...

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०३२

कुन्दकुन्दाचार्यके विषयमें मुझे ज्यादा कुछ मालूम नहीं था, वह भी सब ऐसे ही आया था। थोड़ा मालूम था कि महाविदेहक्षेत्रमें (गये थे), उसके बारेमें भी कुछ ज्यादा मालूम नहीं था। प्रारंभमें (संवत) १९९३-९४के वर्षमें कुछ ज्यादा मालूम नहीं था। ज्यादा तो बादमें मालूम हुआ। कुछ मालूम नहीं था। परन्तु यह सब बात गुरुदेव संप्रदायमें थे उस वक्त बाहरमें कुछ बोलते भी नहीं थे। फिर संप्रदाय (संवत) १९९१में छोड़नेके बाद तुरन्त कुछ नहीं बोले। उन्होंने उस वक्त स्वयंने कोई मेल नहीं किया। राजकुमारका स्वप्न आया, ऐसा बोलते भी नहीं थे। लेकिन उनको चन्द्रमाके ज्यादा स्वप्न आते थे तो उनको ऐसा लगता था कि में चन्द्रमेंसे आया हूँ? उनको चन्द्रके बहुत स्वप्न आते थे। लेकिन यह कहा इसलिये उन्होंने वह स्वप्न याद किया कि मुझे राजकुमारका स्वप्न आया है कि मैं राजकुमार हूँ। लेकिन इस भरतक्षेत्रका राजकुमार नहीं। शरीर बडा था, ऐसा बोलते थे। मैंने कहा न। दोपहरको कहा, शरीर अलग प्रकारका था। अभीका शरीर नहीं, ऐसा वे बोलते थे। इस क्षेत्रका शरीर नहीं, ऐसा बोलते थे। झरीके वस्त्र, पघड़ी बाँधी थी, ऐसा स्वप्न आया था उनको। झरीका ऐसा, बोलते थे। किसीने नहीं सुना था, मैंने तो कहाँ सुना होगा? दूसरे किसी भक्तने भी नहीं सुना था।

मुमुक्षु :- उन्होंने कहा ही नहीं था।

उत्तर :- कहा ही नहीं था, इसलिये कैसे (मालूम पडे)?

.... चन्द्र, चन्द्र, चन्द्र, चतुर्थीका, पंचमीका चन्द्रमा ही दिखता था। (ऐसा स्वप्न आता था कि), पूरे आकाशमें पाटिये। वह तो उन्हें बहुत आता था। शास्त्रका पाटिया। लेकिन यह चन्द्रके बहुत (आते थे)। लेकिन वह तो प्रभावना सम्बन्धित चन्द्रके स्वप्न आते थे। चन्द्रके स्वप्न बहुत आते थे। चन्द्रमा ज्योतिषी देवमेंसे आया हूँ? ऐसा हो जाता था। चन्द्रमाके स्वप्न बहुत आते थे।

मैं तीर्थंकरका जीव ही हूँ, तीर्थंकर हूँ, ऐसा उनको अंतरमेंसे आता ही रहता था। किसीको मालूम नहीं था उनको ऐसा आता है। (त्रिलोकीनाथने) टीका लगाया, अब तुझे क्या चाहिये? ऐसा बोलते थे। 'लहि भव्यता मोटुं मान'। त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, और क्या चाहिये? प्रवचनमें अलग प्रकारसे बात आये, इसलिये पकड़में आ

जाये कि इसमें ऐसा कहना चाहते हैं। कोई बातके बीचमें बोले, इसलिये ख्याल आ जाये। मुखमुद्रा पर जो उल्लास हो, वह दिखलाई देता है न? तीर्थंकर हूँ, ऐसा मुझे आता था। इतना। ... कुछ नहीं पूछा। दूसरा तो कुछ पूछे। मुझे लगता था, गुरुदेवको बताना कोई आसान बात नहीं थी। गुरुदेवने सब शास्त्रके रहस्य प्रकाशित किये। श्वेतांबर शास्त्र एवं दिगंबर शास्त्र (पढ़नेके बाद), श्वेतांबरमें सब जूठा है, सब नक्की किया। इतनी सत्यके परीक्षक, उनके आगे कहना वह कोई (आसान नहीं था)। उसमें भी भाईओं भी गुरुदेवके आगे कुछ कहनेमें डरते हैं, तो बहनोंको बोलना वह तो कितनी बड़ी बात है। वह कोई आसान बात नहीं है।

कोई भाईओंको कुछ बात करनी हो तो गुरुदेव कुछ पूछे तो बोलना कुछ होता था, और बोल देते और कुछ, ऐसा भी किसीको हो जाता था। फिर तो गुरुदेव धीरे-धीरे कम... पहले तो संप्रदाय छोड़ा था, किसीके सामने भी नहीं देखते थे। शुरुआतमें तो ऐसा था। गुरुदेवको कहना और वे ऐसे ही मान ले, ऐसी कोई आसान बात नहीं थी। अपने भाव देखे, अपना हृदय देखे, कहाँसे बोलते हैं, कितनी गहराईसे बोलते हैं, (भाव) कैसा है, सब देखते। वे तो परीक्षक थे। उन्होंने परीक्षाके लिये पूछा था। ... परीक्षाके लिए पूछते थे। उसमेंसे फिर यह पूछा। .. खड़े रहनेमें जिसका हृदय सच्चा है, वही खड़ा रह सकता है, अन्य कोई खड़ा नहीं रह सकता, गुरुदेवके प्रश्नके आगे। सीधे प्रश्न नहीं पूछते थे, दूसरे प्रकारसे पूछते थे।

पहला प्रश्न कैसा था? कालका था। सीधा नहीं पूछते थे। किसीको ऐसा लगे कि गुरुदेव ऐसा बोलते हैं, ... सीधा पूछे। ऐसा किसीको हो जाये। कोई आसान बात थी? कितना विचार करके नक्की करनेवाले। कोई भाईओंको कुछ कहना हो तो दिक्कत होती है, तो फिर यह सब अंतरकी बात गुरुदेवके आगे कहनी, वह तो अंतरकी कितनी दृढ़ता हो तो कह सकते हैं। गुरुदेवके आगे कहना कोई आसान बात नहीं था। किसी-किसीको कहते थे, कोई-कोई आते थे उसको कहते थे।

वे तो श्रुतधरोंका परिचय करने आये थे। दूसरे सबके साथ चर्चा-प्रश्न करने थोड़े ही ना आये थे। भरतक्षेत्रमेंसे भगवानकी वाणी सुनने (आये थे)। कोई बातचीत करे तो भी कोई श्रुतधर मुनिके पास उनकी शंकाका समाधान करने आये थे। दूसरेके साथ बातचीत कम करते थे। इसलिये कुछ मालूम नहीं था।

ऐसा भी कहते थे, यह द्रव्य तीर्थंकरका है। ऐसा मुझे पहलेसे आया था कि यह द्रव्य तीर्थंकरका है। मुझे कुछ मालूम नहीं था। मुझे तो अन्दरसे आया था। ऐसा कुछ मालूम नहीं था। मुझे तो आत्माका करनेमें क्या सत्य और कैसे सत्य है, यह नक्की करनेमें मेरा जीवन था। उसमें गुरुदेव तीर्थंकर है (ऐसा कुछ सोचा भी नहीं था)।

महापुरुष है, आत्माकी बातें करते हैं, स्वानुभूतिका मार्ग बताते हैं, ऐसा सब होता है। तीर्थंकर हैं, ऐसा सब विचार करनेका कहाँ था। एक तो छोटी उम्र थी, उसमें तो सत्य क्या है, यह नक्की करना था। उसमें सत्य क्या यह नक्की करनेमें, आत्माका करनेमें (मैं रहती थी)। गुरुदेव महापुरुष हैं, ऐसा होता है। वस वक्त तीर्थंकर है, तीर्थंकर जैसा उनका कार्य है, ऐसे विचारका वहाँ कहाँ अवकाश था? अभी तो सब साधनाके कार्य चलते थे। यह सब तो अंतरसे आया है, सहज आया है।

गुरुदेव तीर्थंकर (द्रव्य हैं), इसको उनको स्वयंको आश्चर्य लगता था। यह तो अंतरसे आया है। ऐसा कोई विचार भी नहीं किया था और ऐसा मुझे लगता था, ऐसा भी नहीं है। अथवा गुरुदेवने कहा हो, ऐसा भी नहीं है। कुछ नहीं है। (कुन्दकुन्दाचार्यदेव) महाविदेहक्षेत्रमें गये हैं, यह सुना था, यह सब सुना था। लेकिन अभी वर्तमानमें इतना प्रचलित है कि इस शास्त्रमें आता है और उसमें आता है, ऐसा नहीं था। कुछ कथा आदिके बारेमें मालूम था और गुरुदेव कहते हैं कि महाविदेह क्षेत्रमें गये हैं। इतना मालूम था। लेकिन उस प्रकारके विचार आदिका कोई अवकाश नहीं था। मैं तो शास्त्र पढ़ती थी। शास्त्र समझनेमें ध्यान था। इसप्रकारके विचार नहीं थे। उन वक्त भगवानका मन्दिर नहीं था, कुछ नहीं था कि कोई लंगे विचार आये, कोई पूजा-भक्तिके प्रसंग नहीं थे। भक्ति की या ऐसा कुछ किया कि जिससे याद आये अथवा तीर्थंकर भगवानकी सब स्फुरणा हो, पूजा-भक्ति की कि ये तीर्थंकर भगवान (हैं), गुरुदेव उनका जीव है, तो भी विचार आये, ऐसे भी प्रसंग नहीं थे। मन्दिर नहीं था, पूजा-भक्तिके प्रसंग नहीं थे, कुछ नहीं था। मात्र शास्त्र पढ़ते थे और आत्माका ध्यान करते थे। दूसरे कोई प्रसंग नहीं थे। गुरुदेवका प्रवचन सुनते थे। गुरुदेव शास्त्रके क्या अर्थ करते हैं? मात्र वही ध्यान रहता था कि शास्त्रका रहस्य (क्या खोलते हैं)? शास्त्र तो पहली बार पढ़ते थे, गुरुदेव उसका क्या अर्थ करते हैं? उस अर्थमें ध्यान होता था कि इस पंक्तिका क्या अर्थ किया और इस पंक्तिका क्या अर्थ करते हैं?

...कोई उत्सव नहीं थे या कोई तीर्थंकर भगवानकी भक्ति करनेके प्रसंग थे, शुरूआतमें कुछ नहीं था। स्थानकवासी संप्रदायमेंसे निकले थे तो उसप्रकारका कुछ था ही नहीं। भगवानका समवसरण होता है और तीर्थंकर भगवान होते हैं, इतना मालूम था। भगवानकी वाणी और ऐसा सब मालूम था। भगवानके तीन गढ़ और अष्ट भूमि इत्यादि कुछ मालूम नहीं था। (संवत) १९९३-९४की सालमें कुछ मालूम नहीं था। फिर सब पढ़ा। फिर १९९७में भगवानकी प्रतिष्ठा हुई। तब भगवानकी पूजा, भक्ति आदिके प्रसंग हुए। १९९८की सालमें समवसरणमें कुन्दकुन्दाचार्यको विराजमना किये। वह सब बादमें हुआ। पहले कुछ नहीं था कि उसके कोई विचार आये।

महाविदेह क्षेत्रमें गये हैं, इतना मालूम था। ... दिगंबरमें क्या अंतर है, वह सब विचारमें थी। श्वेतांबरमें कहाँ भूल है, दिगंबर क्या कहता है, छः द्रव्य है, उसमें ये कालको औपचारिक द्रव्य कहते हैं, दिगंबरमें छः द्रव्य आते हैं, वह सब विचार चलता था। शुरूआतमें तो वह सब न्यायके विचार चलते थे। अभी तो श्वेतांबर-दिगंबर (का अंतर विचार चलता था)। गुरुदेवने अभी-अभी परिवर्तन किया था। उसमें गुरुदेव क्या कहते हैं और किस प्रकारसे यह सब फ़र्क़ कहते हैं? वस्त्रधारीको मुक्ति नहीं होती, ऐसा सब गुरुदेव कहते हैं, वह किस प्रकारसे है? वह सब गुरुदेव स्पष्ट करके कहते थे तब समझमें आता था। वह सब शुरूआत थी। श्वेतांबर-दिगंबरमें क्या फ़र्क़ है, मुनिदशामें वस्त्र हो तो केवलज्ञान क्यों नहीं होता? ऐसी सब उलझन शुरूआतमें कितनी होती है। वह सब चलता था, यह कुछ था भी नहीं।

... ऐसे सब दृष्टान्त आते थे। ऐसे सब दृष्टान्त गुरुदेव देते थे। अर्थात् सब शुरूआत थी। श्वेतांबर-दिगंबरका गुरुदेवने स्वयंने नक्की किया था, वह सब बाहर आनेकी शुरूआत थी। यह सब बाहर नहीं कहते थे। समयसार पढ़ते थे, राजकोटमें, लेकिन श्वेतांबरके वस्त्र और यह दिगंबर, ऐसा कुछ नहीं बोलते थे।

... सबके बीच वांचन करे, बस। गुरुदेवने अभी-अभी संप्रदाय छोड़ा था। गुरुदेवको कोई बात करनी हो तो संप्रदायका भय लगे। ऐसा था। इसलिये समय खोजकर ... लेकिन उसमें कोई महेमान आ जाये। सब तरहकी दिक्कत थी। ... कभी-कभी बाहर भी बैठते थे।

मुमुक्षु :- उस ओर छोटा कमरा है, खिड़की है वहाँ?

समाधान :- वहाँ भी कभी-कभी बैठते थे। कभी-कभी उस कमरेमें बैठे हो। सामने दिखाई देता है न? दरवाजेमें बैठे हो तो सामने दिखाई दे। होलका बरामदा और कमरेके दरवाजा, ऐसे। कमरा होता है न? कमरेका दरवाजा होता है न, सब दिखाई देता था। गुरुदेव प्रवचन देते हैं, वहाँ भी बैठे हो। पहले तो लिखा होता है।

... Up to 13:00 minute

ट्रेक-०३३

मुमुक्षु :- निमित्तकारण ऐसे परिणामका सच्चा कारण नहीं है, वह तो समझमें आता है। लेकिन जीवद्रव्यको उपादानकारणके रूपसे ग्रहण करे तो जीव नित्य होनेसे नित्य राग-द्वेष होता रहै। और ऐसे राग-द्वेष परिणामका कारण जीव भी नहीं हो तो, तो फिर उसका कारण कहाँ खोजना?

समाधान :- यह प्रश्न तो बहुत चलता ही है। निमित्त और उपादान। उपादानमें तो आत्मा है, लेकिन उसकी पर्यायमें वह होते हैं, मूल द्रव्यमें नहीं होते। उसकी पर्यायमें होते हैं और पर्याय तक विभाव सिमित है। निमित्त भी है और उपादान स्वयंका है। लेकिन मूल द्रव्यमें उसके स्वभावरूप नहीं है, विभावरूप है। विभावरूप है इसलिये पलट जाता है। वह तो पर्यायमें है और पर्याय तो पलट जाती है।

अनादिका है, लेकिन वह स्वयं अकारण पारिणामिक द्रव्य है। उसकी परिणतिमें वह स्वयं निमित्तकी ओर दृष्टि देता है इसलिये होते हैं। पर्यायमें होते हैं। स्वयं द्रव्यकी ओर दृष्टि करे तो पलट जाता है। वह नित्य नहीं रहते। अनादिसे लेकिन वह स्वतः स्वयं अकारण पारिणामिक (रूपसे) परिणमते हैं। निमित्त है, निमित्त है ही नहीं ऐसा नहीं है। उपादान स्वयंका है। उपादान है, लेकिन अपने द्रव्यमें वह मूल स्वभाव नहीं है। पर्यायमें होते हैं। पर्याय पलट जाती है।

मुमुक्षु :- उपादान कारण तो उसका स्वयंका आत्मा ही है।

समाधान :- हाँ, वह स्वयं ही उपादान कारण है। लेकिन वह पर्यायमें होते हैं, उसके स्वभावमें नहीं है।

मुमुक्षु :- स्वभाव नहीं होनेसे स्वभावका आश्रय लेनेपर उसका अभाव हो जाता है।

समाधान :- पलट जाते हैं।

.. निमित्त कुछ करता है, ऐसे सब प्रश्न आते थे, ऐसा कोई कहता था, तब गुरुदेव कहते थे कि वह तो अकारण पारिणामिक द्रव्य है। निमित्त बिना नहीं होता हो तो अपना स्वभाव हो जाये। स्वभाव नहीं है, लेकिन वह अपनी परिणति है। विभावरूप परिणमता है। और स्वभावरूप भी स्वयं परिणमता है, द्रव्य पर दृष्टि करे तो। वह अपना

नित्य स्वभाव हो जाये ऐसा नहीं है, वह तो पर्यायमें होते हैं। कारण स्वयं है। स्वयंका स्वभाव नहीं है, परंतु कारण स्वयं है। लेकिन निमित्तकारण भी है। ... ऊपर है इसलिये निमित्तकारण है ही नहीं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- वह कुछ करता नहीं।

समाधान :- करता नहीं है, परंतु निमित्त है। एक क्षेत्रावगाहमें आकर सम्बन्ध होता है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। स्वयं स्वभावरूप परिणमित हो तो वह कर्मका बन्धन स्वयं टूट जाता है, स्वयं छूट जाता है। ऐसा सम्बन्ध है। निमित्त न हो तो फिर यह बन्धन भी नहीं होता, शरीर भी नहीं होता, कर्म भी नहीं होते, कुछ नहीं होता। निमित्त है, लेकिन निमित्त स्वयं कुछ करता नहीं। लोहचुंबक हो तो सूई स्वयं (उसके पास आ जाती है)।

(निमित्त) है ही नहीं, ऐसा नहीं है। निमित्त यहाँ भले कुछ करता नहीं, लेकिन यदि हो ही नहीं तो वह द्रव्यका स्वभाव (हो जाये)। वैसे स्वभाव नहीं है, द्रव्यका स्वभाव नहीं है। उपादान है, अपनी पर्यायमे अशुद्ध उपादान स्वयंका है, लेकिन द्रव्यका मूल स्वभाव नहीं है। द्रव्यका मूल स्वभाव नहीं है, इसलिये द्रव्य पर दृष्टि करके कोई अपेक्षासे उसे परमें डाल दिया जाता है। और स्वयं पुरुषार्थकी ओर देखे तो स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे होते हैं। इसलिये स्वयं दृष्टि पलटे तो पलट जाती है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थकी अपेक्षासे स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे होते हैं।

समाधान :- हाँ, स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे होते हैं। उसका वेदन स्वयंको है, इसलिये स्वयंके है, स्वयं करता है। बात यह समझनी, उसमेंसे द्रव्य और पर्यायका विवेक करके आगे जा सकता है, क्योंकि बीचवाली बात है, निमित्त करता नहीं, अपने स्वभावमें नहीं है और विभावपर्याय स्वयं उपादानसे होती है। वह बीचवाली स्वयं बराबर समझे तो मूल द्रव्यमें तो नहीं है, वह पर्यायमें होते हैं। पर्यायका उपादान कारण, अशुद्ध उपादान स्वयंका है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- लक्ष्य करनेके लिये दो विषय है, एक परपदार्थ और एक अपना स्वभाव है। कार्य करनेकी जिम्मेदारी अथवा कार्य करना अपने हाथमें है।

समाधान :- अपने हाथमें है। कार्य किस ओरका करना वह अपने हाथमें है। वह जबरजस्ती निमित्त नहीं करवाता। दृष्टि परकी ओर करे तो वहाँ राग होता है, दूसरेकी ओर दृष्टि करे तो, फिर बन्धन होता है। कहाँ करनी, पुरुषार्थकी गति कहाँ करनी वह अपने हाथमें है। निमित्त कुछ करता नहीं।

मुमुक्षु :- स्वयं कहनेसे त्रिकाली द्रव्य ही स्वयं है ऐसा नहीं है, लेकिन पर्यायका कारणपना भी स्वयंका है।

समाधान :- वह स्वयंका ही है। द्रव्य स्वयं एक ओर रह गया और पर्याय करता है इसलिये पर्यायका वेदन पर्यायमें है। उसका वेदन करनेवाला कोई अन्य और द्रव्य शुद्ध रह गया वह कोई अन्य, ऐसा नहीं है। द्रव्य शुद्ध है तो पर्यायका वेदन (किसे होता है)? एक लो तो रागका, द्वेषका वेदन तो स्वयंको होता है। लेकिन मूल वस्तुमें नहीं है।

जैसे स्फटिक स्वभावसे श्वेत है, उसका श्वेतपना उसके अंतःतत्त्वमेंसे मूलमेंसे जाये ऐसा नहीं है। लेकिन ऊपर देखो तो लाल, काला ऊपर दिखाई देता है। वैसे द्रव्यके मूल अंतःतत्त्वमें शुद्धता है, लेकिन ऊपर राग-द्वेषकी कालिमा है उसका वेदन स्वयंको होता है। स्फटिक स्वयं परिणमता है। लेकिन वह ऐसे परिणमता है, उसकी मूल शुद्धता-स्फटिककी निर्मलता है उसे छोड़कर नहीं परिणमता। लाल, काले रंगरूप स्वयं परिणमता है, लेकिन उसका मूल (तत्त्व) छूटता नहीं। ऐसे परिणमता है।

उसी प्रकार द्रव्य परिणमता है, उपादान उसका स्वयंका है, लेकिन वह राग-द्वेषरूप ऊपर-ऊपर परिणमता है, उसकी मूल शुद्धता है वह चली नहीं जाती। लाल, काला होनेमें उसे निमित्त बाहरका होता है। फूल आदिका निमित्त (होता है)। लेकिन वह निमित्त उसे कुछ करता नहीं। उसमें स्वयं वैसा प्रतिभास होता है। स्फटिक परिणमता है स्वयं, लेकिन लाल, काला यदि नहीं हो तो (प्रतिबिंब नहीं उठता)। वैसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

वैसे आत्मामें वह निमित्त है, निमित्त कुछ करता नहीं। परिणमता है स्वयं। लेकिन द्रव्यमेंसे मूल शुद्धताको छोड़कर नहीं परिणमता। फिर भी निमित्त है सही, निमित्त कुछ करता नहीं इसलिये निमित्त है ही ऐसा नहीं है। जैसे स्फटिकमें ऐसा कहा जाये कि निमित्त कुछ करता नहीं तो निमित्त बिना प्रयोजन है। बिना प्रयोजन नहीं है। निमित्त नहीं हो तो स्फटिक सफेद ही होता है। ऐसा सम्बन्ध है। एकक्षेत्रावगाहमें जो कर्मबन्धन है, उसमें जो विभावकी परिणति होती है, उसमें वह निमित्त है। लेकिन वह करता कुछ नहीं। परिणमता है वह स्वयं। उस जातका कोई अचिंत्य स्वभाव है। अचिंत्य है। स्फटिक दृष्टांतमें देखो तो भी अचिंत्य लगे। बाहरसे फूल कुछ करता तो नहीं है। तो भी स्फटिककी परिणति लाल और हरे आदि रूप होती है। तू वैसा परिणमन कर ऐसा भी नहीं कहता। स्फटिक स्वयं ही परिणमता है। दूर हो तो उसमें वैसी परिणति होती भी नहीं। ऐसा है। उसमें तो स्वयं दूर और पास (होता है)। इसमें तो स्वयं अशुद्धतारूप परिणमता है इसलिये एकक्षेत्रावगाहमें कर्म बन्धता है। उसे कोई लेने नहीं जाता। कर्म बन्धता है। स्वयं यदि शुद्धरूप परिणमे, मूल द्रव्यमें शुद्धता है वैसे स्वयं परिणमे तो उसे निमित्त जबरजस्ती परिणमित नहीं करवाता। छूट जाता है। उसका वह

स्वभाव अचिंत्य है। द्रव्यका जो बीचवाला परिणति होनेका स्वभाव है वह अचिंत्य है। या तो कोई निमित्त पर चला जाता है, कोई उपादान पर। या तो ऐसा कहे कि निमित्त नहीं है, या तो ऐसा कहते हैं, निमित्त है तो निमित्त करता है। ऐसे बीचमें जो तीसरा है, उसकी परिणति कोई अचिंत्य है। अन्दर बराबर बैठे तो उसे बराबर समझमें आये।

मुमुक्षु :- स्वयंको यदि त्रिकालीमें स्थापित करे तो भी भूल है, तो एकान्त हो जाता है।

समाधान :- तो एकान्त हो जाता है। मैं तो शुद्ध ही हूँ।

मुमुक्षु :- भूल किसकी? भूल किसीकी नहीं ऐसा लगे।

समाधान :- हाँ, भूल किसीकी नहीं है, ऐसा हो जाये। परन्तु स्फटिक स्वयं मूलमें शुद्धता रखकर स्वयं लाल-पीले फूलरूप परिणमता है। वैसे चैतन्यद्रव्यकी शुद्धता तोड़कर अशुद्धता नहीं होती। शुद्धता रखकर परिणमता है।

मुमुक्षु :- स्वयंका द्रव्य ही परिणमता है।

समाधान :- वह स्वयं ही परिणमता है। उसे अपना ख्याल नहीं है, परन्तु अज्ञानदशामें भी वैसे ही परिणमता है। अपनी शुद्धता टूटती नहीं। कहते हैं न, अपना घर छोड़कर उसका कोई काम नहीं होता। परिणति अशुद्ध होती है, लेकिन अपना चैतन्यद्रव्य, जो उसका स्वभाव है वह टूटता नहीं।

मुमुक्षु :- जिनेन्द्र भगवानकी एक रहस्यमय बात है।

समाधान :- हाँ, रहस्यमय बात है। इसलिये वह सब ऊपर-ऊपर होता है। उसके अंतरमें-मूलमें कुछ नहीं होता। फिर भी उसे अशुद्धताका वेदन है। या तो इस ओर चला जाता है, या उस ओर चला जाता है। ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- या तो फिर ऐसा कहे, पर्यायका कर्ता पर्याय है।

समाधान :- हाँ, तो ऐसा हो जाये। पर्यायका कर्ता पर्याय है। द्रव्य कुछ नहीं करता। द्रव्य और पर्याय दोनोंका अंश और अंशी ऐसे दो भाग करो तो ऐसा कहनेमें आये। बाकी प्रवचनसारमें आता है, द्रव्य स्वयं ही परिणमता है। पर्याय कोई अन्यकी तो है नहीं, द्रव्य स्वयं परिणमित होकर पर्याय होती है। उसका वेदन स्वयंको है। स्फटिक स्वयं परिणमता है। स्फटिककी लाल परिणति और उसकी शुद्धता, ऐसे दोनोंको अलग करो तो उसका लाल रंग और उसकी शुद्धता, स्फटिककी जो शुद्धता है वह भिन्न और लाल रंग अलग ऐसा कहनेमें आता है, परन्तु वह वस्तु भिन्न-भिन्न नहीं हो जाती। वस्तु तो एक ही है।

वैसे चैतन्यकी अशुद्धता और अन्दर शुद्धता। वैसे शुद्धता और अशुद्धता ऐसे उसके

दो भाग करो तो वस्तु भिन्न-भिन्न नहीं हो जाती। स्फटिक वस्तु कोई भिन्न नहीं हो जाती। उसका लाल रंग कोई अलग वस्तुमें हुआ और सफेद स्फटिक कोई अलग वस्तुमें है, (ऐसा नहीं है)। दोनों एक ही वस्तु है।

मुमुक्षु :- मूल पायेकी बात है।

समाधान :- हाँ। वह एक ही स्फटिक वस्तुमें होता है। स्फटिक एक है और उसके अन्दर लाल रंग और सफेद, दोनों भाग अन्दर ही अन्दर एक ही वस्तुमें होते हैं। एकसाथ हैं।

मुमुक्षु :- एक ही वस्तुके दो अंश है।

समाधान :- हाँ, एक ही वस्तुके दो अंश हैं।

मुमुक्षु :- दो अंश मिलकर एक वस्तु बन जाये ऐसा भी नहीं है।

समाधान :- नहीं, ऐसा नहीं है। वह कोई अंश नहीं, वस्तु है, स्फटिककी जो निर्मलता है वह।

मुमुक्षु :- वह क्या कहा? निर्मलता है वह वस्तु है, अंश नहीं है, यानी क्या?

समाधान :- दो अंश कहा न? अर्थात् निर्मलताका अंश और अशुद्धताका अंश। अन्दर जो पड़ा है, वह कोई एक अंश नहीं है, वस्तु द्रव्य है। ऐसा कहा। अंश यानी वह कोई शुद्धतारूप परिणमित हुआ अंश है ऐसा नहीं है। परिणमित हुआ अंश नहीं है, वह तो शक्तिरूप है। ऐसा कहा। दो भाग है वह बराबर, लेकिन शुद्धतारूप है वह प्रगट परिणमित हुआ अंश है ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- परिणमता अंश नहीं है।

समाधान :- परिणमता अंश नहीं है। शक्तिरूप है। स्वयं ही परिणमता है। वह इसप्रकार परिणमता है कि उसका मूल टिकाकर पर्याय अशुद्ध होती है।

मुमुक्षु :- नहीं तो आत्माको उसका वेदन नहीं होता। यदि वह स्वयं नहीं परिणमता हो तो उसे वेदन नहीं हो सकता।

समाधान :- वेदन ही नहीं होता। तो आकूलताका वेदन ही नहीं होता। यदि द्रव्य और पर्याय ऐसे बिलकूल भिन्न ही हो तो उसका वेदन स्वयंको होता ही नहीं। तो फिर रागका वेदन रागमें, स्वयंको उसका वेदन ही नहीं होता, तो फिर उसे छूटनेकी अपेक्षा भी नहीं है। स्वयं परिणमता हो तो उसे छूटनेकी अपेक्षा रहे। परिणमता ही नहीं हो तो छूटनेकी अपेक्षा कहाँ? रागमें, द्वेषमें, विकल्पमें स्वयं परिणमता है। इसलिये उसे ऐसा होता है कि मेरा स्वभाव निर्मल है, मैं अपनी ओर देखुँ, यह सब आकूलता है। उसका वेदन होता हो तो छूटनेका प्रयत्न है। उसका वेदन ही नहीं है तो फिर छूटनेका प्रयत्न (क्यों करे)? वस्तु ही दूसरी है, तो फिर उसे स्वयंको छूटनेका प्रयत्न

करना नहीं रहता।

... द्रव्यका उत्पाद-व्यय .. है। लेकिन उत्पाद अलग, व्यय अलग, सब भिन्न-भिन्न नहीं पड़े हैं, एक ही वस्तुके अंश हैं।

मुमुक्षु :- उत्पाद-व्यय एक सत् और ध्रुव एक सत्..

समाधान :- वस्तु भिन्न-भिन्न नहीं है। पर्यायके अंश हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०३४

समाधान :- .. आत्माका मोक्षका मार्ग जिसको प्रगट हुआ उसकी वाणी उसको निमित्त होती है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- वह वाणी निमित्त नहीं होती।

मुमुक्षु :- इसलिये जेनी-तेनी पासे धर्म सांभळवो ते पात्रता नथी।

समाधान :- जिसकी जिज्ञासा हो वह सच्चे गुरुको पहचान लेता है। इस गुरुका उपदेश मेरे आत्माका कल्याण करेगा। यदि सच्ची जिज्ञासा हो तो अपनेआप पहचान लेता है। ..

मुमुक्षु :- जो प्रत्यक्षमें दिख रहा है कि इस उपदेश देनेवालेको आत्मानुभूति नहीं है, तो उसके उपदेशको नहीं सुनना चाहिये।

समाधान :- वह तो कोई अपेक्षासे बात है। अपने निमित्त होता है तो सच्चे गुरु मिलते हैं। जिसको नहीं मिलता है.... जिज्ञासु, जिसने गुरुके पास सुना है, अपनी पात्रता प्रगट हुई है, ऐसा कोई मुमुक्षु-सच्चा मुमुक्षु हो तो समझनेके लिये वह समझता है, परंतु उसको गुरु नहीं मानता। वह तो समझनेके लिये समझता है। सच्चा गुरु नहीं मानना। स्वाध्याय करता है, सच्चा गुरु नहीं मानना। ... बाहरमें सब लालच हो, उसे पात्रता नहीं है।

मुमुक्षु :- उसका उपदेश सुनना नहीं।

समाधान :- उसका उपदेश... सच्चे गुरुसे लाभ होता है। शास्त्रमें आता है, सच्चे गुरुसे लाभ होता है। ऐसे गुरु नहीं मिलते हैं तो साधर्मी एकदूसरेके साथ चर्चा करे, स्वाध्याय करे, विचार करे, ऐसा तो करते ही हैं आपसमें। .. पहचानना और शरीरादि भिन्न है उसे पहचानना। ऐसा कहनेवाले गुरु कौन है, वह ...

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- ... यथार्थमें कौन है वह समझना। व्यवहारसे वक्ता, श्रोता ऐसा चलता है?

मुमुक्षु :- ... वहाँ-से लक्ष्य छूटता नहीं। स्वभावके प्रति लक्ष्य होता नहीं।

समाधान :- पुरुषार्थ करनेसे होता है। अनादिकी एकत्वबुद्धि है। शरीर सो मैं और मैं सो शरीर हूँ, ऐसा अभ्यास चलता है। उस अभ्यासको तोड़ना चाहिये। ... मैं तो भिन्न ज्ञायक हूँ, यह शरीर तो जड़ है, कुछ जानता नहीं। मैं तो भिन्न चैतन्यतत्त्व महिमावंत पदार्थ अनादिअनन्त (हूँ)। बारंबार उसका विचार, वांचन, प्रतीत, दृढ़ता करना चाहिये। मैं तो एक ज्ञायकतत्त्व हूँ। मैं तो ज्ञायकदेव हूँ, यह शरीर तो जड़ है। शरीर और आत्मा दोनों भिन्न हैं। अनादिसे भिन्न ही है। पुरुषार्थ करना चाहिये।

मुमुक्षु :- .. कभी किया नहीं है तो उसका स्वरूप समझमें आता नहीं।

समाधान :- नहीं किया है तो भी अपना स्वभाव है इसलिये हो सकता है। पुरुषार्थ करके अनन्त (जीव) मोक्ष गये हैं और अनन्त (जीवोंको) भेदज्ञान हुआ है। आत्मा है तो कर सकता है। अपनी अनादिकी भूल चली आती है इसलिये प्रमादके कारणसे नहीं होता है।

गुरुदेव कहते थे, अपनी भूलसे अपनेको पहचाना नहीं। 'निज नयननी आळसे, निरख्या न हरिने।' अपने नेत्रकी आलसके कारण आत्माको स्वयं पहचानता नहीं। चैतन्यप्रभुको पहचानता नहीं।

मुमुक्षु :- अपनेको पहचाननेका आपने कहा, तो अपनेको पहचाननेकी किस तरहकी प्रक्रिया अपनायी जाती है?

समाधान :- अपनेको पहचाननेकी क्रिया-ज्ञानस्वभाव है वह सबको जान लेता है। वह जानता है। परको जाननेके लिये वह सब करता है, अपनेको जाननेका प्रयत्न नहीं करता। जाननेका प्रयत्न करना चाहिये। गुरुदेवने बहुत बताया है। शास्त्रमें भी आता है। प्रमाद करता है, रुचि नहीं है, जिज्ञासा नहीं है, परमें एकत्वबुद्धि है, (परमें) सुख मानता है, परकी महिमा आती है, आत्माकी महिमा भी नहीं आती। आत्माकी महिमा करनी चाहिये, आत्माका स्वभाव पहचानना चाहिये, उसका विचार करना चाहिये। बारंबार उसकी रुचि बढ़ानी चाहिये। यह सब करना चाहिये।

मुमुक्षु :- आत्मा दिखता नहीं, माताजी! बाहरका सब दिखता है तो बाहरकी महिमा आती है।

समाधान :- अनादिसे दृष्टि बाहर है इसलिये बाहरका दिखता है। अंतरमें दृष्टि देखे तो अपनेआप दिखाई देता है। दृष्टि बाहर ही बाहर है। दृष्टिको स्वभावकी ओर ले जानी है। आत्मा ऐसा नहीं है कि दिखनेमें नहीं आये। ज्ञानस्वभाव किसको नहीं जाने? सबको जाने। पर जानता है, स्वको नहीं जानता है।

स्वपरप्रकाशक ज्ञान है। ज्ञान तो सबका अनन्त है। स्वपरप्रकाशक है तो सबको जानता है। पुरुषार्थ नहीं करता है तो नहीं जाननेमें आता। अनादिसे परको जाना, आत्माको

जाना नहीं। आत्माको जाननेका प्रयत्न करना चाहिये, तो जान सकता है। भेदज्ञान करना चाहिये। शरीर मैं नहीं, विभावस्वभाव मेरा नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! हम हिन्दीभाषी मुमुक्षुओंका यह परम सौभाग्य है कि हम पूज्य गुरुदेवश्रीकी ९७ मंगल जन्म जयंति महोत्सव मनानेका पवित्र अवसर मिला है। यह मंगल महोत्सव हम मुमुक्षुजीवोंमें आत्मार्थीता विकसाकर मोक्षमार्गमें लगाए, ऐसा मंगल आशीर्वाद चाहते हैं।

पूज्य माताजी! पूज्य गुरुदेवश्री निश्चयनयको सदा मुख्य फरमाते थे। और आगममें कभी निश्चयको मुख्य तो कभी व्यवहारको मुख्य दर्शाते हैं, तो दोनों भिन्न-भिन्न प्रकारके कथनके पीछे ज्ञानी धर्मात्माओंका मर्म क्या है, यह कृपा करके समझाइये।

समाधान :- गुरुदेवने तो बहुत स्पष्ट किया है, गुरुदेवका परम उपकार है। निश्चयनय सदा... साधकजीवको द्रव्य पर दृष्टि तो निश्चय सदा मुख्य ही रहता है। साधकदशामें द्रव्यदृष्टि मुख्य ही होती है। इसलिये निश्चयनयको गुरुदेव मुख्य कहते थे। और वस्तु स्वरूप ऐसा है। जो गुरुदेव कहते थे वैसा ही है। परन्तु जो शास्त्रमें आता है कि कभी व्यवहार मुख्य और कभी निश्चयकी बात आये तो उसमें समझानेके लिये होता है। जीवोंको जो अनादिका अभ्यास है, विभावका अभ्यास है इसलिये व्यवहारकी बाहरमें स्थूल दृष्टि है, समझ नहीं सकते। इसलिये समझानेके लिए व्यवहारकी बात करनेमें आये। लेकिन उसमें कहनेका आशय-वस्तु और मुक्तिका मार्ग क्या है, निश्चय पर दृष्टि कर ऐसा कहनेका आशय होता है। जो आत्मार्थी है वह उसमेंसे आशय समझ लेता है। जिसे आत्मार्थीता नहीं होती, वह मात्र व्यवहारको पकड़ लेता है।

आचार्यका आशय तो निश्चयनय यानी आत्माको ग्रहण करानेका ही होता है। लेकिन जो समझते नहीं, वह मात्र व्यवहार ग्रहण कर लेते हैं। आचार्यका कथन तो व्यवहारको छोड़कर आत्माको ग्रहण करानेका ही आशय होता है। साधकको निश्चय मुख्य और व्यवहार गौण होता है। लेकिन उसे समझानेके लिये व्यवहारसे ऐसा कहनेमें आता है कि 'भाषा अनार्य विना समझावी शकाय न अनार्यने।' अनार्यको समझा नहीं सकते। उसकी भाषामें उसे समझानेमें आता है। शास्त्रमें आता है कि आत्मा शब्द कहा। अब, आत्मा किसे कहते हैं, इसका जिसे ज्ञान नहीं है, वह समझ नहीं सकता। इसलिये दर्शन, ज्ञान, चारित्रको प्राप्त हो, हमेशाके लिये प्राप्त हो, वह आत्मा। ऐसा कहनेमें आता है, तब उसे समझमें आता है। इसलिये व्यवहारसे कथन करनेमें आता है। उसे समझानेके लिये। समझाना है आत्मा, ग्रहण आत्मा कराना है। लेकिन व्यवहारका कथन बीचमें आये बिना नहीं रहता। इसलिये व्यवहारसे कथन करनेमें आता है। ग्रहण तो

एक आत्मा ही कराना है। और स्वानुभूतिका मार्ग बताना है, वस्तुका स्वरूप बताना है।

इसलिये निश्चय दृष्टिमें मुख्य होता है। लेकिन द्रव्य और पर्याय दोनोंका ज्ञान करानको और समझानेके लिये वस्तु स्वरूप और आत्माको ग्रहण करानेके लिये व्यवहारको भी आचार्य बीचमें कहते हैं, समझानेके लिये कहनेमें आता है। वस्तु स्वरूप तो आत्माको ग्रहण करानेका ही होता है। निश्चय सदा मुख्य ही होता है।

अभेद आत्माको ग्रहण करना, उसमें गुणभेद हो, पर्यायभेद हो, उसका ज्ञान करना होता है। वह समझे उसमें व्यवहार बीचमें आये बिना नहीं रहता। लक्षणभेद, ज्ञानका लक्षण, लक्षणसे आत्माको ग्रहण करना, ज्ञानस्वभाव आत्मा, इसप्रकार गुण द्वारा गुणीको ग्रहण करानेमें आता है। ऐसा व्यवहार भी बीचमें आता है। वह स्वयं आगे बढे उसमें भी गुणभेद, पर्यायभेद बीचमें आते हैं। इसलिये कथनमें भी आचार्यदेव उसे समझानेके लिये, आत्माको ग्रहण करानेके लिये बीचमें आये बिना नहीं रहता। इसलिये कभी व्यवहारकी बात करते हैं, कभी निश्चयकी बात करते हैं। आगममें आता है। लेकिन दृष्टि तो उसे सदाके लिये मुख्य रहती है। और ज्ञानमें द्रव्य किसे कहते हैं, पर्याय किसे कहते हैं, साधकदशा किसे कहते हैं, साध्य क्या है, ग्रहण क्या करना है और बीचमें साधकदशा कैसी होती है, यह सब बीचमें आता है। इसलिये आचार्यदेव सब बातका उसे ज्ञान कराते हैं। ग्रहण एक आत्माको करना है। वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है।

मुमुक्षु :- दृष्टिमें आत्मा ही रहता है अर्थात् क्या? पूरा दिन वहीं उपयोग रहता है?

समाधान :- उपयोग वहाँ नहीं रहता। लेकिन उसकी दृष्टि वहाँ रहती है। उपयोगमें ज्ञानमें उसे सब जाननेके विचार आये। गुणभेद, पर्यायभेद आदि सब जाननेके लिये आता है। उपयोग वहाँ नहीं रहता, लेकिन उस पर दृष्टि, परिणति उस प्रकारकी होती है। द्रव्य पर दृष्टि सदाके लिये होती है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं आत्मा हूँ। अपना अस्तित्व- जो चैतन्यका अस्तित्व है उस उसकी दृष्टि सदाके लिये होती है। मैं ज्ञायक, ऐसी ज्ञायककी परिणति (निरंतर रहती है)। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, गुणभेद, पर्यायभेद वास्तविकरूपसे मेरेमें नहीं है। उसका स्वरूप है, उसके गुण अनन्त है, लेकिन उसके भेद पर उसकी दृष्टि नहीं है। दृष्टि एक आत्मा पर है। उपयोग नहीं, लेकिन दृष्टि ही उस पर थँभ गई है।

श्रद्धा और ज्ञान, दोनों गुण भिन्न हैं। दृष्टि उस पर थँभ गई है। उपयोगमें सब आता है। जाननेमें सब आता है। लेकिन दृष्टि एक ज्ञायक पर होती है। उस पर दृष्टि ऐसी स्थिर हो रहती है कि कहीं भी उपयोग जाये तो भी भेदज्ञानकी धारा तो छूटती

ही नहीं। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प नहीं, परन्तु सहज परिणति ही होती है। ज्ञायकता-ज्ञायकता, उसे सदाके लिये ज्ञायकताकी परिणती चालू रहती है। स्वानुभूतिमें हो तो भी ज्ञायक पर जो दृष्टि है वह छूटती नहीं। गुणभेद, पर्यायभेद स्वानुभूतिमें उसके ज्ञानमें आते हैं, उसके वेदनमें आता है। गुण, पर्याय उसके वेदनमें आते हैं, परन्तु दृष्टि आत्मा परसे छूटती नहीं। दृष्टि सदाके लिये उस पर ही थँभी हुई रहती है।

मुमुक्षु :- दृष्टिमें निश्चयनय ही मुख्य है और जाननेमें निश्चय और व्यवहार दोनों होते हैं?

समाधान :- दोनों होते हैं। दृष्टिमें एक द्रव्य ही मुख्य होता है और जाननेमें गुण, पर्याय, द्रव्य सब आता है। निश्चयनय, व्यवहारनय, निश्चयका स्वरूप, व्यवहारका स्वरूप जाननेमें सब आता है।

मुमुक्षु :- हम ऐसा समझे तो उससे आत्माकी तीखी रुचि कैसे हो? निश्चयसे दृष्टि अपेक्षासे ऐसा है और निश्चय-व्यवहार ज्ञानमें इसप्रकार होते हैं, उससे आत्माकी रुचि कैसे हो?

समाधान :- जाननेसे आत्माका स्वरूप ऐसा है, बाहरमें कहीं नहीं है, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव एक ज्ञायक ही है, यह सब आकूलता है, यह सब विभाव है, मेरा स्वभाव नहीं है। मैं चैतन्य एक अनादिअनन्त हूँ। उसे दुःख लगे, भवभ्रमणकी थकान लगे और अंतरमें एक आत्मामें शान्ति और आनन्द है, ऐसी उसे प्रतीत हो, रुचि हो तो उस ओर रुचि होती है कि वस्तुका स्वरूप ऐसा है। सब मेरेमें है, बाहर कुछ नहीं है। सबकुछ मेरेमें है, यह कैसे ग्रहण हो, कैसे प्रगट हो? सब अनन्त। आनन्द अनन्त, ज्ञान अनन्त, ऐसे अनन्त गुण सब मेरेमें भरा है। बाहरमें कुछ नहीं है। और उस पर-अभेद चैतन्य पर दृष्टि करनेसे, स्वयंका अस्तित्व ग्रहण करनेसे यह प्रगट होता है। इसप्रकार निश्चय-व्यवहारको जाननेसे स्वयंके चैतन्य पर दृष्टि पर जाये। जिसे जिज्ञासा हो, इस भवभ्रमणकी थकान लगी हो, विभावसे थक गया हो, आकूलता लगती हो, उसे उसमेंसे उपाय मिल जाता है कि एक चैतन्य पर दृष्टि करनेसे आत्माका सुख और आनन्द प्रगट होता है। स्वानुभूति प्रगट होती है। यह निश्चय है, यह व्यवहार है। उसमें साधकदशा बीचमें आती है। उसमें साध्य एक आत्माको ग्रहण करके बीचमें यह साधकदशा होती है। इसप्रकार निश्चय-व्यवहारकी संधिको जाने तो उसे मुक्तिका मार्ग मिलता है। उसे उस ओर रुचि जागृत होती है कि बस, अपूर्व आनन्द और अपूर्व आश्चर्यकारी तत्त्व यही है, इसलिये उसे ग्रहण करने जैसा है। इसप्रकार ग्रहण हो, उसकी रुचि हो, ऐसा सब होता है।

मुमुक्षु :- उसमें साथ-साथ उपकारी सत्पुरुषकी महिमा इसीमें आ जाती है?

समाधान :- हाँ, उसमें आती है। जिसे आत्माका स्वरूप समझना है, ऐसे देव-गुरु-शास्त्र जो समझाते हैं, आत्माका स्वरूप जो अनादिसे नहीं समझा है, उसे समझानेवाले ऐसे सत्पुरुष-ज्ञानी के प्रति महिमा आये बिना नहीं रहती। क्योंकि जो आत्माका स्वरूप समझाये उस पर उसे महिमा आती है। क्योंकि अनादिसे जो मार्ग प्राप्त नहीं हुआ है, वह जो समझाये उस पर महिमा आये बिना रहती ही नहीं। आत्माका स्वरूप ऐसा है, अनन्त आनन्दसे भरा अपूर्व अनुपम तत्त्व है, ऐसा मार्ग जो दर्शाते हैं, ऐसे गुरु पर, देव पर उसे महिमा आये बिना रहती ही नहीं। क्योंकि अनादिका अनजाना मार्ग, जो स्वयंको जिज्ञासा है, वह मार्ग गुरुदेव बताये और उस भूमिकामें स्वयं खड़ा है, उस भूमिकामें अमुक प्रकारकी भक्तिकी भूमिकामें खड़ा हो तो उसे महिमा आये बिना रहती ही नहीं।

जब तक स्वयंने आत्माको जाना नहीं, इसलिये जो समझाते हैं उस पर भक्ति आये बिना रहती ही नहीं। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करे तो भी उसकी वह भूमिका है तो देव-गुरु-शास्त्र पर उसे भक्ति आये बिना रहती ही नहीं। क्योंकि वीतरागदशा नहीं होती तबतक बीचमें प्रशस्त रागकी भूमिकामें खड़ा है इसलिये उसे आये बिना रहता ही नहीं। उसे वह रोकते नहीं, लेकिन बीचमें आये बिना नहीं रहता।

मुनि हो तो मुनिको भी बीचमें आती है। मुनि शास्त्र लिखे तो प्रारंभमें जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार करते हैं, सिद्ध भगवानको नमस्कार करते हैं। मुनिओंको भी आये बिना नहीं रहती। वह तो बीचमें आता ही है। तो जिसकी जिज्ञासुकी भूमिका है, जिसने मार्ग जाना नहीं है, उसे तो आये बिना रहती ही नहीं। क्योंकि एक तो स्वयं कुछ समझता नहीं और जो अनादिका मार्ग गुरुदेवने बताया तो उन पर भक्ति आये बिना रहती नहीं। क्योंकि अनादिका ऐसा अनजाना मार्ग कि जो स्वयं कुछ समझता नहीं, ऐसा मार्ग जिसने समझाया उस पर उसे महिमा आती ही रहती है।

ऐसे पंचमकालमें गुरुदेव पधारे और ऐसा मार्ग बताया तो महिमा आये बिना उसे नहीं रहती और आत्माका ध्येय उसे साथमें रहता है कि ऐसा आत्मा है, वह आत्मा मुझे कैसे प्रगट हो? प्रगट होनेका निमित्त जो गुरुदेव पर, देव-गुरु-शास्त्र पर भक्ति आये बिना नहीं रहती।

मुमुक्षु :- उसमें कोई विरूद्धता नहीं है।

समाधान :- विरूद्धता नहीं है। भक्तिके साथ आत्माकी जिज्ञासाको विरूद्धता नहीं है। दोनोंका सम्बन्ध है। विरूद्धता नहीं है। सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें भी वह होती है- देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति। और मुनिओंको भी होती है। उसकी भूमिका अनुसार होती

है। पूजा आदि कार्य नहीं होते परन्तु उन्हें भक्ति होती है। सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें उसे कोई विरूद्धता नहीं है कि वह रागकी भूमिका है और आत्मा वीतराग है, इसलिये उसे वह आये ... वीतरागदशा प्रगट होती है, तब वह छूट जाता है। परन्तु वीतरागस्वरूप आत्माका है, लेकिन उसे दृष्टिमें ग्रहण किया, आत्मा निर्विकल्प तत्त्व है, उसे दृष्टिमें ग्रहण किया लेकिन उस प्रगट नहीं हुआ है तब तक बीचमें आये बिना नहीं रहती। जो स्वयंको जानना है, वह दर्शानेवाले मिले उन पर भक्ति आये बिना नहीं रहती। उसे विरूद्धता नहीं है कि अब अन्दर आत्माका करना है, बाहरका कुछ नहीं। लेकिन वह रागकी भूमिकामें आये बिना रहता ही नहीं। नहीं आये तो स्वयं बराबर समझा नहीं है। स्वयं समझा नहीं है। अन्दर आत्माका ही करना है, बाहरका (क्या काम है)? लेकिन बाहरके विकल्प उसे आये बिना रहते ही नहीं। दूसरा बाहरका कैसे आता है? विभावकी भूमिकामें दूसरे विभावके भाव उसे अप्रशस्त आते हैं तो प्रशस्तमें पलटे बिना नहीं रहता। जिसे आत्माकी रुचि जागी, उसके भाव प्रशस्तमें पलट जाते हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०३५

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! आगममें जगह-जगह सात तत्त्वके यथार्थ श्रद्धानको ही सम्यक्त्वका लक्षण गिनकर महत्ता दी है तो उसमें इतना क्या रहस्य है, यह कृपा करके समझाईये कि जिससे हमें सम्यक्त्व-रत्नकी महिमा जागृत हो।

समाधान :- सात तत्त्वकी श्रद्धामें आचार्यदेवको एक जीवपदार्थको मुख्य कहना है। लेकिन वह एक आत्मा पदार्थ समझ नहीं सकता है। इसलिये उसे व्यवहारकी बात भी साथमें (कहते हैं)। सात तत्त्वका श्रद्धानमें मुख्यरूपसे तो अन्दर आत्माकी ओर द्रव्यदृष्टि करनी, ऐसा आचार्यदेवको कहना है। भूतार्थदृष्टिको ग्रहण कर। लेकिन उसमें सात तत्त्वकी श्रद्धा बीचमें होती है। इसलिये आचार्यदेव व्यवहारसे बात करे तो भी अन्दर आत्माको ग्रहण करानेका उनका आशय होता है। एक आत्माको ग्रहण करना। भूतार्थ तत्त्व एक भूतार्थ आत्मपदार्थ है, उसे ग्रहण कर। उसके बीच ये सात तत्त्व- जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व, आस्रव, संवर, बंध, मोक्ष आदि आते हैं। क्योंकि तुझे साधकदशा प्रगट करनी है तो उसमें बीचमें यह विभाव है, विभावमेंसे संवर हो, उसमेंसे निर्जरा हो, विशेष शुद्धि हो तो निर्जरा हो, अमुक शुद्धि हो तो संवर हो, पूर्ण शुद्धिमें मोक्ष होता है। सादकदशा और साध्य दोनों आचार्यदेव बताते हैं।

भूतार्थनयको मुख्य कर। एक मुख्य चैतन्यद्रव्यको मुख्य करके उसमें यह जो पर्याय होती है, वह दोनों उसमें आ जाते हैं। आचार्यदेव पूरा मुक्तिका मार्ग बता रहे हैं। आचार्यदेवको व्यवहारकी बात करके समझाना है, एक जीवतत्त्वको ग्रहण करना। लेकिन ... ऐसा नहीं है। व्यवहारसे जो कहते हैं यानी व्यवहार बिलकूल है ही नहीं ऐसा नहीं है। आचार्यदेवके एक-एक शब्द जो होते हैं वह तत्त्व ग्रहण करनेके लिये होता है और यथार्थ मुक्तिमार्ग ग्रहण करवाना होता है। आचार्यदेव जो कहते हैं, उसमें जो व्यवहारकी बात करते हैं वह बिलकूल जूठी है ऐसा नहीं। आचार्यदेवकी जो कथनी होती है वह सत्यता पर सत्य ही होती है। इसलिये निश्चय किस अपेक्षासे है और व्यवहार किस अपेक्षासे, वह उसे आत्मार्थ हेतु समझना रहता है। आत्मार्थीको आचार्यदेव पूरा मुक्तिका मार्ग समझाते हैं।

मुख्य जो आत्मा है उसे ग्रहण कर, जीवतत्त्वको ग्रहण कर। उसमें सब पर्यायें

होती हैं, उसका ज्ञान कर। मुख्य एक आत्माको ग्रहण कर। यथार्थ ज्ञान होगा तो तेरी साधना यथार्थ होगी। इसलिये यथार्थ ज्ञान कर। और दृष्टिमें मुख्य एक जीवद्रव्यको रख, उस पर दृष्टि कर। आचार्यदेवका यह कहनेका आशय है। अलग-अलग मात्र जाननेके लिये जान लेना, ऐसा नहीं है। एक श्रद्धा कर लेनी कि जीव है, पुण्य है, आस्रव है, पाप, संवर, बन्ध, मोक्ष आदि है, ऐसी श्रद्धा कर ली, ऐसा नहीं। एक आत्मतत्त्वको ग्रहण कर और उसकी यह पर्याय है, उसका ज्ञान कर। उसमेंसे साधना होती है। ऐसा आचार्यदेवका कहनेका आशय होता है। व्यवहार कहकर अन्दर निश्चय आत्माको बताना है।

आचार्यदेवके सब कथन रहस्यमय होते हैं। एक सम्यग्दर्शन प्रगट कर तो उसमें पूरा मुक्तिका मार्ग आ जाता है। उसमें सम्यग्दर्शन, मुनिदशा, केवलज्ञान (सब प्रगट हो जाता है)। एक सम्यक्त्व ग्रहण किया, जो अनादिसे प्रगट नहीं हुई ऐसी स्वानुभूति प्रगट हुई उसमें पूरा मुक्तिका मार्ग प्रगट हो गया। उसमें पूरा मार्ग स्पष्ट हो गया। इसलिये सात तत्त्वकी श्रद्धामें एक भूतार्थ दृष्टिसे तू सब जान, ऐसा आचार्यदेवको कहना है। व्यवहारसे बात करे इसका मतलब उसमें आचार्यदेवकी गहरी बात होती है। जो नहीं समझते हैं इसलिये उसे व्यवहारसे बात करते हैं। परन्तु आचार्यदेवको गहरी बात समझानी होती है।

मन्दिर जाना है ऐसा कहे। मन्दिर जानेका हेतु भगवानके दर्शनका है। कोई कहे कि भगवानके दर्शन करने हैं और कोई कहता है, मन्दिर जाना है। मन्दिर जानेमें सहेतु तो भगवानके दर्शनका होता है। सिर्फ मन्दिर जाना है उतना ही हेतु नहीं होता, परन्तु भगवानके दर्शनका होता है।

ऐसे कोई सीधा आत्मा कहे तो और व्यवहारसे बात करे उसमें एक आत्माका होता है। मन्दिर जाना है ऐसा कहनेमें हेतु भगवानके दर्शन करनेका है। वैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी बात करे तो उन तीनोंमें एक आत्मा ग्रहण कर। आत्माको साध्य रखकर साधकदशामें ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब आता है।

मुमुक्षु :- मन्दिर जा, ऐसा कहे उसका मतलब...

समाधान :- मन्दिर जाना है इतना ही नहीं, भगवानके दर्शन करने जाना है।

मुमुक्षु :- तुरन्त समझ भी जाये कि मन्दिर जानेका कहा है मतलब दर्शन करने है।

समाधान :- भगवानके दर्शन करनेको कहा है।

मुमुक्षु :- सात तत्त्वका ज्ञान और श्रद्धान कर, वह आत्माका ज्ञान एवं श्रद्धान करानेको कहा है।

समाधान :- आत्माका ज्ञान करानेको सात तत्त्वकी श्रद्धा करनेको कहा है।

मुमुक्षु :- आत्माके श्रद्धानका अर्थ आप सामर्थ्यके श्रद्धानकी बात करते हो? आत्माके सामर्थ्यकी? हेतु यह है?

समाधान :- आत्माका ज्ञान कर यानी आत्माका सामर्थ्य और आत्मा तत्त्व कैसा है, उसका ज्ञान कर। सामर्थ्य यानी अनन्त गुणोंसे भरा है, ऐसे ग्रहण कर। फिर अनन्त गुण पर दृष्टि नहीं रखनी है। आत्मा कैसा है? ज्ञायकतत्त्व। उसे ग्रहण तो एक अभेदको है। लेकिन उसका सामर्थ्य कैसा अनन्त है, उसमें साथमें सब ज्ञानसे ग्रहण करना है। आत्माका अनन्त सामर्थ्य, आत्माके गुण-पर्याय ज्ञानसे ग्रहण कर। फिर दृष्टि एक आत्मा पर स्थापित करनी है।

शास्त्र पढता रहे तो शास्त्र मात्र पढनेके लिये नहीं है। तू शास्त्र समझ, उसमें आत्माको पहचान ऐसा कहनेका आशय होता है। मन्दिर जाना मतलब भगवानके दर्शन करने है। वैसे आत्माको ग्रहण करनेका आशय होता है। 'चारित्र, दर्शन, ज्ञान पण व्यवहार कथने ज्ञानीने'। व्यवहारसे चारित्र, दर्शन कथन कहे, लेकिन निश्चयसे चारित्र नहीं है, दर्शन नहीं है, ज्ञान नहीं है। अर्थात् गुणभेद नहीं है। लेकिन वह स्वरूप तो है-ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये तीनों गुण आत्मामें है। लेकिन उस गुणभेदमें रुकना नहीं। भेदका विकल्प करनेसे राग होता है। इसलिये तू विकल्प तोड़कर आत्मामें स्थिर हो।

... चारित्र पर ऐसे दृष्टि करनेसे तू उसमें रुक जायेगा। एक ज्ञायक पर दृष्टि स्थापित कर। लेकिन वह तीन भेद उसे बीचमें समझानेके लिये कहनेके लिये आये बिना रहता ही नहीं। आचार्यदेव कहते हैं कि खेद है कि बीचमें व्यवहार आये बिना रहता ही नहीं। अनादिसे जो विभावमें पड़ा है, उसमेंसे साधकदशा प्रगट होती है, इसलिये बीचमें व्यवहार आये बिना रहता ही नही। इसलिये जो नहीं समझते हैं उसे व्यवहारसे समझानेमें आता है। लेकिन जो आत्मार्थी होता है वह आशय ग्रहण कर लेता है कि गुरुदेवको एक आत्मा ग्रहण करानेका हेतु है, लेकिन बीचमें यह समझानेके लिये यह सब आता है। लेकिन निश्चय-व्यवहारकी संधि भी होनी चाहिये। एक आत्माको ग्रहण कर। और यह जो गुण और पर्यायका स्वरूप है, वह कुछ है ही नहीं, ऐसे छोड़ दे तो भी भूल होती है। सबका स्वरूप समझकर एक द्रव्य पर दृष्टि करनी है।

समाधान :- ... ज्ञायक परिणति अंतरमें प्रगट हुई, वह ज्ञायककी परिणति चालू हो गयी। स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हो गयी। ज्ञायककी परिणति सदाके लिये, खाते-पीते, जागते-सोते, स्वप्नमें सबमें ज्ञायककी परिणति चालू ही है। ज्ञायककी धारा चालू हो गयी। पुरुषार्थकी धारा ज्ञायककी ओर ही चलती है। ऐसी ज्ञायकताकी उग्रताके लिये उसका प्रयत्न चालू ही है। उसकी भूमिका अनुसार।

फिर जैसे भूमिका बढ़ती जाये, वैसे ज्ञायककी परिणति भी विशेष-विशेष बढ़ती जाती है। लीनता बढ़ती जाती है। भूमिका पलटनेसे पाँचवां गुणस्थान, छठ्ठा-सातवां गुणस्थान आता है। जैसे-जैसे भूमिका बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसे परिणतिमें लीनता बढ़ती जाती है। बाकी सम्यग्दर्शनके बाद ज्ञायककी परिणति चालू ही रहती है। ज्ञायककी परिणति प्रगट हो गयी, इसलिये वर्तमान दशामें कुछ नहीं होता, ऐसा नहीं है। ज्ञायककी परिणति, ज्ञायकका वेदन प्रतिक्षण होता है। चाहे जैसे प्रसंगमें उसे ज्ञायककी परिणति छूटती ही नहीं।

उसे निर्विकल्प दशा भी उसकी भूमिका अनुसार होती है। वह आनन्दकी दशा अलग बात है, लेकिन वर्तमान धारामें भी विकल्पके साथ एकत्वरूप आकूलता नहीं होती। अन्दर शांतिकी धारा, समाधिकी धारा, ज्ञायककी धारा, विरक्ति, विभावसे विरक्ति और स्वभावमें एकत्व एवं विभावसे विरक्त, उसे याद नहीं करना पडता, बल्कि सहज ज्ञानधारा और उदयधारा चालू ही है। चाहे जैसे प्रसंगमें क्षण-क्षणमें, कभी भूलता नहीं। चाहे जैसे प्रसंग हो, चलते-फिरते कभी भी उसे ज्ञायककी परिणति, कोई भी भावोंमें ज्ञायक परिणति छूटती नहीं। ऐसी उसकी दशा हमेशा चलती है। ऐसा सहज पुरुषार्थ उसका चालू ही होता है। ऐसी उसकी दशा होती है। ऐसी ज्ञानधारा, उसकी प्रतीतका जोर उतना और लीनता उस ओर चालू ही रहती है।

मुमुक्षु :- सहज और पुरुषार्थ, दोनों एकसाथ कैसे रहते हैं? सहज पुरुषार्थ चलता है?

समाधान :- सहज चलता है। सहज पुरुषार्थ। विकल्प करके पुरुषार्थ रखना पडे ऐसा नहीं है। भूल गया और फिर पुरुषार्थ करना पड़े, ऐसा नहीं है। सहज पुरुषार्थ चलता है। अन्दर ज्ञायककी परिणतिका पुरुषार्थ सहज (चलता है)। विभावसे भिन्न हुआ सो हुआ, फिर विशेष-विशेष लीनताके लिये पुरुषार्थ, अपने स्वरूपकी ओरकी डोर चालू है वह चालू ही रहती है। ज्ञानदशाकी डोरी कभी नहीं छूटती। ऐसी पुरुषार्थकी धारा उसकी सहज चलती है। पुरुषार्थ और सहज है। पुरुषार्थ है, लेकिन सहज है।

मुमुक्षु :- माताजी! जैसे ज्ञान और चारित्र कहनेपर उसका कुछ-कुछ भाव पकड़में आता है, परन्तु दृष्टि, जिसके आधारसे भवकटि हो जाये, सब दुःख दूर हो जाये, ऐसी दृष्टिके स्वरूपकी महिमा समझानेकी विनती है।

समाधान :- ज्ञान यानी वह समझता है कि जानना वह ज्ञान। बाकी सच्चा ज्ञान तो स्वकी ओर जाये तब होता है। चारित्र यानी वह आचरणकी अपेक्षासे समझता है, बाकी सच्चा चारित्र तो स्वरूपमें जाये तब होता है। ऐसे दृष्टि-श्रद्धा। स्वरूपकी ओर दृष्टि गयी तो उसे विभावस्वभावमें भेद हो गया कि यह स्वभाव है, विभाव मुझसे

भिन्न है। उसी तरह गुणभेद पर भी वह टिकती नहीं। एक अपना अस्तित्व ग्रहण करे, ऐसी जो दृष्टि, नज़र, विश्वास और श्रद्धाका जो बल है, वह एक आत्माको ही ग्रहण करके टिकी रहती है। ऐसी दृष्टि कोई अलग ही है। उसमें ही उसे स्वानुभूति आदि दृष्टिके बलसे होते हैं। उसकी दृष्टि कहीं ओर जाती ही नहीं। एक आत्माको ही ग्रहण करती है। बद्धस्पृष्ट आदि सब भाव ऊपर तिरते हैं। वह ऊपर-ऊपर रहते हैं। एक आत्मा ही उसे, मूल तल जो आत्मा है उसमें ही उसकी दृष्टि स्थिर रहती है। पूरी दिशा बदल गयी है।

... चैतन्य भगवान पर दृष्टि चिपक गई, फिर उसमें गुणभेद, पर्यायभेद पर दृष्टि टिकती नहीं। ज्ञानमें सब आता है, ज्ञानमें सब आये, लेकिन दृष्टि तो एक चैतन्यको ग्रहण करती है। दृष्टिका निर्णय और उसकी श्रद्धा, जोरदार एकको ग्रहण करती है। ज्ञानमें सब आता है। ज्ञान सबकी श्रद्धा करता है। द्रव्यको जाने, गुणको, पर्यायको, सबको जाने। लेकिन दृष्टि एक आत्मा पर है।

जिसे सम्यग्दर्शन हुआ उसके साथ सम्यग्ज्ञान होता ही है। सम्यग्ज्ञान (और सम्यग्दर्शन) दोनों साथमें ही होते हैं। इसलिये उसमें मुख्य निश्चयकी अपेक्षासे सम्यग्दर्शन है। लेकिन सम्यग्ज्ञान उसके साथ ही होता है। सम्यग्दर्शनके साथ सम्यग्ज्ञान होता ही है। एक आत्माको ग्रहण किया इसलिये उसमें गुण-पर्यायको जाने नहीं, ऐसा नहीं बनता। ज्ञान और दर्शन दोनों साथमें ही रहते हैं। मोक्षमार्गमें दोनों साथ ही रहते हैं। उसकी चारित्रकी आराधना साथमें रहती है। बाकी काम दोनों साथमें रहकर (करते हैं)। दृष्टि मुख्यरूपसे है और ज्ञान उसके साथ रहता है। दोनों साथ ही रहते हैं।

ज्ञानकी अपेक्षासे ज्ञानकी महिमा है, दृष्टिकी अपेक्षासे दृष्टिकी (महिमा है)। लेकिन दृष्टिके बिना अनादि कालसे रखड़ा और अपने भवका अभाव नहीं हुआ। स्वानुभूति प्रगट नहीं हुयी। दृष्टि महिमावंत है, सम्यग्दर्शन महिमावंत है। सम्यग्दर्शन होता है इसीलिये ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। नहीं तो सम्यग्दर्शन बिनाका ज्ञान, ज्ञान नहीं है। आत्माको जाने बिनाका ज्ञान वह ज्ञान नहीं है। इसलिये सम्यग्दर्शन महिमावंत है।

मुमुक्षु :- दृष्टिका परिवर्तन होना चाहिये, दृष्टि पलटनी चाहिये।

समाधान :- दृष्टि पलटनी चाहिये। लेकिन समझनेके लिये पहले व्यवहारसे ज्ञान साथमें होता है। द्रव्य किसे कहते हैं, गुण किसे कहते हैं, पर्याय किसे कहते हैं, भेद-अभेद आदि किसको कहते हैं, वह सब ज्ञानमें जाननेमें आता है। वह ज्ञानमें निर्णय करता है। पहले व्यवहारको जानना कैसे? ज्ञान उसे बीचमें साधनरूप होता है। व्यवहारसे। लेकिन दृष्टि मुख्य है।

मुमुक्षु :- ज्ञान होनेपर उसे दृष्टि बदल जाती है?

समाधान :- हाँ, व्यवहारसे ज्ञान। कहते हैं न? तू सच्चा ज्ञान कर, सच्चे ज्ञान बिना रखडा। ज्ञान बिना आत्माको ग्रहण कैसे करे? सच्ची समझ बिना आत्माको ग्रहण करना, आत्माका निर्णय करना, वह सब ज्ञानसे होता है। इसलिये ज्ञान उसे व्यवहारसे साधन बनता है। प्रगट करना है सम्यग्दर्शन, दृष्टि प्रगट करनी है। लेकिन उसमें ज्ञान साथमें रहता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि (मोक्षमार्ग)। लेकिन सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट करना? कि सच्चा ज्ञान कर। सच्चा ज्ञान किये बिना दृष्टि कैसे प्रगट करनी, बिना जाने?

मुमुक्षु :- माताजी! ज्ञानीके सम्यग्दर्शनको अंतरंग निमित्त कहनेमें आता है, उसका आशय क्या है?

समाधान :- उसे अंतरमें परिवर्तन हो गया है। अंतरमें उसकी पूरी दशा पलट गयी और उसमेंसे जो वाणी निकलती है, वह वाणी दूसरेको निमित्त होती है, इसलिये उसे अंतरंग कारण कहनेमें आता है। जिसे अन्दर प्रगट हुआ है, उसीकी वाणी निमित्त बनती है। इसलिये उसे अंतरंग कारण (कहते हैं)। दूसरेको जो सम्यग्दर्शन होता है उसमें, जिसने प्राप्त किया है उनकी वाणी निमित्त बनती है, इसलिये अंतरंग कारण कहनेमें आता है। बाकी है वह परद्रव्य है। तो भी उसे अंतरंग कारण कहनेका कारण कि जिसे अंतरंगमें प्रगट हुआ है, उसके साथ जो वाणी है, वह वाणी निमित्त बनती है। इस अपेक्षासे उसे अंतरंग कारण कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीकी वाणी ही अंतरंग निमित्त कहनेमें आती है? इसके सिवा अन्य किसीकी वाणीको अंतरंग निमित्त नहीं कहते?

समाधान :- दूसरेकी वाणीको अंतरंग निमित्त नहीं कहते। जिसे अंतरंग दशा प्रगट नहीं हुई है, उसकी वाणीको अंतरंग निमित्त नहीं कहते। व्यवहारसे भले उससे जाने, लेकिन अंतरंग जो देशना लब्धि प्रगट होती है, अंतरंगमें सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसमें तो जिसने प्राप्त किया है उनकी वाणी ही निमित्त होती है। उसके साथ ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। उसे ही अंतरंग कारण कहते हैं, दूसरेको नहीं कहते।

मुमुक्षु :- अंतरंग परिवर्तन होता है इसलिये उसे अंतरंग कारण कहते हैं? सामनेवाले जीवको अंतरंगमें परिणमन होता है, इसलिये अंतरंग कारण कहते हैं?

समाधान :- उसे परिणमन हो, यहाँ अंतरंग दशा साथमें होती है और उसे अंतरंग परिणमन (होता है)। अंतरंग परिणमन हो, वाणी किसको निमित्त होती है? जिसने प्राप्त किया है, उनकी वाणी ही निमित्त होती है। उसे अंतरंग परिवर्तन हुआ इसलिये अंतरंग कारण, वह तो ठीक है, लेकिन जिसने प्राप्त किया है, उसकी वाणी ही निमित्त बनती है। इसलिये उसे अंतरंग कारण कहा है। (प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!)

ट्रेक-०३६

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! भेदज्ञान जो होता है वह सामान्यतः राग परिणतिसे होता है अथवा जो विकल्प उत्पन्न होते हैं, उससे होता है? राग परिणतिसे होता है या जो विकल्प उठते हैं उससे होता है?

समाधान :- विभावभाव पूरा ले लेना। विभावसे भिन्न। प्रत्येक विकल्प उसमें आ गये। जितने विभाविक भाव है, उन सबसे भेदज्ञान हो गया। मैं ज्ञायक भिन्न हूँ और ये विभाव भिन्न है। विभावसे मेरा स्वभाव भिन्न है। उससे भेदज्ञान होता है। मैं ज्ञायक हूँ। पूरि दिशा पलट गयी। दृष्टिकी दिशा पलट गयी। दृष्टिकी दिशा ही पलट गयी कि मैं ज्ञायक हूँ और यह विभाव है। पूरा भिन्न हो गया। भिन्न हो गया इसलिये जो-जो विकल्प आये उसमें भिन्न ही है, वह सदा ही भिन्न है। उसे फिर क्षण-क्षणमें ज्ञायककी धारा चलती है। इसलिये प्रतिक्षण वह प्रत्येक कार्यमें भिन्न ही रहता है।

प्रत्येक विकल्पसे भिन्न ही है, लेकिन प्रत्येक विकल्पके समय उसे विकल्प कर-करके भिन्न नहीं होना पड़ता। प्रत्येक विकल्प आये उससे भिन्न ही है, भिन्न ही रहता है। लेकिन उसे विकल्प कर-करके, प्रत्येक विकल्पके समय विकल्प करके भिन्न नहीं रहना पड़ता। भिन्न हो गया। प्रशस्त और अप्रशस्त प्रत्येक भावोंसे भिन्न ही है। भिन्न हो गया, भिन्नताकी परिणति चालू हो गयी इसलिये भिन्न ही रहता है। चाहे जो भी प्रसंग हो, भिन्न ही रहता है।

मुमुक्षु :- सहज भिन्न रहता है।

समाधान :- सहज भिन्न ही रहता है।

मुमुक्षु :- वह भी उसका सहज पुरुषार्थ है?

समाधान :- वह सहज पुरुषार्थ है। प्रत्येकमें भिन्न ही रहता है।

मुमुक्षु :- ये जो विकल्प या राग होता है, उसी वक्त सहजरूपसे भिन्न रहता है?

समाधान :- भिन्न ही रहता है। प्रत्येक समय भिन्न ही रहता है। उसे हर वक्त भिन्न-भिन्न प्रयत्न नहीं करना पड़ता। लौकिकमें किसीको वैराग्य हुआ, संसारसे लौकिक वैराग्य हुआ तो प्रत्येक कार्यमें उसे विकल्प कर-करके वैराग्य नहीं (लाना पड़ता),

प्रत्येक प्रसंगमें उसे विरक्ति ही वर्तती है।

उसी प्रकार यहाँ भिन्न हो गया, ज्ञायककी धारा प्रगट हो गयी तो किसी भी विभावके विकल्पमें यथार्थरूपसे भिन्न हो गया। फिर भिन्न ही रहता है। पुरुषार्थ तो उसका चालू ही है, परन्तु वह ज्ञायकधाराका पुरुषार्थ है। उदयधारा और ज्ञानधारा। प्रत्येक उदयके समय उसकी ज्ञानधारा चालू है, उसकी ज्ञायकधारा चालू रहती है। अस्तित्वकी ज्ञायकधारा चालू है और नास्तिमें दूसरोंसे भिन्न पड़ता है। भेदज्ञानकी धारा चालू है, विकल्प आते हैं उससे भिन्नताकी उसकी परिणति चालू है और उसे इस ओरसे ज्ञायककी उग्रता, ज्ञानधारा चालू है। उसे पुरुषार्थमें ज्ञानकी धारा है।

मुमुक्षु :- ज्ञानधाराका पुरुषार्थ माने क्या?

समाधान :- ज्ञानधारा-ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायककी परिणति चालू है। ज्ञायककी परिणति चालू है।

मुमुक्षु :- हर वक्त उसे ज्ञायककी परिणति है?

समाधान :- प्रत्येक समय ज्ञायककी परिणति भूलता नहीं। ज्ञायककी परिणति, ज्ञायकका वेदन, उसे ज्ञायककी ही परिणति चालू है। विकल्पके साथ आकूलतामें एकमेक होता नहीं। चाहे कोई भी भाव हो, चाहे कोई ऊँचेसे ऊँचे भाव हो, शुभभाव हो, कोई भी (भाव) हो, उसमें वह एकत्व नहीं होता। बाहरमें उसे दिखाई दे, बहुत उल्लास दिखाई दे तो भी वह कोई भी भावमें एकत्व नहीं होता। उसकी ज्ञायककी परिणति चालू ही रहती है। प्रत्येक समय भिन्न (रहती है)। उसकी दिशा ही बदल गयी है। विभावकी ओर जो दृष्टि थी, वह पलटकर उसकी दिशा ही बदलकर ज्ञायककी ओर गयी है।

मुमुक्षु :- अर्थात् वहाँ ज्ञायकका एकत्व चालू है?

समाधान :- हाँ, ज्ञायकका एकत्व चालू है। ज्ञायकमें एकत्व और अन्यसे विभक्त। एक पुरुषार्थमें दोनों आ जाते हैं। भेदज्ञानकी धारा चालू है और यहाँ ज्ञायकका एकत्व चालू है। क्षण-क्षणमें विकल्प करके जुदा नहीं होना पड़ता, परन्तु प्रत्येक उदयमें वह जुदा ही रहता है।

मुमुक्षु :- एक पर्यायमें दो भाग हो गये?

समाधान :- एक पर्यायमें दो भाग नहीं होते, परन्तु अस्तित्वकी ओरसे लो तो ज्ञायककी धारा है और इस ओर देखो तो उसे भेदज्ञानकी धारा है। उसे दो भाव भिन्न पड़ते हैं। दो पर्याय नहीं होती, लेकिन दो भाव भिन्न पड़ते हैं।

मुमुक्षु :- एक पर्यायमें दो भाव हो जाते हैं?

समाधान :- दो भाव होते हैं। अस्तित्वके साथ नास्तित्व आ ही जाता है। अपना

अस्तित्व आया उसमें नास्तित्व आ जाता है। विभावसे विरक्ति और स्वभावकी ओरका अस्तित्व ग्रहण कर लिया है।

मुमुक्षु :- उसके लिये कोई दृष्टान्त? जिससे ज्ञानीका स्वरूप ख्यालमें आये कि यह विरक्ति किस प्रकारसे है? ज्ञानीका सहज पुरुषार्थ जो चलता है, उस सहज पुरुषार्थका कोई दृष्टान्त?

समाधान :- उसका पुरुषार्थ चालू ही है। ज्ञान-वैराग्यकी शक्ति, अचिंत्य शक्ति, ज्ञान-वैराग्यकी ऐसी शक्ति है कि कहीं एकत्व नहीं होता, भिन्न ही भिन्न सदा रहता है। सदा भेदज्ञानकी भावना, अविच्छिन्नरूपसे भेदज्ञान भाता है। अर्थात् अन्दरमें अविच्छिन्न धारासे स्वरूपमें स्थिर नहीं हो जाये, वहाँ भेदज्ञान यानी इस ओर भेदज्ञान लेना और अंतरमें ज्ञायकधाराकी उग्रता करता जाता है, लीनता बढ़ाता जाता है। सम्यग्दर्शनमेंसे पाँचवा, छठ्ठा मुनिदशा पर्यंत उसकी ज्ञायकधारा (बढती जाती है), ज्ञायककी लीनता बढती जाती है। इस ओरका यह पुरुषार्थ है। ज्ञायकमें लीनता बढती जाती है। इस ओर भेदज्ञानकी धारा (चलती है), विकल्पसे भिन्न पड़ता जाता है। दृष्टि अपेक्षासे सब प्रकारसे भिन्न हो गया। और आचरणमें जो बाकी है, वह स्वयं ज्ञायककी ज्ञाताधाराकी उग्रता करता जाता है, लीनता बढाता जाता है और विभावसे भिन्न पड़ता जाता है।

मुमुक्षु :- इसलिये विभाव कटता जाता है।

समाधान :- हाँ, विभावसे भिन्न (होता जाता है)। उसका रस था वह नहीं है। प्रत्याख्या, अप्रत्याख्यान आदिका जो कषाय है, वह छूटकर ... होते जाते हैं। अन्दर लीनता बढती जाती है, इसलिये सब विभावका रस, स्थिति, रस सब टूटते जाते हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञायकधाराकी जो शुरुआत है वह तो प्रयत्नपूर्वकके विकल्पोंसे ही होती है न?

समाधान :- शुरूआतमें विकल्प होते हैं, लेकिन जो सहज धारा हो गयी, फिर उसे विकल्प साथमें नहीं रहता। सहज हो गया, उसके बाद विकल्प साथमें नहीं है।

मुमुक्षु :- शुरूआत तो प्रयत्नपूर्वकके विकल्पसे ही होती है?

समाधान :- शुरूआत, जब सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है, तब तो वह अभ्यास करता है उस वक्त विकल्प साथमें आते हैं कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। ऐसे विकल्प आये। लेकिन ज्ञायक हो गया, ज्ञायककी धारा चालू हो गयी, निर्विकल्प दशा हो गयी, फिर बाहर आनेके बाद उसे विकल्प करके भिन्न नहीं रहना पड़ता। उसकी ज्ञायककी धाराकी परिणति सहज (चलती है)। अपनी डोर अपने हाथमें ही है। विकल्प किये बिना, भिन्न ही भिन्न रहता है। विकल्प किये बिना पुरुषार्थकी गति ऐसी चालू रहती है। विकल्प किये बिना, है पुरुषार्थकी गति परन्तु चालू रहती है। विकल्प बिना पुरुषार्थकी गति

उसकी चालू रहती है। कोई भी प्रसंगमें वह भिन्न (रहता है)। मैं तो यह हूँ, मैं यह नहीं, मैं तो यह हूँ, मैं यह नहीं हूँ। उससे विशेष भिन्न होता जाता है। लीनता करता जाये तो ज्ञायकधाराकी उग्रता करके विशेष भिन्न होता जाता है। ऐसी उसकी सहज पुरुषार्थकी डोर विकल्प बिना रहती है, ऐसी उसकी पुरुषार्थकी डोर चालू रहती है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! उपयोग बाहर हो तो भी लीनता बढती जाती है?

समाधान :- उपयोग बाहर हो तब लीनता बढती है... उपयोग बाहर तो भी वह स्वयं रागके साथ जुड़ता था, वह रागके साथ कम जुडता जाये तो उसमें लीनता ज्यादा है। रागके साथ कम जुड़े तो। उपयोगको बाहर जाननेके साथ सम्बन्ध नहीं है, लेकिन रागके साथ सम्बन्ध है। बाहर जुड़े उसमें उसे राग किस प्रकारका है। भेदज्ञानकी धारा तो उसे होती है। राग और ज्ञायक, दोनों भिन्न है वह तो भिन्न ही है। बाहर उपयोग हो तो कुछ जानता हो तो उसे रागके साथ भेदज्ञानकी धारा तो चालू ही है। लेकिन उसमें कितना जुड़ता है, उसके आचरण अपेक्षासे कितना जुडता है, वह उसके चारित्रगुणकी बात है। उसका आचरण कितना अपनी ओर है। उतना वह जुडता है। उसमें जाननेके साथ सम्बन्ध नहीं है।

आचार्यदेव उपयोगमें श्रुतज्ञानका चिंतवन करते हैं, लेकिन उनको बाहर उपयोगमें राग तो मात्र संज्वलनका ही होता है। इसलिये उसे जाननेके साथ सम्बन्ध नहीं है। रागके साथ सम्बन्ध है। संज्वलनका ही (राग ही)। थोड़ी क्षण बाहर जाता है, फिर तुरन्त स्वानुभूतिमें जाता है। अभी तो विचार चलते हो, तुरन्त स्वानुभूतिमें जाते हैं, फिरसे बाहर आते हैं। उतना ही राग है कि उसमें थोड़ी देर टिकते हैं और पुनः अन्दर जाते हैं। अन्दर जाकर फिरसे बाहर आये तो जो विचार चलते थे, वह चालू होते हैं, वापस अन्दर जाते हैं। इसलिये उनका राग कितना है, उस पर आधार है।

मुमुक्षु :- माताजी! एक श्लोकमें ऐसा आता है, तबतक भेदविज्ञान भाओ कि जबतक ज्ञान ज्ञानमें स्थिर न हो जाये।

समाधान :- भेदज्ञान वहाँ तक भाना कि ज्ञान ज्ञानमें स्थिर न हो जाये। पूरा मोक्षमार्ग ही उसपर है। तेरेमें एकत्व और विभावसे विरक्त हो जा। वहाँसे सम्यग्दर्शनमें शुरूआत हुयी। स्वानुभूतिमें तो उसे बाहरका कोई विकल्प ही नहीं है। किसी भी प्रकारका। अन्दर स्थिर हो गया। लेकिन बाहर आये तो भेदज्ञानकी धारा चालू है। भेदज्ञानकी धारा चालू है, वह भेदज्ञानकी धारा तुजे कबतक भानी है? जबतक वीतराग नहीं हो जाये, स्वरूपमें स्थिर नहीं हो जाये और विकल्प पूरा टूट जाये, अन्दर ऐसे स्थिर हो जाये कि फिर बाहर ही नहीं आये। ऐसी भेदज्ञानकी धारा भानी। भेदज्ञानकी धारा भानी

अर्थात् भेदज्ञानके साथ तुजे ज्ञायककी धारा अन्दरसे ऐसी भानी कि तू स्वरूपमें स्थिर हो जा। फिर बाहरका विकल्प ही नहीं आये।

ऐसे भेदज्ञान-परसे विभक्त और स्वरूपमें एकत्व, ऐसा उसका अर्थ है। स्वरूपमें तू एकत्व हुआ, उसमें ऐसे स्थिर हो जा, ऐसी तेरी ज्ञायककी ज्ञाताधाराकी उग्रता कर, उसके साथ भेदज्ञानकी धारा, ऐसे लेना। भेदज्ञानकी धारा यानी जो-जो उदय आते हैं उससे वह भिन्न होता जाता है और ज्ञायककी धारा उग्र होती जाती है। इस ओर लो तो भेदज्ञानकी धारा यानी विकल्पसे भिन्न हुआ। जो-जो विकल्प आये उसमें टिकता नहीं और स्वरूपमें लीन होता है। जो विकल्प आये उसमें स्वरूपमें लीन होता है, तो उसमें टिकता नहीं। भिन्न तो हुआ है, विशेष भिन्न होकर स्वरूपमें लीन होता है। उसमें उग्रता ज्ञायककी उग्रता, स्वरूपकी लीनताकी उग्रता तू ऐसी कर, ऐसी चारित्रदशा प्रगट कर कि फिर बाहर ही नहीं आना पड़े। इस ओर लेना भेदज्ञानकी धाराकी उग्रता।

अपने अस्तित्वमें क्या प्रगट हुआ? विकल्पसे भिन्न हुआ तो यहाँ क्या प्रगट हुआ? यहाँ ज्ञायककी ज्ञायकधारा प्रगट हुयी। शांतिकी धारा, समाधिकी धारा, लीनताकी धारा इस ओर प्रगट हुई। तो तू ऐसी लीनता कर, ऐसी ज्ञायककी उग्रता कर कि स्वरूपमें स्थिर हो जा और फिर बाहर ही नहीं आये। और इस ओर भेदज्ञानकी धारा ऐसी कर कि विकल्प मैं नहीं हूँ, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। मुनिओंको ऐसी उग्रता हो गयी कि विकल्प आये वह टिकते ही नहीं। पानीके बहावकी भाँति पानी आकर चला जाये, वैसे तुरंत स्वरूपमें लीन होते हैं। ऐसी उन्हें भेदज्ञानकी धारा कहो या स्वरूपकी लीनता कहो, ऐसी उनकी ज्ञायककी उग्रता है। टिकते ही नहीं। जो भी उदय आये खिसक जाते है, तुरंत खिसक जाते हैं। भेदज्ञानकी धारा इतनी उग्र हो गयी। इस ओर विकल्पमें टिकते नहीं, उतनी भेदज्ञानकी धारा उग्र (है), इस ओर ज्ञायककी उग्र धारा, लीनताकी उग्र धारा हो गयी। स्वानुभूतिकी धारा उग्र हो गयी है। तुरंत स्वानुभूतिमें जाते हैं।

मुमुक्षु :- पूज्य भगवती माताजी! रुचिका पोषण और तत्त्वका घूटन हमेशा होनेके लिये आपने वचनामृतमें बताया है। वह तत्त्वका घूटन तो बहुत करते हैं, फिर भी हमेशा नहीं होता है, कहाँ क्षति रह जाती है? पूज्य भगवती माताजी!

समाधान :- घूटन करते हैं, लेकिन तत्त्वकी पीछानकर तत्त्वका घूटन यथार्थ होवे तो होवे। तत्त्व जो है उसका स्वभाव बराबर पहचाने। उसको जाने, तत्त्वका स्वभाव पहचाने और अंतरमें जाये। पुरुषार्थकी कमी है। स्वभावको पहचानता नहीं। ऊपर-ऊपरसे (चलता है)। ज्यादा तो एकत्वबुद्धि (चलती है)। अभ्यास तो विभावका (है)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०३७

ज्ञाननय चक्षु एक स्वयंको अन्दर एक पंथ मिलता है। आत्मा क्या है? द्रव्य-गुण-पर्याय, सब क्या है? सब मार्ग मिलता है। विचार करके नक्की करे। आत्मा क्या, द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या। सब स्वरूप नक्की करे। परद्रव्य क्या, स्वद्रव्य क्या, सह सब नक्की होता है। जिनवाणी माता निमित्त बनती है। विचार तो स्वयंको करना रहता है। स्वयं करे तो होता है।

चिंतवन आखीर तक रहता है। वीतराग हो तब ध्यान-शुक्लध्यान हो तो द्रव्य-गुण-पर्यायके विचार होते हैं। यद्यपि उसमें शुभभाव है, फिर भी उसमें द्रव्य-गुण-पर्यायके विचार होते हैं। उसमें एक ऊपर स्थिर होता है तो केवलज्ञान होता है। शुभभावमें घुमता रहे, लेकिन श्रुतका चिंतवन आखिर तक रहता है। अंतरमें श्रुत साथ-साथ रहता है। और विचार आते हैं, यह मैं हूँ, यह मैं नहीं। द्रव्य-गुण-पर्याय सबका चिंतवन उसे आखिर तक रहता है। मूल उसमें प्रयोजनभूत समझे तो सब आ जाता है। एक आत्माको समझे। आत्मा कौन है? आत्माका स्वरूप क्या है? पुद्गल क्या है? विभाव क्या है? मूल प्रयोजनभूत समझे तो उसमें सब आ जाता है। लेकिन श्रुतका चिंतवन- मैं यह हूँ, यह नहीं, ऐसा अमुक प्रयोजनभूत श्रुतका चिंतवन तो आखिर तक रहता है। साथ ही होता है।

आता है न? देव-गुरुका साथ, साथ-साथ होता है। भले शुभभाव है, तो भी साथ-साथ होता है। शुद्धात्मामें वह शुभभाव नहीं है। शुभभाव पुण्यबन्धका कारण है और वह आकूलता एवं हेयरूप है। उसपर लक्ष्य रहता है तो वीतरागदशा नहीं होती। तो भी जबतक वीतरागदशा नहीं होती, वह बाहर आता है तब उसे श्रुतका चिंतवन तो साथ-साथ होता ही है। अशुभसे बचनेके लिये वह शुभभावमें रहता है, तब श्रुतका चिंतवन, देव-गुरु-शास्त्र तीनों, सब साथ-साथ होता है।

मुमुक्षु :- दूसरे प्रकारका श्रुतका चिंतवन तो होता है न?

समाधान :- दूसरे प्रकारका यानी प्रयोजनभूत होना चाहिये। प्रयोजनभूतके साथ-साथ सब चिंतवन होता है तो वह लाभका कारण है। जैसे अधिक-अधिक ज्ञानकी निर्मलता हो तो वह लाभका कारण है। परन्तु मूल प्रयोजनभूत समझे तो उसमें पूरा

मार्ग आ जाता है। एकको समझे तो उसमें सब आ जाता है। आत्माको समझे। स्व-परका भेदज्ञान करे तो उसमें प्रयोजनभूत सब आ जाता है। लेकिन विशेष समझे तो भी वह लाभका कारण है। लेकिन वह सब आत्मार्थ हेतु होना चाहिये। ज्ञान करनेके खातिर अथवा मात्र जाननेके लिये ऐसे नहीं। आत्मार्थ हेतु होना चाहिये। अधिक समझे तो मार्ग निर्मल होता है। मार्ग उसे स्पष्ट होता है। शास्त्रमें उसका आशय बराबर समझे। आचार्यदेवको क्या कहना है, भगवान क्या कहते हैं, आचार्यदेव इसमें क्या कहते हैं, गुरुदेवने क्या मार्ग बताया है, वैसे अधिक-अधिक विचार करके आत्मार्थ हेतु विचार करे तो मार्ग अधिक निर्मल और स्पष्ट होता है। ... मार्ग कैसे अधिक स्पष्ट हो।

श्रुतकी महिमा। गुरुदेवको श्रुतकी महिमा कितनी थी। उनको श्रुतकी महिमा.. आहा..हा...! उस दिन सब आये तब कहते थे न? आहा..हा...! आता था। शास्त्रके एक-एक पंक्तिके अर्थ करे। उनके जैसा अर्थ कोई नहीं कर सकता। और उनकी वाणी। उसमें आ..हा.. आता था, उसमें श्रुतकी उतनी महिमा आती थी।

महिमा करे उसके साथ मार्ग जानना चाहिये। मार्ग जाने बिना आगे नहीं बढा जा सकता। मार्गको जाने कि यह रास्ता है। इसलिये श्रुतका चिंतवन साथ-साथ होता है।

... वैसी उनकी वाणी और जो आहा.. आता था, ऐसा किसीको नहीं आ सकता। वह अंतरमेंसे आता था। तीर्थंकर गोत्र बाँधनेके जो कारण आते हैं, उसमेंसे कोई कारण हो। अभिक्षण ज्ञानउपयोग आदि। श्रुतभक्ति आदि उनको कोई अलग ही प्रकारका होता है। ...

मुमुक्षु :- श्रुतलब्धिको भी कारण कहते हैं?

समाधान :- श्रुतलब्धि तो थी, लेकिन उनको स्वयंको अंतरमेंसे महिमा ही कोई अलप प्रकारकी थी।

मुमुक्षु :- गुरुदेवका विचार तो वह सोलह कारणका बराबर मेल खाता है। षोडश कारण भावना भाय..

समाधान :- हाँ, वह मेल खाता है। .. उनमें दिखाई देते थे।

मुमुक्षु :- मध्यरात्रिमें निद्रामेंसे विचार आये तो उस वक्त शास्त्रके ही आते थे।

समाधान :- शास्त्रके ही आते थे।

मुमुक्षु :- उसी वक्त समाधान कर ले। अथवा सुबह...

समाधान :- जब भी विचार आये शास्त्रके ही आते थे।

... श्रुतको लिखनेका आदि अमुक .. दिये हैं। पुष्पदंत और भूतबलि आदि मुनि कंठस्थ रखते थे। ऐसी कुछ शक्ति होती है। फिर कहा, सब यह रख नहीं पायेंगे,

इसलिये फिर लखते थे। बाकी कंठस्थ ही होता था। वह कैसी शक्ति होगी! उनको उस प्रकारका विकल्प आया तो षट्खण्डागम आदिकी रचना की। आचार्योंको भिन्न-भिन्न प्रकारके विकल्प आते हैं। कोई अध्यात्मका लिखे, कोई चरणानुयोगका लिखे, कोई करणानुयोगका लिखे, लेकिन सब मुनि स्वानुभूतिमें झुलनेवाले। सबको अन्दर आत्मा मुख्य होता है। लेकिन किसीको यह विकल्प आये, किसीको यह लिखनेका विकल्प आये।

... वीतरागदशा, केवलज्ञान, ध्येय पूर्ण वीतराग होनेका है। स्वानुभूतिमें झुलते हैं। उसमें बीच-बीचमें शुभभावमें रुकते हैं, वहाँ ऐसे शास्त्र लिखते हैं। सब जीवोंको उपकारभूत होता है। आचार्यदेव (कहते हैं), मम परमविशुद्धि... मेरी विशुद्धिके लिये मैं यह लिखता हूँ, ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। फिर पीछे कहते हैं, मैंने तो कुछ नहीं किया है। अमृतचंद्रसूरिने तो कुछ नहीं किया है, इन शब्दोंने किया है। आचार्यदेवकी कैसी दशा होती है!

.. अर्थ करनेकी शक्ति थी। एक शब्द और एक पंक्तिमें कितना निकलता था! मानो पूरा ब्रह्माण्ड खड़ा करते हो। उतना विस्तार उनका सहज आता है। चारों ओरके पहलू मानों पूरे ब्रह्माण्डका स्वरूप एक शब्दमें कहते हो। एक पंक्तिमें उनको उतना आश्चर्य लगता।

मुमुक्षु :- अर्थ करनेसे पहले ही उनको आहा.. ऐसा हो जाता था।

समाधान :- हाँ, आहा.. हो जाता था।

मुमुक्षु :- कितने ही घण्टो चलता।

समाधान :- हाँ, चाहे जितनी बार स्वयं पढे तो स्वयंको आश्चर्य ही लगता था। देव-गुरु-शास्त्र तो साथमें ही होते हैं। आचार्यदेव कहते हैं कि, मैं जा रहा हूँ, उसमें सब पंच परमेष्ठीको स्वयं बुलाते हैं। मैं दीक्षा लेता हूँ, उसमें आप सब पधारिये। देव-गुरु-शास्त्र तो साधनामें साथमें होते हैं। भले स्वानुभूतिमें झुलते हो, बाहर आते हैं वहाँ श्रुत होता है। देव-गुरु-शास्त्र तीनों होते हैं। श्रुत चिंतवनरूप होता है। उसमें उपयोग घुमता रहता है। परन्तु देव-गुरु-शास्त्र सब होते हैं। वाणी-श्रुत भगवानके पाससे आयी है। भगवान ही उसमें मुख्य हैं। सब वाणी भगवानके पाससे आयी है।

... उसे मार्ग बताते हैं। पंचमकालमें गुरुदेव पधारे, वह तो महाभाग्यकी बात है। वह सब तो आश्चर्यकारी है, परन्तु यह धरसेनाचार्यने जो किया है वह सब भी आश्चर्यकारी है। श्रुत तो आश्चर्यकारी ही होता है। लेकिन उसमें चारों अनुयोग आ जाते हैं।

मुमुक्षु :- कोई चरणानुयोगके शास्त्र लिखते होंगे, कोई द्रव्यानुयोगके। तो वैसी-वैसी स्वयंकी शक्ति होगी उस अनुसार (लिखते होंगे)?

समाधान :- वैसी शक्ति होती है और उस प्रकारका उनको विकल्प आता है।

स्वयंकी शक्ति अनुसार वैसा शुभ विकल्प आता है। जो अन्दर स्वयंको श्रुतका चिंतवन चलता हो। ताड़पत्र पर लिखते हैं। ऐसा शुभभावका विकल्प उनको आता है। इसलिये वह लिखते हैं। स्वयंकी शक्ति और उस प्रकारकी अन्दर स्वयंकी लिखनेकी शक्ति हो, अन्दर ऐसा ज्ञान हो, सब होता है, इसलिये वे लिखते हैं।

... किसीको करणानुयोगमें जाता हो, किसीको चरणानुयोगमें जाता हो, किसीको द्रव्यानुयोगमें। वैसे किसीका अध्यात्ममें उपयोग जाता हो। स्वानुभूतिमें तो सब एक ही प्रकारसे झुलते हैं। और ज्ञानका उपयोग सबका भिन्न-भिन्न प्रकारसे जाता हो। क्षयोपशम भिन्न-भिन्न प्रकारसे काम करता है।

मुमुक्षु :- भावलिंगी मुनि तो बहुत हो गये, फिर भी शास्त्र तो कुछ मुनिओंने ही लिखे।

समाधान :- हाँ, वह तो जिसकी शक्ति हो वह लिखे। शक्ति हो, वैसा प्रशस्त विकल्प आये।

मुमुक्षु :- समस्त निज वैभवसे दिखाऊँगा।

समाधान :- मैं आत्माके वैभवसे दिखाता हूँ। निज वैभवसे दर्शाता हूँ। मुझे अन्दर जो प्रगट हुआ है, वह मैं आपको दिखता हूँ। मेरा वैभव दिखाता हूँ। मैं दर्शाऊँ उसे प्रमाण करना। आचार्यदेव महासमर्थ (हैं), वे कहते हैं, प्रमाण करना। भूल-दोष ग्रहण मत करना। आचार्यदेवकी कैसी शक्ति है, फिर भी ऐसा कहते हैं। ... जगतको उपकार (करने) और स्वयंको प्रशस्त ... सब जगत समक्ष दर्शाया है। जो स्वयंको ज्ञानमें सब वैभव प्रगट हुआ है-आत्म वैभव, सब जगतको दर्शाते हैं।

मुमुक्षु :- श्रुतज्ञान द्वारा जानों या केवलज्ञान द्वारा जानो, आत्माको जाननेका एक ही प्रकार है।

समाधान :- आत्माको जाननेका एक ही प्रकार-श्रुतज्ञान द्वारा या केवलज्ञान द्वारा। उसमें फ़र्क़ नहीं है, परन्तु श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष है। उतना फ़र्क़ है। कोई अपेक्षासे ऐसा कहते हैं कि श्रुतज्ञान और केवलज्ञानमें कोई फ़र्क़ नहीं है। श्रुतज्ञान हो या केवलज्ञान हो, परन्तु प्रत्यक्ष परोक्षका फ़र्क़ है। वह सहज विकल्प बिनाका है, केवलज्ञान सहज है। श्रुतज्ञानमें विकल्प साथमें जुडा है। बाकी वस्तु स्वरूपमें कोई फ़र्क़ नहीं है। वस्तु स्वरूपका समानरूपसे प्रकाश करते हैं।

मुमुक्षु :- ... मेरे अंतरके वैभवसे यह स्वरूप दर्शाता हूँ, तो तू प्रमाण ही करना। उसमेंसे ऐसा ध्वनि आता है कि तू किस भूमिकामें खड़ा है, इसलिये तू कोई दलील मत करना, लेकिन स्वीकार कर लेना। जैसे बाप बेटेको कहे कि,...

समाधान :- करुणासे कहते हैं। प्रमाण करना, मैं कहता हूँ, बराबर कहता हूँ

तू प्रमाण करना। पात्रजीवको कहते हैं, प्रमाण करना।

मुमुक्षु :- क्योंकि शुरूआतमें तो कहीं न कहीं श्रद्धा करनी पड़ती है। सिर्फ तर्कसे तो आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

समाधान :- कुछ-कुछ परीक्षा करनी होती है, सब परीक्षा नहीं करनी पड़ती। गुरुदेव कहते थे न, यह मार्ग कोई अपूर्व है। महापुरुष, सत्पुरुषको तूने पहचाना, फिर तू कहे कि मुझे सब बता दो। ऐसे नहीं होता है। फिर तो उसे अर्पणता करनी चाहिये। अमुक परीक्षा करके नक्की किया। फिर सब परीक्षा नहीं करनी पड़ती।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान हो, उसका लक्षण क्या?

समाधान :- भेदज्ञान यथार्थ हो उसका लक्षण तो स्वयंको भेदज्ञानकी धारा वर्तती हो। यथार्थ भेदज्ञान तो उसे अंतरमें भेदज्ञान वर्तता हो। चाहे कोई भी कार्यमें हो, उसे त्रूटि नहीं पड़ती, अविच्छिन्न धारासे भेदज्ञान चलता है। जागते, सोते, स्वप्नमें सबमें भेदज्ञान (चलता है)। आत्मपदार्थ ज्ञायक.. ज्ञायक ही उसे वेदनमें आता है। यह विभाव उसे गौण होता है और क्षण-क्षणमें एकत्वबुद्धि धारावाही चलती है, वैसे उसकी भेदज्ञानकी धारा चले। धारा चले उसमें स्वयं भिन्न भासित हो। शरीर भिन्न भासे, विभाव भिन्न भासे, सब भिन्न भासित होता है। उसे अंतरमें भिन्न भासे और ज्ञायककी धारा, ज्ञायकका वेदन यानी ज्ञायक उसे प्रतीतमें आता है। ज्ञायक उसे विचार करे इसलिये नहीं, अपितु सहज जाननेमें आता हो। वह भेदज्ञान है। वह जबतक नहीं होता है, तबतक प्रयास करे। बारंबर भिन्न होनेका प्रयास करे। जागते, सोते, स्वप्नमें, खाते-पीते सबमें क्षण-क्षणमें आत्मा भिन्न ही भासित होता है। एक ज्ञायक ही उसे मुख्य रहता है, ऊर्ध्व रहता है। द्रव्य पर उसकी दृष्टि चिपकी रहती है। द्रव्य ज्ञायक पर।

उसे ज्ञान सब होता है कि यह विभाव है, यह स्वभाव है, सब ज्ञानमें होता है। लेकिन धारा तो ज्ञायककी चलती है। लेकिन वह यथार्थ हो तो होता है, सहज। स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हो तो वैसे यथार्थ भेदज्ञानकी धारा (चलती है)। उसके पहले उसका प्रयास करे, जबतक नहीं होता है तबतक।

मुमुक्षु :- प्रयासमें क्या होता है?

समाधान :- उसे बारंबार भिन्न करनेका प्रयत्न करे। लेकिन भिन्न करनेका प्रयत्न करे कब? कि उसे ज्ञायककी महिमा आये तो। बाहरकी महिमा हो रही है, उसे बाहरका महिमावंत लगता है, वैसा अंतरमें ज्ञायक महिमावंत नहीं लगता है। ज्ञायक महिमावंत लगे तो उसे भिन्न करनेका प्रयत्न करे। नहीं तो उसे रुखा लगे। ज्ञायक.. ज्ञायक.. ऐसे बोलने मात्र हो जाता है। उसका कोई मतलब नहीं है। लेकिन उसे ज्ञायक महिमावंत लगना चाहिये। तो उसे भिन्न करनेका प्रयत्न करे।

मुमुक्षु :- महिमावंत है फिर भी यहाँ महिमा क्यों नहीं लगती। इतनी महिमा सुनते हैं, शास्त्रमें पढनेमें आता है...

समाधान :- लेकिन अन्दरसे स्वयंको सच्चा बैठे तो होवे न। शास्त्रमें आये, यह सब निःसार है, सारभूत आत्मा है...

मुमुक्षु :- आपके श्रीमुखसे सुनते हैं, गुरुदेवके प्रवचनमें (सुनते हैं), लेकिन यहाँ महिमा क्यों नहीं आती?

समाधान :- अंतरमें उतनी स्वयंकी तैयारी चाहिये। पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थ नहीं करता है, पुरुषार्थकी कमी है। आलसी हो गया है अनादिका। ऐसा अनुपम पदार्थ, उसे स्वयं नज़र करके देखता नहीं। आता है न? 'निज नयननी आळसे रे, निरख्या नहीं हरिने जरी।' वैसे स्वयंके नेत्रकी आलसके कारण स्वयं हरिको देखता नहीं। आलसके कारण, पुरुषार्थकी मंदताके कारण। पुरुषार्थकी मंदता है।

बाहरका दूसरा कुछ करना हो तो जल्दी कर लेता है, लेकिन अंतरका करनेमें बादमें.. बादमें करके आलस करता है। पुरुषार्थकी मन्दता है। जबतक नहीं होता, तबतक जिनेन्द्र देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा होती है, वह करे। लेकिन उस शुभभावसे भी आत्मा भिन्न है, उसकी श्रद्धा स्वयंको होनी चाहिये। उससे भी भेदज्ञान करनेका प्रयास करना चाहिये, प्रतीत तो ऐसी ही होनी चाहिये। लेकिन अशुभसे बचनेके लिये बीचमें शुभ आता है। लेकिन शुद्धात्मा चैतन्यतत्त्व तो निर्विकल्प तत्त्व है। उसे पहचानने के लिये, उसकी महिमा लानेका, उसका प्रयत्न करे, तत्त्वका विचार करे, शास्त्र स्वाध्याय करे। भावनगरमें अभी पाठशाला चलती है?

मुमुक्षु :- नहीं, अभी नहीं चलती है।

यथार्थ निर्णयमें...?

समाधान :- निर्णयमें ज्ञायकका ज़ोर आये कि मैं ज्ञायक ही हूँ। यह कुछ भी मेरा स्वरूप नहीं है। मैं चैतन्यदेव पदार्थ कोई अनुपम हूँ और यह सब विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, वह सब आकूलतारूप है। मैं एक निराकूल तत्त्व आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ। उसकी प्रतीत उसे होनी चाहिये, जोरदार प्रतीत आनी चाहिये। यह शरीर तो जड़ पदार्थ है, लेकिन यह विभाव जो चैतन्यके पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, वह भी मेरा स्वरूप नहीं है। मैं उससे भिन्न हूँ। द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे भिन्न है और परपदार्थके भिन्न है, ऐसा उसे दृढ़ निर्णय होना चाहिये। ज्ञायक पदार्थकी प्रतीत होनी चाहिये। ये रहा मैं, शाश्वत अनादिअनन्त तत्त्व हूँ। ...

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०३८

मुमुक्षु :- भावभासन...

समाधान :- उसकी जिज्ञासा, भावना, लगनी सब होता है तब होता है। उसकी लगनीके बिना नहीं हो सकता है। अन्दर विचार करके स्वभावको ग्रहण करे, अन्दर सूक्ष्म उपयोग करके बारंबार विचार करके उसको ग्रहण करना चाहिये, तो ग्रहण होता है।

यह शरीर तो परद्रव्य है, विभाव भी अपना स्वभाव नहीं। जो जाननेवाला ज्ञायक है, वह ज्ञायक आत्माका स्वभाव है, जाननेका स्वभाव है। उसको ग्रहण करना। मात्र ऊपर-ऊपरसे ग्रहण करना तो नहीं होता, भीतरमेंसे ग्रहण करना चाहिये। जब नहीं होता है तब ऐसा विचार होता है, ऐसा बारंबार विचार करे, नक्की करे, परन्तु भीतरमेंसे ग्रहण करना है तो उसकी जिज्ञासा, लगनी लगे तब होता है। आत्माके बिना चैन नहीं पड़े, गहराईसे लगनी लगे तब (होता है), लगनीके बिना नहीं हो सकता है। बाहरमें एकत्वबुद्धि अनादिकालसे हो रही है। उससे भेदज्ञान करे, एकत्व तोड़ कि मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो आत्मा ही हूँ, मैं ज्ञायक जाननेवाला हूँ। ऐसा नक्की तो करे परन्तु भीतरमेंसे परिणति होवे, तब उसका ग्रहण होवे, तब होता है। ज्ञायक पर दृष्टि करनी चाहिये, उसका ज्ञान करना चाहिये। विकल्पसे होता है, लेकिन भीतरमें सहज होवे तब यथार्थ होता है। उसके बिना यथार्थ (नहीं होता)।

मुमुक्षु :- अभी विकल्प तो रुकते ही नहीं। जैसे स्वाध्याय करते हैं, जाप भी देते हैं, मान लीजिये, तो विकल्प तो रुकते ही नहीं है।

समाधान :- अनादिका अभ्यास है। अनादिका वेग चल रहा है। उसमें धीरा होकर अपनेको ग्रहण करे तब होवे। प्रज्ञाछैनी जब प्रगट होवे, भीतरमें उसकी संधि (मालूम पड़े कि), ज्ञान क्या है और विभाव क्या है, राग कौन है और मैं कौन हूँ, संधिको बराबर विचार करे, ग्रहण करे कि यह ज्ञान है, यह राग है। बराबर सूक्ष्म होकर उसका भेदज्ञान करे तो होता है, उसके बिना नहीं हो सकता।

आता है न कि, बारंबार गुरु बताते हैं। ... तब यदि अपनी तैयारी जागृत होवे तब होवे, यदि जागृत नहीं होवे तो नहीं होता है। धोबीके घरसे वस्त्र लेकर ओढ

लिया, तो कहते हैं, मेरा वस्त्र दे दे। ऐसे गुरु बारंबार कहते हैं, तेरा स्वभाव नहीं है। तुम भिन्न आत्मा हो। बारंबार कहे तब यदि जागृत होवे, पुरुषार्थ करे तब जागृत (होता है)। जागृत तो स्वयंको होना पड़ेगा। वही तो करने जैसा है।

मुमुक्षु :- हमको स्वयंको पुरुषार्थ करना होगा।

समाधान :- पुरुषार्थ करना पड़ता है। बहुत पुरुषार्थ करे, बारंबार (करे)। ऐसा अभ्यास तो तो दिन-रात चौबीस घण्टे विभाव तो हो रहा है। उसमें एक बार करे, दो बार करे ऐसे तो नहीं होता है। बारंबार उसे भिन्न पड़नेकी लगनी होनी चाहिए। बारंबार, क्षण-क्षणमें मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, बारंबार (करे)। रट्टा लगाता है, ऐसे रटनमात्रसे नहीं होता है। भीतरमेंसे भेदज्ञान करे तब होता है।

मैं ज्ञायक हूँ, अभेद ज्ञायकको ग्रहण करे। अथवा गुण अनन्त, पर्याय, उसका लक्षण, उसका भेद है वह वास्तविक भेद नहीं है। अनन्त गुण आत्मामें है। गुणभेद, पर्यायभेद पर दृष्टि नहीं करके, मैं ज्ञायक हूँ। आत्मामें अनन्त गुण है, वह जान लेता है कि आत्मामें अनन्त गुण-पर्याय हैं। लेकिन दृष्टि तो एक ज्ञायक पर रखता है। उसका भेदज्ञान करे तब होता है। पुरुषार्थ करना पड़ता है। ... बल था। सबको भेदज्ञान हो, ऐसे।

... आत्मा तो जाननेवाला है। आहार-पानी सब आत्माका स्वभाव तो है नहीं। पेटमें जाता है, आत्मामें तो जाता नहीं। आहार-पानी... जब वीतराग, केवलज्ञान होता है तब सब छूट जाता है।

मुमुक्षु :- ... छूटनेका प्रयोजन है।

समाधान :- मुनि जंगलमें जाते हैं। आत्माकी क्षण-क्षणमें स्वानुभूति करते हैं। क्षणमें अन्दर स्वानुभूति, क्षणमें बाहर आवे, क्षणमें अन्दर, क्षणमें बाहर आवे। कोई शुभ परिणाम होते हैं। स्वाध्याय, ... ऐसा करते हैं। आहारका विकल्प कभी आवे तो बाहर आवे तो कितनी जिम्मेदारीसे आहार लेते हैं। ऐसे तो लेते नहीं। आहार कहाँ आत्माका स्वभाव तो है नहीं। निराहारी है आत्मा।

... सब तोड़ने ही बैठे हैं वे तो। ज्ञायकको प्रगट करना, उसमें कितनी जिम्मेदारी है। किसी भी प्रकारकी अपेक्षा नहीं है, निरपेक्ष हैं। आत्माका ध्यान करे। ऐसे भावलिंगी मुनिको दूसरी कोई (अपेक्षा नहीं है)। भावलिंगी मुनि अभी कोई दिखाई नहीं देते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचंद्राचार्य भावलिंगी मुनि ...

आहारकी कोई अपेक्षा ही नहीं है। स्वयं स्वयंका लक्षण दर्शाता है कि ये रहा मैं। लेकिन देखता नहीं। ज्ञायक स्वयं स्वयंकी ज्ञायकता द्वारा दर्शाता है कि ये रहा मैं।

समाधान :- ... अंतरकी जिज्ञासा होवे तब होता है। भेदज्ञान करनेसे होता है।

अंतरमें तैयारी होवे, शरीर और आत्मा, विभाव वह अपना स्वभाव नहीं है। शरीरतो परद्रव्य है, विभावस्वभाव अपना नहीं है। चैतन्य ज्ञायकमूर्ति आनन्दसे भरा हुआ है। ज्ञानसे भरा अनन्त गुणस्वरूप कोई अपूर्व पदार्थ है। उसका आत्मामें यथार्थ ज्ञान करना चाहिये, यथार्थ श्रद्धा करनी चाहिये, उसकी लगन लगनी चाहिये। दिन-रात लगनी लगे, उसका भेदज्ञान करे। जो-जो विकल्प आते हैं, विभाव होता हैं, उन सबसे मैं भिन्न हूँ, आत्मा तो भिन्न स्वभाव है। ज्ञायकका लक्षण पहचानना चाहिये। लक्षणके द्वारा वह लक्ष्य पहचानमें आता है। लक्षणसे आत्माको पहचानना चाहिये। उसकी श्रद्धा-प्रतीत यथार्थ (होनी चाहिये)। ऊपर-ऊपरसे नहीं, भीतरमेंसे होता है तब होता है।

भेदज्ञान करना चाहिये। बारंबार उसका भेदज्ञानका अभ्यास करनेसे, दिन और रात, क्षण-क्षणमें ऐसा अभ्यास होवे तब यह होता है। बारंबार उसका विकल्पसे अभ्यास नहीं, सहज होना चाहिये। पहले तो उसकी भावना करे, जिज्ञासा करे, विकल्पसे नक्की करे कि यह आत्मपदार्थ मैं हूँ। परन्तु भीतरमेंसे ऐसा सहज अभ्यास बारंबार होना चाहिये, तब होता है। नहीं होवे तबतक उसकी भावना करे, जिज्ञासा करे, तत्त्वका विचार करे। बारंबार शास्त्र अभ्यास करके मैं आत्मा हूँ, ऐसा ध्येय होना चाहिये कि मुजे आत्मा कैसे प्रगट हो? ऐसी दृष्टि, ऐसा ज्ञान सब होना चाहिये। तब होता है।

मुमुक्षु :- आगमके द्वारा तो ऐसा पढ़ लेते हैं, लेकिन जैसा आपने कहा कि अन्दरमें बात नहीं जाती है, ...

समाधान :- उसे बराबर नक्की करना चाहिये। भीतरमेंसे होना चाहिये। भीतरमें लगनी लगे, उसकी महिमा लगे कि यह कोई अनुपम पदार्थ है। महिमा लगे तब होता है। महिमा लगे, बारंबार विभावमें अच्छा नहीं लगे, यह सब आकूलतारूप है। ऐसा बोलनेमात्र नहीं, भीतरमें ऐसा लगे कि यह सब आकूलता है, दुःख है, मेरा स्वभाव नहीं है। मैं यह चैतन्यतत्त्व कोई अपूर्व सुखस्वरूप है, उसकी लगनी लगे तब होवे। शास्त्र अभ्यास निमित्त होता है। परन्तु करना तो अपनेको पड़ता है।

मुमुक्षु :- आपने सहज फरमाया, तो सहज और पुरुषार्थ, ये दोनों अलग-अलग चीज है कि एक ही चीज है?

समाधान :- सहज और पुरुषार्थ, पुरुषार्थ और सहज, ये दोनों अलग चीज है। पुरुषार्थ करना, सहज पुरुषार्थ। सहज कब होता है? सहज गुण। ज्ञानगुण, दर्शनगुण आदि सहज स्वभाव है। अनादिअनन्त सहज पदार्थ सहज स्वतःसिद्ध किसीने बनाया नहीं ऐसा सहज है। द्रव्य सहज है, गुण सहज है, सब सहज है, पर्याय सहज है। परन्तु पुरुषार्थ सहज होना चाहिये।

ज्ञानगुण भी सहज है। स्वतःसिद्ध होवे उसको सहज कहनेमें आता है। लेकन पुरुषार्थ

सहज होना चाहिये। विकल्पसे कृत्रिमतासे करे कि यह मैं हूँ, विचार करके नक्की करे। पहले तो ऐसा विचार करके नक्की करना पड़ता है। बादमें उसकी दशा ही ऐसी हो जाये। राग-द्वेषका अनादिका अभ्यास है तो उसको विकल्प नहीं करना पड़ता है। वह तो उसका वेग सहज होता है। अनादिका अभ्यास चल रहा है तो ऐसा उसे सहज जैसा हो गया है। वह तो वास्तविक विभाव है। वह वास्तविक सहज नहीं है, वह विभाव तो कृत्रिम है। अपना स्वभाव है वह सहज है। परन्तु उसका अभ्यास सहज होना चाहिये। पुरुषार्थ, पुरुषार्थ सहज होना चाहिये। स्वभाव सहज तो अनादिअनन्त है, पुरुषार्थ सहज होना चाहिये।

पुरुषार्थ कृत्रिमता करके, हठ करके करे तो ऐसे हठ करके पहले आती है तो हठसे नहीं होता। सहज अंतरमें ऐसा लगे तो बारंबार परिणति उस ओर चली जाये, पुरुषार्थकी परिणति चली जाये। ऐसे पुरुषार्थ सहज होना चाहिये। पुरुषार्थ सहज होना चाहिये। सहज यानी स्वतः, स्वतः यानी द्रव्य भी सहज, गुण सहज, ऐसे पुरुषार्थ सहज होना चाहिये।

मुमुक्षु :- जैसे राग-द्वेष करना सहज हो गया है। सहज हो जाता है, ऐसा सहज भाव, ऐसी सहजता।

समाधान :- ऐसी सहजता। पहले तो तत्त्वका विचार करे। तत्त्व विचार। तत्त्व विचार न चले तो उसके लिये शास्त्र अभ्यास। शास्त्र अभ्यास यानी शास्त्र अभ्यास कर लिया, ऐसे नहीं। मुझे आत्मा कैसे समझमें आये, ऐसा ध्येय रखकर करना कि मैं आत्मा कैसे समझुं? मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? परके क्या है? मैं कैसे समझुँ? ऐसी जिज्ञासा (सहित करे)। शास्त्र पढ लिया, कर लिया तो सब हो गया, मैंने तो बहुत किया, ऐसा नहीं होना चाहिये। बहुत करना बाकी है, मुझे भीतरमें बहुत करना बाकी है। शास्त्र अभ्याससे सब कुछ नहीं हो जाता। भीतरमें बहुत करना बाकी है। ऐसी भावना, जिज्ञासा, उसकी लगनी लगनी चाहिये। सर्व प्रथम यह है।

शास्त्र अभ्यास, तत्त्व विचार करे। परन्तु तत्त्व विचार करके भी मैं आत्मा कैसे ग्रहण करुँ? ऐसा होना चाहिये। लगनी लगनी चाहिये। आत्माकी महिमा होनी चाहिये। सच्चा ज्ञान होना चाहिये। लेकिन वह ज्ञान मात्र रटनमात्र नहीं, यथार्थ ज्ञान होना चाहिये। उसका उपाय तो यही है। लगनी लगाये, तत्त्वका विचार करे, शास्त्र अभ्यास करे। लेकिन शास्त्र अभ्यास करने मात्र नहीं, ध्येय रखना चाहिये। आत्म स्वरूपको समझना चाहिये।

सच्चा ज्ञान। सच्चा ज्ञान करनेका पुरुषार्थ तो अपनेको करना पड़ता है। मात्र शास्त्र अभ्यास तो अनन्त कालसे बहुत कर लिया। लेकिन भीतरमें आत्माको नहीं पहचाना। अपनेको नहीं जानता, सबको जान लेता है। अपनेको नहीं जानता है तो क्या हुआ?

अपनेको जाने। एक अपनेको जाने तो सबको जान लेता है। सबको जाने और अपनेको नहीं जाने तो क्या जाना?

मुमुक्षु :- ग्यारह अंगका जाननेवाला अपने आत्माको नहीं जानता है किया? उसमें आत्म वस्तु नहीं आती है?

समाधान :- आत्मवस्तुको वह वास्तविक नहीं जानता। ऐसे ही जानता है। ऐसे ही पढ लेता है। भीतरमेंसे ग्यारह अंग हो जाता है। आत्मा है, ज्ञान है, पर्याय है, गुण है, सब जान लेता है। मैं आत्मा हूँ, उसका यथार्थ स्वरूप भीतरमेंसे नहीं जानता। ऐसे जानता तो है, यथार्थ नहीं जानता है, भीतरमेंसे नहीं जानता है। आत्मा रह गया, आत्माकी परिणति प्रगट करनी रह गयी, बाकी सब कुछ जान लिया। ग्यारह अंग जान लिया, सब हो गया।

मुमुक्षु :- वह तो मात्र क्षयोपशमज्ञान कहलाया।

समाधान :- वह क्षयोपशमज्ञान मात्र ही हुआ। आत्माको नहीं जाना, मात्र क्षयोपशमज्ञान हुआ।

मुमुक्षु :- माताजी! सर्वार्थसिद्धिके जो देव हैं, वे (तैंतीस सागर) तत्त्व चर्चा करते हैं। तो उसमें बड़ी जिज्ञासा है कि क्या तत्त्वचर्चा करते होंगे?

समाधान :- अनेक प्रकारकी। द्रव्य-गुण-पर्याय आदि। ज्ञानका समुद्र है आत्मा तो। अनन्त गुण, ज्ञान तो अनन्त-अनन्त भरा है। उसमें अनन्त अपेक्षाएँ हैं, अनन्त धर्म हैं। एकमें सब आ जाता है। एकमें सबकुछ और उसका विस्तार करे तो अनन्त हो जाता है। इसलिये सागरोपम, ३३ सागरोपम तक चर्चा करते हैं। ज्ञान तो अनन्त है। बारह अंग, चौदह पूर्वका ज्ञान होता है तो भी उसकी सीमी-मर्यादा होती है। परन्तु ज्ञानका स्वभाव तो अनन्त-अनन्त है।

भीतरमें मुनिकी भाँति स्थिर नहीं जाते। इसलिये चतुर्थ गुणस्थान रहता है। छठ्ठी-सातवें गुणस्थानकी भूमिका नहीं आती। इसलिये शास्त्र स्वाध्यायमें, चर्चामें सब काल जाता है। चर्चामें, भगवानकी पूजामें, ऐसे निकालते हैं। चर्चामें, भगवानकी पूजामें, भक्तिमें... अनन्त ज्ञानका दरिया है। ज्ञान तो अनन्त-अनन्त है। लोकालोकको जाननेवाला एक समयमें। सब द्रव्य-गुण-पर्यायको, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अनन्त काल गया, वर्तमान, भविष्य अनन्त-अनन्तको जाननेवाला ज्ञान ऐसा केवलज्ञान, उस केवलज्ञानमें अनन्तता भरी है। चौदह पूर्व बारह अंगका ज्ञान भी सीमावाला है। तो भी उसकी चर्चा करते हैं। उसकी महिमा ऐसी होती है श्रुतज्ञानकी तो चर्चा करते हैं।

सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनमें एक आत्माको जाना है। एक आत्मा जाना उसमें सबकुछ आ जाता है। उसका विस्तार करे तो अनन्त हो जाता है। एकमें सब आ जाता है,

लेकिन उसका विस्तार करनेसे अनन्त हो जाता है। उसमें चर्चा चलती है।

मुमुक्षु :- ... तो उस समय गुरुदेव अपने अन्दर चले जाते थे?

समाधान :- भगवानकी महिमा, तत्त्वकी ... वस्तु पदार्थकी उनको महिमा आती थी। इसलिये आहा..हा.. (हो जाता था)। अंतरमें चले जाये तो विकल्प छूटकर (जा सकते हैं)। आहा..हा.. होता था, उसकी उतनी महिमा आती थी। आत्मा ऐसा पदार्थ! ऐसा पदार्थ आत्मा है! ऐसा आत्मा है! ऐसी वस्तु है! ऐसा तत्त्वका स्वरूप है, इसलिये उसको आहा..हा.. होता था। भगवान आत्मा, भगवान आत्माकी महिमा लगती थी। मैं आत्मा भगवान ऐसा हूँ। ऐसा कोई अनुपम पदार्थ आत्मा भगवान है। अपनेको पहचाना। बोलते थे, सब भगवान है। अपने भगवान आत्माको पीछान लेनेसे सब भगवान आत्मा है। बहुत महिमासे बोलते थे। उनको उतनी महिमा आती थी।

वस्तु तत्त्व पदार्थकी, पदार्थके तत्त्वकी उतनी महिमा आती थी, इसलिये आहा..हा.. बारंबार आता था। महिमा आती थी, भीतर नहीं चले जाते, उनको उतनी महिमा, तत्त्वकी बहुत महिमा थी। देखनेवाले तो देखते ही रहते थे कि क्या बोलते हैं कि क्या बोलते हैं? वस्तु पदार्थ कैसा होगा? सबको ऐसा लगता था, पदार्थ कैसा होगा? आत्मा कैसा होगा? गुरुदेव बार-बार आहा..हा.. बोलते थे। उनको बहुत महिमा आती थी।

मुमुक्षु :- तीर्थंकरका द्रव्य..

समाधान :- तीर्थंकरका द्रव्य था। यह समझो, समझो। यह पदार्थ कोई अनुपम है, उसे समझो। बार-बार समझमें आता है? पहले तो ऐसा कहे कि समझमें आता है? समझमें आता है? ऐसा बोलते थे। आहा.. आहा.. ऐसा पदार्थ! ऐसा पदार्थ सब समझो। पदार्थकी महिमा ऐसी आती थी।

मुमुक्षु :- स्वयं ऐसा महिमावंत है।

समाधान :- स्वयं ऐसा महिमावंत है। उसकी महिमा उनको आती थी। महिमासे बोलते थे, भगवान आत्मा। शास्त्रका अर्थ करे तो ओहो..! आचार्यदेव ऐसा कहते हैं! आत्माका स्वरूप आचार्यदेव ऐसा कहते हैं! ऐसा करके आहा..हा.. आता था। आचार्योंकी, शास्त्रोंकी उतनी महिमा आती थी, तत्त्व पदार्थकी उतनी महिमा आती थी। इसलिये बारंबार आहा.. आहा.. (आता था)। तत्त्व पदार्थकी उनको बहुत महिमा थी। देखनेवाले तो देखते रह जाते। आत्मा क्या पदार्थ होगा? उनकी वाणी कोई अपूर्व थी।

मुमुक्षु :- तात्कालिक...

समाधान :- हाँ, एकदम। गुरुदेव ऐसा बोलते हैं तो आत्मा कैसा होगा? बारंबार आहा.. आहा.. बोलते थे।

ट्रेक-०३९

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- स्वभावको सीमा नहीं होती, स्वभाव तो अनन्त होता है, विभावको सीमा होती है। विभाव अनन्त नहीं है। स्वभाव अनन्त.. अनन्त.. अनन्त स्वभाव (है)। स्वभाव परिणति प्रगट हो तो अनन्त काल पर्यंत परिणमन चलता है। अनन्त काल पर्यंत। स्वभावमें अनन्तता भरी है। विभावमें अनन्ता नहीं है। अपना स्वभाव नहीं है तो कहाँ-से अनन्तता आवे? सीमावाला है। विभावकी मर्यादा हो जाती है। अध्यवसान असंख्यात होते हैं, उसमें अनन्तता नहीं होती। स्वभाव अनन्त होता है।

पर्याय अपेक्षासे द्रव्यमें हानि-वृद्धि है, द्रव्य अपेक्षासे नहीं है। पर्याय अपेक्षासे ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान प्रगट हुआ, लोकालोकका ज्ञान प्रगट हुआ, केवलज्ञान शक्तिरूप हो गया, ऐसा सब पर्याय अपेक्षासे (कहनेमें आता है)। केवलज्ञान प्रगट नहीं है, केवलज्ञान शक्तिमें है, ऐसा सब कहनेमें आता है। द्रव्य अपेक्षासे वस्तु जैसी है वैसी है। उसमें वास्तविकरूपसे कुछ कम नहीं हुआ है, कुछ बढ़ा भी नहीं है। परन्तु पर्यायकी अपेक्षासे-परिणतिकी अपेक्षासे ऐसा कहा जाय कि उसमें केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट हुई, केवलज्ञानका विकास हुआ। निगोदमें जाये तब थोड़ा क्षयोपशम रहता है, ऐसा कहा जाय। वह सब पर्याय अपेक्षासे कहनेमें आता है। द्रव्य अपेक्षासे हानि-वृद्धि नहीं होती, परन्तु पर्याय अपेक्षासे है। पर्याय अपेक्षासे परिणति शुद्ध हो तो उसमें अगुरुलघु पर्यायकी तारतम्यता हानि-वृद्धि (होती है)। ऐसा वस्तुका स्वभाव तो रहता है। अनन्तगुण वृद्धि और अनन्तगुण हानि। उस प्रकारसे द्रव्य स्वतः परिणमता है। ऐसा द्रव्यका स्वभाव है। पर्यायमें वैसा होता है। वह पर्याय द्रव्यकी ही है। द्रव्यकी पर्यायमें भी ऐसी तारतम्यतारूप द्रव्य परिणमता है। पर्यायकी ओरसे, परिणतिकी ओरसे देखें तो उसमें हानि-वृद्धि उस प्रकारसे लागू होती है। परन्तु द्रव्य अपेक्षासे लागू नहीं पड़ती।

जो अगुरुलघु है उसकी वास्तविक हानि-वृद्धि नहीं होती कि केवलज्ञान हुआ तो ज्ञान बढ़ गया और ज्ञान कम हो गया, ऐसा नहीं है। उसकी पर्यायमें तारतम्यतारूप परिणमता है। ये तो ज्ञान शक्तिमें केवलज्ञान हो गया, फिर केवलज्ञान प्रगट होता है। वह तो उसके विकासकी अपेक्षासे है। स्वभावका आश्रय ले, द्रव्यका आश्रय ले तो

द्रव्यकी ओरकी जो शुद्ध पर्यायें प्रगट होती है। इसलिये पर्याय बिनाका द्रव्य नहीं है। द्रव्यमें पर्याय है, पर्यायें होती है, परिणति होती है। और पर्यायकी अपेक्षासे हानि-वृद्धि लागू पड़ती है। पर्याय अपेक्षासे। द्रव्य अपेक्षासे लागू नहीं पड़ती। पर्याय अपेक्षासे साधनाकी पर्याय प्रगट हुयी। सम्यग्दर्शन, छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान, आगे बढा, पर्यायमें शुद्धि बढती गयी, श्रेणी लगायी, सब पर्याय अपेक्षासे कहा जाता है। केवलज्ञान प्रगट हुआ, सब पर्याय अपेक्षासे है। और वह पर्याय द्रव्यकी ही है। इसलिये द्रव्य और पर्यायको अभेद करके कहें तो द्रव्य शुद्धरूप परिणमित हुआ, द्रव्यमें केवलज्ञान हुआ, द्रव्य अपेक्षासे ऐसा कहा जाये। द्रव्य और पर्याय, दोनोंको अभेद करके कहें तो।

और पर्याय और द्रव्य, ऐसे भेद करके कहो तो द्रव्यमें कुछ नहीं है, द्रव्य तो अनादिअनन्त जैसा है वैसा ही शुद्ध है। बाकी पर्यायमें सब (फेरफार होता है)। और पर्याय कहीं पडी है और द्रव्य कहीं पड़ा है, द्रव्य कुछ अलग ही वेदन करता है और पर्यायमें कुछ और ही वेदन है, ऐसे दो भाग नहीं है। वह सब वेदन स्वयंको ही होता है। (पर्यायका) वेदन कोई और करे और (द्रव्यका) वेदन कोई और करे, ऐसा नहीं है। जो पर्यायमें होता है उसका उसे ज्ञान होता है कि यह पर्यायका वेदन है, यह द्रव्य है, यह पर्याय है, ज्ञानमें सब ख्यालमें होता है। क्योंकि द्रव्य और पर्याय सब अभेद है। वैसे दो टूकड़े नहीं है कि बिलकूल दो द्रव्य हो, ऐसे दो टूकड़े नहीं है। भेद अपेक्षा है (उसमें) द्रव्यका स्वरूप और पर्यायका स्वरूप एक क्षण मात्र है और वह अनादिअनन्त है, शाश्वत है। इस अपेक्षासे उसका स्वरूपभेद है, परन्तु वस्तुभेद नहीं है।

मुमुक्षु :- माताजी! आत्मानुभूतिके पहले प्रमाण, नय, निपेक्षसे आत्माका कैसा निर्णय करना?

समाधान :- जानना चाहिये। आत्माका द्रव्य अपेक्षासे क्या स्वरूप है, पर्याय अपेक्षासे क्या स्वरूप है। प्रमाण अपेक्षासे द्रव्य और पर्याय दोनोंका स्वरूप समझे। द्रव्यदृष्टिको मुख्य रखे। दृष्टिमें मुख्य द्रव्य होता है, पर्याय गौण होती है। नय और प्रमाणसे ऐसा विचार करे।

मुमुक्षु :- और निक्षेपसे?

समाधान :- खास तो मुख्य नय और प्रमाण होता है। निक्षेप तो बीचमें आता है कोई आक्षेप करनेको। यह वस्तु है, भगवानकी प्रतिमा है तो भगवान है, निक्षेप ऐसे होता है। कोई भविष्यमें केवलज्ञानी होनेवाला है तो उसे वर्तमानमें केवलज्ञानी है, ऐसा कहना वह निक्षेप है। आगे होनेवाले हैं, भूतकालमें हो गये हैं, उसे वर्तमानमें कहना-आक्षेप करना वह निक्षेपमें होता है। ऐसा नयमें भी होता है, निक्षेपमें भी होता

है। स्थापना करता है। स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, भाव निक्षेप। आक्षेप करता है, भूतका, वर्तमान, भविष्यका। साधनामें नय और प्रमाण दोनों साथमें रहते हैं। निक्षेप तो बीचमें आता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य-गुण-पर्यायसे विचारमें आत्माका निर्णय करना और प्रमाण-नयसे निर्णय करना एक ही बात है या दोनोंमें कुछ अंतर है?

समाधान :- दोनों एक है। एकमें आ जाता है। द्रव्य-गुण-पर्याय वास्तविक समझमें आये तो उसमें नय और प्रमाण आ जाता है। द्रव्यका स्वरूप समझे, पर्यायका समझे, द्रव्य मुख्य, पर्याय गौण, अशुद्ध किस अपेक्षासे है, शुद्ध किस अपेक्षासे है यह सब समझे। अपेक्षाकी बात समझनी चाहिये। द्रव्य-गुण-पर्याय कैसे हैं, उसमें कौन-सी अपेक्षा लागू पड़ती है। उसमें जो अपेक्षाकी बात आती है उसमें नय और प्रमाण आ जाते हैं। द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप समझे तो गुण किस अपेक्षासे है और पर्याय किस अपेक्षासे है, द्रव्य किस अपेक्षासे है, उसमें अपेक्षा समझे तो उसमें नय और प्रमाण दोनों आ जाते हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय समझे उसमें साथमें अपेक्षा समझे तो नय और प्रमाण साथमें आ जाते हैं। पर्यायको समझे उसमें साथमें अपेक्षा समझनी चाहिये, तो उसमें नय और प्रमाण आ जाते हैं।

मुख्य करे, गौण करे, द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप समझे। उसमें मुख्य कौन, गौण कौन, उसका क्या स्वरूप, वह सब समझना चाहिये। नय और प्रमाणसे समझना चाहिये। गुणका यह स्वरूप, पर्यायका यह स्वरूप, द्रव्यका यह स्वरूप, उसमें अपेक्षासे समझे उसमें नय-प्रमाण आता है।

मुमुक्षु :- द्रव्यत्वभाव शक्तिरूप है और शक्तिके सामने दृष्टि रखनेसे अथवा दृष्टिमें शक्ति पर वज़न देनेसे पर्यायमें शुद्धता होती है। तो शक्तिमेंसे तो कोई... शक्ति तो उतनी की उतनी संपूर्ण ही रहती है। तो सिर्फ दृष्टि देनेसे ही शुद्धता आ जाती है?

समाधान :- शक्ति तो उतनी की उतनी रहती है, वह सब द्रव्य अपेक्षासे कहनेमें आता है। लेकिन प्रगट होती है, वह पर्याय अपेक्षासे प्रगट भी होती है। शक्ति जैसी है वैसी, उतनी की उतनी रहती है। उसमें कुछ बढ़ता नहीं, उसमें कुछ घटता नहीं, वह सब द्रव्य अपेक्षासे है। परन्तु पर्याय अपेक्षासे एसा कहनेमें आये कि द्रव्यके आश्रयसे शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, द्रव्यमेंसे पर्याय प्रगट हुई, सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान प्रगट हुआ, वह सब कहनेमें आये वह सब पर्याय अपेक्षासे प्रगट भी होता है। शक्ति अपेक्षासे द्रव्य जैसा है वैसा है। परन्तु प्रगट भी होता है, ऐसी एक अपेक्षा पर्यायकी है। कुछ प्रगट ही नहीं होता ऐसा नहीं है। केवलज्ञान प्रगट हुआ, वीतरागदशा प्रगट हुई, चारित्र प्रगट हुआ, चारित्र शक्ति में अनादिअनन्त वैसाका वैसा, जैसा है

वैसा है, वह द्रव्य अपेक्षासे कहनेमें आता है। परन्तु चारित्रमें मिथ्याचारित्र हो गया, दृष्टि बाहर गयी है, स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट हुआ, वह सब पर्याय अपेक्षासे प्रगट होता है। इसप्रकार कुछ प्रगट नहीं होता है, द्रव्यमेंसे कुछ प्रगट ही नहीं होता है, ऐसा नहीं है। पर्याय अपेक्षासे प्रगट होता है, द्रव्य अपेक्षासे जैसा है वैसा है।

मुमुक्षु :- ऐसा ही द्रव्यका अद्भुत सामर्थ्य है।

समाधान :- वह अद्भुत सामर्थ्य है।

मुमुक्षु :- द्रव्यत्व वैसाका वैसा रखकर, पर्यायमें..

समाधान :- हाँ। द्रव्य-गुणमें वैसाका वैसा रखकर, पर्यायमें हानि-वृद्धि (हो), पर्याय प्रगट हो, पर्याय विभावरूप हुयी, पर्याय स्वभावरूप हुयी, वही पर्याय विशेष प्रगट हुयी, वह सब होता है।

मुमुक्षु :- उसे भी द्रव्यका सामर्थ्य कहनेमें आता है?

समाधान :- वह द्रव्यका सामर्थ्य है।

मुमुक्षु :- द्रव्यकी ही अद्भुतता है।

समाधान :- द्रव्यकी अद्भुतता है। एक अपेक्षासे द्रव्यमेंसे कुछ प्रगट नहीं होता। पर्यायमेंसे पर्याय (प्रगट होती है), ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु द्रव्यमेंसे पर्याय प्रगट हुयी, द्रव्यमेंसे प्रगट होती है, ऐसा भी एक अपेक्षासे है।

जाननेवाला ज्ञान द्रव्यमेंसे प्रगट हुआ, कोई निराधार प्रगट नहीं हुआ है। लोकालोकको जाननेवाला जो ज्ञान था, वीतरागदशा, निर्मलता द्रव्यमें प्रगट हुयी। द्रव्यमें यानी वीतरागी परिणति द्रव्यकी प्रगट हुयी, द्रव्यमें केवलज्ञान प्रगट हुआ। ज्ञान लोकालोककी निर्मलतारूप द्रव्य परिणमित हुआ, ऐसा है।

मुमुक्षु :- ... शक्ति भी रखता है और पूर्णता भी द्रव्य ही प्रगट करता है।

समाधान :- हाँ, द्रव्य ही पूर्णता प्रगट करता है और द्रव्यकी शक्तिमें कुछ हानि-वृद्धि नहीं होती। पूर्ण आनन्द हुआ। उसे सब प्रगट हो गया, फिर दूसरे समयमें क्या परिणमन आयेगा? ऐसा नहीं है। उतना प्रगट हो गया है फिर भी अनन्त-अनन्त है। दूसरे समये उतना का उतना प्रगट होता है। इतना सब द्रव्यमें भरा था, वह सब पूर्ण सामर्थ्य, पूर्ण वीतरागदशा और पूर्ण केवलज्ञान एक समयमें सबमें पहुँच जाये, तीन काल तीन लोक सबमें एक समयमें पहुँच गया, वह तो पूर्ण प्रगट हो गया, अब द्रव्यको क्या करना बाकी रहा? दूसरे समयमें वैसा ही अनन्त (प्रगट होता है)। दूसरे समय उसकी परिणति वैसी ही खड़ी रहती है। अनन्त काल पर्यंत परिणमे तो भी द्रव्यमेंसे कुछ कम नहीं होता। उतना प्रगट हो गया तो भी।

मुमुक्षु :- अक्षय घड़ा है।

समाधान :- अक्षय घड़ा है। उतनाका उतना है। जितना प्रगट हुआ, विकसित हुआ तो भी उतना ही है। शक्तिमें था तो भी उतना ही था। शक्तिमें था उतना वेदनमें नहीं आता था, अब वेदनमें पूर्ण हो गया तो भी दूसरे समय उतनाका उतना है। द्रव्यका ऐसा ही कोई अचिंत्य सामर्थ्य है।

द्रव्यकी अपेक्षा, पर्यायकी अपेक्षा, इन दोनोंकी संधि करके समझना, वह द्रव्यका स्वरूप कोई अद्‌भुत है। मात्र द्रव्य अपेक्षाको अलग करे और पर्यायमें कुछ नहीं है, पर्याय निराधार रह गयी, ऐसा नहीं है। द्रव्यका सामर्थ्य ऐसा है। पर्यायका स्वरूप है वह द्रव्यका ही स्वरूप है। पर्याय कोई अचिंत्यस्वरूप है। अनादिअनन्त रहे और वर्तमान परिणति करे। अनादिअनन्त द्रव्य परिणमता नहीं कोई अपेक्षासे कहनेमें आये, फिर कोई अपेक्षासे (ऐसा कहे कि) द्रव्य परिणमता है। द्रव्यमें तो कोई हानि-वृद्धि होती ही नहीं। द्रव्य तो वैसाका वैसा कूटस्थ कहनेमें आता है। पुनः द्रव्य पारिणामिक है। वह कैसी विरोधी बात है। कूटस्थ है और पारिणामिक है। पारिणामिक है तो परिणमता रहता है। ऐसा कहनेमें आता है कि पर्याय परिणमती है। लेकिन पर्याय कहाँ परिणमती है? द्रव्यमें परिणमती है कि पर्याय बाहर परिणमती है? पर्याय कोई अलग द्रव्यकी भाँति नहीं परिणमती। द्रव्य स्वयं, पारिणामिकभावसे द्रव्य स्वयं परिणमता है। ऐसा द्रव्यका अद्‌भुत स्वरूप है।

मुमुक्षु :- दोनोंकी संधिपूर्वक पूरी बात विचारनी चाहिये।

समाधान :- संधिपूर्वक दोनोंको समझना चाहिये।

.. आनन्द आ गया, अब दूसरे समयमें दूसरा आनन्द कहाँ-से आयेगा? एक समयमें गुण पूरा हो गया। अब खत्म हो गया, अब दूसरा कहाँ-से आयेगा? यह कोई ऐसा धन नहीं है। धन घरमें इकट्ठा हुआ, पूरा धन खर्च कर दिया, अब क्या? ऐसा नहीं है। पूरा कहनेमें आता है, फिर भी वह तो वैसे ही द्रव्यमेंसे आते ही रहता है। उसमें खत्म होता ही नहीं। अब द्रव्यकी शक्ति कम हो गयी, अब द्रव्यमें कुछ नहीं है, ऐसा माने तो भी गलत है। द्रव्यमें अनन्त शक्ति है। शक्ति है, निगोदमें जाये तो भी उतनी की उतनी शक्ति है, पूर्ण सामर्थ्य है और प्रगट हो तो भी (उतना ही है)।

प्रगट होनेवाला भी स्वयं है। शक्ति नहीं है ऐसा लगे तो ऐसा नहीं है। प्रगट हो तो भी वैसा का वैसा है।

मुमुक्षु :- ... द्रव्यकी है।

समाधान :- दोनों द्रव्यकी है। क्षणिकरूप परिणमित होनेवाला द्रव्य भी द्रव्यका स्वरूप है। लेकिन उसका स्वरूप समझना कि द्रव्यमें एक भाग ऐसा है कि क्षण-क्षणमें परिणति होती है। दूसरी-दूसरी पर्याय आती है। और उसका एक भाग अनादिअनन्त

वैसाका वैसा रहता है। द्रव्य अनादिअनन्त और पर्यायमें (ऐसा है), दोनोंको समझना। उसके दो भाग कर दे (ऐसा नहीं होना चाहिये)।

मुमुक्षु :- शब्दमें तो ऐसा आये कि एक भाग, फिर भी...

समाधान :- नहीं, दो भाग नहीं है। द्रव्यके दो भाग है, वैसे दो भाग नहीं है। अपेक्षासे भाग है। ... संख्या आदिसे भेद है। उसका स्वरूप भिन्न-भिन्न है। स्वरूपभेदसे भेद है, वस्तुभेदसे भेद नहीं है।

मुमुक्षु :-.... और भगवान घरमें विराजमान किये हैं...

समाधान :- गुरुदेवकी वाणी शरण है। गुरुदेवने सबको बहुत उपदेश दिया है। करना वही है। दिखाई देता है कि संसार ऐसा है। ऐसा समय आये तब किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जब आयुष्य पूर्ण होता है तब ... कोई उसे रोक नहीं सकता। संसार ऐसा ही है। यह शरीर और आत्मा भिन्न है, प्रत्यक्ष दिखता है। आत्मा स्वयं चला जाता है। कोई रोकी नहीं सकता। इसलिये अन्दर जो संस्कार होते हैं वही साथ आते हैं।

ऐसे जन्म-मरण अनन्त हुए, उसमें स्वयं अकेला जन्मता है, अकेला मरे, अकेला ही भावना करे, स्वयं अकेला स्वर्गमें, अकेला मोक्षमें, हर जगह अकेला ही जाता है। संसारके सब सम्बन्ध ऐसे ही है, सब क्षणिक है। अनन्त जन्म-मरण करते-करते गुरुदेव मिले और यह मार्ग दर्शाया, वह एक आश्रयभूत है। शरण तो वही है। जीवने कितने जन्म-मरण किये है। उसमें यह मनुष्यभव मिला। अनन्त जन्म-मरण, अनन्त जन्म-मरण जीवने किये।

इस लोकमें जितने पुद्गल द्रव्य हैं, उसे जीवने शरीर पर धारण करके, ग्रहण करके छोड़े हैं। आकाशके एक-एक प्रदेशमें जन्म-मरण किया है। असंख्यात अध्यवसाय किये हैं। अनन्त काल रखड़ा है। अनन्त बार देवमें गया, अनन्त बार नर्कमें गया, अनन्त तिर्यंचके भव किये, अनन्त भव मनुष्यके किये। उसमें जिस भवमें यह धर्म हो और आत्माका शरण (प्राप्त हो), ज्ञायकका शरण और देव-गुरु-शास्त्रका शरण वह सच्चा है। जगतमें जीवको सब प्राप्त हुआ है, एक आत्मा नहीं प्राप्त हुआ। गुरुदेव कहते थे, एक सम्यग्दर्शन अपूर्व है, वह प्राप्त नहीं हुआ है। भगवान नहीं मिले हैं। भगवान मिले तो स्वयंने पहचाना नहीं। इसलिये वही ग्रहण करने जैसा है। वह कैसे प्राप्त हो, वही करने जैसा है। देवलोकके देवोंका सागरोपमका आयुष्य होता है तो वह आयुष्य भी पूर्ण हो जाते हैं। उसे ऐसा लगता है कि मानो यह तो अमर है। देवलोकको अमरापुरी कहते हैं, तो भी वे अमर नहीं रहते। सागरोपमके आयुष्य पूरे हो जाते हैं। फिर उसका माला मुरझाती है तो उसे मालूम पड़ता है कि आयुष्य पूरा हो रहा है।

देवलोकके आयुष्य पूरे हो जाते हैं तो फिर यह मनुष्यका आयुष्य तो कितना है। एकदम थोडा है। उस थोड़ेमें आत्माका कर लेने जैसा है।

गुरुदेव कहते थे न कि बिजलीकी चमकमें मोती पीरो ले। एक बिजलीकी चमककी भाँति मनुष्यका भव है। उसमें आत्माको ग्रहण कर लेने जैसा है। तीर्थंकरो, चक्रवर्तीओ आदि सब इस संसारका ऐसा स्वरूपको देखकर क्षणमात्रमें वैराग्यको प्राप्त होकर मुनि होकर चले जाते थे। इस संसारका स्वरूप ऐसा है। मुनि होकर जंगलमें आत्माका ध्यान करके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। ओसका पानीका बिन्दु क्षणमात्रमें ऊड़ जाता है। तीर्थंकर भगवान जैसे बादलके बिखरता हुआ देखकर, पानीका बिन्दु और ओसका बिन्दु देखकर वैराग्यको प्राप्त होकर जंगलमें चले जाते थे, आत्माका ध्यान करते थे।

वैराग्य करके आत्माका स्वरूप और यह आत्मा कैसे पहचाननेमें आये यह भावना बढ़ाने जैसी है। शुभमें देव-गुरु-शास्त्र, जिनेन्द्रदेव, गुरुदेव और शास्त्र, उनकी महिमा, शास्त्रका चिंतवन, शास्त्र स्वाध्याय और आत्माकी रुचि-आत्मा ज्ञायक कैसे पहचानमें आये, भेदज्ञान कैसे हो। यह शरीर भिन्न है। आत्मा तो शाश्वत है, आत्माका नाश नहीं होता। यह सब शरीरके फेरफार है। आत्मा तो जहाँ जाये वहाँ शाश्वत है। आत्मा कैसे ग्रहण हो? आत्मा ज्ञायकदेव महिमावंत है। वही करने जैसा है। (मेरा-मेरा) करता है, लेकिन मेरा कुछ नहीं है। सब परद्रव्य स्वतंत्र द्रव्य है। स्वयं अन्दर तैयारी करके संस्कार डाले हो वही अपना है।

मुमुक्षु :- जिस प्रकार जीव निकल गया, मैंने तो पहली बार ऐसे निकलते हुए देखा, तो ऐसा लगा कि यह सब मोह, माया, बन्धन सबकुछ यहाँ छोड़कर क्षणमें निकल जाता है। मैंने प्रत्यक्ष पहली बार देखा। ऐसा लगता है कि यह जीव साथमें क्या लेकर जायेगा? मोह, माया, बन्धन जो मेरा-मेरा करता था, वह तो एक क्षणमां छूट जाता है।

समाधान :- वह तो एक क्षणमें सब छोड़कर जाता है।

मुमुक्षु :- साथमें क्या जाता है?

समाधान :- साथमें अन्दर जो स्वयंने अच्छी भावना की हो वह जाती है। आत्माका स्वरूप... लेकिन आत्माको तो पहचाना नहीं, परन्तु अन्दर जो शुभभावना स्वयंने की हो वह साथमें जाती है। दूसरा कुछ साथमें नहीं जाता है। शुभाशुभ भाव जो जीवनमें किया वह सब उसके साथ है, दूसरा कुछ नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसा कैसा हम पुरुषार्थ करें कि जिससे हमें भविष्यमें गुरुदेव एवं आपके सान्निध्यका योग प्राप्त हो?

समाधान :- स्वयं अंतरमेंसे एक आत्मा ही सर्वस्व है, बाकी सबकुछ... अन्य

पदार्थमें रस कम हो जाये, यह सब निःसार है, कोई सारभूत वस्तु नहीं है। उसकी एकत्वबुद्धि अन्दर तोड़नेका प्रयत्न करे कि मैं तो आत्मा शाश्वत हूँ, यह परद्रव्य कुछ भी मेरा नहीं है। परद्रव्य प्रतिका मोह तोड़ दे कि यह परद्रव्य मेरा नहीं है। व्यर्थमें मेरा-मेरा करता है। यह शरीर भी अपना नहीं है तो बाहरका घर, कुटुम्ब कोई अपना नहीं है। कोई वस्तु, कोई पैसा या कोई वस्तु अपनी नहीं है। सबकुछ यहाँ पड़ा रहता है। सब सँभालकर रखता हो, सब (छोड़कर) एक क्षणमें स्वयं चला जाता है।

उन सब परसे ममता छोड़कर और एक चैतन्यकी रुचि और चैतन्यकी महिमा बढाये और देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा (बढाये)। बाकी सब निःसार है, सब परसे मोह टूट जाये, मोह छोड़कर एक आत्माकी ओरकी महिमा करे तो आत्मामें जो संस्कार डाले हैं वह साथमें आते हैं। और उसके साथ जो शुभभावना होती है, उससे जो पुण्य बन्धता है उससे अच्छा योग मिले, गुरुदेव मिले, जिनेन्द्रदेव मिले, वह सब शुभभावनासे जो पुण्य बन्धता है, उससे वह प्राप्त होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०४०

समाधान :- ... तो है नहीं। द्रव्यस्वरूपसे देखे तो मेरेमें यह नहीं है, मैं तो ज्ञायक शुद्धात्मा हूँ। यह जो विभाविक वस्तु तो सब ऊपरसे आयी हुई, ऊपर-ऊपरकी है, मूल अंतरमें नहीं है। इसलिये मेरे मूलमें नहीं है। वह आयी है, अब वह टले कैसे? इसलिये उसे टालनेका प्रयत्न और अपना शुद्ध स्वरूप प्रगट करनेका उसका प्रयत्न चलता है।

मुमुक्षु :- इस प्रयोजनसे वह इस प्रकारसे विचार करता है? ज्ञानमें ऐसा जाननेके बावजूद, रुचिमें मैं ज्ञायक हूँ, इस प्रयोजनपूर्वक?

समाधान :- हाँ। मेरे स्वभावमें तो नहीं है। उसे रुचि तो ऐसी है। रुचि, प्रतीतमें ऐसा है कि यह मेरे स्वभावमें नहीं है। परन्तु वह है तो सही। वह है तो टले कैसे? मूल वस्तुमें नहीं है, लेकिन पर्यायमें यह ऊपर-ऊपरसे आया है। अब वह टले कैसे? मूल वस्तुमें नहीं है, परन्तु यह पर्यायमें ऊपर-ऊपरसे आया है, वह टले कैसे? उसे टालनेका प्रयत्न (करता है)। मेरेमें नहीं है, इसलिये अब टालनेका प्रयत्न कैसे हो, उसका उपाय खोजकर स्वयं टालनेका प्रयत्न करके, मेरे स्वभावमें नहीं है, मैं उसका कर्ता नहीं हूँ, मैं अनादि अनन्त ज्ञायक ही हूँ। दोनोंमें विरोध नहीं होता। यदि अंतरमें दोनोंकी अपेक्षा समझे। मूलमें नहीं है तो वह टल जाता है। मूलमें हो तो टले कैसे? मूलमें नहीं है इसीलिये वह टलता है। मूलमें हो तो-तो उसका स्वभाव हो जाये। तो टले नहीं। और वह दुःखरूप है। अपना स्वभाव तो दुःखरूप होता नहीं। इसलिये यह सब ऊपरसे आया हुआ है, वह परिणति चली जाये और मेरा स्वभाव है वह प्रगट हो जाये। इसप्रकार उसकी रुचि अपने स्वभावकी ओर रहती है कि मैं ज्ञायक हूँ और यह टले कैसे? यह सब उसे रुचिमें रहता है।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर! माताजी! अपने पीछली बार स्पष्टीकरण किया था उसमें आज भी अधिक स्पष्टीकरण हुआ। ... रुचिमें ऐसे लेना कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ और राग-द्वेष मेरेमें मेरेसे अत्यंत भिन्न है। मेरेमें होते ही नहीं। मैं..

समाधान :- भिन्न हूँ। भिन्न हूँ तो प्रगटरूपसे भिन्न पड़नेका उसे प्रयत्न चलता है कि प्रगटरूपसे भिन्न कैसे होऊँ? ज्ञानमें उसे दोनों आते हैं कि यह मेरेमें होता

है, मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, लेकिन वह मेरा स्वभाव नहीं है। इसप्रकार ज्ञानमें सब जानता है। और उसमें (-रुचिमें) मैं जाननेवाला एक ज्ञायक हूँ। मेरेमें नहीं है। प्रतीतमें-रुचिमें ऐसे रहता है।

मुमुक्षु :- रुचि अर्थात् श्रद्धानमें उसे ऐसा रहता है कि मेरे द्रव्यमें-स्वभावमें तो राग है नहीं।

समाधान :- हाँ, श्रद्धा। श्रद्धा कहो, प्रतीत कहो, रुचि कहो।

मुमुक्षु :- श्रद्धा अनुसार वर्तन (क्यों नहीं होता)? श्रद्धा-विश्वास पका हुआ, फिक्षर चारित्रमें क्यों देर लगती हो?

समाधान :- उसके प्रयत्नकी कचास है। श्रद्धाका ज़ोर है कि ऐसे ही है। तो आंशिक तो उसे हो जाता है। अमुक अंश तो प्रगट हो जाता है। जहाँ श्रद्धा यथार्थ होती है वहाँ ज्ञायककी परिणित अमुक प्रकारसे तो प्रगट हो जाती है। उससे भिन्न पड़ जाता है। उसे स्वानुभूति होती है, उससे भिन्न पडे, लेकिन उसे थोडा बाकी रहता है। वह उसके प्रयत्नकी क्षति है। लेकिन श्रद्धामें इतना बल है कि प्रयत्न करके भी अवश्य प्रगट होता है। पार हो जायेगा। प्रयत्न उसका चालू ही रहता है। उसका प्रयत्न छूट नहीं जाता। प्रयत्न चालू ही रहता है।

क्षण-क्षणमें जो विभाव परिणति उत्पन्न होती है, उसके सामने उसका प्रयत्न उतना जोरदार खड़ा रहता है। श्रद्धाका बल और ज्ञायककी परिणति स्वयं अपनी ओर, अपनी परिणतिको खींँचता हुआ स्वयं प्रतिक्षण खड़ा रहता है। उसके प्रयत्नमें जितना हो उतना उसे सहजरूपसे रहता है। बाकी थोड़ी देर लगती है, प्रयत्नकी कचास है इसलिये।

ज्ञायकधारा प्रतिक्षण मौजूद रहती है। उसमें (-विभावमें) तन्मय नहीं हो जाता। उतना प्रयत्न उसका प्रगट हुआ है। श्रद्धाके बलके साथ उतना प्रयत्न तो उसे जोरदार रहता है कि एकत्व होता ही नहीं। उसके साथ जो अनादिसे एकत्व था, अब एकत्व नहीं होता। भिन्न ही भिन्न, प्रत्येक कार्यमें भिन्न ही रहता है। स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हुयी। (विभावके) साथ एकत्व तो होता ही नहीं। किसी भी क्षणमें एकत्व नहीं होता। उसके प्रयत्नसे एकत्व (नहीं होता)। सहज ऐसा उसका प्रयत्न चलता है। कोई कार्यमें, विभाव सम्बन्धित कोई विकल्पमें, शुभाशुभके किसी भी विकल्पमें एकत्व नहीं होता। शुभ विकल्प ऊँचेसे ऊँचा हो तो भी एकत्व तो होता ही नहीं। किसी भी क्षणमें एकत्व नहीं होता। इतना प्रयत्न उसका चालू रहता है। फिर विशेष प्रयत्न चारित्रदशामें देर लगती है। किसीको तुरन्त होता है, किसीको देर लगती है।

मुमुक्षु :- ... धीरा होकर ज्ञायकको मुख्य लक्षण द्वारा पहचानकर वहाँ स्थिर रहे अथवा तो उसका अवलम्बन ले तो.. ज्ञान लक्षण अर्थात् जानता है.. जानता है..

वह मैं हूँ। यह जानपना होता है..

समाधान :- बाहरका जानपना नहीं। जो जाननेवाला स्वभाव है वह मैं हूँ। जानन लक्षण है वह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- बाहरका जानपना नहीं। बाहरका जानपने द्वारा यह जाननेवाला है वह मैं हूँ।

समाधान :- हाँ, मैं जाननेवाला हूँ।

विभावका वेग इतना चल रहा है, उस वेगपूर्वक बहता है उसमें धीरा होकर देखे तो स्वयंको ग्रहण कर सकता है। उसका विभावका वेग अनादिका (चल रहा है)। उसके विभावकी, विकल्पकी जाल चल ही रही है, उसमें धीरा होकर देखे तो स्वयंको ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- ... भविष्य, आलोक, परलोक..

समाधान :- सबकी शक्ति... मैं यह चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ। इस परिणामके ऐसे फल होते हैं, सब उसे नक्की हो जाता है। उसकी श्रद्धामें नक्की हो जाता है।

... स्वयंको ग्रहण करे। ज्ञायक ज्ञान तो जाननेवाला स्वयं खड़ा ही है। चाहे जो भी विभाव हो, उसमें जाननेवाला स्वयं तो खड़ा है। परन्तु स्वयंको जाननेके लिये स्वयंको प्रयत्न करना चाहिये। शरीर भिन्न दिखाई देता है, वह जानता नहीं। अन्दर विभावस्वभाव तो आकूलतारूप है। उस आकूलतामेंसे जो जाननेवाला भिन्न है उसे ग्रहण करे। जो स्वतः जाननेवाला है, बाहरका जानता है इसलिये जाननेवाला है, ऐसे नहीं, लेकिन स्वतः जाननेवाला ही है। उस जाननेवालेको ग्रहण करना अपने हाथकी बात है। जानन ज्ञायकमें सब भरा है, अनन्त महिमा भरी है। लेकिन उसकी महिमा आये तो स्वयं ग्रहण करे। उसका लक्षण पहचानकर स्वयं ग्रहण करे तो हो सके ऐसा है। स्वयं ग्रहण करे तो हो सकता है।

अन्दर महिमावंत आत्मामें सब भरा है। उसका लक्षण पहचानकर अन्दर ग्रहण करना चाहिये। जाननेवाला स्वयं खड़ा ही है, शाश्वत खड़ा है। जाननेवाला स्वयं अपना लक्षण बता रहा है कि ये रहा मैं। लेकिन स्वयं उसे जाननेका प्रयत्न करे तो जाननेमें आये न। जाननेवाला है वह सब जान ही रहा है। जो अन्दर विभाव होते हैं, जो राग होता है, जो शुभ, अशुभ सब भावोंको जाननेवाला अन्दर खड़ा है। लेकिन स्वयं एकत्वबुद्धि करके उसे भिन्न नहीं करता है कि यह जाननेवाला है तो फिर भिन्न क्यों नहीं (जाननेमें आता)? स्वयं भिन्न करे, जोरदार प्रयत्न करे तो भिन्न पड़ता है। स्वयं जोरदार प्रयत्न करता नहीं। उतनी रुचि, महिमा, अपना लक्षण पहचाननेके लिये विचार करके, धीरा होकर उसे ग्रहण करे तो हो सकता है। बाकी तो अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- माताजी! प्रारंभ ही कठिन है या पूरे मार्गमें पुरुषार्थ चाहिये?

समाधान :- प्रथम भूमिका विकट होती है। श्रीमद्में आता है न? प्रथम भूमिका विकट होती है। प्रथम भूमिका... अनादिसे उसे एकत्वबुद्धि गाढ़ हो रही है, उसमेंसे उसे निकलना विकट है। फिर तो मार्ग सहज है और सुगम है। अपना स्वभाव है। ऐसे सहज स्वभावको उसने पहचाना और उसे प्रगट हुआ, उसके बाद मार्ग सहज और सुगम है। प्रथम भूमिका जितनी विकट होती है, उतनी उसकी प्रत्येक भूमिका विकट नहीं होती। पुरुषार्थकी धारा तो सबमें चालू ही रखनी पड़ती है। पुरुषार्थकी धारा तो। लेकिन प्रथम भूमिक विकट होती है।

मुमुक्षु :- उसे टिकाये रखना विकट है।

समाधान :- प्राप्त करना विकट है। टिकाये रखनेमें भी पुरुषार्थ चाहिये। प्राप्त किया है उसे टिकाये रखना वह अपने पुरुषार्थसे (होता है), परन्तु प्राप्त करना अधिक विकट है। प्राप्त करनेके बाद टिकाना विकट है, लेकिन जिसे पुरुषार्थ चलता हो उसे विकट नहीं है। जिसका पुरुषार्थ छूट जाता हो उसे विकट है। पुरुषार्थ छूटे तो। जिसे पुरुषार्थ चलता हो उसे विकट नहीं है, पुरुषार्थ नहीं चलता हो उसके लिये विकट है, उसे टिकाना विकट है। जो अप्रतिहत धारासे चला हो, चारों पहलूसे (यथार्थ प्रकारसे) शुरूआत की हो, उसे टिकाना विकट नहीं है। लेकिन जो चारों पहलूसे नहीं चला हो तो उसके लिये विकट है। लेकिन प्रथम भूमिका अधिक विकट है।

... विकल्प टूट जाये तो आती है। लेकिन पहले विचार करके निर्णय करे तो उसमें भी उसे महिमा आती है। परन्तु यथार्थ महिमा तो उसमें वह लीन हो, स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हो तो उसे यथार्थ महिमा आती है। स्वयं विचार करके नक्की करता है, वह विचार करके नक्की करता है, तो भी उसे महिमा आती है। अनन्त जीव मोक्षमें गये हैं, अपना स्वभाव है इसलिये। अनन्तने भेदज्ञानको प्रगट किया, चारित्रदशा प्रगट की, अनन्त जीव मोक्षमें गये हैं, अपना स्वभाव है इसलिये। पहले विकट लगता है। विकट होनेपर भी नहीं हो सके ऐसा नहीं है। कल वह सब आये थे न? (कहते थे), बहुत विकट है। विकट है लेकिन नहीं हो सके ऐसा नहीं है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- उसे प्रयत्न चालू रखना चाहिये।

समाधान :- प्रयत्न चालू रखना चाहिये।

.. जो चारों पहलूसे नहीं चला हो, कोई कारणसे शुरूआत की हो तो उसे पुरुषार्थ मन्द होनेका कारण बनता है। चारों पहलूसे चला हो उसे पुरुषार्थकी धारा चलती है। तो भी पुरुषार्थ तो उसे आखिर तक अप्रतिहत धारासे पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता

है। ... लेकिन उसे सहज है, हठपूर्वक नहीं है। शुरूआत होनेमें फ़र्क़ होता है।

मुमुक्षु :- किसीकी शुरूआत ऐसी हो कि सम्यग्दर्शन हो और वापस..

समाधान :- पुरुषार्थ कम हो जाये, ऐसा होता है। शुरूआत करनेमें फ़र्क़ होता है।

मुमुक्षु :- धर्म सम्बन्धी शंका हो कैसे? गुरुदेव इतना ठोस बोलते हैं।

समाधान :- अन्दर स्वरूप को देखा और स्वानुभूति हुई, उसे निःशंकता क्यों नहीं आये? गुरुदेव कितने निःशंकतासे उनकी वाणीमें (कहते थे)।

मुमुक्षु :- आपने यह कहा कि स्वयंसे ही होता है। उसमें आपका बोलनेमें बहुत जोर था। उस वक्त मुझे ऐसा लगा कि वाकईमें ज़ोर है। आपने कहा कि, कोई नहीं कर देता।

समाधान :- स्वयं ही है, कोई कर नहीं देता। देव-गुरु-शास्त्र उसमें निमित्त होते हैं, परन्तु उपादान तो स्वयंको ही करना है, तैयारी तो स्वयंको करनी पड़ती है। देव-गुरु-शास्त्र निमित्त होते हैं। अनादिकालसे देव और गुरु मिले तब अन्दर देशनालब्धि होती है। ऐसा सम्बन्ध है। परन्तु तैयारी तो स्वयंको करनी पड़ती है, पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- उतनी रुचि कम है?

समाधान :- उतनी रुचि, उतना प्रयत्न सबकी कमी है। कारण पूरा दे तो कार्य हुए बिना नहीं रहता। कारणमें कचास है इसलिये कार्य नहीं होता।

मुमुक्षु :- ... उस वक्त अनादिका जो अभ्यास है, उसमें जुड़नेके बाद आपने जो हमें ज्ञान दिया है, आपने और गुरुदेवने, उससे ज्ञानको वापस मोड़ते हैं, परन्तु पहले तो जुड जाते हैं।

समाधान :- उसमें जुड़ जाता है। फिर उसे विचार आये कि यह मेरा स्वभाव नहीं है। परन्तु पहले जुड जाता है। एकत्वबुद्धि है, अनादिका अभ्यास है, उसमें जुड जाता है। परन्तु जिसे भेदज्ञान यथार्थ हो, वह स्वयं जुड़ता ही नहीं, भिन्न ही रहता है। उसकी ज्ञानकी धारा, ज्ञायककी ज्ञानधारा भिन्न ही रहती है और यह एकत्वबुद्धिके कारण पहले जुड जाता है और बादमें उसे भावना, जिज्ञासा है इसलिये विचार आता है।

विचार और भावना करते-करते, स्वयं प्रयत्न करते-करते भिन्न पड़े। प्रयत्न करते-करते (भिन्नता करे)। पहले तो अनादिकी एकत्वबुद्धि है इसलिये जुड जाता है। परन्तु उसकी भावना, जिज्ञासा, पुरुषार्थ बारंबार भिन्न पडनेका, बारंबार-बारंबार प्रयत्न करे, उससे थके नहीं। उसे रुखा नहीं लगे, उसे ज्ञायककी महिमा लगे। उसे रुखा नहीं लगे

तो बारंबार प्रयत्न करते। बारंबार उसका निरंतर चालू रखे। अनादिसे एकत्वबुद्धिका अभ्यास है वह निरंतर चौबीसों घण्टे चलता है। इसका थोड़ा अभ्यास करे तो (हो नहीं जाता)। नहीं तो अपना स्वभाव है, सहज है, लेकिन विभावके अभ्यासके कारण विकट हो गया है।

मुमुक्षु :- ... पुरुषार्थकी जागृति हो और भेदज्ञानका मंत्र.. आत्माकी वृद्धि हो, शान्ति हो और हमारी ज्ञायककी ज्योत...

समाधान :- स्वयं पुरुषार्थ करता नहीं। जबतक नहीं होता तबतक उसकी पुष्टि रहे। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, वांचन, तत्त्वके विचार आदि करता रहे। अशुभमेंसे छूटकर शुभमें आये, लेकिन शुद्धात्मा तो भिन्न है। उस शुद्धात्माको पहचाननेका, भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करना। वह नहीं हो, तबतक शुभभाव तो बीचमें आये बिना नहीं रहते। सम्यग्दर्शन हो, भेदज्ञान हो परन्तु बीचमें विभाव परिणाम (आते हैं), फिर भी उसे लीनताका पुरुषार्थ चलता है।

प्रथम भूमिका तो विकट है। विकट भूमिकामें स्वयं बारंबार उसका प्रयास करता रहे। अनादिकी दृष्टि पर ओर है, दृष्टि अपनी ओर नहीं है। सब बाहरका देखता रहता है, अंतर आत्माको नहीं देखता। जो सहज है और सुगम है, उसे देखता नहीं। इसलिये दुर्लभ हो गया है।

मुमुक्षु :- आत्मा प्राप्त करनेके लिये तीव्र पुरुषार्थकी जरूरत है।

समाधान :- हाँ, तीव्र पुरुषार्थकी जरूरत है। जिसे होता है उसे अंतर्मुहूर्तमें होता है। स्वयं ही है। लेकिन नहीं हो उसके लिये तीव्र पुरुषार्थ करनेकी जरूरत है। करे तो हो सकता है, नहीं हो ऐसा नहीं है, लेकिन स्वयं करता नहीं। अनन्त जीव पुरुषार्थ करके मोक्षमें गये हैं। लेकिन स्वयं करे तो होता है। एकत्वबुद्धि दिन-रात चलती है, उसमेंसे भिन्न होकर इसका अभ्यास तो कुछ समय करता है। उसका अभ्यास यदि निरंतर (करे).... लेकिन वह कब हो सकता है? उतनी लगनी लगे तो होता है, नहीं तो कैसे हो।

मुमुक्षु :- हठ या जल्दबाजी काम नहीं आती।

समाधान :- हाँ, जल्दबाजी काम नहीं आती, हठ करे तो काम नहीं आती। अन्दरसे स्वयंको सहज लगना चाहिये, तो होता है। नहीं हो रहा है इसलिे जल्दी करे या हठ करे या आकूलता करे या उलझनमें आ जाये तो कुछ नहीं होता है। भावना हो। उसे भावनाके कारण मार्ग नहीं सूझता इसलिये उसकी उलझन ऐसी नहीं होनी चाहिये कि स्वयं निराश हो जाये। ऐसा नहीं होना चाहिये।

मुमुक्षु :- जब हाथमें नहीं आता है, उस वक्त प्रेरक बल कौन-सा कार्य करता

है?

समाधान :- आत्मा हाथमें नहीं आये तो भी उसका बारंबार प्रयास करते रहना। मैं तो भिन्न ही हूँ। उसके विचार करता रहे, उसकी प्रेरणाके लिए। करना तो यह एक ही है। दूसरा तो कुछ नहीं है। महिमा नहीं आती हो तो महिमा लाये। उसका स्वभाव पहचाननेका प्रयत्न करे। देव-गुरु-शास्त्र, गुरु क्या कहते हैं, जिनेन्द्रदेवने क्या कहा है? गुरुदेवने उपदेशमें बहुत कहा है। गुरुदेवका उपदेश याद करे कि गुरुदेवने क्या कहा है? गुरुदेवने तो पुरुषार्थ हो ऐसी बहुत प्रेरणा दी है। गुरुदेवका उपदेश याद करना। शास्त्र स्वाध्याय करे, विचार करे। लेकिन करना तो अंतरमें है। बाहर थोडा शास्त्र स्वाध्याय करके यह सब विचार, वांचन करके मान ले कि मैंने बहुत किया है, ऐसा माने तो नहीं होता। करनेका अंतरमें है।

गुरुदेवका उपदेश प्रेरणा दे रहा है। गुरुदेवका उपदेश इतना जोरदार था कि दूसरेका पुरुषार्थ चालू हो जाये, ऐसा उनका प्रेरणादायक (उपदेश) था। तू कर। जोरदार सिंहकी दहाड लगाते थे। लेकिन स्वयं करता नहीं। उपादान तो बलवान था, लेकिन स्वयंने ही नहीं किया है। स्वयंके प्रमादके कारण चैतन्यको (जाना नहीं)। 'निज नयननी आळसे रे निरख्या न हरिने जरी।' स्वयंके प्रमादके कारण स्वयं देखता नहीं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-०४१

मुमुक्षु :- लकड़हारा तुरंत धर्म प्राप्त करे और मोक्षमें जाता है। तो .. इतनी देर लगती है?

समाधान :- लकड़हारा प्राप्त करता है, पुरुषार्थ करे उसे होता है। सब आत्मा ही है। उसका देह लकड़हारेका मिला उसमें क्या हुआ? जो पुरुषार्थ करता है उसे होता है।

मुमुक्षु :- सब मुमुक्षुओंकी भावना तो यही है कि बारंबार भाग-भागकर ...

समाधान :- हाँ, लेकिन पुरुषार्थ उतना नहीं है। पुरुषार्थ नहीं है, भावना है। भावना करता रहे लेकिन जो मार्ग है, उस मार्गको स्वयं अंतरमेंसे पुरुषार्थ करके प्रगट नहीं करता है। भावना करता रहे।

मुमुक्षु :- भावना आसान है, पुरुषार्थ कठिन पड़ता है न।

समाधान :- पुरुषार्थ कठिन पड़ता है, जो वस्तु है उस वस्तु अनुसार कार्य करना। वह आता है न? मुझे बंधन है, मुझे बंधन है, ऐसा विचार करता रहे। बंधन है-बंधन है करते रहनेसे बंधन टूटता नहीं, बंधनको तोड़े तो बंधन टूटता है।

मुमुक्षु :- तोड़नेके लिये तो हम सब आपके पास आते हैं।

समाधान :- तोड़ना तो अपने हाथकी बात है। उसे दूसरा कोई नहीं तोड़ देता। विचार श्रृंखला, शास्त्रमें (आता है) विचार श्रृंखला। बंधन है, बंधन है ऐसी विचार श्रृंखला करता रहे तो बंधन टूटता नहीं। मैं भिन्न-भिन्न (हूँ), भले भावना करे। दूसरी भावनासे यह भावना उसकी अच्छी है, विचार करता रहे कि मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, ऐसे विचार करते रहनेसे (भिन्नता नहीं होती)। भिन्नता करनेका प्रयत्न करे तो भिन्न पड़ता है। बेड़ीका बंधन है, बंधन है, ऐसा करे, तोड़ना है, ऐसा विचार करे तो भी नहीं टूटता। तोड़नेका कार्य करे तो ही टूटे।

भावना करता रहता है, मुमुक्षु (विचार करता है कि) मैं भिन्न हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। कब प्रगट हो, ऐसा विचार करे, विचार करनेसे नहीं होता। विचार भले ही उसे एक साधनके स्थान पर रहे, लेकिन तोड़ना तो अपने हाथकी बात है। तोड़े बिना टूटता नहीं।

मुमुक्षु :- ऐसा आता है कि ज्ञानीका एक शब्द सुने और अन्दरमें पटला हो जाता है।

समाधान :- पलट जाता है अपने पुरुषार्थसे। उपादान अपना है। पुरुषार्थके बिना पलटना नहीं होता। गुरुदेव कहते हैं न, अनेक बार भगवान मिल तो भी स्वयं अपने पुरुषार्थकी कमीके कारण पलटा नहीं। भगवानका निमित्त तो जोरदार था और गुरुदेवका निमित्त जोरदार था। लेकिन स्वयं पलटता नहीं।

मुमुक्षु :- पलटना नहीं आता।

समाधान :- आता नहीं ऐसा नहीं है, स्वयंकी उतनी तैयारी नहीं है, नहीं तो आये बिना रहे ही नहीं। लेकिन स्वयं पलटता ही नहीं।

मुमुक्षु :- भावना तो है कि पलटना है, पुरुषार्थ करना है।

समाधान :- पलटना है ऐसा विचार करे। बेड़ी तोड़नी है, उसे सूझे कि इस प्रकार बेड़ी तोडू, तो ही टूटे। बेड़ीसे जो उलझा हो, वह बेड़ी तोड़नेका मार्ग ढूँढे बिना रहता ही नहीं। उलझ गया है कि यह कैसे टूटे? उसका मार्ग चाहे जैसे पूछकर, स्वयं नक्की करके, चाहे जितने साधन इकट्ठे करके तोड़े बिना नहीं रहता। जो वास्वतमें उलझनें आया है, वह छूटे बिना नहीं रहता। स्वयंको अन्दरसे वास्तविक रूपमें लगी नहीं है। उतनी तीव्र तालावेली नहीं है। लगे तो तोड़नेका प्रयत्न स्वयं ही करता है।

मुमुक्षु :- अभी वर्तमान कालमें तो सभी मुमुक्षुओंको यह भावना है कि हमें ज्ञानी गुरुदेव मिले हैं, माताजी मिले हैं, बारंबार उनका परिचय करे, बारंबार उनके पास जायें, बारंबार समीप रहकर लाभ लें। ऐसी भावना है। वैसे सुनना, पढ़ना सब है। अब पलटनेमें विशेष...

समाधान :- अंतरमें धीरा होकर, सूक्ष्म होकर आगे जाना चाहिए वह नहीं जाता, अनादिसे यह सब करता रहता है। वह उसे कठिन लगता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानी बारंबार कहे तो भी उसे आगे नहीं बढना है?

समाधान :- करना तो स्वयंको ही है, दूसरा कोई नहीं कर देता।

मुमुक्षु :- महाविदेह क्षेत्र जैसा अभी योग है। उसमें यही एक करने जैसा है। फिर भी इतनी देर लगती है?

समाधान :- स्वयं अन्दर विचार करके देखे कि स्वयं ही प्रमाद करके अटका है। तो स्वयंको पकड़ सकता है कि स्वयं ही अटका है, कोई रोकता नहीं।

मुमुक्षु :- कोई डॉक्टर ऐसा इंजेक्शन लगाता है तो त्वरासे दर्द मिट जाता है। वैसे आप..

समाधान :- वह सब तो बाहरका पुण्योदय है। इंजेक्शन देकर नहीं भी मिटे,

ऐसा भी बने। गुरुदेवका तो ऐसा था कि जो अन्दर कार्य करे उसे असर किये बिना रहे ही नहीं। लेकिन स्वयंको कार्य करना है। स्वयं कार्य करता नहीं। स्वयंकी भूल है।

मुमुक्षु :- स्वयंको स्वस्थ नहीं होना है।

समाधान :- स्वयं तैयार नहीं होता। 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई'। स्वयंकी भूल है, पर क्या करे? बाहरके साधन क्या करे? स्वयं ही नहीं पलटता है।

मुमुक्षु :- पलटना इतना कठिन है कि स्वयं पलटता नहीं?

समाधान :- अनादिका अभ्यास है। कठिन नहीं है, सहज है। लेकिन स्वयंका प्रमाद है। ... जागृत ही नहीं होता, ऐसा है। जागृत होना अपने हाथकी बात है। गुरुदेवकी वाणी सबको जागृत करती है। सबको रुचि तो हुई, फिर पुरुषार्थ करना तो स्वयंके हाथमें है। उनक वाणी ऐसी थी कि सबको रुचि हो जाय। आत्माकी ओर रुचि प्रगट हो जाय। यह सब संसार निःसार है। आत्मा ही एक सारभूत है। ऐसे कितने ही जीवोंको अन्दर रुचि हो जाय। लेकिन फिर आगे बढना अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- आपकी वाणी सुननी है...

समाधान :- ... विभाव परिणति होती है, वह स्वयंके पुरुषार्थकी मंदतासे होती है। मंदतासे होती है, लेकिन उसमेंसे भेदज्ञान करे कि मैं यह चैतन्य हूँ, दूसरा कुछ मेरा स्वरूप नहीं है। स्वयं ग्रहण करे उसमें उसे अपना पूर्ण स्वरूप उसे प्रतीतमें आ गया। लेकिन बादमें उसे भेदज्ञानकी धारा निरंतर रहती है। ऐसे विकल्पसे निर्णय करे ऐसे नहीं, परंतु सहज रहे। सहज प्रतिक्षण दिन-रात, क्षण-क्षणमें भिन्न परिणति रहे। उसमें परिणति सहज रहे। उसनें लीनता करते-करते उसे सहज लीनता बढे तो पूर्ण पर्याय प्रगट होती है। पूर्ण स्वरूप तो केवलज्ञान हो तब होता है।

मुमुक्षु :- ग्रहण कैसे करना? कैसा पुरुषार्थ करना?

समाधान :- पूर्ण केवलज्ञान तो इस कालमें प्रगट नहीं होता। अभी तो भेदज्ञान और सम्यग्दर्शन मात्र होता है और चारित्रदशा तक अमुक (हद) तक पहुँचा जा सकता है। क्योंकि अभी उतनी पुरुषार्थकी धारा केवलज्ञान हो वहाँ तक (नहीं पहुँचती)। यह पंचम काल है न। जब यहाँ महावीर भगवान विचरते थे, तब यहाँ केवलज्ञान पर्यंत सब पहुँचते थे। लेकिन अभी तो एक सम्यग्दर्शन और उसकी अमुक प्रकारसे लीनता होती है। लेकिन उसका पूर्ण ग्रहण, उसका द्रव्य स्वरूप तो पहले ग्रहण हो जाता है।

मैं चैतन्य द्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत हूँ। मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ। जो जाननेवाला है वह स्वयं है। स्वयं ही जाननेवाला है। उसे पूर्ण ग्रहण हो जाना चाहिये। उसके बाद उसकी पर्याय अर्थात् उसकी जो केवलज्ञानकी दशा है वह बादमें होती है। लेकिन

पहले उसे पूर्ण ग्रहण होता है। पूर्ण ग्रहण होकर भेदज्ञानकी दशा रहती है। भेदज्ञानकी दशामेंसे वह स्वरूपमें ऐसा लीन होता है कि कोई बार उसे विकल्प छूट जाता है। विकल्प छूटकर न्यारा हो जाता है। न्यारा होता है, उसमें ज्ञान और आनंदसे भरा आत्मा है। ज्ञान-आनन्दसे अपूर्व भरा है। बाह्यसे उपयोग छूटकर अंतरमें जाय। ऐसा उपयोग (हो जाता है कि) जगतसे जुदा कोई जात्यांतर कि जिसकी जाति जगतके साथ मेल नहीं आती। ऐसा उसे अपूर्व आनन्द और निर्विकल्प दशा कोई अपूर्व प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन तीन प्रकारके हैं न? तो उपशम सम्यग्दर्शन तो नियमसे चला जाता है न?

समाधान :- हाँ।

मुमुक्षु :- तो फिर ऐसा क्या करना कि ज्ञानीका ही संयोग मिले? मुझे तो इतना ही कहना है कि मुझे ऐसा कहो कि गुरुदेवके पास ही मेरा जन्म हो, उसके अलावा कुछ नहीं। उसके लिये जो कुछ करना पड़े वह करनेके लिये मैं तैयार हूँ। मुझे इतनी आत्माकी रुचि है कि उतना मुझे कोई साथ नहीं देता। मैंने कितना सहन किया है धर्मके लिये। मुझे कितनी रुचि, मुझे आत्माकी तीव्र रुचि है। एक आत्मा ही चाहिये।

समाधान :- गुरुदेवके पास जन्म हो, वह वैसी भावना रखे कि मुझे संतोंका समागम मिले, गुरुका समागम मिले।

मुमुक्षु :- मुझे कितने याद आते हैं। मैंने देखा नहीं है। कल भी मैं सारी रात रोती थी, गुरुदेवको याद करके। लेकिन मुझे कोई समझाता नहीं। मुझे आत्मा चाहिये, कोई वाणी नहीं है। कितनी रोती थी।

समाधान :- गुरुदेव स्वप्नमें आते हैं?

मुमुक्षु :- हाँ, मैंने तो देखा नहीं है और इस प्रकार आते हैं। इसलिये मैं आपके पास आयी हूँ। मुझे मानो कि कहते हो, दिलासा देते हैं। मुझे इतनी अटूट श्रद्धा है। मैंने सोनगढ़ भी आज ही देखा।

समाधान :- सोनगढ़ आज ही देखा? स्वाध्याय मंदिर है न? उसमें गुरुदेव ४५ साल (रहे), स्वाध्यायमें रहे। पहले तीन साल एक बंगलेमें रहे। फिर तीन सालके बाद यहाँ (रहने लगे)। गुरुदेव इस सोनगढ़में ४५ साल रहे। तीन सालके बाद हमेशा सोनगढ़में स्वाध्याय मंदिर है न? उसमें उनकी प्रतिकृति है। वहाँ गुरुदेव ४५ साल, लगभग ४५ साल तक यहाँ विराजे हैं। जब-जब चातुर्मास आये, चातुर्मासमें नहीं जाते थे। थोड़े साल तो यहीं रहते थे। विहार भी नहीं करते थे। बाहर भी नहीं जाते थे। चार-पाँच सालके (बाद जाने लगे)। फिर विहार राजकोट, मुंबई बहुत बार पधारते थे। मुंबई

पधारते थे, लेकिन आपको मालूम नहीं होगा।

मुमुक्षु :- लेकिन मैं जैन नहीं हूँ ना, बहिन! इसलिये मुझे क्या मालूम कि यह धर्म है कि ऐसा है। एक बार श्रीमद् राजचंद्र पुस्तक हाथमें आया, तो मुझे लगा, अरे..! ऐसा जैन धर्म है! फिर खोजते-खोजते कितना सहन करके देववलालीमें रुकी। ध्यान करती थी, वहाँ गुफामें। सबको यही प्रार्थना करती थी। लेकिन पीछले तीन महिनेमें गुरुदेवका मुझे इतना निश्चय हो गया है कि... लिखना हो तो मुझे अन्दरसे आता है।

समाधान :- ऐसा आता है। आपकी भावना अच्छी है। बहन! थोड़ा विचार करना, कुछ वांचन करना। द्रव्य और पर्याय। द्रव्य-गुण और पर्याय द्रव्यका स्वरूप है। द्रव्यमें वह ज्ञायक है। वह ज्ञायक स्वतः ज्ञायक है। किसीने उसे बनाया नहीं है। ज्ञायक है वह ज्ञायक है। ज्ञायक ऐसा है कि उसमें अनन्त गुण भरे हैं। अनन्त गुणमें एक ज्ञान और एक आनन्द (है)। आनन्द गुण तो ऐसा है कि कोई अनुपम है। कोई विकल्पसे उसकी कल्पना नहीं हो सकती। ऐसा कोई न्यारा ही है। विकल्प छूट जाय। वह कोई अलग ही है। आनन्द, ज्ञान इत्यादि अनन्त गुणोंसे भरा है कि जिसका पार नहीं। जिसे बोल भी नहीं सकते, जो वाणीमें नहीं आते। कोई अनन्त गुणसे भरा ऐसा कोई आत्मा है। पहले उसकी श्रद्धा होती है कि यह जाननेवाला ज्ञायक है। ज्ञान होता है न? लेकिन वह ज्ञायक (है)। ज्ञायकको ग्रहण करना। लेकिन उसकी स्वानुभूति और उसके अनन्त गुण जो स्वानुभूतिमें आते हैं, अन्दर विकल्प छूट जाय वह अन्दरमें कुछ अलग होता है।

उसे अन्दर स्वानुभूति कोई अलग (होती है)। फिर भी आप अन्दर विचार करना। अन्दर भेदज्ञानकी धारा क्षण-भण (चलती है)। उसे विचार नहीं करना पड़े कि मैं यह भिन्न हूँ। पुरुषार्थकी धारा अन्दरमें चलती रहे। मैं यह भिन्न हूँ, भिन्न हूँ। जो-जो विज्ञकल्प आये उसी क्षण मैं भिन्न हूँ। शुभभाव जो आते हैं कि मुझे गुरुदेव मिले, ऐसे शुभभाव, वह सब शुभभाव है। और दूसरे लौकिक भाव है वह अशुभभाव है। दोनों भावसे भिन्न आत्मा है। शास्त्रमें आता है कि उन सबसे भिन्न है, आत्मा तो भिन्न ही है। उसकी अंतरमें श्रद्धा बराबर करनी। और ज्ञायक-ज्ञायक करते हुए यदि उसमें लीन हा जाय तो पूर्णता होती है। लेकिन वह लीनता, अभी तो गृहस्थाश्रममें है इसलिये सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शनमें उसे भेदज्ञानकी धारा, स्वानुभूति होती है। स्वानुभूतिमेंसे पुनः बाहर आता है। बाहर आता है तो भेदज्ञानकी धारा चलती है। अन्दर जाय तो स्वानुभूति होती है। ऐसी दशा अमुक प्रकारकी होती है।

उसके बाद उसे जब मुनिदशा आती है, मुनिदशा आये उसमें ऐसा त्याग हो जाता

है कि जंगलमें जाकर क्षण-क्षणमें स्वानुभूति करते हैं। क्षण-क्षणमें स्वानुभूति। ऐसी दशा हो जाती है। मुनिओंको ऐसी प्रतिक्षण स्वानुभति होते-होते, वे ऐसे अन्दर स्थिर हो जाते हैं कि उसमें पूर्ण केवलज्ञान हो जाय। तब पूर्ण होता है। उसे ऐसी कोई मुनिदशा आती है कि उसे जगतकी कुछ पडी नहीं है। ऐसे मुनि जंगलमें रहते हैं। जंगलमें रहते हैं उसे बाहरकी खानेकी, पीनेकी, आहारकी कुछ (पड़ी) नहीं है। वे जंगलमें रहते हैं। ऐसी मुनिदशा आये, ऐसी मुनिदशा आये उसमें ऐसे लीन हो जाते हैं, तब उन्हें केवलज्ञान पूर्ण दशा प्रगट होती है। पूर्ण दशा करनेके लिये, वह तो बहुत तैयारी हो तब होती है। लेकिन उसके पहले जो सम्यग्दर्शन होता है, उस सम्यग्दर्शनमें भवका अभाव हो जाता है। फिर उसे अधिक भव नहीं रहते।

मुमुक्षु :- ऐसा ही लगता है कि भव है ही नहीं। इतना बल क्यों आता है?

समाधान :- अच्छी बात है, लेकिन अन्दर थोड़ा अधिक (प्रयत्न करना)। गुरुदेवकी भावना रहती हो तो गुरुदेव प्रति शुभभावना रहे तो उसका जन्म उसी प्रकारसे होता है। जिसे उग्र शुभभावना रहती हो, उग्र भावनासे ऐसा बनता है। और उपशम सम्यग्दर्शनकी तो स्थिति ही ऐसी है कि अनादिमें सर्व प्रथम हो तब उपशम ही होता है, फिर उसे क्षयोपशम होता है। वह तो ऐसा ही .. है।

मुमुक्षु :- वह चला नहीं जाय, उसके लिये क्या करना?

समाधान :- भेदज्ञानकी धारा चालू रखनी।

मुमुक्षु :- हमें तो कोई ज्ञानीका समागम भी नहिं मिलता, किसके पास (जायें)? आपमें तो सर्वस्व है, फिर भी कोई प्रेरणा देनेवाला, कोई वाणी.. कहाँ मिले?

समाधान :- ये देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य हो तो होता है। मुंबईमें साधर्मी हैं, अपना वांचन चलता है। आप कहाँ रहते हो?

मुमुक्षु :- बोरीवलीमें।

समाधान :- मलाड़ आपके पास है?

मुमुक्षु :- हाँ। यहाँ इतनी दूर आयी हूँ तो वहाँ तो (जा सकती हूँ)। मुझे तो चाहे जैसे हो, चाहिये।

समाधान :- मलाड़में वांचन चलता है। गुरुदेवके शास्त्रका स्वाध्याय होता है, वहाँ मन्दिर है।

मुमुक्षु :- लेकिन यह तत्त्व इतना गहरा है, पढत-पढते ऐसा होता है, एक वाक्य पढने पर लगता है, मुझे उनका हृदय अब मालूम पडता है। मैंने तो देखे नहीं। ऐसा सब लिखा है! मानो साक्षात् भगवानका लिखा हो!

समाधान :- हाँ, साक्षात् भगवानका लिखा है।

मुमुक्षु :- इतना उनका होता है कि अलौकिक!

समाधान :- हाँ, अलौकिक है। लेकिन आपको अधिक समझना हो तो मलाड़में स्वाध्याय चलता है, गुरुदेवके शास्त्रका स्वाध्याय चलता है, गुरुदेवके प्रवचनका स्वाध्याय चलता है। यह शास्त्र-मूल शास्त्र समयसार चलता है, प्रवचनसार चलता है। वहाँ सब चलता है। वहाँ मलाड़में कौन वांचन करते हैं?

मुमुक्षु :- चीमनलाल ठाकरशी।

समाधान :- चीमनलाल ठाकरशी। उन्हें आप कुछ पूछेंगे तो प्रश्नके उत्तर भी देंगे।

मुमुक्षु :- वहाँ हमेशा वांचन आदि चलता है।

समाधान :- हाँ, वांचन चलता है। वहाँ भगवानका मन्दिर है, वहाँ पूजा होती है, वांचन चलता है, सब होता है।

मुमुक्षु :- कितना भटकते हैं, लेकिन कुछ मिलता नहीं। कोई ज्ञानी (नहीं मिलते)। कितनी जगह गई। कोई कहता है, यहाँ है, यहाँ जाओ, वहाँ है, वहाँ जाओ।

समाधान :- वहाँ मुमुक्षु हैं। गुरुदेवके प्रवचन जिन्होंने सुने हैं, गुरुदेवका परिचय जिन्होंने किया है, वैसे लोग वहाँ हैं। आप वहाँ (रहो) तो आपको ज्यादा ख्याल आयेगा। आपको क्या चलता है, दूसरा तो कैसे मालूम पड़े? आपको क्या है वह आपको ही नक्की करना पड़े।

... चलती हो, और कोई-कोई बार उसे स्वानुभूति होती है। भेदज्ञानकी धारा चलती है।

मुमुक्षु :- ऐसा लगता है कि स्वानुभूति ऐसी है। भेदज्ञानकी धारा चले तो आप जैसे कहते हो वैसा सहज चलता ही रहे।

समाधान :- .. पूरा द्रव्य आ जाता है। एक-एक गुण पर दृष्टि नहीं, अखण्ड अभेद पर दृष्टि होती है।

मुमुक्षु :- ऐसा ही। भेद नहीं, अखण्ड अभेद। क्योंकि अन्दरमें वैसी ही वस्तुस्थिति अन्दरमें है।

समाधान :- ..जैसे हिरेमें चमक होती है। वैसे वस्तु एक है, लेकिन उसमें पर्याय (हैं)। ज्ञान ज्ञानका कार्य लाये, चारित्र चारित्रका कार्य लाये, वह सब कार्य लाते हैं। लेकिन अभी ज्ञान, दर्शन, चारित्र प्रगट नहीं हुए हैं, इसलिये ज्ञान, दर्शन, चारित्र विभावमें वर्तते हैं। स्वभाव प्रगट हो तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र स्वभावकी ओर प्रगट होते हैं, उसका कार्य आता है। लेकिन भेद पर उसकी दृष्टि नहीं होती। ज्ञानमें सब होता है। जानता है, लेकिन दृष्टि तो एक द्रव्य पर, अभेद पर होती है।

मुमुक्षु :- दोनोंकी संधिके बीच प्रज्ञाछैनी पटकनेसे, कहा है न? कि दोनोंकी संधिमें...

समाधान :- हाँ, प्रज्ञाछैनी संधिमें (पटकनी)।

मुमुक्षु :- वह साधन है न? वह पटकनेके बाद भेदज्ञान हो जाता है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०४२

मुमुक्षु :- जब ऐसी अनुभूति हुई तब मैंने लिखा कि, नौ तत्त्वसे रहित मुझे नहीं हुआ है। मैं तो नौ तत्त्वसे रहित हूँ।

समाधान :- वह तो द्रव्य। पर्यायमें तो है। द्रव्य शुद्ध है, उसकी पर्यायमें अशुद्धता है। पर्याय अपेक्षासे नौ तत्त्व है और द्रव्य अपेक्षासे स्वयं अभेद है। पर्यायमें, उसकी जो वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था होती है, उसमें उसे पुण्य-पापके परिणाम होते हैं। फिर आगे गया इसलिये संवरकी पर्याय होती है। निर्जराकी पर्याय होती है। वह सब पर्याय, जब तक साधना करता है, पूर्ण नहीं हुआ है, साधना करता है, वहाँ संवर होता है, निर्जरा होती है, मोक्षकी पर्याय होती है। लेकिन मात्र उस पर्याय जितना द्रव्य नहीं है। द्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत है, द्रव्य अनादिअनन्त है। और पर्याय है, पर्याय बिलकूल है ही नहीं, ऐसा नहीं है। उसे भूतार्थ दृष्टिसे देखो तो अबद्धस्पृष्ट आत्मामें नहीं है। न ही बँधा है, न ही स्पर्शित है। सामान्य (है), विशेषरूप नहीं है।

जिसने उस दृष्टिसे देखा कि, कमलिनीका पत्र निर्लेप है। कमल पानीसे निर्लेप रहता है। लेकिन पानीकी ओरसे देखा तो वह पानीसे लिप्त है। और कमलकी ओरसे देखो तो वह लिप्त नहीं हुआ है। और द्रव्यकी ओर देखे तो वह लिप्त नहीं हुआ है। लेकिन उसकी पर्यायकी ओर देखो तो वह लिप्त है। यदि लिप्त नहीं हो तो यह सुख-दुःखका वेदन किसे होता है? सह सब पुरुषार्थ क्यों करना? बंध-मोक्ष क्यों करना? इसलिये वह दोनों दृष्टि ज्ञानमें रखनी। और एक द्रव्यकी ओर देखे तो स्वयं लिप्त नहीं हुआ है। और पर्यायकी ओर देखो तो वह लिप्त है। लेकिन उसे भिन्न करके, अनादिसे भिन्न नहीं करता। मैं लिप्त हूँ, लिप्त हूँ, ऐसा करता रहता है। लेकिन उसे भिन्न करके, मैं भिन्न ही हूँ, यह मेरेमें नहीं है। नहीं है, ऐसा करता है तो भी खड़ा रहता है। भेदज्ञानमें प्रतीत की तो भी खड़ा रहता है, इसलिये स्वरूपमें स्थिर हो जाय, स्थिर हो जाय, अधिक स्थिर होता जाय तो उसका नाश हो। स्थिर होता जाय। गृहस्थाश्रममें अमुक प्रकारसे स्थिर हुआ है। फिर जब मुनि हो जाय, बाहरका सब छूट जाय, जंगलमें चला जाय, आत्माका ध्यान करे, अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें आत्मामें झुलता हो, तब उसे छूटे। फिर भी थोड़ा रहता है। लेकिन फिर एकदम स्वानुभूतिमेंसे बाहर ही नहीं आये

ऐसी दशा होती है, तब पूर्ण होता है। तब वह वीतराग होता है। तब तक वह रहता है। तब तक पहले उसकी साधकदशा, सम्यग्दर्शनकी दशा होती है। पूर्णताके लक्ष्यसे शुरूआत (होती है)। पूर्ण द्रव्य, द्रव्यको ग्रहण कर लिया। लेकिन अभी उसकी दशा वेदनमें आनन्दकी दशा पूर्ण हो, वह बादमें होती है। स्वानुभूति होती है उस वक्त अकेला आनन्द (होता है)। बाहर आये तो अमुक प्रकारसे शांति रहती है। बाकी स्वानुभूतिका आनन्द वह बाहर होता है, तब नहीं आता है। स्वानुभूतिका आनन्द तो कोई अलग ही होता है। उसका किसीके साथ मेल नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसा ही उस वक्त लगा था। जगतकी कोई वस्तु प्राप्त करे और आनन्द नहीं हो, वैसा अपूर्व आनन्द, एकदम भिन्न प्रकारका आनन्द।

समाधान :- (द्रव्य स्वभाव) तो शाश्वत है। यह सब तो अशुद्ध है।

मुमुक्षु :- वह अपनी निज शक्ति है। इसलिये निज स्वरूप शक्ति है और शक्तिका वही स्वरूप है।

मुमुक्षु :- बहिनश्रीके वचनामृत पुस्तक..

मुमुक्षु :- मैंने सब पढा है। फिर मालूम हुआ कि द्रव्यको भिन्न करके देख। वह तो कोई अलौकिक बात है। स्वंयका स्वयं ही जान सके, तब इतना बोले न। मुझे ऐसा लगता है कि गुरुदेव जैसी विरल शक्ति हमारेमें भी प्रगट हो। ... योग्य होनेके लिये पर्याय भी स्वतंत्र है, द्रव्य भी स्वतंत्र है। दोनों वस्तुएँ निरपेक्ष हैं। मानो अभी .. धारण कर ले, इतना लगता है कि चारित्र क्यों प्रगट नहीं हो? .. देखते ही नहीं। अभी चारित्र ग्रहण क्यों न करें? इसीलिये तो पहला प्रश्न वह पूछा। दूसरा कुछ नहीं। दिगम्बर निर्ग्रंथ मुनि बनकर और चारित्र ग्रहण करके... फिर सोगानीजीका पढा, इतना अच्छा लगा कि मानो उनकी दशा और मेरी दशा, जैसे अपने ही भाव क्यों न हो।

समाधान :- ... शुभभाव हैं। ... वह भी राग है। राग है लेकिन स्वयं अन्दर भेदज्ञान करे। पहले भिन्न हो जाय। श्रद्धा करे कि मैं ज्ञायक हूँ। उसे मुख्य रखे परन्तु दूसरा गौणमें तो रहता है। क्योंकि जब तक पूर्ण चारित्र न हो, तब तक बीचमें आये बिना रहता नहीं। चौथे कालमें गृहस्थाश्रममें श्रावक रहते थे। चक्रवर्ती, भरत चक्रवर्ती आदि सब चक्रवर्ती रहते थे। लेकिन वे आत्माको भिन्न जानते थे। क्षण-क्षण भिन्न जानते थे। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये तो भगवानके दर्शन करने जाते, उनकी पूजा करते, स्वाध्याय करते, सब करते थे। लेकिन उन्हें अन्दर भेदज्ञान चालू रहता था। समझे, अंतरमें वेदन ऐसा होता है कि यह मैं भिन्न हूँ। उसे जाने कि मैं इससे भिन्न हूँ। निरंतर, ऐसे सिर्फ बोलनेमात्र नहीं, विकल्पमात्र नहीं, लेकिन अन्दरसे रहा करे कि 'मैं

भिन्न ही हूँ, भिन्न ही हूँ, ऐसा उसे रहता है। लेकिन उसे सहजरूपसे जब तक चारित्र नहीं आता है, तब तक रहता है। चारित्र उसे सहज आता है। यदि उसे हठ करके ले तो मुश्किल हो जाता है। इसलिये सहज आता है। सहज आता है।

मुमुक्षु :- स्वरूप सहज है इसलिये..

समाधान :- इसलिये सहज आना चाहिये। क्योंकि स्वयंको विकल्प नहीं दिखता कि ज्ञायकको मुख्य करुँ, परन्तु अन्दर विकल्प पडे हैं। होते हैं सूक्ष्म-सूक्ष्म। अन्दर जो राग पड़ा है, वह उसे खड़ा होता है। इसलिये उसे सहज आना चाहिये। बाकी तो भरत चक्रवर्ती तो अरीसा भूवनमें क्षण भर खड़े थे, और सफेद बाल देखा तो वैराग्य हो गया। एकदम अंतरमें ऊतर गये और केवलज्ञान हो गया। लेकिन उतनी दशा अन्दर सहज आनी चाहिये। चारित्र लें, ऐसी भावना आये लेकिन अंतर सहज आना चाहिये।

मुमुक्षु :- उतना बल उछलना चाहिये।

उत्तर :- भावना भले उग्र हो जाय कि चारित्र ले लूँ, लेकिन अन्दर उतना सहज आना चाहिये। स्वयं सहज टिक सके उतना नहीं आये तो पहले उसे एकदम भाव आ जाये, सब छूट भी जाये, लिकन अंतरमेंसे आना चाहिये, अंतरमेंसे सहज आना चाहिये।

मुमुक्षु :- ज्ञायक ही ज्ञेय है, ज्ञायक ही ज्ञेय है। बाहर तेरा ज्ञेय ही नहीं है, पर ज्ञात ही नहीं होता।

समाधान :- ज्ञायक भले ज्ञात होता हो, ज्ञायक ही ज्ञात होता है, पर ज्ञात नहीं होता, लेकिन ज्ञायकका स्वभाव जाननेका है। उसक उपयोग रखकर नहीं जानता, भले वह रागसे नहीं जाने, रागसे जुदा हो, लेकिन वह ज्ञायक है। ज्ञायक है, अंतरमें यदि वीतरागदशा हो तो बिना इच्छा सहजरूपसे लोकालोकको जाने ऐसा ही उसका स्वभाव है। जाननेका स्वभाव है। ज्ञायक-जाननेवाला किसे कहते हैं? उसमें इतना जाने और नहीं जाने ऐसा नहीं होता, वह सब जानता है। ऐसा उसका जाननेका स्वभाव है। अनन्त-अनन्त जाननेका स्वभाव है। इस लोकके अनन्त द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, अनन्त भाव, जितने अनन्त जीव हैं, उन सबका जाने ऐसा उसका स्वभाव है। लेकिन वह उसे राग रखकर जानता है वह उसकी भूल है। इसलिये भले उसे अकेला ज्ञायक ज्ञात होता हो, लेकिन ज्ञायकका जाननेका स्वभाव है। वह जब पूरा होता है तब वह सब जाने, ऐसा उसका ज्ञायक स्वभाव है। भूत कालमें क्या था, वर्तमानमें क्या है, भविष्यमें क्या होगा, सब जाने ऐसा ज्ञायकका स्वभाव है। ऐसा ज्ञायक है, महिमावंत ज्ञायक है। अकेला ज्ञायक ज्ञात हो, श्रद्धामें ज्ञात हुआ कि मैं ज्ञायक। लेकिन ज्ञायक

ज्ञायकरूप हो जाना चाहिये। ज्ञायक ज्ञायकरूपसे श्रद्धामें हुआ। उसकी परिणतिमें अंशमें हुआ, आंशिक हुआ लेकिन पूर्ण होनेके लिये उसे प्रयास चाहिये। बिना प्रयास नहीं होता।

मुमुक्षु :- वह कैसा प्रयास?

समाधान :- बारंबार ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक। उसे सहजरूपसे ज्ञायक ज्ञायक होना चाहिये। ज्ञायक ज्ञायक करते-करते वह आगे बढे तो अकेला ज्ञायक हो जाता है। सबके बीच, विभावके बीच रहा तो है ही। विकल्प आते हैं, विकल्पके बीच रहा है, लेकिन विकल्पसे भिन्न हुआ। लेकिन उसे ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायककी उग्रता हो जाय तो वह होता है। ज्ञायककी उग्रता होनी चाहिये, सहजरूपसे।

जो ज्ञायक होनेवाला है, उसकी दशा ही अलग होती है। उसे आहारका विकल्प छूट जाय, चलनेका विकल्प छूट जाय, वह पूरा भिन्न हो जाता है, उसे सब विकल्प छूट जाते हैं। उसे आहारका, निद्राका सब विकल्प छूट जाय। ऐसा ज्ञायक हो जाय, (जब) ज्ञायककी उग्रता होती है (तब)। लेकिन पहले तो उसकी श्रद्धा होती है। उसकी श्रद्धा हो, उसकी परिणति हो, उसकी स्वानुभूति हो, लेकिन उसे पूर्ण होनेमें तो बहुत प्रयास होता है तब होता है।

मुमुक्षु :- श्रद्धाका स्वभाव तो ऐसा है कि एकको ही ग्रहण करती है।

समाधान :- एक ज्ञायकको ग्रहण करती है।

मुमुक्षु :- या तो बाहरका, या तो..

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे ग्रहण करे। लेकिन ज्ञान सब जानता है। श्रद्धामें तो ऐसा आता है कि मैं ज्ञायक हूँ। क्षण-क्षणमें ज्ञायक हूँ, ऐसा ग्रहण किया। लेकिन ज्ञानमें जानता है कि अभी विकल्प खड़े हैं। विकल्प खड़े हैं तब तक ज्ञायककी दशा पूर्ण नहीं है। अभी विकल्प खड़े हैं तब तक ज्ञायककी दशा पूरी नहीं है। विकल्प मेरेमें नहीं है वह बराबर, विकल्प नहीं है वह बराबर, लेकिन मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक-ज्ञायक करता है फिर भी अभी विकल्प खडे हैं, वह उसे ज्ञानमें रहता है। तब तक मुझे प्रयास करना है। विकल्प है तब तक प्रयास करना बाकी है। ज्ञायक-ज्ञायक भले ज्ञायक दिखता हो, दूसरा कुछ नहीं दिखाई दे, फिर भी विकल्प खड़े हैं वह तो स्वयं जानता है कि विकल्प तो खड़े हैं, इसलिये अभी प्रयास बाकी है। प्रयास करना बाकी है। भले ज्ञायक दिखाई दे, फिर भी विकल्प तो है। इसलिये प्रयास करनेका बाकी है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प होना है।

समाधान :- हाँ, निर्विकल्प होनेका बाकी है। पूर्ण निर्विकल्प। फिर विकल्प ही

उत्पन्न न हो, ऐसा निर्विकल्प। एक क्षण विकल्प छूट जाय ऐसा नहीं, विकल्प उत्पन्न ही न हो। ऐसा हो तो पूर्ण होता है। पूर्ण होना इस कालमें बहुत मुश्किल है। अभी तो उसे श्रद्धा-सम्यग्दर्शन हो, फिर आगे बढना, सहज आगे बढना (कठिन है)।

मुमुक्षु :- श्रद्धा और ज्ञानमें आपको दोष दिखता है?

समाधान :- आपका अधिक परिचय करुँ तो मुझे मालूम पड़े। बाकी आप बोलते हो उसमें तो..

मुमुक्षु :- मैं कल आपके पास आऊँगी।

समाधान :- ... उसकी श्रद्धा भी अंतरमेंसे आनी चाहिये। बहुत प्रकार होते हैं। विकल्पसे श्रद्धा करे, अंतरसे श्रद्धा करे, फिर विभावको गौण करे लेकिन अंतरमें अभी करनेका बहुत बाकी रहता है। बहुत करनेका बाकी है।

मुमुक्षु :- सब करना है, चाहे जितना बाकी क्यों न हो।

समाधान :- लेकिन ज्ञायककी दशा, स्वानुभूतिकी दशा.. अंतरमें जो करना है, उसमें बाहरसे कुछ करना नहीं होता, अंतरमें स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- आपको मैंने देखा नहीं था, लेकिन आपके हृदयका ख्याल था। कल रातको मैंने इतनी प्रार्थना कि थी, गुरुदेव! बहिनश्रीकी वाणीमें आकर मुझे समझाना। इतना... हम ऐसे कूत्तेके पिल्लूकी भाँति गुरुदेवके चरणमें बैठें...

समाधान :- उनकी टेपमें पहाड़ी और लोखंडी आवाज लगती है, गुरुदेवको साक्षात् देखे हों तो क्या लगे?

मुमुक्षु :- इतना अफसोस होता है, लेकिन क्या हो?

समाधान :- टेपमेंसे इतनी असर होती है..

मुमुक्षु :- इतना अफसोस रहता है, क्या करें?

समाधान :- क्या करे? स्वयंको पुण्य नहीं थे तो मिल नहीं सके। पुण्यकी बात है, क्या हो?

मुमुक्षु :- उसके लिये तो मैं कितनी रोती हूँ। सिर्फ इस एक बातके लिये, वाणी सुनते-सुनते। देखे बिना कैसे श्रद्धा हो? जैन नहीं हो, देखे नहीं हो, किसे ऐसी श्रद्धा हो?

समाधान :- हजारों लोगोंमें गुरुदेवका पहाडी आवाज, लोग समझे, न समझे लेकिन मुग्ध होकर आश्चर्यचकित होकर सुनते थे। आत्मा.. आत्मा.. आत्मा शब्द आये, सुनते। हजारों लोगोंमें उन्होंने व्याख्या दिये हैं।

मुमुक्षु :- .. प्रवचन था तो यह शब्द, गुरुदेवके यह शब्द, पर जाननेमें नहीं आता, भगवान आत्मा, तेरे हर उपयोगमें भगवान आत्मा तुझे जाननेमें आ रहा है,

और तू ज्ञेयको देख रहा है? भगवानको पीठ दिखाता है? मैं तो प्रवचनमें कितना कहती हूँ। ऐसी ही शक्तिसे।

समाधान :- भावना ... बहुत उग्र... सर्वज्ञ स्वभावकी श्रद्धा करके आगे जाना बाकी रहता है। पहले श्रद्धाका बल आये, फिर आगे बढना है।

मुमुक्षु :- आगे बढनेके लिये ही कोई सच्चा सत्समागम चाहिये। मैं वही कहती हूँ।

समाधान :- आप बारंबार मलाड़ जाइये।

मुमुक्षु :- आपने यह आज्ञा दी है, मैं जाऊँगी। लेकिन इस प्रकार पहले लोग कितनी ही जगह दिखाते हैं ...

समाधान :- ... तो भी विकल्प खड़ा रहता है। तो भी विकल्प खडा रहता है।

मुमुक्षु :- सच्ची बात है। इसीलिये तृप्ति नहीं होती।

समाधान :- श्रद्धा की तो भी तृप्ति तो होती नहीं।

मुमुक्षु :- इसीलिये तो पूछना पड़ता है।

समाधान :- मेरेमें नहीं है, ज्ञायक हूँ। ऐसी श्रद्धा की कि मेरेमें कुछ नहीं है, वह बात सच्ची है। नहीं है, फिर भी खडा है। अब उसे टालनेका (प्रयत्न करना)।

मुमुक्षु :- इसीलिये तो हम तृप्त नहीं होते हैं। अभी ऐसा लगता है कि अभी बाकी है, बाकी है। यह हो गया और तृप्त हो गये, अब कुछ (नहीं करना है), ऐसा नहीं है। तृप्ति नहीं होती, इसीलिये तो यह...

समाधान :- वांचनमें जाओ तो फ़र्क़ पडेगा। चीमनभाई पढते हैं, उनके वांचनमें जाओ।

.. सत्पुरुषसे होता है।

मुमुक्षु :- तो भी क्यों जीवको सम्यग्दर्शन नहीं होता?

समाधान :- सच्ची देशनालब्धि हुई हो तो सम्यग्दर्शन होता ही है। देशनालब्धि सच्ची हुई हो तो सम्यग्दर्शन होता है। भले ही देर लगे, लेकिन होता ही है। देशनालब्धिके साथ तो सम्बन्ध है। साक्षात् सत्पुरुषका उपदेश उसे प्राप्त हो, साक्षात् मिले, शास्त्र नहीं, साक्षात् मिले और अंतरमें यदि वह उतारे तो देशनालब्धि होती है। और देशनालब्धि जिसे हो उसे भले ही उस वक्त नहीं, परंतु कालांतरमें भी सम्यग्दर्शन होता है।

निश्चयका ग्रहण करके साथमें जो पर्याय है, उसे जाननेकी आवश्यकता है। जो है उसमें कौन-सा, किस प्रकारका वह ढूंढना पड़ता है। उसे अंतरसे ऐसी भावना होती है। गुरुदेव मिले नहीं है इसलिये उन्हें ऐसा (होता है)। हम यहाँ बरसोंसे रहे। उनकी

गुंज सुनाई देती है। करना स्वयंको अंतरमें है। अपनी भावना हो वह भविष्यमें फलती है, अभी नहीं फले तो, भविष्यमें फलेगी।

मुमुक्षु :- बहुत धीरजका काम है।

समाधान :- हाँ, धैर्य रखनेकी जरूरत है।

मुमुक्षु :- धीरज और वैसी की वैसी रुचि।

समाधान :- धैर्य रखना है।

मुमुक्षु :- एक शुद्धात्मा...

शुद्धात्माको समझानेवाले श्री भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०४३

मुमुक्षु :- उत्पाद-व्यय-ध्रुवका ज्ञान भी यथार्थ ही होना चाहिये है न?

समाधान :- यथार्थ होना चाहिये। उत्पाद-व्यय-ध्रुवका ज्ञान जैसा है वैसा होना चाहिये। सब अपेक्षाओंसे होना चाहिये।

मुमुक्षु :- इस यथार्थ ज्ञानमें ध्रुवका आलंबन अभिप्रायमें आ जाता है।

समाधान :- यथार्थ ज्ञानमें ध्रवका आलंबन, यथार्थ ज्ञान-सम्यक्ज्ञान हो तो उसमें सम्यक्दृष्टि साथमें ही होती है। सम्यक्दृष्टि हो उसे सम्यक्ज्ञान साथमें होता ही है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवकी सब अपेक्षाएँ आनी चाहिये। कुछ है ही नहीं, अकेला द्रव्य ही है, ऐसे समजनेसे आगे नहीं बढा जाता। बिलकूल निकाल देनेसे आगे नहीं बढा जाता।

उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला द्रव्य है उसमें नहीं आता। नय और प्रमाण। नय-प्रमाण साथमें होते हैं। प्रमाण जूठा नहीं है। प्रमाण शास्त्रमें क्यों कहनेमें आता है? जैस नय यथार्थ है, द्रव्य पर दृष्टि करनेवाली नय यथार्थ है, वैसे प्रमाण भी यथार्थ है। एक दूसरेको साथ देनेवाले हैं। राजा और प्रधान सब साथमें होता है। वह तो दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

मुमुक्षु :- एक राजा है, प्रधान है, वह सब..

समाधान :- सब पहलू जानने हैं।

मुमुक्षु :- एकमें अहंपना करना..

समाधान :- यह द्रव्य है वह मैं हूँ, ऐसे दृष्टिको थँभानी चाहिये। यही मैं हूँ, दूसरा कुछ मेरा स्वरूप नहीं है, यह द्रव्य है वही मैं हूँ। ऐसा ज्ञायक, चेतनतासे भरा जो द्रव्य है, वह मैं हूँ। फिर उसमें क्या परिणमन होता है और कौन-सी पर्यायें होती हैं, वह सब ज्ञानमें आता है। पहलेमें एक ग्रहण कर लिया, ध्येय ग्रहण किया। फिर उसमें क्या है, वह सब (ज्ञानमें जानता है)।

यह एक नगर है, ऐसा नक्की किया, उसमें ध्येय बाँधा। फिर उसमें क्या-क्या है उसे ज्ञान जानता है। यह चैतन्य हूँ। ऐसे दृष्टिको स्थिर की, प्रतीतको उस पर दृढ़ की। यह वस्तु है, मैं चैतन्य हूँ, ऐसा ग्रहण किया। ग्रहण किया, फिर उसमें क्या है? यह मुझे मालूम नहीं है। एक अस्तित्व ग्रहण किया। बाकी सब तो ज्ञानमें आता है, मैं कुछ नहीं जानता। एक अस्तित्व (ग्रहण किया)। नगर है। उसमें क्या है, यह

मालूम नहीं। ऐसा उसका अर्थ हुआ।

मुमुक्षु :- साथमें ज्ञान तो होना चाहिये।

समाधान :- साथमें ज्ञान होना चाहिये। तब उसकी यथार्थ साधना होती है। शुद्धात्मा है लेकिन उसका पर्यायमें वेदन नहीं है। आत्माका स्वरूप जो.. स्वानुभूतिका वेदन नहीं है, उसके गुणोंकी स्वरूपकी ओरकी निर्मल पर्यायें प्रगट नहीं हुई है। विभावका वेदन है और नक्की ऐसा किया कि मैं शुद्धात्मा हूँ। परंतु वेदन तो यह है। स्वरूपका वेदन कैसे हो? वह तो उसे आना चाहिये। वेदन कैसे हो?

मुमुक्षु :- उसका तो प्रयोजन है।

समाधान :- प्रयोजनभूत है। वेदन नहीं है। शुद्धात्मा नक्की किया कि यह अस्तित्व मैं हूँ। मेरेमें कोई परपदार्थ प्रतिका विभाव नहीं है, मैं चैतन्य हूँ। लेकिन यह विभावका वेदन है, उसका कारण क्या? और स्वभावका वेदन कैसे हो? उसे जानना चाहिये और उस ओरका पुरुषार्थ उसे हुए बिना रहता नहीं। ज्ञान तो साथ ही साथ है, वह अलग नहीं हो जाता। एक द्रव्यके जो गुण हैं, वह दोनों गुण अलग (नहीं हो जाते)। दोनों परस्पर एकदूसरेको साथ देनेवाले हैं। एक गुण दूसरे गुणसे विरुद्ध कार्य नहीं करते। एक द्रव्यमें रहे हुए गुण एकदूसरेको साथ देनेवाले हैं। एककी दिशा जिस ओर जाय, उस ओर सभीकी दिशा होती है।

सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। एक ओर दृष्टि गई, उसके साथ ज्ञान भी उस दिशामें जाता है। सब उस दिशामें जाता है। एकदूसरेको साथ देनेवाले हैं। उससे भिन्न नहीं हो जाते कि एक कुछ कार्य करता है और दूसरा कुछ उससे अलग विपरीत कार्य करता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसकी लीनता भी उस ओर जाती है, सब उस ओर जाता है। एक दृष्टिने आत्माको ग्रहण किया, फिर पर्याय रही वह दूसरा कुछ करती है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। द्रव्यको भी ज्ञान जानता है, ज्ञान पर्यायको जाने, ज्ञान सब जानता है। और दृष्टि स्वयं द्रव्य पर स्थिर रहती है कि मैं शुद्धात्मा हूँ। पर्यायमें ज्ञान सब कार्य करता है, पुरुषार्थ होता है, लीनता होती है, सब उस ओर होता है।

मुमुक्षु :- दृष्टि निश्चितरूपसे बैठनेसे पुरुषार्थको वेग मिलता है, ऐसा है?

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थको वेग मिलता है। दृष्टि निश्चय है कि यही मैं शुद्धात्मा हूँ, तो पुरुषार्थको वेग मिलता है। लेकिन ऐसा माने कि कुछ करना नहीं है, तो वेग नहीं मिलता। परंतु दृष्टि स्थिर होकर, अभी पर्यायमें कुछ (बाकी) है, ऐसा ज्ञानमें हो तो वेग मिलता है। तो दृष्टिमें सम्यक्ता आती है। ज्ञानमें ऐसा हो कि अभी विभाव है। ऐसा ज्ञानमें होना चाहिये। दृष्टि एक स्थिर हुई, लेकिन पर्यायमें विभाव है, ऐसा

ज्ञानमें हो, दोनों साथमें हो तो वेग मिलता है।

मुमुक्षु :- जितनी ज्ञानमें कचास ख्यालमें आये तो कोई बात नहीं, दृष्टिसे वह सब निकल जायेगा। ज्ञानमें कुछ कचास ख्यालमें आये तो ही दृष्टिमें वेग मिले न कि अभी इतना बाकी है।

समाधान :- तो दृष्टिको वेग मिले। दोनों परस्पर हैं। दृष्टिको वेग मिलता है ज्ञानसे और दृष्टिसे ज्ञानको वेग मिलता है। लीनता आदि सब परस्पर एकसाथ रहे हैं। विरूद्ध कार्य नहीं करते।

मुमुक्षु :- सर्व पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्क होनसे स्वयं ही टिकता है और स्वयं ही परिणमता है। दोनों वस्तुके अपने स्वभाव हैं। तो फिर जो ऐसा कहनेमें आता है कि पर्याय द्रव्यमेंसे आती है। गुण तो एकरूप रहते हैं, फिर पर्याय द्रव्यमेंसे आती है और दूसरे समय द्रव्यमें विलीन होकर द्रव्यमें चली जाती है, उसका आशय क्या है?

समाधान :- द्रव्य स्वयं परिणमता है। उसके गुण जो स्वभाव है, वह गुण कार्य करते हैं। ज्ञान ज्ञानरूप, दर्शन दर्शनरूप। जो अनन्त गुण हैं, सर्व अपने-अपने कार्य करते हैं। और कार्य विलीन होता है। पर्यायका स्वभाव ही ऐसा है कि वह कार्य करे और दूसरे क्षण व्यय होता है। एक समयमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव एकसाथ रहते हैं, और दूसरे समय (भी वैसा ही रहता है)। उत्पाद-व्यय और ध्रुव सब साथमें ही रहते हैं। दूसरा-दूसरा उत्पाद होता जाता है, पहलेका व्यय होता जाता है। व्यय होता जाता है। द्रव्यमें उसकी योग्यता होती है।

मुमुक्षु :- समय-समयमें गुण परिणमते रहते हैं। गुण तो नित्य रहते हैं। तो सामान्यमेंसे विशेष आता है, ऐसा जो कहनेमें आता है, उसके पीछे क्या रहस्य है?

समाधान :- सामान्यमेंसे विशेष। सामान्यका ऐसा स्वभाव ही है। सामान्य उसे कहते हैं कि कोई कार्य करे। ज्ञानगुण-जानना स्वभाव है, आत्माका ज्ञायक स्वभाव है। ज्ञायक है, वह ज्ञायक जाननेरूप कार्य करता हो तो ही वह जानना कहें कैसे? उसका कुछ जाननेका कार्य ही न हो तो जानना कैसे कहा जाय? आनन्द आनन्दका कार्य न करे तो आनन्द कहा जाय? सामान्यका अर्थ ही ऐसा है कि सामान्य हो वहाँ विशेष होता ही है। विशेष बिनाका सामान्य होता ही नहीं। विशेष बिनाका सामान्य नहीं होता और जो सामान्य है उसमेंसे विशेष होता ही है। विशेष सामान्यके आश्रयसे होता है। और सामान्य हो वह विशेषरूप परिणमित हुए बिना रहे ही नहीं। वह सामान्य कैसा? उसका कार्य न करे (तो) ज्ञान कैसे कहा जाय? ज्ञान ज्ञानरूप परिणमे नहीं तो ज्ञान कैसा? आनन्द आनन्दरूप परिणमित न हो तो आनन्द कैसे कहा जाय? आनन्दका

वेदन न आये तो आनन्द कैसे कहा जाय? ऐसे अनन्त गुण यदि स्वयं अपने रूप यदि कार्य न करे तो वह गुण कैसे कहा जाय? सामान्य है वह अनादिअनन्त एकरूप रहता है और उसके सब कार्य बदलते जाते हैं। सामान्य हो वहाँ विशेष होता ही है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव रूप ही द्रव्य हो तो ही वह द्रव्य कहा जाय।

मुमुक्षु :- यदि गुणमेंसे कार्य आता हो तो विकारी कार्य, जो विकारी विभाव उत्पन्न होते हैं वह भी गुणमेंसे आता है?

समाधान :- आत्मामें ऐसी विभाविक शक्ति है। विभाविक शक्ति है इसलिये विभावपर्याय होती है। उसका वह निमित्त है। उसकी वैसी कोई योग्यता ही नहीं है, ऐसा नहीं है। आत्मामें एक ऐसी विभाविक शक्ति है। ऐसी योग्यता है कि जो विभावरूप परिणमती है। निमित्त कुछ करवाता नहीं, निमित्त है, लेकिन ऐसी उसकी योग्यता है कि उस रूप परिणमता है। स्फटिक निर्मलरूप उसका स्वभाव है। लेकिन निमित्त आये तो लालरूप परिणमित हो तो निमित्त लाल नहीं करता। लेकिन स्फटिककी योग्यता है कि उस रूप परिणमित हो।

उसी प्रकार आत्मामें एक विभाविक शक्ति है कि जो विभावरूप परिणमती है। लेकिन जब वह स्वभावरूप परिणमित होता है तो विभाविक योग्यता वैसे रह जाती है, बस। लेकिन वह गुण ऐसा नहीं है कि गुण पलटकर... ये गुण तो ऐसे हैं, ज्ञायक-ज्ञान, आनन्द आदि गुण तो ऐसे हैं कि आत्माके साथ ऐसे जुड़े हैं कि उसका कार्य आये। उसीका नाम गुण कहलाता है। कार्य न आये तो गुण ही नहीं कहा जाता। ऐसे वह विशेष गुण हैं आत्मामें। ज्ञान, आनन्द और दूसरी सब शक्तियाँ हैं, धर्म हैं। वह कार्य करता है। उसमें भले कमी-बेसी नहीं होती। ज्ञान ज्ञानरूप जाननेका कार्य करता ही रहता है। कमी-बैसे वस्तु स्वरूपसे नहीं होती। मूलमें कमी-पेसी नहीं होती। पर्यायमें कमी-बेसी दिखती है। मूल वस्तुमें कमी-बसी होती नहीं।

वह तो कोई आत्माका अचिंत्य स्वभाव है, गुणोंका अचिंत्य, पर्यायका अचिंत्य वह सब स्वभाव युक्तिसे अमुक प्रकारसे उसका सिद्धांत स्वयं बिठा सकता है। बाकी आनन्द गुण अनन्त काल सिद्ध भगवानमें परिणमता रहता है तो आनन्द खत्म ही नहीं होता। चाहे जितना परिणमे तो भी खत्म ही नहीं होता। उसमें कोई कमी नहीं हो जाती। वह बढ़कर बाहर नहीं चला जाता। अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता है। आत्मामें ऐसी कोई अद्भूत शक्ति है। उसे अगुरुलघु कहते हैं। बढे और कम हो, हानि-वृद्धि। हानि-वृद्धि वास्तवरूपसे अन्दर कुछ होती ही नहीं। षट्गुणहानिवृद्धि तारतम्यता होती है। वस्तु स्वरूपमें कुछ होता नहीं। फिर भी कमी-बेसी होती है। पर्यायमें अलग, गुणमें अलग ऐसा कोई आत्माका अचिंत्य स्वभाव है। उसकी अपेक्षासे समझना चाहिये।

द्रव्य अनादिअनन्त, उसके गुण अनादिअनन्त, पर्यायमें फेरफार हो। विभाविक शक्तिके कारण विभाव होता है, वह तो वेदनमें आता है, फिर भी शुद्धात्मा द्रव्य वैसा का वैसा रहता है। वह सब उसके स्वभावको मिलान करके समझना चाहिये। शास्त्रमें आता है, उसके अनुसार बराबर मेल करके समझना पड़े। जो नित्य है, गुणोंमें कोई फेरफार (होता नहीं), अनादिअनन्त नित्य है, तो फिर उसमें पर्यायकी अनित्यता कहाँ-से आयी? उसका स्वभाव है, वह पर्यायमें परिणमता रहे। ज्ञान ज्ञानका कार्य करता रहता है।

अनादि अनन्त पारिणामिकभावस्वरूप द्रव्य है। उसमें प्रगटमें विभाव पर्याय होती है और जब सम्यग्दर्शन होता है, तब भेदज्ञान होता है। वहाँ अमुक अंशमें साधक दशा होती है, तो थोड़ी निर्मल पर्याय और थोड़ी विभाव परिणति रहती है। जितने अंशमें, बाकी विभाव खड़ा रहता है। द्रव्यदृष्टिसे पूर्ण द्रव्य लक्ष्यमें आया इसलिये उसी वक्त पूर्ण नहीं हो जाता। द्रव्य अनादिअनन्त पूर्ण है ऐसी दृष्टि हुयी, तो भी पर्यायमें अभी विभाव आदि है। सम्यग्दर्शनकी दशा होती है, लेकिन अभी चारित्रमें बाकी रह जाता है। स्वभावसे पूर्ण लेकिन पर्यायमें अधूरा। लेकिन वह पर्याय किसकी? पर्यायमें अधूरा है वह द्रव्यकी ही पर्याय है। पर्याय निराधार लटकती नहीं है। पर्यायका वेदन कोई दूसरेको नहीं होता, स्वयंको ही होता है। उसका मेल करके समझना चाहिये। अंतरमें अंतःतत्त्व एकमेक रूपसे गुण और द्रव्य है, परंतु पर्यायमें फेरफार है। इन सबका मेल करके समझना चाहिये। दृष्टि एक सामान्यको ग्रहण करे, परन्तु फिर विशेषमें क्या है? ज्ञानमें बराबर यथार्थ जानना पड़े तो उसे साधकदशा चलती है।

मुमुक्षु :- विभाव जो होता है वह विभाविक शक्तिके कारण होता है? चारित्रगुणमें जो विकार हुआ, उसका कारण विभाविक शक्ति लेनी?

समाधान :- ऐसी विभाविक शक्ति है आत्मामें और अपने पुरुषार्थकी मन्दता है और निमित्तकी ओर स्वयं जुडता है, अपने चारित्रगुणमें उतना अधूरापन है और विभाविक शक्ति है। विभाविक शक्ति करवाती नहीं, लेकिन स्वयं अपने पुरुषार्थकी मंदतासे उसमें जुड़ता है। कुछ विशेषगुण, कुछ सामान्यगुण, विशेषगुण आदि अनेक प्रकारके धर्म उसमें हैं।

मुमुक्षु :- विशेष आता है उसका अर्थ इतना हुआ कि गुण गुणरूप रहकर परिणमते हैं।

सामान्य :- नहीं तो विशेष आये कहाँ-से? विशेष ज्ञानका जाननेका कार्य है, वह किसीके आश्रयसे है। क्षणभर परिणमन करके बदल जाता है वह किसीके आश्रयसे है, आश्रयके बिना नहीं है। सामान्यके आश्रयसे विशेष परिणमता है।

मुमुक्षु :- अर्थात् कोई पर्याय परद्रव्यमेंसे नहीं आती।

समाधान :- .. (स्वद्रव्यमेंसे) पर्याय आती है। और गुण द्रव्यके (आश्रयसे रहे हैं)। द्रव्य और गुण दोनों एकमेक है। पर्याय क्षणिक है, अनादि अनन्त नहीं है, बदलती है। अग्नि उष्ण है, उस उष्णताका कार्य उसे होता रहता है। पानी ठण्डा है, उस ठंडकका कार्य वह उसके स्वयंके शीतलगुणके स्वभावके कारण होता है। लेकिन यदि सामान्य अपना कार्य न करे तो सामान्य ही नहीं रहता। अग्नि (क्यों कहलाती है)? क्योंकि उष्ण है। पानी ठण्डा क्यों कहलाता है? क्योंकि वह शीतल है। वह सब उसका स्वभाव है। सामान्यरूप है, लेकिन उसका कार्य करता है-ठष्णेरूप, उष्णरूप।

मुमुक्षु :- विभाविक शक्ति है, वह त्रिकाल है या कैसे है?

समाधान :- त्रिकाल है, लेकिन उसकी पर्याय विभावकी ओर जाती है तो विभावरूप परिणमती है। स्वभावमें जाय तो उसकी परिणति पलट जाती है। निमित्तके आश्रयकी ओर जाती है तो विभावरूप परिणमती है। निमित्तका आश्रय छोड़कर स्वयं स्वभावमें जाय तो पलट जाती है, उसकी पर्याय-परिणति पलट जाती है।

.. जलमें समाता है इसलिये पानी पानीरूप है, तरंगरूप नहीं रहते, पानीरूप रहता है। तरंग होकर जो जलरूप होते हैं, वह तरंगरूप नहीं रहते। पानीके अन्दर तरंगरूप नहीं होते। पानीरूप यानी उसके द्रव्यरूप-वस्तु जो पानी है उस रूप हो जाते हैं। तरंग उसमें समाते हैं अर्थात् उसके उस जातिके जो ज्ञान, दर्शन, चारित्रग गुण हैं, उस रूप है। उसमें तरंगरूप नहीं रहते।

मुमुक्षु :- आपका ऐसा कहना है कि..

समाधान :- .. पर्याय उस रूप-द्रव्य और गुणरूप सामान्यरूप (हो जाती है)। पहले द्रव्य इस प्रकार परिणमा था, उस जातिकी उसमें शक्ति है कि इस प्रकार द्रव्य परिणमा था। ऐसे। लेकिन तरंग तरंगरूप अन्दर नहीं रहते। तरंग अन्दर सामान्यरूप (हो जाते हैं)। तरंग नहीं रहते, उसमें समाते हैं इसलिये जलके तरंग जलरूप हो जाते हैं अर्थात् जलरूप यानी सामान्यरूप हो जाते हैं। वहाँ तरंगका काम नहीं करता। वह तरंगका काम नहीं करता, सामान्यरूप हो जाता है। ये तरंग पानीमें इस प्रकार परिणमे थे, ऐसी उसमें शक्ति रहती है। ऐसे तरंग पानीमें हुए थे। बाकी तरंग तरंगरूप नहीं रहते हैं।

समाधान :- .. आत्माकी जिज्ञासा होनी चाहिये कि मुझे आत्मा कैसे समझमें आय? आत्मामें अनादि कालसे विभाव परिणति हो रही है। दुःख जो अनादिकालका जन्म-मरणका है, जन्म-मरणका दुःख, विभावका दुःख, अन्दर आकुलताका दुःख वह सब कैसे टले और आत्मा कैसे समझमें आये? उसके लिये जिज्ञासा हो और वह जिज्ञासा इतनी गहरी हो और गुरुका उपदेश। गुरु जो उपदेश देते हैं उसमें क्या कहते

हैं, उसे स्वयं अंतरसे ग्रहण करे। और उसे ऐसी गहरी जिज्ञासा होती है। एक आत्माका प्रयोजन होता है, दूसरा कोई प्रयोजन जिसे नहीं है। कोई बाहरका प्रयोजन अथवा बाहरमें आगे आनेका, ऐसा किसी भी प्रकारका प्रयोजन नहीं है, एक आत्माका ही प्रयोजन नहीं है। एक आत्माका ही प्रयोजन है। उसे अमुक प्रकारका विभावका रस कम (हो जाता है), अमुक प्रकारकी कषायोंकी मन्दता हो जाती है। जो अनन्तानुबंधीके कषाय हैं वह उसे मन्द हो जाते हैं और अंतरमें एक आत्माका ही प्रयोजन होता है। 'कषायकी उपशांतता मात्र मोक्ष अभिलाष'। जिसे मोक्षकी अभिलाषा है। अंतरमें आत्मार्थका एक प्रयोजन है, वह पात्रता है।

कोई भी कार्यमें मुझे आत्मा कैसे समझमें आये? उसे एक ही ध्येय होता है। भेदज्ञान कैसे हो? कैसे पुरुषार्थ करुँ? कैसे करुँ? कैसे मार्ग समझमें आये? आत्मा कौन है? उसका स्वभाव क्या है? विभाव क्या है? सब नक्की करनेके लिये, तत्त्वका निर्णय करनेके लिये विचार, वांचन आदि सब अंतरसे (होता है)। जिसे अंतरसे ऐसी जिज्ञासा हो, वह करता रहे, उसके लिये लगनी लगे। और जब तक वह नहीं हो तब तक बाहरमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, जिनेन्द्रदेव, गुरु, शास्त्रमें क्या आता है? गुरुदेवने क्या है? सबका वह अंतरमें विचार करे।

एक शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? विभाव बिनाका, जिसमें विकल्प नहीं है, जो निर्विकल्प तत्त्व है, वह कैसे पहचानमें आये? उसका भेदज्ञान कैसे हो? वह मार्ग कैसे मिले? स्वानुभूति कैसे हो? क्या वस्तु स्वरूप है? उसका बारंबार विचार करे। बारंबार अंतरसे उसकी जिज्ञासा (करे)। दिन-रात उसका मंथन होता है, वह पात्रताका एक लक्षण है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०४४

मुमुक्षु :- आत्मा कैसा है?

समाधान :- आत्मा अनन्त गुणसे भरा कोई अपूर्व तत्त्व है, वह अनुपम तत्त्व है। जिसे जगतमें किसीकी उपमा लागू नहीं पड़ती। कोई जड़ तत्त्व या कोई बाहरका देवलोक या चक्रवर्तीका पद या और किसीकी उपमा लागू नहीं पड़ती, ऐसा चैतन्यतत्त्व वह चमत्कारी अनुपम तत्त्व है। उसका आनन्द कोई अलग है, उसका ज्ञान अलग है, वह महिमावंत पदार्थ है। शाश्वत है। वह आत्मा कोई अलग ही तत्त्व है, अपूर्व तत्त्व है। जगतसे कोई अलग है। दुनिया जो जगतमें दिखता है उससे कोई अलग ही तत्त्व है। उसकी स्वानुभूति करे तो ही वह पहचाननेमें आये ऐसा है।

पहले विचारसे नक्की करे कि आत्मा कैसा है? उसका स्वभाव ज्ञान लक्षणसे पहचाननेमें आता है। उसका ज्ञानलक्षण मुख्य है। बाकी अनन्त गुणसे भरा अगाध तत्त्व है। उस तत्त्वकी प्रतीति करके, विचार करके, अन्दर स्वानुभूतिमें उसका अनुभव हो ऐसा कोई अपूर्व अनुपम पदार्थ है। उसकी महिमा करे तो ही वह आगे जा सकता है।

चक्रवर्तीके पद आदि सब बाहरके पद उसके आगे फिके हैं। एक आत्मपद ही श्रेष्ठ और सारभूत है। वही रसमय है। बाकी सब जगतकी वस्तु उसके पास नीरस और फिकी है। ऐसा वह अनुपम तत्त्व है। आाचर्यदेव कहते हैं, हम अंतरमें जाते हैं। आत्माके अलावा हमें बाहरका सब तुच्छ और फीका लगता है। एक आत्मा ही सर्वोपरी तत्त्व, ऊर्ध्व एक ही तत्त्व सर्वस्व है। हम जिसका निरंतर अनुभव करते हैं, वही तत्त्व सर्वसे श्रेष्ठ है, ऐसा अनुपम तत्त्व है।

मुमुक्षु :- ... क्रमबद्धमें कैसे घटित करें? वर्तमानका पुरुषार्थ भाविके क्रमबद्धमें उस परिणामरूप तो नहीं हो सकता न कि वहाँ-से ... ले जाय अथवा ऐसे कोई संयोग आये कि जो वर्तमानमें इस ओरका पुरुषार्थ है, उससे विपरीत क्रमबद्ध हो, ऐसा तो होता ही नहीं।

समाधान :- जिस प्रकारका पुरुषार्थ होता है, उसी प्रकारका उसका क्रमबद्ध होता है। उसी प्रकारकी उसकी वर्तमान रुचि है। आत्माकी ओर जिसकी रुचि है, जिसे ज्ञायककी प्रीति है, ज्ञायक ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न।

भेदज्ञान करनेकी जिसकी भावना है, विभाव परसे जिसकी रुचि छूट गयी है, लौकिक सब कार्य परसे जिसकी रुचि छूटकर एक आत्मा, लोकोत्तर जो आत्मा अलौकिक है, उस पर जिसकी रुचि लगी है, वही मुझे चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। एक ज्ञायक, उस ज्ञायकमें ही जिसे सर्वस्व लगा है। ऐसा भेदज्ञान करनेका प्रयास करनेकी जिसे रुचि, जिज्ञासा है, ऐसा जो वर्तमानमें पुरुषार्थ करता है, उसका क्रमबद्ध उसके अनुकूल ही होता है। उसका क्रमबद्ध विपरीत हो ही नहीं सकता। पुरुषार्थ ज्ञायककी ओरका करे और उसका क्रमबद्ध संसारकी ओरका हो, ऐसा हो ही नहीं सकता।

जिसकी रुचि ज्ञायककी ओर है, उसके क्रमबद्धमें ज्ञायककी ही परिणति होती है। उससे अलग क्रमबद्ध हो ही नहीं सकता। कोई ऐसा विचार करे कि ज्ञायककी तो रुचि है, लेकिन क्रमबद्ध दूसरा होगा तो? ऐसा बन सकता नहीं। इसलिये ज्ञायककी रुचि, ज्ञायकका पुरुषार्थ तू कर तो तेरा क्रमबद्ध उसी प्रकार परिणमित हुआ रहता है। इसलिये क्रमबद्धकी चिंता नहीं करनी, स्वयं पुरुषार्थ करना। पुरुषार्थ करे उसका भाविका क्रमबद्ध ज्ञायककी ओरका ही होता है।

मुमुक्षु :- वर्तमान सत् है, ऐसा कहनेमें आता है।

समाधान :- जो वर्तमानमें ज्ञायककी ओरका पुरुषार्थ करता है, उसका क्रमबद्ध उसी प्रकारसे परिणमित हुआ रहता है। वर्तमान सत् है वह तो ज्ञायक स्वयं सत् ही है। लेकिन वर्तमानमें स्वयं ज्ञायककी ओर पुरुषार्थ करे तो उसका क्रमबद्ध वैसा ही होता है। जैसा पुरुषार्थ, वैसा ही उसका क्रमबद्ध होता है। जो ऐसा कहे कि क्या करें, क्रमबद्धमें जो होनेवाला होगा वह होगा। वह बात जूठी है। जैसा पुरुषार्थ, वैसा उसका क्रमबद्ध।

क्रमबद्धको देखने नहीं जाना पड़ता, क्रमद्धकी चिंता नहीं करनी पडती कि क्रमबद्ध कैसा होगा? और क्या होगा? भविष्यकी चिंता नहीं करनी पड़ती। क्रमबद्धको कहीं देखने नहीं जाना पड़ता। क्रमबद्धको पूछने नहीं जाना पड़ता। स्वयं ज्ञायककी ओर पुरुषार्थ करे तो उसका क्रमबद्ध वैसा ही होता है। उसे (वैसा ही) सम्बन्ध होता है।

... जो आत्माको-शुद्धात्माको पहचाने उसे शुद्ध पर्यायें प्रगट होती है। जो आत्माको अशुद्ध एकत्वबुद्धि... जिसे एकत्वबुद्धिकी ओर रस है, एकमेक मानता है, उसे अशुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है। अशुद्ध पर्यायें होती है। जिसे ज्ञायककी ओर, शुद्धात्माकी ओर (रुचि है), उसे शुद्ध पर्यायें परिणमती हैं। स्वयं धीरजसे विचार करके पुरुषार्थ करे, जिज्ञासासे भावनासे जो ज्ञायककी ओर पुरुषार्थ करे तो उसे क्रमबद्धकी चिंता करनेकी जरूरत नहीं है।

क्रमबद्ध (अर्थात्) बाहरमें पुण्य-पापका जो उदय आनेवाला है वह आता है। उसे

वह बदल नहीं सकता। बाहरका पुण्यका उदय आनेवाला हो तो पुण्यका आये, पापका (हो तो पापका आये)। शरीरका रोग-निरोग, धन, निर्धन वह सब पुण्य-पापके कारण आता है। उसमें स्वयं फेरफार नहीं कर सकता। ज्ञायककी ओर रुचि करनी, पुरुषार्थ करना, वह चैतन्यकी परिणतिके हाथमें है। फिर कितना पुरुषार्थ चले वह उसकी जैसी परिणतिकी गति हो वैसा होता है। बाकी क्रमबद्धकी चिंता करनेकी आवश्यकता नहीं है।

जो स्वयं ज्ञायकको पुरुषार्थसे पहचाने, पुरुषार्थसे भेदज्ञान करे, मैं ज्ञायक हूँ, भेदज्ञानकी धारा पुरुषार्थसे प्रगट हो, आगे बढे पुरुषार्थसे, स्वानुभूतिकी परिणति पुरुषार्थसे, लीनता होती है पुरुषार्थसे, सबकुछ उससे होता है। केवलज्ञान तक पुरुषार्थकी परिणति होती है और उस अनुसार उसकी पर्यायें परिणमती हैं। उसके पुरुषार्थकी गति, उसका बल जो काम करे, उस प्रकारकी उसकी पर्यायें परिणमती हैं। उसके अनुकूल। ...उतना धीरे होता है, जितनी तीव्रता उतना जल्दी होता है। मंद-तीव्र सब चैतन्यकी परिणतिके हाथमें है। .. वह कर्ताबुद्धि छुड़ानेके लिये है। मैं परका कर सकता हूँ और मेरेसे सब होता है, ऐसी जो उसकी बुद्धि है, उसे छुड़ानेके लिये। परपदार्थमें कोई फेरफार स्वयं कर नहीं सकता, जैसा होना होता है वैसा होता है। मैं दूसरेका अच्छा या बूरा, शरीरके फेरफार या बाहरका फेरफार कुछ नहीं कर सकता। स्वयंकी चैतन्यकी परिणतिमें अपने स्वभावकी ओर पुरुषार्थकी गति हो, उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य जो उसके योग्य पर्यायें प्रगट होनी होती है, वह स्वतः प्रगट होती है, उसे मैं प्रगट करुँ...

सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। स्वयं स्वयंकी ओर पुरुषार्थसे झुका, उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि पर्यायें प्रगट होती है, वह स्वयं परिणमती है। अमुक निर्मलता विशेष स्वयं परिणमती है। स्वयं अपने विकल्पसे उसे परिणमित नहीं करता। पुरुषार्थकी गति स्वयंकी ओर हो वह सब स्वयं परिणमता है। इसलिये अपनी कर्तृत्वबुद्धि छुडानेके लिये क्रमबद्ध है।

स्वयं ज्ञायक है। उसमें पुरुषार्थ छुड़ानेके लिये क्रमबद्ध नहीं है। पुरुषार्थ करनेके लिये है और उसमें कर्ताबुद्धि तोड़नेके लिये, ज्ञायक होनेके लिये है। तू ज्ञायक है, देखता रह। तेरा करनेसे कुछ होता नहीं। तू ज्ञायक है। ज्ञाता होनेके लिये है। .. ऐसा कहते थे, ज्ञायक हो जा। बस, ऐसा ही है। ज्ञाता होना है।

मुमुक्षु :- आचार्यदेवने शिर्षकमें वही लिखा है, अकर्ता होनेके लिये बात है।

समाधान :- अकर्ता होनेके लिये है। (पुरुषार्थकी) पुष्टि करनेके लिये, पुरुषार्थको मन्दर करनेके लिये नहीं। जैसा होना होगा वैसा होगा, तू समझा ही नहीं, ऐसा कहे। जिसे ज्ञायक प्रगट हुआ उसे ही क्रमबद्ध है, ऐसा कहते थे। ज्ञायक प्रगट हो, उसे ही क्रमबद्ध है, दूसरेको नहीं है, ऐसा कहते थे। जो ज्ञाता हुआ, उसे क्रमबद्ध है।

दूसरेको नहीं है, ऐसा ही कहते थे।

मुमुक्षु :- निर्णय करता है कि मैं तो जाननेवाला हूँ, जाननमात्र हूँ, और कुछ भी मैं नहीं, विकल्प भी मैं नहीं हूँ।

समाधान :- विकल्प मैं नहीं हूँ, ऐसा निर्णय करना। निर्णय करे लेकिन ज्ञायक सहज रहना। विकल्पसे निर्णय हुआ कि मैं विकल्प भी नहीं हूँ। निर्णय हुआ लेकिन निर्णयरूप परिणमन होना चाहिये। निर्णय होता है।

मुमुक्षु :- उनका ऐसा कहना कि वह तो यथार्थ परिस्थिति है।

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक-जाननेवाला हूँ, मैं ज्ञाता हूँ। जो-जो विकल्प आये (उसी समय) मैं तो जाननेवाला हूँ, मैं जाननेवाला हूँ। बारंबार भीतरसे भावनासे जिज्ञासासे शरीर मैं नहीं हूँ, विकल्प मैं नहीं हूँ, शुभाशुभ जो-जो विकल्प आवे, सब मैं नहीं हूँ, मैं तो जाननेवाला हूँ। बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये। वह .. है। बारंबार भीतरसे मैं ज्ञायक हूँ, मैं जाननेवाला हूँ। ज्ञायक कोई अपूर्व है, मैं वस्तु हूँ, मैं ज्ञायक हूँ। बारंबार-बारंबार इसका अभ्यास करे। रटनरूप नहीं, परंतु भीतरसे महिमारूपसे मैं ज्ञायक हूँ। मैं ज्ञायकदेव हूँ। ज्ञायककी महिमापूर्वक मैं ज्ञायक ही हूँ। उसकी महिमा होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ज्ञेयोंकी महिमा छूट जायेगी और इसकी महिमा आयेगी।

समाधान :- हाँ, बस। बाहरकी संयोगकी महिमा छूट जाय और आत्माकी महिमा-ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये। आत्मार्थी जीवको तो ऐसा ही होता है न। आत्माका प्रयोजन हो वहाँ उसका व्यवहार भी वैसा होता है।

मुमुक्षु :- सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिन-रात रहे तद् ध्यान मही, उसका अर्थ क्या है?

समाधान :- सुखधाम अनंत सुसंत चही। जो सुखका धाम है, जो अनंत सुखका धाम है, ऐसा जो अपना स्वरूप। सुखधाम अनंत सुसंत चही। संत जिसे चाहते हैं, संत उस रूप हो रहे हैं। जो अनंत सुखका धाम है। सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिन रात रहे तद् ध्यान महीं। दिन और रात जिसके ध्यानमें रहते हैं, ऐसे संत जो दिन और रात, अनंत सुखका धाम है, उसके ध्यानमें दिन और रात रहते हैं। ऐसा जो सुखका धाम, आत्माका स्वरूप सुखधाम है।

आत्मा कैसा है? सुखका धाम है, अनंत सुखका धाम है। उसमें दिन रात रहे। ससंत उसमें दिन-रात, मुनिओं क्षण-क्षणमें उसमें बारंबार-बारंबार दिन रात रहे तद् ध्यान महीं, प्रशांति अनंत सुधामय जे। प्रशांति-एसी प्रशांति-विशेष शांति उसमें बरस रही है। प्रशांति अनंत सुधामय जे। अनंत सुधामय, अनंत अमृत स्वरूप है। सुधामय जे प्रणमुं

पद ते वरते जयते। वह पद नमन करने योग्य है, प्रधान है और जयते-वह जय स्वरूप है। ऐसा ही वह सुखका धाम है।

वह सम्यग्दर्शनमें प्रगट होता है, मुनिओंको प्रगट होता है। दिन और रात जिसके ध्यानमें मुनि बस रहे हैं। उस अनंत सुखके धाममें। दूसरा सुखका धाम बाहर कहीं नहीं है। आत्मामें सुखका धाम है। अनंत सुखका धाम है। अनंत आनन्द भरा है, अनुपम आनन्द भरा है। उसमें शांति, उसमें शांति बरस रही है। प्रशांति अनंत सुधामय। अनंत सुधा। जगतमें कहीं अमृत नहीं है, आत्मामें ही अमृत है। अनंत सुधास्वरूप है। ऐसे पदको मैं नमस्कार करता हूँ। वह प्रधान स्वरूप है, जय स्वरूप है, ऐसे आत्माके स्वरूपको मैं नमन करता हूँ। जो जय स्वरूप वर्तता है अथवा जो प्रधान है।

आत्माकी महिमा आयी है तो कहते हैं कि दिन-रात जिसमें मुनि बसते हैं, ऐसे पदको मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसे पदको चाहते हैं। जगतमें कोई पद इष्ट नहीं है। देवलोकका पद या चक्रवर्तीका पद, कोई पद वह पद नहीं है। इस आत्माका पद ही सर्वोत्कृष्ट है। सुखधाम अनंत, अनंत सुखका धाम है। आत्मामें अनंत शांति प्रगट होती है। प्रशांति। इस संसारमें दुःख दावानलमें जलता हुआ, जिसमें शांतिका एक अंश नहीं है और आत्मामें अनंत शांति (भरी है)। बारंबार उसीमें बस जाय, कब वह प्रगट हो, मुनिदशा, केवलज्ञान, वह पद, उस पदकी ही बारंबार भावना करते हैं। वह पद प्रगट हुआ है, फिर भी बारंबार उसमें बसनेकी, दिन रात उसमें ही बसनेकी भावना भाते हैं।

केवलज्ञान भी नहीं चाहिये। केवलज्ञानकी पर्याय पर भी जिसकी दृष्टि नहीं है। मुझे एक केवलज्ञान चाहिये, ऐसा भी नहीं है। जो केवलज्ञान लोकालोक जाने, वह लोकालोक जाननेकी जिसे पड़ी नहीं है। लोकालोक जाननेमें आये तो ठीक, ऐसा जाननेकी नहीं पड़ी है। केवलज्ञान यानी लोकालोकको (जाने), ऐसा अर्थ (है, लेकिन) लोकालोकको जाननेकी नहीं पड़ी है, परंतु मेरा सुखका धाम जो आत्मा है, वह मुझे प्रगट होओ। पूर्ण प्रगट हो जाओ और उसमें मैं पूर्णरूपसे बस जाऊँ। वह मेरा आत्मपद चाहिये। लेकिन केवलज्ञानकी पर्याय, एक गुण, एक पर्याय मुझे नहीं चाहिये परंतु पूर्ण आत्मा चाहिये। केवलज्ञान लोकालोकको जाननेकी पडी नहीं है, जाननेकी नहीं पडी है, आत्मामें बसनेकी पडी है।

जैनका केवलज्ञान नहीं चाहिये। अर्थात् केवलज्ञान पर दृष्टि नहीं है, आत्माकी साधना करनेवालेको केवलज्ञान पर दृष्टि नहीं है। आत्माका पूर्ण वीतरागपद, उस पर दृष्टि है। मुझे वीतरागी पद प्राप्त होओ। एक आत्मा प्रशांत-शांतिमय जो आत्मा, आत्माका वीतरागी

पद प्राप्त हो। उसमें केवलज्ञान लोक जाननेमें आये या नहीं, उसकी कोई दरकार नहीं है। लोकालोक जाननेमें आये या नहीं जाननेमें आये, उसका कुछ नहीं है। मुझे एक वीतरागी पद पूर्ण आत्मपद प्राप्त होओ। ऐसी उसकी भावना है। केवलज्ञानकी दरकार नहीं है। वीतराग दशा प्रगट चाहिये। आत्मदशा, आत्मामें ही बसनेकी जिसे दरकार है। मैं आत्मामें बस जाऊँ। यह विभाव मेरा स्वरूप नहीं है, विभाव मेरा रहनेका स्थान नहीं है, रहनेका मेरा घर भी नहीं है, मेरा रहनेका स्थान आत्मामें है। यह तो पर है। मेरा अपना स्वघर आत्मा है। मेरे स्वरूपमें मैं बस जाऊँ, मुझसे स्वरूप चाहिये। केवलज्ञान नहीं चाहिये। केवलज्ञान पर उसकी दृष्टि नहीं है। (वीतराग) स्वरूप आत्मा चाहिये। शांतसमुद्र ऐसा आत्मा आनन्दसे भरा है। शांतिमय आत्मा प्रगट हो, उसकी परिणति प्रगट हो।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०४५

समाधान :- .. कहते हैं कि भेदज्ञान करना। परंतु भेदज्ञान कैसे करना? तीक्ष्णतासे स्वयं आत्माको और विभावको भिन्न (करे)। यह मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव भिन्न है, ऐसे स्वयं अंतरमेंसे बराबर पहचान ले। और उससे स्वयंको विभावका रस छूटकर और स्वभावका रस लगे तो उसे अंतरमें सूझे। विभावसे भिन्न होकर स्वभावको ग्रहण करना, उसे ग्रहण करनेमें उसकी चाबी हाथमें आती है। लेकिन उसे स्वयंको अन्दर उतनी जिज्ञासा हो तो होता है। यह मेरा स्वभाव है, यह मेरा स्वभाव नहीं है। इस प्रकार ज्ञायकको ग्रहण करके अंतरमें ऊतर जाय। जिसे जिज्ञासा होती है उसे चाबी हाथ लग जाती है।

मुमुक्षु :- चाबीका अर्थ बारंबार भेदज्ञान?

समाधान :- बारंबार भेदज्ञान करना। आत्माका-ज्ञायकका ज्ञानलक्षण है, उसे पहचान लेना। उसे बराबर पहचानकर आत्माको ग्रहण करना। उसमें कोई क्रियाएँ या दूसरा कुछ करना पड़े ऐसा नहीं है। अन्दर चाबी मिल जाय, जिज्ञासा हो उसे चाबी मिल जाती है। ऐसा है। जिसे जिज्ञासा हो उसे।

मुमुक्षु :- जिज्ञासाके साथ बहुत सम्बन्ध है।

समाधान :- जिज्ञासाके साथ सम्बन्ध है। जिसे आत्माके बिना चैन नहीं पड़ता, जिसे आत्मा ही चाहिये उसे चाबी मिले बिना नहीं रहती। स्वयंको भिन्न होना है, ज्ञायकको ग्रहण करना ही है तो उसे चाबी मिल जाती है। इसलिये उसके लिये कोई हठयोग करना पड़े, ऐसा नहीं है। परन्तु स्वयंकी भावना ही, स्वयंको आत्माके बिना चैन नहीं पड़े, स्वयंकी भावना ही कार्य करती है। भावनाके साथ पुरुषार्थ जुड़ा रहता है।

.. साथमें होता है। जिसे जिज्ञासा है, उसके साथ उसे वैराग्य होता है। विभावको पीठ दी है, आत्मा ही चाहिये। उसके साथ वैराग्य होता है। स्वयंको ग्रहण करनेके लिये उसका प्रयोजनभूत ज्ञान काम करे, उस जातिका वैराग्य हो, उस प्रकारकी आत्माकी महिमा होती है। भक्ति यानी आत्माकी ओर महिमा होती है। आत्मा ही सर्वस्व है। यह सब तुच्छ है, सारभूत हो तो आत्मा ही है। आत्मा ही जगतमें सर्वोत्कृष्ट महिमावंत

पदार्थ है। ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये। ज्ञायक माने मात्र जानना, जानना ऐसे नहीं, उसे ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये। उसे शुभभावमें जिनेन्द्रदेव, गुरु जिन्होंने प्राप्त किया है, उन पर महिमा है और अंतरमें ज्ञायकदेवकी महिमा। मुझे शुद्धात्मा कैसे पहचाननेमें आये?

मुमुक्षु :- ज्ञायककी महिमापूर्वक टहेल लगाये तो?

समाधान :- महिमापूर्वक टहेल लगाये, बारंबार। तो उसे चाबी मिले बिना रहती नहीं।

मुमुक्षु :- स्ववश योगीमें और सर्वज्ञ वीतरागमें कभी भी कोई भी भेद नहीं है। हम जड़बुद्धि हैं कि उसमें भेद गिनते हैं। स्ववश योगीमें और सर्वज्ञ वीतरागमें कभी भी कोई भी भेद नहीं है।

समाधान :- जो योगी स्ववश अर्थात् आत्मामें जिसे द्रव्य पर दृष्टि पर गयी, आत्मा वीतराग स्वरूप है और वीतरागी आत्माको जिसने ग्रहण किया और उस रूप उसकी परिणति हुयी, ऐसे योगी स्वयं स्ववश है। उनमें और वीतरागमें कोई फ़र्क़ नहीं है। कभी भी कोई भेद नहीं है। विभावको गौण कर दिया। आत्मामें विभाव कदापि हुआ ही नहीं। ऐसी जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी और फिर मुनिओंकी बात करते हैं, स्ववश योगीको तो साथमें लीनता भी कितनी है। मात्र थोड़ा संज्वलन है, वह एकदम गौण है। बारंबार एकदम लीनता भी उतनी है और द्रव्यदृष्टिसे देखो तो वीतरागस्वरूप आत्मा है। उसने उसे ग्रहण किया यानी वीतरागस्वरूप आत्माको ग्रहण किया। उनमें और वीतरागमें कोई अंतर नहीं है।

बारंबार लीनता करते हैं। वीतरागीपद जिन्होंने (प्रगट किया है)। जिनेन्द्रदेवको पहचानने हो तो मुनिकी मुद्रा। मुनीकी मुद्रा और वीतरागकी मुद्रामें (कोई अंतर नहीं है)। मुनिके द्वारा वीतराग पहचाननेमें आते हैं। जिन सरिखा कहनेमें आता है। जिनेन्द्र मुनिओंको जिनेन्द्र सरिखा कहनेमें आता है। उसमें कोई भेद नहीं है। वीतरागस्वरूप आत्मा है और वीतरागी पदको साधनेवाले, उग्ररूपसे साधनेवाले मुनिवर हैं। उनमें और वीतरागमें कोई भेद कदापि नहीं दिखता। द्रव्यदृष्टिसे कोई भेद नहीं है और लीनता अपेक्षासे भी भेद नहीं है। वीतरागस्वरूप आत्माको जिसने ग्रहण किया, सम्यग्दर्शनमें आंशिक वीतरागदशा होती है। मुनिओंको उससे विशेष वीतरागदशा होती है। केवलज्ञानी संपूर्ण हैं। लेकिन उसमें कोई अंतर नहीं है। जो मुनि स्ववश हैं, जिनको कोई विभाव असर ही नहीं करते। द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी उसमें असर नहीं है। लीनता अपेक्षासे विशेष असर नहीं करते। उसमें कभी भी कोई भेद दिखाई नहीं देता।

मुमुक्षु :- .. उसमें भेद गिनते हैं।

समाधान :- मुनिकी अंतर दशाको पहचानते नहीं, हम जड़ जैसे हैं कि जो वीतरागमें और मुनिमें भेद देखते हैं। हम जड़ जैसे हैं कि हम उनकी अंतर दशाको पहिचान नहीं सकते, मुनिओंकी अंतर दशाको निरख नहीं सकते कि हम उनमें भेद मानते हैं। केवलज्ञानी और मुनिओंमें भेद नहीं है। मुनिओंकी अंतर दशा माने क्या! उसे हम नहीं देख सकते हैं, हम जड़ जैसे हैं।

मुनिओंकी अंतर दशा माने वीतरागकी तलेटीमें आ गये हैं। उनकी अंतर दशाको हम पहचान नहीं सकते, हम जड़ जैसे हैं। अथवा द्रव्य स्वरूप आत्मा है, जिसने द्रव्यदृष्टि प्रगट की वीतराग स्वरूप आत्माको पहचाना उसे हम नहीं पहचान सकते। आत्मा कैसा है, उसे भी हम नहीं पहचान सकते। जिसने आत्माको ग्रहण किया, आत्माको ग्रहण किया ऐसे मुनि क्या काम करते हैं, हम नहीं पहचान सकते। हम जड़ जैसे हैं कि उनकी अंतर दशाको पहचान नहीं सकते। मात्र बाह्यदृष्टिसे सब देखते हैं। मुनिओं आहार करते हैं, मुनिओं विहार करते हैं, मुनिओंको विकल्प आता है, बाहरके प्रभावनाके विकल्प (आते हैं), हम जड़ जैसे हैं कि सब बाहरका देखते हैं, उनकी अंतर दशाको पहचान नहीं सकते। उनका अंतर कहाँ काम करता है और कहाँ विचरते हैं, बाहर दिखाई देते हैं, लेकिन वे अंतरमें ही विचरते हैं। आत्मामें ही वे तो विराजते हैं। आत्माके सिवा कहीं (नहीं है)। उसे हम देख नहीं सकते, जड़ जैसे हैं हम। उनकी लीनताको हम पहचान नहीं सकते। उनका आत्मा कहाँ विचरता है, उसे हम देख नहीं सकते। अंतर दृष्टि हमें नहीं है, हम जड़ जैसे हैं कि कुछ देख नहीं सकते।

.. मुनिओं कहाँ विचरते हैं। बाहरसे तू मत देख। वह तो अल्प विभावकी परिणति है। मुनिकी महिमा आती है, उसमेंसे बोलते हैं। स्वयं ही कहते हैं। ..देखना नहीं है, अंतर दृष्टिको देख, इस तरह स्वयं ही स्वयंकी भावनाको दृढ़ करते हैं। (हम जड़ जैसे हैं कि) ऐसा देखते हैं। अंतर परिणतिको देखना है। ऐसा कहकर अपने पुरुषार्थकी वृद्धि करते हैं। उनका अंतरंग देखकर स्वयं अपनी परिणतिको अन्दर दृढ़ करते हैं।

मुमुक्षु :- अंतर्मुहूर्त यानी कितना काल?

समाधान :- अंतर्मुहूर्त बहुत होते हैं। मुनिओंका अंतर्मुहूर्त तो क्षण-क्षणमें अंतर्मुहूर्त आता है।

मुमुक्षु :- क्षणमें छठ्ठा और क्षणमें सातवाँ, ऐसा निरंतर चलता है?

समाधान :- मुनिकी निरंतर वह दशा है। क्षण-क्षणमें पलटती है। साधकदशा है इसलिये अनेक प्रकारकी भावनासे बोलते हैं। उनकी स्वयंकी साधकदशा है। द्रव्यदृष्टिसे देखो, लीनतासे देखो, अनेक प्रकारकी स्वयंकी साधकदशा है, इसलिये अनेक प्रकारसे

कहते हैं।

मुमुक्षु :- दृष्टि अपेक्षासे गुरुदेव और वीतरागमें भी कोई अंतर नहीं है।

समाधान :- दृष्टि अपेक्षासे भेद नहीं है। अंतर परिणति प्रगट हुयी। गुरुदेवमें और वीतराग दशामें कोई अंतर नहीं है।

मुमुक्षु :- अंतर देखे वह जड़ है।

समाधान :- सब अपेक्षाएँ समझनी है। जड़ मति हूँ? मुझे मुनिओंकी महिमा क्यों नहीं आती? ऐसा कहते हैं। मुनिओंकी विभाव परिणति देखने पर क्यों दृष्टि जाती है? मुनिओंकी महिमा, स्वयंको विशेष महिमा बढानेको (कहते हैं)। महिमा तो है, परंतु स्वयं अपनी विशेष वृद्धि करना चाहते हैं। मुनिकी महिमा करके स्वयं अपनी साधना वर्धमान करना चाहते हैं। शुभभाव साथमें है। परिणति अन्दर दूसरा काम करती है, लेकिन शुभभाव साथमें आता है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, मेरी परिणति मैली है, इसलिये मैं यह टीका करता हूँ। इस टीकासे मेरी परिणति शुद्ध होओ। परिणति अंतरसे करनी है और यह तो शुभभाव है, फिर भी ऐसा कहते हैं। इस टीकासे मेरी परिणति शुद्ध, विशेष शुद्ध निर्मल होओ। ऐसा कहते हैं। भावना अनेक प्रकारसे (भाते हैं)। मैं तो चिन्मात्र मूर्ति हूँ, परंतु मेरी परिणति मैली हो रही है। यह टीका-कथनी जो करता हूँ, उससे मेरी परिणति निर्मल होओ, ऐसा कहते हैं। बाहरसे टीका करनेमें अन्दर शुभभाव भिन्न है, अन्दर परिणति भिन्न है। शुद्ध परिणति प्रगट हुयी और शुभभाव साथमें हो तो भी उसके साथ होता है उतना ही, परिणति तो स्वयंसे करनी है अन्दर, फिर भी ऐसा कहते हैं कि इससे मेरी परिणति शुद्ध होओ।

मुमुक्षु :- अनेक प्रकारके विवक्षाके कथन आये।

समाधान :- अनेक प्रकारकी अपेक्षाएँ आती है।

मुमुक्षु :- प्रत्येक अपेक्षामें एक ही केन्द्र है कि वीतरागता कैसे बढ़े।

समाधान :- वीतरागता कैसे बढे, साधना कैसे बढे। कहाँ केवलज्ञान, अल्प ज्ञान कहाँ। कहाँ केवलज्ञानका वीतरागपद और कहाँ हमारा यह पद, मुनि ऐसा कहे।

गुरुदेव क्या कहते हैं? आत्माका मार्ग क्या बताते हैं? क्या मार्ग बताते हैं, उसे पहचानना। आत्मा कैसा है? आत्माका स्वरूप कैसा है? आत्मा ज्ञायक है। ज्ञायकमें सब ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब आत्मामें है। बाहर कहीं नहीं है। ऐसा जो गुरुदेवने बताया है, उसे ग्रहण करना। और जगतमें सर्वोत्कृष्ट हो तो जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र है और अन्दर आत्मा सर्वश्रेष्ठ है। आत्माको दर्शानेवाले पंच परमेष्ठी हैं, वे सर्वोत्कृष्ट हैं।

भगवानने वह स्वरूप प्रगट किया है और उसमेंसे जो वाणी निकलती है वह वाणी दूसरोंको तारणहार होती है। जो भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचानता है, स्वयंको

पहचानता है वह भगवानको पहचानते हैं। इसलिये भगवानकी वाणीमें जो रहस्य आता है उसे पहचाने। भगवानको पहचाने और स्वयंको पहचाने। तो उसे ज्ञान, श्रद्धा और मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है।

गुरुदेवको पहचाने। साधना जो अंतरमें कर रहे हैं, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको। साधना कर रहे हैं उसका स्वरूप पहचाने। उन पर महिमा आये, उनकी भक्ति आये। जगतमें सर्वोत्कृष्ट हो तो देव-गुरु-शास्त्र है। जो आत्माका स्वरूप साध रहे हैं और जिन्होंने पूर्ण किया, उनकी महिमा आये उसे आत्माकी महिमा आये तो ज्ञान, श्रद्धा और चारित्रका मार्ग प्रगट होता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है।

... भगवान विराजमान हैं, वैसे ही शाश्वत भगवान कुदरतमें परमाणु भगवानरूप परिणमित हो गये हैं। जगतके जो परमाणु हैं, वह रत्नके आकाररूप भगवानरूप शाश्वत रत्नके पाँचसौ धनुषके, जैसे समवसरणमें भगवान विराजते हैं, वैसे ही नंदिश्वरमें भगवान हैं। ऐसे बावन जिनालय हैं, उसमें शाश्वत भगवान १०८, ऐसे भगवान प्रत्येक मन्दिरमें होते हैं। ऐसे रत्नके होते हैं। जैसे समवसरणमें विराजते हों वैसे ही। मात्र वाणी नहीं है। बाकी बोले या बोलेंगे, ऐसी उनकी मुद्रा हूबहू भगवान जैसी, किसीने किये बिना, शाश्वत भगवान हैं। उनकी मुद्रा हूबहू मानो साक्षात् जिवंत मूर्ति हों, ऐसे भगवान विराजते हैं। ऐसे मेरु पर्वतमें हैं, ऐसे नंदिश्वरमें है। ऐसे शाश्वत जिनालय जगतमें हैं। जिनालय हैं और शाश्वत जिन प्रतिमाएँ हैं।

भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं तो उनकी प्रतिमाएँ भी जगतमें, कुदरत भी ऐसा कहती है कि जगतमें भगवान ही सर्वोत्कृष्ट हैं। इसलिये परमाणु भी भगवानरूप परिणमित हो गये हैं। भगवानरूप परमाणु, पुद्गल भी भगवानरूप परिणमित हो जाते हैं। समवसरण शाश्वत, भगवान शाश्वत, सब जगतके अन्दर शाश्वत है। अपने तो यहाँ स्थापना करके दर्शन करते हैं, बाकी शाश्वत भगवान जगतमें हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०४६

समाधान :- ... मैं तो जाननेवाला ज्ञायक हूँ। परद्रव्य स्वतः स्वतंत्र परिणमते हैं। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र और मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र हैं। मैं उसे कहीं बदल नहीं सकता। जो बदल सकता तो कोई बार इच्छा अनुसार होता है और कोई बार इच्छा अनुसार होता भी नहीं है। स्वयंने नक्की किया हो कि ऐसा कर दूँ और बदल दूँ, तो भी नहीं होता। वह तो जैसे होना होता है वैसे ही होता है। उसमें कोई कछ बदल नहीं सकता।

उसे कार्यमें तो अपनी श्रद्धा बदलनी है। अन्दर आकुलता हो, यह क्यों नहीं हुआ, इच्छा अनुसार क्यों नहीं हुआ? परन्तु वह होता ही नहीं है। स्वयंको अन्दर श्रद्धा बदलकर कर्ताबुद्धि अंतरसे छोड़ देनी कि मैं नहीं कर सकता। वह रह नहीं सकता, रागके कारण सब कार्य हो, स्वयं राग करता है, इसलिये रह नहीं सकता। उसकी श्रद्धा पलट दे कि मैं तो जाननेवाला ज्ञायक उदासीन हूँ। उदासीन ज्ञाता हो जाय। श्रद्धा बदल दे।

मुमुक्षु :- वह उसका चरितार्थपना है।

समाधान :- वह चरितार्थपना। श्रद्धा बदलकर अन्दर उदासीन हो जा। सच्चा उदासीन और सच्चा ज्ञायकपना तो यथार्थ ज्ञायककी परिणति होती है तब होता है। लेकिन उसके पहले उसकी श्रद्धा और भावना कर सकता है। एकत्वबुद्धि वास्तविक टूटी नहीं हो तो भी मैं ज्ञायक हूँ, मैं तो जाननेवाला हूँ। इस प्रकार उसकी भावना, उसकी श्रद्धा, ऐसी प्रतीति बुद्धिपूर्वक भी ऐसा कर सकता है। उसे जो अतिशय राग-द्वेष, एकत्वबुद्धि होती थी उससे भिन्न रह सके। वास्तविक भिन्न तो बादमें होता है। परन्तु पहले इतना वह कर सकता है। उससे उदासीन हो, भिन्न हो, प्रतीत करे। यथार्थ उदीसनता, भिन्नता तो ज्ञायककी परिणति हो तब कहनेमें आता है। परन्तु उसके पहले भी उसकी भावनामें यह सब कर सकता है।

मुमुक्षु :- वास्तवमें तो श्रद्धा ही नहीं पलटी है।

समाधान :- श्रद्धा पलटी नहीं। एकत्वबुद्धि होती रहती है। श्रद्धाको बदलना। पहले तो श्रद्धा पलटनेकी जरूरत है। जो होनेवाला है वह होता रहता है। स्वयं अन्दर राग-

द्वेषमें जुड़ता है। दूसरा बाहरका तो कुछ नहीं कर सकता है।

मुमुक्षु :- वही उसका प्रयोग है।

समाधान :- वही उसका प्रयोग है-श्रद्धा बदलनी। मैं कुछ नहीं कर सकता। रागसे छूट नहीं सकता हूँ, इसलिये रागमें जुड़ता हूँ। बाकी राग-द्वेष भी मेरा स्वभाव नहीं है। लेकिन रागमें जुड़ता हूँ, इतना मर्यादा आती है। बाकी बाहर जड़का तो कुछ नहीं कर सकता। दूसरे चैतन्य और दूसरे पुद्गलका कुछ नहीं (कर सकता)। इस शरीरका भी कुछ नहीं कर सकता। किसीका कुछ नहीं कर सकता। व्यापार-धंधेका भी कुछ नहीं कर सकता। बाहरका कोई कार्य मैं नहीं कर सकता हूँ। प्रशस्त भाव और अप्रशस्त भाव जो होते हैं, शुभाशुभ भाव होते हैं, वहाँ तक है, इससे आगे बाहर और कुछ नहीं होता है।

मुमुक्षु :- फिर वहाँसे अन्दर राग और ज्ञान क्या होता है, उसे..

समाधान :- राग और ज्ञानको अन्दर भिन्न करना वह दूर रह जाता है। प्रज्ञाछैनीसे ज्ञान भिन्न, राग भिन्न, ऐसे भेदज्ञान करना बाकी रह जाता है।

मुमुक्षु :- ... बारंबार आडे आता है, इच्छा होगी तो ही आयेगा, नहीं तो कैसे आयेगा? ऐसा निमित्त-नैमित्तिक..

समाधान :- इच्छा होगी तो आयेगा, लेकिन ऐसा क्यों स्वयंको करना पड़ता है? इच्छा होगी तो आयेगा, उसके लिये मुझे इच्छा करनी पड़े, ऐसा है? वह तो अन्दर स्वयंको राग हो तो राग आये बिना रहता नहीं। दूसरा कार्य करनेके लिये राग करना पड़े ऐसा नहीं है। राग छूट जाता हो तो दूसरेके कार्यके लिये रागमें खड़े रहनेकी आवश्यकता नहीं है। अंतरमेंसे छूटकर वीतराग दशा होती हो तो वहाँ खड़े रहनेकी जरूरत नहीं है। लेकिन उसकी भूमिका होती है, अशुभभावमेंसे शुभभावमें आनेकी। उसकी अमुक भूमिका होती है।

शुभाशुभ भावोंसे भेदज्ञान करना। दूसरोंके लिये कहीं इच्छा करनेकी जरूरत नहीं है। सब विवेक करना पड़ता है। मैं दूसरेका कुछ नहीं कर सकता हूँ। लेकिन उसमें अशुभसे बचनेके लिये शुभभाव आये, वहाँ ऐसा कहे कि मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ, मैं कुछ नहीं कर सकता, श्रद्धा बराबर है कि बाहरका कुछ (नहीं कर सकता)। शुभभावमें भी बाहरका जो होनेवाला है वह नहीं कर सकता। लेकिन शुभभाव तो स्वयंको आये बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- वह विवेक स्वयंको करना है।

समाधान :- वह विवेक स्वयंको होना चाहिये न।

मुमुक्षु :- अशुभ है या शुभ है, ऐसे..

समाधान :- हाँ, उतना करना पड़ता है। देव-गुरु-शास्त्रके शुभभाव आते हैं। बाहरके कार्य अपने हाथमें नहीं है। बाहरके कार्य होना, शुभभाव आये, गुरु सम्बन्धित, देव सम्बन्धित, शास्त्र सम्बन्धित सब भाव आये। बाहरका कार्य हो वह स्वयं (होता) है। अशुभभावसे बचनेको शुभभावमें आये, परन्तु शुभ भी मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा ध्येय होना चाहिये, ध्येय होना चाहिये।

मुमुक्षु :- उसे कर्तव्य नहीं मानना।

समाधान :- नहीं, कर्तव्य नहीं, यह सर्वस्व है ऐसा नहीं मानना।

मुमुक्षु :- .. एक उलझन रहा करती है कि कोई ऐसा समय नहीं है कि (राग नहीं हो)।

समाधान :- राग होता रहता है, बिना रागके दिखता नहीं। राग रहित आत्मा है, उस ओरकी श्रद्धा परिणतिरूप नहीं है न, इसलिये ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- मूलमें तो श्रद्धा ही नहीं पलटी।

समाधान :- श्रद्धा पलटी नहीं। यथार्थ श्रद्धा अंतरमेंसे परिणतिरूप श्रद्धा होनी चाहिये वह श्रद्धा नहीं हुयी। पीछे मुडना, विवेक करना इन सबके लिये स्वयंको विचार करना है।

मुमुक्षु :- .. परन्तु रुचि बाहरमें बहुत जाती है, पलटनी बहुत कठिन लगती है, क्या करना मार्गदर्शन दीजिये?

समाधान :- सुनना, पढना। यहाँ तो गुरुदेवकी भूमि है न, इसलिये शान्ति (है)। अन्दर समझना।

मुमुक्षु :- बहुत अच्छा लगता है। भावनगर रहते हैं।

समाधान :- कोई उन्हें समझाये तो हो सकता है। करने जैसा तो यही है, मनुष्य जीवनमें। सारभूत तो एक आत्मा ही है। आत्माको पहचानना। बाकी कुछ सारभूत नहीं है। इस मनुष्य जीवनके अन्दर तो सब चलता ही रहता है। व्यापार आदिमें समय जाता है, बाकी सारभूत करना तो यही है। आत्माको पहचानना। उसकी जिज्ञासा, लगनी आदि करने जैसा है।

आत्मा सबसे भिन्न-न्यारा है। शरीरसे, विभावसे भिन्न आत्माका स्वभाव ज्ञायक है, उसे पहचानना। अनन्त गुणोंसे भरपूर है। बारंबार सुनना, पढना। पलनेका स्वयं प्रयत्न करना। विचार करना, करना तो यह एक ही है। सारभूत एक आत्मा ही है। आत्माको पहचानना। बाहरमें रुचि जाती हो, बाहरमें रस आता हो, अंतरमें रुचिको पलटनेका प्रयत्न करना। जैसी रुचि, वैसा प्रयत्न-पुरुषार्थ होता है। रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि अनुयायी पुरुषार्थ होगा। जैसी रुचि, वैसा। विचार करके बारंबार प्रयत्न करना। सुख आत्मामें

है, सुख बाहरमें कहीं नहीं है। बाहरमें सब कार्योंमें, अन्दर विकल्पमें हर जगह दुःख है। प्रत्येक कार्योंमें। अन्दर विकल्पमें दुःख ही है। आकुलतासे भरा यह संसार है। दुःख है। अपना स्वभाव एक ही सुखरूप है। इसलिये सुखरूप स्वभावको ग्रहण करके जाननेवाला आत्मामें आनन्द, सुख सब भरपूर उसमें ही भरा है। उसे पहचाननेका प्रयत्न करना। बाहरका करने जाता है, वह कुछ नहीं कर सकता। वह तो पुण्य-पापके उदय अनुसार होता है। सर्व द्रव्योंका परिणमन स्वतंत्र है। स्वयं कुछ नहीं कर सकता है, मात्र अभिमान करता है कि यह सब मैंने किया। किसीका अच्छा या जो भी हो, अच्छा-बुरा सब कुछ उसके पुण्य-पापके उदय अनुसार होता है, स्वयं कुछ नहीं कर सकता। स्वयं राग-द्वेष करता है। इसलिये अन्दर उस विकल्पसे भी आत्मा भिन्न है, उसका स्वभाव भिन्न है, उसे पहचाननेका प्रयत्न करना। रुचि पलटनी। .. मैंने किया, मैंने किया मात्र अभिमान करता है। परद्रव्यका कर्ता नहीं है, कोई द्रव्यको कोई बदल नहीं सकता। अपने परिणामोंको स्वयं बदल सकता है।

... निर्लेप रहता है। कीचड़में और पानीमें कमल निर्लेप ही रहता है।

मुमुक्षु :- झेरना उपयोगथी वैद्यजन मरतो नथी, कर्मोदये ज्ञानी बंधातो नथी। ज्ञानी बँधते नहीं उसका कारण?

समाधान :- जहरके उपयोगसे वैद्य मरता नहीं। वैद्यने जहरमें जो नुकसान करनेवाला है उसे निकाल दिया है। वैसे आत्मामें भी स्वयंने एकत्वबुद्धिको तोड़ दी है। भिन्न ही रहता है। बाहरके कार्योंमें जुड़ने पर भी, बाहरमें जुड़ने पर भी वह न्यारा ही है। विकल्प आये उस विकल्पसे भी न्यारा रहता है, इसलिये वह बँधता नहीं। अन्दर स्वयं वर्तमानमें ही भिन्न रहता है। अपनी परिणति एकत्वबुद्धि होकर वर्तमानमें बँधती नहीं है, इसलिये वह बँधता ही नहीं। इसलिये द्रव्यकर्म भी उस प्रकार नहीं बँधते। अपनी परिणति ही बँधती नहीं। परिणति एकत्वरूपसे जुड़ती ही नहीं। वर्तमान भिन्न ही भिन्न रहता है। वर्तमानमें बँधता ही नहीं। जो उदय आते हैं उससे भिन्न ही भिन्न रहता है। जुदा ही जुदा रहता है।

द्रव्यदृष्टिसे मेरा ज्ञायक स्वभाव भिन्न ही है। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। शरीर तो मैं नहीं, बाहरके कार्योंसे, शरीरसे सबसे मैं भिन्न हूँ और अन्दर विभाव परिणामसे भी मैं भिन्न हूँ। ऐसे न्यारा ही न्यारा रहता है, इसलिये वह स्वयं अन्दरसे बँधता ही नहीं, विरक्त रहता है। न्यारा रहता है, इसलिये कर्मसे बँधता नहीं। द्रव्यकर्म भी नहीं बँधते। भावकर्म नहीं बँधते हैं, इसलिये द्रव्यकर्म नहीं बँधते। अन्दरसे न्यारा ही न्यारा, भिन्न ही भिन्न स्वयं रहता है। अनादिसे भिन्न है, लेकिन प्रगटरूपसे भिन्न हो गया है। अल्प अस्थिरता होती है उसे गौण कर दी है। वह अस्थिरता ऐसी है कि वह लम्बे

समय टिकनेवाली नहीं है। अन्दरसे न्यारा ही न्यारा, भिन्न ही भिन्न रहता है। हर समय। जागते, सोते, स्वप्नमें सबमें वह न्यारा ही न्यारा, ज्ञायक ही रहता है। ऐसी ज्ञान-वैराग्यकी शक्ति उसे प्रगट हुई है।

ज्ञान-वैराग्य शक्ति। ज्ञान-वैराग्यकी ऐसी अद्भुत शक्ति प्रगट हुयी है कि उसे लेप ही नहीं लगता। अंतरमें ऐसी कोई उसे शक्ति प्रगट हुयी है। सब प्रकारसे वह भिन्न हो गया है। उसका आदर ही नहीं करता। किसी भी प्रकारसे यह विभाव आदरणीय नहीं है, यह संसार आदरणीय नहीं है, मन-वचन-कायासे, किसी भी प्रकारसे आदरणीय नहीं है। सब प्रकारसे अन्दर भिन्न हो गया है। द्रव्यदृष्टिसे उसकी श्रद्धामें, सब प्रकारसे भिन्न हो गया है, इसलिये वह बँधता नहीं। ऐसी उसकी परिणति ही हो गयी है। मात्र विकल्परूप नहीं या निर्णय करके निर्णय एक ओर पड़ा रहा है, ऐसा नहीं। उसकी परिणति ही न्यारी रहती है, न्यारी परिणति (हो गयी है)। इसलिये वह बँधता नहीं।

उसे ऐसा होता है कि यह कुछ आदरणीय नहीं है। कब ऐसी वैराग्यकी परिणति हो कि यह सब छूटकर मैं मेरे स्वरूपमें लीन हो जाऊँ और पूर्ण लीन हो जाऊँ। कब मुनि बनुँ, कब यह सब छूट जाय, ऐसा भावना उसे वर्तती है। अन्दरसे भिन्न रहता है। गृहस्थाश्रममें होने पर भी स्वानुभूतिमें लीन होता है। बाहर आये तो भिन्न ही भिन्न रहता है।

आता है न? वृक्षका मूल काटनेके बाद वह वृक्ष पनपता ही नहीं। उसका मूल कट गया है। सुखबुद्धि ही बन्धनका कारण है। जहाँ देखो वहाँ एकत्वबुद्धि। उसने बुद्धिमें निर्णय किया हो कि मैं भिन्न हूँ, तो भी उसकी परिणतिमें हर वक्त एकत्वबुद्धि ही हो रही है। सब परिणतिमें एकत्वबुद्धि (होती है)। उससे भिन्न, उसी क्षण भिन्न भासना चाहिये, उसी क्षण भिन्न नहीं भासता। विचार करे कि मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ। लेकिन जिस क्षण परिणति होती है, उसी क्षण वह भिन्न नहीं रहता है।

और ज्ञानीकी परिणति सहज ऐसी है कि जिस क्षण विकल्प आता है, उसी क्षण वह भिन्न रहता है। फिर उसे विचार नहीं करना पड़ता कि मैं भिन्न हूँ, मैं भिन्न हूँ। ऐसा विचार नहीं करना पड़ता। जिस क्षण विकल्प आता है, उसी क्षण वह भिन्न रहता है। शुभाशुभ प्रत्येक भावमें जिस क्षण विकल्प होता है, उसी क्षण (भिन्न रहता है)। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०४७

समाधान :- .. मनफूलाबहन है न? आश्रममें सब जगह तोरण बाँधे थे। एक मनफूला है और दूसरे पर्णफूला है। गोगीदेवीके नामसे था न। ... कौन जाने क्या हुआ? कुछ याद नहीं है। तोरण बाँधे थे। सब कमरेमें आमके तोरण बाँधे थे। यहाँ हमारे घर आमके तोरण बाँधे थे। कुछ नया ही लगता था।

'मारे आंगणिये रूडा राम रमे...' अन्यमतमें एक गाना आता है न? मेरे आंगनमें चारों ओर भगवान दिखते हैं। वैसे यहाँ गाना गाते थे, 'मारे आंगणिये रूडा राम रमे...' (चारों ओर) भगवान दिखते हैं, ऐसा लगता था। यहाँ है न? भगवान दिखते हैं न? चारों ओर मानस्तंभ। जहाँ देखो वहाँ भगवान दिखते हैं, ऐसा होते थे। ऐसे गुरुदेवके सान्निध्यमें आश्रममें रहना वह तो कितना मुश्किल। बहुत जगह आश्रम होंगे, परंतु ऐसे गुरुदेवकी वाणी मिलती हो, ऐसे आश्रम तो मिलने मुश्किल है।

.. ध्येय रखना। जीवनमें एक ध्येय रखना। ध्येय-आत्मा कैसे पहचानमें आये? ज्ञायक आत्मा। जीवनमें जो निर्णय किया है, उस निर्णयकी दृढ़तासे आगे बढ़ना। अन्दर पुरुषार्थ हो वह पुरुषार्थ करना, भेदज्ञानका अभ्यास करना। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी आराधना और अन्दर ज्ञायकदेवकी आराधना और महिमा। बस! बाकी सब विभावभावोंको गौण कर देना और ज्ञायकदेवको मुख्य करके जीवन व्यतीत हो। बस! यह एकी ध्येय। इसी ध्येयकी दृढ़ता। जो नक्की किया कि इस प्रकार जीवन व्यतीत करना है। उसी ध्येयकी दृढ़तासे आगे बढ़ना है।

शास्त्र स्वाध्याय, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और अन्दर शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? मैं तो बहुत बार यह एक ही कहती हूँ और यह एक ही करना है। एक आत्माको पहचाने, बस, उसमें सब आ जाता है। उसे पहचाननेकी भावनामें यह सब कार्य- देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें रहकर उनकी आराधना और आत्माकी आराधाना, बस! यह करनेका है।

लौकिकके जीवन देखो तो कैसे जाते हैं। यह जीवन, यह जीवन जो आत्माके लिये व्यतीत किया वह जीवन ही जीवन है। बाकीके जीवन, सब संसारके जीवन व्यर्थ है। लौकिक जीवनमें पूरा दिना खाना, पीना, यह, वह, व्यवहार रखो, यह रखो, वह

रखो, ऐसा जीवन वह जीवन नहीं है। इस मनुष्य जीवनमें आकर ज्ञायकका ध्येय और देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य मिले, उसमें ही जीवन व्यतीत हो वही जीवन है। बाकी तो सब जीवन निष्फल जीवन, सूखा जीवन है, सब तुच्छ जीवन है। वह जीवन आदरने योग्य नहीं है। एक शुद्धात्मा आदरने योग्य है। वह सब जीवन व्यर्थ है। जिस जीवनमें कुछ किया नहीं, शुद्धात्माका ध्येय रखा नहीं, आराधना की नहीं, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा नहीं की, वह जीवन व्यर्थ है।

वह आता है न? यह गृहस्थाश्रम किस कामका कि जिस गृहस्थाश्रममें गुरुके पावन चरण नहीं है, जिसमें गुरुका आहारदान नहीं है, जिसमें जिनेन्द्रदेवके दर्शन नहीं है, जिसमें शास्त्रका स्वाध्याय नहीं है, उस गृहस्थाश्रमको आचार्यदेव कहते हैं, पानीमें डूबो देना। गृहस्थोंको ऐसा कहते हैं। वह गृहस्थाश्रम तो आदरणीय है ही नहीं, यह आत्मा आदरणीय है। देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य आदरणीय है, शुद्धात्माके ध्येयपूर्वक। अन्दर मुख्य तो आत्मा आराधनीय है। उसके साथ देव-गुरु-शास्त्रकी आराधना।

मुमुक्षु :- आपके आश्रयसे हमारा जीवन सफल हो, वही भावना।

समाधान :- ... यह सब यहाँ आते हैं, क्या करना?

.. कर्ताबुद्धि, एकत्वबुद्धि टूट गयी और ज्ञाताधारा प्रगट हो गयी। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्पसे निर्णय करता है वह अलग, ज्ञानीको सहज रहता है। ज्ञाताधारा चालु ही है। दो धारा साथमें चलती है। फिर विचार नहीं करना पड़ता कि यह विकल्प आ गया, मैं तो ज्ञायक हूँ। यह एकत्व हो गया, ऐसा विचार नहीं करना पड़ता। विकल्पकी धारा और ज्ञाताकी धारा दो धारा साथमें चलती है। शुभाशुभ कोई भी विकल्प हो, ऊँचेसे ऊँचा विकल्प हो, तो भी उसकी दोनों धारा चालू है, प्रतिक्षण चालू है। देव-गुरु-शास्त्रके शुभ विकल्प हो तो भी उसे ज्ञाताधार तो चालू ही है। उसमें एकत्व नहीं होता। उसे बहुत भाव आये, बहुत भक्ति आये इसलिये उसकी धारा टूट जाय और एकत्व हो जाय, ऐसा उसे नहीं होता। उसकी ज्ञाताधारा तो चालू ही रहती है। भाव आये, उत्साह आये, चाहे जैसे शुभ विकल्प हो तो भी उसकी ज्ञाताधारा तो चालू ही है।

मुमुक्षु :- शुद्ध परिणतिके अनुकूल ऐसा शुभराग आने पर भी उसमें एकत्व होता नहीं।

समाधान :- एकत्व नहीं होता। कर्तृत्व तो ही छूटेगा, ज्ञायकका बल बढनेसे। मैं तो ज्ञायक हूँ, उदासीन ज्ञायक, बस। किसीका कुछ नहीं कर सकता, मैं तो ज्ञायक हूँ। जुड़ जाता हूँ, लेकिन मैं ज्ञायक हूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो जाननेवाला हूँ। ज्ञाता रहनेका, ज्ञायक स्वभावकी जिसे दृढ़ता हो कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ, ऐसे

उदासीन रहनेकी, उदासीनतामें जिसे रस हो, जिसे ज्ञाताका रस हो, वह रह सकता है।

जीवको अनादिसे कर्ताबुद्धिका इतना रस लगा है कि मैं करूँ, यह किया, मैंने किया, मैंने किया उसके रसमें, ज्ञाता होकर निवृत्त रहना कि मैं कुछ नहीं कर सकता, वह उसे मुश्किल लगता है। जिसे ज्ञायकका रस हो, जिसे ज्ञायककी महिमा हो, वह अन्दरसे महिमासे निर्णय करे, श्रद्धा करे और परिणति प्रगट कर सके। विकल्पमें भी जिसे अन्दर ज्ञायक रहनेका उतना रस हो या जिसे अन्दर ज्ञायककी निवृत्त दशा रुचती हो वह रह सके। जिसे कर्तृत्वबुद्धि रुचती हो वह नहीं रह सकता।

अन्दरसे महिमा लगनी चाहिये। उसने विचारसे नक्की तो किया कि मैं कर्ता नहीं हूँ, ज्ञाता हूँ। लेकिन उसे ज्ञायकका महिमा और रस हो तो उसे ज्ञायककी बारंबार भावना और जिज्ञासा हो, तो उसे परिणति प्रगट होती है। कुछ करना नहीं है, ऐसी निवृत्त दशा जिसे सुहाती हो, रुचती हो वह अन्दर रह सकता है।

मुमुक्षु :- कुछ किये बिना रह सके, ऐसा?

समाधान :- हाँ। मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं तो जाननेवाला हूँ। ऐसी उदासीनता और ऐसी ज्ञायककी महिमा जिसे लगे, वह स्वयं श्रद्धा करके वैसी परिणति कर सकता है, तो उसकी सहज दशा होती है। ... निकम्मा हो जाय, मैं कुछ नहीं कर सकता? शून्य हो जाय? निष्क्रिय हो जाय? ऐसा अन्दर लगता हो वह नहीं रह सकता।

मुमुक्षु :- इसमें सब उपाधि खत्म हो जाती है, बोजा खत्म हो जाता है।

समाधान :- अन्दर रस लगना चाहिये। श्रद्धा तो करे। फिर छूटे तो बादमें। पहले ऐसी श्रद्धा तो करे। अन्दर ऐसी महिमा, श्रद्धा करे। परिणति बादमें प्रगट होती है। परिणति प्रगट होनेके बाद अल्प अस्थिरता रहती है। लेकिन उसे अन्दर एकत्वबुद्धि तोड़नी मुश्किल पड़ती है। सिद्ध भगवानको कुछ नहीं करनेका है? प्रवृत्तिका उतना रस होता है, इसलिये ऐसा लगता है कि कुछ नहीं करनेका? यह सब छूट जायगा तो शून्य हो जायेंगे तो? ऐसा हो जाता है। परन्तु अन्दर स्वभावमें सब भरा है, ऐसी महिमा अन्दरसे आनी चाहिये, उतनी श्रद्धा अन्दरसे आनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ज्ञानधारा भी निर्विकल्पपने काम कर रही है?

समाधान :- जैसे श्रद्धा कार्य करती है, वैसे ज्ञानधारा भी सहज काम करती है। उसे विकल्प नहीं उठाना पड़ता। ज्ञानधारा भी निर्विकल्पपने काम करती है और श्रद्धा भी वैसे ही काम करती है। निर्विकल्प यानी स्वानुभूतिकी निर्विकल्पता नहीं। उसकी परिणति उस जातकी है, परिणति उस जातकी है। उसे रागका विकल्प कर-करके रहना पड़ता है, ऐसा नहीं है। सहज परिणति (चलती) है।

जैसे एकत्वबुद्धिकी परिणति सहज है, उसे विकल्प करके रखनी नहीं पड़ती, वह

तो अनादिसे सहज हो गयी है। एकत्व (परिणतिको) विकल्प करके रखनी नहीं पड़ती। विकल्प जुड़े हुए हैं, वैसे ही रहती है।

वैसे ज्ञानधारा भी उसकी ऐसी सहज हो जाती है कि उसे विकल्प करके रखनी नहीं पड़ती। अपना स्वभाव है इसलिये वह तो सहज ही है। लेकिन स्वयं उस रूप सहज परिणमता नहीं, इसलिये वह सहज नहीं होती। कर्तृत्वबुद्धिका रस लगा है। इसलिये स्वयं सहज नहीं परिणमता। उसकी ज्ञानधारा सहज ही है। जैसे एकत्वधारा (चलती थी), उसमेंसे भेदज्ञानकी धारा हुयी तो उदयधारा और ज्ञानधारा, दोनों उसे चालू हो जाती है।

मुमुक्षु :- उस प्रकारका रस होना चाहिये।

समाधान :- उस प्रकारका ज्ञाताधाराका रस अन्दरसे लगना चाहिये।

मुमुक्षु :- मुझे दीक्षा ही लेनी है, ऐसा बचपनसे (लगता था)। दुकान पर बैठते थे तब शास्त्र ही पढ़ते थे। छोटे थे (उस वक्त) यदि कोई भक्ति करे, भजन करे उनके पास जाते थे। ऐसा उनको बचपनसे वैराग्य था। बादमें पालेज गये। उनका जन्म उमरालामें हुआ, थोड़े साल वहाँ रहे, बादमें पालेज गये। वहाँ दुकान पर बैठते। उनके भाई ... स्वयं स्वाध्याय करते थे। २२-२३ सालकी उम्रमें गुरु ढूँढनेके लिये हिन्दुस्तानमें फिरे कि कोई अच्छे गुरु मिले। बोटाद संप्रदायके हिराजी महाराज स्थानकवासी संप्रदायमें दीक्षा ली।

तत्पश्चात् शास्त्रका अभ्यास बहुत (किया), सब विचार करके पढ़ा, उसमेंसे उन्हें लगा कि सच्चा मार्ग क्या है। स्थानकवासी, श्वेतांबर शास्त्र और दिगंबर शास्त्र, सब शास्त्र पढे। उसमेंसे उन्हें ऐसा लगा कि मुझे आत्माका करना है। यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, अन्दर आत्मा जाननेवाला, यह विकल्पजाल हो रही है वह मेरा स्वभाव नहीं है। बस, एक ज्ञायक आत्मा मुझे समझमें आ गया। समयसार दिगंबर शास्त्र (मिला), उसमेंसे उन्हें वह अन्दरसे समझमें आया और अंतरमें उतर गये। उसमेंसे उन्हें ऐसा लगा कि अब मुझे इस भेसमें नहीं रहना है। इसलिये उन्होंने यहाँ आकर परिवर्तन किया।

स्थानकवासी संप्रदायमें वे बहुत उच्च कोटिके गिने जाते थे। उनकी क्रियाएँ बराबर शास्त्र अनुसार थी। जो आहार ले तो बराबर उनके लिये किया हो तो ऐसा कुछ नहीं लेते थे। थोड़ा भी ऐसा लगे कि उनके लिया बनाया है तो वापस चले जाते। इतने (कड़क थे)। उनके प्रवचनमें हजारों लोग आते थे। सुबह पाँच-पाँच बजेसे सब बिछावन लगा देते थे, जगह रोकनेके लिये। उनका प्रवचन आत्मा पर चलता, सब सुनकर आश्चर्यचकित हो जाते। प्रवचनमें कोई आवाज नहीं करता। कोई वस्तु गिरी हो तो आवाज आये, इतनी शांति उनके प्रवचनमें होती थी। उतने लोग। स्थानकवासीके

बहुत उच्च कोटिके (गिने जाते थे)। उनकी क्रियाएँ इतनी सख्त थी। शास्त्र अनुसार पालते थे।

शास्त्रमें जो लिखा हो उतने ही कपड़े रखे, उसी तरह विहार करे, कोई चीज लेने जाय तो उनके लिये बनायी गयी कोई वस्तु नहीं लेते, तुरन्त वापस चले आते। ऐसी तो उनकी क्रियाएँ थी। उसमेंसे उन्हें लगा कि आत्माकी बात दिगंबर शास्त्रमें है। मैं यह मानता हूँ तो इस भेसमें रहकर क्या करुँ? इसलिये अंतरमें तो उतर गये, फिर परिवर्तन किया। मुहपत्तिका त्याग किया। लोगोंको उन पर अत्यंत भक्ति थी। उन्होंने परिवर्तन किया तो बहुत लोगोंने विरोध भी किया, फिर भी स्वयं अडिग रहे। यहाँ एक मकान है वहाँ परिवर्तन किया। फिर वर्षों तक शास्त्रका अभ्यास, स्वयं अन्दर बहुत ज्ञान-ध्यान करते थे। फिर लोगोंको धीरे-धीरे लगा कि जो कानजीस्वामी कहते हैं वह सत्य है। उन्होंने परिवर्तन किया (बराबर है)। उनकी छाप लोगोंमें इतनी हो गयी थी। इतनी छाप हो गयी थी तो धीरे-धीरे लोग उनके पीछे फिरसे आने लगे। थोड़े तो उनके साथ ही खड़े थे।

स्थानकवासी संप्रदायमें इतनी छाप थी कि सब धीरे-धीरे (आ गये)। वे कहते हैं वह सत्य ही है। कानजीस्वामी बिना विचार किये कुछ नहीं करते। सब लोग उनके पास वापस आये। तत्पश्चात् उनका विहार आदि शुरू हुआ। बादमें धीरे-धीरे सब भक्त इकट्ठे होने लगे। उन्होंने किसीको कुछ नहीं कहा है। भक्तोंने मिलकर स्वाध्याय मन्दिर, मन्दिर, यह समवसरण, मानस्तंभ सबने मिलकर बनाया। फिर धीरे-धीरे उनका विहार (चालू हुआ)। पहले सौराष्ट्रमें विहार हुआ, फिर धीरे-धीरे गुजरातमें, मुंबईमें हर जगह गये। व्याख्यानें इतने लोग आते थे। उनके प्रवचनमें इतनी आत्माकी बातें आती थी कि लोग आश्चर्यचकित होकर सुनते थे।

फिर तो उन्होंने यात्रा की। हिन्दुस्तानके कितने ही हिन्दीभाषी मुड़ने लगे। दिगंबर जो उस ओर हिन्दीभाषी है, वह सब मुडने लगे। यहाँ नानालाल कालीदास देरावासी हैं, वह भी इस ओर मुडे। वे मुख्यरूपसे भाग लेते हैं। स्थानकवासी मुख्यपने, कोई देरावासी, दिगंबर इस ओर मुड़े। पूरा जीवन उन्होंने इसी तरह व्यतीत किया। एक आत्माका करना, एक आत्माके लिये सब करते।

मुमुक्षु :- स्वर्गवास हुआ उस वक्त कितनी उम्र थी?

समाधान :- ९१.

मुमुक्षु :- संसार तो उन्होंने भोगा ही नहीं न?

समाधान :- नहीं। बाल ब्रह्मचारी थे। विवाह नहीं किया। सबने आग्रह किया, लेकिन कहा, मुझे दीक्षा लेनी है और मुझे ब्रह्मचारी ही रहना है। दीक्षा ले ली। ४५

वर्षमें स्थानकवासी संप्रदायका परिवर्तन किया। ४५ वर्षकी उम्रमें।

मुमुक्षु :- उनका व्यवसाय क्या था?

समाधान :- पालेजमें उनके भाई चलाते थे। वे तो निर्लेप (रहते थे)। वे तो २४ वर्षकी उम्रमें निकल गये। किरानेका। पालेजमें व्यापार बहुत अच्छा चलता था।

मुमुक्षु :- आप कितने सालसे..

समाधान :- मैं तो १७ सालकी उम्रसे आती-जाती रहती थी। १९ वर्षकी उम्रसे परिचय (हुआ)। मेरी १९ सालकी उम्र थी।

मुमुक्षु :- तबसे आपको परिचय है। धन्य है आपको! इतनी छोटी उम्रसे आप उनके साथ रहकर..

समाधान :- .. अभी तो देवलोकमें हैं। लेकिन वे तो महापुरुष कोई अपूर्व पुरुष थे। उच्च आत्मा, मोक्षगामी। ... वह सब बाहरका है। बाकी उनकी आत्माकी बात, आत्मा ही अलग था।

मुमुक्षु :- परन्तु इस ओर मुड़नेके लिये क्या करना?

समाधान :- आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करना चाहिये। पहले तो यह संसार दुःखरूप है, आत्मामें ही सुख है, ऐसे अंतरमेंसे रुचि करनी चाहिये। फिर उसका विचार, वांचन सब (करना)। अन्दरसे जिज्ञासा करनी चाहिये। आत्मा अन्दर एक शाश्वत वस्तु है। उसे पहचाननेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, अन्दर विकल्प होते हैं वह नहीं, स्वयं सिद्ध भगवान जैसा है। लेकिन वह नक्की कब हो? स्वयं कुछ विचार करे, वांचन करे, सच्ची समझ करे तो समझमें आये ऐसा है।

..क्या है नक्की करना चाहिये, वांचन, विचार करना चाहिये। सत् मार्ग क्या है, उसे खोजकर सत्य क्या है, यह नक्की करना। सत्य क्या है? और आत्मा क्या है? सत्य क्या है यह विचारसे नक्की करना चाहिये, तो आगे बढ़ा जाय। उतनी जिज्ञासा होनी चाहिये न कि मुझे आत्माका करना है। आत्माका करना है, ऐसी लगनी लगी हो तो सत्य खोजनेको वैसा सत्संग ढूँढे, वैसे विचार करे, वांचन करे, सत्य कहनेवाले कौन है, उसे खोजनेके लिये कोई सत्यकी बात करते हो वहाँ उनका सत्संग करे तो होता है।

मुमुक्षु :- दिगंबर पंथका आचरण किया...

समाधान :- भेस तो पहनते थे, लेकिन वे स्वयं ब्रह्मचारी भेसमें रहते थे। एक मुहपत्ति छोड़ी, बाकी कुछ नहीं। कोई मुनि बनकर वस्त्र निकालकर दिगंबर (हो) वह अलग, कोई ब्रह्मचारी रहे, अनेक प्रकारसे रहते हैं, उसकी कोटि होती है। लाखों लोगोंको उन्होंने इस ओर मोड़ा। उनके भक्त वह उनके शिष्य हैं। बाकी उनके बाद कोई शिष्य

हो, उस तरहसे शिष्य नहीं। उनके लाखों भक्त हैं। ४५-४५ साल तक वाणी बरसायी। बहुत जीव तैयार हो गये हैं। हर गाँवमें मुमुक्षु मण्डल चता है। सब गाँवमें वांचन चलता है, हर जगह। यहाँ भी वांचन चलता है।

मुमुक्षु :- उनके बाद पदवी लेनेवाला कोई...?

समाधान :- ऐसी कोई पदवी आदि नहीं।

मुमुक्षु :- ऐसा जीव ऊँचा है न।

समाधान :- मार्ग दिखाकर गये, वाणी बरसाकर गये। शिष्य है, ऐसा कुछ उन्होंने रखा नहीं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०४८

समाधान :- ... ज्ञानस्वभावका निर्णय करके, फिर उसमें आता है न? मति-श्रुतका उपयोग जो बाहर जाता है उसे अन्दरमें समेटना। ज्ञानस्वभाव, आत्मा ज्ञानस्वभाव ही है। ऐसा पहले विकल्पसे निर्णय करे। अन्दर स्वयं अपना स्वभाव पहचानकर अंतरसे निर्णय करना चाहिये कि यह ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ, इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ मैं नहीं हूँ। यह सब विकल्प जो आते हैं, उस विकल्पसे भी मेरा स्वभाव भिन्न है। विकल्प है उससे मैं ज्ञानस्वभाव आत्मा भिन्न हूँ। यह एकत्वबुद्धिकी धारा अनादि कालसे चल रही है कि विकल्प सो मैं और मैं सो विकल्प, ऐसी जो एकत्वबुद्धि है, शरीर तो जड़ है, कुछ जानता नहीं, उसके साथ एकत्वबुद्धि है, विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि है। उससे भिन्न मैं ज्ञानस्वभाव हूँ।

ज्ञान यानी गुण नहीं, परन्तु पूर्ण ज्ञायक हूँ। उस ज्ञायकको ग्रहण करके ज्ञायक ही मैं हूँ, सब शुभाशुभ विकल्प जो आते हैं उससे मैं भिन्न हूँ। ऐसा निर्णय अंतरमें करके बराबर दृढ़ करके वह प्रतीत अंतरसे आनी चाहिये। विकल्पसे विचार करके निर्णय करे परन्तु अंतरमेंसे निर्णय आना चाहिये कि यह ज्ञायक है वही मैं हूँ। बराबर ज्ञायकका स्वभाव पहचानकर, उसे ग्रहण करके, निर्णय करके फिर मति-श्रुतका उपयोग जो बाहर जाता है, जो विचार करे, भले ऊँचेसे ऊँचे विचार आये, फिर भी मेरा स्वभाव तो निर्विकल्प है। ऐसे विचार तो शुभभाव मिश्रित हैं। उसमें शुभभाव साथमें है। उससे भी (भिन्न) मैं निर्विकल्प स्वभाव हूँ। उससे भी मैं तो भिन्न हूँ। शुभभाव मिश्रित है इसलिये वह मैं नहीं। सबसे भिन्न करके स्वयं अपने स्वरूपमें लीन हा जाय, उसमें स्थिर हो जाय, ऐसा स्थिर हो जाय, उससे विरक्त होकर स्थिर हो जाय तो उसके विकल्प छूट जाय। तो उसका ज्ञायक स्वभाव है (उसकी) स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हो। बाहर जाता है वह सब आकुलता है।

मतिका उपयोग, श्रुतका उपयोग सब बाहर जाता है। अंतरमें समेटकर अंतर ज्ञायकमें लीन जाय, ज्ञायकमें ऐसा लीन हो जाय कि बाहरका उसे कुछ ध्यान ही नहीं हो, ऐसा ज्ञायकमें लीन हो जाय, तो विकल्प छूट जाय। उसमें वह आता है। अंतरमें ऐसा आत्मा ज्ञायक, उसकी स्वानुभूति प्रगट होती है। वह सब आता है। स्वयं सबसे भिन्न

ज्ञायक स्वभाव ऊपर तैरता निर्विकल्प स्वभाव, ऐसा ज्ञायक आत्मा भगवान प्रगट होता है। ज्ञायक भगवान। लेकिन अंतरमेंसे भिन्न पड़ना चाहिये।

भेदज्ञानकी धारा प्रगट होनी चाहिये। फिर बाहर आये तो-तो भेदज्ञानकी धारा उसे चालू रहती है। सहज भेदज्ञानकी धारा। जिस क्षण विकल्प उत्पन्न हो, उसी क्षण उसे ज्ञायक स्वभाव भिन्न ही भासता है। दोनों धारा भिन्न चलती है। अंतरमें लीन हो जाय तो बाहरका कुछ ध्यान नहीं रहता। अंतरमें अकेला ज्ञायक स्वभाव, एक ज्ञायकमें ही स्वयं ऐसा लीन हो जाता है, उसमें स्वानुभूतिकी दशा प्रगट होती है। ऐसी लीनता प्रगट होनी चाहिये।

यथार्थ ज्ञान-निर्णय करके फिर ऐसी लीनता अंतरमें प्रगट होनी चाहिये। उससे भिन्न होकर। ज्ञान, श्रद्धा और अमुक अंशमें लीनता। विशेष लीनता मुनिओंको होती है, परन्तु स्वानुभूतिकी दशामें भी लीनता ही होती है। सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें भी लीनता (है), जो आंशिक स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होता है।

... महिमा आकर, ज्ञायक स्वभावको पहचानकर ज्ञायकमें ही सबकुछ है, बाहर कुछ नहीं है, उतनी ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये, स्वभावको बराबर पहचानना चाहिये और विभावसे विरक्त होनी चाहिये। स्वभावमें ही सब है, विभावमें कहीं रस नहीं आये, अकेले चेतन्यका रस बढ जाय, ज्ञायकका रस, ज्ञायककी महिमा, बारंबार ज्ञायक..ज्ञायक, ऐसी ज्ञायकदेवकी महिमा आये, उसे अंतरमेंसे ग्रहण करे और उसमें लीन हो तो विकल्प छूट जाय।

उसका क्रम वह है कि पहले बराबर ज्ञानस्वभावका निर्णय होना चाहिये। उसके बाद यथार्थ ज्ञान हो तो फिर यथार्थ ध्यान हो। ज्ञान और ध्यान इस प्रकार यथार्थपने होते हैं।

मुमुक्षु :- निर्णय तो ऐसे बहुत बार होता है। चैन नहीं पड़ता। रातको जागते हैं, रतजगा नहीं लगे। कुछ लगे, लेकिन वह सब व्यवहारिक बात है। लेकिन जो वस्तु होनी चाहिये..

समाधान :- अंतरमेंसे ग्रहण होना चाहिये। अंतरमेंसे ग्रहण होना चाहिये। बारंबार उसका अभ्यास करते रहना, बारंबार। भले स्वाध्याय करे, विचार करे, सब करे, भले जब तक नहीं होता तब तक तो स्वाध्याय, विचार आदि ही करना होता है, परन्तु बारंबार उसका अभ्यास बारंबार करे। भेदज्ञानका अभ्यास बारंबार (करे)।

द्रव्य पर दृष्टि करके बारंबार मैं इससे भिन्न हूँ, इस प्रकार बारंबार उसकी महिमापूर्वक करता रहे तो होता है। बारंबार विचार करके अमुक निर्णय विकल्पसे करके फिर छूट जाय, भावना रहे कि मैं भिन्न.. भिन्न (हूँ), परन्तु बारंबार उसका अभ्यास करे तो

होता है। बारंबार करे। बारंबार अभ्यास करते-करते अंतरमेंसे यथार्थ निर्णय आये तो होता है। बारंबार अभ्यास करनेसे थकना नहीं, कंटालना नहीं, बारंबार अभ्यास करते रहना।

मुमुक्षु :- ... लेकिन बादमें ... शान्ति भी लगे, लेकिन उसके बाद क्या?

समाधान :- यह जाननेवाला मैं हूँ, जाननेवालेमें सर्वस्व है। जाननेवालेको यथार्थ ग्रहण करके उसमें लीन हो जाय। बाहर जाते उपयोगको, बाहर जाता उपयोग अंतरमें आ जाय तो होता है। बाहर जाते उपयोगको अंतरमें झुकाये तो होता है। प्रथम सुदृष्टि करे, प्रथम इस शरीरसे भिन्न किया, इस विकल्पसे भिन्न, ... सबसे भिन्न करके अंतरमें लीन हो जाय। ऐसा क्रम नहीं है, लेकिन ऐसा क्रम लिया है। जो एकसे भिन्न हुआ, वह सबसे भिन्न हो जाता है। स्थूलसे भिन्न, अन्दर सूक्ष्म विकल्पसे भिन्न, अशुभसे भिन्न, शुभसे भिन्न, ... सबसे भिन्न होकर अंतरमें लीन हो जाय। अशुभभावसे बचनेको शुभभाव बीचमें आये। द्रव्य-गुण-पर्यायके विचार आये, सब आये, लेकिन वह सब आकुलतारूप बुद्धिको अंतरमें समाकर सबसे छूट जाय। ऊपर तैरता ऐसा ज्ञायक भगवान तुझे प्रगट होगा। सब शब्द (आते हैं)।

मुमुक्षु :- लालच होनी चाहिये।

समाधान :- परपदार्थकी लालच और तुझे लालसा होती है कि यह मुझे चाहिये, यह ठीक है, यह अच्छा है, ऐसी परपदार्थकी ओर जो लालसा होती है, वैसे तुझे यहाँ ज्ञायक अच्छा है, मुझे ज्ञायक कैसे मिले, मुझे ज्ञायक कैसे प्रगट हो, वैसे उसे लालसा होनी चाहिये। लालसा यानी भावना होनी चाहिये, उसकी इच्छा होनी चाहिये। यह ज्ञायक भगवान वही सर्वस्व है, यह कुछ सर्वस्व नहीं है, यह बाहरकी वस्तुओंमें कुछ नहीं है। इस ज्ञायकमें ही सर्वस्व है। शुभभाव साथमें हैं, लेकिन शुभभावकी दिशा पलटती है। बीचमें आये बिना रहते नहीं।

यह ज्ञायक भगवान मुझे कैसे मिले, ऐसे भावना होनी चाहिये। यह ज्ञायक भगवान वही सर्वश्रेष्ठ है। अनन्त कालमें सबकुछ मिल गया है, कुछ भी नया नहीं है। देवलोककी ऋद्धियाँ अनन्त बार प्राप्त हुयी है। उसमें कोई विशेषता नहीं है। अनन्त कालमें नहीं मिला है तो एक आत्मा (और) सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं हुयी है। वही सर्वस्व है। उसकी तुझे भावना, उसकी महिमा, उसका आश्चर्य लगना चाहिये। उसका आश्चर्य कर तो तुझे वह प्रगट होगा। तुझे उसका आश्चर्य नहीं लगता है और बाहरका आश्चर्य लगता है। बाहरकी कोई वस्तु आश्चर्यकारी नहीं है। वह तो तुझे बहुत बार प्राप्त हुयी है, अनन्त कालमें। देवलोकके रत्न और ये सब ढेर प्राप्त हुए हैं। कोई राजाकी पदवी प्राप्त हुयी है, उसमें कोई विशेषता नहीं है। विशेषता आश्चर्यकारी वस्तु हो तो आत्मा

है। उसका आश्चर्य कर। उसकी भावना ही नहीं करता है, उसका आश्चर्य लगता नहीं।

मुमुक्षु :- बहुत खुशी बताते थे कि कैसी सुन्दर रचना हुयी है नंदिश्वरकी।

समाधान :- पंचमेरु नंदिश्वर शाश्वत जिनालय है। कुदरतमें शाश्वत है। यहाँ तो प्रतिष्ठा की है। रत्नके शाश्वत भगवान। कुदरत भगवानरूप परिणमित हो गयी है। कुदरतके सब रजकण, पुद्गलके स्कंध भगवानरूप और मन्दिररूप होते हैं। यह ऐसा सूचित करता है कि जगतमें सर्वोत्कृष्ट कोई हो तो तीर्थंकर देव भगवान हैं। मन्दिर आदि जगतमें सर्वोत्कृष्ट है।

वह सर्वोत्कृष्ट है, आत्म भगवान भी सर्वोत्कृष्ट है। सब प्रतिमाएँ आत्माको दर्शाती है। तीर्थंकरदेव उनकी वाणी द्वारा आत्माका स्वरूप समझमें आता है। इन सबका आश्चर्य करनेवाला चैतन्य रत्नाकर सबसे ऊँचा है। बाहरमें सर्वोत्कृष्ट भगवान तीर्थंकर देव और अंतरमें सर्वोत्कृष्ट आत्मा है। कुदरत भगवानको सर्वोत्कृष्ट बता रही है कि हम रजकण भी भगवानरूप परिणमित हो जाते हैं। मेरु नंदिश्वरके ऊपर भगवान आदिका दिखाव किया है।

मुमुक्षु :- ... कुछ तो मिल ही जाता है।

समाधान :- प्रयोग तो स्वंयको करना है। गुरुदेवने स्पष्ट कर-करके बहुत समझाया है। ऐसा स्पष्ट कर दिया है कि किसीको शंका न रहे। इतना तैयार करके दिया। अब प्रयोग करना तो स्वयंको बाकी रहता है। ऐसा तैयार करके दे दिया है, सब तैयार करके (दिया), लेकिन गलेके नीचे तो स्वयंको उतारना पड़ता है। सब करना तो स्वयंको है। रोटीका निवाला तैयार करके, एकदम स्पष्ट कर-करके, आसान कर-करके जो कठिन समझमें नहीं आता था, उसे एकदम सरल कर-करके समझाया। शास्त्रका रहस्य कोई खोल नहीं सकता था। एकदम स्पष्ट कर दिया। अब करना स्वयंको है, स्वयंको प्रयोग करना बाकी रहता है।

शास्त्रमें सब आता है, गुरुदेवने बहुत स्पष्ट करके कहा है कि भेदज्ञान कर। लेकिन करना तो स्वयंको हो। द्रव्यदृष्टि कर, भेदज्ञान कर। भेदज्ञानका प्रयोग तो स्वयंको करना है। कैसे अंतरमें भेदज्ञानकी परिणित प्रगट करनी? और ज्ञायकको ग्रहण करना, द्रव्य पर दृष्टि करके भेदज्ञान करना, उसे प्रयोगमें रखना वह तो स्वयंको करना है। मार्ग बता दिया है कि बाहरमें कहीं भी मिथ्या प्रयत्न मत कर। अंतरमें द्रव्य पर दृष्टि कर, भेदज्ञान कर। भेदज्ञानका प्रयोग करना है, द्रव्य पर दृष्टि करनी है, परन्तु करना तो स्वयंको है।

अभी बाहर कितने ही ध्यानमें चढ़ गये हैं, लेकिन सच्चे ज्ञान बिनाका ध्यान मार्ग कैसे प्राप्त हो? अन्दरसे प्रयोजनभूत ज्ञान तो होना चाहिये कि यह ज्ञायक है। उसे

ग्रहण करे, अपना अस्तित्व ग्रहण करे तो उसमें ध्यान हो। अस्तित्वको ग्रहण किये बिना कहाँ एकाग्र होकर खड़ा रहेगा? एकाग्रता किस पर करनी? ज्ञायकके ग्रहण करे तो उसमें एकाग्रता होती है। नहीं तो विकल्पकी एकाग्रता हो जायेगी। अमुक प्रकारके विकल्प हो जायेंगे तो उसे ऐसा लगेगा कि मैं एकाग्र हो गया। सूक्ष्म विकल्प है। ज्ञायकको ग्रहण करे तो एकाग्रता हो। ज्ञायकके ग्रहण किये बिना एकाग्रता होती नहीं।

सच्चे ज्ञान बिना सच्ची श्रद्धा होती नहीं। इसलिये ज्ञान और श्रद्धा दोनों साथमें रहे हैं। मुक्तिके मार्गमें श्रद्धान मुख्य है, लेकिन श्रद्धाके साथ ज्ञान तो काम करता ही रहता है। यथार्थ ज्ञान साथमें होना चाहिये। अज्ञान भी बाधक है। कुछ जानता नहीं, मैं कौन हूँ? यह विभाव क्या? स्वभाव क्या? द्रव्य-गुण-पर्याय कुछ जानता नहीं। वह अज्ञान भी बाधक है।

श्रद्धा-स्वरूपकी श्रद्धा नहीं है तो भी बाधक है। जाना कि यह वस्तु ऐसी है। द्रव्य, गुण (है)। प्रतीत डगमगाती है। श्रद्धान नहीं है तो वह भी बाधक है। दोनों बाधक हैं।

मुमुक्षु :- श्रद्धा स्वयं सम्यक् होती है। ज्ञानका विकास तो धीरे-धीरे होता जाता है। ...

समाधान :- श्रद्धा तो जब यथार्थ होती है तभी उसे सच्ची श्रद्धा कहते हैं। बाकी विकल्पपूर्वककी श्रद्धा, उसको यथार्थ श्रद्धाका नाम नहीं दिया जाता। श्रद्धा धीरे-धीरे बढ़ती जाय ऐसा नहीं, सच्ची श्रद्धा तो जिस क्षण होती है उसी क्षण होती है। ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता जाय, वह तो प्रयोजनभूत ज्ञान तो साथमें होता है। श्रद्धाके साथ प्रयोजनभूत ज्ञान कि मैं ज्ञायक हूँ और यह विभाव है, स्व-परका भेदविज्ञान, बस, यह प्रयोजनभूत ज्ञान और श्रद्धा दोनों साथमें ही होते हैं। फिर ज्ञानका विस्तार हो वह अलग बात है। विस्तार धीरे-धीरे हो, वह अलग बात है। प्रयोजनभूत ज्ञान और श्रद्धा दोनों साथमें ही रहे हैं।

मुमुक्षु :- जिस समय श्रद्धा सम्यक् होती है..

समाधान :- उसी क्षण ज्ञान सम्यक् होता है। जिस क्षण सम्यक् श्रद्धा हुयी, तब ज्ञान भी सम्यक् होता है। उसके पहले ज्ञानको सम्यक् नाम नहीं दिया जाता और उसके पहले विकल्पपूर्वककी श्रद्धाको भी सम्यक् नाम नहीं दिया जाता। उसे व्यवहार कहते हैं, व्यवहार श्रद्धा कहनेमें आती है। देव-गुरु-शास्त्रकी सच्ची श्रद्धा और विचारसे नक्की करे कि मैं भिन्न हूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसे विचारसे नक्की करे तो भी सम्यक् नाम तो जब भेदविज्ञानकी परिणति हो तभी उसे सम्यक् नाम कह सकते हैं।

मुमुक्षु :- ... जब होता होगा, उस वक्त श्रद्धामें साथ-साथ नहीं चलता होगा?

समाधान :- उसे ग्यारह अंगका ज्ञान हो तो भी श्रद्धा उसकी सम्यक् नहीं है। उसे स्व-परका भेदविज्ञान नहीं है, विचार करता रहे, नक्की करता रहे कि मैं भिन्न हूँ, ऐसे शास्त्रके सब पाठ पढ़ लिये, ग्यारह अंग पढ लिया, वह भी पढनेसे नहीं होता, भले अन्दरसे (आता है), फिर भी वह सब अंतर परिणतिपूर्वक नहीं है। इसलिये उसे श्रद्धा सच्ची नहीं है। ऐसे व्यवहार श्रद्धा कहनेमें आये। व्यवहार श्रद्धा तो ऐसी होती है कि ऊपरसे देव उतरकर डिगाये तो भी डिगे नहीं, ऐसी उसकी श्रद्धा होती है। ऐसा उसका ज्ञान होता है कि कोई डिगाये तो डिगे नहीं। ऐसे श्रद्धा-ज्ञान व्यवहारमें होते हैं। परन्तु अंतरमें शुभराग और मैं भिन्न हैं, शुभरागसे मुझे लाभ नहीं है। शुभरागकी रुचि अंतरमें रह जाती है। शुभराग विभाव है, ऐसा बोले, परंतु अंतरमें शुभरागकी रुचि रह जाती है। वह उसे छूटती नहीं। इसलिये भले ग्यारह अंग पढा, लेकिन श्रद्धा सच्ची नहीं है। श्रद्धा सच्ची नहीं है इसलिये ज्ञानको भी सम्यक् नाम नहीं दिया जाता। भले द्रव्य-गुण-पर्यायकी सब बातें करता हो, तो भी।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें भावका भासन यथार्थ..

समाधान :- अन्दर यथार्थ भासन नहीं है। जैन धर्म सच्चा, सब सच्चा ऐसा सब निर्णय करता हो, दूसरे मत सच्चे नहीं है, जैन (मत) सच्चा है, ऐसा सब उसने बुद्धिसे नक्की किया होता है। परन्तु अन्दर स्वानुभूतिका पंथ और अन्दर स्वानुभूति कैसे हो, वैसी परिणति उसे प्रगट नहीं हुयी है। अन्दर गहराईमें शुभरागकी रुचि रह जाती है। अन्दरमें शुभरागकी रुचिकी प्रवृत्ति, ऐसी प्रवृत्ति-अन्दर गहरी रुचि रह जाती है। वह रुचि उसे छूटती नहीं। अन्दरकी रुचि आत्माकी ओर हर तरहसे झुक जाय, ऐसी रुचि आत्माकी ओर गहराईसे (नहीं होती)। यह दुःखमय संसार है, यह सब ऐसा है, ऐसा सब उसे होता है। संसारमें बहुत दुःख है, ऐसा होता है। लेकिन अन्दर मेरे आत्मामें सुख है और मेरे आत्माका अस्तित्व क्या, यह अंतरमेंसे उसे रुचिपूर्वक नक्की नहीं करता।

मुमुक्षु :- ऊपर-ऊपरसे...

समाधान :- ऊपर-ऊपर सब विचार आते हैं। बोलनेमें उसे सब आता है। बोले, परन्तु अन्दर मैं भिन्न, मुझे भेदज्ञान करना है, मैं इससे भिन्न हूँ, ऐसी अपनी परिणति प्रगट नहीं करता। मैंने सब छोड़ा है और मुझे तो कोई राग ही नहीं है, मैंने तो सब त्याग कर दिया है। आत्मा आदि सब मुझे हो गया है। ऐसा स्वयंको सर्वस्व मान लेता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-०४९

मुमुक्षु :- सब प्रकारसे रुचि छूटकर, आपने कहा कि सब प्रकारसे रुचि छूटी नहीं। सब प्रकारसे रुचि नहीं छूटी है, उसमें क्या समझना?

समाधान :- अन्दर शुभरागमें रुचि रह गयी है। शुभभावमें गहराईमें उसे रुचि है।

मुमुक्षु :- बोलता तो ऐसा है कि शुभराग विकार है, दोष है।

समाधान :- हाँ, वह सब बोले। लेकिन अंतरमें उसकी परिणतिमें अकेला अन्दर निवृत्तमय आत्मा ही सुखरूप है, आत्मामें ही सब है, ऐसा बोले, लेकिन अंतरमें शुभराग इतना तो होता है न, चाहे जैसे भी उसे गहराईमें रह जाता है। क्या रह जाता है? शास्त्रमें आता है कि वह केवलज्ञानी जाने। परन्तु गहराईमें उसे रुचि रह जाती है। पर पदार्थकी ओर गहराईमें रुचि रह जाती है।

मुमुक्षु :- प्रवृत्तिकी रुचि रह जाय।

समाधान :- अन्दर प्रवृत्तिकी गहरी रुचि है। पराश्रयवाली अन्दर रुचि है। परकी ओर। शुभरागमें कुछ ठीक है, शुभराग मैंने बहुत किया इसलिये मैंने बहुत किया है, मैंने बहुत धर्म किया है, सब त्याग किया है, देव-गुरुकी भक्ति और यह सब बहुत किया है, सब शास्त्रोंका अभ्यास किया है। द्रव्य-गुण-पर्याय मैं तो सब जानता हूँ। यह सब ठीक है, ऐसा अंतरमें मैंने बहुत कर लिया है, अंतरमें संतुष्ट हो गया है और बाहरकी रुचि अन्दर पड़ी है। अंतरमें संतोष आ गया है। इस विकल्पसे भी मेरा स्वरूप भिन्न है। ऊच्चतम विकल्पसे भी मैं भिन्न हूँ, अन्दरमें जो इसकी रुचि होनी चाहिये, वह रुचि अंतरमेंसे उसे होती नहीं।

मुमुक्षु :- माताजी! बहुत कठिन काम है।

समाधान :- अपना स्वभाव है इसलिये आसान है। और अनादिका अभ्यास है इसलिये कठिन है। छूटता है उसे एक क्षणमें छूट जाता है, अंतर्मुहूर्तमें छूट जाता है और जिसे नहीं छूटता है उसे लाखों क्रोड़ो भव पर्यंत क्रियाएँ करता रहे तो भी छूटता नहीं। अज्ञानी जो कर्म लाख-क्रोड़ भवमें क्षय करता है, वह ज्ञानी एक श्वासमात्रमें क्षय करता है। स्वयंका स्वभाव है इसलिये सहज है, सरल है और सुगम है। लेकिन बाहरमकी रुचि लगे तो उसे छोड़ना मुश्किल है। आत्माका स्वभाव ही नहीं है, परमें

रुकना वह आत्माका स्वभाव ही नहीं। पर ओर जाना, उसमें उसे सुख ही नहीं लगे। वह उसका स्वभाव ही नहीं है। जिसे यथार्थ आत्मार्थीता हो उसे बाहरमें, अंतरमें गहराईमें आत्माके अलावा कहीं सुख लगे ही नहीं, क्योंकि वह उसका स्वभाव ही नहीं। सच्चे आत्मार्थीको अन्दर सब दुःख और आकुलता ही लगती है। सच्चे आत्मार्थीको। क्योंकि वह उसका स्वभाव नहीं है, इसलिये उसे उसमें अटकना पोसाता नहीं। परन्तु जिसे गहराईमें उतना आत्माका प्रयोजन नहीं है तो वह उसमें रुक जाता है। कहीं-कहीं अटक जाता है।

उसने मोक्ष किसे मान लिया है? मैंने सब छोड़ दिया है। मुनिकी जो क्रियाएँ हैं, वह सब मैं पालता हूँ। छकायकी रक्षा, पंच महाव्रत पालता हूँ, बराबर शास्त्रका अभ्यास करता हूँ और बराबर जैसा है वैसा पालता हूँ। उसकी सब आवश्यक क्रियाएँ करता हूँ। मेरा मोक्ष होनेवाला ही है। मोक्ष यहीं है। मैं अंतरसे भिन्न हो जाउँ, यह सब क्रियाके विकल्पसे भिन्न हो जाऊँ, ऐसी रुचि अंतरमें होती नहीं। मोक्षके लिये ही करता है। मोक्षका स्वरूप यहीं है, ऐसा अंतरमें उसे गहराईमें यह लगना चाहिये। मैं मोक्षस्वरूप ही हूँ और विभाव परिणतिमें रुका हूँ, इसलिये बंधन है। इसलिये मुझे विभावसे छूटना है। अंतरमें उसे आना चाहिये, तो सच्चा मोक्ष हो। ... अशुभ परिणाम गौण होकर, अशुभ परिणामसे मोक्ष होगा। शुभमें अटका है।

मुमुक्षु :- अशुभसे मोक्ष होगा।

समाधान :- अशुभसे मोक्ष होगा।

मुमुक्षु :- अंतरमें भिन्न हूँ और भिन्न होना है, दोनों बात उसे...

समाधान :- अंतरमें लगना चाहिये, मैं भिन्न ही हूँ। द्रव्य मेरा भिन्न ही है, विभावमें अटका है वहाँसे छूटना है। ऐसा अंतरमें लगना चाहिये। लेकिन जो एकसे नहीं छूटा शुभसे, वह वास्तविकरूपसे अशुभसे नहीं छूटा है।

मुमुक्षु :- सब पलट जायेगा।

समाधान :- पलट जायेगा। ... (मालूम) पड़े, स्वयंको मालूम पड़े लेकिन उसे अन्दर खोजनेकी वृत्ति, खोजनेकी लगी हो तो (मालूम) पड़े न। संतुष्ट हो गया हो तो कहाँसे पड़े? संतुष्ट हो गया हो उसे कहाँसे मिले? मैंने तो सब कर लिया है, ऐसे संतोष आ गया हो तो कहाँसे ढूँढे। जिसे संतोष नहीं है, शास्त्रमें यह सब आता है कि मुनिपना पाला तो भी द्रव्यलिंगी मुनि अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, तो भी मोक्ष नहीं हुआ, वह क्या होगा? इस प्रकार स्वयंको विचार करनेका, स्वयंको अपनी परिणतिको खोजनेकी पड़ी हो तो स्वयं ढूँढ सकता है। परन्तु स्वयंको अपनी पड़ी नहीं, संतोष आ गया हो तो कहाँसे ढूँढे? (संतोष) हो ही गया है।

बहुत लोग भेस लेकर नहीं कहते हैं? अपने तो सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन नहीं है? जैन धर्मको मानते हैं, इतना त्याग लिया तो सम्यग्दर्शन है ही, ऐसा बहुत लोग मान लेते हैं।

मुमुक्षु :- ... मैं सम्यग्दृष्टिको वंदन करता हूँ। मुनिराज वैसे तो सम्यग्दृष्टिको वंदन करे नहीं, परंतु सम्यग्दर्शनकी महिमा बतायी...

समाधान :- सम्यग्दृष्टिको वंदन करता हूँ अर्थात् वंदन करता हूँ, ऐसी भावना करे, परन्तु वंदन-नमस्कार नहीं होता। ऐसा व्यवहार नहीं करते। जिसने कारण तत्त्व जाना, आत्माको जाना, उस कारण पर दृष्टि रखनेसे जिसमें कार्य आता है, ऐसा कारण तत्त्व जिसने ग्रहण किया, जिसने भेदज्ञान और स्वानुभूति प्रगट की, उसे मैं वंदन करता हूँ। जगतमें सर्वोत्कृष्ट हो तो आत्मा चैतन्य द्रव्य है, उसे जिसने लक्ष्यमें लिया उसे वंदन करता हूँ। ऐसा कहकर स्वयंको महिमा आती है। बाकी उसे नमस्कारका व्यवहार मुनि नहीं करते।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शनकी महिमा दर्शाते हैं।

समाधान :- सम्यग्दर्शनकी महिमा दर्शाते हैं। मोक्षमार्ग जो प्रगट होता है, उसके अंशसे लेकर पूर्णता पर्यंत सब आदर करने योग्य है, ऐसा कहना चाहते हैं। चैतन्यतत्त्व महिमावंत है, उसका एक अंश भी प्रगट हो, अंशसे लेकर मुनिदशा पर्यंत सब आदरने योग्य, सब महिमावंत, सब नमस्कार करने योग्य है, ऐसा कहना चाहते हैं।

णमो अरिहंताणं आदि आता है न? पंच परमेष्ठी नमस्कार। उसमें सब आचार्य, उपाध्याय, मुनिराज जो बड़े मुनि होते हैं, छोटे मुनि सब आ जाते हैं, उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसे नवकार बोले उसमें सब आ जाता है। लेकिन नमस्कारका व्यवहार नहीं करते। णमो लोए सव्व साहूणं, सब मुनिको नमस्कार करता हूँ। नवकार बोले इसलिये उसमें सब मुनि आ जाते हैं। लेकिन बड़े मुनि हों, वे छोटे मुनिको नमस्कारको व्यवहार नहीं करते।

मुमुक्षु :- हमें अधिकसे अधिक कितने भवमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है? या वर्तमान भवमें भी हो सकता है?

समाधान :- कितने भवमें हो सकता है? वर्तमान भवमें भी हो सकता है, पुरुषार्थ करे तो इस भवमें भी हो सकता है। और दूसरे भवमें भी हो सकता है। जब पुरुषार्थ करे तब हो सकता है। उसे कहीं काल नहीं लागू पड़ता। जो पुरुषार्थ करे, अपनी योग्यता तैयार करे और चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करे तो इस भवमें भी कर सकता है और दूसरे भवमें भी कर सकता है। जब तैयारी करे तब हो सकता है।

मुमुक्षु :- समयकी मर्यादा नहीं है?

समाधान :- समयकी मर्यादा नहीं है। गुरुदेवने ऐसा मार्ग बताया, उसे स्वयं ग्रहण करके पुरुषार्थ करे, एक ज्ञायक तत्त्व ही ग्रहण करने जैसा है। उसकी परिणति अभी भी प्रगट कर सकते हैं और भविष्यमें भी कर सकते हैं। अभी करते-करते उतना पुरुषार्थ नहीं चले तो बारंबार उसका अभ्यास करे, बारंबार जिज्ञासा करे, भावना करे कि ज्ञायक ही आदरणीय है, गुरुदेवने कहा वही मार्ग आदरने योग्य है। चैतन्यका द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है, उसे पहचाननेका प्रयत्न करे। यह विभाव क्या है? स्वभाव क्या है? सबको पहचाननेका प्रयत्न करे। एक चैतन्य ही आदरणीय है, दूसरा कुछ आदरणीय नहीं है। ऐसी बारंबार भावना करे। ऐसा करते-करते उसमें गहरे संस्कार पड़े तो दूसरे भवमें भी कर सकता है। उसे कालकी मर्यादा नहीं है। अपनी मन्दताके कारण अटकता है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है। ऐसा अनजाना मार्ग मिलना मुश्किल, गुरुदेवने बताया। वह मार्ग कोई अपूर्व मार्ग है। उसकी महिमा आये, आत्माका स्वरूप कोई अपूर्व है, अनुपम है, वह कैसे प्राप्त हो, गहरी रुचि करे तो हो सकता है।

मुमुक्षु :- बाहरके विषयमें इतने एकमेक हो जाते हैं कि इसमें रुचि स्थिर होनेमें बहुत .. लगता है।

समाधान :- देर लगती है। उसमेंसे भी बारंबार प्रयत्न करता रहे। वहाँसे रुचि स्वयंकी ओर लानेका बारंबार प्रयत्न करता रहे। करने जैसा यही है, ऐसा निर्णय करे, श्रद्धा करे, बारंबार प्रयत्न करके पलटे। पलटे बिना छूटकारा नहीं है। वह एक उपाय है। स्वयं पलटे बिना शान्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है। शान्तिका उपाय स्वयंको ही पलटना है। कोई नहीं कर देता, स्वयंको ही पलटना है। गुरुदेवने मार्ग दर्शाया। देव-गुरु-शास्त्र सब निमित्त बनते हैं। करना स्वयंको ही है। सर्व द्रव्यकी स्वतंत्रता बतायी है। तू कर तो हो सके ऐसा है। तुझे कोई रोकता नहीं। कर्मका उदय तुजे जबरजस्ती रोकता नहीं। तू कर तो हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- कर्मका बहाना निकाले वह भी गलत है।

समाधान :- गलत है। कर्म रोकता नहीं, कर्म तो निमित्त है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो कर्म उसे आडे नहीं आते। कर्म भी बदल जाते हैं, स्वयं पुरुषार्थ करे तो।

मुमुक्षु :- क्रमबद्धका बहुत शिक्षण दिया है। ... बहुत परिचय था न, इसलिये क्रमबद्धके पुस्तकके आधारसे .. है।

समाधान :- क्रमबद्धको पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। पुरुषार्थ बिनाका क्रमबद्ध होता नहीं। स्वयं रुचि पलटे, पुरुषार्थ करे, अपनी ओर आये, उसका क्रमबद्ध उस प्रकारका होता है। लेकिन स्वयं पलटता नहीं और बाहरमें रुचि करके बैठा है, तो उसका क्रमबद्ध उस प्रकारका होता है। जिसे बाहरकी रुचि है उसका क्रमबद्ध उस प्रकारका है। अपनी

ओर रुचि करे उसे उस प्रकारका क्रमबद्ध होता है। अपनी रुचिको कोई क्रमबद्ध रोकता नहीं।

जिज्ञासु, जिसे अंतरमें लगी है, अंतरमें मुझे कहीं चैन नहीं पड़ती, मुझे आत्मा ही चाहिये, ऐसी जिसे अंतरमेंसे लगी हो, उसे ऐसा (नहीं) होता कि मैं क्या करुँ, मुझे अंतरमें तो जाना है, लेकिन यह क्रमबद्ध मुझे रोक रहा है। उसे अन्दर भावना होती ही नहीं। मैं ऐसा पुरुषार्थ करु कि मेरा क्रमबद्ध ऐसा ही हो। मेरा पुरुषार्थके कारण,... मुझे यह चाहिये ही नहीं, क्रमबद्ध जो भी हो, परंतु मुझे तो पलटना ही है। अपनी रुचि इस ओर जागृत हुयी तो उसका क्रमबद्ध उस प्रकारका हा ही होता है। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्धका सम्बन्ध जुड़ा है।

जिज्ञासुको क्रमबद्धका बहाना और बचाव आता ही नहीं। जिसे लगी है कि मुझे मेरा ही करना है, कहीं नहीं अटकना है, उसे क्रमबद्धका विचार नहीं आता। मेरा क्रमबद्ध ऐसा है कि मैं अपनी ओर झुकु। मुझे क्रमबद्ध नहीं रोकता। क्या करुँ, कैसे करुँ, मुझसे होता नहीं, ऐसा क्रमबद्ध होगा तो मैं क्या करुँगा? गुरुदेवने स्वतंत्रता कही है।

क्रमबद्ध तो कर्ताबुद्धि छुडानेके लिये है। तू ज्ञायक हो जा, ऐसा गुरुदेव कहते हैं। तू कुछ नहीं कर सकता, तू ज्ञायक हो जा। ज्ञायक हो जा। कर्ताबुद्धि छोड़ दे, ज्ञातापना प्रगट कर। फिर जैसे होना होगा वैसे होता है। ज्ञायक हो जा। ज्ञायकमें सब आ जाता है। ज्ञायक हो जा, उसमें अपना पुरुषार्थ आ गया। ज्ञायक होनेवालेको अपना पुरुषार्थ आ जाता है।

मुमुक्षु :- केवली भगवानने अनन्त भव देखे होंगे वैसा होगा, ऐसे नहीं देखता।

समाधान :- भगवानने अनन्त भव देखे होंगे तो? तू पुरुषार्थ कर तो भगवानने तेरे भव देखे ही नहीं। तू पुरुषार्थ करता नहीं, तुझे करना नहीं है तो तेरा ऐसा ही देखा है। तू पुरुषार्थ कर तो भगवान ऐसा ही देखे की पुरुषार्थ करनेवालेको भव होते ही नहीं। तू करता नहीं इसलिये भगवानके ज्ञानमें ऐसा आता है, तू कर तो भगवानके ज्ञानमें ऐसा ही आये कि तेरा मोक्ष है। तुझे ही करना है।

मुमुक्षु :- अनन्त भव देखे होंगे तो क्या एक भी कम होगा? आपके देखे होंगे, मेरे नहीं देखे हैं। ऐसी श्रद्धा? मुझे आपके साथ नहीं रहना है। भाग गये। फिर श्रावक ले आये, महाराज! चलिये! ऐसी श्रद्धावालोंके साथ मुझे रहना ही नहीं है।

समाधान :- गुरुदेवका क्रमबद्ध कहनेका आशय अलग ही था। गुरुदेव, जैसा होना होगा वैसा होगा, ऐसा कुछ मानते ही नहीं थे कि भगवानने देखा होगा वैसा होगा। भगवानने ऐसे भव देखे होंगे तो? पुरुषार्थ करे उसके भव ऐसे देखे नहीं है भगवानने।

गुरुदेवको क्रमबद्धमें ऐसा नहीं कहना था। उनका कर्ताबुद्धि छुड़ानेका अभिप्राय था। तू ज्ञायक हो जा, ऐसा कहना था।

तू परद्रव्यका कुछ बदल नहीं सकता। तू कर्ताबुद्धि छोड़ दे, ज्ञायक हो जा, ऐसा कहना था। सहज परिणति तेरी अपनी प्रगट कर ले। कर्तृत्वबुद्धि छोड़ दे, ऐसा कहना था। क्रमबद्धको पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। अकेला क्रमबद्ध नहीं होता। उसमें स्वभाव, काल इत्यादि सब साथमें है। अकेला क्रमबद्ध नहीं होता। पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध रखता है। जैसा जिसका पुरुषार्थ वैसा उसका क्रमबद्ध। पुरुषार्थकी गति कैसी है? स्वयं पुरुषार्थ करनेवालेको मैं करुँ, ऐसा आता है। जैसा होना होगा वैसा होगा। ऐसा उसे संतोष ही नहीं होता। जिसे आत्माकी लगी है, उसमें वह संतोष मान ही नहीं सकता। जिसे आत्माकी लगी हो, वह ऐसा नहीं मानता है कि क्रमबद्ध होगा तो कैसे होगा? उसे संतोष ही नहीं होता।

आत्मार्थीको अन्दरसे ऐसा होता है कि मैं करुँ, कैसे समझु? कैसे ज्ञायक पहचानमें आये? ऐसी ही भावना उसे होती रहे। क्रमबद्धके सामने देखता ही नहीं। मेरी ऐसी भावना है तो मेरा क्रमबद्ध सुलटा ही है। मोक्षकी ओरका है। ऐसी ही उसे श्रद्धा होती है। क्रमबद्धसे स्वयंको संतोष ही नहीं होता।

मुमुक्षु :- उसे ऐसा होता है कि अभी कर लूँ, जल्दी हो जाय तो करुँ, अभी होता हो तो मुझे थोड़ी भी राह नहीं देखनी है, ऐसी भावना होती है।

समाधान :- ऐसी भावना अन्दर होनी चाहिये। फिर होवे कितना वह दूसरी बात है, लेकिन भावना ऐसी होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- गुरुदेव सौ जहाजका दृष्टांत देते थे। सेठने सुना, सौ जहाज आते थे, उसमेंसे ९९ डूब गये हैं, एक बचा है। वह मेरा ही होगा। उतनी पुण्यमें श्रद्धा।

समाधान :- यहाँ तो पुरुषार्थ है। मुझे आत्मा प्राप्त हुए बिना संतोष नहीं है। ऐसा जिसे हो, उसे ऐसा ही होता है कि मेरा क्रमबद्ध तो मोक्षकी ओर, आत्माकी ओरका है।

बाहरके उदय जैसे होने होते हैं, वैसे होते हैं। उसे स्वयं बदल नहीं सकता। अंतरकी ज्ञायकदशा प्रगट करनी वह अपने पुरुषार्थकी बात है। ज्ञायकदशा, उसकी ज्ञाताधारा होती है। इसलिये विभावकी परिणति अन्दर है उसे उदय कहते हैं, उदयधारा। उसकी कर्ताबुद्धि छूट गयी इसलिये उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वह स्वतः होती है। मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होती है। उसे अन्दर ज्ञान है। जैसे होना होगा वैसा होगा, ऐसे ज्ञानीकी ज्ञाताधारामें ऐसा नहीं है। अंतरमेंसे कोई अचिंत्य ज्ञान-वैराग्यकी शक्ति प्रगट हुयी है। इसलिये पुरुषार्थ बिनाका क्रमबद्ध वहाँ भी नहीं लिया जाता। विभावधारामें भी। उसके पुरुषार्थकी मन्दता

है। पुरुषार्थकी क्षति हर जगह जुड़ी होती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको ज्ञाताधारा प्रगट हुयी है, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि उदयमें वह विवेक नहीं करता है। ऐसा आपको कहना है?

समाधान :- हाँ, वह उदयका विवेक नहीं करता है, ऐसा अर्थ नहीं है। मतलब बाहरका क्रमबद्ध और उदयधाराका क्रमबद्ध, उसमें पुरुषार्थका सम्बन्ध है, ऐसा वहाँ अर्थ नहीं है। उसे विवेक है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे यह होता है।

मुमुक्षु :- वहाँ भी अशुभ छोड़कर प्रवर्तता है और उसे भान भी है कि सब क्रमबद्ध है।

समाधान :- .. और पुरुषार्थ उठता हो तो मुझे यह कुछ नहीं चाहिये। मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे खड़ा हूँ। उदय है, उदय है, ऐसा नहीं है उसे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५०

मुमुक्षु :- .. वह तो समझमें आता है, परन्तु द्रव्यको अर्पित हो जाना, वह कैसे करना?

समाधान :- द्रव्यको अर्पित हो जाना, द्रव्यको बराबर पहचाने कि मैं चैतन्य शाश्वत अनादि ज्ञायक द्रव्य हूँ। ज्ञायकका स्वरूप पहचाने और ज्ञायककी महिमा आये तो उसे अर्पित हुआ जाता है।

जैसे जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्रकी महिमा आनेसे वहाँ अर्पणता होती है। जिनेन्द्र देव जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं, गुरु कि जो आत्माकी बारंबार साधना कर रहे हैं और वाणी बरसाते हैं, ऐसा गुरु और शास्त्र मार्ग बताता है। ऐसी जो उनकी महिमा आती है, वैसे यदि आत्माकी महिमा आये तो उसमें भी अर्पित हुआ जाता है।

जिनेन्द्रदेव, जिन्होंने सर्वोत्कृष्ट आत्मा, अपनी पर्याय चैतन्यदेवकी पूर्णता प्राप्त की है। ऐसे जिनेन्द्र देवकी जैसे महिमा आती है, गुरुकी, शास्त्रकी, ऐसे चैतन्यको पहचाने तो चैतन्यकी भी महिमा आती है। ज्ञायक कैसा है? कि अनन्त गुणोंसे भरपूर अनुपम तत्त्व और आश्चर्यकारी तत्त्व है। वह तत्त्व अनादिअनन्त है। चाहे जितने भव किये तो भी आत्माको कुछ एक अंश भी, थोड़ा भी विभावका अन्दर प्रवेश नहीं हुआ है या मलिनता नहीं हुयी है।

ऐसा शाश्वत आत्मा जो कोई अद्‌भुत आश्चर्यकारी है, कोई उसका नाश नहीं कर सकता। कोई उसे उत्पन्न नहीं कर सकता। अनादिअनन्त शाश्वत ऐसा अनुपम आश्चर्यकारी अनन्त गुणोंसे भरपूर (है) कि जो स्वानुभूतिमें उसकी अनुभूतिमें पकड़में आता है। और ज्ञानसे उसके लक्षण द्वारा पहचाना जाता है। आत्मा कैसा अनुपम तत्त्व है, वह उसके ज्ञानलक्षणसे पहचानमें आता है। उसकी यदि महिमा आये कि आत्मा ही जगतमें सर्वोत्कृष्ट है, तो उसे भी अर्पित हुआ जाता है। बस, इस ज्ञायकदेवके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये। इस जगतमें जो कुछ है वह कुछ भी सारभूत नहीं है, तुच्छ है।

यह ज्ञायकदेव ही जगतमें सर्वोत्कृष्ट है। ज्ञायकदेवकी महिमा आये तो उसकी भी अर्पणता हो जाय। मेरे ज्ञायकको कैसे पहचानूँ? उसे निरखता रहूँ, उसे अर्पण हो जाऊँ, उसकी महिमा करुँ, उसकी पूजन करुँ। महिमा आये तो ज्ञायकदेवको भी अर्पण हुआ

जाता है। जैसे देव-गुरु-शास्त्रको अर्पण होता है, वैसे ज्ञायकदेवको अर्पण होता है।

भगवानने ज्ञायकदेवको प्रगट किया है, गुरु ज्ञायकदेवकी स्वानुभूतिकी स्वानुभूति कर रहे हैं, साधना कर रहे हैं, शास्त्र ज्ञायकदेवको बताता है। ऐसा ज्ञायकदेव यदि अंतरमें स्वयं लक्षण द्वारा पहचाने और उसकी महिमा आये तो उसमें भी अर्पणता हो जाती है। और मार्ग वही है। ज्ञायकदेवकी महिमा आये बिना मुक्तिका मार्ग प्रगट नहीं होता। ज्ञायकको पहचाने बिना और उसे अर्पण हुए बिना, मुक्तिका मार्ग प्रगट नहीं होता। उसे पहचानकर, उसकी श्रद्धा करके उसमें लीनता करे तो उसे स्वानुभूति प्रगट होती है।

एक ज्ञायकदेवको पहचाने बिना मुक्तिका मार्ग प्रगट नहीं होता। उसकी अर्पणता आवे तो ही मुक्तिका मार्ग प्रारंभ होता है। इसलिये उसे पहचानना। वही उसका उपाय है। अन्यसे राग टूटकर विरक्ति आकर अंतरमें ही अर्पणता आ जाय, वह आ सके ऐसा है। ज्ञायकदेवको पहचाने तो अर्पणता होती है।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्र तो सामने दिखते हैं इसलिये उनकी महिमा आती है, परन्तु आप कहते हो तब तो ऐसा ही लगता है कि एकदम आसान है। परन्तु जब प्रयोगमें तो तकलीफ होती है।

समाधान :- प्रयत्न करना मुश्किल पड़ता है। अनादिका अभ्यास है। जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र सामने दिखे इसलिये उनकी महिमा आये, यह दिखता नहीं। परन्तु ज्ञानलक्षणसे पहचाना जाय ऐसा है। अरूपी है इसलिये दिखता नहीं। परन्तु स्वयं ही है, दूसरा नहीं है। दूसरा हो तो ढूँढने जाना पड़े। यह तो स्वयं ही है। उसे कहीं खोजने जाना पड़े ऐसा नहीं है। लेकिन स्वयंका स्थूल उपयोग हो गया है, उपयोग बाहर जाता है। उपयोग बाहर जाता है उसे स्वयं स्थूल उपयोगको सूक्ष्म करके स्वयंको ज्ञानलक्षणसे पहचाने तो स्वयं ही है। पकड़में आये ऐसा है और उसकी अनुभूति हो सके ऐसा है। अनन्त जीवोंने ज्ञायकदेवको पहचानकर मुक्तिके मार्गको प्राप्त हुए हैं, उसकी स्वानुभूतिको प्राप्त हुए हैं। पहचाना जाय ऐसा है, पकड़में आये ऐसा है। परन्तु स्वयं प्रयत्न करे, उसकी जिज्ञासा करे, भावना करे, अभ्यास करे तो वह पकड़में आये ऐसा है। ग्रहण हुए बिना नहीं रहे। स्वयं ही है, क्यों पकड़में नहीं आये? अपनी भूलके कारण स्वयं बाहर अटका है। उसकी रुचि बाहर जाती है, इसलिये पकड़ नहीं सकता।

मुमुक्षु :- जीवका अस्तित्व बोलनेमें अथवा सीखनेमें आता है। परन्तु अन्दरसे अस्तित्वका ज़ोर क्यों नहीं आता है?

समाधान :- बोलनेमें तो अस्तित्व-मैं हूँ। परन्तु अंतरमें मैं हूँ, वह विकल्प है। लेकिन मैं हूँ वह कौन हूँ? उसका अस्तित्व स्वयं गहराईमें जाय, उसे-अस्तित्वको खोजे

तो अस्तित्वस्वरूप ही स्वयं है। जो है वह है, स्वयं ही वस्तु है, दूसरा कोई नहीं है। स्वयं गहराईमें जाय तो अपना अस्तित्व ग्रहण हो सके ऐसा है। यह सब शरीरादि दिखाई देता है, बाहरकी वस्तुएँ दिखती है, अन्दरके विभाव परिणामका वेदन होत है, राग-द्वेषादिका। ऐसे आत्मा जाननेवाला है, उस जाननेवालेका अस्तित्व ग्रहण हो सके ऐसा है। स्वयं अन्दर सूक्ष्म होकर प्रज्ञाछैनी द्वारा, प्रज्ञाको-ज्ञानको तीक्ष्ण करके अंतरमें अस्तित्वको ग्रहण करे तो हो सके ऐसा है। परन्तु वह गहराईमें जाता नहीं। इसलिये अपना अस्तित्व ग्रहण नहीं हो रहा है।

अपना अस्तित्व मौजूद ही है। कहीं नहीं गया है, कहीं गुम नहीं गया है। अस्तित्व मौजूद है, परन्तु स्वयं ग्रहण नहीं कर सकता है। प्रयत्न करे तो ग्रहण हो सके ऐसा है। (पुरुषार्थ) मन्द है इसलिये ग्रहण नहीं हो सकता है। प्रयत्न स्वयंको करना रहता है। बारंबार उसीका प्रयत्न करते रहना, बारंबार। थकना नहीं, बारंबार उसीका प्रयत्न हो तो वह पकड़में आये बिना, ग्रहण हुए बिना नहीं रहता। थकना नहीं। धीरजसे आकुलता किये बिना ग्रहण करे तो हो सके ऐसा है। अपनी भावना उग्र हो तो पुरुषार्थ हुए बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- इतने ... लिये हैं, अब तो हुए बिना छूटकारा ही नहीं है।

समाधान :- गुरुदेवने यह मार्ग बताया है, गुरुदेवने वाणी बरसायी, अपूर्व वाणी बरसायी, उसे ग्रहण हुए बिना कैसे रहे? स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। ग्रहण करने जैसा है। ज्ञायक, मैं ज्ञायक ही हूँ, यह शरीर मेरा नहीं है। शरीर परद्रव्य है, रोग सब शरीरमें आते हैं। ज्ञायकमें नहीं आते हैं। ज्ञायक तो शाश्वत है। ज्ञायककी भावना, जिज्ञासा, ज्ञायककी महिमा, मैं तो ज्ञायक ही हूँ, ज्ञायककी ओर रटन रखना। उसीका अभ्यास, उसका चिंतवन वही करने जैसा है। शुभ भावनामें देव-गुरु-शास्त्रका स्मरण और अन्दर ज्ञायकका स्मरण। मैं ज्ञायक ही हूँ, यह शरीर मैं नहीं हूँ। मैं चैतन्यदेव ज्ञायक हूँ। वह ग्रहण करने जैसा है।

मुमुक्षु :- ... किस विधेसे अन्दर करना?

समाधान :- ज्ञान प्रसिद्ध है तौ आत्मा प्रसिद्ध होता है। परन्तु ज्ञान प्रसिद्ध है, उसे स्वयं पहचाने। ज्ञानलक्षण द्वारा आत्माको पहचाने तो प्रसिद्ध हो न। आत्मा तो प्रसिद्ध ही है, लेकिन प्रसिद्धिमें लाना वह तो स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है। ज्ञान प्रसिद्ध लक्षण है, उस लक्षण द्वारा लक्ष्यको पहचाने, द्रव्यको पहचाने। उसकी प्रतीत करे, उसमें लीनता करे, उसका यथार्थ ज्ञान करे तो प्रसिद्धिमें आये। स्वयं पुरुषार्थ करे नहीं तो कैसे प्रसिद्ध हो? प्रसिद्ध ही है। उसका लक्षण तो प्रसिद्ध ही है। लेकिन प्रसिद्धिमें लाना वह अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- शास्त्र या आपका मार्गदर्शन कुछ... कि इस विधिसे...?

समाधान :- गुरुदेवने तो बहुत मार्ग बताया है। पुरुषार्थ तो स्वयंको करना है। गुरुदेवने स्पष्ट कर-करके, एकदम सूक्ष्मरूपसे जैसा था वैसा मार्ग स्पष्ट बता दिया है। बाहर कहीं भी अटकना नहीं, अन्दर एक ज्ञान लक्षण आत्मा ज्ञायक है। उसे पहचान ले। ज्ञान द्वारा पूरे ज्ञायकको पहचान ले। लेकिन वह करना तो स्वयंको है।

अंतरमेंसे उतना न्यारा हो, सब विभावोंसे भिन्न होकर अन्दर ज्ञायकके लक्षणको, एकदम उसके लक्षण द्वारा प्रतीत दृढ़ करे कि यह ज्ञायक है वही मैं हूँ। ज्ञायकको ग्रहण करे, ज्ञायकमें लीनता करे तो ज्ञायक प्रसिद्ध होता है। परिणति बाहर दौड़े, उसे ज्ञायक कैसे प्रसिद्ध हो? उसे अन्दर पहचानकर मोड़ना कि यह ज्ञायक है। ज्ञायककी ओर परिणतिको मोड़े तो ज्ञायक प्रसिद्ध होता है। परिणतिकी दौड़ सब बाहर हो रही है, अंतरकी ओर परिणति जाती नहीं है, तो ज्ञायक कैसे प्रसिद्ध हो?

स्वयं प्रसिद्धिमें सब विभाव लाता है। सब विभाव, राग-द्वेष, संकल्प-विकल्पकी प्रसिद्धि स्वयं करता है। ज्ञायककी प्रसिद्धि अन्दर जाय तो स्वयंको प्रसिद्ध होता है। वह तो प्रसिद्ध ही है। दूसरा नहीं है कि स्वयं गुप्त रहे। स्वयं ही है। स्वयं अपनेको भूल गया वह आश्चर्यकी बात है। स्वयं स्वयंको भूल जाय, यह कैसी आश्चर्यकी बात है!

मुमुक्षु :- बड़ा अन्धेर हो गया।

समाधान :- बड़ा अन्धेर हो गया। दूसरेको भूले वह दूसरी बात है, स्वयं स्वयंको भूल गया, यह तो कैसा अन्धेर है! श्रेष्ठ अनुपम ऐसा स्वयं, उसे स्वयं भूल गया।

मुमुक्षु :- यह बड़ी भूल।

समाधान :- बड़ी भूल।

मुमुक्षु :- पास-पास है।

समाधान :- दोनों समीप ही हैं। भगवानको ग्रहण नहीं करता है और विभावको देखता रहता है। विभावको ग्रहण करता है। विभाववाला हो गया। राग, द्वेष, संकल्प, विकल्पवाला मैं हो गया। ऐसी मान्यता हो रही है। उससे न्यारा मैं तो भिन्न हूँ। मेरा स्वघर अलग, मैं स्वतः तत्त्व भिन्न हूँ। वह भूल गया भगवानको।

... अनन्त काल उसमें गया। 'निज नयननी आळसे रे, निरख्या नहीं हरिने जरी'। स्वयं ही है, अपने नेत्रकी आलसके कारण स्वयं आँख खोलकर देखता नहीं, भगवानको निरखता नहीं। उसमें अनन्त काल चला गया। स्वयं सो रहा है, जागता नहीं। गुरुदेवने जागृत करनेको ललकारके जगाते थे। जागना अपने हाथकी बात है। तू परमात्मा, तू भगवान, तू जाग।

समाधान :- ... गुरु मिल गये।

मुमुक्षु :- ९१वीं जन्म जयंति मलाडमें सीमंधर भगवानने मुझे..

समाधान :- भगवानके पास थे, वहाँसे यहाँ भरतक्षेत्रमें कैसे आये?

मुमुक्षु :- हमें तो माताजी! बाहरसे तो .. इतना पुण्य लेकर आये हैं।

समाधान :- उन्होंने कितनी वाणी बरसायी है। कुछ बाकी नहीं रखा है। यह तो आपको प्रश्न उत्पन्न होते हैं, इसलिये जवाब देती हूँ।

मुमुक्षु :- आप कोई-कोई बार इतना सुन्दर बोलते हो, उदासीनतामें रस आना चाहिये, ज्ञाता-दृष्टा रहनेमें रस आना चाहिये।

समाधान :- .. आनन्द आना चाहिये। निवृत्तस्वरूप आत्मा है। जो उसका स्वभाव है, उसी जातिका स्वयंको रस होना चाहिये। तो आत्मा उस रूप परिणमन करे, तो उसकी परिणति वैसी होती है। फिर बाहरके कार्यमें भले अमुक प्रकारसे अन्दर जुड़े, परन्तु अन्दरसे उसकी एकत्वबुद्धि टूट जाय। अंतरमेंसे ऐसी परिणति, निवृत्तमय परिणति ऐसी (हो कि) अंतरमें उसे वही रुचे।

मुमुक्षु :- प्रवृत्तिमेंसे रस बिलकूल उड जाना चाहिये।

समाधान :- अन्दरसे उड जाय। बीचमें शुभभाव आये वह अलग बात है, लेकिन अंतरमेंसे आनन्द, आत्माका जो निवृत्तमय स्वभाव है, उसमें आनन्द आना चाहिये। स्वभाव परिणतिमें आनन्द आना चाहिये। ज्ञाता रहनेमें रस आना चाहिये। सब जगह कर्ता होनेमें रस छूट जाय। ज्ञाता रहनेमें रस आये। मैं तो जाननेवाला ज्ञायक, उदासीन ज्ञायक हूँ। पर पदार्थका मैं कुछ नहीं कर सकता। उसके कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता, मैं तो जाननेवाला हूँ। फिर भी रागके कारण अमुक कार्यमें जुड़े। जुड़े तो भी उसकी मर्यादा होती है। एकत्वबुद्धि नहीं हो जाती कि वह स्वयंको भूलकर उसमें जुड़े। ऐसा नहीं होता। ज्ञायकता, उदासीनताके कारण मर्यादा आ जाती है।

जीवको कर्ताबुद्धिका उतना एकत्व हो गया है कि अपनी ज्ञायकता भूल गया है। और कर्ताबुद्धिकी उतनी एकत्वता हो गयी है। कर्तृत्वमें उतना रस आ गया है। आचार्य भगवानने पूरा कर्ता-कर्म अधिकार अलग लिखा है। गुरुदेव कर्ता-कर्म-क्रिया पर बहुत कहते थे। कर्ताबुद्धिका रस उसे एकत्वबुद्धिसे आता है। ... यहाँ करनेमें शून्यता लगे। ऐसा उसे हो जाय। वह जीवन कैसा? कि शांत परिणमन, उस जातिकी श्रद्धा करनी भी मुश्किल लगे। फिर कार्यमें रखना एक ओर रहा।

मुमुक्षु :- श्रद्धा ही मुख्य है। कोई पहचाने नहीं।

समाधान :- हाँ, कोई पहचाने नहीं। इसमें एक ओर बैठ जाना, ऐसा अर्थ नहीं है। लेकिन उसे ऐसा हो जाता है कि ऐसी श्रद्धा करनी कठिन लगती है। उसे स्वयंको ऐसा हो जाता है। कुछ न करे तो शून्य हो जायेंगे। ऐसा हो जाता है।

मुमुक्षु :- अब मुझे कोई नहीं पूछेगा।

समाधान :- हाँ। कोई क़िमत रहे नहीं, कोई गिनती नहीं रहेगी, ऐसा उसे हो जाता है। .. छोड़ देनेकी बात नहीं है, परंतु अन्दरकी श्रद्धा, अंतरमेंसे पलटनेकी बात है।

मुमुक्षु :- .. रखते हैं तो कितना अच्छा लगता है।

समाधान :- परमात्मा हूँ, गुरुदेव टेपमें बोलते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतराग सर्वज्ञदेवकी ध्वनिमें यह आया है कि तू परमात्मा है। सौ इन्द्रकी उपस्थितिके समवसरणमें लाखों-क्रोड़ो देवोंकी हाजरीमें भगवानने कहा है कि तू परमात्मा है। लेकिन भगवान! आप परमात्मा हो, इतना तो नक्की करने दो। तू परमात्मा है, ऐसा नक्की किये बिना यह परमात्मा भगवान तुझे नक्की होंगे। निश्चय नक्की किये बिना व्यवहार नक्की होगा नहीं। गुरुदेव ऐसे ललकारके बोलते हैं।

मुमुक्षु :- मानों ॐ ध्वनि बरसी।

समाधान :- हाँ। .. समवसरणमें भगवानने ऐसा कहा है, ऐसा आकाशमेंसे कहते हो (ऐसा लगता है)। यहाँ विराजते थे। सोनगढ़के अन्दर कण-कणमें गुरुदेवकी स्मृति है।

ज्ञायकको पहचानना वही प्रथम है। उसे पहचाननेके लिये जिज्ञासा, विचार, वांचन (करना)। ध्येय तो सर्वप्रथम ज्ञायकको ही पहचानना। मार्ग एक ही है। ज्ञायककी रुचि करनी, ज्ञायककी महिमा करनी, ज्ञायकका ज्ञान करना। ज्ञायक क्या है, उसके विचार करना। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है, उसका स्वरूप क्या है? लेकिन वह समझनेके लिये विचार, शास्त्र और गुरुदेवने क्या कहा है, उन सबका विचार करना। ध्येय एक ही-ज्ञायकको ग्रहण करना।

ग्रहण हो, ग्रहण करनेके हेतुसे देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि सब ज्ञायक कैसे ग्रहण हो, उसके लिये है। जीवनमें देव-गुरु-शास्त्रका रटन रहे वही सर्वोत्कृष्ट है न। बाकी संसार तो चलता ही रहता है। संसार तो है ही, परन्तु गृहस्थाश्रममें अन्दर आत्माकी रुचि रहे, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा रहे, जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्रकी महिमा रहे और आत्माकी रुचि रहे, वही मनुष्यजीवनका कर्तव्य तो एक ही है। ज्ञायक आत्माकी महिमा, उसकी रुचि और वह नहीं हो वहाँ शुभभावमें जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र हृदयमें रहे, वही मनुष्यजीवनका कर्तव्य है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- ज्ञायकके अलावा सब पर। विभावभाव अपनी पर्यायमें होते हैं, परन्तु उसका स्वभाव भिन्न है। इसलिये विकल्प भी (पर)। सब उसमें ले लेना। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म आदि सब।

मुमुक्षु :- एक समयकी पर्याय भी परमें आती है?

समाधान :- मुख्यरूपसे यह शरीर, द्रव्यकर्म और भावकर्म, शुभाशुभ विकल्प। गुण और पर्याय तो जो शुद्ध पर्याय और गुण, कोई अपेक्षासे उसे पर कहनेमें आता है। वास्तविक रूपसे ऐसे परमें नहीं आते हैं। गुण अपने चैतन्यके साथ एकमेक हैं। और पर्याय, चैतन्यकी परिणति परिणमित होकर पर्याय होती है, शुद्ध पर्याय। उसे द्रव्यदृष्टिके जोरमें पर कहनेमें आता है। उसके भेद पड़े, विकल्पके भेदमें अटकना नहीं। परन्तु वह वास्तवमें अपने वेदनसे भिन्न नहीं है। वह अलग है, उसमें विवेक करना पड़ता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५१
(Not for episode)

समाधान :- .. आश्चर्यकारी लगता हो। सब रंगबेरंगी, मानो आकाशमें कुछ होता हो, सबकी दृष्टि ऐसी होती है, इसलिये ऐला लगता हो, परन्तु ऐसा सब होता है।

मुमुक्षु :- दृष्टिके साथ कोई मेल भी हो, ऐसा कुदरतका..

समाधान :- जब भगवान जन्म कल्याणक हुआ तब तो ऐसा बहुत लगता था। भगवान साक्षात् विदेहक्षेत्रमें विराजते हैं, उनकी यहाँ प्रतिष्ठा होती थी, मानो कुछ अलग ही लगता था।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- ये सब घुमते थे, सब घुमते थे। सबको आश्चर्य लगता था। आप सब घुमते थे। ... वह करवाते थे। कुछ मालूम नहीं पड़ता था। वे उदक चन्दन बोलते थे उसका भी आश्चर्य लगता था। उदक चन्दनका कुछ मालूम नहीं पड़ता था। ऐसा सब। वह समझ गये कि ये कुछ समझते नहीं है। इसलिये अपने आप पूजा करते थे। एक आणन्दभाईको खड़ा रखे। वह देरावासी थे न। उन्हें बहुत भक्तिभाव (था)। पूजा करते रहते थे।

उन्होंने क्या मांडलेकी पूजा की! मांडला बनाया था, उन्होंने क्या पूजा की, कुछ समझमें नहीं आता था। आणन्दभाईको खड़े रखकर पूजा करवाते थे। पूजा सुनते रहते थे, देखते रहते थे, लेकिन कुछ मालूम नहीं पड़ता था। (उन्होंने कहा), दानेको कलर करके लाना। हम उत्साहसे रंग करके लाये, परन्तु वह क्यों करते थे, यह कुछ मालूम नहीं पड़ता था। ज्वारा उगाया, तो देखते रहते थे कि यह क्या करते हैं? मालूम नहीं पड़ता था कि कल्याणक कैसे होते होंगे?

मुमुक्षु :- ज्वारा कितने लंबे हुए थे।

समाधान :- वह एक शगुन माना जाता है। उस परसे सब ऐसा कहते हैं कि उसका भविष्य कैसा होगा। भगवान पधारे तो यहाँ प्रत्येक गाँवमें भगवान पधारे। भगवानने साक्षात् दीक्षा ली। जन्म कल्याणकके समय मेरु किया था, नदीके उस पार। नदीमेंसे पानी लाते थे। एकके बाद एक लाते थे। मानो भगवानके पास एकके बाद एक घडा लाते हैं और अभिषेक करते हैं। सोमाभाई बोलते थे।

प्रतिष्ठाचार्य, वे अपने आप (करते रहते थे)। रात्रिको कुछ ओर होता था, सबेरे कुछ दूसरा होता था। वे दोनों अपने आप करते रहते थे। किसीको कुछ नहीं कहते थे। उसके साथ दूसरे दो लोग थे, दोनों करते रहते थे। भगवानका जन्म हुआ उस वक्त दिपक करे, घण्ट बजे, रत्नवर्षा होती थी। ऐसे देखते रहते थे कि यह क्या? मानो भगवानका साक्षात् जन्म हुआ। दरवाजे पर मुहूर्त लगाया था, वह बजता था, सब आश्चर्य लगता था। उस दिनसे आश्चर्य ऐसे ही चला तो उसमेंसे भगवानकी भक्ति शुरू हो गयी। ऐसा हुआ था।

मुमुक्षु :- सौराष्ट्रमें सर्व प्रथम बार भगवान पधारे।

समाधान :- पहले भगवान पधारे।

मुमुक्षु :- उसमें भी श्वेतांबर लोग तो कैसे..

समाधान :- मानते थे, परन्तु आदत नहीं थी।

मुमुक्षु :- पंच कल्याणक महोत्सव पूरे सौराष्ट्रमें कितने साल बाद हुआ। पहली बार। पंच कल्याणक महोत्सव बहुत सालके बाद हुआ।

समाधान :- गुरुदेवको उतना आश्चर्य लगता था। गुरुदेवने सीमंधर भगवानकी पेटी खोली तो उनको भी उतना आश्चर्य लगा। मानो साक्षात् भगवान देखे। साक्षात् दर्शन करे। गुरुदेवको उतना आश्चर्य लगा था। चंदुभाईके कमरेमें भगवानको रखे तो बार-बार वहाँ जाकर बैठते थे और स्वयं गाते रहते थे। 'सीमंधरजिन दीठा लोयण हार..' ऐसा गाते थे। 'निरखत तृप्ति न होय, सीमंधरजिन.. अमीय भरी मूर्ति रची रे, उपमा न घटे कोय, शांत सुधारस झिलती रे, निरखत तृप्ति न होय, सीमंधरजिन दीठा लोयण आज...' ऐसे गाते थे। उनको उतना आश्चर्य लगता था। व्याख्यानमें 'विरहा पड्यशा सीमंधर भगवानना...', ऐसा कुछ गाते थे। 'चंद्रानन जिन सांभळीए अरदास...' वह सब गाते थे। उस दिनसे ऐसे ही चला आ रहा है।

मुमुक्षु :- ... प्रतिष्ठाके समय 'रे रे सीमंधरजिनना विरहा पड्या...' आता है न? 'रे रे सीमंधर जिनना विरहा पड्या आ भरतमां...' ऐसे भावपूर्वक...

मुमुक्षु :- ... गुरुदेवको उतनी भक्ति उछलती। आपको उछले वह तो स्वाभाविक है, आपका तो हृदय भक्तिमय दिखता है। गुरुदेवको भी उस समय उतनी भक्ति उछलती थी। षाष्टांग प्रणाम किये।

समाधान :- षाष्टांग प्रणाम। भगवान मन्दिरमें पधारे तो षाष्टांग प्रणाम किये। कितनी देर तक वैसे ही षाष्टांग, उठे नहीं। आँखमेंसे आंसु चले जाय।

मुमुक्षु :- षाष्टांग यानी षाष्टांग। हाथ ऐसे नहीं।

समाधान :- हाथ ऐसे लंबे। इस प्रकार। हाथ जमीन पर, पैर जमीन पर। बस,

कितनी देर!

मुमुक्षु :- एक यहाँ और एक वहाँ गिरनार पर।

समाधान :- सहस्त्रावनमें, सहस्रावनमें।

मुमुक्षु :- वहाँ षाष्टांग किये थे। वही षाष्टांग हुए उनके सामने। दूसरे वनेचंद सेठ थे, वह गुरुदेवको षाष्टांग करे। ऐसे काटकोण हो गया। गुरुदेव भगवानकी ओर, यह गुरुदेवकी ओर। वनेचंद सेठ गुरुदेव प्रति षाष्टांग (करते थे)।

समाधान :- तत्त्वका बोले तो तत्त्वका। लेकिन पद्मनंदि पर जब उनके व्याख्यान चलते थे, तब पद्मनंदिको जो व्याख्यान चलते थे उसमें उनकी जो भक्ति उछलती थी। और वे जो बोलते थे, उनका हृदय भक्तिसे भरा है, ऐसा दिखाई देता था। पद्मनंदि पर्युषणमें पढते थे, तब हे प्रभु! हे जिनेश! हे जिनेन्द्र! करके बोलते थे। मेरे नेत्र तृप्त नहीं होते हैं, ऐसा करके बोलते थे। एकदम भक्तिभावसे उनका व्याख्यान चलता था। सबने सुना तो होगा न।

मुमुक्षु :- प्रतिष्ठा पर भी गुरुदेव भक्तिसे प्रवचन देते थे। बादलके टूकड़े हो गये...

समाधान :- हाँ, बादलके टूकड़े हो गये। नदी कलकल करके रोती है। दृष्टि और ज्ञानके विषयका उतना और भक्तिका विषय उतना। वैराग्यका आये तो वैराग्य पर चले। लडका दीक्षा ले तो .. वह बोले। कितने पंच कल्याणक देखने मिले। गुरुदेवके प्रतापसे। कितनी वेदी प्रतिष्ठाएँ और कितने पंच कल्याणक हो गये। कितने मन्दिर बन गये। हर गाँवमें मन्दिर हो, इसलिये मुमुक्षु मण्डल, वांचन सब चालू हो गया। मन्दिर हो इसलिये वांचन, भक्ति, पूजन सब शुरू हो जाता है। स्थानकवासीमें कहाँ कुछ (होता है)। उपाश्रय होता है उसमें जाकर पढ़ना होता है।

प्रतिष्ठाचार्य उस दिन तेरापंथी है ऐसा नहीं था। जो प्रतिष्ठाचार्य मिले उसे ले आये थे। हम जयपुर गये थे तो वह कहे, मैं प्रतिष्ठा करता हूँ। कहा, आना। हम किसीको पहचानते नहीं थे। प्रतिष्ठाचार्य जो रामचंद्रजी था, उसे हम ले आये थे। उसे हम ही लाये थे। वह अपने आप ही सब करता रहता था। उसमें थोड़ा बीसपंथी जैसा भी अन्दर करते होंगे। कुछ मालूम नहीं था, भगवानका ओर्डर दे उसके बाद तैयार होता था। मन्दिर हुआ, गुरुदेवने कहा, अब प्रतिष्ठा करनी है, थोड़े महिनेमें, दो-तीन महिनेमें। भगवान लेने कौन जाये? गुरुदेवने हमें कहा, भगवान लेने आप जाइये। जयपुरमें भगवान मिलते हैं, वहाँसे ले आना। फिर हमारे साथ कौन था? जडावबहन था। वह जयपुर जाते थे। जडावबहन और इन्दुभाई। उनके पहचानवाले थे। गुरुदेवने कहा, प्रतिमाजी जयपुरमें होती है, वहाँसे ले आना। उनके साथ हम गये। वहाँ गये तो हमें एक पण्डित चैनसुखलाल मिल गये। उनके वांचनमें हम जाते थे। रातको वांचन करते थे, वहाँ बैठते थे। सोनगढ़से

आये हैं, प्रतिमाजी लेने आये हैं। भगवानके प्रति उत्साहसे भक्ति आनी भी मुश्किल थी। कितने समय तो टीका की।

.. बहुत भाव आये। शास्त्रमें आये कि अष्ट द्रव्य पूजा कराये। जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, फल, फूल सब आता है। पहले शुरूआतसे ऐसे ही चला आ रहा है।

मुमुक्षु :- प्रतिमाजी कुदरती बहुत सुन्दर आये हैं।

समाधान :- बस, वह तैयारी ही थी दुकानमें। दुकानमें बहुत तैयार रखते हैं। छोटे-बड़े। यह तैयार था तो बडे भगवान, सीमंधर भगवान अच्छे हैं। शांतिनाथ और पद्मप्रभु बाजुमें है। वैसे वहाँ लंछन करवाकर ले लिये। फिर उसे ले जानेका ओर्डर नहीं मिलता था, तो उसके ओर्डरके लिये रुके। फिर आते समय उसे रोकते थे कि चालू गाड़ीमें नहीं आये। फिर हम वहाँ रुक जाते थे। उन दिनोंमें रेलका बहुत अच्छा था तो भगवान साथ-साथ आये।

मुमुक्षु :- गुरुदेवको स्वप्नमें...

समाधान :- गुरुदेवको उमंग था न। रेलगाड़ी चली आती थी। गुरुदेवने कहा, मुझे तीन दिपक दिखते हैं। तीन भगवान आ रहे हैं ऐसा लगता है। एक जगह कहे, भगवानके बक्से थे.. कहाँ? महेसाणा। महेसाणामें ट्रेन बदलनी पड़ी। भगवानके बक्से आये, यहाँसे नहीं चढेंगे। गाड़ी बदलनी पडेगी, इसमें नहीं चढेंगे। हम चले जायें और भगवान यहाँ रहे। फिर विचार किया, कुछ नहीं, बक्से यहाँ रहेंगे तो हम भी रुक जायेंगे। लेकिन थोड़ी देर बाद कहा, भगवान चढ जायेंगे। रोका था सही। वहाँ भगवानको उतारे, हमने देखा। फिर उसके पीछे-पीछे कहा, सँभलकर ले जाना। ऐसे उसके पीछे-पीछे घुमते थे। पहली बार था इसलिये।

भगवानको आने दिया। उसमें एक ... जोड़ दिया होगा। परन्तु उस प्रकारसे भगवानको आने दिया। बेचरभाई बैलगाड़ीमें बैठे। भगवानको देखकर उनको इतना उत्साह आ गया। बैलगाड़ीमें स्वयं बैठे और भगवानको ले आये। भावनगर राजाका हाथी आया था। दिखाव बहुत (अच्छा लगता था)। हाथी समझदार था। हाथी सब समझता था। समझता था अर्थात् किसीको बिठाना पडे, उसे मारे ऐसा नहीं करना पड़ता था। फिर बेचरभाई बैठे और स्वागत किया। वहाँ गुरुदेवके सामने भगवानको खोले। गुरुदेव थँभ गये। .. प्रसन्नता बहुत थी। वहीं लेख लिखवाया और लंछन करवाया, सब। लेखमें क्या लिखते हैं, वह पण्डितजीको पूछकर करवाया। तैयार ही थी। इससे कुछ बड़े भी थे। ऐसा सब था। इससे कोई छोटे भी थे। लेकिन हमें यह पसन्द आ गये। इनकी मुद्रा बहुत अच्छी थी इसलिये। इनकी मुद्रा बहुत अच्छी थी। थोड़ा हँसते हैं, ऐसा लगता था उसे हमने ठीक करवाया। इसलिये गंभीर हो गयी। हमने नाठाको कहा, थोड़ा ठीक

करवाईये। फिर ठीक करवाया और कहा, हमें यही मुद्रा पसन्द आती है।

.. हर वक्त पण्डितको पूछते थे। .. थोड़ा गंभीर लगे ऐसा करवाया। परन्तु भगवान प्रसन्न हो ऐसा दिखाव लगता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५२

समाधान :- ..आत्माको पहचानकर पुरुषार्थ करना। आत्माका स्वभाव पहले पहचानना। भावना की, भावनाके साथ पहचाननेका प्रयत्न करना। आत्माका क्या स्वरूप है? आत्मा क्या वस्तु है? उसके गुण क्या? उसकी पर्याय क्या? वह वस्तु क्या? उसे पहचाननेका प्रयत्न करना। भावना करे उसके साथ उसे समझनेका प्रयत्न करना। उसकी महिमा आये, उसे विभावसे विरक्ते से आये तो होता है।

भावनाके साथ वह सब जुड़ा होता है। जिसे भावना हो उसे ऐसे विचार आये बिना रहे नहीं कि आत्मा क्या है? उसका क्या स्वरूप है? भावनाके साथ वह सब जुड़ा होता है। सच्ची भावना ही उसका नाम है कि जिसे आत्माकी महिमा लगे, विभाव, परपदार्थकी महिमा छूट जाय, सब बाह्य वस्तुओंकी महिमा छूट जाय, आत्माकी महिमा लगे। भावना तो उसे सच्ची कही जाय। जिस भावनाके साथ आत्मा कौन है? आत्माका क्या स्वरूप है? उसे जाननेकी अन्दर इच्छा हो कि आत्मा क्या है, उसका स्वरूप जाने। स्वरूप जाने तो प्रयत्न होता है। ऐसे ही भावना करते रहनेसे नहीं होता, उसका स्वरूप जाने, बादमें पुरुषार्थ करे कि यही आत्मा है, ऐसा नक्की करे। आत्मा ज्ञायक ही है, ऐसा नक्की करे, उसकी बराबर श्रद्धा करे, उसकी प्रतीत करे, उसका ज्ञान करे तो होता है। उसकी लीनता करे। परन्तु वह सब भावनाके साथ जुड़ा होता है। मात्र अकेली भावना करनेसे नहीं, परन्तु उसके साथ यह सब होता है। शुभभावसे जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रका योग मिलता है। लेकिन आत्मा स्वयं पुरुषार्थ करे तो मिलता है। उसके साथ उसे तत्त्वके विचार होते हैं। सब साथमें जुड़ा होता है, तो मिलता है। भावना करता रहे कि आत्मा कैसे प्राप्त हो? आत्मा कैसे प्राप्त हो? उसके साथ दूसरा कुछ नहीं हो तो भावना भी सच्ची नहीं है। बँधा हुआ मनुष्य ऐसा कहे कि यह बेड़ीका बन्धन कैसे टूटे? कैसे टूटे? ऐसा करता रहे तो वैसे नहीं टूटती। तोड़नेका प्रयत्न करे तो टूटे।

वैसे आत्माका क्या स्वरूप है? आत्मा बँधा हुआ है, मुक्त है। किस प्रकार उसका मुक्त स्वरूप है? और कैसे बन्धन है? यह सब अन्दर समझे। आत्मा वस्तु तो मुक्त है, लेकिन बन्धन तो विभावकी भ्रान्तिके कारण यह बन्धन हुआ है। उसका स्वरूप

पहचाने। उसे तोड़नेका प्रयत्न (करे) अर्थात् अन्दर श्रद्धा करे, ज्ञान करे और उस ओर लीनता करे तो प्रगट होता है। वांचन, विचार आदि करना चाहिये। तत्त्वके विचार और उस एक ही में स्थिर नहीं रह सके तो स्वाध्याय करे, वांचन करे। शास्त्रका वांचन करे। जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रकी महिमा, भक्ति और शास्त्र स्वाध्याय आदि सब करे। सब बीचमें आता है, लेकिन यथार्थ ज्ञान हो तो उसे यथार्थ पुरुषार्थ उठे। यथार्थ ज्ञानके बिना यथार्थ ध्यान हो नहीं सकता। यथार्थ ज्ञान करे तो ही उसे यथार्थ पुरुषार्थ उठे।

मुमुक्षु :- ज्ञायकके द्वार पर टहेल लगानी, ऐसा कहा। तो हम बाहरके द्वारा पर तो भटकते हैं। वह समझमें आता है, लेकिन ज्ञायकके द्वार टहेल कैसे लगानी?

समाधान :- ज्ञायककी लगनी लगे, ज्ञायक.. ज्ञायक, ऐसे ज्ञायककी धून लगे। ज्ञायकके सिवा कहीं रुचे नहीं, वह ज्ञायकके द्वारा पर लगाना है। उसके हृदयमें ज्ञायक.. ज्ञायक.. कैसे ज्ञायक पहचानमें आये? बारंबार उसे ज्ञायक ही स्मृतिमें आता रहे। यह सब है, लेकिन मुझे ज्ञायक नहीं दिख रहा है। विभाव आदि सब दिखता है, विकल्पकी जाल दिखती है, परन्तु इसमें ज्ञायक नहीं दिखता है। ऐसे ज्ञायककी धून लगे, ज्ञायककी लगनी लगे, वह ज्ञायकके द्वार पर टहेल लगाना है। ज्ञायक कैसे पहचाना जाय? वह टहल है। बारंबार, दिन और रात उसकी लगनी लगे। ज्ञायकके सिवा कहीं चैन पड़े नहीं।

भगवानके द्वार पर टहेल लगाये कि भगवानके द्वार कैसे खूले? भगवानके मन्दिरमें कैसे जाऊँ? वैसे यहाँ ज्ञायककी धून लगे। ज्ञायकके द्वारा कैसे (खूले)? मुझे ज्ञायक कैसे पहचानमें आये? ज्ञायकके दर्शन कैसे हो? वैसे ज्ञायककी धून लगे, ज्ञायककी लगनी लगे। उसे उसके द्वार पर टहले लगानी (कहा जाता है)। ज्ञायक.. ज्ञायक.. उसके हृदयमें ज्ञायकदेवकी धून लगे, लगनी लगे। वह टहेल लगाना है। बाहरमें भटकना वह नहीं, ज्ञायकके द्वार पर ही टहेल लगानी, उसकी लगनी लगे।

मुमुक्षु :- निरंतर एक ही लगनी।

समाधान :- एक ही लगनी उसे होती है। रात और दिन उसे ज्ञायक ही याद आये। विकल्पजालमें बाहरमें रहता है, लेकिन उसे ज्ञायककी ही धून लगे, ज्ञायककी लगनी लगे।

समाधान :- जातिस्मरणका अर्थ तो पूर्वका स्मरण हो, ऐसा उसका अर्थ है। पूर्वका स्मरण आता है। अभी देवभवमें हैं। देवके रूपमें हैं।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- जो सुना हो वह सब स्मरणमें आये। बाकी मतिकी निर्मलताके कारण

भविष्यका (जाने) वह अलग बात है। बाकी जातिस्मरणमें तो पूर्वका स्मरण आता है।

मुमुक्षु :- भविष्यमें क्या होगा वह सुना हो, वह भी याद आये।

समाधान :- भविष्यमें क्या होनेवाले हैं, वह सुना हो, वह याद आये। जातिस्मरणके विषयमें वही है। पूर्वमें जो सुना है, उसमें भविष्यके भव भी सुने होते हैं न, वह याद आते हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके दूसरे भव जो सुने हैं वह याद आते हैं।

समाधान :- हाँ, सुने हुए स्मरणमें आता है। वह कुछ पढा नहीं था। वह पुराणमें नहीं पढा था। स्थानकवासीमें तो समवसरणका वर्णन तो तीन गढ़ होते हैं, भगवान होते हैं, ऐसा होता है न। समवसरणका वर्णन जो दिगंबरमें आता है, वह पढा नहीं था। वह तो ऐसे ही (स्मरणमें आया था)। जो दिगंबरमें आता है, उसी प्रकार आया था। वह कुछ पढा या सुना नहीं था। वर्तमानमें पढा, सुना हो वह याद आये ऐसा नहीं है। वर्तमानका हो तो वह तो वही हो गया। पढा, सुना हो, उसका कोई अर्थ नहीं है। पूर्वमें जो सुना था, वह अंतरमेंसे याद आया।

मुमुक्षु :- यहाँ समवसरण बनाया उसके पहले...

समवसरण :- वह तो उसके पहले हुआ था। यह तो संवत १९९३ की सालमें हुआ था। समवसरण तो १९९८की सालमें हुआ। समवसरणका तो बहुत वर्णन आता है। कहते थे, वह मैंने कुछ सुना नहीं था। गुरुदेव तीर्थंकर होनेवाले हैं, वह मैंने उनके पाससे नहीं सुना था। यह तो बहुत साल पहलेकी बात है। १९९३, १९९४की सालमें गुरुदेव हीराभाईके मकानमें थे। उस वक्त किसीको कुछ कहते नहीं थे कि उन्हें स्वप्न आया और तीर्थंकर होनेवाले हैं, गुरुदेवसे कोई बात नहीं सुनी थी। गुरुदेव उस वक्त बाहर कुछ नहीं कहते थे। हीराभाईके बंगलेमें गुरुदेवने परिवर्तन किया, तब हीराभाईके बंगलेमें थे। गुरुदेव कुछ नहीं कहते थे। वह सब तो अंतरमेंसे आया। बादमें मैंने गुरुदेवको कहा। इसलिये गुरुदेवने कहा कि, ऐसा तो मुझे भी अन्दरमें आता है।

.. मुझे तो ऐसा लगा था कि, मैं गुरुदेवको कहती हूँ, उनको कैसा लगेगा? ऐसा होता था। गुरुदेव बाहर नहीं कहते थे। गुरुदेव राजकुमार थे, गुरुदेव बाहर नहीं कहते थे। उन्हें स्वप्नमें आया था। तीर्थंकर होनेवाले हैं, अंतरमेंसे उन्हें ऐसा आता था, अन्दरसे स्वप्न आते थे। गुरुदेवको ऐसा सब होता था, लेकिन वह बाहर नहीं कहा था। मुझे कुछ नहीं मालूम था।

मुमुक्षु :- आपने कहा तब..

समाधान :- मैंने गुरुदेवको कहा कि मुझे ऐसा आता है कि आप राजकुमार थे। फिर गुरुदेवने कहा कि हाँ, मुझे स्वप्न आया था, दीक्षा लेनेके बाद तुरंत, कि

मैं राजकुमार हूँ, झरीके वस्त्र परहने हैं, ऊंचा शरीर है। वह शरीर यहाँका नहीं। वह तो कोई दूसरे क्षेत्रका बड़ा शरीर था। वह बादमें कहा। भगवानने कहा है, तीर्थंकर होनेवाले हैं। सीमंधर भगवानने कहा है। गुरुदेवने कहा, यह तो मुझे अंतरमेंसे आता है।

मुमुक्षु :- आपने जब कहा, तब गुरुदेवने कहा न..

समाधान :- गुरुदेवको प्रमोद बहुत हुआ था। भगवानका नाम आये इसलिये प्रमोद आये न। भगवानने कहा है इसलिये। गुरुदेवको कहना वह कोई, अंतरमें विचार किये बिना गुरुदेवके पास कहना वह कोई आसान बात है? गुरुदेव कहते थे, त्रिलोकीनाथने टीका किया, अब क्या चाहिये? भगवानने कहा है कि भविष्यमें यह तीर्थंकर होंगे। भगवानकी वाणीमें आया, भगवानकी कृपा बरसी। गुरुदेव ऐसा शब्द (बोलते थे), त्रिलोकीनाथने टीका किया, अब क्या चाहिये?

मैं तीर्थंकर हूँ, यह मुझे क्या आ रहा है? उनको उस प्रकारकी भनक और उस प्रकारके स्वप्न आते थे। ऐसे स्वप्न आने वह कोई आसान नहीं है। तीर्थंकरका स्वप्न किसे आता है? किसीको कहनेमें आये कि यह तीर्थंकर (होनेवाले हैं)। तो कोई माने नहीं। ना, ना। भगवान तीर्थंकर हैं, मैं कहाँ तीर्थंकर हूँ? गुरुदेवको स्वयंको हृदयमेंसे ऐसा आता था कि मैं तीर्थंकर हूँ। तीर्थंकर होनेवाला हूँ, तीर्थंकर हूँ ऐसे स्वप्न आते थे।

मुमुक्षु :- ऐसे स्वप्न आते थे?

समाधान :- हाँ, ऐसे स्वप्न गुरुदेवको आते थे।

मुमुक्षु :- सर्व प्रथम वांकानेरमें ॐ ध्वनि..

समाधान :- हाँ, ॐ ध्वनि (आया था)। ॐ ध्वनि आये वह भी किसको आती है? गुरुदेवको ॐ ध्वनि स्वप्नके अन्दर आती थी। पहले वांकानेरमें आयी, फिर उमरालामें आयी, तिसरी बार विंछीयामें आयी। साढे बारह क्रोड वाजिंत्र बजते हैं और ॐ ध्वनि (सुनायी दी), गुरुदेवको स्वयंको ॐ ध्वनि निकलती है। ऐसा आता था। उसके दो अर्थ करते थे। भगवानके पास गुरुदेव सुनकर आये हैं और भगवान होनेवाले हैं। इसलिये ॐ ध्वनि निकली, साढे बारह क्रोड़ वाजिंत्र बजते हैं।

मुमुक्षु :- होनेवाले हैं ऐसा भी और भगवानके पाससे आये हैं, ऐसा भी।

समाधान :- भगवानके पाससे आये हैं, दोनों अर्थ करते थे। कुछ सुना नहीं था, कुछ किया नहीं था, कुछ नहीं था। यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं, सीमंधर भगवानकी वाणीमें ऐसा आया है। वह एकदम आया। मैंने कुछ सुना नहीं, किया नहीं किसीके पाससे अथवा ऐसा विचार भी नहीं आया है। गुरुदेवको कहनेमें कितनी बड़ी बात है कि यह बड़ी बात गुरुदेवको कहेंगे तो गुरुदेव क्या कहेंगे, ऐसा

विचार आये। वे स्वयं मानते थे, यह मालूम नहीं था।

मुमुक्षु :- बड़ी जिम्मेदारी।

समाधान :- जिम्मेदारी लेकर कहा था। देवोंका वैक्रियक शरीर, वह तो स्वयं विक्रिया करते हैं। जैसी विक्रिया करनी हो वैसी कर सकते हैं। उसका वर्णन तो.. देव तो ऊँची जातके वैक्रियक शरीर करे। नीचि जातके वैक्रियक नहीं करते, ऊंची जातके करे। भगवानकी भक्ति करे। एक देवके कितने रूप कर दे। देव यानी देव जैसे ही दूसरा रूप करे। सब जातके रूप न करे, ऊंची जातकी विक्रिया करे। अमुक जातिके देव होते हैं, वह देवकी विक्रिया करे। अमुक वाहन जातिके देव होते हैं, अनेक जातिके देव होते हैं।

भगवानके जन्माभिषेकके समय आते हैं, वह देव हाथीका रूप लेकर आता है। देव स्वयं ही ऐरावत हाथी होता है। कितनी सूंढ होती है। एक सूंढ पर कितने तालाब होते हैं। ऐसा हाथीका रूप लेकर कोई देव आता है। वाहन जातिके देव होते हैं। उस पर भगवानका अभिषेक करने जाते हैं। देव अनेक जातके रूप करते हैं।

मुमुक्षु :- तिर्यंच भी होते हैं?

समाधान :- तिर्यंच नहीं होते, तिर्यंच नहीं होते हैं, देव रूप करे, देव रूप करे। तिर्यंच नहीं होते। हाथी स्वयं देव है। तिर्यंच नहीं है, देव है। प्रतिन्द्र, सामानिक, वाहन जाति आदि अनेक जातिके देव होते हैं। ... देव होते हैं, अनेक जातके होते हैं। बहुत जातिके देव ऐसे होते हैं, वे ऐसे वाहन जातिके देवोंका रूप नहीं करते हैं। अमुक जातके देव होते हैं वह करते हैं। दिगंबर धर्म ही है। मुनि हाथमें आहार ले, दिगंबर धर्म ही चल रहा है। भगवान वहाँ विराजते हैं। मैं किसीको कुछ कहती नहीं, पूछते हैं तो थोड़ा (कहा)।

मुमुक्षु :- बात समझानेमें आये तो सबको ख्यालमें आये।

समाधान :- गुरुदेवके पास सबने बहुत सुना है। देवाधिदेव! यह तुझे कहाँसे आया? ऐसा बोले। उस दिन मालूम भी नहीं था, यह कहाँसे आया। तू ही देवनो देव, यह कहाँसे आया? स्थानकवासीमें तो यह था नहीं, यह कहाँसे आया? तू ही देवनो देव। तू भगवान है, ऐसा कहाँसे आया? छोटी उम्रमें कहाँसे आया? ऐसा बोलते हैं। तीर्थंकरका जीव... इतना ठोस स्वयंको ही था।

मुमुक्षु :- गुरुदेव वहाँ..

समाधान :- पाठ बोलनें यह क्या आया? ऐसा हुआ। अन्दर आत्माकी लगी थी न।

मुमुक्षु :- यह सब गुरुदेव मुमुक्षुके आगे उल्लाससे व्यक्त करते थे, उसके पीछे

उनका भाव क्या था?

समाधान :- अपना हृदय बाहर कहते थे। अन्दर बहुत रखा, अब स्वयं बाहर कहते थे। यथातथ्य बात है, ऐसे बाहर कहते थे। ऐसे ही कोई बात स्वीकारे ऐसे नहीं थे। स्वयं अन्दर परीक्षा करके करते, उन्हें अन्दरसे ठोस लगा था। स्वानुभूति आदिकी सब बातें उन्होंने प्रश्न-चर्चा करके दृढ़ किया है। ... वह प्रश्न है, इससे अतिरिक्त दूसरे कितने प्रश्न पूछे हैं। प्रश्न-चर्चासे साबित किया है। बारंबार पूछते थे। सभी बातें उन्होंने प्रश्न-चर्चासे दृढ़ की है। यह सब कहते वक्त ऐसा विचार आता था कि, इसमें इतने प्रश्न हुए हैं, अब इसमें क्या प्रश्न होंगे? उसे कैसे साबित करना। यह तो प्रश्न-चर्चासे कुछ हृदय पकड़में आये, ऐसी थी। सिद्ध करे, ऐसे ही कुछ नहीं स्वीकारते थे।

शास्त्र पढे तो यह सब पढ़कर नक्की किया कि दिगंबरमें सब यथार्थ है। दूसरेमें कुछ इधर-उधरका आये तो इसमें यह है, इसमें यह है, इसमें यह क्षति है, सब अन्दरसे स्वयं विचार करके नक्की करते थे। कितनी सूक्ष्मतासे सब दृढ़ करते थे। सब बातें वह मान ले ऐसा नहीं था। एकदम परीक्षा (करनेवाले थे)। स्वानुभूतिके भी कितने प्रश्न पूछे हैं। राजकोटमें पूछे हैं, बहुत जगह, जामनगरमें पूछे हैं। बहुत बार पूछा है।

मुमुक्षु :- यह तो आपने आज ही स्पष्ट किया। हमें तो ऐसा मालूम था कि, गुरुदेवने अमुक प्रश्न एक बार पहले पूछे थे।

समाधान :- इतने तो हैं, दूसरे भी बहुत प्रश्न पूछे हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! कहानगुरुनो अनुपम महिमा बतावनार भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५३

मुमुक्षु :- .. होता है, राग भी है, विकल्प भी है और साथ-साथ ज्ञानका निर्णय भी होता है कि मैं यही हूँ, यही हूँ। तो ज्ञायकका निर्णय बहुत गहराईमें जाय तो वह बराबर है? विकल्पके साथ।

समाधान :- विकल्प साथमें होता है। परन्तु पहले विकल्प साथमें होता है और निर्णय होता है। विकल्प छूटकर बादमें होता है। विकल्प साथमें होता है। मैं यह ज्ञायक हूँ, परन्तु अपने लक्षणको बराबर पहचानना चाहिये कि यह ज्ञानलक्षण है वही मैं हूँ। यह विकल्प मैं नहीं हूँ। विकल्प आये वह मेरा स्वरूप नहीं है। जो-जो विभाव है वह सब आकूलतास्वरूप है। वह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं उससे भिन्न ज्ञायक हूँ। उसका लक्षण बराबर पहचानना चाहिये। उसका लक्षण पहचानकर निर्णय करना चाहिये।

जिज्ञासासे निर्णय करे परन्तु पहले जो निर्णय आता है, वह निर्णय अन्दर भिन्न होकर निर्णय होता है तब उसे यथार्थ निर्णय कहनेमें आता है। तब तक उसे विकल्प सहितका निर्णय कहनेमें आता है। होता है, गहरा निर्णय होता है, फिर भी अभी ज्ञायककी भेदज्ञानकी धारा नहीं होती, तब तक यथार्थ रूपसे नहीं कहा जाता। पहले विकल्प सहित निर्णय होता है।

मुमुक्षु :- विकल्पमें तो ख्याल आता है कि यह बात बराबर है, करना यही है। दूसरा जो भी करते हैं वह बराबर नहीं है। मनमें इतना विश्वास भी आता है। लेकिन विश्वास टिकता नहीं है और बाहर चला जाता है। बाहरकी प्रवृत्तिमें अधिक रुचि कर लेता है। ख्याल होने पर भी ऐसा होता है।

समाधान :- स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दता है। विकल्प सहितका निर्णय है, परन्तु अभी अन्दरसे स्वयं भिन्न होकर, आंशिक भिन्न होकर लक्षण पहचानकर निर्णय नहीं हुआ है, इसलिये वह बाहर जाता है। रुचि बाहर चली जाती है। वह सब अन्दर अपने पुरुषार्थकी मन्दता है, इसलिये होता है। अन्दरसे यथार्थ भेदज्ञानकी धारा हो, ज्ञायकको अन्दरसे पहचाने तो स्वयंका अस्तित्व ग्रहण करे तो वह ज्यादा बाहर नहीं जा सकता। लेकिन वह तो स्थूल निर्णय किया है, अन्दर लक्षणको पहचानकर निर्णय नहीं किया है। अन्दर यथार्थ निर्णय नहीं हुआ है। परन्तु जब तक वह नहीं होता है तब तक

ऐसा स्थूल निर्णय आता है। लेकिन अभी पुरुषार्थकी मन्दता है, इसलिये बाहर जाता है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान कैसे करना? विचारमें तो आता है, परन्तु अन्दरमें वास्तवमें कैसे भेदज्ञान करना?

समाधान :- अपना लक्षण पहचाने कि यह जाननेवाला है वही मैं हूँ। यह जाननेवाला मैं हूँ, यह शरीर जड़ कुछ जानता नहीं। यह जो विकल्प आते हैं, वह स्वयं स्वयंको जानते नहीं, अन्दर जाननेवाला भिन्न है। जाननेवाला भिन्न है, उसका लक्षण बराबर पहचानकर, उसका अस्तित्व ग्रहण करे कि यह ज्ञायक है वही मैं हूँ। लक्षण द्वारा पूरे ज्ञायकको ग्रहण करके, यह ज्ञायक है वही मैं हूँ, ऐसा नक्की करके ज्ञायकमें दृढ़ता रखकर बारंबार ज्ञायकके अस्तित्वको ऐसे ग्रहण करे कि उससे भिन्न ही नहीं हो। बारंबार जो विकल्प आये उससे मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ। ऐसी परिणतिको अन्दरसे दृढ़ करे तो अन्दरमें भेदज्ञान हो।

... भिन्न पड़े कि यह ज्ञायक मैं हूँ, यह विकल्प मैं नहीं। यह ज्ञायक मैं हूँ, मैं यह नहीं हूँ। इस प्रकार बारंबार ज्ञायककी परिणतिको दृढ़ करे। बारंबार उसका अभ्यास करे। जबतक नहीं हो तबतक अभ्यास करे, भावना करे, जिज्ञासा करे। बारंबार उसकी लगनी लगाये। जबतक नहीं हो तबतक बारंबार ऐसे करता ही रहे। उसकी महिमा, उसका लक्षण पहचाने, उसका विचार, सब वही बारंबार करता रहे, जबतक नहीं होता तबतक। बारंबार उसका प्रयास करता रहे। नहीं हो तबतक बारंबार करता रहे। निर्णय छूट जाय तो भी बारंबार दृढ़ करता रहे। बारंबार भेदज्ञान करता रहे। उपाय एक ही है।

अपने अस्तित्वको ग्रहण करके, उसकी दृढ़ता करके बारंबार उसे ग्रहण करे। बारंबार उसकी दृढ़ता करता रहे। बारंबार वह छूट न जाय इसलिये बारंबार उसका प्रयत्न करता रहे। एक ही करना है। जो मुक्तिको प्राप्त हुए, वे भेदज्ञानसे ही प्राप्त हुए हैं। जो नहीं हुए हैं, वे भेदज्ञानके अभावसे नहीं हुए हैं। भेदज्ञान करनेका बारंबार प्रयत्न करते रहना। यह ज्ञायक ही मैं हूँ और यह सब मैं नहीं हूँ। ऐसे स्वयंके अस्तित्वको ग्रहण करके दृढ़ता करता रहे, बारंबार। बारंबार दृढ़ता करनेके बाद विकल्प छूटते हैं। तब तक उसने स्वयंको बराबर ग्रहण नहीं किया है तो उसका विकल्प भी कैसे छूटे? विकल्पमें ही घुमता रहता है। एकमेंसे दूसरेमें, दूसरेमेंसे तीसरेमें। शुभाशुभ, शुभाशुभके विकल्पमें ही पलटा खाता रहता है। इस ओर पलटा खाता है, इस ओर पलटा नहीं खाता। ज्ञायककी ओर पलटता नहीं है और इस ओर अनादिसे पलटता रहता है। अनादिसे शुभाशुभ भावोंमें पलटा खाता रहता है।

मुमुक्षु :- अन्दरका विकल्प कैसे करना? बाहरका ही होता है।

समाधान :- ज्ञायकको ग्रहण करनेकी ओर (जाना है)। विकल्प नहीं करनेका है, परन्तु ज्ञायककी ओर जाना है। परिणतिका पलटा होना चाहिये।

मुमुक्षु :- वह कैसे?

समाधान :- अन्दर जिज्ञासा करे, अन्दर लगनी लगी हो तो अन्दर गये बिना रहे ही नहीं। स्वयंको कहीं चैन नहीं पड़े, बाहर कहीं रुचे नहीं, कहीं रुकना अच्छा लगे नहीं। क्षण-क्षणमें मुझे ज्ञायक कैसे पहचानमें आये? मुझे ज्ञायक कैसे पहचानमें आये? उतनी लगनी लगे तो वह पलटा खाय। अंतरमेंसे लगनी लगनी चाहिये, तो पलटा खाय। उतनी लगनी लगी नहीं है, उतनी ज्ञायककी महिमा नहीं आती है। बाहरसे उतनी तुच्छता नहीं लगती है। तो पलटा कहाँसे हो? अन्दर स्वयंको लगना चाहिये।

.. प्राप्त कर लेते हैं। नहीं प्राप्त करते हैं उन्हें देर लगती है। शिवभूति कुछ नहीं जानते थे। बाई दाल धो रही थी। छिलका अलग, दाल अलग। ऐसा करके, मेरा आत्मा भिन्न और यह विभाव भिन्न। ऐसा करके अंतरमें ऊतर गये। अंतरमेंसे प्रगट किया। ज्यादा नहीं जानते थे तो भी।

मुमुक्षु :- हमें विश्वास आता है वह तो अंतरसे ही आता है। अभी जितने विचार आते हैं, वह अंतरसे ही आते हैं, ऐसा नहीं है कि ऊपर-ऊपरसे आते हैं।

समाधान :- वह तो अंतरसे आये, वास्तवमें तो अन्दर स्वभावमेंसे आना चाहिये। यह सत्य है, ऐसा स्वयंको अंतरसे आता हो, परन्तु स्वभाव ग्रहण करके आये वह अलग बात है। वह अलग बात है।

मुमुक्षु :- किसीको क्षणमें आ जाता है, किसीको नहीं आता है, उसमें ...?

समाधान :- उसमें स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दता है। किसीको जल्दी होता है, किसीको देर लगती है। स्वयंकी मन्दता है। कर्म तो निमित्त मात्र है, वह कुछ नहीं कर सकता। न हो तबतक भगवानने क्या कहा है? गुरुदेवने क्या कहा है? शास्त्रमें क्या आता है? उसका विचार, उसका वांचन, उसका स्वाध्याय बारंबार करता रहे और ज्ञायक कैसे पहचानुँ, उसकी बारंबार जिज्ञास करे और बारंबार लगनी लगाये।

मुमुक्षु :- जबतक अन्दरमें रुचि नहीं लगती, हमें तो वही लगता है। बाहर बहुत रुचि हो जाती है, बाह्य भावोंमें। तो ऐसा लगता है कि अन्दरमें नहीं आती। हमारे मनमें ऐसा लगता है।

समाधान :- अंतरकी रुचि हो, वह बाहरमें उतना तन्मय नहीं होता है। जिसे अंतरकी लगी हो, ज्ञायककी महिमा, उसे विभावसे तो कुछ हद तक वैराग्य आ जाय, यह सब तुच्छ है, सारभूत नहीं है। सारभूत तो आत्मा है। उतना तन्मय हो जाय तो अंतरमेंसे कम हो जाय, वह तो सीधी बात है। बाहरमें उतना तन्मय हो जाय

तो। अंतर खटक रहनी चाहिये कि यह सब है, वह सारभूत नहीं है। अन्दर स्वयंको होवे नहीं, लेकिन खटक तो लगनी चाहिये कि यह सब सारभूत नहीं है, सारभूत तो मेरा आत्मा है। ऐसे खटक लगनी चाहिये। उसका अर्थ यह है कि ज्यादा खटक होनी चाहिये। मात्र खटकसे कुछ नहीं होता, इसलिये तीव्र खटक लगनी चाहिये।

... कार्य कहाँसे आये? कारण थोड़ा (हो तत) कार्य नहीं आता। जितना उसका कारण दे उतना ही कार्य आये। अन्दर जितनी स्वयंको लगी हो, अन्दर जिज्ञासा, लगनी लगी हो, उतना अन्दर स्वयं पुरुषार्थ करे तो कार्य आये। कारण बिना कार्य कहाँसे आये? आनन्द (आदि) सब आत्मामें ही भरा है। बाहर जाता है उतनी स्वयंकी क्षति है कि बाहर एकत्व होकर, तन्मय होकर जाता है।

... साधकको अवलम्बन तो दृष्टिमें होता है। श्रद्धाके अन्दर शुद्धात्म द्रव्यका आलम्बन होना चाहिये। जो शुद्धात्मा अनादिअनंत स्वयं द्रव्य वस्तु है, वह वस्तु शुद्ध स्वरूप ही है। उस वस्तुका अवलम्बन साधकको होता है। अर्थात् मूल अवलम्बन तो उसे शुद्धात्माका है, परन्तु अंतरमें स्थिर नहीं हो सकता है इसलिये उपयोग बाहर आता है। इसलिये बाहरमें देव-गुरु-शास्त्रके शुभभावमें है। और शुभभावका अवलम्बन है वह व्यवहारमें है। अंतरमें निश्चयका अवलम्बन शुद्धात्माका है। बाहरमें शुभभावमें बाहर आये तो जिनेन्द्रदेव, गुरु और शास्त्र (का अवलम्बन होता है)। परन्तु मूल अवलम्बन तो शुद्धात्माका है। उसे द्रव्य पर ही दृष्टि रहती है। ज्ञायक पर ही दृष्टि रहती है (कि) मैं यह शुद्धात्मा हूँ। उसके सिवा सब मुझसे भिन्न है, सब पर है।

... मैं ज्ञायक ही हूँ, इस प्रकार ज्ञायक पर ही दृष्टि (रहती है)। बाहरमें उपयोग जाये तो भी उसकी दृष्टि तो ज्ञायक पर ही रहती है। बाहर शुभभाव आये तो भी उसे दृष्टि तो एक ज्ञायक पर ही रहती है। ज्ञायकका अवलम्बन उसे छूटता ही नहीं। ज्ञायकका आश्रय तो उसे सदा रहता ही है। उपयोग बाहर आये तो शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त की ऐसे देव और गुरु जो साधना करते हैं, और शास्त्रोंमें जो वस्तुका स्वरूप बताया है, उसका अलम्बन उसे व्यवहारसे शुभभावमें होता है। परन्तु उस वक्त भी शुभभाव मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसी दृष्टि और ज्ञान उसे साथमें वर्तते हैं। और आंशिक ज्ञायककी परिणति भी साथमें होती है। उसे भेदज्ञानकी धारा सदा वर्तती ही है, बाहर उपयोग आये तो भी।

मैं, इन सब भावोंसे भिन्न शुद्धात्मा हूँ। ज्ञायककी धारा सदा वर्तती है। उदयधारा और ज्ञानधारा दोनों साथमें वर्तती है। बाहरमें शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रका अवलम्बन होता है। अन्दर पूर्णता प्राप्त नहीं हो, अन्दर पूर्णरूपसे स्थिर नहीं हो सकता है, ज्ञायककी परिणति प्रगट हुयी, लेकिन उसमें पूर्ण लीनता नहीं होती है इसलिये उपयोग बाहर

आता है। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रका अवलम्बन होता है।

मुमुक्षु :- अनुभव नहीं हुआ है, ऐसे जीवकी कैसी परिस्थिति होती है?

समाधान :- जिसे अनुभव नहीं हुआ है, उसे भी मुझे शुद्धात्मा कैसे ग्रहण हो, उसकी जिज्ञासा और रुचि रहा करे। मुझे ज्ञायक कैसे समझमें आये? ज्ञायकका यथार्थरूपसे अवलम्बन (कैसे हो)? मैं शुद्धात्मा हूँ, उसका अवलम्बन मुझे कैसे आये और यथार्थ रूपसे वह परिणति कैसे प्रगट हो, उसकी भावना अन्दर रहे। विचारोंसे निर्णय करे कि मैं ज्ञायक ही हूँ। यह शुभाशुभ भाव मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसे विचारसे नक्की किया लेकिन यथार्थ अवलम्बन कैसे हो? उसकी भावना हो, उसकी रुचि रहे, उसकी खटक रहे। उसे निरंतर खटक रहा करे कि मुझे ज्ञायकका अवलम्बन कैस प्राप्त हो? उसकी रुचि रहा करे।

अंतरमें वह प्रगट नहीं हुआ है तो बाहरमें उसे देव-गुरु-शास्त्रका अवलम्बन होता है। भगवानने जो प्राप्त किया, गुरु साधना करते हैं, शास्त्र मार्ग बताते हैं। शुभभावमें उसे देव-गुरु-शास्त्र (का अवलम्बन होता है), लेकिन अंतरमें उसे खटक रहती है (कि) मुझे शुद्धात्मा कैसे ग्रहण हो? उसे रहता ही है। अंतरमें ऐसी रुचि रहती है। मुमुक्षुको अन्दरसे खटक नहीं जाती कि मुझे शुद्धात्मा कैसे ग्रहण हो? बाहरमें अशुभभावसे बचनेको वह शुभभावमें खड़ा रहता है। जिनेन्द्रदेवकी महिमा, शास्त्रका चिंतवन, गुरुकी महिमा आदि सब उसे होता है।

सब कार्योंमे जुड़ता है। जिनेन्द्र देवके, गुरुके, शास्त्रके सब कार्योंमें जुड़ता है। जिन्होंने प्रगट किया उन पर उसे भक्ति आये बिना नहीं रहती, इसलिये वह सब कार्योंमें जुड़ता है। भगवानका, गुरुकी प्रभावना, गुरुकी सेवा, गुरुकी भक्ति, गुरुने क्या कहा है, गुरुने क्या मार्ग बताया है, उसके विचार, शास्त्रमें क्या आता है, तत्त्वके विचार अन्दर आते रहे। द्रव्य-गुण-पर्याय, आत्माका स्वरूप, परद्रव्यका क्या स्वरूप, तत्त्वके विचार आते रहे। वह सब उसे होता है। ... पलटता है। अशुभभावमेंसे शुभभावमें दिशा पलटता है और शुद्धात्माकी खटक अन्दर रहा करती है।

मुमुक्षु :- शुद्धात्माकी महिमा..

समाधान :- शुद्धात्मा तो महिमास्वरूप ही है। सब चैतन्यमें भरा है, चैतन्य अनन्त गुणोंसे भरपूर है। अनुपम तत्त्व है। उसे किसीकी उपमा लागू नहीं पड़ती। जगतके किसी भी पदार्थकी उपमा चैतन्यको-शुद्धात्माको लागू नहीं पड़ती। उसका ज्ञान अनुपम, उसका आनन्द अनुपम, उसके अनन्त गुण अनुपम। चैतन्य तो अनुपम तत्त्व है, उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। ऐसा अनुपम तत्त्व है। उसकी महिमा उसे आनी चाहिये कि यह सब सारभूत नहीं है, सारभूत मेरा आत्मा है और वह अनुपम है। जगतकी कोई वस्तु

अनुपम नहीं है। जगतके कोई पदार्थ अनुपम नहीं है कि महिमा योग्य नहीं है। परन्तु मेरा आत्मा एक अनुपम है, जिसे कोई उपमा नहीं दी जाती। ऐसी महिमा आये, अन्दर चैतन्यकी-शुद्धात्माकी महिमा आये, बाहरसे हटे, महिमावाला पदार्थ हो तो यह एक मेरा चैतन्य शुद्धात्मा चैतन्यदेव महिमावंत है।

भगवानने जो प्राप्त किया, गुरु जो साधना करते हैं, वह पदार्थ कोई अनुपम है। गुरुदेव जो वाणीमें कह रहे हैं, आत्माकी महिमा प्रकाशते हैं, शास्त्रमें उसकी महिमा आती है, शास्त्रमें उसका स्वरूप आये, गुरुकी वाणीमें आये वह पदार्थ कोई अलग है। ऐसे अंतरमेंसे स्वयं विचार करके नक्की करके उसकी स्वयंकी महिमा अंतरमें आये। अर्थात् उसे प्रगट करनेका स्वयं प्रयत्न करे। उसके बिना चैन पड़े नहीं। उसीकी लगनी लगे, उसीका बारंबार रटन, याद (करे), बारंबार उसके विचार करे।

मुमुक्षु :- .. आत्माकी महिमा-ज्ञायककी महिमा और बाहरमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। एक स्व है और एक पर है। अभिप्रायमें दोनों महिमा एकसाथ कैसे टिक सके?

समाधान :- अभिप्राय चैतन्यका है। अभिप्रायमें चैतन्यकी महिमा है और देव-गुरु-शास्त्रकी उसे महिमा तो है। महिमावंत पदार्थ तो मैं हूँ और महिमावंत पदार्थ जो है उसे देव-गुरु-शास्त्रने प्रगट किया है। इसलिये उसकी महिमा उसे आती है। दोनों साथ टिक सकते हैं। बाहरका जो है वह तो उपयोगरूप होता है। यह अंतर अभिप्रायमें है। अभिप्रायमें शुद्धात्माकी महिमा (है)।

जो शुद्धात्मा है वह महिमावंत है। ऐसा महिमावंत पदार्थ भगवानने प्राप्त किया है और गुरु उसकी साधन कर रहे हैं, शास्त्रोंमें उसका वर्णन आता है। इसलिये उसकी महिमा आये बिना रहती ही नहीं। जिसकी महिमा मुझे लगी, वह महिमावंत पदार्थ जिसने प्राप्त किया, उस पर उसकी महिमा आये बिना नहीं रहती। उनको वह दिखाई देता है, अन्दरमें स्वयं तो नहीं देख सकता है। अंतरमें स्वयं विचार करके अंतरमें जाये तब उसे उसकी स्वानुभूति होती है।

यह तो भगवानने प्राप्त किया है, गुरुकी वाणीमें आता है। जिन्होंने प्राप्त किया है उसकी महिमा उसे आती है। ऐसा पदार्थ जिन्होंने प्राप्त किया वे धन्य हैं, वे पूजने योग्य हैं। साथमें रहनेमें कोई दिक्कत नहीं है। वह तो उपयोगमें आता है और यह अन्दर अभिप्रायमें है।

मुमुक्षु :- एक अभिप्रायमें आता है और एक उपयोगमें आता है। इस प्रकार दो प्रकारमें फ़र्क़ पडा।

समाधान :- हाँ, दो प्रकारमें फ़र्क़ है। श्रद्धा दोनों पर है। श्रद्धामें दोनों है। शुद्धात्मा

भी महिमावंत है और देव-गुरु-शास्त्र भी महिमावंत है। लेकिन उपयोगमें तो बाहर हो तब बाहरमें उपयोग है। अंतरमें तो अभी स्वयं गया नहीं।

मुमुक्षु :- आशंका ऐसी होती है कि स्व और पर दोनोंकी महिमा एकसाथ कैसे रह सके?

समाधान :- एक श्रद्धामें रहता है और एक उपयोगमें आता है, बाहर होता है तब। स्वयंकी महिमा आये। भगवानकी महिमा आये और अपनी आती है। ऐसे भी आता है, भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचाने, स्वयंको पहचाने वह भगवानको पहचानता है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको पहचाने वह स्वयंको पहचानता है। स्वयंके द्रव्य-गुण-पर्यायको पहचानता है वह भगवानको पहचानता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। लेकिन उसे साथमें रहनेमें दिक्कत नहीं है। एक श्रद्धामें रहता है, एक उपयोगमें रहता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५४

मुमुक्षु :- प्रवचनसार शास्त्रमें भी है कि अरिहंतके द्रव्य-गुण-पर्यायको जो जाने, वह आत्माको जाने।

समाधान :- हाँ, उसमें आता है। अरिहंतके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानता है वह आत्माके जानता है। स्वयंको जाने, वह भगवानको जाने। भगवानको जाने, वह स्वयंको जानता है। स्वयंको स्वंय देख नहीं सकता। भगवानके दर्शन करे, भगवानकी उसे महिमा आये। गुरुके दर्शन करे, गुरुकी वाणी सुने इसलिये गुरु पर, भगवान पर उसे महिमा आती है। उसमेंसे उसे विचार आते हैं कि भगवान माने क्या? भगवानका द्रव्य क्या? उनका आत्मा क्या काम करता है? उनको कौन-से गुण प्रगट हुए हैं? ऐसे विचार करता है।

भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायका जो यथार्थरूपसे विचार करता है, वहाँ अपने द्रव्य-गुण-पर्यायका विचार आता है कि भगवान आत्मा है। आत्मामें अनन्त गुण हैं। उन्होंने पुरुषार्थ करके प्रगट किये हैं। भगवानका आत्मा है वैसा मेरा आत्मा है। ऐसे भगवानको पहचानकर भी अपनी ओर जाता है। यदि यथार्थ पहचाने तो स्वयंको पहचानता है। यथार्थरूपसे पहचाने तो।

गुरु साधन कर रहे हैं। कोई वाणी अपूर्व बरसाते हैं। उनका आत्मा क्या काम करता है? ऐसे विचार करते-करते अपने आत्माका विचार आता है। शास्त्रके विचार (करता है)। शास्त्रमें तत्त्वकी बात आती है। उसमें उसे आश्चर्य लगता है। विचार करे कि शास्त्रमें यह बात आती है। उसमेंसे अपने विचार आते हैं।

लेकिन प्रत्यक्ष जो है वह परिणति पलटनेका कारण बनता है। एक बार प्रत्यक्ष देव और प्रत्यक्ष गुरु मिले तो अपनी परिणति-सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेका कारण बनता है। फिर शास्त्र, एक बार सुननेके बाद शास्त्र पढे वह अलग बात है। परन्तु प्रत्यक्ष होते हैं वह उसे परिणति पलटनेका कारण बनता है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- अंतरना भावे वधाविए..

समाधान :- अंतरना भावे वधाविए।

मुमुक्षु :- वह भक्ति देखकर ऐसा लगता है कि ज्ञानीको किस प्रकार यह शुभराग

हेयबुद्धिसे आया है? वह कैसे बनता होगा? आपने दस मिनट ही वहाँ भक्ति करवायी थी, इस वक्त सबके बीच उतने भावसे नहीं बता सकता, लेकिन आपके भावपूर्वक जब भक्ति आती हो...

समाधान :- अंतरमें दोनों रहता है। एकत्व परिणति हो नहीं और भाव एकदम जोरदार आये। दूसरेको ऐसा लगे कि ऐसी कैसी भावना आती है? परिणति एकत्व हो नहीं और भिन्न रहकर भावना आये।

मुमुक्षु :- वही आश्चर्य उत्पन्न करता है।

समाधान :- ज्ञायककी परिणति भिन्न रहे और भावना भी ऐसी आये। आवो आवो पधारो भाविना भगवान, अंतरथी भावे वधाविए।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर। आपने जिस भावसे गाया था..

मुमुक्षु :- जगतका यह एक आश्चर्य है कि एकसाथ दो काम इस प्रकार होते हैं।

समाधान :- एक परिणतिमें है, एक उपयोगमें है। परन्तु भेदज्ञानकी धारा वैसी की वैसी चालू हो तो भी वैसे भाव आते हैं। उसमें उसे विरोध नहीं होता।

मुमुक्षु :- ज्ञानीकी इस स्थितिका, माताजी! अज्ञानीको अंदाज आना बहुत मुश्किल है।

समाधान :- शास्त्रमें आता है और गुरुदेव बहुत बार कहते थे कि ज्ञायककी धारा प्रगट होनेके बाद जो भावना आती है, उसकी स्थिति अधिक नहीं पड़ती परन्तु रस अधिक पड़ता है। उसे देव-शास्त्र-गुरु पर जो भावना आती है कि यह मेरी जो साधना है, यह ज्ञायककी धारा, चैतन्यदेव जिसने प्रगट किया है और उसकी जो साधना की है और उपकारी गुरु हैं, उन्होंने जो मार्ग बताया है, उन पर जो भाव आये, ज्ञायककी जो स्वयंको प्रीति है, उसमें जो निमित्त बने, जो उपकार किया है, वह जिन्होंने प्रगट किया है, उन पर जो भाव आता है, अंतरमें जो ज्ञायककी महिमा है, वह बाहर आये तो देव-गुरु-शास्त्र पर भी उसे ऐसी ही महिमा आती है। इसलिये उसका बहुत दिखता है कि मानो एकत्व हो जाता हो।

मुमुक्षु :- भाव तो माताजी! प्रत्यक्ष देखे हैं कि कैसे भाव आ सकते हैं।

नथी कलगी के हार हेम कुंडना, नथी मोती माणेक महा मूलना,
मात्र हैयाना ऊँडा उमळका तैयार, अंतरथी भावे वधाविए।
तुम सेवा तणी घणी कामना, अमे जाप जपीए तुम नामना।
क्यांथी पगला पनोता भाविना भगवान, अंतरथी भावे वधाविए।
शांत सादा अमारा छे आंगणा, शांत सादा अमारा वधामणा,
मात्र अंतरथी दइये वधाई, अंतरथी भावे वधाविए,
आवो आवो पधारो भाविना भगवान, अंतरथी भावे वधाविए।

लोकमें ऐसा कोई गीत है, उस परसे बनाया है। पहले गुरुदेवके लिये गाया था। कहीं छपा भी था। कहीं पर छपा था। परन्तु ज्ञायकधाराको कोई दिक्कत नहीं आती। चाहे जैसे भाव बाहरमें दिखाई दे, तो भी।

मुमुक्षु :- बहुत .. लगता है।

समाधान :- एक विकल्परूप श्रद्धा अलग बात है और एक सहज परिणति अलग बात है। ज्ञायककी सहज परिणति वह अलग बात है। और विकल्प करके श्रद्धा रखे वह एक अलग बात है। परन्तु जबतक नहीं होता है, तबतक भावना और प्रयास मुमुक्षुको चालू रहता है।

मुमुक्षु :- जब विकल्परूप भाव बाहर जाए, तब अंतरमें भी परिणति वृद्धिगत होती होगी न?

समाधान :- परिणति वृद्धिगत... ज्ञायककी धारा, भेदज्ञानकी धारा चालू है। वृद्धिगत किस प्रकारकी, उसका अर्थ करना पड़े।

ज्ञायक है, ज्ञानस्वभावका नाश नहीं हुआ है। ज्ञानस्वभाव तो उसका है ही। ज्ञायक ज्ञायकरूप तो परिणमित हो ही रहा है। ज्ञायक प्रगटरूपसे नहीं परिणमता है। लेकिन ज्ञायक ज्ञायकरूप है, परन्तु स्वयं भ्रान्तिमें पड़ा है। इसलिये लक्ष्य नहीं जाता। उसकी दृष्टि बाहर है। जो बाहरका दिखता है उसे अपना मानता है, स्वयंको भूल गया है। बाकी स्वयंका नाश नहीं हुआ है। स्वयं स्वयंरूप (ही है)। जो अनादिअनन्त है वह पारिणामिकभावरूप परिणमता ही है। परन्तु उसकी दृष्टि, स्वयं भ्रान्तिमें पड़ा है, इसलिये जाननेमें नहीं आता। बाकी जैसा है वैसा अनादिका है ही। अनादि जो उसका स्वभाव है उस स्वभावका नाश नहीं हुआ है और पारिणामिकभाव ऐसा है कि ज्ञायक ज्ञायकरूप, ज्ञान ज्ञानरूप (है)। स्वयं भगवान आत्मा स्वंयसे ही जाननेमें आ रहा है, परन्तु स्वयं भ्रान्तिमें पडा है, उसे देखता नहीं इसलिये जाननेमें नहीं आता। स्वयं देखता ही नहीं, इसलिये कहाँसे जाननेमें आये? और दृष्टि बाहर है, परकी श्रद्धा कर रहा है, पर-ओरका ज्ञान कर रहा है। सब परकी ओर कर रहा है।

श्रद्धा, ज्ञान, आचरण सब बाहरका कर रहा है। पर पदार्थको अपना मान रहा है। विभाव परिणति होती है, वह सब मेरेमें हो रही है। दृष्टिकी दिशा पलट गयी है। इसलिये स्वयं स्वयंको देखता नहीं। स्वयं है, फिर भी उसे देखता नहीं और भ्रान्तिमें पड़ा है। दृष्टि बाहर है, इसलिये जाननेमें नहीं आ सकता। स्वयं होने पर भी स्वयं स्वयंको देखता नहीं, यह एक आश्चर्यकी बात है। दृष्टि ऐसे (बाहर) है।

गुरुदेव दृष्टांत देते थे, ऐसे बाहरसे गिने कि एक, दो, तीन, चार, स्वयंको गिनना भूल जाय। स्वयं स्वयंरूप ही है। स्वयं स्वयंको जाननेमें आ रहा है, परन्तु स्वयं स्वयंको

भूलकर दृष्टि बाहर कर रहा है, स्वयं होने पर भी।

मुमुक्षु :- प्रश्न पूछुं? बहुत प्रयत्न करनेके बाद भी किसी भी प्रकारका मनोवांछित साहित्य पढनेकी प्रेरणा होने पर भी वह साहित्य, धार्मिक अथवा जो भी पढूँ, उस वक्त एकदम निद्रावश हो जाता हूँ, ऐसा लगता है, उसके लिये क्या कहना है?

समाधान :- स्वयंको उस प्रकारकी रुचि कम है। स्वयंकी महिमा स्वयंको लगती नहीं। बाहरकी प्रवृत्ति और बाहरका लौकिक कार्योंका रस लग रहा है। आत्मा कोई अलग है, उसका स्वयंको रस नहीं है, उसकी रुचि नहीं है। इसलिये उसका मन स्थिर नहीं हो रहा है। इसलिये यदि स्वयंकी महिमा आये, बाहरमें नीरसता लगे, बाहरमें चित्त लगे नहीं ऐसा हो तो स्वयंके अन्दर चित्त लगे। बाहरका रस एकदम तीव्र हो तो स्वयंकी ओर जा नहीं सकता। बाहरका रस उसे टूटे, बाहरका रस मन्द हो, बिलकूल तो छूटता नहीं, परन्तु मन्द रस करे और आत्माका रस बढाये, आत्माकी महिमा बढाये कि आत्मामें सर्वस्व है, आत्मा कोई अनुपम वस्तु है, आत्मा कोई अलौकिक है। उसकी महिमा आये तो उस ओर उसकी रुचि हो।

आत्माका क्या स्वरूप है, उस ओर उसकी लगनी लगे। परन्तु स्वयंको रस ही कम है। रस कम है इसलिये प्रमाद होता है। बाहरमें बाहरके प्रयत्न होते हैं, इसलिये अंतरमें होता नहीं। रस बाहरका लगा है। बाहरका रस मन्द हो और अंतरकी ओर रस जाय कि आत्मा क्या वस्तु है? सुख आत्मामें है, बाहर नहीं है। ऐसे अन्दरसे निर्णय होना चाहिये। सच्चा निर्णय नहीं हो रहा है, इसलिये बाहर भटकता रहता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- स्वयंके प्रयत्नसे लक्ष्य बदलना। दृष्टि और उपयोग दोनों सब बाहर ही जा रहे हैं। उसे बदलाये कि यह ज्ञायक मैं हूँ। यह विकल्प जाननेमें आता है, यह शरीर दिखता है वह बाहरका दिखता है। उसके पीछे जो ज्ञान है ज्ञानलक्षण, वह ज्ञानलक्षण है वही मैं हूँ। उस ओर अपनी दृष्टिको बदल देना। उसके लिये प्रयत्न करे कि यह ज्ञानलक्षण है वह मैं हूँ। वह लक्षण मात्र नहीं, परन्तु वह वस्तु ही मैं हूँ। मैं ज्ञायक हूँ। ऐसे दृष्टि बदलनेका प्रयत्न करे। बारंबार प्रयत्न करे। दृष्टिको वहाँ स्थिर करे और उसकी श्रद्धा करे, उसका ज्ञान करे। यही मैं हूँ, ऐसे बारंबार, बारंबार, बारंबार करे तो ज्ञायक लक्ष्यमें आये। बारंबार करे।

अनादिका अभ्यास है इसलिये बाहरका सब जाननेमें आता है। अंतरमें बारंबार श्रद्धा स्थिर करनेके लिये प्रयत्न करे। बारंबार करे। यह ज्ञान मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। इस ज्ञायकमें ही सब है। बाहरमें नहीं है, ऐसे बारंबार प्रयास करे तो होता है। जोजो विकल्प आये, उसके पीछे जो ज्ञान रहा है, जाननेवाला है, वह जाननेवाला मैं हूँ।

वह सब पर्यायें तो चली जाती हैं, विकल्पकी, विभावकी सब, और जाननेवाला खड़ा रहता है। जो-जो बना वह सब जाननेवालेको ख्याल है कि यह हुआ, यह हुआ। वह जाननेवाला जो है, वह जाननेवाला ही मैं हूँ। उसका अस्तित्व ग्रहण करे, बारंबार करे। बारंबार प्रयत्न करे। जबतक नहीं हो तबतक उसका प्रयास करता रहे, बारंबार करता रहे। नहीं होत तबतक उसके विचार, उसका वांचन आदि सब करे। स्वाध्याय (करे)। आत्मा सम्बन्धित जिसमें स्वयंको रस आये वह करता रहे, बारंबार करता रहे। गुरुने क्या कहा है, शास्त्रमें क्या आता है, वह सब बारंबार करता रहे, दृष्टि बदलनेके लिये।

अन्दरकी रुचि बढानी चाहिये। अंतरकी महिमा आये। कहीं भी स्थिर हो जाना वह योग्य नहीं है, परन्तु सत्य क्या है, यह नक्की करना पड़े। कोई भी साहित्य और कुछ भी पढ़ना (ऐसा नहीं होना चाहिये)। आत्मा सम्बन्धित हो वही भवके अभावका कारण है। दूसरा कुछ भवके अभावका कारण नहीं होता। भवका अभाव करनेके लिये सत्य क्या है, यह नक्की करके उस ओरका प्रयत्न करे तो भवका अभाव होता है।

... दृढता हो गयी, परन्तु उसकी विशेष दृढ़ता, अन्दर गहराईसे विशेष दृढ़ता (करनी)। यह सत्य है, लेकिन वह पदार्थ कौन है? ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञायक कौन है? उसे प्रगट करनेके लिये उसकी श्रद्धा करके बारंबार प्रयत्न करे। सत्य यह है, परन्तु उस प्रकारसे अन्दर स्वयंको पहचान होनी चाहिये। उस प्रकारसे उसकी श्रद्धा, उसकी प्रतीत, उसका ज्ञान, उसकी दृढ़ता होनी चाहिये। अन्दर गहराईसे कैसे प्रगट हो, ऐसे उसकी रुचि लगनी चाहिये। श्रद्धा हो, विकल्पसे श्रद्धा की परन्तु अंतरमें स्वयंको लगना चाहिये कि सत्य यही है। उसकी महिमा लगनी चाहिये। बाहरकी सब महिना छूट जाय। अंतरमें लगना चाहिये। बारंबार श्रद्धाको दृढ़ करे। वस्तु है उसको पहचाननेका प्रयत्न करे, उसे खोजनेका प्रयत्न करे। बारंबार उसे खोजे। यह ज्ञायक है, उस पर दृष्टि, उसका ज्ञान, उसके भेदज्ञानका बारंबार प्रयास करे। मैं तो भिन्न ही हूँ, यह सब भिन्न है। यह विभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भी मैं भिन्न हूँ। ऐसे बारंबार दृढ़ता करता रहे।

मुक्तिका मार्ग, उसे आत्माका-स्वभावका रस लगा तो वह कैसे प्रगट हो और कैसे मेरे हाथमें आये, ऐसे बारंबार प्रयत्न करता रहे। श्रद्धामात्रसे, विकल्पसे जान लिया तो वैसे प्रगट नहीं होता। परन्तु उसका आगे-आगे प्रयास करता रहे, उसे प्रगट करनेके लिये। प्रयोजनभूत बराबर यथार्थ जानकर उसकी श्रद्धा करके, वह कैसे प्रगट हो उसका बारंबार प्रयत्न करे।

मुमुक्षु :- ज्ञान प्रकाश करता है और श्रद्धा है वह शक्तिओंको पचाती है, वहाँ क्या कहना है?

समाधान :- ज्ञान है वह प्रकाश करता है (अर्थात्) सब वस्तुओंका ज्ञान करता है कि वस्तु स्वरूप यह है। और श्रद्धा है वह उसे बराबर नक्की करती है। पाचक अर्थात् उसे पचाती है। जहाँ वस्तु है, वहाँ उसकी दृष्टिको स्थिर करता है, श्रद्धा करता है। एक वस्तु पर स्थिर हो जाती है। और ज्ञान है वह वस्तु स्वरूप है उसे चारों ओरसे जानता है। और दृष्टि एक पर (स्थिर हो जाती है)।

... स्वयं अपनेसे करे तो होता है। वहाँ पढना। यहाँके शास्त्र हो, गुरुदेवके प्रवचन जो समझमें आये वह पढना। पढनके लिये कुछ समय रखना, कुछ पढना। अंतर आत्मामें रुचि रखनी कि यह सब तो बाहरका संसार तो चलता ही रहता है। अन्दर आत्मामें भवका अभाव कैसे हो, करने जैसा तो वह है। इसलिये भवका अभाव कैसे हो, उसका विचार करना, वांचन करना। जो समझमें आये वह पढना। जो सुना हो उसका विचार करना।

आत्मा भिन्न, यह शरीर भिन्न, सब भिन्न है। आत्मा शाश्वत है, यह सब आकुलता होती है वह आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा सिद्ध भगवान जैसा है। उसका भेदज्ञान कैसे हो, आत्मा कैसे पहचानमें आये, उसका बारंबार विचार करते रहना। उसे समझनेके लिये वांचन करना। वहाँ दूसरा तो क्या हो सकता है? अन्दर स्वयं आत्माकी रुचि रखे तो होता है। अन्दरमें स्वयं रखे। वहाँ बाहरके साधन तो कोई है नहीं, देव-गुरु-शास्त्रके कोई साधन नहीं है, मन्दिर नहीं है, देव, गुरु (नहीं है)। शास्त्र समझनेके लिये कोई साधर्मी हो, ऐसा मिलना भी मुश्किल पड़े। अपनेसे जो समझमें आये वह पढना। कोई हो तो भी कितने दूर-दूर रहते हैं।

... सोनगढ़का माहोल तो कुछ अलग ही है, परन्तु यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्रके कुछ प्रसंग मिले, लेकिन वहाँ तो कुछ मिले ऐसा नहीं है। आत्माकी रुचि रखनी, भवका अभाव कैसे हो? मनुष्य जन्म मुश्किलसे मिलता है। यह मनुष्य जन्म ऐसे पैसेके लिये या दूसरेके लिये नहीं है, परन्तु आत्माका स्वरूप कैसे पहचानमें आये? भवका अभाव कैसे हो? उसका विचार करना। अन्दरसे निर्लेप रहना, जितना बन सके उतना वैराग्य रखना और पढना। दूसरा कोई उपाय नहीं है। स्वयंसे जितना हो उतना करना।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५५

मुमुक्षु :- हम अमरिकामें धर्म प्रचार करें तो उसका दूसरा कोई परिणाम आये उसका दोष हमें लगे? हम तो हमारी भावना अच्छी रखकर लोगोंको समझाते हैं कि यह करने जैसा है। अमरिकन लोग कैसे उसका पालन करे, उसके दोषका विचार...

समाधान :- धर्मसे कभी दोष होता है क्या? धर्म तो, स्वयंको जो रुचि हो वह कहे। उसमेंसे विपरीत अर्थ करे तो उससे क्या दोष होता है? उसका दोष वह करता है। दोष हो ऐसा कहाँ आता ही है? दोष क्या करे? धर्मसे कभी दोष होता नहीं। दोष तो वह स्वयं करते हैं। धर्म तो बाहरमें सब सज्जनताकी बात आये और अंतरमें आत्मा कैसे पहचानमें आये, वह होता है। यहाँ तो अहिंसा, सत्य आदि सब होता है। वहाँ तो अहिंसा होती ही नहीं। वह सब तो हिंसामें समझते हैं।

मुमुक्षु :- वहाँ वह लोग भी समझनेके लिये तैयार है। आत्माकी बात सुननी उन लोगोंको अच्छी लगती है।

समाधान :- समझे वह तो ठीक, बाकी स्वयं स्वयंका करना। समझे तो ठीक है। उसका परिणाम-धर्मका दूसरा कुछ नहीं आता, वह तो अपनी ग़लतफ़हमीसे उसका अर्थ करे। यहाँ तो सब सज्जनताके गुण होते हैं। वहाँ वह सब कहाँ होता है? कुछ नहीं है। वह तो अभी सज्जनताकी (बात है), वहाँसे आगे अन्दर आत्माको पहचानना तो अलग रह जाता है। ऐसी सज्जनता भी बहुत बार की, परन्तु अन्दर आत्मा भिन्न है उसे पहचानना बाकी रहता है। अभी तो सज्जनता भी नहीं है, वहाँ आत्मा क्या समझमें आये? अभी तो हिंसामें पड़े हैं, वहाँ आत्मा समझना कितना मुश्किल है। ऐसी पात्रता तो होनी चाहिये न। दया, शांति, समता, क्षमा आदि सब होना चाहिये, बाहरमें तो होना चाहिये न। ऐसा तो उन लोगोंमें होता नहीं और आत्मा समझनको तैयार हुए हैं। ... संसारका स्वरूप तो ऐसे ही चलता रहता है।

मुमुक्षु :- क्रमबद्धपर्यायका तात्पर्य क्या है? और ... क्या लाभ होता है?

समाधान :- क्रमबद्धपर्यायसे लाभ यह होता है कि कर्ताबुद्धि छूटती है। स्वयं कुछ नहीं कर सकता है। सर्व पदार्थ-द्रव्य स्वतंत्र परिणमते हैं। सर्वके द्रव्य-गुण-पर्याय, आत्मा अनादिअनन्त शाश्वत है, उसके गुण अनादिअनन्त, उसकी पर्याय स्वयंके पुरुषार्थसे होती

है। सब क्रमबद्ध (है)। परपदार्थ सब क्रमबद्ध, सर्वकी पर्यायसे सब परिणमते रहते हैं। उसमें क्रमबद्धमें कर्ताबुद्धि छूट जाय कि मैं कुछ कर सकता हूँ और मुझसे सब होता है, ऐसी जो कर्ताबुद्धि है कि मैं सबका कर सकता हूँ, ऐसी कर्ताबुद्धि छूट जाय, वह उसका लाभ है। जैसे बनना होता है वैसे बनता है। स्वयं कुछ नहीं कर सकता।

अंतरमें पुरुषार्थके साथ क्रमबद्धका सम्बन्ध है। बाहरमें अपना पुरुषार्थ काम नहीं आता। बाहरके परपदार्थका परिणमन जैसे होना होता है वैसे ही परिणमन होता है। परन्तु अंतरमें जो विभावसे (भिन्न होकर) स्वभावमें जाना, उसमें स्वयंका पुरुषार्थ काम आता है। परन्तु वह पुरुषार्थ स्वयं अपनी ओर झुके, उसमें भी जैसे बनना होगा वैसे होगा (ऐसा नहीं)। वह पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध रखता है, वह क्रमबद्ध। वह क्रमबद्ध ऐसा है कि स्वयं पुरुषार्थ करके ज्ञायकको पहचाने। ज्ञायकको पहचाने वह स्वयं पुरुषार्थसे पहचानता है।

अनादि कालसे जो बाह्य दृष्टि है, उसमें ज्ञायककी ओर दृष्टि बदलता है, पुरुषार्थसे। पुरुषार्थसे अर्थात् पुरुषार्थ किया कि जैसे बनना था वैसा बना, ऐसे पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। कोई द्रव्यको स्वयं पलट नहीं सकता। उसकी पर्याय पलटनेका स्वभाव है इसलिये पलटती है। पलटनेका स्वभाव नहीं था और स्वयंने पलटायी ऐसा नहीं है। उसकी पर्यायका स्वभाव पलटे, परन्तु पुरुषार्थ उसमें काम करता है। ऐसा पुरुषार्थका और क्रमबद्धका सम्बन्ध है। भगवानने भव देखे इसलिये स्वयं पुरुषार्थ नहीं कर सके ऐसा नहीं है। स्वयं पुरुषार्थ करे, पुरुषार्थ करे उसके ही भगवानने भव नहीं देखे हैं, उसका ही क्रमबद्ध वैसा है। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्ध सम्बन्ध रखता है।

जो पुरुषार्थ होता है, स्वयं अपनी ओर झुकता है, भेदज्ञान करता है, उसमें नियत, स्वभाव, काल और अपना पुरुषार्थ, सब कारण एकट्ठे होते हैं। उसमें पुरुषार्थ भी साथमें होता है। कोई ऐसा कहे कि पुरुषार्थ किये बिना होता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्ध सम्बन्ध रखता है। जिसके दिलमें ऐसा हो कि मैं पुरुषार्थ करके (प्राप्त करुं)। स्वयं जिज्ञासा करे, भावना करके मैं अपनी ओर जाऊँ। ऐसी भावना करे उसका ही क्रमबद्ध स्वयंकी ओर होता है। उसके ही भवका अभाव होता है।

वह माने कि जैसे होना होगा वैसा होगा, अपने कुछ भी करें। ऐसा नहीं होता। जिसकी कर्ताबुद्धि छूटी, उसका अर्थ कि वह स्वयं ज्ञायक हो जाना चाहिये। तो उसका फल है। स्वयं उदासीन ज्ञाता हो जाय, बादमें जैसे होना होगा वैसे होगा। ज्ञायक परिणति होनी चाहिये। मैं तो ज्ञायक हूँ, किसीके भी साथ एकत्वबुद्धिसे जुड़ जाऊँ ऐसा मेरा स्वभाव ही नहीं है। मैं तो ज्ञायक हूँ, यह क्रमबद्धका फल है। ज्ञायक हो जाना, वह उसका फल है। उदासीन ज्ञायक।

जो विभावकी परिणति होती है, वह पुरुषार्थकी मन्दतासे होती है, परन्तु विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ। ज्ञायक हो जाऊँ, यह क्रमबद्धका फल है। पहले आंशिकरूपसे ज्ञायक हो, बादमें लीनता बढते-बढते पूर्ण ज्ञायक हो, वह उसका-क्रमबद्धका फल है।

भगवानने जिसके भव नहीं देखे हैं, पुरुषार्थपूर्वक जो स्वयंकी ओर आता है, उसके भव नहीं देखे हैं। आगे बढनेवालेके हृदयमें ऐसा होता है कि मैं पुरुषार्थ करके आगे बढूँ। ज्ञायक हो जाऊँ। क्रमबद्धका यह फल है कि मैं ज्ञायक हो जाऊँ। कर्ताबुद्धि छूटकर ज्ञायक हो जाय, यह उसका फल है। जिसकी ज्ञायककी ओर परिणति जाय, उसका क्रमबद्ध ज्ञायककी ओरका होता है। उसे ही स्वानुभूतिकी दशा होती है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! वर्तमानमें ज्ञायककी ओरका भाव करे फिर भी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता है, उसका क्या कारण है?

समाधान :- भाव करनेसे सम्यग्दर्शन नहीं होता, भावना करे वह एक अलग बात है और ज्ञायककी परिणति प्रगट करनी चाहिये तो सम्यग्दर्शन होता है। ज्ञायककी परिणति मात्र भावना करनेसे नहीं होती। भावना करे उस अनुसार अपनी परिणति होनी चाहिये। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसे शब्दसे बोले, विकल्प करे, भावना करे, भावना करे वह ठीक है, परन्तु ज्ञायकरूप ज्ञायककी परिणति हो तो सम्यग्दर्शन होता है।

ज्ञायकरूप ज्ञायककी परिणति होकर उसमें लीन हो जाय तो विकल्प टूट जाय, निर्विकल्प दशा हो तो होता है। ज्ञायक, मात्र भावनासे नहीं होता। भावना कररके पुरुषार्थ करना चाहिये। ज्ञायकरूप परिणति प्रगट करनी चाहिये। विभावकी परिणति आये एकत्व हो जाता हो, एकत्व हो जाय और मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा करे, भले वह भावना करे, भावना करे उसकी कोई दिक्कत नहीं है, परन्तु ज्ञायककी परिणति यथार्थ होनी चाहिये, तो यहाँ सम्यग्दर्शन होता है। परिणति हुए बना सम्यग्दर्शन होता नहीं। भेदज्ञानकी धारा अंतरमेंसे प्रगट होनी चाहिये। क्षण-क्षणमें जितनी विकल्पकी पर्याय आये उससे भिन्न रहकर, मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी अपनी परिणति प्रगट होनी चाहिये।

क्रमबद्धका फल वह है कि ज्ञायक हो जाना। ज्ञायक हो जाउँ, उसमें पुरुषार्थ साथमें आ जाता है। ज्ञायक हो जाउँ, वह पुरुषार्थ साथमें आ गया। वह क्रमबद्धका (फल है)। मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे बोलनेमात्र नहीं, अंतरमें ज्ञायक हो जाय। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हो। द्रव्य पर दृष्टि हो, उस प्रकारका ज्ञान हो, ज्ञायककी परिणति हो, आंशिक लीनता हो। सम्यग्दर्शनमें स्वरूपाचरण चारित्र आंशिक होता है। ज्ञायककी परिणति प्रगट हो। चाहे जो भी कार्यमें, किसी भी परिणाममें उसे ज्ञायककी परिणति मौजूद होती है। भेदज्ञानकी धारा जागते-सोते, स्वप्नमें, खाते-पीते, हर वक्त

उसे ज्ञायककी परिणति चालू रहती है। ऐसी परिणति हो, उसके बाद उसकी लीनता आंशिकरूपसे बढती जाय, उसकी उग्रता होती जाय, लीनता होती जाय तब मुनिदशा आती है। उसमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूतिमें-स्वयमें लीन हो जाय और अंतर्मुहूर्त बाहर आया कि तुरन्त अंतरमें जाते हैं। ऐसी दशा है। उसका फल है कि ज्ञायककी परिणति प्रगट हो।

मुमुक्षु :- ज्ञायकका रस कैसे प्रगट हो?

समाधान :- रस (तो) स्वयं पुरुषार्थ करे कि ज्ञायकमें ही सर्वस्व है, अन्य कहीं नहीं है। ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये। ज्ञायकमें ही सर्वस्व है। ज्ञायक पूरा चैतन्य पदार्थ कोई अद्भुत है। बाहरमें कहीं भी रस लगे नहीं, ज्ञायकका रस लगे। ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- कार्य तो सब पर्यायमें होता है और ज्ञायकका लक्ष्य हो, यह दोनों एक समयमें होता है?

समाधान :- कार्य भले पर्यायमें हो, द्रव्य अनादिअनन्त (रहता है)। दृष्टिका विषय द्रव्य पर है और दृष्टि स्वयं पर्याय है। द्रव्य और पर्याय, दोनों वस्तुका ही स्वरूप है। द्रव्य अकेला पर्याय बिनाका नहीं है। द्रव्य, गुण और पर्याय वस्तुका ही स्वरूप है। भले पर्यायमें कार्य हो, परन्तु उसका विषय द्रव्य है। परन्तु पर्यायने पूरे आत्माको ग्रहण किया है, द्रव्यको ग्रहण किया है। दृष्टिका जोर, श्रद्धाका बल-प्रतीतका बल, उसका विषय द्रव्य है। उसके लक्ष्यमें पूरा द्रव्य है। स्वयं पर्याय है, उसका लक्ष्य द्रव्य पर है।

मुमुक्षु :- ऐसा कैसा अहंम् आता होगा कि द्रव्य सर्वस्व भासित होता है?

समाधान :- अंतरमें सर्वस्व द्रव्य ही है। जीवमें एक श्रद्धा नामका गुण है। वह श्रद्धा करे तब एक वस्तु पर ऐसे जोरसे श्रद्धा कर सकता है। एकको ग्रहण करे। अनन्त शक्तिओँसे भरपूर ऐसे द्रव्यको एकको, अनन्त शक्तिसे भरपूर द्रव्य अभेद है। उसे लक्ष्यमें लेकर, बिना विकल्प, जिसमें कोई विचारोंका भेद नहीं है, ऐसे द्रव्यको लक्ष्यमें, प्रतीतमें, लक्ष्यमें लेती है श्रद्धा। वह श्रद्धाका बल है। चैतन्यमें ऐसा एक श्रद्धागुण है। उसके कारण पूरा द्रव्य लक्ष्यमें रहता है, वह श्रद्धाका बल है।

उसके साथ ज्ञान भी ऐसा काम करता है। ज्ञानमें भी उतना बल आता है। ज्ञान सब जानता है। द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप (ज्ञान जानता है) और श्रद्धा एक वस्तुको (ग्रहती है)। श्रद्धाका बल-जोर तो एक पर ही है। ऐसा चैतन्यमें गुण है। उसकी श्रद्धा करे तो उसमें अनन्त बल आता है। वह श्रद्धाका बल (है)। अनेक फेरफार हो तो भी श्रद्धाका बल टूटता नहीं, ऐसा अनन्त बल श्रद्धामें होता है। ऐसा उसने आश्रय किया है। अनन्त शक्तिसे भरपूर ऐसे द्रव्यका आश्रय किया, उस आश्रयमें उसे अनन्त

बल है। उस बलको कोई तोड़ नहीं सकता। पूरा लोकमें फेरफार हो जाय, शास्त्रमें आता है, खलबली मच जाय तो भी उसका सम्यग्दर्शन टूटता नहीं। ऐसा श्रद्धाका बल होता है। ऐसे द्रव्यको उसने ग्रहण किया है। ज्ञानमें उतना बल है।

ज्ञानने जिस यथार्थ वस्तुको ग्रहण किया, वह बराबर ग्रहण की है। श्रद्धामें उतना बल है कि एकको ग्रहण किया है। ज्ञान सबका ज्ञान करता है। श्रद्धाके बलके कारण, श्रद्धा-ज्ञानके कारण लीनता भी उस ओर (होती है)। बाहर जा रहा उपयोग, बाहर जा रही अस्थिरताकी परिणति स्वरूपकी ओर जाती है। उसमें ही उसे स्वानुभूतिकी दशा प्रगट होती है। श्रद्धाका बल कोई अलग ही होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! बाहरकी वस्तुओंमें तो विचार भी नहीं करना पड़ता और महिमा आ जाती है।

समाधान :- सहज ही आ जाती है।

मुमुक्षु :- और अन्दरमें ज्ञायकका इतना विचार करता है, फिर भी जैसा आप कहते हो वैसी, जिस प्रकार सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति होनी चाहिये, वैसी महिमा आती ही नहीं, तो उसके लिये क्या करना?

समाधान :- बाहरका अनादिका अभ्यास है। बाहरकी वस्तु दिखे उसमें स्वयंका राग जुड़ा है। इसलिये उसे सहज ही उसकी महिमा आती है। बाहरमें राग जुड़ा है। और ज्ञायक उसे दिखाई नहीं देता। उसे ज्ञानमें दिखाई नहीं देता, उसकी अनुभूति नहीं है। इसलिये उसे विचार करके ग्रहण करना पड़ता है। परन्तु ज्ञान ऐसा यथार्थ है कि जो ज्ञानमें ग्रहण करे, ऐसे अटूट न्यायोंसे, ऐसे न्यायोंसे उसका स्वभाव ग्रहण कर सके, ऐसी ज्ञानमें शक्ति है। भले दिखाई नहीं देता, परन्तु वस्तु स्वयं ही है, कोई अन्य नहीं है कि स्वयंको मालूम न पड़े। स्वयं ही वस्तु है। उस वस्तुको ग्रहण करनेवाला गुण भी अपना ही है। ज्ञानगुण भी अपना और वस्तु भी स्वयं ही है। इसलिये ज्ञानगुण स्वयंको ग्रहण कर सकता है। बाहरसे ग्रहण कर सकता है, वैसे अंतरमेंसे भी ग्रहण कर सकता है।

बाहर रूपी पदार्थ है, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शावाले, इसलिये दिखते हैं। यह उसे दिखाई नहीं देता, अरूपी है। अरूपी है, परन्तु स्वयं है। और स्वयं अनुमानसे वह लक्षणसे पहचान सकता है कि यह ज्ञानलक्षण मैं हूँ। अनुमानसे, उसकी विकल्पकी जालके साथ जो ज्ञान जुड़ा हुआ है, विकल्प तो चले जाते हैं, परन्तु ज्ञान अन्दर खड़ा रहता है, वह ज्ञान अन्दर खड़ा रहता है, वह ज्ञान किसके आश्रयसे रहा है? वह कोई शाश्वत वस्तुके आश्रयसे यह ज्ञान जुड़ा है। विकल्प तो सब चले जाते हैं, बचपनसे जो कुछ बना, वह विकल्प चले जाते हैं, परन्तु उसे याद करनेवाला खड़ा

रहता है। अर्थात् कोई शाश्वत वस्तु है। वह ज्ञान क्षणिकमात्र नहीं है, परन्तु ज्ञानगुणवाला एक पदार्थ है।

उस पदार्थको पहचाननेके लिये, ज्ञान बराबर उसे पहचान सकता है। परन्तु पहले तो विचार करके प्रथम भूमिकामें ज्ञानको विचारसे, अनुमानसे, प्रमाणसे, युक्ति, न्यायसे भी उसे पहचान सकता है। परन्तु युक्ति, न्याय ऐसे होते हैं कि स्वभावके साथ मिलान करके (नक्की करता है)। युक्ति, न्याय ऐसे होते हैं कि टूटे नहीं। अटूट होते हैं। कल्पना जैसा अनुमान प्रमाण नहीं, परन्तु उसके स्वभावके साथ मिलान करके, ज्ञानलक्षणके साथ मिलान करके, प्रमाणसे, अनुमानसे बराबर नक्की कर सकता है। यथार्थ अनुमान। वह अनुमान झूठे नहीं पड़ते।

शास्त्रमें आता है न? जहाँ धुँआ होता है, वहाँ अग्नि होती है। ऐसे उसके कुछ अनुमान एकदम यथार्थ होते हैं। वैसे ज्ञानलक्षण जो जाननेवाला है वह मैं हूँ, वह जाननेवाला कौन है? उस स्वयंको अन्दर स्वानुभूतिकी बात अलग है, आत्माकी अनुभूति, परन्तु अमुक लक्षण उसे स्वयंके वेदनमें है कि यह ज्ञानलक्षण जाननेवाला मैं हूँ, यह विकल्प सब चले जाते हैं, फेरफार होते हैं। परन्तु जाननेवाला खड़ा है। वह स्वयं ऐसा विचार करे तो स्वयंको जान सके ऐसा है। स्वानुभूतिकी बात अलग है।

ज्ञानलक्षणवाला आत्मा कोई अलग है और वह स्वयं अमुक स्वभावसे विचार करे, अमुक शास्त्रमें, अमुक गुरुदेवकी वाणीके साथ मिलान करे, स्वयंको अनुभूति नहीं है तो महापुरुषकी श्रद्धा रखकर वे क्या कहते हैं? उसके साथ स्वयंके विचारोंका मिलान करके नक्की कर सकता है कि यह कोई महिमावंत पदार्थ है। युक्ति, न्याय ऐसे होते हैं कि टूटे नहीं। अपने स्वभावके लक्षणके साथ मिलान करके (नक्की करे)। ज्ञानलक्षण है। उसमें आत्माका शांति, आनन्द स्वभाव है। शांति, आनन्दको इच्छता है, बाहरसे कहींसे मिलता नहीं। तो वह किस पदार्थमें रहे हैं शांति और आनन्द? शान्ति, आनन्द कोई पदार्थके गुण हैं कि जो बाहरसे नहीं मिलते, तो भी वह बाहरसे ढूँढना चाहता है। वह अंतरमें ही रहे हैं। इस प्रकार स्वयं अंतरसे विचार करे तो वह यथार्थ प्रकारसे नक्की कर सके। और वह नक्की ऐसा होता है कि उसमें भूल नहीं होती, उसे कोई तोड़ नहीं सकता। ऐसे अटूट न्याय, युक्तसे ग्रहण कर सके।

पहले तो उसे युक्त, प्रमाणसे नक्की करे। उसकी महिमा, स्वानुभूतिकी दशा तो प्रगट नहीं है, परन्तु युक्ति, न्यायसे भी महिमा ला सकता है। जो इतना जाननेवाला है, जिसका स्वभाव ज्ञान है, उस ज्ञानमें नहीं जानना ऐसा कुछ आता ही नहीं, जो ज्ञान हो उसमें ज्ञान ही होता है। फिर इतना जानना, उतना जानना ऐसा नहीं होता। ज्ञानस्वभाव है वह अनन्त-अनन्त ज्ञानसे भरा है। उसमें पूरे लोकालोकके द्रव्य-गुण-

पर्याय, भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकालका कुछ नहीं जानना ऐसा नहीं है। स्वयंका भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यकाल, स्व-परके द्रव्य-गुण-पर्याय, उसमें नहीं जानना ऐसा कुछ आता ही नहीं। इसलिये ज्ञानस्वभाव ... भी जान सकता है। ऐसा ही कोई वस्तुका अचिंत्य स्वभाव है। ऐसा विचार करके... परन्तु अन्दर महिमा आये वह तो स्वयंको करना है न। अंतर परिणतिमें कैसे लाना वह स्वयं कर सकता है। परिणतिमें महिमा कैसे आये वह (स्वयं कर सकता है)। ज्ञानस्वभाव कोई अचिंत्य है।

पानीका स्वभाव ठण्डा है। ठण्डा है तो कितना ठण्डा है? उसका कोई नाप नहीं कह सकते। वह तो एक दृष्टांत है।

वैसे ज्ञानस्वभाव। ज्ञानमें नहीं जानना ऐसा कुछ नहीं आता। (यदि नहीं जानना आये) तो वह स्वभाव कैसा? जिस स्वभावमें मर्यादा आ जाय, वह वस्तुका शाश्वत स्वभाव नहीं कहा जाता। जिसमें मर्यादा बाँध ले कि ज्ञान इतना ही जाने। तो वह अनादिअनन्त शाश्वत गुण ही नहीं कहलाये। जिसकी मर्यादा हो, वह स्वतः स्वभाव नहीं कहलाता। जो अनादिअनन्त स्वभाव हो उसमें मर्यादा ही नहीं होती। जो ज्ञान काम करे वह पूरा ही करे। उसमें अधुरापन नहीं होता।

आकाशका अवकाश देनेका स्वभाव है तो पूरा अवकाश देता है। चाहे जितने द्रव्य आ जाय, तो भी वह अवकाश देता है। उसमें मर्यादा नहीं होती। पदार्थ ऐसी अनन्तासे भरा है। ऐसी अनन्ततासे भरा ज्ञानगुण, ऐसा आनन्दगुण, ऐसे अनन्त गुण हैं। अनन्त स्वभावमेंसे कितने तो वाणीमें नहीं आते। वह तो स्वयं नक्की करे तो होता है। बाकी अंतर परिणतिमेंसे महिमा लानी वह स्वयंको बाकी रहता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५६

मुमुक्षु :- .. एक मात्र उपाय आप परमात्म पुरुषोंका आश्रय ही फरमाते हो। यह सिद्धान्त हमें हृदयगत नहीं हो रहा है अथवा उसका भावभासन नहीं हो रहा है।

समाधान :- गुरुदेवने एक ही कहा है कि परमात्माका आश्रय करो-आत्माका आश्रय करो, वही एक औषधि है। गुरुदेवने उपदेशमें बारंबार एक ही बात कहते थे कि यही एक परमात्माका आश्रय करो। वह परमात्मा कैसा है? उसका स्वयं विचार करे। बारंबार उसका ज्ञानलक्षण है उसे पहचानकर विचार करे तो पहचानमें आये ऐसा है। बाहरमें ही बाहरमें (रहे), सच्चा विचार अंतरसे न करे, उसकी जिज्ञासा करे, उसकी लगनी न लगाये तो वह समझमें नहीं आता। बाकी तो समझमें आये ऐसा है। स्वयं ही है, अन्य कोई नहीं है कि किसीको पूछना पड़े।

गुरुदेवने बहुत बताया है। वह स्वयं ही है। विचार करे तो ज्ञानलक्षणसे स्वयं पहचानमें आ सके ऐसा है। स्वयं स्वयंको न पहचाने वह अपनी भूलके कारण। स्वयंको बाहरमें एकत्वबुद्धि हो रही है इसलिये नहीं पहचान सकता। पहचाननेका निश्चय करे तो पहचान सके ऐसा है। उसका मार्ग तो गुरुदेवने इतना स्पष्ट करके बताया है कि कहीं भूल न रहे, ऐसा बताया है।

परमात्माका ज्ञानलक्षण (है)। उसमें अनन्त गुण भरे हैं, अनन्त आनन्द भरा है अनन्त ज्ञान भरा है, अनन्त ज्ञान भरा है। आत्मा गुप्त रहे ऐसा नहीं है। परन्तु अनादि कालसे स्वयं बाहर भटकता है, इसलिये पहचान नहीं सकता। उसकी जिज्ञासा करे, उसकी लगनी लगाये, बारंबार गुरुदेवने क्या कहा है, उसका विचार करे, उसका भेदज्ञान करे तो पहचान सके ऐसा है। यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, यह विभाव होता है वह भी अपना स्वभाव नहीं है, आकुलतारूप है। इस प्रकार स्वयं पहचाननेका निश्चय करे तो पहचान सके ऐसा है। वह स्वयं करता ही नहीं, कहाँसे पहचाने? पुरुषार्थ ही नहीं करता है।

औषध एक ही है। यह रोग, अनादिका विभावका रोग है। उसकी औषधि एक परमात्माका आश्रय करना-आत्माका आश्रय करना। परमात्मा अर्थात् (आत्मा)। बाह्य परमात्माको पहचाने तो स्वयंको पहचाने, स्वयंको पहचाने तो परमात्माको पहचाने। परन्तु बाहर जहाँ उपयोग जाय, वहाँ शुभभाव और अशुभभाव, दोनों भाव बाह्य उपयोगसे

होते हैं। अंतर दृष्टि करे, शुद्धात्माको पहचाने तो शुभाशुभभावसे भिन्न आत्मा है। दोनों भाव उसमें नहीं है, आकुलतास्वरूप है।

पहचाननेका निश्चय करे तो पहचान सके ऐसा है। लेकिन पहचानता ही नहीं। स्वयंकी भूल है। 'निज नयननी आळसे, निरख्या नहीं हरिने जरी।' स्वयं ही हरिको पहचानता नहीं। अपनी आलसके कारण अनन्त काल व्यतीत किया। यह मनुष्य भव मिला, उसमें ऐसे गुरुदेव मिले, तो स्वयं पुरुषार्थ करके पहचाने तो पहचान सके ऐसा है। अपने पुरुषार्थकी कमी है।

मुमुक्षु :- शुभाशुभ भाव जल्दी हृदयगत हो जाते हैं, भावभासनसे समझमें आते हैं। वैसे इसका भावभासन कैसे हो कि यही परमात्मा है?

समाधान :- शुभाशुभ भावोंमें अनादिसे एकत्वबुद्धि कर रहा है और अपने वेदनमें आ रहे हैं, इसलिये उसे ख्यालमें आता है। परन्तु यह तो स्वयं विचार करे तो पहचान सके ऐसा है। जो शुभाशुभ भाव होते हैं, वह सब तो चले जाते हैं, उसके पीछे जो जाननेवाला है, वह जाननेवाला तो वैसे ही खड़ा रहता है। जाननेवाला है वही मैं हूँ। जाननेवाले पर दृष्टि करे, उसमें सूक्ष्म उपयोग करके देखे तो जाननेवाला जाननेमें आये ऐसा है।

जाननेवाला स्वयंको क्यों नहीं ज्ञात हो? जाननेवाला स्वयंको जान सके ऐसा है। परन्तु पहचानता नहीं। अपनी भूलके कारण लगनी लगाता नहीं, जिज्ञासा करता नहीं, इसलिये उसका भावभासन नहीं हो रहा है। उसके भाव अन्दर हृदयगत हो सके ऐसा है, परन्तु पहचानता नहीं है।

अनेक जीव भेदज्ञान करके मोक्षमें गये हैं। अनन्त जीव उसी मार्गसे जाते हैं। परन्तु स्वयं ही भेदज्ञान करता नहीं। भेदविज्ञानके अभावसे मोक्षमें जाते नहीं। जो जाते हैं वे भेदविज्ञानसे ही जाते हैं। अनन्त गये हैं। अनन्त जीवका सबका स्वभाव एक ही जातिका है। सिद्ध भगवान जैसा सबका स्वभाव है। वह नहीं हो सके ऐसा नहीं है। अनन्त जीवोंने अपना स्वरूप पहचानकर, स्वानुभूति करके, चारित्र एवं केवलज्ञान प्रगट कर मोक्षकी साधन की। अनन्त जीवोंने। प्रत्येकका स्वभाव एक ही जातिका है। सब कर सकते हैं, न कर सके ऐसा नहीं है।

.. आत्मा सारभूत है, बाकी सब निःसार है। बड़े राजा और चक्रवर्तीओंको भी संसारका स्वरूप ऐसा लगा कि संसार छोड़कर चले जाते थे। अंतरमें आत्माका कल्याण करते थे। क्योंकि इस संसारका स्वरूप तो ऐसा ही है। चक्रवर्तीओंको कोई नहीं बचा सकता और देवलोकके देवोंको भी कोई नहीं बचा सकता। जल्द या देरसे, सबका आयुष्य तो पूरा ही होनेवाला है। इसलिये इस मनुष्य जीवनमें आत्माका कल्याण करना,

वही श्रेयभूत है।

किसीको किसीके साथ सम्बन्ध नहीं है। मात्र पूर्वके कोई सम्बन्धके कारण जीव किसीके घर जन्म लेता है। उसका आयुष्य परा हो तो उसकी मृत्यु होती है। किसीका किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा स्वयं अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, उसके साथ कोई आता नहीं। जीव जन्म-मरण करनेवाला, अपने पुण्य-पापके कारण जन्म-मरण करनेवाला अकेला है और मोक्ष जानेवाला भी अकेला ही है। इसलिये पुरुषार्थ करके जीवको पलटकर, परिणाम पलटकर आत्माका कल्याण कैसे हो? उसका विचार, वांचन आदिमें चित्त लगाना।

मैं तो एक ज्ञायक शाश्वत आत्मा, सिद्ध भगवान जैसा आत्मा हूँ। मुझे किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आयुष्य पूरा होता है, सबका आयुष्य पूरा होता है। अतः शांति और समाधान रखना वही श्रेयरूप है। बाहरमें जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्रमें चित्त लगाना। अन्दरमें आत्मा कैसे प्राप्त हो? आत्मा जाननेवाला, उसका भेदज्ञान कैसे हो? यह शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है। दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। आत्मा शाश्वत है। शरीरके फेरफार होते हैं। एक भव छोड़कर, दूसरा भव शुरु हो जाता है। दूसरा भव धारण करता है।

आत्मा वही शाश्वत रहता है। इसलिये शुभभाव-अच्छे भाव करके आत्माका कल्याण कैसे हो, वही करने जैसा है। वही सारभूत है, बाकी सब जगतमें तुच्छ है। कोई सारभूत वस्तु ही नहीं है। जीव यह माने कि यह सब अच्छा-अच्छा है। वह सब बाह्य पुण्य-पापके प्रकार है। पुण्यका फेरफार कब हो, वह किसीके हाथकी बात नहीं है। इसलिये आत्माका कल्याण कर लेना वही सारभूत है।

मुमुक्षु :- ... संसारकी प्रवृत्ति हो, उसके साथ आत्मकल्याणका सीधा रास्ता कौनसा है? आत्माका कल्याण करना वह तो बराबर है। परन्तु बाह्य प्रवृत्ति तो होती है, उसमें किस प्रकार समय..

समाधान :- अन्दर आत्माकी रुचि अंतरमें रखनी। संसारमें एकत्वबुद्धि कम करके मुझे आत्माका करना है, ऐसी रुचि अन्दर रखनी। और बाहरसे समय मिले तब शास्त्रवांचन करना, गुरुदेवने जो समझाया है, गुरुदेवके शास्त्र, गुरुदेवके प्रवचन जिसमें समझमें आये वह वांचन करना। समय मिले तो सत्संग करना। कोई वांचन करता हो ऐसे मन्दिरमें जाना। भगवानके दर्शन आदिमें ही समय व्यतीत करना। सांसारिक प्रवृत्ति चलती हो तो भी उसमेंसे समय मिले तो शास्त्र स्वाध्याय करे। मन्दिर जानेका समय नहीं हो तो घरमें बैठकर शास्त्र पढ़ना। उसमें समझमें नहीं आये तो शास्त्र वांचन आपके यहाँ मन्दिरमें भी चलता होगा, वहाँ जाना। अथवा जहाँ कोई शास्त्र समझाता हो, वहाँ

जाना, मन्दिर जाना। उसमें समय (व्यतीत करना)। देवदर्शन, पूजा, भक्ति, शास्त्र स्वाध्याय आदिमें समय (व्यतीत करना)। जो समय बचे उसमेंसे उसमें समय व्यतीत करना। और आत्माका कल्याण कैसे हो? सत्य मार्ग क्या है? इन सबका विचार करना।

यह सब शुभभाव है, परन्तु उसमें आत्माका कल्याण कैसे हो, उसका विचार करना उसमेंसे। सांसारिक प्रवृत्ति चलती हो उसमेंसे समय निकालकर भी अमुक समय शास्त्र स्वाध्याय करना है। समय निकालना। उसके विचार (करना)। अन्दर खटक रखनी कि यह सब तो संसार है। मनुष्य जीवन ऐसी ही सब प्रवृत्तिमें चला जाता है। आत्माका कुछ करें, ऐसी अन्दर खटक, रुचि रखनी और शास्त्र स्वाध्याय (करना)। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, पूजा, भक्ति, शास्त्र स्वाध्यायका समय उसमेंसे निकाल लेना।

मुमुक्षु :- जो सांसारिक ग्रुप हो उसके साथ मनका समाधान कर लेती हूँ।

समाधान :- मनका समाधान कर लेना? मनको बदल देना कि संसारका स्वरूप तो ऐसा ही है। वह तो अपने पूर्वमें बाँधे हुए पुण्य-पापके उदय है, वह आते ही रहते हैं। संसारका स्वरूप ही ऐसा है। मनको बदल देना। किसीका कोई कुछ नहीं कर सकता। वह तो पुण्य-पापके उदय है, आते ही रहते हैं। इसलिये मनको बदलकर आत्माका स्वरूप क्या है? आत्मा कैसा है? आत्मा कोई अपूर्व चीज है, अनुपम है, वह मुझे कैसे प्राप्त हो? यह सब फेरफार (होते हैं)। शाश्वत कुछ दिखता नहीं। अन्दर शाश्वत आत्मा है, वह मुझे कैसे प्रगट हो? उसकी रुचि करनी।

संसारिक सुख-दुःख तो पूर्वके पुण्य-पापके उदय हैं। पूर्वमें जो स्वयंने पापके परिणाम किये हों, उसका उदय है। पुण्य परिणाम किये हों तो उसके उदय आते हैं। भवका अभाव कैसे हो? उसके विचार करना। आत्मा कौन है? आत्माका स्वरूप क्या है? पुण्य-पापके उदय सर्वको आते हैं। पुण्य-पापके उदय तो संसारमें पड़े ही हैं। चाहे जितने पुण्यशाली हों तो उसे भी पापके उदय तो इस मनुष्य जीवनमें पड़े ही हैं। पुण्य और पाप दोनों साथ जुड़े हैं।

... उसे किसी भी प्रकारकी कमी नहीं थी। अकेले पुण्यका ढेर था। जो इच्छा हो उसके अनुसार सब हाजिर हो। ऐसे चक्रवर्ती हो तो भी उसे रोग हुआ था। इसलिये पुण्य और पाप दोनों संसारमें होते ही हैं। उसका रूप देखनेको ऊपरसे देव आते हैं। मैं श्रृंगार सजकर आऊँ तब देखना। देव कहते हैं कि अभी आपका रूप बदल गया है। आपके शरीरमें रोगका प्रवेश हो गया है। चक्रवर्तीको ऐसा वैराग्य आता है कि वह सब छोड़कर मुनि बनकर चल देते हैं। संसारमें यह सब पड़ा ही है।

पहले एकदम पुरुषार्थ उठता था इसलिये सब मुनि बन जाते थे। अभी वह छोड़नेसे धर्म हो जाय (ऐसा नहीं है)। अंतरमेंसे स्वयं निर्लेप रहकर स्वरूपको पहचानकर अंतरमें

हो सकता है। गृहस्थाश्रममें रहकर भी हो सकता है। स्वयं अंतरकी रुचि प्रगट करे। अन्दर संसारका रस कम कर दे। अन्दरसे एकत्वबुद्धि तोड़ दे। विचार, वांचनमें चित्त जोड़ दे। तो हो सकताहै।

मुमुक्षु :- व्यवहारिक तौरसे जो संसारमें करना है, उसे अधिक महत्ता देनी या स्वयंके आत्माकी महत्ता अधिक देनी?

समाधान :- आत्माको ज्यादा महत्त्व देना। वह तो उसमें बैठा है इसलिये करना पड़ता है। बाकी महत्त्व आत्माको देना। वह महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं है-सांसारिक कार्य महत्त्वके नहीं है। वह तो स्वयंका राग है इसलिये उसमें जुड़ता है।

मुमुक्षु :- .. उसके पीछे ज्यादा समय देकर.. या अपने आत्माके कल्याणके लिये...

समाधान :- भला होता हो उसमें स्वयंको राग होता है। परन्तु स्वयं दूसरेका कुछ कर नहीं सकता। दूसरेका भला स्वयं नहीं कर सकता। उसका पुण्य-पापका उदय होता है उस अनुसार बनता है। सामनेवालेका भला हो, वह स्वयं नहीं कर सकता है। स्वयंको राग आता है। जैसा स्वयंको राग आता हो, उस राग अनुसार वहाँसे छूट जाय। उसे जो भाव आते हो, नहीं रह सकता हो, गृहस्थाश्रममें है इसलिये। बाकी स्वयंको जो करना है, उसे गौण नहीं किया जा सकता। कभी-कभार समय नहीं मिले तो स्वयं अन्दर रुचि रखे। समय निकालनेका प्रयत्न करे, अन्दर रुचि रखे। बाकी महत्त्व तो आत्माका ही है, बाह्य कार्योंका नहीं है।

मुमुक्षु :- पुण्य उपार्जन कैसे...

समाधान :- आत्माकी ओर रुचि रखे तो पुण्य भी उसमें होता है, सबकुछ उसमें ही होता है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और आत्माकी ओरकी रुचि, पुण्यमें भी उसमें होता है। सबकुछ उसमें ही होता है। जो जीव पुण्यको इच्छता है, तो भी वह देव-गुरु-शास्त्रकी महिमामें होता है। बाहरके कार्योंसे, आत्मा मिले ऐसे पुण्य बाह्य कार्योंसे नहीं होता। वह सब सामान्य पुण्य होता है।

जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र सर्वोत्कृष्ट है। मोक्ष भी भगवानने बताया। भगवानने, गुरुने मोक्ष बताया। मोक्ष भी उनकी शरणमें होता है। पुण्य भी उनकी शरणमें होता है और मोक्ष भी उनकी शरणमें ही होता है, कहीं और नहीं है। किसीको पूछना ही नहीं पड़े। आत्माकी कोई अलग प्रकारकी ही अनुभूति होती है, वह किसीसे पूछना नहीं पड़े। अपना आत्मा ही उसे जवाब देता है। किसीको पूछना नहीं पड़े। अभी तो उसके लिये कितनी तैयारी हो, तब होता है।

अभी तो आत्मा कोई अपूर्व वस्तु है, उसे पहचाननेके लिये कितना प्रयत्न होता है तब होता है। अंतरमेंसे कितना निराला हो, अंतरमेंसे कितनी उसे लगनी लगी हो,

आत्मा-आत्माके सिवा कहीं चैन नहीं पड़ती हो। मुझे आत्मा ही चाहिये। संसारकी ओरकी रुचि उठ जाय। बाहरसे भले ही संसारमें बैठा हो, परन्तु संसारकी रुचि उठ जाय। आत्मा.. आत्माकी पुकार उसे होती है, तब जाकर आत्माकी अनुभूति होती है। वैसे अनुभूति नहीं हो सकती।

अंतर लगनी लगे, उसे आत्माके बिना चैन नहीं पड़े। उसे आत्मा भूलाया नहीं जाता। मुझे मेरा आत्मा चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। उतनी लगनी लगे, तब उसे आत्मा प्राप्त होता है। संसारमें कुछ प्रतिकूलता आयी हो, ऐसी सब, तो वह कैसे भूलायी नहीं जाती? वैसे उसे आत्मा भूलाया नहीं जाता। मुझे मेरे आत्माके सिवा कहीं चैन नहीं पड़ती। हर जगहसे उसकी रुचि उठ जाय। कहीं भी रस नहीं आये। तब उसे आत्मा प्राप्त होता है।

संसारके बाह्य कार्योंमें जुड़ता हो, तो उसे संसार-लौकिक व्यवहार परसे रुचि उठ जाती है और रुचि आत्माकी ओर जाती है। उसका पूरा परिणमन पलट जाता है। उसकी पूरी दिशा पलट जाती है।

मुमुक्षु :- संसारमें रहें, परन्तु उसमें कोई भी व्यक्ति स्वयं आत्माको पहिचानकर मोक्ष भी प्राप्त कर सके?

समाधान :- संसारमें रहकर आत्माकी स्वानुभूति-आंशिक मुक्ति हो सकती है। संसारमें रहकर। फिर संपूर्णता प्राप्त करनेके लिये तो उसे बाहरसे भी त्याग हो जाता है। संसारमें रहकर पूर्ण मोक्ष नहीं होता है। परन्तु आत्माको पहचान सकता है, आत्माकी स्वानुभूति होती है, आत्माका ज्ञान प्राप्त होता है। यहाँ तक होता है। भगवका अभाव होता है। सिद्ध भगवान जैसी आंशिक अनुभूति उसे होती है। लेकिन उसे मोक्ष, पूर्ण मोक्ष केवलज्ञान नहीं होता। बाहरसे सब त्याग हो जाता है, मुनि बन जाता है, तब पूर्ण मोक्ष होता है।

मुमुक्षु :- ... फिर कई बार मैं ... करती हूँ।

समाधान :- वह सब व्यर्थ है, निःसार है, निष्फल है मोह रखना। जहाँ जाये वहाँ, देवमें गया हो तो देवके परिचयमें पड़ जाय, मनुष्यमें गया तो मनुष्यके जो परिचीत हों उसमें पड़ जाता है। उसे तो कुछ याद नहीं होता। सब सम्बन्ध टूट जाय। यहाँ आप राग रखते हो, उतना ही। राग रखना भी मुश्किल है।

मुमुक्षु :- .. कहते हैं, देवगतिमें ..

समाधान :- सबको ऐसा नहीं होता। सब देखे और सबको राग हो, ऐसा सबको नहीं होता। कोई-कोईको होता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- अभी इस पंचमकालमें ऐसा कुछ होता ही नहीं है।

मुमुक्षु :- पंचेन्द्रिय जीवको बचानेका भाव थे, गति पर तो अच्छी ही असर पड़ती है न?

समाधान :- हाँ, उसके भाव अच्छे थे। उसे बचानेका भाव हो, वह भाव अच्छा था।

मुमुक्षु :- गति पर उसकी अच्छी असर हुई हो।

समाधान :- उसपरसे कह सके कि अच्छी हुई हो। बचानेका भाव था वह उसका भाव अच्छा था। भाव कोई बुरा नहीं था। अच्छा-पुरा..

मुमुक्षु :- किसी भी जीवकी गति है, वह उसके पूरे जीवनके कार्य पर आधार रखती है या अंतिम भाव पर आधार रखती है?

समाधान :- पूरे जीवनके कार्य पर भी रखती है और अंतिम भाव पर भी रखती है। अंतिम भाव कैसे थे,... वह तो पूरे जीवनका जो होता है वह भाव अंत समयमें आकर खड़े रहते हैं।

मुमुक्षु :- पूरे जीवनका टोटल अंतमें आता है।

समाधान :- पूरे जीवनका टोटल अंतमें आता है। पहलेसे ही बचानेका भाव था इसलिये उसे बचानेका भाव ही आया न? उसका स्वभाव ऐसा था कि मैं बचाने जाऊँ। इसलिये उसे बचानेका भाव आया। उसके जीवनमें बचानेके भाव किये थे।

मुमुक्षु :- दानका भाव था, गरीबको मदद करनेका भाव था।

समाधान :- उसके जो भाव होते हैं, वह भाव आकर खड़े रहते हैं। उस भावमें उसे पुण्य बँधता है। उसकी गति पर कुछ असर नहीं होती। उसकी गति अच्छी होती है। भाव अच्छे हो तो गति अच्छी होती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५७

मुमुक्षु :- तब आप ऐसा कहते थे कि आत्मामें ज्ञानशक्ति ऐसी है कि पूरी समझन करके अपनी महिमा ला सके, ऐसी शक्ति उसमें पड़ी ही है। श्रद्धा भी ऐसी है कि चाहे जो हो...

समाधान :- श्रद्धागुण है वह अनन्त बलसे भरपूर है। पूरा ब्रह्माण्ड बदल जाय तो भी वह उसकी श्रद्धासे डिगे नहीं, ऐसा उसमें श्रद्धागुण है। अपने द्रव्यको ग्रहण किया, ऐसा ग्रहण करता है कि फिर किसीसे डिगे नहीं। ऐसा श्रद्धामें अनन्त बल है।

ज्ञानमें ऐसी अनंती शक्ति है कि स्वयं अंतरमेंसे नक्की करे फिर उसे कोई बदल नहीं सकता। जाननेवाला गुण ऐसा है कि वह सबको जान सके। जाननेमें नहीं जानना ऐसा आता ही नहीं। पूर्ण जाने ऐसी अनन्त शक्ति ज्ञानमें भरी है। और श्रद्धामें भी वैसा अनन्त बल भरा है। ज्ञानमें भी ऐसा अनन्त बल भरा है। प्रत्येक शक्ति अनन्त बलसे भरपूर है। ऐसे अनन्त बलसे भरपूर न हो तो उसे गुण ही नहीं कहते। अनादिअनन्त वस्तु जो स्वयंसिद्ध है, उसमें जो गुण हो वह अनन्त बलसे भरपूर ही होते हैं।

मुमुक्षु :- अंतमें आपने करुणापूर्वक कहा कि परिणति तो तुझे ही बदलनी है। यह सब है, किन्तु करना तो तुझे है।

समाधान :- तुझे स्वयंको ही करना है। परिणति तो कोई बदल नहीं देता, स्वयं ही बदले तो होता है। विकल्पसे श्रद्धा करे, ज्ञानसे जाने, लेकिन अन्दरमें जो परिणति करनी है, वह तो स्वयंको ही करनी पड़ती है।

.. आश्रय लिया सो लिया, वह श्रद्धागुण स्वयं ऐसा है कि छूटे नही। कोई उसे छुड़ा नहीं सकता। ज्ञानमें भी ऐसा बल है। यथार्थ ज्ञान प्रगट हो, उस ज्ञानको कोई बदल नहीं सकता। और लीनता भी, स्वरूपकी ओर जो लीनता प्रगट की, उस लीनताको डिगानेको कोई समर्थ नहीं है। स्वयंके पुरुषार्थकी मन्दतासे हो तो हो, बाकी उसे कोई कुछ नहीं कर सकता। लीनताका गुण जो अन्दरसे प्रगट हुआ, स्वरूपमें लीन हुआ, उस लीनताको कोई नहीं डिगा सकता। ज्ञायककी परिणति जो प्रगट हुयी, उसे कोई बदल नहीं सकता।

स्वयं अपनेमें अनन्त बलसे भरपूर है। वैसे बाहर गया तो उसे कोई बदल नहीं

सकता। स्वयं बदले और स्वयं ज्ञायकका आश्रय ले तो होता है। देव-गुरु-शास्त्र सब निमित्त महा बलवान होते हैं। परन्तु उपादान स्वयंका होता है। यदि स्वयं तैयार नहीं हो और यदि स्वयं ग्रहण न करे तो निमित्त निमित्तरूपसे निमित्तमें रह जाता है। बाकी स्वयं ग्रहण करे तो होता है। पुरुषार्थमें बल आता है। वह बल तुझे ही प्रगट करना है।

... भाव तो अन्दर लगनी लगनी चाहिये न। दूसरी लगनी... भवका अभाव कैसे हो? लगनी तो एक ही होती है। इतने साल बीत गये, अब इतने साल बीतनेमें कहाँ देर लगेगी? ऐसा होता था। पंद्रह गये, इतने गये, बीस, पचीस होनेमें कहाँ देर लगेगी? अभी तो कुछ होता नहीं है। क्या अभी भी परिभ्रमण करना है? अभी दुःख क्यों नहीं लगता है? यह सब क्यों? यह सब क्या? अभी परिभ्रमणकी थकान क्यों नहीं लगती? विभावसे कैसे छूटना?

मुमुक्षु :- बचपनसे ही वही लगनी।

मुमुक्षु :- उसी प्रकारके ही विकल्प आते रहते हैं।

समाधान :- विकल्प नहीं, भावना। भावनाके साथ विकल्प तो होते हैं। भावना उस जातकी, लगनी उस जातकी। खाते-पीते, जागते-सोते, स्वप्नमें एक ही लगनी, दूसरी कोई लगनी नहीं थी। कहीं चैन नहीं पड़े।

वहाँ जाती थी, कभीकभार वांकानेरके अपासरेमें जाती थी। वहाँ भी जाती थी। पोषा करती थी, एक-दो बार किये थे। वहाँ पूरा दिन निवृत्ति मिले न? इसलिये वहाँ बैठती। अपसारामें एक ओर कमरा था, वहाँ बैठती थी। फिर बाहर निकलूँ तब दूसरे कोई हो उसके साथ बातचीत करती। बाकी खास कोई बात नहीं करती थी।

मुमुक्षु :- कौन-सा दर्शन सत्य है, उसीकी झंखना थी।

समाधान :- सत्य कौन-सा है? सत्य क्या है? गुरुदेव कहते थे वही सत्य लगता था। अन्दरसे पहचानकर, गुरुदेव स्वभाव कहते हैं वही सत्य है। परन्तु निर्णय करनेके लिये विचार तो स्वयंको आते हैं।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! जातिस्मरण कितने साल बाद हुआ?

समाधान :- १९८९की सालमें हुआ न, फिर १९९३की सालमें। चार साल बाद।

मुमुक्षु :- माताजी! एक ही विचार..

समाधान :- विचार नहीं आते हैं, वह विचारसे थोडे ही होता है। विचारसे नहीं होता। अन्दर आत्मामें-स्वरूपकी लीनता करते-करते सहज आता है, वह कोई विचारसे नहीं आता। आत्माकी एकाग्रता आत्मामें करते-करते वह बीचमें आता है। विचारसे नहीं। सहज आ जाता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- वह सब बातें करने कहाँ बैठी हूँ। सब सहज है। अन्दर आये तो बाहर.. गुरुदेवका और सबका आये।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने ही कहा है,..

समाधान :- गुरुदेवने तो बहुत कहा है, परन्तु मेरी ज़बानसे नहीं कहना होता।

मुमुक्षु :- हमे तो कभी..

समाधान :- लेकिन वह तो आप सबको मालूम ही है, नया क्या कहना है?

मुमुक्षु :- अभी तो बहुत बाकी है, बहन! अभी तो एक रूपयमें चार आना भी बाहर नहीं आया है।

समाधान :- गुरुदेवने कहा है कि गुरुदेव भगवान-तीर्थंकर होनेवाले हैं। वह सब तो बाहर आया ही है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! अभी तो यहाँ ऐसी भी बात चलती थी कि गुरुदेव साक्षात् पधारते हैं।

समाधान :- सब ऐसा ही बोलते हैं। सब बातें हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेव तीन लोकको आह्वान करते हैं, ऐसे स्वप्न..

समाधान :- गुरुदेवको स्वप्न आता था। गुरुदेवको स्वप्न आते थे कि मैं तीर्थंकर हूँ। मैं तीर्थंकर होनेवाला हूँ। ऐसे सब स्वप्न (आते थे)। गुरुदेवको ॐ ध्वनि स्वयंको आती थी। वह उनको आता था। मुझे तो मालूम भी नहीं था कि गुरुदेवको ऐसे स्वप्न आते हैं। मुझे मालूम नहीं था। गुरुदेवको तो आते थे, मुझे तो बादमें आया। गुरुदेवको तीर्थंकर होनेके स्वप्न आते थे। पहली बार ॐ वहाँ आया, दूसरी बार उमराला और तीसरी बार विंछीयामें। विंछीयामें थोडा ज्यादा आया। पहली शुरूआत वांकानेर, फिर उमाराला, फिर विंछीया।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! कुन्दकुन्दस्वामी तो एकदम प्रत्यक्ष दिखाई देते होंगे न।

समाधान :- जो स्मरणमें आये वह तो ऐसे ही आये न।

मुमुक्षु :- मुनिका स्वरूप नग्न ही होता है, उसके लिये तो कोई.. वह तो एकदम विश्वासपूर्वक..

समाधान :- उसका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। वह तो विदेहक्षेत्रमें धोख मार्ग चल रहा है। मुनिओंके झुंड जहाँ विचरते हैं।

मुमुक्षु :- सीमंधर भगवान कैसे विराजते हैं।

समाधान :- साक्षात् सीमंधर भगवान विराजते हैं, भगवानकी दिव्यध्वनि छूट रही है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! इतनी प्रतिष्ठाएँ हुयी, उसमें..

समाधान :- प्रतिमा वैसी लगनी तो मुश्किल है। साक्षात् भगवानकी तो क्या बात

करनी!

मुमुक्षु :- फिर भी कोई आकृति वैसी आ गयी हो कि इतने प्रतिमाजीमें यह एक प्रतिमाजी ऐसे लगते हैं कि मानो सीमंधर भगवान हो।

समाधान :- पाँचसौ धनुषका देह और वह आकृति, साक्षात् भगवान जीवंत मूर्ति, वह सब आकृति आनी मुश्किल है। नासाग्र दृष्टि, ध्यान मुद्रा, दिव्य मुद्रा, यहाँ सोनगढ़में ही वैसी है। तो भी साक्षात् तो साक्षात् ही होती है।

मुमुक्षु :- फिर भी वांकानेरमें प्रतिमाजी हैं..

समाधान :- विदेहक्षेत्रमें विराजते भगवान यहाँ थोड़े ही आ जाते हैं। समवसरणमें विराजमान, साक्षात् दिव्यध्वनि.. लेकिन वह तो जिनप्रतिमा जिन सरिखा, कहते हैं न? जिनप्रतिमा भी जिन सरिखा कहलाती है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते थे न, बहन तो यहाँ बैठकर विदेहके भगवानके दर्शन करती है। भरतमें है कि विदेहमें है, भूल जाती है।

समाधान :- भगवानने ही कहा है कि यह राजकुमार तीर्थंकर होनेवाले हैं। भगवानकी वाणीमें आया है। तीर्थंकर जगतमें सर्वोत्कृष्ट होते हैं। भगवानकी रत्नमय प्रतिमाएँ, ऐसा जगतमें कुदरती तीर्थंकरकी प्रतिमाएँ रत्नरूप हो जाती हैं। जगतमें सर्वोत्कृष्ट हों तो तीर्थंकर भगवान ही है।

मुमुक्षु :- मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो..

समाधान :- गुरुदेवका स्वप्न था, तीन लोकको आह्वान करते हैं। तीन लोकको। तीन लोकको कौन आह्वान करे? जो तीनलोकसे ऊँचा हो वह। अओ रे.. आओ! हितके लिये आओ! तीन लोकको कौन आह्वान करे? गुरुदेवके स्वप्न भी ऐसे।

मुमुक्षु :- जो तीर्थंकर हो वही करे न।

समाधान :- तीन लोकको आह्वान कौन करे? .. मार्ग चलता है, वह दिगंबर मार्ग (चलता है)। मुनिओंके झुंडके झुंड विदेहक्षेत्रमें हैं। मुझे मालूम नहीं था कि गुरुदेव मानते हैं। उनको कहनेसे क्या लाभ? अपने तो ऐसा विचार आये। गुरुदेव ऐसे ही थोड़ा मान ले। गुरुदेवको स्वयंको ही अन्दर था कि मैं तीर्थंकर होनेवाला हूँ। भगवानकी बात सुनकर उत्साह तो आये न। त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, अब क्या चाहिये? उतना उत्साह था।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, अब क्या चाहिये? भगवानने कहा तीर्थंकर होनेवाले हैं। अर्थात् त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, अब क्या चाहिये?

मुमुक्षु :- तीर्थंकर होनेवाले हैं, ऐसा माताजीने कहा तो गुरुदेवको ऐसा हो गया..

समाधान :- बाहर किसीको नहीं कहते थे।

मुमुक्षु :- सुख चाहिये, तो चैतन्यकी मूल ऋद्धि सुख है या ज्ञान है? पूर्ण ज्ञान बिना पूर्ण सुख होता नहीं। तो सुखके लिये ज्ञानका आधार है?

समाधान :- जीव सुखको चाहता है। परन्तु सुखके लिये प्रयोजनभूत ज्ञानकी आवश्यकता है। ज्ञानकी ऋद्धि, ज्ञानगुण मुख्य आत्माका है। परन्तु ऋद्धिके लिये प्रयत्न नहीं करना है। जीव सुखको चाहता है। अधिक जानना, लोकालोक प्रत्यक्ष जाननेमें आये, ऐसी ऋद्धिके लिये प्रयत्न नहीं करना है। ज्ञानगुण मुख्य है और जीवका सुखगुण भी विशेष गुण है। तो भी ज्ञान मुख्य होने पर भी ऋद्धिके लिये प्रयत्न करनेका मोक्षमार्गमें नहीं होता।

आत्माको अन्दर चैन नहीं पड़ती, उसे दुःख होता है, इसलिये सुखके लिये प्रयत्न चलता है। ज्ञानके लिये प्रयत्न नहीं होता, परन्तु मुख्य प्रयोजनभूत जो तत्त्व है उसे जाने। मैं कौन हूँ? यह विभाव क्या है? प्रयोजनभूत जाने तो फिर उसमें ज्यादा जाननेकी आवश्यकता नहीं है। जाननेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु शास्त्रमें आता है, पहले वीतरागता होती है, फिर सर्वज्ञता होती है। पूर्ण ज्ञान होनेके बाद पूर्ण सुख होता है, ऐसा नहीं है। पहले वीतरागता हो, फिर ज्ञान होता है। मुख्य पुरुषार्थ करना है, वह ज्ञायकको पहचानकर वीतरागता प्रगट करनेका है। श्रद्धाके साथ वीतरागता प्रगट करनी है। ज्ञानके लिये प्रयत्न नहीं करना है। ज्यादा जाननेके लिये, ऋद्धिके लिये प्रयत्न नहीं करना होता है।

शास्त्रमें आता है, श्रीमद् कहते हैं, जिसे जैनका केवलज्ञान भी नहीं चाहिये, उसे प्रभु कौनसा पद देंगे? इसलिये केवलज्ञानके लिये प्रयत्न नहीं करना होता है। एक ज्ञायकको पहचानकर दृष्टि एक आत्मा पर रखकर, मति-श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल, उसे वृद्धिगत करनेकी आवश्यकता नहीं है। वह तो बीचमें लीनता नहीं हो तबतक साधकदशा होती है, तबतक मति-श्रुत बीचमें आता है। केवलज्ञान प्रगट करुँ, अवधिज्ञान प्रगट करुँ, मनःपर्ययज्ञान, मति-श्रुत और केवलज्ञान प्रगट करुँ, केवलज्ञान प्रगट करनेका कोई प्रयत्न नहीं होता है। उस पर-केवलज्ञान पर दृष्टि नहीं होती।

अन्दर स्वरूपमें श्रद्धाके साथ लीनता हो, वीतरागता हो तो सहज ज्ञान प्रगट होता है। ऋद्धि पर दृष्टि होती ही नहीं। बाह्यकी सब ऋद्धि तो, 'रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी, सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो।' और अन्दरकी चैतन्य ऋद्धि ज्ञानमें जाने कि आत्मामें कोई अलौकिक ज्ञान ऋद्धि है, अनुपम आनन्द है, अनन्त शक्तियाँ है। परन्तु साधनामें ऐसे रागके विकल्प या ऐसी लालसाके विकल्प नहीं होते। उसे अंतरमेंसे एक शांति चाहिये। शांति कैसे प्रगट हो? बस। मुझे आत्मामेंसे-स्वभावमेंसे, मेरा स्वभाव क्या है, ऐसे तत्त्वको पहचानकर मुझे स्वभावमेंसे शांति, वीतरागता, मेरा ज्ञान, मेरा

ज्ञायकदेव मुझे कैसे प्रगट हो? ऐसी उसकी भावना होती है। उसे अनंत शक्तियोंके विकल्प और कैसे ज्यादा जानूँ, उस प्रकारका प्रयत्न साधकदशामें नहीं होता है। एक आत्माको जाने इसलिये सब आ जाता है। उसमें उसे बाहर ज्यादा जाननेकी जरूरत नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- सुखके लिये वीतरागता..?

समाधान :- हाँ, सुखके लिये वीतरागता। प्रयोजनभूत ज्ञान पहले होता है। पहले आत्माको जाने। प्रयोजनभूत ज्ञान होता है। फिर उसमें सुखके लिये वीतरागताकी जरूरत है, ज्ञानकी जरूरत नहीं है। जो वीतराग हो, उसमें संपूर्ण शांति, आनन्द, सुख सब उसीमें-वीतरागतामें ही है। प्रयोजनभूत ज्ञान होता है। ज्ञानगुण आत्माका है, वह तो सहज प्रगट हो जाता है। वीतरागता हो इसलिये ज्ञान सहज प्रगट होता है। ज्ञान स्वको जाने और (परको भी जाने)। स्वपरप्रकाशक ज्ञान सहज प्रगट होता है। उसे प्रगट करने नहीं जाना पड़ता।

दृष्टिको अवल्मबन एक ज्ञायकका होता है। उसकी दृष्टि मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञानके भेदमें नहीं रुकती। ज्ञानमें जाने कि, यह मति, श्रुत, अवधि क्षयोपशमज्ञानके भेद, क्षायिकके भेद (जाने), लेकिन उसमें वह रुकता नहीं। दृष्टिमें किसी भी प्रकारका भेद नहीं होता। संपूर्ण वीतराग होता है, वह संपूर्ण सर्वज्ञ होता है।

मुमुक्षु :- हे भगवती माताजी! सम्यक्ज्ञानीको निरंतर ज्ञानधारा होती है। उपयोग बाहरमें हो तब भी भेदज्ञानकी धारा चालू है, वह कैसे संभवित है? यह कृपा करके हमें समझाइये।

समाधान :- उपयोग बाहर हो तो भी ज्ञानकी धारा-ज्ञानकी परिणति रहती है। उपयोग बाहर हो और परिणति ज्ञायककी हो, उसमें कोई विरोध नहीं है। ज्ञायककी धारा अन्दर चलती हो। एकत्वबुद्धि टूट गयी है और भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। ज्ञायककी ज्ञायकरूप धारा प्रतिक्षण जो-जो विकल्प आये, विभावकी पर्याय हो, तो उसमें उसे भेदज्ञानकी धारा (चलती ही रहती है)। स्वयं भिन्न ही भिन्न, न्यारा ही न्यारा रहता है। दृष्टि एक ज्ञायक पर है, परिणति ज्ञायककी है। प्रतिक्षण वह भिन्न ही भिन्न, प्रत्येक कार्यमें वह न्यारा ही न्यारा रहता है।

खाते-पीते, सोते, स्वप्नमें सबमें वह न्यारा ही न्यारा रहता है। ऐसी ज्ञायककी परिणति रहती है। उपयोग भले बाहर हो, बाहरके कार्योंमें हो। बाहर गया और बाहरका जाने तो अन्दर खण्ड-खण्ड हो जाता है, ऐसा नहीं है। वह तो अखण्ड ज्ञायक है। क्षयोपशमज्ञानके कारण उसका जो मूल स्वभाव ज्ञायक परिणति है, उसमें कोई खण्ड नहीं होता। ज्ञायककी परिणति हर वक्त मौजूद होती है।

चाहे जैसा राजा हो, चक्रवर्ती हो, लौकिक कार्योंमें हो, राजके कार्योंमें हो, तो भी परिणति तो भिन्न न्यारी की न्यारी रहती है। प्रशस्त भावोंमें हो। चक्रवर्तीको बड़ी पूजा आदिके प्रकार हो, देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावनाका प्रसंग हो, तो भी उसकी परिणति न्यारीकी न्यारी होती है। एकत्वबुद्धि नहीं होती। अशुभभावसे बचनेको शुभभावमें जुड़े तो भी ज्ञायककी परिणति तो उसे भिन्न ही भिन्न होती है। ज्ञायककी परिणतिको और उपयोगको कोई विरोध नहीं है। ज्ञायककी परिणति चालू ही होती है और उपयोग बाहर होता है। कोई बार उपयोग पलटकर स्वानुभूतिमें जाता है और बाहर आये, तो भी ज्ञायककी परिणति उसे हर समय चालू है। उसमें उसे विरोध नहीं है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! परिणति त्रयात्मक है या ज्ञानात्मक है?

समाधान :- प्रयात्मक?

मुमुक्षु :- त्रयात्मक-तीनों। ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनों परिणतिमें है?

समाधान :- ज्ञायककी परिणति श्रद्धा, ज्ञान और गृहस्थाश्रममें आंशिक स्वरूप रमणता है। अनंतानुबंधीका जो कषाय टूट गया है, इसलिये आंशिक स्वरूपाचरणचारित्र है। इसलिये दर्शन, ज्ञान, चारित्र (तीनों हैं)। पद्धतिके हिसाबसे चारित्र नहीं कह सकते, परन्तु स्वरूपाचरणचारित्र अमुक अंशमें लीनता अपनेमें है। एकत्वबुद्धिकी लीनता टूट गयी इसलिये अंतरमें ज्ञायक परिणतिकी लीनता आंशिक है। परन्तु उसे पद्धतिके हिसाबसे चारित्रकी लीनता तो पाँचवा गुणस्थान और छट्ठा-सातवाँ गुणस्थान आये, तब पद्धति-शास्त्र पद्धति अनुसार तब चारित्र कहलाता है। बाकी उसे लीनता है, अन्दर ज्ञायक परिणतिमें तीनों हैं। ज्ञायकमें श्रद्धा, ज्ञायकका आश्रय श्रद्धामें, ज्ञानका आश्रय, ज्ञान भी उसमें और लीनता भी उसमें है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५८

समाधान :- .. जैसे होना होगा वैसे होगा, वह बाहरका तो ठीक है, परन्तु अंतरमें यदि अंतरमें वह स्वयं पुरुषार्थका बल प्रगट न करे तो ऐसी क्रमबद्धकी पर्याय भवकी ओर जाती है। यदि स्वयं बल प्रगट करे तो क्रमबद्धकी पर्याय अपनी ओर, भवके अभावकी ओर जाती है। बल तो स्वयंको ही प्रगट करना है। पलटना तो स्वयंको ही है। अपनी ताकात स्वयंको ही प्रगट करनी है। पूरा जीवन अपनी ताकत पर है। लेकिन वह कोई कर नहीं देता, स्वयंको ही करना है।

बल आना होगा तब आयेगा, ऐसे बल नहीं आता है। अपने अंतरमें ऐसा हो कि आनेवाला होगा... वह बल स्वयं है और वह बल स्वयंको ही प्रगट करना है, उसे कोई कर नहीं देता। क्रमबद्ध यानी कोई निमित्त उसे कर दे, या कोई दूसरा कर देता है, ऐसा नहीं है। वह बल स्वयंको ही प्रगट करना पड़ता है। और क्रमबद्धको गढ़ना सब अपने हाथमें ही है। वह कोई नहीं कर देता।

जिसके मनमें ऐसा हो कि जैसे होना होगा वह होगा। लेकिन यदि तुझे ऐसी श्रद्धा है तो तेरा सुलटा क्रमबद्ध होगा ही नहीं। और भगवानने ऐसा ही देखा है, तू पुरुषार्थ नहीं करता है तो तेरा क्रमबद्ध ऐसा है। क्रमबद्धको पुरुषार्थके बलके साथ सम्बन्ध है। पुरुषार्थका बल नहीं प्रगट करता है तो तेरा क्रमबद्ध (वैसा है)। जो पुरुषार्थ करके ज्ञायकदशा प्रगट करता है, तो उसका क्रमबद्ध सुलटा है।

मुमुक्षु :- पूज्य बहिनश्री! एक प्रश्न है कि धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है या चारित्र या सर्वज्ञदेव या अपना त्रिकाली स्वभाव?

समाधान :- धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। धर्मका मूल तो सम्यग्दर्शन है। धर्म सबको कहते हैं। चारित्र धर्म है, सम्यग्दर्शन धर्मका मूल है। सम्यग्दर्शनमें धर्मका आश्रय है त्रिकाली स्वभावका। परन्तु सम्यग्दर्शनको धर्मका मूल कहनेमें आता है। क्योंकि गुरुदेवने सम्यग्दर्शनका स्वरूप अपूर्व रीतसे बताया है। सम्यग्दर्शन अनादि कालसे जीवको प्राप्त नहीं हुआ है। और सम्यग्दर्शन ही जगतमें सर्वोत्कृष्ट है, उससे ही भवका अभाव होता है।

गुरुदेवने अत्यंत स्पष्टता करके सूक्ष्म-सूक्ष्म रीतसे सम्यग्दर्शनका स्वरूप बहुत बताया है। गुरुदेवका परम उपकार है। धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। अनादि कालसे जीवने सम्यग्दर्शन

प्राप्त नहीं किया है। वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करना जगतमें बहुत दुर्लभ है। जीव अनादि कालसे बाह्य क्रियामें और बाहरमें अटका है। परन्तु अंतरमें सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं? भवका अभाव कैसे हो? यह उसे मालूम नहीं है। धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। त्रिकाली स्वभाव अनादिअनन्त है-ज्ञायक स्वभाव। ज्ञायक स्वभाव अनादिअनन्त है, परन्तु सम्यग्दर्शन जब प्राप्त होता है, तभी भवका अभाव होता है।

सम्यग्दर्शन है उसमें ज्ञायक स्वभावका आश्रय होता है, द्रव्य पर दृष्टि जाती है और सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। इसलिये सम्यग्दर्शन धर्मका मूल है। सर्वज्ञ स्वभाव। भगवान धर्ममें निमित्त बनते हैं। परन्तु अन्दरका उपादान स्वभाव तो अपना है। स्वयं प्राप्त करे तो हो सके ऐसा है। इसलिये सम्यग्दर्शन धर्मका मूल है। बाहरका निमित्त है वह मूल निमित्त नहीं कहलाता। मूल कारण तो सम्यग्दर्शन है। धर्म उसे कहते हैं। सम्यग्दर्शन अनादि कालसे प्राप्त नहीं किया है। और वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये ज्ञायक स्वभावका आश्रय है। ज्ञायक स्वभावका आश्रय लिया और सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, फिर त्रिकाली स्वभावके आश्रयसे चारित्र भी उसके आश्रयसे प्रगट होता है। चारित्र भी धर्म है।

दंसण मूलो धम्मो और चारित्र खलू धम्मो। चारित्र धर्म है और सम्यग्दर्शन भी धर्म है। दोनों धर्म हैं। धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। इसलिये सम्यग्दर्शन ही जगतमें सर्वोत्कृष्ट है। परन्तु वह सम्यग्दर्शन आत्माका आश्रय ले तो प्राप्त होता है। 'जे शुद्ध जाणे आत्मने ते शुद्ध आत्म ज मेळवे।' आत्माको शुद्ध जाने। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो शुद्ध स्वभाव आत्मा हूँ। उसमें गुणभेद, पर्यायभेद सबको गौण करके, एक चैतन्य पर दृष्टि रखे तो सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। चैतन्य स्वभावका अस्तित्व ग्रहण करके, ज्ञायक स्वभावका अस्तित्व ग्रहण करके पर-ओरके भेदभाव, विभावभाव, सब परसे दृष्टि उठाकर एक चैतन्य पर दृष्टि रखे और भेदज्ञानका अभ्यास करे। बारंबार-बारंबार। उसमें उपयोगको स्थिर करे तो उसमें स्वानुभूति होती है। वही धर्मका मूल है।

सम्यग्दर्शन ही धर्म है और वही धर्मका मूल है। चारित्र भी धर्म है। अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ, परन्तु चारित्र प्राप्त नहीं होता तबतक पूरा धर्म प्राप्त नहीं हुआ है। अभी कमी है। इसलिये चारित्र भी धर्म है। स्वानुभूति प्रगट होते-होते, आगे बढ़ने पर स्वरूपकी लीनता बढ़ती जाती है, उसमें चारित्र प्रगट होता है। बाहरके शुभभाव पंच महाव्रत, अणुव्रत शुभभाव है, लेकिन उसके साथ स्वरूपमें लीनता बढ़ती जाय वह चारित्र है। वह चारित्र भी धर्म है। धर्म तो ऐसे प्रगट होता है। बाहरसे प्रगट नहीं होता। आत्माके आश्रयसे प्रगट होता है। इसलिये वही प्रगट करने जैसा है। सुखका धाम जो आत्मा, शांतिका धाम जो आत्मा, ज्ञायकका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है और वही जगतमें सर्वोत्कृष्ट है।

मुमुक्षु :- वास्तविक मूल तो त्रिकाली स्वभाव लगता है। बाकी सब तो उपचारिक लगता है।

समाधान :- त्रिकाली स्वभाव सम्यग्दर्शनका आश्रय है। अनादि कालसे त्रिकाली स्वभाव है, परन्तु यदि उसे वह ग्रहण नहीं करता है तो अनन्त काल निकल जाता है। ग्रहण उसे करना है-त्रिकाली स्वभावको। त्रिकाल स्वभावको जाने। अनादिअनन्त मैं शाश्वत हूँ, ऐसा जाने। उसमें अनन्त गुण हैं, सब ज्ञानमें जाने। दृष्टि एक चैतन्य पर रखे। त्रिकाली स्वभाव.. सम्यग्दर्शनका आश्रय त्रिकाली स्वभाव है। इसलिये ग्रहण उसे करना है। तो ही सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। त्रिकाली स्वभावको ग्रहण करे तो। लेकिन धर्म तो सम्यग्दर्शनको कहनेमें आता है।

धर्म उसे कहनेमें आता है, अनादिअनन्त त्रिकाली स्वभावको भी (धर्म कहनेमें आता है), परन्तु वास्तवमें जो प्रगट होता है उसीको धर्म कहनेमें आता है। सम्यग्दर्शन ही धर्म है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः। मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन रत्नत्रय प्रगट हो, तब मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- तो चारित्र खलू धम्मो, चारित्रको भी खलू शब्द लगाया।

समाधान :- चारित्र है वह धर्म है, वह स्वरूपमें लीनता बढ़ती है इसलिये। सम्यग्दर्शनको भी धर्म कहनेमें आता है। सम्यग्दर्शन धर्मका मूल है, मूल वह है। और चारित्र धर्म है। वह आत्माका स्वभाव है। चारित्र, लीनता करनी वह चारित्र धर्म है। भले निश्चयसे चारित्र (धर्म है), परन्तु उसका मूल तो सम्यग्दर्शन है। चारित्रका मूल सम्यग्दर्शन है। चारित्रका मूल यानी यथार्थ सम्यग्दर्शन प्रगट हो तो चारित्र प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- इस चारमेंसे बात यहाँ आयी कि धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। दूसरे सब दूसरी-दूसरी अपेक्षासे।

समाधान :- हाँ, धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। अनादि कालसे जीवने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है। धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। बाकी बाहरका बहुत किया, शुभभाव किये, सब किया, लेकिन वह धर्मका मूल नहीं है। पुण्य बँधता है। बाकी सम्यग्दर्शन शुद्धात्माको पहचानकर उसमें लीनता प्राप्त करे, स्वानुभूति प्राप्त करे वही धर्मका मूल है। धर्म वही है।

चारित्रको भी धर्म कहनेमें आता है। चारित्र धर्म है, धर्म है वह साम्य है। सम्यग्दर्शनका फल चारित्र आता है। स्वानुभूतिका फल है। फिर लीनता बढ़ती है। सर्वज्ञ स्वभाव कहा न? दूसरा उसका क्या निमित्त कहा?

मुमुक्षु :- हाँजी, सम्यग्दर्शन, चारित्र, सर्वज्ञदेव और त्रिकाली स्वभाव।

समाधान :- अनादि कालसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिये प्रथम जब

सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, वहाँ सर्वज्ञदेव उसमें निमित्त होते हैं। गुरु अथवा सर्वज्ञदेव निमित्त होते हैं, परन्तु उपादान अपना होता है। मूल कारण तो स्वयं होता है। परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि निमित्त होता है। गुरुने इतना उपदेश दिया। गुरु और देव सब निमित्त हैं।

अनादि कालसे अनजाना मार्ग, उसमें ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। एक बार साक्षात् गुरु अथवा देव मिले, तब जीवकी परिणति अपनी ओर होती है। होती है अपनेसे। दूसरा कोई कर नहीं देता, अपने पुरुषार्थसे होता है।

मुमुक्षु :- दूसरा एक प्रश्न है, बहिनश्री! आस्रवभाव झहर जैसा है। उसमेंसे उसकी मारनेकी शक्ति निकाल देनेमें सम्यग्दृष्टि जीव समर्थ है, वे कौनसी विद्याके बलसे वैसा कर सकते हैं?

समाधान :- आस्रवभाव झहर है, परन्तु उसे ज्ञायक स्वभाव, ज्ञान-वैराग्यकी ऐसी शक्ति प्रगट होती है, सम्यग्दृष्टिको। यह विभाव है, मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न होकर उसे अंतरमेंसे ऐसी ज्ञान-वैराग्यकी शक्ति प्रगट होती है। इसलिये उसका जो झहर है वह निकल जाता है। एकत्वबुद्धिका जो रस था, विभावके साथ एकत्वबुद्धिका रस टूट जाता है। अनन्त रस जो अनंतानुबन्धीका था वह रस टूट जाता है। इसलिये उसका जो झहर-एकत्वबुद्धिका और अनंतानुबन्धीका रस था वह झहर टूट जाता है और स्वरूपकी ओर उसे अनन्त रस लग जाता है। ऐसा अनन्त रस ज्ञायक स्वभावको रस ग्रहण करके वह रस ऐसा लगता है कि वह विभावसे भिन्न ही रहता है। उसे विभावका रस-विभावका झहर उसे लगता नहीं। उसे ऐसी ज्ञायककी विद्या, ज्ञायकका मंत्र प्रगट हुआ है कि जिस कारणसे आस्रवका झहर उसे चढता नहीं।

उसने जाना कि यह आस्रव है वह विपरीत स्वभाव है, आकुलतावाले हैं, मेरा सुख इसमें नहीं है, सुख मेरेमें है, ऐसा अन्दर निश्चय हुआ। मेरा ज्ञायक स्वभाव ही सुखस्वरूप है। सब कुछ मेरे ज्ञायक स्वभावमें ही है, बाहरमें नहीं है। ऐसा उसे निश्चय हुआ और ज्ञायकका रस लगा। वह रस चढा, वह रस उसे उतरता नहीं इसलिये उसे झहर लगता नहीं। भिन्न ही (रहता है), प्रतिक्षण न्यारा ही रहता है, उससे भिन्न ही रहता है।

आत्माका रस ऐसा लगा। कहते हैं न, भगवान! मुझे ज्ञायकदेवका ऐसा रस लगा है कि उसके आगे मुझे सब तुच्छ लगता है। जैसे जिनेन्द्र भगवानका, आचार्यदेव कहते हैं न, आपका प्रभावशाली मन्त्र यदि मेरे हृदयमें है अथवा आपके स्मरणरूप मन्त्र है तो मुझे इस जगतमें मेरी चिंतीत वस्तु है, उसमें कोई विघ्न नहीं आता है। ऐसे ज्ञायकका जिसे रस लगा, ज्ञायकदेवकी विद्या प्रगट हुयी, जहाँ हो वहाँ ज्ञायककी अखण्ड

परिणति प्रगट है। प्रतिक्षण उसे ज्ञायककी परिणति मौजूद ही है। ज्ञायकके प्रभावके कारण ज्ञायकदेवका ऐसा मन्त्र उसके पास है कि उसे विभावका रस नहीं लगता है। उससे वह भिन्न ही रहता है।

ज्ञायकमें सबकुछ है। ज्ञायक चिंतामणि रत्न कहो अथवा कल्पवृक्ष कहो या जो भी कहो, सब ज्ञायकमें ही भरा है, बाहरमें कहीं नहीं है। इतना उसे ज्ञायकदेवका रस लगा है कि विभावका रस उसे टूट गया है। इसलिये वह उससे भिन्न ही रहता है। उसने मोक्षमार्गमें प्रयाण किया है। ज्ञायकका रस ऐसा लगा कि उसे दूसरे रस लगते नहीं और आस्रवका झहर उसे चढता नहीं।

मुमुक्षु :- देव-गुरुकी भक्तिको भी झहर कहना?

समाधान :- शुभभावकी अपेक्षासे कहनेमें आता है। आचार्यदेव कहते हैं, अमृतकुंभ और विषकुंभ जो प्रतिक्रमण (अधिकारमें) आता है। हम तो शुभभाव हैं उसको भी हमने तीसरी भूमिकाकी अपेक्षासे विषकुंभ कहा, तो अशुभभाव तो कहाँसे अमृत हो? हम तो ऊपर चढनेको कहते हैं, नीचे उतरनको नहीं कहते हैं। हम तीसरी भूमिकामें जानेके लिये कहते हैं कि शुभाशुभ भाव दोनों विभाव है। दोनों एक समान है। पर निमित्तसे होनेवाले मेरे स्वभावसे भिन्न हैं। इसलिये दोनों एक ही कोटिके हैं। ऐसा कहते हैं, वह तीसरी भूमिकामें निर्विकल्प दशामें तू जा और तू ऐसी सच्चा श्रद्धा कर कि ये दोनों आकुलतावाले हैं। सच्ची श्रद्धा, सच्ची परिणति अन्दरसे प्रगट कर और अमृतकुंभकी तीसरी भूमिका प्रगट करनेके लिये हम कहते हैं, परन्तु नीचे उतरनेके लिये नहीं कहते हैं। तू शुभ छोडकर अशुभमें जा, तो नीचे गिरनेको नहीं कहते हैं कि यह सब तो शुभ है, अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, इसलिये अशुभमें क्या हरकत है? तू शुभमें नहीं खड़ा रहेगा तो तेरी परिणति तो बाहर ही है, अशुभमें तो तेरी गति होनेवाली ही है। इसलिये तू तीसरी भूमिकाकी श्रद्धा रख। परन्तु वह परिणति तुझे प्रगट नहीं हो रही है तो उसकी जिज्ञासा कर, शुभभावको छोड़कर तू अशुभमें जा ऐसा ऐसा आचार्यदेवको नहीं कहना है।

देव-गुरु-शास्त्र, जिन्होंने मुक्तिका मार्ग बताया है, जिन्होंने सच्चा धर्म बताया है, जो अनादि कालसे जानता नहीं था, मार्ग सूझता नहीं था, ऐसा गुरुने बताया, ऐसा शास्त्रमें आया, जिनेन्द्र देवने बताया, जो साधना साध रहे हैं, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त की है, जो साधना करते हैं, ऐसे गुरु आत्मा कैसा हो, उसे देखनेके लिये एक आदर्श हैं, एक दर्पणरूप है, शुभभावमें स्वयंको उन पर भक्ति आये बिना नहीं रहती। स्वयं अपनेसे जानता नहीं है, परन्तु जो मार्ग दर्शाते हैं, उनकी अपूर्व परिणतिको देखनेके लिये, उसके लिये आदर्श हैं। इसलिये वह शुभभाव बीचमें आये बिना रहते नहीं। इसलिये

विवेक करके रहने जैसा है। दृष्टिमें ऐसा रखे कि शुद्धभाव सर्वस्व है-शुद्धात्मा। परन्तु वह उसमें पहुँच नहीं सकता है इसलिये आये बिना नहीं रहते। अशुभभावसे बचनेको शुभ आता है।

मुमुक्षु :- विवेक करना है।

समाधान :- विवेक रखना चाहिये। ... उसमें नहीं खडा रहेगा तो कहाँ जायेगा? तो अशुभमें गति-परिणतिकी गति तो चालू ही है। ऐसे नहीं होगा तो यहाँ जायेगा। इसलिये तू श्रद्धा बराबर रख कि यह सब मेरे शुद्धात्मासे भिन्न है। मेरा स्वभाव नहीं है, सब आकुलतारूप है। प्रवृत्ति है, आकुलता है, परन्तु उससे छूटकर इस ओर जायेगा तो अशुभमें जाना होगा। सांसारिक लौकिकके लिये तू कितना प्रयत्न करता है। शुभभावमें ऐसी भावना तुझे आये बिना नहीं रहेगी। क्योंकि जो सच्चा मार्ग बतानेवाले, आत्माका जो स्वरूप है उसे देखनेके लिये एक आदर्शरूप है, एक दर्पणरूप है, उनका अनादर करके इसमें जायेगा तो तुझे नुकसानका कारण होगा। व्यवहारसे आत्माकी महिमा लानेके लिये जो निमित्तरूप है, स्वयं विचार करे तो देव-गुरुकी महिमा, मेरा आत्मा कैसा है, वे क्या दर्शाते हैं, तेरे आत्माकी ओर मुड़नेका एक कारण होता है। परन्तु श्रद्धा बराबर रख।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०५९

समाधान :- .. तू देख, उसके लिये प्रयास कर, भेदज्ञानका अभ्यास कर। छः महिने तक अभ्यास कर। फिर होता है कि नहीं, तू देख। ऐसा शास्त्रमें आता है। आचार्यदेव कहते हैं, अरे..! भाई! तू देख। पडोसी होकर देख। अन्दर ज्ञायकदेव विराजता है। यह शरीर भिन्न, यह विभावस्वभाव तेरा नहीं है। तू उससे भिन्न (है)। यह शुभाशुभ भाव सब आकुलतारूप (है), उससे तू भिन्न है। ज्ञायककी श्रद्धा कर, उसमें लीनता कर, उसकी प्रतीति कर तो अंतरमें होता है कि नहीं तू देख।

जो अनादिका एकत्वताका अभ्यास है, स्वमें एकत्व और परसे विभक्त ऐसी श्रद्धा करके परिणति प्रगट कर तो फिर होता है कि नहीं तू देख। तू प्रसन्न हो। पुरुषार्थ कर तो हे सके ऐसा है। न हो ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- आचार्यदेव कहते हैं कि एकबार तू कुतूहल कर।

समाधान :- कुतूहल कर, उसमें आश्चर्य कर, तू देख अन्दर होता है या नहीं। तो तुझे हुए बिना रहेगा नहीं। तू स्वयं ही है। दूसरा कोई नहीं है कि वह स्वयंको गुप्त रखे। तू स्वयं ही है। अनन्त शक्तियोंसे (भरपूर) अनंत महिमावंत आत्मा तू ही है। उसे तू पहचान और उसका पुरुषार्थ कर। सावधान होकर पुरुषार्थ करके तू देख तो हुए बिना रहेगा नहीं।

काल कोई भी हो, काल उसे बाधा नहीं करता। आगे प्राप्त किया, निगोदमेंसे निकलकर ... भरतके घर पुत्र हुए और थोड़ी देरमें भगवानका उपदेश सुना और सम्यग्दर्शन एवं मुनिदशा आ गयी। तो आत्मा करे तो क्षणमात्रमें हो सके ऐसा है। एक अंतर्मुहूर्तमें भी हो सकता है। और अभ्यास करे तो लंबे समयके बाद हो सकता है। आचार्यदेव उग्र पुरुषार्थ करे उसे छः महिनेमें तू देख होता है या नहीं, ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। ऐसा तू उग्र पुरुषार्थ कर। तू बाहरमें पड़ा है, तेरी रुचि बाहर है। अंतरमें रुचि कर, अंतरकी श्रद्धा कर। तू उसमें जाकर देख। तुझे होगा ही, वही तेरा स्वभाव है, दूसरा कोई तेरा स्वभाव ही नहीं है।

मुमुक्षु :- कोई ऐसा कहता है कि ॐ कार भजनेसे निर्विकल्प दशा आ जाती है?

समाधान :- ॐ कार भजनेसे निर्विकल्पतामें आ सकता है, ऐसा हीं है। वह तो ध्यान-शुभध्यान है। ज्ञायकके अवलम्बनसे निर्विकल्पता होती है। ॐके ध्यानसे निर्विकल्पता नहीं होती। ऐसा नहीं है। ॐ तो भगवानकी वाणी है। ॐका ध्यान वह वाणीका ध्यान है। अन्दर साथमें ज्ञायकका ध्यान होना चाहिये। शुद्धात्माके ध्यानसे अन्दर जा सकता है, ॐके ध्यानसे नहीं जा सकते। वह तो वाणी है, भगवानकी वाणी है, ठीक है, शुभभाव है। ॐको याद करना शुभभाव है, परन्तु अन्दर शुद्धात्मामें जानेके लिये ज्ञायकका आश्रय (चाहिये)।

मुमुक्षु :- भाव और परिणाम किस प्रकारके होते हैं? भाव और परिणाम, जब आत्माको निर्विकल्प दशा होती है, उससे पहले।

समाधान :- वह तो उस सम्बन्धित ही होते हैं। उसे नाम क्या दे, भाव और परिणामको। ज्ञायककी ओर परिणति, ज्ञायकका अवलम्बन, ज्ञायककी श्रद्धा, ज्ञान, लीनता सब ज्ञायककी ओर है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन होता है तब किस प्रकारका आनन्द आता है?

समाधान :- स्वयं पुरुषार्थ करे, ज्ञायककी उग्रताका। स्वयंको पुरुषार्थकी ओर ही ध्यान होता है। ज्ञायककी उग्रताका पुरुषार्थ (होता है)। उसका नियम नहीं बाँध सकते। पुरुषार्त कब उठे? स्वयंको ऐसा होता है कि ज्ञायक करीब है। बाकी उसका नियम नहीं बाँध सकते।

मुमुक्षु :- ऐसा होता है क्या कि ज्ञायक समीप है?

समाधान :- समीप है, परन्तु स्वयंको विश्वास लाना... स्वयं तो पुरुषार्थकी धून, उसकी परिणतिमें जाता है। ज्ञायककी उग्रता, ज्ञायकके सिवा कोई रस नहीं है, ज्ञायककी ही महिमा, ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायकदेव है। दिव्य महिमाधारी। सब रस उड़ जाता है। अन्दर चैतन्यमें जिसको रस लग जाय, सबसे विरक्त होकर अंतरमें चला जाता है। कहीं उसे रस नहीं लगता, कोई विकल्पमें टिक नहीं सकता। ज्ञायककी धून लगे। ज्ञायकमें ... परन्तु ज्ञायककी ओर उग्रता (होती है)।

.. फिर १९८९की सालमें गुरुदेवके साथ चातुर्मास करने गयी थी। फिर तो १९९०की सालमें, और उसके बाद तो १९९१में यहाँ सोनगढ़में आ गये। गुरुदेवने परिवर्तन किया उसके बाद यहाँ आ गये। पहले वांकानेरमें थे। लाठीना उतारामें थे। १९९१ से १९९३।

.. गुरुदेवकी वाणी ही ऐसी अपूर्व थी। गुरुदेव इस पंचमकालमें जन्मे, महाभाग्य! गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य स्वयं यहाँ पधारे वह महाभाग्यकी बात है। उनकी ऐसी वाणी सबको सुनने मिली। बरसों तक वाणी बरसायी है। ऐसा इस कालमें बनना मुश्किल। ४५-४५ साल तक सब मुमुक्षुओंको उनकी वाणी मिली। उनका सान्निध्य मिला, महाभाग्य

है। गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य तो कोई अलग ही था।

मुमुक्षु :- आपश्रीने प्रकाशित किया।

समाधान :- उनको ऐसा लगता था कि, मैं तीर्थंकर हूँ। तीर्थंकरके स्वप्न आते थे कि मैं तीर्थंकर हूँ। तीर्थंकरके स्वप्न गुरुदेवको आते थे। उनको तो पहले आता था। मुझे तो बादमें आया, परन्तु उनको तो पहले आता था।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने उस वक्त तो कुछ बाहर नहीं कहा था।

समाधान :- वह बात किसीको नहीं कहती हूँ, यह गुरुदेवकी बात ही कहती हूँ कि यह गुरुदेव भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं। यहाँ पधारे, वह महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव यह शब्द बोले न, त्रिलोकीनाथने टीका लगाया।

समाधान :- स्वंयने कहा कि त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, अब तुझे क्या चाहिये? विदेहक्षेत्रमें सीमंधर भगवानने कहा कि यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं। वह बात गुरुदेवने सुनी। इसलिये कहा कि त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, अब क्या चाहिये? ऐसा गुरुदेवने कहा।

मुमुक्षु :- बहुत जबरजस्त बात है।

समाधान :- विदेहक्षेत्रमें भगवान विराजते हैं। गुरुदेवके स्वप्न आते थे। स्वयं राजकुमार हैं। तीर्थंकरत्वके स्वप्न उन्हें आते थे। उनको यह सब स्फुरणा होती थी। सीमंधर भगवान साक्षात् विदेहक्षेत्रमें विराजते हैं। उनकी वाणीमें आया कि यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाला है। गुरुदेवने सुना, इसलिये कहा, त्रिलोकीनाथने टीका लगाया, अब क्या चाहिये?

मुमुक्षु :- .. चलती थी और स्वयंको..

समाधान :- गुरुदेवने बादमें कहा कि मुझे तीर्थंकरके स्वप्न आते हैं। मुझे तो मालूम भी नहीं था कि गुरुदेवको तीर्थंकरके स्वप्न आते हैं। यहाँ तो कुदरती सहज आया।

मुमुक्षु :- गुरुदेवको ॐ ध्वनि भी वांकानेरमें ही आया न।

समाधान :- हाँ।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शनके पहले भी १२ साल पहले।

समाधान :- हाँ। ॐ ध्वनि, (संवत) १९७७की सालमें। ॐ ध्वनि पहली बार वांकानेरमें, दूसरी बार उमरालामें, तीसरी बार विंछीयामें। तीन बार (आया)। विंछीयामें थोड़ा ज्यादा आया, परन्तु शुरुआत वांकानेरसे हुयी। १९७७.

मुमुक्षु :- ऐसे तीर्थंकर भगवान जब ॐ कार फरमाये, तब वाणी झेलनेवाले भी..

मुमुक्षु :- बहिनश्री प्रमुख श्रोता थे। हमें तो उनके हिसाबसे सब लाभ मिला।

समाधान :- गुरुदेवने तो अपूर्व वाणी बरसायी है। महापुरुष जन्म ले, उनके पीछे कितने ही होते हैं। गुरुदेवके पीछे। गुरुदेवको अनेक प्रकारके स्वप्न तीर्थंकरत्व सम्बन्धित आते थे। तीन लोकको गुरुदेव आह्वान करते हैं, यहाँ आओ, हितके लिये। तीन लोक। मात्र भरत क्षेत्रको ही नहीं, तीन लोकको आह्वान कौन करे? स्वयं तीन लोकसे उत्कृष्ट हो तो मारे न। स्वयं सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकरका द्रव्य हो उसे ही ऐसा आये। तीन लोकको आह्वान करे कि हितके लिये यहाँ आओ। ऐसे स्वप्न गुरुदेवको तीर्थंकरत्व सम्बन्धित स्वप्न बहुत आते थे।

मुमुक्षु :- स्वाध्याय मन्दिरमें .. आप बैठे हो और समवसरणमें जा रहे हो, वह दृश्य तो इतने सुन्दर लगते हैं...

समाधान :- गुरुदेवके पास बहुत सुना है। भगवान विराजते हैं, मुनिओंका झुंड विचरता है, दिगंबर मुनिओंका। मार्ग चालू है, चतुर्थ काल वर्तता है। यहाँ पंचम कालमें मुनिओंके दर्शन तो दुर्लभ है। यह महाभाग्य, गुरुदेव पधारे वह महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- सीमंधर भगवान उस वक्त क्या करते थे? कैसे थे?

समाधान :- क्या करते हो? समवसरणें बैठे हो। उनको करना तो कुछ नहीं है। कृतकृत्य हो गये हैं, वीतराग हो गये हैं। उन्हें कुछ करना नहीं होता। दिव्यध्वनिका काल हो उस वक्त दिव्यध्वनि छूटती है। बाकी वे तो आत्मामें विराजते हैं। उन्हें बाहरका कुछ नहीं है। शरीरमात्र है। बाकी आत्मामें विराजते हैं। उनके देहका दिदार भी अलग, सब अलग। कैसे लगते हैं? उसे क्या कहे?

मुमुक्षु :- महाविदेहके राजकुमार और वर्तमानके गुरुदेव, इन दोनोंके बाह्य आकारमें तो बहुत फ़र्क़ होता है न? राजकुमार है इसलिये झरीयुक्त वस्त्र पहने हो और वर्तमानमें गुरुदेव बाल ब्रह्मचारी, तो कैसे मालूम पड़े?

समाधान :- वह जातिस्मरणका ही विषय है। मति निर्मलमें जातिस्मरणमें जाननेमें आता है। शास्त्रोंमें नहीं आता है? कि मैंने इसे इतने भव पहले देखा है। ऐसा शास्त्रोंमें आता है। शास्त्र विरूद्ध कुछ नहीं है।

मुमुक्षु :- आपने उस दिन कहा था न कि गुरुदेवका विहार हो तब ऐसा होता था कि इनको पहले देखा है।

समाधान :- हाँ। गुरुदेवको कहीं देखा है, ऐसा होता था। पहले मैं कहती थी, सूरतमें कहती थी, हिंमतभाईको कहती थी। गुरुदेवको कहीं देखा है। जातिस्मरण.. यह है, उनको मैंने (देखा है)। पूर्वमें थे, आहार देते हैं, सब आता है। जातिस्मणरके एसे बहुत दृष्टांत आते हैं।

मुमुक्षु :- स्वयंने जो देखा हो वह जातिस्मरणमें स्पष्ट दिखाई दे।

समाधान :- स्पष्ट आता है। वह कुछ ज्यादा नहीं कहना है। समय हो गया है।

मुमुक्षु :- शुद्धात्माका आलंबन अभिप्रायमें होता है? ज्ञानमें रहता है कि ध्यानके कालमें होता है? आलम्बन लेना माने क्या?

समाधान :- गुरुदेवने मार्ग बताया है। ज्ञायकका आश्रय लेना। आलम्बन लेना अर्थात् ज्ञायकको ग्रहण करना। अभिप्राय श्रद्धामें होता है, ज्ञानमें होता है और ध्यानके कालमें भी होता है। हर समय ज्ञायकका आश्रय होता है। ज्ञायक बिनाकी परिणति होती ही नहीं, ज्ञायकके आश्रय बिनाकी। ध्यानकाले उसे विशेष लीनता होती है, इसलिये विशेष लीनता होती है। अधिक आश्रय लेता है। बाकी आश्रय तो सबमें होता है। श्रद्धामें होता है, ज्ञानमें होता है और ध्यानकालमें भी होता है। कोई बार आलम्बन न हो तो उसे साधकदशा ही नहीं कहते। जिसमें ज्ञायक नहीं है, जिसमें ज्ञायकका आश्रय नहीं है, ज्ञायककी परिणति यदि मौजूद नहीं है, भले बाहरमें हो या अंतरमें हो, निर्विकल्प हो या सविकल्प हो, परन्तु यदि ज्ञायककी परिणति मौजूद नहीं है तो वह साधकदशा ही नहीं है।

उपयोग बाहर आये तो उसे एकत्व नहीं होता, भिन्न ही भिन्न रहता है, ज्ञायक ज्ञायक ही रहता है। श्रद्धामें, ज्ञानमें, सबमें उसे ज्ञायकका ही अवलम्बन होता है। मेरे दर्शनमें भी आत्मा, मेरे ज्ञानमें भी आत्मा, सबमें आता है। 'मुझ ज्ञानमां आत्मा खरे, दर्शन, चरितमां आत्मा, पच्चखाणमां आत्मा, संवर योगमां पण आत्मा'। सबमें आत्माकी ही परिणति है, ज्ञायककी। मैं तो जहाँ देखुँ वहाँ ज्ञायकको ही देखता हूँ। ज्ञायकके सिवा मुझे कुछ दिखाई नहीं देता। जहाँ देखूँ वहाँ भगवान जिनेन्द्र देवको देखुँ, ऐसे जहाँ देखुँ वहाँ मैं ज्ञायकदेवको देखुँ। मेरी साधकदशामें ज्ञानकी आराधनामें, दर्शनकी आराधना और चारित्रकी आराधनामें, ध्यानकालमें मेरा ज्ञायक ही होता है।

ज्ञायकका अवलम्बन तो छूटता नहीं है। उसकी लीनता ध्यानके कालमें अधिक होती है। बाकी ज्ञायक.. ज्ञायक, उसकी ज्ञायककी परिणति तो सदा काल चालू ही रहती है। जो शुभका आचरण हो, पंच महाव्रतके परिणाम हो, मुनिओंको किसका शरण है? ज्ञायकका शरण है। वह स्वयं अपनेमें-ज्ञान ज्ञानमें आचरण करता हुआ उसमें परिणमन करे। ज्ञायक ज्ञायकमें परिणमन करता है। छठ्ठा हो इसलिये पूरी दशा, स्वरूपकी संपूर्ण दशा नहीं है, परन्तु अभी अधुरापन है। उपयोग बाहर आये इसलिये नय, प्रमाणके विकल्प आते हैं। दृष्टि तो ज्ञायक पर है। इसलिये उसे शुद्धनय, विकल्प रहित शुद्ध परिणति है। प्रमाणकी अमुक परिणति है। ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमता है। लेकिन उपयोगरूप उसे नय, प्रमाणके विकल्प साथमें आये बिना रहते नहीं।

श्रुतका विचार करे, नय, प्रमाण, वस्तुका स्वरूप, द्रव्य-गुण-पर्यायके विचार आये, अनेक प्रकारके उसे विचार आते हैं। साधकदशा अधुरी है, अभी पर्याय अधुरी है, अधुरी पर्याय, पूर्ण पर्याय सबके विचार आते हैं। छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान, मुनिकी दशा कैसी हो, केवलज्ञान कैसा हो, उन सबका विचार (आते हैं)। पर्याय अधूरी है, आचार्यदेव कहते हैं, अरे..रे..! अभी पूर्णता नहीं हुयी है, इसलिये हम इस व्यवहारमें खड़े हैं। अभी यह पर्याय अधूरी है। खेद है कि उसमें आना पड़ता है। पर्याय अधूरी है, इसलिये नय, प्रमाणके विचार उसे आते हैं, आये बिना रहते नहीं। पूर्ण दशा नहीं हुयी है।

सुवर्ण सोलह वाल शुद्ध हो गया, उसे कोई जरूरत नहीं है। जो पूर्ण वीतराग हो गये, पर्यायमें पूर्ण वीतराग और वस्तु तो वीतरागस्वरू है। पूर्ण शुद्धात्मा है। परन्तु पर्यायमें भी जो पूर्ण वीतराग हो गये, उन्हें कुछ नहीं होता। परन्तु जिसे अधूरापन है, बीचमें साधकदशा है, अभी लीनता बाकी है, चारित्रदशा बाकी है, इसलिये मुनि हो तो भी, उन्हें भी नय, प्रमाणके विचार आते हैं। शास्त्र लिखे, अनेक जातके देव-गुरु-शास्त्रके विचार होते हैं। पंच महाव्रतके परिणाम होते हैं। बीचमें नय, प्रमाण वस्तुको जाननेके लिये, नय-प्रमाण आये बिना रहते नहीं, विकल्परूपसे।

दृष्टिमें ज्ञायकको ग्रहण किया वह परिणति तो चालू ही है। मुनिको छठ्ठे गुणस्थान अनुसार चालू है और चौथे गुणस्थानमें उसकी दशा अनुसार उसे चालू है। मुनिकी लीनता ज्यादा है, इसकी अमुक लीनता कम है। परन्तु श्रद्धा और ज्ञान और अमुक स्वरूपाचरण चारित्र है। मुनिको विशेष है। मुनिकी दशा अनुसार, मुनिको भी श्रुतके विचार तो आते हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६०

मुमुक्षु :- नय, निक्षेप और प्रमाण जो अस्त हो जाते हैं अनुभूतिके कालमें, अनुभूतिके कालमें नय, निक्षेप, प्रमाण अस्त हो जाते हैं, वह विकल्परूपसे अस्त हो जाते हैं, परन्तु निर्विकल्परूपसे तो तब होते हैं न?

समाधान :- निर्विकल्परूपसे उसे शुद्ध परिणति है। द्रव्य पर जो दृष्टि है वह दृष्टि निर्विकल्परूपसे है और ज्ञान स्वयंको जानता है, ज्ञान अपने अनन्त गुणोंको जानता है, ज्ञान पर्यायको भी जानता है। ज्ञान अपनी परिणतिको जानता है, ज्ञान गुणोंको जानता है। वह उसकी जाननेकी परिणति और दृष्टि एक शुद्धात्मा पर, उस जातकी उसकी परिणति चालू है। नय और प्रमाण चालू है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्परूपसे?

समाधान :- निर्विकल्परूपसे निर्विकल्प नय, प्रमाण। वह अपेक्षासे कह सकते हैं। बाकी जो शास्त्रमें आता है विकल्पात्मक नय, प्रमाण, उस प्रकारसे नहीं होते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे उस जातकी परिणति है। एक द्रव्यका आलम्बन है, इसलिये विकल्पात्मक नहीं है। और ज्ञान सब जानता है। ज्ञान स्वयं एक स्वरूपको जाने, एक अभेदको जाने, ज्ञान भेदको जाने, सब जाने। आनन्दकी दशाका वेदन हो उसे ज्ञान जाने। आत्मामें अनन्त-अनन्त गुणोंकी गंभीरतासे भरा अनंत आश्चर्यकारी द्रव्य है, उसकी अद्भुत पर्यायें, उसके अद्भुत गुणोंकी जो गहनता है, वह सब जाने। उसकी अद्भुतताको ज्ञान जानता है।

मुमुक्षु :- सत्संग बिना ध्यान तरंगरूप हो जाता है। तो ज्ञानीकी निश्रामें रहकर ध्यान करनेमें कोई दिक्कत है?

समाधान :- सत्संग बिना ध्यान तरंगरूप होता है। गुरुके आश्रयमें गुरुने जो मार्ग बताया है, वह मार्ग ग्रहण करके ध्यान करे तो उसमें कोई दिक्कत नहीं है। गुरुने जो मार्ग बताया है कि तू ज्ञायकको ग्रहण कर। पहले सच्चा ज्ञान कर, फिर सच्चा ध्यान होता है। सच्चा ज्ञान जो गुरुने बताया, गुरुदेवने महान उपकार किया है। भवका अभाव हो ऐसा मार्ग बताया। चैतन्यकी अद्भुतता, चैतन्यके द्रव्य-गुण-पर्याय, स्वद्रव्य-परद्रव्य, उसकी भिन्नता, स्वतंत्रता, अनेक प्रकारसे गुरुदेवने महान-महान उपकार करके जो बताया

है, गुरुका आशय समझकरे गुरुदेवने जो मार्ग बताया है, उस मार्ग पर स्वयं जाय तो उसमें दिक्कत नहीं है।

गुरुका आश्रय करे। गुरुका आश्रय किया कब कहनेमें आये? कि उनका आशय ग्रहण करके जो उन्होंने कहा है, उस अनुसार स्वयं करे तो पहले सच्चा ज्ञान होता है, फिर सच्चा ध्यान होता है। पहले जो बिना ज्ञानके ध्यान होता है, तो कहाँ खड़ा रहेगा? क्योंकि ध्यानकी एकाग्रता किसके आश्रयसे करेगा? जो अस्तित्व आत्माका है, उस आत्माका अस्तित्व ग्रहण किये बिना कहाँ स्थिर खड़ा रहेगा? कहाँ वह स्थिरता करेगा?

ऐसे तो बहुत लोग करते हैं। कोई-कोई मन्त्रोंमें विकल्प कम करे, ऐसा सब करते हैं। विकल्प कम हो जाय इसलिये उसे ऐसा लगता है कि मानो ध्यान हो गया। मन्द विकल्पको पकड़ नहीं सकता है। कोई प्रकाश दिखे, कुछ दिखे तो मानो आत्मा मिल गया, ऐसा मान लेते हैं। ऐसी कल्पना हो जाती है। आत्माको पहचाने बिना, आत्माका आश्रय लिये बिना (ध्यान होता नहीं)।

गुरुदेवने जो मार्ग कहा है, उस मार्गको ग्रहण करके गुरुदेवके आश्रयसे ध्यान करे, उसमें यथार्थ करे तो दिक्कत नहीं है। आशय ग्रहण करके (करे)। ध्यान होता है। सच्चा ज्ञान (पहले) होता है। मैं यह ज्ञायक ही हूँ, ऐसी श्रद्धा करे, उसका ज्ञान करे, भेदज्ञान करे कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, यह सब शुभाशुभ भाव आकुलतारूप है, उससे मैं भिन्न हूँ। ऐसे बराबर ज्ञायकको ग्रहण करके उसमें एकाग्रता करे।

ध्यान अर्थात् एकाग्रता। ऐसी एकाग्रता करे तो यथार्थ होता है। बाकी तो अनेक बार 'यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लियो'। मुनि हुआ, वनवासमें रहा, मुख मौन रहा, आसन-पद्मानस लगाकर ध्यान किया। तो भी मार्ग नहीं प्राप्त होता है। आत्माको ग्रहण किये बिना, ज्ञायकको ग्रहण किये बिना ध्यान नहीं हो सकता है। परन्तु गुरुका आश्रय यथार्थ करे तो वह मार्ग मिलता है। गुरुने जो कहा है, उसी अनुसार करे तो मार्ग प्राप्त हुए बिना रहता नहीं। तो सच्चा ध्यान होता है।

ध्यान होता है, मार्गमें एकाग्रता होती है। ज्ञायकको ग्रहण करे, श्रद्धाके बलपूर्वक आत्मामें एकाग्रता हो, ऐसी ध्यानकी दशा हो तो विकल्प टूटकर आत्माकी स्वानुभूति हो, वह मार्ग है। परन्तु आत्माको ग्रहण करके हो तो यथार्थ होता है। बाकी मुनिओंको तो ध्यानकी दशा होती है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद सहज ध्यानकी दशा होती है। ऐसी ध्यानकी दशा होती है कि अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें निर्विकल्प दशामें चले जाते हैं। अंतर्मुहूर्तमें बाहर आते हैं। ऐसी सहज ध्यानकी दशा, ऐसी एकाग्रताकी परिणति मुनिओंको सहज

होती है। ऐसी ध्यानकी दशा तो पूर्णता तक होती है।

फिर मुनिको ध्यान बहुत उग्र हो जाय तो उसमेंसे श्रेणि लगाकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। ऐसी ध्यानकी दशा मुनिओंको प्रगट होती है। गृहस्थाश्रममें ध्यान होता है, परन्तु ज्ञायकको ग्रहण करके (होता है)। (ज्ञायकको) ग्रहण करके मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी ज्ञायककी परिणति दृढ़ करके, उसका आश्रय लेकर उसका ध्यान करे तो उसमें निर्विकल्प स्वानुभूति (होती है)। स्वयं अपने स्वरूपमें लीन हो, वह हो सकता है। परन्तु गुरुदेवने जो कहा है, वह आशय ग्रहण करके, वह मार्ग ग्रहण करके जो करे तो यथार्थ होता है। नहीं तो बाहरसे शुभभावरूपसे जीवने अनेक बार किया है। परन्तु वह शुभभावरूप होता है, पुण्यबन्ध होता है, लेकिन भवका अभाव नहीं हो सकता। इसलिये गुरुका आशय, आशय ग्रहण करके करे तो यथार्थ होता है।

मुमुक्षु :- हे पूज्य माताजी! आजका दिन महामंगल है। क्योंकि आजके दिन आपने शुद्धात्मस्वरूप भगवान आत्माके साक्षात् दर्शन किये, आप विकल्पातीत हुए, पवित्र सम्यग्दर्शन प्रगट किया, तो हमारी विनती है कि विकल्पातीत होनेका उपाय क्या है? यह बताकर आप हमें आशिर्वाद दीजिये।

समाधान :- गुरुदेवने मार्ग स्पष्ट किया है। गुरुदेवका परम-परम उपकार है। गुरुदेवने ही पूरा मार्ग बताया है। स्वयं विचार करे तो समझमें आये ऐसा है। गुरुदेवने इतना स्पष्ट किया है। गुरुदेवने ज्ञायककी पहचान करवायी। सब गुरुदेवका परम-परम उपकार (है)। इस दास पर भी गुरुदेवका परम उपकार है।

गुरुदेवने कहा है और शास्त्रमें भी आता है कि पहले श्रुतज्ञानसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निर्णय, यह ज्ञायक है वही मैं हूँ, उसका निश्चय ऐसा दृढ़ करे कि इन सबसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ। यह शरीर भी मैं नहीं हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, उससे भिन्न ऐसा ज्ञानस्वभाव (है)। ज्ञानमें अर्थात् पूर्ण ज्ञायक ऐसा निर्णय करके, ऐसा निश्चय करे कि वह ऐसा निःशंक हो जाय कि कोई चाहे कुछ भी कहे अथवा चौदह ब्रह्माण्ड फिर जाय, तो भी उसकी दृढ़ता फिरे नहीं। ऐसा निःशंक हो जाय। ऐसा ज्ञातामें श्रद्धाका बल लाये। उस बलसे ज्ञायककी दृढ़ता करके, ज्ञायकमें उग्रता करे, विभावसे विरक्ति हो, चैतन्यकी-ज्ञायककी महिमा आये, परसे, विभावसे सबसे महिमा छूट जाय। एक ज्ञायककी महिमा, ज्ञायककी रात और दिन लगनी, जिसे ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायकदेवके सिवा कहीं चैन नहीं पड़ती।

भेदज्ञानकी धारा उग्र हो, क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें ज्ञायककी उग्रता हो। ज्ञायककी उग्रता, ज्ञायकमें एकाग्रता, ज्ञायककी धून और ज्ञायकमें बारंबार ज्ञायक.. ज्ञायक.. करे। जो मति-श्रुतका उपयोग बाहर जाता है, बाहर जो विचार और श्रुतके विचार आते

हैं, उसे भी स्वयं स्थिर करके स्वरूप सन्मुख जो उपयोगको स्थिर करता है, स्वरूपमें लीन होता है, स्वरूपमें जम जाता है, बाहरमें जिसे कहीं भी चैन नहीं पड़ती, ज्ञायकमें एकाग्रता, ज्ञाताकी उग्रता और उसीमें स्थिर हो जाय। जो ज्ञायककी डोरको स्वरूपकी ओर, स्वरूप सन्मुख करके ज्ञायकमें स्थिर हो जाता है। बारंबार उपयोगकी डोर, ज्ञायककी डोर स्वरूपमें लीन करता है। वह विकल्पातीत होनेका उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

बारंबार स्वरूपमें स्थिर हो जाय तो उसके विकल्प छूटे और ज्ञायकदेव उसे प्रगट हो। उस ज्ञायकदेवमें ही सब भरा है। बाहर कहीं नहीं है। आनन्द उसमें, अनन्त गुण उसमें, सब (उसीमें है)। जगतसे भिन्न ऐसा ज्ञायकदेव, जो भवका अभाव हो, अंतरमेंसे अनन्त सुख प्रगट हो, जो अपना स्वभाव है वही सुखरूप है। शास्त्रमें आता है कि उतना ही सत्य परमार्थ है कि जितना यह ज्ञान है। जितना यह ज्ञान है उतना ही तू है। वही सत्य परमार्थ है, उसीमें तू संतुष्ट हो, उसीमें तू रुचि कर। ज्ञानमें सब भरा है। अनन्त महिमावंत ज्ञायक स्वभाव, महिमासे भरा, जगतसे भिन्न ऐसा अनुपम तत्त्व है। ज्ञानस्वभावमें ऐसा निश्चय करके उसमें संतुष्ट हो।

उतना ही सत्य कल्याण है कि जितना यह ज्ञान है। अन्यकी महिमा छोड़कर ज्ञायकमें लीन हो। उतना ही सत्य परमार्थ, उतना ही कल्याण (है)। उसीमें तू संतुष्ट हो। तेरे अंतरमें उपयोगको ऐसा लीन कर, ऐसा लीन कर कि जिसे बाहर जाना रुचता नहीं। ऐसी लीनता कर। वही विकल्प छूटनेका उपाय है। ऐसा करते-करते अंतरमें ऐसी कोई लगनी लगनेसे, अंतरमें ऐसी विश्रांतिकी परिणति होनेसे ज्ञायककी डोर स्वरूप सन्मुख आनेसे ऐसी विश्रांति और ऐसी शांति उसे प्रगट होती है कि विकल्प छूट जाय और ज्ञायकका कोई अनुपम अनुभव, अनुपम आनन्द, अनुपम स्वाद (आता है)।

ज्ञायकदेव जगतसे भिन्न, ऐसा न्यारा वह ज्ञायकदेव उसे इस प्रकार प्रगट होता है। गुरुदेवने वह मार्ग ऐसा स्पष्ट करके समझाया है, कहीं शंका रहे ऐसा नहीं है। पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना है। गुरुदेवने उसे चारों ओरसे समझाया है। गुरुदेवका परम-परम उपकार है और वही जीवनमें करने जैसा है।

श्रुतज्ञानसे निश्चय करके मति-श्रुतका उपयोग जो बाहर जाता है, उसे अंतरमें लाकर आत्माकी प्रसिद्धि हो, ऐसा पुरुषार्थ कर। तो ज्ञानस्वरूप ज्ञानात्मा, परमात्मा तुझे प्रत्यक्ष अनुभवमें आयेगा और वह तुझे दिखेगा। ऐसा जो आत्मा अलौकिक है, परन्तु उसकी भेदज्ञानकी धाराकी उग्रता कर। द्रव्य पर दृष्टि कर, उसका ज्ञान कर और उस ओर बारंबार स्थिर होनेका प्रयत्न कर तो तुझे वह हुए बिना रहेगा नहीं।

शास्त्रमें आता है कि एक बार तू (शरीरका) पडोसी बनकर देख, तो तुझे अंतरमें

ऐसा कोई अपूर्व चैतन्यदेव प्रगट होगा कि जो अनुपम है। वही उसका उपाय है। भगवान कैसे मिले? चैतन्यदेव कैसे प्राप्त हो? 'कंचन वरणो नाह मुने कोई मिलावो' कहीं अच्छा नहीं लगता। 'अंजन रेख न आँख न भावे' कहीं अच्छा नहीं लगता है, किसीके साथ बोलना अच्छा नहीं लगता, खाना अच्छा नहीं लगता, किसीके प्रति राग करना रुचता नहीं, कहीं फिरना अच्छा नहीं लगता, कहीं चैन नहीं पड़ती है। एक आत्मा, एक आत्मदेव मुझे कोई मिलावो। हे गुरुदेव! मुझे वह मिलावो। वह तो कोई अलग ही था। अन्दर ऐसी भावना, लगनी लगे तो ऐसी भावना होती है। अन्दर वेदनके कारण ऐसा सब गानेमें आता था।

समाधान :- द्रव्य उसकी नाम है कि दूसरे भावकी राह नहीं देखनी पड़े। दूसरेकी राह देखनी पड़े तो द्रव्य कैसा? द्रव्य ऐसा स्वतंत्र स्वतः स्वरूप होता है कि जिसके कार्यके लिये दूसरे साधनोंकी राह देखनी पडे तो वह द्रव्य स्वयं कमजोर हुआ। वह स्वयं स्वतंत्र अनन्त शक्तिवाला द्रव्य (है)। द्रव्य उसे कहते हैं कि जो स्वतःसिद्ध हो। उसे किसीने बनाया नहीं है। अनन्त शक्ति संपन्न जो चैतन्य द्रव्य है, उसे कार्यकी, जो अपनी परिणति प्रगट करनी है, उसके लिये साधन आये तब यह कार्य हो, साधन नहीं है तो कार्य कैसे हो? ऐसे राह देखनी पड़े तो द्रव्य ही नहीं कहलाता। ऐसी राह नहीं देखनी पड़ती।

उसके कार्यकी तैयारी हो तो उसे साधन स्वतः आ जाते हैं। उसे साधनोंकी राह देखनी पड़े, साधन नहीं है, अब कैसा आगे जाऊँ? साधनोंकी राह देखनी नहीं पडती। स्वयं परिणति करनेवाला जो द्रव्य है, स्वयं ही उसकी कार्यकी परिणति होती है। अनादिअनन्त स्वतःसिद्ध शुद्धात्मा स्वयं (है)। उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी जो साधना होती है, उसकी कार्यकी परिणति करनेवाला वह स्वयं है। स्वयं स्वतःसिद्ध कार्यकी परिणति करता है। साधनके बिना मैं कैसे आगे जाऊँ? उसे द्रव्य ही नहीं कहते। ऐसा द्रव्य वह द्रव्य नहीं है। ऐसा पराधीन द्रव्य (नहीं है)।

द्रव्य उसे कहें कि उसके कार्यके लिये दूसरेकी राह देखनी पड़े, वह द्रव्य ही नहीं कहलाता। ऐसा द्रव्य हो नहीं सकता। कुदरती स्वयं द्रव्य स्वतःसिद्ध है। उसे दूसरे साधन हो तो वह द्रव्य खड़ा रहे, ऐसा नहीं होता। अनादिसे स्वयं अपनेसे ही शाश्वत टिका है और उसकी कार्यकी परिणतिमें स्वयं अनादिसे स्वतंत्र (है), प्रत्येक कार्यमें स्वतंत्र है। उसे साधनोंकी राह देखनी पड़े तो उसे द्रव्य ही नहीं कहते।

अन्दरसे सम्यग्दर्शन प्रगट हो, द्रव्यका आश्रय ले, उस रूप ज्ञानकी परिणति हो, अन्दर लीनता बढ़े, वह सब स्वयं परिणमन करनेवाला है। अपनी परिणतिकी गति, पुरुषार्थकी गति वह स्वयं करता है। उसमें उसकी परिणति हो, ऐसी परिणति हो और साधन

आये नहीं, ऐसे उसकी राह नहीं देखनी पड़ती। वह द्रव्य ही नहीं कहलाता। ऐसा पराधीन द्रव्य हो सकता नहीं। वह द्रव्य ही नहीं कहलाता। कुदरतमें ऐसा द्रव्य होता ही नहीं। पराधीन द्रव्य (नहीं होता)। उसकी कार्यकी परिणति हो तो अपनेआप साधन आ जाते हैं, उसे राह नहीं देखनी पड़ती। स्वयं अपनेमें परिणति करनेवाला है।

.. पूरा चक्र अपनेसे ही चल रहा है। कर्मके कारण होता नहीं अथवा साधन नहीं मिले हैं, ऐसा नहीं है। स्वयंकी कचासके कारण स्वयं अटका है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो स्वयं आगे बढ़ता है। उसके कार्यके लिये किसी भी साधनकी जरूरत पड़ती नहीं। साधनके लिये रुकना पड़े तो वह द्रव्य ही नहीं है। और ऐसा पराधीन द्रव्य हो ही नहीं सकता।

मुमुक्षु :- द्रव्य कमजोर हो गया।

समाधान :- द्रव्य कमजोर हो गया। ऐसा कमजोर द्रव्य होता ही नहीं। ऐसा दूसरेके आधारसे टिकनेवाला द्रव्य, ऐसा द्रव्य शाश्वत रह नहीं सकता, उस द्रव्यका नाश होता है। (अनन्त गुणोंसे) भरपूर द्रव्य स्वयं जब भी परिणति करनी हो तब कर सकता है। अपने स्वभावकी ओर जानेकी तैयारी हो, तो आपोआप सब निमित्त उसे प्राप्त हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- .. कमजोर पड़ जाय, ..

समाधान :- द्रव्य कमजोर पड़ गया। ऐसा कमजोर द्रव्य होता ही नहीं। एक साधनके लिये कमजोर पड़ गया। साधनके लिये कमजोर होता हो तो कमजोर ही रहेगा। वह कहाँ शक्तिवान हुआ? ऐसा द्रव्य ही नहीं होता, उसे द्रव्य ही नहीं कहते। ऐसा हो सकता नहीं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६१

मुमुक्षु :- .. यथार्थ ज्ञान तो उसके साथ होता ही है। परन्तु इसके अतिरिक्त यह हितरूप और अहितरूप, अर्थात् सुख और दुःख, आश्रयकी अपेक्षासे जो हितरूप है वह मैं हूँ, जो हितरूप नहीं है वह सब मुझसे भिन्न है। अर्थात् उत्पाद-व्यय भी इस अपेक्षासे .. क्योंकि उसका आश्रय करने जाय तो वहाँ भी उसे विकल्प उत्पन्न होता है, दुःख उत्पन्न होता है। ज्ञायकका आश्रय करे तो उसे जो प्रयोजन प्राप्त करना है, सुख और शांति प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जो श्रद्धामें बल आता है, ज्ञानमें तो..

समाधान :- विचार करनेमें तो कोई दिक्कत नहीं है। एक द्रव्यका ही आश्रय लिया, एक द्रव्य ही आश्रयभूत है। पर्याय तो आश्रयभूत नहीं है। परन्तु उसे ज्ञानमें भले ख्यालमें है कि द्रव्य और पर्याय दोनों द्रव्यका ही रूप है। द्रव्य ही है। परन्तु जो शाश्वत टिकनेवाला है वह आश्रयरूप है। और वह हितरूप इस प्रकार है कि उसका आश्रय लेनेसे पर्यायमें निर्मलता आती है। परन्तु जो उत्पाद होता है, वह सर्वथा अहितरूप नहीं है। उसे ज्ञानमें उतना ख्याल होना चाहिये कि वह सर्वथा अहितरूप नहीं है। उत्पाद तो निर्मल पर्यायका भी होता है। और वह निर्मल पर्याय सुखरूप भी है। क्योंकि जो प्रगट होती है वह सुखका कारण होती है। आनन्दका वेदन पर्यायमें आता है। इसलिये वह सुखका कारण है। अर्थात् सर्वथा अहितरूप नहीं है। अमुक अपेक्षासे है।

मुमुक्षु :- आश्रयकी अपेक्षासे अथवा उसका लक्ष्य करनेसे विकल्प उत्पन्न होता है, ऐसी समझनपूर्वक अहितरूप है।

समाधान :- लक्ष्य करना या उसका आश्रय करना वह हितरूप नहीं है, परन्तु द्रव्यका आश्रय करना वही कल्याणका कारण है। वही आश्रयरूप है। उसके आश्रयसे ही सब प्रगट होता है। उसमें कोई भी भाषा (आये), हित-अहित, लेकिन उसे ख्याल रहे कि यह पर्याय, निर्मल पर्याय चैतन्यमें प्रगट होती है। इतना उसे ख्याल होना चाहिये।

भेदज्ञान करे कि यह विभावपर्याय मैं नहीं हूँ, वह तो मेरा स्वभाव ही नहीं है। और उस भेदज्ञानका जो जोर है कि यह द्रव्य और यह विभावपर्याय, इन दोनोंका स्वभावभेद (है)। उसका जो बल है वह बल तो एकदम (होता है)। फिर यह निर्मल पर्याय (होती है), वह कोई अपेक्षासे, मैं शाश्वत हूँ उसका भेदज्ञान, उससे जो भिन्न

पड़े उसके जोरमें और विभावसे भिन्न पड़े उसके जोरमें, उस जोरमें उसे ख्याल होता है, उस जोरमें उसे फ़र्क़ पडता है। पहलेवाला जोर तो अत्यंत भिन्न हूँ, ऐसा जोर आता है। और निर्मल पर्यायमें अत्यंत भिन्न हूँ, ऐसा नहीं आता है। परन्तु अपेक्षासे अंश है और मैं यह त्रिकाली हूँ। ऐसे होता है। उसमें हित-अहित जो भी हो... परन्तु आश्रय चैतन्यका है। यह आश्रय लेने योग्य नहीं है। आश्रय हितका कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- माताजी! इतनी भिन्नता पहले जब तक नहीं आती है, तब तक ऐसा लगता है कि कुछ न कुछ पर्यायकी अपेक्षा रह जाती है।

समाधान :- ख्यालमें सब है। ख्यालमें होता है इसलिये उसके जोरमें अमुक है। परन्तु द्रव्य पर दृष्टिमें जोर (रहता है कि), यह मैं, यह चैतन्यद्रव्य वही मैं हूँ, उसमें सब पर्यायें स्वयं समा जाती है। दृष्टिका जोर एक द्रव्य पर ही रहता है। पर्याय पर अनादिका है इसलिये पर्यायकी भांजगड करता रहता है। यह परिणाम, यह परिणाम... ऐसे।

गुरुदेव ऐसा ही कहते थे कि द्रव्य पर दृष्टि करे। इसलिये उसका बल धारावाही रहे। परिणामकी भांजगडमें खड़ा नहीं रहे। मैं एक ज्ञायक ही हूँ। फिर उसे ऐसा आये कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। ऐसा साथ-साथ होता है। द्रव्यके जोरके साथ-साथ ज्ञान काम करता रहता है।

मुमुक्षु :- आपकी कृपासे मैं हृदयसे कहता हूँ, श्रद्धाके साथ ज्ञान साथ-साथ रहता है, यह जो आपने बिठाया है, वह तो ऐसा बैठ गया है कि श्रद्धाकी जो भी बात चलती हो, फिर भी ज्ञानका विषय और ज्ञानका कार्य, दोनों ..

समाधान :- .. एक द्रव्य पर दृष्टि करे तो सब गुत्थी सुलझ जाती है। मैं यह एक शाश्वत द्रव्य हूँ। उसका जोर आवे तो वह सब गुत्थी गौण हो जाती है। एकको लक्ष्यमें लेनेसे सब भ्रमजाल छूट जाती है।

.. उसमें कोई नुकसानका कारण नहीं है। दृष्टि अनादिसे नहीं की है। द्रव्यदृष्टिके बल बिना आगे नहीं बढ सकता। इसलिये गुरुदेव एकदम द्रव्यदृष्टिके जोरसे, उसकी पूरी दृष्टि पलट जाय ऐसे जोरसे उपदेशमें कहते थे और वस्तु स्वरूप द्रव्यदृष्टिके जोरमें ही आगे बढता है। इसलिये द्रव्यदृष्टिके जोरके साथ ज्ञानमें यह ख्याल होना चाहिये। कितनोंको एकान्त हो जाता है, इसलिये नुकसानका कारण होता है। द्रव्यदृष्टि जोर तो मुख्य है, परन्तु उसके साथ यह होना चाहिये। वह तो मुख्य है, द्रव्यदृष्टिका जोर।

.. सब मुंबईका था। ऊपरमें। सब दरवाजे पर ऊपरके भागमें उस प्रकारसे सजावट की थी। पहले हुआ नहीं था, सब पहली बार था इसलिये...

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ। उद्घाटन किया था।

मुमुक्षु :- उन्होंने तीन हजार दिये थे। स्वाध्याय मन्दिरके कम्पाउन्डमें। तीन हजार तो उन्होंने लिखाया था। तीन हजार तो उन दिनोंमें तीन लाखसे भी ज्यादा लगते थे। इसलिये उनके हाथोंसे उद्घाटन करवाया था। ..

समाधान :- पूर्व दिशामें। पूर्व दिशाका जो दरवाजा था न...

मुमुक्षु :-

समाधान :- शीतलप्रसादजी।

मुमुक्षु :- हीराभाईके बंगलेसे गुरुदेव पधारे तो घूमघामसे पधारे थे।

समाधान :- हाँ, धूमधामसे पधारे थे।

मुमुक्षु :- लाठीना उतारेसे वहाँसे चांदीके थालमें पुस्तक लेकर (आये थे)।

मुमुक्षु :- हमें तो कुछ मालूम ही नहीं है।

समाधान :- उस वक्तका तो याद ही होता है न। पहली बार था। सब पहलेसे स्वाध्याय मन्दिरमें जाकर गीत गाते थे। सब भक्ति करते थे। थोड़ी बहनें (जाती थी)।

मुमुक्षु :- उस वक्त तो आपकी उम्र भी छोटी थी।

समाधान :- २४ वर्ष। हिंमतभाई और दूसरे सब वहाँसे 'धर्मध्वज फरके छे मोरे मंदिरिये...' वह सब गाते-गाते आते थे।

मुमुक्षु :- संख्या कितनी होगी?

समाधान :- उस वक्त यहाँ तो संख्या कम थी। परन्तु बाहरगाँवसे सब मुमुक्षु आये थे। बाहरगाँवके आये थे। लगभग स्वाध्याय मन्दिर पूरा भर गया था। कम नहीं थी।

मुमुक्षु :- गर्दी हो गयी थी।

समाधान :- हाँ, गर्दी हो गयी थी। खिड़की पर और दूसरी जगह खड़े थे।

मुमुक्षु :- शीतलप्रसादजी... समयसार विराजमान किया। उस वक्त गर्दी थी।

समाधान :- हाँ, गर्दी थी। खिड़कीमें सब लोग खड़े थे। शीतलप्रसादजी उस दिन कुदरती यहाँ आये थे, यहाँ थे ही। फिर कोई मन्त्र बोले थे। कुछ भी बोले होंगे।

मुमुक्षु :- उन दिनोंमें कहाँ..

समाधान :- गुरुदेव उद्घाटन करते हैं, वह फोटो नहीं आया है। वह नहीं है। खोलते हैं, वह सब नहीं है। संप्रदाय गुरुदेवने छोड़ा था, नहीं तो गुरुदेव प्रतिष्ठा करते। लेकिन गुरुदेव अभी उन सबमें नहीं थे, इसलिये गुरुदेवने ऐसा कहा।

मुमुक्षु :- आज ही गुरुदेव भगवतीस्वरूप बोले थे। स्वाध्याय मन्दिरमें.. उत्साहका पार नहीं था। ...

समाधान :- स्वाध्याय मन्दिरमें गुरुदेव पधारे, प्रभावना बहुत होनेवाली थी इसलिये

वह शोभी भी अलग थी। गुरुदेव, ऐसे मंगलकारी मंगलमूर्ति गुरुदेव पधारे इसलिये प्रभावना बहुत जोरदार होनेवाली थी, इसलिये उस वक्त सबको उत्साह भी बहुत था और वह शोभा इतनी लगती थी। सबको हर्षका पार नहीं था। ऐसा लगता था।

मुमुक्षु :- पूरे गाँवमें..

समाधान :- उतना हर्ष..

मुमुक्षु :- मैं .. ओफिसमें आया, मैंने आकर देखा तो यह क्या है? ... इसलिये पूछा कि यह क्या है? ऐसा तो कुछ था नहीं। उसने कहा, एक साधु आये हैं। मैंने कहा, साधु आये हो उसमें ऐसा कहाँसे? इसलिये मैं देखने आया। गुरुदेव आहारके बाद चक्कर लगाते थे। गुरुदेवको देखा.. ???

समाधान :- ऐसा लगता था कि मानो तैरता हुआ जहाज हो। बहुत लोग ऐसा कहते थे। ऐसा कहते थे। उस दिन तो भक्तिमें पहलेसे आदत ऐसी कि धजा लेकर घुमे तो भी सबको उत्साह आता था। धजा ले-लेकर फिरते थे। वहाँ जाकर ताली बजाये, भक्ति करे। इतना उत्साह आता था कि मानो अपने कितना करते हैं।

मुमुक्षु :- प्रतिष्ठासे पहले आठ-दस दिनसे..

समाधान :- मंगल.. मंगल..। गुरुदेव प्रतापी पुरुष। चारों ओर प्रभावना होनेवाली थी इसलिये मानो इतना मंगलकारी और बहुत लगता था, सबको बहुत भावना थी। इतना उत्साह था। मंगलमूर्ति गुरुदेव उसमें पधारे इसलिये शोभा भी उतनी। यहाँ रहनेवाले लोग कम थे, परन्तु बाहरसे जो मुमुक्षु थे वह सब आये थे। स्वाध्यायका बहुत था, इसलिये गुरुदेवने स्वाध्याय मन्दिर कहा। स्वाध्याय मन्दिर (नाम) रखिये।

मुमुक्षु :- पोपटभाईने..

समाधान :- लेकिन गुरुदेवको स्वयंको था।

मुमुक्षु :- गुरुदेवको स्वाध्यायका तो बहुत था।

समाधान :- बहुत था। प्रतिष्ठाका गुरुदेवने नक्की किया था। समयसार आदिका गुरुदेवने नक्की किया था। यहाँ समयसारकी प्रतिष्ठा करनी। यहाँ हमने आकर उत्थान नहीं किया है। गुरुदेवको शास्त्रका बहुत था न, इसलिये।

मुमुक्षु :- स्थापना करनेका गुरुदेवने आपको ही कहा हो, इसीलिये... नहीं तो..

मुमुक्षु :- आजके दिन जो भी प्रभावना हुयी है उसका .. यहाँ स्वाध्याय मन्दिरमें है।

समाधान :- हाँ, स्वाध्याय मन्दिर है। .. वह बात पूरी अलग थी। अभी सबको...

गीत भी ऐसे गाते थे, 'सुरेन्द्र आवो गगनना, स्वाध्याय मन्दिरे उतरो, आवो गवैया स्वर्गना, सुवर्णना मेदानमां...' ऐसा सब गाते थे। गगनमेंसे उतरेंगे। सबको ऐसी भावना होती थी। 'सुरेन्द्रो आवो गगनना, स्वाध्याय मन्दिरे, कुन्द कुन्दना जय नाद बोलो और

गुरुदेवना जय नाद बोलो। संगीत स्वर्गमांथी लावजो ने अहीं गाजो.. आवजो ग्रंथाधिपति... गुरुदेवना गुणगानमां आवजो..' गुरुदेवके पधारनेसे पहले वहाँ स्वाध्याय मन्दिरमें जा-जाकर गाते थे।

मुमुक्षु :- माताजी! आपको भक्तिमें तो पहलेसे.. छोटी उम्र थी इसलिये कितना उत्साह होगा और कैसा गवाते होंगे।

समाधान :- सभी बहनें गाती थी।

मुमुक्षु :- पुस्तक भी देखिये न छोटी छपवायी थी।

समाधान :- मन्दिर हुआ न, उसके बाद भक्तिका प्रोग्राम हुआ। रोज भक्ति करवाकर, सब गाये। उसके पहले भक्तिका प्रोग्राम (नहीं था)। मैं गाऊँ और सब गाये, ऐसा प्रोग्राम नहीं था। भाव आये और गाने लगे। कितनी बहने साथमें गाती थी। भगवान पधारे उसके बाद भक्तिका प्रोग्राम हुआ। व्याख्यान सुनने जाते। उसके बाद निवृत्ति। समय हो तब शास्त्र पढती थी, ध्यान करती थी। वह प्रोग्राम। मन्दिर नहीं था, इसलिये दर्शन आदि कुछ नहीं था। इसलिये गुरुदेवका दो वक्तका प्रवचन सुनकर, बादमें ध्यान और ज्ञानमें। बस। उसमें रहना था। वांचन और ध्यान। बहनोंके बीच वांचन करती थी। दूसरे कोई प्रोग्राम नहीं थे।

मुमुक्षु :- वांचन उस समयसे शुरू हो गया था?

समाधान :- बहनोंमे। लेकिन बहने कितनी थी, थोडी बहने थी। वहाँ एक कमरा है उसमें आ जाते थे। लाठीना उतारामें थोडे घर थे और थोडे आगे-पीछे थे। समिति और बाकी सब उसके बाद हुआ। इस ओरके सब घर बादमें हुए। एक लाठीनो उतारो, वडानो उतारो, दोनों जगह थे। कोई-कोई गाँवमें हो। दूसरा कोई नहीं था।

मुमुक्षु :- उसके बाद फिर सीधे स्वाध्याय मन्दिरमें आये।

समाधान :- वहाँसे सीधे स्वाध्याय मन्दिर। बीचमें पूरा जंगल था। सब खेत थे। पूरा जंगल और एक स्वाध्याय मंदिर। उसके पीछे सेनिटोरियम था।

मुमुक्षु :- एकदम अंधेरा..

समाधान :- लालटेन थे। लालटेनमें पढना, करना आदि। लालटेन थे।

मुमुक्षु :- वडाना उतारामें...

समाधान :- हाँ, वडाना उतारामें रसोईघर था। गुरुदेवका फोटो रखते थे और घरपर भक्तिका प्रोग्राम शुरु किया था। ऐसा किया था। ऐसे किया था। स्वाध्याय मन्दिरके समय वहाँ फोटो, समयसारकी स्थापना। वहाँ जाकर भक्ति करते थे। ऐसे करते थे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-०६२

मुमुक्षु :- जन्माभिषेकके समय देवोंको प्रभुके दर्शनमात्रसे सम्यग्दर्शन हो जाता है और महावीर भगवानने सिंहकी पर्यायमें मुनिराजके थोड़ेसे शब्द सुनकरके सम्यग्दर्शनको प्राप्त किया। हम आपके श्रीमुखसे सीमंधर परमात्माकी वाणी भी सुनते हैं और महाराजश्रीके दर्शन भी किये, फिर भी हमको सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता?

समाधान :- पुरुषार्थकी मन्दता अपनी है इसलिये। भगवानका निमित्त तो प्रबल है। भगवानके निमित्तसे होता है, परन्तु स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है। भगवानके दर्शनसे सम्यग्दर्शन होता है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको पहचाने वह स्वयंको पहचाने। लेकिन द्रव्य-गुण-पर्यायको पहचाननेवाला स्वयं, स्वयं पहचाने तो होता है। पहचाने बिना होता नहीं।

स्वयंको अंतरमेंसे गहराईसे, मैं यह जाननेवाला ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञानलक्षण आत्मा हूँ। मैं ज्ञायक हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। उसे अंतरमेंसे पहचाने। भिन्नता करे। द्रव्य पर दृष्टि करके यह मैं, विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसा सहज अंतरमेंसे (करे)। ऐसी परिणति पुरुषार्थसे प्रगट करे तो होता है। निमित्त-उपादानका सम्बन्ध ऐसा होता है। उपादान तैयार न हो तो मात्र निमित्तसे होता नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। भगवानके समवसरणमें बहुत बार जाता है। परन्तु अपनी तैयारीके बिना सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता। भगवानका निमित्त तो प्रबल है, परन्तु स्वयंकी तैयारी नहीं है। इसलिये नहीं होता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- विकल्प करे, लेकिन अंतरमेंसे स्वयंकी उतनी जिज्ञासा, उतनी लगनी, वैसी तैयारी हो तो होता है। तैयारीके बिना होता नहीं। बारंबार विचार करे, बारंबार प्रतीतको दृढ़ करे। लेकिन अंतरमें उतनी स्वयंको लगनी चाहिये, तो होता है। एक-दो बार विचार कर ले, थोड़ी देर विचार कर ले, ऐसे नहीं होता है। बारंबार अंतरमेंसे परिणति पलटनी चाहिये, तो होता है। परिणतिका पलटना नहीं होता है, वहींका वहीं खड़ा हो तो वह तो एक ही दिशा है। दिशा पलटनी चाहिये। दिशा पलटे तो अंतरमेंसे परिवर्तन होता है। उसकी दृष्टि बाहर ही बाहर खड़ी है। दृष्टि अंतरमें जानी चाहिये।

.. इसलिये जबतक आत्माको पहचाने नहीं, अन्दर आत्माकी अनुभूति नहीं होती, .. अनुभूति होनेके बाद भी बीचमें शास्त्र स्वाध्याय आदि होता है। जब तक स्वरूपमें पूर्ण लीनता नहीं हो जाती, स्वानुभूति नहीं होती, वहाँ बीचमें उसकी भूमिकामें शास्त्र स्वाध्याय, वांचन, विचार आदि सब होता है। लेकिन उसमें ज्यादा जानना चाहिये और ज्यादा शास्त्र स्वाध्याय हो तो होता है, ऐसा नियम नहीं है। उसके साथ प्रयोजनभूत ज्ञान तो होना चाहिये।

मुमुक्षु :- अनुभव होनेके बाद भी यह वस्तु चालू रखनी?

समाधान :- यह वस्तु तो होती है, वीतराग नहीं है तब तक मुनिओंको भी स्वाध्याय होता है। मुनि भी शास्त्र लिखते हैं। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं, स्वानुभूतिमें अंतर्मुहूर्तमें लीन होते हैं, फिर बाहर आते हैं। बाहर आते हैं तब शास्त्र स्वाध्याय होता है, शास्त्र लिखे, उपदेश देते हैं, सब होता है। अशुभभाव गौण होकर शुभभावमें मुनिराज भी रुकते हैं, तो गृहस्थाश्रममें तो वह होता है। और जहाँ आत्मा कौन है, कैसा है, उसका यथार्थ निर्णय, प्रतीति अंतरसे हुआ नहीं हो, उसे तो बीचमें शास्त्र स्वाध्याय, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि होता है। परन्तु ध्येय एक आत्माका होना चाहिये कि मुझे शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? आत्मा निर्विकल्प तत्त्व है, कैसे पहचानमें आये? उसके लिये ज्यादा जाने और बहुत शास्त्रका ज्ञान होना चाहिये, ऐसा नहीं होता। परन्तु प्रयोजनभूत ज्ञान तो बीचमें होता है।

मुमुक्षु :- चौबीसों घण्टे वह मुख्य ध्येय रखकर ही काम करना।

समाधान :- हाँ। ध्येय शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? चौबीसों घण्टे वही ध्येय रखना।

मुमुक्षु :- उसकी महिमा ज्यादा आनी चाहिये।

समाधान :- आत्माकी महिमा आनी चाहिये। आत्मा ही सर्वस्व है, यह सब निःसार है। परपदार्थमें रुकना, विभाव अन्दर राग, द्वेष, विकल्प आदि मेरा स्वरूप नहीं है। आकुलतारूप है, दुःखरूप है। वह सब निःसार है, सारभूत आत्मा है। उसकी महिमा, उसका रस आदि सब होना चाहिये। ऐसा उसे ध्येय होना चाहिये। आत्मा-शुद्धात्मा अनादिअनन्त शाश्वत है। यह सब जो है, पर्याय विभावपर्याय है, वह मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा ध्येय होना चाहिये।

उसके साथ उसे वांचन, विचार (होते हैं)। अशुभभावसे बचनेको शुभभाव बीचमें होते हैं। नहीं तो अनादिसे कहीं तो खड़ा होता ही है, या तो शुभमें, या तो अशुभमें। अभी शुद्धात्मा तो प्रगट हुआ नहीं है, शुद्ध परिणति प्रगट हुयी नहीं है, शुद्धात्मामें लीन हुआ नहीं है, इसलिये अशुभमें, शुभमें खडा है। इसलिये गृहस्थाश्रममें अशुभभावोंसे

बचनेके लिये शुभभाव होते हैं। और ध्ये एक शुद्धात्माका-मुझे शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये?

मुमुक्षु :- अनुभव होनेके बाद जैसे-जैसे अनुभवके विषयमें गहरा ऊतरता जाता है, वही ज्यादा पक़ड गिननी?

समाधान :- अनुभव होनेके बाद तो उसे मार्ग प्राप्त हो गया। उसकी पूरी दिशा पलट गयी। उसे भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो गयी। उसे बाहर तो भी ज्ञायककी धारा प्रगट रहती है। भेदज्ञानकी धारा होती है। मैं ज्ञायक (हूँ)। प्रत्येक कार्योंमें उसे सहजरूपसे ज्ञायक (रहता है)। उसे याद करके रटन नहीं करना पड़ता। परन्तु कोई भी विकल्प आये या बाहरके कार्योंमें हो, हर समय मैं ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायककी धारा चलती है। और ज्ञायककी ओर परिणति जाती है। अनुभूति तो उसे सहज होती है। वह उसकी दशाके अनुसार होती है। परन्तु उसकी दशाकी दिशा पूरी पलट गयी है। उसकी अंतर दशा पलट गयी है।

मुमुक्षु :- वांचन-विचार करते-करते भी उसे अनुभवका स्वाद आता है?

समाधान :- वांचन-विचारके समय उपयोग उस ओर होता है और (अनुभव होता है), ऐसा नहीं। वांचनकी ओरसे उपयोग पलट जाय और स्वभावमें-स्वरूपमें उपयोग स्थिर हो जाय तो अनुभूति होती है। उपयोग बाहर हो और अनुभूति हो, ऐसी नहीं बनता। उपयोग अंतरमें चला जाय तो होती है। शास्त्र स्वाध्यायमें भले बैठा हो, पुस्तक आदि बाहर पड़े हो, परन्तु उपयोग यदि शास्त्रकी ओर हो तो स्वानुभूति नहीं होती। उपयोग अंतरमें चला जाय।

मुमुक्षु :- निद्रा अवस्थामें भी शुद्ध परिणति चालू रहती है?

समाधान :- शुद्ध परिणति चालू रहती है। शुद्धउपयोग नहीं होता।

मुमुक्षु :- शुद्ध परिणति निद्रामें भी?

समाधान :- शुद्ध परिणति निद्रामें भी (चालू है)। ज्ञायक भिन्न निराला ही वर्तता है। निद्रामें भी एकत्व नहीं होता, भिन्न ही रहता है। निद्रा अवस्थामें भिन्न ही रहता है। शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न। निद्रामें किसी भी विकल्पमें एकत्व होता नहीं। भिन्न ही भिन्न, शुद्ध परिणति ज्ञायककी (प्रगट है)।

मुमुक्षु :- एक प्रकारसे तो वह जागृत परिणति है, ऐसा है?

समाधान :- जागृत ही है। वह सदा जागृत है। आत्मा कहाँ सोता है? बाहरसे उसे निद्रा अवस्था (होती है), अमुक निद्राका उदय आये तो निद्रामें दिखता है, परन्तु उसका आत्मा सदा जागृत ही है। जागते वक्त तो विशेष जागृत है, परन्तु अंतरमें शुद्ध परिणतिरूप, ज्ञायकरूप जागृत है। उसकी शुद्ध परिणति हाथमें है, द्रव्यदृष्टि है, ज्ञायककी

धारा है। सब उसे निद्रामें भी होता है।

मुमुक्षु :- उपशम सम्यग्दर्शनमें भी शुद्ध परिणति होती है न? या क्षायिक समकितमें ही होती है?

समाधान :- उपशम सम्यग्दर्शन तो अंतर्मुहूर्त होता है। उसके बाद क्षयोपशम हो जाता है। क्षयोपशम या क्षायिक कोई भी हो, सबमें शुद्ध परिणति चालू रहती है। सबमें शुद्ध परिणति रहती है। एक सम्यग्दर्शनमें शुद्ध परिणति हो और एकमें न हो, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शनका एक जातिका स्वरूप है।

मुमुक्षु :- क्षायिक और उपशम, दोनोंमें अंतर है?

समाधान :- उपशम सम्यग्दर्शन तो अंतर्मुहूर्त होता है। उसका काल लंबा नहीं है। निर्विकल्प दशामें उपशम सम्यग्दर्शन होता है। सर्व प्रथम होता है तब उसे उपशम कहनेमें आता है। क्षयोपशम और क्षायिक, सविकल्पदशामें दोनों होते हैं। क्षयोपशममें निर्विकल्प भी हो, सविकल्प हो, क्षायिकमें सविकल्प, निर्विकल्प दोनों होते हैं। उपशमकी स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है। उपशमकी स्थिति (लंबी नहीं होती)। क्षयोपशम और क्षायिक चलता है।

मुमुक्षु :- लंबे काल तक? परन्तु उपशम सम्यग्दर्शनमें मानो भव पूरा हो जाय, फिर दूसरे भवमें, दूसरी गतिमें वह चालू ही रहे ऐसा कोई नियम है?

समाधान :- उपशम चालू नहीं रहता, परन्तु क्षयोपशम या क्षायिक दूसरी गतिमें चालू रहता है। उपशमकी स्थिति ही अंतर्मुहूर्तकी है। दूसरी गतिमें क्षयोपशम सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन चालू रहता है। उपयोग और परिणति। परिणति तो निरंतर रहती है। ज्ञायककी परिणति प्रगट हुयी, ज्ञायककी ज्ञायकरूप परिणति प्रगट हुयी वह निरंतर रहती है। और उपयोग तो पलट जाता है। उपयोग बाहर भी हो, उपयोग अन्दर भी हो। बाहर जानता हो, बाहर भी उपयोग हो। और स्वानुभूतिमें लीन हो जाय तो स्वानुभूतिमें उपयोग होता है। उपयोग पलटता रहता है और परिणति तो एक जातकी रहती है। प्रत्येक प्रसंगमें परिणति-शुद्ध परिणति, ज्ञायककी परिणति चालू ही है। ज्ञायकको भूलता नहीं। मैं ज्ञायक ज्ञायक ही (हूँ)।

.. यह शरीर भिन्न और आत्मा (भिन्न है)। दो वस्तु भिन्न है, दो तत्त्व भिन्न हैं। यह शरीर तो जड़, कुछ जानता नहीं और जाननेवाला आत्मा है। जाननेवाला आत्मा है उसमें ही सब भरा है। उसमें शांति है, आनंद है, ज्ञान है, सब आत्मामें है। उसे पहचाननेके लिये उसकी महिमा अन्दर आये। बाहर कोई महिमावंत वस्तु नहीं है। वह तो पूर्वके योगसे सब प्राप्त होता है और पूर्वका पुण्य-पापका उदय होता है वैसे सब भिन्न हो जाता है। उसमें अपना कुछ नहीं चलता।

इसलिये आत्मा कौन है? आत्मा शाश्वत नित्य है। उसे विचार करके, वांचन करके नक्की करना। जो-जो विकल्प आये, उस विकल्पसे भी मैं भिन्न हूँ। मैं तो सिद्ध भगवान जैसा आत्मा हूँ। मैं आत्मा जाननेवाला ज्ञायक। उसकी महिमा करनी। बारंबार उसे याद करना। जो ज्ञानलक्षण है वह मैं हूँ। जाननेवाला है वह मैं हूँ, इसके सिवा दूसरा कुछ मेरा नहीं है। मैं सबसे भिन्न हूँ। अन्दर विकल्प आये वह भी मेरा स्वरूप नहीं है। मैं सबसे भिन्न हूँ। इसलिये उस विकल्पसे भी भिन्न होनेका प्रयत्न करे और मैं तो जाननेवाला, जाननेवाला हूँ। जाननेवाला है वह रूखा जाननेवाला नहीं है, परन्तु अन्दर महिमासे भरा है। वह भले ही स्वयंको दिखता नहीं हो, परन्तु अन्दर आनन्द, शांति आदि अनन्त गुण भरे हैं। ऐसा जाननेवाला स्वयं ज्ञायकदेव है। दिव्य स्वरूपसे भरा है। उसे जाननेके लिये वांचन करना, समझमें आये ऐसे पुस्तक पढना। गुरुदेवके प्रवचन (पढना)। जिसमें जो समझमें आये, जिसमें आत्माकी बात आती हो, ऐसे शास्त्र पढने, विचारना, बारंबार।

विचार आये इसलिये मन वहाँ लगता है, इसलिये शांति मिलती है। अन्दर आत्मा कैसे पहचानूँ? उसका विचार करते रहना। पूरा दिन उसीका विचार करते रहना, उसकी लगनी लगानी, उसकी जिज्ञासा करनी। बस, उसे मन लगा देना। यह सब बाहरका है, वह सब तो तुच्छ है। मनुष्य जीवनमें सारभूत कुछ हो तो एक आत्मा ही है। उस आत्माको पहचाननेके लिये प्रयत्न करना। विचार, वांचन करके।

मुमुक्षु :- किसीका दुःख मुझसे बर्दाश्त नहीं हो इतना दुःख मुझे होता है, इतना तीव्र दुःख मुझे होता है कि मेरे जीवको कहीं चैन पड़े, उसे भूलानेके लिये.. किसीको पहचानती नहीं हो, परन्तु किसीका दुःख हो तो मुझे इतना तीव्र दुःख होता है कि..

समाधान :- स्वयं कुछ कर नहीं सकता। स्वयंको दुःख हो, लेकिन स्वयं कुछ कर सकता तो नहीं। कर सकता नहीं। उसे दया आये, दुःख हो, वह ठीक है। उसकी मर्यादा होनी चाहिये। बेहद दुःख करनेसे स्वयं कुछ कर तो नहीं सकता। बल्कि स्वयंको नुकसान होता है। अपने दिमाग पर असर होती है। उलटा स्वयंको नुकसान होता है। इसलिये विचार करना कि मैं कुछ कर नहीं सकता। दुःख होता है उतना है। मैं तो जाननेवाला आत्मा ज्ञायक हूँ। ऐसा दुःख किसीको न हो। ऐसे दुःखसे मैं कैसे छूट जाऊँ, उसका विचार करना।

यह जीव स्वयं दुःखमें पड़ा है। ऐसा दुःख किसीको न हो और यर जीव स्वयं दुःखमें पडा है। इस दुःखसे मैं कैसे छूटु? उसका प्रयत्न करे। यह दुःख आत्मामें नहीं है। मैं कुछ नहीं कर सकता। तो उसकी मर्योदा होनी चाहिये। मैं जाननेवाला हूँ। मैं कुछ कर नहीं सकता। क्या हो? जो बननेवाला होता है वह बनता है, मैं तो कुछ

नहीं कर सकता। इसलिये सारभूत वस्तु है उसे ग्रहण करके विचार, वांचन करते रहना। भगवान जिनेन्द्र देवकी महिमा करनी, भगवानकी, गुरुकी, शास्त्रका विचार करना, शास्त्र पढना, उस ओर मनको लगा दो।

किसीका कोई कुछ नहीं कर सकता। इन्द्र, नरेन्द्र.. ऊपरसे कोई इन्द्र उतरे तो भी किसीको मदद नहीं कर सकता। जिसका जो बनना होता है वही बनता है। ऊपरसे इन्द्र आये या बडे चक्रवर्ती हो, कोई किसीका कुछ नहीं कर सकता, तो मैं कर सकता हूँ? इसलिये मनको बदल देना। अतिशय दुःख होता हो तो मनको बदल देना, शांति रखना। शांतिके सिवा उसका दूसरा कोई उपाय नहीं है। शांति रखनी। विचार बदल देना। और आत्मामें विचार जोड देना। गुरुमें, शास्त्रमें, देवमें विचार जोड देना। मनमें शांति रखनी। मैं तो एक जाननेवाला हूँ। शांतिके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

चक्रवर्ती किसीका कुछ नहीं कर सकते। जन्म-मरण करता है, वह अपनी भूलसे करता है। छूटता है वह स्वयं पुरुषार्थ करके छूटता है। कोई किसीको कुछ नहीं कर सकता। गुरु उपदेश दे, भगवान उपदेश दे, लेकिन करना तो स्वयंको है। स्वयं करे तो होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६३

समाधान :- .. शांति आत्माका स्वभाव है और आत्मामें है। बाहर तो कल्पनासे सुख माना है। सुख, शांति बाहर तो नहीं है। जीव अनन्त कालसे शुभभाव करे, बाह्य क्रियाएँ करे, बाहर धर्म मानकर करता है, परन्तु अन्दरकी आकुलता टालनी, वह तो स्वयं अन्दर समझे तो होता है। शुभभाव करे, भले बहुत करे, बाहरसे बहुत करे, उपवास करे, सामायिक करे, प्रतिक्रमण करे, मन्दिर जाय, पूजा-भक्ति सब करे, लेकिन अन्दरमें शांति तो आत्माको पहचाने तो होती है। वह सब तो शुभभाव होते हैं, उन सबसे पुण्य-बन्ध होता है, देवलोक मिले, परन्तु देव तो एक गति है। देव भव अनन्त बार मिले, मनुष्यभव मिला, सब मिला, परन्तु वह सब भव है। भवका अभाव तो आत्माको पहचाने तो होता है।

वह सब शुभभाव पुण्यभाव हैं। उससे आत्मा तो अन्दर भिन्न ही है। भिन्न आत्माको पहचाने तो होता है। शरीर तो जड़ कुछ जानता नहीं, अन्दर जो विकल्प आये, शुभभाव आये, अशुभभाव आये, सब भाव विकल्प हैं। किसीसे पुण्य बन्धे और किसीसे पाप बन्धे। परन्तु उससे भिन्न जो आत्मा जाननेवाला है, वह ज्ञायक आत्माको पहचाने तो उसमेंसे शांति आती है। परन्तु उसे पहचाननेके लिये, आत्मा ज्ञायक है उसमें शांति है, उसमें आनन्द है, उसे पहचाननेके लिये उसकी रुचि, उसकी जिज्ञासा, उसका विचार करना चाहिये। उसका वांचन (करना चाहिये)। सत्य क्या है, वह स्वयं वांचन, विचार करके स्वयंसे नक्की करे तो होता है। परन्तु स्वयंसे समझे नहीं तो सत्संग करे, जहाँ सच्चा सत्संग मिलता हो, वहाँ वह सत्य जाननेका प्रयत्न करे कि सत्य क्या है? शांति तो अन्दर आत्मामें है, बाहर कहीं नहीं है।

मुमुक्षु :- वह समझ तो हो गयी है, उतना तो समझते हैं कि यह बाह्य क्रिया है। अंतरकी बात अलग है। आत्माका दर्शन होना चाहिये, वह बराबर है। परन्तु ऐसा सत्संग मिलता नहीं, ऐसी ज्ञानगोष्ठी करनेके लिये विचारोंका आदानप्रदान करें, वहाँ ऐसा कोई (मिलता नहीं)। मैं पढ़ूँ, आगे नहीं बढ पाती हूँ, अटक जाती हूँ, ऐसी सब मनकी परिस्थिति है। इसलिये अन्दर उद्वेग बहुत होता है। करना है, सत्य वस्तु प्राप्त करनी है, सत्य मार्ग पर चढ जाना है, उतनी जिज्ञासा है। सत्य क्या है और असत्य

क्या है, उतनी समझन हुयी है, पढ़ते-पढ़ते, प्रयत्न करते-करते। परन्तु अभी वहाँ जाउँ तो वहाँ कुछ कमी लगे, देरासरमें जाउँ तो वहाँ कुछ कमी लगे।

समाधान :- जहाँ सत्य मिलता हो, वहाँ सत्य जाननेका प्रयत्न करना। सत्य वस्तु जाने, स्वयं जाने तो अन्दर नक्की हो कि यही सत्य है। फिर उसी रास्ते पर स्वयं प्रयत्न करे, उसका विचार करे, उसकी जिज्ञासा (आदि) सब करे। परन्तु सत्य क्या है यह नक्की करनेके लिये सत्संग, जहाँ सत्य बात मिलती हो ऐसे स्थानमें जाकरसत्संग करे तो होता है।

मुमुक्षु :- ऐसे तो बाहर जाती ही हूँ। ववाणिया जाती हूँ, वड़वा जाती हूँ। पुस्तक रखे हैं। भक्तिमें मुझे विशेष रस है। आनन्दघनजीके पद, आध्यात्मिक पद अर्थ सहित मिलान करुँ। उसका पूरा मिलान करती हूँ।

समाधान :- वह है, लेकिन अन्दर सत्य ज्यादा नहीं जाने, परन्तु थोड़ा भी मार्ग तो उसे जानना चाहिये। सत्य जाने बिना आगे नहीं बढ़ सकता। एक गाँव जाना हो तो किस गाँवमें जाना है, उसका रास्ता जाने बिना (कैसे जायेगा)? भले फिर धीरे-धीरे चले, चलनेमें देर लगे, परन्तु मार्ग तो जानना चाहिये न? कि इस मार्गसे जाना होता है। सच्चे ज्ञान बिना, प्रयोजनभूत ज्ञान बिना, भले भक्ति, उत्साह आदि सब आये, महिमा आये, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये, आत्माकी महिमा आये, परन्तु सत्य क्या है उसे जाने बिना आगे कैसे जायेगा? सच्चा ज्ञान तो (करना चाहिये)। ज्ञान बिना कैसे जाना होगा? सत्संग करना चाहिये, जो सत्य जानता हो उसे पूछना चाहिये। सच्चे शास्त्र, जहाँ सत्संग हो वहाँ समझना चाहिये। समझनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। मात्र अकेली भक्ति करता रहे तो भी आगे नहीं बढ़ सकता।

मुमुक्षु :- कमी लगती है, इसीलिये यह खोज और प्रयत्न चालू रखे हैं। इसमें कमी है, कुछ कमी है, कुछ कमी है, अभी कुछ चाहिये।

समाधान :- .. बोलनेकी जरूरत नहीं है। अपनी मान्यतामें फेरफार करना है। बाहर जाना छोड़ देना ऐसा कुछ उसमें आता नहीं। अपनी मान्यता बदलनी है। मान्यता बदले तो अपनेआप सब फेरफार होता है। कोई देरावासी हो वह कहे, यह मन्दिर आदि क्या? लेकिन तुम सत्य समझो तो अपनेआप सब फेरफार होंगे। गुरुदेव स्थानकवासी संप्रदायमें थे। उन्होंने सब शास्त्र देखे हैं। देरावासी, स्थानकवासी, उसमेंसे उन्होंने फेरफार करके, उनको यह सत्य लगा तो उसे ग्रहण कर लिया।

मुमुक्षु :- ऐसा कह सकते हैं क्या अभी जो धर्मकाल प्रवर्तता है, ऐसा पीछले दो हजार वर्षमें नहीं प्रवर्तता था। कारण कि कुन्दकुन्द स्वामीको प्रत्यक्ष देखनेवाले आप अकेले ही दो हाजर वर्षमें यहाँ हो। वहाँ विदेहक्षेत्रमें..।

समाधान :- यहाँ धर्मकाल नहीं प्रवर्तता था, ऐसा कैसे कह सकते हैं?

मुमुक्षु :- व्यापकरूपसे।

समाधान :- कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ विराजते थे तब धर्मकाल तो प्रवर्तता होगा। नहीं प्रवर्तता ऐसा कैसे कह सकते हैं? गुरुदेवने तो बहुत प्रभावना की। लेकिन कुन्दकुन्दाचार्यदेव विराजते होंगे तब भी प्रभावना हुई होगी।

मुमुक्षु :- जंगलमें थे न।

समाधान :- वह अपेक्षा अलग है। जंगलमें हो वह अपेक्षा अलग है। और अभी हम दूसरी अपेक्षासे कहते हैं। मुनि जंगलमें हो और गाँवमें आये तब हो। यहाँ गुरुदेव तो सब मुमुक्षुओंके बीच, हजारों मुमुक्षुओंके बीच यहाँ निरंतर वाणी बरसाते थे। ४५-४५ साल तक वाणी बरसती रही। मुमुक्षुओंके बीच रहकर जो लाभ दिया, वह तो कोई अपूर्व है। वह एक अपेक्षा अलग है। बाकी कुन्दकुन्दाचार्यका तो यह शासन कहलाता है।

कितनी प्राचीन प्रतिमाएँ देखें तो सबमें कुन्दकुन्द आम्नाय, कुन्दकुन्द आम्नाय ऐसा आता है। वे तो महा समर्थ आचार्य हो गये। उस वक्त कुछ अलग हुआ होगा, इस वक्त कुछ अलग है। गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य, यहाँ गुरुदेव पधारे वह महाभाग्यकी बात है। पहले जो क्रियामें थे और अभी सबको चैतन्यकी रुचि और चैतन्यका विचार करना सीखे, यहाँ सौराष्ट्रमें ही नहीं हर जगह प्रभावना हुयी। कुन्दकुन्दाचार्य विराजते थे वह अलग था। मुनिराज यहाँसे विदेहक्षेत्रमें गये और वहाँसे वापस आये। सबको उपदेश दिया, वह काल उस समयमें कुछ अलग ही हुआ होगा। वह अलग होगा। अभी यह अलग है।

मुमुक्षु :- कुन्दकुन्दस्वामी कहीं लिखकर नहीं गये हैं कि मैं विदेहक्षेत्रमें जाकर (सुनकर यह लिख रहा हूँ)।

समाधान :- उन्होंने स्वयं भले ही नहीं लिखा हो, परन्तु शास्त्रोंमें आता है, आचार्य लिखते हैं, पंचास्तिकायकी टीकामें आता है, देवसेनाचार्य आदि सब कहते हैं। शास्त्रमें लेख आते हैं। शिलालेखोंमें आता है।

मुमुक्षु :- शिलालेख परसे कहे। आप तो साक्षात् देखकर यहाँ बात करते हो।

समाधान :- वह अपेक्षा अलग है, यह अपेक्षा अलग है। दोनों अपेक्षासे समझना है। दोनों अपेक्षासे समझना। मुनिराज थे, महासमर्थ आचार्य थे। उस वक्त साक्षात् उस देहमें जो विदेहक्षेत्रमें सीमंधर भगवानके साक्षात् दर्शन करके, वहाँ वाणी सुनकर इस भरतक्षेत्रमें पधारे, उस समयका माहोल उस वक्त कैसा हुआ होगा? वह कुछ अलग ही हुआ होगा।

मुमुक्षु :- एक अपेक्षासे तो गुरुदेव और आप, दोनों साक्षात् वाणी सुनकर ही यहाँ पधारे हो। वे पहले गये और वापस आये। आप पहली बार यहाँ आये।

समाधान :- आपको जो अर्थ लेना हो वह लीजिये।

मुमुक्षु :- चतुर्थ काल कहते हैं, यहाँ सोनगढ़में चतुर्थ काल वर्तता है।

समाधान :- जिसे हित हो, जैसा अर्थ लेना हो वैसा ले सकते हैं। बाकी सब अपेक्षाएँ समझनी है।

मुमुक्षु :- माताजी! आज गुरुदेवका परिवर्तनका दिवस है।

समाधान :- गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य, तीर्थंकर जैसा कार्य किया। तीर्थंकरका द्रव्य तो हो, परन्तु यह तो तीर्थंकर जैसा गुरुदेवने अभी काम किया। इस भरतक्षेत्रमें वाणी कोई अलग ही थी। उनके जैसी वाणी किसीकी नहीं थी। पूरे संप्रदायका परिवर्तन किया। वह कोई अलग बात थी। वह कोई आसान बात नहीं थी। पूरे संप्रदायमें उनके प्रति सबको महिमा थी। संप्रदायमें लोगोंका समूह इकठ्ठा होता था, वह सब छोड़कर एक ओर बैठकर स्वयंने परिवर्तन किया। संप्रदायमें खलबली मच गयी, तो भी अकेलेने अन्दर पुरुषार्थ करके, सब सहन करनेके लिये तैयार थे। समाचार पत्रोंमें सब जगह खलबली मच गयी थी।

यहाँ एकान्त स्थानमें कोई आये, न आये, किसीकी परवाह नहीं की। भले थोड़े लोग आये, हजारोंकी जनसंख्यामें बैठकर गुरुदेव व्याख्यान करते थे। उसके बदले यहाँ एकान्तवासमें आकर बैठ गये। परिवर्तन किया, ऐसा लोगोंको मालूम हुआ तो स्थानकवासीमें खलबली मच गयी। उनको ऐसा था, अन्दर जो मानता हूँ वह बात और बाहरमें भेस अलग है। इसलिये भेसका भी परिवर्तन कर दिया। परन्तु गुरुदेव पर लोगोंको इतनी भक्ति थी कि कानजीस्वामी जो कहते हैं वह सब सत्य है। और विचारपूर्वक ही सब करते हैं। कानजीस्वामीके लिये स्थानकवासी संप्रदायमें ऐसा कहते थे, उनके जैसे कोई साधु नहीं थे, वहाँ स्थानकवासी संप्रदायमें। उन्होंने जो किया होगा विचार करके किया होगा। तुरंत प्रथम पर्युषणमें ही लोगोंका समूह आया था। संप्रदायका आग्रह छोड़कर बहुत लोग आने लगे।

मुमुक्षु :- परिवर्तनका दिवस भी महावीरस्वामीके जन्मजयंतिके दिन ही..

समाधान :- तेरसके दिन ही गुरुदेवने परिवर्तन किया। यहाँ छोटी पहाड़ी है न? यहाँ सोनगढ़में छोटी पहाड़ी पर। स्टार ओफ इन्डिया, कहलाती है। उसका नाम ही वही था। उस बंगलेका नाम पहलेसे स्टार ओफ इन्डिया था।

मुमुक्षु :- हिन्दुस्तानका तारा।

समाधान :- हिन्दुस्तानका तारा।

मुमुक्षु :- कुदरती कैसा मेल है! कुन्दकुन्दस्वामीके नामका अर्थ भी सुवर्ण ही होता है न?

समाधान :- हाँ, सुवर्ण होता है।

मुमुक्षु :- और यह सुवर्णपुरी।

समाधान :- यह सुवर्णपुरी। संप्रदायके सामने टक्कर झेलकर सब फेरफार किया। सत्य मार्ग है, परन्तु मात्र क्रिया नहीं, अंतरंगसे उन्होंने तो...

स्वानुभूतिका मार्ग, उस मार्गके साथ दिगंबर मार्ग आता है। उसमेंसे धीरे-धीरे उनकी प्रभावना बढ़ती गयी। सब दिगंबर इस ओर मुडने लगे। लेकिन मात्र एक भेस धारण किया इसलिये दिगंबर ऐसा नहीं। उनका तो अंतरमेंसे भावसहित सब उपदेश उस प्रकारका था।

मुमुक्षु :- भावसहित और सब न्यायसे समझमें आये, युक्तिसे समझमें आये, इस तरह सब (समझाया)।

समाधान :- न्यायसे, युक्तिसे सबको बैठ जाय, वैसे। चारों ओरसे। ... सब आता है। कुन्दकुन्दाचार्यके शास्त्र अभी तक चले।

मुमुक्षु :- प्रभावनामें आपका जातिस्मरण भी एक उतना ही प्रबल कारण था। उन्हें भले आभासा होता था कि मैं तीर्थंकर होनेवाला हूँ। परन्तु प्रत्यक्षरूपसे जो ख्याल आ गया..

समाधान :- आप सबको जो अर्थ करना हो वह करो, बाकी तो तीर्थंकरका द्रव्य था। तीर्थंकर तो तीर्थंकर ही थे। उन्होंने तो इस भरत क्षेत्रमें वाणी बरसायी। ऐसी जोरदार उनकी आत्मस्पर्शी वाणी सबको असर करे, ऐसी। इस कारणसे सब आत्माकी ओर मुड़े। हजारों मुमुक्षु हो गये। वह तो एक महापुरुष हो उनके पीछे सब होता है। तीर्थंकर भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट कहलाते हैं। जगतमें सर्वोत्कृष्ट हो तो तीर्थंकरदेव हैं।

मुमुक्षु :- शास्त्रोंका गुजराती भाषामें (अनुवाद हुआ)।

समाधान :- वह तो एक महापुरुष हो, तीर्थंकर द्रव्य यहाँ पधारे। तीर्थंकर जैसा ही काम किया। उनके पीछे सब कुछ होता है। भगवानका समवसरण हो, वहाँ सबकुछ होता है। .. एक भगवानकी होती है, बाकी सब तो उनके पीछे होते हैं। सब उनके दास हैं। सबकुछ होता है, परन्तु समवसरणमें महिमा एक भगवानकी होती है। उसमें सब मुनि होते हैं, गणधर, ऋद्धिधारी आदि सब होते हैं। इन्द्र, चक्रवर्ती आदि सब होते हैं। महिमा एक भगवानकी होती है। इन्द्र समवसरण रचता है, तब कहता है, हे भगवान! यह रचना हो गयी, वह आपके कारण रचना हो गयी है। स्वयं ही रचकर स्वंयको ही आश्चर्य होता है। आपका ऐसा कोई पुण्य है, ऐसा सर्वोत्कृष्ट पुण्य है,

इस कारणसे यह सब रचना हुयी है।

मुमुक्षु :- इन्द्र उनके पुण्य देखकर आश्चर्यचकित होता है, उसमें वाणी भी ऐसी होती है कि समझनेवालेको ऐसा लगता है कि ऐसा तो हमें कभी मिला ही नहीं।

समाधान :- भगवानकी मुद्रा ऐसी, भगवानका समवसरण ऐसा, भगवानकी वाणी ऐसी, सबकुछ ऐसा ही होता है। भगवानकी दिव्यध्वनि ऐसी। यहाँ गुरुदेवकी वाणी ऐसी। ऐसी वाणी सुनकर लोग थँभ जाते थे। सब टगरटगर देखते रहते थे और क्या कहते हैं? कुछ अलग ही कहते हैं, इस प्रकार सबके हृदयका परिवर्तन हो जाता था। वाणी तो, वाणीकी तो क्या बात करनी?

मुमुक्षु :- गुरुदेवके उपदेशका मुख्य सूर, तू परमात्मा है वह या परका अकर्तापना?

समाधान :- तू परमात्मा है, वह।

मुमुक्षु :- वह मुख्य सूर था?

समाधान :- मुख्य। अपनी अस्ति ग्रहण करनी। तू ज्ञायक परमात्मा है। तू परमात्मा है, ऐसा ग्रहण कर तो उसमेंसे परमात्मपद प्रगट होगा। उसमें अकर्तापना आ जाता है। परमात्माको ग्रहण करे उसमें। उसमें सब समा जाता है। अस्ति ग्रहण करे उसमें नास्ति समा जाती है। परपदार्थका कर्ता नहीं है। तू स्वयं सर्वोत्कृष्ट परमात्मा है।

कैसा परमात्मा? ज्ञायक परमात्मा। जाननेवाला परमात्मा, कर्ता नहीं है। परमात्माका स्वरूप विचारे तो परमात्मा कैसा परमात्मा? ज्ञायक परमात्मा अनंत शक्तिओंसे भरपूर अनंत महिमावंत। ज्ञायक जाननेवाला हुआ, उसमें कर्तृत्व छूट गया। जाने सो कर्ता नहीं, कर्ता सो जाने नहीं। 'करै करम सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा'। जाननेवाला हो वह कुछ करता नहीं, ज्ञाता रहता है।

मुमुक्षु :- उसका उपाय, आपने सम्यक् जयंतिके दिन कहा कि ज्ञाताकस डोरी लेकर उसके सन्मुख हो-स्वरूप सन्मुख हो, वह उसका उपाय।

समाधान :- ज्ञाताकी डोरी ग्रहण कर ले। ज्ञायक ही हूँ, ऐसा ग्रहण करके स्वसन्मुख जाय तो कर्तृत्व छूट जाय।

मुमुक्षु :- माताजी! उस दिन देखा कि आपने उत्तर देनेसे पहले तो गुरुदेवका कितना विनय, बहुमान (करके) आगे तो गुरुदेवको ही रखा। गुरुदेवका सब उपकार है, गुरुदेवने ही सब दिया है, गुरुदेवका ही सब है। उसके बाद आपने उत्तर दिया। आप जहाँ भी देखो, वहाँ ऐसा लगे कि हर जगह आप पहले तो गुरुदेवको ही स्थापते हो।

समाधान :- गुरुदेवको ही स्थापना होता है। दूसरा क्या स्थापन करना? जिन्होंने मार्ग बताया, परमात्माका स्वरूप बताया, ऐसे गुरुदेवकी ही स्थापना होती है।

मुमुक्षु :- मैं तो दासानुदास हूँ। आप कैसे शब्द बोलते थे।

समाधान :- अपना कुछ भी रखना कि मैं... वह आत्मार्थीका लक्षण ही नहीं है।

मुमुक्षु :- अद्‌भुत विनय! बड़ोंको सर पर रखनेका जो आप वचनामृतमें कहते हो वह आपके जीवनमें साक्षात् ऊतर गया हो, ऐसा लगता है।

समाधान :- जिसे मुक्तिके मार्ग पर जाना है, अपना स्वभाव प्रगट करना है, उसे देव-गुरु-शास्त्र साथमें ही होते हैं। स्वयं ज्ञायक परमात्मा है, लेकिन साधक दशा है। साधक दशावालेको बीचमें देव-गुरु-शास्त्र उसके साथ (होते हैं), उनकी महिमा आये बिना रहती ही नहीं। नहीं तो 'मैं कुछ हूँ' उसे बीचमें आये तो उसकी साधक दशा ही नहीं रहती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६४

मुमुक्षु :- इस समयकी तत्त्व चर्चामें, माताजी! ... आपका और गुरुदेवका आशय तो एक ही होता है। यह शब्द आपके श्रीमुखसे सुने नहीं है। इस वक्त भाईने खास रखा कि देव-गुरु-शास्त्र भी जड़ है। तब आपने समयसारजीका आधार देकर कहा, तीसरी भूमिकामें जानेके लिए उसे अपेक्षासे कह सकते हैं।

समाधान :- अपने शुभाशुभ भाव विभाव है, परन्तु निमित्तको झहरका आरोप कैसे किया जाय?

मुमुक्षु :- वह तो अपनी महिमा करानेवाला है, अपना आदर्श है, मुक्तिके मार्गको प्राप्त किया, देव तो मोक्षको प्राप्त हुए हैं, उनके प्रति ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता।

समाधान :- शुभाशुभ भाव आकुलतारूप है, अपना स्वभाव नहीं है। वह भाव। परन्तु जो निमित्त है, जिसने स्वभाव प्रगट करके स्वानुभूति प्रगट की और स्वरूपमें रमते हैं, उन पर आत्मार्थीको झहरका आरोप करनेका प्रयोजन क्या है? ग

गुरुदेव तो मार्ग प्रकाशक थे। संप्रदायमें सब क्रियामें पड़े थे और सबकी दृष्टि ही विपरीत थी। मुझे कोई पर कर देता है और कर्ताबुद्धि.. कोई भगवान कर देता है। यथार्थ तत्त्व और निश्चयमें वस्तु क्या है, उसे बतानेवाले गुरुदेवने पूरा परिवर्तन (कर दिया)। जोरसे न कहे तो लोगोंकी दृष्टि पलटे नहीं। सबको ऐसा ही हो गया था कि सबकुछ मानो भगवान कर देता है, परद्रव्य कर देता है, ऐसी सब बुद्धि टूटे नहीं, यदि गुरुदेव ज़ोरसे द्रव्यदृष्टिकी बात न करे तो। वे तो मार्ग प्रकाशक थे और साधकदशामें सब ऐसे शब्दप्रयोग करे वह योग्य नहीं है।

मुमुक्षु :- मार्ग प्रकाशककी शैली..

समाधान :- वह अलग होती है। नहीं तो कर्ताबुद्धिमें परद्रव्य कर देता है, वह भाव टूटे नहीं। सब क्रियाकांडमें ऐसे लीन हो गये थे।

मुमुक्षु :- मूल दिगंबर हमको इस बातका पता नहीं था।

समाधान :- हाँ, वह सब ऐसा माननेवाले थे। क्रियाकांड।

मुमुक्षु :- सब क्रियाकांड था।

समाधान :- हाँ, मूल दिगंबर क्रियाकांडमें थे।

मुमुक्षु :- ऐसा प्रहार किये बिना छूटकारा नहीं था।

समाधान :- मार्ग प्रकाशक तो ऐसा ही कहे। ऐसे ही होता है। शास्त्रोंमें सब आता है, अपेक्षासे सब आता है। एक बात स्वयं स्वतंत्र द्रव्य है, वह बात अलग है। उपादानकी दृष्टिकी बात अलग है और यह बात अलग है। उस बात पर वज़न देनेका कोई प्रयोजन नहीं है। द्रव्य पर दृष्टि करनेका प्रयोजन है। शुभाशुभ भाव मेरा स्वरूप नहीं है। मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसे भावना करके फिर बाहरमें ऐसे शब्द प्रयोग करनेकी (जरूरत नहीं है)। जो मार्ग प्रकाशक न हो उसे ऐसा बोलनेकी कोई जरूरत नहीं है।

मुमुक्षु :- पढना, सुनना (होता है), परंतु निश्चय नहीं हुआ है। वांचनमें किस प्रकारका ध्यान रखना कि जिससे निश्चय हो?

समाधान :- ज्ञायकका लक्ष्य कैसे हो? ऐसी रुचि रखनी। वह आत्माके लिये है न। एक आत्मार्थका प्रयोजन है। आत्माका स्वरूप कैसे समझमें आये? आत्माका निश्चय कैसे हो? सत्य वस्तु कैसे समझमें आये? इस हेतुसे शास्त्रमेंसे स्वाध्याय करे। सत्य वस्तु कैसे ग्रहण हो, इस हेतुसे। आत्मा कैसे समझमें आये? ज्ञायक कैसे समझमें आये? ज्ञायक किसे कहते हैं? ज्ञायकका लक्षण क्या? जानना। वह जानपना कैसे पहचानमें आये? ज्ञायक कैसे पहचानमें आये? यह विभाव क्या? स्वभाव क्या? कैसे पहचानमें आये? द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप क्या? वह समझनेके लिये, आत्माके प्रयोजनके लिये समझना। ज्ञायकका लक्ष्य नहीं हुआ है (तो) उसका लक्ष्य कैसे हो? उसकी रुचि रखना, वह हेतु रखना। शास्त्र मात्र जाननेके लिये नहीं, परन्तु आत्माका स्वरूप कैसे समझमें आये, इस हेतुसे-स्व हेतुसे विचार करना, पढना।

मुमुक्षु :- प्रयोजन आत्माका होना चाहिये।

समाधान :- प्रयोजन आत्माका होना चाहिये। भवका अभाव कैसे हो? बाहरका अनन्त काल सब किया, शुभभाव किये, पुण्यबन्ध हुआ, सब होता है, परन्तु आत्माका स्वरूप कैसे समझमें आये? भवका अभाव कैसे हो? स्वभावका सुख कैसे प्राप्त हो? ऐसा हेतु होना चाहिये।

मुमुक्षु :- अनुमानसे-अनुमान ज्ञानसे आत्मा प्राप्त नहीं हो सकता। समयसारमें तो लक्ष्य-लक्षणका भेद बताकर जो ज्ञानका लक्षण प्रसिद्ध है, उससे अनुमानसे ही लक्ष्य करवाना चाहते है?

समाधान :- वह अनुमानमें ऐसा कहना है कि मात्र ऊपर-ऊपरसे अनुमान किया ऐसे नहीं। परन्तु अन्दर यथार्थ अनुमान, स्वभावको पहचानकर अनुमान। लक्षणसे लक्ष्य

पहचानमें वह अपेक्षा अलग है और अनुमानसे पहचाना नहीं जाता, वह अपेक्षा अलग है। दोनों अपेक्षा अलग है। अनुमानसे पहचानमें आये, यथार्थ अनुमान, यथार्थ लक्षणको पहचाने तो लक्ष्य पहचानमें आता है। यथार्थ अनुमानसे। परन्तु जो अनुमानसे नहीं पहचाजा जाता अर्थात् ज्ञायक द्रव्य बाहरसे अनुमानमात्रसे पहचाना नहीं जाता, ज्ञायक ज्ञायक द्वारा पहचाना जाता है। दोनों अपेक्षाएँ अलग हैं।

मुमुक्षु :- वह यथार्थ लक्षण है।

समाधान :- वह यथार्थ लक्षण है। अन्दर स्वरूप लक्ष्यमें, द्रव्यके लक्ष्यसे द्रव्यको पहचाने उसमें सब बाह्य हो जाता है। अनुमानसे पहचाना वह सब व्यवहार हो जाता है। स्वयं स्वयंके द्वारा अंतरमें पहचाना जाता है, स्वयं ही है। वह अपेक्षा अलग है, यह अपेक्षा अलग है। परन्तु व्यवहार अथवा अनुमान कुछ हो ही नहीं तो आगे (कैसे बढे)? अनुमानका व्यवहार तो बीचमें आये बिना रहता ही नहीं। ज्ञानसे ज्ञानका व्यवहार बीचमें आये बिना नहीं रहता। श्रद्धा प्राप्त हो, ज्ञानका व्यवहार तो बीचमें आता ही है। यथार्थ ज्ञान हो तो यथार्थ श्रद्धा होती है। व्यवहार बीचमें आये बिना नहीं रहता। श्रद्धा मुख्य होने पर भी बीचमें ज्ञान आये बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ, वह अनुमान है, यथार्थ अनुमान। बाहरसे अनुमान करना वह नहीं, लक्षणको पहचानना वह अनुमान।

मुमुक्षु :- पहचाननेका जो स्वयंका प्रयास चलता हो, उसमें विकल्प द्वारा उसे विचार चलते हो और साथमें अपने भावमें, यह ज्ञान है, यह जानना है, यह जाननेका सामर्थ्य है, तो पहले जो-जो विकल्प गये वह सब व्यवहार हो जाता है और..

समाधान :- वह सब व्यवहार है। स्वयं स्वयंको पहचान लेना। स्वयंकी स्वयंके द्वारा पहचान हो गयी, अपनी अंतर परिणतिसे अंतरमें पहचाना, वह सब निश्चय है। बीचमें सब विचार आते हैं, वह व्यवहार है। परन्तु वह बीचमें आये बिना रहता ही नहीं। ज्ञानलक्षण है, अनुमानसे। वह अनुमान भी यथार्थ अनुमान है।

.. कब कहा जाय? लक्षणसे पहचाना, परन्तु अंतरमें स्वयं अपने स्वभावमें गया और स्वभावमें स्थिर हो गया, तब जैसा आत्मा था वैसा उसने पहचाना। ऐसा कहा जाय। उसकी प्रतीत, ज्ञान, लीनता सब अभेद होकर परिणमन हुआ, तब उसे यथार्थ प्रतीत हुयी। बीचमें उसे लक्षणसे पहचानकर नक्की किया कि ज्ञानस्वभाव ही आत्मा है। फिर अंतरमें स्वयं उस रूप हो गया, जैसा था वैसा। इसलिये बीचमें जाननेका व्यवहार आता है। अनुमानमात्र नहीं है। स्वयं स्वयंके द्वारा पहचाना (जाता है), वह अपेक्षा अलग है।

.. ऐसा भी आता है कि पहले यथार्थ ज्ञान करना, श्रद्धा करनी। फिर स्वयं अपने स्वरूपमें लीन हो। फिर ऐसा आये कि तभी वह सम्यक्पने दिखता है, तभी सम्यक्पने अनुभवमें आता है। उसे सम्यक् नाम कब दिया जाता है? कि जब उस रूप परिणमित हो गया तब उसे कहनेमें आता है।

उसकी प्रतीति और ज्ञायकधारा तो सहजरूपसे चलती ही है। परन्तु पहले उसे पहचाने तब ज्ञानलक्षणसे पहचाने। यह ज्ञान जो लक्षण है वह मैं ज्ञायक हूँ, स्वयंको पहचान लेता है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दृष्टिका प्रमाणज्ञान ..

समाधान :- सम्यग्दृष्टिका प्रमाणज्ञान? बाकी सब व्यवहार। पहले जो अनुमान आदि कहते हैं वह सब (व्यवहार)। उसे यथार्थ नाम नहीं कह सकते।

यथार्थ श्रद्धा हो। आता है न? निस्तुष युक्ति अवलंबनसे। ऐसी युक्तिका अवलंबन है कि जो टूटे नहीं, ऐसी यथार्थ। स्वभावको पहचानकर स्वयं अपनेको जानता है। परन्तु वह किसे पहचाना गया? स्वयं अपनेसे। स्वयं अपने स्वरूपसे अनुमानसे, कोई बाह्य कारण जिसे लागू नहीं पड़ते। स्वयं अपनेसे पहचाना जाता है। वह अपेक्षा पूरी अलग है।

... परन्तु उतना ही नहीं है। उतना नहीं है, परन्तु अभी अन्दर दूसरा है। स्वयं अपने द्वारा जाननेमें आता है। मात्र जान लिया और श्रद्धा की इसलिये जाननेमें आता है, ऐसा नहीं है। स्वयं अपनी परिणतिसे जाननेमें आता है। ऐसा कहना है। व्यवहार नहीं है ऐसा नहीं कहना है, उतना ही नहीं है अपितु उससे कुछ अधिक है।

मुमुक्षु :- उससे आगे..

समाधान :- उससे आगे है।

मुमुक्षु :- अन्दरसे होता है।

समाधान :- हाँ, अन्दरसे होता है। स्थूल अनुमान नहीं, यह तो अन्दरका अनुमान हो गया। लक्षणसे लक्ष्य पहचाना। परन्तु वह अनुमानमात्र इतना ही नहीं, परन्तु अन्दर स्वयं अपनी परिणतिसे पहचाना जाता है। स्वयं अपने स्वभावसे पहचानमें आता है। अस्तित्वसे, स्वयं अपनी परिणतिसे अंतरसे पहचाना जाता है। स्वानुभूतिसे, अपने अस्तित्वसे, अपनी परिणतिसे पहचाना जाता है। मात्र अनुमानसे नहीं।

.. उसमें पूरा नहीं आ जाता। वह लक्षण तो एक गुण आया। एक ज्ञानगुण ही आया। परन्तु उस लक्षणसे पूरा लक्ष्य पहचाननेका कारण बनता है। आत्मार्थी ऐसा है कि लक्षण द्वारा पूरेको ग्रहण कर लेता है। पूरा पहचाननेका है, एक गुण नहीं पहचानना है। ... पहचानता नहीं। परन्तु अपना पूरा अस्तित्व पहचान लेता है।

मुमुक्षु :- अभेद।

समाधान :- अभेदको पहचान लेता है। प्रकाश नहीं, यह तेज दिखाई देता है, वह प्रकाश नहीं, उस प्रकारका प्रकाश नहीं। बहुत कहते हैं न? अन्दर ध्यान किया तो प्रकाश हो गया। उस प्रकारका प्रकाश नहीं है, वह प्रकाश नहीं है। यह प्रकाशगुण प्रकाशत्व शक्ति अन्दर है। वह प्रकाश अलग, चैतन्यका प्रकाश लेना। अरूपी प्रकाश है, यह रूपी प्रकाश नहीं है। स्वानुभूतिमें चैतन्यकी अनुभूति है, उसमें प्रकाश पर लक्ष्य नहीं है। प्रकाश यानी ज्ञान स्वयं प्रकाशस्वरूप ही है। एक प्रकाशत्व शक्ति आत्मामें है। अन्दर किसीको कल्पना हो जाती है कि अन्दरसे प्रकाश हो गया। वह नहीं। अन्दर गया इसलिये कुछ दिखा, कुछ प्रकाश हो गया, उजाला हो गया, वह सब भ्रमणा है, वह नहीं। यह तो चैतन्य स्वयं ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञायक है, उसमें स्थिर हो गया, उसकी स्वानुभूति (हुयी)। वह चैतन्यज्योति चैतन्य प्रकाशस्वरूप चैतन्य ही है। बाहरका प्रकाश नहीं लेना।

.. प्रकाश प्रगट होता है, ऐसा गुरुदेव नहीं कहते थे। ज्ञानका प्रकाश। प्रकाश प्रगट होता है, ऐसा गुरुदेव नहीं कहते थे। वह तो वेदन, स्वानुभूतिका वेदन है। आनन्दगुण प्रगट होता है, प्रकाश प्रगट होता है ऐसा गुरुदेव नहीं कहते हैं।

मुमुक्षु :- १२वीं शक्ति है न? स्वसंवेदनमयी..

समाधान :- स्वसंवेनदमयी शक्ति। स्वसंवेदन-स्वानुभूतिके वेदनमय प्रकाश। स्वसंवेदन अर्थात् स्वानुभूति, स्वयंका वेदन हो वह प्रकाश। यह मात्र प्रकाश बोलते हैं। अकेला प्रकाश नहीं। स्वसंवेदनरूप प्रकाश वह अलग प्रकाश है। स्वयं स्वयंको प्रकाशता है। संवेदनरूप प्रकाश। अपनी स्वानुभूति होती है, स्वयं चैतन्य है ऐसे ही अनन्त गुण हैं। वह सब चैतन्यस्वरूप ही है। उसे जो स्वानुभूति होती है, वह स्वानुभूतिका प्रकाश है। एक प्रकाशगुण प्रगट होता है, ऐसा नहीं है।

स्वसंवेदनमयी प्रकाश-अपने वेदनका प्रकाश है। दूसरा प्रकाश नहीं, अन्दर वेदन होता है। अन्दर आनन्दगुण आदि गुण (हैं)। आत्मा अपूर्व अनुपम है, उसका जो वेदन होता है, जो स्वसंवेदन होता है, उसका प्रकाश है। स्वयं अपनेको प्रकाशित करता है, स्वयं अपना वेदन कर रहा है। स्वयं अपने प्रकाशरूप परिणमता है, स्वयं अपनेको जान रहा है, दूसरे प्रकारसे कहें तो। वह प्रकाश यानी बाहरका प्रकाश नहीं। अपने वेदनका प्रकाश है।

मुमुक्षु :- .. अकेले ज्ञायकका अवलम्बन लेनेके लिये। अब जब उसने अवलम्बन लिया तब अवलम्बन अकेले ज्ञायकका लिया और ज्ञानमें तो उसे ज्ञायक और परिणाम दोनों आये न?

समाधान :- ज्ञायकका अवलम्बन लिया, फिर? दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें है। दृष्टि द्रव्य पर है और ज्ञान सब जानता है। ज्ञान अपने गुणोंको जानता है, ज्ञान पर्यायको जानता है, ज्ञान वस्तुको जानता है, ज्ञान सब जानता है। ज्ञान उस वक्त चला नहीं जाता। ज्ञान तो स्वयं परिणमता है। ज्ञान स्वपरप्रकाशक है। स्वानुभूतिके कालमें स्वयं अपने गुणोंको जानता है, अपनी पर्यायोंको जानता है। स्वयं ज्ञायकको जानता है, ज्ञायकके गुणोंको जानता है, ज्ञायककी पर्यायको जानता है, परिणामको जानता है, सब जानता है।

दृष्टि एक द्रव्य अभेद है (उस पर है), फिर भी ज्ञान सब जानता है। ज्ञान भेद, अभेद सबको जानता है। बिना विकल्प किये। रागका विकल्प जिसमें नहीं है, ऐसी निर्विकल्प दशामें सब जानता है। ज्ञान शून्य नहीं हो गया है, ज्ञान जागृत है। स्वानुभूति यानी बाहरका सब छूट गया, विकल्प छूट गये इसलिये शून्य हो गया, ऐसा नहीं है। ज्ञान स्वयंको जानता है, अपने स्वरूपको (जानता है)। अवलम्बन भले ही द्रव्यका-ज्ञायका है, परन्तु वेदन-स्वानुभूतिमें आनन्दका वेदन है। आनन्दको जानता भी है। वेदन भी है और जानता भी है।

मुमुक्षु :- अनुभवके पहले जो शुरूआत की थी, उस वक्त तो अकेले ज्ञायकका जोर था।

समाधान :- मुझे एक ज्ञायक ही चाहिये। ज्ञायककी दृष्टि है। ज्ञायक एक आत्मा मैं जिस स्वभावसे हूँ, उस स्वभावको ग्रहण कर लिया। फिर दृष्टि वहाँ नहीं है। भेद पर दृष्टि नहीं है। विचारसे सब जान लिया कि आत्मामें अनन्त गुण और अनन्त पर्याय है। द्रव्य-गुण-पर्यायसे वस्तु भरी है। लेकिन आलम्बन एक वस्तुका ही लिया है। कहीं ओर दृष्टि नहीं है, कहीं ओर राग नहीं है, गुणभेदमें रुकता नहीं। मैं जो हूँ वह मुझे प्रगट हो, बस! वह विकल्प भी नहीं है। किसीका विकल्प नहीं है। आलम्बन एकका होने पर भी प्रगट सब होता है। वस्तुमें जो है वह सब प्रगट होता है। दृष्टिकी डोर एक ज्ञायक पर बाँध दी है। फिर ज्ञायकमें जो हो, वह सब उसे प्रगट होता है। श्रद्धाके बलसे आगे जाता है।

ज्ञायककी लगनी लगे, एक ज्ञायककी। दृष्टि-श्रद्धाका बल उस पर है। शुभभावमें जिसे भगवान पर भक्ति, गुरु पर भक्ति (होती है)। दृष्टि उस पर होती है, इसलिये एक गुरु पर और देव पर जो दृष्टि गयी, फिर विचारमें सब आता है। दृष्टिकी डोर शुभभावमें भगवान, गुरु और शास्त्र पर गयी, फिर भी विचार तो सब आते हैं। यह तो एक दृष्टांत है। .. फिर विचार छूट गये। दोनों जोर ज्ञायककी ओर है। श्रद्धाका बल और ज्ञानका बल ज्ञायककी ओर है, परन्तु ज्ञान सब जानता है। श्रद्धाके साथ ज्ञान भी बलवान है। जो श्रुद्धा हुयी, उस श्रद्धाकी ज्ञान पुष्टि करता है। ज्ञायक मुख्य

है ऐसा ज्ञान भी जानता है। ज्ञायकको मुख्य रखकर ज्ञान सब जानता है। ज्ञान वस्तुको जैसी है वैसी जानता है। अभेद निश्चय वस्तु स्वरूप क्या है वह जानता है, उसके गुण और उसकी पर्याय, सबको जानता है। जैसे श्रद्धाका बल द्रव्य पर है, वैसे ज्ञानका बल भी उस ओर है। निश्चय और व्यवहार जैसा है वैसा ज्ञान जानता है। जहाँ जिसका बल हो, उस प्रकारसे ज्ञान सब जानता है। ज्ञानकी डोरी उस ओर है, श्रद्धा उस ओर है, लीनता भी उस ओर जाती है। द्रव्यमें स्थिर होनेके लिये लीनता भी वहाँ जाती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें सब ज्ञात होनेके बावजूद उसका विषय तो चालू ही रहता है।

समाधान :- जैसा है वैसा जानता है। दोनोंको जानता है। बल श्रद्धाका है, परन्तु ज्ञानका बल भी साथमें है। सब है। श्रद्धा मुख्य है। ज्ञानमें भी श्रद्धा, स्वयं श्रद्धा भी शुद्ध। सब गुण एक द्रव्यके ही हैं। लक्षणभेदसे भिन्न हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६५

मुमुक्षु :- दीक्षा लेनेसे पहले जातिस्मरण होता है। वैराग्यका निमित्त बनता होगा या और कुछ?

समाधान :- उन्हें विकल्प आता है। दीक्षाके पहले जातिस्मरण होता ही है। ऐसा नियम है। निमित्त कुछ भी बने, परन्तु अन्दर होता है। दीक्षा भाव उत्पन्न होते हैं इसलिये जातिस्मरण होता है।

मुमुक्षु :- जातिस्मरण वैराग्यकी वृद्धिका (कारण बनता है)?

समाधान :- वैराग्य-वृद्धिका कारण बनता है। शास्त्रमें आता है न? वैराग्य-वृद्धिका कारण बनता है। पूर्वके दुःखोंको याद करके बहुत जीवोंको वैराग्य आता है। भवोंको याद करके बहुत जीवोंको वैराग्य आता है। वैराग्यका निमित्त बनता है। जो उस ओर मुड़े उसे वैराग्यका कारण बनता है। आत्माकी ओर मुड़नेवाला होता है, उसे वैराग्यका कारण बनता है।

मुमुक्षु :- जातिस्मरण आत्मप्राप्तिमें निमित्त बनता होगा?

समाधान :- जो आत्माकी ओर मुड़नेवाला हो उसे निमित्त कहनमें आता है। शास्त्रमें बहुत कारण आते हैं न? अनेक जातके कारण आते हैं। जातिस्मरण, अमुक देवकी ऋद्धि, यह-वह, ऐसे बहुत कारण आते हैं। उसमें एक जातिस्मरण भी कारण आता है। जीव अपनी ओर मुड़े उसे कारण बनता है। सबको कारण बने ही ऐसा नहीं होता। सबको वैराग्यका कारण बने, ऐसा भी नहीं होता। लौकिकमें बहुतोंको होता है, सबको होता है, ऐसा नहीं। जो आत्माकी ओर मुड़नेवाला होता है, उसे कारण बनता है। भवांतरोंको याद करके जिसे वैराग्य आना होता है, उसे वैराग्यका कारण बनता है। इस जीवने अनन्त जन्म-मरण किये हैं। यह जीव अनन्त परिभ्रमण करता आ रहा है। आत्मा शाश्वत है। जो आत्मार्थी अपनी ओर मुड़नेवाला होता है, उसे कारण बनता है।

मुमुक्षु :- तीर्थंकर भगवानको जन्मसे अवधिज्ञान तो होता है।

समाधान :- हाँ, अवधिज्ञान होता है, फिर जातिस्मरण होता है।

मुमुक्षु :- जातिस्मरणसे भी विशेष स्पष्टता अवधिज्ञानमें होती है?

समाधान :- अवधिज्ञान तो प्रत्यक्ष है, फिर भी जातिस्मरण होता है। भगवानको तो सब ज्ञान प्रगट होते हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! समकित ज्यादा साल टिके तो गाढ़ होता जाता है। वैसा जातिस्मरणज्ञान ज्यादा साल टिके तो उसमें कोई फेरफार होता है?

समाधान :- सम्यग्दर्शन ज्यादा साल टिके तो गाढ़ होता जाता है, वह तो उसकी परिणति दृढ़ होती है, वह अपने कारणसे होती है। वैसे जातिस्मरण दृढ़ होता जाता है, वह सब अपने कारणसे होता है। जातिस्मरणके कारणसे वह होता है, ऐसा नहीं है, परन्तु अपने पुरुषार्थके कारणसे होता है। सम्यग्दर्शन ज्यादा साल टिकता है वह अपने कारणसे बनता है।

मुमुक्षु :- जातिस्मरणके टिकनेमें भी पुरुषार्थ है?

समाधान :- सबमें पुरुषार्थ तो होता ही है। प्रयत्नसे नहीं होता, सहज होता है।

मुमुक्षु :- जातिस्मरणमें वृद्धि होती है? उसमें वृद्धि कैसे होती है?

समाधान :- निर्मल परिणतिके कारणसे होती है। कैसे होता है, वह तो सहज है। मतिकी निर्मलतासे होती है।

मुमुक्षु :- एक बार याद तो आ गया है, फिर उसमें वृद्धि हो, वह कैसे?

समाधान :- मतिकी निर्मलतासे होती है।

मुमुक्षु :- अधिक स्पष्टतापूर्वक याद आता है?

समाधान :- वह सब मतिकी निर्मलताके (कारण होता है)। स्वयं आत्माकी साधना साधता-साधता जो जीव आगे बढ़ता है, उसमें कोई भी परिणतिकी निर्मलता बढ़ने पर होता है। स्वरूपमें लीनता करते-करते कोई परिणतिकी निर्मलता हो तो उस निर्मलतासे होता है।

मुमुक्षु :- जिसे पूर्व भवका जातिस्मरणज्ञान हो, उसे बीचमें इस जन्मसे पहलेके .. कोई स्मरण होता है? क्योंकि श्रीमद्में ऐसा आता है, इस जीवको पूर्व भवकी मरणकी वेदना अधिक हो या गर्भकी वेदना हो तो उस वेदनाका वेदन करे तो उसमें उसे पूर्व भवका स्मरण हो जाता है। सब जीवोंको ..

समाधान :- .. किसीको विस्मरण हो जाता है। फिर भी संज्ञी जीव है, मन है तो उसे याद आवे। मृत्यु समयके दुःखके कारण विस्मरण हो जाता है। विस्मरण भी हो जाता है और याद भी आये। संज्ञी जीव है उसे याद आये।

मुमुक्षु :- पूर्व भवके साथ इस जन्मके गर्भके दुःख भी याद आये?

समाधान :- उस प्रकारकी परिणति हो तो याद आये। याद आवे ही ऐसा नक्की नहीं होता। जिस जातकी उसकी परिणति जहाँ जाये वैसे याद आये। उसकी परिणति

सहज जहाँ जाती हो, ऐसे याद आता है।

... (नक्की) नहीं होता कि ऐसा ही आये या ऐसा ही आये। मन सहितके जो उसके भव है, उसमें उसे सहजरूपसे याद आये।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! गुरुदेवश्रीका एक बोल ऐसा आता है कि अनुभूति होनेसे और जातिस्मरणज्ञान होने पर ... अनेक प्रकार उन्हें स्पष्ट हो गये।

समाधान :- कहाँ आता है? वह सब कहनेकी बात है।

श्रद्धा-ज्ञानसे आत्माको पहचाने, स्वरूपकी प्रतीति करे कि मैं ज्ञायक हूँ। उस ओर उसकी श्रद्धा दृढ़ हो, ज्ञायककी परिणति हो, ज्ञान उस ओर जाय, लीनता उस ओर हो वह साधकदशाका मार्ग है। उसमें उसकी लीनता बढ़ती जाय। उसमें बीचमें कोई निर्मलताकी परिणति बढ़ने पर जो प्रकार होने होते हैं, वह होते हैं। प्रयोजन तो एक आत्माकी ओर जानेका है।

ज्ञायककी परिणति दृढ़ हो, भेदज्ञानकी धारा उग्र हो, ज्ञायककी परिणतिकी उग्रता हो और अन्दर स्वरूपकी लीनता बढ़ती जाय, विभावसे न्यारा होता जाय, स्वरूप परिणतिकी दृढ़ता होती जाय। यह एक ही मार्ग है। उसमें बीचमें जिस प्रकारकी परिणतिकी निर्मलता होती हो वह होती है। जिसकी जिस प्रकारकी परिणति हो (वैसे होता है)।

मुमुक्षु :- आजका दिन ऐसा मंगल है, ..

समाधान :- वह कोई बार-बार कहनेकी बात है? सहज जब आये तब आये। वह तो उस दिन भगवान हर जगह विराजमान होते थे, वह प्रसंग था, उस प्रसंग पर कुछ निकल गया। सब जगह भगवान विराजमान होते थे, वह प्रसंग था इसलिये..।

मुमुक्षु :- आज इस प्रकारका प्रसंग है। भाव जातिस्मरण...

समाधान :- उस जातका याद आवे तो स्पष्ट हो, जिस जातका याद आवे वैसा। स्वयं जानते थे कि स्वयं तीर्थंकर होनेवाले हैं। उनका हृदय ही बोलता था। स्वयं तीर्थंकर होनेवाले हैं। तीर्थंकरका द्रव्य स्वयं हैं। और भगवानने कहा। उनको अंतरसे लगता था। उनको स्वयंको तीर्थंकरत्वकी भनक आती थी। यह भरतक्षेत्र, यहाँ तो अभी सबके अभिप्राय... गुरुदेव यहाँ पधारे और मार्गका प्रकाश किया। सबको सत्य मार्ग मिला। मार्ग कहाँ कौन जानता था?

केवलज्ञान तो अभी नहीं है, भावलिंगी मुनि भी अभी तो दुर्लभ हो गये हैं। गुरुदेव पधारे तो यह सब जाननेको मिला। यह मार्ग अलग है, अंतरमें रहा है। साधकदशा अंतरमें, सब अंतरमें है। ज्ञान, श्रद्धा आदि सब अंतरमें है। पहले तो सब सम्यग्दर्शन बाहरसे मानते थे, सब ज्ञान बाहरसे मानते थे, चारित्र बाहरसे मानते थे। सम्यग्दर्शन अंतरमें स्वानुभूतिकी दशामें प्रगट होता है, ज्ञान भी अंतरमें है और चारित्र भी अंतरमें

है। गुरुदेवने स्पष्ट कर-करके स्पष्ट (किया है)। कहीं भूल न रहे ऐसे ललकार कर-करके कहा है कि शुभभाव करते-करते होगा, ऐसा नहीं होगा। अंतरमें तो तू भिन्न ही हो जा। इतना तो रखूँ, ऐसे भी नहीं। इतना जोरदार कहा है। सबके अभिप्राय अन्दरसे बदल गये।

मुमुक्षु :- माताजी! जातिस्मरणज्ञानमें ... भवका जानना हो परन्तु आपका पूर्व भवका जातिस्मरणज्ञान है महाविदेहक्षेत्रका, तो आजके दिन सबको ज्यादा भावना हो कि आपके श्रीमुखसे भगवानका वर्णन, समवसरणका वर्णन अथवा दूसरा कुछ हम सुनें तो हम सबको आनन्द हो।

समाधान :- वह जब आता है तब थोडा आ जाता है। वह सब कोई कहनेकी बात थोड़े ही है।

मुमुक्षु :- आजके दिन सब अपेक्षा तो रखे ना।

समाधान :- अपेक्षा रखे, लेकिन जितना कहनेमें आये उतना ही कहनेमें आता है, दूसरा कुछ कहनेका नहीं है। लोगोंको एक प्रकारका आश्चर्य होता है। अन्दर आत्माका करना वह मुख्य है।

मुमुक्षु :- प्रयोजन तो सुखका है, परन्तु ऋद्धि बीचमें सहज प्रगट हो जाती है, तो उस ऋद्धिका बहुत बार ज्ञानी साधकको भी ऐसा राग आता है, तो हम सबको तो ऐसी इच्छा हो न कि माताजी कुछ कहे।

समाधान :- ऋद्धिको जाननेका राग नहीं, परन्तु भगवानकी भक्ति है। ऋद्धि जाननेका राग नहीं है। भगवानका क्या वर्णन, उस समवसरणका क्या वर्णन (करना)? वह सब शास्त्रोंमें आता है। बाकी भगवान तो भगवानका क्या वर्णन (करना)? जगतसे भिन्न-न्यारे भगवान (हैं)। जो वीतरागी है, जिनका चलना अलग, जिनका बोलना अलग, जिनका बैठना अलग, जिनकी वाणी अलग, जगतसे सब अलग ही है। अंतरमें तो भिन्न हो गया, परन्तु बाहर भी अलग हो गया।

मुमुक्षु :- शास्त्रमेंसे सुने और एक प्रत्यक्ष पुरुषके पास सुने तो उसमें फ़र्क़ तो पड़ता है न? आप थोड़े खुल्ले हृदयसे बात करें तो हमें..

समाधान :- खुल्ला कुछ नहीं कहना है। जितना कहना होता है, उतना कहते हैं।

मुमुक्षु :- भगवानका इतना बड़ा देह होगा, समवसरणमें कैसे विराजमान होंगे?

समाधान :- .. यहाँ कल्पनामें आता है? यहाँ तो रत्न दिखाई भी नहीं देते हैं। वह रत्नका समवसरण कहाँ कल्पनामें आ सके ऐसा है? जो देवों द्वारा रचित। देव भी यहाँ दिखाई नहीं देता। देवोंका आवागमन और मुनिओंका समूह, कल्पनामें

आना मुश्किल पड़े ऐसा है। मुनिका दिखना मुश्किल पड़ता है। मुनिओंका, साधकोंका समूह यहाँ कहाँ दिखाई दे ऐसा है? रत्नका समवसरण, वह रत्न यहाँ कहाँ दिखाई देते हैं? पाँचसौ धनुषका देह, उसके वृक्ष, उसके गढ़ कहाँ कल्पनामें आ सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- माताजी! कभी थोड़ा ज्यादा सुननेकी इच्छा होती है न।

समाधान :- यहाँ कुछ कल्पनामें आ सके ऐसा नहीं है। जहाँ दूसरे कोई मत नहीं है, जहाँ दूसरा संप्रदाय, वाडा नहीं है, जहाँ भगवान कहे वही बात फैल रही है। वाणी सुनते वक्त कितने ही अंतर्मुहूर्तमें सम्यग्दर्शन, कितने ही केवलज्ञान, कितने ही मुनि (दशा) प्राप्त कर रहे हैं, वह काल पूरा अलग है। यहाँ एक सम्यग्दर्शनकी दुर्लभता है। वहाँ मुनिदशा क्षण-क्षणमें (आती है)। सब त्यागकर छोड़कर चल देते हैं। भगवानकी वाणी सुनते हैं। वह धर्म काल... यहाँ गुरुदेवके प्रतापसे इतना हो रहा है।

... गुरुदेवने तत्त्व बहुत समझाया। एक ज्ञायक आत्माको समझो। एक आत्मा भगवान है। विभाव भी अपना स्वभाव नहीं है। ज्ञायक आत्माको पहचानो, यह सब गुरुदेवने बताया। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र और भीतरमें शुद्धात्मा ज्ञायक, जो निर्विकल्प तत्त्व है उसे पहचानो। गुरुदेवने इसका बहुत विस्तार कर-करके सूक्ष्म-सूक्ष्म न्यायादिसे बताया है। उनकी वाणी अपूर्व थी, आत्मा अपूर्व, उनका ज्ञान अपूर्व, सब अपूर्व ही था। ऐसा कहनेवाले कोई दिखनेमें नहीं आते हैं। तीर्थंकरका द्रव्य था जो भरतक्षेत्रमें पधारे, सबके कल्याणके लिये पधारे।

मुमुक्षु :- इस बातको कहनेवाला कोई नहीं था। स्वप्नमें भी नहीं।

समाधान :- अलौकिक। उतनी वाणी इतनी जोरदार व अपूर्व थी, सुननेसे आत्माका आश्चर्य लगे, आत्माकी महिमा आये, ऐसी उनकी अपूर्व वाणी थी। द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, कर्ता-कर्मका स्वरूप, निमित्त-उपादानका स्वरूप, सब गुरुदेवने स्पष्ट करके बताया। पहले तो सब क्रियासे धर्म होता है, शुभभावसे धर्म होता है, ऐसा सब मानते थे। गुरुदेवने ऐसा परिवर्तन अंतर दृष्टि करके सबको (जागृत किया)। भीतरमें आत्मामें सब है, स्वभावसे सब प्रगट होता है। स्वभावमेंसे स्वभावकी पर्याय भीतरमेंसे आती है। गुरुदेवने सब स्पष्ट करके बताया है।

मुमुक्षु :- आत्म धर्म यहाँसे प्रकाशित करके आपने महान उपकार किया है।

समाधान :- गुरुदेवने कहा, उस मार्ग पर चलना वहीं करना है, आत्माका कल्याण (करना है)। आत्माका स्वरूप समझकर, भेदज्ञान करके, आत्मद्रव्य पर दृष्टि करनी वही करना है। गुरुदेवने जो मार्ग बताया, उसी मार्ग पर चलना है। अन्दर स्वानुभूति, भवका अभाव सब ज्ञायकको पीछाननेसे होता है। पुरुषार्थ तो स्वयंको करना है, पुरुषार्थ तो करनेसे होता है। आत्मा ज्ञायक जाननेवाला, शुभाशुभ भाव भी अपना स्वभाव नहीं

है। उससे भेदज्ञान करके ज्ञायकके स्वभावको पहचानकर, उसकी प्रतीत-श्रद्धा, उसमें लीनता करना वही मुक्तिका मार्ग है, वही प्रगट करना है, जीवनमें वही करनेका है।

मुमुक्षु :- भरतजीने कैलास पर्वत पर स्थापना की, आपने भी साक्षात् स्थापना की। ... यह सुनकर जिसको कंटाला आता है.. यह तो जो .. साक्षात् करके दिखाया। यह काम कोई बूरा नहीं किया, सबसे बढ़िया कार्य किया। यह हमारे मनके .. हुआ।

समाधान :- सबकी भावना हुयी, सब मुमुक्षुओंको। क्या करे? किसीको अच्छा लगा, किसीको नहीं भी लगा। सबकी भावना हुयी तो ऐसा (हो गया)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६६

समाधान :- ... मैं मेरे आत्माका करुँ। यह विभाव राग-द्वेषकी तरफ... पुरुषार्थ यानी अपनी भावनामें तो मैं कुछ करुँ, ऐसा आता है। मैं पुरुषार्थ-बल रखुँ तो राग-द्वेषकी ओर... लेकिन उसके भावमें तो ऐसा है, उसका अर्थ तो यह होता है कि आत्मार्थीके हृदयमें ऐसा आता है कि मैं मेरी तरफ मुडुं। वह भले .. हो, परन्तु आत्मार्थीको तो वह भावना (होती है)। वह पुरुषार्थका अर्थ ऐसा है कि मैं कुछ करुँ। फिर उसके साथ ... स्वयंको ऐसा क्यों रखना चाहिये कि यह पुरुषार्थ .. है, सब .. है, तो मैं क्या करुँ? स्वयंको ऐसा क्यों रखना चाहिये?

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ ही अगत्य है।

समाधान :- पुरुषार्थके साथ उन सबका मेल है। पुरुषार्थ, आत्माका स्वभाव, जो होनेवाला हो वह होगा, उन सबका मेल है। अकेला क्रमबद्ध, क्रमबद्ध है सही, कोई ऐसा माने कि पुरुषार्थ भी क्रमबद्ध (है)। परन्तु पुरुषार्थका भाव ऐसा निकलता है कि मैं कुछ करुँ। करुँ ऐसी भावना यदि वह छोड़ दे और जो होनेवाला होगा वह होगा, ऐकान्त ऐसा ले ले, तो तो फिर अनादिका संसार भी होनेवाला है। जो होनेवाला है वह होगा, ऐसा एकान्त पकड़ ले, एकान्त ऐसा ही ले-ले कि जो होनेवाला है वैसे होता है। राग-द्वेष होनेवाले थे वह हुए, मैं क्या करुँ? मुझसे कुछ नहीं होगा। वह तो होनेवाला हुआ। ऐसे ले लिया तो उसे संसार ही होनेवाला है।

मुमुक्षु :- राग-द्वेषके समय भी अपने आत्मामें जुड़े तो नहीं होते।

समाधान :- जुड़े तो राग-द्वेष नहीं होते। ऐसा फिक्स होता है। जो आत्मा अपनी आत्मामें जुड़ता है, उसे राग-द्वेष नहीं होता। ऐसे फिक्स होता है। परन्तु फिक्स ऐसा नहीं है कि स्वयं जुड़े नहीं और जैसा होनेवाला होगा वह होगा, ऐसे छोड़ दे तो संसार ही होनेवाला है। फिर राग-द्वेष कभी कम नहीं होंगे। जो होनेवाला था वैसा हुआ, मैं क्या करुँ? जो होनेवाला है वह हुआ, उसके साथ अपने आत्माके साथ जुड़ान करे, वह उसके साथ फिक्स जुड़ा है। अपनी भावनामें तो (ऐसा होता है कि), मैं कुछ बल करुँ, मैं आत्माकी ओर जाऊँ, ऐसी भावना हो, उसके साथ फिक्स जुड़ा हुआ है।

मुमुक्षु :- जीव जैसे भाव करे वैसे भाव होते हैं या जैसे होनेवाले हो वैसे होते हैं?

समाधान :- जीव जैसे भाव करे वैसे होता हैं और होनेवाले होते हैं, दोनों मेलवाला है। आत्मार्थीको तो ऐसे ही लेना है कि मैं मेरे दोषके कारण अटकता हूँ। जो होनेवाला था वह हुआ, ऐसे यदि एकान्त लेगा तो वह शुष्क हो जायगा। कुछ नहीं कर सकेगा। भगवानने जितने भव देखे हैं, वैसा होगा।

भगवानने ऐसा देखा है कि तू पुरुषार्थ करेगा तो तेरे आत्माकी (ओर जायगा)। यह आत्मा पुरुषार्थ करके आत्माकी ओर मुड़ेगा। लेकिन पुरुषार्थ करनेवाला तो ऐसे ही लेता है कि मैं इस ओर मुड़ूँ। ऐसा उसे आये तो ही अपनी ओर जाय। यदि उसकी भावनामें ऐसा आये कि जो होनेवाला होगा वह होगा। ऐसे एकान्त ले जाय तो संसार ही होनेवाला है।

मुमुक्षु :- एकान्त हो जाय वह जीवकी अपनी भूल है न?

समाधान :- अपनी भूल है। ऐसे एकान्त ले-ले वह अपनी भूल है।

मुमुक्षु :- सबकी योग्यता समान होती है या सब जीवकी योग्यता भिन्न-भिन्न होती है?

समाधान :- सबका स्वभाव एक समान है। योग्यता भिन्न-भिन्न होती है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ करनेकी योग्यता सबकी भिन्न-भिन्न होती है?

समाधान :- सबकी भिन्न-भिन्न होती है।

मुमुक्षु :- वह कुदरती होती है?

समाधान :- कुदरती है, लेकिन स्वयं पुरुषार्थ जैसा करना चाहे वैसा कर सकता है।

मुमुक्षु :- योग्यताके कारण अटक जाय, ऐसा है?

समाधान :- नहीं, अटके नहीं। अपनी मन्दताके कारण ही अटक जाता है। मेरी योग्यता नहीं थी तो मैं अटक गया, ऐसा माननेवाला आगे नहीं जायगा। वह सब बहाने हैं। मैं नहीं कर सकता हूँ, जैसा होनेवाला है वह होता है।

मुमुक्षु :- आखरी सवाल है, ध्यान करना हो तो वह कैसे करना?

समाधान :- आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करे। मैं द्रव्य हूँ। गहराईसे उसका स्वभाव पहचाने। पहचानकर उसकी यथार्थ श्रद्धा करे, बराबर निर्णय करके उसमें एकाग्र हो तो ध्यान होता है। सच्चे ज्ञान बिना सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। सच्चा ज्ञान करे तो ही सच्चा ध्यान होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान यानी नौ तत्त्व सम्बन्धित जो ज्ञान है वह...?

समाधान :- नहीं, वह नहीं। वह सच्चा ज्ञान नहीं है। नौ तत्त्व तो एक समझनेके लिये, भेद है। अन्दर आत्माको पहचाने। मात्र नौ तत्त्व (जाने) ऐसे नहीं। मैं यह जाननेवाला आत्मा हूँ, मैं ज्ञानस्वभाव हूँ, मैं ज्ञायक शाश्वत आत्मा हूँ, मैं द्रव्यसे अनादिअनन्त

हूँ। मेरेमें अनन्त गुण हैं। अन्दर पहचानकर। मेरेमें पर्याय (है), मैं पलटनेके स्वभाववाला हूँ। आत्माको पहचाने तो ध्यान होता है। आत्माके अस्तित्वको पहचाने बिना कहाँ खड़ा रहेगा? कहाँ टिकेगा? उसकी एकाग्रता कहाँ होगी? ध्यानके लिये एकाग्रता (होनी चाहिये)। उसका लक्षण पहचानकर उसमें स्थिर रहे, तो ध्यान होता है।

मुमुक्षु :- ध्यानमें ही शुद्धात्माको पकड़ सकता है?

समाधान :- स्वयं विचार करे। ध्यान अर्थात् एकाग्रता। विचार करे तो पकड़ सकता है। विचार किये बिना नहीं पकड़ सकता। अपना लक्षण पहचाननेका प्रयत्न (करना चाहिये)। एक आदमीको पहचानना हो तो उसका लक्षण क्या है? वह आदमी कैसे पहचाना जाय? गुरुको पहचानना हो तो गुरुके लक्षणसे पहचाने। लक्षणको पहचाने बिना ध्यानसे नहीं पहचाना जाता। समझे बिना ऐसे ही ध्यान करे तो ऐसे नहीं पहचाना जाता।

मुमुक्षु :- तो पहले स्वाध्याय करना चाहिये या ध्यान करना चाहिये?

समाधान :- पहले स्वाध्याय करके सच्ची समझ करनी चाहिये। विचार करना चाहिये। तत्त्वका विचार करे फिर ध्यान होता है। समझे बिना ध्यान नहीं होता।

मुमुक्षु :- कौनसा स्टेज आये कि जब ध्यानका स्टेज शुरू हो?

समाधान :- आत्माको पहचाने तो ध्यानका स्टेज आये। मैं यह ज्ञायक जाननेवाला ही हूँ, मैं आत्मा ही हूँ, ऐसा उसे बराबर नक्की हो तो ध्यानका स्टेज आता है।

मुमुक्षु :- तब तक स्वाध्याय करना।

समाधान :- स्वाध्याय करना, विचार करना, श्रद्धा करनी। सच्ची श्रद्धा नहीं हो तो सच्चा ध्यान नहीं होता। श्रद्धा बराबर करनी। बिना श्रद्धाके डगमगाहट होती है। सच्चा ध्यान नहीं होता।

मुमुक्षु :- श्रद्धा होनेके बाद अन्दर फिक्स नहीं रहता, बाहरमके विचार आ जाते हैं।

समाधान :- लेकिन सच्चा ध्यान हो तो उसकी रुचि लगे, रस लगे तो ध्यान होता है। रुचि और रस बिना (नहीं होता)। नक्की किया, श्रद्धा की तो भी उसका रस, रुचि न हो तो भी ध्यान नहीं होता।

मुमुक्षु :- अपने मनमें इच्छा नहीं होने पर भी भूल हो जाती है। अपना मन नहीं हो, फिर भी हो जाती हो..

समाधान :- वह अपनी मन्दता है। इच्छा नहीं है, उसकी रुचि नहीं है लेकिन अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। अनादिका अभ्यास है उसमें जुड़ जाता है।

मुमुक्षु :- वह पाप है?

समाधान :- पापके भाव करे तो पापका, पुण्यके करे तो पुण्यका। जैसे भाव हो। उसमेंसे छूटनेका धीरे-धीरे प्रयत्न करना, उसका विचार करना, अन्दर जिज्ञासा करना। धीरे-धीरे बारंबार बदलनेका प्रयत्न करे। तो अनादिसे जो चल रहा है, अनादिके राग-द्वेष (अटके)।

मुमुक्षु :- नहीं होनेका कारण एक पुरुषार्थकी ही कमी।

समाधान :- आत्मार्थीको यही लेना है कि पुरुषार्थकी कमी है। सच्चा ज्ञान नहीं है, पुरुषार्थ नहीं है। ज्ञान बिना-समझ बिनाका सब ऐसा ही है, पुरुषार्थ बिनाका ऐसा ही है।

मुमुक्षु :- स्वाध्याय आदि सब करते हैं, फिर भी क्रोध भी उतना ही आता है।

समाधान :- स्वाध्याय करे इसलिये क्रोध नहीं आये, ऐसा नहीं है। स्वाध्याय करनेवाला आत्माकी रुचि, जिज्ञासा बढाये तो उसका क्रोध मन्द पड़े। स्वाध्याय करे इसलिये क्रोध छूट जाय ऐसा नहीं है। मात्र ज्ञान करे तो क्रोध छूट जाय, ऐसा नहीं है। ज्ञान करके अन्दरसे स्वयं पुरुषार्थ करके अपनी ओर मुड़ना चाहिये, तो होता है। ज्ञान करनेवालेको भी क्रोध आता है। अन्दर शुष्क हो और हृदय भीगा हुआ न हो तो क्रोध आता है। मात्र पढ़ ले और अन्दर कुछ नहीं हो, ऐसा बनता है। पढ़ता ही रहे और अन्दर कुछ उतारे नहीं तो क्रोध आता है।

समाधान :- तो ..

समाधान :- ज्यादा जानना, ज्यादा पढना चाहिये ऐसा नहीं है। प्रयोजभूत आत्माको जाने तो होता है। आत्माको बराबर पहचानना चाहिये। द्रव्य-गुण-पर्यायको कुछ तो ज्ञान होना चाहिये। ज्यादा स्वाध्याय करे तो होता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- बहुत बार ऐसा लगता है, सब करनेके बावजूद हाथमें नहीं आता है।

समाधान :- अपनी कमी है। सब नहीं किया है। थोड़ेमें ज्यादा मान लिया है।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेवश्रीकी ९८ वीं जन्म जयंति महोत्सवकी जय हो।

माताजी! ... सम्यग्दर्शन टिकनेमें, वृद्धि होनेमें तथा जीवको निरंतर साक्षीभावमें ...मुख्यपने काम करता है कि जीवकी अनन्त शक्ति... काम करती है?

समाधान :- जीवने जिस ज्ञायकभावको ग्रहण किया है, उस ज्ञायकभावका स्वरूप और कैसे ज्ञायकदशा टिके और कैसे श्रद्धा हो, सम्यग्दर्शन कैसे टिके, मुनिदशा कैसे आये, यह सब स्वरूप गुरुदेवने स्पष्ट करके बहुत समझाया है। गुरुदेवका तो परम-परम उपकार है। गुरुदेवने तो इतना स्पष्ट किया है कि कुछ शंका रहे ऐसा नहीं है।

श्रद्धा टिकनेमें ज्ञायककी परिणति काम करती है। ज्ञायककी परिणति, ज्ञायककी जो श्रद्धा हुयी कि मैं यह ज्ञायक हूँ, इसके सिवा जो भाव है, वह मेरा स्वरूप नहीं

है, मैं उससे भिन्न हूँ। ज्ञायक स्वभावको जो पहचाना और जिस ज्ञायकका आश्रय लिया, उस ज्ञायकका आश्रय और श्रद्धाका ज़ोर है। ज्ञायकके आश्रयसे ही वह काम करता है। ज्ञायकके आश्रयसे विभावसे जो विरक्ति हुयी वह विरक्ति हुयी और ज्ञायकका आश्रय लिया, ज्ञायकको पहचाना इसलिये श्रद्धाके बलसे लीनता (करके), अपने स्वरूपमें आगे बढ़ता जाता है। श्रद्धाका बल तो एक प्रकारका है। उसमें ज्ञान और चारित्र, चारित्रकी लीनता बढ़ती जाती है। ज्ञायकके आश्रयके जोरसे होती जाती है।

स्वभावसे एकत्व और विभावसे विभक्त, ऐसी जो न्यारी परिणति हो गयी, वह न्यारी परिणति, ज्ञायकका आश्रय, वही आगे बढनेमें काम करता है। अकर्ताका सिद्धान्त नहीं, अपितु अकर्ताकी परिणति हो गयी। ज्ञायक हुआ अर्थात् अकर्ता हुआ। इसलिये परका कर्तृत्व छूट गया। अनादिकी जो जीवकी भूल है, वह कर्तृत्वकी और एकत्वबुद्धिकी है। वह एकत्वबुद्धि टुट गयी, भिन्न हो गया और ज्ञायक हो गया। ज्ञायक हुआ इसलिये कर्तृत्व छूट गया। भिन्न हुआ और अकर्ता हुआ, उसके साथ ज्ञायक हुआ। ज्ञायकका आश्रय, ज्ञायककी महिमा, ज्ञायक अद्भुत आश्चर्यकारी तत्त्व है। इस आश्चर्यकारी तत्त्वकी जो महिमा आयी और उसका आश्रय ऐसा जोरदार है, इसलिये पुरुषार्थकी डोर, ज्ञायक-ओरकी डोरी बारंबार अपनी ओर जाती है और लीनता बढती है।

ज्ञायककी धारा, अपनी ओर जानेका कारण ज्ञायकका आश्रय है। अकर्ताकी परिणति साथ-साथ होती है। नास्तित्वकी ओरसे अकर्ताकी परिणति और स्वभावकी ओरसे ज्ञायकका आश्रय लिया, वही आगे बढनेमें कारण होता है। टिकनेमें एवं लीनता बढानेमें, सबमें ज्ञायककी परिणति काम करती है। स्वयं सहज स्वभावसे ज्ञायक ही है। ज्ञायक सहज है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब अपने सहज स्वभावसे जो गुण हैं, वह गुण अभेदरूपसे आत्मामें है। गुणभेद पर उसकी दृष्टि नहीं है। दृष्टि तो एक ज्ञायक पर ही है। ज्ञायकका आश्रय ही उसे आगे बढनेमें काम करता है।

अनन्त शक्तियाँ हैं। उन शक्तियोंकी उसे महिमा (होती है), वह उसे ज्ञानमें आये परन्तु उसकी गुणभेद पर दृष्टि नहीं है। स्वानुभूतिमें उसकी अद्भुत अनन्ता, अनुपमता लगे उसकी उसे महिमा है। लेकिन उसकी दृष्टि तो एक ज्ञायक पर है। आगे बढ़नेमें ज्ञायककी ओर जो बढता है, वह स्वयं ज्ञायकके आश्रयसे ही बढता है। उसमें कोई दूसरा कारण नहीं है। उसका कारण एक ज्ञायकका आश्रय है वह। और अकर्ताकी परिणति तो साथमें है ही।

मुमुक्षु :- एकान्तसे तो ज्ञायकका आश्रय है वही। अकर्तृत्वका सिद्धान्त तो इसमें है ही।

समाधान :- हाँ, वह तो उसमें है ही, साथमें है। लेकिन ज्ञायकका आश्रय वह

मुख्य काम करता है, अकर्ता तो उसमें साथमें आ जाता है। एक निवृत्तमय दशा, ज्ञायकता। ज्ञायक स्वयं निवृत्तस्वरूप है। अकर्ता हुआ, निवृत्तमय ज्ञायककी परिणति हुयी। उसे स्वभाव-ओरकी परिणति बढ़ती जाती है। स्वभाव-ओरकी परिणति अपनी ओर बढ़ती जाती है और पर-ओरकी परिणति, जो प्रवृत्ति छूटकर स्वभाव-ओरकी निवृत्त दशामें आगे जाता है और स्वभावकी निर्मलता बढती जाती है।

बाहर सबका अकर्तृत्व आया इसलिये वह क्या करेगा? किसके आश्रयसे मुनिपना पालेगा? शास्त्रमें आता है। ज्ञान ज्ञानमें आचरण करता हुआ, स्वयं अपने ही आश्रयसे आगे जाता है। स्वयं अपने स्वभावमें लीन होता है, ज्ञायकके आश्रयसे। ज्ञायकका आश्रय ही उसे आगे बढनेमें काम करता है। विभावसे विरक्ति है और ज्ञायकका आश्रय है। उसे स्वभाव-ओरकी महिमा है। इसलिये उसकी परिणति स्वभावमें आगे बढती ही जाती है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! दो सिद्धान्त नहीं रहे, सिद्धान्त तो एक ही रहा न?

समाधान :- सिद्धान्त एक ही है। ज्ञायक और अकर्तृत्व। भिन्न कहे उसमें अकर्ता आ गया। ज्ञायक कहे उसमें अकर्ता आ गया। सब उसमें आ गया। सिद्धान्त एक ही है।

मुमुक्षु :- दो सिद्धान्त एक समान हो तो जो आसान सिद्धान्त हो, उससे आगे बढनमें सरलता रहती है? अकर्तृत्वका सिद्धान्त आसान लगता है और ज्ञायकका सिद्धान्त (कठिन लगता है)। क्योंकि ज्ञायकका भाव तो पकड़में आता नहीं।

समाधान :- ज्ञायकका सिद्धान्त अस्तित्व-ओरका है। यह तो नास्तित्व-ओरका है। यथार्थ अकर्ता हो, वह ज्ञायक हुए बिना रहता नहीं। जो ज्ञायक होता है, वह अकर्ता हुए बिना रहता नहीं। उदासीन ज्ञायक है। स्वभावमें परिणति, स्वभावकी परिणति प्रगट हो और विभावसे विरक्ति होती है। अस्तित्व-ओरसे ज्ञायक और विभाव-ओरसे विरक्ति। पर, वह नास्तित्व-ओरका है-अकर्ता। वह आसान लगे, परन्तु अस्तित्व ग्रहण हुए बिना अकर्ता हो नहीं सकता। मात्र अकर्ता, अकर्ता नक्की किया, वैसे बुद्धिसे सच्चा अकर्ता नहीं होता। ज्ञायकको ग्रहण किये बिना सच्चा अकर्ता हो नहीं सकता। ज्ञायक हो तो ही अकर्ता होता है। दोनों सिद्धान्तमें एक ही आ जाता है। अस्तित्व ग्रहण करे तो ही वह नास्तित्व-(ओरसे) अकर्ता होता है।

मुमुक्षु :- मुख्यपने सिद्धान्त तो ज्ञायकका आश्रय।

समाधान :- मुख्य सिद्धान्त ज्ञायकका आश्रय (ले) तो ही आगे जाता है। उसमें गुणभेद पर, शक्ति पर उसकी दृष्टि नहीं है। वह तो उसने ज्ञानमें जान लिया कि अनन्त शक्तिसे भरा आत्मा (है)। उसे स्वानुभूतिमें अनुपम महिमा आयी, अनन्त अनुपम गुणोंसे

भरपूर आत्मा, उसे स्वानुभूतिमें सब परिणति अनुभूतिमें आयी। तो भी उसकी दृष्टि तो एक अभेद ज्ञायक पर है। दृष्टि तो (एक पर है)। वह एक अभेद दृष्टि और ज्ञायकके आश्रयके जोरसे और ज्ञान साथमें काम करता है कि अधूरी पर्याय है, अभी आगे जाना है, वह सब ज्ञान साथमें काम करता है। लेकिन एक ज्ञायकके आश्रयसे आगे जाता है। विभावसे विरक्त और ज्ञायकका आश्रय। अंतरमें विरक्ति बढ़ती जाती है, लीनता बढ़ाता जाता है। ज्ञायकका आश्रय लिया है।

मुमुक्षु :- निरंतर जो साक्षीभाव रहता है, वह इस ज्ञायकके..

समाधान :- ज्ञायकके आश्रयसे। ज्ञायक साक्षीभावरूप रहता है। कर्तृत्व छूट गया, ज्ञायक-साक्षी हो गया, उदासीन ज्ञायक। स्वभाव-ओरसे ज्ञायक उदासीन साक्षीभाव हो गया। ज्ञायकमें साक्षीभाव आ गया।

मुमुक्षु :- जो सुख पीता रहता है, वह भी ज्ञायकके आश्रयसे?

समाधान :- अन्दर तृप्ति, संतोष है वह सब ज्ञायकके आश्रयसे है। ज्ञायकमें उसे मिल गया है। स्वयं ... है। तृप्ति है, संतोष है, शांति है, सब ज्ञायकके आश्रयमें उसे वर्तता है। सविकल्प दशामें हो तो भी उसे तृप्ति और संतोष वर्तता है। एक स्वानुभूतिमें अनुपम आनन्द आये वह एक अलग बात है, बाकी सविकल्प दशामें भी उसे तृप्ति, संतोष, शांति सब वर्तता है। एक ज्ञायकके आश्रयमें।

मुमुक्षु :- परके अकर्तृत्वमें बहिर्मुख दृष्टि हो जाय और ज्ञायकके आश्रयसे अंतर्मुख दृष्टि हो जाय, ऐसा भी नहीं है।

समाधान :- ज्ञायकका आश्रय लिया इसलिये अकर्ता हुआ। विकल्पसे मैं अकर्ता, मैं अकर्ता, अकर्ता ऐसे विकल्पसे अकर्ता हो, वह यथार्थमें अकर्ता नहीं होता है। उसकी परिणतिमें अकर्ता नहीं होता है। बुद्धिसे नक्की करता है।

मुमुक्षु :- वास्तविक अकर्ता नहीं है।

समाधान :- वह बुद्धिसे होता है। ज्ञायक होता है वही अकर्ता होता है। जो जाने सो जाननहारा, करे सो करतारा। जो करता है वह जानता नहीं और जानता है वह करता नहीं। जानता है वह जानता ही है। जानता है उसे ही कर्तृत्व छूटता है। फिर अल्प अस्थिरता रहती है। सम्यग्दर्शन हुआ तो ज्ञायक हो गया। कर्ताबुद्धि छूट गयी। अल्प अस्थिरताकी परिणति रहती है। उसे, लीनता बढ़ाता-बढ़ाता, स्वरूपमें लीन होते-होते तोड़ता जाता है।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! हमारा प्रश्न है, ... अंजन चोरने सेठका वचन प्रमाण मानकर सिद्धि प्राप्त की तो हम गुरुवचन प्रमाण मान ले तो सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है?

समाधान :- अंजन चोरको जो निःशंकता आयी वह तो व्यवहारसे निःशंकता आयी।

निःशंकतासे उसे ऐसा योग बना कि भगवानके दर्शन हुए। परन्तु अंतरसे निःशंकता प्रगट करे तो सम्यग्दर्शन होता है। भगवानके दर्शन हुए, अकृत्रिम चैतालय मेरु पर्वत पर मुनि मिले। मुनिका उपदेश सुना। अंतरमेंसे निःशंकता गुण प्रगट किया। अंतर ज्ञायकको पहचाना, इसलिये वह अंतरमें उतर गया।

गुरुका वचन प्रमाण रखे। गुरुने बहुत समझाया, गुरुने उपदेश दिया। गुरुका वचन प्रमाण किया कब कहा जाय? गुरुके वचन प्रमाणसे आगे बढ़ सकता है। परन्तु गुरुका जो आशय है, उस आशयको ग्रहण करे। मुनिने अंजन चोरको उपदेश दिया, उस उपदेशको अन्दर ग्रहण किया। जो निःशंकतासे उपर जाता है वह तो व्यवहारसे निःशंकता है। ऐसे गुरुका वचन प्रमाण करके, गुरु क्या कहना चाहते हैं, आशय ग्रहण करे तो आगे जाता है।

गुरु ऐसा कहना चाहते हैं कि, तू तेरे ज्ञायकको पहचान। तू सबसे भिन्न (है)। यह विभाव तेरा स्वभाव नहीं है। तू ज्ञायक (है)। यह शरीर तू नहीं है। अंतरमें मैं यह ज्ञायक ही हूँ। गुरुदेवने जो कहा कि तू ज्ञायक जाननेवाला (है)। ऐसा गुरुदेवने कहा, ये रहा मैं ज्ञायक। गुरुदेवने जो ज्ञायक कहा, उस ज्ञायकको स्वयं पहचाने। ज्ञायक मैं ज्ञायक ही हूँ, यह सब मुजसे पर भिन्न है। विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। गुणभेदमें, कोई भेदमें रुकना, पर्यायभेदमें रुकना वह मेरा पूरा स्वरूप नहीं है। अखण्ड स्वरूप अनादिअनन्त अखण्ड ज्ञायक हूँ। गुणभेद, पर्यायभेद द्रव्यमें लक्षणभेदसे सब भेद है, परन्तु मैं अखण्ड शाश्वत स्वरूप, स्थायी स्वरूप मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा गुरुदेवने कहा है, उसे ग्रहण करे। और उसमें निःशंक गुण प्रगट करे कि यह ज्ञायक ही मैं हूँ। ऐसे स्वयं अंतरमेंसे पहचाने तो उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

गुरुदेवने तो बहुत कहा है। अनन्त कालमें सब मिला है। सत्य स्वरूप समझानेवाले कोई मिले नहीं। गुरुदेव मिले तो स्वयंने पहचाना नहीं। गुरु मिलने मुश्किल है। शास्त्रमें आता है न, 'यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो'। सब किया, लेकिन एक आत्माको नहीं पहचाना। उसका कोई अलग स्वरूप है, सद्गुरुदेव उसका स्वरूप बताते हैं। सद्गुरुदेव मिलने मुश्किल है।

गुरुदेव जो बताते हैं उसे स्वयं ग्रहण करे तो वह आगे बढ़ता है। स्वयं ग्रहण न करे तो आगे नहीं जा सकता। गुरुदेव बारंबार कहते हैं कि तू ज्ञायक, तू भगवान आत्माको पहचान। उसे स्वयं ग्रहण करे तो आगे जा सकता है। शास्त्रमें आता है कि यह तेरा पद नहीं है। यह पद तेरा नहीं है, यह तेरा पद नहीं है, इसमें रहने जैसा नहीं है। यहाँ आओ, यहाँ आओ, यह अपद है, अपद है। ऐसे तेरा पद ज्ञायक है, ऐसा गुरुदेव कहते थे। यह विभाव तेरा स्वभाव नहीं है। यह तेरा रहनेका घर

नहीं है, रहनेका स्थान नहीं है। तू ज्ञायक है, भगवान परमात्मा है। ऐसा गुरुदेव बारंबार कहते थे। वह उसे ग्रहण करे तो सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। गुरुदेवने जो उपदेश दिया है, उस उपदेशको स्वयं ग्रहण करे, भेदज्ञान करे तो सम्यग्दर्शन होता है, तो भवका अभाव होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६७

मुमुक्षु :- प्रमाण .. का अभिप्राय ऐसा है कि आशय ग्रहण करना।

समाधान :- आशय ग्रहण करना। गुरुदेवका वचन प्रमाण। गुरुदेवने कहा, तू भगवान परमात्मा है। भगवान परमात्मा ऐसा कहा, वह ग्रहण किया कब कहनेमें आये? कि वास्तवमें मैं भगवान परमात्मा ही हूँ, ऐसी अंतरसे श्रद्धा आये तो वचनको प्रमाण किया, कहनेमें आये। अंतरमेंसे निःशंकता होनी चाहिये। निःशंकताके कारण आगे जा सकता है। बाहरमें गुरुदेवकी प्रतीति, जो गुरुदेव कहे वह प्रमाण। अंतरमें ज्ञायक है सो ज्ञायक है। ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ होनी चाहिये। यह ज्ञायक है वही मैं ज्ञायक हूँ। उसमें चलविचलता शंका नहीं। यह ज्ञायक सो मैं ज्ञायक ही हूँ। ऐसे ज्ञायकको पहचानकर ऐसा निःशंक हो जाय तो उसमें स्थिर होनेके समर्थ होता है। ऐसा शास्त्रमें आता है। ऐसा निःशंक हो तो उसमें लीनता होती है। निःशंकताके बिना, उसे पहचाने बिना आगे नहीं जा सकता।

मुमुक्षु :- निःशंकता नहीं है तो सच्चा प्रमाण भी नहीं कह सकते।

समाधान :- निःशंकताके बिना उसे सत्य माना नहीं है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते हैं कि हाँ ही कहना, कल्पना मत करना।

समाधान :- हाँ, हाँ ही कहना, कल्पना मत करना। सब कहते हैं। हाँ ही कहना। तू ज्ञायक ही ऐसा बराबर नक्की करना। अन्दरसे हाँ कहना। हाँ कहना, तो अन्दरसे तेरी पर्याय प्रगट होगी, तो ज्ञायक तेरे हाथमें आयेगा, तो ज्ञायकदेवके दर्शन होंगे। जैसे अंजन चोरको भगवानके दर्शन हुए। अकृत्रिम चैत्यालयके (दर्शन हुए), वैसे तुझे इस चैतन्य भगवानके दर्शन होंगे। वह तो फिर अंतरमें उतर गये हैं, केवलज्ञान तक पहुँच गये हैं।

वैसे तू अन्दरमें (निःशंकता प्रगट कर) भगवानके दर्शन होंगे। गुरुदेव बताते हैं, तू अन्दर देख, अन्दर तुझे भगवाने दर्शन होंगे। चैतन्यदेवके। गुरुदेवके इस वचनको प्रमाण करके अन्दर जाय तो चैतन्यदेवके दर्शन हो।

मुमुक्षु :- आशय पकड़में नहीं आया हो और हाँ कहे तो गुरुदेवका अवर्णवाद हुआ कहनेमें आये?

समाधान :- आशय पकडे बिना हाँ कहे तो अवर्णवाद नहीं (होता), परन्तु वह सत्य समझा नहीं। समझे बिना हाँ कहता है। समझे बिना भावनासे हाँ कहे, भक्तिसे कहे। सच्चा तो कब कहनेमें आये कि समझकर हाँ कहे तो।

मुमुक्षु :- माताजी! एक बार अनुभूति प्राप्त होनेके बाद वह जब भी चाहे तब निर्विकल्प हो सकता है?

समाधान :- जिसे स्वानुभूति प्राप्त हुयी है, उसने मार्ग जान लिया है कि किस मार्गसे इस ज्ञायकमें लीनता होती है। यह ज्ञायक है, यह सब विभाव (है)। यह परद्रव्य मेरा स्वरूप नहीं है। यह विभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है। मैं उससे भिन्न, ऐसी उसे श्रद्धा-प्रतीत, ज्ञायककी परिणति प्रगट हुयी है, अनुभूति हुयी है। मार्ग जान लिया है कि किस मार्गसे भावनगर जाना होता है। वह सब मार्ग जान लिया है। मार्गका उसे संतोष है। परन्तु कैसे चलकर जाना, कोई चलकर जाता है, कोई धीरे-धीरे जाता है, कोई उतावलीसे जाता है।

इस प्रकार उसे स्वरूपमें लीन होना, वह वर्तमानकी शुद्धि-निर्मलता होती है उस अनुसार वह अन्दर निर्विकल्प होता है। वर्तमान उसकी भूमिकाकी निर्मलता हो, शुद्धता हो उस अनुसार उसे शुद्धउपयोगकी परिणति होती है। बाकी ज्ञायककी भेदज्ञानकी परिणति निरंतर रहती है। खाते-पीते ज्ञायक.. ज्ञायककी दशा ही होती है। भेदज्ञानकी दशा चालू ही है। खाते-पीते, जागते-सोते, स्वप्नमें भेदज्ञानकी धारा चालू है। परन्तु निर्विकल्प दशा उसकी भूमिका अनुसार होती है।

पाँचवे गुणस्थानमें उसकी भूमिका अनुसार, छठ्ठे-सातवेमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें होती है। चौथे गुणस्थानमें उसकी निर्मलताकी तारतम्यता चौथेवालेकी जिस प्रकारकी होती है, उसके अनुसार उसे निर्विकल्प दशा होती है। बाकी तो अपना स्वभाव है। वह स्वभाव, जैसे पानी पानीको खींचता हुआ अपनी ओर जाता है, ऐसे स्वयं स्वभावकी ओर मुड़ा, स्वभाव-ओर उसकी परिणति दौड़ रही है, लेकिन उसे जो विरक्ति, लीनता, चारित्रमें जिस प्रकारकी लीनता होती है, उस अनुसार उसे निर्विकल्प दशा होती है। स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुणस्थानमें उसकी जैसी निर्मलता और तारतम्यता हो, उस अनुसार वह निर्विकल्प दशाको प्राप्त करता है।

मुमुक्षु :- चौथेवालेको रोज हो सकती है?

समाधान :- ऐसा कुछ नहीं, उसकी दशा हो उस अनुसार हो सकती है। वह कोई नियमीत नहीं होती। रोज नहीं हो ऐसा भी नहीं है, होती ही है ऐसा भी नहीं है। उसकी निर्मलता अनुसार होती है। रोज नहीं हो या अमुक दिनोंके बाद ही हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। उसकी निर्मलता अनुसार होती है। छठ्ठे गुणस्थानमें तो अंतर्मुहूर्त-

अंतर्मुहूर्तमें होती है। चौथेकी निर्मलता हो उस अनुसार होती है। रोज होवे ही नहीं, ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है।

मुमुक्षु :- शुद्धोपयोगका कोई काल होता है, ऐसा कुछ नहीं है कि इस कालमें शुद्धउपयोग होता है।

समाधान :- ऐसा कोई काल नहीं होता। उसकी जैसी परिणति। वर्तमान निर्मलता, उसकी शुद्धि (हो), उस अनुसार उसे होता है। वर्तमानकी जैसी विरक्ति, शुद्धिकी परिणति हो उस अनुसार उसे निर्विकल्प दशा होती है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दृष्टिको ऐसी इच्छा भी नहीं होती। इच्छा तो राग है, ऐसा राग भी होता नहीं कि शुद्धोपयोग हो।

समाधान :- विकल्पसे निर्विकल्प हुआ नहीं जाता। इच्छा है वह विकल्प है। उस विकल्पसे निर्विकल्प नहीं हुआ जाता। अन्दरकी सहज निर्मलताकी परिणति, शुद्धिकी परिणतिसे अंतरकी विरक्तिसे निर्विकल्प दशा होती है। भावना एक अलग बात है। परन्तु भावना या कृत्रिमतासे अंतरमें नहीं जा सकता। इच्छा-रागसे अन्दर नहीं जा सकता। वीतरागी परिणतिसे अंतरमें जाना होता है। भले शुभभाव हो, भावना है, परन्तु वह विकल्प टूटकर अन्दर जाता है। विकल्प खड़ा रखकर अन्दर नहीं जा सकता।

मुमुक्षु :- पूर्व भूमिकामें परपदार्थसे विरक्ति,..

समाधान :- अन्दर ज्ञायककी दशाके साथ विरक्ति होती है। स्वरूपकी लीनता, अस्तित्वमें स्वरूपकी लीनता एवं शुद्धि, अपनी निर्मलताकी परिणति, उस कारणसे जाता है। और अस्तित्व-ओर उसकी... चौथे गुणस्थानमें उसकी जैसी विरक्ति हो और स्वरूप-ओरकी लीनता, निर्मलता। बाकी दशामें उतना फ़र्क़ नहीं पड़ता। पाँचवे गुणस्थान जैसी दशा नहीं होती।

मुमुक्षु :- भूमिका अनुसार।

समाधान :- भूमिका अनुसार होती है।

मुमुक्षु :- फिर भी कोई प्रतिबन्ध भी नहीं है कि एक महिने पहले नहीं होती, दो महिने पहले नहीं होती, ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है।

समाधान :- ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। ऐसा नहीं है। कोई दिनका प्रतिबन्ध नहीं है।

मुमुक्षु :- जैसे आप कहते हो, घोड़ा ... छलांग लगाये, वैसे कोई बार ऐसी दशा आवे तो..

समाधान :- घोड़ा छलांग भी मारता है। ऐसा होता है। उसकी भूमिका पलटकर नहीं। उसकी पुरुषार्थकी डोरी कभी छलांग मारे, कभी धीमी चले, उसे किसी भी प्रकारका प्रतिबन्ध है। ज्ञायककी डोर अपने हाथमें है। जिस प्रकार उसकी निर्मलता और लीनता

विशेष होती है, उस अनुसार होती है। कभी सविकल्प दशामें रुके, कोई बार निर्विकल्प दशामें जाता है। हठ करके विकल्पसे आगे नहीं जा सकता। उसकी निर्मलताकी परिणतिसे आगे जाना होता है।

मुमुक्षु :- हठसे होता नहीं और भूमिका विरूद्ध भी नहीं होता।

समाधान :- भूमिका विरूद्ध नहीं होता।

मुमुक्षु :- माताजी! .. शुद्धनय कहता नहीं, उसका क्या अर्थ है? साधकको .. शुद्धनयका आलंबन छूटता नहीं, वह कैसे बन सकता है? क्योंकि उपयोगमें तो चंचलता होती है।

समाधान :- गुरुदेवने, शुद्धनय किसे कहते हैं, निश्चय किसे कहते हैं, व्यवहार किसे कहते हैं, कोई जानता नहीं था। गुरुदेवने स्पष्ट कर-करके अन्दरसे रहस्य खोलकर समझाया है और स्पष्ट भी उतना किया है कि कुछ बाकी नहीं रखा। यह गुरुदेवका परम-परम उपकार है। कोई कुछ जानता नहीं था। यह सब रहस्य गुरुदेवने खुल्ले किये हैं। मैं तो उनका दास हूँ। गुरुदेवने जो स्पष्ट किया है, वह कोई अपूर्व रहस्य खुल्ला किया है, स्पष्ट किया है। गुरुदेवका ज्ञान अलग, गुरुदेवकी वाणी अलग, गुरुदेवका आत्मा अलग, सब अलग ही था। गुरुदेवने जो स्पष्ट किया है, इस भरतक्षेत्रमें जन्म लेकर जो उपकार किया है, वह उपकार कोई अपूर्व है। उनका परम-परम उपकार है।

परमात्म तत्त्वमें ध्यानावली नहीं है, ध्यानावली भी नहीं है। परमात्मतत्त्व अनादिअनन्त शुद्ध है। शुद्ध स्वरूपमें ध्यानावली एक साधकदशा है। साधकदशा मूल जो वस्तु है, पूर्ण वस्तु है, पूर्ण सामर्थ्यसे भरी हुयी जो वस्तु है, उसमें ध्यानावली साधकदशा है। साशकदशा-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सब साधक दशा है। वैसे यह ध्यानावली भी साधकदशा है।

जो पूर्ण सामर्थ्यसे भरपूर वस्तु है, उसके अन्दर ध्यानावली कहनी, यह धर्मध्यान, शुक्लध्यान, वह सब ध्यान पूर्ण स्वरूपमें नहीं है। द्रव्यका स्वरूप जानना। द्रव्य पर दृष्टि रखे। ज्ञायकके मूल स्वरूपमें यह ध्यानावली भी नहीं है। क्योंकि वह अनादिअनन्त वस्तु है। उसे यदि पहचाने नहीं, उस वस्तुका आश्रय न ले तो ध्यान भी नहीं हो सकता। इसलिये वस्तुके अन्दर ध्यानावली भी नहीं है। शुभभाव तो एक ओर रहे, अशुभभाव भाव एक ओर रहे, लेकिन यह साधनाकी पर्याय जो ध्यानावली है, वह भी आत्मामें नहीं है। ऐसा बराबर स्वरूप समझे तो ही उसकी साधकदशा होती है।

मैं ज्ञायक परिपूर्ण सामर्थ्यसे भरा, अनन्त अपूर्व महिमावंत वस्तु हूँ। पूर्ण पर दृष्टि है। अनादिअनन्त वस्तु शाश्वत है, उस पर दृष्टि है। तो भी साधकदशा बीचमें आती है, उसे गौण करता है। द्रव्यदृष्टिमें वह गौण है। तो भी ध्यान बीचमें आये बिना रहता नहीं। ध्यानावली बीचमें आये बिना रहती नहीं। परन्तु वह ध्यानावलीको द्रव्यदृष्टि निकाल

देती है। ध्यानावलीको निकाल देती है, पाँच ज्ञानके भेद भी उसमें नहीं है, उसमें गुणस्थान भी नहीं है। कोई वस्तु उसमें नहीं है। जो अनादिअनन्त वस्तु है, वह स्थिररूप वस्तु है। जो पर्याय बदलती है, वह आश्रयका कारण नहीं बनती। आश्रय तो जो अनादिअनन्त वस्तु है, वही आश्रयरूप है। इसलिये आश्रय तो अनादिअनन्त वस्तु है वही आश्रयरूप है। इसलिये आश्रय तो अनादिअनन्त पूर्ण वस्तु है, उसीका आश्रय करने योग्य है।

दृष्टि यदि ज्ञायकको पहचाने तो ही यथार्थ साधकदशा होती है। बाकी साधकदशा होती नहीं। इसलिये ध्यानावली भी आत्मामें नहीं है। द्रव्यदृष्टिक आलम्बनमें ध्यानावली नहीं है। परन्तु वह ध्यान बीचमें आये बिना रहता नहीं। आचार्यदेव कहते हैं कि अरे..रे..! हस्तावलंबनतुल्य यह व्यवहार बीचमें आये बिना रहता नहीं। क्योंकि अभी अधूरी दशा है। इसलिये वह बीचमें आये बिना रहता नहीं।

लड़ाईमें खड़ा हो तो भी शुद्धनय छूटता नहीं। शुद्ध स्वरूपको-ज्ञायकको ग्रहण किया, उस ज्ञायकका अवल्मब लड़ाईमें भी छूटता नहीं। अनादिसे जो शाश्वत वस्तु है, वह निगोदमें गया, कहीं भी गया, ज्ञानकी शक्ति घट गयी, परन्तु अन्दर जो मूल शक्ति है, उसमें कुछ घटता नहीं। अनादिअनन्त वस्तुका नाश नहीं होता। चाहे जैसे विभावकी पर्याय हो तो भी। तो फिर द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी उसे कौन रोक सकता है? ज्ञायकका अवलम्बन लिया, वह लड़ाईमें खड़ा हो तो भी ज्ञायक है, ध्यानावलीमें हो तो भी ज्ञायक ही है। साधकदशामें पूर्ण ज्ञायक पर दृष्टि है। साधकमें भी ज्ञायक और अशुभभावमें लडाईमें खड़ा हो तो भी ज्ञायक है। उसे कोई रोक नहीं सकता। तो भी उसे अन्दर अशुभभावमें खड़ा हुआ, लडाईमें खडा है, अरे..! मैं कब साधकदशामें पूर्ण स्वरूपकी प्राप्ति करुँ? अरे..! यह अधूरी दशा है, मेरा ज्ञायक पूर्ण स्वरूप है, उसे यह अधूरी दशा शोभती नहीं। मैं कब वीतराग होऊँ? ऐसी भावना तो उसे रहती ही है।

मुमुक्षु :- ध्यानावली भी व्यवहार...

समाधान :- ध्यानावली भी व्यवहार ही है। शुक्लध्यान भी व्यवहार है। द्रव्यदृष्टिमें, द्रव्यके अन्दर बाहरसे कुछ आता नहीं। वह सब तो साधना है। अनादिअनन्त वस्तु जो है, वह सामर्थ्यसे भरपूर है। अधूरी हो तो अधूरेका आलम्बन होता नहीं। इसलिये शुक्लध्यान हो, परन्तु वह व्यवहार है। वह भी व्यवहार है। केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट होती है, तो भी वह पर्याय है। है पूर्णता, पूर्ण, परन्तु वह भी पर्याय है। शुक्लध्यान तो साधनाकी पर्याय है, परन्तु केवलज्ञान हो तो भी वह पर्याय है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञानके भेद पर दृष्टि नहीं है। केवलज्ञान हो तो भी। वह भी पर्याय है। दृष्टि ज्ञायक पर और पूर्णता प्रगट करनेकी भावना, यह दोनों साथमें होते हैं। पुरुषार्थकी डोर चालू है। चारित्र-लीनता आत्माके स्वरूपमें कैसे समा जाऊँ? बाहर आऊँ नहीं,

ऐसी भावना है और द्रव्य पर दृष्टि, ज्ञायककी दशा, ज्ञायककी डोर छूटती नहीं। चाहे जैसे बाह्य संयोगमें हो, साधनाकी पर्यायमें हो, ध्यानमें हो तो भी उसकी ज्ञायककी डोरी छूटती नहीं। और यह लड़ाईके प्रसंगमें हो तो भी उसकी ज्ञायककी डोरी अन्दर है। भेदज्ञानकी धारा और ज्ञायकको ग्रहण किया है, वह ग्रहण किया, जो आलम्बन लिया वह आलम्बन उसे छूटता नहीं। बाह्य कोई भी संयोग उसे तोड़ नहीं सकते। ऐसा आलम्बन आवे तो ही उसकी साधकदशाकी पर्यायें होती है।

आचार्यदेव कहते हैं, मैं शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति हूँ। तो भी अरे..! मेरी परिणति कल्माषित-मैली हो रही है। शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति ज्ञायकका आलम्बन है। और अभी चारित्रकी दशा अधूरी है। वह भी उसे ज्ञानमें साथमें वर्तती है। ज्ञानमें सब वर्तता है। पुरुषार्थकी डोरी लीनताकी ओर जाती है और ज्ञायकका आलम्बनका बल और आश्रय भी साथमें चलता है। उसे ज्ञायक, प्रत्येक प्रसंगमें ज्ञायक। ध्यान हो, शुक्लध्यान हो तो भी वह व्यवहार है। लेकिन वह साधकदशा बीचमें आये बिना रहती ही नहीं। क्योंकि पर्याय, विभावकी पर्याय होती है। उससे भेदज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ और स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हुयी, फिर स्वानुभूतिकी दशा बढ़ती जाती है, फिर भी अभी अधूरी पर्याय है, उसका कर्ता होता नहीं, तो भी अस्थिरतामें रागादि वर्तते हैं, अपने पुरुषार्थकी कमजोरीसे। उसका उसे ख्याल है। इसलिये पुरुषार्थकी डोर अपनी ओर चालू ही है। लीनता-अन्दर स्वरूपमें समा जानेकी लीनता चालू ही है।

मुमुक्षु :- परमात्मतत्त्व भी पदार्थका अंश है और ध्यानावली भी पदार्थका अंश है। यह अंश है वह आश्रयरूप है, और यह अंश गौण करना..

समाधान :- परमात्मतत्त्व है वह स्वयं पूरा द्रव्य है। अनन्त सामर्थ्यसे भरपूर द्रव्य है पूरा। सामान्य स्वभाव है। लेकिन वह पूरी वस्तुका सामर्थ्य है। अभेद है। ध्यानावली है वह साधकदशा है। उसमें शुभभाव मिश्रित है। और एकाग्रता जो अंतरमें होती है, जो अंतरमें विकल्प छूटकर होती है, एकाग्र परिणति अन्दर स्वरूपकी रमणता वह अलग बात है। वह निर्विकल्प ध्यान है। और यह विकल्पवाला ध्यान है, उसमें शुभभावका आश्रय है। तो भी एकाग्रता हो, चौथे गुणस्थानमें जो स्वरूप रमणता है, पाँचवे गुणस्थानमें जो शुद्धि प्रगट हुयी है, छठ्ठे-सातवेंमें (शुद्धि प्रगट हुयी है) वह भी अधूरी पर्याय है। अधूरी पर्याय भी पूर्ण स्वभाव, मूल स्वभाव, असल स्वरूप उसका नहीं है। अधूरी पर्याय जितना भी आत्मा नहीं है। उसे भी वह गौण करता है।

अधूरी पर्यायकी भूमिका बढ़ती जाती है, गुणस्थानकी दशा, छठ्ठे-सातवेंमें, फिर श्रेणि मांडता है, वह सब अधूरी पर्याय है। अधूरी पर्याय और पूर्ण पर्याय, सब द्रव्यदृष्टिमें गौण होती है। सबको निकाल देती है। तो भी ज्ञानमें दोनों वस्तु उसे ख्यालमें है।

दोनोंको जानता है। अधूरी पर्याय है, पूर्ण शुद्धि, पूर्ण पर्याय कैसे प्रगट हो? अंतरमें उसकी भावना है। पुरुषार्थकी डोर चालू है। वह कब होता है? कि ज्ञायकके आश्रयके आलम्बनसे ही होता है।

मुमुक्षु :- परमात्म स्वरूप है वह मूल आत्मा है।

समाधान :- वह मूल आत्मा है। वह मूल वस्तु है।

मुमुक्षु :- पर्यायें व्यवहार आत्मा?

समाधान :- व्यवहार आत्मा। दो आत्मा भिन्न-भिन्न नहीं है, एक ही है। सामान्य-विशेष, दो आत्मा भिन्न-भिन्न नहीं है। सामान्य अनादिअनन्त है, पर्याय भी वस्तुका स्वरूप है। द्रव्य-गुण-पर्याय सब वस्तु है। पर्याय एक अंशरूप, भेदरूप है। वह टिकती नहीं, बदल जाती है। गुण है, गुणभेद लक्षणभेद है। परन्तु जो पूरी सामान्य वस्तु है, वह पूरी वस्तु मूल वस्तु है, असल है। आलम्बन उसका लेना है।

मुमुक्षु :- सामान्यको पूरी वस्तु कहनी?

समाधान :- पूरी यानी उसमें पर्याय गौण होती है। पर्याय भिन्न नहीं हो जाती, गौण होती है। लेकिन सामान्य जो टिकनेवाला है, वह मूल है। वह मूल वस्तु है। यह सब उसका स्वरूप है। पर्याय है, गुण है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प उपयोगके वक्त जो शुद्धनयका आलम्बन है और लड़ाईके समय शुद्धनयका निरंतर आलम्बन है, उन दोनों शुद्धनयमें क्या अंतर है?

समाधान :- आलम्बन एक ही जातका है। परन्तु उस परिणतिमें शुद्धि निर्मलता है। अशुद्धि गौण हो गयी। उसे उपयोगमें भी नहीं है। और स्वानुभूतिमें निर्विकल्पताका वेदन है। लड़ाईमें निर्मलताका वेदन नहीं है। उसने आलम्बन लिया है ज्ञायकका। निर्मलताका वेदन उसे जितना भिन्न हुआ उतना है। लेकिन स्वानुभूतिकी तो पूरी अलग बात है। उसमें प्रगटरूपसे निर्मलताका वेदन है। उपयोगमें वेदन है।

मुमुक्षु :- लड़ाईमें भी स्वरूपाचरण चारित्र..

समाधान :- स्वरूपाचरण है, लेकिन वह वेदन अलग है, सविकल्पताका। अमुक ज्ञायक-ओरकी शांति, तृप्ति है। परन्तु स्वानुभूतिका वेदन है वह वेदन उस वक्त नहीं है। स्वानुभूतिका वेदन नहीं है। उसके वेदनमें फ़र्क़ है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६८

मुमुक्षु :- गुरुदेव सम्यग्दर्शनके लिये बहुत कहते थे, सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त करना?

माताजी! दूसरा प्रश्न है, स्वरूपका ज्ञान और श्रद्धान साथ-साथ चलते हैं कि उसमें कोई क्रम है?

समाधान :- स्वरूपका ज्ञान और श्रद्धा, सम्यक् श्रद्धा और सम्यक्ज्ञान दोनों साथ-साथ हैं। उसमें क्रम नहीं है। लेकिन शुरुआतमें आत्माको जाननेके लिये, मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? उसका जब निर्णय करे तब वह ज्ञान बीचमें आता है। मेरा ज्ञायक, मेरा ज्ञानस्वभाव है। तब निर्णय करे और श्रद्धा बादमें होती है, उसे क्रम कहते हैं। वह क्रम व्यवहार है। वास्तविकरूपसे श्रद्धा और ज्ञानमें क्रम नहीं है। सच्ची श्रद्धा हो तब ज्ञानको सम्यक् नाम दिया जाता है। सम्यक् श्रद्धा होती है तब दोनों साथमें ही है। उसमें क्रम नहीं है। दोनों साथमें है।

जिस क्षण सम्यक् श्रद्धा होती है, उसी क्षण सम्यक्ज्ञान होता है। उसमें क्रम नहीं है। चारित्रमें क्रम पड़ता है। चारित्रमें क्रम है। सम्यक् श्रद्धा और सम्यक्ज्ञान दोनों साथमें ही हैं। चारित्रमें क्रम है। सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन होता है तो अमुक अंशमें सर्व गुण निर्मल होते हैं। सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। आत्माका-ज्ञायकका अवलम्बन लिया। ज्ञायकका अवलम्बन लिया, उसकी श्रद्धा की तो उसके साथ ज्ञान भी सम्यक् होता है। श्रद्धा एक ज्ञायकको ग्रहण करती है और ज्ञान आत्माको भी ग्रहण करता है, ज्ञायकको ग्रहण करता है, पर्यायका ख्याल है, अधूरी-पूरी पर्यायका ख्याल है। लेकिन वह साथमें ही है।

कोई ऐसा माने कि सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान हुआ, पूर्ण दृष्टि हुयी तो उसके साथ चारित्र-लीनता भी आ गयी, पूर्ण दृष्टि हुयी-सम्यग्दर्शन हुआ इसलिये सब आ गया और सब निर्मलता हो गयी, ऐसा नहीं है। उसमें चारित्रका क्रम पड़ता है। अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान हो तो भी सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान साथमें होते हैं और चारित्रमें क्रम पड़ता है। चारित्रमें क्रम है। सम्यक् श्रद्धा और ज्ञानमें क्रम नहीं है।

चारित्र, स्थिरता, लीनता उसके पुरुषार्थ अनुसार वर्धमान होता जाता है। लीनतामें क्रम पड़ता है। ज्ञान और श्रद्धा हो, इसलिये पूरा हो गया ऐसा नहीं है। अभी उसे

अमुक निर्मलताकी श्रद्धा हुयी, परन्तु निर्मलताकी परिणति जो पूर्णरूपसे होनी चाहिये वह नहीं हुयी। उसके लिये क्रम पड़ता है। वह स्वरूपमें लीनता करते-करते वह आगे जाता है। आगे जाता है और उसकी भूमिका बढ़ती जाय, चौथा, पाँचवा, छठ्ठा-सातवाँ अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें झुलता है, उसमें चारित्रका क्रम है। श्रद्धा-ज्ञानमें क्रम नहीं है। दोनों साथमें हैं।

उसे व्यवहारसे विचार करके जाने। जाने बिना आगे नहीं बढ़ सकता। जाननेके लिये सब ज्ञान करे, परन्तु सम्यक् श्रद्धा होती है, तभी सम्यक्ज्ञान होता है। अंतर्मुहूर्तमें एक श्वासोश्वासमें अज्ञानी जो कर्म क्षय करता है, लाख-क्रोड़ भव हो, उसे ज्ञानी अंतर्मुहूर्तमें क्षय करता है। अंतर्मुहूर्तमें क्षय करे तो ज्ञान और श्रद्धा साथमें होते हैं। उसमें चारित्रका क्रम होता है। लेकिन श्रद्धा-ज्ञानमें क्रम नहीं होता। उसे अभी लीनता कम रहती है, स्वरूपाचरण चारित्र-स्वरूपमें विशेष-विशेष लीन होनेका प्रयत्न (चलता है)। श्रद्धासे जाना कि यह ज्ञायक वही मैं हूँ और कोई भी विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। रागादिका मैं कर्ता नहीं हूँ। मेरे स्वभावका कर्ता हूँ। तो भी अल्प अस्थिरतासे अस्थिरत परिणति होती है, उसमें रागादि होते हैं। इसलिये स्वयं स्वरूपकी वीतराग दशा प्रगट करनेका प्रयत्न करता रहता है। वीतराग दशा कैसे प्रगट हो? स्वानुभूतिकी दशा वर्तमान शुद्धि हो, उस अनुसार उसकी स्वानुभूतिकी दशा बढ़ती जाती है।

मुमुक्षु :- सम्यक् श्रद्धा और सम्यक्ज्ञान तो एकसाथ होते हैं, परन्तु उसके पहले पूर्वभूमिकामें ज्ञान होते-होते साथमें श्रद्धानका कुछ काम चलता है कि नहीं?

समाधान :- ज्ञानके साथ श्रद्धाका काम चले, परन्तु उसे सम्यक् परिणति यथार्थ श्रद्धा हो तभी कहा जाता है। ज्ञायकका आश्रय अंतरमें यथार्थपने आया और ज्ञायकका आलम्बन लिया, तब उसे, यही ज्ञायक, तो ही उसे श्रद्धा कहा जाता है। श्रद्धाका काम चले, विचारसे नक्की करे कि ज्ञानस्वभाव मैं हूँ, यह सब मैं नहीं हूँ, ऐसे विचारसे नक्की किया करे, सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा करे, यह ज्ञानस्वभाव सो मैं, ऐसे विचारसे नक्की किया करे, वह सब श्रद्धाका काम साथमें चलता है। परन्तु सम्यक् तो ज्ञायकका अवल्बन ले तभी कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- ऐसा नहीं है कि ज्ञानका काम चलता हो और श्रद्धा तो एक समयमें फटाकसे मिथ्यात्व (छूट जाय) ऐसा नहीं है।

समाधान :- नहीं, ऐसा नहीं है। विचारमें श्रद्धा होती है। परन्तु वह सम्यक् नहीं कहलाती। ज्ञायकका अवलम्बन ले तब (सम्यक् कही जाती है)।

मुमुक्षु :- माताजी! दूसरा प्रश्न है। पूज्य गुरुदेवश्रीका उपदेश जिज्ञासा और भावनासे सुनकर, मैं एक ज्ञायक हूँ, शरीर नहीं हूँ, इतना ज्ञान हो तो सम्यग्दर्शन हुआ कहा

जाय कि नहीं?

समाधान :- गुरुदेवका उपदेश सुने। गुरुदेव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं, उसे समझना चाहिये। गुरुदेव मात्र, शरीरसे भिन्न एक ज्ञायक जाननेवाला, उतनेमें सम्यग्दर्शन नहीं कहते थे। गुरुदेव सम्यग्दर्शनका स्वरूप कोई अपूर्व कहते थे। एक शरीरसे भिन्न आत्माको जाना इसलिये उसमें सम्यग्दर्शन आता नहीं। थोड़ा करके आगे नहीं बढ़ता तो थोडेमें बहुत मान ले तो उसमें कार्यसिद्धि नहीं होती। उसमें स्वयंको सुख उत्पन्न नहीं होता। हो सके तो (अच्छा ही है), नहीं हो सके तो श्रद्धा तो बराबर करना। जो गुरुदेवने कहा है कि सम्यग्दर्शन अंतरमें कोई अलग है और कोई अपूर्व है। शुभाशुभ भावोंसे भिन्न आत्मा है, उसे तू पहचान। उसमें जो स्वानुभूति होती है, उस पार मन-वचन-कायासे भिन्न आत्मा, विभाव भी उसका स्वभाव नहीं है, उससे भी भिन्न अन्दर जान। तो सम्यग्दर्शन अन्दर स्वानुभूति हो तो (होता है)। ऐसा गुरुदेवने कहा है।

तुझसे हो सके तो ध्यानमय प्रतिक्रमण करना, शास्त्रमें आता है। न हो सके तो श्रद्धा तो बराबर करना। तुझसे आगे नहीं बढा जाय, तो गुरुदेवने जो सम्यग्दर्शनका स्वरूप कहा है, उसकी श्रद्धा तू बराबर करना। शरीरसे भिन्न जाना। शरीर तो जड़ है और आत्मा जाननेवाला है। इसलिये आत्माको जाननेके लिये, यह जाननेवाला मैं हूँ, यह शरीर कुछ जानता नहीं। इसलिये मैं शरीरसे भिन्न जाननेवाला हूँ। परन्तु अन्दरमें जो विकल्पकी जालके साथ एकत्व हो रहा है, विकल्पका-राग-द्वेषका स्वाद कलुषित आ रहा है। वह स्वाद भिन्न है। आत्मा जाननेवालाका स्वाद भिन्न है और यह स्वाद भिन्न है। विकल्पसे भिन्न स्वादभेद करता नहीं। तो उसे अभी भेदज्ञान हुआ नहीं है।

कालीजीरी और शक्कर दोनों मिश्र हो गये हो, शक्करका स्वाद और कालीजीरीका स्वाद, दोको अलग नहीं करता है तो अन्दर भेदज्ञान नहीं हो सकता है। दूध एक बर्तनमें हो तो बर्तनसे भिन्न दूध है। बर्तन बर्तन है। लेकिन दूध और पानी मिश्र है, वह दूध और पानीको भिन्न नहीं करता है तो वह वास्तविकरूपसे दूधका स्वरूप कैसा है, उसे जानता नहीं।

स्वादभेद अन्दर है, उसे भिन्न करे तो ही उसने आत्माको जाना कहनेमें आये और तो ही भेदज्ञान किया कहनेमें आता है। तो ही उसे सम्यग्दर्शन होता है। दोनों-शुभ और अशुभ, शुभभाव बीचमें आये, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, शास्त्र अभ्यास बीचमें आता है, जो प्रयोजनभूत तत्त्वको जाननेका प्रयास, ज्यादा बहुत जाने एसा नहीं, परन्तु प्रयोजनभूत जाने। वह सब बीचमें आये, परन्तु दोनों भावोंसे स्वयं भिन्न है, शुभाशुभ भाव दोनों कलुषित आकुलतारूप है, मैं उससे भिन्न ज्ञायक हूँ, ऐसा भेदज्ञान करे तो ही उसने सच्चा जाना है। शरीरमात्रसे भिन्न जाने तो उसने भिन्न नहीं जाना है। वह

ठीक है, शरीर जड़ और मैं भिन्न जाननेवाला हूँ। परन्तु अन्दर विभावोंसे भिन्न पड़े तो उसने वास्तवमें भिन्न जाना है, नहीं तो भिन्न नहीं जाना है।

गुरुदेवने तो कितना उपदेश दिया है। चारों ओरसे स्पष्ट कर-करके समझाया है। उसमें कुछ बाकी नहीं रखा है। गुरुदेवने कुछ बाकी नहीं रखा है। शास्त्रमें आता है न कि, मेरे गुरुने जो उपदेशकी जमावट की है, उस उपदेशकी जमावटके आगे यह तीन लोकका, पृथ्वीका राज्य भी मुझे प्रिय नहीं है, यह तीन लोकका राज्य भी मुझे प्रिय नहीं है। सब तुच्छ है। ऐसे गुरुदेवने इस भरतक्षेत्रमें जन्म लेकर जो उपकार किया है, ४५-४५ वर्ष तक जो उपदेश बरसाया है, उस उपदेशकी जमावट स्वयं अन्दर करे। गुरुदेवने तो उपदेशका धोध बरसाया है। उस उपदेशके आगे सब तुच्छ है। यह पूरा जगत तुच्छ है। सब तुच्छ है।

एक ज्ञायक आत्माको पहचानो, वही उपदेश गुरुदेवने दिया है। इस पृथ्वीका राज्य, आचार्यदेव कहते हैं, तीन लोकका राज्य भी प्रिय नहीं है। उसके आगे बाहरके विभाव, सब तुच्छ है। लोगोंमें जाहिर होना, किसी भी प्रकारका कार्य, सब तुच्छ है। मेरे गुरुने जो उपदेश दिया, उसके आगे सब तुच्छ है। अन्दरमें गुरुदेवका उपदेश ग्रहण करे तो जो उन्होंने कहा, उसे पहचाने तो उसमें सम्यग्दर्शन (होकर) भवका अभाव हो और सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो।

मुमुक्षु :- ... टिकता है तो कैसे?

समाधान :- परिणमता है, स्वयं अपना स्वभाव टिकाकर परिणमता है। स्वभाव टिकता रहता है, परिणमन होता है।

मुमुक्षु :- अर्थात् पूरा द्रव्य तो परिणमता है।

समाधान :- हाँ, पूरा द्रव्य परिणमता है। स्वभाव टिककर परिणमता है। दो भाग नहीं हो जाते कि आधा भाग परिणमता है और आधा भाग नहीं परिणमता है, ऐसा नहीं है। परिणमता है पूरा और स्वभावरूप सब रहता है। अपना स्वभाव टिककर परिणमता है। पूरा बदलकर फेरफार नहीं हो जाता। पूरा टिकता है और परिणमता भी है। टिकता भी है और परिणमता भी है।

मुमुक्षु :- दृष्टिका विषयभूत ऐसा जो त्रिकाल पंचमभाव सदा एकरूप रहता है। तो वह दृष्टि अपेक्षित है या परमार्थसे ऐसा है? पंचमभाव दृष्टि अपेक्षितमें लें...

समाधान :- पंचमभाव पूरा अनादिअनन्त है। वह दृष्टिकी अपेक्षासे नहीं, परन्तु वस्तु स्वभावसे वह एकरूप ही रहता है, पारिणामिकभाव तो। परन्तु दृष्टिके विषयमें वह पारिणामिकभाव आता है। अनादिअनन्त है, वह वस्तुस्वरूप है। अपेक्षित यानी पारिणामिकभाव अपेक्षित है ऐसा नहीं, पारिणामिकभाव अनादिअनन्त है। दृष्टि उसे पहचान

लेती है। दृष्टिका विषय है। दृष्टिमें वह जान सकते हैं। वह दृष्टिका विषय है, अपेक्षित नहीं है। दृष्टि उसे विषय करती है। अपेक्षित नहीं है। दृष्टिकी अपेक्षासे पारिणामिकभाव है ऐसे नहीं, पारिणामिकभाव है और दृष्टि उसे ग्रहण करती है। परमार्थसे है।

मुमुक्षु :- आजके अलिंगग्रहणके प्रवचनमें आया था कि गुण सामान्य, द्रव्य-गुण सामान्य है और पर्याय विशेष है। हम लोग गुणको भी विशेष लेते हैं, वह किस प्रकारसे?

समाधान :- कोई अपेक्षासे द्रव्य और गुणको सामान्य कहते हैं और पर्याय विशेष है। कोई अपेक्षासे गुणको भी विशेष कहनेमें आता है। गुणको भेद अपेक्षासे विशेष कहनेमें आता है। द्रव्यमें भेद नहीं पड़ता। एक-एक गुण भिन्न (है)। ज्ञान, दर्शन, चारित्र ऐसे भेदकी अपेक्षासे विशेष कहनेमें आता है। और पर्यायको भी विशेष कहते हैं। पर्यायभेद पड़ते हैं, पलटती पर्याय है इसलिये उसे भी विशेष कहनेमें आता है। परन्तु गुण और द्रव्य दोनोंको सामान्य भी कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- अनन्त गुणात्मक द्रव्य है,...

समाधान :- अनन्त गुणात्मक द्रव्य। गुण अनादिअनन्त है। पर्याय तो बदलती है। इसलिये गुणको और द्रव्यको दोनोंको सामान्य लेना और पर्यायको विशेष लेना। और भेद अपेक्षासे गुणको भी विशेष ले सकते हैं और द्रव्यको सामान्य ले सकते हैं।

मुमुक्षु :- द्रव्य सामान्यमें अभेद...

समाधान :- द्रव्य सामान्य एक लेकर, उसमें गुण साथमें आ जाते हैं। गुणको भेद अपेक्षासे उसे विशेष ले सकते हैं। बाकी दोनों अनादिअनन्त हैं, इसलिये दोनोंको सामान्य ले सकते हैं। अभेद है, गुण द्रव्यके साथ अभेद है और अनादिअनन्त है। इसलिये द्रव्यका विषय करे उसमें सब गुण अभेदपने आ जाते हैं और पर्याय पलटती है इसलिये पर्याय विशेष है।

मुमुक्षु :- गुणविशेष ऐसे तो प्रगट नहीं है, फिर भी भेदकी अपेक्षासे उसे विशेष (कहते हैं)।

समाधान :- वह भले प्रगट नहीं है, परन्तु वह भेदकी अपेक्षासे विशेष है। पर्याय प्रगट होती है, इसलिये विशेष कहलाती है। उसे भेद अपेक्षासे (विशेष कहते हैं)। एक-एक गुण ज्ञान, दर्शन, चारित्र ऐसे विशेष है न? द्रव्य तो एक सामान्य लेना। गुणका भेद पड़े, यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह चारित्र है, यह बल है, ऐसे भेद पड़ते हैं इसलिये विशेष है। भेद अपेक्षासे।

मुमुक्षु :- अनंत गुणात्मक कहें तब सामान्य लेना।

समाधान :- एकरूप द्रव्य है, अनंत गुणात्मक एक द्रव्य है। गुण भिन्न-भिन्न टूकड़े

नहीं है, परन्तु एक द्रव्यका ही स्वरूप है। इसलिये एकरूप है, द्रव्यके साथ गुण एकरूप है। इसलिये द्रव्य और गुणको एक लें तो सामान्य है। परन्तु लक्षण अपेक्षासे भिन्न पड़ता है, इसलिये उसे विशेष कहनेमें आता है।

आम लो तो उसमें उसके सब गुण हैं। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श सब उसमें समा जाते हैं, इसलिये एक अभेद। गुणको भिन्न नहीं करो तो एक आम है। परन्तु उसके रंग, रस सबको भिन्न करो तो वह गुण भी विशेष है। परन्तु उसकी पर्यायें खट्टा, मीठा, सफेद, हरा, पीला वह सब उसकी पर्यायें होती हैं। उसका परिणमन वह पर्याय है। आमका जो परिणमन है वह पर्याय है। ऐसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र उसके गुण हैं।

मुमुक्षु :- नौ तत्त्वकी श्रद्धा है या स्वपरकी श्रद्धा है या स्वकी श्रद्धा है या स्व सामान्यकी ही मात्र श्रद्धा है?

समाधान :- श्रद्धामें सब आ जाता है। एक सामान्यकी श्रद्धा, एक द्रव्य पर दृष्टि, उसमें एक आत्मश्रद्धा, तत्त्वकी श्रद्धा, एक मूल वस्तु आत्माकी श्रद्धा। वह मूल श्रद्धा (है)। उसके साथ व्यवहारमें भेद अपेक्षासे सब आता है। स्वपरकी श्रद्धा। अपनी श्रद्धा, यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ, ऐसे स्वपरकी श्रद्धा आयी। उसमें नौ तत्त्वकी श्रद्धा आयी। दृष्टि अपेक्षासे एककी श्रद्धा। ज्ञान अपेक्षासे सब आता है। यह अपनी श्रद्धा और यह पर है, यह मैं हूँ, एसे स्वपरकी श्रद्धा। नौ तत्त्वकी श्रद्धा, वह सब उसमें साथमें आता है।

मुमुक्षु :- स्वकी श्रद्धामें सब..?

समाधान :- हाँ। अभेद अपेक्षासे एककी श्रद्धा। उसका विशेष ले तो सब श्रद्धा अन्दर साथमें आती है। जीवकी, अजीवकी, आस्रव.. कोई अपेक्षासे जीवको विभाव है, विभावसे छूट सकता है, आंशिक शुद्धि हुयी-संवर, ज्यादा शुद्धि हुयी-निर्जरा, कर्मकी ओरसे लें तो कर्म अटक गये-(संवर), अन्दरमें शुद्धि बढती जाय वह निर्जरा। पूर्ण शुद्धि हो गयी, केवलज्ञान मोक्ष (हुआ), वह सब श्रद्धा। साधक-साध्य सबकी श्रद्धा साथमें आ जाती है, भेद अपेक्षासे। अन्दर एक तत्त्व, अन्दर द्रव्य दृष्टिकी अपेक्षासे एक सामान्य अभेदकी श्रद्धा है। विशेषमें सब आता है।

मुमुक्षु :- अतीन्द्रियज्ञानकी प्राप्ति बिना, हम इन्द्रियज्ञानवाले भेदमेंसे अभेदमें कैसे छलांग लगाये?

समाधान :- भेद भले रहे, परन्तु अभेद स्वरूप स्वयं है ना, कोई दूसरा नहीं है। अभेद अतीन्द्रिय स्वरूप स्वयं ही है, उसकी दृष्टि बाहर गयी है। उपयोग बाहर घुमता है इसलिये यह इन्द्रिय, मन आदिका आलम्बन बीचमें आता है। परन्तु मैं निरालंबी तत्त्व हूँ, उसकी श्रद्धा करे। जूठी मान्यता हो गयी है कि यह पर मैं और मैं सो

पर, ऐसा हो गया है। श्रद्धा बदल दे। आत्माका ज्ञानलक्षण पहचान ले, तो उसमें पलट सकता है। नहीं होता है ऐसा नहीं है। अपना ही स्वभाव है। बाहरका अवलम्नब लेनेवाला स्वयं ही, निरालंब होनेवाला स्वयं ही है। निरालंबन स्वभाव ही स्वयंका है।

मुमुक्षु :- अतीन्द्रियज्ञान नहीं है फिर भी इन्द्रियज्ञानसे भी वह..

समाधान :- हाँ, भले इन्द्रिज्ञान हो, स्वयं स्वकी ओर मुड़ सकता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०६९

मुमुक्षु :- राग और त्रिकाली ज्ञायक स्वभावके बीच सन्धि है, वहाँ प्रज्ञाछैनी पटकनेसे भिन्न किया जा सकता है, ऐसा समयसारमें आता है। तो सन्धि जैसा कुछ दिखाई नहीं देता है, तो कैसे भिन्न करना?

समाधान :- त्रिकाल स्वभाव और राग स्वभाव न? बीचमें सन्धि है। स्वयं पहचाने तो हो न। ज्ञायक स्वभाव जाननेवाला और यह राग दोनों भिन्न वस्तु है। जाननेवाला जो त्रिकाल ज्ञायक जाननेवाला है, जाननेवाला सो मैं और राग भिन्न है। राग वह राग ही। रागका वेदन ही अलग जातिका है और ज्ञानका भिन्न जातिका है। ज्ञान जाननेवाला है, ज्ञानमें राग नहीं है, ज्ञान तो वीतरागी है, जाननेवाला है, उसका जानना स्वभाव है और रागका वेदन भिन्न उसकी आकुलताका वेदन भिन्न है। अन्दर गहराईमें जाकर देखे, सूक्ष्म होकर देखे तो ज्ञान तो ज्ञान है, ज्ञान राग रहित वीतरागी ज्ञान है। यह तो राग है। रागकी आकुलता और रागका वेदन अलग है और ज्ञानका वेदन अलग जातिका है। उसे स्वयं पहचान सकता है, वह उसकी सन्धि है। ज्ञान जो जाननेवाला वह मैं और राग भिन्न, उसे लक्षणसे पहचाने, वह दोनोंकी सन्धि है। सन्धि दिखाई दे ऐसी है। (गहराईमें) जाय तो सन्धिको पहचान सके ऐसा है। प्रज्ञाछैनीसे अपने ज्ञायकको पहचान सकता है।

... मार्ग, स्वानुभूतिका मार्ग ज्ञायकका अभ्यास करनेसे होता है। शुभभाव तो उसके साथ रहता है। स्वभावको पहचाने, स्वभावकी महिमा लगे, स्वभावकी लगनी लगे तो होता है। दिन और रात उसे चैन नहीं पड़े, मुझे ज्ञायक कैसे प्रगट हो? जागते, सोते, स्वप्नमें ज्ञायककी लगनी लगे तो होता है। ऐसे तो नहीं हो सकता है।

मुमुक्षु :- विचारमें ..

समाधान :- विचारमें क्या, लगनी लगे तो विचार आये। बिना लगनीके नहीं होता है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं जाननेवाला हूँ। सिर्फ बोलनेसे क्या होता है? भीतर विचार करे तो भी भीतरमें ज्ञायककी लगनी लगे तो होवे। ऐसे नक्की करना कि मैं ज्ञायक ही हूँ। ज्ञान लक्षणसे पहचाना जाता है, पीछाननेमें आता है। तो भी उसकी लगनी तब होता है। पहले निर्णय करना कि मैं ज्ञानस्वभावी हूँ। परन्तु ज्ञानस्वभावीका प्रयत्न कैसे

हो? कि लगनी लगे तो प्रयत्न हो सकता है, बिना लगनीके नहीं हो सकता है। मात्र बोलनेसे या ऐसे ही रटने नहीं होता है।

यथार्थ समझे, यथार्थ। स्थूल ऊपर-ऊपरसे समझनेसे नहीं होता है। यथार्थथ स्वभावका लक्षण पीछानकर, भीतरमेंसे उसकी लगनी लगे तो होता है। ऐसे नहीं हो सकता। रटने मात्रसे या बोलने मात्रसे नहीं होता है। वह तो ठीक है कि ऐसा विचार करे तो भी अच्छा है, लेकिन विचारके साथ उसकी महिमा लगे, विभावका रस छूट जाय, तभी होता है।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! स्वानुभूतिके कालमें जो आनन्द आता है वह सर्वांगसे आता है या अमुक प्रदेशोंमें आता है?

समाधान :- सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। सब गुणोंका अंश निर्मल होता है। अमुक प्रदेशके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। असंख्य प्रदेशी आत्मा है। उसमें सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व। सर्व गुणोंका अंश उसमें निर्मल होता है। शास्त्रमें आता है कि मनका निमित्त होता है। परन्तु मनका विकल्प तो गौण हो जाता है। ऐसे दो भाग नहीं हो जाते। सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। सर्व गुणोंका अंश उसमें प्रगट होता है। उसके प्रदेशका खण्ड (नहीं होता)। अमुक प्रदेशमें आवे, अमुक प्रदेशमें नहीं आता, (ऐसा नहीं है)। वह तो कहनेमें आता है कि मन द्वारा हृदयकमलमें होता है, परन्तु उसमें सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन, सर्व गुणोंका अंश प्रगट होता है। वह तो निमित्तसे कहनेमें आता है कि मन.. मन तो, विकल्प तो गौण हो जाता है-विकल्प तो छूट जाता है।

मुमुक्षु :- सर्वांगसे आनन्दको जानते भी है।

समाधान :- आनन्दको जानता है।

मुमुक्षु :- सर्वांगसे जानता है?

समाधान :- सर्वांगसे जानता है। ... केवलज्ञान तो हुआ नहीं। स्वानुभव एक साधक दशाकी प्रगट हुयी है। परन्तु जाननेमें आता है। उसका प्रदेश पर ध्यान भी नहीं है। कौनसे प्रदेशसे आया और कौनसे प्रदेशमें नहीं आया, प्रदेशके खण्ड पर उसका ध्यान भी नहीं है। आत्मा अखण्ड है। आत्मामें कोई खण्ड होता नहीं। क्षेत्रका खण्ड वास्तविकमें होता ही नहीं। उसका प्रदेश पर ध्यान भी नहीं है। मैं सर्वांशसे जानता हूँ कि सर्व प्रदेशसे जानता हूँ, उसका प्रदेश पर ध्यान नहीं है, क्षेत्र पर ध्यान नहीं है।

स्वानुभूति, उसके स्वभावमें लीनता हुयी, ज्ञानस्वभाव ज्ञायकमें लीनता हुयी। प्रदेश पर ध्यान है वह भेद पर दृष्टि है। ऐसे भेद पर उसकी दृष्टि नहीं जाती है। उसमें सहज जान लेता है। गुण, पर्याय सब जाननेमें आता है। प्रदेश भिन्न, यह भिन्न ऐसी

भिन्नता पर उसका ध्यान भी नहीं है। जो होता है,.... प्रदेशका खण्ड नहीं होता है।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! एक प्रश्न और है। ज्ञानीको निश्चय-व्यवहरका सुमेल होता है, तो अशुभके कालमें व्यवहारका सुमेल होता है?

समाधान :- क्या? ज्ञानीको...

मुमुक्षु :- निश्चय-व्यवहारका सुमेल रहता है, जब अशुभका काल रहता है, उस कालमें व्यवहारका सुमेल कैसे बनेगा? अशुभभाव हो उस वक्त व्यवहारका सुमेल किस प्रकार है?

समाधान :- जानता है। द्रव्यदृष्टिसे स्वभाव पर दृष्टि है, ज्ञानमें जानता है कि शुभाशुभ भाव सब व्यवहार है। साधकदशा व्यवहार है। दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है, वह भी व्यवहार है, भेद व्यवहार है और शुभाशुभ भाव है वह भी व्यवहार है। अशुभभाव भी व्यवहार है और शुभभाव भी व्यवहार है। अशुद्धनिश्चयनयसे शुभभाव और अशुभाव, अशुद्ध निश्चयनयसे चैतन्यकी पर्यायमें होते हैं, उसको व्यवहार कहनेमें आता है। वह सब व्यवहार ही है। व्यवहार साथमें है। शुभ-अशुभ दोनों व्यवहार है। एक शुभ व्यवहार है ऐसा नहीं है, अशुभ भी व्यवहार है।

पाँचवे गुणस्थानमें अणुव्रतका होता है, चौथे गुणस्थानमें देव-गुरु-शास्त्र आदिका शुभभाव रहता है, उस भूमिकाके योग्य शुभभाव रहता है। साधकदशाके साथमें शुभभाव रहता है, उसके योग्य अशुभभाव रहता है, जो उसकी भूमिका है। उसके योग्य रहता है। ज्ञायकको भूलकर, ज्ञायकको छोड़कर उसको अशुभभाव नहीं होता है। ज्ञायकको भूल गया और अशुभवमें एकत्वबुद्धि हो गयी, ऐसा ज्ञानीको नहीं होता है। भीतरमें अनंतानुबंधीका रस टूट गया, चौथे गुणस्थानमें अनंतानुबंधीका रस टूट गया तो ज्ञायककी मर्यादा तोड़कर अशुभभावमें ऐसा नहीं चला जाता कि ज्ञायककी मर्यादा टूट जाय, ऐसा नहीं होता। अशुभभाव आवे तो भी भेदज्ञानकी धारा तो बनी रहती है। भेदज्ञानकी धारा अशुभभावमें भी रहती है और शुभभावमें भी रहती है। दोनोंमें रहती है। उसके योग्य शुभभाव आता है और अशुभभाव भी उसकी भूमिकाके योग्य होता है।

ज्ञायककी मर्यादा तोड़कर उसमें एकत्व नहीं होता। ज्ञायककी परिणति चलती रहती है। अशुभभाव होवे तो भी ज्ञायकका भेदज्ञान चालू ही रहता है। ऐसे अशुभभाव उसको मर्यादा तोड़कर नहीं होता है। जैसा अज्ञानीको होता है, वैसा उसको नहीं होता है। उसे गौण हो गया है, नहीं हो सकता। ऐसा मेल रहता है। भूमिकाको तोड़कर ऐसा अशुभभाव भी नहीं होता है। साधकदशामें ऐसी संधि रहती है। द्रव्यदृष्टिकी मुख्यता और साथमें व्यवहार, भूमिकाके योग्य शुभ और अशुभ दोनों हुआ करते हैं।

मुमुक्षु :- दोनोंमें क्या अंतर है?

समाधान :- शुद्धउपयोग तो स्वरूपमें लीन हो जाय, उसे शुद्धउपयोग कहनेमें आता है। शुद्ध परिणति दोनों समय (रहती है)। बाहर सविकल्प दशामें होवे तो भी शुद्ध परिणति रहती है। शुद्ध परिणति चालू रहती है। बाहरमें शुभउपयोग होवे या अशुभउपयोग हो, उपयोग बाहर होवे तो भी परिणति-शुद्ध परिणति तो चालू ही रहती है। भेदज्ञानकी परिणति चालू रहती है। उसको शुद्ध परिणति कहनेमें आता है। सहज ज्ञायककी परिणति रहती है, शुद्ध परिणति चालू रहती है। उपयोग बाहर होवे तो भी शुद्ध परिणति चालू रहती है। स्वरूपमें लीन होवे तो शुद्ध परिणति और शुद्धउपयोग दोनों होते हैं।

... गुरुदेव विराजते थे उस वक्त यह कुछ नहीं था। मैं तो मन्दिरमें बैठी रहती थी।

मुमुक्षु :- .. दर्शन करनेकी इच्छा हो..

समाधान :- .. अन्दर आत्माका वहाँ बैठे-बैठे... गुरुदेवने बहुत स्पष्ट किया है। शास्त्रमें तो सब आता ही है कि भगवान महाविदेहक्षेत्रमें विराजते हैं। सीमंधर भगवान महाविदेहमें विराजते हैं। पाँच विदेह है उसमें सबमें भगवान विराजते हैं। जंबू द्विपमें महाविदेह है उसमें सीमंधर भगवान विराजते हैं। पुष्कलावती (नगरीमें) भगवान विराजते हैं। सीमंधर भगवान समवसरणमें विराज रहे हैं। ... यहाँ वीतरागदेवका विरह हुआ है। केवलज्ञानी या वीतराग ...

दिव्यध्वनि छूट रही है, समवसरण है, देव और इन्द्रों ऊपरसे आते हैं, मुनिओंका समूह है। भगवानकी दिव्यध्वनि सुनकर बहुत मुनि होते हैं, श्रावक होते हैं, सम्यग्दृष्टि होते हैं।

मुमुक्षु :- कुन्दकुन्द भगवान वहाँ पधारे होंगे उस वक्त तो आपने साक्षात् उनकी मुखमुद्रा देखी होगी। आपको तो बराबर..

समाधान :- मुनिराजकी क्या बात करनी? कुन्दकुन्दाचार्य महा समर्थ मुनिराज।

मुमुक्षु :- आप मौजूद थे। आपकी मौजूदगी, गुरुदेवकी मौजूदगी..

समाधान :- भगवान समवसरणमें महाविदेह क्षेत्रमें विराजते हैं।

मुमुक्षु :- भगवानकी दिव्यध्वनि छूटती हो तब तो..

समाधान :- जिस गाँवमें विराजते हों, वहाँ रोज जाना होता है। भगवान तो विहार करते हैं। विहार करे तब विहारमें जो साथमें रहते हैं, वे निरंतर सुनते हैं। एक गाँवसे दूसरे गाँवमें भगवान विहार करते हैं। उसमें जो श्रावक दूसरे गाँवमें जाते हैं, वे सब निरंतर सुनते हैं। जिस गाँवमें भगवान विराजते हैं, वहाँ निरंतर सुननेका योग बनता है।

मुमुक्षु :- भगवानका विहार होता होगा, गति एकदम तेज होती होगी। जैसे यह

मोटर, प्लेन जाते हैं वैसे गति होगी? या सामान्यरूपसे..

समाधान :- भगवानका विहार? भगवान तो आकाशमें चलते हैं। भगवान आकाशमें चलते हैं। नीचे देव कमलकी रचना करते हैं। भगवानके चरण जहाँ पड़े वहाँ देव सुवर्ण कमल रचते हैं। मानो भगवान कमलमें चलते हो, ऐसा लगे!

मुमुक्षु :- भगवान तो ऊपर विराजते हैं तो अशक्त आदमी ऊपर कैसे जा सके?

समाधान :- भगवानके समवसरणकी सिढीयाँ चढे तो अशक्त हो वह शक्तिवान हो जाता है। अशक्त कोई रहता ही नहीं। शास्त्रमें आता है। बहेरे सुनने लगते हैं, ऐसा आता है। भगवानका अतिशय ऐसा है। गूंगे बोलने लगते हैं, अँधा देखने लगता है। सिढीयाँ चढनेमें उसे कोई तकलीफ नहीं होती है।

... सम्यग्दर्शनके एकदम समीप आ जाय, उसकी विचारधारा अलग जातकी होती है। परन्तु उसके पहले जिसे जिज्ञासा है तो जिज्ञासा करे कि आत्मा कैसा है? कैसे पहचाना जाय? उसकी लगनी लगाये। आत्मा जाननेवाला है, ज्ञायक है। यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, आकुलतारूप है। मैं जाननेवाला एक ज्ञायकतत्त्व अनादिअनन्त शाश्वत हूँ। उसका विचार करता रहे। मैं ज्ञायक हूँ, मैं आनन्दसे भरा आत्मा हूँ, उसके विचार करता रहे। शास्त्रमें जो (आता है कि) द्रव्य-गुण-पर्याय आत्माके क्या? परद्रव्यके क्या? उन सबका विचार करता है। उसे एक आत्माके सिवा कहीं चैन नहीं पड़ता। कहीं ओर रुचता नहीं। एक आत्माके सिवा कहीं रुचता नहीं। विकल्पमें उसका मन टिकता नहीं। बार-बार आत्माकी ओर जाता है। आत्मा कैसे पहचानूँ? ऐसी लगनी उसे दिन और रात लगी है। एकदम समीप हो जाय, उसकी तो क्या बात करनी? उसे तो एकदम तीव्र लगनी लगी है। आत्मा.. आत्माके सिवा उसे कहीं रुचता नहीं।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- हाँ, शुभभाव होता है, लेकिन एकदम लगनी लगी होती है। विकल्प मुझे नहीं चाहिये, ज्ञायक कैसे प्रगट हो, ऐसी अन्दरसे गहराईसे लगनी लगी होती है। शुभभाव होते हैं, परन्तु आत्मा जाननेवाला है वह मैं हूँ, ऐसे लक्षणसे पहचानकर नक्की करे कि यह जाननेवाला है वही मैं हूँ, उसके सिवा बाकी सब मुझसे भिन्न है, वह मेरा स्वभाव नहीं है। यह सब मुझसे भिन्न पर है। मेरा स्वभाव भिन्न है, यह विभाव होता है वह भी मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसी उसे लगनी लगी है। मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसा निर्णय करके आगे जाता है। निश्चय करके। यह शुभभाव मैं नहीं हूँ, मैं तो जाननेवाला हूँ। तीव्र लगनी लगी है। बारंबार मैं जाननेवाला हूँ। चाहे जो विकल्प आये, शुभभाव आये तो भी मैं जाननेाला, जाननेवाला, ऐसी उसे अंतरमेंसे दृढ़ता और अमुक प्रकारसे

ऐसी परिणति होती है। वास्तविक तो बादमें होता है, परन्तु उसे ऐसा दृढ़ निर्णय होता है।

मुमुक्षु :- आत्मा इतना शक्तिशाली होने पर भी हाथमें नहीं आता, तो यह कमजोरी क्यों रह जाती है?

समाधान :- आत्मा..?

मुमुक्षु :- शक्तिशाली होनेपर भी हाथमें नहीं आता है।

समाधान :- नहीं आता है, वह अपनी क्षति है। शक्तिवान होने पर भी नहीं आता है। स्वयं परपदार्थमें रुचि रखकर पड़ा है, आत्माकी रुचि करता नहीं। अनन्त शक्तिवान और अनन्त महिमावंत है। स्वयंको महिमा नहीं आती है। अनन्त शक्तिवानका उसे निर्णय नहीं आता है, उसे दृढ़ता नहीं होती है कि मैं शक्तिशाली हूँ। मैं अनन्त सामर्थ्यवान हूँ, उसे स्वयंको श्रद्धा नहीं होती है। इसलिये प्रगट नहीं होता है। श्रद्धा हो तो प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- श्रद्धा कैसे करनी?

समाधान :- श्रद्धा तो श्रद्धा करनेसे श्रद्धा होती है। सब शंका छोड़कर अन्दर समझकर श्रद्धा करे। यह जाननेवाला है वही मैं हूँ। मैं अनन्त सामर्थ्यसे भरपूर आत्मा हूँ। यह सब मैं नहीं हूँ। मैं तो अनन्त शक्तिवान हूँ। यह कोई मुझे रोकते नहीं। कर्म मुझे रोकता नहीं या परपदार्थ रोकते नहीं। मैं तो अनन्त शक्तिशाली आत्मा हूँ। ऐसी श्रद्धा करे तो होती है। किये बिना नहीं होती।

.. अनन्त बार गया लेकिन वापस आया। समवसरणमें अनन्त बार गया परन्तु भगवानको पहचाना नहीं। भगवान किसे कहते हैं? भगवानका सब बाहरसे देखा। भगवानकी ऋद्धि, समवसरण.. यह भगवान है ऐसा मान लिया। ऐसी ऋद्धि हो वह भगवान और गन्धकूटीमें पीठिका पर बैठे हो वह भगवान, ऐसी वाणी छूटे वह भगवान। अंतरमें भगवान कैसे, उसे भगवानकी महिमा आयी नहीं। भगवानकी वाणीमें क्या आता है, उसका विचार करके ग्रहण किया नहीं। भगवानकी अंतरसे महिमा नहीं आयी। ऐसे ओघेओघे भगवानकी महिमा आयी। बिना समझे ही यह भगवान है, ऐसा मान लिया। भगवानका शरीर ऐसा है, भगवानकी वाणी ऐसी है, ऐसे सब ऊपर-ऊपरसे मान लिया। अंतरसे भगवानको नहीं पहचाना। भगवानका द्रव्य क्या? भगवानका गुण क्या? भगवानकी पर्याय क्या? कुछ नहीं पहचाना। इसलिये समवसरणमेंसे वापस आया। भगवान किसे कहते हैं, अंतरमेंसे वह महिमा नहीं आयी है। इसलिये वापस आया है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

ट्रेक-०७०

समाधान :- .. निमित्त बने, पुरुषार्थ करे तो अन्दर दृढ़ता हो। पुरुषार्थ करे तो होता है। प्रतिकूल संयोगका निमित्त बने। बाकी पुरुषार्थ तो स्वयंको करना है। बहुतोंको प्रतिकूलता हो तो भी कुछ नहीं होता है। परन्तु स्वयं करे तो होता है। प्रतिकूलता तो बाहरका निमित्त बनती है, स्वयं करे तो होता है। स्वयंको पुरुषार्थ उठना रहता है। भेदज्ञान कैसे हो? अन्दर कैसे लगनी लगानी? सब अपने हाथकी बात है। ज्ञायककी परिणति दृढ़ करनी, ज्ञायकता प्रगट करनी अपने हाथकी बात है। निमित्त बने, बाहरके प्रतिकूल संयोग निमित्त बनते हैं। उसे वापस मुड़नेका एक कारण बनता है। परन्तु करना स्वयंको पड़ता है।

मुमुक्षु :- बाहरसे वापस मुड़े तो उसे दूसरी जगह कहाँ रही?

समाधान :- आत्मामें जानेकी जगह रही। लेकिन जाय तो होता है न? जाय तो होता है।

मुमुक्षु :- जानेके लिये पुरुषार्थ ही चाहिये और अन्दरकी लगनी?

समाधान :- परुषार्थ, अन्दरकी लगनी। विचार करके, मैं ज्ञायक हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप भिन्न है। पुरुषार्थ (करके) परिणतिको बदले तो होता है।

मुमुक्षु :- एकदम लगनी कैसे लगे?

समाधान :- लगनी लगानी अपने हाथकी बात है। स्वयंको बाहरसे दुःख लगे, यह मेरा स्वभाव नहीं है, यह मुझे आकुलतारूप है, यह टिकनेका स्थान नहीं है। यह मेरा घर नहीं है। मेरा स्वघर रहनेका निवासस्थान तो आत्मामें है। ऐसा अन्दर निश्चय हो, ऐसी प्रतीति हो, वह प्रतीति दृढ़ हो तो अन्दर जाय। उतनी दृढ़ता अपनेमें होनी चाहिये, तो अन्दर जाय। जबतक नहीं हो तबतक उसकी लगनी लगाये, उसका अभ्यास करे, बारंबार मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। बाहर शुभभाव आये, देव-गुर-शास्त्रकी महिमा आदि, परन्तु करनेका अन्दर शुद्धात्मामें है।

मुमुक्षु :- जाननेवालेको जानना।

समाधान :- जाननेवाला है। उसका मुख्य गुण जानना है। अनन्त गुणोंसे भरा है, परन्तु मुख्य गुण तो जानना है-ज्ञायक है।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रकी भक्तिसे नहीं मिलता है?

समाधान :- भक्ति निमित्त बने, करना स्वयंको पड़ता है। भक्तिसे कुछ होता नहीं। वह तो बीचमें आती है। अशुभभावसे बचनेको अंतरमें नहीं हो तबतक देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति आये बिना रहती नहीं। भक्ति, स्वाध्याय, विचार, वांचन, सब बीचमें आता है। तो भी स्वयंको पहचानना पड़ता है। आत्माको पहचानना। वह सब बीचमें आता है।

मुमुक्षु :- बहुत वांचन नहीं हो सकता हो..

समाधान :- वांचन नहीं हो सके तो प्रयोजनभूत तत्त्वको जाने तो स्वयंको पहचान सकता है। ज्यादा वांचन करे तो होता है, ऐसा भी नहीं है। लेकिन वह सब स्वयंको विचार करनेके लिये शास्त्र स्वाध्याय बीचमें होता है, परन्तु वह ज्यादा ही चाहिये, ऐसा नहीं है। प्रयोजनभूत आत्माको जाने कि मैं जाननेवाला हूँ और यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा अंतरसे जाने कि यह सब परद्रव्य है, मैं आत्मा भिन्न हूँ। मेरा स्वभाव भिन्न है, आकुलता मेरा स्वरूप नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा प्रयोजनभूत स्वयं जाने तो ज्यादा वांचन नहीं हो तो भी अंतरमें कर सकता है।

मुमुक्षु :- स्वपरका भेदज्ञान?

समाधान :- स्वपरका भेदज्ञान। द्रव्य पर दृष्टि। मैं चैतन्यद्रव्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ। भेदज्ञान और द्रव्य पर दृष्टि। द्रव्य पर दृष्टि हो उसे भेदज्ञान होता है। भेदज्ञान हो और द्रव्य पर दृष्टि हो, वह दोनों साथमें ही है।

मुमुक्षु :- पहले भेदज्ञान कैसे करना? शरीरसे, बाहरके पदार्थ प्रतिकूल हो, उससे भेदज्ञान हो सकता है पहले?

समाधान :- वह तो क्रम कहनेमें आता है, परन्तु जब अंतरसे भेदज्ञान होता है तब सच्चा भेदज्ञान होता है। बाकी विचार करे कि शरीरसे मैं भिन्न हूँ, यह बाह्य पदार्थसे मैं भिन्न हूँ, वह कुछ जानते नहीं, मैं जाननेवाला भिन्न हूँ, ऐसा पहले विचार करे। यह शरीर भिन्न, यह जड़ कुछ जानता नहीं। मैं तो जाननेवाला भिन्न हूँ। यह बाह्य परद्रव्य मुझसे अत्यंत भिन्न हैं। यह शरीर भी भिन्न है तो बाहरकी तो क्या बात करनी? उससे भिन्न, शरीरसे भिन्न परन्तु अंतरमें जो आकुलता, विकल्प उत्पन्न होते हैं, उस विकल्पसे अपना स्वभाव भिन्न है। मैं तो निर्विकल्प तत्त्व हूँ। तब उसे सच्चा भेदज्ञान होता है।

इतना करे तो भी वह तो स्थूल हुआ है कि परद्रव्यसे भिन्न और शरीरसे भिन्न। अन्दर जो सूक्ष्म भाव है, शुभाशुभ भावोंसे भी मेरा स्वभाव भिन्न है। ऐसे प्रतीत हो, ऐसी परिणति हो, तब सच्चा भेदज्ञान होता है। मैं तो चैतन्यद्रव्य हूँ, इन सबसे मैं भिन्न हूँ।

मुमुक्षु :- अपने स्वभावसे भी भिन्नता?

समाधान :- अपने स्वभावसे भिन्नता नहीं, विभावके स्वभावसे। अपना स्वभाव वह तो स्वयं ही है। .. वांचन, विचार, भक्ति, वैराग्य आदि सब होता है, उसके साथ होता है। एक चैतन्यतत्त्वको पहचाने। ध्येय एक-आत्मा कैसे पहचाना जाय? शुभभावमें सब साथमें होता है। अंतरमें शुद्धात्मा कैसे पहचाना जाय? ज्ञायक.. ज्ञायक... ज्ञायकको जाननेका अन्दर पुरुषार्थ।

मुमुक्षु :- एकदम क्यों नहीं शुरू होता है?

समाधान :- उतनी लगनी नहीं है, उतनी रुचि नहीं है, अंतरमेंसे उतना वापस नहीं मुड़ा है। सब साथमें चाहिये।

मुमुक्षु :- ऐसे तो ऐसा लगता है कि कुछ अच्छा नहीं लगता।

समाधान :- अच्छा नहीं लगता, लेकिन अंतरमें अपनी ओर मुड़नेकी उतनी रुचि जागृत होनी चाहिये न। अच्छा नहीं लगे, परन्तु उतना पुरुषार्थ अपनी ओरका होना चाहिये न। उतना पुरुषार्थ होता नहीं है। अच्छा नहीं लगे, वास्तवमें अच्छा नहीं लगता हो तो वह अंतरमें मार्ग किये बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु :- अपनी ओर मुड़नेका मार्ग प्राप्त हो ही जाता है?

समाधान :- मार्ग प्राप्त हो ही जाता है। वास्तवमें अन्दर लगे तो। खरा पुरुषार्थ अन्दर हो तो। लगनी लगनी चाहिये अंतरमें। क्षण-क्षणमें उसीकी लगनी लगे। और कहीं रुचे नहीं, क्षण-क्षणमें मेरा ज्ञायक.. ज्ञायक.. मुझे ज्ञायक कैसे पहचानमें आये? ज्ञायकदेव। ज्ञायक दिव्यस्वरूप मुझे कैसे पहचानमें आये? उतनी ज्ञायककी महिमा लगनी चाहिये, ज्ञायककी उतनी लगनी अन्दर लगनी चाहिये।

.. अन्दरसे स्वयं विचार करना। बाहरकी महिमा छूटे और अन्दरकी ज्ञायककी महिमा (आये)। उसका स्वभाव पहचानना कि आत्माका स्वभाव कोई अलौकिक है। उसका स्वभाव पहचानना। महिमा कैसे आये? ज्ञायक एक दिव्यमूर्ति है। ज्ञायक मात्र ज्ञान नहीं है, परन्तु ज्ञायक अनन्त गुणोंसे भरपूर दिव्य है। ऐसे महिमा लगनी चाहिये। मात्र एक रुखा ज्ञान जाननेवाला, जाननेवाला ऐसा नहीं है। दिव्यतायुक्त कोई पदार्थ है।

मुमुक्षु :- दिव्यता कैसी होती है?

समादान :- कैसी हो, उसका क्या...? दिव्यता आश्चर्यकारक दिव्यता। दिव्यताका अर्थ स्वयं दिव्यस्वरूप है।

मुमुक्षु :- उसका कुछ वर्णन?

समाधान :- उसका वर्णन क्या? उसका अर्थ समझमें आये ऐसा है। दिव्यता अर्थात् दिव्य। देवस्वरूप आश्चर्यकारक दिव्यता। कह नहीं सके, उसका अर्थ वह। दिव्यता।

मुमुक्षु :- वर्णनमें नहीं आये।

समाधान :- वर्णनमें नहीं आता।

मुमुक्षु :- अनुभवमें आये।

समाधान :- अनुभवमें आये।

मुमुक्षु :- कैसा अनुभव होगा?

समाधान :- स्वयं अनुभव करे तब वह समझ सके। बाकी उसका मार्ग शास्त्रमें आता है। लगनी लगी नहीं है, नहीं तो प्राप्त हुए बिना रहे ही नहीं। लगनीमें न्यूनता है, पुरुषार्थकी न्यूनता है, प्रमाद है। प्रमाद है।

मुमुक्षु :- प्रमाद ही ज्यादा है।

समाधान :- लगनी लगती नहीं है, वह प्रमाद है। लगनीकी न्यूनता है और प्रमाद है। आज ही कार्य करना है, आज ही करना है, ऐसा अन्दर पुरुषार्थ नहीं है, प्रमाद है।

मुमुक्षु :- प्रमाद तो ... होगा, .. तो ही उसे प्रमाद रहता होगा न?

समाधान :- भरोसा होगा, लेकिन उसे प्रमाद रहता है। उतनी लगी नहीं है, इसलिये रहता है। देह टिकनेवाला है ऐसा भरोसा अप्रगट समझे, बाकी उसे ऐसा भी होता है कि यह शरीर हमेशा नहीं टिकनेवाला है, लेकिन अन्दरसे उसे सच्चा निर्णय नहीं होता। स्थूलतासे समझे कि यह शरीर परद्रव्य है, टिकेगा नहीं, परन्तु अंतरमें प्रमाद करता है वह स्वयं करता है। अन्दर सच्ची लगे तो तैयार हुए बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु :- देह कभी भी छूटे तो भी उसकी तैयारी अन्दर होनी चाहिये।

समाधान :- तैयारी होनी चाहिये, क्षण-क्षणमें तैयारी होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक, बस।

समाधान :- ज्ञायकका रटन होना चाहिये।

मुमुक्षु :- रटन करते-करते अन्दर लगनी लग जाती होगी?

समाधान :- अन्दर सच्ची लगानेवाला स्वयं है। कैसे लगे? स्वयंको लगानी है। रटन करते नहीं, उसकी जरूरत लगे तो लगनी लगे तो पुरुषार्थ हो। जरूरत लगती नहीं।

मुमुक्षु :- ... लेकिन निद्रामें क्यों नहीं रहता?

समाधान :- जिसको ज्ञायककी रुचि लगे तो ज्ञायककी रुचि तो रुचिवालेको छूटती नहीं। निद्रामें रुचि तो ज्ञायककी होनी चाहिये। निद्रामें पुरुषार्थ मन्द हो जाता है, रुचि तो ज्ञायककी लगनी चाहिये। स्वप्न आये तो भी मैं ज्ञायक, मुझे कैसे प्रगट हो? ऐसी भीतरमेंसे गहरी लगनी लगनी चाहिये। पुरुषार्थ मन्द हो तो बारंबार पुरुषार्थ करे, उसमें थके नहीं। बारंबार, बारंबार, उसकी महिमा छूटे नहीं, उसकी लगनी छूटे नहीं, पुरुषार्थ

मन्द हो तो बारंबार पुरुषार्थ करे, तो भीतरमें प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं।

भगवानके दरबारमें जाना है तो भगवानके द्वार पर टहले लगाये तो भगवानके द्वार खुल जाते हैं। ऐसे ज्ञायकके द्वार पर ज्ञायक.. ज्ञायक.. ऐसे उसकी टहेल लगाता रहे। भीतरमें ज्ञायकदेवका दर्शन हुए बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- ज्ञायकका प्रचार करते हैं, बीच-बीचमें आस्रवभाव आ जाते हैं, उन्हें हटाते हैं तो हटते नहीं है, हमको परेशान करते हैं।

समाधान :- भीतरमें आस्रवभाव आवे तो बार-बार पुरुषार्थ करे। उसका ज़ोर चलने नहीं देवे। आत्माकी ओरका पुरुषार्थ करे। आस्रवका जोर चलने नहीं देना। अनादिका अभ्यास है, बीचमें आता है तो उसका ज़ोर नहीं चलने देना। आत्माका बारंबार उग्र पुरुषार्थ करे तो हो सकता है। ज्यादा आ जाय, ज्यादा सीख ले, ऐसा नहीं है। विचार करे, मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको जाने तो भीतरमें हो सकता है। आत्माका स्वभाव और विभावका स्वभाव भिन्न करके, ज्ञायकका स्वभाव है, प्रज्ञाछैनी द्वारा उसका भेद करके, मैं ज्ञायक ही हूँ, यह मैं नहीं हूँ, यह विभाव है, मेरा स्वभाव भिन्न है। ऐसा उग्र पुरुषार्थ करके स्वरूप ग्रहण कर ले। भीतरमें ज्ञायककी परिणति प्रगट कर ले, तो हो सकता है। मेरे द्रव्य-गुण सब भिन्न हैं, उसका द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न है, विभावका स्वभाव भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान करे। द्रव्य पर दृष्टि करे तो हो सकता है।

मुमुक्षु :- माताजी! विकल्पके कालमें पुरुषार्थ और अलगसे चलता है? या विकल्प ही पुरुषार्थ है?

समाधान :- जब निर्विकल्प नहीं होता हो तो विकल्प होते हैं। परन्तु भीतरमें उसकी जो भावना है, उस भावनाकी उग्रता करके और ज्ञान अपनी ओर दिशा बदलकर ज्ञायकको ग्रहण करके विकल्प गौण हो जाता है। विकल्प छूटता नहीं, विकल्प तो निर्विकल्प दशा जब होवे तब छूटता है। परन्तु विकल्पको गौण करके, ज्ञान अपनेको ग्रहण करता है, अपनी ओर जिसे रुचि लगी, वह ज्ञान अपनी ओर जाकर ज्ञायकको ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानने अपनेको कभी देखा नहीं है तो ज्ञान किस बल पर अपनेको भीतर ले आये?

समाधान :- देखा नहीं है तो भी ज्ञान अपने स्वभावको ग्रहण कर लेता है। स्वयं ही है, दूसरा तो है नहीं। ज्ञायक स्वयं और ज्ञान भी अपना, सब स्वयं ही है। स्वयं स्वयंको ग्रहण कर सकता है। दूसरा नहीं है। देखा नहीं है तो भी ग्रहण कर सकता है, स्वभावको पहचानकर।

मुमुक्षु :- शास्त्रमें तो ऐसा आता है कि विभाव द्वारा स्वभावका भाना अशक्य

है। विभावके द्वारा स्वभावका भाना अशक्य है। विभाव द्वारा स्वभावका भाना अशक्य है तो विभाव द्वारा स्वभाव कैसे पकड़में आये?

समाधान :- ज्ञानस्वभाव द्वारा। ज्ञानके द्वारा ज्ञानस्वभावका ग्रहण होता है, विभावके द्वारा नहीं होता है। ज्ञान द्वारा ज्ञायक ग्रहण हो सकता है, ज्ञायक ज्ञायकसे ग्रहण होता है। विभाव द्वारा नहीं। विभाव साथमें रहता है वह गौण हो जाता है। ज्ञानके द्वारा ज्ञायक ग्रहण होता है। ज्ञानस्वभावको ग्रहण करके, एक ज्ञायकको ग्रहण करके दृढ़ प्रतीति करके कि मैं ज्ञायक ही हूँ। फिर मति-श्रुतका उपयोग बाहर जाता है, उसको स्वभावकी ओर लाकर उसमें लीन करता है। विकल्पका भेद हो जाता है और स्वभाव प्रगट होता है।

भीतरमें जाये तो शून्य नहीं है। अकेला ज्ञायक-ज्ञान महिमावंत है। उसका ज्ञान अर्थात् सूखा ज्ञान ऐसे नहीं। ज्ञान महिमावंत ज्ञायक ही है। उतना सत्य परमार्थ है, उतना कल्याण है, उतना ही है कि जितना यह ज्ञानस्वभाव है। ज्ञानस्वभाव है अर्थात् ज्ञायकको ग्रहण कर। उसमें प्रीति कर, उसमें रुचि कर, उसमें संतुष्ट हो। ज्ञायक महिमासे भरपूर है। एक करने योग्य है, जितना यह ज्ञान है। ज्ञानको ग्रहण कर। वह परम महिमावंत पदार्थ है। .. भीतरमें जाय, सब छूट जाय इसलिये शून्य है, ऐसा शून्य नहीं है। महिमासे भरपूर, अनन्त गुणसे भरपूर ऐसा आत्मा है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- वर्तमानसे भी हो सकता है। पूर्वका किसीको होता है, सबको पूर्वका नहीं हो सकता है। वर्तमान पुरुषार्थसे भी हो सकता है। जिसको प्रगट हुआ वह वर्तमानसे हुआ। सबको पूर्वसे नहीं हो सकता है। जब होता है तब पहले तो हो सकता है। सब पूर्वका लेकर नहीं आते हैं। भगवानकी वाणी सुनता है, अनादिकालसे पहले कुछ हुआ ही नहीं, तो भीतरमें देशना लब्धि होती है, ऐसे पूर्वका लेकर नहीं आता है। भगवानकी ऐसी वाणी सुनकर भीतरमें भगवानको पहचानता है वह स्वयंको पहचानता है। अपनेको पहचानता है वह भगवानको पहचानता है। सब पूर्वसे लेकर नहीं आते हैं। वर्तमान पुरुषार्थसे हो सकता है।

...उसकी प्रीति कर, उसकी रुचि कर, उसमें तुझे उत्तम सुख होगा। शास्त्रमें आता है। उसमें संतुष्ट हो।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

?? ?

अमृत वाणी (भाग-३)

(प्रशममूर्ति पूज्य बहेनश्री चंपाबहेन की
आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा)

ट्रेक-७१

मुमुक्षु :- माताजी! सत् चिद् आनन्द। चिद्का अर्थ क्या है? सच्चिदानन्द स्वरूप।

समाधान :- सत् चिद्। चिद् अर्थात् ज्ञान होता है। चैतन्य ज्ञान चिद्, ऐसा होता है। चिद् अर्थात् ज्ञान। सत् ज्ञानानन्द स्वरूप है।

मुमुक्षु :- चेतनता..

समाधान :- चेतन भी होता है और ज्ञान भी होता है। चिद् अर्थात् ज्ञान।

मुमुक्षु :- सत् जो शब्द है, अस्तित्वगुण, उसमें भाव नहीं आता है। उसका मूल्य क्या है? जैसे हवाके बिना नहीं चलता, तो उसकी महत्ता बहुत है। वैसे अस्तित्वकी महत्ता बहुत है, परन्तु आनन्दमें जो भाव रहा है, वैसा सत्में भाव नहीं आता। सत्की महिमा, सत् स्वरूप है, सत्की महिमा कैसे आये?

समाधान :- वह तो जो वस्तुकी मौजूदगी है, उस मौजूदगीमें गुण होते हैं। जिसकी मौजूदगी ही नहीं है, उसमें गुण कैसे? सत् वस्तु है। एक वस्तु है, चैतन्य एक है। जड़ है, चैतन्य है, वैसे सब है। उसका अस्तित्व हो, उसमें ज्ञान होता है, आनन्द होता है। अस्तित्व हो उसमें यह सब है। अस्तित्व ही नहीं है, जिस वस्तुकी मौजूदगी ही नहीं है, तो ज्ञान और आनन्द किसमें होंगे? वह सब गुण है। ज्ञान, आनन्द सब।

सत् अर्थात् एक वस्तु है। एक हयाती है। मैं एक आत्मा हूँ। हूँ अर्थात् एक

अस्तित्वगुण, एक अस्तित्व, चैतन्यरूप मेरा अस्तित्व है। यह जड़ है, मेरा अस्तित्व नहीं है। मैं तो सत् स्वरूप, आनन्द स्वरूप (हूँ)। आनन्द गुण है, परन्तु सत् एक वस्तु है। उस वस्तुकी महत्ता है। वस्तु है, पहले वस्तु है तो कैसी है? ज्ञान और आनन्दसे भरी है। ज्ञान और आनन्द किसमें है? सत्में है। सत्-मैं एक आत्मा हूँ। अपना अस्तित्व ग्रहण करनेका है। यह जड़ मैं नहीं हूँ। मैं हूँ। मैं एक अस्तित्वस्वरूप वस्तु हूँ। अस्तित्वमें एक गुण नहीं लेना, पूरा पदार्थ उसमें आ जाता है। सत्रूप वस्तु है, उसमें पूरा पदार्थ आ जाता है। और वह पदार्थ कैसा है? कि ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंसे भरा है। अस्तित्वकी महिमा है।

पहले इस प्रकार ग्रहण करे कि मैं एक अस्तित्व-मेरी हयाती है। मैं एक सत्स्वरूप आत्मा हूँ। सत् कैसा है? सत्में सब (आ जाता है)। ज्ञानरूप मेरा अस्तित्व है, आनन्दरूप अस्तित्व है, मेरा अनन्त गुणरूप अस्तित्व है। मेरे अस्तित्व कैसा है? ज्ञान और आनन्दसे भरपूर मेरा अस्तित्व है। इस प्रकार गुण और द्रव्य सब उसमें साथमें आ जाता है, एक सत्को ग्रहण करने पर।

मुमुक्षु :- हम लोग क्या कहते हैं, आनन्द .. अनुभूति है, वेदन है, इसलिये उसमें बहुत भाव भरा हो ऐसा लगता है। वैसे सत्में भाव नहीं दिखाई देता।

समाधान :- वह तो एक वेदन है। आनन्द है वह वेदन है, इसलिये भावसे भरा है। ज्ञानमें जाननेका गुण है, इसलिये वह भावसे भरा दिखता है। परन्तु अस्तित्व है वह टिकनेवाली वस्तु है। जो वस्तु टिकती ही नहीं,.. जो टिकनेवाली वस्तु अनादिअनन्त शाश्वत है, जो शाश्वत वस्तु ही नहीं है तो ज्ञान और आनन्द रहेंगे किसमें? तो वेदन किसमें होगा? एक वस्तु टिकती है तो उसमें ज्ञान और आनन्द है। टिकनेवाली वस्तु ही नहीं है तो ज्ञान और आनन्द किसमें रहेंगे?

मुमुक्षु :- इसलिये शुरूआत ही वहाँसे होती है?

समाधान :- वहाँसे-अस्तित्वसे होता है। अग्नि है वह अग्नि है, पानी है वह पानी है। परन्तु अग्नि और पानी। उसमें शीतल गुण है, उसमें उष्ण गुण है। उसके गुणसे पकड़में आता है कि उष्ण है वह अग्नि है और शीतल है वह पानी है। वैसे आत्मा ज्ञान ज्ञायकस्वरूप जो ज्ञायक है, जिसने ज्ञायकका अस्तित्व धारण किया है वह आत्मा है और जो जानता नहीं है वह जड़ है। वह गुणके द्वारा पकड़में आता है, परन्तु उसका अस्तित्व है तो पकड़में आता है। अस्तित्वके बिना जो द्रव्य ही नहीं, जो ध्रुव ही नहीं है, बिना ध्रुवके गुण कहाँ रहेंगे? ध्रुव स्वयं वस्तु है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- अस्तित्वगुणके कारण वस्तुकी हयाती है। अस्तित्व नहीं है तो गुण

कहाँ रहेंगे? मेरा एक चैतन्य अस्तित्व है। ज्ञानगुणका अस्तित्व है। आनन्दका अस्तित्व है। आनन्द अस्तित्वसे भरा है। ज्ञान, आनन्द आदि सब अस्तित्वसे भरे हैं। उसका वेदन, आनन्दगुणका वेदन आनन्दस्वरूप है, जाननेका जाननस्वरूप, लेकिन अस्तित्व नहीं है तो वेदन किसका?

मुमुक्षु :- इसीलिये सच्चिदानन्दमें पहले सत् लिया।

समाधान :- सत्-पहले वस्तु है। ध्रुव एक वस्तु है। लेकिन वह है। हयातीसे टिकनेवाली। उसका भाव वह है-हयाती, उसका भाव वह है-हयाती। वह जाननेका, आनन्दका। वेदन स्वयंको (होता है)। अनादिसे स्वयं दुःखी हो रहा है, इसलिये दुःखसे छूटनेके लिये कहते हैं, सुख आत्मामें है। तो उस ओर मुड़ता है। सुख आत्मामें है, बाहर नहीं है। इसलिये वह सुखकी ओर मुड़ा। परन्तु सुख किसमें रहा है? सुख बाहर तो नहीं है। तो सुख किस पदार्थमें है?

आत्मा पदार्थ है। जौ मौजूदगी रखता है, उसमें सुख है। मौजूदगीके बिना सुख कहाँ रहेगा? हयाती साथमें होती है। हयाती उसका भाव है। अस्तित्वका भाव मौजूदगी रखना, वह है। शाश्वत है। अनन्त काल गया, अनन्त जन्म-मरण किये, कुछ भी किया लेकिन उसका अस्तित्व, ज्ञायकका अस्तित्व ज्ञायकरूप ही रहा है। चाहे किसी भी क्षेत्रमें रहा, जड़के साथ रहा, चाहे जैसे उपसर्ग, परिषह आये तो भी उसका अस्तित्व-ज्ञायकका-चैतन्यका अस्तित्व चैतन्यरूपसे छूटता नहीं, नाश नहीं हो जाता। निगोदमें रहा, नर्कमें गया, कहीं भी गया, चाहे जैसे दुःख आये तो भी चैतन्यका अस्तित्व है, वह अस्तित्व मौजूदगी रखता है। उसका भाव हयाती धरना है। अपनी हयाती ज्ञायककी ज्ञायकरूप हयाती छूटती ही नहीं, नाश नहीं होती। उसका भाव हयाती रखना है। है, हयाती रखनेवाली वस्तु है। उसका कोई नाश नहीं कर सकता। ऐसी ध्रुव शाश्वत वस्तु है। उसका भाव हयाती रखना है। उसका वेदन वह है कि हयाती रखना। ज्ञानका जाननेका वेदन, आनन्दका आनन्दरूप और हयाती रखना उस प्रकारका उसका वेदन है। हयाती, जो हयाती है।

मुमुक्षु :- ऐसा निर्णय..

समाधान :- ऐसा निर्णय करे कि मैं एक वस्तु है। जो हो उसका निर्णय होता है, नहीं हो उसका निर्णय कैसा? है उसे ग्रहण करता है, नहीं है उसका ग्रहण क्या? एक वस्तु है। तो भी वह भावसे भरा है। ध्रुव। वह खाली ध्रुव नहीं है, ज्ञायक ध्रुव। अस्तित्व कैसा? ज्ञायकका अस्तित्व, आनन्दका अस्तित्व। सब गुणसहित अस्तित्व है। उसमें गुण साथमें आते हैं। खाली अस्तित्व नहीं है, अस्तित्व खाली शुष्क अस्तित्व नहीं है। वह अस्तित्व ज्ञान आदि अनन्त गुणोंसे भरा अस्तित्व है। हयाती। हयाती

है और ज्ञानकी हयाती, आनन्दकी हयाती सबकी हयाती उसमें साथमें आती है।

मुमुक्षु :- सबके भाव ...

समाधान :- सबके भाव उस हयातीमें समा जाते हैं। हयातीमें अकेली हयाती नहीं आती, उसमें सब भाव साथमें आ जाते हैं। अनन्त गुणके भाव अस्तित्वके साथ आते हैं।

मुमुक्षु :- आत्मस्वरूप, सहज आत्मस्वरूप ... मुश्किल लगता है, फिर भी आत्माका स्वयंका स्वरूप है, जितना बोलनेमें सहज दिखता है, उतना सहज नहीं दिखता है।

समाधान :- स्वभाव सहज है, इसलिये स्वयं सहज है। अनादिसे विभावमें पडा है इसलिये सहज नहीं दिखता। ज्ञान, आनन्द, अस्तित्व आदि उसके सभी गुण अनादि अनन्त सहज है। सहज वस्तु स्वयं है, उसे किसीने बनायी नहीं है। अब, जो स्वभाव होता है वह सहज होता है। स्वभावकी उत्पत्ति करनी पड़े ऐसा नहीं है, वह तो स्वभावरूप ही है। स्वभावकी ओर जाना, अपने स्वभावमें जाना वह सहज है। उल्ट विभाव (असहज है)।

पर पदार्थको अपना करना, वह मुश्किल है। वह मेरा-मेरा करता ही रहता है, लेकिन अपना होता नहीं। कैसे हो? जो अपना नहीं है। जड़ और चैतन्य दोनों भिन्न-भिन्न हैं। भिन्न हो वह एक कैसे हो? जड़ अपना होता नहीं। परन्तु चैतन्यको स्वयंको ग्रहण करके अपनेरूप होना हो तो वह सहज है। अपने स्वभावरूप परिणमना वह सहज है।

पानी शीतल है, पानीको शीतलतारूप परिणमना सहज है। पानी अग्निके निमित्तसे गर्म हुआ, परन्तु गर्म होनेका बाद उसे शीतल होना सहज है। क्योंकि वह अग्निसे भिन्न पड़े इसलिये वह शीतल हो ही जाता है। उसे शीतल होना सहज है। पानीको गर्म रखना दुर्लभ है। परन्तु शीतल होना सहज है।

अनन्त काल गया तो भी वह शरीररूप नहीं हुआ। वह मुश्किल है, क्योंकि वह तो परपदार्थ है। उसके साथ रहा तो भी वह जड़रूप नहीं हुआ। वह मुश्किल है। और अपनी ओर झुकना, वह यदि स्वयं ज्ञायकको ग्रहण किया तो अल्प कालमें स्वानुभूति (होती है)। यदि अंतरसे ग्रहण करे तो स्वानुभूति और केवलज्ञान अल्प कालमें प्रगट करता है। क्योंकि स्वयंका स्वभाव है। उसके लिये अनन्त काल नहीं चाहिये। इसमें तो अनन्त काल गया फिर भी अपना होता नहीं। और यहाँ स्वयंको ग्रहण किया तो उसे ग्रहण करनेके बाद अनन्त काल जाता ही नहीं। अल्प भवमें केवलज्ञानकी प्राप्ति करता है। इसलिये स्वयंको ग्रहण करना और स्वयंकी प्राप्ति करना सहज है।

मुमुक्षु :- इसलिये सहज और सुलभ है। अपनी ओर मुड़े तो तुरन्त...

समाधान :- अपनी ओर मुड़े तो स्वयं प्रगट होता ही है। (परपदार्थ) अपना होता नहीं, अपना करनेका प्रयत्न करता है, कोई होता नहीं। और यहाँ तो यदि स्वयंको ग्रहण किया तो अल्प कालमें अपनेरूप हो जाता है। अपनी ओर मुड़ा सो मुड़ा। एक बार अपनी ओर गया तो फिर पहलेकी भाँति उसकी एकत्व परिणति होती ही नहीं। अल्प कालमें अपनी ओर प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं, ऐसा सहज है। उसे मुश्किल लगता है। उसे पर-ओरका, विभाव-ओरका अभ्यास है, परन्तु यदि अपनी ओर मुड़ा तो सहज है।

मुमुक्षु :- माताजी! ऐसा लगता है कि एक क्षण विकल्पके बिना जाता नहीं, एक क्षण टिकता नहीं,.. एक क्षण विकल्पको हटा नहीं सकते। तब ऐसे लगता है कि यह सहज कैसे होता है?

समाधान :- अनादिका अभ्यास है इसलिये टिकता नहीं। स्वयं कारण थोड़ा दे तो कार्य कहाँ-से आये? उसके लिये अधिक कारण चाहिये। प्रथम भूमिका विकट होती है, श्रीमद् कहते हैं न? फिर सहज है और सरल है। हमेशा प्रथम भूमिका विकट है। क्योंकि स्वयं दूसरे अभ्यासमें है, विभावके अभ्यासमें है, उसमेंसे छूटकर स्वभावमें आना उसे कठिन लगता है। परन्तु एक बार आया तो सहज है। फिर तो पानी पानीको खिँचता अपने प्रवाहकी ओर चला जाता है। वैसे स्वयं अपने स्वभावमें चला जाता है, वह सहज है। परन्तु प्रथम भूमिका विकट है।

मुमुक्षु :- माताजी! क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ (चाहिये)। जैसे पैसा एक-एक मिनटमें चाहिये, एक कदम नहीं बढ़ता, वैसे पुरुषार्थ भी क्षण-क्षणमें चाहिये।

समाधान :- क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ चाहिये। व्यवहारमें ऐसा है कि पैसा चाहिये। आत्मामें पुरुषार्थकी जरूरत पड़ती है। क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ। स्वयंकी जागृति रखनी चाहिये, तो अपनी ओर सहज होता है। यह अनादिका कैसा सहज (परिणमन है)। उसे ऐसा रस है कि एकके बाद एक विकल्प आये वह उसे सहज हो गया है। उसे उतना प्रयत्न नहीं करना पड़ता और एकके बाद एक विकल्प चलते ही रहते हैं, चलते ही रहता है। वह कैसा सहज (हो गया है)। विभावकी परिणति ऐसी सहज हो गयी है। वैसी क्षण-क्षणमें अपनी ओर जाय ऐसी अपनी ओर सहज परिणति हो तो अपनी ओर जाये। ऐसा कर नहीं सकता, उसे विकट लगता है। पानीको शीतल होना सहज है। (क्योंकि) अपना स्वभाव है। वैसे ज्ञायकको ज्ञायकरूप परिणमना सहज है। परन्तु वह करता नहीं है, अनादिका अभ्यास पर-ओरका हो गया है।

मुमुक्षु :- माताजी! शास्त्रमें शब्द तो आते हैं कि सहज आत्म स्वरूप है। पढ़ते हैं, परन्तु अन्दर .. आपने जो लिखा है कि क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ चाहिये अथवा जैसे

आप कहते हो कि पानी...

समाधान :- पुरुषार्थ करे तो सहज होता है। पर-ओरका उसे आसान हो गया है। आत्माका दुर्लभ हो गया। आत्माका सुलभ है, करे तो होता है। प्रथम भूमिका विकट है, परन्तु वह आगे जाये तो सहज है और सुगम है।

पानी पानीके प्रवाहको खींचता ढालवाले मार्गमें (सहज चला जाता है)। ज्ञान-भेदज्ञानके मार्ग पर यदि स्वयंने अपनी परिणतिको मोड़ दिया, विवेकके मार्गमें भेदज्ञानकी ओर यदि मुड़ गया तो भेदज्ञानकी डोर ऐसी है, द्रव्यदृष्टिकी डोर हाथमें आ गयी। स्वयं स्वयंको अपनी ओर खींचता हुआ अपनी ओर एकदम जल्दी चला जाता है।

... धरसेनाचार्यको ऐसा हुआ कि कोई आवे तो... स्वप्न आया था। उन्हें क्षयोपशम कितना! कंठस्थ था फिर भी याद हो जाता था। पहले लिखनेका नहीं था। फिर उन्होंने लिखा। लिपिबद्ध किया। भावलिंगी मुनिराज आचार्य उनकी क्या बात करनी!

मुमुक्षु :- माताजी! सबसे पहले लिखा गया है, इसके पहले लिखनेकी ... यह कैसे..?

समाधान :- ऐसा क्षयोपशम था, लिपिबद्ध करनेका। उनकी शक्ति थी। लिखनेका उनको क्षयोपशम था। लिखनेकी कला तो सबको आती है, परन्तु अन्दर शक्ति उतनी है कि लिखनेकी आवश्यकता नहीं। फिर ऐसा लगा कि कालदोषके कारण सबके क्षयोपशम ऐसा होता जाता है इसलिये लिपिबद्ध किया। पहले चतुर्थ कालमें सब कला सबको आती थी। शक्ति इतनी थी कि लिखनेकी जरूरत नहीं पड़ती थी। सब याद हो जाता है। उसमेंसे ज्ञान प्रगट हो जाता था। बारह अंगका ज्ञान भीतरमेंसे हो जाता था। लिखने-पढ़नेसे नहीं होता है, भीतरमेंसे हो जाता है।

बादमें सबका क्षयोपशम मन्द हुआ, आचार्यको विचार हुआ कि किसीको याद नहीं रहता ऐसा क्षयोपशम हो गया है, इसलिये लिपिबद्ध किया। शास्त्र लिखनेकी शक्ति तो थी। कैसे शास्त्र रचे! कितनी बात षट्खण्डागममें! उनके क्षयोपशमकी क्या बात करनी! उनकी-आचार्यकी दशाकी क्या बात!!

मुमुक्षु :- .. आपसे कई बार सुनते हैं फिर भी भूल जाते हैं, माताजी!

समाधान :- .. अभ्यास करना, उसका आशय ग्रहण करके बारंबार भीतरमें ऊतारनेसे होता है। शब्द याद नहीं रहे, भूल जाय तो भी उसका भाव याद रहे, आशय ग्रहण करनेसे हो सकता है। इतना क्षयोपशम तो होता है कि आशय ग्रहण हो सके। शिवभूति मुनिको तो इतने शब्द भी याद नहीं रहते थे। उनके गुरुने कहा कि मा-रुष, मा-तुष, उतना भी याद नहीं रहा। भीतरमें उन्होंने आशय ग्रहण कर लिया कि मेरे गुरुको ऐसा कहना था कि दाल और छिलका (भिन्न है)। (एक औरत दाल) धोती थी।

तुष-छिलका अलग और दाल अलग है।

वैसे ज्ञायक आत्मा भिन्न है और विभाव, विकार सब भिन्न-जुदा है। ऐसा आशय ग्रहण कर लिया। मारुष, मातुष याद नहीं रहा और मासतुष हो गया। शब्द भूल गये, परन्तु आशय ग्रहण हो गया। यह विभाव परिणति मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ, जाननेवाला हूँ, ऐसा मेरे गुरुने कहा था। आत्मा भिन्न है। भिन्न है उसका आशय ग्रहण करके, ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ज्ञायककी परिणति प्रगट करके भीतरमें इतनी लीनता हो गयी कि सम्यग्दर्शनमें ज्ञायक तो ग्रहण हो गया और उतनी दृढ़ प्रतीति हुयी और लीनता भी उतनी हो गयी। चारित्र भी इतना हो गया कि अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्रगट हो गया।

इस प्रकार आशय ग्रहण करनेसे होता है। शब्दकी वहाँ जरूरत नहीं पड़ती। थोड़ा भी आशय ग्रहण कर ले तो हो सकता है। सब शास्त्रका ज्ञान होवे, सब होवे तो अच्छा है, इसमें लाभका कारण होता है। विचारनेमें द्रव्य-गुण-पर्यायका, उत्पाद-व्यय-ध्रुवका स्वरूप विचार करनेमें, आत्माका स्वरूप विस्तारसे समझनसे लोभ होता है। तो भी याद न रहे तो भी प्रयोजनभूत तत्त्वको समझ ले तो भी हो सकता है।

मुमुक्षु :- माताजी! प्रयोजनभूत तत्त्वोंको सुगमतासे समझनेके लिये सबसे सरल शास्त्र कौन-सा है?

समाधान :- सरल उपाय तो एक आत्माको ग्रहण करे।

मुमुक्षु :- कौन-सा शास्त्र सरल है?

समाधान :- भेदज्ञानकी बात जिसमें आती हो, वह शास्त्र सरल है। परन्तु समयसारमें सब आ जाता है। तो भी उसका रहस्य बतानेवाले तो गुरुदेव थे। शास्त्र तो थे, परन्तु उसका रहस्य आचार्यदेव क्या कहते हैं? इन सबका रहस्य तो गुरुदेवने बताया है। समयसार शास्त्रमें तो सब आ जाता है। ज्ञायककी बात, स्वभावकी, विभावकी सब, कर्ता-अकर्ता सब बात उसमें (आती है)। मुक्तिके मार्गमें प्रयोजनभूत सब बात समयसारमें स्वानुभूतिकी सब बात आ जाती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-७२

मुमुक्षु :- आपकी बातसे बहुत हिम्मत आ गयी। नहीं तो अन्दरमें कोई विचार करते हैं तो कुछ समझमें नहीं आता। विकल्पोंमें ... तो भी कुछ नहीं मिलता तो ऐसा लगता है कि आत्माका मिलना मुश्किल है। लेकिन आपकी कृपासे बहुत हिम्मत आ गयी।

समाधान :- आत्माका मिलना मुश्किल नहीं है। आत्मा स्वयं ही है। स्वयं स्वयंको भूल गया है। अनन्त कालसे स्वयं स्वयंको भूल गया। ज्ञायक स्वभाव, ज्ञानस्वभावको ग्रहण कर, ज्ञायकको ग्रहण कर ले तो समीप ही है, दूर नहीं है। परन्तु अंतरमें-भीतरमें अनादिकालके अभ्यासके कारण विकल्प-विकल्पकी ऐसी एकत्वबुद्धि हो रही है कि भिन्न करना मुश्किल हो गया। स्वभाव तो सुलभ है, विभाव दुर्लभ है।

परपदार्थ अनन्त काल गया तो भी अपना नहीं हुआ। स्वभाव तो सरल और सुगम है। स्वयं ही है, कहीं बाहर खोजने नहीं जाना है। अंतरमें देखे तो स्वयं ही, स्व स्वयं ही है। अपना अस्तित्व, ज्ञायकका अस्तित्व मौजूद ही है। अनन्त काल गया तो भी परपदार्थ अपना नहीं हुआ। पर तो पर ही है, स्व तो स्व ही है। आत्माको एक बार ग्रहण करे, प्रथम भूमिका विकट है, परन्तु एक बार आत्माको ग्रहण करे तो फिर मार्ग सुलभ, सुगम हो जाता है। अल्प कालमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र पूर्ण प्रगट करके उसकी मुक्ति हो जाती है, केवलज्ञान प्राप्त होता है।

विभाव, परपदार्थ.. अनन्तकाल गया तो भी परपदार्थ अपना नहीं होता। स्वभाव तो सहज सुगम है। एक बार उसको ग्रहण करे तो तुरन्त ही प्रगट होता है। लेकिन प्रथम भूमिका विकट होती है। अनादि कालके अभ्यासके कारण ऐसी एकत्वबुद्धि हो गयी है, उसे तोड़कर उसे अंतरमें जाना दुष्कर हो जाता है।

मुमुक्षु :- माताजी! सब द्रव्य तो शुद्ध है, जीवके साथ ही अनादि कालसे अशुद्धता लगी हुयी है, समझमें नहीं आया।

समाधान :- अपनी भूलके कारण। सब शुद्ध है, आत्मा भी शुद्ध है। अपनी भूलसे अशुद्धता हो रही है। सब द्रव्यमें तो ऐसा है कि उसमें भूल (नहीं होती)। चैतन्य है तो भूल-भ्रान्तिमें पड़ा है, इसलिये उसमें अशुद्धता होती है। स्वयं शुद्ध होनेके बावजूद

वह विभाव परिणतिकी ओर जा रहा है, आश्चर्यकी बात है। स्वयं चैतन्य होकर भी, जाननेवाला होने पर भी परपदार्थकी ओर भ्रान्ति करके वहाँ जाता है, आश्चर्यकी बात है। चैतन्यमें भूल हो रही है। (द्रव्य तो) शुद्ध है, पर्यायमें भूल हो रही है। प्रयोजनभूत तत्त्व जाने तो आत्माकी प्राप्ति तो हो सकती है।

मुमुक्षु :- रुचिकी तीव्रता..

समाधान :- रुचिकी तीव्रता। पुरुषार्थ करे तो हो सकता है। नक्की करे कि विभावमें कुछ सुख नहीं है।

मुमुक्षु :- बाहर अच्छा तो दिखता है, वह कैसे जमे अन्दर कि विभावमें नहीं है?

समाधान :- बाहर अच्छा लगता है। भीतरमें अच्छा लगनेके लिये नक्की करे, स्वभावको ग्रहण करके नक्की करे कि स्वभावमें ही अच्छा है। विभावमें अच्छा नहीं है, वह सब तो दुःखरूप-आकुलतारूप है। ऐसा नक्की करना चाहिये, ऐसा दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि यह सब तो आकुलता-आकुलता है, कहीं सुख दिखाई नहीं देता। सब विकल्पकी जालमें अपनी इच्छा अनुसार कोई परपदार्थ परिणमता नहीं। सब विकल्पमें आकुलता-दुःख है। ऐसा यथार्थ नक्की करे। स्वभावको नक्की करे कि यह मेरा स्वभाव है। प्रतीति दृढ़ करे कि ज्ञायकमें ही सुख है। ज्ञायक स्वभाव ही महिमावंत है। महिमाका भण्डार हो तो ज्ञायक है। बाहरकी महिमा टूट जाय, स्वभावकी महिमा आवे, स्वभावकी जरूरत लगे, विभावसे विरक्ति आये कि विभावमें अच्छा नहीं है। स्वभावकी महिमा लगे। स्वभावको विचार करके ग्रहण करे कि सुख तो इसमें ही है, बाहर कहीं नहीं है। ऐसा विचार करके ज्ञायक स्वभावको ग्रहण करे, विभावसे विरक्ति हो, स्वभावकी महिमा आये तो इस प्रकार रुचिको दृढ़ करे।

... विचार कर-करके दृढ़ करता रहे। .. महापुरुष भी सब छोड़कर, आत्माको-स्वभावको ग्रहण करके अंतरसे विरक्ति और स्वभावकी महिमा लाकर आत्माकी साधना की है। आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है। और अंतरमें विचार करके नक्की करे कि यह स्वभाव ही महिमावंत है। इसप्रकार रुचिको दृढ़ करे।

मुमुक्षु :- .. कुछ समझमें नहीं आया .. गुरुदेवश्रीसे मैंने पूछा, महाराजश्री! कल्याणके लिये क्या करना? तो बोले, पर्यायको अन्दर बाल।

समाधान :- पर्याय बाहर जाती है, उसे स्वभावकी ओर झुका। अर्थात् द्रव्य पर दृष्टि कर तो पर्याय भीतरमें जाती है। पर्यायको झुका।

मुमुक्षु :- तो पर्याय और द्रव्य कोई जुदी चीज है, माताजी! कि ...

समाधान :- द्रव्य और पर्याय ऐसे जुदी चीज नहीं है। द्रव्यकी पर्याय है, परन्तु

उसमें वह अंश है और (द्रव्य) अंशी है। इतना भेद है। अंश-अंशीका भेद है। सर्वथा भेद-कोई भिन्न-भिन्न टूकड़े नहीं है, भिन्न टूकड़ा नहीं है कि पर्याय कोई भिन्न है और द्रव्य भिन्न है। द्रव्य भिन्न है और पर्याय भिन्न है। ऐसा हो तो पर्याय द्रव्य हो जाय। पर्याय जुदी होवे तो पर्याय द्रव्य हो जाय। पर्याय वैसे भिन्न नहीं है। सर्व अपेक्षासे भिन्न है। परन्तु अंश है और यह अंशी है, इतना भेद है। एक अंश है, एक अंशी है, इतना भेद है।

द्रव्यकी पर्याय है, पर्याय कोई दूसरेकी नहीं है। द्रव्यका वेदन अपनेको होता है। स्वभावकी ओर झुके, स्वभावका वेदन होवे तो पर्याय होती है। परन्तु वह वेदन स्वयंको जाननेमें जाता है, वेदन कोई दूसरेको नहीं होता। अपनेको वेदन होता है। पर्याय अपने द्रव्यमेंसे प्रगट होती है। बाहरसे नहीं आती है।

मुमुक्षु :- समवाय-भवितव्यता, काललब्धि, पुरुषार्थ एक ही समयमें सब समवाय कैसे होते हैं? ... एक ही समयमें पुरुषार्थ और ...

समाधान :- दोनों एकसाथ होते हैं। पुरुषार्थ जो किया वह अपनी ओर झुका, ज्ञायककी ओर पुरुषार्थ झुका, स्वयं पुरुषार्थ करके अपनी ओर झुका वह पुरुषार्थ हुआ। और उसी समय परिणति जो उसका स्वभाव था, उस प्रकारसे जैसे होनेवाला था वैसे हुआ। वह सब साथमें होता है। दोनों विरोधी लगे परन्तु सब साथमें होता है।

मुमुक्षु :- क्रमबद्धपर्याय और पुरुषार्थ, दोनों विरूद्ध लगते हैं। पुरुषार्थसे जो वस्तु प्रगट हुयी, उसी समय क्रमबद्धपर्याय हुयी?

समाधान :- सब एकसाथ होता है। क्रमबद्ध और पुरुषार्थमें सम्बन्ध है। जो होने योग्य था वह हुआ, परन्तु वह होने योग्य उस प्रकारसे होता है कि पुरुषार्थसे होता है। पुरुषार्थ, होने योग्य, स्वभाव आदि सब एकसाथ होते हैं। सब एकसाथ होते हैं। क्षयोपशम, उस प्रकारका क्षयोपशमभाव सब एकसाथ होता है।

मुमुक्षु :- क्योंकि विरोधाभास तो लगता है..

समाधान :- हाँ, ऐसा लगे।

मुमुक्षु :- .. विकल्पात्मक विचार आये कि शुद्ध परिणतिके समय विकल्प तो रहता नहीं।

समाधान :- शुद्ध परिणतिके समय विकल्प नहीं हो तो भी विकल्पके बिना भी उपयोग तो होता है। उपयोग स्वयं स्वयंको जानता है। बाहर विकल्प यानी रागका विकल्प। रागवाला विकल्प छूट जाय तो भी निर्विकल्परूपसे उसका जानना चला नहीं जाता। जाननेका स्वभाव तो खड़ा ही रहता है। जानता है, स्वयं स्वभावको जानता है। उपयोग बाहर नहीं है। उपयोग यानी विकल्पात्मक ऐसा उसका अर्थ नहीं होता।

मुमुक्षु :- स्वभाव..

समाधान :- हाँ, स्वभावको जानता है, स्वभावको जानता है। स्वभावकी ओर उपयोग निर्विकल्पपने है। उपयोग निर्विकल्प है। विकल्प हो ही उपयोग कहनेमें आये ऐसा नहीं है। जाने, स्वयंको जानता है। अपनी ओर उपयोग गया, परन्तु निर्विकल्पपने जाता है। निर्विकल्प उपयोगरूप होता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- राग साथमें है इसलिये विकल्प होता है। राग छूटे, विकल्प टूटकर स्वयं अंतरमें जाय तो ज्ञानस्वभाव नाश नहीं हो जाता, ज्ञान तो ज्ञान ही है, उसका जानना कहीं चला नहीं जाता। जाननेकी परिणति जाननेरूप ही है। अपनी ओर उपयोग गया वह निर्विकल्प है। रागका विकल्प नहीं है।

मुमुक्षु :- उपयोग उस वक्त भी काम कर रहा है।

समाधान :- काम करता ही है। रागका विकल्प हो तो ही उपयोग काम करे, ऐसा नहीं है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनोंमें विरोध लगे तो भी तीनों एक समयमें साथमें होते हैं। ध्रुव ध्रुवरूप रहता है, उत्पाद और व्यय दोनों विरोधी लगते हैं। तो भी सब एक समयमें होते हैं। वैसे पुरुषार्थ, क्रमबद्ध सब साथमें ही होता है।

मुमुक्षु :- ... आत्मा पूरा उसमें लीन हो जाता है। भगवानके साथ...

समाधान :- पूरा लीन नहीं हो जाता। ज्ञायककी ज्ञायकरूप परिणति रहकर बीचमें जो शुभभाव आते हैं, उस शुभभावकी परिणति काम करती है। शुभभाव, वाणी सब भिन्न-भिन्न हैं। शुभभाव भी भिन्न है और वाणी भी भिन्न है। सबका निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। शुभभाव और वाणीमें सम्बन्ध होता है, इसलिये उस प्रकारकी वाणी नीकलती है, वैसे भाव होते हैं, फिर भी अन्दर ज्ञायककी परिणति भिन्न रहती है। बाहर लीन हो गया तो ज्ञायक नहीं रहता, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- माताजी! ..के विकल्पमें तो ज्ञानीपुरुष कुछ करे नहीं, अन्दर आत्माके साथ इतने एकाकार होते हैं तो ज्ञायककी परिणति..

समाधान :- इतनी स्थूल दृष्टिसे देखना वह देखना नहीं है। अंतर दृष्टिसे देखना है। वह खरी परीक्षा है। बाह्य दृष्टिसे देखना वह खरा देखना नहीं है। अंतरकी परिणतिको (देखना है)। श्रीमद् कहते हैं न? स्थूलतासे देखना, बाहरसे देखना वह वास्तविक नहीं है। अंतरकी परिणति अलग होती है। शास्त्रमें आता है न? हाथीके दिखानेके दांत अलग और चबानेके दांत अलग होते हैं। बाहरसे नाप नहीं किया जाता। शुभभावमें पूरे (लीन) दिखाई दे तो भी ज्ञायक भिन्न होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! ... आपका दो बराबर दिखाई देता है कि कहीं भी...

समाधान :- परिणति भिन्न ही रहती है।

मुमुक्षु :- ... उस वक्त भेदज्ञान करना कि मैं शरीरसे भिन्न हूँ, तो वह वास्तविक शरण है, या भगवानको याद करना, वह शरण है? उस दुःखसे कैसे दूर होना?

समाधान :- शरीरकी वेदना भिन्न और आत्मा भिन्न है। अन्दर भिन्न आत्माको जानना वह शरण है। मुख्य शरण वह है। मैं आत्मा जाननेवाला, मैं ज्ञायक, मेरा स्वभाव जाननेका है, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शरीरसे अत्यन्त भिन्न हूँ। उसकी वेदनामें जो अन्दर दुःख होता है, वह दुःख भी मेरा स्वरूप नहीं है। विकल्प आये कि यह शरीर सो मैं और मैं ही शरीर हूँ, उसके साथ दब जाता है, रागके कारण। वह राग भी मेरा स्वरूप नहीं है और यह शरीर भी मैं नहीं हूँ। मैं तो जाननेवाला, मुख्य शरण वह है। साथमें शुभभावमें भगवान भी उसे शुभभावनामें आये, भगवानको याद करे, परन्तु वास्तविक शरण ज्ञायकको याद करना वह मुख्य शरण है। लेकिन साथमें भगवान याद आये बिना रहे नहीं। ऐसे प्रसंगोंमें जो आत्मार्थी हो उसे भगवान, देव-गुरु-शास्त्र याद आये बिना नहीं रहते। परन्तु साथ-साथ शरण तो ज्ञायकका शरण मुख्य शरण है। ज्ञायकको पहचाननेका प्रयत्न करना। वेदना शरीरमें है, आत्मामें वेदना नहीं है।

मुमुक्षु :- वह टिकता नहीं है, माताजी! क्षणिक शाता होती है, फिर पुनः शरीरकी ओर लक्ष्य जाता है।

समाधान :- बारंबार पलटते रहना, बारंबार। टिके नहीं तो बारंबार आत्माको-ज्ञायकको याद करते रहना। उस विचारमें टिक नहीं पाये तो जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र, मनिवर, शास्त्रमें क्या कहा है, गुरुदेवने क्या कहा है, भगवानने क्या कहा है, ऐसे विचार करे परन्तु साथमें ज्ञायकको याद करे। ज्ञायकका मुख्य शरण है। जो मुनिवर आत्माकी साधना करते हैं, भिन्न ही रहते हैं। मुनिवरोंकी साधना... प्रत्येक प्रसंगमें आत्मा एकमेक हो जाय, ऐसा नहीं है, दो द्रव्य भिन्न है। दोनों द्रव्य भिन्न है, एक कहाँ-से हो? जो भिन्न है वह भिन्न ही है।

मुमुक्षु :- तीव्र पुरुषार्थ..

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थको तीव्र (करना)। अन्दरसे एकत्वबुद्धि तोड़े। आत्मा भिन्न है वह भिन्न ही है। गृहस्थाश्रममें सम्यग्दृष्टि हो, कोई भी प्रसंगमें भिन्न ही रहते हैं। उसमें एकमेक नहीं होते। शरीरमें कोई वेदना हो अथवा कुछ भी आ जाय, कोई व्यवहारके प्रसंग, प्रवृत्तिके प्रसंगोंमें भी, चक्रवर्तीके राजमें भी सम्यग्दृष्टि भिन्न ही रहते हैं। शास्त्रमें दृष्टान्त आता है न? गृहकाम करते हुए अन्दरसे भिन्न ही रहते हैं। उनकी ज्ञायककी परिणति भिन्न ही रहती है। ज्ञायक तो भिन्न ही है, शरीरकी वेदनके समयमें, ऐसे प्रसंगमें स्वयं भिन्न पड़नेका प्रयत्न करना, भावनाको उग्र करके। भिन्न है वह भिन्न

हो सकता है। भावनारूप, परन्तु भिन्न है वह भिन्न ही है। स्वयं शरीर नहीं है। स्वयं अन्दर जाननेवाला ज्ञायक भिन्न ही है।

बारंबार याद करना। उपयोग तो पलट जाता है। जो दुःख होता है वहाँ बार-बार (जाता है)। अनादिके अभ्यासके कारण बारंबार विकल्पमें जुड़ जाय तो भी उपयोगको बारंबार बदल देना। बारंबार देव-गुरु-शास्त्रको याद करना, बारंबार ज्ञायकको याद करना, बारंबार याद करना। इसमें कंटाला लगे या थक जाना ऐसे नहीं, बारंबार याद करना। अपना स्वभाव ज्ञायक ही है। बारंबार याद करना।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-७३

समाधान :- ... शास्त्र लिखे, उपदेश दे, स्वाध्याय करे, शास्त्रकी स्वाध्याय करे, शास्त्र लिखे, शास्त्र पढे, ऐसा सब (करते हैं)। तपमें भी ऐसे हैं, शास्त्रमें भी ऐसे हैं, शुद्धात्मामें अनुरक्त हैं, ऐसे हैं मुनिराज। उग्र साधना है न मुनिराजकी। सम्यग्दृष्टिकी साधना गृहस्थाश्रममें होती है, परन्तु वह अमुक प्रकारसे (होती है)। मुनिराजकी साधना उग्र प्रकारसे है। सम्यग्दर्शन हो, गृहस्थाश्रममें भिन्न रहते हैं, परन्तु अमुक प्रकारकी प्रवृत्ति होती है तो उनकी भूमिका अनुसार शास्त्र स्वाध्याय, ज्ञान, ध्यान आदि होता है। पूजा, भक्ति आदि होता है। सम्यग्दर्शनके आठ अंग होते हैं, सम्यग्दृष्टिको वह सब होता है। मुनिराजको सम्यग्दर्शनके अंग तो होते हैं, परन्तु पंच महाव्रतके आचार होते हैं। शास्त्रोंमें लीन हैं।

... गुणरूप मणिओंके समुदाय हैं। गुणरूपी मणि प्रगट हुए हैं। एक-एक गुण मानों मणि कैसे लगाये हों, मणि.. मणि.. मणि.. गुणके रत्न मानों। गुणरत्नोंसे शोभायमान (हैं)। चारों ओरसे गुण-गुणसे भरे हुए। अनन्त गुणसे भरा हुआ आत्मा तो है ही, परन्तु साधनामें जो गुण होते हैं, उन सब गुणरूपी मणिसे मुनिराज शोभित हैं। अनन्त गुण अंतरमें तो प्रगट हो गये हैं, स्वरूपमें लीनता करते हैं, गुणसे शोभायमान हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि। सब प्रकारसे व्यवहारगुण एवं निश्चयगुण, सब गुणरूपी मणिसे मुनि शोभायमान हैं। मानों मणि.. मणि.. मणिका ढेर! रत्नोंका ढेर हो, वैसे गुणरत्नोंसे शोभायमान हैं। मुनिराजको ऐसे गुण प्रगट हुए हैं।

मुमुक्षु :- और सर्व संकल्पोंसे मुक्त हैं।

समाधान :- सब संकल्पोंसे मुक्त हैं। किसी भी प्रकारके संकल्पसे मुक्त हैं। सर्व संकल्पोंसे (अर्थात्) गृहस्थाश्रमके संकल्पोंसे, सब प्रकारके विभावके संकल्पोंसे मुक्त हो गये हैं। ऐसे मुनि...

... पर्याय उन्हें प्रगट होती है। ऐसी जिनकी साधना है। उन्हें तो मुक्तिरूपी सुन्दरी प्रगट होती है। .. हो गये, आत्मामें .. हो गये। तपमें लीन हो गये। गुणरूपी मणिसे शोभित। शास्त्रमें .. हो गये। कलशमें तो संस्कृतमें सब शब्द .. आदि आते हैं।

... ऋद्धि, सिद्धि.. परन्तु भगवान जहाँ आये तो कहते हैं, मुझे पहले भगवानकी

पूजा करने दो। अभी मुझे कोई राजाके हिसाबसे नमस्कार मत करना। श्रावकोंको तो यह है कि भगवानकी पूजा, भक्ति, प्रभावना आदि होते हैं। वर्तमानमें तो गुरुदेव पर सबको भक्ति बहुत है न, इसलिये सब नाचने लगते हैं। सबको ऐसा होता है कि क्या करें और क्या न करें। इसलिये दानमें भी उतने देते हैं और सब ....

मुमुक्षु :- अपने गुरुदेव ही है, ऐसा सभामें जाहिर किया। बहुत भावना..।

समाधान :- गुरुदेवका प्रताप प्रसर रहा है। गुरुदेव पर सबको वर्षोंकी भक्ति है। वह भक्ति सबको उछल पड़ती है। भगवान गुरुदेवने बताये, मन्दिर, सौराष्ट्रमें कोई मन्दिर नहीं थे। गुरुदेवके हस्तकमलसे प्रतिष्ठाएँ हुयी। गुरुदेवने भगवानका स्वरूप, मन्दिरका, तत्त्वका स्वरूप सब गुरुदेवने बताया। गुरुदेवकी वाणी बरसोंसे सबने सुनी है। हृदयमें सबको संस्कार (डल गये हैं)। गुरुदेव पर सबको भक्ति उछल पड़ी है।

मुमुक्षु :- सूर्यकीर्ति भगवान..

समाधान :- हाँ, सूर्यकीर्ति भगवान। सब भगवानको दिखानेवाले, तीर्थंकरका स्वरूप समझानेवाले, तत्त्वका स्वरूप समझानेवाले, चारों ओर उन्होंने वर्तमान कालमें तीर्थंकर जैसा काम किया। और भविष्यके तीर्थंकर भी स्वयं होनेवाले ही हैं। महाभाग्य कि गुरुदेवकी वाणी सुनने मिली, गुरुदेवका सान्निध्य मिला और गुरुदेवको भगवानके स्वरूपमें स्थापना करनेका भाग्य मिला, वह महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- सूर्यकीर्ति भगवानकी बोली इतनी शीघ्रतासे नहीं हुयी होगी। सिर्फ तीन मिनट। पहले पच्चीस हजार बोले, हीराभाई सीधा लाख बोले, फिर दस-पंद्रह, दस-पंद्रह बढ़ते-बढ़ते एक पैंसठ पर पहुँच गया। तीन मिनटमें ही पूरी उछामनी पूरी हो गयी।

समाधान :- आप सबकी बरसोंकी भावना थी।

मुमुक्षु :- चाहे जितनी बोली हो, उसमें पीछे नहीं हठना है। किसी भी प्रकारकी अशांति जैसा कुछ नहीं है।

समाधान :- ऐसा है कि, जिस प्रकारका प्रसंग हो, उस प्रकारकी उनकी वाणी आती है। वे स्वयं विराजते थे, किसीको ऐसा विकल्प आया तो वैसी उनकी वाणीमें समाधान आये। उस प्रकारका वाणीका योग था। विडीयोमें भी ऐसा हो जाता है।

मुमुक्षु :- बोलो! सूर्यकीर्ति भगवानकी जय हो! भगवती मातकी असीम कृपाकी जय हो!

समाधान :- गुरुदेव विराजे हो, तो ही गुरुदेवके भक्त हैं, ऐसा कहनेमें आये। इतने वर्ष वाणी बरसायी। ... इन्द्र ही रचना करे न। भगवानकी भक्ति तो इन्द्र भी करते हैं। देवलोकके देव भी भगवानकी भक्ति करते हैं। शाश्वत रत्नकी प्रतिमाएँ देवलोकमें

और सब जगह है। सब देव उनकी पूजा एवं भक्ति करने जाते हैं। समवसरणमें वाणी सुनने जाते हैं। जहाँ-जहाँ जिन प्रतिमा हो, वहाँ देव भक्ति (करने जाते हैं)। यह तो पंचम काल है इसलिये कुछ दिखता नहीं, बाकी देवोंके हृदयमें भगवानकी भक्ति होती है।

भगवानका जन्म होता है तब सुधर्म इन्द्र आदि आकर भगवानका जन्म आदि महोत्सव इन्द्र करते हैं। कल्याणक। जहाँ-जहाँ प्रतिमा हो, देव और इन्द्रों आकर रक्षा करते हैं, उनकी भक्ति करते हैं, ऐसा शास्त्रमें आता है। मन्दिर ऊपरसे किसीका विमान जाता हो तो विमान थँभ जाता है। यहाँ क्यों थँभी गया? देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि नीचे मन्दिर है। ऊपरसे विमान चलता हो और नीचे ऊतरकर भगवानके दर्शन करने आते हैं। तीन लोकमें भगवानका, जिनेन्द्र देवकी उतनी महिमा है।

वर्तमान, भावि भगवंत हैं, तीर्थंकर भगवंतोंकी उतनी महिमा है। तीर्थंकर द्रव्यकी उतनी महिमा है। भरत चक्रवर्तीने तीन चौबसीके बिंब करवायें। उन्हें उत्साह आ गया कि मेरे पिताजी ऋषभदेव भगवान तीर्थंकर, उनका मरिची पुत्र वह भी तीर्थंकर, महावीर भगवान चौबीसवें (तीर्थंकर) होनेवाले हैं। उन्होंने भूत, वर्तमान, भावि तीनों चौबीसीके रत्नके बिंब विराजमान किये। कैलास पर्वत पर पाँचसौ-पाँचसौ धनुषके।

मुमुक्षु :- हमारे यहाँ दादरमें भूत, वर्तमान और भावि तीनों भगवान आ गये। वर्तमान सीमंधर भगवान, भविष्यके महापद्म भगवान और सूर्यकीर्ति भगवान और आदिनाथ भूतकालके।

समाधान :- आदिनाथ भगवान। प्रथम आदिनाथ भगवान (हुए)। इस चतुर्थ कालमें चौबीस (तीर्थंकर) हुए, उसमें प्रथम आदिनाथ भगवान हुए। और यह चौबीसी पूरी हुयी, आगामी प्रथम महापद्म भगवान, श्रेणिक राजाका जीव प्रथम तीर्थंकर होंगे। सीमंधर भगवान तो विराजते हैं और भावि भगवान सूर्यकीर्ति।

गुरुदेव यहाँ पंचमकालमें पधारे। वह भी तीर्थंकरका द्रव्य था। उन्होंने पंचम कालमें, विषम कालमें इतना धर्मका प्रचार किया कि पूरे हिन्दुस्तानमें तीर्थंकर जैसा काम किया, यहाँ आकर। इसलिये उनकी भी प्रतिमाजी, भविष्यके तीर्थंकर होनेवाले हैं, उस रूपमें विराजमन (किये)।

मुमुक्षु :- ... उन्होंने की। और उनके आंगनमें-दादर उनके आंगनमें भी कहेंगे न।

समाधान :- उनके ही आंगनेमें कहलाये। यहाँ उन्होंने भगवान लिये, सब किया था। शुरूआत सब उन्होंने की। उन्होंने सभामें जाहिर किया। उनकी भावना हो, उसमें मैं क्या कहूँ? पूरे समाजकी भावना (थी)। सबकी भावनासे सब सफल हो गया। भक्ति

तो सबके हृदयमें होती है।

मुमुक्षु :- हम सब इस निमित्तसे आये हैं। भगवानकी भक्ति, भगवानको विराजमान करनेके पीछे मूल प्रयोजन क्या होना चाहिये?

समाधान :- मुमुक्षुको ऐसा देव-गुरु-शास्त्रका आये बिना रहता ही नहीं। जगतमें सर्वोत्कृष्ट महिमावंत जिनेन्द्रदेव, गुरु एवं शास्त्र हैं। जिनेन्द्रदेवने जो आत्माको प्रगट किया है, जो आत्मा सर्वोत्कृष्ट महिमावंत आत्मा है, वह आत्मा प्रगट किया, ऐसे जो तीर्थंकर भगवान, उन्होंने जो मार्ग बताया वह मार्ग स्वयंको ग्रहण करना है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा करके, जो भगवानने प्रगट किया, जो गुरुदेवने साधना की, गुरुदेवने जो मार्ग बताया, शास्त्रमें जो तत्त्वका स्वरूप आता है, वह सब ग्रहण करना है।

आत्मा कैसा है? आत्माका स्वरूप-आत्मा कोई अनुपम, उसकी महिमा कोई अलग है, वह कैसे पहचाना जाये? उसे पहचाननेका स्वयंको प्रयत्न करना है। और वह जब तक पहचानमें न आये तब तक शुभभावमें श्रावकोंको जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रकी महिमा आये बिना नहीं रहती। श्रावक गृहस्थाश्रममें हैं, तब तक अशुभभावसे बचनेको जिनेन्द्रदेवके उत्सव, जिनेन्द्रदेवकी प्रतिष्ठाएँ (आदि भाव आते हैं)।

पद्मनंदि आचार्यदेव शास्त्रमें लिखते हैं कि जो श्रावक होते हैं, उन्हें जिनेन्द्रदेवके उत्सव, जिनेन्द्रदेवकी प्रतिष्ठाएँ, गुरुकी सेवा, गुरु जो मार्ग बताये उसका श्रवण, मनन, शास्त्रका चिंतवन आदि सब श्रावकोंको होता है। लेकिन उसमें हेतु (होता है कि) आत्मा कैसे पहचाना जाय? अशुभभावसे बचनेको वैसे शुभभाव आते हैं। परन्तु शुद्धात्मा कैसे पहचाना जाये? अन्दर जो शुभभाव हैं, उसके साथ जो ज्ञायक है, वह ज्ञायक उससे भिन्न है। वह शुद्धात्मा कैसे पहचाना जाये? वह ध्येय और उसके अन्दर हेतु यह होना चाहिये।

मेरी जो आत्माकी साधना है, वह साधना आगे कैसे बढे? अथवा यथार्थ साधना कैसे प्रगट हो? पहले जिज्ञासा, लगनी आदि (होते हैं)। परन्तु यथार्थ साधना, आत्माकी ओर दृष्टि, द्रव्य पर दृष्टि कैसे हों? आत्माका ज्ञान कैसे हो? द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप कैसे पहचानमें आये? वह सब लगनी, जिज्ञासा लगनी चाहिये। उसके साथ-साथ, जब तक वह नहीं हो, तब तक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा उसे आये बिना रहती नहीं। परन्तु अन्दर हेतु यह शुद्धात्मा सर्वोत्कृष्ट महिमाका भण्डार ऐसा आत्मा, वह आत्मा कैसे पहचानूँ? उसका चिंतवन, मनन साथमें होना चाहिये।

गृहस्थाश्रममें भरत चक्रवर्ती आदि थे, उनको भी देव-गुरु-शास्त्रकी (भक्तिका भाव आता है)। जिनेन्द्र देवका उत्सव करे, प्रतिष्ठाएँ, गुरुकी सेवा, गुरुकी वाणी सुने आदि सब था। परन्तु अन्दर उन्हें आत्मा न्यारा ही न्यारा, भिन्न जानते थे और क्षण-क्षणमें

आत्माको भिन्न (जानते थे)। ज्ञायककी धारा वर्तती थी। वैसी दशा कैसे प्रगट हो, ऐसी भावना अन्दर होनी चाहिये। (जिनेन्द्र देवने) प्रगट किया और गुरुने साधना की वह कैसे प्रगट हो? यह अन्दर होना चाहिये। आत्मार्थीको अन्दर आत्माका प्रयोजन होता है। देव-गुरु-शास्त्रका प्रताप जगतमें वर्तता है।

... अन्दरमें आत्मा कैसे (प्रगट हो)? शुद्ध निर्मल पर्याय (कैसे प्रगट हो)? गृहस्थाश्रममें देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति आदि होता है, परन्तु अन्दर आत्मा कैसे प्रगट हो उसकी उसे गहराईमें खटक होनी चाहिये। सब करे। भगवानकी प्रतिष्ठाएँ, पूजा आदि करे, बड़े-बड़े महोत्सव करे, शास्त्रकी रचना करे, गुरुकी वाणी सुने, सब करे। परन्तु हेतु एक कि मार्ग क्या बताया है? भगवानने क्या कहा है? जो भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचाने और स्वयंको पहचाने वह भगवानको पहचाने। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्या/य क्या है और अपने क्या है? उसे वह स्वयं विचार करके नक्की करे कि मैं चैतन्य द्रव्य हूँ। मुझमें अनन्त गुण हैं। मेरी शुद्ध पर्याय मुझे कैसे प्रगट हो? भगवानने जो प्रगट किया, साधना की, भगवान स्वयं अंतर स्वरूपमें विराजमान हैं।

अपने तो वीतरागी बिंबकी स्थापना की। समवसरणमें साक्षात् स्वरूपमें केवलज्ञानरूप विराजमान हैं। एक विकल्प भी उत्पन्न नहीं होता। वीतरागी हैं, स्वयं अंतर स्वरूपमें एकदम विराजमान हैं। अपने द्रव्य-गुणमें अन्दर अनन्त निर्मल पर्यायें भगवानको केवलज्ञानमें प्रगट हो गयी हैं। लोकालोकको जाने तो भी स्वयं स्वरूपमें विराजमान हैं। सहज जानते हैं। बाकी (तो) भगवान अन्दर स्वरूपमें विराजमान हैं। जैसे भगवान हैं, वैसा ही स्वयं है। भगवानने जो प्रगट किया वह मुझे कैसे प्रगट हो? यह हेतु और प्रयोजन होना चाहिये।

जैसा भगवानका स्वरूप है, वैसा ही स्वयंका है। स्वयं अनन्त गुण संपन्न है। ऐसी ज्ञायककी दशा कैसे प्रगट हो? उसकी जिज्ञासा, उसकी लगनी, उसकी भावना सब होना (चाहिये)। उसके लिये विचार, वांचन (होता है)। ध्येय एक आत्माका होना चाहिये।

मुमुक्षु :- सुखका यह एक ही उपाय होगा? दूसरा कोई उपाय नहीं होगा?

समाधान :- यह एक ही सुखका उपाय है। आत्माको-ज्ञायकको पहचानना, भेदज्ञान करना। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं ज्ञायक स्वभाव हूँ। उससे मैं भिन्न हूँ। भेदज्ञानकी धारा प्रगट करनी, ज्ञायकको पहचानना, उसकी स्वानुभूतिकी दशा प्रगट करनी, यही एक उपाय है। उसमें बाह्य उपाय कोई नहीं है। सब शुभराग पुण्यबन्धका कारण है। परन्तु अन्दर एक ही उपाय है, शुद्धात्माको पहचानना। उसके लिये, जिन्होंने प्रगट किया उन्हें साथमें रखकर, उन पर महिमा रखकर अपना हेतु अन्दर शुद्धात्माको पहचानना (यह होना चाहिये)। शुभभावमें वह और अन्दरमें शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? यह

एक ही (ध्येय होना चाहिये)। ज्ञायककी धारा प्रगट करनी, भिन्न आत्मा है उसे पहचानना।

... जो शुद्धात्माको पहचानना है, वह बिना लगनीके पहचानमें नहीं आता। विभावमें दुःख है, स्वभावमें सुख है। सुख कहाँ है? सुखको खोजनेके लिये सुख आत्मामें है, ज्ञायकमें है, वैसे दृढ़ता किये बिना शुद्धात्माकी और जाये कैसे? ध्येय एक शुद्धात्माको पहचाननेका (होना चाहिये)। मैं शुद्धात्मा हूँ, ऐसे रटन कर ले, तो ऐसे रटन करनेसे नहीं होता। अन्दरसे उसका स्वभाव पहचानकर होता है। स्वभाव कब पहचानमें आता है? कि अन्दर उसे लगनी लगी हो कि मुझे शुद्धात्मा ही पहचानना है। शुद्धात्माके बिना चैन पड़े नहीं। बारंबार उसकी लगनी, क्षण-क्षणमें उसकी भावना हो तो उसे पहचानमें आये।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प समाधिके समय पर्यायमें ही लीन होता है न? कारण कि आत्माका परिणमन हो गया है।

समाधान :- द्रव्य पर दृष्टि है। लीनता तो द्रव्यमें, द्रव्यके आश्रयमें लीनता होती है। पर्यायमें लीनता... उसे आश्रय द्रव्यका है। प्रगट होती है पर्याय, पर्याय प्रगट होती है, परन्तु आश्रय द्रव्यका है। द्रव्यके आश्रय बिना पर्याय अकेली नहीं है। सिर्फ एक पर्याय निराधार ऊपर-ऊपर है, ऐसा नहीं है। अनुभूति-वेदन पर्यायका है, परन्तु उसे-पर्यायको आश्रय द्रव्यका है।

मुमुक्षु :- श्रद्धानमें द्रव्य रहा कि वेदनमें?

समाधान :- दृष्टमें द्रव्य है। द्रव्यकी श्रद्धा अर्थात् श्रद्धा कर ली, ऐसा नहीं है, उसका आश्रय है। यह मैं ज्ञायक वस्तु हूँ, उसका आश्रय है। तथापि द्रव्य और पर्याय अलग नहीं है। द्रव्य और पर्याय सर्व प्रकारसे भिन्न नहीं है। वह तो लक्षणसे भिन्न है और अंश-अंशीका भेद है। बाकी सर्वथा भिन्न नहीं है। कोई अपेक्षासे द्रव्यका वेदन और कोई अपेक्षासे पर्यायका वेदन कहनेमें आता है। दोनों सर्वथा भिन्न नहीं है। आत्माकी स्वानुभूति हुयी ऐसा कहनेमें आता है। पर्यायकी स्वानुभूति हुयी ऐसा नहीं कहनेमें आता। द्रव्य तो अनादिका था ही, परन्तु वेदनमें नहीं आ रहा था। स्वयंने द्रव्यको ग्रहण किया इसलिये पर्याय प्रगट हुयी, शुद्ध पर्याय हुयी इसलिये पर्यायका वेदन हुआ। परन्तु द्रव्यके आश्रय बिना पर्यायका वेदन होता नहीं। द्रव्य-पर्याय स्वर्था भिन्न नहीं है। वह तो अंश-अंशीका भेद है। पर्याय द्रव्यके आश्रयसे ही प्रगट होती है। पर्यायका वेदन हुआ (और) द्रव्य एक ओर पड़ा रहा, आत्मा एक ओर पड़ा रहा और पर्यायका वेदन हुआ, ऐसे नहीं होता।

मुमुक्षु :- परन्तु द्रव्य तो सामर्थ्यरूप ही है न?

समाधान :- सामर्थ्यरूप है, लेकिन वह अनन्त गुणसे भरा है। सर्व गुणांश सो

सम्यग्दर्शन। सर्व गुणोंके अंश प्रगट होते हैं। एक पर्याय प्रगट हुयी, एक गुणकी एक पर्याय ऐसा नहीं है। द्रव्य अनन्त गुणसे भरा है। सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। प्रत्येक गुण के अंश उसे तारम्यरूपसे निर्मल होते हैं। द्रव्य गुण...

सब पर्याय प्रगट होने योग्य थी वह (प्रगट होती है)। सामर्थ्यरूप है भले, परन्तु प्रगट पर्याय होती है। सामर्थ्यरूप द्रव्य (है), उस द्रव्यके आश्रयसे पर्याय प्रगट होती है। सामर्थ्यरूप अर्थात् एक ओर पड़ा है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। एक ओर पड़ा रहा है और पर्याय कहीं अलग हो गयी ऐसा नहीं है। जो द्रव्य है उसमें गुण हैं, उन गुणोंकी पर्याय प्रगट होती है। द्रव्य भले सामर्थ्यरूप है। (पर्याय) भले परिणमे, परन्तु आश्रय द्रव्यका है। पर्याय परिणमती है, द्रव्यके आश्रय बिना पर्यायका परिणमन होता नहीं।

मुमुक्षु :- द्रव्यके आश्रयपूर्वक अर्थात् मैं ऐसा द्रव्य हूँ, ऐसे अभ्यासरूप ही वह परिणमित हो जाती है?

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। बारंबार ज्ञायकका अभ्यास करनेसे पर्यायका परिणमन हो जाता है। ज्ञायकका अभ्यास करनेसे। चारित्र चारित्रके आश्रयसे प्रगट नहीं होता, दर्शन दर्शनके आश्रयसे प्रगट नहीं होता। मैं दर्शन-सम्यक् श्रद्धा प्रगट करुँ, ऐसे उसके आश्रयसे प्रगट नहीं होता। ज्ञायककी पर्याय, ऐसे विचार करते रहनेसे (नहीं होता)। पर्यायके आश्रयसे पर्याय प्रगट नहीं होती, द्रव्यके आश्रयसे प्रगट होती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-७४

समाधान :- ... कहाँ लोंच, कहाँ मुनिदशा, कहाँ... आंतरिक मुनिदशा अन्दरकी। उन्हें तो सहज लोंच होता है। कहाँ वह सब...

मुमुक्षु :- ऐसा शुभभाव आया हो तो उसका अमलीकरण करना या नहीं?

समाधान :- पहले तो सुधार अंतरमें सम्यग्दर्शन प्रगट हो, फिर भवका अभाव हो तो होता है। बाह्यसे क्रिया मात्र करनेसे क्या होता है? शुभभाव अनन्त कालमें बहुत बार किया। पुण्य बाँधकर देवलोकमें गया। फिर वहीं का वहीं। अन्दर शुभभावना रहे तो। 'मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो'।

अन्दर स्वयं सर्व प्रथम शुद्धात्माको पहचाने, बादमें सच्ची मुनिदशा आती है। मुनिदशा अंतरमें आये, फिर बाहरसे उसे सहज होता है। लोंच आदि सब सहज होता है। कोई बाह्य प्रवृत्ति रुचति नहीं। उसे अंतरमें आत्माकी लीनताके बिना,... आत्माकी स्वानुभूति क्षण-क्षणमें होती है। कहीँ अटक नहीं सकता, कोई विकल्पमें रुक नहीं सकता, गृहस्थके कोई विचारमें (नहीं)। अंतरमें बारंबार स्वानुभूतिमें क्षण-क्षणमें (आते हैं)। कोई विकल्पमें अटकता नहीं, क्षण-क्षणमें स्वानुभूतिमें जाता है। ऐसी दशा हो जाती है इसलिये उसे सब बाह्य प्रवृत्ति सहज छूट जाती है। शुभभाव होते हैं, उसमें भी एक अंतर्मुहूर्त होते ही अंतरमें चला जाता है। शुभभावनामेंसे अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें अन्दर चला जाता है। ऐसी मुनिओंकी दशा होती है। शास्त्र लिखते हों, उपदेश देते हों। आहारादिमें क्षण-क्षणमें अन्दर चले जाते हैं। ऐसी मुनिकी दशा होती है। मुनिदशा यानी केवलज्ञानकी तलहटी।

मुमुक्षु :- सहज शुभभाव आता हो तो अभी अमलमें नहीं रखना ऐसा है? अभी अपनी भूमिका नहीं है, फिर भी सहज कोई शुभभाव आता हो...

समाधान :- प्रथम तो मार्ग क्या है, वह समझना चाहिये न। भवका अभाव कैसे हो, ऐसा आत्मार्थीका प्रयोजन पहले (होना चाहिये)। उसका कारण क्या, उसका कुछ विचार करना चाहिये। बिना विचारके सब ऐसा ही है। अयथार्थ है। सब त्याग करके फिर खेद (होता है)। कितने तो खेदमें रहते हैं। बहुत-बहुत प्रकार होते हैं। .. अन्दरकी दशा बिना बाहरका कुछ फलवान नहीं होता।

मुमुक्षु :- कुछ बलवान नहीं होता?

समाधान :- फलवान, उसका कोई फल नहीं आता। बिना अंतरकी दशाके। मात्र अंतरकी जो शांति चाहिये, अंतरमेंसे शांति... मात्र बाह्य त्याग करनेसे अंतरमें जो शांति होती है, वह शांति बाह्य त्यागसे नहीं आती।

मुमुक्षु :- अभी मात्र वैसा शुभभाव करनेसे ...

समाधान :- अंतरमेंसे शुभभाव.... सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें और सच्ची मुनिदशामें उसके साथ शुभभाव है। वह शुभभाव हेयबुद्धिसे आते हैं। वह शुभभाव अलग है और यह शुभभाव (अलग है)।

आत्मार्थीको, मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो? भवका अभाव कैसे हो? ऐसी भूमिकाके साथ शुभभाव होता है, परन्तु उसका ध्येय एक (होता है कि), मुझे शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? वह एक ध्येय होता है। वांचन, विचार आदि सब शुभभाव हैं। आत्मा कैसे पहचानमें आये? पहले सच्चा ज्ञान हो बादमें सच्चा होता है। पहले त्याग होता नहीं। ऐसा क्रम नहीं है। पहला क्रम - सच्चा ज्ञान होना वह क्रम है, बादमें त्याग (होता है)।

सच्चा ज्ञान आदि सब... उसके साथ उसे उसकी भूमिकामें कषायकी मन्दता होती है, आत्मार्थीता होती है, उसे कहीं गृद्धिपना नहीं होता, आत्मार्थीता हो, आत्माका प्रयोजन हो, यह सब उसे (होता है)। अमुक अंशमें उसके रस छूट जाते हैं। उसे सब हो जाता है। जिसे आत्माकी लगनी लगी है, उसे सब हो जाता है। रस छूट गये होते हैं, बाह्य सांसारिक सब रस उसे ढीले पड़ जाते हैं। उसे यथाशक्ति त्याग भी आता है, सब आता है। उसकी शक्ति अनुसार सब आता है।

बाहरसे सब कर ले और अन्दर कुछ नहीं हो। बड़ा त्याग ले ले और अन्दर कुछ नहीं होता। शुभभाव तो जिज्ञासाकी भूमिकाके साथ अमुक शुभभाव तो होते हैं। उसे त्याग भी होता है, सब होता है।

.... जीवने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है। जो सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे भवका अभाव होता है, आत्माकी स्वानुभूति होती है और जिससे केवलज्ञान तक आत्माकी पूर्णता प्राप्त होती है, ऐसा जो सम्यग्दर्शन वह जीवने प्राप्त नहीं किया है। सब अनन्त बार कर लिया है। बाह्य क्रियाएँ की, त्याग किया, व्रत लिये, पच्चखाण लिये, अभिग्रह धारण किये, उपवास किये, मासखमण किये, सब किया। अभी सब बाहरसे करते हैं वैसा नहीं। शुभभाव आत्माके लिये करता हूँ, ऐसा मानकर किया। परन्तु अन्दर एकत्वबुद्धि (छूटी नहीं)।

आत्मा भिन्न और यह शरीर भिन्न और अन्दर शुभाशुभ भाव होते हैं वह मेरा

स्वरूप नहीं है। इसप्रकार आत्माको नहीं पहचाना। आत्माको पहचाना नहीं। सब पुण्यबन्ध हुआ, ग्रैवेयक गया, लेकिन भवका अभाव नहीं हुआ। देवलोकमें अनन्त बार गया, मनुष्यमें अनन्त (बार जन्म लिया), चारों गतिमें अनन्त बार गया।

(सब) प्राप्त हुआ, लेकिन एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। अनादि कालसे आत्मा प्राप्त नहीं हुआ। उसकी रुचि नहीं की है, उसकी भावना नहीं की है। कुछ नहीं किया। उसका परिचय नहीं किया है, कुछ नहीं किया। कोई श्रवण करवानेवाले गुरु मिले तो स्वयं समझा नहीं, आदरपूर्वक सुना नहीं। अनन्त कालमें कुछ नहीं किया।

(तप तो) ऐसा किया कि कोई बार पर्वत पर प्रखर धूपमें ध्यान करे, दरिया किनारे सर्दीमें ध्यान करे, चौमासामें वृक्षके नीचे ध्यान करे। ऐसे तो तप किये। उपसर्ग परिषह आये तो क्रोध करे नहीं, शान्ति रखे, सब करे परन्तु आत्मा भिन्न है ऐसी पहचान नहीं की। ऊपर-ऊपरसे आत्माके लिये करता हूँ, (ऐसा मानता है)। अन्दर आत्माका स्वभाव क्या? आत्मा कौन उसे पहचाना नहीं। मैं आत्माके लिये करता हूँ, आत्माके लिये करता हूँ, ऐसा करता रहा। मोक्षके लिये (करता हूँ), परन्तु मोक्ष किसे कहते हैं (यह समझा नहीं)। अन्दरमें रुचि शुभ-पुण्य-ओरकी रुचि रह जाती है। अंतरमें आत्माकी रुचि नहीं की। सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया। (स्वभावका) आश्चर्य नहीं लगा है। आत्माकी महिमा नहीं आयी है।

जो श्रवण करनेवाले गुरु मिले, उनकी वाणीमें गुरु क्या कहते हैं उसमें कोई आश्चर्य नहीं लगा है। आत्माका आश्चर्य नहीं लगा। अपूर्वता लगनी चाहिये। आत्माका स्वरूप कुछ अलग कहते हैं, मुक्तिका मार्ग कुछ अलग कहते हैं, स्वानुभूतिका स्वरूप कुछ अलग कहते हैं, अंतरमें ऐसी अपूर्वता नहीं लगी है। वाणीमें अपूर्वता (नहीं लगी)। अन्दरमें आत्माकी अपूर्वता नहीं लगी। जो कुछ करता है, वह उसी दिशामें खड़ा है। दिशा नहीं बदलता। शुभभावकी दिशामें उसी दिशामें खड़ा है। अंतरकी ओर दिशा होनी चाहिये कि आत्मा भिन्न कैसे है, उसका आश्चर्य लगना चाहिये। वह दिशा नहीं बदलता और वही दिशामें खड़ा है। चक्कर लगाये तो वहीं के वहीं उतनेमें चक्कर लगाता रहता है।

मुमुक्षु :- बाह्य पदार्थोंमें ही उसका आश्चर्य..

समाधान :- बाहर ही आश्चर्य लगा है। अंतरमें आश्चर्य नहीं लगा। अशुभभाव उसे रुचे नहीं इसलिये शुभभावमें आता है। फिर शुभभावमें ही रहता है। शुभभावसे भी भिन्न मेरे आत्माका स्वरूप है, उसे पहचानता नहीं। शुभभाव तो बीचमें आते हैं। आत्माका स्वरूप पहचाननेका प्रयास करे, रुचि करे, सम्यग्दर्शन (प्रगट करे)। बीचमें शुभभाव होते हैं, परन्तु वह हेयबुद्धिसे होते हैं। सम्यग्दर्शन होनेके बाद भी शुभभाव

होते हैं, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि सब होता है, परन्तु वह सब उसे हेयबुद्धिसे (होता है)। उसे भेदज्ञानकी धारा वर्तती है।

मुमुक्षु :- ... ऐसा ख्यालमें आता है। जानना अरूपी भावसे और वेदनात्मक भावरूप है, ऐसा भी ख्यालमें आता है। वह स्वयंकी शक्ति है अथवा जानना मुझमेंसे हो रहा है, उसमें किस प्रकारसे (आगे बढ़ना)?

समाधान :- जानना वह स्वयंका अस्तित्व है। जाननेवालेको ग्रहण करना कि जाननेवाला है वही मैं हूँ। जाननेवालेसे कोई भिन्न मैं नहीं हूँ। जाननेवाला पूरा तत्त्व है। जाननेवालेको ग्रहण करे, विभावसे भिन्न पड़े।

पूर्ण तत्त्व जाननेवाला (है)। एक गुण है ऐसा नहीं, वर्तमान एक जाननेवाली अवस्था है ऐसे नहीं, अन्यको जाने वह मैं, ऐसा नहीं। में स्वयं जाननेवाला हूँ। ऐसा स्वयं जाणक तत्त्व है, वह जाननेवाला तत्त्वका उसे आश्चर्य लगे, उसकी महिमा आये, उसे ग्रहण करे। उस पर दृष्टि करे, दृष्टिको थँभावे और विभावसे भिन्न पड़े। भेदज्ञान करे। विभावकी एकत्वबुद्धि रखकर मैं जाननेवाला हूँ, जाननेवाला हूँ करे तो जाननेवालेको उसने बुद्धिसे जाना है। एकत्वबुद्धि टूटनी चाहिये और ज्ञायकको भिन्न करके भेदज्ञानकी धारा होनी चाहिये, तो ज्ञायकको पहचाना है। एकत्वबुद्धिमें खड़ा रहकर मैं जाननेवाला हूँ, ऐसा करते हैं। विचारसे नक्की करता है।

मुमुक्षु :- जाननेवाला हूँ, इस भावमें उसे अन्य पदार्थसे सम्बन्ध नहीं है और अन्य पदार्थका खींचाव भी उसमें नहीं है, ऐसी वह वस्तु है।

समाधान :- ऐसा वह स्वयं जाननेवाला है, उसे भिन्न करके जाने। महिमावंत (है)। जानना यानी उसमें एक गुण नहीं है, अनन्त महिमासे भरा हुआ, अनन्त गुणोंसे भरा हुआ महिमावंत पदार्थ है। जाननेवालेकी उसे महिमा आनी चाहिये। जाननेवालेको विभावसे भिन्न करके जाननेवालेको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- उस प्रकारसे जाननेमें आता है।

समाधान :- स्वयंके साथ सम्बन्ध है, दूसरेके साथ नहीं है। जाननेवालेको स्वयंके द्रव्यके साथ सम्बन्ध है, स्वयंके साथ सम्बन्ध है। दूसरेके साथ सम्बन्ध नहीं है। अन्यसे अत्यंत भिन्न है। परद्रव्यसे अत्यंत भिन्न है। विभावसे भी वह भिन्न है। विभाव स्वभाव उसका नहीं है। उसका स्वभाव ज्ञायक है। जाननेवालेका अस्तित्व भरपूर भरा है। मात्र जानना ऐसा गुण नहीं, अपितु पूर्ण तत्त्व अपना अस्तित्व ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- दृष्टिके विषयमें दृष्टि मुख्य रहती है और उसकी महिमा

समाधान :- दृष्टि मुख्य रहती है। ज्ञायक पर दृष्टि करे। ज्ञायक मुख्य रहता है, परन्तु उसकी महिमा दृष्टिमें भी रहती है, ज्ञानमें भी रहती है और चारित्रमें भी रहती

है। दृष्टिकी डोर, दृष्टिका विषय द्रव्य है। उसकी मुख्यता होकर ज्ञानमें भी बराबर ख्याल है। ज्ञान भी, जैसी दृष्टि है वैसा ज्ञान है। ज्ञान दोनोंको जानता है, द्रव्य और पर्यायको। दृष्टि एक द्रव्य पर होती है और ज्ञान एवं चारित्रमें लीनता होती है। महिमा तो तीनोंमें होती है। दृष्टि मुख्य रहकर ज्ञान-ज्ञायक मुख्य रहता है। महिमा तीनोंमें रहती है।

मुमुक्षु :- तीनोंकी पूर्णतामें तो परिपूर्णताकी महिमा पूरी होनी चाहिये तीनोंमें। दृष्टि पूर्ण हो जाती है तो पूर्ण महिमाके कारण होती है। वैसे ज्ञान भी परिपूर्ण केवलज्ञानरूप दशा लेवे तो महिमामें परिपूर्ण होना चाहिये।

समाधान :- महिमा आये इसलिये परिपूर्ण हो जाय, ऐसा नहीं है। महिमा तो होती है। दृष्टिका विषय पूर्ण है। अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि की है, परन्तु ज्ञान भी उसको जानता है। ज्ञानमें महिमा आवे इसलिये पूर्ण हो जाय, ऐसा नहीं होती। महिमा दूसरी वस्तु है, पुरुषार्थकी मन्दता होनेसे पूर्णता धीरे-धीरे होती है। दृष्टिमें पूर्णता आ गयी, परन्तु चारित्रमें पूर्णता नहीं आती। महिमा आये इसलिये पूर्ण पर्याय हो जाय, ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु :- ज्ञानकी परसन्मुखता रहती है अस्थिरताके कारण, तो कारण तो यही रहा कि ज्ञानको भी अपने द्रव्य स्वभावकी परिपूर्ण महिमाके साथ लीनता न बनी।

समाधान :- लीनता कम रहती है। ज्ञानकी लीनता नहीं, चारित्रकी लीनता कम रहती है। लीनता तो चारित्रमें होती है, ज्ञान तो जानता है। ज्ञान जानता है। ज्ञान तो, मैं द्रव्य ऐसा हूँ, पर्याय ऐसी है, ऐसा सब जानता है। लीनता चारित्रमें होती है। जाने इसलिये लीनता हो जाय, ऐसा नहीं हो सकता। पुरुषार्थकी कमजोरीके कारण लीनता कम रहती है तो भी पुरुषार्थ होता जाता है। उसका पुरुषार्थ किसीको जल्दी अंतर्मुहूर्तमें हो जाता है। किसीको धीरे-धीरे होता है।

भरत चक्रवर्ती गृहस्थाश्रममें कितने वर्ष रहते हैं। बादमें लीन होते हैं। किसीको तुरन्त उसकी भावना उठती है तो चारित्र हो जाता है तो मुनि बन जाता है। तो एकदम पुरुषार्थ करके केवलज्ञान हो जाता है। किसी-किसीको लीनता जल्दी होती है, किसीको धीरे-धीरे होती है। दृष्टि-प्रतीत द्रव्य पर जोरदार हो गयी कि मैं यही हूँ, यह मेरा स्वभाव (है)। आदरने योग्य स्वभाव है। परन्तु पुरुषार्थ कम रहता है इसलिये जल्दीसे नहीं हो सकता है। किसीको जल्दी होता है, किसीको धीरे-धीरे होता है। ... मुनिको अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान हो गया। किसीको अंतर्मुहूर्तमें हो जाता है। ... दशामें कितने साल रहते हैं। कोई एक-दो भव करके फिर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

मुमुक्षु :- लीनतामें अंतर पड़ जाता है।

समाधान :- लीनतामें अंतर पड़ता है। ज्ञायककी भेदज्ञानकी धारा बराबर चलती

है। मैं ज्ञायक हूँ, यह (विभाव) मेरा स्वभाव नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ ऐसे बोलनेमात्र नहीं, ऐसी सहज परिणति चलती रहती है। प्रत्येक कार्यमें क्षण-क्षणमें उसको याद नहीं करना पड़ता है, सहज चलता है। खाते-पीते, स्वप्नमें, निंद्रामें ज्ञायककी धारा चलती है। लेकिन लीनता कम होती है, इसलिये गृहस्थाश्रममें रहते हैं। स्वरूप सन्मुख स्थिर हो जाय तो साथमें लीनता होती है।

एक द्रव्यमें सर्व गुण हैं। परस्पर एक दूसरेको... उपयोग स्वसन्मुख जाय तो चारित्रकी लीनता भी स्वरूपमें होती है। साथमें सब होता है। उपयोग स्थिर हो जाता है तो लीनता-चारित्र भी होता है। गृहस्थाश्रममें स्वरूपाचरण चारित्र होता है। वह होता है। उपयोग स्थिर हो जाय। उपयोग बाहर जाता है। उपयोग स्वरूपकी ओर जाय तो उपयोगमें स्थिरता है, चारित्रगुणमें लीनता भी साथमें है। एक गुण, दूसरा गुण सब साथमें रहते हैं।

मुमुक्षु :- स्वतंत्र है।

समाधान :- सब स्वतंत्र है, फिर भी दृष्टि स्वसन्मुख गयी तो सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन (हुआ)। सर्व गुणका अंश-अंश निर्मल प्रगट होता है। ज्ञान स्वसन्मुख जाता है तो चारित्रकी लीनता भी होती है। चारित्रकी लीनता होती है तो ज्ञानका उपयोग भी स्वरूपमें जाता है।

मुमुक्षु :- अंतर्मुख होता है।

समाधान :- अंतर्मुख होता है। सब गुण साथमें काम करते हैं।

मुमुक्षु :- होता है सब अपने-अपने उपादानसे।

समाधान :- अपने-अपने उपादानसे होता है। सब स्वतंत्र होकरके भी ऐसा भेद नहीं है, टूकड़े नहीं है। एक द्रव्यके सब गुण हैं। लक्षणभेद है। सब स्वतंत्र है, फिर भी एक गुणके साथ (सर्व गुण परिणमते हैं)। दृष्टिकी डोर दृष्टिके विषय पर गयी तो वहाँ सर्व गुणकी पर्याय उस ओर (जाकर) निर्मल हो जाती है। सब स्वतंत्र हो तो भी। एक दृष्टि इस ओर आयी और ज्ञान उस ओर बाहर गया, ऐसा नहीं होता। चारित्र स्वरूपमें आये तो ज्ञान बाहर गया, ऐसा नहीं होता। एक गया तो सब जाते हैं स्वस्वरूपमें। सर्व अंश तारतम्यतारूप परिणमित हो जाते हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-७५

समाधान :- .. भीतरमें आत्माको पीछाने। आत्माका स्वभाव ही धर्म है। आत्मामें दर्शन है, आत्मामें ज्ञान है, आत्मामें चारित्र है, सब आत्मामें है, आत्मासे बाहर नहीं है। आत्मा तो कोई अलौकिक वस्तु है। उसको पीछाने। उसके स्वभावकी ओर दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे। सब आत्माके आश्रयमें होता है। बाहरके आश्रयसे नहीं होता है। मात्र शुभभाव करे, नव तत्त्वकी श्रद्धा और शास्त्रका ज्ञान कर ले, द्रव्य-गुण-पर्यायका ऐसा ज्ञान करे और चारित्र-पंच महाव्रत, अणुव्रत करे तो ऐसे लौकिक धर्मकी मुख्यता नहीं रहती। अलौकिक धर्मसे मुक्ति होती है। लौकिकसे पुण्यबन्ध होता है। पुण्यबन्ध तो जीवने अनन्त कालमें किया, लेकिन उससे कोई भवका अभाव नहीं हुआ। पुण्यबन्ध हुआ, देवलोक हुआ तो चार गतिका भ्रमण तो वैसे चालू ही है।

मुमुक्षु :- जिन धर्मको दृष्टि प्रधान धर्म कहनेमें मुख्यता बराबर बनती है?

समाधान :- दृष्टि प्रधान धर्म है। आत्माकी ओर दृष्टि करे, आत्माको पीछाने, आत्माकी स्वानुभूति करे। उसकी प्रधानता रहती है। जैन धर्मकी प्रधानता स्वानुभूतिमें है। द्रव्य पर दृष्टि करनेमें प्रधानता रहती है।

गुरुदेव कहते थे न? स्वानुभूति प्रधान जैन धर्म है। स्वानुभूतिकी प्रधानता रहती है। आत्माकी यथार्थ स्वानुभूति। ध्यान करते हैं, कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि हमें अनुभूति हो गयी। ऐसा ध्यान करनेसे कल्पित अनुभूति हो जाय ऐसी अनुभूति नहीं। आत्माको पीछान करके, आत्माका अस्तित्व ग्रहण करके, ज्ञायकका भेदज्ञान करे, ज्ञायक पर दृष्टि करे बादमें स्वानुभूति होती है। वह स्वानुभूति यथार्थ है। वर्तमानमें कितने ही लोग ध्यान करते हैं, बहुत करते हैं। ऐसा ध्यान करते हैं, कल्पना करते हैं, कुछ मिलता नहीं है। इसलिये कुछ शान्ति नहीं है, ऐसा कहते हैं। मुंबईमें कोई ऐसा ध्यान करके कहते हैं, हमको शान्ति नहीं है।

आत्माको ग्रहण नहीं करते हैं। आत्माका अस्तित्व ग्रहण किये बिना ध्यान करे तो ऐसे कल्पना मात्र एकाग्रता करे। विकल्पको मन्द करे और शुभभावरूप होवे फिर (कहे), मुझे प्रकाश हुआ, ऐसी कल्पना हो जाती है। परन्तु आत्माके स्वभावको पीछाने

और आत्माकी ओर दृष्टि करे, आत्माका यथार्थ ज्ञान करे। बादमें उसकी स्वानुभूति यथार्थ होती है। यथार्थ ज्ञानपूर्वक यथार्थ ध्यान होना चाहिये।

मुमुक्षु :- यथार्थ ज्ञानपूर्वकमें दृष्टिप्रधान होना चाहिये।

समाधान :- हाँ, दृष्टिप्रधान होना चाहिये। यथार्थ ज्ञान उसको कहते हैं कि जिसमें दृष्टिकी प्रधानता रहती हो। दृष्टिकी प्रधानता रहती है, वह मुक्तिका मार्ग है। दृष्टि द्रव्य पर दृष्टि करनेसे (होता है)।

मुमुक्षु :- ... सागर उछल रहा है। अपने चिदान्द प्रभुमें अनन्त शक्तिका सागर पड़ा हुआ है। वर्तमानमें ज्ञानशक्ति और दर्शनशक्तिका अंश खुला हुआ है। उस वर्तमान दर्शन, ज्ञानकी शक्तिको-अंशको स्वभावका अंश, टोडरमलजी साहबने भी फरमाया है। लेकिन जब अनुभवमें अंतरकी ओर ज्ञान झुकता है, उस कालमें ज्ञान, दर्शन दोनों ही स्वरूपका स्वसंवेदन आनन्द लेता है। तो वह दर्शन लेता है या ज्ञान लेता है? वर्तमान खुला हुआ अंश।

समाधान :- दर्शन भी लेता है और ज्ञान भी लेता है और लीनता भी लेता है। दर्शनकी पर्याय.. दर्शन अर्थात् प्रतीतरूप दर्शन लेना चाहिये। अवलोकनरूप दर्शन है वह तो अवलोकनरूप है। प्रतीतरूप जो दर्शन है, उसका अनुभव वेदनमें आता है। ज्ञानमें भी आता है और चारित्रमें भी आता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानकी ही मुख्यतासे आत्मा स्वभावकी अनंत शक्तिओंके वेदनमें प्रत्यक्ष आ जाता है जाननेमें, आत्माकी अनुभूतिमें...?

समाधान :- दृष्टिके ज़ोरसे स्वानुभूति होती है। दृष्टिका ज़ोर होवे तो स्वानुभूती होती है। मात्र अकेले ज्ञानसे नहीं होता। दृष्टिके ज़ोरसे स्वानुभूति होती है। दृष्टिके ज़ोर बिना ज्ञान सच्चा नहीं हो सकता। दृष्टिका ज़ोर होता है तो ज्ञान सच्चा होता है। दृष्टिके ज़ोर बिना स्वानुभूतिमें ऐसी लीनता होती नहीं। दृष्टिके ज़ोर बिना अकेले ज्ञानमात्रसे नहीं होता। ज्ञान तो साथमें रहता है।

मुमुक्षु :- लक्षण जो..

समाधान :- वह अवलोकनरूप दर्शन है और वह प्रतीतरूप दर्शन है।

मुमुक्षु :- वह प्रतीतरूप श्रद्धाकी पर्यायमें चला जाता है।

समाधान :- हाँ, श्रद्धाकी पर्याय। यह दर्शनगुणमें अवलोकनरूप है।

मुमुक्षु :- ज्ञान भी तो साथमें होता है। दर्शनका अंश खुला है, वैसे ज्ञानका अंश ज्ञानोपयोग भी खुला है। तो ज्ञानोपयोग और दर्शनउपयोगमेंसे दर्शन उपयोग अंतरमें अवलोकन करता है या ज्ञानका उपयोग अन्दर जाता है वह अवलोकन करता है?

समाधान :- दोनों अवलोकन करते हैं। प्रतीतके ज़ोरसे भीतरमें जाता है तो सामान्यरूप

दर्शन भी साथमें है और विशेष ज्ञान भी साथमें है। दोनों अवलोकन करते हैं। अवलोकनरूप तो दोनों होते हैं।

मुमुक्षु :- सामान्य अवलोकनमें तो वह भेद नहीं पाड़ता।

समाधान :- भेद नहीं पाड़ता, वह तो सत्तामात्र (ग्रहण करता है)। सत्तामात्र अवलोकन उसमें आता है। ज्ञानमें भेद आता है। ज्ञान सामान्यको जानता है, ज्ञान विशेषको जानता है। ज्ञान सबको जानता है। दर्शनमें सत्तामात्र आता है।

मुमुक्षु :- दर्शन स्वसंवेदन न लगाकर ज्ञानका स्वसंवेदन ऐसा बार-बार जिनागममें आता है कि यह अनुभूति ज्ञान स्वसंवेदनसे होती है।

समाधान :- ज्ञानका स्वसंवेदन.. दर्शनकी बात उसमें लेते नहीं है। सामान्य उपयोग है इसलिये ज्ञानकी बात लेते हैं। ज्ञान विशेष है इसलिये। दर्शन तो साथमें रहता है। इसलिये ज्ञानकी बात लेते हैं। ज्ञान विशेष है न। सामान्य और विशेष दोनोंको जानता है। दर्शन समान्य होता है इसलिये उसकी बात नहीं आती है, ज्ञानकी बात आती है।

... दोनों साथमें रहते हैं। परिणति तो चलती रहती है। उपयोग भले बाहर जाये तो भी परिणति जो स्वसन्मुख अमुक परिणति आंशिक हो वह परिणति श्रद्धाकी परिणति, स्वानुभूतिकी या बाहर आये सविकल्प दशामें तो भी अमुक परिणति चलती रहती है। उपयोग भले बाहर जाये। ज्ञायककी ज्ञायकरूप परिणति शुद्ध परिणति अमुक अंशमें प्रगट हुयी है, वह चलती रहती है। उपयोग भले बाहर जाय। अमुक लब्धमें, उसकी अमुक परिणति चलती रहती है।

मुमुक्षु :- दोनोंकी साथ चलती होगी? निर्विकल्प प्रतीतिरूप तो श्रद्धाकी है और निर्विकल्प दशामें जितनी शुद्धिका अंश बढा उतनी प्रतीतिरूपके साथ स्थिरतारूप...

समाधान :- प्रतीतिरूप और स्थिरतारूप परिणति चलती रहती है। उसमें ज्ञान जो अमुक उघाड़रूप रहता है, उपयोगरूप भले नहीं रहता है तो भी। लब्धरूप कहते हैं न? लब्ध है यानी गुप्त है ऐसा नहीं, परन्तु लब्ध यानी अमुक उघाड़रूप उसकी परिणति रहती है। उपयोग भले बाहर जाये तो भी ज्ञानकी रहती है, प्रतीतकी रहती है, चारित्रकी रहती है। शुद्ध परिणति रहती है।

मुमुक्षु :- ऐसी दशा सहजपने चलती रहती है?

समाधान :- सहजपने चलती रहती है। सहज पुरुषार्थ है। सहज यानी उसकी कृतकृत्य दशा हो गयी ऐसा नहीं, परन्तु सहज पुरुषार्थ चलता है। ऐसा सहज पुरुषार्थ स्वसन्मुख (चलता है)। अमुक परिणति तो सहजरूप चलती है, उसके साथमें पुरुषार्थ भी रहता है। साधकदशा है तो सहज पुरुषार्थ तो साथमें रहता है।

मुमुक्षु :- सहज पुरुषार्थ लागु पड़ता है?

समाधान :- सहज पुरुषार्थ रहता है। द्रव्य स्वयं कृतकृत्य (है)। द्रव्य अपेक्षासे पूर्णता परन्तु अमुक अंश अभी तो पर्यायमें प्रगट हुआ। पुरुषार्थ सहज साथमें रहता है।

... शुद्ध परिणति साथमें हो, द्रव्य पर दृष्टि हो, भेदज्ञानकी धारा चलती हो तो उसे व्यवहार पूजा कहनेमें आता है। नहीं तो व्यवहार कहनेमें आये, उस प्रकारका व्यवहार कहनेमें आये। अकेला व्यवहार वह वास्तविक व्यवहार नहीं है। निश्चयके साथ व्यवहार हो वह व्यवहार है। उसे भावना है, जिज्ञासा है कि मुझे आत्मा कैसे प्रगट हो? द्रव्य पर दृष्टि कैसे प्रगट हो? वीतरागभावकी भावना करे, जिज्ञासा करे। ज्ञायक... और शुभभाव साथमें आये वह तो श्रावकोंको वह व्यवहार होता है। बाकी सच्चा व्यवहार तो सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है।

मुमुक्षु :- ... दृष्टिमें न निश्चयका व्यवहार, न पर्यायका परलक्ष्यी व्यवहार..

समाधान :- निश्चय नहीं है, व्यवहार नहीं है, द्रव्य पर दृष्टि नहीं है। निश्चय नहीं प्रगट हुआ है, व्यवहार प्रगट नहीं हुआ है।

... सम्यग्दर्शन है, उसके साथ अंतरमें स्थिर नहीं हो सकता है, इसलिये शुभभाव साथमें आता है। और शुभभावके साथ बाह्य अष्ट द्रव्य आते हैं। उससे पूजा करे, इसलिये उसे व्यवहारका आरोप आता है। वस्तुको व्यवहारका आरोप वह स्थूल व्यवहार है। अन्दर शुभभावका व्यवहार... और अन्दर शुद्ध परिणतिपूर्वक हो तो कहनेमें आये।

मुमुक्षु :- खरेखर तो अपनी ही पूजा ..

समाधान :- द्रव्य पर दृष्टि है, आत्माकी महिमा है। परन्तु बाहर शुभभावमें वीतरागताकी महिमा आती है, शुभभावमें। वीतराग जिनेन्द्र देव वीतराग हो गये, स्वरूपमें जम गये, स्थिर हो गये। अहो..! वीतरागदशा! जिनेन्द्र देव, जिन्होंने वीतरागी दशा प्रगट की है। जो आत्मामें संपूर्णरूपसे समा गये हैं। उनका जिसे आदर है कि वह दशा आदरने योग्य है। धन्य है वीतरागी दशा! जिनेन्द्र देव! इस तरह उसे भगवानके ऊपर महिमा आती है। इसलिये उसे पूजाकी भावना आती है।

भगवानका किस प्रकार आदर करुँ? इसलिये सम्यग्दृष्टिको गृहस्थाश्रममें आदरका महिमाका भाव आता है, इसलिये पूजा करता है। भगवान पर महिमा आती है। उनकी वस्तुएँ छूट गयी है और सर्वसंगपरित्याग हुआ है, इसलिये भगवानके दर्शन करते हैं। दर्शन करके भी महिमा करते हैं, स्तोत्र रचते हैं, सब करते हैं। और गृहस्थाश्रममें खड़ा है, सब चीज-वस्तु आदि होती है। त्यागी नहीं हुआ है। इसलिये भगवानको अमुक वस्तुएँ चढाता है। वस्तुका त्याग (करता है)। गृहस्थाश्रममेंसे त्याग करके भगवानको चढाता

है और भगवानकी महिमा करता है। स्वयं अपने शरीरके लिये, कुटुम्बके लिये सब करता है, भगवान तो सर्वोत्कृष्ट है इसलिये भगवानकी पूजा और महिमा आती है, इसलिये पूजा करता है। उत्तम वस्तुओंसे पूजा करता है। ज्ञायककी ज्ञायकधारा छूटती नहीं है। उसमें एकत्वबुद्धि नहीं होती है। साथमें ज्ञायकता खड़ी रहती है। शुभभाव आता है। ज्ञायकता भेदज्ञान (चालू है)।

जो शुभभाव आता है उस क्षणमें ज्ञायककी धारा उसकी भिन्न ही है। तो भी उसे ऐसी महिमा आती है। शुभभावमें स्थिति कम पड़ती है, परन्तु उसे भगवान पर बहुत भावना आती है। इसलिये शुभभावमें मिथ्यादृष्टिको जो रस पड़ता है, उससे सम्यग्दृष्टिको जो रस पड़ता है, स्थिति कम पड़ती है। क्योंकि यदि अंतरमें समा जाये तो तुरन्त (छूट जाता है)। उसे लंबी स्थिति नहीं पड़ती है। मिथ्यादृष्टिको स्थिति पड़ती है और रस पड़ता है। क्योंकि उसे स्वभावकी महिमा है। आत्माका स्वरूप जाना और स्वभावकी महिमा आयी है। स्वानुभूति दशामें और प्रतीतमें जो महिमा आयी है, यह अंश जो प्रगट हुआ है, पूर्णताकी जो महिमा आयी है, वह महिमा स्वयं अन्दर स्थिर नहीं हो सकता है (तो) भगवान पर महिमा आती है। शुभभाव आता है कि भगवानने सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान दशा प्रगट की, वीतराग दशा प्रगट की, धन्य है वह वीतराग दशा! ऐसे शुभभावमें महिमा आती है, इसलिये भगवानकी भक्ति करता है, स्तुति करता है, पूजा करता है। परन्तु उसी क्षण अपनी ज्ञायककी भेदज्ञानकी धारा उसे भिन्न ही वर्तती है।

पद्मनंदी आचार्यने भगवानके स्तोत्र रचे हैं। हे भगवान! ये बादलके टूकड़े क्यों हो गये? कि इन्द्रोंने जो नृत्य किया उसमें उनका हाथ (ऐसो हुआ तो) बादलके टूकड़े हो गये। भगवान! मैं हर जगह आपको देखता हूँ। इस प्रकार भगवानकी स्तुति करते हैं। आप ही जगतमें सर्वोत्कृष्ट हो, आप ही आदर करने योग्य हो। इस प्रकार भगवानकी स्तुति (करते हैं)।

आपके दर्शनसे यह होता है, आपके दर्शनसे पाप नष्ट होते हैं, आपके दर्शनसे... अनेक प्रकारकी स्तुति करते हैं। परन्तु अंतरमें ज्ञायककी भेदज्ञानकी धारा भिन्न वर्तती है। वह बाहरमें दिखायी नहीं देती, परन्तु अंतरकी उसकी परिणति भिन्न वर्तती है।

मुमुक्षु :- ... धारा चालू है, इसलिये अन्दरमें उसे ज्ञायककी पकड़ चालू रहती है। तो उसी प्रकार जिज्ञासुको भी भगवानका बहुमान करते हुए...

समाधान :- भगवान वीतराग हो गये। उस वीतरागताका स्वयंको आदर है, स्वयंको रुचता है। उसकी रुचि अनुसार रहता है। मुझे आत्मा कैसे प्रगट हो? भगवानने जो आत्मा प्रगट किया, वैसे आत्माका मुझे आदर है। वह आत्मा मुझे कैसे प्रगट हो?

ऐसा ज्ञायक मुझे प्रगट हो, ऐसी ज्ञायककी परिणति मुझे प्रगट हो। ऐसी अंतरमें भावना (होती है)। भगवानने ऐसी दशा प्रगट की, वह दशा आदरने योग्य है।

वैसा आत्माका स्वरूप है। जैसे भगवान हैं, वैसा मैं हूँ। ऐसा आत्मा मुझे कैसे प्रगट हो? ऐसी रुचि उसे साथमें (होती है)। रुचिवानको ऐसी रुचि होनी चाहिये। उसे भगवानकी वीतरागी दशाका आदर है। भगवानका अनुपम स्वरूप है, वैसा मेरा स्वरूप है। वह मुझे कैसे प्रगट हो, ऐसी भावना साथमें होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- यानी उसमें उसकी रुचि पुष्ट होती है?

समाधान :- रुचि पुष्ट होती है। वीतराग दशाकी रुचि। आत्माकी रुचि पुष्टि होती है। जैसा भगवानका आत्मा है, वैसा मेरा आत्मा है। ऐसा आत्मा मुझे कैसे प्रगट हो? आत्माकी रुचिको पुष्ट करता है।

मुमुक्षु :- भगवानको देखकर उसे ऐसी भावना होती है कि ऐसा संपूर्णपना मैं कैसे प्राप्त करुँ।

समाधान :- हाँ, कैसे प्राप्त करुँ? ऐसा स्वरूप मुझे कैसे प्राप्त हो? भगवानने जो मार्ग अंतरमें प्रगट किया, वैसा मुझे कैसे हो? प्रारंभसे लेकर अंत तक भगवानने जो प्रगट किया, वह सब मुझे कैसे प्रगट हो? उसकी स्वयंकी रुचिको पुष्ट करे। वह स्वयं वीतरागी दशाका आदर करता है। उसे भेदज्ञानकी धारा नहीं रहती है, परन्तु अपनी भावना और रुचिको पुष्ट करता है। जिज्ञासु हो वह। बाकी तो जो ओघे-ओघे रूढ़िगतरूपसे करता हो, उसकी बात नहीं है। जिज्ञासु हो,.. भगवान जैसा स्वरूप मुझे कैसे प्राप्त हो?

जिन प्रतिमा जिन सारखी। जिन प्रतिमा जिन सारखी, अल्प भव स्थिति जाकी, सो ही जिन प्रतिमा प्रमाणे जिन सारखी। जिसकी भव स्थिति अल्प है वह जिन प्रतिमाको... जिनेश्वर जैसी... क्योंकि भगवानकी मुद्रा जो है समवसरणमें बैठे हों, वैसी मुद्रा जिन प्रतिमामें (होती है)। इस प्रकार भगवान याद आये। भगवानकी मुद्रा देखकर भगवान याद आये। उस प्रकार भगवानको जो स्वीकारता है कि यह भगवानकी ही मुद्रा है। मानो भगवान बैठे हों! ऐसा स्वीकारता है। अल्प भव स्थिति जाकी सो ही... अंतरमें रुचिपूर्वक।

मुमुक्षु :- वीतराग भगवानका बिंब देखकर उसे अन्दरमें चैतन्य..

समाधान :- इसे अपना चैतन्यबिंब याद आये। टंकोत्किर्ण चैतन्यबिंब भी ऐसा ही है। स्वरूपमें लीन हो जाये ऐसा है। बाहर जाना वह मेरा स्वरूप नहीं है। अंतरमें जाना वही इस चैतन्यदेवका स्वरूप है। जैसे भगवान हैं, वैसा ही मैं हूँ।

(भगवानके) द्रव्य-गुण-पर्यायको जाने, अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको जाने। भगवान कैसे

हैं? भगवानका द्रव्य कैसा? उनके गुण कैसे? उनकी पर्याय कैसी प्रगट हुयी? इस प्रकार स्वयंको विचार आनेका एक महा... स्वयं पुरुषार्थ करे तो। भगवानका स्वरूप चारों ओरसे विचारे। क्षण-क्षणमें ज्ञायक याद आये। रुचिवानको ऐसा होता है कि भगवान मेरे हृदयमें रहे। जैसे भगवान हैं, वैसा ही मेरा आत्मा है। उसे गहराईमें ऐसी रुचि रहती है कि मुझे मेरा आत्मदेव कैसे प्रगट हो? ऐसी रुचि अन्दर साथमें रहनी चाहिये। ऐसा पुरुषार्थ मैं कब करुँ? इस प्रकार पुरुषार्थ करनेसे प्राप्त होगा। इस प्रकार समझन साथमें होनी चाहिये। श्रावक गृहस्थाश्रममें हो, उसके बजाय मन्दिरमें जाये तो एक शुभ परिणाम होनेका कारण होता है। परन्तु जिज्ञासु हो तो विचार करनेका अवकाश है। जो नहीं समझता है, (तो) रूढ़िगतरूपसे तो सब चलता ही है।

मुमुक्षु :- शास्त्रमें तो एक ही पहलू आये, इसमें तो मानो पूरा स्वरूप जीवंतरूपसे ख्यालमें आये उस प्रकारसे ग्रहण करनेका कारण बनता है।

समाधान :- हाँ, कारण बनता है। चारों ओरसे विचार करनेका... पुरुषार्थ करे तो विचार कर सके। विचार करनेका कारण बने। भगवान जिनेन्द्र देवकी महिमा आनेसे भी विचार करनेका कारण बनता है। साक्षात् गुरुकी वाणी हो उसकी तो क्या बात करनी! ... समझा नहीं, उसमें साक्षात् वाणी कारण बनती है। भगवानकी, गुरुकी वाणी साक्षात् हो तो अन्दरसे चैतन्यको पलटनेका कारण बनता है। चैतन्यमूर्ति। परन्तु यह जिनेन्द्र प्रतिमाकी भी उतनी ही महिमा शास्त्रमें आती है। निद्धत और निकाचित कर्म, भगवान जिनेन्द्र देवकी प्रतिमासे छूट जाते हैं, ऐसा आता है। परन्तु उस प्रकारकी अपनी परिणति तैयार होनी चाहिये। निमित्त तो ... रूढ़िगतरूपसे नहीं होता है, समझनपूर्वक हो तो होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ooo

ट्रेक-७६

मुमुक्षु :- ... पूज्य भगवती माता! वर्तमान ... जो कोई हम जैसे पापी प्रवचनकार बन जाय और कहते हैं कि यह देशनाका निमित्त बन जाय तो गुरुदेवश्रीके प्रवचनमें तो ऐसा आता था कि जब-जब जिसको आत्माकी अंतर दृष्टि और अनुभव होगा, उस समयमें कोई अंतरदृष्टि गुरु ही निमित्त होता है। शास्त्र, अज्ञानी गुरु दिगंबरमें जन्मा हो, जो द्रव्यलिंगपनेमें भी आता हो, परन्तु सिद्धान्तमें तो अनुभूतिवाला गुरु ही उस अनुभूतिवालेके निमित्त होगा, ऐसा...

समाधान :- ऐसा नहीं बन सकता। जिसको स्वानुभूति नहीं हुयी, उसका वचन दूसरेको देशनालब्धिका कारण नहीं बन सकता। स्वयं व्याख्यान करे, सब करे परन्तु वह तो स्वाध्याय है एक प्रकारका। परन्तु उसका निमित्त तो जिसको प्रत्यक्ष स्वानुभूति हुयी हो, स्वानुभूतिकी दशा, भेदज्ञानकी दशा (प्रगट हुयी हो), उसकी देशनालब्धिका कारण बनता है। देव और गुरु, जिसको अंतरकी दशा प्रगट हुयी है, ऐसे गुरु देशनालब्धिका निमित्त बनते हैं। जिसे अंतर चैतन्य प्रगट हुआ है, उसकी वाणी निमित्त बनती है। वाणी मात्र सुनी हो उतना ही नहीं, स्वयंको अंतरमें कुछ अपूर्वता लगे। सुननेसे सबको देशनालब्धि हो जाय ऐसा नहीं है। जिसकी पात्रता हो उसे होती है।

बहुत बार वाणी तो सुनी है, भगवान मिले हैं, सब हुआ है परन्तु अंतरमें स्वयंकी तैयारीके बिना कुछ कर नहीं सका। गुरु मिले, भगवान मिले मात्र सुननेसे (नहीं होता है)। अंतरकी तैयारी करे.... निमित्त-उपादानका सम्बन्ध होना चाहिये। निमित्त तो प्रबल है। भगवानकी वाणीका निमित्त प्रबल है। गुरुकी वाणी...

गुरुदेव यहाँ पंचमकालमें पधारे। उनकी वाणीका निमित्त प्रबल था। परन्तु जो पात्र हो उसे देशनालब्धि प्रगट होती है। पात्रता स्वयंकी चाहिये। निमित्त और उपादानका सम्बन्ध (तब होता है)।

मुमुक्षु :- उस वक्त उसे अंतरमेंसे किसी भी प्रकारका अन्य भाव उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिये जो सुना वह उसे ख्यालमें आ गया हो, बादमें उस भाव परसे स्वयं अपने भावको जागृत कर सकता है?

समाधान :- प्रत्यक्ष वाणी सुनी हो, वह प्रत्यक्ष है। करना क्यों? स्वयं तैयारी

करनी, तो देशनालब्धि हो ही गयी है, ऐसा मान लेना। स्वयं जिज्ञासा तैयार करे और गुरुदेवने जो कहा कि मैं ज्ञायक हूँ, मैं आत्मा हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। अन्दर ऐसी दृढ़ प्रतीत करके भेदज्ञानकी धारा प्रगट करके स्वयं पुरुषार्थ करे तो समझ लेना कि देशनालब्धि हो गयी है।

जो अप्रगट है, उसे कहाँ खोजने जाना? उसका संतोष मानना,... अप्रगटको खोजना उसके बजाय जो प्रगट हो सकता है उसे प्रगट करना। पहले हमने सुना है, देशनालब्धि हुयी होगी कि नहीं? अब प्रगट होगी कि नहीं? ऐसा विचार करनेके बदले स्वयं ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ करनी। जिज्ञासा, लगनी लगानी। ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ करनी। भेदज्ञानकी धारा, द्रव्य पर दृष्टि, यथार्थ ज्ञान, यथार्थ दृष्टि सब तैयारी करनेका स्वयं प्रयत्न करना। सब पात्रता तैयार करनी। पुरुषार्थ करे तो फिर कोई रोकता नहीं। स्वयं पुरुषार्थ करे तो उसमें कोई रोकनेवाला नहीं है। स्वयं स्वतंत्र है, उसे जितनी भी तैयारी करनी हो (उसमें)। तैयारी करे तो समझ लेना, तैयारी हो जाय तो मान लेना कि देशनालब्धि हो गयी है। हुयी है या नहीं हुयी है, ऐसे अप्रगटको खोजने जानेके बावजूद स्वयं अन्दरसे तैयारी करनी।

भगवानकी वाणीका धोध बरसता हो, उनकी वाणीके निमित्तसे अनेक जीवोंको सम्यग्दर्शन होता था, अनेक जीव मुनिदशा अंगीकार करते, अनेक जीवोंको केवलज्ञान होता था, सब होता था। पुरुषार्थ स्वयं करे तो (होता है)।

वैसे ही गुरुदेवका धोध बरसता था, उसमें देशनालब्धि न हो ऐसा नहीं बनता। बहुत जीवोंको होती है। जिसकी पात्रता हो (उसे होती है)। उनकी वाणीका धोध बरसता था। उसे खोजने जाय और संतुष्ट होना, इसके बजाय स्वयं तैयारी वर्तमान पुरुषार्थ करके करे। ... वैसे गुरुदेवकी वाणी ऐसी थी कि अनेक जीवोंको रुचि तैयार हो जाये, स्वरूप सन्मुख हो जाये, ऐसी गुरुदेवकी वाणी थी। यह तो पंचमकाल है, इसलिये मुनिदशा और आगे बढ़ना बहुत दुर्लभ है। लेकिन गुरुदेवकी वाणीका धोध ऐसा था कि सबको रुचि प्रगट हो, अन्दरसे मार्ग प्राप्त हो जाये, हो सके ऐसा था। स्वयं अन्दरसे तैयारी करके, स्वयं अन्दरसे ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ करे, अपने हाथकी बात है।

... वह सब तो होता है। स्वयं पुरुषार्थ करे, पात्रता तैयार करे, वह सब अपने हाथकी बात है। गुरुदेवने कहा है वही कहना है। स्वयं अंतरमेंसे जो गुरुदेवने कहा है वह करना है। इसलिये स्वयंको पात्रता तैयार करनी है। उसका कारण स्वयंकी क्षति है, स्वयंका प्रमाद है। कोई रोकता नहीं है। स्वयं बाहर अटका है, अपनी रुचिकी क्षति है। स्वयंको उतनी लगनी नहीं लगी है कि मुझे आत्माका करना ही है। मुझे भवका अभाव कैसे हो? मुझे आत्मा कैसे प्रगट हो? ज्ञायक कैसे समझमें आये?

चैतन्यदेव कैसे समझमें आये? उतनी स्वयंको अन्दर लगी नहीं है, लगनी नहीं लगी है, उसकी जरूरत नहीं लगी है। बाहर रुका है, पुरुषार्थ उठना उसे मुश्किल पड़ता है। स्वयंको अन्दर लगी है तो करे बिना रहे नहीं कि यही करना है, दूसरा कुछ नहीं करना है। स्वयंकी क्षति है।

मुमुक्षु :- नवकार मन्त्रके अन्दर द्रव्यलिंगी मुनिराजको भी स्वीकार नहीं किया कि किया?

समाधान :- नवकार मन्त्रमें नमस्कार आते हैं उसमें? वह सब भावलिंगी मुनि हैं, भावलिंगी मुनि हैं, सच्चे मुनि हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु सब भावलिंगी मुनि हैं। उनको नमस्कार किया है।

मुमुक्षु :- भावलिंगी भगवंतोंको ही नवकार मन्त्रके अन्दर लिया गया है।

समाधान :- हाँ। मुनिको लिये हैं। अंतरमें जो छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते मुनिराज हैं। दिगंबर दशा अंतरमें और बाह्य। जिसे अंतरमें अंतरंग दशा प्रगट हुयी है, छठ्ठे-सातवाँ गुणस्थानकी, अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूति प्रगट होती है। अंतर्मुहूर्त बाहर आये, अंतर्मुहूर्तमें अन्दर जाते हैं। ऐसी जिनकी दशा है, ऐसे मुनिराजको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- ... हमारा कुछ कल्याण हो।

समाधान :- मार्ग तो एक ही है, आत्माकी रुचि बढ़ानी, ज्ञायकको पहचानना। आत्मा पर-द्रव्य पर दृष्टि करनी, भेदज्ञान करना, वही करनेका मार्ग एक ही है। श्रीमद्ने भी वही कहा है और गुरुदेवने वह कहा है। मार्ग तो एक (ही है)-आत्माको (पहचानना)। विभाव अपना स्वभाव नहीं है, (उससे) भिन्न पड़ना वह है।

मुमुक्षु :- वह बढ़ाने जाते हैं, वहाँ बाह्य औदयिक भाव और बाह्य व्यवहारमें अटक जाना होता है। मुमुक्षुकी कैसी भूमिका होनी चाहिये?

समाधान :- उसका रस स्वयंको अन्दर पड़ा है। चैतन्यकी ओरका रस बढाना चाहिये। बाहरके रस फ़िके पड़ जाये। अंतरका रस बढ़ाना चाहिये, रुचि बढ़ानी चाहिये। अन्दर उसे खटक रहनी चाहिये कि मुझे आत्मा कैसे पहचानमें आये? आत्मामें ही सर्वस्व है, बाहर कहीं नहीं है। आत्मा ही सर्वस्व अनुपम पदार्थ है और अद्भूत पदार्थ है, उसकी महिमा आनी चाहिये। बाहरमें उसे रस आये, (वह) रस फ़िके पड़ जाये तो स्वयंकी ओर झुके।

शुभ परिणाममें देव-गुरु-शास्त्र और अंतरमें मेरा शुद्धात्मा मुझे कैसे पहचानमें आये? ऐसी रुचि अन्दर बारंबार (होनी चाहिये), बारंबार खटक रहनी चाहिये कि करना अन्दर है, बाहर जाना वह चैतन्यका स्वरूप नहीं है। मुझे चैतन्य कैसे पहचाननेमें आये? ऐसी रुचि अन्दर (होकर) बारंबार दृढ़ता करनी चाहिये। एकत्वबुद्धि तो अनादिकी हो रही

है। अन्दरमें क्षण-क्षणमें स्वयं प्रयास करता नहीं। क्षण-क्षणमें एकत्वबुद्धि खड़ी है। थोड़ा करके उसे ऐसा लगता है कि बहुत किया। अंतरमें क्षण-क्षणमें, मैं ज्ञायक हूँ, यह (विभाव) मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसे महिमा लाकर होना चाहिये। ज्ञायक कोई महिमावंत पदार्थ है। बोलने मात्र नहीं, ज्ञायक ऐसा जाना, जानने मात्र ज्ञायक ऐसा नहीं। ज्ञायक एक अद्भूत पदार्थ है। उसकी महिमा लाकर बार-बार क्षण-क्षणमें उसकी लगनी लगे, बारंबार उस ओरका पुरुषार्थ करे तो होता है।

मुमुक्षु :- शास्त्र श्रवण ज्यादा होता है कि जिन प्रतिमाके दर्शन होते हैं कि तत्त्व विचार ज्यादा होते हैं? एक करने जाते हैं तो दूसरेमें अटक जाते हैं, दूसरेमें करने जाते हैं तो तीसरेमें अटक जाते हैं।

समाधान :- ध्येय एक शुद्धात्माका (होना चाहिये)। तत्त्वका विचार करे, परन्तु तत्त्व विचारे, पूजासे, उसकी भक्तिसे उसे यदि शान्ति लगती है और आत्माके विचार स्फुरित होते हो तो ऐसा करे। शास्त्र स्वाध्यायमें उसे रस लगता हो तो वैसे करे। स्वयंकी जिस प्रकारकी योग्यता हो, वहाँ रुके, परन्तु ध्येय एक (होना चाहिये कि) मुझे शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? तत्त्व विचार करके अन्दरमें निर्णय करे कि मैं ज्ञायक ही हूँ। सच्ची समझ कैसे हो? तत्त्व विचार करके अन्दर निर्णय करनेका प्रयत्न करे। बाकी जहाँ उसे रस लगे वहाँ रुके। यहीं रुकना या वहीं रुकना ऐसा नहीं होता।

सच्चा ज्ञान अन्दर हो, तत्त्वके विचार होने चाहिये। लेकिन प्रयोजनभूत (होना चाहिये)। ज्यादा जाने तो ही होता है, ऐसा नहीं है। एक आत्माको पहचाने तो उसमें सब आ जाता है। आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? यह पुद्गल क्या है?ल उसके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? दो तत्त्व भिन्न है। यह विभाव अपना स्वभाव नहीं है। अमुक प्रयोजनभूत तत्त्व जाने, इसलिये तत्त्व विचार तो बीचमें आये बिना रहते नहीं। परन्तु उसमें अधिक दृढ़ता लानेके लिये, उसे जहाँ रुचि लगे वहाँ रुके। जिन प्रतिमाके दर्शनमें उसे अधिक शान्ति और विचार स्फुरित होते हो तो वैसा करे। स्वाध्यायमें अधिक रस आता हो तो वैसे करे। बाकी विचार, निर्णय करके ज्ञायककी ओर झुकना है। सबमें ध्येय एक ही होना चाहिये कि मुझे भेदज्ञान हो और आत्माका स्वरूप कैसे समझमें आये? द्रव्य पर दृष्टि कैसे हो? ध्येय तो एक ही होना चाहिये। बाहरमें रुकनेसे सब हो नहीं जाता, करना अंतरमें है। गुरुकी महिमा करे। गुरुने क्या कहा है, उसके विचार करे। जहाँ उसे रस लगे वहाँ रहे। परन्तु तत्त्व निर्णय करके अन्दर आगे बढ़ना है।

मुमुक्षु :- उम्र बढ़ने लगी है, केश श्वेत होने लगे हैं, यदि स्वसंवेदन नहीं हुआ तो हमारी दशा क्या होगी? आपका आधार मिला, फिर भी प्राप्ति नहीं होती, क्यों होता नहीं? या फिर हमारा ज्ञायकका घोलन बोलने मात्र होगा या रटन जैसा होगा?

समाधान :- जूठा नहीं परन्तु प्रयास नहीं करता है। यथार्थ वस्तुके आगे तो सब ऐसा है, परन्तु वह जूठा नहीं है। स्वयंको भावना होती है। परन्तु सच्ची समझ करके ज्ञायकका आश्रय करनेके लिये प्रयास चाहिये, उतना प्रयास नहीं करता है, प्रमाद है। सत्के गहरे संस्कार पड़े, अपूर्व रुचि अंतरमेंसे हो, कुछ अपूर्वता लगे तो भी आगे जाकर उसे प्राप्त होनेका अवकाश है। परन्तु अन्दरमें उसे अपूर्वता लगनी चाहिये। अपूर्वता लगे, कुछ अलग है, उतना अन्दर आश्चर्य लगना चाहिये। अभी उसे होता नहीं है, प्रयास मन्द है, परन्तु यदि अंतरमें अपूर्वता लगी है तो भविष्यमें भी पुरुषार्थ करके प्राप्त करनेका अवकाश है। शास्त्रमें आता है, 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता'। अंतरकी प्रीतिसे तत्त्वकी बात सुनी है तो भी वह भावि निर्वाणका भाजन है। परन्तु वह अंतरकी प्रीति किस प्रकारकी? कोई अपूर्व प्रीति अंतरमेंसे (आये), जो कभी नहीं आयी, वैसी। इस प्रकार तत्त्वकी बात उसे कोई अपूर्व लगे, आश्चर्यकारी लगे और अन्दर आत्मा आश्चर्यकारी लगे तो भविष्यमें उसका पुरुषार्थ हुए बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- बात यथार्थरूपसे परिणमती नहीं है, तो सत्पुरुष प्रति प्रेममें न्यूनता है? या .. हो सकता है?

समाधान :- सत्पुरुष प्रति प्रेममें न्यूनता और आत्माका प्रेम न्यून है। निमित्त-उपादान एक है। अंतरमें उसे सत्पुरुष प्रति वैसी अपूर्वता लगी नहीं है, अपूर्व महिमा आयी नहीं है यानी कि अंतरमें आत्माकी महिमा, अपूर्वता नहीं आयी है। जैसा यहाँ उपादान और निमित्त,...

जिसे सत्पुरुषकी अपूर्व महिमा आये उसे आत्माकी अपूर्व महिमा आये बिना नहीं रहती। जिसे आत्माकी अपूर्व महिमा आये उसे सत्पुरुषकी महिमा आये बिना नहीं रहती। उसे सत्पुरुषकी महिमा, गुरुकी महिमा अपूर्व नहीं आयी है, तो उसे आत्माकी भी अन्दरमें नहीं लगी है। आत्माकी लगनी ही नहीं है। मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो, ऐसी गहरी लगनी नहीं है, इसलिये उसे सत्पुरुषकी अपूर्व महिमा आती नहीं है। अंतरमें लगे उसे महिमा आये बिना रहती। महिमा जिसे लगे उसे अंतरकी रुचि जागृत हुए बिना नहीं रहती।

मुमुक्षु :- सजीवनमूर्तिके लक्ष्य बिना कल्याण नहीं होता। बहुत लोग कहते हैं कि गुरुदेवकी टेपसे कल्याण हो? विडीयो टेपसे कल्याण हो?

समाधान :- सच्चा मार्ग मिले, मार्ग समझनेका कारण बनता है। समझनेका कारण बनता है, परन्तु देशनालब्धि तो प्रत्यक्ष सत्पुरुषसे प्राप्त होती है। देशनालब्धि होनेके बाद...

ज्ञानकी विशेष निर्मलताके लिये गुरुदेवकी टेप सबको साधन बनता है। जो सत्य मार्ग है उसे जाननेके लिये, शास्त्रके अर्थ क्या है, शास्त्रमें क्या आता है, गुरुदेवने सब

शास्त्रोंको खोले हैं। वह स्वयंकी मतिसे खोलने जाये तो खोल सके ऐसा नहीं है। गुरुदेवने सब शास्त्रोंके रहस्य खुल्ले किये हैं। वह सुननेसे शास्त्रोंमें क्या आता है, गुरुदेवने पूरा मार्ग क्या प्रकाशित किया है, वह विशेष-विशेष जाननेका कारण बनता है। विशेष-विशेष जाननेका, विशेष ज्ञान होनेका कारण बनता है।

अपने आप स्वाध्याय नहीं कर सकता हो, समझता नहीं हो, उसे टेपमेंसे एकदम समझमें आता है। बाकी सर्वप्रथम जो देशनालब्धि होती है, उसमें तो साक्षात् देव, साक्षात् गुरु, साक्षात् वाणीसे ही होती है।

मुमुक्षु :- प्रत्यक्ष ही चाहिये?

समाधान :- प्रत्यक्ष। अनादि कालसे जिसे प्रथम नहीं हुआ है उसे प्रत्यक्ष निमित्त हो तो होता है। बाकी उसे अमुक रुचि जागृत हो जाये बादमें विशेष जाननेके लिये गुरुदेवकी वाणी टेप रेकोर्डिंग कारण बनती है। कुछ भी शंका उत्पन्न हो तो वह टेपमेंसे शंका-समाधान सब होता है।

देशनालब्धि हुयी है या नहीं, उसका विचार करनेका कोई काम नहीं है। स्वयं अन्दर पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। देशनालब्धि तो प्रगट पकड़में आये ऐसा नहीं है। इसलिये स्वयं पुरुषार्थ करे, रुचि जागृत करे तो उसे देशनालब्धि हुयी है, ऐसा समझ लेना। स्वयं यदि अन्दरसे वर्तमानमें प्रगट करे तो उसमें देशनालब्धि साथमें आ जाती है। स्वयं करे तो होता है। गुरुका निमित्त प्रबल है, परन्तु पुरुषार्थ-उपादान स्वयं तैयार करे तो निमित्तको ग्रहण किया ऐसा कहनेमें आये। परन्तु यदि स्वयं पुरुषार्थ नहीं करता है, तो निमित्त तो प्रबल है, परन्तु स्वयं करता नहीं है।

मुमुक्षु :- .. रह गयी है, बहुत आश्चर्य जैसा लगता है। बहुत आश्चर्य जैसा लगता है। क्योंकि यह एक बड़ा ...

समाधान :- महाभाग्यकी बात है कि गुरुदेव यहाँ पधारे और यह वाणी रह गयी। गुरुदेवकी वाणी साक्षात् सुननेके लिये बरसों तक लोगोंको मिली है। वह भी महाभाग्यकी बात है। गुरुदेव सब मुमुक्षुके बीचमें रहकर बरसों तक वाणी बरसायी है, वह महाभाग्यकी बात है। ऐसी साक्षात् वाणी मिलनी मुश्किल है, इस पंचमकालके अन्दर। ऐसा साक्षात् गुरुका योग और साक्षात् वाणी मिलनी इस पंचमकालमें अत्यंत दुर्लभ है। उसमें वह मिली तो महाभाग्यकी बात है। फिर तैयारी तो स्वयंको करनी है।

(मुनिराज तो) जंगलमें विचरते हैं। गुरुदेव, महाभाग्यकी बात है कि यहाँ सबके बीच रहकर वाणी बरसायी, सबको उनकी ऐसी अपूर्व वाणी मिली, महाभाग्यकी बात है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-७७

समाधान :- .. स्वीकार किया तो सही, अंतरमेंसे उसे शुद्ध पर्याय प्रगट हो तो उसने स्वीकार किया है। त्रिकाल शुद्ध द्रव्य स्वयं सर्व प्रकारसे शुद्ध है। उसका स्वीकार किया है। अन्दर वैसी उस प्रकारकी अंतरमेंसे प्रतीत प्रगट हो, उसकी शुद्ध पर्याय प्रगट हो, उसकी स्वानुभूति प्रगट हो तो उसने वास्तविक रूपसे स्वीकार किया है। नहीं तो उसने बुद्धिसे विचार करके स्वीकार किया है।

सत्य स्वीकार तो उसे कहते हैं कि त्रिकाली द्रव्य पर बराबर यथार्थ श्रद्धा हो कि मैं तो अनादि अनन्त शुद्ध, सर्व प्रकारसे शुद्ध हूँ। पारिणामिकभाव अनादि अनन्त शुद्ध है। द्रव्य-गुण-पर्याय सर्व प्रकारसे शुद्ध है। वैसे प्रगट पर्यायमें शुद्धता है। सर्व प्रकारसे शुद्ध है, ऐसी प्रतीत उसे दृढ़ हो और उस प्रकारकी परिणति प्रगट हो तो उसने स्वीकार किया है। उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। ज्ञानमें सब जानता है। दृष्टि द्रव्य पर जाती है और ज्ञायककी भेदज्ञानकी परिणति, ज्ञायककी ज्ञायकधारा प्रगट हो, स्वानुभूति हो तो उसने स्वीकार किया है।

द्रव्यकी दृष्टिमें द्रव्य, गुण, पर्यायका भेद करके नहीं जानता है। वह तो एक द्रव्य पर दृष्टि रखी है। उसमें उसे सब साथमें आ जाता है। बाकी उसे भिन्न नहीं है। भेद करके दृष्टि भेद नहीं करती। ज्ञानमें सब जानता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान भी वर्तमानमें अभेद हो जाता है उस कालमें तो।

समाधान :- स्वानुभूतिके कालमें तो ज्ञान अभेद यानी ज्ञान स्वयंको जानता है, ज्ञान अपने गुणोंको जानता है, अपनी पर्यायको जानता है। उपयोग जो बाहर जाता था वह नहीं जाता है। बाकी स्वयं स्वको जाने, अपने गुणोंको जाने, अपनी पर्यायोंका जानता है। दृष्टि अभेद है, परन्तु ज्ञान तो सब अभेद-भेद दोनोंको जानता है। द्रव्य स्वयं अनादि अनन्त है। उसमें गुणका भेद वस्तुभेद (रूप) नहीं है, परन्तु लक्षणभेद है। उसे पर्यायमें अंश-अंशीका भेद है। वह जैसा है वैसा द्रव्यका स्वरूप ज्ञान बराबर जानता है।

स्वानुभूतिके कालमें अभेद हो जाता है इसलिये वह कुछ जानता नहीं है, ऐसा नहीं है। गुण, पर्याय आदि ज्ञान कुछ नहीं जानता है, ऐसा नहीं है। स्वानुभूतिके कालमें

सब जानता है। स्वानुभूतिमें स्वयं द्रव्यको अभेद जानता है, गुणोंका भेद जानता है, उसका वेदन स्वानुभूतिमें जानता है, शुद्ध पर्यायको जानता है। ज्ञान सब जानता है। ज्ञान पोतानी अनुभूतिकी पर्यायको ज्ञान न जाने तो दूसरा कौन जाने? ज्ञान सब जानता है। अभेद हो जाये इसलिये कुछ जानता नहीं है, उसकी वेदनकी पर्यायको भी नहीं जानता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- जानता हुआ अंतर आनंदके वेदनमें मग्न हो जाता है।

समाधान :- जानता हुआ। विकल्प नहीं है, निर्विकल्प है। आकुलता नहीं है, राग नहीं है। शांतदशा, शांतिमय दशा, आनंदमय दशाको जानता हुआ आत्मामें लीन है।

मुमुक्षु :- टोडरमलजी साहब फरमाते हैं कि प्रदेशका तो प्रत्यक्षपना होता नहीं, अनुभवके कालमें। मात्र रागरहित दशा अंतरमें प्रगट हुयी है, उस रागरहित दशामें ही आनंदका वेदन करके ज्ञान अन्दर रुक जाता है।

समाधान :- प्रदेशको जान नहीं सकता। (उसका कोई) प्रयोजन नहीं है। ज्ञान स्वयं स्वानुभूतिका वेदन करता है। राग छूट गया, (फिर भी) स्वयंका अस्तित्व है न? शून्य नहीं हो गया। राग छूट गया, परन्तु आत्मा स्वयं तो खड़ा है। निर्विकल्प दशामें आत्मा खड़ा है। वीतरागी दशामें राग छूट गया इसलिये अन्दरसे आत्माकी वीतरागी दशा प्रगट होती है। आंशिक राग छूट गया, पूर्ण वीतराग नहीं है, परन्तु आंशिक वीतरागी दशा है। इसलिये अपना वेदन है। अपनी वेदनकी दशाको जानता है। प्रत्यक्ष ज्ञान भले नहीं है।

प्रत्यक्ष ज्ञान केवलज्ञानीको है। प्रदेश आदि सब केवलज्ञानी जानते हैं। प्रत्यक्ष नहीं होने पर भी स्वानुभव प्रत्यक्ष है। मति-श्रुत परोक्ष होने पर भी उसकी स्वानुभूति प्रत्यक्ष है। वेदन अपेक्षासे प्रत्यक्ष है। वह किसीको पूछने नहीं जाना पड़ता। स्वानुभूति वेदन अपेक्षासे प्रत्यक्ष है। राग छूट गया इसलिये शून्य हो गया, ऐसा नहीं है। राग छूट गया तो अंतरमें जो आत्मा वीतरागी स्वरूप, निर्विकल्पस्वरूप था, ऐसे आत्माकी स्वानुभूति प्रगट हुयी। अद्भूत अनुभव दशा, सिद्ध जैसा अंश प्रगट होता है। जागृत दशा है। राग छूट गया इसलिये शून्य दशा नहीं है, जागृत दशा है।

मुमुक्षु :- जड़ जैसा नहीं हो गया।

समाधान :- हाँ, जड़ जैसा नहीं हो गया है। बाहरका जानना छूट गया और राग छूट गया इसलिये जड़ जैसा हो गया, कुछ जानता नहीं, ऐसा नहीं है। अपना वेदन स्वयंको प्रत्यक्ष है। केवलज्ञानी पूर्ण प्रत्यक्ष हैं। स्वयं स्वयंको जाने, अन्यको जाने, उनका ज्ञान प्रत्यक्ष हो गया है। क्योंकि उनको मनके विकल्प, रागका अंश मूलमेंसे

क्षय हो गया है। (नीचेकी दशामें) रागका अंश मूलमेंसे क्षय नहीं हुआ है, परन्तु अमुक अंशमें छूट गया इसलिये जागृत दशा है। स्वानुभूतिकी दशा है। स्वयं स्वयंकी अनुपम अद्भूत दशाको वेदता है कि जिसे कोई बाह्य उपमा नहीं दी जा सकती। चैतन्यकी स्वानुभूतिका कोई बाह्य उपमा लागू नहीं पड़ती। अद्भूत अनुपम दशा है।

मुमुक्षु :- ... प्राप्त कर ले और मनुष्य प्राप्त न करे तो मनुष्यमें ज्यादा बुद्धि हो तो ज्यादा अटकता है?

समाधान :- ऐसा कुछ नहीं है कि मनुष्य ज्यादा अटके। इस पंचम कालमें ऐसी योग्यतावाले जीव है कि उन्हें दुर्लभ हो पड़ा है। मनुष्य ज्यादा अटके ऐसा नहीं है। वर्तमानमें तो मेंढक भी नहीं कर सकता है। सबको दुर्लभ हो गया है। और मनुष्योंको दुर्लभ हो गया है।

चतुर्थ काल जो सुलभ काल था, जीवोंकी पात्रता अधिक उग्र थी। ऐसी पात्रतावाले जीव थे। साक्षात् भगवानका योग था। साक्षात् केवलज्ञानीका योग था, चतुर्थ काल था और जीव भी ऐसी तैयारीवाले थे। इसलिये कितने ही मनुष्योंको तो होता है, परन्तु तिर्यंच जैसोंको भी होता है, ऐसा काल था। मनुष्योंको क्षण-क्षणमें जल्दी हो जाता था, परन्तु मेंढक जैसे तिर्यंचोंको भी होता था। वैसा वह काल सुलभ काल (था) और ऐसी पात्रतावाले जीव थे। यहाँ जो जन्म लेते हैं, वह ऐसी ही पात्रता लेकर आते हैं कि जिन्हें सब दुर्लभ हो जाता है। इसलिये मनुष्योंमें उतनी तैयारी नहीं है और तिर्यंचोंमें तो तैयारी तो बिलकुल नहीं दिखाई देती। तिर्यंचोंमें समझना अत्यंत कठिन है। मनुष्योंको दुर्लभ है, तिर्यंचोंको दुर्लभ है। चतुर्थ कालमें अनेक मनुष्योंको होता था और तिर्यंचोंको भी होता था। सबको होता था।

... पूरा होता है। चारित्र पूर्ण होता है, तब पूर्ण केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है।

मुमुक्षु :- मोक्षमार्ग कहाँ-से शुरू होता है?

समाधान :- मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शनसे शुरू होता है।

मुमुक्षु :- आज सुबह २३२ गाथा गुरुदेवके प्रवचनमें चली थी। उसके अंतर्गत आया था कि...

समाधान :- सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन जब हुआ तब मोक्षमार्ग शुरू होता है। चारित्रकी अपेक्षासे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है, पूर्ण बादमें होता है। अंश तो पहले प्रगट होता है। पहले अंश प्रगट होता है, पूर्णता चारित्र होवे तब होती है। मार्ग शुरू हो जाता है। और केवलज्ञानकी अपेक्षासे चारित्रकी अपेक्षासे मोक्षमार्ग मुनिकी दशामें होता है।

रुचि तो स्वयंको करनी पड़ती है। बाहरकी रुचि लगी है। आत्माकी महिमा नहीं

आती, आत्माको पीछाननेका विचार नहीं करता, आत्माकी महिमा नहीं आती है, रुचि कहाँ-से लगे? महिमा सब बाहरकी है।

मुमुक्षु :- कोशिश तो बहुत करते हैं।

समाधान :- कोशिश करता है तो भी पूरी कोशिश नहीं होती। कारण थोड़ा देता है, कार्य कहाँ-से आवे?

मुमुक्षु :- इस जीवको आत्माकी महिमा कैसे आये? आत्माका विश्वास कैसे बैठे?

समाधान :- विश्वास (आ सकता है), आत्माके स्वभावको पीछाने तो विश्वास (आता है)। बाहर देखे तो बाहर कहाँ (है)? भीतरमें देखे तो कहीं शांति नहीं है, आकुलता-आकुलता लगती है। आकुलता लगे तो सुख कहाँ है? सुख-सुख करता है, सुख बाहरसे नहीं मिलता। सुख तो भीतरमें-आत्मामें होता है। आत्मामें सुख होता है। ऐसी प्रतीत करनी चाहिये, ऐसा निर्णय करना चाहिये, स्वभावको पीछानना चाहिये। सब नक्की करना चाहिये, तब हो सकता है। बाकी बाहर तो बहुत करता है, परन्तु भीतरमें आकुलता लगती है। तो आकुलता आत्माका स्वभाव नहीं है। शान्ति, सुख आत्माका स्वभाव है। उसका विचार करके निर्णय करना चाहिये।

मुमुक्षु :- सुख स्वभावको देखे तब सुखकी महिमा आये। संसारसे दुःख लगे...

समाधान :- आत्माकी रुचि लगे, आत्मामें सब पड़ा है, आत्मा अनुपम तत्त्व है, आत्मा अद्भूत तत्त्व है। जगतसे, विभावसे भिन्न आत्मा कोई अद्भुत अनुपम तत्त्व है। उसका आश्चर्य लगना चाहिये, उसकी महिमा लगनी चाहिये, तब हो सकता है।

मुमुक्षु :- एक-एक बोलमें बहुत आया है। बहिनश्रीके वचनामृतमें आपकी किताबमें एक-एक बोलमें महिमा भरी हुयी है।

समाधान :- ऐसी स्वानुभूति, सम्यग्दर्शन, आत्माकी अपूर्वता, अद्भुत, अनुपम... सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती गृहस्थाश्रममें होवे तो भी आत्माकी स्वानुभूति होती है। बादमें उसकी पूर्णता करनेके लिये मुनिदशा (आती है)। चारित्र कम है तो पूरी लीनता नहीं होती है। लीनता मुनिदशामें होती है। इसलिये मोक्षमार्ग वहाँसे शुरू होता है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे पहले शुरू हो जाता है। शुरूआत तो वहाँसे होती है। सम्यग्दर्शनमें भवका अभाव हो जाता है। आत्मा अनुपम अपूर्व है, उसकी महिमा आवे, उसकी लगनी लगे तब हो सकता है।

मुमुक्षु :- सर्व समर्पण करे तब आत्मा मिले। ...

समाधान :- हाँ। इधर-ऊधर कहीं-कहीं रुक जाता है, परकी महिमा आती है, आत्माकी महिमा आती नहीं। आत्माको सर्व समर्पण कर दे। बस, आत्मा ही कोई अपूर्व अनुपम वस्तु है। उसको बतानेवाले गुरुदेव तो अपूर्व वाणी बरसा गये हैं।

मुमुक्षु :- उनका उपकार तो जीवनमें कोई भूला नहीं सकता।

समाधान :- हाँ, बरसों तक वाणी बरसायी, ऐसा अपूर्व मार्ग दर्शाया। आत्माका अपूर्व मुक्तिका मार्ग (दर्शाया)। सबको जागृत किया। पूरे हिन्दुस्तानमें सबको जागृत किया। रुचि बाहरमें क्रियामें थे। भीतरमें मोक्षका मार्ग है। गुरुदेवने बहुत समझाया है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! कर्ताबुद्धि कैसे टूटे? दिन भर करुँ-करुँ कर्ताबुद्धि कैसे टूटे?

समाधान :- कर्ताबुद्धि, ज्ञायकको पीछने तब कर्ताबुद्धि टूटती है। मैं ज्ञाता ही हूँ। ज्ञाताका विश्वास आना चाहिये, ज्ञाताकी प्रतीत आनी चाहिये कि मैं ज्ञायक ही हूँ। मैं तो जाननेवाला, मैं तो उदासीन ज्ञाता ही हूँ। मैं परको कर नहीं सकता। पर तो स्वतंत्र द्रव्य है। पुद्गल, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र है। उसके गुण-पर्याय सब स्वतंत्र है। मैं किसीको बदल सकूं ऐसी शक्ति मेरेमें नहीं है। सबके पुण्य-पापके उदयसे सब चलता है। तो भी मैं करुँ-मैं करुँ करता है।

मैं तो ज्ञायक हूँ। ज्ञायककी प्रतीत आवे, ज्ञायकका विश्वास आवे, तब हो सकता है। कर्ताबुद्धि टूटे... मैं इतना सत्य परमार्थ कल्याण है कि जितना यह ज्ञान है। ज्ञायकमें संतुष्ट हो, उसमें तृप्त हो, उसमें तू अन्दर देख, अनुपम सुख प्रगट होगा। ज्ञानमात्र आत्मामें संतुष्ट हो जा।

मुमुक्षु :- सत्संग, समागममां महत्त्व श्रीमद् राजचंद्रजी बताते हैं, उस पर..

समाधान :- अनादि कालसे अपना पुरुषार्थ मन्द है तो बाहर असत्संगमें ऐसे परिणामकी असर... सत्संगमें यथार्थ विचार करने, सत्य तत्त्व समझनेका योग मिल, सच्ची वाणी मिले, इससे विचार करनेका स्वयंको प्रयत्न हो। यह सत्संगका महत्त्व है। असत्संगमें तो विचार (नहीं चलते हैं)। ऐसे भी पुरुषार्थ मन्द है, जहाँ-तहाँ विचार चले जाते हैं, निर्णय नहीं हो सकता है। इसलिये जिन्होंने मार्ग समझा है, जो मार्ग गुरुदेव दर्शाते थे, यथार्थ बात करते हैं, परिणाम उसमें जाये तो विचार करे, रुचि बढ़े, ऐसा सब होता है। मैं आत्माको कैसे प्राप्त करुँ? ऐसा तो सत्संगमें हो सकता है।

मुमुक्षु :- अन्दरमें तड़प लगे तो ऐसे सत्संगमें जायेगा।

समाधान :- हाँ, स्वयंको तड़प लगे, लगनी लगे तो सत्संगमें जायेगा। नहीं तो कुटुम्बमें, व्यापार-धंधामें परिणाम चला जाता है। गुरुदेवने बहुत दिया है।

मुमुक्षु :- वे तो अद्भुत कर गये हैं! अभी भी देखे तो कण-कणमें देखकर आँसु बहते हैं। गुरुदेवने चारों ओरसे कितनी करुणा पूरा भारत ...

समाधान :- ४५-४५ यहाँ रहकर.. कण-कणमें गुरुदेव। स्वाध्याय मन्दिरमें विराजते थे। वे विराजते थे तब सब कुछ अलौकिक था।

मुमुक्षु :- बहुत दे गये हैं, गुरुदेव तो दे गये, अब पुरुषार्थ करे यह जीव और

सुधरे...

मुमुक्षु :- आत्माकी अनुभूतिका स्वाद कैसा है?

समाधान :- आत्माकी अनुभूतिका स्वाद, उसकी कोई उपमा नहीं हो सकती है। आत्मानुभूतिकी कोई उपमा नहीं है। वह तो अनुभव तत्त्व है। जड़ पदार्थकी उपमा चैतन्यको मिल नहीं सकती। विभावका, कोई रागका, कोई देवलोकके देवोंका या किसीकी भी उपमा उसे लागू नहीं पड़ती। वह तो अनुपम है। चैतन्यतत्त्व कोई आश्चर्यकारी तत्त्व है। उसका स्वाद अनुपम, उसका ज्ञान अनुपम, अगाध ज्ञानसे भरपूर, एक समयमें लोकालोकको जाननेवाला, ऐसी अनंत शक्ति (है)। अनन्त गुणोंसे भरपूर अद्भुत अनुपम अनन्त गुणोंसे भरपूर (है)। वह बोलनेमें कोई उपमामें नहीं आता है।

मुमुक्षु :- जिसने स्वाद चखा वही जाने, दूसरा नहीं जान सकता।

समाधान :- उसकी उपमा नहीं हो सकती है। वह तो अनुपम अमृत स्वाद। अनुपमकी उपमा नहीं होती। विकल्प छूट गया, निर्विकल्प स्वरूप आत्मामें लीन हो गया, उसका स्वाद वही जानता है। जगत-दुनियासे कोई अलौकिक दूसरी दुनियामें चला जाता है।

मुमुक्षु :- अलौकिक जीवन है ज्ञानीका!

समाधान :- हाँ, अलौकिक है।

मुमुक्षु :- अज्ञानी थोड़ी पहचान सकता है।

समाधान :- ... स्वानुभूति हो सकती है, सम्यग्दर्शन हो सकता है।

मुमुक्षु :- इस जीवको भावसंवर कैसे प्रगट हो?

समाधान :- भावसंवर तो.... सबका एक ही मार्ग है। सबका एक ही है। जब ज्ञायकको पीछाने तब संवर होता है। सबकी एक ही बात है। मुक्तिका मार्ग एक ही है। संवरका मार्ग, निर्जराका मार्ग, सम्यग्दर्शन, सबका मार्ग... जो मार्ग सम्यग्दर्शनका, वही मार्ग चारित्रका, सब एक ही मार्ग है, दूसरा नहीं है। एकमें कोई दूसरा मार्ग और दूसरेमें दूसरा मार्ग ऐसा नहीं है।

आत्मा ज्ञायकको भेदज्ञान कर (पहचाने)। 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन'। जो सिद्ध हुए वे भेदविज्ञानसे हुए, नहीं हुए वे भेदविज्ञानके अभावसे नहीं हुए। एक ही मार्ग है। भेदज्ञान करके आत्माको पीछाने, द्रव्य पर दृष्टि करे। बस, ज्ञायकको भिन्न जाने, ज्ञायककी भिन्न परिणति (प्रगट करे)। क्षण-क्षणमें भिन्न (पड़े), खाते-पीते, निद्रामें, स्वप्नमें भिन्न रहे। स्वानुभूति प्रगट होवे तब भावसंवर होता है। इसमें विशेष लीनता होवे तो विशेष निर्जरा होती है। सम्यग्दर्शन (होनेके बाद) विशेष लीनता होवे तब चारित्रदशा होती है। मार्ग तो एक ही है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इसका दूसरा, इसका दूसरा

(ऐसा नहीं है)। एक आत्माको पीछाने (उसमें) सब आ जाता है। और सबको पीछाने, आत्माको पीछाने नहीं तो कुछ जाना नहीं। एक आत्माको पीछाने उसमें सब आ जाता है। आत्माको जाना उसने सब जाना और आत्माको नहीं जाना तो ग्यारह अंगका ज्ञान हुआ तो भी कुछ नहीं हुआ।

मुमुक्षु :- आत्मा सुखी तो नहीं हुआ।

समाधान :- नहीं हुआ। आगमज्ञान (करे), परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि ज्यादा खूब जाने तो मुक्तिका मार्ग हो सकता है। अमुक प्रयोजनभूत जाने तो भी आत्माका स्वभाव प्रगट होता है। आगमज्ञान होता है। भगवानकी वाणी, भगवानने क्या कहा है, शास्त्रमें क्या आता है, आगमज्ञान आता है। विशेष जाने तो अच्छा है, थोड़ा जाने तो भी हो सकता है।

शिवभूति मुनि कुछ जानते नहीं थे। एक शब्दका ज्ञान भी भूल जाते थे। मारुष, मातुष। राग-द्वेष नहीं करनेका गुरुने कहा तो वह भी भूल गये। मासतुष हो गया। उसका भाव समझ लिया। औरत दाल और छीलका अलग करती थी। ऐसा मेरे गुरुने कहा कि आत्मा भिन्न है और यह विभाव भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान करके अंतरमें ऊतर गये। मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको जाने।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-७८

मुमुक्षु :- ... कोई सरल शास्त्र ऐसा हो, जिसके लिये समय कम हो... सरल शास्त्र कोई?

समाधान :- समयसारमें बहुत आ जाता है। समयसार शास्त्रमें। और गुरुदेवके प्रवचन हैं, उसमें भी बहुत आता है। गुरुदेवने प्रवचनोंमें शास्त्रोंके रहस्य खोले हैं, उसमें बहुत आता है।

मुमुक्षु :- प्रवचन रत्नाकरमें कितना आया है।

समाधान :- बहुत आता है।

मुमुक्षु :- बहुत सरलसे सरल..

समाधान :- सरल हो जाता है। गुरुदेवने बहुत शास्त्रोंके रहस्य खोल-खोलकर सरल कर दिया है सब। मोक्षमार्ग प्रकाशक पढे तो वह भी अच्छा है। गुरुदेवने बहुत वाणी बरसायी है। कोई शंका न रहे उतना स्पष्ट कर-करके बहुत बताया है।

मुमुक्षु :- खोलके रख गये हैं एक-एकको...

समाधान :- एक-एक बातको खोल-खोलकर बताया है, बहुत बताया है।

मुमुक्षु :- माफ करना, प्रश्न जरा ऐसा है कि, मूर्ति वगैरहका प्रकरण बीचमें आ जाता है। इसका थोड़ा समाधान आपसे हो सके।

समाधान :- क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :- यह भावि तीर्थंकरकी जो मूर्ति है यहाँ पर, तो उसका प्रकरण आ जाता है। उस सम्बन्धमें आपसे कुछ... अपनने जो घातकी खण्डकी जो भावि मूर्ति बनायी है.. हम लोगोंको ऐसी कषायवाली बातें आ जाते हैं,... जैसे की हम तीर्थ यात्रामें जाते हैं, तो लोग कहते हैं कि ये लोग अपने नहीं है, इनको मत घूसने दो।

समाधान :- भावि तीर्थंकरकी प्रतिमा विराजमान की है न। भावि तीर्थंकर तो घातकी खण्डमें बहुत होते हैं। घातकी खण्डमें, जम्बू द्वीपमें, पुष्कर द्वीपमें भूत-वर्तमान-भावि सब तीर्थंकरों बहुत होते हैं। जघन्यमें बीस और उत्कृष्टमें तो बहुत होते हैं। हर क्षेत्रमें होते हैं। यहाँ तो भावि तीर्थंकरकी प्रतिष्ठित की है। भावि तीर्थंकर तो सब

हो सकते हैं।

भरत चक्रवर्तीने भूत-वर्तमान-भावि तीर्थंकरोंकी प्रतिमा विराजमान की है। शास्त्रमें आता है। भरत चक्रवर्तीने विराजमान की है। भूत-वर्तमान-भावि तीन कालकी चौबीसीकी प्रतिमा उन्होंने विराजमान की है। इसमें तो सबका भाव था। परन्तु प्रतिमा तो भावि तीर्थंकरकी प्रतिमा विराजमान की है। उसमें कोई नाम तो है नहीं। भावि तीर्थंकरकी प्रतिमा घातकी खण्डकी विराजमान की है। सब लोग विरोध करते हैं तो क्या करे? सबको भावना हुयी तो विराजमान की। सबने विरोध किया तो क्या करे?

मुमुक्षु :- तो विरोध कषायमें जायेगा?

समाधान :- वह तो सबकी बात सब जाने, और क्या करे? विरोध किसमें जायेगा? जिसको आत्माका कल्याण करना है, वह तो ऐसी बात नहीं करते।

मुमुक्षु :- उस पर वज़न नहीं देना।

समाधान :- तीर्थंकर भगवान तो सब क्षेत्रमें होते हैं।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! हमको तो इतनी उपसर्ग झेलनी पड़ती है कि कहीं भी जायें...

समाधान :- .. आदरने योग्य है। जिनकी मुद्रा है, प्रतिष्ठित नहीं हो तो भगवानकी मुद्रा भी आदरणीय है। तो यह तो वीतरागी प्रतिमा है। इसमें कोई अनादर करना अच्छा तो नहीं होता है। भगवानकी मुद्रा प्रतिष्ठित नहीं हुए तो भी भगवानकी मुद्रा है तो उसका अनादर नहीं करना। शास्त्रमें आता है, पानीमें ले गये तो भी अशातना होती है। भगवानकी मुद्रा तो... भगवानकी मुद्रा है, प्रतिमा है। जिनेश्वर मुद्रा है, उसमें...

मुमुक्षु :- दूसरे लोगोंको मतलब जो अपना विरोध करते हैं, उनको कैसे समझाये ऐसी बात?

समाधान :- जिसको आत्माका कल्याण करना है... सब बाहरकी बातमें सब सबकी जाने। सबका झघड़ा सबके पास रहो। अपने अपना कल्याण करना है। ऐसे लोगोंको पकड़कर, जूठा आग्रह करके कोई करे तो करने दो, क्या करे? अपना कल्याण अपनेको करना है। सबको संप्रदायका बन्धन हो गया।

मुमुक्षु :- यह भी एक अलग गूठ बन गया। उसमें भी गूठबाजी हो गयी। ये मूर्तिको माननेवाले हैं...

समाधान :- .. क्या है कोई विचारता नहीं है। ... बात करते हैं। सबको क्रिया रुचती थी तो क्रिया करनेवाले विरोध करते थे कि ये मुनिको नहीं मानते हैं। यह तो कानजीस्वामीको मानते हैं। ये क्रियाको नहीं मानते हैं, ये तो सब बात उड़ाते हैं। ऐसी बात करते हैं। सत्य बात आवे तब सब विरोध करते ही हैं, होता ही है।

मुमुक्षु :- .. बहुत बाधाएँ आती है। पूर्वमें ऐसे ही..

समाधान :- क्या करे? अखबारमें सब आता है। दूसरे गाँवमें देखो, सनावदमें, इन्दौरमें... उसमें विरोध किया। रथमें भगवानको, कुन्दकुन्दाचार्यकी प्रतिमा विराजमान की तो एक ओर भीतरमें भगवानकी प्रतिष्ठा हुयी और कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी। खीड़कीमें पत्थर और धमाल हुयी। भगवानकी प्रतिष्ठामें विघ्न डाला। दरवाजे तोड़-तोड़कर...

मुमुक्षु :- अभी समयसार नदीमें डालते हैं।

समाधान :- शास्त्र नदीमें डाले तो वह क्या है? शास्त्रोंकी भी अशातना करते हैं। भगवानके मन्दिरमें प्रतिष्ठा हो तो उसकी अशातना करते हैं। अपनी पक्कड़ ग्रहण कर-करके.... आचार्यदेवके शास्त्र हैं, कोई घरके थोड़े ही है। शास्त्रकी अशातना करते हैं।

मुमुक्षु :- एक अक्षर इधर-ऊधर नहीं है। जिनवाणीका..

समाधान :- कुन्दकुन्दाचार्यकी प्रतिष्ठा करते हैं, आचार्यदेवकी और भगवानकी तो सबके सर पर पत्थर (मारे)। किसीको खुन निकला, ऐसा किया था। क्या करे? यहाँ छपे हैं तो गुरुदेवके हो गये? वह तो आचार्यदेवके शास्त्र हैं। आचार्योंके शास्त्र हैं।

समाधान :- ... आठवाँ द्वीप है, वहाँ ऐसा मन्दिर है। वहाँ शाश्वत जिनालय हैं। किसीने बनाया नहीं है। कुदरतकी रचना ही ऐसी है। जिनालय रच गये हैं। रत्नके जिनालय हैं। नीचे सब पर्वत हैं। रतिकर, अंजनगिरी आदि पर्वत हैं। उन पर्वतों पर जिनालय हैं। उन जिनालयोंके अन्दर प्रतिमाएँ हैं। पाँचसौ-पाँचसौ धनुषके हैं। ऐसे बड़े-बड़े प्रतिमा। जैसे भगवान समवसरणमें बैठे हों, वैसे ही यह शाश्वत (प्रतिमाएँ हैं)। समवसरणमें (भगवान विराजमान हों) उसी तरह भगवान बैठे होते हैं। किसीने बनाया नहीं है। जैसे पत्थर कुदरती है, वैसे रत्नरूप बने हैं। प्रतिमाओंके आकारमें वह रत्नकी प्रतिमाके आकार परिणमित हो जाते हैं। ऐसे ५२ जिनालय हैं। एकमें १०८-१०८ प्रतिमाएँ हैं। नंदीश्वर है, यहाँ जम्बूद्वीप है। दूसरा है, पुष्कर द्वीप, घातकी खण्ड है। ऐसे आगे-आगे आठवाँ नंदीश्वर द्वीप है, वहाँ शाश्वत जिनालय हैं।

वहाँ मनुष्य नहीं जा सकते हैं, देव जा सकते हैं। मेरु पर्वत है वह जम्बू द्वीपके बीचमें है। पाँच मेरु है। उसमें भी शाश्वत जिनालय हैं। रत्नकी प्रतिमाएँ हैं। जैसे भगवान हैं, वैसा ही पद्मासन, नासाग्र दृष्टि (होती है), मात्र वाणी नहीं होती। बाकी सब छत्र, चँवर सर्व प्रकारसे भगवान कमल पर विराजमान होते हैं। ऐसा होता है। भगवानकी रचनारूप अर्थात् भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं, तो कुदरतकी रचना भी भगवानरूप कुदरती होती है, जगतके अन्दर। वहाँ मन्दिर होते हैं?

मुमुक्षु :- हाँ, मन्दिर है।

समाधान :- नंदीश्वरमें कुदरती शाश्वत भगवान हैं। पंच परमेष्ठी भगवान हैं। रुचि कैसे हो? आत्मा जगतमें सर्वोत्कृष्ट है। पंच परमेष्ठी भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं। पंच

परमेष्ठी पर वैसी महिमा आये और जैसे भगवान हैं, वैसा स्वयंका आत्मा है। जैसे भगवानके द्रव्य-गुण-पर्याय हैं, वैसे अपने हैं। ऐसी रुचि हो, आत्माकी महिमा आये, भगवानकी महिमा आये, सब हो तो उसमें...

बिना विचार किये माला करे तो उसमें तो परिणाम कहाँ जायेंगे? भगवानकी उतनी भक्ति होनी चाहिये, पंच परमेष्ठीकी महिमा होनी चाहिये, तो परिणाम वहाँ रहे। आत्माकी रुचि नहीं हो, संसारकी रुचि कम नहीं हुयी हो, मात्र ओघे-ओघे बाहरसे अपने कुछ कर ले, क्रियामात्र करता हो और परिणाम तो कहीं के कहीं (भटकते हो)। अन्दर सब रस पड़ा हो। भगवान पर उतनी भक्ति नहीं हो, आत्माकी रुचि नहीं हो (कहाँसे हो)?

मुमुक्षु :- विचार करे, लेकिन ऐसा होता है कि यह गलत काम है, अपने सत्य करे। गलतमेंसे सत्य और शुभ-अशुभ ही होते रहते हैं। वहाँसे आगे नहीं बढ़ा जाता। ऐसा होता है कि यह करेंगे तो कर्म बन्धेंगे, इससे कर्म छूटेंगे, परन्तु उससे आगे कुछ नहीं होता।

समाधान :- आत्माकी रुचि अन्दर होनी चाहिये। यह सब परद्रव्य है, शुभाशुभ भाव मेरा स्वरूप नहीं है। मैं भिन्न जाननेवाला ज्ञायक हूँ। ऐसे रुचि होनी चाहिये। रस बाहरका पड़ा है, अन्दर चैतन्यका रस नहीं आता, उसकी महिमा नहीं लगती।

मुमुक्षु :- सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टिकी दशा कैसी होती है?

समाधान :- उसका बाहरका लक्षण तो क्या होगा? परन्तु अंतरमें उसे एकदम आत्माकी लगनी लगी हो। एक चैतन्य.. चैतन्यके सिवा कुछ रुचता नहीं हो, उसे अन्दरसे बारंबार भेदज्ञानका अभ्यास चलता हो। पुद्गल शरीर सो मैं नहीं, मैं आत्मा हूँ। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा ऊपर-ऊपरसे नहीं, परन्तु उसे गहराईसे (होता है)। यह चैतन्य स्वभाव मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ऐसा बारंबार, उसे बारंबार अंतरमेंसे ऐसी खटक, ऐसा अभ्यास उसे बारंबार-बारंबार चलता है। आत्माके सन्मुख बारंबार (होता हो)। आत्मा कैसे ग्रहण हो? उसकी दृष्टि बारंबार आत्माकी ओर जाती हो। कैसे आत्मा ग्रहण हो? मुझे आत्मा कैसे ग्रहण हो? मुझे आत्मा कैसे ग्रहण हो? उसका ज्ञान हो, उसमें लीन होऊँ। क्षण-क्षणमें मुझे आत्मा ही प्रगट हो, दूसरा कुछ नहीं चाहिये, मुझे एक आत्मा ही चाहिये। इतना अन्दरसे गहराईसे होता हो। मैं परपदार्थका कुछ नहीं कर सकता। मेरे स्वभावका कर्ता मैं (हूँ)। परपदार्थका जैसा होनेवाला हो वैसा होता है, मैं तो ज्ञायक ज्ञाता हूँ। लेकिन वैसी परिणति प्रगट करनेके लिये उसे अंतरमेंसे गहराईसे खटक लगती हो।

बारंबार उसका अभ्यास, गहराईसे अभ्यास चलता हो। आत्मा ग्रहण हुआ कि होगा,

ऐसी अन्दर उसकी दशा होती है। एकदम भिन्न कैसे होऊँ? उसे कहीं रस नहीं होता। जो-जो विकल्प आवे उसमें निरसता लगे और आत्मामें ही रस लगे। आत्माका स्वभाव कैसे ग्रहण हो? उसकी सन्मुखता हर वक्त आत्माकी ओर जाती हो। मुझे आत्मा कैसे ग्रहण हो? मुझे आत्मा कैसे ग्रहण हो? बारंबार उसकी दृष्टि, उसका उपयोग बारंबार आत्माको ग्रहण करनेकी ओर उसके विचार चलते हैं, उसकी दृष्टि बारंबार जाती है। अंतर लक्षण तो वह है कि अंतरकी परिणति, उसका हृदय भीगा हुआ होता है। यह सब रस टूट गये हो, अंतरमेंसे एकदम आत्माकी गहरी रुचि जागृत हुई हो।

मुमुक्षु :- स्वसंवेदनकी दशा बारंबार आती है, उन्हें किस कारणसे बारंबार आती है?

समाधान :- बारंबार आती है, उसकी परिणति विभावसे बिलकूल... उसे विकल्पमें कहीं रुचता नहीं है। कहीं खड़े रहनेका स्थान नहीं है। उसकी परिणति सबसे छूट गयी है। सब संकल्प-विकल्प बाहरके (छूट गये हैं)। सब कषाय, प्रत्याख्या, अप्रत्याख्यान सब कषाय एकदम क्षय नहीं हुए हैं, परन्तु नहींके बराबर हो गये हैं। मात्र संज्वलन है, एकदम पतला संज्वलन। अशुभ तो है ही नहीं। वह तो सत्तामात्र होते हैं। थोड़े-थोड़े उदय हो तो, वह तो एकदम गौण (हो गये हैं)। उन्हें उपयोगमें नहीं आते हैं, उस प्रकारके हो गये हैं। शुभ परिणति है तो भी उस शुभ परिणतिमें भी बहुत रुकते नहीं है। बारंबार स्वानुभूतिकी ओर जाते हैं। उन्हें कहीं रुकनेका स्थान बाहरमें नहीं है।

उन्हें कहीं अच्छा नहीं लगता है। अन्दर चैतन्यकी स्थिरता, लीनता बहुत बढ़ गयी है। आहारका विकल्प आवे, विहारका विकल्प आवे, ऐसा किसीको विकल्प आता है। तो आहार करते-करते भी स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। बाहरसे दिखनेमें नहीं आता। क्षण-क्षणमें लीन हो जाते हैं। उनकी विभावकी सब परिणति, सब कषायोंकि परिणति इतनी टूट गयी है कि बाहर उपयोग कहाँ खड़ा रहे? उपयोग खड़ा रहनेके लिये कोई स्थान ही नहीं है। बाहर उपयोग कहाँ रुके? शरीर परसे भी राग उठ गया है। शरीरको देखनेको, कुछ सुननेका, बाहरका कोई आश्चर्य रहा नहीं। शरीरमें धूप-सर्दी लगे तो मुझे क्या? कुछ नहीं होता, वह तो शरीर है। वह तो पुद्गलको होता है। बाहरसे तो सब छूट गया, बाहरसे सब रस छूट गये। इतनी उग्रता हो गयी, कषाय बिलकूल (कम हो गये), भीतरमें स्थिरता इतनी बढ़ गयी। बाहरसे टूट गया, भीतरमें स्वरूपकी रमणता इतनी जम गयी कि बस, बारंबार स्वरूपमें ही जम गये। वह सब टूट गया और स्वरूपमें ऐसे जम गये, ऐसी लीनता हो गयी कि बारंबार (लीनता हो जाती है)। एक क्षण बाहर आवे तो क्षणमें अंतरमें जाते हैं, क्षणमें बाहर आवे तो क्षणमें अंतरमें जाते हैं। इतनी भीतरमें उग्र लीनता हो गयी है। बारंबार निर्विकल्प दशा होती

है।

मुमुक्षु :- बाढ़ आती है, गुरुदेव फरमाते थे।

समाधान :- हाँ। इतनी बाढ़ आती है, प्रवाह आता है। बस, आत्मा.. आत्मा.. आत्मा। सोनेका विकल्प भी नहीं, निद्रा भी अल्प हो गयी, सब अल्प हो गया। निद्रा कौन करे? मैं तो जागृत हूँ। निद्रा कहाँ आत्माका स्वभाव है? मैं तो जागृत स्वभावी हूँ। ऐसा हो गया है। निद्रा भी टूट गयी, आहार भी ऐसा हो गया, कहीं विकल्प नहीं रुकता। आत्मामें लीनता हो गयी है। चैतन्यमूर्ति, मैं चैतन्यमूर्ति हूँ, चैतन्यमूर्तिरूप बन गया। अब केवलज्ञान ले इतनी (देर है)। केवलज्ञानकी तलहटीमें आ गये हैं। बस! ऐसी दशा हो गयी कि बारंबार भीतरमें जाते हैं। ऐसी मुनिकी दशा होती है। लीनता हो गयी है। अंतरकी स्वरूपकी वृद्धि होती जाती है।

सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रममें होते हैं तो बहुत परिग्रह हो तो उसका विकल्प होता है। ... मुनिको सब विकल्प टूट गया। स्वरूपमें ऐसी लीनता हो गयी, ऐसी लीनता हो गयी। द्रव्यलिंगी मुनि सब छोड़कर जाता है, वह यथार्थ नहीं है। यहाँ तो स्वरूपकी लीनता हो गयी है। विकल्प भीतरसे टूट गया, स्वरूपकी लीनता हो गयी है। भिन्न हो गये, सबसे भिन्न हो गये। पदार्थ तो भिन्न है। सम्यग्दर्शनमें आंशिक भिन्न हुए थे और मुनिदशामें अत्यंत भिन्न हो गये हैं।

मुमुक्षु :- वस्तुका स्वभाव वैसा ही हो तो स्वयंको कुछ फलवान हो। आत्माका स्वभाव ज्ञान, दर्शन आदि है, फिर भी उसकी पर्यायमें जाननेके लिये इतने पुरुषार्थकी आवश्यकता क्यों?

समाधान :- स्वभाव तो ऐसा है कि स्वरूपकी ओर ढले ऐसा स्वभाव है। परन्तु अनादिका ऐसा एकत्वबुद्धिका अभ्यास हो गया है कि उसमें जानेका पुरुषार्थ (जल्दी चलता नहीं)। प्रथम भूमिका विकट होती है। समझ पीछे सब सरल है। प्रथम तो एकत्वबुद्धि इतनी गाढ़ हो गयी है कि वह छूटनेमें उसका रस छूटता नहीं। आत्माकी ओर जो जाता है, सम्यग्दर्शन होनेके बाद तो जैसे पानीका प्रवाह या नदीमें बाढ आती है तो बाढ बाढको खींचती है। शास्त्रमें ऐसा आता है कि आत्माका स्वभाव प्रगट हो तो होवे। बादमें तो दौड़कर स्वरूपकी ओर जाती है, परन्तु पहले एकत्वबुद्धि है तो दुर्लभ हो गया है। एकत्वबुद्धि अनादिसे ऐसी गाढ़ हो गयी है।

अनादि काल हुआ, परन्तु यदि सम्यग्दर्शन होवे तो बादमें इतना काल नहीं लगता। स्वरूपमें जानेके बाद स्वरूपकी परिणति स्वरूपकी ओर ही जाती है। पुरुषार्थ वैसा ही होता है। सहज पुरुषार्थ होता है। पुरुषार्थ करनेमें कठिनता नहीं लगती। बादमें उसको पुरुषार्थ करनेमें कठिनता नहीं लगती। सहज मार्ग देखनेके बाद अपना स्वभाव है तो

सहजतासे, सहज पुरुषार्थसे अपनी ओर जाता है। प्रथम भूमिका जानता नहीं है, एकत्वबुद्धि है, आत्माको पीछानता नहीं है इसलिये कठिन हो गया है। स्वभाव है इसलिये सुगम है। अंतर्मुहूर्तमें हो जाता है, जिसको होता है उसको। नहीं होवे तो अनंत काल हो गया। स्वभाव है तो स्वभाव स्वभावकी ओर जाता है। एक बार सम्यग्दर्शन हुआ बादमें ऐसा नहीं हो जाता, पहले था वैसा। बादमें तो उसे अवश्य मुक्ति होती ही है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-७९

समाधान :- ... हो गया, अब क्या है, ऐसा यदि करे.... कोई नहीं कर देता, स्वयंको करना पड़ता है। स्वाधीन है। स्वयं ध्यान नहीं रखता और प्रमाद करे तो गिरता है। पुरुषार्थ तो करना पड़ता है। स्वभावमें भरा है उसमेंसे आता है, कहीं लेना नहीं जाना पड़ता। स्वभावमें सब पड़ा है, उसमें पुरुषार्थ करनेसे सहज प्रगट होता है। लेकिन पुरुषार्थके बिना नहीं होता।

नंदीश्वरका पूजाकी पुस्तकमें कितना वर्णन आता है। उसका तो बहुत वर्णन आता है। अपने तो उसका आंशिक किया है। लेकिन उसका दिखाव अच्छा हो गया है। पाँचसौ-पाँचसौ धनुषके बड़े-बड़े प्रतिमाजी हैं और विशाल मन्दिर हैं। मेरु पर्वत कितना बड़ा है! एक लाख योजनका मेरु है। उसमें पाँचसौ धनुषके प्रतिमाएँ हैं। वह मन्दिर कितने बड़े! चारों ओर वन है। उन वनके अन्दर चार दिशामें चार मन्दिर हैं। चारों दिशामें चार मन्दिर और बीचमें सब वन हैं। पाँचसौ धनुषकी बड़ी प्रतिमाएँ! कुदरती सब (रचना है)। जगतमें भगवान सर्वोत्कृष्ट हैं तो यह कुदरत किसीके द्वारा बनाये बिना भगवानरूप परिणमित हो गयी है। सब रत्न भगवानरूप परिणमित हो गये हैं।

मुमुक्षु :- हमारे तो साक्षात् भगवान आ गये हैं। माताजी! आपके प्रतापसे भगवान ही हैं।

समाधान :- रत्नकी प्रतिमाएँ। भगवानरूप, सब रत्न भगवानरूप परिणमित हो गये हैं। जम्बू द्वीपमें मेरु है। इस जम्बू द्वीपमें एक सुदर्शन मेरु है, दूसरा घातकी खण्डमें दो मेरु है। दो मेरु-पूर्व दिशामें और पश्चिम दिशामें। दोनों मेरु घातकी खण्डमें है। सुनायी देता है न? और पुष्कर द्वीपमें दो मेरु हैं।

मुमुक्षु :- दो मेरु घातकी खण्डमें आमने-सामने हैं।

समाधान :- हाँ, आमने-सामने पूर्व-पश्चिममें। जम्बू द्वीपमें बीचमें है। और पुष्कर द्वीपमें दो है। अंतिम द्वीप है न? अर्ध पुष्कर, उसमें दो मेरु है। इस तरह पाँच मेरु है।

मुमुक्षु :- आपने प्रत्यक्ष देखे हैं?

समाधान :- सब वर्णन आता है। शास्त्रमें सब वर्णन आता है।

मुमुक्षु :- परन्तु प्रत्यक्ष देखते हों ऐसा लगता है। आपके प्रतापसे तो यहीं मण्डलकी

रचना हो गयी है, माताजी! कल्पना नहीं हो पाती कि मन्दिर कितने बड़े होंगे!

समाधान :- उसका भी नाप आता है। सौ योजन और पचास योजन आदि कुछ आता है। सौ योजन या ऐसा कुछ आता है। मध्यम जिनालय, जघन्य जिनालय ऐसा सब आता है। सब देव तो अष्टाह्निकामें जाते हैं। जो होते हैं, उसके नियत देव होते हैं। जिन्हें साथमें जाना हो वह सब जाते हैं।

जिन प्रतिमा जिन सारखी। सम्यग्दर्शनके कारणमें जिन प्रतिमा भी कही गयी है। एक बार साक्षात् भगवानके और गुरुके दर्शन, वाणी सुने, बादमें तो जिनप्रतिमा आदि सम्यग्दर्शनके कितने ही कारण आते हैं। प्रत्यक्ष वाणी एक बार मिलनी चाहिये। प्रत्यक्ष वाणी देशनालब्धिके लिये.... आत्माका स्वरूप दर्शाते हैं। चैतन्य भगवानको दर्शाते हैं।

... सागरोपमके आयुष्य पूरे हो जाते हैं तो इस मनुष्य जीवनका आयुष्य क्या हिसाबमें है? हे माता! हे जनेता! मुजे आज्ञा दे। मैंने तो अनन्त माताएँ की। अब तो मुझे अंतरमें जो अनादि जननी है, उसके पास जाता हूँ। मुझे आज्ञा दे। प्रवचनसारमें भी आता है। आत्माका स्वरूप सत्य है। वही माता और वही पिता, सब अंतरमें है। अरे..! संसारमें क्या है जो मिला नहीं। कुछ नया नहीं है। इस जीवने अनन्त जन्म-मरण किये। ऐसे संसार-दुःखसे हमें कहीं रुचता नहीं। हमें तो दीक्षा लेनी है। ऐसा कहकर चल देते हैं।

राग छोड़कर, जंगलमें मुनि होकर चले जाते हैं। सीधी तरह चले जाते हैं। गुरुदेव कहते थे न? कोई उसे ले जाये, उसके बजाय मैं ही वनमें-जंगलमें, स्मशानमें चला जाता हूँ। माता-पिताका राग छोड़कर, स्वयंको भव ही नहीं करने पड़े, ऐसी साधना करनेके लिये जाते हैं। वही सुखदायक है। बाकी तो जीवने सब किया है, यह कुछ नया नहीं है। यह संसार तो ऐसी है है। जन्म-मरण, जन्म-मरण होते ही रहते हैं। सबने बहुत सुना है।

आत्माकी तैयारी करनेके लिये गुरुदेवका ऐसा सान्निध्य मिला, ऐसा योग मिला और ऐसी वाणी मिली, वह ग्रहण करने जैसा है। अकेले जाना है, अकेला जन्म-मरण करता है, मोक्षमें भी अकेला जानेवाला है। उसमें बीचमें किसीका साथ नहीं होता। पुरुषार्थ करे, मोक्षमें भी अकेला (जाता है)।

... इस भवसागरमेंसे भवका अभाव कैसे हो? आत्मा उससे छूट जाये, वह मार्ग ग्रहण करने जैसा है, गुरुदेवने बताया वह। इस भवसागरमें ऐसे भव तो जीवने कितनी बार किये हैं। सब भूलता आया है। अभी वर्तमानमें हो इसलिये ऐसा लगता है कि ऐसा हुआ। बाकी भूतकालमें भव-भवमें कितने प्रसंग बनते हैं। कहाँ तिर्यंचमें गया, पशुमें गया, मनुष्यमें गया, कितने दुःख सहन करता आया है। इस भवमें आत्माका

कल्याण होनेका योग बना। इस पंचमकालमें ऐसे गुरुदेव मिले, ऐसा मार्ग मिला तो आत्माका (हित कर लेने जैसा है)।

... वाणी छूटी तो सर्व प्रथम बार वाणी छूटी (तो) जय जयकार हो गया। वाणीका धोध बहा। आषाढ कृष्णा एकम कहते हैं और शास्त्रमें सावन कृष्णा एकम कहते हैं। .. पहाड़ पर राजगृही नगरीमें पाँच कहते हैं न? विपुलाचल पर्वत पर भगवानकी वाणी छूटी। महावीर भगवानकी।

... हुआ, साथ-साथ छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान हो गया। छठ्ठे-सातवेमें निर्विकल्प दशा तो हुयी। अन्य मतको मानते थे, उसमेंसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुयी, भेदज्ञान हुआ। एक ही द्रव्य मानते थे, उसमेंसे मैं आत्मा भिन्न, यह शरीर भिन्न, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, ज्ञायकको भेदज्ञान करके पहचाना। और अंतरमें निर्विकल्प दशा स्वानुभूति तो हुयी, आगे बढ़े, चारित्रदशा भी साथमें हुयी। छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें निर्विकल्प दशामें झुले ऐसी दशा हो गयी। छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान तो हुआ, उसके साथ ज्ञान प्रगट हो गया। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय आदि सब ज्ञान (प्रगट हुए)। छद्मस्थ अवस्थामें जितनी पराकाष्टा हो, वह सब उन्हें हो गयी। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान।

मुमुक्षु :- ब्राह्मणमेंसे..

समाधान :- पूर्णरूपसे पलट गये। भगवानकी वाणी छूटी। सब तैयारी एकसाथ हो गयी। यहाँ इनकी तैयारी और वहाँ वाणी छूटी। सब साथमें हो गया। वाणी छूटी और अन्दर गये, एकसाथ हो गया। आत्माकी तैयारी। कैसी पात्रता होती है और निमित्त-उपादानका कैसा सम्बन्ध होता है!!

... स्वरूपमें उस परिणतिकी गति छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुले, ज्ञानकी उतनी निर्मलता, चौदह पूर्वकी लब्धि प्रगट होती है। ऋद्धि-सिद्धि सब प्रगट हो गयी।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने यहाँ वाणीका धोध बहाया।

समाधान :- गुरुदेवने बहुत वर्ष वाणी बरसायी। सोनगढ़में निरंतर ४५-४५ साल तक अत्रूटक धारासे वाणी बरसायी है, वाणीका धोध बरसाया है। चारों ओर विहार करके यहाँ सोनगढ़में निरंतर वाणी बरसायी। चारों पहलूसे स्पष्ट कर-करके द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, स्वानुभूतिका, केवलज्ञानका, मुनिपना, निमित्त-उपादान आदि सब एकदम स्पष्ट करके समझाया है। स्वंयको करना बाकी रह जाता है। वही भवका अभाव और वही सुखका कारण है। बाकी बाहर तो कहीं भी सुख नहीं है। सुख चाहिये, आत्माका स्वभाव प्रगट करना हो तो अंतरमें जाकर ही छूटकारा है। प्रथम भूमिका विकट होती है, परन्तु स्वभावको समझे तो सरल है।

मुमुक्षु :- पर्यायोंमें रमता हुआ प्रगट होता है। यह 'रमता' शब्द तो मुझे इतना आनन्दित और उल्लासित कर दिया है कि वाह रे वाह! धन्य!

मुमुक्षु :- आपने अच्छा .. किया, बहिनश्रीको भी वह बोल बहुत अच्छा लगता है।

समाधान :- अपने स्वभावमें रमता हुआ प्रगट होता है। दृष्टि वस्तु पर है, परन्तु पर्यायमें वह अपने स्वभावमें रमता हुआ प्रगट होता है। अनन्त गुणसागर आत्मा है। वह कोई अलग ही है, अद्भुत है, चमत्कारी है। विचार नहीं करना पड़ता अथवा उसे खोजना नहीं पड़ता। अपने स्वभावमेंसे ही वह रमता हुआ प्रगट होता है। उसे खोजना नहीं पड़ता, वह तो उसका स्वभाव ही है। उसका रमता, रम्य स्वभाव ही है। विकल्प छूटने पर वह सहज ही प्रगट हो जाता है। ऐसा ही उसका स्वभाव है। अनन्त गुण-पर्यायमें परिणमना-रमना वह उसका स्वभाव है। मूल वस्तु स्वयं अपने रूप रहती है, फिर भी अपने गुण-पर्यायमें रमता है। उसका स्वभाव ही है।

मुमुक्षु :- हमें आश्चर्य होता है कि भगवान भी खेल रहे हैं! खेल रहे हैं! बहिनश्रीको हम तो भगवानस्वरूप ही देखते हैं। ओहोहो..! उनको यह 'रमता' शब्द कहाँसे याद आ गया? मुझे वही आश्चर्य लगा। रमता। भगवान आत्मा रमता हुआ प्रगट होता है।

समाधान :- याद कहाँ-से आये? वह तो सहज है।

मुमुक्षु :- उनको अन्दरकी दशाका ...

मुमुक्षु :- अद्भुत! अनन्त गुणसागर आत्मा है। मैं कहूँ वैसा शब्द रखिये। मैं कहूँ वह। थोड़ा भी आगे-पीछे नहीं।

मुमुक्षु :- निज भगवान तो गुरुदेवने डाला है प्रवचनमें, निज भगवान आत्मा। बहिनश्रीने आत्मा लिखा है। अनन्त गुणसागर आत्मा। गुरुदेवने जो विश्लेषण किया है उसमें निज भगवान आत्मा (कहा है)। इसलिये मुझे अधिक आनन्द हुआ कि निज भगवान। दूसरा कोई आत्मा है, दूसरा कोई परमात्मा नहीं, निज भगवान आत्मा। अपने आनन्दादि चमत्कारिक स्वाभाविक...

समाधान :- चमत्कारिक है, स्वाभाविक है। सब शब्द ऐसे ही नहीं है। सब यथार्थ है।

मुमुक्षु :- सत्य बात है।

समाधान :- ऐसा कहा था कि उसमें जो शब्द है, वही शब्द उसमें लेना।

मुमुक्षु :- बराबर हिफ़ाजतसे रखा है। जिसने-जिसने किया है, सबको अभिनन्दन और वन्दन करना चाहिये। वह शब्द ऐसे ही स्मरणमें नहीं रहते। उस भावमें प्रवेश हो...

मुमुक्षु :- सबको भेंट तो दी है, गुरुदेवने चांदीका...

मुमुक्षु :- फिर भी यह अंतरकी भेंट है, वह अद्‌भुत है!

मुमुक्षु :- उसकी तो क्या बात करनी!

मुमुक्षु :- सचमूच कहता हूँ, वह नहीं आ सके, न लिख सके। उसे ... आसान काम नहीं है।

समाधान :- गुरुदेवने समझाया है। इस भवका अभाव कैसे हो। जन्म-मरण करते-करते यह भव मिला, उसमें गुरुदेव मिले, महाभाग्यकी बात है। भवका अभाव होनेका मार्ग बताया। सत्य तत्त्वका स्वरूप बताया, स्वानुभूति बताया, सब उन्होंने बताया है। महाप्रबल जोरदार निमित्त गुरुदेवका (था), उनकी वाणीका निमित्त ऐसा, उन्होंने स्वयं अकेलेने स्थानकवासीमेंसे विचार करके खोज लिया और स्वयं उस रूप परिणमित होकर मार्ग प्रकाशित किया है, वह सब गुरुदेवका प्रताप है।

स्थानकवासी संप्रदायमें थे तब स्वानुभूति पर उतना जोर देते थे कि स्वानुभूति कोई अलग वस्तु है। सम्यग्दर्शन कोई अलग वस्तु है। देहसे, वचनसे, सबसे विकल्पसे भिन्न आत्मा उस पार विराजता है। ऐसा सब बोलते थे। पूरा मार्ग गुरुदेवने स्पष्ट कर-करके प्रकाशित किया है।

मुमुक्षु :- ऐसे गुरुदेव भी जब 'बहिनश्रीके वचनामृत' पर प्रवचन करते हैं, तब ऐसा लिखते हैं कि ओहोहो..! बहिनके शब्द इतने सादे, सादे आसान! मैं तो आश्चर्यचकित हो जाता हूँ कि सादा कहकर क्या कहना चाहते हैं? ऐसे गहन विषयको भी बहिनश्रीने क्या लिखा है! पूरा प्रवचन पढ़ा तब अहोभावके सिवा कुछ नहीं होता, बहिनश्री! आप गुरुदेवका ... हम स्वीकारते हैं। परन्तु गुरुदेवके अंतरमें बहिनश्रीके वचनामृत ऐसे उत्कीर्ण हो गये हैं कि बात ही मत पूछिये। उसमें सादा शब्द निकालो तो छः बार आया है, छः बार। सादे फिर भी गहन। सादे शब्द कहकर उनको सचमुच जो कहना है, वह कहनेके लिये सादे शब्द कहाँ खोजना? ऐसा है। इसलिये तब ऐसा होता है कि गुरुदेव...

समाधान :- गुरुदेवने ही मार्ग बताया है, उसमें क्या कहना?

मुमुक्षु :- मार्ग बताया वह बात सत्य है, परन्तु उनका ही यह कहनेका आशय है, वह क्या?

समाधान :- आशय वह जाने, मैं तो उनका दास हूँ। मुझे तो पुरुषार्थ करके उन्होंने जो मार्ग दर्शाया है, उस मार्ग पर आगे-आगे बढ़ना है। गुरुदेवने स्वानुभूति बतायी, गुरुदेवने स्वरूप रमणता, चारित्र, केवलज्ञान आदि सबका स्वरूप गुरुदेवने ही बताया है।

मुमुक्षु :- उसमें कोई शंका नहीं है, परन्तु आपकी महत्ता उनके हृदयमें कोई अद्भुत थी! यह तो हम देख सके हैं। क्या आदर! क्या प्रेम! क्या वात्सल्य!

मुमुक्षु :- इसलिये उनका पूरा लाभ लेना। .. उन्होंने पूछा था, स्वानुभूति कितनी बार... सर्वश्रेष्ठ श्वेतांबर साधु .. गुरुदेव स्वानुभूतिकी बात करे इसलिये... महाराज! स्वानुभूति मतलब क्या? स्वानुभूति जैसी कोई जैन दर्शनमें नहीं है, ये .. स्वानुभूति जैसी कोई चीज नहीं है, उनके ... शब्द। स्वानुभूति क्या है? उसमें क्या होता है? ऐसा पूछा तो कहा, स्वानुभूति जैसी कोई चीज जैन दर्शनमें नहीं है।

समाधान :- संप्रदायमें यह कोई समझता नहीं था। यह सब गुरुदेवने ही प्रकाशित किया है।

मुमुक्षु :- स्वानुभूतिमें तो सिद्ध भगवानके आनन्दका अंश आता है।

समाधान :- संप्रदायमें व्याख्यानमें ऐसा लेते थे।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! पंचाध्यायीमें तो कहा है, यह आनन्द ...

मुमुक्षु :- हमें किसीको शंका नहीं थी। सोनगढ़में शान्ति, परम शान्ति है। वजुभाई है न, बस, बात खत्म।

समाधान :- ... इसलिये सबका आना-जाना होता था। एक ज्ञायकके सिवा और क्या है? एक ज्ञायकको ग्रहण करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्र शुभभावमें होते हैं और अंतरमें ज्ञायक। इसके सिवा जगतमें दूसरा कुछ सारभूत नहीं है। सारभूत तो एक ज्ञायक अद्भुत अलौकिक है और शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र होते हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८०

समाधान :- ... न्याल कर दिये हैं, ऐसा बोलते थे। मुझे कोई इच्छा नहीं है, मुझे किसीका लगाव नहीं है, मुझे कोई आकुलता नहीं है। यह एक ही करना है, दूसरा क्या करना है? करना क्या है? ऐसा जोरसे बोलते थे। ...

मुमुक्षु :- और युवान होकर।

समाधान :- हाँ, एकदम। अभी यहाँ सब (होता) हो, वहाँ तो पुष्पशैयामें उत्पन्न होता है। पूरा शरीर बदल जाता है। यहाँ याद आये।

मुमुक्षु :- यहाँके संस्कारमें बन्ध भी वैसा हुआ हो, वैसे ही संयोग देव-गुरु-शास्त्रका (योग हो), वैसा ही बन्ध उसे होता होगा न?

समाधान :- हाँ, उस प्रकारका। वैसी रुचिके संस्कार अन्दरसे उत्पन्न होते हैं। भगवानका मन्दिर, सीमंधर भगवानकी वाणी सुननेका, ऐसे ही संस्कार अन्दरसे उत्पन्न होते हैं। उसे ऐसी ही विचार आते हैं। यहाँ तो मन्दिर आदि कितना.. हर जगह सलाह-सूचना (देते थे)।

मुमुक्षु :- बहुत उत्साहसे देते थे। आ गया, ऐसे नहीं।

समाधान :- वहाँ तो जो अपने संस्कार हो वही उत्पन्न होते हैं। वहाँ शाश्वत मन्दिर होते हैं, भगवान हैं। सीमंधर भगवान विदेहक्षेत्रमें विराजते हैं। वह सब प्रत्यक्ष दिखाई दे, इसलिये वहाँ जानेका मन करे।

गुरुदेवने वर्षों तक वाणी बरसायी है। अन्दरमें जो घट्ट हो जाये, वही करनेका है। पद्मनंदी आचार्य कहते हैं न कि मेरे गुरुने जो वाणी, जो उपदेश जमाया है, उसके आगे मुझे कुछ नहीं चाहिये। यह तीन लोकका राज भी मुझे प्रिय नहीं है, इन्द्रपद भी मुझे नहीं चाहिये। बरसों तक वाणी बरसायी है। वह जो बरसों तक जमाया है, वह संस्कार लेकर जाये वह संस्कार ही अन्दरसे उत्पन्न होते हैं।

आता है, सौ इन्द्रकी उपस्थितिमें लाखों-क्रोड़ो देवोंकी उपस्थितिमें भगवानने कहा है कि तू परमात्मा है। ऐसी टेप यहाँ बजती है। तू परमात्मा है। अरे..! भगवान! आप परमात्मा हो, यह तो नक्की करने दो। ऐसा आता है। यहाँ टेप बजती है न। ऐसे प्रसंग होते हैं तब ऐसी टेप यहाँ जोरसे रखते हैं और बजती है। वह टेप रखी

थी।

मुमुक्षु :- तू परमात्मा है, तू परमात्मा है, तू परमात्मा है। अरे..! भगवान! आप परमात्मा हो, इतना तो नक्की करने दो। ... वह रखी थी। वहाँसे गये न तब। ... मैं परमात्मा हूँ। उसे बहुत अच्छी लगती थी।

समाधान :- सौ इन्द्रकी उपस्थितिके समवसरणमें लाखों-क्रोड़ो देवोंकी मौजूदगीमें भगवानने कहा है कि तू परमात्मा है। अरे..! भगवान! आप परमात्मा हो, इतना तो नक्की करने दो। तू परमात्मा है, ऐसा भगवान कहते हैं। परमागम मन्दिर पर बजती है, तब सब जगह सुनायी देता है।

मुमुक्षु :- ऐसा गुँजता है न कि मानो गुरुदेव ललकारते हो। गाँवके लोग सब कहते थे। तू परमात्मावला बजाओ न! वह बहुत अच्छा लगता है।

समाधान :- प्रवचनमेंसे उतना अलग किया है।

मुमुक्षु :- खोजकर निकाला।

समाधान :- मैंने क्या महेनत की? टेपमें था। कहा, यह अच्छा है, इतना अच्छा है। ... भाव परसे कह सकते हैं कि देव भव ही होगा, दूसरा नहीं। संसारमेंर जन्म-मरणका चक्र चलता ही रहता है। वैराग्य करने जैसा है। चतुर्थ काल था तब देव आते थे। अभी देव नहीं आते हैं। मेढक हाथीके पैर तले कूचल गया। उसे भगवानकी पूजा करनी थी। देव होकर पूजा करने आता है। वह चतुर्थ काल था।

मुमुक्षु :- विचार करें लेकिन जो बननेवाला हो वही बनता है।

समाधान :- वैसा ही बनता है। जिस क्षेत्रमें, जिस प्रकार, जैसे होनेवाला हो उसी प्रकारसे आयुष्य पूरा होता है। ... ठीक हो जाये ऐसी सबकी भावना होती है।

मुमुक्षु :- .. निर्विकल्परूपसे होता है?

समाधान :- हाँ, निर्विकल्परूपसे है। द्रव्य पर दृष्टि निर्विकल्पपने (है)। शुद्धनय कहते हैं न? शुद्धनय। बस, वह निर्विकल्पपने है और प्रमाण भी निर्विकल्पपने है। दोनों निर्विकल्पपने है। बाकी तो प्रमाण अस्त हो जाता है, नयोंकी लक्ष्मी कहाँ चली जाती है, विकल्पात्मक तो सब छूट गया है। प्रमाण अस्त हो जाता है, प्रमाणका कोई विकल्प नहीं है, नयोंकी लक्ष्मी सब छूट जाता है। अकेला स्वरूप है। उसमें द्रव्यकी मुख्यता और पर्याय साथमें है। द्रव्य और पर्याय दोनोंकी जो अनुभूति है वह प्रमाण है। द्रव्यकी मुख्यतासे वह नय है, बस। बाकी विकल्परूपसे कुछ नहीं है।

मुमुक्षु :- मुख्यता आश्रयके हिसाबसे या जाननेके हिसाबसे?

समाधान :- नहीं, आश्रयके हिसाबसे। आश्रय है, निर्विकल्पपने आश्रय है, निर्विकल्पपने। अनादिकी वस्तु है, उसमें कोई आश्रय नहीं था। आश्रय उसे स्वयंने ग्रहण

किया है। वह आश्रय वैसे ही परिणतिरूप रह जाता है, निर्विकल्पपने।

मुमुक्षु :- उसे ज्ञानमें ख्याल है कि यह राग है?

समाधान :- अबुद्धिपूर्वक ज्ञानमें कुछ पकड़में नहीं आता। अबुद्धिपूर्वक है इसलिये ज्ञानमें (पकड़में नहीं आता)। केवलज्ञान नहीं है इसलिये वह अबुद्धिमें है। बाकी उसके वेदनमें कुछ नहीं है। उसके वेदनमें मात्र स्वरूपकी अनुभूति ही है, दूसरा कुछ नहीं है। नहीं विकल्पका ख्याल, नहीं है कोई राग, अबुद्धिपूर्वक-बुद्धिपूर्वक कुछ नहीं है। मात्र स्वरूपकी परिणति, शुद्धात्म स्वरूप परिणति है। अकेला आत्मा ही है, दूसरा कुछ नहीं है।

द्रव्य, गुण और पर्याय उसकी परिणति। आनन्दकी अनुभूति है। अनन्त गुण-पर्यायसे भरितावस्थ आत्मा, वह प्रगटरूपसे शुद्ध परिणतिरूपसे परिणमता है। अबुद्धिमें है उसका कोई ख्याल नहीं है। वह तो स्वानुभूतिका अंश प्रगट हुआ, पूर्णता नहीं है। इसलिये वह बताता है कि अभी अबुद्धिमें है। उसके वेदनमें नहीं है। उसके ज्ञानमें भी नहीं है।

मुमुक्षु :- आश्रय निर्विकल्प परिणतिरूप होता है। जैसे अपना नाम अभी रटना नहीं पड़ता और ... निर्विकल्प परिणतिरूपसे ज्ञायक..

समाधान :- ज्ञानको रटना नहीं पड़ता, वह दूसरी बात है। उसके वेदनमें वह कुछ नहीं है। उसे तो आश्रय है, द्रव्यका आश्रय है। वह अलग है, यह अलग है। द्रव्यका आश्रय है, अमुक वेदनकी परिणति है।

... फिर तो यात्राकी बात करे, मन्दिरकी बात करे, गुरुदेवकी बात करे, सब पुरानी बातें करते रहे। ... उसके साथ उन्हें संस्थाका उतना रस था। संस्थाका ध्यान रखनेका उन्हें बहुत था। आप सब ध्यान तो रखते हो, सब रखते हो। देव-गुरु-शास्त्रका करनेका सबको है। उन्हें बहुत विकल्प था।

मुमुक्षु :- जो दूरदर्शिता थी, उसमें..

समाधान :- आत्माका करने जैसा है। संसारमें ऐसा ही होता है। गुरुदेवने कहा वह मार्ग ग्रहण कर लेने जैसा है। अन्दर जो संस्कार होते हैं, वह सब साथमें आते हैं। पंचमकालमें गुरुदेव मिले और उनका सान्निध्य मिला वह महाभाग्यकी बात है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और शुद्धात्माका ध्येय, शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो? वह करने जैसा है। भेदज्ञान कैसे हो? यह पंचमकाल है, उसमें गुरुदेव पधारे वह महाभाग्य। चतुर्थ काल गुरुदेव पधारे इसलिये हो गया था। और अभी भी गुरुदेवके मार्ग पर ही चलना है। किस प्रकार आनन्दसे ... सब बोले। ... रातको करते थे, वही फिर सुबह करते थे, ऐसा करते थे। वहाँ ले जानेके सिवा कोई उपाय नहीं था।

... प्रभावनामें पुण्य हो उस प्रकारसे कार्य बनता है। भावना हो तो। परन्तु तेरे

पिताजी करते थे, कौन जाने उस वक्त काल ऐसा था कि सब सीधा-सीधा हो जाता था। गुरुदेवका प्रभाव है न इसलिये। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और अन्दर आत्माको पहचानना, वह करना है। चतुर्थ कालमें तो मुनि बनकर चल देते थे। जंगलमें जाकर आत्माकी आराधना करते थे और ध्यान करते थे। छोटे-छोटे बच्चे दीक्षा लेने जाते हैं। हे माता! हे जनेता! मुझे आज्ञा दे। यह संसार ऐसा है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- मैं ऐसी माता पुनः नहीं करुँगा।

मुमुक्षु :- कोलकरार करता हूँ।

समाधान :- हाँ, कोलकरार करता है। अब तुझे नहीं रुलाऊँगा, अब मैं जा रहा हूँ। हम आत्माकी आराधना करेंगे। इस जीवको अनन्त कालमें क्या नहीं प्राप्त हुआ है? सब प्राप्त हो गया है। माता कहती है, भाई! तू छोटा है। तुझे काँटे और कंकर लगेंगे, तेरा ... तुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ? जगतमें सब प्राप्त हुआ है। अब तो मैं आत्माकी आराधना करने जाता हूँ। तेरा शरीर ऐसा है, तुझे उपसर्ग-परिषह आयेंगे, गर्मी-सर्दी लगेगी। तो कहता है कि, क्या नहीं प्राप्त हुआ है? देवलोक मिला और सब प्राप्त हुआ है। अनन्त बार सब सामग्री प्राप्त हुयी है। परन्तु यह एक नहीं प्राप्त हुआ। हमें आत्माके स्वरूपकी आराधना करनी है, अब यह भव नहीं चाहिये। भवका अभाव कैसे हो, यह करनेके लिये मैं जाता हूँ। आत्माकी साधना करनेके लिये मुनिदशा अंगीकार करता हूँ। अब फिरसे माता नहीं करुँगा। जन्म-मरणका अभाव करने जाता हूँ।

यह जन्म-मरण संसारमें होते हैं, वह जीवको एक वैराग्यका कारण है। जन्म-मरण (होते हैं तो भी) जीवको वैराग्य नहीं आता है। जन्म-मरण जीवको वैराग्यका कारण बनता है।

मुमुक्षु :- क्षणभर लगता है। फिर भूल जाते हैं। मैं कल याद करता था, मैं मेरी माँको छोड़ने आया था, आज मैं पिताजीको छोड़ने आया हूँ। कल ऐसा विचार आया था। मेरी माँका ... याद आता था,

समाधान :- जन्म-मरण संसारमें ... यह जन्म-मरण नहीं होते तो जीवको वैराग्य नहीं आता। सब शाश्वत मान लेता। परन्तु ऐसा नहीं है। अन्दर भवका अभाव कैसे हो? इसलिये मोक्ष करना वही सत्य है। मोक्ष आत्माकी आराधना... वही सत्य है।

मुमुक्षु :- उस काममें लग जाना।

समाधान :- बस, वही काम करने जैसा है। अरे..! ऐसा संसार अब नहीं चाहिये। भवका अभाव हो वही सच्चा है। अनन्त कालमें सम्बन्ध बान्धता है और छोड़ता है।

भवका अभाव हो वही सत्य है। उनका तो भव परिवर्तन हो गया। गति अच्छी ही हुयी है। कैसी भावना उनकी, जीवन पर्यंत कार्य, अंत समय तक कैसे भाव और कैसे ... उनका राग रखकर थोड़े रहे थे। वे तो ... करते थे, कोई बुरा बोले, कुछ भी करे।

... शासनका सब अच्छा होगा। गुरुदेवका शासन, वह तो महा तीर्थंकरका द्रव्य था। उनके शासनका पुण्य है। भले भावना न हो तो बहुत मुश्किल लगते कार्य हो गये हैं, शासनका पुण्य है, सब अच्छा होगा। भावना हो या नहीं हो, अच्छा होगा। हसमुखभाईका हो गया न।

... कार्य थे, अभी तो अमुक... मुश्किल कार्य सब हो गये हैं। अब तो सबको आत्माका करना है। देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना करनी वह है। स्वयं स्वयंका करना, सब सबकी जाने। सब करते रहे, अपने अपना करना। यहाँ सोनगढ़में... जिसको जो करना हो वह करता रहे।

मुमुक्षु :- इतना सलामत रहे उतना बस है।

समाधान :- बस, यहाँ सोनगढ़का यह तीर्थक्षेत्र है, गुरुदेवकी भूमि है। बस, बाहरगाँववाले भले जो करना है करता रहे। जो करना है करे। सोनगढ़ गुरुदेवका तीर्थक्षेत्र है, वह ऐसी ऊँचा रहे। किसीके साथ राग-द्वेष नहीं करना है। एक सोनगढ़का यह है। सब स्वाधीनरूपसे देव-गुरु-शास्त्रकी पूजा, भक्ति, स्वाध्याय स्वाधीनरूपसे करते हैं, ऐसे ही ... करते हैं, वैसा ही टिके, बस। कोई उसमें दखल करे कि ऐसा करोया ऐसी क्रिया करो, फलाना करो ऐसी दखल यहाँ चलनेवाली नहीं है। क्रिया करो या ऐसा करो, गुरुदेवका ऐसा करो, चरण स्पर्श करते हैं, प्रतिकृतिको, फलानेको ऐसी दखल नहीं हो। कुछ-कुछ ऐसा चलता रहता है। सब बोलते रहे। सबके गाँवका सब सँभाले।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८१

समाधान :- ... रुचि यानी गुरुदेवके प्रवचन सुनने जाते थे। उन्होंने अपने आप ही नक्की किया कि यह कोई अलग पुरुष हैं। हिम्मतभाईको उन्होंने बादमें लिखा। मैं तो छोटी थी, इसलिये मुझे तो उसके बाद मिले, गुरुदेवके दर्शन हुए। सर्व प्रथम उन्होंने नक्की किया। बौद्धिक स्तर माताजी! बहुत ऊँचा। किसीको पहचाननेकी शक्ति पहलेसे थी। पोषा आदि करे ऐसा स्थानकवासीमें होता है। ऐसे कोई दिन हो तो वैसा करते थे। बिछानेका होता है न?

... सत्य यह है। अनन्त कालसे सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है और यह व्रतादि, साधुपना लिया.... गुरुदेव कहते थे उसमेंसे ग्रहण (करते थे)। हिम्मतभाईको लंबा-लंबा पत्र लिखा था।

मुमुक्षु :- बार-बार पत्र लिखते थे।

समाधान :- .. वही करना है, दूसरा क्या है? ऐसा बोलते थे। वही सत्य है न।

मुमुक्षु :- बोलते कम थे, लेकिन विचारशक्ति बहुत थी।

समाधान :- सौ प्रतिशत कैसे कहुँ? अन्दर करता हूँ। (दूसरा) क्या करना है? ऐसा बोलते थे।

मुमुक्षु :- ऐसे ललकारके बोलते थे।

समाधान :- बहुत आनन्द आया, ऐसा बोले। गुरुदेवने न्याल कर दिया। इस ओर घुमने जाना या उस ओर जाना, ऐसे...

हर जगह देखकर आते थे, कहाँ कैसा मानस्तंभ है, सब देख आते। सब कैसे हैं? अजमेरमें देखा, यहाँ देखा,...

गुरुदेवने कहा कि, मिट्टी आदिका कर लो, ऐसा कहते थे। फिर ऐसा किया। फिर भी सब देखकर करते थे। रंगबेरंगी कितना सुन्दर लगता है।

मुमुक्षु :- समवसरण स्तुति ... आदिपुराणमें आता है।

समाधान :- वीरसेनस्वामीने ऐसा कहा है, इन्होंने ऐसा कहा है, फलानी जगह ऐसा आता है। बहुत ध्यान रखकर पढ़ते थे।

... गुरुदेव तो लोकोत्तर पुरुष थे। अभी कहते थे। उन्होंने तो कितना किया है!

वे तो लोकोत्तर पुरुष थे। आत्मा एक शाश्वत (है), सब पर्यायें पलटती है। ऐसे तो कितने भव जीवने किये हैं, अनन्त। उसमें इस भवमें गुरुदेव मिले वह महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- इतने प्रसंग प्रत्यक्ष देखते हैं, फिर भी इस जीवको वैराग्य कहाँ आता है। अभी दो दिन पहले तो हम लोगोंके साथ बातें करते थे। और आज कहाँ पहुँच गये।

समाधान :- ऐसे फेरफार कैसे होते हैं। अभी इस पूर्णिमा तक तो हमारे घर आये थे। आठ-नौ दिन पहले। फोड़े हुए थे, परन्तु कमजोरी होने पर भी आते थे।

मुमुक्षु :- कहते थे, मुझे कहीं चैन नहीं पड़ती है। वहाँ जाता हूँ तो ताजगी आ गयी। माताजीके पास...

समाधान :- .. वह करना है। कितने बरसों तक यहाँ वाणी बरसायी। वह आता है न? गुरुदेवने जो उपदेश दिया है उसके आगे कोई विशेष नहीं है। तीन लोकका राज भी नहीं, वह भी तुच्छ है। इन्द्रकी पदवी भी विशेष नहीं है। इस पृथ्वीका राज या तीन लोकका राज, पद्मनंदीमें आता है, आलोचना पाठमें आता है। गुरुदेवने जो उपदेश दिया है और अन्दर जो जमाया है, उसके आगे सब (तुच्छ है)। वही ग्रहण करना है।

इस पंचमकालमें ऐसा मिले कहाँसे? गुरुदेवका यहाँ अवतार हो.. तीर्थंकर द्रव्यका यहाँ अवतार हो, और सब मुमुक्षुओंके बीच वाणी बरसाये, बीचमें ऐसा काल आ गया, इस पंचमकालके अन्दर कि उनका सान्निध्य बरसों तक मिला।

मुमुक्षु :- .. उसके जैसा हो गया।

समाधान :- हाँ, ऐसा हो गया।

मुमुक्षु :- बहुत पुण्य हो तब..

समाधान :- तब ऐसा योग बनता है। आचार्य तो पहले बहुत हो गये हैं। परन्तु उनका योग मिलना बहुत (मुश्किल है)। ये तो साक्षात् मुमुक्षुओंके बीच रहकर वाणी बरसायी, निरंतर वाणी बरसती थी। वह जो मिला और जो उनका सान्निध्य मिला एवं वाणी मिली, उससे पूरा जीवन सफल होता है। फिर जो कह गये हैं, देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना, वह उनके प्रतापसे सब होता रहता है। महापुरुष थे इसलिये उनके प्रतापसे, उनके पीछे सब भक्तों... उनके प्रतापसे ही सब देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना होनेवाली है और होती रहती है।

... गुरुदेव और सोनगढ़ इतना करीब, यह तीर्थक्षेत्र जैसा बन गया है। बहुत तीर्थक्षेत्र होते हैं वह जंगलमें होता है। वहाँ जाना सबको मुश्किल पड़े ऐसा होता है। उसके

बजाय, ऐसा... सोनगढ़ आना सबको आसान हो जाये, ऐसा यह बहुत जंगल भी नहीं है और ... शांतिवाला... बीचमें आ गया है। कयी तीर्थक्षेत्र जंगलमें होते हैं, वहाँ महामुश्किलसे पहुँच सकते हैं। यहाँ तो सीधा आ सकते हैं। यह सब बादमें हुआ, गुरुदेवके प्रतापसे। एक हीराभाईकी दुकान थी। खुशाल अतिथी गृह आदि सब बादमें हुआ। गुरुदेवके प्रतापसे कितना बढ़ता गया। यहाँ तो जंगल लगता था। स्वाध्याय मन्दिर कितना दूर लगता था। कहाँ जंगलमें, वहाँसे यहाँ आना। वहाँसे आये तो रातको वहाँ मन्दिरमें बैठना हो तो बैठ नहीं सकते थे। आरती ऊतारकर तुरन्त जाना पड़े। बीचमें सब खाली जगह थी।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेवका विरह तो सचमुच आपके प्रतापसे हमें अभी दिखता नहीं, ऐसा लगता है।

समाधान :- गुरुदेव तो गुरुदेव ही थे। स्वाध्याय मन्दिरमें बिना माईकके कितनी दूर तक सुनाई देता था, ऐसी तो उनकी वाणी थी। प्राणभाईके मकानमें हम वहाँ रहते थे, वहाँ सुनाई देता था। है, नहीं आदि बीचवाले कुछ शब्द वहाँ तक सुनाई देते थे। इस रास्ते पर गाडियाँ चलनेवाली है, ऐसा किसी-किसीको स्वप्न आता था। यह रास्ता जंगल जैसा लगता है, वहाँ सब गाडियाँ चलनेवाली है, यहाँ ऐसा होनेवाला है, ऐसे स्वप्न आते थे।

मुमुक्षु :- स्वप्न सच हुआ।

समाधान :- सब मन्दिरोंके कारण एक तीर्थक्षेत्र जैसा हो गया है। एक जन बाहरसे शीखर देखकर, यहाँ यह है, यहाँ यह है, शीखर दिखायी देता है, यहाँ मन्दिर होना चाहिये। इस तरह कोई आया था। कोई कहता था, शिखर देखकर आते हैं।

मुमुक्षु :- ... तो कर्ताबुद्धि हो जाती है, नहीं करते हैं तो पर्यायमें इष्टपना कैसे मिटाना? पर्यायका इष्टपना करते हैं तो त्रिकाली दृष्टिकी बात जो कही, तो दृष्टि तो ... अनन्त भवमें कुछ किया नहीं, ऐसा लगता है।

समाधान :- दृष्टिको लक्ष्यमें रखनी। ज्ञायकको ग्रहण करना। उसके साथ-साथ सब होता है। एक करे और एक छूट जाये ऐसा नहीं होता। साधनामें ऐसा होता है। एक दृष्टिको लक्ष्यमें रखा तो फिर साधन छूट जाता है और साधनको लक्ष्यमें रखे तो दृष्टि छूट जाती है, ऐसा नहीं है। एकान्त ग्रहण करे तो छूट जाये, बाकी छूट जाये ऐसा नहीं है। इस प्रकार ज्ञायकको ग्रहण करके ज्ञानमें उसे होता है कि यह पर्याय है, पर्याय साधनामें होती है। साधनामें सब साधन अन्दर पुरुषार्थ आदि होता है। छूट नहीं जाता। उसकी सन्धि है।

एक ज्ञायकको ग्रहण किया और दृष्टि वहाँ स्थापित कर दी तो सब छूट जाये

ऐसा नहीं होता। एक ओर लक्ष्य करे और एक ओर ही स्वयं एकान्त कर ले तो छूट जाये। नहीं तो छूटता नहीं। उसकी सन्धि हो सकती है। एकको मुख्य रखे और दूसरा गौण रखे तो हो सकता है। ज्ञायकको मुख्यरूपसे ग्रहण करे और पर्यायका लक्ष्य रखकर पुरुषार्थ करे तो होता है। उसका लक्ष्य रखनेका है कि मैं तो अनादिअनन्त शुद्ध हूँ। शुद्धतामें कोई अशुद्धताका अन्दर प्रवेश नहीं हुआ है। तो भी पर्यायमें अशुद्धता है, द्रव्यमें नहीं है। पर्यायमें अशुद्धता है, इसलिये मैं अपने स्वरूपकी ओर स्वरूपकी परिणति प्रगट करनेसे अशुद्धता टलती है।

इसलिये एक ग्रहण करे तो एक छूट जाये ऐसा नहीं है। एक द्रव्य है और एक पर्याय है। दो द्रव्य हो तो छूट जाये। (यहाँ तो) एक द्रव्य है, एक पर्याय है। एकको गौण करना है, एक मुख्य है। कभी उपयोगमें विचारमें आये तो पर्यायके विचार आये, इस तरह पर्याय ज्ञानमें मुख्य होती है, परन्तु दृष्टि तो मुख्य है द्रव्य पर और पर्याय गौण है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ होता हो उसे जाने या पर्यायमें पुरुषार्थ करे?

समाधान :- मात्र जाने उतना ही नहीं, परन्तु पुरुषार्थ करता है। मात्र जाने, जाने तो पुरुषार्थ होता है। ऐसा जाने कि मैं ज्ञाता हूँ, ज्ञाताकी उग्रता करे तो ज्ञानमें पुरुषार्थ आ गया। परन्तु मात्र जाने, जाननेके लिये जाने तो वैसे ज्ञानमें पुरुषार्थ नहीं होता। ज्ञायककी उग्रतामें पुरुषार्थ आ गया। परन्तु ज्ञाता अर्थात् जाना कि पर्याय है। ऐसा जाना इसलिये पुरुषार्थ आ गया, ऐसा नहीं है। ज्ञाताधाराकी तीक्ष्णता करे तो उसमें पुरुषार्थ आ जाता है। मैं ज्ञायक हूँ और ज्ञाताधाराकी उग्रता करे और उसमें लीनता करे तो उसमें पुरुषार्थ आ जाता है।

मैं द्रव्य ज्ञायक हूँ। उस ज्ञायकको ज्ञायकरूप रहनेके लिये, ज्ञायककी परिणतिको दृढ़ करनेके लिये, उसकी ज्ञाताधाराकी उग्रताके लिये पुरुषार्थ करता है। बाहर जा रहा उपयोग और विभावकी जो परिणति है, उस विभाव परिणतिसे स्वयं भिन्न होकर अंतरमें स्वरूपकी ओर लीनता करनेका प्रयत्न करता है। जानना अर्थात् मात्र जान लेना, ऐसा नहीं। परन्तु पुरुषार्थपूर्वक जानना है। ज्ञाताधाराकी उग्रता करता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य और पर्याय, दोनोंके बीचका खेल ही समझमें नहीं आता। ऐसा करने जाते हैं तो निश्चयाभासी हो जाते हैं और वहाँ जाते हैं तो व्यवहाराभासी हो जाते हैं।

समाधान :- वह सब विकल्पात्मक है, इसलिये ऐसा होता है। सहज हो तो नहीं होता। विकल्पात्मक है। द्रव्य पर दृष्टि रखूँ, ऐसा विकल्पसे होता है। वह सब विकल्पसे करने जाता है, इसलिये एक विकल्प छूट जाता है और एक विकल्प होता

है, एक विकल्प छूटता है, ऐसा होता है। सहजरूपसे हो तो ऐसा नहीं होता। ज्ञायक पर परिणति, सहज ज्ञायककी परिणति सहज हो तो एक ग्रहण करे और दूसरा छूट जाये ऐसा नहीं होता। द्रव्यका ग्रहण रहता है, पर्यायमें पुरुषार्थ रहता है, सब होता है। विकल्पात्मक हो रहा है इसलिये एक करे तो दूसरा छूट जाता है। ऐसा होता है। उसकी सन्धि यथार्थ विचार करके नक्की करना चाहिये। द्रव्यदृष्टि और पर्यायमें पुरुषार्थ, इन दोनोंकी सन्धि करने जैसी है। एकको ग्रहण करे और दूसरा छूट जाये तो अकेला निश्चय हो जाता है और अकेला व्यवहार अनादिका है, तो यदि द्रव्यदृष्टि नहीं हो तो-तो मोक्षका मार्ग ही प्रगट नहीं होता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८२

मुमुक्षु :- पहले द्रव्यदृष्टि करनी या पहले व्यवहार करना?

समाधान :- यथार्थ द्रव्यदृष्टि हो वहाँ यथार्थ व्यवहार आ जाता है। पहले व्यवहार तो अनादिका है। द्रव्यदृष्टिके साथ व्यवहार साथमें रहा है। द्रव्यदृष्टि यथार्थ किसे कहते हैं? कि उसके साथ व्यवहार होता है। यदि सब छूट जाये तो वह दृष्टि ही सम्यक् नहीं है। सम्यग्दृष्टि हो, यथार्थ दृष्टि हो तो उसके साथ ज्ञान होता है और यथार्थ स्वरूप रमणता होती है। ऐसी निश्चय-व्यवहारकी सन्धि है। दृष्टि ज्ञायक पर गयी इसलिये पूर्ण मुक्ति अर्थात् पूर्ण वेदन नहीं हो जाता। अभी न्यूनता है, तब तक पुरुषार्थ है।

मुमुक्षुकी दशामें वह नक्की करे कि मैं स्वभावसे निर्मल है। उसके भेदज्ञानका प्रयास करे कि मैं भिन्न हूँ। यह सब एकत्वबुद्धि तोड़नेका प्रयत्न करे। प्रयत्न और दृष्टि आदि सब साथमें रहते हैं। उसकी भावनामें भी वैसा होना चाहिये। ... नाश नहीं हुआ है। स्वभावको स्वयं ग्रहण करे। जैसा स्वभाव है वैसा ही ग्रहण करे। फिर पर्यायमें न्यूनता है, अशुद्धता है, सबको टालकर शुद्धताका प्रयास करे।

मुमुक्षु :- .. दृष्टिका बल बढ जाता होगा?

समाधान :- पर्याय है ही नहीं, ऐसा करनेसे दृष्टिका बल बढ जाता है, ऐसा नहीं है। जैसा है वैसा यथार्थ जाने तो दृष्टिका बल बढता है। पर्याय है। है ही नहीं, ऐसा मानना ऐसा दृष्टिका विषय नहीं है। उसकी दृष्टिके विषयमें नहीं है। परन्तु पर्याय वस्तु ही नहीं है और द्रव्यको पर्याय है ही नहीं, यह यथार्थ ज्ञान नहीं है। दृष्टिके विषयमें नहीं है। दृष्टिके विषयमें पर्याय आती नहीं। उसका ध्येय एक द्रव्य पर है। इसलिये पर्याय उसकी दृष्टिमें नहीं है, इसलिये पर्याय है ही नहीं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- ... रागको जानना और उस प्रकारके स्वयंका स्वभावकी ओरके पुरुषार्थको जानना, तो इन तीनोंको जाननेमें कोई अंतर है?

समाधान :- जानना वह तो जानना ही है। रागको जाने या परको जाने या पुरुषार्थको जाने, परन्तु उसका स्वरूप जाने कि राग वह विभावपर्याय है। शरीरादि परद्रव्य है और यह पुरुषार्थ है, वह स्वरूपकी ओरका पुरुषार्थ है। उसका स्वरूप जैसा है वैसा जाना। जानना तो जानना है, परन्तु उसका स्वरूप कैसा है? ज्ञेयोंका स्वभाव भिन्न-भिन्न है,

ऐसा जाने। जानना ही है।

मुमुक्षु :- ज्ञेयोंका स्वभाव भिन्न-भिन्न है, तो जैसे परपदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, वैसे....?

समाधान :- वह तो जैसी वस्तु है वैसा जानता है। परद्रव्य मेरा स्वरूप नहीं है, मैं परद्रव्यसे भिन्न हूँ, यह विभावपर्याय मेरा स्वभाव नहीं है। और यह मैं साधना करता हूँ, यह जो पर्याय है वह अंश है। पूर्ण अंशी जो पूरा है, वह पूर्ण है वह स्वरूप भिन्न है और यह अंश है। जैसे हैं वैसे सब प्रकार जानता है। स्वयं यथार्थ जानता है। यह सब जाननेके प्रकार हैं। ज्ञान तो सब जानता है। यथार्थ जाने और फिर पुरुषार्थ करने योग्य हो उस ओरका पुरुषार्थ है। हेयको हेय जाने, उपादेयको उपादेय जानता है। जैसा है वैसा जानता है। (द्रव्य) पर दृष्टि रखता है। दृष्टिका विषय ग्रहण करके सब कार्योंमें जुड़ता है।

एक स्फटिक वस्तुको ग्रहण किया कि यह स्फटिक है। सफेद है और चमकवाला है, वह सब उसके भेद हुए। परन्तु एक ग्रहण किया कि मैं चैतन्य हूँ। अस्तित्वको ग्रहण करके फिर सब जानता है। अस्तित्वको अस्तित्व जाने, पर्यायको पर्याय जाने, मलिनताको मलिनता जाने, ऐसे जानता है। उसे भिन्न करता है कि यह मैं नहीं हूँ। यह परद्रव्य है, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। पुरुषार्थसे ज्ञायककी धाराको उग्र करता है। जानकर विवेक करता है। उस प्रकार उसका पुरुषार्थ चलता है।

मुमुक्षु :- अपने अस्तित्वकी पक्कड़ रखकर जो भाव जिस स्वरूप है, उस रूप उसे वह जानता है।

समाधान :- बराबर जानता है। उस प्रकार उसे जो लाभरूप हो उस कार्यमें जुड़ता है। जो अपना नहीं है, उससे भिन्न पड़ता है।

मुमुक्षु :- यानी जो लाभरूप जाननेमें आता है उस ओर सहज ही उसका ज़ोर चलता है और जो हानिकारक है उस ओरसे...

समाधान :- वहाँसे छूटनेका प्रयत्न करता है। घर सँभालकर सब कार्योंमें जुड़ता है। चैतन्यके घर पर दृष्टि रखे तो दूसरा छूट जाये, और वह करे तो यह छूट जाये, ऐसा नहीं होता। उससे भिन्न पड़ता है। पुरुषार्थ करके निर्मलता (प्रगट करता है)। उसे निर्मलताका वेदन है। मलिनताका मलिनतारूप है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो कि सुलभ है, परन्तु हमें तो उससे अधिक दुर्लभ बाकी कुछ नहीं दिखता।

समाधान :- अंतरमें ही करना है, परन्तु वह कठिन हो गया है। स्वयं ज्ञायकको पहचाने तो सरल ही है। ज्ञायकको भिन्न जान। शरीरसे भिन्न, विभावसे अपना स्वभाव

भिन्न है। सब भिन्न है। आसान ही है, परन्तु करे तो। न करे तो दुर्लभ है। ऐसे ही अनन्त काल चला गया। अनन्त कालसे प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिये दुर्लभ है, परन्तु करे तो आसान है।

.. कितने साल बीत गये, आगे बढ़ना है। बहुत साल बीत गये इसलिये अब क्या आये? वह तो कहनेकी बात है। उसमें ऐसा नहीं है, यह कोई लौकिक बात नहीं है, यह तो आत्माकी बात है। प्रतिज्ञा ली वह तो अच्छी बात है। परन्तु मेरी तबियत ऐसी है न, इसलिये। .. उसका लाभ मिला और प्रतिज्ञाका प्रसंग बना। अन्दर आत्माका हेतु है... जो जिज्ञासु है उसे निष्फल नहीं जानेवाला है, फलेगा। निज आत्माके हेतुसे प्रतिज्ञा ली है।

मुमुक्षु :- ऐसा होता है, बाहरमें अकेले शुभभावमें..

समाधान :- ... पुरुषार्थ होता हो तो करना, अच्छी बात है। नहीं तो गहरे संस्कार डले वह लाभका कारण है। हो सके तो करना, नहीं तो श्रद्धा तो जरूर करना, ऐसा शास्त्रमें आता है। हो सके तो ध्यानमय प्रतिक्रमण करना। न हो सके तो कर्तव्य है-श्रद्धा ही कर्तव्य है। श्रद्धामें फेरफार (नहीं होना चाहिये)। श्रद्धा कर्तव्य है। तो आगे बढा जायेगा। श्रद्धाका बल बराबर रखना चाहिये।

ज्ञायकके मार्गके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। बाहरके कोई क्रियाकाण्डमें मार्ग नहीं है, यह तो अंतरका मार्ग है। ज्ञायककी श्रद्धा करके भेदज्ञान करना, द्रव्य पर दृष्टि करना, शरीरसे आत्मा भिन्न, विकल्पसे अपना स्वभाव भिन्न, सबसे भिन्न एक ज्ञायकको भिन्न करना, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। सर्वस्व सब विभावसे भिन्न स्वयं है। विभाव अपना स्वभाव नहीं है। उसका भेदज्ञान, उसकी निरंतर धारा, वह सब करने जैसा है। उसकी श्रद्धा बराबर करना, बन सके तो। ध्यानमय ज्ञायककी परिणति करना, न हो सके तो श्रद्धा करना।

देव-गुरुने जो बताया, देव-गुरुकी श्रद्धा और आत्माकी श्रद्धा-दो बताया, वह करना है। देव-गुरुका सान्निध्य महाभाग्यकी बात है। उनकी महिमा करनी, बाकी ज्ञायककी महिमा करनी। ज्ञायक महिमावंत है, वही पहचानने योग्य है। उसके गहरे संस्कार डालना। बन सके तो परिणति प्रगट हो तो अच्छी बात है, नहीं तो श्रद्धा कर्तव्य है।

... छः, चौदह कितने-कितने... आत्माका कल्याण करनेके लिये सब तैयार हो गये, गुरुदेवके सान्निध्यमें। सबके प्रसंग बार-बार आये वह तो एक आनन्दकी बात है। मेरी तबियत ऐसी है। इतने साल सबको आनन्दसे... कितने वर्षों तक वाणी सुनी। कितना आनन्द... प्रतिज्ञा ली थी, तब सब कितने छोटे-छोटे थे। इस भवमें सब तैयारी कर लेनी। पुरुषार्थ हो सके तो करना, नहीं तो सब तैयारी कर लेनी। देशनालब्धि,

गुरुदेवकी देशनालब्धि प्राप्त हुयी। एकदम गहरे बीज ऐसे डाले हो कि तुरन्त खील जाय। ऐसे गहरे संस्कार डालने।

... कोई बहुत हुए हैं, कोई कम हुए हैं, ऐसे हुआ है। सब अलग-अलग आते हैं न, दर्शन हो तब सब बीच-बीचमें आ जाते हैं, सब अलग-अलग आते हैं। ऐसा प्रसंग है, महाभाग्य...! यह सब ... प्राप्त हुआ वह महाभाग्यकी बात है। उसमें आत्मा स्वयं तैयार हो, तैयार हो तो हो सके ऐसा है। गुरुदेव मिले और यह सब मिला।

... आत्मा भिन्न, आत्माका स्वभाव भिन्न, अन्दर विकल्प आये उससे अपना स्वभाव भिन्न, सब भिन्न है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, अंतर आत्माकी महिमा, ज्ञायकका ध्यान रखना, वह सब करना है। बहुत सुना है, उसका अन्दर रटन करना है।

मुमुक्षु :- आपके और गुरुदेवके प्रतापसे समाधान करते हैं, तो भी बहुत दुःख होता है।

समाधान :- बारंबार प्रयास करना।

मुमुक्षु :- अच्छा नहीं लगता है, परन्तु दूसरा कोई चारा नहीं है।

समाधान :- शरीर काम नहीं करे, उसमें क्या हो सकता है? क्या हो सकता है, जाना पड़े।

.. ज्ञायक कैसे पहचानमें आये, जीवनमें वही करने जैसा है। गुरुदेवने मार्ग बताया वही करना है। जैन धर्मका रहस्य किसीको जानना हो तो उसमें आ जाता है। अध्यात्मका रहस्य। अन्यमें छोटी गीता आदि आता है। अपनेमें यह छोटा शास्त्र (है)। सब (शास्त्र) साथमें नहीं रख सके तो इतने छोटेमें आ जाता है। बालकोंको काम आवे, बड़ोंको काम आवे, सबको काम आवे। और सिद्धान्त प्रवेशिका जिसे समझनी हो उसके लिये वह भी है और यह है। ... यह सब शास्त्र तो है, यह छोटेमें सब आ जाता है। विवरण किया है, थोड़ा-थोड़ा वह अन्दर (आता है)। छः द्रव्य, नौ तत्त्व उसका थोड़ा अन्दर (आता है)। यह लोक स्वतःसिद्ध है, आदि सब लिया है। सबको काम आवे ऐसा है। सिद्धान्त प्रवेशिकामें संक्षेपमें कोई समझे नहीं तो फिर कहे, अब क्या करना? अब क्या? सब कंठस्थ हो गया। यह एक स्वाध्याय करने जैसा और कंठस्थ करने जैसा, सब प्रकारसे ऐसा है। समयसारमें सब पढ़े वह तो अच्छी बात है, लेकिन नहीं पढ़ सके तो संक्षेपमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- मूल गाथाएँ सब आ गयी।

समाधान :- मूल गाथाएँ आ जाये। फिर प्रवचनसारमें द्रव्य-गुण-पर्यायका आ जाये, इसमें छः द्रव्य आदि। नियमसारमें पारिणामिकभाव आदिका संक्षेपमें आ जाता है। कलशमें स्वानुभूति आदि, सबमें तत्त्व आ जाता है। .. क्या आता है, यह जानना चाहे तो

इसमें सब आ जाता है।

.. अंतरमें आया, जिसे गुण प्रगट हुए, मुक्तिका मार्ग जिसे प्रगट हुआ, अंतरमें जिसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट हुआ, ऐसे गुरुकी भक्ति शिष्योंको आये बिना रहती ही नहीं। आचार्य भी शास्त्र लिखते हैं, तब सिद्ध भगवानको, अरिहंत भगवानको नमस्कार करके ही लिखते हैं। बड़ोंको आगे रखकर ही शास्त्र लिखते हैं। आचार्यको भी ऐसा होता है। मात्र लिखनेके खातिर नहीं, भावसे लिखते हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते हैं कि मुझे जो आत्म-वैभव प्राप्त हुआ, वह मेरे गुरुसे प्राप्त हुआ है। देवाधिदेव अरिहंतदेव भगवानकी परंपरा और मेरे गुरुने जो मुझे आत्माका वैभव दर्शाया, उससे मुझे प्रगट हुआ है। ऐसा कहते हैं। गुरुकी भक्ति तो आये बिना नहीं रहती। जिसे आत्माकी साधना करनी है, उसे गुरुकी भक्ति तो साथमें होती ही है। गुरुने जो ध्येय बताया कि तू ज्ञायकको ग्रहण कर, उस ज्ञायककमें-उस शुद्धात्मामें कोई विकल्प नहीं है। शुद्धात्मा सब विकल्पसे भिन्न है। शुभाशुभ भावोंसे उसका स्वभाव भिन्न है। ऐसा गुरु दर्शाते हैं। ग्रहण उसे करना है। गुरुने जो स्वभाव दर्शाया, उस स्वभावको पहचानकर अंतरमें ग्रहण करना स्वयंको है। लेकिन बीचमें गुरुकी भक्ति आये बिना नहीं रहती। पंच परमेष्ठीकी भक्ति, गुरुकी भक्ति, जिन्होंने मार्ग बताया, उनकी भक्ति उसे साथ-साथ होती ही है।

जो आत्माकी साधना कर रहे हैं, उसे भी गुरुकी भक्ति होती है। तो जिज्ञासुको तो साथमें होती ही है। जिसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट हुआ, ऐसे आचार्य भी गुरुकी भक्ति (करके) गुरुको आगे रखते हैं। पद्मनंदी आचार्य भी जब शास्त्र लिखते हैं, तब जिनेन्द्र देवकी कैसी भक्ति करते हैं! आपके दर्शनसे, भगवान! मेरा सब टल जाता है। भगवान! बादलके जो यह टूकड़े हुए, जब मेरु पर्वत पर अभिषेक हुआ, उस वक्त इन्द्रने भूजाओंको फैलाया तब बादलके टूकड़े हो गये। कैसी भक्ति की है, आचार्यने भी! जो आत्माकी आराधना करते हैं, छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं, निर्विकल्प तत्त्वमें बारंबार निर्विकल्पस्वरूप परिणमित हो जाते हैं। बाहर आये तब शास्त्र लिखते हैं। तत्त्वके, भक्ति आदिके लिखते हैं। आचार्योंको भी (भक्ति) होती है।

सम्यग्दृष्टि जो गृहस्थाश्रममें होते हैं, उन्हें भी गुरुकी भक्ति होती है। तो जिज्ञासुको गुरुकी भक्ति (हो, उसमें कहाँ प्रश्न है?) स्वयं कुछ जानता नहीं और जो मार्ग दर्शाते हैं, उनकी भक्ति आये बिना नहीं रहती। तत्त्वविचार, देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति आदि सब बीचमें आता है। अंतरमें वैराग्य, विरक्ति, शुभाशुभ भावोंसे-विभावसे विरक्ति और गुरुकी भक्ति, स्वभावकी महिमा आदि जिज्ञासुकी भूमिकामें होता है।

... दूसरोंको कर नहीं सकता, गुरु कहे, इसलिये वह कर नहीं सकता है, ...

परन्तु उसे भावनामें शुभभावमें स्वयंको आगे बढ़ना है, उसमें शुभभाव आये बिना नहीं रहते। गुरुके आगे एकदम विनयवान (हो जाता है) और भक्ति आये बिना नहीं रहती।

द्रव्यदृष्टिसे स्वयं प्रभु जैसा है, पर्यायमें स्वयं पामर है। प्रभु, भगवान, गुरुदेव! मैं तो पामर हूँ। ऐसी भावना उसे होती है। उसमें भी आता है, स्वयं द्रव्यदृष्टिसे प्रभु जैसा है, परन्तु पर्यायमें पामरता है। सब मेरेमें है, ऐसी दृष्टि हो तब तक आगे नहीं बढ़ सकता। गुरुने ही सब समझाया है और गुरु ही सर्वस्व है। ऐसा उसके हृदयमें हो तो वह आगे बढ़ सकता है।

आगे बढ़ना है, द्रव्य पर दृष्टि करनी है, भेदज्ञान करना है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना है, बहुत करनेका बाकी है। स्वभावमें सब है, परन्तु साधनामें सब प्रगट करना है। इसलिये शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति आये बिना नहीं रहती।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८३

मुमुक्षु :- शुभभावका अवलम्बन कब तक है?

समाधान :- शुभभाव बीचमें आते हैं। अंतरमें जानेमें द्रव्यका आलम्बन है, परन्तु व्यवहारमें शुभभाव आये बिना नहीं रहते। अशुभभावोंसे बचनेके लिये शुभभाव उसे बीचमें आते हैं। आलम्बन द्रव्यका है, परन्तु बीचमें व्यवहारमें भी देव-गुरु-शास्त्रके निमित्त होते हैं। अनादि कालसे जो समझमें नहीं आया है। उसमें पहली बार समझे तोक देशनालब्धि होती है। कोई देवका या गुरुका उपदेश मिले तो ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। तब उसे अन्दर प्रगट होता है। आलम्बन स्वयंका है, परन्तु शुभभावमें भी व्यवहार शुभभावका व्यवहार बीचमें आये बिना नहीं रहता। व्यवहारमें देव-गुरु-शास्त्रका आलम्बन है। अन्दर आत्माको पहचानना वह प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- ... तो वस्तु प्राप्त होगी। भगवान दिखे तो वहाँ दौड़कर जायेंगे, ऐसे आत्माको समझनेकी प्यास लगे तो ज्ञानीके पास दोड़कर जायें। उसे थोड़ा समझाईये।

समाधान :- उसका अर्थ ऐसा है कि यदि प्यास लगी हो तो वह दौड़कर जाता है। लेकिन प्यास नहीं लगी हो तो मात्र ऊपर-ऊपरसे करता है। सच्ची प्यास लगे तो-तो भीतरमें प्रयास किये बिना रहता ही नहीं, तो-तो प्रयास होता ही है, करता ही है, परन्तु प्यास नहीं लगी है। प्यास लगे तो-तो जहाँ मिले वहाँ सुननेको जाये, भीतरमें प्रयास करे, उपदेश सुने और क्या कहते हैं, गुरुदेव एवं भगवान क्या कहते हैं, उसका विचार करे। भीतरमें भेदज्ञान करनेका प्रयास करे। यदि सच्ची लगी हो तो।

मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसी ज्ञायकको प्रगट करनेकी यदि प्यास लगी हो तो वह किये बिना रहता नहीं। कोई भी तकलीफ आये तो भी उसे दूर करके, उसको गौण करके वह करता है। परन्तु सच्ची प्यास नहीं लगी है। प्यास लगे तो होता ही है। कोई कहता है न कि, कैसे करना? बहुत करते हैं फिर भी होता नहीं। परन्तु बहुत करता ही नहीं है। प्यास लगी हो तो प्रयत्न होता ही है, हुए बिना रहता ही नहीं।

मुमुक्षु :- प्यास लगी है, यह कैसे पता चले?

समाधान :- जिसको प्यास लगी है वह प्रयत्न करता ही है। प्रयत्न नहीं करता

है तो समझना कि प्यास नहीं लगी है। प्रयत्न जरूर करता है।

मुमुक्षु :- पीछली बार गर्मीमें आये थे, तब आपने कहा था कि दिन-रात ऐसी लगन लगनी चाहिये कि न खाना तो आये, न पीना तो आये, एक आत्माकी ही लगन लगनी चाहिये। ऐसी लगन लगाते हैं तो बीचमें कोई प्रतिकूलता आ गयी, शरीर अस्वस्थ है, तमाम बातें आ जाती हैं, मतलब लगनमें बाधा डालते हैं, तो उसमें क्या करना चाहिये?

समाधान :- लगनमें बाधा कोई नहीं डालता। जिसको लगन लगी हो उसको खाना नहीं रुचता, पीना नहीं रुचता, घुमना-फिरना कुछ रुचता ही नहीं। सोना नहीं रुचता, कुछ रुचता ही नहीं। सब करता है, लेकिन भीतरमें मुझे आत्मा चाहिये, वह नहीं मिलता है। खाता है, पीता है, सब करता है, परन्तु जहाँ जाता है वहाँ, मुझे आत्मा चाहिये। अंतरमें जोश और खटक ऐसी लगन लगे तो हुए बिना रहता नहीं। उसे चैन नहीं पड़ता। कोई बाधा डालता है तो भी वह पुरुषार्थ करके भीतरमें बाहरकी बाधाएँ उसमें अवरोध नहीं करती। अंतर पुरुषार्थ करे उसको बाहरका कार्य अवरोध करता ही नहीं। भीतरमें हुए बिना, किये बिना रहता नहीं, करता ही है।

मुमुक्षु :- माताजी! शुभ परिणामोंमें पुण्यका बन्ध तो होता ही है, साथमें कर्मका भी बन्ध होता है?

समाधान :- शुभका बन्ध होता है तो कर्मका बन्ध होता ही है? उपयोग स्वरूपमें लीन हो जाये तो अबुद्धिपूर्वक या बुद्धिपूर्वक नहीं होता है। परन्तु अभी अंतरमें अबुद्धिपूर्वक है तब तक बन्ध होता ही है और शुभउपयोग होवे तो बन्ध तो होता ही है। हेयबुद्धि है, भेदज्ञान है कि मैं भिन्न हूँ, ज्ञायककी परिणति है, परन्तु यदि उपयोग शुभ है तो बन्ध होता है। बन्ध तो होता है। जितनी भेदज्ञानकी धारा है, ज्ञायककी परिणति है, उतना बन्धसे छूट गया है। दर्शनमोहका बन्ध छूट गया और चारित्रमोहका बन्ध होता है। दर्शनमोहकी कोई अल्प प्रकृति हो तो अल्प बन्ध होता है। परन्तु दर्शनमोह छूट गया है और चारित्रमोहका बन्ध होता है। शुद्धउपयोगमें नहीं (होता)।

... शुभउपयोगको पलटना चाहिये। उसमें ज्ञान, दर्शन तो साथमें होते ही हैं। उपयोग बाहर जाये, उसमें जो शुभ परिणाम या अशुभ परिणाम, जो शुभाशुभ परिणाम होते हैं, उसके साथ ज्ञान तो साथमें होता है। इसलिये ज्ञानका उपयोग भी शुभउपयोग मिश्रित है। ज्ञान बाहर जाये तो ज्ञान शुद्धात्मामें लीन हो जाये, ऐसा तो ज्ञान है नहीं। ज्ञान शुभाशुभके साथ रहा है। इसलिये शुभाशुभ उपयोगको पलट दे। तेरा उपयोग स्वरूपमें- आत्मामें आनन्द है, उसमें तेरा उपयोग लगा दे। वास्तवमें तो ज्ञानका उपयोग है, परन्तु उसके साथ शुभाशुभ भाव जुड़े हुए हैं।

बाहर राग है, बाहर एकत्वबुद्धि है, उसके साथ ज्ञान जुड़ा है। बाहरका रस तोड़ दे और अंतर आनन्द है, उसकी ओर जा। तेरे ज्ञानका उपयोग बाहर है, उसे अंतरमें ला। शुभाशुभ भावको भिन्न कर और तेरे आत्माके अन्दर ला, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- कहीं अच्छा न लगे तो उपयोग अन्दरमें जाये?

समाधान :- हाँ, उपयोग अन्दरमें जाये। अन्दर जाता है वह ज्ञानका उपयोग जाता है, परन्तु बाहर है वह शुभाशुभ मिश्रित है। उपयोग बाहर है (वह)।

मुमुक्षु :- ... अन्दरमें ही जाये?

समाधान :- सचमुचमें कहीं रुचे नहीं, बराबर यथार्थरूपसे अच्छा नहीं लगता हो तो उपयोगको कहीं रहनेका स्थान नहीं रहता। उपयोग कहाँ टिकता है? जहाँ राग हो वहाँ टिके। राग छूट गया, सचमुचमें उसे राग होता ही नहीं और बाहर कहीं रुचता ही नहीं, सचमुचमें नहीं रुचता, फिर उपयोग-ज्ञानका उपयोग कहाँ टिकेगा? पहले तो शुभभाव और अशुभभावमें टिकता था। बाह्य ज्ञेयोंके साथ राग और द्वेष आदि होता था। अब, कहीं रुचता नहीं है तो ज्ञानका उपयोग कहाँ जायेगा? स्वरूपकी ओर जायेगा।

वास्तवमें उसे यदि रस टूट गया हो, कहीं खड़े रहना रुचता न हो, अब कहाँ जाना? अब किसके आश्रयमें जाना? यह आश्रय तो ठीक नहीं लगता है, शुभाशुभ भावका आश्रय बराबर नहीं है, वहाँ खड़े रहना रुचता नहीं। कहाँ जाना? तो वह स्वयं स्वयंके चैतन्यका आश्रय खोज लेगा और अंतरमें गये बिना रहेगा नहीं। अंतरका आश्रय खोज लेना, यदि बाहरमें टिक नहीं पाया तो। स्वभावका आश्रय खोज लेगा।

मुमुक्षु :- समयसारमें दृष्टान्त आता है न, समुद्रमें जहाज पर पक्षी बैठा है।

समाधान :- समुद्रमें जहाज पर बैठा पक्षी।

मुमुक्षु :- पक्षी ऊड-ऊडकर कहाँ जायेगा? वहीं वापस आ जायेगा।

समाधान :- वहीं आ जायेगा, आश्रय जहाजका लेगा। वह दृष्टान्त आता है।

मुमुक्षु :- माताजी! ज्ञानी चौबीसों घण्टे क्या करते रहते हैं?

समाधान :- चौबीसों घण्टे उसे ज्ञायकका आश्रय है, ज्ञायककी परिणति है। ज्ञायककी परिणतिमें रहते हैं और उपयोग भले बाहर जाता हो। जैसी उसकी दशा हो, उसके अनुसार उपयोग बाहर शुभमें उसकी भूमिका अनुसार जाता है। गृहस्थाश्रममें सम्यग्दृष्टि हो तो उसके गृहस्थाश्रमके कार्य और शुभभावमें उपयोग जाता हो, परन्तु उसकी परिणति, उसकी परिणति निरंतर चैतन्यके आश्रयमें ही है। उसने आश्रय चैतन्यका ही लिया है। दूसरा बाहरका आश्रय उसे छूट गया है। भले ही सब आता हो, परन्तु आश्रय-चैतन्यघर

मिल गया है। अपने घरमें खड़ा हुआ अपना घर नहीं छोड़ता। अपने घरमें ही चौबीसों घण्टे खड़ा रहता है। घरके बाहर उसके किनारे सब लोग आये, उसके साथ उसका बोलना आदि व्यवहार करे (लेकिन) अपना घर छोड़कर जाता नहीं। घरके बाहर खड़े लोगोंके साथ व्यवहार करे, परन्तु स्वयं अपने घरमें घरमें खड़ा है। चैतन्यका आश्रय चौबीसों घण्टे छूटता नहीं। उपयोग बाहर जाये और दूसरा व्यवहार उसका दिखाई दे, सब शुभाशुभ भाव, गृहस्थाश्रममें सब व्यवहार दिखाई देता है, परन्तु उसका आश्रय चैतन्यका है। देव-गुरु-शास्त्र आदिमें दिखता हो।

मुमुक्षु :- शुद्धि बढ़ती जाती है?

समाधान :- अंतरकी शुद्धि बढ़ती जाती है। उसकी भूमिका अनुसार उसकी अमुक शुद्धि बढ़ती जाती है। सम्यग्दर्शन है, अमुक प्रकारका स्वरूपाचरण चारित्र है। अधिक शुद्धि उसकी भूमिका पलट जाये तो चारित्रकी शुद्धि विशेष होती है। परन्तु अमुक भूमिका है तो उसकी शुद्धि बढ़ती है, निर्मलता बढ़ती जाती है। स्वयं अपने आश्रयमें ही खड़ा है।

... अपेक्षासे उसे भेदज्ञान हो गया, स्वरूपाचरण चारित्र है, अनन्तानुबन्धी कषाय टूट गया है, उसे उसकी शुद्धि बढ़ती जाती है। उसका आश्रय वह है। उपयोग बाहर जाये तो उसकी डोर स्वरूपमें खींँचता रहता है। उसे चैतन्यका आश्रय चौबीसों घण्टे है, परन्तु उपयोग निज चैतन्यको छोड़कर विशेष बाहर न जाता (क्योंकि) डोरी उसके हाथमें है। क्षण-क्षणमें डोर अपनी ओर खींँचता रहता है। उपयोगकी डोरीको ज्यादा बाहर (नहीं जाने देता), स्वरूपकी मर्यादा छोड़कर ज्यादा बाहर नहीं जाने देता। डोरी उसके हाथमें है। बारंबार उपयोग बाहर जाये तो भी अपनी ओर खींँचता रहता है। स्वरूपका घर छोड़कर उपयोगको ज्यादा बाहर नहीं जाने देता, उपयोगको बारंबार अपनी ओर खींँचता है।

पतंगकी डोर जैसे हाथमें है। बारंबार अपनी ओर खींँचता है। वह उसका कार्य है। बारंबार उपयोगकी डोरको क्षण-क्षणमें अपनी ओर खींँचता है। स्वरूपका आश्रय है, द्रव्य पर दृष्टि और ज्ञान है। चारित्रमें लीनतामें बारंबार उपयोगकी डोरको अपनी ओर खींँचता रहता है। क्षण-क्षणमें खींँचता है। स्वरूपको छोड़कर उपयोगको विशेष बाहर नहीं जाने देता। उसकी परिणतिका अंतर कार्य क्षण-क्षणमें चलता रहता है। उसका वह कार्य छूटता ही नहीं।

स्वानुभूतिकी दशा एक अलग है, निर्विकल्प दशा होती है। परन्तु बाहर खड़ा-खड़ा अपनी डोरको स्वरूपकी ओर खींँचता रहता है। उपयोगकी डोरी। उपयोग ज्यादा बाहर नहीं जाने देता। बाहर दिखाई दे सब कार्योंमें, देव-गुरु-शास्त्रकी भक्तिमें, उनकी

पूजामें, शास्त्र श्रवणमें, शास्त्र स्वाध्यायमें सबमें दिखाई देता हो। चतुर्थ गुणस्थानमें गृहस्थाश्रमके कोई कार्योंमें दिखाई देता हो, परन्तु डोरी अपने हाथमें ही है। डोरीको ज्यादा बाहर (नहीं जाने देता)। कोई शुभ कार्योंमें या अशुभमें, डोरी अपने हाथमें है। ज्यादा जाने नहीं देता।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको राग काले नाग जैसा लगता है?

समाधान :- काले नाग जैसा... निज स्वरूपको छोड़कर बाहर जाना, सचमुचमें यह विभाव हमारा देश नहीं है, हम यहाँ कहाँ आ गये? हमारा चैतन्यदेश अलग ही है। यह तो काले नाग जैसा, सर्प जैसा है। उपयोगकी डोरी अपने हाथमें रखता है।

मुमुक्षु :- माताजी! मुमुक्षुके पास कोई डोरी है? ज्ञानीके पास तो..

समाधान :- मुमुक्षुके हाथमें क्षण-क्षणमें डोरी तो प्रत्यक्ष उसके पुरुषार्थकी है। मुमुक्षुके हाथमें रुचिकी डोरी हाथमें रखनी। उसकी रुचि मन्द नहीं पड़ जाये, दूसरे कार्योंमें मुमुक्षुकी भूमिकासे अधिक कोई कार्योंमें, मुमुक्षुको शोभा नहीं दे ऐसे कार्योंमें जाना नहीं। आत्माकी ओर आत्मार्थका प्रयोजन, आत्माका मुझे मुख्य प्रयोजन है। प्रत्येक कार्योंमें मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो, इस प्रयोजनके साथ दूसरा प्रयोजन आ नहीं जाये-कोई लौकिकका या दूसरा कोई या मानादि, ऐसा कोई भी प्रयोजन नहीं आये। मुझे प्रत्येक कार्योंमें आत्माका प्रयोजन है। ऐसी आत्माकी रुचि, आत्माकी रुचि उसके हाथमें है।

वह डोरी तो अलग बात है, वह तो डोरी खींचता ही रहता है। यहाँ तो रुचिको आत्माके प्रयोजन सिवाय, दूसरे कोई प्रयोजनके कार्य, उसमें लौकिक कार्यका मुझे प्रयोजन नहीं है। एक आत्माका प्रयोजन है। मुझसे रहा नहीं जाता, मैं पुरुषार्थ नहीं कर पाता हूँ, परन्तु मुझे प्रयोजन एक आत्माका है।

... वह ऐसे राह नहीं देखता कि जब मिलनेवाला होगा तब मिलेगा। खाना-पीना आदि नहीं मिलेगा, ऐसे राह नहीं देखता। वह प्रयास करने जाता है। वैसे जिसे भूख लगी हो, वह पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। जिसे आत्माकी लगी है, आत्माके बिना चैन नहीं पड़ता, उसकी लगनी लगे वह पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आत्माके विचार करे, आत्माकी प्रतीत करनेका प्रयत्न करे, पहचाननेका प्रयत्न करे, आत्मा मुझे कैसे प्राप्त हो, उसका बारंबार अभ्यास करे, पुरुषार्थ करे। काललब्धिकी (राह नहीं देखता)।

मैं पुरुषार्थ करुँ, मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो? ऐसी उसे लगनी लगे, वह राह नहीं देखता। और जो पुरुषार्थ करता है, उसे काललब्धि पक जाती है। पुरुषार्थके साथ काललब्धिका सम्बन्ध है। जो पुरुषार्थकी राह देखता है, उसे आत्माकी लगी ही नहीं।

जिसे लगी नहीं उसे काललब्धि है। लगी ही नहीं। आत्माकी लगी हो, वह राह ही नहीं देखता।

...स्वयं ही है, परन्तु स्वयंको कहाँ स्वयंकी प्रतीत है? स्वयं तो है। उसकी लगनी (नहीं है)। उसे आत्माकी अनुभूति नहीं है, आत्माका वेदन नहीं है। इसलिये मुझे आत्माकी स्वानुभूति, आत्माका वेदन मुझे कैसे हो? ज्ञायककी परिणति मुझे कैसे प्रगट हो? है तो स्वयं, स्वयं स्वयंको पहचानता नहीं, भूल गया है। इसलिये जिज्ञासा, लगनी लगे बिना नहीं रहती। स्वयं स्वयंको भूल गया है।

मुमुक्षु :- भगवानके समवसरणमें देवों और इन्द्रों आते हैं, उस वक्त वहाँके जो प्रजाजन होते हैं, तो देवों और इन्द्रोंके साथ मित्राचारी होती है? ऐसा कोई प्रसंग बना था? या ऐसा कुछ हो सकता है? उनके साथ मित्राचारी या...

समाचार :- देवोंको किसीके ऊपर... उसे कोई उपकार हुआ हो और कोई देवको भाव आवे तो कोई मनुष्यका, राजाका पुण्य हो तो उसे ले जाते हैं, मेरु पर्वत पर। ले जाये, परन्तु उसे मित्राचारी हो या ऐसा कोई देवका प्रसंग बने, देव कुछ बात करे, ऐसा बन सकता है। उसके साथ मित्राचारी...

मुमुक्षु :- जो अकृत्रिम जिनालय हैं, वहाँ दर्शन करनेका भाव आवे और बात करे तो ले जाये?

समाधान :- जिसे बहुत भावना हो, उसका ऐसा पुण्य हो तो देवको विचार आता है कि इसे ले जाऊँ।

मुमुक्षु :- आपको अथवा गुरुदेवको ऐसा कोई प्रसंग बना था?

समाधान :- वह कोई बात नहीं। सोलहवें शान्तिनाथ भगवान, उन्हें अगले कोई भवमें देव ले गये हैं। सब मन्दिरोंके दर्शन करवाये हैं। शान्तिनाथ भगवानके जीवको...

मुमुक्षु :- सोलहवें भवमें?

समाधान :- अगले भवमें। मुर्गेके रूपमें परीक्षा की है, वह सब प्रसंग आते हैं। देव प्रसन्न होकर, उन्हें विमानमें बिठाकर मन्दिरोंके दर्शन-शाश्वत मन्दिरोंके दर्शन करने ले जाता है। अपने यहाँ चित्र है। नंदीश्वरमें है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८४

समाधान :- ... अंतरमेंसे रुचि जागृत हुयी हो, वह संमत करता है। सम्यग्दृष्टि संमत करे और उसके पहले जिसे रुचि जागृत हुयी हो, वह संमत करता है कि वास्तवमें आत्माका सुख सर्वसे उत्कृष्ट है। परन्तु अंतरमेंसे जो रुचिसे नक्की करे तो वह संमत करता है। दूसरे तो कोई संमत नहीं करते।

मुमुक्षु :- सविकल्प दशामें भी उसको, मैं परिपूर्ण सुख और ज्ञानसे भरा हूँ, ऐसा जिसे अपनेआप पर विश्वास आया हो, वह अरिहन्तके सुखका विश्वास, वह नक्की कर सकता है।

समाधान :- नक्की कर सकता है। स्वयंने विचार करके नक्की किया हो कि मेरेमें ही सुख भरा है। मैं सुखस्वभाव, सुखस्वरूप ही हूँ। उसे अरिहन्त भगवान कैसे, उसका सुख प्रगट हुआ। वह अरिहन्त भगवानके सुखको नक्की करता है। अथवा अरिहन्त भगवानका सुख उसे सुननेमें आये तो भगवान निमित्त (होते हैं)। उनसे उसे होता है कि मैं ही ऐसा हूँ। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। वह संमत करता है।

जिसे अपूर्व रुचि हुयी हो, वह संमत करता है। वास्तविक संमत तो उसे सम्यग्दृष्टिमें होता है, परन्तु उसके पहले जिसे पात्रता (प्रगट हुयी है), वह भी संमत करता है।

मुमुक्षु :- वास्तवमें तो सम्यग्दृष्टिको ही नक्की होता है, परन्तु सम्यग्दर्शन पूर्वकी भूमिका ऐसी हो कि जो सच्चा पक्ष ऐसा करे कि...

समाधान :- जो ऐसा सच्चा निर्णय करता है, वह संमत करता है।

मुमुक्षु :- भव्यमें ऐसा तो नहीं होता कि सब सम्यग्दृष्टि ही भव्य हैं, ऐसा तो..

समाधान :- उसकी लायकात है। भव्य यानी उसके स्वभावमें ऐसी लायकात है। फिर जो पुरुषार्थ करे उसे वह प्रगट होता है। सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन होने पूर्व अपूर्वता लगती है। गुरुकी वाणी सुनकर, गुरुदेवकी वाणी सुनकर (ऐसा लगता है कि) यह कोई अपूर्व वाणी है और आत्माका सुख कोई अपूर्व है। सचमुचमें अपूर्व है। गुरुदेव जो बताते हैं, वह बराबर है। ऐसे सम्यग्दर्शन होनेसे पहले भी वह नक्की करता है।

... ऐसी ही उसमें लायकात है और किया। सम्यग्दर्शन हो तो भवका नाश किया

ऐसा कहनेमें आये। कोई शुभाशुभ भावोंमें जिसे शान्ति नहीं है, एक आत्माके आश्रयसे प्रगट होता ज्ञान और सुख, वही सच्चा सुख है। ऐसी अंतरमेंसे जिसे प्रतीत आती है।

.. एकान्तमें बैठे, लेकिन ग्रहण तो स्वयंको करना है। बारंबार प्रयत्न करना, बारंबार। मन बाहर जावे तो भी बारंबार प्रयत्न करे। अनादिका अभ्यास है इसलिये मन बाहर जाता है। परन्तु बारंबार अभ्यास करे, बारंबार। उसकी जिज्ञासा, लगनी, बारंबार विचार करे, तत्त्व चिंतवन करे, स्वाध्याय करे, परन्तु ध्येय एक (होना चाहिये कि) मैं आत्माको कैसे पहचानुँ? बारंबार भेदज्ञान करनेका उपाय करे। द्रव्य पर दृष्टि करे। यह एक ही उपाय है। द्रव्यको पहचाने। मैं यह जाननेवाला ज्ञायक हूँ। विभावसे विरक्त हो और स्वभावको ग्रहण करे। बारंबार अभ्यास करे। बारंबार करे।

मुमुक्षु :- स्वपरप्रकाशकके सम्बन्धमें तरह-तरहकी बातें चलती है तो हमें कुछ समझमें नहीं आता।

समाधान :- आत्माका स्वभाव तो स्वपरप्रकाशक है। शास्त्रमें भी आता है। गुरुदेव भी कहते हैं। स्वको जाने और परको जाने, (ऐसा) आत्माका स्वभाव है। ज्ञान और सुख कहनेमें आता है। सबको जाने। ज्ञान एकको जाने और दूसरेको न जाने, ऐसा ज्ञानका स्वभाव नहीं है। ज्ञानकी अनन्तता, ज्ञान संपूर्णरूपसे सबको जानता है। ज्ञान अपनेको जानता है, अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको और परपदार्थको भी जानता है, लोकालोकको जानता है।

अपने स्वरूपमें लीन होवे, ज्ञायकको पहचाने और स्वपरप्रकाशक ज्ञान प्रगट होता है। सबको जानता है, आत्माका स्वभाव है। जो नहीं पहचानता, नहीं जानता है, उसको आत्माका ज्ञानस्वभाव (प्रगट) नहीं होता। ज्ञान तो पूर्ण अनन्त-अनन्त स्वभावसे भरा हुआ है। लोकालोक जाननेका स्वभाव है। द्रव्य पर दृष्टि करे। अपनी ओर उपयोग होवे तो भी स्वपरप्रकाशक ज्ञानका नश नहीं होता। पूर्ण जाननेका उसका स्वभाव है।

मुमुक्षु :- अनादि कालसे परको जाना तो कुछ हाथ नहीं आया, इसलिये अब परको जानना बन्द करके स्वको जाने।

समाधान :- हाथमें नहीं आया तो द्रव्य पर दृष्टि करे। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा पीछाने। परन्तु बन्द करना और नहीं करना, ऐसी बात नहीं है। अपनी ओर दृष्टि करे, उपयोग अपनी ओर लीन होवे। क्षयोपशमज्ञान ही ऐसा है कि एक ओर उपयोग जाये तो एकको जानता है, दूसरेको नहीं जानता है। क्षयोपशमज्ञानका ऐसा ही स्वभाव है।

जिसको आत्माकी लगी है, आत्माको पीछाने तो परका उपयोग अपनेआप छूट जाता है। इसलिये जाननेमें नहीं आता। केवलज्ञानीका ज्ञान तो क्षयोपशम ज्ञान नहीं है, क्षायिक ज्ञान है। अपनेमें लीन होवे तो भी संपूर्ण जानता है। अपने स्वरूपमें लीन

होवे, पूर्ण वीतराग हो जाये तो पूर्ण जानता है।

अपनेको जानो। ज्ञान जानता है, नहीं जानता है... ज्ञानका तो जाननेका स्वभाव है। परके साथ एकत्व मत करो और परके साथ राग मत करो। उससे भेदज्ञान करो। परन्तु जाननेका बन्द करो, उसका कोई मतलब नहीं है। जाननेमें दोष नहीं है, रागका दोष है। एकत्वबुद्धि है। अपने ज्ञायकको पीछानो, ज्ञानकी ओर दृष्टि करो, ज्ञायककी प्रतीत करो, ज्ञायकमें लीन होओ। स्वानुभूतिके समयमें उपयोग बाहर नहीं है तो स्वको जानता है। परन्तु जाननेका छूट नहीं गया है। उपयोग पलट गया है। बन्द करनेका उसमें कोई प्रयोजन नहीं आता। राग छोड़ना है और भेदज्ञान करो। एकत्वबुद्धि तोडो, स्वको ग्रहण करो।

कहते हैं न, बाहर देखनेका बन्द करो, ऐसा करो। ऐसी कोई हठ करता है। सुननेका बन्द करो, आँखमें कोई ऐसा करता है, मुँह बन्द कर देता है। ऐसा करनेका कोई प्रयोजन नहीं है। अपनेको पीछानो। एकत्वबुद्धि तोड़ दो। ज्ञान और ज्ञेय दोनों भिन्न ही है। ज्ञायक और ज्ञेय दोनों भिन्न ही है, यह भेदज्ञान करो। द्रव्य जो चैतन्यद्रव्य है, उस पर दृष्टि करना। उसमें भेद गौण हो जाता है। विभाव और भेद भाव, गुणभेद, पर्यायभेद गौण हो जाते हैं। द्रव्यके विषयमें एक द्रव्य आता है। गुणभेद, पर्यायभेद गौण जाते हैं। सब ज्ञानमें आता है। आत्मामें अनन्त गुण हैं, पर्याय है। द्रव्यकी दृष्टिमें एक द्रव्य, अभेद द्रव्य आता है। द्रव्यकी दृष्टि एक आत्माका अस्तित्व ग्रहण (करती है)। ज्ञानगुण है, दर्शनगुण है, चारित्र है, ऐसे गुणभेद पर दृष्टि नहीं रहती। उसमें राग होता है। द्रव्य पर (दृष्टि रहती है)। ज्ञायक द्रव्य है, उसका अस्तित्व ग्रहण कर लेना। एक द्रव्य पर दृष्टि करनी।

मुमुक्षु :- वास्तवमें द्रव्यदृष्टिका विषय शुद्धाशुद्ध पर्यायसे रहित नहीं है, परन्तु प्रयोजनवश गौण करके कहनेमें आता है?

समाधान :- गुणभेद, पर्यायभेद उसमें गौण हो जाते हैं। स्वभाव निकल नहीं जाता। द्रव्यमेंसे गुण निकल नहीं जाते, पर्याय निकल नहीं जाती। परन्तु दृष्टिका विषय एक द्रव्य पर होता है। इसलिये आत्मामें गुण नहीं है, पर्याय नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। दृष्टिका विषय एक द्रव्य पर जाता है। अभेद द्रव्य पर। भेद पर उसकी दृष्टि नहीं जाती। दृष्टिके साथ ज्ञान रहता है, वह सब विवेक करता है। दृष्टिके साथ-साथमें रहता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों साथमें रहते हैं। ज्ञान अभेदको जाने, भेदको जाने, सबको जानता है। दृष्टि एक द्रव्यको ग्रहण (करती है)। दृष्टिका बल है। दृष्टिका बल मुख्य रहता है। ज्ञान साथमें रहता है।

मुमुक्षु :- परिणाम बिना तो द्रव्य कभी होता नहीं है, फिर भी उसको अपरिणामी

कहना?

समाधान :- अपेक्षासे अपरिणामी कहनेमें आता है। परिणामी और अपरिणामी दोनों है। परिणाम बिना नहीं रहता। अपरिणामी-एक अपेक्षासे उसमें कोई परिणामका भेद नहीं पड़ता है। एक द्रव्य, एक अखण्ड द्रव्य... द्रव्यकी दृष्टिसे अपरिणामी कहते हैं। परिणाम निकल नहीं जाता। परिणाम है आत्मामें। परिणाम उसमें नहीं है, ऐसा नहीं है। परिणाम सहित द्रव्य है।

द्रव्य अनादिअनन्त एकरूप द्रव्य है। एकरूप। इसलिये उसे अपरिणामी कहनेमें आता है। द्रव्यमें कोई पलटन नहीं है, द्रव्य एकरूप रहता है। द्रव्यदृष्टिसे उसे अपरिणामी कहनेमें आता है। पर्यायदृष्टिसे परिणामी कहनेमें आता है। परिणाम, अपरिणामी दोनों हैं। परिणाम उसमें है ही नहीं, ऐसा नहीं है। कुछ है ही नहीं, कल्पित है, ऐसा नहीं है। उसमें है, परिणाम है।

... परिणाम होते हैं। गुणका कार्य होता है। अनन्त पर्याय होती हैं। सिद्ध भगवानमें भी परिणाम होते हैं। परन्तु द्रव्य परिणामी, अपरिणामी (कहनेमें आता है)। द्रव्यदृष्टिसे अपरिणामी (कहते हैं)।

.. शुभाशुभ भावमें रुचे नहीं, अन्दर रास्ता मिले नहीं, ऐसा नहीं बनता। अन्दरमें जिसे खरी लगन लगी हो, उसे मार्ग प्राप्त हुए बिना नहीं रहता। उसे ज्ञायक ग्रहण हुए बिना नहीं रहता। अंतरमें शुभाशुभ भावसे यदि उसे सचमुचमें आकुलता लगती हो और कहीं चैन नहीं पड़ता हो, तो आत्माको ग्रहण किये बिना नहीं रहता। वह मार्ग ढूँढ ही लेता है। मार्ग गुरुदेवने बताया और स्वयंको ग्रहण नहीं हो तो अपने पुरुषार्थकी कमी है। मार्ग तो स्पष्ट करके बताया है। परन्तु स्वयंको अन्दर खरी लगी हो तो ग्रहण करे। ग्रहण नहीं करता है। सच्चा दुःख लगा हो वह ग्रहण किये बिना नहीं रहता। सच्ची भूख नहीं लगी है, इसलिये वह ग्रहण नहीं करता है।

मुमुक्षु :- प्रतिकूलताका ही दुःख लगा?

समाधान :- प्रतिकूलतामें दुःख लगे, परन्तु अन्दर सुख कहाँ है? उसको अन्दरसे सुख खोजनेकी, आत्माको ग्रहण करनेकी अन्दर उतनी लगनी नहीं लगी है। प्रतिकूलताका दुःख ऊपर-ऊपरसे लगता है।

मुमुक्षु :- शुभभावका पुरुषार्थ होता है, वह किस प्रकारका होता है? शुभभावका पुरुषार्थ ज्ञानीको होता है..

समाधान :- अंतरमें पुरुषार्थ तो उसने शुद्धात्माको ग्रहण किया है। शुद्धात्मामें लीनताका पुरुषार्थ है। अंतरका पुरुषार्थ तो (यह चलता है)। परन्तु उपयोग बाहर जाता है, इसलिये अशुभभावसे बचनेके लिये शुभका पुरुषार्थ उसे कहनेमें आता है और शुभका पुरुषार्थ

होता है। परन्तु अंतरमें सच्चा पुरुषार्थ तो उसे भेदज्ञानकी धाराका और आत्मामें लीनताका (होता है)। जो शुभभाव भाव होते हैं, उससे भिन्न ही रहता है। और ज्ञायककी धारा वह पुरुषार्थ करके भिन्न ही रखता है और उसकी परिणति सहज ऐसी ही रहती है। फिर भी अभी पूर्ण नहीं हुआ है, पूर्णता नहीं हुयी है, अंतरमें लीन नहीं रह सकता है, स्वानुभूति (होती है परन्तु) अंतर्मुहूर्तमें तो बाहर आता है। उतनी भूमिका नहीं है। चौथे, पाँचवे गुणस्थानमें उतनी भूमिका नहीं है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें हो तो भी वह अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें बाहर आते हैं। इसलिये उपयोग बाहर आता है। वीतराग दशा नहीं हुयी है। इसलिये उसे अशुभभावसे बचनेको शुभका पुरुषार्थ होता है। होता है, परन्तु वह हेयबुद्धिसे होता है। सर्वस्व मानकर नहीं होता है कि यह पुरुषार्थ सर्वस्व है और इससे मुझे लाभ होनेवाला है और मेरे आत्मामें कुछ प्रगट होनेवाला है। ऐसी मान्यता नहीं है।

अशुभभावसे बचनेके लिये शुभका पुरुषार्थ, शुभमें खड़ा रहता है। परन्तु पुरुषार्थ अन्दर वास्तवमें तो अंतरमें शुद्धि बढानेका होता है। मेरी अंतरमें लीनता कैसे हो? यह सब कषाय, जो विभावभाव है, उसकी मन्दता होकर मैं अंतरमें लीन हो जाऊँ अथवा वीतराग हो जाऊँ ओर यदि यह सब छूट जाता हो तो एक क्षण भी शुभाशुभ भाव आदि कुछ नहीं चाहिये। अन्दर मान्यता तो ऐसी है कि इस क्षण यदि छूट जाता हो तो यह शुभादि कुछ नहीं चाहिये। परन्तु अन्दर स्थिर नहीं हो सकता है, इसलिये बाहर शुभभावमें खड़ा रहता है। अशुभभावसे बचनेके लिये शुभमें खड़ा रहता है। अंतरमें पुरुषार्थ उग्र नहीं होता है, इसलिये बाहर शुभमें खड़ा रहता है।

अशुभ तो सर्व प्रकारसे हेय है, शुभ भी स्वभावदृष्टिसे हेय है। स्वभावदृष्टिसे वह भी हेय है। परन्तु कोई अपेक्षासे वह मन्द कषाय है, इसलिये खड़ा रहता है। देव-गुरु-शास्त्रके आलम्बनयुक्त होता है, इसलिये वह शुभभावोंमें-मन्द कषायमें खड़ा रहता है।

मुमुक्षु :- लाभ नहीं मानते हैं फिर भी...

समाधान :- लाभ नहीं मानते हैं।

मुमुक्षु :- उसके प्रयत्नमें होते हैं।

समाधान :- हाँ, प्रयत्न होता है। खड़ा रहता है। मन्द कषाय है, इसलिये खड़ा रहता है। अंतरमें ज्यादा समय स्थिर नहीं सकता है, इसलिये बाहर आता है। चौथे गुणस्थानमें भी होता है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, देव-गुरु-शास्त्रके कार्योंमें होता है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें भी होता है। मुनिओंको पंच महाव्रतके परिणाम होते हैं। और शास्त्र लिखते हैं, उपदेश देते हैं। उस प्रकारकी शुभभावकी प्रवृत्ति होती है। तो भी

अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें लीन होता है। परन्तु बाहर आते हैं तो ऐसे सब कार्य मुनिओंको भी शुभभावमें होते हैं। हेयबुद्धिसे है। उसे मानते नहीं है कि यह मेरे आत्मामें लाभकर्ता है। ऐसा नहीं मानते हैं।

मेरे आत्मामें शुद्धि कैसे बढ़े? मेरे आत्मामें लीनता कैसे हो? इसलिये अशुभसे छूटकर शुभभावमें (आता है)। पुरुषार्थ अंतरमें स्थिर होनेका है, ध्येय अंतरमें स्थिर होनेका है। परन्तु स्थिर नहीं हो सकता है, इसलिये बाहर खड़ा रहता है। उस क्षण शुभाशुभ कार्य करता हो, शुभके कार्यमें हो, देव-गुरु-शास्त्रके कोई भी कार्यमें हो तो भी उसे उसी क्षण भिन्न ज्ञायककी परिणति होती है। उसी क्षण ज्ञायककी परिणति होती है। उसे याद नहीं करना पड़ता। भिन्न ही, न्यारा ही रहता है।

मुमुक्षु :- शुभभावमें खड़ा रहता है, उसीका नाम शुभभावका प्रयत्न है?

समाधान :- बस, उसमें खड़ा रहता है। प्रयत्न है, अशुभसे बचनेको शुभभावमें खड़ा रहता है, उसका प्रयत्न है। दूसरा प्रयत्न नहीं है। भिन्न-भिन्न कार्य होते हैं, जिनेन्द्रदेवका, गुरुका, शास्त्रोंके विचार, श्रुतका चिंतवनका, बस, उस प्रकारका उसका प्रयत्न है। उसमें खड़ा रहता है। अंतरमें ज्ञायककी परिणति तो साथमें ही है। ज्ञायककी परिणति साथ-साथ रखता है और इसमें खड़ा रहता है।

अशुभमें नहीं जाना है, इसमें खड़ा रहना है, ऐसा। हेयबुद्धिसे भी खड़ा इसमें रहना है। या तो अंतर आत्मामें जाना है अथवा शुभभावमें खड़ा रहना है। अशुभमें तो जाना ही नहीं है। ... दृष्टिसे उसे सर्व प्रकारसे हेय माना है। किसी भी प्रकारसे आदर नहीं है, स्वभावदृष्टिसे। परन्तु प्रयत्नमें अंतरमें स्थिर नहीं हो सकता है, इसलिये बाहर शुभभावमें प्रयत्न होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! ऐसा कह सकते हैं कि शुद्धताके मन्द पुरुषार्थमें उसे शुभ परिणाम हो जाते हैं। इसलिये व्यवहारसे ऐसा कहा कि अशुभसे बचनेको शुभमें खड़ा है। वास्तवमें तो शुद्धताका..

समाधान :- मन्द पुरुषार्थ है, उसके साथ शुभभाव आये बिना नहीं रहते। शुद्धताका तीव्र पुरुषार्थ हो तो उसमें वह गौण होता है। परन्तु शुद्धताका मन्द पुरुषार्थ है, इसलिये उसके साथ शुभभाव जुड़े रहते हैं। प्रयत्न शुद्धिका है, परन्तु शुद्धि आगे नहीं बढ़ती है और मन्द रहती है, इसलिये शुभभावमें खड़ा रहता है। एक ओर अशुभसे बचनेको, एक ओर उसे शुद्धताकी ओरका तीव्र पुरुषार्थ नहीं चलता है, मन्द है, इसलिये शुभमें खड़ा रहता है। मन्द यानी ज्ञायककी परिणति तो चालू ही है, परन्तु अन्दर जो विशेष लीन होना चाहिये, वह नहीं हो सकता है। ज्ञायककी परिणति उसे दृष्टिकी अपेक्षासे जोरदार है। परन्तु आचरणमें मन्द है, इसलिये शुभभावमें खड़ा है।

मुमुक्षु :- मुमुक्षुकी भूमिकामें कैसा शुभभाव होता है?

समाधान :- मुमुक्षुको एकत्वबुद्धि है, भिन्न नहीं हुआ है। परन्तु वह मानता है, वह मुमुक्षु ऐसा मानता है कि यह शुभाशुभ भाव मेरा स्वरूप नहीं है। आत्मा भिन्न है, आत्मा निर्विकल्प स्वभाव ज्ञायक जाननेवाला है। परन्तु उसकी परिणति प्रगट नहीं हुयी है, इसलिये वह शुभभावमें खड़ा है। उसे तो एकत्वबुद्धि होती है। परन्तु उसने विचार करके जो निर्णय किया है कि, यह भाव मेरा स्वरूप नहीं है। वह निर्णय साथमें रहकर उससे मुझे धर्म होता है या उसे सर्वस्व मानता है, ऐसा मुमुक्षु मानता नहीं। परन्तु अंतरकी श्रद्धा, वह अलग बात है। लेकिन उसे वह सर्वस्व नहीं मानता। वह भी अशुभसे बचनेको शुभभावमें खड़ा रहता है। परन्तु उसे आत्मा भिन्न नहीं रहता है। एकत्व हो जाता है। उसकी मान्यता ऐसी रखे कि, यह सर्वस्व नहीं है, यह तो हेय है। मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा विचारमें भी वह रह सकता है।

आत्मा ग्रहण नहीं हुआ है, अशुभभावमें जाता है, कहाँ खड़ा रहेगा? शुभभावमें खड़ा है। रुचि आत्माकी रखे कि आत्माका ही करने जैसा है। यह मेरा स्वभाव नहीं है। सुख तो आत्मामें है, निर्विकल्प स्वरूपमें ही सुख है। विकल्पात्मक परिणतिमें सुख नहीं है। निर्विकल्प स्वरूप जो आत्मा, उसमें ही सुख है। ऐसी रुचि रखे। ऐसी रुचि रखे और ... एकत्वबुद्धि होती है। विचारमें हो, निर्णयमें हो तो भी उसकी परिणति भिन्न नहीं हुयी है।

लेकिन जो कुछ नहीं समझते हैं, एकत्वबुद्धिमें सर्वस्व मानते हैं, उसकी तो मान्यता ही अलग है। विचारपूर्वक भी उसकी मान्यता बराबर नहीं है। इसने विचारसे इतना निर्णय किया है तो उसे आगे बढ़नेका अवकाश है। लगनी लगाये तो आगे बढ़नेका अवकाश है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८५

मुमुक्षु :- पर्यायके षट्कारक स्वतंत्र है?

समाधान :- द्रव्यदृष्टिसे स्वतंत्र है। पर्याय अपेक्षासे पर्यायके स्वतंत्र और द्रव्य अपेक्षासे द्रव्यके स्वतंत्र। बाकी पर्याय द्रव्यके आश्रयसे होती है। द्रव्यके आश्रय बिना पर्याय नहीं होती है। अपेक्षासे उसे गौण करके स्वतंत्र कहनेमें आता है। द्रव्यकी अपेक्षासे उसे स्वतंत्र कहकर, पर्यायको गौण करके उसे स्वतंत्र कहते हैं। वह द्रव्यकी पर्याय है। द्रव्यको छोड़कर पर्याय कहीं अलग नहीं लटकती है। पर्याय भिन्न, एकदम सर्व प्रकारसे भिन्न हो तो वह दूसरा एक द्रव्य हो जाय।

मुमुक्षु :- ..नहीं जाने हुअेका श्रद्धान खरगोशके सींग समान है। मुनिको आगमज्ञान हो और ...

समाधान :- क्या? जाना है, फिर भी श्रद्धान नहीं होता?

जाना हुआ वह ऐसा जाना हुआ कहनेमें आता है। अंतरसे जाना हो तो उसे श्रद्धा हुये बिना नहीं रहती। जाना हुआ यानी.. क्या कहा? आगमज्ञान..?

मुमुक्षु :- आगमज्ञान हो और तत्त्वार्थ श्रद्धान न हो।

समाधान :- आगमज्ञान तो किया, लेकिन यदि अंतरमें श्रद्धा नहीं की। अर्थात् उसने श्रद्धा तो ऐसे की है, परन्तु अंतरसे नहीं की है। इसलिये वह जाना है, वह ऐसा जाना है कि अंतरकी परिणतिको मिलाकर नहीं जाना है। क्षयोपशमसे जाना है। परन्तु अंतरकी परिणतिको मिलाकर, अंतरकी परिणतिके साथ जो जानना चाहिये, वैसे नहीं जाना है, इसलिये उसके साथ तत्त्वश्रद्धान नहीं है। परन्तु जिसने सच्चा जाना हो, उसके साथ तत्त्वार्थ श्रद्धान हुए बिना नहीं रहता। और तत्त्वार्थ श्रद्धान सच्चा हो, उसके साथ सच्चा ज्ञान होता है।

... दुःख यानी बहुत आकुलता करे, ऐसा नहीं है। अन्दरसे स्वयंकी परिणति ही ऐसी होती है कि कहीं टिकती नहीं। अंतरमें कुछ दूसरा चाहिये। कहीं शान्ति नहीं लगती। कृत्रिमतासे दुःख है, दुःख है, उसे दुःख नहीं कहते। एकत्वबुद्धि हो रही है, उसे कहाँसे दिखे? रस लगा है, अनुकूलतामें बह जाता है। जो आत्माको पहचानता है, उसे अनुकूलतामें भी दुःख लगता है। अनुकूलता भी आत्माको सुख देनेवाली नहीं

है। वह भी आकूलतारूप है। वह अपना स्वभाव नहीं है। वह उपाधि है, विभावकी उपाधि है, अनुकूलता है वह। देवलोकका सुख भी उपाधि है। वह आत्माको सुखरूप नहीं है।

सम्यग्दृष्टि देवलोकमें हो तो उसे अंतर आत्मामें सुख लगता है, बाहर कहीं नहीं लगता। अनुकूलताके गंज हो तो भी सम्यग्दृष्टिको कहीं सुख नहीं लगता। अनुकूलतामें खींचाता नहीं। और प्रतिकूलतामें एकदम उसे खेद हो जाये ऐसा भी नहीं है। अनुकूलतामें खींचाता नहीं और प्रतिकूलतामें शान्ति रखता है। प्रतिकूलतामें आकुलता नहीं करते, उसमें भी शान्ति रखता है। अनुकूलतामें बह नहीं जाते।

अज्ञानदशामें उसने भ्रान्तिके कारण इसमें सुख है, ऐसा माना है। बह जाता है। किसीको वैराग्य आया हो तो ऐसा लगे कि यह अनुकूलता आत्माका स्वरूप नहीं है। परन्तु अंतरसे जो लगना चाहिये, वह अलग बात है। .. भी आकुलता है, अनुकूलता भी उपाधि है। .. राज हो तो भी वह उपाधि, आकुलता है, आत्माका स्वरूप नहीं है। बाहरसे जितना भी आया हो, वह आत्माका नहीं है।

स्वयं आत्माका स्वभाव होनेसे अंतरसे जो सुख आये, वह सच्चा सुख है। स्वयं आये वह। ... आया नहीं है, लेकिन विचार करे तो बाहरमें कहीं सुख नहीं है। उसमें सुख नहीं है और स्वभावकी रुचि करे, प्रयत्न करे तो सुख प्रगट होता है। विचार करे कि सब विभाव दुःखमय है। अपना स्वभाव नहीं है। स्वभावके आश्रयसे सुख, परके आश्रयसे दुःख है।

मुमुक्षु :- आस्रवोसे निवृत्ति क्यों नहीं होती?

समाधान :- आत्माको पहचाने तो आस्रवोंसे निवृत्ति हो। अंतरमें आत्माको-ज्ञायकको पहचाने, भेदज्ञानकी परिणति हो, अन्दर विज्ञानघन स्वयंका स्वभाव है। उस विज्ञानघन स्वभावमें परिणति हो, उसमें जमती जाय तो आस्रवसे निवृत्ति हो। अंतरमें भेदज्ञान हो तो आस्रवसे निवृत्ति हो। अंतरमें विज्ञानघन स्वभावको पहचाने बिना आस्रवसे निवृत्ति नहीं होती। अन्दर भेदज्ञानकी परिणति विज्ञानघन दशा हुए बिना आस्रवसे निवृत्ति नहीं होती।

स्वभावकी परिणति प्रगट हो, स्वभावकी क्रिया प्रगट हो तो आस्रवसे निवृत्ति हो। ज्ञायकको पहचाने। ज्ञायककी श्रद्धा, ज्ञायकका ज्ञान और ज्ञायकमें अमुक प्रकारसे रमणता। विशेष रमणता तो मुनिदशामें होती है। विज्ञानघन स्वभाव बढ़ता जाये, वैसे आस्रवोंसे निवृत्ति होती है।

मुमुक्षु :- .. वैरागी परिणति?

समाधान :- वैरागी परिणति जो अंतरमें होती है, वह दुःखरूप परिणति... परन्तु

वह वापस मुड़ता है। स्वभावकी ओर उसे रुचि हो तो वह सच्चा वैराग्य है। दुःखरूप परिणति नहीं है, परन्तु सच्चा वैराग्य है वह दुःखरूप परिणति नहीं है। दुःखगर्भित वैराग्य हो तो वह दुःखरूप परिणति है। सच्चा वैराग्य हो तो वह दुःखरूप परिणति नहीं है। विज्ञानघन स्वभाव बढ़ता जाय, उसमें विभावसे निवृत्ति और विभावसे विरक्ति होती है और स्वभावकी ओर परिणति होती है। इसलिये वह दुःखरूप नहीं है। विरक्ति दशा, ज्ञायककी परिणति विशेष प्रगट होती जाती है।

मुमुक्षु :- शान्तिरूप है?

समाधान :- शान्तिरूप है। विभावकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति हो और स्वभावकी परिणति होती है। विरक्त दशा। सच्चा वैराग्य उसे कहते हैं कि अंतरमें ज्ञायककी परिणति हो और विभावसे विरक्ति हो। शान्तिमय दशा है। दुःखगर्भित वैराग्य हो वह अलग बात है।

.. ज्ञान और वैराग्य साथमें रहते हैं। शास्त्रको जानता है, सब करता है, लेकिन भीतरमें यदि वैराग्य नहीं हुआ तो किस कामका? अकेला शुष्कज्ञान क्या करता है? भीतरमें विरक्ति, विभावसे विरक्ति होनी चाहिये। और साथमें वैराग्य होवे। संसारमें अच्छा नहीं लगे। स्वभावमें सबकुछ है। ऐसी रुचि, निर्णय ऐसा होना चाहिये। मात्र शास्त्र पढ ले, परन्तु भीतरमें मैं आत्माका कल्याण करुँ, ऐसा यदि साथमें वैराग्य नहीं हो तो अकेला ज्ञान कुछ नहीं कर सकता।

कोई अकेला वैराग्य करे कि संसारमें दुःख है, ऐसा है, ऐसा करके वैराग्य करता है, सब छोड़ देता है, त्याग करता है, व्रत करता है, सब करता है। परन्तु जाना कहाँ? किस मार्ग पर जाना है? यह ज्ञान नहीं होवे तो किस कामका? जीवने ऐसा अनन्त बार किया। सब दुःख लगा, संसारमें दुःख है। सब छोड़कर मुनि हुआ, ऐसा हुआ। परन्तु ज्ञान नहीं है, आत्माका ज्ञान नहीं हुआ। वह किस कामका? दोनों साथमें होने चाहिये।

अकेला ज्ञान और अकेला वैराग्य करनेसे लाभ नहीं होता है। ज्ञानके साथ वैराग्य होना चाहिये और वैराग्यके साथ ज्ञान होना चाहिये। ज्ञान ऐसा प्रयोजनभूत तो होना चाहिये कि किस मार्ग पर जाना है? कहाँ जाना है? आत्माका क्या स्वभाव है? आत्मामें सुख है, आत्मामें आनन्द है। ऐसा ज्ञान होना चाहिये। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव ज्ञायक स्वभाव है। ऐसा ज्ञान साथमें होना चाहिये। आत्माके द्रव्य-गुण-पर्यायका (ज्ञान होना चाहिये)। आत्माका द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या। सबका ज्ञान होना चाहिये।

अकेला त्याग कर देता है, छोड़ देता है। आता है न? 'यम नियम संयम आप कियो, त्याग वैराग्य अथाग लियो', सब किया। परन्तु यदि आत्मज्ञान नहीं हुआ तो

सब शुभभाव हुआ, पुण्यबन्ध हुआ। नौंवी ग्रैवेयक गया, लेकिन आत्माका ज्ञान नहीं हुआ तो भवका अभाव नहीं हुआ। शास्त्र पढ लेता है, परन्तु भीतरमें वैराग्य नहीं हुआ कि यह अच्छा नहीं है, यह परद्रव्य है। स्वद्रव्य कोई अपूर्व अलौकिक चीज है, इसकी महिमा नहीं की, विभावसे विरक्ति-वैराग्य नहीं आया। अकेला शास्त्रका स्वाध्याय किया, परन्तु भीतरमें कुछ नहीं किया तो भी लाभ नहीं हुआ।

मुमुक्षु :- माताजी! द्रव्यलिंगी तो बहुत ज्ञान और वैराग्य करता है। फिर भी सिद्धि नहीं होती है?

समाधान :- ज्ञान और वैराग्य दोनों करता है, परन्तु ज्ञान ऐसा किया कि आत्माका ज्ञान नहीं किया। वैराग्य भी ऐसा भीतरमेंसे नहीं किया। बाहरसे सब छोड़ दिया। सह छोड़कर चला गया। ऐसी क्रिया की, बहुत की। जैसा शास्त्रमें आता है, ऐसी बाहरसे बहुत क्रिया की। ज्ञान भी बहुत हुआ। भीतरमेंसे ग्यारह अंगका ज्ञान हो गया। लेकिन भीतरमें आत्मतत्त्वको नहीं पीछाना।

मैं आत्मा कौन हूँ? और मेरा क्या स्वभाव है? मैं कोई अद्भुत चैतन्य द्रव्य हूँ। ऐसे द्रव्यको पीछाना नहीं। उसकी महिमा नहीं आयी। उसे वैराग्य नहीं हुआ, भीतरमेंसे नहीं हुआ। ज्ञान भी हुआ, वैराग्य भी हुआ, सब ऊपरसे। ग्यारह अंग तो भीतरमेंसे क्षयोपशम हो गया। ग्यारह अंगका (ज्ञान हुआ), परन्तु मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको नहीं पीछाना। ज्ञान और वैराग्य दोनों साथमें है। ऊपरसे साथमें हुए। भीतरमें जो मूल तत्त्व है, उस तत्त्वको नहीं पीछाना। सब बोलता है, विचार करता है, द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसा है, ऐसा है, चर्चा करता है, परन्तु भीतरमें मूल तत्त्व, चैतन्यतत्त्व भीतरमेंसे नहीं पीछाना। ऐसा ज्ञान कुछ कामका नहीं हुआ।

वैराग्य भी भीतरमेंसे (नहीं हुआ)। बाहरसे छोड़ दिया, लेकिन भीतरमें उस शुभभावमें रुचि रह गयी। ऐसी रुचि रह गयी गहराईमें कि उसे ख्यालमें नहीं आता। अशुभभावसे तो वैराग्य हुआ, लेकिन शुभभावमें रुचि रह गयी। शुभाशुभ भावसे भी भिन्न हूँ। ऐसा वैराग्य भीतरमेंसे नहीं हुआ। बस, अकेला निवृत्तिमय चैतन्यतत्त्व निर्विकल्प तत्त्वमें ही सुख है, बाहर कहीं भी सुख नहीं है, ऐसा निर्णय और ऐसी रुचि नहीं हुयी। शुभभावमें रुचि रह गयी।

मुमुक्षु :- व्रत, नियम धारण किये उसे समय रुचि ठीक है?

समाधान :- व्रत, नियम धारण किये लेकिन भीतरमें रुचि शुभभावमें रह गयी। शुभभावमें रुचि रह गयी। शुभभाव भी आत्माका स्वभाव नहीं है। शुभभावसे देवलोक होता है, परन्तु भवका अभाव नहीं होता है। शुभभाव बीचमें होता है, लेकिन वह आत्माका स्वभाव तो नहीं है। वह भी विभाव है। प्रवृत्तिमय है, आकुलतामय है,

दुःखरूप है। भीतरमें विचार करे तो सब दुःखमय है। उससे भी भिन्न मैं आत्मा हूँ। ऐसी रुचि नहीं हुयी।

.. आत्माकी रुचि नहीं हुयी। शुभभाव, थोड़ा शुभभाव तो होना चाहिये न। शुभभावमें आग्रह रह गया। शुभभाव होता है, जबतक आत्माको नहीं पीछाने, आत्मामें लीनता न होवे, तब शुभभाव आता है। परन्तु उसमें रुचि ऐसी रह गयी कि शुभभाव होना ही चाहिये। ऐसा आग्रह, ऐसी बुद्धि भीतरमें हो गयी। उसकी रुचि हो गयी। सिद्ध भगवानमें शुभभाव नहीं है। सिद्ध भगवान जैसा आत्माका स्वभाव है। (शुभ और अशुभ) दोनोंसे भिन्न आत्माका स्वभाव है। दोनोंसे भिन्न आत्माका स्वभाव है। मुनि हुआ तो भी शुभभावमें रुचि रह गयी। देवलोकमें गया तो भी भवका अभाव नहीं हुआ, देवलोक हुआ।

मुमुक्षु :- माताजी! अनुभव होनेसे पहले मुमुक्षु सच्चा ज्ञान और वैराग्य कर सकता है? अनुभव होनेसे पहले मुमुक्षु सच्चा ज्ञान और वैराग्य कर सकता है?

समाधान :- पहले सच्चा ज्ञान, वैराग्य कर सकता है। परन्तु यथार्थता, वास्तविक यथार्थता तो उसे सम्यग्ज्ञान हो तब यथार्थता कह सकते हैं। लेकिन उस यथार्थताकी भूमिका मुमुक्षुतामें कर सकता है। यथार्थता प्रगट हो, उससे पहले यथार्थताकी भूमिका, यथार्थताके मार्ग पर जा सकता है।

उसे अंतरमें रुचि, भले अन्दरसे गहरी प्रतीति आत्माका आश्रय यथार्थ सम्यग्दर्शनमें जो ग्रहण किया वैसी नहीं है, तो भी उसके मार्ग पर वह जा सकता है। मार्गानुसारी हो सकता है। यह शुभाशुभ भाव मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप एक चैतन्यतत्त्व कोई अपूर्व महिमावंत तत्त्व है। उसकी महिमा आये, उसकी अपूर्वता लगे, मैं कोई अद्भुत तत्त्व हूँ, उसकी महिमा लगे। यह शुभाशुभ दोनों भाव आकुलतामय हैं, यह दुःखमय हैं। ऐसे विचार, ऐसी प्रतीति भी कर सकता है।

ज्ञान-वैराग्य यथार्थ कर सकता है कि जिसके पीछे उसे अवश्य सम्यग्दर्शन हो, ऐसी भूमिकाको वह प्राप्त कर सकता है। पानीकी शीतलता दूरसे दिखती है। पानीके पास पहुँचा नहीं है। उसकी शीतलता,... उसके अमुक लक्षणसे नक्की करे कि यह ज्ञायक स्वभाव, जाननेवाला स्वभाव कोई अद्भुत तत्त्व है, वह कोई अलग ही है। उसका निर्णय (करने तक) अभी पहुँच नहीं पाया है। तो भी वह कर सकता है। अमुक प्रकारसे निर्णय कर सकता है। इस कारण, उस सम्बन्धित ज्ञान, उस प्रकारका वैराग्य, विरक्ति, उस प्रकारकी महिमा करके वह मार्गका अनुसरण कर सकता है।

... कार्य तक पहुँचनेसे पहले उसके जैसी भूमिकामें सच्चे मार्ग पर जा सकता है। कोई अपूर्व रुचि हो, अपूर्व देशनालब्धि अंतरमेंसे हो कि मार्ग तो यही है। ये

शुभाशुभ भावसे भिन्न एक आत्मा वह कोई अलग तत्त्व है। और वही सर्वस्व है। बाहरमें कहीं भी सर्वस्वपना नहीं है। किसी भी प्रकारकी विशेषता उसे नहीं लगती, आत्माके सिवा। एक आत्मा ही सर्वस्व है। दूसरा कुछ विशेष (नहीं है)। जगतकी कोई वस्तु उसे अलौकिक नहीं लगती, सब लौकिक लगती है। एक अलौकिक तत्त्व आत्मा है। ऐसी अपूर्व रुचि कर सकता है। और इस कारणसे वह सच्चे मार्ग पर जा सकता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ooo

ट्रेक-८६

समाधान :- वीतराग दशामें जहाँ एक विकल्प नहीं है, किसी भी प्रकारकी इच्छा नहीं है, कुछ नहीं है। निरिच्छासे ध्वनि मात्र छूटती है। भगवानकी दिव्यध्वनि छूटती है। जिसमें भगवानको पूर्ण ज्ञान-केवलज्ञान प्रगट हुआ, ऐसी दशा है। उसके साथ जो भाषाकी परिणति है, समस्त लोकालोकको दर्शानेवाली, ऐसी भगवानकी दिव्यध्वनि लोकालोकका स्वरूप जिसमें आता है, वह दिव्यध्वनि। भगवान इच्छापूर्वक नहीं बोलते हैं। उन्हें कोई विकल्प नहीं है। सहज ध्वनि छूटती है। एकाक्षरी ध्वनि निकलती है। उसमें ऐसे सब अतिशय होते हैं कि उसमें सब समझ जाते हैं कि भगवान क्या कहते हैं।

मुमुक्षु :- उसमें गणधर क्या करते हैं?

समाधान :- क्या करे मतलब?

मुमुक्षु :- भगवानकी दिव्यध्वनि छूटी, ...

समाधान :- जिसकी योग्यता विशेष होती है, वह विशेष अंतरसे ज्ञानको प्रगट करते हैं। विशेषरूपसे अंतरसे रहस्य ग्रहण करता है। दूसरोंसे अधिक ध्यान करते हैं। उनका क्षयोपशमज्ञान ऐसा होता है कि सब ग्रहण करे। जहाँ तक क्षयोपशम पहुँचे वहाँ तक ग्रहण करते हैं। बाकी भगवानकी ध्वनि तो पूर्ण है। वे भी कहते हैं कि, भगवान! मैं आपकी ध्वनिको पहुँच नहीं पाता। दिव्यध्वनिका रहस्य समझनेकी गणधरमें योग्यता होती है। दूसरे सब यथाशक्ति समझते हैं।

मुमुक्षु :- दिव्यध्वनि नरक्षरी रहती है?

समाधान :- निरक्षरी अर्थात् एक अक्षर है, इसलिये निरक्षरी कहते हैं। भाव सब समझ जाते हैं। उसमें अतिशय है।

मुमुक्षु :- गणधर भगवान बारह अंगकी रचना करते हैं, मतलब?

समाधान :- अंतरमें रचना करते हैं। बाहरसे लिखते नहीं। अंतरमें ऐसी लब्धि प्रगट होती है। मति-श्रुतकी ऐसे लब्धि प्रगट होती है। अंतरमें ऐसी रचना करते हैं, अंतर्मुहूर्तमें। श्रुतज्ञानमें जितना स्वरूप हो, उस अनुसार उसे शब्दमें भाव ग्रहण करके रचना करते हैं।

मुमुक्षु :- .. गणधरदेवने बारह अंगकी रचना की और फिर उस परसे शास्त्ररचना की।

समाधान :- अंतरमें रचना करते हैं। शास्त्रकी रचना, उस वक्त तो हाथसे लिखना इतना नहीं था। अंतरमेंसे सब ग्रहण करते थे।

मुमुक्षु :- भगवानके पास जानेकी बहुत इच्छा है।

समाधान :- इच्छा हो वह कोई... अन्दरकी भावना कोई अलग होती है। भगवानके पास जानेकी इच्छा हो। अन्दर जिसे भगवान पर भाव हो, उसे जानेकी इच्छा तो होती है। परन्तु ऐसी इच्छासे थोड़े ही न जा सकते हैं। अंतरकी भावना हो, ऐसा योग हो तो जा सकते हैं। ऐसी ही थोड़े जा सकते हैं।

... कोई शब्दोंमें, कोई लिखावटमें आये। अलग प्रकारका। वह तो ज्ञान ऐसा है। अभी तो कहाँ दिखाई देता है। एक गुरुदेवकी वाणी यहाँ थी कि जिसमें अतिशयतायुक्त वाणी उनकी दिखाई देती थी।

मुमुक्षु :- आगमकी रचना करे उसमें विभिन्न अर्थमें घटित कर सकते हैं। किसीको वाणीका योग उस प्रकारका नहीं हो, कोई शास्त्रकी रचना भी करे। अंतरसे स्वयं शास्त्र रचना करते हैं?

समाधान :- ऐसा कुछ शास्त्रमें नहीं आता है। मनसे आवृत्ति कर ले, उपदेशमें बोले। बारह अंगकी रचना लिखी नहीं जाती। उसमें मूल सूत्र होते हैं। लिखी नहीं जाती। बादमें लिपिबद्ध किया है। लिपिबद्ध .. पहलेका क्षयोपशम कुछ अलग था। मूल प्रयोजनभूत लिखा जाता है। सब लिखावट शास्त्रोंमें होती है, उसका सार लिखनेमें आता है। मूल तो अंतर आधारित है न।

मुमुक्षु :- ... क्षयोपशम कैसे होता है?

समाधान :- क्षयोपशमका प्रयोजन नहीं है, आत्माको ग्रहण करनेका प्रयोजन है। ज्यादा क्षयोपशम हो तो अधिक लाभ होता है। ज्यादा क्षयोपशम हो तो ही मोक्ष होता है और तो ही मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। क्षयोपशमकी इच्छा करनेके बजाय, मुझे आत्मा कैसे प्रगट हो? मुझे भेदज्ञान कैसे हो? थोड़ा क्षयोपशम हो तो भी भेदज्ञान हो सकता है, स्वानुभूति हो सकती है। सबका क्षयोपशम एक समान नहीं होता। मुनि होते हैं, सबका क्षयोपशम समान नहीं होता। क्षयोपशम तो उसकी अमुक प्रकारकी योग्यता होती है तो क्षयोपशम होता है। बाकी क्षयोपशमकी इच्छासे (क्षयोपशम नहीं होता)। क्षयोपशमकी इच्छा लाभकर्ता नहीं है। अन्दर आत्माको पहचानना। प्रयोजनभूत आत्माको जाने तो उसमें सब आ जाता है। ज्यादा शास्त्रोंको जाने, ज्यादा (शास्त्रका) रटन करे, पढ़े तो उसे आत्माकी पहचान होती है, ऐसा कुछ

नहीं है। वह तो बीचमें जानना स्वयंको निमित्त बने, साधन बने, स्वयंको विशेष जाननेका कारण हो, ऐसा बने। लेकिन वह विशेष हो तो ही आगे बढा जाय, ऐसा नहीं है। शिवभूति मुनि कम जानते थे, तो भी वे आगे बढ़ गये। भेदज्ञान मूल प्रयोजनभूत जाने तो आत्माकी पहचान होती है, स्वानुभूति होती है, भवका अभाव होता है। क्षयोपशमके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

समाधान :- .. यथार्थ लगन लगे तो कर सकता है। ऐसी लगनी होनी चाहिये।

... सिद्धको भी प्रभु और संसारीको प्रभु। प्रभु है, संसारमें होनेके बावजूद द्रव्यदृष्टिसे सब प्रभु है। क्योंकि उसका स्वभाव जैसा है वैसा शक्तिमें है। शक्ति अपेक्षासे प्रभु है। अनादि कालसे परिभ्रमण किया, बहुत विभाव हुए तो भी अन्दर द्रव्यमें जो अनन्त शक्तियाँ भरी है, वह शक्तियाँ वैसी ही है। ईश्वरता, जो प्रभुता है उस प्रभुतामें अल्प भी न्यूनता नहीं हुयी है अथवा उसका-प्रभुताका एक अंश भी नाश नहीं हुआ है। इसलिये वह शक्ति अपेक्षासे प्रभु है।

भगवान तो द्रव्यदृष्टि और पर्याय अपेक्षासे, सर्व प्रकारसे प्रभु है। वे तो साक्षात् प्रभु है। परन्तु द्रव्यदृष्टिसे सब प्रभु हैं। गुरुदेव कहते थे, भगवान आत्मा। तू स्वयं भगवान है। शक्ति अपेक्षासे वह भगवान है। द्रव्य पर दृष्टि जाये कि मैं पूर्णतासे भरा सर्व शक्तिसे भरपूर हूँ। तो उस पर दृष्टि करे तो उसमें पर्यायें प्रगट होती है। परन्तु स्वयंमें कुछ स्वभाव ही नहीं है तो स्वभावके आश्रय बिना पर्याय कहाँ-से प्रगट होगी?

ऐसी श्रद्धा हो कि मैं प्रभु हूँ, शक्ति अपेक्षासे मुझमें सब भरा है। स्वभावके आश्रय बिना कुछ प्रगट नहीं होता। मात्र बाहरका करते रहनेसे प्रगट नहीं होता। अन्दर स्वभावका आश्रय ले, प्रभुका आश्रय ले तो प्रभुता प्रगट होती है। प्रभुका आश्रय ले और विभावसे भिन्न पड़े, उसका भेदज्ञान करे तो उसमेंसे उसकी प्रभुता प्रगट होती है।

ज्ञानादि अनन्त गुण भरपूर भरे हैं। (जल) मलिन दिखे, परन्तु उसकी स्वभावकी शीतलता जाती नहीं। ऐसे आत्मा जो शान्तस्वभावी शीतलस्वरूप है, उसकी शीतलता जाती नहीं। अनन्त-अनन्त शान्ति और अनन्त शीतलतासे भरा है, अनादिअनन्त है।

मुमुक्षु :- .. कार्यरूप कौन परिणमता है?

समाधान :- कार्यरूप पर्याय परिणत होती है। परन्तु अभेदसे कहें तो द्रव्य भी कार्यरूप भी आया, गुण कार्यरूप हुआ, पर्याय कार्यरूप हुयी। वैसे तो पर्याय कार्यरूप होती है। द्रव्यके आश्रयसे कार्य पर्यायरूप होता है। पर्याय कार्यरूप होती है। द्रव्य, गुण, पर्याय सब अभेद ले तो द्रव्य भी कार्यरूप हुआ और गुण भी कार्यरूप हुआ। शक्तिरूप था वह प्रगट होता है।

... केवलज्ञानरूप परिणमन किया। आत्माने स्वानुभूतिरूप परिणमन किया। ज्ञान,

आनन्द स्वयं प्रगटरूपसे परिणमन किया, ऐसा भी कहनेमें आता है। परन्तु कार्य पर्याय करती है। लेकिन द्रव्यके आश्रयसे करती है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तो श्रद्धागुणमें निर्मल हुआ, बाकी गुणोंमें अशुद्ध है।

समाधान :- सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। श्रद्धागुण प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ उसके साथ ज्ञान, चारित्र सब प्रगट हुआ। ज्ञान सम्यक्रूप परिणमन हुआ। चारित्र, अमुक अंशमें चारित्र-स्वरूपाचरण चारित्र हुआ। जो दिशा पर-ओर थी या परसन्मुख था, दृष्टि परसन्मुख थी वह स्वसन्मुख हुयी, वहाँ प्रत्येक गुण जो यथायोग्य निर्मल होनेयोग्य थे वह सब निर्मल हो गये। एक ओर बिलकुल अशुद्धता और एक ओर शुद्धता, ऐसा द्रव्यमें खण्ड नहीं होता। द्रव्य तो अखण्ड है। इसलिये एक सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसके साथ सबकी दिशा पलट गयी तो सब निर्मल हो गये। जो अशुद्ध थे, सब निर्मल हो गये। कितन ही गुण तो मलिन होते ही नहीं। जो मलिन होते हैं, वह सब आंशिक निर्मल हुए। पूर्ण निर्मल तो केवलज्ञान होता है, तब होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! सम्यग्दर्शन होने पर सब गुण निर्मल हुए। तो जैसे दूसरे सब गुण शुद्ध है, कुछ ही गुण अशुद्ध थे। तो जब मिथ्यादर्शन होता है, उस समय सब गुणोंका अशुद्ध परिणमन है, ऐसा कह सकते हैं?

समाधान :- सब गुण अशुद्धरूप नहीं परिणमते। कुछ गुण शुद्धरूप रहते हैं। लेकिन वह सब शक्तिमें है। जैसे कि अस्तित्व, वस्तुत्व ऐसे कितने ही गुण जो भाषामें नहीं आते ऐसे हैं। ऐसे सब गुण अशुद्ध नहीं हो जाते। मिथ्यात्वमें एकत्वबुद्धि है तो भी कितने ही गुण अशुद्ध नहीं होते। और चारित्र.. उसके सिवा कुछएक विभावयुक्त होते हैं और कुछ गुण निर्मल रहते हैं।

ऐसा कहनेमें आये कि स्वयं अशुद्ध हो गया, द्रव्य अशुद्ध हो गया। ऐसा कहनेमें आये। सब अशुद्ध नहीं हो जाता। शक्तिमें शुद्ध है। कितने ही गुण शुद्ध रहते हैं। दृष्टि स्वरूपकी ओर गयी, सम्यग्दर्शनमें निर्मलता प्रगट हुयी, स्वानुभूति हुयी। जो आंशिक मलिन थे वह निर्मल हो जाते हैं। चलता है तो एक कदम ऐसे जाये और एक कदम ऐसे रहे, दिशा बदल गयी इसलिये सब स्वरूप सन्मुख हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- ऐसा आता है कि चैतन्यमेंसे परिणमित हुयी भावना अगर न फले तो चौदह ब्रह्माण्डको शून्य होना पड़े, उसका अर्थ क्या? चौदह ब्रह्माण्डको शून्य होना पडे?

समाधान :- चैतन्यमेंसे परिणमित हुयी भावना, यदि ऐसे चैतन्यके आश्रयसे भावना हुयी हो कि मुझे चैतन्यकी ही परिणति प्रगट करनी हो, ऐसी भावना हो और उस भावना अनुसार यदि द्रव्य परिणमे नहीं, यदि द्रव्य भावना अनुसार परिणमे नहीं तो

द्रव्यका नाश हो जाय। परन्तु द्रव्यका नाश नहीं होता। स्वयंकी एक भावना यदि पूर्ण न हो, चैतन्यकी भावना पूर्ण न हो यदि ऐसा हो तो ब्रह्माण्ड शून्य हो जाये अर्थात् प्रत्येक द्रव्यका नाश हो जाये। उसकी यथार्थ भावना अनुसार चैतन्यका परिणमन नहीं हो तो प्रत्येक द्रव्यका नाश हो जाये। किसीकी भावना पूर्ण न हो। एक द्रव्यकी भावना पूर्ण न हो तो किसीकी पूर्ण न हो। उस रूप द्रव्य परिणमे नहीं, द्रव्य कोई अलग प्रकारसे परिणमे और भावना दूसरे प्रकारसे परिणमे (ऐसा नहीं होता)।

ऐसी यथार्थ भावना हो कि द्रव्य परिणमे ही नहीं और भावना करता रहे, ऐसा बनता ही नहीं। तो ब्रह्माण्डको शून्य होना पड़े, प्रत्येक द्रव्यका नाश हो जाय। एकमें जो स्वभाव है, वैसा प्रत्येकमें हो जाय। प्रत्येक द्रव्यका नाश हो जाय। इसलिये ऐसा कुछ नहीं बनता। ब्रह्माण्डके शून्य होनेमें द्रव्यका नाश होना चाहिये। लेकिन द्रव्यका नाश होता नहीं। जिस प्रकारकी द्रव्यकी भावना हो, वैसी द्रव्यकी परिणति हुए बिना रहती ही नहीं।

यदि अंतरकी गहराईमेंसे भावना प्रगट हुयी कि आत्माका आश्रय और आत्माकी स्वानुभूति... आत्मामें ही रहना है, बाहर जाना ही नहीं है। ऐसी अंतरंगसे गहरी भावना प्रगट होकर आत्मामें यदि वह परिणमित न हो तो ऐसा बनता ही नहीं। आत्माका परिणमन होना ही चाहिये। अन्यथा उसे द्रव्य ही नहीं कहते। यदि वैसे द्रव्य अपनी सानुकूल परिणतिरूप परिणमित न हो तो वह द्रव्य ही कैसा? द्रव्यका नाश हो जाय। उस प्रकारसे सब द्रव्यका नाश हो जाय। इसलिये ब्रह्माण्डको शून्य होना पड़े।

मुमुक्षु :- माताजी! उसमें अनन्त तीर्थंकरोंने कही हुयी बात है, ऐसा ज़ोर कैसे आया?

समाधान :- ऐसी ही वस्तुस्थिति है। द्रव्य-गुण-पर्यायकी ऐसी वस्तुस्थिति है। ऐसी वस्तुस्थिति ही है। भगवानने कही हुयी बात है। वस्तुका स्वरूप जो द्रव्य-गुण-पर्यायका भगवानने कहा कि द्रव्यानुसारी परिणति होती ही है। द्रव्याश्रित जो परिणमित हुयी, द्रव्यके आश्रयमें जो गहरी भावना हो, वैसी पर्याय होती ही है। यह भगवानने कहा है। द्रव्य-गुण-पर्याय द्रव्यके आश्रयसे रहे हैं। द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप भगवानने कहा है। अनन्त भगवानोंने कहा है। ... द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप तीर्थंकरोंने कहा है कि चैतन्यकी जैसी भावना हो वैसी चैतन्यकी परिणति होती ही है।

मुमुक्षु :- उसमें है कि चैतन्यकी परिणतिके साथ कुदरत बन्धी हुयी है।

समाधान :- कुदरत यानी स्वयं। चैतन्यकी भावनाके साथ कुदहत बन्धी हुयी है। जैसी उसकी भावना हो, उस अनुसार द्रव्य परिणमे, गुण परिणमे, उसी प्रकार सब पर्यायें परिणमति हैं। कुदरत बन्धी है। उसकी भावना जो अन्दर शुद्धात्माकी भावना हो

उस अनुसार (परिणति होती है)। अंतरसे भावना...

बाहरमें भी उसके अनुकूल संयोग.. उसके साथ कुदरत बन्धी हुयी है। उसे बाह्य साधन भी उस प्रकारके परिणमते हैं। सब उस प्रकारसे परिणमते हैं। कुदरत बन्धी हुयी है। और यथार्थ भावना हो उसके अनुकूल जो उसकी साधक दशा है, उस साधक दशाके अनुकूल बाह्य निमित्त भी वैसे होते हैं। उसका उपादान उस प्रकारका, बाहरमें निमित्त भी वैसे होते हैं और द्रव्यका परिणमन भी उस प्रकारका होता है। कुदरत बन्धी हुयी है।

अन्दर यथार्थ भावना हो और बाहरके ऐसे निमित्त, साधन न मिले ऐसा भी नहीं बनता। ऐसे यथायोग्य साधन मिलते हैं, ऐसे साधक मिले, ऐसे गुरु मिले, ऐसे भगवान मिले। ऐसे सब निमित्त भी (प्राप्त होते हैं)। भावनाके साथ कुदरत बन्धी हुयी है। परन्तु वह भावना अंतरकी होनी चाहिये। उसकी भावनाके साथ जो शुभभाव होते हैं, वह भी ऐसे होते हैं कि बाह्य निमित्त भी वैसे होते हैं। अन्दर द्रव्य भी उस प्रकारका परिणमन करे।

मुमुक्षु :- अंतरकी भावना तो शुभभावरूप है। सम्यग्दर्शन प्रगट होने पूर्व जो भावना है वह तो शुभभावरूप है। फिर भी वह आत्माका आश्रय लेकर ही रहती है..

समाधान :- शुभ भावना शुभभाव है, परन्तु अंतरमें उस शुभभावके पीछे उसका आश्रय जो है... उसे जाना है आत्माकी ओर, आत्माकी ओर जाना है वह बलपूर्वक जाना है। उसे शुभभाव नहीं चाहिये। शुभाशुभ भावसे भिन्न ऐसा आत्मा चाहिये। उसके पीछे रहा जो उसकी परिणतिका ज़ोर है, उसकी परिणतिका ज़ोर आत्माकी ओर है। शुभभाव तो साथमें रहा है, परन्तु उसका पूरा ज़ोर आत्माकी ओर-चैतन्यकी ओर जाता है। इसलिये चैतन्यकी परिणति शुभभावको गौण करके भी चैतन्यकी परिणति उसे प्रगट हुए बिना नहीं रहती। शुभ भावना है। बाह्य निमित्त कुदरती परिणमते हैं। अंतरमें आत्मा परिणमित हुए बिना नहीं रहता। उसका ज़ोर आत्माकी ओर जाता है। शुभ भावना है साथमें, शुभभाव मिश्रित है, परन्तु उसका ज़ोर आत्माकी ओर है।

मुमुक्षु :- शुभभावके साथ उसकी ज्ञान परिणति भी..

समाधान :- ज्ञान परिणति ऐसी जोरदार है कि वह स्वयंका आश्रय लेना चाहती है। जोरदार आश्रय लेना चाहती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८७

मुमुक्षु :- माताजी! शुभभावके कालमें परिणतिमें जो होता है, अशुभ-शुभ दोनोंके समय...

समाधान :- भावनाके साथ शुभभाव जुड़ा होता है। उसके साथ अशुभ नहीं जुड़ा है। आत्माकी ओर जो दृष्टि गयी, आत्मा चाहिये, उसके साथ शुभभाव है, वह शुभभाव है। अशुभ नहीं है। मुझे शरीर अच्छा मिले, मुझे यह मिले, उसके साथ नहीं होता। आत्माकी परिणतिके साथ शुभभावना जुड़ी हुयी है, शुभभाव जुड़ा है। हिंसा करे तो दूर जाता है। कुछ मिलता नहीं। बाह्य लालसाके साथ नहीं जुड़ा है। बाह्य लालसाके साथ ऐसे जुड़ा है कि उसके अशुभभावसे जो पाप बँधे उसके योग्य, ऐसे पापके साधन प्राप्त होते हैं। वैसा जो करता है, वैसा ही प्राप्त होता है। ऐसे कुदरत उसके साथ बँधी है। अशुभके योग्य अशुभके अनुकूल जैसे फल आये वैसा उसके साथ बँधा हुआ है।

मुमुक्षु :- व्यापार करनेके कालमें परिणतिमें रुचिका जो ज़ोर होता है, ऊधरसे हटते हैं कि यह मेरा काम नहीं है। उसमें उसके पीछे परिणतिका ज़ोर नहीं होता।

समाधान :- व्यापारके कालमें..?

मुमुक्षु :- वहाँसे हटनेका जो भाव होता है कि यह मेरा काम नहीं है, मैं क्या करता हूँ?

समाधान :- व्यापारमें ऐसा माने कि यह मेरा कार्य नहीं है, मेरा स्वभाव नहीं है। उसका रस टूट गया है। मुझे चैतन्य ही चाहिये। उसका रस टूट गया हो तो.. रस हो तो वह पाप है। रस टूट गया हो तो अल्प भी पाप तो उसे है। जो व्यापारका रस है वह पाप तो है, परन्तु उसका रस टूट गया और शुभभावकी ओर मुड़ा है कि मुझे चैतन्य चाहिये। चैतन्यकी ओरका जोर उसे चैतन्यका फल देता है। वह जितना है उतना वह संसारका फल देता है। पाप है वह संसारका फल देता है। रस जितना तीव्र उस अनुसार फल आता है। अंतरकी गहरी भावना हो चैतन्यकी ओरकी तो चैतन्यका फल आता है।

वह तो उसे रस टूट गया है। मुझे शुभाशुभ कोई भाव नहीं चाहिये। चैतन्यकी

भावनावालेको ऐसा होता है कि मुझे बाह्यका कुछ नहीं चाहिये। मात्र आत्मा चाहिये। इन सबमें खड़ा हूँ, फिर भी मुझे कुछ नहीं चाहिये। चाहिये एक आत्मा। एक आत्माका आश्रय चाहिये और आत्मामें रहना है, बाकी कुछ नहीं चाहिये। ऐसा ज़ोर उसे अंतरमें उत्पन्न होता है। संसारमें बाहर खड़ा हो तो भी आश्रय पूरा आत्माकी ओर जाता है। दूसरा सब गौण हो जाता है। उसमें जो खड़ा है वह तो पाप है।

मुमुक्षु :- बाह्य लोक है उससे चैतन्यलोक भिन्न ही है। बाहरमें लोग देखते हैं कि इसने ऐसा किया, वैसा किया, परन्तु अन्दरमें ज्ञान कहाँ रहते हैं? क्या करते हैं? वह ज्ञानी ही जानते हैं। बाहरसे देखनेवालेको ज्ञानी बाह्य क्रिया करते हुए या विभावमें जुड़ते दिखायी दे, परन्तु अन्दरमें तो वे कहाँ गहराईमें चैतन्यलोकमें विचरते हैं। यह चैतन्यलोक कैसा है, माताजी?

समाधान :- बाहर दिखता है वह तो विभावका लोक है। अन्दर चैतन्यका लोक तो भिन्न ही है। बाहरमें तो यह सब विभाव परिणाम हुए, उसका जो फल आया वह सब बाह्य लोक तो विभावका है। जिसमें विकल्पमिश्रित सब राग-द्वेष, अंतरमें जो विभाव है, उस विभावके कारण यह बाह्य लोक दिखता है। सब कार्य दिखे, यह सब पुद्गल आदि दिखे वह सब जड़का लोक है। यह जड़ पुद्गल कुछ जानते नहीं। वह सब जड़ लोक है। चैतन्यलोक तो अंतरमें भिन्न है।

ज्ञानी कहाँ बसते हैं और कहाँ विचरते हैं, वह बाहरसे दिखायी नहीं देता। बाहरसे द्रव्यचक्षुसे-बाह्य नेत्रसे वह दिखायी नहीं देता। अंतर दृष्टि करे और उसे अंतरमें पहचाने, अंतर वस्तुको पहचाने तो मालूम पड़े कि ज्ञानी कहाँ विचरते हैं। चैतन्यलोक तो अंतरमें भिन्न ही है। चैतन्यस्वरूप आत्मा, ज्ञायकस्वरूप आत्मा, उस ज्ञायकमें उसका परिणमन होता है। वह बाहर कोई कार्यमें दिखायी दे, कोई कार्यमें दिखायी दे परन्तु उसकी परिणति अंतरमें चलती है। ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायककी परिणति, क्षण-क्षणमें भेदज्ञानकी परिणति उसे चालू ही है। और स्वानुभूतिमें जाये तो बाह्यमें कहीं उपयोग नहीं है। उपयोग चैतन्यलोकमें जम गया है। चैतन्यलोककी स्वानुभूति करता है। इस दुनियासे तो वह लोक अलग ही है।

अंतरमें उसकी परिणति चलती है, वह परिणति भी बाहरसे भिन्न है। चैतन्यलोक पूरा अलग है। जिसे अनुभूति हो, उसे ख्यालमें आता है कि यह चैतन्यलोक अलग है और यह जड़ लोक अलग है। वह कोई अपूर्व अद्भुत एवं अनुपम है। यह सब विभाव और जड़ लोक दिखता है, यह सब जो दिखता है वह। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शयुक्त यह सब शरीर और पुद्गल, विभाव, राग-द्वेष, आकुलता आदि है। अंतरमें शान्ति और अपूर्वता (है)। उसका ज्ञान अलग, उसका आनन्द अलग, उसके गुण अलग,

सब चैतन्यतासे भरा है। चैतन्यदेव पूरा दिव्यस्वरूपसे भरा कोई अलग ही है। वह स्वानुभूतिमें ग्रहण हो सके ऐसा है, बाहरसे उसे कह नहीं सके ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- .. चर्चा हो गयी। द्रव्य न खण्डामी, क्षेत्रे न खण्डामी। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारमें आचार्यदेव अंतमें कहा। काले न खण्डामी, भावे न खण्डामी। सर्वविशुद्ध ज्ञान चैतन्यभाव हूँ। २७१ कलशमें राजमलजीकी टीकामें आता है कि छः द्रव्यको जानना वह भ्रम है। कल पण्डितजीने बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण किया। छः द्रव्यको जानना वह भ्रम अर्थात्...

समाधान :- छः द्रव्यको जाना इसलिये उस ज्ञानसे मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा नहीं। मैं तो स्वयं ज्ञायक हूँ। बाहर छः द्रव्यको जाना इसलिये मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा नहीं। मैं तो स्वयं ज्ञायक ही हूँ। उस ज्ञायक पर दृष्टि करनी है। सुविशुद्ध स्वरूप ज्ञायक। मैं ज्ञायकस्वरूप आत्मा ही हूँ। बाह्य ज्ञेयोंको जाना इसलिये ज्ञायक ऐसा नहीं, मैं तो ज्ञायक ही हूँ। उस ज्ञायकको जान।

किसी भी प्रकारसे मैं तो एक अखण्ड चैतन्यद्रव्य हूँ। किसी भी प्रकारका भेद, अन्दर द्रव्य-गुण-पर्याय सबका गुणभेद, पर्यायभेद, द्रव्य, क्षेण, काल, भाव उन सबके भावसे मैं भिन्न एक अखण्ड द्रव्य हूँ। द्रव्यदृष्टिमें ऐसा किसी भी प्रकारका भेद ... लक्षणभेद है, परन्तु उसमें वस्तुभेद नहीं है। मैं एक चैतन्यद्रव्य हूँ।

मुमुक्षु :- जो व्रत, तप, शील, संयम है तो वह सब क्या हठपूर्वक होते हैं? उससे कुछ लाभ होता है कि नहीं होता है?

समाधान :- लाभ क्या? शुभ परिणाम होवे तो पुण्यबन्ध होता है, दूसरा कुछ नहीं होता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- व्रत, नियम सब शुभभावरूप है। आत्मा उससे प्रगट हो ऐसा नहीं बनता। आत्माका ध्येय होवे, आत्माकी रुचि होवे, आत्माका ज्ञान करे, आत्माका विचार करे, आत्माको ग्रहण करे तो आत्मा प्रगट होता है। ऐसे आत्मस्वरूपका भान होवे, आत्मा प्रगट नहीं होता। व्रत, नियम, शील, संयम, तप सब किया, उससे आत्मा नहीं प्रगट होता। शुभभावसे पुण्यबन्ध होता है। कषाय मन्द होता है। परन्तु यदि दृष्टि ऐसी है कि यह मुझे लाभकर्ता है, एकत्वबुद्धि है तो कुछ लाभ नहीं होता। पुण्यबन्ध होता है, और कुछ नहीं होता।

कषाय मन्द होता है तो अशुभभावमेंसे शुभभाव होता है। शुभभावसे पुण्यबन्ध होता है। पुण्यबन्धसे देवकी गति होती है। दुर्गति न होकरके मनुष्य और देवकी गति होती है। इतना लाभ होता है। आत्माका लाभ होता है, ऐसा नहीं होता। आत्माकी रुचिके

बिना आत्माका लाभ नहीं हो सकता। आत्माकी रुचि होवे, आत्माका ध्येय होवे, आत्माकी ओरका विचार होवे, आत्माका निर्णय करे तो आत्माका लाभ होता है। इसमें यदि कषाय मन्द होवे, परन्तु आत्माकी रुचिके बिना लाभ नहीं हो सकता। उसके साथ यदि आत्माकी रुचि न हो तो लाभ नहीं होता।

कषाय मन्द हो, उसे आत्माकी रुचि होवे तो उसको कहीं तीव्र कषाय नहीं होता है, मन्द कषाय (रहता है)। आत्माकी रुचि होवे उसे तीव्र कषायकी रुचि नहीं होती। उसे मन्द कषाय होता है। आत्मार्थीको कषाय मन्द (होता है)। तीव्र कषायमें उसकी रुचि नहीं होती। आत्माकी रुचिके बिना मन्द कषाय पुण्यबन्ध करता है, दूसरा कुछ नहीं करता।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! हम शास्त्र पढते हों, गुरुदेवका प्रवचन सुनते हो, आपके पास भी बातें सुनते हैं। उस वक्त अनेक बार ऐसा कहनेमें आये और स्वाध्यायमें आये कि वह तो सहज निमित्त-नैमित्तिक भाव है, वह तो कोई सहज निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, ऐसा कहकर निरुत्तर कर दिया जाता है। तो वह वस्तु बल देती है या दूसरा कोई कारण है? उससे हमें बल आये इसलिये कहा जाता है कि ... यह जो है वह सहज निमित्त-नैमित्तिक भाव है, ऐसा समझ लो। आगे बढनेके लिये ऐसा कहनेमें आता है कि आगे बढनेका प्रयोग है?

समाधान :- किस बातमें कहनेमें आता है, सहज निमित्त-नैमित्तिक भाव है?

मुमुक्षु :- मनसे काम कर लो तो सब ..

समाधान :- तू परद्रव्यको कुछ नहीं कर सकता। परद्रव्य स्वतंत्र परिणमता है। परद्रव्य कोई एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको कुछ नहीं कर सकता। ऐसा वस्तुका स्वभाव है। निरुत्तर करनेके लिये नहीं है, ऐसा स्वभाव बताते हैं। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय सब स्वतंत्र है। कोई किसीका कर नहीं सकता। जो स्वयं भाव करे उस अनुसार द्रव्यकर्म बन्धते हैं। उस द्रव्यकर्मका फल स्वतंत्र आता है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। इसलिये तू तेरे स्वयंके परिणाम पलटकर ज्ञायकको पहचान। तू परद्रव्यका कुछ नहीं कर सकता। वह निरुत्तर करनेके लिये नहीं है।

ऐसा वस्तुका स्वभाव है कि कंकरी डाले और मन्त्र हो,.. वह स्वयं होता है। कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता, ऐसा कहनेमें आता है। कोई किसीका कर्ता नहीं है, ऐसा वस्तुका स्वभाव ही है। निरुत्तर करनेके लिये नहीं है, वस्तुका स्वभाव दर्शाते हैं।

आत्माका जैसे ज्ञायक स्वभाव है, जाननेका स्वभाव है, उसका आनन्द स्वभाव है और जड़ कुछ जानता नहीं, ऐसा उसका स्वभाव है। जड़ किसी भी प्रकारसे चैतन्य

नहीं होता, चैतन्य किसी भी प्रकारसे जड़ नहीं होता। अग्निमें उष्णता स्वयं है, पानीमें शीतलता स्वयं है। इस प्रकार शीतलतामेंसे वह तो पुद्गल है इसलिये परिणमन बदल जाता है। लेकिन जड़ कभी चैतन्य नहीं होता, चैतन्य कभी जड़ नहीं होता। ऐसा वस्तुका स्वभाव है।

वैसे एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको कुछ नहीं कर सकता। ऐसा वस्तुका स्वभाव है। निरुत्तर करनेके लिये नहीं है। कोई किसीको कुछ नहीं कर सकता। यदि कोई किसीका कर सके तो द्रव्य पराधीन हो जाय। उसकी स्वतंत्रता नहीं रहती। कोई किसीको पलट नहीं सकता। स्वयं अपने भाव स्वयं करता है। उस भावमें निमित्त कर्मका होता है। परन्तु वह कर्म बलात् नहीं करवाता। बलात् करवाये तो पदार्थ पराधीन हो जाय। कोई किसीको कर नहीं सकता।

भगवानकी वाणी, गुरुदेवकी वाणी है, प्रबल निमित्त है। फिर भी स्वयंका उपादान तैयार हो, स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है। कोई किसीका कर नहीं सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। तो भी जो गुरुका उपकार है। आत्मार्थी, गुरुने समझाया ऐसा कहता है। वह निमित्त प्रबल है इसलिये। परन्तु प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रता बताते हैं। उसमें निरुत्तर करनेके लिये नहीं है। प्रत्येकके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न-भिन्न हैं।

चुंबक हो और सुई हो तो सुई चुंबकके साथ चीपक जाती है। वह स्वयं है, उसका स्वभाव ही ऐसा है। उसका स्वभाव ऐसा है, वैसा स्वभाव ही है कि जहाँ चुंबक हो वहाँ सुई चीपक जाय।

वैसे स्वयं जैसे भाव करे वैसे कर्म बन्धते हैं। उसे कोई कर नहीं सकता। निरुत्तर करनेके लिये नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा ही है। वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है।

मुमुक्षु :- ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है।

समाधान :- वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है। वह जाननेके लिये है। उसका तू ज्ञान कर। जिस प्रकार वह सब स्वयं है, वैसे तू भी स्वतंत्र है। तेरे भावमें स्वतंत्र है। वैसे परद्रव्य तुझे कुछ नहीं कर सकता। तू तुझसे स्वतंत्र है। तू तेरे विभावभावमें पुरुषार्थकी मन्दतासे तू करता है, तुझे बलात् कोई नहीं करवाता। और तू पुरुषार्थ कर उसमें भी स्वतंत्र है। ऐसे स्वतंत्रता बतायी है। जैसे वह स्वतंत्र है, वैसे तू भी स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- उस वक्त निमित्त सहज होता है, ऐसा कहना है।

समाधान :- हाँ, निमित्त उस प्रकारका सहज होता है। होता है। उसकी योग्यता अनुसार निमित्त होता है, परन्तु वह स्वयं होता है। तू उसे कर नहीं सकता, कोई उसे ला नहीं सकता। विश्वकी रचना कोई नहीं कर सकता। पदार्थ स्वयं परिणमते हैं।

कोई उसका कर्ता नहीं है। कोई कहे कि, ईश्वर करता है और यह होता है, ऐसा नहीं है। स्वयं वैसी परिणति होती ही है। स्वयं निमित्त होता है। उस प्रकारके नैमित्तिक भाव अनुसार निमित्त होता है। निमित्त स्वयं (होता है)। निमित्त निमित्तमें और उपादान उपादानमें है। ऐसा वस्तुका स्वभाव है। निरुत्तर करनेके लिये नहीं है। ऐसा स्वभाव ही है। उसका उत्तर नहीं आता, इसलिये स्वभाव है ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं है। उसका स्वभाव ही ऐसा है। ऐसा बताते हैं।

तू स्वतंत्र हो जा। मैं परभावका कर्ता हूँ, मैं इसका कर सकता हूँ, इसका भला कर सकता हूँ, उसका बूरा कर सकता हूँ, ऐसा कर-करके आकुलता कर रहा है। लेकिन कोई किसीका कुछ नहीं कर सकता। उसका तू ज्ञाता हो जा। इसलिये कहनेमें आता है। स्वभाव ही ऐसा है। उसके पुण्य अनुसार होता है, उसके पाप अनुसार होता है। तू तेरे भाव, तेरे शुभभाव एवं अशुभभावका अज्ञान अवस्थामें कर्ता होता है। परद्रव्यको तू कर नहीं सकता, ऐसा कहना चाहते हैं। तू ज्ञाता हो जा। उसमें कर्मका निमित्त है। तू द्रव्यकर्ममें भी कुछ नहीं कर सकता। तेरे भाव अनुसार वह स्वयं होते हैं। ज्ञाता हो जा, ऐसा कहना है।

जैसे वह वस्तु स्वयं है निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, वैसे तू स्वतंत्र है। तेरे भाव अनुसार कर्म परिणमते हैं। ऐसा स्वभाव है। वह स्वभाव जानकर तू ज्ञाता हो जा, कर्ता बननेसे छूट जा, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, वह सहज है? वह सहज है?

समाधान :- निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सहज है। स्वयं उसमें कुछ नहीं कर सकता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८८

मुमुक्षु :- माताजी! द्रव्य अपनी पर्यायको करता है। सम्यग्दर्शन करना चाहते हैं। अपना परिणाम स्वयं बदलता है। हम सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहते हैं तो प्रगट क्यों नहीं होता?

समाधान :- करना चाहते हैं, (लेकिन) परिणति नहीं करता। जैसी परिणति करनी चाहिये वैसी नहीं करता है। उसका मार्ग सहजरूपसे जो करना चाहिये वह नहीं करता है। यथार्थरूपसे नहीं करता है, इसलिये नहीं प्रगट नहीं होता है। करता है इसलिये इसका अर्थ ऐसा नहीं है, कोई वस्तुमें है नहीं, कोई नया जगतका कर्ता है, ऐसा नहीं है। जो वस्तुका स्वभाव है, सम्यग्दर्शन-प्रतीत गुण आत्मामें है, उसकी परिणति प्रगट करके पलट देनी है। वह गुण उसके स्वभावमें नहीं था और जगतमें-विश्वमें कुछ नया किया ऐसा नहीं है।

जो सहज स्वभाव सहज तत्त्व है, जो सहज तत्त्वके गुण है, उन गुणोंकी परिणतिको स्वयं पलटनी है। परिणति स्वयं पलटता नहीं है तो कहाँ-से पलटे? उसका कर्तृत्व छूटता नहीं। विभावका कर्तृत्व छूटता नहीं और ज्ञायक (रूप) होता नहीं है, तो ज्ञायककी परिणति और सम्यग्दर्शन कहाँ-से हो? ज्ञाता होता नहीं और कर्तृत्व भी छूटता नहीं, तो सम्यग्दर्शनकी परिमति कैसे प्रगट हो? विकल्पसे, मात्र विकल्पसे प्रगट नहीं होती। भावना आवे, बीचमें भावना आवे। परन्तु उसकी परिणति जो प्रगट करनी चाहिये, जो सहज तत्त्व है उसकी परिणति प्रगट करनी है, उस परिणतिरूप स्वयं परिणमता नहीं है। परिणति तो कर्तृत्वकी खड़ी है और ज्ञायककी परिणति स्वयं प्रगट नहीं करता है। ज्ञायककी ज्ञायकधारा स्वयं प्रगट नहीं करता है, कहाँ-से हो?

परिणतिरूप जो सहज स्वभाव है, उस रूप परिणमता नहीं। उसका वह (विपरीत) छूटता नहीं है, यह कैसे हो? ज्ञायक प्रगट करे तो वह छूटे और वह छूटे तो ज्ञायक प्रगट होता है। वह छूटता नहीं, यह प्रगट नहीं होता है। इच्छा करे, भावना करे। भावना करनेसे नहीं होता, कार्य करे तो होता है। मैं बँधा हूँ, बँधा हूँ, कैसे छूटुँ? कैसे छूटुँ? कैसे छूटुँ? ऐसा करता रहे तो बन्धन छूटता नहीं। शास्त्रमें आता है। बन्धन तोड़नेका कार्य करे तो बन्धन टूटे। बन्धन तोड़नेका कार्य करता नहीं है, कैसे टूटे?

मुमुक्षु :- सच्ची लगन नहीं लगी है।

समाधान :- सच्ची लगनी ही अंतरमें नहीं लगी है। अंतरमें लगी हो तो परिणति पलटे। परिणति पलटती नहीं है। अंतरमें ज्ञायककी जो निवृत्त दशा, ज्ञायककी जो निवृत्तमय परिणति, ज्ञायककी जाननेकी परिणति, उसे उस प्रकारसे अंतरमें लगनी लगे तो वैसी परिणति प्रगट होती है। उस ओर छूटता नहीं, इस ओर आता नहीं। भावना करता रहता है, वहाँ खड़े-खड़े, मुझे ज्ञायक चाहिये ऐसा करता रहता है, अमुक प्रकारसे करता है, परन्तु जितना कारण देना चाहिये उतना कारण देता नहीं। कार्य कहाँ-से हो?

मुमुक्षु :- माताजी! बाहरकी तो कोई इच्छा है नहीं, न कोई पुण्यका फल चाहते हैं और कुछ भी नहीं चाहते हैं। अन्दरमें घबराहट भी बहुत होती है। कहाँ जायेंगे आत्मज्ञानके बिना? ... कहीं दिखायी देता नहीं है। ऐसी परिणति कैसे हो? हमने कभी किया ही नहीं, हमको ऐसा हुआ ही नहीं।

समाधान :- बाहरका कुछ नहीं चाहिये, पुण्य नहीं चाहिये, घबराहट होती हो, परन्तु अंतरमें परिणति तो स्वयं प्रगट करे तो होती है। अन्दरसे स्वयं छूटता नहीं है। कहाँसे हो? घबराहट हो तो भी। उस जातिका, अंतरमेंसे जिस जातिका होना चाहिये वह होता नहीं। विकल्पमें घबराहट हो, पुण्य नहीं चाहिये, कुछ नहीं चाहिये, ऐसा करता हो, परन्तु जितनी अंतरमें उसकी तीव्रता होनी चाहिये, उतनी होती नहीं।

छाछमेंसे मक्खन निकालना है तो उसे बिलोता है। लेकिन जितना चाहिये उतना करता नहीं, मक्खन कैसे निकले? थोड़ करके मानता है, मैंने बहुत किया, मैंने बहुत किया। मक्खन निकालना है। बहुत क्या किया? मक्खन अन्दरसे (निकालनेको) छाछ बिलोये।

(वैसे) अन्दरसे ज्ञायक-ज्ञायकका अभ्यास तीव्रपने अंतरमेंसे करे तो मक्खन-तो अंतरमें भेदज्ञान होता है। अंतरमेंसे स्वयं द्रव्य पर दृष्टि करके जितना उसे बलवानरूपसे होना चाहिये उतना होता नहीं। अनादिका अभ्यास है (इसलिये) बार-बार वहाँ दृष्टि जाती है। जितनी दृष्टि हमेशा बाहर ही जाती है, वैसी ही दृष्टि अपनी ओर नहीं जाती है। जैसी बाहरकी परिणति निर्विचाररूपसे दौड़ती है, वैसे ही अंतरमें परिणति आत्मामेंसे लगती नहीं है, ऐसा कारण देता नहीं है इसलिये कार्य नहीं हो रहा है। अन्दरमेंसे यथार्थरूपसे हो तो जैसे मक्खन निकले वैसे निकले बिना रहे नहीं आत्मामें। शक्तिमें भरा है।

मुमुक्षु :- हे पूज्य भगवती माता! इस कालमें जीव अति स्थूल बुद्धिवाले हैं, इसलिये वे राग और आत्माका भेदज्ञान कर सके? यह आप कृपा करके समझाइये।

समाधान :- स्थूल बुद्धिवाले जीव हैं, इसलिये समझ नहीं सके ऐसा नहीं है। गुरुदेवने इस पंचम कालमें पधारकर उनका यहाँ अवतार हुआ, बहुत समझाया है। कहीं शंका रहे ऐसा नहीं है। इतना स्पष्ट किया है। प्रत्येक जीवोंको, पूरे हिन्दुस्तानके जीवोंको जागृत किया है। कुछ शंका रहे ऐसा नहीं है। स्थूल बुद्धिमें समझमें नहीं आये ऐसा नहीं है।

मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको पहचाने तो यह समझमें आये ऐसा है। रागसे भेदज्ञान करे। यह ज्ञायक मैं हूँ और यह राग मैं नहीं हूँ। वह अंतरसे यदि समझे, ज्ञायक स्वभावको-ज्ञानस्वभावको पहचानकर अंतरसे यह जो विभाव है वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ, ऐसे पहचाने तो पहचान सके ऐसा है। उसमें ज्यादा शास्त्र जाने तो पहचाने ऐसा नहीं है।

प्रयोजनभूत तत्त्व गुरुदेवने कहा है कि तू ज्ञायक आत्मा है और यह शुभाशुभ भाव तेरा स्वरूप नहीं है। उससे तू भिन्न हो जा। उससे भिन्न होनेसे अन्दरसे भेदज्ञान होता है। इस कालमें भेदज्ञान न हो सके ऐसा नहीं है। क्योंकि इस कालमें धर्म हो नहीं सकता, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन हो सकता है। शास्त्रमें आता है कि जितना यह ज्ञानस्वभाव है उतना ही तू है। तुझे आत्माको पहचानना हो तो गुरुदेवने भी कहा है कि जितना यह ज्ञानस्वभाव है, उतना तू है। जितना यह परमार्थ स्वरूप आत्मा है कि जितना यह ज्ञान है। इस ज्ञानस्वरूप आत्माको तू पहचान।

ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसीमें तू रुचि कर और प्रीति कर। वह ज्ञानस्वरूप आत्मा ही सत्य परमार्थस्वरूप आत्मा है। उसे तू पहचान ले। कल्याणस्वरूप ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसमें ही सब भरा है। वह महिमावंत है। ज्ञान यानी सिर्फ जानना (इतना ही नहीं है), वह महिमासे भरा आत्मा है। ज्ञायक अर्थात् चैतन्यदेव है, उसे तू पहचान। उसीमें तू रुचि कर, उसे जानकर उसमें संतुष्ट हो और उसीमें तू तृप्त हो। ज्ञानस्वरूप आत्मा इस कालमें पहचान सके ऐसा है। यह विभाव मेरा स्वरूप नहीं है, वह तो आकुलता है। ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही शान्ति और संतोष है। उसे तू पहचान। पहचाना जाय ऐसा है। इस कालमें पहचान नहीं सके ऐसा नहीं है। परन्तु अंतरसे लगनी लगे, उतनी जिज्ञासा जागृत हो तो पहचाना जाय।

स्थूल बुद्धि है, परन्तु प्रयोजनभूत तत्त्वको (जान सकता है)। स्वयं ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयंके पास है, कहीं खोजने जाना पड़े ऐसा नहीं है। उसे गहराईमें ऊतरकर, ज्ञान है वही मैं हूँ, अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। उसमें यदि तुझे संतुष्टता हो और महिमा आये तो वह पहचाना जाय ऐसा है। (परसे) भिन्न हो तो उसमेंसे तुझे संतोष होकर उसमें ही तुझे तृप्ति होगी। करने जैसा वह एक ही है।

चतुर्थ कालमें भगवानके समवसरणमें एकदम प्राप्त कर लेते थे और इस पंचमकालमें गुरुदेवने मार्ग बताया तो एकदम प्राप्त हो जाय ऐसा है, प्राप्त नहीं हो ऐसा नहीं है। इस कालमें सम्यग्दर्शन हो सके ऐसा है। केवलज्ञान हो सके ऐसा नहीं है, परन्तु सम्यग्दर्शन प्रयोजनभूत ज्ञान तो हो सके ऐसा है। तिर्यंच है वह नाम तक नहीं जानते कि किसे आस्रव कहते हैं, किसे बन्ध कहते हैं, किसे पुण्य-पाप कहते हैं, उसका नाम नहीं जानते। परन्तु यह ज्ञान सो मैं हूँ और जो यह सब आकुलतास्वरूप है वह मैं नहीं हूँ। मैं उससे भिन्न चैतन्यदेव ज्ञायक हूँ। इस प्रकार भाव समझकर, तिर्यंच नाम तक नहीं जानते ऐसे कितने ही तिर्यंच ढाई द्वीपके बाहर हैं, वे भी आत्माका ज्ञान कर सकते हैं। पूर्व संस्कार हो तो वह तिर्यंचके भवमें एकदम कर सकता है। तो इस मनुष्यभवमें क्यों नहीं हो सकता? हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- स्वभावकी रुचि करे, वह स्थूल बुद्धि हो तो भी सूक्ष्म बुद्धि हो गयी, कहनेमें आये?

समाधान :- स्थूल बुद्धि हो तो भी सूक्ष्म बुद्धि हो जाती है। अपना स्वभाव है न। स्थूल बुद्धि अर्थात् उसकी बुद्धि बाहर जाती है। अंतरमें दृष्टि करे तो वह सूक्ष्म बुद्धि जाती है और सूक्ष्म होकर स्वयंको पहचान सकता है, न पहचान सके ऐसा नहीं है।

आचार्यदेव कहते हैं न कि तू अभ्यास कर। इस आत्माका छः महिने अभ्यास कर, फिर देख अन्दर होता है या नहीं। परन्तु स्वयं अभ्यास ही नहीं करता है। चैतन्यमें निश्चल होकर अंतरमें देख, आत्मा प्रगट होता है या नहीं। परन्तु स्वयं अंतरमें जाकर देखता नहीं, उसका अभ्यास करता नहीं। थोड़ा समय करे फिर ऐसा विचार करे कि मैंने बहुत किया। लेकिन क्षण-क्षणमें उसकी लगनी लगनी चाहिये। जैसी एकत्वबुद्धि है तो निरंतर चल रही है, वैसे भेदज्ञान करनेका अंतरमें वैसा प्रयत्न नहीं करता है। क्षण-क्षणमें स्वयं भेदज्ञानकी धारा प्रगट करे, ऐसा प्रयास नहीं करता है, इसिलये कहाँसे प्रगट हो? स्थूल बुद्धि हो तो भी सूक्ष्म हो जाय और इस प्रयोजनभूत तत्त्वको पहचाने एवं आत्माके भवका अभाव हो। और अन्दरसे आत्मा प्रगट होता है, नहीं हो सकेऐसा नहीं है। इस कालमें गुरुदेवने परम उपकार किया है। दुर्लभको भी सुलभ कर दिया है।

मुमुक्षु :- सूक्ष्म बुद्धि हो और ऐसा प्रयत्न न करे तो स्थूल बुद्धि हो जाय।

समाधान :- स्वयं ऐसे संस्कार गहरे नहीं डाले और वैसा ही रहे तो स्थूल हो जाय। लेकिन स्वयं संस्कार डाले, सूक्ष्म बुद्धि (करके) स्वयं अंतरमें गहराईमें जाय तो उसके संस्कार साथमें आये तो दूसरे भवमें प्रगट होनेका अवकाश है।

मुमुक्षु :- सातवीं नर्कका नारकी सम्यग्दर्शन प्रगट करता होगा वह भी सूक्ष्म बुद्धिसे

ही करता होगा?

समाधान :- सूक्ष्म बुद्धिसे करता है। सातवीं नर्कका नारकी पूर्वके संस्कार लेकर गया है। वहाँ लेकर गया है इसलिये वहाँ उसे सूक्ष्म बुद्धि हो जाती है। नारकीको भी ऐसा होता है कि अरे..! यह सब क्या है? यह जीवन? यह दुःख? यह दुःखमय जीवन? यह क्या है? अन्दर ऐसा कोई आत्मा है कि जहाँ सुख और शान्ति मिले। ऐसा कोई तत्त्व है कि नहीं? कि बस! यह दुःख ही है?

नारकीके जीवोंको एक क्षणकी भी शान्ति नहीं है। अंतर विभावका दुःख तो है, लेकिन बाह्य संयोगोंका भी उतना दुःख है। उसे ऐसा विचार आता है कि अरे..! यह क्या? बस, अकेला दुःख? इसमें कोई सुखका मार्ग है कि नहीं? ऐसा (विचार) करके वह गहराईमें जाता है और उसकी सूक्ष्म बुद्धि होती है और ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञायकको ग्रहण करता है और विभावसे भिन्न पड़ जाता है। और स्वानुभूतिको प्रगट करता है। सातवीं नर्कका नारकी भी कर सकता है। आत्मा है न? स्वभाव तो उसका है। अनन्त शक्तिसे भरपूर उसका स्वभाव है।

मुमुक्षु :- हे पूज्य भगवती माता! एक प्रश्न है। बन्ध-मोक्षका कारण और बन्ध-मोक्षके परिणामसे सम्यग्दर्शनका विषयभूत भगवान शून्य है। तो मुक्त पर्यायसे जो शून्य है, जिसका आश्रय लेनेसे मुक्तपर्याय प्रगट हो, वह .. जैसा लगता है, तो इस विषयमें स्पष्टता करनेकी कृपा कीजिये।

समाधान :- बन्ध-मोक्षके परिणाम, बन्ध-मोक्षका कारण वह सब पर्यायें हैं। वस्तुका स्वरूप और पर्याय भिन्न है, उस अपेक्षासे है। पर्याय एक अंश है और द्रव्य अंशी है। अंशीका आश्रय लेनेसे अंश प्रगट होता है। परन्तु वह अंश-अंशीका भेद है। लेकिन ऐसा सर्वथा भेद नहीं है। ऐसा सर्वथा भेद (नहीं है कि) दो द्रव्यका भेद हो, ऐसा अत्यंत भेद नहीं है। अंश-अंशीका भेद है। और वह द्रव्य पर दृष्टि करे तो ही वह पर्याय प्रगट होती है। सम्यग्दर्शनका आश्रय द्रव्य है। उस द्रव्य पर दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब प्रगट होता है। आत्मा उससे ऐसा भिन्न नहीं है। उस पर्यायका उसे वेदन होता है। उससे शून्य यानी पर्याय उससे कहीं दूर भिन्न रह जाय और द्रव्य कहीं दूर भिन्न रहे, ऐसा नहीं है। ऐसा अत्यंत भेद नहीं है। जो पर्याय प्रगट होती है उसका आत्माको वेदन होता है। सम्यग्दर्शनका वेदन होता है, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका भी आत्माको वेदन है।

निर्मल पर्यायका वेदन होता है। साधना जो होती है, वह साधना कोई अन्यके लिये नहीं होती है। स्वयं आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये होती है। वह साधना निष्फल नहीं जाती है। उसे आत्माका वेदन होता है। और मोक्षकी पर्याय-मुक्तिकी पर्याय जो

होती है, केवलज्ञानकी पर्याय होती है, उस पर्यायका आत्माको वेदन है। द्रव्यदृष्टिके विषयमें नहीं है। द्रव्यदृष्टिके विषयमें वह नहीं है।

मुमुक्षु :- इस अपेक्षासे शून्य है।

समाधान :- इस अपेक्षासे उसे भिन्न कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ, ऐसा भेद है। अत्यंत भेद नहीं है। उसका ऐसा अत्यंत भेद नहीं है कि उसका वेदन न हो। सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब सम्यग्दर्शनका वेदन, स्वानुभूति होती है। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे वह सब प्रगट होता है। इसलिये वह शून्य है तो क्यों प्रगट करना, ऐसा नहीं है। द्रव्यदृष्टिके बलसे सम्यग्दर्शन, फिर आगे जाय तो मुनिदशा आये, छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलता है। सबका मुनिराजको भी वेदन है, छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें। परन्तु वह साधक पर्याय है, पूर्णता नहीं है। पूर्ण होते हैं तब केवलज्ञान होता है। परन्तु द्रव्यदृष्टिमें केवलज्ञानकी पर्याय भी गौण होती है। मुक्तिकी पर्याय भी नहीं है। द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे केवलज्ञान पर दृष्टि नहीं है, मुक्तिकी पर्याय पर दृष्टि नहीं है। सम्यग्दर्शनकी पर्याय पर दृष्टि नहीं है। उसकी दृष्टि कहीं नहीं है।

दृष्टि तो एक द्रव्यको ग्रहण करके सब पर्यायको गौण करती है। जो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उस सम्यग्दर्शनका विषय जो द्रव्य है, द्रव्यको विषय किया लेकिन उसकी दृष्टि पर्याय पर नहीं है, उसकी दृष्टि तो द्रव्य पर है। द्रव्यदृष्टिमें कुछ नहीं आता है। पाँच ज्ञानके भेद, उदयभाव, उपशमभाव, क्षायिकभाव आदि सबके भेद उसमें नहीं आते। क्षायिक पर्याय प्रगट हो तो भी उस पर उसकी दृष्टि नहीं है। द्रव्यदृष्टिमें कुछ नहीं आता है। द्रव्यदृष्टिके बलसे ही सब पर्याय प्रगट होती है। पारिणामिकभाव पर दृष्टि देनेसे सब प्रगट होता है। द्रव्यदृष्टिके बलसे सब प्रगट होता है और वह पर्यायको गौण करती है। द्रव्यदृष्टि पर्यायको गौण करती है। और पर्याय उसके ज़ोरसे प्रगट होती है और उस पर्यायका वेदन होता है।

जो दृष्टि द्रव्यका द्रव्यका आश्रय करती है, वह दृष्टि पर्यायको गौण करती है। परन्तु ज्ञानमें सब आता है। उस पर्यायका वेदन भी होता है। इसलिये वह सब निष्फल नहीं है। द्रव्यदृष्टिके बलमें बन्ध-मोक्षके परिणाम भी जिसमें नहीं है, केवलज्ञान भी जिसमें नहीं है, ऐसा कहनेमें आता है। एक भी पद, यह पाँच ज्ञान, कोई भी पद केवलज्ञानका पद भी आत्माको नहीं चाहिये। आता है न? मोक्ष भी नहीं चाहिये। उसका मतलब मोक्षकी पर्याय पर दृष्टि नहीं है। केवलज्ञान पर दृष्टि नहीं है, परन्तु द्रव्य पर ही दृष्टि है। दृष्टिके बलमें वह सब गौण होता है। उसे निकाल देनेमें आता है, परन्तु उसका वेदन होता है।

उससे शून्य (कहा तो) वह ऐसा शून्य नहीं है कि उसका वेदन ही नहीं हो। उसका कोई अपूर्व होता है, उसका कोई अनुपम वेदन होता है। जो भाषामें न आवे ऐसा वेदन सम्यग्दर्शन, स्वानुभूतिका होता है। पूर्ण होता है तब पूर्ण वीतराग दशामें, चारित्र दशामें आत्माका कोई अपूर्व अनुपम वेदन होता है। इसलिये वह सब पर्यायें ऐसी नहीं है कि बिलकुल भेद है। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- वह कोई अपेक्षाका कथन है। दृष्टिकी अपेक्षामें...

समाधान :- हाँ, द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे। साधकदशामें द्रव्यदृष्टि मुख्य रहती है। साधकदशामें द्रव्यदृष्टि मुख्य रहती है, इसलिये पर्यायको गौण करनेमें आता है। परन्तु ज्ञान साथमें उसका विवेक करता रहता है। द्रव्यको भी ज्ञान जानता है और पर्यायको भी ज्ञान जानता है। सबको जानता है। उसका वेदन ही न हो तो फिर यह साधकदशा किसकी? यह जो दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी साधना करनेमें आती है वह क्या? तो फिक्षर यह विभाव, यह स्वभाव वह सब क्या? पर्याय होवे ही नहीं तो।

इसी मार्गसे सब मोक्षको प्राप्त हुए हैं। इस मार्गसे द्रव्यदृष्टिके बलसे पर्यायें प्रगट होती हैं। तीर्थंकर भगवंतों, चक्रवर्ती, भरत चक्रवर्ती आदि यह साधना करके मोक्ष पधारे हैं। इसी मार्गसे। और पर्याय तो सिद्ध भगवानमें भी होती है। पर्याय-सिद्धदशा हुयी, द्रव्यदृष्टिके बलसे पर्यायको गौण की द्रव्यदृष्टिमें, इसलिये सिद्ध भगवानमें पर्याय चली गयी ऐसा नहीं है। सिद्ध भगवानमें भी पर्यायें हैं। जो ज्ञानगुण प्रगट हुआ-पूर्ण केवलज्ञान, आनन्दगुण ऐसे अनन्त गुण प्रगट हुए, उन सब गुणोंकी पर्यायें एक समयमें परिणमन कर रही है। सिद्ध भगवानको अगुरुलघुगुण है, उसकी सब पर्यायें, उसकी षट्गुणहानिवृद्धिरूपसे कोई अचिंत्यरूपसे वह द्रव्य परिणमन कर रहा है। प्रगटरूपसे!

संसारीओंको शक्तिरूप है, सिद्ध भगवानको प्रगटरूपसे कोई अनुपम रूपसे अनन्त गुणकी पर्यायें एक समयमें परिणमन कर रही है। ऐसी अनन्त काल पर्यंत परिणमन करती है। तो भी उसमेंसे कुछ कम नहीं हो जाता। ऐसी अनन्त काल पर्यंत परिणमन करती है।

अतः पर्याय वह द्रव्यका स्वरूप है। द्रव्य-गुण-पर्याय द्रव्यका ही स्वरूप है। द्रव्यको मुख्य करके पर्याय पलटती है और द्रव्य शाश्वत रहता है, इसलिये द्रव्यका आश्रय लेनेमें आता है। द्रव्यके आश्रयसे आगे बढा जाता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य-गुण-पर्याय द्रव्यका ही स्वरूप है?

समाधान :- हाँ, वह द्रव्यका ही स्वरूप है। उससे भिन्न नहीं है। द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रुव आदि सब द्रव्यका ही स्वरूप है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-८९

मुमुक्षु :- हे भगवती माता! पर्यायको अन्दरमें झुका, गुण-गुणीके भेदको तिरोधान करनेका जो उपदेश है, उसमें अंतरमें झुकाना मतलब क्या? और भेदको तिरोधन करनेका अर्थ क्या है? यह कृपा करके समझाइये।

समाधान :- ज्ञायक स्वभावकी प्रतीति दृढ़ करनी कि मैं यह एक ज्ञायक ही हूँ। यह दूसरा जो स्वरूप है वह मेरा नहीं है। यह शरीर सो मैं नहीं हूँ। यह विभाव मैं नहीं हूँ, वह सब आकुलतारूप है। उससे भिन्न मैं एक ज्ञायक हूँ। उसमें उसे गुण-गुणीका भेद उत्पन्न हो कि यह दर्शन सो मैं, यह ज्ञान सो मैं, यह चारित्र सो मैं, ऐसे एक-एक गुणस्वरूप आत्मा नहीं है, आत्मा तो अखण्ड ज्ञायक है। दर्शनगुण और चारित्र पर उसकी दृष्टि जाती है तो वह गुणभेद है। गुणभेद वास्तविकरूपसे आत्मामें नहीं है। गुणभेद तो एक लक्षणभेद है। एक द्रव्य पर दृष्टि करे और भेदको गौण करे तो ही उसे सच्ची यथार्थ प्रतीति है और तो ही उसे निर्विकल्प दशा होती है।

इसलिये यथार्थ प्रतीति करके उपयोग जो बाहर जाता है, गुण-गुणी भेदमें रुके या चाहे कहीं भी रुके, उस उपयोगको स्वरूपमें झुकाकर स्वरूपमें स्थिर करे। बाह्य ज्ञेयोंको जानने जाये अथवा रागमें अटकता हो, गुण-गुणीके भेदमें अटकता हो, उस उपयोगको स्वयंमें स्थिर करे कि यह चैतन्य है वही मैं हूँ। उसमें कोई भेद पर दृष्टि (नहीं करे)। उसमें लक्षणभेद है, लेकिन वह लक्षणभेद कोई वास्तविक भेद नहीं है। गुणभेद पर दृष्टि करनेसे विकल्प उत्पन्न होता है। इसलिये आत्मामें स्थिर होकर, आत्मामें विश्राम लेकर वह विकल्पसे छूटता है। आत्मा उस भेदको गौण कर देता है। विकल्प जब छूटे तब उपयोग स्वरूपमें स्थिर हो जाय।

लेकिन जिसने आत्माका अस्तित्व ग्रहण किया हो, उसे ही वह विकल्प छूटता है। दूसरे प्रकारसे विकल्प छूटते नहीं। कोई ध्यान करे आत्माको समझे बिना या आत्माको पहचाने बिना, अकेली एकाग्रता करे, आत्माका अस्तित्व ग्रहण किये बिना एकाग्रता करता रहे तो ऐसे ध्यानसे विकल्प छूटता नहीं। ध्यान तो आत्माको पहचानकर, यथार्थपने पहचानकर आत्मामें एकाग्र हो, ज्ञायकको पहचानकर। उसमें गुण-गुणी भेद पर दृष्टि जाती हो तो उसे भी गौण करके जो उपयोग बाहर जाता है, मतिज्ञानका उपयोग

एवं श्रुतज्ञानका उपयोग द्रव्य-गुण-पर्यायमें रुकता हो तो उसे भी स्वयमें स्थिर करे। उस प्रकारका आश्चर्य भी तोड़ देता है जाननेके लिये कि यह गुण क्या है, यह पर्याय क्या है या यह द्रव्य क्या है? ऐसे जो विचार रागमिश्रित है, उसमें अटकता हो, दूसरे विकल्पको तो गौण कर दिया, लेकिन ऐसे अटकता हो कि यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है, अथवा यह द्रव्य कैसा है, यह गुण कैसे हैं, यह पर्याय कैसी है? उसमें विचार अटकते हो और भेद पड़ते हो, उन सबका आश्चर्य तोड़कर, उस क्षण वह सब जाननेके भेदको तोड़कर अंतरमें उपयोगको स्थिर करे कि मैं तो जो हूँ सो हूँ।

मैं चैतन्यदेव हूँ, इस प्रकार उपयोगको स्वयंमें स्थिर करे तो उसे गुण-गुणीका भेद गौण होकर विकल्प छूटकर निर्विक्लप दशा होती है। गुण-गुणी भेद परसे दृष्टि छूटकर आत्मामें स्थिर हो तो उसे निर्विकल्प दशा होती है और अंतरमेंसे उसे ज्ञायकदेव प्रगट होते हैं। अंतरमेंसे ऐसा छूट जाता है कि बस, एक ज्ञायक मात्र ज्ञायक, अनन्त गुणसे भरा ज्ञायक, ऐसी निर्विकल्प दशा तो उसे प्रगट होती है।

एक आत्माका अस्तित्व ग्रहण करे तो ही यह होता है। सिर्फ यह छोड़ा, फिर यह छोड़ा, ऐसे आत्माको-ज्ञायकको ग्रहण किये बिना, मैंने सब छोड़कर सब भेद छोड़ दिये, परन्तु आत्माको ग्रहण किये बिना, अभेद पर दृष्टि किये बिना, ज्ञायक पर दृष्टि किये बिना, ज्ञायकको ग्रहण किये बिना किसी भी प्रकारका भेद छूटता नहीं। ऐसी एकाग्रता करे परन्तु यदि ज्ञायक ग्रहण नहीं हुआ हो तो वैसा ध्यान करे तो विकल्प छूटते नहीं। लेकिन आत्माको पहचानकर, ज्ञायकको पहचानकर, उसका अस्तित्व ग्रहण करके फिर उसमें स्थिर हो जाय तो उसके विकल्प छूट जाते हैं।

गुरुदेवने यह मार्ग स्पष्ट करके स्वानुभूतिका मार्ग बताया है और उसी मार्गसे कल्याण होता है और यही मार्ग है, मुक्तिका उपाय है। वही एक सुखका उपाय है। सत्य यही है। उसमें कोई नय नहीं रहते हैं। कोई नयोंकी लक्ष्मी उदित नहीं होती, शास्त्रमें आता है। निक्षेप कहाँ चला जाता है, प्रमाण अस्त हो जाता है, वह सब प्रकारका आश्चर्य उसे छूट जाता है। जाननेका कुतूहल छोड़कर अंतरमें स्थिर हो जाता है। परन्तु उसकी अंतर्मुहूर्तकी स्थिति है। फिर बाहर आता है तो सविकल्प दशामें उसके विचार आते हैं। क्योंकि पूर्ण वीतराग नहीं हुआ है। सविकल्प दशामें भेदज्ञानकी धारा रहती है, उसके साथ क्षण-क्षणमें ज्ञायककी धारा रहे, उसके साथ यह विकल्प होते हैं। शुभभाव होता है, श्रुतका चिंतवन होता है, पंच परमेष्ठीकी भक्ति, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि सब विचार होते हैं। परन्तु उससे भिन्न ही रहता है। परन्तु निर्विकल्पताके समय यह सब छूट जाता है और गौण हो जाता है।

यह मार्ग गुरुदेवने बताया है और उसी मार्गकी जिज्ञासा, लगनी लगाये तो यह हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- ॐ वीतरागाय नमः। परम पूज्य श्री गुरुदेवको कोटि-कोटि वन्दन। प्रशममूर्ति सम्यक् रत्नत्रयधारी पूज्य भगवती माताको कोटि-कोटि वन्धन! प्रश्न है-शुद्धनयका विषय अशुभ होने पर भी वह परिपूर्ण है? आत्मामें एक अंश परिपूर्ण होकर रहता हो तो दूसरे अंशको शून्य होना पडे। तो यह बात कृपा करके समझाइये।

समाधान :- गुरुदवने सब स्पष्ट करके द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप बहुत समझाया है। द्रव्यका एक अंश परिपूर्ण होकर रहता है, लेकिन वह शाश्वत अंश है। द्रव्य स्वयं शाश्वत है और पर्याय है वह पलटता अंश है। पलटते अंश पर दृष्टि नहीं होती, परन्तु जो शाश्वत अंश है, द्रव्यका जो शाश्वत भाग है उस पर दृष्टि उसका विषय करती है। और वह परिपूर्ण अर्थात् शक्तिसे परिपूर्ण है। प्रगटरूपसे परिपूर्ण नहीं है, शक्तिमें परिपूर्ण है। इसलिये शक्तिसे परिपूर्ण होनेसे उसमें विरोध नहीं आता है। एक पलटता अंश है और एक शाश्वत अंश है। शाश्वत अंश द्रव्य स्वयं है। और पर्याय है वह द्रव्यदृष्टिमें गौण होती है, इसलिये उसमें विरोध नहीं आता है। द्रव्यदृष्टि उसे विषय करती है और ज्ञानमें वह सब जाननेमें आता है।

ज्ञानमें द्रव्य-गुण-पर्याय आदि सब ज्ञानमें ज्ञात होता है। परिपूर्ण अर्थात् वह शक्तिरूप परिपूर्ण है। यदि प्रगट परिपूर्ण हो तो उसमें विरोध आता है। प्रगटरूपसे परिपूर्ण नहीं है, शक्तिरूपसे परिपूर्ण है। और वह शाश्वत है इसलिये दृष्टि उसे विषय करती है और शाश्वत अंश पर ही ज़ोर देकर वह आगे बढ़ती है। जो शाश्वत हो उस पर दृष्टि स्थिर होती है। पलटते (अंश) पर दृष्टि स्थिर नहीं होती। दृष्टि पर्यायको गौण करती है और ज्ञानमें वह सब ज्ञात होता है। इसलिये दूसरे अंशको शून्य नहीं होना पड़ता। वह तो द्रव्यका स्वरूप जो है वह है। द्रव्य-गुण-पर्याय।

द्रव्यदृष्टि उसे विषय करती है। इसलिये वह शक्तिरूपसे परिपूर्ण है। उसमें कोई विरोध नहीं है। उसमें उसे शून्य नहीं होना पड़ता। दृष्टिका विषय है, श्रद्धा बराबर करती है। जो शाश्वत है उसीके आश्रयसे पर्याय प्रगट होती है। उसे शून्य नहीं होना पड़ता, बल्कि पर्याय-निर्मल पर्यायें प्रगट होती है। उसका आश्रय लेनेसे निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं। एक श्रद्धा परिपूर्ण द्रव्यको विषय करती है। वह द्रव्यदृष्टि पर्यायको गौण करती है। उसके आश्रयसे पर्याय प्रगट होती है।

जैसे श्रद्धा हो तो भी चारित्र बाकी रहता है, उसमें कोई विरोध नहीं आता है। पहले श्रद्धा परिपूर्ण होती है। द्रव्यदृष्टि परिपूर्ण होती है और चारित्र बाकी रहता है। ऐसा क्रम पड़ता है। इसलिये उसमें कोई विरोध नहीं आता है। द्रव्यदृष्टिके बलसे आगे

बढ़ा जाता है और वह शक्तिरूप है। इसलिये उसमें कहीं विरोध नहीं आता है। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

.. परिपूर्ण हो गया, श्रद्धा हुयी इसलिये सब परिपूर्ण हो जाय, ऐसा नहीं है। उसमें कोई विरोध नहीं है। ऐसे द्रव्य परिपूर्ण शक्तिरूप है और वह पर्याय पलटता अंश है, उसमें कोई विरोध नहीं है। वह तो वस्तुका स्वरूप ही है। द्रव्यदृष्टिके बलसे आगे बढा जाता है। उसमें चारित्र-लीनता अभी बाकी रहती है। सम्यग्दृष्टि ज्ञाताधाराकी उग्रता करते-करते आगे बढ़ता है। उसमें जब चारित्रकी लीनता होती है तब भूमिका पलटती है और छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान प्रगट होता है। वह सब द्रव्यदृष्टिके बलसे पर्यायें, निर्मल पर्यायें प्रगट होती जाती है। उसमें शून्य नहीं होती, अपितु प्रगट होती है। उसमें उसे शून्य नहीं होना पड़ता। उसके आश्रयसे केवलज्ञान होता है। सब द्रव्यदृष्टिज्ञके बलसे (प्रगट होता है)। जो शाश्वत अंश है, उसका आश्रय लेनेसे पर्यायें प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- पर्यायमें परिपूर्णता प्रगट होने पर भी शक्तिमें कुछ भी हानि-हानि वृद्धि नहीं होती।

समाधान :- शक्तिमें कोई हानि-वृद्धि नहीं होती। पर्यायमें पूर्ण हो गया, केवलज्ञान होता है तो उसमें शक्तिमें हानी नहीं होती। और विषय परिपूर्ण.. द्रव्यदृष्टिने विषय किया कि मैं पूर्ण हूँ, तो उसमें शक्तिमें कोई हानि-वृद्धि नहीं होती। शक्ति तो, जो उसने श्रद्धा की, द्रव्यदृष्टि की तो उसे शक्तिमें कोई हानि-वृद्धि नहीं होती। वस्तु तो जैसी है वैसी है। उसने उस पर श्रद्धा कि यह मैं शाश्वत द्रव्य हूँ। यह जो विभाव आदि पर्याय होती है, वह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वभाव भिन्न है। ऐसी उसने श्रद्धा की, ऐसा ज्ञान किया, आंशिक लीनता की इसलिये उसमें उसकी शक्तिमें हानि-वृद्धि नहीं होती। वह तो जैसी है वैसी है। अनादिअनन्त शाश्वत जो वस्तु है वैसी है। परिपूर्ण है। उसमें कोई हानि-वृद्धि नहीं होती।

मुमुक्षु :- पर्यायकी परिपूर्णता कहाँ-से आती है?

समाधान :- परिपूर्णता आती है, द्रव्यका आश्रयसे आती है। लेकिन वह तो पर्यायकी परिपूर्णता है। द्रव्य तो अनन्त पड़ा ही है। पर्यायमें परिपूर्णता होती है। जैसा स्वभाव हो, वैसी पर्याय प्रगट होती है। पर्याय तो पलटती रहती है और द्रव्य तो शाश्वत है।

मुमुक्षु :- पदार्थमें ऐसे दो भिन्न-भिन्न अंश है? एक वैसाका वैसा रहे और एकमें फेरफार होता रहे?

समाधान :- दोनो भिन्न अंश (हैं)। हाँ, एकका स्वभाव भिन्न है कि जो शाश्वत है। द्रव्य शाश्वत है और पर्याय पलटती रहती है। ऐसे दो भाग यानी बिलकुल दो भिन्न-भिन्न भाग नहीं है। वह द्रव्यका ही स्वरूप है। द्रव्य-गुण-पर्याय द्रव्यका ही स्वरूप

है। उसके स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। एक शाश्वत रहनेवाला है और एक पलटता है। ऐसे अनन्त गुण-पर्यायसे भरा आत्माका स्वरूप है। एक स्वरूप नहीं है। एक स्वरूप हो तो श्रद्धा हो तो साथमें सब हो जाना चाहिये। श्रद्धाके साथ चारित्र, केवलज्ञान आदि सब श्रद्धाके साथ (हो जाना चाहिये)। सब एक ही जातका एक ही हो तो। अनन्त गुणसे भरा आत्मा है, अनन्त। पर्यायकी शुद्धि बाकी रह जाती है।

मुमुक्षु :- एक ही समयमें पूरा द्रव्य शुद्ध है और पूरेमें अशुद्धिका भाव है, ऐसा है?

समाधान :- एक ही समयमें अशुद्धि पूरे द्रव्यमें (नहीं है)। द्रव्यदृष्टिमें पूरेमें अशुद्धता नहीं आयी है। पर्यायदृष्टिसे है। पर्यायदृष्टिसे शुद्ध भी द्रव्यमें जो है, वस्तु जो तलमें पड़ी है, वह सब आकर पर्यायरूप हो गया और बादमें कुछ नहीं रहा, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- अक्षय भण्डार है।

समाधान :- हाँ, अक्षय भण्डार है, उसमेंसे कुछ कम नहीं होता। उसमें सब भरा ही है। उसमेंसे कम नहीं होता है। पर्याय चाहे जितनी पलटती ही रहे, उसमेंसे आती ही रहे तो भी कम नहीं होता है। भण्डार भरा है। अनन्त आनन्द प्रगट हो केवलज्ञानमें तो अनन्त काल पर्यंत परिणमता रहे तो भी उसमें कम नहीं होता। लोकालोकका ज्ञान एक समयमें हो, लोकालोकको जानता है तो भी दूसरे समय लोकालोकको जाननेवाली पर्याय परिणमती ही रहती है। सब जान लिया इसलिये उसकी पर्याय पूरी हो गयी तो दूसरे समय क्या आयेगा, ऐसा नहीं है। परिणमन होता ही रहता है, पलटता ही रहता है। उसमेंसे कम नहीं होता है, भण्डार भरा है।

मुमुक्षु :- भण्डार निरावरण है कि उसे कुछ आवरण है?

समाधान :- निरावरण है, किसी भी प्रकारका आवरण नहीं है। अनादिसे है उसमें भी आवरण नहीं है तो प्रगटमें तो कहाँ आवरण है? शक्तिरूपमें आवरण नहीं है। द्रव्य अपेक्षासे आवरण नहीं है, पर्याय अपेक्षासे है।

मुमुक्षु :- शक्ति जिसे कहते हैं वह निरावरण ही है?

समाधान :- निरावरण है। निरावरण अखण्ड एक वस्तु है, कोई आवरण नहीं है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शनमें उसके दर्शन होते होंगे?

समाधान :- सम्यग्दर्शनमें उसकी पर्यायका वेदन होता है। द्रव्य पर दृष्टि है, पर्यायका वेदन होता है। अनन्त गुणका भण्डार आत्मा, उसकी निर्मल पर्यायोंका वेदन होता है, उसका दर्शन होता है। चैतन्यदेवके दर्शन होते हैं।

मुमुक्षु :- शक्तिका?

समाधान :- सम्यग्दर्शनमें दर्शन होता है, उसकी पर्यायमें जो स्वानुभूतिकी पर्याय प्रगट होती है, उसके दर्शन होते हैं। उसमें द्रव्य और पर्याय दोनों भिन्न-भिन्न नहीं है। उसमें आत्माका दर्शन साथमें हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- निरावरण हो तो पर्यायकी अशुद्धता उसे स्पर्शती नहीं?

समाधान :- स्पर्श नहीं करती। निरावरण ही रहती है, पर्यायमें अशुद्धता रहती है। स्फटिक निर्मल है, उसमें लाल-पीला होता है तो वह लाल-पीला उसके अन्दर मूल तलमें प्रवेश नहीं करता।

मुमुक्षु :- ऐसा ही कोई अतीन्द्रिय स्वभाव है।

समाधान :- ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है।

मुमुक्षु :- हे पूज्य धर्मात्मा! हम मुमुक्षुओंका ... कि ज्ञानीपुरुषों अर्थात् धर्मी-सम्यग्दृष्टि पूरा दिन क्या करते होंगे? उन्हें परमें तो कुछ रहा नहीं, फिर भी समय कैसे व्यतीत होता होगा? यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :- बाहरसे कोई कार्य करना हो तो समय व्यतीत हो, ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टिको तो अंतरमें ज्ञायककी परिणति प्रगट हुयी है। ज्ञायककी परिणति ज्ञाताकी धारा चलती है। उसे तो क्षण-क्षणमें पुरुषार्थकी डोर साधनाकी पर्याय हो रही है। क्षण-क्षणमें विभाव होता है, उससे भिन्न होकर ज्ञायककी धारा, ज्ञायककी परिणति चालू ही है, पुरुषार्थकी डोर क्षण-क्षणमें चलती ही है और सहज ज्ञाताधारा चल रही है। पूरा दिन क्या करते होंगे (यह सवाल नहीं है)।

आत्माका तो निवृत्त स्वभाव है। विभावमें कुछ करे, बाहरका कुछ करे तो उसका समय व्यतीत हो, ऐसा नहीं है। अंतरमें कर्ता, क्रिया, कर्म आत्मामें है। बाहरका कुछ कर ही नहीं सकता है। बाहरमें करनेका अभिमानमात्र जीवने किया है कि मैं दूसरेका कर सकता हूँ। बाकी अंतरमें उसकी आत्माकी स्वरूप परिणतिकी क्रिया और उसका कार्य उसे चालू ही है। उसे क्षण-क्षणमें भेदज्ञानकी धारा चालू ही है। कभी-कभी विकल्प छूटकर स्वानुभूति प्रगट होती है और भेदज्ञानकी धारा चालू है। खाते-पीते, निद्रामें, स्वप्नमें उसे ज्ञायककी धारा चालू है। बाकी गृहस्थाश्रममें है तो बाह्य क्रियामें जुड़ता है। परन्तु उसकी ज्ञाताधारा चालू है। बाहरसे कार्य करते हुए दिखायी दें, फिर भी वह अंतरसे तो ज्ञायक ही रहता है। वह अंतरमें ज्ञायक हो गया, इसलिये वह कुछ करता नहीं है इसलिये उसका समय व्यततती नहीं होता है, ऐसा अर्थ नहीं है। विभावके कार्योंमें जुड़े तो समय व्यतीत हो, वह तो आकुलता है।

अंतरमें निवृत्त परिणति, शान्तिमय परिणतिमें जिसे सुख लगता है, बाहरमें कहीं

भी सुख नहीं लगता है। वह तो गृहस्थाश्रम है।

मुनिओं अंतरमें तो अकर्ता हैं ही और चारित्रकी अपेक्षासे भी उन्हें बाहरका सब छूट गया है। शास्त्रमें आता है कि मुनिओं अशरण नहीं हैं। बाहरके पंच महाव्रतके परिणाम जो शुभ हैं, उससे भी उनकी परिणति भिन्न रहती है। मुनिओंकी ज्ञाताधारा, छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हुए क्षण-क्षणमें स्वरूपमें लीन हो जाते हैं, स्वानुभूतिकी दशामें। मुनिओं अशरण नहीं हैं, उन्हें आत्माका शरण है। मुनिओंका पूरा दिन कैसे व्यतीत होता होगा, वह कोई (सवाल) नहीं है। वे तो आत्मामें लीन रहते हैं।

वैसे सम्यग्दृष्टिको तो बाहर कोई कार्य हो तो भी अंतरका कार्य-अन्दर ज्ञाताकी धारा चालू है। क्षण-क्षणमें जो यह विभावकी परिणति हो रही है, उससे क्षण-क्षणमें उसकी परिणति भिन्न चलती ही रहती है। वह अशरण नहीं है। आत्माका शरण लिया है, आत्मामें ही सुख, शान्ति और स्वानुभूतिका कार्य चलता है। आत्माकी निर्मलता विशेष कैसे प्रगट हो, उसकी सहज दशा और उसकी पुरुषार्थकी विशेष डोर चलती रहती है।

सिद्ध भगवानको सब छूट गया इसलिये सिद्ध भगवान दिन-रात क्या करते होंगे, उसका सवाल नहीं है। सिद्ध भगवानकी अनन्त गुण-पर्यायें हैं। वे अनन्त गुण-पर्यायोंमें परिणमन करते रहते हैं। उन्हें कर्ता, क्रिया और कर्म सब अंतरमें प्रगट हुआ है और वह सहज है, आकुलतारूप नहीं है। आत्माका एकदम निवृत्त स्वभाव है और तो भी उसमें कर्ता, क्रिया और कर्म सिद्ध भगवानके जो गुण हैं, उन गुणोंका कार्य चलता रहता है। ज्ञान ज्ञानका कार्य करता है, आनन्द आनन्दका। ऐसे अनन्त गुण अनन्त गुणोंका कार्य करते हैं। तो भी उनकी परिणति निवृत्तमय है।

सिद्ध भगवान पूरा दिन क्या करते होंगे? आत्मामें लीन रहते हैं। अद्भुत अनुपम दशामें रहते हैं। उसमें संतुष्ट हैं। उसमें तृप्ति है। उसमें उन्हें आनन्द है, बाहर जानेका मन भी नहीं होता है।

वैसे सम्यग्दृष्टिको अभी तो अधूरी दशा है। भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। उसे ऐसा नहीं होता है कि मैं ज्ञाता हो गया, अब दिन कैसे व्यतीत होगा? वह उसमें संतुष्ट है। उसमें उसे तृप्ति है। उसे कहीं बाहर जानेका मन नहीं होता है। कोई कार्यमें जुड़नेका मन-कर्ताबुद्धिसे कहीं जुड़नेका मन उसे नहीं होता है। उसे आत्मामें संतोष है, आत्मामें तृप्ति है, आत्मामें शान्ति है। उसे बाहर कहीं जानेका, अंतरसे स्वामीत्व बुद्धिसे जानेकी इच्छा नहीं होती है। अस्थिरतासे जाता है तो जाना होता है।

बाकी मुनिओंको सब छूट गया है। मुनिओंको निवृत्तमय परिणति विशेष है। उसमें वे थकते नहीं और बाहर जानेका मन नहीं होता। मैं आत्मामें कैसे स्थिर हो जाऊँ?

यह स्वानुभूतिकी दशासे क्षण-क्षणमें बाहर आना पड़ता है, उसके बजाय अंतरमें शाश्वत कैसे रह जाऊँ? मुनिओंको ऐसी भावना होती है। उसमें ही उन्हें तृप्ति और आनन्द है। क्षण-क्षणमें बाहर जाना हो जाता है, तो बाहर कैसे न जाना हो, ऐसी उन्हें भावना रहती है। बाहर जाना भी रुचता नहीं है। आत्माका स्थान छोड़कर, आत्माका जो अनन्त आनन्दका धाम और अनन्त सुखका धाम, आत्माका बाग छोड़कर कहीं बाहर जानेका मन नहीं होता है। उनका पूरा समय आत्मामें ही व्यतीत होता है।

सम्यग्दृष्टिको तो ज्ञायककी धारा प्रगट है और उसे पुरुषार्थकी डोर चालू है। उनका समय कैसे व्यतीत होता होगा, ऐसा उसे सवाल नहीं है, ऐसा उसे होता ही नहीं। इसी मार्गसे अनन्त जीव, अनन्त साधक इसी प्रकारसे मोक्षको प्राप्त हुए हैं। कहीं बाहर जानेका मन नहीं होता है।

बाहरकी प्रवृत्ति तो एक उपाधि और बोजा है। वह कोई आत्माका स्वभाव नहीं है। वह तो उसने कर्ताबुद्धि मानी है इसलिये अस्थिरताके कारण उसने आत्माका स्थान ग्रहण नहीं किया है। स्वघर देखा नहीं है इसलिये बाह्यघरमें अनादिसे घूमता है। आत्माका एक मूल स्थान हाथ लग जाय तो उसे कहीं अन्य घरमें जानेका मन नहीं होता है। अस्थिरताके कारण जाता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-९०

मुमुक्षु :- अस्थिरता अपेक्षासे परमें जुड़े तब भी उसे रुचता नहीं होगा।

समाधान :- उसे अंतरमें रुचि नहीं है। यह पुरुषार्थकी मन्दताके कारण बार जाना हो रहा है। अंतरमें पूर्णरूपसे स्थिर नहीं हुआ जाता। अंतरमें बाहर आना हो जाता है। अंतर्मुखकी दशामेंसे, अंतर्मुखकी स्थितिमेंसे बाहर आना होता है और सविकल्प दशामें आना होता है, वह रुचता नहीं है। फिर भी पुरुषार्थकी मन्दताके कारण आना हो जाता है और उसमें गृहस्थाश्रममें बाह्य कार्योंमें जुड़ता है।

प्रत्येक कार्य, शुभाशुभ प्रत्येक कार्योंमें जुड़े लेकिन उसकी रुचि तो आत्मामें जानेकी रहती है। मेरी ज्ञायककी धारा विशेष कैसे प्रगट हो? विशेष लीनता कैसे हो? ऐसी उसे भावना रहती है। ऐसी अनुपम दशा, ऐसा अनुपम चैतन्यदेव जो हाथमें आया उसे छोड़कर बाहर जानेका मन नहीं होता है। परन्तु पुरुषार्थकी मन्दताके कारण बाहर जाना होता है।

समाधान :- ... ऐसी एकत्वबुद्धि निरंतर रहती है। दिन और रात एकत्वबुद्धिकी परिणति चलती है। विचार करे कि मैं जुदा हूँ-भिन्न हूँ, परन्तु परिणति तो एकत्वकी चलती है। जैसी एकत्वकी परिणति चलती है, वैसी परिणति 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा अभ्यास बारंबार करे। जैसी वह परिणति निरंतर (चलती है), जीवनमें ऐसी एकत्वबुद्धि हो रही है। अनादि कालसे हो रही है। मैं ज्ञायक हूँ, (ऐसा) एक-दो बार विचार करे ऐसा नहीं, जीवनमें ऐसा ही दृढ़ करे कि मैं ज्ञायक ही हूँ। ऐसी भले भावना, विचार करे परन्तु एकत्वबुद्धि तोड़नेकी परिणति होनी चाहिये।

मैं ज्ञायक ही हूँ, मैं यह नहीं हूँ, क्षण-क्षणमें उसका विचार आये। मात्र विचार ऊपर-ऊपरसे नहीं, अंतरसे ज्ञायककी लगनीपूर्वक (होना चाहिये)। अन्दर जिज्ञासा ... हो और बारंबार मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा भीतरमेंसे होना चाहिये। बारंबार। यथार्थ सहज परिणति तो जब निर्विकल्प दशा होती है, उसके बाद सहज होती है। परन्तु पहले उसका बारंबार अभ्यास करे। मैं ज्ञायके ही हूँ, क्षण-क्षणमें उसका अभ्यास करना चाहिये। बारंबार।

बुद्धिसे जान लिया कि यह शरीर भिन्न, मैं भिन्न, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं।

परन्तु उसके प्रयत्नमें ऐसा होना चाहिये कि मैं भिन्न ही हूँ। बारंबार जब-जब विकल्प आवे तब मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसा भीतरमेंसे होना चाहिये। ऐसा अभ्यास होना चाहिये।

मुमुक्षु :- पहले देह सम्बन्धि भिन्नताका प्रयास विशेष चलेगा?

समाधान :- ऐसा क्रम आता है। प्रथम देह, स्थूल देहसे मैं भिन्न हूँ। सूक्ष्म विभावसे भिन्न, शुभसे भिन्न ऐसा आता है, ऐसा क्रम आता है। क्रम आता है, परन्तु जब यथार्थतासे भिन्न होवे तब सब एकसाथ हो जाता है। यह स्थूल शरीर तो मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ। लेकिन भीतरमें विभाव आवे वह भी मैं नहीं हूँ, वह मेरा स्वभाव नहीं है।

फिर शुभभाव। शुभाशुभ और शुभभाव। उसमें द्रव्य-गुण-पर्यायका विचार आवे तो भी वह तो विकल्प रागमिश्रित है। उससे भी मैं भिन्न हूँ। ऐसा क्रम-क्रमसे (होता है)। परन्तु क्रम आवे वह व्यवहार है। भीतरमें तो जब यथार्थतासे भिन्न पड़ता है, तब सब एकसाथ हो जाता है। यथार्थ भिन्नता आवे तब एकसाथ (हो जाता है)। स्थूल शरीरसे, विभावसे, सुबुद्धिका विलास है, सबसे एकसाथ भिन्न हो जाता है। पहले अभ्यास क्रममें ऐसा आता है। स्थूल शरीरसे भिन्न, विभावसे भिन्न, शुभभावसे भिन्न। द्रव्य-गुण-पर्यायका रागमिश्रित विचार बीचमें आता है। परन्तु वह सब तो रागमिश्रित विचार है। ऐसा मेरा स्वभाव (नहीं है)।

शरीरमें जब कुछ होवे तो मैं तो आत्मा ही हूँ, मैं तो भिन्न हूँ। यह स्थूल शरीर मेरा नहीं है। वह तो पुद्गल जड़ है। ऐसे एकत्वबुद्धि तोड़नी चाहिये। विभावसे एकत्वबुद्धि तोड़नी चाहिये। शुभभाव आवे इससे भी एकत्वबुद्धि तोड़नी चाहिए। सबसे एकत्वबुद्धि तोड़नी चाहिये। एकत्वबुद्धि तोड़नेके लिये उपयोगको सूक्ष्म करना पड़ता है। देह तो स्थूल है, मैं सूक्ष्म हूँ। शुभभावसे भी भिन्न उपयोग सूक्ष्म होता है। ऐसी जिसको जिज्ञासा हो तब एकसाथ हो जाता है।

मुमुक्षु :- अन्दर भिन्नताकी परिणति निरंतर चालू रहती है?

समाधान :- हाँ, अभ्यास करनेकी परिणति चालू रहती है।

... ऐसा कोई नियम नहीं है, लेकिन शुभभाव (होता है)। द्रव्य-गुण-पर्यायका विचार (होता है)। कोई कहता है कि आखिरमें कौन-सा विकल्प (होता है)? ऐसा विकल्पका कोई निश्चित नहीं है। ऐसा शुभभाव ज्ञायकके साथ शुभभाव साथमें रहता है। कौन-सा शुभभाव, इसका कोई नियम नहीं है। ज्ञायकके सम्बन्धमें जो अनुकूल होवे उसका विचार (होता है)।

... भेदज्ञान करनेका प्रयास होता है। भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन। जो सिद्ध हुए सब भेदविज्ञानसे हुए हैं। द्रव्य पर दृष्टि और भेदज्ञानका प्रयास। मैं चैतन्य

शाश्वत द्रव्य हूँ। ऐसे द्रव्य पर दृष्टि करके, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा भेदज्ञान करनेका प्रयास करना चाहिये। जो नहीं हुए हैं, भेदविज्ञानके अभावसे नहीं हुए हैं। जो हुए भेदविज्ञानसे हुए हैं। अनन्त काल गया। अपना स्वभाव सरल है, सुगम है, तो भी दुर्लभ हो गया है।

मुमुक्षु :- दुर्लभ होनेका क्या कारण रहा?

समाधान :- कारण, ऐसी एकत्व परिणतिकी इतनी गाढ़ता हो गयी है। पुरुषार्थ नहीं करता है। प्रमाद हो रहा है। पहले तो यथार्थ समझन नहीं है, अज्ञानता है। ज्ञान सच्चा नहीं है। सच्चा ज्ञान करे, विचार करके नक्की करे तो भी प्रमादके कारण नहीं हो सकता है। मैं भिन्न हूँ, ऐसा नक्की करे। अनादि कालसे कहीं न कहीं रुक जाता है। ऐसे गुरुदेव मिले, सच्चा मार्ग मिला। नक्की करता विचार करके, लेकिन प्रमादके कारण नहीं हो सकता है। अंतर लगनी लगी नहीं है और प्रमाद है। लगनी लगे तो पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं।

मुमुक्षु :- .. उस समय मनमें जितना उल्लास और निर्णयकी जागृति होती है, उतना जब आपसे अलग होते हैं उस समय उतना काम नहीं होता। दर्शनसे ही इतना लाभ मिलता है, इसका क्या कारण?

समाधान :- यहाँ आनेसे होता है, फिर कहाँ नहीं होता है?

उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध होता है। अपने कारणसे स्वयं... शास्त्रमें आता है न कि सत्संग लाभका कारण होता है। करता है स्वयंसे, पुरुषार्थ स्वयंको करना है, परन्तु सत्संगके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। सत्संग करना। तुझे पुरुषार्थ चलनेका कारण होता है। ऐसा भी कहनेमें आता है कि अच्छे संगमें रहना। मुनिओंको ऐसा उपदेश दिया है। सत्संग.. निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है।

मुमुभु :- जिसके प्रति राग हो, वह जीव तिर जाता है।

समाधान :- ... राग हो अर्थात् उसे ज्ञानीकी महिमा होती है। महिमा यानी उसकी स्वयंकी ओरकी यथार्थ महिमा होनी चाहिये। राग यानी महिमा होती है। ज्ञानीकी महिमा अर्थात् उसे स्वभावकी महिमा है। वे क्या करते हैं? आत्माका क्या? उसे स्वभावकी महिमा, ज्ञानीकी महिमा अर्थात् उनकी अंतर दशाकी महिमा है। अंतर दशाकी महिमा अर्थात् मुझे यह चाहिये, ऐसा अन्दर गहराईमें आ जाता है।

शास्त्रमें आता है कि यह तत्त्वकी बात तत्प्रति प्रीतिचित्तेन वार्तापि ही श्रुता। यह जो तत्त्वकी बात है, उसे जिसने प्रीतिसे सुनी है, वह भावि निर्वाण भाजन है। गुरुकी वाणी, भगवानकी वाणी उसने प्रीतिसे सुनी इसलिये उसे भावि (निर्वाणका भाजन कहा है)। अंतरकी प्रीति लेनी।

वैसे ज्ञानीकी भक्ति-राग अर्थात् अंतरकी भक्ति अर्थात् अंतरमें उसे निमित्तमें ज्ञानीकी भक्ति, अंतर ज्ञायककी भक्ति आ जाती है। ऐसा सम्बन्ध होता है, इसलिये निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। प्रीति अंतरकी, रुचि और प्रीति अंतरकी लेनी।

अनन्त कालसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है, तो कोई देव और गुरुके उपदेशसे देशनालब्धि (प्राप्त होती है), वह निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। करे स्वयंसे, पुरुषार्थ स्वयंको करना है। स्वतंत्र, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। कोई किसीको कर नहीं देता। परन्तु ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है कि साक्षात् वाणी मिले। देवकी अथवा गुरुकी वाणी मिले तो जीवको अंतर देशनालब्धि होकर उसे परिणति पलटनेका कारण बनता है।

... बीजलीके चमकारेकी भाँति चले जाये, ऐसा होता है। थोड़ा फेरफार हो, किसीने पानीको छू लिया, किसीने हरी वनस्पति छू ली, ऐसा ख्याल आये तो बोले नहीं कि छू लिया, ऐसे ही चल देते थे। ऐसा लगे कि क्यों चले गये? जिसे घर पधारे हो उसे इतना दुःख लगता है...

... आत्माका ही करना है, ऐसा ध्येय था। वही सच्चा है। आत्माके ध्येयसे ही सब करना है। हिम्मतभाईको वह है, आत्माका ध्येय। जो कुछ करना है, आत्माके ध्येयसे करना है। किसीको कुछ कहना नहीं। क्या कहना?

... अपना करना है। दूसरेको दिखानेके लिये नहीं करना है, स्वयंको करना है। भवका अभाव कैसे हो और आत्मा कैसे प्राप्त हो, वही करना है। भेदज्ञान करके आत्मा कैसे पहचानमें आये, वही करना है। सुख और आनन्द सब आत्मामें भरा है, बाहर तो कहीं नहीं है। ऐसी जोरदार वाणी, दूसरोंको आत्माको आश्चर्य लगे और विभाव चूर-चूर हो जाय, ऐसी उनकी वाणी थी। स्वयं पुरुषार्थ करे.. श्रवण करे उसे रुचि प्रगट होनेका कारण बने।

मुमुक्षु :- सुनते ही दिगंबर बन जाय, ऐसी वाणी।

समाधान :- यह कहते हैं वह सत्य ही है।

.. क्रमबद्ध ऐसा होता है कि पुरुषार्थ स्वयं करे तो हुए बिना रहे ही नहीं। क्रमबद्ध... बाहर देखनेवाला स्वयं अपना बचाव करके अटक जाता है। क्रमबद्ध...

तुझे क्या काम है? तू तेरा ज्ञायकपना प्रगट कर, ज्ञायककी परिणति प्रगट कर। कर्ताबुद्धि छूटकर ज्ञायकता प्रगट कर और भेदज्ञान प्रगट करके, द्रव्य पर दृष्टि करके भेदज्ञानपूर्वक आत्मामें लीनता कर। उससे भिन्न होनेका प्रयत्न कर तो हुए बिना रहता नहीं। स्वयं करे उसे क्रमबद्ध रोकता नहीं। उसे काललब्धि भी रोकती नहीं और क्रमबद्ध भी रोकता नहीं। कोई रोकता नहीं। स्वयं अपने कारण रुका है। अपनी मन्दतासे, अपने ही कारणसे प्रमादसे स्वयं छूटता नहीं। स्वयं पुरुषार्थ करे तो छूट सके ऐसा है।

क्रमबद्ध तो कर्ताबुद्धि छोड़नेके लिये है, बचाव करनेके लिये नहीं है। .. उसे ऐसा ही होता है कि मेरी कमजोरी है, मैं कर नहीं सकता हूँ। .. विचार करता रहे और आगे नहीं बढे तो भी नहीं सकता है। ऐसा नक्की करके फिर उस प्रकारका प्रयत्न करे तो आगे बढता है। परन्तु जबतक वह नहीं होता है, तबतक श्रुतके विचार, श्रुतका चिंतवन, शास्त्र अभ्यास आदि सब होता है। परन्तु आगे तो स्वयं अन्दर प्रयत्न करे तो होता है।

मुमुक्षु :- ... तब तो आगे बढनेका कुछ..

समाधान :- पकड़में आनेके लिये भी स्वयंको प्रयत्न करना पड़ता है कि यह ज्ञायक है। शाश्वत आत्मा है। उसे ग्रहण करनेके लिये स्वयं प्रयत्न करे। विचार करके नक्की करे कि यह शाश्वत आत्मा है। वही मेरा आश्रय है। उसका आश्रय ग्रहण करे। उसका भी प्रयत्न करना। विचार करके नक्की करना पड़ता है। द्रव्य क्या है, गुण क्या है, पर्याय क्या है। ऐसा विचार करके नक्की करके जो शाश्वत है, ज्ञायक ध्रुव है उसका आश्रय लेता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य-गुण-पर्यायका .. आगे बढ़नेमें...

समाधान :- आगे बढनेमें सच्चा ज्ञान करनेमें उपयोगी है। क्योंकि जो यथार्थ वस्तु है वैसी पहचाने तो सच्चा प्रयत्न हो। वस्तु जैसी हो वैसी पहचाने नहीं तो उसका प्रयत्न सच्चा नहीं हो सकता। वस्तु जिस प्रकारसे है, उस प्रकारसे पहचानकर उसका आश्रय ले तो आगे बढे। सच्चा ज्ञान करे तो सच्चा ध्यान होता है। तो ही सच्ची एकाग्रता होती है। ज्ञान सच्चा नहीं है तो उसका ध्यान कहाँ जाकर खड़ा रहेगा? किसके आश्रयसे खड़ा रहेगा? किसके आश्रयसे स्थिर होगा? जिसे सच्चा ज्ञान नहीं है, उसे सच्चा ध्यान भी नहीं हो सकता है। ज्ञान तो चारों ओरसे स्पष्ट एवं निर्मल हो तो उसे आगे बढनेमें सरलता रहती है। यथार्थ ज्ञान जूठा हो तो उसका पुरुषार्थ सच्चा नहीं हो सकता।

मुमुक्षु :- लगनी बढे..

समाधान :- लगनी स्वयं बढाये तो होता है। उसे बाहरका रस छूट जाना चाहिये। अंतरमें चैतन्यमें सुख लगना चाहिये। सुख चैतन्यमें ही है। बाहर कहीं नहीं है। बाहर रुकता हो, उसे अंतरमें मुडनेका, स्वयं अंतरमें प्रयत्न करे। रुचि बढानेका प्रयत्न करे, लगनी लगानेके लिये।

अंतरमें सुख लगे तो उसे लगनी लगे न। अंतरमें सुख एवं आत्मा सारभूत है, ऐसा नहीं लगे तो लगनी कहाँसे लगे? सर्वस्व सारभूत हो तो आत्मा है जगतमें, दूसरा कुछ सारभूत नहीं है। ऐसी अंतरमेंसे रुचि लगनी चाहिये तो लगनी लगे। आत्माके

बिना कहीं चैन पड़े नहीं, ऐसी लगनी अंतरसे लगनी चाहिये। परन्तु आत्माकी उतनी जरूरत लगे तो लगनी लगे न।

रस है, जहाँ-तहाँ रुक जाता है। अन्दर लगनी लगनेके लिये, आत्मा ही वस्तु सर्वस्व है और उसीकी जरूरत है, ऐसा लगना चाहिये। परन्तु वह कोई कर नहीं देता, स्वयं करे तो होता है।

मुमुक्षु :- सत्पुरुषके सान्निध्यमें कुछ लगनी बढे न?

समाधान :- सत्पुरुषका निमित्त महानिमित्त है, प्रबल निमित्त है। परन्तु करना तो स्वयंको है। इसलिये शास्त्रमें आता है, देव-गुरु-शास्त्र, सत्पुरुषका सान्निध्य... तू उसकी शरणमें जा, जैसा कहे वैसा करे। ऐसा आता है। परन्तु करना स्वयंको करना है। उपादान स्वयंको तैयार करना है। कोई कर नहीं देता, करना स्वयंको हो। सत्पुरुषका निमित्त तो प्रबल है। देवका, गुरुका सबका प्रबल निमित्त है, मुक्तिका मार्ग प्रगट करनेके लिये। मुक्तिको पहचाननेके लिये, स्वानुभूति प्रगट करनेके लिये, जिज्ञासुकी भूमिका आत्मार्थीता प्रगट करनेके लिये गुरुका निमित्त बड़ा है, परन्तु करना स्वयंको है।

निमित्त :- जीव निमित्तको अधिक जोर देता है।

समाधान :- ऐसा नहीं है। श्रीमद्का कहनेका आशय एक है। उनका गहराईसे यह कहना है कि तू कर तो होता है। निमित्तकी ओरसे बात भले करते हो।

मुमुक्षु :- दृष्टिका विषय पकड़े उसके पहले तो ज्ञानमें मुख्य-गौण करके, द्रव्य मुख्य और पर्याय गौण, ऐसा करके द्रव्यका ज्ञान करना पड़े।

समाधान :- ऐसा ज्ञान उसे हो जाता है। भले ही लंबी बात समझे नहीं, परन्तु जो दृष्टिका विषयमें द्रव्य मुख्य और पर्याय गौण उसमें आ जाता है। जिसे आत्माकी लगी हो, उसे संक्षेपमें भी आ जाता है। तिर्यंच कोई शब्द नहीं समझते हैं तो भी उसे सम्यग्दर्शन होता है। वह अन्दर मुख्य शाश्वत आत्मा ग्रहण करता है और जो भेद है वह सहज ही गौण हो जाते हैं। नव तत्त्वके नाम भी नहीं आते हैं।

... तो भी उसकी साधनामें सब आता है।

मुमुक्षु :- स्वयं अपनेआप..

समाधान :- यथार्थ लक्ष्य हो तो सभी पहलू उसे आ जाते हैं। परन्तु जबतक नहीं समझता है, तबतक विचार करके नक्की करे तो उसे ज्ञान अधिक निर्मल होकर आगे बढनेमें सरलता रहती है, मार्ग स्पष्ट होता है। स्पष्टता उसे अधिक लाभका कारण होता है। कोई एक अंतर्मुहूर्तमें प्राप्त कर लेता है, वह बात अलग है। बाकी ज्यादा स्पष्टता अन्दर ज्ञानकी निर्मलता हो तो उसे ज्यादा लाभका कारण है। परन्तु मूल प्रयोजनभूत वस्तु जो समझता है, उसे मुक्तिका मार्ग प्रगट हो जाता है। प्रयोजनभूत वस्तु यथार्थ

आ गयी तो उसे स्वानुभूति भी होती है और आगे भी बढता है। केवलज्ञान पर्यंत पहुँच जाता है।

शिवभूत मुनि ज्यादा नहीं समझते थे। मूल प्रयोजनभूत समझ लिया तो आगे बढ गये। एकान्त ऐसा नहीं है कि ज्यादा ज्ञान हो तो ही आगे बढ सके। ऐसा एकान्त नहीं है। चारित्र उसमें प्रगट हो जाय, कम ज्ञान हो तो भी। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब....

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-९१

समाधान :- ... व्यवहारकी ओरकी बात करते हो, इसलिये व्यवहारका कहते हैं और अध्यात्मका (नहीं कहते हैं), ऐसा नहीं कह सकते। सबका आशय एक ही होता है। मैंने श्रीमद्का कम पढ़ा है। सब मुक्तिके मार्ग पर भावलिंगी मुनि चलते थे। कोई व्यवहार शास्त्रोंकी (बात) करे, कोई व्यवहारके शास्त्र लिखे, कोई व्यवहारकी बात करे और कोई अध्यात्मकी, अतः कोई ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं होता। सबका आशय एक ही होता है।

समाधान :- ... वस्तुकी महिमा आनी चाहिये। उसका प्रयोजनभूत ज्ञान और उसकी विभावसे विरक्ति हो। विरक्ति हो इसलिये महिमा आये बिना रहती नहीं, परस्पर बात है। चैतन्यकी महिमा और प्रयोजनभूत ज्ञान, बाहरसे निःसार (लगे), जो विभाव है उससे भिन्न पड़े। यह सब उसे लाभका कारण है।

अंतरमें चैतन्यकी महिमा और बाहरमें जो देव-गुरु-शास्त्र बताते हैं और देव-गुरुने जो चैतन्यदेव प्रगट किया है, जिन्होंने प्रगट किया है, उनकी भी महिमा उसे शुभभावमें होती है। और अंतरमें चैतन्यकी महिमा। जिन्होंने प्रगट किया वे साधना साधते हैं, ऐसे देव-गुरुकी महिमा उसे शुभभावमें होती है। वह होती है।

... लगनी लगाये और जबतक प्रगट नहीं होता तो देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, शास्त्र चिंतवन, गुरुकी वाणी आदि सब उसे शुभभावमें होता है। नहीं तो अशुभभावमें चला जाय। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र उसे होते हैं। शास्त्रका चिंतवन, मनन, गुरुदेवकी वाणीका बारंबार विचार करना, वाणी सुननी, उसे ध्येय आत्माका (होना चाहिये)। पुरुषार्थ तो अन्दरमें करना है। लेकिन जबतक वह प्रगट नहीं होता, तबतक यह सब उसके साधन हैं।

... प्रयत्न करे कि यह ज्ञान है वही मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। दृष्टि बदलनेका प्रयत्न करे। अनादिकी एकत्वबुद्धि है, वह दृष्टि बदलनी उसे मुश्किल पड़ती है। अनन्त काल गया फिर भी स्वयं अपनी ओर आया नहीं है और अपनी ओर पुरुषार्थ नहीं किया है। पुरुषार्थ करे तो प्रगट होता है। पुरुषार्थ किये बिना प्रगट नहीं होता। अन्दर वास्तविकरूपमें लगी नहीं है, इसलिये प्रगट नहीं होता है। पुरुषार्थ करे तो प्रगट होता

है। परन्तु पुरुषार्थ नहीं करता है इसलिये दुर्लभ हो गया है। स्वयंका स्वभाव है इसलिये सहज है, सुलभ है और सुगम है, लेकिन स्वयं करता नहीं है। स्वभाव है इसलिये प्रगट नहीं हो ऐसा नहीं है, हो सके ऐसा है। परन्तु स्वयं करता नहीं है।

मुमुक्षु :- समझमें भी आता है, परन्तु पुरुषार्थ चलता नहीं।

समाधान :- स्वयंका पुरुषार्थ करना बाकी रह जाता है। विधि बतायी-मार्ग बताया, गुरुदेवने समझानेमें कुछ बाकी नहीं रखा। उतना स्पष्ट कर-करके समझाया है। करना ही स्वयंको बाकी रह जाता है। पुरुषार्थ नहीं चलनेका कारण स्वयंका है। अपनी नेत्रके आलसके कारण, निरख्या नहीं हरिने जरी। अपनी नेत्रके आलसके कारण नेत्र खोलकर देखता नहीं है कि यह ज्ञायकदेव विराजता है। अपनी आलसके कारण देखता नहीं है।

गुरुदेवने पूरा मार्ग बताया है। कहाँ जाना, ज्ञायक कौन है, किस मार्गसे प्रगट होता है, क्या स्वानुभूति है, क्या मुनिदशा है, क्या केवलज्ञान है, क्या द्रव्य-गुण-पर्याय है, सब गुरुदेवने स्पष्ट कर-करके समझाया। परन्तु स्वयं नेत्र खोलकर देखता नहीं है। आलसके कारण सो रहा है। करना स्वयंको है, स्वयं ही नहीं करता है। जब भी करे तब स्वयंको ही करना है। उसका कोई कारण नहीं है। उसका बाह्य कारण कोई नहीं है। उसे कर्म रोकते नहीं। कर्म तो निमित्तमात्र है। पुरुषार्थ स्वयं ही नहीं करता है, और कोई कारण नहीं है। अपनी आलसके कारण बाहरमें कहीं भी रुक जाता है, अन्दरमें लगी नहीं है, आत्मामें इस परिभ्रमणकी थकान वास्तविकरूपसे नहीं लगी है, अंतरमेंसे मुझे ज्ञायकदेव ही चाहिये, उतनी लगनी नहीं लगी है। इसलिये स्वयंकी क्षति है।

मुमुक्षु :- शुद्धनयका विषय ऐसा शुद्धात्मा, उसका स्वरूप कैसा है, यह बताइये।

समाधान :- शुद्धनयका विषय ऐसा शुद्धात्मा अनादिअनन्त शाश्वत है। शाश्वत आत्मा शुद्धनयका विषय है। उसमें भेद आदि सब गौण हो जाता है। शुद्धनयके अन्दर एक चैतन्यद्रव्य अखण्डरूपसे आता है। उसमें सब भेदभाव गौण हो जाते हैं। ज्ञानमें सब जाननेमें आता है। आत्मामें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है।

ज्ञान अभेदको जाने, ज्ञान भेदको जाने, ज्ञान गुण-पर्याय सबको जानता है। दृष्टिका विषय एक चैतन्य (है)। उसमें सब विशेषोंको गौण करके एक ज्ञायक पर दृष्टि करता है, वह शुद्धनयका विषय है। एक ज्ञायकको लक्ष्यमें लेता है। उसमें दूसरे विचार नहीं करता है। यह जो अनादिअनन्त अस्तित्व है, यह चैतन्य अस्तित्व-चैतन्यका अस्तित्व है वही मैं हूँ। अन्य किसी पर दृष्टि नहीं करता है। कहीं रुकता नहीं, भेदभावमें रुकता नहीं। मैं कौन हूँ, ऐसा विचार कर तो यह एक चैतन्यका अस्तित्व है वही मैं हूँ। इस प्रकार दृष्टिको उस थँभाकर पुरुषार्थ करे। ... तो होता है।

मुमुक्षु :- लगनी चाहिये।

समाधान :- लगनी लगनी चाहिये। उसे क्षण-क्षणमें उसीको विचार आये, उसे उसके बिना चैन पड़े नहीं, ऐसा हो तो वह प्रगट होता है। यह तो अंतर चक्षुसे देखना है। अंतरमें अंतर चक्षु खोलकर देखना है। अंतरमें क्या परिणाम होते हैं और अन्दर ज्ञान क्या काम करता है और अन्दर चैतन्यतत्त्व क्या है, उसे अंतर चक्षु खोलकर देखना है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने कहा कि, कल प्रवचनमें आया कि, श्रद्धा अँधी है, श्रद्धा कुछ जानती नहीं है। तो जो श्रद्धा होती है वह ज्ञानकी प्रेरणासे श्रद्धा होती है या कैसे होती है?

समाधान :- ज्ञानसे विचार करके नक्की करता है, बराबर निश्चय करता है कि मैं यह ज्ञायक हूँ, ऐसा निश्चय करता है। ज्ञान उसका साधन बनता है। ज्ञानसे ज्ञात होता है। पहले शुरूआतमें ज्ञानसे ही ज्ञात होता है। ज्ञानसे निश्चय करके दृष्टि ज्ञायक पर स्थिर करता है। दृष्टिका विषय ज्ञायक है। ज्ञान द्वारा वस्तु जाननेमें आती है। ज्ञान द्वारा जाननेमें आती है। ज्ञान स्वयंको जानता है, ज्ञान दर्शनको जानता है, ज्ञान अनन्त गुणोंको जानता है, ज्ञान पर्यायको (जानता है)। सबको, ज्ञान स्वद्रव्य परद्रव्य सबको ज्ञान जानता है।

मुमुक्षु :- दृष्टिका विषय एवं श्रद्धाका विषय, दोनों एकार्थ है?

समाधान :- दोनों एक ही है-श्रद्धाका विषय एवं दृष्टिका विषय एक ही है। ... तो उसकी साधकदशा शुरु होती है। निश्चय बराबर नहीं होता है तो आगे नहीं बढ़ सकता। अन्दर इतनी लगी हो तो मार्ग हुए बिना नहीं रहता। ज्ञान करे लेकिन अन्दरमें राग और शुद्धात्मा भिन्न है, अन्दर यदि उतनी लगनी लगी हो तो मार्ग हुए बिना रहता नहीं। दृष्टिका विषय ऐसा कोई दुर्लभ नहीं है कि न हो, समझमें नहीं आये ऐसा नहीं है। और प्रगट नहीं हो ऐसा भी नहीं है। अपना स्वभाव है। परन्तु स्वयंको अन्दर उतनी लगी हो तो समझमें आये। थोड़ा समझे परन्तु अन्दर स्वयंको समझे तो हो सके ऐसा है।

शिवभूति मुनि कुछ जानते नहीं थे, भूल जाते थे। याद भी नहीं रहता था। गुरुने क्या कहा वह भी भूल गये थे। गुरुका आशय याद रखकर, वह औरत दाल धो रही थी, छिलका और दाल भिन्न-भिन्न है, ऐसा मेरे गुरुने कहा है, ऐसा स्मरण आते ही अंतरमें ऊतर गये कि आत्मा भिन्न और यह राग भिन्न है। ऐसे अंतरमें भेदज्ञान करके अंतरमें ऊतर गये।

उतना थोड़ा मूल प्रयोजनभूत समझकर अन्दर यदि परिणति रूपसे प्रगट करे तो

वस्तु कोई दुर्लभ नहीं है। लेकिन अंतरमें स्वयंको उतनी लगी ही नहीं है। शुद्धनयका विषय तो स्वयं स्वयंका एक चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण करे, उसमें सब आ जाता है। परन्तु वह ज्ञानसे पहले नक्की करता है। निश्चय करके दृष्टिका ज़ोर आता है। इसलिये दृष्टि एक पर स्थापित करता है। दृष्टि चारों ओर नहीं जाती है। दृष्टिको एक चैतन्य पर स्थापित करता है। ज्ञान भी चैतन्य पर जाता है और दृष्टि भी जाती है। लेकिन ज्ञान सब जानता है।

राग और शुद्धात्मा, दोनोंके स्वभाव प्रगटरूपसे भिन्न है। राग आकुलतारूप है, चाहे जैसा उच्च कोटिका राग हो तो भी वह आकुलता (रूप है), अन्दर विचार करे तो वह आकुलता रूप है। वह कोई शान्तिरूप नहीं है। आत्मामें शान्ति उत्पन्न नहीं करता। राग तो विभाव है। अशुभ एवं शुभ दोनों राग है, आकुलातरूप है। और उससे भिन्न जानन स्वरूप ज्ञान है-ज्ञायक, वह शान्तिरूप है। उसमें आकुलता नहीं है। ज्ञान जो जाननेवाला है वही मैं हूँ। यह राग और आकुलस्वरूप-आकुलतारूप और दुःखरूप परिणति वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। जाननेवाला है वह मैं हूँ। परन्तु वह जाननेवाला अर्थात् दूसरेको जानता हूँ, इसलिये (जाननेवाला हूँ, ऐसा नहीं), परन्तु मैं तो स्वयं जाननेवाला ज्ञायक हूँ।

समाधान :- ... गुरुदेवने तो बहुत स्पष्ट करके समझाया है। आत्मा कैसा है? आत्मा सिद्धस्वरूप है। गुरुदेवने स्पष्ट करके समझाया है, सबको जागृत किया है। और स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। गुरुदेवने समझाया, मैं तो उनका दास हूँ। उनके पास सब (समझे हैं)।

गुरुदेवने कहा है कि आत्मा परमात्मस्वरूप है, सिद्ध भगवान जैसा है। प्रभुत्व शक्तिवाला है। वह आत्मा स्वयं समझे तो होता ही है। जैसे गुण सिद्ध भगवानमें हैं, वैसे ही गुण आत्मामें हैं। सिद्ध भगवानमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, चारित्र आदि हैं, ऐसे ही गुण शक्तिरूपसे प्रत्येक आत्मामें हैं। उसमें सहज ज्ञान, दर्शन, चारित्र, केवलज्ञान शक्तिरूप है। केवलदर्शन शक्तिरूप, चारित्र शक्तिरूप, आनन्द शक्तिरूप, सब गुण शक्तिमें भरपूर भरे हैं। उसमेंसे एक भी कम नहीं हुआ है।

अनन्त काल गया, अनन्त भव हुए, निगोदमें गया और चारों गतिमें भटका तो भी आत्मा तो वैसा का वैसा द्रव्यदृष्टिसे सिद्धस्वरूप है। परन्तु वह पहचानता नहीं है, दृष्टि बाहर है इसलिये आत्माको पहचानता नहीं है। उसे भ्रान्ति हो गयी है। आत्माको पहचाने तो हो सके ऐसा है। आत्मा सिद्ध भगवान जैसा है।

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे,
कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणुमात्र नहीं अरे! ३८.

मैं एक शुद्धस्वरूपी आत्मा हूँ। चाहे जितने भव किये, फिर भी आत्मा एकस्वरूप ही रहा है। अनेक प्रकारके विभाव हुए तो भी शुद्धतासे भरा शुद्धात्मा ... विभावका भी अन्दर प्रवेश नहीं हुआ है। किसी भी विभावस्वरूप आत्मा नहीं हुआ है, किसी अनेक स्वरूप भी आत्मा नहीं हुआ है। ऐसा आत्मा शुद्ध स्वरूपी, एक स्वरूप आत्मा, ऐसा आत्मा कोई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शरूप नहीं हुआ है। आत्मा अरूपी है। उसमें कोई वर्ण, गन्ध, रस आदि नहीं है। ऐसा आत्मा अरूपी आत्मा है। ज्ञान, दर्शनसे भरपूर भरा आत्मा है और कोई अद्भुत वस्तु है।

कोई अन्य परमाणु मात्र भी आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा अपनी प्रताप संपदासे भरा है। उसकी प्रताप संपदा अनन्त-अनन्त भरी है। परन्तु वह उसे पहचानता नहीं है। उसे पहचाने, उस पर दृष्टि करे, उसका विचार करे, उसकी जिज्ञासा करे, उसका भेदज्ञान करे कि यह विभाव सो मैं नहीं हूँ, परन्तु यह ज्ञानस्वरूप ज्ञायक सो मैं हूँ। उसका असाधारण लक्षण ज्ञान है, उस ज्ञान द्वारा पहचानमें आये ऐसा है। परन्तु अनन्त गुणोंसे भरा अत्यंत महिमावंत अत्यंत विभूतिसे भरा आत्मा है। उसका ज्ञान उसके लक्षण द्वारा पहचानमें आता है।

यह विभावभाव आकुलतारूप है और आत्माका स्वाद शान्ति, आनन्द है। उसका स्वादभेद है, उसका लक्षणभेद है। उसका भेदज्ञान करके पहचाने। अनन्त कालसे एकत्वबुद्धि हो रही है। उसका बारंबार अभ्यास करके मैं भिन्न चैतन्य सिद्ध भगवान जैसा आत्मा हूँ, (ऐसा) बारंबार अभ्यास करे तो होता है।

जो गुरुने कहा, जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रमें जो आता है, उसे स्वयं विचार करके नक्की करे। गुरुदेवने जो वचन कहे, उन वचनोंको प्रमाण करके स्वयं विचार करे। अंतरमें निर्णय करे। देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति और अंतरमें ज्ञायककी भक्ति, ज्ञायककी श्रद्धा, ज्ञायकका ज्ञान और विभावसे भिन्न होकर ज्ञायककी महिमा करे। वह न हो तबतक बाहरमें देव-गुरु-शास्त्र, उसके निमित्त.. उसके महान निमित्त हैं। प्रबल निमित्त है, परन्तु स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है। अंतरमें स्वयं ज्ञायककी श्रद्धा करे, उसका ज्ञान करे, उसकी महिमा करे और विभावसे भिन्न होकर, न्यारा होकर पहचाने तो पहचान सके ऐसा है। यह सब आकुलता लक्षण है वह मैं नहीं हूँ, मैं तो निराकुल लक्षण ज्ञायक हूँ। ऐसा भेदज्ञान करके अंतरसे भिन्न पड़े तो वह पहचाना जाय ऐसा है।

भेदज्ञान करे, ज्ञाताधाराकी उग्रता करे। क्षण-क्षणमें मैं ज्ञायक हूँ, यह मैं नहीं हूँ, इस प्रकार अंतरसे भिन्न पड़े तो सिद्ध भगवान जैसी उसे स्वानुभूति होती है और सिद्ध भगवान जैसा अंश उसे प्रगट होता है। स्वानुभूतिकी दशा कोई अद्भुत है। वह गृहस्थाश्रममें हो तो भी कर सकता है। फिर वह आगे बढता है, बादमें मुनिदशा आती है। विकल्पजाल

क्षणमात्र नहीं टिकती। विकल्प छूटकर शान्त चित्त होकर अमृतको पीवे ऐसी अपूर्व स्वानुभूति होती है। लेकिन वह स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है, स्वयं करे तो होता है। स्वयंको लगे तो होता है, स्वयं लगनी लगाये तो होता है। बाहरसे नहीं हो सकता है, परन्तु अंतरसे ही हो सकता है। उसका ज्ञान, उसकी प्रतीत दृढ़ करे। यह ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ, ऐसा नक्की करके फिर स्वयं आगे बढ़े, उसमें लगनी लगाये, लीनता करे, उसमें एकाग्रता करे तो विभावसे भिन्न होकर उसे कोई अपूर्व आत्माकी प्राप्ति होती है। इसके सिवा कोई उपाय नहीं है।

गुरुदेवने यह बताया है, करना यही है। जो मोक्ष पधारे वे सब भेदविज्ञानसे ही गये हैं, जो नहीं गये हैं वे भेदविज्ञानके अभावसे नहीं गये हैं। इसलिये भेदविज्ञान, द्रव्य पर दृष्टि, उसका ज्ञान और लीनता, यह उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। परन्तु मैं सिद्ध भगवान जैसा हूँ, ऐसा नक्की करके मैं कोई अपूर्व आत्मा हूँ, ऐसे ज्ञायक पर दृष्टि करके, प्रतीत करके दृढ़ता करे तो हो सके ऐसा है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। गुरुदेवने बताया, सबको एक ही करना है। ध्येय एक ही-आत्मा कैसे पहचानमें आये? उसकी एककी लगनी लगे तो हो सके ऐसा है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

... वह अपने तत्त्वमें, मृग कस्तूरी बाहर खोजता है, लेकिन कस्तूरी उसके पासे है। वैसे सुख बाहर खोजता है, लेकिन सुख स्वयंके पास है, अपने तत्त्वमें ही सुख भरा है। इसलिये उसीमें खोजना है। उस तत्त्वको पहचानना, सुख किसमें है उसे पहचानना। ज्ञायकतत्त्वमें सुख भरा है उसे पहचाने और उसकी महिमा करे, उसकी लगनी लगाये, भेदज्ञान करे तो वह सुख प्राप्त होता है।

विभावका रस छूट जाय, उसकी एकत्वबुद्धि छूट जाय, बाहरका रस छूट जाय तो अंतरमें यदि ज्ञायकदेवकी रुचि हो तो उसमेंसे सुख प्रगट होता है। सुख कहीं बाहरसे नहीं आता है, सुख तो अपनेमें है। जो इच्छता है, उसमें स्वयमें-उस तत्त्वमें सुख भरा है। इसलिये अंतरमें खोजना है, बाहर कहीं सुख नहीं है। सुख-सुख करता है और रागके रसमें बाहर पड़ा रहता है, यह सब बाहरके अनेक प्रकारके कषायमें एकत्वबुद्धि करके पड़ा है, लेकिन उसमें कहीं सुख नहीं है, सुख आत्मामें है। इसलिये उसीमें खोजना है।

भेदज्ञान करके देखे, रागसे भिन्न पड़े, उससे न्यारा हो तो सुख प्राप्त हो। और अंतरमें अपना अस्तित्व ग्रहण करे तो सुख प्राप्त होता है। बाहरसे कहींसे सुख प्राप्त नहीं होता, स्वयंमें है। इसलिये स्वयंमें ही खोजना है और पुरुषार्थ उसी ओरका करना है। सुख बाहर खोजे, लेकिन कहीं नहीं मिलेगा, कहीं शान्ति नहीं मिलेगी, सुख स्वयंमेंसे ही मिलेगा।

मुमुक्षु :- अन्दर जाने पर सुख दिखायी नहीं देता।

समाधान :- दिखायी नहीं देता है तो स्वयं श्रद्धा करके अन्दर जाय, अपनेमें निर्णय करे। अमुक स्वभाव पहचानकर नक्की करे। सुख बाहर खोजता है, लेकिन सुख उसमें ही है। दिखायी नहीं देता है तो स्वयंको श्रद्धा नहीं है। परन्तु अंतरमें सुख है उसे स्वभावसे पहचान सके ऐसा है। ज्ञान है वह शान्तिरूप है और ज्ञानमें आनन्द है। और उसी मार्गसे अनन्त जीव मोक्ष पधारे हैं। उसीमें सुख है, सुख कहीं (नहीं है)। दिखायी नहीं देता है, परन्तु सुख उसमें है। बाहर कहाँ सुख दिखता है? बाहर कहीं नहीं दिखता, सुख मानता है। बाहर नहीं दिखायी नहीं देता, अंतरमें दिखायी नहीं देता। सुखकी इच्छा करनेवाला है, उसमें स्वयंमें सुख है। स्वयं नक्की करे।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-९२

समाधान :- अनादि कालसे जीव विभावमें पड़ा है, विभावके साथ एकत्वबुद्धि है। आत्मा तो ज्ञाता है। उसमें किसी भी प्रकारके क्रोध, मान, माया, लोभ कोई कषाय उसमें नहीं है। स्वयं अन्दर उस प्रकारकी परिणति नहीं करता है और कषायमें जुड़ जाता है, वह नुकसानका कारण होता है।

जिसे आत्मार्थता हो, आत्माका प्रयोजन हो, उसे वह सब कषाय, मान कषाय गौण हो जाता है। उससे भिन्न होकर भेदज्ञान करे तो वह मानकषाय गौण हो जाता है। इसलिये आत्मार्थका प्रयोजन, एक आत्मा कैसे प्राप्त हो, ऐसी यदि भावना, जिज्ञासा हो तो उस आत्मार्थके प्रयोजनके आगे वह सब कषायें गौण हो जाती है। जो-जो रुकते हैं वे सब पुरुषार्थकी मन्दतासे रुकते हैं। जिसे पुरुषार्थकी उग्रता हो, वह उसमें रुकते नहीं। जिसे कषायोंकी कोई विशेषता नहीं लगी है, जिसे मानमें कोई विशेषता नहीं लगी है, बडप्पन.... स्वस्वरूप चैतन्य स्वयं महिमावंत ही है, आश्चर्यकारी तत्त्व है, महिमासे भरा है। बाहरसे बडप्पन लेने जाय, वह उसकी अनादि कालकी भूल है और भ्रान्तिमें पड़ा है। इसलिये जो कषायोंमें एकत्वबुद्धिसे अटका है, उसे वह जोर कर जाता है। बाकी जो अपने स्वरूपको जाने, भेदज्ञान करे और उस प्रकारकी लीनता करे तो उसे वह कषाय छूट जाता है।

सम्यग्दर्शन होनेके बाद अल्प अस्थिरताके कारण कषायें होती हैं, परन्तु उसमें वह कहीं रुकता नहीं। जो रुकता है वह स्वयंकी पुरुषार्थकी मन्दतासे रुकता है। उसे कोई रोकता नहीं है। इसलिये यदि प्रयोजन आत्माका हो तो उसे कोई अवरोध नहीं है। जिसे आत्माका प्रयोजन छूट जाय और बडप्पनका प्रयोजन आये तो वह उसके अटक जाता है।

इसलिये हर जगह मानकी बात आती है। मानको गौण करके स्वयं स्वयंके स्वरूपमें (जाये)। मेरा स्वभाव ही महिमावंत है। बाहरसे बड्डपन लेने जाता है, वह उसकी भूल है। इसलिये उसमें नहीं जुड़कर, आत्मामें आत्माका प्रयोजन रखे तो वह कषाय गौण हो जाता है। जो जिसमें रुकता है वह पुरुषार्थकी मन्दतासे रुकता है, उसमें दूसरा कोई कारण नहीं होता।

जीवको अनादि कालसे बड़ुपन रुचता है, मैं बड़ा कैसे होऊँ? लेकिन अन्दरसे उस प्रकारका गुण प्रगट नहीं करता है और मानमें रुकता है, वह उसके पुरुषार्थकी मन्दता और भ्रान्तिके कारण रुकता है। इसलिये देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा हृदयमें रखकर शुद्धात्माका ध्येय रखे तो उसे कोई कषायें रोकती नहीं। सबसे निरसता आ जाय और एक चैतन्यकी महिमा आये तो सब कषायें उसे गौण हो जाती हैं।

जो रुकता है, वह पुरुषार्थकी मन्दतासे रुकता है। जो आगे बढ़ता है, वह पुरुषार्थसे आगे बढ़ता है। सबसे भिन्नता करके, भेदज्ञान करके पुरुषार्थसे आगे बढ़ता है। अनन्त कालसे बड़ुपन प्राप्त करनेका मिथ्या प्रयत्न किया, परन्तु बड़ुपन मिला नहीं। आता है, जगतको अच्छा दिखानेका प्रयत्न किया, परन्तु स्वयं अच्छा नहीं होता। मैं स्वयं कैसे अच्छा होऊँ, मुझे मेरा स्वभाव कैसे प्रगट हो, ऐसी भावना अन्दर हो। और चैतन्यतत्त्व मैं महिमावंत हूँ। बाहरसे महिमा, बाहरसे बड़ुपन नहीं लेकरके, मैं ही स्वयं महिमाका भण्डार हूँ, ऐसी दृष्टि करके, ऐसा प्रयोजन रखकर आगे बढ़े तो कोई कषाय उसे रोकता नहीं।

जो रुकता है, वह पुरुषार्थकी मन्दतासे रुकता है। जो पुरुषार्थकी तीव्रता करे उसे नीरसता आ जाती है। आत्माका प्रयोजन हो तो कोई नहीं रोक सकता। मेरा स्वभाव भगवान जैसा प्रभु हूँ। लेकिन पर्यायमें मैं पामर हूँ। ऐसी भावना रखकर आगे बढे तो उसे कोई रोक नहीं सकता। थोड़े-थोड़ेमें मैंने कुछ किया, मैं बड़ा हूँ, ऐसी भावना रहे तो आत्माका प्रयोजन उसमें गौण हो जाता है। आत्माका प्रयोजन हो तो उसे कोई नहीं रोकता। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा रखकर आत्माका प्रयोजन साधे, शुद्धात्माका ध्येय रखे तो उसे कोई नहीं रोक सकता।

मानादिक शत्रु महा, निज छंदे न मराया,
जाता सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय।

गुरुकी शरणमें सब छूट जाता है। गुरु जिसके हृदयमें आये उसे सब छूट जाता है।

मुमुक्षु :- ... चक्रवर्ती राजपाट छोड़ देते हैं, वह सुख कैसा होगा?

समाधान :- वह सुख तो अपूर्व एवं अनुपम है। जिसके आगे जगतकी कोई उपमा नहीं है। चक्रवर्तीका राज भी उसके आगे तुच्छ है। चक्रवर्तीओंको भी तुच्छता लगी इसलिये सब छोड़कर चल देते हैं। ऐसा अनुपम तत्त्व आत्मा, जिसे कोई उपमा नहीं है। वह पूरा तत्त्व आश्चर्यकारी है। अनन्त गुणोंसे भरपूर, जिसे जगतके किसी भी प्रकारके साथ मेल नहीं है। जगतका सुख तो कल्पित है और कल्पनासे सुख माना है।

आत्माका सुख तो कोई अनुपम है। उसकी श्रद्धा करे और वह आगे बढ़े तो वह स्वानुभूतिमें ज्ञात हो ऐसा है। बाकी वह तत्त्व अनुपम है। चक्रवर्ती भी उसे तुच्छ

जानकर तृण समझकर चल देते हैं। आत्माकी साधना करनेके लिये, जो चैतन्यतत्त्व है उसे प्रगट करनेके लिये, उसकी साधना करके बारंबार स्वरूपमें लीनता करते-करते केवलज्ञानको प्रगट करते हैं। वह सुख कोई अपूर्व है, अनुपम है। आत्मा आश्चर्यकारी है, जिसे जगतकी कोई उपमा लागू नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- अज्ञानता हो तब आत्मा कैसे समझमें आये?

समाधान :- अज्ञानता हो तो भी समझमें आता है। गुरुदेवने मार्ग बताया है। देव-गुरु और शास्त्रकी... देव-गुरुकी शरणमें आत्मा समझमें आता है। अज्ञानता हो तो समझमें नहीं आये ऐसा नहीं है। अंतर जिज्ञासा करे और स्वयं समझनेका प्रयत्न करे और गुरु क्या कहते हैं उसका आशय समझे तो समझमें आये ऐसा है। स्वयं ही है, कोई अन्य नहीं है। जो पुरुषार्थ करे वह स्वयंको ही करना है। समझमें आये ऐसा है, नहीं समझमें आये ऐसा नहीं है।

ज्ञानसे भरा आत्मा ज्ञायक है। ज्ञायकमें क्या जाननेमें न आये? सब जाननेमें आता है, समझ सकता है। विभावको तोड़कर, उससे भेदज्ञान करके आगे भी बढ सकता है। गुरुदेवने ऐसा मार्ग बताया और वह समझे बिना कैसे रहे? जिसने मार्ग प्राप्त किया वे पहले अज्ञानमें ही थे, बादमें ज्ञान प्राप्त किया है। अनादिका किसीको ज्ञान नहीं होता।

मुमुक्षु :- जो भगवान हुए वे भी हमारी जैसी अज्ञानदशामें थे?

समाधान :- सब स्वभावसे भगवान, परन्तु परिणतिमें तो अज्ञानता थी। इसलिये जो प्रगट करते हैं, सब पुरुषार्थसे ही करते हैं।

मुमुक्षु :- हम भी भगवान हो सकते हैं?

समाधान :- भगवान हो सकते हैं। स्वभावसे भगवान ही है, क्यों नहीं हो सकता? पुरुषार्थ करे तो। भगवानको पहचाने, भगवानको देखे, भगवानकी महिमा करे, भगवान-चैतन्य भगवानका बारंबार रटन करे। चैतन्य भगवानकी भक्ति करे तो वह चैतन्य भगवान प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता। स्वयं भगवान हो सकता है।

मुमुक्षु :- पहले बहुत पुण्य कर ले, तपश्चर्या कर ले, बादमें भगवान बन सकते हैं न। भगवान तो बहुत बड़े हैं। अपने तो पुण्य एवं तपश्चर्या करनी चाहिये न।

समाधान :- पुण्य और तपश्चर्या करनी, परन्तु बिना समझे आगे कैसे बढे? ऐसी ही बिना समझे चला करे, भावनगर जाना है, लेकिन भावनगर किस रास्ते आया, उस रास्तेको जाने बिना, बिना समझे ही इस ओर धोळाके रास्ते पर चला जाय तो भावनगर नहीं आ जाता। जाने बिना मार्ग कैसे काटे? यथार्थ सत्य जाने बिना, समझे बिना मात्र अकेली तपस्या करनेसे मार्ग प्राप्त नहीं होता, आत्मा समझमें नहीं आता।

जो समझमें आता है वह ज्ञानसे समझमें आता है। आत्माको जिज्ञासापूर्वक ज्ञानसे समझा जाता है। फिर उसे कषायोंकी मन्दता हो, अशुभभावसे बचनेको शुभभाव आये, उसकी यथाशक्ति तप आदि हो, परन्तु वह तप, सच्चा तप तो आत्माको पहचाने तब होता है। आत्माको पहचाने बिना सच्चा तप नहीं हो सकता।

जिसे आत्माकी रुचि लगे, उसे कषायोंकी मन्दता होती है। लेकिन वह तप करे तो आत्मा समझमें आये ऐसा नहीं होता। समझे बिना चलता रहे पहचान किये बिना कि आत्मा कौन है? वह क्या वस्तु है? उसका स्वभाव क्या है? यह विभाव क्यों अनादिका है? उससे कैसे छूटा जाय? यह सब ज्ञान किये बिना आगे नहीं बढ़ सकता।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- गुरुदेवने महान उपकार किया है। गुरुदेवने तो चारों ओरसे वस्तुका स्वरूप समझाया है। किसीको शंका रहे ऐसा नहीं है। दुःख तो बाहरसे दुःख मान लिया है। अंतरका दुःख है, अन्दर परिणतिमें विभाव परिणतिका दुःख है। ऐसी अंतरकी दृष्टि गुरुदेवने बतायी है।

सत्य तो गुरु बिना ज्ञान नहीं हो सकता। निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। अनादिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करता है। जब भी वह प्राप्त करता है तब देव अथवा गुरुकी वाणी मिले तब उसका उपादान तैयार होता है। पुरुषार्थ स्वयंका है, लेकिन ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। अनादिसे समझा नहीं, गुरुकी वाणीसे समझमें आता है। पुरुषार्थ करे, स्वयं पुरुषार्थ करे तो आगे जाता है।

मुमुक्षु :- ... हे भगवती माताजी! आजके मंगल दिन आपके मंगल वचनोंका हम सबको लाभ मिले, इस हेतुसे आपको नम्र भावसे एक प्रश्न आपके समक्ष प्रस्तुत करते हैं, उसकी स्पष्टता करनेकी कृपा कीजिये।

आत्मा परमानन्द स्वरूप है, सिद्ध स्वरूप है, ऐसा पूज्य कृपालु गुरुदेव फरमाते थे और शास्त्रमें भी आचार्योंने भगवानकी वाणी अनुसार ऐसा आत्माका स्वरूप बताया है। तो आत्माका सिद्ध स्वरूप और परमात्म स्वरूप कैसे समझमें आये और उसकी प्राप्ति कैसे हो, यह माताजी! आपके मंगल वचनों द्वारा समझानेकी हम पर कृपा कीजियेजी।

समाधान :- आत्माका परमात्म स्वरूप है। गुरुदेवने तो बहुत स्पष्ट करके समझाया है। यह आत्मा कैसा है? आत्मा सिद्ध स्वरूप है। गुरुदेवने स्पष्ट करके समझाया है, सबको जागृत किया है और स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। गुरुदेवने समझाया है, मैं तो उनका दास हूँ। उनके पास सब (समझा है)।

गुरुदेवने कहा है, आत्मा परमात्म स्वरूप है, सिद्ध भगवान जैसा है। प्रभुत्व शक्तिवाला है। वह आत्मा स्वयं समझे तो हो सके ऐसा है। जैसे गुण सिद्ध भगवानमें हैं, वैसे

ही गुण आत्मामें हैं। सिद्ध भगवानमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, चारित्र आदि है। ऐसे गुण शक्तिरूप प्रत्येक आत्मामें है। उसमें सहज ज्ञान, दर्शन, चारित्र, केवलज्ञान शक्तिरूप है। केवलदर्शन शक्तिरूप, चारित्र शक्तिरूप, आनन्द शक्तिरूप सब गुण शक्तिसे भरपूर भरे हैं। उसमेंसे एक भी कम नहीं हुआ है।

अनन्त काल गया, अनन्त भव हुए, निगोदमें गया और चारों गतिमें भटका तो भी आत्मा तो वैसाका वैसा सिद्धस्वरूप ही है, द्रव्यदृष्टिसे। परन्तु वह पहचानता नहीं है। दृष्टि बाहर है इसलिये आत्माको पहचानता नहीं है। उसे भ्रान्ति हो गयी है। आत्माको पहचाने तो हो सके ऐसा है। आत्मा सिद्ध भगवान जैसा है।

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे,
कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणुमात्र नहीं अरे! ३८.

मैं एक शुद्ध स्वरूपी आत्मा हूँ। चाहे जितने भव किये तो भी आत्मा एकरूप रहा है। अनेक प्रकारके विभाव हुए तो भी शुद्धतासे भरा शुद्धात्मा द्रव्य वस्तु है। विभावका भी अन्दर प्रवेश नहीं हुआ है। कोई भवस्वरूप भी आत्मा नहीं है। अनेक स्वरूप भी आत्मा नहीं हुआ है। ऐसा आत्मा शुद्ध स्वरूपी एकरूप आत्मा, ऐसा आत्मा कोई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रूप नहीं हुआ है। आत्मा अरूपी है, उसमें कोई वर्ण, गन्ध, रस आदि नहीं है। ऐसा आत्मा अरूपी आत्मा है। ज्ञान, दर्शनसे भरपूर भरा है और कोई अद्भुत वस्तु है।

कोई अन्य परमाणु मात्र भी आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा अपनी प्रताप संपदासे भरा है। उसमें उसकी प्रताप संपदा अनन्त-अनन्त भरी है, लेकिन वह उसे पहचानता नहीं है। उसे पहचाने, उस पर दृष्टि करे, उसका विचार करे, उसकी जिज्ञासा करे कि यह विभाव है वह मैं नहीं हूँ, लेकिन यह ज्ञानस्वरूप ज्ञायक सो मैं हूँ। ज्ञान, असाधारण लक्षण उसका ज्ञान है, उस ज्ञान द्वारा पहचानमें ऐसा है। परन्तु अनन्त गुणोंसे भरा अत्यंत महिमावंत अत्यंत विभूतसे भरा आत्मा है। उसका ज्ञान, उसके लक्षण द्वारा पहचानमें आता है।

विभावका स्वाद आकुलतारूप है और आत्माका स्वाद शान्ति, आनन्द रूप है। उसका स्वादभेद है, उसका लक्षणभेद है। उसका भेदज्ञान करके पहचाने। अनन्त कालसे एकत्वबुद्धि हो रही है। उसका बारंबार अभ्यास करके मैं भिन्न चैतन्य सिद्ध भगवान जैसा आत्मा हूँ। बारंबार अभ्यास करे तो पहचानमें आये।

जो गुरुने कहा, जिनेन्द्र, गुरु, शास्त्रमें आता है, उसे वह स्वयं विचार करके नक्की करे। गुरुने, जो वचन गुरुदेवने कहे, उन वचनोंको प्रमाण करके स्वयं विचार करके अंतरमें निर्णय करे। देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति और अंतरमें ज्ञायकदेवकी भक्ति, ज्ञायककी

श्रद्धा, ज्ञायकका ज्ञान और विभावसे भिन्न होकर ज्ञायककी महिमा करे। जबतक वह न हो, तबतक बाहरमें देव-गुरु-शास्त्र, उसके निमित्त.. वह उसके महानिमित्त हैं। प्रबल निमित्त हैं, परन्तु स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है। अंतरमें स्वयं ज्ञायककी श्रद्धा करे, उसका ज्ञान करे, उसकी महिमा करे और विभावसे भिन्न होकर, न्यारा होकर पहचाने तो पहचान सके ऐसा है।

यह सब आकुलता लक्षण है वह मैं नहीं हूँ, मैं तो अनाकुल लक्षण ज्ञायक हूँ। उसका भेदज्ञान करके अंतरसे भिन्न पड़े तो वह पहचाना जाय ऐसा है। भेदज्ञान करके ज्ञाताधाराकी उग्रता करे, क्षण-क्षणमें मैं ज्ञायक हूँ, यह मैं नहीं हूँ, ऐसे अंतरमेंसे भिन्न पड़े तो सिद्ध भगवान जैसी उसे स्वानुभूति होती है और सिद्ध भगवान जैसा अंश उसे प्रगट होता है। स्वानुभूतिकी दशा कोई अद्भुत है।

वह गृहस्थाश्रममें हो तो भी कर सकता है। फिर वह आगे बढे तो मुनिदशा आती है। विकल्पजाल क्षणमात्र नहीं टिकती। विकल्प छूटकर शान्त चित्त होकर अमृतको पीवे ऐसी अपूर्व स्वानुभूति होती है। लेकिन वह स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है, स्वयं करे तो होता है। स्वयंको लगे तो होता है, स्वयं लगनी लगाये तो होता है। बाहरसे नहीं हो सकता है, परन्तु अंतरसे ही हो सकता है। उसका ज्ञान, उसकी प्रतीत दृढ़ करे। यह ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ, ऐसा नक्की करके फिर स्वयं आगे बढ़े, उसमें लगनी लगाये, लीनता करे, उसमें एकाग्रता करे तो विभावसे भिन्न होकर उसे कोई अपूर्व आत्माकी प्राप्ति होती है। इसके सिवा कोई उपाय नहीं है।

गुरुदेवने यह बताया है, करना यही है। जो मोक्ष पधारे वे सब भेदविज्ञानसे ही गये हैं, जो नहीं गये हैं वे भेदविज्ञानके अभावसे नहीं गये हैं। इसलिये भेदविज्ञान, द्रव्य पर दृष्टि, उसका ज्ञान और लीनता, यह उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। परन्तु मैं सिद्ध भगवान जैसा हूँ, ऐसा नक्की करके मैं कोई अपूर्व आत्मा हूँ, ऐसे ज्ञायक पर दृष्टि करके, प्रतीत करके दृढ़ता करे तो हो सके ऐसा है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। गुरुदेवने बताया, सबको एक ही करना है। ध्येय एक ही-आत्मा कैसे पहचानमें आये? उसकी एककी लगनी लगे तो हो सके ऐसा है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

बोलो, प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! भगवती मातनी अमृत मंगल वाणीनो जय हो! गुरुदेवना परम प्रभावनो जय हो! सम्यक् जयंती महोत्सवनो जय हो!!

ट्रेक-९३

समाधान :- ... स्वभावसे शुद्ध है, पर्याय पलट जाती है, अशुद्धता टल जाती है। अशुद्धता अपना स्वभाव नहीं है। बाह्य निमित्तके कारण, अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे अशुद्धता होती है। उस अशुद्धताका व्यय होता है और शुद्धता प्रगट होती है।

स्फटिक स्वभावसे निर्मल है। लाल-पीले फूलके कारण जो प्रतिबिंब उत्पन्न होते हैं वह परिणमन स्वयंका है, लेकिन वह स्फटिक सफेदरूप परिणमे नहीं, निमित्तका (संयोग है)। यह तो दृष्टान्त है।

स्वयं पुरुषार्थ करे तो स्वयं निर्मलतारूप परिणमे तो वह छूट जाता है। वह अपना स्वभाव नहीं है, अशुद्धता है वह टल जाती है। अशुद्धता टल जाय और कर्म छूट जाय, दोनों साथमें होता है।

मुमुक्षु :- स्वानुभूतिमें जब निर्विकल्प होता है, वह उपयोग प्रमाणात्मक है, उसका अर्थ क्या है? प्रमाणात्मक यानी?

समाधान :- प्रमाण-द्रव्य और पर्याय दोनों साथमें हैं। ज्ञान जानता है। ज्ञान स्वयंको जानता है, ज्ञान पर्यायको जानता है इसलिये प्रमाण है। दृष्टि तो द्रव्य पर ही है। विकल्परूप दृष्टि नहीं है, अपितु निर्विकल्प है। द्रव्य और पर्याय दोनों शुद्ध है, उसे ज्ञान जानता है, इसलिये प्रमाण कहते हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञानकी पर्याय एक ही समयमें दोनों पहलूओंको छद्मस्थ जान सकता है?

समाधान :- निर्विकल्प है। वह विकल्पसे नहीं जानता है। एकसाथ दोनों उसे वेदनमें आते हैं।

मुमुक्षु :- आश्रय है वह दृष्टिका कार्य है या ज्ञान भी उस वक्त आश्रय ...

समाधान :- द्रव्यका आश्रय दृष्टिभी लेती है और ज्ञान भी लेता है, दोनों लेते हैं। आश्रय ना?

मुमुक्षु :- हाँजी।

समाधान :- दृष्टि भी द्रव्यका आश्रय लेती है और ज्ञान भी लेता है। ज्ञान दोनोंको जानता है। दृष्टि उसे गौण करती है। दृष्टिकी मुख्यता है। ज्ञान भी आश्रय तो लेता

है, परन्तु मुख्यपने दृष्टि है। ज्ञान भी आश्रय लेता है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प उपयोगके वक्त दोनोंका ज्ञान होता है और ज्ञानमें द्रव्यका जोर भी साथमें रहता हो।

समाधान :- वह विकल्पात्मक नहीं है, निर्विकल्प है। ज़ोर यानी वह सहज है। दृष्टि और ज्ञान सब सहज है। द्रव्यकी मुख्यता रहकर पर्याय उसमें साथमें रहती है। दोनों साथ ही है। वह विकल्परूप नहीं है, वह तो सहज है। उसमें आश्रय करना नहीं पड़ता। जो आश्रय लिया वह सहज रह जाता है। आश्रय करना नहीं पड़ता। आश्रयका जोर उसे करना नहीं पड़ता, वह तो सहज है। ज़ोर नहीं करना पड़ता।

... पर्याय तो पर्यायरूप ही है। उसे आश्रय सहज रह जाता है। जैसा है वैसा रह जाता है। जो आश्रय लिया वह सहज रह जाता है। वह आश्रय छूटता नहीं। उसे विकल्प करके आश्रय नहीं लेना पड़ता।

मुमुक्षु :- एक ही विषय पर हो, उसमें द्रव्य-पर्याय कहनेमें आते हैं, परन्तु विषय एक ही है।

समाधान :- उसे उपयोग नहीं देना पड़ता। वह तो सहज ज्ञान रहता है। द्रव्य पर अलग उपयोग करना पड़े और पर्यायका अलग उपयोग करना पड़े, ऐसा नहीं है। वह तो सहज वेदनमें एकसाथ आ जाते हैं। भिन्न-भिन्न उपयोग नहीं देना पड़ता। वह तो परिणतिरूप सहज रह जाता है। विकल्पात्मक हो तो उपयोग भिन्न-भिन्न करना पड़े, उसे विकल्पात्मक कहाँ है, सहज ज्ञान है। वह विकल्पात्मक नहीं है कि पर्यायका उपयोग अलग करना पड़े, द्रव्यका उपयोग करना पड़े। वह तो वेदनरूप है। द्रव्य, गुण, पर्याय सब उसे ज्ञानमें है, उसके वेदनमें है।

वेदन पर्यायका होता है, लेकिन यह सब उसके ज्ञानमें होता है। सहज परिणतिरूप होता है। उसमें उपयोगकी भिन्नता नहीं करनी पड़ती। उसकी सहज परिणतिमें सब होता है। वहाँ उपयोग छिन्न-छिन्न, भिन्न-भिन्न नहीं होता है।

मुमुक्षु :- समझमें नहीं आये ऐसी बात है।

समाधान :- कहाँसे समझमें आये? वचनसे अतीत है, वचनातीत है। मनसे भी अगोचर है। वह उपयोगका स्वरूप, परिणतिका स्वरूप, वेदनका स्वरूप, द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप वचनातीत है, मनसे अगोचर है, वह कैसे समझमें आये? वह तर्कसे पर है, कैसे समझमें आये? तर्कमें अमुक प्रकारसे आये। बाकी सब नहीं आता। आनन्दकी स्थिति आदि सब मनसे अगोचर है।

जैसी सिद्ध भगवानकी जात है, वैसे यह उपयोगकी खण्ड-खण्डता या कोई विकल्प वहाँ काम नहीं आते। जैसे सिद्ध भगवान जिस स्वरूप परिणमित हुए, उसका अंश

है, उसकी जाति है। उसमें सहज गुण, पर्याय परिणमते हैं। उसमें ज्ञान, दर्शन सहज परिणमते हैं। उसमें कोई विकल्प काम नहीं आता, उसकी कल्पना काम नहीं आती। कल्पनासे अतीत है।

मुमुक्षु :- इसमें तर्कसे कुछ पकड़में आये ऐसा नहीं है।

समाधान :- पृथ्वी खण्ड-खण्ड हो, ऐसी कल्पना करके वहाँ सिद्धान्त बिठाना चाहे तो बैठे नहीं।

मुमुक्षु :- विकल्पमें जैसा विचार करे, वैसा वहाँका विचार करते हैं।

समाधान :- वैसा विचार, वैसा जानना, ऐसे कल्पना करने बैठे तो वह समझमें नहीं आता।

मुमुक्षु :- ध्येय सही होगा तो सब पहलू अपनेआप बैठ जायेंगे।

समाधान :- हाँ, ध्येय सही होना चाहिये। यथार्थ ध्येय हो तो सब सही होता है। उसकी अपूर्व आनन्दकी स्थिति, अनुपम आनन्दको सविकल्पके साथ निर्विकल्प जोडे तो ऐसी भी मेल नहीं बैठता। विकल्पसहितकी स्थिति, निर्विकल्प सहितकी स्थिति, वह सब मनसे, वचनसे सब अगोचर है।

एक यथार्थ ज्ञायकको ग्रहण करे तो उसमें सब आ जाता है। एक ज्ञायकके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये। यह राग, विकल्प या यह सब आकुलता है, उससे मैं भिन्न हूँ। अन्दर भिन्नताकी श्रद्धा कर, एक ज्ञायकको ग्रहण करे तो उसमें सब उसे आ जाता है। यथार्थ ध्येय होगा तो सब यथार्थ होगा। सूक्ष्ममें सूक्ष्म जो भाव हैं, शुभाशुभ भाव मेरा स्वरूप नहीं है। मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसे यथार्थ नक्की करके आगे बढे तो उसमें यथार्थता आयेगी। अन्दरसे यथार्थ नक्की होना चाहिये।

... उनका है? कर्मोंका क्षय करना.... जो मोक्ष पधारे, इस मार्गसे पधारे हैं। वर्तमान.. वह सब आया न? भूत, वर्तमान... इसी मार्गसे मोक्ष पधारे हैं। ऐसे ही निवृत्त हुए...

द्रव्यके आश्रयसे पर्याय होती है, पर्याय कोई भिन्न नहीं है। गुजराती समझमें आता है? नहीं समझमें आता है?

मुमुक्षु :- पहली बार आये हैं, माताजी!

समाधान :- द्रव्य है, उसकी द्रव्यकी पर्याय है। द्रव्य पर्यायको पहुँचता है। द्रव्य परिणमन करके पर्याय प्रगट होती है। और पर्याय द्रव्यको पहुँचती है। पर्याय प्रगट होती है वह द्रव्यके आश्रयसे प्रगट होती है। द्रव्य परिणमन करके पर्याय प्रगट होती है और पर्याय द्रव्यके आश्रयसे होती है। इसलिये द्रव्य, गुण, पर्याय अभेद है। कोई भिन्न-भिन्न टूकडे नहीं है। उसका वस्तुभेद नहीं है। लक्षणभेद है। वस्तु तो एक ज्ञायक एक ही

है। जिसमें अनन्त गुण, अनन्त पर्याय है। द्रव्य परिणमन करके पर्याय होती है और पर्याय द्रव्यके आश्रयसे होती है। पर्याय द्रव्यको पहुँचती है, द्रव्य पर्यायको पहुँचता है। ऐसा गुरुदेव कहते हैं।

गुणमेंसे पर्याय होती है, गुणके आश्रयसे पर्याय होती है। गुण पर्यायको पहुँचता है, पर्याय गुणको। दोनों अभेद हैं। ऐसे टूकड़े नहीं है। लक्षणभेद है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र ऐसे लक्षण भिन्न-भिन्न है। ऐसी कोई भिन्न-भिन्न वस्तु नहीं है, वस्तु तो एक ही है। ऐसा गुरुदेव कहते थे।

जैसे आम एक है। उसमें हरा, पीला ऐसा वर्ण, खट्टा-मीठा रस, ऐसे आम तो एक है। वैसे चैतन्यमें अनन्त गुण और पर्याय होने पर भी एक है। वस्तुभेद नहीं है। ऐसा कोई कहे कि पर्याय भिन्न रहती है, द्रव्य भिन्न रहता है, वस्तु दोनों अलग-अलग है, ऐसा नहीं होता। एक ज्ञायकमें अनन्त है। चैतन्य है उसमें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है। ज्ञान ज्ञानका कार्य करता है, दर्शन दर्शनका, चारित्र चारित्रका लेकिन सब वस्तुमें एक है। भिन्न-भिन्न नहीं है।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! आरंभमें आता है, जे जाणे अर्हन्तने ते जाणे निज आत्मने। हम अरिहंतदेवके दर्शन तो मन, वचन, कायासे प्रतिदिन करते हैं। फिर आत्माको जाननेमें कहाँ कमी रह जाती है? थोड़ासा फरमाइये।

समाधान :- जो अर्हन्तको जाने वह आत्माको जानता है, ऐसा आता है। परन्तु अर्हन्तको ... जानना चाहिये। अर्हन्त भगवानके द्रव्य, गुण, पर्याय, अर्हन्तका स्वरूप जाने तो अपना स्वरूप जानता है। ऐसे अर्हन्तको पीछाने बिना ऐसे ही अर्हन्त भगवानको नमस्कार करता है, अर्हन्त भगवानका आदर करता है तो शुभभाव होता है, पुण्यबन्ध होता है, परन्तु अर्हन्तका स्वरूप नहीं जानता है तो आत्माका स्वरूप नहीं जानता।

अर्हन्तका स्वरूप जानना चाहिये। अर्हन्त भगवान कौन है? उनका आत्मा कौन है? उसमें क्या गुण है? उन्होंने-अर्हन्त भगवानने क्या प्रगट किया? कौन है अर्हन्त भगवान? ऐसे आत्माको पहचानना चाहिये। जो अर्हन्तके आत्माके पीछानता है, वह अपने आत्माको पहचानता है। जो आत्माको पहचानता है, वह अर्हन्त भगवानको पहचानता है। इसलिये निशदिन भगवानको नमस्कार करते हैं, लेकिन जानता नहीं है कि भगवान क्या है? भगवानका क्या स्वरूप है?

सब आत्मा भगवान जैसे ही हैं, परन्तु भगवानको पीछाने तो अपनेको पीछानता है। भगवानका स्वरूप पीछानना चाहिये। भगवान शुद्ध स्वरूप शुद्धात्मा, उसका दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट करके, साधना करके भगवानने केवलज्ञान प्रगट किया। भगवान आत्माके आनन्दमें रमते हैं। भगवानने पूर्ण वीतराग दशा प्रगट की है। भगवानका स्वरूप जाने

तब अपने आत्माको जानता है।

भगवानका स्वरूप जो जाने तो अपने आत्माको पीछाने बिना रहता ही नहीं। भीतरमेंसे जानना चाहिये। ऐसे सब आत्मा शुद्ध स्वरूप ही है। शुद्धात्मा है। उसमें पुरुषार्थ करे कि मैं ज्ञायक हूँ, मैं जाननेवाला हूँ, शुद्धात्मा हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। विभावसे मैं भिन्न ही हूँ। मेरा स्वभाव मैं जाननेवाला हूँ। मेरेमें अनन्त गुण है। जैसे भगवानमें हैं, वैसे मेरेमें हैं। ऐसा विचार करे तो अपने आत्माको पीछानता है। उसमें स्वानुभूति होती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र-लीनता करनेसे होता है। बारंबार उसमें लीन होनेसे केवलज्ञान होता है। ऐसे भगवानका स्वरूप जाने भीतरमेंसे तो अपना स्वरूप प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- परम पूज्य भगवती माताजी! अंतिम प्रश्न है कि छद्मस्थके लिये ज्ञानियोंको सुखका वेदन सर्वांगसे होता है या नियत प्रदेशोंसे होता है? सुखका वेदन नियत प्रदेशोंसे होता है या सर्वांगसे होता है? छद्मस्थके लिये।

समाधान :- वह तो आत्मामें है... शास्त्रमें आता है कि जहाँ मन होता है, मनके निमित्तसे यहाँ होता है। वह सर्वांगसे होता है या अमुक प्रदेशमें होता है, यह जाननेका कुछ प्रयोजन नहीं है। जो आत्माको जानता है, उसको स्वानुभूति होती है। मनके निमित्तसे... मन छूट जाता है विकल्प और निर्विकल्प दशा होती है। सर्वांगसे होवे या अमुक प्रदेशसे होवे, वह तो जाननेकी बात है। शास्त्रमें जो आता है वह होता ही है।

मुमुक्षु :- आत्मदर्शनके लिये ज्ञान एकदम त्वरासे कैसे प्राप्त कर सके?

समाधान :- प्रयोजनभूत ज्ञान। ज्यादा जाने, शास्त्र ज्यादा जाने तो... गुजराती समझमें आता है न? ज्यादा शास्त्रका अभ्यास करे, शास्त्र जाने, ऐसा कुछ नहीं है उसमें। आत्माको जाने मूल प्रयोजनभूत कि मैं एक ज्ञायक आत्मा हूँ और यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा भेदज्ञान करके अंतरमें जाय, ऐसा यथार्थ ज्ञान हो तो वह आगे जाता है। प्रयोजनभूत ज्ञान।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान करनेके लिये सरल उपाय...?

समाधान :- सरल उपाय, आत्माकी लगनी लगाये, जिज्ञासा करे, उसकी लगनी होवे तो होता है, बिना लगनीके नहीं हो सकता। लगनी लगाये, मैं ज्ञायक हूँ। मैं कौन हूँ? मेरा स्वभाव क्या है? मैं शाश्वत आत्मा हूँ। अनादिअनन्त द्रव्यमें कोई अशुद्धता नहीं है, पर्यायमें अशुद्धता है। पर्यायकी अशुद्धता टालनेको अन्दर भेदज्ञान करे।

भेदज्ञान करनेका उपाय अन्दर लगनी लगे, कहीं सार न लगे। सारभूत आत्मा ही है, बाकी कोई सारभूत नहीं है। तो वह विभावसे भिन्न हुए बिना नहीं रहता। विभाव

आकुलतारूप-दुःखरूप है। विभावका लक्षण जाने, ज्ञानका लक्षण जाने। ज्ञान और विभावका लक्षण जानकर भिन्न पड़े। भिन्न पड़नेकी तैयारी.. अन्दर लगनी लगे, उसे विरक्ति आये, स्वभावमें कहीं चैन न पड़े, स्वभावकी महिमा आये तो होता है।

भेदज्ञान करनेके लिये स्वभावकी महिमा (आनी चाहिये)। विभावसे वैराग्य आये, प्रत्येक विभावके प्रसंग हो उससे वैराग्य, विभाव परिणतिसे वैराग्य, सबसे वैराग्य आवे और आत्माकी महिमा लगे और तत्त्वका विचार करके प्रयोजनभूत ज्ञान करे तो आगे जाय। ज्यादा जाने तो जाय ऐसा नहीं, प्रयोजनभूत ज्ञान तो होना चाहिये।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान प्राप्त करनेके लिये ज्ञानीका सान्निध्य कुछ विशेष नहीं कर सकता?

समाधान :- ज्ञानीका सान्निध्य करे, लेकिन अंतरमें आश्रय स्वयंको लेना चाहिये। निमित्त तो प्रबल है। उनका सान्निध्य तो लाभका कारण है और उससे आगे जा सकता है। लेकिन वह सान्निध्य लेनेवाला स्वयं अंतरमेंसे सान्निध्य ले तो हो सकता है।

मुमुक्षु :- अंतरमेंसे सान्निध्य लेनेके लिये ध्यानमें ऊतरना जरूर है?

समाधान :- अन्दर सान्निध्य लेनेमें उतनी लगनी लगनी चाहिये। अंतरमें, बस, बाकी सब निःसार लगे तो होता है। ज्ञानीका सान्निध्य मिले... जो ज्ञानीने प्राप्त किया वह मुझे कैसे प्राप्त हो? उसे स्वयंको लगनी लगनी चाहिये। सब रस छूटकर ज्ञानीके चरणमें (जाये), मुझे कुछ नहीं चाहिये। मुझे एक आत्मा चाहिये। ऐसी अन्दरमें लगे तो हो सकता है।

और ज्ञानी जो कहते हैं, वह क्या कहते हैं? उसका आशय ग्रहण करनेके लिये अपनी उतनी तैयारी और उसका विचार करे तो उसे सच्चा ज्ञान हो। सच्चे ज्ञानके बिना आगे नहीं जा सकता। लेकिन सच्चा ज्ञान। रूखा ज्ञान नहीं, अपितु सच्चा-अन्दर हृदय भीगा हुआ हो और जो ज्ञान हो, वह कार्य करता है। ज्ञानीका सान्निध्य लाभका कारण है। लेकिन स्वयं अन्दर ग्रहण करके ऐसी लगनी लगाये, ज्ञानीके चरणमें (जाये), ज्ञानी जो कहे वह स्वयं अन्दर ग्रहण करता जाय, तो होता है।

मुमुक्षु :- सच्चा ज्ञान माने मैं स्वयं स्व। उसमें अनुभूति-अनुभवका सातत्य नहीं रहता...

समाधान :- उसका कारण? वह सतत नहीं रहता है, उसका कारण अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। अनादिका अभ्यास है इसलिये उसमें दौड़ा जाता है। दौड अनादि कालकी है। उसके अनुपातमें स्वयं इस ओर स्वभावकी ओर उतनी दौड नहीं लगाता। बारंबार, बारंबार... छूट जाय तो भी बारंबार,.. जो ज्ञानीने कहा, उसका रहस्य ग्रहण करनेके लिये उस अनुसार परिणति करनेके लिये स्वयं बारंबार प्रयास नहीं करता है, तो कहाँ-से हो? वह तो छूट जाता है। बारंबार प्रयास करना चाहिये।

जो ज्ञानीने कहा हो, उसका रहस्य हृदयमें ऊतारनेके लिये बारंबार अपने पुरुषार्थकी दौड लगाता नहीं। तो कहाँ-से हो? बारंबार एकत्वबुद्धिमें चला जाता है। शरीर, विभाव आदि सबमें एकत्व होता है, तो बारंबार उससे (भिन्न पड़नेका) प्रयास करे तो होता है। अपने नेत्रकी आलसके कारण हरिके दर्शन नहीं किये। अपने नेत्रकी आलसके कारण स्वयं हिरको निरखता नहीं, देखता नहीं है। अपना कारण है।

मुमुक्षु :- ब्रह्मनाद उस विषयमें कुछ कहिये। स्वज्ञानमें कितना...?

समाधान :- ब्रह्मनाद, वह नाद कोई आवाज नहीं है। ब्रह्म स्वरूप आत्मा ही है। ब्रह्म स्वरूप आत्मा स्वयं अंतरमें जाय, स्वयं अपने स्वरूपको वेदे-स्वानुभूति करे वह ब्रह्मनाद है। नाद कोई बाहरसे आवाज नहीं आती। आवाज आये वह तो पुद्गलकी आवाज है। ब्रह्मनाद यानी ब्रह्मका अंतरसे वेदन हो, स्वानुभूति-अपना अनुभव हो, उसका नाम ब्रह्मनाद है। नाद यानी बाहरकी आवाज नहीं है, चैतन्यकी आवाज है। वह कोई कर्णसे सुननेकी आवाज नहीं है। उसका वेदन हो वह उसका ब्रह्मनाद है।

मुमुक्षु :- बाहरसे तो आता ही नहीं है, अन्दरसे आता है।

समाधान :- परन्तु नाद शब्द यानी वह सुननेका नहीं है, वह तो वेदन है। स्वरूपका कोई अपूर्व, अनुपम, जिसके साथ किसीकी उपमा नहीं लागू पड़ती है, ऐसा जो चैतन्यका ब्रह्म स्वरूप, उस ब्रह्म स्वरूपकी अनुभूति... अनन्त स्वभाव, अनन्त गुणोंसे भरा हुआ जो अचिंत्य है, जो कल्पनासे अतीत है, उसकी जो अनुभूति है वह ब्रह्मनाद है। उसमें विकल्प छूटकर जो आत्माकी अनुभूति होती है, वह ब्रह्मनाद है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-९४

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान उसमें क्या अंतर है?

समाधान :- स्वकी समझ वह सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चा ज्ञान और सच्ची प्रतीत एवं स्वानुभूति वह सम्यग्दर्शन। सच्चा ज्ञान जिसमें यथार्थ हो, स्वभावकी जोरदार प्रतीति है, भेदज्ञान है और स्वानुभूति है, वह सम्यग्दर्शन।

केवलज्ञान अर्थात् पूर्ण हो गया। सम्यग्दर्शन तो उसकी साधना है। उसे एक अंश प्रगट हुआ है। ... पूर्णताके लिये और केवलज्ञान होता है... स्वानुभूतिमें विशेष-विशेष आगे बढ़ते-बढ़ते पूर्ण पराकाष्टा हो जाती है कि जिस स्वानुभूतिमेंसे फिर बाहर ही नहीं आता है। इस स्वानुभूतिमेंसे बाहर आता है। उस स्वानुभूतिमेंसे बाहर ही नहीं आता है। स्वरूपमें गया सो गया, समाया सो समाया, फिर बाहर नहीं आता। उसमें जो ज्ञान प्रगट होता है वह केवलज्ञान है। और वह ज्ञान ऐसा है कि अपने स्वभावमें रहकर, देखने नहीं जाता, जानने नहीं जाता। बाहर कुछ नहीं करता, स्वयं स्वरूपमें समा जाता है। तो भी स्वभावमें रहकर ही लोकालोकको एक समयमें जान सके ऐसी कोई अपूर्व शक्ति, अपूर्व ज्ञान प्रगट होता है।

स्वयंको जान लेता है, दूसरोंको जान लेता है, कल्पना किये बिना, विकल्प किये बिना सहज। जाननेकी इच्छा नहीं है। स्वरूपमें समा गया है। उसमें जो ज्ञान प्रगट होता है वह केवलज्ञान। पूर्ण हो गया। फिर उसे कुछ करना बाकी नहीं रहता। स्वरूपमें समा गया सो समा गया। वीतराग हो गया, वह केवलज्ञान।

स्वानुभूति हुयी वह तो एक अंश है। वह स्वानुभूतिमेंसे बाहर आता है, उसे विकल्प आता है। लेकिन आत्मा भिन्न रहता है। आत्मा भिन्न रहता है, पुनः उसे बारंबार अपनी दशा अनुसार स्वानुभूति होती है और बाहर आता है। ऐसी दशा जिसकी हो, वह सम्यग्दर्शन है। वह तो गृहस्थाश्रममें भी होती है। अंतरमेंसे स्वानुभूति होती है। परन्तु अन्दरसे न्यारा-निर्लेप रहता है। यह तो मुनि हो जाता है, उसे केवलज्ञान होता है। मुनिकी दशामें आये, बारंबार स्वानुभूतिमें लीन होता है, ऐसी मुनिदशामें केवलज्ञान होता है। बस, बाहर नहीं आये, ऐसा हो जाता है।

अभी मुनि है तो वह साधना है। परन्तु जब केवलज्ञान होता है, तब पूर्ण वीतरागी

भगवान कहलाते हैं। जो भगवानको जाने वह स्वयंको जानता है, ऐसा कहनेमें आता है। केवलज्ञान हुआ तो भगवान बन गया।

मुमुक्षु :- वह व्यवहारिक कार्योंमें नहीं आ सकते।

समाधान :- व्यवहारिक कार्योंमें नहीं आते। शरीरधारी होते हैं, लेकिन स्वरूपमें लीन होते हैं। वाणी छूटती है तो बिना इच्छाके छूटती है, सहज छूटती है। व्यवहार कार्योंमें नहीं आते। उनकी नासाग्र दृष्टि होती है। किसीके सामने देखते नहीं, अंतरमें लीन रहते हैं। उनकी चाल अलग होती है, उनके वाणी अलग होती है। सब अलग होता है। स्वरूपमें ही रहते हैं। बोलनेमें अलग लगे, इस जगतसे अलग है। चाल अलग होती है। निरिच्छासे सहज चलते हैं। वह अलग ही होता है। वे भगवान कहलाते हैं।

मुमुक्षु :- भगवान और यह जगत, दोनों भिन्न वस्तुएँ हैं, या दोनों एक ही है?

समाधान :- भिन्न है। भगवान और यह सब वस्तु, जगतमें तो अनन्त वस्तुएँ हैं। चैतन्य भगवान तो भिन्न है, वह वस्तु भिन्न है। भगवान और वस्तु एक नहीं हो जाते।

मुमुक्षु :- तो पूरा जगत भगवानका या किसी अन्यका?

समाधान :- ... जगत जगतका है और भगवान भगवानके हैं। जगत अनादिअनन्त है।

मुमुक्षु :- अथवा भगवान जगतमें आते हैं?

समाधान :- भगवान जगतमें आते नहीं, भगवान जगतसे भिन्न हैं।

मुमुक्षु :- जगतके अन्दर जो जीव हैं, वह भगवानमें तो जाते ही हैं।

समाधान :- भगवान यानी जगतकी एक वस्तु कहलाती है। जगतके भगवान कहलायें, परन्तु भगवान और जगत एक नहीं हो जाते। भगवान भिन्न रहते हैं, वस्तु भिन्न रहती है। भगवान, जगत यानी भगवान लोकमें है। परन्तु भगवान और जगत एक नहीं हो जाते। भगवान अंतरमें तो अलौकिक दशामें हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको ऐसा लगता होगा, जगत और...

समाधान :- भिन्न है।

मुमुक्षु :- उन्हें भी भिन्न लगता है?

समाधान :- हाँ, भगवानको भिन्न लगता है। जगत और भगवान, दोनों भिन्न है। विकल्प ही नहीं है, परन्तु भिन्न हैं। भगवान स्वयं अपने वेदनमें हैं। जगतको भगवान नहीं वेदते, भगवान उससे भिन्न है।

मुमुक्षु :- वाणी छूटती है, वाणी, वाणी तो .. मेंसे छूटती होगी या ऐसे ही?

समाधान :- भगवानको कोई विकल्प नहीं है। वह तो सहज छूटती है। लोकके पुण्यसे छूटती है। भगवानको इच्छा नहीं है कि इन सबका हित करुँ और उपदेश

दूँ, ऐसा नहीं है। सहज ही छूटती है।

मुमुक्षु :- यह सब जो जीव हुए वह सब भगवानमेंसे छूटकर हुए या दूसरे हुए?

समाधान :- जीव तो अनादिअनन्त है ही। अनादिअनन्त है।

... भिन्न है। ज्ञायक आत्माको पहचानना वह करना है। अन्दर जो विभाव होता है वह अपना स्वभाव नहीं है। ज्ञायकको पहचानना। ज्ञायककी रुचि रखनी, वह जबतक न हो तबतक शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। यह ज्ञायक कैसे पहचानमें आये? और मुनिओंके धर्म जो क्षमा, आर्जव, मार्दव आदि सब मुमुक्षुकी भूमिकामें भी सबको होते हैं। मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य आदि सब मुमुक्षुकी भूमिकामें भी होता है। इसलिये उसकी आराधनापूर्वक और ज्ञायककी आराधनापूर्वक आत्मामें.. आत्माका स्वभाव है। वह आत्माका स्वभाव कैसे प्रगट हो? उसकी रुचि और वह कैसे प्रगट हो, उसका प्रयास करना वही करना है। जीवनमें भेदज्ञान करके ज्ञायक कैसे पहचानमें आये, यह करना है। सम्यग्दर्शनपूर्वक वह धर्म होते हैं। मुनिकी दशामें वह सब आराधना करनी होती है। परन्तु मुमुक्षुकी भूमिकामें भी वह होते हैं। दस धर्म आदरने योग्य हैं, ज्ञायकके ध्येयपूर्वक।

आत्मामें आनन्द और अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि अनन्त गुण आत्मामें भरे हैं। उसकी महिमा, उसकी रुचि, परसे विरक्ति और स्वभावकी महिमा आदि सब करने योग्य है। वह न हो, तबतक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और शुद्धात्मा कैसे पहचाना जाय, उसका प्रयास करना।

जीवने बाहरमें बहुत किया, क्रियाएँ की, शुभभाव किये, पुण्यबन्ध हुआ परन्तु भवका अभाव कैसे हो, उसकी उसने अन्दरसे श्रद्धा नहीं की है। गुरुदेवने मार्ग बताया कि शुभाशुभ परिणामसे भी भिन्न जो शुद्धात्मा है, उस शुद्धात्माको पहचान तो भवका अभाव हो। उसकी श्रद्धा कर, उसका ज्ञान कर, उसमें लीनता कर तो भवका अभाव हो और अंतरमें स्वानुभूति प्रगट हो, वह करना है।

.. भीगा हुआ होना चाहिये, रुखा नहीं होता। अन्दरसे भीगा हुआ। मुझे आत्मा कैसे पहचानमें आये? अन्दरसे इस भवभ्रमणकी थकान लगी हो, बस, इस भवभ्रमणसे बस होओ, भवका अभाव कैसे हो? विभावसे थकान लगे, यह सब अन्दरके विकल्प, राग-द्वेष आदि सबसे थकान लगी हो और अंतरमें कैसे जाना हो? ऐसी अंतरमें उसे प्यास लगी हो, उसकी लगन लगी हो, उसका हृदय भीगा हुआ होता है, शुष्क नहीं होता।

आत्मा भिन्न है यानी आत्मामें कुछ नहीं है, इसलिये आत्माको कुछ नहीं लगता, जो भी करो कोई दिक्कत नहीं है, ऐसी उसे अन्दरसे शुष्कता नहीं होती और हृदय

भीगा हुआ होता है। दो पदार्थ भिन्न हैं, परन्तु अन्दर अपनी परिणतिमें एकत्वबुद्धि हो रही है, उससे कैसे छूटा जाय? ऐसी उसे अन्दरसे लगनी होनी चाहिये। वस्तु स्वभावसे ज्ञायक भिन्न है, परन्तु परिणति उसमें मलिन हो रही है, उससे कैसे (भिन्न होकर) निर्मल पर्याय कैसे प्रगट हो? ऐसी भावना होनी चाहिये।

आचार्यदेव कहते हैं न? मैं शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति हूँ। परन्तु मेरी परिणति जो कल्माषित-मलिन हो रही है, उसकी पूर्णता कैसे हो? उसकी भावना मुनिराजोंको भी होती है। तो यह तो एक मुमुक्षुकी दशा है। उसका भीगा हुआ हृदय हो कि आत्मा कैसे प्रगट हो? यह परिणति जो अनादिकी एकत्वबुद्धि हो रही है, वह छूटकर भिन्न ज्ञायक भिन्न है, वह कैसे (पहचानुँ)? वस्तु स्वभावसे भिन्न है, परन्तु प्रगट भिन्न परिणतिमें कैसे प्रगट हो? ऐसी उसे रुचि, भावना, ऐसा प्रयास होना चाहिये। स्वभावसे शुद्ध है, परन्तु पर्यायमें शुद्धता कैसे हो, ऐसी अन्दर लगनी होनी चाहिये। मुनिदशा आवे और फिर पूर्णता होती है।

मुमुक्षु :- सत्पुरुषसे मुमुक्षुका वैराग्य बढ़ जाना चाहिये, वह कैसे?

समाधान :- सत्पुरुषसे मुमुक्षुका वैराग्य बढ जाना चाहिये? (वैराग्य) शिखरका शिखामणि मुनिराजको कहते हैं। सम्यग्दर्शनमें भी ऐसा वैराग्य होता है और मुमुक्षुदशामें भी वैराग्य होता है। सच्चा यथार्थ वैराग्य तो उसे सम्यग्दर्शन हो उसे यथार्थ वैराग्य होता है। मुनिदशामें यथार्थ वैराग्य होता है। पहलेका वैराग्य उसे भावनारूप होता है। वैराग्य तो होना चाहिये, लेकिन सत्पुरुषसे भी बढ़ जाय ऐसा शब्द कहीं नहीं आता। त्याग सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है।

त्याग सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है। उसकी विरक्ति वह विरक्ति है। बाकी वैराग्य होता है, मुमुक्षुदशामें तीव्र वैराग्य होना चाहिये। परपदार्थ प्रति उदासीनता आ जाय। आत्माकी महिमा आवे। उदासीनता मुमुक्षुदशामें होनी चाहिये, पात्रतामें होनी चाहिये। 'त्याग विराग न चित्तमां थाय न तेने ज्ञान'। त्याग-वैराग्य जिसके चित्तमें नहीं है, जिसके मनमें त्याग एवं वैराग्य नहीं है, उसे ज्ञान नहीं होता।

'अटके त्याग वैराग्यमां तो भूले निज भान'। यदि स्वयंको समझनेकी ओर दृष्टि नहीं है और सच्चा ज्ञान करके अपना स्वभाव नहीं पहचानना चाहता, मात्र बाह्यमें रुक जाता है, बाह्य त्याग-वैराग्यमें, तो भी आत्माको नहीं पहचानता।

आत्मा कैसे पहचानमें आये, ऐसे तत्त्वविचार प्रति ध्यान होना चाहिये। और त्याग, वैराग्य उसके चित्तमें होना चाहिये। त्याग, वैराग्य मुमुक्षुकी भूमिकामें होने चाहिये। नहीं तो वह शुष्क-आत्माको कुछ लेना-देना नहीं है, आत्मामें कहाँ कुछ है, ऐसी शुष्कता हो तो आगे नहीं बढ़ सकता। त्याग, वैराग्य उसके चित्तमें होना चाहिये और तत्त्व पर दृष्टि होनी चाहिये। सच्चे ज्ञान पर उसकी दृष्टि होनी चाहिये और वैसे विचार होने

चाहिये। सब साथमें हो तो आगे जाता है।

बाहरसे कितना छोड़ सके वह नहीं, त्याग-वैराग्य उसके हृदयमें होना चाहिये। उसका हृदय भीगा हुआ होना चाहिये। सबसे चित्तमें वैराग्य और विरक्ति, उसका चित्त अंतरसे न्यारा होना चाहिये।

समाधान :- ... गुरुदेवने बहुत उपदेश दिया है और भगवानकी वाणीमें भी आता है। करना तो स्वयंको है। उपदेश तो असिधारा जैसा है। यदि स्वयं तैयार हो तो भेदज्ञान हो जाय। दो टूकड़े हो जाय। आत्मा भिन्न-ज्ञायक भिन्न और विभाव भिन्न। भेदज्ञान हो जाय ऐसा असिधारा जैसा उपदेश है भगवानका। और गुरुदेवका भी ऐसा था कि बारंबार आत्माका स्वरूप बताते थे, सूक्ष्मतासे स्पष्ट कर-करके। करना तो स्वयंको पुरुषार्थसे स्वयंको ही करना है। आत्माको पहचानना, ज्ञायक भिन्न है, विभाव स्वभाव अपना नहीं है। शरीर भिन्न, सब भिन्न। भेदज्ञान करके अंतरमें स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। बाहरसे कुछ होता नहीं। अंतरमेंसे होता है। वह न हो तबतक शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र और अन्दरमें शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? उसका पुरुषार्थ बारंबार, बारंबार, बारंबार न हो तबतक ज्ञायकको पहचाननेका प्रयास (होना चाहिये)।

मैं ज्ञायक हूँ, इसके सिवा दूसरा कुछ मुझेमें नहीं है। मैं तो जाननेवाला तत्त्व कोई अपूर्व, अनुपम तत्त्व हूँ। ज्ञायक ज्ञाता मैं जगतसे भिन्न उदासीन ज्ञाता हूँ। ज्ञेय मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो उससे भिन्न हूँ। ऐसे उसके द्रव्य, गुण, पर्याय, परद्रव्यके द्रव्य, गुण, पर्याय सब समझकर भिन्न पड़े तो होता है। पुरुषार्थ करे तो होता है। पुरुषार्थ किये बिना कुछ होता नहीं। पुरुषार्थसे सब होता है। उतनी अन्दर लगनी चाहिये। संसारसे उसे रस ऊतर जाना चाहिये, अंतरसे रुचि लगनी चाहिये, उतनी लगनी चाहिये, आत्मा बिना-ज्ञायक बिना कहीं चैन न पड़े, ऐसी अंतरमें भावना होनी चाहिये, तो होता है। ऐसा असिधारा जैसा उपदेश तो भगवानका है और गुरुदेवका भी वैसा ही था।

मुमुक्षु :- हे माताजी! हमारे यहाँ हिंमतभाई वांचनके लिये तब हमने कहा, अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद कैसा आता है? तो कहा, माताजीके पास जाकर पूछना तो वे आपको बतायेंगे। तो आप, हमें अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद कैसा आता है, यह बतानेकी विनंती है।

समाधान :- वह कोई वाणीमें आये ऐसा है? आत्मामें जो स्वानुभूति होती है, उसमें वह पहचाना जाय ऐसा है। वह वाणीमें आये ऐसा नहीं है। वह तो मनसे, वचनसे, सबसे भिन्न-अगोचर है। स्वानुभूतिमें उसका वेदन हो, ऐसा है। बाकी तो उसका लक्षण बताया जा सकता है। बाकी दिखानेमें आये ऐसा स्वानुभूतिका स्वाद नहीं है।

जो इन्द्रियसे पर अतीन्द्रिय है, जिसका बाहरमें किसीके साथ मेल नहीं है, कोई

नमूना अथवा उसका दृष्टान्त नहीं है। ऐसा स्वरूप तो जब वह अन्दर जाय, उसे जाननेकी इच्छा हो, उसका कुतूहल हो तो अन्दर जाय। गुरुदेव कहते थे कि शास्त्रमें (आता है कि), छः महिने बारंबार उसकी धुन लगा और उसकी तीव्र जिज्ञासा करके बारंबार अन्दरसे तीखा उपदेश कर तो उसकी स्वानुभूति हो। बाकी वाणीमें (नहीं आ सकता)। वह तो वचनसे, मनसे सबसे अगोचर है। वह तो आत्माका स्वरूप, आत्मासे पहचाना जाय और आत्मासे वेदनमें आवे। ज्ञायक ज्ञायकसे पहचाना जाय, ज्ञायक ज्ञायकसे वेदनमें आवे। वह तो अनुपम और कोई अपूर्व है। वह वाणीमें आवे ऐसा स्वरूप नहीं है।

गुरुदेव कहते हैं, आचार्य कहते हैं, स्वानुभूतिका स्वरूप कोई अलग ही है। उसकी तू महिमा कर, उसका विश्वास कर, दृढ़ता कर, विचारसे नक्की कर कि तत्त्वमें कोई अपूर्व शान्ति (भरी है)। जो स्वयं सुख-सुख कर रहा है, वह सुखस्वरूप स्वयं ही है। बाहरमें जो आश्चर्य मान रहा है, वह आश्चर्यका स्वरूप आत्मामें है। वह आश्चर्यका पिण्ड और आनन्दकारी तत्त्व है वह स्वयं ही है। जो बाहरमें आरोप कर कर रहा है, वह स्वभाव उसका है। बाहरसे कहींसे नहीं आता। बाहरमें देखे तो मात्र आकुलता भरी है। वह आश्चर्यकारी और आनन्दकारी तत्त्व स्वयं ही है, ऐसा तू नक्की कर तो वह अनुभवमें ज्ञात हो ऐसा है। बाहरसे ज्ञात हो ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- कल हिमंतभाईने माताजीका ४१२ नंबरका वचनामृत लिया था। मरण अवश्य आयेगा ही। उसमें भावविभोर हो गये। ...

समाधान :- आयेगा, मरण तो अवश्य आयेगा। जन्म-मरण तो संसारमें है ही। आत्मा ही शाश्वत है। मुझे मनुष्य जीवनमें आत्माका ही करना है। दूसरा कुछ नहीं है, सारभूत जगतमें तो एक आत्माका मुझे प्रयोजन है, दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है। किसीके साथ मुजे प्रयोजन नहीं है। एक आत्माका प्रयोजन है। जीवनमें कोई प्रयोजन हो तो मुझे देव-गुरु-शास्त्रका और एक आत्माका प्रयोजन हो, दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है।

जन्म-मरण करते-करते मनुष्यभव प्राप्त हो, उसमें एक आत्माका स्वरूप पहचान लेने जैसा है कि जिससे भवका अभाव हो। ज्ञायक एक ज्ञाता तत्त्व कैसे पहचानमें आये, जो अपूर्व है। बस, वही शाश्वत है।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! संस्कार बोये हैं, ऐसा कब कहा जाय? अनुभवमें थोड़ा समय होनेके बाद?

समाधान :- अन्दर अपने संस्कार स्वयं पहचान सके। उस संस्कारका फल आये तब मालूम पड़े, लेकिन संस्कार दृढ़ तो स्वयंको करने हैं। बारंबार मैं ज्ञायक, ज्ञायक बिना चैन पड़े नहीं। अन्दर स्वभावकी रुचि लगे, विभावमें कहीं रस पडे नहीं। बारंबार

उसका प्रयत्न करता रहे तो स्वयं जान सके। संस्कार बोये हैं या नहीं वह स्वयं पहचान सकता है, दूसरा नहीं पहचान सकता। अन्दरके गहरे संस्कार बाहरसे पहचानमें नहीं आते। स्वयं पहचान सकता है कि मुझे गहरे संस्कार है कि नहीं? बाकी स्वानुभूति होती है तब उसका फल आता है।

... कैसा उपकार किया है, उपदेश कितने बरसों तक बरसाया है। वह स्वयं अन्दर रुचिसे सुने तो अन्दर संस्कार डले बिना रहते नहीं। अन्दर यदि स्वयंको रुचि हो तो।

मुमुक्षु :- १५वीं गाथामें गुरुदेवश्री फरमाते थे कि यह तो जैनधर्मका प्राण है। तो उसमें क्या रहस्य है, यह बतानेकी विनंती है।

समाधान :- जैनधर्मका प्राण ही है। भूतार्थ स्वरूप आत्माको जाने, यथार्थ स्वरूप जाने और यथार्थ स्वरूपको पहचानकर अन्दर गहराईमें जाय। वह जैनधर्मका प्राण ही है। जिससे मुक्तिका मार्ग प्रगट हो और जिसमें साधकदशा प्रगट हो। आत्माका जो यथार्थ स्वरूप है उसे ग्रहण करे, उस पर दृष्टि जाय, ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन प्राप्त करे और उसकी साधकदशा प्रगट हो, वह जैनधर्मका प्राण ही है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ooo

ट्रेक-९५

समाधान :- ... आत्मा शब्द बोलना नहीं आता था। गुरुदेवने सब ...

मुमुक्षु :- हम तो बाहरसे आये हैं, हमने यह सब सुना.. जो कुछ है वह गुरुदेव और आपके (प्रतापसे है)।

समाधान :- गुरुदेवके प्रतापसे तो इतने तैयार हो गये हैं। गुरुदेवके प्रतापसे इतने संस्कार.. वहाँ तो सब कितने... कोई पारसी, कोई व्होरा, कैसे भाववाले थे।

आत्मा आश्चर्यकारी पदार्थ है। जगतमें ऐसा कोई आश्चर्य नहीं है। जगतमें कोई दूसरा आश्चर्य माने कि यह तो कोई अद्भुत है, यह देखनेका अद्भुत है, देखनेका कोई प्रदर्शन हो तो कहे, यह आश्चर्यरूप है, किसीका मकान या महेल आश्चर्यरूप है या कोई वस्तु आश्चर्यरूप है। जगतमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

आश्चर्यकारी तत्त्व हो तो आत्मा ही है। आत्मामें ऐसी अद्भुतता भरी है कि जिसका वाणीसे कथन नहीं हो सकता। ऐसी अद्भुत और आश्चर्यकारी तत्त्व (है)। एक जो ज्ञान है, वह ज्ञान एक समयमें सब जान सकता है। फिर भी उसे वजन लगे नहीं, बोज नहीं लगे, स्वयं स्वरूपमें लीन रहे, बाहर उपयोग रखने नहीं जाते। अपने स्वरूपको जानते रहे, स्वरूपमें ही लीन रहे, स्वरूपसे बाहर नहीं जाते। तो भी सहज इच्छा बिना सब एक समयमें जिसमें ज्ञात हो जाता है। ऐसा जिसका ज्ञानका स्वरूप अद्भुत!

उसका आनन्दका स्वरूप अद्भुत! कि जिस आनन्दको जगतके साथ कोई मेल नहीं है। कोई उसके साथ मेल करे तो उसके साथ मेल नहीं आता। ऐसा आनन्दका स्वरूप है। जो एक समयमें भूतकालके, वर्तमान और भविष्यके अनन्त-अनन्त पदार्थ, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय अनन्त, वह सब एक समयमें ज्ञात हो, वह आत्माका ज्ञान कोई अद्भुत है। और उसका आनन्द भी आश्चर्यकारी है। जो अनन्त गुणसे भरा आत्मा आश्चर्यकारी तत्त्व है कि जो तर्कमें आये नहीं, युक्तिमें आये नहीं, कोई दृष्टान्तमें आवे नहीं। उसे समझनेके लिये दृष्टान्त भी होते हैं, युक्ति भी होती है, उसे समझनेके लिये। वह सब होता है। उसके लक्षण द्वारा पहजाना जाता है। तो भी उसका जो मूल स्वानुभूतिका स्वरूप है, वह बाहरसे किसी भी प्रकारसे वचनमें बता नहीं सकते। कोई दृष्टान्तसे

या कोई वाणीसे या कोई उपमासे बताया नहीं जाता। इसलिये आत्माका स्वरूप कोई अद्भुत एवं आश्चर्यकारी है।

जगतमें आश्चर्यकारी तत्त्व हो तो दूसरा कुछ नहीं है। देवलोकके देव आश्चर्यकारी (नहीं है), देवलोकके महेल आश्चर्यकारी नहीं है या चक्रवर्तीकी विभूती आश्चर्यकारी नहीं है। लेकिन एक आत्मा ही जगतमें आश्चर्यकारी है और यदि उसकी आश्चर्य, अद्भुतता एवं महिमा आवे तो जीव वापस मुड़कर उसे खोजनेके लिये, उसे प्रगट करनेके लिये प्रयत्न करता है।

वह लक्षणसे पहचाना जाय ऐसा है। ज्ञानलक्षण उसका असाधारण है। इसलिये ज्ञानसे पहचाना जाय ऐसा है। लेकिन उसका अनन्त गुणसे भरपूर अद्भुत स्वरूप, उसकी स्वानुभूतिमें जाय और अन्दर समाये तो पहचाना जाय ऐसा है। भेदज्ञान द्वारा और अन्दर स्वभावको पहचाननेसे वह प्रगट हो सके ऐसा है। इसीलिये कहनेमें आता है न कि तू दूसरा सब आश्चर्य छोड़ दे। बाहरका कुछ भी आश्चर्य (नहीं है)। बाहर देखनेका आश्चर्य नहीं है, परन्तु अंतरमें तू तुझे देखे। उसीमें सब आश्चर्य भरा है। उपदेश द्वारा, उपदेश देकर आत्माका स्वरूप बताया है। और वही करने जैसा, वास्तविकरूपसे तो वही है और ध्येय एक ही होना चाहिये, शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो। जबतक प्रगट न हो तबतक यह सब शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि होती है और अन्दर शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो, यह ध्येय होता है।

मुमुक्षु :- सच्चा मुमुक्षु है वह महेनत भी करता है, लेकिन ऐसी कोई ज्ञानकला है कि जो अभी हमें नज़रमें-लक्ष्यमें नहीं आती। प्रेक्टिकली बता सकते हो? ... वह सब तो बहुत सुना, सब मुमुक्षु प्रयत्न भी कर रहे हैं, फिर भी ऐसी कोई ज्ञानकला है कि जो सामान्य मुमुक्षुके लिये असाध्य है।

समाधान :- प्रयत्न करते हैं, लेकिन प्रयत्नमें क्षति है। ज्ञानकला, ज्ञान ज्ञानको पहचान सकता है। उसे तो गुरुदेवने वाणीमें बहुत समझाया है। गुरुदेव कुछ गुप्त नहीं रखते थे। वे तो जितना स्पष्ट हो सके उतना स्पष्ट कर-करके समझाते थे। ज्ञानकी कला तो अंतरमें स्वयं ज्ञानसे ज्ञानकी कला स्वयं प्रगट कर सकता है। मुमुक्षुका अन्दरका भाव और जोश, उसका जोश ही उसका मार्ग कर देता है। दूसरा कोई मार्ग नहीं करता, मार्ग गुरुदेव बताते हैं। गुरुदेवने मार्ग बहुत स्पष्ट किया है। लेकिन अंतरमें स्वयंका जोश और स्वयंकी तमन्ना हो तो वह स्वयंके पुरुषार्थसे ही मार्ग निकलता है। बाहरसे नहीं हो सकता।

ज्ञानकी कला अन्दरमें स्वयं ही प्रगट कर सकता है। ज्ञानस्वरूप सो मैं, यह बोलनेमें आये, लेकिन अन्दर कैसे प्रगट करना वह स्वयंको बाकी रह जाता है। वह सब स्थूलतासे

करता है कि मैं ज्ञान हूँ, ज्ञान हूँ। लेकिन अन्दर ऊतरकर अन्दर जो स्वयंको उत्साह आना चाहिये और ज्ञान ही मैं, ऐसा दृढ़ निश्चय करके निःशंकतासे ज्ञानरूप-ज्ञायकतारूप स्वयंको परिणमना चाहिये, वह करता नहीं है इसलिये उसकी भेदज्ञान कला प्रगट नहीं हो रही है। 'भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके घट'। वह भेदज्ञानकी कला स्वयं ही प्रगट नहीं करता है। अन्दर जिसे लगी हो उसे ही प्रगट होती है। अन्दर सहीरूपसे लगी ही नहीं है और सही प्रयत्न करता ही नहीं है। लगे तो प्रगट हुए बिना रहता नहीं। अपना स्वभाव है, प्रगट न हो ऐसा बनता ही नहीं। स्वयं ही है, स्वयंसे कोई दूर नहीं है। स्वयं ही है और स्वयंके समीप ही है। परन्तु स्वयंको लगी नहीं है, अन्दर सही रूपमें पानी पीनेकी प्यास लगे तो वह पानीको खोजे बिना रहता ही नहीं। अन्दर खरी लगी ही नहीं है। स्वयं आत्मा ही है न। न समझमें आये ऐसा नहीं है। विचार करके स्वभावको बराबर विचारसे नक्की करे तो समझमें आये ऐसा है। जिज्ञासासे, लगनीसे।

... होता है तब जीव एकदम चला जाता है, कुछ मालूम नहीं पड़ता। आत्मा भिन्न है, आत्मा एकदम चला जाता है। मनुष्यजीवनमें जो आत्माका किया होता है, वह अपना है, बाकी शरीर और आत्मा भिन्न है। मरण होता है तब तो आत्मा एकदम चला जाता है। गति करके चला जाता है। जबतक आयुष्य होता है तबतक रहता है, बाकी चला जाता है। दूसरा भव धारण करता है। जो भाव यहाँसे लेकर गया हो उसके अनुसार भव धारण करता है। परन्तु भवका अभाव करनेका मार्ग गुरुदेवने बताया है। वही मार्ग ग्रहण करे तो भवका अभाव हो। इस जन्म-मरणसे छूट जाय। जन्म-मरण करते-करते अनन्त कालसे ऐसे जन्म-मरण करता रहता है। उसमें कोई उपाय नहीं रहता है। चाहे जितने उपाय करे तो भी वह काम नहीं आते। ये तो एकदम चले गये। बाकी कोई उपाय करे तो भी कुछ काम नहीं आता। जब आयुष्य पूर्ण होता है, तब एकदम जीव चला जाता है। उसमें आत्माका करे।

गुरुदेवने भवका अभाव होनेका मार्ग बताया। अनन्त कालमें ऐसे गुरुदेव मिले, मिलना मुश्किल है। पंचमकालमें मिले और भवका अभाव होनेका मार्ग बताया। वह मार्ग ग्रहण करने जैसा है। बस, सबको वही करने जैसा है। जो उन्होंने किया वही सबको करना है। मनुष्य जीवनमें आत्मा कैसे पहचानमें आया? शाश्वत आत्मा है उसकी शरण ग्रहण करे तो भवका अभाव होता है। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रका शरण और अन्दर आत्माका शरण ग्रहण करना, जीवनमें वही श्रेयभूत है।

समाधान :- ... और वही यथार्थ जिनशासन है। जिसने आत्माको जाना उसने सब जाना। एक आत्माको जाननेसे सब जान लेता है। उसमें पूरा मुक्तिका मार्ग आ जाता है। अबद्धस्पृष्ट आत्माको जाना। आत्मा बन्धा नहीं है, आत्मा किसीसे स्पर्शित

नहीं है। कमलकी भाँति अलिप्त है। वस्तु स्वभावसे आत्मा सर्व प्रकारसे उसे कोई विभाव लागू नहीं पड़ता। वस्तु स्वभावसे वह शुद्ध है। ऐसे शुद्धात्माको जिसने जाना। पर्यायमें होता है, पर्यायका उसे ज्ञान होता है। उसकी साधना तैयारी होती है। द्रव्य पर दृष्टि करके अन्दरसे स्वानुभूतिकी दशा प्रगट होती है। वह सत्य जिनशासन कहनेमें आता है। सत्य जिनशासन उसे ही कहते हैं।

मुमुक्षु :- आपने तो बहुत स्पष्टीकरण करके समझाया..

समाधान :- सब समझाया है, गुरुदेवने पूरा मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवने जो वाणी बरसायी है, वह कोई अपूर्व है। और गुरुदेवके ही सब भक्त हैं। गुरुदेवने जो कहा है वही सबको कहना है। गुरुदेवका परम उपकार है। गुरुदेवने ही सब समझाया है।

मुमुक्षु :- दूसरा एक छोटा प्रश्न है, प्रमाणज्ञानके अंशको नय कहते हैं और नयज्ञान त्रिकालको प्रगट हुयी शुद्धिको एवं अशुद्धिको जानता है। वह ज्ञानका स्वपरप्रकाशकपना है या स्वपरप्रकाशक कारण?

समाधान :- स्वपरप्रकाशक ही है, उसका स्वभाव ही स्वपरप्रकाशक है। स्वपरप्रकाशका कारण नहीं होता। स्वपरप्रकाशक ज्ञान तो स्वपरप्रकाशक ही है। प्रमाणज्ञान है वह स्वपरप्रकाशक है। और उसमें नय तो एक अंश है। नय है वह स्वयं ज्ञानका एक अंश है। दृष्टि द्रव्य पर रहती है और साथमें जो ज्ञान है वह ज्ञान स्वको, परको सबको जानता है। ज्ञान स्वयंको जानता है, ज्ञान परको जानता है, ज्ञान बाह्य ज्ञेयोंको जानता है, ज्ञान विभावको जानता है, ज्ञान स्वभावको, अनन्त गुणोंको, ज्ञान सबको जानता है। ज्ञान स्वयं स्वपरप्रकाशक ही है। स्वपरप्रकाशकका कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- वाह! बहुत सुन्दर! अलौकिक!!

मुमुक्षु :- .. पर्याय गौण होती है, उस वक्त पर्याय होती है क्या? यह कृपा करके समझाइये।

समाधान :- स्वसन्मुख होता है तब? द्रव्य मुख्य ही होता है। द्रव्य पर दृष्टि होती है। द्रव्य मुख्य और पर्याय गौण होती है। पर्याय कहीं चली नहीं जाती। पर्याय तो होती है। स्वानुभूतिमें भी पर्याय है। स्वानुभूतिमें पर्याय चली नहीं जाती। पर्यायका तो वेदन होता है और द्रव्य पर दृष्टि होती है। पर्याय गौण होती है, लेकिन पर्यायका वेदन होता है, पर्याय चली नहीं जाती। ज्ञानमें दोनों है। वस्तु और पर्याय दोनों ज्ञानमें (रहते हैं)। दृष्टिमें पर्याय गौण होती है, पर्याय चली नहीं जाती, पर्यायका नाश नहीं हो जाता। पर्याय होती है।

मुमुक्षु :- हे माता! पूज्य गुरुदेवश्री तथा आप बारंबार ज्ञायक शुद्धात्माकी महिमा समझाते हो। हमें सुनते समय ज्ञायककी महिमा आती है, परन्तु हमारा झुकाव ज्ञायक

सन्मुख क्यों नहीं होता है? हमारेमें क्या क्षति रहती है? क्या कचास है? यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :- शुद्धात्माकी ओर झुकाव नहीं होता है, (इसलिये) कचास तो है ही। स्वयंकी रुचिकी कचास है, पुरुषार्थकी कचास है, स्वयंकी लगनीकी कचास है। कचासके कारण आगे नहीं बढता। अपना ही कारण है, अन्य किसीका कारण नहीं है।

गुरुदेवने वाणीकी इतनी वर्षा की है। स्वयं अपनी ओर नहीं जाता है, उसका कारण स्वयंका ही है। स्वयं अटका है। 'पोताना नयननी आळसे रे, निरख्या नहीं हरिने जरी'। अपनी आलसके कारण देखता नहीं, उसे देखनेका आश्चर्य नहीं करता है, उसे देखनेकी अन्दर लगनी नहीं लगी है। इसलिये अपना ही कारण है। अपनी आलसके कारण, अपनी रुचिकी मन्दताके कारण स्वयं अटककर खड़ा है। किसीका कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- अंतिम प्रश्न है, शुद्धात्माकी प्राप्ति यानी कि सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सहज साध्य है, ऐसा शास्त्रमें आता है और प्रयत्न साध्य है ऐसा भी शास्त्रमें आता है। तो इन दोनोंका मेल कैसे है, यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :- दोनोंका मेल ही है। सहज साध्य है। वस्तु स्वभाव है, वह सहज है। वस्तु स्वभावको कहींसे लाना नहीं पड़ता कि वस्तु स्वभाव नहीं है और प्रगट होता है। जो स्वभावमें है वही प्रगट करना है। इसलिये सहज साध्य है। और अपने पुरुषार्थ बिना होता नहीं, वह कोई कर नहीं देता, स्वयं परिणतिको पलटे तो होता है। परिणति पलटे बिना होता नहीं। सहज भी है और पुरुषार्थ भी है। अपने स्वभावमेंसे प्रगट होता है, सहजपने होता है। परन्तु वह प्रयत्नसे होता है। दोनों है।

वस्तुका स्वभाव... जो चावलका स्वभाव है, उसमें जो स्वभाव है वह प्रगट होता है। आमके बीजमें जो स्वभाव है, वह प्रगट होता है। लेकिन वह सहज स्वभावको प्रगट करे, पुरुषार्थसे-प्रयत्नसे प्रगट करता है।

मुमुक्षु :- हमारे पुरुषार्थकी कचास है।

समाधान :- पुरुषार्थकी कचास है। सहज है अन्दर सब भरपूर है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थसे सच्ची शुरूआत कैसे करनी?

समाधान :- सच्ची शुरूआत.. अपना हृदय ही कह देता है कि यह सच्ची शुरूआत है। अपना हृदय यथार्थ कह देता है। यथार्थ रुचिवंतको अन्दरसे शान्ति होती है। जिसे यथार्थ नहीं आये, उसे तबतक सुख नहीं लगता। उसे शान्ति लगे नहीं। जिसे यथार्थ हो, उसे यथार्थ शान्ति और सुख लगे कि मेरा प्रयत्न सच्चा है। और विचार करके

मैं जो ज्ञायकको ग्रहण करता हूँ, वह बराबर है। उसका हृदय अंतरसे क़बूल करता है। जो ऊपर-ऊपरसे अन्यथा करके पुरुषार्थ मान ले वह अलग बात है। बाकी सच्चे आत्मार्थीको सच्चेमें ही संतोष होता है। सच्चे आत्मार्थीको थोड़ेमें संतोष होता नहीं। वह जबतक न हो तबतक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, वह करना है। शास्त्रका चिंतवन, ज्ञायक कैसे पहचाना जाय, यह करना है।

मुमुक्षु :- ... ज्ञान ज्ञानाकार रूप है। ज्ञेयको जानने प्रति वैसे ज्ञानाकाररूप ज्ञान स्वयं हुआ है। ज्ञेयका उसमें कुछ नहीं है।

समाधान :- ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। ज्ञेय उसे ज्ञात नहीं करवाता, ज्ञान ज्ञानसे जानता है। उसमें ज्ञेयका कुछ नहीं है अर्थात् ज्ञेयके कारण ज्ञान जानता है, ऐसा नहीं है। ज्ञान ज्ञानसे जानता है। ज्ञेय उसे ज्ञात करवाये कि तू मुझे जाना, ऐसे बलात् ज्ञेय कुछ नहीं करता। ज्ञान ज्ञानसे ही जानता है। ज्ञान स्वयंसे जानता है। स्वयंको जानता है, अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको जानता है, लोकालोकको जानता है। ज्ञान स्वयं स्वयंसे जानता है। स्वतंत्र जानता है, ज्ञेयके कारण ज्ञान जानता है, ऐसा नहीं है। अज्ञानदशामें एकत्वबुद्धि हो रही है, इसलिये मानो ज्ञेयके कारण मैं जानता हूँ, ऐसी बुद्धि विपरीत बुद्धि है।

मैं ज्ञायक हूँ और मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, लेकिन ज्ञेयसे भिन्न हूँ। बाहरका कुझ ज्ञात ही नहीं होता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। केवलज्ञान सब जानता है। साधक दशामें अनेक प्रकारके ज्ञान होते हैं, उस ज्ञानमें सब ज्ञात होता है। नहीं जानता है ऐसा नहीं है। लेकिन भिन्न रहकर जानता है। यह समझना चाहिये।

निश्चय और व्यवहार, उसकी सन्धि कैसे है, वह समझना चाहिये। द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतामें सब गौण होता है। परन्तु उसमें व्यवहार है ही नहीं, ऐसा हो तो आत्मा सर्वथा शुद्ध ही है। तो उसे शुद्धता करनेके प्रयत्नका अवकाश नहीं रहता है। शुद्ध द्रव्यदृष्टिसे है, परन्तु पर्यायमें अशुद्धता है। इसलिये उसका उसे ख्याल रखना है, उससे भिन्न होकर शुद्ध पर्याय कैसे प्रगट हो, उसकी साधना करनी बाकी रहती है। इसलिये निश्चय-व्यवहारकी सन्धि कैसे है, यह समझना।

मैं ज्ञायक हूँ, मुझसे स्वयं ज्ञायक हूँ। ज्ञेयके कारण ज्ञायक हूँ, ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञेय है उस ज्ञेयको मैं जानता ही नहीं, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उस पर राग नहीं करता है, उससे भिन्न पड़ता है, परन्तु स्वयं परिणति लोकालोक प्रकाशक ऐसा ज्ञानका स्वभाव है। ज्ञानका ऐसा स्वभाव है (कि) अनन्तको जाने। लोक, अलोकको जाने, सबको जाने। उसमें यदि मर्यादा आ जाय कि इतना जाने और इनता न जाने तो वह ज्ञान स्वपरप्रकाशक कैसे कहलाये? ज्ञान अनन्त.. अनन्त.. अनन्त जितना है सब

जानता है। भूतकाल अनन्त व्यतीत हुआ, जो पर्यायें अभी व्यतीत हो गयी, उन सब पर्यायोंको जानता है। वर्तमानको जानता है, भविष्यमें क्या होगा उसे जानता है। ऐसी ज्ञानकी अनन्त-अनन्त शक्ति है। भूत, वर्तमान, भविष्यको जाननेकी। वह इतना ही जाने तो उसकी शक्तिकी मर्यादा आ गयी। इसलिये ज्ञान अनन्त जाने ऐसा उसका स्वभाव है। इसलिये दोनों अपेक्षाएँ समझनी है। व्यवहार है, लेकिन व्यवहार कोई वस्तु ही नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। निश्चय-व्यवहारकी संधि कैसे है, वह भी समझाते हैं।

मुमुक्षु :- निश्चय-व्यवहारकी संधिका मतलब?

समाधान :- द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे सब शुद्ध है, भेदभावकी अपेक्षासे सब गौण हो जाता है। परन्तु उसमें ज्ञायक स्वयं ज्ञायक है। लेकिन उसमें पर्यायमें अशुद्धता नहीं है, ऐसा नहीं है। और ज्ञान, दर्शन, चारित्र ऐसे गुण लक्षणभेदसे हैं, वस्तुभेदसे नहीं है। यह सब, उसके भेद कैसे हैं, उसकी पर्याय कैसे है, उसमें ज्ञेय-ज्ञायकका सम्बन्ध कैसे है और कैसे नहीं है? यह सब समझना है। (यह) निश्चय-व्यवहारकी संधि (है)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-९६

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- जगतमें जिन प्रतिमा, भगवान जो साक्षात् समवसरणमें विराजते हों, वह ध्यानमय (मुद्रा), आत्मामें लीन हो गये हो, ऐसा उनका दिखाव होता है। उनकी वाणी भिन्न होती है, वे भिन्न हैं। तो साक्षात् भगवान तो विराजते नहीं हैं, इसलिये श्रावक भगवानके दर्शन हेतु जिन प्रतिमाकी स्थापना करते हैं।

जगतमें शाश्वत प्रतिमाएँ हैं। जो देवलोकमें, मेरुमें, नंदीश्वरमें सब जगह शाश्वत, किसीके द्वारा किये बिना, पुद्गलके परमाणु प्रतिमारूप इकट्ठे हो गये हैं। रत्नमय प्रतिमाएँ पाँचसौ-पाँचसौ धनुषकी, जैसे समवसरणमें विराजते हों, वैसी प्रतिमाएँ। मात्र वाणी नहीं। मानो बोले या बोलेंगे, हूबहू भगवान जैसा लगे। कुदरत ऐसा कह रह है कि जगतमें भगवान सर्वोत्कृष्ट हैं। कुदरत भी भगवानकी प्रतिमारूप परिणमित हो गयी है। जगतमें सर्वोत्कृष्ट हो तो भगवान हैं। आत्मा तो शक्तिरूप स्वयंको पहचानना है। आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, लेकिन वह प्रगट किसने किया? भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं। जो जगतमें वाणी बरसायी और सबको मार्ग बता रहे हैं, स्वयं स्वरूपमें लीन हो गये हैं। उनका शरीर भी परम औदारिक हो जाता है। जगतमें सर्वोत्कृष्ट.. कुदरतके परमाणु प्रतिमारूप इकट्ठे हो जाते हैं। किसीने किया नहीं है। शाश्वत प्रतिमाएँ देवलोकमें हैं, नंदीश्वरमें हैं, मेरु पर्वतमें हैं। और प्रत्येक देवोंके जो महल हैं, उन सबके पास हर जगह असंख्यात ऐसी जिन प्रतिमाएँ चारों ओर हैं। ऐसी प्रतिमाएँ होती है।

भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं। उनकी प्रतिमा भी वंनदीय है, पूजनिक है। श्रावक स्वयं अंतरमें आगे नहीं बढ सकते हैं तो भगवानको देखकर उनको उत्साह आ जाता है। ओहो..! भगवान! जिन्होंने आत्माका स्वरूप प्रगट किया! ये भगवान। उनकी प्रतिमाओंका भी उतनी महिमा है। जगतमें जिसे अपने पिता एवं माता-पिता पर प्रेम हों, उनकी फोटू देखकर खुशी होती है। उनकी फोटू रखते हैं। उन पर उसे महिमा आती है, स्तुति करता है, गुणग्राम करता है। ऐसा करता है।

यह भगवान तो सर्वोत्कृष्ट (हैं)। जगतमें मार्ग दर्शानेवाले और अंतर स्वरूपमें लीन हो जाय। भगवानकी प्रतिमा, कुदरत प्रतिमारूप परिणमती है। श्रावक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा

करते हैं। और भगवान अहो! भगवानने (पूर्ण स्वरूप प्रगट किया), ऐसा करके भगवानको याद करते हैं। भगवान आप इस स्वरूपरूप परिणमित हो गये। मैं आपकी क्या पूजा करुँ? क्या भक्ति करुँ? क्या स्तुति करुँ? उसे उत्साह आता है।

उसी प्रकार गुरु पर, शास्त्रमें ऐसा तत्त्वका वर्णन आता है, ओहो! इस तत्त्वका वर्णन किसने किया? आचार्योंने। उनकी भी महिमा आती है, तत्त्वकी महिमा आती है, गुरु जो साधना करते हैं, ओहो..! आत्माकी साधना करते हैं। मुझसे कुछ नहीं होता है। साधना करते हैं, उन्हें नमस्कार! उनकी क्या सेवा करुँ? और क्या पूजा करुँ? जगतमें अहो..! भगवानकी क्या पूजा करें? क्या महिमा करें?

शास्त्रमें (आता है), जिन प्रतिमा जिन सारखी, नमें बनारसीदास। बनारसीदास कहते हैं। जिन प्रतिमा जिनेश्वर समान ही है। उसमें कोई फ़र्क नहीं है। दर्शन करनेवालेको ऐसा ही हो जाये, उस वक्त ऐसा विकल्प नहीं आता कि यह भगवान हैं या प्रतिमा? उसे तो भावका आरोप ही हो जाता है कि भगवान हैं। अल्प भवस्थिति जाकी सो जिनप्रतिमा प्रमाणे जिन सारखी। जिसकी भवस्थिति अल्प है, वही जिनप्रतिमाको जिनेश्वर समान ही देखता है।

ओघे-ओघे रूढिगतरूपसे तो सब भगवानके दर्शन करते हैं। ऐसे नहीं, लेकिन अन्दरसे उत्साह आता है, ओहो..! भगवानने आत्माका स्वरूप प्रगट किया। जिस स्वरूपकी मैं इच्छा करता हूँ, जिसकी मुझे भावना है। उस स्वरूपको प्रगट करनेवाले जिनेन्द्र देव जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं, उनकी क्या महिमा करुँ? इसलिये उसे प्रतिमा पर एकदम प्रेम आता है। पूजा, भक्ति सबमें उसे प्रेम आता है। उनके कल्याणकके दिन आदि सब पर, उसे देखकर उसे उत्साह आता है।

मुमुक्षु :- सत् शास्त्रके दर्शन करना, ऐसा आता है।

समाधान :- हाँ, शास्त्रके दर्शन करना। शास्त्र भी पूजनिक है। तत्त्वकी बात उसमें आती है। वस्तु स्वरूप (आता है)। आचार्योंने शास्त्र रचे हैं। जिसमें आत्म स्वरूपका वर्णन किया है। वह भी पूजनिक है, वह दर्शन करने योग्य है।

मुमुक्षु :- उसमें आत्म स्वरूपका वर्णन है इसलिये?

समाधान :- हाँ, आत्म स्वरूपका वर्णन है इसलिये पूजनिक है। इसलिये पूजा (करते हैं)। आत्म स्वरूपका वर्णन और आचार्य, मुनिराज जो आत्माकी आराधना करते हैं, उन्होंने वह शास्त्र रचे हैं। और उसमें आत्माका वर्णन है, इसलिये पूजनिक है।

मुमुक्षु :- जब पूजा करते हैं, तब आठ प्रकारके अर्घ्य चढाया जाता है, उसका क्या प्रयोजन है?

समाधान :- भगवान पर महिमा आती है। भगवान मैं क्या धरुँ? आपको तो

कुछ नहीं चाहिये। परन्तु आपके गुणोंकी मुझे महिमा आती है। इसलिये जगतमें जो उच्च वस्तुएँ हैं, सामान्य वस्तु नहीं परन्तु उच्च वस्तुएँ आपके चरणमें धरता हूँ। अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, फल आदि आठ प्रकारके द्रव्य लेकर मैं आपकी पूजा करुँ, मैं आपके चरणमें क्या रखुँ? मेरेमें कोई शक्ति नहीं है। मैं आपकी पूजा करता हूँ। पूजा करनेके लिये अष्ट प्रकारी पूजा करता है। उसमें कुछ जगह साधारण वस्तुएँ रखते हैं, वह नहीं (होना चाहिये)। यह बराबर है, अक्षत, पुष्प, जल, चंदन आदि। यह उसकी विधि है। पूजा करनेकी विधि इस प्रकारकी है।

वह श्रावकोंका (कर्तव्य है)। श्रावक जो गृहस्थाश्रममें होते हैं, जो अपने लिये खाते-पीते थे, अपने लिये पैसे खर्च करते हो, भगवान पर उसे भाव आये बिना नहीं रहता। मुनिराजने जिसका त्याग कर दिया है, उनके पास कुछ नहीं है। तो वे मात्र भगवानके दर्शन करते हैं और स्तुति करते हैं, और स्तोत्र रचते हैं। बाकी उनके पास कोई वस्तु नहीं है, पूजा नहीं करते हैं, वे भावपूजा करते हैं। जो श्रावकोंके पास वस्तुएँ हैं, वह वस्तुएँ लेकर पूजा करते हैं।

आचार्यों तो भगवानके स्तोत्र रचते हैं। आचार्योंको एकदम उत्साह आ जाता है। उस प्रकारके स्तोत्र रचते हैं। भगवान! मैं तो चारों ओर आपको ही देखता हूँ। ये बादलके टूकड़े हुए, वह इन्द्रोंने आपकी स्तुति करके भूजाएँ लंबी की तो बादलोंके टूकड़े हो गये। ऐसे अनेक प्रकारकी स्तुति उपमा देकर करते हैं। ऐसे आचार्योंको उतनी भक्ति आती है, मुनिराजोंको (आती है)। हे भगवान! यह नदी बह रही है, आपने जब दीक्षा ली तब सबको आपका विरह लगा था। उस बहाने नदी रो रही है, कलकल-कलकल आवाज करती है।

मुमुक्षु :- भगवानके विरहमें?

समाधान :- हाँ। मुनिराज ऐसे शास्त्र रचते हैं। उतनी भक्ति आती है! भगवानको अनेक प्रकारकी उपमा देते हैं। भक्तिके भावमें कहते हैं। वे उपमासे कहते हैं, लेकिन ऐसी भक्ति आये बिना नहीं रहती।

मुमुक्षु :- स्वसन्मुख होनेके पुरुषार्थके लिये रुचि...?

समाधान :- हाँ, रुचि, विचार, वांचन आदि। सबकी संधि मिलाकर करना। द्रव्य अपेक्षासे क्या है? पर्याय अपेक्षासे क्या है? सब मिलान करके करना। द्रव्य और पर्यायकी संधि कैसे है, समझकर करना।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रके दर्शन सम्बन्धित पूछा, बहुत समयसे ओघे-ओघे करनेके बजाय माताजीके पास समझकर करें तो विशेष आनन्द आये। उसमेंसे बहुत समझ प्राप्त हुयी। आरती उतारनेका प्रयोजन..?

समधान :- वह भी एक प्रकारकी भगवानकी भक्ति है। वह भक्तिका भाव है। कुछ जगह आरती नहीं उतारते हैं, कोई-कोई उतारते हैं। लेकिन भगवान पर महिमा आती है इसलिये आरती उतारते हैं। एक प्रकारकी भक्ति है। श्रावकोंको भक्ति और महिमा आती है। भगवान! मैं आपका क्या करुँ और क्या न करुँ? मैं जो कुछ भी करुँ, आपका ... मैं यह सब संसारकी ऋद्धियाँ हैं, उसकी मुझे कोई महिमा नहीं है। मुझे आपकी महिमा है, इसलिये मैं आरती द्वारा आपके गुणोंकी महिमा करता हूँ। आपका वारना ऊतारुँ कि वाह! आपने यह गुण प्रगट किये। उसे मैं क्या कहूँ? इसलिये वह आरती ऊतारता है। वाह रे वाह..! भगवान! ऐसा करके आरती ऊतारता है, वह एक प्रकारकी भक्ति है।

... कितना उनका मान! लोग उनको कितना (मानते थे)। उनकी प्रतिष्ठा कितनी थी स्थानकवासीमें। उन्हे माननेवाले कितने थे। उन्होंने शास्त्र पढ़कर छोड़ दिया कि यह जूठा है। कितनी उनकी प्रतिष्ठा। गुरुदेव तो स्वयं एकदम (निस्पृह थे)। कोई सामने देखे, न देखे, उनको कुछ नहीं था। एकदम अपनेमें ही थे। लेकिन लोगोंमें उतनी उनकी प्रतिष्ठा थी।

मुमुक्षु :- जब महोत्सव था तब हम बहुत छोटे थे।

समाधान :- ... सरलता प्रगट करे तो माया चली जाती है। दोनों प्रकारकी माया। दर्शनमोह ... सब विभाव है वह विभाव ही है। मैंने यह कैसे जिता? मैंने यह कैसा किया? ऐसा कुछ आता है। मैं दूसरे प्रकारसे आकर खड़ा हूँ। तू मान, तुझे उसमें ठगता है। एक गुण (प्रगट) करके उसकी स्वयं विशेषता करने जाय तो दूसरा दोष आ जाता है। यह मैंने कितना अच्छा किया, यह गुण मैंने कैसा अच्छा (प्रगट) किया, ऐसा करने पर तुझे मान ठग लेता है। इसलिये कहते हैं, माया आदि कषायोंके अन्दर... भिन्न-भिन्न कषाय उस प्रकारसे जीते नहीं जाते। एक ज्ञायकको स्वयं पहचाने तो सबको जीता जाता है। लेकिन पात्रताकी भूमिकामें ध्यान रखने जैसा है। 'कषायनी उपशांतता मात्र मोक्ष अभिलाष'। आत्मार्थीको प्रयोजन आत्माका होना चाहिये। उसमें उपशांतता होनी चाहिये। विशालबुद्धि, जितेन्द्रियता, सरलता, मध्यस्थता आदि आता है न? तत्त्व पानेका उत्तम पात्र है। सरलता, मध्यस्थता, विशालता तत्त्व ग्रहणकी शक्ति होनी चाहिये, जितेन्द्रियता होनी चाहिये, सरलता होनी चाहिये, मध्यस्थता होनी चाहिये। वह तत्त्व पानेका उत्तम पात्र है।

हृदय ऐसा सरल होना चाहिये, वक्रता नहीं होनी चाहिये। जो कोई कुछ बात करे तो सीधी तरहसे स्वयं ग्रहण कर सके। ऐसा अपना हृदय होना चाहिये। वक्रतामें छल-कपट नहीं होना चाहिये। सरलतासे जो बात हो वह सीधी ग्रहण हो, ऐसा अपना

चित्त और अंतरमें अपना चित्त होना चाहिये कि अन्दर विभावभावोंको स्वयं पहचान सके, आडी-टेढी रीतसे बचाव करने हेतु वक्रता धारण करे (नहीं)। टेढा-मेढा अन्दरमें ... ऐसा सीधा स्वयंका वक्रता रहित सरल चित्त होना चाहिये। वक्रता नहीं आती। ... यह सब आता है न?

फिर संतोष द्वारा लोभको। अतिशय लोभ अच्छा नहीं। इतना लोभ... या तो शरीर प्रति, या धनके प्रति, अनेक प्रकारका (लोभ होता है)। जहाँ-जहाँ स्वयंको राग हो, उसका अतिशय लोभ नुकसानका कारण होता है। चमरी गायने प्राणत्याग किये। उसके बालकी पूंछ (अटक गयी), उसके बाल ऐसे होते हैं, चमरी गायके। उसको इतना राग था। बेलमें लिपट गयी। लिपटनेके बाद अन्दरसे निकली ही नहीं। क्योंकि निकलूँगी तो मेरे बाल टूट जायेंगे। इसलिये बालके लोभमें निकली नहीं तो शिकारी आकर उसका वध करता है। ऐसा कहते हैं।

ऐसा कहते हैं कि, स्वयं लोभके कारण ऐसे पैसेमें, शरीरादिके लोभमें धर्मकी ओर मुड़ता नहीं है और मनुष्य जीवन पूर्ण हो तो देह (छूटकर) आयुष्य पूरा हो जाता है। बादमें करुँगा, बादमें करुँगा, इतना कमा लूँ, इतना कर लूँ, इतना यह कर लूँ, ऐसा करते-करते आयुष्य पूर्ण हो जाता है। धनका लोभी। लोग कहते हैं न? चमडी टूटे लेकिन दमडी न छूटे। शरीर जाय तो भी उसे पैसा अन्दरसे छूटता नहीं। ऐसे कुछ जीव होते हैं। प्राण जाय तो भी उसके पैसे नहीं छूटते, ऐसे जीव होते हैं। पैसे पर कितना राग होता है। शरीर पर उतनी ममता होती है। बैठे-उठे तो भी मानो मेरे शरीरको कुछ हो जायेगा। शरीरको सँभाल-सँभालकर करता है। लेकिन उसमें तेरा आयुष्य पूरा हो जायेगा। ऐसा करुँगा तो शरीर अच्छा रहेगा और ऐसा करुँगा तो आरोग्य रहेगा, ऐसा करुँगा तो ऐसा रहेगा, ऐसा करते-करते स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है। वह तो जैसा बनना होता है वैसा बनता है। उसे अमुक प्रकारसे रख सकते हैं। ऐसे रह नहीं सकते। अपना आयुष्य पूरा हो जाय तो भी शरीर रखुँ, धन रखुँ..। देव-गुरु-शास्त्रमें धनव्यय करनेके प्रसंगमें जिसका धन नहीं छूटता। देव-गुरु-शास्त्रका प्रसंग आवे, उनकी अमुक प्रकारकी सेवाका, ऐसे प्रसंग आवे, सेवाके, वात्सल्यके प्रसंग आवे उसमें जो मन-वचन-कायासे शरीर आदि जो कुछ.. चाहे जो भी उपसर्ग आवे तो भी वह कर नहीं सकता, तो ऐसा लोभ किस कामका?

संतोष द्वारा लोभको (जीते)। उसे संतोष है। इस जीवनमें क्या चाहिये? कुछ भी तो नहीं चाहिये। पेटमें रोटी डालनी है, बस, उतना ही चाहिये। ओढना ओर रोटी, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। यह सब धन तो पड़ा रहेगा, कहाँ साथ आनेवाला है? शरीरको चाहे जितना सँभल-सँभलकर आवे तो जो खरा प्रसंग होता है, वह चला जाता है,

तो शरीरको सँभालकर क्या करना है? इसलिये जीव ऐसा करता है। एक इतनी रोटी चाहिये और थोड़े कपड़े चाहिये। उसके लिये पैसा-पैसा करता रहता है। देव-गुरु-शास्त्रमें जिसका जीव उदारतासे कुछ (नहीं धनव्यय करता है) तो वह मनुष्य जीवन किस कामका? वह धन भी किस कामका और मनुष्य जीवन भी किस कामका? शरीर भी किस कामका? कुछ नहीं।

अन्दरसे एक आत्मामें परपदार्थका अंश भी नहीं है। एक पुद्गल उसका नहीं है। ज्ञायक स्वरूप आत्मा, जो देहातीत दशा धारण करते हैं, जो सब छोड़कर निष्परिग्रही होकर मुनि चल देते हैं। बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह, विभाव और बाहरका छोड़कर एक आत्मामें ज्ञायककी धाराको चारित्रमें लीनता करते हैं। निष्परिग्रह (हैं)। उन्हें लोभ आदि सब छूट जाता है। ऐसी मुनिओंकी दशा (होती है)। यह सब मुनिओंको कहते हैं न? हे मुनि! तूने यह सब लिया, तुझे लोभ क्यों बीचमें आता है? मुनिओंकी ओर (बात) लेते हैं)। उनकी चारित्रदशाके अन्दर सम्यग्दर्शनपूर्वक छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। मुनिओंको कहाँ लोभ था? परन्तु अल्प लोभ भी मुनिओंको पुसाता नहीं। मुनिओंको दूसरा लोभ तो है नहीं। आहार लेने जाते हैं। ऐसा सब मुनिओंको होता है। तो भी मुनिओंको कहते हैं, तुझे किसी भी प्रकारका पुसाता नहीं।

... शोभा नहीं देता। आत्माका स्वभाव ही नहीं है। क्रोधका, मानका, मायाका, लोभका। संतोष। संतोषस्वरूप आत्मामें कुछ है ही नहीं। प्रवेश ही नहीं हुआ है। आत्माको कुछ चाहिये ही नहीं। आत्मा स्वयंसे परिपूर्ण है। उनके गुणोंका परिग्रह, वही उनके पास धन है। दूसरे धनकी उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है। मुनिकी बातमेंसे जिसे जो लागू पड़े वह लेना।

... आता है न? दानमें देता है। उसकी शक्ति अनुसार। बहुत खेद हो जाय या शरीर काम नहीं करता हो, .. यथाशक्ति आता है। लेकिन यह तो चमरी गायका दृष्टान्त दिया। एक बाल भी टूट जाय, वह उसे पुसाता नहीं। बहुत लोग (ऐसे होते हैं), चमड़ी टूटे, दमडी न छूटे, ऐसे बहुत लोग पैसेमें ऐसे होते हैं। यह चमड़ी जाय तो भले जाय, लेकिन पैसा छूटता नहीं। ऐसे भी कुछ लोग होते हैं। गाय भी ऐसी होती होगी, चमरी गाय। पूँछ ऊँची करती होगी तो उसे दिखायी देता होगा।

मुमुक्षु :- कैसी ममता!

समाधान :- हाँ, यह तो बड़ा लोभ है, बालका। बाल जाय वह भी पुसाता नहीं। उस जगह अल्प ..., यह लोभ तो बड़ा है।

... श्रेणिमें बीचमें आये तो केवलज्ञान नहीं होता है। इतना लोभ भी नुकसान करता है। सूक्ष्म ... इतना संज्वलनका है। उन्हें कोई प्रगटरूपसे धनका, शरीरका, कुटुम्बका

ऐसा कुछ भी नहीं है। अन्दरमें कुछ है, अबुद्धिपूर्वकका कुछ है। मन्दपने.. उसका नाम भी कुछ नहीं सकते, ऐसा कोई लोभ है। इतना लोभ नुकसान करता है, तो इतने बड़े लोभकी तो क्या बात करनी? वह लोभ तो बैलगाड़ी जितना हुआ।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-९७

समाधान :- इस धनतेरसमें सब बाहरका करते हैं, वास्तवमें तो अंतरमें धनतेरस है। आत्माका स्वरूप धन है, उसे प्रगट करना वह वास्तवमें धनतेरस है। महावीर भगवान मोक्ष पधारे, इसलिये यह धनतेरस आदि दिवस आते हैं। अंतरमें स्वरूपधनको प्रगट करना वह धनतेरस है। अंतर स्वरूपमें, अंतरमें आत्मामें सब खजाना भरा है। आत्माको पहचानकर, भेदज्ञान करके उस पर दृष्टि करके, उसकी महिमा लाकर अन्दर स्वरूपका धन प्रगट करना, यह धनतेरस है।

वह नहीं हो तबतक शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र, भगवानने जो प्राप्त किया, तीर्थंकर भगवान महावीर भगवानने जो प्रगट किया, उसे स्वयं स्मरणमें लाकर उस प्रकारकी शुभभावना, भक्ति महिमा बाहरसे भगवानकी करे। अंतरमें आत्माका स्वरूप-धन कैसे प्रगट हो? यह करना है। जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रकी महिमा लावे। भगवानने सब प्रगट किया, गुरु साधना करते हैं, शास्त्रमें सब वर्णन आता है। शुभभावमें वह और अंतरमें शुद्धात्मामें धन भरा है, उसे पहचाने। उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसमें लीनता करे।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- भगवानका निर्वाण कल्याणकका महोत्सव करते हैं, उसमें आगे-पीछेके दिन मंगल दिन हैं। उसमें धनतेरस कहते हैं। लौकिकमें धनतेरस। गौतमस्वामीको केवलज्ञान प्रगट हुआ, भगवान मोक्ष (पधारे)। इसलिये आगे-पीछेके दिनोंको मंगलरूप कहते हैं। शास्त्रमें तो यह एक निर्वाण कल्याणकका दिन आता है। उसके आगे-पीछे के दिनोंको मंगलरूप कहते हैं।

मुमुक्षु :- सविकल्पात्मकमें पहले रुचिमें स्वयंका ज्ञायक आत्मा आना चाहिये और उसे परकी रुचि छूट जानी चाहिये। उसके बाद उसे दृष्टिका ज़ोर आवे। उसका अर्थ यह हुआ कि जबतक विकल्पात्मकमें उसे मेरा आत्मा ही मुझे सुखरूप है, दूसरा कुछ भी यानी ... विकार भी सुखरूप नहीं है। ऐसा जबतक अभिप्रायमें निर्णय न हो, तबतक दृष्टिका ज़ोर अर्थात् द्रव्य सन्मुख होकर यह ज्ञायक है वही मैं हूँ, ऐसा सच्चा ज़ोर उसे आ नहीं सकता। ऐसा आपका कहना था?

समाधान :- ज़ोर नहीं आता। स्वयंमें सुख है ऐसा निर्णय न हो, अपनी ओर

रुचि न आवे तो अपनी ओर ज़ोर नहीं आता। द्रव्य पर दृष्टिका श्रद्धाका जोर नहीं आता। क्योंकि मेरेमें ही सुख है, वही प्रयोजनभूत है, वही जरूरतका है, उतनी रुचि अंतरमेंसे नहीं हो तो श्रद्धाका जोर नहीं आता।

मुमुक्षु :- इस प्रकारसे विचार करके एक बार नहीं परन्तु .. भावमें बैठता है कि सचमुचमें सुख मुझमें है और इसमें सुख नहीं है। इस प्रकार ज्ञायक है वही मैं हूँ, यानी कि आश्रय करनेका जो... यह ज्ञायक ही मैं हूँ और यह सब मुझसे पर है। इस प्रकार कहनेके बाद क्या करना बाकी रह जाता है कि जिसमें अभी जिस प्रकारका परिणाम-फल आना चाहिये, वह नहीं आता है?

समाधान :- नक्की करके ज्ञायकका आश्रय नहीं लेता है। ज्ञायकका जो आश्रय लेना चाहिये वह आश्रय लेता नहीं। बुद्धिसे विचार किया, विचार-विचारमें रह गया और श्रद्धा की। परन्तु ज्ञायकका जो आश्रय लेना चाहिये वह आश्रय लेता नहीं। मैं यह ज्ञायक ही हूँ।

क्षण-क्षणमें उसे जो लगना चाहिये, क्षण-क्षणमें भासना चाहिये कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ। ज्ञायकका आश्रय लेता नहीं है इसलिये आगे नहीं जाता। ज्ञायकका आश्रय नहीं लेता है। आश्रय-दृष्टि पर ओर है। नक्की तो किया लेकिन आश्रय ज्ञायकका लेना चाहिये, ज्ञायकका आश्रय नहीं लेता है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकका आश्रय यानी आपको क्या कहना है?

समाधान :- यह ज्ञायक है, यह ज्ञायक है वही मैं हूँ, ऐसा क्षण-क्षणमें अंतरमें ज्ञायक ही उसकी दृष्टिमें भासित होना चाहिये। क्षण-क्षणमें ज्ञायक दृष्टिमें भासित नहीं होता है। पर भासता, विभाव भासता है, उसका वेदन होता है। लेकिन ज्ञायकके अंतरमें जाय। मैं तो ज्ञायक ही हूँ, ऐसा उसे अंतरमें लगता नहीं। उसके आश्रयमें एक ज्ञायक नहीं आता है। कोई भी कार्य करते हुए, मैं तो भिन्न ही हूँ, वह जो उसे क्षण-क्षणमें लगना चाहिये, वह लगता नहीं है। उसकी लगनी उस प्रकारकी (लगी नहीं है)। ज्ञायकका आश्रय नहीं लेता है। विचार किया, निर्णय किया कियह ज्ञानस्वभाव ही मैं हूँ, लेकिन ज्ञानरूप रहनेका स्वयं प्रयत्न नहीं करता है। ज्ञान सो मैं, ऐसा नक्की किया, परन्तु वह ज्ञातारूप कहाँ रहता है? एकत्वबुद्धि होती है।

मुमुक्षु :- माताजी! जब ज्ञानमें नक्की होता है, जिस प्रकारसे भिन्नता है, परद्रव्यकी, विभावकी और एक समयकी पर्याय और ज्ञायकभाव, उसकी जैसी भिन्न है वैसा विचार किया, और यह विचार करने पर ऐसा हुआ कि, सचमुच मेरा परमार्थ स्वरूप तो ज्ञायक ही है। अच्छा, दृष्टिमें अर्थात् रुचि अपेक्षासे भी विचार किया कि ज्ञानमें तो पहलू होनेसे गौण-मुख्य होते हैं। लेकिन दृष्टिमें तो विचार किया कि एक ज्ञायकभावके

सिवा कहीं भी थोड़ा भी सुख नहीं है। और ऐसे ... करता नहीं।

समाधान :- नक्की किया कि उसमें सुख नहीं है, वह नक्की विचारमें रहा, नक्की किया कि सुख नहीं है। परन्तु वह सुख नहीं है तो उसका कार्य, ज्ञायकको ग्रहण करके ज्ञायकका आश्रय जो उसे अंतरमें आना चाहिये, ज्ञायकका आश्रय नहीं हुआ है। ज्ञानस्वभाव हूँ, ऐसा निर्णय किया, लेकिन ज्ञानस्वभावरूप होनेका प्रयत्न नहीं करता है।

मुमुक्षु :- आपसे यह जानना है कि ज्ञायक होनेका प्रयत्न अथवा ज्ञायक होता नहीं है, तो ज्ञायक कैसे होना?

समाधान :- उसका आश्रय नहीं लेता है। उसे क्षण-क्षणमें जो विचार, विकल्प आवे उस विकल्पमय ही स्वयं हो जाता है, उस वक्त भिन्न कहाँ रहता है? जो-जो विकल्प आवे, विचार आवे, उस विकल्पमय एकमेक हो जाता है। नक्की किया कि मैं तो यह जाननेवाला ज्ञानस्वभाव हूँ। कोई भी विकल्प, विचार आवे उसमें एकमेक होता है। जो-जो विचार आते हैं उस वक्त विचार करके देखे तो एकमेक हो जाता है, थोड़ा भी अन्दर भिन्न नहीं रहता है। भिन्न हूँ, ऐसा नक्की किया तो उसका एकत्वबुद्धिका रस कम हुआ, सब हुआ, मन्दता हुयी, लेकिन वह भिन्न नहीं रहता है। भिन्न रहनेका भेदज्ञानका प्रयत्न नहीं करता है। नक्की किया कि मैं भिन्न हूँ। नक्की तो किया, भिन्न हूँ। लेकिन भिन्न रहनेका प्रयत्न नहीं करता है।

मुमुक्षु :- दूसरा प्रयत्न तो माताजी! एकाग्रता हो और विकल्प टूटे तो निर्विकल्प अनुभव हो, तो-तो ऐसा लगे कि ज्ञानरूप रहा। जबतक राग टूटे नहीं तबतक तो शास्त्र कहता है और आप कहोगे कि एकताबुद्धि है और रागको तू तेरा मानता है। अभ्यास चाहे जितना करते हो, भिन्न रहनेका प्रयत्न करते हो, तो आपको बीचमें एक बात करता हूँ कि, ऐसा साधन है कि...

समाधान :- भिन्न होकर विकल्प टूटे वह निर्विकल्प होता है, वह तो होता है, लेकिन उसके पहले उसका भेदज्ञानका अभ्यास नहीं है। भेदज्ञानका अभ्यास। वह विचार करे, शरीर जब काम करता हो, काम करता हो, बोलता हो, खाता हो, पीता हो उस वक्त उसे ख्याल रहता है कि मैं भिन्न हूँ? प्रतिक्षण ख्याल रहता है? भेदज्ञानका अभ्यास कहाँ करता है? यह शरीर भिन्न, यह भिन्न, विकल्प भिन्न, राग भिन्न, उससे मैं भिन्न हूँ, ऐसा उसे बार-बार उसकी परिणतिमें आता है? उसका अभ्यास तो पहले होता है न? एकदम निर्विकल्प हो वह क्वचित् किसीको होता है। एकदम भेदज्ञान होता है और निर्विकल्प हो जाता है। पहले तो उसका अभ्यास होता है।

मुमुक्षु :- आपको तो ऐसा कहना है कि इतना नक्की करनेके बाद बारंबार भेद अभ्यास होना चाहिये?

समाधान :- भेदका अभ्यास होना चाहिये। पहले उसे सहज नहीं होता है। सहज भले नहीं हो, लेकिन उसके विचारमें उस प्रकारसे आता है। सहज भेदज्ञानकी धारा हो निर्विकल्प होनेके बाद, वह अलग बात है, उसे तो सहज है। प्रत्येक कार्यमें सहज ही है। उसके अभ्यासमें चौबीस घण्टेमें जो-जो कार्य और जो-जो विचार चलते हों, उसके अन्दर स्वयंको कितनी बार भिन्नता भास्यमान होती है?

मुमुक्षु :- भास्यमानमें तो माताजी, ऐसा है कि विकल्पपूर्वक तो विचारमें लेते हैं कि मैं ज्ञायक हूँ, यह मुझसे भिन्न है। राग हो तो भी मुझसे भिन्न है। परद्रव्यकी कोई क्रिया होती हो तो वह भी मैं करता नहीं हूँ।

समाधान :- लेकिन जब वह किसी कार्यमें तन्मय हुआ हो उस वक्त उसे भिन्नता रहती है या नहीं?

मुमुक्षु :- वह नहीं रहता।

समाधान :- जिस समय तन्मय होकर कोई विचारोंमें उलझा हो, उस वक्त उसे भिन्नता रहती है या नहीं? तो भेदज्ञानके अभ्यासमें उसकी क्षति है।

मुमुक्षु :- उतना भेद अभ्यास होना चाहिये।

समाधान :- हाँ, भेदज्ञानका अभ्यास होना चाहिये। बार-बार नक्की करे कि मैं भिन्न ही हूँ। विचारोंसे नक्की करता रहे, लेकिन उसके कार्योंमें, उसकी परिणतिमें वह कितनी बार भिन्न रह सकता है?

मुमुक्षु :- विकल्पपूर्वक भी निरंतर भिन्न नहीं रहता है, बात सच्ची है।

समाधान :- हाँ, भिन्न कहाँ रह सकता है? अभी तो यह भेद अभ्यासकी बात है। सहज तो बादमें होता है। बादमें क्या करना है? परन्तु यह भेदज्ञानका अभ्यास करना है। भिन्न नहीं रह सकता है। साधनाकी पर्याय तो ऐसे ही प्रगट होती है कि मैं चैतन्य हूँ, ऐसी दृष्टिका जोर और आश्रय कब हो? कि भेद-भिन्न पड़नेका प्रयत्न अभ्यास हो तो उसका आश्रय बलवानरूपसे होता है, नहीं तो बलवानरूपसे विकल्पका आश्रय रह जाता है। विकल्पसे नक्की करता है। भले ज़ोरसे नक्की करे कि मैं भिन्न ही हूँ। मैं भिन्न ही हूँ, भिन्न ही हूँ यह यथार्थ है। तो उसे इतना अन्दर लगे कि मैं भिन्न ही हूँ। भिन्नरूप रहता तो नहीं है। उतनी अन्दर रुचिकी तीव्रता होनी चाहिये कि मुझे निश्चित है कि मैं भिन्न हूँ। लेकिन भिन्न रह नहीं सकता है। उतना प्रयास नहीं है।

निर्णय किया कि इस गाँवमें जानेसे नुकसान है। ऐसा नक्की किया। इसमें सुखका कारण नहीं है, इस ओर जानेसे ही सुख है। ऐसा नक्की किया तो फिर जो सुखका रास्ता है, सुखका धाम है वहाँ जानेका प्रयत्न-प्रयास करता नहीं है, उस ओर कदम

बढाता नहीं। विचार करके खड़े-खड़े नक्की करता है लेकिन उस ओरका प्रयास कितना होता है? नुकसान है, ऐसा नक्की किया तो क्यों जाता है? उतनी उसकी रुचिकी क्षति है। उस ओर उसे दुःख लगे तो भी, उस ओर दुःखका गाँव-नगर है तो भी उस ओर जाता है। और इस ओर कितनी बार प्रयास करता है?

श्रद्धाकी बलवत्तरता हो तो उसे कार्यान्वित करना चाहिये। विचारसे भले श्रद्धा करता हो। पहले ऐसे विचारपूर्वक श्रद्धा हुए बिना रहती नहीं। लेकिन उसमें ऐसा है कि धीरे-धीरे हो, उतावलीसे हो या धीरे-धीरे हो परन्तु मार्ग ग्रहण किया है, जिस मार्गको विचार करके ग्रहण किया उसे तो बराबर टिकाकर उस ओर जानेका प्रयत्न करना। तो उसे आगे जानेका अवकाश है। तेरी श्रद्धा तू बराबर रखना। शास्त्रमें आता है, हो सके तो ध्यानमय प्रतिक्रमण करना, नहीं तो श्रद्धा कर्तव्य है। श्रद्धा यानी उसमें सब ले लेना। वह तो सम्यग्दर्शनपूर्वक है, फिर भी श्रद्धा तो बराबर रखना। प्रयत्न तेरा कम हो, धीरे हो, त्वरासे हो, कोई बार थक जा तो भी तेरी विकल्पपूर्वककी श्रद्धाको बराबर दृढ़ रखना। तो तुझे आगे बढनेका अवकाश है।

यदि तू थक जा और आगे नहीं बढ़ सके तो थककर तू दूसरे रास्ते पर मत जाना। उसे तो बराबर ग्रहण करके रखना। गुरुदेवने जो मार्ग बताया और तुने विचारसे अंतरसे नक्की किया, स्वभावका मिलान करके नक्की किया तो उसे तो तू बराबर ग्रहण करके रखना। उसे तो तू सँभालकर ही रखना। उससे भी आगे बढे वह अलग बात है, लेकिन जहाँ खड़ा है उतना तो सँभालकर रखना। यह धन सँभालनेका कहते हैं न? तेरे गहने, धन आदि (सँभालकर रखना)।

वैसे पंचमकालमें गुरुदेव मिले और यह जो मार्ग बताया, वह पंचमकालमें मिलना मुश्किल था। वह तो गुरुदेवने बताया और तूने विचारसे नक्की किया तो उसे बराबर सँभालकर रखना। उतनी दृढ़ता तू बराबर रखना। इधर-ऊधर मार्ग पर कहीं मत जाना।

मुमुक्षु :- ज्ञायकको स्वयंको ज्ञायकपने ... नहीं और सविकल्प दशामें भी उसे उस प्रकारका प्रयत्न करना चाहिये कि मानो राग हुआ तो रागसे भिन्न जाननेवाला है, वह जाननेवाला भिन्न रहता है, ऐसा उसे अभ्यास करना चाहिये। तो आपके कहनेके बाद इस प्रकार विचारमें लिया, लेकिन अभी भी भावमें बराबर बैठता नहीं। आप दो-चार दृष्टान्त देकर इस बातको अधिक स्पष्ट कीजिये।

समाधान :- अमुक विचारसे, अमुक विचारसे एवं युक्तिसे कहनेमें आये। बाकी करना तो स्वयंको ही पड़ता है। कैसे स्वयं भिन्न पड़ता है, वह तो जिस प्रकारकी स्वयंकी भूमिका हो और जिस प्रकारका स्वयंका प्रयत्न हो, उस प्रकारसे स्वयं ही भिन्न पड़ता है। यह तो एक विचार एवं युक्तिसे कहनेमें आता है कि, ऐसा विचार

करे। बाकी उसे सहज होना चाहिये। विचार क्या करना और कैसे करना, वह स्वयं कहाँ अटकता है, और स्वयं क्या करता है, वह स्वयंको ही ग्रहण करना पड़ता है।

विचार करे कि यह शरीर तो जड़ है, कुछ जानता नहीं। वह तो जड़ है, उसमें जो पुद्गलके....

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर कही। कुदरती बड़ा दिन है और बड़ी बात आ गयी।

समाधान :- ... अभ्यास करना है। उतना स्वयं कर सकता है। द्रव्य पर दृष्टि करके भेदज्ञानका अभ्यास (करे), आत्माका आश्रय लेना है। उसका आत्माका आश्रय ग्रहण करे तो उसमें विकल्प छूटनेका प्रसंग आता है। बाकी एकदम किसीको अंतर्मुहूर्तमें होता है वह अलग बात है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- हाँ, यह श्रद्धा तो बराबर रखना।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-९८

मुमुक्षु :- वर्धमानस्वामिका निर्वाण महोत्सव है, तो इस संदर्भमें प्रश्न उत्पन्न होता है कि महावीर स्वामी दसवें भवमें सिंह अवस्थामें थे, तब मांसाहार करते हैं, इसलिये भूमिका तो अशुभ थी। उस वक्त मुनिओंने नीचे ऊतरकर उपदेश दिया कि यह तेरा सम्यक्त्वका समय है तो प्रगट कर। तो उसमें कोई काललब्धिका कारण है या पुरुषार्थका कारण है? या उस वक्तकी ऐसी ही योग्यता थी?

समाधान :- सम्यग्दर्शनका काल है इसलिये पुरुषार्थके साथ काललब्धि है। पुरुषार्थके बिना वह होता नहीं। पुरुषार्थ करता है इसीलिये काललब्धिका सम्बन्ध होता है। पेटमें कुछ भी पड़ा हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। बादमें तो उसके परिणाम पलट गये थे। पहले उसे हिंसक परिणाम थे, वह परिणाम तो पलट गये हैं। इसलिये पेटके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

बाकी उसकी काललब्धि यानी काललब्धिका पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। वह स्वयं पुरुषार्थ करता है। जो पुरुषार्थ करता है उसे तो ऐसा ही होता है कि मैं कैसे मेरे आत्मामें जाऊँ? अरे..! यह क्या हो रहा है? अरे..! मैं तो आत्मा हूँ। मैं तो जाननेवाला ज्ञायक हूँ। और मुनिओंने कहा कि आप तो तीर्थंकर होनेवाले हो। तो एकदम असर हो गयी। अरे..! ये मैं क्या कर रहा हूँ? उसके स्वयंके परिणाम पलट जाते हैं और स्वयं तो पुरुषार्थ करता है। काललब्धिके साथ पुरुषार्थका सम्बन्ध है, लेकिन पुरुषार्थ करनेवालेको तो ऐसा ही है कि मैं पुरुषार्थ करुँ। यह क्या किया? अब मैं मेरे आत्मामें जाऊँ। यह मुझे योग्य नहीं है। अरे..! यह तो हिंसक परिणाम है, यह तो क्रूर है। मैं तो आत्मा हूँ। यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न। मुनि उपदेश देते हैं तो उसके भाव एकदम पलट जाते हैं। वह तो पुरुषार्थसे होता है।

काललब्धि उसे नहीं कर देती। स्वयं पुरुषार्थ करता है। मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, यह शरीर भिन्न, मैं भिन्न। यह सब क्रूर परिणाम आते हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। यह मैं चैतन्यतत्त्व अन्दर आत्मा हूँ। यह सब क्या? ऐसे स्वयं पलटता है। अन्दरसे भेदज्ञान होता है। यह सब भिन्न है, मैं तो आत्मा हूँ। ऐसा करके आत्माकी ओर मुड़ता है और पलट जाता है। पूरी परिणति पलट जाती है। आँखमेंसे आँसू आते

हैं, अरे..! ये क्या? ऐसा करके स्वयं पलट जाता है अन्दर, उसी क्षण पलट जाता है। एकदम पुरुषार्थ शुरू होता है।

मुमुक्षु :- उपदेशके वक्त उसकी भूमिका शुद्ध हो जाती है?

समाधान :- उसकी भूमिका शुद्ध.. उपदेशका निमित्त और स्वयंकी तैयारी, दोनोंका मेल हो जाता है। भूमिका शुद्ध होती है, उसे अंतरमेंसे पुरुषार्थ शुरू होता है, भेदज्ञान होता है। मुनिराज उपदेश देते हैं तो पलट जाता है, सब पलट जाता है। एक अंतर्मुहूर्तमें जीव पलट जाता है। उपदेश उसे निमित्त बनता है। स्वयंका पुरुषार्थ अन्दरसे शुरू होता है। पुरुषार्थ करनेमें ऐसा होता है कि मैं यह ज्ञायक हूँ। इस प्रकार स्वयं ही पुरुषार्थसे, पुरुषार्थके बलसे स्वयं ही पलटता है। काललब्धिके ज़ोरसे पलटता नहीं, स्वयं पुरुषार्थसे पलटता है।

मुमुक्षु :- पूर्व संस्कार भी कोई...?

समाधान :- वर्तमान पुरुषार्थ करे तब पूर्व संस्कार (कहा जाता है)। ऐसे ही पूर्व संस्कार ज़ोर करके नहीं करता। स्वयं पुरुषार्थ करता है। प्रत्येकको पूर्व संस्कार नहीं होते। किसीको होते हैं और किसीको नहीं होते हैं। निगोदमेंसे निकलता है, वहाँ पूर्व संस्कार कहाँ होते हैं? तो भी वह पलट जाता है। निगोदके जीवमेंसे निकलकर उसमें .. होते हैं। उसके बाद भरत चक्रवर्तीके पुत्र होते हैं। एकदम पलट जाते हैं। एकदम मुनिदशा अंगीकार करते हैं।

मुमुक्षु :- सबमें पुरुषार्थ?

समाधान :- सबमें पुरुषार्थ। उसमें काललब्धि साथमें होती है। पुरुषार्थ करनेवालेको ऐसा ही होता है कि मैं पुरुषार्थ करुँ। मेरी भूलसे मैं रखड़ा हूँ और मेरे पुरुषार्थसे मैं पलटता हूँ। मैंने भूल की। मुझे किसीने भूल करवायी या मुझे कर्मने भूल करवायी और अब काल, योग अच्छा आया तो अब मुझे कर्मने छुड़ाया, ऐसा माननेवाला, ऐसी पराधीनता माननेवाला कभी पुरुषार्थ नहीं कर सकता। और कर्मके कारण मैं रखड़ा। मुझे कर्मने यह भूल करवायी, अब मेरी काललब्धि पकी इसलिये अब मैं पलटता हूँ। ऐसी भावना रखनेवाला आगे नहीं बढ सकता। वह तो पराधीन हो गया।

मैं स्वयं स्वतंत्र हूँ। मैं मेरी ओर मुड़नेमें स्वतंत्र और विभावकी ओर जानेमें भी मैं स्वतंत्र (हूँ)। प्रत्येकमें मैं स्वतंत्र हूँ। स्वतंत्र है। उसे कर्म बलात् नहीं करवाते। काललब्धि पके तो स्वयं पुरुषार्थ करे, ऐसा नहीं होता। उसके साथ उसका सम्बन्ध होता है। काललब्धि होती है और पुरुषार्थका सम्बन्ध होता है। पुरुषार्थ करता है, उसकी कालल्बधि परिपक्व ही होती है। क्षयोपशम, कषायकी मन्दता उन सबका सम्बन्ध होता है। पुरुषार्थ, काललब्धि...।

मुमुक्षु :- अभी दो दिनसे एक प्रश्न चल रहा है-भेदज्ञानके अभ्यासका। उसमें एक प्रश्न होता है कि तत्त्वज्ञानकी दृढ़ता होनेके बाद यह कार्यकारी हो या तत्त्वज्ञानकी दृढ़ता पहले हो, उसके बाद इस प्रकारका अभ्यास करना होता है?

समाधान :- तत्त्वज्ञाकी दृढ़ता पहले होती है। बिना दृढ़ताके भेदज्ञानका बल नहीं आता। तत्त्वज्ञानकी दृढ़ता, चैतन्य ओरकी महिमा, विभावसे विरक्ति सब सातमें हो तो ही उसे भेदज्ञानका बल आवे। अन्दर मैं चैतन्य ज्ञायक भिन्न हूँ, उसमें उसे सुख लगे। अपने अन्दर दृढ़ता आनी चाहिये। यही मेरा स्वभाव है और यह सब निःसार है, सारभूत आत्मा है। यह सब आकुलतायुक्त है। उससे विरक्ति। भले उसकी पात्रता अनुसार हो। यथार्थ परिणतिरूप बादमें होता है। परन्तु उसकी श्रद्धा हो तो ही भेदज्ञानका अभ्यास कर सकता है। श्रद्धाके बिना नहीं होता।

भेदज्ञानके अभ्यासमें उसे बल आता है कि मैं भिन्न ही हूँ। उस अभ्यासमें वह स्वरूपकी ओर स्थिर होनेका प्रयत्न करता है, इसलिये उसमें ध्यान समाविष्ट हो जाता है। समझे बिना ध्यान करे तो तरंगरूप होता है। बलात् विकल्पको दबाने जाय, (तो नहीं होता)। मैं भिन्न, इस प्रकार उसे स्वभाव भिन्न, विभावसे मैं भिन्न, ऐसा अभ्यास करे तो स्वरूपमें स्थिर हो। स्वमें एकाग्रता हो, स्वयंमें स्थिर हो, वही उसका ध्यान है।

मुमुक्षु :- पाया तो तत्त्वज्ञानका ही चाहिये।

समाधान :- तत्त्वज्ञानका, पाया तो वही होता है। तत्त्वज्ञानकी श्रद्धा, उसके साथ-तत्त्वज्ञानके साथ यह सब है। यथार्थ तत्त्वार्थ श्रद्धान।

मुमुक्षु :- नहीं तो निश्चय-व्यवहारकी संधि भी टिकनी चाहिये...

समाधान :- यथार्थ श्रद्धान होना चाहिये। समझनपूर्वक निश्चय-व्यवहारकी संधि होनी चाहिये। मैं द्रव्य शक्ति अपेक्षासे शुद्ध हूँ, मैं शक्तिमें मुक्त स्वरूप ही हूँ। मेरा स्वभाव मुक्त है। यह बन्धा हूँ, आदि सब कर्मके संयोगसे है। स्वभावसे मुक्त हूँ, लेकिन पर्यायमें यह बन्धन है। निश्चय-व्यवहारकी संधि होती है। संधिके बिना, समझ बिना मैं भिन्न ज्ञायक हूँ, कैसे आये? आत्मा ज्ञायक और यह सब मुझसे भिन्न है। परन्तु यह विभाव जो होता है, वह मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। वह सब उसे ज्ञानमें है। स्वभावसे शुद्ध हूँ, पर्यायमें अशुद्धता है। सबका ज्ञान उसे साथ होता है और ऐसी श्रद्धा भी साथमें होती है। श्रद्धा एवं ज्ञान दोनों साथ होते हैं।

शुद्धात्मप्रवृत्ति लक्षण। शुद्धात्म तत्त्वमें प्रवृत्ति करे यथार्थपने। स्वभावसे मैं शुद्धात्मा हूँ और पर्यायमें अशुद्धता है। पर्याय भी शुद्धताको प्राप्त होती है। स्वयं स्वभावको पहचाने और श्रद्धा-ज्ञान यथार्थ करके उसमें लीनता करे, उसमें स्थिरता करे तो प्रगट शुद्धता होती है। स्वभावसे मुक्त लेकिन पर्यायमें मुक्ति नहीं है। पर्यायमें भी मुक्त होता है।

श्रमणो, जिनो, तीर्थंकरों आदि शुद्धात्मतत्त्व प्रवृत्ति.. शुद्धात्मामें प्रवृत्ति। सब इसी मार्गसे मोक्ष पधारे। दूसरा कोई मोक्षका मार्ग नहीं है, ऐसा आता है।

शुद्धात्मप्रवृत्ति लक्षण ऐसा आया। और भेदज्ञान कहाँतक अविच्छिन्न धारासे भाना? कि जबतक ज्ञान ज्ञानमें स्थिर न हो जाय। ज्ञान जबतक स्थिर न हो तबतक भेदज्ञान भाना। .. सम्यक्त्व हो तो भी, दोनों अपेक्षा है। सम्यग्दर्शन न हो तबतक भाना और सम्यग्दर्शन हो जाय तो भी अविच्छिन्न धारासे ऐसे ही भेदज्ञान केवलज्ञान पर्यंत भाना। स्वरूपमें स्थिर हो जाय इसलिये विकल्प छूट जानेके बाद भेदज्ञानका कुछ नहीं रहता, निर्विकल्प दशामें। उग्र होते-होते केवलज्ञानको प्राप्त करता है।

मुमुक्षु :- कल तो बहुत आसान बात लगती थी। कल तो ऐसा लगता था कि आत्मा खाता नहीं, चले तो लगे, आत्मा चलता नहीं।

समाधान :- खाता नहीं है, लेकिन वह स्वभावसे। राग आता है वह किसको आता है? यह तो समझना चाहिये न। उसके साथ समझना (चाहिये)। शरीर भिन्न, यह भिन्न, सब भिन्न, पेट भिन्न, सब भिन्न। परन्तु अन्दर जो राग होता है, उस रागमें स्वयं जुड़ता है। राग मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसे भिन्न पड़ता है। परन्तु साथमें ख्याल है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे (होता है)। मैं वीतराग नहीं हो गया हूँ। ऐसा तो समझता है।

मैं उससे भिन्न हूँ, जाननेवाला हूँ, परन्तु यह पुरुषार्थकी मन्दतासे राग किसको होता है? उसका बराबर ख्याल है। इसीलिये भेदज्ञानका अभ्यास करता है, नहीं तो करे क्यों? भेदज्ञानका अभ्यास नहीं करना था, वह तो भिन्न ही है। फिर अभ्यास करनेका कारण क्या? भ्रान्तिमें पड़ा है, एकत्वबुद्धि है, इसलिये पुरुषार्थ करता है। भिन्न ही हो तो पुरुषार्थ, भेदज्ञान करनेका कोई कारण नहीं रहता। भिन्न पड़नेका कारण यह है कि एकत्वबुद्धि हो रही है।

मुमुक्षु :- सभी पहलूओंसे ख्याल करना चाहिये।

समाधान :- अन्दर शुद्धात्मामें... जिस स्वरूप हूँ, उस रूप हो जाउँ। राग है, उस रागसे भिन्न हूँ। भिन्न होनेपर भी राग होता है। उससे स्वभावसे भिन्न है। इसलिये उसे ख्यालमें है। उससे भिन्न पड़कर, उग्रता करते-करते वीतराग दशाकी ओर जाता है। स्वभावसे भिन्न हूँ। भेदज्ञानका अभ्यास (करता है), लेकिन उसमें अस्थिरता है उसका उसे ख्याल है।

पुरुषार्थ क्यों चलता है? एकत्वबुद्धिको तोड़नेके लिये है। नहीं तो स्वभावसे तो मुक्त ही है, तो फिर कुछ करना बाकी नहीं रहता। स्वानुभूतिकी दशा प्रगट करनी, आत्माका आनन्द प्रगट करना, मैं स्वभावरूप परिणमित हो जाऊँ, ऐसी भावना रहनेका

कारण क्या? स्वभावसे तो शुद्ध ही है, परन्तु पर्यायमें अशुद्धता है इसलिये उसे पुरुषार्थ चलता है। अन्दर सब ख्याल है। यथार्थ तत्त्वार्थ श्रद्धान करके भेदज्ञानका अभ्यास करना है। तत्त्वार्थ श्रद्धान किये बिना मैं भिन्न-भिन्न हूँ, करता रहे तो शुष्कताकी बात नहीं चलती। सब हो जाय, फिर कहे, मैं भिन्न हूँ। ऐसे बोलनेकी बात नहीं है। रागमें एकत्वबुद्धि हो और फिर कहे, मैं भिन्न हूँ। अन्दरसे यथार्थ भावरूप उसे हो कि मैं भिन्न हूँ, विरक्त होकर भिन्न पड़ता है, भिन्नता करके।

... सिंहके भवमें सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। फिर आगे-आगे दशा प्राप्त (होती है)। मुनिदशा और बादमें केवलज्ञान पर्यंत पहुँच गये हैं। उसके बाद सब साधनाके ही भव है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद ऊँचे-ऊँचे (भव ही है)। मुनिदशा अंगीकार करते हैं, फिर देवका भाव, उसके बाद साधनाके ऊँचे-ऊँचे भव करके केवलज्ञानकी प्राप्ति करते हैं। उसके पहले कितनी ही भव हुए हैं, लेकिन सिंहके भवके बाद आराधनाके भाव हुए हैं। गुरुदेवने इस पंचमकालमें, सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं, आदि सब बताया। ... नव तत्त्वकी श्रद्धा वह सम्यग्दर्शन, ऐसा मानते थे। स्वानुभूति सम्यग्दर्शन कौन समझता था? गुरुदेवने सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं? मुनिदशा किसे कहते हैं? केवलज्ञान किसे कहते हैं? सब गुरुदेवने बताया है।

मुमुक्षु :- माताजी! मुनिकी भाषा सिंह कैसे समझ गया?

समाधान :- समझ गया। मुनि किस प्रकारके कैसे भावसे बोल रहे हैं, वह समझ गये। आत्मा है न सिंह। और उस प्रकारका क्षयोपशमज्ञान अन्दरसे प्रगट हो गया। मुनिकी भाषा और उनके भाव परसे ग्रहण कर लिया। ऐसी ग्रहण करनेकी शक्ति उनमें आ गयी। तीर्थंकरका जीव है। उनमें ऐसा ग्रहण करनेकी शक्ति (प्रगट हो गयी)। भले सिंह थे तो भी उन्हें ग्रहण करनेकी शक्ति कोई अलग थी।

मुमुक्षु :- गुरुदेव याद आते हैं कि तीर्थंकरका जीव थे।

समाधान :- गुरुदेव तीर्थंकरके जीव थे। तीर्थंकरका जीव यानी स्वयं... गुरुदेवने इस पंचमकालमें पधारकर... स्थानकवासीमें थे, स्वयंने क्या सत्य है, यह सब नक्की करके परिवर्तन किया।

मुमुक्षु :- जैसे तीर्थंकर स्वयंबोधित होते हैं, वैसे गुरुदेव स्वयंबोधित थे।

समाधान :- हाँ, वैसे स्वयंबोधित थे। स्वयंने अपनेआप सब नक्की किया।

मुमुक्षु :- पण्डित ऐसा कहते थे, उनके कोई गुरु नहीं है और ऐसा ज्ञान कहाँसे आया? ऐसा एक पण्डित कलकत्तामें कहते थे।

समाधान :- स्वयंबुद्ध है, तीर्थंकरका जीव है। स्वयं मार्ग चलानेवाले हैं।

मुमुक्षु :- मार्ग प्रवर्तक हैं।

समाधान :- मार्ग प्रवर्तक हैं। मार्ग स्वयं ग्रहण करके, मार्ग प्रगट करके दूसरोंको प्रगट करनेमें निमित्त बनते हैं, महा प्रबल निमित्त बनते हैं। उनके जैसा कोई मार्ग प्रवर्तन नहीं कर सकता। सबका परिवर्तन (हो गया)। पूरे संप्रदायमें सबकी दृष्टि ही अलग। उनकी वाणीसे सबकी दृष्टि अलग कर दी। तीर्थंकरके जीवके सिवा ऐसा कोई नहीं कर सकता। कितनोंके संप्रदायके बन्धन टूट गये। सबकी श्रद्धा भिन्न थी, वह टूट गयी। कितने ही अन्यमतमें सबमें कितने फेरफार हो गया। स्थानकवासी, श्वेतांबर, दिगंबर, इसके सिवा दूसरे, कोई व्होरा, कोई अन्य कितनोंका परिवर्तन हो गया।

मुमुक्षु :- अनजान आदमी नत मस्तक हो जाते थे।

समाधान :- अनजाने। ये कोई महापुरुष है। बोले तब तो एकदम अलग ही लगे कि ये तो कोई अलग है। वाणी बरसा गये।

मुमुक्षु :- आत्माका स्वरूप सत् चिद् और आनन्द है। उसमें चिद्का कुछ आभास विचार करनेपर... जैसे यह ज्ञान है वह जानता है, तो कुछ आभास विचार करनेपर आता है। लेकिन आनन्दका और चिद्का त्रिकाली नित्य द्रव्य है, उसका किसी भी प्रकारसे आभास नहीं हो रहा है।

समाधान :- विचार करे तो सब समझमें आये ऐसा है। वह ज्ञानस्वरूप है। लेकिन वह ज्ञान क्या? ज्ञान गुण है, वह कोई वस्तुका गुण है। अवस्तु नहीं है। कोई सत् वस्तु है, आत्मा पदार्थ है, उसका वह गुण है। ज्ञान है वह पूरा ज्ञायक है। विचार करे तो समझमें आये। सुख-सुखकी इच्छा जीव करता है। इसलिये सुख कोई पदार्थमें-स्वयंमें है। आनन्द गुण स्वयंका है। इसलिये सुख-सुख करता हुआ बाहरसे सुख इच्छता है। सुख बाहरसे नहीं आता है। अपना स्वभाव है। विचार करे तो वह सब समझमें आये ऐसा है, परन्तु विचार नहीं करता है। इसलिये समझना मुश्किल पड़ता है।

सत् स्वरूप स्वयं अनादिअनन्त जो वस्तु है, उस वस्तुका यह गुण है। वह गुण कोई पदार्थका है। गुण ऊपर-ऊपर नहीं है। ज्ञानगुण है वह वस्तुका है, सत्का है। वह असत् नहीं है। वस्तुका गुण है। ऐसे विचार करे तो समझमें आये ऐसा है। मैं ज्ञायक हूँ, मेरा स्वभाव जानना है। उसमें आनन्द भरा है, अनन्त गुण भरे हैं। ज्ञान और आनन्दसे समृद्ध परिपूर्ण आत्माका स्वभाव है। उसमें थोड़ी भी कमी नहीं है। लेकिन स्वयं समझता नहीं है, इसलिये आनन्द गुण उसे मालूम नहीं पड़ता है।

ज्ञानगुण यदि यथार्थ समझे तो सब समजमें आये। ज्ञानगुणको भी वह ऊपर-ऊपरसे समझता है। ज्ञानको यथार्थपने यदि समझे, ज्ञान असाधारण गुण है इसलिये उसे ख्यालमें आता है। लेकिन यथार्थपने ज्ञानको पहचाने तो वस्तुको पहचाने, आनन्दको पहचाने, सबको पहचान सकता है। जीवने अनन्त कालसे अपनेमें अपूर्व सम्यग्दर्शनको प्राप्त नहीं

किया है। गुरुदेवने बताया है कि यह सम्यग्दर्शनका स्वरूप है। सम्यग्दर्शन प्राप्त हो तो उसमें यह सब उसे प्रतीतमें आता है। स्वयं पहचानता नहीं है, अपनी कचासके कारण नहीं पहचानता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ooo

ट्रेक-९९

मुमुक्षु :- माताजी! ज्ञानगुणको ऊपर-ऊपरसे पहचानता है, गहराईसे नहीं पहचानता है। तो कृपा करके गहराईसे किस तरह पहचाने?

समाधान :- गहराईसे पहचाननेका स्वयं प्रयत्न करे। यह ज्ञान है वह कोई वस्तुका है। बिना वस्तुके ज्ञानगुण नहीं है। ज्ञान कोई सत् पदार्थका गुण है। ऐसा विचार करे तो पहचाने। ज्ञान यानी मात्र जानता है, इस तरह पहचानता है। परको जाने वह जाननेवाला ज्ञानगुण है, इस तरह पहचानता है। परन्तु वह ज्ञान है वह कोई पदार्थका गुण है। पदार्थ बिनाका वह गुण नहीं है। इस तरह अन्दर स्वयं जिज्ञासा लगनी लगाये तो पहचान सके ऐसा है। परन्तु उसकी लगनी ही नहीं लगाता।

मुमुक्षु :- श्रीमद्जीने ऐसा कहा है कि, जीवकी उत्पत्ति जीवपदमां जणाय छे, वह कैसे? तो किस अपेक्षासे? बात बराबर कहते हैं। परन्तु जीवकी उत्पत्ति जीवपदमां जणाय छे। देह शोक रोग शोक दुःख मृत्यु, देहनो स्वभाव जीवपदमां जणाय छे, वह तो समझमें आता है। परन्तु जीवकी उत्पत्ति जीवपदमें जणाय छे।

समाधान :- जीवकी उत्पत्ति?

मुमुक्षु :- हाँ, ऐसा शब्दप्रयोग किया है।

समाधान :- अन्दर स्वभाव है, सब जीवमें जाननेमें आता है। परन्तु मूल वस्तुकी उत्पत्ति नहीं (होती)। उसकी पर्यायमें फेरफार हो, वह जीवमें जाननेमें आते हैं। उसकी पर्यायें पलटती हैं, वह जीवमें ज्ञात होती है। वस्तुकी उत्पत्ति तो होती नहीं। उसमें हो तो अपेक्षासे लिखा होगा। पर्यायमें फेरफार होते हैं। वह उसमें जाननेमें आते हैं।

विभाव पर्याय हो रही है, विभावमेंसे स्वभाव हो, स्वभावकी पर्याय होती है, सब जीवमें जाननेमें आती है। उसे जाननेवाला जीव है। द्रव्य-गुण-पर्याय सबको जाननेवाला जीव है। वह स्वयं सब जानता है। स्वयं स्वयंको जानता है, स्वयं पर अन्य पदार्थोंको जाने। ऐसा उसका ज्ञानगुण कोई असाधारण है। ज्ञान ऐसी अनन्तासे भरा है कि उसमें सब ज्ञात होता है। ज्ञानका स्वभाव ऐसा है।

अनन्त काल गया तो भी उसका ज्ञानस्वभाव तो वैसाका वैसा है। वह जान सके ऐसा है। यह शरीर भिन्न, यह विभाव स्वभाव अपना नहीं है, स्वयं ज्ञायक है। स्वयं

स्वयंको जान सकता है। उत्पत्ति यानी उसकी पर्यायकी उत्पत्ति। वस्तु तो उत्पन्न नहीं होती।

मुमुक्षु :- सत् शब्द है न? सत् चित् और आनन्द। त्रिकाल टिकनेवाला है, वह कैसे ख्यालमें आये कि यह त्रिकाल तीनों काल टिकनेवाला जीव है?

समाधान :- जो है वह है ही। जो है उसका नाश नहीं होता। ज्ञानगुण है वह किसी जड़मेंसे नहीं आता। ज्ञानगुण है कोई वस्तुके आश्रयसे रहा है। जो है, वस्तु है, उसे कोई उत्पन्न नहीं कर सकता। जो ज्ञान ख्यालमें आता है, उसे कोई उत्पन्न नहीं कर सकता है, वह ज्ञान स्वयं है। ज्ञान स्वयं है तो ज्ञान जिसके आश्रयसे रहा है, ऐसा एक पदार्थ होना चाहिये।

वह सत् है। सत् त्रिकाल टिकनेवाला है। जो है वह तीनों काल है। वह शाश्वत है और पदार्थरूप है। मात्र गुण नहीं, विचार करे तो ज्ञानगुण गंभीरतासे भरा है। उसमें अनन्तता भरी है।

मुमुक्षु :- एक ज्ञानगुणकी डोरीसे सब पकड़में आता है।

समाधान :- सब पकड़में आये ऐसा है। हाँ। ज्ञान है वह सत् है। सत् है, उसे कोई उत्पन्न नहीं कर सकता। चैतन्यस्वरूप है। ज्ञान चेतनतासे भरा है। ज्ञान जड़ नहीं है, ज्ञान चैतन्यस्वरूप है। ज्ञान ज्योतिस्वरूप चमत्कारयुक्त है, ज्ञान दिव्यस्वरूप है। ऐसी दिव्यतासे भरा है जो ज्ञान है वह स्वयंसिद्ध है। ज्ञान है, वह ज्ञान कोई पदार्थरूप है, पदार्थका स्वरूप है वह ज्ञान है।

मुमुक्षु :- स्वयंसिद्ध है।

समाधान :- स्वयंसिद्ध है। वह अनादिअनन्त है। किसीने उसे उत्पन्न नहीं किया है, कोई जड़मेंसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। अथवा किसीसे ज्ञानका ज्ञान नहीं होता। वह स्वयंसिद्ध है। ज्ञान है वह अनन्तासे भरा दिव्यस्वरूप है। चैतन्य स्वयं दिव्यमूर्ति है। उसका ज्ञान भी दिव्यस्वरूप है।

मुमुक्षु :- एक आनन्दगुण बाकी रहता है। आनन्दका कैसा आभास होता है? कि ऐसा दिव्य ज्ञान है तो साथमें आनन्द भी होना ही चाहिये।

समाधान :- ज्ञानमें जो दिव्यता भरी है, ऐसा आनन्दगुण.. बाहरमें विचार करे तो जड़ पदार्थमेंसे, जड़मेंसे आनन्द नहीं आता है। कहीं भी आनन्द लेने जाय तो आनन्द (मिलता नहीं)। वह तो थक जाता है, आनन्द लेने जानेमें। अपनी कल्पनासे आरोप करता है। चलनेमें, फिरनेमें मान-बडप्पन कहीं भी आनन्द लेने जाता है। खानेमें-पीनेमें सबमें थक जाता है। कल्पनासे सुख मानता है। अपने विचार कहीं और चलते हो तो चलनेमें, फिरनेमें, मान, बडप्पनमें कहीं उसे आनन्द नहीं आता। शोकमें बैठा

हो तो। वह कोई आनन्द (नहीं है)।

लेकिन आनन्दकी झंखना करता है, आनन्दको जो इच्छता है, वह स्वयं ही आनन्दस्वरूप है, इसलिये आनन्दकी इच्छा करता है। जड़ इच्छता नहीं। जो स्वयं इच्छा करता है, वह स्वयं ही आनन्दस्वरूप है कि जिसे अन्दरसे ऐसी भावना होती है कि मुझे आनन्द चाहिये। ऐसी भावना है वह रागरूप हो जाती है। लेकिन ऐसी जो अंतरमेंसे (इच्छा होती है), ऐसी परिणतिमें ऐसा होता है कि मुझे आनन्द चाहिये। अन्दरसे जो उसे आनन्दकी भावना उत्पन्न होती है, वह स्वयं आनन्दस्वरूप है इसीलिये उसकी भावना उत्पन्न होती है।

मुमुक्षु :- वैसे तो ऐसा ख्याल आता है कि सुबहसे शाम तक एक भी आनन्दका किरण दिखायी नहीं देता। ऐसा तो ख्याल आता है।

समाधान :- आनन्द कहीं दिखायी नहीं देता। मिथ्या प्रयत्न करता है। परन्तु आनन्दके बिना उसे चलता नहीं। कहीं भी, कोई भी कल्पना करके मान लेता है।

मुमुक्षु :- चाहिये आनन्द।

समाधान :- चाहिये आनन्द। आनन्द नहीं हो तो भी कल्पनासे संतुष्ट होता है। अतः आनन्द उसका स्वयंका ही गुण है कि जहाँ-तहाँ कल्पना करता है। आनन्द बिना उसे चलता नहीं। जहाँ-तहाँ कल्पना करनेवाला वह स्वयं दिव्यमूर्ति दिव्य आनन्दसे भरा है, कोई अनुपम आनन्दसे भरा है कि जो बाहर कल्पना कर रहा है। अनन्त शक्तिओंसे भरा ऐसा चैतन्यदेव है। उसकी दिव्यता प्रगट करनेके लिये स्वयं ऐसी कोई अपूर्व भावना और अपूर्व रस एवं जिज्ञासा प्रगट करे तो वह उसे दिव्यता प्रगट करे।

भगवानने दिव्य स्वरूप प्रगट किया, पूर्ण केवलज्ञान मोक्ष हो गया। दिव्यतायुक्त अपना स्वरूप ही है। यदि वह स्वयं ऐसी भावना प्रगट करे तो वह प्रगट हुए बिना रहता भी नहीं। प्रतीत आनी चाहिये। सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो उसकी शुरूआत होती है, उसकी दिव्य स्वानुभूतिकी। आगे बढ़नेपर वह विशेष बढ़ता जाता है। पूर्ण आनन्द प्रगट हो जाता है। स्वानुभूतिमें एक अंश, आंशिक आनन्द उसे प्रगट होता है। जैसा सिद्ध भगवानका आनन्द होता है, वैसा ही आनन्द उसे प्रगट होता है। ऐसा अनुपम आनन्द कि वह वाणीसे कह नहीं सकते। क्योंकि जो बाहर कल्पना कर रहा है, वही स्वयं आनन्दस्वरूप है।

अन्दरसे जो उसे भावना उत्पन्न होती रहती है, वह आनन्द बिना रह नहीं सकता। कितनी ही बाह शुष्क आनन्द मानता है। उसे दुःख ही है, सुख तो है ही नहीं। कल्पना करता है।

मुमुक्षु :- विचार करे तो ख्याल आवे..

समाधान :- विचार करे। आकुलतामें सुख मान लेता है। प्रवृत्ति करने जाता है। उसे ऐसा होता है, मुझे यहाँसे आनन्द मिलेगा। प्रत्येक प्रवृत्तिओंमें थक जाता है। बाह्य कोई भी प्रवृत्ति करनी, उसका स्वभाव ही नहीं। अन्य पदार्थका कर्तृत्व मानना, उसमें वह कुछ कर नहीं सकता है और थक जाता है। तो भी उसमें वह आनन्द मान रहा है।

अन्दर स्थिर हो जाना और निवृत्त हो जाना, अन्दरसे आनन्द प्रगट होता है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। फिर उसे ऐसा होता है कि मुझे अंतरमेंसे कोई शान्ति प्राप्त हो जाय। अन्दर शान्तिकी इच्छा करनेवाला स्वयं ही शान्तिस्वरूप है। ज्ञायकके आश्रयसे वहाँ जानता है कि यह मैं जाननेवाला है। उसमें ही सबकुछ है ऐसा लगता है। उतना उसे विश्वास आना चाहिये।

जीव शान्तिकी इच्छासे जो वापस मुड़े तो आत्माकी ओर भी ऐसे ही मुड़ता है कि मुझे शान्ति कहाँ मिले? मुझे आनन्द कहाँ मिले? इस हेतुसे स्वभावकी ओर मुड़ता है। लेकिन उसे विश्वास आता है तो मुड़ता है। शान्ति कहीं नहीं है, तो फिर कोई अन्य तत्त्वमें भरी है। जड़में नहीं है। चेतन ही उसकी इच्छा कर रहा है। चेतन ही इच्छता है, इसलिये चेतनमें भरी है।

वह स्वयं आनन्दस्वरूप ही है। जैसे स्वयं दिव्यस्वरूप है, स्वयं अनन्त दिव्य ज्ञानसे भरा है। एक समयमें उसे ज्ञानकी परिणति प्रगट होती है। ऐसा स्वयं आनन्दस्वरूप है। ऐसा स्वयं अनन्त दिव्य शक्तियोंसे भरा है। बारंबार उसकी श्रद्धा करे, उसकी प्रतीत करे, उसमें लीनता करे तो वह प्रगट होता है। जबतक न हो तबतक उसका रटन करे, बारंबार उसका विचार करे, बारंबार दृढ़ता करे। वह आता है न? मेरे ज्ञानमें, मेरे ध्यानमें, सबमें... हैडे वसो मारा ध्यानमां जिनवाणी मारा हृदयमां। चैतन्यदेव बसे। मेरा हैडे हजो, मारा ध्याने हजो, मारा भावे हजो।

ऐसे शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र और अन्दर चैतन्यदेव, मेरे हृदयमें, मेरे भावमें, मेरे ध्यानमें बसो। सम्यग्दर्शन हुआ तो उसमें तो उसने ग्रहण ही कर लिया। उसे (ऐसे) ग्रहण करता है कि उसकी दृष्टिकी डोर वहाँसे छूटती नहीं। दृष्टिकी डोर जो उसने बान्धी और स्वानुभूति प्रगट हुयी कि बस, पूर्णता प्रगट करके छूटता जाता है।

मुमुक्षु :- एक बार ऐसा अनुभव हो, इसलिये बाह्य वस्तुका आश्चर्य छूट जाय।

समाधान :- आश्चर्य छूट जाता है। पहले उसे भावना होती है। बाहरसे आश्चर्य छूटकर अन्दर जाता है कि अन्दर कुछ अलग है, अंतरमें है, बाहर नहीं है। ऐसा प्राप्त होने पूर्व विश्वास आ जाता है। विश्वास आता है। आकुलता दिखती है। कहीं शान्ति नहीं है। सब ओरसे थकान लगती है, इच्छा अनुसार कुछ होता नहीं, भावना

कुछ होती है और बनता कुछ है। अंततः आकुलतासे थक जाता है। विचार करके अंतरमें जाता है। अंतरमें ही शान्ति है, कहीं और नहीं है। भले आनन्द उसे अनुभवमें नहीं आ रहा है, लेकिन वह नक्की करता है कि आनन्द यहीं है, कहीं और जगह नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसा विश्वास...?

समाधान :- ऐसा उसका विश्वास पहले आना चाहिये।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते हैं, तू परमात्मा है, परमात्मा है, ऐसा विश्वास ला।

समाधान :- जितने परमात्माके गुण हैं, परमात्मामें (हैं), ऐसे ही तुझमें है। अनन्त गुणोंसे भरा, अनन्त गुणोंसे गूँथा हुआ तू परमात्मा है। कोई दिव्य देवस्वरूप, तू स्वयं दिव्यस्वरूप है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ उत्पन्न करनेके लिये भी इसी तरह, इसी सिद्धान्तसे...?

समाधान :- तू स्वयं ही है। सर्वसर्व तू ही है। बस, उसकी श्रद्धा कर, उसका विश्वास ला। उसका ज्ञान कर, उसका विचार कर। उस ओर बारंबार झुक, परका आश्चर्य छोड़ दे, तेरा आश्चर्य ला। बस, वही है। बारंबार वही करनेका है।

.. आगे बढ़नेके लिये शास्त्र स्वाध्याय (करे)। शास्त्रमें क्या मार्ग आता है (यह जानना)। गुरुदेवने बहुत प्रवचन किये हैं। उसमें अत्यंत स्पष्ट करके मार्ग बताया है। इसलिये उसका विचार करना, उसका वांचन करना, स्वाध्याय करना। अंतरमें उसकी लगनी लगानी, जिज्ञासा करनी, आत्मा कैसे समझमें आये उसके लिये (प्रयत्न करना)। आत्मा जाननेवाला ज्ञायक है, यह शाश्वत तत्त्व अनादिअनन्त है। उसका कभी नाश नहीं होता। स्वयंसिद्ध आत्मा है। उसे पहचाननेके लिये प्रयत्न करना। यह शरीर जड़ कुछ जानता नहीं। अन्दर विभाव होते हैं, वह भी आकुलता है। अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न आत्माको जानना। भिन्न जाननेके लिये प्रयत्न करना। उसके लिये आत्माका स्वरूप क्या, द्रव्य-गुण-पर्यायका क्या स्वरूप है, पुद्गलका क्या स्वरूप है, उसका विचार करके सूक्ष्म दृष्टिसे उसे पढना।

वस्तु असल स्वरूपमें कैसे कही जाती है, उसकी पर्यायसे क्या कहते हैं, उसकी प्रत्येक अपेक्षाएँ समझकर यथार्थ समझना। उसकी लगनी लगानी। वस्तु द्रव्य स्वभावसे तू निर्मल है। उसमें अशुद्धताने प्रवेश नहीं किया है। तो फिर यह विभाव कैसा? यह दुःख कैसा? आकुलता किसकी है? इसलिये आत्मामें विभाव परिणति हो रही है, अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे और स्वयं भ्रान्ति करके-यह शरीर सो मैं, मैं सो शरीर, यह विभाव, राग-द्वेष आदिसे भिन्न आत्माको जानता नहीं है और प्रत्येक शुभाशुभ विकल्पके अन्दर एकत्व हो रहा है। उससे भी इस आत्माका स्वरूप भिन्न है। परन्तु

वह पर्यायमें है सही। सर्वथा एकान्त शुद्ध हो तो-तो पुरुषार्थ करना नहीं रहता है। पर्याय अपेक्षासे उसमें अशुद्धता है और द्रव्यदृष्टिसे उसमें शुद्धता है।

जैसे स्फटिक स्वभावसे निर्मल है। मूल स्फटिक स्वभावसे निर्मल है। उसमें लाल-पीले फूलके संयोगसे वह लाल दिखा, पीला दिखे परन्तु निमित्त (कारण है)। परन्तु वह परिणमन स्वयंका हो रहा है, वह परिणमन स्वयंका है। लेकिन स्वभावसे निर्मल है। वह दोनों अपेक्षाएँ समझकर मूल असल स्वरूपको समझना। कारण, जीवने अनादि कालसे विभावमें शुभभाव बहुत किये, पुण्यबन्ध हुआ, देवलोकमें गया, परन्तु निज स्वरूप पहचाना नहीं। देवलोकमें भी गया। ऐसे सख्त शुभभाव किये कि जिससे (देवलोक मिला), परन्तु आत्माको पहचाना नहीं।

अनन्त कालमें स्वयं द्रव्यलिंगी मुनि बनकर नव ग्रैवेयक उपजायो-ग्रैवेयकमें गया। बाहरसे ऐसी सख्त क्रियाएँ पाली, जो क्रियाएँ शास्त्रमें आती उस अनुसार (पालन किया)। अभी तो वैसा दिखायी नहीं देता। शास्त्रमें आता है उस अनुसार पालन किया। परन्तु शुभभावसे पुण्यबन्ध हुआ। परन्तु इन सबसे भिन्न मैं आत्मा, उसे पहचाना नहीं। इसलिये आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करना। लेकिन बीचमें उसे (यह सब) आता है। जो शुभभाव पुण्यबन्धका कारण है, इसलिये वह बीचमें नहीं आते हैं, ऐसा नहीं है। यदि शुभभाव छूटे तो अशुभमें जाय, तो पापबन्धका कारण (होता है)। परन्तु अशुभभावसे बचनेके लिये बीचमें शुभभाव देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये और आत्माको पहचाननेका... मूल वस्तु-आत्माकी रुचि होनी चाहिये। अनन्त कालसे शुभभावमें अटक गया है। लेकिन उससे भिन्न आत्मा है, उसे पहचानता नहीं है। लेकिन बीचमें शुभभाव आये बिना नहीं रहते।

शुद्धात्मा कैसे पहचानूँ? उसका प्रयत्न (करना चाहिये)। यह दोनों अपेक्षाएँ समझनी। द्रव्य किस अपेक्षासे है और पर्यायमें क्या होता है? मूल असल स्वरूपसे शुद्धता है और पर्यायमें अशुद्धता है। पुनः एकान्त शुद्ध होकर शुष्कता न आ जाय, उसका ध्यान रखना। अपना हृदय भीगा हुआ रहना चाहिये कि अनन्त कालसे रखड़ा। इस जीवको अन्दर दुःख किसका है? अंतरमें विभावसे विरक्ति-वैराग्य आना चाहिये। ज्ञान, उसे यथार्थ समझनेका रास्ता और समझनेके लिये यथार्थ प्रयत्न, उसका ज्ञान यथार्थ करे, उसे वैराग्य-विरक्ति आनी चाहिये। उसकी महिमा आनी चाहिये। चैतन्य स्वरूप कोई अद्भुत है। उसकी महिमा, उसकी महिमा आये और देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आनी चाहिये। उसकी पहचान करवानेवाले देव हैं, गुरु हैं, शास्त्र है। सब उसकी पहचान करवानेवाले हैं।

उसमें साक्षात् चैतन्यमूर्ति गुरुदेवने जो मार्ग बताया, जो साधनाका मार्ग बताया उस पर उसे अपूर्व महिमा आये बिना नहीं रहती। अपने स्वभावकी महिमा, देव-गुरु-शास्त्रकी

महिमा (आनी चाहिये)। जगतमें सब निःसार है। एक आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, महिमाका भण्डार है। और दूसरा, शुभभावोंमें देव-गुरु-शास्त्र होने चाहिये। जगतमें सर्वोत्कृष्ट हों तो जिनेन्द्र देव हैं। गुरु सर्वोत्कृष्ट हैं, जो साधना करते हैं और शास्त्रोंमें उसका वर्णन आता है। इसलिये जगतमें वह सब सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये यह करने जैसा है, अंतरमें ज्ञायकको पहचानकर। उसकी पहचान कैसे हो? उसके लिये शास्त्र स्वाध्याय, विचार, वांचन आदि सब (होना चाहिये)। अन्दरसे हृदय भीगा हुआ रखना। भवका अभाव कैसे हो, यह अंतरमें होना चाहिये।

मुमुक्षु :- चैतन्यकी महिमा बढानेके लिये क्या करना?

समाधान :- चैतन्य क्या वस्तु है? उसमें क्या भरा है? उसके गुण कोई अपूर्व हैं। गुरुदेव उसकी महिमा बताते थे। प्रवचनोंमें क्या आता है? शास्त्रोंमें क्या आता है? विचार करके नक्की करे। चैतन्य पदार्थ जगतमें कोई अपूर्व है। जगतमें उसके जैसे कोई वस्तु नहीं है। उसका आनन्द अपूर्व है, उसका ज्ञान अपूर्व है, सब अपूर्व है।

जो किसी अन्य साधन बिना अंतरमेंसे जो ज्ञान प्रगट होता है, जो अनन्त महिमासे भरा ज्ञायक-ज्ञान है, उसके स्वरूपको जगतकी कोई महिमा लागू नहीं पड़ती। ऐसा अनुपम है, उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। ऐसा अनुपम पदार्थ है। शास्त्रमें उसका बहुत वर्णन आता है। उसमेंसे विचार करे। आचार्य क्या कहते हैं? आचार्य वस्तुकी महिमा कर रहे हैं, उसका विचार करे। गुरुदेव महिमा करते हैं। तू आत्मा है, तू भगवान है। उसे पहचान। जो गुरुदेव कहते थे, वह अंतरसे कहते थे। इसलिये अंतरमें वह कोई अपूर्व पदार्थ है।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेव भी बारंबार कहते हैं, तू सुखका सागर है। आनन्दकी निधि हो, अतीन्द्रिय सुखका भण्डार है। तो अभी सुखकी प्राप्तिके लिये...?

समाधान :- स्वयं प्रयत्न करे तो होता है। पहले श्रद्धा करे। यथार्थ वस्तु तो यही है। फिर प्रयत्न भले धीरे-धीरे हो। परन्तु श्रद्धा तो बराबर करना। श्रद्धामें थोड़ा भी फ़र्क मत करना। श्रद्धामें थोड़ा भी फेरफार मत करना। श्रद्धा यथार्थ करना। तो फिर धीरे हो.. शास्त्रमें आता है, हो सके तो ध्यानमय प्रतिक्रमण करना। न बन सके तो श्रद्धा बराबर करना। परन्तु उसके लिये कोई ईधर-ऊधरके मार्ग पर मत जाना। दूसरी जगह कहीं मार्ग नहीं है। मार्ग आत्माका कोई अलग है। अन्दर सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति होती है तब सम्यग्दर्शन कहनेमें आता है। नव तत्त्वकी श्रद्धा मात्र विकल्पसे कर ले, तो वह सम्यग्दर्शन नहीं है।

सम्यग्दर्शन अन्दर आत्मामें प्रगट होता है। और सम्यग्दर्शन होनेके बाद विशेष-विशेष आत्मामें जमता जाय, आगे बढे तब मुनिदशा आती है। अंतरमें मुनिदशा कोई अलग

है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुले। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें आत्मामें लीन होते हैं। बाहर आये तब द्रव्य-गुण-पर्यायके विचार आये। दूसरा सब तो मुनिराजको छूट गया है, सहजरूपसे। उन्हें बोझ नहीं लगता है, उपाधि नहीं लगती है। सहजरूपसे। वह दशा कोई अलग होती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ooo

ट्रेक-१००

मुमुक्षु :- माताजी! हमें तो ऐसा लगता है कि ज्ञान, श्रद्धा और चारित्र उन तीनोंका स्वरूप बराबर पकड़में नहीं आता, उस हिसाबसे आत्मा ज्ञायककी दृष्टि करनेमें विक्षेप आता है। ज्ञान ऐसा कहता है कि, द्रव्य, गुण एवं पर्याय तीनों तू है। दृष्टि ऐसा कहती है, ज्ञायकमात्र तू है।

समाधान :- दृष्टि उसे दूर करती है, परन्तु वह अपेक्षासे है। दृष्टि दूर करे और ज्ञान रहे। एक वस्तुको अनेक पहलूसे देखी जाती है। वस्तु चैतन्य है (उसमें) अनेकान्त धर्म हैं, अनेकान्तमय मूर्ति अनेक स्वरूप (है)। अनन्त धर्मोंसे शोभायमान ऐसी चैतन्यमूर्ति है। उसे एक अपेक्षासे एक (धर्म) द्वारा नहीं देखी जाती, उसे चारों ओरसे देखनेमें आता है।

वस्तु, वस्तुके गुण, वस्तुकी पर्याय, चारों ओरसे वस्तुको देखी जाती है। मूल आश्रय किसका लेना? दृष्टि आश्रय मूल वस्तुका लेती है। उसमें गुणभेद, पर्यायभेद किये बिना एक अस्तित्वको ग्रहण करती है। एक मनुष्य हो तो एक मनुष्यने आश्रय लिया। भगवान है, भगवानका आश्रय लिया कि भगवान मेरे हृदयमें हैं, मैं भगवानको देखता हूँ। आश्रय लिया, फिर भगवानका विचार नहीं करता है। यह भगवान ही है। नक्की किया कि यह भगवान हैं। सर्व गुण संपन्न भगवान। उस वक्त उसे विकल्प नहीं आता कि भगवानका आश्रय लूँ। उसमें कोई गुणभेद, पर्यायभेद (दिखायी नहीं देते)। आश्रय लेनेवाले को उस पर दृष्टि या विकल्प नहीं होता। परन्तु भगवानमें गुण क्या है? उन गुणोंका विचारक करनेमें ज्ञान आता है, चारों पहलूसे। भगवानमें कौन-से गुण भरे हैं? भगवानकी अवस्था क्या? उनका स्वरूप क्या है? सब ज्ञान (करता है)।

आश्रय लेनेमें, आश्रयमें एक ही आता है। दृष्टिमें एक आश्रय लिया, उसमें एक वस्तु आ जाती है। उसके भेद हैं, वह मूल वस्तुभेद नहीं है। उसका लक्षणभेद और अंश-अंशीका भेद है। उसके आश्रयमें तो एक ही आता है। वस्तु अनेकान्त स्वरूपसे भरी है। उसके ज्ञानमें सब आना चाहिये और आश्रयमें एक आता है। वही वस्तुका स्वरूप है। आश्रयमें भिन्न-भिन्न (आश्रय नहीं होता)। द्रव्यका आश्रय, गुणका आश्रय, ऐसे आश्रय भिन्न-भिन्न नहीं होते। आश्रय एक ही होता है। लेकिन उस आश्रयमें गुणोंसे

भरितवस्थ वस्तु अन्दर आ जाती है। लेकिन उसकी भेद पर दृष्टि नहीं है, उसे गौण हो जाता है। इसलिये आश्रय लिया।

श्रद्धाका दोष या चारित्रका दोष, वह तो जबतक भेदज्ञान नहीं हुआ है, भेदज्ञान होकर ज्ञायककी धारा प्रगट हुयी, तो श्रद्धाका दोष, चारित्रका दोष आदि स्पष्टरूपसे भिन्न पडता है। पहले तो उसे एकत्वबुद्धि है और श्रद्धा, आचरण आदि सब मिश्र है। इसलिये उसे अपनी परिणतिमें ही मिश्र है, इसलिये उसे भिन्न करना मुश्किल पड़ता है। परिणतिमें मिश्र है, इसलिये यह श्रद्धाका या यह चारित्रका (दोष ऐसे भिन्न नहीं कर सकता है)। परिणतिमें ही मिश्र हो रहा है। अन्दर भेदज्ञान हुआ नहीं है। श्रद्धा जिसकी भिन्न हो गयी, ज्ञायककी परिणति (हुयी) उसे (यह) श्रद्धा (है), यह चारित्र-यह स्थिरता है (ऐसा भिन्न कर सकता है)। ज्ञायककी श्रद्धामें फ़र्क पड़े तो वह श्रद्धाका दोष होता है। मैं ज्ञायक ही हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। गुणभेद है वह लक्षणभेदसे है। उसमें यदि भूल पड़े तो उसकी श्रद्धामें, आश्रयमें भूल पड़े। तो वह श्रद्धाका दोष है।

इसलिये जब वह भिन्न हुआ, तो उसे जो अनन्तानुबन्धीका रस था वह टूट जाता है। ज्ञायक भिन्न पडे। अभी अभिन्न है, इसलिये भिन्न नहीं पड़ा है। इसलिये उसे सब मिश्ररूपसे चल रहा है। उसे सब रस मन्द पड़े हैं। यथार्थ देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण किये, तत्त्वका विचार करता है, तत्त्वको ग्रहण करता है, ऐसा सब करता है। इसलिये वह तत्त्वकी ओर झुका है। इसलिये उसे सब (रस) मन्द पड़ गये हैं। अनन्तानुबन्धी, दर्शनमोह आदि। लेकिन वह उससे भिन्न नहीं पड़ा है, इसलिये उसे सब मिश्ररूपसे ही चल रहा है। इसलिये मिश्र हो रहा है। भिन्न पड़े उसे, यह अस्तित्वका और यह श्रद्धाका...

लेकिन उसमें स्थूलरूपसे वह ऐसा ग्रहण कर सकता है कि जो तत्त्व सम्बन्धित बात हो, उसमें जो भूल पड़े, तीव्रता आ जाये, वह सब दर्शनमोहमें जाता है। और दूसरा अस्थिरतामें जाता है।

मुमुक्षु :- स्थूलरूपसे भेद कर सकता है।

समाधान :- तत्त्व सम्बन्धि जो हो, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र सम्बन्धित, तत्त्व सम्बन्धित, उस तत्त्वमें भूल पड़े तो वह श्रद्धाके दोषमें जाता है।

मुमुक्षु :- शुभरागसे धर्म हो, इत्यादि।

समाधान :- हाँ, वह सब श्रद्धाके दोषमें जाता है। शुभरागसे धर्म होता है, शुभ हो तो अच्छा है, आदि। शुभ आता है, लेकिन उससे लाभ (नहीं मानता)। वह अपना निज स्वरूप नहीं है। तत्त्वमें भूल पड़े तो वह श्रद्धाके दोषमें जाती है। बाकी जो आचरणमें हो, वह सब कषायके भाव हैं। भूमिकामें अमुक प्रकारके कषाय मन्द (होते

हैं), वह सब आत्मार्थीको तो होना चाहिये। आत्माका जिसे प्रयोजन है, उसे भूमिका अनुसार कषायोंका रस अन्दरसे कम हो जाता है। उस सम्बन्धित तो उसे होता है। श्रद्धा और चारित्रका भेद पड़े, इसलिये उसे उसमें उतना फ़र्क नहीं पड़ता कि दूसरे कषाय बहुत हो जाय। यह तो तत्त्वका है। बाकी दूसरे सांसारिक व्यवहारिक कषाय बहुत बढ़ जाय, ऐसा नहीं होता। आत्मार्थीको आत्माका प्रयोजन हो तो उसे भूमिका भी अमुक प्रकारकी होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- मुख्यरूपसे तत्त्वका दोष श्रद्धाके दोषमें लेना चाहिये। और लौकिकमें भी ऐसे तीव्र कषाय नहीं होते कि जो सामान्य लोकको भी नहीं होते।

समाधान :- नहीं होते। उसकी भूमिका, मुमुक्षुकी भूमिका अनुसार होना चाहिये।

मुमुक्षु :- और खास तो जब भिन्न पड़े तब ही यथार्थरूपसे...

समाधान :- यथार्थ भेद तब ही पड़ता है। परिणति भिन्न पड़े और अस्थिरता भिन्न रह जाय। उसे भेदज्ञान हो। तब ही उसे श्रद्धा और चारित्रका दोष वास्तविकरूपसे उसकी परिणतिमें होते हैं। तबतक उसे रस मन्द हुए होते हैं। सब पहलूसे देखा जाता है। नक्की करके आश्रय एकका लिया जाता है। प्रत्येक वस्तु व्यवहारमें भी नक्की करे, कोई व्यक्तिका वह आश्रय लेता है, माँ-बापका या दूसरेका, तो व्यक्तिगत तौर पर आश्रय ले उसमें उसे भेद नहीं है, उसमें विचार नहीं है। उसे विकल्प नहीं है। उसमें क्या गुण है, यह सब विचारमें आता है। आश्रय लेनेमें आश्रय एक वस्तुका (लेता है)। चैतन्यका आश्रय लेनेमें एक वस्तु अखण्ड ऐसे आता है। फिर उसमें गुणभेद पर या पर्यायभेद पर कहीं दृष्टि (नहीं होती)। विभाव तो मेरा स्वभाव ही नहीं है। ज्ञायक एक वस्तु है। वस्तुमें क्या है? ऐसा कुछ नहीं। अस्तित्वका आश्रय-यह वस्तु मैं हूँ, बस। ज्ञायक वस्तु मैं हूँ। उस वस्तुका आश्रय लिया।

मुमुक्षु :- आश्रयमें हूँ-पनाका अनुभव करना है, हूँ-पने अनुभव करना। ज्ञायक वही मैं, ऐसे हूँ-पने अनुभव करना है, वहाँ ज्ञान ऐसा (कहता है), यह गुणभेद, यह पर्यायभेद तेरेमें हैं, तू ही है, कुछ अन्य नहीं है। अर्थात् एकमें हूँ-पना करना, दूसरेमेंसे छोड़ना। वहाँ श्रद्धा और ज्ञानका विषय, थोड़ा फ़र्क करता है। उलझन वहाँ होती है कि श्रद्धामें यह ज्ञायक ही हूँ, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ और पर्याय भी... अन्य कुछ भी मैं नहीं, यानी पर्यायमात्र भी मैं नहीं हूँ। नहीं हूँ, इसलिये ज्ञानमें जैसा है वैसा, परसे भिन्नता और अतद्भावरूप भिन्नता, वस्तु स्वरूपको जैसा है वैसा ख्यालमें रखकर, सर्वथा इतना दृष्टिका ज़ोर नहीं देता है कि यह ज्ञायक ही मैं हूँ, और अन्य कुछ भी मैं नहीं हूँ।

समाधान :- ... फिर उसमें उसे विकल्प नहीं है कि यह पर्याय मैं नहीं हूँ

या यह गुणभेद मैं नहीं हूँ। ऐसा विकल्प उसे नहीं है। उसने तो एक अस्तित्वको ग्रहण किया है। दृष्टिके अन्दर ज्ञान साथमें ही जुड़ा है। कितना भेद, विभाव और स्वभाव भेद है, पर्यायका कितना भेद है, गुणका कितना भेद है, इन सबके ख्यालपूर्वक दृष्टिका ज़ोर है। दृष्टिका ज़ोर ऐसा नहीं है कि पर्याय एक दूसरी वस्तु है। दृष्टिका जोर... जो श्रद्धा की, श्रद्धामें ऐसा ज़ोर है कि यह पर्याय बाहर लटक रही है। ऐसा नहीं है।

उसे दृष्टिके ज़ोरके साथ पर्यायका वेदन होता है। वेदन आदि सबका ज्ञानमें ख्याल है, परन्तु दृष्टिका ज़ोर ऐसा नहीं था कि ज्ञानसे विरूद्ध है। उसके साथ, यह कितना भिन्न है और वह कितना भिन्न है, सबके ख्यालपूर्वक दृष्टिका आश्रय है। दृष्टिका आश्रय ऐसे नहीं है कि ज्ञान कुछ दूसरा काम करता है और दृष्टि कोई दूसरा करती है, ऐसा नहीं है।

(दृष्टि) ऐसा कहती है कि मेरेमें तू कुछ है ही नही और ज्ञान कहता है, मेरेमें है। ऐसा नहीं है। किस प्रकारसे है और किस प्रकारसे नहीं है, वह दृष्टि और ज्ञान दोनों मैत्रिपूर्वक काम करते हैं।

मुमुक्षु :- दोनों मैत्रिपूर्वक काम करते हैं।

समाधान :- हाँ, मैत्रिपूर्वक करते हैं।

मुमुक्षु :- अर्थात् ज्ञान जिस प्रकारसे वस्तुका स्वरूप बताता है, उसे रखकर दृष्टि..

समाधान :- उसे रखकर दृष्टिका ज़ोर उसी प्रकारसे होता है। दृष्टिमें ऐसा नहीं आता है कि यह पर्यायका वेदन है, यह पर्याय आ गयी, पर्याय आ गयी। ऐसा नहीं है दृष्टिमें। दृष्टिने तो आश्रय ही ग्रहण किया है। दृष्टिकमें विकल्प नहीं है। दृष्टिमें किसी भी प्रकारका भेद नहीं है। दृष्टिने अस्तित्व ग्रहण किया है। फिर उसमें बाकी सब आता है, उससे भागती है, ऐसा उसका कार्य नहीं है। उसे ख्याल है कि यह गुणभेद, पर्यायभेदका विषय उसमें गौण हो गया है। उसे देखने वह रुकती नहीं। उसे तो श्रद्धा करनी वही उसका विषय है। दृष्टिका विषय श्रद्धाका ज़ोर (है)। मैं कौन हूँ, उसकी श्रद्धाका ज़ोर है। ज्ञान है जो सब स्वरूप जानता है, उससे कोई अलग ही उसका आश्रय है ऐसा नहीं है। दोनों मैत्रिपूर्वक कार्य करते हैं। दृष्टिका सब ज्ञान तोड़ दे और ज्ञानका सब दृष्टि तोड़ दे (ऐसा नहीं होता)। दोनों मैत्रिपूर्वक कार्य करते हैं। दृष्टिमें कोई विकल्प नहीं है। एक आश्रय ग्रहण करना और श्रद्धाका बल है।

.. चैतन्यमेंसे उत्पन्न हुयी भावना निष्फल नहीं जाती है, ऐसा भगवानने कहा है। और वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। भगवानने कहा है। जो वस्तु है, उसे अन्दरसे जो परिणति-भावना उत्पन्न हो, उसका कार्य आये बिना रहता ही नहीं। यदि अंतरमें वह

कार्य न आये तो वस्तु टिक नहीं सकती। अंतरमेंसे जो भावना उत्पन्न हुयी हो, उसकी परिणति जो हो, उसे हुए बिना रहती ही नहीं। अंतरकी भावना होनी चाहिये। अंतरकी भावना। चैतन्यमेंसे उत्पन्न हुयी भावना हो।

मुमुक्षु :- अनन्त तीर्थंकरोंने कही हुयी बात है। एक तीर्थंकर परसे सब तीर्थंकरोंने ऐसा कहा है?

समाधान :- जो मार्ग एक तीर्थंकर भगवान कहे, वह सब भगवान कहते हैं। मार्ग तो एक ही है। तीनों कालमें एक ही मार्ग है। मुक्तिका मार्ग एक ही है। एक भगवान या सब भगवान, एक ही बात कहते हैं। उसमें अलग नहीं होता। मुक्तिका मार्ग, स्वानुभूतिका मुक्तिका मार्ग एक ही होता है। उसमें दूसरा नहीं होता। यह तो भावनाकी बात है न। यदि अंतरसे उत्पन्न हुयी भावना हो (और परिणति न हो) तो चैतन्य टिक ही नहीं सकता। यदि उसकी भावना (अनुसार) परिणति न हो, जैसी उसे अंतरसे भावना हुयी हो, उस रूप यदि परिणति परिणमे नहीं तो वह चैतन्य टिक ही नहीं सकता।

अंतरकी भावना होनी चाहिये। अंतरकी उसकी श्रद्धाकी परिणति, ज्ञानकी परिणति, चारित्रकी परिणति, उसे यदि अंतरसे भावना हो तो उस रूप उसका परिणमन हुए बिना रहे नहीं। उसका मार्ग वह अन्दरसे द्रव्य ही ढूँढ लेता है, द्रव्य ही उसका कार्य कर लेता है। उस प्रकारसे द्रव्य कार्य न करे तो द्रव्यका नाश हो जाय। एकका नाश हो तो सबका नाश हो जाय। वस्तुका स्वरूप ऐसा होता ही नहीं। ऐसी उसकी श्रद्धाकी परिणति, ज्ञानकी, चारित्रकी परिणति अंतरंगसे परिणमन हुए बिना रहे ही नहीं। अंतरमेंसे द्रव्य ही स्वयं मार्ग करके स्वयं स्वयंका आश्रय ग्रहण करके स्वयं ही पहुँच जाता है। (चैतन्यकी) ओर जो परिणति जाय, उसकी शुद्धरूप परिणति होती है। उसकी भावना (अंतरकी हो तो)। बाहरकी बात अलग है, यह तो अंतरकी बात है। अंतरंग सच्ची भावनाकी बात है।

प्रत्येक द्रव्य निज स्वरूपरूप परिणमता है और उसकी परिणतिकी गति, जो अपनी भावना (हो) अर्थात् जिस ओर उसका झुकाव हो, उस रूप द्रव्य उसकी परिणति प्रगट किये बिना रहता ही नहीं। वस्तुका स्वभाव ऐसा है। नहीं तो वह द्रव्य ही नहीं टिके, द्रव्य ही न रहे।

मुमुक्षु :- कुदरत बन्धी हुयी है।

समाधान :- कुदरत उसके साथ बन्धी हुयी है। कुदरत यानी वस्तुका स्वरूप। किसीने भावनाका प्रश्न हो, उसमेंसे आया है। सब भावना-भावना करते हैं। अन्दर सच्ची भावना हो तो प्रगट हुए बिना रहे ही नहीं। अंतरमेंसे स्वयं द्रव्य ही मार्ग कर लेता है। भगवानने

कही हुयी बात है अर्थात् वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। सब बहुत कहते हो न, उसमें ऐसा आ गया है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवको तो बहुत ही अनुमोदना हुयी थी। चौदह ब्रह्माण्डका नाश हो जाय।

समाधान :- हाँ, ब्रह्माण्डका नाश हो जाय, वस्तुका नाश हो जाय, यदि उस रूप कार्य न आवे तो। जो द्रव्य हो, वैसी उसकी भावना हो तो वैसी परिणति हुए बिना रहती नहीं।

मुमुक्षु :- माताजी! भावना तो सबकी सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी दिखती हो तो उसका...?

समाधान :- वह भावना नहीं, यह भावना अलग है। ऐसी भावना। वह भावना ऐसी होती है कि अन्दरसे मार्ग हो ही जाय। अपना द्रव्य अन्दरसे मार्ग किये बिना रहे नहीं। वह भावना ऊपरकी नहीं, अंतरकी भावना हो उसमें कार्य आये बिना रहता ही नहीं। अंतरका सच्चा कारण हो तो कार्य आये बिना रहे ही नहीं। ऐसा वस्तुका सिद्धान्त है। कारण ही यथार्थ नहीं है तो कार्य कहाँसे हो? एक ही मार्ग है, इसलिये अनन्त तीर्थंकरोंकी बात उसमें आ गयी है।

मुमुक्षु :- वर्तमानमें बीस तीर्थंकर वही कर रहे हैं और भविष्यमें तीर्थंकर होंगे वे यही बात करेंगे।

समाधान :- सब यही बात कहेंगे। भगवानकी वाणीमें अनन्त रहस्य आता है। उसमें वस्तुका स्वरूप ऐसा है कि द्रव्य स्वयं, स्वयंकी भावना अनुसार परिणति किये बिना रहता नहीं। द्रव्य स्वयं स्वतंत्र है और स्वयंसिद्ध है। अपने आप परिणतिकी गति करता है। .. वह भावना अलग है।

मुमुक्षु :- आत्मभावना भावता जीव लहे केवलज्ञान, वह भावना।

समाधान :- हाँ, वह भावना। आत्मभावना भावता लहे केवल, वह भावना अलग। अतंरकी परिणतिकी भावना अलग है। स्वयं ही मोक्षके पंथ पर अपना कार्य शुरू कर देता है।

मुमुक्षु :- ...पढते समय आपकी दृढ़ता और उसका ज़ोर कोई अलग ही लगता है।

समाधान :- उस दिना आ गयी है। भावनाकी कुछ बात हुयी, उसमेंसे उस वक्त आ गया है।

मुमुक्षु :- माताजी! कोई-कोई बार आपके मुखसे ऐसी बात निकल जाती है कि अन्दर चोंट लग जाय। ऐसी सुन्दर रीतसे बात आ जाती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१०१

मुमुक्षु :- उसका कारण क्या और उसके लिये क्या करना?

समाधान :- अपने गाँव जाय तो अपनी क्षति है उसमें। यह तो गुरुदेवका स्थान है, इसलिये सब ... ज्यादा सत्संग करना। स्वयंको पुरुषार्थकी मन्दता हो जाय तो ज्यादा सत्संग करना। कैसे रुचि प्रगट हो? यह रखना। ज्यादा वांचन, विचार करना। उसे देव-गुरु-शास्त्रकी महिमामें चित्त लगाना। जहाँ अपने आत्माको ज्यादा लाभ हो वहाँ आना-जाना ज्यादा रखना। कल्याण कैसे हो? आत्मा कैसे पहचानमें आये? आत्मा ज्ञायक है, आत्मा अपूर्व है। गुरुदेवने कहा है उसे बारंबार याद करना। रुचिको मन्द नहीं पड़ने देना, वह सब अपने हाथकी बात है।

समाधान :- ... इसलिये अंतरमें जाना उसे अत्यंत मुश्किल हो जाता है। अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे रुका है। अपनी भूलके कारण। 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई'। मेरी भूलके कारण, अपनी भूलके कारण स्वयं रुका है, कोई उसे रोकता नहीं है। कैसे करना? क्या करना? विचार करने पर भी स्वयं अंतरमें जिस प्रकारका पुरुषार्थ करना चाहिये वैसा करता नहीं है। स्वरूपका आश्रय ग्रहण नहीं करता है। अंतरमें श्रद्धा करके चैतन्यका आश्रय ग्रहण करना चाहिये, वह आश्रय ग्रहण नहीं करता है। बाहर उसे अच्छा लगता है, अनादि कालसे। अन्दरमें उसे ऐसा लगता है कि मेरा करना है, लेकिन पुरुषार्थ नहीं करता है। अन्दर उतनी लगी नहीं है। 'तरणा ओथे डुंगर रे, डुंगर कोई देखे नहि'। पर्वतको कोई देखता नहीं। स्वयं देखता नहीं है, इसलिये दिखाई नहीं देता। अन्दर आत्मा तो है, परन्तु स्वयं वहाँ दृष्टि करके देखता नहीं है। इसलिये दिखता नहीं है।

मुमुक्षु :- कल ही चारित्रका दोष और श्रद्धाका दोष आपके श्रीमुखसे सुननेके बाद बहुत आनन्द आया।

समाधान :- वास्तवमें तो श्रद्धा और चारित्र तो, वह स्वयं भिन्न पड़े तब उसकी श्रद्धाकी परिणति भिन्न होती है ज्ञायककी और चारित्रकी अस्थिरता रहती है। अतः अस्थिरताका दोष और श्रद्धामें दोष कब आता है और ज्ञायककी परिणतिमें चलाचलता हो तो वह श्रद्धाका दोष। खरा श्रद्धाका दोष तो सम्यग्दर्शन होनेके बाद ही उसे सहजरूपसे

भेदज्ञान होकर एकत्व परिणति छूटे तब होता है। उसके पहले वह विकल्पसे करे तो उसमें श्रद्धा और चारित्रकी एकत्व परिणति है। इसलिये उसे श्रद्धा एवं चारित्र दोनों साथ-साथ चलते हैं।

इसलिये उसे मुख्यपने तत्त्वकी बातमें शंका पड़े तो वह श्रद्धाका दोष है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और तत्त्व, तत्त्वमें उसे फेरफार हो, वह श्रद्धाका दोष है। और दूसरे कषाय हैं, वह अस्थिरताके हैं। वह तत्त्वको लागू नहीं पड़ते। तो भी मुमुक्षुकी भूमिका तो ऐसी होनी चाहिये कि यह अस्थिरता है और यह कषाय लौकिक है, इसलिये वह कैसे भी हो, उसमें कोई दिक्कत नहीं है, उसमें श्रद्धाका दोष कहाँ है? ऐसे नहीं। मुमुक्षुकी भूमिकामें उसके योग्य अमुक प्रकारकी कषायोंकी मन्दता तो उसे होनी चाहिये। लौकिकमें भी उसकी पात्रतामें होना चाहिये। यह तो चारित्रका दोष है, यह तत्त्वको कहाँ लागू पड़ता है? ऐसा उसे नहीं होता। उसकी पात्रतामें भी अमुक प्रकारकी मन्दता उसे होती है।

मुमुक्षु :- एक-एक स्पष्टकीरण माताजी! आपसे प्राप्त होते हैं तो सब पहलू इतने स्पष्ट हो जाते हैं कि किसी नयकी हानि नहीं होती और फिर भी जितना स्पष्टीकरण जिस प्रकारसे आना चाहिये, वह सब स्पष्टीकरण आपसे प्राप्त हो जाता है।

अस्तित्व ग्रहण करना है कि यह मैं हूँ। बस, इतना तुझे करना है। उसमें गुणभेद या पर्यायभेद, जिस प्रकारसे ज्ञान सम्यक्ज्ञानमें जानता है वैसा ही वस्तुका स्वरूप है। मात्र तुझे उन सबमेंसे प्रयोजनकी सिद्धिके लिये एकको ग्रहण कर लेना है।

समाधान :- एक अस्तित्व ग्रहण करना है और दृष्टिके विषयमें एक चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण कर लेना। मैं हूँ ज्ञायक, बस। फिर ज्ञान और श्रद्धा दोनों मैत्रिभावसे हैं। यह ऐसा कहे और वह वैसा कहे, ऐसा नहीं है। एक आश्रय ग्रहण कर लिया, बस, उसमें दृष्टिमें गुणभेद, पर्यायभेद गौण हो गये। विभाव स्वभाव अपना नहीं है। यह शरीर तो जड़ है, विभावस्वभाव अपना नहीं है। और गुणभेद, पर्यायभेद आदि किस प्रकारसे उसके भेद है, वह सब ज्ञानमें आता है। दृष्टि अपना अस्तित्व ग्रहण करती है। अस्तित्व ग्रहण करती है, उसमें गुणभेद पर्यायभेद सब गौण हो गया। एक अस्तित्वका ज़ोर है और मुख्य है।

उसे सहज नहीं है, इसलिये विकल्पमें ऐसा आता है कि अस्तित्वमें गुणभेद, पर्यायभेद नहीं है, ज्ञानमें है। उसे ऐसे विकल्प आते रहते हैं इसलिये दोनों विरूद्ध जैसा लगता है। उसमें सहज हो... एक अस्तित्व ग्रहण कर लिया। उसमें गुणभेद, पर्यायभेद सब ज्ञानमें ज्ञात होते हैं। फिर उसकी दृष्टिके विषयमें वह सब गौण हो जाता है। एक अपना अस्तित्व ग्रहण करता है। सामान्य अस्तित्व ग्रहण कर लेता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानगुण और ज्ञानकी पर्याय अपना कार्य करती रहती है, श्रद्धागुणका कार्य अस्तित्वको ग्रहण करना इतना ही है। सम्यक् अथवा मिथ्या।

समाधान :- अस्तित्व ग्रहण करती है। एक सामान्य पर ज़ोरसे श्रद्धा रखे कि यह मैं हूँ, यही मैं हूँ, अन्य कुछ नहीं। मुख्य स्वरूप मेरा यह है। मैं चैतन्यरूप ज्ञायकरूप हूँ। यह सब विभाव या भेद आदि सब मेरे मूल स्वभावमें नहीं है। वह सब लक्षणभेदसे भले ही हो, परन्तु मूल स्वभावमें (नहीं है)। वह उसका ज़ोर है-श्रद्धा एवं अस्तित्वका। उसने अस्तित्व ग्रहण किया है। उसका दृष्टिका विषय ऐसा ज़ोरसे है। उसे श्रद्धा कहो, दृष्टिका विषय कहो।

ज्ञानमें वह आता है कि एक अस्तित्व होनेके बावजूद, वह चैतन्य किस स्वरूप है? उसमें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, वह सब ज्ञानमें आता है। लेकिन वह सब टूकड़ेरूप नहीं है। वह सब ज्ञानमें आता है। दोनों मैत्रिभावसे रहते हैं। इस अपेक्षासे है और दूसरी अपेक्षासे नहीं है। ज्ञानमें दोनों (आते हैं)। ज्ञान दृष्टिको, अस्तित्वको ग्रहण करता है और बाकी सब भी ग्रहण करता है। ज्ञानमें सब आता है।

मुमुक्षु :- श्रद्धाका कार्य क्या? कि श्रद्धा किसीका स्वीकार नहीं करती, ज्ञान जैसा है वैसा...

समाधान :- ज्ञान जैसा है वैसा जानता है।

मुमुक्षु :- अस्तिसे श्रद्धा मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसा स्वीकार करती है। साथ-साथ ज्ञान नास्तिमें, यह मैं नहीं हूँ, ऐसा जान लेता है।

समाधान :- यह मैं हूँ, यह नहीं, दोनों। ज्ञानमें सब आता है। किस अपेक्षासे है, किस अपेक्षासे नहीं है। सामान्य-विशेष सब ज्ञानमें आता है। (ज्ञान) विवेकका कार्य करता है, श्रद्धा एक पर जोर रखती है कि स्वंयको ग्रहण कर लिया है कि यह मैं हूँ। मूल अस्तित्व, उसका जो असली अस्तित्व है, वह उसने ग्रहण कर लिया है। लेकिन उसे ग्रहण किये बिना मुक्तिका मार्ग होता नहीं। ज्ञानमें सब जाना, लेकिन एक पर जो जोर न आये तो वह आगे नहीं बढ़ सकता। जोर एक पर आना चाहिये।

इस अपेक्षासे गुणभेद, पर्यायभेद है। यह विभावस्वभाव मेरा नहीं है। किस अपेक्षासे है, ऐसा जाना, लेकिन जोर एक पर-यह मैं हूँ-फिर उसमें यह गुण है, पर्याय है, सब ज्ञानमें जाननेमें आता है। कल कहा न? भगवान कोई दिव्यस्वरूप (है)। भगवानका आश्रय लिया कि मुझे भगवानके दर्शन करने हैं। एक भगवानका अस्तित्व कि यह भगवान हैं, फिर भगवान कैसे हैं, वह सब विस्तार ज्ञानमें होता है। लेकिन आश्रय करनेवाला एक भगवानको ग्रहण करता है। उसमें एक अस्तित्व ग्रहण करता है। वह तो बाहरका है, यह तो अंतरका है।

... यह गुरु। यह गुरु है। अपने गुरु हैं। बस, एक गुरुको ग्रहण किया फिर उसके विचार (करता है कि) गुरु कैसे हैं? वह तो उसने नक्की कर लिया कि यह गुरु हैं, उनकी अंतरमें दशा कोई अलग है। यह गुरु अलग है। नक्की करके श्रद्धा करी कि यह गुरु। फिर उसमें बार-बार विचार नहीं आते हैं। एक गुरु हैं, ऐसे आश्रय लिया। एक आश्रय ले लिया। किस अपेक्षासे गुरु हैं, वह नक्की कर लिया, फिर श्रद्धा हो गयी कि यह गुरु हैं। फिर ज्ञानमें जानता है कि गुरु कैसे हैं। फिर बार-बार विचार नहीं करता। एक अस्तित्व गुरुका ग्रहण कर लिया है। ऐसे ज्ञायकको ग्रहण कर लिया।

वैसे ज्ञायकको ग्रहण कर लिया। जो जड़ नहीं है, परन्तु चैतन्य है। ... सब ज्ञानसे नक्की करनेके बाद श्रद्धा की कि, यह ज्ञायक सो मैं। एक अस्तित्व ग्रहण कर लिया। श्रद्धाका ज़ोर उसी पर रखा। शक्ति अपेक्षासे है, प्रगट तो हुआ नहीं है। फिर ज्ञानमें सब विवेक करके उस ओरका ज़ोर रखकर उसका पुरुषार्थ चालू होता है।

मुमुक्षु :- अस्तित्व ना माताजी?

समाधान :- सामान्य अस्तित्व। अनन्त गुण मण्डित आत्मा, उसका सामान्य अस्तित्व। गुण पर दृष्टि नहीं है। दृष्टि एक सामान्य पर है। पर्यायोंका वेदन होता है। पर्यायें पलटती हैं। वह सब ज्ञानमें जानता है। जो स्थिर हो, उसीका आश्रय लिया जाता है। जो पलटता रहे उसका आश्रय नहीं होता, जो स्थिर होता है उसका आश्रय लिया जाता है। पर्यायें पलटती रहती हैं, उस पर दृष्टि (नहीं करते), उसका आश्रय नहीं लिया जाता, जो स्थिर हो उसका आश्रय लिया जाता है। पर्यायें पलटती हैं। जो गुण हो, उसका कार्य आये बिना रहता ही नहीं। पलटनेका स्वभाव भी है आत्माका।

मुमुक्षु :- दृष्टिका इतना जोर आनेके बाद उसका अभ्यास होता है। प्रत्येक प्रसंगमें मैं तो भिन्न हूँ, मैं तो भिन्न हूँ, यह जो आपने बताया, वह दृष्टिका जोर आनेके बाद उसका बारंबार अभ्यास करना?

समाधान :- बारंबार अभ्यास करना। मैं तो भिन्न ही हूँ। यह शरीर सो मैं नहीं हूँ। मैं तो एक ज्ञायक ही हूँ। यह विभावरूप परिणमन हो रहा है, वह भी मेरा स्वभाव नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ।

मुमुक्षु :- जिस द्रव्यके आलम्बनसे सम्यग्दर्शन होता है, उस द्रव्य सम्बन्धित... द्रव्य तीनों कालमें जात्यांतर नहीं होता।

समाधान :- तीनों कालमें जात्यांतर (अर्थात्) उसकी जाति बदलती नहीं। जो द्रव्यके आश्रयसे सम्यग्दर्शन हो, वह द्रव्य.. ऐसा है न? द्रव्य जात्यांतर नहीं होता। जात्यांतर यानी उसकी जाति बदलती नहीं। एक स्वभाव ही रहता है। अनन्त काल गया तो भी जीव तो वही का वही है। निगोदमें गया तो भी वह है, देवमें गया तो भी

वैसा ही है। नर्कमें गया तो भी वैसा है, तिर्यंचमें गया तो भी वैसा है। जीव तो वही का वही है। जात्यांतर नहीं होता। जीव बदलकर जड़ नहीं होता। जीव तो जीव, चेतन तो चेतन ही रहता है। चेतन सो चेतन तीनों कालमें, जड़ वह जड़रूप है। दोनों भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। उस चैतन्यको ग्रहण करना, वही आत्माको सुखका कारण है, अन्य कुछ भी सुखका कारण नहीं है। वह स्वभाव ग्रहण करना, वही सर्वस्व है। वही द्रव्य है। कोई अलग द्रव्य है, आश्चर्यकारी द्रव्य है।

मुमुक्षु :- अशुद्ध परिणमन जो होता है, उसे जात्यांतर हुआ कहा जाय?

समाधान :- किसका परिणमन?

मुमुक्षु :- अशुद्ध परिणमन।

समाधान :- जात्यांतर नहीं है। अपना स्वभाव छोड़कर उसका परिणमन होता ही नहीं। स्वयं स्वयंरूप ही रहता है। जात्यांतर अर्थात् विभावरूप जो होता है, वह पर्याय अपेक्षासे दूसरी जाति है। परन्तु अपने स्वभावसे मूल वस्तुको नहीं छोड़ता। निमित्तकी अपेक्षासे कहा जाता है कि स्फटिक स्वयं निर्मल है, परन्तु जो लाल-पीले रंग है वह दूसरी जातिके हैं। वह उसका मूल स्वभाव नहीं है। स्वभावका रंग नहीं है। परन्तु वह विभाव पर्याय-विकृत है। चैतन्यकी विभावपर्याय है, स्वभावपर्याय नहीं है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन तो विकृति रहित द्रव्य है।

समाधान :- सम्यग्दर्शन विकृति रहित द्रव्य है, जो एक स्वभावरूप है, सहज स्वभावस्वरूप है, पारिणामिकरूप है। उसके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन होता है। पर्यायके आश्रयसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। द्रव्यके आश्रयसे ही होता है। किसी भी प्रकारका विभाव-विकृति हो, उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन नहीं होता या शुभभावके आश्रयसे नहीं होता। अन्दर शुद्धके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है। तो वह शुद्धात्माके आश्रयसे होता है। शुद्ध पर्यायके आश्रयसे भी नहीं होता। शुद्ध पर्याय तो प्रगट होती है। वह हमेशा नहीं होती। शुद्धात्माके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन होता है। कोई शुभभावके आश्रयसे या शुद्ध पर्यायके आश्रयसे स्वयं शुद्धात्मा द्रव्य है, उसके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन होता है। उसीका आलम्बन लेना, उसीमें स्थिर होना, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसका चारित्र, बस, उसके आश्रयसे ही पूरा मुक्तिका मार्ग यहाँसे शुरू होता है। द्रव्यके आश्रयसे।

द्रव्यको जीवने ग्रहण नहीं किया है। पर्यायकी ओर दृष्टि की है, विभावकी ओर दृष्टि करके शुभभाव कुछ करे तो, मैंने मानो बहुत किया, ऐसा उसे लगता है। परन्तु करनेका अंतरमें बाकी रह जाता है। अनन्त कालसे जो किया वह कुछ किया ही नहीं है। अंतरमें जो करनेका है वह अलग ही है। बाहरसे करे इसलिये मानों मैंने बहुत किया। परन्तु श्रद्धा तो ऐसी ही होनी चाहिये कि मेरे चैतन्यके आश्रयसे ही सब

होता है।

मुमुक्षु :- शुद्ध द्रव्यके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, द्रव्यके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन होता है। दोनों एक ही वस्तु है। पर्यायको गौण करके।

समाधान :- पर्यायको गौण करे तो आत्माके आश्रयसे ही होता है।

मुमुक्षु :- वह शुद्ध ही रहा।

समाधान :- वह शुद्ध ही है। उसमें कोई अशुद्धता है ही नहीं। शुद्धात्माके आश्रयसे ही होता है। शुद्धात्मा और अशुद्धात्मा, वह तो एक बोलनेकी पद्धति है। अशुद्धात्मा पर्याय अपेक्षासे कहनेमें आता है। आत्मा तो शुद्ध ही है।

मुमुक्षु :- यह जो .. बात की, कि पर परिणामरूप परिणमे नहीं, उसका अर्थ क्या?

समाधान :- पररूप परिणमता नहीं। पर परिणामरूप यानी जड़रूप परिणमता नहीं। जो आत्मा है, वह विभावरूप मूल रूपसे परिणमता नहीं। पर्याय अपेक्षासे परिणत है।

मुमुक्षु :- द्रव्य स्वभाव है, वह वैसाका वैसा रहता है।

समाधान :- वह वैसाका वैसा रहता है। स्फटिक वैसा ही रहता है, पानीकी शीतलता जाती नहीं। जो वस्तुका मूल स्वभाव हो, वह वैसा ही रहता है। वह निगोदमें जाय तो भी वैसा ही रहता है। उसमें कोई फेरफार नहीं होता। उसीका आश्रय लेना। उसीसे होता है।

अपना कल्याण करना, अपनी शुद्ध पर्याय प्रगट करनी है। वह अन्य किसीके आश्रयसे होता नहीं। स्वयंको अन्दर वेदन और शुद्धता-निर्मलता प्रगट करनी है तो निर्मलके आश्रयसे निर्मल होता है। स्वयं ही है और स्वयंको ही ग्रहण करना है। दूसरा कुछ नहीं है।

मुमुक्षु :- .. स्वपनेका त्याग कर सकता नहीं। वह बात तो आ गयी...

समाधान :- हाँ, द्रव्य स्वपनेका त्याग कर सकता नहीं। द्रव्य स्वयं स्वयंको छोड़ता नहीं। स्वयंको छोड़कर अन्य रूप नहीं होता। अपना स्वपना छोड़ता नहीं। वस्तु स्वभावसे छोड़ता नहीं। पर्याय अपेक्षासे छोड़ता है, ऐसा कहनेमें आता है। वस्तु स्वभावसे छोड़ता नहीं।

ज्ञायककी परिणति प्रगट हो, स्वानुभूति प्रगट हो तो उसे ज्ञायककी दशामें वह ज्ञाताकी धारा छोड़ता नहीं। उसे चाहे जैसी विभाव पर्याय उदयमें हो, तो भी वह ज्ञायककी धारा छोड़ता नहीं। उसकी भेदज्ञानकी धारा गृहस्थाश्रममें हो तो ऐसे ही चालू रहती है। पर्याय अपेक्षासे छोड़ता नहीं। पहले कहा वह द्रव्य अपेक्षासे छोड़ता नहीं। उसकी पुरुषार्थकी धारा ऐसी होती है। बाहर विभावमें एकत्वबुद्धिरूप परिणमता नहीं। उसकी

स्वभावकी धारा चालू ही रहती है। प्रतिक्षण चालू रहती है।

मुमुक्षु :- अनादि मर्यादारूप वर्तता है, ऐसा एक बोल है।

समाधान :- अनादि मर्यादारूप ही वर्तता है, नियमरूपसे उसकी मर्यादा छोड़ता नहीं। उसकी मर्यादासे बाहर जाता नहीं। जैसे समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ता नहीं, वैसे आत्मा मर्यादा छोड़ता नहीं। समुद्रका पानी बाहर नहीं आ जाता।

वैसे चैतन्य अनन्त गुणसे भरा आत्मा, वह अपनी मर्यादा छोड़कर अपना द्रव्य बाहर आकर दूसरेके साथ मिश्र हो जाय, ऐसा होता नहीं। उसके गुण और उसकी परिणति अन्य किसीके साथ मिश्र हो जाय, उस प्रकारसे वह उछलकर अन्यमें मिश्र नहीं हो जाता। उसका तल ऐसा नहीं है, समुद्र मर्यादा छोड़ता नहीं, वैसे चैतन्य (अपनी मर्यादा छोड़ता नहीं)। यह तो दृष्टान्त है। स्वयं मर्यादा (छोड़ता नहीं)। स्वयं स्वयंमें ही रहता है। पर्याय अपेक्षासे बाहर गया, ऐसा कहनेमें आता है। मर्यादा छोड़ता नहीं है, ऐसी श्रद्धा करके उस रूप पुरुषार्थ करे तो वह बराबर है।

मुमुक्षु :- तो उसे काममें आये।

समाधान :- हाँ, तो उसे वह समझ काममें आये। बाकी श्रद्धा करे, भले बुद्धिसे श्रद्धा करे तो भी वह हितका कारण है।

मुमुक्षु :- पहले तो ज्ञानमें यथार्थता हो, उसके बाद ही ... होता है न?

समाधान :- ज्ञानमें यथार्थ हो। विचारसे नक्की करे तो श्रद्धा होती है। विचार तो बीचमें आये बिना नहीं रहते। तत्त्वके विचारसे श्रद्धा होती है, परन्तु श्रद्धा मुक्तिके मार्गमें मुख्य है। श्रद्धा सम्यक् होती है, इसलिये ज्ञान सम्यक् कहनेमें आता है। परन्तु ज्ञान बीचमें आये बिना नहीं रहता। ज्ञानसे नक्की करता है। व्यवहार बीचमें आये बिना नहीं रहता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१०२

समाधान :- ... सम्यक् एकान्त..?

मुमुक्षु :- अनेकान्त भी एकान्त ऐसे निज पदकी प्राप्तिके लिये एक ही उपाय है। अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निज पदकी प्राप्तिके सिवा अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है।

समाधान :- उपकारी नहीं है?

मुमुक्षु :- अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है।

समाधान :- अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपदकी प्राप्तिके सिवा दूसरे प्रकारसे उपकारी नहीं है। सम्यक् एकान्त। एक द्रव्य पर दृष्टि, बस! बाकी सब गौण है। अनेकान्तको जानकर एक वस्तु पर दृष्टि करनी, वही उसका हेतु है। एक द्रव्य पर दृष्टि रखी, वह उसका उपकार है। अनेकान्त वस्तु स्वरूपको जानकर एक सम्यक् एकान्त एक द्रव्य पर दृष्टिका ज़ोर, उस प्रकारसे ही वह उपकारी होता है। अन्य हेतुसे अनेकान्त वादविवादके हेतुसे, ऐसे नहीं, निज पदकी प्राप्तिके लिये ही उपकारी है, अन्य कोई हेतुसे उपकारी नहीं है। द्रव्य पर दृष्टि।

द्रव्यको पहचानकर स्वानुभूति प्रगट करनी उस हेतुसे वह उपकारी है। बाकी उसमें रुकना, विवाद, नयका .. उस हेतुसे वह उपकारी नहीं है। एक चैतन्यकी प्राप्तिके लिये उपकारी है। और वह वस्तुका स्वरूप है। उसमें द्रव्य पर दृष्टिका ज़ोर, उस एकान्तको मुख्य रखे। अनेकान्त उसके साथ वर्तता है, उस प्रकारसे उपकारी है। अन्य कोई हेतु, आत्मार्थके सिवा अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है। कहीं भी नय (लगा दे कि) अनेकान्त ऐसे भी होता है, ऐसे भी होता है। ऐसा अनेकान्त सम्यक् अनेकान्त भी नहीं है। सम्यक् अनेकान्त तो एकान्तको रखकर उसके साथ जो अनेकान्त हो, वह सम्यक् अनेकान्त है। और सम्यक् एकान्तके साथ सम्यक् अनेकान्त होता ही है। तब उसका सम्बन्ध है। नय ऐसे होती है, ऐसे होती है, उस प्रकारसे सम्यक् अनेकान्त भी नहीं है।

मुमुक्षु :- प्रत्येक नयकी विचारणाके समय उसे प्रयोजन लक्ष्यमें रहना चाहिये।

समाधान :- अपनी ओरका प्रयोजन, आत्माको साधनेका होना चाहिये। वस्तुका असली स्वरूप क्या है, उसे रखकर सब होना चाहिये। उसके साथ मेलयुक्त होना चाहिये।

मात्र वस्तुको तोड़नेके लिये या वादविवाद करनेके लिये नहीं होना चाहिये।

मुमुक्षु :- श्रद्धाको सम्यक् होनेके लिये यथार्थ ज्ञानकी ... होनी चाहिये?

समाधान :- ज्ञानकी जरूरत पड़ती है। श्रद्धा यथार्थ होनेके लिये ज्ञानसे ही नक्की होता है, तत्त्व विचारसे ही नक्की होता है। इसलिये ज्ञान उसका साधन है। ज्ञान तो उसका साधन है। श्रद्धा होनेमें ज्ञान साधन है। श्रद्धा द्रव्य पर दृष्टि करके ज़ोरसे मुक्तिके मार्गमें आगे बढ़ती है। श्रद्धा होनेमें ज्ञान कारण है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! पर्याया रहित तो द्रव्य कभी होता नहीं। ऐसी स्थिति होनेके बावजूद पर्यायको गौण करके द्रव्य सन्मुख होना?

समाधान :- पर्याय पलटती रहती है, पर्याय कहाँ एकरूप रहती है? विभाव पर्याय है, वह सब पलटती रहती है। शुभाशुभ भाव पलटते रहते हैं। वह मूल वस्तु कहाँ है? मूल वस्तु नहीं है। पर्याय रहित द्रव्य नहीं है, परन्तु द्रव्य तो मूल वस्तु है। यह मूल वस्तु नहीं है। जो पलटती वस्तु है, उस पलटनेका आश्रय नहीं होता। मूलका आश्रय होता है।

वृक्ष उगाये तो उसके बीज पर दृष्टि होनी चाहिये। डाले-पत्ते (पर नहीं)। उसकी बीज पर दृष्टि हो तो वृक्ष उगता है। बिना मूलके नहीं होता। उसका मूल तो द्रव्य है, भले पर्याय रहित न हो। पर्यायका आश्रय काम नहीं आता।

मुमुक्षु :- वहाँ कहा न? पनपता है तब शोभता है।

समाधान :- हाँ, वह। मूल है। बीज पनपे तब शोभता है, परन्तु मूल वस्तुको पहचानकर ग्रहण करे तो पनपेगा न? उसे पहचानकर मूलको ग्रहण करे, उसकी श्रद्धा करे, उसका ज्ञान करे, ज्ञान-वैराग्यका सिंचन करे तो पनपता है। और मूलको पहचाने तो पनपता है। द्रव्यके आश्रसे दृष्टिकी स्थिरता होती है। पर्यायके आश्रयसे स्थिर नहीं होता। पर्याय तो पलटती रहती है। शुद्ध पर्याय भी चैतन्यका वैभव है, अनन्त गुण भी उसका वैभव है। वस्तु तो मूल है। उस मूलको ग्रहण करे तो आगे बढ़ता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य बीजरूप है।

समाधान :- द्रव्य मूल वस्तु है। द्रव्यका सब वैभव है। द्रव्य कैसा है? कि अनन्त गुणोंसे भरपूर, अनन्य पर्याययुक्त, यह सब उसका वैभव है। मूल वस्तु है। मूल राजा कौन? मूल द्रव्य है। राजाका वैभव नहीं, राजा मूल वस्तुको ग्रहण करे तो आगे बढ़े।

मुमुक्षु :- जीवराजाको जानना वह, यह?

समाधान :- हाँ, जीवराजाको जाने, फिर श्रद्धा करे, फिर उसका आचरण करे। ऐसे जीवराजाको जानना, श्रद्धा करे, उसका अनुचरण करे।

मुमुक्षु :- नारकीका जीव प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करता होगा, उस वक्त वह ऐसी

विचारश्रेणीमें चढ जाता होगा? पहली बार सम्यग्दर्शन प्रगट करे तब।

समाधान :- पीछले भवसे वह तैयारी करके गया है। तैयारी करके गया है, इसलिये उसे एकदम भेदज्ञान हो जाता है। दुःखके प्रसंग देखकर (ऐसा लगता है), यह? कहीं शान्तिका स्थान दिखाई नहीं देता है। यह किस प्रकारका संयोग और उदय है? ऐसा विचार करने पर अन्दर कहीं शान्ति है या नहीं? ऐसा विचार करने पर यह मैं मूल तत्त्व हूँ, उसमें शान्ति है। लम्बे विचार नहीं करता है, मूल वस्तुको ग्रहण कर लेता है। पीछले भवमें वह तैयारी करके, देशनालब्धि ग्रहण करके, अन्दरमें पात्रता तैयार करके गया है, इसलिये उसे एकदम हो जाता है।

समाधान :- ... गुरुदेवसे उतनी प्रभावना, उतने शास्त्र (प्रकाशित हुए)। कितने प्रवचन दिये गुरुदेवने बरसों तक। ऐसे महापुरुष इस कालमें-पंचम कालमें महा दुर्लभतासे मिलते हैं।

मुमुक्षु :- घर-घर स्वाध्याय, घर-घर तत्त्वचर्चा और समयसारजी शास्त्रको तो स्पर्श नहीं कर सकते, मुनिओंके लिये ग्रन्थ है। उसके बजाय छोटे बालकोंसे लेकर उस शास्त्र अभ्यास होने लगा।

समाधान :- चारों ओरसे। पंचमकालमें पधारे। ऐसे गुरुदेवका वर्षों तक सान्निध्य प्राप्त हुआ।

मुमुक्षु :- चतुर्थ कालमें भी दुर्लभ ऐसा..

समाधान :- हाँ, चतुर्थ कालमें जो दुर्लभ है, वह ऐसे पंचमकालमें (प्राप्त हुआ)। कोई जागृत हो तो वे जंगलमें हो। यह तो मुमुक्षुओंके बीच रहकर बरसो तक वाणी बरसायी। वह तो महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- दूसरे अनेक जीव प्राप्त करनेका प्रयत्न-पुरुषार्थ भी करते हैं।

समाधान :- अन्दरकी रुचि किसीको जागृत हुई हो तो गुरुदेवके प्रतापसे। एक अंशसे लेकर सब गुरुदेवके प्रतापसे ही है। कहाँ पड़े थे। बाह्य दृष्टिमें थे, अंतर दृष्टि करवायी। संप्रदायमें थे तब भी सम्यग्दर्शन पर उतना वज़न रखते थे।

मुमुक्षु :- तबसे फेरफार होने लगा। लोगोंको सम्यग्दर्शन क्या चीज है, उसका ख्याल आने लगा।

समाधान :- हाँ, सबको ख्याल आने लगा।

मुमुक्षु :- .... सम्यग्दर्शन ... यहाँ एक महाराज आये हैं, वे समकित पर बहुत वज़न देते हैं। अपने तो ऐसा समझते थे कि .. किया इसलिये समकित और चौविहर और सामायिक करते हैं इसलिये पंचम गुणस्थान। यह महाराज ना कहते हैं। वे कहते हैं, सिद्ध भगवान जैसा आनन्द आये, उसका स्वाद चखे, शरीरकी चमड़ी ऊतारकर

नमक छिड़के तो भी आँखका कोना लाल न करे, तो भी वह समकित नहीं है। समकित कोई अभूतपूर्व वस्तु है। लाखों-क्रोड़ोंमे किसीको ही होता है। अब उनकी बात ... लगती है। अनन्त कालमें प्राप्त न हो ऐसा ... दररोज परदेसी राजा या .. सन्यासी, कोई भी अधिकार पढ़े, पहले उसकी प्रस्तावना आधा घण्टे समकितके स्वरूपसे करते हैं। उस वक्त ऐसा (कहते थे)।

मुमुक्षु :- पूर्व संस्कार, जागृति...

समाधान :- उनका प्रभावनाका योग आदि सब अलग, सब अलौकिक था। उनकी वाणी भी अलग और उनका ज्ञान भी अलग, सब अतिशयतावाला था।

मुमुक्षु :- आप तो यह कहते हो, लेकिन मैं तो डॉक्टर हूँ, मुझे तो उनकी .. भी अलग लगती थी।

समाधान :- ... पुण्य और पवित्रता.

मुमुक्षु :- सबका योग था। आपने कहा न कि महा योग चारों ओरका। बाह्य और अभ्यंतर।

समाधान :- .. ऐसा ही कहे न, दूसरा क्या कहें? पुण्यके योगसे सान्निध्य मिला और गये वह भी.. पुण्य और पाप दोनों साथमें हैं। लेकिन उन्होंने जो दिया वह ग्रहण करनेका है।

मुमुक्षु :- तो-तो पाप कहाँ रहा? पुण्य भी न रहे और पाप भी न रहे।

समाधान :- उन्होंने कहा है, वह ग्रहण कर लेना है। हजम हो उतना खाये। नहीं तो खाये कहाँ-से?

मुमुक्षु :- राजकोट..

समाधान :- भावनगर तक भी नहीं जाती हूँ।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- गुरुदेवने बहुत दिया है। स्वयंका करना है। अपने यहाँ अच्छा है। यह गुरुदेवका स्थान है। यहीं हमें अच्छा लगता है। कोई कारण बिना, निष्कारण कहीं जानेका मन नहीं होता।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- .. प्राप्त करे तो हो सके ऐसा है। स्वयं ही नहीं करता है। निज नयनकी आलससे, गुरुदेव कहते थे, हरिको निरखता नहीं।

मुमुक्षु :- हिम्मतभाई ऐसा क्यों कहते हैं, डिब्बा खुलता नहीं। खोलता नहीं, ऐसा कहिये।

समाधान :- ऐसा कहते हैं, बाकी स्वयं ही नहीं खोलता है।

.. उन्हें धर्मकी लगनी थी। गुरुदेवका वढ़वाणमें चातुर्मास था, उस वक्त प्रवचन लिखकर पेपरमें देते थे। मैंने हिम्मतभाईको पत्र लिखा कि यहाँ एक महाराज आये हैं। हम लोग मानते थे कि नव तत्त्वको जानकर श्रद्धा की। दूसरे सब कहते हैं उसे माननेसे... ऐसा नहीं है। ऐसा तो अनन्त कालमें (बहुत बार) किया, यह महाराज तो कुछ अलग ही है। ऐसा कहते थे।

(समकितकी) महिमा करते हैं। यह महाराज आये हैं वे कुछ अलग ही है। मुझे सत्य लगता है। आप वहाँ थे तब लिखा था न? वहाँ वढ़वाणमें चातुर्मास था तब। गुरुदेवके प्रवचन सुनकर, यह महाराज कुछ अलग है। सम्यग्दर्शन पर बहुत वज़न देते हैं। और वे कहते हैं वह सब सत्य है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवका चातुर्मास था तो पिताजीको कहा, मुझे लाभ लेना है। फिर नौकरी करुँगा। तो पिताजीने कहा, हाँ, खुशीसे पहले लाभ लो।

समाधान :- उतने अध्ययन कंठस्थ किये थे, स्थानकवासीके .. कंठस्थ किये थे। जो कोई साधु आये उसे प्रश्न पूछने जाय। ऐसी एक मंडली थी। पूछने जाते थे।

मुमुक्षु :- .. बुद्धिका सद् उपयोग किया।

समाधान :- यहाँ संस्थामें ऊतना ध्यान रखते थे। सब मन्दिरमें। यहाँके तो सही, बाहरके भी।

मुमुक्षु :- मार्गदर्शन देना, उसके प्लान देखने, कैसे करना, एक-एक बातका... हमारे मुंबईमें चारों मन्दिरोंमें कितने ही बार आकर...

समाधान :- .. वह काम बहुत अच्छा किया है। मुंबईमें तो समवसरण मन्दिर, मलाड़, हर जगह।

मुमुक्षु :- सभी मन्दिरोंमें उनके ही मार्गदर्शन अनुसार किया गया। कितने ही दिनों तक, महिनों वहाँ रहकर सब योजनाएँ करते थे।

मुमुक्षु :- माताजी कहते कि, भाई! ज्ञायकको लक्ष्यमें रखना। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, वही है न, और क्या करना है?

समाधान :- शास्त्रोक्त करना।

मुमुक्षु :- नाप आदि सब तिल्लोय पण्णत्तिमें देखकर, जिनेन्द्र सिद्धान्त कोषमें देखकर, सब...

समाधान :- उसमें तो बुद्धि तो चलाते, लेकिन इसमें भी चलाते थे। इसमें भी उनको इतना था। सुबह उठकर स्वाध्याय करते थे। कहते थे, कल मन्दिर जायेंगे।

मुमुक्षु :- सब मन्दिरोंमें मोटर घुमायी, दर्शन किये। भण्डारमें ५१ रूपये डाले। जागृति कितनी!

समाधान :- टेपमें आता था, मैं परमात्मा हूँ, तो ऐसे-ऐसे अंगूली करते थे। रास्तेमें टेप बजाते-बजाते ही ले गये थे। बैठे-बैठे ही सुना। बैठे थे तो ऐसा लगता था कि यह सब क्यों ले जाते हैं?

मुमुक्षु :- हम क्यों ले जाते हैं, ऐसा लगता था। निकले तब लोगोंकी कतार लगी थी। सबको हाथ जोड़कर...

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१०३

समाधान :- .. छः महिने पुरुषार्थ करे, परन्तु उसका पुरुषार्थ कैसा होता है? उसकी लगनी कुछ अलग होती है। बारंबार अभ्यास करे। कमसे कम जानना चाहिये उसका अर्थ प्रयोजनभूत द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप तो प्रयोजनभूत है। जो जाननेमें आये वह सब प्रयोजनभूत ही है। दूसरा कुछ न समझता हो तो उसके लिये, मैं ज्ञायक हूँ। यह शरीर भिन्न है, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं द्रव्य आत्मा शाश्वत हूँ। अनन्त गुणसे भरा और मुझमें पर्याय है। मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न है और दूसरेके भिन्न है। मूल प्रयोजनभूत इतना ही जाने तो उसमें सम्यग्दर्शन होता है। परन्तु ज्यादा जाने तो उसमें कोई नुकसान नहीं है।

मैं ज्ञायक जाननेवाला आत्मा हूँ। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। यह शरीर भिन्न है और अन्दर जो विभाव होते हैं, वह भी मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो शाश्वत आत्मा ज्ञायक हूँ। मैं कभी नाश होनेवाला नहीं हूँ, मैं शाश्वत हूँ। मेरी पर्याय मुझमें मेरे कारणसे ही परिणमती है। उसमें दूसरा कोई कुछ नहीं कर सकता। मूल प्रयोजनभूत उतना तत्त्व जाने, उसमें सम्यग्दर्शन होता है। ज्यादा जाने तो उसमें नुकसान नहीं है, लाभका कारण होता है। उसका मार्ग स्पष्ट होता है।

मुमुक्षु :- प्रयोजनभूतमें नव तत्त्व, छः द्रव्य..

समाधान :- हाँ, वह आ जाता है। नव तत्त्व, छः द्रव्य सब। तिर्यंच ऐसे हैं कि जिन्हें नव तत्त्वके नाम नहीं आते। छः द्रव्यके नाम नहीं आते। परन्तु उसे भाव सब आ जाते हैं। तिर्यंचको शब्द नहीं आते। मैं जीव हूँ, यह जाननेवाला (हूँ)। यह अजीव है। स्वयं अपनेमें पुरुषार्थ करता हुआ, यह विभाव नाश करने योग्य है, वह आस्रव है। वह भाव उसमें आ जाता है। स्वयं अपनेमें साधना करे उसमें संवर आ जाता है। स्वयं विशेष उग्रता करके आगे बढ़े उसमें निर्जरा होती है। तिर्यंचको यह सब भाव उसमें समा जाते हैं। मोक्ष-पूर्ण केवलज्ञान हो, पूर्ण मोक्ष केवलज्ञान.. पूर्ण स्वरूपसे प्राप्त... मेरे स्वरूपमें समा जाऊँ। यह सब भाव उसमें समा जाते हैं। लेकिन वह तो तिर्यंचको शब्द नहीं आते हैं, भाव आ जाते हैं।

परन्तु जो मनुष्य है और क्षयोपशम है तो वह सब जाने, उसमें ज्यादा लाभका

कारण होता है। उसमें इस पंचमकालमें जहाँ-तहाँ जीव भूल खाता है। इसलिये प्रयोजनभूत तत्त्व जाने उसमें भूल खाता है। उसमें चारों ओरका जाने तो लाभका कारण होता है। जीव किसे कहते हैं? अजीव किसे कहते हैं? आस्रव किसे कहते हैं? संवर किसे कहते हैं? सब समझे तो लाभका कारण होता है। निर्जरा किसे कहते हैं? बन्ध, मोक्ष आदि सब जाने तो लाभका कारण होता है। वह सब प्रयोजनभूत है। छः द्रव्य, नव तत्त्व। द्रव्य-गुण-पर्याय अन्यके अन्यमें, मेरे मुझमें। मैं भिन्न हूँ। परद्रव्य मुझे कुछ नहीं कर सकता। मैं दूसरेका कुछ नहीं कर सकता। मैं मेरे चैतन्यद्रव्यकी परिणति करूँ। दूसरेकी कर नहीं सकता। सब द्रव्य स्वतंत्र हैं। वह सब प्रयोजनभूत है।

मुमुक्षु :- मुक्तिका मार्ग समझाया, फिर भी गुरुदेवकी गैरमौजूदगीमें यह सब तकरार दिखती है, उसमें मुमुक्षुओंको बहुत दुःख होता है।

समाधान :- कारण तो सबका स्वतंत्र कारण है। इस पंचम कालमें सबके अभिप्राय भिन्न हो गये हैं। सबके अभिप्राय अलग हो गये हैं, इसलिये होता है। सबके अभिप्राय अलग हो गये हैं। तत्त्व तो गुरुदेवने चारों पहलूसे समझाया है। सबके अभिप्राय अलग हो गये है। इसलिये होता है।

मुमुक्षु :- सत्पुरुषकी आज्ञामें चलनेका कोई विचारता नहीं है, उसमेंसे यह सब होता है। एक आज्ञामें चलना हो तो इसमें कहाँ तकरार हो ऐसा है। सत्पुरुषकी आज्ञा जैसा कुछ होना चाहिये कि नहीं होना चाहिये। किसीको किसीकी सुननी नहीं है। सब कहते हैं मैं होशियार हूँ, वह कहता है, मैं होशियार हूँ। ...

समाधान :- गुरुदेव विराजते थे तो कोई बोल नहीं सकता था। मनमें हो तो भी कुछ नहीं कर सकते थे।

मुमुक्षु :- समाजमें दूसरे जीवोंको रुचि होती हो और ऐसा माहोल सुने तो बाहरसे उसे ऐसा लगे कि यह क्या है? आनेका मन हो तो अटक जाय।

समाधान :- क्या हो सकता है? उसका कोई उपाय है क्या? उसका कोई उपाय नहीं है। गुरुदेवके प्रतापसे... इस पंचमकालमें गुरुदेव जैसे महापुरुष पधारे, वह महाभाग्यकी बात है। सबको ऐसा तत्त्व समझाया। फिर ऐसे मतभेद हो जाय, वह सबकी योग्यताका कारण है। उसमें क्या हो सकता है?

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी आज्ञाका विचार भी नहीं करते हो, ऐसी परिस्थिति है।

समाधान :- गुरुदेवका क्या अभिप्राय था, उसका विचार नहीं करता। गुरुदेवने क्या कहा है, उसका विचार नहीं करता और स्वयंको दिमागमें जैसा लगे, जहाँ अपनी रुचि है, जो स्वयंको ठीक लगे वह करता रहता है।

मुमुक्षु :- योग्य-अयोग्यका कोई विचार नहीं है।

समाधान :- अंतरका करना छूट गया है। अंतरमें आत्माका करना, भवका अभाव कैसे हो? आत्माको मुक्तिका मार्ग अन्दरसे कैसे प्रगट हो? अन्दरमें यह करना है, उसके बजाय बाहरमें मानों मैं कुछ कर लूँ, दूसरा मानता है कि मानों मैं कुछ कर लूँ, ऐसा हो गया है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने जो मार्ग कहा है, उसे चूक गये। समाजमें अधिक प्रसिद्धि प्राप्त करनेके लिये... उसमें गुरुदेवका विरोध हो जाता है।

समाधान :- मैं धर्मकी प्रभावना करुँ और मैं धर्मकी प्रभावना करुँ, ऐसा हो गया है। तत्त्व दृष्टिसे कोई किसीको बदल नहीं सकता। सबके अभिप्राय भिन्न-भिन्न हैं। अभिप्राय भिन्न हो गये, वह कैसे पलटे? अभिप्राय भिन्न-भिन्न हो गये हैं।

मुमुक्षु :- अभिप्रायमें विरूद्धता मिटे नहीं, तब तक कैसे वह लोग ठीक कर पायेंगे? यहाँ तो कोई भी आये, कहाँ किसीको ना है।

समाधान :- यह तो गुरुदेवकी भूमि है, सब आ सकते हैं, ऐसा है। किसीको प्रतिबन्ध नहीं है, कोई नहीं आये ऐसा।

मुमुक्षु :- यहाँ ऐसा कुछ नहीं है।

समाधान :- ऐसा है ही नहीं।

मुमुक्षु :- कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

समाधान :- यहाँ आकर सब रहे हैं। बाहरगाँवसे गुरुदेवका लाभ लेने आये हैं।

मुमुक्षु :- अनजानसे अनजान और परिचित सब आते ही हैं।

समाधान :- जिसको आना है, वह अपनी जिज्ञासासे आ सकते हैं। कोई रोकता नहीं, कोई किसीको कुछ कहता नहीं। कुछ नहीं है। (गुरुदेवश्री) बरसों तक विराजे। इस भूमिको पावन की है। यहाँकी बात पूरी अलग है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी गुँज तो बहुत याद आता है।

समाधान :- भगवान आत्मामें कहाँ राग-द्वेष है? भगवान आत्मा भिन्न है। लेकिन यह सब अभिप्राय एवं मतभेदके कारण यह सब हो गया है। सोनगढ़में कोई किसीको नहीं आने देता है, ऐसा थोड़ा ही नहै, सब आते हैं। किसीको आनेका बन्धन थोड़ा ही है।

तत्त्व ऐसा समझाया। पहले तो सब क्रियामें धर्म मानते थे। यह क्रिया और अन्दर दृष्टि (विपरीत)। वहाँसे गुरुदेवने कितना आगे-आगे जाकर समझाया। द्रव्य-गुण-पर्यायकी बातमें मतभेद हो गये। (तत्त्व) तो कहाँ दूर पड़ा रहा। गुरुदेवने तो कहाँ तक सबको पहुँचा दिये हैं। अन्दर आत्माका करनेका बाकी है। अपना अभिप्राय हो वैसा सब करते हैं।

मुमुक्षु :- सत्पुरुषकी दिव्य वाणी सुननेके बजाय, उसमें मतभेद खड़े करके, रोकटोक करके स्वयंको जो लाभ प्राप्त होना चाहिये, उसकी जगह दूसरा सब होने लगा।

समाधान :- .. वह तो स्थूल था, गुरुदेवने तो सूक्ष्म बताया। उसमें (मतभेद) हो गये।

मुमुक्षु :- वास्तवमें तो अंतरमें स्वयंका करना था, उसे छोड़ दिया और बाहरमें सब लग गये। यह करो और वह करो।

समाधान :- हाँ, बाहरमें आ गये। गुरुदेव स्वयंका करनेको कहते थे।

मुमुक्षु :- संक्षेपमें आपने बहुत कह दिया।

समाधान :- गुरुदेव कहते ही थे, अंतरका ग्रहण कर। सहज प्रभावनाका भाव हो, अलग बात है। फिर इस प्रकारकी तकरार तो नहीं होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- यहाँ किसका प्रतिबन्ध है? यहाँ आनेके लिये कौन रोकता है? अभिप्राय भिन्न पड़ गये हो, गुरुदेवने जो कहा है, वह करना नहीं है और अपने-अपने अभिप्रायसे भिन्न-भिन्न (बात करके) ऐसा करो, ऐसा करो। ऐसे मतभेद हो जाते हैं। कोई क्या करे?

समाधान :- ... यह गुरुदेवकी भूमि है। जिसे-जिसे भावना होती है, वह सब आते हैं। मतभेद अच्छा नहीं लगता। शान्तिसे... लेकिन क्या हो सकता है? कोई उपाय ही नहीं है।

मुमुक्षु :- ... बहुत महेनत करके नाममें थोड़ा ठीक किया तो फिर वापस...

समाधान :- गुरुदेवश्रीका अभिप्राय अन्दर ऊतारे तो होता है।

मुमुक्षु :- आप सब आईये, ... कुछ करे। ... सिद्धान्तिक विषय है।

समाधान :- गुरुदेव गये ही नहीं। ... कितना प्रकाश किया, उसके साथ दूसरेका मेल कहाँ-से हो? गुरुदेवने मार्ग प्रकाशित किया, उसके साथ दूसरेका मेल कहाँसे हो? वह पूरा संप्रदाय जुदा। उनका मार्ग तो उन्होंने भिन्न ही प्रकाशित किया।

मुमुक्षु :- आज्ञा जैसा विषय समझमें नहीं आता है, दूसरी कौन-सी बात समझमें आती होगी? ... किसी भी बातका विचार करनेका प्रश्न कहाँ है? मर्यादा बिनाके विचार कहाँ तक ले जाते हैं।

समाधान :- ... मार्ग ग्रहण किया, ऐसा मार्ग मिला, गुरुदेवने यह समझाया। धर्मकी प्रभावना करनेके लिये अपना अभिप्राय रखनेके लिये मर्यादा बाहर पहुँच जाना। मर्यादा छोड़कर.... जितनी अपनी भावना हो... मर्यादा बाहर चले जाना? कहाँ जाना है यह मालूम नहीं पड़ता। विरोधमें कहाँ तक पहुँच जाना, वह भी मालूम नहीं पड़ता। स्वयं अपना करना। बाहर सब अपने अभिप्राय अनुसार हो जाना चाहिये, उस प्रकारके विरोधमें

पहुँचकर जीव आत्माका करना भूल जाता है और बाहरका सब हो जाता है।

मुमुक्षु :- ऐसा ही है।

समाधान :- बाहरमें कहाँ तक पहुँच जाना, उसका कोई विचार नहीं आता है।

मुमुक्षु :- द्रव्यार्थिकनय द्वारा देख तो तुझे द्रव्य ही ज्ञात होगा। इस विषयमें आप थोड़ी स्पष्टता करें।

समाधान :- द्रव्यार्थिक चक्षुसे देखे तो सब द्रव्य ही दिखता है, पर्यायार्थिकको बन्द करे, उस चक्षुको बन्द करे। अनादि कालसे जीवकी पर्याय पर दृष्टि है। उस दृष्टिको बन्द करके द्रव्यको देखे तो द्रव्य ही दिखता है। पर्याय उसमें नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। द्रव्य पर दृष्टि जीवने अनादि कालसे नहीं की है। द्रव्यको पहचाना नहीं है। द्रव्य अनादि शाश्वत है। आत्मामें अनन्त शक्तियाँ हैं। आत्मा अनन्त गुणोंसे भरा द्रव्य शाश्वत (है)। कभी उस द्रव्य पर दृष्टि नहीं की है और पर्याय पर दृष्टि करके ही भटका है। इसलिये तू द्रव्य पर दृष्टि कर तो द्रव्य ही दिखाई देगा। द्रव्यकी दृष्टिमें द्रव्य दिखाई देता है। और द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतासे आगे बढा जाता है। इसलिये उसमें पर्याय नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। पर्यायका ज्ञान नहीं करना, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

वस्तु स्वरूप जैसा है वैसा जाननेसे मुक्तिका मार्ग यथार्थ साध्य होता है। जैसा है वैसा जानना चाहिये। पर्यायमें विभाव है, पर्याय अनादिकालसे है ही नहीं, ऐसा नहीं है। विभाव यदि हो ही नहीं तो उसे टालनेका प्रयत्न क्यों किया जाता है? तो करना ही नहीं रहता है। पर्याय है, पर्यायमें विभाव होता है, लेकिन उसे टालनेके लिये द्रव्य पर दृष्टि करे। उसका भेदज्ञान करे तो आगे जाया जाता है। मैं चैतन्य अनादि शाश्वत हूँ। परन्तु द्रव्यमें पर्याय ही नहीं है (ऐसा नहीं है)। उसमें शुद्ध पर्यायें होती हैं। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे शुद्ध पर्यायें प्रगट होती है। और अन्दर साधना-दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रय प्रगट होते हैं। सम्यग्दर्शन द्रव्य पर दृष्टि करनेसे होता है, लेकिन उसमें ज्ञान सब होना चाहिये।

सम्यग्दृष्टिके साथ सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्ज्ञानमें सब जाननेमें आता है। यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है, यह अशुद्ध पर्याय है, यह शुद्ध पर्याय है। द्रव्य पर दृष्टि करे, इसलिये पर्यायको निकाल देना ऐसा उसका अर्थ नहीं है। द्रव्यार्थिक चक्षुसे द्रव्य (दिखाई देता है)। फिर ऐसा आता है कि, पर्यायार्थिक चक्षुसे देखा जाय तो पर्याय दिखाई देती है। पर्याय नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- बराबर है, परम सत्य।

समाधान :- द्रव्य पर दृष्टि कर, पर्यायका ज्ञान कर। पर्यायमें जो एकत्व बुद्धि

(हो रही है), द्रव्यको भूल गया है, उस द्रव्यको पहचान। पर्यायको गौण करके आगे जाय। पर्यायका ज्ञान होता है कि मैं द्रव्य हूँ। उसमें गुण है, पर्याय है, विभावपर्याय, स्वभाव पर्याय है। भेदज्ञान करे इसलिये अन्दर सम्यग्दर्शनकी पर्याय प्रगट होती है। सम्यग्दर्शनकी पर्याय भी पर्याय है। अन्दर चारित्रकी पर्याय होती है, वह भी पर्याय है। उसका तो वेदन स्वयंको होता है।

इसलिये उसमेंसे पर्याय निकाल देना, ऐसा अर्थ नहीं है। परन्तु उसमें सर्वस्व माना है। द्रव्यको भूल गया है, इसलिये द्रव्यको पहचान, द्रव्य पर दृष्टि कर, ऐसा कहना है। द्रव्यको मुख्य करके पर्यायको गौण कर। परन्तु साधक दशामें मुनिदशा प्रगट होती है, चारित्र दशा प्रगट होती है, वह सब पर्याय है। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे शुद्ध पर्यायें प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- कोई जगह गुरुदेवने ऐसा कहा कि, द्रव्यको ग्रहण कर। और प्रवचनसारमें ऐसा कहा कि पर्यायचक्षु बन्द कर, उसमें क्या अपेक्षा है?

समाधान :- गुरुदेवका कहना वही है। प्रवचनसारमें ही ऐसा आता है कि द्रव्यार्थिक दृष्टिसे देखने पर द्रव्य दिखाई देता है। पर्यायचक्षुको बन्द कर, मतलब पर्यायचक्षुका ज्ञान मत कर, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। पर्यायकी ओर देखना बन्द कर और द्रव्य पर दृष्टि कर, ऐसा कहना है। इसलिये उसे निकाल देना ऐसा अर्थ नहीं है। गुरुदेव तो सब बात करते हैं, द्रव्य पर दृष्टि कर। द्रव्यको देख, पर्यायका ज्ञान कर (आदि) सब गुरुदेवमें तो आता है। उनकी वाणीमें सब आता है।

एकान्त करेगा तो शुष्क हो जायगा, ऐसा भी गुरुदेवकी वाणीमें आता है। पुरुषार्थ किसका करना? ऐसा भी आता है, गुरुदेवकी वाणीमें। सब आता है। उसका मेल करना पड़ता है। अनादि कालसे पर्याय पर दृष्टि है, इसलिये उस चक्षुको बन्द कर और द्रव्यको देख।

मुमुक्षु :- पर्यायचक्षु को बन्द करते हैं तो ऐसा होता है, पर्याय तो है।

समाधान :- पर्याय तो है, पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। पर्याय निकल नहीं जाती। उस पर दृष्टि कर। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे द्रव्य दिखता है, पर्याय पर दृष्टि करनेसे पर्याय दिखती है। उसका मेल कर। द्रव्यका क्या स्वभाव है, पर्यायका क्या स्वभाव है? द्रव्यकी मुख्यता करके पर्यायको गौण करके ज्ञानमें सब जान और साधना कर, ऐसा कहना है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१०४

मुमुक्षु :- शुद्धनयका विषय त्रिकाली द्रव्य निष्क्रिय माने क्या?

समाधान :- शुद्धनयका विषय त्रिकाली निष्क्रिय यानी उसमें एक परमपारिणामिकभाव द्रव्य अनादिअनन्त है। उस पर दृष्टि कर, ऐसा कहना है। शुद्धनयका विषय परमपारिणामिकभाव है। निष्क्रिय अर्थात् उन सबका एक ही (भाव) है, उसमेंसे पर्याय निकल नहीं जाती। तू एक स्वरूप आत्मा है, उस पर दृष्टि कर, बस, ऐसा ही कहना है। उसमें पर्याय है, परन्तु तू द्रव्यको पहचानता नहीं है। उस पर दृष्टि कर। एक शुद्धनयका विषय एक द्रव्यकी मुख्यता है। निषष्क्रिय एक द्रव्यदृष्टि, उसमें किसी भी प्रकारका फेरफार नहीं है। फेरफार रहित एक द्रव्य अनादिअनन्त है, उसे तू पहचान, ऐसा कहना है।

इसलिये उसमें पर्यायकी परिणति अथवा उसमें कोई कार्य ही नहीं होता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं होता। सिद्ध भगवानमें परिणति है। सिद्ध भगवानमें भी पर्यायें होती हैं। उनमें भी ज्ञानकी, दर्शनकी, चारित्रकी सब पर्यायें सिद्ध भगवानमें हैं। उसमेंसे निकल नहीं जाती। द्रव्य-गुण-पर्याय वह वस्तुका स्वरूप है।

एक द्रव्यको पहचान, द्रव्य पर दृष्टि कर। द्रव्यका आलम्बन ले। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे, उसका आलम्बन लेनेसे उस पर ज़ोर आता है। जो पर्याय पलटती है, उस पर आश्रय नहीं लिया जाता। आश्रय द्रव्य जो अनादिअनन्त शाश्वत स्थिर है, उसका आश्रय लिया जाता है। जो पलटता रहता है, उसका आश्रय नहीं लिया जाता। लेकिन उसमेंसे पर्याय निकल नहीं जाती। सिद्ध भगवानमें परिणति होती है। केवलज्ञानकी पर्याय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि सब पर्याय सिद्ध भगवानमें हैं। पर्याय रहित द्रव्य है ही नहीं। पर्याय रहित द्रव्यका स्वीकार करता है, वह द्रव्यका स्वरूप जानता नहीं है। पर्याय रहित द्रव्य होता ही नहीं।

परन्तु पर्यायको मुख्य करके द्रव्यको भूल जाता है। अनादि कालसे पर्यायकी मुख्यता करके द्रव्यको भूल गया। इसलिये जिसका आश्रय लिया जाता है, ऐसा आश्रयभूत जो द्रव्य है, उस द्रव्यको भूल गया। इसलिये द्रव्यकी मुख्यता करके द्रव्यका आश्रय ले। पर्यायका आश्रय नहीं लिया जाता। पर्यायको ख्यालमें रख, उसका ज्ञान कर।

मुमुक्षु :- पर्यायको गौण करता है, पर्याय कहीं चली नहीं जाती।

समाधान :- पर्याय वस्तुमेंसे चली नहीं जाती। विभाव छूट जाता है। क्योंकि विभाव अपना स्वभाव नहीं है। परन्तु शुद्ध पर्याय तो स्वयंमें रहती है।

मुमुक्षु :- अन्दर जो उलझन थी, वह सब निकल गयी। बहुत स्पष्टता (हो गयी)।

समाधान :- उसका स्वरूप, चैतन्यका वस्तुका स्वरूप कोई अद्भुत है। आश्चर्यकारी है। उसका मेल करके समझना। तो ही मुक्तिका मार्ग यथार्थपने सधता है। समझनेमें दूसरा पहलू समझे ही नहीं और निकाल दे तो यथार्थ नहीं आती। कहाँ ज़ोर देना है, कहाँ गौण करना है, वस्तुके स्वरूपको निकाल नहीं देना चाहिये। ... है, पराश्रित भाव है, आत्माका स्वभाव नहीं है।

द्रव्यकी दृष्टिसे स्वभाव सधता है। लेकिन उसमें शुद्ध पर्यायें प्रगट होती हैं, उसका वेदन स्वयंको होता है। वह शुद्ध पर्याय चैतन्यसे भिन्न नहीं है। सर्वांशसे सर्व प्रकारसे वह भिन्न रहे अथवा दूसरे द्रव्यकी भाँति भिन्न अलग है, ऐसा नहीं है। चैतन्यके आश्रयसे ही वह पर्याय प्रगट होती है और चैतन्यको ही उसका-शुद्ध पर्यायका वेदन होता है। रागकी पर्याय तो विभाव पर्याय है। क्षेत्र तो उसका एक है, वह कहाँ भिन्न है? विभाव अपना स्वभाव नहीं है। वह तो उसका निमित्त जड़ है। बाकी जो चैतन्यमें पर्याय होती है, वह दूसरे क्षेत्रमें नहीं होती है, रागकी पर्याय। अपेक्षासे कहनेमें आता है।

निमित्तसे होती है, जड़ कर्मके निमित्तसे होती है, इसलिये उसका क्षेत्र भिन्न है, ऐसा कहनेमें आता है। सर्व प्रकारसे वह जड़में नहीं होती है। रागकी पर्यायको वह टाल नहीं सके, यदि जड़में होती हो तो। स्वयंको रागकी पर्यायका वेदन होता है। तो वह जड़ है क्या? अपना स्वभाव नहीं है, इसलिये उस अपेक्षासे, कर्मके निमित्तसे हुयी इसलिये उसे पुद्गलमें डालकर पुद्गल कहनेमें आता है। सर्व प्रकारसे वह जड़के क्षेत्रमें नहीं होती है। वह तो अपनी परिणतिमें होती है। उसे स्वयं टाल सकता है। उसका स्वभावभेद है। स्वभावभेद है इसलिये उसे अन्य क्षेत्रकी कही जाती है। सर्व प्रकारसे वह अन्य क्षेत्रकी नहीं है। अपनी पर्याय अपनेमें विभाव पर्याय होती है।

समाधान :- ... गुरुदेवने मार्ग कहा है, वह करनेका है। इस पंचमकालमें गुरुदेव पधारे और मुक्तिका मार्ग स्पष्ट किया है। कोई जानता नहीं था। इस पंचमकालमं बाह्य दृष्टि थी। गुरुदेवने अंतर दृष्टि करवायी। मुक्तिका मार्ग, स्वानुभूतिका मार्ग, मुनिकी दशा, केवलज्ञान इत्यादि सब गुरुदेवने प्रगट किया है। आत्माकी जिज्ञासा, अंतरसे लगन लगे, सचमुचमें लगन लगे तो प्रगट हुए बिना नहीं रहता। परन्तु जीवको लगन लगानी, अंतरमें रुचि हो, तत्त्वके विचार करके अंतरमें ज्ञायक कौन है? स्वयंका स्वभाव क्या है? अंतरमेंसे नक्की करे कि मैं जाननेवाला ज्ञायक ही हूँ। यह जड़ शरीरादि मेरा स्वरूप नहीं है।

शरीर, मन, वचन आदि सब जड़ पदार्थोंसे मैं भिन्न हूँ। यह विभावस्वभाव, शुभाशुभ

भाव भी मेरा स्वरूप नहीं है। उससे भिन्न पड़कर, अंतरसे भिन्न पड़कर, विकल्पसे भावना भावे अलग बात है, अंतरसे भिन्न होकर भेदज्ञान करे तो मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। भेदज्ञान करके अंतरसे लीन हो, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और लीनता करे तो स्वानुभूति प्रगट होती है। उसके लिये उसकी लगनी, जिज्ञासा, बारंबार चैतन्यकी महिमा आवे, चैतन्यकी रुचि लगे, चैतन्यतत्त्वका यथार्थ स्वरूप पहचाने और विभावसे विरक्ति हो तो अंतरमें परिणति झुके, तो होता है। बाहरमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, शुभाशुभ भाव दोनों विभाव हैं, फिर भी शुभभावोंमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये बिना नहीं रहती और अंतरमें शुद्धात्माकी रुचि।

सब विभावसे आत्मा भिन्न है, ऐसी शुद्धात्माकी रुचि अन्दर होनी चाहिये। उसकी लगन और जिज्ञासा लगाये तो हुए बिना नहीं रहता। क्षण-क्षणमें उसकी लगन, जिज्ञासा हो तो होता है। पुरुषार्थके बिना नहीं होता। गुरुदेवने पुरुषार्थ करनेको कहा है। चार गतिका अभाव अन्दर स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है। जीव बाहरमें अटका है, अंतरमें दृष्टि नहीं की है। अंतर दृष्टि स्वयंको पहचाने तो होती है।

मुमुभु :- आपके आशीर्वोदसे हमारा .. हो जायगा।

समाधान :- स्वयं अन्दर पुरुषार्थ करे तो होता है। जो भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचाने, गुरुदेवको पहचाने वह स्वयंको पहचाने। आशीर्वाद कहाँ लागू पड़ते हैं? स्वयं तैयारी करे तो आशीर्वोद लागू पड़े। परसे होता नहीं, स्वयं करे तो होता है।

मुमुक्षु :- गृहस्थ दशामें रहकर अपनेको शांति लेनी है तो ले सकते है कि नहीं ले सकते हैं? गृहस्थ दशामें रहते हुए भी आत्मामें शांति मिले, ऐसा कोई उपाय बताईये।

समाधान :- गृहस्थाश्रममें रहकर भी आत्माका स्वरूप पहचाना जाता है। गृहस्थाश्रममें रहकर (हो सकता है)। गृहस्थाश्रम अन्दर आत्मामें घुस नहीं गया है। अन्दर शुद्धात्माकी रुचि लगे, उसकी लगन लगे तो गृहस्थाश्रममें भी होता है। चक्रव्रती, राजा आदि सब गृहस्थाश्रममें रहकर भिन्न रहते थे। अन्दरसे आत्माकी-ज्ञायककी दशा प्रगट करते थे, भेदज्ञानकी धारा प्रगट करते थे। गृहस्थाश्रममें रहकर भी मुक्तिका मार्ग शुरू होता है, स्वानुभूति प्रगट होती है। आगे लीनता बढ़ानेके लिये मुनिदशा आती है। बाकी सम्यग्दर्शन तो गृहस्थाश्रममें भी होता है। अन्दरसे भिन्न रहे तो होता है। अन्दर उतनी स्वयंको जिज्ञासा लगे और भेदज्ञान करे तो गृहस्थाश्रममें भी होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! रुचिको कैसे बढाना चाहिये?

समाधान :- पुरुषार्थ करे तो होता है। रुचि भी स्वयंको ही बढानी है। तत्त्वज्ञान स्वयंको करना है, रुचि स्वयंको बढानी है, लगन स्वयंको लगानी है, सब स्वयंको करना है। गुरुदेवकी वाणी प्रबल निमित्त है, परन्तु करना स्वयंको है। पुरुषार्थ स्वयं

करे तो होता है।

मुमुक्षु :- आत्माका चिंतवन-विचार करते रहेंगे तो आत्माकी लगनी लगेगी, ऐसे चिंतन विचार करनेसे?

समाधान :- चिंतन, विचार करे लेकिन अंतरमें लगनी तो स्वयं लगाये तो होता है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो तब तो बहुत आसान लगता है कि, आत्मा मैं ऐसा हूँ। लेकिन परिणमनमें कठिन लगता है।

समाधान :- स्वयं स्वभाव है इसलिये सुलभ है। स्वयं ही है, अन्य नहीं है। स्वभावसे सुलभ है, स्वभाव उसका है। परन्तु अनन्त कालसे अनादिका अभ्यास है इसलिये क्षण-क्षणमें परिणति विभावकी ओर जाती है, एकत्वबुद्धि हो रही है। इसलिये दुर्लभ हो गया है। अनादिसे जो विभावका अभ्यास चल रहा है, उसमेंसे भिन्न होना उसे दुर्लभ लगता है। स्वभावसे सुलभ है।

मुमुक्षु :- .. तो कल्याण हो जायगा। ऐसा अवसर, ऐसे भावि तीर्थंकर, भावि गणधर मिले, इस पंचमकालमें... जन्म सफल हो गया।

समाधान :- पंचमकालमें गुरुदेव पधारे, तीर्थंकरका द्रव्य। महाभाग्यकी बात कि गुरुदेवका सान्निध्य मिला। ४५-४५ साल वाणी बरसायी। ... बहुत स्पष्ट किया।

मुमुक्षु :- ... आत्मा दिखता नहीं है, तो आत्मा कैसे दिखे? ऐसा पूछते हैं।

समाधान :- अन्धेरा दिखता है,... आत्मा जाननेवाला ज्ञायक है, उसे पहचाने तो अन्धेरा या प्रकाश, यह प्रकाश बाहरका और अन्धेरा भी जड़का है। अन्दर ज्ञानमें जाननेवाला है उसे देखे तो वह अन्धकार नहीं है, परन्तु अन्दर जाननेवाला है, अन्दर जाननेवाली ज्याति है, उसे पहचाने तो होता है। वह बाहरसे देखता है। चर्म चक्षुसे देखे तो अन्धेरा दिखता है और प्रकाश दिखता है। अन्दर देखे कि ज्ञायक जाननेवाला कौन है? उसे पहचाने तो वह ज्ञानकी ज्योति है। जो अन्दर जाननेवाला है, यह सब विकल्पोंको जाननेवाला, सुख-दुःखको जाननेवाला है, अन्दरमें जाननेवाला है, वेदन है, उस वेदनके पीछे जो जाननेवाला है, वह स्वयं है। जाननेवाली ज्याति अन्दर है। जाननेवालेमें सब भरा है। अनन्त सुख और अनन्त आनन्द, ज्ञान सब जाननेवालेमें अनन्त गुण भरे हैं। अन्दर जाननेवाला है।

समाधान :- ... अशुभसे बचनेको शुभभाव आते हैं, परन्तु अन्दर आत्माको पहचाननेके लिये तो अन्दर सच्चा ज्ञान, सच्चा वैराग्य, महिमा सब अंतरमें होना चाहिये। शुभभावसे पुण्य बन्धता है। परन्तु आत्माको पहचाने तो मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। अशुभसे बचनेको शुभभाव आवे, लेकिन आदरणीय तो एक शुद्धात्मा है।

मुमुक्षु :- माताजी! आज सबने नंदीश्वरमें पूजा की, दर्शन किये, फिर सब देखा।

उन लोगोंको अभी शुरूआत है, इसलिये प्रश्न पूछा कि अकृत्रिम जिनालय कैसे? मनुष्यने तो किये ही नहीं है न। शाश्वत है।

समाधान :- पुद्गलके परमाणु वैसे... कुदरती रचना हो जाती है। भगवानकी महिमा ऐसी है। जगतमें जैसे भगवान सर्वोत्कृष्ट हैं, वैसे भगवानकी प्रतिमा भी सर्वोत्कृष्ट कुदरत बता रही है। मन्दिरों, प्रतिमाएँ सब शाश्वत हैं। जैसे यह पर्वत आदि किसीने बनाये नहीं हैं, वह तो कुदरती है। जैसे पर्वत, समुद्र आदि किसीने बनाया नहीं है। वैसे मन्दिरों भी कुदरती हैं। भगवान भी कुदरती है। पुद्गलके परमाणु उस प्रकारसे रत्नकी प्रतिमारूप परिणमित होकर (रचना हुयी है)। कुदरतमें शाश्वत किसीने बनाया नहीं है।

मुमुक्षु :- सब रत्नमणिके होते हैं न?

समाधान :- हाँ, रत्नमणिके।

मुमुक्षु :- और ५०० देहमानके।

समाधान :- ५०० देहमानके, १०८ प्रतिमाएँ।

मुमुक्षु :- एक मन्दिरमें? एक मन्दिरमें १०८?

समाधान :- ऐसा है।

मुमुक्षु :- अर्थात् उनका कभी विरह नहीं होता, चाहे जो भी काल हो तो भी।

समाधान :- वह तो शाश्वत हैं। नंदीश्वरमें, मेरुमें सब शाश्वत हैं।

मुमुक्षु :- भवनवासीके, ऊपरके सब...

समाधान :- हाँ, भवनवासीमें है, व्यंतरमें है, ज्योतिषीमें, वैमानिकमें सबमें है। उसमें कोई जघन्य मन्दिर, कोई मध्यम, कोई उत्कृष्ट (होते हैं)। किसीका नाप बड़ा, कोई छोटे ऐसे होते हैं।

मुमुक्षु :- उसका मतलब सर्वज्ञका कभी विरह नहीं है, ऐसा उसमेंसे समझना?

समाधान :- साक्षात् तीर्थंकर तो सदा शाश्वत हैं। जो तीर्थंकर विराजते हैं, बीस विहरमान, वे तो विदेहक्षेत्रमें विराजमान होते ही हैं। उनका भी कभी विरह नहीं होता।

मुमुक्षु :- उनका कभी विरह नहीं होता।

समाधान :- हाँ, बीस विहरमान भगवान होते ही रहते हैं। और यह कुदरतमें जो प्रतिमाएँ हैं, वह भी शाश्वत रहते हैं। उसका कभी विरह नहीं होता।

मुमुक्षु :- आत्माका स्वरूप भी शाश्वत।

समाधान :- आत्मा शाश्वत है। आत्माका स्वरूप शाश्वत है। उसे भी किसीने नहीं बनाया है। आत्मा भी शाश्वत है। आत्माको किसीने बनाया नहीं है, भगवानकी प्रतिमा किसीने नहीं बनायी है। आत्माको किसीने बनाया नहीं है। वह भी शाश्वत है, ज्ञानस्वरूप आत्मा भी शाश्वत है। उसे पहचाने तो प्रगट होता है। पहचानता नहीं है इसलिये प्रगट

नहीं होता है। भ्रान्तिके कारण अनादि कालसे भव करता रहता है, भवका भ्रमण। आत्माको पहचाने तो भवका अभाव होता है।

यह आत्मा शाश्वत है, उसे पहचाने, उसका भेदज्ञान करे, उस पर दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो वह प्रगट होता है। लेकिन बाह्य दृष्टि है, प्रतीत बाहर करता है, ज्ञानका उपयोग सब बाहर जाता है, लीनता सब बाहरमें करता है। अंतरमें जाता नहीं है, इसलिये आत्मा पहचाना नहीं जाता।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके पास, आपके पास सुने तब तो ऐसा लगता है, ओहो..! आत्मा तो अत्यंत करीब है। लेकिन जैसे ही बाहर निकलते हैं, आत्मा कहाँ खो जाता है। हमारेमें क्या क्षति है उसे समझना चाहिये।

समाधान :- आत्मा तो अपने पास ही है। अनादिका अभ्यास है, इसलिये उपयोग बाहर चला जाता है। बाहरमें रस है, उतना आत्माका रस नहीं लगा है। आत्माकी महिमा नहीं लगी है। आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, ऐसा लगा नहीं है। बाहरका रस है। मानो बाहरमें सबकुछ रसमय क्यों न हो, ऐसा उसे लगता है। बाहरका सब सुखमय, रसमय लगता है। अंतर आत्मा सुखमय और रसमय लगता नहीं है। उसकी श्रद्धा नहीं होती है, इसलिये बाहर दौड़ जाता है। श्रद्धा होती है तो ऊपर-ऊपरसे श्रद्धा करता है, अन्दर गहराईमें जाकर श्रद्धा करे तो अंतरमें पुरुषार्थ हुए बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- वैसे तो आत्माकी उपलब्धि सहज साध्य है ऐसा भी कहनेमें आता है, प्रयत्न साध्य है ऐसा भी कहनेमें आता है। तो दोनोंका मेल कैसे है?

समाधान :- उसका स्वभाव है, इसलिये सहज साध्य है। वह बाहरसे नहीं आता, अंतरमें सहज है। परन्तु अनादिका अभ्यास बाहरका है, इसलिये प्रयत्न अपनी ओर करे तो होता है।

मुमुक्षु :- करना पड़े।

समाधान :- प्रयत्न करे तो होता है, ऐसे ही नहीं हो जाता। सहज है। अपने पास है, सहज है। वह, बाहरका कोई साधन मिले (तो होता है), ऐसा नहीं है। स्वयं सहज है, प्रयत्न करे तो होता है। साधन बाहरके होते हैं-देव-गुरु-शास्त्र। अनादिकालसे आत्माको पहचाना नहीं है, इसलिये उसके साधन देव-गुरु-शास्त्र हैं। अनादिसे पहचाना नहीं है, इसलिये पहले उसे एक बार स्व सन्मुख होनेमें, सम्यग्दर्शन होनेमें, देशनालब्धि होनेमें जिनेन्द्र देव, गुरुका प्रत्यक्ष उपदेश मिले तो वह अंतरमें स्वयं स्वयंको पहचानता है, अपनी ओर जाता है। परन्तु पुरुषार्थ स्वयंसे करना है।

मुमुक्षु :- लेकिन ऐसा निमित्त भी मिलना चाहिये न?

समाधान :- हाँ, निमित्त-उपादानका सम्बन्ध ऐसा है। अनादि कालमें एक बार

उसे जिनेन्द्र देव और गुरु मिले और वह अंतरमें ऐसी रुचिसे सुने तो होता है। रुचिसे श्रवण करे नहीं तो अनन्त कालमें अनेक बार मिले हैं, तो भी अन्दरमें अपूर्वता नहीं लगी है।

मुमुक्षु :- उपयोगको बहिर्मुख रहनेकी अतिशय आदत है।

समाधान :- आदत, अनादिका अभ्यास है, बाहर ही जाता है, बाहर ही दौड़ जाता है। उसे बारंबार पुरुषार्थ कर-करके, बारंबार अपनी ओर आनका (प्रयत्न करना चाहिये)। जैसा बाहरमें सहज जाता है, वैसा अंतरमें स्वयं सहज करे तो अपनी ओर टिके। बाहरमें कैसा दौड़ पड़ता है। उसमें उसे महेनत नहीं करनी पड़ती। कुछ करना नहीं पड़ता, सहज ही दौड़ पड़ता है। वैसे अपनी ओर सहज होनेके बावजूद जाता नहीं है। बारंबार उसका अभ्यास करे, उसके बिना रुचे नहीं, उसके बिना सुहाय नहीं, बारंबार बाहर जाय तो भी बारंबार मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, यह स्वरूप मेरा नहीं है। यह सब विकल्पका स्वरूप मेरा नहीं है। ऐसे भेदज्ञान करके बारंबार उस ओर यदि आदत डाले। लेकिन वह कब पड़ती है? उसकी महिमा लगे तो पड़ती है। शुष्कतासे बोलनेमात्र या रटन करने हेतु करे तो नहीं होता है, उसकी महिमा लगे तो होता है। उसे अंतरमेंसे पहचाने तो होता है।

मुमुक्षु :- अभी तो सब अवसर, ऐसे दुषमकालमें ऐसे गुरुदेव, ऐसी वाणी, आप विद्यमान, ऐसा प्रबल और समर्थ निमित्त मिले हैं, अब काम तो हमारी ही हिन योग्यताके कारण नहीं हो रहा है।

समाधान :- अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। ऐसे गुरुदेव मिले, इतनी वाणी बरसायी, चारों ओरसे समझाया, कुछ बाकी नहीं रहा, उतना समझाया है। आत्माका स्वरूप, तत्त्वका स्वरूप स्पष्ट कर-करके आत्माकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, निमित्त-उपादानका स्वरूप चारों ओरसे सब स्वरूप गुरुदेवने स्पष्ट किया है। लेकिन पुरुषार्थ स्वयंको करना बाकी रहता है। आत्माकी स्वानुभूति, मुनिदशा, केवलज्ञान सब स्पष्ट किया है। लेकिन स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें तो भाषा ऐसी है कि इन सबको भी समझमें आता है। इतना सुन्दर। गुरुदेवने उस पर उतने प्रवचन दिये। सचमुचमें तो हलवा तैयार हो गया, हमारे लिये।

समाधान :- स्वयंको करना बाकी रहता है। उतनी लगन लगानी, उतनी जिज्ञासा करनी, अपनी क्षति है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१०५

मुमुक्षु :- जाननेका जो स्वभाव कहा है, वह भी रागका कारण है, तो उससे विशेष क्या?

समाधान :- ... होने पर भी, अनादिसे परकी ओर, परकी ओर एकत्वबुद्धि की है। इसलिये पर ओर जाता है। जाननेका स्वभाव है, लेकिन स्वयं जानता कहाँ है? ज्ञायक रहकर जानता नहीं है। जाननेका स्वभाव होने पर भी स्वयंको पहचानता नहीं है। इसलिये उसे मुश्किल हो गया है। रागमें अटक गया है। अनादि कालसे स्वयं ज्ञायक होने पर भी, स्वयं चैतन्य होने पर भी विभावकी ओर एकत्वबुद्धि करके भ्रान्तिमें पड़ा है। स्वयं स्वयंको भूल गया है।

यह एक आश्चर्यकी बात है कि स्वयं स्वयंको छोड़कर बाहर जाता है। इसलिये स्वयं स्वयंको जाने। ज्ञायक होनेके बावजूद उदासीन रहकर जानता नहीं है और कर्ता होकर दूसरेको मैं करता हूँ, करता हूँ, ऐसी कर्तृत्वबुद्धिमें पड़ा रहता है, ज्ञायक नहीं होता है। उसकी स्वयंकी भूल है, भ्रान्तिमें पड़ा है। जाननेके बावजूद, स्वयं स्वयंको जानता नहीं है, यह एक आश्चर्यकी बात है। जाननेका पुरुषार्थ करे तो जान सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- ज्ञानको रागके साथ एकमेक कर लेता है।

समाधान :- एकत्वबुद्धि, रागमिश्रित ज्ञान (है)। राग भिन्न है और मैं ज्ञान भिन्न हूँ, ऐसे भिन्नता करे तो होता है। रागके विकल्प आये, उस विकल्पके साथ रागमिश्रित ज्ञान (चलता है)। राग सो मैं नहीं हूँ, मैं ज्ञान हूँ। ज्ञान सो मैं, मैं पूर्ण ज्ञायक हूँ। एकत्वबुद्धि छूटती नहीं, ज्ञायक होता नहीं। ज्ञाता... करे सो करतारा, जाने सो जाननहारा। ज्ञाता होता नहीं और कर्ताबुद्धि छूटती नहीं। ज्ञाता हो जा तो कर्ताबुद्धि छूटे। कर्ताबुद्धि छूटे तो ज्ञायक होता है। दोनों एकसाथ रहे हैं।

मुमुक्षु :- ... साधककी पर्याय, समयसारकी १५वीं गाथामें। द्रव्य एवं भाव जिनशासन सकल देखे। वह ज्ञानीका भावश्रुत है न?

समाधान :- भावश्रुत। ते जिनशासन देखे खरे। द्रव्य तेमज भाव जिनशासन सकल देखे करे। उसकी प्रथम पंक्ति क्या है? द्रव्य तेमज भाव जिनशासन सकल देखे खरे।

बस, उसमें पूरे आत्माका स्वरूप आ गया। अबद्धस्पृष्ट-आत्मा बन्धा नहीं है, स्पर्शित नहीं है। आत्मा सामान्यसे विशेष हो नहीं जाता। आत्मा नियत है, अनियतरूप नहीं है। समुद्रका दृष्टान्त दिया। इस वृद्धि-हानिरूप आत्मा मूल स्वभावसे होता नहीं। आत्मा विशेषरूप अन्य-अन्य होता नहीं। आत्मा अनन्य (है)। अन्य-अन्य होता नहीं, एकरूप है। सब गुणोंके भेद होनेके बावजूद अभेद है। ऐसा समान्य है। विभावके साथ (होने पर भी) विभावरूप होता नहीं। ऐसा आत्मा है। ऐसे आत्माको पहचाने तो जिनशासन सकल देखे खरे। पूरा जिनशासन उसमें आ जाता है।

जैसा आत्माका स्वरूप है, आत्मा बन्धा नहीं है, आत्मा स्पर्शित नहीं हुआ है, आत्मा विशेषरूप होता नहीं, आत्मा अन्य-अन्य होता नहीं, आत्मा वृद्धि-हानिरूप होता नहीं। जैसे अग्निके (संयोगसे जल) उष्णरूप होता है। वैसे आत्मा शीतलरूप है। विभावकी उष्णता उसमें नहीं है। सर्व प्रकारसे आत्माका स्वरूप पहचाने। द्रव्यको (पहचाने) और मूल द्रव्य पर दृष्टि करे और पर्यायका स्वरूप साथमें पहचाने। वह जिनशासन सकल देखे खरे। ऐसा आत्माका स्वरूप यथार्थपने पहचाने, उसमें सब आ जाता है। ऐसा सब होनेके बावजूद भी स्वयं ऐसा अबद्धस्पृष्ट है।

उसमें आता है न? कमलिनीका पत्र है, वह जलसे निर्लेप है। उसके समीप जाकर देखे तो वह बन्धा हुआ, स्पर्शित हुआ दिखाई दे। अन्दर देखे तो बन्धा हुआ, स्पर्शित हुआ नहीं है। भूतार्थ दृष्टिसे देखे तो बन्धा हुआ, स्पर्शित नहीं हुआ है। और अभूतार्थसे देखे तो वह बन्धा हुआ, स्पर्शित हुआ दिखाई देता है। इसलिये उसे मूल वस्तु स्वरूपसे देख और अभूतार्थ दृष्टिसे उस रूप पर्यायमें है, लेकिन द्रव्यदृष्टिसे उस रूप नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसे आत्माका अनुभव कर।

समाधान :- ऐसे आत्माका अनुभव कर।

मुमुक्षु :- वह जिनशासन।

समाधान :- उसमें समस्त जिनशासन आ गया। मूल वस्तुको जानी तो समस्त जिनशासन (आ गया)। पूरा मुक्तिका मार्ग, स्वानुभूति सब आ गया।

मुमुक्षु :- .. मुनिओंको नहीं मान रहे हैं, उसका जवाब देना हमें नहीं आता। द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनि और द्रव्यलिंगी सम्यग्दृष्टि, इसके बारेमें आबप खुलासा कर देंगे तो मेरी शंका मिट जायेगी।

समाधान :- द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनि और सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि तो उसमें क्या पूछना है?

मुमुक्षु :- जैसे आजके जो मुनि हैं, हमको दिखे तो हमें वंदना करना या नहीं

करना, कैसे..?

मुमुक्षु :- वह आपके ऊपर निर्भर है। उसका तत्त्व क्या है वह...

मुमुक्षु :- शंका जो है, लोग बोलते हैं, हमको जवाब देना नहीं आता।

मुमुक्षु :- बोलने दो, जवाब क्यों दे? अपना अधिकार नहीं है जवाब देनेका, अपनेको समझ लेना।

समाधान :- ... मिथ्यादृष्टि तो आत्माको जानता ही नहीं है। स्व-परकी एकत्वबुद्धि है। आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। सबमें एकत्वबुद्धि मिथ्यादृष्टिको हो रही है।

सच्चे मुनि तो छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलनेवाले हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूति होती है। यथार्थ मुनि हो तो। उसको स्वानुभूति तो है नहीं। मात्र बाहरसे वेष धारण कर लिया। और वर्तमानमें तो पंच महाव्रत आदि जो शास्त्रमें कहे हैं, ऐसी क्रिया भी वर्तमानमें तो नहीं है। जो शास्त्रमें (आता है कि) आहार कैसे लेना, ऐसी क्रिया भी बाहरमें नहीं है, वर्तमान मुनिमें तो।

पहले चतुर्थ कालमें द्रव्यलिंगी मुनि तो सब क्रिया पाले, सब करे तो भी भीतरमें तो एकत्वबुद्धि हो रही है। शुभभावसे मेरा कल्याण हो जायगा, शुभभावमें रुचि रहती है, ऐसे मुनि होते हैं तो भी वह मुनि तो नहीं है। वास्तविक मुनिकी दशा नहीं है तो वह मुनि नहीं है। और सम्यग्दृष्टि मुनि द्रव्यलिंगी बाहरमें वेश धारण कर लिया और सम्यग्दर्शन हो गया। तो सम्यग्दर्शन तो है, परन्तु उसे मुनिकी दशा नहीं है। मुनिदशा नहीं है, बाहरमें वेश तो है, उसे मुनिकी दशा नहीं है। उसको सम्यग्दर्शन तो हुआ है। बाहरमें कैसा व्यवहार करना वह तो अपने इतना समझना कि वंदन व्यवहार किसको होता है? भीतरमें यथार्थ दशा प्रगट हुयी हो, उसे वंदन व्यवहार होता है। सच्चे मुनिको हो सकता है।

मुमुक्षु :- शास्त्रोंमें भी ऐसा आता है, बहिनश्री! कहते हैं न कि पंचमकालके आखरी तक चतुर्विध संघ रहेगा, तो?

समाधान :- आखीर तक रहेगा, परन्तु वर्तमानमें तो कोई दिखाई नहीं देते। वह तो अपनेको परीक्षा करनी पड़ती है। वर्तमानमें कोई दिखाई नहीं देते। होते हैं, होते हैं तो कभी-कभी... कोई होते हो तो भी वर्तमानमें दिखाई नहीं देते। ऐसा निषेध नहीं है। होते हैं, कोई मुनि होते हैं, लेकिन वर्तमानमें ऐसे दिखाई नहीं देते। उसमें ऐसा कोई काल आ जाता है तो वर्तमानमें मुनि दिखाई नहीं देते। सच्चे मुनि नहीं दिखाई देते। पहले हो गये, सब आचार्य हो गये, परन्तु वर्तमानमें कोई देखनेमें नहीं आते। निषेध नहीं है, पंचमकालके आखिर तक मुनि होते रहते हैं, परन्तु बीचमें कोई

बार नहीं भी होते हैं, वर्तमानमें दिखाई नहीं देते। मार्ग बतानेवाले गुरुदेव हुए, उन्होंने मार्ग सच्चा बताया। परन्तु मुनि तो वर्तमानमें कोई दिखाई नहीं देते। कहाँ हो, दिखाई नहीं देते।

मुमुक्षु :- हो सकते हैं, लेकिन देखनेमें नहीं आते।

समाधान :- वर्तमान देखनेमें नहीं आते। वर्तमान कोई काल ऐसा आ जाता है। अभी देखनेमें नहीं आते। हो सकते हैं। पंचमकालके... होते हैं।

मुमुक्षु :- लिखा हुआ है वह भी ठीक है, परन्तु..

समादान :- लिका हुआ है, बराबर है। वर्तमानमें कोई-कोई काल ऐसा आ जाता है। होते हैं, नहीं होते हैं, होते हैं, नहीं होते हैं। निषेध नहीं है।

मुमुक्षु :- नमोस्तु..

समाधान :- नमोस्तु लेकिन किसको करना? सच्चे देव-गुरुको नमस्कार करने हैं न। बाहरमें वेष धारण कर लिया तो क्या वेषको नमस्कार होता है? अष्टपाहुड़में क्या आता है? मुनि आचार्यदेव कहते हैं, सच्चे मुनिको नमस्कार होते हैं। कैसे करना, नहीं करना, अपने भाव पर आधारित है। लेकिन लाभ तो सच्चे मुनिको नमस्कार (करनेसे होता है)। अष्टपाहुड़ शास्त्रमें कुन्दकुन्दाचार्य लिखते हैं, सच्चे मुनिको नमस्कार करना। परीक्षा करना। परीक्षा तो करनी पड़ती है।

मुमुक्षुको जिसको मोक्षकी इच्छा होवे, जिसको मोक्ष, अपना कल्याण करना है, उसको सब परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये। बिना परीक्षा किये,... मोक्षका स्वरूप कैसा है? आत्माका स्वरूप समझना। यह शरीर मेरा नहीं है, विभावस्वभाव मेरा नहीं है। मैं ज्ञायक हूँ। यह सब विचार करके परीक्षा करके सब नक्की करता है। फिर बाहरमें सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र, सबकी परीक्षा करे। जिसको मोक्षकी इच्छा होवे, वह परीक्षा (करता है)। इतना तो क्षयोपशम मिला है। आत्मार्थी हो, आत्माका प्रयोजन हो तो इतनी परीक्षा तो हो सकती है।

मुमुक्षु :- मुनिकी ... आचार कोई बिलकुल पालते नहीं। जो ऐसा हो तो .. आ जाते हैं। बाह्य .. तो परीक्षामें क्या दिक्कत है? ... उसमें क्या .. एक भी सच्चे बताओ।

मुमुक्षु :- .. उसको तो मुनि मानेंगे कि नहीं मानेंगे?

मुमुक्षु :- तो उसको प्रणाम नहीं करना चाहिये। जो बाह्य आचार ... टोडरमलजीने कहा है, समाजमें कुछ विरोध नहीं होवे, इसलिये कोई द्रव्यलिंगी मुनि द्रव्यलिंगका आचार बराबर पालते हो, तो...

समाधान :- .. अपने ऊपर है। बाहरकी बात है न। कल्याण तो अपने स्वरूपको

पीछाने तब होता है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं जाननेवाला हूँ, यह सब मेरा स्वरूप नहीं है। शुभाशुभ भावसे मैं भिन्न हूँ। यह शरीर जड़तत्त्व है, मैं जाननेवाला आत्मा हूँ। यह कैसे समझमें आवे? उसकी जिज्ञासा, उसकी रुचि सब होना चाहिये। अशुभभावसे बचनेके लिये शुभभाव सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आती है, परन्तु मुझे शुद्धात्मा कैसे ख्यालमें आवे? मैं शुद्धात्माका स्वरूप कैसे पीछानुँ? ऐसी प्रतीत, ऐसा ज्ञान (करना)।

सम्यग्दर्शन आत्मामें होता है, सम्यग्ज्ञान आत्मामें होता है, सम्यक्चारित्र आत्मामें होता है। सब आत्मामें होता है। बाहरसे कुछ नहीं होता, सब आत्मामें होता है। साथमें शुभभावका व्यवहार होता है। पंच महाव्रत, अणुव्रत सब शुभभाव होते हैं। भीतरमें चारित्र तो स्वरूपमें स्वानुभूति होवे तब चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन, स्वरूपकी श्रद्धा, ज्ञान सब आत्माके आश्रयमें होता है। उसकी रुचि, जिज्ञासा, भावना सब करना। उसकी रुचि, तत्त्वका विचार आदि सब करना। ऐसे भवका अभाव हो सकता है। फिर बाहर क्या करना, नहीं करना, वह सब समझमें आ जायेगा। पहले भवका अभाव कैसे हो, उसकी लगनी लगानी। तत्त्वका विचार करना। यह सब तो बाहरका है। प्रणाम, नहीं प्रणाम सब बाहरका है।

मुमुक्षु :- .. समझमें आ जायगा तो यह अपनेआप ..

समाधान :- आ जायगा, सब आ जायगा। उसको विचार करना चाहिये।

मुमुक्षु :- ... वह तो सोचना चाहिये न।

समाधान :- .. तो विचार करना चाहिये। ऐसा पढनेमें आया, मोक्षमार्ग प्रकाशकमें सब आता है। गुरुदेवने बहुत समझाया है। सबका विचार करके नक्की करना।

मुमुक्षु :- द्रव्यलिंगी जैसे मिथ्यादृष्टि होता है, बहिनश्री! तो सम्यग्दृष्टि भी हो सकता है क्या?

समाधान :- सम्यग्दृष्टि हो सकता है, लेकिन वर्तमानमें ऐसा नहीं है। द्रव्यलिंगी सम्यग्दृष्टि होते हैं।

मुमुक्षु :- सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगके साथमें होता नहीं है..

समाधान :- .. सब क्रिया करते हैं बाहरकी।

मुमुक्षु :- छठ्ठे-सातवें गुणस्थानवाले मुनिराज भी हाथमें ही लेते हैं?

समाधान :- हाथमें लेते हैं। भीतरकी दशा कोई उसकी अद्भुत रहती है। दशा अद्भुत रहती है। मुनि तो हाथमें आहार लेते हैं। बाहर हाथमें आहार लिया इसलिये भीतरमें ऐसी दशा हो गयी, ऐसा नहीं होता। वह तो कोई अजब होते हैं, भावलिंगी मुनि तो। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें शरीर कहाँ है? आत्मा कहाँ है? भीतरमें चले जाते हैं, अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें। चलते-चलते भी भीतरमें चले जाते हैं। आहार लेते-लेते निर्विकल्प

हो जाते हैं। निर्विकल्प दशा हो जाती है।

मुमुक्षु :- यह तो भावलिंगीको, और द्रव्यलिंगीको?

मुमुक्षु :- मिथ्यादृष्टि होवे तो कुछ नहीं।

मुमुक्षु :- और सम्यग्दृष्टि होवे तो?

समाधान :- सम्यग्दृष्टिको क्षण-क्षणमें (निर्विकल्पता नहीं होती)। मुनिको तो क्षण-क्षणमें होती है। ऐसी दशा है। क्षण-क्षणमें मुनिको स्वानुभूति होती है। सम्यग्दृष्टिको कोई बार होती है, कोई-कोई बार सम्यग्दृष्टिको होती है। ये तो क्षण-क्षणमें चलते-चलते, खाते-पीते, निद्रा थोड़ी लेते हैं, फिर निद्रामें जागे तो स्वानुभूतिमें। क्षणमें स्वानुभूति (होती है)। ऐसी मुनिकी दशा होती है।

यह (बाहरकी) तो शुभभावकी क्रिया है। अशुभभाव छोड़कर त्याग ले लिया। त्याग लेकर ऐसे पच्चखाण ले लिया कि ऐसे आहार लेना। वह शुभभावकी क्रिया है। लेकिन भीतरकी दशा कोई कुछ अलग है। वह तो शुभभावकी क्रिया है। जैसे कोई उपवास कर लेते हैं, कोई त्याग करता है। वैसे मुनिकी क्रिया धारण कर ले। हाथमें आहार लिया, त्याग कर दिया कि मैं ऐसे आहार नहीं लूँगा, ऐसे आहार लूँगा। वह सब तो बाहरकी क्रिया है। क्रिया है, इसलिये भीतरमें दशा हो गयी ऐसा तो नहीं है।

(गृहस्थाश्रममें) भी सम्यग्दर्शन तो होता है। चक्रवर्तीको भी होता है। .. वह तो कोई अजब होती है। ऐसे मुनि नहीं हो सकते।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१०६

समाधान :- .. उसको पीछानना। दो तत्त्व भिन्न हैं। एक मुक्तिका मार्ग है। शरीरके साथ एकत्वबुद्धि है, विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि है। वह आत्माको पीछानता नहीं है। आत्माको पीछानना और शरीर, विभाव आदिसे भेदज्ञान करना। मुक्तिका यह एक ही मार्ग है। मैं आत्मा जाननेवाला ज्ञायक हूँ। अनन्त गुणसे भरपूर हूँ। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। मैं निर्विकल्प तत्त्व हूँ। ऐसे भेदज्ञान करना, यह एक ही मुक्तिका मार्ग है।

मुमुक्षु :- क्षण-क्षण ऐसा चिंतवन होता रहना चाहिये? बहिनश्री!

समाधान :- चिंतवन तो क्षण-क्षणमें तब होवे कि जब यथार्थ लक्षण उसके ख्यालमें आवे तब। उसकी जिज्ञासा करे, उसकी लगन लगाये। मेरे आत्मामें सब सुख भरपूर है। मैं आत्मा महिमावंत हूँ। ऐसी भावना, जिज्ञासा, लगन लगावे। भीतरसे पीछाना जाय। विकल्पसे रटनमात्रसे नहीं। भीतरसे विचारना चाहिये। क्षण-क्षणमें मैं आत्मा ही हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा भीतरमेंसे जानना चाहिये। यथार्थ तो तभी होता है। भीतरमेंसे सहजपने भेदज्ञान हो जाय। भीतरमें स्वानुभूति हो जावे। विकल्प छूट जाय और स्वानुभूति होवे तब यथार्थ होता है। पहले तो उसकी जिज्ञासा, लगन आदि होता है।

मुमुक्षु :- व्यापार, कुटुम्बमें रहते हुए भी...?

समाधान :- यह हो सकता है। व्यापार, कुटुम्ब सबमें (रहते हुए भी) भीतरमेंसे उसकी रुचि उठ जाय। उसका रस टूट जाय। बाहरसे त्याग नहीं होता है तो भी भीतरमेंसे रुचि उठ जाय। उसका रस उठ जाय। उसकी महिमा आत्मामें लग जाय, आत्माकी लगन लग जाय। गृहस्थाश्रममें भी हो सकता है। आत्माका भेदज्ञान होवे। पहले कालमें, चतुर्थ कालमें चक्रवर्तीको भी भेदज्ञान होता है। क्षण-क्षणमें आत्माको मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी सहज उसकी परिणति रहती नथी। चतुर्थ कालमें गृहस्थाश्रममें भी हो सकता है। बाहरसे त्याग नहीं होता, परन्तु भीतरमें आत्माकी स्वानुभूति, भेदज्ञान सब होता था।

मुमुक्षु :- वह कैसे करे?

समाधान :- आत्माकी लगन लगाये, तब होवे। विचार करना। मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? विभाव परद्रव्य क्या? मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय क्या? ऐसे शास्त्रका स्वाध्याय

करे, विचार करे। यथार्थ समझे, सत्संग करे। सत्संगमें जाय और उसका स्पष्टीकरण (करे), निःशंकतासे उसकी प्रतीत करे तब होवे। बिना समझे नहीं हो सकता है। उसे समझना चाहिये। प्रयोजनभूत तत्त्व समझे। ज्यादा जाने, ज्यादा शास्त्र अभ्यास करे इसलिये नहीं, परन्तु मूल प्रयोजनभूत तो जानना चाहिये।

मुमुक्षु :- थोड़ा-बहुत व्यापार है, उनसे भी लगाव छोड़ना पडेगा न?

समाधान :- उससे रस टूट जाना चाहिये। रस और रुचि छूट जाना चाहिये। उसकी मर्यादा हो जाय। उसकी तृष्णा, अधिक संचय करुँ ऐसी तृष्णा टूट जाय। अधिक तृष्णा आदि नहीं रहते।

मुमुक्षु :- वह कब टूटेगी? जब अन्दरसे भाव..?

समाधान :- अन्दरमें रुचि होवे तब, आत्माकी रुचि होवे तब हो सकता है।

मुमुक्षु :- आत्मामें लगानेका प्रयत्न करने पर भी वह लग नहीं पाता है। करने पर भी .... आता है।

समाधान :- लगन यथार्थ नहीं लगी है। लगन लगे तो हो सके। यथार्थ सच्ची लगन लगे तो भीतरमें तो आत्मा पीछाननेमें आये बिना रहता ही नहीं।

मुमुक्षु :- हम समझते तो यह हैं कि हमने बहुतकुछ कर लिया है, बहुत लगन लगा ली है, लेकिन ऐसा हुआ नहीं है।

समाधान :- भीतरमेंसे सच्ची लगन नहीं लगी है, ऊपर-ऊपरसे लगती है। ऐसे ऊपरसे लगती है।

मुमुक्षु :- भीतरमेंसे लगानेके लिये बहिनश्री! थोड़ा-बहुत तो लगाव छोड़ना ही पड़ेगा न?

समाधान :- भीतरमेंसे ऐसे रुचि (लगे कि) बाहरमें सुख नहीं है। मेरा सुखका भण्डार मेरे आत्मामें है। बाहरमें कुछ सुख नहीं है। ऐसा विश्वास आ जाय तो आपोआप छूट जाता है। ऐसे भीतरमेंसे (लगना चाहिये)।

मुमुक्षु :- दर्शनका श्रद्धान होनेके बाद चारित्रका श्रद्धान करना पड़ेगा या अपनेआप हो जायगा?

समाधान :- सम्यग्दर्शन जिसको होता है, सच्ची प्रतीत, निर्विकल्प स्वानुभूति ऐसा सम्यग्दर्शन होवे। फिर स्वरूपमें लीनता तो अपने पुरुषार्थसे करनी पड़ती है। आपोआप नहीं होती, पुरुषार्थसे होती है। सम्यग्दर्शन होवे उसके भवका अभाव हो जाता है। बादमें केवलज्ञान प्रगट करनेके लिये, आत्माकी पूर्ण स्वानुभूति पूर्ण स्वरूपमें रहना, निर्विकल्प स्वरूपमें बारंबार जाना, उसके लिये उसकी लीनता लगानी पड़ती है।

मुमुक्षु :- चारित्रका पालन करना जरूरी है अभी या श्रद्धान पक्का करना जरूरी है?

समाधान :- पहले श्रद्धान करना। पहले श्रद्धान मुक्तिका मार्ग है। चारित्र बादमें आता है। सच्चा श्रद्धा करे तो चारित्र होता है। श्रद्धान बिना चारित्र कैसे हो सकता है? सच्चा चारित्र नहीं होता। समझे बिना चलने लगे तो मार्गको समझे बिना कहाँ जायगा? भावनगर जाना है तो ऊलटा चलेगा, समझे बिना। श्रद्धान हो कि यह भावनगरका मार्ग है। उस मार्गका श्रद्धान करना। मैं ज्ञायक हूँ, मेरेमें सबकुछ भरा है। उसका भेदज्ञान करके विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ, उसकी श्रद्धा करके यथार्थ भीतरमेंसे उसमें लीनता करे। विशेष लीनता करनेके लिये चारित्र होता है।

मुमुक्षु :- खाली चारित्रका पालन करनेसे कुछ नहीं होता?

समाधान :- अकेले चारित्रका पालन करनेसे कुछ नहीं होता। शुभभाव होता है, पुण्यबन्ध होता है, देवलोकमें जाता है। ग्रैवेयक उपजाया।

मुमुक्षु :- निगोदमें आयेगा यदि सम्यग्दृष्टि नहीं हुआ तो?

समाधान :- हाँ, सम्यग्दृष्टि नहीं हुआ तो निगोदमें भी जायगा। तो निगोदमें भी जायगा। परिभ्रमण नहीं टूटेगा। मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो। मुनिव्रत धारण करके अनन्त बार ग्रैवेयक गया, वहाँ भवभ्रमण टूटा ही नहीं। सम्यग्दर्शन करनेसे भवभ्रमण टूट जायगा।

मुमुक्षु :- इसका क्या प्रमाण है कि हमारे मनुष्यके भव पूरे ही हो चूक हैं या अभी कुछ बाकी रह गये हैं? आगेके भवोंके लिये क्या पता है कि मनुष्यभव है या नहीं है?

समाधान :- अपना परिणाम देख लेना कि मैं कैसे परिणाम करता हूँ? आगे क्या? जैसे परिणाम होवे ऐसा फल मिलता है। कैसा परिणाम भीतरमें होता है? परिणाममें कलुषितता और बहुत बाहरकी लुब्धता, रुचि होवे तो मैं... जैसा उसका परिणाम, वैसा उसका भव। मेरे परिणाम कैसे होते हैं, यह देख लेना। मैं अंतरमेंसे कितना भिन्न रहता हूँ? मुझे आत्माकी कितनी रुचि है? यह सब देख लेना। परिणाममें अत्यंत एकत्वबुद्धि है तो जैसा परिणाम (वैसा) उसका फल।

भव मिलनेसे क्या होता है? भीतरमें आत्माकी रुचि करनेसे भवका अभाव होता है। भव तो देवका भव अनन्त बार मिला और मनुष्यका भव भी अनन्त बार मिला। सबकुछ मिल चुका है। शुभभाव करनेसे पुण्यबन्ध होवे तो देवलोक होता है, मनुष्यभव होता है शुभभावसे, परन्तु भवका अभाव तो नहीं हुआ। भवका अभाव कैसे हो, वैसा करना चाहिये।

मुमुक्षु :- भवका अभाव करनेके लिये अनुभूति प्राप्त करनी है।

समाधान :- अनुभूति प्राप्त करे तो भवका अभाव होता है।

मुमुक्षु :- सिद्ध अवस्था प्राप्त होनेके बाद यह अंतःतत्त्व है या बाह्य तत्त्व है?

समाधान :- सिद्धदशाको प्राप्त करे तो अंतर तत्त्व है। सिद्धका स्वरूप तो अंतःतत्त्व है। नियमसारमें कुछ ऐसा..

मुमुक्षु :- नव तत्त्व बहिःतत्त्व है। निज एक ही अंतः तत्त्व है। सिद्धदशा सिद्ध अपेक्षासे अंतःतत्त्व है और पर्याय अपेक्षासे बाह्य कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- एक दफे सिद्ध होनेके बाद भी उसमें रजोबदल होता रहता है क्या? पर्यायका तो...

समाधान :- सिद्धदशा तो अंतःतत्त्व ही है। अंतः, बाह्य समझनमें बहुत मुश्किपल होगा।

मुमुक्षु :- पण्डितजी साहबने समझाया, लेकिन आपके मुखसे समझे तो थोड़ा...

समाधान :- भीतरमें लीन हो गया सिद्धकी दशा, केवलज्ञान प्राप्त हो गया, विकल्प सब टूट गये। सम्यग्दर्शन सम्यग्दृष्टि जो होता है... दर्शनकी अपेक्षासे दर्शनके विषयमें पर्याय गौण होती है, द्रव्य मुख्य रहता है। इसकी अपेक्षासे बाह्य और अभ्यंतर ऐसा कहनेमें आता है। बाकी ज्ञान सब जानता है। पर्याय है, द्रव्य है। पर्याय और द्रव्य, सब द्रव्यका स्वरूप है। सिद्धका स्वरूप है। उसको सब अंतः ही है।

... जैसा अपना शुभभाव। शुभभाव होवे तो पुण्य बन्धे। परिणामके ऊपर पुण्य है। दर्शन करके परिणाम अच्छे होवे ते पुण्य बन्धे, परिणाम इधर-ऊधर चला जाता है तो...

मुमुक्षु :- कोई भी खराब परिणाम...

समाधान :- परिणाम दूसरा होता है तो.. परिणाम अच्छा होता है तो पुण्य बन्धता है। आत्म स्वरूपकी प्राप्ति तो नहीं होती और शुभभाव होता है, पुण्य बन्ध (होता है)। सामान्य पुण्य बन्ध होता है। क्योंकि अपने आत्माका स्वरूप तो पीछानता नहीं है। तीर्थमें फिरे, आत्मा स्वरूप-तीर्थ तो पीछाने नहीं, आत्म-तीर्थको और तीर्थ-तीर्थमें फिरे तो क्या? शुभभाव होता है। शुभभाव रखे तो पुण्यबन्ध होता है।

मुमुक्षु :- ... वहाँ जो आदमी रहते हैं, जो जैनियों... उनके भाव हलके रहते हैं, तीर्थक्षेत्रमें, ऐसा क्यों?

समाधान :- ऐसा एकान्त नहीं होता है। सबके भाव (ऐसे नहीं होता)।

मुमुक्षु :- पंचमकालके हिसाबसे...?

समाधान :- पंचमकालमें सबके भाव ऐसे नहीं होते।

मुमुक्षु :- ऐसा नियम नहीं है।

समाधान :- ऐसा नियम नहीं है। सबका भाव ऐसे रहते हैं? जैसी योग्यता होती

है, ऐसा भाव होता है। क्षेत्र क्या करे? क्षेत्र किसीका कुछ कर नहीं देता। अपना भाव ऐसा रहे तो अपनी योग्यता, अपना दोष है, तीर्थ क्या करता है? कोई निमित्त कुछ कर नहीं देता। निमित्त कर ही नहीं देता है, निमित्त कुछ कर नहीं देता है। अपने उपादानकी तैयारी होवे ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- कहते हैं, यहाँ आकर आपके दर्शन हुए तो शान्ति हो गयी।

समाधान :- ... बहुत किया, आत्माको नहीं पीछाना। आत्माको पीछाना नहीं।

मुमुक्षु :- यात्रा तो..

समाधान :- भाव आवे, करे यात्रा। शुभभाव है।

मुमुक्षु :- शुभभाव आनेसे यात्रा करते हैं।

समाधान :- तीर्थमें भगवान है? अपने भगवानको पीछानना चाहिये। आत्माको नहीं पीछानता है। भगवानको देखकर अपना भाव अच्छा होना चाहिये।

मुमुक्षु :- हम भी वैसे ही बने।

समाधान :- भगवान जैसे होवे, ऐसा होना चाहिये।

ॐ भगवानकी दिव्यध्वनि है। भगवानकी वाणीमें ॐ आता है। एकाक्षरी वाणी भगवानकी वाणी है। उसमें सब अनन्त रहस्य आता है। सब अपनी योग्यता अनुसार समझ लेते हैं। ॐ है। पंच परमेष्ठीका मन्त्र, सब ॐमें आ जाता है। ॐ भगवानकी वाणी है। भगवानको केवलज्ञान होता है तो वाणी ऐसे क्रम-क्रमसे निकलती है, ऐसे भगवानकी वाणी क्रम-क्रमसे नहीं निकलती है। एक ॐ निकलता है। उस ॐमें सब अनन्त रहस्य आता है। उसमें इतना अतिशय रहता है कि सब अपनी भाषामें सब समझ लेते हैं। ऐसी भगवानकी वाणी ॐ है।

मुमुक्षु :- ॐको अरिहन्त अवस्थामें भी ध्याया जाता है?

समाधान :- अरिहन्त अवस्थामें उसका ध्यान नहीं होता है, ॐ भगवानकी वाणी है।

मुमुक्षु :- वाणी है?

समाधान :- वाणी है, वाणी है। भगवानको तो पूर्ण केवलज्ञान हो गया। भगवान ॐका ध्यान नहीं करते, भगवानकी वाणी ॐ है।

समाधान :- ... तब कुछ काम नहीं आता। संसार तो ऐसा है। जन्म-मरण संसारमें है। जो जन्म और मरण संसारमें है। आयुष्य सबके पूरे होते हैं। परन्तु इस मनुष्य जीवनमें आत्माकी रुचि हो वही लाभरूप है। बाकी तो संसार ऐसा ही है। जीवनमें कुछ आत्माकी रुचि की हो, अन्दर संस्कार बोये हो, गुरुदेवने जो वाणी बरसायी है, वह स्वयंने ग्रहण की हो तो मनुष्य जीवन सफल है। बाकी जीवनमें सबको यही करने जैसा है, मनुष्य जीवनके अन्दर।

अनन्त जन्म-मरण हुए। जन्म-मरण तो संसारमें है ही। भवका अभाव कैसे हो, यह करने जैसा है। गुरुदेवने भवका अभाव कैसे हो, यह मार्ग बताया। अनन्त भव हुए, वह भव इतने अनन्त हुए कि उसकी कोई सीमा नहीं है। निगोदमें अनन्त काल रहा। अनन्त नर्कमें हुए, अनन्त मनुष्य, अनन्त तिर्यंच और अनन्त देवके हुए। ऐसा चार गतिका परिभ्रमण खड़ा है। उसमेंसे भवका अभाव कैसे हो, यह गुरुदेवने मार्ग बताया कि अंतरमें तू देख, आत्माको पहचान, उसका भेदज्ञान कर तो भवका अभाव हो।

बाकी भवका अभाव... बाहरसे जीवने बहुत किया है। शुभभाव किये, क्रियाएँ की परन्तु अंतर दृष्टि नहीं की। अंतर दृष्टि करके आत्माको पहचाने, सब शुभाशुभ भावसे भिन्न अन्दर आत्मा है उसे पहचाने, उसका भेदज्ञान करे तो भवका अभाव होता है। वह जब तक न हो तब तक उसकी रुचि करे, जिज्ञासा करे, लगन लगाये। अशुभभावसे बचनेके लिये शुभभाव आते हैं, परन्तु वह भी आत्माका स्वरूप नहीं है। अन्दरमें शुद्धात्माकी रुचि रखनी वही है। शुभभावमें जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र उनकी महिमा, शास्त्रका चिंतवन, वह सब जीवनमें करने जैसा है। शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये, भवका अभाव उसीसे होता है। अन्य कोई प्रकारसे भवका अभाव नहीं होता।

अनन्त कालमें सब मिला है। यह एक सम्यग्दर्शन दुर्लभ है। जिनेन्द्र देवके दर्शना (नहीं किये)। जिनेन्द्र देवका योग हुआ है लेकिन स्वयंने पहचाना नहीं है। इसलिये सम्यग्दर्शन है वही अपूर्व है। वह कैसे हो, उसकी लगन, जिज्ञासा आदि करने जैसा है। सबके आयुष्य पूर्ण होते हैं। देवलोकका सागरोपमका आयुष्य भी पूरा हो जाता है। और चक्रवर्तीका आयुष्य भी पूरा हो जाता है। तो फिर इस पंचमकालका आयुष्य तो क्या हिसाबमें है? उनकी जो रुचि थी, अन्दर संस्कार थे वह अपने साथ जाते हैं। मनुष्य जीवनमें यही करने जैसा है। किसीको छोड़कर स्वयं आता है, स्वयंको छोड़कर दूसरे चले जाते हैं। ऐसा संसारमें चलते ही रहता है। आत्माका स्वरूप पहचान लेने जैसा है।

मुमुक्षु :- पहलेकी सब कैसेट बतायी। गुरुदेवश्री और आपकी, एवं जिन मन्दिरका सब था, मेरे पास एक विडीयो कैसेट है। पहलेकी सब कैसेट देखी। क्योंकि सोनगढ़ लेकर आये ऐसी स्थिति नहीं थी।

समाधान :- विडीयोमें तो भगवान दिखे, सब दिखे।

मुमुक्षु :- सम्मेदशीखर आदि जो बड़े-बड़े तीर्थ थे सबकी पूरी कैसेट थी, वह सब तीर्थस्थान दिखाये।

मुमुक्षु :- यहाँ सोनगढ़ पर उसे भाव बहुत था।

समाधान :- भाव था, पहलेसे भाव था।

मुमुक्षु :- बहुत भक्ति। गुरुदेवश्री और बहिनश्रीको देखे तो अन्दरसे ऐसा हो जाता था, हाथ-पैस सीधे नहीं थे इसलिये ऐसा कुछ कर नहीं सकते थे।

समाधान :- उनको जो रुचि थी वह रुचि सबको रखने जैसा है। आत्माका स्वरूप कैसे समझमें आये, उसकी जिज्ञासा, लगन। आत्मा जाननेवाला ज्ञायक है, उसमें अनन्त गुण भरे हैं। वह अनुपम तत्त्व है। यह विभाव स्वभाव अपना नहीं है। आत्मा भिन्न है, उसका भेदज्ञान कैसे हो, उसकी जिज्ञासा, लगन जबतक नहीं हो तब उसकी रुचि और शुभभावोंमें जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र, उनकी महिमा शास्त्रका चिंतवन, शास्त्रका स्वाध्याय, जीवनमें वह सब शुभभावमें (होना चाहिये)। और शुद्धात्मामें आत्माकी रुचि रखने जैसा है। जीवनमें वह कर्तव्य है। जन्म-मरण तो चलते ही रहते हैं। उन्होंने जो रुचि (की), उन्होंने जो किया वह सबको करने जैसा है। आत्माकी रुचि, जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रकी महिमा आदि।

... पंचमकालमें पधारे वह तो कोई अपूर्व तीर्थंकरका द्रव्य, उनकी तो बात क्या! ऐसे महापुरुषका अवतार यहाँ कहाँ? पंचमकालमें कहाँसे?

मुमुक्षु :- ... मैंने महाराज साहबको कहीं देखा है।

समाधान :- वहाँ ऊपर ही रहती थी न। तब मन्दिर जाना कुछ था नहीं, इसलिये बाहर भी बहुत नहीं निकलती थी। मन्दिर नहीं था।

मुमुक्षु :- मन्दिर दर्शन जानेकी कोई प्रथा शुरू नहीं हुयी थी।

समाधान :- प्रथा शुरू नहीं हुई थी।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१०७

समाधान :- ... अजीवका ज्ञान तो अन्दर जाने कि मैं ज्ञायक हूँ, जाननेवाला हूँ, ऐसे भिन्न रहे तब ज्ञान होता है। भिन्न नहीं रहता हो तो भ्रान्ति होती है।

मुमुक्षु :- हाँ, भिन्न नहीं रहता है।

समाधान :- हाँ, तो भ्रान्ति भूल होती है। भिन्न नहीं रहता।

मुमुक्षु :- क्षयोपशमके कारणसे या अज्ञानके कारणसे?

समाधान :- अज्ञानके कारणसे। दोनों एकत्वबुद्धि हो रही है, भ्रान्ति हो रही है, भूल हो रही है। ज्ञायक हूँ, जाननेवाला हूँ, यह शरीर में नहीं हूँ। भीतरमें ऐसा जाननेवालेका अभ्यास करे तो उससे भिन्न रहता है।

मुमुक्षु :- आपका प्रवचन..

समाधान :- प्रवचन नहीं होता है।

मुमुक्षु :- परिणाममें तो रहता नहीं है, सुना इसलिये..

समाधान :- अपनी रुचि नहीं है, उतनी लगन नहीं है, उतना पुरुषार्थ नहीं है तो कहाँ-से रहे? उतना जाननेवालेका अभ्यास करना चाहिये। रुचि नहीं है, लगन नहीं है तो कहाँसे रहेगा? एकत्वबुद्धि, अनादिकी एकत्वबुद्धि है उसमें चला जाता है। पुरुषार्थ करना चाहिये। बारंबार पुरुषार्थ करना चाहिये, मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ। शरीर मैं नहीं हूँ। मैं तो शाश्वत आत्मा हूँ, मैं महिमावंत हूँ, ऐसा अभ्यास करना चाहिये।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- मात्र बोलनेसे या मात्र रटन करनेसे नहीं होता। कल्याण तो भीतरमें ऊतारे तब कल्याण होता है। आत्माको नहीं पीछाना। आत्माको पीछाने तब कल्याण होता है। मात्र शुभभाव करे तो पुण्यबन्ध होता है। अपना कल्याण नहीं होता है। कल्याण तो अपने शुद्धात्माको पीछाने तब होता है।

मुमुक्षु :- उपयोगमें अकेला ध्रुव ही ज्ञात होता है या पर्याय और ध्रुव दोनों साथमें ज्ञात होते हैं? दोनोंका व्यापार साथमें होता है?

समाधान :- उपयोगमें न? ध्रुव और पर्याय दोनों ज्ञात होते हैं।

मुमुक्षु :- एकसाथ?

समाधान :- एकसाथ ज्ञात होते हैं। निर्विकल्पताके कालमें एकसाथ ज्ञात होते हैं। ध्रुव ध्रुवरूप, पर्याय पर्यायरूप जैसा है वैसा ज्ञात होता है। उसे विकल्प करके क्रम नहीं पड़ता। सहज ज्ञात होता है। उपयोग है वह सब जानता है। स्वयं द्रव्यको जाने, गुण, पर्याय सब जानता है, उपयोगमें सब ज्ञात होता है। उपयोग बाहर हो तो विकल्पात्मक है, अन्दर है वह निर्विकल्परूप है। उसे सब ज्ञात होता है। दृष्टि एक ध्रुव पर है और उपयोगमें सब ज्ञात होता है।

अनुभूतिको जानता है, ध्रुवको जानता है, सब जानता है। आनन्दको जानता है, सब जानता है। न जाने तो वह ज्ञान कैसा? ज्ञान सब जानता है। ज्ञानका उपयोग स्वकी ओर गया तो स्वको जानता है। स्वपरप्रकाशक ज्ञान है। उस वक्त उपयोग बाहर नहीं है कि उसका पर ओर उपयोग हो। परन्तु स्वके अन्दर ही स्वयं अपने गुण, पर्याय, द्रव्य आदि सबको जानता है।

पर्याय कहीं चली नहीं जाती। पर्यायका परिणमन होता है। ध्रव और पर्याय सब साथमें होता है। वेदन है वह पर्याय है, पर्याय कहीं चली नहीं जाती। और ध्रुव भी है। विकल्पात्मकमें जाना है इसलिये वह सहजरूप हो जाता है। दृष्टिका जोर जैसा था वैसा सहज रह जाता है। ज्ञानका उपयोग जैसा है वैसा सहज जानता है। केवलज्ञानमें सहज शाश्वत वीतरागदशा रह जाती है। छद्मस्थको उपयोग पलट जाता है। वीतराग दशा पूर्ण नहीं हुयी है, इसलिये उपयोग पलट जाता है। उपयोगकी स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है। अंतर्मुहूर्तमें पलट जाता है।

मुमुक्षु :- .. उसमें आपने ऐसा कहा कि अपना नाम जैसे जानता है वैसे? तो आपने कहा, नहीं, वैसे नहीं। परन्तु ... देव-गुरुकी प्रतीति और आश्रयमें क्या फ़र्क़ पड़ता है?

समाधान :- नाम तो उसने मात्र नाम जाना कि इस शरीरका नाम यह है। उसमें नामका आश्रय कहाँ है? वह आश्रयरूप नहीं है। आपने ऐसा कहा था न कि नाम भूल गया। ऐसा कुछ प्रश्न था।

मुमुक्षु :- जैसे अपना नाम रटना नहीं पड़ता, लेकिन उसे सहजरूपसे आश्रय, निर्विकल्प आश्रय है कि मैं हीराभाई हूँ। इस तरह है कि नहीं? तब आपने कहा था कि नहीं, ऐसे नहीं।

समाधान :- नाम है वह कोई वस्तु नहीं है। उसका आश्रय थोड़े ही है। यह तो एक आश्रय है। अन्दर ज्ञायकका आश्रय लिया, वह अलग है। और देव-गुरु-शास्त्रका शुभभावमें भले ही स्वयंने आश्रय लिया है। उसका आश्रय है कि यह गुरु अन्दर साधना करते हैं। आत्मवस्तु बताते हैं। गुरुका आश्रय जो अन्दरमें आया कि

गुरु जो बताते हैं, उसका ही आश्रय सच्चा है। देव-गुरुका। शुभभावमें (ऐसा होता है कि), इसी आश्रयसे ही मुझे ज्ञायकका आश्रय मिलेगा ऐसा है। निमित्तमें ऐसा और उपादानमें स्वयं है। नाम है वह कोई आश्रय नहीं है। आश्रय तो एक वस्तुका होता है। आश्रय कोई नामका नहीं होता है। नाम सहज रह जाता है, वह अलग बात है। एक शरीरका नाम (है), यह मैं हूँ ऐसे। वह कोई आश्रयरूप वस्तु नहीं है।

मुमुक्षु :- आश्रयकी अपेक्षासे भेद करो तो...

समाधान :- हाँ, वह तो आश्रय लिया है। गुरुका-देवका आश्रय लिया। लेकिन वह भी अभी तो बाह्यका हुआ। अंतरमें खरा आश्रय ज्ञायकका ही है। ज्ञायकका आश्रय लिया कि मैं यह ज्ञायक हूँ। फिर उसे रटना नहीं पड़ता। उसे सहज आश्रय आ जाता है। स्वयं ही है, अन्य नहीं है। सहज आश्रय रह जाता है। और निर्विकल्प दशामें तो उसे उपयोगात्मक है। वह तो उसे वेदनमें आ गया है। उसमें आश्रय है, इसमें वेदनमें आ गया है। ज्ञायककी परिणति वेदनकी है वह श्रद्धारूप ज्ञायककी परिणतिका वेदन अलग है और वह उपयोगात्मक है। (परिणतिमें) लब्धात्मक है, यह उपयोगात्मक है। लब्धात्मक अर्थात् शक्तिरूप नहीं है। ज्ञायककी परिणतिरूप है। परिणतिरूप है तो वह परिणति ऐसी है कि उपयोग बाहर जाय तो भी वह परिमति टिकी रहती है। और अन्दर निर्विकल्प दशा तो उपयोगात्मक हुयी है। परिणति और उपयोग दोनों साथ हो जाते हैं। परिणति है वह परिणति वैसी ही रह जाती है और उपयोगात्मक होता है। परिणति और उपयोग दोनों हो जाते हैं।

सविकल्प दशामें उसकी जो सहज दशा वर्तती है, पुरुषार्थकी धारा, वह साधकदशा उसका कारण होने पर निर्विकल्प दशाका कार्य आता है। बाहरसे छूटकर अंतरमें चला जाता है। इसलिये विशेष कार्य उसे वह होता है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प ...में परिणतिके साथ उपयोग साथ आकर मिलता है, इसलिये उपयोगरूप आनन्द हो जाता है।

समाधान :- एक विशिष्ट परिणति होती है।

मुमुक्षु :- बाह्यमें आपने जो भेद किया, देव-गुरुका आलम्बन-आश्रय और नाममें आश्रय नहीं है। यह पकड़में नहीं आया।

समाधान :- नामका आश्रय कहाँ स्वयंने लिया है? वह तो एक नाम है कि ये हीराभाई, नाम है। नाम ऐसा रह गया, सहज रह गया। नामके साथ कोई प्रयोजन नहीं है।

मुमुक्षु :- यहाँ तो निमित्तरूपसे भी प्रयोजन है।

समाधान :- हाँ, प्रयोजन है। और ज्ञायकके आश्रयमें प्रयोजन है। निमित्तमें देव-

गुरुका प्रयोजन है। उसमें तो शरीर पर ध्यान है कि ऐसा शरीर है सो मैं हूँ, ऐसा एक अन्दर कल्पनासे मान लिया है।

मुमुक्षु :- घोंटन होते-होते ऐसा दृढ़ हो गया उतना ही, उसमें आश्रय नहीं है। यहाँ देव-गुरुमें निमित्तरूपसे आश्रय है।

समाधान :- आश्रय है, आश्रय है।

मुमुक्षु :- जाननेके प्रकारमें क्या अंतर है?

समाधान :- मतिज्ञानका उपयोग सामान्य है। इसलिये मतिज्ञान विशेष भेद नहीं करता। सामान्यरूपसे वस्तु (जानता है)। दर्शनउपयोग तो अलग है, वह तो सत्तामात्र ग्रहण करता है। मतिमें विशेष तर्क करके नहीं जानता। मति सामान्यरूपसे द्रव्य-गुण-पर्याय जानता है। और श्रुत है वह विशेष-विशेष जानता है।

मुमुक्षु :- सामान्य जानता है उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय सब आ जाता है? मतिमें?

समाधान :- सब आ जाता है, सब आ जाता है। लेकिन वह सामान्य जानता है, विशेष श्रुत जानता है। प्रत्यभिज्ञान होता है वह मतिज्ञान है। अवाय, इहा होता है उसमें मतिज्ञान है। वह सब मतिज्ञानका उपयोग सामान्य है और श्रुतज्ञानमें विशेषता होती है। इसलिये उसे अनुभूतिमें भी सामान्यतया वस्तुको गुण एवं पर्याय सामान्यरूपसे (जानता है)। परन्तु उसको विशेष गहराईसे जाने तो श्रुतज्ञान जानता है। लेकिन उसमें ऐसा कोई भेद नहीं है। विकल्प छूट गये हैं। मति और श्रुत दोनों साथमें काम कर रहे हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञानके साथ मतिज्ञान.. अनुभूतिके कालमें?

समाधान :- मतिपूर्वक श्रुतज्ञान है। लेकिन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों साथमें है। मतिपूर्वक। मतिका उपयोग होनेके बाद श्रुतका होता है। लेकिन वह सब अबुद्धिपूर्वक होता है। अंतर्मुहूर्तमें मति होता है, बादमें श्रुत होता है, ऐसा उसका क्रम पड़ता है। लेकिन वह उसे बुद्धिमें नहीं है, विकल्पमें नहीं है। ... पलटता है, वह अबुद्धिपूर्वक है।

मुमुक्षु :- .. विकल्प कौनसे होते हैं?

समाधान :- वह कोई निश्चित नहीं है। उस सम्बन्धित होते हैं। द्रव्यको ग्रहण किया है, द्रव्य ओरके, गुण ओरके, पर्याय ओरके वह सब उस सम्बन्धित विकल्प होते हैं। लेकिन कौनसे विकल्प होते हैं, वह निश्चित नहीं है। द्रव्यका आश्रय लिया, द्रव्य ओरके विकल्प हैं, गुण-पर्याय सब प्रकारके विकल्प होते है। लेकिन वह तो विकल्प छूटनेका काल है। इसलिये विकल्पसे नहीं होता है। विकल्प छूटकर (स्वानुभव) होता है।

मुमुक्षु :- लक्ष्य बदलना? पर ऊपर लक्ष्य है, उसे पलटकर स्वमें लक्ष्य करना। तो लक्ष्य बदलनेकी ताकत है अपनेमें? वह तो क्रमबद्धमें जो पर्याय आनेवाली है वही आनेवाली है, तो पर्यायमें लक्ष्य बदलनेकी ताकत है?

समाधान :- ताकत है। पुरुषार्थसे होता है। अकेला क्रमबद्ध नहीं है। लक्ष्य बदलना। द्रव्य पर दृष्टि करनी। ज्ञानका उपयोग बाहर जाता है उसे अपनी ओर लाना। वह सब पुरुषार्थसे होता है। बिना पुरुषार्थके क्रमबद्ध होता नहीं। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्ध होता है। ऐसे ही बिना पुरुषार्थके क्रमबद्ध (हो तो) अनादिका विभाव चला आ रहा है। अज्ञान, भ्रान्ति, राग, द्वेष अनादि संसार पड़ा ही है। वह अनादिका क्रमबद्ध चला आ रहा है। आत्माकी ओरका क्रमबद्ध सम्यग्दर्शनमें पुरुषार्थपूर्वक होता है। बिना पुरुषार्थ नहीं होता, अपनेआप नहीं होता।

मैं आत्माकी ओर दृष्टि करुँ, मैं ज्ञायक हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। अन्दरसे यह सब निःसार है। सारभूत आत्मा है। ऐसा विचार करे, स्वयं द्रव्य पर दृष्टि करे तो होता है। तो उसका क्रमबद्ध मुक्तिकी ओरका होता है। पुरुषार्थ करे तो। उसके सब कारण दे। पुरुषार्थ, काल, क्षयोपशम, स्वभाव आदि सब उसके कारण इकट्ठे हो तो होता है। एक क्रमबद्धसे नहीं होता। पुरुषार्थ आदि सब उसके कारण हैं। ऐसे ही बैठा रहे कि क्रमबद्धमें होगा, क्रमबद्ध होगा वैसा होगा, अपने पुरुषार्थ क्या करना? ऐसे नहीं होता। बिना पुरुषार्थके नहीं होता।

समाधान :- ... अन्दर विचार करना। यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, विकल्प होते हैं वह अपना स्वभाव नहीं है। उसका अभ्यास करते रहना। शान्ति रखनी। मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ। मुझमें आनन्द आदि सबकुछ है। ऐसा अंतरमेंसे, रटन मात्र नहीं, अंतरमेंसे उसका अभ्यास करते रहना। आकुलतान नहीं करनी, शान्ति रखनी। भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करना। शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु :- आज सुबहकी भक्तिमें वही आया। बहुत सुन्दर..

समाधान :- भेदज्ञान करना, बस, यह एक ही उपाय है।

मुमुक्षु :- तदर्थ अंतरके भावमें गहराईमें ऊतरे तो होता है।

समाधान :- हाँ। ... मनुष्यभव मिले, उसमें जितना आयुष्य हो उतना मिले। गुरुदेवका उपदेश सुना है, यह जानकर शान्ति रखनी। कुदरतके आगे किसीका उपाय नहीं है। संसार ऐसा ही है। चाहे जितना हो.. और ऐसा हो जाय इसलिये हो, लेकिन एक शान्तिके सिवा कोई उपाय नहीं है। मनुष्यभव मिले, उसमें गुरुदेवका उपदेश मिला, वह उपदेश ग्रहण करने जैसा है।

शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है। आत्मा शाश्वत है। आत्माको ग्रहण करना

वही श्रेयभूत है और वही शरणभूत है। अन्य कोई शरण नहीं है। ... पूरा होता है, तो फिर यह तो मनुष्य जन्म है। छोटी उम्रमें ऐसा हो जाय इसलिये लगे, लेकिन कुदरतके आगे कोई उपाय नहीं है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- शान्तिके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। अहेमदाबाद रहते हैं?

मुमुक्षु :- हाँ, अहेमदाबाद रहते हैं।

समाधान :- जन्म-मरणमें कितनोंको छोड़कर स्वयं आया, स्वयंको छोड़कर दूसरे चले जाते हैं। ऐसा संसारमें बनता रहता है। शान्ति रखनेके सिवा कोई उपाय नहीं है। संसार ऐसा है। आयुष्य क्षणिक पानीके बुलबुले जैसा है। ओसके बिन्दुकी भान्ति, जैसे बिन्दु क्षणमात्रमें विलीन हो जाता है। ऐसा यह संसार है। बिजलीके चमकारे जैसा आयुष्य है। उसमें आत्माका कर लेने जैसा है। विस्मृत किये बिना छूटकारा नहीं है।

(अनन्त) जन्म-मरण किये हैं। इस जगतके पुद्गल परमाणु ग्रहण किये हैं और त्याग किया है। आकाशके प्रदेशमें अनन्त बार जन्म-मरण किये। ऐसे अनन्त कालचक्र। अनन्त अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी कालमें अनन्त बार जन्म-मरण किये हैं। जीवने अनन्त कालमें अनन्त माताओंको रुलाया है (कि जिससे) समुद्र भर जाय। इतने जन्म-मरण किये हैं। स्वयंको छोड़कर दूसरे चले जाते हैं और अन्य स्वयंको छोड़कर जाते हैं। ऐसा यह संसार है। ... छोड़कर जाय और पुत्र माताको छोड़कर चला जाय, ऐसा यह संसार है। संसारमें शान्ति रखनेके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। संसार तो ऐसा ही है। कुदरतके आगे कोई उपाय नहीं है। आयुष्यके आगे कोई उपाय नहीं है। आयुष्य पूर्ण होता है।

.. उसका मंत्र है। ... पंच परमेष्ठी। यह पंच परमेष्ठी नवकार मन्त्र है। उतना तो समझना।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- शुभभावना होती है, अच्छी भावना हो। पंच परमेष्ठी पर भाव हो तो होता है।

... कोई उपाय नहीं है। किसीका उपाय काम नहीं आता। चाहे जैसे डॉक्टर आये, तो भी जो बननेवाला है, उसमें किसीका काम नहीं आता।

मुमुक्षु :- मांगलिक।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ooo

ट्रेक-१०८

मुमुक्षु :- आत्मामें रुचि लगा। मानो कि बाहरकी कोई बातें रुचती नहीं। आत्माकी चर्चा-वार्ता होती हो उसमें अच्छा लगता है। उसे आत्मामें रुचि लगी ऐसा कह सकते हैं?

समाधान :- वह तो आत्मा ओरकी रुचि, आत्माकी वार्ता रुचती है, इसलिये वैसे रुचता है ऐसा कहनेमें आय, परन्तु सचमुचमें रुचि तो आत्माको ग्रहण करे तो वह रुचा ऐसा कहनेमें आय। आत्माको ग्रहण करे। आत्माको ग्रहण करके आत्मामें लीन-स्थिर हो जाय तो आत्मामें रुचि लगी ऐसा कहनेमें आय। बाकी उसकी रुचिके कारण वैसी बात रुचे, उस प्रकारके विचार रुचे, वह भी रुचा है, फिर भी सचमुच रुचि तो आत्माको ग्रहण करे तो रुचि कहनेमें आय।

मुमुक्षु :- अनुभव हो तो?

समाधान :- तो उसकी श्रद्धा हो, उसकी अनुभूति हो। उसे ग्रहण करे तो वह रुचा कहनेमें आय। जिसे कहीं रुचता नहीं है, वही आत्माको ग्रहण करता है। उसे ही आत्मामें रुचता है। कोई विभावमें जिसे किसी भी प्रकारका रस नहीं है, कहीं खड़ा रह सके ऐसा नहीं है, कोई शरणभूत लगता नहीं, कोई विकल्प भी शरणरूप नहीं लगता या आश्रयरूप नहीं लगता है। ऐसा निराश्रय हो जाय, वह आत्माका शरण ग्रहण करे। तो उसने आत्माका शरण ग्रहण किया। तो उसे आत्मामें रुचि ऐसा कहनेमें आये। आत्मा एक स्थिर स्थान है, शाश्वत स्थान है कि जिसमें आत्मामें रुचे ऐसा है और उसीमें शान्ति एवं आनन्द सब उसीमें है।

समाधान :- ... तो ही होता है न, नक्की किये बिना कैसे हो?

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- अस्ति ग्रहण करनी चाहिये न? अस्ति ग्रहण करनी चाहिये। जिसे आत्मामें रुचता है उसे आत्मामें रुचता नहीं। बाहर कहीं रुचता न हो तो आत्मामें रुचि लगा।

समाधान :- ... दो उपयोग साथमें तो रहते नहीं।

मुमुक्षु :- स्वभाव सन्मुखके विचार मतिज्ञानमें हो और निर्विकल्प दशा श्रुतज्ञानमें

होती है?

समाधान :- निर्विकल्प दशा श्रुतज्ञानमें होती है। मतिज्ञानमें निर्विकल्प हुआ वह तो एक शास्त्रकी बात हुयी कि मति होनेके बाद श्रुत होता है। मति भी आता है और श्रुत भी आता है। मतिका उपयोग पलटकर श्रुत हो जाता है। मति सामान्य होता है, फिर विशेष परिणतिरूप श्रुत होता है। फिर मति भी निर्विकल्परूप होकर श्रुत हो जाता है। ऐसा भी होता है। मति मात्र सविकल्प ही होता है और निर्विकल्प नहीं है। मति और श्रुत साथमें है। मति भी निर्विकल्परूप परिणमता है, फिर उपयोग विशेषरूप परिणमता है इसलिये श्रुत हो जाता है।

... दोनों आत्म सन्मुख किया। इतने अंतर्मुहूर्त कालमें होता है। दर्शनउपयोग, मति और श्रुत सब हो जाता है। .. वह तो केवलज्ञानीके ज्ञानमें होता है। वह कोई अन्दर ज्ञान नहीं होता है। ... स्पष्टपने ग्रहण करना। वहाँ ज्ञानके भेद नहीं पड़ते। एक ज्ञानउपयोग रहता है। विकल्प छूटकर इतने अंतर्मुहूर्त कालमें दर्शन, मति और श्रुत सब हो जाता है। और परिणतिका तो वेग तीव्र है। एक समयमें जो लोकालोकको जानता है। अन्दर स्वरूपमें जाते ही अंतर्मुहूर्तमें परिणति होनेमें देर नहीं लगती।

मुमुक्षु :- पूछे तो कहते थे कि श्रुतज्ञानमें और केवलज्ञानमें फ़र्क़ क्या रहा? सब श्रुतज्ञानमें जाननेमें आ जाय तो केवलज्ञानमें और उसमें..?

समाधान :- उसमें क्या फ़र्क़ रहा? .. वह ग्रहण करनी होती है। बाकी युक्तिमें आये ऐसी बात है। वह कोई अनुभूतिमें उसके नाम नहीं होते। सामान्य और विशेष परिणति, ऐसा उसे युक्तिसे कह सकते हैं। सामान्य होकर विशेष होती है। मतिको आत्म सन्मुख किया और श्रुतको आत्मसन्मुख किया। दोनों परिणतिको समेटकर स्वयं आत्म सन्मुख करता है। आत्म सन्मुख करे वहाँ तो विकल्प छूट जाते हैं। दोनोंको आत्म सन्मुख किया।

... उसे श्रुतज्ञान परिणमा है। दोनों उपयोग साथमें तो रहते नहीं। उसमें आचार्योंकी कितनी बात आती है। उसमें जो ग्रहण हो, वह तो शास्त्रोंकी बात है। ... दर्शनउपयोग सामान्य एक सत्तामात्र होता है। मतिमें अवग्रह, इहा, अवाय, धारणा सब होता है तो भी उसे सामान्य कहा और उससे विशेष तर्कणाको श्रुत कहा। वह सब भगवानकी वाणीमें आया है। आचार्योंने परंपरासे सब शास्त्रोंमें गूँथा है।

मुमुक्षु :- उसमेंसे बहुभाग शास्त्रसे प्रमाण करना पड़े।

समाधान :- शास्त्रसे प्रमाण करना पड़े।

... उसमें तो भेदज्ञान कि यह ज्ञानस्वभाव जो लक्षणसे ग्रहण होता है अथवा यह विभावस्वभाव दुःख और आकुलतारूप है। अन्दर सुख और शान्ति आत्मामें है।

आत्मा अनन्त गुणसे भरपूर द्रव्य-गुण-पर्याय आदि सब उसे वेदनसे आकुलतारूप है। अमुक उसे युक्तिसे, सिद्धान्तसे वह सब नक्की हो सकता है। बाकी कुछ तो शास्त्रोंसे नक्की करना होता है। वह सब उसे युक्तिसे नक्की होता है और वह युक्तियाँ सम्यक् होती है। .. वह सब अनुभवमें आता है। इसे मति कहते हैं अथवा श्रुत कहते हैं, वह शास्त्र आधारित है।

मुमुक्षु :- वह पूरा विषय शास्त्रका है।

समाधान :- शास्त्र पर है।

मुमुक्षु :- अनुभवमें ख्यालमें लेनेका प्रयत्न कर कि मैं भिन्न हूँ और यह भिन्न हूँ। तो तुझे बादमें सहजता होगी। कार्य कठिन है, फिर भी उसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

समाधान :- दूसरा कोई उपाय नहीं है, अस्तित्वको ग्रहण करनेका। पद-पदमें, क्षण-क्षणमें उसे ही ग्रहण करना। वह कार्य कठिन होने पर भी उसके बिना छूटकारा नहीं है।

मुमुक्षु :- बाकी तो आपने ऐसी सुन्दर लाइन दी है कि किसी वस्तुमें संतोष नहीं होता। और ऐसा रहा करता है कि जो वास्तवमें करना है वह तो होता नहीं है। हम मानते थे, लेकिन पद-पदमें जितना हो सके भिन्न पड़नेका प्रयत्न करे कि मैं तो भिन्न ज्ञायक हूँ। यह सब भिन्न है। वह भी भीगे हृदयसे अर्थात् वीतरागताके प्रयोजनसे।

समाधान :- भीगे हृदयसे। प्रथम भूमिका विकट होती है। लेकिन पुरुषार्थ किये बिना छूटकारा नहीं है। सहज होनेके बाद उसे सुगम हो जाता है। प्रथम भूमिकामेंसे उसे पलटना चाहिये। अनादिका अभ्यास है उसमें ऐसी एकत्वबुद्धि उसकी ऐसी हो गयी है कि उसमेंसे भिन्न करना उसे कठिन पड़ता है। जैसा उसमें क्षण-क्षणमें एकत्व भूलता नहीं है, वैसा सहज स्वयंको करना कठिन पड़ता है। क्योंकि अनादिसे ऐसे पलट गया है, उसे पलटना कठिन पड़ता है। इसलिये प्रथम भूमिकामें उसे विकट लगता है, परन्तु सहज हो तो उसे सुगम पड़ता है। बादमें उसे उतनी विकटता नहीं होती। परन्तु उसकी प्रथम भूमिका विकट ही होती है।

मुमुक्षु :- व्यायाम करना पड़े। कसरत करनी पड़े।

समाधान :- प्रथम भूमिका विकट होती है। जिस किसीको अंतर्मुहूर्तमें होता है, वह अलग बात है। लेकिन जहाँ प्रयाससे करना है वहाँ तो उसे प्रयास ही करना पड़ता है। तो कार्य होता है।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर, माताजी! हररोज जितना विचार करते हैं, उतनी उसकी

गहनता दिखती है। वास्तवमें तो शर्म आती है कि कुछ करते नहीं है, उन्होंने तो क्या बाकी रहा है? जो कुछ तुझे करना है, वह सब आपने बता दिया है।

समाधान :- पूछनेका तो यहाँ बैठे हैं इसलिये पूछे।

मुमुक्षु :- अपनी ऐसी भूमिका कहाँ है कि पूछना..

मुमुक्षु :- नहीं, वैसे तो .. इस मूल बाबतमें तो आपने जो स्पष्टीकरण किया वह तो इतने सुन्दर प्रकारसे ख्यालमें आते रहता है कि यदि पूरा दिन यह करते रहे तो दूसरा कुछ करनेका ही नहीं है। जो प्रयोजन साधना है वह प्रयोजन तो इसीसे...

समाधान :- सधे ऐसा है।

मुमुक्षु :- .. छूटनेके समय उसकी क्या स्थिति है? और छूटनेके बाद क्या गति होती है?

समाधान :- सम्यग्दृष्टिको तो शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न, उसका भेदज्ञान है। इसलिये उसे अन्दरसे भिन्न आत्मा न्यारा रहता है। उसे कोई भी विकल्प आये तो विकल्पसे भिन्न रहता है। थोड़ी उसे अमुक प्रकारकी अस्थिरता हो तो उसके कारण अल्प राग-द्वेष होते हैं, परन्तु वह अल्प गौण होते हैं। लेकिन वह भिन्न रहता है। उसे भेदज्ञान (वर्तता है)। शरीरमें वेदना हो तो उससे भिन्न रहता है, जो विकल्प आये उससे भिन्न रहता है। इसलिये उसे अन्दर भेदज्ञान होता है। इसलिये उसे ज्ञायककी दशा, ज्ञायककी धारा चलती है। उसे स्वानुभूति होती है। ज्ञायककी धारा चलती है।

इसलिये सम्यग्दृष्टिकी गति तो उसे देवगति होती है, सम्यग्दृष्टि हो उसकी। और संसारी जीव हैं, उसे जो अज्ञान दशा है और आत्माको भिन्न नहीं किया है और एकत्वबुद्धि है, शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, उससे भिन्न नहीं पड़ा है और एकत्वबुद्धि है, इसलिये शरीरके साथ एकमेक है और ज्ञायकको भिन्न नहीं जानता है, इसलिये एकत्वके कारण मन्द कषाय हो, यदि आकुलता बहुत हो तो उसकी गति जैसा उसका आयुष्यका बन्ध हो उस अनुसार होता है। तिर्यंच हो, पशु हो, ऐसा होता है। परन्तु मन्द कषाय हो और अच्छे परिणाम रखे तो उसे देव या मनुष्यकी गति होती है। परन्तु उसे भेदज्ञान, भेदज्ञान नहीं होता है।

उसे अन्दरसे आत्मा भिन्न नहीं रहता है और सम्यग्दृष्टिको भिन्न रहता है। उसे शुभभाव हो तो उसकी गति तो देव और मनुष्यकी होती है, परन्तु सम्यग्दृष्टिको तो नियमसे आगे जानेपर स्वरूप रमणता बढ़ती जाती है, मनुष्य हो तब केवलज्ञान प्राप्त करता है। उसे तो वह होता है।

लेकिन इसे यदि अन्दर रुचि हो आत्माको भिन्न करनेकी तो आगे जानेपर वह आगे बढ़ सकता है। लेकिन सम्यग्दृष्टि तो नियमसे आगे बढ़ता है। और केवलज्ञानी

होते हैं, केवलज्ञानी तो पूर्ण हो गये हैं। उन्हें तो केवलज्ञान यानी पूर्ण वीतराग दशा (प्रगट हो गयी है)। उन्हें विकल्प भी नहीं होता। विकल्पका नाश हो गया है। वे तो केवल स्वरूपमें स्थिर हो गये हैं, केवलज्ञानी तो। वे तो ऐसे समा गये हैं कि बाहर ही नहीं आते हैं। ऐसी उनकी दशा होती है। केवलज्ञान, पूर्ण आत्माकी साधकदशाकी पराकाष्टा हो ऐसी उत्कृष्ट दशाको केवलज्ञानी प्राप्त हुए हैं। और आत्मामें जितनी पूर्ण शक्तियाँ है, वह उन्हें पूर्ण प्रगट हो गयी है।

ज्ञानस्वभाव आत्माका है, आत्मा ज्ञायक है। वह ज्ञानकी दशा पूर्ण, आनन्दकी दशा पूर्ण, सब उन्हें पूर्ण हो गया है। एक समयमें,... स्वयं तो स्वरूपमें विराजते हैं, परन्तु एक समयमें सहज ही सहजभावसे पूरा लोकालोक उनके ज्ञानमें ज्ञात होते हैं। ऐसी उनकी-केवलज्ञानीकी दशा होती है। एक समयमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, नर्क, स्वर्ग, प्रत्येक जीवोंके भाव, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय सब एक समयमें प्रत्यक्ष जानते हैं। उन्हें कोई विचार नहीं करना पड़ता है। एकदम प्रत्यक्ष सहज जानते हैं। लेकिन स्वयं स्वरूपमें ही होते हैं, बाहर नहीं आते हैं, विकल्प नहीं आता है। उन्हें आहार नहीं होता। उन्हें पानी अथवा आहार कुछ नहीं होता। उनके शरीरमें रोग नहीं होता। वे तो शरीरसे भिन्न ही हो गये।

मुमुक्षु :- अघाति कर्म तो उन्हें हैं।

समाधान :- घाति कर्मका क्षय हो गया है। वह क्षय हो गया है। जो ज्ञानको रोके, आनन्दको रोके, दर्शनको रोके, चारित्रको रोके, वह सब कर्म क्षय हो गये हैं और अन्दर उतनी दशा पूर्ण हो गयी है। मात्र उन्हें आयुष्य है। इसलिये शरीर है। अमुक प्रकारकी शाता वेदनीय है। ऐसे चार कर्म हैं। लेकिन वह आत्माको अवरोधरूप नहीं होते हैं।

मुमुक्षु :- वेदनीय उन्हें होता है?

समाधान :- वेदनीय, अशाता वेदनीय उन्हें नहीं होती। शाता वेदनीय अल्प होती है।

मुमुक्षु :- जीवको मालूम पड़ता है कि अब जाना है, ऐसा आत्माको मालूम पड़ता है?

समाधान :- सब आत्माको मालूम नहीं पड़ता, किसीको मालूम पड़ता है कि अब आयुष्य पूरा हो रहा है। केवलज्ञानीकी तो बात ही अलग है, वे तो प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं, उनकी तो बात अलग है। लेकिन सब आत्माको मालूम नहीं पड़ता कि अब आयुष्य पूरा हो रहा है। किसीको मालूम पड़ता है। किसीको मालूम पड़ जाता है कि अब आयुष्य पूरा होनेवाला है। सबको मालूम पड़े ऐसा नहीं है।

और केवलज्ञानीकी गति तो मोक्षगति है। बस, वह तो मोक्षगति है। अब देह

धारण ही नहीं करना है। यह देह है, देह छूटकर (मुक्तिको प्राप्त होंगे)। उनका शरीर ही भिन्न हो गया है। वे तो बोले भी अलग, ज़मीन पर भी नहीं चलते हैं, केवलज्ञानी तो ज़मीनसे ऊपर चलते हैं। ऊपर आकाशमें चलते हैं। केवलज्ञानी यहाँ तो दिखाई भी नहीं देते।

मुमुक्षु :- जीव छूटनेके बाद ... तुरन्त दाखिल होता है या थोड़ा काल जाता है?

समाधान :- नहीं, काल नहीं जाता है। जीव यहाँसे छूटनेके बाद तुरन्त दूसरी गतिमें जाता है। बीचमें रुकता नहीं। तुरन्त ही दूसरी गतिमें जाता है। फिरनेका कोई कारण नहीं है। उसे तुरन्त ही जिस प्रकारके कर्म हो, जैसी गतिका बन्ध हो उसी गतिमें उसी समय उत्पन्न हो जाता है। एक अंतर्मुहूर्तमें।

मुमुक्षु :- दूसरी गति तो होती ही है? सम्यग्दृष्टि हो तो भी?

समाधान :- हाँ, उसकी गति होती है। क्योंकि अभी पूर्ण नहीं है। सम्यग्दृष्टि यानी पूर्ण दशा नहीं है। स्वानुभूति होती है, परन्तु स्वानुभूतिमेंसे बाहर आते हैं।

मुमुक्षु :- थोड़ी क्षण आये फिर चला जाता है?

समाधान :- स्वानुभूति होती है, फिर बाहर आता है। बाहर आता है तो भी उसकी दशा अलग रहती है। परन्तु स्वानुभूति उसे पूर्णरूपसे टिकती नहीं है, इसलिये उसे भव होता है। केवलज्ञानीको तो स्वानुभूति पूर्ण हो गयी है, बाहर ही नहीं आते हैं। वे तो स्वरूपमें समाये सो समाये बाहर आते ही नहीं।

मुमुक्षु :- सिद्ध ही हो गये।

समाधान :- हाँ, सिद्ध हो गये-पूर्ण हो गये। सम्यग्दृष्टि है उसे स्वानुभूति होती है, परन्तु बाहर आता है। बाहर आये तो भी उसे आत्मा तो हाज़िर ही रहता है। परन्तु उपयोग बाहर जाता है। बाकी भिन्न रहता है। श्रीमद्में आता है न, 'तेथी देह एक धारीने जाशुं स्वरूपदेश'। सम्यग्दृष्टि हो तो भी उसे देह धारण करना बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- वेदान्तमें कहते हैं कि जीव थोड़ी देर गति धारण करनेसे पहले भ्रमण होता है।

समाधान :- नहीं, भ्रमण नहीं होता है, भ्रमण नहीं होता है। जीव बीचमें घुमता नहीं है।

मुमुक्षु :- उसके लिये जो ...

समाधान :- कहाँ सोये?

मुमुक्षु :- जीव स्वभाव तो जानना-देखना है।

समाधान :- जानना-देखना है, लेकिन उसकी जानने-देखनेकी दशा केवलज्ञान कहाँ है? वह तो अभी भ्रान्तिमें जानता-देखता है। आत्मा स्वयं अपनेको जानता है। भ्रमण करे वह सब क्या करते हैं, वह जानने नहीं आता। जानने नहीं आता।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- जहाँ उसका निश्चित हुआ हो, जैसा कर्मबन्ध हुआ हो उस अनुसार जाता है। यहाँ देखने नहीं आता। वैसा जानना-देखना तो वैसी निर्मलता हो तो जाने-देखे। ... जानता नहीं है।

मुमुक्षु :- .. वह जाने तो सही न?

समाधान :- निर्मल हो तो जाने। एक समय, दो समय, तीन समयमें चले जाता है। वहाँ अंतर्मुहूर्तमें उत्पन्न हो जाता है। ... कुछ समय जीव भटकता है, फिक्षर उत्पन्न होता है। उसमें आता है।

केवलज्ञानी यानी पूर्ण दशा पराकाष्टा हो गयी। उन्हें फिर कुछ करना बाकी नहीं है। पूर्ण साधना हो गयी, कृतकृत्य हो गये।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- किसीको होती है, किसीको नहीं होती है।

मुमुक्षु :- उसमें भी ॐ निकलता है?

समाधान :- हाँ, सबको ॐ निकलता है। कोई मूककेवली होते हैं वह अलग है, होती है, सामान्य केवलीको वाणी होती है। केवलज्ञानीकी वाणीकी वर्षा तो सबकी होती है। वह तो अंतर पूरा ज्ञान निर्विकल्प हो गया, निरिच्छक हो गया। सबको ॐ ध्वनि ही होती है। समवसरणकी विभूति वह ... गंधकूटी होती है, वह सब उनके योग्य अमुक प्रकारसे होता है।

अनेक देह धारण किये। एक देहकमें जानेके बाद दूसरा देह भूल जाता है। जहाँ दूसरा देह धारण करे तो पूर्व भवका भूल जाता है। क्योंकि उसमें पड़ जाता है इसलिये पूर्व भव भूल जाता है। जीवने ऐसे अनन्त भव किये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१०९

मुमुक्षु :- .. ज्ञान होनेका एक ही समय है?

समाधान :- दोनोंका एक ही समय है। आस्रवको निवृत्ति और ज्ञानघन आत्माका होना, दोनों एकसाथ ही होता है। आस्रव निवृत्ते उसका मतलब कुछ प्रगट होता है। यहाँ ज्ञानघन आत्मा ज्ञायक हो, इसलिये वहाँसे आस्रव निवृत्त होते हैं। दोनों एकसाथ ही होता है। उसमें कोई क्रम नहीं पड़ता है। आस्रवोकी निवृत्ति और आत्माकी प्रगटता, दोनों एकसाथ ही है। उसमें क्रम नहीं पड़ता है। पहले आस्रव निवृत्त हो उसके बाद ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। इस ओर निवृत्त हुआ, यहाँ ज्ञान होता है। ज्ञानघन आत्मा प्रगट होता है और आस्रवसे निवृत्त होता है, दोनों एक ही समयमें होता है। एक ही क्षणमें। यहाँ अस्तिमें स्वयं प्रगट होता है और उस ओर नास्तिमें आस्रवसे निवृत्त होता है।

मुमुक्षु :- मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धिके विषयमें कुछ..

समाधान :- मिथ्यात्व अर्थात् उसकी दृष्टि जूठी है। परपदार्थके साथ एकत्वबुद्धि कर रहा है। पर शरीर सो मैं और मैं सो शरीर, ऐसी भ्रान्ति अन्दर है। यह विकल्प होते हैं, वह भी मेरे हैं (ऐसी) एकत्वबुद्धि (है)। स्वयं भिन्न है, उसका कुछ भान नहीं है। वह मिथ्यात्व है। वह अंतरमें परिणतिमें उसका मिथ्यात्व है।

और अनन्तानुबन्धि कषाय उसे इतना तीव हो कि उसे आत्मा ओरकी रुचि नहीं हो, आत्माकी बात करे तो रुचे नहीं, ऐसा। आत्माकी अरुचि, उस प्रकारका क्रोध, उस प्रकारका मान, उस प्रकारकी माया, वह अनन्तानुबन्धि कषाय है। और बाहरमें उसे मिथ्यात्वमें जूठे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करे तो वह भी मिथ्यात्व है। वह ग्रहित मिथ्यात्व है। और यह अन्दरका मिथ्यात्व है।

जूठे देव कि जिसको वीतरागता प्रगट नहीं हुयी है उसे देव माने। जो आत्माकी साधना नहीं करते हैं उसको गुरु माने। जिस शास्त्रमें आत्माकी बात नहीं आती है, ऐसे शास्त्रको माने। वीतरागी शास्त्र, वीतराग गुरु, वीतराग देव होने चाहिये। अन्य-अन्य देव माने, अन्य गुरु माने, अन्य शास्त्र माने तो वह गृहित मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु :- संप्रदायकी मिथ्यात्वकी समझ..

समाधान :- मिथ्यात्व इसी प्रकारका है। मिथ्यात्व तो एक ही प्रकारका है। जूठी भ्रान्ति। जूठे देव-गुरु-शास्त्रको माने और अंतरमें शरीरके साथ एकत्वबुद्धि वह भी मिथ्यात्व है। विभावके साथ (एकत्वबुद्धि)। उसकी समझन भिन्न-भिन्न नहीं है। वह तो कोई अर्थ अलग करे, समझन अलग (होती है)।

मुमुक्षु :- संप्रदायमें ऐसा है कि ... आपको शिवको नहीं मानो तो वह मिथ्यात्व है।

समाधान :- वह स्वयंको विचारना चाहिये कि सत्य क्या है? सब संप्रदायवाले अलग-अलग कहे। सच्चे देव, सच्चे गुरु कौन है उसका स्वयंको विचार करना पड़ता है। जिसे आत्माकी जिज्ञासा हो वह स्वयं ही विचार कर लेता है कि सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र किसे कहते हैं। वह स्वयंको ही विचारना पड़ता है। सब संप्रदायवाले तो.. जहाँ स्वयं जन्म धारण करता है, जीव जहाँ जन्म धारण करता है वहाँ स्वयं अपना मान लेता है कि इस धर्ममें मैंने जन्म लिया है इसलिये यह मेरा सत्य है। और उस धर्ममें ऐसा आये कि कृष्णको मानो, शिवको मानो, इसको न मानो, वह तो मिथ्यात्व है। सब संप्रदायवाले ऐसा कहे तो स्वयंको विचार करके नक्की करना पड़ता है कि सत्य क्या है? वह तो नक्की करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- आप्त पुरुषने कहा हुआ वचन मानना, तो आप्त पुरुष किसे मानना?

समाधान :- आप्त कौन है, वह स्वयंको नक्की करना पड़ता है। श्रीमद्में आता है न? कि जिज्ञासुके नेत्र सत्पुरुषको पहचान लेते हैं। उसका हृदय उस प्रकारका हो जाता है कि सत्य क्या है, ऐसी अंतरमेंसे उसे जिज्ञासा प्रगट होती है कि सत्य क्या है? सच्चे गुरु कौन है? वह स्वयं ही उनकी वाणी परसे, उनकी वाणीका कहाँ ज़ोर आता है? उनका अमुक प्रकारके परिचयसे नक्की कर लेता है कि यही सच्चे देव हैं।

मुमुक्षु :- जिसे रुचि होगी वही आप्त पुरुषको पहचान सकेगा न? जो मिथ्यात्व है वह पहचान सकता है?

समाधान :- मिथ्यात्वी हो तो भी जो जिज्ञासु होता है, सत्का जिज्ञासु हो, भले मिथ्यात्व है उसे, परन्तु जिसे सत्य समझनेकी रुचि है कि मुझे सत्य कहाँ प्राप्त होगा? सत्को खोजनेवाला, भले उसे एकत्वबुद्धि है, परन्तु अन्दरसे उसे जिज्ञासा हुयी है कि मुझे सत्या कहाँ प्राप्त होगा? वह सत्यकी परीक्षा करनेवाला जो है वह पहचान सकता है। मिथ्यात्व हो तो भी सत्पुरुषको पहचान सकता है कि यह सत्पुरुष है। उसकी हृदयकी पात्रता ऐसी हो जाती है कि वह सत्पुरुषको पहचान लेता है। लेकिन उतनी पात्रता तैयार होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- .. कहा है कि बनारसीदासजी जहाँ भूल करते हैं वह हम समझ सकते

हैं। उन्होंने भूल बतायी नहीं है।

समाधान :- सम्यग्दर्शनमें उन्हें भूल नहीं हुयी है, पहले भूल हुयी है। पहले भूल हुयी है। पहले क्रियामें चढ़ गये, फिर शुष्क हो गये, अतः पहले भूल हुयी है, बादमें नहीं हुयी है। पहले-पहले सब भूल की है। पहले भूल हुयी है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- मूल तत्त्वमें उसकी भूल नहीं होती, वस्तुकी समझमें भूल नहीं होती। उसकी अस्थिरता हो, राग आवे तो अस्थिरता है। उसकी तत्त्वकी समझमें भूल नहीं होती।

मुमुक्षु :- उसमें तो भूल होती ही नहीं।

समाधान :- नहीं, समझमें भूल नहीं होती। उसे अस्थिरता होती है।

मुमुक्षु :- उस समय नासमझ हो सकती है?

समाधान :- नासमझ नहीं होती। उसे राग हो वह जानता है कि मुझे राग होता है, मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है। अन्दर खेद होता है कि मैं गृहस्थाश्रममें हूँ, मुझे इस प्रकारका राग-द्वेष आदि होता है। लेकिन यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ।

मुमुक्षु :- तत्त्वमें भूल नहीं करते।

समाधान :- तत्त्वमें भूल नहीं होती। राग होता है। राग भी मर्यादा छोड़कर राग नहीं होता है।

मुमुक्षु :- क्योंकि क्षण-क्षणमें रुचि तो बदलती रहती है। ... जो लक्ष्य हुआ है वह नहीं बदलता। दृष्टि नहीं बदलती।

समाधान :- दृष्टि नहीं बदलती। अन्दर ज्ञायकको पहचाना वह नहीं बदलता।

मुमुक्षु :- समकिती हो वह लड़ाईमें जाय और लड़ाई भी करता हो। उस वक्त उसे हिंसा भी करनी पड़े।

समाधान :- लेकिन उसकी दृष्टि नहीं बदलती। उसे ऐसा होता है कि अरेरे..! मैं इसमें-राजमें बैठा हूँ इसलिये इस कार्यमें जुड़ना पड़ता है। तो वह अनीतिसे कुछ नहीं करता है। मुझे राजका राग है, इसलिये मुझे हिंसामें जुड़ना पड़ता है। मुझे इस राजका राग छूट जाय तो...

मुमुक्षु :- हिंसामें जुड़ता है?

समाधान :- हाँ, सम्यग्दृष्टि ऐसे कार्यमें जुड़ता है। सम्यग्दृष्टि राजा होता है, सम्यग्दृष्टि राजा होता है। ऐसे कार्यमें जुड़ता है। लेकिन उसे खेद (होता है)।

मुमुक्षु :- मरे हुएको मारता हूँ, मानसे उसे ऐसा नहीं कहे। मेरा दोष है ऐसा

कहे। मरे हुएको मारता हूँ...

समाधान :- मेरा दोष है, ऐसा मानता है। मेरी अस्थिरता है कि मैं छूट नहीं सकता हूँ। मुझे राजका राग है। यदि अभी यह राज छोड़ दूँ तो सब छूट जाय। मैं इसमें जुड़ता हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। मुझे जुड़ना पड़ता है।

मुमुक्षु :- ... कितनी ऐसी क्षण आती है कि जब ... तत्त्वसे दूर जाना पड़ता है।

समाधान :- तत्त्वसे दूर नहीं जाता है। उसे अस्थिरता है। तत्त्वसे दूर नहीं जाता। कोई उसे ऐसा कहे कि तेरा ज्ञायक आत्मा भिन्न नहीं है, शरीर और आत्मा एक है, ऐसा तू बोल, तो ऐसा वह नहीं कहते। आकाश-पाताल एक हा जाय भी नहीं कहे।

मुमुक्षु :- समकित होनेके बाद वह भूल जाता है?

समाधान :- नहीं, भूलता नहीं।

मुमुक्षु :- तो समयसारमें ही आता है।

समाधान :- पुरुषार्थकी मन्दता हो तो भूल जाय, वह तो भूल गया कहनेमें आता है। परन्तु सम्यग्दर्शनमें पुरुषार्थकी धारा होती है वह अप्रतिहत धारासे भूलता नहीं, भूलता नहीं। च्यूत हो जाय उसकी (बात अलग है)।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन स्थिर रहता है?

समाधान :- स्थिर रहता है, कोई च्यूत हो जाय उसकी बात नहीं है। वह तो च्यूत हो जाता है। कोई च्यूत हो जाय।

मुमुक्षु :- समयसारमें एक ऐसी गाथा है...

समाधान :- .. हाँ, वह है। ... धारासे उठा हुआ.. उसमें कोई च्यूत हो जाता है।

मुमुक्षु :- अधिष्ठान एक है, वह मुझे नहीं बैठता नहीं था। वेदान्तमें एक अधिष्ठान कहते हैं। छः द्रव्य पढा तो एक अधिष्ठान...? वह नहीं बैठा।

समाधान :- .. कोई होता ही नहीं, स्वयं ही है स्वतंत्र।

मुमुक्षु :- ... स्वतंत्र है। कोई..

समाधान :- स्वयं स्वयंका आधार है। कोई किसीका अधिष्ठान नहीं है। स्वयं स्वतंत्र है, जैसा करना हो।

मुमुक्षु :- इसीलीये जीवको स्वतंत्र बनाना है। अभी जो संयोगीभावमें है, उसे स्वतंत्र बनाना है।

समाधान :- विभावपर्यायमें स्वतंत्र है। जहाँ स्वयंकी परिणति करनी हो, वहाँ स्वतंत्र

है। निमित्त होता है, परन्तु स्वयं जुड़े तो होता है। निमित्त यह नहीं कहता है कि तू जबरन उसमें राग कर या इसमें द्वेष कर। बाहरके शब्द नहीं कहते हैं कि तू शब्द सून या तू शब्द सुनकर राग कर या द्वेष कर। ऐसा वह कोई नहीं कहते हैं। शब्द नहीं कहते हैं, स्वयं जुड़ता है। तू वापस मुड़ जा तो जबरन तुझे कोई नहीं कहता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थका पढ़ा वह मुझे बहुत याद आता है कि आत्मा स्वयं .. हुए बिना, भाव्यका भावक हुए बिना दूरसे ही वापस मुड़ जाता है।

समाधान :- दूरसे वापस मुड़ जाता है। समयसारमें आता है। दूसरे वापस मुड़ जाता है।

मुमुक्षु :- .. वहाँ पुरुषार्थके दर्शन होते हैं।

समाधान :- दूरसे, अन्दर विभावमें जुड़े बिना दूरसे वापस मुड़ जाता है।

मुमुक्षु :- वह वाक्य मुझे इतना पसन्द आ गया...।

समाधान :- .. ज्ञायक स्वयं स्वतंत्र, स्वयं पुरुषार्थ करके दूसरे वापस मुड़ता है। सब अपने हाथकी बात है। स्वयं जितना करता नहीं है, वह अपना प्रमाद है। स्वयं करे तो अपने हाथकी बात है। कर्म तो निमित्त है। निमित्त उसे रोकता नहीं है। निमित्त उसे रोकता नहीं है और निमित्त कुछ कहता भी नहीं है कि तू जुड़ जा।

मुमुक्षु :- आत्मा अनात्मा यानी जड़ ऊपर कोई प्रभाव डाल सकता है?

समाधान :- पर ऊपर कोई प्रभाव डाल नहीं सकता।

मुमुक्षु :- जो अरिहन्त, केवलज्ञानी होते हैं उनकी सौम्यमूर्तिसे उनका बाह्य आकार भी सौम्य हो जाता है, वह कैसे?

समाधान :- वे स्वयं अन्दर वीतराग हो गये, इसलिये उनका शरीर भी उस प्रकारके रजकण स्वतंत्र परिणमते हैं।

मुमुक्षु :- स्कंध उस प्रकारके बन्धते होंगे?

समाधान :- नहीं, उसके परमाणु वैसे बदल जाते हैं, स्वतंत्र। प्रभाव नहीं पड़ता है, स्वतंत्र अपनेआप हो जाता है। ऐसा सम्बन्ध है कि...

मुमुक्षु :- एकक्षेत्रावगाही इसलिये?

समाधान :- एक क्षेत्रमें रहते हैं। स्वयं अन्दर उपशमभाव करे, उपशमभाव हो गया इसलिये शान्त परिणाम हो गये। जैसे कोई मनुष्य क्रोध करे तो उसकी मुद्रामें क्रोध दिखता है। शांत मनुष्यकी शांत दिखती है। वह क्रोध और शान्ति अलग रहते है। परन्तु यह तो कुदरती एकक्षेत्रावगाह एकसाथ रहे हैं, इसलिये ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- परमाणुको अथवा पुद्गल स्वयंको अर्पण करते हैं। और आत्मा देखता-जानता है। तो रजकण केवलदर्शनीको कैसा अर्पण करना...

समाधान :- .. ऐसा उसका ज्ञान होता है, वैसा उसका ज्ञेय होता है। जैसा ज्ञेय होता है, वैसा ज्ञान होता है। वह तो सम्बन्ध ही होता है। उसे अर्पण नहीं करता। दर्पणमें प्रतिबिंब दिखते हैं। उस प्रतिबिंबरूप दर्पण स्वयं परिणमता है। प्रतिबिंब अन्दर प्रवेश नहीं करते, दर्पणके अन्दर प्रवेश नहीं करते।

मुमुक्षु :- वह दर्पणकी स्वच्छता है।

समाधान :- हाँ, वह दर्पणकी स्वच्छता है। वैसे ज्ञानकी स्वच्छता है कि जैसा ज्ञेय हो वैसे ज्ञान परिणमता है। ज्ञान परिणमता है। वह बाह्य ज्ञेय आकर अन्दर कुछ नहीं करता है। और ज्ञान वहाँ जाकर, दर्पण बाहर प्रतिबिंबमें जाकर कुछ नहीं करता है, वैसे ज्ञान बाहर जाकर ज्ञेयोंको कुछ नहीं करता है।

मुमुक्षु :- केवलिओंकी वाणी ऐसी होती है कि वे कहे वैसा ही बने। तो वाणी तो पुद्गल है, तो उसमें ऐसी कैसी शक्ति आयी?

समाधान :- वाणी तो पुद्गल है। परन्तु जैसा वस्तुका स्वरूप है, वैसी वाणी निकलती है। दूरसे, जैसे चुंबक होता है, वह चुंबक सूईको नहीं कहता है कि तू यहाँ आ। और वह सूईको खींचने भी नहीं जाता। और सूई स्वतंत्र आती है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध जगतमें पुद्गलोंके (बीच होता है)। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- लेकिन वह सम्बन्ध नहीं है।

समाधान :- वह कुछ करता नहीं है। चुंबक सूईको कुछ करने नहीं जाता है और सूई चुंबकके कारण खींची नहीं आती। उसका स्वभाव ही ऐसा है। जहाँ चुंबक हो वहाँ सूई आये। बस, ऐसा सम्बन्ध ही है। स्वतंत्र परिणमन है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- भिन्न द्रव्य न रहे, यदि उसका प्रभाव पड़ता हो तो।

मुमुक्षु :- ... अच्छी अस्पताल हो तो मैं अस्पताल बन जाऊँ। मेरी अस्पताल,.. मैं अस्पताल बन गया।

समाधान :- अस्पताल पर प्रभाव नहीं पड़ता।

मुमुक्षु :- प्रभाव पड़े तो वह, वह बन जाय। तो तीर्थंकर शरीर बन जाय। तीर्थंकरने परमाणुको सौम्या बनाया हो तो..

मुमुक्षु :- प्रभावका अर्थ ऐसा नहीं कर सकते, मानो हम लोग बैठे हैं और उसमें आत्मा ही वैसे परिणमता है। उसमें तो उसको आत्माको कुछ नहीं है, परन्तु

स्वयंका आत्मा स्वयं वैसे परिणमे। उसे प्रभाव लगे ही।

समाधान :- स्वयं परिणमता है। स्वयं प्रभावको ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- क्योंकि ऐसा तो बहुत जगह देखते हैं कि किसीके प्रभावमें आ जाते हैं।

समाधान :- गुरुदेवकी वाणी ऐसी थी कि सुननेवाले एकदम स्थिर हो जाय और आश्चर्यचकित हो जाते। लेकिन स्वयंकी ऐसी लायकता होती है। वाणी निमित्त और अन्दर आत्माकी योग्यता, दोनोंका सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- बहुत लोग कहते हैं, मैंने तो नहीं देखे हैं, परन्तु गुरुदेवके पास बैठें और उनकी वाणी सुने तो उसका कुछ अलग ही प्रभाव पड़ता।

मुमुक्षु :- कोई विरोध भी करते थे।

समाधान :- विरोध करनेवाले भी थे, विरोध करते थे। मुंबईमें कितनी बड़ी जनसंख्यामें गुरुदेव प्रवचन करते थे। सब आश्चर्यचकित हो जाते थे कि कुछ आत्माकी बात करते हैं। परन्तु जीवोंकी ऐसी लायकात होती है।

मुमुक्षु :- मैंने कहा वह बराबर है? कि सामनेवाला आत्मा वैसे परिणमता है।

समाधान :- आत्मा परिणमता है। प्रभाव नहीं, आत्मा उस निमित्तको प्राप्त करके आत्मा स्वयं परिणमता है।

मुमुक्षु :- क्योंकि मैंने इस प्रकारका ऐसा समाधान खोज लिया कि ऐसे..

समाधान :- बने... तो चावल, अनाज आदि पके। लेकिन चावल स्वयं पकते हैं। अग्नि निमित्त है। अग्नि कुछ नहीं करती, उसकी योग्यता है इसलिये होता है। जिस मुँगमें नमी न हो, वह अग्नि मिले तो भी पकते नहीं। वह वैसा ही रहता है। इसलिये जो कोई ऐसे आत्मा हो उसे ऐसे गुरुका निमित्त मिले तो भी वे पकते नहीं। परन्तु जो ऐसे नरम होते हैं, वह अग्निका निमित्त पाकर मुँग आदि पक जाते हैं।

वैसे पात्र आत्मा हो उसे गुरुकी वाणी मिले वहाँ ऐसे पक जाते हैं, परिणमित हो जाते हैं। लेकिन कोई उपरोक्त मुँग जैसे हो, उसे कुछ.. अभव्य जैसे हो उसे कोई असर ही नहीं होती।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-११०

समाधान :- ... उसने एक ज्ञायकको ग्रहण किया है, आत्माको ग्रहण किया है। ऐसे विचारसे, बुद्धिसे नक्की करे (ऐसे नहीं)। अंतरमें मैं जाननेवाला ही हूँ, ऐसे ज्ञायकको स्वयंने अंतरमेंसे ग्रहण किया है। उसे ग्रहण करके, उस पर श्रद्धा-प्रतीत करके उसमें वह लीन होता है-उसमें स्थिर होता है। इसलिये बाह्य दृष्टि छूटकर वह अंतरमें लीन होता है। बाहरसे उपयोग अंतरमें (ले जाता है)। दृष्टि तो ज्ञायक पर है। उपयोग बाहर जाय तो भी उसकी दृष्टि तो ज्ञायक पर रहती है। परन्तु उपयोग भी बाहर जाता हो उसे स्थिर करनेके लिये वह ज्ञायकमें लीन होता है। अन्य कोई विकल्पमें लीन होता है, ऐसा नहीं। बीचमें विकल्प आये, पंच परमेष्ठीका विकल्प आये, द्रव्य-गुण-पर्यायके विचार आये वह अलग, वह शुभभाव है। परन्तु अंतरमें ज्ञायकमें लीन होता है। बारंबार ज्ञायकमें लीन होता है, ज्ञायकका ध्यान करता है।

मुमुक्षु :- वह सविकल्प ध्यान है?

समाधान :- भले सविकल्प हो, परन्तु ज्ञायकको ग्रहण करके ध्यान है। विकल्प उसमें गौण होता है और ज्ञायकमें लीन होता है।

मुमुक्षु :- उसमेंसे निर्विकल्प कैसे होता है?

समाधान :- ज्ञायकमें लीन होते-होते, जो-जो परिणाम विकल्प आये उससे मैं भिन्न हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे ज्ञायकमें लीन होते-होते उसे उग्रता तीव्र हो तो विकल्प छूटते हैं। उग्रता हो तो।

मुमुक्षु :- कहते हैं कि मैं बद्ध हूँ और अबद्ध हूँ, वह भी विकल्प है?

समाधान :- हाँ, वह भी विकल्प है।

मुमुक्षु :- तो फिर सविकल्पमेंसे निर्विकल्पमें जाना कैसे?

समाधान :- उसे विकल्प है कि मैं बद्ध हूँ-बन्धा हूँ, परन्तु अबद्ध हूँ, वह भी नयका विकल्प है। वह विकल्प यानी राग है कि मैं अबद्ध हूँ, अबद्ध हूँ। उस विकल्प परसे दृष्टि उठाकर, उपयोग उठाकर मैं जो हूँ सो हूँ, विकल्प नहीं। चैतन्यका अस्तित्व है वही मैं हूँ। एक मेरा अस्तित्व ज्ञायक वही मैं हूँ। ऐसे विकल्पको गौण करके ज्ञायकको ग्रहण करे। बारंबार उसमें लीन हो तो उसके विकल्प छूटे।

एक ज्ञानस्वभावको, ऐसा आता है न? एक ज्ञानस्वभावको ग्रहण करके, निश्चय करके। मैं यह ज्ञानस्वभाव ही हूँ, मैं ज्ञान ही हूँ, ऐसा नक्की करके बादमें मति-श्रुतका उपयोग, ज्ञानका उपयोग जो बाहर जाता है उसे भी अंतरमें लाकर उसमें स्थिर हो तो विकल्प छूट जाय। लेकिन स्थिर होना, सच्चे ज्ञान बिना सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। उसका ज्ञान सच्चा हो, ज्ञान सम्यक् हो तो उसका ध्यान सच्चा हो। ज्ञान सच्चा हो तो सच्चा ध्यान हो। यदि उसके ज्ञानमें भूल हो तो, ज्ञायकको ग्रहण नहीं किया हो तो कहाँ स्थिर खड़ा रहेगा? विकल्पमें स्थिर खड़ा रहेगा, ज्ञायकको ग्रहण नहीं किया हो तो। ज्ञायकके अस्तित्वको ग्रहण किया हो तो उसमें उसकी स्थिरता जमती है, नहीं तो विकल्पमें स्थिरता जमती है। फिर ध्यान करे और विकल्प मन्द हो जाय तो उसे ऐसा लगता है कि विकल्प छूट गये। विकल्प सूक्ष्म हो गये। लेकिन ज्ञायकको ग्रहण करे तो सच्चा ध्यान होता है।

मुमुक्षु :- उस वक्त जो जड़ प्राण है, वह लीन होते है, उसकी गति भी ऐसी हो जाती है।

समाधान :- प्राण तो बाहर रह जाते हैं। लेकिन अंतरमें ज्ञायक चैतन्यको ग्रहण करे फिर प्राण कहाँ गये, उसका उसे ध्यान नहीं है। प्राण क्या, श्वासोश्वास है या क्या है, उस ओर उसका ध्यान भी नहीं है।

मुमुक्षु :- उसका न जाय, ओटोमेटिक प्राण लीन होते हैं और ...

समाधान :- वह बाहरसे होता होगा कि बाहरसे उसके प्राणी अलग प्रकारसे गति करते हो। लेकिन अंतरमें तो उसे ऐसा ही है कि मैं मेरे ज्ञायक लीन हो जाऊं, बस। उस जड़ प्राणकी ओर क्या होता है, उसका ध्यान नहीं होता।

मुमुक्षु :- ऐसा होता होगा क्या?

समाधान :- कुछ आता है, आता है, शास्त्रमें आता है। उसके प्राण ऊपरसे जाते हैं, ऐसा आता है।

मुमुक्षु :- जो बहिर प्राण होते हैं, उसमें ... जाता है।

समाधान :- लेकिन उसके श्वसोश्वास बन्द नहीं हो जाते। उसकी गति अलग हो जाती है, गति अलग हो जाती है।

मुमुक्षु :- क्योंकि जड़ प्राणोंसे छूटनेके लिये यह सब प्रयत्न है न?

समाधान :- जड़ प्राणोंसे छूटनेके लिये..

मुमुक्षु :- जड़ प्राण कर्मके कारण हैं।

समाधान :- भले उससे छूटनेका प्रयत्न है, परन्तु उसका प्रयत्न ज्ञायकको ग्रहण करनेका है।

मुमुक्षु :- मुख्य तो वही है।

समाधान :- क्योंकि जड़ प्राणोंसे छूट जाऊँ, छूट जाऊँ ऐसा करे परन्तु अंतरमें स्वयंको ग्रहण नहीं किया हो तो कहाँसे (छूटे)? ऐसा ध्यान जीव बहुत बार करता है। ऐसा ध्यान करे कि बाहरसे कुछ भी हो तो उसे मालूम नहीं पड़े। प्राण रोक ले, श्वासोश्वास रोक ले, ऐसा सब करे, परन्तु अन्दर ज्ञायक ग्रहण नहीं हुआ हो तो वह ध्यान कैसा? आता है न?

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो,
जप भेद जपे तप त्योंही तपै, ऊरसे ही उदासी लही सबसे।

सब करे। मौन रहा, ध्यान किया, .. करे, बाहरसे सब थँभ जाय ऐसा करे। अन्दर ज्ञायकको ग्रहण न किया हो तो... उसमें आता है, कुछ और रहा उन साधनसे। उसके साधनमें कुछ अलग ही है। अन्दर चैतन्यको ग्रहण नहीं किया हो तो बाहरसे सब ध्यान तो करे, परन्तु अंतरमें ग्रहण करे तो होता है। ऐसा ध्यान जीवने बहुत बार किया। उपवास किये, त्याग किया, यम किया, नियम पाले, परन्तु गुरु बताते हैं कि अन्दर तू तेरे आत्माको ग्रहण करके ध्यान कर।

मुमुक्षु :- इसीलिये तो मैंने कहा न कि, जो अंतरात्मा हुआ है उसका ध्यान इस प्रकारका होता है?

समाधान :- उसका ध्यान आत्माको ग्रहण करके, ज्ञायकको ग्रहण करके, चैतन्यको (ग्रहण करके होता है)। उसे चैतन्य अन्दरसे अपना अस्तित्व ग्रहण होता है। यह शरीर उसे ग्रहण नहीं होता, श्वासोश्वास नहीं, आँख नहीं, सुनना नहीं, उस ओर कहीं उपयोग नहीं है। विकल्पकी ओर उपयोग है उसे स्वयं भिन्न करके एक ज्ञायककी ओर जाय। बस, एक चैतन्य। चैतन्यके अलावा कुछ नहीं। मैं एक आत्मा ज्ञायक। उसका स्वभाव ग्रहण करे।

विकल्पसे रटण करता रहे, मैं ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक। ऐसे तो विकल्प होता है। परन्तु वस्तु जो पदार्थ है, उस पदार्थको ग्रहण करके ध्यान करे तो होता है। सबसे भेदज्ञान करे, मैं यह नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं विकल्प नहीं हूँ, यह रागयुक्त विकल्प मेरे नहीं है। जो-जो शुभभाव, शुभभावके विकल्प आये वह भी मेरा स्वरूप नहीं है। उन सबसे मैं भिन्न (हूँ)। भिन्न हूँ, ऐसा विकल्प करे लेकिन मैं भिन्न कैसा? कौनसी वस्तु है? कि मैं यह वस्तु हूँ। यह मैं जाननेवाला सबके बीच रहनेवाला। यह सब जड़ है। यह विकल्प आये, मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे विकल्प आये परन्तु वह मेरा स्वरूप नहीं है। वह तो विकल्पकी जाल है। उससे भी मैं निराकुल स्वरूप जाननेवाला, सबको जाननेवाला सो मैं हूँ। वह जाननेवाला सबको जाननेवाला ऐसे नहीं, परन्तु अन्दर

जो स्वयं जाननेवाला है। सबको जाना इसलिये जाननेवाला नहीं, परन्तु स्वयं उसका स्वरूप ही जाननेका है। जैसे यह जड़। वह स्वयं जाननेवाला है। वह जाननमात्र नहीं, परन्तु अनन्त अद्भुत स्वरूपसे भरा है वह मैं हूँ। ऐसे स्वयंको विकल्पसे नहीं, अपितु स्वभावसे ग्रहण करे। गुड शब्द नहीं, शक्कर शब्द नहीं परन्तु उस वस्तुको ग्रहण करे। उसे ग्रहण करके उसका ध्यान करे, उसमें एकाग्र हो तो होता है। लेकिन उसकी श्रद्धा, सच्ची प्रतीत पहले हो, निश्चय करे तो ध्यान होता है।

समाधान :- .. ध्यानका फल अन्दर आत्माकी प्राप्ति हो, स्वानुभूतिकी प्राप्त हो।

मुमुक्षु :- उससे निर्जरा होती है?

समाधान :- निर्जरा तो होती है, कर्मकी निर्जरा होती है और अन्दर स्वानुभूतिका फल आवे, अन्दर आत्माकी प्राप्ति हो। आत्मा जो अद्भुत स्वरूपसे विराजता है उसकी उसे अनुभूति हो। और कर्मकी निर्जरा हो, कर्मकी निर्जरा हो। परन्तु वह अभी थोड़ी निर्जरा होती है, पूरी निर्जरा तो केवलज्ञान हो तब होती है। लेकिन सच्ची निर्जरा तो उसे स्वानुभूति हो तब ही होती है। बाकी अनन्त कालसे जो निर्जरा होती है, वह सब तो बन्धन होता है और निर्जरा होती है, बन्धन होता है और निर्जरा होती है, वह सच्ची निर्जरा नहीं है। अन्दर आत्माको ग्रहण करे तो सच्ची निर्जरा होती है।

मुमुक्षु :- जीव जन्मता है और मरता है, ऋषानुबन्धसे इकट्ठे होते हैं, वह कैसे होता है?

समाधान :- जन्म-मरण होते हैं वह उसके कर्मके कारण। जैसे उसने कर्म बान्धे होते हैं, वैसी गति होती है। और आयुष्य बान्धा हो उसका मरण होता है। किसीको पूर्वका सम्बन्ध होता है, तो कोई पूर्वमें हो तो इकट्ठे होते हैं और कोई इकट्ठे नहीं भी होते। उनके परिणामका मेल आवे तो वह ऋषानुबन्ध (होता है)। परिणामका मेल आवे तो इकट्ठे होते हैं। यदि परिणामका मेल न हो तो इकट्ठे नहीं होते। क्योंकि किसीका परिणाम देवलोकमें जाय ऐसे हो, किसीके परिणाम तिर्यंचमें जाय ऐसे हो, कुटुम्बमें सब इकट्ठे हुए हों, सबके परिणाम एक समान नहीं होते हैं। किसीके परिणाम कुछ होते हैं, किसीके परिणाम कुछ और होते हैं, इसलिये कोई कहीं जाता है और कहीं जाता है। इसलिये इकट्ठा होना मुश्किल है। सबके परिणाम एकसमान हो तो वे इकट्ठे होते हैं। .. भगवानके भवमें अगले भवमें अमुक जीवोंके परिणाम समान थे तो साथ-साथ जन्मते थे। और कितने ही जीव तो कोई कहीं जाता है और कोई कहीं जाता है। किसीका मेल नहीं है।

मुमुक्षु :- हमेशा इसी प्रकार इकट्ठे हो ऐसा क्यो नहीं होता? ऋणानुबन्ध हो, अमुक कारण...

समाधान :- परिणामका मेल होवे तो ही इकट्ठे होते हैं। परिणाम भिन्न-भिन्न हो तो इकट्ठे नहीं होते।

मुमुक्षु :- .. मिलते हैं, बिछड़ते हैं, किसीको ऋणानुबन्ध नहीं है। ...

समाधान :- किसीका मेल होना हो तो हो जाता है। जिज्ञासा सच्ची थी तो मिल गया। सच्चा मिल गया। पढ़नेका रस था, सत्य खोजनेका (रस था) तो वांचन करते थे, इच्छा थी सत्यकी तो पढ़ते-पढ़ते सत्य प्राप्त हो गया।

मुमुक्षु :- मैंने पूछा भी था, रामायण, भागवत्, उपनिषद् पढे तो अब क्या?

समाधान :- .. हो तो मिल जाता है। .. हो तो उसे बहुत कृपासे बुलाते थे। वस्तु तो है, अनेक वस्तुएँ हैं। परन्तु तेरा विकल्प छोड़ दे, तू तेरेमें स्थिर हो जा। वस्तु एक नहीं है। वस्तु भिन्न-भिन्न हैं। तू तेरे विकल्प छोड़कर अन्दर स्थिर हो जा।

मुमुक्षु :- इतना सब अलग समझमें आया? एक कहे, ब्रह्म लटका करे, ब्रह्म भासे नहीं... इतने अलग हैं।

समाधान :- समझमें आये ऐसा है, जिसे जिज्ञासा हो उसे।

मुमुक्षु :- बहुत समझमें आये ऐसा है।

समाधान :- समझमें आये ऐसा है। .. देखता है, जो अन्दर वेदन होता है, वह कुछ नहीं है, यह एक विचारमें आये ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- क्योंकि यह एक अनुभव शास्त्र है।

समाधान :- .. सम्यग्दृष्टिको बोलनेकी.. बाहर बोले तो भी उसे आत्मा भिन्न ही रहता है। चले, शरीर चले तो भी आत्मा भिन्न रहता है। चले, फिरे, बोले, खाय, पीए सब करे, लेकिन उसे आत्मा तो सबमें भिन्न ही रहता है। यह क्रिया हो, शरीर चले, सब हो, लेकिन उसे आत्मा तो भिन्न ही भासता रहता है। उसे राग आवे तो रागसे भी वह भिन्न भासता है। अल्प अस्थिरताको समझता है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे इस रागमें जुड़ता हूँ। परन्तु सब क्रियामें उसका आत्मा उसे भिन्न भासता है। उसे आत्मा भिन्न उसके वेदनमें, उसके ज्ञानमें, उसके दर्शनमें, उसके आचरणमें सबमें आत्मा भिन्न ही (रहता है), सब क्रियामें। वह चले या बोले या खाये, पीये, जीवन-मरण सबमें आत्मा उसे शाश्वत भिन्न ही दिखता है। आत्मा उसे एकत्व भासित ही नहीं होता है, आत्मा उसे भिन्न ही दिखाई देता है। निद्रामें, स्वप्नमें सबमें आत्मा उसे भिन्न ही रहता है। स्वप्नमें भी उसे आत्मा भिन्न रहता है। उसे सबमें आत्मा भिन्न ही भासित होता रहता है।

यह मैं आत्मा भिन्न, यह शरीर भिन्न, यह खँभा भिन्न दिखाई देता है, यह दीवार

भिन्न दिखाई देती है, वैसे शरीर मुझसे भिन्न है। राग आये वह भी मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भी मेरा स्वभाव भिन्न है। पुरुषार्थकी मन्दतासे सबमें खड़ा हूँ, फिर भी मैं तो भिन्न ही रहता हूँ। क्षण-क्षणमें भिन्न (रहता है)। कोई क्षण ऐसी नहीं जाती कि जिसमें उसे आत्मा एकरूप हो जाय। प्रतिक्षण उसे आत्मा भिन्न भासता है।

कोई भी कार्य करता हो, बोलते हो, कुछ भी लिखता हो, कुछ भी करता हो, सबके अन्दर आत्मा उसे भिन्न (रहता है), एकत्व होता ही नहीं। भिन्न भासता रहता है। मेरा आत्मा भिन्न, ज्ञायककी परिणति उसे निरंतर चालू ही है। उसमें उसे थोड़ा-सा भी फ़र्क़ नहीं पड़ता। यदि वह एकमेक हो जाय तो उसका ज्ञान एकत्वबुद्धिवाला हो जाय। ज्ञानमें उसे भिन्न ही भासता है। क्षण-क्षणमें भिन्न (भासित होता है), वह उसे भूलता ही नहीं, किसी भी क्षण नहीं भूलता है। वह उसका वर्तन है। भिन्न तो भासता है, लेकिन आत्मामें अन्दर स्थिर होनेका प्रयत्न वर्तता है। उसे थोड़ासा भी भूलता नहीं।

उसे विचार करके जबरन रखना पड़े या उसे कुछ कृत्रिम करना पड़े ऐसा भी नहीं है, उसे सहज भिन्न भासता है। विचार किये बिना उसे सहज (भासता है)। जिसमें विचारोंकी श्रृंखला चलती रहे उसमें कोई जबरन नहीं लाना पड़ता, वैसे आत्मा उसे एकदम सहजपने भिन्न ही भासता है। कुछ भी करता हो तो भी। ऐसी उसकी वर्तना होती है। हमेशाकी वर्तना। भिन्न, हमेशा भिन्न रहता है। भले कहीं भी खड़ा हो, कहीं भी बैठा हो, उसे भिन्न ही भिन्न भासता है।

भगवानके सामने भक्ति करता हो, भगवानके दर्शन करता हो, भाव आये, भक्ति आये तो भी आत्मा भिन्न भासित होता है। वांचन करता हो, सबका विचार करता हो, द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, तो भी उसका आत्मा भिन्न भासता है। और उसकी धारा ज्ञानधारा-ज्ञाताधारा ऐसे ही चालू है।

मुमुक्षु :- निरंतर चलती रहती है।

समाधान :- निरंतर चलती है। इसीलिये कहते हैं न, कौन खाता है, कौन पीता है, कौन हिलता है, क्योंकि उसे आत्मा भिन्न ही भासित होता है। वह भिन्न रहता है। परन्तु वह समझता है कि अल्प अस्थिरताके कारण यह सब बोलनेकी, चलनेकी क्रियाएँ होती है। अल्प राग है। परन्तु उसे आत्मा भिन्न भासता है। अल्प भी न हो तो-तो उसे खानेकी, पीनेकी किसी भी प्रकारकी क्रिया न हो। अल्प है, परन्तु आत्मा उसे भिन्न भासता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीकी वर्तना ज्ञानी ही जानते हैं। ऐसा एक कलशमें आता है।

समाधान :- यथार्थपने ज्ञानीकी वर्तना ज्ञानी ही जानते हैं। क्योंकि ज्ञानीको उसका

अनुभव है। इसलिये ज्ञानीकी क्या वर्तना परिणति होती है, वह ज्ञानी ही जानते हैं। परन्तु मुमुक्षु स्वयं विचार करे तो विचारसे अमुक प्रकारसे उसे नक्की हो सकता है। बराबर यथार्थ तो ज्ञानीकी वर्तना ज्ञानी ही जानते हैं। परन्तु मुमुक्षु विचार करे तो नक्की कर सकता है।

मुमुक्षु :- मुमुक्षु है उसे अन्दर तत्त्वका तो यथार्थ निर्णय होता है, बाह्य लक्षणसे...?

समाधान :- हाँ, वह तो बाह्य लक्षणसे जाने। परन्तु उसकी जिज्ञासा अमुक प्रकारकी है, इसलिये बाह्य लक्षणसे जाने। परन्तु अंतरमें उसे यथार्थ जानना तो मुश्किल पड़े। तो भी मुमुक्षु सत्पुरुषको पहचान सकता है, बाह्य लक्षणसे। अंतरमें उसे भेदज्ञानकी परिणति कैसे चलती है, वह उसे यथार्थपने बराबर नहीं जानता है, परन्तु उसे अमुक अनुमान द्वारा जान सकता है कि इनकी वाणी कुछ अलग है, वर्तन अलग है, उनके परिचयसे, उनकी वाणीसे अमुक समझ सकता है। वाणी द्वारा, उनके परिचय द्वारा उनका आत्मा क्या काम करता है, उसे अमुक प्रकारसे जान सकता है। नहीं तो सत्पुरुषको पहचाने कैसे? हर जगह आत्मा.. आत्मा.. आत्मा। उसे उसकी परिणतिमें आत्मा ही है।

मुनिओंकी तो बात ही अलग है। उनको तो बाहरका सब छूट गया है। मुनि तो क्षण-क्षणमें आत्मा... ज्ञायककी परिणति तो है परन्तु उन्हें स्वानुभूति अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें होती है।

मुमुक्षु :- .. कौन-से गुणस्थान तक...?

समाधान :- श्रावक छठ्ठे गुणस्थान पर्यंत और पंचम गुणस्थान पर्यंत। देशश्रावक है वह पंचम गुणस्थान और अविरति श्रावक है वह चतुर्थ गुणस्थान पर्यंत होते हैं। मुनि छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें होते हैं। मुनिको बढ़ गयी है। स्वानुभूतिकी दशा बढ़ गयी है। श्रावकोंको भेदज्ञानकी धारा है और स्वानुभूति भी है। परन्तु मुनिओंको त्वरासे स्वानुभूति होती है। मुनिओंकी स्थिति बढती है, काल बढता है, सब त्वरासे होता है। अभी वर्तमानमें कोई मुनि दिखाई नहीं देते। परन्तु मुनिदशा पंचमकालके अंत तक है, छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान। शास्त्रमें आता है कि आखिर तक भावलिंगी मुनि होनेवाले हैं। अभी भी छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान है। वर्तमानमें ऐसे मुनि दिखाई नहीं देते, लेकिन है सही। कोई-कोई कालमें होते हैं, छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हुए मुनि। अट्ठाईस मूलगुण, अंतरमें आत्माकी दशा प्रगट हुई हो। अट्ठाईस मूलगुण किसीको बाहरसे होते हैं, अंतरकी दशाके साथ हो वह भावलिंगी मुनि (हैं)।

मुमुक्षु :- बाहरमें दिखाई नहीं देते हो, अंतरकी स्थिति उसकी ऊँची हो तो...?

समाधान :- जिसे अंतरका हो उसे बाहरमें होता है, ऐसा सम्बन्ध है। ऐसा आता है। अंतरंग दशा हो उसे बाहर होता है। बाहर हो और अन्दर हो या नहीं भी हो।

परन्तु अंतरमें हो उसे बाहर होता है, ऐसा सम्बन्ध है। बाहरसे किसीने भेष ले लिया हो, बाहरसे किसीने प्रतिज्ञा ले ली, बाहरसे ले ली, परन्तु अंतरमें जो भाव (होना चाहिये वह नहीं होता)। उपवासका पच्चखाण ले लिया, परन्तु अन्दर जो उपवास होना चाहिये, अंतर आत्माको पहचानकर, वह हुआ नहीं हो। बाहरसे ले, परन्तु जिसे अन्दर हो उसे बाहर होता ही है। ऐसा सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- देश-कालके कारण कुछ चीजें न हो सके, ऐसा नहीं हो सकता?

समाधान :- देश-कालके कारण तत्त्वमें फ़र्क़ नहीं पड़ता।

मुमुक्षु :- तत्त्वमें तो न पड़े, अन्दर तो उसकी वर्तना बराबर है। छठ्ठे-सातवेँ तक अणगार हो वह भी पहुँच सके या न पहुँच सके?

समाधान :- छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें हो, उसे बाहरमें तो ऐसी ही होता है। शास्त्रमें आता है वैसा। देश-कालके कारण (बदलता नहीं)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१११

समाधान :- ... परन्तु उसमें दूसरा फेरफार नहीं होता। धूल, मिट्टी एवं पानीसे नहीं होता। उसका रसकस, आगे जाना आदि कम होता है, बाकी वस्तुमें फ़र्क़ नहीं पड़ता। अन्दरसे अनेक प्रकारकी निर्मलता होती थी, ऋद्धियाँ और शक्ति प्रगट होती थी, ऐसा नहीं होता। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानके साथ जो उसके साथ सम्बन्धवाले गुण हो, वह बाहरमें भी होते ही हैं।

मुमुक्षु :- जिसे आत्माकी स्थिरता हुयी है, श्रद्धान तो हुआ ही है, परन्तु अस्थिरता भी जिनकी दूर हुयी है।

समाधान :- आत्माकी श्रद्धा होती है, अस्थिरताकी बात अलग है। तो उसे मुनिदशा नहीं होती। यदि उतनी स्थिरता न हो तो मुनिदशा नहीं होती। जिस जातकी दशा हो वैसा बाहर होता है। सबको ऐसा लागू नहीं पड़ता कि अन्दरमें हो वह बाहर हो। यह तो मुनिदशाके साथ सम्बन्ध है। बाहर पकड़में आये, नहीं आये, परन्तु जो अन्दर हो उसे कोई बाहरसे पकड़ नहीं सकता। बाहरमें गृहस्थाश्रमवालेको व्यवहार सब अलग होता है। जो अंतरमें हो वह बाहरमें दिखाई नहीं देता। परन्तु यह तो मुनिदशाके गुणके साथ सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी तो बहुत ऊँची वर्तना थी। उन्होंने मुनिदशा अंगीकार नहीं की। तो क्यों नहीं ली?

उत्तर :- मुनिदशा अन्दरकी अलग होती है।

मुमुक्षु :- अन्दर तो मुनिदशा नहीं थी?

मुमुक्षु :- .. आती है वह बराबर तात्त्विक नहीं है। वैश्य वेष, निर्ग्रंथ भाव हो उसे वैश्य वेष नहीं होता। वैश्य वेषे निर्ग्रंथ भाव....

मुमुक्षु :- ... एक जन्म करके मोक्षमें जायेंगे।

समाधान :- वह बराबर, एक जन्म करके मोक्षमें जायेंगे, वह बराबर। बादमें दूसरे भवमें मुनि बन जायेंगे। निर्ग्रंथ भाव तो है, परन्तु निर्ग्रंथ दशा अभी नहीं है। जो गृहस्थाश्रकी दशा है, मुनिदशा बादमें दूसरे भवमें आयेगी। स्थिरताका मेल करना, उसका विचार करे तो बैठे ऐसा है।

मुमुक्षु :- .... मुनि होकर पेशन्टको ट्रिट नहीं करते।

समाधान :- श्रद्धा हो, भेदज्ञान हो उसे अवश्य भवका अभाव होता है। उसे अवश्य चारित्र आता है, उसे अवश्य मुनिदशा आती है, परन्तु वर्तमानमें उसे मुनिदशा नहीं होती।

मुमुक्षु :- नग्नभाव, मुंडभाव सह अस्नानता।

समाधान :- .. आत्माकी सेवा करनेका गुरुदेवने बताया है। आत्माका विचार करना, आत्माकी जिज्ञासा, तत्त्वका विचार करना। आत्मा कौन है? उसका स्वरूप क्या है? वह ज्ञानस्वभाव है, आनन्दस्वभाव है। उसका आत्माका विचार करना। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा शुभभाव है, परन्तु अन्दर शुद्धात्मा भिन्न है। शुद्धात्माका विचार करना। उसका भेदज्ञान कैसे हो? यह सब विभावभाव है, उससे भिन्न होकर न्यारा कैसे हुआ जाय? यह सब विचार करना। द्रव्य-गुण-पर्यायका (विचार करना), शास्त्रमें क्या आता है? गुरुदेवने क्या बताया है? यह सब विचार करना।

मुमुक्षु :- मात्र विचारसे नहीं होता।

समाधान :- आत्माको ग्रहण करना। विचार करके नक्की करना। आत्माको ग्रहण करना कि यह आत्मा है वही मैं हूँ, अन्य कुछ मैं नहीं। यह ज्ञायक स्वभाव है वही मैं हूँ, दूसरा कुछ मेरा स्वरूप नहीं है। ज्ञायकको ग्रहण करना, उसे भिन्न करनेका प्रयत्न करना, एकत्वबुद्धि है उससे भिन्न होकर क्षण-क्षणमें मैं भिन्न हूँ, उसकी भावना, जिज्ञासा और उस प्रकारका प्रयत्न परिणतिमें कैसे ऊतरे? जो विचारसे नक्की करे वह परिणतिमें कैसे ऊतरे? उसका प्रयास करना। वह करनेका है। वह सहजरूप कैसे हो? विचारमें निर्णय किया लेकिन वह परिणतिरूप कैसे हो? उसका प्रयास करना। विचारसे नक्की करके फिर आगे जाना है। परन्तु जबतक अन्दर सहजरूपसे ग्रहण न हो, तबतक विचार, वांचन आदि सब आता है। शास्त्र स्वाध्याय, उसके विचार, मनन (आदि होता है)। आगे कैसे बढना? स्वानुभूति कैसे हो? वह सब जिज्ञासा करनी। करना तो एक ही है, भवका अभाव कैसे हो? और ज्ञायक कैसे ग्रहण हो? और आत्माकी स्वानुभूति कैसे हो? करना तो यह एक ही है।

ज्ञानस्वभाव नक्की करके फिर उसे ग्रहण करके आगे बढ़ा जाता है। परन्तु पहले नक्की करनेमें ही उसे यथार्थ प्रतीति, विचार करके बराबर यथार्थ जैसा है वैसा नक्की करके आगे बढा जाता है।

मुमुक्षु :- ऐसा आता है न कि, ज्ञानलक्षणसे पहचानकर। यानी जहाँ ज्ञान है वहीं आत्मा है।

समाधान :- ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ, मैं अन्य कुछ नहीं हूँ। वह लक्षण उसका

ऐसा मुख्य लक्षण है, वह उसका असाधारण लक्षण है। इतना सत्य परमार्थ है, इतना सत्य कल्याण है कि जितना यह ज्ञायक-ज्ञानस्वभाव है। जो ज्ञानस्वभाव है उसीमें तू रुचि कर, उसमें प्रीति कर, उसमें संतुष्ट हो। उसीमें सब भरा है। ज्ञान माने मात्र जानना इतना ही नहीं है, परन्तु पूर्ण ज्ञायक है। पूर्ण ज्ञायक महिमावंत भरा है।

ज्ञानस्वभाव-जितना ज्ञान ऊतना ही तू है, अन्य कुछ तू नहीं है। जितना जाननेवाला है उतना ही तू है। उसे नक्की करके उसमें स्थिर होनेसे तुझे तृप्ति होगी, संतोष होगा, आनन्द आयेगा, सब उसीमें होगा। कहीं और नहीं है। ज्ञानस्वभाव रूखा नहीं है, वह महिमावंत है। ज्ञान यानी मात्र शुष्कतासे जानते रहना, ऐसा नहीं है। ज्ञानस्वभाव तू महिमासे ग्रहण कर। वह ज्ञानस्वभाव कोई अलग है।

उतना सत्यार्थ कल्याण है, उतना ही परमार्थ है कि जितना यह ज्ञान है। उस ज्ञानको ही ग्रहण कर। तुझे संतोष होगा, उसमें तृप्ति होगी। कहीं और संतोष और तृप्ति होगी नहीं। जो स्वभावमेंसे संतोष होगा और तृप्ति होगी, वह कहीं और नहीं आयेगी। उसीमें आनन्द आयेगा। विकल्पसे छूटकर उसमें स्थिर हो जा, उसीमें सब भरा है।

(जबतक यह न हो) तबतक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, अनेक जातकी महिमा, प्रभावना आदिके प्रसंगमें जुड़ता है। बाहर यह शुभभाव और अन्दरमें शुद्धात्मा कैसे पहचानमें आये, यह करनेका है। सम्यग्दर्शन हो तो भी अभी पूर्णता नहीं हुयी है, तबतक शुभभाव आते हैं। केवलज्ञान नहीं होता तबतक शुभभाव आये बिना नहीं रहते। मुनिओंको भी आते हैं। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। मुनि हो तो भी जब बाहर आते हैं तब शास्त्र लिखते हैं। उपदेश आदि, भगवानके दर्शन आदि सब मुनिओंको आता है। परन्तु बाहर आये तो शुभमें और अन्दरमें छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। मुनिओंको दूसरा सबकुछ गौण हो गया है। वह सब तो है या नहीं ऐसा हो गया है।

अन्दर प्रगट करनेके लिये क्षण-क्षणमें लगन लगाये, भावना भावे। शुभभावमें, जिन्होंने प्रगट किया है ऐसे भगवान, जिन्होंने पूर्णता प्रगट की, जो साधना कर रहे हैं ऐसे गुरु और शास्त्रमें जा आये, उसे तू हृदयमें रकखर उसकी महिमा लाकर वहाँ खड़ा रहना। अन्य अशुभभावमें मत खड़े रहना। बाहर आवे तो वहाँ खड़े रहना है। अंतरमें शुद्धात्माकी लगन। बाहरमें सर्वस्व आ नहीं जाता, अन्दर शुद्धात्मा अंतरमें रह जाता है।

मुमुक्षु :- विश्रान्ति लेनी हो तो देव-गुरु-शास्त्र...

समाधान :- हाँ, देव-गुरु-शास्त्र। अन्दर शुद्धात्मा। जिन्होंने स्वभाव प्रगट किया है ऐसे भगवान और जो साधन कर रहे हैं, ऐसे गुरु। शास्त्रमें सब वर्णन आता है।

मुमुक्षु :- इस मर्यादासे आगे नहीं जाना है।

समाधान :- उस मर्यादासे आगे जायेगा तो अशुभभावमें जायेगा, वहाँ नहीं जाना है। अन्दरमें तेरी जिज्ञासा, लगन तो यही रखनी है, श्रद्धा तो यही रखना कि यह शुद्धात्मा कैसे ग्रहण हो? बाहरमें देव-गुरु-शास्त्र।

.. न कर सके तो श्रद्धा तो बराबर करना, शास्त्रमें आता है। श्रद्धा बराबर रखना कि मार्ग तो यही है। इन सबसे भिन्न आत्मा शुद्धात्मा (है)। उसका द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप पहचाननेसे, उसे ग्रहण करनेसे, उसमें लीन होनेसे प्रगट होता है। बाकी बीचमें कोई परका आश्रय (लेना) वह आत्माका स्वरूप नहीं है। अन्दर तेरे आत्माका आश्रय लेना। श्रद्धामें यह रखना है। वह नहीं हो सके तो बाहरमें देव-गुरु-शास्त्रका आश्रय होता है, व्यवहारसे।

देशनालब्धि होती है उस वक्त भगवान और गुरुकी वाणीका निमित्त होता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध (है)। करना स्वयंको है, परन्तु निमित्तमें देव और गुरु साक्षात् होते हैं।

मुमुक्षु :- .. निर्णय तक। उसमें भी यह ... समय-समयमें तू भिन्न पड़नेका, अनुभव करनेका प्रयत्न कर कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ, मैं तो ज्ञायक ही हूँ। अर्थात् उपयोग भी उसके पास है और विषय भी उसके पास है। फिर भी वह इतना कठिन पड़ता है, इस अभ्यासके कारण, कि वहाँसे छूटकर अनुभव करनेमें, विकल्पात्मक अनुभव करनेमें भी उतना ही समय लगता है और इतना कठिन लगता है।

समाधान :- यह अभ्यास बहुत हो गया है न। अनादिका। उससे भिन्न पड़नेमें, परिणतिमें उसे छोड़नेमें दिक्कत होती है। विचारसे नक्की किया हो तो भी उसे भिन्न करनेके कार्यमें उसे कठिन पड़ता है। क्योंकि अनादिकी परिणति उसे साथ-साथ चली आ रही है।

(समझ) पीछे सब सरल है। वह भिन्न पड़े तो फिर उसकी पूरी लाईन सरल है। परन्तु प्रथम भूमिका उसे विकट है। क्योंकि अनादिकी उसे एकत्वबुद्धि हो रही है। स्वयं अपनेआप प्रयत्न करते-करते, आत्मा स्वयं ही अन्दरसे मार्ग कर देता है। जिसे खरी जिज्ञासा और लगन होती है उसे।

... निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। कोई किसीका कर्ता नहीं है। देशनालब्धि होती है तब भगवानका, गुरुका निमित्त होता है और अपने उपादानकी तैयारी (होती है), ऐसा सम्बन्ध सर्व प्रथम बार, साक्षात् देव और गुरुका योग होता है, परन्तु निमित्त निमित्तमें (रहता है)। निमित्त प्रबल है। निमित्त निमित्तमें, उपादान उपादानमें। एक-एक परमाणु सब स्वतंत्र है, सब स्वतंत्र हैं, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। एक परमाणुके द्रव्य-

गुण-पर्याय स्वतंत्र। सबके द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र।

मुमुक्षु :- मामाको बात करी कि अभी कठिन लगती है परन्तु साथमें ऐसा भी बैठता है कि इसके सिवा छूटकारा नहीं है और यही उपाय है। ऐसा अनुभव करनेसे सरल हो जायगा और ऐसे सरल होने पर निर्विकल्प होनेका अवकाश ऐसे ही आयेगा, यह बात माताजी! बराबर बैठती है। अभी जरूर कठिन लगता है ऐसा प्रयास करना।

समाधान :- विकल्प भी वही है, उसे भिन्न करके, एकत्वबुद्धि तोड़कर ज्ञायककी धारा प्रगट करनी। एक ही उपाय है। द्रव्यको ग्रहण किया, द्रव्य पर दृष्टि की परन्तु दृष्टि करके उसे टिकाना, उसे भिन्न करना यह कार्य (करना है)। जो मान्यतामें लिया कि मैं भिन्न हूँ, यह विभाव स्वभाव मेरा नहीं है। मैं भिन्न हूँ। भिन्न नक्की किया तो वह सत्यरूपसे नक्की कब कहा जाय? कि उस रूप कार्य हो तब। भिन्न है वह भिन्न ही है। तो फिर एकत्वबुद्धि हो रही है। उसे सत्य नक्की करके उसे अन्दर भिन्न करनेका प्रयत्न हुए बिना रहता नहीं। अन्दर प्रयास करनेपर सत्य तो यही है, मार्ग यही है।

श्रद्धारूप परिणति जिसे कहते हैं, वह श्रद्धा जो विचारसे श्रद्धा करे वह अलग, उसमें तो श्रद्धाकी परिणति होती है। दृष्टि और भेदज्ञानकी परिणति। वह अभी श्रद्धारूप है। लेकिन वह श्रद्धा कैसी? परिणतिरूप होती है। परिणतिका कार्य करती है वह। विशेष चारित्र होता है वह अलग। यह तो श्रद्धाके साथ अमुक प्रकारकी लीनता (होती है)। उसमें अनन्तानुबन्धि साथमें छूट जाता है। इसलिये अमुक प्रकारकी परिणति हो जाती है।

मुमुक्षु :- अनुभव होनेसे पहले ऐसा सहज निर्विकल्पपने हो, अनुभव पहले भी ऐसा विकल्पात्मक सहजपने...?

समाधान :- सहजपने, उसे परिणति सहज होती जाती है। उसमें उसे स्वानुभूतिका अवकाश है। किसीको थोड़े प्रयत्न बिना एकदम हो जाता है, वह अलग बात है। किसीको एकदम नक्की हुआ और तुरन्त भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो जाती है, वह एक अलग बात है। ऐसे भी कोई जीव होते हैं। जैसे शिवभूति मुनि जैसे एकदम पलट गये। परिणति एकदम पलट गयी।

मुमुक्षु :- माताजी! आज धन्य घड़ी, धन्य भाग्य हमारे कि आज हमें आपको हीरेसे वधानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मोक्षमार्गके प्रणेता पूज्य माताजी! अनन्त कालसे परद्रव्य और रागका भजन इस जीवने अनादि कालसे किया है। तो अब आपके प्रतापसे आत्माका भजन कैसे करें कि जिससे सादिअनन्त मोक्षसुखको प्राप्त करें?

समाधान :- जैसी जीवको बाह्य दृष्टि है, उसका अनादिसे भजन करता आ रहा

है। गुरुदेवने बहुत किया है कि तू ज्ञायकको देख, ज्ञायकका स्मरण कर, ज्ञायकको लक्ष्यमें ले, ज्ञायकका ही तू बारंबार रटन कर। बाहरका रटन छोड़कर ज्ञायकका रटन कर। ज्ञायकका लक्षण पहचाने। उसका ज्ञानलक्षण जो असाधारण लक्षण है, उस लक्षणसे वह पहचानमें आता है और उस लक्षण द्वारा लक्ष्य अर्थात् वस्तुको पहचानकर बारंबार उसीका रटन, मनन एवं बारंबार उसमें निर्णय करके उसे ग्रहण करके उसका आश्रय ले। बारंबार करे तो वह प्रगट हो ऐसा है।

अनादिसे जो किया है, राग और विकल्पोंका स्मरण उसे बारंबार होता है। परन्तु आत्माका स्मरण करता नहीं है, ज्ञायकका स्मरण नहीं करता है। उसे बारंबार ज्ञायकका स्मरण हो ऐसी जिज्ञासा, रुचि, ज्ञायकमें ही सर्वस्व है, बाहर कहीं नहीं है ऐसी ज्ञायककी श्रद्धा हो। ज्ञायकमें ही सब भरा है, बाहर कहीं नहीं है। ऐसा ज्ञायकका विश्वास आये। ज्ञायकमें आनन्द है, बाहर कहीं नहीं है, ऐसा विश्वास आये तो वह ज्ञायकका रटन करे और वही करने जैसा है। बारंबार ज्ञायक, ज्ञायकदेवका स्मरण करे। वह न हो तबतक देव-गुरु-शास्त्रका स्मरण करे। अंतरमें ज्ञायकदेवका स्मरण करे। ज्ञायक कैसा है, उसकी प्रतीति करे। ज्ञायक कोई अद्भुत है, अनुपम है। उसका लक्षण पहचानकर बारंबार निश्चय करे तो हो सके ऐसा है। परन्तु वह भेदज्ञान द्वारा होता है। ज्ञायकका लक्षण पहचानकर होता है।

भेदज्ञान द्वारा होता है। परन्तु उतनी स्वयंकी जिज्ञासा और रुचि हो तो करता है। उसे भिन्न करे, उसे बारंबार भिन्न करनेका प्रयत्न करे तो होता है। लक्षण पहचानकर उसे प्रज्ञाछैनी द्वारा भिन्न करे तो होता है। बाकी अनादिका अभ्यास है इसलिये मुश्किल हो गया है, दुर्लभ हो गया है। परन्तु अपना स्वभाव है इसलिये सुलभ है, दुर्लभ नहीं है। परन्तु स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- लगता है कि आत्मामें ही आनन्द भरा है, परन्तु जीव मानता नहीं है। विश्वास आना चाहिये कि उसके बिना मुझे एक क्षण भी नहीं चलेगा, उसके लिये जो पुरुषार्थकी निरंतर जागृति चाहिये, वह नहीं रहती।

समाधान :- वह स्वयं करे तो ही हो सके ऐसा है। कोई उसे कर नहीं देता। इतना विश्वास अन्दरसे स्वयं लावे तो ही हो सके ऐसा है। उसका विश्वास लाकर अनन्त जीव मोक्षमें गये हैं, अनन्त जीवोंने आत्माका स्वरूप प्रगट किया है। वह स्वयं करे तो हो सके ऐसा है। वह किसीसे हो ऐसा नहीं है। स्वयं करे तो ही होता है। वह विश्वास स्वयंको ही लाना है। जल्द या देरसे स्वयं ही विश्वास लाये, स्वयंको उसकी जरूरत लगे, स्वयंको ही करना है।

देव-गुरु-शास्त्र महा निमित्त हैं, परन्तु करना स्वयंको ही है। ऐसा पुरुषार्थ करके

अनन्त जीव मोक्षमें गये हैं, अनन्त मुनि मोक्षमें गये हैं। यह मार्ग एक ही है, भेदज्ञान करके ज्ञायकको पहचानना। उसकी श्रद्धा-प्रतीति दृढ़ करके, वैसी परिणति करके उसमें लीन हो जाय वही एक मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। विश्वास स्वयंको ही लाना है। प्रयत्न स्वयंको करना है। सबकुछ स्वयंको करना है। श्रद्धा प्रगट करनी, सम्यग्दर्शन करना, उसमें लीनता करनी वह सब स्वयंको ही करना है। स्वयं स्वतंत्र है। जल्द या देर, परन्तु स्वयं करे तो ही होता है। दूसरा कोई उसमें कर दे ऐसा नहीं है।

गुरुदेवने मार्ग बताया है, स्वयंको करना बाकी रहता है। एकदम आसान कर दिया है। चारों ओरसे मार्ग बताया है। द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप (समझाया है)। निमित्त-उपादान, अनेक-अनेक प्रकारका सूक्ष्म-सूक्ष्म रूपसे सब समझाया है। स्वयंको करना बाकी रह जाता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-११२

मुमुक्षु :- माताजी! अनन्त-अनन्त कालके परिभ्रमणके दुःखोंसे मुक्त होनेके लिये ही आप हमें मिले हैं, ऐसा हमें अंतरसे लगता है। तो इस संसारसे मुक्त होकर शाश्वत सुखकी प्राप्ति कैसे हो?

समाधान :- एक ही मार्ग है-शुद्धात्माको ग्रहण करना वही है। शुद्धात्माको ग्रहण करे। शुद्धात्माको ग्रहण करे तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, अशुद्धको ग्रहण किया तो अशुद्ध पर्याय होती है। अशुद्धकी ओर दृष्टि है तो उसे अशुद्धताकी पर्यायें होती है। एक शुद्धात्मा, मैं शुद्ध स्वरूप हूँ। यह पर्यायमें मलिनता है, मेरे मूल स्वरूपमें नहीं है। 'जे शुद्ध जाणे आत्माने ते शुद्ध आत्मा ज मेळवे'। एक शुद्धात्माको ही ग्रहण करना।

जो मोक्षमें गये वे सब शुद्धात्मामें प्रवृत्ति करके मोक्ष गये हैं, यह एक ही मोक्षका मार्ग है, दूसरा कोई नहीं है। शुद्धात्माको पहचानना। शुद्धात्माको पहचाने तो सब शुद्ध पर्यायें प्रगट होती हैं। मैं एक शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ। यह मलिनता मेरेमें नहीं है। वह मेरा स्वरूप नहीं है। पुरुषार्थकी कमज़ोरीसे वह मलिनता होती है, परन्तु मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ।

जैसे पानी स्वभावसे निर्मल है, वैसे निर्मल हूँ, शीतल स्वभावी हूँ। परन्तु यह सब कीचड़ निमित्तके कारण यानी स्वयं वैसा मलिन होता है, निमित्त करता नहीं है। अपनी परिणतिमें स्वयं पुरुषार्थकी कमज़ोरीके कारण मलिनता होती है, परन्तु वह मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा शुद्ध स्वरूप स्वयंका है, उसकी श्रद्धा करके और शुद्ध स्वरूपकी ओर जाय। उसे ग्रहण करे तो उसमेंसे शुद्ध पर्यायें प्रगट होती हैं। अशुद्धताकी ओर दृष्टि है तो अशुद्ध पर्यायें अनादि कालसे होती रहती है। एक के बाद एक अशुद्ध पर्यायोंकी श्रृंखला चलती है। शुद्धात्माको ग्रहण करे तो शुद्धताकी पर्यायें प्रगट होती है। एक ही मार्ग है। इस मार्गका सेवन करके अनन्त मोक्षमें गये हैं। सब इसी रीतसे गये हैं। निर्वाणका मार्ग एक ही है, दूसरा नहीं है। शुद्धात्माप्रवृत्ति लक्षण, बस एक ही।

मुमुक्षु :- ... हमें शाश्वत आत्मा बताया, सबके तो ऐसे पुण्य कहाँसे हो? तो आप हमें ऐसा सरल मार्ग बताईये कि गृहस्थाश्रममें रहकर दुर्लभ...

समाधान :- गृहस्थाश्रममें भी यह हो सकता है। उतनी स्वयंकी रुचि, जिज्ञासा और तैयारी हो तो गृहस्थाश्रममें भी होता है। पूर्वके सब जीव-भरत चक्रवर्ती आदि चक्रवर्ती गृहस्थाश्रममें रहकर भिन्न रहते थे। गृहस्थाश्रममें भी स्वयंकी उतनी भिन्न रहनेकी तैयारी हो तो हो सकता है। शुद्धात्माको पहचाना जाता है, शुद्धात्माका निश्चय, विश्वास किया जा सकता है। उसमें परिणति हो सकती है, सब कर सकते हैं, कोई किसीको रोक नहीं सकता। स्वयं अन्दरसे निर्लेप रहे तो गृहस्थाश्रममें सब हो सकता है। आत्माकी रुचि, आत्माका विचार, वांचन सब हो सके ऐसा है। आत्माका स्वभाव कैसे ग्रहण करना, वह सब हो सके ऐसा है। देव-गुरु-शास्त्र शुभभावमें, अंतरमें शुद्धात्मा। अंतरमें उसकी लगन, उसकी लगनके अतिरिक्त कुछ रुचे नहीं। गृहस्थाश्रममें सब हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- माताजी! ... गृहस्थाश्रममें थोड़ी दुर्लभता लगती है। यहाँ तो सब सहज-सहज .. आपकी वाणीका योग, आपके दर्शनका योग...

समाधान :- सत्संग तो सबको सरल निमित्त है। सत्संगकी तो अलग बात है, परन्तु सत्संग नहीं हो तो स्वयं तैयार रहना। स्वयंको तैयारी रखनी चाहिये, वैसे संयोगमें। सत्संगमें तो आसान होता है, सरल होता है, परन्तु पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना है।

मुमुक्षु :- ... उसमें अनन्त गुण .. तो केवलज्ञानका अंश कैसे?

समाधान :- सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन है। केवलज्ञानका अंश है। मति-श्रुत केवलज्ञानका अंश है। मतिज्ञान है न? जो ज्ञायक स्वरूप आत्मा है, ज्ञानस्वरूप आत्मा है उसका जो सम्यक्ज्ञान अंश प्रगट हुआ है। ज्ञानका अंश प्रगट हुआ इसलिये उसमें केवलज्ञान आ गया। प्रगट केवलज्ञान नहीं है, उसका अंश प्रगट हुआ है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ। केवलज्ञान है उसका भेद निकाल देना। ज्ञानका सम्यक् अंश प्रगट हुआ, (वह) केवलज्ञानका अंश है। मति-श्रुत केवलज्ञानको बुलाता है। आता है न? केवलज्ञान शक्तिरूप है, परन्तु सम्यक्रूप परिणमा है। केवलज्ञान, ऐसा उसका भेद निकाल दो (तो) ज्ञानका अंश है वह केवलका ही अंश है। सम्यक् अंश जो प्रगट हुआ वह केवलका अंश है। शक्ति अपेक्षासे केवलज्ञान है, अनेक प्रकारके श्रीमद्में शब्द आते हैं न? इच्छा अपेक्षासे, मुख्यनयके हेतुसे केवलज्ञान है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें स्वभावका अंश रहा है?

समाधान :- स्वभावका अंश जो प्रगटरूप हुआ, जो परिणति अपनी ओर (गयी कि) ज्ञायकस्वरूप-ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसमें सम्यक्रूप परिणति स्वानुभूतिका अंश अंतरमें प्रगट हुआ। जो स्वयंको जाननेवाला अंश प्रगट हुआ वह केवलका ही अंश है। मुख्य नय, जो सम्यक् नय प्रगट हुयी, सम्यक् अंश प्रगट हुआ वह केवलज्ञानका

अंश है। द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी और उस ओर जो ज्ञान गया, वह ज्ञान भी सम्यक्रूपसे केवलका अंश है। मति-श्रुतका भेद निकाल देना। एक ज्ञायक।

'आ ज्ञानपद परमार्थ छे, ते...' वह ज्ञानपद। उसका जो अंश प्रगट हुआ वह केवलका अंश है। केवलज्ञान भी ज्ञानका एक भेद है। ज्ञानका अंश है। जो अंश प्रगट हुआ वह पूर्णता लायेगा।

मुमुक्षु :- जो अंश प्रगट हुआ वह पूर्णता भी लायेगा और वर्तमानमें जो स्वभाव है, उसे...

समाधान :- जो स्वभाव है वह पूर्ण है। उसने पूर्णको दृष्टिमें लिया है और ज्ञानमें लिया है। पूर्णको दृष्टिमें लिया है, पूर्णको ज्ञानमें लिया है। भले प्रत्यक्ष नहीं है, परन्तु परोक्षमें उसे ज्ञानमें लिया है। उसका वेदन प्रत्यक्ष है। उसका ज्ञान भले प्रत्यक्ष नहीं है, परन्तु परोक्षमें उसने पूर्णको ज्ञानमें ले लिया है। .. नहीं है, परन्तु परिणतिरूप है।

मुमुक्षु :- ऐसे तो उसे केवलज्ञान हाथमें आ गया, ऐसा कोई अपेक्षासे..?

समाधान :- केवलज्ञान हाथमें आ गया है। दृष्टि अपेक्षासे, ज्ञान अपेक्षासे केवलज्ञान हाथमें आ गया है। उसकी विशेष परिणति करनी बाकी है, बाकी तो उसके हाथमें आ गया है। भेदज्ञानकी धारा प्रगट हुयी, ज्ञायककी धारा प्रगट हुयी, स्वभावकी ओर दृष्टि गया, स्वभावकी ओर ज्ञान गया, उसकी स्वानुभूति हुयी, इसलिये केवलज्ञान उसके हाथमें-हथेलीमें आ गया है। पूर्णता, पूर्ण स्वरूप उसके ज्ञानमें और दृष्टिमें आ गया है। उसके वेदनमें उसका अंश आ गया है।

मुमुक्षु :- माताजी! मुनि महाराज श्रेणि लगाये उस वक्त तो निर्विकल्प दशा होती है। उपयोग अन्दर रहे और केवलज्ञान हो तब क्या फ़र्क़ पड़ा?

समाधान :- श्रेणि लगाये तो निर्विकल्प दशाकी उग्रता है। केवलज्ञान होता है तब वीतरागता पूर्ण होती है और ज्ञानकी परिणति प्रत्यक्ष परिणति हो जाती है, केवलज्ञान होता है तब। उसकी ज्ञानकी जो परिणति थी वह परोक्षरूप थी, वह प्रत्यक्षरूप हो जाती है। उसका जो मनका थोड़ा अवलम्बन था वह भी छूटकर, केवलज्ञान होनेसे ज्ञान परिणति प्रत्यक्ष हो गयी। वीतरागदशा प्रत्यक्षरूपसे वेदनमें आ जाती है। वीतरागदशाकी क्षति थी। जब श्रेणी लगायी तब निर्विकल्प दशा थी, परन्तु वीतराग दशाकी क्षति थी। ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशांत है। सब शांत हो गया है। क्षीणमोहमें क्षय होता है। परन्तु वीतरागदशाकी क्षति है। केवलज्ञान होता है तब वीतरागदशा पूर्ण हो जाती है। एकदम वीतरागदशाकी पूर्णता होती है, चारित्र पूर्ण हो जाता है। अब रागका अंश उद्भव नहीं होनेवाला है। अबुद्धिमें भी नहीं है। अबुद्धिमेंसे छूट जाता है। इसलिये अबुद्धिमें राग रहता नहीं, ऐसी वीतरागदशाकी पूर्णता (हो जाती है)। एकदम अन्दर गया तो बाहर

नहीं आता है। ऐसी वीतरागदशाकी पूर्णता हो जाय, उस वीतरागदशाके साथ ज्ञान भी पूर्ण हो जाय, ऐसा उसे सम्बन्ध है।

वीतरागदशाकी पूर्णता और ज्ञानकी पूर्णता। ज्ञान उपयोगात्मकरूपसे प्रत्यक्ष परिणमन करने लगता है, जहाँ वीतरागता होती है वहाँ। पूर्ण वीतरागता। सब क्षय हो जाता है। रागका एक भी अंश उत्पन्न नहीं होता है। श्रुतके चिंतवनकी ओर जाता था, उपयोग तो उसमें अबुद्धिपूर्वक है, तो भी वह छूटकर भी एकदम वीतरागदशा हो जाती है। एकदम शांतरस हो जाता है। उसके साथ ज्ञान भी प्रत्यक्षरूप हो जाता है। बाहर कहीं देखने नहीं जाते। परन्तु ज्ञानस्वरूप जो आत्मा है वह प्रगट उपयोगात्मकपने सहज हो जाता है। देखने नहीं जाते। वीतरागदशाकी पूर्णता इसलिये केवलज्ञान पूर्ण हुआ। ज्ञान पूर्ण हो जाता है। उसके साथ सब पूर्ण हो जाता है। जिन-जिन गुणोंकी अल्पता थी वह सब पूर्ण हो जाते हैं। परम अवगाढ़ता हो जाती है। परम अवगाढ़ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब पूर्ण हो जाते हैं। अनन्त चतुष्ट पूर्ण हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- जो उपयोग अन्दर रखा वह तो अन्दर ही गया?

समाधान :- अन्दर ही रह गया, उपयोग बाहर ही नहीं आया। अन्दर जम गये। जम गये सो जम गये, बाहर ही नहीं आये। अन्दर ही रहा। श्रेणि लगायी वहाँ अबुद्धिपूर्वक विकल्प थे, बाकी उपयोग अन्दर ही था। उसकी विशेष स्थिरता होते-होते उसे अंतर्मुहूर्तमें श्रेणी चढ गये और वीतरागदशा पूर्ण (हुयी तो) उपयोग अन्दर ही रह गया। वह उपयोग जो स्वानुभूतिमें कार्य करता था, वह स्वानुभूतिमें सब प्रत्यक्षपने, उसे सब प्रत्यक्ष हो गया, वीतरागदशाकी पूर्णता हो गयी। उसे देखनेकी कोई इच्छा नहीं है। वीतरागदशाकी पूर्णता और प्रगट उपयोगात्मक ज्ञान हो जाता है। एक-एक ज्ञेयको जानने नहीं जाना पड़ता। सहज प्रत्यक्ष हो जाता है।

मुमुक्षु :- उपयोग अन्दर ही रहता है, लोकालोक ज्ञात हो तो...

समाधान :- उपयोग बाहर नहीं रखना पड़ता, लोकालोकको जाननेके लिये। उपयोग तो अन्दर स्वानुभूतिमें लीन हो गया। उपयोग बाहर नहीं जाता है। स्वानुभूतिमें उपयोग लीन है। उसमें प्रत्यक्ष परिणति हो जाती है। जो परोक्षरूप थी वह प्रत्यक्ष हो जाती है। वीतरागदशाकी पूर्णता और ज्ञानकी पूर्णता। जैसा आत्मासे स्वभावसे है, वैसा ही आत्मा वैसाका वैसा रह जाता है। जो बाहर जाता था वह बाहर जाना छूट गया। जैसा आत्मा है वह प्रगटपने परिणमनरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। जैसा है वैसा चैतन्यब्रह्म आत्मा ब्रह्मस्वरूप आत्मा जैसा है वैसा स्वयं प्रगटरूपसे परिणमता है।

अनन्त गुण-पर्यायमें स्वयं परिणमता है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त बल, जो अनन्त-अनन्त गुण है, उस रूप स्वयं प्रत्यक्षपने परिणमते हैं। लोकालोक

यानी बाहरका जाने, इसलिये उसकी विशेषता है, ऐसा नहीं है। स्वयं स्वयंमें लीन हो जाते हैं। फिर तो उसका स्वभाव है इसलिये सहज ज्ञात होता है। एक समयमें सब जान ले ऐसा उपयोग हो जाता है। जो अंतर्मुहूर्तका उपयोग था, जो अंतर्मुहूर्तमें ज्ञात होता था, उसके बजाय एक समयमें जाने ऐसा उसका उपयोग हो जाता है। एक समयमें ज्ञात हो जाय ऐसा उपयोग हो जाता है। अबुद्धिपूर्वकमें मन साथमें आता था इसलिये उसे अंतर्मुहूर्त जाननेमें समय लगता था। मन छूट गया, सहज ज्ञान हो गया इसलिये एक समयमें सब ज्ञात हो जाता है। अपना स्वरूप स्वानुभूतिमें जिस स्वरूप स्वयं परिणमता है, प्रत्यक्षपने उसे उपयोगात्मकपने ज्ञानमें आ जाता है। और दूसरे बाह्य ज्ञेय भी साथ-साथ आ जाते हैं।

अनन्त सिद्ध, अनन्त साधक, अनन्त संसारी जैसे हैं वैसे अनन्त जड़ द्रव्य सब सहजपने ज्ञात हो जाता है। उसमें उसे कोई विकल्प नहीं है। स्वानुभूति प्रधान अपना उपयोग है। वह सब उसमें ज्ञात होता है। आता है न? अणु रेणु वत्। कहाँ है लोकालोल, वह अणुकी भाँति है। उसे कोई बोझ नहीं है, कुछ नहीं है। उसकी उसे कोई महत्ता नहीं है। स्वयं स्वानुभूतिमें प्रत्यक्षरूपसे वीतरागदशारूप परिणमित हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- अनन्त गुना आनन्द बढ़ जाता है। फिर पलटता नहीं, बाहर जाता नहीं, उसे उपयोगका फेरफार होता नहीं। अनन्तगुना बढ़ जाता है। जो है सब अनन्त है। वीतरागदशा अनन्ती, आनन्द अनन्त, ज्ञान अनन्त, सब अनन्त है। उसकी परिणति अनन्तगुनी हो जाती है। जो स्वभाव था उस रूप अनन्त अनन्तता प्रगट हो जाती है।

मुमुक्षु :- ... अन्दर निर्विकल्प उपयोग ज्यादासे ज्यादा कितना रहता होगा?

समाधान :- ऐसा कोई कालका नियम नहीं आता है। श्रेणि लगानसे पहले न? वह तो अंतर्मुहूर्तका उसका काल है। फिर कितना अंतर्मुहूर्त वह कुछ शास्त्रमें आता नहीं है। अंतर्मुहूर्तका काल है। क्षण-क्षणमें जाता है-आता है, जाता है-आता है। आता है न? हज़ारों बार आते हैं, जाते हैं।

मुमुक्षु :- ज्यादा समय स्थिर नहीं हो सकते हैं?

समाधान :- एकदम उपयोगमें वेग आ जाता है, श्रेणि लगाते हैं। एकदम अन्दर स्थिर हो जानेका वेग है। एकदम उपयोग त्वरासे हज़ारों बार आता है-जाता है।

मुमुक्षु :- वेगसे कैसे आता है?

समाधान :- श्रेणी लगानेसे पहले। ऐसा शास्त्रमें आता है। बाकी मुनिओंका आता है, हज़ारों बार आते हैं-जाते हैं, ऐसा शास्त्रमें आता है। वह तो शास्त्रमें जैसा हो

उस अनुसार (मान लेना)। वह तो कालकी बात है न। शास्त्रमें हो उस अनुसार मान लेना। मुनिओंकी दशाकी बात है।

मुमुक्षु :- श्रेणी लगानेवाले हों, उससे पहले वेग बढ़ने लगता है, ऐसा..

समाधान :- ऐसा शास्त्रमें आता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- वह कुछ शास्त्रोंमें नहीं आता है। जितना शास्त्रोंमें आवे इतना मानना। मुनिकी बात है। अबुद्धिपूर्वक है। वह तो जो केवलज्ञानीने जो कहा हो उस अनुसार माननेका होता है। वह तो तर्कमें अमुक प्रकारसे बिठा सकते हैं। क्योंकि वह तो एकदम अंतर्मुहूर्तका उपयोग सूक्ष्म उपयोग होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-११३

घोर जंगलमें सिंह, बाघ दहाड़ते हो, ऐसे घोर जंगलमें खड़े हैं। दिन और रात। नहीं निद्रा ली है, ऐसे ... हैं, नहीं पानी पीया या नहीं आहार लिया। कैसे अड़िग होते हैं!

मुमुक्षु :- वनमें भी कैसा लगता होगा? कामदेव...

समाधान :- कोई देव खड़े हैं ऐसा लगे। .. जैसे स्तंभ खड़ा हो ऐसा दूसरोंको लगे।

.. उतना विकल्प है इसलिये थोड़ा-थोड़ा ज्ञान थोड़ा-थोड़ा बढता जाय ऐसा नहीं है कि थोड़ा-थोड़ा ज्ञान बढ़ता जाय। एक सूक्ष्म विकल्प है इसलिये थोड़ा ज्ञान बाकी रहता है। जितना सूक्ष्म, जितना यहाँ रुका उतना वहाँ ज्ञान बाकी रहे ऐसा नहीं है। इतना विभाव कम हो गया इसलिये जितना कम हुआ, जितनी वीतरागदशा हुयी उतना यहाँ केवलज्ञान एवं प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ और अब थोड़ा एक विकल्प रहा इसलिये थोड़ा बाकी है, ऐसा नहीं है। इतना बाकी है, उतना अंश बाकी है तो वहाँ सब बाकी है। वहाँ इतना हुआ ऐसा नहीं होता। तबतक परोक्ष ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता।

... उपयोग है, वह अंतर्मुहूर्तका उपयोग है इसलिये समयका... उतना ही(विभाव) बाकी है तो अब उतना ही ज्ञान बाकी है, ऐसा नहीं है। यहाँ इतना विभाव रुक गया तो वहाँ पूरा (बाकी रहा है)। (विभाव) इतना ही (बाकी) है, वहाँ तो पूरा केवलज्ञान बाकी है।

... सम्यग्दर्शनमें भी ऐसा है। सर्व प्रकारसे यथार्थ श्रद्धा पूर्ण नहीं होती है तो थोड़ा मन्द पड़ता गया है उतना सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं है। जितना अभी बाकी है, पूर्णरूपसे स्पष्ट नहीं हो जाता, तबतक सम्यग्दर्शन नहीं होता।

... केवलज्ञान हो, बस वह तो एक ... तबतक कुछ काम आये ऐसा नहीं है। ऐसे अन्दर विभाग नहीं पड़ते। थोड़ा प्रत्यक्ष और थोड़ा नहीं। श्रद्धा और आचरण है, लेकिन ज्ञानका उपयोग ... है। लेकिन वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं कहलाता। उसे तो उसके साथ उतना ही सम्बन्ध है कि इतना बाकी है तबतक प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। ... तो सम्यग्दर्शन नहीं होता है। वह तो आचरण है। पूरा बाकी रह जाता है। जिस

क्षण वीतरागदशा (होती है), उसी क्षण केवलज्ञान (होता है)। जबतक वीतरागदशाकी क्षति, तबतक केवलज्ञान नहीं (होता)।

... अंतर कम होता जाय तो थोड़ा-थोड़ा सम्यग्दर्शन होता जाय, ऐसा नहीं है। जिस क्षण उसे छूटकर यथार्थ हो उसी क्षण (सम्यग्दर्शन होता है)। थोड़ा-थोड़ा होता जाय ऐसा नहीं है। उसके पहले विचाररूप, भावनारूप श्रद्धा कहते हैं। सम्यक् कहलाता नहीं, सम्यक् परिणति नहीं कहलाती। जबतक सम्यक्तामें क्षति है, वह स्पष्ट सम्यक् नहीं कहलाता। वहाँ पर आचरणकी क्षति है। आचरणकी क्षति है तबतक दूसरे आचरणमें रुका है ... पूर्णता नहीं है। उसमें पूर्णता नहीं है तो उसमें पूर्ण ज्ञान भी नहीं है। अटका है।

समाधान :- ... करने जैसा यही है, दूसरा कुछ करने जैसा नहीं है। संसारमें किसी भी प्रकारका विभावमें सुख नहीं है। बाहरमें कहीं सुख नहीं है, परपदार्थमें सुख नहीं है। अन्दरमें स्वयंको ऐसा नक्की हो और आत्माकी रुचि हो कि आत्मामें ही सब है, सर्वस्व है, कैसे पहचानमें आये? आत्माकी ओर रुचि हो तो उसके साथ तत्त्व चिंतवन, आत्मा कैसे पहचानमें आये? आत्माका क्या स्वरूप है? आत्मा किस स्वरूप है? द्रव्य क्या है? गुण क्या है? पर्याय क्या है? उसे कैसे पहचानूँ? उसकी रुचि हो तो तत्त्व चिंतवन चले। तत्त्व चिंतवनके लिये अन्दरकी रुचि चाहिये। और तत्त्व चिंतवन ज्यादा नहीं चले तो शास्त्र स्वाध्याय करे और उसमेंसे विचार करे। गुरुदेवने क्या कहा है? क्या मार्ग बताया है? उस मार्गका स्वयं विचार करे, तत्त्व चिंतवन करे। आत्माका क्या स्वरूप है? द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? यह विभाव क्या है? स्वभाव क्या है? मोक्ष क्या है? मोक्ष कैसे प्रगट हो? गुरुदेवने क्या कहा है? इस प्रकार तत्त्व चिंतवन स्वयंको रुचि हो और पहचाननेकी स्वयंको लगन हो तो तत्त्व चिंतवन होता है। तत्त्व चिंतवन अन्दर बिना रुचिके नहीं होता। रुचि बढाये तो तत्त्व चिंतवन भी साथमें चले। और उसके लिये गुरुदेवने कहा है, विचार करे, शास्त्रका स्वाध्याय करे तो उसमेंसे विचार चले।

करनेका मार्ग तो एक ही है कि भेदज्ञान करके कैसे आगे बढना? आत्माका क्या स्वभाव है? विभाव अपना स्वभाव नहीं है। उससे स्वयंको भिन्न करनेका प्रयत्न करे। परन्तु आत्माको पहचाने तो तत्त्व चिंतवनसे हो। वह नहीं हो तबतक शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा होती है। अंतरमें शुद्धात्मा कैसे पहचाना जाय? उसकी रुचि होनी चाहिये। शुद्धात्मा तो भिन्न ही है। शुद्धात्मा भिन्न है, निर्विकल्प स्वरूप है, वह कैसे पहचानमें आये? उसका विचार करे तो होता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- प्रमोद भी स्वयंको आत्माकी महिमा आये तो होता है। बाहरमं कहीं महिमा नहीं है। कोई चीज, वस्तु बाहरकी कोई महिमा करने योग्य नहीं है। बाह्य पदार्थ कोई आश्चर्यभूत नहीं है। यह देवलोक आदि बाह्य पदार्थ अनन्त बार प्राप्त हुए हैं। वह कोई नवीन नहीं है। नवीन तो एक आत्मा ही महिमावंत है। ऐसा स्वयंको नक्की हो तो आत्माकी महिमा आये।

अनन्त कालमें जीवको सब प्राप्त हो गया है, एक आत्मा नहीं प्राप्त हुआ है, एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है। सम्यग्दर्शन ही कोई अलग अपूर्व वस्तु है। ऐसा स्वयंको नक्की होना चाहिये। देवलोकके देव,... वहाँ अनन्त बार जन्म धारण किया है, बाहरमें राजा आदि हुआ है, वह सब कोई सुखरूप नहीं है, वह कोई महिमारूप नहीं है। वह तो सब परपदार्थ है। ऐसा स्वयं नक्की करके आनन्द आत्मामें ही भरा है। आत्मा कोई आश्चर्यकारी वस्तु है, ऐसा नक्की करे तो होता है। सम्यग्दर्शन अनादि कालसे प्रगट नहीं हुआ है। वह कोई अपूर्व वस्तु है। स्वयं नक्की करे तो होता है।

मुमुक्षु :- वह कैसे हो?

समाधान :- उसकी लगन लगे तो पहचान होती है। विचार करे। गुरुदेवने क्या कहा है? उसका विचार करे, प्रयत्न करे तो होता है। उसे नक्की करना चाहिये कि यह शरीर तो भिन्न ही है, कुछ जानता नहीं है। अन्दर जाननेवाला कोई अलग ही है। अन्दर जाननेवाला तत्त्व एक वस्तु है। यह विभाव सब आकुलतारूप है। सब भाव आकुलस्वरूप है। उससे (भिन्न) निराकुल तत्त्व अन्दर जाननेवाली कोई वस्तु है। उसमें आनन्द भरा है। उसकी पहचान, स्वयंको उसकी जिज्ञासा हो तो होती है। जिज्ञासाके बिना नहीं होती। तदर्थ शास्त्रमें क्या आता है? गुरुदेवने क्या कहा है? सबका विचार करे तो होता है। जाननेवाला तत्त्व अन्दर कोई अलग है। वह जाननेवाला है। सिर्फ ज्ञानमात्र नहीं है, अनन्त महिमासे भरी ज्ञायक वस्तु है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- प्रतिकूलताके समय विचार करना कि मैं तो आत्मा हूँ। यह प्रतिकूलता मेरे आत्मामें नहीं है। मैं तो एक चैतन्य हूँ। प्रतिकूलता मेरे आत्माको कोई नुकसान नहीं करती है। वह तो बाह्य पुण्य-पापका (उदय है)। अनुकूलता, पुण्यका उदय हो तो अनुकूलता होती है, पापके उदयसे प्रतिकूलता होती है। अनुकूल-प्रतिकूल सब बाह्य संयोग है। अन्दर आत्मा तो भिन्न है। वह प्रतिकूलता आत्माको अड़चनरूप नहीं है। चाहे जैसी प्रतिकूलता हो, चाहे कुछ भी हो तो भी आत्मा अन्दरसे भिन्न रहकर शान्ति रख सकता है। स्वयं स्वतंत्र है। मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ। मेरे आत्मामें वह नहीं है। अन्दर राग-द्वेष होते हैं, वह मेरा स्वभाव नहीं है तो बाह्य प्रतिकूलता मेरा स्वभाव

कैसे हो सकता है?

मुनिओं, चाहे जैसे उपसर्गमें शान्ति रखकर आत्माका ध्यान करके आत्मामें आगे बढ़कर केवलज्ञानकी प्राप्ति करते हैं। वह प्रतिकूलता आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा उससे भिन्न है, ऐसा विचार करना।

मुमुक्षु :- भक्ति करते वक्त आत्माका काम साथमें कैसे हो?

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति करते वक्त आत्माका काम साथमें होता है। जो जिनेन्द्र देवने किया है, जो आत्माका स्वरूप महिमावंत है उसे भगवानने प्राप्त किया है। गुरु उसकी साधना करते हैं। और शास्त्रमें उसका स्वरूप आता है। उसकी महिमा आये कि करने जैसा तो यही है। जो भगवानने प्रगट किया है, जो गुरु साधना करते हैं, इसलिये वही आदरने योग्य है। जिसे गुरुकी महिमा आये उसे आत्माकी महिमा आये बिना नहीं रहती।

जैसा गुरु करते हैं, वैसा मुझे कैसे प्राप्त हो? ऐसी रुचि हुए बिना नहीं रहती। साथमें आत्माका होता है। गुरु क्या कह गये हैं? गुरु ऐसा कहते हैं कि तू तेरे आत्माको पहचान। तू भगवान जैसा है। गुरुकी आज्ञाका पालन किया कब कहा जाय? कि गुरु जो कहे उसका अन्दर विचार करे तो। अनादि कालसे अनन्त कालका यह परिभ्रमण करते हुए यह मनुष्य देह मिलता है। उसमें ऐसे गुरु पंचमकालमें मिले, (जिन्होंने) मार्ग बताया। देशनालब्धि अनन्त कालसे... ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। अनन्त कालमें जीव प्रथम बार सम्यग्दर्शन प्राप्त करे तो कोई जिनेन्द्र देव अथवा गुरु साक्षात् मिलते हैं, तब उसे अन्दर देशना प्राप्त होती है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। करता है स्वयंसे, उपादान स्वयंका है। उसके साथ आत्माका हो सकता है। उनकी भक्ति आने पर विचार करे कि मैं भी उनके जैसा हूँ। जैसे भगवान हैं, वैसा मैं हूँ। भगवान ऐसा कहते हैं कि तू मेरे जैसा है। तू अन्दर देख। भगवानके उपदेशमें भी ऐसा आता है।

गुरुदेव भी ऐसा ही कहते थे कि तू भगवान जैसा है। तू पहचान। तू शरीरसे भिन्न जाननेवाला ज्ञायक है। ऐसे गुरुका उपदेश क्या है, गुरुका उपदेश ग्रहण करे तो अंतरमें स्वयं अपने आत्माको पहचान सकता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। भक्ति करे तो नहीं हो ऐसा नहीं है। देव-गुरुकी महिमा उसका साधन बनता है। वह निमित्त और उपादान अपना है। वह तो महा प्रबल साधन है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, सच्चे देव-गुरुकी महिमा प्रबल निमित्त है। आत्माको प्राप्त करनेका महा साधन है। उपादान स्वयं करे तो होता है।

समाधान :- .. ऐसा है, ज्ञानियोंकी जो निश्चय दृष्टि हुयी है, उन्हें जो उदयकाल होता है, वह उदयकाल उन्हें मर्यादामें होता है। उनके उदयकाल ऐसे नहीं होते हैं

कि उनकी सज्जनता छोड़कर उनके उदयकाल नहीं होते हैं। उनके उदयकाल अमुक मर्यादित होते हैं। जिसे आत्माकी लगी, जिसे अन्दरसे स्वानुभूति और ज्ञायक दशा प्रगट हुयी, भेदज्ञान (हुआ), उनके उदयकाल ऐसे होते हैं कि गृहस्थाश्रममें हो तो उनकी सज्जनता छोड़कर ऐसे उदयकाल नहीं होते। और उसमें पुरुषार्थ काम नहीं करता है अर्थात् वह विशेष आगे नहीं जा सकते। परन्तु उसका पुरुषार्थ वे स्वयं करते हैं, उसके ज्ञाता रहते हैं। परन्तु उन्हें खेद रहता है कि मैं आगे नहीं बढ़ सकता हूँ। बाकी उनकी सब परिणति मर्यादाके बाहर नहीं होती।

जो लौकिकमें शोभा न दे ऐसा उनका वर्तन नहीं होता। ऐसा नहीं होता। उनका वर्तन एकदम वैरागी वर्तन (होता है)। उन्हें खेद होता है कि इस उदयमें मैं खड़ा हूँ। लेकिन इसी क्षण छूटा जाता हो तो मुझे यह कुछ नहीं चाहिये। चक्रवर्ती गृहस्थाश्रममें रहते थे, परन्तु उन्हें अन्दरसे खेद, वैराग्य होता था कि मैं छूट नहीं सकता हूँ। यह उदयकाल (ऐसा है)। बाकी उसमें पुरुषार्थ काम नहीं करता है ऐसा नहीं। उनकी दशा ऐसी होती है कि वे हठ करके आगे नहीं जाते हैं। उनका सहज पुरुषार्थ चले, उस पुरुषार्थसे ही आगे बढा जाता है। परन्तु वह पुरुषार्थ चलता नहीं है, इसलिये ऐसा कहते हैं कि यह परद्रव्य है, मेरा स्वरूप नहीं है। बाकी उनकी अन्दरसे एकदम वैराग्य दशा और विरक्ति होती है। उनके उदयकाल लौकिकमें शोभा न दे ऐसे उदयकाल उनके नहीं होते। ऐसा नहीं होता है। उन्हें भीतरमें...

श्रीमद् राजचंद्र, उनका गृहस्थाश्रमका वर्तन मर्यादित होता है। उन्हें अन्दरसे कितनी उदासीनता और बातमें आत्माकी पुकार करते हैं। अन्दर ज्ञायक.. ज्ञायक.. करते हैं। ऐसा उनका वर्तन होता है। उनका स्वच्छन्द जैसा वर्तन नहीं होता है। आप किसीकी भी बात करते हो, वस्तुस्थिति यह है।

सज्जनको गृहस्थाश्रममें शोभा न दे ऐसे उनके कार्य नहीं होते हैं। उनका जीवन एकदम अलग, उनका हृदय अलग होता है। अंतरसे उन्हें मैं आत्मा भिन्न और यह सब मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं कहाँ खड़ा हूँ? इसी क्षण यदि छूट जाता हो और स्वरूपमें लीनता होती हो तो मुझे यह कुछ नहीं चाहिये। ऐसा उनका हृदय होता है। आगे नहीं बढ़ सके अथवा स्वरूपमें विशेष लीनता न हो तो उसे ज्ञायक रहता है। अन्दरसे भिन्न और न्यारे रहते हैं। लौकिकमें शोभा न दे ऐसे उदयकाल उन्हें नहीं होते हैं। पुरुषार्थ काम नहीं करता है ऐसा नहीं है, परन्तु उनकी सहज दशासे पुरुषार्थ विशेष आगे नहीं बढता हो, परन्तु ऐसे उदयकाल, लौकिकमें शोभा न दे ऐसे उदयकाल उनके नहीं होते।

मुमुक्षु :- निश्चयनयका आलम्बन लेकर स्वच्छन्दका पोषण कर रहे हैं ऐसा कहा

जाय?

समाधान :- निश्चयनयका आलम्बन लेकर बाह्य स्वच्छन्द तो होना ही चाहिये। आत्मार्थीका ऐसा लक्षण नहीं होता।

मुमुक्षु :- जिसे निश्चयनयका यथार्थमें आलम्बन हो उसे स्वच्छन्द नहीं हो सकता।

समाधान :- स्वच्छन्द नहीं होता।

मुमुक्षु :- अथवा तो उसे स्वच्छन्द... वास्तवमें अन्दरमें आलम्बन नहीं है, परन्तु मात्र उसकी धारणा है कि कथा करता है।

समाधान :- कैसा उसका उदयकाल वह अपने मालूम नहीं पड़ता। परन्तु उसके उदयकाल ऐसे नहीं होते। लौकिकसे बाहर नहीं होते।

मुमुक्षु :- माताजी! उसकी मान्यतामें ऐसा भी नहीं होता कि पुरुषार्थसे हो सकता है, फिर भी अमुक मर्यादासे आगे नहीं बढ़ सकता हो, वह अलग बात है, हठपूर्वक नहीं जाता..

समाधान :- पुरुषार्थसे नहीं हो सकता है, ऐसा उसे अभिप्राय नहीं होता है। पुरुषार्थसे नहीं हो सकता है, ऐसा अभिप्राय नहीं होता। मेरा पुरुषार्थ मन्द है, मुझसे हो नहीं सकता है, मैं आगे नहीं बढ़ सकता हूँ, इसलिये इसमें खड़ा हूँ, मेरी जो सहज पुरुषार्थकी धारा चलनी चाहिये वह नहीं चलती है, वह मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है। पुरुषार्थसे नहीं हो सकता है, ऐसा उसका अभिप्राय नहीं होता।

मुमुक्षु :- फिर भी हठ नहीं होती।

समाधान :- फिर भी हठ नहीं होती। हठसे जबरन करना ऐसा नहीं होता। परन्तु उसे मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है, इतना तो उसके अभिप्रायमें होना चाहिये। पुरुषार्थकी मन्दता है और यह उदय है, बस, ऐसा होना चाहिये। पुरुषार्थसे हो ही नहीं सकता, ऐसा अभिप्रायमें नहीं होना चाहिये।

मुमुक्षु :- इसमें तो उसने वास्तवमें पुरुषार्थको उडाया।

समाधान :- पुरुषार्थको उडाया। पुरुषार्थसे नहीं हो सकता है, ऐसा नहीं होना चाहिये। मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है। खेद है कि मैं आगे नहीं बढ़ सकता हूँ, मैं इसमें खड़ा हूँ। इसी क्षण यदि यह छूट जाता हो तो मुझे किसी भी प्रकारका रस नहीं है। मुझे आत्माके अतिरिक्ति कुछ नहीं चाहिये, ऐसा उसके दिलमें होना चाहिये, उसके वर्तनमें, उसकी वाणीमें ऐसा होना चाहिये। अभिप्राय हो ऐसी उसकी भाषा भी... चारों पहलूका उसे होना चाहिये।

मुमुक्षु :- माताजी! द्रव्यकर्मके पुद्गलका स्वाद आता है। द्रव्यकर्मके उदयके वक्त क्रोधका स्वाद आता है और क्रोधरूप अज्ञानी परिणमता है। तो अज्ञानी जैसे उस

रूप परिणमता है और ज्ञानी भी क्रोधरूप परिणमते हैं, तो उन दोनोंमें क्या फ़र्क़ है?

समाधान :- अज्ञानी परिणमता है, उसे एकत्वबुद्धि है। उसे आत्मा भिन्न ज्ञात नहीं होता है और एकत्वबुद्धि (है)। क्रोधरूप, मैं क्रोधरूप हो गया, मानरूप हो गया, मायारूप हो गया, ऐसे एकत्वबुद्धिमें परिणमता है।

ज्ञानीकी ज्ञानदशा होनेके कारण वह भिन्न रहता है कि यह क्रोध मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो भिन्न ज्ञायक हूँ। मेरा स्वरूप, मैं तो क्षमास्वरूप ज्ञायक हूँ। परन्तु यह मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे यह जो क्रोधका उदय आया है, उस क्रोधमें जुड़ना हो जाता है। क्रोध मेरा स्वरूप नहीं है। इसलिये उसकी जुड़नेमें अमुक मर्यादा (होती है), उसके रसमें मर्यादा होती है। उसकी क्रिया पर नहीं, उसके रसमें मर्यादा होती है। उसके क्रोधमें उसका रस अन्दरसे मन्द होता है।

और (अज्ञानीको) एकत्वबुद्धिका रस होता है। एकत्व है इसलिये उसका रस नहीं छूटता। वह भिन्न रहकर जुड़ता है, ज्ञानी है वह। उसे भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। कोई भी कार्यमें जुड़े भिन्न रहता है। मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे यह जो उदय आते हैं उसमें जुड़ जाता हूँ। परन्तु यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ। ऐसा उसके ज्ञानमें ऐसा ही वर्तता है। उसे ज्ञायककी धारा चलती है।

मुमुक्षु :- ज्ञान और रागका भेदज्ञान तो है, वैसे यह पुद्गलका राग और यह मेरा राग, ऐसा भेदज्ञान है?

समाधान :- पुद्गलका राग और मेरा राग यानी पुद्गलका निमित्त है। पुद्गलके (निमित्तसे) चैतन्यमें परिणति (होती है)। पुद्गल पर उसका ध्यान नहीं है। यह राग मेरा स्वरूप नहीं है। यह राग अन्यके निमित्तसे होता है। उसे बार-बार यह पुद्गल और यह जीव ऐसा नहीं (करना पड़ता)। यह जो रागकी परिणति होती है वह मेरा स्वरूप नहीं है। वह पुद्गलके निमित्तसे होती है। यानी सिर्फ जड़ है ऐसा भी नहीं है। वह तो मेरी परिणतिमें होता है, मैं जुड़ जाता हूँ। जड़ मुझे नहीं कहता है कि तू जुड़ जा। रागकी परिणतिरूप स्वयं जुड़ जाता है, परन्तु यह मेरा स्वरूप नहीं है, उससे भिन्न हूँ। मेरा द्रव्य, मेरा स्वभाव भिन्न है। इसलिये वह मुझसे भिन्न है। मेरा स्वभाव भिन्न है इसलिये भिन्न है, परन्तु मेरी परिणति उस रूप होती है, मैं उससे भिन्न हूँ। मेरी पर्याय वर्तमान ऐसी होती है, परन्तु मैं मेरे स्वरूपमें रहता हूँ, मैं भिन्न हूँ। भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। स्वयं भिन्न रहता है। ऐसी उसकी ज्ञायककी पुरुषार्थकी धारा निरंतर रहती है। साधकको प्रत्येक कार्यमें पुरुषार्थ साथमें होता है। पुरुषार्थ नहीं हो सकता है ऐसा नहीं है। उसका स्वामी नहीं होता। यह मेरा स्वरूप नहीं है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-११४

मुमुक्षु :- वैसे बाहरसे क्रोधमें रस कम हुआ हो ऐसा बाहरसे तो दिखता नहीं।

समाधान :- दिखे या नहीं दिखे, उसका निश्चित नहीं कह सकते। ऐसे कोई बाह्य प्रसंग मुनिराजको सामने आये, कौन-सा आये, किस प्रकारका रस बाहरसे अंदाज़ लगाना मुश्किल पड़ता है, कई बार अंदाज़ लगा सकते हैं, कोई बार नहीं भी आवे। कोई ऐसे रागके प्रसंगमें अंदाज़ नहींल लगा सकते।

मुमुक्षु :- प्रत्येक विकारी भावके समय कम रसका वेदन हो ऐसा नहीं है?

समाधान :- रस कम है। भिन्न (रहता है), रस कम है। यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे (भिन्न हूँ)। रस तो उसका हर वक्त कम ही है। भिन्न (रहता है), उसे अनन्तानुबंधी रस टूट गया है। रस टूट गया है। तीव्र रस नहीं है। भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। भिन्न रहता है, एकत्वबुद्धि नहीं है।

मुमुक्षु :- .. पुरुषार्थ हो तो ही.. सहज भावसे स्वभाव ही ऐसा हो कि आसक्ति नहीं होती, तो फिर ... उसे कह सकते हैं? अच्छा नहीं लगता हो, खाने-पीनेमें अच्छा नहीं लगता हो। वहाँसे तो मनुष्य अपनेआपको विरक्त करता है तो उसे हम त्याग कहते हैं, परन्तु यदि वह स्वभाव ही हो तो फिर उसे त्याग कह सकते हैं?

समाधान :- किसीका स्वभाव ही ऐसा होता है कि कहीं अच्छा नहीं लगता, घुमना-फिरना आदि। वह तो सामान्य सज्जनता है। आत्माके हेतुसे हो कि आत्माके लिये यह सब क्या घुमना-फिरना? सहज उसका स्वभाव ही ऐसा है। एक प्रकारकी सज्जनता।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- आत्माके हेतुसे। आत्माके हेतुसे हो तो कहा जाय, अन्यथा नहीं।

मुमुक्षु :- .. ऐसा मन्द कषाय हो..

समाधान :- मन्द कषाय कहो, कितनोंका स्वभाव ही ऐसा होता है। लेकिन वह कोई आत्माके हेतुसे नहीं है। ऐसा मन्द कषाय तो बहुतोंको होता है। वह कोई कार्यकारी नहीं होता है। शुभभावरूप (है)।

मुमुक्षु :- उपयोगकी एकाग्रताके लिये क्या करना?

समाधान :- उसकी एकाग्रता कब होती है? कि अन्दर उतनी आत्मा-ओरकी रुचि जागृत हो तो एकाग्र हो सकता है। स्वयंको उतनी रुचि होनी चाहिये। उपयोगमें चारों ओर दूसरे प्रकारका रस हो तो उपयोग एकाग्र नहीं होता। यह तो आत्माकी ओरका रस लगना चाहिये। प्रशस्तमें भी, दूसरा रस छूट जाय तो प्रशस्तमें भी टिकता है। तो आत्माकी ओर टिकनेके लिये तो आत्माकी ओरका रस होना चाहिये। तो उपयोग एकाग्र होता है। उतना रस अन्दर होना चाहिये, उतनी रुचि होनी चाहिये।

पुरुषार्थ करे तो होता है। बारंबार उसका अभ्यास करे तो होता है। अनादिका रस है, उसमें उसके अभ्यासके कारण वहाँ दौड़ जाता है। अप्रशस्तमें जाता है। प्रशस्तमें लानेके लिये भी उसका रस होना चाहिये। भगवान पर महिमा हो, गुरुकी महिमा हो, उनकी वाणीकी महिमा हो, शास्त्रकी महिमा हो तो उसमें आता है। तो आत्माकी महिमा हो तो आत्माकी ओर आता है। और पुरुषार्थ करे तो होता है। महिमा हो तो भी पुरुषार्थ करे तो होता है।

समाधान :- .. अपनी परिणतिके कारण... परद्रव्य तो जो है सो है, परद्रव्य बूरा नहीं है। बूरा तो अपने दोषकी परिणति होती है वह वास्तवमें बूरी है। चैतन्य आदरने योग्य है। जैसा है वैसा जानना, उसमें कोई राग-द्वेष नहीं है। चैतन्यतत्त्व आदरने योग्य है और विभाव है वह टालने योग्य है। वह जैसा है वैसा जानना वह राग-द्वेषका कारण नहीं है। परन्तु स्वयं राग-द्वेष (करे और) परद्रव्य पर दोष दे तो वह गलत है, वह उसकी भ्रमणा है। दोष परद्रव्यका नहीं है। अपनी विभाव परिणतिके कारण स्वयं रुककर विभाव परिणतिका दोष है। परद्रव्यका दोष नहीं है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- वह भले राग हो, परन्तु वह आदरने योग्य है। वह विकल्प जो आये वह राग है। बाकी वस्तु तो स्वयं आदरणीय है। वस्तु जो है सो है। बाकी आदरने योग्य तो अपना स्वभाव है। और विभाव टालने योग्य है। विभाव हेय है। और चैतन्य आदरने योग्य है। जैसा है वैसा ज्ञान करके उसे ग्रहण करना। उसके साथ जो राग आवे वह राग तो हेय है।

यह आदरने योग्य है, ऐसा जो विकल्प कि यह ज्ञान, दर्शन, चारित्रका जो राग हो कि आत्मा ऐसा महिमावंत है, यह ज्ञान कोई अपूर्व है, यह दर्शन चैतन्यका गुण कोई अपूर्व है, ऐसी जो महिमा आवे वह साथमें राग है। वह राग टालने योग्य है। परन्तु चैतन्य स्वयं महिमावंत है, वह तो बराबर है। रागको राग जानना और वस्तु जैसी है वैसी जाननी, उसमें कोई दोष नहीं है। जैसा है वैसा वस्तु स्वरूप ग्रहण कर। रागको राग जान। वह रागमिश्रित भाव है। बीचमें जो आता है वह राग साथमें

आता है कि यह आदरणीय है और यह त्यागनेयोग्य है। उसकी पक्कड़ करे कि परद्रव्य दोषरूप ही है, वह तो राग-द्वेष है।

मुमुक्षु :- जैसा है वैसा जानना...

समाधान :- वह कोई राग-द्वेष नहीं है, जैसा है वैसा जानना। जो आदरणीय है उसका आदर करना, त्याग करने योग्य है उसका त्याग करे। त्याग-ग्रहण वस्तु स्वरूपमें नहीं है। परन्तु स्वयं विभावमें रुका है इसलिये उसे त्याग-ग्रहण आये बिना नहीं रहता। इसलिये जैसा है वैसा जानकर त्यागने योग्य त्यागे और ग्रहण करने योग्य ग्रहण करे, वह कोई राग-द्वेष नहीं है। साथमें राग आता है। उसे भेद पड़ता है इसलिये राग हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- वैसा विकल्प उत्पन्न करना वह राग है।

समाधान :- वह राग है। यह ज्ञायक आदर करने योग्य है, वह विकल्प है वह राग है। उसकी परिणति उसके सन्मुख जाय वह राग नहीं है।

मुमुक्षु :- सम्यक् सन्मुखको मालूम पड़ता है कि वह सम्यक् सन्मुख है या नहीं?

समाधान :- स्वरूप सन्मुख हो उसे मालूम पड़ता है, परन्तु अन्दर स्वयंको देखनेकी दृष्टि हो तो। अपनी परिणति स्वरूप सन्मुख जाती है, वह स्वयं अन्दर जाने तो मालूम पड़े। स्वरूप सन्मुख मेरी परिणति जाती है, विभाव गौण होते हैं। जाने, उसे बराबर सूक्ष्मतासे जाने तो मालूम पड़ता है। स्वयं ही है, कोई अन्य नहीं है।

मुमुक्षु :- .. आत्माका अनुभव होनेके बाद छः महिने पर्यंत पुनः अनुभव नहीं हुआ हो तो वह जीव नियमसे मिथ्यादृष्टि हो जाय, ऐसा है?

समाधान :- छः महिनेका ऐसा कोई कालका अंतर नहीं है। नहीं हो तो... उसकी दशामें अमुक कालमें होना ही चाहिये। उसकी वर्तमान परिणति भी भेदज्ञानकी रहती है। स्वानुभूति तो होती है, परन्तु वर्तमान परिणति भी भेदज्ञानकी ही रहती है। वर्तमान परिणतिमें भी यदि एकत्वबुद्धि होती हो तो उसकी दशा ही नहीं है। वर्तमानमें उसकी सहज दशा जो वर्तती दशा है, उसमें उसे भेदज्ञान रहता है और उसे अन्दर विश्वास होता है कि अमुक समयमें यह परिणति निर्विकल्प दशामें जाती है और जायेगी ही। इतना उसे विश्वास होता है। जायेगी या नहीं जायेगी, ऐसी शंका भी नहीं होती। उसकी वर्तमान दशा ही उसे प्रमाण करती हो कि यह दशा ऐसी है कि अन्दर निर्विकल्प दशा हुए बिना रहनेवाली नहीं है। उसकी वर्तमान दशा ही उसे अन्दर उतना प्रमाण (देती है), उसे अन्दर विश्वास होता है।

अन्दर वर्तमान परिणतिमें शंका पड़े कि होगी या नहीं होगी? तो उसकी वर्तमान परिणतिमें ही दोष है। वर्तमान परिणति बाहर रुकती है, परन्तु यह परिणति ऐसी है

कि अन्दर गये बिना (रहेगी नहीं)। उसका मार्ग स्पष्ट ही होता है। मेरा मार्ग अन्दर बन्द नहीं हुआ है। अन्दर परिणति जायेगी ही। उसे अन्दरसे विश्वास होता है, सहजपने। वर्तमान उसकी धारा ही ऐसी चलती है। उसे छूटकर बारंबार उसे भेदज्ञानकी धारा ऐसी चलती है कि विकल्प छूटे बिना रहेगा ही नहीं। निर्विकल्प दशा हुए बिना रहेगी नहीं, ऐसा उसे विश्वास होता है। और हुए बिना रहे भी नहीं।

मुमुक्षु :- प्रति समयकी परिणति ही..

समाधान :- वर्तमान परिणति द्वारा उसे ख्याल है, विश्वास है कि निर्विकल्प दशा हुए बिना रहेगी नहीं। मैं तो मुक्तिके मार्ग पर ही हूँ। यह मार्ग मेरी हथेलीमें है। ज्ञायककी धारा मेरे हाथमें है, विकल्पका छूटना मेरे हाथमें है। उसे विश्वास है।

मुमुक्षु :- आज तो गुरु-भक्ति और गुरु-महिमाका दिन है।

समाधान :- सब बहुत अच्छा हो गया।

मुमुक्षु :- गुरु-भक्तिका स्वरूप..

समाधान :- गुरुदेवका तो जितना करे उतना कम है। गुरुदेवने तो महान उपकार किया है। मुक्तिका मार्ग पूरा प्रगट करके (दर्शाया है)। सब कहाँ थे और कहाँ आत्माकी रुचि प्रगट हो ऐसा मार्ग बता दिया है। मुक्तिका मार्ग पूरा स्पष्ट करके चारों ओरसे प्रकाश किया है। इस पंचमकालमें ऐसा मार्ग मिलना महा दुर्लभ था। गुरुदेवने तो महान उपकार किया है। भवभ्रमणमें गोते खा रहे जीवोंको सबको बचा लिया है।

मुमुक्षु :- महान-महान उपकार पूज्य गुरुदेवश्रीका।

समाधान :- महान उपकार है। इस पंचमकालमें एक महान विभूति! यहाँ गुरुदेवका जन्म-अवतार हुआ यह महाभाग्यकी बात है। तीर्थंकर जैसी वाणी उनकी, तीर्थंकरका द्रव्य और उनकी वाणी भी ऐसी ही थी। चारों ओरसे मुक्तिका मार्ग प्रकाश किया है। ऐसी जोरदार वाणी थी। अन्दर जिसे तैयारी हो उसे भेदज्ञान हुए बिना रहे नहीं। ऐसी उनकी वाणी थी।

मुमुक्षु :- गुरु-भक्ति, गुरु-भक्ति ऐसा हम करते तो हैं, परन्तु गुरु-भक्ति वास्वतमें प्रगटती हो ... और जो भक्ति आती है तब ऐसा होता है कि हमें बचा लिया है।

समाधान :- गुरुदेवने जो कहा है वह करना है। गुरुदेवकी वाणी और शास्त्र तो बहुत प्रकाशित हो गये हैं। यह तो इसमें उत्कीर्ण हुआ इसलिये फिर ऐसा हो गया।

मुमुक्षु :- आजका दिन बहुत अच्छा है। शुभ था, उल्लास था।

समाधान :- उत्सव हो गया। यह प्रकाशित हो तब उत्सव करना यह नवीन हो गया।

मुमुक्षु :- सब प्रताप तो आपका है। इतना ख्याल आता है कि गुरु-भक्ति कैसी

होती है, एक-एक प्रकार देखते हैं तब ख्यालमें आता है कि हमको तो ऐसा कोई विचार भी उत्पन्न नहीं होता।

समाधान :- वह उत्कीर्ण करनेमें चारों ओरका आ गया है। दृष्टिको मुख्य रखकर चारों ओरका मुक्तिका मार्ग (आ गया है)। उसमें गुरुदेवका संक्षेपमें-सारमें सब आ गया है। बाकी तो गुरुदेवने सब विस्तारसे प्रगट किया है। शास्त्रके शास्त्र बने उतनी उनकी वाणी छूटी है। एक समयसार, प्रवचन रत्नाकरके कितने भाग होते हैं! उनकी वाणी तो विस्तारसे पसर गयी है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो न कि संक्षेपमें दृष्टिपूर्वक सब बात..

समाधान :- पूरा मुक्तिका मार्ग आ जाता है।

मुमुक्षु :- दृष्टिकी प्रधानतासे सब उत्कीर्ण हुयी है।

समाधान :- सब बात अन्दर आती है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- गुरुदेवके प्रतापमें सब समाविष्ट हो जाता है।

मुमुक्षु :- सादी भाषामें साधारण जनता शुद्धात्माकी बात समझ सके ऐसी भाषा गुरुदेवकी निकली है।

समाधान :- बहुत सादी भाषामें। ऐसी आश्चर्ययुक्त सबको असर करे ऐसी है। गुरुदेव विराजते थे। महाभाग्यकी बात थी कि भरतक्षेत्र शोभता था, ऐसे सन्त यहाँ पधारे।

मुमुक्षु :- कुदरती आज टेपमें ऐसा आया कि हमें केवलज्ञान समीप ही है।

समाधान :- स्थानकवासीमें सब (कहते थे), गुरुदेवके आसपास केवलज्ञान चक्कर लगाता है।

मुमुक्षु :- चालीस साल पहले।

समाधान :- संप्रदायमें सब कहते थे। उनको कानजीमुनि कहते थे। केवलज्ञान उनके आसपास चक्कर लगाता है। स्थानकवासीमें सब साधु कहे, मुनि कहे, सब कहते थे। स्थानकवासी संप्रदायमें उनके जैसे कोई साधु ही नहीं थे।

मुमुक्षु :- अत्यंत उल्लासके साथ ऐसा शब्द आया। गुरुदेवके प्रवचनमें उस वक्त तो इतने लोग बोटादमें (आते थे)।

समाधान :- लोग गलीमें बैठ जाते थे। शास्त्रोंके अर्थ करना, एक पंक्तिमेंसे कितने अर्थ निकलते थे। स्थानकवासी संप्रदायमें श्वेतांबरके शास्त्र हो तो एक शब्दमेंसे कितना निकलता, उन्हें कितना चलता था। एक अधिकार हो तो...

मुमुक्षु :- अलौकिक शक्ति...

समाधान :- उतना वाणीमें निकला, उन्हें ज्ञानमें... श्रुतकी लब्धि। एक शब्दमें चौदह ब्रह्माण्ड खड़ा कर दे ऐसी (वाणी)। भगवानकी वाणीमें दिव्यध्वनिमें सब आये, वैसे उनके एक शब्दमें सब आ जाता था। चारों पहलूसे आता था।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-११५

समाधान :- .. निश्चय और उसमें व्यवहार साथमें गौण होता है। जो अकेला व्यवहार ग्रहण करता है, उसका फल संसार है। अनादि कालसे जीवने अकेला ग्रहण किया है। और वह व्यवहार यथार्थ नहीं है। अकेली बाह्य दृष्टि, अकेली क्रिया, वह सब उसने अकेला ग्रहण किया है। अन्दर द्रव्यको ग्रहण नहीं किया है। अकेली भेद पर दृष्टि, अकेली परिणामों पर दृष्टि, स्वभाव ग्रहण नहीं किया है। जो असल वस्तु भूतार्थ है, जिसमेंसे स्वभाव प्रगट होता है, जो असल मूल स्वरूप है उसे ग्रहण किये बिना मुक्तिकी पर्याय प्रगट नहीं होती। स्वानुभूतिकी दशा उसे ग्रहण किये बिना नहीं होती। इसलिये द्रव्यदृष्टि मुख्य है। उतना तो जीवने बहुत बार ग्रहण किया है। चरणानुयोग आदि। .. मुख्य हो उसे संसारका फल नहीं आता, उसे तो वीतरागता होती है। जिसकी दृष्टि द्रव्य पर हो (उसे)। परन्तु जिसकी दृष्टि द्रव्य पर नहीं है, उसे संसारका फल है।

मुमुक्षु :- सादि अनन्त काल पर्यंत परिपूर्ण शुद्ध पर्यायोंका कारण दे ऐसा द्रव्य दृष्टिमें लेना है कि निष्क्रिय द्रव्य?

समाधान :- जिसकी दृष्टि द्रव्य पर है,.. जिसमें पर्यायें प्रगट होती हैं, ऐसा द्रव्य। लक्ष्यमें वह लेना है। परन्तु उसकी दृष्टि उस वक्त परिणाम पर नहीं है। वह तो सामान्य पर है। उसकी दृष्टि सामान्य पर है। परन्तु वह द्रव्य ऐसा है कि वह द्रव्य परिणामवाला है। सर्वथा परिणाम रहित वह द्रव्य नहीं है।

मुमुक्षु :- परिणाम नहीं है, परन्तु परिणामका कारणभूत शक्तिरूप सामर्थ्य लेकर द्रव्य बैठा है।

समाधान :- हाँ। परिणामवाला द्रव्य है। परिणाम बिनाका द्रव्य नहीं है। अनन्त गुण और अनन्त पर्यायकी शक्ति-सामर्थ्यवाला जो द्रव्य है, उसे लक्ष्यमें लेना है। उसकी दृष्टि परिणाम पर नहीं है। उसकी दृष्टि निष्क्रिय द्रव्य पर है। परन्तु उसमें द्रव्य सर्वथा निष्क्रिय नहीं है, परिणामवाला द्रव्य है। वह उसे ज्ञानमें होना चाहिये। उसकी दृष्टि द्रव्य पह होनेके बावजूद, उसे ज्ञानमें होना चाहिये कि द्रव्य परिणामवाला द्रव्य है। द्रव्य अकेला कूटस्थ द्रव्य नहीं है। अकेला कूटस्थ हो तो यह संसार कैसा? उसकी मोक्षकी पर्याय प्रगट हो, परिणाम जो पलटते हैं वह सब परिणाम है। निष्क्रिय द्रव्य

यानी द्रव्यमें कोई परिणाम ही नहीं होते हैं, ऐसा द्रव्य नहीं है।

वीतराग हो जाय, केवलज्ञान हो जाय तो भी द्रव्य तो परिणामी रहता है। द्रव्य तो.. उसमें उसके अनन्त गुण परिणमन करते रहते हैं। उसका ज्ञान सादिअनन्त काल परिणमता रहता है। एक समयमें लोकालोकको जाननेवाला ज्ञान सब जानता रहता है। उसका आनन्दका गुण परिणमता रहता है। परिणामी स्वभाव तो परिणमता ही रहता है। परिणाम बिनाका द्रव्य नहीं है। तो सुखका वेदन किसे? सुखका वेदन किसे? ज्ञानका जाननेका (कार्य)। गुण स्वयं कार्य न करे तो गुण कैसा? ज्ञान जाननेका कार्य न करे तो उसे ज्ञान कैसे कहें? आनन्द आनन्दका कार्य न करे तो आनन्द कैसे कहें? चेतन चेतनका कार्य न करे तो उसे चेतन कैसे कहें?

उसके जो लक्षण हैं, उसका कार्य-उसका परिणाम न हो तो वह गुण कैसा? वह पर्याय कैसी? वह द्रव्य कैसा? बिलकुल परिणाम बिनाका द्रव्य हो तो। स्वानुभूतिकी पर्याय वह भी पर्याय है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें झुलते मुनिराज, वह भी पर्याय है। उसकी दृष्टि द्रव्य पर है। सामान्य पर दृष्टि है, परन्तु वेदन तो पर्यायका होता है। श्रेणि चढते हैं, केवलज्ञान होता है, वह सब परिणाम हैं।

मुमुक्षु :- दृष्टिके विषय जितना ही द्रव्य अथवा तो एकान्त उतनी ही वस्तु है, ऐसा नहीं मानता।

समाधान :- अनन्त गुण और अनन्त पर्यायका सामर्थ्यवान द्रव्य है। पर्याय उसके लक्ष्यमें नहीं है, गुणभेद लक्ष्यमें नहीं है, भेद पर दृष्टि नहीं है। सामान्य पर दृष्टि है। परन्तु द्रव्य ऐसा सामर्थ्यवान है, ऐसा उसे ज्ञान होना चाहिये। दृष्टि उसके अस्तित्व पर है। अस्तित्व परन्तु कैसा अस्तित्व है? परिपूर्ण सामर्थ्यवान, अनन्त गुण एवं अनन्त पर्यायका सामर्थ्य द्रव्यमें है, कि जो द्रव्य कोई अचिंत्य है। उसके परिणाम भी अचिंत्य है और द्रव्यकी शक्तियाँ भी अचिंत्य हैं। जो तर्कमें नहीं आ सकता ऐसा उसका स्वभाव है।

अनन्त काल व्यतीत हो तो भी जो खत्म नहीं होता। अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदरूप परिणमे तो भी उसमेंसे खत्म नहीं होता। जो बढ़ नहीं जाता, जो कम नहीं हो जाता, ऐसा अचिंत्य सामर्थ्यवान, जो तर्कमें नहीं आता ऐसा उसका सामर्थ्य है, ऐसा द्रव्य है। .. उसके ज्ञानमें ग्रहण होता है।

मुमुक्षु :- दृष्टिका विषयभूत द्रव्य सूक्ष्म पड़ता है।

समाधान :- दृष्टिका विषय द्रव्य है। वह सामान्य अस्तित्वको ग्रहण करती है। अस्त्वि वस्तु चेतन है, जो सत् स्वरूप, चेतनस्वरूप, ज्ञानस्वरूप ज्ञायक है उसका अस्तित्व ग्रहण करती है। परन्तु वह ज्ञायक कैसा है? कूटस्थ है ऐसा नहीं, कार्य करनेवाला ज्ञायक है। गुणरूप परिणमन करनेवाला ज्ञायक है। दृष्टि एवं ज्ञान दोनों साथ ही रहते हैं।

... अपने क्षेत्रमें रहकर पूर्ण लोकालोकको जाननेवाला, एक समयमें उतना सामर्थ्य रखता है। वैसा उसका ज्ञान कोई अचिंत्य है।

मुमुक्षु :- एक ओर ज्ञानकी भी अपार महिमा गायी जाती है और एक ओर दृष्टिके विषयभूत तत्त्व, उसकी भी अपार महिमा (गायी जाती है)।

समाधान :- दृष्टिका विषयभूत जो द्रव्य है, उस द्रव्यमें अनन्त सामर्थ्य भरा है।

मुमुक्षु :- दृष्टि, वेदान्त कहता है ऐसे तत्त्वकी और ज्ञान, जैनदर्शन कहता है ऐसे तत्त्वका?

समाधान :- दृष्टि एवं ज्ञान दोनों साथमें होते हैं। एकान्त दृष्टि... यह वेदान्त कहते हैं ऐसा एकान्त तो है नहीं। इसलिये अनेकान्त (स्वरूप है) अतः वेदान्त नहीं है। परन्तु जैसी यथार्थ वस्तु है वैसी ही दृष्टि और जैसी वस्तु है वैसा ज्ञान, उसका नाम सम्यक् मार्ग है। सम्यक् एकान्त और सम्यक् ... वेदान्तकी दृष्टिसे एकान्त ग्रहण करे, उसके साथ ज्ञान होता ही नहीं है। दृष्टि और ज्ञानका सुमेल है। एकान्त शून्य या एकान्त कूटस्थ, वह सब तो एकान्त हो जाता है।

दृष्टि स्वयंको ग्रहण करे। ज्ञान साथमें है वह दृष्टि ही अलग है। वेदान्त कहता है ऐसी दृष्टि नहीं है। ... दृष्टिका कार्य अलग है। यह तो सम्यक् दृष्टि है। वह अलग जातका कार्य करती है। .. विषय कहते हैं, बाकी तो दृष्टि एवं ज्ञानका सुमेल होनेसे उसका सब सम्यक् कार्य है।

मुमुक्षु :- पर्यायके विषय परसे गुरुदेव किस प्रकार द्रव्यदृष्टि पर ले जाना चाहते हैं?

समाधान :- द्रव्य पर दृष्टि कर। जो पर्याय है उसकी कर्ताबुद्धि तू छोड़ दे। परद्रव्यके साथ जो तेरी कर्ताबुद्धि है, वह कर्ताबुद्धि छोड़, ऐसा गुरुदेवको कहना है। जो पर्याय परिणमनेवाली है वह परिणमती है। तू कर्ताबुद्धि छोड़। परद्रव्यका कर सकता हूँ, दूसरेमें फेरफार कर सकता हूँ और दूसरेका स्वामी बनकर उसका फेरफार करना चाहे, उसकी स्वामीत्वतबुद्धि और कर्ताबुद्धि तोड़कर तू तेरे द्रव्य पर दृष्टि कर, तू तेरा जो द्रव्य है उस पर दृष्टि कर।

जो पर्यायें परिणमती हैं, उसका तू कर्ता नहीं है, ऐसा कहना चाहते हैं। कर्ताबुद्धि छुड़ाते हैं। परन्तु क्रमबद्ध है वह पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। क्रमबद्धको पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध होता है। जो पर्याय परिणमनेवाली हो वह परिणमती है, परन्तु जो स्वकी ओर स्वयं पुरुषार्थ करता है, स्वभाव ओर पुरुषार्थ करता है, उस पुरुषार्थके साथ क्रमबद्ध जुड़ा है। परन्तु जो स्वरूपकी प्राप्ति होती है, स्वभावकी, केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है उसमें पुरुषार्थ साथमें जुड़ा है। पुरुषार्थ बिनाका अकेला क्रमबद्ध नहीं होता।

स्वयं द्रव्य पर दृष्टि करे। तू कर्ताबुद्धि छोड़। तो वह ज्ञाता हो जाय। फिर उसकी

जो पर्यायें परिणमनेवाली होती हैं, वह परिणमती है। परन्तु पुरुषार्थ तो स्वयंको द्रव्यदृष्टि करनेका पुरुषार्थ साथमें होता है। द्रव्यदृष्टि तो तुझे ही करनी है। जैसा बनना होगा बनेगा, ऐसा करनेसे पुरुषार्थ (नहीं होता)। ऐसे कोई अपनेआप द्रव्यदृष्टष्टि नहीं हो जाती। पुरुषार्थ करे तो द्रव्यदृष्टि होती है। इसलिये क्रमबद्ध, अंतरका जो क्रमबद्ध है वह पुरुषार्थके साथ जुड़ा हुआ है। बाकी परद्रव्यका कर्ता तो स्वयं हो नहीं सकता। वह कर्ताबुद्धि छुड़ाते हैं। तू पुरुषार्थ कर तो जो पर्यायें परिणमनेवाली हैं वैसे परिणमती है। वह तो पर्याय है, परन्तु द्रव्यदृष्टिसे कर्ताबुद्धि छुड़ाते हैं। गुरुदेवको यह कहना है। तू कर्ताबुद्धि छोड़। परन्तु पुरुषार्थके साथ क्रमबद्ध जुड़ा हुआ है।

क्रमबद्ध ऐसा नहीं है कि उसे पुरुषार्थके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है। भगवानने जैसा देखा वैसा होगा। तो भगवानने जैसा देखा होगा अर्थात् भगवानने जिसका पुरुषार्थ देखा है। भगवानने पुरुषार्थ बिना अपनेआप हो जायगा ऐसा नहीं देखा है। अतः जो आत्मार्थी होता है उसकी दृष्टि तो पुरुषार्थ पर होती है। परन्तु परपदार्थ ओरकी तेरी कर्ताबुद्धि छोड़ दे। तू परका कुछ नहीं कर सकता, परन्तु तेरे द्रव्य पर दृष्टि करके तेरी परिणतिकी गति बदलनी वह तो पुरुषार्थकी बात है। वह बिना पुरुषार्थ होता नहीं। गुरुदेवने तो बहुत तर्क किये हैं। गुरुदेवने तो अनेक प्रकारसे उसका आशय (स्पष्ट किया है)। पुरुषार्थ तो गुरुदेव मुख्य कहते थे। गुरुदेवने ही सब समझाया है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव उसमें साथमें ऐसा लेते हैं कि क्रमबद्ध कहनेपर जो सर्वज्ञने देखा है (वैसे होगा), तो सर्वज्ञकी सत्ताका स्वीकार है, वह कैसे?

समाधान :- सर्वज्ञको माना। जो क्रमबद्ध नहीं मानता है, वह सर्वज्ञको नहीं मानता। सर्वज्ञको नहीं माना, परन्तु स्वयं जो द्रव्यदृष्टि करता है, उसने ही सर्वज्ञको माने हैं। भगवानने जो देखा है वैसा होगा, भगवानने देखा वैसा होगा, उसका जो स्वीकार करे वह स्वयं ज्ञाता हो जाय। ऐसा कहना है। सर्वज्ञका सम्बन्ध उसके (साथ है)।

सर्वज्ञको किसने माना है? जो ज्ञाता हो जाय उसने सर्वज्ञको माना है। भगवानको मानता नहीं है, जो स्वयं (ऐसा मानता है कि) मैं कर सकता हूँ, मुझसे सब होता है। भगवानने जैसा देखा (वैसा होगा)। ज्ञाताबुद्धि-तू ज्ञायक हो जा। ज्ञायक हो जाय उसीने भगवानका स्वीकार किया है।

गुरुदेव तो द्रव्यदृष्टि परसे क्रमबद्ध कहते थे। जिसने द्रव्यदृष्टि की उसीने क्रमबद्ध माना है, दूसरे किसीने माना ही नहीं। जिसने द्रव्यदृष्टि की उसने सर्वज्ञको माना, जिसने द्रव्यदृष्टि की उसने क्रमबद्ध माना। दूसरे जो बोलते हैं उसने क्रमबद्ध माना नहीं।

मुमुक्षु :- उसका अर्थ यह हुआ न कि परद्रव्यमें तेरा पुरुषार्थ चल नहीं सकता। आत्मा अपने दर्शन, ज्ञान द्वारा पुरुषार्थ कर सकता है। स्वमें करे, परमें कर नहीं सकता।

समाधान :- परमें स्वयं नहीं कर सकता है, अपना पुरुषार्थ स्वयं कर सकता है। स्वयंका पुरुषार्थ स्वयं करता है। उसमें सहजपने दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी पर्याय प्रगट होती है। स्वयं द्रव्य पर दृष्टि करे। आत्मार्थीकी पुरुषार्थ पर ही दृष्टि होती है। फिर कोई कहता है, पुरुषार्थ होनेवाला होगा तो होगा। उसे होगा ही नहीं, जिसे ऐसी भावना हो उसे।

पुरुषार्थ करनेवालेको पुरुषार्थ पर दृष्टि होती है कि मैं पुरुषार्थ करुँ। मैं पुरुषार्थ करुँ। मैं द्रव्य पर दृष्टि करुँ, ऐसी उसकी भावना होती है। उसीमें क्रमबद्ध होता है। उसीमें सहज पर्यायें प्रगट होती हैं। पुरुषार्थ और सहज, दोनोंका सम्बन्ध है। सिर्फ सहजसे नहीं होता है, पुरुषार्थ साथमें सहज जुड़ा होता है।

मुमुक्षु :- अपने द्रव्यका पुरुषार्थ कैसे?

समाधान :- अपने द्रव्यमें पुरुषार्थ... परिणति पर ओर गयी है, राग-द्वेषका स्वामीत्व माना है, स्वयं संकल्प-विकल्प (करता है), विभाव सो मैं, विभाव मेरा स्वभाव, ऐसा माना है। द्रव्यको स्वयं पहचानता ही नहीं है। इसलिये द्रव्यको पहचाने। मैं ज्ञायक हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसे स्वयं अपने द्रव्य पर दृष्टि करे। अपने द्रव्यको पहचाने। अनादिसे द्रव्यको कहाँ पहचाना है। इसलिये द्रव्य ओर उसे दृष्टि बदलनी है।

यह चैतन्य सो मैं हूँ और यह विभाव सो मैं नहीं हूँ। यह चैतन्य शुद्धात्मा निर्विकल्प तत्त्व सो मैं हूँ। ऐसी उसकी दृढ़ प्रतीति, उस पर उसकी दृष्टि स्थापित करता है। पूरी परिणति पलट जाती है। दृष्टि यानी मात्र देखनेकी दृष्टि ऐसा नहीं, पूरी ज्ञायककी परिणति उसकी पलट जाती है। उसे भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो जाती है। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे उसकी पूरी भेदज्ञानकी धारा हो जाती है। पूरी ज्ञायककी परिणति प्रगट हो जाती है, द्रव्य पर दृष्टि करनेसे। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें (होते हैं)। आंशिक लीनता होती है। उसकी ज्ञायककी धारा-ज्ञाताकी धारा प्रगट हो जाती है, द्रव्य पर दृष्टि करनेसे। अनादिसे द्रव्य पर दृष्टि ही कहाँ करता है।

गुरुदेवने तो अनेक प्रकारसे चारों ओरसे अनेक जातका गुरुदेवने समझाया है। निश्चय और व्यवहार, अनेक जातका स्पष्ट करके समझाया है। गुरुदेवका तो परम उपकार है। भेदज्ञानकी धारा प्रगट होती है। उसमें उसे स्वानुभूति होती है, द्रव्य पर दृष्टि करनेसे। उसे पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। स्वयं द्रव्य ही है, उसमें दृष्टि क्या करनी? दृष्टिने द्रव्यको पहचाना कहाँ है? अनादिसे द्रव्यको पहचाना नहीं है। दृष्टि तो पर ओर है।

मुमुक्षु :- आपने दो दिन पहले कहा था कि पुरुषार्थ करनेकी भावना भी रहे और कर्तृत्व आये नहीं।

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थकी भावना रहे उसे कर्ताबुद्धि नहीं होती। मैं कर्ता होकर

कुछ नया करता हूँ, ऐसी कर्ताबुद्धि उसे नहीं होती। पुरुषार्थकी धारा, अपनी ओर पुरुषार्थ चलता है, भावना रहती है। कर्ताबुद्धि उसे नहीं होती। उसकी परिणति गति (स्वरूपकी ओर चलती है)। जो यथार्थ सत् स्वरूपको प्रगट करना चाहता है, उसमें उसे जूठा आता नहीं। उसे यथार्थता (होती है)।

मुमुक्षु :- परका अकर्ता। अपने जो स्वाभाविक भाव हैं, दर्शन, ज्ञान, चारित्र उन भावोंका कर्ता कहलाता है न?

समाधान :- हाँ, अपने स्वभावका कर्ता है। विभावका अकर्ता है।

मुमुक्षु :- आत्मामें ऐसा कोई अकर्ता नामका कोई गुण अथवा स्वभाव हो सकता है कि जो अपनी ज्ञानपर्याय न करे, दर्शनपर्याय न करे, सहज हो।

समाधान :- द्रव्य पर दृष्टि करनेसे मैं अपने स्वभावका कर्ता हूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं होता। स्वयं एक सामान्य पर दृष्टि रखता है। उसमें कर्ता आदि किसी पर उसकी दृष्टि नहीं है। एक सामान्य तत्त्व पर उसकी दृष्टि स्थापित कर देता है। सहज स्वभावसे परिणति हो वैसे दृष्टि स्थापित करता है। परन्तु वह सर्वथा एकान्त नहीं है। स्वयं अपने स्वभावका कर्ता है।

मैं कर्ता हूँ, ऐसा भेद करके अपने स्वभावमें ऐसी दृष्टि स्थापित नहीं करता कि मेरे स्वभावका कर्ता हूँ। एक सामान्य पर दृष्टि रहती है। ऐसा भेद विकल्प नहीं रहता। परन्तु स्वयं स्वभावका कर्ता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-११६

समाधान :- .. भवका अभाव होनेका मार्ग बताया है कि भव ही प्राप्त न हो, शरीर ही प्राप्त न हो। और आत्मा अन्दरसे अपना आनन्द अपनेमेंसे प्रगट हो। ऐसा मार्ग बताया है। बाहर आनन्द खोजने जाना नहीं पड़े। अंतरमेंसे ज्ञान और आनन्द प्रगट हो, बाहर खोजने जाना नहीं पड़े, ऐसा मार्ग बताया है। किसीका आश्रय लेना पड़े नहीं, शरीरका आश्रय लेना पड़े नहीं।

जैसे सिद्ध भगवान अपने आश्रयसे आनन्दमें रहते हैं, वैसा मार्ग बताया है। अपने स्वभावमें आनन्द है। परन्तु बाहर खोजता रहता है, इसलिये उसे शान्ति नहीं मिलती, अशान्ति रहती है। मार्गकी श्रद्धा हो तो उसे आधार रहे कि इस मार्गसे जाया जाता है। मैं पुरुषार्थ नहीं कर सकता हूँ, परन्तु मार्ग तो यह है। तो उसे आधार रहता है। बाकी तो कितने ही मार्ग खोजनेके लिये, इससे मोक्ष होगा, ध्यानसे मोक्ष होगा, या इससे मोक्ष होगा, ऐसे गोते खाते हैं। गुरुदेवने तो दृढ़ता आये ऐसा मार्ग (बताया है)। मार्ग तो यही है। करना स्वयंको बाकी रहता है वह स्वयंकी क्षति है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवका सुना है तो बाहरमें इतनी शान्ति रही, यहाँ आ गये। आपकी इतनी श्रद्धा, तो उतनी शान्ति रही। वांचन, विचार कम है, फिर भी..

समाधान :- उतनी अन्दर श्रद्धा और उतनी अपूर्वता लगे तो शान्ति रहे। नहीं तो दूसरे लोगोंको तो कितनी आकुलता होती है।

.. मन तो ऐसा है। श्वेतांबरमें (आता है), मनडुँ किम ही न बाझे, कुन्थुजिन मनडुँ किम ही न बाझे, ज्यम ज्यम जतन करीना राखूँ त्यम त्यम अळगुं... ऐसा साधु लिखते हैं। यशोविजय। कुन्थुजिन मनडुँ किम ही न बाझे। ऐसे मनको स्वयं,... वह मन होने पर भी स्वयंकी मन्दता है। मनको भी स्वयं बदल सकता है। उस मनको बदल-बदलकर सब मुनि अन्दर आत्मामें लीन हुए। मनको बदल नहीं सकते ऐसा नहीं है।

अनादि कालका अभ्यास है तो मन खींचकर ले जाय तो भी अपनी डोर अपने हाथमें रखे तो मन उसे बदल नहीं सकता। (स्वयं) मनसे बलवान है। मन जोरदार है तो आत्मा उससे अधिक बलवान है। अनन्त बल आत्मामें है। मनको बदललनेकी

शक्ति, अनन्त शक्ति आत्मामें है। बदल सकता है। जैसे अशुभभावमेंसे शुभभावमें आता है। जैसे यह लौकिक संसारके भावको बदलकर जिनेन्द्र देवके, गुरुदेवके, शास्त्रोंके विचार बदल सकता है। वैसे, मैं आत्मा हूँ, ऐसे बदल सकता है। अपने भावोंको बदले जा सकते हैं। मन हो तो, मनसे जोरदार आत्मा है। अनन्त शक्तिवान है। मनको वश करके अनन्त जीव मोक्ष पधारे हैं। तो भी जिज्ञासु हो वह भी उसकी शक्ति अनुसार कर सकता है। ... तो कोई मोक्ष नहीं जाते। आत्मामें अनन्त शक्ति है।

समाधान :- .. पुण्य बन्धता है। सेवा, दया, दान आदि सब हो तो उससे पुण्य बन्धता है, मोक्ष नहीं होता, भवका अभाव नहीं होता। भव वैसे ही चालू रहते हैं। करुणा, सेवा, दया, दान (करे तो) अच्छा भव मिले, देवलोक मिले या मनुष्य भव मिले। बाकी उससे अन्दर आत्मामें शान्ति हो ऐसा उससे नहीं होता। अंतरकी शान्ति जो आत्मामेंसे आनी चाहिये, वह शान्ति उसमेंसे नहीं आती। सेवा करे, करुणा करे, सब करे, परन्तु अंतरमें स्वयं देखे तो स्वयंको आकुलता दिखाई देती है। अंतरमें आत्मामेंसे जो शान्ति प्रगट होनी चाहिये, वह इन बाह्य भावोंसे नहीं होती। मुमुक्षुको करुणा होती है, दया होती है, दान होता है, सेवा (होती है)। परन्तु उस सेवासे मोक्ष नहीं हो जाता। या सेवामें धर्म नहीं होता, पुण्य होता है।

मुमुक्षु :- धर्म नहीं होता।

समाधान :- धर्म नहीं होता। शान्ति अंतरमेंसे प्रगट होनी चाहिये। खरे समय पर जो शान्ति अन्दरसे आनी चाहिये, वह तो आत्माको पहचाने तो खरे समय पर आत्मामेंसे शान्ति आवे। मैं आत्मा शाश्वत हूँ, उसमेंसे जो शान्ति आवे वह (यथार्थ है)। खरा समय आवे तब वह सेवा, कुरुणा आदि कुछ उसे साथ नहीं देते। वह तो उसे पुण्यबन्ध हुआ उतना। बाकी उसने अंतरमें यदि आत्माको पहचाना हो तो अन्दर भेदज्ञान करके शान्ति हो। बाकी शान्ति नहीं होती। उससे अनुकूलताएँ मिले। वह भी फले तब।

देव-गुरु-शास्त्रके भी शुभभाव है। परन्तु वह सब शुभभाव, पंच परमेष्ठीको साथमें रखनेका, वह मार्ग बताते हैं, उसमेंसे मार्ग समझमें आता है। वह बात अलग है। इसमें कोई मार्ग जानने नहीं मिलता। मात्र शुभभाव है। कोई व्यक्तिको दुःखी देखकर दया हो। वैसे करुणाके शुभभाव होते हैं। बाकी उसमेंसे आत्माका मार्ग नहीं मिलता। मार्ग आत्माका नहीं है, मुक्तिका मार्ग नहीं है। खरे समयमें वह अंतरमें शान्ति नहीं देता। खरे समयमें शान्ति (तो) आत्माको पहचाने, भेदज्ञान करे, स्वानुभूति करे तो अंतरमेंसे शान्ति आवे। वह कोई शान्ति नहीं देते। प्रवृत्तिका मार्ग वह कोई मुक्तिका मार्ग नहीं है। अन्दर भेदज्ञान करके आत्माको पहचाने वही मुक्तिका मार्ग तो वही है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- हाँ, अंतरसे निवृत्त हो तो होता है। वह कोई मुक्ति मार्ग नहीं है। अन्दरसे आधार मिलता है कि अपने मार्ग तो नहीं भूले हैं, मार्ग तो यही है।

समाधान :- ... सुलभ ही है। करना स्वयंको है। स्वयं करता नहीं है इसलिये दुर्लभ हो गया है। स्वयं पुरुषार्थ नहीं करता है। अपने समीप ही है, दूर नहीं है। आत्मा स्वयं ही है और अपनेमेंसे ही प्रगट होनेवाला है, बाहर कहीं लेने जाना नहीं पड़ता कि बाहरसे आये तो हो, बाहरका इंतझार करना पड़े ऐसा तो नहीं है। अपने पास और अपने स्वभावमें ही पड़ा है। उस पर दृष्टि करे, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करे तो उसीमेंसे प्रगट हो सके ऐसा है। परन्तु स्वयं करता नहीं है। पुरुषार्थ नहीं करता है।

विभावकी एकत्वबुद्धि तोड़कर स्वयं अपनेमें जाय, ज्ञायकताको अन्दरसे स्वयं ग्रहण करके उस रूप परिणमन करे तो स्वयं ही है। अपनेमेंसे प्रगट हो सके ऐसा है। द्रव्य तो अनादिअनन्त शक्तिमें सब भरा है, परन्तु प्रगट स्वयंको करना है। बारंबार उसीका प्रयास, उसीका मनन करता रहे। छाछको बिलोनेसे, मक्खनको बिलोनेसे मक्खन ऊपर आता है। स्वयं बारंबार उस भेदज्ञानका अभ्यास करता रहे। स्वयं भिन्न हुए रहे नहीं, परन्तु स्वयं करता नहीं है।

... बाहर सब देखनेका उसे (कुतूहल रहता है)। जबतक वह नहीं होता, तबतक उसकी महिमा, उसके विचार, मनन सब करता रहे। अंतरमें उग्रता किये बिना होता नहीं। अनादिका अभ्यास (है)। बाहरमें एकत्वबुद्धिको ऐसी दृढ़ की है, उसे तोड़कर अंतरमें जाना उसके लिये स्वयं उग्रता (नहीं करता है)। बारंबार अभ्यास करके भी उग्रता नहीं करता है, कोई करे अंतर्मुहूर्तमें उग्रता करता है और कोई करे तो अभ्यास करते-करते उसे उग्रता (होती है)। लेकिन उग्रता तो स्वयंको ही करनी है।

आनन्दका सागर स्वयं है। स्वयंको ही करना पड़ता है। अपनी जो मान्यताएँ हैं, वह मान्यताएँ जूठी है और सत्य दूसरा है। उसके सामने स्वयं ही अपनी मान्यताको तोड़कर अंतरमें स्वंयको पलटना है। बाहरसे संप्रदायका फेरफार (हो गया)। गुरुदेवने तो सच्चा मार्ग प्रकाशित करके संप्रदायका फेरफार करके स्वयं मार्ग प्रकाशित किया। गुरुदेवने किया ऐसा ग्रहण किया, लेकिन अंतरमेंसे पलटकर अपने हाथकी बात है। बाहरसे संप्रदायका बन्धन तोड़ा। अंतरमें विकल्पकी एकत्वबुद्धिका बन्धन स्वयंने ही खड़ा किया है उसे तोड़ना अपने हाथकी बात है। वह करनेका है।

... जो भवस्थिति होगी वैसा होगा। आत्मार्थीको ऐसा अभिप्राय नहीं होता। मैं करुँ तो होता है। मेरे पुरुषार्थकी क्षति है। मार्ग बताया। अंतरमें तो स्वयंको ही करना बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- उग्रता अन्दरमें ही करनी है। उसका कुछ बाहरमें नहीं दिखता।

समाधान :- बाहर कुछ नहीं दिखता। अन्दरसे उसे विभावका रस कम हो जाय। अंतरमेंसे चैतन्यकी महिमा आये। बाहरकी जो महिमा लगे, वह अन्दर अपनी परिणतिमें फेरफार होता है। वह कुछ बाहरसे नहीं दिखता। अंतरकी पूरी दुनिया अलग है। अंतरमें जाय, विकल्प टूट जाय और चैतन्य ग्रहण हो और स्वानुभूति हो, उसकी दुनिया ही अलग हो जाती है। उसे उसका आत्मा ही कहे कि, बस, यही आत्मा और यही स्वानुभूति और यही स्वभावका आनन्द। उसका आत्मा ही अन्दरसे कहे। उसीका आत्मा जवाब देता है। यही मुक्तिका मार्ग और यही स्वानुभूति और यही स्वभावका आनन्द। सब यही है।

उसे मार्ग हाथमें आ गया। एक अंशसे पूर्णता पर्यंतका मार्ग उसके हाथमें आ गया है। पूर्ण कैसी हो और अंश कैसा हो, उसकी साधना कैसी हो, पूर्ण द्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत कैसा है? और उसका अंश प्रगट हो उसकी दशा कैसी हो? उसकी बीचकी साधनाकी दसा कैसी हो और पूर्णता कैसी होती है? वह सब एक अंश सम्यग्दर्शन जिसे प्रगट हुआ वह सब जान लेता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- गुरुदेवने बहुत दिखाया है। यह मार्ग अच्छा है। उनकी वाणीमें अकेला आत्मा ही दिखाते थे कि देख, आत्मा ऐसा है। ऐसा महिमावंत चमत्कारिक आत्मा है। ऐसा गुरुदेव कहते थे। परन्तु उसकी महिमा स्वयंको आनी चाहिये न। ऐसा चमत्कारिक कोई आश्चर्यभूत अद्‌भुत आत्मा है। अनादिसे स्वयंने पहचाना नहीं है। तू अन्दर जाकर देख तो तुझे दिखेगा। ऐसा गुरुदेव तो बहुत कहते थे। उनकी वाणी ऐसी थी कि दूसरोंको आत्माका आश्चर्य लगे, ऐसा कहते थे। वाणीमें ऐसा आता था। दुकान पर जाय तो सब माल नहीं दिखाता, उसका थोड़ा नमूना ही दिखाता है।

मुमुक्षु :- वहाँ तो दिखता है, यहाँ तो कुछ दिखता ही नहीं है।

समाधान :- गुरुदेव तो उनकी वाणीमें बताते थे। वह तो अमुक प्रकारसे वाणीमेंसे ग्रहण हो ऐसा है। बाकी तो अन्दरसे स्वयंको अंश प्रगट हो तो स्वयंको ज्ञात हो। उसकी स्वानुभूति प्रगट करे तो। गुरुदेव उसके लक्षणसे पहचान करवाते थे कि ऐसा ज्ञानलक्षण आत्मा कोई अद्‌भुत है, स्वानुभूतिमें उसका अनुभव होता है, आनन्दस्वरूप है, चमत्कारिक है यह सब कहते थे। सम्यग्दर्शन कोई अलग वस्तु है। चौदह ब्रह्माण्डके भाव पी गया है। वह कोई अद्‌भुत है, ऐसा सब कहते थे। उसका किसीसे मेल नहीं है। जगतमें देवलोकका सुख या चक्रवर्तीके सुखके साथ कोई मेलन हीं है। कोई अनुपम है। अनेक प्रकारसे गुरुदेव कहते थे।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- करना स्वयंको पड़ता है। वह तो बाहरकी वस्तु है। यह तो अंतरमेंसे स्वयंको प्रगट करना है। अपने पास ही है, कहीं लेने नहीं जाना है। लेकिन स्वयं जागता नहीं है। आँख खोलकर देखता नहीं। निद्रामें सोया है। आँख खोलकर देखे तो दिखे न? आँख बन्द करके (बैठा है), देखता नहीं।

मुमुक्षु :- मतलब आँख बन्द रखकर दिखाईये-दिखाईये ऐसे माँगता रहता है।

समाधान :- हाँ, आँख बन्द रखी है, देखता नहीं है। अन्दर ज्ञानचक्षु खोले तो दिखे न? महिमा नहीं है, उतनी जरूरत नहीं लगी है।

समाधान :- ... बाहर टहेल लगाये, अन्दर ज्ञायकका द्वार पर टहेल लगाये। ज्ञायकके द्वार .. आनन्दघन प्रभुके घर द्वार, रटन करुँ गुणधामा। प्रभुके द्वार पर, हे ज्ञायक! हे गुणसागर ज्ञायकदेव! हे गुणका सागर! तू अनन्त गुणकी महिमासे भरा, तीन लोकका नाथ। तू सबको जाननेवाला आनन्दका सागर (है)। तेरे द्वार पर मैं टहेल लगाता हूँ। तेरे द्वार क्यों नहीं खोलता? तो द्वार खालना ही पड़े। हे ज्ञायकदेव! जिनेन्द्र देव मेरे समीप आये, गुरु मेरे समीप आये, शास्त्र मेरे समीप आये। सब मेरे समीप हैं, एक तू मेरे समीप न आये, ऐसा कैसे बन सकता है? बने ही नहीं।

ज्ञायकदेव तेरी साधना की ऐसे जिनेन्द्र देव, तेरी साधना की ऐसे गुरुदेव और तेरे श्रुतका चिंतवन करे, वह सब मेरे समीप आ गये। गुरु श्रुत श्रवण करवाते हैं, वह सब मेरे समीप आये। जिसकी आराधना जिनेन्द्र देव, गुरु कर रहे हैं, वह मेरे समीप आये और तू स्वयं मेरे साक्षात् समीप क्यों नहीं आता? तू स्वयं ही है। तेरे समीप आये बिना रहे ही नहीं। आयेगा ही।

... अन्दर प्रगट हुए बिना रहेगा ही नहीं। उसे काल लागू नहीं पड़ता। कालको निकाल देना। चाहे जब भी हो, कालको निकाल देना। ज्ञायकदेव कभी भी..

मुमुक्षु :- अपना ही है।

समाधान :- अपना ही है, कहीं ढूँढने नहीं जाना पड़ता। जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र अमुक पुण्य हो तो मिलते हैं। वह पुण्य मिल जाता है, और स्वयं समीप है वह नहीं मिले, यह कैसे बने? ऐसा पुण्य बन्धते हैं और जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र मिल जाते हैं, तो ज्ञायकदेव स्वयं ही है और वह न मिले? स्वयंको खोजने स्वयं जाता नहीं है और मिलता नहीं है। स्वयं प्राप्त न हो ऐसा होता है?

जैसे गुरुके सामने, देवके सामने टकटकी लगाता है, वैसे यहाँ स्वयंकी ओर टकटकी लगाकर देखना। ... टकटकी लगाकर देखना। ... उसे देखता ही रहे, तू ज्ञायकदेव ऐसा! तू ज्ञायकदेव ऐसा!! जैसे जिनेन्द्र देवकी मुद्राके सामने, गुरुकी मुद्राके सामने टकटकी लगाता है, वैसे ज्ञायक सन्मुख टकटकी लगाये तो वह समीप आ जाय। .. आनन्दघन

प्रभुके घर द्वारे, रटन करुँ... रटन करते-करते समीप न आ जाय, ऐसा कैसे बने?

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- सब अपने सर ले-ले। कुछ भी हो, अपने पर... कोई भूल हो तो कहे, मेरी भूल है। सबकी भूल अपने सर ले-ले। और पहलेसे ... यहाँ गुरुदेवका इतना किया।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कुछ भी कहे, बात खत्म। कोई विकल्प नहीं। उनकी विकल्प तोड़नेकी बहुत शक्ति थी।

समाधान :- पण्डितोंके मुँह बन्द कर दे। उन्हें भाई मतलब उनके सर पर, अतः गुरुदेवको कोई बोझ नहीं था।

मुमुक्षु :- वैसे तो सब जानते हैं, परन्तु आखरी दिनका भाव है...

समाधान :- एक आधाररूप गुरुदेव.. शास्त्र पढ ले, आत्मधर्म पढ ले। कितने शास्त्र पढ ले। पूजामें, भक्तिमें, स्वाध्यायमें सबमें नियमितता। हर जगह आये। अर्पणतासे सब सेवा की।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-११७

समाधान :- ... सब अपेक्षाएँ अलग आती है। आचार्यदेव कहते हैं न? यह चैतन्यका वैभव कैसा अद्‌भुत आश्चर्य उत्पन्न करे ऐसा है। एक ओरसे देखें तो एक दिखे, अनेक दिखे, नित्य दिखे, अनित्य दिखे, ऐसे विरोधी धर्म दिखे। तो भी वह आत्मामें ऐसा विरोध नहीं है। वह वस्तुभेद नहीं है, वह लक्षणभेद है। वह ऐसे विरोधी धर्म नहीं है कि आत्मामें साथ नहीं रह सके।

जैसे प्रकाश और अन्धकार साथमें नहीं रह सकते। जड़ और चैतन्य विरोधी धर्म है। ऐसे विरोधी धर्म नहीं है। आत्माका ज्ञानलक्षण है वह चेतनमय है। चेतनके चेतनमय गुण हैं। उसका नित्य स्वभाव और अनित्य स्वभाव है। नित्य तो द्रव्य अपेक्षासे। और पर्याय अपेक्षासे क्षण-क्षणमें पलटता है, परन्तु द्रव्यका नाश नहीं होता। ऐसा अनित्य स्वभाव नहीं है कि द्रव्यका नाश हो जाय। तो दोनोंमें विरूद्धता आये। द्रव्यका नाश नहीं होता, परन्तु पर्याय पलटती है। स्वयं स्वयंकी अपेक्षासे सत्‌ है। परकी अपेक्षासे असत्‌ है। अपनी अपेक्षासे असत्‌ नहीं है। ऐसे विरोधी धर्म ऐसे नहीं है कि उसे ऐसा विरोध आवे कि परस्पर साथमें रह नहीं सके। ऐसा नहीं है। परन्तु ऐसे अनेक धर्म आत्मामें रहे हैं कि वह धर्म ऐसे अचिंत्य और आश्चर्यकारी है। आत्मा स्वयं एक, उसमें अनेक धर्म। वह स्वयं अनन्त धर्मकी मूर्ति है। एक होनेपर भी अनन्त और अनन्तमें एक। नित्य और उसके साथ अनित्य। ऐसे अनेक जातके धर्मसे (संपन्न) आत्मा ऐसी अनेकान्तमय मूर्ति है कि जो आश्चर्यकारी है।

कितने ही धर्म तो वचनमें आते नहीं। वचनसे अगोचर (हैं)। कुछ वचनमें आते हैं, तो भी उन सबका विरोध नहीं है। उन सबका विरोध मिटाकर सम्यग्दृष्टि साधना साधते हैं। वह ऐसा विरोध नहीं है कि साधनामें अडचन आवे या जिसमें साधन कर नहीं सके। एक गुण हो वहाँ पर्याय नहीं हो सकती, द्रव्य हो वहाँ पर्याय नहीं हो सकती, ऐसा विरोध नहीं है। पर्याय अंश है और आत्मा अंशी उसकी अपेक्षाएँ अलग हैं। दोनोंकी अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न समझे तो उसका विरोध मिट जाता है। इसलिये वह विरोध मिटाकर सम्यग्दृष्टि साधना साधते हैं। और वह उसकी साधना अविरूद्धपने साधते हैं। उसमें विरोध नहीं आता है।

अनेकान्तमय मूर्ति है। स्वानुभूतिमें उसे अनेकान्तमय मूर्ति उसकी स्वानुभूतिमें आती है। लेकिन कितने ही धर्म वचनमें नहीं आते, कितने ही वचनसे अगोचर है कि ज्ञायकको, द्रव्यको दृष्टिमें लिया तो उसके गुणभेद, पर्यायभेद सब ज्ञान जानता है। उसका विरोध मिटाकर साधना साधते हैं। स्वयं द्रव्य पर दृष्टि करके, द्रव्य अपेक्षासे पूर्ण है, परन्तु पर्यायमें अभी अधुरापन है, उसे ज्ञान जानता है। इसलिये चारित्रकी साधना बाकी रहती है। अतः चारित्रकी साधना बारंबार साधकर अंतरमें लीन होकर, विभावको टालता हुआ स्वरूपको साधतो हुआ आगे बढ़ता है। विरोध मिट जाता है। अनेकान्त ज्ञान ऐसा है कि विरोध मिट जाता है।

भगवानकी वाणी ऐसी स्याद्वाद वाणी कि जो विरोध मिटानेवाली है। ऐसी सरस्वती देवी भगवानकी वाणी, जिससे विरोध मिट जाता है। भगवानकी वाणीमें चौदह ब्रह्माण्डका स्वरूप आता है। यदि वह यथार्थ समझे और अपने स्वभावसे समझे। ज्ञान भी वैसा है और वाणी भी वैसी है। उससे विरोध मिट जाता है। यदि यथार्थ समझे तो।

वह आता है न? भूतार्थ स्वभावको अपने द्रव्यके समीप जाकर देखे तो भूतार्थ है और पर्यायके समीप जाकर देखे तो (अभूतार्थ है)। द्रव्य भूतार्थ और पर्याय अभूतार्थ द्रव्यकी अपेक्षासे। और पर्यायके समीप जाकर देखे तो पर्याय भूतार्थ दिखती है। परन्तु द्रव्यकी अपेक्षासे वह अभूतार्थ है। उसकी अपेक्षाएँ समझे तो विरोध मिट जाता है। ऐसा विरोध मिटाकर साधना साध सकता है, यथार्थ समझे तो।

विभाव अपना स्वभाव नहीं है। और यह ज्ञानादि जो हैं, वह अपना स्वभाव है। मात्र उसमें अनेकता और एक, ऐसा विरोध है। परन्तु वह विरोध ऐसा नहीं है कि जहाँ एक हो, वहाँ अनेक रह न सके, ऐसा नहीं है। लक्षणभेद है। लक्षणभेद, पर्यायभेद ऐसा भेद है। दूसरा भेद नहीं है। और एक द्रव्यके अन्दर समा जाता है। द्रव्य स्वयं द्रव्य अपेक्षासे एक और उसमें धर्म अनन्त, गुण अनन्त। वह तो द्रव्यकी एक विभूति है। उसकी पर्यायें अनन्त, वह सब द्रव्यकी विभूति है। द्रव्य ऐसा नहीं होता कि जो विभूति रहित हो। जो गुण रहित द्रव्य हो तो उसे द्रव्य ही नहीं कहते। ऐसी अनन्त विभूतिसे भरपूर भरा हुआ द्रव्य है।

उसे अपने विचारसे नक्की करे, नयसे प्रमाणसे नक्की करे। वह नक्की करता है वही उसकी स्वानुभूतिमें... यद्यपि स्वानुभूति अपूर्व है, परन्तु स्वानुभूतिमें उसे प्रतीत करता है, उस प्रकारकी स्वानुभूतिमें उसका नाश नहीं होता है। अनेकान्तमय मूर्ति स्वयं शाश्वत ही है। उसका विरोध मिटाकर साधना साध सकते हैं।

मुमुक्षु :- सब द्रव्यके ही धर्म है? विरोधी भी द्रव्यका ही धर्म है।

समाधान :- द्रव्यके ही धर्म हैं। एक वस्तुके धर्म हैं। और उसमें रह सकते हैं।

मुमुक्षु :- वस्तुको उपजानेवाले।

समाधान :- वस्तुको उपजानेवाले, वस्तुको टिकानेवाले, वस्तु अनेक धर्मकी मूर्ति है। आश्चर्यकारी वस्तु है।

मुमुक्षु :- एक प्रश्न है कि निर्विकल्प अनुभूतिके समय ज्ञानगुण परिणमन तो करता ही है, तो उस वक्त आत्माके बंधारणके द्रव्य-गुण-पर्याय निर्विकल्पपने ज्ञात होते हैं या सबका एकरूप अनुभव होता है?

समाधान :- ज्ञानगुण परिणमन करता है वह परिणति तो मौजूद है। निर्विकल्पतामें यदि अन्दर जाय और द्रव्य, गुण, पर्याय नहीं रहते हो तो ज्ञानगुणका परिणमन भी नहीं रहता। परन्तु जो स्वयं विकल्प छूटकर निर्विकल्प होता है... पहले नय, प्रमाणसे नक्की किया। द्रव्य, गुण, पर्याय वस्तुमें है। वह विकल्पके साथ नक्की किया। अन्दरमें जाता है वहाँ निर्विकल्पमें भी द्रव्य-गुण-पर्याय सब वस्तुमें मौजूद है। परन्तु एकमेक यानी द्रव्यसे वस्तु भिन्न नहीं है। वस्तु गुण और पर्याय भिन्न नहीं है। भले एकमेक है, परन्तु उसके लक्षण, उसकी पर्यायें जैसा है वैसा ज्ञानमें ज्ञात होता है। वस्तुका स्वरूप निर्विकल्पपने जैसा है वैसा ज्ञात होता है। वह कोई भिन्न वस्तुकी भाँति ज्ञात नहीं होते। परन्तु एक ही वस्तुका स्वरूप (है)।

जैसे अग्नि और उष्णता। उष्णता अग्निसे भिन्न नहीं है, शीतलता पानीसे भिन्न नहीं है। वह सब दृष्टान्त है। शक्करमें श्वेतपना, मीठास आदि है। वह उससे भिन्न नहीं है। परन्तु वैसे गुण उसमें है। वैसे यह सहजपने हैं। इसलिये विकल्प छूटनेसे पहले विकल्पसे नक्की किया परन्तु फिर विकल्प छूट गये तो भी स्वरूप तो वैसा ही रह जाता है और स्वरूप ज्ञानमें ज्ञात भी होता है।

ज्ञान स्वयंको जानता है, अभेदको जानता है, ज्ञान भेदको जानता है, ज्ञान अनन्त गुणोंको, ज्ञान अपनी पर्यायोंको, सबको जाननेका ज्ञानका स्वभाव है। एकमेक यानी एक वस्तुमें सब है। उस अपेक्षासे एकमेक है। परन्तु गुणभेद, पर्यायभेद, लक्षणभेद और अंश-अंशीका भेद है, पर्याय पलटती है, वह सब जैसा है वैसा ज्ञानमें ज्ञात होता है। एकमेक यानी उसमें गुण और पर्याय नहीं रहते हैं, ऐसा नहीं है। ज्ञानकी जो पर्याय, ज्ञानका जाननेका स्वभाव और गुण जो परिणमन करते हैं। आत्मामें अनन्त भाव रहे हैं। वह जैसा है वैसा ज्ञान सबको जानता है।

अनुभूतिके समय कोई अपूर्व अनुभूति (होती है)। जो विकल्पसे नक्की किया उससे उसकी अनुभूति भले अलग और अपूर्व है, तो भी गुण-पर्यायका नाश नहीं हो जाता। उस अनुपम अनुभूतिमें उसके गुण-पर्याय जैसा है वैसा उसे अद्भुतरूपसे जैसा है वैसा ज्ञात होता है। एकमेक है, द्रव्य अपेक्षासे भिन्न-भिन्न नहीं है। एकमेक अनुभूति होनेपर

भी उसके लक्षण जैसा है वैसा, उसका अंश-अंशीका भेद, उसकी पर्यायें परिणमन क्षण-क्षणमें आत्माके गुणके जो तरंग होते हैं, वह सब जैसा है वैसा अद्भुत और आश्चर्यकारी उसे ज्ञानमें ज्ञात होता है। उसमेंसे वह निकल नहीं जाते। अभेद यानी उसमें गुण ही नहीं है और पर्यायें नहीं हैं, ऐसा नहीं है।

सिद्ध भगवानमें सब रहता है। अनन्त गुण और पर्याय। सिद्ध भगवान वीतराग हो गये तो भी उसमें अनन्त गुण, अनन्त पर्याय (जो हैं) उन सबको ज्ञान जानता है। स्वानुभूतिमें भी, उसका ज्ञान पूर्ण नहीं है, परन्तु उसकी स्वानुभूतिमें जो आता है, उसकी अनन्त अगाधता जो है, उसके गुण, पर्याय जैसे हैं वैसा ज्ञात होता है। आकुलतारूप-विकल्परूप नहीं, परन्तु निर्विकल्परूपसे स्वानुभूतिमें जैसा है वैसा ज्ञात होता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप ही है।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेवको कोटि-कोटि वन्दन। पूज्य बहिनश्री! एक प्रश्न है। सम्यग्दृष्टि जीवको ज्ञायककी डोर हाथमें आ जानेके बाद उपयोग बाहर जाय तो सम्यक्त्वको कोई हानी पहुँचती है? उपयोग बाहरमें हो तब भी क्या निरंतर शान्तिका वेदन होता है? निर्विकल्प अवस्था नहीं है, उसका कोई खेद होता है? उपयोगकी ऐसी अटपटी बात आप समझानेकी कृपा करें।

समाधान :- सम्यग्दृष्टिको जो ज्ञायकदशा प्रगट हुयी है, वह ज्ञायक उसे ग्रहण हुआ है। निरंतर ज्ञायककी दशा ही वर्तती है। वह ज्ञायककी दशा जिनेन्द्र देवके उपदेशसे और गुरुके उपदेशके निमित्तसे स्वयंके पुरुषार्थसे जो प्रगट होती है, वह ज्ञायककी दशा उसे निरंतर वर्तती है। ज्ञायक जिसे ग्रहण हुआ, सो वह ग्रहण हो गया। निरंतर उसे ज्ञायककी दशा है। उपयोग बाहर जाय तो भी उसे ज्ञायक छूटता नहीं। उपयोग अन्दर जाय तो भी उसे ज्ञायक तो छूटता ही नहीं। अन्दर जाय तब तो ज्ञायकका परिणमन है। बाहर आये, उपयोग बाहर आये तो भी ज्ञायक तो ग्रहणरूप ही रहता है।

उसकी दृष्टिको कोई दिक्कत, उसकी ज्ञायकताको दिक्कत नहीं आती। उसकी अस्थिरताको दिक्कत आती है। उसकी स्थिर परिणति, अभी स्थिरता पूर्ण नहीं है इसलिये अस्थिरताका दोष है। परन्तु उसे ज्ञायककी जो दृष्टि प्रगट हुयी, उस दृष्टिमें उसे थोड़ा भी दोष नहीं लगता। और शान्तिका वेदन होता है। जैसी एकत्वबुद्धिकी आकुलता थी, वैसी आकुलता नहीं है। उसकी अस्थिरताकी आकुलताकी अलग बात है। बाकी अंतरमें उसे शान्तिका वेदन होता है, समाधिका वेदन है, उसे सुखका वेदन होता है। निर्विकल्प दशाका जो आनन्द होता है, वह आनन्द तो अलग ही है। वह तो अनुपम, कोई अपूर्व, कोई अलग ही जातका है, जिसे जगतकी कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। वह आनन्दकी दशा और चैतन्यकी दशा अलग होती है। तो भी उसे सविकल्प दशामें जो शान्तिका

वेदन होता है, वह ज्ञायककी शान्ति एवं समाधिका वेदन होता ही रहता है। उपयोग बाहर जाय तो भी उसे एकत्वबुद्धि नहीं होती। ज्ञायकता, प्रति समय उसे ज्ञायकता मौजूद ही रहती है।

जो ज्ञायक ग्रहण हुआ वह उसे छूटता नहीं है। जैसे घरमें खड़ा हुआ मनुष्य अपने घरको छोड़े बिना बाहर बात करे, घरमें खड़े रहकर बाहर बातचीत करे परन्तु अपना घर छूटता नहीं है। घर छोड़कर बाहर जाता ही नहीं। जो चैतन्यकी डोर हाथमें आयी, वह चैतन्यकी डोर उसे छूटती नहीं। उसकी परिणति बाहर ज्यादा नहीं जाती है। उसे मर्यादा रहती है। मर्यादाके बाहर, उपयोग मर्यादासे बाहर जाता ही नहीं है।

उसकी भेदज्ञानकी धारा निरंतर वर्तती है। मैं चैतन्य और यह विभाव है। विभावमें एकमेक होकर बाहर जाता ही नहीं। चैतन्यका घर वह छोड़ता ही नहीं। जब उपयोग अंतरमें जाय वह उसके हाथमें ही है। उसका मार्ग सरल हो गया है। जब उसे अपनी ओर परिणति आती है, तो निर्विकल्प दशा भी उसे अपने हाथमें है। परन्तु अस्थिरताके कारण उसकी भूमिका अनुसार उसे निर्विकल्प दशा होती है। घर तो उसका छूटता ही नहीं। चाहे जैसे प्रसंगमें ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायकका घर उसे छूटता नहीं। चाहे जैसा विकल्प आये या चाहे जैसे बाह्य प्रसंग, उदय आवे तो भी उसे ज्ञायकका ग्रहण, ज्ञायक तो छूटता ही नहीं।

घरमें खड़ा हुआ मनुष्य बाहर बातचीत करे या बाहरके कोई प्रसंगमें जाय तो भी वह घर छोड़कर बाहर नहीं जाता है। घरमें खड़ा हुआ मनुष्य जैसे बातचीत, लेनदेन करता है, वैसे वह घरमें खड़े-खड़े निरंतर घरमें ही-ज्ञायकके घरमें ही खड़ा है। मात्र उस घरमें लीनताकी, अस्थिरताकी क्षति है। इसलिये उसे किसी भी प्रकारका दृष्टिका दोष नहीं लगता है। उसे ज्ञायकतामें दोष नहीं आता है। परन्तु अस्थिरताका दोष उसे है। अभी अल्पता है। अल्पताके कारण वह समझता है कि निर्विकल्प दशा मेरी भूमिका अनुसार होती है। बाहरकी जो विकल्पात्मक दशा, जो अस्थिरता है, अस्थिरता (छूटकर) यदि लीनता अधिक हो तो निर्विकल्प दशा प्रगट होती है। अर्थात् जैसा अपना पुरुषार्थ उत्पन्न होता है, वैसे स्वरूपमें जम जाता है। लेकिन उसे वैसा एकत्वबुद्धिका खेद नहीं है। उसे भावना होती है, कहाँ केवलज्ञानीकी दशा, कहाँ मुनिओंकी दशा और कहाँ यह अधूरी दशा। बाहर जुड़ना हो जाता है। कहाँ चैतन्यकी अपूर्व आनन्दकी दशा, वह छूटकर बाहर जाना होता है। ऐसी भावना उसे होती है। उसे पुरुषार्थकी भावना होती है। परन्तु वह हठ नहीं करता। अपनी सहज परिणति (चलती है), पुरुषार्थ करता है, प्रमाद नहीं करता है। पुरुषार्थकी डोर हाथमें ही है। उपयोगको ज्यादा बाहर नहीं जाने देता। स्वरूपकी ओर डोरको खींँचता ही रहता है। ज्यादा बाहर जाये तो भी

ज्ञायकका जो ग्रहण हुआ, उसी ओर अपनी डोर खींचता ही रहता है।

चाहे जैसे बाह्य प्रसंग आवे, उसे बाह्य उदय, नोकर्मके उदय या भावकर्मके उदय, वह मर्यादाके बाहर नहीं जाता। उसे किसी प्रकारका भय नहीं है। कोई वेदनाका भय, कोई अकस्मात भय, ऐसा कोई भय उसे नहीं लगता है। मेरी ज्ञायककी परिणति मौजूद है, मुझे कोई नुकसान कर सके ऐसा नहीं है। अन्दर भावकर्ममें भी उसकी जो भूमिका है, उस प्रकारके विकल्प आते हैं। उसे मर्यादा छोड़कर कोई विकल्प नहीं है। वह मर्यादाके बाहर नहीं जाता। उसमें उसे उस प्रकारका भय नहीं है कि मेरा ज्ञायक छूट जायगा। क्योंकि उसके पुरुषार्थकी डोर हाथमें है।

ज्ञायकका घर ग्रहण किया सो किया, ज्ञायकरूप ही उसकी परिणति हो गयी है। उसकी दशा शरीरके साथ या विकल्पके साथ कहीं एकत्व नहीं होती। ज्ञायक, ज्ञायक और ज्ञायक, ज्ञायकमय ही उसकी परिणति रहती है। किसी प्रकारका उसे खेद, एकत्वबुद्धिका खेद नहीं होता। बाकी वीतराग होनेकी, मुनि बननेकी भावना रहती है। परन्तु उसकी दृष्टिको दोष नहीं लगता है, ज्ञायकतामें दोष नहीं लगता है।

मुमुक्षु :- लड़ाईमें भी ऐसी ही स्थिति होती है?

समाधान :- हाँ, लड़ाईके वक्त भी उसकी ज्ञायकता मौजूद है। ऐसे बाह्य प्रसंगमें खड़ा है कि राजका राग छूटता नहीं है, इसलिये इस लड़ाईमें जुड़ना पड़ता है। तो भी न्यायकी रीतसे लड़ाईके प्रसंगमें जुड़ता है। लेकिन ऐसा कहता है कि, अरे..! यह राजका राग छूटता नहीं है, इसलिये इसमें खड़ा हूँ। परन्तु ज्ञायकता छूटती नहीं। उसके राग-द्वेषके विकल्प मर्यादा बाहर जाते नहीं। उसकी परिणति वह स्वयं जानता है और जो उसे समझे वह जान सकता है। बाकी बाहरसे जो गृहस्थाश्रममें रहते हो, उसकी परिणति पहचाननी मुश्किल पड़ता है। क्योंकि चक्रवर्तीका राज हो, लड़ाईके प्रसंग हो, उसमें उसकी परिणति पहचाननी मुश्किल पड़ता है। परन्तु उसकी परिणति अंतरसे भिन्न ही रहती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ooo

ट्रेक-११८

मुमुक्षु :- छः द्रव्य, पंचास्तिकाय, नव तत्त्व, हेय-ज्ञेय-उपादेय तत्त्व, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य इत्यादिका ज्ञान सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिये जानना प्रयोजनभूत है? अथवा एक ध्रुव जीव स्वभावको जाननेसे मुक्ति मार्ग पर जा सकते हैं?

समाधान :- ज्यादा शास्त्रज्ञान हो तो जाननेमें आये ऐसा नहीं है। मूल प्रयोजनभूत तत्त्व जाने। ध्रुव और द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, आत्मा, उसके गुण-पर्याय, स्व-परका भेदज्ञान जो प्रयोजनभूत है कि जो मोक्षमार्गमें प्रगट होता है, उसे प्रयोजनभूत हो उतना जाने तो भी मोक्षमार्ग प्रगट होता है। उसमें ज्यादा जाने तो होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु प्रयोजनभूत तत्त्व तो जाने। शिवभूति मुनि कुछ नहीं जानते थे, परन्तु उन्हें यह दाल भिन्न और छिलका भिन्न, बाई धो रही थी उसमेंसे दाल भिन्न और छिलका भिन्न। वैसे मेरा आत्मा भिन्न और विभाव भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान करे। स्व-परका भेदज्ञान करके अंतरमें लीन हो गये। परन्तु स्व-परका भेदविज्ञानमें मैं यह द्रव्य हूँ और यह विभाव है। मैं अनादिअनन्त शुद्धात्मा हूँ। और यह पर्याय है, उस पर्यायमें विभाव होता है। लेकिन वह मेरा स्वभाव नहीं है।

स्वभाव-विभावका भेदज्ञान करके अंतरमें ऊतर गये। उसमें सब आ जाता है। जीवतत्त्व, आस्रव, संवर, निर्जरा सब। आंशिक साधकदशा हुयी। विशेष पुरुषार्थ करे तो निर्जरा होती है और पूर्णता होनेसे मोक्ष होता है। इस प्रकार उसकी परिणतिमें ही सब आ जाता है।

तिर्यंच कुछ जानते नहीं, तो तिर्यंचको शब्द नहीं आते, परन्तु स्व-परका भेदविज्ञान होता है कि मैं यह आत्मा हूँ और यह विभाव है। स्वभाव-विभावका भेदज्ञान हो, उसमें मैं यह चैतन्य स्वभाव, ज्ञायक स्वभाव मेरा आत्मा, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। और वह मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। उसे भावमें सब आ जाता है। भेदविज्ञानमें। नाम नहीं आते हैं।

मैं यह ज्ञायक हूँ और यह विभावकी परिणति मेरे स्वभावमें नहीं है। ऐसे भेदविज्ञान करके ज्ञायकको ग्रहण करता है। और उस ज्ञायककी ग्रहणतामें आगे बढ़े, आगे जानेका पुरुषार्थ, ज्ञायककी दृष्टिको दृढ़ रखनेका पुरुषार्थ, संवर, अमुक स्वरूपाचरण चारित्र सब

उसमें आ जाता है। नव तत्त्वका सब उसमें आ जाता है। परन्तु उसे नाम नहीं आते हैं। परन्तु स्व-परका भेदज्ञान हो, उसमें नव तत्त्व उसकी साधकदशामें सब आ जाता है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र। यह दर्शन एवं ज्ञान, ऐसी स्वयंकी प्रतीत की, मैं यह चैतन्य ऐसे अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि गयी। और यह पर। विभाव पर और मैं स्व। उसमें ज्ञान स्व-परको जाने यह आ जाता है।

अपनी ओर लीनता करता है। उसमें आंशिक स्वरूपाचरण चारित्र आता है। इसलिये उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र (आ गया)। उसमें विशेष लीनताका प्रयत्न भी करता है। अतः उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्रके भेद भी उसमें आ जाते हैं। उसे नाम नहीं आते। कितने ही तिर्यंच पाँचवें गुणस्थानको प्रगट करते हैं। इसलिये उसकी विशेष लीनताको भी प्रगट करते हैं। उसमें चारित्रकी दशा (आ जाती है)। दर्शन, ज्ञान, चारित्रके भेद भी आ जाते हैं। अतः भेद क्या, अभेद क्या, साध्य-साधकका जो पंथ है वह उसे बिना नाम भी उसमें आ जाता है।

इसलिये अमुक प्रयोजनभूत ज्ञान होना चाहिये। ध्रुवको जाने, ध्रुवको यथार्थ जाना कब कहनें आये? कि ध्रुवको यथार्थ जाने उसके साथ उसके सब पहलू आ जाय, तो उसने यथार्थ ध्रुवको जाना है। मैं ज्ञायक ध्रुव हूँ और यह विभाव मैं नहीं हूँ। ऐसे उसके प्रयोजनभूत पहलू आ जाने चाहिये। अकेला ध्रुव यानी उस ध्रुवमें शुष्कतासे अकेला ध्रुव (आता हो कि) मेरेमें कुछ है ही नहीं। नहीं है यानी उसकी पर्यायमें भी नहीं है और पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, उसका कोई विवेक न हो तो उसने ध्रुवको यथार्थ ग्रहण नहीं किया है। ध्रुवमें सब पहलू आ जाने चाहिये।

ध्रुव, एक ज्ञायक ध्रुवमें सब आ जाता है। परन्तु वह यथार्थपने कब ग्रहण होता है? कि उसमें सब आ जाना चाहिये। तो यथार्थ ग्रहण किया है। दृष्टि, मैं ज्ञायक हूँ ऐसी दृष्टि सम्यक् कब कही जाय? कि उसके साथ ज्ञान भी सम्यक् (होता है)। ज्ञान जो विवेक करता है वह ज्ञानका विवेक और दृष्टि, दोनों सम्यक् हो तो उसे सम्यक् कहते हैं। परन्तु ज्ञान सम्यक् नहीं हो तो दृष्टि सम्यक् नहीं होती। और दृष्टि सम्यक् न हो तो ज्ञान भी सम्यक् नहीं होता। इसलिये उसमें सम्यक् हो तो एक ध्रुवको ग्रहण करे तो भी उसमें सब आ जाता है। परन्तु उसमें संक्षेपमें स्व-परका भेदज्ञान, द्रव्यदृष्टिपूर्वकका स्व-परका भेदज्ञान (होता है)। परन्तु वह भेदविज्ञान अकेला नहीं होता।

भेदज्ञान किसे कहते हैं? कि द्रव्यदृष्टिपूर्वक हो तो ही भेदज्ञान (कहलाता है)। भेद किससे करे? स्वयं स्वयंको ग्रहण करे तो भेद पड़े। स्वयंको ग्रहण किये बिना भेद होगा कैसे? मैं यह चैतन्य हूँ और यह नहीं हूँ, ऐसे स्वयंको ग्रहण किये बिना भेद होगा ही कैसे? यथार्थ भेदविज्ञान होता है उसमें द्रव्यदृष्टि भी आ जाती है।

जो भगवानको जाने वह स्वयंको जानता है। ऐसा सम्बन्ध है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाने, वह स्वयंके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानता है। स्वयंको द्रव्य-गुण-पर्यायको जाने वह भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। लेकिन द्रव्य-गुण-पर्यायमें सब संक्षेपमें आ जाता है।

अनादि कालसे मार्ग नहीं जाना है, उसमें निमित्त-उपादानका ऐसा सम्बन्ध है कि पहले एक बार भगवानकी वाणी अथवा कोई गुरुकी वाणी प्रत्यक्षपने मिल तब उसे अंतरमें अपूर्वता लगती है। करता है स्वयंसे, परन्तु उसमें ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध रहा है।

इस प्रकार एक ध्रुव ज्ञायकमें आ जाता है, परन्तु वह कब? कि सब पहलू, प्रयोजनभूत पहलू आ जाने चाहिये। पहलू आ जाते हैं। अकेला ध्रुव, रुखा ध्रुव हो जाय तो वह यथार्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- सब पहलू जाने बिना सीधा ध्रुव पर जाया भी नहीं जाता।

समाधान :- ऐसे सीधा नहीं जा सकता। पहलू भी, ज्यादा ज्ञान हो अथवा ज्यादा शास्त्र जाने, जाने तो अधिक लाभका कारण है, फिर भी न जाने तो संक्षेपमें स्व-पर भेदविज्ञानको जाने तो भी उसमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- प्रथम ध्रुव स्वभाव पर दृष्टि करनी, उसके बाद पहलू जानना, ऐसा कुछ नहीं?

समाधान :- लेकिन वह प्रथम ध्रुव पर जाय, उसे सब पहलू आ जाते हैं। लेकिन ध्रुवको जाना नहीं है, अन्दर विचारसे नक्की किये बिना, ज्ञानका व्यवहार बीचमें आये बिना नहीं रहता। ज्ञानसे विचार करे, मैं कौन? पर कौन? ऐसे विचार किये बिना ज्ञानसे विवेक किये बिना वह आगे नहीं बढ़ सकता। मैं ध्रुव ही हूँ, ऐसा विचार किया, ज्ञानसे नक्की किया तो भी बीचमें ज्ञान तो आ ही जाता है। दृष्टि एवं ज्ञान दोनों साथमें ही रहे हैं। दृष्टि रखूँ, ज्ञानको निकाल दूँ तो ऐसे नहीं निकलेगा। ज्ञानको निकाल दूँ तो अकेली दृष्टि नहीं रहती।

आत्मा अनन्त गुणसे भरा, अनन्त धर्मोंसे भरा है। उसमेंसे एकको ग्रहण करुँ, एकको निकाल दो तो वस्तुको साध नहीं सकते। उसमें दोनों प्रकारका लक्ष्य रहना चाहिये।

मुमुक्षु :- (दृष्टि) त्रिकाली द्रव्यके सिवा किसीको स्वीकारती नहीं। दृष्टि पर्याय है और पर्यायमें तो राग-द्वेष होते हैं।

समाधान :- दृष्टि पर्याय है, परन्तु वह ग्रहण करती है अखण्डको। दृष्टिकी पर्यायमें राग-द्वेष होते हैं, ऐसा नहीं है। दृष्टिकी पर्यायमें राग (नहीं होता है)। पर्याय ग्रहण करती है अखण्ड द्रव्यको। दृष्टि पर्याय है, परन्तु उसका विषय पूर्ण द्रव्य है। वह द्रव्यको

ग्रहण करती है। शाश्वत द्रव्यको ग्रहण करती है। राग-द्वेष तो विभाव पर्याय होती है उसमें राग-द्वेष होते हैं। दृष्टिकी पर्यायमें राग-द्वेष नहीं होते हैं। दृष्टिकी पर्याय भिन्न है और यह विभावपर्याय होती है वह भिन्न पर्याय है। दृष्टिकी पर्याय तो निर्मल है। चैतन्य पर दृष्टि गयी वह पर्याय निर्मल है। वह तो अखण्ड ध्रुव ज्ञायकको ग्रहण करती है।

मुमुक्षु :- एक प्रश्न है कि सम्यग्दर्शनमें जैसी भेदज्ञानकी धारा वर्तती है, उसी मार्गसे केवलज्ञान होता है? और केवलज्ञानका स्वरूप क्या है, यह समझानेकी कृपा कीजिये।

समाधान :- जो मार्ग सम्यग्दृष्टिका है, जो भेदज्ञान प्रगट हुआ, वही मार्ग आखिर तक रहता है। पहले जो जिज्ञासामें भावना करके, प्रयत्न करके, पुरुषार्थ करके जो सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ वह उसे अनादिकालसे जो दुर्लभ था, उसे पुरुषार्थ करके (प्रगट किया)। स्वभाव तो सुलभ है, परन्तु उसे अनादिकालसे एकत्वबुद्धिके कारण दुर्लभ हो गया था। वह जिसने पुरुषार्थकी भावना और पुरुषार्थ ज्ञायक ओरका बारंबार अभ्यास करके और देव-गुरु-शास्त्रके कोई अपूर्व निमित्तसे, देव-गुरु-शास्त्रका निमित्त तो कोई अपूर्व है, उससे स्वयं पुरुषार्थ करके सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ और जो ज्ञायकको ग्रहण किया, वह मार्ग जो है वही मार्ग आखिर तक है। बादमें उसे मार्ग सहज और सुगम हो जाता है। ऐसा दुर्घट नहीं है।

जो ज्ञायक ग्रहण हुआ, वह ज्ञायक ग्रहण हुआ उसमें लीनताकी कमी है। लीनता कम है। बाकी जो ज्ञायक ग्रहण किया वही ज्ञायक, वह ज्ञायक जो सम्यग्दर्शनमें है, वही ज्ञायक मुनिदशामें है, वही ज्ञायक, पूर्ण दशामें भी वही ज्ञायक है। ज्ञायक कोई दूसरा नहीं है। ज्ञायक जो ग्रहण किया, ज्ञायककी परिणति जो दृष्टिमें आयी वही ज्ञायक, वहीका वही है। परन्तु उसमें उसकी परिणतिकी लीनताकी कमी है, वह लीनता बढाता जाता है। शुद्धात्मप्रवृत्तिलक्षण, जो शुद्धात्माकी परिणति प्रगट की वही मुक्तिका मार्ग है। जो शुद्धात्माको ग्रहण किया, सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रममें है उसे लीनताकी (कमी है), जैसे मुनि लीन होते हैं, उतने वे लीन नहीं सकते हैं। सम्यग्दृष्टि अनेक प्रकारके विकल्प, अनेक प्रकारकी प्रवृत्तिमें पड़े होते हैं और मार्ग तो एक ही है।

मुनिदशामें, जो मार्ग सम्यग्दर्शनमें प्रगट हुआ वही मार्ग मुनिदशामें है। मुनि बारंबार स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। जो ज्ञायक ग्रहण किया, जो चैतन्यका घर ग्रहण किया था, उस घरमें बारंबार लीन हो जाते हैं, समा जाते हैं। और सम्यग्दृष्टिने ज्ञायकको ग्रहण किया है, बारंबार लीन नहीं जाते हैं, बाहर ज्यादा रहते हैं। मुनि बारंबार स्वरूपमें लीन हो जाते हैं, जम जाते हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। बारंबार स्वरूपमेंसे उन्हें बाहर आना भी मुश्किल पड़ता है। एक अंतर्मुहूर्तमें बाहर आते हैं

और फिरसे अन्दर चले जाते हैं। ऐसी दशा मुनिओंको प्रगट होती है।

मार्ग तो एक ही है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। केवलज्ञान भी उसी मार्गसे प्रगट होता है। मार्ग सरल है। उसे मार्ग सहज और सुगम हो गया है। श्रमणो, जिनो, तीर्थंकरो आ रीते सेवी मार्गने, सिद्धि वर्या ... निर्वाणनाथ.. बस, इसी मार्गसे मोक्ष है। आखिर तक एक ही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। केवलज्ञान होता है, उस केवलज्ञानकी तो क्या बात करनी। जैसा चैतन्यद्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत है, ऐसा चैतन्यद्रव्य उसे परिणतिरूपमें प्रगट हो गया। जो चैतन्यद्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत, उसके अनन्त गुण परिणमनरूप (हो गये), जो शक्तिमें थे, कितने ही गुण शक्तिमें थे वह सब प्रगट हो गये। सब खिल गये। इसलिये जैसा चैतन्यद्रव्य था, वैसी उसकी सब पर्यायें खील गयी।

केवलज्ञान एक समयमें लोकालोकको (जानता है)। वह ज्ञानसागर, स्वयं अपने स्वरूपमें लीन हो गये हैं। ज्ञायकमें लीन हो गये, आनन्दसागरमें लीन हो गये। अनन्त गुण खील गये। परन्तु उस ज्ञानकी दिशा स्वरूप ओर हो गयी। पूर्ण दिशा। और सम्यग्दृष्टिको अमुक प्रकारसे ज्ञायक सन्मुख (दिशा हो गयी है)। ये तो पूर्ण स्वरूप सन्मुख ही लीन हो गये। लीन हो गये बादमें सहजपने क्षयोपशम, ज्ञान जो क्षयोपशरूप था, अंतर्मुहूर्तमें काम करता था, वह केवलज्ञानीका ज्ञान एक समयमें बिना विचार किये, ज्ञेयको जाननेकी इच्छा बिना, उसे इच्छा भी नहीं, निरिच्छिकपने ज्ञानकी ऐसी शक्ति है, ज्ञान ऐसा सर्वज्ञ स्वभाव आत्माका एक समयमें पूरे लोकालोकको (जानता है)।

अनन्त द्रव्यका भूतकाल, वर्तमान, भविष्य ऐसे अनन्त-अनन्त द्रव्योंके गुण-पर्यायोंको उसके भिन्न-भिन्न अनन्त काल सब एक समयमें उसके ज्ञानमें आ जाता है। फिर भी अणुरेणवत् है। उसे बोझ नहीं होता। ज्ञानमें अणु कैसे पड़ा हो, उसकी भाँति। स्वयं अपनेमें डूबे हुए रहते हैं। ऐसा स्वपरप्रकाशक ज्ञान उसे खील जाता है। वह केवलज्ञान। उन्हें इच्छा भी नहीं है। स्वपरप्रकाशकज्ञानमें... पहले नाश नहीं हो जाता है, शक्तिमें होता है, वह सब प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! प्रश्न है कि आप वचनामृतमें फरमाते हो कि शुद्ध द्रव्य स्वभावकी दृष्टि करके पर्यायकी अशुद्धताको ख्यालमें रखकर पुरुषार्थ करना। तो अशुद्धताका पर्यायमें अनादिसे पक्ष तो किया ही है, तो आप उसका ख्याल न छूट जाय, ऐसा क्यों फरमाते हो?

समाधान :- वह तो अनादिकालसे जो किया है वह तो पक्ष किया है कि मैं तो अशुद्ध ही हूँ। द्रव्यको भूल गया है। और जो अशुद्धताकी पर्याय है, अशुद्धताकी पर्याय कि मैं अशुद्ध हो गया, रागी हो गया, द्वेषी हो गया, आत्मा तो कहीं दिखाई नहीं देता। इसलिये द्रव्य स्वरूपको भूल गया और एकान्त जो पर्याय परिणमती है,

उस पर्याय पर ही उसकी दृष्टि है। और एकान्तरूपसे आत्माको भूल गया है। और सिर्फ अशुद्धता-अशुद्धताको देखता रहता है, अशुद्धताकी अनुभूति करता है। अशुद्धताका पक्ष करता रहता है। आत्मा दिखता नहीं है। यह सब राग-द्वेष टाल दूँ। कैसे टालना उसका उसे कोई ख्याल नहीं है। द्रव्यको भूल गया है और अकेली पर्यायमें दृष्टि हो गयी है और एकान्त हो गया है। इसलिये वह पक्ष छोड़ देनेका आचार्यदेव कहते हैं।

अशुद्धताका पक्ष अनादिकालसे किया। एक शुद्ध स्वरूपका पक्ष कभी नहीं किया है। इसलिये उस अपेक्षासे है।

मुमुक्षु :- एकान्त..

समाधान :- हाँ, एकान्तकी अपेक्षासे है। अर्थात् ऐसा नहीं कहना है कि तेरी अशुद्धता पर्यायमें भी नहीं है, ऐसा आचार्यदेवको नहीं कहना है। आचार्यदेव (कहते हैं), द्रव्यदृष्टिसे तू शुद्ध है, उसे तू देख। तेरी शुद्धता तेरेमें भरी है। अशुद्धता तेरेमें घुस नहीं गयी है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! कहान गुरुदेवनुं हार्द समजावनार भगवती मातनो जय हो! जन्म जयंति मंगल महोत्सवनो जय हो!

ट्रेक-११९

मुमुक्षु :- करुणामूर्ति पूज्य भगवती माताको कोटि-कोटि वन्दन! बहिनश्री! एक प्रश्न है कि जीवका ज्ञान लक्षण जाननेसे लक्ष्य ऐसा आत्मा प्रसिद्ध होता है, ऐसा आगमवचन है। तो साथमें इन्द्रिय निग्रह, वैराग्यभाव, संसार प्रति विरक्ति इत्यादि भावोंकी आवश्यकता है या नहीं?

समाधान :- ज्ञानलक्षणसे ज्ञायक प्रसिद्ध होता है। ज्ञायक तो ज्ञानलक्षणसे ही प्रसिद्ध होता है। शास्त्रमें आता है और गुरुदेव भी बारंबार कहते थे कि ज्ञानलक्षण आत्माका असाधारण लक्षण है। उससे ज्ञायक प्रसिद्ध होता है। ज्ञानलक्षणसे ज्ञायक प्रसिद्ध होता है। परन्तु वह ज्ञायकको ग्रहण करता है, तो विरक्तिके बिना ज्ञायक ग्रहण नहीं होता है। ज्ञानलक्षणसे ज्ञायकको ग्रहण करे वहाँ विरक्ति आये बिना ज्ञायक ग्रहण होता ही नहीं। इसलिये उसे ग्रहण करनेका मुख्य उपाय ज्ञानलक्षणसे ज्ञायक ग्रहण होता है। ज्ञानलक्षणसे ज्ञायककी प्रसिद्धि होती है।

वैराग्य बीचमें आये बिना, विभावसे भिन्न होकर ज्ञायकको ग्रहण करने जाय तो उसे वैराग्य आये बिना ज्ञायक ग्रहण होता ही नहीं। ज्ञायककी महिमा आये बिना, ज्ञायकका लक्षण जाने बिना ज्ञायक ग्रहण नहीं होता है। विभावसे विरक्त हो, संसारसे विरक्त हो तो ही ज्ञायक ग्रहण होता है। ऐसा उसे सम्बन्ध है। ज्ञानलक्षणसे ज्ञायकको ग्रहण करे, उसमें विरक्ति आये (बिना नहीं रहती)। सचमुचमें ग्रहण करे तो विरक्ति आये बिना ज्ञायक ग्रहण होता ही नहीं। कोई बोलनेमात्र अथवा शुष्कतासे ग्रहण करे उसकी बात नहीं है। शुष्कतासे वैराग्य नहीं हो और ज्ञायक ग्रहण हो गया, ऐसा मान ले तो यथार्थ नहीं है।

आचार्यदेव तो यथार्थ बात करते हैं कि ज्ञानलक्षणसे ज्ञायक प्रसिद्ध होता है। आत्माका असाधारण लक्षण ज्ञानलक्षण है। ज्ञानलक्षणसे ही ज्ञायक प्रसिद्ध होता है। परन्तु विरक्ति आये बिना ज्ञायक ग्रहण होता ही नहीं। वह बीचमें आता ही है। जिसे ज्ञायक ग्रहण करना हो उसमें विरक्ति बीचमें आती ही है। बन्धो तणो स्वभाव जाणी, आत्माका स्वभाव जानकर बन्धसे विरक्त हो तो कर्ममोक्ष होता है। इस तरह जैसे चारित्रदशामें लीनतामें भी विरक्ति आती है, वैसे पहले ज्ञायक ग्रहण करनेमें भी विरक्ति होती है।

चारित्रमें विशेष विरक्ति होती है। यह भी जो अन्दर विभावसे विरक्त होता है, वह विरक्ति आये बिना ज्ञायक ग्रहण होता ही नहीं।

सम्यग्दर्शनमें अमुक अंशमें विरक्ति है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी कषाय छूट जाता है। अतः विरक्ति आये बिना ज्ञायक ग्रहण नहीं होता। संसार प्रति उदासीनता, शुभाशुभ भावोंसे, सबसे विभावसे विरक्ति आये बिना ज्ञायक ग्रहण होता ही नहीं, ऐसा उसे सम्बन्ध होता है। परन्तु मूल लक्षण ज्ञायक ग्रहण करनेमें ज्ञानलक्षणसे ग्रहण होता है। वह मात्र वैराग्य करता रहे और हेतु ज्ञायकको ग्रहण करनेका न रखे तो ज्ञायक ग्रहण नहीं होता है।

वैराग्य उसने अनन्त कालमें बहुत बार किया, परन्तु ज्ञायकको ग्रहण करनेका लक्ष्य नहीं था तो ज्ञायक ग्रहण नहीं हुआ। वैराग्यके साथ ज्ञायकको ग्रहण करनेका हेतु होना चाहिये। हेतु हो तो वह ज्ञानलक्षणसे, ज्ञायक तो ज्ञानलक्षणसे ग्रहण होता है। परन्तु उसके साथ वैराग्य आदि सब होता है। यथार्थ ज्ञायक कब ग्रहण होता है? विभावसे विरक्ति हो तो। सर्वथा विरक्ति बादमें होती है। परन्तु आंशिक विरक्ति और प्रतीतमें तो आ जाता है। विरक्ति आये बिना ज्ञायक ग्रहण ही नहीं होता। ऐसा उसे सम्बन्ध है।

जहाँ ज्ञायक ग्रहण हुआ तो उसके साथ विरक्ति, ज्ञान, ज्ञायककी महिमा वह सब साथमें आ ही जाता है। और सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। उसके साथ सब गुण एक ज्ञायकको ग्रहण करनेसे, उसकी प्रतीत, उसका ज्ञान, उसकी लीनता आंशिक लीनता है। उसकी दिशा बदल जाती है। सर्व गुणोंकी दिशा स्वरूपकी ओर मुड़ जाती है। जो पर सन्मुख थी वह दिशा ज्ञायक ओर हो जाती है। सर्व गुणांश सम्यग्दर्शन। सब गुण उसके साथ प्रगट होते हैं। मुख्य लक्षण ज्ञायकको ग्रहण करनेका ज्ञानलक्षण है। ज्ञानलक्षण बिना ज्ञायक ग्रहण नहीं होता। वह उसका मूल असाधारण लक्षण है। ज्ञायकमें अनन्त गुण हैं, परन्तु वह ज्ञानलक्षणसे ही प्रसिद्ध होता है। उसीसे प्रसिद्ध होता है।

ज्ञायक ग्रहण होनेके बाद उसकी स्वानुभूति भी उसीसे होती है। उसके बिना,.. मूल बीजको ग्रहण करके फिर उसमेंसे वृक्ष होता है। परन्तु मूलको यदि ग्रहण न करे तो वृक्षमें फल, फूल आदि बादमें (पनपता है)। वह बीजको ग्रहण करे, बीचमें पानी दे तो वह वृक्ष होता है। ऐसे मात्र वैराग्यमें रुक जाय तो ज्ञायक ग्रहण नहीं होता। उसका हेतु ज्ञायकको ग्रहण करनेका होना चाहिये। परन्तु ज्ञायक अकेला रुखा ग्रहण नहीं होता। उसे विभावसे विरक्ति हो, यह सब आकुलता है, यह मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव ज्ञायक है। ऐसे विरक्ति आये बिना ज्ञायक ग्रहण नहीं होता। इस ओर छूटे तो यहाँ आये और इसे ग्रहण करे तो वह छूटे, ऐसा सम्बन्ध है। शुभाशुभ दोनों

भावोंसे उसे विरक्ति होती है। देव-गुरु-शास्त्र साथमें होते हैं। उसे शुभभाव जबतक होते हैं तबतक होते हैं, परन्तु उसे हेयबुद्धिसे आते हैं। देव-गुरुका साथ उसे छूटता नहीं है। परन्तु वह शुभभाव आकुलतारूप है। इसलिये उसे सर्व प्रकारसे मैं तो निर्विकल्प शुद्धात्मा हूँ। इसी तरह उसे ग्रहण होता है। हेयबुद्धिसे सब आता है।

देव-गुरु-शास्त्र उसे निमित्तमें होते हैं, उपादान अपना होता है। देव-गुरु-शास्त्र, मुनि हों तो भी उन्हें विकल्प आता है, शास्त्र रचते हैं, वह साथमें होते हैं। परन्तु विरक्ति तो पहले आंशिक और बादमें अधिक विरक्ति (होती है)। विरक्तिका साथ तो होता ही है, विरक्ति तो होती ही है।

मुमुक्षु :- तबतक अध्यात्ममें प्रवेश ही नहीं होता।

समाधान :- अध्यात्ममें प्रवेश नहीं होता। उसकी संसार ओरकी रुचि छूटे तो ज्ञायक ग्रहण होता है। रुचि तो छूटनी चाहिये न। रुचि, बाहरकी एकत्वबुद्धि, बाहरकी पूरी-पूरी रुचि हो और ज्ञायक ग्रहण करनेकी बात करे तो ऐसे ज्ञायक ग्रहण नहीं होता। रुचि अंतरमेंसे छूट जानी चाहिये। यह कुछ मुझे नहीं चाहिये। यह सब दुःखमय है, यह सब आकुलतामय है। पूरा संसार दुःखमय है। सुख एवं शान्ति मेरे आत्मामें है। यह विभाव, विकल्पकी जाल दुःखमय है। विकल्पकी जालमें उसे कहीं शान्ति नहीं लगती। ऐसी विरक्ति अंतरमेंसे आनी चाहिये, तो ज्ञायक ग्रहण होता है। रुचि तो छूट जानी चाहिये। और स्वभाव ओर रुचि जागृत होनी चाहिये।

रुचि छूटे और अपना अस्तित्व ग्रहण करनेका ध्येय न हो तो ग्रहण नहीं होता है। वैराग्य करे, परन्तु रुचि अस्तित्व ग्रहण करनेका ध्येय होना चाहिये, ध्येय साथमें होना चाहिये। उसमेंसे ज्ञायक ग्रहण करे, उसमेंसे ही उसे भेदज्ञानकी धारा, सबकुछ उसीमेंसे होता है। उतना कल्याणरूप, परमार्थभूत है जितना यह ज्ञान है। ज्ञान अर्थात् ज्ञायक है। उतना परमार्थरूप सत्यार्थ कल्याणरूप है, यह ज्ञान है। यह ज्ञान उसे शुष्क नहीं लगता, ज्ञान भरपूर भरा है। ज्ञान ज्ञायक पूरा महिमासे भरा है। ज्ञान अर्थात् मात्र जानपना नहीं। ज्ञायक स्वतः ज्ञानस्वरूप है। ज्ञायक पूरा अनन्त महिमासे भरा ज्ञायक अनन्त गुणसे भरा है। ज्ञान यानी मात्र जानना ऐसा अर्थ नहीं है। ज्ञायक ग्रहण करनेमें उसे जितना परमार्थरूप, सत्यरूप, कल्याणभूत हो तो यह ज्ञायक है-ज्ञान है वही है।

अब उसे प्रगट कैसे करना? कि ज्ञायकको ज्ञानलक्षणसे (ग्रहण करना)। ज्ञानलक्षणसे ग्रहण करने कैसे जाय? कि विरक्ति आये बिना ग्रहण नहीं होता। दोनोंका सम्बन्ध है। ग्रहण करनेका मुख्य लक्षण ज्ञानलक्षण है।

मुमुक्षु :- चारित्रसे पहले शुरूआत करनी ऐसा कुछ नहीं है।

समाधान :- नहीं। उसे ज्ञानलक्षणसे ही ग्रहण करे। ऐसा कहा न? कहा न, ज्ञानलक्षणसे

उसकी शुरूआत उस ओरसे होती है। परन्तु वैराग्य उसे साथमें आये बिना नहीं रहता। बाहर रचपचा हो, रससे भरा हो और (कहे कि) मुझे ज्ञायक प्रगट हुआ है, वह सब बोलनेकी बात है। वह शुष्कता है।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेवको कोटि-कोटि वन्दन! प्रशममूर्ति पूज्य भगवती माताका धर्म-प्रभावना उदय जयवंत वर्तो! आपश्रीको हमारे कोटि-कोटि वन्दन। मंगलमय मंगल करण, वीतराग विज्ञान, नमों तेथी थया अर्हंतादि महान। पूज्य माताजी! इस जन्मोत्सवके मंगल अवसर पर, यहाँ उपस्थित मुमुक्षुवृन्दकी ओरसे एक आध्यात्मिक जिज्ञासा है। उस विषयमें आपके श्रीमुखसे मांगलिकरूपसे दो शब्द सुननेके लिये हम उत्सुक हैं।

प्रश्न है कि रागादि भाव होनेपर भी उसी वक्त आत्मा शुद्ध कैसे हो सकता है? और राग और आत्माकी भिन्नता कैसे समझमें आये? तथापि अनादिकालसे राग-द्वेषके साथ एकतारूप परिणमन करता हुआ आत्मा भिन्नपने किस विधिसे परिणमे? यह आप समझानेकी कृपा कीजिये।

समाधान :- गुरुदेवने रागादिसे भिन्न आत्मा (बताया है)। गुरुदेवने सब समझाया है। गुरुदेवका परम उपकार है। मैं तो गुरुदेवका दास हूँ। गुरुदेवने तो सूक्ष्म-सूक्ष्म (समझाया है)। शास्त्रोंके रहस्य गुरुदेवने खोले हैं। रागादि होनेपर भी शुद्धता कैसे है? यह गुरुदेवने बहुत स्पष्ट करके समझाया है। जिस वक्त रागादि है, उसी समय आत्मामें शुद्धता है। आत्मा द्रव्यसे तो शुद्ध है, परन्तु पर्यायमें अशुद्ध है। द्रव्य अशुद्ध नहीं हो गया है। द्रव्य तो स्वभावसे शुद्ध ही है। परन्तु रागकी एकत्वबुद्धिके कारण पर ओरकी रुचिके कारण वह ख्यालमें नहीं आता है।

उसका भेदज्ञान करे तो हो सके ऐसा है। उस ओरकी जिज्ञासा, भावना, आत्माकी रुचि लगाये, पर ओरकी महिमा छूट जाय और ज्ञायककी महिमा लगे तो ज्ञायक समझमें आये ऐसा है। महिमा लगे, उस प्रकारके विचार करे, उस प्रकारका तत्त्वका चिंवतन करे तो समझमें आये ऐसा है।

जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र सबने मार्ग बताया है। कैसा मार्ग बताया है, वह स्वयं विचार करके तत्त्वसे निर्णय करके विचार करे तो ज्ञायकस्वभाव उसी वक्त मौजूद है। जिस समय रागादि है, उसी समय शुद्धता भरी है। वह शुद्धात्मा पूर्ण स्वरूपसे भरा है। उसमें द्रव्य अपेक्षासे अशुद्धता नहीं हुयी है, परन्तु पर्यायमें अशुद्धता है। चैतन्यदेव, ज्ञायकदेव स्वयं देवस्वरूप विराजमान है।

जिनेन्द्र देवने ज्ञायकदेवका स्वरूप बताया। गुरुदेवने उस दिव्यमूर्ति ज्ञायकदेवका स्वरूप बताया है। रागादिमें सर्व प्रकारसे रागरूप नहीं हुआ है। उसी समय वह द्रव्य अपेक्षासे शुद्ध है। उसके स्वभावका नाश नहीं हुआ है। स्वभाव तो अनादिका शुद्ध ही है।

जैसे पानी अग्निके निमित्तसे गर्म होता है तो भी पानीकी शीतलताका नाश नहीं होता है। वैसे आत्मा ज्ञायक स्वभाव अनादिअनन्त है। उसे ज्ञायकताका नाश नहीं होता है। वह अनन्त गुणोंसे भरपूर अपूर्व महिमावंत आत्मा है। उसकी महिमा करे, उसका विचार करे। तत्त्वसे उसका विचार करके निर्णय करे, उसमें लीनता करे, उसका भेदज्ञान करे तो वह समझमें आये ऐसा है। एकत्वबुद्धि होनेपर भी, विभाव होनेपर भी उसका नाश नहीं हुआ है। वह तो वैसाका वैसा अनादिअनन्त है। उसका भेदज्ञान करके देखे।

जैसे स्फटिक स्वभावसे शुद्ध और निर्मल है, परन्तु पर निमित्तसे लाल, काला जो प्रतिबिम्ब उठते हैं, उस प्रतिबिम्बरूप परिणमन स्फटिकका (होता है), परन्तु स्फटिक मूल स्वभावसे स्फटिकको छोड़कर, उसकी निर्मलता छोड़कर रंगरूप नहीं होता है।

वैसे आत्मा अपना द्रव्यत्व जो स्वभाव ज्ञानस्वरूप है, शुद्ध है, उसे छोड़कर वह विभावरूप नहीं हुआ है। उसका भेदज्ञान हो सके ऐसा है। एकत्वबुद्धि होनेपर भी वह भिन्न देखे कि जितना ज्ञान है वही मैं हूँ। ज्ञानके अतिरिक्त राग-द्वेषादि है, वह मेरा स्वरूप ही नहीं है। शुभाशुभ विकल्पसे भी भिन्न, गुणभेद, पर्यायभेद पड़े उसे जाने। विभावसे स्वभावभेद है। गुण एवं पर्यायसे उसे लक्षणभेद और अंश-अंशीका भेद है। बाकी कथंचित् गुणके साथ... गुण और द्रव्य अभेद है, और पर्याय भी उसके साथ अभेद है। परन्तु कथंचित् भेद है। लक्षणसे और अंश-अंशीका भेद है।

द्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत है और अभेद है। और गुण कोई अपेक्षासे उसमें लक्षणभेद और पर्यायका अंश-अंशी (भेद है)। पर्याय पलटती है, द्रव्य एकरूप अनादिअनन्त रहता है। विभाव और स्वभावका विभावके साथ भेद है। उन सबका ज्ञान करके, प्रतीत करके अन्दर जाय तो वह पहचाना जाय ऐसा है। जे शुद्ध जाणे आत्मने, ते शुद्ध आत्म ज मेळवे। जो आत्माको शुद्ध जाने वह आत्माकी शुद्ध पर्याय प्रगट करता है। शुद्धात्माका अनुभव करता है। रागमें शुद्धात्माका अनुभव नहीं है। द्रव्य अपेक्षासे शुद्ध आत्मा हाजिर है, परन्तु उसकी पर्याय यदि पलटे, ज्ञायककी परिणति पलटे, ज्ञायक-ज्ञायककी परिणति ज्ञायकरूप हो जाय तो उसमें उसे ज्ञाताकी धारा प्रगट हो और स्वानुभूति प्रगट हो और उसीमें उसे मुक्तिका मार्ग, मुनिदशा आदि सब उसी मार्ग पर आती है। यदि वह .. करे तो अंतर्मुहूर्तमें होता है और न करे तो उसे काल लगता है। परन्तु स्वयंके पुरुषार्थकी कचास है इसलिये होता नहीं है।

गुरुदेवने मार्ग बताया है, उस मार्गकी बारंबार स्वयं प्रतीति करके ज्ञायकका रटन करे तो वह पहचाना जाय ऐसा है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा लक्ष्यमें शुभभावमें रखे। भले शुभाशुभ भावसे आत्माका स्वभाव भिन्न है, परन्तु बीचमें अशुभसे बचनेके लिये शुभभाव आते हैं। वह आते हैं, परन्तु अपना स्वभाव नहीं है। वह हेयबुद्धिसे आते

हैं। परन्तु बीचमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, तत्त्वका चिंतवन जिज्ञासाकी भूमिकामें होते हैं। ज्ञायकके ध्येयसे होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! कहानगुरुनुं हार्द समजावनार भगवती मातनो जय हो! जन्म जयंति मंगल महोत्सवनो जय हो!

ट्रेक-१२०

समाधान :- ... गुरुदेवने बहुत समझाया है। जाननेवाला अनादिअनन्त है। जाननेवाला ऐसा नहीं है कि किसीने उत्पन्न किया नहीं है। जाननेवाला त्रिकाल सत् ही है। जाननेवाला तत्त्व ऐसा है कि जो स्वतंत्र पदार्थ है। वह पदार्थ ऐसा नहीं है कि कोई उसे उत्पन्न करे या किसीसे नाश हो। वह जाननेवाला सत् ऐसा है कि वह त्रिकाल सत् स्वयं त्रिकाल है ऐसा स्वयं स्वयंको बता रहा है।

उसमें जो विभावका भाग है उसे नहीं लेकर, मात्र जाननेवाला, मात्र जाननेवाला ज्ञायक वह जाननेवाला है। उस जाननेवालेमें नहीं जानना ऐसा नहीं आता। जाननेवालेका कोई नाश नहीं कर सकता। जाननेवालेकी किसी भी तरहसे उत्पत्ति नहीं होती। जाननेवाला है वह त्रिकाल जाननेवाला ही रहनेवाला है। जाननेवाला स्वयं त्रिकाल सत् (है)। स्वयं वर्तमान है ऐसा नहीं, परन्तु वह त्रिकाल स्वतःसिद्ध वस्तु जाननेवाली ही है। ऐसे स्वयं अपनेआपको बता रही है। स्वयं विचार करे तो समझमें आये ऐसा है कि यह जाननेवाला... जाननेवाली वस्तु ऐसी है कि किसीसे उत्पन्न नहीं होती है। जड़ जड़रूप है और जाननेवाला जाननस्वरूप है। जड़के किसी भागमें कोई जाननेवाला उत्पन्न नहीं होता है। कोई दूसरा पदार्थ जाननेवालेको उत्पन्न नहीं कर सकता। जाननेवाला स्वयं स्वतःसिद्ध है। स्वतःसिद्धको कोई उत्पन्न नहीं कर सकता। वह अनादिअनन्त जाननेवाला ही है।

वर्तमान जो सत् जाननेवाला है वह ज्ञात हो रहा है, वह त्रिकाल जाननेवाला स्वयं स्वतःसिद्ध है और वह स्वयं त्रिकाली सत् है। ऐसे स्वयं स्वयंको बता रहा है कि यह जाननेवाला, वह जाननेवाला ऐसा है कि वह जाननेवाला विभावके कारण जाननेवाला है या जड़के कारण, कोई दूसरे पदार्थके कारण जाननेवाला नहीं है। जाननेवाला स्वयं स्वतःसिद्ध जाननेवाला है। जाननेवाला ऐसा है कि स्वतःसिद्ध अनन्त पदार्थोंको जाने ऐसा जाननेवाला है। उस जाननेवालेको मर्योदा नहीं है। जाननेवाला स्वयं स्वयंको जाने, सबको जाने। इस तरह जाननेवालेमें कोई मर्यादा नहीं है कि इतना जाने या उतना जाने। जाननेवाला सो जाननेवाला ही है। त्रिकाली सत् है। वर्तमान सत् त्रिकालको बता रहा है कि इतना ही सत् नहीं है, स्वतःसिद्ध है। इसलिये जाननेवाला अनादिअनन्त है। इसलिये गुरुदेव कहते हैं कि जाननेवालेको तू जान। वह त्रिकाल सत् स्वतःसिद्ध

वस्तु अनादिअनन्त है।

जाननेवालेको जानना है। अंतरमें भेदज्ञान करके जाने तो ज्ञात हो ऐसा है। विभाव नहीं, जो कलुषित भाव है वह नहीं, मात्र जाननेवाला। जाननेवाला स्वयं त्रिकाल जाननस्वरूप है। किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ है, कभी जाननेवालेका नाश नहीं हो सकता। इसलिये वह वर्तमान त्रिकालको बता रहा है कि मैं त्रिकाल ही हूँ। मैं एक वस्तु हूँ।

जानना.. जानना.. जानना उसमें जानना ही आता है, उसमें नहीं जाननेका आता ही नहीं। इसलिये वर्तमान है वह त्रिकालको बता रहा है कि त्रिकाल सत्, जाननेवाला सत् त्रिकाल हूँ। त्रिकाल स्वरूपको बताता है। जो है वह है, वह त्रिकाल है रूप है। जो सत् है वह त्रिकाल सत्रूप है।

मुमुक्षु :- ... वह ऐसा सूचित करता है कि अन्दरमें त्रिकाली जानने-देखनेवाला पूरा पदार्थ...

समाधान :- कोई तत्त्व-पदार्थ है। वर्तमान जाननेवाला है वह त्रिकाल सत्... जाननेवाला स्वतःसिद्ध त्रिकाल सत् एक द्रव्य है। उस द्रव्यमेंसे द्रव्यका जानना है। वह जाननेवाला स्वयं त्रिकाल सत्को बता रहा है। वर्तमान पर्याय भले हो, लेकिन वह त्रिकालको बता रही है। वह जाननेवाला किसीसे उत्पन्न नहीं होता है। वह जाननेवाला स्वतःसिद्ध अनादिअनन्त त्रिकाल सत् है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- त्रिकालको ग्रहण करके, त्रिकास सत्को ग्रहण करके कि मैं यह वस्तु ही हूँ, यह विभाव नहीं है। उसे विभावका दुःख लगा हो, विभावकी आकुलता लगी हो। आकुलस्वरूप यह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो जाननेवाला हूँ। जाननेवाला एक द्रव्य हूँ। ऐसे उसे ग्रहण करके, उसकी प्रतीत करके उस ओर उपयोगको झुकाये और उसमें लीनता करनेका प्रयत्न करे। भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे। जो वस्तु यथार्थ है, द्रव्य है, उस द्रव्यको ग्रहण करनेका प्रयोजन ऐसा है कि जिसे आत्माकी लगी हो, विभावका दुःख लगा हो, भवभ्रमणकी थकान लगी हो, वह स्वयं वापस मुड़कर, मैं तो अनादिअनन्त एक शाश्वत वस्तु हूँ, यह विभावमें जो भटकना होता है, परिभ्रमण, आकुलताकी जालमें फँसता रहूँ इन विकल्पोंमें, यह मेरा स्वरूप नहीं है।

मेरा स्वरूप तो अनादिअनन्त मैं तो शाश्वत द्रव्य हूँ। उसे ग्रहण करके, जो स्वरूप है, ज्ञायक ज्ञयकरूप उसकी परिणति कैसे प्रगट हो, उसका प्रयास करना। बारंबार प्रयास करे कि यह ज्ञायक ज्ञायकरूप मुझे कैसे भास्यमान हो? ज्ञायक ज्ञायकरूप मुझे कैसे वेदनमें आये? यह जो मेरा सत् है, वह मुझे कैसे वेदनमें आये? विभावका वेदन हो रहा है, उसके बदले ज्ञायकका वेदन कैसे आये? ऐसे उसे जिज्ञासा हो, उसे ग्रहण

करके भेदज्ञान करे, स्वानुभूति प्रगट करे। उसका ग्रहण करनेका प्रयोजन वह है। तू यथार्थ ग्रहण कर। तू झूठेमें, विभावमें बाहरमें सुख मान लिया है, उसीमें मानो मेरा सर्वस्वा मान लिया, वह सब जूठा है। जो यथार्थ है उसे ग्रहण कर तो उसमेंसे सुख आयेगा, बाहरसे नहीं आयेगा। इसलिये उसे ग्रहण कर। तू अनन्त गुणसे भरपूर ज्ञायकता तेरेमें है। उसमें अनन्त गुण भरे हैं। आनन्द उसमें, सुख उसमें, सब उसीमें है। इसलिये उसे ग्रहण करनेका प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- उससे तुझे सुखकी प्राप्ति होगी।

समाधान :- सुखकी प्राप्ति ज्ञायकमेंसे होगी, बाहरसे नहीं होगी। देव-गुरु-शास्त्रने कैसा मार्ग कहा है उसे लक्ष्यमें रखकर... शुभभाव भी आकुलता है, उससे भी भिन्न ज्ञायक है, उसे ग्रहण कर। फिर बीचमें शुभभाव आये उसे ख्यालमें रखे, परन्तु वस्तु तो यह ग्रहण करनेकी है। ग्रहण तो शुद्धात्मा करनेका है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! एक प्रश्न ऐसा है कि, निर्विकल्पताके कालमें ज्ञानीको शुद्धनयका आलम्बन रहता है कि नहीं? और यदि रहता हो तो नयका प्रयोजन सिद्ध होनेके बाद नय निर्विकल्प अवस्थामें अस्त हो जाती हैं, उस कथनके साथ कैसे मेल है?

समाधान :- नय यानी वहाँ विकल्पात्मक नय नहीं है। निर्विकल्प अवस्थामें विकल्पवाली नय खड़ी नहीं रहती। इसलिये वह नय विलीन हो जाती है, नयकी लक्ष्मी कहाँ चली जाती है, आता है न? निक्षेपका समूह,.. प्रमाण अस्त हो जाता है। वह सब विकल्पात्मक नय और विकल्पात्मक प्रमाण वह सब अनुभवमें नहीं है। विकल्पात्मक नहीं है। परन्तु नय अर्थात् अनुभूतिके अर्थमें निज द्रव्य पर दृष्टि तो जैसी है वैसी है। द्रव्य पर दृष्टि गयी और उस ओरकी परिणति हुयी वह वैसी ही है। इसलिये उस अपेक्षासे उसकी द्रव्य पर दृष्टि तो है। इसलिये उसे शुद्धनय कहो या आत्माकी अनुभूति कहो, सब एक है। समयसारमें आता है।

शुद्धनय अर्थात् शुद्ध आत्माको ग्रहण किया और उस रूप शुद्ध परिणति हुयी, ऐसे अर्थमें है। द्रव्य पर दृष्टि तो वैसी ही है। परन्तु वह निर्विकल्प है। वहाँ विकल्पात्मक नय नहीं है कि मैं शुद्ध हूँ, यह पर्याय, ऐसे कोई विकल्प नहीं है। विकल्प नहीं है परन्तु शुद्धात्मा जैसा है उस रूप उसकी परिणति है। और शुद्धात्मा पर उसकी दृष्टि थँभ गयी है। शुद्धात्माकी ओर ही परिणतिने जो लक्ष्यमें लिया, दृष्टिने लक्ष्यमें जिस आत्माको लिया वहीं उसकी परिणति स्थिर है। वहीं उसकी दृष्टि स्थिर है। और पर्याय जो परिणति प्रगट हुयी, निर्विकल्प अवस्थाकी परिणति है। इसलिये उसे उस अपेक्षासे शुद्धनय है। परन्तु विकल्पात्मक नय नहीं है, निर्विकल्प नय है।

मुमुक्षु :- उस वक्त शुद्धनयका ज़ोर है?

समाधान :- हाँ, शुद्धनयका ज़ोर है।

मुमुक्षु :- वह निरंतर रहता है।

समाधान :- वह निरंतर है। शुद्धात्माकी ओर जो दृष्टि है वह तो वैसी ही है। और ज्ञान भी साथमें है। दोनोंको जानता है। शुद्धात्माको और शुद्ध परिणतिको दोनोंको ज्ञान जानता है। ज्ञान भी साथमें है। आनन्दकी अनुभूति, ज्ञान, उसके गुण सबको ज्ञान जानता है। दृष्टि और ज्ञान दोनों काम करते हैं, परन्तु वह निर्विकल्परूप है।

मुमुक्षु :- कोई अपेक्षासे ज़ोर चालू है वह नयका ज़ोर है?

समाधान :- हाँ, वह नय उस अपेक्षासे। निर्विकल्प है, विकल्पात्मक नहीं है। वह नय उसे छूटता नहीं है।

मुमुक्षु :- लड़ाईमें हो तो भी वह नय...

समाधान :- वह छूटता ही नहीं। द्रव्य पर दृष्टि गयी वह नय छूटती नहीं।

मुमुक्षु :- एक प्रश्न है, आत्मस्वरूपमें प्रवेश करते समय, पहली बार जब प्रवेश करता है, उस वक्त पुरुषार्थ कैसा होता है? और स्थिरताके समय निर्विकल्प पुरुषार्थ कैसा होता है? इन दोनोंके बीच, दोनों पुरुषार्थमें (क्या अंतर है)? उस वक्त भी पुरुषार्थ तो होता ही है, निर्विकल्प अवस्थाके समय।

समाधान :- निर्विकल्प अवस्थाके समय पुरुषार्थ कैसा होता है और..?

मुमुक्षु :- स्वरूपमें प्रवेश करते समय कैसा होता है?

समाधान :- प्रवेश करते समय, फिर निर्विकल्प हो गया उस समय? ऐसा कहना है? प्रवेश करते समय तो अभी उसे विकल्प है। उसे दृष्टिका विषय जोरदार है। स्वयं शुद्धात्मा है। विकल्पकी ओरसे उसकी परिणति छूटती जाती है। स्वरूपमें स्थिर होता जाता है, उसमें स्थिर होता जाता है। उस ओरका उसे ज़ोर है। दृष्टिका जोर है कि मैं शुद्धात्मा हूँ और स्वयं निज स्वरूपमें स्थिर होता जाता है। विकल्प ओरसे हटता जाता है और शुद्धात्मामें स्थिर होता जाता है।

निर्विकल्प अवस्था तो सहज है। उसमें उसे पुरुषार्थ करता हूँ या इस ओर आता हूँ, ऐसा कुछ नहीं है। परिणति, जो पहले पुरुषार्थ हुआ, जो स्थिर हुआ और विकल्पसे छूटा वह निर्विकल्प अवस्थामें सहज परिणति प्रगट हुयी, उसे विकल्प या .. मैं पुरुषार्थ करुँ और यह पुरुषार्थ, ऐसा कुछ नहीं है। सहज परिणति प्रगट हो गयी।

मुमुक्षु :- स्थिरता टिकती होगी वह पुरुषार्थ...

समाधान :- पुरुषार्थ है, पहले जो पुरुषार्थ किया वह पुरुषार्थ सहज हो गया। फिर उसे पुरुषार्थ करता हूँ, ऐसा ध्यान ही नहीं है। पुरुषार्थका ध्यान नहीं है। परिणति उसमें टिक गयी है। शुद्धात्मामें परिणति टिक गयी है। जैसा आत्मा था उस रूप प्रगट

हो गया। फिर पुरुषार्थ करुँ, नहीं करुँ, ऐसा कोई विकल्प नहीं है, वैसा कोई ध्यान भी नहीं है। केवलज्ञान प्रगट हो तो कृतकृत्य दशा हो गयी। सिद्ध भगवानको कृतकृत्य हो गये, पुरुषार्थ करुँ ऐसा नहीं है। वैसे निर्विकल्प अवस्थामें मैं पुरुषार्थ करुँ, ऐसा नहीं है। पुरुषार्थ जो हुआ उसका फल आ गया। वह आंशिक फल आया। अभी पूर्ण नहीं है। उसका आंशिक फल आ गया। इसलिये उसे उस वक्त पुरुषार्थ करता है, ऐसा नहीं है।

पुरुषार्थका फल, जो शुद्धात्माका शुद्धात्माके वेदनरूप उसका फल आ गया। फिर बाहर जाता है तो वह अंतर्मुहूर्तकी स्थिति है। साधकदशामें पुरुषार्थ ... उसका आंशिक फल है। पुरुषार्थ प्रगट हो गया, आंशिक प्रगट हो गया वह वैसा ही रह जाता है। बुद्धिपूर्वकका कोई पुरुषार्थ नहीं है। भिन्न हो गया। वह पुरुषार्थका फल आ गया। पुरुषार्थरूप परिणति हो गयी।

श्रेणी चढते हैं उस वक्त उसे अबुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ होता है। बुद्धिपूर्वक नहीं होता। अबुद्धिपूर्वक श्रेणी चढते हैं। अबुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ है, बुद्धिपूर्वकका नहीं है। परिणति अपनी ओर झुकती जाती है। पुरुषार्थकी ओर ध्यान ही नहीं है। जिस रूप है वह वैसे ही रह गया। जो स्वरूप है, उस रूप स्वयं रह गया। अर्थात् अपेक्षासे पुरुषार्थ है, परन्तु वह पुरुषार्थका फल है।

मुमुक्षु :- स्वरूपमेंसे बाहर आते हैं ऐसा कहते हैं, उस अपेक्षासे वह कमजोरीसे बाहर आते हैं।

समाधान :- वह पुरुषार्थ अमुक प्रकारका था। आंशिक निर्विकल्प अवस्था हो, फिर बाहर ही आता है। वैसी उसकी दशा है। वह पुरुषार्थ थोड़ा ही था। केवलज्ञान जितना पुरुषार्थ नहीं था, इसलिये वह बाहर आता है। स्थिर होनेका थोड़ा पुरुषार्थ था। अन्दर स्थिर हुआ, स्थिर होकर बाहर आता है। उसकी स्थिति ही अंतर्मुहूर्तकी है। उपयोगकी स्थिति अंतर्मुहूर्तकी ही है। पुरुषार्थ है लेकिन वह बल, चैतन्यकी ओरका बल जोरदार है, वह बल है। वह बल ऐसे ही रह गया। सहज है। पुरुषार्थ करनेकी कोई कृत्रिमता नहीं है।

अपनी डोर अपनी ओर खींचता रहता है, वह कृत्रिमता नहीं है, सहज है। पुरुषार्थका बल सहज रहता है। अपनी ओर परिणति आ गयी सो आ गयी, फिर बुद्धिपूर्वकका पुरुषार्थ नहीं है। जागृति है। पुरुषार्थ प्रगट हो गया, लेकिन अभी पूरा नहीं है, अधूरा है। इसलिये बाहर आते हैं। क्षणमात्रके लिये सब छूट गया, परन्तु फिर बाहर आता है। दृष्टिका विषय है वह, बाहर जाय या अन्दर रहे, वह टिकी रहती है। लीनता अमुक क्षणकी ही थी, वह छूट गयी। फिरसे बाहर आते हैं।

मुमुक्षु :- वह उपयोग ही वैसा है कि उतनी देर ही रहता है।

समाधान :- बस, वह उपयोग अंतर्मुहूर्तकी स्थिति रहती है, फिर बाहर आते हैं। फिर पलट जाता है। बाहर आकर भेदज्ञानकी धाराका पुरुषार्थ चालू ही रहता है। विकल्प आये तो स्वयं भिन्न ही रहता है। ऐसी धारा उसकी चालू ही रहती है। फिर एकत्व नहीं होता है। ज्ञाताधाराकी परिणति चालू ही रहती है। भिन्न ही रहता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१२१

मुमुक्षु :- सम्यग्दृष्टि महात्माओंको ख्यालमें ही होता है कि मिथ्यात्वके कौनसे सूक्ष्म शल्य सर्व प्रथम निकाले थे। ऐसे सूक्ष्म शल्य जो सामान्यतः अज्ञानीको ख्यालमें भी न आवे, वांचन करने पर भी ख्यालमें न आवे, श्रवण करने पर भी ख्यालमें न आवे, ऐसे मिथ्यात्वके सूक्ष्म शल्य कौनसे हैं? बड़े शल्यमें तो बाहर पड़नेका भाव हो या मान कषाय हो, वह तो ख्यालमें आ जाता है। परन्तु सक्ष्म प्रकारके...

समाधान :- शल्य अनेक प्रकारके होते हैं। कहीं न कहीं अटकता है। और कषायके, अनन्तानुबन्धि कषायका, क्रोधका, मानका, मायाका, लोभका इत्यादि अनेक प्रकारमें अटकता है। परन्तु एक आत्माका प्रयोजन हो, प्रत्येक कार्यमें आत्माका प्रयोजन रखे तो उसमें शल्यसे छूट जाता है। प्रत्येक कार्यके अन्दर मुझे आत्मार्थका पोषण हो, मुझे आत्मा कैसे प्राप्त, ऐसा उसका ध्येय हो तो उसमेंसे सब शल्य निकल जाते हैं।

अनेक प्रकारके शल्य होते हैं। उसका क्या दृष्टान्त दें। अनेक जातमें अटकता है। कुछ तत्त्वकी भूल होती हो, अनेक जातमें रुकता है। देव-गुरु-शास्त्र क्या कहतें है उसकी समझमें भूल होती हो। अनेक जातकी भूल करता है। लौकिक प्रयोजन, लौकिक रस रह जाता हो, अनेक जातका (होता है)। शुभभावोंके गहराईमें रुचि रहती हो, अनेक जातका होता है। परन्तु प्रयोजन एक आत्मार्थका रखे तो उसे सब अलग-अलग शल्य छोड़ने नहीं पड़ते। भिन्न-भिन्न नहीं छोड़ने पड़ते। एक आत्मार्थका प्रयोजन हो तो उसमें सब शल्य निकल जाते हैं। अमुक कषाय होते हैं, परन्तु आत्मार्थीको मन्द कषाय होते हैं। लेकिन उसे प्रयोजन एक आत्मार्थका होना चाहिये।

मुमुक्षु :- प्रयोजन सच्चा हो तो यह सब..

समाधान :- यह सब निकल जाता है। प्रयोजन (आत्मार्थका होना चाहिये)।

मुमुक्षु :- उसे खोजना नहीं पड़ता।

समाधान :- उसे खोजना नहीं पड़ता कि कहाँ-कहाँ अटकता हूँ। प्रयोजन एक आत्माका। मेरा प्रयोजन क्या है? प्रत्येक कार्यमें आत्मार्थका प्रयोजन होना चाहिये।

मुमुक्षु :- प्रयोजन ठीक रखे तो सब..

समाधान :- तो सब निकल जाता है, सब शल्य निकल जाय। कषायनी उपशांततमा

मात्र मोक्ष अभिलाष। मात्र मोक्षकी अभिलाष। मेरा आत्मा कैसे प्रगट हो? यह अंतरमें होना चाहिये।

मुमुक्षु :- अमृतचन्द्राचार्य पशु कहकर संबोधन करते हैं, गुरुदेव तो भगवान कहते थे। तो दोनोंके संबोधनमें इतना फ़र्क़ क्यों आता है?

समाधान :- गुरुदेव द्रव्य अपेक्षासे कहते थे कि तू भगवान है, तू सिद्ध है। जैसा तेरा आत्मा, वैसा भगवानका आत्मा। भगवान जैसा ही तेरा आत्मा है। तू उसे पहचान। तेरा आत्मा भगवान जैसा है। जैसे भगवान समवसरणमें विराजमान हैं, केवलज्ञान प्राप्त किया, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय जैसे हैं, वैसे ही तेरे हैं। तू भगवान है। तू भगवानको पहचान। ऐसा गुरुदेव कहते थे। उसकी दृष्टि कर तो तुझे उस ओरकी परिणति अन्दरसे प्रगट होगी। ऐसा गुरुदेव कहते थे।

अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं, तू पशु जैसा है। वह पर्याय अपेक्षासे (कहते थे)। उन्हें दया, करुणा आती है। अनादि कालसे तू पर्यायमें पड़ा है। तू कहाँ शुद्धात्मा और कहाँ यह सब कलुषितता और कषायकी कालिमामें तू अनादिसे पड़ा है। तू पशु है। कहाँ-कहाँ भटक रहा है। इसलिये पशु करुणासे कहते हैं।

मुमुक्षु :- दोनों पहलू आ गये।

समाधान :- दोनों पहलू बराबर है।

मुमुक्षु :- उन्होंने पर्यायसे बात की, गुरुदेवने द्रव्यसे बात की।

समाधान :- द्रव्यसे बात की, उन्होंने पर्यायसे की। आचार्यदेव समझानेके लिये अनेक पहलूसे बात करे। द्रव्य और पर्याय दोनों आत्माका स्वरूप है। पर्यायमें अनादि कालसे मूढ हुआ, तू पशु जैसा कुछ समझता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आत्माका क्या स्वरूप है? और एक-एक पक्ष ग्रहण करके तू कहाँ अटक गया है? तू पशु जैसा है। कलशमें कहा है, तू पशु जैसा है।

(गुरुदेव कहते हैं), तू भगवान है। तू विचार कर, तू भगवान है। ऐसा कहते थे। इन सबमें तू कहाँ अटक गया? यह तेरा स्वरूप नहीं है, तू भगवान जैसा है। बकरेके समूहमें आ गया है, तू बकरा जैसा है, मानों मैं बकरा हो गया। तू तो सिंह जैसा है। तू उसे पहचान, ऐसा गुरुदेव कहते थे।

मुमुक्षु :- .. आपने जल्दी दिखा दिया। मुमुक्षुको जाने देना सिखना चाहिये। जीवनमें यह बहुत काममें आये ऐसा सिद्धान्त है। आप तो बचपनसे ही ऐसा करते आये हो। मुमुक्षुको..

समाधान :- बाहरके सब प्रसंगमें सब जाने देना। उसके कोई प्रसंगका क्या दृष्टान्त देना? चाहे जैसा संयोग बने उसमें जाने देना, अपना आग्रह नहीं रखना। स्वयंको यदि

आत्माका प्रयोजन हो, आत्माका करना हो तो आत्मार्थीको सब जाने देना, यह सीखना। मुझे ऐसा क्यों हो? मुझे ऐसा क्यों होता है? वह सब आग्रहकी बात छोड़ देनी। स्वयं अपना करनेके लिये सब जाने देना सीखना। कोई कषायमें, कोई मानमें, कहीं अटकना नहीं। सबमें जाने देना।

पूरे विभावको जाने देना है, सब विभावको टालनेके लिये खड़ा हुआ है, यदि आत्माको साधना है तो आत्मा तो विभाव रहित शुद्धात्मा है। तो उस शुद्धात्माको ग्रहण करना है, ऐसा आत्मार्थीको प्रयोजन है। विभाव टालना है, कोई विभाव रखने जैसा नहीं है। तो बाह्य संयोगके साथ, कोई परद्रव्यके साथ, उसमें तो प्रथम ही जाने देना ऐसा होता है। अन्दरसे विभाव ही टालने जैसा है। किसीने मुझे ऐसा कहा, किसीने मुझे ऐसा कहा, सब टालने जैसा है।

.. ज्ञान और वैराग्यकी ऐसी शक्ति होती है। दो-तीन कलश वही आते हैं। उस दिन दो तो आ गये हैं, तीसरा रह गया है। वह कलश मैं बहुत बार बोलती हूँ। '**सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः**' बहुत बार बोलती हूँ। सम्यग्दृष्टिज्ञको ज्ञान-वैराग्यकी ऐसी कोई अचिंत्य शक्ति है कि जिसे लेप नहीं लगता ऐसी है। सम्यग्दृष्टि अंतरसे ऐसे निर्लेप हो गये हैं। जिन्हें ज्ञान प्रगट हुआ और वैराग्य प्रगट हुआ। दोनों ऐसे अलग जातके प्रगट हुए हैं कि उन्हें लेप नहीं लगता। अंतरसे निर्लेप रहते हैं। अन्दरसे उनका आत्मा भिन्न हो गया है। जो अनादिकी एकत्वबुद्धि थी, उसका रस था,.. एकत्वरूप अनन्त रस अनन्तानुबन्धि कहलाता है, उससे भिन्न होकर अकेला ज्ञायक भिन्न हो गया, उसका रस टूट गया। उसका वैराग्य भी अलग जातका है। वह स्वयंको ग्रहण करते हैं और परका त्याग करते हैं। ग्रहण और त्यागकी ऐसी विधि उन्हें प्रगट हुयी है। उसका अभ्यास ऐसा करते हैं कि, स्वयं अपनेमें टिकते हैं और अन्य सर्वसे सर्व प्रकारसे विरक्त होते हैं। अर्थात् दृष्टि अपेक्षासे विरक्त हो गये हैं। अभी अस्थिरता तो उन्हें बाकी है। दृष्टि अपेक्षासे विरक्त हो गये हैं। दृष्टि अपेक्षासे सर्व प्रकारसे विरक्त हो गया है। ज्ञायकको ग्रहण किया सो किया, विभावकी दिशा (बदलकर), उसकी पूरी दृष्टि स्वभावकी दिशाकी ओर (चल रही है), उसकी परिणति स्वभावकी ओर चली गयी है। अल्प अस्थिरता है उसे गौण कर दी है, उसे निर्जरा है। सर्व प्रकारसे निर्लेप है। अल्प लेप लगता है, वह गौण है। वह उन्हें छूट जायगा।

जैसे वृक्षका मूल कट जानेके बाद वृक्ष पनपेगा नहीं। वैसे उन्हें मूलमेंसे ज्ञायककी दशा कोई अलग प्रगट हुयी है। सर्व प्रकारसे, चक्रवर्तीके राजमें बैठे हो तो भी वह खाते, पीते, सोते, स्वप्नमें सर्व प्रकारसे निर्लेप है। खाते वक्त निर्लेप, चलते हुए निर्लेप, लड़ाईमें निर्लेप, सर्व प्रकारसे निर्लेप रहते हैं। क्षण-क्षणमें उन्हें निर्लेप दशा वर्तती है।

अन्दरसे भिन्न रहता है, एकत्व नहीं होता है। न्यारी दशा प्रगट हुयी, अंतरमेंसे स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हुयी, उसकी दशा पूरी अलग हो गयी है। इसलिये उसे लेप नहीं लगता है।

उसके बादवाले कलशमें ऐसा ही कहते हैं कि सम्यग्दृष्टिको लेप नहीं लगता है, इसलिये कोई कल्पना कर ले कि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ, मुझे लेप नहीं लगता है, ऐसा मानकर यदि करे तो उसे लेप तो लगता है। उसके बादवाले कलशमें आता है। यहाँ तो ऐसा ही कहते हैं कि सम्यग्दृष्टिको लेप नहीं लगता है। उसकी त्याग-वैराग्यकी शक्ति सामान्यतः... पहले उसका त्याग हो, विशेष यानी गिन-गिनकर त्याग नहीं करता। सब विभावका त्याग उसे एकसाथ ही हो जाता है। ऐसी उसकी अंतरकी दशा (हो गयी है)।

विभावमें फिर यह विभाव रहा और वह रहा, (ऐसा नहीं), सर्वस्व त्याग हो गया। एक अपेक्षासे ज्ञायकके मूल तलमेंसे सर्वस्व त्यागी हो गया। परन्तु अभी अस्थिरता है, उसकी मुनिकी दशा नहीं है, अतः अस्थिरताका लेप है। फिर वह अंतरमें लीनता बढाता-बढाता स्वानुभूतिकी दशा बढते-बढते जब मुनिदशा आती है तब उसे सब छूटकर, अंतरकी साधना करनेके लिये जंगलमें जाता है। फिर उसकी दशा कोई अद्भुत हो जाती है।

परन्तु गृहस्थाश्रममें उसकी दशा ज्ञायककी धारा कोई अलग ही वर्तती है। सुदृष्टि ए रीत ज्ञायक स्वभाव जाणतो। वह स्वयं अपनेआपको ज्ञायक जानता है। पुद्गलकर्मरूप रागनो ज विपाकरूप उदय छे आ। यह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं एक ज्ञायकभाव हूँ। मैं एक ज्ञायक और सदाके लिये ज्ञायक हूँ। शक्ति अपेक्षासे ज्ञायक था, परन्तु प्रगट ज्ञायक हो गया है। वह ज्ञायककी जीवनकी दशा जगतसे अलग हो जाती है।

उस कलशमें कहते हैं, उसे निर्जरा होती है, बन्ध नहीं होता है। इस प्रकार दशा साधकर चक्रवर्ती आदिको मोक्ष-मुक्तिका मार्ग प्रगट हुआ, मुक्तिकी लाईन हो गयी। ऐसी अंतरकी दशा भरत चक्रवर्तीने अरीसा भुवनमें एक थोड़े बालका निमित्त मात्र हुआ कि उसमेंसे उन्हें ऐसा वैराग्य (आया कि), अंतरमें श्रेणि चढ गये और केवलज्ञानकी दशा प्रगट हो गयी। अंतरमें ऐसे न्यारे हो तो होता है न।

... सब किया लेकिन कोई मुक्तिकी दशा (प्रगट नहीं हुयी)। यम, नियम, संयम आप कियो। संयम लिया, त्याग वैराग्य लिया, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो, वनवास रह्यो। वनवासमें रहा। वनवास रह्यो मुख मौन रह्यो। मुखसे मौन धारण किया। किसीसे बात नहीं की। मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो। पद्मासन लाग दिया। दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो, जप भेद जपे तप त्योंहि तपै। सब भेद जपा, जाप चपा, तप तपा। जप भेद जपे, तप त्योंहि तपै, उरसेही उदासी लही सबसे। सबसे उदास

हो गया। वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु पर्यो। ऐसे साधन अनन्त बार किये, लेकिन अब तक कुछ हाथ नहीं आया। यह सब कर लिया, लेकिन हाथमें कुछ नहीं आया।

अब क्यों न विचारत है मनसे, कछु और रहा उन साधनसे। उसके साधनमें कुछ अलग ही रहा है। यह सब किया तो क्या बाकी रह गया? बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे, मुख आगल है कह बात कहै। सद्गुरुके बिना वह भेद कोई नहीं जान सकता। तेरे पास ही है। परन्तु बाहर दौड़ता रहता है। बाहर कहीं नहीं है। दोडत दोडत दोडियो, जेथी मननी दोड... जितना भागा उतना तेरे मनकी दौडसे तू बाहर भागा। जेथी मननी रे दोड.. लेकिन कुछ हाथमें नहीं आया।

अंतरमें एक ज्ञायककी दशा प्रगट हो, ज्ञायकको पहचाने, न्यारा हो जाय तो मुक्तिकी दशा प्रगट हो। उसके बजाय बाहरसे इतनी क्रियाकाण्ड की, कितने कष्ट सहन किये, तप किया, उपवास किये, मासखमण किये तो भी अंतरमेंसे कुछ प्रगट नहीं हुआ। वैसा ही रहा। नौंवी ग्रैवेयक तक जाकर वापस आया, वही दशा खड़ी रही। अंतरमेंसे जो शान्ति आनी चाहिये, अंतरमेंसे जो आनन्द आना चाहिये, वह कुछ नहीं हुआ। करनेका अंतरमें कुछ बाकी रह जाता है। त्याग-वैराग्यकी शक्ति अंतरमें प्रगट होती है। त्याग और वैराग्य बाहरसे बहुत लिया, त्याग किया, वैराग्य किया, परन्तु अंतरमें त्याग-वैराग्यकी शक्ति कोई गजब, अचिंत्य बाकी रह जाती है।

आश्चर्य लगे कि बाहरसे यह सब करता है और अंतरमें न्यारा (रहता है), उसे लेप नहीं लगता है, ऐसा आप कहते हो। और वह मुनि बन जाय, सब छोड़ दिया, बाहरसे निर्लेप भी दिके तो भी आप उसे बन्धवाला कहते हो। वह लेपमें बैठा है ऐसा कहते हो। ऐसा कैसा?

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ꝏ ꝏ

ट्रेक-१२२

समाधान :- ...अपनी उतनी लगन नहीं है, रुचि नहीं है तो नहीं करता है। लगन हो तो करता है। इतना विचार, वांचन करे तो भी पुरुषार्थ करना तो अलग चीज है। स्वाध्याय करे, विचार करे, देव-गुरु-शास्त्र आदि सब बीचमें होता है। परन्तु भीतरमें पुरुषार्थ करना कोई दूसरी चीज है। पुरुषार्थ करना अपने हाथकी बात है। उसे उतनी लगन लगे कि मैं आत्माको कैसे पीछानुँ और कैसे भेदज्ञान करुँ?ल ऐसा क्षण-क्षणमें मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा पुरुषार्थ करे तो होता है, नहीं करे तो नहीं होता है। लगन बाहर लगी है, उतनी लगन भीतरमें लगे, कहीं चैन नहीं पड़े, मैं ज्ञायक, मैं ज्ञायक सबसे भिन्न हूँ। मैं चैतन्य अनादिअनन्त शाश्वत तत्त्व हूँ। ऐसे जो विकल्प उठता है वह विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, वह तो आकुलतारूप है। मैं शान्त स्वभाव निराकुल ज्ञायक हूँ। ऐसा यदि बारंबार पुरुषार्थ करे, अभ्यास करे तो शुरू हो, रुचिकी तीव्रता हो तो शुरू हो। और रुचि उतनी नहीं हो तो शुरू नहीं होता। पुरुषार्थ करना अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- रुचिके कारण ही सब विचार करते हैं, चिंतवन करते है। रुचिकी कमी कैसे है? पकड़में तो आती नहीं।

समाधान :- पकड़में नहीं आती है। पुरुषार्थ नहीं होता है उसका कुछ कारण अपना ही है। दूसरे किसीका कारण नहीं है। बाहरमें अटक जाता है और भीतरमें नहीं जाता है तो अपना कारण है। बाहरमें रुचि लग जाती है और जिसको रुचि हो कि मैं अंतरमें कैसे जाऊँ? अंतरमें कैसे जाऊँ? उतनी लगन लगे, दिन-रात उसकी खटक, भेदज्ञान (करे)। मैं भिन्न हूँ, सबसे भिन्न हूँ। जो परिणाम आता है वह भी मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो चैतन्य निर्विकल्प तत्त्व ज्ञायक हूँ। इतना पुरुषार्थ करना अपने हाथकी बात है। दूसरा कोई कारण नहीं है।

भेदज्ञानकी धारा और निरंतर उसका अभ्यास करना। मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ। अनादिअनन्त शाश्वत तत्त्व, जो विकल्प है वह सब आकुलतारूप है। मेरेमें आनन्द, ज्ञान, सब मेरेमें है। बाहरमें आनन्द नहीं लगे, बाहरमें सुख नहीं लगे, बाहरमें परिणति टिके ही नहीं। अंतरमें जाये तो पुरुषार्थ शुरू हो। रुचिकी तीव्रता होनी चाहिये। रुचि

मन्द होती है तो पुरुषार्थ शुरू नहीं होता। कारण नहीं होता है तो कार्य नहीं आता है। अपना ही कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- रुचिकी तीव्रता कैसे हो?

समाधान :- सबका एक ही कारण है। करे तो होता है, नहीं करे तो नहीं होता है। कारण अपना ही है। जो बाहरमें अटक जाता है वह नहीं अटके और भीतरमें जाये तो होता है। बाहरमें अटकनेसे नहीं होता है। एक ही कारण अपना है, दूसरे किसीका कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- दिनभर विचार तो चलता है, दिनभर भेदज्ञानका विचार चलता है। वह टिकता नहीं है, बाहरमें प्रवृत्तिमें मन जाता है। दूसरेका विचार तो आता है, मन जाता है, उसमें .. कैसे आये?

समाधान :- बाहर तो भीतरमें अनादिका अभ्यास है तो बाहर जाता है। शुभ परिणाममें भी रहता है। परन्तु शुभ भी चैतन्यका मूल स्वभाव नहीं है। शुभ अपना स्वभाव नहीं है। जब भीतरमें शुद्धात्मा नहीं प्रगट होवे, तब तत्त्व विचार, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि सब होता है। परन्तु ऐसी लगन तो होनी चाहिये कि जो-जो कार्य होवे उसमें मैं ज्ञायक हूँ, मैं चैतन्य हूँ। ऐसी भीतरमेंसे, ऊपर-ऊपरसे नहीं, अंतरमेंसे अपना पुरुषार्थ करना चाहिये।

जैसे स्फटिक निर्मल है, वैसे मैं निर्मल हूँ। ऊपर जो प्रतिबिंब दिखता है वह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो निर्मल हूँ। ऐसा बारंबार, बारंबार, बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये। उस रूप जब परिणति होवे तब हो सकता है। अभ्यास करना चाहिये। बाहरका अभ्यास कैसे करता है? बाहरका तो अनादिका अभ्यास है तो ऐसे ही चलता रहता है। उतना अभ्यास भीतरमें करना चाहिये, जरासा करे फिर (छूट जाता है)। रुचिकी क्षति है। रुचि करना, अपना ही कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं है।

अकारण पारिणामिक द्रव्यका कोई कारण नहीं है, अपना कारण है। अनादि कालसे परिभ्रमण किया तो अपने कारणसे। और नहीं होता है अपने कारणसे। जो होता है अपने कारणसे होता है। दूसरा कोई करता नहीं। देव-गुरु-शास्त्र निमित्त हैं। उपादान तो अपना है, अपनेको करना पड़ता है, दूसरा कोई करता नहीं।

मुमुक्षु :- अपना ... क्यों नहीं करना चाहता है?

समाधान :- .. नहीं करना चाहता है, लेकिन ऐसा बोलता रहे या ऐसा रटन करता रहे कि इसमें दुःख है, सुख नहीं है, ऐसा है, वैसा है। पुरुषार्थ नहीं करे तो कैसे होवे? चाहता नहीं है। सुख तो सब इच्छते हैं। बोलनेसे नहीं होता है। कार्य करनेसे होता है।

मुमुक्षु :- रटन करना पुरुषार्थ नहीं है?

समाधान :- रटन करना पुरुषार्थ नहीं है। कार्य करना पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु :- विचारनेका भी मना कर दिया आपने, ... उससे आगे कहाँ जाय?

समाधान :- रटन करनेसे नहीं होता है। भीतरमें अभ्यास करनेसे, स्वभाव पीछाननेसे होता है। किसीको अंतर्मुहूर्तमें होता है, वह अपने पुरुषार्थसे होता है। नहीं होता है वह अपने कारणसे नहीं होता है। परिणति पलटना, मात्र रटन करनेसे नहीं होता है।

शास्त्रमें आता है, मैं बन्धा हूँ, बन्धा हूँ, ऐसे बन्धनका विचार करनेसे बन्धनकी बेड़ी नहीं टूटती। तोड़नेका कार्य करे तो बन्धन टूटे। प्रज्ञाछैनी जब प्रगट होवे तब कार्य होता है। मात्र विचार करे कि मैं बन्धा हूँ, मैं बन्धा हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं ऐसा हूँ, विभाव है, इतना रटन करनेमात्रसे नहीं होता है, कार्य करनेसे होता है।

मुमुक्षु :- कार्य करनेके लिये कैसे तैयार हो?

समाधान :- अपने आप तैयार होना चाहिये, स्वयं। आत्मा स्वतंत्र है। कोई रोकता नहीं है। उसे कोई रोकता नहीं है, अपने कारणसे स्वयं रुका है, पुरुषार्थ करे तो अपने आपसे होता है। किसीका कारण नहीं है। अनादि कालका कितना अभ्यास किया है। इतना सहज हो गया कि विचारना भी नहीं पड़ता। विभाव तो सहज चलता रहता है। ऐसे स्वभाव ओरका अपना अभ्यास तीव्र करना चाहिये।

मुमुक्षु :- आपने कैसे किया था? आप अपना बता दीजिये, हम तो वैसे ही करेंगे।

समाधान :- भीतरमेंसे इतनी तीव्रता होवे तब होता है। कहीं चैन न पड़े। क्षण-क्षणमें रात-दिन उसकी लगन लगनी चाहिये। दिन-रात चैन नहीं पड़े। रुकता है तो अपना प्रमाद है। कार्य नहीं करता है तो दरकार नहीं है। मात्र उससे नहीं होता है, कार्य करनेसे होता है।

(तोड़नेका कार्य) करे तो बेड़ी टूटती है। बोलनेसे नहीं टूटती। कहीं चैन नहीं पड़े। आश्रय नहीं लगे, अपने आश्रयसे सुख लगे। जब निरालम्बन हो जाय कि परका आलम्बन मुझे सुख नहीं देता है। चैतन्य द्रव्य पर दृष्टि करके, उसका ज्ञान करके, उसकी परिणति तीव्र करे तब होता है। अपने आश्रयको दृढ़ करे तो। और परसे छूट जाय तब। परका आलम्बन लेनेमें सुख लगता है तो नहीं होता है।

मुमुक्षु :- ऐसा वेदनका जोर आता है वह भी परालम्बन है?

समाधान :- परालम्बन है तो भी सब साथमें आता है। इसलिये परालम्बन है। परिणति ज्ञायक ओर करनी चाहिये। नहीं हुआ है तब तो ऐसा विकल्प बीचमें आता है। जब सहज परिणति नहीं हुयी, जब स्वानुभूति नहीं हुयी, सहज दशा नहीं हुयी तो विकल्प तो बीचमें आता है। परन्तु ज्ञायकका स्वभाव ग्रहण करके, उस ओर दृष्टि

करके अभ्यास करना चाहिये। ... ऐसा भीतरमेंसे ज्ञायकको ग्रहण करके बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये। बीचमें विकल्प तो साथमें रहता है। जबतक निर्विकल्प दशा नहीं हुयी हो तबतक।

उस दिन कहा न? छाछ और मक्खनको बिलोते-बिलोते वह मक्खन भिन्न हो जाता है। ऐसे अभ्यास करनेसे होता है।

मुमुक्षु :- अभ्यासरूप वेदनकी अधिकता हो तो अन्दर परिणति ...?

समाधान :- अभ्यासकी तीव्रता होवे, उस ओर परिणति झुके तब उसकी तीव्रता होवे तो विकल्प टूटे। जब मन्दता रहे तब नहीं टूटती। तीव्रता होवे तब टूटती है। .. कारण अल्प है इसलिये कार्य नहीं होता है। कारण कम है तो कार्य नहीं आता है। कारण अपना पूरा होवे तब कार्य आता है। शिवभूति मुनिको एक क्षणमें हो गया और किसीको देर भी लगती है। पर सबमें कारण अपना ही है, दूसरा कोई कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- .. पकड़ लेता है। ज्ञायकको पकड़ना चाहिये। उसमें पढनेकी कोई जरूरत नहीं है। शास्त्रका ज्ञान होवे तो बीचमें ठीक है, यह द्रव्य है, यह गुण है, पर्याय है, जाननेका बीचमें आता है, तो भी वह थोड़ा जानता है तो भी कर सकता है। आत्माका स्वभाव जाने। यह स्वभाव है, यह विभाव है। इतना जाने तो भी हो सकता है। मूल स्वभावको ग्रहण करे। शिवभूति मुनिने इतना ही ग्रहण किया-यह स्वभाव है, यह विभाव है। यह छिलका है, यह दाल है। यह स्वभाव है, यह विभाव है। इतना मूल प्रयोजनभूत ग्रहण करे तो (भी कार्य हो जाता है)।

ज्ञानके लिये भले पढे-लिखे तो उसमें कोई नुकसान नहीं है। लेकिन उससे हो सकता है ऐसा नहीं है। होता है अपने भीतरके पुरुषार्थसे होता है।

मुमुक्षु :- अन्दरका मार्ग नहीं मिलता?

समाधान :- अंतरका मार्ग नहीं मिलता। मात्र विचार करनेसे (नहीं होता)। विचार बीचमें आता है। जबतक नहीं होवे तबतक तत्त्वका विचार, शास्त्र अभ्यास, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा सब बीचमें होता है। परन्तु दृष्टि तो एक तत्त्व-ज्ञायकतत्त्व पर रखनी। मैं अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य हूँ। द्रव्य पर दृष्टि और ज्ञान सबका रखना। यह गुण है, पर्याय है, सबका ज्ञान करना। दृष्टि चैतन्य पर रखनी कि मैं चैतन्य अनादिअनन्त द्रव्य शुद्धात्मा हूँ। ऐसी दृष्टि करनेसे उसमें शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- आपके वचनामृतमें आता है, ७० नंबरका बोल है। जैसे वृक्षका मूल पकड़में आनेसे सब हाथमें आ जाता है। वैसे जिसे, ज्ञायकभाव पकड़ा, उसे...

समाधान :- परिचय तो नहीं है तो विभावका प्रेम है। स्वभाव तो अपना ज्ञानस्वभाव जो असाधारण है वह तो जाननेमें आ सकता है। देव-गुरु-शास्त्र मार्ग बताते हैं कि यह तेरा ज्ञायक स्वभाव है। उसका परिचय कर, उसका अनुभव कर। वे तो बताते हैं, तो अपना विचार करके स्वभाव ग्रहण करे तो परिचयमें आ सकता है। कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, अपना है। इसलिये वह परिचयमें आ सकता है। उसका परिचय हो सकता है, ज्ञान हो सकता है, सब हो सकता है। अपना तत्त्व है न? कोई दूसरा नहीं है।

उसमें ज्ञान, आनन्द सब है। परिचय न होवे तो भी परिचयमें आ सकता है। आप ही है, दूसरा कोई नहीं है। अपनेको भूल गया है। इसलिये परिचय नहीं है। अपनेको आप भूलके हैरान हो गया। अपनेको भूलके हैरान हो गया। अब परिचय हो सकता है। परिचय दूसरा है तो भी उसको भूलकर अपनेको ग्रहण कर सकता है। वस्तुका स्वभाव है। देव-गुरु-शास्त्र मार्ग बताते हैं, उसका विचार करे। मूल तत्त्व क्या है? वह परिचयमें आ सकता है। नहीं परिचयमें होवे तो भी परिचयमें आ सकता है।

समाधान :- .. अनादिका है। अभ्यास परका हो गया है। अपना अभ्यास करना चाहिये। चैतन्यदेव ज्ञायकतत्त्व अनादिअनन्त शाश्वत हूँ, उसका बारंबार अभ्यास करना। क्योंकि दूसरी सब बात तो परिचयमें आ गयी है, यह ज्ञायक आत्मा परिचयमें नहीं आया है। गुरुदेवने बहुत सुनाया है, कहीं भूल न रहे ऐसा गुरुदेवने स्पष्ट किया है। लेकिन उसे परिणति करके उसका पुरुषार्थ करना स्वयंको बाकी रहता है। वह पुरुषार्थ अंतरमेंसे स्वयं करे। बारंबार उसका अभ्यास करता रहे। अपनेमें दृष्टि, अपनेमें ज्ञान, अपनेमें लीनता, भेदज्ञान करके करे।

एक ज्ञायकतत्त्व और शुभ परिणाममें देव-गुरु-शास्त्र। अनादिअनन्त चैतन्यदेव.. सब अधूरी पर्याय जितना भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो पूर्ण स्वभाव है। पूर्णतासे भरा, उसमें ज्ञान पूर्ण, आनन्द पूर्ण, अनन्त गुण परिपूर्ण है। अनन्त काल गया तो भी उसमें कुछ कम नहीं हुआ है। ऐसा परिपूर्ण भगवान आत्मा है, उसे लक्ष्यमें लेना। मात्र पर्यायके कारण अपनी शक्ति,.. पर्यायमें प्रगटता नहीं है। पर्यायकी प्रगटता कैसे हो, उसके लिये स्वयंको परिणतिको पलटनेकी आवश्यकता है। परिणतिकी दिशा पलटनेकी जरूरत है। दिशा बाहर है उस दिशाको अंतर ओर देखनेकी जरूरत है। आत्माकी ओर। उसीका अभ्यास। यह जो अभ्यास है, उससे भी विशेष अभ्यास आत्माका करनेका है। तो वह प्रगट होता है। ऐसा आत्मा निर्विकल्प तत्त्व अनादिअनन्त स्वंय एक पारिणामिकभाव स्वरूप अनादिअनन्त है, उसे ग्रहण कर। दूसरे सब भाव है (क्षणिक हैं)। यह तो शाश्वत अनादिअनन्त भाव है, उसे ग्रहण कर। उसमें पारिणामिकभाव ज्ञायकभावमें

सब आ जाता है। उसे ग्रहण कर।

तू स्थाप निजने मोक्षपंथे, ध्या अनुभव तेहने। आत्माको मोक्षपंथमें स्थापित कर दे। द्रव्यदृष्टि ग्रहण करके बस, उसीकी परिणति प्रगट कर। उसका अनुभव कर। दूसरेमें जो विहार करता है, (उसे छोड़कर) चैतन्यमें विहार कर। एमां ज नित्य विहर, नहीं विहर परद्रव्यमें विहार करना छोड़कर, स्वयंमें विहार कर। वही मोक्षका पंथ है। वह करनेका है।

उसके लिये भेदज्ञानका अभ्यास करना। क्षण-क्षणमें विभाव स्वभाव मेरा नहीं है, मेरा चैतन्य स्वभाव सो मैं हूँ, चैतन्य स्वभाव सो मैं, दूसरा कुछ मैं नहीं हूँ। चैतन्यका स्वभाव ज्ञायकतत्त्व सो मैं। बस, इस तरह परिणतिको दृढ़ करनी। ज्ञायकता, ज्ञायककतामें परिणतिको दृढ़ करनी। उसमेंसे शुद्ध निर्मल पर्यायें प्रगट होती है। उसकी प्रतीत, उसका ज्ञान, उसकी परिणति विशेष दृढ़ता करनेसे उसमेंसे विशेष-विशेष सुख पर्याय प्रगट होती है। तो स्वानुभूति होती है। उसका अभ्यास करनेसे विकल्प टूटकर स्वानुभूति होती है। और वह स्वानुभूति बढते-बढते आत्मा .. पूर्ण ... उसका अभ्यास करनेसे, बारंबार उसमें विहार और लीनता करनेसे ... अनादिसे परकी कर्ताबुद्धि है। वह कर्ताबुद्धि छोड़कर मैं ज्ञायक हूँ, परका मैं कर्ता नहीं हूँ। चैतन्यदेव, उसीका अभ्यास

समाधान :- ... दो तत्त्व भिन्न है। जड़ तो पर तत्त्व है। विभाव अपना स्वभाव नहीं है। और स्वभावका भेद करना। मैं चैतन्यस्वभाव हूँ और यह विभावस्वभाव है। उसका भेदज्ञान करके क्षण-क्षणमें ज्ञायकका अभ्यास करना। उसकी रुचि, उसकी महिमा, उसका ज्ञान, उसकी लीनता सब करना। बारंबार अभ्यास करना। उपाय तो एक है। उसके लिये वांचन, विचार, स्वाध्याय आदि उसके लिये है। एक चैतन्यतत्त्वको पीछानेनेकि लिये।

मुमुक्षु :- चैतन्यसत्ता तो त्रिकाली है और परिणति भी साथमें चालू है। अब इसीका भेदज्ञान करके परिणतिका झुकाव स्व ओर करना है। वही कार्य करना है तो करते हुए भी झुकाव अन्दर कैसे ढले?

समाधान :- वस्तु तो शाश्वत है। परिणति बाहर जाती है, उसकी दिशा पलट देना। स्वसन्मुख कर देना। पर सन्मुख जाती है, (उसे) स्वसन्मुख कर देना।

मुमुक्षु :- यह पुरुषार्थ भारी है।

समाधान :- भारी है। तो भी बारंबार करना, बारंबार करना। छूट जाय तो भी बारंबार करना।

मुमुक्षु :- मैं ज्ञायक हूँ।

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ। मैं निर्विकल्प तत्त्व ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ।

मुमुक्षु :- जिसमेंसे ज्ञान परिणति बहती हो...

समाधान :- ज्ञान परिणति इसमेंसे आती है।

मुमुक्षु :- वह मैं हूँ।

समाधान :- हाँ। आनन्द परिणति उसमेंसे, ज्ञान परिणतिमेंसे सब उसमेंसे आती है। दिशा पलट दे, झुकाव पलट दे। पीछे तो अपना स्वभाव है। प्रथम भूमिका विकट है, फिर अपना पुरुषार्थ बारंबार अभ्यास करे तो सहज हो जाता है।

मुमुक्षु :- इसके लिये स्वाध्याय बहुत जरूरी है।

समाधान :- स्वाध्याय? जबतक नहीं होवे तबतक स्वाध्याय। दृष्टि आत्माको पीछाननेके लिये।

मुमुक्षु :- यह दृष्टिपूर्वक स्वाध्याय होवे तो कार्य जल्दी होवे।

समाधान :- हाँ, तो उसको मार्ग मिलता है। स्वाध्याय करे तो मार्ग मिलता है। गुरुदेवने जो मार्ग बताया, उस दृष्टिसे स्वाध्याय करना। तो स्वाध्याय करनेसे मार्ग मिलता है। लेकिन दृष्टि आत्मा पर रखना। बारंबार, बारंबार भेदज्ञानका अभ्यास करनेसे विकल्प टूटकर स्वानुभूति होती है।

मुमुक्षु :- इसी पुरुषार्थके लिये आपसे आशीर्वाद चाहते हैं।

समाधान :- गुरुदेवने कहा उस दृष्टिसे स्वाध्याय करना। गुरुदेवने जो मार्ग बताया, उस दृष्टिको ख्यालमें रखकर स्वाध्यायका अर्थ करना, शास्त्रका अर्थ (करना)। शास्त्रके अर्थको खोलना। गुरुदेवने खोला है उस दृष्टिसे उसका अर्थ खोलना।

मुमुक्षु :- हर समय निरंतर उपयोग तो वहीं जाना चाहिये कि मैं तो ज्ञायक हूँ। परिणति करे सो करने दो, मैं ज्ञायक हूँ। उस तरफका झुकाव..

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ। बारंबार उसका अभ्यास करना।

... गुरुदेवने कहा है, ज्ञायककी परिणति प्रगट करनी, करनेका वह एक ही है। ज्ञायक आत्माको भिन्न करके अंतरमें ज्ञायककी परिणति अन्दर ज्ञानमें लीनता करके स्वानुभूति प्रगट करनी। गुरुदेवने बताया है, वह करनेका है। सबने सुना है और गुरुदेवने मार्ग प्रगट किया है। आपने तो बरसों तक वही लढण किया है। अकेला शास्त्रका अभ्यास और गुरुदेवने कहा वह सब दृढ़ किया है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी कृपाकी बात है।

समाधान :- गुरुदेवकी कृपा तो ... ग्रहण किया इसलिये ... एक तत्त्व दूसरे तत्त्वका... परद्रव्य है, कोई कहाँ किसीका है? गुरुदेवने बहुत कहा है। चैतन्यतत्त्व भी भिन्न और अन्दर यह शरीर भी परद्रव्य है तो दूसरा तो कहाँ अपना होगा?

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१२३

समाधान :- .. एक ही है। एक ही करनेका है, गुरुदेवने कहा न कि, आत्माकी स्वानुभूति प्रगट करनी। स्वभाव है, अंतरमेंसे स्वानुभूति प्रगट करनी। गुरुदेवने बताया है, करना तो स्वयंको है। गुरुदेवकी हम सब पर बहुत कृपा थी। बरसों तक लाभ दिया। गुरुदेव जहाँ विराजते हो, वहाँ जीव जाय तो .. हो। जैसे भाव, स्वयं देव-गुरु-शास्त्रकी महिमाके और देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यकी भावना हो तो वह योग मिल जाता है। जीव जो अंतरमें भावना करता है, अंतरसे भावना (करता है) तो वह योग मिल जाता है।

समाधान :- .. संसारमें जन्म-मरण, जन्म-मरण तो चलते ही रहते हैं। इस भवमें भवका अभाव हो ऐसा मार्ग गुरुदेवने बताया है। उसका श्रवण मिले और वह ग्रहण हो, रुचि हो, सच्चा तो वह है। जीवनकी सफलता तो है। जीवने ऐसे जन्म-मरण कितने ही अनन्त किये हैं। कितने देवके भव किये, कितने मनुष्यके किये, तिर्यंचके, नर्कके अनन्त-अनन्त भव किये। इस भवमें इस पंचमकालमें ऐसे गुरुदेव मिले और ऐसा मार्ग मिला तो भवका अभाव हो, आत्माक स्वरूप समझमें आय, वह आनन्दकी बात है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- सब विचार बदल देना। संसारका स्वरूप ही ऐसा है। जन्म-मरण, जन्म-मरण.. जो कोई आता है, उसका देह परिवर्तन तो होता ही रहता है। आत्मा शाश्वत है। आत्मा जहाँ जाय वहाँ शाश्वत रहता है। आत्मा तो शाश्वत है। देहका परिवर्तन होता है। .. एक-एक आकाशके प्रदेशमें अनन्त बार जीवने जन्म-मरण किये हैं। कितने परावर्तन किये हैं, उसमें कुछ बाकी नहीं रखा है। कितने ही पुद्गल जगतके ग्रहण करके छोड़ दिये। इस भवमें गुरुदेव मिले वह महाभाग्यकी बात है। सब प्राप्त हो गया है। ऐसे गुरुदेव, यह सम्यग्दर्शन यह सब अपूर्व है। सुनने मिलना मुश्किल है।

ऐसे देव-गुरु-शास्त्र मिलने, ऐसा सुनना, यह सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति आदि सब अपूर्व है। वह करने जैसा है। .. देव-गुरु-शास्त्र, दूसरा सब हेय है। .. जीवको मिल गया है। .. कितने ज्ञानमें, कितने वैराग्यमें, कितनी महिमामें आगे बढ़े हैं। कितनी विरक्तिमें

(आया है), यह सबको विचारने जैसा है।

समाधान :- .. केवली भगवानको उपयोग (नहीं रखना पड़ता), उनको सहज होता है। स्वको और परको एकसाथ जानते हैं। उनकी परिणति वैसी ही है। छद्मस्थको एक के बाद एक उपयोग रखना पड़े, वैसे केवलज्ञानीको उपयोग नहीं रखना पड़ता। स्वयं स्वको जाननेमें पर ज्ञात हो जाता है, सहज ज्ञात हो जाता है। परिपूर्ण हो गये हैं, वीतराग दशा (पूर्ण हो गयी है)। स्वयं स्वभावमें लीन हो गये हैं। लीनतामें ज्ञानकी उतनी निर्मलता प्रगट हो गयी है कि उन्हें सहज ज्ञात होता है।

अनन्त शक्ति संपन्न ज्ञान है, ज्ञानमें कोई मर्यादा नहीं होती। ज्ञान परिपूर्ण जानता है। लेकिन उसे बाहर देखने नहीं जाना पड़ता। सहज परिणमते हैं। ज्ञानमें मर्यादा नहीं होती कि इतना ही जाने या इतना ही जाने, ऐसी मर्यादा ज्ञानमें नहीं होती। वह तो सहज जानते हैं। स्वको जाननेपर पर सहज ज्ञात होता है। स्वज्ञेय और परज्ञेय सबको केवलज्ञानी सहज जान लेते हैं। स्वपरप्रकाशक उसका स्वभाव है। परज्ञेयकमें एकत्व नहीं होते, फिर भी सहज जानते हैं।

मुमुक्षु :- ... पुरुषार्थकी धारा स्वकी ओर है, वैसे केवलज्ञान होनेके बाद वैसी ही रहती है?

समाधान :- .. स्वकी ओर धारा है वह तो साधकदशा है। केवलज्ञानीकी तो सहज दशा है। सातवेँ गुणस्थानके बाद तो श्रेणी चढे हैं। वह तो पुरुषार्थकी धारा है। केवली भगवान तो कृतकृत्य हो गये हैं। उन्हें .. सहज है। केवलज्ञानकी तो कृतकृत्य हो गये हैं। जो अंतरमें उपयोग गया सो गया, सहज स्वयं अपनेमें वीतरागदशारूप परिपूर्ण परिणमित हो गये। उन्हें अनन्त गुण-पर्याय जो सहज थे, वह सब प्रगट हो गये हैं, वेदनमें आ गये हैं।

सातवेँ गुणस्थानके बाद तो श्रेणी चढे हैं, वह तो साधकदशा है। उन्हें सातवेँ गुणस्थानमें भले बाहर उपयोग नहीं है, परन्तु वह तो साधकदशा है। उसमें कोइ परिपूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुयी है। छद्मस्थ (दशा है)। उसमें लोकालोक ज्ञात नहीं होता है। स्वकी ओर अवलम्बन है।

.. धारा एकदम वीतरागदशाकी ओर उसकी परिणतिकी धारा शुरू हुयी है। अबी वीतरागदशा प्रगट नहीं हुयी है। ज्ञानकी परिपूर्णता नहीं है। केवलज्ञानीका वीतरागताका ज्ञान परिपूर्ण परिणमित हो गया है।

मुमुक्षु :- केवली भगवान.. ऐसा नहीं होता।

समाधान :- .. उन्हें करना नहीं पड़ता, उन्हें पुरुषार्थकी धारा शुरू हो गयी है। केवलज्ञानीको पुरुषार्थकी धारा नहीं है, वे तो कृतकृत्य हैं। जो करनेका था वह कर

लिया है। कृतकृत्य वीर्य अनन्त प्रकाश जो। कृतकृत्यता हो गयी है।

मुमुक्षु :- .. शरीराकार ऐसा ख्यालमें लेना?

समाधान :- ऐसा कुछ नहीं है। शरीराकार ख्यालमें लेना पड़े ऐसा नहीं है। उसका ज्ञायक स्वभाव ख्यालमें लेना है। स्वभावसे ख्यालमें लेना है, आकारसे ख्यालमें नहीं लेना है। आकार तो, उसका ज्ञान होता है कि असंख्य प्रदेशी आत्मा है। आकारसे ख्यालमें लेना (नहीं है)।

समाधान :- .. कोई भविष्यका वादा नहीं करता। जिसे धर्मकी रुचि हो भविष्यका वादा नहीं करता। और इस पंचमकालमें तो क्या भरोसा है? अतः अन्दर जो धर्मकी रुचि हो वही सत्य है। बाकी संसार तो चलता ही है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! आपने कहा कि बाहरके कार्य तो चलते ही रहते हैं, वह अपनेआप होते हैं?

समाधान :- वह स्वयंको राग है, रागके कारण हुए बिना रहते नहीं। राग कहाँ उसने तोड़ा नहीं है, रागके कारण होता ही रहता है। उसकी तीव्रता कम करके धर्मकी रुचि बढानी, वह सत्य है। मैं चैतन्यस्वरूप ज्ञायक आत्मा, कैसे प्रगट करुँ? वह करने जैसा है। राग है, उस रागके कारण सब होता रहता है। स्वयंने राग कहाँ तोड़ा है? अच्छे काम पहले करता है, वैसे धर्म पहले करना, ऐसा है। महापुरुष तो, गुरुदेव ऐसा ही कहते थे, धर्म पहले करना।

.. महिमा करनी, चैतन्य कैसे जाननेमें आये, वह सब जीवनमें करने जैसा है। भगवानको केवलज्ञान हुआ, उसकी वधामणी आती है। चक्ररत्न प्रगट हुआ, उसकी वधामणी आती है। तो प्रथम उत्सव भगवानके केवलज्ञानका करते हैं कि प्रथम मुझे धर्म है, बादमें मुझे यह है। ऐसा करते हैं।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- शास्त्रका अभ्यास करना और देव-गुरुकी महिमा हृदयमें रखनी। बाहरसे संयोग तो नहीं है, हृदयमें रखना। गुरु और देवको हृदयमें रखना, शास्त्रका अभ्यास करना। शास्त्रमें क्या मुक्तिका मार्ग बताया है, उसका विचार करना। .. वह तो अपनी शक्ति अनुसार सुलझाये दूर बैठे-बैठे। वहाँ तो एक शास्त्र होते हैं, देव-गुरु तो समीप नहीं है। .. हुआ हो तो वहीका वही, वहीका वही करता ही रहता है। ऐसे आत्माकी रुचि हो तो उसकी अपूर्वता लगे तो उसमें थके नहीं। गुरुदेवने कोई अपूर्वता बतायी है, उस अपूर्व मार्ग पर जाने जैसा है।

मुमुक्षु :- रात और दिन एक धुन।

समाधान :- बस, एक ही धुन यहाँ तो (है)। आत्मा स्वानुभूतिका मार्ग, भेदज्ञान

और स्वानुभूति। आत्माकी दशा कोई अपूर्व... वह कैसे प्रगट हो, यही करने जैसा है। आत्माकी दुनिया कोई अलग ही है, वह प्रगट कर। गुरुदेव जहाँ बसे वहाँ सब अलग है तो आत्मा तो उससे भी अलग है।

मुमुक्षु :- .. वह क्षेत्र ऐसा अलग लगे तो..

समाधान :- वह बात तो उससे भी अलग है।

मुमुक्षु :- अपनी सुबहकी पूजा कोई देखे, एक पूजा देखे कि सोनगढ़में कैसी पूजा होती है, तो भी ऐसा अहोभाव आये कि ऐसी पूजा किसीने देखी नहीं होगी। समूह पूजा होती है, वह भी ऐसी कोई...

समाधान :- भाववाही सबको होती है।

मुमुक्षु :- सबके हाथमें पुस्तक, अर्थसहित समझना..

समाधान :- अपूर्व मार्गकी लाईन बता दी है। कोई भूल न करे इतना स्पष्ट कर दिया है। जीवको अनादिकालसे पुण्यकी और शुभभावकी मीठास छूटनी मुश्किल है। वह मुश्किल है। गुरुदेवने तो कहाँ ऊड़ा दिया।

... भगवानके समवसरणमें जाता है, भगवानकी ध्वनि सुनने। पहले वह उत्सल करना है। भगवानको केवलज्ञान हुआ, बाकी सब बादमें। संसार मुख्य नहीं है, धर्म मुख्य है। इतना करनेके बाद धर्म बादमें, बुढापेमें करेंगे, वह सब तो वादे हैं। धर्म तो साथमें ही रहना चाहिये। संसारका तो होता रहता है, वह तो राग पड़ा है तो हुए बिना रहेगा नहीं। इसके बाद करुँगा, इसके बाद करुँगा, एकके बाद एक आते ही रहता है। पूरा ही नहीं होगा। इसलिये गुरुदेवने कहा न कि तुझे मकड़ीकी झाल लगेगी। ... यह काम करो और वह काम करो। ...

प्रवृत्तिके योगमेंसे निवृत्तिका योग खोज लेना। आत्मा निवृत्त स्वरूप है। आत्माकी ओर कैसे मुड़ना वह अन्दरसे खोजते ही रहना। देव-गुरु-शास्त्रके प्रसंगोंमें मुझे ज्ञायक मुख्य है। सब प्रसंगमें मुझे आत्मा मुख्य है, मुझे भेदज्ञानकी धारा और ज्ञायक, चैतन्यदेव मुख्य है। देव-गुरु-शास्त्रको मुख्यरूपसे रखकर बाकी सब बादमें।

... बाह्य संयोगमें तुने अन्दरको ज्ञाताको पहचाना होगा, कुछ आराधना की हो, कुछ समझ की हो, तत्त्वके विचार किये हो तो वह सब तुझे काम आयेगा। देव-गुरु-शास्त्रकी आराधना, ज्ञायककी आराधना तुझे काम आयेगी। यह बाहरका कुछ काम नहीं आयेगा। बाहरसे बहुत करता हो, परन्तु वह सब उस वक्त साथ नहीं देते। बाहरसे ऊपर-ऊपरसे करे, थोड़ा वांचन कर ले, थोड़ा त्याग कर ले, लेकिन वह क्या काम आये? अंतरसे हृदयका भेद होकर अन्दर रुचि हुयी हो कि अहा..! यह सब भिन्न है, यह आत्मा नहीं है। यह सब आकुलतारूप है। अन्दर ... सुख अन्दर है। ऐसे

अन्दर हृदयका भेद होकर जो हुआ हो और सुख हो वह अलग होता है। यह कोई बाहरमें.. अभी लौकिकमें आता है न? लोग उपवास करते हैं, ... उसमें किसीका मरण होता है, ऐसा पेपरमें आता है।

.. अन्दरसे ज्ञायकको प्रगट करना, भेद करना है विभाव और स्वभावमें, ऐसा अंतरमें होकर हो वह अलग होता है। ज्ञायककी धारा प्रगट हो वह अलग प्रगट होती है। उसके सहित जो शुभ परिणाम आवे वह अलग बात है।

.. अपूर्व मार्ग बताया है। उस मार्ग पर जाय तो अंतरमेंसे ज्ञायक प्राप्त हो, भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, शान्ति प्रगट हो, स्वानुभूति हो, सब उसी मार्गसे होता है। देशव्रत भी आये, उस मार्गपर मुनिपना आता है, सबकुछ उस मार्ग पर आता है। ज्ञायकको ग्रहण कर, भेदज्ञानकी धारा कर, स्वानुभूति प्रगट कर, सब उसी मार्ग पर प्रगट होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१२४

समाधान :- .. सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान और सम्यग्दर्शनपूर्वकका चारित्र वह सत्य है, वह सत्य चारित्र है।

.. राग-द्वेष टालनेका एक व्यवहारका प्रकार है। यथार्थमें तो अंतरमेंसे टालना है। वह तो विभाव है।

.. प्राप्त करना वही भवके अभावका उपाय है। ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी आराधना करना वह है। रत्नत्रय। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, अनन्त गुणसे भरपूर है। दसलक्षण मुनिका आराधना पर्व है। मुनिके धर्म हैं। श्रावकोंको भी करने जैसा है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र रत्नत्रयकी आराधना करने जैसी है।

गुरुदेवने सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, उसका उपाय बताया, वह करना है। बाकी बाहरका तो अनेक बार किया ही है। सब क्रियाएँ की, शुभ परिणाम (किये), पुण्य बन्धन (हुआ), परन्तु भेदज्ञान करके जो अंतरमेंसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हो वही मोक्षका उपाय है। शरीक कहाँ अपना है, वेदना कहाँ आत्मामें है, आत्मा तो निराला चैतन्य तत्त्व है। उसमें कोई चीज प्रवेश नहीं कर सकती। रत्नत्रयकी आराधना करनी, वह करनेका है।

मुमुक्षु :- (आप तो) आराधना करके परिणमित हो गये हो, हमें...

समाधान :- सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र अलग है। सब मान रहे हैं व्यवहारका वह अलग है। वह सब तो विकल्परूप है। कितने तो क्रियामें मानते हैं, कोई शुभभावमें मानते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्रका भेद पड़ा वह भी शुभभाव है, अन्दर रत्नत्रयकी आराधना करनी। ज्ञान आत्मामें (है), दर्शन आत्मामें (है)।

.. भेदज्ञान करना है। स्वयं भिन्न (है)। सब देखता है परन्तु उससे भिन्नताकी श्रद्धा करे कि मैं इससे भिन्न हूँ।

... शुद्ध स्वभावकी परिणतिरूप क्रिया, वह अंतरकी क्रिया अंतरमें है। चैतन्यस्वभाव पर दृष्टि करके अन्दर स्वभावरूप परिणति प्रगट हो, वह स्वभावक्रिया है। .. श्रद्धा भिन्न होनी चाहिये कि मैं भिन्न हूँ।

.. क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि श्रावकोंको भी करने जैसा है, सम्यग्दर्शनपूर्वक।

वह प्रगट नहीं तो तबतक उसकी आराधना करनी, उसका अभ्यास करने जैसा है। उसके साथ यह सब धर्म आते हैं। क्षमा, आर्जव, मार्दव वह सब आराधना करने जैसी है। रत्नत्रयकी आराधना।

.. आराधना करनेसे उसमें ज्ञायककी आराधना करनेसे ... आत्मा चैतन्यदेवकी प्राप्ति होती है। बाकी देव-गुरु-शास्त्रकी विराधना करनेसे उसका फल अच्छा नहीं आता। आराधना करनेसे फल अच्छा आता है। .. आराधनामें आत्माकी आराधना समा जाती है। आत्माकी आराधनापूर्वक वह सब होता है। वह करनेसे उसमें आत्मा ऊपर आता है और उसकी यदि विराधना की तो दूर हो जाता है। वैसे आत्मासे भी दूर जाता है, ऐसा उसका आशय है। विराधना करनेसे उसका फल अच्छा नहीं आता है और आराधना करनेसे फल अच्छा आता है।

पुण्यकी इच्छा करने जैसा नहीं है। अन्दर आत्मा-शुद्धात्माका फल आये, शुद्धात्माकी परिणति प्राप्त हो वह करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्रकी आराधनामें वह समाया है। उसमें शुभ तो बीचमें होता ही है। जहाँ अनाज पकता है, वहाँ डंठल साथमें होता ही है। डंठल पर दृष्टि नहीं है, दाने पर दृष्टि है। शुद्धात्माका फल आवे उसमें पुण्यका डंठल तो साथमें होता ही है। पुण्य तो साथमें होता ही है।

.. तो समीप आवे ही। जिसकी शुद्धात्मा पर दृष्टि हो। .. गुरुदेव कहते हैं न? ... शुद्धात्मा पर दृष्टि... जिनेन्द्र महिमा कोई अलग वस्तु है, उसमें आत्माकी महिमा समाविष्ट है। जगतमें सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकरदेव हैं। उनकी महिमा यानी अंतरंगसे आयी हुयी महिमा, उसमें चैतन्यदेवकी महिमा समाविष्ट है। सच्चा, यथार्थ हो तो। यथार्थ भेदपूर्वक हो तो। .. आत्माकी आराधना करने जैसा है।

.. पहले तो कहाँ मन्दिर जाना आदि कुछ था नहीं। शास्त्रमें आता है न? जिन प्रतिमा जिन सारखी। गुरुदेवने सब बताया है। साक्षात् जिनेन्द्र देव तो अभी इस भरतक्षेत्रमें नहीं है। तो उनकी प्रतिमाजीकी स्थापना करके पूजा करनेका आता है। साक्षात् भगवान विराजते हों, उनकी तो इन्द्रों पूजा करते हैं। प्रतिमाओंकी भी चतुर्थ कालमें पूजा करते हैं, तो वह मार्ग ही है। प्रतिमाओंका स्थापन करते हैं, पूजा करते हैं, शाश्वत प्रतिमाएँ जगतमें हैं। जगतमें सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकरदेव हैं तो जगतके परमाणु भी शाश्वत रत्नकी प्रतिमारूप परिणमित हो गये हैं। जगतके पुद्गल भी। रत्नकी शाश्वत प्रतिमाएँ हैं। ऊर्ध्वलोक, मध्यलोकमें शाश्वत प्रतिमाएँ हैं। मेरुमें, नंदीश्वरमें रत्नकी पाँचसौ-पाँचसौ धनुषकी, जैसे भगवान समवसरणमें विराजते हैं, वैसी प्रतिमाएँ हैं, एकमात्र ध्वनि-दिव्यध्वनि नहीं है।

जगतमें सर्वोत्कृष्ट भगवान तीर्थंकरदेव हैं। वे सर्वोत्कृष्ट हैं तो जगतके परमाणु भी रत्नमय प्रतिमारूप शाश्वत परिणमित हो गये हैं। यह बताता है कि जगतमें सर्वोत्कृष्ट

जिनेन्द्र देव हैं। देव उनकी पूजा करते हैं कि यह भगवान आदरणीय हैं। अकृत्रिम है परन्तु कुदरत परिणमित हुयी है। अकृत्रिम शाश्वत प्रतिमाएँ, उस रूप कुदरत परिणमित हो गयी है। अतः श्रावक भी उस तरह प्रतिमाओंकी स्थापना करते हैं। चतुर्थ कालमें भी प्रतिमाओंकी स्थापना होती है और पंचमकालमें (भी करते हैं), वह मार्ग ही है।

बड़े राजा, चक्रवर्ती भी प्रतिमाओंकी स्थापना करते हैं। मन्दिर बनवाते हैं, प्रतिमाओंकी स्थापना करते हैं। अंतरमें ज्ञायकदेव समझमें नहीं आया है, पूर्णता प्राप्त नहीं हुयी है तबतक बाहरमें शुभभावमें जिनेन्द्र देव, गुरु एवं शास्त्रके शुभभाव आये बिना नहीं रहते। ... मुनि हों, वे भगवानके दर्शन तो करते ही हैं। पूजा तो श्रावक करते हैं और मुनि दर्शन तो करते ही हैं।

मुमुक्षु :- .. और ज्ञानका उघाड़ भी है, परन्तु राग जितना स्पष्ट ज्ञेय होता है, उस तरह उघाड़ ज्ञेय नहीं होता है।

समाधान :- राग दिखता है। राग अनादिका.. (वस्तुको) देखता नहीं है और स्वयं रागको देखता है। रागमें एकत्वबुद्धि है इसलिये। .. तो स्वयं ही है। अपनी ओर दृष्टि करे तो ज्ञान भी दिखाई दे। परन्तु दृष्टि अपनी ओर नहीं है और राग ओर दृष्टि है। रागका वेदन है। ज्ञानकी ओर दृष्टि नहीं करता है, ज्ञानका वेदन नहीं करता है। दिखाई नहीं देता है। अनादिका अभ्यास रागकी ओरका है इसलिये।

.. जाननेवाला कौन है? स्वयं ही है। राग है उसे जाना किसने? स्वयंने। स्वयं स्वयंको नहीं देखता है। अनादिकी ऐसी भ्रम बुद्धि हो गयी है।

मुमुक्षु :- पहले तो जिस ज्ञानका ग्रहण होता है वह तो पर्याय है न?

समाधान :- ज्ञानका ग्रहण होता है वह पर्याय है, लेकिन वह ग्रहण किसे करती है? ज्ञान स्वयं स्वयंको ग्रहण करता है, शाश्वत द्रव्यको ग्रहण करती है। ग्रहण करनेवाली भले पर्याय है, परन्तु शाश्वत द्रव्यको ग्रहण करती है। वह पर्यायको देखता नहीं है, वह देखता है शाश्वत द्रव्यको देखता है। पर्याय तो बीचमें आती है। पर्याय तो ग्रहण करती है, परन्तु ग्रहण करना किसे है? कि शाश्वत द्रव्यको ग्रहण करना है।

.. पर्याय इस ओर आये, परन्तु स्वकी ओर पर्याय जाती है, लेकिन ग्रहण अखण्ड एवं शाश्वतको ग्रहण करनेका है। अंश भी अंशीको ग्रहण करता है, पूर्णको। तो ही यथार्थतासे ग्रहण किया है। एक अंश ग्रहण होता हो तो ग्रहण नहीं किया है। अंशी ग्रहण हो तो ही उसने यथार्थ ग्रहण किया है।

मुमुक्षु :- .. जिसके द्वारा ग्रहण होता है।

समाधान :- ज्ञान ही असाधारण लक्षण है। मुख्य लक्षण ज्ञान ही है। ... तो बादमें प्रगट होता है, पहले तो उसे ज्ञानसे ग्रहण होता है। ज्ञान ही असाधारण लक्षण

है। उसे भेदज्ञान हो तो शान्ति प्रगट हो, बाकी शान्तिका लक्षण पहले (ग्रहण नहीं होता है), पहले ज्ञानका लक्षण असाधारण है। अनन्त गुण है, परन्तु असाधारण विशेष लक्षण हो तो ज्ञान ही है। ज्ञान कहो, चेतना कहो, जो भी कहो, उपयोग कहो। सब एक ही है। उपयोग यानी पूरा ले लेना, पूरा ज्ञान आत्मा। कोई जगह उपयोगको पर्याय कहा हो, उपयोग पूरा भी लेते हैं, उपयोगमें उपयोग यानी पूरा ले लेना। लेकिन वह एक ही है। ज्ञानमें सब आ जाता है।

मुमुक्षु :- .. उसका लक्षण शान्ति और आनन्द बने कि उसका लक्षण भी ज्ञान ही रहे?

समाधान :- उसे कहाँ फिर लक्षणसे ग्रहण करनेका है? उसे तो ग्रहण हो गया है, उसे ग्रहण नहीं करनेका है। उसे ज्ञायक ग्रहण हो गया है। ज्ञायक उसे हाजराहजूर सब लक्षण ही है। ज्ञायक है, शान्ति, आनन्द सब है। उसे ग्रहण करनेका नहीं है, उसे ग्रहण हो गया है। पूरा ज्ञायक ग्रहण करता है, उसमें उसे शान्ति, ज्ञायकता सब आ जाता है। वेदकता, चैतन्यता ये सब जीव विलास। सब उसमें आ जाता है। समता, रमता, ऊर्ध्वता, ज्ञायकता, सुखभास। वेदकता, चैतन्यता ये सब जीव विलास। समता, रमता। रम्य स्वभाव है, ऊर्ध्वता, ज्ञायकता, सुखभास सब ज्ञायकमें आ जाता है। वेदकता, चैतन्यता वह सब जीवके लक्षण है। वह जिसे ग्रहण हुआ उसमें सब आ जाता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको परिणति व्यापाररूप होती है ऐसा आप फरमाते हो। परन्तु उसका अर्थ समझमें नहीं आता है।

समाधान :- व्यापाररूप अर्थात् ज्ञायकता और भेदविज्ञानकी परिणति सविकल्प दशामें ज्ञानीको जो स्वानुभूति हुयी, उसके बाद जो सविकल्प दशा होती है, उसमें ज्ञायककी धारा उसे वर्तती है। जितने अंशमें उसे ज्ञायकता प्रगट हुयी है, पूरी दृष्टिने तो द्रव्यको ग्रहण किया। उसमें ज्ञान उस ओर झुका है और आंशिक परिणति झुकी है। इसलिये उसकी ज्ञायकताकी धारा वर्तती ही रहती है। उसे विशेष-विशेष पुरुषार्थकी धारा, भेदज्ञानकी धारा वर्तती रहती है। उसका पुरुषार्थका व्यापार चलता रहता है।

क्षण-क्षणमें उसे भेदज्ञानकी धारा वर्तती ही रहती है। चाहे जैसे शुभ विकल्प हो तो भी उसे भेदज्ञानकी धारा, ज्ञाताकी धारा वर्तती ही रहती है। वह वर्तती है, उसे कभी स्वानुभूति होती है, कभी वह सविकल्पतामें हो, लेकिन भेदज्ञानकी धारा उसे क्षण-क्षणमें चलती है। चाहे जो भी कार्यमें हो, विकल्पमें हो, भेदज्ञानकी धारा ज्ञायककी धारा, उसे आंशिक शांतिका वेदन, ज्ञायकता वह सब उसे छूटता नहीं है। सबसे उर्ध्व भिन्न रहता है। वह उसे छूटता नहीं। जागते, सोते, स्वप्नमें भी उसे ज्ञायकताकी धारा ऐसे ही चलती रहती है।

मुमुक्षु :- ज्यादासे ज्यादा कितनी शीघ्रतासे निर्विकल्प दशा हो सकती है?

समाधान :- उसके पुरुषार्थकी योग्यता हो उस अनुसार होती है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें क्षण-क्षणमें होती है, वैसा उसे नहीं होता। चौथेसे पाँचवेमें विशेष होती है। चौथेके योग्य हो उतना उसे होता है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें होती है, ऐसा उसे चतुर्थ गुणस्थानमें उतनी शीघ्रतासे नहीं होती। बाकी जैसी उसकी पुरुषार्थकी गति हो, उस अनुसार होता है। उसका नियमित काल नहीं होता है।

मुमुक्षु :- कोई जीव तीव्र पुरुषार्थी हो तो?

समाधान :- तो उसकी परिणति अन्दर उग्रतासे, ज्ञायककी उग्र परिणति हो तो उसे विशेष होती है। किसीको अमुक होती है, किसीको अमुक होती है, परन्तु उसकी भूमिकाका उल्लंघन करके नहीं होती, भूमिका अनुसार होती है।

मुमुक्षु :- एक दिनमें पचास-साँठ बार निर्विकल्प दशा हो, ऐसा होता है?

समाधान :- पचास-साँठ बार हो ऐसी दशा चतुर्थ गुणस्थानमें नहीं होती।

मुमुक्षु :- तीन-चार बार होती हो, ऐसा है?

समाधान :- ऐसा कोई नियम नहीं है। ... ऐसा नहीं होता। स्वानुभूति करनेवालेको स्वानुभूतिकी गिनती पर लक्ष्य नहीं है। उसे स्वभावकी शुद्धि वृद्धिगत करने पर (लक्ष्य) होता है। उसमें उसकी स्वानुभूतिकी दशा वर्धमान होती जाती है। उसके स्वभावकी निर्मलता, चारित्रकी परिणति विशेष-विशेष निर्मल होती जाती है। उस पर उसकी परिणति होती है, उसमें उसे स्वानुभूतिकी दशा वर्धमान होती जाती है। ऐसा करते-करते उसका उग्र काल होता है तो मुनिदशा आती है।

मुमुक्षु :- .. तो ज्ञानीको कैसे मालूम पड़े कि यह पाँचवा आया?

समाधान :- उसकी परिणति निर्मलताके समय जो है, उसकी स्वानुभूतिकी दशा बढती जाती है, अंतरमें परिणतिकी निर्मलता बढती जाती है। विरक्ति बढती जाती है। गृहस्थाश्रमके योग्य जो परिणाम होते हैं, उससे विरक्तिके परिणाम विशेष वर्धमान होते जाते हैं। इसलिये वह पकड़ सकता है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प दशा ..

समाधान :- निर्विकल्प दशा बढती जाती है। सविकल्प दशामें विरक्ति बढती जाती है। निर्विकल्प दशा भी बढती है और सविकल्पतामें विरक्ति ज्यादा होती है।

मुमुक्षु :- चौथेमें भी उस प्रकारसे फ़र्क़ पड़ता है?

समाधान :- चौथेकी भूमिका एक होती है, परन्तु उसकी परिणतिकी तारतम्यतामें फ़र्क़ होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१२५

मुमुक्षु :- .. जीवको भी जातिस्मरण होता है तो उसने क्या पहले ज्ञानकी आराधना की होगी?

समाधान :- .. ज्ञानकी आराधना की हो ऐसा कुछ नहीं है। ज्ञानका उघाड़ किसीको होता है, किसीको अज्ञान दशामें भी होता है। जीव अनन्त कालमें बहुत क्रियाएँ करता है, यह करता है, परिणाममें नव पूर्वका ज्ञान होता है। ऐसा ज्ञानका उघाड़ तो जीवको बहुत बार हुआ है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते थे कि ज्ञानीका जातिस्मरणज्ञान और अज्ञानीका जातिस्मरणज्ञान, इन दोनोंमें बहुत फ़र्क़ है।

समाधान :- फ़र्क़ यानी उसकी दशा अलग है, उसकी दशा एकत्वबुद्धि युक्त है। (ज्ञानीको) स्वानुभूति सहितकी है, अज्ञानीको एकत्वबुद्धि सहितकी है।

मुमुक्षु :- तत्त्वका निर्णय पक्का होना चाहिये, तो निर्णयकी परिभाषा क्या है?

समाधान :- मैं ज्ञायक ही हूँ। यह सब मुझसे (भिन्न है), यह स्वभाव मेरा नहीं है। यह सब जो विभाव दिखते हैं, उसमें सूक्ष्म-सूक्ष्म जो-जो भाव दिखते हैं, वह कोई मेरा स्वरूप नहीं है। मैं चैतन्यतत्त्व ही हूँ। ज्ञायक ही हूँ। निर्विकल्प तत्त्व ही हूँ। उसमें उसे शंका नहीं होती। अंतरमेंसे स्वभावको पहचानकर ऐसा दृढ़ निर्णय उसे होना चाहिये।

जो विभाव दिखते हैं, वह मैं नहीं है। मैं तो चैतन्यतत्त्व ही हूँ। अपना अस्तित्व ग्रहण करके नक्की करता है, पक्का निर्णय (करता है)। उसमें फिर उसे उस दृढ़तामें फ़र्क नहीं पड़ता, ऐसा दृढ़ निर्णय होना चाहिये। ज्ञायक ही हूँ। स्वतःसिद्ध तत्त्व अनादिअनन्त अखण्ड चैतन्यद्रव्य ही हूँ, ऐसा भले उसे विकल्प न हो, परन्तु मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसा दृढ़ निर्णय होना चाहिये।

मुमुक्षु :- वह सब ज्ञानके पहलू हुऐ? दृष्टिको समर्थन मिलता ही रहता है?

समाधान :- ज्ञानमें भी, मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसे स्वयं अपना अस्तित्व ग्रहण करके.. ज्ञानका पहलू है, लेकिन स्वयंको ग्रहण करके (है), इसलिये उसमें दृष्टिका पोषण साथमें आ जाता है। अपना अस्तित्व ग्रहण करके मैं ज्ञायक हूँ। दृष्टिका ज़ोर साथमें आ

जाता है। यथार्थ ज्ञान हो तो यथार्थ दृष्टि (होती है)। जैसे यथार्थ दृष्टि हो उसके साथ यथार्थ ज्ञान होता है, वैसे स्वयं पक्का निर्णय करे तो उसके साथ यथार्थ दृष्टि प्रगट हुए बिना नहीं रहती। अपना अस्तित्व अपनेमेंसे ग्रहण करना चाहिये।

मुमुक्षु :- इसका प्रयोग करने बैठे तो प्रयोग हो सकता है?

समाधान :- वह स्वयं करे तो हो सकता है। मैं यह ज्ञायक ही हूँ, ज्ञायक ही हूँ। उसे स्वयं महिमापूर्वक (करे), शुष्कतापूर्वक ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसे नहीं, परन्तु अंतरसे उसे महिमापूर्वक ज्ञायकमें ही सबकुछ है। ज्ञायक ही महिमावंत है। उतनी महिमापूर्वक उसका ध्यान एकाग्रता हो तो उसे यथार्थ ज्ञायककी परिणति प्रगट होती है। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे शब्दरूप या शून्यतारूप या शुष्कतासे ज्ञायक यानी कुछ नहीं है, ऐसे नहीं। ज्ञायक भरपूर भरा हुआ एक तत्त्व, चैतन्य अद्भुत तत्त्व है। ऐसी अद्भुततापूर्वक और महिमापूर्वक यदि उसका ध्यान करे और एकाग्रता करे तो वह प्रगट होता है। उसकी महिमापूर्वक कि इस ज्ञायकमें सब भरा है, अद्भुत तत्त्व है, ऐसा दृष्टिका ज़ोर, ऐसा ज्ञानका निर्णय, ऐसा उसे अद्भुततापूर्वक हो तो उसका ध्यान यथार्थ होता है। नहीं तो कितनोंको तो ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ ऐसी शून्यतारूप अथवा एक विकल्परूप हो जाता है तो ध्यान यथार्थ नहीं होता है। उसकी अद्भुतता लगनी चाहिये। ज्ञायकमें सब है।

भगवानने जैसा स्वरूप प्रगट किया, भगवानका जैसा चैतन्यतत्त्व जिनेन्द्र देवका है ऐसा ही मेरा चैतन्य ज्ञायक है। ऐसी महिमासे भरा हुआ, वह एक विकल्प हुआ, परन्तु मैं चैतन्य अद्भुत तत्त्व ही हूँ। ऐसी अंतरमेंसे स्वयंकी महिमा आनी चाहिये। तो ध्यान यथार्थ होता है। .. विचार करे, स्वाध्याय करे ऐसा सब करे, लेकिन उसका ध्यान कब जमता है? कि, उसमें अद्भुतता लगे तो ध्यान जाता है।

समाधान :- .. भीतरमें स्वानुभूति नहीं हुयी तो सच्चा तो नहीं हुआ। पहले तो सम्यग्दर्शन प्रगट करे। सम्यग्दर्शन पूर्वक संयम होता है। भेदज्ञान करे, स्वानुभूति प्रगट करे, गृहस्थाश्रममें पहले सम्यग्दर्शनका प्रयत्न करना चाहिये। मैं आत्माको कैसे पहचानूँ? आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। मैं चैतन्यद्रव्य हूँ। ऐसी श्रद्धा करना, ज्ञान करना, पहले तो ऐसा करना। और बादमें संयमकी पूजा होती है तो संयम आदरणीय है। पूजाके लिये तो कुछ होता नहीं।

मैं आत्मा आदरणीय हूँ। ऐसा .. सब आदरणीय है, ऐसा गुण आदरणीय है। उसके लिये करना, परन्तु पहले तो सम्यग्दर्शन प्रगट करना, बादमें संयम होता है। पूजाके लिये तो कुछ होता नहीं, आत्माके लिये सब होता है। पहले सम्यग्दर्शन होता है, बादमें संयम होता है। ऐसे तो बाहरसे त्याग कर दिया, अनन्त कालमें बहुत किया।

आत्माके भीतरमें सच्ची स्वानुभूति नहीं हुयी। बाहर त्याग किया, संयम लिया तो देवलोकमें गया और परिभ्रमण तो ऐसे ही रहा। ऐसा तो बहुत किया।

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो, वनवास लियो मुख मौन रहा, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो। सब शास्त्रनके नय धारी हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये, अब क्यों न विचारत है मनसे, कछु और रहा उन साधनसे। साधनमें कुछ और रह जाता है, भीतरमें स्वानुभूति रह जाती है। सब कुछ किया परन्तु स्वानुभूत नहीं प्रगट की। स्वानुभूति प्रगट करना, बादमें संयम होता है। संयम होता है। अपने स्वरूपमें लीनता, स्वरूपमें रमणता, उसके साथ शुभभाव होता है तो श्रावकके व्रत होते हैं, मुनिदशा आती है। मुनिको तो छठ्ठे-सातवेंमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूति होती है, क्षण-क्षणमें स्वानुभूति होती है। ऐसी मुनिकी दशा होती है।

इसलिये पहले सम्यग्दर्शन करना। स्वाध्याय करके मैं आत्माको कैसे पीछानुं, ऐसा विचार करना। आत्माको पीछानना। साथमें स्वाध्याय (करे), लेकिन आत्माको पीछाननेका प्रयत्न करना।

मुमुक्षु :- विकल्प तो बहुत होते हैं, बहुत विकल्प होते हैं, अन्दर नहीं जाया जाता।

समाधान :- पुरुषार्थकी कमी है, पुरुषार्थकी कमी है। अंतर दृष्टि करे तो... पुरुषार्थ करना पड़े न। पुरुषार्थ बिना कैसे होगा?

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ कैसे करना?

समाधान :- पुरुषार्थ थोड़ा करे और कार्यकी (अपेक्षा रखे तो कैसे हो?)। कैसे? वह स्वयं करे तो होता है। किये बिना कुछ नहीं होता। एकत्वबुद्धि अनादिकी है, वैसा भेदज्ञान उसके सामने प्रगट करे तो होता है। पुरुषार्थ करे तो होता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ कैसा होता है? कैसे करना?

समाधान :- कैसा होता है क्या, वह स्वयं ही अन्दरसे खोज लेता है। जिसे जिज्ञासा हो, जिसे भूख लगी हो, वह खाना स्वयं ही खोज लेता है। वह रह नहीं सकता। वैसे जिसे अन्दरमें जिज्ञासा जागृत हो, आत्माके बिना रह नहीं सकता तो कैसे प्रगट करना (वह खोज लेता है)।

गुरुदेवने बहुत बताया है, शास्त्रमें बहुत आता है, तो स्वयं ही अन्दरसे खोज लेता है। जिसे भूख लगी हो, वह भूखा नहीं बैठा रहता। उसे कैसे तृप्ति हो, वह स्वयं ही अंतरमेंसे खोज लेता है। स्वयं ही खोज लेता है अंतरमेंसे। ... तृप्ति हुए बिना रहे नहीं, स्वयंको पुरुषार्थ करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- गुरुदेवने स्वानुभूतिका, भेदज्ञानका मार्ग बताया है, वह मार्ग ग्रहण करनेका है। स्वयं ही खोजता रहे, जिसे जिज्ञासा होती है, उसे तृप्ति नहीं होती।

समाधान :- .. गुरुदेवने मार्ग बताया वही करनेका है। जन्म-मरण, जन्म-मरण होते ही रहते हैं, ऐसे तो कितने जन्म-मरण हुए, अनन्त। अनन्त (बार) देवलोकमें गया, अनन्त बार तिर्यंतमें गया, अनन्त भव मनुष्यके मिले, अनन्त बार नर्कमें गया। ऐसे अनन्त-अनन्त भव किये। उसमें इस भवमें गुरुदेव मिले, ऐसा मार्ग बताया, भवका अभाव करनेका। सब कहाँ पड़े होते हैं, क्रियासे धर्म होता है, बाहरमें इतना कर ले तो धर्म होता है, धर्म अंतरमें रहा है। मात्र बाहरमें नहीं है। अंतरमें धर्म है, गुरुदेवने बताया कि अंतर आत्मा शाश्वत है उसे तू ग्रहण कर ले।

आत्मा शाश्वत है। यह शरीर तो बदलता ही रहता है। उसकी आयुष्य स्थिति पूरी होती है तब देह और आत्मा भिन्न हो जाते हैं। आत्मा चला जाता है। आत्मा शाश्वत रहता है। दूसरी गतिमें जैसे भाव किये हो उस अनुसार (चला जाता है)। गुरुदेवने मार्ग बताया और अंतरमेंसे आत्मा ग्रहण हो, और यह शरीर भिन्न और मैं भिन्न, यह सब विभाव भी मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा भेदज्ञान करके जाय तो सफल है। उसकी रुचि करे, उसकी महिमा करे तो भी अच्छा है कि गुरुदेवने ऐसा अपूर्व मार्ग बताया है। वह करने जैसा है।

जन्म-मरण करते-करते भवका अभाव करनेका मार्ग गुरुदेवने बताया है। जन्म-मरण इतने किये हैं कि इस आकाशके एक-एक प्रदेशमें जन्म-मरण करता है। ऐसे अनन्त भव किये हैं। अनन्त माताओंको रुलाया है, अनन्त-अनन्त भव किये हैं। कुछ बाकी नहीं रखा, शास्त्रमें आता है। ऐसे जन्म-मरण टालनेके लिये भेदज्ञान, सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति करके कितने ही छोटी उम्रमें संयम लेकर आत्माकी साधना करनेको जंगलमें चले जाते कि आत्माकी साधना करके अब हम अन्दर केवलज्ञान प्रगट करें। शाश्वत आनन्द आत्मामें है, उसे प्रगट करें। ऐसा करनेके लिये छोटे-छोटे बालक भी सब छोड़कर चले जाते।

गुरुदेवने अंतरमें मार्ग बताया है कि पहले तू भेदज्ञान कर। बादमें सब आता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र। ज्ञान और दर्शन प्रगट कर, बादमें चारित्र होता है। ऐसे जन्म-मरण जीवने अनन्त किये हैं। अनन्त कालमें जीवको सब कुछ मिल चुका है। गुरुदेव कहते हैं न कि, एक सम्यग्दर्शन, जिससे भवका अभाव हो वह प्राप्त नहीं हुआ है। और एक भगवान जिनवर स्वामी नहीं मिले हैं। मिले तो स्वयंने भगवानको स्वीकारे नहीं कि यह भगवान हैं, ऐसा उसने पीछाना नहीं। इसलिये उसे मिले ही नहीं।

इस भवमें गुरुदेव मिले, जिनेश्वर देव अनन्त कालमें मिले, गुरुदेव मिले तो गुरुदेवने

जो मार्ग बताया उसे ग्रहण कर। वह करने जैसा है। अन्दर आत्मा शाश्वत है। उसमें आनन्द, ज्ञान (है)। आत्माको भव लागू नहीं पड़ता, कोई रोग लागू नहीं पड़ता। वैसा ही है, उसे कोई हानि नहीं पहुँची, इसलिये उसे पहचान ले।

समाधान :- .. करता नहीं है, अंतरमें जाता नहीं। अपना स्वभाव है, स्वयं जाये तो अंतरमें ही है। लेकिन करता नहीं है। अनन्त भव देवके किये हैं। अनन्त बार पशुमें गया, अनन्त मनुष्यके किये, अनन्त बार नर्कमें गया है। सबमें अनन्त बार गया है। इसमें इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले तो यह करने जैसा है। तो मनुष्य जीवन सफल है। कोई किसीको रोक नहीं सकता। बड़े चक्रवर्ती चले जाते हैं। चक्रवर्ती, बड़े राजा, आयुष्य पूरा होता है, आत्माको कोई नहीं रोक सकता। गति करके चला जाता है। जैसा उसका भव हो वहाँ चला जाता है। कोई नहीं रोक सकता। देह पड़ा रहता है, आत्मा चला जाता है। आयुष्य हो तब तक सब उपाय करे, रोग टालनेका उपाय उसे लागू पडता है, आयुष्य पूरा होता है तो कुछ लागू नहीं पड़ता। कोई रोक नहीं सकता। ... बाकी सब ऐसा ही है। उसमें वैराग्य करने जैसा है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१२६

समाधान :- ... गुरुकी जो वाणी आती है, ...

मुमुक्षु :- देशनालब्धि बगैर कोई भी सम्यक्त्व नहीं पाता?

समाधान :- अनादिकालसे देशनालब्धिके बिना नहीं पाता। एक बार कोई गुरु, कोई देवकी प्रत्यक्ष वाणी मिलती है तब पाता है। अकेले शास्त्रसे नहीं होश्रता है। चैतन्यकी प्राप्ति, सामने चैतन्य होवे तो होती है। प्रगट स्वानुभूति जिसको होती है, वह जिसे चैतन्य (प्रगट हुआ) है, उसको चैतन्य प्रगट होता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। .. उसको देशनालब्धि होती है। होता है अपनेसे, लेकिन निमित्त-उपादानका ऐसा सम्बन्ध होता है।

जिसको चैतन्य प्रगट हुआ है, उसके निमित्तसे चैतन्यकी प्राप्ति होती है। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है। ... उसका स्पष्टीकरण, उसका रहस्य कौन जानता है? प्रत्यक्ष ज्ञानी जानता है। उसको स्वानुभूति हुयी है। उसके जो भीतरमेंसे अद्भुतता प्रगट हुयी है, उसकी वाणी उसको बतानेवाली है। उसके निमित्तसे, चैतन्यके निमित्तसे चैतन्य (प्रगट) होता है। गुरुकी वाणी छूटती है तो देशनालब्धि होती है। भीतरमें प्रगट होती है। उसका सम्बन्ध है उपादान-निमित्तका।

समाधान :- ... कारणशुद्धपर्याय तो अनादिअनन्त है। वह पारिणामिकभाव अनादिअनन्त है, वैसे कारणपर्याय भी अनन्त है। जैसे द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, पर्याय भी अनादिअनन्त पारिणामिकभावकी वह पर्याय है, वह अनादिअनन्त है। कार्यपर्याय तो प्रगट होती है। पारिणामिकभाव पर दृष्टि करनेसे कार्यपर्याय प्रगट होती है। अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि करनेसे कार्यपर्याय होती है। अकेली कारणशुद्धपर्याय पर दृष्टि करनेसे होती है, ऐसा नहीं है। उसमें कारणपर्याय आ जाती है। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे कारणपर्याय उसमें आ जाती है। द्रव्य पर जो दृष्टि करता है, उसमें पारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव, कारणशुद्धपर्याय सब उसमें आ जाता है।

जो ज्ञायकको ग्रहण करता है उसको। उसमेंसे कार्यपर्याय सधती है, इसलिये कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय (कहते हैं)। कारणपर्याय... वह अनादिअनन्त है, कारणशुद्धपर्याय अनादिअनन्त है। ऐसा द्रव्यका स्वभाव है। उस पर दृष्टि करनेसे कार्य-

रत्नत्रय प्रगट होते हैं और पूर्ण पर्याय प्रगट होती है। अकेले अंश पर दृष्टि करनेसे नहीं, पूर्ण द्रव्य पर दृष्टि करनेसे कार्यशुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- माताजी! ज्ञायकको जो पकड़ना है, ज्ञायकको, तो वर्तमानमें तो ... विश्व दिखता है। ज्ञायक अप्रगट है, अब ज्ञानमें रागादि ख्यालमें आते हैं कि यह राग है या यह कषाय है अथवा परपदार्थ है। उस ज्ञानसे ज्ञायकको भिन्न करके पकड़ना कैसे?

समाधान :- उसे भिन्न करके पकड़ना कि यह जो राग दिखता है, यह दिखता है, वह दिखता है, दिखाई देता है वह मैं नहीं, परन्तु उसे जाननेवाला मैं हूँ। उसे भिन्न करके (जाने)। जो एकत्वबुद्धि हो रही है, यह राग दिखता है, यह दिखता है, बाहरका दिखता है, सब दिखता है, परन्तु जो दिखाई देता है वह वस्तु मैं नहीं हूँ, परन्तु उसमें जाननेवाला (मैं हूँ)। सब पर्यायें चली जाती है, उसके बीच जो जाननेवाला रहता है, वह जाननेवाला मैं ज्ञायक हूँ। उस ज्ञायकको ग्रहण कर लेना, उसका अस्तित्व ग्रहण कर लेना। पर्याय जो सब होती है, उसके बीच जो द्रव्य रहता है, जो जाननेवाला अखण्ड है, वह मैं हूँ। ऐसे उसका अस्तित्व ग्रहण कर लेना। उसका ज्ञायकरूप अस्तित्व है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ करनेकी युक्ति सूझ जाय तो मार्गकी उलझन टल जाय।

समाधान :- पुरुषार्थ करनेकी युक्ति अर्थात् जो मार्ग है, वह मार्ग उसे अन्दरसे सूझ जाय कि यह सब जो विभाव होते हैं वह मैं नहीं हूँ, परन्तु मैं चैतन्य हूँ। ऐसी सूक्ष्म दृष्टि करनेकी कला, उसकी कला, भेदज्ञान-भेदविज्ञानकी कला यदि हाथमें आ जाय तो प्रगट हो जाय। उलझन टल जाय।

लेकिन वह कला प्रगट करनेके लिये उतनी तैयारी चाहिये, उतनी महिमा, उतनी जिज्ञासा, उतने तत्त्वविचार, उतनी गहराई हो तो प्रगट होता है। तो उसकी कला सूझे। कल सूझनेके लिये उतना धैर्य, उतनी अंतरमेंसे जिज्ञासा चाहिये तो कला प्रगट होती है, तो उलझन टले।

मुमुक्षु :- ... प्राप्त नहीं होता, सम्यक्त्व बना रहे और पर्याय बदल जाय, मनुष्यपर्यायसे देवपर्याय ... माताके पेटमें नव महिने ऐसे ही रहता है तो क्या सम्यक्त्व बना रहता है?

समाधान :- पूर्णता नहीं होती है तो भी सम्यग्दर्शन रहता है। एक भवसे दूसरे भवमें। देव मनुष्यभवमें जाता है तो जिसको क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है तो माताके गर्भमें भी उसको रहता है। सम्यग्दर्शन रहता है। तीर्थंकर भगवान माताके गर्भमें आते हैं तो तीन ज्ञान लेकर आते हैं। मति, श्रुत और अवधि तीन ज्ञान उनको होते ही हैं। छूट नहीं जाते।

मुमुक्षु :- क्षयोपशम सम्यक्त्वी...?

समाधान :- क्षयोपशम सम्यग्दर्शन पलटता है, क्षायिक नहीं पलटता। और अप्रतिहत धारा होती है तो नहीं पलटता है, परन्तु क्षायिक तो पलटता ही नहीं। ... मनुष्यभवमें गर्भमें रहते हैं तो भी जिसको क्षायिक होता है वह रहता है।

मुमुक्षु :- स्वरूपका उग्र आश्रय करनेसे क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है न?

समाधान :- स्वरूपका उग्र आश्रय। अप्रतिहत धारा, उसकी धारा अप्रतिहत होती है। उग्र आश्रय भी करता है और धारा अप्रतिहत (होती है)। बादमें ऐसी दृढ़ हो जाती है कि बादमें पलटता नहीं। उग्र आलम्बन तो है ही, परन्तु पलटे नहीं ऐसा आलम्बन, एकसमान आलम्बन लेता है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शनका पुरुषार्थ कैसे करें? कैसे होता है?

समाधान :- अंतरमेंसे होता है। भेदज्ञानकी धाराका अभ्यास करनेसे होता है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं चैतन्य हूँ, ऐसी भेदज्ञानकी धारा भीतरमेंसे प्रगट करनेसे होता है। जिसको बाहर कहीं चैन नहीं पड़ता है, जिसको भूख लगती है तो वह खाये बिना नहीं रहता, वैसे जिसे अंतरमेंसे प्यास लगे तो पुरुषार्थ किये बिना रहता ही नहीं। ऐसे ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायकके बिना उसे संतोष नहीं होता। ज्ञायकमें महिमा लगे, ज्ञायकमें रुचि लगे, ज्ञायकका अभ्यास निरंतर हो तो होता है।

स्वानुभूतिका अभ्यास करना। यह शरीर मैं नहीं हूँ, विभावस्वभाव मैं नहीं, मैं ज्ञायक हूँ। ऐसी ज्ञायककी महिमा करना। शब्दरूप नहीं, परन्तु ज्ञायककी महिमा लगे, उसमें रुचि लगे, वह अभ्यास करना। शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्व चिंतवन आदि सब करके मैं आत्मा कैसा हूँ, यह समझनेके लिये सब होता है। देव-गुरु-शास्त्रके विचार.. मैं चैतन्य कैसे प्रगट करुँ? ऐसी जिज्ञासा करना। वह करनेका है।

समाधान :- ... अनादिसे जो प्रगट होता है, वह चैतन्यसे...

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- समवसरणमें जाते हैं, गुरुदेव तो भगवानके दर्शन करने जाते हैं। देवलोकमें तो सब विराजते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य सब विराजते हैं। विराजते हैं देवलोकमें। स्वप्नमें तो आये, रामजीभाई कहते हैं वह कुछ नहीं। स्वप्नका तो ऐसा है, देवके रूपमें भी आये और गुरुदेवके रूपमें भी आये। कभी गुरुदेवके रूपमें आये, कभी देवके रूपमें।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- वह सब क्या कहना? देवके रूपमें आये। इसमें भी आये और देवके रूपमें भी आये।

मुमुक्षु :- आपको भी गुरुदेवका विरह हो गया। माताजीको तो बहुत विरह...

समाधान :- वे तो महापुरुष थे।

मुमुक्षु :- बहिन-बहिन करते थे।

समाधान :- उनका तो अद्‌भुत था! द्रव्य ही अलग था, तीर्थंकरका द्रव्य था। मैं तो उनका दास हूँ। वे तो महापुरुष! उपयोग तो रखे, गुरुदेवको सब मालूम तो होता है। गुरुदेव उपयोग रखे। उन्हें ज्ञानमें तो सब आता है, परन्तु यहाँ आनेका भाव.... पंचमकाल है इसलिये अभी आना बहुत मुश्किल है।

समवसरण होता है, वहाँ देव साक्षात् जाते हैं। यहाँ पंचमकालमें देवोंका आगमन ऐसा हो गया है। पंचमकालमें देव बहुत आते नहीं। और वे तो निस्पृह थे। उन्हें अन्दरसे सब धर्मका प्राप्त हो ऐसा प्रशस्त भाव था, परन्तु वे तो निर्लेप थे। इच्छा करे तो आनेकी शक्ति तो है, परन्तु ऐसे प्रतिबन्धवाले वे थे ही कहाँ? उन्हें भाव था कि सब धर्म प्राप्त करे। परन्तु वैसा उन्हें प्रतिबन्ध, विकल्प नहीं था। वे स्वयं ही कहते थे, कोई किसीका कर नहीं सकता।

मुमुक्षु :- एक बार पधारे तो चमत्कार हो जाय।

समाधान :- शासनके प्रशस्त राग... स्वयं ही कहते थे, कोई किसीका कर नहीं सकता। ऐसा भाव आये तो आनेकी शक्ति तो है।

मुमुक्षु :- उपयोग रखते ही नहीं होंगे, वहीं सब खजाना हो तो यहाँ...?

समाधान :- भगवान मिल गये उन्हें तो। भगवान, भगवान करते थे, भगवान मिल गये।

मुमुक्षु :- माताजी! ध्यानमें तो बैठते हैं, ज्ञायकका आनन्द कैसा...?

समाधान :- ज्ञायककी प्रतीत करनी चाहिये। विचार करके ... विचारना चाहिये तो ध्यानमें आये न?

मुमुक्षु :- विचार करते हैं उस समय तो प्रतीतमें आता है, फिर वह बात निकल जाती है।

समाधान :- अनादिका अभ्यास है इसलिये एकत्वबुद्धि हो जाती है। विचारमें बैठे तो बार-बार उसकी प्रतीति करना, बार-बार दृढ़ करना चाहिये, पुनः अभ्यास करना। अनादिका अभ्यास है इसलिये बार-बार करना चाहिये। थकना नहीं। एकत्वबुद्धि तो निरंतर चलती है, तो इसको बार-बार दृढ़ करना चाहिये।

मुमुक्षु :- दूसरे काममें जब उपयोग जाता है तो वह बात निकल जाती है।

समाधान :- तो बार-बार करना। बारंबार करना, बारंबार विचार करना, बारंबार करना। तत्त्वका विचार, स्वाध्याय (करना)। ज्ञायक महिमावंत है, बारंबार विषय करना

चाहिये कि मैं अद्भुत हूँ। उसकी अद्भूतता लगे तो उसमें उपयोग जाय। चैतन्यकी महिमा करनी चाहिये कि मैं अद्भूत तत्त्व हूँ। जगतमें सर्वोत्कृष्ट तत्त्व मैं ही हूँ। ऐसा बारंबार, बारंबार, बारंबार उसका अभ्यास करना, बारंबार दृढ़ता (करनी)। उसकी भूख लगे तो बारंबार उस ओर परिणति गये बिना नहीं रहती।

मुमुक्षु :- विचार करते हैं उस समय तो थोड़ी शान्तिसी लगती है, फिर वह रहती नहीं।

समाधान :- पुरुषार्थकी कमी है, रुचिकी कमी है इसलिये। बारंबार करना।

मुमुक्षु :- मार्गकी प्रतीति तो है कि मार्ग बिलकूल सही है और यही एक प्रकारसे मुझे शान्ति होगी, ऐसा लगता तो है। परन्तु वह कायम नहीं रहता है।

समाधान :- उसका पुरुषार्थ कम है। जिसकी प्रतीति भीतरसे होवे कि इधर ही सुख है, इधर ही शान्ति है, यह मुझे प्रगट करना है। ऐसी यदि तीव्र जिज्ञासा होवे तो पुरुषार्थ उस ओर गये बिना रहता ही नहीं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब मेरेमेंसे ही होता है। ऐसी दृढ़ प्रतीति होवे तो परिणति उस (ओर जाय)। परन्तु उसकी दृढ़ता नहीं है। बारंबार भेदज्ञानका अभ्यास करना। मैं चैतन्य हूँ, यह शरीर मैं नहीं हूँ। विकल्प विभावस्वभाव मेरा नहीं है। मैं निर्विकल्प तत्त्व हूँ। ऐसा बारंबार अभ्यास करना। ऐसी प्रतीति दृढ़ करना।

उसके पीछे पड़े तो प्रगट हुए बिना रहता नहीं। जिसकी जरूरत लगती है बाहरमें, कोई वस्तुकी, व्यापारकी तो पीछे पड़ता है। तो इसकी-ज्ञायककी जरूरत लगे कि मुझे इसकी जरूरत है, तो उसके पीछे पड़के भी उसका अभ्यास करना चाहिये। बारंबार ऐसा करना चाहिये, तो प्रगट होवे। ऐसे एक बार विचार कर लिया तो हो गया, ऐसे नहीं होता। बारंबार करना चाहिये।

मुमुक्षु :- बाहरमें अनुकूलतामें नहीं है इसलिये उसमें जुड़ना पड़ता है।

समाधान :- भीतरमें बारंबार करना चाहिये। बाहरके कार्य चैतन्यको रोकते नहीं। भीतरके परिणाम अपने हाथमें है। बारंबार दृढ़ता करनी। बाहरके कार्य रोकते नहीं।

मुमुक्षु :- परिणाम अपने हाथमें है?

समाधान :- हाँ, परिणाम अपने हाथमें है। परिणामको कैसे पलटना, शुभाशुभ भाव, शुभ और अशुभ ऐसे परिणाम पलटते हैं, वैसे ज्ञायककी ओर भी पलटते हैं। पुरुषार्थ करना अपने हाथमें है। उसे कर्म कर नहीं देता है। अपना पुरुषार्थ अपने हाथमें है।

मुमुक्षु :- ... आत्मामें आनेकी क्या विधि है? कैसे आये?

समाधान :- शब्द बोलनेसे नहीं होता है। आत्माको जाननेकी विधि भीतरमें होती

है। जैसा गुरुने बताया, शास्त्रमें आया है, समयसार आदिमें आता है कि ज्ञायक स्वरूप आत्मा ज्ञाता है। यह सब भिन्न है, आत्माका स्वरूप नहीं है। विभावस्वभाव आत्माका नहीं है। उसका भेदज्ञान करो, तत्त्वका विचार करो, गहराईमें जाकर ज्ञानस्वभावको पीछाना। ऐसे माला जपनेसे, मात्र शुभभाव करनेसे नहीं होता है। भीतरमें भेदज्ञान करनेसे होता है। भीतरमें जिज्ञासा करके और भेदज्ञान करके स्वानुभूति करनेसे होता है।

दिन-रात उसकी जिज्ञासा, लगनी लगनी चाहिये। मैं आत्माको कैसे पीछानूँ? उसका विचार, उसका वांचन ऐसा बारंबार भेदज्ञान करनेसे होता है। शरीरको जानता है, बाहर जानता है, ऐसे जाननेसे आत्माका ज्ञान नहीं होता। आत्माको जाननेसे आत्माका ज्ञान होता है। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं आनन्दस्वरूप हूँ, मैं अनन्त गुणसे भरपूर हूँ, ऐसा बोलनेमात्रसे नहीं, ऐसा मात्र रटन करनेसे नहीं, मात्र ऐसे कल्पित ध्यान करनेसे नहीं, परन्तु भीतर उसका स्वभाव पीछाननेसे (होता है)।

गुड़की मीठास और शक्करका स्वाद (जानता है), ऐसे भीतरमें ऐसा स्वभाव जाननेसे होता है। मात्र बाह्य दृष्टिसे, बाहर जाननेसे नहीं होता है। भीतरको जाननेसे होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१२७

मुमुक्षु :- स्वाश्रित निश्चय और पराश्रित व्यवहार है, तो फिर निश्चय-व्यवहारको बराबर शास्त्रमें पूज्य कैसे कहा है? जबकि व्यवहार पराश्रित मार्ग है और निश्चय स्वाश्रित है, तो स्वाश्रित तो पूज्य है, तब पराश्रित मार्ग व्यवहारको भी साथमें पूज्य कहा है, तो किस अपेक्षासे?

समाधान :- पूज्य है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र रत्नत्रय प्रगट होते हैं, इसलिये। साधकदशा है, मोक्षका मार्ग है इसलिये पूजनिक कहनेमें आता है। द्रव्य तो पूजनिक है परन्तु व्यवहार भी मुक्तिके मार्गमें व्यवहार साथमें आता है।

आचार्यदेव कहते हैं, हम क्या करें? बीचमें आ जाता है। इसलिये व्यवहार आता है। परन्तु रत्नत्रय प्रगट होता है इसलिये उसको पूजनिक कहनेमें आता है। मुक्तिका मार्ग है। साधकदशा है, मुक्तिका अंश प्रगट होता है इसलिये। केवलज्ञान भी पर्याय है, .. कहनेमें आता है। उस अपेक्षासे। रत्नत्रय पूजनिक है।

अंतरमेंसे पर्याय... अपेक्षासे सब बात आती है। कोई अपेक्षासे कहे कि व्यवहार पूजनिक नहीं है, पर्याय अपेक्षासे पूजनिक कहनेमें आता है। क्योंकि रत्नत्रय है इसलिये। कोई अपेक्षासे ऐसा कहे कि... साधकदशा है इसलिये पूजनकि है, ऐसा भी आता है। मुनिको भी पूजनिक है। रत्नत्रय प्रगट हुआ है इसलिये। तो भी व्यवहार हेय कहनेमें आता है, तो भी साथमें आ जाता है। शुभभाव है, भेद आवे तो भेद पर दृष्टि मत कर। भेद पर दृष्टि मत कर, ऐसा कहनेमें आये। तो भी बीचमें ज्ञान, दर्शन, चारित्रका भेद तो आता है। वह आत्माकी शुद्ध पर्याय है...

मुमुक्षु :- एक जीवनसे द्वितीय जीवन धारण करना, इस प्रक्रियाको सहज शब्दोंमें यानी जैन टर्मिनोलोजी है, जिसे कहें जैन शब्दावलि, उसके बाहर छोटेमें हम लोग कैस तरहसे समझ और समझा सकते हैं?

समाधान :- उसमें तो क्या है? पुनर्जन्म है तो है। अनेक जातके जन्म लेता है दूसरे-दूसरे स्थान पर, तो पुनर्जन्म तो है। कोई राजाके घर जाता है, कोई रंकके घर जाता है, कोई जैनमें जन्मता है, कोई कहाँ जन्मता है। एक जन्ममेंसे दूसरे जन्ममें आता है तो पूर्वमें जो परिणाम किये हैं, उसका फल है। दूसरे-दूसरे जन्ममें आता

है तो उसका कारण तो कुछ है। ऐसे अन्याय नहीं होता, कोई किसीके घर, कोई किसीके घर जाता है। आत्मा शाश्वत है। उसके परिणामके फलमें कोई राजाके घर, कोई रंकके घर जन्म लेता है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! यह तो हुआ कर्मफल सिद्धान्त। लेकिन इसकी प्रक्रिया क्या है? प्रोसेस।

समाधान :- प्रक्रिया क्या है?

मुमुक्षु :- यानी यहाँसे एक जीवन समाप्त हुआ और द्वितीय जीव प्रारम्भ हुआ, उसके बीचका जो अन्तराल है, उसमें आत्मा किन स्थितिओंमेंसे गुजरती है?

समाधान :- अन्तरालमें तो उसकी गति होती है। जैसा उसका परिणाम होता है, उसके अनुसार गति होती है। उसकी प्रक्रिया कुछ देखनेमें नहीं आती।

मुमुक्षु :- एक-दो समयमें होता है। एक-दो समय, तीन समय। मेक्सिमम। उसमें क्या प्रक्रिया होगी? वहाँ पहुँचनेमें उत्कृष्ट तीन समय लगते हैं।

समाधान :- उसमें प्रक्रिया एक समयमें, दो समयमें वह पहुँच जाता है।

मुमुक्षु :- जैसे कहीं जगह क्या रहता है कि निश्चित अंतराल रहते हैं, कुछ तैजस शरीरका भी... जैसे अन्य दर्शनोंमें है कि तैजस शरीर लम्बे समय तक विद्यमान रहता है, सूक्ष्म शरीर जो है वह एकदम पलाहित हो जाता है, ऐसा कुछ?

समाधान :- ऐसा जैनमें नहीं है। एक समय, दो समय, तीन समय। कोई सीधी गतिमें जाता है, कोई टेढा जाता है तो ऐसा कोना होता है। परन्तु एक, दो, तीन समयमें पहुँच जाता है। उसमें अन्तराल नहीं रहता है। उसके बीचमें कुछ अन्तराल नहीं है। एक, दो, तीन समयमें पहुँच जाता है।

मुमुक्षु :- दो-पाँच महिने तक घुमते हैं, ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं है। .. अमेरिकासे आये थे, ... वह कहते हैं कि, अन्य दर्शन तो चार-पाँच महिना घुमते हैं जीव, ऐसा जैनमें नहीं है। एक, दो, तीन समयमें कार्माणशरीर लेकर वहाँ पहुँच जाता है। औदारिक शरीर यहाँ रह जाता है।

समाधान :- कोई पहले होता है, कोई बीचमें होता है, कोई तीसरे भागमें होता है। बादमें उसका फल आता है। ऐसा..

मुमुक्षु :- तीन भाग रहता है, तब..

मुमुक्षु :- एक तो यह सिद्धान्त हुआ और आपका विचार विशेष इस सम्बन्धमें जानता हूँ मैं। जैसा तीसरे भागमें होता है, मैं आपसे जानना चाहता हूँ। जैन सिद्धान्तमें बताया है, लेकिन आपसे..

समाधान :- जैन सिद्धान्तमें ऐसा होता है। कर्म प्रकृति कोई दिखाई नहीं देती।

आत्माकी स्वानुभूतिका अनुभव होता है कि आत्माका स्वभाव है, आनन्द है, आत्माका भेदज्ञान क्या है? शरीर भिन्न है, विभाव भिन्न है, विभाव आत्माका स्वभाव नहीं है, आत्मा भिन्न है, उसकी स्वानुभूति होती है, उसका भेदज्ञान होता है। यह सब आत्माके हाथकी बात है। कर्म प्रकृति है वह दिखाई नहीं देती। वह तो केवलज्ञानीके ज्ञानमें प्रत्यक्ष ज्ञानीके ज्ञानमें, अवधिज्ञानमें, केवलज्ञानमें दिखाई देती है।

जिसने ऐसा स्वानुभूतिका मार्ग बताया, केवलज्ञानका मार्ग बताया, वह प्रत्यक्ष ज्ञानी जो कहते हैं, वह यथार्थ है। उसमें कोई फेरफार नहीं होता। ऐसा यथार्थ होता है। जगतमें प्रत्यक्ष ज्ञानी होते हैं, वीतरागी, जो स्वानुभूति होती है, स्वानुभूतिमें विशेष-विशेष लीन होते-होते मुनिदशा (आती है)। उसमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूतिमें लीन होते हैं। ऐसा होते-होते केवलज्ञान प्रगट होता है। केवलज्ञान-प्रत्यक्ष ज्ञान एक समयमें लोकालोक जान लेता है। आत्माको जानता है और पुद्गल एवं विश्वकी समस्त वस्तुओंको, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको वह जानते हैं। जानते हैं, उनके ज्ञानमें जो आता है, वही शास्त्रमें आता है।

जो आत्मा है, उसमें जो विभाव है तो कोई कर्म तो है। कर्म नहीं है, ऐसा नहीं है। आत्माका स्वभाव तो चैतन्य है, उसमें विभाव (होता है), वह आत्माका स्वभाव नहीं है। राग-द्वेष तो दुःखरूप है। दुःख आत्माका स्वभाव नहीं है। अतः कर्म है। वह कर्म अनेक जातिके होते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय (आदि)। ज्ञानको बन्ध करे, दर्शनको (बन्ध करे), ऐसे आयुष्यका बन्ध, ऐसे अनेक जातके कर्म होते हैं। उसमें अनेक जातकी रस, स्थिति होती है। उसमें अनेक-अनेक प्रकार होते हैं। वह सब प्रकार कैसे होते हैं, वह प्रत्यक्ष ज्ञानीके ज्ञानमें आता है।

सम्यग्दृष्टि और मुनिको तो स्वानुभूति होती है। सबको वह प्रत्यक्ष देखनेमें आवे ऐसा नहीं होती। उसकी स्वानुभूति प्रत्यक्ष देखनेमें आती है। स्वानुभूतिका वेदन होता है। कर्म देखनेमें नहीं आते। कर्म तो केवलज्ञानी और अवधिज्ञानीको दिखाई देते हैं। इसलिये प्रत्यक्ष ज्ञानीके ज्ञानमें जो आया वह यथार्थ है। अमुक बात युक्तिसे, दलीलसे सिद्ध होती है। स्वानुभूति, विभाव, उसका कर्मबन्ध, परद्रव्य है। दुःखरूप जो है वह परद्रव्य है, वह दुःखका निमित्त होता है। इसमें ज्ञानकी शक्ति.. मूल द्रव्य जो है उसका स्वभाव क्षय नहीं होता-घात नहीं होता, परन्तु उसकी शक्ति और पर्यायोंमें फेरफार होता है तो कर्मबन्ध (होता है)। ज्ञान, दर्शन, चारित्रको रोकता है। ऐसे आयुष्य, वेदनयी, गोत्र, नाम आदि अनेक प्रकारके कर्म होते हैं, उसमें एक आयुष्य बन्ध भी होता है।

जो आयुष्य केवलज्ञानीके ज्ञानमें आया है कि जीवनके तीसरे भागमें अमुक-अमुक

भागोंमें होता है वह यथार्थ है। वह कोई प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता। छद्मस्थ उसको प्रत्यक्ष नहीं देख सकता। युक्तिसे, विचारसे (नक्की होता है)। जो युक्ति, दलीलमें आता है, स्वानुभवमें आता है वह कह सकते हैं। बाकी सब प्रत्यक्ष ज्ञानीके ज्ञानमें जो आया वह यथार्थ है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! ये जो कार्माण स्कन्ध रहते हैं, जो जन्म-जन्मांतर के लिये आयुबन्ध, नाम, गोत्र, अंतराय बन्ध वगैरह करते हैं, क्या यह बन्ध करनेके बादमें हट जाते हैं या आत्माके साथ पुनर्जन्मके साथ ट्रावेल करते हैं?

समाधान :- पुनर्जन्मके साथमें वह आते हैं।

मुमुक्षु :- कार्माण स्कन्ध?

समाधान :- हाँ, कार्माण आते हैं। कार्माण शरीर साथमें जाता है। जो पुनर्जन्ममें जाता है, उसमें कार्माण शरीर साथमें जाता है।

मुमुक्षु :- ऐसा नहीं है, बहिनश्री! कि जो हमारे यहाँपर जैसे शाता वेदनीय वगैरहके कार्माण स्कन्ध हैं, उसीको पुण्य नाम दिया गया हो और यही अन्य मत-मतांतरमें दर्शन शास्त्रमें तैजस शरीरके नामसे कहा गया हो?

समाधान :- कार्माण शरीर दूसरा है, तैजस शरीर दूसरा है।

मुमुक्षु :- कार्माण शरीरका एक भाग, १४८मेंसे एक तैजस बन्ध होता है। सब तैजस शरीर..

समाधान :- कार्माण कर्मका शरीर। और तैजस शरीर तो दूसरा होता है। औदारिक, तैजस, व्रैकियक वह शरीर नहीं। कार्माणशरीर तो कर्म,... वह पूर्व भवमें जाता है।

मुमुक्षु :- एक और (प्रश्न है), बहिनश्री! जैसे आज हमलोग मानते हैं कि विदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर भगवान विद्यमान हैं। तो आज विदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर भगवानकी विद्यमानताको लेकरके एक साधारण शब्दोंमें कैसे कहा जा सकता है कि वहाँकी भाषा, वहाँकी भावना, वहाँके विचार, वहाँके रहनेके तौर-तरीके वगैरहके बारेमें कहीं आपको कुछ अन्वेषणमें मिला हो, ऐसा आपके अनुभवमें आया हो, या आपने पढ़कर उसपर अधिक मनन करके और कुछ निश्चित धारणा बनायी हो कि विदेहक्षेत्रमें वर्तमानमें इस प्रकारकी स्थिति चल रही है।

समाधान :- विदेहक्षेत्रमें भगवान साक्षात् विराजते हैं, उनकी दिव्यध्वनि छूटती है, समवसरणमें भगवान विराजते हैं। वीतराग हो गये हैं तो भी वाणी छूटती है। विदेहक्षेत्रमें एक धर्म चलता है, दूसरा धर्म नहीं है। भगवान जो धर्म कहते हैं, वह एक ही धर्म चलता है। इस पंचमकालमें दूसरे, दूसरे, दूसरे धर्म हैं, ऐसे धर्म नहीं है। एक धर्म-जैन धर्म चलता है, दूसरा कोई धर्म नहीं चलता है।

मुमुक्षु :- एक बात है, चूकी आप और मैं, आप श्रद्धानी है, मैं आपकी बातमें श्रद्धान करता हूँ, लेकिन अन्य आदमी इसे क्यों मान ले? कैसे मान ले? उसको मनवानेका कोई आधार?

समाधान :- वह माने या न माने, सबकी योग्यता। जिसकी जिज्ञासा होवे वह मान सकता है, जिसकी योग्यता नहीं होवे (वह नहीं मानता)। जिसको आत्माका कल्याण करना हो, वह विचार करके मान ले। और नहीं माने तो उसकी योग्यता। नहीं माने तो क्या करे? अपने आत्माका कल्याण करना है, दूसरा माने तो मानो, नहीं माने तो नहीं मानो।

मुमुक्षु :- एक और शंका है, बहिनश्री! आज जो मुनि परंपरा आज जैसी भी चल रही है और जैसी मुनि परंपरा शास्त्रोंके अनुरूप है, इस दोनोंके जो अंतर है, उन अंतरकी जो दूरियाँ हैं, वह कभी मिटेगी? या जैसा आज यह समानांतर मुनिरूप चल रहा है और दूसरा जो समयसारमें मुनियोंके गुण वगैरहका विवेचन किया गया है, इनमें ये दूरियाँ बनी ही रहेगी और हम लोग भटकते रहेंगे? कि समयसारमें जो प्रणीत मुनिस्वरूप है, वैसे मुनि ढूँढते रहे, हमें नहीं मिले और वह मुनि लोग जो आज है, वह कहते हैं कि हम जैसे हैं वैसे ही समयसारके अनुरूप है और हम इसके बीच ही बीच डोलते रहेंगे, इसका भी कोई रस्ता लगेगा कि नहीं लगेगा?

समाधान :- अपने आत्माका कल्याण कर लेना। वह क्या होगा, यह तो पंचमकाल है। ... पहले था, अब तो पंचमकालमें हुआ है। उसमें फेरफार-फेरफार चलता रहता है। कोई भावलिंगी मुनि, ऐसा काल आ जाता है तो भावलिंगी भी हो जाता है, कोई ऐसा काल आता है तो मात्र क्रियामें धर्म मानते हैं, ऐसा भी हो जाता है। ऐसा काल आया तो...

गुरुदेव जैसे यहाँ हुए सौराष्ट्रमें, कि जिन्होंने आत्माकी स्वानुभूतिका मार्ग बताया। ऐसा भी काल आ गया। सच्चा धर्म बताया। गुरुदेव विराजते थे, उन्होंने सच्चा आत्माका मार्ग बताया, ऐसा भी (काल) आ गया। यह तो पंचमकाल है तो ऐसे फेरफार-फेरफार चलते ही रहते हैं।

मुमुक्षु :- तो सम्भावना नहीं है? जिस प्रकारसे आचार्य कुन्दकुन्ददेवने समयसारमें जिस प्रकारसे मुनियोंका वर्णन किया है, ऐसे मुनिधर्मकी सम्भावना आप इस पंचमकालमें आप नहीं मानती है, ऐसा?

समाधान :- कभी कोई ऐसा काल आ जाय तो हो भी सकते हैं। ऐसा काल आये तो हो भी जाय। वैसे तो पंचमकालके आखिरमें मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका होते हैं। अच्छा काल होवे, आ जाय तो हो भी सकते हैं। नहीं होवे ऐसा कहाँ

है? कोई बीच-बीचमें हो भी जाय।

मुमुक्षु :- एक और प्रश्न है, बहिनश्री! पुनर्जन्मके सम्बन्धमें किसी व्यक्तिविशेषकी जानकारी या एकदम अपनेआप ज्ञान हो जाना, इसके लिये कोई खास ध्यान, चिंतवन वगैरह आवश्यक है या अपनेआप हो जाता है?

समाधान :- पुनर्जन्मका क्या करना? अपने आत्माको पीछान लेना। आत्मा ज्ञानस्वरूप ज्ञायक चैतन्य स्वरूप मैं ही हूँ। और शरीर मैं नहीं हूँ, परद्रव्य है। आत्मा चैतन्यतत्त्व ज्ञानस्वरूप है, जड़ कुछ जानता नहीं है। मैं जाननेवाला हूँ। राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। मैं भगवान जैसा हूँ। ऐसा भेदज्ञान करके आत्माका स्वरूप पीछानो। बाकी पुनर्जन्मका ज्ञान होवे, या न होवे, ऐसा नहीं है कि उससे भवका अभाव हो सकता है।

भवका अभाव तो आत्माको पीछाननेसे होता है। इसलिये आत्माको पीछानो, आत्माकी जातिको पीछानो। आत्मा अनादिअनन्त शाश्वत है उसको पीछानो। ऐसा गुरुदेव कहते हैं, ऐसा शास्त्रमें आता है, आत्माको पीछानो। ज्ञायक आत्माको।

मुमुक्षु :- जैन स्थानकके बारेमें, बहिनश्री! यह ध्यान जो है, वह किस प्रक्रियासे प्रारम्भ किया जावे? आत्मामें गहरा ऊतरनेकी बात तो आप फरमाते हैं, मगर उसकी अ, ब, क, ख जो बारखडी, वर्णमाला है, वह क्या है? कहाँसे शुरू करे?

समाधान :- पहले सच्चा ज्ञान होता है, बादमें सच्चा ध्यान होता है। सच्चा ज्ञान, आत्माको जाने कि मेरा स्वभाव क्या है? मेरा स्वभाव क्या? मेरा अस्तित्व क्या? मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? सबको जाने बादमें उसमें एकाग्र होना। तो ध्यान होता है। जाने बिना एकाग्र किस चीजमें होगा? जानता नहीं है कि मैं कौन चैतन्य हूँ और ध्यान कहाँ करेगा? विकल्पका ध्यान होगा। मैं चैतन्य हूँ, निर्विकल्प तत्त्व हूँ, ऐसा भीतरमेंसे ज्ञान (करे)।

जैसे भगवानका आत्मा है, वैसा मैं हूँ। ऐसे चैतन्य स्वभावको पीछानेसे उसमें एकाग्र होनेसे, बारंबार एकाग्र होवे, बारंबार एकाग्र होवे। यह विकल्प मैं नहीं हूँ, मैं चैतन्य हूँ, बारंबार एकाग्र होवे तो ध्यान होता है। परन्तु ज्ञान करनेसे ध्यान होता है। मूल प्रयोजनभूत ज्ञान तो होना चाहिये। ज्यादा शास्त्रका ज्ञान होवे ऐसा नहीं, परन्तु प्रयोजनभूत तत्त्वको तो जानना चाहिये।

जैसे शिवभूति मुनि कुछ जानते नहीं थे। लेकिन मैं भिन्न और यह भिन्न है। वह औरत दाल और छिलका भिन्न करती थी कि यह छिलका भिन्न है, दाल भिन्न है। ऐसे मैं चैतन्य भिन्न हूँ, ऐसा थोड़ा भी ज्ञान भीतरमेंसे होना चाहिये। बादमें सच्चा ध्यान हो सकता है।

मुमुक्षु :- व्यक्तिगत जीवनके बारेमें दिगम्बर शास्त्रोंमें कम मिलता है और अन्य शास्त्रोंमें जो मिलता है, उसको पढनेसे माथा एकदम गरम हो जाता है। जैसे कि कल्पसूत्रमें है या भगवती सूत्रमें है, जो कुछ महावीरके जीवनके बारेमें मिलता है, क्योंकि बहिनश्री उसे खूब पढ़ा है। तो उसको पढनेसे माथे नसें जो हैं झनझना जाती है कि यदि अगर यह महावीर है तो वास्तविक महावीर कोई और होगा, यह सब भ्रान्तियाँ...

समाधान :- .. कुछ नहीं है। यथार्थ होवे, बस इतना... मुनिदशामें .. जूठा ग्रहण नहीं करना। थोड़ा होवे तो थोड़ा, परन्तु यथार्थ ग्रहण करना। श्वेताम्बर, स्थानकवासी थे। गुरुदेव सौराष्ट्रमें ऐसे प्रगट हुए कि उनसे सच्चा धर्म प्रगट हुआ।

मुमुक्षु :- ऐसा लगता है कि लोकाचार, जिनदत्त सूरी...

समाधान :- यथार्थ मार्ग (ग्रहण करना)। कोई सम्प्रदाय, वाड़ा किसीको ग्रहण नहीं करके, सच्चा धर्म प्रगट किया। बहुत तकलीफ हुयी तो भी सच्चा मार्ग प्रगट किया।

मुमुक्षु :- आशीर्वादस्वरूपमें बहुत प्राप्त किया। बहिनश्री! आज आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं होते हुए भी आपने हमें उद्बोधन दिया, हम पर बड़ी कृपा करी। हमारे लिये तो.. गुरुदेवको भी हमने देखा नहीं है, तो गुरुदेवकी परम्पराको देखकर ही समझ रहे हैं कि आज गुरुदेवके चरणोंमें आ गये हैं।

समाधान :- (गुरुदेव) तो कोई और ही थे। सोनगढ़में तो उनकी वाणी...

निधि पामीने जन कोई निज वतने रही फळ भोगवे,
तेम ज्ञानी परजन संग छोड़ी, ज्ञान निधिने भोगवे।

गुरुदेवके पास इतनी वाणी सुनने मिली, गुरुदेवने सब दिया। गुरुदेवने मार्ग बताया, इतने शास्त्र समझाये। जो देना था वह सब गुरुदेवने दिया। अब अन्दर आत्माका करने जैसा है। एकान्तमें रहकर और अपना स्वाध्याय करके आत्माका कर लेने जैसा है। गुरुदेव ही है और गुरुदेवने इस पंचमकालमें सब दिया है।

शास्त्रमें तो ऐसा आता है, निधि पामीने जन कोई निज वतनमां रहे। ऐसा है, लेकिन निधि अर्थात् अंतरकी निधि। ज्ञानीजन परजन संग छोड़ी, ज्ञाननिधि भोगवे अर्थात् चैतन्यनिधिको भोगता है। अपने ऐसे शुभभावमें अर्थ लेते थे। गुरुदेवके पास.. अंतरमका प्रगट हो वह तो अलग ही बात है। अर्थ तो उसमें है, शास्त्रका अर्थ वह है। ज्ञाननिधिको तू एकान्तमें भोग। तेरी ज्ञाननिधिकी साधना कर, चैतन्यकी। परन्तु गुरुदेवसे जो मिला है, बरसों तक सान्निध्यमें (रहकर), उसे तू अब अन्दर (ऊतार)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१२८

समाधान :- .. भिन्न है, आत्मा भिन्न है। दो तत्त्व भिन्न हैं। संकल्प-विकल्प भी अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न आत्मा कैसे ज्ञात हो? वह करने जैसा है। उसकी जिज्ञासा, उसकी महिमा वह करने जैसा है। तत्त्व विचार, स्वाध्याय आदि सब करने जैसा है। स्वानुभूति कैसे प्राप्त हो? वह करने जैसा है।

अनन्त कालसे बाहर दृष्टि करके मानो बाहरसे सब मिल जायेगा, मानो बाहरसे सब आता है (ऐसे प्रवर्तता है)। बाहरसे कुछ नहीं आता, अंतरमेंसे आता है। थोड़े शुभभाव करे, कुछ करे तो मानों मैंने बहुत किया, ऐसा उसे लगता है। परन्तु वह मात्र पुण्यबन्ध होता है, देवलोक प्राप्त होता है, लेकिन भवका अभाव तो शुद्धात्माको पहचाने तो ही होता है।

मुमुक्षु :- जागृतरूपसे विद्यमान है, शक्तिरूप है उसे जागृत कैसे कहना?

समाधान :- वह जागृत ही है। उसका घात नहीं हुआ है। उसका ज्ञानस्वभाव तो जागृत ही है। ज्ञान दब नहीं गया है। ज्ञानस्वभाव ज्ञायक स्वयं जागृत ही है। वह स्वयं बाहर लक्ष्य करता है, बाहरका पुरुषार्थ करता है इसलिये ऐसा लगता है कि मैं गुम गया। लेकिन वह जागृत ही है। ज्ञायक उसका ज्ञानस्वभावका घात नहीं हुआ है। ज्ञायक स्वयं अनादिअनन्त शाश्वत जागृत ही है। स्वभावका घात नहीं हुआ है इसलिये जागृत ही है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- शक्ति तो है, परन्तु उसका स्वभाव ज्ञायक स्वभाव है वह जागृत है। शक्तिका अर्थ ऐसा नहीं है कि वह शक्ति ऐसे ही पड़ी है, कुछ करती नहीं है ऐसा नहीं है। ज्ञायक तो जागृत ही है। कार्य यानी पर्यायरूप स्वानुभव...स्वभाव वैसा ही है।

मुमुक्षु :- ... मुमुक्षुता प्रगट हुयी है, ऐसा स्वयंको अपना जीवन देखना हो तो किस लक्षणसे ख्याल आवे कि यह सच्ची मुमुक्षुता है? बाहरमें तो सबके साथ सब चलता रहता है, फिर भी कभी शंका पड़ जाती है कि मुमुक्षुता ही सत्यार्थ है या नहीं?

समाधान :- मात्र मोक्ष (अभिलाष)। एक आत्माकी जिसे अभिलाषा है, दूसरी कोई अभिलाषा है। एक आत्मा ही चाहिये। जिसका एक आत्मा ही ध्येय है। सब कार्य और सब प्रसंगमें मुझे एक आत्मा ही चाहिये। मात्र आत्माकी अभिलाषा है। जो सब संकल्प-विकल्प, विभाव होते हैं, उसमें तन्मयता नहीं है, परन्तु मात्र एक आत्माकी अभिलाषा ही जिसे मुख्यपने वर्तती है। वह मुमुक्षुता (है)। मात्र मोक्ष अभिलाष, जिसे मात्र आत्माका ही अभिलाषा है। मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो? मुझे स्वानुभूति कैसे प्राप्त हो? जिसे बाहर कोई पदार्थकी इच्छा या किसी भी प्रकारकी अभिलाषा नहीं है। सब कार्योंमें जुड़े, फिर भी उसे सब गौण है। ध्येय मात्र एक आत्माका है कि आत्माका कैसे प्राप्त हो?

... स्वाध्याय, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि सब होता है। लेकिन एक आत्मा कैसे प्राप्त हो? आत्माके बिना जिसे कहीं चैन नहीं पड़ती। ... बारंबार बताते थे कि तू तेरे आत्माको देख। आत्मा ज्ञानस्वभाव है। यह सब तुझसे भिन्न है, तू तेरे आत्माको देख। ऐसा बारंबार स्वयं अन्दरसे जिज्ञासासे ग्रहण करनेका प्रयत्न करे।

मुमुक्षु :- ... विहार किया है और जहाँ-जहाँ उनके पावन चरणस्पर्श हुआ है, वहाँ यह बात एकदम खड़ी हो गयी है।

समाधान :- सब तैयार हो गये हैं। चारों ओर जहाँ-जहाँ उन्होंने विहार किया, वहाँ यह आत्माकी बात चालू हो गयी।

मुमुक्षु :- गुरुदेव तो गुरुदेव थे। सबको ऐसे प्रेमसे गले लगाते थे। बच्चोंको, एक बार हाथ लगा दे तो वह दिगम्बर, सच्चा दिगम्बर हो गया, ऐसा लगे। गुरुदेवमें ऐसे कोई विशिष्टता थी।

समाधान :- गुरुदेवकी कृपा सब पर थी। सब आत्माको प्राप्त करो, ऐसी उनकी एक ही (बात थी)। मार्ग यह है, समझमें आता है? सब समझो। यह उनके हृदयमें था। प्रवचनमें (बोलते थे), समझमें आया, समझमें आया। पहले तो बहुत समझमें आता है, समझमें आता है, ऐसा आता था।

मुमुक्षु :- आपने पीछली बार कहा था कि जो भूमि यहाँ आयी है, तो उस भूमिमें जो साधना करते होंगे, वह आत्मा कैसा होगा? वह बात सत्य है, सौ प्रतिशत सच्ची है।

समाधान :- .. उनके ज्ञानमें अतिशयता, उनकी वाणीमें अतिशयता, उनकी बातमें ऐसा था। उनका प्रभाव ऐसा था।

मुमुक्षु :- अभी ये लोग आये हैं, होलमें बैठे तो.. गुरुदेव बोलते हो ऐसा लगे। साक्षात् गुरुदेव बोलते हो ऐसा लगता है।

समाधान :- .. इसलिये ऐसा ही लगता है। ऐसा बहुत लोग कहते हैं। गुरुदेव यहाँ कितने ही वर्ष रहे हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी भूमि, यह क्षेत्र, यह स्थान...

समाधान :- .. ऐसे महापुरुष जागे तो ऐसा ही होता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी कोई नकल नहीं कर सकता।

समाधान :- नकल कहाँसे कर सके? उनकी वाणीमें अतिशयता थी, वाणीका पुण्य भी अलग था। तीर्थंकर भगवान जो भविष्यमें होंगे, उनकी वाणी इस भवमें भी अलग थी, अलग ही थी। ... गुरुदेवने एकदम आत्माको समझाया। आत्मामें मुक्तिका मार्ग है, स्वानुभूति प्रगट करो, सब गुरुदेवने मार्ग बताया। स्वानुभूतिमें आनन्द है। एक आत्मा, एक ज्ञायक आत्मा, सब भेदभावोंको गौण करके एक आत्माको पहचानो, ऐसा कहते थे। सब ज्ञानमें आवे, लेकिन लक्ष्यमें एक आत्मा, अखण्डको लक्ष्यमें लेना। सब गुरुदेवने बताया है। स्वानुभूतिका मार्ग (बताया है)। ... बरसों तक यहाँ रहते थे और फिर विहार करते थे।

मुमुक्षु :- पूज्य गाँधीजीने ... दो या तीन पंक्तिमें आ जाय, परन्तु एक-एक वस्तु पर विचार करें तो बहुत गहराईसे विचार कर सकते हैं।

समाधान :- .. आता है, मूल शास्त्र तो इतने सूक्ष्म है कि सुलझाना मुश्किल पड़े। उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी बातें आती हैं, बहुत सूक्ष्म। उसके प्रवचन, गुरुदेवके बहुत प्रवचन (हुए हैं)। यह तो आपको आसान पड़े इसलिये ऐसे...

समाधान :- ... हिन्दुस्तानमें बहुत लोग यहाँ मुड़ गये। बहुत लोग यहाँ लाभ लेने आते और स्वयं भी विहार करते थे, हर साल कुछ महिने जाते थे।

.. चलता ही रहता है, आत्माका कर लेना वह करना है। गुरुदेवने बहुत कहा है। मार्ग एकदम स्पष्ट करके बताया है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो कहीं भूल रहे ऐसा नहीं है। इसलिये गुरुदेवने कहा है, वही मार्ग ग्रहण करना है। आत्माको पहचाननेका है। आत्मा चैतन्य ज्ञायकतत्त्व सबसे भिन्न है, शाश्वत है। जो देह धारण करता है, एकसे दूसरा, दूसरेसे तीसरा, लेकिन आत्मा तो शाश्वत ही है, इसलिये आत्माको ग्रहण कर लेना। आत्माका आनन्द, आत्माका सुख और आत्माके गुण कैसे प्राप्त हो, वही जीवनमें करने जैसा है। उसीके संस्कार डालने और बारंबार उसीका मनन, चिंतवन करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, स्वाध्याय, विचार, ज्ञायक... बारंबार भेदज्ञानका अभ्यास करना। आत्माकी स्वानुभूति कैसे प्राप्त हो, यह करने जैसा है। वही करने जैसा है। बाकी अनन्त जन्म-मरण किये उसमें जीव कहीं-कहीं अटक गया है, बाहरमें थोड़े शुभभाव किये तो मैंने बहुत किया ऐसा मान लिया। पुण्यबन्ध हुआ, अनन्त बार देवलोकमें

गया, लेकिन भवका अभाव हो, वह मार्ग गुरुदेवने बताया कि तू शुद्धात्माको पहचान। उस शुद्धात्माको पहचान लेने जैसा है। विभावकी जाल खड़ी है, उससे स्वयंको भिन्न करके, मैं चैतन्य स्वभाव निर्विकल्प तत्त्व हूँ, उसे पहचानने जैसा है।

.. एक-एक आकाशके प्रदेश पर अनन्त-अनन्त बार (जन्म-मरण किये हैं)। अनन्त माताएँ हुयी, अनन्त माताको छोड़कर स्वयं आया, स्वयंको छोड़कर माता (चली जाती है), ऐसे अनन्त भव किये। एक शाश्वत आत्मा ही है कि जो सबसे भिन्न चैतन्यतत्त्व विराजता है। अनन्त गुणसे भरपूर, उसमें अनन्त सुख और आनन्द भरा है। वह ग्रहण करना। स्वयं पुरुषार्थसे ग्रहण करना। ज्ञानसे ग्रहण करना। ज्ञानका सूक्ष्म उपयोग करके, उसकी रुचि, जिज्ञासा करके ज्ञानका सूक्ष्म उपयोग करके, यह मैं चैतन्य हूँ और यह मैं नहीं हूँ, इस प्रकार स्वयं सूक्ष्म उपयोग करके ग्रहण करना। शास्त्रमें आता है न? प्रज्ञासे ग्रहण करना, प्रज्ञासे भिन्न करना।

मुमुक्षु :- .. जिसका अभ्यास कम हो, उसे कैसे करना?

समाधान :- अभ्यास कम हो तो मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको ग्रहण करना। गुरुदेवने प्रयोजनभूत तत्त्व बताये, एक आत्मा ग्रहण करना। यह सब भिन्न हैं और मैं उससे भिन्न चैतन्यतत्त्व हूँ। उसमें अधिक अभ्यासकी आवश्यकता नहीं है। शिवभूति मुनिने एक भेदज्ञान किया तो उन्हें आत्मा ग्रहण हो गया। एक शब्द भी याद नहीं रहता था, परन्तु भाव ग्रहण कर लिया। गुरुने मासतुष कहा। मारुष और मातुष याद नहीं रहा। मासतुष-यह छिलका भिन्न और दाल भिन्न है, ऐसे आत्मा चैतन्यतत्त्व भिन्न है और यह विभाव-छिलका भिन्न है, ऐसे ग्रहण कर लिया।

मूल प्रयोजनभूत तत्त्व ग्रहण कर ले तो उसमें कोई अधिक अभ्यासकी आवश्यकता नहीं है। एक आत्मा भिन्न प्रयोजनभूत तत्त्व है, मैं चैतन्यतत्त्व ज्ञायक हूँ, मैं एक अभेद हूँ, उसमें भेदभाव आदि गौण है। मैं एक अखण्ड चैतन्य वस्तु हूँ। ज्ञानमें सब जानता है, परन्तु मैं एक अखण्ड चैतन्य ही हूँ, उसे ग्रहण कर।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- सरल है, अपना स्वभाव है इसलिये सरल है। अनादिका अभ्यास नहीं है और विभावका अभ्यास है, इसलिये दुर्लभ और कठिन हो गया है। क्योंकि अनादिका विभावका अभ्यास हो रहा है, इसलिये स्वयं अपनेआपको भूल गया है, इसलिये कठिन हो गया है। बाकी स्वयंका स्वभाव ही है, इसलिये सरल भी है और कठिन भी है। क्योंकि अनादिसे स्वयं बाहर दौडता है, अंतर दृष्टि नहीं की है।

गुरुदेवने मार्ग अत्यंत सरल कर दिया है। कहीं खोजने जाना पड़े या किसीको पूछने जाना पडे, ऐसा नहीं है। गुरुदेवने ही सब बता दिया है। और गुरुदेवका साक्षात्

उपदेश सबने बहुत बार सुना है। एक सरल मार्ग कर दिया है, मात्र स्वयंको पुरुषार्थ करना बाकी रहता है। जो कुछ जानता नहीं है, मात्र क्रियामें पड़े हैं, शुभभावसे धर्म होता है, ऐसा मानते हो, चैतन्यतत्त्वका क्या स्वभाव, कोई अद्भूत तत्त्व, स्वानुभूतिको समझते नहीं हो, उसे तो कठिन लगे। गुरुदेवने तो एकदम सरल कर दिया है। मात्र स्वयंको पुरुषार्थ करना बाकी रह जाता है।

मुमुक्षु :- जीवन आत्मामय कर लेना चाहिये, तो वह भाव (कैसा है)? कैसे करना?

समाधान :- मैं आत्मा ही हूँ, यह विभाव मैं नहीं हूँ। मैं चैतन्यतत्त्व हूँ, ऐसी परिणति प्रगट कर लेनी। यह बाहरमें जो दिखता है वह मैं नहीं हूँ। मैं तो तत्त्व ही भिन्न हूँ। आत्मामय अपना जीवन-ऐसी परिणति प्रगट करनी चाहिये। ऐसी स्वानुभूतिपूर्वकका जीवन प्रगट करना चाहिये। आत्मामय। ऐसा नहीं हो तो उसका अभ्यास करना। मैं एक चैतन्यतत्त्व आत्मा हूँ। यह सब जो विभाव दिखता है, यह विभावका भेस मेरा नहीं है, मैं तो चैतन्यतत्त्व हूँ। ऐसा जीवन, बारंबार सहज परिणतिरूप कर लेना।

मुमुक्षु :- माताजी! आत्माको कैस प्रकारसे जाना जाता है?

समाधान :- आत्माको स्वभावसे-लक्षणसे पीछाना जाता है। उसका जो लक्षण होता है, उस लक्षणसे आत्माको पीछाना जाता है। ऐसा ज्ञानलक्षण आत्माका असाधारण लक्षण है। ज्ञानलक्षणसे उस द्रव्यको पीछाना जाता है। गुरुदेव और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र बताते हैं कि आत्मा ज्ञानस्वभाव है। उसे ज्ञानलक्षणसे पीछानो। ज्ञानलक्षण असाधारण लक्षण है, सबसे विशिष्ट लक्षण है, उससे आत्मा पीछाना जाता है। विभाव लक्षण, राग लक्षण वह कोई आत्माका लक्षण नहीं है। जो जानता है वही आत्मा है, जो जाननेवाला है वही आत्मा है। जाननेका लक्षणसे वह पीछाना जाता है।

ऐसे तो भीतरमें अनन्त-अनन्त गुण हैं, अनन्त-अनन्त शक्तियाँ हैं। वह पीछाननेमें नहीं आता है, ज्ञानलक्षण है वह पीछाननेमें आता है। इसलिये ज्ञानलक्षणसे वह पीछाना जाता है कि ज्ञायक है। ज्ञायक पूर्ण द्रव्य स्वरूप ज्ञायक है, उससे पीछाना जाता है। ज्ञानलक्षणसे पीछाननेसे, ऐसा भेदज्ञान करनेसे, उसकी स्वानुभूति करनेसे जो भीतरमें उसके अनन्त गुण-अनन्त शक्तियाँ हैं, वह प्रगट होती है। निर्विकल्प स्वानुभूतिमें वह प्रगट होती है। पहले उसका भेदज्ञान होता है। मैं एक चैतन्य हूँ, मैं चैतन्य स्वभाव हूँ। यह सब लक्षण मेरा नहीं है, राग लक्षण आकुलता लक्षण है। मैं ज्ञानलक्षण निराकुलता, शान्ति लक्षण ऐसा मेरा लक्षण है। ऐसा क्षण-क्षणमें उसका भेदज्ञान (करे)। उसकी सहज दशा करनेसे, ऐसा सहजरूप हो जानेसे जो निर्विकल्प स्वानुभूति होती है तो उसमें सब अनुभवमें आता है। उसका जो स्वभाव है, वह सब अनुभवमें आता है। उसकी

जिज्ञासा, उसकी महिमा, उसकी लगनी, बारंबार तत्त्वका विचार, स्वाध्याय आदि सब होना चाहिये, निरंतर। सुख आत्मामें है, बाहरमें नहीं है।

मुमुक्षु :- ... जैसे कि यह क्रमबद्ध पर्याय पुस्तक है। उसके पढ़नेसे कभी स्वच्छन्दपना भी आता है।

समाधान :- क्रमबद्ध ऐसा समझना चाहिये कि पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। जो क्रमबद्ध होता है, वह क्रमबद्ध ऐसा होता है कि... क्रमबद्ध सच्चा किसने जाना? जिसने ज्ञायकको जाना उसने क्रमबद्ध जाना। मैं ज्ञाता ही हूँ। मैं परपदार्थका कुछ कर नहीं सकता, मैं ज्ञायक-ज्ञाता हूँ। ऐसी ज्ञाताधारा जिसको प्रगट होती है, वह सच्चा क्रमबद्ध जान सकता है। क्रमबद्धका ऐसा नहीं समझना चाहिये कि पुरुषार्थ नहीं करके स्वच्छन्द करना, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होना चाहिये। पुरुषार्थ (करे कि), मैं कैसे आत्माको पीछानूँ? कैसे स्वभावकी परिणति प्रगट करुँ? स्वभावकी परिणतिपूर्वक क्रमबद्ध होता है। पुरुषार्थ बिनाका क्रमबद्ध नहीं होता। उसमें पुरुषार्थ आ जाता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थके लिये हम यह सोचते रहें कि जब होना होगा तब होगा।

समाधान :- होनेवाला होता है, परन्तु जिसको आत्माका कल्याण करना है, उसको ऐसा होना चाहिये, मैं कैसे पुरुषार्थ करुँ? मैं कैसे करुँ? ऐसी भावना होनी चाहिये। जब होनेवाला होगा तब होगा, ऐसा जिज्ञासुको और जिसको आत्माका स्वभाव प्रगट करना है, उसको ऐसी शान्ति नहीं होगी। उसको ऐसा होता है, मैं कैसे आत्माको पीछानूँ? कैसे पुरुषार्थ करुँ? मेरी स्वभावकी ओर पर्याय कैसे होवे? उसको ऐसे शान्ति होगी।

जिसका अच्छा क्रमबद्ध होवे, उसको ऐसा पुरुषार्थ.. पुरुषार्थ ऐसी भावना होती रहती है। जिसको नहीं करना है वह ऐसा अर्थ ले लेता है कि जब होना होगा तब होगा। लेकिन जिसको सच्ची जिज्ञासा है, उसका पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। जिसका होता है, उसका पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है।

ज्ञायकको जो जानता है उसका ही क्रमबद्ध सच्चा है। जो पुरुषार्थ नहीं करता है, उसका क्रमबद्ध ऐसा ही है। उसमें पुरुषार्थ साथमें होता है। अकेली काललब्धि नहीं होती है, सब साथमें होते हैं। उसको पुरुषार्थ साथमें होता है।

मुमुक्षु :- क्रमबद्धका उसने सुना है, लेकिन अभी ज्ञायक तक पहुँचा नहीं है, तो उसका पुरुषार्थ ज्ञायककी ओर चलता रहे, तो क्रमबद्धमें जो होनेवाला होगा वह होगा, ऐसे ज्ञानका वह कैसे उपयोग करे?

समाधान :- उसका उपयोग ऐसे हो कि, उसमें अकुलाहट और उलझन होती

हो तो उसका आश्रय ले, बाकी भावना तीव्र हो उसे उसका आश्रय सहज ही आ जाता है। बहुत आकुलता या उलझन होती हो तो उसमें उसे आश्रय आता है। बाकी जिसे स्वभावकी ओर मुड़ना है, मैं पुरुषार्थ कैसे करुँ? यह प्रमाद क्यों हो रहा है? ऐसी ही उसकी भावना होती है।

मुमुक्षु :- अर्थात् कभी-कभी उसे अकुलाहट हो जाती है कि स्वभाव क्यों प्राप्त नहीं हो रहा है? तो उस वक्त कदाचित् ऐसा आश्रय ले।

समाधान :- हाँ, ऐसा आश्रय ले, बाकी पुरुषार्थकी ओर ही आत्मार्थीका लक्ष्य होता है। ... मैं पुरुषार्थ करुँ, पुरुषार्थ करुँ, उसमें क्रमबद्ध तो साथमें आ जाता है।

... मैं परका कर सकता हूँ, यह कर सकता हूँ, वह कर सकता हूँ.. स्वभावका आश्रय लेनेमें क्रमबद्धका आश्रय ले तो प्रमादकी ओर उसका चला जाना होता है। आत्मार्थीको...

मुमुक्षु :- .. कर्तृत्व होता हो, तो क्रमबद्ध होता है, ऐसा करके उसे छोड़ देता है।

समाधान :- हाँ, उसे छोड़ देता है।

मुमुक्षु :- परन्तु जब स्वयंकी भावना हो..

समाधान :- तो मेरा स्वयंका प्रमाद है।

मुमुक्षु :- मेरा स्वयंका प्रमाह है और मैं कैसे प्राप्त करुँ, ऐसा उसे उत्साह...

समाधान :- उत्साह रहना चाहिये। अपने दोषकी ओर देखता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१२९

मुमुक्षु :- माताजी! मैं ज्ञानस्वभावी हूँ, तो हमारा यह विभाव परिणमन क्यों होता है?

समाधान :- अनादिका हो रहा है। ज्ञानस्वभाव तो है। अनादिका हो तो रहा है, विभावका वेदन तो होता है। और जब हो रहा है, उसे तोड़ना कैसे? यह करना है, वह उपाय करना है। हो तो रहा है अनादिका।

आत्मा शुद्ध स्वभाव द्रव्यसे है और पर्यायमें अनादिसे हो रहा है। जिसको उसकी आकुलता लगे, दुःख लगे तो तोड़नेका उपाय करना। हो तो रहा है, क्यों हो रहा है क्या? हो रहा है। वह तो दिखनेमें आता है। पर्यायमें कर्म और आत्मा अनादिसे ऐसे ही चले आते हैं, अनादि सम्बन्धसे। द्रव्यमें तो शुद्धता है, पर्यायमें ऐसा हो रहा है।

मुमुक्षु :- भगवान कुन्दकुन्दस्वामी जब सीमंधर भगवानके पास गये, उस वक्त क्या आपकी आत्मा वहाँ थी?

समाधान :- सब लोग बहुत पूछने आते हैं तो मुझे बहुत प्रवृत्ति हो जाती है।

मुमुक्षु :- हमारा तो कभी.. बाहरसे आये हैं हम लोग।

समाधान :- गुरुदेवने बहुत बताया है, गुरुदेवने तो बहुत बताया है। गुरुदेव कहते थे, हम सब थे, ऐसा गुरुदेव कहते थे। गुरुदेव स्वयं कहते थे। हम सब थे, ऐसा कहते थे।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- ऐसा उसको राग था। सम्यग्दृष्टि थे, लेकिन उनको वीतरागता नहीं हुयी थी। वीतरागता पूर्ण नहीं हुयी। चारित्रदशा, स्वरूपमें लीनता ऐसी विशेष नहीं हुयी थी। राग था ना, राग था इसलिये रागके कारण ऐसा हुआ। रागके कारणसे ऐसा होता है। भीतरमें जानते हैं, भेदज्ञान है, यह सब भिन्न है। यह मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा जानता है, तो भी राग ऐसा कार्य करता है कि रागके कारणसे लक्ष्मणका राग नहीं छूटता है, इसलिये उसको लेकर फिरते हैं। मैं इसको छोड़ नहीं सकता। लक्ष्मणको मैं कैसे छोड़ दूँ? वह राग नहीं छोड़ सकते। भीतरमें मानते भी थे कि

इसमें जीव नहीं है, तो भी उसका राग नहीं छूटता था, इसलिये फिरते थे।

बलभद्र थे ना, वासुदेव थे। इसलिये उसका राग, भाईके ऊपर ऐसा बहुत राग होता है, इसलिये छोड़ नहीं सकते थे। बादमें जब राग (खत्म) हो गया, बादमें होता है, बादमें पलट जाते हैं। राग नहीं छूटता है। भेदज्ञान होनेपर भी राग नहीं छूटता है। जानते हैं तो भी राग नहीं छूटता है। इसलिये फिरते हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! क्रमबद्ध पर्याय जो निकलती है, वह शुद्ध-शुद्ध निकलती है या शुद्ध और अशुद्ध दोनों निकलती है?

समाधान :- शुद्ध और अशुद्ध दोनों क्रमबद्ध ही होती है, परन्तु अपने पुरुषार्थकी ओर दृष्टि रखनी चाहिये। पुरुषार्थ उसमें साथमें रहता है। अपनी कमजोरीसे अशुद्ध होता है, पुरुषार्थ करे तब शुद्धकी पर्याय होती है। वह साथमें क्रमबद्ध चलता है। पुरुषार्थके साथमें क्रमबद्ध लेना चाहिये।

मुमुक्षु :- हमारी जो पर्याय निकलती है, अन्दरसे जो पर्याय निकलती है, वह शुद्ध निकलती है या शुद्ध-अशुद्ध दोनों निकलती है? बाहर आकर अशुद्ध हो जाती है या अन्दरसे अशुद्ध आती है?

समाधान :- अन्दरसे अशुद्ध होती नहीं। अशुद्ध तो कर्मका निमित्त है, इसलिये उस ओर दृष्टि करता है, इसलिये अशुद्ध होती है। द्रव्य तो शुद्ध है। ... होता है, जब वह निमित्त होता है, तब उसका लाल-पीला परिणमन होता है। स्फटिकमें भीतरमेंसे लाल नहीं आता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- स्फटिकमें तो निर्मल पर्याय होती है। स्फटिक तो सफेद है। उसमें जब लाल दिखता है, वह निमित्तके कारण, उपादान अपना, लाल होता है वह स्फटिकका मूल स्वभाव नहीं है। वह मूल स्वभाव नहीं है। परिणमन स्फटिकका है, लाल जो होता है वह उसका मूल स्वभाव नहीं है, वह विभावपर्याय है। इसलिये उसका मूल स्वभाव नहीं है, भीतरमेंसे लाल रंग नहीं आता है। पर्यायका पलटन होता है। निमित्त साथमें रहता है।

मुमुक्षु :- .. भाव भी है, परन्तु टिकता नहीं है।

समाधान :- अपनी मन्दता है। नहीं टिकता है, उसमें भी अपना कारण है। अपने प्रमादके कारण टिकता नहीं है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है। नहीं टिकनेका कारण स्वयंका ही है। प्रमाद अपना है। भेदज्ञान नहीं होनेका कारण अपना है। अनादि कालसे नहीं करता है इसलिये नहीं होता है। स्वयं करे तो होता है। अपनी क्षति है। लक्ष्य हो तो भी पुरुषार्थ करनेका बाकी रहता है। यथार्थ लक्ष्य, यथार्थ ज्ञायककी प्रतिती,

भेदज्ञान सबका पुरुषार्थ स्वयंको करनेका है। लक्ष्य हो, विचार किया कि सत्य यही है, परन्तु उस प्रकारका पुरुषार्थ करना उसकी क्षति होती है। वह क्षति है, वैसी स्वयंकी क्षति है। क्षति है।

मुमुक्षु :- ज्ञानलक्षण द्वारा दिखता है, ज्ञात होता है, वेदनमें आता है। तो उस वेदनमें यह जो ज्ञात होता है, उसका मैं जाननेवाला हूँ। इस प्रकारसे उसका अवलोकन करके उस ओर मोड़ लेना। यह जो चीज जाननेमें आती है, उस चीजको जाननेवाला मैं हूँ, इस प्रकार अपना अवलोकन शक्तिको उस ओर मोड़नी पड़ती है कि उसके ख्यालमें सीधा आ जाता है?

समाधान :- यह जाननेमें आता है, उसे जाननेवाला मैं, ऐसे नहीं, मैं स्वयं जाननेवाला हूँ। स्वयं जाननेवाला ज्ञायक हूँ। यह बाहरका ज्ञात हो उसे जाननेवाला मैं, ऐसे नहीं। मैं स्वयं जाननेवाला हूँ। अब तक बचपनसे लेकर अभी तक जो-जो भाव आये, उसको स्वयं जाननेवाला (हूँ), वह जाननेवाला वैसा ही है। वह सब पर्यायें चली गयी, सब संकल्प-विकल्प चले गये तो भी जाननेवाला तो वैसा ही है। जाननेवाला स्वयं सब लक्ष्यमें ले सकता है।

गुरुदेवके पास क्या सुना? क्या जिज्ञासा, क्या भावना (थी)? वह सब जाननेवाला तो जाननेवाला ही है। स्वयं जो जाननेवाला है, वह जाननेवाला मैं हूँ। यह ज्ञात होता है वह मैं, ऐसे नहीं। स्वयं जाननेवाला स्वयं ज्ञायक स्वतःसिद्ध मेरी शक्ति जाननेकी अनादिअनन्त है। ज्ञेयको जानता हूँ, इसलिये जाननेवाला, ऐसे नहीं। मैं स्वयं जाननेवाला ही हूँ। स्वयं जाननेवाला चैतन्यशक्ति, मेरी स्वयं जाननेकी शक्ति है, स्वयं जाननेवाला हूँ। ऐसे ज्ञानलक्षणसे स्वयंको (पहचानना)। एक ज्ञानलक्षण द्वारा पूरा ज्ञायक पकड़ लेता है। ज्ञानलक्षणसे एक गुण जानता है, ऐसा नहीं, परन्तु स्वयं ज्ञायक हूँ। स्वयं पूर्ण जाननेवाला द्रव्य, मैं जाननेवाला ही हूँ।

मुमुक्षु :- वह स्वयं ज्ञानदशा परसे यह स्वयं मेरेमेंसे उत्पन्न हुयी है और मैं ऐसी वस्तु हूँ, वहाँ तक उसका ज्ञान चला जाता है?

समाधान :- वहाँ चला जाता है। मैं स्वयं ज्ञायक वस्तु ही हूँ। एक जाननेवाला अखण्ड ज्ञायक जाननेवाला ही हूँ।

मुमुक्षु :- ज्ञानलक्षणसे ज्ञात होता है, फिर दूसरे जो लक्षण कहनेमें आते हैं कि मैं आनन्दमय हूँ, मैं निर्विकल्प हूँ, अखण्ड हूँ, मैं ध्रुव हूँ, परिपूर्ण हूँ, तो यह सब लक्षण उसे कब प्रमाणरूपसे ख्यालमें आते हैं?

समाधान :- ज्ञायकलक्षण तत्त्व हूँ। जो तत्त्व हो, वह पूर्ण ही होता है। तत्त्व ऐसा कोई अधूरा नहीं होता। मैं परिपूर्ण हूँ। उसमें उसे सब साथमें समझमें आ जाता

है। जो स्वयं सुखको इच्छता है, वह सुख कहीं बाहर नहीं है। सुखस्वरूप मैं हूँ। यह सब उसे आ जाता है। मैं सुखस्वरूप हूँ, शान्तिस्वरूप हूँ। यह विकल्प है वह सब आकुलता है। मैं निर्विकल्प तत्त्व हूँ।

जो शास्त्रमें कहा है, ऐसे नहीं, अपितु मैं स्वयं निर्विकल्प तत्त्व हूँ। विकल्प बिनाकी जो शान्ति हो, इस विकल्पकी जालमें आकुलता है, सब आकुलतासे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ। आकुलता बिना निराकुलस्वरूप ऐसे नहीं, परन्तु मुझमें आनन्द गुण है। आनन्द गुण उसे दिखाई नहीं देता। वह तो उसे अमुक प्रकारसे नक्की करता है। ज्ञानलक्षण ऐसा है कि वह उसे ग्रहण हो सकता है। इसलिये आत्माको ज्ञानसे जानना, ऐसा कहनेका कारण वही है। आनन्द उसे दिखाई नहीं देता। आकुलता बिनाका मैं निराकुल, ऐसा उसे ग्रहण हो सकता है। परन्तु मैं आनन्द लक्षण हूँ, वह आनन्द उसे दिखता नहीं। तो भी वह अमुक प्रकारसे यथार्थ प्रमाणसे, यथार्थ ज्ञानसे जान सकता है। सच्चे ज्ञानसे नक्की कर सकता है। परन्तु ज्ञानलक्षण तो ऐसा है कि उसके अनुभवमें आ सके ऐसा है। अनुभव यानी स्वानुभूतिका अनुभव नहीं, परन्तु ज्ञानलक्षण उसे ज्ञात हो सकता है।

मुमुक्षु :- उसे प्रसिद्ध है। अपने वेदनमें..

समाधान :- ज्ञानलक्षण वेदनमें प्रसिद्ध है और आनन्द उसे वेदनमें उस वक्त अनुभवमें नहीं आता है। लेकिन अमुक प्रकारकी युक्तियोंसे नक्की (करता है)। लेकिन वह ऐसा नक्की कर सकता है कि उसमें फ़र्क़ नहीं पडता। ऐसा वह नक्की कर सकता है। मैं परिपूर्ण हूँ, वह सब युक्ति द्वारा, सर्व प्रकारसे नक्की कर सकता है। जो वस्तु हो, वह स्वतःसिद्ध (होती है), वह अधूरी होती नहीं। उसका कभी नाश हो तो उसे वस्तु ही नहीं कहते। वस्तु हो वह परिपूर्ण ज्ञानलक्षणसे भरपूर है। उसका कभी घात नहीं होता। तो उसे वस्तु कहें? यदि वस्तुका नाश होता हो तो। पूर्ण न हो वह वस्तु ही नहीं है। यथार्थ प्रकारसे नक्की कर सकता है।

मुमुक्षु :- जहाँ ज्ञानमय हूँ, ऐसा भाव ख्यालमें आये तो साथमें उसे अपनी अखण्डता, परिपूर्णता आदि सब..

समाधान :- वह सब युक्तिसे नक्की करे, सच्ची प्रतीत कर सकता है। लेकिन मुख्य उसमें ज्ञान है। वह उसे प्रसिद्धिमें आता है।

मुमुक्षु :- जिसे अनुभव हो गया, उसे भी जब-जब पुनः निर्विकल्पता उत्पन्न होती है, उस वक्त भी उसी लक्षणसे फिरसे होता होगा? या उसमेंसे कोई भी लक्षण द्वारा (अनुभव होता है)?

समाधान :- वह तो ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण किया, वह तो उसे सहज है। उसे कोई विचारकी कल्पना नहीं करनी पड़ती कि मैं आनन्द हूँ या अखण्ड हूँ। उसे

तो जो अपना ज्ञायक अस्तित्व ग्रहण किया सो किया है। उसे सहज धारारूप है। उसे सहज भेदज्ञानकी धारामें सहज ज्ञाताकी धारा वर्तती है। उसमेंसे उसे निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशा सहज परिणतिरूप होती है। और उसकी ज्ञायककी धारा ऐसे ही सहज (चलती है)। उसे विकल्पसे रटना नहीं पड़ता कि मैं यह ज्ञायक हूँ या आनन्द हूँ या परिपूर्ण हूँ, वह तो उसे ज्ञायककी धारा वेदनरूप उसकी अमुक दशा अनुसार परिणमता है, उसमें सहज रहता है। उसे रटन नहीं करना पड़ता।

मुमुक्षु :- उसकी संवेदनशक्तिमें ही वह सब ज्ञात होने लगता है अथवा वेदन होने लगता है।

समाधान :- हाँ, वेदन होने लगता है। स्वानुभूतिका आनन्द वह एक अलग बात है, परन्तु उसकी बीचवाली दशामें सविकल्पतामें भी उसे वेदनमें ज्ञायकका वेदन अमुक अंशमें रहता है।

समाधान :- .. उन्हें तो श्रुतकी लब्धि (थी)। श्रुतकेवली कोई दूसरी अपेक्षासे गुरुदेवको कहा था।

मुमुक्षु :- श्रुतका भाव..

समाधान :- श्रुतका भाव प्रगट हुआ। सम्यग्दर्शनपूर्वक उन्हें श्रुतकी विशेषता थी। उस अपेक्षासे। .. श्रुतकेवली वह तो उन्हें अमुक प्रकारका श्रुत...

समाधान :- .. गुरुदेवका जितना करें उतना कम ही है। भक्तोंको जो भाव आते हैं, वह गुरुदेवको कहते हैं। उन्हें श्रुतकी लब्धि कोई अपूर्व थी। भावसे श्रुतकेवली कहते हैं। भद्रबाहू श्रुतकेवली थे वह दूसरी अपेक्षा है। गुरुदेवमें तो कोई अतिशयतायुक्त श्रुतज्ञान था। तीर्थंकरका द्रव्य था तो उनका प्रभावना उदय अलग था, उनकी वाणी अतिशयतायुक्त थी, उनका आत्मा अलग था, सब अलग था। गुरुदेवको जितनी उपमा दें, उतनी कम ही हैं। भद्रबाहुस्वामी..

मुमुक्षु :- नौंवी गाथामें परिभाषा करते हैं, श्रुतसे जो आत्माको जाने...

समाधान :- उनकी श्रुतज्ञानकी धारा... हज़ारों जीवोंको .. किया।

मुमुक्षु :- .. उसकी परिभाषा करते समय कहा था कि, जो भावश्रुतज्ञानसे केवल आत्माका अनुभव करे वह श्रुतकेवली है। ऐसा ऋषिश्वरो तथा तीर्थंकरोंने घोषणा की है। और ऐसे प्रवचनसारकी ३३वीं गाथा। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वानुभूति परिणत परम पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य बहिनश्री, स्वयंके भावश्रुतज्ञानसे केवल आत्मानुभवयुक्त होनेसे हम मुमुक्षु समाजके महान उपकारी दोनों महात्मा श्रुतकेवली हैं। क्योंकि ऋषिश्वरोंनें उन्हें श्रुतकेवली कहा है।

मुमुक्षु :- सोगानीजीके बाद प्रवाह कुछ मन्द हो गया है, ऐसा लगता है। कालका

कारण होगा?

समाधान :- कोई प्रवाह मन्द नहीं पड़ा है। गुरुदेवके प्रतापसे प्रवाह चलता ही है। कुछ मन्द नहीं पड़ा। गुरुदेवका प्रभाव चारों ओर वर्तता है। आत्मा कैसे प्राप्त हो? आत्मा कैसे प्राप्त हो? पूरे हिन्दुस्तानमें हो गया है।

मुमुक्षु :- अभी तो और भी बढेगा।

समाधान :- कुछ मन्द नहीं हुआ है। गुरुदेवका प्रभाव चारों ओर गुँज रहा है। गुरुदेवने कितने जीवोंको जागृत कर दिये हैं।

मुमुक्षु :- .. मन्दता नहीं आयी है, परन्तु प्राप्तिमें मन्दता आ गयी।

समाधान :- कुछ मन्दता नहीं आयी है। आत्माकी ओर ही कैसे प्राप्त हो? कैसे प्राप्त हो? कितने ही जीव जागृत हो गये हैं। क्रियामें धर्म मानते थे, तो अब आत्मा.. आत्मा.. चारों ओर हिन्दीभाषी क्षेत्रमें सब ओर हो गया है। अध्यात्मका प्रेम चारों ओर हो गया है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३०

समाधान :- ... सम्यग्दर्शन तो आत्माकी स्वानुभूति है, पुरुषार्थ करे तो होता है। भेदज्ञान करके आत्माको प्राप्त करे तो होता है, भेदज्ञान प्राप्त करे तो होता है। आत्मा चैतन्य शाश्वत द्रव्य है, उस पर दृष्टि करके, उसका ज्ञान करके, उसमें लीनता करके बारंबार करे तो होता है। बाहर जो उपयोग दौड़ जाता है, उपयोगको स्वसन्मुख करे। पहले दृष्टि करे। उपयोगको बारंबार चैतन्यकी ओर लाये तो विकल्प छूटकर स्वानुभूति होती है। उसकी जिज्ञासा, उसकी महिमा, बारंबार उसकी लगन लगे तो हो सकता है।

... यही है, मैं आत्मा ही हूँ। इन सबसे भिन्न चैतन्य है। यह शरीरादि परद्रव्य (है), विभावभाव आत्माका स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। अंतरमेंसे निश्चय-नक्की करके, उस ओर परिणति (करे), बारंबार भेदज्ञानका अभ्यास करे तो विकल्प टूटकर स्वानुभूति होती है।

मुमुक्षु :- यह नक्की करनेके लिये बाह्य पदार्थोंके आश्चर्यको बन्द करे और अन्दरमें चैतन्य है उसकी महिमा पहले तो बाहरसे ऊपर-ऊपरसे आये, ख्यालमें आये कि अन्दर ऐसी एक चीज है कि जो मेरे सुखके लिये अत्यंत उपयोगी है और वही मुझे प्राप्त करने योग्य है। ऐसा विचार, भावना होनेके बाद, मैं ज्ञान हूँ, यह उसे अंतर संवेदनमें पकड़नेकी पद्धति कैसी है?

समाधान :- उसका स्वभाव पहचानकर पकड़े। बाह्य दृष्टि जाती है। मैं चैतन्य हूँ, उसका स्वभाव पहचान ले कि मैं यह जो ज्ञान है-ज्ञायक मैं हूँ। बाहर जानता हूँ इसलिये नहीं, परन्तु मैं अंतर स्वयं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक स्वभाव ही मेरा है, ऐसे स्वयं अपनेआपको अपने स्वभावसे पहचाने। उसका स्वभाव असाधारण ज्ञायक स्वभाव है, उसे स्वभावसे ग्रहण करे। स्वभाव ऐसा विशेष गुण है कि जो ग्रहण होता है। उस गुण द्वारा पूरा ज्ञायक ग्रहण कर ले। जो अपना स्वभाव हो, वह सुखरूप ही होता है। उसे स्वयं अपनी अंतर दृष्टिसे ग्रहण करे। अंतरकी ओर जाय। वह स्वयं ही है, कोई गुप्त नहीं है, अन्य नहीं है कि जिसे खोजने जाना पड़े, स्वयं ही है, स्वयंको स्वभाव द्वारा पहचान ले।

मुमुक्षु :- इसके पहले आपने कहा था, जब पूछा था कि पर दिखता है परन्तु स्वयं नहीं दिखाई नहीं देता, तब आपने कहा था कि वह स्वयं ही है। अर्थात् जो देखना होता है, वह स्वयं ही होनेके बावजूद मानों अन्य दिखाई देता है, ऐसा उसे अभ्यास रहा करता है, इसलिये स्वयं स्वयंको देखता नहीं, ऐसी परिस्थिति वहाँ उत्पन्न हो जाती है। वहाँ उसे अवलोकन कालमें उसकी जागृति होनी चाहिये कि यह देखनेवाला मैं हूँ, इस तरह स्वयंको अपनेआप भासित होना चाहिये। तो उसमें उसका सत्त्व कैसा है? उसकी हयाती कैसी है? उसकी सातत्यता कैसी है? वह सब उसे ख्यालमें आने लगे। तो उस परसे स्वयंका अस्तित्व ग्रहण हो।

समाधान :- मैं देखनेवालेको ही देखता हूँ, शास्त्रमें आता है ना? देखनेवाला ही मैं हूँ, देखनेवाले द्वारा ही देखता हूँ। मैं स्वयं देखनेवाला ही हूँ, मैं स्वयं जाननेवाला ही हूँ। अन्यको देखनेवाला हूँ, ऐसे नहीं, मैं स्वयं देखनेवाला हूँ। मैं दर्शन स्वभावसे भरपूर हूँ, मैं ज्ञानस्वभावसे भरपूर हूँ। उष्णता, दूसरेको उष्ण करती है इसलिये अग्नि उष्ण है, ऐसा नहीं, स्वयं उष्णतासे भरी हुयी अग्नि ही है। बर्फ दूसरेको ठण्डा करे इसलिये बर्फ ठण्डा है ऐसा नहीं, स्वयं बर्फका स्वभाव ठण्डा है। ऐसे मैं स्वयं दूसरेको देखूँ और जानूँ इसलिये मैं जाननेवाला हूँ, ऐसा नहीं, परन्तु मैं स्वयं जाननेवाला ही हूँ। मैं जाननेवाला अनन्त शक्तिसे भरपूर जाननेवाला हूँ। उसमें कोई अंश ऐसा नहीं है कि जो नहीं जानता। स्वयं ज्ञायक शक्तिसे भरा हुआ, स्वयं देखनेकी शक्तिसे भरा हुआ, स्वयं वस्तु स्वतःसिद्ध अनादिअनन्त वस्तु हूँ। जिसे किसीने बनायी नहीं है, वह स्वयं है।

जैसे यह परपदार्थ जड़ आदि स्वयं पदार्थ है, वैसे मैं एक चैतन्य स्वयं जाननेवाला स्वयंसिद्ध वस्तु जाननतत्त्व, जाननगुणसे, जाननस्वभावसे भरा हूँ। जाननेवालेमें शान्ति, जाननेवालेमें आनन्द, जाननेवालेमें अनन्त गुण भरे हैं। एक उष्णता देखो तो जड़ पदार्थ (है), उसमें दूसरे अनन्त गुण हैं। वैसे एक स्वयं जाननेवालेमें दूसरे अनन्त गुण हैं। परन्तु वह जाननस्वभाव ऐसा है कि वह अनन्ततासे भरा स्वयं जाननेवाला है। वह स्वयं जाननेवालेको जान लेना। दूसरेको जाने इसलिये मैं जाननेवाला, दूसरेको देखता है इसलिये मैं देखनेवाला, ऐसा नहीं, मैं स्वयं जाननेवाला, स्वयं देखनेवाला हूँ।

मुमुक्षु :- अर्थात् उसका स्वयंका अंतरंग ही ऐसी पुकार करता है कि मैं जाननेवाला हूँ, इस तरह स्वयं अपनेआपसे ख्यालमें आता है।

समाधान :- स्वयं अपनेआपसे अन्दर स्वयं जाननेवाला, स्वयं देखनेवाला (है)। स्वयंसिद्ध अस्तित्व अपना उस तरह ग्रहण कर लेता है।

मुमुक्षु :- गुरुका अवलम्बन तो चाहिये न? आत्माकी ... पहले गुरुका अवलम्बन

तो चाहिये न?

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्र मार्ग दर्शाते हैं। गुरुदेव मार्ग दर्शाये कि वस्तु यह है, तू उसे पहचान। फिर करना स्वयंको है। उपादान पुरुषार्थ स्वयंको करना है। गुरुदेव मार्ग बताये, परन्तु मार्ग (स्वयंको) ग्रहण करना है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा उसे साथमें होती है। परन्तु पुरुषार्थ स्वयंको करना पड़ता है। गुरुने क्या बताया है? गुरुने कैसा मार्ग बताया है? कि आत्मा सर्वसे भिन्न तू निर्विकल्प तत्त्व अनादिअनन्त है, ऐसा जो गुरुदेवने बताया, उसे ग्रहण स्वयंको करना पड़ता है।

अनादि कालका अनजाना मार्ग गुरुदेवने स्पष्ट करके बताया है। वह स्वयं ग्रहण करना है। इसलिये उसमें गुरुका अवलम्बन आ जाता है कि गुरुने जो मार्ग बताया वह यथार्थ है। परन्तु मुझे कैसे समझमें आये, ऐसे पुरुषार्थ करके स्वयं स्वयंसे जानता है। अनादि कालका अनजाना मार्ग है। अनादि कालसे या तो जिनेन्द्र देवका वाक्य या कोई गुरुका वाक्य साक्षात् उसे श्रवण हो, तब उसे अंतरमें उपादान जागृत हो और देशनालब्धि प्रगट हो, ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है, लेकिन वह ग्रहण स्वयंसे होता है, कोई उसे कर नहीं देता, स्वयंसे होता है। उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध है। परन्तु कोई कर नहीं देता, स्वयंके द्वारा होता है, उसमें निमित्त साथमें होता है। अभी यह मार्ग गुरुदेवके प्रतापसे, गुरुदेवने मार्ग बताया और यह मार्ग बहुत लोगोंको अंतरमें जिज्ञासावृत्ति, महिमा गुरुदेवके प्रतापसे हुआ है।

मुमुक्षु :- यह बात ही कहाँ थी।

समाधान :- बात ही कहाँ थी। ऐसा प्रकार है, उपादान-निमित्तका ऐसा स्वभाव है। साक्षात् वाणी श्रवण होती है, अनादि काल हुआ। शास्त्रमें कहा है, लेकिन चैतन्य साक्षात् गुरु एवं देव मिले, तब अंतर उपादान-निमित्तका सम्बन्ध होता है। कोई शास्त्रमेंसे स्वयं जाने कि शास्त्रमें... इसमें आता है न? गुरुने उसका रहस्य बताया है।

मुमुक्षु :- .. इसी प्रक्रियाका अभ्यास जैसे विशेष-विशेष गहराईसे हो, वैसा उसे सहजरूपसे..

समाधान :- अंतरमें अभ्यास करे, मैं स्वयं ज्ञायक हूँ। यह सब भाव दिखते हैं, वह मैं नहीं हूँ। मैं स्वयं ज्ञायक सबसे भिन्न तत्त्व, निराला तत्त्व हूँ, इस तरह बारंबार उसका अभ्यास करे, बारंबार अंतरसे अभ्यास करे। अपने अस्तित्वको (ग्रहण करे)। उसे शून्यतारूप मात्र नहीं, परन्तु महिमासे (ग्रहण करे)। मैं अनादिअनन्त सिर्फ निर्मूल्य तत्त्व हूँ, ऐसे नहीं। अनन्त शक्तिसे भरपूर ऐसी चैतन्यशक्ति, चैतन्य अस्तित्व सो मैं हूँ, ऐसे उसे महिमा आती है। परपदार्थकी महिमा छूट जाती है। इस प्रकार वह महिमापूर्वक अभ्यास करता है तो आगे बढ़ता है। विकल्प छूटकर मैं शून्य हो जाता हूँ, ऐसे नहीं।

मैं अनन्त शक्तिओंसे भरपूर हूँ। यह विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है। मैं निर्विकल्प तत्त्व हूँ, परन्तु अनन्ततासे भरपूर हूँ।

मुमुक्षु :- कुछ हूँ, परन्तु यही मैं हूँ, ऐसा उसे भासित होना चाहिये।

समाधान :- कुछ हूँ, ऐसा नहीं, यही हूँ। मैं यह ज्ञायक हूँ। अनन्त महिमासे भरपूर हूँ। ऐसी उसे अन्दरसे महिमा आती है।

मुमुक्षु :- स्वयंकी सत्ता, जैसे स्वतंत्ररूपसे रह सके ऐसी (सत्ता) स्वयंको मालूम पड़े और उसके आधारसे उस रूप कायम जीवित रहनेवाला हो..

समाधान :- स्वयं अपनी चैतन्यसत्तासे जीनेवाला है। परसत्तासे मैं जीनेवाला नहीं हूँ। चैतन्यकी सत्ता, मेरी ज्ञायकसत्ता, ऐसी चैतन्यसत्तामें ही मेरा अस्तित्व, उसमें ही परिणति, उस रूप ही टिकनेवाला मैं अनादिअनन्त वस्तु हूँ। अनादिअनन्त शाश्वत वस्तु हूँ।

मुमुक्षु :- ज्ञान भिन्न और राग भिन्न, वह तो पहले रागकी प्रकृति पहचानमें आ जाती है, फिर तो ज्ञानकी प्रकृति (-स्वभाव)की पहचान होनेसे उस ओर ही उसका झुकाव रहता है। फिर उसे ज्ञान भिन्न और राग भिन्न, ऐसा करनेकी जरूरत पड़ती है?

समाधान :- ज्ञान भिन्न और राग भिन्न, दोनों साथमें ही पहचाने जाते हैं। जिसे यथार्थ पहचान होती है, उसे यह ज्ञान भिन्न और राग भिन्न, फिर तो उसे सहज होता है। जिसकी सहज दशा होती है, उसे ज्ञान भिन्न और राग भिन्न सहज उसे ज्ञाताधारा वर्तती रहती है। उदयधारा और ज्ञानधारा भिन्न है। जिसे स्वानुभूति होनेके बाद जो भेदज्ञानकी धारा वर्तती है, उसमें करनेकी जरूरत नहीं पड़ती, सहज भेदज्ञान चलता ही रहता है। जो-जो उदय, अभी अस्थिरता है तबतक जो विकल्प उत्पन्न हो, उसके साथ मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी ज्ञाताकी धारा उसे सहज रहती है। करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन उसे सहज रहता है कि यह भिन्न है और मैं भिन्न हूँ। मैं चैतन्यतत्त्व भिन्न हूँ, ज्ञायक भिन्न हूँ और यह भिन्न है। पुरुषार्थकी मन्दतासे उसमें अल्प जुड़ता है, नहीं जुड़ता हो तो वीतरागता हो जाय। अल्प जुड़ता है, परन्तु उसे एकदम ज्ञायककी दृढ़ता रहती है कि मैं भिन्न हूँ। मैं चैतन्यतत्त्व भिन्न हूँ। यह तत्त्व मैं नहीं हूँ। यह तो विभावभाव है। ऐसी सहज धारा, भेदज्ञानकी धारा वर्तती ही रहती है। करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। ऐसे उसे सहज भिन्न (रहती है)।

भेदज्ञानकी तीव्रता रहा करती है। जैसे-जैसे दशा बढ़ती जाती है, मुनिदशा आती है तो अधिक तीव्रत होती जाती है। ज्ञायककी धारा, द्रव्य पर दृष्टि आदि सब बलवान होते-होते मुनिदशामें उग्रता होती जाती है। जब तक वीतरागता पूर्ण नहीं हो जाती,

केवलज्ञान (नहीं हो जाता), तब तक रहा करती है। उसे भेदज्ञानकी धारा सम्यग्दर्शनमें अमुक प्रकारसे (होती है), बादमें आंशिक स्वरूप लीनता बढ़ती जाय, वैसे-वैसे उसकी उग्रता बढ़ती जाती है।

मुमुक्षु :- अर्थात् स्वरूपका अहम् भाव बढ़ता जाय और रागादि अथवा विकल्पादिकी उपेक्षा उसे सहजपने रहे, ऐसी उसकी स्थिति (होती है)?

समाधान :- ज्ञायक ओरकी परिणतिकी दृढ़ता, मैं ज्ञायक हूँ और यह भेदज्ञानकी उग्रता बढ़ती जाती है। स्वरूप लीनताकी विशेषता और अस्थिरताकी अल्पता होती जाती है। मैं यह चैतन्य हूँ, अहम् भाव यानी मैं यह चैतन्य हूँ, चैतन्यकी विशेष परिणति, चैतन्य ओरकी (उग्र होती है और) विभाव ओरकी परिणति अल्प होती जाती है। भेदज्ञानकी धारा (चलती है)। उसे स्वानुभूति भी मुनिदशामें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें बढ़ती जाती है। ऐसा करते-करते जब वह श्रेणि लगाता है, तब केवलज्ञान प्राप्त होता है। तब तो अबुद्धिपूर्वक हो जाता है।

मुमुक्षु :- अस्तित्वकी खुमरी बहुत आ जाती होगी कि अब मैं किसी भी वस्तुके बिना रह सकूँ ऐसा पदार्थ हूँ। ऐसे भावका वेदन तो उसे होता होगा?

समाधान :- जहाँ तत्त्वकी दृष्टि हुयी, वहाँ किसी भावके बिना टिक सके, स्वतःसिद्ध वस्तु कोई पदार्थके बिना मैं टिकनेवाला हूँ, जहाँ उसे द्रव्यकी प्रतीत होती है, उस प्रतीतमें तो पूरा बल साथमें आता है। प्रतीत तो उसे दृढ़ ही है। कोई पदार्थके आश्रयसे मैं टिकूँ ऐसा तत्त्व नहीं हूँ, मैं स्वयं टिकनेवाला, स्वयं वस्तु ही हूँ। ऐसी प्रतीत तो उसे प्रथम सम्यग्दर्शनमें आ जाती है। बादमें तो उसे लीनता बढ़ती जाती है, स्वरूपका वेदन बढ़ता जाता है। स्वानुभूति बढ़ती जाती है और बीचमें सविकल्प दशामें उसे आंशिक ज्ञायककी धारा, लीनता, शान्तिका वेदन वह सब बढ़ता जाता है।

अपना अस्तित्व, मैं स्वयं टिकनेवाला हूँ, यह तो उसे प्रतीतमें आ गया है। परन्तु स्वरूपमें ही रहूँ, बाहर नहीं जाऊँ। स्वरूपमें ही आनन्द, स्वरूपमें ही शान्ति, स्वरूपसे बाहर जाना उसे मुश्किल लगे, ऐसी उसकी दशा बढ़ती जाती है। अल्प अस्थिरताके कारण जाता है, परन्तु उसकी उग्रता होती जाती है। भेदज्ञानकी धारा, द्रव्यकी प्रतीतिका बल बढ़ता जाता है। लीनता विशेष बढ़ती जाती है।

मुमुक्षु :- निज स्वभावकी ओर मुड़ता हो उस प्रकारकी खटक कहनेका वहाँ आशय है?

समाधान :- स्वाध्याय, मनन, चिंतवन आदि सबका हेतु क्या है? मुझे आत्माका स्वरूप प्रगट करना है, मुझे आत्माको पहचानना है। स्वाध्यायके खातिर स्वाध्याय या मनन, चिंतवन नहीं, परन्तु इसका हेतु क्या है? ध्येय एक चैतन्य ओरका है। मुझे चैतन्य स्वभाव प्रगट करना है। सिर्फ एक शुभभावके लिये स्वाध्याय, मनन नहीं, परन्तु

इसका हेतु मुझे चैतन्य कैसे प्राप्त हो, ऐसी खटक होनी चाहिये। मेरा स्वभाव कैसे पहचानूँ, मुझे भेदज्ञान कैसे प्रगट हो? मेरे चैतन्यद्रव्यका अस्तित्व, मैं चैतन्य हूँ, यह मुझे कैसे ग्रहण हो? ऐसी खटक होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- .. वह भाव प्रत्येक जीवोंको, प्रति समय उसकी दशामें होता है?

समाधान :- वह अनुभूति अर्थात् स्वानुभूतिकी अपेक्षा नहीं है। वह तो आबालगोपालको स्वयंका वेदन हो रहा है अर्थात् वह ज्ञानस्वभाव स्वयं उसे अनुभवमें आ रहा है। वह जाने तो चैतन्यद्रव्य स्वयं अपने ज्ञानस्वभावसे पहचानमें आये उस प्रकारसे अनुभवमें आ रहा है। क्योंकि वह जाननेवाला द्रव्य है। वह जाननेवाला द्रव्य ज्ञात हो रहा है, स्वयं देखे तो। यथार्थरूपसे ज्ञात हो रहा है, ऐसे नहीं, परन्तु उसका जाननस्वभाव सबको अनुभवमें आ सके ऐसा है, अनुभवमें आ रहा है। जड़ता अनुभवमें नहीं आती। जड़तारूप आत्मा नहीं है, परन्तु चैतन्यरूप जाननेवाला सबको ज्ञात हो रहा है कि यह विकल्प है, यह पर है, यह यह है, यह है, ऐसा विचार करे तो जाननेवाला अनुभूतिमें सबको आ रहा है, परन्तु स्वयं लक्ष्य देकर यथार्थतया जानता नहीं है।

स्वयं अपने स्वभावमें ज्ञानरूपसे अनुभवमें आ रहा है। विशेष स्वभाव है ज्ञायक जाननस्वरूप। ... सबको उसकी चैतन्यता अनुभवमें आ रही है। जाननतत्त्व है वह अनुभवमें आये ऐसा है। आबालगोपाल सबको अनुभवमें आ रहा है। यथार्थपने नहीं, परन्तु उसके स्वभावरूपसे अनुभवमें आ रहा है। जैसे यह जड़ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि जिसमें जड़ता दिखती है, वैसे उसमें चैतन्यता दिखती है।

मुमुक्षु :- चैतन्यता इतनी स्पष्ट है कि उसे पहचाननी हो तो पहचानी जाय इतनी स्पष्ट है।

समाधान :- पहचानी जाय ऐसी चैतन्यता स्पष्टरूपसे है। स्वयं पहचानता नहीं है। ऐसी चैतन्यता स्पष्ट है।

मुमुक्षु :- .. उसके लिये पुरुषार्थ क्या करना? पहचाननेके लिये पुरुषार्थ कैसे करना? क्या करना?

समाधान :- बारंबार विचार करना, उस प्रकारका स्वाध्याय, मनन करना। अंतरमें जिज्ञासा करनी, महिमा करनी कि आत्मा कैसा अपूर्व होगा? मुझे कैसे प्रगट हो? विभावकी महिमा गौण करके स्वभावकी महिमा प्रगट करनी। मैं चैतन्य हूँ, ऐसा अभ्यास बारंबार करना। चैतन्यस्वभावका आता है न? समता, रमता, ऊर्ध्वता, ज्ञायकता, सुखभास, वेदकता, चैतन्यता ये सब जीवविलास। ऐसे चैतन्य सबको ख्यालमें आ सके ऐसा है। ज्ञायकता, सुखभास। ज्ञायकता है, समता, रमता-रम्य स्वभाव है, वेदकता-वेदनमें आता

हूँ, चैतन्यता ये सब जीवविलास। वह चैतन्यता ऐसी है कि सबको ग्रहण हो ऐसी है। परन्तु स्वयं ग्रहण नहीं करता है। पुरुषार्थ करे तो ग्रहण होता है। परन्तु अनादिसे परके अभ्यासमें पड़ा है इसलिये ग्रहण नहीं होता। स्वयंकी ओरका अभ्यास करे तो अपने समीप ही है, दूर नहीं है।

मुमुक्षु :- शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, बीजुं कहीए केटलुं कर विचार तो पाम। विचार करनेका अभी भान नहीं है, बोल दिया।

समाधान :- शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम। शुद्धतासे, बुद्धतासे चैतन्यघन है। शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम-सुखका धाम है। स्वयं ज्योति सुखधाम, बीजुं कहीए केटलुं, कर विचार तो पाम। विचार कर तो प्राप्ति होगी। स्वयं विचार नहीं करता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३१

समाधान :- आलसके कारण ही, निज नयननी आळसे रे, निरख्या न नयणे हरि। गुरुदेव प्रवचनमें बोलते थे। अपने नेत्रकी आलसके कारण, अपने पास रहे हरिको स्वयंने देखा नहीं। स्वयंने देखनेकी आलस की है। स्वयं दिखाई दे ऐसा होनेपर भी पर अभ्यास, विभावके अभ्यासके कारण अपने देखनेके नेत्रसे स्वयं अपने चैतन्यहरिको देखा नहीं, उसके दर्शन नहीं किये। स्वयं अपने नेत्रकी आलससे अनादि काल गँवाया है। कहीं-कहीं गया तो कहीं न कहीं अटक गया, कोई क्रियामें, शुभभावमें। और अभी इस पंचमकालमें ऐसे गुरुदेव मिले, जिन्होंने कहा कि शुभभावमें धर्म नहीं है। अन्दर शुद्धतासे भरे आत्मा शुद्धात्माको पहचान है। तो भी जीव अपने प्रमादके कारण अटक रहा है।

मुमुक्षु :- अनुभवदृष्टि द्वारा, ऐसा शब्दप्रयोग करते थे। अर्थात् स्वयंको जो अनुभवमें आ रहा है, उसी अनुभव द्वारा देखना ऐसा? उसमें क्या कहना था?

समाधान :- अनुभवको, स्वयं अपने स्वभावका अनुभव करके उस दृष्टि द्वारा देख। स्वयं अपने स्वभावदृष्टि द्वारा देखे, अनुभवदृष्टि। उसका वेदन करके, यदि अन्दर गहराईमें जाकर उसका आंशिक वेदन करके भी देखे। अनुभवदृष्टि करके उसकी शान्तिका वेदन कर।

मुमुक्षु :- कहीं तो रुकावट तो है, किस प्रकारकी रुकावट है वह सीधा लक्ष्यमें नहीं आता है। कुछ मार्गदर्शन मिलता रहे, ऐसी भावना होती है, परन्तु आपका स्वास्थ्य अनुकूल (नहीं रहती है)।

समाधान :- स्वास्थ्य ऐसा रहता है। कोई-कोई बार कोई प्रश्न पूछता है तो जवाब देती हूँ। ... कुछ बाकी नहीं रखा, एकदम स्पष्ट कर दिया है।

मुमुक्षु :- टेप सुनते हैं तो भी कई बार ऐसा लगता है कि गुरुदेवको सुनते थे, उस वक्त इस भाव पर ध्यान नहीं दिया, इस भाव पर ध्यान नहीं दिया। जैसे-जैसे टेप सुनते हैं तो बहुत बार ऐसा ख्यालमें आता है।

मुमुक्षु :- यह सब जानता है वह कौन है? ... यह सब जानता है इसलिये मैं ज्ञानी हूँ। दूसरेने कहा, यह सब नहीं, लेकिन वही मैं हूँ...

समाधान :- अग्नि उष्ण है इसलिये...

मुमुक्षु :- गर्म करती है इसलिये उष्ण है, ऐसा नहीं। स्वयं उष्ण है।

समाधान :- बहुत पहलू नयविभागके (हैं)। समझे सबकी योग्यता अनुसार। ... जानता है, ऐसा नहीं कह सकते। दोनों बात रहस्ययुक्त है, ...

आत्माको कोई जन्म-मरण नहीं है, वही करनेका है। कितने जन्म-मरण किये, अनन्त कालमें अनन्त किये। आत्मा ज्ञायक जाननेवाला है। यह शरीर भिन्न है। विकल्प होता है वह भी अपना स्वभाव नहीं है। आत्मा ज्ञान और आनन्दसे भरपूर है।

मुमुक्षु :- विकल्प आत्माका स्वभाव नहीं है, विकल्प आत्माका स्वभाव नहीं है। ज्ञायककी महिमा रखनी, ज्ञायककी महिमा रखनी और बाहरमें देव-शास्त्र-गुरुी महिमा रखनी, बाहरमें। अन्दरमें ज्ञायक। बाहरमें देव-गुरु-शास्त्र।

मुमुक्षु :- कभी ऐसा लगता है, ऐसा नहीं किया होगा? यहाँ तक नहीं पहुँचे होंगे?

समाधान :- जीवने किया, लेकिन अपूर्वता नहीं लगी है। अपूर्व लगे कि यह कुछ अलग है। अंतरमें यथार्थ देशनालब्धि जिसे हुयी हो वह जाती नहीं। ऐसी अपूर्वता प्रगट हुयी हो वह जाती नहीं। अनन्त कालमें किया लेकिन अपूर्वता नहीं लगी कि यह कुछ अपूर्व है। स्वयंको अपने आत्माको अंतरमेंसे विश्वास आये कि कितनी गहराई है, कितनी अपूर्वता लगे, वह स्वयंको विश्वास आये अंतरमे।

मुमुक्षु :- कभी थोड़ा काल जाय तो भूल जाते हैं। फिर तो...

समाधान :- भूल जाते हैं, लेकिन करनेका यही है। जीवनमें कुछ अलग ही करनेका है। अंतरका मार्ग अंतरमें है। और चैतन्यकी अंतरमेंसे महिमा आये कि चैतन्यतत्त्व भिन्न है और यह सब बाहरका कुछ अपूर्व नहीं है। ऐसे अंतरमें रुचिके बीज गहरे जाय तो वह नहीं जाते।

मुमुक्षु :- .. त्याग वैराग्यकी...

समाधान :- आत्मा कैसे प्राप्त हो? तत्त्व विचार, स्वाध्याय होता है। त्याग, वैराग्य तो उसमें जितना स्वयं आत्माकी ओर मुड़े उतनी अंतरसे विरक्ति, अंतरसे उसे रस ऊतर जाय, ऐसा सब उसे अंतरमें अमुक प्रकारसे होता है। लेकिन प्रथम उपाय तो सच्ची समझ करनी। सच्ची समझके लिये तत्त्व विचार, स्वाध्याय, श्रवण, मनन आदि होता है। त्याग वैराग्य तो जितना उसे अंतरमेंसे विभावका रस छूटे, अंतरमें थोड़ा विरक्त तो होना ही चाहिये। वह तो बीचमें होता ही है। उसके साथ मार्ग तो सच्ची समझ करनी वह है। उसमें स्वाध्याय, विचार, मनन आदि सब होता है। मुख्य उपाय वह है, सच्ची समझ करनी।

... विरक्ति तो होनी ही चाहिये। इतना त्याग करना चाहिये, ऐसा उसका कोई नियम नहीं होता। परन्तु अंतरमेंसे उसे विभाव ओरका रस ऊतर जाये। आत्माका रस लगे, इतना तो उसे होना चाहिये।

मुमुक्षु :- तत्त्वज्ञानकी लहरें, आँखमेंसे आँसू गिरते हैं, कहाँ वह बात, .. वाणीका योग नहीं, वेदना हो...

समाधान :- यह तो साधना भूमि है।

मुमुक्षु :- .. वह बात बोलते थे तो दिमागमें असर कर जाती थी।

समाधान :- साक्षात् विराजते हो वह तो बात ही अलग है।

मुमुक्षु :- .. ज्ञानकी स्पष्टता आपसे हुयी तो हमें बहुत आनन्द हुआ कि बातकी स्पष्टता करनेवाले कोई है। नहीं तो कहाँ स्पष्टता करने जाना? ज्ञानका जो मुख्य लक्षण है, ज्ञानका लक्षण छूट जाय तो तकलीफ हो जाय, तो आत्मा जवाब नहीं देता। ज्ञानमें स्थिर होना मतलब क्या?

समाधान :- ज्ञान यानी चैतन्यस्वभाव, ज्ञानस्वभाव है। पूरा ज्ञायक। वह ज्ञायक स्वयं स्वयंमें स्थिर हो जाय। ज्ञानका ज्ञानमें स्थिर होना। ज्ञानका अर्थात् ज्ञायकका अपने स्वभावमें स्थिर होना, ज्ञानका ज्ञानमें स्थिर होना। ज्ञाता अपने ज्ञायक स्वभावमें स्थिर हो जाय। ज्ञान शब्दका मतलब वहाँ ज्ञायक ले लेना। ज्ञायक स्वयं स्वयंमें स्थिर हो जाय। ज्ञायककी परिणति ज्ञानरूप होकर स्वयंमें स्थिर हो। भेदज्ञान करके ज्ञानका ज्ञानमें स्थिर होना। अर्थात् ज्ञायक स्वयं अपनेमें स्थिर हो। ज्ञातारूप होकर स्वयंमें स्थिर होना, यानी ज्ञानका ज्ञानमें स्थिर होना।

मुमुक्षु :- कर्म खड़े हों, वह थोड़ा भी परेशान नहीं करते?

समाधान :- अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। वह परेशान नहीं करते हैं। स्वयं भेदज्ञान करे उसमें कहीं रोकते नहीं, अपने पुरुषार्थकी मन्दताके कारण स्वयं रुकता है। अपने पुरुषार्थकी मन्दताके कारण परेशान करते हैं, ऐसा कहनेमें आता है, बाकी वह परेशान नहीं करते हैं। स्वयं ही उसमें अटक गया है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो भेदज्ञान हो। प्रगट करना अपने हाथकी बात है। स्वानुभूति प्रगट करनी आदि अपने हाथकी बात है। कोई रोकता नहीं है। रुका है अपने प्रमादके कारण। पुरुषार्थ करे (वह) स्वयं स्वयंसे करता है।

मुमुक्षु :- सहज है, सरल है, सुगम है, ऐसा लगता तो नहीं है। सर्वज्ञ उसकी प्राप्ति है।

समाधान :- आत्माका स्वभाव है, इसलिये सहज है। वह कहीं बाहर नहीं खोजने जाना पड़ता, किसीके पास माँगने नहीं जाना पड़ता या पर वस्तुमेंसे आता नहीं। स्वयंका

स्वभाव है इसलिये सहज है, सुगम है, सरल है। परन्तु अनादिके अभ्यासके कारण, विभावके अभ्यासके कारण दुर्लभ है। अपना स्वभाव है इसलिये सहज है। स्वयं ही है, कोई अन्य नहीं है, इसलिये सहज है। प्रगट करे तो अंतर्मुहूर्तमें होता है, न करे तो अनन्त काल जाता है। वह उसका अनादिका विभावका अभ्यास है इसलिये, बाकी स्वभाव अपना है। स्वयंमेंसे प्रगट होता है, बाहरसे नहीं आता है या बाहर कहीं खोजने नहीं जाना पड़ता, अपनेमें भरा है वह प्रगट करनेका है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- जब तक उसकी अधूरी पर्याय है, उसमें अमुक प्रकारका कर्तृत्व आये बिना नहीं रहता। परन्तु उसकी कर्ताबुद्धि तोड़नेकी बात है। मैं परपदार्थको कर सकता हूँ और विभावपर्यायका मैं कर्ता हूँ, ऐसे स्वामीत्व बुद्धि छोड़नी। परपदार्थका तो कर ही नहीं सकता, विभावपर्यायमें अपने पुरुषार्थकी मन्दताके कारण .. उस अपेक्षासे स्वयं अज्ञान अवस्थामें कर्ता होता है। ज्ञान अवस्थामें वह परिणति अपनी अस्थिरताके कारण अपनी स्वयंमें होती है, परन्तु उसकी कर्ताबुद्धि छूट जाती है। ऐसे पुरुषार्थ जो होता है, वह स्वयं करता है, परन्तु मैं कर सकता हूँ, ऐसी कर्ताबुद्धि छूट जाती है। बुद्धि। विकल्प करके कि मैं यह करुँ, मैं यह करुँ, यह बुद्धि तोड़नी है। बाकी ऐसा कर्तृत्व तो अमुक जातकी अधूरी भूमिकामें बीचमें आता है। पलटता है, परिणामको पलटता है।

.. विभावका कर्तृत्व और परपदार्थका कर्तृत्व और पुरुषार्थ करता है, उस प्रकारका कर्तृत्व, उन सबमें फ़र्क़ है। परको तो कर नहीं सकता। विभावपर्यायको, .. कोई अपेक्षासे स्वयं उसमें जुड़ता है। अज्ञान अवस्थासे कर्ता (होता है)। ज्ञान अवस्थामें उसके पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। और पुरुषार्थ करता है, वह भी स्वयं स्वभावकी ओर (जाता है), उन सबमें फ़र्क़ है। परन्तु उसमें कर्ताबुद्धि छूट जाती है।

समाधान :- .. दूसरेको उष्ण करती है, इसलिये उष्ण है, ऐसा नहीं, स्वयं उष्ण है। दूसरेको ठण्डा करता है इसलिये नहीं, बर्फ स्वयं ठण्डा है। वैसे स्वयं ज्ञायक है। अब उसका अर्थ क्या करना, किसके साथ मिलान करना, वह सबके दिमाग पर आधारित है। परको जाने, न जाने वह बात ही नहीं थी। स्वयं ज्ञायक है। स्वयंक ज्ञायकको पहचान। परको जानता हूँ इसलिये जानता हूँ, ऐसे नहीं, लेकिन मैं स्वयं ज्ञायक हूँ। अब, उसका अर्थ क्या करना, वह सबके दिमाग पर आधार रखता है। अगम अगोचर नय कथा। नय कथामें ऐसा ही है, ऐसा ही है, ऐसा बोल नहीं सकते। आपकी योग्यता अनुसार जैसे समझना हो वैसे। स्वयं कोई अपेक्षासे स्वयं अपनेको जानता है और परको जानता है वह भी साथमें है, स्वपरप्रकाशक है। दोनों अपेक्षाएँ हैं, जिसको

जो ग्रहण करना हो वह करे, सबकी योग्यता पर आधारित है।

... उस ओरकी अपेक्षा लेनी हो तो वैसे ले, ऐसी अपेक्षा लेनी हो तो ऐसे ले। जीव अनादि कालसे ऐसे ही समझता नहीं है। निश्चय-व्यवहारकी सन्धि आती नहीं। .. अथवा तो सन्धि आती नहीं। उसका अर्थ कैसे करना वह आना चाहिये। परके साथ एकत्व नहीं होता है, लेकिन परको नहीं जानता है इसलिये परका ज्ञान ही नहीं होता है, ऐसा नहीं है। ज्ञेयको जानता नहीं है तो उसका ज्ञान .. हो गया। ऐसा हो गया। ज्ञानकी अनन्तता कहाँ रही? उसमें प्रवेश करके नहीं जानता है। अपेक्षा समझनी। जैसे चलता है चलने दो, सबकी योग्यता।

... पड़ते नहीं थे। बहुत लोग चर्चा-प्रश्न करो, चर्चा-प्रश्न करो। गुरुदेव कहते थे, वह मेरा काम नहीं है। किसीके साथ चर्चा-प्रश्न करते ही नहीं थे। जयपुरमें की, सब पण्डितोंने की। बहुत पहलू हैं। गुरुदेव चर्चा-प्रश्नमें नहीं पड़ते थे। वह कहे, व्यवहारसे ऐसा तो है। एकदूसरेका खींँचते थे, उसमें कहाँसे सन्धि हो? दोनों बात अपेक्षासे होती है, उसमें वह एक बातको खींँचे, दूसरा दूसरी बातको खींँचे। मेल कहाँसे हो?

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३२

मुमुक्षु :- हमे आता है, लेकिन उस प्रकारका नहीं है। जब भी आपको देखते हैं, तब आपके मुखसे गुरुदेवकी जो महिमा आपके श्रीमुखसे सुनते हैं, कोई गजब ही आती है!

समाधान :- इस पंचमकालमें गुरुदेव ही कोई अद्भुत थे। उन्होंने अपूर्व वाणीकी वर्षा करके सबको जागृत किया। सब मुमुक्षुओंके, साधकोंके वे अद्भुत आधार निमित्त थे। निमित्त-उपादानका ऐसा सम्बन्ध है कि जहाँ ऐसे गुरु हो, वहाँ सब जागृत हो जाय।

जगतमें सर्वोत्कृष्ट चैतन्यदेव और गुरुदेव (हैं)। गुरुदेवने जो साधना करके सबको बतायी, ऐसे सर्वोत्कृष्ट महिमावंत इस पंचमकालमें गुरु शाश्वत ही रहें, ऐसी भावना है। अंतरमें आत्मा और बाहरमें शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र ही होते हैं, दूसरा कुछ नहीं होता। गुरुदेव विराजते थे, चैतन्य... सबको जागृत करते थे।

.. देशनालब्धि होती है। अनादि कालका अनजाना मार्ग है, एक बार सच्चे देव-गुरुका, साक्षात् चैतन्यका वाणी उसे श्रवण करने मिले, तब उसे देशना ग्रहण होती है। शास्त्रमेंसे वह बादमें समझता है, परन्तु पहले तो साक्षात् वाणी सुनकर देशनालब्धि होती है। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध होता है।

मुमुक्षु :- अभी जो हमको अपूर्वता लगती है तो समवसरणमें वह बात समझमें नहीं आयी होगी? क्योंकि वर्तमानमें हमें ज्यादा लगती है। ऐसा लगता है कि समवसरणमें यह बात नहीं समझे होंगे। अनन्त बार समवसरणमें गये।

समाधान :- समवसरणमें गया, लेकिन जीव स्वयं जागृत नहीं हुआ। कोई बार ऐसा भी होता है कि इस पंचमकालमें कोई महापुरुषका जन्म हो और जीव जागृत हो जाय, ऐसा भी बने। समवसरणमें गया, भगवानको अनन्त कालमें देखे, परन्तु अपूर्वता लगी नहीं तो ऐसे ही वापस आ गया। बाह्य दृष्टिसे भगवानको देखे, लेकिन अंतरसे नहीं देखा।

मुमुक्षु :- .. कहा तो शास्त्र नहीं पढ़ना? शास्त्र अभिनिवेश हो जाता है? ज्ञानीके आश्रयमें...

समाधान :- शास्त्रमें ही अटक जाय और आत्माकी स्वानुभूति न करे, उस अपेक्षासे। बाकी अधूरापन हो उसे बीचमें श्रुतका चिंतवन, शास्त्र अभ्यास आदि सब होता है। परन्तु शास्त्रमें ही अटक जाय और स्वानुभूति न करे और उसीमें अटक जाय तो उस अपेक्षासे उसे .. कहनेमें आता है। उसका हेतु जो स्वानुभूतिका था वह उसने नहीं किया तो फिर शास्त्रका प्रयोजन उसने सिद्ध नहीं किया।

प्रयोजनभूत आत्माको साध लिया, स्वानुभूति प्राप्त करनी, यह शास्त्र स्वाध्यायका हेतु है। पद्मनन्दी आचार्यदेवने कहा है, व्यभिचारीणी बुद्धि बाहर घुमती है। अंतरमें न जाय तो वह किस कामका है? लेकिन कहीं और अटकता हो, उसके बदले शास्त्रका अभ्यास मुमुक्षुओंको होता है। क्योंकि उसे दूसरा आधार नहीं है, वहाँ श्रुतका चिंतवन (होता है)। लेकिन ध्येय नहीं चुकना चाहिये। गुरुदेव भी श्रुतका चिंतवन (करते थे)। उनका श्रुत कोई अपूर्व था। परन्तु गुरुदेव कहते थे कि स्वानुभूति मुख्य है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीके आश्रयमें शास्त्र पढ़ने चाहिये, नहीं तो गम पड़े बिना आगम अनर्थकारक हो जाय, ऐसा नहीं बन सकता?

समाधान :- ज्ञानीने जो अर्थ किया हो, उस अर्थको स्वयं ग्रहण करे। और फिर जो ज्ञानीने अर्थ किया हो उस अनुसार अर्थ करे तो उसमें दिक्कत नहीं है। लेकिन अपनी मति कल्पनासे अर्थ करे तो उसे नुकसानका कारण होता है। अपनी बुद्धि अनुसार करे तो। ज्ञानीने क्या अर्थ किया है, उसका वह मिलान करके करे तो वह यथार्थ मार्गको प्राप्त करे।

मुमुक्षु :- सामान्य मनुष्यको तो क्षयोपशमका अभिमान सहज हो जाता है। ज्ञानीको क्यों नहीं होता? क्षयोपशमका थोड़ा उघाड हो तो सहज ही अभिमान हो जाता है।

समाधान :- सच्चा यथार्थ मुमुक्षु हो तो उसे भी नहीं होता। क्षयोपशम मात्र वह कोई साधनाका कारण नहीं बनता। साधना तो अन्दर स्वयं द्रव्य पर दृष्टि करके उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो साधना होती है। क्षयोपशम मात्र वह साधना (नहीं है)। क्षयोपशम मात्र नहीं, वह तो एक सच्चा ज्ञान करनेका कारण बनता है। वह कोई आत्माकी साधना करनेका कारण नहीं बनता। इसलिये यथार्थ मार्गसे जिसे स्वानुभव प्रगट हुआ, उसे कोई अभिमान होनेका कारण नहीं बनता।

बारह अंग और चौदह पूर्वकी लब्धि मुनिओंको प्रगट होती है। तो भी भगवानको कहते हैं, हे भगवान! मैं तो अल्प मात्र हूँ। मैं आपकी वाणीको पहुँच नही सकता हूँ। ऐसा कहते हैं। स्वानुभूतिमें क्षण-क्षणमें जाते हैं, ऐसे मुनिओंको भी देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आती है। कोई ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव न हो कि जहाँ ज्ञानिओं विराजते न हो। जहाँ देव-गुरु-शास्त्र न हो, ऐसा किसीको न हो। जिसे आत्माकी साधना करनी

है, उसे देव-गुरु-शास्त्रका इतना आदर होता है।

अनन्त कालमें इस जीवको थोड़ा जाने तो (लगता है कि) मैंने बहुत जाना, मुझे बहुत आता है। इस तरह मुमुक्षुदशामें अटकनेके अनेक प्रसंग बनते हैं। अतः कहीं अटकना नहीं। एक आत्मार्थका प्रयोजन रखना, एक आत्मार्थताको मुख्य रखना। जो ज्ञानिओंने कहा है, जो महापुरुषोंने कहा है उस मार्ग पर चल। भेदज्ञानकी दशा, जो स्वानुभूतिकी दशा किस मार्गसे प्रगट हो, उसका लक्ष्य रखना। वह मार्ग कौन-सा है? ज्ञाताकी धारा, स्वानुभूतिकी दशा कैसे प्रगट हो? इस लक्ष्यसे चलना है। चलेगा तो कहीं नहीं अटकेगा।

मुमुक्षु :- हमें तो यहाँ सोनगढ़में सुनने मिली। नहीं तो दिगंबर तत्त्वमें भी हमने ऐसी बात तो नहीं सुनी।

समाधान :- शास्त्रके अर्थ ही कौन सूलझा सकता था? गुरुदेवने सब अर्थ किये, गुरुदेवकी वाणीसे सब जागृत हो गये। समयसारके अर्थ कौन सुलझा सकता था? प्रवचनसार और दूसरे अध्यात्म शास्त्र, सब शास्त्रके अर्थ कोई सूलझा नहीं सकता था। गुरुदेवने ही सब अर्थ किये। भेदज्ञानकी दशा, ज्ञाताधारा, कर्ताबुद्धि छोड़, सब अर्थ गुरुदेवने ही सुलझाये हैं। वस्तुका मूल रहस्य उन्होंने ही बताया है। कोई समझता नहीं था। अमुक संप्रदायमें सब क्रियामें पड़े थे। क्रियासे धर्म होता है, इतना कर लें तो धर्म होगा, इतना शुभभाव करें तो ऐसा होगा, इतना करुँगा तो पुण्य बन्धेगा। इतनी सामायिक कर लें और इतने प्रतिक्रमण करें, उसीमें सब पड़े थे।

गुरुदेवने (प्रकाशित किया कि), अंतरमें मार्ग है, भेदज्ञानकी ऐसी दशा प्रगट होती है, यह कर्ताबुद्धि तोड़, ज्ञाताधार प्रगट कर, स्वानुभूति अंतरमें होती है। मन-वचन-कायासे सबसे अतीत, विकल्पसे अतीत, निर्विकल्प दशाकी प्राप्ति हो, स्वानुभूति प्रगट हो और वह बढते-बढते मुनिदशा आये तो अंतरमें क्षण-क्षणमें झुलते हो। मुनिकी दशा, केवलज्ञानकी दशा सब गुरुदेवने बताया। भगवान कैसे होते हैं? गुरु कैसे होते हैं? शास्त्र कैसे होते हैं? सब गुरुदेवने बताया। कोई नहीं जानता था, इतने साल पहले। अब सब जानने लगे हैं। स्थानकवासी और देरावासीमें सामायिक कर लो, प्रतिक्रमण कर लो, उपवास कर लो, उसमें धर्म मानते थे। दिगम्बरमें इतनी शुद्ध और इतनी अशुद्धि, उसमें सब अटक गये थे। अंतरमें मार्ग है, गुरुदेवने इतना प्रचार किया, सबको जागृत किये हैं।

मुमुक्षु :- छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें विचरते महामुनिको शास्त्र लिखनेका भाव कैसे आता है? आत्माके आनन्दमें झुलते हो एकदम।

समाधान :- आत्माके आनन्दमें क्षण-क्षणमें झुलते हैं, परन्तु बाहर आते हैं। क्योंकि

अभी केवलज्ञान नहीं हुआ है। केवलज्ञान हो तो अन्दर शाश्वत विराजते हों। आत्माका आनन्द और ज्ञानादि अनन्त गुणोंमें विराजते हों। परन्तु बाहर आते हैं तब विकल्प उत्पन्न होता है। विकल्पमें मुनिओंको एक देव-गुरु-शास्त्रका विकल्प (उत्पन्न होता है)। दूसरे विकल्प तो उन्हें (होते नहीं), कोई बार आहारका विकल्प आता है। दूसरे कोई विकल्प उन्हें (नहीं आते)। एकदम अल्प अस्थिरता है, संज्वलनका अल्प कषाय है, दूसरा कुछ नहीं है। विकल्प आता है तो उन्हें शुभ आता है, इसलिये शास्त्र लिखनेका विकल्प (आता है), मुनिओं जंगलमें बैठे हों, शास्त्रका विकल्प आता है। विकल्प आये तो लिखते हैं, वापस अन्दर स्थिर हो जाते हैं। स्थिर होनेके बाद बाहर आकर तो लिखते हैं। बाहर आते हैं उतना अधूरापन है।

केवलज्ञान हुआ हो तो कोई विकल्प नहीं है। केवलज्ञान नहीं है इसलिये बाहर आते हैं, विकल्प आता है इसलिये लिखते हैं। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, '**मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते**' मेरी विशुद्धके लिये मैं यह शास्त्र लिखता हूँ। ऐसा प्रशस्त विकल्प आता है।

मुमुक्षु :- महाविदेह क्षेत्रका भी मुझे आपके कारण ही विश्वास हुआ। नहीं तो इस जमानेमें कौन मानता है? पृथ्वी ऐसी है। आपने, पूज्य गुरुदेवने जो बातें कही, बहुत अद्भूत बातें लगती हैं। अद्भूत-अद्भूत बातें लगती है।

समाधान :- अभी तो सब मतिकल्पनासे कुछ है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। महाविदेह है, भगवान है, सब है। सीमंधर भगवान विराजते हैं, दिव्यध्वनि छूटती है, समवसरण है, सब है।

मुमुक्षु :- देवके भवमें आपने अवधिज्ञानसे नर्कके भी दुःख देखे होंगे, यह आपको याद है? उसे देखें तो हार्ट फेईल हो जाय, ऐसी बात है।

समाधान :- सब है, नर्क-स्वर्ग सब है। ज्ञान ऐसा है कि उसमें सब आ जाता है। सब आ सकता है। और वह सब यथार्थ है और इस जगतमें सब है। नर्क है, स्वर्ग है, महाविदेह है, सीमंधर भगवान हैं, दिव्यध्वनि छूटती है, सब है।

मुमुक्षु :- बहुत गज़ब है! आनन्द.. आनन्द.. आनन्द हो जाता है। स्वसंवेदनकी पर्याय भी स्वयंका लक्ष्य नहीं करती और मैं ध्रुव हूँ, ऐसा... पर्याय स्वयं अपना निषेध करे ऐसी अटपटी बातें तो गज़ब बातें लगती है। ध्रुव तो कूटस्थ ध्रुव है।

समाधान :- स्वयं ज्ञायकरूप ध्रुव है। ज्ञानमें सब जानता है, वेदनमें उसे सब आता है। स्वानुभूतिका वेदन होता है, ज्ञानमें आता है और ध्रुव एक स्वयं पारिणामिकभावस्वरूप पर दृष्टि है। सब साथमें वर्तता है। प्रत्येक गुण आत्माके... दृष्टि द्रव्य पर है, ज्ञानमें ज्ञात हो रहा है, सबका वेदन हो रहा है। अनन्त गुणोंका वेदन,

आनन्दगुण आदि सबका, द्रव्य-गुण-पर्याय सबको जानता है। और दृष्टि शाश्वत ध्रुवरूप द्रव्य (पर है)। चैतन्यकी सब बातें कोई अद्भूत है। गुरुदेवने अद्भूत मार्ग प्रकाशित किया है। बाकी नर्क, स्वर्गका मैं कुछ विस्तारसे नहीं कहती हूँ। परन्तु जगतमें सब यथार्थ है। वह सब क्षेत्र है, सब है।

मुमुक्षु :- बचपनमें कहती थी कि मैं वहाँ बकरी थी। मैंने देखा है, .. था, ऐसे देव थे, ऐसा चँवर ढालते थे, ऐसी आवाज आती थी। दूसरा कुछ ज्यादा याद नहीं है, परन्तु समवसरणका वर्णन किया।

समाधान :- समवसरणका?

मुमुक्षु :- हाँ, मैं समवसरणको गप समझता था, इतना सब वर्णन जैनियोंने अधिकताके लिये ही किया होगा। फिर विश्वास आ गया। यहाँ आनेसे भी सभी बातों पर बहुत विश्वास हो गया। कोई इन्द्र ऊतरकर समझाये तो भी समझे नहीं, कहाँ अटकते हैं, यह समझमें नहीं आता है। या फिर धारणाज्ञानमें..

समाधान :- समवसरणमें भगवान विराजते हैं। समवसरणमें दिव्यध्वनि छूटती है। मुनिओं, गणधर सब सभामें (आते हैं)। बकरी थी?

मुमुक्षु :- हाँ, स्पष्ट बात की और बहुत सुन्दर रूपसे वर्णन किया।

मुमुक्षु :- सात सालकी छोटी थी। ... श्रीमद् राजचंद्रका मन्दिर है, वहाँ १५-१५ दिन रहते थे। वह भक्ति करती थी, वहाँ ऐसा फोटो था, तो कहा, यह तो मैंने देखा है। मैं बड़े जंगलमें रहती थी। मैं बकरी थी। दूसरे बच्चे उसे चिठाने लगे कि बकरी.. बकरी। तब हमें मालूम पड़ा कि यह बकरी-बकरी क्यों कहते हैं? तब उसने कहा कि, मैंने यह सब देखा है। घुमा-घुमाकर डॉक्टर टी. वी. शाह थे उस वक्त पूछा था।

मुमुक्षु :- बकरीका भव था इसलिये ज्यादा... वह छोटी थी, ऐसा कहती है, मेरे बगलमें बड़ी बकरी थी। फिर ऐसी बात कही कि, बाघ, सिंह, हाथी भी देखा, सब बोलने लगी। इसलिये मुझे आश्चर्य हुआ कि यह बकरीके बगलमें बाघ, यह क्या कहती है? लेकिन सब वर्णन किया। तबसे एकदम विश्वास आ गया कि, यह बा सत्य है। समवसरणमें सब जीव जाते हैं, बाघ, बकरी आदि। सब गज़ब बातें की। लेकिन इतना समवसरण ही, फिर कहाँ गयी, क्या हुआ, वह कोई बात नहीं।

समाधान :- कहीं भी अटक जाता है। आत्माकी ओरका पुरुषार्थ चलता नहीं। उसे जहाँ रुचि होती है, वहाँ अटक जाता है। आत्माकी रुचि करने जैसी है। आत्मार्थताकी मुख्यता रखने जैसी है। बाकी कहीं भी अटक जाता है, उसे जहाँ रुचि होती है वहाँ। कोई प्रमादमें, अनेक जातके विकल्पोंमें, अनेक जातके विचारोंमें कहीं भी अटक जाता

है। किसीको कहाँ रुचि लगती है, किसीको कहाँ रुचि लगती है। ... चढ़ जाय और आत्मार्थीता गौण हो जाय।

मुमुक्षु :- यहाँ आनेसे सामान्य पाप भी पुण्यमें परिणमित हो जाते हैं, तो आपका स्वास्थ्य... आप तो ज्ञानी हैं। आपको तकलीफ रहे, आश्चर्य लगता है। हमें ऐसा लगता है, हमें बहुत लाभका कारण है। गुरुदेवकी अनुपस्थितिमें हमें (आपके समागमसे) कितना आनन्द होता है। वह कोई हाथकी बात नहीं है, गुरुदेव कहते थे न, वह हाथकी बात नहीं है। शरीरके कार्य शरीर (करता है)। स्वतंत्र होते हैं, अपने हाथकी बात नहीं है।

मुमुक्षु :- सबको आपकी वाणी पाँच-पाँच मिनिट मिले तो भी बहुत... बहुत विरह लगता है।

समाधान :- उनकी तो बात अलग थी, मैं तो उनका दास हूँ। अपने हाथकी बात नहीं है। शरीरकी क्रियाएँ स्वतंत्र हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३३

समाधान :- ... उपादान तैयार होवे तो निमित्त आ जाता है। उपादान मुख्य रहता है और निमित्त उसके साथमें रहता है। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- निमित्त तो साथमें रहता ही है।

समाधान :- उपादान तैयार होवे तो उसको निमित्त मिल जाता है। पुण्यका उदय है। भावना हुयी, शुभभाव हुआ अपना और वह पुण्यका उदय है। जो भाव होता है तो निमित्त मिल भी जाता है, कभी देर भी होती है। भावना शुभभाव होता है उसका लाभ होता है।

मुमुक्षु :- उपादान ..

समाधान :- उपादान भाव... मैं स्वरूपकी प्राप्ति करुँ, पुरुषार्थ करुँ, यह सब उपादान है। पुरुषार्थ करनेका भाव होता है, वह उपादान है। वह उपादान है। भावना हुयी वह तो शुभभाव है, वह भी उपादान है। शुभभाव होवे तो पुण्य बन्ध जाता है। फिर पुण्यका उदय कब होवे, तुरन्त होवे या बादमें होवे, निमित्त कब आये, उसका कोई नियम नहीं रहता है। शुभभावना होती है तो शुभभावका फल होता है। पुरुषार्थ करे तो उसका फल जरूर होता है। भीतरमें पुरुषार्थ करे तो उसका फल आता है। भावना होवे तो मिल जाता है, परन्तु कब मिले उसका नियम नहीं है।

.. करते-करते स्वानुभूति प्रगट होती है, यह मार्ग गुरुदेवने बताया है। स्वानुभूति प्रगट करो, आत्माका अनुभव करो, भेदज्ञान करो, अपना पुरुषार्थ करो। उसमें देव-गुरुका निमित्त होता है। मुख्य उपादान.. बाकी तो शुभभावके अनुसार पुण्य बन्ध जाता है।

मुमुक्षु :- उस विकल्पोंको हम अपने परिणामोंमें कैसे स्थिर करें?

समाधान :- विकल्प तो अपना स्वभाव नहीं है। स्वभाव तो मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ, इसमें ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुण.. उसमें परिणतिको दृढ़ करो, उसका भेदज्ञान करो, विकल्प ओरसे परिणतिको हटाकर अपने स्वरूपकी ओर परिणतिको मोड़ना, यह करना है। क्षण-क्षणमें भेदज्ञान करना। विकल्प मैं नहीं हूँ, मैं चैतन्य स्वभाव हूँ, मैं विकल्प नहीं हूँ। विभाव मैं नहीं हूँ। ऐसा बारंबार उसका अभ्यास करना। ऐसा चिंतवन,

मनन, शास्त्र अभ्यास, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और चैतन्यका चिंतवन करना। ज्ञायक हूँ, मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ। जो विकल्प आता है, उसको मैं जाननेवाला चैतन्य हूँ। मैं ज्ञायक हूँ। ऐसा बारंबार (प्रयास करना)। उसकी रुचि, महिमा करना

जन्म-मरण टालनेका वह उपाय है। संसारमें जन्म-मरण तो चलते ही रहते हैं। आना-जाना ऐसा बहुत किया, शाश्वत एक आत्मा है। शरीरका स्वभाव शरीरमें है। ऐसे बहुत जन्म-मरण किये। बहुत माताको छोड़कर आया, अपने छोड़कर गया। ऐसा बहुत हुआ। अपने चैतन्यतत्त्वको पीछाना नहीं। अंतर दृष्टि करके चैतन्यकी स्वानुभूति करना वह मुक्तिका मार्ग है। इसका अभ्यास करना, बारंबार भेदज्ञान करना।

मुमुक्षु :- माताजी! एक प्रश्न है। ... लेकिन पुद्गलका परिणमन अन्दरमें बैठता नहीं है। कभी तो बैठ जायेगा, कभी-कभी। कभी समझमें ही नहीं आता है।

समाधान :- समझनेका अभ्यास करना। यह जड़ पुद्गल है, मैं जाननेवाला हूँ। यह स्वतंत्र है। शरीरका स्वभाव स्वतंत्र है। विकल्प अपना स्वभाव नहीं है। मैं चैतन्य ज्ञायक स्वभाव हूँ। शान्ति, आनन्द आत्मामें है। ऐसे बारंबार उसका विचार करना। बैठता न हो तो बिठानेका अभ्यास करना। बारंबार विचार करना। स्वभाव दृष्टिको पीछानकर उसका अभ्यास करना।

जैसा स्फटिक निर्मल है, वैसा मैं निर्मल हूँ। पानीका स्वभाव निर्मल है, वैसा निर्मल हूँ। मलिनता पानीमें बाहरसे आती है, कीचड़के कारण। पानीका स्वभाव निर्मल है, वैसे मैं निर्मल हूँ। संकल्प-विकल्प विभाव है, अपना स्वभाव नहीं है। उसका भेदज्ञान करना।

मुमुक्षु :- दिनभरकी क्रियाएँ, जैसे खाने बैठे, घरका कोई काम करते हैं तो उपयोग तो ऊधर लग जाता है, तो फिर उस वक्त ज्ञायक हूँ, कैसे लक्ष्य रहे? यह मेरा बहुत दिनसे प्रश्न है।

समाधान :- उपयोग लग जाता है (उसमें) अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। उपयोग लग जाय तो भी श्रद्धा तो, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी रुचि रखना।

मुमुक्षु :- अन्दरसे क्या रटते रहे मन ही मनमें? हम उसको रटे? रटते जाएँ कि मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे हम घोंटे क्या उसको?

समाधान :- उसका अभ्यास करना। घोंटना तो रटन जैसा हो जाता है। लेकिन उसको पहले पीछानना, सच्ची समझन करना कि मैं चैतन्य हूँ। उसका स्वभाव जब तक यथार्थ जाननेमें नहीं आवे तबतक उसे घोंटना, पढ़ना, उसका अभ्या करना, रटन करना। जब तक यथार्थ नहीं होवे तबतक रटना, पढना ऐसा करना।

परन्तु जिसको यथार्थ होता है उसको तो सहज हो जाता है, उसको रटना नहीं

पड़ता। जिसको सहज स्वभाव पीछानमें आ गया, उसको सहज हो जाता है कि मैं ज्ञायक हूँ। कामकाज करते हुए भी उसे सहज भेदज्ञानकी दशा चलती है। जिसको सहज होता है उसको तो। परन्तु सहज नहीं होता है, वह अनादिका विभावका अभ्यास है। इसलिये अभ्यास करनेके लिये रटना, पढ़ना आदि सब बीचमें होता है।

मुमुक्षु :- जैसे कि आपने अभी बोले कि विकल्पसे अपनेको अलग करना। जैसे मैं आपसे बात कर रही हूँ। बात करते-करते मैं अन्दर ऐसा विचार करुँगी कि मुझको राग आ रहा है यह मैं नहीं हूँ। ऐसा बार-बार विचार करुँगी क्या?

समाधान :- बार-बार (विचार) नहीं, ऐसी श्रद्धा करना कि मैं इससे भिन्न हूँ। एकत्वबुद्धि चल रही है, एकत्वबुद्धिको तोड़ना, फिर उसे रटना नहीं पड़ता। एकत्वबुद्धि तोड़नेका अभ्यास करना। एकत्वबुद्धि हो रही है, मैं शरीर हूँ, मैं विकल्प हूँ। एकत्वबुद्धि निरंतर चलती है तो उसको तोड़नेका अभ्यास करना।

मुमुक्षु :- तोड़नेके लिये अभ्यास करना, उसके लिये मुख्य मार्ग क्या है?

समाधान :- मुख्य मार्ग, उसकी रुचि, महिमा करना। उसकी महिमा लगे, बाहर सुख नहीं लगे, बाहर चैन नहीं पडे, मैं चैतन्यको कैसे पीछानूं? उसकी महिमा (लगे)। बाहर कहीं चैन न पड़े, अन्दर ही चैन पड़े। ऐसे बारंबार स्वभावको पीछानना। जैसे बाहर वस्तु देखनेमें आती है, वैसे मैं चैतन्यको कैसे पीछानूँ? ऐसे बारंबार पीछाननेका अभ्यास करना। नहीं होवे तबतक अभ्यास करना। एकत्वबुद्धि तो अनादिसे चल रही है। बातचीत करते-करते, खाते-पीते एकत्वबुद्धि चलती रहती है, परन्तु उसको भिन्न करनेका अभ्यास करना। उसकी महिमा लगे तो अभ्यास होवे। श्रद्धा तो रखना। रटन कहाँसे करेगा? रुचि तो बाहरकी है। लेकिन जितना हो सके उतना अभ्यास करना।

मुमुक्षु :- ध्यानमें हम बैठे तो ध्यानमें किस तरहका चिंतवन ले कि ज्ञायककी ओर हमारी प्रवृत्ति जाये? कैसा चिंतन करे? हमको तरीका बताईये।

समाधान :- तरीका, पहले तो यथार्थ ज्ञान करना। पहले, ज्ञायक कैसा है? द्रव्य कैसा है? गुण कैसा है? पर्याय कैसी है? यह पुद्गल द्रव्य है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है। यह अलग है, मैं चैतन्य अलग हूँ। ऐसे पहले यथार्थ ज्ञान करना। बादमें यथार्थ ध्यान होता है। मैं यह चैतन्य हूँ, उसका अस्तित्व ग्रहण करके ध्यान यथार्थ होता है। ज्ञान यथार्थ हुए बिना ध्यान यथार्थ हो सकता नहीं। पहले तो यथार्थ ज्ञान करना। जो गुरुदेवने मार्ग बताया उसका पहले यथार्थ ज्ञान करना। क्या मार्ग है? कैसे मिलता है? कैसा स्वभाव है? कैसे मैं निर्मल हूँ? यह विभाव है, यह स्वभाव है, कैसा मुक्तिका मार्ग है? कैसे मोक्षस्वरूप आत्मा है? उसको यथार्थ पीछानकरके बादमें ध्यान करना। तो ध्यान यथार्थ जमता है। और ज्ञानके बिना ध्यान जमता नहीं है।

मुमुक्षु :- जैसे कि हम शास्त्र पढे, जानकारीमें आया तो ध्यानमें उसका क्या विचार करे?

समाधान :- विचार करना। पहले ध्यान कैसे होवे?

मुमुक्षु :- जैसे शास्त्र पढ़े, पूरे समय पठन भी करेंगे तो फिर गहराई नहीं आयेगी। पठन किया जिस चीज पर, उसका ध्यान नहीं किया, उसकी चिंतवन नहीं हुआ।

समाधान :- शास्त्रका अभ्यास (किया), उसमें आचार्यदेव क्या बताते हैं उसका विचार करना। क्या मार्ग शास्त्रमें आया? वस्तुका स्वरूप कैसा है? ऐसा विचार करना, चिंतवन करना कि यह वस्तु है, आत्मा है, यह स्वभाव है, यह विभाव है, यह ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, मैं आत्मा हूँ। यह गुणका भेद है। मैं अनन्त चैतन्यस्वरूप हूँ। पहले ऐसी यथार्थ समझन करनी, बादमें ध्यान होता है। सच्ची समझनके बिना ध्यान नहीं हो सकता। समझे बिना ध्यान करता है तो ऐसी उलझन होती है, यथार्थ जमता नहीं। पहले यथार्थ ज्ञान करके, यथार्थ श्रद्धा करके, बादमें ध्यान करना। प्रयोजनभूत तत्त्वको यथार्थ पहचान लेना।

मुमुक्षु :- बार-बार आता है कि पुद्गलका परिणमन स्वयं अपने-अपनेमें हो रहा है। हमको तो मोटा-मोटा दिखता है। दिनभर ऐसी हमको अस्ति क्यों नहीं आ रही है? ऐसे कैसे आयेगी अस्ति? इसकी बात मालूम हो जाय तो हमारी करु-करुकी बुद्धि खत्म हो जाय। यहीं हमारा गड़बड़ खा रहा है कि पुद्गलका परिणमन प्रतिपल स्वयं हो रहा है, ज्ञानमें नहीं आ रहा है। पढ़ तो लेती हूँ, बोल तो देती हूँ, ज्ञानमें यह बात आ नहीं रही है।

समाधान :- यह सब पुद्गलका परिणमन है। ज्ञानमें कैसे आवे? अनादि कालसे भ्रम हो रहा है, ज्ञानमें कैसे आवे? विकल्प और संकल्प, ज्ञान सब एकत्वबुद्धि हो रही है। उसको यथार्थ समझन करके बिठाना कि यह सब पुद्गलका परिणमन है। मैं चैतन्य हूँ। शरीरका परिणमन है, वह पुद्गलका है। बाहरका तो है, लेकिन इस शरीर भी पुद्गलका (परिणमन है)। इसमें रोग आता है वह भी पुद्गलका परिणमन है। वह कोई आत्माका परिणमन नहीं है। ऐसी यथार्थ श्रद्धा करके बिठाना।

अनादिका अभ्यास है, कैसे बैठे? एकत्वबुद्धि अनादिसे ऐसी जोरदार हो रही है। यथार्थ श्रद्धा करे, बारंबार अभ्यास करे, बारंबार उसका अभ्यास करे तब बैठता है। चुतर्थ कालमें तो अंतर्मुहूर्तमें बैठ जाता है। पंचमकालमें ऐसा नहीं होता है। एक बार विचार करके बैठ गया, ऐसा हो जाता है, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा तो कोई-कोईको होता है।

मुमुक्षु :- कई बार वह बात समझमें आ जाती है। कई बार ऐसा कैसा-कैसा

हो जाता है, समझमें ही नहीं आती बात। जैसे अपने अभ्यास करते हैं तो पढ़ते-पढ़ते ऐसा होता है, कई बार तो बड़ा अच्छा लगता है। कई बार समझमें ही नहीं पडती है बात।

समाधान :- वह तो अपना दोष है। क्या करे? अनादि कालसे ऐसे विकल्पमें विभ्रम हो रहा है, क्षयोपशमज्ञान ऐसा है नहीं, रुचि ऐसी है नहीं, पुरुषार्थ ऐसा है नहीं, कहाँसे होवे? कभी पुरुषार्थ चले, कभी नहीं चले। अपनी मन्दता है, अपनी मन्दता है।

मुमुक्षु :- आप ध्यानमें कैसा विचार करती हैं?

समाधान :- यह कोई कहनेकी बात थोड़ी है।

मुमुक्षु :- नहीं मतलब ऐसा, जैसा शास्त्रमें (आता है), ४८ मिनिटमें केवलज्ञान हो जाता है। तो कितना.. जैसे ध्यान होता है तो अंतर्मुहूर्त होनेके बाद आप... हमको उत्सुकता हुयी किस प्रकारके विकल्प आते हैं? हम नहीं कर पाते हैं तो जाननेकी इच्छा होती है न। कैसे विचार आते हैं आपको?

समाधान :- विकल्प तो विकल्प है। विकल्प विकल्पमें है, आत्मा आत्मामें है।

मुमुक्षु :- ऐसा ही आपके मनमें हमेशा चलता रहता है?

समाधान :- जिसको यथार्थ ज्ञान होता है, उसको भेदज्ञानकी धारा चलती रहती है। विकल्प तो विकल्पमें है, आत्मा आत्मामें है।

मुमुक्षु :- यह बात ऐसी अन्दरमें पक्की जम जानी चाहिये?

समाधान :- ऐसी सहज धारा होनी चाहिये। सहज। विकल्प होते नहीं, वह तो केवलज्ञानीको नहीं होते। परन्तु भेदज्ञानकी धारा तो सम्यग्दृष्टिको होती है।

मुमुक्षु :- अन्दरमें भावमें आने लगता है न? ज्ञान अलग है, राग अलग है, ज्ञान अलग है।

समाधान :- वह तो सहज होता है।

मुमुक्षु :- हम लोगोंको महेनत लगती है।

समाधान :- एकत्वबुद्धिको याद नहीं करनी पड़ती है ना? यह शरीर और मैं आत्मा एक हैं, ऐसी एकत्वबुद्धि तो सहज चलती है। अनादिसे सहज चलती है न? यह शरीर और आत्मा सब एक है, विकल्प सब एक है, एसी एकत्वबुद्धि चलती है। उसी तरह भेदज्ञान भिन्नता ऐसे चलती है।

मुमुक्षु :- आपको सोचना नहीं पड़ता। हम लोगोंको बहुत सोच-सोचके लाना पड़ता है। आपकी पुस्तक पढ़ते हैं, हम तो यहाँ आये नहीं, सुने नहीं। उसमें कहा है, मैं ज्ञायक, मैं ज्ञायक। उसमें भी हमको तो महेनत पड़ती है, हम तो भूल जाते

हैं। फिर थोड़ी देर बाद याद आता है कि अरे..! हम तो भूल गये अपनेको। ऐसा हमको बहुत ज़ोर लगता है। भूल जाते हैं। .. याद करते हैं तो उसमें भी हमको महेनत पड़ती है। ऐसे ही अभ्यास करें?

समाधान :- श्रीमद् राजचन्द्रमें ऐसा आता है कि, प्रथम भूमिका विकट होती है। समझ पीछे सब सरल है, बिन समझे मुश्किल। प्रथम भूमिकामें ऐसी विकटता होती है, भूल जाते हैं। जिसको ज्ञान होता है, उसको सहज होता है। समझ पीछे सब सरल है।

मुमुक्षु :- तो हम लोग मतलब ऐसे रटे? आपने जितनी बात बतायी वह तो .. किसीकी बात ही नहीं है। अभी तो हमारी बात है। अभी हम तो इसीलिये आये हैं। क्योंकि हमारे जीवनमें यह घट रहा है। हमको बड़ी आतुरता थी, भूल जाते हैं, फिर बैठ-बैठकर याद करते हैं। और फिर काम-धन्धा करने जाते हैं, फिर भूल जाते हैं।

समाधान :- एकत्वबुद्धि अनादिसे है। ऐसी महिमा नहीं है, ऐसी रुचि नहीं है।

मुमुक्षु :- रुचि तो आती है, रुचि तो आती है।

समाधान :- पुरुषार्थकी मन्दता है।

मुमुक्षु :- नहीं, अब करेंगे पुरुषार्थ। रुचि आती है, रुचि तो होती है मेरेको।

समाधान :- अभ्यास करना। भूल जाये तो बारंबार याद करना। ऐसे रूखा नहीं होना चाहिये। बारंबार उसकी महिमापूर्वक कि ज्ञायकमें सबकुछ भरा है, वह खाली नहीं है। महिमावंत पदार्थ है। चैतन्य भगवान महिमासे भरपूर है। उसको रूखा करके मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसे नहीं करना। महिमापूर्वक करना, भूल जाय तो भी।

मुमुक्षु :- कभी तो रूखा भी आयेगा, कभी तो ऐसा भी आयेगा, जैसी गहराई आयेगी। कभी-कभी यह भी आ जाता है, कभी लूखा-लूखा भी आता है।

समाधान :- महिमापूर्वक होना चाहिये।

मुमुक्षु :- जैसे कि हम अकेले खा रहे हैं, छत पर। तो जाननेके तत्त्वको हमको लक्ष्यमें लेना है। तो यह सबको जाननेवाला मैं हूँ, ऐसा बार-बार, बार-बार ऐसे अकेलेमें अपनी तरफ लक्ष्य ले? यह प्रक्रिया कैसी रहेगी?

समाधान :- पहले यथार्थ ज्ञान करना, विचार करना, चिंतवन करना। बारंबार मैं जाननेवाला हूँ, यह मैं नहीं हूँ, मैं जाननेवाला हूँ। पहले उसका यथार्थ ज्ञान होना चाहिये। फिर यह सब प्रश्न ही नहीं उठेंगे कि कैसे करुँ। ऐसा विचार करना, बारंबार ज्ञान यथार्थ करना। समझना। बिना समझे करने बैठ जाय तो मूढता जैसा (हो जायेगा), कुछ मालूम ही नहीं पड़ता, ऐसा हो जाय।

मुमुक्षु :- नहीं, नहीं। पहले समझेंगे ना। पहले समझेंगे फिर करेंगे। समझेंगे तब तो विचार आयेंगे।

समाधान :- समझे तो आये। बिना समझे तो कुछ समझमें नहीं आता, ऐसा हो जायेगा। उसकी रुचि, महिमा आवे। पहचान करे, ऐसा प्रयत्न करना। भेदज्ञान साथ-साथ करे, उसमें देर लगे तो भी उतावली नहीं करना।

मुमुक्षु :- एक तो मैं श्वेतांबर मतसे निकली, एक तो भाषा यहाँकी सब नयी है। द्रव्य-गुण-पर्याय, हमारा सुना हुआ नहीं है। मेरेको घरमें बोलते हैं, क्या सुनती है? कुछ समझमें नहीं आता था। लेकिन इतना अच्छा लगता है। छः महिने कुछ पल्ले नहीं पड़ा। मैंने कहा, क्यों नहीं आयेगा?

समाधान :- पहले ऐसा लगा, द्रव्य-गुण-पर्यायकी बात कोई अलग ही दुनियाकी बात है। जब समझता जाय, तब महिमा आती जाय।

मुमुक्षु :- ज्ञेय-ज्ञायक पुस्तक मेरेको बहुत अच्छी लगी, बहुत ही अच्छी लगी थी। पीछेके प्रकरण, वस्तुविज्ञानसार, मेरेको उससे बहुत महिमा आयी। पहले तो समझमें नहीं आया। अभी एक-दो महिनेसे चालू किया है। ज्यादा पढ नहीं सकती, देढ़-दो पेज ही पढती हूँ, फिर विचारती हूँ।

समाधान :- ऐसे समझन यथार्थ होवे तब ख्यालमें आयेगा कि कैसे करुँ? कैसे भेदज्ञान? कैसे ध्यान? यह सब बादमें जब समझमें आता है तब ख्यालमें आता है। समझे बिना चलने लगे तो दूसरा मार्ग आ जाता है। भावनगर कैसे जाना? क्या मार्ग है? पहले मार्ग जान लेना चाहिये, फिर चलने लगे तो यथार्थ मार्ग पर चले।

मुमुक्षु :- नहीं, नहीं। जबही तो हम यहाँ आये हैं। जबही तो हम यहाँ आये हैं। हमने थोड़े ही सुना है, हमने तो स्वामीजीका नाम भी सुना दो साल पहले। पुस्तक पढे, बात दिमागमें लगने लगी कि सही है। मन तो कहता है, सही है। अब तरीका भी तो मालूम होना चाहिये न? कि किस तरीकेसे अब हम आगे अभ्यास करे? बात तो पक्की बैठ गयी। बात तो ऐसी ही है। अब मार्गमें हम आगे कैसे चले?

समाधान :- पहले यथार्थ समझ करनी। रुचि, महिमा, यथार्थ समझन करनी। समझना, अभी और विशेष समझना।

मुमुक्षु :- ... शास्त्र पढे, हम तो ज्यादा नहीं पढते हैं। मोक्षमार्ग प्रकाशक..

समाधान :- अपनेआप समझना (पड़ता है)।

मुमुक्षु :- पहला हम कौनसा पढे, जिससे हमको सही मार्ग मिले।

समाधान :- मोक्षमार्ग प्रकाशक?

मुमुक्षु :- वह तो पढे।

समाधान :- गुरुदेवका.. मूल शास्त्र समझमें नहीं आयेगा, नहीं तो समयसार आदि.. समयसार शास्त्र है....

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३४

समाधान :- ... शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, अन्दर संकल्प-विकल्प जो होते हैं, वह अपना स्वभाव नहीं है। ऐसा अंतरसे उसकी यथार्थ प्रतीति करके, उस प्रकारका भेदज्ञान करके अन्दरसे विकल्प टूटकर जैसा आत्मा है, उसका वेदन हो, उसको स्वानुभूति कहते है।

आत्मा जैसा है, अनन्त गुणसे भरपूर, उसके गुणोंको जो जाने, उसका वेदन करे, आत्माका आनंद जो स्वानुभूतिमें वेदे, उसका नाम स्वानुभूति है। आत्माका वेदन जिसमें हो, उसका नाम स्वानुभूति है। सिद्ध भगवानका जो स्वरूप है, सिद्ध भगवानका अंश जिसे स्वानुभूतिमें प्रगट होता है, सिद्ध भगवान तो परिपूर्ण हो गये, उन्हें तो केवलज्ञान आदि अनन्त गुण परिपूर्ण पर्यायरूपसे प्रगट हो गये, परन्तु सम्यग्दृष्टिको उसका अंश प्रगट होता है। वह गृहस्थाश्रममें हो, कोई भी कार्यमें हो, तो भी जब वह विकल्पसे छूट जाता है, तब उसे स्वानुभूति (होती है)। स्व-अनुभव आत्माका वेदन होता है।

अनन्त गुणसे भरपूर जो आत्मा है, उस रूप आत्मा परिणमित हो जाता है। आनन्दरूप, ज्ञानरूप आदि अनन्त गुणरूप परिणमित हो जाता है। उसका नाम स्वानुभूति है। जो अनन्त कालमें जीवने बहुत क्रियाएँ की, शुभभाव किये, शुभभावसे पुण्य बन्ध होकर स्वर्गमें जाय, परन्तु जो स्वानुभूति प्रगट नहीं की है, वह स्वानुभूति ही मोक्षका उपाय है। परन्तु उसकी पहले प्रतीत करके भेदज्ञान करके, उसके ज्ञान-ध्यानकी उग्रतासे, ज्ञाताधाराकी उग्रतासे विकल्प टूटकर जो स्वानुभूति-निर्विकल्प दशा कि जिसमें विकल्प भी नहीं है। विकल्प रहित, जिसमें अकेले चैतन्यका अस्तित्त्व-आत्माका अस्तित्व है, उसका नाम स्वानुभूति है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! उसमें क्या होता है? अनुभूति होती है, मतलब उसमें क्या होता है?

समाधान :- अनुभूति अर्थात् आत्मस्वरूपका वेदन होता है।

मुमुक्षु :- अन्दरसे आनन्द आता है?

समाधान :- आनन्द आदि अनन्त गुणोंका जिसमें वेदन हो, उसका नाम स्वानुभूति है। वह कोई वाणीकी, कथनकी बात नहीं है। वह तो उसके वेदनमें आता है। आत्मा

जैसा है, वैसा उसे अनुभवमें आता है। आत्माके अनन्त गुण, आनन्दादि अनन्त गुणोंका जिसमें अनुभव होता है-वेदन होता है, कोई अलग ही दुनियामें वह चला जाता है। यह विभावकी दुनिया नहीं, परन्तु उसकी स्वभावकी दुनिया, वही उसका स्वघर है, उसमें वह बस जाता है। स्वानुभूति, लौकिक अनुभवसे अलग अलग जो अलौकिक अद्भूत दशा, जो भूतकालमें कभी नहीं हुयी। वह अपूर्व है। जीवने सब किया, परन्तु आत्माका स्वानुभव-सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया।

गुरुदेव कहते थे कि, सम्यग्दर्शन प्रगट करना वह कोई अपूर्व है। जीवने अनन्त कालमें.. आचार्यदेव भी कहते हैं कि, जिनवर स्वामि मिले नहीं है, सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है। अतः अनन्त कालमें यह दोनों अपूर्व हैं। जिनवर स्वामि मिले, लेकिन स्वयंने पीछाना नहीं, इसलिये मिले नहीं है। सम्यग्दर्शन कोई अपूर्व है, अनन्त कालमें जीवने कभी प्राप्त नहीं किया है। यदि प्राप्त किया हो तो उसका भवभ्रमण होता नहीं। जिसे सम्यग्दर्शन हो, वह अंतरमें आगे बढ़ता-बढ़ता अप्रतिहत दशासे जो बढ़ता है, फिर क्रमशः उसे मुनिदशा आती है। स्वानुभूति बढ़ते-बढ़ते अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें क्षण-क्षणमें आत्मामें लीन होता हुआ, मुनिदशामें तो ऐसा लीन होता है, अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त क्षण-क्षणमें, ऐसा करते-करते केवलज्ञान दशाको प्राप्त करता है। इसलिये जिसे स्वानुभूति होती है, उसका तो भवभ्रमण मिट जाता है। उसका पूरा जीवन आत्मामय हो जाता है। उसका पूरा जीवन पलट जाता है।

मुमुक्षु :- इन्द्रिय सुख दुःखरूप है। जैसे यहाँ सूई चूभी और दुःख महेसूस हुआ, ऐसा इन्द्रिय सुख भोगते हुए दुःख क्यों नहीं महेसूस होता?

समाधान :- क्या इन्द्रिय सुख?

मुमुक्षु :- जैसे इन्द्रिय सुख दुःखरूप है, ऐसा आगमकथन बहुत सुना। तो जैसे यहाँ काँटा चूभाया तो दुःखरूप महेसूस हुआ, ऐसा इन्द्रिय सुख भोगते समय दुःखरूप महेसूस क्यों नहीं होता?

समाधान :- उसको ज्ञान नहीं है तो बुद्धिका भ्रम हो गया। आकुलता-आकुलता है, सब आकुलतामें पड़ा है। आकुलता ही दुःख है यानी बुद्धिका भ्रम है। कल्पनासे, भ्रमसे उसने सब पदार्थोंमें सुख मान लिया है। भीतरमें विचार करे तो आकुलता है, आकुलता है। स्वभावसे विपरीत विभाव दशा सब आकुलतारूप है-दुःखरूप है। आकुलता है, आकुलताका वेदन है। कल्पनासे उसे सबमें सुख लगता है। कल्पना है। विचार करे तो सब दुःख है। कोई ऐसा देखनेमें आता है कि यह दुःख है, परन्तु सब दुःख है।

देवलोकमें जाय तो देवलोकमें सुख लगता है, नर्कमें दुःख देखनेमें आता है। परन्तु देवलोकमें भी भीतरमें आकुलता है। आकुलता ही दुःख है। मूल दुःख आकुलता है।

भीतरमें जो आकुलता, संकल्प-विकल्पकी आकुलता है, वह सब आकुलता दुःखरूप है।

जो स्वाधीन सुख है, वह उसका नाम है, जिसमें परपदार्थके आश्रयकी जरूरत न होवे, परकी जरूरत जिसमें न होवे, जो स्व-आश्रय-चैतन्यके आश्रयसे-जो प्रगट होवे, स्वयं प्रगट होवे, स्वतःसिद्ध प्रगट होवे, वह सुख है। वह सुख आत्माका स्वभाव है। जिसमें परपदार्थकी जरूरत पड़ती है, इन्द्रयोंकी जरूरत पड़ती है, किसीके आश्रयकी जरूरत पड़ती है वह सुख नहीं है। जो पराधीन है, वह सब सुख नहीं है।

गुरुदेव कहते हैं, पराधीनतामें स्वप्नमें भी सुख नहीं है। पराधीनतामें सुख नहीं है, दुःख ही है। स्वाधीन जो अपने आश्रयसे-चैतन्यके आश्रयसे प्रगट होता है, वही सुख है। वह यथार्थ सुख है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें पहले बोलमें आया कि, यदि बाहर नहीं रुचता है तो उपयोग अन्दर पलट दे, आत्मामें रुचे ऐसा है। इसे प्रयोग पद्धतिमें कैसे रखे? शब्दमें तो सुनते हैं, पढ़ते हैं, लगता है, रुचता बहुत है, जचता भी है, लेकिन प्रयोग पद्धतिमें अन्दर कैसे आये?

समाधान :- उपयोग पलट दे। उसका उपयोग बाहर जाता है तो पलट उपयोगको पलट दे। पलटे कैसे? उसकी रुचि होवे तो पलटे। उसको बाहरमें ऐसा लगे कि यह विभाव आकुलता है, सब दुःख है, आत्मामें सुख है, उसकी प्रतीत होवे, उसका निश्चय होवे, ज्ञान होवे तब उपयोग पलटे। उपयोग पलटना वह तो पुरुषार्थ करके पलटता है, ऐसे तो नहीं पलटता है।

मुमुक्षु :- ऐसे तो जचता है न कि बाहर नहीं रुच रहा है, फिर भी बार-बार उपयोग बाहरकी ओर ही भगता है, आत्माकी ओर (नहीं आता)।

समाधान :- अपनी कमी, अपनी भूल है। अपना पुरुषार्थ..

मुमुक्षु :- हमें अभी तक आत्माकी महिमा नहीं है क्या कि जिससे ऐसा लगता है?

समाधान :- पुरुषार्थकी कमी है इसलिये बाहर उपयोग जाता है। अपनी महिमा लगे, बाहरमें सुख नहीं लगे, बाहरमें चैन नहीं लगे, आत्माके सुखके बिना शान्ति नहीं होवे, ऐसा होवे तब उपयोग भीतरमें जाय। आत्माके बिना जिसको चैन नहीं पड़ता है, उसका उपयोग भीतरमें जाता है। जिसको बाहरमें चैन पड़ जाता है, तो उपयोग भीतरमें नहीं जाता है। बाहर चैन नहीं पड़े तो उपयोग भीतरमें जाता है।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेवकी टेपमें (आता है कि) क्रमबद्धका निर्णय होते ही स्वभावका निर्णय हो जाता है।

समाधान :- सब क्रमबद्ध है तो कर्ताबुद्धि छूट जाती है। मैं किसीको करता नहीं हूँ, मैं किसीको कर नहीं सकता हूँ। स्वतःसिद्ध आत्मा अनादिअनन्त है। उसकी पर्याय

भी स्वयं (होती) है। सब क्रमबद्ध है। स्वभावका निर्णय दृढ़ हो जाता है। भेदज्ञान हो जाता है, क्रमबद्धका निर्णय होता है तो। कर्ताबुद्धि छूट जाती है और स्वभावका निर्णय हो जाता है। स्वभावकी धारा प्रगट होनेमें पुरुषार्थपूर्वक होती है। जिसको आत्माका कल्याण करना है उसको, जैसा बननेवाला होता है, बनता है, ठीक है (ऐसा नहीं होता)। परन्तु जो पुरुषार्थ करता है, जिसका क्रमबद्ध अच्छा होता है उसको पुरुषार्थ ही ध्यानमें आता है। जो क्रमबद्ध होता है, पुरुषार्थपूर्वक होता है। आत्मामें पुरुषार्थ लगता है, उसका क्रमबद्ध ऐसा होता है। वह पुरुषार्थपूर्वक होता है। स्वभावका निर्णय करे तो कर्ताबुद्धि छूट जाती है। सब क्रमबद्ध है।

सम्यग्दृष्टि होता है उसको निर्णय हो गया कि सब क्रमबद्ध है। परन्तु उसकी जो पुरुषार्थकी धारा रहती है, वह ऐसा विचार नहीं करता है कि होनेवाला होता है। उसकी तो पुरुषार्थकी धारा ही रहती है। जिसको आत्माका कल्याण करना है, उसको मैं पुरुषार्थ नहीं करुँ, जैसा होनेवाला है वैसा होगा, ऐसा विचार नहीं होता। उसका क्रमबद्ध अच्छा होता है, जिसको पुरुषार्थ करना है, उसका क्रमबद्ध अच्छा होता है।

मुमुक्षु :- निर्णय भी उसीका कहलायेगा कि जिसकी सहज गति अन्दरमें होगी?

समाधान :- जिज्ञासुको ऐसा विचार नहीं आता कि निर्णय होनेवाला होता है। जिज्ञासुको तो चैन नहीं पड़ती। मैं निर्णय कर लूँ, मैं ऐसा कर लूँ। तो उसका क्रमबद्ध अच्छा होता है। उसको ऐसा विचार नहीं होता कि, भगवानने जैसा देखा होगा वह होगा। जो पुरुषार्थ करे उसका क्रमबद्ध अच्छा देखा है। जिज्ञासुको तो पुरुषार्थ पर दृष्टि रहती है। बाकी कर्ताबुद्धि परपदार्थकी छूट जाती है।

समाधान :- .. वाणीमें आये ऐसी बात नहीं है। बाकी जिसे आत्माकी रुचि लगी, आत्मामें ही सब भरा है, बाहर कुछ नहीं है। आत्मामें शान्ति, आत्मामें आनन्द, आत्माकी अपूर्व महिमा, आत्मा अनन्त-अनन्त ज्ञानसे भरपूर है, अगाध गंभीर गुणोंसे भरपूर है। जिसके गुणोंका पार नहीं है, ऐसा अद्भूत आत्मा जगतसे भिन्न, इस विभावकी दुनियासे अलग जातका आत्मा है। विकल्प टूटकर उसकी स्वानुभूति होती है। पहले वह प्रतीतमें आता है। उसकी भेदज्ञानकी धारा प्रगट (होती है)। निर्विकल्प स्वानुभूति होनेके बाद जो उसकी भेदज्ञानकी धारा होती है वह सहज होती है। पहले तो विचारपूर्वक, निर्णयपूर्वक करता है।

मुमुक्षु :- बारंबार आता है, स्वभाव प्रगट है, प्रगट है, आप कहते हो जीव जागृत है, जागृत है...

समाधान :- प्रगट ही है, स्वयं ही है, गुप्त नहीं है। स्वयं विचार करे तो जाननेवाला स्वयं ही है। जो पर्याय होती है, जो विकल्प आवे उन सबको जाननेवाला भिन्न ही

है। परन्तु स्वयं एकत्वबुद्धि मान रहा है। उसे जाननेवाला स्वयं (है)। दूसरेको जानता है इसलिये नहीं, परन्तु स्वयं ही जाननेवाला स्वभावरूप स्वयं ही जाननेवाला है। उसका जाननेका स्वभाव है। परसे उसका अस्तित्व है, ऐसा नहीं, स्वयंसे उसका अस्तित्व है। ऐसा जाननेवाला स्वयं विराजता है, लेकिन वह दृष्टि देता नहीं है।

मुमुक्षु :- दोष अपना ही है।

समाधान :- अपना ही दोष है, अनादि कालसे।

मुमुक्षु :- जब भी नज़र करे तब साक्षात् स्वरूप वैसाका वैसा..

समाधान :- वैसाका वैसा है। जिसे आत्मा... उसकी भेदज्ञानकी धारा तो सहज वर्तती ही है। ऐसा ही है। उसका अस्तित्व सहज है। जो ख्यालमें ले उसे आ सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- कभी-कभी ऐसा होता है कि अनन्त काल गया फिर भी जाना नहीं और आपके मुखसे सुनते हैं तब ऐसा लगता है कि ऐसा सहज है कि शीघ्र प्राप्त कर सके ऐसा है।

समाधान :- अनन्त कालका अनजाना मार्ग है, इसलिये विकट है। बाकी अपना स्वभाव है इसलिये सहज है। गुरुदेवने मार्ग बातकर सब सहज कर दिया है। कहीं किसीको भूल न रहे, भ्रम न रहे ऐसा स्पष्ट मार्ग बताया है। स्वयंको पुरुषार्थ करनेका बाकी रहता है।

समाधान :- ... ज्ञायककी रुचि होती है तो सहज होता है। उसे रटन करना नहीं पड़ता, उसे सहज हो जाता है। उसे खटक रहती है कि यह सब है, परन्तु मैं तो भिन्न हूँ, मैं तो भिन्न हूँ। ऐसी उसको भावना रहती है। रटना भी नहीं पड़ता। जिसको सम्यग्दर्शन हो गया उसकी बात तो दूसरी है, उसको तो सहज भेदज्ञान रहता है। उसका तो ज्ञायकमय जीवन हो जाता है। एक आत्मामय जीवन, आत्माकी कोई अलग ही दिशा हो जाती है। क्योंकि अंतरकी दृष्टि बदल जाती है। और जो भावना होती है उसको भी ऐसी खटक रहती है कि यह सब होता है, लेकिन मैं तो भिन्न हूँ। रटना नहीं पड़ता। ऐसी खटक रहनी चाहिये, खेद होना चाहिये कि मैं एकत्व क्यों हो जाता हूँ? जो जिज्ञासु होता है उसकी ऐसी अन्दर भावना रहती है, भावना।

मुमुक्षु :- एकत्वमें खेदबुद्धि आती है।

समाधान :- हाँ, ऐसा हो जाता है कि मैं ऐसे (एकत्व) हो जाता हूँ। मुझे आत्माका करना है, मुझे आत्माका करना है। जिज्ञासा रहती है, ऐसी भावना रहती है। .. कैसे सहज होवे? मैं कैसे आत्मा पीछानूँ? मैं कैसे तत्त्वका विचार करुँ? क्या द्रव्य है? कैसे गुण हैं? पर्याय कैसी है? कैसे मैं शास्त्र समझुँ? क्या गुरुदेवने बताया

है? ऐसी भावना भीतरमें रहती है। रटन करनेसे विकल्प हो जाता है। बादमें भावना होवे तो कोई बार रटन करे, लेकिन उसकी ऐसी सहज कोई खटक रह जाती है।

जैसे लौकिकमें कोई दुःख होता है तो भीतरमें खटक-खटक रहती है कि ऐसा क्यों हो गया? ऐसा क्यों हो गया? वैसे आत्माकी खटक रहती है तो, मुझे आत्मा कैसे मिले? मुझे आत्मा कैसे मिले? ऐसी भावना तो रहती है। जिज्ञासुको ऐसा रहता है। जन्म-मरण कैसे मिटे? ऐसी भावना रहती है।

मुमुक्षु :- हमें कैसा प्रयास करना? शास्त्रका अभ्यास चलता है...

समाधान :- सच्चा ज्ञान करे तो मार्ग मिल जाता है। शास्त्रमेंसे मार्ग मिले.... शास्त्रका अर्थ समझमें न आवे तो गुरुदेवने क्या बताया है, उसका विचार करे, किसीको पूछे इसका क्या अर्थ है? इसमेंसे कोई मार्ग मिले तो भीतरमेंसे भी मार्ग मिलनेका वह कारण बनता है। बाहरका शास्त्रका स्वाध्याय करनेसे। कुछ लोग स्वाध्याय करते रहते हैं, परन्तु भीतरमें विचार न करे तो कुछ समझमें नहीं आता, वह तो पाठकी भाँति कर लेता है। परन्तु विचार करके समझना चाहिये।

मुमुक्षु :- नहीं, लेकिन यह भी है, जैसे अपनको रुचि होती है तो फिर विचार करनेकी इच्छा भी होती है।

समाधान :- होती है, रुचि हो तो विचारनेकी इच्छा होती है।

मुमुक्षु :- विचार करनेकी फिर इच्छा भी होती है। ज्यादा पढ़ नहीं सकते। आगेका उतना तक तो होता है, जैसे कि, पीछले साल ज्ञान और राग अलग नहीं दिखता है। अब दो-तीन महिनेसे ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध पुस्तक पढी, बहिनश्री! वह मेरेको बहुत अच्छी लगी। उसमें मेरेको, ज्ञान अलग है, राग अलग है, ऐसा समझमें तो आता है, बादमें कैसे करना?

समाधान :- समझमें आता है, लेकिन उसका भेद करना वह अलग है। समझमें तो आ जाय कि रागका लक्षण भिन्न है, ज्ञानका लक्षण भिन्न है। ज्ञान तो भीतरमें जाननेवाला है मैं हूँ और राग भिन्न है। ऐसा समझमें आया, बुद्धिमें आया। बुद्धिमें आया लेकिन उसका भेद करना वह दूसरी बात है।

मुमुक्षु :- भेद कैसे करेंगे?

समाधान :- वह तो प्रयत्न होवे।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ-प्रयत्न करेंगे।

समाधान :- प्रयत्न करे, उसकी महिमा होवे, उसकी जिज्ञासा होवे कि मैं कैसे करुँ? लगनी लगे। ज्ञायकके बिना मुझे चैन नहीं पड़ती। रागमें मुझे आकुलता लगती है। यह आकुलता दुःखरूप है। सुख होवे, ज्ञायकमें शान्ति होवे, ज्ञायकको मैं कैसे

पीछानुँ? उसकी भावना जगे, उसकी जिज्ञासा, लगनी लगे तो उसका भेदज्ञान होवे। बिना लगनीके नहीं हो सकता। जबतक नहीं होवे तबतक जानना अपनी क्षति है, अपनी कमी है। कमी है, जिज्ञासा कम है, पुरुषार्थ कम है। जबतक नहीं होवे तबतक विचार करना, स्वाध्याय करना, नहीं होवे तब तक। आकुलता नहीं करना।

... बात नहीं आती, भेदज्ञानकी कोई बात नहीं आती है। मात्र क्रियाकी बात आती है कि, ऐसे करो, उपवास करो, यह करो, वह करो, ऐसा ही सब आता है।

मुमुक्षु :- ... ऐसा लगा कि अजीब-अजीब लगने लगा। पढ़ते हैं ना तो अजीब-अजीब लगता है। मैं बोलती, यहाँके पात्र है दिगम्बर बड़े रहस्यात्मक है। कभी कुछ तरीका बताये, कभी कुछ नहीं करना, नया-नया लगता। पढ़ते वही का वही सब।

समाधान :- अन्दरसे नये-नये रहस्य निकलते जाते हैं। आचर्योंकी कथनीमें गहराई है। बहुत गहराई है। जीव, अजीव-अजीव, अजीव, परन्तु बीचमें जो राग होता है, वह राग चैतन्यकी पर्यायमें होता है, उसका निमित्त कर्म है। कोई अपेक्षासे चैतन्यका कहनेमें आये, कोई अपेक्षासे जड़का कहनेमें आये, उसका भेदज्ञान करना। उसकी निश्चय-व्यवहारकी सन्धि करना उसमें बहुत अटपटा होता है। विचार करके बिठाना पड़ता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३५

समाधान :- ... विकल्प सहित आनन्द होवे, वह आनन्द किसी भी प्रकारका हो, परन्तु विकल्प टूटकर आनन्द आवे, अपने आश्रयमेंसे आवे, चैतन्यमेसे उत्पन्न हुआ आनन्द हो, विकल्प टूटकर, जो विकल्पकी आकुलता है, आकुलता टूटकर अंतरमेंसे विकल्प छूटकर जो आनन्द आवे, वह आत्माके आश्रयसे आता है। कोई विकल्प खड़े हो और जो आनन्द आवे, वह आनन्द कोई दूसरे प्रकारका है।

मुमुक्षु :- सच्चा आनन्द नहीं है।

समाधान :- कोई उल्लास आवे, आनन्द आवे वह अलग है। उसमें शुभभाव साथमें रहा है। इसमें तो विकल्प टूटकर स्वभावका आनन्द आवे, भेदज्ञान करता हुआ, ज्ञाताकी धाराकी उग्रता करता हुआ, उसमें विकल्प छूटकर जो आनन्द आवे वह आनन्द अलग होता है। स्वभावमेंसे प्रगट होता हुआ आनन्द है।

विकल्पसे पार होना बहुत मुश्किल, दुर्लभ है। उसका अभ्यास करते-करते होता है। पहले उसकी श्रद्धा होती है कि मैं विकल्पसे भिन्न हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी पहले श्रद्धा हो, बादमें विकल्प टूटनेका प्रयत्न बादमें होता है, अभ्यास करते-करते। किसीको होता है तो अंतर्मुहूर्तमें होता है, नहीं होता है उसे अभ्यास करते-करते होता है।

मुमुक्षु :- अभ्यासमें भी विकल्प द्वारा ही अभ्यास होता है।

समाधान :- अभ्यासमें भी विकल्प तो साथमें है। जब तक विकल्प छूटा नहीं, तब तक विकल्प तो साथमें रहा ही है। परन्तु विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है, उसकी श्रद्धा भिन्नताकी रखकर अंतरसे जो प्रयत्न हो वह अलग होता है। मेरा स्वरूप नहीं है, यह मेरा स्वरूप नहीं।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प आनन्दकी अनुभूति होती है वह कितनी देर टिकता है? कोई कहता है, बीजलीके चमकारे जितना रहता है। मालूम कैसे पडे? बिजलीके चमकारेकी भाँति होता हो तो मालूम नहीं पड़े। ऐसा होता है?

समाधान :- ऐसे स्वयंको मालूम पड़ता है। उसे मालूम नहीं पड़ता ऐसा नहीं होता। उसे स्वयंको स्वानुभूतिमें मालूम पड़ता है कि यह स्वानुभव है। उसका काल अंतर्मुहूर्तका है, छोटा-बड़ा कैसा भी हो, अंतर्मुहूर्तका काल है।

मुमुक्षु :- यानी एक-दो मिनिट...?

समाधान :- उसका अमुक काल है, परन्तु वह पकड़ सकता है। किसीको थोड़ा ज्यादा होता है, किसीको थोड़ा कम होता है, परन्तु वह पकड़ सके ऐसा होता है। पकड़ न सके ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु :- हाँ, नहीं तो उसका प्रयोजन क्या?

समाधान :- यदि पकड़ नहीं सके तो... ऐसे ही चला जाय तो स्वयं पकड़ नहीं सकता है।

... पुरुषार्थकी गति हो उस अनुसार होता है। और गृहस्थाश्रममें जैसा उसका पुरुषार्थ हो वैसा होता है। मुनिओंकी तो बात ही अलग है, वे तो अंतर्मुहूर्तमें क्षण-क्षणमें होती है। लेकिन गृहस्थाश्रममें जैसी उसकी पुरुषार्थकी गति हो, उसकी सहज धारा हो वैसे होता है। उसका कोई नियम नहीं होता। फिर श्रावककी दशामें उससे विशेष होता है। जिसे देशव्रत होते हैं, उसकी अंतरकी स्थिरता बढ़ती है, उसे ज्यादा होता है। चतुर्थ गुणस्थानमें अमुक प्रकारसे होता है। परन्तु सबको पुरुषार्थकी गति एक समान हो ऐसा नहीं है। उसकी पुरुषार्थकी गतिकी जो सहज धारा हो, उस अनुसार होता है।

मुमुक्षु :- एक बार किसीको अनुभव हो गया, फिर दो-चार सालके बाद भी न हो, ऐसा बनता है?

समाधान :- ऐसा नहीं बनता। दो-चार साल निकल जाये, ऐसा नहीं बनता।

मुमुक्षु :- तो भ्रमणा ही हुयी है न? कोई ऐसा मानता हो कि मुझे सम्यग्दर्शन हो गया है, दो-चार साल तक (अनुभव) नहीं होता, ऐसा शास्त्रमें...

समाधान :- दो-चार सालकी (बात नहीं है)। .. समयमें उसे होता ही है। दो-चार वर्षका (अंतर नहीं पड़ता)। सबको यही करनेका है।

मुमुक्षु :- ... बहुत कम काल तो रहता है न? सम्यग्दृष्टि हो और भले...

समाधान :- एकदम गति है न? इसलिये मुनिओंकी गिनती...

मुमुक्षु :- इसलिये ऐसा है। बाकी सम्यग्दृष्टिको...

समाधान :- उसका ऐसा कोई नियम नहीं है। सम्यग्दृष्टिको पौन सेकण्ड ही रहे ऐसा नियम नहीं है। अंतर्मुहूर्तका उसका नियम है। मुनिओंको एकदम गति होती है इसलिये।

.... ज्ञानपूर्वकका ध्यान होना चाहिये। मैं यह चैतन्य हूँ, वह उसे ग्रहण होना चाहिये, स्वयंकी प्रज्ञासे कि मैं यह चैतन्य हूँ, ऐसे ग्रहण होकर बादमें उसमें एकाग्रता होती है। तो ज्ञानपूर्वकका ध्यान (होता है)। अपने स्वभावको पहचानकर ध्यान, अपना

अस्तित्व ग्रहण करके ध्यान होना चाहिये। समझे बिनाका ध्यान करे अपना तो वह ध्यान नहीं करता है। परन्तु अपना अस्तित्व ग्रहण करके ध्यान होना चाहिये। (अपना अस्तित्व) ग्रहण होना चाहिये।

समाधान :- ... परको नहीं जानता है, ऐसा नहीं है। स्वपरप्रकाशक ज्ञान है। परका ज्ञान उसमें नहीं आता है, ऐसा नहीं है। उस शब्दका आशय ग्रहण करनेका दूसरेके हाथमें रहता है। दूसरा ऐसा ही कहे कि, जैसा अपने मानते हैं वैसा ही कहते हैं। वह तो व्यवहार है, ऐसा करके निकाल दे। परको जानना व्यवहार है, वह निश्चय है। जिस प्रकारसे अर्थ करना हो वैसे कर सकता है।

निश्चय-व्यवहारकी सन्धि ऐसी है कि परको जानता ही नहीं है ऐसा नहीं है। परके साथ एकत्वबुद्धि करके परको जानना, ऐसा कोई मुक्तिका मार्ग नहीं है। स्वयं स्वप्रकाशक पूर्वक उसमें पर आ जाता है। वस्तु स्थिति ऐसी है कि स्वको जानते हुए पर ज्ञात होता है। कोई ऐसा खींँचे कि स्वको जानता है... .. सन्धिका मेल नहीं आता है, वह... ... गुरुदेव भी कहते थे, लेकिन वज़न कहाँ देना? और किस लाईन पर...

मुमुक्षु :- माताजी! थोड़ी और स्पष्टता षट्कारक...

समाधान :- षट्कारक अपनेमें है। पर्याय कोई स्वतंत्र वस्तु दुनियामें नहीं है। अखण्ड एक द्रव्य है, पर्याय द्रव्यके आश्रयसे है। फिर भी उसे स्वतंत्र कहनेमें आता है, वह कोई अपेक्षासे कहनेमें आता है। जैसे द्रव्यमेंसे अनन्त-अनन्त भाव, अनन्त पर्यायें प्रगट होती है, वैसे पर्यायमेंसे अनन्त, एक पर्यायमेंसे अनन्त पर्यायें नहीं होती। पर्याय तो एक क्षणके लिये है। उसके षट्कारक कहनेमें आता है, वह सब अपेक्षासे कहनेमें आता है। षट्कारक जो द्रव्यमें लागू पड़ते हैं, वह अलग प्रकारसे लागू पड़ते हैं। पर्यायमें लागू पड़ते हैं, वह दूसरे प्रकारसे लागू पड़ता है। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये।

पर्यायको एकदम निकाल दोगे तो पर्यायका वेदन ही नहीं रहेगा। पर्यायका वेदन होता है, पर्याय क्षणिक है, पर्यायको स्वतन्त्र माननी और पर्यायको द्रव्यके आश्रयवाली माननी, उसकी सन्धि करनी, वह सब मुक्तिके मार्गमें यथास्थित होता है। द्रव्यदृष्टि मुख्य रखकर उसमें पर्याय साथमें आती है। उस पर्यायको द्रव्यका आश्रय है, नहीं है ऐसा नहीं। पर्यायको स्वतंत्र भी कहते हैं। क्योंकि वह क्षणके लिये स्वयं उत्पन्न होती है, स्वयं नाश होती है। लेकिन उसे आश्रय द्रव्यका है। दोनोंकी सन्धि करनी चाहिये। सन्धि न करे तो स्वयं भूला पड़ता है। उसमें फ़र्क़ कहाँ पड़ता है? वज़न कहाँ देना वह समझनेवाले पर आधार रखता है। बात एक ही होती है कि द्रव्यदृष्टि मुख्य रखकर उसके साथ पर्यायकी बात करते हैं। जबकि दूसरा, द्रव्यदृष्टि मुख्य करके उसमें स्वयं

निषेध कहाँ करता है, वह पकड़ नहीं सकता है। परको जानता ही नहीं है, ऐसा निषेध भाव आता है, उसे स्वयं पकड़ नहीं सकता है। उसका निषेध भाव नहीं आना चाहिये और उसकी एकत्वबुद्धि नहीं होनी चाहिये। अपने ज्ञाताकी मुख्यता रखकर उसमें परप्रकाशक आता है। परन्तु परप्रकाशक कहते हुए कोई निषेध करता है, कोई उसे खींँचता है। अब, उसमें कैसे सन्धि करनी (वह) अपनेको (करनी पड़ती है)। इसीलिये गुरुदेव चर्चाकी बातमें पड़ते ही नहीं थे। वादविवाद जहाँ हो, वहाँसे गुरुदेव निकल जाते थे।

पालीतानासे निकल गये। चर्चा करो। तो वह बोले, चले गये, चले गये। गुरुदेवने कहा, भले चले गये, सात बार चले गये। हमें चर्चा नहीं करनी है। इसलिये गुरुदेव चर्चामें पड़ते ही नहीं थे। निश्चय-व्यवहारकी सन्धि ही ऐसी है। किसे कहाँ खींँचना वह उसके हृदय-आशय पर आधार रखता है।

वहाँ शांतिप्रसाद साहूने, गजराजजीके घर पर कहा, चर्चा करो। गुरुदेव चर्चामें पड़ना ही नहीं चाहते थे। वे तो अपने मार्ग पर ही चलते थे। किसे कहाँ कैसे खींँचना वह अपने हाथकी बात है। एक पक्ष बातको खींँच ले, तो यहाँ ऐसी बात हो कि परको नहीं जानता है, ऐसा नहीं है। तो फिर सामनेवाले ऐसे चलते हैं कि वे लोग परको जानता है, परको जानता है, ऐसा कहते हैं। ऐसे लेते हैं। ऐसा होता है।

क्षेत्र भेदके लिये (ऐसा कहते हैं), टूकड़े मानते हैं। टूकड़े नहीं है, ऐसी अपेक्षा कहते हैं तो ये लोग व्यवहारकी (बात) करते हैं, स्वतंत्रता (नहीं मानते हैं)।

मुमुक्षु :- व्यवहाराभासी हो गये।

समाधान :- हाँ, व्यवहारभासी हो गये। किसीको आशय समझना नहीं है और खींचातानी करनी है। ऐसा है। मुक्तिके मार्गमें निश्चयपूर्वक व्यवहार है। उसमें व्यवहारकी नास्ति नहीं आनी चाहिये और व्यवहारकी पकड़ भी नहीं होनी चाहिये, ऐसे दोनों समझना चाहिये। व्यवहारको पकड़े ... नास्ति भी नहीं आनी चाहिये, तो मुक्तिका मार्ग ही नहीं रहेगा, व्यवहारका निषेध होगा तो। निश्चय-व्यवहारकी सन्धिका ... है। निश्चय-व्यवहारकी सन्धि कैसे करनी? निश्चय-व्यवहारकी सन्धिमें ही उलझ जाते हैं।

गुरुदेवकी निश्चयकी धून चढी थी तो निश्चयसे कहते थे, परन्तु उनका आशय वैसा नहीं था। उनका आशय अन्दर सब सन्धिपूर्वक था। कोई बहुत खींँच लेता तो गुरुदेव उसे कोड़े मारते थे। ऐसा था। बहुत खींँच ले तो उन्हें पसन्द नहीं आता था। .. समझना मुश्किल है। बात तो एक ही होती हो। कोई ऐसा कहे कि हम कहते थे वैसा ही कहते हैं। कोई इस ओर खींँचता हो तो ऐसी बात करे तो कोई उस ओर खींँचे तो... लाभके कारण कहते हैं। परन्तु समझना कि निश्चयको मुख्य रखकर व्यवहार

साथमें होता है। व्यवहारका निषेध... दृष्टि वैसा निषेध करे, परन्तु व्यवहारका निषेध ऐसा नहीं होना चाहिये कि पर्याय आत्मामें सर्वथा है ही नहीं।

पर्याय न हो तो वेदन किसका? मोक्षमार्ग किसका? साधक दशा कैसी? सब कैसा? आगे बढना क्या? कुछ भी नहीं रहता। मुनि चारित्रमें आगे बढ़ते हैं। वीतरागदशा प्रगट करते हैं। कब वीतरागता हो? कब हो? गृहस्थाश्रममें सम्यग्दृष्टि ऐसी भावना भाते हैं। इसी क्षण वीतरागता होती हो तो यह कुछ (नहीं चाहिये)। दृष्टिके ज़ोरमें ऐसा नहीं कहते हैं कि दृष्टिके ज़ोरमें वह सब आ गया। वह तो होगा, जब होना होगा। ऐसा नहीं कहते। कब ऐसी पर्यायकी शुद्धि होगी? कब ऐसा पुरुषार्थ होगा? कब ऐसी पर्याय प्रगट होगी? ऐसी शुद्ध निर्मल पर्यायें कब प्रगट होगी? ऐसी पुरुषार्थकी धारा मुझे कब शुरू होगी? ऐसी पुरुषार्थकी भी भावना भाते हैं। द्रव्यदृष्टि प्रगट हो गयी, अब क्या पुरुषार्थ (करना)? द्रव्यदृष्टिमें पुरुषार्थ आ गया। वह तो एक द्रवयदृष्टिकी बात है। परन्तु पुरुषार्थकी भावना भी साथमें ऐसी रहती है। कब वीतरागता होगी? कब यह सब छूट जाये? कब मैं मेरे आत्माकी स्वानुभूतिमें लीन हो जाऊँ? बाहर नहीं आऊँ, ऐसा दिवस मुझे कब आयेगा? ऐसी भावना भाते हैं। क्षण-क्षणमें ऐसी भावना उसे बहुत बार आ जाती है। सर्वथा निषेध नहीं होना चाहिये। उसकी मुख्यता-गौणता होती है, उसका निषेध नहीं आना चाहिये। उसका प्रयोजन .... समझना चाहिये। परको जानता ही नहीं, तो-तो ज्ञान और ज्ञेय, सब उसमेंसे निकल जाता है।

मुमुक्षु :- माताजी! द्रव्य और पर्यायके भेदज्ञानके लिये, द्रव्य और पर्यायके बीच भेदज्ञानके लिये, यह पर्याय इस गुणकी अथवा यह पर्याय इस ..की है, इतना रखकर पर्याय प्रतिक्षण अपने षट्कारकसे परिणमति है, वह कथन है या वास्तवमें वस्तुस्थिति है? वस्तुस्थिति अर्थात् द्रव्य-पर्याय मिलकर एक पूरी वस्तु है, उसका स्वीकारपूर्वक द्रव्य और पर्यायका भेदज्ञान करना हो, तब यह पर्याय इस द्रव्यकी है, अथवा ज्ञानकी पर्याय ज्ञानगुणकी है, इतना रखकर पर्याय अपने षट्कारकसे परिणमति है, ऐसा कहना और पर्यायका कर्ता वास्तवमें द्रव्य ही है। यह तो एक अपेक्षासे कहनेमें आता है। इन दोनोंमें वास्तविकता क्या है?

समाधान :- पर्यायका कर्ता द्रव्य...?

मुमुक्षु :- स्वतंत्रपने अपने षट्कारकसे परिणमती है? अन्दरके भेदज्ञानका जब विचार करें, परद्रव्यकी अपेक्षासे तो ऐसा कहें कि द्रव्य पर्यायका कर्ता है, पर्यायका करण है आदि षट्कारक द्रव्य और पर्यायके अभेद कहे। और जब अन्दर-अन्दर भेदज्ञानका विषय करना है, तब द्रव्य कूटस्थ है और पर्यायके षट्कारकसे पर्याय स्वयं स्वतंत्रपने परिणमति है, ऐसा जो कहनेमें आता है, स्वतंत्र परिणमे उसमें इतनी अपेक्षा तो रखी

है कि यह पर्याय इस द्रव्यकी है और यह पर्याय इस गुणकी है। (पर्याय) अपने षट्कारकसे परिणमति है, वह वास्तवमें वस्तुस्वरूप है या प्रयोजनकी सिद्धिके लिये कहनेमें आता है?

समाधान :- वह ज्ञानमें जाने कि इस गुणकी यह पर्याय है और इस गुणकी यह पर्याय है, ऐसा जाने। परन्तु वास्तवमें वह पर्यायका करण और पर्याय कर्ता, पर्याय संप्रदान, पर्याय अपादान वह यथार्थमें तो द्रव्यमें लागू पड़ता है। पर्याय स्वतंत्र (है)। पर्यायको गुणका आश्रय है और पर्यायको द्रव्यका आश्रय है। स्वयं द्रव्यदृष्टि करके मैं शुद्धिरूप पुरुषार्थ करके उसका परिणमन करुँ, कैसे स्थिरताकी निर्मलता वृद्धिगत करुँ, कैसे स्वानुभूतिकी ओर जाऊँ, इस तरह अपनी पर्यायकी निर्मलता प्रगट करनेकी भावना रहती है।

यदि वैसे पर्याय स्वतंत्र हो जाय, पुरुषार्थका उसे आधार न हो और वह स्वतंत्र हो जाय तो उसकी भावना कैसे रहे कि मैं यह पुरुषार्थ करुँ? पर्यायकी निर्मलता (कैसे प्रगट करुँ)? केवलज्ञान कैसे प्रगट हो? उसमें पुरुषार्थ तो स्वयंको करनेका ही है। पर्याय स्वतंत्र परिणमे तो भी पुरुषार्थ तो स्वयंको करनेका है। स्वतंत्र है भी और स्वतंत्र नहीं भी है। उसको पुरुषार्थका आश्रय रहता है, द्रव्यका आश्रय रहता है। द्रव्यके आश्रय बिना वह पर्याय ऊपर-ऊपर नहीं होती। उसे आश्रय तो द्रव्यका है।

स्वयंकी द्रव्यदृष्टि है, उस द्रव्यदृष्टिका बल बढ़ने पर वह पर्याय स्वतंत्र, परिणमती है स्वयं, परन्तु द्रव्यदृष्टिके बलसे परिणमती है। द्रव्यके आश्रय बिना तो प्रगट नहीं होती है। उसे आश्रय तो द्रव्य और गुणके आश्रयसे पर्याय प्रगट होती है। प्रगट होती है इसलिये उसे प्रगट की, (ऐसा कहते हैं)। पर्याय एक स्वतंत्र वस्तु है, और वह अपनेसे परिणमती है। परन्तु उसकी शक्तियाँ जो हैं पर्यायरूप परिणमनेकी वह द्रव्यमें और गुणोंमें भरी है। उसमेंसे वह प्रगट होती है, अवस्थाएँ प्रगट होती है। अन्दर खजाना भरा है, द्रव्य और गुणोंमें है, उसमेंसे वह प्रगट होती है। अतः उसे आश्रय तो द्रव्यका है। इसलिये मूल वस्तु गुण और द्रव्य, उसमेंसे वह परिणमती है।

स्वयं कर्ता, स्वयं करण... स्वयं उसमें स्वभावसे कुछ दूसरा नहीं कर सकता है या उसमें कोई फेरफार नहीं कर सकता है। उसका जो पर्यायका स्वभाव है, उस प्रकारसे वह परिणमती है। उसकी हानि-वृद्धि, उसका तारतम्यता वह कैसी, उसमें स्वतंत्र है। उसमें कोई फेरफार नहीं कर सकता। उसके पुरुषार्थको द्रव्यदृष्टिके बलसे उसमें जो स्वभाव हो उस रूप परिणमती है। उसमें वह फेरफार नहीं कर सकता है। इसलिये वह स्वतंत्र है। कर्ता, करण, संप्रदान, अपादान। इस तरह उसका जो स्वभाव है, ज्ञानका ज्ञानरूप, दर्शनका दर्शनरूप, चारित्रका चारित्ररूप उसमें वह फेरफार नहीं कर सकता। उसकी हानि, उसकी वृद्धि, उसके अविभाग प्रतिच्छेद, वह सब कैसे परिणमे, वह स्वतंत्र है। लेकिन

उसमें आश्रय द्रव्यका है। द्रव्यके आश्रयसे वह परिणमती है। ऊपरसे नहीं आती है। द्रव्यके खजानेमें वह भरा है, उसमेंसे वह आती है।

मुमुक्षु :- उस अपेक्षासे द्रव्य ही कर्ता है, द्रव्य ही करण है, ऐसा जो कहनेमें आता है वह भी यथार्थ है।

समाधान :- हाँ, वह यथार्थ है। द्रव्यके खजानेमें ही वह सब भरा है। अनन्त-अनन्त शक्तियाँ अनन्त काल पर्यंत परिणमे, वह द्रव्यकी शक्तिमें सब भरा है। उसमेंसे पर्याय परिणमती है। लेकिन पर्यायका फेरफार (नहीं कर सकता है)। उनके जैसे स्वभाव हैं कि, ज्ञानका ज्ञान, दर्शनका दर्शन, चारित्रका चारित्र, उसके अविभाग प्रतिच्छेद, उसकी हानि-वृद्धि, उसकी तारतम्यता वह सब स्वतंत्र पर्याय परिणमती है। उसमें कोई फेरफार नहीं कर सकता। लेकिन जो प्रगट होता है वह द्रव्यमेंसे प्रगट होता है। द्रव्यके बाहरसे नहीं प्रगट होता। उसे द्रव्यका आश्रय है। इसलिये वह द्रव्यदृष्टिके बलसे, लीनताके बलसे, सम्यग्दर्शनके बलसे निर्मल पर्यायें प्रगट होने लगती है।

जबतक दृष्टि बाहर थी, तबतक विभाव पर्याय परिणमती थी। दृष्टि अपनेमें गयी इसलिये स्वभाव पर्यायें परिणमने लगी। जो अपने स्वभावमें भरी है, वह सब पर्यायें प्रगट होने लगी। वीतराग दशा होती है, वहाँ केवलज्ञान आदि प्रगट होता है। वह स्वयं प्रगट होता है, परन्तु उसे आश्रय (द्रव्यका है)। द्रव्यमें केवलज्ञानकी शक्ति है, उसमेंसे वह प्रगट होता है। द्रव्यमें शक्ति है, ज्ञानगुणमें शक्ति है। वह सब गुण द्रव्यमें ही अभेदरूप रहे हैं। एक-एक गुण भले है स्वतंत्र, परन्तु द्रव्यमें अभेदरूपसे रहे हैं। उसमेंसे पर्याय प्रगट होती है। इसीलिये उसे उसका वेदन होता है। पर्याय भिन्न, गुण भिन्न और उसका वेदन भिन्न (ऐसा नहीं है)। गुण अपेक्षासे, पर्याय अपेक्षासे, संज्ञा अपेक्षासे भेद है। परन्तु वह सब शक्तियाँ द्रव्यमें है, द्रव्यमेंसे वह पर्यायें प्रगट होती है। अतः वास्तविक रीतसे द्रव्यमेंसे (प्रगट होती है), इसलिये द्रव्य उसका कर्ता, करण, संप्रदान द्रव्य है। परन्तु स्वतंत्र पर्याय परिणमती है। वह परिणमित होकर जो बाहर आती है, वह स्वयं स्वतंत्र परिणमती है। इसलिये वह स्वयं कर्ता, करण इस तरह पर्यायको स्वतंत्र लागू पड़ती है। कैसी निर्मलता, कैसे अविभाग प्रतिच्छेद, कैसी तारतम्यात, इस तरह स्वतंत्र है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

अमृत वाणी (भाग-४)

(प्रशममूर्ति पूज्य बहेनश्री चंपाबहेन की आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा)

ट्रेक-१३६

मुमुक्षु :- माताजी! ... और बराबर बैठता नहीं था, क्योंकि दोनों विरोधाभासी दिखता था। दर्शनसे मिलान करनेका आता नहीं था। क्योंकि यह ज्ञानगुणकी पर्याय, ... उसके अविभाग प्रतिच्छेद, या गुण-पर्याय स्वतंत्रपने परिणमे, फिर भी द्रव्यके आश्रय बिना पर्याय होती है... एक अपेक्षासे तो द्रव्य ही कर्ता, कर्म,..

समाधान :- हाँ, द्रव्य ही कर्ता-कर्ता (है)। द्रव्यके आश्रयसे (होती है)। ... कहीं खींचा जाता हो, ऐसे वज़न देनेमें आता है। अपेक्षा तो यहाँ गुरुदेव जो कहते थे, वह सबको बरसोंसे ख्यालमें है कि गुरुदेव निश्चय मुख्य रखकर व्यवहार कहते थे यह सबने ग्रहण किया है। परन्तु गुरुदेव व्यवहारको निकाल देनेको नहीं कहते थे। बरसोंसे सुना है इसलिये उस प्रकारका सबको ख्याल है। ... उसकी पक्कड़ नहीं करनी, वैसे पर्यायको निकाल नहीं देना तथापि पर्याय पर दृष्टि नहीं करनी। ऐसे गुरुदेवका आशय वह था।

... तो स्वयं उस बात पर भी उछल पड़ते और निश्चयकी बात आये तो उसमें भी। इसलिये गुरुदेवके (प्रवचनमें) दोनोंकी सन्धि है। उनका उस प्रकारका वर्तन, परिणमन ही ऐसा था। निषेध करे, उसे करना क्या बाकी रहा? दृष्टि उसकी नहीं होती, परन्तु भावना आये, सब बीचमें आये। उस पर वज़न नहीं देना है।

मुमुक्षु :- ...यह पर्याय इस द्रव्यकी और यह पर्याय इस गुणकी है। सब पर्याय स्वतंत्ररूपसे परिणमती है। अब आपके शब्द ग्रहण किये थे, वास्तवमें तो पर्याय स्वतंत्र है... यह पुरुषार्थ करनेमें ऐसी भावना हो कि मैं ऐसा करुँ, ऐसा करुँ। तो यदि दोनों एक न हो अथवा द्रव्यका आश्रय न हो तो... ऐसे शब्दोंमें रहा कि ये स्वरूपसे भिन्न है, वस्तु भी वह है। परन्तु भावमें कहाँ अलग पड़ जाता है, वह अंतरमें ख्यालमें नहीं आता।

समाधान :- द्रव्य कूटस्थ होने पर भी उसे पारिणामिक भी कहनेमें आता है। इसलिये अखण्डमें ऐसे आता है। फिर भी पर्याय परिणमे तो भी वह द्रव्यकी शक्तियाँ हैं, द्रव्यमेंसे परिणमती है। सब पर्याय प्रगट होती है वह द्रव्यमेंसे प्रगट होती है। द्रव्यसे बाहर नहीं है। द्रव्यकी शुद्धि, द्रव्यकी निर्मलता और द्रव्यदृष्टिमेंसे प्रगट होती है। फिर उसकी जो तारतम्यता प्रगट होती है वह सब स्वतंत्र प्रगट होता है। वह स्वयं....

...द्रव्यके स्वभावमेंसे ... परिणमती है। .. कुछ लोग ऐसा मानते हैं। जैसे द्रव्य स्वतंत्र है, वैसे पर्याय (स्वतंत्र नहीं है)। स्वतंत्रता उतनी कि पर्याय परिणमनेवाली है, एक क्षणका सत्... द्रव्य जो अखण्ड सामर्थ्यसे भरा हुआ, परिपूर्ण सामर्थ्यसे भरा हुआ, पर्याय कहाँ वैसी है। जितना सामर्थ्य द्रव्यमें, उतना सामर्थ्य पर्यायमें कहाँ है। पर्याय तो द्रव्यमें है। मुझे वह याद नहीं आया। ... कोई खींचता हो तो उसे प्रयोजनवशात् कहना पड़े कि इसका ऐसा है। कोई कुछ खींचता है। नहीं है, पर्याय सर्वथा नहीं है, पर्याय है ही नहीं, ऐसा थोड़ा ही है। ऐसा नहीं है। व्यवहार नहीं है, पर्याय नहीं है... ... पर्याय स्वतंत्र है, जब परिणमना होगा तब परिणमेगी। स्वयंके कुछ होता नहीं। पर्यायके सब कारक स्वतंत्र हैं। एक गुण दूसरे गुणकी पर्यायको कर सकता नहीं। द्रव्य भिन्न, पर्याय भिन्न, सबके कारक स्वतंत्र। भावना करे, पुरुषार्थ करे तो कौन रहे? बलगुण है वह उसे कर सकता नहीं। तो फिर भावना किसके आधारसे? कौन किसका निमित्त हो और उपादान रहे? कुछ नहीं होगा। ... गुण भिन्न, पर्याय भिन्न, द्रव्य भिन्न, सब भिन्न। किसीको किसीका आश्रय ही नहीं है। आश्रय मात्र बोलने तक सिमीत रह जाता है। फिर अन्दर क्या समझता है, वह कुछ नहीं रहता। आश्रय है, आश्रय है कहने पर भी टूकड़े-टूकड़े मान लेता है। गुरुदेव स्वतंत्रता कहते थे, परंतु ऐसे टूकड़े थोड़े ही कहते थे।

... पर्याय है, स्वतंत्र तो वह स्वयं तक सिमीत है। द्रव्य तो एक वस्तु है। पर्याय तो क्षण-क्षणमें होती है। द्रव्यके आश्रयसे होती है। स्वयं स्वतंत्र है, उसकी तारतम्यता होती है वह स्वतंत्र, उस प्रकारसे स्वतंत्र है। परन्तु उसका पूरा सामर्थ्य द्रव्यमें भरा है। द्रव्यके आश्रयसे होनेवाली है। ऐसा कहनेमें आय, ... सब स्वतंत्र है। तो भी द्रव्य

परिणमता है। अभेद लेने जाय तो द्रव्य परिणमता (है)।

.. अनन्त-अनन्त ... परिणमे तो भी खत्म नहीं होता ऐसे सामर्थ्यसे परिपूर्ण है, इसलिये पर्याय ऐसे ही परिणमती रहती है। पर्याय ऊपरसे होती है? द्रव्यके सामर्थ्यमें अनन्त-अनन्त शक्ति (भरी है)। चाहे जितनी पर्याय परिणमो, अनन्त काल जाय तो भी द्रव्य वैसाका वैसा है। उसमें कुछ कम नहीं होता। ऐसी शक्तिसे भरपूर सामर्थ्ययुक्त द्रव्य है, उसमेंसे पर्याय आती है। उसे द्रव्यका आश्रय है। वह क्षणिक है। परिणमनेवाली, उसमें-पर्यायमें परिणमनेकी शक्ति है। पर्याय स्वतंत्र परिणमे। उसका संप्रदान स्वतंत्र, उसका अपादान, उसका अधिकरण (स्वतंत्र)। उस अपेक्षासे पर्याय स्वतंत्र (कहा)। इसलिये उसे द्रव्यका आश्रय नहीं है, ऐसा नहीं मानना। उस अपेक्षासे है। कर्ता, कर्म, करण (आदि)। जैसे द्रव्यके षट्कारक स्वतंत्र है, वैसे ही उसके (हैं), ऐसा नहीं मानना। दोनोंमें अंतर है। दूसरे द्रव्यका और इस द्रव्यका कर्ता, कर्म सब स्वतंत्र हैं, ऐसी स्वतंत्रता पर्यायमें है, ऐसा नहीं मानना। ऐसी ही स्वतंत्रता पर्यायमें नहीं है, पर्याय तो क्षणिक है। द्रव्य तो अनन्त सामर्थ्यसे भरा हुआ है। उसके षट्कारक स्वतंत्र (आता है), वह अलग है।

... इसलिये उसकी स्वतंत्रता है। पर्यायमें उतना सामर्थ्य नहीं है, वह तो क्षण भरके लिये परिणमती है, दूसरे क्षणमें दूसरी पर्याय आती है। ज्ञान परिणमता ही रहे, ज्ञान खत्म नहीं होता। अनन्त काल पर्यंत आनन्द परिणमता ही रहे तो भी खत्म नहीं होता। द्रव्यके सामर्थ्यसे ... है। संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजनसे भेद है। वस्तुभेद है क्या उसका? वह तो शास्त्रमें भी आता है। वस्तु पर्याय एक भिन्न द्रव्य थोड़ा ही है। द्रव्य नहीं है। तो फिर कितने द्रव्य हो जाय? चैतन्यद्रव्य और चैतन्यका पर्यायद्रव्य, गुणद्रव्य ऐसा हो जाय। जैसा द्रव्य स्वतंत्र है, वैसी ही जातकी पर्याय स्वतंत्र नहीं है। स्वतंत्र कही जाती है, परन्तु स्वतंत्र-स्वतंत्रमें अंतर है।

.. राजा उसका स्वामी है। उसके आश्रयमें रहनेवाले सब स्वतंत्रपने काम करते हो, परन्तु उसका मालिक तो राजा है। ऐसी स्वतंत्रता, जो काम करनेवाले होते हैं वे स्वतंत्रतासे करते हों। राजा उसे पूछे भी नहीं, कुछ नहीं, स्वतंत्ररूपसे करते हों, तो भी मालिक तो राजा ही है। राजाकी ... है। (दृष्टान्तमें) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं।

(यहाँ सिद्धान्तमें तो) राजा जैसे चलता हो, वैसे ही पर्याय चलती है। उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाय तो ऐसे ही पर्याय चलती है। स्वयं अन्दर स्वभावमें, स्वभावकी ओर ज़ोर बढ़ जाय तो पर्याय ऐसे ही चलती है। विभावकी ओर जाय तो वैसे ही पर्याय चले। मूल द्रव्य पर दृष्टि देनेवाला है, वह जैसे चलता हो वैसे ही पर्यायकी डोर चले, दूसरे प्रकारसे नहीं चले। वैसे ही चले।

जो द्रव्य पर दृष्टि है, उसके बलमेंसे जो चलता है, उसी प्रकार पर्याय चले। दूसरे प्रकारसे चले नहीं सकती। उसे आश्रय द्रव्यका है। विभावकी ओर दृष्टि हो तो वैसे ही विभाव चले। ऐसे दृष्टि फिरे तो स्वभाव चले। उसमें यदि उसकी परिणति ज़ोरसे वृद्धिगत हो तो वैसे चले। तो पूरा चक्र वैसे चले। एक उसकी दृष्टि फरि और लीनता फिर तो पूरा द्रव्य, सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन, पूरा चक्र वैसे चले। जिस ओर दृष्टि और परिणति, लीनता जैसे चले वैसे सब चले। यह इस ओर चले तो वह उस ओर नहीं चलता। ... पर्याय दूसरी ओर चले ऐसा नहीं होता।

.. शुद्धात्माकी शुद्धरूप पर्याय परिणमे तो स्वतंत्र परिणमे। परन्तु जैसे द्रव्यकी दृष्टि और लीनता जैसे चले वैसे वह चले। दूसरे प्रकारसे नहीं चल सकता। फिर उसे अलग-अलग करने नहीं जाना पड़ता कि वह भिन्न-भिन्न (चले)। एक चला, उसमें सब परिणति सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन, स्वतः अनन्त गुणका परिणमन शुद्ध होता है। भिन्न-भिन्न अनन्त पर दृष्टि करके भेद करके नहीं करना पड़ता कि सब पर अलग-अलग दृष्टि करके (करना पड़े)। एक पर दृष्टि (देता है) इसलिये पूरा चक्र सुलटा (चलता है)। उसकी उस पर्यंतकी स्वतंत्रता होती है।

... समझाये इसलिये ऐसा लगे कि ये भिन्न कहते हैं। दूसरोंको बिठानेके लिये, दूसरे लक्षण कहकर (कहते थे)। मैं दूसरे प्रकारसे कहती हूँ। .. इस प्रकारसे कहती हूँ और वे दूसरे प्रकारसे कहते हैं। उनको ... करना होता है, मैं दृष्टिकी ओरसे कहती हूँ कि दृष्टि द्रव्यकी ओर मुड़े तो सब पर्याय (इस ओर झुक जाती है)। पर्यायको द्रव्यका आश्रय है।

... देव-गुरु-शास्त्र निमित्त होते हैं, उपादान तो स्वयंको तैयार करना पड़ता है। पहले तो अंश प्रगट होता है, बादमें पूर्णता होती है। पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना। बाहरसे नहीं... ज्ञायक आत्माका स्वरूप पीछाने, भेदज्ञान करे, शरीर मैं नहीं हूँ, विभावपर्याय मेरा स्वभाव नहीं है। शुभाशुभ भाव भी मेरा स्वभाव नहीं है। मैं भिन्न चैतन्यद्रव्य हूँ। ऐसी श्रद्धा-प्रतीत करके उसकी स्वानुभूति करे तो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आगे बढ़कर केवलज्ञान तो बादमें होता है।

स्वानुभूतिमें लीन होते-होते, विशेष-विशेष स्थिरता होती है तब पंचम गुणस्थान, छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें मुनि अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें झुलते हैं, बादमें श्रेणि लगाकर केवलज्ञान होता है। शुरूआत तो ऐसे होती है। उसकी जिज्ञासा करना, महिमा करना, नहीं होवे तब तक उसका अभ्यास करना, ये सब करना।

मुमुक्षु :- माताजी! षट्खण्डागममें आता है न कि मतिज्ञान केवलज्ञानको बुलाता है।

समाधान :- मतिज्ञान बुलाता है। मति-श्रुत (ज्ञान) जिसको प्रगट होता है तो

वह केवलज्ञानको आओ.. आओ... (कहता है)। मतिज्ञान जब आये, मतिज्ञानका अंश प्रगट होता है तब केवलज्ञान अवश्य आता ही है। जिसको स्वानुभूति प्रगट होती है,.... मतिज्ञान परसन्मुख होता था। मति-श्रुत स्वसन्मुख हुआ, स्वानुभूति प्रगट हुयी तो उसको मतिज्ञान प्रगट हुआ। जिसको वह मतिज्ञानका अंश प्रगट हुआ उसे केवलज्ञान अवश्य होता है।

अनादिकालसे उघाड़ तो है, बादमें जब स्वसन्मुख होता है, तब उसे स्वानुभूति प्रगट होती है। स्वसन्मुख मति-श्रुत (होता है)। विकल्प टूटकर स्वसन्मुख होता है तो निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। जिसको स्वानुभूति होती है, (उसको) अवश्य केवलज्ञान होता है। मतिज्ञान अवश्य केवलज्ञानको बुलाता है। उसको तो अवश्य केवलज्ञान आता है। वह अवश्य आता है। मतिज्ञान-श्रुतज्ञान केवलज्ञानको बुलाता है। केवलज्ञानको आना ही पड़ता है। मतिज्ञान-डोरीको खिँचती है स्वानुभूति तो केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

मुमुक्षु :- आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता ही है।

समाधान :- प्रत्यक्ष ज्ञाता है। अनादिअनन्त ज्ञाता है, परन्तु ज्ञाताका भान नहीं है। ज्ञायक-ज्ञाता जब प्रगट होता है, ज्ञायकका परिणमन सम्यग्दर्शनमें आंशिक प्रगट होता है, पूर्ण प्रगट होता है केवलज्ञानमें। प्रत्यक्ष ज्ञाता है।

मुमुक्षु :- अतीन्द्रिय ज्ञानमें?

समाधान :- अतीन्द्रिय ज्ञानमें प्रत्यक्ष ज्ञाता ज्ञायकका वेदन होता है। अतीन्द्रिय ज्ञानमें। बादमें पूर्ण अतीन्द्रिय (ज्ञान प्रगट होता है)।

मुमुक्षु :- श्रुतज्ञानसे जो आत्माको जाने और केवलज्ञानसे आत्माको जाने, उसमें क्या फेर है?

समाधान :- श्रुतज्ञानसे जानता है वह स्वानुभूति प्रत्यक्ष है और वह केवलज्ञान प्रत्यक्ष है। मति-श्रुतको कोई अपेक्षासे परोक्ष कहनेमें आता है, परन्तु स्वानुभूति प्रत्यक्ष है। मतिज्ञानमें मनका थोड़ा अबुद्धिपूर्वक अंश रहता है इसलिये परोक्ष (कहनेमें आता है), परन्तु स्वानुभूति प्रत्यक्ष है। मति-श्रुत प्रत्यक्ष है। केवलज्ञानमें तो मनका अवलम्बन भी नहीं है, वह तो प्रत्यक्ष ज्ञायक है-प्रत्यक्ष ज्ञाता हो गया। प्रत्यक्ष-परोक्षका भेद पड़ता है। परन्तु मति-श्रुत स्वानुभूति प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- माताजी! आप बारंबार कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्रकी समीपता रखे तो अन्दर जानेका अवकाश है। थोडा इसके बारेमें...

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्र जिसके हृदयमें रहते हैं, उसकी भावना रहती है कि मुजे देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य हो। क्योंकि जिसको आत्माकी रुचि होवे उसको ऐसी भी रुचि होती है कि मुजे गुरुका सान्निध्य हो, देवका हो, शास्त्रका भी (सान्निध्य

हो)। उसके श्रवण-मननकी भावना रहती है। फिर संयोग बने, न बने वह बाहरकी बात है, परन्तु उसकी भावना बहुत रहती है कि मुझे सान्निध्य हो। क्योंकि जिसे आत्मा रुचे उसको उसे साधनेवाले पर भी आदर आता है। गुरु साधकदशामें साधते हैं और देव पूर्ण हो गये। इसलिये जिसने इसकी साधना प्रगट करी, उस पर उसको बहुत आदर रहता है। क्योंकि अपनी रुचि है तो अपनेको नहीं होता है, जिसने प्रगट किया उस पर बहुत आदर रहता है। इसलिये ध्येय आत्माका है और देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यकी भावना रहती है। मैं आत्माको कैसे पीछानूं? जिसने पीछाना हो उस पर आदर आता है। जिसको आत्माकी रुचि होती है (उसको)।

मुमुक्षु :- माताजी! आता है न, 'सेवे सद्गुरु चरणको तो पावै साक्षात्'। माताजी! ऐसी कोई ताकत दो कि सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान प्रगट कर सके हम।

समाधान :- 'सेवे सद्गुरु चरण' चरण (सेवे) लेकिन उपादान अपनेसे प्रगट होता है। निमित्त गुरु होते हैं, उपादान अपना होता है। उपादान प्रगट करे तो उसे निमित्त कहनेमें आता है। उपादान अपनेको (तैयार) करना पड़ता है। चरण सेवनेकी भावना अपनी होती है कि मैं चेरण सेवन करके मेरे आत्माको कैसे प्रगट करुँ? ऐसे उपादान अपना तैयार करना पड़ता है।

जो भगवानको जानता है, वह अपने आत्माको जानता है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाना, (वह) अपनेको (जानता है)। अपनेका जानता है, वह भगवानको जानता है। उसे भगवानका कैसा द्रव्य है, गुण है, पर्याय है अपने उपादानसे (जानता है), निमित्तसे इसमें भगवान होते हैं। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। भगवानको जानता है वह आत्माको जानता है, आत्माको जानता है वह भगवानको जानता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। उपादान अपना और निमित्त देव-गुरु होते हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! श्रुतज्ञान द्वारा आत्माको जाने या अरिहंतके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाने? उसमें दोनों बराबर युक्तिसंगत है।

समाधान :- श्रुतज्ञान द्वारा..?

मुमुक्षु :- श्रुतज्ञान द्वारा आत्माको जाने या अरिहंतक भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाने, तो यही अलौकिक युक्ति स्वसंवेदनज्ञान प्राप्त कराती है?

समाधान :- उसमें आ जाता है। जिसने भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाना उसमें श्रुतज्ञान भी साथमें आ जाता है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, उसमें श्रुत अपने आपसे अपने भीतरमें श्रुतज्ञान प्रगट होता है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको जान या श्रुतज्ञान द्वारा जाने, दोनों साथमें होते हैं। उपादान अपना अन्दरमें होता है और भगवानका द्रव्य-गुण-पर्याय (जानना) सब साथमें होता है। श्रुतज्ञानसे केवली जाने, वह ज्ञान द्वारा

या भगवान द्वारा या देव-गुरु-शास्त्र द्वारा कहो या श्रुतज्ञान द्वारा कहो। दोनों साथमें होते हैं।

श्रुतज्ञान ओरसे बात करनेमें आती है तो श्रुतज्ञानकी ओरसे कहते हैं। देव-गुरुकी ओरसे बात करे तो देव-गुरुकी ओरसे (बात आती है)। दोनों साथमें होते हैं। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाने उसमें श्रुतज्ञान आ जाता है। श्रुतज्ञान द्वारा आत्माको जाने उसमें देव-गुरु भी आ जाते हैं। दोनोंमें ऐसा सम्बन्ध आ जाता है।

... कोई कहनेकी बात नहीं है। स्वानुभूति तो अलौकिक है, आत्माकी वस्तु है। आत्मा है, आत्माकी स्वानुभूति (होती है)। विभाव तो अनादि कालमें बहुत वेदनमें आया है, स्वानुभूति तो वेदनमें नहीं आयी है। सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हुआ है, वह तो अलौकिक है। विकल्प टूटकर निराकुल आत्माका आनन्द, अनन्त गुणसे भरा आत्मा, वह तो कोई अलौकिक वस्तु है। स्वानुभूतिमें आती है।

मुमुक्षु :- माताजी! सम्यग्दर्शनकी पात्रता क्या होनी चाहिये?

समाधान :- पात्रतामें तो ऐसी भावना होवे कि मैं आत्माको कैसे प्रगट करुँ? मैं कैसे आत्माको पीछानूँ? विभावमें चैन न पड़े, बाहरमें कहीं चैन (न पड़े), बाहर उपयोग जाय उसमें चैन नहीं पड़े, विभावमें कहीं चैन न पड़े। सुख और शान्ति मेरे भीतरमेंसे कैसे आ जाय? ऐसी बहुत भावना (हो)। मुझे आत्मा कैसे प्रगट हो, ऐसी जिज्ञासा, चैतन्य ज्ञायककी महिमा, मैं ज्ञायकको कैसे पीछानूँ, उसकी महिमा, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, बारंबार उसका अभ्यास, तत्त्व विचार, शास्त्र अभ्यास, उसमें मैं आत्माको कैसे पीछानूँ? प्रयोजनभूत आत्मा। ज्यादा जान लूँ (ऐसा नहीं), परन्तु मैं प्रयोजनभूत आत्मा ज्ञायक उसको कैसे पीछानूँ? उसकी बहुत भावना, जिज्ञासा, लगनी रहती है। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३७

समाधान :- ... पहलेसे .. हो रहा है, अभी भी हो रहा है। गुरुदेव विराजते थे, सब मंगलता छा गयी है। इसलिये वह सब (हो रहा है)। एक साधनाभूमि है न, इसलिये सबको स्फुरता रहता है।

मुमुक्षु :- ... यह निश्चय है या यह श्रद्धागुण है या सुखगुण है, स्वानुभूतिके समय ऐसा कुछ ख्यालमें...

समाधान :- उसे अन्दर भासता है।

मुमुक्षु :- कोई गुणकी परिणति...?

समाधान :- अनन्त गुणकी परिणति उसे ख्यालमें आती है।

मुमुक्षु :- ... ऐसा कुछ भिन्न-भिन्न भासित होता है?

समाधान :- सब गुण तो एक द्रव्यमें ही हैं। परन्तु उसमें अनन्त-अनन्त भाव भरे हैं, अनन्त गुण भरे हैं। उसका भावभासन होता है। केवलज्ञानी प्रत्यक्ष जानते हैं, परन्तु स्वानुभूतिमें भी उसका भावका भासन होता है।

मुमुक्षु :- वह तो स्वानुभूतिके समय ही ख्यालमें आता है।

समाधान :- हाँ, स्वानुभूतिमें ख्यालमें आता है, उसके वेदनमें आता है।

मुमुक्षु :- दर्शनगुणसे देखे ..

समाधान :- नेत्र रहित... वह तो जड़ है, आँख तो जड़ है। आँख कुछ देखती नहीं। अन्दर देखनेवाला चैतन्य है। आँख तो निमित्त है। ये जो बाहरका दिखता है, वह आँख नहीं देखती, आँख तो जड़ है, आँख नहीं देखती है। देखनेवाला अन्दर है। उसकी क्षयोपशम शक्तिके कारण वह सीधा नहीं देख सकता। आँखके कारण ही है। आँख तो जड़ ही है। चैतन्य चला जाता है तो आँख कहाँ देखती है? इसलिये देखनेवाला तो स्वयं ही है, चैतन्य ही है।

अब, जो स्वयं ही देखनेवाला है, उसे आलम्बनकी जरूरत नहीं पड़ती। उसे आलम्बन तो क्षयोपशमज्ञान है इसलिये जरूरत पड़ती है। चैतन्य स्वयं देखनेवाला है। स्वानुभूतिमें उसका देखनेका गुण चला नहीं जाता है। स्वयं देखनेवाला, स्वयं स्वयंको देखता है। उस वक्त बाहर उपयोग नहीं है, परन्तु स्वयं स्वयंको देखता है, स्वयं स्वयंको वेदता

है। भले उसे प्रत्यक्ष केवलज्ञानी हो वैसा नहीं है, परन्तु उसके वेदनमें आता है। देखनेवाला स्वयं है। ये आँख कुछ देखती नहीं। देखनेका गुण ही चैतन्यका है। आँख तो जड़ है। चैतन्य चला जाता है तो आँख कहाँ देखती है? इसलिये देखनेवाला चैतन्य है, जाननेवाला चैतन्य है। जाननेवाला स्वयं है, देखनेवाला स्वयं है। ज्ञायक स्वयं जाननेवाला जो-जो भाव हों, उन सबको जाननेवाला अन्दर है। विभाव एकके बाद एक सब विकल्प चले जाय तो भी जाननेवाला ऐसे ही खड़ा है। बचपनसे लेकर अभी तक क्या-क्या हुआ, सब ज्ञान जानता है। विकल्प तो चले गये हैं, कार्य चले गये तो बी जाननेवाला तो वैसाका वैसा है। जाननेवाला और देखनेवाला वह स्वयं गुणवाला है, जानने-देखनेवाला।

आनन्दगुण है, वह बाहरसे आनन्द मानता है, वह कल्पित है। लेकिन विकल्प टूट जाय, आकुलता टूटकर जो निर्विकल्प दशा आये उसे स्वानुभूतिमें जो आनन्दगुण वेदनमें आता है, उसके साथ उसके अनन्त गुणोंका भावका भासन होता है।

मुमुक्षु :- संचेतता है ऐसा जो अपने कहते हैं, स्वयं अपनेआपको संचेतता है, वह भी एक गुणमेंसे होता है?

समाधान :- स्वयं स्वयंको संचेतता है, वह भी एक जातका गुण है, एक जातका ... है। स्वयं स्वयंको चेतता अर्थात् स्वयंको चेतता है, स्वयं स्वयंको जानता है। संचेतना अर्थात् जानना। उसमें चेतनता है। जड़ता नहीं है। विकल्प टूट गये इसलिये शून्य नहीं हो जाता। विकल्प उसके चले गये इसलिये उसका जानना चला नहीं जाता। विकल्पको जाननेवाला, जो विकल्प आये उसे जाननेवाला, उसे विकल्प छूट गये इसलिये वह शून्य नहीं हो जाता। जाननेवाला खड़ा रहता है। वह जानता है, स्वयं स्वयंको जानता है। स्वयं स्वयंको जानता है, स्वयं स्वयंको देखता है, स्वयं स्वयंके आनन्दका अनुभव करता है, स्वयं स्वयंमें लीनता करता है। अपने अनन्त गुणका भावका भासन होता है।

मुमुक्षु :- अर्थात् भिन्न-भिन्न गुणोंका भी उस वक्त ख्याल आ जाता है।

समाधान :- हाँ, ख्याल आ जाता है। ... अनुपम है, लौकिक अनुभूति है, उससे अलौकिक अनुभूति है। चैतन्य अनुभूति। स्वतःसिद्ध चैतन्य है। उसे किसीने बनाया नहीं है, परन्तु स्वयं जाननेवाला, स्वयं देखनेवाला, स्वयं आनन्दरूप, स्वयं अनन्त गुण और अनन्त शक्तिओंसे भरा है। विकल्प टूट गये इसलिये अकेला स्वयं हो गया इसलिये स्वयंको विशेष अपूर्व निर्विकल्प अनुभव होता है।

मुमुक्षु :- ... और जब परप्रकाशक होता है, तब विकल्प परमें जाता है कि नहीं?

समाधान :- फिर बाहर आये तो भी, स्वानुभूतिके बाद बाहर आये तो उसे भेदज्ञानकी धारा खड़ी रहती है। उपयोग बाहर जाय तो भी मैं ज्ञायक जाननेवाला हूँ, ये विकल्प

आये उससे मैं भिन्न हूँ। ऐसा क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें उसकी भेदज्ञानकी धारा, ऐसी ज्ञानकी धारा उसे सहज रहती है। फिर उसे धोखना नहीं पड़ता। ऐसी श्रद्धा और ज्ञान, अमुक प्रकारकी भेदज्ञान उसे वर्तती ही रहती है। खाते-पीते, कार्य करते हुए, कभी भी निद्रामें, स्वप्नमें भेदज्ञानकी धारा-मैं भिन्न चैनत्य हूँ, मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, ऐसी धारा उसे चलती ही रहती है। बाहर उपयोग जाय तो भी वैसी धारा उसे चलती ही है। सहज भेदज्ञानकी धारा चलती है।

मुमुक्षु :- स्वपरप्रकाशक जब कहते हैं, तब उसका समय भिन्न होता है?

समाधान :- नहीं, समय भिन्न नहीं है। एक समयमें स्वयं स्वयंको प्रकाशता है और स्वयं (परको भी प्रकाशता है)। केवलज्ञान होने पर स्वयं स्वयंको जानते हुए, दूसरा उसमें स्वयं ज्ञात हो जाता है। दो समय अलग नहीं है कि परको जाने तब स्वयंको न जाने और स्वयंको जाने तब परको न जाने। ऐसा नहीं है, समय भिन्न नहीं है। और बाहर उपयोग हो तो भी उसे ज्ञायककी धारा-ज्ञायककी परिणति (चलती है)। छद्मस्थको एक समयमें एक उपयोग होता है। परन्तु ज्ञायककी परिणतिकी धारा उसे वैसे ही चलती है। परिणति तो सहज स्व-रूप रहती है और पर-रूप होता नहीं। स्वयं स्वयंको जानता हुआ दूसरेको जानता है। एकमेक नहीं होता, वह छद्मस्थ भी एकमेक नहीं होता। भेदज्ञानकी धाराकी परिणति रहती है। स्वयं स्वयंको वेदता हुआ स्वयंको जानता हुआ अन्यको जानता है। वेदता हुआ अर्थात् अनुभूतिकी बात अलग है, ये तो अमुक अंशमें शान्ति, समाधिरूप स्वयं परिणमता हुआ अन्यको जानता है। स्वपरप्रकाशक इस प्रकार है।

मुमुक्षु :- अन्यको जानते समय भी उसका विकल्प दूसरेकी ओर जाता है?

समाधान :- विकल्प जाय तो वह विकल्प और मैं भिन्न हैं। मैं जाननेवाला भिन्न हूँ, उस जातकी उसकी परिणति हटती ही नहीं, हटती ही नहीं।

मुमुक्षु :- वह छद्मस्थमें, फिर आगे?

समाधान :- आगे जाय तब तो उसे निर्विकल्प स्वानुभूति होती है तब विकल्प टूट जाता है। फिर उसकी स्वानुभूति जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, ऐसे भेदज्ञानकी धारा तो वैसे ही रहती है कि मैं भिन्न हूँ, ज्ञायक हूँ। ज्ञायकपना उसका बढ़ता जाता है। विकल्पदशा टूटती जाती है और ज्ञायककी धारा बढ़ती जाती है। और निर्विकल्प स्वानुभूति बढ़ती जाती है। स्वानुभूति बढ़ती जाती है। ज्ञायकका तीखापन बढ़ते जाता है इसलिये मुनिपना आता है। फिर क्षण-क्षणमें, क्षण-भणमें आत्माकी अनुभूति होती है। विकल्प कम हो जाते हैं। स्वानुभूति होते-होते केवलज्ञान हो जाता है इसलिये विकल्पका नाश हो जाता है।

... उसका अंश, सम्यक् होता है तब स्वानुभूतिमें आंशिक दशा प्रगट होती है। स्वानुभूति प्रगट होती है तब मुक्तिका मार्ग शुरू होता है। वह कैसे हो? वह करने जैसा है। स्वानुभूतिका मार्ग गुरुदेवने बताया है, उस मार्गकी ओर चले जाना। स्वानुभूति, चैतन्य तत्त्व भिन्न ज्ञायक है, शरीर तत्त्व भिन्न है, विभावपर्याय स्वयंका स्वभाव नहीं है। उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा, उसकी लीनता स्वानुभूति प्रगट करनेसे उसीमेंसे केवलज्ञान प्रगट होता है। केवलज्ञान कहीं बाहरसे नहीं आता है। अंतर आत्मामेंसे प्रगट होता है। स्वानुभूतिकी दशा बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। और सत्य वही है, जीवनका कर्तव्य ही वह है-स्वानुभूति प्रगट करना।

स्वानुभूतिका दीपक प्रगट हो तो पूर्णता प्रगट हो जाय। केवलज्ञान सूर्य है और यह एक चैतन्य(की) स्वानुभूतिका अंश है, वह प्रगट करने जैसा है। भेदज्ञानकी धारा प्रगट करनेसे स्वानुभूति प्रगट होती है। विकल्प टूटकर निर्विकल्प दशा कैसे प्रगट हो, उसका पुरुषार्थ, उसका प्रयत्न, उसका विचार, मंथन, लगनी सब करने जैसा है।

गुरुदेवने मार्ग बताया है। देव-गुरु-शास्त्र सब कहते हैं। देव-गुरुने तो वह प्राप्त किया, देवने पूर्णता की। गुरु साधकदशामें विशेष आगे बढते हैं। स्वयंको वह करना है। देव-गुरु-शास्त्र बताते हैं। जैसे भगवान हैं, वैसा अपना स्वभाव है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, वह स्वयंको जानता है। इसलिये भगवानको जाने। स्वयं कैसे पहचाना जाय? ऐसा स्वयंकी ओर ध्येय रखने जैसा है। स्वयं कौन? चैतन्यद्रव्य, उसके गुण, उसकी स्वभावपर्याय कैसे प्राप्त हो? वह सब यथार्थ ज्ञान करने जैसा है। भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचाने, स्वयंको पहचाने वह भगवानको पहचाने। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। पुरुषार्थ करे, अन्दर दृष्टि करे तो स्वयंमेसे आता है, कहीं बाहरसे नहीं आता है। चैतन्यमें सब स्वभाव भरा है, उसमेंसे प्राप्त होता है। जो है उसमेंसे प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- कैसे पहचान हो?

समाधान :- कैसे पहचान हो? स्वयं स्वभावको पहचाने कि यह ज्ञायक स्वभाव सो मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। यह आकुलतालक्षण है। विभावका लक्षण आकुलता है और ज्ञायकका लक्षण जाननेका लक्षण है। लक्षण द्वारा पहचाने कि यह लक्षण चैतन्यका और यह लक्षण विभावका है। यह जाननेका लक्षण और यह विभाव भिन्न है। ज्ञायक लक्षण पूरा चैतन्य द्रव्य ज्ञायकतासे भरा है और (विभाव) आकुलतासे भरा है। दोनोंको भिन्न करे। लक्षण द्वारा पहचाने। लक्षण द्वारा लक्ष्यको पहचान ले। लक्षण द्वारा पहचाना जाता है। उसके स्वभाव द्वारा पहचाना जाता है।

अंतरमें जो सब विकल्प आये उसे जाननेवाला भिन्न है। जाननतत्त्व पूरा भिन्न है।

गुरुदेवने बताया है। ज्ञायकको पहचान। ज्ञायकता उसका लक्षण है। वह गुण उसका असाधारण है। आनन्दगुण बादमें स्वानुभूतिमें प्रगट होता है, परन्तु ज्ञायकता-ज्ञानलक्षण तो उसका पहचाना जा सके ऐसा है। जाननेवाला सदा जीवंत जागता ही है, उसे पहचाना जा सके ऐसा है। लक्षणसे पहचानमें आये। प्रज्ञाछैनीसे भिन्न करना। उसे लक्षणसे पहचान लेना कि यह लक्षण मेरा और यह लक्षण विभावका है। यह शीतलता पानीकी है और मलिनता कीचड़की है। वैसे अन्दर शीतल स्वभाव आत्मा चैतन्य शांतसमुद्र ज्ञायकतासे भरा हुआ मैं हूँ और यह विभाव है। (दोनों) भिन्न है। सब विकल्प आकुलतामय है। ऊँचेमें ऊँचे भाव हो, बीचमें वह शुभभाव आये तो वह आकुलतासे भरे हैं। निराकुल और शान्तस्वरूप आनन्दस्वरूप आत्मा है। जाननस्वरूपको पहचान लेना।

मुमुक्षु :- आकुलता नहीं लगती है।

समाधान :- विचार करे तो लगे। उसमें सुख लगा है इसलिये आकुलता नहीं लगती है। वह आकुलता है। जिसमें सुख नहीं है उसमें सुख माना इसलिये आकुलता नहीं लगती है। आकुलता ही भरी है। जिसमें उसकी कर्ताबुद्धि (चलती है कि) मैं यह करुँ, वह करुँ, ऐसा करुँ, वैसा करुँ। अंतरमें सूक्ष्म होकर देखे तो आकुलता ही है। आकुलताके सिवा कुछ नहीं है। स्थूल दृष्टिसे उसे सुखबुद्धि लगती है। सूक्ष्म होकर देखे तो सब आकुलता ही है। विभावकी संकल्प-विकल्पकी श्रृंखला आकुलतासे ही भरी है। अकेला निराकुल लक्षण ज्ञानलक्षण वह शान्त स्वभावसे भरा है। यह सब आकुलता लक्षण है। (आकुलता) नहीं लगनेका कारण स्वयंने उसमें सुखबुद्धि मानी है। अनादिकी भ्रान्ति हो गयी है। सूक्ष्मतासे देखे तो दोनों भिन्न ही है। आकुलता ही है।

.. ज्ञायकता, जो समतास्वरूप, रम्यस्वरूप, ज्ञायकतास्वरूप। ... उससे वापस हठता है कि यह सब भिन्न है और मैं भिन्न हूँ। गुरुदेवने वही कहा है और वही करना है। चैतन्यमें ही सब मंगलता भरी है और वही मंगलस्वरूप आत्मा है।

मुमुक्षु :- ... परिणति नहीं होती है। उसमें कहाँ अटकना होता होगा?

समाधान :- पुरुषार्थकी क्षति है इसिलये। निर्णयमें आता है परन्तु उतना पुरुषार्थ करता नहीं है, इसलिये पुरुषार्थकी क्षतिके कारण वह अनुभवमें नहीं आता है। निर्णय तो बुद्धिसे करता है, परंतु यथार्थ जो अंतरमें स्वभावको पहचानकर निर्णय करके उसमें पुरुषार्थ करके तद्गत परिणति करनी, उसमें पुरुषार्थकी क्षति है।

प्रमादके कारण अटक रहा है। स्वयंका प्रमाद है। अंतरमें प्रमाद तोड़कर पुरुषार्थ करे कि यह कुछ नहीं चाहिये, ये सब दुःखसे भरा है। ऐसे अंतर रुचिकी तीव्रता, उतनी लगन लगे, उतना पुरुषार्थका ज़ोर हो तो अंतरमेंसे चैतन्यकी स्वानुभूति प्रगट हुए बिना नहीं रहती। आत्मा पूरा आनन्दसे भरा है और उसका कोई अलग ही स्वभाव

है, अलौकिक अद्भुत स्वरूप है, परन्तु स्वयंके पुरुषार्थकी क्षति है। अपनी आलसके कारण वह दिखाई नहीं देता। अपनी आलसके कारण स्वयंने इतना काल व्यतीत किया है।

गुरुदेव कहते थे न, 'निज नयननी आळसे रे, निरख्या नहीं हरिने जरी'। अपने नयनकी आलसके कारण स्वयं अपने चैतन्यको पहचानता नहीं है, देखता नहीं है, उसे स्वानुभवमें लेता नहीं। पुरुषार्थ करे तो अपने पास ही है, कहीं दूर नहीं है, कहीं बाहर लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है या कहीं दूर है (ऐसा नहीं है), अपने पास ही स्वयं बसा है। स्वयं ही है, इसलिये स्वयं दृष्टि बदले, दिशा बदले तो पूरा चैतन्यका परिणमन चैतन्यमय हो जाता है। उसकी पूरी दुनिया अलग हो जाती है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- गुरुदेवने कहा है न देव-गुरु.. अंतर आत्मामें प्रभावना करनी है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- आपको सुप्रभातकी नवीनता प्रगट करनेका गुरुदेवने कहा है।

मुमुक्षु :- १०२वां वर्ष चल रहा है। कितना आयुष्य हो वह तो भगवानको मालूम, परन्तु धारणा अनुसार १०६ है। गुरुदेवने कहा वह बात सच्ची है...।

समाधान :- लेकिन करनेका तो वही है न। प्रभात अर्थात् एक ही करनेका है।

मुमुक्षु :- वह तो आपकी बात बराबर है कि आत्म सन्मुख होकर अपना कार्य कर सकते हैं। यह बात तो क़बूल है। परन्तु कैसे सन्मुख होना? घरके काममेंसे, दूसरेमेंसे ... हो तब हो न?

समाधान :- कामकाज कुछ नहीं, अंतरकी परिणति अपने पुरुषार्थसे प्रगट होती है। काम कोई रोकता नहीं है।

मुमुक्षु :- ... जितना करे, उतना अपने पुरुषार्थसे करता है। वह बात तो सौ प्रतिशत सच्ची है। उसमें कोई शंका नहीं है।

मुमुक्षु :- इसलिये चार बजे बंकिमको कहा कि मुझे जाना ही है।

समाधान :- स्वानुभूति प्रगट करे तो होता है। परन्तु अन्दरसे स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- लेकिन पहले हमने अभेदज्ञान किया है ऐसा साबित हो, बादमें भेदज्ञान होगा न?

समाधान :- अभेद दृष्टि करके भेद, दोनों साथमें होते हैं।

मुमुक्षु :- उसके पहले अभेदज्ञान ही किया है, इतना दो दिखाई देना चाहिये न।

समाधान :- एकत्वबुद्धि एकत्व और विभक्त। अपना एकत्व और अन्यसे विभक्त।

मुमुक्षु :- स्वयं ही स्वयंको समझाता है, स्वयं ही अपना सच्चा गुरु है, यह तो महाराज साहबने डंकेकी चोट पर कहा है, परन्तु बाहरमें व्यवहारसे गुरु होते तो हैं न!

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा रखकर अपनी महिमा करके पुरुषार्थ करे तो होता है। बहुत सुना है, आपको क्या कहना? गुरुने बहुत उपदेश दिया है। सब समझाया है। गुरुने सब समझाया है।

मुमुक्षु :- अल्प बुद्धिवालेको बारंबार सुननेका मन होता है।

मुमुक्षु :- सिर्फ समझाया है उतना नहीं, उनकी तो अनहद कृपा थी।

समाधान :- कृपा कितनी थी!

मुमुक्षु :- भाई क्या कहते हैं? कुछ भी हो तो भाई क्या कहते हैं?

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३८

समाधान :- ... मन्दिरमें दर्शन करते हो, परन्तु किसीका ध्यान .. वह प्रगट हो वह यथार्थ है। जैसा भगवानने किया। मुनिओं, गुरु सब। गुरुदेवने साधना की, सब मंगल-मंगल है। वह सब मंगलता स्वयंने प्रगट की। चैतन्य पूरा मंगलतासे भरा है, उसकी मंगलरूप पर्यायें प्रगट होती है। ... पूर्णता पर्यंत उसकी मंगलता छा जाय तो अन्दरकी मंगलता ...

देव-गुरु-शास्त्र मंगल हैं। वह मंगलता कोई अलग प्रकारकी होती है। वैसा आत्मा मंगल है। मंगलता, आत्माकी मंगलता दिखा दी है। उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है। ... उसका साधन आदि सब मंगल है। द्रव्य तो अलौकिक अनादिअनन्त मंगल है। ... मंगल। तीर्थंकरका द्रव्य इसलिये विशेष मंगल। मंगलमूर्ति ही थे गुरुदेव।

... देव-गुरु-शास्त्र सुप्रभात है। वही यथार्थ प्रभात है। जैनशासनमें गुरुदेव प्रभातस्वरूप सूर्य थे। जैनशासनमें देव-गुरु सुप्रभात (हैं)। शासनमें सुप्रभात ऊगी थी। गुरुदेव सुप्रभात (थे), शासनमें सुप्रभात (थे)। गुरुदेव बताये वह करनेका है। दीपक प्रगटाते हैं। चैतन्यका दीपक अंतरमें प्रगट करना। अंतरमें दीपक प्रगट करे। पर्याय मंगलरूप, पर्यायरूपी दीपक है वह प्रगट करने जैसा है, मंगलतासे। चैतन्य पूरा सिद्ध भगवानस्वरूप है वह तो। सब दीपक प्रगट करते हैं। ... कैसे हो, वह करने जैसा है।

... अनुभूति हो वह कोई कहनेकी बात है? स्वानुभूति कोई वचनमें तो आ सकती नहीं, वह तो कोई अपूर्व चीज है। जो दृष्टिमें दिखता है वह अलग है और आत्माका स्वानुभव अर्थात् आत्माका अंतरमेंसे आनन्द, ज्ञान आदि अनन्त गुण जो आत्मामें भरे हैं, वह तो स्वयं उसमें दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो प्रगट होता है। विकल्प टूटे, आकुलता जो हो रही है, विकल्पकी आकुलता टूटकर जो स्वानुभूति (हो), विकल्प टूटकर निर्विकल्प हो, वह स्वानुभूति उसके वेदनमें आती है। जगतसे भिन्न जात्यांतर है। जगतके कोई पदार्थके साथ उसका मेल नहीं है। वह तो अनुपम है। उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- .. कैसे समझमें आये कि अनुभव हुआ है? इस प्रकारका है। ऐसा कोई ... उसका वेदन कैसा हो? ऐसा अनुभव हुआ... आप समझाइये।

समाधान :- वेदन तो... बहुत लोग ध्यानमें रहते हैं उसे विकल्प शान्त हो और वेदन हो, वह नहीं। ये तो विकल्प टूटकर जो स्वानुभूति हो उसका आत्मा ही उसे कह दे कि यही मुक्तिका मार्ग है और यही आत्माकी स्वानुभूति है। उसका आत्मा ही उसे अन्दरसे यथार्थ ज्ञान और यथार्थ अनुभूति होती है। बाकी बहुत लोग ध्यान करे, विकल्प मन्द करे और अन्दरमें आकुलता सूक्ष्म भरी हो, परन्तु विकल्प टूटा न हो तो वह कोई स्वानुभूति नहीं है। विकल्प टूटकर भेदज्ञानकी धारा हो कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञाता हूँ, मेरा स्वभाव भिन्न (है), ये विकल्पकी झाल है वह मैं नहीं हूँ, वह तो आकुलतारूप है। उसकी कर्तृत्वबुद्धि छूटकर जो ज्ञायककी (अनुभूति हो), फिर उसे अल्प-अल्प विकल्प होते हैं, परन्तु वह विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है। उसमें भेदज्ञान करके जो उसे उग्रता हो, उसमें विकल्प टूटकर जो स्वानुभूति हो वह कोई अलग होती है। उसका आत्मा ही यथार्थ कह देता है कि यह स्वानुभूति है और यही आत्माका वेदन है।

मुमुक्षु :- आनन्द और सुखसे ज्ञात हो।

समाधान :- आनन्द जगतसे कोई अलग (अनुभवमें आता है)। अभी तक जो वेदनमें आया है उससे अलग जातका आनन्द है। और जो आत्मामेंसे प्रगट होता आनन्द है। उसका मूल अस्तित्व आत्माका है। चैतन्यतासे भरा आत्मा है। उसमें आनन्द है, ज्ञान है, आदि अनन्त गुण हैं। वह आनन्द और सुख कोई अपूर्व उसे प्रगट होता है। भेदज्ञानकी धारा प्रगट करे, ऐसा पुरुषार्थ करे, तत्त्व विचार करे, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा करे, अंतर मेरा ज्ञायक आत्मा मुझे कैसे पहचानमें आये? ऐसे ज्ञायकका लक्ष्य करे। बारंबार अभ्यास करे तो वह प्रगट हो सके ऐसा है।

अमुक जातकी पात्रता तैयार हो तो वह स्वानुभूति प्रगट होती है। बाहर कहीं सुख न लगे, चैन न पड़े, विकल्पमें आकुलता लगे। ज्ञायक लक्षण आत्माका है उसे स्वयं गहराईमें जाकर ग्रहण करे। मात्र बुद्धिसे नहीं परन्तु उस तत्त्वमेंसे उस वस्तुको पहचाने-चेतनको, तो यथार्थ स्वानुभूति हो।

मुमुक्षु :- अन्दर जानेके लिये भेदज्ञान करनेकी जरूरत है?

समाधान :- हाँ, भेदज्ञान करनेकी जरूरत है।

मुमुक्षु :- अन्दर जानेके लिये अनुभव करनेके लिये भेदज्ञानसे भिन्न तो करना पड़ेगा।

समाधान :- भेदज्ञान करना। आत्माको लक्षणसे पहचान ले कि मैं ये जाननेवाला ज्ञायक हूँ। ये सब जो जाननेमें आता है वह आकुलतारूप है, वह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप तो शान्ति, आनन्द, ज्ञायकता जाननेवाला मैं, ऐसे स्वयंको पहचानकर उसका भेदज्ञान (करे)। क्षण-क्षणमें भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, उसकी उग्रता हो तो

विकल्प टूटकर स्वानुभूति हो। वह उसका उपाय है। चैतन्य पर ऐसी एकत्वबुद्धि और परसे विभक्त। अर्थात् परकी ओरसे विभक्त भेदज्ञान और चैतन्यकी ओर एकत्व (हो) कि मैं चैतन्य हूँ। इस प्रकार अपने अस्तित्वको अभेदरूपसे ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- उदयगत जो विस्मृत हो जाता है, बाहरके जो भी उदय आये उसमें जुड़ जाते हैं, छूट जाता है, अभ्यास नहीं है न।

समाधान :- हाँ, उदय है उसे वह जानता है। उदय कर्म नहीं करवाता है, अपनी अस्थिरताके कारण होता है। वह जानता है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है। लेकिन वह विभावस्वभाव है, मेरा स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु :- इस प्रकार भिन्न करता जाय?

समाधान :- हाँ, उसे भिन्न करता है कि यह पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, उसे भिन्न करके मेरा स्वभाव ज्ञायक है। इस प्रकार भिन्न करता है। वही भवका अभाव होनेका उपाय है और वही सुखका उपाय है।

मुमुक्षु :- सतत यही करनेका है?

समाधान :- हाँ, वही करनेका है, करना यही है। चैतन्यकी ओर एकत्वबुद्धि और परसे विभक्त, यह करना है।

मुमुक्षु :- अनादिकालसे जो कर्ताबुद्धि है वह उसमें दौड़ जाती है। उसमेंसे वापस मुड़ना है।

समाधान :- कर्ताबुद्धि (है कि) मैं परको कर सकता हूँ, मैं परको रख सकता हूँ, ऐसी जो परके साथ कर्तृत्वबुद्धि है। पर तो स्वयं परिणमता है, उसे-पर पदार्थको स्वयं कर नहीं सकता। विभावपर्याय अपनी अस्थिरतासे होती है। होता है चैतन्यकी पर्यायमें परन्तु वह अपना स्वभाव नहीं है, इस प्रकार उसे जानता है। उसका ज्ञायक होता है।

... तेरे आत्मामें सब भरा है। तेरे आत्माका अस्तित्व ग्रहण कर। उसमें ज्ञान, आनन्द और सुख सब भरा है। इसलिये तू (उसमें) जा। उसमें तुझे सुहाय ऐसा है। वह तेरे रहनेका स्थान है, वह तेरे सुखका धाम है, उसमें तू जा। तो तुझे उसमेंसे सुख प्रगट होगा। रहनेका स्थान, ठिकाना हो तो वह चैतन्य है।

मुमुक्षु :- बाहरमें कहीं अच्छा न लगता हो तो ही इसमें अच्छा लगे ऐसा क्यों?

समाधान :- बाहरमें अच्छा न लगता हो तो ही अच्छा लगे, नहीं तो कहाँ-से? बाहरकी रुचि जिसे लगी है, उसे आत्माकी रुचि नहीं है। जिसे आत्माकी रुचि लगे उसे बाहरकी रुचि टूट जाती है। बाहरमें जिसे रुचि और तन्मयता है, उसे आत्माकी लगन नहीं है, वह आत्माकी ओर जा नहीं सकता। अनादि कालसे स्वयं बाहरमें तन्मय

होकर रहा है। इसलिये आत्माकी लगन नहीं लगायी है, उसमें अनन्त काल व्यतीत हो गया है। आत्माकी रुचि लगे तो ही आत्मामें जा सके ऐसा है।

बहुत लोग कहते हैं, कहीं अच्छा नहीं लगता, अच्छा नहीं लगता। परन्तु तेरे आत्माका अस्तित्व ग्रहण कर। वह तेरे रहनेका स्थान है। उसमें तुझे अच्छा लगे ऐसा है, वह सुखका धाम है। इसलिये तू उसे ग्रहण कर और उस जातका पुरुषार्थ कर। तो उसमेंसे ही सब सुख प्रगट होगा। परन्तु बाहर रुचे नहीं तो ही अन्दर जा सके ऐसा है। बाहर जिसे रुचे उसके लिये तो बाहर संसार खड़ा ही है।

मुमुक्षु :- अन्दरमें सुख देखा नहीं है तो कैसे विश्वास करे?

समाधान :- सुखको देखा नहीं है, परन्तु बाहर कुछ रुचता नहीं और सुखको इच्छता है, सुखकी इच्छा है। उसे बाहर कहीं चैन नहीं है, रुचि नहीं है तो सुखका एक पदार्थ जगतमें है, उसे तू तेरे विचारसे ग्रहण कर। तत्त्वको ग्रहण कर, उसीमें सुख है। जो देव-गुरु और शास्त्र बता रहे हैं, मुनिओंने प्रगट किया है। अनन्त तीर्थंकरोंने सुखका धाम प्रगट किया है और सब महापुरुषोंने बताया है। इसलिये तू विचार कर तो आत्मामें ही सुख है। तुझे दिखाई नहीं देता है। जो तीर्थंकरोंने महापुरुषोंने, गुरुने जो कहा है, तू तत्त्वका विचार करके अन्दर देख तो तुझे भी दिखाई देगा। तो तेरा आत्मा ही अन्दरसे जवाब देगा।

तू तत्त्वका स्वभाव अन्दर देख। जाननेवाला अन्दर विराजता है, ये कुछ नहीं जानता है। जाननेवाला विराजता है, उसमें सुख है। तू विचार कर तो तुझे प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा। उसी मार्ग पर अनन्त तीर्थंकर मोक्षमें गये हैं और उन्होंने वह मार्ग बताया है। उसका तू विश्वास लाकर अंतरमें विचार कर तो तुझे विश्वास आये बिना नहीं रहेगा।

मुमुक्षु :- राग और द्वेषके परिणाममें अटक जाते हैं। कुछ समझमें नहीं आता। ऐसी उलझन होती है...

समाधान :- स्वयंकी रुचि नहीं है। रुचि मन्द है इसलिये अटक जाता है। पुरुषार्थ अधिक करना। अधिक पुरुषार्थ करना, रुचि ज्यादा बढ़ानी। पुरुषार्थ मन्द हो जाय तो बारंबार उसका अभ्यास करना। बाहर कहीं पर रुचि लगे तो उसका प्रयत्न करता ही रहता है। बाहरकी रुचि हो तो बाहरकी महेनत अथवा कोई भी कामकी जिम्मेदारी ली हो तो करता ही रहता है, उसके पीछे लग जाता है। तो इसकी रुचि लगे तो उसके पीछे लगकर बारंबार प्रयत्न करे तो होता है। किये बिना नहीं होता।

मुमुक्षु :- उतावली करनेसे नहीं होता।

समाधान :- उतावली करनेसे नहीं होता है, स्वभावको पहचानकर होता है, धैर्यसे

होता है। प्रमाद करे तो नहीं होता है, आकुलता करे तो नहीं होता है। धैर्यसे, शान्तिसे स्वभावको पहचानकर यथार्थरूपसे विचार करे तो होता है। स्वयं पुरुषार्थ करे। अपने स्वभावको ग्रहण करे तो होता है।

मुमुक्षु :- संतोंके आशीर्वादसे हो तो होता है।

समाधान :- संतोंके आशीर्वादसे स्वयं उपादान तैयार करे तो आशीर्वाद आशीर्वादरूप हो। अकेला निमित्त-पर पदार्थ कुछ कर नहीं देता। स्वयं पुरुषार्थ करे तो आशीर्वाद उसे लागू पड़ता है।

मुमुक्षु :- वास्तवमें अनेक जीवोंका तारते हैं।

समाधान :- तारते हैं... पुरुषार्थसे तिरता है। तीर्थंकर भगवानने तारा,.. भगवानकी वाणीमें उतना प्रबल निमित्तत्व है कि भगवानकी वाणी छूटे तो सब तिर जाय। ऐसा निमित्त है। परन्तु वस्तु स्वभाव ऐसा है कि जिसका उपादान तैयार हो, उसे निमित्त निमित्तरूप (होता) है। जिसका उपादान तैयार न हो उसे निमित्त निमित्तरूप नहीं होता। उपादान तैयार हो उसे ही निमित्त होता है। पुरुषार्थ करे उसे होता है। कोई किसीको तारता हो तो अनन्त तीर्थंकर मोक्षमें गये तो सबको क्यों नहीं तारा?

मुमुक्षु :- शास्त्रज्ञान..

समाधान :- प्रयोजनभूत तत्त्वको पहचाननेके लिये कि मैं चैतन्य भिन्न हूँ। यह भिन्न है। अतः प्रयोजनभूत (जानना)। ज्यादा जानना और ज्यादा धोखना, ऐसा प्रयोजन नहीं है। तत्त्वका विचार करना। मूल प्रयोजनभूत चैतन्यतत्त्वकी पहचान हो उतनी जरूरत है। परन्तु उससे ज्यादा जरूरत... स्वयं ज्यादा अभ्यास करे तो उसमें कोई नुकसान नहीं है, परन्तु वह ऐसा मानता हो कि इसका अभ्यास करनेसे ही होगा, ऐसा नहीं है। अंतर दृष्टि करे तो हो। शास्त्र अभ्यास करे परन्तु अंदर दृष्टि न करे तो नहीं होता है। दृष्टि स्वयंमें करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- बात तो यहीं पर आती है, घुमफिर यहीं आती है।

समाधान :- घुमफिर कर स्वयंको ही करना है, दूसरा कोई नहीं कर देता।

मुमुक्षु :- मार्ग अन्दरसे ही मिलेगा।

समाधान :- अंतरमेंसे मार्ग मिलता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- अनन्त तीर्थंकरों मार्ग बता गये हैं, करना स्वयंको ही है। गुरुने वाणी बहुत बरसायी है। मार्ग अत्यंत स्पष्ट कर दिया है। किसीको कहीं भूल न रहे उतना गुरुदेवने स्पष्ट किया है। इसलिये स्वयंको ही करना है। अपनी कचासके कारण स्वयं करता नहीं है। अपनी भूल है। निमित्त तो प्रबल होता है भगवानकी वाणीका, गुरुकी

वाणीका निमित्त प्रबल (है)। उपादान स्वयं तैयार न करे तो गुरु अथवा देव क्या करे? प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। स्वयं पुरुषार्थ करे, स्वयं निमित्तको ग्रहण करे कि गुरु क्या कहते हैं? भवगान क्या कहते हैं? स्वयंको ग्रहण करना चाहिये।

समाधान :- .. आत्मामें कुछ नवीनता प्रगट करनी है। अनन्त कालसे बाहरका सब करता रहा है, अंतरका कुछ नहीं किया है। अंतर दृष्टि करके अंतरमें कुछ नवीनता प्रगट करे। भेदज्ञान करके दृष्टि स्व सन्मुख करके कुछ नवीन पर्याय प्रगट हो, भावना (करे)। ज्ञाता पर दृष्टि (करे)। ज्ञाताको पहचानकर उसका भेदज्ञान करके स्वानुभूति प्रगट करे उसकी भावना, अभ्यास करे। बाकी शरीर तो शरीरका काम करता रहे। आत्मा स्वतंत्र है। आत्माको जो करना है (उसमें) स्वयं स्वतंत्र पुरुषार्थ करके कर सकता है। गुरुदेवने बहुत कहा है।

दिशा अपनी ओर स्वसन्मुख करके अपनेमेंसे ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी पर्यायें प्रगट करनी, वही करना है। वही नवीनता है। जीवनकी नवीनता वही है कि अंतरमेंसे कुछ नवीनता प्रगट हो। और वही मार्ग है। सुखका मार्ग, आनन्दका मार्ग वही है। बड़े-बड़े राजाओंने भी वही मार्ग ग्रहण किया है। वही करने जैसा है। चक्रवर्ती आदि सबने वही मार्ग ग्रहण किया है। यथार्थ वही करना है।

(देव-गुरु-शास्त्रको) हृदयमें रखना। आत्माकी अंतर दृष्टि करके आत्माका स्वरूप प्रगट करना। उसके लिये तत्त्व विचार, शास्त्र अभ्यास आदि करना। आत्मा स्वयं स्वतंत्र है। चैतन्य आत्मा स्वतंत्र है इसलिये आत्माका पुरुषार्थ आत्मामें करना।

... के कारण कि मैं शरीर, विभाव मैं, संकल्प-विकल्प आदि मानों मैं हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि हो गयी है। वह एकत्वबुद्धि तोड़कर अंतर दृष्टि करे तो आत्मा पहचाना जाय ऐसा है। गुरुदेवने वह मार्ग बताया है और वह मार्ग कोई अपूर्व है। आचार्य भगवंत, गुरुदेव आदि सब वही कहते हैं कि आत्मा अंतरमें है। अंतरमें सुख है, अंतरमें आनन्द है, बाहर कहीं नहीं है। बाहर जीव व्यर्थ प्रयत्न करता है। अनन्त कालसे अनन्त जन्म-मरण करता है। मानों बाहरसे कहींसे मिलेगा। ज्यादासे ज्यादा बाहरसे थोड़ी क्रिया कर ले अथवा कुछ कर ले तो मानों धर्म हो गया, ऐसा मानता है। परन्तु धर्म तो अंतरमें रहा है। शुभभाव करे तो पुण्य बन्ध होता है, देवलोक मिलता है। परन्तु भवका अभाव तो अंतर आत्मा-शुद्धात्माको पहचाने तो ही होता है। इसलिये अंतर आत्माकी दृष्टि करके पहचाननेके लिये तत्त्व विचार, शास्त्र स्वाध्याय, गुरुका उपदेश (श्रवण करना), वह सब जीवनमें करने जैसा है। उसका विचार करके आत्मा पहचाने तो भवका अभाव होता है। अंतर आत्मा विराजता है और कोई अपूर्व तत्त्व है। वह ज्ञान, आनन्दसे भरा है। उसे पहचानने जैसा है। और वह स्वानुभूतिमें प्रगट होता है।

ये विकल्पकी झाल है, वह टूटकर जो निर्विकल्प स्वानुभूति हो, सिद्ध भगवानका अंश प्रगट होता है, वह करने जैसा है। जीवनमें वह कैसे हो, वही सत्यार्थ मुक्तिका मार्ग है। गुरुदेवने और अनन्त तीर्थंकरोंने सबने वह मार्ग दर्शाया है।

मुमुक्षु :- स्वाध्याय मन्दिरमें सब बताया, आपका भूतकाल, भविष्यकाल। ये सब क्या है? आश्चर्य होता था कि ये सब है। ... भूत, भविष्य और वर्तमान सब बताया है...

समाधान :- अंतर आत्माको पहचाने। आत्मा ज्ञानसे भरा है। त्रिकाल केवलज्ञानी जगतमें है, वे लोकालोकको जानते हैं, समय-समयको जानते हैं। ये तो एक अल्प है। ज्ञान तो जीवका स्वभाव है। अंतर स्वानुभूति करके आत्मा प्रगट करना, वही सत्यार्थ है। भूत, भविष्य और वर्तमान वह तो आत्माका जाननेका स्वभाव ही है। समय-समयका जाने ऐसे केवलज्ञानी भगवान जगतमें विराजते हैं। ये तो एकदम अल्प है और वह तो आत्माका स्वभाव ही है, जान सके ऐसा है।

अनन्त जन्म-मरण करते-करते यह जीव आया है। कोई कहीं जन्मता है, कोई कहीं जन्मता है। स्वयंके जैसे पूर्वके उदय हों, उस अनुसार जन्म लेता है। उसमें कोई पूर्वका कारण है। पूर्वमें अनन्त भव करके आया है। वर्तमान जिस प्रकारका स्वयं करता है, उस जातका उसका भविष्य होता है। इसलिये ज्ञानस्वभावी आत्मा है। विकल्प तोड़कर आत्मामें ज्ञानकी निर्मलता हो तो वह सब प्रगट हो सके ऐसा है। आत्मा ज्ञानस्वभावसे भरा है। आत्मामें अनन्त ज्ञान है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- जिसे आत्माका करना है, आत्माकी खरी जिज्ञासा जागृत हुयी हो, वह सच्चे सत्पुरुषको पहचान लेता है। जिसे भवका अभाव करनेकी जिज्ञासा जागी हो, उसका हृदय ऐसा पात्र हो जाता है कि सच्चे गुरु कौन है, उनकी वाणी, उनका हृदय, उनका अंतरंग हृदय किस प्रकारका है, उनकी वाणी द्वारा और अमुक प्रकारके उनके परिचय द्वारा पहचान लेता है कि ये सत्पुरुष है। जिसे खरी जिज्ञासा जागृत हुयी है, वह पहचान ही लेता है। ऐसी स्वयंकी तैयारी चाहिये। तो सत्पुरुष पहचानमें आये बिना नहीं रहते। गुरुको पहचाना जा सके ऐसा है। जिसके हृदय-नेत्र ऐसे निर्मल हो जाय, वह सच्चे सत्पुरुषको पहचान लेता है। जिसे आत्माकी जिज्ञासा जागृद हुयी हो, प्रथम आत्माकी जिज्ञासा तैयार करनी। जिसे बाहरमें कहीं रुचि नहीं लगता, जिसे कहीं सुख नहीं लगता, ऐसी यदि जिज्ञासा हो और जिसे आत्माका ही करना हो, उसे स्वयं विचार करना, स्वाध्याय करना, सच्चे गुरुको पहचानना, सच्चे गुरु क्या कहते हैं, कैसा मार्ग बताया है, सच्चे गुरुकी पहचान करके वे क्या कहते हैं, उस मार्गका

निश्चय करना, विचार करना। उसकी रुचि आत्माकी ओर जानी चाहिये। जबतक बाहरकी रुचि है, जिसे बाहरमें रुचता है उसे तो आत्माकी ओर (आना कठिन है)। इस जन्म-मरणसे, इस विकल्पकी झालमें जिसे शान्ति नहीं लगती है। शान्ति कहाँ है उसकी जिसे खोज करनी हो तो उसे विचार करना, लगन लगानी, उस जातके शास्त्र पढना, उस जातके गुरुका परिचय करना। उस प्रकारका सत्संग करना कि जिससे उसे सच्चा मार्ग मिल जाय। सच्चा मार्ग मिले तो उस प्रकारका विचार, लगनी सब वही करने जैसा है। लेकिन आत्माकी अंतरमेंसे लगनी चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१३९

समाधान :- .. हाँ, सब उसीमें आ गया, सम्यग्दर्शनका उपाय। भेदज्ञानकी धारा प्रगट करनी, अन्दर ज्ञायकको पहचाननेका प्रयत्न करना। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, ज्ञायक चैतन्यतत्त्व क्या है? और भेदज्ञानकी धारा, विकल्पसे भिन्न आत्मा निर्विकल्प तत्त्व है उसे पहचानना। उसे पहचाननेका प्रयत्न करना। अंतरमेंसे ज्ञाताकी धारा प्रगट करनी। क्षण-क्षण लगन लगानी।

... कहीं और नहीं है, धर्म आत्मामें है। धर्म.. भगवानने तीर्थंकर भगवंतोंने यही ... स्वभावमेंसे धर्म प्रगट किया। अतः आत्माको पहचानना। बाहरसे क्रिया करनी, उसमें धर्म नहीं है। धर्म आत्मामें है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- बाहरसे ऊपरी दृष्टिसे ... सब ऐसा कहे न, दया पालो, समता करो, ऐसा सब आये इसलिये वह सब एकसमान लगे। कषायकी मन्दता आदि सबको ... कहे। अंतर चैतन्यतत्त्वको पहचानना वह अलग बात है। स्वभावमें धर्म रहा है। वह बात ही अलग है। शुद्धात्मामें धर्म है। शुद्ध स्वरूपको प्रगट करना सो धर्म है। वह सब शुभभाव पुण्यबन्धका कारण है। उसमेंसे पुण्यबन्ध हो। देवलोक मिले, भवका अभाव नहीं होता। भवका अभाव शुद्धात्माको पहचाननेसे होता है। .. बादमें विचार करना, पहले आत्माको पहचानना। आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करनेसे वह सब क्या है, वह समझमें आ जायगा।

इस आत्माका स्वभाव कैसे प्रगट हो? मोक्ष कहाँ रहा है? मोक्ष आत्मामेंसे प्रगट होता है, मोक्षस्वरूप आत्माका है। उसे विभावसे भिन्न करनेका प्रयास कैसे हो? वह वस्तु स्वरूप क्या है? आचार्य क्या कहते हैं? उसका विचार करके अन्दर निर्णय करना। तो बाकी सब बादमें समझमें आयगा। मोक्ष स्वभाव कैसे प्रगट होता है, इसका प्रथम निर्णय करना। इसलिये सच्चा धर्म कौन-सा है, अंतरमें है वह मालूम पड़ेगा, बादमें संप्रदाय आदि समझमें आयेगा। पहले संप्रदायका विचार करे तो उसमें कुछ मालूम नहीं पड़ता, पहले निर्णय आत्माका करने जैसा है। उसमें सब प्रकारका समाधान आ जाता है। कोई कर नहीं देता। निर्णय तो स्वयंको ही करना पड़ता है।

तत्त्व है वह स्वयं स्वभाव आनन्दस्वरूपसे भरा है। उसमेंसे (प्रगट होता है)। शुभभाव करे तो उस क्रियासे पुण्य बन्ध होता है। पुण्यसे देवलोक मिलता है। पुण्य भी विकल्प है। वह आकुलता है, परन्तु बीचमें आता है। शुद्धात्मा.. शुद्ध स्वभाव प्रगट न हो तब तक बीचमें शुभभाव आते हैं, लेकिन उससे पुण्यबन्ध होता है।

... क्रिया करे तो धर्म होता है, इतनी सामायिक की, फलाना किया, पूजा की, ... ऐसी मान्यता (थी)। परका कर सकते हैं, परका कुछ कर देते हैं, ऐसी सब मान्यता (थी)। गुरुदेवके प्रतापसे कोई किसीका कर नहीं सकता। स्वयं .. बाह्य क्रियासे धर्म नहीं होता। अंतर स्वभाव परिणति प्रगट (हो), स्वभावकी चैतन्य ओरकी क्रियामें धर्म रहा है, यह गुरुदेवने प्रगट किया। .. जैनोंमें ऐसा आये कि अनादि अनन्त आत्मा है, परन्तु मान्यतामें कुछ नहीं। मानों भगवान कर देते हों, ऐसा। अन्दर मान्यता देखो तो ऐसी पड़ी हो। भगवान कर देते हों।

अपना उपादान तैयार करे तो होता है। कोई द्रव्य किसीका कर नहीं सकता। भक्तिभाव आये, हे प्रभु! आप मुझे तारिये, ऐसा कहे। परन्तु स्वयं पुरुषार्थ करे तो भगवान निमित्त होते हैं। वह सब दृष्टि गुरुदेवने (दी), मार्ग बताया। .. सब पड़े थे। दृष्टि ही यथार्थ नहीं थी वहाँ मार्ग कहाँ स्पष्ट होगा? इतना पढ लो तो ज्ञान होता है। सब छोड़ तो वैराग्य हो गया। अंतर परिणतिमें वैराग्य, विभाव परिणतिसे तुझे वैराग्य आये, स्वभावकी ओर तेरा वेग जाय, वह सब वैराग्य (है)। स्वभावकी ओर झुके तो परसे निवृत्ति हो और स्वभावकी ओर तू झुके तो वैराग्य (है), वह सब वैराग्यकी परिणति अंतरमें (होती है)। .. तो वैराग्य हो गया।

प्रयोजनभूत तत्त्वको पहचान तो तेरा सच्चा ज्ञान है। बाकी पढ़ ले, धोख ले उसमें सच्चा ज्ञान नहीं आता। गुरुदेवने पूरी दृष्टि बदल दी। नौ तत्त्व सीख ले, ये स्थानकवासी गुणस्थान सीख ले, वह सब सीख ले, कंठस्थ कर ले तो मानों बहुत सिख लिया।... ज्ञान है, ऐसा कहनेमें आता था। गुरुदेवने सब पर चौकड़ी रख दी। ज्ञान उसमें नहीं है। ज्ञान आत्मामें, सब आत्मामें है। प्रयोजनभूत तत्त्वको पहचान तो वह सच्चा ज्ञान है। ... वह बेचारा उपवास न करे तो उसे धर्म कैसे करना? ऐसी परिस्थिति (थी)। उसके बजाय, तेरे स्वभावको पहचान, भेदज्ञान कर, ज्ञायक तत्त्वको पहचान, अन्दर स्वानुभूति होती है वह मुक्तिका मार्ग है।

.. वह कहे, सिद्ध शिलामें ऊपर जाय उसे मोक्ष हुआ ऐसा कहते हैं। सिद्ध शिलामें ऊपर सिद्ध भगवान विराजते हैं, उसे मुक्ति कहते हैं। गुरुदेव कहते हैं, मुक्ति तेरेमें ही है। स्वभावसे द्रव्य मुक्त ही है। और पर्याय, स्वानुभूति होती है तब आंशिक मुक्ति यहाँ भी होती है। पूरी दृष्टि बदल दी। .. हो, उसके बाद पूर्ण मुक्ति (होती है)।

भावसे मुक्ति अन्दर स्वभावमें होती है। भगवान जैसा है। सब शास्त्रमें आता था, लेकिन दृष्टि किसके पास थी? दिगम्बर पढ़ लेते होंगे, परन्तु दृष्टि (नहीं थी)। मोक्षमार्ग तो बस धोख जाना। दर्शन किसे कहते हैं, ज्ञान किसे कहते हैं और चारित्र किसे कहते हैं। नव तत्त्वकी श्रद्धा, उसका ज्ञान वह ज्ञान और पंच महाव्रत और अणुव्रत पाले वह चारित्र। ... स्थानकवासीमें दूसरा था, देरावासीमें दूसरा था। इतना शास्त्रका ज्ञान है, इसे गोम्मटसार आता है। आत्माकी प्राप्ति नहीं है...

.. स्वभाव था वह प्राप्त हुआ, उसमें क्या है? पूर्णता हो वह करना है। सबकी दृष्टि कितनी बदल दी! निमित्त कर देता है, देव-गुरु-शास्त्र कर देते हैं, इससे ऐसा होता है, उसके बजाय तू तैयार हो तो होता है। सब द्रव्य स्वतंत्र है। कोई किसीको कर नहीं देता। इसलिये तू तेरा उपादान तैयार कर। भक्ति भी आये कि प्रभु! आपने मुझे समझाया, आपने उपकार किया। मेरा उपादान तैयार हो तो होता है, ऐसा ज्ञान भी रखना। गुरुने मार्ग बताया, ऐसी भावना बराबर हो। हम कुछ नहीं जानते थे, आपने ही मार्ग दिया, आपने ही सब दिया, आपने ही आत्मा दिया। भावनामें ऐसा आये, भाव ऐसे आये। लेकिन होता है अपनेसे ऐसा समझे। दिया गुरुने, हमारे पास दृष्टि नहीं थी, दृष्टि देनेवाले आप हैं, हम कुछ नहीं जानते थे। हम कुछ नहीं जानते थे। परन्तु उपादान-निमित्तका सम्बन्ध हुआ।

वह सब द्रव्य-गुण-पर्यायमें उलझ गये थे। ... गुण और पर्याय, सब उसमें आ जाता है। .. एक द्रव्य पर दृष्टि करे तो उसमें सब आ जाता है। ... कुन्दकुन्दाचार्य ऐसे हाथ जोड़कर खड़े हैं। बराबर पूर्व दिशामें.. जैसे यहाँ हमने हाथ जोड़कर रखे हैं, वैसे ही उसमें हाथ जोड़े हैं। हमने किया वह नया नहीं है, पुराने समयमें भी ऐसा किया हुआ है। ... सीमन्धर भगवानका मालूम नहीं था। शिलालेक पढ़कर... अभिषेक किया करते थे। गुरुदेवने सब शिलालेख पढ़कर कहा। ... मानुषोत्तर पर्वत आया तो विमान अटक गया। मनुष्य जा नहीं सकते हैं। ... आ गया, तो वहाँ मुनि बन गये। ... मानो सच्चा हो ऐसे। समवसरणमें कोई वनस्पति नहीं होती है। ऐकेन्द्रिय जीव हों, ऐसा कुछ नहीं होता। वहाँ कुछ ऊगा नहीं होता। ... सुगन्ध... जात-जातका पूजन करे और जात-जातकी स्तुति करे और बोलनेकी शक्ति, सब रचना करनेकी शक्ति, गांधर्व गीत गाये उन्हें गीत गानेकी शक्ति...

भगवान तीर्थंकर .... शाश्वत प्रतिमाएँ हैं और सब देवोंसे पूजित हैं। ... देव जिसकी पूजा करते हैं। देवोंकी स्तुति, भक्ति, पूजा, वाजिंत्र होते हैं। आत्मा द्रव्य कैसा है, तीर्थंकरका द्रव्य उसमें आ जाता है। वह सब प्राप्त करने जैसा है। ... देवों द्वारा पूज्य ... आत्मा भी वैसा है। इसलिये तू तेरे आत्माको प्राप्त कर। आत्माको बता

रहे हैं। भगवानका द्रव्य है, कितना महिमावंत चैतन्य द्रव्य है, ऐसा बता रहे हैं।

... भगवान कैसे और आत्मा कैसा... जैसा भगवानका आत्मा, वैसा अपना आत्मा, ऐसा आता है। इसलिये तू अंतर दृष्टि कर। भगवानकी महिमामें तेरी चैतन्य महिमा समायी है। तू तेरे ध्येयपूर्वक भगवानकी महिमा कर। ... कुदरती ऐसी रचना (है)।

.. मुमुक्षु जहाँ-तहाँ आत्माकी ही बात करते हैं। गुरुदेव विराजते हों वह अलग बात है, परन्तु अभी वर्तमानमें आत्माकी ही बात चलती है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव विराजते थे, अभी आप विराजते हो तो इतनी ... ऐसा लगे...

समाधान :- करना (एक ही है), आत्मा ज्ञायकको पहचानना वही करना है। करना तो यही है।

मुमुक्षु :- ... आपने भी बहुत (दिया है)। अन्दरसे विचार करते हैं तो ज्ञायक.. ज्ञायक.. यह भिन्न ज्ञायक है, वह सब प्रत्यक्ष...

समाधान :- गुरुदेवने तो ... वह भाव, स्वरूप, पहचान सब गुरुदेवने (बताया)।

मुमुक्षु :- गुरुदेव ज्ञायक बताते थे, परन्तु सामान्य जो ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव कहते थे, परन्तु ध्रुवका चित्र मस्तिष्कमें नहीं आता था। परन्तु ज्ञायक कहने पर...

समाधान :- ... दिशा बदल दी, सबके जीवनका परिवर्तन कर दिया, दृष्टि बदल दी। फिर अंतरसे करना वह स्वयंको बाकी रहता है। पंचमकालमें गुरुदेवने जन्म धारण किया, उनका इतना सान्निध्य मिला वह भी महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- वास्तवमें तो पंचम कालका (आश्चर्य) है। इस कालमें वे यहाँ कहाँ? गुरुदेव यहाँ पधारे, माताजी यहाँ पधारे, विदेहकी यहाँ पूरी रचना हो, ...

समाधान :- गुरुदेवने वाणी बरसायी। एक स्थानमें रहकर इतने साल तक वाणी बरसायी। ऐसा तो कवचित् ही इस पंचम कालमें बनता है। विहार करके, गुरुदेवने विहार भी किया और इतने काल तक वाणी बरसायी। कोई त्यागी हो तो जंगलमें हों, कोई कहाँ हो, गुरुदेव तो इस पंचम कालमें कुछ अलग ही हो गया। सबको उपदेश दिया। ... जो सान्निध्य मिला, वैसे ज्ञायकका सान्निध्य प्राप्त कर लेना, वह करनेका है। .. गुरुदेवने इस कालमें शास्त्रके अर्थ सूलझाये। एक-एक शास्त्र पर कितनी बार (प्रवचन किये)। गुरुदेव जागे तो सब बदल गया। सबकी दिशा बदल गयी।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- गुरुदेवका सान्निध्य...

मुमुक्षु :- .. गुरुदेवके साथ प्रसंग, उसमें यह प्रसंग..

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी कृपा और आपके आशीर्वाद, आपका सान्निध्य...

समाधान :- सब पेपरोंमें तत्त्वके विरूद्ध सब आते रहता था। मंगलमूर्ति थे, सब

मंगल-मंगल कार्य हुए। जहाँ पधारे वहाँ मंगल, जहाँ विराजते हों वहाँ मंगल, आत्माकी बातें हों... शास्त्रके अर्थ इतने बरसोंमें किसीने नहीं किये होंगे। समयसार, प्रवचनसार सबके ऊपर कितने अर्थ किये! इक शब्दका इतना विवरण करनेवाले इतने बरसोंमें (कोई नहीं हुआ)। इतनी शक्ति गुरुदेवकी! जहाँ विराजे वहाँ मंगल।

मुमुक्षु :- गुरुदेव स्वयं मंगल थे।

समाधान :- मंगलमूर्ति थे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४०

समाधान :- .. भेदज्ञान करना, महिमा करनी। ज्ञायकमें सब भरपूर भरा है, उसको पीछानना। बाहरमें कुछ नहीं है, भीतरमें सब कुछ है। ज्ञायक अनन्त गुणसे भरपूर अनन्त-अनन्त खजाना, अनन्त शक्तियाँ ज्ञायकमें भरी है। उस पर दृष्टि करनेसे, ज्ञान करनेसे, परिणतिकी लीनता करना वही करना है। वही जीवनका कर्तव्य है। शास्त्र अभ्यास, तत्त्व विचार ये सब करके अपने आत्माको पीछानना। ध्येय वह रखना, वही करनेका। आचार्यदेवकी क्या बात! गुरुदेवने उपकार किया है, अपूर्व मार्ग बताया। सब शास्त्रके रहस्य गुरुदेवने खुल्ले किये हैं। पारिणामिकभाव आदि सबका स्वरूप गुरुदेवने बताया है। अनादिअनन्त आत्मा पारिणामिकभाव स्वरूप है, उसमें ज्ञायकता भरी है। ज्ञायकता भी पारिणामिकभावस्वरूप (है)।

अनादिअनन्त .. स्वरूप शुद्धात्मा, पारिणामिकभावस्वरूप, वही लक्ष्यमें लेने योग्य, वह पूजनीय और महिमायोग्य स्वरूप है। जिसने आत्माके स्वरूपको प्रगट किया है, वह देव-गुरु-शास्त्र भी पूजनीय है। और शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, भीतरमें ज्ञायक भगवान परमपारिणामिकभावस्वरूप पूजनीय है, उसको पीछानना।

मुमुक्षु :- माताजी! जिस जाननक्रियामें आत्मा जाननेमें आती है, वह जाननक्रिया किसके आधारसे प्रगट होती है?

समाधान :- वह जाननक्रिया आत्माके-ज्ञायक-ज्ञाताके-आधारसे जाननक्रि/या होती है, कोई परके आधारसे नहीं होती है। जो ज्ञायक ज्ञाता है, इस ज्ञातामेंसे ज्ञानकी क्रिया प्रगट होती है। जाननक्रिया। अनन्त कालसे कर्तृत्वबुद्धि, परका मैं कर्ता हूँ, पर मेरा कार्य है, विभावका कर्ता हूँ। स्वभावका कर्ता होवे, ज्ञायकता प्रगट होवे तो उसमें जानन क्रिया प्रगट होती है। मैं जाननेवाला आत्मा हूँ। उसकी जाननक्रिया, जाननक्रियारूप परिणति आत्मा ज्ञायकके आधारसे प्रगट होती है। कर्तृत्वबुद्धि... अस्थिरता अल्प रहती है, उसकी कर्तृत्वबुद्धि स्वामीत्वबुद्धि छूट जाती है और ज्ञायकता प्रगट होती है। ज्ञाताधारा जाननक्रिया प्रगट होती है। स्वरूप परिणति, स्वरूपकी स्वानुभूति प्रगट होती है। उसमें जाननक्रिया निरंतर चलती है।

मुमुक्षु :- स्वानुभूतिकी मुख्यता तो सुखकी...?

समाधान :- उसमें आनन्द गुणकी मुख्यता है। अनन्त गुण, सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन। सर्व गुणका अंश शुद्धरूप परिणमित होता है। आनन्दकी मुख्यता होवे तो भी अनन्तासे भरा हुआ आत्मा, उसका वेदन उसमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- माताजी! जिस जाननक्रियामें आत्मा जाननेमें आता है, वह जाननक्रिया विभावको क्या परज्ञेय तरीके जानती है? जैसे भींत जुदी है, ऐसा राग जुदा है, ऐसे वह ज्ञप्तिक्रिया जानती है?

समाधान :- भींत तो परद्रव्य है। राग तो अपनी विभाविक परिणति है। विभाव परिणति है, वह कोई अपेक्षासे पर है। और विभावकी परिणति अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होती है। इसलिये वह तो स्वभावभेद है। वह मैं नहीं हूँ। भींत मैं नहीं हूँ, ऐसे राग मैं नहीं हूँ। स्वभावका भेद करती है। परन्तु राग होता है अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे। वह जानता है कि पुरुषार्थकी मन्दतासे वह राग होता है। परन्तु जानता है कि वह स्वभाव नहीं है, भेदज्ञान करता है। जैसे यह पर है, वैसे यह भी पर है। परन्तु वह पुरुषार्थकी मन्दतासे अशुद्ध परिणति होती है, ऐसे जानता है।

जिसका जैसा कार्य है, वैसा वह जानता है। जाननक्रिया जानती है कि यह पर है, मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा ज्ञानमें रहता है, मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे (होता है)। संपूर्ण वीतरागता हो जाय, वीतराग दशा हो जाय तो रागकी क्रिया भी छूट जाती है। रागका मैं कर्ता नहीं हूँ तो भी अस्थिरता होती है, पुरुषार्थकी कमज़ोरीसे होती है। वह कोई कर नहीं देता है। होता है, अपनी मन्दतासे होता है, ऐसे जानता है।

मुमुक्षु :- है तो अपनी पर्यायमें परिणमन, पर अंतर्मुख हुआ ज्ञान उसमें व्यापता नहीं है, अवगाहन करता नहीं है।

समाधान :- ... नहीं है, इसलिये उसका भेद करता है कि राग मैं नहीं हूँ, ज्ञान मैं हूँ, राग मैं नहीं हूँ, ऐसा भेद करता है। परन्तु जानता है, वह होता है पुरुषार्थकी मन्दतासे। वह मेरा स्वभाव नहीं है, इसलिये वह पर है। पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है।

मुमुक्षु :- अंतर्मुख ज्ञानमें अनाकुल ज्ञानका स्वाद और आकुलित विभावका स्वाद एक समयमें .... से भासित होता है? जुदा-जुदा।

समाधान :- जुदा-जुदा। जितने अंशमें अनाकुलता प्रगट हुयी, सविकल्प दशामें, स्वानुभूतिके बाद जो सविकल्प धारा रहती है, उसमें आंशिक अनाकुलता रहती है और आकुलता, अस्प अस्थिरता आकुलता भी रहती है। दोनोंको जानता है। दोनों वेदन होते हैं। अनाकुलता और आकुलता। जितने अंशमें निराकुलता है, शान्तिका वेदन है, उसको शान्ति, समाधि, निराकुलता उसको भी वेदन करता है और अल्प राग है उसको

भी जानता है। दोनों-ज्ञानधारा और उदयधारा एकसाथ चलती है।

मुमुक्षु :- कभी कहते हैं कि माताजी! वेदनमें आये वही आत्मा है, कभी कहते हैं, त्रिकाली द्रव्य वही आत्मा है। वेदनमें आये वह आत्मा, द्रव्य वह आत्मा नहीं।

समाधान :- वह तो अपेक्षासे कहते हैं। वेदनमें आता है इसलिये वह जैसा है वैसा वेदनमें आता है। ऐसे पर्याय अपेक्षासे (कहनेमें आता है)। बाकी अनादिअनन्त जो ज्ञायक स्वभाव है वही आत्मा है।

मुमुक्षु :- व्यवहारनयसे कथनी कही?

समाधान :- पर्यायका वेदन और द्रव्य (कहा वह) दूसरी अपेक्षासे (कहनेमें आता है) कि अनादिअनन्त आत्मा है वह द्रव्य।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः मतलब उसमें ... क्या होनो चाहिये?

समाधान :- उसमें रमणता नहीं हुई न। ज्ञायककी दृष्टि की, ज्ञान की। उसकी रमणता, उसकी चारित्रकी दशा-वीतरागता प्रगट होनी चाहिये। सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, ज्ञान किया बादमें रमणता प्रगट होती है, स्वरूप रमणता। वीतराग दशा प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्त करनेके बाद भी यह जरूरी है कि ...

समाधान :- पूर्ण प्राप्ति हो जाय बादमें तो कुछ नहीं रहता। बादमें नहीं रहता। अल्प चारित्र है, अल्प स्वरूप रमणता है।

मुमुक्षु :- अभी स्वामीजी तो हमारे सामने नहीं है, लेकिन कहते हैं कि जब कोई तीर्थंकर हों या ... जैसे कि हम लोग बोलते हैं कि कानजीस्वामी मोक्षगामी जीव थे। कानजीस्वामीको कैसे मालूम पड़ा कि वह मोक्षगामी जीव हैं? जैसे अपने पुराणमें आया कि उन्होंने दर्पणके सामने देखा तो उनको अपने पूर्व भवका जन्म दिखायी दिया। वैसे कानजीस्वामीको कब अनुभव हुआ कि वह मोक्षगामी जीव है?

समाधान :- कानजीस्वामीको अंतर स्वानुभूति हुई।

मुमुक्षु :- मगर कभी उसका एक पर्यायार्थिक समय आता है, अभी जैसे कोई भी मोक्षगामी जीव तो हो सकता है, कोई भी हो सकता है, हम भी हो सकते हैं, ये भी हो सकते हैं, ये भी हो सकते हैं, मगर उनका एक काल आयगा-अक समय आयगा तभी उनको महेसूस होगा, नहीं तो ऐसे नहीं हो सकता।

समाधान :- पुरुषार्थ करके उसको स्वानुभूति होती है, वह जान सकता है कि मैं मोक्षगामी हूँ।

मुमुक्षु :- ये तो निश्चित् है कि कानजीस्वामी गुरुदेव मोक्षगामी जीव थे। ये तो

निश्चित है। उनके जानेके बाद उन्होंने कभी कोई मार्गदर्शन दिया। उनके जानेके बाद, मतलब वे हमारे बीचमें नहीं है, उसके बाद। ... उसके बाद कभी उन्होंने कुछ भी चाहे वह पोझिटि साईड़ हो या नेगेटिव साईड़ हो, वह पूछना है, वह जाननेका..

समाधान :- परंपराकी क्या बात है? उपदेश उन्होंने दिया, उन्हें जाना..

मुमुक्षु :- मगर माताजी! आप लोगोंके सम्बन्ध तो पुराने भी है तो हो सकता है कि हर इन्सानसे गलती होती है, चाहे वह तीर्थंकर हो, और मार्गदर्शन उनको गुरुओंसे मिलता है। ..

समाधान :- गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य था। उन्होंने सबको मार्ग बताया है।

मुमुक्षु :- मैं आपको यह बता रहा हूँ कि उनके जानेके बाद कोई चीजमें ऐसा..?

समाधान :- .. उनको कोई इच्छा ही नहीं थी। गुरुदेवको कोई इच्छा नहीं थी।

मुमुक्षु :- उनके अनुसार उनका भी एक वाक्य है, यह उन्होंने बोला कि मैं दीक्षा इसलिये नहीं दिलाता हूँ कि मैं इस रूपमें नहीं आया हूँ, मतलब तीर्थंकर रूपमें नहीं आया हूँ। मतलब उनका वह पार्ट तो बाकी है न?

समाधान :- उनको कोई इच्छा बाकी नहीं थी। वे तो अपना कार्य करते थे। वाणी छूटती थी, सबको लाभ मिलता था।

मुमुक्षु :- फिर उन्होंने आपके लिये..

समाधान :- उनको कोई इच्छा नहीं थी, बाहर कोई इच्छा नहीं थी। सब जीव मोक्ष प्राप्त करे, ऐसा प्रशस्त राग आता है तो वाणी छूट जाती है। बादमें उनको वह विचार नहीं आता है।

मुमुक्षु :- आपके पास उसके बाद कभी नहीं आये? किसी भी रूपमें-सपनेके रूपमें, साक्षात् रूपमें, किसी भी रूपमें।

समाधान :- स्वप्न आये तो उसमें क्या है?

मुमुक्षु :- मोक्षगामी जीवका स्वप्न आये तो उसमें बहुत .. इन लोगोंको स्वप्नमें ही बोलते थे। उनको कोई सामाने आकर नहीं बोलता था। सपनेमें बोलते थे। माताको सोलह स्वप्न आये, उसके बाद त्रिशला माता..

समाधान :- वह तो एक आगाही होती है कि सपना देखकर यह तीर्थंकरका जीव आया है।

मुमुक्षु :- वही मतलब है मेरा।

समाधान :- यह पूछनेका क्या मतलब है?

मुमुक्षु :- बहुत लाभ है। अपनेको यह लाभ है कि अपनी परिपाटी कीधर चलनेवाली है। क्योंकि इसके बाद जो मैं ... वह ये है कि आज जो हम स्थिति देखते हैं,

वास्तविक स्थिति देखते हैं, मैं दिगम्बर हूँ, मगर मैं...

मुमुक्षु :- .. सपना आयेगा वह मानेंगे? ... आप भी नहीं मानते हैं। सपना तो मनोकल्पना है, ऐसा कहेंगे। उसमें कुछ नहीं है। आत्माकी करो, ऐसी कोई झंझटमें मत पड़ो।

समाधान :- गुरुदेवने जो किया, बहुतोंको जागृत किये हैं। हिन्दुस्तानके लोगोंको अध्यात्मकी ... परिणति बहुत लोगोंकी हो गयी है। (जिसकी) नहीं हुयी, उसकी योग्यता। बाकी जिसकी लायकात थी, तो बहुत लोगोंको अध्यात्म, आत्माका विचार करनेवाले बहुत हो गये। बहुत साल पहले तो सब क्रियाकांडमें थे। ऐसा थोड़ा कर लिया, शुद्धि कर ली, अशुद्धि कर ली, इतना पाठ पढ़ लिया, ऐसा कर लिया, इसमें सब पड़े थे। गुरुदेवके प्रतापसे अध्यात्मके शास्त्र, अध्यात्मका वांचन, अध्यात्म स्वरूप.. ऐसा बहुत करने लग गये। बहुत लोगोंका परिवर्तन हो गया।

मुमुक्षु :- एक जगह कहनेमें आता है कि, पर्याय अपने षट्कारकसे उत्पन्न होती है और एक जगह कहनेमें आता है कि, अपने द्रव्यके आधारसे उत्पन्न होती है। तो इन दो निर्णयमें कौन-सा निर्णय जोरदार है जिसमें हम आत्माका लक्ष्य कर सके?

समाधान :- आत्माका लक्ष्य करना। तो पर्याय उस ओर आ जाती है। आत्माकी द्रव्यदृष्टिके आश्रयसे पर्याय उसमें आ जाती है। शुद्ध पर्याय उसमें प्रगट होती है। वह पर्याय स्वतंत्र, अमुक अपेक्षासे स्वतंत्र है। बाकी द्रव्य तो अनन्त सामर्थ्यसे भरा है तो जितना वह द्रव्य स्वतंत्र है, उतनी ही पर्यायको स्वतंत्र कहना वह तो अपने स्वभावसे है अथवा अमुक अपेक्षासे उसके षट्कारक कहनेमें आते हैं, तो भी पर्यायको द्रव्यका आश्रय तो रहता है। पर्यायको द्रव्यका आश्रय तो है। जिस ओर द्रव्यकी परिणति होती है उस ओर पर्याय पलट जाती है। दृष्टि बाहर जाती हो तो उस ओर पर्याय जाती है। दृष्टि शुद्धात्मामें जाती है तो उस ओर पर्याय जाती है। इसलिये द्रव्यका आश्रय तो पर्यायमें रहता है। जितना द्रव्य स्वतंत्र है, पर्यायमें उतना फ़र्क़ है कि षट्कारक है तो भी द्रव्यका आश्रय पर्यायमें रहता है। पर्यायको द्रव्यका आश्रय तो रहता है।

मुमुक्षु :- लक्ष्य द्रव्यका होता है?

समाधान :- लक्ष्य तो द्रव्यका होता है, पर्यायका लक्ष्य नहीं होता।

मुमुक्षु :- और उत्पत्तिकी अपेक्षासे द्रव्यके साथ पर्यायकी उत्पत्ति होती है?

समाधान :- जिस ओर द्रव्यकी दृष्टि, उस ओर पर्याय होती है। पर्याय स्वतंत्र उस अपेक्षासे (कहते हैं कि), पर्यायका स्वरूप स्वतंत्र है। इसलिये पर्याय स्वतंत्र है। बाकी पर्यायमें आश्रय तो द्रव्यका रहता है। ऊपरसे पर्याय होती है किया? ज्ञानकी पर्याय, दर्शनकी पर्याय, चैतन्यकी चैतन्यरूप पर्याय, वह पर्याय ऊपरसे उत्पन्न नहीं होती।

Paryay Dravya se Utpan hoti Hai To Jis Tarah Se Dravya SWATANTRA hai usi Tarah PARYAY bhi SWATANTRA hai (Dravya se Utpan Hone Ke Kaaran).

"PARYAY Apne KSHATKARAK se Utpan Hoti Hai" Is ka Arth yeh hai ki Paryay ko Apne Parinaman mein Kisi Dusre Vastu (Dravya, Paryay) ki Jarurat nahi.

उसे द्रव्यका आश्रय है।

इसलिये द्रव्यकी स्वतंत्रता और पर्यायकी स्वतंत्रतामें फ़र्क़ है। उसके षट्कारक और इसके षट्कारकमें फ़र्क़ है। द्रव्य स्वतंत्र स्वतःसे है। वैसे पर्यायको तो द्रव्यका आश्रय है। उसके षट्कारक समझना है तो उस प्रकारसे समझना कि द्रव्यके आश्रय बिना पर्याय ऊपरसे नहीं होती।

मुमुक्षु :- चन्दुभाईने कहा कि ऊपरसे राग होता है।

मुमुक्षु :- .. आत्माका भी नहीं सकते और पुद्गलका भी नहीं कह सकते, स्वयंने नया खड़ा किया है।

समाधान :- स्वयं नया है। अपना स्वभाव नहीं है। स्वयं जुड़ता है। आकाशके फूलको कोई आश्रय नहीं है, ऐसे नहीं। ... पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। फ़र्क़ है। पर्याय है (उसको) द्रव्यका आश्रय होता है। रागकी बात अलग है। अपना स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु :- पर्यायका वेदन होता है, आलम्बन नहीं होता। और ध्रुवका आलम्बन होता है, द्रव्यका वेदन नहीं होता।

समाधान :- उसका आलम्बन है, पर्यायका वेदन है।

मुमुक्षु :- सब विद्वानोंको, पण्डितोंको सबको बहुत सरल भाषामें बोल दिया। उपकार है, माताजी! अनन्त उपकार है।

मुमुक्षु :- सिद्ध भगवानको जो अव्याबाध आनन्द प्रगट हुआ, चौथे गुणस्थानमें क्या सिद्ध जैसा ही सुख प्रगट होता है?

समाधान :- चतुर्थ गुणस्थानमें सिद्ध भगवान जैसा ही सुख (प्रगट होता है)। आंशिक सिद्ध भगवान जैसा। जाति तो एक है। सिद्ध भगवानको पूर्ण प्रगट हुआ है, वह अंश है। जाति तो जैसा सिद्ध भगवानका स्वरूप है, वैसा अंश प्रगट होता है। द्रव्य तो सिद्ध भगवान जैसा है। सिद्ध भगवानका जो स्वभाव है, वैसा ही स्वभाव आत्माका है। परन्तु प्रगट होता है वह अंश प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- आनन्दका स्वाद आंशिक रूपमें आता है।

समाधान :- अंश आता है, परन्तु सिद्ध भगवान जैसा ही है। भेदज्ञानकी धारा भीतरमें प्रगट कर क्षण-क्षणमें मैं ज्ञायक चैतन्य हूँ, ये मैं नहीं हूँ, ऐसी धारा प्रगट करते-करते विकल्प टूटकर स्वानुभूति होती है। (उसमें) सिद्ध भगवानकी जातिका अंश प्रगट होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४१

मुमुक्षु :- ज्ञायक ज्ञायकी ही है आत्मा।

समाधान :- ज्ञायक स्वरूप ही है। ज्ञायकतासे भरा है। कोई परका कर्ता नहीं हो सकता। अपना स्वभाव ज्ञायक स्वभाव है। ज्ञायकका स्वभाव पीछाने, उसकी श्रद्धा करे, उसमें लीनता करे तो कोई नवीनता, अनादि कालसे जो विभावपर्याय हो रही है, उससे (भिन्न) कोई नवीन पर्याय प्रगट होती है। नवीन होवे वह नवीनता सत्यार्थ रूपमें नवीनता है। नूतन वर्ष तो व्यवहार है, परन्तु अंतरमेंसे नवीनता, कोई नवीन पर्याय प्रगट होवे तो वास्तविक नवीनता है।

मुमुक्षु :- सबको जानता है।

समाधान :- जाननेवाला है। स्वपरप्रकाश। स्वयंको जानता हुआ सबको जानता है। स्वको जाननेमें पर सहज ही जाननेमें आ जाता है। जो स्वको जाने वह परको यथार्थ जानता है। अनादि कालसे मात्र परको जानता है वह स्वको भी नहीं जानता है और परको भी नहीं जानता है। जो स्वयंको जानता है वह परको जानता है। जो स्वयंको नहीं जानता है, वह परको भी नहीं जानता है।

मुमुक्षु :- उसमें आया था, जो ज्ञात होता है, परन्तु जानता नहीं।

समाधान :- ज्ञात होता है। विकल्प करके जानने नहीं जाता, एकत्वबुद्धिसे। स्वको जानते हुए पर ज्ञात होता है। परन्तु स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। विकल्प करके परका कर्ता नहीं होता, उसमें एकत्वबुद्धि नहीं करता है। स्वको जानते हुए पर ज्ञात हो जाता है।

मुमुक्षु :- भूतकालकी पर्याय और भविष्य कालकी पर्याय अपनी ज्ञानकी अपेक्षासे अविद्यमान होने पर भी सबको जानता है, ऐसा स्वभाव है।

समाधान :- ऐसा स्वभाव है। विद्यमान नहीं है तो भी जानता है। ऐसा ज्ञानका कोई अचिंत्य स्वभाव है। अनन्त-अनन्त अगाध ज्ञानशक्ति कोई अपूर्व अचिंत्य है। जो भूतकालमें बीत गई और भविष्यमें होनेवाली है, उन सभी पर्यायोंको आत्मा प्रत्यक्ष जाने ऐसा उसका स्वभाव है। केवलज्ञानमें प्रत्यक्ष जानता है। केवलज्ञानी सब प्रत्यक्ष जानते हैं। अपने आत्माकी अनन्त पर्याय और परकी अनन्त पर्याय, सब जानता है।

स्वयं अपनेमें रहकर जानता है। स्वभावमें रहकर जानता है।

मुमुक्षु :- जो पर्याय प्रगट नहीं हुई है, उसे भी योग्यतारूप जानते हैं या प्रत्यक्ष जानते हैं?

समाधान :- प्रत्यक्ष जानते हैं। यह प्रगट होनेवाली है, ऐसे प्रत्यक्ष जानते हैं। किस प्रकार, कब प्रगट होगी सब प्रत्यक्ष जानते हैं।

मुमुक्षु :- भगवान महावीरको तेरहवें गुणस्थानमें केवलज्ञान था और सिद्ध हो गये, तो उनकी सिद्धपर्यायको भी जानते हैं?

समाधान :- सिद्धपर्यायको भी जानते हैं और स्वयं केवलज्ञानी थे वह भी जानते हैं, सिद्धपर्यायको भी जानते हैं, सब जानते हैं। भविष्यमें ऐसा होनेवाला है, यह हुआ है, ऐसे वर्तमान, भविष्य सब जैसा है वैसा जानते हैं। ऐसा कोई ज्ञानका अपूर्व अगाध स्वभाव है। स्वभाव कोई अपूर्व है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त लोकालोक जाने तो भी उसमें कोई वज़न या दूसरा कुछ होता नहीं, परन्तु अनन्त सहज जानता है। शास्त्रमें आता है न? अणुरेणुवत्। मानों एक अणु हो वैसे। उससे भी अनन्त लोकालोक हो तो भी जाने, ऐसी आत्मामें जाननेकी शक्ति है।

... उसकी भावना करे, उसकी जिज्ञासा करे। देव-गुरु-शास्त्र, जिन्होंने वह स्वानुभूति प्रगट की, जो उसकी साधना करते हैं उसकी महिमा करे। उसे ध्येय एक आत्माका है कि मुझे ज्ञायक कैसे प्रगट हो? एक आत्माका ध्येय है और ध्येयपूर्वक शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र, अंतरमें ज्ञायक। शुभाशुभ विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसी ज्ञायककी भावनापूर्वक एक अंश प्रगट करके स्वानुभूति... वह अंश स्वानुभूतिमें प्रगट होता है, बादमें केवलज्ञान प्रगट होता है। जीवको करना वही है और वही सत्य सुप्रभात है। वह प्रभात प्रगट होनेसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है, पूरा सूर्य प्रगट होता है।

... दृष्टि करे। सब जानने जाय, परन्तु जो स्वयंको नहीं जानता है, वह वास्तविकरूपसे दूसरेको सत्य नहीं जानता है। स्वयंको जानने पर अन्य सहज ज्ञात हो जाता है। स्वयंको जाने उसमें दूसरा सहज आ जाता है।

मुमुक्षु :- जैसा सूर्य है वैसा आत्माका स्वरूप है? जैसे सूर्यमें मलिनता नहीं है, वैसे आत्मामें भी मलिनता नहीं है।

समाधान :- सूर्यमें मलिनता नहीं है, वैसे आत्मामें नहीं है। वह तो दृष्टान्त है। जैसे सूर्य मलिनता रहित है, वैसे आत्माका निर्मल स्वभाव है, उसमें कोई मलिनता नहीं है। वस्तुमें मलिनता नहीं है, पर्यायमें (है)। पर्यायकी शुद्धि, द्रव्य पर दृष्टि करे तो पर्याय निर्मल होती है।

... जैसे एक हजार किरणोंसे प्रकाशित होता है, वैसे आत्मा तो अनन्त किरणोंवाला

है, परन्तु शक्तिरूप है। उसका लक्ष्य करे तो प्रगट होता है, उसकी दृष्टि करे, ज्ञान करे तो प्रगट होता है। ऐसा शक्ति-स्वभाव है।

... उसमें विभाव नहीं है। शुद्ध स्वरूप अनादिअनन्त (है)। वह शुद्धात्मा है। वह अनादिअनन्त स्वतःसिद्ध एक तत्त्व है। मुक्तिका मार्ग है। शुद्धात्माको अनादि कालसे पहिचाना नहीं है। दृष्टि बाहर विभाव पर है। मानों मुझे परसे लाभ होता है और पर ऊपर दृष्टि है। शुद्धात्माको पहिचानना। शुद्धात्मा अनादिअनन्त, अनन्त गुणओंसे भरपूर, अनन्ते शक्तिओंसे भरपूर है। उसमें विभावका अन्दर प्रवेश नहीं हुआ है। परन्तु मैं विभावयुक्त हो गया, मैं विभाववाला, दुःखवाला, मलिनतावाला ऐसा हो गया, ऐसी मान्यता है। बाकी अनादिअनन्त शुद्धात्मा मूल स्वभावसे जैसा है वैसा है। उसे पहचाने तो भवका अभाव हो, तो स्वानुभूति हो, उसमें पुरुषार्थ करे, उसमें लीनता करे, उसमें परिणमन करे वही मुक्तिका मार्ग है। और गुरुदेवने वह बताया है, वही करनेका है। उसमें आनन्द है। आनन्दसे भरपूर है आत्मा तो।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- कठिन काल कोई आडे नहीं आता, स्वयं पुरुषार्थ करे तो प्रगट हो ऐसा है। काल उसमें आडे नहीं आता। अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे कार्य प्रगट नहीं होता है। इस कालमें केवलज्ञान प्रगट नहीं होता है, परन्तु आत्माकी स्वानुभूति तो प्रगट होती है, परन्तु स्वयं पुरुषार्थ नहीं करता है। अंतरमें मैं ज्ञायक हूँ, मैं चैतन्य हूँ, यह विभाव मैं नहीं हूँ, ऐसा भेदज्ञान (करे)। स्वयं अपनेमें एकत्वबुद्धि और परसे विभक्तता करे तो स्वानुभूति प्रगट हो ऐसी है।

आचार्यों, मुनिवरों सब इस कालमें हो गये हैं। निरंतर झरता आस्वादमें आता ऐसा चैतन्यदेव प्रगट हुआ है, ऐसा आचार्य कहते हैं। स्वयं अंतरमें अपनी योग्यता तैयार करे।

... गहरे संस्कार वह प्रगट होते हैं। स्वयंने जो तैयारी की हो उस जातकी योग्यता चैतन्यमें होती है। इस प्रकार संस्कार रह जाते हैं।

मुमुक्षु :- ... पर्यायके साथ ऐसा कोई जुडान रहता होगा? पर्याय पर्यायके बीच?

समाधान :- जुडान नहीं, परन्तु ऐसी चैतन्यमें योग्यता होती है कि जो योग्यता अन्दर यथार्थपने हो, वह पूर्व भवमें उसे नैसर्गिकरूपसे प्रगट होते हैं, उस जातका पुरुषार्थ करे।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! इस भवमें जो यह धर्म प्राप्त किया, उसमें गत भवके कोई संस्कार होंगे? पूर्व भवमें कोई संस्कार डाले होंगे?

समाधान :- संस्कार तो होते हैं पूर्वके, परन्तु सबको हो ही ऐसा नहीं होता।

बहुतोंको पूर्व भवके संस्कार होते हैं। बहुतोंको नहीं होते हैं। जब करता है तब सर्वप्रथम होता है। पूर्वमें जब तैयारी की तब सर्वप्रथम ही था। उसमें कोई कमी रहे तो दूसरे भवमें आये तो पूर्वके संस्कारसे प्रगट हुआ ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु जब करे तब तो सर्वप्रथम ही होता है। जब करे तब पहला होता है। पूर्वमें पूरा नहीं हुआ इसलिये दूसरे भवमें आता है तो उसे पुरुषार्थ शीघ्रतासे होता है अतः पूर्वके संस्कार हैं, ऐसा कहनेमें आता है। शीघ्रतासे होता है इसलिये ऐसा कहनेमें आता है कि पूर्वके संस्कार हैं।

जिसे करना हो उसे तो पहली तैयारी होती है। प्रथम जीव अनादि कालसे जन्म-मरण करता आ रहा है, उसमें कोई देव अथवा गुरुकी वाणी मिले, परन्तु जब तैयारी करनी हो तो प्रथम ही तैयारी (होती है), कहीं भी करे तब पहली तैयारी होती है। इस भवमें की हुयी तैयारी... पूर्वभवमें उसे विशेष तैयारी हो तो पूर्वके संस्कार है, ऐसा कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- आत्माके पास साधन है ऐसा नहीं है?

समाधान :- साधन कोई नहीं है, स्वयं ही है, आत्मा स्वयं ही है, स्वयं ही अपना साधन है। स्वयं अपनी तैयारी (करे)। अपनेमें जिस प्रकारकी योग्यता होती है उस प्रकारकी पर्यायें प्रगट होती है। स्वयं ही स्वयंका साधन है।

मुमुक्षु :- बहिर्लक्षी ज्ञानोपयोग हो और अज्ञानीका बहिर्लक्षकी ज्ञानोपयोग हो, उसमें कोई अंतर होता होगा?

समाधान :- उसमें फ़र्क़ है। अज्ञानीको एकत्वबुद्धि है बाह्य उपयोगमें। आत्माका ज्ञान नहीं है और एकत्वबुद्धि है। मैं कौन और पर कौन, यह मालूम नहीं है। परके साथ एकत्वबुद्धि हो रही है। ज्ञानीको भेदज्ञान वर्तता है। अपना स्वपदार्थ ज्ञायकके साथ एकत्वबुद्धि है और परके साथ विभक्त है कि ये परपदार्थ सो मैं नहीं हूँ, ऐसी उसे परिणति वर्तती है कि मैं यह चैतन्य ज्ञायक भिन्न हूँ और ये परज्ञेय भिन्न हैं। ऐसी भेदज्ञानकी परिणति प्रगट होती है और भेदज्ञानकी परिणतिके साथ उसका उपयोग बाहर होता है। परन्तु परिणति तो उसकी चलती ही रहती है कि मैं ज्ञायक हूँ और यह भिन्न है। उसमें उसकी दृष्टि और उसकी परिणतिमें पूर्व और पश्चिम जितना अंतर है। स्वरूप सन्मुख है और ज्ञेयको जानता है। और उसकी (-अज्ञानीकी) तो दिशा ही परसन्मुख है।

मुमुक्षु :- ... उसमें नारियलमें जैसे गोला अलग है, ऐसा कुछ होता होगा?

समाधान :- स्वयं भिन्न पड़ जाता है। चैतन्यतत्त्व अकेला निराला स्वयं अपनी स्वानुभूति करता है। स्वयं अपने आनन्दादि अनन्त गुणोंका वेदन करता है। एकदम निराला

हो जाता है। चैतन्यगोला भिन्न पड़कर चैतन्य स्वयं स्वयंको अनुभवता है। ये अनुभव जो वेदन है, विभावका वेदन है वह छूट जाता है और चैतन्यका वेदन अंतरमेंसे प्रगट होता है। एकदम निराला हो जाता है।

.... मैं चैतन्य ही हूँ। चैतन्यके आनन्द स्वरूपको वेदता है। उपयोग बाहर आये तब यह शरीर भिन्न और मैं ज्ञायक भिन्न हूँ, ऐसी भिन्नताकी परिणति वर्तती है। अंतरमें गया तो शरीर कहाँ है उसका भी ख्याल नहीं है। मैं चैतन्य ही हूँ। विकल्प भी छूट जाते हैं। विकल्पकी ओर उपयोग नहीं है। अकेले चैतन्यका वेदन है। अकेली आनन्दकी धारा आनन्दका स्वरूप प्रगट होता है। आनन्दादि अनन्त गुणोंकी पर्यायें प्रगट होती हैं।

मुमुक्षु :- लोगोंको मरते हुए देखते हैं तो हमें ऐसा नहीं लगता है कि अपना भी कभी भी ऐसा मरण होनेवाला है, तो क्या एकत्वबुद्धिका दोष होगा?

समाधान :- एकत्वबुद्धि है। शरीरके साथ एकत्वबुद्धि है। जन्म-मरण तो चलते ही रहते हैं। जिसने शरीर धारण किया, इसलिये देह और आत्मा भिन्न पड़ ही जाते हैं। एकत्वबुद्धि, उतना शरीरके साथ एकत्वबुद्धिका राग है। चैतन्य तो शाश्वत है। चैतन्यमें जन्म-मरण लागू नहीं पड़ते। वह तो शाश्वत है। जहाँ जाय वहाँ शाश्वत है। एक देह छूटकर दूसरा देह धारण करता है। आत्मा तो शाश्वत है। परन्तु एकत्वबुद्धिके कारण उसे ख्याल नहीं आता है।

मुमुक्षु :- पूर्व भवकी लेन-देनके कारण दूसरे भवमें सब व्यक्ति इकट्ठे होते हैं, क्या यह बात सच है?

समाधान :- किसीको पूर्व भवका कोई सम्बन्ध हो और लेन-देन हो इसलिये भी मिलते हैं, बाकी पूर्व भवमें कहीं मिले नहीं हो और कुछ परिणामोंका और ऐसे कर्मके संयोगका ऐसा मेल बैठ जाय और मिल जाते हैं। कभी कोई कहाँ-से आया हो, कोई कहाँ-से आया हो और मिल जाते हैं। कोई किस गतिमेंसे, कोई किस गतिमेंसे आकर मिल जाते हैं। परिणाम और कर्मके उदयका ऐसा मेल खा जाय और मिल जाते हैं। और किसीका पूर्व सम्बन्ध हो, पूर्वमें साथमें हो और मिल जाय, ऐसा भी बनता है।

समाधान :-.. सब स्थूल दृष्टिमें क्रियामें पड़े थे। कहाँसे गुरुदेव सबको ऊपर ले आये। कोई देव-देवीको नहीं मानते हों, परन्तु क्रियामें तो पड़े ही थे। उपवास करें तो धर्म होगा, ऐसी सब मान्यता। ... स्थानकवासीमें तो सब ऐसा था। ज्ञायकको पहचाननेका मार्ग कहाँ था? कौन जानता था? अंतर दृष्टि करनी और मोक्ष अंतरमें आंशिकरूपसे होता है, वह मोक्ष बादमें होता है। और यह मोक्ष अंतरमें होता है, यह बात कहाँ थी?

ये सब कहते हैं, पंचमकालमें केवलज्ञान नहीं है। पंचमकालमें केवलज्ञान नहीं है, परन्तु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन यानी क्या, यह भी कोई समझता नहीं था। मोक्ष यहाँ सम्यग्दर्शनमें आंशिकरूपसे हो जाता है, यह भी कोई समझता नहीं था।

.. इसलिये अपने परिणाम हैं, वह तीव्र कलुषितता अथवा कैसे तीव्र हों, वह अपने हाथकी बात है। उसमें शान्ति रखनी, आत्माको पहिचानना, वह सब अपने हाथकी बात है। बाह्य संयोग कैसे हो, वह (अपने हाथकी बात नहीं है)। किसीको अच्छा लगे, किसीको बूरा लगे, स्वयं कुछ भी करे तो भी दूसरेको खराब ही लगे। ऐसा कोई उदय हो तो वह सब उदयकी बात है। शान्ति रखनी अपने हाथकी बात है। इसलिये आत्माको पहिचानना और शान्ति रखनी। बाह्य संयोग (अपने) हाथकी बात नहीं है।

मुमुक्षु :- सहजतासे प्राप्त कर लिया। तो आत्म-स्वरूप प्राप्त करना ऐसा सहज है?

समाधान :- पुरुषार्थ करे तो सहज है और पुरुषार्थ न करे तो कठिन है। अनन्त काल गया, परन्तु यदि स्वयं पुरुषार्थ नहीं करता है तो कठिन हो जाता है और पुरुषार्थ करे तो सहज होता है। उसमें पूर्वके संस्कार किसीको निमित्त बनते हैं और कोई करता है तो प्रथम बार होता है।

... हाँ, अपने पास है। अनन्त शक्ति (है)। निगोदमेंसे निकलकर अंतर्मुहूर्तमें जो प्रगट करते हैं, वह शक्ति कहाँ-से (आयी)? इसलिये उतना पुरुषार्थ चैतन्यमें है। अनन्त कालसे निगोदमें थे और फिर ... हुए हैं, उसके बाद राजाके कुंवर हुए हैं, और फिर एकदम मुनि बन गये। वह शक्ति कहाँसे (आयी)? अपने चैतन्यमें है। पूर्वमें कहीं सुनने नहीं गये थे। सर्व प्रथम भगवानके घर राजकुमार होकर दीक्षा लेते हैं। भगवानकी वाणी सुनते हैं। एकदम पुरुषार्थ अंतर्मुहूर्तमें जागृत हो। जीवमें स्वयंमें अनन्त शक्ति है। राजकुमार कितने... एकदम दीक्षा लेकर चल पड़ते हैं।

मुमुक्षु :- वह इस शक्तिकी ही बात है न?

समाधान :- हाँ, अनन्त शक्ति। जैसे भगवान हैं, वैसी अनन्त शक्ति तेरेमें है, ऐसा गुरुदेव कहते थे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४२

मुमुक्षु :- माताजी! वह पुरुषार्थ करना कैसे?

समाधान :- स्वयं लगन लगानी, बाहरमें कहीं रुचि न लगे, आत्माका स्वरूप कैसे प्राप्त हो? ऐसी रुचि यदि जागृत हो तो फिर उसका चित्त उस ओर मुड़े। शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्व विचार, गुरुकी वाणी सुननी। गुरु विराजते थे तब उनकी वाणी मिलती थी। गुरुने जो कहा उस प्रकारके शास्त्र पढ़े, विचार करे, उसकी लगन लगाये। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, गुरुने क्या कहा है, आत्माका स्वरूप कैसे प्राप्त हो, उसके विचार करे। उस प्रकारका वांचन करे, उस प्रकारकी महिमा करे। बाहरकी रुचि कम करे।

.. जन्म-मरण, जन्म-मरण (चलते रहता है)। राग हो उसे ऐसा लगे, बाकी जन्म-मरण संसारका स्वरूप ही है। बड़े चक्रवर्ती चले जाते हैं, दूसरोंका क्या? लाख पूर्वका आयुष्य हो तो भी आयुष्य पूरा हो जाता है। सागरोपमका आयुष्य पूरा हो जाता है। तो इस पंचमकालमें तो आयुष्य कितना है? जन्म-मरण देखकर वैराग्य करने जैसा है। आत्माका स्वरूप समझे। किसीके सम्बन्ध एकसमान निश्चित होते ही नहीं। कोई कहाँ-से आता है, कोई कहाँ-से आता है। ... फिर उसके आयुष्यका जितना मेल हो उतना रहे, फिर चले जाते हैं।

... आत्माकी रुचि की, वैसा सब किया ऐसा मानकर शान्ति रखनी। देव-गुरु-शास्त्र पर... शरणरूप आत्मा ही है। देव-गुरु-शास्त्र शुभभावमें और अंतरमें आत्मा ज्ञायक, वही करने जैसा है। पुरुषार्थ स्वयंसे करना है। जिसे लगन लगी हो वह स्वयं ही (करता है)। करना वही है, जीवनकी सार्थकता (उसीमें है)।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- स्व-परकी एकत्वबुद्धि है। एकत्वबुद्धि तोड़कर अपनमेमें (एकत्वबुद्धि करे)। परके साथ एकत्वबुद्धि है, वह स्वकी ओर एकत्वबुद्धि करके परसे विभक्त होना वह करनेका है। ... परन्तु दृष्टि तो अंतरमें ... द्रव्य पर दृष्टि करनी है। उसका ज्ञान, उसमें लीनता वह करना है। पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना पड़ता है। उसकी लगन लगानी, महिमा करनी। चैतन्यके मूलमें जाकर उसे ग्रहण करना, वह करना है। ... उसकी ओर उसकी लगन लगनी चाहिये तो होता है।

मुमुक्षु :- लगन लगायी है, परन्तु जैसे ही भेदज्ञान करते हैं, वैसे..

समाधान :- बार-बार उस ओर पुरुषार्थ, ज्ञान, उस ओर दृष्टि, उस ओर परिणति बारंबार उसका पुरुषार्थ करना चाहिये। ... स्वयं किये बिना रहता ही नहीं। बाहरकी ... स्वयं ही करता है।

मुमुक्षु :- ... जैसा पुरुषार्थ उठना चाहिये उस प्रकारका नहीं उठता है।

समाधान :- स्वयंकी क्षति है।

समाधान :- ... सिद्ध भगवान जैसा स्वरूप प्रगट करना हो तो आत्मा सिद्ध भगवान जैसा है। तो वह सब विकल्पसे छूटकर आत्माको पहचाने तो भवका अभाव हो। शुभभाव आये उससे पुण्यबन्ध हो तो देवलोक मिले। ... अंतरमें आत्माकी स्वानुभूति हो वह मोक्षका उपाय है। अंतरमें दृष्टि करके अंतरमेंसे मुक्तिका मार्ग (प्रगट होता है)।

पहले आंशिक मोक्षका स्वरूप आंशिकरूपसे स्वानुभवमें आता है। फिर विशेष-विशेष अन्दर लीनता करते-करते मुनिदशा आये, उसमें केवलज्ञान होता है। मोक्षका उपाय वही है। आत्माको पहिचाने। मैं चैतन्य ज्ञायक आत्मा जाननेवाला अन्दर तत्त्व है उसे पहिचाने। उसमें आनन्द, उसमें सुख है। उसके लिये तत्त्वविचार, वांचन, स्वाध्याय आदि करे। उसे सर्व प्रकारकी आसक्ति टूट जाती है, बाहरकी रुचि छूट जाय, छूट जाती है। उसे सबका त्याग हो जाता है ऐसा नहीं, परन्तु उसे अंतरमेंसे सब रस छूट जाता है और आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करे तो अंतरमें मोक्ष है। मोक्ष बाहरसे नहीं होता है। शुभभावनाओंसे पुण्यबन्ध होता है।

मुमुक्षु :- मेरा यह कहना है कि जो मन्दिर, मूर्ति और ये जो सब करते हैं, उसमें अपनी भावना तो शुभ होती है,...

समाधान :- हाँ, वह तो शुभ (भाव है)। पुण्य बन्धता है।

मुमुक्षु :- पुण्य बन्धता है और जो मन्दिर हम बनवाते हैं, उसके एक अन्दर आज सुबह मैं बैठा था, वहाँ एक भाई बैठे थे, इसमें पैसे देते हैं, ... उन लोगोंको पुण्यानुबन्ध पाप आता है? वहाँ जानके बाद ...

समाधान :- पुण्य ही बन्धता है। दूसरे लोग चाहे जो करते हों, परन्तु जो मन्दिर बँधवाता है, उसकी तो शुभभावना होती है। उसे श्रद्धा तो वही रखनी है कि ये तो शुभभाव है। मोक्ष तो अन्दर स्वानुभूतिसे होता है। उसे श्रद्धा तो यही रखनी है। परन्तु बीचमें शुभभावनाएँ आये बिना नहीं रहती। इसलिये मन्दिर बँधवाये उसमें कोई कुछ भाव करे, कोई कुछ भाव करे, वह तो उसकी स्वतंत्रता पर है। उसके साथ कुछ नहीं है। स्वयं अपने शुभभाव करता है। दूसरे लोग क्या करते हैं, वह दूसरे पर निर्भर करता है। प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र हैं। दूसरे लोग क्या करते हों, कोई शुभभाव

करे, कोई क्या करे, क्यों करे, वह उस पर निर्भर करता है।

मुमुक्षु :- जो व्यंतर देव गिनते हैं... वे लोग कैसे जाते हैं?

समाधान :- सच्चे देव तो अरिहंत, गुरु और शास्त्र। अरिहंतके सिवा कोई देवको माने नहीं। सच्चे सुदेव, सुगुरु और सुशास्त्रके सिवाय किसीको (माने नहीं)। कुगुरु, कुदेवको माननेवाले तो... वह तो तारनेवाले नहीं है। .. हर जगह घुमते रहे ऐसे देव ही थोड़े ही होते हैं। अपने बाप-दादाको ऐसे मान लेना कि वह सब देव होते हैं और उसको इच्छा रहा करती है,... सब बाप-दादा ऐसे ही होते होंगे? कोई अच्छी गति, ऊँची गतिमें नहीं जाते होंगे, ऐसा क्यों मान लेना? सब वैसे ही देव होते हैं। उसका भव वैसा ही होता है ऐसा कैसे मान लेना? .. वह क्यों नहीं हो? और ऐसे सुरधन ही होते होंगे सब? देवलोकके देवसे किसीका उद्धार नहीं होता। वह तो भगवान अरिहंतदेवसे उद्धार होता है, भगवानकी वाणीसे उद्धार होता है। देवलोकके देवसे किसीका उद्धार नहीं होता। देवलोकके देव तो भगवानकी सेवा, पूजा करने आते हैं। वह देव किसीका उद्धार नहीं करते, उस देवसे किसीका उद्धार नहीं होता। वह किसीको तारते नहीं। ... जूठी भ्रमणा और मान्यताएँ हैं।

मुमुक्षु :- जो .. वह कौन है?

समाधान :- वह सब भ्रमणा है।

मुमुक्षु :- .. आते हैं, वह कोई भी आत्मा होगा।

मुमुक्षु :- पहले देवलोकमें यह और दूसरे देवलोकमें इस प्रकारसे वहाँ आयुष्य है। वहाँ इस प्रकारसे...

समाधान :- भले ही हो, जो भी हो। अपने तो आत्माका करना है न। देवलोकमें तो देवकी ऋद्धि है तो उसमें सब होता है। देवको सब होता है। देवोंकी ऋद्धि ज्यादा होती है। देवोंको खाना-पीना नहीं है। उनको तो ऊच-नीच जातिके देव होते हैं।

मुमुक्षु :- तो बड़े देवोंकी छोटे देव सेवा करे।

समाधान :- हाँ, ऐसा होता है। छोटे देव, बड़े देव ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- ..वर्तमानमें पंचम काल चलता है।

समाधान :- मोक्ष भले न हो, परन्तु आत्माको पहिचाना जा सकता है।

मुमुक्षु :- आत्माको पहिचाना ऐसा कब ख्यालमें आये?

समाधान :- वह तो स्वयं अपना जान सकता है। स्वयं अपना जान सकता है।

मुमुक्षु :- पंचमकालमें जब तक केवलज्ञान न होता, तब तक मोक्ष नहीं होता। तो पंचमकालमें केवलज्ञान नहीं होता, क्योंकि पंचमकाल चलता है। इसलिये पंचमकालमें कभी केवलज्ञान नहीं होता।

समाधान :- सम्यग्दर्शन होता है, मोक्षका प्रारंभ होता है, मोक्षका अंश प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन होता है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या?

समाधान :- आत्माकी स्वानुभूति। आत्माको अंतरमें पहिचानकर, आत्माको अंतरसे निराला प्रगट कर स्वयं आत्माका अनुभव कर सकता है। इस शरीरके अन्दर आत्मा है। आत्मा विकल्पसे भिन्न, विकल्पकी जालसे भिन्न आत्माका अनुभव कर सकता है। वह सम्यग्दर्शन है। सिद्ध भगवान है, उसका अंश जिसे प्रगट होता है वह सम्यग्दर्शन, वह स्वानुभूति।

मुमुक्षु :- लोग जो आज तीर्थयात्रा करते हैं..

समाधान :- पुण्य बन्धता है, दूसरा कुछ नहीं है। पुण्य बन्धता है।

मुमुक्षु :- उसके बजाय वह घर बैठकर अपने आत्माका कल्याण करे तो ज्यादा अच्छा मान सकते हैं?

समाधान :- आत्माका करे तो। नहीं तो जिसको जो ठीक लगे वह करे। आत्माकी जिज्ञासा करके आत्माको पहिचाने तो ज्यादा अच्छा है।

मुमुक्षु :- आत्माको पहिचाननेके लिये शुभकर्मकी जरूरत है?

समाधान :- आत्माको पहिचाननेका कार्य करे उसमें शुभकर्म साथमें आ ही जाते हैं। मनुष्यपना प्राप्त किया, ... आत्माकी जिज्ञासा जागे उसमें शुभभावना साथमें आ ही जाती है। .. पहले यह विचारने जैसा है। जिसमें बहुभाग आत्माकी बात आये वह आगम है। आगम किसे कहना वह करने जैसा है। ये सब आगम हैं उसमें आत्माकी बात कितनी आती है, यह विचारने जैसा है। जो शास्त्रमें, जिसमें आत्माकी बातें आती हैं, आत्माका मोक्ष कैसे हो, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसी जो सूक्ष्म-सूक्ष्म आत्माकी स्वानुभूतिकी बात आये वह आगम है। यह सब आगम है या नहीं, इसका विचार करने जैसा है।

मुमुक्षु :- मैं वही पूछता हूँ, आगम हैं और आप विचार करने जैसा है ऐसा आप कहते हो, इसलिये मैं कहता हूँ...

समाधान :- हाँ, विचारने जैसा है। आगम किसे कहना वह विचारने जैसा है।

मुमुक्षु :- जिसमें आत्माकी बातें आती हो...

समाधान :- आगम किसे कहते हैं, यह विचारने जैसा है, विचार करके नक्की करने जैसा है।

समाधान :- भगवानका समवसरण होता है, ऐसे शक्तिशाली जीव ही होते हैं। बीस हज़ार सिढ़ीयाँ चढकर भगवानके समवसरणमें वाणी सुनने ऊपर जाते हैं। देवोंमें

और मनुष्योंमें इतनी शक्ति होती है। वर्तमान जैसे शरीर उसके नहीं होते। उसके शरीरमें चढ जाय ऐसी शक्ति (होती है)। अभी आप कोई चींटीको कहो तो वह कैसे चल सके, उसके जैसी बात है। वर्तमानकालके मनुष्योंके शरीर और चौथे कालके मनुष्योंके शरीरमें फ़र्क़ होता है। वह पुण्यशाली जीव होते हैं। उनका आयुष्य बड़ा होता है, उनका शरीर अलग होता है।

मुमुक्षु :- महावीर भगवानके समयकी बात है न यह तो?

समाधान :- महावीर भगवानके समयमें वह चतुर्थ काल था।

मुमुक्षु :- काल चतुर्थ परन्तु सबका आयुष्य..

समाधान :- भले आयुष्य नहीं था, परन्तु शरीर अलग थे। सब सुनते हैं। तिर्यंच सुनने जाते हैं, मनुष्य जाते हैं। ... यथार्थ है, भगवानकी वाणी सुनने सब जाते थे। वह यथार्थ है। भगवानकी वाणी सुननेका, सबका उस प्रकारका पुण्य था। वह पुण्य अभी खत्म हो गये हैं।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- सबमें तारतम्यतामें फ़र्क़ था। सब अल्प-अल्प था। अभी वर्तमानमें बहुत बढ़ गया है। अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करना दुर्लभ है। उस समयमें तो क्षणमात्रमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करते थे और मुनिदशा भी क्षणमात्रमें प्राप्त कर लेते थे। थोड़ी देरमें अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर लेते थे। उस प्रकारके लोग आत्माका वैसा पुरुषार्थ करते थे।

... आत्माको पहिचानना, आत्माका कल्याण करना। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और आत्माका कल्याण करना।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- अभी यथार्थ नहीं हुआ है। सचमूचमें दुःख लगे तो सुखका मार्ग खोजे बिना रहे नहीं। सच्चा दुःख अभी नहीं लगता है। खरी रुचि लगे, अंतर विचार करे, वांचन करे..। बड़े-बड़े चक्रवर्ती भी सब छोड़ देते हैं। क्योंकि उसमें उसे सुख नहीं लगा है। जिनके पास देव हाजिर होते थे, ... चक्रवर्ती और तीर्थंकरोंने भी सब छोड़ दिया था। तब आत्मामें कुछ विशेषता होगी इसलिये छोड़ दिया था। उन सबको आत्मामें विशेषता लगी। जिन्हें पुण्यका कोई पार नहीं था, बाह्य अनुकूलताका पार नहीं था, ऐसे पुण्यशाली जीव थे। चतुर्थ कालमें ऐसे राजा, ऐसे चक्रवर्ती सबने छोड़ दिया। इसलिये अंतर आत्मामें सुख भरा है। बाहरमें व्यर्थ प्रयत्न करना वह जूठी भ्रान्ति है। बड़े तीर्थंकरों, जिनकी देव सेवा करते थे, तो भी छोड़कर आत्माकी साधना (करने चल पड़े)। आत्मामें ही सब भरा है। ऐसी श्रद्धा करके अन्दरसे विकल्पजाल (तोड़कर)

भेदज्ञान करके ज्ञायक आत्माको पहिचान लिया।

मुमुक्षु :- .. आत्माकी पहिचान होती नहीं है, आत्माकी बातें सुनते हैं,...

समाधान :- अन्दर पुरुषार्थकी क्षति है, रुचिकी कमी है। मार्ग पकड़में (नहीं आता है)। जो गुरु और शास्त्रमें.. जो गुरुने कहा है, उसका विचार करना। किस मार्ग पर जाया जाता है? उसका मार्ग क्या है? आत्माका क्या स्वभाव है? मैं कौन हूँ? मेरा स्वभाव क्या है? वह सब विचार करना और बाहरकी रुचि छोड़ देनी।

मुमुक्षु :- तो आत्माका अनुभव होता है?

समाधान :- तो होता है, हाँ, तो होता है।

मुमुक्षु :- रुचि लगनेकी आवश्यकता है।

समाधान :- अंतरसे रुचि लगनी चाहिये। रुचि लगे तो विचार आये तो उसका वांचन हो, उस ओर अंतरसे झुके तो होता है। बिना रुचिके नहीं होता। बाहरकी रुचि लगी हो तब तक (नहीं होता)। अन्दरकी रुचि लगनी चाहिये, उतनी लगन लगनी चाहिये।

... गुरुदेवने कहा उसी मार्ग पर जाने जैसा है। वही रुचि और देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। आत्मा ज्ञायकको पहिचानना और देव-गुरु-शास्त्रकी जैसे महिमा हो वैसे करने जैसा है। जिनेन्द्र देवकी पूजा करनी, जिनेन्द्र देवकी महिमा, गुरुकी महिमा, शास्त्र महिमा वह सब करने जैसा है। अंतर आत्माको पहिचाननेके लिये ज्ञायक आत्मा कैसे पहिचानमें आये? ध्येय एक है। आपके माता और पिताको वह रुचि थी और वह सबको करने जैसा है। हसमुखभाई तो...

मुमुक्षु :- यहाँ तो एक-एक रजकणमें गुरुदेवके स्मरण भरे हैं।

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। जिनेन्द्र देव, गुरु, गुरु क्या कहते हैं, गुरुने मार्ग बताया उस मार्ग पर चलने जैसा है। शास्त्रमें भी वही आता है कि आत्मा ज्ञायक है, जाननेवाला है, वह सब आता है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और ज्ञायक आत्माको कैसे पहिचानना। आत्मा भिन्न है, यह शरीर भिन्न है। आत्माको पहिचाननेके लिये देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा.. अन्दर आत्मा कोई अपूर्व चीज है। गुरुदेव कहते थे, उनकी वाणीमें अपूर्वता था। यह कोई अलग ही वस्तु है। स्वानुभूति कैसे प्रगट करनी? उसके लिये भेदज्ञान करना, ये विकल्प, संकल्प-विकल्प अपना स्वभाव नहीं है। उससे आत्माको भिन्न करके आत्मा कैसे पहचाना जाय? वह महिमा, वह रुचि आदि करने जैसा है। और शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा जो हो वह करने जैसा है।

मुमुक्षु :- दूसरी कोई जगह ऐसा नहीं है।

समाधान :- नहीं, सब तुच्छ है। यही एक करने जैसा है, सच्चा यह है। पहलेसे

इनको रुचि है।

मुमुक्षु :- पिताजीको बहुत थी न।

समाधान :- पिताजीको, माताजीको सबको।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४३

समाधान :- ... दृष्टि ऐसी हो गयी है। ज्ञायककी-ज्ञाताकी धारा, जिसे सब छूट गया है, इसलिये उसे बाहर कहीं रुचता नहीं है। विभावका सब रस टूट गया है। अकेला आत्मा ही रुचता है। आत्माकी ओर परिणति हो गयी है। अकेले ज्ञायकके सिवा उसे कुछ रुचता नहीं। ज्ञायककी परिणति जैसे-जैसे प्रगट होती है, उसकी लीनता प्रगट हो वही उसको रुचता है, दूसरा कुछ नहीं रुचता। उसे अंतरकी इतनी श्रद्धा, रुचि, परिणति और लीनता अमुक प्रकारसे हुयी है और विभावका अनन्त रस टूट गया है और आत्मामें जो अनन्तता है, उस पर दृष्टि जम गयी है, उसे कहीं रुचता नहीं है।

अनन्त-अनन्त शक्ति जो आत्मामें है, वह उसे रुचती है, दूसरा कुछ रुचता नहीं है। परन्तु अभी उसे अस्थिरता है, पूर्ण केवलज्ञान नहीं है। पूर्ण लीनता नहीं हुयी है। श्रद्धा अपेक्षासे उसे कहीं रुचता नहीं है। परन्तु लीनता अधूरी है इसलिये बाहर जुड़ना पड़ता है। जुड़ता है, लेकिन उसे ज्ञाताकी धारा छूटती नहीं है। उसमें एकत्वतता नहीं होती, उससे भिन्न रहता है। अल्प अस्थिरता होती है अतः बाहर जुड़ना पड़ता है। वह बाहरके सब कार्योंमें जुड़ता है, परन्तु अंतरसे उसे उदासीन धारा और ज्ञाताकी धारा ऐसे ही चलती रहती है। स्वयं भिन्न निराला रहता है।

उसे आंशिक ज्ञायककी धारा, ज्ञान और अमुक प्रकारकी परिणति, लीनता उसकी चालू ही है। उसे बाहर कहीं रुचता नहीं है। और वही करने जैसा है। क्योंकि ज्ञायक चैतन्य अद्‌भुत है। अद्‌भुत है वही महिमायोग्य है और वही आदरणीय है। दूसरा कुछ आदरणीय नहीं है। सबको वही करने जैसा है।

गुरुदेवने वह बताया है। वही अपूर्व मार्ग प्रगट करने जैसा है। स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हो तो ही मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। और वह स्वानुभूति प्रगट होनेसे अंश-अंशमें लीनता बढ़ती जाय, तो उसीमें उसकी पूर्णता और केवलज्ञान उसीमें प्रगट होता है। इसलिये वही करने जैसा है। इसके अलावा दूसरा कुछ आदरणीय नहीं है। आलम्बन तो एक आत्माका, दूसरा बाहरका आलम्बन वह आलम्बन नहीं है, वह तो विभावका आलम्बन है। स्वभावका आलम्बन ही सुखरूप है। वही स्वाधीनरूप है और उसीमें

सुख है, वही करने जैसा है, दूसरा कुछ करने जैसा नहीं है।

जब तक अल्पता है, तब तक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, अमुक प्रकारसे वह बाहर जुड़ता है, परन्तु उदासीन भावसे जुड़ता है। गृहस्थाश्रमके कार्योंमें जुड़ता है, परन्तु वह भिन्न-निराला रहकर जुड़ता है।

मुमुक्षु :- ... अनादि कालसे स्वरूपका फल नहीं आनेसे बार-बार ... लक्ष्य अन्दर नहीं रहता है।

समाधान :- अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। उतनी स्वयंको रुचि नहीं है, उतनी लगन नहीं है, इसलिये अन्दर स्वयं पुरुषार्थ करता नहीं है। किसीका कारण नहीं है, अपना ही कारण है। अपनी आलसके कारण स्वयं आत्माको खोजता नहीं है, उसके दर्शन नहीं करता है। अपनी आलस है।

गुरुदेव कहते थे, 'निज नयननी आळसे रे, निरख्या न हरिने'। अपनी आलसके कारण स्वयं पहचानता नहीं है। पुरुषार्थ करना अपने हाथकी (बात है)। अनादि कालसे जो परके साथ एकत्वबुद्धि हो रही है, उसे तोड़कर स्वमें एकत्वता करके परसे भिन्न पड़कर भेदज्ञान करे, वही करने जैसा है।

कल्याण स्वरूप सत्यार्थ वही है, जितना यह ज्ञायक-ज्ञान है वही कल्याणरूप और मंगलरूप और सत्यार्थ है। बाकी सब कल्याणरूप नहीं है, वह सब विभाव है। विभाव है सो आकुलता है। वह दुःखका कारण है। सुखका कारण हो तो आत्मा स्वयं है। वह सुखस्वरूप है, सुखका धाम है और सुख उसमेंसे ही प्रगट होता है। सुख बाहरसे कहींसे नहीं आता है। वह सुखका धाम है, वह ज्ञानका धाम है। उसमेंसे ज्ञान प्रगट होता है, उसमें सुख प्रगट होता है। सब उसीमेंसे प्रगट होता है, बाहरसे कहीं नहीं आता है। परन्तु वह अनादि कालसे बाहरमें व्यर्थ प्रयत्न करता है, वह उसकी भूल है। और स्वयंका प्रमाद है। अपने प्रमादके कारण बाहर अटक रहा है।

चैतन्यकी ओर उतनी रुचि हो, उतना वेग अपनी ओर हो और परसे विरक्ति हो। स्वभावकी ओर उसे उतनी लीनता जमे। स्वयंको अंतरसे पहिचाने, उस ओर दृष्टि करे, ज्ञान करे, लीनता करे तो वह सब अपने हाथकी बात है। 'एमां ज नित्य विहार कर, नहीं विहर परद्रव्य विषे'। परद्रव्यमें विहार मत कर। 'आमां सदा प्रीतिवंत बन, आमां सदा संतुष्ट...' इसमें प्रीतिवंत बन, इसमें संतुष्ट हो। वही सुखरूप है। 'आनाथी बन तू तृप्त, तुझने सुख अहो उत्पन्न थशे...' इससे तू तृप्त हो। उसीमें उत्तम सुख मिले ऐसा है, वही सुखका धाम है। बाहर कहीं नहीं है। वही करने जैसा है। गुरुदेवने वही बताया है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- दुःख न लगे तो उसकी भूल है। अनुकूल-प्रतिकूलता दोनों दुःखरूप है, अपना स्वभाव नहीं है। स्वभाव सुखका धाम आत्मा है। अनुकूलता तो पुण्य है। वह तो पुण्यका प्रकार है। उसमें जीव अनादि कालसे अटक जाता है। पुण्यमें और शुभभावमें उसे मीठास लगती है, उसमें अटक गया है। वह सुखका कारण नहीं है, वह तो आकुलतारूप है, विभाव है। वह शुभभावमें (अटक गया है)। बीचमें शुभभाव आये, परन्तु वह दुःख और दुःखका कारण है। उससे भिन्न आत्माको पहिचान लेना। अनुकूलता भी दुःखरूप और प्रतिकूलता दुःखरूप, सब बाह्य संयोग है। वह संयोग आत्माको सुखकर्ता नहीं है। सुखकर्ता अपना आत्मा निराला है, उसमेंसे सुख प्रगट होता है। बाहरसे कहींसे नहीं आता है। सुख, ज्ञान और अनन्त गुण उसमेंसे प्रगट होते हैं। वही करने जैसा है।

.. रुचि प्रगट करनी, उस ओर उपयोग जाय ऐसा करना। वह सब अपने हाथमें है। रुचि करनी, रुचि लगे बिना मुक्तिके मार्गमें कहाँ जा सके ऐसा है? जिसे रुचि नहीं है वह मुक्तिके मार्गमें जा नहीं सकता। जिसे परमें रुचि है, जिसे आत्मा नहीं रुचता है, वह मुक्तिके मार्ग पर जा नहीं सकता। अंतरकी रुचि प्रगट हो तो ही वह स्वयं अंतरमें जा सके ऐसा है। रुचि प्रगट करनी अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- क्यों क्या, कारणका कोई कारण नहीं होता। अकारण द्रव्य है। रुचि कैसे प्रगट करनी वह अपने हाथकी बात है। जिसे परमें सुख लगता है उसे रुचि नहीं होती। जिसे परमेंसे सुखबुद्धि ऊड़ जाय उसे अपनी रुचि जागृत होती है। अपनेमें सुख लगे उसे परकी रुचि ऊड़ जाती है। उसमें मन्दता, तीव्रता, पुरुषार्थ मन्द, तीव्र रुचि, मन्द रुचि अपने हाथकी बात है। उसमें किसीका कारण नहीं है। अकारण पारिणामिक द्रव्य वह स्वयं करे तो हो सके ऐसा है।

... यह मनुष्यभव तो मुश्किलसे मिलता है। अनन्त जन्म-मरण करते-करते यह मनुष्यभव मिला। उसमें गुरुदेवने यह मार्ग बताया है। उसकी-आत्माकी रुचि करने जैसी है। आत्मा कैसे (पहचाना जाय)? आत्मा तो शाश्वत है। वह कोई अपूर्व अद्‌भुत वस्तु है, चैतन्यतत्त्व। यह शरीर और आत्मा दोनों भिन्न है। आत्माको पहिचाननेका प्रयत्न करना। उसकी रुचि करनी, उसकी महिमा करनी, वह करने जैसा है।

गुरुदेवने कोई अपूर्व मार्ग बताया है। बाकी संसारका तो सब ऐसे ही चलते रहता है। इस संसारमें आत्माकी कुछ रुचि हो तो अच्छी बात है। उसका वांचन, विचार अथवा देव-गुरु-शास्त्रकी ओर महिमा हो और आत्मा कैसे पहिचाना जाय? आत्माकी रुचि हो वह करने जैसा है। जन्म-मरण टालनेका उपाय गुरुदेवने मार्ग बताया। कोई

जानता नहीं था। सब बाह्य क्रियामें पड़े थे। कोई ऐसा करनेसे धर्म होगा (ऐसा मानते थे)। गुरुदेवने कहा, अंतरमें दृष्टि कर और आत्माको पहिचान तो धर्म हो सके ऐसा है। इसलिये आत्माको पहिचानने जैसा है। आत्मा शाश्वत अंतरमें विराजता है। वह करने जैसा है।

... जो उन्होंने लाभ लिया, साथमें रहे। मन्दिर जाते थे और ... यहाँका मौसम उन्हें अनुकूल है, इसलिये यहाँ रहते हैं। ... अन्दर आत्मामें जो उन्होंने संस्कार बोये वह साथमें गये। उनको तो यहाँका बहुत था। गुरुदेवका कितना लाभ लिया है। संसारका तो ऐसा है। क्षणमें आयुष्य पूरा हो जाता है। आत्मा कहीं और (चला जाता है)। आत्मा तो शाश्वत है जहाँ जाय वहाँ। यह शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण कर लेता है।

.. राजाओंके आयुष्य पूर्ण हो जाते हैं। आत्माका स्वरूप आत्मा शाश्वत है। आत्माका ध्यान करे, आत्माका करनेके लिये सब छोड़ देते थे। सम्यग्दर्शन था, परन्तु चारित्रदशा लेकर केवलज्ञान प्रगट करनेके लिये चक्रवर्ती जैसे भी सब छोड़कर आत्माका करते थे। आत्माका ही करने जैसा है। संसार तो ऐसा ही है। अनन्त जन्म-मरण, ऐसे कितने अनन्त हुए हैं। अनन्तको स्वयंने छोड़ दिया और स्वयंको छोड़कर अनन्त चले गये। ऐसा कितना हुआ है। अतः आत्मा शाश्वत है, उसकी आराधना कैसे हो (वह करने जैसा है)। ... थोड़ा कुछ देखे, बिजलीका चमकारा, बिजली देखकर वैराग्यको प्राप्त होते थे। पानीका बुलबुला देखकर एकदम वैराग्यको प्राप्त होते थे कि संसार तो ऐसा ही है।

मुमुक्षु :- वसंत ऋतुका .. सुख रहे हैं, खीरता तारा..

समाधान :- तारा खीरता है, ऐसा चित्रमें है। वह देख-देखकर तीर्थंकर और राजा सब वैराग्यको प्राप्त होते थे। वसंत ऋतु खीली है और एकदम ऐसा हो जाता है। थोड़ा प्रसंग बने तो वैराग्य आ जाता था। पहलेके जीव इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त होते थे। फिर भगवानकी वाणी सुनकर समवसरणमें जाय, एक क्षणमें वैराग्यको प्राप्त होकर मुनि बनकर चले जाते।

.. अनन्त जन्म-मरण किये। आकाशके एक-एक प्रदेशमें, कोई खाली नहीं रखा। जगतके कितने द्रव्य अनन्त बार ग्रहे और छोड़े। उतने परिवर्तन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके किये, उतना किया। वैसेमें इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले और ऐसी वाणी मिली और ऐसा मार्ग गुरुदेवने बताया, स्वानुभूति प्रगट करनेका, वह महाभाग्यकी बात है। गुरुदेवने मार्ग बताया, उसकी रुचि हो और उसके कुछ संस्कार बोये, उसकी आराधन हो तो वह जीवनमें करने जैसा है। उन्होंने वह सब संस्कार डाले हैं, सबको वह करने जैसा है।

.. आत्मा शाश्वत है। देह तो छूटकर ग्रहण होता है। तो ऐसा कुछ कर लेना कि आत्मा शाश्वत है, फिर भवका अभाव हो, भव ही प्राप्त न हो, ऐसा आत्मा शाश्वत है। मुक्तिका पंथ प्रगट हो और मुक्ति हो कि शरीर ही प्राप्त न हो। ऐसे भाव कर लेने जैसे हैं। गुरुदेवने मार्ग बताया है, भवका अभाव होनेका।

.. भूतकालमें कितनी माताका दूध पिया, कितनी माताओंको रुलाया, ऐसे अनन्त-अनन्त जन्म-मरण हुए हैं। उसमें इस पंचम कालमें गुरुदेव मिले वह महाभाग्यकी बात है। गुरुदेवने यह मार्ग बताया और जैसे-तैसे भी उस मार्गकी आराधना करनी और स्वानुभूतिका पंथ अन्दरसे ग्रहण करने जैसा है। मुक्तिका अंश प्रगट हो, आत्माको ग्रहण करना। .. लेकिन उसे मुक्तिकी पर्याय कैसे प्रगट हो, वह करने जैसा है। वहाँ उनका देह छूटनेवाला होगा तो वहाँ गये।

मुमुक्षु :- एक महिना पूरा हुआ।

समाधान :- आयुष्य पूरा हो तब ऐसे हो जाता है। आत्मा उसकी गति करके चला जाता है। उतना राग होता है इसलिये दुःख होता है, लेकिन पलटे बिना छूटकारा नहीं है। संसार तो ऐसा ही है। याद आये तो ... उसका कोई उपाय नहीं है। जहाँ आयुष्य पूरा हो, वहाँ किसीका उपाय नहीं चलता है। शान्ति रखनी वह एक ही उपाय है। जितना सम्बन्ध हो और जिस जातका राग हो वह राग अन्दरसे आये, परन्तु परिणामको बदले बिना (छूटकारा नहीं है)। शान्ति रखनी वही उसका उपाय है। शान्ति ही समाधान है। गुरुदेवने कहा है। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। आयुष्य पूरा होता है, इसलिये जन्म-मरण तो होते ही रहते हैं। उसे कोई रोक नहीं सकता। कोई इन्द्र या चक्रवर्तीओंके आयुष्य पूर्ण होते हैं, कोई रोक नहीं सकता। सागरोपमका देवोंका आयुष्य (होता है)। उसकी माला मुरझाती है, अब आयुष्य पूरा होनेवाला है। उसे दूसरी गतिमें जाना होता है, कोई ऐसे देव हो तो आक्रंद करते हैं, अच्छे देव होते हैं तो वह तो समझता है संसारका स्वरूप ही ऐसा है। आयुष्य तो पूरा होता है। गुरुदेवने भवका अभाव करनेका जो मार्ग बताया है, उसी मार्गकी आराधना करने जैसी है कि भव ही न हो, ऐसा मार्ग बताया। जन्म-मरण टलकर आत्मा शाश्वत है, वह शाश्वत स्वरूपको ग्रहण करना।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४४

समाधान :- ... स्वानुभूतिका स्वरूप बताया। सबको कोई अलग ही दृष्टि दे दी कि, इस मार्ग पर जाओ। उस मार्ग पर जाने जैसा है।

मुमुक्षु :- सोनगढ़-सोनगढ़ करते थे, मुझे सोनगढ़ जाना है।

समाधान :- ... चैतन्य कैसे पहिचाना जाय, उसे पहचानकर भवका अभाव (हो), जन्म-मरण टलकर आत्मा स्वयं अपना सुख अंतरसे प्राप्त करे, सुखका धाम आत्मा है, वह कैसे हो, बारंबार उसका अभ्यास और रटन करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और आत्माका अन्दर कैसे गहराईसे अभ्यास हो, अंतर संस्कार कैसे पड़े, वह करने जैसा है। बाकी तो कल बहुत कहा है।

ऐसे प्रसंग बहुत कम बनते थे और थोड़े बने तो वैराग्यको प्राप्त हो जाते। थोड़े फेरफार देखकर वैराग्य होता था। थोड़ा (सफेद) बाल देखकर वैराग्य आता था कि बस! शरीर ऐसा है? ऐसे वैराग्य आता था। शरीरमें रोग देखकर वैराग्य आता था। उनको कहा कि तेरे शरीरमें रोगकी शुरूआत हुई है तो वैराग्य आ जाता।

... पहले तो दृष्टि पलटनी। सम्यग्दर्शन ... उसमें तो दृष्टि बदल जाती थी इसलिये एकदम सब छोड़ देते थे। कितनोंको तो सम्यग्दर्शन, चारित्र सब साथमें हो जाता था। भगवानके समवसरणमें बैठे हो, वहाँ वाणी सुने, वहाँ सम्यक्त्व, वहाँ मुनिपद। चौथे कालमें सब ऐसा होता था। अंतर्मुहूर्तमें ... छोटे-छोटे बालक, गजसुकुमाल कैसे थे! घड़ी-घड़ीमें पलट जाय। चौथे कालमें भगवान साक्षात् विराजते हों और वाणी छूटती हो वह बात अलग है।

.. वाणी छूटे, सबके हृदयका परिवर्तन हो जाय। यहाँ पंचमकालमें सब क्रियामें पड़े थे। दृष्टि बदलनी मुश्किल थी। धर्म ही दूसरेमें मान लिया था। धर्मके मार्ग पर चढना मुश्किल (हो गया था)। सच्चा धर्म मिला वही महाभाग्यकी बात है। दृष्टि गुरुदेवने सबको दी कि इस रास्ते पर जाओ। रास्ता बताया। रास्ते पर जाना महादुर्लभ था। उसमें तो भगवानकी वाणी छूटती इसलिये इसी रास्ते पर सबको जाना था। इसलिये मुनि बन जाते। कितनोंको तो सम्यग्दर्शन, चारित्र सब एकसाथ हो जाता। एकदम परिवर्तन हो जाता था।

मुमुक्षु :- वह वैराग्य कैसा होगा!

समाधान :- एकदम वैराग्य आ जाता था। तो भी इस पंचमकालके हिसाबसे, गुरुदेवके प्रतापसे तो भी काल अच्छा है। दूसरी जगह देखो तो लोग कहाँ पड़े होते हैं। यहाँ आकर वह प्रश्न पूछते थे, कहाँ सब पड़े हैं। सुरधन और यह-वह। कहाँ-कहाँ पड़े हैं। गुरुदेवने कहाँ आत्माके मार्ग पर लाकर रख दिया है। करना यह है। ज्ञायक चैतन्य कैसे पहिचानमें आये? ज्ञायक कैसे पहचाना जाय? मार्ग वह है।

मुमुक्षु :- उसमें तो ऐसा लगे, ओहो! मैंने बहुत किया, ऐसा किया, ऐसा लगे।

समाधान :- करना बाकी है। अन्दर चैतन्यको प्रगट करना, भेदज्ञान प्रगट करना, स्वानुभूति प्रगट करनी ऐसा तो रहे न। पुण्य हो, उसमें दूसरा कुछ दिखाई दे तो एकदम वैराग्य आ जाता। यहाँ तो पंचमकालके अन्दर तो अनेक जातके प्रकार बनते रहते हैं। उसमेंसे जीवको वापस मुड़ना... गुरुदेवने यह मार्ग बताया। भगवानके समवसरणमें कोई मुनि बन जाय, अन्दर आत्मामें शक्ति (प्रगट हो जाय), अन्दरमें ज्ञान प्रगट हो जाय, किसीको कुछ प्रगट हो जाय, अनेक प्रकार (बनते हैं)। केवलज्ञान किसीको प्रगट हो जाय, कोई मुनि बन जाय।

मुमुक्षु :- अनादि कालसे उसको अपने स्वभावकी तरफ ध्यान ... और स्वभावमें जाता है तो वहाँ ... और पहली बात तो स्वभावकी जानकारी नहीं है और जानकारी मिली तो वापिस उसमें स्थित होना बहुत ... होता है। तो अनादि कालसे विषयोंकी तरफ जो मुड़ रहा है तो इसके पीछे भी क्या स्थिति बनी है?

समाधान :- अनादि कालसे ज्ञायक स्वभाव... आत्माका तो ज्ञायक स्वभाव-जानना है। अनन्त गुण उसमें है, अनन्त शक्ति है। परन्तु विभावमें रुचि लगी है, इसलिये नहीं जा सकता। पुरुषार्थकी मन्दता है, रुचि नहीं है, परपदार्थमें रुचि करता है, परकी महिमा करता है इसलिये वहाँ टिक जाता है। परन्तु जो अपनी रुचि लगे, अपनी महिमा लगे तो अपनेमें पुरुषार्थ करे तो हो सकता है। वह ज्ञायक है-जाननेवाला है। मैं ज्ञायक जाननेवाला महिमावंत कोई अद्भुत पदार्थ है। परपदार्थ तो कुछ जानता नहीं है। जाननेवाला कोई अलग है। उसमें संकल्प-विकल्पकी जाल भी उसका स्वभाव नहीं है। ये तो शरीर है, संकल्प-विकल्पकी जाल वह आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्मा तो जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा आत्मा है। प्रत्येक द्रव्य अनादि अनन्त शुद्धात्मा है। परन्तु विभावकी ओर दृष्टि जाती है, पुरुषार्थ मन्द है इसलिये वहाँ रुक जाता है। परन्तु यदि अपने स्वभावमें दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो हो सकता है, परन्तु पुरुषार्थकी मन्दताके कारण वह बाहरमें रुक जाता है।

पुरुषार्थ करे, आत्माको पीछाने, भीतरमेंसे पीछाने। जैसा स्फटिक निर्मल है, वैसा

ही निर्मल है। उसमें जो लाल-पीला प्रतिबिम्ब उठता है वह स्फटिकका स्वभाव नहीं है। इसलिये आत्मा निर्मल है, उसमें विभावकी पर्याय आत्माका स्वभाव नहीं है। उसका भेदज्ञान करे। परसे एकत्वबुद्धि तोड़कर स्वमें एकत्वबुद्धि करे। आत्मामें एकत्वबुद्धि करे, परसे विभक्त भेदज्ञान करे। ऐसे यदि पुरुषार्थ करे तो हो सकता है।

अनन्त कालमें बहुत आत्मा ऐसा भेदज्ञान करके, स्वमें एकत्वबुद्धि करके और स्वानुभूति प्रगट करके अनन्त जीवने आत्माके स्वरूपको प्रगट किया है और अनन्त जीव सिद्ध हुए हैं। इसलिये पुरुषार्थ हो सकता है, परन्तु अपनी कमजोरीके कारण वह अनादि कालसे रुक जाता है। बारंबार-बारंबार उसका पुरुषार्थ करना चाहिये। बाहर दौड़ता है तो भी बारंबार उसका पुरुषार्थ करना चाहिये। सुखका धाम है, ज्ञानका धाम आत्मा है। उसको बारंबार...

सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रममें रहता है तो भी उसको न्यारा-न्यारा रहता है। उसने आत्माको पीछाना है, वह न्यारा रहता है। आत्माका ध्यान करके आत्माकी स्वानुभूतिमें लीन होता है। ऐसे गृहस्थाश्रममें भी हो सकता है। फिर विशेष पुरुषार्थ करे तो विशेष विरक्ति आये और आत्माका निराला विशेष पुरुषार्थ करके करे तो मुनि हो जाता है और बारंबार क्षण-क्षणमें आत्माकी स्वानुभूतिमें लीन होता है और केवलज्ञान प्रगट करता है। पुरुषार्थसे हो सकता है। रुचि अपनी बाहरमें लगी है उसको तोड़कर आत्माके स्वभावको पीछाने, यथार्थ ज्ञान करे तो हो सकता है।

यथार्थ ज्ञान, यथार्थ ध्यान। सच्चे ज्ञान बिना सच्चा ध्यान नहीं हो सकता है। पहले सच्चा ज्ञान करे। मैं आत्मा हूँ, मेरा स्वभाव कोई जुदा है, मैं ज्ञायक स्वभावी हूँ। भीतरमेंसे पीछन करके। कोई कल्पना, धोख ले ऐसा नहीं, परन्तु स्वभावको पीछानकरके उसका भिन्न भेदज्ञान करे।

मुमुक्षु :- शब्दोचारणसे कुछ नहीं होता। अन्दरकी तरफ प्रवेश करे तो अंतरकी अनुभूतिका आनन्दका अनुभव करे तो कुछ पुरुषार्थकी तरफ...

समाधान :- हाँ, भीतरमेंसे अंतर दृष्टि करके स्वानुभूति प्रगट करे तो हो सकता है। ऐसे धोखनेसे नहीं होता है। जब तक नहीं होवे तब तक तत्त्व विचार, शास्त्र स्वाध्याय ऐसा होता है। परन्तु ऊपर-ऊपरसे नहीं होता है। भीतरमें अंतर दृष्टि करे, अंतरमें स्वानुभूति करे तो हो सकता है। यह एक उपाय है-स्वानुभूति प्रगट करना। ऐसे बाहर क्रिया करता है, शुभभाव करता है तो पुण्यबन्ध होता है, तो देवलोक होता है, परन्तु भवका अभाव तो एक शुद्धात्मा निर्विकल्प तत्त्व है उसको पीछाननेसे भवका अभाव होता है और चैतन्यका स्वानुभव होता है। शुभभाव बीचमें आता है, परन्तु वह पुण्यबन्धका (कारण है)।

मुमुक्षु :- शुभभाव पुण्यबन्धका ही कारण है।

समाधान :- पुण्यबन्धका ही कारण है।

मुमुक्षु :- शुद्ध भाव अथवा अनुभूति जो है वह..

समाधान :- वह मुक्तिका कारण है। अभ्यास तो विभावका हो गया है। ऐसा स्वभावका अभ्यास करे, बारंबार करे तो हो सकता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- छाछमेंसे मक्खन निकलता है न? ऐसे मंथन करनेसे मक्खन करनेसे मक्खन ऊपर आ जाता है। ऐसे बारंबार अभ्यास करना। चैतन्य तो निराला है। परन्तु निराला प्रगट करना वह बारंबार करनेसे होता है। ऐसे अंतर्मुहूर्तमें तो चौथे कालमें किसीको होता है, परन्तु वैसे तो पुरुषार्थ करनेसे बारंबार अभ्यास करनेसे होता है।

... कितने साल हो गये। आता है न? 'अशुचिपणुं विपरीतता ए आस्रवोना जाणीने, वळी जाणीने दुःखकारणो एनाथी जीव पाछो वळे।' दुःख और दुःखका फल, दुःखका कारण है। अशुचिपना, विपरीत स्वभाव सब आस्रव है, दुःखस्वरूप है, दुःखका कारण है, दुःखका फल है। उससे वापस मुड़े। आत्मा सुखस्वरूप है। सुखका कारण है, सुखका फल है, सब उसीमें है।

स्वयंको अपना स्वभाव अनुकूल है, पवित्रस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप है वह अपनेआपको विपरीत नहीं है, परन्तु स्वयं अपनेको सानुकूल स्वभाव है। पवित्रका धाम है, सुखका धाम है, सुखका कारण है, सुखका फल उसमेंसे प्रगट होता है। उससे जीव वापस मुड़े, भेदज्ञान करके वापस मुड़े। एक द्रव्यकी दो क्रिया नहीं होती, एक द्रव्यको दो कर्ता नहीं होते, तो भी जीव अनादि कालसे मैं परद्रव्यको करता हूँ और परद्रव्य मेरी क्रिया है, ऐसा ही मान बैठा है। स्वयं अपने स्वभावका कर्ता और स्वभावकी परिणतिरूप क्रिया वह अपनी क्रिया है। विभावकी क्रिया वह तो अज्ञान आश्रित है, परन्तु परद्रव्य जड़की क्रिया मैं करता हूँ, ऐसा मानता हूँ, वह उसका भ्रम है। कर कुछ नहीं सकता है, मात्र अज्ञान करता है।

कैसा उसका स्वभाव, कैसा सुखका धाम तो भी अनन्त काल ऐसे ही बाह्य दृष्टिमें गंवाया है। स्वभाव दृष्टि करे तो सादि अनन्त काल (सुखमें रहे)। अनन्त काल उसका पूरा होता है और सादि अनन्त सुखका काल (चालू होता है)। सुखका धाम अनन्त काल उसका नाश ही नहीं होता, परन्तु स्वयं वापस मुड़े तो उसकी शुरूआत होती है। वापस मुड़ना उसे दुःष्कर हो जाता है।

गुरुदेव मिले और सबको एक जातकी दृष्टि दी। अंतर दृष्टिकी कोई अलग बात है, परन्तु यह दिशा बतायी है कि इस दिशामें जाओ। अंतर दृष्टि प्रगट करनी वह

अपने हाथकी बात है। दिशा बतायी कि इस मार्ग पर जाओ। जैसे हाथ पकड़कर अंगूली पकड़कर दिशा बताये कि इस दिशामें जाओ। सबको दिशा बतायी।

सुखधाम अनन्त सुसंत चही, दिन रात्र रहे तद्ध्यान मही। सुखका जो धाम है, उसे सुसन्त इच्छते हैं। अनन्त सुखका धाम। दिन-रात उसके ध्यानमें रहते हैं। प्रशान्ति अनन्त सुधामय जे। जो प्रशान्ति सुधामय अमृतसे भरी जो सुधामय शान्ति। प्रणमुं पद ते वरते जयते। वह पद प्रणमन करुं, उस पदको नमन करे। वह प्रधानरूप है, ध्येयरूप है। प्रशान्ति अनन्त सुधामय जे। सुधामय प्रशान्ति बरस रही है। अमृतसे भरी हुयी शान्ति सुधामय।

पहले तू उसमें दृष्टि कर और उसमेंसे भेदभाव, विभावभाव आदि कुछ तेरेमें नहीं है। वह आता है न? वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श ... कुछ नहीं है। गुणस्थान तेरी साधक दशामें आते हैं, परन्तु एक बार दृष्टिसे, पूर्ण दृष्टिसे देख। पूर्णतासे देख। द्रव्यको पूर्ण शुद्ध देख ले। फिर पर्याय कैसे है, उसका ज्ञान कर, उसका विवेक कर। उसका विवेक कर तो अनन्त शान्ति प्रगट होगी। अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, सब अनन्त है। सब गुण अनन्त-अनन्त शक्तिसे भरा है। अनन्तासे भरा ऐसा सुख स्वरूप आत्मा (है)। सब गुणसे (भरा) ऐसा अद्भुत आत्मा है। उसे तू देख और उसकी साधना कर, तो पर्यायमें भी अनन्त सुखका धाम तेरे वेदनमें प्रगट होगा।

मुमुक्षु :- ... समय-समयके परिणमनमें मानों कोई वस्तु ही न हो, ऐसा..

समाधान :- हाँ, ऐसा हो जाता है। समय-समयके परिणाममें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें पलटता रहे। मानों पलटता हो वह मैं हूँ, ऐसे। पलटता ही रहता है। और एक स्वरूप, एकरूप ज्ञायक हूँ, वह पकड़ नहीं सकता है। पूर्ण ज्ञायक है। शक्तिरूपसे तो पूर्ण ज्ञायक है।

... आबाल-गोपालको अनुभवमें आ रहा है। आबाल-गोपालको क्या अनुभवमें आ रहा है? ऐसे ही पूछा करते हैं। अनुभवमें आ रहा है वह सत्यरूपसे (अनुभवमें नहीं आता है)। वह तो उसका अस्तित्व कि मैं यह चैतन्य हूँ, ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव उसे अनुभवमें आ रहा है। उसको विशेष शुद्धात्मा कहाँ अनुभवमें आ रहा है? उसे तू पकड़ सके इस तरह अनुभवमें आ रहा है। वह जड़ नहीं है। तेरी चैतन्यता चैतन्यरूपमें तुझे अनुभवमें आ रही है। द्रव्य-गुण-पर्याय चैतन्यरूप है। चैतन्यका अस्तित्व चैतन्यरूपसे तुझे ख्यालमें आये, ऐसा अस्तित्व तूझे अनुभवमें आ रहा है। द्रव्य अनुभवमें आता है, गुण अनुभवमें आता है, पर्याय अनुभवमें आती है, ऐसा कहते रहते हैं।

ज्ञान स्वभावका अस्तित्व, द्रव्यका अस्तित्व कहो, गुणका कहो, पर्यायका कहो वह तुझे अनुभवमें आ रहा है। अनुभवमें आ रहा है अर्थात् वह तुझे शुद्धात्मा रूप,

शुद्ध परिणतिरूप अनुभवमें आ रहा है, ऐसे नहीं, परन्तु तुझे अनुभवमें आ रहा है, ऐसा कहते हैं। जड़ नहीं है, चैतन्यता चेतनरूप तुझे अनुभवमें आ रही है। यथार्थताकी यहाँ कोई बात नहीं की है। आबाल-गोपालको अनुभवमें आ रहा है। जड़ नहीं है, तू स्वयं चैतन्य है, ऐसे तुझे चेतन चैतन्यरूप ख्यालमें आ रहा है। पुरुषार्थ होता नहीं इसलिये ऐसा कहते रहे।

मुमुक्षु :- सच्ची रीत पकड़में नहीं आती इसलिये..

समाधान :- .. अनुभवमें आ रहा हो, तो वैसे अनुभवमें नहीं आ रहा है। तेरा स्वभाव ग्रहण हो उस तरह अनुभवमें आ रहा है। यथार्थरूप अनुभव, मुक्तिका अंश प्रगट हुआ हो उस तरह अनुभवमें नहीं आ रहा है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४५

मुमुक्षु :- बार-बार जो है, इस जीवको विषय और कषायोंकी तरफ क्यों ध्यान बट जाता है? क्यों जा रहा है वहाँ?

समाधान :- अनन्त कालमें वह परिणति, अभ्यास ऐसा हो गया है। अनन्त कालसे ऐसा अभ्यास हो रहा है। उस ओरकी रुचि हो रही है, उस ओर सुख लग रहा है। आत्माके सुखकी ओर ध्यान नहीं है। सुख मेरे आत्मामें है, मैं सुखका धाम हूँ, उस ओर उतना पूरा दृढ़ विश्वास नहीं है और परमें सुखबुद्धि हो रही है। बाहरमें जाता है न, इसलिये सुखबुद्धि हो रही है। आत्मामें सुख है, आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायक है, जाननेवाला है, आत्मामेंसे ज्ञान प्रगटता है, आत्मामें आनन्द प्रगटता है, आत्मा कोई अद्भुत वस्तु है, ऐसी जो दृढ़ प्रतीति उसको भीतरमेंसे होनी चाहिये वह भीतरमेंसे दृढ़ प्रतीति नहीं है। प्रतीति बुद्धिसे तो करता है, परन्तु भीतरमें चैतन्यद्रव्यको पीछानकरके भीतरमेंसे जो दृढ़ प्रतीति नहीं है, इसलिये बार-बार बाहर जाता है और अनादि कालसे ऐसा परमें जानेका अभ्यास है, पुरुषार्थ मन्द है और रुचि बाहरमें लग रही है। बाहरमें यदि सुख नहीं लगे, रुचि नहीं लगे, चैन नहीं पड़े।

यह तो आकुलतारूप है, दुःखका कारण है, दुःख स्वरूप है, ऐसा यदि विश्वास होवे कि मेरे आत्मामें सुख है, सुखका कारण, सुखका स्वरूप आत्मामें है, ऐसी दृढ़ प्रतीति भीतरमेंसे आये तो ऊधरसे वापस मुड़े और भीतरमें जाय। परन्तु दृढ़ प्रतीति जो अंतरमेंसे आनी चाहिये ऐसी अंतरमें प्रतीति नहीं है और बाहरमें रुचि लगी है, इसलिये बार-बार वहाँ जाता है। इसलिये उसकी दृढ़ प्रतीति भीतरमेंसे पुरुषार्थ करके करनी चाहिये। वह नहीं होवे तब तक बार-बार वही करना, नहीं होवे तबतक। शान्तिपूर्वक धैर्यसे करना चाहिये। ऐसे आकुलता करनेसे नहीं होता, परन्तु शान्तिसे, जिज्ञासासे, भीतरमें लगन लगनी चाहिये कि भीतमेंसे सुख कैसे प्रगट हो? ऐसी लगनपूर्वक शान्तिसे, धैर्यसे उसके स्वभावको पीछानकरके करना चाहिये।

मुमुक्षु :- ... अभी तक जो है सुख आत्मामें नहीं माना है और बाहरसे बुद्धिगत द्वारा तो मान लिया। लेकिन अंतरसे जो है विश्वास नहीं है। अंतरमें सुखका अनुभव नहीं होता। इस कारणसे बार-बार जो है जिन सुखोंको अनादि कालसे इसने भोग

रखा है, उसकी तरफ उसका ध्यान बटता रहता है। और उसके कारण ही उसमें सुख मानता है। यही (कारण है)?

समाधान :- हाँ, इस कारणसे। सुखकी दृढ़ प्रतीति नहीं है भ भीतरमें इसलिये बाहर जाता है। और उसको दुःख लगे कि ये तो दुःखस्वरूप है, आकुलता लगे, शुभ और अशुभ दोनों भाव आकुलतारूप है और शुद्धात्मा है वह सुखरूप है। शुभभाव है वह पुण्यबन्धका कारण है तो भी उस शुभभावमें भी आकुलता है, आत्माका स्वरूप तो नहीं है। जो सिद्ध भगवानका स्वरूप (है), सिद्ध भगवानमें कोई शुभ या अशुभभाव नहीं है, ऐसे आत्मामें कोई इसका स्वभाव नहीं है। शुभभावमें भी आकुलता है। इन दोनों भावसे मैं भिन्न शुद्धात्मा निर्विकल्प तत्त्व हूँ, ऐसी दृढ़ प्रतीति भीतरमेंसे आनी चाहिये तो परिणति स्वकी ओर जाय और परसे हटे। उससे विरक्ति होवे, उसमें शान्ति नहीं लगे, आत्मामें शान्ति, सुख लगे तो स्वभावमें जाय। ऐसी दृढ़ प्रतीति करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- दृढ़ प्रतीति कम है।

समाधान :- प्रतीति कम है, बारंबार अभ्यास नहीं है, पुरुषार्थ कम है इसलिये।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ भी नहीं है, दृढ़ प्रतीति भी नहीं है। बहुत सुन्दर, अति सुन्दर।

समाधान :- बारंबार मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये। ज्ञायकमें अनन्त गुण, आनन्द सब ज्ञायक स्वभावमें है, ऐसी महिमा आनी चाहिये। फिर क्षण-क्षण भेदज्ञान करे। ज्ञायकमें एकत्वबुद्धि करे, मैं परसे विभक्त (हूँ)। क्षण-क्षणमें जो विकल्प आता है, वह मैं नहीं हूँ। मैं तो चैतन्यतत्त्व हूँ, यह मैं नहीं हूँ, मैं तो चैतन्य हूँ। मैं परपदार्थ, वह तत्त्व मैं नहीं हूँ, मैं तो चैतन्य पदार्थ हूँ। ऐसे बारंबार भेदज्ञानकी परिणति करनी चाहिये। स्व ज्ञायकमें एकत्वबुद्धि और परसे भेदज्ञान करना चाहिये। ऐसी भेदज्ञानकी परिणति प्रगट होवे तब भीतरमेंसे स्वानुभूतिका मार्ग हो सकता है। भेदज्ञान प्रगट करे और ज्ञायककी प्रतीति करे, भेदज्ञान करे तो हो सकता है।

मुमुक्षु :- ज्ञायककी प्रतीति अंतरसे..

समाधान :- अंतरसे होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- शब्दोंका, अक्षरोंका...

समाधान :- नहीं, शब्दोंसे नहीं, भीतरसे (होनी चाहिये)।

मुमुक्षु :- भावोंसे ऐसा आवे, ऐसी स्थिति भावोंके अन्दर आ जावे तो काम बने।

समाधान :- हाँ, तो काम बने। भावमें (आना चाहिये)।

मुमुक्षु :- अभी तो बहुत दूर है। सत्य स्वीकार करनेमें जो ... अपन तो ठीक मार्ग पर आये हैं। क्या आनन्दका अनुभव हुआ! आजका प्रसंग बड़ा ठीक लगा, मंगलकारी

लगा। लेकिन अंतरकी तरफ ... आत्मामें संस्कार बड़ा कठिन लगता है। प्रतीति नहीं है, विश्वास नहीं है, आत्माका सुख प्रतिभासित नहीं होता। आत्माका सुख शब्दोंसे जरूर भासता है।

समाधान :- गुरुदेव कहते थे कि तुझसे न हो सके, पुरुषार्थ मन्द होवे, न हो सके तो श्रद्धा तो यथार्थ करना कि मार्ग तो यह है। प्रतीत तो ऐसी दृढ़ रखना कि शुभाशुभ भावसे भिन्न मैं चैतन्यतत्त्व ज्ञायकतत्त्व हूँ। ऐसी श्रद्धा तो यथार्थ करना। श्रद्धा करके फिर पुरुषार्थ धीरे-धीरे होवे, परन्तु प्रतीति तो यथार्थ करना। किसीको जल्दी पुरुषार्थ होता है, किसीको धीरे होता है, परन्तु श्रद्धा तो भीतरमेंसे यथार्थ करना।

मुमुक्षु :- विश्वास तो आया है, विश्वासमें तो कुछ (गड़बड़ी नहीं है। विश्वास तो बराबर महेसुस होता है कि मार्ग तो सच्चा यही है। मार्ग जो है, सत्य मार्ग तो यही है। लेकिन इस मार्ग पर चलनेमें बार-बार अनुकूलता-सुखानुभव ... बड़ी कमज़ोरीसी लग रही है। बार-बार अन्य तरफ जो है ध्यान बटता है। परिवारमें, घरमें, बाहरमें, अर्थमें, यह सारी कमज़ोरी है।

समाधान :- कमज़ोरीका कारण है। रुचि, पुरुषार्थ, प्रतीति भीतरमेंसे दृढ़ करना। प्रतीति दृढ़ होवे तो विकल्प टूटे तो स्वानुभूति होवे। पहले तो अंतरमेंसे करना चाहिये।

मुमुक्षु :- विश्वासकी दृष्टिसे तो बराबर है, बाकी अभी परिणतिकी दृष्टिसे (कमज़ोरी लग रही है।)

मुमुक्षु :- आत्मामें ज्ञानगुण है, तो ज्ञानगुणकी पर्याय तो बराबर जाननेमें आती है, सुखगुण भी आत्मामें है, तो सुखगुणकी पर्याय तो जाननेमें नहीं आती।

समाधान :- सुखगुण है। ज्ञानस्वभाव ऐसा असाधारण गुण है। वह असाधारण है इसलिये ज्ञान तो जाननेमें आता है, परन्तु सुखगुण है (उसे) बाहरमें सुखकी कल्पना हो रही है। सुखगुण तो जब स्वानुभूति होती है, विकल्प टूटे तब सुखका अनुभव होता है। तो उसको आनन्द प्रगट होता है। सुखका स्वभाव ऐसा है, ज्ञानका स्वभाव ऐसा है कि असाधारण गुण है तो ज्ञान तो जाननेमें आता है। सुखका स्वभाव ऐसा है।

ज्ञान तो ऐसा असाधारण विशेष गुण है, इसलिये वह जाननेमें आता है कि यह ज्ञान है, मैं ज्ञायक हूँ। भेदज्ञान करके... आंशिक शान्ति (प्रगट हो), परन्तु यथार्थ आनन्दका अनुभव तो विकल्प टूटे तब आता है। स्वानुभूतिमें आनन्द आता है। उसका स्वभाव ऐसा है। आनन्दगुण और ज्ञानगुणमें फ़र्क़ है। ज्ञान तो असाधारण गुण है।

मुमुक्षु :- विशेष गुणमें भी तफावत है।

समाधान :- हाँ, तफावत है। आत्मामें अनन्त गुण है। उसमें ज्ञानगुण मुख्य असाधारण

गुण है। विशेष गुण है। चेतन-चेतनागुण असाधारण है। दोनों तत्त्व भिन्न पड़े-जड़ तत्त्व और चैतन्यतत्त्व। जड़ कुछ जानता नहीं है। चैतन्यतत्त्व जाननेवाला है। वह उसका असाधारण गुण है। पुद्गलका जड़ है, जानता नहीं है। असाधारण गुण है, ज्ञान स्वभाव है। विशेष गुण है।

मुमुक्षु :- सुखगुण विशेष गुण है?

समाधान :- ज्ञानस्वभाव विशेष गुण है, आत्माका मुख्य गुण है। ज्ञानगुण मुख्य है। सुखगुण मुख्य है, परन्तु वह विकल्प टूटे बिना अनुभवमें नहीं आता। जब विकल्प टूटे तब वह अनुभवमें आता है। सुखगुण। और ज्ञानस्वभाव तो ऐसे जाननेमें आता है कि मैं जाननेवाला हूँ। ज्ञानस्वभावको लक्षणसे पीछान लेता है।

मुमुक्षु :- विकल्प टूटे तो सुखगुण अनुभवमें आये।

समाधान :- सुखगुण प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- ...विकल्प टूटना और विकल्पातीत अवस्था प्राप्त करना, ये तो...

समाधान :- अनुमानसे प्रतीति कर सकता है कि ज्ञानमें सुख है, ज्ञानमें आनन्द है, आत्मामें (सुख है, ऐसी) प्रतीति तो हो सकती है। परन्तु अनुभव आनन्दका विकल्प टूटे तब आता है। हो सकता है। विकल्पातीत अवस्था, निर्विकल्प दशा स्वानुभूति (हो सकती है)। सम्यग्दर्शन उसको कहते हैं, जिसको स्वानुभूति होती है उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। स्वानुभूति हो सकती है। गृहस्थाश्रममें स्वानुभूति (होती है)। सम्यग्दर्शन प्रगट (होता है)। विकल्पातीत विकल्पसे अतीत निर्विकल्प दशा हो सकती है। मुनिको विशेष होती है। क्षण.. क्षण.. क्षणमें निर्विकल्प दशा विकल्प (टूटकर) क्षण-क्षणमें स्वानुभूति होती है। गृहस्थाश्रममें ऐसी नहीं होती, कम होती है, परन्तु हो सकती है। विकल्पातीत अवस्था हो सकती है। सम्यग्दर्शन इस पंचमकालमें हो सकता है। स्वानुभूति निर्विकल्प दशा पंचम कालमें हो सकती है।

मुमुक्षु :- सन्तोंका तो लग रहा है, मैंने एक-दो दिन अपना थोड़ासा स्थगितसा रख लिया और इतवार तकके लिये (रुक गया), बाकी परिवारवालोंको आज (भेज दिया)। उनको थोड़ी कम-सी रुचि थी तो उनको पालीताणा वगैरह (गये)।

समाधान :- परपदार्थमें रुचि लगी है, आत्मामें रुचि कम है। आत्मामें रुचि लगे, बस, आत्मामें सब है, बाहरमें नहीं है। आत्मामें सुख है, आनन्द है, अनन्त गुणसे (भरपूर) आत्मा अद्भुत वस्तु है। ऐसे आत्माकी महिमा आवे, आत्माकी रुचि लगे तब आत्माकी (मुख्यता) हो।

मुमुक्षु :- ये भी उसीका आनन्द हुआ न, जो चैतन्यका आनन्द है उसको चैतन्यकी प्राप्ति समझमें आ जाय कि मैं चैतन्य हूँ, तो उसका मन भी लगने लगेगा।

समाधान :- तो मन भी लगे। परमार्थका पंथ एक ही होता है।

मुमुक्षु :- एक ही है, वह चैतन्यका।

समाधान :- चैतन्यका। उसकी रुचि, उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा, उसमें लीनता, बस।

मुमुक्षु :- क्योंकि मैं जो हूँ, मन्दिर जाता हूँ तो मिनट लगती है। ... मैं रोज हूँ। लेकिन मैं दो घण्टे नहीं बैठता। दो मिनटमें भी अगर हम कोशिष करते हैं कि किसी तरहसे मन जो है चलायमान न हो, तो वह उतनी देर भी स्थिर नहीं हो पाता।

समाधान :- जिनेन्द्र भगवानने सब कुछ प्रगट कर दिया, भगवान तो आत्मामें लीन हो गये। भगवान आत्माकी स्वानुभूतिमें लीन हैं। तो मेरा भी आत्मा ऐसा है। मैं चेतन हूँ, ऐसा चेतनका ध्यान करे तो भी हो। उसकी महिमा होनी चाहिये, उसका पुरुषार्थ होना चाहिये।

मुमुक्षु :- इतना समझमें आता है। इसके बाद भी कमी है हम लोगोंमे।

समाधान :- .. अपना अस्तित्व ज्ञायकका ग्रहण करे, उसका बारंबार अभ्यास करे कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। क्षण-क्षणमें धोखनेरूप अलग है, परन्तु अंतरमेंसे करे तो यथार्थ होता है। धोखनेरूप उसका निर्णय करे वह अलग बात है। परन्तु अंतरमेंसे मैं ज्ञायक हूँ, यह मैं नहीं हूँ। अपना अस्तित्व ग्रहण करे।

मुमुक्षु :- अंतरमेंसे इसलिये निर्विकल्पतासे?

समाधान :- नहीं, निर्विकल्प तो बादमें होता है, पहले अभ्यास होता है। निर्विकल्प तो उसे विकल्प टूटकर स्वानुभूति होती है। वह तो स्वानुभूतिरूप है। वह तो अभ्यास करे उसका फल है। उसका फल आता है। स्वानुभूति विकल्प टूटकर (होती है)। ये तो उसे विकल्प आने पर भी, विकल्प सो मैं नहीं हूँ, ऐसी प्रतीति, ऐसा ज्ञान और परिणति अंतरमें ऐसा अभ्यास करे। भले गहराईसे नहीं हो, परन्तु गहराईसे, यथार्थ गहराईसे करे तो-तो उसका फल यथार्थ आता है। बारंबार मैं ज्ञायक हूँ, अंतर स्वभाव पहिचानकर करे। जिसे होता है उसे स्वानुभूति अंतर्मुहूर्तमें होती है। जिसे न हो, वह बारंबार अभ्यास करे। बारंबार छाछका मंथन करनेसे उसमेंसे मक्खन निकलता है। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, (ऐसा करे तो) मक्खन ऊपर आये। वैसे निराला ज्ञायक प्रगट हो, स्वयंको अनादिसे विभावका अभ्यास है, अपना अभ्यास करे तो प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- उपयोगमें उपयोग, आता है।

समाधान :- उपयोगमें उपयोग, क्रोधमें क्रोध। भेदज्ञान करे कि मैं चैतन्यरूप हूँ, यह मैं नहीं हूँ। स्वमें एकत्व और परसे विभक्त। अपनेमें एकत्वबुद्धि करे, परसे विभक्तबुद्धि

करे। बुद्धिमें ग्रहण करे, परन्तु अंतरसे ग्रहण करे तो यथार्थ होता है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें है, घोड़ा जैसे छलंग लगाये, वैसे किसीको..

समाधान :- किसीको जल्दी होता है। घोड़ा छलंग लगाये ऐसे एकदम अंतर्मुहूर्तमें होता है और किसीको धीरे-धीरे होता है। वह तो उसकी जैसी पुरुषार्थकी गति।

मुमुक्षु :- उसके पहले तो पुरुषार्थ सब विकल्पका ही होता है न?

समाधान :- साथमें विकल्प होते हैं, परन्तु मैं विकल्प नहीं हूँ। ऐसी प्रतीति उसके साथ होनी चाहिये। विकल्प आये, फिर भी मैं विकल्प नहीं हूँ। विकल्पसे मैं भिन्न हूँ, मैं भिन्न हूँ। उस प्रकारका अंतरसे अभ्यास, ऐसी परिणति प्रगट करे। विकल्प आने पर भी मैं विकल्प नहीं हूँ, ऐसा भेदज्ञान करे, ऐसी श्रद्धा करे। जो छूटे वह तो.. विकल्प तो पहले होता ही है, अनादिकालसे विकल्पमें तो पड़ा ही है। उससे छूटनेका प्रयत्न करे कि विकल्प मैं नहीं हूँ।

मुमुक्षु :- ज्ञायकमें अनन्त गुण लेने?

समाधान :- हाँ। एक ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण किया उसमें अनन्त गुण आ जाते हैं। उसे ज्ञानमें सब आये, परन्तु दृष्टि तो कोई भेद नहीं करती है। वह तो अभेदको एक सामान्यको ग्रहण कर लेती है, अपना ज्ञायकका अस्तित्व। उसमें उसकी अनन्त शक्तियाँ, अनन्त गुण आ जाते हैं।

मुमुक्षु :- और वेदनमें भी अनन्त गुण आते हैं?

समाधान :- वह तो उसे स्वानुभूतिमें आते हैं। अनन्त गुणोंकी पर्याय होती है। अनन्त गुणकी पर्याय उसे वेदनमें (आती है)। लेकिन उसके कोई भिन्न-भिन्न नाम नहीं होते। उसके वेदनमें आती है।

मुमुक्षु :- स्वानुभूतिके वेदनकी कैसी शान्ति और कैसा अतीन्द्रिय रस होता है, उसका थोड़ा वर्णन...।

समाधान :- वह तो कोई वचनमें नहीं आता। जगतसे भिन्न है, जगतसे भिन्न ही है। जो उसे विभावका आनन्द और विभावका रस है वह तो अलग है। ये तो निर्विकल्प आनन्द है। चैतन्यके आश्रयमेंसे... चैतन्यरूप है, चैतन्यमेंसे प्रगट हुआ आनन्द है। उसे किसीका आश्रय नहीं है। स्वयं अपने आश्रयमेंसे प्रगट हुआ है। जैसे बर्फ है, ऐसे स्वयं अनन्त शान्ति, अनन्त ठण्डकसे भरा है, अनन्त आनन्दसे भरा है। शान्ति एक अलग चीज है, ये तो अनन्त आनन्दसे भरा है, अनन्त ज्ञानसे भरा है। वह तो उसका गुण ही है। जो अपने गुण हैं, उन गुणोंकी पर्याय प्रगट होती है। उसे कोई विकल्पका आश्रय नहीं है। जहाँ आकुलता नहीं है। शान्ति तो है, परन्तु आनन्द प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- लक्ष्य तो द्रव्यका और वेदन पर्यायका।

समाधान :- हाँ, वेदन पर्यायका। लक्ष्य द्रव्यका, वेदन पर्यायका।

मुमुक्षु :- पर्यायमें तो जैसे कषायसे भेदज्ञान हो, तब एक कषायके अभाव जितना स्वानुभूतिके कालमें वेदन होता है न? प्रथममें तो।

समाधान :- कषायका अभाव होकर जो...

मुमुक्षु :- अनन्तानुबन्धीके अभावका।

समाधान :- अनन्तानुबन्धीके अभावका...। पहले तो वह भेदज्ञान करता है कि मैं यह नहीं हूँ। वह तो भेदज्ञान है। विकल्प टूटकर जो आता है, वह तो उसके चैतन्यमेंसे (आता है), वह तो उसमेंसे आता है। भेदज्ञान करे तो अमुक अंशमें उसे शान्ति लगती है। आनन्द तो, सविकल्पमें उसे आनन्द नहीं है, परन्तु शान्ति और समाधि जैसा लगता है। बाकी विकल्प टूटकर तो आनन्द उछलता है, वह अलग है। वह सविकल्पमें नहीं होता है, वह निर्विकल्पमें ही होता है।

मुमुक्षु :- वह आनन्द कैसा?

समाधान :- कैसा वह कोई कह सकता है? घी कैसा है? घीका स्वाद कैसा है? चीनी कैसी है? मीठी। तो कैसा मीठा, वह बोलनेकी बात नहीं है।

मुमुक्षु :- दृष्टान्तके रूपमें?

समाधान :- दृष्टान्त... वह तो अनुपम है, उसे किसीकी उपमा नहीं लागू पड़ती।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४६

मुमुक्षु :- आज सुबह टेपमें आया था कि केवलज्ञानी सर्व आत्मप्रदेशसे जानते हैं। तो स्वानुभूतिमें भी सर्व प्रदेशसे आत्मा ज्ञात होता है?

समाधान :- उसे कहाँ केवलज्ञान प्रगट हुआ है, उसे तो क्षयोपशमज्ञान है।

मुमुक्षु :- परन्तु वह तो प्रत्यक्ष है न?

समाधान :- आंशिक वेदन प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- वेदन प्रत्यक्ष है, प्रदेश प्रत्यक्ष नहीं है।

समाधान :- प्रदेश नहीं है, वेदन प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- तो सर्व प्रदेशसे?

समाधान :- उसे जीवके प्रदेश दब नहीं गये हैं। उसे निरावरण असंख्य प्रदेशमें अमुक अंश तो खुल्ले ही हैं। उसके खुल्ले अंशसे जानता है।

मुमुक्षु :- इन्द्रियज्ञानमें तो बराबर है कि अमुक अंशोंसे जानता है। परन्तु अतीन्द्रिय वेदनके कालमें?

समाधान :- वह जानता है लेकिन जो केवलज्ञानी जानते हैं, वैसे वह नहीं जानता है। वेदन प्रत्यक्ष है। थोड़ा जाने और थोड़ा न जाने, ऐसा नहीं है। पूरे आत्माको जानता है।

मुमुक्षु :- पूरे आत्माको लेकिन सर्व प्रदेशसे?

समाधान :- हाँ, सर्व प्रदेशसे पूरे आत्माको जानता है। उसे भेद नहीं पड़ता है कि इतने प्रदेश जाने और इतने प्रदेशसे नहीं जानता है, ऐसा भेद नहीं पड़ता। सर्व प्रदेशसे, सर्वांग वेदन होता है। अमुक प्रदेशमें वेदन होता है और अमुकमें नहीं होता है, ऐसा नहीं है। सर्वांगसे वेदन होता है और सर्वांगसे वह जानता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान भी सर्वांगसे...?

समाधान :- ज्ञान भी सर्वांगसे और वेदन भी सर्वांगसे। थोड़ा वेदन है और थोड़े प्रदेशमें नहीं है, या थोड़ेमें ज्ञान है और थोड़ेमें नहीं है, ऐसा नहीं है। सर्वांगसे ज्ञान और सर्वांगसे वेदन है। परन्तु वह वेदन प्रत्यक्ष है। केवलज्ञानीका ज्ञान प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- संपूर्ण प्रत्यक्ष है।

समाधान :- संपूर्ण प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- अन्दरमें शान्तिकी धारा चलती है। प्रचुर आनन्द कहते हैं, प्रचुर आनन्द। वह प्रचुर कितना? माप क्या?

समाधान :- बारंबार क्षण-क्षणमें अंतर आत्मामें जाता है न। शुद्धउपयोगकी धारा बारंबार प्रगट होती है। बाहर आता है और अंतरमें जाता है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें अन्दर जाता है और अंतर्मुहूर्तमें बाहर आता है, अंतर्मुहूर्तमें अंतरमें जाते हैं। अतः प्रचुर स्वसंवेदन है। बारंबार.. बारंबार.. बारंबार.. बारंबार अंतरमें जाते हैं। और कषाय तो बिलकुल अल्प हो गये हैं। संज्वलन एकदम पतला हो गया है। वीतराग दशा वृद्धिगत हो गयी है। वीतराग दशा वृद्धिगत हो गयी है इसलिये आनन्द भी बढ़ गया है।

मुमुक्षु :- प्रचुर हो गया है।

समाधान :- प्रचुर हो गया है। बार-बार अंतरमें जाते हैं और वीतराग दशा एकदम बढ़ गयी है। इसलिये आनन्द प्रचुर स्वसंवेदन है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव तो चले गये, अब गुरुदेवकी बहुत याद आती है, हमें क्या करना?

समाधान :- याद आये तो गुरुदेवने जो मार्ग बताया, उस मार्गको ग्रहण करके उसका अभ्यास करना। गुरुदेवने जो कहा है, उसे याद करना। मार्ग बताया, अंतरमें दृष्टि करनेका। उसे अन्दर पीघलाना, उसका विचार करना, उसका अभ्यास करना। वह करने जैसा है। जो गुरुदेवने कहा वही करने जैसा है।

मुमुक्षु :- बहुत-बहुत धन्यवाद। आपने बहुत कृपा करके बहुत अच्छा माल दिया।

समाधान :- (गुरुदेवने) मार्ग बताया है।

मुमुक्षु :- बहुत बताया है, बहुत बताया है। बहुत स्पष्टता की है।

समाधान :- एकदम स्पष्ट करके खुल्ला कर दिया है। सब क्रियाकाण्डमें और शुभभावसे धर्म मानते थे। उसमें एकदम अंतर दृष्टि और द्रव्यदृष्टि बता दी, स्वानुभूति बतायी। और बरसों तक वाणी बरसायी।

मुमुक्षु :- बराबर है, बराबर है।

समाधान :- तीर्थंकर जैसा काम इस पंचमकालमें किया। द्रव्य-गुण-पर्यायकी किसीको शंका नहीं रही, ऐसा किया है।

मुमुक्षु :- कुछ बाकी नहीं रखा। लिखा है न? मांगमें तेल भरे, एक-एक मांगमें ऐसे एक-एक पहलू स्पष्ट किये हैं।

समाधान :- सब पहलू खुल्ले किये।

मुमुक्षु :- सबका काम बहुत जल्द हो जायगा।

समाधान :- एक ही मन्त्र गुरुदेवने दिया है, ज्ञायक आत्माको पहचान। स्वमें एकत्वबुद्धि, परसे विभक्त हो जा। तो वही स्वानुभूतिका मार्ग है।

समाधान :- .. पीछे पड़े तो हुए बिना रहे नहीं। स्वयं ही है, अन्य कोई थोड़ा ही है। परन्तु पहले उसका कारण प्रगट करे। अभी तो विभावकी एकत्वबुद्धि खड़ी है। स्वमें एकत्वबुद्धि, परसे विभक्त-(भिन्नता) करे तो उसका मार्ग हो। वह बुद्धि-एकत्वबुद्धि तो खड़ी ही है। विभावकी एकत्वबुद्धि। स्वयं स्वयंमें एकत्व करे, (विभावसे) विभक्त करे तो विकल्प टूटनेका प्रसंग आये। अभी तो एकत्वबुद्धि है। एकत्वबुद्धि है उसमें विकल्प कैसे टूटेगा?

बहुत लोग ध्यान करके विकल्प.. विकल्प.. विकल्प.. छोड़ने जैसा है (ऐसा कहते हैं), परन्तु कैसे छूटेंगे? विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि खड़ी है। इसलिये होते हैं। ... (आत्माका) स्वरूप तो चैतन्य तो ज्ञायक स्वभाव-जाननेका स्वभाव है, जाननेवाला है। अनन्त-अनन्त शक्तिओंसे भरा हुआ। जिस शक्तिका कहीं अंत नहीं है, ऐसी शक्तिका नाश नहीं होता। अनन्त गुणोंसे भरपूर अद्भुत तत्त्व है। जो ज्ञानस्वभाव अनन्त-अनन्त है, जिसका अंत नहीं आता। पूर्ण लोकालोकको जाने तो भी वह तो अनन्त-अनन्ततासे भरा हुआ अनन्त लोकालोक हो तो जाने, ऐसी उसकी ज्ञानशक्ति है।

वैसी उसकी आनन्दशक्ति है। अनन्त काल तक परिणमता रहे तो भी उसका आनन्द कम नहीं होता। ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तिओंसे भरा हुआ आत्मा है। ऐसे अनन्त गुण-अनन्त शक्तिओंसे भरा ऐसा चैतन्यतत्त्व है। उसकी महिमा और उसकी अद्भुतता कोई अलग प्रकारकी है। उसकी महिमा आये, उसकी रुचि हो तो जीवनमें वह कर्तव्य है। बाकी ये बाहरका तो सब परद्रव्य है। यह शरीर तो परद्रव्य है, विभाव स्वभाव आत्माका नहीं है। वह तो पुरुषार्थकी मन्दताके कारण वह विभावमें जुड़ता रहता है और भ्रान्तिसे यह सब मेरा है, ऐसा मानता है। उसके साथ एकत्वबुद्धि कर रहा है।

चैतन्य स्वभावमें स्वयं स्वयंमें एकत्वबुद्धि करे और परसे विभक्त-उसका भेदज्ञान करे और मैं चैतन्यतत्त्व ज्ञायक हूँ, इस तरह स्वयंमें एकत्वबुद्धि करके परसे क्षण-क्षणमें भेदज्ञान करे वही जीवनका कर्तव्य है। भेदज्ञान करके ज्ञायकका बारंबार-बारंबार उसीका प्रयत्न करके, उसीका अभ्यास करके वह प्रगट करने जैसा है।

विकल्पकी जाल आकुलतारूप है। ये विभाव स्वभाव आकुलतारूप है, सुख स्वरूप नहीं है। सुखका धाम, आनन्दका धाम तो आत्मा है। इसलिये बारंबार वह कैसे प्रगट हो? विकल्प टूटकर निर्विकल्प दशा, स्वानुभूति कैसे प्रगट हो? वह प्रगट करने जैसा है। वही जीवनका कर्तव्य है। उसके लिये तत्त्व विचार, स्वाध्याय, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, चैतन्यकी महिमा आदि सब इस ज्ञायकतत्त्वको प्रगट करनेके लिये करना है।

सत्यार्थ वह है। विकल्प टूटकर स्वानुभूति हो और स्वानुभूतिका अंश प्रगट हो वही मुक्तिका मार्ग है। स्वानुभूतिकी दशा बढ़ते-बढ़ते पूर्णता प्राप्त होती है। अतः वही जीवनका कर्तव्य है। द्रव्य पर दृष्टि करके वही करने जैसा है।

मुमुक्षु :- द्रव्य पर दृष्टि, ऐसा आपने कहा, अर्थात् द्रव्यकी जो अनुपम महिमा आपने बतायी, ऐसा मैं हूँ, ऐसा निर्णय करके उस ओर स्वयंका लक्ष्य करना, उसे दृष्टि कहते हैं? या वस्तु जैसी है वैसी जानकर श्रद्धा करनी, उसे दृष्टि कहते हैं?

समाधान :- प्रथम उसे पहचान लेना कि चैतन्यतत्त्व यह है, ऐसा महिमावंत है। ऐसे पहचानकर उस पर दृष्टि करनी। उस दृष्टिमें कोई भेद नहीं पड़ता। अपना अस्तित्व ग्रहण करता है कि यह चैतन्य है सो मैं हूँ। उसे स्वभावमेंसे ग्रहण करे। एक बुद्धिसे निर्णय करे वह अलग बात है। बाकी अंतर दृष्टि करके उसे बराबर पहचाने, उस पर दृष्टि करे। उसकी दृष्टि कहो या प्रतीत कहो, जो भी कहो सब एक है। दृष्टि, प्रतीत। उसके साथ ज्ञान यथार्थ (होता है कि), यह चैतन्य मैं हूँ। उसके साथ परिणति भी उस ओर (जाती है कि) वह क्षण-क्षणमें भेदज्ञान करे। वह भेदज्ञान पहलेसे नहीं होता है, उसका अभ्यास करे तो होता है।

प्रथम तो यथार्थ स्वानुभूतिके बाद जो यथार्थ ज्ञायककी धारा प्रगट हो, वह अलग होती है। पहले तो वह मात्र अभ्यास करता है कि मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, यह मैं नहीं। ऐसा अभ्यास (करता है)। यथार्थ ज्ञायककी धारा और कर्ताबुद्धि टूटकर जो ज्ञाताधारा प्रगट हो वह स्वानुभूति होनेके बाद यथार्थरूपसे होती है, सहजरूपसे होती है। उसके पहले तो वह अभ्यास करे, परपदार्थकी कर्ताबुद्धि छोड़े कि मैं परपदार्थका कर नहीं सकता, मैं चैतन्य ज्ञायक-ज्ञाता हूँ। ऐसे पहले तो अभ्यास करे। बादमें यथार्थ होता है और सहजरूपसे बादमें होता है।

मुमुक्षु :- प्रयत्नपूर्वक स्वयं परपदार्थसे भिन्न है, मैं ज्ञान और आनन्द हूँ। ऐसे निर्णय करके स्वरूपकी ओर झुकता है, विकल्पके द्वारा और जब उसका उस ओर ज़ोर बढ़ जाय, तब विकल्प टूटता है?

समाधान :- हाँ, ज़ोर बढे तो ही। तो ही विकल्प टूटता है। मात्र मन्द-मन्द हो उसमें नहीं टूटते। यथार्थपने उसका ज़ोर, द्रव्यदृष्टिका ज़ोर बढ़े तो विकल्प टूटे।

मुमुक्षु :- और आपके जो वचन निकले हैं, उन पर गुरुदेवने सब स्पष्टीकरण किया है और आपके मुखसे वाणी सुनकर भी मुझे बहुत आनन्द हुआ है। और वास्तवमें ... बहुत संतोष होता है कि महाभाग्यशाली हैं कि भगवती माता आप प्रत्यक्ष हमारे सामने मौजूद हों, आप दर्शन देते हों। गुरुदेवने आपकी पहचान नहीं करवायी होती तो ख्यालमें भी नहीं आता, आपको पहचान नहीं सकते।

समाधान :- सत्यार्थ यही है। मुक्तिका मार्ग गुरुदेवने यही दर्शाया है। अंतरमें वह कोई अलग तत्त्व है, सुखका धाम वह है, ज्ञानका धाम वह है, आनन्दका धाम वह है, कोई अद्भुत तत्त्व है। उसकी महिमा लाकर वही करने जैसा है।

मुमुक्षु :- अधिक महिमा कैसे आये?

समाधान :- वह स्वयं करे तो होता है। परपदार्थकी महिमा टूट जाय और स्वभावकी महिमा आये कि वास्तवमें स्वभाव कोई अलग चीज है। ज्ञायक-ज्ञानस्वभव कोई अलग ही है, चैतन्य कोई अलग ही है और यह सब तुच्छ है। विभाव स्वभाव आदरणीय नहीं है। वह कोई आत्माको सुखरूप नहीं है, आकुलतारूप है, विपरीतरूप है, अपना स्वभाव नहीं है। यह स्वभाव सो मेरा नहीं है, मेरा स्वभाव कोई अलग ही है। ऐसा निर्णय हो तो उसकी महिमा आये। (चैतन्यकी) रुचि हो तो महिमा भी उसीमें समाविष्ट है। रुचिके साथ महिमा समाविष्ट है।

मुमुक्षु :- रुचि और महिमा...?

समाधान :- हाँ, दोनों एक ही है। रुचि, महिमा, उसकी लगन। परपदार्थकी तुच्छता भासित हो तो अपनी अपूर्वता भासित हो।

मुमुक्षु :- बारंबर यह बात सुनने पर भी उस ओर मुड़नेके लिये जीव अधिक पुरुषार्थ क्यों नहीं कर सकता है?

समाधान :- अनादिसे अभ्यास परपदार्थकी ओर है, रुचि उसमें जुड़ी है। जितनी तीव्र रुचि अपनी ओर चाहिये उतनी करता नहीं है, इसलिये पुरुषार्थ नहीं होता है। परपदार्थकी ओर, विभावकी ओर अटक रहा है। विभावमें उसका पुरुषार्थ जुड़ रहा है। इसलिये अपनी ओर मन्दता रहती है। अपनी ओरकी उग्रता हो कि यह कुछ नहीं चाहिये, मुझे एक आत्मा ही चाहिये, ऐसी उग्रता हो तो पुरुषार्थ अपनी ओर मुड़े।

मुमुक्षु :- अपने दोषसे-अपनी भूलसे ही दुःखी होता है।

समाधान :- अपनी भूलसे स्वयं दुःखी होता है। निर्मल स्वभाव आत्मा है। जैसे पानी निर्मल है, वैसा स्वयं स्फटिक जैसा निर्मल है। परन्तु भ्रान्तिके कारण मैं मलिन हो रहा हूँ, ऐसी उसे भ्रान्ति हो गयी है। उसकी पर्यायमें मात्र उसे अशुद्धता होती है। स्वयं पलटे तो हो सके ऐसा है। परन्तु स्वयंकी मन्दताके कारण अटक रहा है।

मुमुक्षु :- निज शुद्ध स्वरूपका जब अन्दरसे स्वीकार हो, तब पर्यायमें शुद्धता हो।

समाधान :- तब होती है। शुद्धात्माको पहचाने, बराबर उसकी प्रतीत हो, उस ओर परिणति हो तो शुद्ध परिणति हो। अशुद्ध परिणति गौण हो। पूर्णता तो बादमें होती है, परन्तु पहले अंश प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव है वह जगतकी कोई वस्तुके साथ दर्शा

सकते हैं या समझ सकते हैं?

समाधान :- कोई दृष्टान्तसे समझायी नहीं जाती। क्योंकि वह अतीन्द्रिय है। उसमें इन्द्रियोंका आश्रय नहीं है। स्वयं अपने आश्रयसे प्रगट होती है। जो सुखका धाम है, स्वतःसिद्ध वस्तु है उसमेंसे आनन्द प्रगट होता है। उसे जगतकी कोई वस्तुके साथ मेल नहीं है। क्योंकि ये पदार्थ जड़ हैं, विपरीत स्वभाव है, विभावभाव भी विपरीत है। इसलिये उसका किसीके साथ मेल नहीं है। इन्द्रका इन्द्रासन, देवलोक है वह सब भी विभावस्वभाव है, विभावका फल है। फिर पुण्यके जितने भी प्रकार हैं, उन्हें शुद्धात्माके साथ मेल नहीं है। अतः उसकी कोई उपमा नहीं है। जैसे विष और अमृत बिलकूल भिन्न हैं, वैसे यह भिन्न ही है।

... आत्माकी महिमा और स्वाध्याय आदि करने जैसा है। अनन्त कालमें जीवने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है, ऐसा शास्त्रमें आता है। बाकी सब प्राप्त हो गया है। एक जिनवर स्वामी और सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है। परन्तु जिनवर स्वामी मिले हैं, लेकिन स्वयंने पहचाना नहीं है। इसलिये वे भी नहीं मिले हैं, ऐसा कहनेमें आता है। और सम्यग्दर्शन कोई अपूर्व वस्तु है, उसे प्राप्त नहीं की। बाकी सब जगतमें प्राप्त हो गया है। इसलिये यह एक अपूर्व है। इसलिये उस अपूर्वताका पुरुषार्थ करना वही जीवनका कर्तव्य है।

मुमुक्षु :- वास्तवमें हितकी बात है, वैसा करने जैसा है।

समाधान :- विस्तार कर-करके मार्गको एकदम स्पष्ट कर दिया है। किसीकी कहीं भूल न रहे, इतना मार्ग स्पष्ट किया है। पुरुषार्थ करना अपने हाथमें है। अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे स्वयं रुका है।

मुमुक्षु :- बहुत स्पष्टीकरण हुआ, इस कालमें गुरुदेव द्वारा बहुत स्पष्टीकरण हुआ। ऐसा योग मिलने पर भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं हुयी और यहाँसे देह छूट गया तो जीवका कहीं भी गूम जाना होगा, यह बराबर है?

समाधान :- सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं हुयी, परन्तु यदि उसका अभ्यास स्वयं (करता हो), उसकी भावना गहरी हो और अंतरकी गहराईसे स्वयंको यथार्थ लगन लगी हो तो कहीं भी जाय तो भी उसे पुरुषार्थ हो सकता है। ऐसा अवकाश रहता है। परन्तु यदि गहरे संस्कार न हो तो वह भूल जाता है। बाकी उसके संस्कार गहरे हो, तीव्र भावना हो कि मुझे आत्मा ही चाहिये, ऐसी भावना हो तो वह कहीं भी जाय वहाँ प्रगट होनेका, पुरुषार्थका अवकाश रहता है।

मुमुक्षु :- गहरे संस्कार किसे कहते हैं? गहरे संस्कार अर्थात..?

समाधान :- मुझे ज्ञायक आत्मा चाहिये और कुछ नहीं चाहिये। ऐसी तीव्र भावना

अन्दर रहती हो कि एक आत्मा सुखका धाम, आनन्दका धाम, एक ज्ञायक आत्मा (ही चाहिये)। विकल्पकी जाल कुछ नहीं चाहिये। एक चैतन्य निर्विकल्प तत्त्व जो महिमासे भरा है, वही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। ऐसी गहरी रुचि यदि अन्दरमें हो और उसके बिना चैन नहीं पड़ता हो, वह कहीं भी स्फूरित हुए बिना नहीं रहते। उसे बाह्य साधन प्राप्त हो जाते हैं और उसका पुरुषार्थ भी जागृत हो जाता है। ऐसे संस्कार अन्दरमें हो तो।

मुमुक्षु :- ऐसे संस्कार लेकर जीव कदाचित् अन्य गतिमें जाय तो ऐसे निमित्त प्राप्त हो सकते हैं।

समाधान :- प्राप्त हो जाते हैं। अपनी भावना अनुसार जगत तैयार ही होता है। भावना गहरी न हो वह अलग बात है। अपनी भावना गहरी हो तो जगत तैयारी ही होता है।

मुमुक्षु :- अपने उपादानकी तैयारी हो तो निमित्त कहींसे भी हाजिर हो जाता है।

समाधान :- निमित्त हाजिर हो जाता है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४७

समाधान :- गुरुदेव तो महान एक तीर्थंकर जैसा काम किया। वह तो तीर्थंकरका द्रव्य था। गुरुदेवने कोई अपूर्व मार्ग बताया है। जीव कहाँ थे और कहाँ रख दिये हैं। कोई क्रियामें और शुभभावमें धर्म मानते थे। उसके बजाय अंतर दृष्टि करनेका गुरुदेवने सीखाया है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञानका विषय कहीं सुनने नहीं मिलता था। वह अपने समक्ष लाये।

समाधान :- समक्ष लाये, कितना सरल स्पष्ट कर दिया है। जा सकते हैं, देवमें तो जानेकी शक्ति होती है। देव तो भगवानके समवसरणमें जाते हैं। .. जाते हैं, मन्दिरोंमें जाते हैं, देव सब जगह जाते हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवका विरह हमें सताता है। यहाँ आते हैं, उनकी गुँज सुनायी देती है, फोटोके समक्ष जाते हैं तो लगता है कि सिंहनाद गुँजता था।

समाधान :- गुरुदेवका विरह तो सबको लगता है, परन्तु कुदरतके आगे कहाँ (चलती है)? ऐसा द्रव्य जगतमें शाश्वत रहे, शाश्वत बिराजे ऐसी सबको भावना हो परन्तु कुदरतके आगे कोई उपाय नहीं है। सबको गुरुदेवका विरह तो लगाता है। गुरुदेव तो गुरुदेव थे।

मुमुक्षु :- हाँ जी, मार्ग तो वे ही दर्शा रहे हैं।

समाधान :- मार्ग तो गुरुदेव दर्शा रहे हैं। मुख्य तो गुरुदेव ही सब मार्ग दर्शा रहे हैं। चारों ओर प्रचार (हुआ है)।

मुमुक्षु :- अध्यात्मका प्रवाह चारों ओर पहुँचा है। गुरुदेवका और आपका महान उपकार है।

समाधान :- ... अन्दर पुरुषार्थ कैसे करना? सबको एक ही प्रश्न उत्पन्न होता है। बहुत कहा है, स्पष्ट किया है। कहीं किसीको प्रश्न उत्पन्न हो ऐसा नहीं है, इतना स्पष्ट कर दिया है।

मुमुक्षु :- जब सम्यग्दर्शनका विषय द्रव्यदृष्टि करनेमें आती है, तब पर्याय द्रव्यसे भिन्न है, ऐसा कहनेमें आया। तो द्रव्य और पर्यायकी जो भिन्नता है, इस विषयमें गुरुदेवका कहनेका आशय क्या है? यह हमें विस्तारसे समझाइये।

समाधान :- द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतामें पर्याय गौण हो जाती है। पर्यायकी द्रव्य पर जहाँ दृष्टि हुयी वहाँ पर्याय लक्ष्यमें नहीं आती। पूरा द्रव्य सामान्य जहाँ लक्ष्यमें आया, उसमें पर्याय गौण होती है। पर्याय पर लक्ष्य नहीं रहता है। इस अपेक्षासे पर्याय और द्रव्य (भिन्न कहनेमें आता है)। बाकी पर्याय है वह द्रव्यकी पर्याय है। द्रव्यसे ऊपर-ऊपर नहीं है। द्रव्य पर दृष्टि करनेमें आती है, वहाँ पर्याय गौण होती है। और वह पर्याय पर लक्ष्य, दृष्टिका लक्ष्य पर्याय पर नहीं होता है। दृष्टिका विषय अकेला द्रव्य है।

मुमुक्षु :- दूसरी बात यह की कि, जब पर्यायमें राग होता है, तब रागकी मलिनता है वह बाहर रह जाती है और पर्याय अंतर्लीन होती है, वह परमपारिणामिकभावरूप हो जाती है। तो ध्रुव है वह निष्क्रिय है और पर्यायका जो राग है वह राग बाहर रह जाता है और पर्याय स्वयं अंतर्लीन होती है-भूतकालकी पर्याय, तब परमपारिणामिकभावरूप हो जाती है, इस विषयमें क्या (समझना)?

समाधान :- राग बाहर रह जाता है अर्थात् वह राग तो अस्थिरताका राग है। पर्याय अन्दर जाय तो शुद्ध पर्याय अन्दरमें प्रगट होती है। पर्याय शुद्धरूप होती है, पर्याय बाहर रह जाती है अर्थात्... जहाँ भेदज्ञान होता है, वहाँ अस्थिरता अल्प होती है। वह अल्प अस्थिरता रहती है। बाकी बाहर रह जाय, उसका क्या अर्थ है?

मुमुक्षु :- पर्यायमें जो राग होता है वह राग बाहर रह जाता है और पर्याय...

समाधान :- पर्याय परमपारिणामिकरूप हुई.... द्रव्य स्वयं पूरा पारिणामिकभावरूप ही है। पर्याय उसमें लीन होती है अर्थात् पारिणामिकभावरूप द्रव्य परिणमता है। द्रव्यमें ऐसी योग्यता होती है। भूत, वर्तमान, भविष्यकी पर्यायको द्रव्य कहनेमें आता है। वह पर्यायरूप नहीं, परन्तु पारिणामिकभाव द्रव्यरूप रहता है। पारिणामिकभावरूप रहती है। राग अन्दर नहीं आता। राग तो मलिन पर्याय है। द्रव्य स्वयं शुद्धतारूप अनादिअनन्त रहता है। परमपारिणामिकभावरूप रहता है।

मुमुक्षु :- अमुक अपेक्षासे भिन्नता बताते हैं इसलिये समझनमें थोड़ी उलझन होती है।

समाधान :- अपेक्षा समझ लेनी, उसमें कोई उलझन नहीं है। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे मुक्तिका मार्ग शुरू होता है। मुक्तिका मार्ग द्रव्य पर दृष्टि करनेसे शुरू होता है और भेदज्ञान करनेसे मुक्तिका (मार्ग शुरू होता है)। स्वमें एकत्व और परसे विभक्त ऐसी चैतन्यकी परिणतिकी धारा प्रगट करनेसे मुक्तिका मार्ग शुरू होता है। शुभाशुभ विकल्प सो मैं नहीं हूँ, मैं उससे भिन्न चैतन्यतत्त्व हूँ। क्षणिक नहीं हूँ, परन्तु मैं तो शाश्वत द्रव्य हूँ। गुणके भेद, पर्यायके भेद दृष्टिमें नहीं आते, परन्तु ज्ञान सब जानता है। ऐसा

दृष्टि विषय करके ज्ञान सब जानता है। परिणति स्वयं स्वकी ओर ढले। विकल्प तोड़कर स्वानुभूति हो, निर्विकल्प दशा हो, मुक्तिका मार्ग (प्रगट होता है)। उसमें उलझन होनेका कोई सवाल नहीं है। किस अपेक्षासे है, वह अपेक्षा समझ लेनी। उसमें मुक्तिकी पर्यायको बाधा नहीं पहुँचती। अपेक्षा समझ लेनी। दृष्टिको मुख्य करके, ज्ञानमें जानकर पर्यायकी शुद्धता प्रगट करनी वही मुक्तिका मार्ग है।

मुमुक्षु :- ... उसमें असमाधान होता है। भिन्न-भिन्न विरोधाभासी वचन देखकर ऐसा होता है कि यहाँ तो ऐसा कहा है और इससे विरूद्ध ऐसा कहा, पुनः इससे विरूद्ध यह कहा, पुनः इससे विरूद्ध ऐसा कहा। ऐसे विरोधाभास...

समाधान :- उसकी अपेक्षा समझमें नहीं आती है। किस अपेक्षाको मुख्य करनी, कौन-सी अपेक्षा गौण करनी यह समझमें नहीं आता, इसलिये उसीमें रुकता है। परन्तु मुक्तिका मार्ग द्रव्यदृष्टिसे होता है और उसमें पर्यायकी शुद्धता प्रगट करनी है। मुक्तिके मार्गमें जाना है और उसीमें गोथे खाना, उसके बजाय उसकी अपेक्षा समझ लेनी। उसकी उलझनमें रहनेके बजाय।

चैतन्य द्रव्य सामान्य तत्त्व है। उसमें गुणके भेद, पर्यायके भेदको दृष्टि स्वीकारती नहीं है। ज्ञान सबको जानता है। द्रव्यमें अनन्त गुण है। ज्ञानमें सब है। द्रव्य-गुण-पर्यायसे भरा तत्त्व है। उसे पहचान लेना। और दृष्टि एक सामान्य पर करनी। स्वमें एकत्वबुद्धि, परसे विभक्त ऐसी भेदज्ञानकी धारा, द्रव्य पर दृष्टि करके विकल्प तोड़कर शुभाशुभ विकल्पजालसे भिन्न निर्विकल्प तत्त्व है, उसे पहचानकर स्वानुभूतिके मार्ग पर जाना। फिर यह अपेक्षाभेद क्या है, उसका विचार करके, समझकर समाधान करना।

किसको मुख्य करना और किसको गौण करना, वह क्या है? उसमें एकान्त करके वस्तुका स्वरूप क्या है, यह समझ लना। द्रव्य अखण्ड त्रिकाल है, पर्याय क्षणिक है। उसे वह स्पर्शता नहीं।

मुमुक्षु :- गुणभेदको भी नहीं स्पर्शता, इसलिये जब तक भेद होगा तब तक विकल्प उठेंगे।

समाधान :- भेद पर दृष्टि देनेसे विकल्प उत्पन्न होते हैं। भेद परसे दृष्टि उठा लेनी। द्रव्यमें गुण ही नहीं है, पर्याय भी नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। द्रव्यमें गुण ही न हो और द्रव्यमें पर्याय ही न हो तो अकेला द्रव्य (हो जाता है)। तो वेदन किसका? स्वानुभूति किसकी? उसमें अनन्त गुण, ज्ञान और आनन्द किसका? उसका वेदन किसका? उसे स्पर्शता नहीं-छूता नहीं, उसमें कुछ है ही नहीं तो द्रव्य अकेला सामान्य कूटस्थ शून्य है, ऐसा अर्थ हो जाता है।

मुमुक्षु :- अर्थात् गुरुदेवने कही बातकी अपेक्षा बराबर समझनी।

समाधान :- अपेक्षा समझनी चाहिये।

मुमुक्षु :- कि किस अपेक्षासे बात है?

समाधान :- किस अपेक्षासे है? दृष्टिका बल बताते हैं। दृष्टिके बलसे आगे बढा जाता है। इसलिये उसमें कुछ है ही नहीं, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। सिद्ध भगवान भी अनन्त गुण और अनन्त पर्यायमें विराजते हैं। उन्हें अनन्त पर्याय प्रगट होती रहती है, समय-समयमें अनन्त गुणकी अनन्त पर्यायें (प्रगट होती हैं)। अगुरुलघुरूप परिणमते हैं। वह वस्तुका स्वभाव है। लेकिन तू उस भेद पर दृष्टि मत कर। गुणभेदमें रुकनेसे तू आगे नहीं बढ़ सकेगा। तू एक सामान्य मूल वस्तु अस्तित्व पर लक्ष्य कर, ऐसा कहते हैं। सब निकाल देगा तो तत्त्व शून्य (हो जायगा), ऐसा वस्तुका स्वरूप नहीं है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप तत्त्व है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं द्रव्य। द्रव्यका स्वरूप तो ऐसा है।

मुमुक्षु :- द्रव्य अकेला कूटस्थ नहीं है।

समाधान :- हाँ, कूटस्थ किस अपेक्षासे? द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे। परन्तु पारिणामिकभावरूप द्रव्य है।

मुमुक्षु :- ... अनुभव करनेका, फिर भी आनन्द दूर क्यों रहता है?

समाधान :- पुरुषार्थ नहीं करता है, भावना है फिर भी। जिस स्वभावरूप परिणमित होकर आगे बढना होता है, उस प्रकारसे जाता नहीं है। इसलिये स्वयंको उस रूप परिणमन करना चाहिये, ज्ञायक ज्ञायकरूप, ज्ञाताकी धारा प्रगट करके, कर्ताबुद्धि छोड़कर ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमित हो तो आनन्द प्रगट होता है। परिणमता नहीं है। विभावका परिणमन एकत्वबुद्धिका है। आनन्दरूप कहाँ परिणमेगा? भावना हो, परन्तु भावना अनुसार कार्य नहीं करता है।

मुमुक्षु :- बाहरमें ही रुक जाता है।

समाधान :- हाँ, बाहरमें रुकता है। भावना हो, परन्तु उस प्रकारका परिणमन करना चाहिये न।

मुमुक्षु :- यथार्थतया देखे तो उतना प्रयत्न करता नहीं है।

समाधान :- हाँ, प्रयत्न नहीं करता है।

मुमुक्षु :- संक्षेपमें एक ही बात दीजिये न, ..

समाधान :- द्रव्यदृष्टि प्रगट करनी वह। ज्ञानमें सब भेद जानना और एक द्रव्य पर दृष्टि करनी। और स्वमें एकत्व करके, विभक्त शुभाशुभ भावसे भिन्न..

मुमुक्षु :- जाननेकी बात आपने फिरसे कही, उसके बजाय...

समाधान :- मैं एक चैतन्यतत्त्व हूँ, जान लेना। अनन्त गुण और उसमें अनन्त

पर्याय है। फिर अधिक अपेक्षामें नहीं रुककर मूल तत्त्वको ग्रहण कर लेना। अस्तित्व ज्ञायक।

मुमुक्षु :- आप ऐसा एक मन्त्र दीजिये।

समाधान :- एक ज्ञायकतत्त्वको ग्रहण कर लेना। उसमें अनन्त गुण भरे हैं। ज्ञायक गुणोंसे भिन्न नहीं है। ज्ञायक अनन्त गुणोंसे भरपूर है। उसमें आनन्दादि अनन्त गुण हैं। उसका अस्तित्व ग्रहण कर लेना। क्षण-क्षणमें भेदज्ञान करके। पर्याय पर दृष्टि नहीं है, परन्तु जानता तो है, पर्यायका वेदन होता है। स्वानुभूतिमें पर्यायका वेदन होता है। जाने सब, परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर होती है।

मुमुक्षु :- एक समयमें बहिनश्री! दृष्टि द्रव्य पर और जानपना, दोनों एक समयमें?

समाधान :- हाँ, साथमें जानता है। दृष्टि सामान्य पर है और ज्ञान सब जानता है। उसे भेद कर-करके, प्रतिसमय भेद करता रहता है ऐसा नहीं, सहज जानता है। मैं इस स्व-रूप हूँ और पर-रूप नहीं हूँ। ऐसी अनेकान्तमूर्ति है कि मैं स्व-रूप हूँ और पर-रूप नहीं हूँ।

... नयपक्ष छूट जाय तो निर्विकल्प होता है। फिर तो सहजरूप (होता है)। दृष्टि एक आत्मद्रव्य पर और ज्ञान सब जानता है, प्रमाणरूप सब जानता है। दृष्टि एक मुख्य रहती है। स्वयं स्वयंको जाने। ... ध्रुव तत्त्व पर है। द्रव्यको समझकर, द्रव्य पर दृष्टि करके भेदज्ञान करे तो वही मुक्तिका मार्ग है।

मुमुक्षु :- आजकी चर्चामें मुझे ऐसा लगता है कि पूरा सार (आ गया)।

मुमुक्षु :- द्रव्यदृष्टिके ज़ोरमें पर्यायको गौण करवानेको कोई बात ज़ोरसे आती है तो एकान्त पकड़ता है और फिर उसमें अटक जाता है।

समाधान :- हाँ, तो ऐसा हो जाता है। उसमें अटकता है कि पर्यायको अभिन्न माननी या भिन्न माननी? उसमें अटकता है।

मुमुक्षु :- ऐसा करता रहता और अज्ञानमें उसे रास्ता सूझता नहीं है और ख्याल नहीं आता है।

समाधान :- (द्रव्यदृष्टिके) ज़ोरमें वह शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। उसमें भिन्न या अभिन्न, उसके ज्ञानमें समझमें आ जायगा। यथार्थ परिणतिमें वह आ जाता है। उसका वेदन होता है, उसीसे समझमें आता है कि वह सर्वथा भिन्न है। ऐसा उसमें आ जाता है। और पूरा सामान्य द्रव्य है और वह नयी प्रगट होती है और व्यय होती है। अतः वह सर्वथा भिन्न भी नहीं है और उसका स्वभाव क्षणिक है, ऐसा साथमें आ जाता है। वह अपेक्षा उसमें साथमें आ ही जाती है।

द्रव्यकी भाँति शाश्वत साथमें नहीं है। नयी उत्पन्न होती है, व्यय होती है। ऐसा

होता है और उसका वेदन होता है। द्रव्यकी ही वह पर्याय है परन्तु क्षणिक है। इसलिये भिन्न या अभिन्न जैसे ज्ञानकी अपेक्षामें समझमें आये ऐसा है। ... पर्याय है। द्रव्यके आश्रय बिना नहीं होती है, ऊपर-ऊपर नहीं होती है। द्रव्यका स्वभाव है, द्रव्यकी पर्याय है। क्षणिक है, इसलिये द्रव्य सामान्य है उससे उसका स्वभाव थोड़ा अलग है। क्षणिक है।

मुमुक्षु :- ... कोई भी बात कही हो, परन्तु गौण करवानेके लिये बात कही है।

समाधान :- गौण करनेके लिये, निकाल देनेकी बात नहीं है। दृष्टिके जोरमें निकाल दी, ऐसी बात भी आये, परन्तु उसे समझना चाहिये। जैसे राग जड़ है ऐसा कहनेमें आता है, परन्तु राग जड़ है ऐसा ही मान ले तो विभाव ही नहीं है, ऐसा अर्थ हो जाय न। राग जड़ है। वह अपना स्वभाव नहीं है, इसलिये उसे जड़ कहनेमें आता है। तो फिर पुरुषार्थ किस बातका, बिलकूल जड़ हो तो? स्वयंका स्वभाव नहीं है।

... भिन्न, परन्तु वह द्रव्यके आश्रयसे होती है। जैसा द्रव्य स्वतंत्र स्वतःसिद्ध है, वैसे पर्याय स्वतःसिद्ध द्रव्यके आश्रय बिना है, ऐसी उसमें अपेक्षा नहीं आती है। द्रव्यके आश्रयसे ही पर्याय होती है। .. उसके भिन्न नहीं है। जैसे एक द्रव्यसे दूसरे द्रव्यके भिन्न है, ऐसे एक द्रव्यसे पर्यायके (कारक) उस प्रकारसे भिन्न नहीं है। उसे तो द्रव्यका आश्रय है।

मुमुक्षु :- उस प्रकारसे भिन्न नहीं है।

मुमुक्षु :- हाँ, मर्यादा बाहर (नहीं है)। अपनी-अपनी मर्यादा तो है।

समाधान :- उसे द्रव्यका आश्रय है। उसका-पर्यायका स्वभाव अलग है इसलिये उसके कारक भिन्न है, ऐसे। द्रव्यके आश्रयसे, जैसा द्रव्य होता है उस जातकी उसकी पर्याय होती है। उसमें तो दो द्रव्य स्वतंत्र हैं, बिलकूल स्वतंत्र हैं। जैसे दो द्रव्य स्वतंत्र हैं, वैसे पर्याय और द्रव्य उस प्रकारसे स्वतंत्र नहीं हैं। जैसी द्रव्यकी दृष्टि होती है, उस प्रकारकी पर्याय होती है। दृष्टि द्रव्य पर जाय तो पर्याय वैसी होती है।

मुमुक्षु :- .. पर्यायको द्रव्यका आश्रय है।

समाधान :- पर्यायको द्रव्यका आश्रय है। .. लेकिन उसमें एक जातका नहीं है, इसलिये एक भी बात बिना अपेक्षासे नक्की नहीं होगी। भिन्न है? अभिन्न है? भिन्न है? अभिन्न है? एकान्त नहीं है, अतः वैसे वह निश्चित नहीं होगा, उसमें अपेक्षा आती है।

.. सबने बहुत सुना है। गुरुदेव तो मूसलाधार वाणी बरसा गये हैं। कहीं किसीको कोई प्रश्न न रहे, ऐसा चारों ओरसे गुरुदेवने स्पष्ट किया है। बहुत दर्शाया है। आत्माको ज्ञायकको पहिचानना। शरीर और विभावपर्याय उसका स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न जाननेका

स्वभाव है। गुणभेद, पर्यायभेद परसे दृष्टि उठाकर एक ज्ञानमें सब जान लेना। बाकी आत्मामें लीनता करके, भेदज्ञान करके, स्वानुभूति प्रगट करनी वही मुक्तिका मार्ग है। स्वयं ज्ञायक ज्ञाताधारा अंतरमेंसे प्रगट करनी। कर्ताबुद्धि छोड़कर अंतरसे ज्ञायकता प्रगट करनी, वह करना है। अन्दर स्वभावमेंसे करना है। कल्याणरूप, हितरूप, मंगलरूप सब वही है।

मुमुक्षु :- एकत्वबुद्धि कैसे टूटे?

समाधान :- एकत्वबुद्धि प्रयत्न करनसे टूटती है। स्वमें एकत्वबुद्धि, परसे विभक्त। पुरुषार्थ करनेसे टूटे। अनादिका जो अभ्यास है, उससे एकत्वबुद्धि तोड़नी। स्वभावसे आत्माको पहिचाने कि मैं चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ। इस तरह अपना स्वभाव पहिचाने। आत्मा ज्ञायक स्वभाव ही है। उसका दूसरा स्वभाव नहीं है। ज्ञायकता-अनन्त गुणसे भरी ज्ञायकताका अस्तित्व ग्रहण करे। इस तरह स्वयंमें एकत्वबुद्धि करे। परिणतिको अपनी ओर लाये। मति और श्रुतसे यथार्थ निर्णय करे। उसमें दृष्टि स्थापित करके, उस ओर ज्ञान एवं लीनता उस ओर करे तो होता है। पुरुषार्थ करे तो होता है, उसकी लगन लगाये तो होता है। बाकी अनादिका अभ्यास है। परिणति अपनी ओर, परिणतिकी दौड़ अपनी ओर करे तो होता है। परिणति दूसरी ओर चल रही है, उसे अपनी ओर प्रयत्न करे तो होता है।

मुमुक्षु :- परिणति दूसरी ओर हो जाती है। इसलिये ओर लानेके लिये...

समाधान :- लानेके लिये, बस, एक आत्मामें ही सर्वस्व है, बाहर कुछ नहीं है। सर्वस्व आत्मामें है। बाहरसे सुखबुद्धि उठाकर, सर्वस्व जो कुछ है सब आत्मामें है। आत्मा कोई आश्चर्यकारी अद्भुत तत्त्व है। उसमें अद्भुतता, माहात्म्य, महिमा सब उसमें लाये तो छूट जाय। अपनी जरूरत महेसूस हो, बस, वही कार्यकारी है, वही कल्याणरूप है। आत्माका स्वरूप ही कल्याणरूप है और कार्य करने जैसा है, ऐसा निर्णय-प्रतीत करे तो उस ओर पुरुषार्थ मुड़े बिना नहीं रहता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४८

मुमुक्षु :- उसे पछतावा होता है, रोता है।

समाधान :- बहुत रोता है।

मुमुक्षु :- वह तो हो गया।

समाधान :- भूतकालमें गया। अब फिरसे न होवे ऐसे आराधना करे। देव-गुरु-शास्त्रकी आराधना ही जीवनमें करना और आत्माकी आराधना करना। उसे पछतावा होता है। जो गया सो गया, फिरसे आत्मामें जागृति उत्पन्न करके आत्माकी और देव-गुरु-शास्त्रकी आराधना करना।

मुमुक्षु :- बहुत विराधना की।

मुमुक्षु :- मैंने कहा, वह बदला जा सकेगा। .... राजश्रीका दृष्टान्त दिया था।

समाधान :- बदल जाये तो एक क्षणमें बदल जाता है। एक क्षणमें आत्मा बदल जाता है। गुरुदेव इस पंचमकालमें तीर्थंकरका द्रव्य था। लोगोंको जागृत किये। जितनी हो सके उतनी आराधना, भक्ति गुरुकी अंतरमें लाकर चैतन्यतत्त्वकी ओर मुड़ जाना। बस, वही है। उसका पश्चाताप करके फिरसे न हो, ऐसी आराधना अंतरमें करनी।

मुमुक्षु :- गुरुदेव रातको स्वप्नमें आये थे। गुरुदेवने संबोधन किया। मैं एकदम खड़ा हो गया, साहब! आईये, पधारिये। रातको बराबर स्वप्नमें आते हैं।

समाधान :- गुरुदेव पधारे ऐसा कहते हैं। संबोधन किया। गया सो गया, जागे तबसे सबेरा। जब जागे तब सुबह होती है। जो भी भूल हुयी अनन्त कालमें, पीछले अनन्त कालमें बहुत भूल हुई उसमें वह भूल गयी। अब आराधना करना।

मुमुक्षु :- ... आप याद रखो।

समाधान :- बस, आराधना करना, आराधना करना। गया सो गया। पहले तो उसे बहुत भक्ति थी।

मुमुक्षु :- हाँ, पूरा धंधा छोड़ दूँ।

समाधान :- हाँ, उतनी भावना थी।

मुमुक्षु :- आपके भावको जाँचकर करना, फिर बादमें...

समाधान :- गुरुदेव तो क्षमाके भण्डार, क्षमामूर्ति थे। सबको क्षमा देनेवाले थे।

गुरुदेवके हृदयमें कुछ नहीं था।

मुमुक्षु :- क्षमाके भण्डार थे। गुरुदेवके पास कोई नर्म होकर आये तो गुरुदेव कहे, अब वह बात याद मत करना।

समाधान :- हाँ, ऐसा ही कहते, याद मत करना। ऐसा ही कहते थे। पहलेसे सबको गुरुदेव पर भक्ति थी।

मुमुक्षु :- हाँ, सब भाईओंको।

समाधान :- .. ग्रहण कर लेना। जो हो गया सो हो गया। गुरुदेव पर उन लोगोंको भक्ति तो थी।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके प्रति तो थी।

समाधान :- गुरुदेव प्रति थी।

मुमुक्षु :- गुरुदेव भी याद करते थे। गुरुदेव बारंबार कहते थे।

समाधान :- .. सब याद करना। बीचमें हो गया, अब फिरसे ऐसा न हो ऐसी आराधना आत्मामें प्रगट करनी। .. विचार करते थे, दिल्हीमें सब चलता था। देव-गुरु-शास्त्र शरण है, गुरुदेवको हृदयमें रखना। आत्माकी महिमा, ज्ञायकके पंथ पर जाना। गुरुदेवका समुद्र भर जाय उतना विस्तार था। भगवानकी दिव्यध्वनिका पार नहीं है, वैसे गुरुदेवका एक शब्द पर विस्तार, बहुत विस्तार होता है। कितने शास्त्र लिखे तो भी भण्डार भरे हैं।

करना तो एक ही है, एक करना है-आत्माका स्वरूप पीछानना। उसके लिये तत्त्व विचार, शास्त्र स्वाध्याय आदि उसके लिये है। करना तो एक ही है। एक आत्माका स्वरूप पीछानना। जो तत्त्व है, उसमें स्वभाव पीछानकर बराबर उसे ग्रहण करना। आत्माको ग्रहण करना वही करना है। शरीर भी आत्मा नहीं है, विभाव अपना स्वभाव नहीं है। शुभाशुभ भावसे भी भिन्न आत्मा तत्त्व कोई अलग है-न्यारा है, उसको पीछानना। करना तो एक ही है, ध्येय तो एक ही है। उसके लिये विचार आदि चलते हैं। शास्त्र स्वाध्याय सब उसीके लिये है।

एक आत्माको जाने वह सबको जानता है। उसके लिये सब जानना, विचारना, सब उसके लिये है। गुरुदेवका व्याख्यान सुना है? दिल्हीमें?

मुमुक्षु :- हाँ, दो दफे दिल्हीमें सुना है।

समाधान :- आप इधर नहीं आये हो?

मुमुक्षु :- इधर नहीं आये हैं। एक दफे जयपूर आये थे। वहाँ जयपूर चले गये। वहाँ रहने गये हम।

समाधान :- ... अपने कारणसे स्वानुभूति नहीं करता है, अपने कारणसे भेदज्ञान

नहीं करता है।

मुमुक्षु :- हमारे लिये ऐसा भाव हो कि जिसमें हमारा कार्य हो, हमारी भाषामें..

समाधान :- कैसे बताये? करना तो अपनेको ही पड़ता है। उपादान तो अपना तैयार करना पड़ता है न। अपनेको करना पड़ता है। स्वभावकी ओर जाना, स्वभावकको पीछानना, सब अपनेको करना पड़ता है। स्वभावको ग्रहण करना, ज्ञानको पकड़ना, ज्ञाताका लक्ष्य करना, ज्ञाताकी धारा प्रगट करना, (स्वमें) एकत्वबुद्धि, परसे विभक्त होना, सब अपनेको करना पड़ता है। एक ही जवाब है। सब अपनेको करना पड़ता है, अपनी ही क्षति है। धैर्य रखना, उतावल या आकूलता नहीं करना। अपना ही कारण है, दूसरा कुछ कारण नहीं है। पुरुषार्थकी मन्दता है, रुचि बाहर जाती है, अभ्यास अनादिका है वहाँ चला जाता है। इसलिये टिकता नहीं।

पहले तो यथार्थ दृष्टि होती है। बादमें अल्प अस्थिरता तो रहती है और पूर्ण वीतरागता तो बादमें होती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रममें हो तो भेदज्ञानकी धारा चलती है, ज्ञायककी धारा (होती है) तो भी अल्प अस्थिरता रहती है। पूर्ण वीतराग दशा बादमें होती है। परन्तु अपनी ओर दृष्टि करनेके लिये पुरुषार्थ उग्र करना पड़ता है। अपनी दृष्टि जमानेके लिये भी उग्र पुरुषार्थ करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- असंख्य प्रदेशी आत्माको किस विधिसे ख्यालमें आये? कैसे लक्ष्यमें लेना कि आत्मा यही है?

समाधान :- असंख्य प्रदेश पर लक्ष्य जाये या नहीं जाये, अपने स्वभावको ग्रहण करना कि मैं ज्ञायक चैतन्य हूँ। अपने अस्तित्वको ग्रहण करना। अपना अस्तित्व कि मैं ज्ञायक हूँ, विभाव मैं नहीं हूँ। मैं जाननेवाला ज्ञायक तत्त्व हूँ। अपने ज्ञायकमें सब है। शान्ति, सुख, आनन्द सब। अपने अस्तित्वको ग्रहण करना। विभावका अस्तित्व मेरा नहीं है। विभावकी मेरेमें नास्ति है, मैं चैतन्यस्वभाव हूँ। ऐसे चैतन्यके स्वभावको ग्रहण करना।

.. अपना और परका जानकर भेदज्ञान करना। स्वमें, अपने स्वमें परिणति करना। विभाव ओरकी दृष्टि हटा देना। वह करनेके लिये पुरुषार्थ अपनेको करना पड़ता है, बारंबार करना पड़ता है। छूट जाय तो भी करना पड़ता है। उपयोग छूट जाता है तो भी करना पड़ता है। बारंबार करते-करते होता है। विचार, वांचन ऐसे उपयोग बदले। तो भी दृष्टि तो अपनी ओर कैसे आवे, ऐसा प्रयत्न करना। जैसी योग्यता हो, जैसे पुरुषार्थ उठे ऐसे करना। ऐसे उतावली या उलझनमें आनेका कोई (मतलब) नहीं है। स्वभावको ग्रहण करना। स्वभाव कैसे ग्रहण होवे?

मुमुक्षु :- मार्ग पसंद है, रुचिकर है, उसीमें उपयोग खूब लगाते हैं और खूब

समय उसको देते हैं, फिर भी स्थिरता नहीं हो पाती है।

समाधान :- समय देते है, ... होता है, रुचि होती है फिर भी टिकता नहीं वह अपनी क्षतिका कारण है। जितना कारण होना चाहिये उतना कारण नहीं मिलता है इसलिये कार्य नहीं होता है। कारण मन्द, मन्द, मन्द पुरुषार्थसे हो नहीं सकता। मन्द, मन्द, मन्द होता है तो उसमें टाईम दे, विचार करे, वांचन करे, सब करे, तत्त्वका विचार करे परन्तु स्वभावको ग्रहण करना चाहिये। ध्येय एक होना चाहिये-स्वभावको ग्रहण करे, भेदज्ञान करे। ऐसे मूल प्रयोजनभूत कार्यको करना चाहिये। तत्त्व विचार, शास्त्र स्वाध्यायका मूल प्रयोजन चैतन्यको ग्रहण करना और भेदज्ञान करना। अपने स्वभावको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- आप और गुरुदेवने बताया वह तो सही है। भूलका पता नहीं चलता है, कहाँ भूल रह जाती है, वह नहीं (समझमें नहीं आता)।

समाधान :- विश्वास तो ऐसे बुद्धिसे होता है, परन्तु भीतरमें परिणति उस ओरकी करनी चाहिये न। बुद्धिमें निर्णय तो होता है कि गुरुदेवने कहा है, वह सच्चा है। वस्तु स्वरूप ऐसा है, विचार करके भी निर्णय करे कि मैं ऐसा हूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा विचार करके निर्णय करे, परन्तु परिणतिको तन्मय करनी चाहिये न। परिणति तो विभावमें जाती है। निर्णय करता है कि मैं यह हूँ, यह हूँ, यह हूँ। परन्तु मैं यह नहीं हूँ, ऐसे भेदज्ञानकी परिणति जबतक प्रगट नहीं होती, (तबतक) नहीं हो सकता। परिणति प्रगट होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- उसीका उपाय बताईये कि परिणति अपनेमें कैसे आये?

समाधान :- उसका उपाय अपना पुरुषार्थ करना, परिणतिको पलटनेका उपाय करना। परिणति कैसे पलटे वैसे करना। परिणतिको बारंबार अपनी ओर लाना। क्षण-क्षणमें परिणतिमें विभावमें एकत्वबुद्धि हो रही है। ऐसे स्वभावमें एकत्व होना चाहिये। जैसा निर्णय होवे वैसा कार्य होना चाहिये। निर्णय तो किया लेकिन कार्य ऐसा नहीं किया। कार्य ऐसा करना चाहिये कि जैसी रुचि हो कि मैं पर नहीं हूँ, मैं तो स्व चैतन्य हूँ, विभाव मैं नहीं हूँ। ऐसा निर्णय तो किया लेकिन एकत्वबुद्धि तो हो रही है। नक्की तो किया परन्तु कार्य नहीं किया। कार्य करनेका प्रयत्न करना।

मुमुक्षु :- यहाँका कण-कण जो है, वह गुरुदेवकी वाणीसे गूँज रहा है। और गुरुदेव दो बार तो आते ही हैं।

समाधान :- गुरुदेव बोलते हैं। गुरुदेव बोलते हो ऐसा लगता है। कण-कण पावन है। ४५ साल तक सोनगढ़में गुरुदेवकी निरंतर वाणी बरसती रही। ४५ साल तो सोनगढ़में विराजे।

मुमुक्षु :- ४५ साल चौमासे किये गुरुदेवने? हाँ, ४५ साल।

समाधान :- ... थोड़ा समय सौराष्ट्रमें घुमकर आते थे। बादमें हिन्दुस्तानमें जाने लगे। पहले तो बहुत रहते थे।

मुमुक्षु :- ये आशीर्वाद दो कि क्षयोपशम जाग जाय।

मुमुक्षु :- क्षयोपशमकी कोई क़ीमत नहीं है।

समाधान :- कम जाने उसकी विशेषता नहीं है। रुचि आत्माकी होवे, प्रयोजनभूत ज्ञान होवे कि मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, यह मेरा स्वभाव है, यह विभाव है, ऐसे मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको जाने तो उतना क्षयोपशम तो होता ही है। परन्तु विशेष तर्क, वादविवादमें न जा सके तो उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मूल क्षयोपशम ऐसे प्रयोजनभूत तत्त्वको जान लेना। छः द्रव्यमें मैं एक जीवतत्त्वको ग्रहण करुँ। नौ तत्त्वमें एक जीवतत्त्वको ग्रहण करुँ। अपना अनादिअनन्त पारिणामिकभाव, अनादि ज्ञायकभाव ऐसी मूल वस्तुको ग्रहण करु। और दूसरा सब ज्ञानमें जाननेमें आता है कि गुणका भेद है, पर्याय है, गुण है, पर्याय है। ऐसा जान लेना।

दृष्टि तो एक आत्मा पर रखनी और ज्ञानमें जान लेना कि ये गुण है, पर्याय है, सब जान लेना। पुरुषार्थ तो अपनेमें करना है। वह विभाव है, शुभभाव भी अपना स्वभाव नहीं है। बीचमें आता है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा सब आती है। परन्तु वह अपना स्वभाव तो नहीं है। शुद्धात्माको ग्रहण करना और बीचमें आता है, ऐसा शुभभाव तो आता है, परन्तु वह दुःखरूप है-आकुलतारूप है। इसलिये अपने स्वभावको ग्रहण करना। ये विभाव है, ये स्वभाव है, उसका भेदज्ञान करना। स्वमें एकत्वबुद्धि, परसे विभक्तबुद्धि, ऐसा जानकर भेदज्ञानकी धारा प्रगट करना। मूल तत्त्वको समझ लेना। ज्यादा क्षयोपशम नहीं होवे, तर्क, वादविवाद आदि समझमें न आवे तो उसकी कोई जरूरत नहीं है। मूल वस्तुको (जान लेना)।

ज्ञायककी धारा कैसे प्रगट होवे? विकल्प टूटकर स्वानुभूति कैसे प्रगट होवे? वही जीवनका कर्तव्य है। उसका बारंबार अभ्यास करना, वही करना है। एक कल्याणरूप, मंगलरूप ज्ञायक स्वभाव है, उसको ग्रहण करना। ... बढ़ते-बढ़ते भीतरमें स्वानुभूति बढ़कर मुनिदशा आती है, वह सब स्वानुभूतिका प्रताप है, उसके कारणसे आती है। उसमें केवलज्ञान (होता है)। स्वानुभूति प्रगट होनेसे होता है। मुख्य तो सम्यग्दर्शन है। अनादि कालमें जीवने सम्यग्दर्शन नहीं प्रगट किया। शास्त्रमें आता है कि जिनवर स्वामी और सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुए। जिनवर स्वामी मिले तो सही परन्तु स्वयंने ग्रहण नहीं किया-पीछाना नहीं। और सम्यग्दर्शन तो प्रगट ही नहीं हुआ है। उसको प्रगट करनेका पुरुषार्थ करना, वही जीवनका कर्तव्य है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन ही मूल है।

समाधान :- मूल सम्यग्दर्शन, मूल सम्यग्दर्शन है। ... आनन्द है, स्वानुभूतिमें सब है। अनन्त गुण स्वानुभूतिमें हैं। अनन्त ऋद्धि स्वानुभूतिमें है, आत्मामें सब है।

... उसमेंसे सब प्रगट होता है। ऊपरसे ग्रहण करे तो कुछ प्रगट नहीं होता। वह तो तल-स्वभावको ग्रहण करे तो उसमेंसे स्वभावमेंसे स्वभावपर्याय आये। स्वभावमें जाये तो स्वभावमेंसे स्वभावपर्याय प्रगट होती है। अन्दरमें जाये तो स्वभावमेंसे स्वभावपर्याय प्रगट होती है। विभावकी ओर दृष्टि है तो विभावपर्याय होती है। दृष्टि विपरीत है तो दृष्टिमें सब ऊलटा ही आता है। सुलटी दृष्टि होकर स्वभावकी ओर दृष्टि जाय, स्वभावकी परिणति हो तो स्वभावपर्याय होती है। तो परिणति पलटे, परिणति पलट जाय। यदि स्वभाव पर दृष्टि जाय तो परिणति पलटती है। शुद्धात्मा पर दृष्टि जाय तो शुद्धपर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ... स्वभावमेंसे पर्याय आयी, ऐसे कहना है?

समाधान :- ... नहीं, जैसा स्वभाव है वैसी दृष्टि हो। पर्याय प्रगट होती है वही एक दशा है। दशा कहो या पर्याय कहो। स्वभाव पर दृष्टि जाये तो उस जातिकी दशा होती है। जैसे दृष्टि वैसी उसकी दशा है। दृष्टि अनुसार सृष्टि, ऐसा गुरुदेव कहते थे। जैसी दृष्टि हो वैसी उसकी सृष्टिकी रचना होती है। जैस ओर दृष्टिकी परिणति हुई, स्वभावकी ओर दृष्टि गयी, स्वभावकी ओर (हुयी) तो उस जातिकी सृष्टि उसे स्वभावकी ही रचना होती है। स्वभावकी ओर गया तो स्वभावकी रचना होती है और विभावकी ओर जाय तो विभावकी रचना होती है। दशा भी वैसी (होती है), जैसी दृष्टि वैसी दशा होती है।

ज्ञायक पर दृष्टि गयी तो ज्ञायकरूप परिणमित हुआ, ज्ञायककी धारा हुयी। विकल्पसे रहित आत्मा है, ऐसी दृष्टि हुई, वैसी धारा उसने प्रगट की तो विकल्प टूटकर निर्विकल्प दशा हुयी। जैसी दृष्टि उसने ग्रहण की, वैसी उसकी दशा होती है। दशा कहो या पर्याय कहो, सब एक ही है।

मुमुक्षु :- स्वभावकी दृष्टि करनी यानी क्या?

समाधान :- स्वभाव पर दृष्टि, स्वभावकी ओर दृष्टि। दृष्टि, जो अपना चैतन्यका स्वभाव है कि मैं ज्ञायकरूप चैतन्य हूँ, उस ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करके उस पर दृष्टिको स्थिर कर देना कि मैं यह चैतन्य ही हूँ। मैं ये विभाव नहीं हूँ, परन्तु मैं चैतन्यद्रव्य चैतन्य सामान्य तत्त्व सो मैं हूँ। उसमें गुणके भेद, पर्यायके भेद गौण हो जाते हैं, जहाँ दृष्टि एक अभेद पर गयी तो। स्वभाव पर दृष्टि गयी, चैतन्य पर दृष्टि गयी, वहाँ दृष्टि जम गयी। दृष्टि उसे ही लक्ष्यमें लेती है कि मैं यह चैतन्य हूँ, चैतन्य

हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ये शरीरादि, ये विभावकी परिणति, ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। परन्तु मैं चैतन्य हूँ। मैं चैतन्य हूँ, ऐसी दृष्टि प्रगट होती है। दृष्टि कहो, प्रतीत कहो। उसकी दिशा बदल गयी है। दृष्टि स्वयं चैतन्य पर थँभ गयी है। मैं चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ, मैं ज्ञायक ही हूँ, अन्य कुछ नहीं। अंतरमेंसे ऐसी दृष्टि प्रगट हो जाती है। और ऐसी दृष्टि हुयी तो परिणति उस ओर जाती है कि मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसी धारा प्रगट हो। ऐसी यथार्थ परिणति हो तो उसे निर्विकल्प दशा होती है। वह उसका कारण और कार्य आता है स्वानुभूति। यथार्थ कारण प्रगट हो, यथार्थ दृष्टि प्रगट हो तो स्वानुभूति प्रगट होती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१४९

मुमुक्षु :- उसे अंतरसे बैठना चाहिये। उस प्रकारसे कुछ आपका जवाब था। बुद्धिसे नहीं, अपितु अंतरसे। इन दोनोंमें क्या अंतर है?

समाधान :- बुद्धिसे विचार करके निर्णय किया वह तो बुद्धिसे (हुआ)। अंतरमेंसे प्रगट करे। जो स्वभाव है, उस स्वभावमें पहुँचकर ग्रहण होना चाहिये कि यह चैतन्य सो मैं हूँ। विचार किया कि यह चैतन्य मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, ऐसा विचारसे निर्णय किया वह विचारसे निर्णय नहीं, अंतरमेंसे होना चाहिये। अंतरमेंसे कि जो अन्दरमें अपना अस्तित्व है वह अस्तित्व ग्रहण होना चाहिये कि यह चैतन्यका अस्तित्व सो मैं, यह बाहरकी जो परिणति होती है वह मेरा मूल स्वभाव नहीं है, वह तो पर्यायें हैं। उसका अस्तित्व ग्रहण होना चाहिये। विचारसे निर्णय करे। पहले आता है, परन्तु अंतरमेंसे दृष्टि प्रगट होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- जैसे रागका स्वामीत्व है कि यह मेरा है, मैं हूँ। ऐसे उसे अपने चेतनत्वका स्वामीत्व, मेरापना, अहंपना प्रगट होना चाहिये। उसे अंतरमेंसे प्रगट हुआ (ऐसा कहते हैं)?

समाधान :- मैं यही हूँ, यह मैं नहीं हूँ। स्वमें स्वबुद्धि (करे) कि मैं यही हूँ। मैं उसका स्वामी, वह विकल्प हुआ। लेकिन मैं जो चैतन्य है वही मैं हूँ। उतनी बुद्धि उसमें तदाकार-तद्रूप दृष्टि उस रूप परिणमित हो जाय। जो एकत्वकी परिणति चल रही है, वह भिन्न होकर यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ऐसी अंतरमेंसे उस प्रकारकी परिणति प्रगट हो जाय।

मुमुक्षु :- उसका उपयोग..

समाधान :- उसका उपयोग बाहर जाता है, परन्तु अन्दर दृष्टि प्रगट होनी चाहिये, उस प्रकारकी।

मुमुक्षु :- राग हो ऐसा कोई गुण जीवमें नहीं है। राग हो ऐसा जीवमें कोई गुण नहीं है। और ऐसे सीधा ले तो चारित्रगुणकी पर्याय है, उसमें राग चारित्रगुणकी विपरीतताके कारण होता है, वहाँ कहनेका भावार्थ क्या है?

समाधान :- आत्माके मूल स्वभावमें राग हो ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। उसमें

अमुक प्रकारकी योग्यता है, वैभाविक योग्यता है (तो) चैतन्यमें विभाव परिणमन होता है। उसके मूल स्वभावमें कहीं राग नहीं होता है। स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, वैसे स्वभावसे तो स्वयं निर्मल ही है। उसके मूल स्वभावमें अन्दर प्रवेश (नहीं हुआ है)। स्फटिकमें मूल स्वभावमें लाल-कालेका प्रवेश नहीं होता है। वैसे उसका मूल स्वभाव, उसमें राग हो ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। स्वभावमें उसका प्रवेश नहीं होता। उसकी परिणतिमें ऐसा हो जाता है। उस प्रकारकी उसमें योग्यता है, पर्यायमें हो वैसी। वैभाविक शक्ति है, उसमें ऐसी योग्यता है। वह होता है। वह नहीं हो तो उस जातका वेदन, आकुलता कुछ नहीं होता। उस जातकी विभावपर्याय होती है। लेकिन मूल स्वभावमें नहीं है। मूल स्वभावमें जाकर देखे तो, जैसे स्वभावसे पानी निर्मल है, स्फटिक निर्मल है, वैसे उसका स्वभाव निर्मल है। निर्मलता पर दृष्टि करे तो निर्मल ही है। इसलिये निर्मलको ख्यालमें लेना और ये सब जो विभावकी पर्याय है, स्वयं अपनी ओर आये तो उसकी विभाव परिणति छूटकर स्वभाव परिणति हो। फिर अल्प अस्थिरता रहती है, वह भी पुरुषार्थसे क्रम-क्रमसे छूट जाती है।

सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व। चैतन्यकी ओर परिणति गयी तो सर्व गुणोंका अंश स्वभावकी ओर परिणति प्रगट (होती है)। इस ओर दिशा है तो सब विभावपर्याय होती है। पूरा चक्कर दृष्टि इस ओर मुड़ी तो सब ऐसे मुड़ जाता है। फिर अल्प अस्थिरता रहती है, उसकी भी धीरे-धीरे शुद्धि होती जाती है। चारित्रकी निर्मलता (होती है)। एक तत्त्वको ग्रहण करे तो उसमें सब आ जाता है। ज्ञान, आनन्द आदि सब उसमें प्रगट होता है। एक उसकी दृष्टि बदले तो।

मुमुक्षु :- .. पुरुषार्थ क्यों उठता नहीं है?

समाधान :- सबका एक ही प्रश्न आता है। क्यों नहीं उठता है? अपना ही कारण है, किसीका कोई कारण नहीं है। स्वयंकी रुचिकी क्षति है और अपनी मन्दता है। गुरुदेव कहते थे, किसीका कारण नहीं है। नहीं कर्म रोकते, नहीं और कोई रोकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। अपनी रुचि बाहर विभावमें रुकी है, इसलिये रुक गया है। स्वयं अपनी ओर जाय तो स्वतंत्र है। उसे कोई रोकता नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। स्वयं विभावमें जानेवाला स्वतंत्र (है), स्वभावमें आनेवाला स्वयं स्वतंत्र है। अपनी स्वतंत्रतासे स्वयं अपनेमें आ सकता है। स्वयं स्वयंको पहचान सकता है।

स्वयं अपना स्वभाव पहचानकर स्वयंकी ओर जाना है। बाहर अटका है। स्वयंकी ओर जाना। मैं चैतन्यदेव चैतन्यस्वभावसे भरा हुआ, ज्ञायकतासे भरा हुआ आत्मा हूँ। अपनी ओर जाना। सब विभाव आकुलतारूप है। स्वभाव शान्ति और आनन्दसे भरा है। उस ओर जाना, उस ओर परिणतिको मोड़ना आदि सब अपने हाथमें है। भेदज्ञान

करना, स्वानुभूति करना, सब मुक्तिका मार्ग गुरुदेवने प्रकाशित किया है। आनन्द स्वभावमें भरा है। ज्ञान, आनन्द सब आत्मामें है, बाहर कहीं नहीं है।

मुमुक्षु :- .. विकल्पका ज़ोर बढ़ जाता है। स्वभाव हाथमें आता नहीं है, विकल्प उत्पन्न हो जाता है। स्वभावको स्वयं प्रयत्न करके ग्रहण करना। प्रज्ञासे भिन्न करना और प्रज्ञासे ग्रहण करना, (ऐसा) शास्त्रमें आता है। और गुरुदेव भी ऐसा ही कहते थे। विकल्पका ज़ोर बढ़े तो उसके सामने अपना ज़ोर बढाना। चैतन्य परिणतिका ज़ोर बढ़े तो वह टूटे। स्वयं अपने स्वभावको ग्रहण करना और विभावसे भिन्न करना। प्रज्ञासे ग्रहण करना, प्रज्ञासे भिन्न करना अपने हाथकी बात है। विकल्पका ज़ोर बढ़े तो उसके सामने नहीं देखकर स्वयं अपने स्वभावका ज़ोर बढ़ाना। बारंबार उसीका अभ्यास करना। उसीका अभ्यास करना, उसमें थकना नहीं। उसीकी ओर अभ्यास करते रहना।

... सबका सार एक है-मैं एक शुद्ध ममत्वहीन ज्ञान-दर्शनसे भरा आत्मा हूँ। मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ। अनादि अनन्त शाश्वत हूँ। चैतन्य ज्योति है। ये सब तो जड़ है, ये सब दिखाई देता है वह। चैतन्यकी ज्योति अनादिअनन्त शाश्वत है। प्रत्यक्ष ज्ञात हो ऐसा है, कहीं अपरोक्ष नहीं है। स्वयं प्रत्यक्ष है। परोक्ष नहीं है, परन्तु प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष ज्योति है, अनादि अनन्त है। नित्य उदयरूप है। वह गुप्त नहीं है, नित्य प्रगट ही है। उदित आत्मा है। उसे अनुभव नहीं होता है, अनुभव हो तो उदय कहा जाय। परन्तु स्वभाव उदयरूप है, नित्य उदयरूप है। प्रत्यक्ष चैतन्यकी ज्योति है। चैतन्यस्वभाव है, ज्ञानघन स्वभाववान है। उसका स्वभाव ज्ञानसे भरा ऐसा चैतन्य प्रत्यक्ष अनुभवमें आये ऐसा है। ऐसा एक स्वरूप आत्मा है। अखण्ड ज्योति है। उसमें खण्ड नहीं पड़ता। ऐसा आत्मा है। उसे ग्रहण करने जैसा है।

बाकी सब अनादिसे परिणमन हो रहा है, वह सब परिणमन परके साथ एकत्वयुक्त है। चैतन्य एक स्वरूप आत्मा, शुद्ध चैतन्यज्योति उसे ग्रहण करने जैसा है। अनादिअनन्त शाश्वत चैतन्य है। प्रत्यक्ष है। दिखायी नहीं देता है, फिर भी प्रत्यक्ष है। स्वयं प्रत्यक्ष है, गुप्त नहीं है। परोक्ष तो अपेक्षासे कहनेमें आता है। परोक्ष नहीं है। केवलज्ञानकी अपेक्षासे कहा है। उसका वेदन तो स्वानुभूतिमें प्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्ष ज्योति है। ये बाहरकी ज्योति नहीं, ये तो चैतन्यकी ज्योत ऐसा आत्मा है। एक स्वरूप आत्मा शुद्धात्मा, उसे ग्रहण करने जैसा है। उसे ग्रहण करे और उसकी महिमा आये तो सब विभाव परिणतिका रस टूट जाय, चैतन्यकी महिमा आये तो। ऐसा एक शुद्धात्मा है।

एक शुद्धात्मा है। सब प्रक्रियासे पार। उसमें कर्ता, क्रिया, करण, संप्रदान, अपादान आदि प्रक्रिया .... स्वभावरूप है। किसी भी प्रकारका भेद नहीं है। ऐसा शुद्ध है। किसी भी प्रकारका उसमें कर्ता, परका कर नहीं सकता, परकी क्रिया कर नहीं सकता।

उसे कुछ दे सके, उसमेंसे कुछ ले सके, उसका वह आधार नहीं है। ऐसा आत्मा है। ऐसी सब प्रक्रियासे पार आत्मा ऐसा चैतन्यतत्त्व है। उस तत्त्वको ग्रहण करने जैसा है।

.... अनादि कालसे कर रहा है, फिर भी ममत्वहीन हूँ। परका ममत्व, स्वामीत्वबुद्धि कर रहा है, तो भी कहते हैं, मैं ममत्वहीन हूँ। उसका स्वामीत्व पुद्गलका है, स्वयंको नहीं है। फिर भी स्वामीत्व मान तो लेता है। तो भी कहते हैं, मैं उससे स्वामीत्व रहित, उससे भिन्न चैतन्यतत्त्व है। विभावका विश्वरूपपना। विभाव तो पूरे विश्वमें व्याप्त, ऐसा विभाव है। परन्तु मैं उसका स्वामी नहीं हूँ।

... अपने स्वभावमें शान्ति और आनन्द भरा है। वह तो बाहरका संयोग है। देव-गुरु-शास्त्र आत्माको प्राप्त करनेमें निमित्त हैं। देव-गुरु-शास्त्र, जिन्होंने आत्माकी साधना करके पूर्णता प्रगट की, उसकी भावना बीचमें आये बिना नहीं रहती। साधकोंको शुभभावमें भावना आती ही है कि देव-गुरु-शास्त्र मुझे समीप हो, ऐसी भावना आती है। परन्तु वह हेयबुद्धिसे आती है। हेय होने पर भी उसे भावना होती है कि देव-गुरु-शास्त्रकी समीपता हो। वह होनेपर भी भावना आती है।

गुरुदेवकी वाणी जोरदार थी कि सेवक ऐसा ही कहे कि, प्रभु! मैं आपके कारण तिरा। ऐसा कहे। परन्तु उपादान अपना है। भावना ऐसी (आती है)। निमित्त पर आरोप करके (कहता है कि), प्रभु! आपने मुझे तारा। शुभभावमें तो ऐसा आता ही है। आचार्यों भी ऐसा कहते हैं, सब ऐसा ही कहते हैं। ... वह तो उसका स्वभाव नहीं है, अपना स्वभाव नहीं है ऐसा जाने। परन्तु शुभभावमें ऐसा आये कि प्रभु! आप मुझे तारिये, ऐसा आये।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रके प्रति बहुमान आये बिना नहीं रहता।

समाधान :- रहता ही नहीं। जिसे ज्ञायकओरकी परिणति हो, उसमें ऐसा बहुमान आता ही है। आचार्योंको भी ऐसा बहुमान आता है। आचार्य भी शास्त्र लिखे तब जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार करते हैं।

मुमुक्षु :- सभी वस्तुएँ क्रमबद्ध हैं तो पुरुषार्थकी महत्ता नहीं रही।

समाधान :- क्रमबद्ध, पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। जिसमें पुरुषार्थ समाविष्ट है। क्रमबद्ध होनेके बावजूद उसमें पुरुषार्थ साथमें होता है। उसका जो पुरुषार्थ करे, जिसे पुरुषार्थकी भावना होती है, उसीका क्रमबद्ध सुलटा होता है। जिसे पुरुषार्थ नहीं करना है, प्रमाद करना है, उसका क्रमबद्ध भी उलटा होता है। उसे संसारका क्रमबद्ध होता है। जिसे पुरुषार्थकी भावना हो, उसीका क्रमबद्ध मोक्षकी ओर होता है। जिसे पुरुषार्थ नहीं होता, उसे क्रमबद्ध सुलटा नहीं होता। पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है।

... क्रमबद्धके साथ सब कारण साथमें होते हैं। पुरुषार्थ, स्वभाव आदि सब साथमें होते हैं। जिसका पुरुषार्थ सुलटा, उसका क्रमबद्ध सुलटा होता है। पुरुषार्थपूर्वकका क्रमबद्ध समझना।

... महिमा गाये। गुरुदेव गाते थे। सब आचार्य गाते हैं। उसका स्वभाव .... आत्मामें अनन्त शक्ति भरी है। आत्मामें ज्ञान अनन्त, आत्मामें आनन्द अनन्त। आत्मा अद्भुत तत्त्व है। ये बाहरका जो दिखाई देता है वह सब तुच्छ है। वह कुछ आत्माको सुखरूप नहीं है। इसलिये उसका विचार करके आत्माका स्वभाव पीछाने तो महिमा आये। देवलोकके देव भी आश्चर्यभूत नहीं हैं। देवलोकका सुख भी आश्चर्यभूत नहीं है। देवोंको भी भगवान जिनेन्द्र देवकी महिमा आती है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आती है। जिन्होंने आत्मस्वरूपको प्रगट किया, ऐसे देव-गुरु-शास्त्रकी साधना करे, उसकी महिमा, जो उन्होंने प्रगट किया। इसलिये करने जैसा है वैसा आत्मा है। इसलिये आत्माकी महिमा करनी। आत्माका स्वभाव ऐसा है। जैसा भगवानका आत्मा है, वैसा अपना आत्मा है। इसलिये उसका-आत्माका स्वभाव पहिचानना। जो जिनेन्द्र देव-गुरु कहते हैं, उसे अन्दर पहिचानना कि आत्मा ऐसा ही है। आत्मामें कोई अद्भूतता भरी है, आत्मा कोई आश्चर्यकारी तत्त्व है। ये सब दिखाई देता है, वह अलग है और अंतरमें आत्मा कोई अलग है। उसकी महिमा लानी।

... विशेषता नहीं है। जीवनकी विशेषता आत्मामें कुछ प्रगट हो तो जीवनकी विशेषत है, तो मनुष्यजीवनकी सफलता है। बाकी ये सब संसार तो पुण्यके कारण चलता रहता है। वह प्रयत्न करे तो भी अपनी इच्छानुसार नहीं होता है। इसलिये अंतरमेंसे-आत्मामेंसे कुछ प्रगट हो, कुछ नवीनता आत्माका स्वभाव। तो वही जीवनका कर्तव्य है। इसलिये उसकी रुचि, महिमा, उसका विचार, उसका घोलन, वांचन आदि सब उसका करने जैसा है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१५०

मुमुक्षु :- ... प्रयास किस प्रकारका होता है?

समाधान :- अन्दरसे पहचानने के लिये उसका स्वभाव, उसका असली स्वरूप है उसे पहिचानना कि यह जाननेवाला है वह मैं हूँ। उसका ज्ञानस्वभाव तो ऐसा असाधारण स्वभाव है। वह ख्यालमें आ सके ऐसा है। दूसरे उसके अनन्त गुण हैं वह उसे अनुभूतिमें वेदनमें आते हैं। बाकी ज्ञानस्वभाव तो ऐसा है कि वह उसे तुरन्त समझमें आ जाय ऐसा है। ये सब जो है उसमें सुख नहीं है, वह सब तो आकुलतारूप है। लेकिन जो जाननेवाला तत्त्व है वह मैं हूँ। जाननेवालेको पहचान लेना। जाननेवाला है वह मैं हूँ। उसका असली स्वरूप पहचान ले।

वह अन्दरसे पीछानमें आये बिना रहता ही नहीं। स्वयं ही है, कोई अन्य नहीं है कि उससे गुप्त रखे। वह तो अपने प्रयत्नकी मन्दताके कारण, स्थूलताके कारण अन्दर पहचान नहीं सकता है। सूक्ष्म होकर गहराईमें जाय तो स्वयं स्वयंको पहचानमें आये ऐसा ही है। वह जाननेवाला तत्त्व जो ज्ञायकतत्त्व है वही स्वयं है, कोई अन्य नहीं है। यह कुछ ऐसा नहीं है कि स्वयंसे गुप्त रहे, ऐसा नहीं है। स्वयं ही है, गुप्त रहे ऐसा नहीं है। पहचाना जाय ऐसा है।

मुमुक्षु :- वह तो आसानीसे पहचानमें आ जाय ऐसा है, परन्तु स्वयं ऐसा प्रयत्न नहीं करता है, इसलिये पहचाना नहीं जाता।

समाधान :- पहचाना नहीं जाता। स्वयं प्रयत्न नहीं करता है। वस्तु तो पहचानमें आ जाय ऐसी ही है। स्वयं ही है। उसका स्वभाव ऐसा कोई गुप्त नहीं है कि नहीं पहचाना जाय। स्वयं प्रयत्न नहीं करता है। स्वयं बाहर रुका रहता है। स्वयं स्थूलतामें रुक जाता है। उसकी दृष्टि बाहर है। बाहरमें उसे संतोष और शान्ति लगती है, वहीं अटक गया है, इसलिये स्वयंको पहचानता नहीं है। उससे भिन्न पड़े, कहीं चैन पड़े नहीं तो स्वयं स्वयंको पहचान सके ऐसा अपना स्वरूप है। मूल असली स्वरूप उसका ज्ञायक स्वभाव है।

मुमुक्षु :- सुख लगता है, उसके बजाय उसे ऐसा ख्याल आना चाहिये कि ये जो बाहरमें वृत्ति जाती है, वह मुझे दुःखरूप है, मुझे आकुलता उत्पन्न होती है, उसमें

मुझे कुछ तकलीफ जैसा लगता है। तो उसका अन्दर जानेका प्रयत्न हो।

समाधान :- तो प्रयत्न हो। लेकिन उसमें अटक रहा है। अन्दर शान्ति और सुख भरा है। बाहरमें नहीं है। बाहरमें दुःख-दुःख है। उतना अंतरमें लगना चाहिये न। तो उसे चैन पड़े नहीं तो अंतरमें जाय। इसलिये उसे जरूरत लगनी चाहिये। यही आदरणीय है और आत्मा कोई आश्चर्यकारी तत्त्व है। इस प्रकार अन्दर विश्वास आये तो अन्दर (जाये)। पहले उसे अनुभूति नहीं होती है, परन्तु पहले उसे वैसा विश्वास आये कि अन्दर आत्मामें सब है।

मुमुक्षु :- गुरुके पास ऐसा सुना कि अन्दरमें ऐसी चीज है। अब आगे विश्वासके लिये उसका प्रयत्न कैसे करना?

समाधान :- गुरुने कोई अपूर्व स्वरूप बताया। गुरुने कहा तो स्वयं अन्दरसे विचार करे कि गुरु कहते हैं, इसलिये अंतरमें है। उसका स्वभाव पहचाननेका विचार करे। पहले तो उसे उतना विश्वास आये, लेकिन बादमें ज्ञानस्वभावको पीछाने कि जो तत्त्व है, वह पूर्णतासे भरा हो। तत्त्व ऐसा नहीं होता कि उसमें कुछ न्यूनता हो। तत्त्व पूर्ण ज्ञानसे भरा होता है। अनन्त ज्ञानसे, अनन्त शक्तिओंसे भरा उसीका नाम तत्त्व कहनेमें आता है। तत्त्व ऐसा नहीं होता कि जो अधूरा हो, नाशवान हो। जो स्वतःसिद्ध तत्त्व है, वह पूर्णतासे अनन्तासे भरा है। ऐसे स्वयं विचार करके, स्वयंमें यदि ऐसी जिज्ञासा हो तो वह नक्की हुए बिना नहीं रहता। स्वयंकी जिज्ञासाकी क्षतिके कारण अटक रहा है।

बाहर तो उसे कुछ दिखता नहीं है। बाहरका विश्वास उठ जाय कि अंतरमें है। उसे विश्वास आये। अंतर स्वभावमेंसे पहिचाने। ... पहचान ले। लक्षणसे लक्ष्य पहचानमें आता है। तत्त्व हो, वह अनन्त शक्तिसे भरा होता है। जो अस्तित्व है वह अनादिअनन्त है। वह स्वतःसिद्ध है। द्रव्य ऐसा होता है कि जिसमें कुछ अपूर्णता हो या किसीके द्वारा नाश हो ऐसा हो, कि न हो, ऐसा नहीं है। वह अनन्त शक्तिसे भरा है। उसे अंतरमेंसे ऐसी महिमा और उसका विश्वास जो जिज्ञासु हो उसे आये बिना नहीं रहता।

जिसे सत्की रुचि लगी, सत्का प्रेम लगा वह अंतरमेंसे यथार्थ सत्को खोज लेता है। सत् तत्त्व है, वह सत् कैसा महिमावंत है, उसे महिमा आये बिना नहीं रहती। यदि स्वयं अन्दरसे तैयार हुआ हो तो। उसे स्वानुभूतिका आनन्द तो जब उसे स्वानुभूति हो तब प्रगट होता है, परन्तु पहलेसे उसे महिमा (आता है कि) तत्त्व कोई आश्चर्यकारी है। उसे उस प्रकारका विश्वास आये बिना नहीं रहता। उसकी जरूरत लगे, ऐसा विश्वास उसे अंतरसे आ जाता है।

मुमुक्षु :- मुझे कहीं और जगह जानेकी जरूरत नहीं है।

समाधान :- जरूरत नहीं है, मेरेमेंसे ही सब (प्रगट होगा)। अनन्त ज्ञान, अनन्त सुखका धाम, अनन्त आनन्दका धाम, अनन्त अपूर्व गुणोंसे भरा, अनन्त शक्तियोंसे भरा है। शाश्वत रहकर अनन्त अनन्तारूप परिणमित होनेवाला (है)। अनन्त शक्ति मुझमें भरी है। उसे विश्वास आ जाता है।

मुमुक्षु :- उसका अंतर संशोधन उग्र होता जाता है।

समाधान :- हाँ, अंतरकी ओरका उग्र होता जाता है। दृष्टिके बलसे, भेदज्ञानकी धारा आदि सब उग्र होता जाता है। उसकी ज्ञातापनेकी धारा प्रगट होकर उग्र होती है। समझे तो सरल है। नहीं समझा है इसलिये अनन्त कालसे दुष्कर हो गया है।

मुमुक्षु :- बहुत बढ़ जाता है।

समाधान :- अपना स्वभाव है इसलिये सरल है। एक अंश स्वानुभूतिका प्रगट हो तो सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शनके साथ सर्व गुण शुद्धतारूप परिणमते हैं। सब अपनी ओरकी परिणति प्रगट होती है। फिर तो सहजतासे उसकी दशा बढ़ती जाती है। परन्तु पहले उसे कठिन लगता है। जिसे होता है, उसे अंतर्मुहूर्तमें हो जाता है। नहीं होता उसे अभ्यास करे तब होता है।

मुमुक्षु :- उसके पीछे पड़ जाना चाहिये।

समाधान :- पीछे पड़ना चाहिये, तो होता है। जरूरत लगे तो उसके पीछे प्रयत्न करता ही रहता है, छोड़ता नहीं है। वैसे इसे छोड़ना नहीं चाहिये। आकुलता न करे, परन्तु धैर्यसे भावनापूर्वक उसका अभ्यास करता रहे।

मुमुक्षु :- उसकी आकुलता नहीं करनी, परन्तु उसके प्रयत्नमें सातत्य..

समाधान :- प्रयत्न चालू रखना चाहिये, अपनी भावना चालू रखे। यह करना ही है, ऐस प्रयत्न चालू रखे। तो मिल जाता है। गुरुदेव मिले इसलिये सब मिल गया है, फिर भी अभी करना तो स्वयंको है।

मुमुक्षु :- ऐसी भावना होती है कि किस दिशामें जाना है, कैसे जाना है, उसका मार्गदर्शन...

समाधान :- दिशा दर्शानेवाले गुरुदेवने दिशा बता दी है। कहीं रुकते थे, अटकते थे उन सबको दृष्टि बता दी कि यह दृष्टि प्रगट कर। कहीं क्रियामें, शुभभावोंमें कहीं-कहीं रुकते थे, उसे दिखाया कि तू अंतरमें जा। अन्दर शाश्वत द्रव्यको ग्रहण कर। गुरुदेव मिले इसलिये इस पंचम कालमें महाभाग्यसे गुरुदेव मिले, एक तिरनेका मार्ग सब मुमुक्षुओंको बता दिया। पुरुषार्थ स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव भी पधारे और आप भी साथमें पधारे।

समाधान :- गुरुदेवने मार्ग बताया। गुरुदेवके दास हैं। सब गुरुदेवने ही बताया है।

कहीं भूल न हो ऐसा। परन्तु अंतरमें परिणति स्वयंको प्रगट करनी है।

मुमुक्षु :- महेनत तो हमको ही करनी पड़े।

समाधान :- देखो तो सब कहाँ-कहाँ पड़े होते हैं। लौकिकमें देखो तो कहीं क्रियामें पड़े होते हैं, इतना किया इसलिये धर्म हो गया, ऐसा मानते हैं। शुभभाव पुण्यसे धर्म मानते हैं। कहाँ-कहाँ (पड़े होते हैं)। गुरुदेवने तो एक शाश्वत द्रव्यको ग्रहण कर, ऐसी दृष्टि प्रगट करनेको कहा। गुणभेद, पर्यायभेदकी दृष्टि भी उठा ले। ज्ञानमें सब जान। जाननेमें सब आता है। एकदम सूक्ष्म दृष्टि गुरुदेवने बतायी। स्वानुभूतिका मार्ग बताया। पुरुषार्थ स्वयंको करना रहता है। कहीं भूल न हो, ऐसा स्पष्ट मार्ग बता दिया है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकका विकल्प, विचार आये, लेकिन फिर विकल्प टूटता नहीं है। विकल्पमें ही (रहना होता है)।

समाधान :- उसका पुरुषार्थ चाहिये। पहले तो भावना हो, फिर पुरुषार्थ (करे)। अंतरमेंसे पहचाने, भिन्न पड़े तो विकल्प टूटे। अन्दरसे भिन्न पड़ना चाहिये, भेदज्ञान होकर।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान होकर विकल्प टूटे, वह कितने सेकन्डके लिये टूटता होगा?

समाधान :- टूटे भले अंतर्मुहूर्त, लेकिन उसकी धारा तो चले न, भेदज्ञानकी धारा चलती है। अन्दरसे भेदज्ञान हुआ, बादमें पहलेकी भाँति अभिन्न नहीं हो जाता। उसकी भेदज्ञानकी धारा (चलती है)। एकत्वबुद्धि जो अनादिकी होती है, वैसी नहीं होती। एक बार भिन्न पड़े फिर भिन्न ही रहता है। भेदज्ञानकी धारा चलती है।

एक ज्ञायक आत्माको पहचानना, बस। और भेदज्ञान प्रगट करना। स्वमें एकत्व और परसे विभक्त, भेदज्ञान करना। मैं मेरे चैतन्यमें अभेद एकत्व हूँ। ज्ञायक शाश्वत अनन्त गुणसे भरा हुआ एक आत्मा ज्ञायक हूँ। अपना अस्तित्व-ज्ञायकका ग्रहण करके भेदज्ञान प्रगट करना चाहिये। शरीरसे भिन्न, विकल्पसे भिन्न, सबसे भिन्न हूँ। विकल्प उसका स्वभाव नहीं है, उससे भेदज्ञानकी धारा प्रगट करनी चाहिये।

विकल्प तोड़नेका एक ही उपाय है, ज्ञायककी धाराको उग्र करनी। यथार्थ ज्ञायककी धारा, सहज ज्ञायककी धारा प्रगट करनी। वह उसे तोड़नेका उपाय है। बाकी सब आकुलतारूप है, अनित्य है। आत्मा नित्य शाश्वत है। परका स्वयं कुछ नहीं कर सकता। स्वयं चैतन्यका कर सकता है। वास्तवमें परमें अपना कोई उपाय नहीं चलता है। अपने चैतन्यमें अपना उपाय-पुरुषार्थ चलता है, बाहरमें कुछ नहीं चलता। उपदेश सही मौके पर काम आता है। ऐसे अपूर्व आत्माको पहचानना। एक आत्मा-शुद्धात्माको पहिचाने तो भवका अभाव होता है। तो अन्दरसे आकुलता छूटकर सुख और आनन्द प्रगट हो, वह सत्य है। साररूप वही है और शरणरूप भी वही है, सबकुछ वही है। बाकी सबकुछ निःसार है।

मुमुक्षु :- .... शुरूआत हुयी, ... टूटी इसलिये सबको ख्याल आ गया। अतः बसमेंसे हम सब खड़े हो गये। मैं ऐसे ही बैठा रहा। मैंने कहा, इतने लोग इस पर्यायको बदलनेकी कोशिष कर रहे हैं। ड्राईवरने बहुत कोशिष की। बसमेंसे किसीकी इच्छा नहीं थी। अभी वही विचार कर रहा था, पर्याय इतनी स्वतंत्ररूपसे परिणमित हो रही है और इतने लोग उस पर्यायको बदलनेकी कोशिष कर रहे हैं। वही विचार कर रहा था, उस विचारमें बस कब गिर गयी और कब गोते खाने लगी, उस वक्त मुझे कुछ भान नहीं रहा कि बस अब गिर गयी है। हाथमें पकड़ रखा था। अभी तो वही विचार कर रहा था, विचार करता हूँ, इस पर्यायको बदलनेके लिये इतने लोग कोशिष कर रहे हैं। कोई इच्छते नहीं है। और इतनी स्वतंत्ररूपसे पर्याय परिणमती है। यही विचार कर रहा हूँ, मैंने खाई नहीं देखी, गिरते समय कोई सदमा नहीं लगा। उस वक्त मुझे किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं था। बादमें तो बस गोते खाने लगी। उसके बाद सब विस्मृत हो गया, बादमें तो सब विस्मृत हो गया। फिर तो ऐसा होने लगा कि अब बस कब बन्द होगी, कब खड़ी रह जाय, कब गोते खाना बन्द होगा? वह सब विकल्प चलने लगे। उस वक्त यह नया निकला कि अब बन्द हो, बन्द हो, बन्द हो। अटके, अटके, अटके, गोते खाना अटके, अटके, अटके। वह विकल्प बसमें चलता था।

समाधान :- कैसे बचना ऐसा सब (सोचने लगे)।

मुमुक्षु :- इस हाथमें दो हड्डी टूट गयी।

मुमुक्षु :- मैंने ज़ोरसे पकड़ लिया था। परन्तु दो-तीन बार पलटी खाई तो हाथके टूकड़े हो गये।

मुमुक्षु :- दो टूकड़े। दोनों। फोटो बताया, दोनों हाथ बिलकूल अलग।

मुमुक्षु :- फिर तो मैं भी बसके अन्दर आकाशमें गोल-गोल उड़ने लगा। इतनी वेदना थी, फिर भी मैं अन्दरमें ज्ञायककी ओर मुड़नेका विचार करुं कि मैं इसमें रह सकू, इसमें रह सकू। लेकिन उतनी वेदना थी कि विकल्पमें ही चड़ जाना होता था।

समाधान :- उतनी वेदनाका प्रसंग था।

मुमुक्षु :- हम यहाँसे कलकत्ता जाना है, कलकत्तासे फिर प्लेनमें इम्फाल जाना है। फिर इम्फालसे ...

समाधान :- अस्पतालमें वहाँ ले गये होंगे। गुरुदेवने बताया है वही सबको शान्ति देता है। गुरुदेवने सबको तैयार कर दिये हैं। वास्तवमें गुरुदेवका परम उपकार है। उस वक्त ज्ञायकका स्मरण हो, वह सब गुरुदेवका उपकार है। गुरुदेवका उपकार है।

मुमुक्षु :- घर भी याद नहीं आया। कोई भी विकल्प उस वक्त मुझे नहीं था।

घरमें क्या होगा, कैसे होगा? लेकिन जितना अन्दरमें प्रयत्न करता था, जुड़नेका प्रयत्न करुँ, जुड़नेका प्रयत्न करुँ, लेकिन विकल्पमें रही रहना होता था।

समाधान :- अभी भिन्न नहीं हुआ है इसलिये विकल्पमें (रहता है)। लेकिन वह याद आये वह भी गुरुदेवका प्रताप है। ऐसे समयमें ज्ञायक याद आना (वह भी गुरुदेवका उपकार है)। उसके लिये आत्मामें ज्यादा पुरुषार्थ करना, अधिक लगन लगानी और अधिक गुरुदेवने बताया है उस मार्गको ग्रहण करना। अधिक-अधिक..

आत्माका कुछ किया हो, आत्मामें संस्कार ज्यादा दृढ़ हो, अन्दर आत्मा हाजिर हो। कोई किसीका कर नहीं सकता। बाहरमें चाहे जैसा प्रयत्न करे, कोई किसीको बचा नहीं सकता। जो बननेवाला होता है वैसे ही बनता रहता है।

मुमुक्षु :- आश्चर्य होता है कि अभी मैं जीवित हूँ!

मुमुक्षु :- डॉक्टरने बचाया कि नहीं?

समाधान :- किसीने बचाया नहीं है। भाव अच्छे रखे वह अपने हैं। किसीने बचाया नहीं है। गुरुदेवने बताया वह मार्ग ग्रहण हो जाय, वह आत्माको वास्तवमें सुखरूप और सुखका धाम तो वही है। कोई बचा नहीं सका। आयुष्य था।

मुमुक्षु :- डॉक्टर अभी कहाँ बुखार उतार सकता है। अभी कितना रहता है?

मुमुक्षु :- अभी ९९.३, ९९.४ शामको होता है। नोर्मल नहीं होता है। बहुत गहरी खाई थी। ये तो अभी बीचमें अटक गयी थी।

मुमुक्षु :- ये तो बीचमें (अटक गयी), इससे भी चार-पाँच गुनी गहरी थी। बीचमें ज़मीन आ जाये, इसलिये वहाँ अटक गयी।

मुमुक्षु :- नहीं, इसमें तो क्या है ऊतरते-ऊतरते दूसरी सब पहाड़ीका पानीका झरना था। उस झरनेमें बस धँस गयी। उसमें धँस गयी इसलिये अटक गयी। फिर तीन-चार दिनके बाद ऐसे समाचार मिले थे, मैंने तो नहीं देखा था। उसके सौ फिटके बाद इतनी गहरी खाई थी की अनन्त आकाश था। उसमें बस कब गिरे और कब जाय। और बस उस वक्त अन्दर गिरी होती तो किसीकी हड्डी भी हाथ नहीं लगती। लेकिन नसीबसे यह एक्सीडेन्ट हुआ, झरनेमें बस धँस गयी तो बस वहीं अटक गयी। नहीं तो अभी तो बहुत गहरी खाई थी।

समाधान :- इसलिये आदमी वहाँ लेनेके लिये पहुँच सके।

मुमुक्षु :- उसका एक पुत्र था। उसकी बस तो ... कुचल गया था। मिलीटरीवाले सब कुचलकर मर गये।

समाधान :- वैराग्य करने जैसा है।

मुमुक्षु :- अहेमदाबादसे जल्दी सोनगढ़ आ जाओ। मुझे यहाँ नहीं रहना है।

मुमुक्षु :- डाक्टरकी भी इजाजत नहीं ली। डाक्टरकी इजाजत लेने जायेंगे तो ना बोलेंगे। मुझे अहेमदाबादमें रहना ही नहीं है। बीस दिन अहेमदाबादमें रहे। बुखार नहीं उतरा। डाक्टरके पास गये। दस दिनकी दवाई लेकर वापस आना। मैंने कहा, अब जल्दी सोनगढ़ चले जाना है। यहाँ तो टेप भी सुनने मिले, पूरा दिन सत्समागममें रहना हो, ...

ममुक्षु :- ... तुरन्त ही। सुबह, शाम, दोपहर। इसलिये इतनी शान्ति होती है। कहीं सुनने नहीं मिलता। यहाँसे निकलनेके बाद पूरी दुनियामें कहीं सुनने नहीं मिलता। यहाँ सोनगढ़ आये तभी शान्ति होती है। एक टेप सुन ली तो भी इतनी शान्ति होती है।

समाधान :- शान्ति होती है, मानों साक्षात् गुरुदेव बोल रहे हैं। ... देनेवाले गुरुदेव ही है।

मुमुक्षु :- कहाँ भटकते होते।

समाधान :- गुरुदेवने तो अपूर्व मार्ग बताया है। कहींके कहीं जीव अटक गये हैं बहारमें। अंतर दृष्टि करके... सुखका धाम, आनन्दका धाम आत्मा शाश्वत है। आत्मा ज्ञानसे भरा है, सब गुरुदेवने बताया। तू अद्भूत तत्त्व है। तेरेमें अद्भुतता है, बाहर कहीं नहीं है। सब स्वरूप गुरुदेवने बताया। और आत्माका ही अद्भुतता महिमा करने जैसी है। दूसरा कुछ नहीं है, संसार निःसार है। सारभूत तत्त्व आत्मा ही है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१५१

समाधान :- ... दृष्टि उठाकर और दृष्टि एक चैतन्य पर स्थापित करने जैसा है। उसे स्थापित करके उसकी दृष्टि की, उस ओर ज्ञान और परिणति सब उस ओर मोड़कर वह करना है। बुद्धिमें ग्रहण करके भी अंतर परिणति पलटनेकी जरूरत है। गुरुदेवने यह कहा है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! आप कहते हो कि सबसे भिन्न आत्मा है, दृष्टि उस पर करनी, वह सब तो थियरी हुयी, बात हुयी, परन्तु दृष्टि अन्दर ले जाते हैं, परन्तु पकड़में क्यों नहीं आता है? आप, ग्रहण करना ऐसा कहते हो, परन्तु ग्रहण क्यों नहीं होता है? उसे कैसे ग्रहण करना?

समाधान :- बुद्धिमें ग्रहण किया, परन्तु अंतरमें उसका स्वभाव पहचानकर ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- स्वभावको पहिचाना कि तेरा स्वभाव तो शुद्ध है, परिपूर्ण है, एक है, अखण्ड है, नित्य है। और द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे तू तो त्रिकाल रहित है, ऐसा शुद्ध परमात्मतत्त्व अंतरमें विराजमान है। उसे विचारधारामें लेते हैं, ज्ञानधारामें लेते हैं, श्रद्धाकी धारा भी मोड़कर हम उसी तत्त्वको पकड़नेकी महेनत करते हैं। एकान्तमें बैठकर, ध्यानमें बैठकर उस चीजको पकड़नेके लिये (प्रयास करते हैं), फिर भी वह चीज पकड़में नहीं आये और एक विकल्प, पर्याय और द्रव्यके बीच अवरोधरूप रहा करता है, उस विकल्पको छेदकर पर्याय द्रव्यको कैसे और कब ग्रहण करे? उस विकल्पको कैसे चिर दे, ये बताइये।

समाधान :- विकल्पका भेद करना। चैतन्यकी ओर उसकी परिणतिका ज़ोर आये, दृष्टिका ज़ोर आये और उसीकी ओर उसीकी तमन्ना लगे, उसकी लगन लगे, विकल्पमें आकुलता लगे, चैन पड़े नहीं और उस ओर दृष्टिका ज़ोर हो, परिणतिकी दौड लगे, पुरुषार्थका बल हो तो उस ओर जाय। जबतक बाहरमें एकत्वबुद्धिमें अकटता है, भले बुद्धिमें ग्रहण करे परन्तु एकत्वबुद्धिमें अटके तबतक वह टूटता नहीं। अपने स्वभावका ज़ोर हो तो वह टूटे ऐसा है।

मुमुक्षु :- ज़ोर प्रगट करनेकी कोशिष, उसकी महेनत करते हैं, एकत्वबुद्धि तोड़कर

जहाँ कभी एकत्वबुद्धि हुयी नहीं, वहाँ एकत्वबुद्धि करनेका प्रयत्न करते है। यही रीत है, यही मार्ग है, इसी दिशामें तेरी ज्ञानकी परिणतिको अन्दरमें ज़ोर दे। परिणति पर लक्ष्य मत रख, परिणतिके विषय पर लक्ष्य रखकर आगे बढे, सब थियरी तो ऐसी पक्की समझमें आ गयी है। उस दिशामें महेनत..

समाधान :- वह थियरी तो गुरुदेवने इतनी स्पष्ट कर दी है कि कहीं भूल न हो। बाहरसे छुड़ाकर सबको अंतरमें पहुँचाया है।

मुमुक्षु :- बराबर है, सबको पहुँचाया है। उस स्थितिमें तो सबको ले आये हैं। लेकिन सब जीव एक जगह अटके हैं। कहाँ.. वह विकल्पका परदा, विकल्प भी करे कि मैं तो ज्ञायकमात्र हूँ, दूसरा कोई विकल्प नहीं। रंग, राग, भेदसे मैं तो सदा भिन्न हूँ। परन्तु मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ। ऐसा विकल्प, मैं ज्ञायकभाव हूँ, ऐसा निश्चयनयका पक्ष, ऐसा निश्चयनयका विकल्प, उस विकल्पको तोड़कर निर्विकल्प अनुभूतिमें जाना, उतनी ही देर है, लेकिन बहुत समय लगता है। क्यों जाया नहीं जाता, यह प्रश्न होता है।

समाधान :- वह स्वयंके पुरुषार्थकी कमज़ोरी है। दूसरा कोई कारण नहीं है। प्रज्ञाछैनी जोरसे वहाँ पटकनी वही करना है। भेदज्ञानकी धाराका बल, ज्ञाताधाराकी उग्रता करनी कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, उस ज्ञाताधाराकी उग्रता हो, क्षण-क्षणमें उसकी उग्रता, एक बार करनेसे नहीं होता। क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते, निद्रामें, स्वप्नमें मैं ज्ञायक हूँ, उतनी भेदज्ञानकी ज्ञाताधाराकी अंतरमें उग्रता करे तो उसे विकल्प टूटता है। जिसे होता है उसे अंतर्मुहूर्तमें होता है, न हो वह ऐसा अभ्यास निरंतर करे तो उसे विकल्प टूटनेका प्रसंग आये। एक-दो बार करे और विकल्प टूटे (ऐसी अपेक्षा रखे तो) ऐसे तो होता नहीं, उसे निरंतर उसका अभ्यास करना चाहिये। यह मेरा स्वघर, मेरे घरकी प्रीति, ज्ञायक ज्ञाता.. ज्ञाता.. ज्ञाता... वह ज्ञाता ही अपनी परिणतिमें गूँथ जाना चाहिये। शरीर और विकल्पकी जैसे एकमेक घटमाल हो गयी है, वैसे अन्दर आत्माका घुटन हो जाना चाहिये।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! आपने यह कितने साल घुटन करके प्राप्त किया? सामान्य समय (पूछता हूँ), मिलान हो सके इसलिये।

समाधान :- वह तो अंतरकी उग्रता हो तो थोड़ा समय भी लगे।

मुमुक्षु :- आपको तो उग्र है। तो उग्रतामें आपको कितना समय लगा था?

समाधान :- वह तो छः महिनेमें भी हो जाता है।

मुमुक्षु :- ऐसे नहीं, आपकी बात कीजिये। दो-पाँच साल ऐसा खूब अभ्यास किया था?

समाधान :- दो-पाँच साल लगे ही नहीं है।

मुमुक्षु :- वही पूछता हूँ। बहुत अल्प समयमें...

समाधान :- बहुत अल्प समयमें छः-आठ महिनेमें ही हो गया था।

मुमुक्षु :- हम तो तीस-तीस सालसे (लगे हैं), आप कहते हो पूरा दिन उसका अभ्यास चाहिये, पूरा दिन उसीका घुटन होना चाहिये। जीवनमें वर्तमानमें ध्येय यह एक ही किया है। फिर भी अभी आत्मा सामने दिखे, उसे पकड़ने जाय तो छटक जाता है। सामने दिखे, पकड़ने जाय तो छटक जाता है। ज्ञानके अन्दर उसका प्रतिभास दिखे कि यह ज्ञायक है, यह तू है। ऐसा ज्ञान स्वीकार करे, ज्ञान क़बूल करे, फिर भी उसे ग्रहण करके यह पकड़ा, पकड़ने जाय तो छटक जाता है। ऐसे थोड़ा-थोड़ा दूर हो जाता है। उसका जवाब तो आप कहोगे कि पुरुषार्थकी परिणति अभी जितनी चाहिये उतनी नहीं है, भेदज्ञानका बल जितना चाहिये उतना नहीं है। वह तो बराबर है।

समाधान :- मुझे तो विचारकी धारा कुछ एक साल, डेढ साल चली। छः-आठ महिनेमें उग्रता हो गयी। वह तो अंतरमें..

मुमुक्षु :- तो वह कोई पूर्व संस्कारका बल, पुरुषार्थका बल था, ऐसा ले सकते हैं?

समाधान :- पूर्वका संस्कार कह सकते हो, लेकिन पुरुषार्थ तो अभी करना है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ तो वर्तमानमें करनेका है। परन्तु पुरुषार्थके संस्कारका बल हो, तो वह पुरुषार्थ उस संस्कार पर जल्दी काम कर लेता है, ऐसा तो बनता होगा न?

समाधान :- जल्दी हो, लेकिन तैयारी तो स्वयंकी (होनी चाहिये)।

मुमुक्षु :- हाँ, उतनी तैयारी हो..

समाधान :- यहाँ इन लोगोंको कितने संस्कार पड़े? यहाँ गुरुदेवके कितने सालके संस्कार सबको तैयार हो गये हैं। संस्कार अन्दर डाले तो कितने साल (हो गये)। वह सब पूर्वका गिन लेना। गुरुदेवने जो प्रवचन किये, वह सबने सुना, अंतरमें वह पूर्व ही था न। पूर्व संस्कार मान लेना।

मुमुक्षु :- हाँ, वह तो है। जरूर है। जो संस्कारका सिंचन हुआ उसका अमुक बल तो होता है।

समाधान :- उसका बल (है तो) सबको अन्दर आसान हो जाता है न।

मुमुक्षु :- हाँ, उतना आसान हो जाता है।

समाधान :- कोई ऐसा कहे कि पूर्वके संस्कार (थे)। तो संस्कार तो अभी गुरुदेवने बहुत दिये हैं।

मुमुक्षु :- दिये-दिये। चालीस-चालीस सालके संस्कार तो गुरुदेवने दिये ही हैं। उसका सिंचन भी हुआ है। वह पूर्व संस्कार ही है। पूर्व अर्थात् पूर्व भवके ही संस्कार

हो, ऐसा नहीं है।

समाधान :- इसलिये पुरुषार्थकी तैयारी तो स्वयंको ही करनी है।

मुमुक्षु :- स्वयंको ही करनी है। वह पूर्वके संस्कार भी व्यवहारका कथन है कि उस संस्कारके बलसे प्राप्त हुआ। निश्चयसे तो जब पुरुषार्थ करके प्राप्त करे तब पूर्व संस्कारके बलसे (प्राप्त हुआ), ऐसा व्यवहारसे कहा जाय।

समाधान :- हाँ, ऐसे व्यवहारसे कह सकते हैं, उस पर आरोप देकर। पूर्वके संस्कार तो व्यवहारसे (कहनेमें आता है)।

मुमुक्षु :- पूर्वके संस्कारको जागृत करनेमें भी वर्तमान पुरुषार्थ चाहिये।

समाधान :- वह स्वयंका वर्तमान पुरुषार्थ है। आत्मामें आनन्द भरा है, आत्मामें ज्ञान भरा है, परन्तु स्वयं अन्दरसे विकल्पको छेदकर पुरुषार्थ करे तो होता है।

मुमुक्षु :- विकल्पका छेद नहीं हुआ है, फिर भी आत्मा ज्ञानानन्दमय है, ऐसा स्वीकार, उसकी हकार तो अन्दरसे ऐसा आता है कि तू ही शान्तिका पिण्ड, आनन्दका पिण्ड, ज्ञानमूर्ति आत्मा है। उसमें तो थोड़ी भी शंका नहीं होती। अनुभव बिना। अनुभवपूर्वककी वाणी तो कोई और होती है।

समाधान :- वह तो उसकी दशा ही अलग है।

मुमुक्षु :- परन्तु अनुभव पूर्व भी ऐसा स्वीकार तो ऐसे जोरशोरसे आता है कि अहो! तू ज्ञानान्दमय है। परन्तु उसे पकड़नेके लिये...

समाधान :- उसका अभ्यास क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें चलना चाहिये।

मुमुक्षु :- बोलो, वजुभाई! कितने दूर हो? वजुभाईको तो बहुत बार लिखता हूँ। तू स्वयं डॉक्टर, तू स्वयं दर्दी और तू दर्दीका दर्द मिटानेवाला भी तू स्वयं है। बराबर है?

समाधान :- सब स्वयं ही है। गुरुदेवने अपूर्व वाणी बरसा दी। सबको कहीं भूल न रहे ऐसा कर दिया है।

मुमुक्षु :- बराबर है, उसमें तो.. इतना परोसकर गये हैं कि अहो! हमारे अहोभाग्य कि ऐसा साक्षात् सुनने मिला।

समाधान :- सब कहाँ पडे थे, क्रियामें और शुभभावमें धर्म मानते थे। वहाँसे तो दृष्टि उठा दी, परन्तु अंतरमें द्रव्य-गुण-पर्यायके भेदमें भी तू मत अटक, एक द्रव्यदृष्टि कर। ज्ञान सब कर लेकिन दृष्टि एक आत्मा पर स्थापित कर।

मुमुक्षु :- ज्ञान भी दृष्टि करनेके लिये करनेका है न।

समाधान :- कितना सूक्ष्म गुरुदेवने दे दिया है।

मुमुक्षु :- ओहो..! क्या अन्दर सूक्ष्मतामें ले गये हैं! छेद-भेदकर कितनी सूक्ष्मतामें!

कहाँ तुझे जाना है, तेरा धाम तुझे बता दिया, विश्रान्तिका स्थान बता दिया। यहाँ विश्रान्ति है, कहीं और नहीं है।

समाधान :- बता दिया। यहाँ शान्ति, यहाँ सुखका धाम, विश्रान्ति आनन्दका घर है। कृपा हो, वह तो स्वयं तैयार हो तो कृपा कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- तैयार भी ज्ञानी कर दे, दे भी दे ज्ञानी।

समाधान :- वह तो उसमें समा जाता है। उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध ही होता है। उपादान जिसका तैयार हो उस पर गुरुदेवकी कृपा होती है।

मुमुक्षु :- बराबर है, बात तो ऐसी ही है।

समाधान :- वह तो ऐसा ही कहे कि गुरुदेव! आपने ही सब दिया है।

मुमुक्षु :- आत्मा दिया।

समाधान :- आत्मा दिया।

मुमुक्षु :- ऐसा कुछ नहीं, साक्षात् प्रत्यक्ष देखे ऐसा कुछ नहीं?

समाधान :- जो तैयार हो उस पर कृपा होती है। वह तो ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- उसमें तो ऐसा ही है। परन्तु गुरुदेवकी अमुक कृपा हो, भले निमित्त, परन्तु उपादानको ऐसे उठा लिया, तू तैयार हो जा।

समाधान :- गुरुदेव तो वीतराग थे। उनकी कृपा कुदरती जिस पर कृपा हो..

मुमुक्षु :- तो भी वीतराग सर्वथा नहीं थे, किसी-किसी पर तो बहुत राग था।

समाधान :- वह तो देखनेवालेकी दृष्टि वैसी थी।

मुमुक्षु :- तो आप रागका पूरा इन्कार करोगे? गुरुदेवको राग था ही नहीं? गुरुदेवको पर्यायार्थिकनयसे राग नहीं था? अशुद्धनिश्चयनयसे राग नहीं था?

समाधान :- गुरुदेव तो वीतरागताके पंथ पर चलनेवाले वीतरागी ही कहेंगे न।

मुमुक्षु :- वीतरागताके पंथ पर थे, थोड़ा रागका भी पंथ था तो वीतरागताके पंथ पर कहें, नहीं तो वीतराग साक्षात् हो गये कहलायेंगे।

समाधान :- ऐसा कहना ही नहीं चाहिये। शिष्य हो वह गुरुदेवको वीतराग..

मुमुक्षु :- मेरे गुरुको कोढ़ था ही नहीं।

समाधान :- शिष्य ऐसा ही कहे कि गुरुकी जिस पर कृपा हो, वह शिष्य तिर जाय। वीतरागी गुरु।

मुमुक्षु :- गुरुदेव तरणतारण कहलाते हैं। तिर गये और तिरा दिया। तरणतारणका आरोप उन पर आये। हे गुरु! आप तिर गये। और आपके अनेक शिष्योंको आपने तारे।

समाधान :- तार दिये। वह ऐसा नहीं कहेगा कि पुरुषार्थसे तिरा। गुरुदेवने तार दिया। पूरे हिन्दुस्तानके जीवोंको गुरुदेवने ही जागृत किये हैं। पूरे भारतको। सबकी दृष्टि क्रियामें और शुभभावमें पड़ी थी। सबकी दृष्टि (वहाँ पड़ी थी)। गुरुदेवने दृष्टि दी ऐसा ही कहेनेमें आये न।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने मुर्देको खड़ा कर दिया, हम तो ऐसा कहते हैं। सब मुरदे थे, मुरदेके खड़ा कर दिया, जागृत किया।

समाधान :- मैं स्वयंसे खड़ा हो गया, ऐसा थोडे ही कहनेमें आये? गुरुदेवने दृष्टि दी और गुरुदेवने जागृत किये। गुरुदेवने जीवन दिया।

मुमुक्षु :- आप भले कहो, वे निमित्त थे। परन्तु हमको तो ऐसा लगता है, उन्होंने हमको खड़ा कर दिया, हाथ पकड़कर हमें खड़ा कर दिया।

समाधान :- वह तो खड़ी ही किया है न। निमित्त-उपादानकी बात हो तब ऐसा कहनेमें आये, बाकी गुरुदेवने ही खड़े किये हैं।

मुमुक्षु :- आपको निद्रामें, स्वप्नमें कई बार दर्शन हुए होंगे?

समाधान :- स्वप्नमें तो आते ही हैं गुरुदेव। यहाँ वर्षोंसे जीवन उस प्रकारका हो गया है, इसलिये स्वप्नमें तो आते हैं.

मुमुक्षु :- ऐसे कुछ बात कर जाते हैं?

समाधान :- उसमें क्या बात करें? कहा न, गुरुदेव तो वीतरागी थे।

मुमुक्षु :- वीतरागी थे, परन्तु कुछ बात तो करते होंगे।

मुमुक्षु :- स्वप्नमें तो आये, परन्तु ऐसे आये हैं कि नहीं? आये तो कहना, मुझे कहना, ऐसा रामजीभाई कहते थे। मुझे बुलाना।

मुमुक्षु :- सुना है, परन्तु बहिनश्री ऐसा कहे कि आज सुबह ही आये थे, गुरुदेव यहाँ पधारे थे, आपको देर हो गयी, गुरुदेव पधार गये।

समाधान :- गुरुदेव तो देवमें विराजते हैं। क्षेत्रसे दूर हो गये। बाकी साक्षात् विराजते हैं। वे तो सीमंधर भगवानके पास जाते हैं। बीचमें यह भरतक्षेत्र आ जाय और वे देखे भी, परन्तु हमको दिखाई नहीं दे।

मुमुक्षु :- भरतक्षेत्रकी याद आ जाय।

समाधान :- वे तो ज्ञानमें सब देखते हों।

मुमुक्षु :- सीमंधर भगवानके पाससे वापस मुड़ते समय मेरे शिष्यकी खबर ले लूँ, ऐसा उनको भी मन हो, थोड़ा राग अभी है, देवगतिमें ऐसा राग होता है। और देवगतिके जीवको क्रियावर्ती शक्ति हों, उसे यहाँ आनेमें कहाँ देर लगती है।

समाधान :- परन्तु भरतक्षेत्रके पुण्य हो तो यहाँ आये। बाकी उनको तो महाविदेहकी

ओर सीमंधर भगवानके पास (जाते हैं)।

मुमुक्षु :- हमारे पुण्य थे इसीलिये तो पधारे थे, पुण्य खत्म नहीं हो गये हैं, ऐसा विचार क्यों न करें।

समाधान :- आते हों तो कोई देख भी नहीं सके। ... अपनी ओर एकत्वबुद्धिको दृढ़ करनी।

मुमुक्षु :- बाहरकी एकत्वबुद्धिको ढीली की है, इसलिये तो पुरुषार्थ और ज्ञानका व्यापार अंतरमें जाकर..

समाधान :- उसे तोड़ देना चाहिये।

मुमुक्षु :- तोड़ दे तो यहाँ आत्माका स्पर्श हो जाय। यहाँ एकत्वबुद्धि टूट जाय तो आत्माका स्पर्श हो जाय। यहाँ एकताबुद्धि टूट जाय तो आत्माकी एकताबुद्धि हो जाय।

समाधान :- तो उसका अभ्यास करे, अभ्यास करना चाहिये न। अभ्यास करे तो अपनी एकत्वबुद्धि हो।

मुमुक्षु :- अभ्यास करें कि मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ।

समाधान :- उस अभ्यासमें क्षति है।

मुमुक्षु :- कौन-सी क्षति है?

समाधान :- क्षति ही है, उसकी दृढ़ताकी क्षति है। वह क्षति है।

मुमुक्षु :- आपने तो एक ही जवाब, दृढ़ताकी क्षति है, पुरुषार्थकी कचास है, ज्ञानका ज़ोर नहीं है।

समाधान :- लेकिन एक ही जवाब हो न। दूसरा क्या जवाब हो?

मुमुक्षु :- उसे कैसे प्राप्त करना? कि तू स्वयं कर तो हो। वह जवाब दोगे।

समाधान :- उसका एक ही जवाब है, दूसरा जवाब क्या हो? स्वयंको ही करना है।

मुमुक्षु :- कुछ विधि-विधान होगा न?

समाधान :- उसकी विधि एक ही है, ज्ञाताका भेदज्ञान करना, ज्ञाताको पहचानना, उसका पुरुषार्थ करना, एक ही उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। कोई कर नहीं देगा, कहींसे आनेवाला नहीं है। अपनेमें सब भरा है, अपनेमेंसे सब आयेगा और स्वयंको प्रगट करना है। कैसे करना? वह तो स्वयंको ही करना है।

मुमुक्षु :- जैसे-जैसे ज्ञानीका उपदेश सुनें, ज्ञानी जैसे-जैसे इस प्रकारकी विधि बताये, वैसे-वैसे यहाँ पुरुषार्थ उठता हुआ दिखे,..

समाधान :- विधि बताये बादमें करना स्वयंको बाकी रहता है। वे करवा नहीं

देते।

मुमुक्षु :- हाँ, बताते हैं, तो करते हैं न?

समाधान :- वे बताते तो हैं कि तू तेरे ज्ञायकको पहिचान।

मुमुक्षु :- हाँ, परन्तु ज्ञायकको पहिचाननेकी इतनी महेनत करनेके बावजूद अभी दूर-दूर क्यों है?

समाधान :- महेनत करनेके बावजूद न हो तो महेनत करता ही नहीं।

मुमुक्षु :- तेरी महेनत की कच्ची है।

समाधान :- महेनत ही कच्ची है।

मुमुक्षु :- उसे पकानेकी बात...?

समाधान :- महेनत ही कच्ची है।

समाधान :- ... गुरुदेवने क्या मार्ग बताया है? विचार, वांचन, महिमा, अन्दरसे चैतन्यकी महिमा (आनी चाहिये)। देव-गुरु-शास्त्र क्या कहते हैं? उनकी महिमा, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, चैतन्यकी महिमा, वही विचार, उसीकी लगन लगनी चाहिये। बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये, तत्त्वका विचार करना चाहिये। वह करनेका है।

बाह्य क्रिया मात्र करे, शुभभाव करे तो पुण्य बन्धता है। उससे कुछ धर्म तो होता नहीं, देवलोक होता है। शुद्धात्माको-ज्ञायकदेवको पीछाने। विकल्प रहित निर्विकल्प तत्त्व आत्मा है, उसे पीछान। उसे पहचाननेको कहा है। भेदज्ञान करना। ये विभाव होते हैं वह मैं नहीं हूँ, मैं तो चैतन्य हूँ। ऐसा भेदज्ञान अंतरमेंसे करना चाहिये। उसके लिये उसकी जिज्ञासा होनी चाहिये। बाहरकी महिमा छूट जाय, अंतरकी महिमा आये तो होता है।

मुमुक्षु :- कोई वस्तु कठिन नही हैं।

समाधान :- कठिन नहीं है, लेकिन स्वयंका अभ्यास अनादिका दूसरा हो गया है इसलिये कठिन लगता है। स्वभाव अपना है, सहज है, परन्तु अनादि कालका अभ्यास दूसरा है इसलिये कठिन लगता है।

मुमुक्षु :- समझमें नहीं आये ऐसा कुछ...?

समाधान :- ऐसा नहीं है। स्वयंका स्वभाव है। समझे तो क्षणमें समझमें आये ऐसा है। गुरुदेव तो यहाँ पधारे...। गुरुदेव प्रवचनमें कोई अपूर्व बात करते थे। आत्माको पीछानना। उसके लिये शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्व विचार आदि सब करना।

... स्वरूप है, विभावपर्याय भी उसका स्वभाव नहीं है। आत्मा कोई अलग अद्भूत तत्त्व है, उसे पीछानना। ज्ञायक है। जितना ज्ञान, जितना आनन्द, जितना चैतन्यमेंसे प्रगट हो वह उसका स्वभाव है, बाकी सब विभाव है। चैतन्यका लक्षण पहिचानकर

उसे भिन्न करना। अपने लक्षणसे भिन्न पड़ता है। विभावका लक्षण भिन्न और आत्माका लक्षण भिन्न। लक्षणसे भिन्न करना।

द्रव्य पर दृष्टि करके उस पर दृष्टिको स्थिर करना। गुणके भेद, पर्यायके भेद भी आत्माके स्वभावमें नहीं है। उसका ज्ञान करना, सबको जानना। दृष्टि एक चैतन्य पर रखनी। यह करना है। विकल्प टूटकर निर्विकल्प तत्त्वकी स्वानुभूति कैसे प्रगट हो, यह करना है।

.. अभ्यास करना चाहिये। ये तो अनादिका अभ्यास है। चैतन्यका अभ्यास बारंबार (करना चाहिये), ये विभावका तो अनादिका है। चैतन्यका अभ्यास करना वह अपूर्व है। कहीं भी हो, कर सकता है, करना अपने हाथमें है। लेकिन उसकी भावना तो ऐसी होती है न कि जहाँ देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य मिले। वहाँ कोई-कोई मुमुक्षु होंगे। ज्यादा तो होंगे नहीं।

मुमुक्षु :- बहुत थोड़े।

समाधान :- शास्त्रका अर्थ समझना सरल पड़े।

मुमुक्षु :- यहाँ सुना हो, ...

समाधान :- अपनी तैयारी चाहिये न।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१५२

समाधान :- आत्मा और आस्रवका भेद करना है, वह करनेका है। आस्रव सब आकुलतारूप है। सबको यह करनेका है। निराकूल स्वभाव आत्मा भगवान है। भगवान आत्मा विज्ञानघन है, उसे भिन्न करना। यह करना है। यह विभावभाव तो विपरीत स्वभाव है। स्वयं चैतन्य है, जाणक ज्ञायक स्वभाव है। भिन्न है। वह दुःखरूप है, दुःखका कारण है, दुःखका कार्य उसमेंसे आता है। दुःखका फल आता है। सब उसमेंसे आता है। आत्मा सुखका धाम है, सुखका कारण है, सुखका कार्य उसमेंसे आता है। सब आत्मामेंसे आता है। आत्मा स्वयंको जानता है, स्वपरप्रकाशक है। वह कुछ नहीं जानता है- विभाव स्वयं स्वयंको जानता नहीं, परको जानता नहीं, आत्माको जानता नहीं। आत्मा सबको जाननेवाला है, ऐसा ज्ञायक स्वभाव आत्मा है। उसका भेदज्ञान करना, वही जीवनका कर्तव्य है।

अशुचिपना विपरीतता ये आस्रवोंके जानके,
अरु दुःखकारण जानके, इनसे निवर्तन जीव करे।।७२।।

उससे निवृत्ति हो। ज्ञायक आत्माको जाना कब कहा जाय? कि उससे निवृत्त हो। विभावसे निवृत्त और स्वभावमें परिणति प्रगट हो। समयसारमें आता है न, वह कहती हूँ। वह सबको करने जैसा है।

आनन्दघन आत्मा, उसे प्रगट करना है। आनन्दका घन है, ज्ञानका घन है। आनन्दसे भरा है, ज्ञानसे भरा है। अनन्ततासे भरा है। अनन्त गुणोंसे भरा है। उसकी परिणति प्रगट करे और विभावसे निवृत्ति हो, यह करना है। अन्दरकी प्रवृत्ति प्रगट हुयी-पर्याय प्रगट हुयी कब कहा जाय? विभावकी निवृत्ति हो। विभावकी निवृत्ति हुयी कब कहा जाय? कि स्वभावमें प्रवृत्ति हो, स्वभावका वेदन हो तो विभावकी निवृत्ति हुयी। तो विभावसे भेदज्ञान हुआ ऐसा कहा जाय।

आस्रव सब मलिन हैं, आत्मा पवित्र उज्जवल है। उज्जवलतासे भरा, पावनतासे भरा हुआ आत्मा है। उसे प्रगट करने जैसा है। वही ध्येय रखने जैसा है। उसका लक्ष्य, उस ओर परिणति। आत्माका स्वभाव पीछाने, विभावका स्वभाव पहचानकर उसका भेद करके स्वमें एकत्वबुद्धिकी परिणति (और) परसे विभक्तबुद्धि करने जैसा है। कर्ता-कर्मकी

प्रवृत्तिमें जीव अनादि कालसे अटक गया है। परको मैं कर सकता हूँ और पर मेरा कार्य है। स्वभावरूप परिणमन करनेवाला मैं और स्वभाव मेरा कार्य, वह परिणति प्रगट हो तो वह मुक्तिका कार्य है। आत्मा ज्ञानका धाम है, सुखका धाम है, सब उसमेंसे प्रगट होता है। वह सत्य आश्रय है, आत्मा द्रव्यका आश्रय।

आस्रव है वह अपना पराश्रय भाव है। शुभभाव बीचमें आते हैं। उसमें देव-गुरु-शास्त्रका आश्रय होता है। परन्तु चैतन्यके आश्रयपूर्वक, चैतन्यका आश्रय प्रगट हो, उस पूर्वक होना चाहिये, उसके ध्येयपूर्वक। स्वयंका आश्रय वह सत्य आश्रय है। यह स्वाधीनता है, वह पराधीनता है। उसका सान्निध्य कैसे प्रगट हो? वह परिणति प्रगट करने जैसी है। यह सान्निध्यता तो उसे मिली, लेकिन अंतरका सान्निध्य कैसे प्रगट हो? वह करने जैसा है। उसकी समीपता कैसे प्रगट हो? सुखका धाम, ज्ञानका धाम कैसे प्रगट हो? उसकी परिणति प्रगट कर। प्रथम वह करने जैसा है, सबको यह करना है। ये तो बैठे हैं, उनको ... ऐसा नहीं है, सबको करने जैसा है।

... और उसे स्वभावपरिणति प्रगट हो उसमेंसे अनन्त गुण-पर्याय प्रगट हो। ऐसे उसमें अनन्त गुण-पर्याय कोई अपूर्व है। सिद्धदशामें उसके गुणकी पर्यायें कोई अपूर्व प्रगट होती हैं। स्वानुभूतिमें भी उसकी गुण-पर्यायें प्रगट होती हैं। ऐसे अनन्त-अनन्त गुणोंसे भरा, जिसका पार नहीं है और अद्भूत आश्चर्यकारी तत्त्व है। उसीका आश्चर्य करने जैसा है, उसीकी अद्भूतता करने जैसी है। परपदार्थ कोई अद्भूतरूप नहीं है या आश्चर्यरूप नहीं है या सुखरूप नहीं है या सुखका कारण भी नहीं है।

आत्मा ही सुखका कारण और अद्भूत एवं आश्चर्यकारी तत्त्व है। उसीका आश्चर्य करने जैसा है। और उस आश्चर्यके ध्येयसे, बस, जीवन वह जीवन है। बाकी सब तो बाहरका विषय है। उसके ध्येयपूर्वकका जीवन वह वास्तविक जीवन है।

द्रव्यदृष्टि करके उसका ज्ञान करे। नहीं तो परिणति कैसे जाय? स्वसे एकत्व और परसे विभक्त, ऐसी भेदज्ञानकी परिणति क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें प्रगट करता हुआ, अपने समीप होकर स्वानुभूति प्रगट करे, वही करने जैसा है।

(गुरुदेवने) भेदज्ञानका मार्ग बताया है। कोई जानता नहीं था। सब क्रियामें धर्म मानते थे। शुभभावसे धर्म होता है, ऐसा मानते थे। शुभभाव तो पुण्यबन्धका कारण है, आकुलतारूप है, पराधीन है। आत्मा स्वयं शुद्धात्मा वही सुखरूप है, वह स्वाधीन है, वही आत्माका स्वयंका स्वभावभूत भाव है। वह तो विभावभाव है, ये तो स्वभावभूत भाव है। वह करने जैसा है। गुरुदेवने यही बताया है। निर्विकल्प-विकल्प तोडकर निर्विकल्प दशा, ज्ञाताकी धारा उग्र करके विकल्प तोड़कर निर्विकल्प दशामें जो स्वानुभूति हो, वही करने जैसा है और वही स्वानुभूतिका मार्ग गुरुदेवने बताया है, ऐसी निर्विकल्प

दशाका।

गुरुदेव इस पंचमकालमें कोई अद्‌भूत, कोई अद्‌भूत प्रगट हुए थे। पंचमकालका यह महाभाग्य कि उनकी वाणी कोई अद्‌भूत और वह आत्मा भी अद्‌भूत (थे)। पंचमकालका ऐसा ही कोई भाग्य कि सबको गुरुदेव मिले। ... जीवनका ध्येय यह (होना चाहिये)।

.. दशा प्रगट हो तो वही मुक्तिका मार्ग है। उसीमें मुनिदशा, केवलज्ञान, स्वानुभूतिके मार्गमें ही प्रगट होता है। ज्ञाताधाराकी उग्रता हो, उसीमें त्याग समाविष्ट है। वास्तविक त्यागकी परिणतिमें उसमेंसे प्रगट होती है। वही करने जैसा है। क्षण-क्षणमें मुनिओं तो स्वानुभूतिमें, बारंबार स्वानुभूतिमें लीन होते हैं। बाहर आना भी, आये तो भी टिक नहीं सकते। तुरन्त अंतरमें चले जाते हैं। ऐसा करते-करते केवलज्ञानकी प्राप्ति करते हैं। शाश्वत अंतर आत्मामें, कोई आश्चर्यकारी आत्मामें जम जाते हैं। आनन्दके धाममें अनन्त गुणका जो खजाना है, उसमें जम जाते हैं। सादिअनन्त काल। गुरुदेव...

.. मानों गुरुदेव मन्त्र ही देते हों। जो उन्होंने मन्त्र दिये, वह मन्त्र हृदयमें उत्कीर्ण कर लेने जैसे हैं। ज्ञायक तो स्वयंके पास है। उनके द्वारा दिये गये मन्त्र अन्दर उत्कीर्ण कर लेना। ज्ञायकके साथ गुरुदेवके मन्त्र उत्कीर्ण हो जाय तो ज्ञायक स्वयं स्वयंके रूपमें परिणमित हो जाय। गुरुदेवने ज्ञायकका ही मन्त्र दिया है।

.. जो मन्त्र दिये हैं, उसे ग्रहण कर लेना। .. प्रवृत्ति छूट जाय और ज्ञाताकी धारा प्रगट हो। ... ज्ञायक स्वभावमें रह तो... उस दिन कहा। अन्दर ज्ञायकको पहचानो, द्रव्य पर दृष्टि करो, अर्थात् उसमें भेदज्ञान करो, स्वकी एकत्वबुद्धि, परसे विभक्त और भेदज्ञान करो। स्वभाव है, उसमें पूरा स्वभाव ज्ञात हो जायगा।

स्वभावभूत क्रिया आता है न? विभावकी क्रिया,... कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति है तबतक विभावकी क्रिया है। यह तो स्वभावभूत क्रिया है। स्वभावभूत क्रियाके साथ आत्माको तादात्म्य सम्बन्ध है। ... वह सम्बन्ध तो मूल है। आत्माकी स्वभावभूत क्रियाके साथ तो ज्ञानका तादात्म्य सम्बन्ध है। उसमें बन्धका अभाव होता है। वह कर्ता, कर्म, क्रियाकी प्रवृत्ति है। विभावके साथ सम्बन्ध है।

क्राधादिमें क्रोधादि परिणमते हैं। उसमें क्रोधादिमेंसे क्रोधादि आते हैं। क्रोध कहकर सब विभाव ले लेना। क्रोधादिमेंसे क्रोधादि पर्याय आती है। उसीका वेदन होता है, वही दिखे। और ज्ञानमें ज्ञानका दर्शन होता है, ज्ञान मालूम पड़ता है, ऐसा शब्द शास्त्रमें आता है। इसमेंसे कोई-कोई शब्द कर्ता-कर्म अधिकारके बोलती हूँ। कोई-कोई गाथा परसे उसका अर्थ आये और कोई शब्द टीकाके आये।

आस्रव है वह दुःखरूप है, आकुलतारूप है, विपरीत है। आत्मा स्वयं सुखका धाम है। आत्माका स्वयंका स्वभाव है। वह तो विपरीत स्वभाव है। वह दुःखके कारण

है। आत्मा सुखका कारण है। ऐसा निश्चय करके, ऐसा जानकर उससे जीव निवर्तन करता है। निवृत्त होता है।

अन्दसे वास्तविक ज्ञान दशा प्रगट हुई कह कहनेमें आये? कि आस्रवकी निवृत्ति हो तो। आस्रवकी निवृत्ति न हो तो उसे ज्ञानदशा प्रगट ही नहीं हुयी। एकत्वबुद्धि टले नहीं तो उसे ज्ञानदशा प्रगट ही नहीं हुयी है। यदि स्वयंकी स्वभावकी प्रवृत्ति हो और विभावकी निवृत्ति हो अर्थात् उसका भेदज्ञान हो, आंशिक निवृत्ति हो, अल्प अस्थिरता रहती है, तो उसे वास्तविक आस्रवोंकी निवृत्ति आयी (और) स्वभावकी प्रवृत्ति हुयी। तो उसे ज्ञानका अंश प्रगट हुआ, ज्ञानदशा प्रगट हुयी।

अज्ञानदशामें तो कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति, एकत्वबुद्धि है उसमें कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति है। स्वभावभूत क्रिया प्रगट हुयी। स्वभावका कर्ता, स्वभावकी क्रिया। वह तो विभावकी क्रिया है। कर्ता और विभावकी क्रिया थी। आचार्य तो इतना गंभीर शब्द रखते हैं..। ... प्रगट होती है। क्षयोपशमज्ञानका जो खण्ड पड़े, उसके जो विशेष हो, उसे भी तोड़कर अखण्ड पर दृष्टि करता है। अखण्ड ज्ञान प्रगट होता है। मैं अखण्ड ज्ञायक ही हूँ। उसमें मति, श्रुतका भेद, क्षयोपशमके विशेष उसमें गौण है। उस पर दृष्टि नहीं रहती।

वह आता है-परपरिणतिको तोड़ देता है, भेदके कथन जिसमें छूट जाते हैं। क्षयोपशमके विशेष, उस परसे दृष्टि छूटकर स्वभावकी ओर जाती है। अखण्ड एक आत्मा प्रचण्ड ज्ञान प्रगट होता है। बलवान, स्वयं पुरुषार्थ करके... उसमें था... आत्मामें प्रचण्ड ज्ञान प्रगट होता है-उदय होता है। परपरिणतिको तोड़ देता है। राग-ओर जो परिणति जाती थी, वह टूट जाती है। स्वभावकी परिणति प्रगट होती है। भेद.. भेद.. भेद.. पर जो दृष्टि जाती थी, वह दृष्टि टूटकर स्वभावकी अनुभूति हुयी। स्वभावकी ओर परिणति दौड गयी। इसलिये उसमें विशेष खण्ड पडते थे, वह खण्ड खण्ड रहा नहीं और अखण्ड ज्ञान प्रगट हुआ।

अभी पूर्ण होनेमें तो देर है। ऐसा ... पहले प्रगट हो, तब उसे सच्चा ज्ञान प्रगट हो। स्वानुभूतियुक्त। उसमें ज्ञानकी परिणति प्रगट हो, अखण्ड उद्योरूप अखण्ड एक प्रचण्ड ज्ञान प्रगट होता है अभेद, जिसमें भेदके कथन भी नहीं है। भेद पर दृष्टि भी नहीं है। ऐसा ज्ञान प्रगट हुआ। उसमें कर्ता, क्रिया, कर्मकी प्रवृत्ति कहाँ खड़ी रहे? स्वभावकी प्रवृत्तिके आगे विभावकी प्रवृत्ति तो कहीं दूर भाग जाती है। विभाव प्रवृत्ति तो अल्प हो जाती है। उसकी एकत्वबुद्धि टूट गयी इसलिये विभावकी प्रवृत्ति भी टूट गयी। उसमें आखीरमें ऐसा कहते हैं। आस्रवसे निवृत्त हो गया। अनन्त गया इसलिये निवृत्त ही हो गया, ऐसा कहते हैं। दृष्टि-सम्यग्दर्शनके हिसाबसे निवृत्त हो गया। अल्प रहता है,

उसे वहाँ समयसारमें गौण कर दिया है। परपरिणति तोड़ दी। अल्प है तो तोड़ दी। जो मूल था, उसका मूल एकत्वबुद्धि टूट गयी तो सब टूट गया। स्वभावकी ओर परिणति दौड़ी जाती है। स्वभावका मूल ग्रहण हुआ तो सब आत्मामेंसे, उसके अनेक जातके अंकूर आत्मामेंसे (प्रगट होते हैं)। अनन्त गुणकी फ़सल उसमेंसे आने लगी। विभावकी फ़सल अल्प हो गया और वह फ़सल होने लगी, चैतन्यकी ओर। चैतन्यमेंसे ग्रहण किया, उसके मूलमें दृष्टि और ज्ञानका सिंचन हुआ तो अब चैतन्यमेंसे सब फ़सल होती है।

चैतन्यकी शुद्ध निर्मल पर्याय, उसके गुणमेंसे सब प्रगट होती है। वह फ़सल शुरू हो गयी। उसमेंसे नयी-नयी फ़सल ऊगती है। वह फ़सल टूट गयी, वह तो अब सूख जायेगी। थोड़े-थोड़े हरे पत्ते रहेंगे तो थोड़े काल बाद सूख जायेंगे। क्योंकि अब उसे पानीका सिंचन नहीं मिल रहा है। उस ओर परिणति टूट गयी, अब अल्प परिणति रही। पहले तो विभावको सिंचन मिलता था। उसकी पर-ओर दृष्टि बलवान थी। इसलिये वह विभावकी ओर एकत्वबुद्धिसे दौड़ता था। उसमें उसका रस और सिंचन करता था। एकत्वबुद्धिका बल था उसका सिंचन करता था। उसका ज्ञान उस ओर जाय, उसकी दृष्टि उस ओर जाय, उसकी परिणति अस्थिरताकी, श्रद्धा उस ओर जाय। इसलिये उसे सब सिंचन मिलता था, इसलिये विभावकी फ़सल ऊगती थी। एकके बाद एक जन्म धारण करे और एकके बाद एक विभाव, अन्दरसे अनेक जातकी विभावकी परिणति प्रगट होती ही रहे, विभावकी ही फ़सल अनन्त कालसे ऊगती थी।

अब दृष्टि बदल गयी। दृष्टि, ज्ञानकी परिणति सब आत्माकी ओर गयी इसलिये सब सिंचन आत्माके मूलमें होने लगा, इसलिये आत्मामेंसे फ़सल ऊगी। अब आत्मामेंसे नयी-नयी फ़सल आत्मामेंसे आने लगी। वह तो आत्मामें सब भरा था। परन्तु वह सिंचन नहीं करता था, इसलिये वह प्रगट नहीं होता था। उसके मूलमें तो सब था ही। स्वभाव सुखधाम, आनन्दधाम आत्मा ज्ञानधाम आत्मा था, परन्तु उस ओर जाता नहीं था, इसलिये उसकी फ़सल नहीं होती थी।

विभावमें तो कुछ नहीं था। तो भी उस ओर जाकर स्वयं दुःखकी फ़सल बोता था। दुःखके पर्वत खड़े करता था, उस ओर दृष्टि करके। इसमें तो अनन्तता भरी है। सुखधाम, आनन्दधाम अनन्त-अनन्त भरा है। इसलिये अनन्त फ़सल आयेगी। क्रम-क्रमसे वह फ़सल ऐसी आयेगी कि उसमेंसे अब सूखेगा ही नहीं। उसमें तो (-विभावमें तो) वह फ़सल ऊगे और पुनः उसमें सिंचन करता ही रहे। ये तो ऐसा फ़सली है कि हरभरी फ़सल रहेगी। उसका सिंचन करता रहे। फिर तो उसे सिंचन भी नहीं करना पड़ेगा। उसकी फ़सल ऐसे ही रहेगी। जो फ़सल ऊगी वह ऊगी, सादिअनन्त (रहेगी)। कहते हैं न, वृक्षको मूलमेंसे पानी मिलता रहे, तो फिर पानी डालना ही नहीं पडे।

ये तो चैतन्य स्वयं शक्तिओंसे भरपूर है। इसलिये उसकी साधना अमुक समय रहती है, फिर साधना पूरी हो जाती है। तो वह तो जो प्रगट हुआ सो हुआ, सादिअनन्त (रहेगा)। जो हराभरा हो गया सो हो गाय, अब सूखनेवाला नहीं है। उसके मूलमेंसे ही उसे सब मिलता रहता है। मूलमेंसे चैतन्य स्वयं उस रूप परिणमित हो गया। हरियाली छा गयी, अब सूखनेवाली नहीं है। अपूर्ण हो तबतक साधना करता रहे। पूर्ण हो गया, फिर सूखेगा नहीं। वह बादमें सूख जायगा। धीरे-धीरे उसका क्षय हो जायगा।

अनन्त काल पर्यंत उसकी फ़सल आती ही रहेगी। सूखेगा नहीं और अनन्त फ़सल आयेगी उसमेंसे। ... फिर नये होते हैं, विभावमें तो ऐसा होता है। अनन्त काल तक, सुखका धाम, सुख ही उसमेंसे प्राप्त होता रहेगा।

.. वहाँ उसे अब इच्छा भी कहाँ रही है। परिपूर्ण हो गया है। (साधनामें तो) सिंचन भी करता है, फिर तो सिंचन भी नहीं करना पड़ेगा। फ़सल ऊगती ही रहेगी। साधनका सिंचन करता है। फ़सल ऊगती ही रहेगी।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१५३

समाधान :- .. चालू रहे। स्वरूप मन्दिर देखने जैसा है। वह सब अलग-अलग भाषामें बहुत आता था। विभावके देशमेंसे अंतरमें जाना है। ... मैं तो स्वरूपमें जा रहा हूँ। कोई विभाव वहाँ तुम्हारी कुछ नहीं चलेगी। उन दिनोंमें ऐसा आता था। निर्णय पूरा है, वांचन उतना, चिंतवन उतना करते हैं, गुरुदेवने कहा बराबर है, उसका चिंतवन भी उतना करते हैं, तो भी क्यों नहीं होता है? जो निर्णय है उस अनुसार कार्य नहीं करता है तो नहीं होता है। क्यों नहीं होता है?

उतना निर्णय है, चिंतवन उतना करते हैं। एकान्तमें ऊपर बैठते हो न। इसलिये ये करते हैं, वह करते हैं, तो भी क्यों नहीं हो रहा है? तो भी उपयोग क्यों बाहर जाता है? उपयोग तो बाहर जाये। उपयोग तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें बदल जाता है। वहाँ स्कूलमें पढ़ने जाता है, यह ज्ञायककी स्कूल अलग प्रकारकी है। बाहर एक, दो आदि, यहाँ अंतरमें जाकर इस स्कूलमें पढ़ने जैसा है। शास्त्र अभ्यास करे वह अलग, परन्तु अंतरमें ज्ञायकका अभ्यास करना वह अलग है।

उसमें सब स्टेज आते हैं। एक, दो, फिर ऊपर, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पाँचवी आदि। उसमें भाषा अलग, अंग्रेजी आदि। इसमें भी ऐसा है। जिज्ञासाकी भूमिका, सम्यग्दर्शनकी, मुनिदशा। उस स्कूलमें पढ़ने जैसा है। तो वास्तवमें पढा कहनेमें आये। जो भी भाई आये, कोई भी आये, कैसे करना? हो नहीं रहा है। अरे..! स्वयंकी क्षति है। नहीं हो रहा है उसका कारण क्या? कारण स्वयंका है। इस स्कूलका अभ्यास कर। लौकिकमें तो एक अंकको बार-बार घोंटता रहता है। वैसे ज्ञायकका घूंटन करता रह न। स्वभावका घूंटन करना नहीं है और विभावको रखना है, विभावको खड़ा रखना है। निज स्वभावका अभ्यास कर।

गुरुदेवने एक अंकका घूंटन करवाया। गुरुदेवने बारंबार उसका अभ्यास करवाया है। गुरुदेवने अभ्यास करवाया, परन्तु अंतरमें स्वयं अभ्यास नहीं करता है। ऊपर-ऊपरसे समझ लेता है। .. आये नहीं तो कितना अभ्यास करता है। इसके अभ्यासमें थक जाता है। उसे कुछ मालूम नहीं पड़ता है कि अन्दर अरूपी भावमें क्या हो रहा है। इतना करते हैं, इतना करते हैं, तो भी कुछ फल नहीं आता है, ऐसा कहते हैं।

इतना निर्णय पूरा है, इतना चिंतवन करते हैं तो भी कुछ नहीं होता है। सूक्ष्म परिणति प्रगट कर तो होता है।

कार्य करता नहीं है। जो जाना है उस रूप परिणतिको पलटता नहीं है, एकत्वबुद्धि तोड़ता नहीं है, कहाँ-से हो? रोज जो भी आये वह ऐसा ही कहता है। स्वयं करे तब ही होनेवाला है। स्वभाव था वह प्रगट हुआ, स्वभावरूप परिणमन प्रगट हुआ। इसलिये स्थिरता बढ गयी है। अन्दर ज्ञायकका अभ्यास कर और उसमेंसे जो फल आये तो तेरी परीक्षा सच्ची होगी। .. अंतरमें जा तो उसमेंसे फल आये वह सच्चा है। उपयोग तो बाहर आ जाय।

गुरुदेव कहते थे न? कि भक्तिमें आता है, आप तो समय-सयमें बदल जाते हों और मैं तो अंतर्मुहूर्तमें बदलता हूँ। भगवानको उलहना देते हैं। भक्तिमें आता है, ऐसा गुरुदेव कहते थे। अभी टेपमें आया था। प्रभु! मेरा मन तो चपल स्वभावी तो अंतर्मुहूर्तमें पलटता है और आप तो स्थिर कहलाते हो और समय-समयमें बदल जाते हो, ऐसा कहते हैं। चैतन्यकी परिणतिमें स्थिर हो गये तो हम तो एक अंतर्मुहूर्त भी टिकते हैं, जो भाव आये उसमें अंतर्मुहूर्त स्थिर रहते हैं और आप तो अंतर्मुहूर्त भी स्थिर नहीं रहते हो, एक समयमें बदल जाते हो। ऐसा उलहना देते हैं।

हमारी परिणति तो चपल और अस्थिर है, वह तो अंतर्मुहूर्तमें बदलती है। आप तो एक समयमें बदल जाते हो। उसका क्या हो? भगवान तो स्थिर है। भगवानने तो स्वभाव प्रगट किया है। वे बदलते नहीं है, एकरूप है। उसकी परिणतिका स्वभाव है, समय-समयमें बदल जाती है। कैसे मेल करना? मैं आपका भक्त। आपके साथ क्या...? भगवान बदलते नहीं है, भगवान तो एकरूप द्रव्यको ग्रहण करके ज्ञानकी परिणति लोकालोक जानती है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव। ध्रुव तो ग्रहण कर लिया, ज्ञायक ग्रहण कर लिया और समय-समयकी परिणति आत्माका स्वभाव है। वह पलटती रही है। और ये तो अज्ञानदशामें उसका क्षयोपशमज्ञान अधूरा ज्ञान है, पूरा नहीं है। वह तो टिकता भी नहीं है। अंतर्मुहूर्तमें भागता है, पूरा स्थिर भी नहीं है। उसकी स्थिरता है ही कहाँ?

भगवान तो स्थिर बिंब आत्मामें हो गये हैं। स्वरूप परिणतिमें लीन हो गये हैं। उसमेंसे स्वभावपर्याय उनको प्रगट हुयी है। समय-समयमें बदलते नहीं है भगवान। एकरूप रहकर व्यय होता है। एकरूप परिणति रहे उसमें उनको पारिणामिकभावकी परिणति बदलती है। बदलते नहीं है, भगवान तीन कालका जानते हैं। एक परिणति आयी तो दूसरी पर्यायको वे चुकते नहीं, भूलते नहीं। इसका तो क्षयोपशमज्ञान है, वह तो भूल जाता है। एक क्षणमें जो जाना हो, वह दूसरी क्षण भूल जाता है। उसका बदलना तो अलग

जातका ही है। क्षयोपशमज्ञान तो धारणाज्ञान है, बदल जाता है। भगवान तो भूलते नहीं है।

तीन कालका ज्ञान है। भगवान भूलते भी नहीं और भगवान बदलते भी नहीं हैं। सेवक बदलता है। भगवानको उलहना देते हैं। तीन काल तीन लोकका सब जानते हैं। भूतकालमें क्या हुआ, वर्तमानमें क्या है, भगवान सब जानते हैं। ये तो कुछ जानता नहीं है। अंतर्मुहूर्त टिके तो भी नहीं टिकनेके बराबर है। पर-ओर टिकता है। भगवान तो स्वरूप परिणमनमें लीन हैं। उसमेंसे स्वभावपर्यायको प्रगट करते हैं। स्वभावमें गहरे ऊतर गये हैं। निर्मलता बढ़ गयी है, इसलिये समय-समयकी पर्याय प्रगट हुई है। इसकी तो स्थूल पर्याय है। इसलिये अंतर्मुहूर्त उपयोग टिकता है। ... भगवान विराजते हैं। भगवानका सूक्ष्म परिणमन हो गया है। वह तो स्थूलतामें है।

सर्वज्ञ स्वभाव ही आत्माका है। गुरुदेवने कहा, सहजात्म स्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु। आत्मा सर्वज्ञ है। प्रगट हो तब प्रगटरूपसे सर्वज्ञ। शक्तिरूप सर्वज्ञ (है)। ज्ञेयोंमें एकत्वबुद्धि करनी नहीं, ज्ञेयकी ओर राग नहीं करना। परन्तु वह सहज ज्ञात हो जाते हैं। ऐसा उसका स्वभाव ही है। सिद्ध भगवानको प्रतिच्छन्दके स्थानमें लिये। सब आत्मा सिद्ध भगवान। स्वयं सिद्ध है। और ऐसे कहे कि भगवान सिद्ध हैं। प्रतिच्छन्दके स्थानमें स्वयं सिद्ध है। आचार्यदेव स्थापना करते हैं कि तू सिद्ध है। तू सिद्ध है।

ध्रुव, अचल और अनुपम गति। गुरुदेवने सबको कह दिया, तू ज्ञायक है, तू सिद्ध है। ज्ञायक और सिद्धका जो मन्त्र दिया है, उस मार्ग पर जाना है। .. सिद्ध है, ज्ञायक है। पूर्ण, परिपूर्णतासे भरा। विभावके कारण न्यूनता दिखती है। शक्तियाँ अनन्त, सब अनन्त, धर्म अनन्त, सब अनन्त।

... बिना जाने खींचातानी। जानता है... स्वयं स्वयंको जानता है। परको नहीं जानता है, वह एक अपेक्षासे, निश्चयसे ऐसा कहनेमें आये कि स्वयंको जानता है। इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि परको जानता नहीं है, ऐसा उसमें नहीं आता है। उसका स्वभाव जाननेका है, वह कहाँ जाय? अनन्त-अनन्ततासे भरा। एक भागको नहीं जानता है तो उसकी परिपूर्णता नहीं होती है। तो ज्ञान अधूरा रहा। ज्ञान परिपूर्ण नहीं होता है। उसकी अनन्त शक्ति है। उसका माप नहीं है। अपार है। एक भाग वह नहीं जानता है तो उसके ज्ञानकी परिपूर्णता नहीं होती है।

परिणति है, पर ओर नहीं जाता है इसलिये ज्ञान ज्ञानको जानता है, ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु ज्ञेयका भाग उसमेंसे निकल गया है और जानता ही नहीं है, ऐसा नहीं है। एक भागको नहीं जानता है तो पूर्ण ज्ञान कैसे कहें? ज्ञान परिपूर्ण सबको जानता है, परन्तु अपनेमें रहकर जानता है। उसमें एकत्वबुद्धि करके जानने नहीं जाता

है। सहज ही ज्ञात होता है। लेकिन ज्ञात होता ही नहीं, ऐसा नहीं है।

परद्रव्यके द्रव्य, गुण, पर्याय, उसकी पूर्व पर्याय, भविष्य पर्याय, वर्तमान पर्याय, अनन्त आत्माके, अनन्त सिद्धोंके, अनन्त नरक, स्वर्गमें उसमें रहे हुए जो-जो जीव हैं, उन सबकी पर्याय, सर्व साधकोंकी, निगोदकी सबकी पर्यायको जाने, सिद्धकी। उसमें सब ज्ञात होता है। उसमें क्या बाकी है? स्वयं स्वयंको जानता है। अपनी अनन्त पर्यायें भविष्यकी, वर्तमानकी अनन्त पर्यायरूप स्वयं परिणमता है। तो भी वह कहे कि, ज्ञानरूप परिणमता है, इसलिये ज्ञान ज्ञानको जानता है, उसे नहीं जानता है। ऐसा कैसे कहें? ज्ञान ज्ञानको जाने वह स्व-ओरकी अपेक्षाकी बात है। इसलिये उसमें पर ज्ञात नहीं होता है, ऐसा उसमें नहीं आता है। परका पूरा भाग उसमेंसे निकल जाता है, (ऐसा नहीं है)।

उसकी परिणति स्वकी ओर है, पर-ओर परिणति नहीं है। इस अपेक्षासे उसे नहीं जानता है, ऐसा कहें। स्वकी परिणतिसे। ज्ञात नहीं होता है अर्थात् उसमें ज्ञात होता ही नहीं, ऐसा नहीं है। .. मुख्य करके कहें कि द्रव्यदृष्टिमें गुणभेद, पर्यायभेद नहीं आते हैं। द्रव्यदृष्टिमें नहीं आते हैं, इसलिये उसमें गुण नहीं है, चैतन्यमें अनन्त गुण नहीं है ऐसा नहीं है। दृष्टिकी अपेक्षासे एसा कहें कि दृष्टिमें गुणके भेद, पर्यायके भेद आत्मामें नहीं है। उसका मतलब उसमें अनन्त गुण है नहीं और पर्यायें नहीं हैं, ऐसा नहीं है। स्वरूप है उसमें, वह ज्ञानमें ज्ञात होता है। वैसे ज्ञानकी परिणति स्वकी ओर मुड़ गयी, उसकी दिशा पलट गयी, परसन्मुखसे अपनी ओर दिशा आ गयी, इसलिये स्वयं स्वयंको जानता है, ऐसा कहनेमें आता है। इसलिये उसमें परज्ञेय ज्ञात ही नहीं होता, ऐसा उसमें नहीं आता है। गुण है ही नहीं, ऐसा नहीं। ज्ञेय उसमें ज्ञात होतेही नहीं, ऐसा नहीं आता है।

ज्ञानका ऐसा स्वभाव है, उसमें ज्ञात होता है। परन्तु उसकी परिणतिकी दिशा स्वकी ओर हो गयी है। दृष्टि गुणके भेद नहीं करती। एक ज्ञायक अभेदको ग्रहण करती है। इसलिये उसमें अनन्त गुण नहीं है, उसका लक्षणभेद, संख्याभेद कुछ नहीं है? उसमें पर्याय नहीं है? पर्याय-परिणतिका स्वभाव नहीं है? सब है। वैसे इसमें, वह परद्रव्य है। परद्रव्य है, लेकिन इसमें ज्ञात ही नहीं होता है, ऐसा नहीं आता है। अपेक्षा समझनी चाहिये। उसकी अपेक्षा तो बराबर समझमें आये ऐसी है। एक ही बातको खींँचता रहे तो उसमें खींँचातानी हो जाय।

.. दृष्टि प्रगट कर। पूरी दिशा इस ओर हो जाय, पूरी दिशा बदल जाय। विभावदशामेंसे स्वभावदशा हो जाय। पूरा पलटा, जात्यांतर हो गया। कहाँ विभाव, कहाँ आकुलता और कहाँ शान्ति और कहाँ ज्ञानधारा, सब अलग हो जाता है। जगतसे अलग हो

जाता है। अनादि कालसे... स्वयंका है, ... तो स्वयं अपनी ओर कर्तापना अपनेमें, कर्म अपना, क्रिया अपनी वह नहीं करता है, और बाहरमें मानों मैं दूसरेका कर सकता हूँ। मैं दूसरेका सब कर सकता हूँ। दूसरेका सब कर सकता हूँ। कर नहीं सकता है और सकता हूँ ऐसा मानता है। स्वयं स्वयंका कर सकता है, परन्तु पूरा ऊलटा (हो गया है)। जूठी मान्यता, भ्रम बुद्धि हो गयी है।

बहुभाग तो क्रियामें रुकता है। कुछ धर्म करने जाय और क्रियामें (अटके)। उससे आगे जाय तो शुभभावमें अटकता है। परन्तु अंतरमें आना जीवको अत्यंत दुर्लभ हो जाता है। और कुछ रुचि हो तो पुरुषार्थ करना कठिन पड़ता है। ऐसा है। अभ्यास करता रहे। ऐसे करते-करते उसे अंतरमेंसे ज्ञाताधाराका कोई उग्र वेग आये तो पलटे। उग्रताके बिना होता नहीं। मन्द-मन्द पुरुषार्थसे (नहीं होता)। ज़ोर करने जाय तो भी नहीं हो सकता। वह तो स्वयं अंतरसे पलटे तो हो ऐसा है। क्यों नहीं होता है? ऐसे हठ करने जाय तो भी हो सके ऐसा नहीं है। उपवास करना हो तो भोजन छोड़ दे। यह ऐसा नहीं है।

कहीं चैन पड़े नहीं, तब स्वयंको खोजे न। चैन कहीं और पड़ता है, अतः स्वयंको खोजता नहीं। विचार कर-करके छोड़ देता है। आत्माका करना है। ऐसा विचार, विकल्प करके छोड़ देता है। छोड़ देता है, जैसा था वैसा करने लगता है। आत्माका करना है, ऐसा विचार आकर, भावना आकर छूट जाता है। अन्दर भावना रहा करे, परन्तु कहीं और चैन पड़ जाता है, अनादिका अभ्यास है इसलिये। उसीका आश्रय ले लेता है।

वह कहते हैं न? किसके आश्रयसे मुनिपना पालेंगे? शास्त्रमें आता है। आत्माके आश्रयसे पालते हैं। उसे स्वयंको स्वयंका आश्रय है, अन्यका आश्रय नहीं है। ऐसे स्वयं स्वयंका आश्रय लेना अन्दरमें सीखे। निराश्रय हो गये, अब कहाँ जायेंगे? आप शुभभाव, पंच महाव्रत सबके आश्रयकी ना कहो तो मुनिओंको शरण किसका? पंच महाव्रत आदि सबको आपने शुभभाव कहा। मुनि किसके आश्रयसे मुनिपना पालेंगे? मुनिने ये सब व्रत धारण किये हैं। तो कहते हैं, स्वयं स्वयंके आश्रयसे (हैं)। मुनि अशरण नहीं है। स्वयं स्वयंमें निरत रहते हैं। स्वयं स्वयं, चैतन्य चैतन्यका आश्रय लेता है।

आचार्यदेव कहते हैं, एक बार तू भिन्न होकर देख तो सही। उसका कौतूहली होकर अंतर्मुहूर्त भी अंतरमें देख तो सही। आत्माका आश्रय लेनेमें, दूसरा आश्रय छोड़नेमें ही उसे ऐसा हो जाता है कि निराश्रय हो जाऊँगा, किसके आश्रयमें जाऊँ? अपना आश्रय लेनेमें भी उसे दिक्कत होती है। स्वयं स्वयंके आश्रये मुनिपना (पालते हैं)। मुनि किसके आश्रयसे मुनिपना पालेंगे? शुभभाव तो बीचमें आते हैं। आश्रय किसका? मुनिपना

तो लिया। तो उन्हें पंच महाव्रत है, उसका आश्रय है। उसका आश्रय वह नहीं है, उनका आत्मा शुद्धात्मा है। इसलिये स्वानुभूतिके आश्रयसे स्वयं मुनिपना पालते हैं। क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें स्वानुभूतिमें लीन होते हैं। वह उनका आश्रय है। बस, अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूतिमें ही मुनि लीन होते हैं। वह उनका आश्रय है। उसमें लीन होते-होते उन्हें वीतरागदशा प्रगट होती है।

उनकी परिणति इतनी स्वरूपकी ओर चल गयी है, विभावसे इतनी हठ गयी है, विभावसे इतनी विरक्ति आ गयी है कि स्वयं स्वयंमें ही समा जाते हैं। ऐसी विरक्ति आयी है इसलिये तो मुनिपना अंगीकार किया है। गृहस्थाश्रममें रह नहीं सके ऐसी दशा आ गयी इसलिये मुनिपना अंगीकार कर लिया। स्वयं स्वयंमें ही लीन होते हैं, अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें।

.. ऐसा हो जाता है कि अब गृहस्थाश्रममें रह नहीं सकूँगा। इतनी लीनतामें परिणति वर्धमान हो जाती है कि रह नहीं सकूँगा। अभी प्रमत्त-अप्रमत्त दशा साक्षात्रूपसे नहीं आती है, परन्तु उसकी भावनाकी परिणति ऐसी हो जाती है कि स्वयं बाहर विकल्पमें ज्यादा रह नहीं सकता है, ऐसा उसे हो जाता है। इसलिये मुनिपना अंगीकार करता है। फिर छठ्ठा-सातवाँ गुणस्थान तो मुनिपना अंगीकार करता है, तब आता है साक्षात्रूपसे। परन्तु उसकी भावनारूपसे विरक्तिकी परिणति ऐसी हो जाती है। शास्त्र लिखे, सब लिखे तो भी क्षण-क्षणमें अंतरमें चले जाते हैं। क्षण-क्षणमें अंतरमें चले जाते हैं।

(सम्यग्दृष्टि, श्रावक) निराले हो गये हैं। स्वानुभूतिमें उसकी दशा अनुसार जाते हैं। परन्तु मुनि तो क्षण-क्षणमें जाते हैं। ऐसा करते-करते आत्मामें जो पूर्ण ज्ञान है, वह प्रगट होता है। आत्माकी अनन्त शक्तियाँ प्रगट होती है। भगवान अपने पास है। स्वयं ही है चैतन्य भगवान। एकत्वबुद्धि और भेदज्ञानकी धारा, बस, वही उसका मार्ग है। एकत्वबुद्धि अपनेमें, परसे विभक्त-भेदज्ञानकी धारा। स्वमें अभेद दृष्टि है और परसे भेदज्ञान। वह उसका मार्ग क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें सहज धारा बढते-बढते स्वानुभूतिको प्रगट करके फिर पहुँचता है। दृष्टिमें गुणका भेद नहीं आता, परन्तु ज्ञानमें गुणभेद, पर्यायभेद सब जानता है। वस्तुका स्वरूप ज्ञान (जानता है)। परिणति दृष्टिके बलसे आगे जाती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१५४

समाधान :- ... अन्दरसे जल्दी मिल जाय तो। कितनी बार समयसार पढा, सभाके बीच। सब शास्त्र, बहुत शास्त्र सभामें पढे। कितने साल।

मुमुक्षु :- समयसार देखो न, १९ बार।

समाधान :- प्रचार गुरुदेवसे ही हुआ है। इतने सालमें गुरुदेव जितना अध्यात्म (प्रसिद्ध नहीं हुआ)। एक-एक पंक्तिके अर्थ करना। स्वयं ही एकदम उल्लास एवं आनन्दसे पढ़ते थे न। उनको स्वयंको आश्चर्य लगता था। अतः सब श्रोता उसमें रंग जाते थे। उनको स्वयंको ऐसा लगता था कि अमृत बरसा!

.. क्या बोलना और क्या नहीं बोलना, ऐसा होता है। ऐसा सद्भाग्य मिला कि गुरुदेव यहाँ पधारे, कितने जीवोंको लाभ मिला। यह महाभाग्यकी बात है। गुरुदेवने सबको आत्म-भगवान दिखाया कि आत्मा भगवान है। नहीं आत्मा भगवान, कौन पहचानता था? आत्मा भगवान है तू। कर्ताबुद्धि छोड़, ज्ञाताको प्रगट कर। शास्त्रमें तो आता है, परन्तु उसे सूलझाया किसने? तू परको कर नहीं सकता, पर तेरा नहीं कर सकता। तू ज्ञायक-ज्ञाता है, ये सब शास्त्रमें आता है। उसे किसने सुलझाया? गुरुदेवने सब सुलझाया।

सबकी स्थूल बाह्य दृष्टि थी। अंतर दृष्टि करनेका गुरुदेवने कहा। सच्चा मुनिपना बताया, भगवानका स्वरूप बताया, सम्यग्दर्शनका बताया, पूरा मुक्तिका मार्ग बताया। मुनिपना कौन समझता था? केवलज्ञान अंतरमें भगवानको प्रगट होता है और भगवान वीतराग दशारूप आत्मामें (परिणमित हुए)। भगवानका स्वरूप कौन पहचानता था? सब ऐसा मानते थे कि सिद्ध हो उन्हें जन्म नहीं है, मरण नहीं है। सिद्ध शिलामें विराजते थे। ऐसा सब स्थूल समझते थे।

... सब आत्मा समान हैं। आत्मा द्रव्यसे सब समान हैं, पर्यायमें भेद है। उपादानसे सब होता है, निमित्तसे होता नहीं। निमित्त बीचमें होता है। ये सब गुरुदेवने स्पष्ट किया। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। कोई किसीका कर नहीं सकता। गुारुदेवने स्वतंत्रता बतायी। .. मार्ग बताया। तू आत्मा है, तू आत्माको देख।

... बहुत अभ्यास करवाया है। अंतरका अभ्यास बाकी रह गया है। देव-गुरु-

शास्त्रका तू जैसे स्मरण करता है, उन्हें हृदयमें (रखता है), वैसे ज्ञायकको तू हृदयमें रखना। उसका सान्निध्य तो रखना। उसका अंतरमें अभ्यास हो तो ज्यादा अच्छी बात है। उसे हृदयमें तो रखना। देव-गुरु-शास्त्रकी जैसे महिमा रखता है, वैसे ज्ञायकको तू हृदयमें रखना। तो होता है। शास्त्र मेरे (हृदयमें है), वैसे ज्ञायक भी मेरे हृदयमें आओ। अंतरमें तो अभी (दूसरी बात है), ये तो धोखनेरूप है।

जिनेन्द्र देव भगवान.. गुरु कहते हैं न? तेरा आत्मा भी भगवान है। देव-गुरु-शास्त्र भगवान, वैसे ज्ञायक भी भगवान है। स्वयं भगवान है। चतुर्थ काल हमेशा होता है, इस भरतक्षेत्रमें ही ऐसा होता है। पंचमकाल आता है। वहाँ हमेशा तीर्थंकर एवं मुनि आदि विचरते हैं। इस पंचमकालमें ही ऐसा होता है, इस भरतक्षेत्रमें।

.. अनेक नयोंके पहलूसे जानना है। नयपक्ष पहले आता है, लेकिन फिर छूट जाता है। आत्मा बद्ध है और आत्मा अबद्ध है, आत्मा एक है और आत्मा अनेक है, वह सब विकल्प आते हैं। स्वभावसे एक है और गुणसे अनेक है। जाननेमें नयपक्ष (आता है)। लेकिन फिर अतिक्रांत हो जाता है। दृष्टि एक भी नयपक्षका स्वीकार नहीं करती। वह तो अभेद है। लेकिन विकल्प छूटे तब सब नयपक्ष छूट जाते हैं। तू तुझे पहचान। .. इतना स्पष्ट कर-करके गुरुदेवने मार्ग स्पष्ट कर दिया है।

... हर जगह आत्मा ही मुख्य है। प्रशस्त कार्योंमें ... चलता ही रहता है। सबमें आत्मा। आत्माका आश्रय। सब प्रशस्त कार्योंमें आत्मा ... संयममें, नियममें मेरा आत्मा। आत्मामें ही बसना है। मेरा आत्मा ही समीप है। ... आश्रय ले तो ऐसा हो जाय कि कैसे आश्रय लूँ? यह आश्रय छूटता नहीं और वह आश्रय होता नहीं। अनादिसे विभावका आश्रय हो गया है। आत्माका आश्रय लेना उसे अत्यंत दुष्कर हो गया है। स्वयं स्वयंसे दूर हो गया हो, ऐसा उसे भ्रम हो गया है। स्वयं होने पर भी।

.. आत्मा समयसार.. आत्मा ही उसका प्रयोजन है। आत्माको साधे। .. स्वरूप आत्मा, ज्ञायकभावरूप आत्मा। संयम, तप, नियम सब आत्मा स्वयं ही है। आत्मा स्वभावरूप है। शुभ विकल्प आये वह अलग, वह तो पुण्यबन्धका कारण है। ... खोज लेना, कहींसे भी आत्माको खोज लेना। .. आत्मार्थी हो वह आत्माका प्रयोजन साधे। आत्माको खोज ले। आत्माका प्रयोजन और आत्मवस्तुको खोजे। वह उसका कार्य है।

प्रथम भूमिका विकट होती है। .. प्रसंगोंमें जो लाभ मिला, वह सब भाग्यशाली है। ऐसे गुरुदेव मिले और उनका इतना सान्निध्य, वाणी एवं ये सब मिला। इस पंचमकालमें ये सब मिलना बहुत मुश्किल था। महाभाग्यकी बात है कि गरुदेव पधारे। ... प्रतापसे सबको मिले। सबको मिले हैं। उनका जितना करें उतना कम है। उनकी जितनी सेवा करें और जितना लाभ मिले, सब कम है। उसमें आता है, 'अर्पणता पूरी नव अमने

आवडे, ...' चाहे जितना किया, लेकिन सब कम ही है।

समाधान :- ज्ञायक सो ज्ञायक है, आता है न। प्रमत्त भी नहीं और अप्रमत्त भी नहीं है। उसमें क्या पूछना है, कि आत्मा ज्ञायक ही है?

मुमुक्षु :- किसी भी अवस्थाके बिना ... एकरूप है, ऐसा बताना है?

समाधान :- कोई भी अवस्थामें ज्ञायक सो ज्ञायक ही है। साधक अवस्थाकी कोई भी पर्याय हो, प्रमत्त दशा या अप्रमत्त दशा, आचार्यदेव कहते हैं, छठ्ठवे-सातवें गुणस्थानमें मुनिराज कहते हैं। छठ्ठवा-सातवाँ गुणस्थान, अप्रमत्त अवस्था या प्रमत्त अवस्था, कोई भी दशामें आत्मा तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही है। जो आत्मा अनादिअनन्त जो ज्ञायक, ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ वह तो ज्ञायक ही है। दोनों दशामें ज्ञायक है। उसे अप्रमत्त दशा, साधक दशाकी वृद्धि हो, अप्रमत्त दशा हो या प्रमत्त दशा हो, अवस्था कोई भी बढ़ती जाय, तो भी उसमें ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।

मुमुक्षु :- शुभभावमें थकान लगे तो अन्दर जाना हो सकता है। शुभभावमें भी थकान लगे। आचार्य भगवान कहते हैं, 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि ही श्रुता', इसमें कैसे (मेल है)?

समाधान :- आचार्यदेवकी वह अपेक्षा अलग है और वह अपेक्षा अलग है। 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि ही श्रुता' अर्थात् उतनी प्रीतिसे बात भी सुनी है अर्थात् जिसे उतनी अंतरमें रुचि है, आत्माकी ओर इतनी प्रीति है कि मुझे आत्मा कैसे समझमें आये? इसलिये उसे आत्मा भी अपूर्व लगे। ये आत्मा कैसा अपूर्व होगा! ऐसी आत्माकी ओरकी रुचि प्रगट हो तो उस ओर उसकी परिणति जाती है। यथार्थ रुचिरूप कारण प्रगट हो तो कार्य होता है। ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। यथार्थ कारण हो, यथार्थ प्रीति हो अंतरसे, सुननेकी प्रीति ऐसी अंतरसे लगे कि अन्दर आत्माकी ओर चला जाय, ऐसी प्रीति लगे।

इसलिये उसे यथार्थ रुचि हो तो यथार्थ कार्य आता है। परन्तु जो शुभभावमें अटका है कि शुभभावसे मुझे धर्म होता है, शुभके साथ जिसकी एकत्वबुद्धि है तो आत्मा तो शुद्धात्मा तो शुद्धात्म स्वरूप ही है। शुभभाव उसका स्वभाव नहीं है। इसलिये शुभभावमें यदि एकत्वबुद्धि हो जाय तो वह आगे नहीं चल सकता। और शुभाशुभ दोनों भावोंमें उसे थकान लगनी चाहिये, उसे आकुलता लगनी चाहिये, दुःख लगना चाहिये। क्योंकि वह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसी उसे यथार्थ प्रतीत हो, ऐसा उसे अन्दरसे दुःख लगे, थकान लगे तो ही वह आगे जाता है।

परन्तु बीचमें यह रुचि आये, उस रुचिमें वह शुभभावमें ग्रहण नहीं करता है, परन्तु आत्माकी अपूर्वताको ग्रहण करता है। शुभभाव तो बीचमें आते हैं। जब तक

केवलज्ञान नहीं होता, तब तक उसे बीचमें शुभभाव (आते हैं), जब तक उसकी वह दशा है तब तक आते हैं। मुनिओंको भी शुभभाव तो आते हैं, परन्तु हेयबुद्धिसे आते हैं कि वह अपना स्वभाव नहीं है। इसलिये उससे भेदज्ञान-भिन्न-न्यारे रहते हैं। सम्यग्दृष्टि भी उससे न्यारा रहता है। उसका भेदज्ञान वर्तता है कि शुभभाव अपना स्वभाव नही है। ऐसी प्रतीत न हो तब तक आगे नहीं बढता। उसमें थकान नहीं लगे तो आगे नहीं बढता।

परन्तु 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन' अर्थात् तू शुभभाव कर, ऐसा अर्थ नहीं है। उसे अपूर्वता लगती है। उस बातकी अपूर्वताके साथ आत्मवस्तुकी अपूर्वता लगती है। अर्थात् अपूर्वता लगनेसे वह स्वयंकी ओर जाता है। शुभभावसे वह आगे बढता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। परन्तु उसे अपूर्वता (लगती है)। शुभभाव तो साथ-साथ आते हैं, परन्तु वह आदरणीय नहीं है, लेकिन उसे शुभभाव साथमें आते हैं। परन्तु उसकी परिणति तो अपूर्वताकी ओर जाती है। ऐसी अपूर्वता लगती है इसलिये आगे जाता है। अंतरसे ऐसी यथार्थ रुचि जागृत होती है। शुभभावसे आगे बढ़ा ऐसा उसका अर्थ नहीं है, अपूर्वतासे आगे जाता है।

(शुभभाव) बहुत बार किये, लेकिन उसमें सर्वस्व मान लिया, इसलिये वहाँ रुक गया है। आचार्य ऐसा कहते हैं कि शुभभाव तेरा स्वभाव नहीं है। लेकिन तेरा आत्मा कोई अपूर्व है, उसे पहिचान। अतः अपूर्वता लगे तो आगे बढता है। ऊँची दशा प्रगट हो, अपूर्वकरण आये कि केवलज्ञान (प्रगट हो), कोई भी ऊँची-ऊँची दशा प्रगट हो तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। वह सब पर्यायें, शुद्धिकी पर्यायें प्रगट होती है। इसलिये ज्ञायक अनादिअनन्त है, उस पर दृष्टि कर। कहनेका तात्पर्य यह है। ज्ञायक ज्ञायकरूप ही रहता है। ज्ञायककी दृष्टिकी डोर ज्ञायककी ओर ही है, तो उसमें शुद्धिकी पर्यायें प्रगट होती जाती है। (शुद्धि) बढ़ती जाय तो भी उसकी दृष्टि तो ज्ञायक पर ही है।

मुमुक्षु :- शुद्धभाव अधिकारमें भी वही बात कही है? कि जिवादि सात तत्त्व हेय है, आत्मा ग्राह्य है?

समाधान :- सब भाव हेय हैं, एक आत्मा ग्राह्य है। बाकी सब भाव-क्षयोपशमभाव, उपशमभाव, उदयभाव, क्षायिकभाव। एक पारिणामिकभाव ही ग्रहण करने योग्य है। बाकी सब हेय है। बीचमें आते हैं। उपशमभावकी पर्याय प्रगट होती है, क्षायिकभाव तो आत्माकी शुद्ध निर्मल पर्याय प्रगट होती है, क्षयोपशमभाव अधूरी पर्याय है, सब पर्याय पर दृष्टि करके अनादिअनन्त पारिणामिकभाव है, उसे ग्रहण करे। आत्माको ग्रहता है। पारिणामिकभाव अर्थात् पूरा आत्मा, अखण्ड आत्मा अनादिअनन्त है उसे ग्रहण कर। वह सब भाव तो बीचमें पर्यायें हैं।

अनादिअनन्त जो आत्मा है, उसे ग्रहण कर। वह सब तो प्रगट होती है। उपशमभाव, क्षायिकभावको ग्रहण नहीं करके एक पारिणामिकभावको ग्रहण कर। तो तत्त्वका मूल असली स्वरूप उसने ग्रहण किया है। वह तो ऊपरका है, असल स्वरूप नहीं है, वह तो प्रगट होता है। अनादिअनन्त स्वरूप पारिणामिकभाव है, उसे ग्रहण करना। उसे ग्रहण करनेसे उसका मूल चैतन्यतत्त्वका असली मूल उसने ग्रहण किया। असली स्वभाव ग्रहण किया। असली स्वभाव ग्रहण करे तो उसमेंसे निर्मलता प्रगट होती है। असली स्वभाव यदि ग्रहण न करे तो उसमेंसे निर्मलता प्रगट नहीं होती। (नियमसारमें) पारिणामिकभावको बहुत ही गाया है।

मुमुक्षु :- .. ३२० गाथामें कहा है।

समाधान :- परमपारिणामिक? अनादिअनन्त परमपारिणामिक कहनेमें आता है। .. अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। निरपेक्ष भाव है, अनादिअनन्त। उपशमभाव, कर्मके क्षयकी अपेक्षा, उपशमकी अपेक्षा, उपशमभावकी या कर्मके क्षयकी और उदयकी अपेक्षा, कोई अपेक्षा नहीं है। जो निरपेक्ष भाव है, अनादिअनन्त है, वह परमपारिणामिकभाव है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१५५

समाधान :- गुरुदेवका अभी हमलोग चित्र करके कहते थे कि, यह भव, उसके बाद यह भव, यह भव। इस भवमेंसे वह स्वर्गका भव देखते हैं। वहाँ अटकते थे, उसके बदले दूसरा हो गया। काल क्या काम करता है। काल तो ऐसे ही चला जाता है, चला ही जाता है। उसमें आत्माकी ओर परिणति हो, वह अपने हाथमें रहता है। बाकी काल चला जाता है। कितने बरसोंके बरसों चले ही जाते हैं। उसमें जितनी स्वरूपकी साधना है, वह अपनेमें रहती है। बाकी पूरा काल ऐसे ही चला जा रहा है। पूर्वभवका स्मरण करते-करते इस भवका स्मरण हो गया।

जीवन इसमें गुँथा था, वैसा उसमें गुँथ लेना। तो आत्मा अन्दरसे जवाब दे, स्वभाव जवाब दे। स्वभाव स्वभावरूप परिणमे। जीवनको उसमें गुँथ लेना चाहिये। ऐसा तो कुछ होता नहीं। फिर कैसे करना, कैसे करना? (पूछते हैं)। कारण कम हो तो कार् कहाँसे हो? किसीको अंतर्मुहूर्तमें होता है, वह दृष्टान्त नहीं लिया जाता। बहुभाग तो पुरुषार्थ करके अभ्यास करते-करते होता है।

मुमुक्षु :- ऐसा सुनते हैं तो उस अनुसार होता नहीं है, तो फिर अन्दरकी तो बात ही कहाँ रही?

समाधान :- शुभभाव तक जीव पहुँचता है। देव, गुरु, शास्त्र इत्यादि। अंतरमें उसे ... चाहिये। ... दूसरा अभ्यास है। उसके सामने इतना इसका अभ्यास चाहिये, वह तो करता नहीं। जितना बल इसका हो, उतना बल तो सामने स्वयंका होना चाहिये न। उतना अनादिका अभ्यास है। स्वयं बलवान (हो), स्वयंका स्वभाव है। वह उसे रोकता नहीं है। राजा आये तो राजाके ऊपर किसीने हमला किया हो तो जितना शत्रु बलवान हो, उतना स्वयंको तैयार तो रहना चाहिये न। उसे जीतनेके लिये। ऐसी तैयारी तो है न। उसी अभ्यासमें, अनादिके अभ्यासमें खींचा जाता है। स्वयंकी इतनी तैयारी (होनी चाहिये)।

सामनेवाला तैयार हो तो उसके सामने, मैं स्वयं भिन्न हूँ, इतनी स्वयंकी तैयारी तो होनी चाहिये न। वह तो क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें विभाव तो तैयार ही होता है। स्वयं तो उतना तैयारी होता नहीं। कितना काल निकल जाय उसके बाद उसे याद

SIDDH Dasha Mein Sab AHAM(SWAYAM) INDRA(Bhagwan Rup Parinamte) hai.

करे। ... अनादिका अभ्यास ... अपने प्रमादसे अटका है। स्वयं स्वयंका स्वभाव पहचाने तो स्वयं ही है। वह कहते हैं न कि, देवलोकमें सब अहमिन्द्र हैं। ऐसे स्वयं अहमिन्द्र है। सिद्धशिलामें सब सिद्ध भगवान अहं-स्वयं स्वयंमें परिणमते हैं। स्वयं। वह तो क्षेत्र है। सब स्वयं अपनेमें परिणमते हैं। स्वयं चैतन्य है, मैं ज्ञायक हूँ, मैं चैतन्य हूँ। सत्तासे सब एकसमान भगवान आत्मा ही हैं। व्यक्ति हो तब व्यक्तिमें सब समान होते हैं। केवलज्ञान प्रगट करे तब। अपना चैतन्यनगर देखनेकी, आनन्दनगर (देखनेकी) अपनी तैयारी स्वयंको करनी चाहिये। स्वयं तैयारी करे तो उसमें कोई शत्रु प्रवेश नहीं कर सकता। सब भगवान आत्मा है।

फिर सब टेढेमेढे प्रश्न पूछते रहे। ... वीतराग ही है। समयसारमें आता है उसे गिनना ही नहीं। उसकी क्या गिनती है? अल्पकी। शास्त्र कहता है कि जो मुख्य हो ज्ञायक, उसे ही गिनना। वह तो गौण है, उसे नहीं गिनना। वीतरागी परिणति प्रगट हुयी वह वीतराग ही है। ... जो देखे वह उसकी क्षति है। उनका गुरुपद है उस दृष्टिसे देखना चाहिये। .. हो उसे गुरुकी कृपा हुए बिना नहीं रहती और वह आगे बढे बिना रहे नहीं। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। जो नहीं हो रहा है उसमें स्वयंकी क्षति है। उसमें गुरुका कोई कारण नहीं है। गुरुकी वाणी एकरूप बरसती है। एकरूप वाणी बरसे, अपूर्व वाणी, उसमें कौन कैसे ग्रहण करे वह अपने उपादानका कारण है, उसमें गुरुका कोई कारण नहीं है। स्वयंकी पात्रताकी क्षति है। जो तैयार हो उस पर गुरुकी कृपा होती ही है। वाणी तो एकसमान बरसती थी। उसमें जिसका उपादान तैयार हो वह ग्रहण करता है। जो तैयार हो उस पर गुरुदेवकी कृपा होती ही है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ही है।

.. रह सकूँ ऐसा था ही नहीं। इतने साल निकल गये, इतने साल निकल गये ऐसा होता था। चार-पाँच साल रह सकूँ ऐसा तो था ही कहाँ। इतने साल हो गये, १८ साल हुए, २० साल हो जायेंगे, यह होगा ऐसा विकल्प आता था, उसमें पाँच साल तो कहाँ रह सकू ऐसा था? एकसमान उग्रता ... विचार करनेमें साल, डेढ साल निकल गया। वह उग्रताकी अपेक्षासे। इतने साल हो गये, बाकीके जानेमें कहाँ देर लगेगी? अभी क्यों कँपकँपी होती नहीं? अभी क्यों अन्दर काँपता नहीं है? ऐसा सब आता था, उसमें पाँच साल कहाँ निकलनेवाले थे?

ऐसे विकल्पमें जीव अटकता नहीं। पक्षातिक्रांत निर्विकल्प स्वरूप, आत्माकी ओर जिसकी परिणति गयी, उसकी वाणी दूसरोंको चैतन्यकी ओर ले जानेवाली होती है। अन्दरसे जो बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ, ऐसे रागके विकल्पमें जो नहीं है, उसे वीतरागी परिणति हुयी, उसे राग है ऐसा कहना वह तो एक प्रकारका अस्थिरताकी ओर पक्ष

लेना वह तो बिलकूल निरर्थक है। उसकी वाणी, निराली परिणतिमेंसे जो उपदेश निकलता है, वह दूसरोंको हितरूप ही होता है। उसका प्रत्येक कार्य दूसरोंको हितरूप होते हैं।

कहते हैं न? सत्पुरुषकी वाणी दूसरोंको हितरूप ही होती है। उसके सर्व कार्य दूसरेको हितरूप होते हैं। क्योंकि वह स्वयं भिन्न परिणतिरूप परिणमे हैं इसलिये। ... उसके सर्व कार्य दूसरोंको हितरूप होते हैं। इसलिये कहते हैं न? सत्पुरुषके प्रत्येक कार्य दूसरोंको हितरूप होते हैं। उसके योग्य ही होते हैं। सत् स्वरूपरूप परिणमित हुआ आत्मा, उसके सर्व कार्य, जिसने सत् ग्रहण किया उसके सर्व कार्य योग्य और सत्रूप ही होते हैं। ग्रहण करने योग्य और आदर करने योग्य ऐसा आत्मा जिसने ग्रहण किया, आदरने योग्य आत्मा जिसने ग्रहण किया उसके सर्व कार्य ऐसे ही होते हैं। अंतरमें जिसकी परिणति ऐसी है, उसका बाहरमें सब योग्य ही होता है। छोड़नेयोग्य सब छूट गया। उसके सब कार्य ऐसे योग्य ही होते हैं। मुख्य ज्ञाता पर दृष्टि। मुख्यको ग्रहण करना, गौणताको ग्रहण नहीं करना।

.... आचार्यों और मुनिओंकी तो क्या बात करनी? लेकिन यह मुक्तिका एक अंश जो प्रगट हुआ, वहाँ भी ऐसा ही होता है। उसमें भी गुरुदेवका जीवन तो कैसा था। पहले तो गुरुदेव संप्रदायमें थे (उस वक्त) कोई सेठ आये या राजा आये, किसीके सामने भी नहीं देखते थे। सामने यानी उनका प्रवचन चलता हो उसमें वह ऐसा कहे कि आप थोड़ा देरसे शुरू करिये। वे तो उनके समय पर ही, राजा आये तो भी क्या और कोई भी आये तो भी क्या। गुरुदेव पहलेसे ही ऐसे निस्पृह थे। और उनकी वह निस्पृह आखिर तक चलती रही। बाहरमें भले दिखाई न दे। बाहरमें दूसरेने पहलेका कुछ नहीं देखा हो न इसलिये। परन्तु ऐसा ही था। जीवन भी ऐसा ही था। देव-गुरु-शास्त्रको सान्निध्यमें रखकर टहेल मारनी।

... स्वभावपर्याय प्रगट होती है। उसमें जिज्ञासुको तो पुरुषार्थ पर लक्ष्य जाना चाहिये। क्योंकि पुरुषार्थ करना उसके हाथकी बात है। उसको खटक रहनी चाहिये। पुरुषार्थकी ओर उसका लक्ष्य जाना चाहिये। क्रमबद्ध आदिको वह गौण कर देता है। बाह्य कार्योंमें क्रमबद्ध बराबर है, परन्तु अंतरमें स्वयं स्वभावकी ओर मुड़नेमें क्रमबद्ध उसके ख्यालमें हो तो उसे खटक रहा करे कि मैं पुरुषार्थ कैसे करुँ? कैसे आगे बढ़ूँ? अपनी ओर आता है।

गुरुदेव तो ऐसा ही कहते थे, बीचकी कोई बात ही नहीं। जो स्वभावको समझा और ज्ञायक हुआ उसे ही क्रमबद्ध है। दूसरोंको क्रमबद्ध है ही नहीं। बीचमें जिज्ञासा आदिकी कोई बात ही नहीं। जो स्वभाव प्रगट हुआ और ज्ञायककी ओर गया, उसे ही क्रमबद्ध (है)।

मुमुक्षु :- जी हाँ, वही शैली थी।

समाधान :- वही शैली।

मुमुक्षु :- स्वभाव परिणति ही ली है।

समाधान :- स्वभाव परिणति प्रगट हुयी तो क्रमबद्ध। नहीं तो तून क्रमबद्ध जाना ही नहीं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी शैली ऐसी ही आयी है।

समाधान :- जिज्ञासुकी बीचकी कोई बात ही नहीं। दो भाग।

मुमुक्षु :- आपने तो बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया, जिज्ञासाका। आपके वचनामृतमें भी बहुत बात जिज्ञासुकी स्वभाव परिणतिसे ही प्रवचनमें आयी है, बहुत बातें। भावना आदिकी बात है तो ज्ञानीकी भावना, ऐसे आयी है।

समाधान :- वे विभाग कर देते थे। बीचमें यहाँसे यहाँ, यहाँसे वहाँ प्रश्नोत्तर, वह बात ही नहीं। दो विभाग कर देते थे।

मुमुक्षु :- शुद्ध परिणतिका क्रम शुरू होता है, वही बात लेते थे।

समाधान :- बस, वही बात। यहाँ सब जिज्ञासाके प्रश्न करे इसलिये जिज्ञासुकी बात बीचमें (करते हैं)। ऐसा होता है। आचार्य, गुरुदेव सब शास्त्रमें समयसारमें दो भाग-एक पुद्गल और एक आत्मा। बस। रागको यहाँ डाल दिया, स्वभावको इसमें डाल दिया।

मुमुक्षु :- रागको जड़में और पुद्गलमें डाल देते थे। वहाँ तक कि उसके षट्कारक उसकी पर्यायमें। पर्यायके षट्कारक। आत्मा शुद्ध है। ... वह क्या आता है? पर्यायके षट्कारक पर्यायमें? ऐसे तो वस्तुको छः कारकोंकी शक्ति है। उस प्रकारसे तो पूरा वस्तु दर्शन बराबर है। उसके छः गुण हैं, छः शक्ति है।

समाधान :- दो द्रव्य स्वतंत्र। इस द्रव्यके षट्कारक इसमें और इस द्रव्यके इसमें। दो द्रव्यके षट्कारक तो एकदम भिन्न स्वतंत्र हैं। फिर पर्याय एक अंश है। पर्याय अंशरूपसे भी स्वतंत्र है, ऐसा दर्शानेको उसके षट्कारक कहे। परन्तु जितना द्रव्य स्वतंत्र है, उतनी पर्याय स्वतंत्र है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसी द्रव्यकी पर्याय है और उस द्रव्यके आश्रयसे वह पर्याय होती है। चेतनद्रव्यकी चेतन पर्याय। वह जो स्वभावपर्याय हो, वह उसकी पर्याय है। इसलिये दो द्रव्य जितने षट्कारक रूपसे स्वतंत्र हैं, उसी द्रव्यकी पर्याय, वह द्रव्य और पर्याय उतने स्वतंत्र नहीं है। फिर भी एक अंश है और वह त्रिकाली द्रव्य शाश्वत है। अनादिअनन्त द्रव्य है और वह क्षणिक पर्याय है। परन्तु एक अंश है, इसलिये उसकी स्वतंता बतानेके लिये उसके षट्कारक कहे। बाकी उसका अर्थ ऐसा नहीं है, वह द्रव्य जितना स्वतंत्र है, वैसी पर्याय (स्वतंत्र है)। पर्याय उतनी स्वतंत्र

हो तो दो द्रव्य हो गये।

मुमुक्षु :- वह भी द्रव्य हो जाय।

समाधान :- हाँ, वह भी द्रव्य हो गया और यह भी द्रव्य हो गया। ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसकी स्वतंत्रता बताते हैं कि पर्याय भी एक अंश रूपसे स्वतंत्र है। लेकिन जैसा यह द्रव्य (स्वतंत्र) है, वैसी उसकी स्वतंत्रता नहीं है। क्योंकि वह पर्याय द्रव्यके आश्रयसे है। पर्यायका वेदन द्रव्यको होता है। वह द्रव्यकी पर्याय है। ऐसी स्वतंत्रता उसमें नहीं है। लेकिन उसकी स्वतंत्रता बतायी है। परन्तु पर्याय भी एक सत् है। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। उसका सत्पना दिखाते हैं। परन्तु उसकी स्वतंत्रता, जैसी द्रव्यकी है वैसी नहीं है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१५६

समाधान :- बाह्य संयोग तो पलटते रहते हैं। अभी ऐसा दिखे, फिर ... तो कुछ (दिखे)। पहली बात तो शुभभावसे धर्म होता है, ऐसा मानते थे, पुण्यमें धर्म मानते थे। उसमेंसे गुरुदेवने भवका अभाव होनेका (पंथ बताया)। गुरुदेवने ही पूरे हिन्दुस्तानमें प्रचार किया है, दूसरा कौन जानता था? हिन्दुस्तानमें भी वह सब हिन्दी लोग तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ ले और दूसरा पढ़ ले तो मानो कितना जान लिया। उसमेंसे समयसार आदि पढ़ना सिखाया गुरुदेवने। हिन्दी लोगोंमें भी गुरुदेवने ही प्रचार किया।

मुमुक्षु :- जी हाँ, गुरुदेवने पूरे हिन्दुस्तानमें..

समाधान :- सबको जागृत किया है। बाकी सब तो तत्त्वार्थ सूत्र आदि पढ़कर मानों हम (कितना जानते हैं), गोम्मटसारको मानते थे। उसमेंसे गुरुदेवने सबको तत्त्वकी रुचिकी ओर मोड़ा है। उसमें पुराने लोगोंको क्रियाकाण्डका (आग्रह) होता है। गुरुदेवने सबको सुलझाकर एक आत्माकी ओर सबको मोड़ा है। इस ओर तो गुरुदेवका बड़ा उपकार है। पूरे हिन्दुस्तानमें। गुरुदेवकी महिमा जितनी हो उतनी करने जैसी है। जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र। एक ज्ञायक आत्मा कैसे जाननेमें आये? बाहरमें सब होता रहता है, दूसरा क्या हो सकता है? शान्ति रखनी। जयपुरमें कुछ अध्यात्मका पढ़ते हों तो गुरुदेवसे ही सब (जाना है)। बरसोंसे सबको संस्कार पड़े हैं। गुरुदेवने प्रचार किया। जयपुर आदि हर जगह गुरुदेवका ही प्रताप है। सब सीखे हैं वे गुरुदेवके पास सीखे हैं।

समाधान :- .. स्वकी ओर अभ्यास करे। मैं चैतन्य हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ये मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसे निज स्वभावमें दृष्टि करे। मैं चैतन्य द्रव्य हूँ, उसका स्वभाव बराबर पहचानकर उस ओर जाय तो परिणति पर-ओरसे हटे। गुजरातीमें समझमें आता है?

मुमुक्षु :- जी हाँ।

समाधान :- स्वयंको-चैतन्यको स्वका आश्रय है। परका आश्रय तो अनादिसे लिया है। चैतन्य अपने स्वभावका आश्रय करे, उस पर दृष्टि करे, उस ओर ज्ञान करे उस दिशा पलट दे। पर ओर जो दिशा है, (उसे पलटकर) स्वसन्मुख दिशा करे तो अपनी ओर बारंबार अभ्यास करता रहे तो होता है। जैसे छाछमेंसे मक्खन जुदा पड़े तो बारंबार,

बारंबर उसका मन्थन करते-करते मक्खन बाहर आये। वैसे स्व-ओरका अभ्यास करे तो निराला होनेका प्रयत्न हो। किसीको हो उसे अंतर्मुहूर्तमें होता है। न हो उसे देर लगती है, परन्तु उसका अभ्यास करता रहे, छोड़े नहीं, उसमें थके नहीं, परन्तु बारंबार अभ्यास करे। उसकी आकुलता नहीं, धैर्यसे और भावना करके भी उस ओर अभ्यास करे तो होता है। बाकी चैतन्यद्रव्य तो अनादिअनन्त अनन्त शक्तिओंसे भरपूर है। उसमें उसकी एक भी शक्ति नहीं हुयी है। अनन्त काल हुआ तो भी शक्तियाँ परिपूर्ण हैं। परिपूर्ण शक्तिओंका भण्डार अनन्त महिमासे भरपूर है। अनन्त अद्भूतता उसमें भरी है। ऐसा चैतन्यद्रव्य है। उसकी महिमा करके उस ओर जाय, उसका भेदज्ञान करे तो हुए बिना रहता ही नहीं।

मुमुक्षु :- मनमें एक प्रश्न यह उठता है कि उधर यदि देखभाल नहीं करेंगे तो कैसे काम चलेगा? दुकानका बिगाड़ हो जायगा, घर खराब हो जायगा, यह प्रश्न अन्दरमें बहुत चलता है।

समाधान :- वह तो अपना राग है, विकल्प है। जो होनेवाला होता है वह होता है। रागके कारण सब विकल्प आते हैं कि ये खराब हो जायगा। रागके कारण प्रयत्न होता है, बाकी जो होनेवाला है वही होता है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो होगा, ऐसा नहीं होता। परन्तु अपने रागके कारण उसे विकल्प आते रहते हैं।

अनन्त काल हुआ। यह मनुष्यभव दुर्लभतासे मिलता है। उसमें इस पंचमकालमें ऐसे गुरुदेव मिले, ऐसा मार्ग बताया, ऐसा मार्ग बतलानेवाले कोई नहीं है। सब क्रियामें धर्म मानते थे, शुभभाव-पुण्यभावमें धर्म (मानते थे)। उसमें शुद्धात्मामें धर्म बतानेवाले गुरुदेव मिले। मनुष्यभवमें आत्मामें कुछ हो तो वह सफल है। मनुष्यजीवन चला जाय... मनुष्यभवमें ही उसके गहरे संस्कार बोये, भेदज्ञान करे, भिन्न आत्माको जाने तो सफल है। बाकी बाहरका चाहे जितना ध्यान रखे तो भी जो होनेवाला होता है वह होता है, अपने हाथकी बात नहीं है। कुछ भी करे तो भी होनेवाला है।

परन्तु यह चैतन्यद्रव्य तो अपने हाथकी बात है। पुरुषार्थ करे तो प्रगट हो ऐसा है। अपनी मन्दताके कारण अनन्त काल व्यतीत किया है। इसलिये ऐसा पुरुषार्थ, अन्दर अपनी महिमा लगकर उस ओर पुरुषार्थ करना चाहिये। अंतरमें सब भरा है। स्वघरमें अनन्त निधि भरी है। उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब स्वमेंसे प्रगट होता है, परमेंसे नहीं आता है।

अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति भरी है, अनन्त आनन्द भरा है। विकल्प टूटकर स्वानुभूति हो तो उसमेंसे अनन्त आनन्द प्रगट होता है। सब चैतन्यमेंसे प्रगट होता है, बाहरसे कुछ नहीं आता। बाहरका तो होनेवाला होता है वह होता है। इसलिये इस मनुष्य

भवमें ये मनुष्यभव चला जायगा, मेरे आत्माका क्या होगा? उसकी चिंता करने जैसी है। ये बाहरकी चिन्ता अनन्त काल बहुत की, परन्तु मेरे चैतन्यकी चैतन्यके अन्दर कुछ सफलता हो, शुद्धात्मामें शुद्ध पर्याय प्रगट हो, वह करने जैसा है।

मुमुक्षु :- नहीं .. होने पर भी अनुमानमें भी विषय आता है, तो भी आत्माका बहुमान इतना क्यों नहीं आता है?

समाधान :- परका बहुमान आता है। चैतन्यमें अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द है। अद्भूत द्रव्य है। परमें महिमा जाती है, चैतन्यकी महिमा नहीं आती है। इसलिये बारंबार उसका विचार करके, स्वभावको पहचानकर उसकी महिमा लाने जैसा है। वह लाता नहीं। महिमाका भण्डार आत्मा ही है। बाहर कहीं महिमा नहीं है। नहीं लाता है, वह स्वयंकी कचास है। स्वयंको पहचानता नहीं है और पर-ओर सब महिमा लगती है। निज स्वभाव पहचाने तो महिमा आये बिना नहीं रहती। जगतसे भिन्न चैतन्यद्रव्य कोई अद्भूत द्रव्य है, उसकी महिमा आये परकी महिमा छूट जाय। लेकिन वह महिमा प्रयत्न करके, विचार करके भी लाने जैसी है। उसका निर्णय करके।

मति-श्रुतज्ञानसे स्वयं निर्णय करे कि मैं यह चैतन्यद्रव्य हूँ, ये सब मैं नहीं हूँ। क्षणिक विचार, पर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ, मैं तो शाश्वत द्रव्य हूँ। फिर पर्याय तो उसमें प्रगट होती है, शुद्ध पर्याय। उसका वेदन हो। परन्तु द्रव्य पर दृष्टि करे, शुद्धात्माका वेदन हो, सबका यथार्थ निर्णय करके बारंबार उसका अभ्यास करे। स्वकी एकत्वबुद्धि परसे विभक्त। क्षण-क्षणमें मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, बारंबार उसका अभ्यास करे। जो-जो विकल्प आये वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञाता ही हूँ। इस प्रकार अंतरसे, बुद्धिसे हो वह ठीक, परन्तु अंतरसे हो और भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो तो विकल्प छूटकर स्वानुभूति हो, कैसे हो, वही करने जैसा है। उसकी महिमा लाये, न आये तो महिमा लाने जैसा है।

मुमुक्षु :- आप जैसे महापुरुषोंका योग मिलने पर भी, ऐसी प्रेरणा मिलने पर भी जितनी आत्माको पुरुषार्थकी जागृति होनी चाहिये उतनी नहीं होत पाती। भाव तो है ऐसा कि ऐसी हमारी जागृति हो। विकल्प तो ऐसे बहुत उठते हैं।

समाधान :- अपना प्रमाद है। गुरुदेव कहते थे न? 'निज नयननी आळसे निरख्या नहीं हरिने जरी'। अपनी आलसके कारण स्वयं स्वयंको देखता नहीं है, प्रयत्न नहीं करता है। चैतन्यप्रभु अपने पास ही है, स्वयं ही है। परन्तु स्वयं स्वयंको देखता नहीं है, उसके दर्शन करता नहीं और पर-ओर जाता है। अपनी आलस है, अपनी रुचिकी क्षति है। इसलिये करता नहीं है। अतः उसीकी जरूरत लाकर वही करने जैसा है, आदरणीय वही है, कल्याणरूप वही है, मंगलरूप वही है। बस, ऐसा करके उसीकी

ओर दृढ़ निर्णय करके वही करने जैसा है। जितना ज्ञानस्वभाव है, वही कल्याणरूप है। जो ज्ञायक है वही कल्याणरूप है। बाकी कुछ कल्याणरूप नहीं है। बाकी सब आकुलतारूप है, दुःखरूप है।

जो ज्ञायक ज्ञानस्वभाव है वही कल्याणरूप है और ज्ञानस्वभावमें ही सब भरा है। ज्ञानमें आनन्द है, अनन्त गुण है, अनन्त शक्तियाँ, अनन्त अद्भूतता सब ज्ञायकमें ही भरा है। वही करने जैसा है, बाकी कुछ करने जैसा नहीं है। 'इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे' समयसारमें आता है। 'इससे ही बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे।' उसमेंसे सुख प्राप्त कर। उसमें ही तुझे तृप्ति होगी। फिर बाहर जानेका मन ही नहीं होगा। वही करने जैसा है।

बाहरकी कर्ताबुद्धि छोड़कर ज्ञायककी ज्ञाताधारा उग्र करके वह करने जैसा है। सूक्ष्म छैनी, ज्ञानसे बराबर पहिचानकर उसका भेदज्ञान कर, (ऐसा) शास्त्रमें आता है। विकल्प छूटकर साक्षात् अमृत पीवन्ति। विकल्प जाल छूटकर अन्दरसे अमृतकी धारा, अमृतका सागर उछलेगा। परन्तु वह स्वयं उतनी उग्रता करे, भेदज्ञानकी धारा प्रगट करे तो होता है। शुभाशुभ विकल्प, क्षणिक पर्याय जितना मैं नहीं हूँ, मैं तो शाश्वत द्रव्य हूँ। गुणोंका भेद पड़े वह सब ज्ञानमें आये, परन्तु दृष्टिमें तो मैं एक ज्ञायक ही हूँ, ऐसा लक्ष्यमें लेकर सब ज्ञान करे और पुरुषार्थ करे। उसकी उग्रता करे तो विकल्प टूटकर स्वानुभूति हुए बिना नहीं रहती।

(मुनिराज) आत्मामें ही लीन रहते हैं। उन्हें परिणति जो बाहर जाती है वह दुष्कर लगती है। स्वयंमें ही-चैतन्यमें ही बारंबार अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें विश्राम लेते हैं। जगत जहाँ जागता है, वहाँ वे सोते हैं और जहाँ जगत सो रहा है, वहाँ मुनि आत्मामें जागृत हैं। उन्हें बाहर आना मुश्किल है। उन्हें अंतरमें ही शान्ति और आनन्द लगे। अंतरमें ही क्षण-क्षणमें चले जाते हैं। बाहर आये, नहीं आये, अंतरमें चले जाते हैं। ऐसी उनकी परिणति है। ऐसा करते-करते शाश्वत आत्मामें विराजमान हो जाय तो वीतरागदशा और केवलज्ञानकी प्राप्ति करते हैं। .. विभाव प्रगटे, विभावमेंसे स्वभाव नहीं प्रगट होता। स्वयं अपनेमें दृष्टि करे तो उसमेंसे ही शुद्धता प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ... अब तो मेरा घर ही यही है। एक पैसा नहीं जेबमें, मांड-मांड भाड़ा खर्चे तो भी मुझे कोई फ़िकर नहीं है। आपकी कृपासे वह सब दूर हो गयी। अब तो मेरा घर है, मेरा पियर तो यह है।

समाधान :- आत्माका जो स्थान है, वही अपना निजघर है। अंतरमें आत्माका घर वह विश्राम (स्थान है)। जहाँ देव-गुरु-शास्त्र विराजते हो, वही अपना विश्राम-घर है।

मुमुक्षु :- जहाँ साक्षात् चैतन्यप्रभु विराजते हो, वह तो अहोभाग्य है। दर्शन मिलना इस कालमें...

समाधान :- .. जल्दी आते थे। आत्माका करना वही जीवनकी सफलता है।

मुमुक्षु :- आपने जो आशीर्वाद दिया वह तो मेरा कल्याणका कारण है। मेरा कल्याण होकर ही रहेगा।

समाधान :- ... बहुत ग्रहण किया है, वही करना है। ... ये तो कोई प्रश्न पूछे तो कहते हैं, स्वास्थ्य ऐसा है न।

मुमुक्षु :- जी हाँ, आपकी घणी कृपा हुयी, बहुत कृपा है।

समाधान :- कैसेटमें बहुत ऊतरा है।

मुमुक्षु :- आपके वचनामृतकी कैसेट मेरे पास है।

मुमुक्षु :- ...कर्ता-धर्ता नहीं है, रागमें धर्म होता नहीं, .. जो लक्षण है, ... ख्यालमें आता है। भूले रह जाती है कि कुछ पुरुषार्थकी कमी है?

समाधान :- पुरुषार्थकी कमी है। जो निर्णय होता है वह निर्णय भीतरमें कार्य नहीं करता है। निर्णय निर्णयमें रह जाता है। जो निर्णयका कार्य होना चाहिये कि... एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको करता नहीं है, ऐसा निर्णय तो किया और जो कार्य करता है, उसमें मैं करता हूँ, मैं करता हूँ, वह बुद्धि तो छूटती नहीं। और बुद्धिमें निर्णय होता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको करता नहीं है। फिर भी जो कार्य करता है वह प्रतिक्षण मैं करता हूँ, मैं करता हूँ, ऐसी परिणति तो हो रही है। पुरुषार्थ कम है तो उसमें श्रद्धाकी भी क्षति है।

मुमुक्षु :- श्रद्धाकी भी क्षति है?

समाधान :- हाँ। यथार्थ सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं? जिसको यथार्थ प्रतीति होवे। जब यथार्थ प्रतीत नहीं हुयी, सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तब निर्णय भी बुद्धिसे हुआ है। प्रतीतमें भी परिणति नहीं होती है, मैं कर्ता नहीं हूँ, ये बुद्धिमें तो आया, परन्तु करता हूँ, करता हूँ उसकी परिणति तो हो रही है। विकल्पमें एकत्वबुद्धि और राग-द्वेषकी एकत्वबुद्धि चल रही है। मैं ऐसा करता हूँ, ऐसा करता हूँ, ऐसी बुद्धि तो भीतरमें चालू रहती है। भीतरमें देखे तो भीतरमें कर्ताबुद्धि चल रही है। बुद्धिमें कर्ता नहीं हूँ आता है, तो भी परिणति तो वैसी चलती है। परिणतिमें यदि देखे कि परिणतिमें ऐसा चलता है कि मैंने यह कार्य किया, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया ऐसी एकत्वबुद्धि तो भीतरमें चलती है। इसलिये पुरुषार्थकी भी कमी है और परिणतिमें जो निर्णय किया वैसी परिणति नहीं हुयी है।

मुमुक्षु :- सम्यक्के पहले सम्यक्की सन्मुखतावाला जो जीव है, वह सविकल्प

जो स्वसंवेदन होता है, वह पूरे असंख्य प्रदेशमें होता है कि कोई ... प्रदेशोंसे होता है?

समाधान :- कोई प्रदेशमें ऐसे नहीं होता है। चेतन अखण्डमें होता है। कोई अमुक प्रदेशमें होता है ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- मनसे निर्णय किया तो मनसे ... पूर्ण हूँ, ऐसा विशेष जो ... शान्ति मिलती है, वह नियत प्रदेशसे ही आती है कि सर्वांगसे आती होगी?

समाधान :- नहीं, सर्वांगसे आती है। मन तो विकल्प है। मन तो वहाँ रहता है, तो इधरसे लगता है। इधरसे लगता है।

मुमुक्षु :- तो आनन्द भी सर्वांग ही आना चाहिये।

समाधान :- हाँ, सर्वांग आता है। पूर्ण नहीं आता है। सम्यग्दर्शनमें तो अंश आता है। सर्वांग आता है। अमुक प्रदेशमें आता है और अमुक प्रदेशमें नहीं आता है, ऐसा नहीं है। आत्मा तो अखण्ड है। तो अखण्डमें ऐसा खण्ड नहीं पड़ता कि अमुक प्रदेशमें आनन्द आता है और अमुक प्रदेशमें नहीं आता है, ऐसा नहीं है। आत्मा तो अखण्ड है। सबमेंसे आता है। मुख्य यहाँ मन है न, इसलिये मनके द्वारा हुआ ऐसा कहनेमें आता है। यह मन है इसलिये।

मुमुक्षु :- ... सर्व प्रदेशमेंसे होता होगा?

समाधान :- सर्व प्रदेशमें अंश प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- ये बात ख्यालमें आयी कि जो निर्णय हो, उसमें श्रद्धाकी भी .... है, उसमें खामी है।

समाधान :- खामी है, जो निर्णय है ऐसा कार्य नहीं है, परिणति नहीं हुयी। तो निर्णयमें भी खामी है। बुद्धिसे निर्णय हुआ। बुद्धिमें निर्णय तो हुआ, निर्णय तो हुआ कि मैं कर्ता नहीं हूँ, राग मेरा नहीं है, ऐसा नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ ऐसा निर्णय तो किया परन्तु ज्ञायक कौन है? एकत्वबुद्धि तो चलती रहती है।

मुमुक्षु :- ऐसे ही लगता है कि ज्ञायक ही हूँ, ऐसा ज़ोर आता है।

समाधान :- ज़ोर आता है, परन्तु इसका लक्षण पीछानकरके मैं ये ज्ञायक हूँ, ये ज्ञायक हूँ, ऐसा भीतरमें तो नहीं होता। ये ज्ञायक हूँ, ये मेरा नहीं है, ऐसी ज्ञाताबुद्धि (होकर) कर्ताबुद्धि टूट जाय ऐसा तो नहीं हुआ। इसलिये जोरदार निर्णय पहले आता है, परन्तु जैसा वह सहज परिणतिरूप होता है, ऐसा निर्णय नहीं हुआ। इसलिये पुरुषार्थकी भी कमी है और निर्णय भी जैसा कार्यरूप होता है, वैसा नहीं हुआ।

मुमुक्षु :- ऐसा उपाय फरमाओ कि कमी निकल जाय और पुरुषार्थकी, .. श्रद्धाकी गलती निकल जाय और पुरुषार्थकी ठोसता-मजबूती आ जाय।

समाधान :- क्या उपाय है? अपना निर्णय दृढ़ करना वह भी पुरुषार्थ करनेसे होता है और सब पुरुषार्थसे ही होता है। गुरुदेवने जो कहा वह यथार्थ... अपना ही कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं है। निर्णय जो दृढ़ होता है, अपने पुरुषार्थसे होता है। रुचि जहाँ-तहाँ हो, एकत्वबुद्धिमें रुचि चली जाती है, जितनी रुचि ज्ञायकमें और भेदज्ञानमें होनी चाहिये उतनी नहीं होती है। इसलिये एकत्वबुद्धि चलती रहती है। जो भेदज्ञान होवे तो यथार्थ ज्ञायकका ज़ोर, ज्ञायकको पीछानकरके ज़ोर आना चाहिये। विचार किया कि मैं ज्ञायक हूँ, तो ज़ोर तो है, परन्तु ज्ञायक ज्ञायकरूप नहीं होता है, इसलिये निर्णय निर्णयरूप रह जाता है। निर्णय तो किया परन्तु कार्य नहीं आया तो पुरुषार्थ करना चाहिये कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी परिणति कैसे होवे? विकल्प टूटनेकी बात तो पीछे रह गयी और ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ ऐसी परिणति तो अपनी होनी चाहिये और कर्ताबुद्धि टूटनी चाहिये। निर्णय तो किया लेकिन ऐसी परिणति हुयी नहीं। विचार करे तो क्षण-क्षणमें देखे कि कर्ताबुद्धि होती रहती है, विकल्पमें एकत्वबुद्धि, खाते-पीते, चलते-फिरते सबमें कर्ताबुद्धि चलती है कि मैं एसा करता हूँ, मैं ऐसा करता हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि परिणति तो चलती है। इसलिये पुरुषार्थ करके तोड़ना चाहिये।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ कैसा करे?

समाधान :- ज्ञायककी धारा प्रगट करे। ज्ञायककी ज्ञायकरूप धारा (प्रगट करे) तो कर्ताबुद्धि टूटे। निर्णय करके रह जाता है, बुद्धिमें ज्ञायककी धारा तो नहीं हुयी। ज्ञायककी धारा प्रगट करे तो कर्ताबुद्धि टूटे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१५७

मुमुक्षु :- हमारे पास परको जानता हुआ ज्ञान है तो उसमेंसे ज्ञायकको कैसे जान सके?

समाधान :- परको जानता हुआ ज्ञान हो, परन्तु ज्ञायक स्वयं स्वतःसिद्ध अनादिअनन्त वस्तु है। उस वस्तुको लक्षण द्वारा पहचान सकते हैं। भले परको जानता हुआ हो तो ज्ञायक स्वयं अनादिअनन्त शाश्वत है। उसे पहचान सकते हैं। स्वयं ही है, दूसरा नहीं है। इसलिये स्वयं स्वयंको पहिचना सकता है, अपने लक्षण द्वारा स्वयंको पहचान सकता है।

परको जाननेवाला ज्ञान हो तो भी स्वयं स्वतःसिद्ध आत्मा है न। अनादिअनन्त ज्ञायक स्वयं ही है। स्वयं स्वयंको पहचान सकता है। उसका ज्ञानलक्षण असाधारण है। परको जानते हुए ज्ञानका मतलब परमें प्रवेश नहीं हो गया है। पररूप अर्थात् जड़रूप नहीं हो गया है। स्वतःसिद्ध ज्ञायक अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य चैतन्य है। स्वयं स्वयंको पहचान सकता है, लक्षणसे पहचान सके ऐसा है। पहचान न सके ऐसा नहीं है। स्वयं स्वयंकी ओर दृष्टि करे, निज लक्षण द्वारा स्वयंको पहचान सकता है।

मुमुक्षु :- परको जानता हुआ जो ज्ञान है, उसीको लक्षण लेना?

समाधान :- वह लक्षण नहीं है। परको जानता हुआ ज्ञान लक्षण नहीं है। वह स्वयं स्वतःसिद्ध चैतन्य अनादिअनन्त ज्ञायक स्वभाव है, उस ज्ञायकको पहचान। परको जानता हुआ, उसमें कोई पर्यायको पहचानना या एक गुणको पहचानना है ऐसा नहीं है, स्वतःसिद्ध ज्ञायकको पहचानना है। अकेला ज्ञानको पहचानना है ऐसा नहीं, (ज्ञान) उसका असाधारण लक्षण है, परन्तु अखण्ड द्रव्यको पहचानना है।

ज्ञान भले हो, उसे दृष्टि चैतन्य पर करनी है। द्रव्यको पहचानना है, एक पर्यायको पहचाननी है ऐसा नहीं है। जो पर-ओर जाता है उसे स्व-ओर मोड़कर स्वयं स्वयंकी ओर दृष्टि करके स्वयंको पहचान सकता है। अपनी ओर रुचि हो, अपनी महिमा हो तो चैतन्यके लक्षण द्वारा स्वयं स्वयंको पहचान सकता है। उसकी दृष्टि बाहर है, उसका लक्ष्य बाहर है, उसे अंतर्लक्ष करनेसे स्वयंको पहचान सकता है।

पर्यायको नहीं पहचाननी नहीं है, दिशा बदलनेसे स्वयं स्वयंको पहचान सकता है।

अनादिअनन्त स्वतःसिद्ध है। प्रज्ञाछैनी द्वारा स्वयं सूक्ष्म होकर, अपनी ओर झुककर स्वयंको पहचान सकता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीकी परिणतिको अज्ञानी देख नहीं सकता, तो ज्ञानीका निर्णय कैसे हो सके अज्ञानीसे?

समाधान :- वह देख नहीं सकता, परन्तु लक्षण द्वारा पहचान सकते हैं। ज्ञानीकी परिणति वह देख नहीं सकता। उनकी भेदज्ञानकी परिणति है वह उनकी वाणीमें उनका वज़न कहाँ जाता है? किस ओरकी बात आती है? वह सब उनकी वाणी द्वारा उनका वज़न कहाँ जाता है, वह पहचान सकते हैं। उनकी परिणतिको, उनके परिचयसे उनकी वाणी द्वारा पहचान सकते हैं। सत् ओर, द्रव्य ओर उनकी दृष्टि कहाँ है, उनकी परिणति क्या काम करती है? उनकी वाणी द्वारा पहचान सकते हैं।

मुमुक्षु :- बाकी बोलता हो और ज्ञानका परिणमन नहीं हुआ हो..

समाधान :- अंतरसे, गहराईसे कहाँसे आती है, उसके वेदनमेंसे आती है? ऊपर-ऊपरसे आती है? या उसकी परिणति उसे प्रगट हुयी उसमेंसे आती है? या वह शास्त्रसे बोलता है? वह जिसकी अन्दरसे सत्की जिज्ञासा हो वह पहचान सकता है। उसकी स्वानुभवपूर्वककी वाणी कैसी है, वह पहचान सकते हैं। उस जातकी वाणी हो तो भी उसका वज़न कहाँ जाता है? उसकी परिणति कहाँ काम करती है, उसे पहचान सकते हैं।

एक सामान्य मनुष्य हो, उसके परिचयसे इस आदमीका हृदय क्या काम करता है? उसका क्या काम करता है, वह आदमीके परिचयमें आनेसे स्थूलमें पहचान सकते हैं, तो ये तो उसकी सत्रूप परिणति प्रगट हुई है और वाणी मुक्तिके मार्गकी निकली है, किस प्रकारकी निकली है, जिसे सत्की जिज्ञासा हो वह उसे पहचान सकता है।

मुमुक्षु :- बहिन! गुरुदेवने ऐसा फरमाया था कि जो आपके चरणोंको लिपटकर रहेगा उसका बेड़ा पार हो जायगा, उसका अर्थ क्या?

समाधान :- उसका अर्थ मैं क्या करुँ? गुरुदेवका आशय... उसका अर्थ तो... उसका अर्थ मैं क्या कह सकती हूँ? .. गुरुदेवकी अर्पणता करके रहे। गुरुदेवके अपूर्व वचन थे। गुरुदेवका आत्मा कोई अलग था। उन पर महिमा लाये, उनकी वाणी सुने, उनकी कोई अपूर्व महिमा लाये तो उसका बेड़ा पार है। जिसने गुरुदेवको अंतरसे पहचाना, गुरुदेवको हृदयमें स्थापित किये, उन पर अर्पणता की, जो गुरुदेव कहे उस रूप उसकी परिणति परिणमे, ऐसे जीवोंका बेड़ा पार है। वे अपूर्व, उनका आत्मा अपूर्व। ऐसी अपूर्वता जिसके हृदयमें लगी और वह वाणी जिसने सुनी, गुरुदेवका परिचय किया, उनका सान्निध्यमें (रहे), अंतरमें जिसे ऐसी कोई अपूर्वता लगी, उसका बेड़ा पार है।

मुमुक्षु :- परिणतिके विषयमें आपसे सुनना है। वर्तमानमें देवलोकमें ...

समाधान :- गुरुदेव तो अभी देवलोकमें है। यहाँसे सब महान लेकर ही गये हैं। वहाँ भगवानके दर्शन मिले हैं, उनकी वाणी मिली है तो उनको तो विशेष अंतरमेंसे जो उन्हें चाहिये था, भगवानकी भावना थी, भगवानकी वाणी सुननेकी भाववा थी, उन्हें श्रुतज्ञानकी इतनी महिमा, सब उन्हें प्राप्त हो गया है। श्रुतज्ञानमें उन्हें विशेष पुष्टि मिले ऐसा सब उन्हें प्राप्त हो गया है। स्वयं अंतरमेंसे सब लेकर देवलोकमें गये हैं। भगवान मिले, योग मिला।

मुमुक्षु :- यहाँ सबके बीच अलग पड़ जाते थे, वैसे वहाँ भी होगा न?

समाधान :- उनकी परिणति अलग थी, अलग दृष्टिसे देखे तो अलग दिखाई दे। वह द्रव्य अलग था, ऐसा सब जानते हो कि ये कोई तीर्थंकरका द्रव्य है। उनकी परिणति निर्मल, उनकी निर्मल परिणतिको सब जान सकते हैं। देवोंमें तो सब जाननेकी बहुत शक्ति होती है कि ये तीर्थंकरका द्रव्य है, ये भविष्यके तीर्थंकर हैं, ऐसा जान सकते हैं। दूसरे देव भी जान सकते हैं। भविष्यके तीर्थंकर हैं, ऐसा सब जान सकते हैं। ये कोई अलग द्रव्य है। जाननेकी शक्ति होती है। ये भरतक्षेत्रमेंसे आये हैं। भगवानके पास थे। सब जान सकते हैं। भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं, यह सब जान सकते हैं।

मुमुक्षु :- वर्तमान परिणति है, वह किसको सूचित करती है? उनके भूतकालकी या उनके भविष्यकी? कोई क्रोध करता हो तो पूर्वमें वह साँप था ऐसा कहा जायगा या भविष्यमें साँप होगा ऐसा कहा जायगा?

समाधान :- उसकी किस प्रकारकी पुरुषार्थकी गति है, उस पर (आधारित है)। बचपनमें हो तो दिखाई दे कि ये पूर्वसे कुछ लेकर आया है। वर्तमान अंतरमें ज्यादा जुड़कर क्रोध करता हो तो ऐसा भी कहा जाय कि ये भविष्यमें ऐसा होगा। वह किस प्रकारका है वह उसका आत्मा जाने। भूतकालके संस्कारसे क्रोध आवे तो वह वर्तमानमें गलत प्रकारसे पुरुषार्थ करके वर्तमानमें क्रोधमें जुड़ता हो तो भविष्यका सूचक है। भूतकालका हो तो पूर्वका सूचक है। वर्तमानमें ज्यादा करता हो तो वह भविष्यका सूचक है। उसमें कुछ निश्चित नहीं होता है। वह तो लोग एक कल्पनासे कहते हैं कि ये क्रोधी है इसलिये ऐसा होगा। ये वर्तमानमें (इतना) क्रोध करता है, इसलिये भविष्यमें ऐसा होगा। कुछ निश्चितरूप नहीं होता, उसके परिणाम अंतरमें क्या काम करते हो। बचपनमें हो तो पूर्व भवका सूचक लगे। फिर तो जैसे-जैसे स्वयं अन्दर जुड़ता जाय तो भविष्यका भी होता जाय।

मुमुक्षु :- बहुत बार ऐसा होता है कि यह भाव नहीं करना है, तो भी वह

विकल्प और विचार आये तो उसका क्या करना? बहुत बार ऐसा होता है कि ऐसे विचार हमें करने हैं? ऐसे विचार हमें नहीं करने हैं। ऐसे विचार आये उसका क्या करना?

समाधान :- अपने पुरुषार्थकी मन्दता है, ऐसे लेना। उदय है, उसको ग्रहण करनेसे तो अपने पुरुषार्थकी मन्दता होती है। अपनी वर्तमान पुरुषार्थकी तो मन्दता है। उदयका कारण उसमें ले नहीं सकते। उदय तो निमित्तमात्र है। अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे वह होता है। स्वयं उसे तोड़ नहीं सकता है, वह अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। पूर्वका उदय उसे जबरजस्ती नहीं करता कि तू यह भाव कर ही कर। (ऐसा हो तो) स्वयं पराधीन हो जाय। वह उसे जबरजस्ती नहीं कहता है, परन्तु अपनी मन्दतासे वह होता है। अपनी मन्दताका वह कारण है। यदि वह जबरजस्ती करता हो तो स्वयं पराधीन हो जाय। उसकी जबरजस्ती नहीं होती। अपने पुरुषार्थकी मन्दता है।

अपने पुरुषार्थकी मन्दताकी ओरसे ले तो उसे टूटनेका अवकाश है। कर्म ओरसे लेनेसे उसे टूटनेका भी अवकाश नहीं है। इसलिये अपनी मन्दतासे वह होता है। निमित्त उदयका है, परन्तु स्वयंकी वर्तमान पुरुषार्थकी मन्दता है। वह जबरजस्तीसे उसे कहता नहीं है कि तू कर। स्वयं उसे तोड़ नहीं सकता इसलिये अपनी मन्दता है। ऐसा निर्णय किया कि यह भाव नहीं करने हैं, फिर भी आये तो उसमें अपनी मन्दता है, उसमें पूर्वका कारण नहीं है। उदय तो निमित्तमात्र होता है।

मुमुक्षु :- उसे पुद्गलके परिणाम नहीं लेना चाहिये।

समाधान :- चैतन्यमें जो होते हैं, उसे पुद्गलके परिणाम नहीं लेना। पुद्गल तो निमित्तमात्र है। पुद्गलके परिणाम कब लेना? कि द्रव्यदृष्टिके बलसे कि यह विभावस्वभाव भी मेरा नहीं है, वह पुद्गलके निमित्तसे होते हैं, इसलिये पुद्गलका है। इसलिये उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि पुद्गल उसे करवाता है। स्वयं जुड़ता है तब होते हैं। वह अपना स्वभाव नहीं है, चैतन्यका स्वभाव शुद्धतासे भरा है, उस अपेक्षासे, द्रव्यमें शुद्धता है उस अपेक्षासे उसे पुद्गलके कहा जाता है। उसका अर्थ (ऐसा नहीं है कि) वह पुद्गल करता है। अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होते हैं।

द्रव्यदृष्टिसे भेदज्ञानसे स्वयं भिन्न करे दो द्रव्यको, तब उसे पुद्गलका कह सकते हैं। परन्तु उसे अल्प अस्थिरता ज्ञाताकी धारा सम्यग्दर्शनमें रहे तो वह अल्प अस्थिरता रहे तो भी वह पुरुषार्थकी मन्दतासे रहती है। अपने पुरुषार्थकी उग्रता होती है तब ही वह अस्थिरता जाती है। यदि वह जड़ हो तो उसे पुरुषार्थ करनेका, सम्यग्दर्शन होनेके बाद पुरुषार्थ करना ही नहीं रहता है, तो फिर उसे तुरन्त केवलज्ञान हो जाना चाहिये। उसे पुरुषार्थकी मन्दतासे अल्प अस्थिरता रहती है। उसे पुद्गलका कहना वह

द्रव्यदृष्टिके बलसे कहनेमें आता है। दो द्रव्यको भिन्न करके, भेदज्ञानकी अपेक्षासे कहनेमें आता है। बाकी अल्प सम्यग्दर्शन होनेके बाद अल्प अस्थिरता रहती है, वह यदि पुद्गलकी हो तो फिर सम्यग्दर्शन होनेके बाद पुरुषार्थ करना बाकी नहीं रहता। सम्यग्दर्शन होनेके बाद भी पुरुषार्थ करना रहता है। उल्प अस्थिरता उसे रहती है तो उसे पुरुषार्थकी विशेष वृद्धि हो और चारित्रकी वृद्धि-स्वरूप रमणता बढ़ती जाती है, स्वानुभूति बढ़ती जाती है वह पुरुषार्थसे बढ़ती है और अस्थिरता टूटती जाती है। वह पुरुषार्थसे होता है। और केवलज्ञान भी ऐसे होता है।

यदि सिर्फ पुद्गलके ही हो तो फिर कुछ पुरुषार्थ ही नहीं करना रहता। सम्यग्दर्शन हुआ और सब पूरा हो गया। दृष्टि पूर्ण हो गयी तो उसके साथा चारित्र-लीनता भी पूर्ण हो जाय। तो उसे पुद्गलके कहा जाय। परन्तु अभी जबतक पुरुषार्थ बाकी है, तबतक अस्थिरता है, अपनी मन्दताके कारण है। स्वभाव अपना नहीं है, परन्तु पुरुषार्थकी मन्दता है। पुरुषार्थकी गति बढे तो वह टूट जाता है। अपने स्वभावकी शुद्धि बढती जाय, ऐसे अस्थिरता कम होती जाती है। अस्थिरता ऐसे ही नहीं टलती, परन्तु अपनी शुद्धि अन्दर बढती है इसलिये अस्थिरता कम हो जाती है।

.. ऐसे ही विकल्प नहीं टूटते, परन्तु अपनी शुद्धि हो तो विकल्प स्वयं ही टूट जाते हैं। जैसे विकल्प हो वह टूट जाते हैं। अपनी अन्दरकी शुद्धि बढे तो। जैसे-जैसे भूमिका बढ़ती जाय, ऐसे-ऐसे अस्थिरता कम होती जाती है। चतुर्थ गुणस्थानमें उसके अनुसार अस्थिरता होती है, फिर पाँचवी भूमिका हो, उसकी स्वानुभूतिकी अंतर परिणति, स्वरूप रमणता बढ़ती जाय तो उस अनुसार अस्थिरता होती है। फिर छठ्ठवे-सातवें गुणस्थानमें एकदम उसकी निर्मलता हो, छठ्ठवे-सातवें गुणस्थानमें झुले उस अनुसार उसकी अस्थिरता एकदम कम हो जाती है। फिर उसे संज्वलनका जो एकदम मन्द कषाय है ऐसा ही रहता है। फिर उसमेंसे भी अधिक निर्मलता होती है इसलिये उसका क्षय होता है।

इसलिये वह जड़के नहीं है। अपने पुरुषार्थकी गतिके साथ सम्बन्ध रखता है। जड़का तो... उसे दो द्रव्य भिन्न पड़ते हैं। एक चैतन्यद्रव्य और विभाव। उसका निमित्त पुद्गल है इसलिये उसे पुद्गलके कहनेमें आता है। अपना स्वभाव नहीं है वह बराबर। उसकी द्रव्यदृष्टिमें, ज्ञाताधारामें वह मेरा नहीं है, मेरा नहीं है, ऐसे उसकी ज्ञायककी उग्रतामें वह मेरा नहीं है, ऐसे दृष्टिके बलमें उसे ऐसा ही आता है कि ये मेरा नहीं है। परन्तु अस्थिरतामें मेरी मन्दतासे होता है, वह उसे ज्ञानमें वर्तता है।

मुमुक्षु :- .. परिणमता है कि..?

समाधान :- पूरा आत्मा नहीं परिणमता। आत्मा तो द्रव्य अपेक्षासे तो शुद्धरूप

परिणमता है। उसकी ज्ञायककी परिणति है। परन्तु उसे अस्थिरता (है वह) अन्दर तद्गत एकत्वबुद्धिसे अस्थिरता नहीं है। अस्थिरता उसे अमुक पर्यायमें परिणमती है। सर्वांशसे पूरे द्रव्यमें अस्थिरता नहीं परिणमती। वैसे तो अनादिअनन्त द्रव्य स्वयं कहाँ पूरा अशुद्ध हो जाता। द्रव्यकी अमुक शुद्धता तो रहती है, उसे भान नहीं है। द्रव्य अपेक्षासे तो शुद्धता भरी है, परन्तु उसे भान नहीं है। इसलिये ज्ञान करे तो द्रव्य अपेक्षासे शुद्धता है और फिर प्रगट परिणति हुयी इसलिये दर्शनकी अपेक्षासे-दृष्टिकी अपेक्षासे शुद्धता है। परन्तु अमुक पर्यायोंमें उसे अशुद्धता रहती है। अमुक पर्यायमें अशुद्धता रहती है।

समाधान :- .. आत्माका स्वभाव तो भगवान ही है। आत्माने स्वयंने अनादिकालसे परिभ्रमण किया, परन्तु उसका स्वभाव जो है, उस स्वभावका नाश नहीं हुआ है। उसका स्वभाव जो अनन्त शक्तिसे भरा है, उसका केवलज्ञान, अनन्त ज्ञानसे भरा आत्मा, अनन्त आनन्द, अनन्त सुख, शान्ति सब आत्मामें अनन्त-अनन्त अपूर्व स्वभाव है, वह स्वभाव ऐसे ही भरे हैं। शक्तिमें है। भले प्रगटमें उसे वेदन नहीं है, वेदन उसे वर्तमान सुख-दुःखका और रागका वेदन होता है। परन्तु उसका जो स्वभाव मूलमें है, उस स्वभावका नाश नहीं हुआ है।

इसलिये गुरुदेव ऐसा कहते थे कि तू भगवान है, तू तुझे पहचान। उस ओर दृष्टि कर, उसे पहचान तो उसमेंसे प्रगट होगा। जैसे स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, वैसे आत्माका स्वभाव तो निर्मल है। स्वफटिकमें लाल और पीले फूल रखनेसे उसमें लाल और काला प्रतिबिम्ब उठता है, परन्तु स्फटिकका मूल स्वभाव है वह चला नहीं जाता। वैसे आत्माका मूल तो, जैसे केवलज्ञानी सिद्ध भगवान हैं, वैसा उसका स्वभाव है। उसके स्वभावका नाश नहीं हुआ। जैसे पानी स्वभावसे निर्मल शीतल है, परन्तु कीचड़से मैला दिखता है। वैसे कर्मके कारण वह स्वयं उसमें जुड़ता है, उसके पुरुषार्थकी कमज़ोरीसे उसमें मलिनता दिखती है, परन्तु पानी तो निर्मल है। उसमें कोई औषधि डाले तो उसकी वह निर्मलता जैसी है वैसी प्रगट होती है।

वैसे आत्मा स्वयं स्वभावसे निर्मल है। पुरुषार्थ करे और भेदज्ञान करे कि ये मलिनता मेरा स्वभाव नहीं है, कर्म-ओरकी है। परन्तु पुरुषार्थकी कमज़ोरीसे होता है। लेकिन मैं तो ज्ञायक जाननेवाला आत्मा ही हूँ। ऐसा यदि स्वयंको पहचाने तो उसका स्वभाव प्रगट होता है। पहले तो उसका एक अंश प्रगट होता है, उसकी स्वानुभूति होती है। निर्विकल्प दशा आत्माका आनन्द प्रगट होता है। उसका भेदज्ञान करे और विकल्प टूटकर अंतरमें यदि जाय, उसमें तन्मय हो, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो उसका आनन्द प्रगट होता है, स्वानुभूति होती है। ऐसा करते-करते, बढ़ते-बढ़ते वह जैसा है वैसा केवलज्ञान स्वभाव प्रगट होता है।

परन्तु प्रथम वह सिद्ध भगवान जैसा है, ऐसा निर्णय करे-नक्की करे। मात्र विकल्पसे नक्की करे वह तो शुरूआतमें पहले बुद्धिसे नक्की करे। परन्तु अन्दर जो उसका स्वभाव है, उस स्वभावके मूलमें जाकर नक्की करे तो वह प्रगट होता है। आत्मा तो स्वभावसे भगवान जैसा ही है। भगवान ही है। भगवान जैसा ही उसका स्वभाव है। शक्तिसे है। भगवानने प्रगट हुआ और इसे शक्तिमें है। वैसे यह प्रयत्न करे तो वह प्रगट हो ऐसा है। उसमें जो स्वभाव हो वह उसमेंसे प्रगट होता है, नहीं हो वह कहाँसे प्रगट हो? उसके मूलमें है तो प्रगट होता है।

जैसे वृक्षका जैसा बीज है, उसके बीजमें है तो उसे पानीका सींचन करनेसे उसका वृक्ष पनपता है। वैसे उसके मूलमें-चैतन्यके मूल स्वभावमें ही है। स्वभावमेंसे स्वभाव आता है। विभावमेंसे-रागमेंसे वीतरागता नहीं आती, वीतराग स्वभाव है उसमेंसे प्रगट होती है। अतः उसके स्वभावका नाश नहीं हुआ है। अनन्त जन्म-मरण हुए, एक भवसे दूसरा भव, उसके परिणाम अनुसार होते रहते हैं। नर्क, स्वर्ग, तिर्यंच उसके विभावभावके कारण होते हैं। परन्तु स्वभावको पहचाने तो भवका नाश होता है। अनन्त कालसे उसने बाह्य क्रिया बहुत की, परन्तु शुभभाव किये, पुण्यबन्ध हुआ, देवलोकमें गया परन्तु आत्माको पहिचाना नहीं। शुभभावसे पुण्यबन्ध हुआ, देवलोकमें गया, परन्तु शुभ विकल्पसे भी आत्मा भिन्न है, उसका स्वभाव यदि पहिचाने, उसका भेदज्ञान करे, उसकी स्वानुभूति करे तो भवका अभाव होता है, तो आत्माका आनन्द प्रगट हो। शुभभाव बीचमें आये, परन्तु अपना निज स्वभाव तो विकल्प रहित निर्विकल्प स्वभाव है। पहले उसकी श्रद्धा हो, फिर उसमें लीनता करे तो प्रगट होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

PURUSARTH, KRAMBADDH

ट्रेक-१५८

मुमुक्षु :- .. बौद्धिक विश्वास आता है, उसके बाद अनुभूत करनेके लिये उसे कुछ प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है? अथवा कैसा प्रयत्न करना चाहिये?

समाधान :- पहले उसे ज्ञानसे जाने कि यह मेरा स्वभाव है। लक्षणसे पहिचाने कि यह जाननेवाला है वह मैं हूँ, ये जो विभाव, संकल्प-विकल्प होते हैं वह मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव भिन्न है। पहले उसे उसके लक्षणसे पहिचानकर उसमें लीनता करे। बारंबार उसका अभ्यास करे कि यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। यह मेरा स्वभाव (है)। उसकी एकत्वबुद्धि तोड़े। यह शरीर मैं नहीं हूँ, विकल्प मैं नहीं हूँ, अनादिका अभ्यास है, वह अभ्यास तोड़कर अपने स्वभावका अभ्यास करे। बारंबार मैं यह आत्मा, मैं चैतन्य ज्ञानस्वभाव, मैं ज्ञायक स्वभाव (हूँ), ऐसा बारंबार उसका अभ्यास करे। उसमें लीनता करे, उसकी एकाग्रता करे, बारंबार करे, ऐसा उग्रतासे करे।

पहले स्वयंको पहचाने, यथार्थ ज्ञान करे तो उसे फिर यथार्थ ध्यान होता है। पहले उसका यथार्थ ज्ञान करे कि यह स्वभाव है वही मैं हूँ, अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। ऐसी यथार्थ श्रद्धा करके फिर उसकी एकाग्रता करे तो विकल्प टूटकर उसे स्वानुभूति होनेका प्रसंग आये। पहले यथार्थ ज्ञान करे। उसमें शास्त्रका ज्यादा ज्ञान हो ऐसा नहीं है, परन्तु प्रयोजनभूत आत्मा है, उस आत्माका स्वभाव क्या? उसके गुण क्या? उसकी पर्याय क्या? ये विभावपर्याय क्या? ये पुद्गल क्या? ये चैतन्य क्या? उसका मूल प्रयोजनभूत पहचान ले, उसका भेदज्ञान करे कि यह मैं नहीं हूँ और यह मैं हूँ। ऐसा पहले अंतर विचारसे निर्णय करे, फिर अंतर उसका स्वभाव पहिचानकर करे, फिर उसमें एकाग्रता करे तो होता है।

मुमुक्षु :- संसारके चालू जीवन प्रसंगमें अशान्ति रहती हो इसलिये उसमें एकाग्रता नहीं होती हो तो उसके लिये क्या उपाय करना?

समाधान :- अशान्ति रहती हो तो उसकी आत्मा-ओरकी रुचि बारंबार बढानी। बाहरकी रुचि, बाहरकी महिमा, बाहरमें लीनता आदि है... आत्मामें ही सर्वस्व है, बाहरमें कुछ नहीं है। आत्मा कोई अपूर्व चीज है, आत्मा कोई अद्भूत वस्तु है, ये सब निःसार है। सारभूत हो तो आत्मा है, ऐसा निर्णय बारंबार करके उसकी महिमा

बढाये, उसकी रुचि बढाये, उसके विचार बढाये, उसका चिन्तवन बढाये तो वह रस, उसकी आकुलता कम हो। और तत्त्वका विचार बढाता जाय, उसका अभ्यास बढाता जाय तो फिर उसमें यथार्थ ज्ञान हो तो फिर उसे यथार्थ शान्ति आनेका प्रसंग बने। यथार्थ एकाग्रता करे तो। परन्तु पहले उसे सच्ची समझ बराबर होनी चाहिये। यथार्थ मार्गको जाने तो उसमें सच्ची एकाग्रता हो।

मुमुक्षु :- सच्चे ध्यानका स्वरूप क्या है?

समाधान :- सर्वप्रथम आत्माका अस्तित्व पहिचाने। ऐसी ही ये विकल्प तोड दूँ, ये विकल्प तोड दूँ, (ऐसा करे) लेकिन आत्मा क्या है, उसे पहिचाने बिना विकल्प तोड़कर कहाँ जायेगा? विकल्प टूटेगा भी नहीं। विकल्प कम होंगे लेकिन टूटेंगे नहीं। परन्तु विकल्प रहित वस्तु क्या है? विकल्प रहित आत्मा ज्ञायक जाननेवाला ज्ञायक है, वह तत्त्व ही भिन्न है। पहले उसका अस्तित्व पहिचाने, उसका स्वभाव पहिचाने। ध्यान करके कहाँ खडा रहना? जो वस्तु है उसे ग्रहण करे कि य आत्माका स्वभाव और ये परका स्वभाव। इस प्रकार उसे बराबर ग्रहण करे, यथार्थ ज्ञान करके, तो ध्यान होता है। ऐसे ही समझे बिना ध्यान करे, विकल्प कम करुँ, क्म करुँ। आत्म पदार्थ कहाँ खड़े रहना ये तो मालूम नहीं, कहाँ स्थिर रहना? विकल्प टूटे तो विकल्प कम हो, अथवा तो उसे शून्यता जैसे लगे।

ध्यान तो उसे कहें कि अन्दरसे कुछ जागृति आवे। अंतरमें आत्मामें उसे कोई अपूर्वता लगे। अपूर्व, कुछ अपूर्व लगे तो उसे ध्यान कहें। शून्यता आ जाय तो वह कोई ध्यान नहीं है। अंतरमें वस्तुको ग्रहण करके ध्यान होना चाहिये। नहीं तो ध्यान तो.. उसमें आता है न? ध्यान तरंगरूप होता है। यथार्थ ज्ञान बिनाका ध्यान तरंगरूप होता है।

मुमुक्षु :- श्रीमद्में।

समाधान :- श्रीमद्में आता है।

मुमुक्षु :- ... भूल नये प्रकारकी होगी कि जिस कारण जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सका?

समाधान :- भूल तो अनेक जातकी (है)। परको अपना माना वह उसकी भूल है। अनेक जातकी। कहीं न कहीं जीव अटका है। कहीं थोड़ा कुछ किया और अटक गया कि मैंने बहुत किया। थोड़ा ज्ञान करके अटक गया, थोड़ी क्रिया करके अटक गया, थोड़ा शुभभाव किया तो मैं तो बहुत धर्म करता हूँ, ऐसे अटक गया। थोड़ा वैराग्य करके अटक गया, कुछ त्याग किया तो, मैंने बहुत त्याग किया, मैंने बहुत धर्म किया, ऐसा करके अटक गया। कहीं-कहीं अटक गया। थोड़े शास्त्र धोख लिये

तो उसमें अटक गया। ऐसे कहीं-कहीं अटक गया, मानों मैंने बहुत किया। लेकिन जबतक स्वयंको-चैतन्यको पहचाना नहीं है, अंतरमेंसे कुछ प्रगट नहीं हुआ या अंतरमें उसे कोई अपूर्वता आये तो उसे किसीको पूछने भी नहीं जाना पड़े। उसके आत्मामेंसे ही ऐसा आये कि यही मार्ग है। अंतरमेंसे ऐसी कोई अपूर्वता और यथार्थ मार्गकी प्रतीति और ऐसा आनन्द आये की यही मार्ग है। जो भगवानने कहा वह यही मार्ग है, इसी स्वानुभूतिके मार्ग पर आगे बढा जाता है। उसका अंतरंग ही उसे कह देता है। ... अटक जाता है। कोई ज्ञानमें, कोई जूठे ध्यानमें, कुछ क्रियाओंमें, कुछ-कुछ थोड़ा-थोड़ा करके अटक जाता है। मूल वस्तुको पहिचाने बिना। बीचमें शुभभाव आये तो मैंने बहुत शुभभाव किये। मैंने बहुत दया, भक्ति, ये-वो, दान दिया, सब बहुत किया, मैंने बहुत धर्म किया। बाहरसे धर्म नहीं होता है, वह तो शुभभाव हो तो पुण्यबन्ध होता है। अंतरमेंसे शुद्धात्माको पहिचाने तो स्वभावमेंसे धर्म होता है। कहीं-कहीं बाहरमें अटक जाता है।

मुमुक्षु :- अपना अज्ञान ही उसमें कारण है या और कुछ?

समाधान :- नहीं, अपना ही कारण है, कोई अन्य कारण नहीं है। अपनी अज्ञानतासे ही स्वयं रखड़ा है। कोई दूसरा उसे रखड़ाता नहीं। कोई उसे कुछ नहीं कहता। कर्म तो निमित्तमात्र है। अपनी भ्रान्ति और अपनी भूलसे रखड़ा है। स्वयं भूल की है, स्वयं ही तोड़े। गुरु यथार्थ मार्ग दर्शाये, मार्गको ग्रहण करना अपने हाथकी बात है। गुरुदेवने अनेक प्रकारसे स्वरूप समझाया है। अपूर्व मार्ग बताया है। ग्रहण करना अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! सम्यक् पुरुषार्थ माने क्या? सम्यक् पुरुषार्थ, सच्चा पुरुषार्थ-सत्य पुरुषार्थ माने क्या?

समाधान :- सम्यक् पुरुषार्थ कि जिसके पीछे आत्मा प्रगट हो। आत्मा अनन्त गुणोंसे भरपूर है। आत्मामें अनन्त शक्तियाँ हैं। आत्मा जिसमें प्रगट हो वह सम्यक् पुरुषार्थ है। जिस पुरुषार्थमें आत्मा प्रगट न हो, विकल्पका अभाव होकर निर्विकल्प दशा जो स्वानुभूतिका मार्ग है, वह प्रगट न हो, उस पंथ पर नहीं जाना हो और मात्र शुभभाव हो, जिस शुभभावसे पुण्यबन्ध हो, तो वह सम्यक् पुरुषार्थ नहीं है। पुण्य बन्धे तो स्वर्ग मिलता है। वह सम्यक् पुरुषार्थ नहीं है।

सम्यक् पुरुषार्थ उसका नाम है कि जिसमें स्व-परका भेदज्ञान हो कि ये वस्तु मैं नहीं हूँ। मैं तो चैतन्य कोई अपूर्व वस्तु चैतन्य चमत्कारी, चैतन्य चिंतामणि वस्तु मैं हूँ। ऐसी कोई अन्दरसे वस्तु ग्रहण होकर पुरुषार्थ हो तो वह सम्यक् पुरुषार्थ है। बाकी विकल्प मन्द किये, राग मन्द किया, सब किया, शुभभाव किये, परन्तु जहाँ

पुण्य बन्धा और आत्माका स्वरूप, अन्दर स्वानुभूति प्रगट नहीं हुयी तो वह सम्यक् पुरुषार्थ नहीं है।

अथवा तो स्वानुभूतिके मार्ग पर हो तो वह सम्यक्के मार्ग पर है, सम्यक्त्व सन्मुख है। आत्मा कैसे पहचाना जाय? आत्माका स्वरूप क्या है? भेदज्ञानका अभ्यास करे, उस मार्ग पर जाय, उसका विचार, वांचन आदि करे तो वह मार्ग पर है। परन्तु शुभभावमें ही धर्म माने तो वह सम्यक् पुरुषार्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! स्वयं स्वभाव सन्मुख है कि नहीं, ऐसा उसको ख्याल आ जाता है कि स्वयं सम्यक् सन्मुख है?

समाधान :- स्वयंका आत्मा स्वयंको जवाब दे कि इस मार्गसे.. ये स्वानुभूतिका ही मार्ग है। इसी मार्गसे स्वानुभूति प्रगट होती है, दूसरे मार्गसे नहीं होगी। भेदज्ञानके मार्ग पर, स्वभाव ग्रहण करनेके मार्ग पर, भेदज्ञानके मार्ग पर ही स्वानुभूति प्रगट होती है और स्वयं अपना जान सकता है कि इसी मार्गसे स्वानुभूति प्रगट होती है।

यदि नहीं जान सके तो... सब उसी मार्ग पर जाते हैं। पहलेसे स्वानुभूति हो नहीं जाती, परन्तु पहले स्वयं निर्णय करता है कि इसी मार्ग पर जाया जाता है। मार्गका स्वयंको ज्ञान होता है तो उसे मार्ग पर जाता है। अपना आत्मा जवाब देता है कि इसी मार्ग पर स्वानुभूति प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ऐसा स्वयंको ख्याल आ जाता है?

समाधान :- ख्याल आ जाता है कि इसी मार्गसे स्वानुभूति होती है।

मुमुक्षु :- मैं सच्चे मार्ग पर हूँ, ऐसा भी ख्याल आ जाता है?

समाधान :- हाँ, स्वयंको ख्याल आ जाता है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! कर्ता-कर्मकी भूल कैसी होगी?

समाधान :- मैं परद्रव्यका कर सकता हूँ, मैं परद्रव्यको बदल सकता हूँ, वह सब कर्ता-कर्मकी भूल है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं दूसरेका नहीं कर सकता हूँ, परन्तु मेरे स्वभावका कार्य कर सकता हूँ। मेरे अंतरमें जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण है, अनन्त गुण हैं, उसे मैं प्रगट कर सकता हूँ। परन्तु मैं इस पुद्गलके, शरीरके कार्य मैं नहीं कर सकता हूँ। वह सब कर्ता-कर्मकी भूल है।

बाहरमें मैंने किसीका अच्छा कर दिया, किसीको ये कर दिया, वह सब तो पुण्य-पाप अनुसार होता है। उसमें स्वयं निमित्तमात्र है। उसके भाव करता है, बाकी किसीका कर नहीं सकता है। उसके स्वयंके शरीरमें रोग आये तो भी वह कुछ नहीं कर सकता, तो दूसरा तो क्या कर सके? परद्रव्यका कुछ नहीं कर सकता।

विभाव भी उसका स्वभाव नहीं है, पुरुषार्थकी मन्दतासे वह उसमें जुड़ता रहता

है। स्वयं अपने शुद्धात्माका कार्य कर सकता है और अज्ञान अवस्थासे विभाव करता है। बाकी दूसरे परपदार्थका वह कुछ नहीं कर सकता। जड़ पदार्थका करे, कोई किसीका करे, एक चैतन्य दूसरेका करे या एक पुद्गल दूसरेका करे तो द्रव्यकी स्वतंत्रता ही नहीं रही।

वस्तु स्वयं स्वतंत्र महान पदार्थ है। सबके द्रव्य-गुण स्वतंत्र हैं। कैसे परिणमना वह अपने हाथकी बात है। एक पदार्थ दूसरेका करे तो वह पदार्थ कमज़ोर हो गया। तो दूसरा कुछ दूसरा कर दे, स्वयं सुलटा करे, दूसरा ऊलटा कर दे, ऐसा पराधीन वस्तुका स्वरूप होता ही नहीं। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। स्वतः कैसे परिणमना वह उसके हाथकी बात है। उसके हाथकी बात है। पुरुषार्थ स्वयंको करना रहता है।

मुमुक्षु :- स्व और परका भेदज्ञान कैसे करना?

समाधान :- रोज वह बात आती है। करना तो स्वयंको पड़ता है। कैसे करना? तो लक्षण पहचानकर करना। उसका लक्षण तो पहचाना जाय ऐसा है। ज्ञानस्वभावको पहिचानना। ये विभाव है और ये स्वभाव है। लक्षण पहिचानना पड़े। काँच और हीरेकी परख तो जो जौहरी हो वह करे न। लक्षणसे पहचानमें आता है। अंतरमेंसे सच्ची जिज्ञासा हो तो पहचानमें आ ही जाता है कि यह ज्ञान है और यह विभाव है। तो भेदज्ञान हो। लक्षण पहिचाने तो भेदज्ञान हो। परन्तु उसका अभ्यास चाहिये। ये ज्ञान है, ज्ञान है, ज्ञान है, उसका बारंबार अभ्यास करना चाहिये कि यह ज्ञाता है। ज्ञान अर्थात् ज्ञाता।

... विकल्प तो आते हैं, पुरुषार्थ करना। पलटाना चाहिये पुरुषार्थ करके कि मैं ज्ञायक हूँ। बारंबार उसमें टिक न सके तो उस जातका विचार, वांचन, स्वाध्याय, महिमा करनी। देव-गुरु-शास्त्रकी, आत्माकी-ज्ञायककी महिमा करनी, न पलटे तो। भावना रखनी, पुरुषार्थ करना।

मुमुक्षु :- माताजी! आपका जीवने तो बचपनसे इतना वैराग्यमय था, अद्भूत आश्चर्यकारी। और हमें तो ऐसा लगता है कि अरे..! ये दुनिया ऐसी है, सब छोड़ने लायक है, बस! आत्माका ही करना है।

समाधान :- अभ्यास है न। क्षणभर वैराग्य आता है, फिर बदल जाता है। अन्दर गहराईसे हो तो होता है। उसकी लगन अंतरमेंसे लगनी चाहिये। इस मनुष्यजीवनमें वही करना है। बारंबार उसीकी लगन, बारंबार अभ्यास करना चाहिये। पलट तो जाता है, अनादिका अभ्यास है इसलिये पलट जाता है। और अंतरमेंसे उतनी लगी हो तो अंतरमें वही खटक रहा करे। अरे..! आत्माका करना बाकी रह जाता है। सब किया लेकिन आत्माका करना बाकी रह जाता है। ऐसी अंतरमेंसे खटक लगनी चाहिये।

मुमुक्षु :- खटक अंतरमें रखनी ही चाहिये।

समाधान :- अंतरमें वैसे खटक रखनी चाहिये। तो प्रयास होता है।

मुमुक्षु :- पूर्व जन्मका पुरुषार्थ होता, तब तो हो जाता।

समाधान :- परन्तु वर्तमान पुरुषार्थ तो करना पड़ता है न। पूर्वके संस्कार हो तो भी पुरुषार्थ तो वर्तमानमें करना पड़ता है। जब भी तैयार हो, जब जागे तब सवेरा। जब जागा तब सवेरा। जबसे गुरुकी वाणी सुनी और गुरुने मार्ग बताया तो पुरुषार्थ करना अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- कितने दिन तक ऐसा लग रहा है कि सब शून्य हो गया, कुछ नहीं रहा। ऐसा हो जाता है।

समाधान :- पुरुषार्थकी मन्दता है, रुचिकी मन्दता है। मन्दता है। तीव्रता करनी चाहिये। इस भवमें इतने काल सुना वह पूर्व ही हो गया। पूर्व पर्याय वह पूर्व। शरीरकी पूर्व पर्याय ... परिणामकी पूर्व पर्याय अर्थात् जो काल गया वह सब काल पूर्व ही था। जब भी जागे, पूर्वके संस्कार उसमें मिला देना। पूर्वमें सुना वह सब। पुरुषार्थ करे तो पूर्वमें जो सुना उसका साथ मिले इसलिये वह पूर्वके संस्कार, दूसरा क्या है? वह पूर्व हो गया। गुरुदेवने जो यह मार्ग बताया, मार्ग सूझनेका रास्ता गुरुदेवने बताया, यह सब सुना वह सब पूर्वके संस्कार ही है।

मुमुक्षु :- आपको कैसा लगता है?

समाधान :- आत्मा अनुपम है तो उसकी पर्याय भी अनुपम है। उसकी अनुभूति-वेदन भी अनुपम। अनादिका वेदन है वह तो दुःखरूप आकुलतारूप है। अस्थिरतारूप है, आकुलतारूप है, खेदरूप है। अशान्ति है। जो नहीं हो सकता है, उसकी कर्ताबुद्धि-मैं करता हूँ, करता हूँ, ऐसी खेदबुद्धि करता है। वह तो अपूर्व है। अपूर्व शान्तिरूप है, अपूर्व ज्ञानरूप है। वह कोई बोलनेकी बात नहीं है। अपूर्व वस्तु है।

समाधान :- .. राग हूँ, द्वेष हूँ, विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि, पर्याय ओर, क्षणिक पर्यायें होती हैं उतना मैं, परन्तु अखण्ड चैतन्य स्वभाव मैं हूँ, ऐसी दृष्टि (नहीं करता है)। स्वभावकी ओर जिसकी दृष्टि जाती है तो उसका क्रमबद्ध उसी ओर जाता है। मोक्षकी ओर क्रमबद्ध है।

मुमुक्षु :- और क्रमबद्धका स्वरूप उसीने जाना है।

समाधान :- उसीने सत्यरूपसे जाना है। जो पुरुषार्थ करता है, उसीने क्रमबद्धका स्वरूप जाना है, उसे ही क्रमबद्ध है। उसका सच्चा क्रमबद्ध है।

मुमुक्षु :- दूसरा क्रमबद्ध-क्रमबद्ध बोलता है, लेकिन उसका क्रमबद्ध मात्र कल्पना ही है।

KRAMBADDH To PURUSARTH PURVAK Hi Hota Hai

समाधान :- वह कल्पना है। फिर क्रमबद्ध अर्थात् बाह्य पदार्थ जैसे होने हों वैसे हो, कर्ताबुद्धि छोड़ दे कि मैं यह नहीं करता हूँ, वह क्रमबद्ध अलग। स्वभावका क्रमबद्ध तो पुरुषार्थपूर्वक ही होता है।

मुमुक्षु :- ये तो थोड़ा दिलासा लेनेकी बात है।

समाधान :- हाँ, बाहरका जो होनेवाला है वह क्रमबद्ध ही है। बाह्य संयोग अनुकूलता-प्रतिकूलताके वह सब तो क्रमबद्ध है। परन्तु अन्दर स्वभावपर्याय प्रगट होनी वह तो पुरुषार्थपूर्वक प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- वह मुद्देकी बात है।

समाधान :- वह पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। पुरुषार्थ बिना क्रमबद्ध नहीं होता। अपनेआप हो जाता है, उसमें पुरुषार्थ नहीं होता और ऐसे ही हो जाता है, ऐसा नहीं है। जिसे स्वभाव प्रगट करना हो उसकी दृष्टि तो मैं स्वभावकी ओर जाऊँ, ऐसी उसकी भावना होती है। उसकी ज्ञायक-ओरकी धारा होती है। उसे ऐसा नहीं होता है कि भगवानने जैसा देखा होगा वैसा होगा। ऐसा नहीं, उसे अंतरमें परिणति प्रगट करुँ ऐसा होता है। अंतर शुद्धिकी पर्याय प्रगट होनेकी ओर उसकी पुरुषार्थकी गति परिणमती है। जिसकी पुरुषार्थकी गति अपनी ओर नहीं है, उसे स्वभावकी ओरका क्रमबद्ध होता ही नहीं।

मुमुक्षु :- मुख्यता तो पुरुषार्थकी ही है।

समाधान :- पुरुषार्थकी मुख्यता है।

मुमुक्षु :- ... नहीं आये तो क्रमबद्ध समझमें ही नहीं आया।

समाधान :- तो क्रमबद्ध समझमें नहीं आया है।

मुमुक्षु :- वास्वतमें तो ऐसा है न?

समाधान :- हाँ, वास्तवमें ऐसा है कि क्रमबद्ध समझमें ही नहीं आया। होनेवाला होगा, स्वभावका जो होनेवाला होगा, पुरुषार्थ होनेवाला होगा तो होगा, ऐसा करे तो उसकी अंतरकी सच्ची जिज्ञासा ही नहीं है। जिज्ञासुको ऐसा अंतरमेंसे संतोष आता ही नहीं। जिसे स्वभावपर्याय प्रगट होनेवाली है उसे ऐसा संतोष नहीं होता कि होना होगा वह होगा, भगवानने कहा है वैसे होगा, ऐसा संतोष नहीं आता। उसे अंतरमें खटक रहती है कि कब मुझे अंतरमें स्वभावपर्याय कैसे प्रगट हो? कैसे हो? ऐसी उसे खटक रहा करती है। इसलिये वह स्वभावकी ओर उसके पुरुषार्थकी गति मुडे बिना रहती नहीं। इसलिये पुरुषार्थ उसका स्वभावकी ओर जाता है, (इसलिये) उस प्रकारका क्रमबद्ध है।

बाहरके जो फेरफार होते हैं, उसमें स्वयं कुछ नहीं कर सकता। बाहरके संयोग-वियोग, अनुकूलता-प्रतिकूलता सब। विभावपर्यायमें जैसा होना होगा वैसा होगा, ऐसा

अर्थ करे तो वह नुकसानकारक है।

मुमुक्षु :- वह स्वच्छन्द है।

समाधान :- वह स्वच्छन्द है। अपनी मन्दतासे होता है, ऐसी खटक रहनी चाहिये। नहीं तो उसे स्वच्छन्द होगा। उसमें जैसा होना होगा वैसा होगा, तो उसे स्वभाव-ओरकी जिज्ञासा ही नहीं है। ऐसी मुमुक्षुको अंतरमें खटक रहनी चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

KRAMBADDH

ट्रेक-१५९

समाधान :- .. क्रमबद्ध है..

मुमुक्षु :- क्रमबद्धका स्वरूप उसने ही जाना है।

समाधान :- उसने ही वास्तविकरूपमें जाना है। जो पुरुषार्थ करता है, उसीने क्रमबद्धका स्वरूप जाना है, उसे ही क्रमबद्ध है।

मुमुक्षु :- उसीका सच्चा क्रमबद्ध है।

समाधान :- उसका सच्चा क्रमबद्ध है।

मुमुक्षु :- दूसरा क्रमबद्ध-क्रमबद्ध बोलता है, लेकिन उसका क्रमबद्ध मात्र कल्पना ही है।

समाधान :- वह कल्पना है। फिर क्रमबद्ध अर्थात् बाह्य पदार्थ जैसे होने हों वैसे हो, कर्ताबुद्धि छोड़ दे कि मैं यह नहीं करता हूँ, वह क्रमबद्ध अलग। स्वभावका क्रमबद्ध तो पुरुषार्थपूर्वक ही होता है।

मुमुक्षु :- ये तो थोड़ा दिलासा लेनेकी बात है।

समाधान :- हाँ, बाहरका जो होनेवाला है वह क्रमबद्ध ही है। बाह्य संयोग अनुकूलता-प्रतिकूलताके वह सब तो क्रमबद्ध है। परन्तु अन्दर स्वभावपर्याय प्रगट होनी वह तो पुरुषार्थपूर्वक प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- वह मुद्देकी बात है।

समाधान :- वह पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। पुरुषार्थ बिना क्रमबद्ध नहीं होता। अपनेआप हो जाता है, उसमें पुरुषार्थ नहीं होता और ऐसे ही हो जाता है, ऐसा नहीं है। जिसे स्वभाव प्रगट करना हो उसकी दृष्टि तो मैं स्वभावकी ओर जाऊँ, ऐसी उसकी भावना होती है। उसकी ज्ञायक-ओरकी धारा होती है। उसे ऐसा नहीं होता है कि भगवानने जैसा देखा होगा वैसा होगा। ऐसा नहीं, उसे अंतरमें परिणति प्रगट करुँ ऐसा होता है। अंतर शुद्धिकी पर्याय प्रगट होनेकी ओर उसकी पुरुषार्थकी गति परिणमती है। जिसकी पुरुषार्थकी गति अपनी ओर नहीं है, उसे स्वभावकी ओरका क्रमबद्ध होता ही नहीं।

मुमुक्षु :- मुख्यता तो पुरुषार्थकी ही है।

समाधान :- पुरुषार्थकी मुख्यता है।

मुमुक्षु :- ... नहीं आये तो क्रमबद्ध समझमें ही नहीं आया।

समाधान :- तो क्रमबद्ध समझमें नहीं आया है।

मुमुक्षु :- वास्वतमें तो ऐसा है न?

समाधान :- हाँ, वास्तवमें ऐसा है कि क्रमबद्ध समझमें ही नहीं आया। होनेवाला होगा, स्वभावका जो होनेवाला होगा, पुरुषार्थ होनेवाला होगा तो होगा, ऐसा करे तो उसकी अंतरकी सच्ची जिज्ञासा ही नहीं है। जिज्ञासुको ऐसा अंतरमेंसे संतोष आता ही नहीं। जिसे स्वभावपर्याय प्रगट होनेवाली है उसे ऐसा संतोष नहीं होता कि होना होगा वह होगा, भगवानने कहा है वैसे होगा, ऐसा संतोष नहीं आता। उसे अंतरमें खटक रहती है कि कब मुझे अंतरमें स्वभावपर्याय कैसे प्रगट हो? कैसे हो? ऐसी उसे खटक रहा करती है। इसलिये वह स्वभावकी ओर उसके पुरुषार्थकी गति मुडे बिना रहती नहीं। इसलिये पुरुषार्थ उसका स्वभावकी ओर जाता है, (इसलिये) उस प्रकारका क्रमबद्ध है।

बाहरके जो फेरफार होते हैं, उसमें स्वयं कुछ नहीं कर सकता। बाहरके संयोग-वियोग, अनुकूलता-प्रतिकूलता सब। विभावपर्यायमें जैसा होना होगा वैसा होगा, ऐसा अर्थ करे तो वह नुकसानकारक है।

मुमुक्षु :- वह स्वच्छन्द है।

समाधान :- वह स्वच्छन्द है। अपनी मन्दतासे होता है, ऐसी खटक रहनी चाहिये। नहीं तो उसे स्वच्छन्द होगा। उसमें जैसा होना होगा वैसा होगा, तो उसे स्वभाव-ओरकी जिज्ञासा ही नहीं है। ऐसी मुमुक्षुको अंतरमें खटक रहनी चाहिये। क्रमबद्ध है...

जिज्ञासुको तो पुरुषार्थ पर लक्ष्य जाना चाहिये। क्योंकि पुरुषार्थ करना वह उसके हाथकी बात है। उसे खटक रहनी चाहिये। पुरुषार्थकी ओर उसका लक्ष्य जाना चाहिये। क्रमबद्ध आदिको वह गौण कर देता है। बाहरके कार्योंमें क्रमबद्ध बराबर है, परन्तु अंतरमें स्वयं स्वभावकी ओर मुड़नेमें क्रमबद्ध उसके ख्यालमें तो उसे खटक रहा करे कि मैं कैसे पुरुषार्थ करुँ, आगे कैसे बढ़ूँ, ऐसे अपनी ओर आता है।

गुरुदेव तो ऐसा ही कहते थे। बीचवाली कोई बात ही नहीं। जो स्वभावको समझा और ज्ञायक हुआ उसको ही क्रमबद्ध है। दूसरोंको क्रमबद्ध है ही नहीं। बीचमें जिज्ञासुकी कोई बात ही नहीं। जो स्वभाव प्रगट हुआ और ज्ञायककी ओर गया, उसे ही क्रमबद्ध है। ऐसा ही कहते थे।

मुमुक्षु :- वही शैली।

समाधान :- वही शैली।

मुमुक्षु :- स्वभाव परिणति ही ली है।

समाधान :- स्वभाव परिणति प्रगट हुयी तो क्रमबद्ध। नहीं तो तूने क्रमबद्ध जाना ही नहीं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी शैली ऐसी ही आयी है।

समाधान :- जिज्ञासुकी कोई बात बीचमें नहीं। दो विभाग, बस।

मुमुक्षु :- आपने तो जिज्ञासुका बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण किया। आपके वचनामृतमें भी बहुत बातें जिज्ञासुकी स्वभाव परिणतिसे ही प्रवचनमें आयी है। भावना आदिकी सब बातें हैं, ज्ञानीकी भावना ऐसे आयी है।

समाधान :- दो भाग ही कर देते थे। बीचवाली यहाँसे वहाँ, यहाँसे वहाँ प्रश्नेत्तरीकी कोई बात ही नहीं। दो विभाग ही कर देते थे।

मुमुक्षु :- शुद्ध परिणतिका क्रम शुरू होता है, वही बात लेते थे।

समाधान :- बस, वही बात। यहाँ सब जिज्ञासाके प्रश्न करे इसलिये जिज्ञासुकी बात बीचमें (आ जाती है)। आचार्य, गुरुदेव सब शास्त्रमें दो भाग-एक पुद्गल औरएक आत्मा। बस! ऐसी ही बात। रागको यहाँ डाल दिया, स्वभावको इस ओर रख दिया।

मुमुक्षु :- रागको जड़में और पुद्गलमें डाल दिया। और वहाँ तककी उसके षट्कारक उसकी पर्यायमें, पर्यायके षट्कारक.... आत्मा शुद्ध है। .. वह क्या आता है? पर्यायके षट्कारक पर्यायमें? ऐसे तो वस्तुको छः कारकोंकी शक्ति है। उस हिसाबसे तो वस्तु दर्शन एकदम बराबर है। छः गुण है, छः शक्तियाँ हैं।

समाधान :- दो द्रव्य स्वतंत्र। इस द्रव्यके षट्कारक इसमें और उस द्रव्यके षट्कारक उसमें। दोनों द्रव्यके षट्कारक तो एकदम भिन्न स्वतंत्र है। फिर पर्याय एक अंश है। पर्याय अंशरूप (होने पर भी) स्वतंत्र है। ऐसा बतानेके लिये उसके षट्कारक कहे। परन्तु जितना द्रव्य स्वतंत्र (है), उतनी पर्याय स्वतंत्र है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसी द्रव्यकी पर्याय है। और उस द्रव्यके आश्रयसे वह पर्याय होती है। चेतनकी चेतन पर्याय। वह जो स्वभावपर्याय होती है वह उसकी पर्याय है। इसलिये दो द्रव्य जितने षट्कारक रूपसे स्वतंत्र हैं, उसी द्रव्यकी पर्याय, उतने द्रव्य और पर्याय स्वतंत्र नहीं है। फिर भी एक अंश है और एक त्रिकाली द्रव्य शाश्वत है। अनादिअनन्त द्रव्य है और वह क्षणिक पर्याय है। परन्तु वह एक अंश है, इसलिये उसकी स्वतंत्रता बतानेके लिये उसके षट्कारक कहे। बाकी उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि द्रव्य जितना स्वतंत्र है, उतनी पर्याय (स्वतंत्र है)। पर्याय उतनी स्वतंत्र हो तो दो द्रव्य हो गये।

मुमुक्षु :- वह भी द्रव्य हो जाय।

समाधान :- हाँ, वह भी द्रव्य हो गया और यह भी द्रव्य हो गया। ऐसा उसकाअर्थ नहीं है। उसे उसकी स्वतंत्रता बताते हैं कि पर्याय भी एक अंशरूपसे स्वतंत्र है। परन्तु

Paryay Ek Ansh hai, SATT hai yeh Apeksha se Paryay Ke Kshatkarak ki baat ati hai lekin usse Paryay Sarvatha bhinn hai aisa nahi hai.

Dravya ke Kshatkarak aur Paryay ke Kshatkarak Do Dravya ke Kshatkarak Sarvatha Bhinn nahi hai.

जैसा यह द्रव्य है, वैसी उसकी स्वतंत्रता नहीं है। क्योंकि वह पर्याय द्रव्यके आश्रयसे है। उस पर्यायका वेदन द्रव्यको होता है। इसलिये वह द्रव्यकी ही पर्याय है। वैसी ही स्वतंत्रता उसमें नहीं है। परन्तु उसकी स्वतंत्रता बतायी है। पर्याय भी एक सत् है। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। उसका सत्पना बताते हैं। परन्तु उसकी स्वतंत्रता, जैसी द्रव्यकी है वैसी स्वतंत्रता (पर्यायकी नहीं है)।

मुमुक्षु :- षट्कारकोंकी मर्यादा ही अलग है। वह तो स्पष्ट किये बिना समझ नहीं सकते।

समाधान :- पर्याय भी एक सत् है, इसलिये उसके षट्कारक भिन्न। परन्तु उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये। वह द्रव्यकी पर्याय है। कोई भिन्न द्रव्य नहीं है। नहीं तो पर्यायका द्रव्य हो जाय। पूर्ण नहीं हो जाती, पर्यायमें कुछ न्यूनता रहती है। इसलिये पर्याय भी एक सत् है। द्रव्यमें परिणति अभी न्यून है, (तो) पर्याय सत् है, ऐसा बताते हैं। इसलिये वह कोई स्वतंत्र द्रव्य नहीं है। पर्याय है वह द्रव्यके आश्रयसे उसकी परिणति है। जैसी द्रव्यकी दृष्टि वैसी पर्याय परिणमती है। पर्याय कहीं और परिणमती है और द्रव्य कहीं और परिणमता है, ऐसा नहीं है। वज़न किस पर कितना वज़न देना, वह ...

मुमुक्षु :- उसके बदले ऊलटा-सुलटा हो जाता है।

समाधान :- ऊलटा-सुलटा हो जाता है।

मुमुक्षु :- वज़न गलत तरीकेसे जाय तो भी व्यर्थ है।

समाधान :- हाँ, व्यर्थ है। वज़न कहाँ देना, वह उसे समझना चाहिये न। भूतार्थ और अभूतार्थ। पर्याय अभूतार्थ कहलाती है और कोई अपेक्षासे-पर्याय पर्यायकी अपेक्षासे भूतार्थ कहलाती है। वह भूतार्थ किस प्रकारका? और वह भूतार्थ किस प्रकारका? उसे समझना चाहिये। वैसे यह षट्कारक और वह षट्कारक, वह किस जातके षट्कारक है और यह किस जातके षट्कारक, वह समझमें आना चाहिये। पर्याय अभूतार्थ और भूतार्थ। द्रव्यको भूतार्थ कहते हैं, द्रव्यदृष्टिसे। फिर कोई अपेक्षासे-पर्याय पर्याय अपेक्षासे कहलाती है। परन्तु वह दोनों भूतार्थ-भूतार्थ एकसमान नहीं है। वैसे दोनों षट्कारक एकसमान (नहीं है)। उसकी अपेक्षा अलग है।

मुमुक्षु :- वैसा ही प्रवचनसार-११४ गाथामें हुआ है कि पर्यायार्थिकनयको सर्वथा बन्द करके, वह चक्षु सर्वथा बन्द करके द्रव्यको देखना। और द्रव्यार्थिकनयके चक्षुको सर्वथा बन्द करके। दोनों जगह सर्वथा शब्दप्रयोग किया है, फिर भी दोनों जगह सर्वथाका वज़न एकसमान तो ले नहीं सकते।

समाधान :- नहीं, एकसमान नहीं लिया जाता।

मुमुक्षु :- नहीं तो शब्दप्रप्रोग दोनों जगह एकसमान ही है। प्रवचन पढे तो भी

तात्पर्य निकालना मुश्किल (पडे)।

समाधान :- द्रव्यार्थिकनयके चक्षु सर्वथा बन्द करके पर्यायार्थिकको देखे। परन्तु उसकी अपेक्षा तो हृदयमें रखनी चाहिये। द्रव्य और पर्याय दोनोंकी अपेक्षा समझे तो समझमें आये।

मुमुक्षु :- नय तो सापेक्ष ली है। नय तो सब सापेक्ष होते हैं। उसमें सर्वथा बन्द करना तो कैसे बने? फिर भी वहाँ ऐसे शब्द लिये हैं, सर्वथा बन्द करके।

समाधान :- सर्वथा बन्द करके ऐसा लिया है। उसमें अर्थ दूसरे प्रकारका लेना पड़े, आँख बन्द करनी अर्थात्।

मुमुक्षु :- आँख बन्द करनी माने क्या? दोनों जगह समान अर्थ करना अथवा आँख बन्द करनी उसका क्या करना?

समाधान :- मुख्य-गौण करना। आँख बन्द करनी यानी उसमें दूसरा तो कोई (अर्थ नहीं है)।

मुमुक्षु :- सर्वथा बन्द करना... ज्ञान कैसे बन्द हो? बन्द करना हो तो भी कैसे हो?

समाधान :- किस प्रकारका है, पर्यायका स्वरूप जाननेके लिये द्रव्यकी अपेक्षा एक ओर रखकर पर्यायका स्वरूप क्षणिक है और द्रव्यका स्वरूप शाश्वत त्रिकाल है। इस प्रकार उसका स्वरूप समझनेके लिये वह चक्षु बन्द करना। यह द्रव्यका स्वरूप अलग जातका है और पर्यायका स्वरूप अलग जातका है। अर्थात् द्रव्यका जो त्रिकाल स्वरूप है, उसे लक्ष्यमें नहीं लेकरके पर्याय क्षणिक है, ऐसा समझना। इसलिये वह चक्षु बन्द करना। जो त्रिकालको (देखनेका) चक्षु है उसे बन्द करना और इसे उसके स्वरूपमें समझना। पर्यायको पर्यायके स्वरूपमें समझना, द्रव्यको द्रव्यके स्वरूपमें समझना। उसका स्वरूप समझनेके लिये उसके चक्षु बन्द करना, ऐसा अर्थ है।

इसका स्वरूप उसमें नहीं आता, उसका स्वरूपमें इसमें नहीं आता। इसलिये उसके चक्षु बन्द करना। किसीका स्वरूप किसीमें जाता नहीं। दोनोंका स्वरूप दोनोंमें रहता है। इसलिये उसका जैसा स्वरूप है, उस स्वरूपमें समझना। इसलिये उसके चक्षु बन्द करना, ऐसा उसका अर्थ है। त्रिकालके स्वरूपको उसमें (क्षणिकमें) प्रवेश नहीं होने देना और क्षणिकका स्वरूप त्रिकालमें प्रवेश नहीं होने देना, इस तरह दोनोंको भिन्न रखना।

मुमुक्षु :- बराबर है, बहुत स्पष्ट।

समाधान :- उसका स्वरूप उसमें। क्षणिकका स्वरूप उसमें नहीं आने देना और त्रिकालका स्वरूप उसमें (क्षणिकमें) नहीं आने देना। दोनोंको भिन्न रखना। चक्षु सर्वथा

बन्द करना।

मुमुक्षु :- सर्वथा चक्षु बन्द करना, ऐसा शब्द वहाँ पड़ा है।

समाधान :- सर्वथा चक्षु बन्द (करना)। द्रव्यार्थिकनयके चक्षु सर्वथा बन्द करके पर्यायार्थिकको देखना। अर्थात् त्रिकाल स्वरूप जो आत्माका है, त्रिकालके स्वरूपको पर्यायमें नहीं आने देना। पर्याय तो क्षणिक है, वर्तमानमें परिणमनेवाली है। इसलिये जैसी है वैसी वर्तमानमें परिणमती है, ऐसे समझना। और वर्तमानमें परिणमनेवाली है और वह त्रिकाल परिणमनेवाला है उसमें क्षणिक परिणमनेवाला है, ऐसा स्वरूप उसमें आने नहीं देना। ऐसा अर्थ समझना। पुनः द्रव्य ही पर्यायरूप परिणमता है, वह बात वहाँ अलग रख दी है।

मुमुक्षु :- .. रखकर ही आते हैं। अकेले कथनको पकड़ने जाय तो मुसीबत होगी।

समाधान :- सिर्फ शब्दोंको पकड़े तो... उसमें ऐसा है.. गुरुदेव ऐसा कहते थे, कोई कहता है गुरुदेव ऐसा कहते थे। गुरुदेवका आशय समझना वह सत्य है। .. पूर्वक ही उनका परिणमन और कहनेकी शैली... वे स्वयं ही जब पद्मनंदी आदि सब पढ़ते थे तब उछल जाते थे। और वे स्वयं ही जब निश्चयकी बात आये तो निश्चयकी बात जैसा हो वैसा बराबर पढ़ते थे। इसलिये उनका हृदय सन्धियुक्त था। उनका पूरा परिणमन ही वैसा था। भले व्यवहारकी बात गौण करके कोई-कोई बार पढते थे। परन्तु जब भी वह पढते थे तब उसे ओप चढाकर पढ़ते थे।

मुमुक्षु :- जगतको..

समाधान :- गुरुदेवका सब प्रताप है। तत्त्वदृष्टि तो अनादिसे जीवने जानी नहीं है। इसलिये तत्त्व तो गुरुदेवने खूब (दिया है)। अनादि कालसे तत्त्व ही समझमें नहीं आया है। मुख्य बात तो वह है। हजारों जीवोंको जागृत कर दिये। गुजराती, हिन्दी सबको।

मुमुक्षु :- आत्मामेंसे ज्ञान आता हो तो शास्त्र आदि पढना क्यों?

समाधान :- ज्ञान तो ज्ञानमेंसे ही आता है। जिसमें हो उसमेंसे आये, कुछ बाहरसे नहीं आता है। स्वयंको उतनी अंतरमें शक्ति नहीं है न। ज्ञानमेंसे ज्ञान.. आता है ज्ञानमेंसे, परन्तु शास्त्र निमित्त होते हैं। उपादान अपना परन्तु उसमें शास्त्र निमित्त बनते हैं। वस्तुका स्वभाव क्या है उसे जाना नहीं है। भगवान क्या कहते हैं? वस्तु स्वरूप क्या है? मुक्तिका मार्ग क्या है? स्वयं अनजाना है। आचार्यों जो कह गये हैं, महा मुनिवरो, गुरुदेवने जो मार्ग बताया, भगवानकी वाणी-दिव्यध्वनिमें आया है, आचार्योंने शास्त्रोंमें लिखा है। शास्त्र निमित्त बनते हैं। उपादान अपना होता है। स्वयंने अनादिसे मार्ग जाना नहीं है। भ्रान्तिमें पड़ा है। मुक्तिका मार्ग कैसा है, यह मालूम नहीं है। इसलिये शास्त्र

निमित्त बनते हैं।

जबतक स्वयं अंतर वस्तु स्वरूप जानता नहीं, तबतक शास्त्रका निमित्त होता है। परन्तु वह ख्यालमें यह रखे कि मात्र शास्त्रसे नहीं होता है, होता है अपने ज्ञानसे। शास्त्र तो निमित्त है। शास्त्र कुछ कहते नहीं कि तू जान। परन्तु जानता है स्वयंसे। शास्त्र निमित्त बनते हैं।

गुरुदेव यहाँ वाणी बरसाते थे। गुरुदेवकी वाणी प्रबल निमित्त थी। परन्तु ज्ञान तो स्वयं जाने तो हो न। गुरुकी वाणी एक सरीखी बरसती थी तो ग्रहण तो स्वयंको करना होता है। जिसकी जैसी लायकात हो उस अनुसार ग्रहण करता है। उपादान स्वयंका। निमित्त गुरुकी वाणी और आचार्योंके शास्त्र निमित्त बनते हैं। वह तो महान निमित्त है।

अनादि कालका अनजाना मार्ग, स्वयं कहाँ-कहाँ अकटता है, जूठे मार्गमें। कैसे मुक्ति हो? किस प्रकारसे वस्तुका स्वरूप है? स्वानुभूति कैसे हो? मालूम नहीं है। इसलिये आचार्यों और गुरु सब मार्ग दर्शाते हैं। वे निमित्त बनते हैं। अनादि कालसे मार्ग जाना नहीं है तो एक बार देव एवं गुरुकी वाणी सुने तो उसे अन्दरसे देशना लब्धि होती है। ग्रहण करता है स्वयंसे, परन्तु निमित्त-नैमित्तिक ऐसा सम्बन्ध है। वे निमित्त बनते हैं-गुरुकी, आचार्यकी वाणी आदि।

मुमुक्षु :- हम लोग तो शुभको भी निकाल देते हैं, फिर अपने पास साधन क्या रहा?

समाधान :- शुभ अपना स्वभाव नहीं है। वस्तु स्वभाव ऐसा है। शुभ परिणाम भी आकुलतारूप है। अन्दर संकल्प-विकल्प सब आकुलता है। वह प्रवृत्ति आत्माका मार्ग नहीं है। आत्माका परिणमन आत्मामें करना। यह शुभ परिणाम तो कृत्रिम है, अपना स्वभाव नहीं है। बीचमें आये बिना नहीं रहता। उसे श्रद्धामें जानना कि यह मेरा स्वभाव नहीं है। उसे हेय मानना। क्योंकि वह अपना स्वभाव नहीं है। इसलिये उसे जानना बराबर, उसकी श्रद्धा करनी कि यह मेरा स्वभाव नहीं है। परन्तु बीचमें आये बिना नहीं रहता। जब तक स्वयंमें पूर्ण लीनता नहीं हो जाती, तबतक बीचमें आते हैं।

समाधान :- .. सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न हो तो उसके लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। बाह्य क्रिया, शुभ भावसे पुण्यबन्ध होता है और पुण्यसे देवलोक मिलता है। तो उससे भवका अभाव नहीं होता। शुद्धात्माको पीछाने तो भवका अभाव होता है। शुद्धात्मा कैसे जाननेमें आवे? उसके लिये सब वांचन, विचार, तत्त्व-विचार आदि करना चाहिये। तो स्वानुभूति होती है।

करना तो स्वयंको है पुरुषार्थ करके। उसके तत्त्व विचार, भेदज्ञानका प्रयत्न, परसे एकत्वबुद्धि तोड़नी, भेदज्ञान करना सब स्वयंको करना है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, ज्ञायक--ज्ञायकका रटन सब अपनेको करना है।

मार्ग बतानेवाले गुरुदेव इस मनुष्यभवमें मिले। अनुभूति मुक्तिका मार्ग है। विकल्प तोड़कर आकुलता (छोड़कर)... निराकुल स्वभाव आत्मा है, ज्ञानस्वभाव आत्मा है। मैं ज्ञान हूँ, ये सब कुछ मैं नहीं हूँ। मैं तो शुभाशुभ भावसे भिन्न मैं ज्ञायक स्वभाव हूँ। शुभाशुभ भाव अपना स्वभाव नहीं है। बीचमें आते हैं, तो भी अपना स्वभाव नहीं है। तो उसको हेय जानकर ज्ञायक स्वभावका अभ्यास करना, वह करना है। अपना स्वभाव है उसको भूल गया है। तो उसको ग्रहण करना चाहिये। शास्त्रमें आता है न? वह परका वस्त्र ओढकर सो जाता है। गुरु बताते हैं कि, उठ! तेरा यह स्वभाव नहीं है। ये तो परका है। तू ग्रहण कर ले। तेरे स्वभावको लक्षण देखकर पीछान ले। जब लक्षण ख्यालमें आवे तब भेदज्ञान करता है। यह करना है, वही एक स्वानुभूतिका मार्ग है। भेदज्ञान करना वही। गुरुदेवके पास समझे हैं।

मुमुक्षु :- आपके पास सीखने मिलेगा।

समाधान :- अनन्त कालसे समझ बिना परिभ्रमण हुआ है। सच्चा समझन करे तो मुक्तिका मार्ग मिले। अंतर आत्माका लक्षण पीछाने। आत्माका किस स्वभावसे है, उसे ग्रहण करे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६०

मुमुक्षु :- राग और ज्ञान भिन्न है, यह कैसे नक्की करना?

समाधान :- रागका स्वभाव भिन्न है और ज्ञानका स्वभाव भिन्न है। राग है वह आकुलतारूप है। राग कहीं शान्तिरूप नहीं है। वह तो आकुलतारूप है, विपरीत स्वभाव है। और आत्माका स्वभाव जाननेका है-ज्ञायक। वह ज्ञायक है वह शान्तिरूप है, आनन्दरूप है। और राग है वह आकुलतारूप है। इसलिये दोनोंके स्वभाव भिन्न है, अतः दोनों भिन्न हैं।

दो भिन्न-भिन्न स्वभाव हो, वह किसी भी प्रकारसे एक नहीं हो सकते। जैसे शीतलता पानीका स्वभाव, अग्निका उष्णता स्वभाव है। उष्णता और शीतलता दोनों विरूद्ध स्वभाव है। वैसे राग और ज्ञान दोनों विरूद्ध स्वभाव है। इसलिये दोनों भिन्न हैं। दोनोंके लक्षण भिन्न, जिनका स्वभाव भिन्न हैं, वह दोनों वस्तु ही अलग है। ज्ञान भिन्न है, राग भिन्न है, दोनों भिन्न हैं। इसलिये दोनोंको लक्षण पहिचानकर भिन्न करना कि आत्मा शान्ति, ज्ञायक-जाननेवाला है और राग है सो आकुलतारूप है। दोनोंको लक्षणसे भिन्न करना कि यह जाननेवाला मैं और ये राग मैं नहीं हूँ।

ज्ञायकमें लीनता करनी, ज्ञायकको ग्रहण करना, ज्ञायककी ओर दृष्टि करनी वही मुक्तिका मार्ग है। रागको अपना माना, राग-ओर दृष्टि करनेसे परिभ्रमण उत्पन्न होता है। उसीसे जन्म-मरण होते हैं। रागसे, यह शरीर आदि बन्धता है और अनेक जातके भव प्राप्त होते हैं। ज्ञायकको जाननेसे भवका अभाव होता है और चैतन्यकी स्वपर्याय शुद्ध पर्यायकी उत्पत्ति होती है। इसलिये ज्ञायकको जानना। उसमें ही आनन्द, शान्ति, सुख सब उसमें भरा है। दोनों वस्तु ही भिन्न-भिन्न हैं।

गुरुदेव कहते थे, भगवान आत्मा भिन्न है और ये भिन्न है। उतना ही आत्मा है (कि जितना यह ज्ञान है)। जितना राग है वह विभाव है। जहाँ-जहाँ राग दिखे, जो-जो परिणमनमें वह सब विभाव है। ज्ञान है वही आत्मा है, ज्ञायक है वही आत्मा है। वही सर्वस्व है और बाकी सब पर विभाव है। वस्तु है, कोई अलग वस्तु है। उसे ग्रहण करनेसे उसकी जो अद्भूत पर्यायें हैं वह प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- आनन्द ज्ञायकभावमेंसे-स्वभावमेंसे ही आता है? या उसके गुणमेंसे आता

है? पर्यायमें आता है?

समाधान :- वह गुणमेंसे प्रगट होता है। आनन्द..

मुमुक्षु :- आनन्दगुण कहाँसे प्रगट होता है?

समाधान :- आनन्दगुण है वह अपना स्वभाव है। स्वभावमेंसे पर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- वेदन पर्यायमें होता है?

समाधान :- वेदन पर्यायमें होता है, परन्तु वह प्रगट होता है, उसके आनन्दगुणमेंसे पर्याय प्रगट होती है। उसमेंसे प्रगट होता है। चैतन्य पूरा ज्ञायक है, ज्ञायकमें अनन्त गुण है। ज्ञान है, दर्शन, चारित्र, आनन्द, बल आदि अनन्त गुण हैं। आनन्द आनन्दगुणमेंसे प्रगट होता है। और वह ज्ञायक आत्माका गुण है। ज्ञान ज्ञानमेंसे प्रगट होता है, दर्शन दर्शनमेंसे, आनन्द आनन्दमेंसे, बल बलमेंसे प्रगट होता है। परन्तु वह अभेद आत्माके गुण अलग टूकड़े नहीं है, वह आत्माका ही स्वभाव है। अनन्त गुणसे भरा आत्मा, उसमेंसे पर्याय प्रगट होती है। वेदन भले पर्यायका हो, परन्तु वह पर्याय प्रगट होती है, चैतन्यके गुणमेंसे प्रगट होती है। चैतन्यके गुणमेंसे प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- अनन्त गुण है तो अनन्त गुणका वेदन पर्यायमें हो सकता है?

समाधान :- पर्यायमें होता है।

मुमुक्षु :- पर्यायमें एक साथ होता है?

समाधान :- पर्यायमें एक साथ होता है। उसके ज्ञानमें जान सकता है कि ये अनन्त गुणकी पर्याय उसके वेदनमें आती है। उसके नाम भले नहीं आते हो, परन्तु उसे वेदनमें जान सकता है। चेतन-ओर दृष्टि रखनेसे विकल्प टूटकर जो स्वानुभूति होती है, उस स्वानुभूतिमें अनन्त गुणकी पर्यायका वेदन होता है। वेदन पर्यायका है। पर्यायमें वेदन होता है, परन्तु वह विकल्प टूटकर होता है। निर्विकल्प दशामें होता है। सविकल्पतामें तो उसे भेदज्ञानकी धारा प्रगट होती है। ज्ञायकता।

अनादिअनन्त है। शाश्वत तत्त्व है। उसे किसीने बनाया नहीं है। स्वयं शाश्वत है, अनादिअनन्त है। उस चैतन्यको पहिचाननेकी जरूरत है। आत्मा ज्ञानस्वभावसे भरा ज्ञायकतत्त्व है। जाननेवाला है। ये कुछ जानता नहीं है। अन्दर जाननेवाला चैतन्यतत्त्व भिन्न है। विकल्प हो वह भी अपना स्वभाव नहीं है। आत्मा चैतन्यतत्त्व अनादिअनन्त है। आत्मा स्वयं सर्वगुणसंपन्न अनन्त शक्तिओंसे भरा है। उसे किसीने बनाया नहीं है। कोई ईश्वर हो और उसे बनाये, वह तो स्वतःसिद्ध वस्तु है। स्वयं चैतन्यतत्त्वको पीछाने, अन्दर उसे लगन लगे तो पीछाने। देव-गुरु-शास्त्र उसे बताते हैं, जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र। गुरुकी प्रत्यक्ष वाणी बरसती थी, कोई अपूर्व मार्ग दर्शाते थे। उस मार्ग पर जाय तो वस्तु समझमें आये ऐसा है। कोई अलग ही मार्ग है अन्दर। दोनों तत्त्व ही भिन्न-

भिन्न हैं।

सब भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। चैतन्यतत्त्व भिन्न है। सबका आत्मा भिन्न, सब अपना-अपना पुरुषार्थ द्वारा कर सकते हैं। परन्तु अनादिसे भ्रमणा है कि शरीर सो मैं, ये सब मैं, बाहरमें सबमें एकत्वबुद्धि कर रहा है। चैतन्यकी ओर दृष्टि करे तो करना वह है। उसकी लगन लगानेकी जरूरत है। गुरुदेवने क्या कहा है, उसका विचार करनेकी जरूरत है। गुरुदेवने कोई अलग मार्ग बताया है। वस्तु-द्रव्य, गुण, पर्याय अनन्त शक्तिओंसे भरा तत्त्व है। उसे पीछाननेकी जरूरत है।

शास्त्रोंमेसे अपने आप समझे तो... गुरुदेवने जो कहा है, गुरुदेवके जो प्रवचन.. पहले शुरूआतमें तो गुरुदेवके प्रवचन पढे तो उसमेंसे समझमें आये। मूल शास्त्रमेंसे अभी कुछ समझमें नहीं आता हो उसे मुश्किल पड़ता है।

.. तो यथार्थ फुरुषार्थ हो। समझन ही सच्ची न हो तो यथार्थ पुरुषार्थ कहाँ-से हो? अभी पुरुषार्थ करनेकी पड़ी न हो, अन्दर लगन लगे, आत्माकी जरूरत लगे तो पुरुषार्थ हो न। रुचि सब बाहर पड़ी हो तो अन्दर जरूरत नहीं लगे तो पुरुषार्थ कहाँसे हो? अंतरमें जाय तो कोई अपूर्व आत्मा है, उसकी स्वानुभूति हो, उसका आनन्द आवे। परन्तु स्वयंको जरूरत लगनी चाहिये न।

स्वानुभूति कोई अपूर्व वस्तु गुरुदेवने बतायी है। सबकुछ अन्दर ही है। स्वयं नित्य है और पर्याय बदलती है। एक वस्तुमें है। बदलता कोई और है, नित्य कोई और है। एक नित्य वस्तु है, उसीमें परिणमन होता है। स्वभावरूप परिणमना अपने हाथकी बात है। स्वभाव तो अनादिअनन्त नित्य है।

मुमुक्षु :- अनुभूतिमें आनन्दका कुछ वर्णन हमें सुनाईये।

समाधान :- वह कोई कहनेकी बात है? आत्मा अनुपम है। उसका आनन्द अनुपम, उसका स्वभाव अनुपम। अनन्त गुणोंसे भरा आत्मा है। अनन्त गुण, जहाँ उसकी निर्मल पर्याय प्रगट हो, वह अनुपम है उसका आनन्द। उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। वह कोई अनुपम है। विकल्प टूटकर जो स्वानुभूतिका आनन्द आये वह अनुपम है। कोई उपमा नहीं है कि उसके साथ मेल आवे।

मुमुक्षु :- बहिनश्रीको लिपटकर रहेंगे उनका भी बेड़ा पार है। तत्त्व भले कम समझे।

समाधान :- गुरुदेवके चरण मिले वह सब भाग्यशाली है। पंचमकालमें गुरुदेवके चरण सबको लंबे समय तक मिले हैं। वाणी बरसायी है। ऐसे कालमें ऐसे महा सत्पुरुषका योग प्राप्त होना, बहुत मुश्किल दुर्लभ है।

मुमुक्षु :- ऐसी ताकत है कि नित्य निगोदमेंसे मनुष्य भवमें प्रथम बार आकर

सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सके? पूर्व संस्कार कुछ भी नहीं हो तो भी।

समाधान :- मनुष्य होकर प्राप्त कर सकता है। आत्मा है न। उसे पूर्व संस्कार हो तो ही (प्राप्त हो ऐसा नहीं है)। वह जबसे करे तबसे संस्कार। जबसे करे तबसे शुरूआत होती है। मनुष्य भव प्राप्त कर तुरन्त प्राप्त कर सकता है। निगोदमेंसे निकलकर हुए हैं, फिर राजाके कुंवर हुए हैं, मुनि हो गये। उसे कोई लंबा काल नहीं चाहिये। आत्माका स्वभाव स्वयं स्वभावसे ही भरा है। स्वभावमेंसे स्वभाव प्रगट होता है। इसलिये उसे कालकी या लंबे संस्कारकी जरूरत नहीं पड़ती। जबसे करे तबसे संस्कार। स्वयं संस्कारसे ही भरा है। स्वयं स्वभाव ही ऐसा है कि उसमेंसे प्रगट हो।

.. लागू नहीं पड़ता। पानीका शीतल स्वभाव उसमेंसे प्रगट होता है। वह सिर्फ मलिन हो गया है। इसलिये उसमें अमुक औषधि डाले तो निर्मलता प्रगट होती है। वैसे यहाँ स्वयंमें भरा है, कुछ बाहरसे नहीं लाना पड़ता। बाहर वाणी मिले, गुरुका उपदेश मिले, देव मिले एकदम स्वयं पुरुषार्थ करे तो स्वयं अन्दरसे प्रगट होता है। वह स्वयं अपनेमेंसे उछलता है।

जैसे कहते हैं न, समुद्र मध्यबिन्दुमेंसे उछलता है। वैसे अपना स्वभाव स्वयं पुरुषार्थ करे तो अपनेमेंसे प्रगट होता है। अनादि कालसे उसका अभ्यास नहीं है इसलिये उसे देव-गुरु-शास्त्र आदि निमित्त मिलते हैं।

मुमुक्षु :- ऐसा शक्तिवान पदार्थ है, उसे ख्यालमें नहीं आया?

समाधान :- अज्ञानके कारण ही ख्यालमें नहीं आया। अनादिकालसे उसीमें जो प्रवाह है उस प्रवाहमें चला जाता है। अनादिसे वापस ही नहीं मुड़ता है। कोई दर्शानेवाले मिले तो उसे अन्दर रुचि हो तो वह समझता है, नहीं तो अपने प्रवाहमें अनादिसे चला जाता है। जो प्रवाह चला, शुभाशुभ भावका प्रवाह चला उसमें चला जाता है। शुभभाव करके स्वर्गमें गया। तो स्वर्गका भव अनन्त कालमें अनन्त बार मिले। तो भी उसीमें परिभ्रमण करता है। सब भव उसने अनन्त बार किये।

मुमुक्षु :- पर्याय जो शुद्धतारूप रहनी चाहिये वह क्यों नहीं टिकती?

समाधान :- उसका एक ही कारण है, स्वयंका ही कारण है, उसे दूसरा कोई कारण लागू नहीं पड़ता। अपनी मन्दता है, पुरुषार्थकी मन्दता है। दूसरा कोई उसे रोकता नहीं, कर्म रोकता नहीं, कोई रोकता नहीं है। अपनी मन्दताका कारण है। स्वयं बाहर दौड़ता है और अतंरमें जाना वह अपने हाथकी बात है। अनादि कालसे स्वयं ही स्वंयके कारण जन्म-मरण होते हैं और जीव मोक्ष जाता है तो अपने पुरुषार्थसे जाता है। स्वयं करे तो होता है। स्वयं परिणति बदले, मुक्तिकी पर्याय प्रगट करनी वह जीवकी अपने हाथकी बात है। और बाहर जो एकत्वबुद्धि करता है वह भी अपना कारण

है, अन्य किसीका कारण नहीं है। ... मार्ग बताया, परन्तु पुरुषार्थ करना अपने हाथकी बात है। गुरुदेवने कहा है, तू स्वयं स्वतंत्र है। इसलिये तू कर तो होगा।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- करना तो स्वयंको ही है। पूरा बदलाव लाना है, तीव्र हो तो होता है। जैसा कारण अपना वैसा कार्य आवे। मन्द कारण हो तो मन्द कार्य आवे और तीव्र कारण हो तो तीव्र आवे। भेदज्ञान तो स्वयं स्व-परको दोनोंको भिन्न करना है। स्वभाव और स्वभावको। जोरदार कारण हो, तीव्र पुरुषार्थ हो तो हो सकता है। लगन और उतना पुरुषार्थ हो तो होता है। उसकी झंखना, क्षण-क्षणमें उसकी झंखना हो तो होता है।

.. भावना करते रहना, पुरुषार्थ करना अपने हाथकी बात है। न हो तब तक भावना करते रहना। शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो, उसकी। पुरुषार्थका अभ्यास करना। न हो तो भावना करनी। उसका भेदज्ञानका अभ्यास क्षण-क्षणमें करे, भावना करता रहे, पुरुषार्थ हो तो करे, न हो तो भावना रखनी। ये चैतन्यका स्वभाव, यह विभाव स्वभाव है। विभाव आकुलतारूप है, चैतन्यका स्वभाव शान्तिरूप, आनन्दरूप, ज्ञाता स्वभाव ज्ञायक है। परको कर नहीं सकता, स्वयं अपने स्वभावका कर सकता है। विभाव परिणाम सब आकुलतारूप है। स्वयं शान्तिरूप और अपनेमें परिणमन करनेवाला है। पर पदार्थकी ओर उसकी एकत्वबुद्धि करता है, वह उसकी भूल और भ्रान्ति है। उसमेंसे कैसे छूटकर भेदज्ञानका अभ्यास करना, बस, उसका अभ्यास करना, उसकी भावना करनी। पुरुषार्थ जो हो सके वह करना। बाकी पुरुषार्थका कारण अपनी मन्दताका कारण है, नहीं होता है वह। तीव्रता हो तो होता है। परन्तु उसके लिये कोई आकुलता काम नहीं करती। उसकी भावना रखकर धैर्य रखकर शान्तिसे कार्य हो ऐसा है।

समाधान :- .. भावना रखनी। तीव्रता हो तो ... स्वभाव ही ऐसा है। गुरुदेवने भवका अभाव होनेका मार्ग बताया। जन्म-मरण कैसे टले? मुक्तिका मार्ग अंतरमें है। अंतरमेंसे खोजनेका प्रयत्न करना चाहिये। इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले तो मुक्तिका मार्ग दर्शाया। .. दृष्टि करवायी, चैतन्यको कोई पहचानता नहीं था। बाहरसे क्रिया करे तो धर्म होता है, ऐसा मानते थे।

... अनन्त जन्म-मरण किये उसमें इस आत्माको पीछानना। आत्मा शाश्वत है। कोई अद्भूत आत्मा है। ज्ञायकका रटन रखना। ज्ञायक कोई अलग (है)। उसमें आनन्द, उसमें अनन्त गुण, सब उसमें है। ये विभाव स्वभाव आत्मा नहीं। उसका भेदज्ञान क्षण-क्षणमें करना। विभावसे विरक्ति हो, स्वभावकी महिमा आवे। उसके लक्षणसे पीछानना कि यह .. ही है। जो जाननेवाला, जिसमें चेतनता है, जाननेवाला है वह आत्मा

है। स्वमें एकत्व (करे)। मैं चैतन्य शाश्वत अनादिअनन्त हूँ। अनन्त जन्म-मरण किये तो भी चैतन्य तो वैसाका वैसा शाश्वत है। उसके अनन्त गुण या उसका स्वभाव नाश नहीं हुआ। वैसा का वैसा है। उसे पीछानना, वह उपाय है। उसे पीछाननेका प्रयत्न करना, उसका विचार करना, उसका अभ्यास करना। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और आत्माकी महिमा अंतरमें रखकर तत्त्वका विचार करना, यह उसका उपाय है।

अनन्त कालसे परपदार्थ.. स्व-परकी एकत्वबुद्धि हो रही है। एकत्वबुद्धि तोड़नी। परके द्रव्य-गुण-पर्याय और स्व द्रव्य-गुण-पर्याय दोनों भिन्न हैं, उसे भिन्न करना। यह उसका उपाय है। आत्मा कोई अपूर्व अद्भूत वस्तु है। उसे प्राप्त करनेके लिये उसके विचार, उसकी प्रतीत, उस जातकी लीनता वह सब करने जैसा है।

उसे लक्षणसे पीछानना। आत्मा स्वयं ज्ञानलक्षण है। कोई वस्तुको पीछाननी हो तो लक्षणसे पीछानते हैं न? भिन्न करना। शक्करका मीठा स्वभाव है, कालीजीरीका कड़ुआ स्वभाव है। उसे स्वभावसे पीछाना जाता है। वैसे आत्माका जाननेका लक्षण है। ये पुद्गल कुछ जानता नहीं। जो जानता है वह मैं हूँ। जिसमें आनन्द है, जो जानता है वह मैं हूँ। इस प्रकार लक्षणसे पहिचान। लक्षणको पीछाने बिना वह भिन्न कैसे होगा? इसलिये लक्षणसे पीछानना।

अनादिका अनजाना पहचाना नहीं जाता। लक्षणसे पीछान। और गुरुदेव मार्ग दर्शाते हैं कि तू भिन्न कोई अपूर्व है। ये जो अनादिका है वह अपूर्व नहीं है। वह सर्वस्व नहीं है, वह रखनेयोग्य नहीं है। आत्मा है वही रखनेयोग्य और आनन्दरूप है। ये सब तो दुःखरूप है। इतनी प्रतीत अंतरमेंसे आनी चाहिये। उसका ज्ञानलक्षण कभी नाश नहीं हुआ। वह जाननेवाला सदा जाननेवाला ही है। अंतरमेंसे शान्ति आवे, अंतरमेंसे ज्ञान आवे, अंतरमेंसे अनन्त गुणकी पर्यायें अंतरमेंसे प्रगट होती है। बाहरसे कुछ नहीं आता है।

उसकी लगन लगाते रहना। उसका पुरुषार्थ करते रहना, उसका अभ्यास करते रहना। जब तक नहीं होता तब तक चैतन्य हूँ, मैं चैतन्य हूँ, मैं चैतन्य हूँ, उसकी भावना करता रहे, उसका प्रयास करते रहना, भेदज्ञान करनेका।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६१

समाधान :- ... परन्तु वह तो वहीका वही है, अन्य नहीं है। जो स्वयंकी स्वप्रकाशनकी दशामें और परप्रकाशनकी दशामें, दोनोंमें एक ही है, अन्य कोई ज्ञायक नहीं है। ज्ञायक जो है वही है। जो ज्ञायक स्वानुभूतिमें ज्ञात हुआ वह ज्ञायक, और जो ज्ञायक, बाहर उपयोग जाय तो भी ज्ञायक, वह दोनों ज्ञायक तो एक ही है। अन्य ज्ञायक नहीं है, ज्ञायक तो वहीका वही है। कोई भी दशामें ज्ञायक वहीका वही है। कोई भी दशा, प्रमत्त-अप्रमत्तकी दशा हो, चौथे गुणस्थानकी दशा हो, पाँचवे गुणस्थानकी दशा हो, कोई भी हो, तो ज्ञायक पर जो दृष्टि है, ज्ञायककी जो धारा है, ज्ञायक शाश्वत जो अनादिका है, वह ज्ञायक तो वहीका वही है, अन्य ज्ञायक नहीं है। ज्ञायक वहीका वही है। स्व-पर प्रकाशनकी दशामें ज्ञायक (वही है)। अपनी ओर स्वानुभूतिके कालमें अथवा बाहर उपयोग हो तब भी ज्ञायक तो वही है, ज्ञायक कोई अन्य नहीं है। ज्ञायक अन्य नहीं है। ज्ञायक वहीका वही है।

मुमुक्षु :- वह ज्ञायक यानी ध्रुव ज्ञायक लेना या पर्यायमें जो ज्ञायकता प्रगट हुई वह लेना?

समाधान :- जो प्रगट हुआ वह ज्ञायक और अनादिका ज्ञायक, दोनों अपेक्षा उसमें है। उसे अनादिका ज्ञायक है, परन्तु उसका वेदन उसको कहाँ है? इसे वेदनपूर्वकका ज्ञायक है। अनादिका तो है ही, परन्तु यह प्रगट हुआ ज्ञायक है। अपने स्वरूपमेंसे कहीं बाहर नहीं आता है, ज्ञायक वह ज्ञायक ही है। दीपक स्वयं अपनी... दीपकको प्रकाशित करे या परको प्रकाशित करे, दीपक दीपक ही है। (वैस) ज्ञायक ज्ञायक ही है। ज्ञायक सो ज्ञायक ही है।

... पर दृष्टि नहीं है, परन्तु ज्ञायक पर दृष्टि है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है, बस! हमें ज्ञायक प्राप्त हो। ज्ञायककी परिपूर्णता प्राप्त हो। पर्याय पर लक्ष्य नहीं है। 'जो ज्ञात वो तो वोही है।' ज्ञायक सदाके लिये ज्ञायक वह ज्ञायक ही है।

मुमुक्षु :- आत्माके और पर्यायके प्रदेश भिन्न मानता है। रागके जो प्रदेश है, यदि रागके प्रदेशको भिन्न नहीं माने तो राग चला जाय तो आत्मा भी चला जाय। उसके प्रदेश चले जाय तो आत्माका भी चले जाय। तो भावभेदसे आत्माके प्रदेश भिन्न

है या वास्तवमें आत्मा द्रव्य और पर्यायके प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं?

समाधान :- भावभेदसे भिन्न है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव तो ऐसा कहते थे, ऐसा बहुत लोग कहते हैं।

समाधान :- पर्याय स्वयं स्वतंत्र है और द्रव्य स्वतंत्र है। दोनोंकी स्वतंत्रता दर्शाने हेतु उसके प्रदेश (भिन्न कहनेमें आते हैं)। पर्यायका और द्रव्यका स्वरूप भिन्न है। इसलिये उसके प्रदेश भिन्न है। परन्तु यदि चैतन्यकी विभावपर्याय जड़ ही करता हो तो उसे छोड़ना रहता नहीं, उसे कुछ पुरुषार्थ करना नहीं रहता है। विभावपर्याय होती है अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे और वह निज स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है, जिसका स्वभाव भिन्न उसका क्षेत्र भिन्न, वह वस्तु भिन्न आदि सब उसके भाव अपेक्षासे भिन्न कहनेमें आता है।

परन्तु जैसे दो द्रव्य स्वतंत्र हैं, एक चैतन्यद्रव्य, दूसरा जड़द्रव्य, वह दोनों स्वतंत्र हैं, वैसे ही द्रव्य और पर्याय वैसे ही स्वतंत्र हो तो पर्याय स्वयं ही द्रव्य हो जाय। तो वह दो द्रव्य भिन्न हो जाय। परन्तु दो द्रव्य भिन्न हैं, उसी अपेक्षासे द्रव्य और पर्याय उसी अपेक्षासे भिन्न हैं, ऐसा नहीं है।

द्रव्य स्वयं शाश्वत त्रिकाल है और अनन्त गुणसे भरा द्रव्य है और पर्याय क्षणिक है एवं एक अंश है। और द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय (सत्)। पर्याय भी एक सत् है। उसे सत् बतानेके लिये और वह भी एक सत् स्वरूप है, वह दर्शाने हेतु उसके प्रदेश भिन्न कहनेमें आते हैं। परन्तु वास्तवमें जैसा आत्माका क्षेत्र भिन्न है और जैसा क्षेत्र पुद्गलका भिन्न है, वैसा ही उसका क्षेत्र भिन्न हो तो दो द्रव्य हो जाय। पर्याय है वह द्रव्यके आश्रयसे होती है। पर्याय अकेली स्वतंत्र ऊपर-ऊपर नहीं होती है। इसलिये पर्यायको द्रव्यका आश्रय होता है। उस अपेक्षासे दो द्रव्य भिन्न हैं, वैसी ही पर्याय स्वतंत्र नहीं है। परन्तु अमुक अपेक्षासे उसकी पर्याय सत् है ऐसा बतानेके लिये, उसका भाव भिन्न है, इसलिये क्षेत्र भिन्न, इसलिये वस्तु भिन्न है, ऐसा कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान भिन्न, राग भिन्न। रागका प्रदेश निर्मल पर्यायके न माने, लेकिन रागका प्रदेश भिन्न माननेमें कोई दिक्कत आती है?

समाधान :- रागका प्रदेश भले ही भिन्न माने। उसमें कोई दिक्कत नहीं आती। परन्तु वह अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। ज्ञानकी निर्मल पर्याय है उसका तो वेदन होता है और निज स्वभावरूप परिणति है। और ये तो विभावरूप परिणति है। इसलिये उसके प्रदेशभेद माननेमें दिक्कत नहीं आती, परन्तु वह अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, उसका लक्ष्य होना चाहिये। वह बिलकूल जड़के ही हैं, तो स्वयंको पुरुषार्थ करना नहीं रहता है।

Apne PURUSARTH Ki Mandta (BHANG) Se Hi RAAG Hota Hai.

मुमुक्षु :- भावभेद मानो तो ही उसका फैंसला होगा।

समाधान :- हाँ, तो ही फैंसला होता है। वह है, वह उसकी पर्याय सत् है ऐसा बतानेके लिये है। परन्तु उसके ज्ञानमें ऐसा है कि ये भिन्न है-भिन्न है, भावभेद तो वैसे ही रहता है कि यह भिन्न है, यह भिन्न है। भेदज्ञान करनेवालेको ऐसा ही होता है कि ये राग भिन्न है और ज्ञान भिन्न है। राग भिन्न और ज्ञान भिन्न है। यह मैं ज्ञान हूँ और यह राग है। भावभेदसे भेद होनेके कारण वह भिन्न ही है। परन्तु अस्थिरता है वह उसके ज्ञानमें रहता है, वह मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। वह चैतन्यकी पर्यायमें होता है। परन्तु मेरा स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु :- बराबर बैठता है। प्रदेश दोनोंके भिन्न माननेमें तो आये तो दो द्रव्य हो जाय।

समाधान :- दो द्रव्य ही भिन्न हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- व्यवस्था टूट जाय।

समाधान :- सब व्यवस्था टूट जाय। उसका वेदन चैतन्यको हो ही नहीं तो विभावका वेदन... स्वभावपर्यायकी तो एक अलग बात है कि वह स्वभावकी पर्याय है। परन्तु ये विभाव है, उसका भले क्षेत्रभेद हो, क्योंकि वह निमित्त-ओरसे होता है। परन्तु पुरुषार्थकी मन्दतासे अपनी परिणति होती है, उतना उसे लक्ष्यमें रखना चाहिये। नहीं तो पुरुषार्थ करना ही नहीं रहता है।

मुमुक्षु :- अभी मेरी एक जगह बात हुयी, सत्संगमें चर्चा हुयी तो उसमें ऐसी बात आयी, उस भाईने ऐसे बात कही कि, आज तक जो कुछ किया है, उस पर रेखा नहीं खींची जाय, चौकड़ी मारनेमें नहीं आये तो निश्चय प्रगट नहीं होता। अर्थात् मन्द कषाय करते.. करते.. करते... धर्म प्रगट हो जायगा, या धारणा ज्ञान मजबूत करते-करते निश्चय प्रगट हो जायगा, ऐसा तीन कालमें बने नहीं। तो आपने एक बार कहा था कि, धारणा ज्ञान भी मजबूत हो तो दूसरे भवमें संस्कारूपमें काम आयेगा। तो वह आश्वासनरूप है या हक़ीकतरूप है?

समाधान :- नहीं, नहीं। धारणाज्ञान यानी वह धोखनेरूप ज्ञान समझना कि यह अजीव है, अजीव है, ऐसे। धारणाज्ञान यानी वैसा ज्ञान। धारणाज्ञान या कषाय मन्द करेंगे तो धर्म होगा, मन्दता उसका साधन है, ऐसी मान्यतासे उसे नुकसान है। वह उसे साधन नहीं होता। धारणाज्ञान उसे वास्तविक साधन नहीं होता। उसका वास्तविक साधन धारणाज्ञान नहीं, परन्तु अंतरमें स्वयं दृष्टि करे, अपना ज्ञान स्वयंका साधन होता है, परन्तु बीचमें वह आता है।

धारणाज्ञान यानी रटा हुआ ज्ञान ऐसा नहीं। परन्तु मैं यह चैतन्य हूँ, यह स्वभाव

भिन्न है, यह विभाव भिन्न है। ज्ञानने स्वयंने बुद्धिसे जो नक्की किया है, वह नक्की किया है उसका अभ्यास करता है। धारणाज्ञान, बहुत लोग शास्त्र धोख लेते हैं, ऐसा धारणाज्ञान काम नहीं आता। बीचमें उसे जानपना है उतना उसे कुछ निमित्त बने, बाकी (कोई कार्यकारी नहीं है)।

परन्तु यह जो स्वयं अभ्यासपूर्वक करता है, वह उसे वास्तविक साधन तो नहीं है। वास्तविक साधन तो उसका जो स्वभाव है वही उसे साधन होता है। परन्तु वह बीचमें आता है। उसे व्यवहारसे साधन कहनेमें आता है। व्यवहार साधन। व्यवहार साधन न कहे तो फिर... पहलेसे तो वह अंतरमें जा नहीं सकता है, इसलिये मुमुक्षुको क्या करना रहता है? यथार्थ रुचि और मैं चैतन्य हूँ, ऐसी भावना करे वह तो बीचमें आये बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- आये बिना रहता नहीं, वह बात तो बराबर है लेकिन उसे साधन मानने जाय तो ...

समाधान :- नहीं, वास्तविक साधन है ऐसा नहीं। मूल साधन तो द्रव्य स्वभावमेंसे पुरुषार्थ उठकर, अंतरमेंसे जो उठे वह वास्तविक साधन होता है। परन्तु वह बीचमें आता है, व्यवहार साधन कहनेमें आता है।

जैसे अनादि कालसे गुरुका उपदेश और जिनेन्द्रका उपदेश उसे निमित्तरूपसे देशनालब्धि होती है, तो वह भी उसे एक साधन निमित्तरूपसे कहनेमें आता है। उपादान होता है अपनेसे, परन्तु अनादि कालसे ऐसा सम्बन्ध है कि बीचमें गुरुका उपदेश और जिनेन्द्रका उपदेश, अनादि कालका अनभ्यासी (जीव है), जिसे कुछ प्रगट नहीं हुआ, उसे एक बार ऐसी देशना मिलती है, अन्दरसे देशना लब्धि ग्रहण होती है स्वयंसे, उपादान स्वयंका है परन्तु उसमें निमित्त जिनेन्द्र देव और गुरुका बनता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। वैसे जो स्वयं रुचि करता है, मात्र धारणाज्ञान (करता है), उसे रुचि ही नहीं है, ऐसा धारणाज्ञान धोख लिया है, वह नहीं। परन्तु वह बुद्धिसे नक्की करता है कि मैं यह ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ ऐसे जो भेदके विकल्प आते हैं, वह विकल्प तो बीचमें आये बिना नहीं रहते। परन्तु वह विकल्प उसे वास्तविक साधन होता है या भेद उसे वास्तविकरूपसे साधन होता है, ऐसा नहीं है।

साधन तो अपनी परिणति जो अंतरमेंसे उछलती है वही उसका साधन है परन्तु वह बीचमें आता है। वह बीचमें आये बिना नहीं रहता। जैसे निमित्त-उपादानका सम्बन्ध गुरु एवं स्वयंकी देशनालब्धिका है, वैसे ही यह ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, साधनामें ऐसे भेदविकल्प आये बिना नहीं रहते।

जो स्वानुभूति करे उसे जो द्रव्य पर दृष्टि है, उसे भी ऐसे भेद विकल्प बीचमें

NIRVIKALP Dasha Ka Saadhan Swayam Apni Parinati Hai

तो होते हैं। परन्तु उस पर वह रुकता नहीं। उसकी दृष्टि द्रव्य पर है। वैसे रुचिवाला है, उसको विकल्प सब आते हैं, परन्तु वह उसमें रुकता नहीं। वास्तविक साधन तो मैं द्रव्य पर दृष्टि करके जो अंतरमेंसे मेरी परिणति प्रगट हो, वही मेरा वास्तविक साधन है। परन्तु बीचमें उसे रुचिके साथ ये सब-मैं चैतन्य हूँ, मैं ज्ञान हूँ ऐसा अभ्यास आये बिना रहता नहीं। वह बीचमें अमुक प्रकारसे आता है।

जैसे गुरुका उपदेश बीचमें होता ही है, वैसे ये अमुक जातके विकल्प शुभ हैं, वह बीचमें आते हैं। मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, वह सब भेदविकल्प है। लेकिन उसकी दृष्टि, मैं तो अनन्त गुणका पिण्ड चैतन्य जो अस्तित्व (है), जो चैतन्य हूँ सो हूँ अस्तिरूप, उसमें विकल्प साधन नहीं होता। उसे विकल्प तोड़नेमें विकल्प साधन नहीं होता। निर्विकल्पका साधन विकल्प नहीं होता। निर्विकल्प दशाका साधन स्वयं अपनी परिणति निर्विकल्परूप परिणमे, वह साधन है। परन्तु यह बीचमें आये बिना नहीं रहता। परन्तु उसे ज्ञानमें ऐसा होना चाहिये कि यह व्यवहार है, यह वास्तविक नहीं है। उसके ज्ञानमें ऐसा होना चाहिये। उसे सर्वस्वता नहीं मान लेनी कि ऐसा करते-करते होगा। परन्तु उसकी दृष्टि अस्तित्व ग्रहण करने पर होनी चाहिये कि मैं मेरा अस्तित्व कैसे ग्रहण करुं? दृष्टि उस ओर होनी चाहिये। परन्तु स्वभावकी खोज करनी कि यह ज्ञान है, दर्शन है, ऐसे खोज करनेके विचार उसे आये बिना नहीं रहते।

मुमुक्षु :- आये बिना नहीं रहता यह बराबर है, लेकिन उसकी रुचि हो जाय तो निश्चय प्रगट नहीं होता न? क्योंकि व्यवहार है वह असत्यार्थ है, अभूतार्थ है।

समाधान :- उसकी रुचि यानी उसीमें अटक जाना ऐसा तो होना ही नहीं चाहिये। दृष्टि तो आगे बढ़नेकी होनी चाहिये। उसमें अटक जाना ऐसा नहीं होना चाहिये। परन्तु वह तो बीचमें आता है। आचार्यदेव कहते हैं, हम आपको तीसरी भूमिकामें जो अमृतकुंभ भूमिकामें जानेको कहते हैं, वहाँ नीचे-नीचे मत गिरो। जो शुद्ध भूमिकामें जानेको कहते हैं, उसमें शुभ छोड़कर अशुभमें जानेको नहीं कहते हैं। परन्तु शुद्धकी भूमिकामें जानेको कहते हैं। उसमें बीचमें यह शुभ तो आता है, परन्तु वह सर्वस्व है ऐसा नहीं मानना। शुद्ध भूमिका-अमृतकुंभ भूमिका कैसे प्रगट हो, दृष्टि वहाँ होनी चाहिये। रुचि तो वहाँ होनी चाहिये। परन्तु रुचि वहाँ है। बीचमें ये सब जो व्यवहार है वह आये बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- एक अंतिम प्रश्न पूछता हूँ कि निर्विकल्प और सविकल्प। तो ज्ञानीको निर्विकल्पपना कितने समयमें आता है? क्षयोपशमवालेको आना जरूरी है। क्षायिक समकितीको लड़ाईके मैदानमें जाय और साठ हजार वर्ष तक वापस न आये तो उसमें

बीचमें निर्विकल्प दशा आती है? अथवा कितना समय नहीं आये तो वह टिक सके?

समाधान :- उसकी अमुक जातकी दशा होती है उस अनुसार आती है। किसीको जल्दी आये, किसीको लंबे समय बाद आये। उसका निश्चित नहीं होता। किसीकी परिणति एकदम स्व-ओर मुड़ी हुई हो तो जल्दी आती है, किसीकी परिणति अमुक कार्योंमें रुका रहे तो उसे अमुक कालके बाद आती है।

मुमुक्षु :- उसकी कोई हद है? कोई लिमिट है कि दो-चार-छः महिनेमें जैसे कषाय पलटा नहीं खाये.. छः महिनेमें निर्विकल्पता नहीं आये तो ज्ञानसे च्युत हो जाय?

समाधान :- अमुक समयमें आना तो चाहिये ही, ऐसा नियम तो है।

मुमुक्षु :- ऐसा पूछना चाहते हैं कि, पाँच-दस साल तक न आये, ऐसा हो सकता है?

समाधान :- नहीं, ऐसा नहीं होता। पाँच-दस साल तक नहीं आये ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु :- क्षायिक समकिती जो लड़ाईके मैदानमें जाते होंगे तो उन्हें निर्विकल्पता लड़ाईके मैदानमें आये?

समाधान :- उसे पाँच-दस साल निकल जाय, पाँच साल (निकल जाय) ऐसा नहीं बनता। लड़ाईके मैदानमें परिणति पलट जाय तो आये भी। न आये ऐसा नहीं बनता। एक श्रावकका आता है न? लड़ाईमें बैठे-बैठे विचार पलट गये तो मुनिपना ले लूँ, ऐसा विचार आया। लोंच करता है उस वक्त। ऐसा हो जाता है। लड़ाईके मैदानमें भी अंतर्मुहूर्तमें भाव पलट सकता है।

मुमुक्षु :- और लड़ाई कहाँ चौबीस घण्टे चलती है।

समाधान :- चौबीस घण्टे लड़ाई थोड़े ही चलती है। दो राजके कुँवर घोड़े पर बैठे थे और उन्हें विचार आ गया कि ये क्या लड़ाईके कार्य? मुनिपनाकी भावना होती है, अंतरमेंसे एकदम परिवर्तन हो जाता है। आये ही नहीं ऐसा नहीं होता।

वैसे स्वानुभूति न आये ऐसा नहीं होता। शास्त्रमें उसका नियमित काल आता नहीं, परन्तु पाँच साल जितने वर्ष नहीं निकल जाते। उसे अमुक महिनोंमें, अमुक समयमें ही आती है, उतना लम्बा काल नहीं लगता। कितनोंको तो बहुत जल्दी आती है। गृहस्थाश्रममें रहनेवाले हो तो भी उसे इतना लम्बा काल नहीं चला जाता।

मुमुक्षु :- मेरी चर्चा यह है कि क्षयोपशम समकितीमें तारतम्यताके भेद पड़ते हैं, इसलिये उसमें तो आना जरूरी है। परन्तु क्षायिक समकितीको देर भी लगे, उसमें कोई नियम नहीं है।

समाधान :- नहीं, नहीं। क्षायिकवालेको देरसे नहीं आती, क्षायिकवालेको जल्दी आती है। क्षयोपशमवालेको जल्दी आये और क्षायिकवालेको देर लगे, ऐसा नहीं बनता।

मुमुक्षु :- ऐसे कोई परिग्रहमें पड़ गया हो तो देर भी लगे।

समाधान :- नहीं, नहीं। क्षायिकवालेको देर नहीं लगती। भले बाहरसे चाहे जितना परिग्रह हो। क्षायिकवालेकी परिणति तो ज्यादा दृढ़ है। उसे देर नहीं लगती।

मुमुक्षु :- सुरतमें कुछ चर्चा हुयी थी।

समाधान :- क्षायिकवालेको देर नहीं लगती।

मुमुक्षु :- सुरतमें नहीं, पालनपुरमें जो नगीनभाई है उन्होंने मुझे ऐसे समझाया।

समाधान :- नहीं, नहीं। क्षयोपशमवालेको जल्दी आये और क्षायिकवालेके देर लगे ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु :- नहीं, क्षायिकवालेको जल्दी हो, परन्तु कोई क्षायिकवाला लड़ाईके मैदानमें गया हो तो देर भी लगे, ऐसा हो सकता है।

समाधान :- नहीं, नहीं। क्षायिकवालेको देरसे नहीं होती।

मुमुक्षु :- समकित होनेका मूल कारण अपना उपादान और व्यवहारसे ज्ञानीके प्रति अर्पणबुद्धि नहीं आयी है, ऐसा हो सकता है? दूसरे सब व्यवहारका छेद करे तो?

समाधान :- मूल कारण अन्दर आत्मस्वभावकी ओर रुचिका पलटा करे। तो जिसे आत्माकी रुचि होती है उसे, जिन्होंने प्रगट किया ऐसे गुरु पर, देव-गुरु-शास्त्र पर उसे अर्पणता आये बिना नहीं रहती। उसे उनकी महिमा आये बिना नहीं रहती। जो अंतरमें जाय, उसे सच्चे देव-गुरु पर महिमा आती ही है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक (सम्बन्ध है)। देशनालब्धिका जैसा सम्बन्ध है, वैसे अंतरमें जो रुचिवाला है उसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र हृदयमें आये बिना नहीं रहते। फिर बाह्य कार्य क्या भजे, उसे कितना सान्निध्य मिल वह एक अलग बात है, परन्तु उसके हृदयमें आ जाते हैं। ... रुचि भले अपनी ओर जाती है, परन्तु उसके जो साधन हैं, जिन्होंने वह प्रगट किया है, उसकी महिमा उसके हृदयमें आये बिना नहीं रहती।

मुमुक्षु :- मुख्यमें मुख्य साधन ज्ञानीके प्रति अर्पणबुद्धि आनी, उसमें सब समा जाता है?

समाधान :- मुख्यमें मुख्य साधन ज्ञानी पर अर्पणातबुद्धि परन्तु... अर्पणबुद्धि निज चैतन्यकी महिमापूर्वक होनी चाहिये। मुझे चैतन्य प्रगट हो, ऐसी उसकी बुद्धि होनी चाहिये। ऐसा होना चाहिये। अकेली अर्पणतामें सर्वस्व मान ले और इसमेंसे ही मुझे सब होगा, ऐसी दृष्टि नहीं होनी चाहिये। आत्मा-ओरकी रुचि, सर्व विभावसे मुझे न्यारापन हो,

आत्माकी रुचि तो होनी चाहिये। उसके साथ अर्पणता होनी चाहिये। मुख्य साधन अर्पणता, तत्त्व विचार वह सब साधन हैं। अंतरकी विरक्ति, अन्दर विभावसे, बाह्य संयोगसे विरक्ति, विभाव-ओरसे विरक्ति। ये विभाव नहीं चाहिये। विभावकी विरक्ति चाहिये। तत्त्वका विचार चाहिये, स्वभाव कैसे ग्रहण हो? और स्वभाव जिसने ग्रहण किया ऐसे देव-गुरु-शास्त्रकी ओरसे मुझे मार्ग मिले। अतः देव-गुरु-शास्त्रकी अर्पणता आये। सब साथमें होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीकी ओर अर्पणता किये बिना ज्ञान होता नहीं, ऐसा श्रीमद्में आता है न?

समाधान :- ज्ञानीकी ओर अर्पणता किये बिना...?

मुमुक्षु :- ज्ञान होता नहीं।

समाधान :- वह सत्य है। परन्तु वह ऐसा माने कि बाहरका मुझे क्या काम है? मैं अपनेआप समझ लूँगा। यदि ऐसी दृष्टि हो तो उसे ज्ञान परिणमता नहीं। ज्ञानी क्या कहते हैं? ज्ञानिओंने क्या मार्ग बताया है? उसका आशय समझनेके लिये उतनी महिमा होनी चाहिये। मैं मेरेसे समझूँ और निमित्तका क्या काम है? ऐसी दृष्टि उसकी हो तो वह जूठा है, तो स्वच्छन्दबुद्धि है। मुझसे समझना है। ज्ञानी क्या कहते हैं? जिन्होंने मार्ग प्राप्त किया वे क्या कहते हैं? ऐसी बुद्धि होनी चाहिये। स्वयं अपनेसे समझता नहीं है तो जिन्होंने मार्ग समझा है, उन पर उसे अर्पणता आये बिना नहीं रहती।

मुमुक्षु :- आपकी वाणी सुनते हैं तो इतनी मुधर लगती है कि सुनते ही रहें। कितनी बार तो विरह लगता है, आहा..! ऐसी बात कहाँ सुनने मिलती है।

मुमुक्षु :- आज तो माताजीने बहुत धोध बहाया।

समाधान :- ... निर्विकल्प दशा अमुक हो, और क्षायिकवालेको वैसे हो, ऐसा नियम नहीं होता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६२

समाधान :- ... ये जो विभाव है, विभावका लक्षण दिखता है वह आकुलतारूप है, विपरीत भाव है। मेरा स्वभाव आनन्दरूप, शान्तिरूप, ज्ञायकता (है)। ज्ञायकतत्त्व है वही मैं हूँ। उसका अद्भुत आनन्द तो उसे निर्विकल्प दशा होती है तब प्रगट होता है। परन्तु उसे ज्ञायकता तो पहिचानमें आती है। इसलिये ज्ञायकलक्षणको पहिचानना। उसका ज्ञान, उसकी दृष्टि, उसकी लीनता सब उसमें करे। बाहर विभावकी महिमा टले और विभावमें आकुलता लगे, उसकी विरक्ति हो तो स्वभावकी ओर स्वयं जाता है। और उसे यथार्थ लक्षणसे पहिचानना, यह उसका उपाय है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। स्वयंको पहिचानकर, उस पर यथार्थ दृष्टि करके उसमें लीनता करे। लेकिन उसके लिये तत्त्व विचार आदि करना। यथार्थ वस्तुका स्वरूप पहिचाननेका प्रयत्न करना।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्र तो उसके हृदयमें होते हैं। जिन्होंने प्रगट किया उनकी महिमा और उसका हेतु क्या? कि ज्ञायकतत्त्वको पहिचानना है। पहिचाना जाता है स्वयंसे, अपने पुरुषार्थसे पहिचान होती है। जैसे स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, उसमें प्रतिबिंब जो बाहरसे उठते हैं, लाल-काले फूलके, वह प्रतिबिंब (स्फटिकका) मूल स्वभाव नहीं है। स्फटिक स्वभावसे निर्मल है।

वैसे आत्मा स्वभावसे निर्मल है। शुद्धात्मा अनादिअनन्त (है)। उसका नाश नहीं हुआ। अनादिअनन्त उसके अनन्त गुण ज्योंके त्यों हैं। जैसे स्फटिक निर्मल है, वैसे आत्मा निर्मल है। जैसे पानी स्वभावसे शीतल और निर्मल है, वैसे आत्मा निर्मल है। परन्तु विभाव उसे हुआ है निमित्त-ओरसे, परन्तु अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। स्फटिकमें जो लाल-काले फूलके निमित्तसे (प्रतिबिंब) उठे, परन्तु परिणमन स्फटिकके स्वयंकी पुरुषार्थकी मन्दताके कारण विभाव होता है। अतः पुरुषार्थ अपनी ओर बदलकर, मैं शुद्धात्मा चैतन्य हूँ, ये विभाव मैं नहीं हूँ, (ऐसा भेदज्ञान करना)। फिर तुरन्त सब टल नहीं जाता। अल्प अस्थिरता रहती है। ... गृहस्थाश्रममें हो, परन्तु उसकी भेदज्ञानकी धारा चालू ही रहती है। क्षण-क्षणमें उसे भेदज्ञान वर्तता है।

परन्तु पहले उसे मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ ऐसा अभ्यास अंतरसे होना चाहिये। पहले ऊपर-ऊपरसे हो उससे होता नहीं, बीचमें वह विचार आये, परन्तु अंतरसे

अभ्यास होना चाहिये। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी लगन उसे दिन और रात, मैं ज्ञायक हूँ, मैं यह नहीं हूँ, यह विभाव से मैं नहीं हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी लगन अंतरमें लगनी चाहिये, तो हो। तो शक्तिमेंसे प्रगट हो। ज्ञायककी विशेष भेदज्ञानकी धारा चले तो उसे विकल्प टूटकर निर्विकल्प दशा होकर स्वानुभूतिका तो प्रसंग आता है। परन्तु उसे पहले ज्ञायककी धारा (चलनी चाहिये)।

मुमुक्षु :- ज्ञायक होनेके पूर्व क्या विचार करना?

समाधान :- पहले सच्चा समझ (करके) उसका लक्षण पहिचानना। ज्ञायक होने पूर्व उसका लक्षण पहिचाननेका प्रयत्न करे। तत्त्वका विचार करे। मैं कौन हूँ? ये पर कौन हूँ? उन सबका यथार्थ विचार करे। तत्त्व समझनेका पहले विचार करना। सच्ची समझ होनेके विचार करे। उसका मंथन, उसका घोलन, उसकी लगन सब करे। यथार्थ विचार (करे)। समझनेका विचार। ज्ञायक होने पूर्व उसके विचार, गहरे विचार करे। और विचारको टिकानेके लिये शास्त्रका अभ्यास करे। ज्यादा जाने तो ही हो, ऐसा नहीं है। परन्तु मूल प्रयोजनभूत (तत्त्वको) समझनेका प्रयत्न करे। प्रयोजनभूत तत्त्वको विचारसे जानना चाहिये। विचार करके निर्णय करना कि, यह ज्ञायक है वही मैं हूँ। ऐसे यथार्थ प्रतीत करनी। यह मैं नहीं हूँ और यह ज्ञायक है वही मैं हूँ।

मुमुक्षु :- शहरका जीवन और प्राथमिक मुमुक्षुके लिये दो शब्द।

समाधान :- शहरमें तो... मुमुक्षुकी भावना ऐसी होती है कि जहाँ देव-गुरु-शास्त्र विराजते हों, जहाँ साधर्मीओंका संग मिलता हो तो उसकी रुचिका पोषण हो। ऐसी उसकी अन्दर भावना रहे कि ऐसे संगमें रहना। ऐसी भावना रहे। सद्गुरुका उपदेश मिलता हो या कोई साधर्मीका संग मिलता हो। उसमें मुमुक्षुता अधिक दृढ़ होनेका कारण बनता है। लेकिन वैसे संयोग न हो तो... ऐसे बाहरके संयोग न हो तो भी उसे भावना तो ऐसी ही होती है कि मुझे अच्छा संग मिले। निमित्तोंकी भावना रहे। परन्तु उपादान तो अपना तैयार करना पड़ता है। जहाँ रहता हो, बाहर दूसरे देशमें, उसके संगमें या देव-गुरु-शास्त्रके संगमें रहता हो, परन्तु उपादान स्वयंको तैयार करना पड़ता है। परन्तु उसे ऐसा आये बिना नहीं रहता कि, मुझे देव-गुरु मिले, साधर्मीओंका संग मिले, गुरुका उपदेश मिले, ऐसी भावना उसे रहती है। और वैसा संयोग जहाँ दिखाई दे, वहाँ रहता भी है। और वहाँ बस भी जाय। परन्तु मुमुक्षुको यह सब बीचमें होता है। बाहरके दूसरे साधनोंमें तो उसका उतना पुरुषार्थ न हो तो उसको टिकना मुश्किल पड़ता है। पुष्टि होनी, मुमुक्षुताकी पुष्टि होनी मुश्किल पड़ता है, बाह्य संगमें।

मुमुक्षु :- असत् प्रसंग छोड़ने चाहिये न?

समाधान :- हाँ, छोड़नेकी उसे भावना आये। उसे ऐसा हो कि यह छूट जाय,

अच्छे संगमें जाय, छोड़ दे। उसके ऐसे संयोग न हो, न छूटे तो क्या करे? स्वयं अपने उपादानकी तैयारी करे। बाह्य संयोग ऐसे हो कि छूटे ही नहीं, तो करे क्या?

मुमुक्षु :- स्वसंवेदन कब होता है?

समाधान :- स्वसंवेदन तो आत्माको पहिचाने, पहले आत्मा-ज्ञायकको पहिचाननेका प्रयत्न करे। आत्माका क्या स्वरूप है? ऐसे ज्ञायकको पहिचाननेका प्रयत्न करे। लगन लगाये, दिन-रात उसकी झँखना हो कि मुझे ज्ञायक कैसे पकड़में आय? ज्ञायक ग्रहण हो, ज्ञायककी भेदज्ञानकी उग्रता हो कि मैं यह चैतन्य हूँ, अनन्त गुणसे भरपूर (हूँ)। ऐसा विकल्प नहीं, अपितु ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करे। ज्ञानमें जाने कि अनन्त शक्तिसे भरपूर मैं चैतन्यतत्त्व कोई अद्भुत हूँ! उसे ग्रहण करे, उसकी उग्रता करे, ज्ञायकताकी उग्रता करे। क्षण-क्षणमें भेदज्ञानकी उग्रता होते-होते उसे विकल्प टूटकर स्वानुभूति होनेका प्रसंग आता है। परन्तु उसकी ज्ञायकताकी उग्रता होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- अवलम्बनकी कोई आवश्यकता नहीं है?

समाधान :- अवलम्बन तो देव-गुरु-शास्त्र उसमें बीचमें होते हैं। उसके शुभभावके अन्दर होते हैं। परन्तु अंतरमें पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना रहता है। कहीं देव-गुरु-शास्त्र उसे करवा नहीं देते। वे तो निमित्तमात्र होते हैं। करना तो स्वयंको ही है, पुरुषार्थ स्वयंको ही करना पड़ता है। उसे गुरु क्या कहते हैं? देव क्या कहते हैं? शास्त्रमें क्या आता है? उसका अवलम्बन लेकर विचार करे। मुक्तिका मार्ग किस प्रकारसे बताया है, उसका स्वयं विचार करे कि गुरुने यह मार्ग बताया है। स्वयं कैसे समझता है, उसका मिलान करे कि गुरुने यह कहा है, ज्ञायकको पहिचाननेको कहा है, यह सब पर है, ऐसे मिलान करे। ऐसे विचारमें अवलम्बन ले, परन्तु पुरुषार्थ तो स्वयंको करना है। निर्णय स्वयंको ही करना पड़ता है कि वस्तु तो यही है। यह ज्ञायक है वही मैं हूँ और यह विभाव मैं नहीं हूँ। ऐसा निर्णय तो स्वयं अपनेसे करता है। अपनेसे करके उसमें पुरुषार्थकी उग्रता करके उसकी बारंबार दृढ़ता करे तो विकल्प टूटकर उसे स्वानुभूति होनेका प्रसंग आता है।

समाधान :- .. गुरुदेवके शब्द है।

मुमुक्षु :- हाँ, गुरुदेवके शब्द है। गुरुदेव बहुत बोलते थे।

समाधान :- 'बंध समय जीव चितीये उदय समय शा उचाट'। देव-गुरु-शास्त्रसे दूर रहनेका...

मुमुक्षु :- ये उनकी सांस है।

समाधान :- करनेका तो यही है न। दूर रहे तो भी यही रटन करना। देव-गुरु-शास्त्र हृदयमें रखना। पहले बचपनमें जो सुना है, वह सब याद करना। गुरुदेवकी

वाणी सुनी है, सब किया है। जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र सबको याद करना। गुरुदेवने आत्माको प्राप्त करनेका अपूर्व मार्ग बताया है, वह याद करना। शरीर और आत्मा दोनों तत्त्व भिन्न हैं। चैतन्यतत्त्व कोई अपूर्व है, उसकी महिमा रखनी। वही महिमा करने जैसा है। अंतरमें गुरुकी महिमा रखनी। दो तत्त्व भिन्न हैं। उसका भेदज्ञान (करना)। स्वानुभूति कैसे हो? मुक्तिका मार्ग कैसे प्रगट हो? वह सब अन्दर रटन करना। उसकी रुचि रखनी। समय मिले तब वांचन करना। टेप सुनना, वांचन करना। वही संस्कार कैसे दृढ़ रहे, वह रखना। बारंबार उसे याद करते रहना।

मुमुक्षु :- भावसे तो एक पल भी दूर नहीं हुआ जाता। सततरूपसे आपके साथ ही..

समाधान :- वही भावना रखनी। अनन्त कालमें सब मिला, एक जिनेन्द्र देव... शास्त्रमें आता है कि सम्यग्दर्शन जीवने प्राप्त नहीं किया। अनन्त कालमें जिनेन्द्र देव, गुरु आदि सब मिलना मुश्किल है। वह मिले तो अंतरसे स्वयंने ग्रहण नहीं किया है। तो वह कैसे ग्रहण हो? गुरुदेवने जो स्वरूप बताया वह कैसे ग्रहण हो? सम्यग्दर्शनका क्या स्वरूप बताया है, वह सब याद करना। ऐसे पंचमकालमें ऐसे गुरु मिले, ऐसा मार्ग मिला, ऐसा अपूर्व मार्ग बताया तो इस मनुष्यजीवनमें कुछ अंतरमें रुचि दृढ़ हो वह रखना।

मैं किसी भी क्षेत्र होऊँ, परन्तु मुझे आपके पादपंकजकी भक्ति मेरे हृदयमें रहो। ऐसे अंतरमें देव-गुरुकी भक्ति और चैतन्यदेवकी भक्ति, चैतन्य मेरे हृदयमें रहना, देव-गुरु मेरे हृदयमें रहना। ... निवासमें होऊँ, ऐसा शास्त्रमें आता है। प्रभु! आप मेरे हृदयमें रहना और एक आत्मा मेरे हृदयमें रहना। ... सब याद करना।

मुमुक्षु :- वह तो अपूर्व काल था।

समाधान :- हाँ, अपूर्व काल था। यात्रा आदि.. उस वक्त छोटी थी न यात्राके समय? ... याद करना। ऐसा करके अन्दर उल्लास रखना। बस! ऐसा ही मेरे हृदयमें रहना। वह सब प्रसंग और चैतन्यदेव कैसे प्राप्त हो, उसकी भावना रखनी। वह सब करते रहना।

अनन्त कालमें जन्म-मरण करते.. करते.. करते.. बड़ी मुश्किलसे मनुष्यभव मिलता है। उसमें भी इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले वह तो महाभाग्यकी बात! ऐसे गुरुदेव मिले, उनका सान्निध्य मिला, उनकी वाणी मिला वह तो महाभाग्यकी बात है। तो उसमेंसे आत्मा कैसे समझमें आये, उसकी भावना रखनी।

मुमुक्षु :- ज्यादासे ज्यादा..

समाधान :- उसका रटन करते रहना। आत्माका क्या स्वरूप है? आत्मा ज्ञायक

है। उसके लिये उसके विचार करना। गुरुदेवने क्या कहा है, उसका चिंतवन करना। उसकी रुचि अंतरमें रखनी। चाहे किसी भी प्रसंगमें मुझे चैतन्यकी रुचि रहो। कहीं तन्मयता या बाह्य प्रसंगोंमें रुचि नहीं बढ़करके चैतन्यकी रुचि विशेष (रूपसे होनी चाहिये)। आत्मामें सर्वस्व है, बाहर कहीं कुछ नहीं है। ऐसी रुचि रखनी।

एक देव-गुरु-शास्त्र जीवनमें सर्वस्व और एक आत्मा मुख्य सर्वस्व है। कहीं ओर रुचि नहीं बढ़करके आत्माकी रुचि और देव-गुरु-शास्त्रकी ओर ज्यादा (रुचि) रहे ऐसी भावना रखनी। ... के लिये प्रयत्न होना चाहिये। आत्माका लक्षण क्या? ज्ञायक लक्षण, यह विभाव लक्षण। उसे भिन्न करनेकी अंतरमें कितनी तैयारी हो तब वह भिन्न पड़ता है। समझन हो और अन्दरसे अपनी कितनी पुरुषार्थकी तैयारी हो, तब होता है। वह न हो तबतक उसकी भावना रखनी।

... आत्मामेंसे प्रगट होता है। कोई अपूर्वता.. आत्माका ज्ञान अपूर्व, आनन्द अपूर्व, सब आत्मामेंसे प्रगट होता है। परन्तु उसका पुरुषार्थ धारावाही हो तब होता है। वह न हो तबतक भावना रखनी।

मुमुक्षु :- ... एक ही रास्ता है। बाहर....

समाधान :- वह बात सच्ची है। अनादिका अभ्यास है इसलिये कहीं-कहीं हो जाय। परन्तु प्राप्त करनेका रास्ता तो एक ही है।

मुमुक्षु :- बाहर कहीं रुचि और मोह, देखकर चौंधिया नहीं जाते।

समाधान :- गुरुदेवने ऐसे संस्कार, उनकी वाणीसे ऐसे संस्कार डल गये हैं कि दूसरेमें जीव जाता नहीं। अंतर अपूर्व रुचिसे, सच्चा रुचिसे जिसने सुना हो..

मुमुक्षु :- भक्ति करते हो, एकदम महिमा आती हो, ऐसा होता है कि दो भाव एकसाथ चलते हो, ऐसा लगता है। क्या करना उसके लिये? जो पढा होता है वह भी बराबर याद होता है कि यही पढ़ा है। फिर भी बाह्य वस्तुका विचार आ जाता है।

समाधान :- अन्दर सब संस्कार पड़े हैं, वह आ जाते हैं। ज्यादा दृढ़ता करनी। वांचन आदिकी ज्यादा दृढ़ता करनी। अन्दर दूसरे विचारोंका ज़ोर हो जाता है। उसमें उपयोग तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें बदलता रहता है। इसलिये ऐसा लगता है कि यह विचार और वह विचार दोनों साथमें आते हैं। साथमें नहीं, अन्दर होता है क्रमसर, परन्तु उसे साथमें लगता है। परन्तु उपयोग एकदम पलटता है न, (इसलिये ऐसा लगता है)। अभी यह पढा हो उतनेमें दूसरे विचारमें चढ जाय। जीवका उपयोग पलटता रहता है। जो संस्कार है पूर्वके, वह संस्कार आ जाते हैं। ज्यादा दृढ़ता करनी। विचारमें, दर्शनमें। स्थिर नहीं हुआ हो इसलिये दूसरे विचार आ जाय। अन्दर संस्कार पड़े हैं।

मुमुक्षु :- बहुत बार तो एकदम ऐसा होता है कि ऐसे वांचनके साथ ऐसा दिमाग

हो जाय, ... उस रूप ही मन ... दस मिनट.. दूसरी कोई प्रवृत्तिमें कैसा उसीमें चित्त रहता है। ऐसा कैसे होता होगा?

समाधान :- उसका उसे अभ्यास है, इसलिये ऐसे ही चला जाता है। जो संसारकी प्रवृत्तिका कार्य और विचार ऐसे ही चलते रहते हैं। इसमें अन्दर विचार करके नया कुछ विचार करने जाता है, पुरुषार्थ करने जाता है तो अन्दरका दूसरा अभ्यास है वह चला आता है। पुरुषार्थके बलसे उसे पलटना पड़ता है। दूसरा सहज हो गया है, यह इतना सहज नहीं है। इसलिये उसे पुरुषार्थसे सहज हो, ऐसा करे तो वह थोड़ी देर भी टिके। बाकी उपयोग तो पलटता रहता है। इसलिये उसे बारंबार जोड़ते रहना। विचारमें, दर्शनमें, वांचनमें। क्योंकि उपयोग तो अंतर्मुहूर्तमें पलटता रहे। उतनी स्थिरता नहीं है, इसलिये जल्दी पलटता है। अन्दर उस प्रकारका रस होता है, इसलिये पलटता रहता है।

जिसे अन्दर इस ओरके विचार ज्यादा स्थिर हो गये हो, तो उसे जल्दी नहीं पलटता। वह चलता हो इसलिये जल्दी पलटता है। अन्दर ज्यादा घोलन करना। इसीलिये आता है न? देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें तू रहना। तेरा पुरुषार्थ उतना जोरदार नहीं है कि तू अकेला तेरे आधारसे टिक सके। इसलिये देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें उपादान तेरा, परन्तु उसमें उसे सहज-सहज पुरुषार्थ होता है। इसलिये ऐसा कहनेमें आता है। जहाँ करे, वहाँ स्वयंको ही करना होता है। परन्तु उपादान तो स्वयंका होता है। परन्तु ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध होता है। विचार, शास्त्रका चिंतवन, श्रुतका चिंतवन, उसका ज्यादा अभ्यास करे, चित्तको स्थिर करे तो होता है। .. कैसे समझमें आय, वह ध्येय होना चाहिये। देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें रहना, साधर्मीके सत्संगमें रहना, ऐसा कहनेमें आता है, उसका कारण यही है कि तेरी उपादानकी उतनी तैयारी न हो तो ऐसे सान्निध्यमें तू रहना। तू स्वयंसे बारंबार पुरुषार्थ करते रहना। कुछ पढ़ना, टेप सुने तो उसीमें चित्त स्थिर रहे तो उसकी भावना दृढ़ रहे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६३

मुमुक्षु :- कभी तो ऐसा लगता है मानो शुष्कता आ जाती है, हृदय भीगा हुआ नहीं रहकरके। उसमें तत्त्वकी समझका क्या दोष होगा?

समाधान :- शुष्कता तो अपने कारणसे (होती है)। बाकी अपना हृदय भीगा हुआ रहे, अपने स्वभावकी महिमा आये, अपने स्वभावमें ही सर्वस्व है। यह सब बाहरका है वह तो तुच्छ है। स्वभावकी महिमा तो... महिमासे भरा स्वभाव है। ऐसी महिमा आये तो ऐसा नहीं होता, शुष्कता आये ही नहीं, उसका हृदय भीगा हुआ रहे। अपना स्वभाव, वही अद्भुत और आदरणीय है। शुष्कताको पलट देना कि महिमावंत मेरा स्वभाव है। ये बाह्य वस्तु कुछ महिमावंत नहीं है।

मुमुक्षु :- समझ की हो, लेकिन अन्दर कुछ आचरण करनेका आता नहीं।

समाधान :- वह आचरण ही है। स्वभावकी ओर जिसे सच्ची समझ हो, वह अंतरमें उतना लीन होता ही नहीं। उसे जो विभाव परिणाम संकल्प-विकल्प आये उसमें उसकी तन्मयता नहीं होती। रस टूट ही जाता है। उसका हृदय भीगा हुआ रहता है। उसे कहीं चैन नहीं पड़ता। स्वभावके सिवा कहीं चैन नहीं पड़ता। उसे बाह्य पदार्थोंमें, खाने-पीनेमें हर जगहसे रस उड़ जाता है। अंतरसे निरस हो जाता है, स्वभावकी महिमा लगती है।

मुमुक्षु :- अनन्त.. अनन्त.. अनन्त काल गया तो भी मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ। तो ऐसा लगता है कि अनन्त-अनन्त काल मोक्ष प्राप्त करनेके लिये लगता होगा?

समाधान :- अनन्त कालसे मोक्ष नहीं हुआ उसका कारण स्वयं कहीं-कहीं अटका है। मात्र क्रियामें धर्म मान लिया, थोड़ा कुछ कर लिया, कुछ शुभभाव कर लिया, कुछ दया, दान थोड़ा-थोड़ा कर लिया तो मानो धर्म हो गया। ऐसा मान लिया। इसलिये मोक्ष नहीं हुआ। कहीं-कहीं बाहर अटक गया। त्याग किया, मुनिपना लिया परन्तु बाहरमें मानों मैंने बहुत किया, मैंने त्याग किया, बहुत किया। ऐसा मान-मानकर अटका है। अंतरमें जो स्वभाव है, उसको ग्रहण नहीं किया है। अपना स्वभाव ग्रहण करे तो अनन्त काल लगे ही नहीं।

अनन्त काल लगनेका कारण क्रियाओंमें, बाहर शुभभावोंमें स्थित रहा। स्वभावको

ग्रहण करनेमें अनन्त काल नहीं लगता। अनन्त काल रखड़नेमें लगा, लेकिन स्वभाव प्रगट करनेमें अनन्त काल नहीं लगता। यदि स्वभावको ग्रहण करे तो बहुतोंको अंतर्मुहूर्तमें हो जाता है और बहुतोंको काल लगे तो थोड़े भवमें भी उसे मोक्ष, केवलज्ञान होता है। और सम्यग्दर्शन तो यदि स्वयं पुरुषार्थ करे तो उसे हो सकता है। इस कालमें भी हो सकता है।

मुमुक्षु :- आपने तो छोटी उम्रमें प्राप्त कर लिया। और आपकी देशना सुने तभी कुछ लगता है, बाकी तो हम जैसोंको कुछ मालूम नहीं पड़ता है, सूझ नहीं पड़ती कि कैसे किस प्रकारसे कैसे बात करनी, उतना गहन तत्त्व लगता है।

समाधान :- स्वभाव आत्माका गहन ही है। अनेक जातकी महिमाओंसे भरा हुआ, गहनतासे भरा हुआ स्वभाव है।

मुमुक्षु :- प्रसन्न चित्तसे इस आत्माकी बात सुनी हो, उसे भी मुक्ति समीप है।

समाधान :- प्रसन्न चित्तसे आत्माकी वार्ता सुनी तो भावि निर्वाण भाजनम्। भविष्यमें निर्वाणका भाजन बनता है। कोई अपूर्व रीतसे। गुरुदेवने अपूर्व वाणी बरसायी। उसे अपूर्व महिमा आये कि यह वस्तु कोई अलग ही है। मैं जिस मार्ग पर हूँ, वह यह नहीं है। कोई अंतरका मार्ग है। उसे आत्मामेंसे महिमा ही कोई अलग आती है। ऐसी प्रसन्न चित्तसे अपूर्व रीतसे सुना हो तो भावि निर्वाण भाजनम्। भविष्यमें उसे चैतन्यकी ओर पुरुषार्थ उठनेवाला ही है और अवश्य भावि निर्वाण-भविष्यमें निर्वाणका भाजन है। बहुत बार अपनेआप (सुना हो), परन्तु कोई अपूर्व रीतसे सुना नहीं है। ऐसे अपूर्व रीतसे, प्रसन्न चित्तसे सुने तो भविष्यमें निर्वाणका भाजन होता है।

मुमुक्षु :- ... बात तो सम्यग्दृष्टि पुरुष आप जैसे कर सको। परन्तु ऐसा योग न हो तो क्या करें?

समाधान :- जिसकी तैयारी हो उसे बाहर ऐसे निमित्त मिल ही जाते हैं। इस पंचम कालमें..

मुमुक्षु :- ... आपका निमित्त मिल गया, हमको तो ऐसा लगता है। अन्दरसे ऐसा लगता है कि आपकी देशना... उनकी ऐसी कोई पात्रता हो गयी है।

समाधान :- महादुर्लभ था, उसमें गुरुदेवका इस पंचम कालमें जन्म हुआ। कितने जीवोंकी तैयारी (हो गयी)। उनकी वाणी ऐसी अपूर्व थी। कितने ही जीवोंको आत्मामें अपूर्वता लगती है कि ये कुछ अलग कहते हैं। चाहे जितना बड़ा समुदाय हो, कोई समझे न समझे तो भी ऐसे प्रसन्न चित्तसे सुनते हों।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी वाणी..

समाधान :- कुछ अलग ही प्रकारसे ललकारके कहते थे। उनका प्रताप है। उनके

प्रतापसे सुनने (मिला)।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कोई बार ऐसा कहते थे कि पर्याय जितना ही तू नहीं है और कोई बार ऐसा कहते थे कि पर्यायसे तू भिन्न है।

समाधान :- पर्याय जितना तू नहीं है अर्थात् पर्याय तो क्षण-क्षणमें बदल जाती है। तू शाश्वत आत्मा है। पर्यायसे भिन्न अर्थात् पर्यायका स्वभाव भिन्न और तेरा स्वभाव भिन्न है। वह क्षणिक है, तू त्रिकाल है। भिन्नताका अर्थ ऐसा लेना है, सर्वथा प्रकारसे भिन्न है ऐसा अर्थ नहीं है। अपेक्षासे भिन्न है। सर्वथा प्रकारसे सर्व प्रकारसे भेद हो तो द्रव्य पर्याय बिनाका हो जाय और पर्याय स्वयं द्रव्य बन जाय। इस तरह सर्वथा प्रकारसे भिन्नका अर्थ नहीं था। परन्तु तू कोई अपेक्षासे भिन्न है।

तू समझ कि तेरा स्वभाव त्रिकाल शाश्वत रहनेका है और पर्याय क्षणिक है। ऐसे समझना। उस अपेक्षासे भिन्न है। सर्वथा भिन्न (हो तो) द्रव्य पर्याय बिनाका हो जाय। तो द्रव्य उसे कहते हैं कि जिस द्रव्यके अन्दर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हो वह द्रव्व् कहनेमें आता है। और पर्याय उसे कहते हैं कि द्रव्यके आश्रयसे जो पर्याय होती हो वह पर्याय है। पर्याय वैसी स्वतंत्र नहीं है कि वह पर्याय स्वयं बिना द्रव्यके परिणमती हो। ऐसे पर्याय नहीं रहती है। परन्तु दोनोंके स्वभाव भिन्न हैं। उस अपेक्षासे उसे भिन्न कहनेमें आता है। इसलिये भिन्न कहा है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ, पर्याय जितना नहीं है। अर्थात् पर्याय क्षणिक है और तू त्रिकाल है।

मुमुक्षु :- मिथ्यात्व चला आता हो, एक बार तो ज्ञानीकी देशना नियमसे जीवको प्राप्त होनी ही चाहिये।

समाधान :- ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। अनादिका जो मिथ्यात्व है, उसमें एक बार सच्चे गुरु अथवा सच्चे देव उसे मिले तो उपादान स्वयंका, परन्तु वाणीका निमित्त बनता है। अनादि कालका अनजाना मार्ग है। ऐसी देशना एक बार उसे मिले, परन्तु वह मात्र देशनारूपसे देशना नहीं, परन्तु उसे अंतरमेंसे ग्रहण हो जाय। वह देशना तो सबको लाभकर्ता ही होती है। वह तो प्रबल निमित्त होती है। परन्तु स्वयं अन्दरसे ग्रहण करे तब देशनालब्धि हो। अनादिमें एक बार तो उसे देशना मिले फिर उसे संस्कार डले तो अपनेआप अपने उपादानसे तैयार हो जाय, परन्तु एक बार तो उसे ऐसा निमित्त बनता है।

मुमुक्षु :- हेयबुद्धिका अर्थ क्या है?

समाधान :- शुभभाव आदरणीय नहीं है, शुभभाव मेरा स्वभाव नहीं है। शुभभाव

आकुलतारूप है, वह हेयबुद्धि। मेरा स्वभाव नहीं है। शुभका स्वभाव भिन्न और मेरा स्वभाव भिन्न है। मैं ज्ञायक आनन्दसे भरा हुआ और यह शुभभाव है वह तो आकुलतारूप है। स्वभाव विपरीत है। उसका स्वभावभेद है। इसलिये वह मेरेसे भिन्न है। वह मुझे आदरणीयरूप है, ऐसा नहीं है। वह प्रवृत्तिरूप है, मेरा स्वभाव तो निवृत्तस्वरूप है। बीचमें आये बिना नहीं रहता। भावकी परिणति है। शुभभावका परिणमन मेरा स्वभाव नहीं है, वह तो आकुलतारूप है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- वह कोई कहनेकी बात है? आत्मा अनुपम है, उसका आनन्द अनुपम है, उसका स्वभाव अनुपम है। अनन्त गुणोंसे भरा आत्मा है। अनन्त गुणकी जो निर्मल पर्याय प्रगट हो, वह अनुपम है उसका आनन्द। वह कोई वाणी (द्वारा कहा नहीं जाता)। उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। वह कोई अनुपम है। विकल्प टूटकर जो स्वानुभूतिका आनन्द (आता है) वह अनुपम है। जगतमें कोई उपमा नहीं है। किसके साथ मिलान करना?

मुमुक्षु :- बहिनश्रीको लिपटकर रहेंगे उसका भी बेड़ा पार है। तत्त्व भले कम समझे।

समाधान :- गुरुदेवके चरण मिले वह सब भाग्यशाली है। पंचमकालमें गुरुदेवके चरण सबको लंबे समय तक मिले। ...

समाधान :- ... पूरा मार्ग प्रवर्तता है। कुन्दकुन्द आम्नाय, जहाँ देखो वहाँ कुन्दकुन्द आम्नाय। गुरुदेवने तो कुन्दकुन्दाचार्यके रहस्य खोले हैं। शास्त्रके रहस्य खोले हैं।

मुमुक्षु :- कुन्दकुन्द भगवानकी कुछ बात करीये तो हम सुने।

समाधान :- कुन्दकुन्द भगवानकी क्या बात! उपकार किया इस पंचम कालमें। आचार्य, कुन्दकुन्दाचार्यकी पहचान गुरुदेवने करवायी। गुरुदेवने शास्त्रके सब रहस्य खोले। कुन्दकुन्दाचार्यने शास्त्रमें सब भर दिया। महाविदेह क्षेत्रमें भगवानके पास जाकर आचार्यदेव सब लाये। शास्त्रमें सब भर दिया और गुरुदेवने सब रहस्य खोले हैं। गुरुदेवने तो सब शास्त्रको सूलझा दिये। मुक्तिका मार्ग बता दिया है। कौई जानता नहीं था, मुक्तिका मार्ग क्या है? 'आत्मा' शब्द बोलना गुरुदेवने सिखाया।

आत्मा जाननेवाला है, ज्ञायक है, उसे पहिचानो। आत्मा सबसे भिन्न है। यह शरीर, विभावस्वभाव अपना नहीं है। उससे आत्मा भिन्न है। ज्ञान-दर्शनसे आत्मा परिपूर्ण है। आचार्यदेव कहते हैं न,

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे,
कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणुमात्र नहीं अरे! ।।३८।।

शुद्धतासे भरा मैं अरूपी आत्मा, ये पुद्गलका जो रूप है, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आत्मामें नहीं है। आत्मा उससे अत्यन्त भिन्न है, ऐसे आत्माको पहिचानना चाहिये। ज्ञान-दर्शनसे भरा ज्ञायकतत्त्व पूर्ण, पूरा सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व है उसे पहिचानना। उसमें अपूर्ण दिखती है, विभावके कारण अपूर्णता दिखती है। बाकी परिपूर्ण पूर्ण स्वभाव आत्मा है। एक परमाणुके साथ उसे सम्बन्ध नहीं है। वह स्वयं स्वयंमें ही अनन्त संपदासे भरा है। सब अनन्त प्रताप संपदा आत्मामें भरी है। वह संपदा कैसे प्रगट हो, उसकी रुचि रखने जैसा है। वह कैसे प्रगट हो? उसका अभ्यास, उसकी आदत, उसका विचार, उसका वांचन सब करना, उसकी महिमा। विभावसे रुचि छूटकर आत्माकी ओर रुचि जाये वह करना है। गुरुदेवने वह बताया है। आत्मतत्त्व कोई अलौकिक है।

आचार्योंने तो पूरा मार्ग शास्त्रमें बहुत भर दिया है। आत्मा कोई अलौकिक अनुपम वस्तु है। चैतन्यरस,.. आचार्यदेव कहते हैं, जैसे क्षाररससे भरी नमककी डली क्षाररसे भरी है, शक्करकी डली शक्करके रससे भरी है। ऐसे आत्मा पूरा चैतन्यतासे, ज्ञायकतासे, आनन्दतासे भरा है। उसे पहिचानना। सबसे न्यारा चैतन्यदेव विराजता है। अपना देव अपने पास है, उसे पहिचान ले। देव-गुरु-शास्त्रको हृदयमें रखकर और वे जो कहते हैं, उनके सान्निध्यसे, उनकी महिमासे आत्माको लक्ष्यमें रखकर उसे प्रगट करना। उसीका अभ्यास, उसीका चिन्तवन आदि सब करने जैसा है।

मुमुक्षु :- विचार करने पर अन्दरमें आप जो भी कहते हो वह सब बात बराबर सत्य है। लेकिन अन्दर जाने पर गुरुदेवके प्रति और आपके प्रति भक्ति उछल जाती है, उसका क्या करना? अन्दर जा नहीं सकते। वही भक्ति आ जाती है कि आहा..! ये वस्तु! ये महिमा आपने बतायी!

समाधान :- जबतक अन्दर जा नहीं सके तब तक भावना आये। शुभभावना तो अंतरमें आती है। परन्तु अंतरमें आत्माको पहिचाननेका ध्येय रखना कि आत्मा कैसे पहिचानमें आये? आत्माकी रुचि कैसे प्रगट हो? वह करने जैसा है। शास्त्रमें आता है, '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता**'। वह वार्ता भी अपूर्व चित्तसे सुनता है तो भावि निर्वाण भाजन। तो भविष्यमें निर्वाणका भाजन हो। परन्तु अपूर्व रीतसे सुनता है तो। परन्तु अपूर्वता अंतरमेंसे आनी चाहिये। आत्मा अपूर्व है, उसकी रुचि जागृत होनी चाहिये। वह न हो तब तक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा अंतरमें आये बिना नहीं रहती। परन्तु अंतर आत्माको पहिचाननेका प्रयत्नका ध्येय रखना चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६४

मुमुक्षु :- .. अनुभूति करनेके लिये बहुत पुरुषार्थ भी करते हैं, लेकिन उसमें ऐसा कैसा दोष हो जाता है कि जिस कारणसे प्राप्त नहीं होता है। गहराई नहीं आती। कौन-सा दोष है?

समाधान :- पुरुषार्थकी क्षति रह जाती है। अंतरमें अभ्यास-एकत्वबुद्धि रह जाती है। पर-ओरकी रुचि (रहती है)। अंतरकी रुचि जितनी प्रगट होनी चाहिये, उतनी होती नहीं। कारण कम आता है, इसलिये कार्य नहीं होता है। महिमा आये, सब आये लेकिन अन्दर पुरुषार्थकी क्षति रह जाती है। भेदज्ञान करनेका जो प्रयत्न चाहिये, चैतन्यको पहिचाननेका वह नहीं हो रहा है। बारंबार उसे अभ्यास करनेकी आवश्यकता है।

छाछको बिलोते-बिलोते मक्खन बाहर आता है। वैसे बारंबार-बारंबार उसका अभ्यास करता रहे। आत्मा जाननेवाला ज्ञायक है। स्वयं ज्ञायक है। परन्तु पर-ओर दृष्टि है इसलिये उसे कर्ताबुद्धि हो गयी है, मानों मैं परका कर सकता हूँ। परन्तु स्वयं अपने स्वभावका कर सकता है, बाहरका कुछ नहीं कर सकता। वह सब तो उदयाधीन होता है। परन्तु उसके पुरुषार्थकी मन्दताके कारण बाह्य दृष्टि है। अंतर दृष्टि करे तो अंतरमेंसे प्रगट हो। ज्ञान, दर्शन आदि सब अंतरमेंसे ही आता है। अंतरमें यथार्थ दृष्टि करनेके लिये, शाश्वत चैतन्य पर दृष्टि करने हेतु, अंतरके भेद परसे भी दृष्टि उठा लेनी है। ज्ञान सब करे, परन्तु एक चैतन्य पर दृष्टि करनी। उस दृष्टिको उसमें स्थिर करना। वह करनेका है। तो उसे ज्ञायकका ज्ञायकरूप परिणमन हो तो विकल्प टूटे, तो स्वानुभूति हो। वह न हो तबतक उसकी रुचि, उसका अभ्यास बारंबार करते रहना।

आचार्यदेव कहते हैं न, तीव्र अभ्यास करे तो छः महिनेमें प्राप्त होता है। परन्तु उसका वह अभ्यास कितना उग्र होता है। परन्तु वह न हो तब तक उसका बारंबार पुरुषार्थ करता ही रहे। स्वयं अपनेको भूल गया है। अपने पास ही है। चैतन्य अनादिअनन्त शाश्वत है। पारिणामिकभावस्वरूप अनादिअनन्त है। उसे पहिचान लेना।

मुमुक्षु :- ... मूल अज्ञानीको वह प्राप्त नहीं होता है।

समाधान :- बालगोपालको लक्ष्यमें चेतन चेतनरूप ही अनुभवमें आ रहा है, परन्तु वह लक्ष्यमें लेता नहीं। चेतन जड़रूप अनुभवमें नहीं आता, चेतनरूप अनुभवमें आता

है। उसका मूल जो मूल स्वभाव निधि है, वह उसे ख्यालमें नहीं है। परन्तु ज्ञान चेतनता चेतनतारूप अनुभवमें आ रही है, परन्तु वह लक्ष्यमें लेता नहीं है। वह लक्ष्यमें ले, गुरुदेवने बताया है कि तेरा आत्मा जाननेवाला है, ज्ञायक है, चेतनस्वरूप है, जड़रूप नहीं हुआ है। यह विभाव तो अनादिसे स्वयं उसमें जुड़ता है, इसलिये विभाव दिखता है। परन्तु अंतर दृष्टि करे तो चेतन चेतनरूप ही दिखे। उसे दिखता नहीं है।

उसकी चेतनता सदा शाश्वत रही है। अनादि काल गया तो भी उसकी चेतनता मिटकर जड़ नहीं हो गया है। निगोदमें गया तो भी उसकी शक्ति तो ज्योंकी त्यों अनन्त शक्ति भरी है। उसका लक्ष्य करे तो वह प्रगट हो सके ऐसा है। उसकी प्रतीति करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे। ऐसा अंतरमें गहराईमें जाकर पुरुषार्थ करे तो प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं।

गुरुदेवने वह एक ही मार्ग बताया है। उसकी रुचि, उसका अभ्यास, उसकी लगन सब करने जैसा है। जैसे पानी मलिन हो तो उसमें औषधि डालनेसे निर्मल होता है। वैसे स्वयं प्रयास करे तो उसमेंसे मलिनता टल जाय। क्योंकि निर्मलता अन्दर भरी ही है। उसमेंसे प्रगट होता है। जो है वह उसमेंसे निकलता है। कहीं बाहर लेने नहीं जाना पड़ता। अंतरमें ज्ञान, आनन्द सब अन्दर भरचक भरा है। उसमें वह प्रयास करे तो प्रगट हो सके ऐसा है। उसका घोटन करनेसे वह जो है वह प्रगट होता है। उसकी परिणति उस ओर जाती नहीं, परिणति बाहर जाती है। परन्तु परिणतिको उसमें यदि दृढ़ करे, उस ओर ले जाय तो उसीमेंसे शुद्ध पर्यायें प्रगट होती हैं। इसलिये वही करने जैसा है।

उसकी स्वानुभूति एक बार प्रगट हो तो फिर उसके भवका अभाव होता है। फिर तो बारंबार उसीमें जाता है। जिसे अंतरमें लगी उसे फिर बाहर जानेका, उसने चैतन्यका आश्रय लिया, बाहरकी रुचि छूट गयी तो आचार्यदेव कहते हैं, फिर उसे रमनेका स्थान अपना क्रिडावन-बाग अपना ही है, उसीमें जाता है, बाहर जाता नहीं। हर जगहसे छूटकर निराला हो गया, निरालंबी। चैतन्यके आलंबनसे, स्वावलंबनसे स्वयं अपनेमें जाता है। परन्तु स्वयं अपना आलम्बन लेता नहीं है और बाहरके आलम्बनमें रुक जाता है। स्वयंका स्वालम्बन ले तो उसीमेंसे सब स्वालंबी पर्यायें, स्वलम्बनसे प्रगट होती है। ज्ञानकी, दर्शनकी, चारित्रकी, आनन्दकी सभी पर्यायें अपना आलम्बन लेनेसे उसमेंसे प्रगट होती हैं। इसलिये उसीमें विश्राव कर, उसीमें संतुष्ट हो, आचार्यदेव कहते हैं, उसीमेंसे तुझे अनुपम सुख उत्पन्न होगा। बाहरसे कुछ होता नहीं। उसके लिये उसीका विचार, उसका चिन्तवन, उसका मनन सब करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, सब एक चैतन्यकी गहरी रुचि करके ज्ञायक आत्माको प्रगट करना। ज्ञायक ज्ञायकतारूप परिणमित

हो जाय, वह वास्तवमें करने जैसा है।

वह कैसे प्रगट हो? उसीका अभ्यास करने जैसा है। स्वयंमें एकत्वबुद्धि, परसे विभक्त होकर स्वयं स्वयंमेंसे प्रगट होता है। उसमें ही उसे विश्राम मिले, उसीमें उसे शान्ति मिले ऐसा है। यदि अनादिकी उसे थकान लगे तो अंतरमें ही विश्राम (है)। आनन्द, ज्ञान सब अंतरमें भरा है। बाहर कहीं लेने जाना नहीं पड़ेगा।

मुमुक्षु :- माताजी! अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा कहकर क्या कहना चाहते हैं?

समाधान :- अनुभूति अर्थात् स्वयं चैतन्य चैतन्यरूप अनुभवमें आ रहा है। अर्थात् उसका मूल स्वभाव, जो उसकी निधि-उसे मूल स्वभावरूपका ख्याल नहीं है। परन्तु चेतनता चेतनतारूप अनुभवमें आती है। अनादि काल हुआ तो वह जड़ नहीं हो गया है। ज्ञान ज्ञानरूप अनुभवमें आ रहा है। वह स्वयं लक्ष्य करे तो ज्ञान ज्ञान ही है। ज्ञान मिट नहीं गिया है। ज्ञान ज्ञानरूप अनुभवमें आ रहा है। उसका मूल स्वानुभव जो उसका शुद्ध स्वभाव है, वह उसे ख्यालमें नहीं है। परन्तु उसकी चेतनता तो चेतनारूप अनुभवमें आ रही है।

मुमुक्षु :- अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा यानी ज्ञायक लेना है?

समाधान :- ज्ञायक। पूरा ज्ञायक अनुभूतिरूप ही है। अनुभूति यानी उसके स्वभावका मूल आनन्द है, ऐसा नहीं है। परन्तु वह ज्ञायक ज्ञायकरूप ही रहा है। पररूप नहीं हुआ है। उसका असाधारण स्वभाव जो ज्ञायकता है, वह ज्ञायकता ज्ञायकतारूप रहा है, पररूप नहीं हुआ है। अपनेरूप अनुभवमें आ रहा है। स्वयं अपनेमें ही रहा है। बाहर वास्तविक रूपसे नहीं गया है।

मुमुक्षु :- अज्ञानी जीवोंको भी सदा ज्ञायक ही अनुभवमें आता है?

समाधान :- सदा ज्ञायक अर्थात् ज्ञायकता, ज्ञायकरूप परिणमन नहीं है। परन्तु उसका अस्तित्व ज्ञायक, ज्ञायकरूपका अस्तित्व है। उसका लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य बाहर जाता है। परन्तु चेतनता चेतनतारूप ही स्फुरायमान है। ये जड़ तो कुछ जानता नहीं। ये चेतन चेतनतारूप स्फुरायमान अनुभवरूप है।

मुमुक्षु :- सदा काल?

समाधान :- सदाके लिये चैतन्य चैतन्यरूप ही है। समता, रमता, ऊर्ध्वता। उसका रम्य स्वभाव है, ज्ञायक स्वभाव है, उसका वह सब स्वभाव स्फुरायमान है। लेकिन उसे प्रगट अनुभव-अनुभूति नहीं है। स्वभावरूप अनुभवमें आ रहा है। उसे ख्याल नहीं आता है। ... चेतनता चेतनतारूप अनुभूतिरूप है। मूल उसे अपने स्वभावकी अनुभूति नहीं है। लक्ष्यमें ले तो प्रगट हो ऐसा है।

मुमुक्षु :- अज्ञानीको भी सदाकाल भगवान आत्मा ही अनुभवमें आता है?

समाधान :- हाँ, हाँ। अज्ञानीको भी सदाकाल भगवान आत्मा ही अनुभूतिस्वरूप है। स्वयं ही है। लेकिन उसे लक्ष्यमें नहीं लेता है।

मुमुक्षु :- लक्ष्यमें नहीं आनेका कोई कारण?

समाधान :- लक्ष्यमें नहीं लेनेका कारण अनादिके अभ्यासके कारण पर-ओर दृष्टि है। परको अपना मानता है। मानों मैं परको जानता हूँ, स्वयं अपनी ओर जाननेका प्रयत्न नहीं करता है, अपनी प्रतीति नहीं करता है। ज्ञानकी दिशा अपनी ओर नहीं मोड़ता है। स्वयंकी प्रतीति नहीं करता है। लीनता अपनी ओर नहीं करता है। पर-ओर ज्ञान, प्रतीत, आचरण सब पर ओर जाता है।

समाधान :- .. गुरुदेवने बहुत समझाया है।

मुमुक्षु :- वह तो आप कहते हो, गुरुदेवको हमने सुना था। लेकिन अब ज्यादा समय हो गया इसलिये भूलनेकी प्रकृति हो गयी है, इसलिये भूल जाते हैं।

समाधान :- आपने तो बहुत सुना और बहुत ग्रहण किया है।

मुमुक्षु :- मैं तो कहता हूँ, बहुत नहीं, सब सुना है। उसमें मेरी स्वीकृति है।

समाधान :- ... पहचाननेका कहा है। ज्ञायक आत्माका परिणमन करनेको कहा है।

मुमुक्षु :- बराबर है। उसे कैसे पहचानना, यह बात है।

समाधान :- स्वानुभूति करनेको गुरुदेवने कहा है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकको मुख तो है नहीं।

समाधान :- मुख नहीं है, परन्तु लक्षणसे पहिचानना। लक्षणसे पहचाननेका गुरुदेवने कहा है। उसका लक्षण पहिचानना। ज्ञायक लक्षण पहचानमें आता है। उसकी परिणति करनेको कहा है।

मुमुक्षु :- लेकिन जैसे .. इन्द्रियोंसे दिखे नहीं, मनसे उसका कुछ नक्की होता नहीं, अब करना कैसे?

समाधान :- स्वयं है न, अन्य नहीं है। इसलिये स्वयं अपनेसे पहचानमें आता है। स्वयं अपने लक्षणसे..

मुमुक्षु :- स्वयं अपनेसे पहचानमें आता है। उसका साधन इन्द्रिय तो नहीं है। उसका साधन मन नहीं है। अपनी पर्याय अपने सन्मुख हो तब आत्माको पहिचाना कहा जाय। लेकिन पर्यायको अपनी ओर मोड़नी कैसे?

समाधान :- स्वयं ही मोड़ सकता है।

मुमुक्षु :- मोड तो स्वयं ही सकता है। दूसरा कोई वजुभाई मोड दे?

समाधान :- .. बताया है और मोड़नेको कहा है। वह करनेका है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवका महा उपकार है।

समाधान :- महा उपकार किया है।

मुमुक्षु :- सबको रहनेवाला है। क्योंकि समवसरणमें भी सुननेवाले जायेंगे न?

समाधान :- यहाँ सबको तैयार कर दिया। गुरुदेवने सबको...

मुमुक्षु :- जहाँसे मोक्ष जल्दी हो वहाँसे। आपको कृपाका ज्यादा लाभ मिला है, वह बात सत्य है।

समाधान :- बहुत कृपा थी। गुरुदेवका सान्निध्य यहाँ सबको मिला। सबको प्राप्त हो, उसमें...

मुमुक्षु :- मैंने तो सुना है, परन्तु ... ने सुना नहीं है, उसका क्या करना?

समाधान :- ... बचपनसे संस्कार है इसलिये मैं तो यहीं आता हूँ। वांचनमें और हर जगह पहुँच जाते हैं।

मुमुक्षु :- .. वहाँसे हटती नहीं और यहाँ आती नहीं। तो ऐसा माहात्म्य, पदार्थका ऐसा स्वरूप कैसे ज्ञानमें लेना कि जिससे रुचिका पलटा सहज हो जाय? क्योंकि हठपूर्वक तो रुचि (बदलती नहीं)।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते हैं कि समझनमें सब गर्भितरूपसे रहा है। किस प्रकारकी ऐसी समझ आये? ज्ञानका विचार करें तो ज्ञानकी असाधारणता या एक विशेष प्रकार थोड़ा ख्यालमें आता है। परन्तु वह ऊपर-ऊपरसे थोड़ा विचार करे तो रहे, फिर दूसरी वस्तुमें ... उतना होता है कि वहाँ रुचि चिपकी है। .. जड़ पदार्थ है, उसमें सुख नहीं है, उससे कुछ होता नहीं। ऐसा धारणाज्ञानमें तो सब आया है। इसमें बहुत उलझन (हो जाती है किः) ऐसा कब तक?

समाधान :- ऐसा है कि वह ज्ञानमें लिया, लेकिन वह ज्ञान.. जो उसकी यथार्थ महिमा आनी चाहिये अंतरमेंसे महिमा उतनी (नहीं आती है)। महिमा बाहर नहीं है, अंतरमें ही है। उस परसे उतनी समझनमें आये तो उसके साथ उसकी विरक्ति चाहिये, उसकी महिमा चाहिये। ज्ञानके साथ सब हो तो वह रुचि पलटती है। उस ओरसे विरक्ति आनी चाहिये कि इसमें कुछ नहीं है। आत्मामें ही है। उससे निरालापन आना चाहिये कि इसमें अटकने जैसा नहीं है। इसमें कुछ रस नहीं है। उसका निर्णय ऐसा दृढ़ होना चाहिये कि रुचि पलट जाय। उतना ज्ञान समझमें आना चाहिये। मात्र समझनका दोष है ऐसा नहीं। समझ, विरक्ति, महिमा सब अन्दर साथमें हो तो पलटता है।

मुमुक्षु :- वह सब कैसे कब आये?

समाधान :- स्वयं करे तो हो। करे बिना कहाँसे (हो)?

मुमुक्षु :- करनेमें क्या बाकी रह जाता है?

समाधान :- करनेमें बाकी...

मुमुक्षु :- बुद्धिपूर्वक तो मानो संयोग छोड़कर मुंबई छोड़कर सोनगढ़ चलते हैं। तो अपना उस प्रकारका लक्ष्य छूट जाय, अमुक हो जाय। वह प्रयत्न भी होता है। यहाँ भी बुद्धिपूर्वकका प्रयत्न शास्त्रमेंसे पढ़कर विचार करनेका मन होता है।

समाधान :- फिर भी अटकता है। रुचि वहीं है। जितनी चाहिये उतनी अन्दर तीव्रता नहीं है। जितना चाहिये उतना अंतरमेंसे वापस नहीं मुडता है। जितना चाहिये उतना स्वयंको ग्रहण नहीं करता है। तो उतनी विरक्ति आती नहीं, उतनी महिमा आती नहीं। इसलिये उसमें क्षति रहती है। मन्दता रहती है।

सो रहा हो और जागृत होनेका निर्णय किया हो, परन्तु जागता हूँ, जागता हूँ करे, परन्तु प्रमादके कारण जागृत नहीं होता। जागना है, जागना है, उठना है, लेकिन स्वयं प्रमादके कारण जितनी चाहिये उतनी अपनी ओर ज्ञान, विरक्ति, महिमा जितनी चाहिये उतनी, जितना कारण देना चाहिये उतना करता नहीं। इसलिये होता नहीं। अपनी आलसके कारण नहीं हो रहा है।

जितनी तीव्रता चाहिये उतनी (नहीं है)। वहाँ अटकता है। अटकता है तो उतनी अंतरमेंसे चटपटी लगनी चाहिये कि वहाँ अटक ही न सके और अपनेमें चला जाय, उतनी अन्दरसे लगन लगनी चाहिये। तो वहाँसे भिन्न पड़े। बादमें अल्प अस्थिरता रहती है, परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ थँभती नहीं और वहाँसे छूटता नहीं है उसका कारण स्वयंका ही है। उसका आश्रय प्रबलपने ले और इसका आश्रय छोड़ दे तो निरालंबन हो जाय। अपना आश्रय सहज... आश्रयका ज़ोर हो तो वह छूट जाता है। स्वयं छोड़े तो छूटे। स्वयं ही नहीं छोड़ता है, अपना कारण है। द्रव्यदृष्टि वह तो उसमें गया नहीं है, उसे ग्रहण नहीं किया है, परन्तु पर्यायमें हर जगह अटका है।

मुमुक्षु :- उसके लिये कुछ...?

समाधान :- विशेष महिमा आये उसके लिये, ज्ञायकमें ही सर्वस्व है, उसकी दृढ़ता करे। इसमें सर्वस्व नहीं है, चैतन्यमें सब है। भले बुद्धिपूर्वक स्वयं विचार करके करे, परन्तु अन्दरसे पलटनेके लिये तो उसकी विशेष तैयारी होनी चाहिये। परिणति पलटे। बुद्धिमें आये लेकिन जब तक परिणति नहीं पलटती, तब तक कचास है। परिणति एकत्वकी ओर ढल रही है तो अपनेमें कचास है। बुद्धिमें निर्णय करे कि महिमा इसमें है, सुख इसमें है, इसमें सुख नहीं है, वहाँ तक स्वयं आता है, परन्तु परिणति पलटती नहीं, वह अपनी कचास है।

.. बारंबार उसकी परिणति रहा करे। बारंबार ऐसा करते-करते पलटे। परन्तु ज्ञायककी ओर टिके कब? उतनी अपनी ओर रहनेकी जरूरत लगे, यही जरूरतवाला है, दूसरी ओरसे वापस हटे तो हो। परिणतिका पलटना अपने पुरुषार्थसे होता है। गुरुदेवने सबको

ग्रहण हो उस प्रकारसे स्पष्ट कहा है। तेरा स्वरूप तेरेमें है, पर तुझमें नहीं है। पूरा मार्ग स्पष्ट करके दिखा दिया है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो उस अनुसार परिणति ही इस ओर मुड़ती नहीं।

समाधान :- परिणति पलटनी चाहिये। उसमें पुरुषार्थकी तैयारी करनी पड़ती है।

मुमुक्षु :- '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता**'। उसका अर्थ क्या समझना?

समाधान :- रुचिपूर्वक वार्ता सुनी है, भावि निर्वाण भाजनं। अंतरकी रुचिपूर्वक सुना है तो उसकी परिणति पलटे रहेगी ही नहीं। लेकिन वह पलटे कब? स्वयं करे तो हो। भावि, भावि है। कभी भी पलटे ऐसा उसका अर्थ है। भविष्यमें निर्वाणका भाजन है। अंतरकी रुचिपूर्वक जिसने बात भी सुनी है, उसकी परिणति पलटे बिना रहेगी नहीं। भविष्य निर्वाण भाजनं। उसका अर्थ स्वयं पुरुषार्थ करके उसका पलटना होगा। लेकिन जो जिज्ञासु हो उसे ऐसा होता है कि मेरी परिणति कैसे पलटे? उसे पुरुषार्थ करनेकी स्वयंको भावना रहती है।

मुमुक्षु :- वह ऐसे कथनोंका आधार नहीं लेता।

समाधान :- हाँ, आधार नहीं लेता। उसकी भावना ऐसी होती है कि कैसे पलटे? कैसे पुरुषार्थ करुँ? कैसे करुँ? ऐसी भावना और वैसी लगन लगानेवालेको पलटती है। फिर कब पलटे वह उसकी योग्यता अनुसार (होता है), परन्तु उसकी भावना ऐसी होती है कि कैसे पुरुषार्थ करुँ? कैसे हो? कैसे पुरुषार्थ करु तो पलटे? ऐसी उसकी भावना होती है। पुरुषार्थ करनेकी ही भावना होती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६५

मुमुक्षु :- .. मुक्तिका पात्र..

समाधान :- भविष्यमें मुक्तिका पात्र होता है। भविष्य कितना लेना वह अपनी योग्यता पर (आधारित है)। ... पुरुषार्थ प्रगट हो। करनेवालेको तो ऐसा ही होता है कि मैं पुरुषार्थ करुँ। आधार नहीं है, स्वयंको भावना होती है।

मुमुक्षु :- ... ज्ञायकको जैसा है वैसा समझकर आत्म सन्मुख जितना अभ्यास बढ़े, उतना समीप आये ऐसा कुछ?

समाधान :- ज्ञायकका अभ्यास करे तो समीपता होती है। विशेष-विशेष ज्ञायकका अभ्यास करे तो समीपता होती है। परन्तु उसमें मन्दता रहे तो देर लगती है, तीव्रता हो तो जल्दी हो। लेकिन समीप होता है। ज्ञायकका अभ्यास करनेसे समीप होता है। ... मैं यह नहीं हूँ, द्रव्यदृष्टि... चैतन्य पर दृष्टि करनेका प्रयत्न करे। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा प्रयत्न बारंबार करे तो समीप होता है। परन्तु उसमें मन्दता-मन्दता रहा करे तो दर लगे, उसमें तीव्रता हो तो जल्दी हो।

मुमुक्षु :- ज्ञायककी रुचि बढ़े वैसे ज्ञानमें सूक्ष्मता आती जाती है?

समाधान :- ज्ञायककी रुचि बढ़ तो ज्ञानकी सूक्ष्मता होती है। ज्ञायकको ग्रहण करनेकी सूक्ष्मता होती है, परन्तु उसमें दूसरा ज्ञान ज्यादा होता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- ... वह प्रकार उसे बराबर सहज ही यथार्थ आये। रुचि बढ़ने पर ...का प्रकार भी सहज ही यथार्थ आये।

समाधान :- किसका प्रकार? .. यथार्थ आये। ज्ञायककी रुचि यथार्थ हो तो उसका विवेक भी यथार्थ ही होता है। स्व-परका विवेक करे। यथार्थ ज्ञान, यथार्थ मार्ग ग्रहण हो, सब यथार्थ हो। जिसकी रुचि यथार्थ, उसका सब यथार्थ होता है। स्वभावसे पूर्ण है, यथार्थ ज्ञान.. यथार्थ रुचि हो उसमें ज्ञान भी यथार्थ होता है।

मुमुक्षु :- निमित्तका भी विवेक रहे?

समाधान :- हाँ, उसका भी विवेक आता है। निमित्त-ओरका विवेक, स्वभावका ग्रहण आदि सब आता है। निश्चय-व्यवहारकी संधि जैसी है वैसी आये।

मुमुक्षु :- विवेकमें भी ऐसा कोई प्रकार होगा कि उसमें कोई बार विपरीतता भी आये और कोई बार यथार्थता हो, ऐसा होता है? ... सब बाबतमें विवेक यथार्थ ही आये कि कोई बार विवेक...

समाधान :- रुचिवालेको ना?

मुमुक्षु :- जी हाँ, रुचिवालेको।

समाधान :- रुचिवालेको ऐसा नियम नहीं होता। सम्यक् धारा हो, ज्ञान सम्यक्ज्ञान हो उसे तो यथार्थ होता है। रुचिवालेको उसकी रुचिमें कुछ मन्दता आ जाय तो अलग हो जाय। रुचि यथार्थ रहा करे तो यथार्थ आता है। उसमें रुचिमें फेरफार हो तो फेरफार होता है।

मुमुक्षु :- जीव अभवी है या भव्य है, उसका अपनेको ख्याल आये?

समाधान :- ख्याल आये। अपनी जिज्ञासा अंतरमें...

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- जिसे गहराईसे आत्माकी परिणति अपनी ओर जाती हो, स्वयंको आत्माकी ही रुचि लगे तो वह अभवि नहीं होता।

मुमुक्षु :- ... रुचि ज्यादा होती है इसलिये ऐसी शंका भी नहीं होती न?

समाधान :- नहीं। रुचि अपनी ओर जिसे आत्माकी हो, वह अभवि नहीं होता।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ ज्यादा हो तो ऐसा नहीं होता।

समाधान :- जिसे आत्माकी ओर रुचि हो वह अभवि नहीं होता। गुरुदेवने इतना समझाया कि शुभाशुभ भाव भी उसका स्वभाव नहीं है। वह जिसे अंतरसे बैठे और आत्माकी रुचि जिसे लगे वह अभवि नहीं होता।

मुमुक्षु :- बहुत बार .. बैठा होता है, परन्तु कहते हैं न? अनन्त बार जाकर आया, परन्तु रुचि नहीं थी...

समाधान :- लेकिन उसने अंतरसे भगवानको नहीं पहिचाने हैं। इसलिये वापस आता है। भगवानको बाहरसे पहिचाना। भगवान समवसरणमें बैठे हैं, भगवानको अष्ट प्रातिहार्य हैं, भगवान सिंहासनमें बैठे हैं, भगवानको छत्र और चँवर (होते हैं)। भगवानका शरीर शान्त है, ऐसा सब देखा। लेकिन अंतरमें भगवान क्या कहते हैं, वह नहीं पहिचाना। इसलिये वापस आया। भगवानका स्वरूप नहीं पहिचाना है। उनके आत्माका क्या स्वरूप है, उसे नहीं पहिचाना है, इसलिये वापस आता है।

मुमुक्षु :- अन्दरसे आत्मा जागृत हुआ हो और रुचि हो तो..?

समाधान :- नहीं, वह अभवि नहीं होता। अभवि जगतमें बहुत कम हैं। अनन्त भवि और एक अभवि। अनन्त भवि और एक अभवि। ऐसे अभवि अनन्त हैं, फिर

भी भविसे अभवि कम हैं। जैसे मुँगका दाना होता है, वह मुँग सीझते हैं, उसमें कुछ मुँगमें नमी नहीं होती, वैसे अभवि कम होते हैं। परन्तु जिसे आत्माकी रुचि लगे वह अभवि नहीं होते।

मुमुक्षु :- अस्तित्वका स्वीकार ...?

समाधान :- आत्माके अस्तित्वका स्वीकार... शुभाशुभ भाव परसे जिसकी रुचि उठ जाय, जिसे अंतरमें विभावभावकी रुचि नहीं होती। आत्मा-ओरकी रुचि होती है। आत्माकी अपूर्वता लगे, आत्मा ही सर्वस्व है ऐसा लगे तो वह अभवि नहीं होता।

गुरुदेवने कहा उसकी अपूर्वता अंतरमें लगे और आत्मा कोई अलग गुरुदेवने बताया, वह आत्मा अलग है और उस ओरका पुरुषार्थ, उस ओरकी रुचि, कोई शुभाशुभ भावमें जिसे रुचि नहीं लगती, वह अभवि नहीं होता।

मुमुक्षु :- दिनमें स्वाध्याय कितने घण्टे करना चाहिये?

समाधान :- अपनी रुचि अनुसार, स्वयंको समय मिले उस अनुसार। जितना समय मिले उतना। नहीं तो अंतरमें स्वयंमें विचार करना। कुछ समय स्वाध्यायका मिले तो अच्छी बात है।

मुमुक्षु :- दिनमें चार-पाँच घण्टे अपने लिये निकाल ले तो?

समाधान :- तो ज्यादा अच्छी बात है। चार-पाँच घण्टे अपने लिये निकाल ले, स्वाध्यायके लिये तो अच्छी बात है। करनेका तो वही है न जीवनमें। संसारमें तो सब चलता रहता है। विचार, वांचन सब। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, अंतर आत्माकी महिमा, रुचि...

मुमुक्षु :- जीव कहीं भी बैठा हो, लेकिन अपने आत्माकी ओर ... मोड़ देना।

समाधान :- हाँ। आत्मा-ओरकी रुचि हो तो वह अभवि नहीं होता।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- रुचि और जोश हो तो वह स्वयं कर सकता है।

मुमुक्षु :- यहींका झुकाव और यहींका..

समाधान :- भावना रहे कि देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य मिले, ऐसी भावना रहे। परन्तु न मिले तो क्षेत्रसे दूर हो तो वह अंतरमें अपना पुरुषार्थ करनेमें कोई रोक नहीं सकता, कोई बाह्य क्षेत्र। बाह्य संयोग अच्छे हो, सत्संग आदि हो तो ज्यादा अच्छा है। लेकिन वह नहीं हो तो स्वयं अपना कर सकता है। पुरुषार्थ, अपना पुरुषार्थ तीव्र चाहिये।

मुमुक्षु :- गुण, पर्याय स्वतंत्र है, ऐसा बोलते हैं। गुणोंका समूह द्रव्य है। तो वह कैसे स्वतंत्र हैं?

समाधान :- द्रव्य, गुण, पर्याय स्वतंत्र हैं। लेकिन दो द्रव्य स्वतंत्र है, दोनों द्रव्य स्वतंत्र है वैसे गुण और पर्याय वैसे स्वतंत्र नहीं है। स्वतंत्र तो लक्षण, प्रयोजन, संख्या आदिसे स्वतंत्र है। गुण एक-एक सबका.. ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द ऐसे गुण स्वतंत्र हैं। जो गुण परिणमते हैं उसकी पर्याय स्वतंत्र है। वह सब स्वतंत्र है। तो भी गुण और पर्यायको द्रव्यका आश्रय है। द्रव्यके आश्रयसे है। स्वतंत्र, अपने स्वभावसे स्वतंत्र है। तो भी गुणका समूह तो द्रव्य है। ऐसा कहनेमें आता है। दोनों अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न हैं। अपेक्षासे बात है।

मुमुक्षु :- उसको ध्यानमें रखना पडेगा।

समाधान :- हाँ, ध्यानमें रखना। स्वतंत्र (कहनेसे) ऐसे स्वतंत्र नहीं है कि गुण द्रव्य हो जाय, ऐसा स्वतंत्र नहीं है। ऐसा स्वतंत्र होवे तो जितने गुण हैं, उतने द्रव्य हो जाय। ऐसे स्वतंत्र नहीं हैं। गुण द्रव्यमें रहते हैं। पर्याय द्रव्यके आश्रयसे होती है। अपेक्षा लक्ष्यमें रखनी चाहिये।

मुमुक्षु :- द्रव्यकी पर्याय नहीं होती, ऐसा समझमें तो होना चाहिये। गुणकी पर्याय होती है, द्रव्यकी नहीं होती।

समाधान :- नहीं, ऐसा नहीं है। द्रव्यकी भी पर्याय होती है, गुणकी पर्याय होती है। गुणपर्याय, अर्थपर्याय, व्यंजनपर्याय ऐसा कहनेमें आता है। अखण्डरूपसे द्रव्यपर्याय कहनेमें आता है। एक-एक गुणकी भिन्न-भिन्न पर्याय अर्थपर्याय कहनेमें आती है। गुणकी पर्याय।

मुमुक्षु :- सुनते भी है, करते भी है, लेकिन फिर भी अंतरमें लक्ष्य नहीं होता है। ऐसी कचास है।

समाधान :- लक्ष्य करनेमें अपना पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थसे होता है। भावना ऐसी होवे कि अंतर लक्ष्य हो। अंतर दृष्टिसे सब प्रगट होता है। आत्मा मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वभाव है? ये सब भिन्न हैं। शरीर अपना नहीं है, शरीर परद्रव्य है। विभाव भी अपना स्वभाव नहीं है। ऐसे चैतन्यद्रव्य ज्ञायक स्वभाव अनन्त गुणसे भरपूर ऐसा द्रव्य मैं हूँ, उस पर दृष्टि करनी चाहिये। उसका प्रयत्न करना चाहिये। अंतर्मुख दृष्टि करनेसे प्रगट होता है। बाहर बहिरदृष्टिसे नहीं होता, वह तो अंतरदृष्टिसे होता है। तो अंतरदृष्टि करनेसे जो द्रव्यमें है, गुण आनन्द सब प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- वह अनुभवमें आयेगा।

समाधान :- वह अनुभवमें आयेगा। अंतरमें जानेसे अनुभवमें आता है।

मुमुक्षु :- बाहरकी बात करनेसे, बाहरके विचार करनेसे तो होता नहीं।

समाधान :- नहीं होता है।

मुमुक्षु :- संस्कार कुछ ऐसे हैं कि बाहरका एकदम नहीं छूटता है। अनादि कालका संस्कार है।

समाधान :- अनादि कालका संस्कार है। उस प्रवाहमें चला जाता है।

मुमुक्षु :- .. बना देता है तो फिर उधरमें...

समाधान :- तो भी बारंबार-बारंबार विचार, तत्त्व चिन्तवन ऐसा करना चाहिये। बारंबार, मेरी अंतरमें दृष्टि कैसे आवे? कैसे आवे? ऐसी भावना, लगन रखनी चाहिये और बारंबार-बारंबार पुरुषार्थ करना चाहिये। नहीं होता है तो बार-बार पुरुषार्थ करना चाहिये।

मुमुक्षु :- किस बातका पुरुषार्थ करें, माता?

समाधान :- मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ, मैं चैतन्यद्रव्य हूँ। ये सब मैं नहीं हूँ। ऐसे अंतरकी दृष्टि करना चाहिये। चैतन्यद्रव्य हूँ, वह विचारसे ठीक, परन्तु उसका स्वभाव ग्रहण करके उसे ग्रहण करना चाहिये। बारंबार प्रयत्न करना चाहिये। स्थूल उपयोग बाहर जाता है तो उपयोगको सूक्ष्म करके, मैं चैतन्य हूँ, ऐसे ग्रहण करना चाहिये। चैतन्य जो जाननेवाला ज्ञायक है वह मैं हूँ। ऐसा बारंबार पुरुषार्थ करना चाहिये।

मुमुक्षु :- एक तो ज्ञानका पुरुषार्थ और रुचिका पुरुषार्थ। ज्ञानका पुरुषार्थ स्वकी ओर उपयोग लगाना। उसमें मुख्यता किसकी है?

समाधान :- स्व-ओर ज्ञायकको ग्रहण करना। रुचि ज्ञायककी.. ज्ञायक.. ज्ञायक मैं हूँ, वह ज्ञानका पुरुषार्थ हुआ। ज्ञायकको ग्रहण करना। उसमें रुचि बिना ग्रहण होता नहीं। स्वभावको पहिचाने बिना भी ग्रहण होता नहीं। इसलिये उसमें ज्ञान साथमें आ गया। ये ज्ञानलक्षण सो मैं हूँ। ये विभावलक्षण मैं नहीं हूँ। ये ज्ञायकका लक्षण जो है वह मैं हूँ। ऐसी सूक्ष्म प्रज्ञाछैनी तैयार करनी वह ज्ञान है। ज्ञायककी ओर ज्ञान मुड़ता है, रुचि मुड़ती है, उसकी परिणति उस ओर मोड़नी।

मुमुक्षु :- उसमें मुख्य-गौण कुछ नहीं है? रुचिका पुरुषार्थ या ज्ञानका पुरुषार्थ।

समाधान :- जिसकी रुचि तीव्र हो उसे ज्ञान साथमें आ जाता है, उसके साथ उसकी एकाग्रता भी आ जाती है। उसकी रुचि जोरदार हो तो साथमें आ जाता है। रुचि मन्द-मन्द काम करती हो तो उपयोग बाहर चलता रहता है।

मुमुक्षु :- उपयोग भी विकल्प ही है?

समाधान :- उपयोगके साथ विकल्प रहता है। उपयोग वह विकल्प है ऐसा नहीं, उपयोगके साथ-साथ विकल्प आते हैं, इसलिये वह विकल्पात्मक उपयोग कहनेमें आता है। उपयोग तो निर्विकल्प भी होता है। विकल्प छूटकर जो उपयोग स्वभाव जाय, ज्ञायक स्वभावको ग्रहण करके उसमें लीनता करे, भेदज्ञान करे और उपयोग स्वमें स्थिर हो

जाय तो निर्विकल्प उपयोग हो जाय। स्वानुभूति हो जाय, विकल्प छूट जाय तो। लेकिन विकल्प टूटनेसे स्वभावको ग्रहण करके एकदम जोरदार ज्ञायककी ज्ञाताधारा उग्र हो तो विकल्प छूट जाय।

मुमुक्षु :- जैसा-जैसा निमित्त मिलता है, वैसा-वैसा उपयोग अन्दर ... उस प्रकारका परिणमन हो तो..

समाधान :- जैसा-जैसा निमित्त मिले ऐसा नहीं, स्वयं स्वभावको ग्रहण करे तो स्वभावकी ओर ढलता है। निमित्त मिले बाहरसे... बाहरसे निमित्त मिले... यथार्थ कोई सत्संग मिले, गुरु मिले तो अपना स्वभाव ग्रहण करे। प्रयत्न स्वयंको करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- कार्य हम करे, निमित्तका आरोप आता है।

समाधान :- कार्य हो। गुरुदेवने उपकार किया, गुरुदेवने सब समझाया। बहुत जीवोंको गुरुदेवने तैयार किये, ऐसा कहनेमें आये। गुरुदेवका ही उपकार है। सबकी रुचि बाहर क्रियाको मानते थे। गुरुदेवने आत्माकी ओर दृष्टि करवायी। सब गुरुदेवने किया है। परन्तु रुचि अपनी।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ तो अपने करना है।

समाधान :- पुरुषार्थ अपनेको करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने तो पंचम कालको चतुर्थ काल बना दिया।

समाधान :- हाँ, चतुर्थ काल बना दिया।

मुमुक्षु :- अभी तो अपनेको करनेका है। लाया, खाना रखा, हमको मुँहमें भी दिया, लेकिन खानेका तो हमको करना है।

समाधान :- हाँ, खानेका प्रयत्न तो करना पड़ता है। तैयार करके सब दे दिया। स्पष्ट कर-करके बता दिया। कहीं कमी, भूल न रहे ऐसा स्पष्ट करके सूक्ष्म (रूपसे समझाया है)। द्रव्य-गुण-पर्याय, सबको स्पष्ट करके बता दिया है। सब जीव कहाँ क्रियामें पड़े थे। सबको ... यथार्थ ज्ञान करके, यथार्थ स्वरूप बता दिया। आत्माका स्वरूप बता दिया।

मुमुक्षु :- गुरुदेवका तो विरह हो गया, अभी आपका ही.. आपको देखकर वह विरह भूल जाते हैं। अभी तो आपका ही सहारा है।

समाधान :- गुरुदेवने तो बहुत दिया सबको। अपूर्व मार्ग। गुरुदेवके सब दास हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके दास हैं, लेकिन... अभी तो जन्मदाता तो आप हैं। बच्चा रोकरके आता है तो माँके पास एकदम चीपक जाता है। उसको डाँटते भी है तो भी माताके पास जाता है। उसी तरहसे भवसे त्रस्त होकर, दुःखी होकरके ...आता है। एक इधरमें शान्ति मिलती है। बस, और तो कोई... ऐसा है नहीं। महाराज साहबका

साधना स्थान है, एक-एक कण-कणमेंसे होता है।

समाधान :- साधनाकी स्फुरणा होती है।

मुमुक्षु :- कोई समेदशीखरसे...

समाधान :- गुरुदेवने साधना की।

मुमुक्षु :- साधना की और आप लोगने उतना उसका लाभ लिया कि अभी भी बढता है, अभी भी बढता है।

समाधान :- सहज पुरुषार्थ उठे, और उसमें पुरुषार्थसे करना पड़ता है। साधर्मीका संग आदि सब गुरुदेवका प्रताप है। साधर्मी सब यहाँ बसे हैं। भगवान आत्मा है। भगवान है, देख! तेरा भगवान!

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६६

समाधान :- ... अन्दर आत्माको पहिचाने, आत्माकी ओर जाय, आत्माकी रुचि करे, आत्माकी महिमा (करे)। सच्ची समझ करे कि मैं कौन हूँ? ऐसी उसे अंतरसे लगन लगनी चाहिये। कहीं चैन न पड़े, विभावमें कहीं चैन न पड़े, अंतर दृष्टि होनी चाहिये। फिर उसे बाहरकी रुचि तो सहज ही ऊतर जाती है। उसे बाहरका कोई रस नहीं रहता। अंतरमेंसे छूट जाय, इसलिये बाहर एकदम तीव्रतासे कहीं तन्मय नहीं होता। वह तो निरस हो जाता है। बाहरकी अमुक क्रियाएँ होनी चाहिये ऐसा नहीं होता। निरस हो जाता है। सहज-सहज उसे ऐसी विरक्ति आ जाती है। उसे अन्दरसे रस ऊतर जाता है। फिर उसे विचार, वांचन, स्वाध्याय आता है। अंतर आत्माको कैसे पहिचानूँ, उसकी सच्ची समझ, उसके विचार, वांचन होता है। अन्दर खोज (चलती है कि) आत्मा कैसे पहचानमें आये? आत्मा क्या है? ये विभाव क्या है? उसका लक्षण पहिचाननेके लिये सब प्रयत्न चलता है।

उसके लिये इतनी क्रिया होनी चाहिये या इतना होना ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं होता। उसे रस नहीं आता, इसलिये सहज ही छूट जाता है। बाहर जो तीव्र रागके प्रसंग और सब क्रियाएँ छूट जाती है, परन्तु उसका नियम नहीं होता कि इतनी क्रिया होनी ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं है।

मुमुक्षु :- द्रव्य, भावका कारण बनता है?

समाधान :- द्रव्य भावका कारण... भाव जहाँ यथार्थ होते हैं, वहाँ उसके योग्य ऐसा होता है। द्रव्य लाभ करता है ऐसा नहीं है, भाव उसका यथार्थ हो उसे ऐसा निमित्त बनता है। जहाँ सच्ची रुचि जागृत हो, वहाँ सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको वह ग्रहण करता है। सच्ची रुचि जागृत होती है इसलिये उसे अमुक जातके कषाय मन्द हो जाते हैं। उसके कषाय तीव्र नहीं होते। अंतरमें जाय इसलिये उसे कषायका रस कम हो जाता है। अमुक होना चाहिये ऐसा नहीं, लेकिन उसे कम हो ही जाता है।

मुमुक्षु :- स्वाभाविक है।

समाधान :- स्वाभाविक हो जाता है।

मुमुक्षु :- चटपटी लगे उसे ..

समाधान :- चटपटी लगे इसलिये उसे कषाय कम हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- चटपटी लगानेके लिये भी प्रयत्न तो करना पड़ता है न?

समाधान :- चटपटी लगानेके लिये प्रयत्न करना पड़ता है। प्रयत्न करना चाहिये। अंतरमें जानेका प्रयत्न तो करना चाहिये। कषाय तो उसे सहज ही कम हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- सहज ही कम हो जाते हैं? प्रयत्न ज्यादा नहीं करना पडे।

समाधान :- उसे रस ही नहीं रहता। जिसे आत्माकी ओर जानेका वैराग्य आ जाय, उसे ये सब रुचि, बाहरकी रुचि कम हो जाती है। रस कम हो जाता है।

मुमुक्षु :- .. उसे दृढ़ता रहा करे कि मैं तो, चाहे जो भी उपयोग हो, कोई भी अवस्था हो, मैं तो ज्ञायक ही हूँ।

समाधान :- सर्व प्रथम तो बुद्धिपूर्वक निर्णय होता है। लेकिन उसे निर्णय ऐसा ही होता है कि यह यथार्थ निर्णय है और इसी प्रकारसे आगे जाया जाता है। ऐसी उसे अंतरमेंसे श्रद्धा हो जाती है। यह ज्ञायक है और इस ज्ञायकको ग्रहण करनेसे और उसमें तीव्रता करनेसे, उसकी उग्रता करनेसे अवश्य इसमेंसे आगे बढ़ा जाता है। ऐसा उसे निर्णय आ जाता है। उसका वह निर्णय यथार्थ होता है। ज्ञायकके मूलमेंसे ही उसे स्वभाव ग्रहण होकर निर्णय होता है कि यही ज्ञायक है और ये सब पर है, यह विभाव है, यह स्वभाव है। और इस स्वभावको ग्रहण करनेसे अंतरमेंसे शान्ति प्रगट हो, अंतरमेंसे आनन्द आता है, ऐसा उसे यथार्थ निर्णय जोरदार होता है। और जहाँ उसका पुरुषार्थ उठता नहीं है, वह जानता है कि मेरा पुरुषार्थ नहीं है। लेकिन इस ज्ञायकको ग्रहण करनेसे, ज्ञाताधाराको उग्र करनेसे अवश्य इसमेंसे स्वानुभूति प्रगट होती है। ऐसा उसे जोरदार निर्णय होता है।

और उसके बाद भी, स्वानुभूतिके बाद भी उसे भेदज्ञानकी धारा चलती है। पहले तो उसे निर्णय होता है, परन्तु भेदज्ञानकी धारा उसकी सहज नहीं होती है। ज्ञायक ग्रहण हो और फिर छूट जाय, उसे ऐसी पुरुषार्थकी तीव्रता-मन्दता होती रहती है। परन्तु उसका निर्णय जोरदार होता है कि ऐसा पुरुषार्थ करनेसे, इस ज्ञायककी उग्रता करनेसे अवश्य इसी मार्गसे आगे बढा जाता है। उतना जोरदार निर्णय होता है। फिर तो उसकी ज्ञायककी धारा जोरदार रहती है। क्षण-क्षणमें कहीं भी उपयोग जाय, उपयोग बाहर जाय, अनेक जातके उसे विभावके विकल्प आये तो भी उसे ज्ञायककी धारा तो ज्ञायक उसे भिन्न ही, प्रतिक्षण भिन्न ही रहता है। बाहरमें कोई भी कार्य होता हो, अंतरमें कोई भी विकल्प आते हो तो भी उसे ज्ञायक उससे न्यारा, ज्ञायककी धाराकी परिणति भिन्न ही रहती है। खाते-पीते, चलते-फिरते कोई, कहीं भी सोते-जागते उसे भेदज्ञानकी धारा (चलती है)। एकत्व होता ही नहीं, ऐसी सहज धारा होती है। और सहज धाराकी

उग्रता होनेसे उसे स्वानुभूति भी ऐसे ही होती है। फिक्षर तो सहज धारा ही रहती है। पहले तो उसे मात्र निर्णय होता है। उसकी सहज धारा नहीं होती। लेकिन निर्णय होता है कि इस ज्ञायकको ग्रहण करनेसे, इसकी उग्रता करनेसे, भेदज्ञान करनेसे अवश्य स्वानुभूति होती है। भेदज्ञानकी धारा उसे टिकती है, क्योंकि वह सहज नहीं है इसलिये। उसकी उग्रता करते-करते अवश्य स्वानुभूति होगी, ऐसा उसे निर्णय होता है। फिर तो उसकी सहज धारा (हो जाती है)। वह एकत्व होता ही नहीं। उपयोग बाहर जाय तो भी उसकी परिणति तो न्यारी ही रहती है। परिणति भिन्न ही रहती है।

मुमुक्षु :- उसे कोई भी उदयभाव आये तो भी शंका नहीं होती कि मेरा निर्णय बदल गया...?

उत्तर :- उसे शंका होती ही नहीं। उसकी सहज धारा भिन्न ही रहती है। शंका ही नहीं पड़ती। जिस क्षण विकल्प आये उसी क्षण उसे ज्ञायककी धारा रहती है। जिस क्षण.. फिर उसे याद नहीं करना पड़ता। जब वह विकल्प हो, उसी वक्त ज्ञायककी धारा (होती है)। उसी क्षण भिन्न होता है। अपना अस्तित्व जो ज्ञायकरूपसे ग्रहण हुआ, वह ज्ञायककी परिणति जोरदार (होती ही है)। उसके साथ एकमेक-तन्मय होता ही नहीं, न्यारा ही रहता है। विकल्प आये तो न्यारा रहकर ही आता है। कोई भी आवे। फिर तो याद भी नहीं करना पड़ता, सहज (होता है)। सहज अपना अस्तित्व ज्ञायककी परिणतिपूर्वक वह विकल्प होता है। वह भिन्न रहता है। उसे शंका नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- शरीरमें रोग आवे, प्रमाद हो जाय, उसके साथ उसे ऐसा नहीं हो जाता कि मेरे निर्णयमें कुछ फेरफार हो गया?

समाधान :- नहीं, उसे बिलकूल शंका नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- क्योंकि ऐसा तो बने कि शरीरमें रोग आवे तो उस ओर लक्ष्य जाय, प्रमाद भी हो जाय।

समाधान :- तो भी उसे ज्ञायककी धारा, अमुक जातका जो पुरुषार्थ सहज है, वह उसे मन्द होता ही नहीं। उसकी स्थिरतामें उसे विशेष कम हो, बाकी ज्ञायककी धारा, वह सहज धारा रहती ही है।

मुमुक्षु :- विचार करे तो ही रहे ऐसा कुछ नहीं?

समाधान :- विचार करे तो रहे ऐसा नहीं, सहजपने रहती है।

मुमुक्षु :- निर्णयवालेकी भी वह स्थिति होती है?

समाधान :- प्रथम भूमिकावालेको ऐसी सहज धारा नहीं होती। उसे निर्णय होता है। उसे याद भी करना पड़े। उसे निर्णय है। धारा या अमुक अंशमें उसे शान्तिका वेदन हो, पहले उसे ऐसी सहज धारा नहीं होती। उसे याद करना पड़ता है। वैसा

PARINATI Ki Dhaara Woh SAHAJ Hai Aur PURUSARTH PURVAK (ANAND) Hai.

सहज नहीं होता। बार-बार उसका अभ्यास करता है। ... उसे दृढ़ता होती है, पहले। एकत्वबुद्धि जो अनादिकी है वह जैसे सहज है, वैसे उसे भेदज्ञानकी धारा सहज रहती है। उस जातका पुरुषार्थ उसे सहज हो गया है।

मुमुक्षु :- सहज है, फिर भी पुरुषार्थ तो है।

समाधान :- पुरुषार्थ है। सहज होने पर भी पुरुषार्थ है। इसलिये उसे बार-बार विचार करके टिकाना नहीं पड़ता इसलिये वह सहज है। विकल्प करके या विचार करके या स्मरणमें लेकर ऐसे उसे टिकाना नहीं पड़ता। इसलिये सहज है। परन्तु परिणतिकी धारा है वह उसे पुरुषार्थपूर्वक है।

मुमुक्षु :- ... स्वकी अपेक्षारूप परिणतिमें पुरुषार्थ रहा है।

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थ रहा है। अपनी ओरका जो आश्रय है उसमें पुरुषार्थ रहा है।

मुमुक्षु :- बदलता नहीं। धारणाज्ञान पर्यंत पहुँचता है, समझमें भी बिठाता है, परन्तु परिणति नहीं बदलता। परिणति बदलता नहीं है अर्थात् परका लक्ष्य..

समाधान :- परिणति जो एकत्वकी परिणति बन गयी है, उस परिणतिको भिन्न नहीं करता है। निर्णय हो गया कि मैं भिन्न ही हूँ, मैं ज्ञायक हूँ। लेकिन वह ज्ञायक जो क्षण-क्षणमें विकल्पोंके साथ एकत्वबुद्धि करके जो वर्तता है, एकत्व होकर परिणमन कर रहा है, उस एकत्वताको तोड़ता नहीं। इसलिये परिणति बदलता नहीं है। वह एकत्वता तोड़नेका प्रयास करे तो प्रयास उसे हो सकता है। अभ्यासरूप हो सकता है। परन्तु सहज होनेमें तो उसे स्वानुभूति हो तो उसे अधिक सहज होता है। पहले वह एकत्वता तोड़नेका अभ्यास कर सकता है।

... परिणति हो रही है, फिर उसे विचार करना पड़ता है कि यह एकत्व हो रहा है, मैं भिन्न हूँ, ऐसा विचार करना पड़ता है, प्रयास करना पड़ता है। सहज नहीं है न इसलिये। विचारपूर्वकका अभ्यास (होता है)। ... वह सहज काम करता है। उपयोग बाहर जाय तो भी परिणति जो सहज होती है वह कार्य करती रहती है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ तो प्रतिक्षण चलता रहता है।

समाधान :- चलता ही रहता है, प्रतिक्षण। जिस क्षण विकल्प आये उसी क्षण पुरुषार्थ चालू ही है।

मुमुक्षु :- अंतर स्वभावको पकड़नेका कोई पुरुषार्थ?

समाधान :- जो सहज सम्यग्दर्शनके बादका है, वह तो उसे सहज ज्ञायक ग्रहण ही हो गया है। ज्ञायकरूप ही मैं हूँ, ज्ञायकरूप ही हूँ। ऐसी उसकी परिणति पुरुषार्थपूर्वक वर्तती ही है। और पहले जो है वह ज्ञायकको ग्रहण करनेका प्रयत्न है। उसने बुद्धिमें

नक्की किया परन्तु ज्ञायक अभी परिणतिरूपसे भिन्न नहीं हुआ, तब तक ज्ञायकको ग्रहण करनेके लिये उसका प्रयत्न चालू रहता है।

... इस तरह दृष्टि पलटे तो पहिचाने। ये तो दृष्टि बाहर पुद्गलमें है, इसलिये बाहरका पहिचानता है। अंतर दृष्टि करे तो पहिचाने। मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, शाश्वत हूँ, अनादिअनन्त हूँ, ऐसे स्वयं विचार करे तो पहचान सके। दृष्टि बदले तो पहचान सके। उसकी जरूरत महसूस हो, उस ओर पुरुषार्थ करे तो पहचान सके। उसके लक्षणसे पहिचान सकता है। ज्ञान लक्षण, ज्ञायक लक्षण है। ये सब लक्षण पुद्गलका है वह जड़ है, बाहरका है। सब विभाव है।

मुमुक्षु :- ज्ञानलक्षण तो पर्यायमें है और पहिचानना स्वभावको है।

समाधान :- पर्यायमें है लेकिन वह पर्याय अंतरमें मैं शाश्वत कौन हूँ, ऐसे पहचान सकता है। भले पर्याय हो तो भी दृष्टि द्रव्यकी ओर कर सकते हैं। ये जो क्षणिक ज्ञानलक्षण है उसमें शाश्वत मैं जाननेवाला हूँ। ऐसे दृष्टिको स्वयं शाश्वत पर पहिचानकर स्थिर कर सकते हैं। ये जो ज्ञानकी पर्याय बदलती रहती है, वह बदलती है सो मैं नहीं, परन्तु जो शाश्वत ज्ञायक है, एक समान रहता है, वह मैं ज्ञायक जाननेवाला हूँ। बदलता रहे, एकके बाद एक ज्ञेयको जाने, उस ज्ञेयको जाने इसलिये मैं नहीं, परन्तु मैं स्वयंसिद्ध ज्ञायक हूँ। ज्ञेयको जाननेवाला ज्ञायक मैं स्वतःसिद्ध ज्ञान-जाननेवाला ही हूँ। एकके बाद एक पर्याय बदले क्षण-क्षणमें, वह तो बदलती रहती है। जो बदलता है वह मेरा शाश्वत लक्षण नहीं है। मैं शाश्वत ज्ञायक हूँ, ऐसे पहिचान सकता है। ... तो लीनता हो, तो उसमें स्थिरता हो।

मुमुक्षु :- जरूरत पर सब आधार है?

समाधान :- जरूरत लगे, उसकी लगन लगे, जरूरत लगे..। बाहरका सब जरूरतवाला लगे, उसे रसयुक्त लगता है। परन्तु अंतरकी जरूरत, उसीमें सर्वस्व है। वही सुखरूप है, वही आनन्दरूप है, वही मेरा स्वभाव है। ऐसे जरूरत लगे तो पुरुषार्थ उस ओर मुड़े। ऐसी अंतरमेंसे लगन लगनी चाहिये। जरूरत लगे तो उस ओर प्रयत्न-पुरुषार्थ करता रहे, उसके पीछे लगता है। ये तो उसे इतनी जरूरत ही नहीं लगती है, अंतरमें उतनी लगन नहीं लगती है। लगन लगे तो उसके पीछे प्रयास करता ही रहे। बारंबार उसका प्रयास करता रहे।

मुमुक्षु :- १७-१८ गाथामें आता है कि प्रत्येक जीवको अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभवमें आता है।

समाधान :- वह अनुभूति यानी वास्तविक अनुभूति जो अन्दर आनन्दका वेदन, ऐसा नहीं कहना चाहते हैं। ऐसा कहते हो तो फिर कहते हैं, तुझे उसकी श्रद्धा नहीं

है, नहीं जाना उसका श्रद्धान गधेके सिंग बराबर है। ऐसा सब कहते हैं। नहीं जाना उसका श्रद्धान। तो गधेके सिंगके बराबर आदि कहते हैं, अर्थात् वास्तविक अनुभूति वहाँ नहीं कहते हैं।

वहाँ तो कहते हैं, तेरा स्वभाव उस रूप परिणमता है। जो स्वभाव तेरा ज्ञायकरूप है जाननेवाला, उस रूप तू अनादिसे हो रहा है। अनुभवका अर्थ वहाँ उसका अनुसरण करके तू हो रहा है, उस रूप। ऐसा कहना चाहते हैं। अनुभूति अर्थात् तू उस रूप हो (रहा है), तेरा स्वभाव उस रूप परिणमता है, तेरे स्वभावरूप तू अनादिसे हो रहा है। चेतन चेतनरूप परिणमता है। उसे तू पहिचान ले।

मुमुक्षु :- प्रश्न यह होता है कि अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा कहा, वह किसका विशेषण कहा?

समाधान :- विशेषण भले स्वयंका चैतन्यका है।

मुमुक्षु :- परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अर्थात् ज्ञायकभाव?

समाधान :- हाँ, ज्ञायकभाव।

मुमुक्षु :- आबालगोपाल सभीको सदाकाल अनुभवमें आ रहा है यानी स्वभाव तो ज्ञात हो रहा है। उपयोगात्मकका सवाल नहीं है।

समाधान :- उस रूप परिणति हो रही है। पारिणामिकभावरूप वह परिणमता है। आत्मा, ज्ञायक स्वयं।

मुमुक्षु :- परन्तु उस आनन्दकी अनुभूतिकी बात नहीं है। ऐसे नहीं लेना चाहिये।

समाधान :- आनन्दकी अनुभूति, वेदनकी अनुभूति नहीं है। नहीं तो फिर ऐसा क्यों आया कि नहीं जाना है उसका श्रद्धा गधेके सिंग बराबर है। अर्थात् आचार्यको दूसरा कहनेकी अपेक्षा है। अनुभूति कहकर तू ज्ञायकरूप भगवान अनुभवमें आ रहा है। अर्थात् उस स्वरूप तू सदाके लिये शाश्वत है। तेरा नाश नहीं हुआ है। तू तेरे स्वभावको टिका रहा है, ज्ञायकरूपसे। अतः तू है उसे पहिचान, ऐसा कहना है। उस स्वरूप ही तू है।

मुमुक्षु :- आत्माको उसका प्रतिभास हो रहा ऐसा कह सकते हैं?

समाधान :- प्रतिभास यानी तू उस रूप ही, ज्ञायक ज्ञायकरूपसे परिणमन कर रहा है। ज्ञायककी ज्ञायकता छूट नहीं गयी है, चेतनकी चेतनता छूट नहीं गयी है। ज्ञायकरूप तू भले विभावमें गया तो भी तेरी चेतनता ज्योंकी त्यों परिणमती है। सदाकाल परिणमती है। उस चेतनताको तू अन्दरसे पहिचान ले, ऐसा कहते हैं। गुरुदेवकी टेपमें अभी आया था, अनुभूति अर्थात् उस रूप होना, उस स्वरूपरूप परिणमना।

मुमुक्षु :- होना।

समाधान :- हाँ, होना। उस रूप होना।

मुमुक्षु :- स्वभाव.. स्वभाव। ... अगुरुलघुगुणके कारण जो अनेकपनाकी ... अनुभूति और वह पर निमित्तके कारण आ पड़ती आपत्ति। उसमें आ पड़ी है, इसमें अनुभूत ली। इतना फ़र्क़ है। उसमें आया था। आज अनुभूति आया था, इस अर्थमें। मैं यहाँ आया उस दिन। आज ही यह आया-अनुभूति।

मुमुक्षु :- दो दिन पहले माताजीको १७-१८ गाथाका प्रश्न पूछा था। दो-चार दिन पहले।

मुमुक्षु :- मुझे मालूम नहीं था।

समाधान :- उस रूप वह हो रहा है, ज्ञायक ज्ञायकरूप ही हो रहा है। वह हो रहा है लेकिन उसे प्रगटरूपसे ख्याल नहीं है। स्वयं उस रूप हो रहा है। अनुभूतिस्वरूप अर्थात् ज्ञायक ज्ञायकरूप, लेकिन वह मालूम नहीं है।

मुमुक्षु :- मालूम नहीं है अर्थात् उपयोगात्मक नहीं करता है ऐसा?

समाधान :- उसका उपयोग-प्रगट नहीं करता है। उपयोगात्मक...

मुमुक्षु :- उपयोगमें भी नहीं है और लब्धमें नहीं है। .... तो उपयोगात्मक कहें। जानता ही नहीं।

मुमुक्षु :- नहीं, नहीं ऐसा कहना है कि छद्मस्थ जीव है इसलिये दो जगह तो उपयोग रहता नहीं। यानी उपयोगात्मक...

मुमुक्षु :- एक जगह उपयोग और बाकी सब लब्धमें।

मुमुक्षु :- वह तो एक बार अनुभव होनेके बादका बराबर है।

मुमुक्षु :- इसलिये यहाँ नहीं है। उपयोगात्मकका कोई मतलब नहीं है। किसी भी प्रकारसे जानता ही नहीं। उपयोगात्मक नहीं है, तो कोई अपेक्षासे जानता है, ऐसा होता है। जानता ही नहीं।

मुमुक्षु :- वह स्वीकार्य नहीं है। वह हमें स्वीकार्य नहीं है।

समाधान :- आचार्यदेव कहते हैं कि तू अनुभूतिस्वरूप हो रहा है। लेकिन तुझे उसका श्रद्धान नहीं है। और नहीं जाने हुएका श्रद्धान गधेके सिंगके बराबर है। इसलिये तू जानता भी नहीं, श्रद्धान नहीं है, आचरण नहीं है। परन्तु आचार्यदेव उसे कहते हैं, नहीं है उसका अर्थ तेरा नाश नहीं हुआ है। तू जड़ नहीं हो गया है। तू स्वयं है अनुभूतिस्वरूप आत्मा, बालगोपाल सबको अनुभूतिरूप हो रहा है। तू पहिचान ले। तू स्वयं ही है। तू उस रूप ही है, ज्ञायक ही है, उसे तू जान ले। तू जान ले, तेरा नाश नहीं हो गया है, तू है उसको जान ले, ऐसा कहते हैं। तू उस रूप अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा आबालगोपाल सदा शाश्वत है। ज्ञायक ज्ञायकरूप ही है, तू उसे

पहिचान ले। पहिचना ले।

मुमुक्षु :- आबालगोपाल सबको उस रूप हो ही रहा है। कैसे हो रहा है, मालूम नहीं। उत्पाद-व्यय-ध्रुवकी एकतास्वरूप अनुभूति, दूसरी गाथा। सात बोल।

समाधान :- अनुभूतिस्वरूप यानी ज्ञायकरूप है। वेदन प्रगट नहीं है। उसे अपने स्वभावका वेदन नहीं है। लेकिन जड़ हो तो उसे अनुभूतिस्वरूप नहीं कहते। तो भी उसमें जड़की अनुभूति कहा है। लेकिन तू ज्ञायकरूप ही हो। आबालगोपालको ज्ञायकरूप अनुभूतिरूप ज्ञायक है। ज्ञायक ही है, लेकिन तू कहाँ खोजता है? तू स्वयं ही है। तू उसकी श्रद्धा कर, उसे जान। तू स्वयं ही है। तू स्वयं ही है और दूसरी-दूसरी जगह खोजने जा रहा है। दूसरी जगह खोजता रहता है। तू ही है। तेरी ओर दृष्टि कर।

मुमुक्षु :- बाहर व्यर्थ महेनत करता है।

समाधान :- बाहर व्यर्थ महेनत करता है।

मुमुक्षु :- सदा काल स्वयं ही अनुभवमें आता होने पर भी, उसका अर्थ आपने ऐसा लिया कि अनुभवमें आता होने पर भी...

समाधान :- श्रद्धा नहीं है, आचरण नहीं है, कुछ नहीं है तो भी तू है। भगवान आत्मा तू ज्योंका त्यों है। आबालगोपाल सबको।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६७

मुमुक्षु :- ... विशेष स्पष्टीकरण करते हुए दूसरी टीका लिखी। यह टीका पूर्ण होनेका बाद दूसरी टीका लिखी। उसमें ऐसा है कि... १७-१८ गाथाकी टीका पूरी करनेके बाद फिरसे दूसरी...

समाधान :- जानता नहीं है। ज्ञायक द्रव्यरूप स्वभावसे होने पर भी प्रगट जानता नहीं है। शक्तिमें जानता होने पर भी जानता नहीं है। सेवन करता होने पर भी, वह शक्ति एवं द्रव्यरूपसे। होने पर भी, उसका अस्तित्व होनेके बावजूद प्रगटरूपसे सेवता नहीं। प्रगटपने आराधता नहीं।

मुमुक्षु :- सामर्थ्य होने पर भी पर्याय ... जानता नहीं।

समाधान :- हाँ, नहीं जानता है।

मुमुक्षु :- होने पर भी जानता नहीं है।

मुमुक्षु :- ज्ञायक होने पर भी उसकी उपासना करनेका उपदेश क्यों देनेमें आता है? वह जो पेरेग्राफ है न उसका...

समाधान :- शक्तिमें द्रव्यरूपसे तू उस रूप है, जानता होने पर भी जानता नहीं है।

मुमुक्षु :- ... जानता ही नहीं है। ... हो रहा है तो फिर क्यों उपासना? कि सेवन ही नहीं किया। ऐसा उत्तर दिया।

समाधान :- आचार्यदेव अनुभूतिस्वरूप कहते हैं, तू अनुभवमें आ रहा है, ऐसा कहना चाहते हैं। परन्तु पुरुषार्थ करके प्रगट अनुभूति हो तब तुझे संतोष होगा। इसलिये द्रव्यरूप तू है, ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। तेरा ज्ञायक उस रूप है। सनतभाईके साथ दूसरा कोई आया था।

मुमुक्षु :- तुझमें जो काम हो रहा है, उसे जाननेका है और तू जानता नहीं है। .... वह तू है। ... कहाँ दूसरेको पहिचानना है? जिस रूप तू है उस रूप तुझे जानना है। दूसरा हो तो ठीक कि दिखाई नहीं देता। तेरेमें ही काम हो रहा है, कायम टिकनेका। मैं शरीर, मैं राग,...

मुमुक्षु :- भैंसेका ध्यान करते-करते मैं भैंसा हो गया हूँ। आबालगोपल तुझे मनुष्यरूप ही अनुभवमें आ रहा है, मनुष्यरूप ही तू अनुभवमें आ रहा है।

समाधान :- आबालगोपाल सबको अनुभूतिस्वरूप आत्मा हो रहा है। वह पहिचानता नहीं है।

मुमुक्षु :- अन्यथा अध्यवसित होता है। हो रहा है, जिस स्वरूपमें है उस रूप। लेकिन अध्यासित अन्यथा करता है। एकत्व स्पष्ट प्रकाशमान होने पर भी कषायचक्रके साथ एकमेक करके अन्यथा... चौथी गाथा। आबालगोपाल सबको एकत्वरूप जो है उस रूप... सम्यग्ज्ञान है लेकिन दर्शन मिथ्या है। अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभूयमानेति, ग्राह्यमानेति नहीं है।

मुमुक्षु :- भावार्थमें ज्ञानका अर्थ लिया है।

मुमुक्षु :- ले सकते हैं। अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा। दूसरा लो, पारिणामिकभावस्वरूप भगवान आत्मा, वह भी अनुभूतिके अर्थमें ले सकते हैं। अथवा अनुभूति अर्थात् ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसा ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अनुभूयमानः वेदनमें आ रहा है, उस स्वरूपमें, तो भी वह जानता नहीं है। अनुभूतिमें ले सकते हैं। वह अनुभूति अर्थात् ज्ञान-ज्ञान कहा, अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा। ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा स्वयं अनुभूयमाने। वह स्वरूप उसे वेदनमें आ रहा है कि मैं तो ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान हूँ। फिर भी जानता नहीं। उस अनुभूयमानमें जानना नहीं ले सकते।

मुमुक्षु :- माननेमें जानना नहीं ले सकते।

मुमुक्षु :- अनुभूतिस्वरूपमें ले सकते हैं। उसमें लिया है न? षट्कारकरूप। ७३ गाथा।

मुमुक्षु :- वहाँ पारिणामिक लिया है। वहाँ स्पष्ट ...

मुमुक्षु :- अथवा ज्ञानस्वरूपसे ध्रुव, ज्ञानस्वरूपसे ध्रुव लो। ज्ञान लें तो। और ज्ञान न लें तो पारिणामिकस्वरूप।

मुमुक्षु :- अनुभवमें आ रहा है उसका आपने अर्थ किया न कि वेदनमें आ रहा है।

मुमुक्षु :- हाँ, वेदनमें आ रहा है। बहुत स्पष्ट बात है।

मुमुक्षु :- ज्ञानका परिणमन हो रहा है, वह वेदनमें आ रहा है।

समाधान :- हाँ, उस अर्थमें है। ज्ञानका वेदन हो रहा है। वह अर्थ है।

मुमुक्षु :- शास्त्रमेंसे यह सब समझमें आ जाता हो तो प्रत्यक्ष ज्ञानीकी जरूरत ही कहाँ है?

मुमुक्षु :- प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार। ऐवो लक्ष्य थया विना, ऊगे न आत्मविचार। आत्मविचार भी उगे नहीं।

समाधान :- गुरुदेवने मार्ग इतना स्पष्ट कर दिया है। उसमेंसे गुरुदेव द्रव्य-गुण-पर्यायकी सूक्ष्म बातें (करते थे), सबके कानमें डाल दी है। कहीं कोई अटके नहीं ऐसे। नहीं तो कहाँ क्रियामें थे। शुभभावमें। वहाँसे द्रव्य-गुण-पर्यायमें (ले आये)। उस बातको एकदम सूक्ष्म करके बतायी। सब सूक्ष्म बातें बाहर आ गयी।

मुमुक्षु :- बाह्य क्रिया और शुभरागकी ही बात थी। उसमेंसे द्रव्यानुयोगका स्वभाव, विभाव, द्रव्य, गुण, पर्याय आदि..

समाधान :- क्रियाका तो अलग किया, परन्तु द्रव्य-गुण-पर्यायका गुरुदेवने एकदम स्पष्टीकरण कर दिया।

समाधान :- ... आत्माकी रुचि करनी, उसकी महिमा करनी, उसकी लगन लगानी। बाहरकी रुचि कम करनी। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, आत्माकी महिमा करनी। आत्माका स्वभाव क्या है? आत्मा जाननेवाला ज्ञायक है, उसमें भरा है, उसमें अनन्त गुण, वह अपूर्व वस्तु है। बाहर कहीं अपूर्वता नहीं है। उसकी अपूर्वता लगाकर उसे पहिचाननेका प्रयत्न करना, भेदज्ञान करना। वह करनेका प्रयत्न करना। उसके लिये वांचन, विचार, शास्त्र-स्वाध्याय सब करने जैसा है। मन्दिर और प्रतिष्ठा हो, भगवान जिनेन्द्र देवकी महिमा, गुरुकी महिमा आदि करने जैसा है।

चैतन्यतत्त्व कैसे पहचानमें आये? आत्मा कैसे पहचानमें आये? अनन्त कालसे पहचाना नहीं। गुरुदेवने बताया। सब बाह्य क्रियामें धर्म मानते थे, शुभभावसे धर्म होगा, ऐसा मानते थे। लेकिन सब शुभभावमें (धर्म नहीं है)। बीचमें शुभभाव आते हैं, लेकिन वह आत्माका स्वरूप नहीं है। उन सबसे आत्माको भिन्न पहिचानना। आत्मामें अनन्त गुण (हैं)। कोई अद्भुत तत्त्व है, अनुपम तत्त्व है, उसे पहिचाननेका प्रयत्न करना। वह अपूर्व वस्तु है। उसकी स्वानुभूति कैसे हो? मुक्तिका मार्ग कैसे प्रगट हो? वह जीवनमें करनेका है।

बचपनसे बहुत सुना है, गुरुदेवने कहा है। उसे लक्षणसे पहिचानकर भिन्न करना, वह करनेका है। (भिन्न ही है), परन्तु स्वयं भ्रान्तिसे उसमें जुड़ता है। पुरुषार्थ करना वही करना है। स्वयं पुरुषार्थ करते रहना, अभ्यास करते रहना। बारंबार एक ही करते रहना। चैतन्य ज्ञायक है, ज्ञायक है, उसीका अभ्यास करते रहना। विस्मृत हो जाय तो भी वही अभ्यास करते रहना। वही करनेका है।

बारंबार भेदज्ञान करते रहना। ये शरीर भिन्न, विभाव भिन्न, सब भिन्न है। मार्ग एक ही है। उसके लिये सब विचार, वांचन सब उसके लिये हैं। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि सब एक चैतन्यके लिये (है)। चैतन्य, बस, चैतन्य.. चैतन्य, उसीका रटन करने जैसा है, बारंबार। उसका स्वभाव पहिचानकर वह करनेका है।

मुमुक्षु :- प्रगट है, महान है, आप कहते हो कि लक्षणसे ही आपको प्राप्त हो जायगा।

समाधान :- लक्षणसे पहिचाना जाता है। वह स्वयं ही है, अन्य कोई नहीं है।

मुमुक्षु :- स्वयं उस रूप ही है।

समाधान :- उस रूप ही है।

मुमुक्षु :- हाँ जी। गुरुदेव बहुत कहकर गये हैं और आप बहुत कहते हो। परन्तु गुरुदेव परमगुरु और मेरे तो आप भी गुरु ही हो।

समाधान :- .. अभ्यास करते रहना। बारंबार अभ्यास करते रहना, न हो तो भी। बारंबार करते रहना।

मुमुक्षु :- आपको तो धन्य है! आप जैसी कोई व्यक्ति इस विश्वमें नहीं है, माताजी! नमन करने जैसी व्यक्ति या स्मरण करने जैसी व्यक्ति तो एक आप ही हो।

समाधान :- आपका स्वास्थ्य बराबर नहीं रहता था, ठीक रहता है? .. महाभाग्य, इतने जीवोंको तैयार कर दिये। पूरा हिन्दुस्तान तैयार कर दिया। हर एक व्यक्ति कितने तैयार हो गये हैं। आत्मा-आत्मा करना सीख गये हैं। इस पंचमकालमें सब क्रियामें पड़े थे। शुभभावसे धर्म होता है, ऐसा मानते थे। उसके बजाय आत्मा.. आत्मा.. शुभाशुभ भावसे आत्मा न्यारा है। भले बीचमें शुभभाव आये, लेकिन तेरा स्वभाव नहीं है। तू उससे भिन्न है, ऐसा कहनेवाले गुरुदेव मिले। द्रव्य-गुण-पर्यायकी गहरी-गहरी .. की। गुरुदेवने पूरे हिन्दुस्तान, हिन्दी-गुजराती सबको गुरुदेवने तैयार किया। गुरुदेवने ही सबको मुक्तिके मार्ग पर मोड़ दिये हैं। महाभाग्यकी बात है। ऐसा भेदज्ञानका, स्वानुभूतिका मार्ग बताया।

मुमुक्षु :- किसीको गुरु न मिले, ऐसे गुरु पंचमकालमें.. आहाहा..! कुछ अलग ही प्रकारसे कहते थे।

समाधान :- भेदज्ञान करना वही मुक्तिका मार्ग है, स्वानुभूति करना वही (मुक्तिका मार्ग है)।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान ही मुख्य वस्तु है।

समाधान :- भेदज्ञान मुख्य वस्तु है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान होनेके बाद ही अपने आत्माका लक्ष्य होता है।

समाधान :- केवलज्ञान बादमें होता है, पहले तो उसका भेदज्ञान होता है। जो परिणति आये उसका भेद वर्ते या उसका रस टूट जाय या भेदज्ञान हो कि मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी परिणति रहा करे। कभी-कभी उसकी स्वानुभूति हो। बाकी भेदज्ञानकी धारा निरंतर वर्तती रहे, ऐसी सम्यग्दृष्टिको परिणति होती है।

.. परिणति अन्दर शान्ति...

मुमुक्षु :- शान्ति अर्थात् समाधि रहे।

समाधान :- हाँ, आंशिक ज्ञायकके वेदनकी परिणति रहनी चाहिये न।

... करनेका स्वयंको बाकी रहता है। बाकी सच्चा ज्ञान... गुरुदेवने परम उपकार किया है। सबको उपकार करके कहाँ पहुँचा दिये हैं! यथार्थ ज्ञान... इसके पहले भी कोई आया था कि गुरुदेवने कहाँ... गुरुदेवने सबको कितनी यथार्थ दृष्टि करवायी है। ऐसा देते हैं वैसी तो हमारे गुरुदेवने सबको यथार्थ दृष्टि दी है। कहीं गलत जगहमें नहीं फँसकर एक ज्ञायक सत्य है। गुरुदेवने यथार्थ दृष्टि दी है। सब ऐसा माने कि निमित्तमात्र हूँ, कर नहीं सकता, ऐसा बोले। लेकिन अंतर परिणति होनी एक अलग वस्तु है। सबको दिया। आधे घण्टे, एक घण्टेमें सबको दिया जाता है। ऐसे दिया जाता हो तो अनन्त कालसे क्यों नहीं हुआ? शास्त्रोंमें उसकी दुर्लभता कितनी बतायी है।

गुरुदेवने पामरको पार उतारा, ऐसा (कार्य) किया है। .. सबको दिये हैं। सब भूले हुएको मार्ग दिया है। कहीं भूला न पड़े (ऐसे) दिव्यचक्षु दे दिये हैं। स्वयंको चलनेका बाकी रहा है। बाकी किस रास्ते पर जाना, वह बता दिया है। क्रियामें मत अटकना, शुभाशुभ भावमें.. शुभभावमें मैंने इतना किया, यह किया, वह किया, इतना वांचन किया, इतना रटन किया, इतना पढ़ा, मन्दिर गया, पूजा की... कहीं अटक जाय ऐसा नहीं रखा है। पर्यायमात्र... पर्यायका लक्ष्य करनेमें अटकेगा तो शाश्वत द्रव्य ग्रहण नहीं कर सकेगा। मात्र ज्ञायकको जानो। बाह्य जाननेसे, एक-एक ज्ञेयको, ऐसे खण्ड-खण्ड ज्ञानको जाननेसे भी अखण्ड पकड़में नहीं आयगा। अखण्डको ग्रहण कर। कहाँसे कहाँ लाकर रख दिया है। कहाँ ये बात सब करते और कहाँ वह बात है। ऐसी बात उसे सूक्ष्म लगे, गुरुदेवकी बात तो सूक्ष्मसे सूक्ष्म है। द्रव्य, गुण, पर्याय।

.. परन्तु अन्दर द्रव्यको ग्रहण करना। क्षणिक पर्याय जो हो रही है। पर्यायमें भी अटकना नहीं। कहाँ गुरुदेवने लाकर रख दिया है। भेदज्ञान करना। समयसारमें (आता है), नयपक्षोंसे अतिक्रान्त। किसी भी नयपक्षका ग्रहण नहीं करना।

मुमुक्षु :- एक तो अनादिका अनजाना मार्ग...

समाधान :- उसमें कहीं-कहीं अटक गया है। भेदज्ञान होना चाहिये, जागते, सोते, स्वप्नमें। तो कहते थे, सब उनका ही है। हम सबको ऐसा है, ऐसा उसने कहा। एक बहिन थी न? सबको उन्होंने ऐसा दिया है। सब कहाँ खड़े हैं? भूल खा जाते हैं।

मुमुक्षु :- .. सूक्ष्म कर, ऐसा आता है। इसमें क्या कहना है? कैसे करना?

समाधान :- उपयोग स्थूल हो गया है। सब स्थूलतासे ग्रहण होता है। ये सब बाहरका है। बाहरके उपयोगमें ये जो विकल्प, राग आदि ग्रहण कर रहा है, स्थूल

बाह्य वस्तु ज्ञेयरूपसे ग्रहण (करता है)। अन्दर आत्माको ग्रहण करे वह उपयोग सूक्ष्म है। आत्माका स्वभाव पहिचानकर अंतरमें जाय, वह उपयोग सूक्ष्म है। सूक्ष्म होकर अंतरमें जाय तो स्वयंको ग्रहण कर सकता है। बाकी बाह्य वस्तु ग्रहण करे या स्थूल-स्थूल विचार करे वह सब उपयोग स्थूल है। अंतरमें निज चैतन्यद्रव्यको ग्रहण करना, वह उपयोग सूक्ष्म है।

मुमुक्षु :- ग्यारह अंग तकको स्थूल उपयोग कहा। परमागमसारमें है कि ग्यारह अंगका उपयोग स्थूल है और चैतन्यस्वभावको ग्रहण करता है वह उपयोग सूक्ष्म है।

समाधान :- (वह) उपयोग सूक्ष्म है। चैतन्यद्रव्यको ग्रहण नहीं किया है इसलिये उपयोग स्थूल है। निज चैतन्यको ग्रहण करे तो उपयोग सूक्ष्म है। ग्यारह अंगका ज्ञान किया, उसमें सब जाना, परन्तु आत्माको ग्रहण नहीं किया तो सब स्थूल है। अन्दरमें आत्मा चैतन्यतत्त्व ग्रहण (नहीं किया)। भले उसे श्रुतज्ञान हुआ, द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, सब जाना तो सही, लेकिन मैं यह चैतन्य हूँ, ऐसे ग्रहण नहीं किया। वह उपयोग स्थूल है।

उपयोग स्वसन्मुख नहीं मुड़ा, उपयोग बाहर ही रहा इसलिये उपयोग स्थूल है। अंतरमें चैतन्यको ग्रहण करे तो उपयोग सूक्ष्म है। कुछ भी जाना, तो भी उपयोगको स्थूल कहनेमें आता है। क्योंकि स्वयंको ग्रहण नहीं किया इसलिये। स्वसन्मुख-अपनी ओर दिशा मुड़ी इसलिये उपयोग बाहर है। बाहर रहा हुआ उपयोग स्थूल है। ग्यारह अंगमें उसे सब आ गया। द्रव्य-गुण-पर्याय सब, अनेक जातकी बातें, श्रुतज्ञानकी बातें जानी, चैतन्यकी ओर उपयोग नहीं गया, निज स्वभावको ग्रहण नहीं किया, इसलिये स्थूल है। ग्यारह अंगमें नौ तत्त्व, छः द्रव्य, द्रव्य-गुण-पर्याय सब जाना।

मुमुक्षु :- स्थूल उपयोगके सम्बन्धमें तो आप जो विस्तार करते हो, वह तो ख्यालमें आवे। परन्तु सूक्ष्म उपयोगका विषय, उनके प्रश्नमें वह है। हमारे वहाँ चला था। इसलिये पूछा।

समाधान :- अपने अंतरमें उपयोग जाय वह उपयोग सूक्ष्म है। स्वसन्मुख जाय कि मैं यह चैतन्य हूँ, यह चैतन्यद्रव्य हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसे निज स्वभावकी ओर जाय, उसकी दिशा बदले। उसमें दिशा बाहर ही है। दिशा अंतरमें जाय, अपने अरूपी तत्त्वको ग्रहण करे तो उपयोग सूक्ष्म है। अंतरमें जाकर स्वभावको ग्रहण करे तो सूक्ष्म है। धीरा होकर अंतरमें यह स्वभाव है और यह विभाव है। ऐसे स्वयं अपने स्वभावको ग्रहण करे तो सूक्ष्मता कहनेमें आती है।

मुमुक्षु :- अरूपी तत्त्वको ग्रहण करनेके लये लक्षणका भावभासन पहले विकल्पात्मक होना चाहिये, ऐसा कुछ है?

समाधान :- लक्षण स्वयं स्वयंको पहिचाने। भावभासन। लक्षण, भावभासन वह

सब एकसाथ ही होता है। यह चैतन्यलक्षण है और यह विभावलक्षण है। दोनों लक्षणको भिन्न करे तो वह वास्तविक सूक्ष्मता है। भावभासन हो तो अंतरमें उसे ग्रहण हो जाय। यथार्थ भावभासन हो तो अंतरमें चैतन्य ग्रहण हो ही जाता है। अभी तक यथार्थ भावभासन नहीं हुआ है।

मुमुक्षु :- विकल्पात्मक यथार्थ भावभासन नहीं हुआ है?

समाधान :- विकल्पात्मक वह बुद्धिसे होता है। इसलिये उसे व्यवहारसे यथार्थ कहनेमें आता है। वास्तविक यथार्थ स्वयंको-चैतन्यको ग्रहण करे तो ही वह यथार्थता है। वास्तविक यथार्थता तब कहनेमें आती है। बुद्धिसे निर्णय करे तो उसे यथार्थ कहनेमें आता है, परन्तु वास्तविकरूपसे यथार्थ स्वयंको ग्रहण करे तब कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- ऐसा कुछ है कि परद्रव्यकी पर्याय राग और ज्ञान, प्रगट ज्ञानभाव, प्रगट ज्ञानभाव उसे ख्यालमें आये कि यह जानपना, यह जानपना, यह जानपना। ऐसे ख्यालपूर्वक यह जाननेवाला सो मैं, ऐसा जा सकता है?

समाधान :- रागके साथ जो ज्ञान है वह ज्ञान है, वह एक क्षणिक पर्याय है। इसलिये वह पर्याय है उतना ही मैं नहीं हूँ, मैं तो शाश्वत हूँ। अखण्ड ज्ञायक हूँ, ऐसे ग्रहण होना चाहिये।

मुमुक्षु :- ऐसा त्रिकाली जाननेवाला।

समाधान :- हाँ, मैं त्रिकाल जाननेवाला हूँ। ये क्षणिक जो ज्ञानकी पर्याय क्षण-क्षणमें बदलती है वह क्षण-क्षणमें बदलती पर्याय, ऐसा मैं नहीं हूँ। परन्तु मैं शाश्वत स्वयं ज्ञायक ही हूँ। स्वयं मेरा अस्तित्व ही ज्ञायक है। मेरा अस्तित्व ज्ञायकतासे ही रचित है। स्वयं रचित है। ज्ञायकतास्वरूप जो अस्तित्व है वही मैं हूँ। मात्र ये क्षण-क्षणमें परिवर्तन होता है, वह परिवर्तन मेरा मूल वास्तविक स्वरूप नहीं है। परन्तु स्वयं ज्ञायकसे ही मेरा अस्तित्व ज्ञायकतासे रचित अखण्ड है। वह मैं ज्ञायक। ऐसे ज्ञायकको ग्रहण करे।

ये क्षणिकमात्र जो ज्ञान-ज्ञान दिखता है, वह मेरा मूल अस्तित्व नहीं है। वह तो पर्याय बदलती है। ऐसे ग्रहण होना चाहिये। अनन्तासे भरा अखण्ड ज्ञायकतासे रचित अस्तित्व अनन्त-अनन्त अगाध शक्तियोंसे भरा जो ज्ञायकताका अस्तित्व है, वह मैं हूँ। अनन्तता उसे दिखती नहीं है, लेकिन उसे इतनी महिमा अंतरमें आ जाती है कि जो अस्तित्व ज्ञायकतासे रचित है, अगाध शक्तिओंसे भरा ऐसा मेरा अस्तित्व है। खाली अस्तित्व या ज्ञायक ऐसे नहीं, परन्तु अनन्त शक्तिओंसे भरा, ऐसी जो ज्ञायकता, वैसी मेरी ज्ञायकता है। ऐसे महिमापूर्वक अंतरमेंसे उसे ज्ञायकता ग्रहण होनी चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६८

समाधान :- .. भले वचनोंसे, परन्तु पुरुषार्थ तो स्वयंको करना पड़ता है। गुरुदेवने जो बताया कि तेरा अस्तित्व ऐसा है। उस अस्तित्वको ग्रहण करनेके लिये पुरुषार्थ स्वयंको करना पड़ता है। वह क्षणिक अस्तित्व जो है, उतना क्षणिक अस्तित्व नहीं है। मेरा त्रिकाल अस्तित्व है। उसे ग्रहण तो स्वयं करता है। जानता है भले ज्ञानियोंके वचनसे जानता है, उसकी महिमा उसे आती है कि मेरा अस्तित्व भिन्न ही है, मेरे चैतन्यकी अद्भुतता कोई अलग है, मेरी अनुपमता कुछ अलग है। वह सब ज्ञानियोंके वचनसे जानता है, उसका निर्णय करता है, परन्तु फिर ग्रहण करनेमें स्वयं पुरुषार्थ करता है। अपने पुरुषार्थसे होता है।

अनुभव कर सकता है, वह स्वयं जो ज्ञायकताको ग्रहण करके अंतरमें जाता है, वह पर्याय ग्रहण करती है। और उसमें स्वयं लीनता करे इसलिये उसकी अनुभूति होती है। उसे ग्रहण करे और उसमें लीनता करे तो अनुभूति होती है। ग्रहण करता है। ग्रहण करके उसमें लीनता करे। उसमें लीनता, ऐसी दृढ़ लीनता करे और उसकी उग्रता करे तो उसे स्वानुभूति होती है।

भले ज्ञानीके वचन हों, उसमें निमित्त होते हैं ज्ञानीके वचन। अनादि कालसे स्वयंने जाना नहीं है। ज्ञानीके वचन तो उसमें निमित्त होते हैं। अनादि कालसे स्वयंने जाना नहीं है, उसमें पहले तो उसे देव या गुरुके वचन सुनने मिले तो स्वयंकी अंतरमें तैयारी होती है। चैतन्यके कोई अपूर्व संस्कार, ऐसी देशना लब्दि प्रगट होती है। लेकिन ज्ञानियोंके वचन भले ही हैं, लेकिन अंतरसे तैयारी स्वयंको करनी पड़ती है। पुरुषार्थ स्वयंको करना है। ज्ञानियों जो कहते हैं, उसे स्वयं नक्की करता है। गुरुदेव जो कहते हैं, यह वस्तुका स्वरूप कोई अपूर्व मार्ग है। चैतन्य कोई अपूर्व है, अद्भुत है। वे जो कहते हैं उसका स्वयं अन्दरसे विश्वास करता है। स्वयं अंतरसे नक्की करता है कि यह बराबर है। ये जो मार्ग गुरुदेव कहते हैं, वैसा ही मार्ग होता है और ऐसा ही होता है। इस प्रकार स्वयं अपने ज्ञानसे पहले नक्की करता है। वह स्वयं निश्चय करके अंतरमें जाता है।

मुमुक्षु :- नक्की करता है अर्थात् प्रतीति आ जाती है या निर्णय करना पड़ता

है।

समाधान :- ऐसी प्रतीति, वह स्वयं निर्णय करता है, अपने पुरुषार्थसे निर्णय करता है। पहले ऐसा निर्णय होता है, बादमें अंतरमें जाता है। पहले निर्णय करे कि यह ऐसे ही है। शास्त्रमें भी ऐसा आता है, स्वयं अपनेआप नक्की करता है कि वस्तु ऐसे ही है। ऐसे निर्णय करके फिर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि सब चैतन्यकी ओर मुड़ता है। फिर उसके विकल्प टूटते हैं। ज्ञानीपुरुषके वचनसे स्वयं नक्की करता है। विश्वास स्वयंको करना है। वचन ज्ञानियोंके, लेकिन विश्वास कौन करता है? विश्वास तो स्वयं करता है। विश्वास स्वयंको करना है। अपने बुद्धिबलसे स्वयं नक्की करता है। उस प्रकारकी स्वयं रुचि करता है, विश्वास स्वयं करता है, नक्की करता है। पहले बुद्धिसे ऐसे नक्की करता है।

शास्त्रमें आता है न? वह वस्त्र ओढकर सो गया। उसे कहते हैं, ये तेरा वस्त्र नहीं है। लेकिन वह स्वयं लक्षणसे नक्की करता है कि वास्तवमें यह (मेरा) नहीं है। इसलिये छोड़ देता है। गुरु तो बारंबार कहे कि यह तेरा नहीं है, ये तू नहीं है। तू भिन्न है। ये विकल्प तू नहीं है, शरीर तू नहीं है, क्षणिक पर्यायमात्र तू नहीं है। ऐसा बारंबार कहे। लेकिन नक्की स्वयं करता है। वास्तवमें गुरु जो यह कहते हैं वह बराबर है। गुरुके वचन तो बीचमें होते ही हैं, परन्तु तैयारी स्वयंको करनी पड़ती है।

मुमुक्षु :- ज्ञायक कहने पर अनन्त गुण तो आ गये।

समाधान :- अनन्त गुण उसमें साथमें आ जाते हैं। ज्ञायक कोई ऐसी ज्ञायकता है कि अनन्त गुणोंसे भरी ज्ञायकता है। अपना अस्तित्व अनन्त गुणोंसे भरी ज्ञायकता है। ज्ञायकतामें अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सब अनन्त-अनन्त शक्तियाँ उसमें आ जाती है। ज्ञायकता आनन्दसे भरी है। ज्ञायकता शान्तिसे (भरी है)। कितने ही गुण वचनमें नहीं आते, ऐसी अनन्त शक्तियोंसे भरी ज्ञायकता है।

... लक्ष्यमें भले न आवे, लेकिन उसकी महिमा आवे। विचारसे नक्की कर सकता है। ज्ञानी पर विश्वास रखना बराबर है, ज्ञानीने ही सब कर दिया। भले स्वयं कहे कि प्रभु! आपने किया और आपका उपकार है। आपने ही सब किया, हम कुछ नहीं जानते थे। आपने ही मार्ग दर्शाया। लेकिन ऐसा कहकर वे कर देते हैं, ऐसा नहीं, करना स्वयंको पड़ता है।

अनन्त शक्तियाँ भले गुरुदेव बतावे कि तेरा आत्मा कोई अगाध महिमासे भरा है। लेकिन उसकी प्रतीत स्वयंको करनी पड़ती है। स्वयं प्रतीत करता है कि बराबर है। अनन्त गुण कहीं दिखाई नहीं देते, परन्तु वह स्वयं नक्की करता है, विश्वास करता है।

मुमुक्षु :- कार्य उभयसे हुआ ऐसा कहनेमें आये। ज्ञानीपुरुषके वचनसे और जीवके पुरुषार्थसे।

मुमुक्षु :- कार्य तो स्वयंने ही किया न। ज्ञानीने थोड़े ही किया है।

उपादान :- निमित्त कहनेमें आये। गुरुदेवने कर दिया ऐसा कहनेमें आये। करना पड़ता है स्वयंको। अनन्त कालमें स्वयं रखड़ा है। गुरुको पहिचाना नहीं है, भगवानको पहिचाना नहीं है, स्वयं रखड़ा है। मिले तो भी पहिचाना नहीं है, अपने दोषके कारण। इस पंचमकालमें गुरु मिले और वाणी स्वयं ग्रहण करे, अपूर्वता लगे तो अपूर्वता जागृत होती है। उनकी वाणीमें तो प्रबल निमित्त (था), उनकी वाणीका निमित्त तो प्रबल ही है, सबके लिये प्रबल है। लेकिन तैयारी स्वयंको करनी पड़ती है।

उनका उपकार अमाप है, लेकिन पुरुषार्थ स्वयंको करना पड़ता है। गुरुदेव ही ऐसा कहते थे कि तू कर तो होगा।

मुमुक्षु :- शशीभाईने बहुत अच्छी..

समाधान :- स्वाधीनतासे होता है।

मुमुक्षु :- सबको गुरुदेवने..

समाधान :- सबको गुरुदेवने दृष्टि दी। तेरा द्रव्य स्वतंत्र है, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। तू तेरा पुरुषार्थ कर। लेकिन करनेवाला गुरुका उपकार माने बिना रहे नहीं। करनेवालेको उपकारबुद्धि आये बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु :- करे स्वयं, फिर भी।

समाधान :- फिर भी कहे, गुरुदेव! आपने किया। आचार्यों भी ऐसा कहें। आचार्यों भी शास्त्रोंमें ऐसा ही कहते हैं।

मुमुक्षु :- परमगुरुके अनुग्रहसे।

समाधान :- हाँ, हमारे गुरुके अनुग्रहसे वैभव प्रगट हुआ। कुन्दकुन्दादि आचार्य न हुए होते तो हम जैसे पामरका क्या हुआ होता? ऐसा गुरुदेव कहते हैं। ऐसे गुरु ऐसे पंचमकालमें पधारे तो सबको उपकार हुआ, नहीं तो क्या होता? गुरुदेव पधारे तो सबको मार्ग स्पष्ट करके बताया।

मुमुक्षु :- ज्ञान मोक्षका कारण नहीं है, पुनः सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणी मोक्षमार्गः। तो मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्राणी बंधमार्गः, ऐसा?

समाधान :- मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्रको बंधका मार्ग कहते ही हैं। लेकिन मुख्य उसमें मिथ्यादर्शन है न। मिथ्यादर्शनके कारण ज्ञानमें मिथ्यापन कहनेमें आता है। दर्शन मिथ्या यानी ज्ञान मिथ्या और चारित्र मिथ्या है। उसकी दृष्टि ऊलटी है, इसलिये आचरण भी मिथ्या और ज्ञान भी मिथ्या। दर्शनके कारण दोनोंमें उसमें मिथ्यापना लागू पड़ता

है।

मुमुक्षु :- दर्शनके कारण दोनोंमें मिथ्यापना लागू पड़ता है। परन्तु स्वतंत्र दोनोंका देखा जाय तो? ज्ञान और चारित्र स्वतंत्र गुणकी अपेक्षासे लें तो...?

समाधान :- लेकिन उसे विपरीतता हो गयी है न। जाननेमें विपरीतता आ गयी है। दोष है, ज्ञानमें दोष है। दर्शनके कारण दोष, परन्तु दोष उसमें है, चारित्रमें भी दोष है। उसका कारण, उसका मुख्य कारण मिथ्यादर्शन है। लेकिन उसमें स्वयंमें भी दोष है।

मुमुक्षु :- हाँ, क्योंकि अमुक बार ऐसा आता है कि ज्ञान बन्ध-मोक्षका कारण नहीं है। और फिर इन दोनोंका..

समाधान :- ज्ञान यानी जानना वह बन्धका कारण नहीं है। लेकिन मिथ्या-विपरीत जाने वह तो नुकसान है न। वह तो दोष है। जाने, बाहर उपयोग जाय। जाने उसमें विकल्प आये, राग है वह दोषका कारण है। परन्तु उसमें मिथ्या-जूठ जाने वह तो दोष ही है, विपरीत जानता है वह तो।

मुमुक्षु :- तो फिर श्रेणिमें माताजी! एकत्व, .. ऐसे जो भेद श्रेणिमें पड़ते हैं, उस वक्त उपयोगात्मक ज्ञान भी परको जान रहा है, फिर भी वह ज्ञान आगे बढ़कर मोक्षको प्राप्त करता है। तो उस वक्त उसे उस ज्ञानमें...?

समाधान :- वह अबुद्धिपूर्वक है न, उसे बुद्धिपूर्वक नहीं है। अबुद्धिपूर्वक राग है। क्षयोपशमज्ञान है न। द्रव्य-गुण-पर्यायमें विकल्प जो फिरता है, उसमें ज्ञान फिरता है उसके साथ अबुद्धिपूर्वक विकल्प भी है। उतना अबुद्धिपूर्वकका राग भी है। इसलिये वहाँ केवलज्ञान होता नहीं।

मुमुक्षु :- उतना दोष है।

समाधान :- वह दोष है। ज्ञान फिरे... वहाँ साथमें अबुद्धिपूर्वकका विकल्प है। ज्ञान अधूरा है। एक ज्ञेयसे दूसरे ज्ञेयमें फिरता है, वह ज्ञानमें खण्ड-खण्ड होता है। उतना विकल्पके कारण है। साथमें विकल्प आता है। क्षयोपशम-अधूरा ज्ञान हो उसमें साथमें विकल्प आता है। सम्यग्ज्ञानीको ज्ञानमें दोष नहीं है, परन्तु साथमें विकल्प आता है वह उसे दोष होता है। सम्यग्ज्ञानीका ज्ञान सम्यक् है। उसका ज्ञान सम्यक् है, परन्तु साथमें विकल्प है वह दोष है। मिथ्यादृष्टिको तो दर्शनके कारण ज्ञान मिथ्या है। इसलिये उसे ज्ञानमें भी विपरीतता आ जाती है। जानना वह दोष नहीं है। लेकिन उसे विपरीत जानता है वह दोष है।

मुमुक्षु :- अज्ञान दशामें उतना अपराध है।

समाधान :- श्रद्धाके कारण जाननेमें विपरीतता है। चारित्र भी मिथ्या है।

मुमुक्षु :- ज्ञान होनेके बाद विकल्प है, उसका अपराध है।

समाधान :- हाँ, विकल्पका। खण्ड-खण्ड ज्ञान है, ज्ञान खण्ड-खण्ड हो उसके साथ विकल्प है। क्षयोपशम ज्ञानीको विकल्प साथमें होता है।

मुमुक्षु :- परको जानना..

समाधान :- परको जानना छोड़ना ऐसे नहीं, लेकिन स्वसन्मुख दृष्टि कर। तू स्वयंको जान। स्वपरप्रकाशक सहज ज्ञात हो जाय वह (अलग बात है)। लेकिन तू तेरे आत्माको जान, ऐसा कहना है। जानना छोड़ना ऐसे नहीं, उसकी विपरीतता छोड़। यथार्थ जान। विपरीत जानना छोड़। यथार्थ आत्माका स्वरूप जान इसलिये सब यथार्थ ही आयेगा। आत्मा तो स्वपरप्रकाशक उसका स्वरूप है। तू स्व-ओर उपयोग कर, ऐसा कहना है।

... बन्धकी अवस्था, विभाव अवस्था, ज्ञायक जाने तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। प्रमत्त-अप्रमत्तकी अवस्थामें ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ज्ञायक पर दृष्टि करनी। दृष्टिकी प्रधानतासे कहते हैं। किसी भी अवस्थामें ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। प्रमत्त-अप्रमत्त विभावकी अवस्था, साधककी अवस्धा, साधककी अधूरी अवस्थामें ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ज्ञायक स्व-परप्रकाशक। ज्ञायक परको जाने तो भी ज्ञायकको कहीं अशुद्धता नहीं आती, ज्ञायक तो ज्ञायक है। जाने इसलिये अशुद्धता नहीं आती। ज्ञायक तो ज्ञायक प्रत्येक अवस्थामें रहता है। वस्तु स्थिति ज्ञायककी.. प्रगट हुआ तो भी ज्ञायक ज्ञायक है। साधक अवस्थामें भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ज्ञायक पर दृष्टि करनी, ऐसा।

.. अवस्था पर हमारी दृष्टि नहीं है, परन्तु दृष्टि हमारी ज्ञायक पर है। ज्ञायक वह तो ज्ञायक ही है। ज्ञायक तो शुद्ध, शुद्ध ज्ञायक वह ज्ञायक है। कोई भी अवस्थामें ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्थामें भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ... जितना नहीं है। ज्ञायक तो पूर्ण अवस्था हो तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। उस ज्ञायक पर दृष्टि करने जैसी है। ज्ञाताधाराकी अवस्थामें ज्ञायक ज्ञायक ही है। अनादिअनन्त ज्ञायक ज्ञायक ही है।

मुमुक्षु :- प्रवचनसारमें ऐसा कहा कि ... रागरूप है और अशुभ परिणामके समय अशुभरूप है, उस वक्त आत्मा तन्मय है।

समाधान :- वह अपेक्षा अलग है। यहाँ तो द्रव्य पर दृष्टि करनी, द्रव्यकी प्रधानतासे बात है। द्रव्यदृष्टिकी प्रधानतासे बात है। द्रव्य अनादिअनन्त शुद्ध ही है। उस द्रव्य पर दृष्टि करनी। चाहे किसी भी अवस्थामें ज्ञायक ज्ञायक ही है। ज्ञायकमें,.. पर्यायके कारण ज्ञायकमें अशुद्धता नहीं आती, ऐसा कहते हैं। और यहाँ कहते हैं कि जो पर्याय होती है, वह पर्याय कहीं ऊपर-ऊपर अलग नहीं है, द्रव्य उस रूप परिणमता है, ऐसा कहनेका आशय है। प्रवचनसारमें। अशुद्धताकी अवस्थामें तेरा द्रव्य उसमें परिणमता है,

ऐसा कहते हैं। वह जड़ नहीं है। वहाँ दूसरी अपेक्षासे बात है। यहाँ दूसरी अपेक्षासे बात है।

अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य जैसा है वैसा है। ऐसे द्रव्यको पहिचान। फिर साधक अवस्थामें वह ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। प्रगट हुआ वह ज्ञायक। ज्ञायककी परिणति प्रगट हुयी, ज्ञायक ज्ञायक ही है। अधूरी अवस्था जितना ज्ञायक नहीं है। इसलिये दृष्टि ज्ञायक पर करनी। लेकिन वहाँ ऐसा कहते हैं कि जो पर्याय... पर्यायका ज्ञान कर। लेकिन वह अशुद्धता तेरा स्वभाव नहीं है। परन्तु वह पर्याय तेरी अवस्था है। पर्याय जड़की नहीं है, वहाँ ऐसा कहनेका आशय है।

मुमुक्षु :- द्रव्य तन्मय नहीं है।

समाधान :- तन्मय कहें, व्यवहारसे तन्मय कहलाता है। वास्तविक द्रव्यका स्वभाव उसमें पलटकर कहीं द्रव्य उस रूप नहीं हो जाता। तो-तो शुद्ध होवे ही नहीं। वस्तु स्वभावसे द्रव्य शुद्ध है, परन्तु पर्यायमें उसे अशुद्धता कहनेमें आये। व्यवहारसे अशुद्धता कहनेमें आये। बिलकूल नहीं हुआ हो तो जड़में ही होता है ऐसा नहीं है। तो स्वयंको पुरुषार्थ करके टालना नहीं रहता। तन्मय होता है, वह व्यवहारसे तन्मय कहनेमें आता है। प्रवचनसारमें उस अपेक्षासे बात है।

ऐसा तन्मय नहीं है कि उसमेंसे बिलकूल भिन्न ही न पड़े। जैसे बर्फ और शीतलता, उसका स्वभाव ही (तन्मय है)। वैसे उसका ज्ञानस्वभाव अलग नहीं पड़ता ऐसा तन्मय है। उस प्रकारसे विभाव तन्मय नहीं है। परन्तु वह तन्मय है, व्यवहारसे तन्मय कहनेमें आये। क्योंकि उस रूप वह परिणमा है, वर्तमानमें उस रूप परिणमा है इसलिये। इसलिये उसे व्यवहारसे तन्मय कहनेमें आता है। प्रवचनसारमें वह कहते हैं। दोनों अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न हैं। वहाँ पर्याय तेरेमें होती है, ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं, उस पर्यायके स्वरूप पर दृष्टि नहीं करके, तू ज्ञायक है, उस पर दृष्टि कर। पर्यायके फेरफार हो, उस पर दृष्टि नहीं करके, तू ज्ञायक सो ज्ञायक है, ऐसी शुद्धतासे भरा शुद्ध ज्ञायक है। वहाँ ऐसा कहते हैं। पर्यायकी अशुद्धता तेरेमें आती नहीं।

इसलिये तू द्रव्यदृष्टि प्रगट कर, भेदज्ञान प्रगट कर, तो ही मुक्तिका मार्ग प्रारंभ होता है। इसलिये ऐसा नहीं कहना है कि वह पर्याय जड़में होती है। पर्याय जड़में होती है ऐसे नहीं, तेरी पर्याय, तेरी चैतन्यकी पर्यायमें तेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। उसका ज्ञान कर। लेकिन दृष्टि तो ज्ञायककी शुद्धता कैसी है, यह बताते हैं वहाँ। ऐसी परिणति हो तो ही स्वानुभूति हो, तो ही मुक्तिका मार्ग प्रारंभ हो। लेकिन पर्याय जड़में होती हो तो पुरुषार्थ करना कहाँ रहता है? पर्यायमें वह अशुद्धता है और उसे टालकर शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। वह पलटकर शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। शुद्धता

तेरे द्रव्यमें भरी है, उसमेंसे शुद्धपर्याय प्रगट होती है।

.. प्रमत्त-अप्रमत्त दशामें ज्ञायक सो ज्ञायक है। छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। अंतरमें स्वानुभूति आनन्दमें लीन होते हैं, बाहर आते हैं। उस दशामें झुलते-झुलते कहते हैं, ज्ञायक तो ज्ञायक है। दोनों अवस्थामें ज्ञायक वह ज्ञायक ही है।

मुमुक्षु :- ज्ञायक भिन्न रह गया?

समाधान :- अवस्था भिन्न, अवस्थाका स्वरूप अलग और ज्ञायक द्रव्यका स्वरूप अलग है, ऐसा बताते हैं। पर्याय-ओर लक्ष्य.... पर्याय अपनेमें होती है। परन्तु द्रव्यदृष्टिसे पर्याय अपनी नहीं है, ऐसा द्रव्यदृष्टिसे कहते हैं। अपनी नहीं है इसका मतलब जड़में होती है, ऐसा नहीं है। वह अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य है। पर्याय तो क्षणिक है। ऐसा कहते हैं। होती तो है चैतन्यकी पर्याय, जड़की नहीं होती।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१६९

मुमुक्षु :- ... व्याख्यान करना वह तो हमारा खुराक है। उस वक्त पूज्य गुरुदेव व्याखयान करते हो उस वक्त उनकी परिणति स्वभावकी ओर विशेष झुकती होगी? व्याख्यान तो हमारा खुराक है।

समाधान :- उनको अन्दर जो परिणति अपनी अंतरमें चलती थी, उस अपेक्षासे बात थी। बाहरसे व्याक्यान करे (उससे नहीं), अंतरकी अपनी अनेक जातकी परिणति चले, श्रुतज्ञान आदि अनेक जातकी परिणति चले। स्वभाव दशाकी अनेक जातकी परिणति चले उस अपेक्षासे बात है। स्वाध्याय, ध्यान वह सब हमारा खुराक है। वह तो उन्हें अंतरकी परिणति...

मुमुक्षु :- ध्रुवका जो घोलन चलता हो, उस वक्त परिणति विशेष आत्मामें मग्न होती हो, ऐसा कुछ है?

समाधान :- ऐसा उसका अर्थ नहीं है। प्रवचनके समय विशेष और बादमें कम ऐसा उसका अर्थ नहीं था। वह तो गुरुदेवका स्वाध्याय आदि सब... स्वाध्याय है वही हमारी परिणति है। व्याख्यान करे, स्वाध्याय करे, वांचन करे, वह सब हमारा खुराक है, ऐसे अर्थमें है। अकेला प्रवचन ही, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। परिणति जाय, इसलिये व्याख्या खुराक है, ऐसे। व्याख्यान... ओरका विकल्प था। अन्दर घोटन अपना था। प्रभावनाका योग, सबको लाभ मिलनेवाला था, इसलिये उन्हें व्याख्यानका विकल्प था। अंतरमें उन्हें स्वयंकी परिणति चलती थी। व्याख्यान तो निमित्त था।

मुमुक्षु :- निर्मल दशा वह तो आत्माका..

समाधान :- अप्रमत्त दशा यानी अंतरकी स्वानुभूति।

मुमुक्षु :- वह तो आत्माका स्वभाव है न?

समाधान :- आत्माका स्वभाव, आत्माकी अनुभूति। मुनिदशाकी आत्मानुभूति। सम्यग्दर्शनमें अनुभूति होती है, ये मुनिदशाकी विशेष चारित्रदशाकी। ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी एकतारूप परिणति हो, वह अप्रमत्त दशा।

मुमुक्षु :- अप्रमत्त दशा है वह तो आत्माका स्वरूप है।

समाधान :- आत्माका स्वरूप जो अनादिअनन्त है वह नहीं, ये प्रगट हुआ स्वरूप

है। अनादिअनन्त स्वरूप है वह नहीं। यह तो प्रगट परिणतिरूप स्वरूप, अनुभूतिरूप स्वरूप है। अनादिअनन्त स्वरूप है वह तो है। लेकिन ये तो अनुभूतिरूप स्वरूप मुनिओंको प्रगट हुआ है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र रत्नत्रयकी एकतारूप परिणति प्रगट हुयी है। अनुभूतिरूप। विशेष प्रचुर स्वसंवेदन, अपना वेदन प्रगट हुआ है। स्वरूप यानी उसका वेदन। अनादिअनन्त स्वरूप है ऐसे नहीं। उसकी वेदनरूप परिणति है, अप्रमत्त दशा यानी। रत्नत्रयकी एकता विशेष प्रगट हुई है।

मुमुक्षु :- जैसे चारित्रगुणकी पर्यायमें साधक दशामें दो धारा होती है, वैसे आनन्द गुणकी प्रति समय दो धारा होती है या नहीं?

समाधान :- आनन्दगुणकी धारामें दो धारा, ऐसा नहीं होता। आनन्द तो जो स्वानुभूतिके वक्त प्रगट होता है, वही आनन्द है। बाकी उसे हमेशा शान्ति-समाधिका वेदन होता है।

मुमुक्षु :- छठवें गुणस्थानमें सुखगुणकी पर्याय संपूर्ण दुःखरूप परिणमती है?

समाधान :- छठवें गुणस्थानमें चारित्रकी जो पर्याय है, वह चारित्रकी पर्याय अमुक रूपसे परिणमती है। सुखरूप परिणमती है, दुःखरूप नहीं परिणमती। चारित्र कहीं चला नहीं जाता, सविकल्प दशामें। मुनिओंको चारित्र है।

मुमुक्षु :- और सुखगुणकी पर्याय?

समाधान :- सुखगुणकी पर्याय है। है परन्तु जो स्वानुभूतिका आनन्द है, उस जातकी यह पर्याय नहीं है। स्वानुभूतिका आनन्द है उस जातकी पर्यायकी नहीं है। चारित्र दशा तो है। स्वानुभूतिमें प्रगट होती है। सविकल्प दशामें सुखरूप तो परिणमता है। सुखक वेदन तो होता है। सम्यग्दृष्टिको भी सुखका वेदन होता है। और मुनिओंको तो चारित्र है इसलिये विशेष सुखका वेदन सविकल्प दशामें होता है। सुखकी पर्याय, आनन्दकी पर्याय उसे कहते हैं, बाकी वह आनन्द अलग और यह सुख दोनों अलग वस्तु है। सुखकी पर्याय कहते हैं, बाकी दोनों अलग है। आनन्दगुण और सुखगुण, सब एक अपेक्षासे कहते हैं, बाकी आनन्दगुण और सुखगुण दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

समाधान :- ... उसमें अनन्त गुण हैं। उसमें उस गुणको पर्याय कहते हैं और उसी गुणको गुण कहते हैं। ऐसा आता है। ज्ञान और दर्शन दो गुण कहते हैं। चेतनाकी दो पर्याय कोई जगह कहनेमें आता है। ऐसा भी आता है। एक चेतनागुण। उसमें ज्ञान और दर्शन दो। दोनोंको पर्याय कहते हैं, लेकिन दो गुण हैं। दो गुण भी कहनेमें भी आये, दोनों गुण जोरदार है। असाधारण गुण है। समुच्चयरूपसे उसे चेतनागुण कह देते हैं। वैसे चारित्र, सुख और आनन्द। आनन्द गुण भी कहते हैं और आनन्दको पर्याय भी कहते हैं। सब कह सकते हैं।

मुमुक्षु :- ... सत्पुरुषके चरणकमलकी विनयोपासनाके बिना प्राप्त नहीं कर सकता।

यह निर्ग्रन्थ भगवानका सर्वोत्कृष्ट वचनामृत है।

समाधान :- हिन्दी है?

मुमुक्षु :- जी हाँ, आपको गुजराती (कहता हूँ)। परमात्माका ध्यान .. परन्तु आत्मा वह ध्यानको सत्पुरुषके चरणकमलकी विनयोपासना बिना प्राप्त नहीं कर सकता। यह निर्ग्रन्थ भगवानका सर्वोत्कृष्ट वचन है।

समाधान :- परमात्माका ध्यान करनेसे परमात्मा हुआ जाता है। परमात्मा कौन है? परमात्माका स्वरूप क्या है? परमात्माका ध्यान करने परमात्मा हुआ जाता है। परमात्मा, द्रव्य स्वयं परमात्मा है। उसका ध्यान कैसे करना? उसका क्या स्वरूप है? वह बताये कौन? सत्पुरुषकी चरण-उपासनाके बिना वह हो सकता नहीं। वह स्वरूप कौन बताये? परमात्मा किसे कहते हैं? परमात्माका स्वरूप क्या है? उसका ध्यान कैसे किया जाय? वह साधकदशा, साध्य, वह सब सत्पुरुषकी चरण-उपासना बिना हो सकता नहीं।

वह मार्ग सत्पुरुष बताते हैं। अनादिका अनजाना मार्ग है। वह स्वयं अपनेआप अपनी कल्पनासे.. परमात्मा किसे कहनेमें आता है, वह समझे बिना ध्यान करे तो श्रीमद्जी ही कहते हैं, ध्यान तरंगरूप हो जाता है। उस ध्यानमें अनेक जातके विकल्प.. विकल्प (चलते हैं)। विकल्प मन्द करे लेकिन जो यथार्थ चैतन्यका अस्तित्व है, उसे ग्रहण न करे तो ध्यान हो सकता नहीं। एक चैतन्यको लक्ष्यमें लेकर उसमें उपयोगको स्थिर करे तो ध्यान जमता है, नहीं तो ध्यान जमता नहीं। सत्पुरुष जो बताते हैं कि तू स्वयं ही परमात्मा है। तेरा द्रव्य स्वयं परमात्मास्वरूप ही है। तू ज्ञायक स्वयं परमात्मा है। परमात्माका स्वरूप बताये, उस पर दृष्टि स्थापित कर, उसमें तेरी लीनता कर तो यथार्थ ... वह मार्ग सत्पुरुष दर्शाते हैं।

सत्पुरुषकी उपासना बिना, सत्पुरुष जो बताते हैं उस मार्गको ग्रहण किये बिना ध्यान हो नहीं सकता। अपनी कल्पनासे ध्यान नहीं हो सकता। ध्यान आत्माको पहिचाने बिना (होता नहीं)। उस आत्माकी पहिचान कौन करवाये? सत्पुरुष। जिन्होंने मार्गको जाना है, जिसने मार्गको साधा है, ऐसे सत्पुरुष उस मार्गको दर्शाते हैं। इसलिये सत्पुरुष जो कहते हैं उसे ग्रहण करना। वे क्या आशय कहना चाहते हैं? परमात्मा किसे कहते हैं, यह सत्पुरुष बताते हैं।

नहीं तो जीव तो अनादि कालसे परमात्मा यानी.. जो परमात्मा है वह चैतन्यस्वरूप परमात्मा है, यह समझता नहीं। परन्तु दूसरे परमात्माको परमात्मा समझता है। वह परमात्मा जिसने पूर्ण स्वरूप प्राप्त किया वह परमात्मा बराबर। लेकिन वह परमात्मा भी ऐसा ही कहते हैं कि तू स्वयं परमात्मा है, उसका ध्यान कर। स्वयं परमात्मस्वरूप है उसका

ध्यान करनेसे परमात्मा हुआ जाता है। वह मार्ग सत्पुरुष बताते हैं।

सत्पुरुषकी विनय उपासना। जो सत्पुरुष कहे उसे ग्रहण करे और सत्पुरुषको विनयसे वे जो मार्ग बताते हैं, उसका आशय ग्रहण करे, उसे विनयसे सुने, श्रवण करके अन्दर ग्रहण करे तो प्राप्त होता है। स्व मति कल्पनासे प्राप्त नहीं होता। उनका विनय, उनकी भक्ति, हृदयमें बहुमान हो तो वह प्रगट होता है। स्व मति कल्पनासे अर्थ करे कि इसे कहते हैं या इसे परमात्मा कहते हैं, ऐसे वह प्राप्त नहीं होता। सत्पुरुषका आशय बराबर ग्रहण करे। विनयसे, भक्तिसे कि वे क्या कहना चाहते हैं? कोई अपूर्व मार्ग गुरु बता रहे हैं। गुरुने जो अपूर्वता बतायी, उस अपूर्वताको स्वयं बराबर विनयसे समझे तो प्राप्त होता है।

स्वयं ध्यान करने जाय तो ध्यान जमता भी नहीं है। परमात्मा किसे कहते हैं, यह यथार्थ ग्रहण किये बिना ध्यान (होता नहीं)। निज अस्तित्व ग्रहण किये बिना ध्यान जम नहीं सकता। ध्यान तरंगरूप हो पड़ता है। ध्यान अनादि कालमें किया, बहुत बार ध्यान किया, विकल्प मन्द हुए, ध्यानमें कुछ एकाग्रता हुयी परन्तु आत्मा ग्रहण नहीं हुआ, तो ध्यान तरंगरूप हो पड़ा। कुछ लाभ नहीं हुआ। सत्पुरुषके विनयसे उन्होंने जो कहा वह ग्रहण करनेसे परमात्मा पहिचाने जाते हैं, परमात्माका ध्यान होता है। सब सत्पुरुषके चरणमें विनय और भक्तिसे उनके वचनोंको ग्रहण करनेसे होता है।

मुमुक्षु :- भक्ति कैसी?

समाधान :- भक्ति तो स्वयं महिमा करे। बाहरसे भक्ति करे ऐसा अर्थ नहीं है। अंतरमें बहुमान आना चाहिये। उनके वचन पर सर्व प्रकारसे बहुमान आना चाहिये। अर्पणता होनी चाहिये। वे कहते हैं बराबर है, उन्होंने जो मार्ग कहा है वह बराबर है। इस तरह स्वयं स्वयंसे नक्की करके बहुमान आना चाहिये। स्वयं विचार करके नक्की करे कि ये सत्पुरुष हैं और कोई अपूर्व मार्ग बता रहे हैं। फिर जो भी कहें वह बराबर है। ऐसे स्वयं अंतरमेंसे उस जातका बहुमान, उस तरह हृदयमें भक्ति आनी चाहिये।

मुमुक्षु :- दूसरे कोई ज्ञानीके प्रति इधर-उधरके विकल्प आते हो तो उसे ज्ञानीका बहुमान या भक्ति अंतरमें नहीं है।

समाधान :- नहीं, इधर-उधरके विकल्प आये तो वह भक्ति नहीं है। जो गुरु कहते हैं वह बराबर ही है। फिर उसका हृदय अर्पण हो जाता है। उनकी भक्ति और महिमासे.. जो गुरु साधक दशा साध रहे हैं उसमेंसे निकली हुयी वाणी और साधकताके जो-जो कार्य हों वह सब उसे बहुमानरूप ही ग्रहण करता है, अन्यथा ग्रहण नहीं करता।

मुमुक्षु :- उसे उसमें शंका न पड़े.. उस जातकी तैयारी..

समाधान :- उस जातकी तैयारी, अंदरसे बहुमान, भक्तिवालेको हो जाता है। उसमें कुछ आशय होगा, उसमें कुछ हित होगा, ऐसा अर्थ ग्रहण करता है। ऐसा दिखता होनेके बावजूद ऐसा कहते हैं, उसमें कुछ हित या आशय गुरुका है, इस तरह स्वयं ग्रहण करता है। उसमें कुछ मेरे हितके लिये अथवा कुछ आशय है, ऐसा अर्थ ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- जैन दर्शनमें गुरु-शिष्यका ऐसा ही मेल होगा?

समाधान :- ऐसा ही होता है। जिनकी परिणति साधकताकी ओर गयी, जो मुक्तिके मार्ग पर गुरु परिणमते हैं, उनके जो कार्य है वह सब लाभरूप और हितरूप ही है। ऐसे शिष्यको अर्पणता आ जाती है।

मुमुक्षु :- .. स्वच्छन्दमें जाता है?

समाधान :- वह सब स्वच्छन्दमें जाता है। अपनी कचास है।

मुमुक्षु :- तबतक तत्त्व प्राप्त नहीं कर सकता?

समाधान :- मुश्किल है।

मुमुक्षु :- तो भी कार्यकारी नहीं होता?

समाधान :- धारणाज्ञानसे नहीं लेकिन अंतर बहुमान और रुचिसे आगे बढ़ा जाता है। प्रयोजनभूत तत्त्व ग्रहण करे, लेकिन अन्दर बहुमान और रुचि हो तो वह आगे बढ़ता है।

मुमुक्षु :- बाहरमें ज्ञानीके प्रति बहुमान और अंतरमें आत्माकी रुचि।

समाधान :- ज्ञानीके प्रति बहुमान और अंतरमें तत्त्वकी रुचि। इन दोनोंका सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- एक हो वहाँ अविनाभावी दूसरा हो ही। आत्माकी रुचि हो उसे ज्ञानीके प्रति बहुमान होता ही है।

समाधान :- अंतरकी रुचि हो उसे ज्ञानीके प्रति बहुमान होता ही है। ऐसा सम्बन्ध है। अंतरकी रुचि हो और गुरुके प्रति बहुमान न हो, ऐसा नहीं बनता। तो उसकी रुचिमें कचास है। तो अपनी बुद्धि-कल्पनासे सब नक्की करता है, उसमें उसकी रुचिकी कचास है। जिसे प्राप्त करनेकी रुचि है, उसमें गुरु क्या कहते हैं? गुरु प्रति अर्पणता साथमें होती ही है। मैं जान नहीं सकता हूँ, मैं जिस मार्ग पर जा रहा हूँ, वह मार्ग मुझे प्रगट नहीं है, जिन्होंने प्रगट किया उन पर अर्पणता (होती है) और वे क्या कहते हैं? उस प्रकारका विनय और भक्ति उसके हृदयमें होते ही हैं। स्वयं जान नहीं सकता है और जिन्होंने जाना है उनके प्रति बहुमान नहीं है तो उसमें उस जातकी कचास है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके शिष्योंमें तो बहुभाग ऐसा ही लगता है कि धारणाज्ञान तो

बहुत स्पष्ट है, बहुतोंको है, फिर भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं उसको ऐसा ही कोई स्वच्छन्द अपना होगा, ऐसा लगता है। मैं तो मेरी अपनी बात करता हूँ। ऐसा लगता है कि अभी भी ऐसा कुछ न कुछ (स्वच्छन्द चल रहा है)।

समाधान :- जो जिज्ञासु है वह अपनी ही क्षति खोजता है कि मेरी कहीं न कहीं क्षति है। इसलिये मेरा पुरुषार्थ उठता नहीं है। मेरी कहीं क्षति है। अपनी क्षति खोजनेवाला ही आगे बढ सकता है। दूसरेकी क्षति खोजनेवाला आगे नहीं बढ़ सकता। अपनी क्षति खोजे वही आगे बढ़ता है।

मुमुक्षु :- दूसरा कुछ मत खोज, बीजुं काँई शोधीश नहीं, मात्र एक सत्पुरुषको खोज और उनके चरणकमलमें सर्व भाव अर्पण करके प्रवृत्ति करता रह। सर्व भाव अर्पण करके प्रवृत्ति करता रह। सर्व भाव यानी? सर्व अर्पणता? सर्व प्रकारकी।

समाधान :- सर्व प्रकारकी अर्पणता। गुरु जो कहते हैं वह सब अर्पणता। उसमें बीचमें अपनी कल्पना, बीचमें अपनी कोई होशियारी नहीं। गुरु कहते हैं वह सब अर्पणता। अपनी होशियारी या अपनी मति कल्पनासे कुछ नक्की नहीं करना, गुरु जो कहे वैसे। अपने सर्व भाव अर्पण। जो कहे वह उसे मान्य है। मुझे समझमें नहीं आता है। स्वयं समझनेका प्रयत्न करता है। बाकी जो गुरु कहते हैं वह बराबर है। मेरी अपनी कचास है। श्रीमद् तो वहाँ तक कहते हैं न, गुरुको सर्व भाव अर्पण कर दे, फिर मुक्ति न मिले तो मेरे पाससे ले जाना। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- इसके बातका वाक्य है।

मुमुक्षु :- वह बराबर है?

समाधान :- मेरे पासेसे ले जाना, उसका अर्थ यह है कि तुझे मुक्ति मिलेगी ही। सर्व भाव अर्पण कर दे अर्थात् तू ज्ञाता हो जा, इसलिये तुझे मुक्ति मिलेगी ही। सर्व भाव अर्पण कर। कोई भाव नहीं, सबका स्वामीत्व छोड़ दे, सब गुरुको अर्पण। इसलिये तुझे स्वयंको भेदज्ञान हो जायगा। तू स्वयं ज्ञाता हो जायगा, मुक्ति मिलेगी ही। मेरे पाससे ले जाना, उसका अर्थ ही यह है कि तुझे मिलेगी ही। निश्चित कहते हैं।

मुमुक्षु :- .. फिर भी ऐसा तो लगता है कि कुछ न कुछ कचास अभी भी रहती है।

समाधान :- कहीं न कहीं अपनी कचास है। देर लगे, उसमें अपने प्रमादका कारण हो, कहीं रुकता हो वह कारण हो, अपनी समझमें कचास हो, अनेक जातकी कचास होती है। बहुमानकी, अनेक प्रकारकी कचास होती है। गुरुकी अर्पणताकी, समझकी, पुरुषार्थकी, अनेक प्रकारकी कचास (होती है)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१७०

मुमुक्षु :- कर्म कारणभूत हो सकते हैं? पूर्व कर्म इस वस्तुमें आगे बढनेके लिये कारणभूत हो सकते हैं?

समाधान :- कारण तो निमित्तमात्र है। अपने पुरुषार्थका कारण है। पुरुषार्थके अभावसे आगे नहीं बढ़ सकता है।

समाधान :- .. वहाँ साक्षात् तो जा नहीं सकते, ये तो सामनेसे पधारे। तीनों बार अष्टाह्निका यहाँ होती है इसलिये.. उसका अर्थ ऐसा होता है। भावसे ऐसा ही अर्थ लिया जाता है। भगवान पधारे इसलिये उसी मन्दिरमें अष्टाह्निका हो जाय न। एक फाल्गुन महिनेके जो आठ दिन हो उसमें परमागमका दिन आता है, फाल्गुन शुक्ल-१३. यहाँ मांडला होता है। नंदीश्वर और मेरुमें देव वहाँ खास नंदिश्वरमें जाते हैं न। फाल्गुन और... भगवान सामनेसे पधारते हैं।

समाधान :- .. आत्मा पर दृष्टि रखे तो उसमेंसे, जिसमें है उसमेंसे प्रगट होता है। उसमें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है। जिसमें है उसमेंसे आता है। बाहरसे नहीं आता है। बाहर तो सब शुभ परिणाम है। शुभ परिणाम भी आत्माका स्वभाव नहीं है। वह आगे बढ़े उसमें बीचमें शुभ परिणाम आते हैं। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, पंच महाव्रत, अणुव्रत आदि परिणाम होते हैं, परन्तु मुक्तिका मार्ग तो अंतरमें है। निर्विकल्प स्वभावमें निर्विकल्प स्वानुभूति वही मुक्तिका मार्ग है।

जैसे सिद्ध भगवान हैं वैसा आत्माका स्वरूप है। स्वानुभूतिका अंश सम्यग्दृष्टिको प्रगट होता है और उसमें आगे बढ़ते-बढ़ते उसमें चारित्रदशा आती है। मुनिओं अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें आत्मस्वरूपमें झुलते हैं, ऐसा करते-करते केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। आत्मामेंसे ही धर्म प्रगट होता है। बाह्य दृष्टि और बाह्य क्रियाओंमें धर्म उसमें नहीं है। शुभ परिणाम हैं, उससे पुण्य बन्ध होता है और शुद्धात्माका स्वरूप पहिचाने तो ही मुक्ति मिलती है। तो ही मुक्ति अंतरमेंसे ही प्रगट होती है।

वह निर्णय स्वयं ही विचार करके करनेका है। वह कोई नहीं कर देता। स्वयंको ही करना है। गुरुदेवने स्वतंत्रताका मार्ग बताया है कि तू स्वयं ही अन्दर निर्णय कर। कोई नहीं कर देता, स्वयंको करना है। इस पंचमकालमें गुरुदेव पधारे, उन्होंने अपूर्व

मार्ग बताया। कितने जीवोंको तैयार किया है।

मुमुक्षु :- यहीं सुना और आत्माकी स्वतंत्रताका ढिंढोरा गुरुदेवके सिवा किसीने पीटा नहीं है।

समाधान :- कोई नहीं। वह तो नक्की है। गुरुदेवने ही स्वतंत्रता बतायी। मुक्तिका मार्ग उन्होंने ही बताया है। कोई आत्मा समझता ही नहीं थे। क्रियामें ही धर्म मानते थे। स्वतंत्र अपनेआप होता है। गुरुदेवने स्वयंने कहा है। स्वतंत्र है फिर निमित्त उपादानका ऐसा सम्बन्ध है कि गुरुकी वाणी, देवकी वाणी मिले तब जीव अंतरमें अपने उपादानसे तैयार होता है।

मुमुक्षु :- ..आपकी देशना आज हमें मिली, हमारा अहोभाग्य!

समाधान :- नक्की स्वयंको करना है। स्वयंको नक्की करना बाकी रहता है। अन्दरमें ज्ञायक हूँ, यह नक्की करना, प्रतीत करना स्वयंको है। अभी तो पहले सत्य क्या है, यह नक्की करे। फिर मैं यह ज्ञायक ही हूँ, यह विभाव मैं नहीं हूँ, स्वभावको ग्रहण करना और उसकी प्रतीति करना अलग बाकी रहता है। पुनः अंतरमें ऊतरकर स्वानुभूति करनी, वह उससे भी विशेष करना बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- अनन्त-अनन्त आपका उपकार है।

समाधान :- ऋद्धि आत्मामें भरी है, बाहर कहीं नहीं है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- पंचमकालमें पधारे और ऐसी वाणी बरसायी, सबको मार्ग मिला।

प्रभु सुवर्णपुरी मांही, अचिंत्य ज्ञान खीलवे,
सूक्ष्म न्यायो प्रकाशे, ज्ञानज्योति ...
राग भूल जाते हैं।
मुखथी छूटे छे ध्वनि, अमृत समी...

मुमुक्षु :- वर्तमानमें तो संयोग है, ज्ञानीका योग है। शास्त्र, देव-गुरु-शास्त्रका योग है और उससे हो। ये जो विचारना है, ऐसा विचार तो सूझता है। लेकिन उस विचारमें, ज्ञायकका अभ्यास करना चाहिये, ऐसा जो आप कहते हो, तो उसकी पूर्वतैयारी कैसी-कैसी होती है?

समाधान :- पूर्वतैयारी, उसीकी महिमा, उसकी लगन लगनी चाहिये न। उसे रस ऊतर जाय, विभावका रस ऊतर जाय। ये सब जो है, विभाव है वह सारभूत नहीं है। सारभूत और सर्वस्व हो तो आत्मा ही है। ऐसी रुचि, महिमा, लगन ऐसा होना चाहिये। अपना स्वभाव कैसे पहचानमें आये? उसका गहरा मंथन, ऐसा सब पहले होना चाहिये।

वर्तमानमें तो गुरुदेवके प्रतापसे सब संयोग मिले और कैसे आत्माका कल्याण करना, वह सब उसे योग बना है। तो उसमें ज्ञायक कैसे भिन्न है? ज्ञायक तत्त्व भिन्न है वह कैसे पहचानमें आये? उसका बारंबार प्रयत्न करना चाहिये। उसकी महिमा, उसकी लगन सब उसका लगना चाहिये। विभाव-ओरका रस टूट जाना चाहिये।

बाहरमें वह एकमेक-एकमेक हो रहा है। उससे भिन्न होकर, मैं चैतन्यतत्त्व भिन्न ही हूँ, किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इस शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं है तो फिर बाह्य संयोगके साथ कहाँ सम्बन्ध ही है? आचार्यदेव कहते हैं, तुझे किसीके साथ नाता या सम्बन्ध नहीं है। तू तो अत्यन्त भिन्न है। इसलिये ऐसे भिन्न आत्माको जाननेका प्रयत्न करना चाहिये। शरीर भी अपनी इच्छानुसार परिणमता नहीं, तो फिर बाह्य संयोग तो कहाँ उसकी इच्छानुसार परिणमेंगे? सर्व द्रव्य स्वतंत्र हैं। इसलिये अपनी स्वतंत्रता पहिचानकर उस ओरका प्रयास करना चाहिये।

मुमुक्षु :- पहिचाननेके लिये जो अन्दरका प्रयास, कि मेरेमें यह ज्ञान है। वह ज्ञान कैसे हो रहा है? ऐसे उसका अवलोकन करके उसकी स्वतंत्रता, उस परसे आगे विचार लंगाता होगा? या कैसे होता है?

समाधान :- लंबे विचार तो अनेक प्रकारसे हो सकता है कि मैं यह ज्ञायक स्वभाव स्वतंत्र ही हूँ। मेरे सब स्वभाव स्वतंत्र हैं। किसीके आधारसे मेरे स्वभाव नहीं हैं। जो पर्याय प्रगट होती है वह भी किसीके आधारसे नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपने गुण-पर्यायसे स्वतंत्र हैं। इसलिये उसके विचार उस ओर (चलने चाहिये)। उस ओर विचार, मंथन, अपनी ओर खरी लगन लगे तो विचार लंबाये। उसकी स्वतंत्रता पहिचानकर।

.. कुछ कर नहीं सकता। स्वयं अपने कार्य कर सकता है। परद्रव्यके कर्ता, क्रिया और कर्म उसके अपने स्वतंत्र हैं। स्वयं अपने स्वभावका कर्ता, स्वभावकी क्रिया, स्वभावका कर्म, सब स्वयं स्वतंत्र होकर कर सकता है। लेकिन उतनी लगन अन्दर लगे तो स्वयं उसमें गहराईमें जाकर अपनी स्वतंत्रताको अपनी बुद्धिसे जाने, लेकिन उस रूप परिणति करनी वह अपने विशेष पुरुषार्थका कार्य है।

मुमुक्षु :- मतलब उसमें उसे जातकी लगन, जोश, अथवा तो गरज जिसे कहें...

समाधान :- हाँ, उसकी गरज लगनी चाहिये। उसकी लगन, वही सर्वस्व सारभूत है, ऐसा लगना चाहिये।

मुमुक्षु :- भावनामें भी उसे तुलना हो जानी चाहिये कि इस जगतके पदार्थकी ओर जो झुकना होता है, उसके बजाय मेरी ओर झुकना हो, वही मुझे साररूप है।

समाधान :- साररूप है, सुखरूप है। बाह्य पदार्थकी ओर लंबाता है-विचार लंबाते

हैं, कुछ साररूप नहीं है। वह तो वृथा है। वह कोई अपनी इच्छानुसार होता नहीं है, फिर भी उस ओर दोड़ा जाता है। उसकी मेहनत करनेमें, उसकी व्यवस्था करनेमें वह बाह्यमें (दोड़ता है)। लेकिन स्वयं अपना कर सकता है। और वही साररूप, सुखरूप, आनन्दरूप और शान्तिरूप (है)। जो अंतरसे शान्ति प्रगट होती है वह सदाके लिये प्रगट होती है।

ये बाहरका तो सब क्षणिक है। अपनी इच्छाकी बात भी नहीं है, वह तो परद्रव्य है। इसलिये अपनेमें ही सुख और शान्ति है, ऐसा निर्णय करके अपनी ओर जाय तो जा सकता है। लेकिन वह अपनी लगनसे जा सकता है। एक दिशा बाह्यकी और एक दिशा अंतरमें है। पलटना अपने हाथकी बात है। ज्ञायककी ज्ञायकरूप परिणति कैसे करनी वह अपने पुरुषार्थकी-हाथकी बात है। परद्रव्यकी ओर जाय वह तो अनादिका अभ्यास है इसलिये जाता है।

मुमुक्षु :- वास्तवमें उसे पर-ओर जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, कोई कारण भी नहीं है।

समाधान :- अनादि अभ्यासके कारण उस जातका राग है, अतः रागके कारण जाता है। .. हो कि मेरेमें ही सब सर्वस्व है, तो अपनी ओर आ जाय। और नक्की किया उस अनुसार पुरुषार्थ प्रगट हो तो ही वह अपनी ओर आता है।

मुमुक्षु :- विश्वास आना चाहिये।

समाधान :- अपनी स्वभाव जातिमें ही सब है। ये विभावकी जात है, किसी भी जातका मेरा स्वभाव उसमेंसे नहीं प्रगट होगा, वह तो विभावजात है, विलक्षण है। मेरे स्वभावकी जात नहीं है, दुःखरूप है। उसमेंसे नहीं प्रगट होगा, लेकिन मेरे स्वभावकी जो जात है, उस जातमेंसे ही मेरी जो जात है वह प्रगट होनेवाली है। उसमेंसेही-स्वभावमेंसे ही स्वभाव आयेगा। विभावमेंसे नहीं आयेगा। इतनी उसे प्रतीति आये तो ही अपनी ओर पुरुषार्थ करता है।

... अपने स्वभावमेंसे आता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब अपनेमें ही है, अपनेमें से प्रगट होता है। बाहरके साधन होते हैं, लेकिन वह स्वयं प्रगट होता है अन्दर स्वभावमेंसे अभ्यास करनेसे प्रगट होता है। निश्चय साधन स्वयं अपना ही होता है।

.. अंतरमें जो तत्त्व है उसमेंसे प्रगट होगा। अनादिका अनजाना मार्ग है, गुरु मार्ग दर्शाते हैं। वह मार्ग गुरुदेवने बताया है कि तेरा तत्त्व भिन्न है, तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय तेरेमें, बाहरमें नहीं है। तेरे कर्ता, क्रिया, कर्म तेरेमें, सब तेरेमें है। गुरुदेवने यह मार्ग बताया। अनादिका परका अभ्यास हो रहा है। मार्ग गुरु दर्शाते हैं, लेकिन करना तो स्वयंको पड़ता है। समझना, प्रतीत करना सब स्वयंको करना है। अनजाना मार्ग अपने

आप अपना स्वभाव पहिचानना सब कठिन पड़ता है। मार्ग बतानेवाले गुरु मिले तब अंतरमेंसे स्वयंको ग्रहण होता है, ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- गुरुकी ओरसे नज़र वापस मोड़नी, ऐसा गुरु कहना चाहते हैं?

समाधान :- गुरु ऐसा कहते हैं कि तू स्वतंत्र तुझमें देख, ऐसा कहते हैं। तेरी दृष्टि बदल। तू स्वतंत्र है। तू अपनेआप तेरी ओर दृष्टि कर। गुरु ऐसा कहते हैं। लेकिन आगे जानेवालेको ऐसा भक्तिभाव आता है कि गुरु आपने ही मार्ग दर्शाया है। दृष्टि अपनी ओर करता है, उपादान अपना है, लेकिन उसे ऐसी भक्ति आये बिना नहीं रहती।

(गुरुने) दिशा बतायी, गुरुने आत्मा बताया, गुरुने सब स्वतंत्रता (बतायी), सब गुरुदेवने बताया। स्वानुभूतिका मार्ग बताया, निर्विकल्प दशा प्रगट हो तब मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। ऐसे इस आत्माकी स्वानुभूति हो, वेदन हो, सब गुरुने बताया। करना स्वयंको पड़ता है। होता है उपादानसे, मार्ग गुरु बताते हैं। ऐसे पंचमकालमें गुरुदेव मिले तो उन्होंने ऐसा मार्ग बताया।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें आता है कि गुरु बताते हैं, लेकिन दे नहीं देते।

समाधान :- करना स्वयंको है। उसका बारंबार अभ्यास, दृष्टिको पलटनी, दृष्टि चैतन्य पर स्थिर करनी कि यह मैं चैतन्य ही हूँ, यह विभाव मैं नहीं हूँ। बीचमें जो अल्प अस्थिरता रहती है, वह खड़ी रहती है, एकत्वबुद्धि टूट जाती है। भेदज्ञान हो जाय और चैतन्य पर दृष्टि होती है।

न्यूनता है इसलिये देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि सब साथमें रहता है। दृष्टि पलट जाती है। उसकी परिणतिकी पूरी दिशा पलट जाती है। जो परिणति एकत्वबुद्धिमें जाती थी, वह परिणति-भेदज्ञानकी परिणति चैतन्य पर एकत्वरूप दृष्टि करके परिणति पलट जाती है।

मुमुक्षु :- मैं चैतन्य हूँ, ऐसे जीने लगता है।

समाधान :- उसका पूरा जीवन पलट जाता है। विभाव पर दृष्टि मत करना, विभावको मत देखना, शरीरको मत देखना, एक चैतन्यकी ओर दृष्टि (करके) चैतन्यको देखता है। ज्ञान सब होता है कि यह शरीर, विभाव आदि जब तक खड़ा है, तो उसे ख्यालमें है। लेकिन वह कहीं नज़र करके अपने स्वभावको-चैतन्यको दृष्टि देखती है। चैतन्य पर दृष्टिको स्थापित करता है। उसकी जीवनकी पूरी गति बदल जाती है।

मुमुक्षु :- अकेले चैतन्यको देखनेका उसे उल्लास है।

समाधान :- परिणति बस, चैतन्यकी ओर चली जाती है।

मुमुक्षु :- अनुभवमें आता है, ऐसा कहनेमें आता है। पीछली बार अपनी बात

हुयी थी कि स्वभाव तो ऐसा है कि गुप्त नहीं है। अपनी जातको..

समाधान :- उसे वास्तविक वेदन हो गया है ऐसा तो नहीं है। लेकिन उसका स्वरूप है, उसके ज्ञानस्वभावरूप वह स्वयं परिणमन कर रहा है। ज्ञानस्वभावरूप। वह जैसा है वैसा अनुभूतिमें आ रहा है और उस रूप हो रहा है। उस रूप परिणमन कर रहा है। उसके स्वभावरूप अर्थात् उसे प्रगट वेदन है ऐसा अर्थ नहीं है। उस रूप स्वयं परिणमन कर रहा है, उसका जो स्वभाव है उस रूप। क्योंकि बादमें तो ऐसा कहते हैं न कि ऐसा होने पर भी उसे प्रतीतमें आता नहीं, नहीं जाने हुएका श्रद्धान गधेके सींगके बराबर है। आचार्यको वहाँ प्रगट अनुभूति तो कहना नहीं है। लेकिन जो अपने स्वभावका अस्तित्व है, ज्ञायक स्वभाव है उस रूप स्वयं हो रहा है। उस रूप परिणमन कर रहा है। जैसा है वैसा। लेकिन स्वयं उसकी प्रतीत करता नहीं, ज्ञान करता नहीं। तू अपने रूप है, आचार्यदेव करुणा करते हैं कि तू तेरे रूप है। तू तेरे रूप हो रहा है, लेकिन तू तुझे देखता नहीं, उसका वेदन नहीं करता है। तू तेरे रूप परिणमन कर रहा है। लेकिन तू तुझे देखता नहीं। ऐसा अनादिअनन्त जैसा है वैसा तू अनुभवमें आ रहा है। अनुभूतिका अर्थ प्रगट वेदन नहीं है। लेकिन उस रूप हो रहा है, अपने स्वभावरूप।

मुमुक्षु :- अस्तित्व मात्र उतना ही या दशाके दृष्टिकोणसे दशामें गुप्त संवेदन है, ऐसा कुछ कहना है?

समाधान :- नहीं, नहीं। गुप्त संवेदन नहीं है। वेदन नहीं है, संवेदन नहीं है। लेकिन उसका स्वभाव उस रूप परिणमन कर रहा है। उस रूप जो स्वभाव है, उस रूप वह है, उसका अस्तित्व है। वेदन हो रहा है, ऐसे वेदनके अर्थमें नहीं है। उस रूप परिणमता है। वेदन प्रगट वेदनके अर्थमें नहीं है। वह कोई जड़ नहीं है। उस रूप, तेरे स्वभावरूप, तेरे ज्ञानस्वभावरूप तू अनुभवमें आ रहा है और उस रूप तू हो रहा है। उस रूप तू है, ऐसे।

अनुभूतिका अर्थ ही ऐसा है कि उस रूप होना, उस रूप परिणमना, जैसा स्वभाव है वैसे। प्रगट वेदन (नहीं है)। उसका अस्तित्व उस रूप परिणमन कर रहा है। ज्ञायक स्वभावका अस्तित्व है, ऐसा कहनेका आशय है। अस्तित्व उस रूप परिणमन कर रहा है। प्रतिभास, उसे प्रतिभास नहीं है। ज्ञान ज्ञानरूप है, ज्ञान ज्ञानरूप है, लेकिन उसे उसकी प्रतीत नहीं है, अनुभूति नहीं है। अनुभूति, प्रगट अनुभूति-वेदन नहीं है उस अपेक्षासे। वेदनकी अनुभूति नहीं है, लेकिन उसका स्वभाव स्वभावरूप अनादिअनन्त है, जैसा है वैसा अनादिअनन्त है। ज्ञानस्वभाव है, ज्ञानस्वभाव ज्ञानस्वभावरूप परिणमन कर रहा है। उसकी उसे महिमा नहीं आती है। ज्ञान ज्ञानस्वभावरूप (परिणमता है)।

उसकी महिमा आये तो-तो अपनी ओर मुड़ जाता है। वास्तविक महिमा आये तो-तो झुक जाता है। ज्ञान ज्ञानस्वभावरूप है। ज्ञान ज्ञान है, यह जड़ है, यह ज्ञान है, ऐसे। उसकी महिमा आये तो अपनी ओर मुड़ जाय।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-१७१

मुमुक्षु :- सत् स्वयंको त्रिकाल ज्ञात करवा रहा है, क्षणिक नहीं ज्ञात करवाता। तो वह कैसे कहना है?

समाधान :- सत् सत् है। जो त्रिकाली सत् हो, सत् उसको कहें कि जो सत् स्वयं अस्तित्वरूप टिकनेवाला है। क्षणिक हो वह तो उसकी एक पर्याय है। क्षणिक हो वह... वास्तविक रूपसे सत् किसे कहते हैं? जो स्वतःसिद्धरूपसे है, जो अस्तित्व रखता है, अनादिअनन्त जो अस्तित्व रखता है उसीको सत् कहते हैं। सत् स्वयंको त्रिकाल ज्ञात करवा रहा है। सत् जो है वह स्वयं स्वतःसिद्ध अनादिअनन्त है। जो क्षणिक हो, वह तो उसकी पर्याय हो। जो क्षणिक हो वह अनादिअनन्त सत् उसे नहीं कह सकते।

वास्तविक सत् उसे कहें कि जो त्रिकाल हो वही वास्तविक सत् है। अनादिअनन्त जो त्रिकाल टिकनेवाला है, वह सत् है। अनादिअनन्त जो सत् है, वह सत् स्वयंको त्रिकाल बतला रहा है। सत्को किसीने बनाया नहीं है। सत् स्वयं अस्तित्वरूप है, त्रिकाल है। पर्यायको सत् कहते हैं। वह तो उसकी पर्याय है, क्षण-क्षणमें पलनेवाली।

यहाँ सत्की, त्रिकाल सत्की बात की है। जो सत् अनादिअनन्त त्रिकाल हो, वह सत् स्वयंको सत्रूपसे त्रिकाल बतला रहा है। सत् है, ऐसे। सत् कहीं बाहरसे नहीं आता, उसे कोई बनाता नहीं है। सत् है वह स्वयंसिद्ध सत् है। जो स्वयंसिद्ध सत् हो वह त्रिकाल ही होता है। वह किसीसे नाश होता नहीं, किसीसे उत्पन्न होता नहीं। ऐसा सत् वह त्रिकाल सत् है। और सत् है वह सत् ज्ञायकरूप सत् है। उसका जिसे भरोसा आये तो...

मुमुक्षु :- उसे स्वयंके वेदन परसे ही ख्यालमें आता है न कि ये जो वेदन है, जो जानना होता है, वह जानना टिका हुआ है और वह टिका हुआ है वह एक शाश्वत वस्तुकी परिस्थिति है। ऐसे उस परसे..

समाधान :- सत्को नक्की करना है कि यही सत् है। यह ज्ञान है वह स्वयं त्रिकाल सत् है और त्रिकाल सत्का यह ज्ञानस्वभाव है। उसमेंसे यह परिणति आती है। त्रिकाल सत्मेंसे परिणमित हुयी यह ज्ञानकी परिणति है। स्वयं नक्की करता है। अपना

स्वयं ऐसा अस्तित्व अनन्त शक्तिसे भरा है। वह सत् अनन्त शक्तिसे भरा है। जिसमें अनन्तता भरी है। वह ज्ञानस्वभाव उसमें उसका है। ऐसा स्वयं नक्की करे, उसकी प्रतीत करे तो उसमेंसे शान्ति प्रगट होती है। उस पर्यायमें शान्ति प्रगट हो, उस अनुसार परिणति प्रगट करे प्रतीत करके। उसकी भेदज्ञानकी परिणति प्रगट करे कि मैं सत्-ज्ञायक सत् सो मैं हूँ। यह विभाव परिणति मेरा मूल स्वभाव नहीं है। यह ज्ञानस्वभावका जो अस्तित्व है वही मैं हूँ, ऐसी परिणति प्रगट करके उसमें दृढ़ता करे, उसमें लीनता करे तो उसमेंसे उसे स्वानुभूति प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ..ऐसा कहनेके पीछे क्या प्रयोजन है?

समाधान :- दो स्वभाव-एक रागस्वभाव विभाव और ज्ञानस्वभाव। दोनों ख्यालमें (आते हैं)। ज्ञायक सो मैं हूँ, ऐसा कहनेका प्रयोजन यह है कि तू क्षणिकमें मत अटकना, जो शाश्वत है उसे ग्रहण कर। ये सब पर्यायें हैं, वह क्षण-क्षणमें पलटनेवाली हैं। उसका तू ज्ञान कर, उसमें अटकना मत, ऐसा कहना है।

जो साधक दशाकी पर्याय है, ये अधूरी ज्ञान, दर्शन, चारित्र पर्याय है उतना ही तेरा स्वरूप नहीं है। तेरा स्वरूप अनादिअनन्त सत्, ज्ञायक जो अनादिअनन्त है वही मैं हूँ। उसमें क्षणिकमें तू मत अटकना। परन्तु जो मूल स्वभाव है उसे ग्रहण कर। उसे नहीं अटकनेके लिये (कहते हैं)। मूल वस्तु ग्रहण करवानेको, द्रव्य ग्रहण करवानेका उसका प्रयोजन है। द्रव्यदृष्टि प्रगट कर और इन सबका ज्ञान कर।

पर्याय नहीं है इसलिये उसमें साधक दशा प्रगट नहीं होती है, ऐसा नहीं। साधक दशा प्रगट होती है। सब पर्यायें होती हैं। साधक दशाकी पर्याय (प्रगट होती है), परन्तु तू उतना ही नहीं है। तू तो मूल वस्तु है उसे ग्रहण कर। पर्यायमें नहीं अटकते हुए मूल द्रव्य पर दृष्टि कर, ऐसा कहना है। पर्याय बीचमें आती है, उसका ज्ञान कर। स्वानुभूति प्रगट हो वह भी पर्याय है। सब पर्याय हैं। वेदनकी पर्याय प्रगट होती है वह भी पर्याय है। लेकिन तू द्रव्य पर दृष्टि कर। उसमें बीचमें शुद्ध पर्यायें तो प्रगट होती है। वह वेदनमें आती है। परन्तु दृष्टि तू द्रव्य पर रख। दृष्टि प्रगट करनेके लिये...

समाधान :- ... ऐसे मैं तो भिन्न चैतन्यतत्त्व हूँ। ये विभावस्वभाव चैतन्यका स्वभाव नहीं है। ऐसे आकुलता स्वभाव मेरा नहीं है, मेरा तो निराकूलता हूँ। मैं तो चैतन्य हूँ, उसमें आनन्द भरा है, ज्ञान भरा है। ज्ञायकतत्त्व मैं हूँ। ज्ञायकका लक्ष्य करना, ज्ञायककी पीछान करना। उसका अभ्यास करना। ऐसे तन्मयता-एकत्वबुद्धि तोड़नेका प्रयत्न करना। स्वरूपमें एकत्व और परसे विभक्त, ऐसे प्रयत्न करना। बारंबार उसका अभ्यास करना। ऐसा तत्त्वविचार, मनन, आत्माकी महिमा, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा उसके साथ ज्ञायककी महिमा करना। उसका विचार (करना)। एक आत्माको ग्रहण करनेका प्रयत्न

करना।

मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक अनन्त गुणसे भरपूर हैं। लेकिन ऐसा भेदविकल्प भी विकल्प है। लेकिन दृष्टिमें अभेदको ग्रहण करना। उसका प्रयत्न करना। ज्ञान तो साथमें आता है कि यह ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ऐसा सब विचार तो आता है, लेकिन वह भेदविकल्प है। मैं तो अखण्ड निर्विकल्प स्वरूप हूँ। ऐसी दृष्टि करनेका प्रयत्न करना। बारंबार उसका अभ्यास करना।

निराकूलता होनेका यह उपाय है। आत्माको ग्रहण करना-ज्ञायकको ग्रहण करना-निर्विकल्प स्वरूप आत्माको ग्रहण करना। अंतर दृष्टि करनेसे वह ग्रहण होता है। पहले ज्ञान करनेके लिये सब विचार बीचमें आते हैं। तो भी मैं अखण्ड चैतन्यतत्त्व निर्विकल्प हूँ। उसमें दृष्टि, ज्ञान, उसमें लीनता ऐसे करनेका प्रयत्न करना। वह उसका उपाय है। बारंबार उसका अभ्यास करनेसे विकल्प टूटकर स्वानुभूति करनेका प्रयत्न करना। वह उसका उपाय है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकका अभ्यास?

समाधान :- हं..?

मुमुक्षु :- ज्ञायकका अभ्यास।

समाधान :- ज्ञायकका अभ्यास, बस, ज्ञायकका अभ्यास। मैं ज्ञायक हूँ। मैं ज्ञायक शून्य नहीं हूँ, परन्तु भरपूर भरा हूँ। महिमा(वंत) अनन्त गुणोंसे भरपूर हूँ। अनुपम तत्त्व है। उसका अभ्यास करना।

समाधान :- ... गुरुदेवने कहा वह करना है। जो मार्ग बताया है उस मार्गका शरण लेने जैसा है। गुरुदेवने कहा, आत्मा तो शाश्वत है। ऐसे जन्म-मरण, जन्म-मरण जीवने अनन्त किये हैं। किसीको छोड़कर स्वयं चला जाता है और अपनेको छोड़कर दूसरे चले जाते हैं। ऐसे अनन्त जन्म-मरण किये। उसमें यह मनुष्यभव मिला। इस मनुष्यभवमें आत्माकी कुछ रुचि और आत्माको पहिचाने तो वह सफल है। बाकी जन्म-मरण संसारमें चलते रहते हैं। ऐसे शान्ति रखनी।

आत्मा शरणरूप (है)। देव-गुरु-शास्त्र शरण है और आत्मा शरण है। सच्चा तो यह है, वास्तवमें यह करना है। गुरुदेवने सच्चा मार्ग बताया है कि तू अंतर आत्माको पहिचान ले। शान्ति रखना। बड़े चक्रवर्तीओंका आयुष्य पूर्ण हो जाता है। परन्तु इस मनुष्य भवमें आत्माका कुछ हो तो वह सफल है।

इस जीवने अनन्त जन्म-मरण किये हैं। जितने जगतके परमाणु हैं पुद्गलके, सबको ग्रहण किया और त्याग किया। इस आकाश प्रदेशके एक-एक क्षेत्रमें वह अनन्त जन्म-मरण कर चूका है। ऐसे अनन्त जन्म-मरण जीवने किये हैं। द्रव्य परावर्तन और क्षेत्र

परावर्तन, ऐसे अनन्त परावर्तन किये। जिसका कोई माप नहीं है, उतने जन्म-मरण किये। उसमें इस मनुष्य भवमें पंचमकालमें गुरुदेव मिले। उन्होंने धर्म बताया कि आत्मा भिन्न है। तू ज्ञायक है, तू शाश्वत है, तेरा आनन्द स्वभाव है उसे ग्रहण कर।

रागके कारण दुःख होता है, लेकिन विचारोंको बदलकर आत्माका शरण ग्रहण करने जैसा है। बड़े देवलोकके देवोंके आयुष्य भी पूर्ण हो जाते हैं। सागरोपमका आयुष्य हो तो भी पूरा हो जाता है, तो इस मनुष्यभवमें और इस पंचमकालमें तो आयुष्य पूरा होनेमें देर नहीं लगती। एक क्षणमें फेरफार हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- ऐसे महान पुण्य कि ऐसे संतोंका योग हुआ। सब पुण्यवान कि ऐसा धर्म..

समाधान :- ऐसा धर्म और ऐसे गुरु मिलना महा मुश्किल है। शान्ति रखनी। ऐसे प्रसंगोंमें शान्ति रखने जैसा है। शास्त्रमें आता है न कि अनन्त माताओंको स्वयंने रुलाया है और अनन्त माताओंने स्वयंको रुलाया है। स्वयंको रुलाकर अनन्त (जीव) चले गये। ऐसे अनन्त जन्म-मरण जीवने किये हैं।

जगतमें एक सम्यग्दर्शन दुर्लभ है कि जिससे भवका अभाव होता है। एक जिनवरस्वामी मिलना दुर्लभ है। मिले तो स्वयंने स्वीकार नहीं किया-उनको पहिचाना नहीं। एक जिनवरस्वामी और एक सम्यग्दर्शन, ये दो वस्तुएँ प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है। बाकी अनन्त कालमें सब प्राप्त हो चूका है। कुछ नहीं मिला ऐसा नहीं है। देवलोकके भव अनन्त, मनुष्यके अनन्त, तिर्यंचके अनन्त, नर्कके अनन्त, जीवने अनन्त-अनन्त भव किये हैं। उसमें एक सम्यग्दर्शन प्राप्त करना महादुर्लभ है। वह सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त वह मार्ग गुरुदेवने बताया है। वह करने जैसा है।

एक जिनवर स्वामी और एक सम्यग्दर्शन (प्राप्त नहीं हुआ)। जिनवर स्वामी मिले। जिनवरको पहिचाने वह स्वयंको पहिचाने, स्वयंको पहिचाने वह जिनवरको पहिचानता है। इसलिये वह ग्रहण करने जैसा है कि आत्मा कैसे पहचानमें आये? वह वस्तु दुर्लभ है। अन्दर भेदज्ञान और स्वानुभूति कैसे प्राप्त हो, वही ग्रहण करने जैसा है। बारंबार विचारोंको बदलकर शान्ति रखने जैसा है। जितना राग होता है उतना दुःख होता है। परन्तु जीवको पलटने पर ही छूटकारा है। शान्ति रखनी वही एक उपाय है। अन्य कोई उपाय अपने हाथमें नहीं है। एक शान्ति और एक आत्माका धर्म-स्वभाव ग्रहण करना। देव-गुरु-शास्त्रको हृदयमें रखकर आत्माको ग्रहण करना, वह करने जैसा है। ज्ञायक आत्माका शरण ग्रहण करने जैसा है।

मुमुक्षु :- विचार किया हो मतलब क्या?

समाधान :- विचार आत्माको ग्रहण करना कि मैं ज्ञायक हूँ। कोई पर पदार्थके

साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र परिणमते हैं। मैं स्वतंत्र हूँ, मेरे आत्माका शरण ग्रहण करुँ। वह विचार करने जैसा है। बाकी जीवने सबको अपना माना है। शास्त्रमें आता है कि एक पागल आदमी (था)। राजाका लश्कर और सब आते हो तो कहता है कि ये मेरा है, मेरा है। फिर समय होने पर सब चले जाते हैं। तो कहता है कि ये सब मेरे थे। ये लश्कर आदि सब क्यों चले जाते हैं? तेरा था ही नहीं, इसलिये जाते हैं। उसमें तूने मूर्खताके कारण माना है कि ये सब मेरा है। इसलिये अपना स्वामीत्व उठाकर, मेरा ज्ञायक आत्मा वही मेरा है, अन्य कुछ भी मेरा नहीं है। ऐसा निश्चय और ऐसी प्रतीत करने जैसा है। रागके कारण जूठी तरह स्वयं अपना मान लेता है।

मुमुक्षु :- एक ज्ञायकको ग्रहण करने जैसा है।

समाधान :- एक ज्ञायक आत्मा शरण, बस। एक ज्ञायककी महिमा, ज्ञायकका विचार, ज्ञायकका अभ्यास, उसका मनन, उसका अभ्यास, सब करने जैसा है। कठिन तो लगे, अनादिका अभ्यास नहीं है इसलिये कठिन लगता है। परन्तु उसे पलटने पर ही छूटकारा है। अपना स्वभाव है इसलिये सहज है। परन्तु अनादिका परमें गया है, इसलिये दुर्लभ हो गया है। इसलिये उसे पुरुषार्थ करे, बल करके बदलने जैसा है। उसे पलटकर अपने स्वघरकी ओर आने जैसा है। परके साथ मेरा कोई नाता या सम्बन्ध अनादि कालसे है नहीं, लेकिन स्वयंने माना है।

प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। सबके द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र हैं। सबके कर्म, सबके भाव, सब स्वतंत्र हैं। इसलिये स्वयंको अपना विचार बदलकर, एक ज्ञायक आत्मा वही (मैं हूँ)। अनन्त गुणोंसे भरा हुआ, अनन्त गुण-पर्यायसे भरा हुआ आत्मा वही मैं हूँ। स्वभावको ओर मुड़े तो शुद्ध पर्याय होती है और विभावकी ओर मुड़े तो विभावपर्याय होती है। इसलिये स्वयंको ग्रहण करके अपनी शुद्धात्माकी शुद्ध पर्याय कैसे प्रगट हो, वह करने जैसा है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल

पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

आपके घरमें आपकी बहनोंको सबको यह रुचि है। आप शान्ति रखना। गुरुदेवने जो मार्ग बताया है उसका विचार करके शान्ति रखने जैसा है। राग हो उसे बदलकर, पुरुषार्थ करके,.... रागके कारण दुःख हो, लेकिन शान्ति रखनी वही उसका उपाय है। वही रुचि सबको (करने जैसी है), गुरुदेवने वही मार्ग बताया है।

ऐसे प्रसंग देखकर वैराग्यका कारण होता है कि ऐसे प्रसंग बनते हैं। घरमें सबको रुचि है। उसका विचार, मनन, रुचि, महिमा, स्वाध्याय वह सब करने जैसा है। अंतरमें उतने विचार न चले तो स्वाध्याय करना। गुरुदेवने जो कहा है, उसका विचार करना। गुरुदेवने जो प्रवचन किये हैं उसका मनन करना, वांचन करना, वह सब करने जैसा है।

देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, एक ज्ञायक कैसे पहिचानमें आये? वह द्रव्य क्या है? गुण क्या है? उसका स्वभाव क्या? वह कैसे प्रगट हो? उसके लिये उसका विचार, मनन सब (करने जैसा है)।

समाधान :- .. तू उसमें आ नहीं सकेगा। भेदज्ञानकी डोर द्वारा वह पीछे पड़ जाता है और गुप्त घरमें आ नहीं सकता है। खड़ा तो होता है, वह सब विभावके शत्रु खड़े होते हैं, परन्तु भेदज्ञानका हथियार उसके पास ऐसा है कि वह पीछे पड़ जाता है और स्वयंका घर उसके हाथमें है। स्वघर उसके हाथमें है। स्वघरमें जाता है। वह उसे पहुँच नहीं सकता है। फिर भी वह साथ-साथ जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता तब तक खड़ा है। लेकिन भेदज्ञानके पुरुषार्थकी डोर है। उसे तोड़ता हुआ और निज स्वभावको प्रगट करता हुआ चला जाता है।

स्वभावघरकी परिणति वर्धमान करता हुआ इसको तोड़ देता है। स्वघरका निवास उसे बढ़ता जाता है। उसमें विश्राम करते जाता है। आस्रव-विभाव टूटता जाता है। चैतन्यके घरमें... चैतन्य विज्ञानघन स्वभावमें आकर मिलता है। पूरा हो गया तो भी पीछेसे आया। ... नीचे आदमी कैसे पहुँच सके? वह तो ऊपर-ऊपर चढता जाता है। ज्ञानपरिणतिमें ऊपर-ऊपर चढता जाता है, विभाव कम होता जाता है। अंतर तलमें जाय तो अन्दर गहराईमें गुप्त हो जाता है। उसमें पहुँच नहीं सकता। मार्ग और पानीका दृष्टान्त एकदम सुन्दर आचार्यदेवने (दिया है)।

स्वयंको जो परिणति प्रगट हुयी है, उस परिणतिको अपनी खींचता जाता है। परिणति अपनेको खींचती जाती है। अपने स्वघरके अन्दर, चल रे चल, परिणति कहती है, यहाँ अन्दर जाना है, बाहर नहीं जानेका है। बाहर नहीं जाना है, अन्दर (जाना है)। ऐसा कहकर परिणतिको खींचता है। अन्दर चल, अन्दर चल। बाहरमें कहीं... बाहर

अपना घर नहीं है। यह स्वघर अपना है, यहाँ आओ। आचार्यदेव कहते हैं, यहाँ आओ, यहाँ आओ। पुरुषार्थ करता हुआ विकल्पको तोड़कर निर्विकल्पताको प्राप्त करता है। पुरुषार्थ करता है। फिर सदा विज्ञानघन हो जाता है। परिणति भी दोड़कर आती है।

मुमुक्षु :- घर पर ऐसा कहते थे कि देह छूटनेका समय आ जाय तो उस वक्त मुझे सावधानी रखनेके लिये क्या करना? ऐसा मन्त्र माताजी..

समाधान :- जाननेवाला है। आनन्द, ज्ञान सब आत्मामें है। उसका जाननेवाला ज्ञायक है।

मुमुक्षु :- परन्तु जब रोग होता है उस वक्त घिर जाना होता है।

समाधान :- पुरुषार्थ करना, बारंबार अभ्यास करना।

मुमुक्षु :- क्या पुरुषार्थ करना?

समाधान :- मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, आत्मा हूँ। जाननेवाला ज्ञायक आत्मा हूँ। वेदना मेरेमें नहीं है। दोनों वस्तुएँ-तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। पुरुषार्थ करना। मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, शाश्वत हूँ। आत्माका नाश नहीं होता है, शरीर बदलता है। आत्मा तो अनादिअनन्त शाश्वत है, मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ। गुरुदेवने यह कहा है।

देव-गुरु-शास्त्रका स्मरण करना और ज्ञायकका स्मरण करना। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र और अंतरमें ज्ञायक। ज्ञायक अद्भुत आत्मा अचिंत्य है, अनुपम है। उसकी महिमा करनी, उसे लक्ष्यमें लेना, उसका अभ्यास करना। वेदना भिन्न और ज्ञायक आत्मा भिन्न है। यह एक ही मन्त्र गुरुदेवने कहा है।

जाननेवाला ज्ञायक अनन्त गुणोंसे भरपूर, उसका भेदज्ञान करना। अपनेमें एकत्व है और परसे भिन्न विभक्त है। आँखमें कम दिखाई देता है। आत्मा जाननेवाला, आत्मामें आनन्द, सब आत्मामें है। पुरुषार्थ करना चाहिये, बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये। बारंबार बदल जाय तो बारंबार अभ्यास करना। बारंबार उसे-आत्माको लक्षणसे पहिचानना। उसकी महिमा अनादि कालसे नहीं की है इसलिये बाहर दौड़ा जाता है। उसमें ही सर्वस्व, सब उसीमें है, ऐसे बारंबार पुरुषार्थ करना। मैं भिन्न हूँ।

... जीवने बहुत जन्म-मरण किये। भवका अभाव होनेका मार्ग गुरुदेवने बताया है। आत्मा भिन्न है-भिन्न है। बारंबार मैं चैतन्य भिन्न हूँ-भिन्न हूँ। ऐसे बारंबार भिन्नताकी भावना करनी। (भवका) अभाव करनेका मार्ग गुरुदेवने बताया है। अभाव करनेका मार्ग बताया है। शुद्धात्मा शुद्धतासे भरा है।

मुमुक्षु :- बार-बार चलायमान हो जाते हैं।

समाधान :- बारंबार पुरुषार्थ करना। शास्त्रमें आता है न?

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे,
कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणुमात्र नहीं अरे!।।३८।।

मैं शुद्धतासे भरा हुआ सदा अरूपी, ज्ञान-दर्शनसे भरा आत्मा हूँ। एक परमाणुमात्रके साथ भी मेरा सम्बन्ध नहीं है। उससे मैं भिन्न हूँ।

एक ही, गुरुदेवने सब शास्त्रोंका सार, गुरुदेवका कहनेका सार-एक ज्ञायकको भिन्न करना वह है। विकल्प आये वह विकल्प भी अपना स्वभाव नहीं है। निर्विकल्प तत्त्व है। .. भरा, ज्ञान-दर्शनसे भरा (हूँ)। परमाणुमात्रके साथ सम्बन्ध नहीं है।

समता ऊर्ध्वता ज्ञायकता सुखभास,
वेदकता चैतन्यता ए सब जीवविलास।

बस, वह जीवका स्वरूप है। बारंबार-बारंबार वही घोटन करवाया है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१७२

समाधान :- ... सब वह करनेका है। उसीके लिये यह सब तत्त्वविचार, वांचन, स्वाध्याय एक चैतन्यतत्त्व पहिचाननेके लिये (है)। गुरुदेवने वही कहा है। सबका सार एक ही है कि चैतन्यतत्त्व पहिचानना। उसकी परिणति, उसकी स्वानुभूति प्रगट करनी वही एक, सर्वस्व सार एक है। जीवनकी सफलता उसमें है। उसकी भावना, उसकी महिमा, उसका विचार, उसका निर्णय, उसकी परिणति, जो पुरुषार्थ हो वह उसीके लिये करने जैसा है।

मुमुक्षु :- ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। उसमें अधोलोकमें जिन मन्दिरकी संख्या ज्यादा है। वहाँ ऐसे परिणाम...?

समाधान :- कुदरती शाश्वत प्रतिमाएँ हैं।

मुमुक्षु :- वहाँ ज्यादा है। .. पाताललोकमें।

समाधान :- असंख्यात जिनमन्दिर हैं। व्यंतरलोक, भवनपति, ज्योतिष उन सबमें शाश्वत जिन मन्दिर हैं। कुदरती शाश्वत हैं। देवलोकके देवोंके निवासमें हैं। अधोलोक यानी जहाँ देव बसते हैं, ज्योतिष, व्यंतर, भवनपति। वैमानिकमें तो हैं ही। वहाँ सब जगह हैं। मनुष्यलोकमें है, सब जगह हैं, शाश्वत प्रतिमाएँ।

मुमुक्षु :- माताजी! आत्माको जो पकड़नेका है, वह तो उघाड़ तो ज्ञानका क्षयोपशम अंश है वह उघाडरूप अंश है, उसीमें पूरा आत्मा पकड़में आता है? उघाड अंशमें ही? दूसरा कोई साधन तो है नहीं। अज्ञानीके पास दूसरा कोई साधन है नहीं।

समाधान :- अंतरकी स्वयंकी जो रुचि है वह स्वयंको ग्रहण करती है। यही करने जैसा है, मैं कैसे आत्माको खोजू? अपनी खोजनेकी भावना है, और अन्दरकी जो महिमा, चटपटी लगे वही अपने ज्ञायकको, वह भले ही क्षयोपशमका अंश है, परन्तु वह आत्माको ग्रहण कर लेता है। वह भले पर्याय है, लेकिन ग्रहण द्रव्यको करना है। द्रव्यको ग्रहण करती है। उसकी दृष्टि पूरे द्रव्य पर जाती है। वह क्षयोपशम भले थोड़ा हो, लेकिन वह मुख्य प्रयोजनभूत तत्त्वको ग्रहण कर सकता है। उसकी ओर रुचि और लगन हो तो ग्रहण हो सकता है। विभावसे भिन्न होकर चैतन्यको ग्रहण कर लेता है।

शास्त्रमें आता है न? उतना कल्याण, सत्यार्थ कल्याण एक ही कि जो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, ज्ञायक आत्मा है। उसमें संतुष्ट हो, उसीमें तृप्त हो, वही करनेका है। उसीमें सब सर्वस्व है। वह ग्रहण होता है। भले पर्याय है, परन्तु अखण्डको ग्रहण कर लेती है।

मुमुक्षु :- जी हाँ, उसमें ताकत है।

समाधान :- उसमें ग्रहण करनेकी ताकत है।

मुमुक्षु :- अंश है लेकिन स्वभावका है।

समाधान :- अपने ज्ञानका अंश है, वह द्रव्यको ग्रहण करता है। उसकी दिशा अपनी ओर जाय, दृष्टि अपनी ओर जाय तो ग्रहण करता है। उपयोग बाहर हो वह ग्रहण नहीं करता। अपने स्वभावकी ओर जाय तो स्वभावको ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- स्वास्थ्य कैसा रहता है? माताजी!

समाधान :- गुरुदेवने बहुत प्रभावना की है। अपने तो उनके पास समझे हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेव यहाँ आये कि नहीं? माताजी! आप तो उनके अनन्य भक्त हैं।

समाधान :- वर्तमानमें साक्षात् कोई नहीं आ सकता। स्वप्न आये वह तो आते हैं।

मुमुक्षु :- देव हैं, माताजी! आ नहीं सकते?

समाधान :- इस पंचमकालमें देव कहाँ अभी आते हैं? साक्षात् देव आते नहीं।

मुमुक्षु :- ये तो उनकी तपोभूमि है न।

समाधान :- आये तो किसीकी देखनेकी शक्ति कहाँ है? देवोंको देखनेकी अभी के मनुष्योंकी शक्ति कहाँ है?

मुमुक्षु :- हम तो आपके लिये कहते हैं।

समाधान :- आनेका विचार आये तो कोई देख सके ऐसा कहाँ है? कोई हिन्दी आकर ऐसा कहते हैं, मानों गुरुदेव प्रवचन देने आते हों, फिर चले जाते हैं, ऐसा लगता है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- मेरी भावनाका घोटन चल रहा था कि माताजीके पास जाकर ... माँगुंगी।

समाधान :- बड़े हो गये हैं। जीवनमें ध्येय तो वही है। गुरुदेवने कहा वह। बाहरका तो सब होता है, सब चलता रहता है। बाकी अन्दर लक्ष्य तो एक चैतन्यका करने जैसा है। जीवनका ध्येय तो वही करनेका है। आत्माको पहिचानना वही करनेका है। भवभ्रमणका अभाव कैसे हो? और शुद्धात्माकी प्राप्ति कैसे हो? वह करनेका है।

मुमुक्षु :- सोनगढ़में रहने पर भी प्रवृत्ति इतनी रहती हैं कि उसमें हमें किस प्रकारकी जागृति रखनी?

समाधान :- प्रवृत्ति आत्माको रोक नहीं सकती। अंतरकी परिणति स्वयंको जैसी

करनी हो वैसी कर सकता है। बाहरगाँव जाय तो इससे भी ज्यादा प्रवृत्ति हो जाय। यहाँ तो इसके सम्बन्धित सब होता है। बाहरगाँव तो दूसरी प्रवृत्ति हो जाती है। यहाँ तो आत्माके संस्कार दृढ़ कैसे हो, वैसी प्रवृत्ति होती है। इसलिये स्वयं अपने संस्कार दृढ़ करना वह अपने हाथकी बात है, अपने पुरुषार्थकी बात है। हो सकता है, बाहरके शुभके कार्य हों तो भी अंतरमें हो सकता है। स्वयंको जो पुरुषार्थ करना हो वह हो सकता है।

यहाँकी सब प्रवृत्ति तो शुभकी होती है। बारंबार उसके विचार, उसका घोलन, उसका सिंचन, यहाँ तो सब वही रहता है। इसलिये बारंबार उसीकी दृढ़ता कैसे हो, (वह कर सकता है)। अंतरमें गहरी रुचि प्रगट होकर चैतन्यतत्त्व कैसे पहिचानमें आये? भवका अभाव कैसे हो? आत्माका सुख कैसे प्राप्त हो? स्वानुभूति कैसे हो? वह सब भावना अन्दर करने जैसा है। वह करनेका है।

मुमुक्षु :- करने जैसा तो लगता है, परन्तु अन्दरसे, जैसे भरत चक्रवर्तीके पुत्रोंका पुरुषार्थ कैसे फटा, वैसे हमारा पुरुषार्थ आपकी वाणीसे एकदम जल्दी जागृत हो जाय...?

समाधान :- पुरुषार्थ तो स्वयंको करनेका है। भरत चक्रवर्तीके पुत्रोंकी बात करते हैं। करनेका स्वयंको है। उन्हें पुरुषार्थ ऐसा उग्र हो गया तो हो गया। अपनी उतनी कचास है कि उतनी उग्रता (नहीं है)।

मुमुक्षु :- यहाँ तो बरसोंसे रहते हैं, फिर भी उग्रता होनेमें क्यों देर लगती है?

समाधान :- सब आत्मा स्वतंत्र हैं। चतुर्थ कालमें क्षणमें अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त करते थे, क्षणमें मुनिपना ले ले, क्षणमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करते थे। ऐसे सब जीव पुरुषार्थ करते थे। सम्यग्दर्शन क्षणमात्रमें हो जाता था। क्षणमात्रमें वैराग्य आ जाता, केवलज्ञान हो जाता था। भगवानकी मौजूदगी हो तो अनेक जीव एकदम जागृत हो जाते थे। परन्तु इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले और इतने संस्कार अन्दर डले वह भी महाभाग्यकी बात है। इस पंचमकालमें यह मिलना भी दुर्लभ है।

मुमुक्षु :- दुनियामें कहीं और जगह है ही नहीं। अपने तो सीमन्धर भगवान मिले और आपका इतना योग मिला।

समाधान :- करनेका तो स्वयंको है। भेदज्ञान करना, क्षण-क्षणमें जागृति रखनी, सब अपने हाथकी बात है। शरीर भिन्न, अन्दर आत्मा भिन्न, विभाव स्वयंका स्वभाव नहीं है। उसमें उसे संतोष नहीं होता, आत्माकी प्राप्ति हो तो संतोष हो। भेदज्ञानकी धारा अन्दरसे प्रगट करनी, वह अपने पुरुषार्थकी बात है। क्षण-क्षणमें एकत्वबुद्धि हो रही है, उसे तोड़नी।

प्रथम तो... भरत चक्रवर्तीके पुत्रोंको क्षणमें सम्यग्दर्शन तो हुआ था, परन्तु मुनि

हो गये। वह बात तो अलग है। अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे हो, वह बात है। क्षण-
-क्षणमें भेदज्ञानकी तैयारी करनी। क्षण-क्षणमें भेदज्ञान कैसे प्रगट हो? क्षण-क्षणमें स्वयं आत्माको भिन्न करे, ज्ञायककी स्वानुभूति कैसे हो? स्वयंकी बात तो बादमें आती है। वह बात तो दूर है। अभी तो स्वानुभूति हो और स्वानुभूतिमें लीनता, चैतन्यमें लीनता बढते-बढते स्वानुभूतिकी विशेषता हो, वह बात तो उससे दूर है। पहले तो अन्दर भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो वह प्रथम करनेका है। परन्तु गुरुदेवने यह मार्ग दर्शाया और उस मार्ग पर चलना हुआ, वह भी महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- समुद्रमेंसे किनारे पर आ गये, इतना सुन्दर योग हमारे लिये है।

समाधान :- मार्ग तो क्या है, वह गुरुदेवने इतना स्पष्ट करके कहा है कि कहीं रुकना न हो। जगतके जीव कहीं-कहीं रुके हैं। कोई कुछ क्रियामें, कोई इतना शुभभाव कर लिया उसमें धर्म मान लिया, किसीने कुछ (माना)। थोड़ा-थोड़ा करे उसमें धर्म मान लेते हैं।

गुरुदेवने तो कहा, एक ज्ञायकके अलावा कुछ (नहीं)। तू एक आत्माको ही ग्रहण कर। हर जगहसे दृष्टि उठाकर एक चैतन्य पर दृष्टि स्थापित कर। गुरुदेवने इतना स्पष्ट मार्ग करके दर्शाया है।

मुमुक्षु :- .. आप भी वैसे ही समझाते हों। आप सर्वांग सहजानन्दकी मूर्ति, जहाँसे देखो वहाँ आनन्द ही आनन्द। ऐसा आनन्द हमें कैसे जल्दी प्रगट हो, ऐसा होता है।

समाधान :- अंतरमें उतनी स्वयंको ज्ञायककी धारा प्रगट होनी चाहिये तो अंतरमेंसे आनन्द प्रगट हो। पहले तो यथार्थ प्रतीति उसकी इतनी दृढ़ होनी चाहिये, उतनी धारा प्रगट होनी चाहिये तो उसे आनन्द प्रगट हो।

मुमुक्षु :- इतना आनन्दसे भरा है और उसका लक्ष्य करनेमें इतना प्रयत्न और मेहनत करनी पड़े?

समाधान :- अनादिका अभ्यास बाहर चला गया है। अन्य रुचिमें अटका है, बाह्य रुचिमें, इसलिये प्रयत्न नहीं चलता है। नहीं तो अपना स्वभाव है। वह कोई दुर्लभ है। स्वभाव अपना है और बाहर भटका रहता है, इसलिये दुर्लभ हो गया है। बाहर विभावमें दौड़ा करता है अनादिसे, इसलिये उसे अंतरमें आना मुश्किल पड़ता है।

मुमुक्षु :- है सरल, फिर भी मुश्किल।

समाधान :- हाँ, मुश्किल (है)। है सहज और सुलभ है। एक बार स्वयं अपनी ओर जाय तो सहज है। फिर उसे भवभ्रमण टूटकर शुद्धात्माकी ओर ही उसकी परिणति

सहज झुकती जाती है। लेकिन उसे प्रथम भूमिका विकट है। विभावमेंसे स्वभावमें आना उसे दुर्लभ हो पड़ा है। स्वभाव प्रगट होनेके बाद स्वभावमेंसे स्वभाव प्रगट होता है। पुरुषार्थ उसी ओर उसका मुड़ता जाता है।

समाधान :- .. जिसने जन्म धारण किया उसे आयुष्य पूरा होता है और देह छूट जाता है। लेकिन ऐसे गुरु मिले, उसका संस्कार लेकर जाय तो वह जीव सफल है। जीवनमें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और ज्ञायक आत्माको पहिचाननेका अभ्यास करना वही करने जैसा है। बाकी अनन्त जन्म-मरण किये उसमें ऐसा मार्ग बतानेवाले गुरु इस पंचमकालमें मिले।

आत्मा भिन्न है। अंतरमें स्वानुभूति हो, आत्माका आनन्द कोई अलग है, यह सब बतानेवाले गुरु मिले। उसी मार्ग पर चलने जैसा है। सत्य तो यह है। (अनन्त) जन्म-मरण किये, उसमें मनुष्यजन्म कैसे सफल हो? आत्माको अन्दरसे भिन्न करके भेदज्ञान करके उसका अभ्यास करे, वह करने जैसा है। मांजीको तो बहुत वर्षोंका (परिचय है)। .. हो तो सही वक्तमें काम आता है।

मुमुक्षु :- आपकी तबियत?

समाधान :- ठीक है, पहलेसे ठीक है।

.. उसमें इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले। गुरुदेवने कोई मार्ग बताया। वह मार्ग अंतरमें है। बाहरमें (नहीं है)। अंतरमें मार्ग है। जिसे मोक्ष प्राप्त करना हो तो अंतरमेंसे मिलता है। बाहरसे नहीं मिलता। इसलिये अन्दर जो ज्ञायक स्वभाव है, आत्मा ज्ञायक है उसे पहिचाननेका प्रयत्न करना। उसके लिये विचार, वांचन, शास्त्र अभ्यास, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा वह सब एक आत्माको पहिचाननेके लिये है।

अनन्त कालसे बहुत जन्म-मरण हुए। उसमें जीवने सच्चा धर्म क्या, वह नहीं पहचाना है। यह सच्चा धर्म गुरुदेवने बताया। वह जीवनमें करना है। वह कैसे पहिचानमें आये? उसका अभ्यास बारंबार, बारंबार उसकी रुचि, अभ्यास, विचार, शास्त्र अभ्यास सब करनेका है। अन्दर विकल्प हो वह अपना स्वभाव नहीं है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा आत्माका स्वरूप है।

जैसे सिद्ध भगवान हैं, अकेले चैतन्य आत्मस्वभावमें विराजते हैं, वैसा स्वभाव स्वयंको कैसे प्रगट हो? ऐसी महिमा, ऐसी रुचि अंतरमें करने जैसी है। आत्मा अन्दरसे भिन्न पड़कर अपनी निर्विकल्प स्वानुभूतिको कैसे प्राप्त करे, वह प्रगट करने जैसा है। अपना स्वभाव अपनेमें-से प्रगट होता है, बाहरसे कहींसे नहीं आता। अंतरमें-से ही स्वयं ही स्वयंको खोज लेना है और वही जीवनमें करना है। सचमूच तो वह करनेका है।

... अन्दरसे रुचि रखनी है और बाह्य साधन,.. क्षेत्र कितना दूर... ये तो जोरावरनगर

है न? उनका व्याख्यान.. उनकी वाणी...

मुमुक्षु :- उनकी वाणी बहुत अच्छी लगती थी।

समाधान :- उनकी वाणी कोई अलग ही थी। आत्माको बतानेवाली वाणी थी। वाणी तो चैतन्यका स्वरूप बताती थी। अंतरमेंसे कुछ अलग ही कहते थे। वे बोले उतनेमें तो लोग थँभ जाते थे। करनेका वही है। आत्मो कोई अलग ही पदार्थ है। गुरुदेवने बताया है।

पदार्थ कोई अपूर्व है। जगतमें सब जाना वह सब निष्फल है। प्रयोजनभूत एक आत्मा है। जगतमें सारभूत हो तो एक आत्मा ही सारभूत है। देवलोकका भव भी अनन्त बार मिला। परन्तु एक चैतन्य पदार्थ जीवने जाना नहीं। वह यथार्थ प्रयोजनभूत है। उसका विचार करने जैसा है, वह पढ़ने जैसा है, वह सब करने जैसा है। उसकी महिमा करने जैसी है।

... करके उसका अभ्यास किया। गुरुदेवने कहा वह किया तो वह कुछ जीवनमें सफल है। बाकी सब तो जगतमें चलते रहता है। एक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, तत्त्वका विचार, वांचन, ज्ञायक कैसे पहिचानमें आये, वह सब। उसका भेदज्ञान वह सब करनेका प्रयास करे तो कुछ तो जीवनमें (सफलता है), यथार्थ तो बादमें प्रगट होता है। परन्तु पहले उसकी रुचि और अभ्यास करे तो भी सफल है।

मुमुक्षु :- .. कैसे करना?

समाधान :- प्रथम तो ऐसा है कि ज्ञान यथार्थ करना पड़े। मार्गको यथार्थरूपसे पहिचानना पड़े। तो साक्षात्कार हो। जो वस्तुका स्वभाव है, उस स्वभावको यदि बराबर पहिचाने तो उस स्वभावमेंसे आत्माकी जो निर्मलताकी प्राप्ति हो वह स्वभावको पहिचानकर होती है। ऐसे ही, स्वभावको पहिचाने बिना ऐसे ही ध्यान करे तो ध्यान कहाँ करना और कहाँ खड़ा रहना? इसलिये सर्व प्रथम स्वभावको पहिचानना कि आत्मा कौन है? उसका स्वभाव क्या है? ये बाहर शरीर तो परद्रव्य है। अन्दर विभाव, विकल्प होते हैं, वह विकल्प भी आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्माका स्वभाव, जैसे सिद्ध भगवान हैं ऐसा आत्माका स्वभाव है। इसलिये स्वभावको पहिचानना।

आत्मा जाननेवाला ज्ञायक है। जो ज्ञान है उसीमेंसे ज्ञान प्रगट होता है। जिसका जो स्वभाव हो, उसमेंसे प्रगट होता है। विभावमेंसे स्वभाव नहीं आता, स्वभावमेंसे स्वभाव आता है। इसलिये स्वभावको पहिचानना। इसलिये स्वभावको पहिचानना। ज्ञानस्वरूप आत्मा है उसे बराबर पहिचानना। वह द्रव्य कौन है? उसके गुण क्या है? उसकी पर्याय क्या है? पहले यथार्थ ज्ञान करना। उसका प्रयोजनभूत ज्ञान तो पहले करना पड़े। भले ज्यादा शास्त्र न जाने, लेकिन मूल वस्तु-द्रव्य क्या है? मैं कौन हूँ? मेरा

क्या स्वभाव है? उसको पहिचानना। उसे पहिचानकर उसकी यथार्थ प्रतीत करनी। उसकी यथार्थ श्रद्धा (करनी)। ऐसी श्रद्धा हो कि ब्रह्माण फिरे तो भी उसकी श्रद्धा न फिरे, उतनी दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिये। फिर उसमें लीनता करे तो साक्षात्कार हो। तो विकल्प टूटे और तो उसे निर्विकल्प दशा, साक्षात्कार हो।

अन्दर आत्मामें अपूर्व आनन्द भरा है। आत्मा अनुपम स्वरूप है। परन्तु उसे पहिचाने और उसमें लीनता करे तो हो। यथार्थ ज्ञानके बिना यथार्थ ध्यान हो नहीं सकता। इसलिये पहले यथार्थ ज्ञान करके फिर उसका ध्यान होता है।

मुमुक्षु :- यथार्थ ज्ञान कैसे प्राप्त करना?

समाधान :- यथार्थ ज्ञान, जो महापुरुष, सत्पुरुष कहते हैं वह मार्ग क्या है? मार्ग दर्शाते हैं। सत्पुरुषोंकी वाणी सुननी। उसमें क्या रहस्य भरा है, उसका विचार करना। तो यथार्थ ज्ञान हो। शास्त्रोंमें क्या आता है? गुरुदेव विराजते थे। उनके कोई अपूर्व वाक्य, अपूर्व आत्माका स्वरूप बताते थे। उसका विचार करना। पहले वस्तु क्या है, उसका विचार करना। तत्त्व चिंतवन करना, आत्माकी महिमा करनी। बाहरकी महिमा कम हो जाय और अंतर आत्माकी यदि महिमा आये तो उस ओर जीवका झुकाव होता है। बाहर कहीं-कहीं अटक जाय तो वैसे आत्म साक्षात्कार हो नहीं सकता।

अंतर आत्माकी रुचि लगे, उसीकी लगन लगे, बारंबार उसीका मनन, उसकी लगन, उसका विचार (करे) तो आत्म साक्षात्कार हो। क्षण-क्षणमें यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ। मैं तो चैतन्य हूँ। ऐसे बारंबार उसकी परिणति होनी चाहिये, बारंबार। जो सत्पुरुष कहते हैं, उसका बारंबार विचार करना।

मुमुक्षु :- क्योंकि हमारी भगवत् गीतामें कहा है कि आत्मा ... घात नहीं होता। आत्मा शरीर नहीं है, मन नहीं है, बुद्धि नहीं है। भिन्न-भिन्न नेति.. नेति करके जो समझाया है, ऐसे आत्मके स्वरूप पर्यंत पहुँच सकते हैं?

समाधान :- पहुँच सकता है, आत्माके स्वरूप तक पहुँच सकता है। परन्तु पहले उसका विचार करे, यथार्थ निर्णय करे, बादमें उसमें उसकी यथार्थ एकाग्रता (होती है)।

मुमुक्षु :- वांचनसे निर्णय हो सकता है?

समाधान :- वांचनके साथ विचार करना।

मुमुक्षु :- स्वयं विचार करना?

समाधान :- हाँ, स्वयं विचार करना। जब तक स्वयं यथार्थ समझे नहीं, तब तक सत्पुरुष क्या कहते हैं, उसका वांचन करे। परन्तु विचार स्वयंको करना है। निर्णय स्वयंको करना पड़ता है। स्वयं यथार्थ निर्णय करना कि स्वभावमेंसे ही स्वभाव प्रगट होता है। जो जिसका स्वभाव है, उसीमेंसे वह प्रगट होता है। उसका जैसा बीज हो

उसमेंसे वृक्ष होता है। जिस जातका बीज, वैसा वृक्ष होता है। आमके बीजमें-से आमका वृक्ष होता है। अँकुडेके बीजमेंसे अँकुडा ही होता है। वैसे आत्माका स्वभाव ऐसा है, उस स्वभावमें ज्ञान-वैराग्यका सींचन करनेसे, उसमें एकाग्रता करनेसे उसमेंसे जो गुण हैं, वह प्रगट होते हैं। आत्माका स्वरूप उसमेंसे परिणमित होता है-उसमेंसे प्रगट होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१७३

समाधान :- .. वह प्रतीत स्वयं अन्दरसे विचार करके निर्णय करे कि यह स्वभाव सो मैं हूँ और ये स्वभाव सो मैं नहीं हूँ। जैसे बाहरमें प्रतीत करनी हो...

मुमुक्षु :- सतत चिंतन?

समाधान :- हाँ, चिंतन करना पड़े। कोई निर्णय करना हो, कोई मनुष्यकी परीक्षा करनी हो तो स्वयं विचार करके जैसे नक्की करता है या बाहरकी जरूरत महसूस हो कि इसमें अपनेको लाभ है। तो उसकी दुकान कैसी है? इसमें लाभ है? मुनाफा है? वह जैसे परीक्षा करके नक्की करता है, वैसे परीक्षा करके नक्की करना कि यह मेरा स्वभाव है और यह मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसे यथार्थ पहिचान करे, प्रतीत करे। आखीर तक पहुँच सकता है। स्वयं आत्मा है, अनन्त शक्तिसे भरा है।

मुमुक्षु :- बहिन! इसमें सत्संगका माहात्म्य कहाँ आता है?

समाधान :- इसमें सत्संगका माहात्म्य अनादि कालसे अनजाना मार्ग है, स्वयं कुछ जानता नहीं। तो जानते हैं ऐसे गुरु और ऐसे जो साधर्मी हों, उनका सत्संग करे तो स्वयंको जानने मिलता है। स्वयं अपनेआप तो कुछ जान नहीं सकता। इसलिये सत्संग करनेका महापुरुषोंने कहा है कि तू सत्संग कर।

संसारमें जो अनेक जातके परिचयमें रहता है, तो उस जातके उसे विचार स्फुरित होते हैं। इसलिये सत्संगमें यथार्थ मार्ग प्राप्त होनेका (कारण बनता है)। सत्संगमें जो-जो जीव साधर्मी हों,.. गुरुसे तो कोई अपूर्व मार्ग प्राप्त होता है। इसलिये गुरु हो तो गुरुकी वाणी सुननी। स्वयंको मार्ग मिलता है। आत्माकी रुचि पलटती है कि यही सत्य है। आत्मामें ही कोई अपूर्वता अनुपमता भरी है। ऐसी गुरुकी वाणीसे अंतरमें श्रद्धा प्रगट होनेका, रुचि प्रगट होनेका कारण बनता है।

मुमुक्षु :- अपनेआप तथ्य प्राप्त हो सकता है? अपनेआप मालूम पड़े कि यही आत्माका स्वरूप है?

समाधान :- हाँ, मालूम पड़े। परन्तु जो महापुरुष कह गये हैं, उसके साथ स्वयं मिलान करे, विचार करे। अपनेआप मालूम पड़ सकता है। स्वयं स्वतंत्र आत्मा है, कहीं पराधीन नहीं है। कोई उसे करवा नहीं देता। अपनेआप मालूम पड़ता है। परीक्षा

करके स्वयंको नक्की करना है। सत्पुरुषको पहिचानना हो तो स्वयं ही नक्की करना है।

जिसे सत्की रुचि जागृत हुयी, उस रुचिवालेके हृदयके नेत्र ही ऐसे हो जाते हैं कि वह सत्पुरुषको पहिचान लेता है कि ये सत्पुरुष है। इस प्रकार उसके हृदयके नेत्र ही निर्मल हो जाते हैं।

वैसे स्वयं अपनेआप आत्माका स्वभाव निश्चित कर सकता है कि यह मेरा स्वभाव है और यह मैं नहीं हूँ। कोई अपूर्वता मेरेमें भरी है, ऐसा स्वयं नक्की कर सकता है। ऐसा कोई आत्माका नक्की करनेका स्वभाव है।

मुमुक्षु :- जिसे आत्माकी अनुभूति होती है, और हम सामान्य मनुष्य हो और जिसे आत्माकी अनुभूति हुयी हो, उनके जीवनमें क्या फ़र्क़ पड़ता है?

समाधान :- उनका जीवन बाहरसे देखना बहुत मुश्किल है। अंतरमें उसे आत्मा भिन्न ही रहता हो। जो अंतरमें विकल्प होते हैं, उससे भिन्न, उसका आत्मा भिन्न (रहता है)। उसे एकत्वबुद्धि नहीं होती। शरीरके साथ, विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि (नहीं होती)। उसका आत्मा भिन्न ही (रहता है)। उसे क्षण-क्षणमें मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी उसकी सहज धारा चलती हो। ज्ञायककी धारा। और कोई बार उसे विकल्प टूटकर स्वानुभूति (होती है)। आत्मामें ऐसा एकाग्र हो जाय कि बाहरमें क्या हो रहा है, वह उसे मालूम नहीं पड़े। वह आत्मामें ऐसा लीन हो जाता है और ऐसा अनुपम आनन्द उसे आता है कि जगतमें कोई वस्तुमें ऐसा आनन्द नहीं है। ऐसा अनुपम आनन्द उसे प्रगट होता है।

उसका आत्मा भिन्न ही भिन्न अंतरमें काम करता है। उसे भेदज्ञानकी धारा रहती है। लेकिन वह उसके बोलनेमें, उसके परिचयसे ख्यालमें आता है कि अंतरमें इनका हृदय भिन्न है। उसकी दृष्टि कोई अलग काम करती है, उसकी परिणति कोई अलग काम करती है।

आत्माकी अनुभूति कोई जगतमें जान न सके, ऐसा अनुपम आत्मा है, उसकी अनुभूति उसे होती है। ऐसी शान्ति और आनन्द। आकुलतासे छूटकर ऐसा ज्ञान और ऐसा आनन्द (अनुभवमें आता है)। अनन्त गुणोंसे भरा, अनन्त शक्तियोंसे भरा ऐसा चैतन्यदेव विराजता है, उसकी उसे अनुभूति होती है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो न कि वांचन और कोई ज्ञानीपुरुषको सुनना। ऐसे बरसों बीत जाते हैं। जहाँ कोई मिले वहाँ सुनने जाते हैं। यहाँ बहिनश्री अच्छा बोलती हैं तो यहाँ चलते हैं। लेकिन मेरा ऐसा अनुभव है कि ऐसे सुननेसे सिर्फ जानने मिलता है।

समाधान :- रुचि ही नहीं लगी है, इसलिये ऐसा हो जाता है। खरी रुचि और श्रद्धा नहीं है कि अंतरमें ही सबकुछ है। उतनी श्रद्धा नहीं है। इसलिये वापस मुड़

जाता है। अपने पुरुषार्थकी क्षति है। अंतरमें कोई अपूर्वता भरी है। आत्मामें कोई अनुपमता भरी है, वह प्रगट करने जैसा है। ये सब निःसार है, सारभूत नहीं है। विभावके साथ एकत्वबुद्धि करने जैसी नहीं है। उतनी जो अंतरमें स्वयंकी रुचि होनी चाहिये, उस रुचिकी क्षति है। इसलिये वह वापस आ जाता है। वापस आनेका कारण अपना ही है। कुछ पढे, विचार करे, परिचय करे तो भी कोई फ़र्क़ न पड़े तो अपनी ही क्षति है।

यथार्थ रुचि जिसे अंतरसे हो कि आत्मामें कोई अपूर्वता भरी ही है और यह निश्चित है, इतना यदि विश्वास हो तो उसे देव-गुरु-शास्त्र जो कहते हैं, सच्चे देव, सच्चे गुरु... गुरुने ऐसी साधना प्रगट की, भगवानने ऐसी पूर्णता प्रगट की, ऐसे आत्माको प्राप्त किया। उन पर उसे कोई अपूर्व महिमा आये। आचार्योंने शास्त्रमें (ऐसा कहा है), उसे कोई अपूर्व महिमा उन पर आती है। अपने स्वभावकी महिमा आये। इसलिये उसके जीवनमें अमुक प्रकारसे परिवर्तन तो उसकी रुचिके कारण हो ही जाता है, नहीं होनेका कारण अपनी रुचिकी क्षति और अपने विश्वासकी क्षति है। उसे बाहरका विश्वास आया है, परन्तु अंतरका विश्वास ही नहीं आया है। इसलिये वह पलट जाता है।

भले उसे स्वानुभूति होनेमें देर लगे, लेकिन अंतरमें यथार्थ रुचि जागृत हो कि करना तो यही है, तो उसका जीवन पलट जाय, तो उसे कहीं चैन नहीं पड़ता। उसे कोई लौकिक कार्योंमें खड़ा हो तो भी मुझे कुछ अलग ही करनेका है, मुझे अंतरमें जाना है, इसमें मुझे कहीं नहीं रस नहीं है। उसे रस नहीं लगता है, उसे आत्मामें रस लगे, आत्माकी बातोंमें रस लगे, ऐसे ज्ञानीपुरुषोंको देखकर उसे रस लगे। ऐसा सब उसे आत्माकी रुचि पलटे तो उसे हर जगह रस लगे। आत्मा-ओरकी बातोंमें रस लगे, दूसरी सब बातें उसे रसयुक्त नहीं लगती। इस प्रकार उसे जीवनमें परिवर्तन हो जाता है।

मुमुक्षु :- .. रुचि कैसे हो?

समाधान :- रुचि, अन्दर यथार्थ विश्वास करना कि इसीमें सबकुछ है, कहीं और नहीं है। इतना स्वयं विश्वास करके नक्की करे तो परिवर्तन होता है।

मुमुक्षु :- बुद्धिसे समझकर रुचि उत्पन्न हो, ऐसा नहीं परन्तु जिसे ऐसा कहें कि तुरन्त एकदम उत्पन्न हो जाय, बेचैन कर दे, कहीं चैन न पड़े, ऐसी तीव्रता कैसे हो?

समाधान :- अंतरसे स्वयंको पुरुषार्थ करना पड़ता है। वास्तवमें इसमें कुछ नहीं है, ये निःसार ही है, ऐसी तैयारी स्वयंको ही करनी पड़ती है, कोई कर नहीं देता। यदि कोई कर देता हो तो स्वयं पराधीन हो गया। तो कोई कर दे और कोई ले ले। पराधीन नहीं है, स्वयं स्वाधीन है। जगतमें रखड़ना और जन्म-मरण करना अपने

हाथकी बात है, उससे छूटना वह भी अपने हाथकी बात है। जन्म-मरण करनेवाला स्वयं स्वतंत्र और मोक्ष करनेवाला भी स्वयं स्वतंत्र है। ऐसी स्वतंत्रता आत्माकी है। अपनी स्वतंत्रतासे स्वयं पलटता है। उसमें गुरु निमित्त होते हैं, देव निमित्त हों, शास्त्र निमित्त हों, परन्तु पलटनेका मूल कारण तो स्वयंका ही है। रखड़नेवाला भी स्वयं और मोक्ष करनेवाला भी स्वयं ही है।

मुमुक्षु :- सब आत्माको साक्षात्कार हो, ऐसा कुछ है? अथवा उसमें भी कोई भिन्न-भिन्न स्तर होगा?

समाधान :- आत्माका स्वभाव तो ऐसा ही है कि आत्म साक्षात्कार कर सके।

मुमुक्षु :- कर सके, कोई भी आत्मा कर सकता है।

समाधान :- कोई भी आत्मा कर सकता है। परन्तु उसका पुरुषार्थ स्वयंको करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- उसमें भी कोई भूमिका है कि यह प्रथम भूमिका है, दूसरी भूमिका है, एक उससे ऊँचा है। कोई थोड़े पुरुषार्थसे ऊपर आ जाय, किसीको आजीवन, दूसरे जन्ममें भी पुरुषार्थ करना पड़े?

समाधान :- जिसके पुरुषार्थकी मन्दता होती है वह लंबे समय तक पुरुषार्थ करता रहे। थोड़ा-थोड़ा, थोड़ा-थोड़ा पुरुषार्थ करता रहे, उग्रता न हो तो लंबे काल तक चलता है। कोई जीवको ऐसी उग्रता हो जाय तो क्षणमात्रमें स्वयं पलट जाता है, तो जल्दी करे। जिसका पुरुषार्थ धीरे-धीरे, धीरे-धीरे चलता हो तो लंबा काल चलता रहे। और उग्रता आये तो तुरन्त हो जाय।

मुमुक्षु :- नहीं, जैसे हमारे धर्ममें कहते हैं कि कर्मकी थीयरी गिने। आपके कर्म ही अमुक प्रकारसे खत्म होते जाय, ऐसे तुम्हे आत्माके साथ...?

समाधान :- नहीं। कर्म है न वह कर्म तो मात्र निमित्त है। कर्मके कारण जीव रखड़ता है (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु :- तो फिर अपनेमें एक घरकी दो बहनें हों, उनका ब्याह हुआ हो, एक ही घरमें बड़ी हुई हैं, तो कोई एक साधारण घरमें जाती है, एक बड़े घरमें जाती है, तो वह उसके कर्म अनुसार है?

समाधान :- वह कर्म अनुसार है। वह तो पुण्य-पापका कारण है। पुण्य-पापका कारण है। पूर्वमें स्वयंने...

मुमुक्षु :- उसी तरह आत्माको भी डिग्री अनुसार कोई फ़र्क़ होता होगा न?

समाधान :- बाह्य संयोग प्राप्त होना वह सब पुण्य-पापका कारण है। लेकिन अन्दर आत्माका परिवर्तन करना वह अपने पुरुषार्थकी बात है।

मुमुक्षु :- वही कहती हूँ कि पुरुषार्थ और कर्म। हमारेमें पुरुषार्थ और कर्म दोनोंको करीब एक स्थानमें रखते हैं कि आपने आपके कर्म कैसे बाँधते हो और कैसे छोड़ते हो, उस पर आपके आत्माकी उन्नति गिनी जाती है।

समाधान :- बाह्य संयोग प्राप्त करना, पैसे मिलना, ये मिलना, दूसरा सब मिलना वह पुण्य-पापके कारण है। परन्तु अन्दरमें जो राग-द्वेष होते हैं, संकल्प-विकल्प (होते हैं), वह कर्म नहीं करवाते। यदि कर्म ही करवाते हों... उसमें कर्म निमित्त है। यदि राग-द्वेष कर्म करे ऐसा हो तो स्वयं पराधीन हो गया। तो किसीको हम ऐसा नहीं कह सकते कि तू राग मत करना, तू द्वेष मत करना। तो उपदेश कैसे दिया जाय कि तू ऐसे दोष मत कर। तू यहाँसे वापस मुड़ जा, तू ऐसा मत कर। ऐसा क्यों कहनेमें आता है? कि स्वयं कर सकता है और वापस मुड़ता है। इसलिये पुरुषार्थमें स्वयं स्वतंत्र है। उसमें स्वयंके जो परिणाम होते हैं, वह परिणाम बदलनमें स्वयं स्वतंत्र है। उसमें कर्म निमित्त है। परन्तु परिणाम कैसे बदलना वह अपने हाथकी बात है।

परन्तु बाह्य उदय जो आये, शरीरमें रोग आया, कोई अशाता वेदनीय आयी, धन मिले, न मिले, वह सब स्वयं बदल नहीं सकता। किसीको अच्छा धंधा मिले, किसीको न मिले, वह सब स्वयं बदल नहीं सकता। परन्तु अपने भावको स्वयं बदल सकता है। राग-द्वेष कितना करना और कैसे करना, वह स्वयं बदल सकता है। राग-द्वेषको जैसे बदल सकता है कि स्वयं शान्ति रखनी, चाहे जैसे संयोग आये तो आकुलता नहीं करनी, खेद नहीं करना, वह जैसे बदल सकता है, वैसे स्वयं अपने स्वभावको पहिचानना, परसे भिन्नता करनी, आत्मामें जाना, वह सब स्वतंत्ररूपसे स्वयं कर सकता है। भाव बदल सकता है। परन्तु बाहरकी नहीं कर सकता। बाहरका सब पुण्याधीन है। लेकिन राग-द्वेष पलटकर अंतरमें जाना, वह (करनेमें) स्वयं स्वाधीन है।

यदि राग-द्वेष भी पलट न सके तो-तो जीव एकदम पराधीन हो गया। राग कर्म करावे, द्वेष कर्म करावे, अब मैं क्या करुँ? मुझसे कुछ नहीं हो सकता। तो उपदेश व्यर्थ जाता है। आचार्य ऐसा कहते हैं, तू राग-द्वेष मत कर, तू विकल्प मत कर, तू शान्ति रख। वह सब उपदेश व्यर्थ है। स्वयं बदल सकता है, शान्ति रख सकता है। कर्म ही करवाता हो तो उपदेश क्यों? इसलिये कर्म अपने भावको नहीं कर सकता। राग-द्वेषमें स्वयं जुड़ता है और बदलता भी स्वयं है। वह अपने हाथकी बात है। स्वभावको पहिचानना, उसका पुरुषार्थ करना उसके लिये आत्मा स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- मतलब कर्मका बन्धन आत्माको उस जातका है ही नहीं?

समाधान :- कर्मका बन्धन तो है, बन्धन है। उसे कर्मका बन्धन, आठ प्रकारके कर्म जीवको बन्धते हैं। ज्ञानको रोकनेवाले, दर्शनको रोकनेवाले, मोहनीयमें निमित्त हो,

मोहमें निमित्त हो, ये रोग आये, पैसे मिले ऐसे आठ प्रकारके कर्म हैं। परन्तु वह अपने भावको नहीं बदलते। अपने भाव जो राग-द्वेष हो, उसमें निमित्त हैं। लेकिन भाव करता है स्वयं। पुरुषार्थसे बदल सकता है। उतना जीव उसमें स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- हो सके तब तक कर्म नहीं बान्धना ऐसा जो कहते हैं, वह वस्तु...?

समाधान :- हाँ, कर्मका बन्धन जब तक स्वयं राग और द्वेष, कषाय होते हैं, तब तक कर्मका बन्धन खड़ा ही है।

मुमुक्षु :- उतना अपने आत्माको साक्षात् करनेमें समय लगता है।

समाधान :- हाँ, बीचमें समय लगता है। जब तक उसमें रुका है, तब तक समय लगता है। इसीलिये गुरु और आचार्य कहते हैं कि तू पुरुषार्थ करके तेरी ओर जा, तू उसका भेदज्ञान कर। ये राग तेरा स्वरूप नहीं है, ये द्वेष तेरा स्वरूप नहीं है। तू उससे भिन्न है। तू जाननेवाला है। उसका तू ज्ञाता हो जा, साक्षी हो जा। वह तेरा स्वरूप नहीं है। तु पुरुषार्थ कर। इसलिये उसके जो विकल्प हैं, वह शान्त होते हैं। उसका भेदज्ञान करके आगे बढे। अभी छूट नहीं सकते। पहले उससे भेदज्ञान करता है, स्वभाव पहिचानता है कि यह मेरा स्वभाव है और ये सब कषाय-क्रोध, मानादि वह भिन्न हैं। मैं उनसे भिन्न हूँ। ऐसे भेदज्ञान करता है।

फिर धीरे-धीरे पुरुषार्थ करता हुआ, उसमें लीनता करते-करते स्वानुभूतिकी उग्रता करता है। अतः धीरे-धीरे पहले तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। फिर उसे मुनिदशा आती है। स्वानुभूति बढती है इसलिये मुनिदशा आती है। घरबार छोड़कर अकेले आत्मामें रहता है। क्षण-क्षणमें आत्माकी स्वानुभूतिमें रहता है। ऐसा करते-करते जब उसे केवलज्ञान होता है तब पूर्णता होती है। फिर सर्व कर्मोंका क्षय हो जाता है, वीतरागी दशा होती है।

लेकिन अभी गृहस्थाश्रममें तो वह भेदज्ञान करता है। ये जो कषाय हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं उससे भिन्न चैतन्य हूँ। मैं निर्मल स्वभावी शुद्धात्मा हूँ। ऐसा करके स्वयं अपना ज्ञान करके उस ओर झुकता है।

मुमुक्षु :- संसारमें रहकर इस प्रकारका आत्म साक्षात्कार अथवा इस ओरकी मेहनत हो सकती है?

समाधान :- हाँ, हो सकती है।

मुमुक्षु :- उसके लिये ये सब छोड़ना चाहिये?

समाधान :- नहीं, बाहरका छोड़ना चाहिये, ऐसा नहीं है। बाहरका कब छूट जाय? कि जब उसे मुनिदशा आती है न, यथार्थ मुनिदशा आये तब छूट जाय। पहले उसे यथार्थ ज्ञान हो, आत्माको पहिचाने, उसमें एकाग्रता हो, वह सब गृहस्थाश्रममें हो सकता है। उसकी रुचि बदल सकता है। भाव पलटना अपने हाथकी बात है। बाहरका गृहस्थाश्रम

हो तो भी अंतरकी रुचि बदल देनी कि ये जो राग और द्वेष और अनेक जातके जो विकल्प आते हैं, वह आकुलता मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसे गृहस्थाश्रममें इतना करके अपने स्वभावको पहिचाने। मैं यह चैतन्य हूँ, इसमें आनन्द है, इसमें नहीं है। उसका भेदज्ञान करके विकल्प तोड़कर स्वानुभूति कर सके ऐसा गृहस्थाश्रममें कर सकता है।

फिर स्वानुभूति बढते-बढते उसे त्याग हो जाता है। स्वानुभूति गृहस्थाश्रममें कर सकता है। अंतरसे न्यारा हो जाता है। चक्रवर्ती थे तो गृहस्थाश्रममें रहकर आत्माकी स्वानुभूति करते थे। क्षणमात्र आत्माका ध्यान हो जाय ऐसा गृहस्थाश्रममें उसको हो सकता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१७४

मुमुक्षु :- .. हम आये थे, सब पूर्वजन्मकी बातें करते थे। आपको आपके पूर्वजन्मकी अनुभूति हो, ऐसे तो हमें कोई मिले ही नहीं। पाँच मिनिट ज्यादा देकर उस पर कोई प्रकाश कर सको तो.. पूर्व जन्म है, विश्वास है।

समाधान :- पूर्वजन्म तो है। यह जीव कहींसे आता तो है। कोई राजा होता है, कोई रंक होता है, कोई राजाके घर जन्म ले, कोई रंकके घर जन्म ले। उसका कोई कारण है। कुदरत ऐसी कोई अन्यायवाली नहीं होती कि किसीका राजाके घर जन्म हो, कोई रंकके घर, कोई रोगी हो, कोई निरोगी हो, ऐसे सब जो फेरफार होते हैं, उसमें साबित होता है कि यह जीव पूर्वमें था और वहाँसे आया है। इसलिये उसके पूर्वकर्मके फेरफारके कारण यह सब फेरफार हैं।

जीव पूर्वजन्ममें अनेक जातके जन्म-मरण करते-करते आया है। वह तो निश्चय है कि वह जन्म-मरण करते-करते आया है। बाकी व्यक्तिगत बात तो क्या कहनी? पूर्वमें जीव था और वहींसे आया है। पूर्व भवमें अनेक भव करते आया है। देवमें-से आये, मनुष्यमें-से आये, अनेक भवमें-से जीव आता है। जैसे उसके भाव हों, पुण्य-पापके परिणाम करे उस अनुसार आता है।

उसमें अभी यह क्षेत्र तो भरतक्षेत्रमें तो अभी थोड़ा धर्मका (प्रचार हुआ)। हमारे यहाँ गुरुदेव विराजते थे, उनके प्रतापसे इतना धर्मका प्रचार हो रहा है। उन्होंने सब मार्ग बताया है। बाकी महाविदेह क्षेत्र है वहाँ तो हमेशा धर्म चलता है। वहाँ तो साक्षात् भगवान विराजते हैं। इस जगतके ऊपर महाविदेह क्षेत्र है, वहाँ साक्षात् भगवान विराजते हैं, उनकी निरंतर वाणी छूटती है। वाणी सुनकर कितने ही जीव सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, कोई मुनिदशाको प्राप्त करते हैं।

साक्षात् भगवान। एक महाविदेह क्षेत्र है, वहाँ साक्षात् भगवान विराजते हैं। केवलज्ञानपने पूर्ण दशामें विराजते हैं। इस भरतक्षेत्रमें तो बहुत मुश्किल हो गया है। सन्त पुरुषोंकी दुर्लभता (हो गयी)। एक गुरुदेव इस पंचमकालमें विराजते थे, कितनोंको उनके कारण मार्ग मिला।

मुमुक्षु :- आप श्रीमद् राजचन्द्र पर कुछ प्रकाश डाल सकते हो? क्योंकि उनको

मैं गुरु मानती हूँ और मुझे उन पर बहुत प्रेम आता है।

समाधान :- हाँ, वे सम्यग्दृष्टि स्वानुभूतिको प्राप्त हुए थे। बचपनसे ही वे वैरागी थे। उनकी विचारशक्ति एकदम तीव्र थी। उनका ज्ञान कैसा था! वे गृहस्थाश्रममें रहते थे फिर भी भिन्न ही रहते थे। स्वानुभूति गृहस्थाश्रममें प्रगट हुयी थी। वे तो भिन्न रहते थे। आत्मरस चखा, हरिरस कहो, हमें कौन पहचान सकेगा? ऐसा सब लिखते हैं। आत्माकी स्वानुभूति उन्हें प्रगट हुयी थी।

मुमुक्षु :- यहाँसे महाविदेह क्षेत्रमें जा सकते हैं?

समाधान :- नहीं जा सकते। महाविदेह क्षेत्र (जानेमें) कितने पर्वत, पहाड़ बीचमें आते हैं। वर्तमानके जीव जा नहीं सकते।

मुमुक्षु :- इस कालमें नहीं जा सकते।

समाधान :- अभी नहीं। बहुत साल पहले एक आचार्य हुए थे-कुन्दकुन्दाचार्य। जिनके शास्त्र अभी स्वानुभूति प्रगट हो ऐसे उनके शास्त्र हैं। मूल मार्ग बताते हैं। उनके शास्त्र पर गुरुदेवने प्रवचन किये हैं। वे कुन्दकुन्दाचार्य थे वह बहुत साल पहले महाविदेहमें आचार्य गये थे। आचार्यको ध्यानके अन्दर भगवानकी वेदना हुयी कि अरे..! भगवानके दर्शन नहीं है। इसलिये कोई लब्धिसे या कोई देवोंने आकर उन्हें महाविदेह क्षेत्रमें ले गये थे। वहाँ आठ दिन रहे थे। भगवानकी वाणी सुनी, ऐसे कोई महासमर्थ मुनिश्वर हों, वे कुन्दकुन्दाचार्य थे वे जा सके थे। कितने हजार वर्ष पहले। हमने यहाँ सब पढ़ा हुआ है।

समाधान :- .. विभावमें सुख न लगे ... आत्मामें ही सुख लगे। ये विकल्प अर्थात् सब विभाव, विकल्प, संकल्प-विकल्प उसमें उसे शान्ति न लगे, उसे दुःख लगे। शान्ति न लगे। ये क्या? ये सब विभाव है वह तो आकुलतारूप और दुःखरूप ही है। दुःख लगे, शान्ति न लगे। शान्ति आत्मामें ही है। ऐसी प्रतीति हो, फिर उसमें उग्रता हो (तो स्वानुभूति होती है)। स्वयंकी रुचि हो इसलिये विभावसे वापस मुड़ जाता है। यह मुझे दुःख है, दुःख है, ऐसा विकल्प नहीं आये, लेकिन उसमें उसे आकुलता लगे, कहीं शान्ति न लगे। शान्ति आत्मामें है, रुचि आत्माकी ओर जाय। उसमें टिक न सके।

अपनी ओर रुचि जाय इसलिये विकल्प-ओर, विभावकी ओर, सब जातके, उसमें शान्ति तो लगे ही नहीं, अशान्ति लगे। उसका उग्र रूप हो इसलिये उसे ज्यादा लगे, इसलिये आत्माकी ओर ही उसकी परिणति दौड़े। आत्माकी ओर दौडे इसलिये विकल्प छूटकर स्वयं स्वरूपमें लीन हो जाय। स्वरूपकी लीनता हो इसलिये विकल्प छूट जाय।

मार्ग तो एक ही है। शुभ परिणाम या कोई विकल्पमें उसे शान्ति या सुख न

लगे। उसकी प्रतीत नहीं, फिर अस्थिरतामें अमुक प्रकारसे रहे, लेकिन उसकी प्रतीतमें तो ऐसा ही होता है कि यह सुख नहीं है, ये तो आकुलता है। यह मेरा स्वभाव नहीं है। प्रतीत तो ऐसी (होती है)। प्रतीतके साथ अमुक प्रकारसे उसे लगे कि यह सुख नहीं है, आकुलता है।

मुमुक्षु :- यदि ऐसा न हो तो मार्ग मिले, नहीं मिले ऐसा कोई सम्बन्ध है?

समाधान :- हाँ। उसमें उसे रुचि लगे, विभावमें अच्छा लगे तो उसे आत्मा-ओरकी रुचि नहीं है और विभावकी रुचि है। ऐसा उसका अर्थ है। जीव अनन्त कालसे कहीं न कहीं अटका है। मुनिपना लिया या कुछ भी किया, तो भी गहराईमें कहीं शुभभावमें रुचि रह जाती है। रुचि कोई शुभमें अटक जाती है। इसलिये अपनी ओर स्वयं जाता नहीं और आत्माकी निर्विकल्प दशाको प्राप्त नहीं कर सकता। वह कहीं पर अटक जाता है। गहराईमें मीठास लगती है इसलिये।

शुभभावमें, शुभके फलमें, कहीं भी अन्दर गहराईमें शुभमें रुक जाता है। उसे रुचि लगती है, उसमें अटकना ठीक लगता है। अपनी ओर जानेकी जो रुचि होनी चाहिये वह होती नहीं। मार्ग तो एक ही है। उसकी ओर रुचि लगनी ही नहीं चाहिये। फिर उग्र या मन्द वह अलग बात है, लेकिन उसकी प्रतीतमें तो ऐसा बल आ जाय कि रुचि न लगे। उसे रुचि अपनी ओर जाय।

मुमुक्षु :- चलते परिणमनमें वेदनमें दुःख लगे?

समाधान :- हाँ, उसे वेदनमें भी दुःख लगता है। प्रतीत ऐसी हुयी है, इसलिये वेदनमें अमुक प्रकारसे तो लगे। कितनी उग्रतासे लगे वह उसके पुरुषार्थकी उग्रता अनुसार (लगता है)। परन्तु अमुक प्रकारसे तो उसे लगता है। प्रतीतके साथ उसे ऐसा बल होता है कि इसमें कहीं सुख नहीं है। ऐसा तो उसे लगता है। जो शान्ति चाहिये वह इसमें कहीं नहीं है। यह सब अशान्त है। अंतरमें तो ऐसी उसे एक जातकी खटक अन्दर हो जाय कि इसमें कहीं शान्ति नहीं है, शान्ति अंतरमें है।

मुमुक्षु :- बात तो सुनते हैं, फिर भी वेदनमें दुःख नहीं लगता है, इसका क्या कारण है?

समाधान :- वेदनमें नहीं लगता है तो अभी अन्दरमें कहीं एकत्वबुद्धि है न इसलिये। एकत्वबुद्धि है इसलिये। यथार्थ प्रतीति हो तो अंतरमें उसे लगे बिना रहे नहीं। परिणति भिन्न पडकर हो तो। उसे ऊपर-ऊपरसे होता है इसीलिये वह, कुछ करुँ, कुछ यह करुँ, आत्मामेंसे कुछ प्रगट हो, ऐसा उसे ऊपर-ऊपरसे तो होता है कि ये कोई सुख नहीं है।

अंतरमेंसे जो होना चाहिये, एकत्वबुद्धि टूटकर अंतरमेंसे नहीं होता है। उसे पकड़में

नहीं आता है कि इसमें दुःख है, कहाँ कहीं सुख है। कुछ करना तो चाहता है कि कुछ करुँ। यह कोई सुख नहीं है। ऐसा अप्रगटरूपसे तो होता है। ये कोई सुख नहीं है। कहाँ सुख है और कहाँ नहीं है, यह मालूम नहीं। परन्तु यथार्थ प्रतीति हो तो उसे अन्दर लगे बिना रहे नहीं। ये सब दुःख है और सुख अंतरमें है।

मुमुक्षु :- वैसे तो पकड़में ही नहीं आता।

समाधान :- उसे पकड़मे नहीं आता। सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। सुख यहाँसे लूँ, यहाँसे लूँ, यहाँसे लूँ। अंतरमें पकड़में नहीं आता, सुख कहाँ है और दुःख कहाँ है।

मुमुक्षु :- प्रथम भेदज्ञान देहादिसे करना या रागादिसे करना?

समाधान :- सच्चा भेदज्ञान तो अंतरमेंसे जो रागादिसे होता है वह सच्चा भेदज्ञान है। परन्तु उसमें क्रममें ऐसा आये कि पहले शरीरसे भेदज्ञान और बादमें रागादिसे भेदज्ञान। लेकिन वह दोनों एकसाथ ही होता है। वास्तविक भेदज्ञान उसीका नाम कि रागादिसे भेदज्ञान हो। इस शरीरसे भेदज्ञान हो वह तो स्थूल है, अन्दर रागादिसे हो वही वास्तवमें सच्चा भेदज्ञान है।

लेकिन अभी स्थूलतासे भी नहीं हुआ तो रागादिसे कहाँ-से होगा? इसलिये पहले स्थूलतासे करवाते हैं। यह शरीर तो उसे दिखता है, शरीरके साथ एकत्वबुद्धि है कि शरीर मैं हूँ। शरीरके साथ एकमेक हो रहा है। शरीरसे तो मैं भिन्न हूँ। यह तो जड़ है। वह तो कुछ जानता नहीं, इसलिये पहले उससे भिन्न पड़े।

मुमुक्षु :- विचारमें लेना आसान पड़े।

समाधान :- विचारमें लेता है। शरीरसे भिन्न पड़ता है, बादमें रागादिसे भिन्नता करता है।

मुमुक्षु :- माताजी! रागादिसे भिन्न पड़नेका प्रयोग क्या? क्योंकि अनुभव हुआ नहीं है, तो अनुभव कैसे हो? वह कैसा स्वादवाला है, राग तो आकुलतारूप है, उसका तो ख्याल आता है, परन्तु वह तो कभी स्वादमें आया नहीं। तो उन दोनोंकी सन्धि कैसे (मालूम पड़े)?

समाधान :- उसके ज्ञानस्वभावको पहिचानना। ज्ञानस्वभाव तो ख्यालमें आये ऐसा है। ज्ञानस्वभाव है वह शान्तिसे भरा हुआ, ज्ञानानन्द स्वभाव है उसे लक्ष्यमें लेना। आनन्दका अनुभव भले नहीं है, परन्तु उसे प्रतीतमें लेना। विचार करके प्रतीतमें आये ऐसा है वह आत्मा। ज्ञानस्वभावसे प्रतीतमें लेने जैसा है।

गुरुदेव बताते हैं, शास्त्रमें आता है। उसके अमुक लक्षणसे पहिचानमें आता है। ज्ञानस्वभाव लक्षणसे पहिचाने। लक्षणसे लक्ष्यमें आये ऐसा है कि ये रागादि है और

यह उसका जाननेवाला लक्ष्यमें आये ऐसा है। राग रागको जानता नहीं, जाननेवाला अन्दर भिन्न है। भिन्न जाननेवाला है वह शाश्वत है। भिन्न जाननेवाला है वह शाश्वत है। रागकी सब पर्यायें चली जाती हैं और जाननेवाला ज्योंका त्यों ही खड़ा रहता है। ज्योंका त्यों खड़े रहनेवाला है वह मैं हूँ।

बचपनसे लेकर अभी तक सब रागादि चले गये और जाननेवाला खड़ा है। जो जाननेवाला खड़ा है वह मैं हूँ। जाननेवालेको भिन्न करे। जो-जो राग, विकल्प आये उसे क्षण-क्षणमें भिन्न करे। उतना उसका प्रयत्न हो, भेदज्ञानका अभ्यास उग्र करे तो क्षण-क्षणमें भिन्न करनेका अभ्यास हो। बुद्धिसे एक बार भिन्न किया और फिर ऐसे ही रह जाय तो अभी उसके अभ्यासकी क्षति है। क्षण-क्षणमें भिन्न करे, उसका अभ्यास वैसे ही मौजूद रखे तो उसे फिर सहज दशा होनेका अवसर आये। पहले तो ज्ञानसे प्रतीतमें आता है।

समाधान :- .. यहाँ गुरुदेव विराजे वह कुछ अलग (ही था)। बाहरगाँवसे कोई आये तो ऐसा कहते हैं कि गुरुदेव मानों साक्षात् आकर वाणी बरसाते हो ऐसा लगता है। आँख बन्द करके बैठे हो तो ऐसा लगता है।

... पुरुषार्थपूर्वकका क्रमबद्ध होता है। क्रमबद्ध हो, जो होनेवाला है वह हो, परन्तु अन्दर जो अपने भाव बदलना, भावना करनी, पुरुषार्थ करना, भेदज्ञान करना, सम्यग्दर्शन (प्रगट करना), वह सब पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। क्रमबद्ध यानी जैसे होनेवाला है वैसे होगा, ऐसे नहीं। पुरुषार्थ साथमें होता है, क्रमबद्धके साथ पुरुषार्थ, स्वभाव, काल आदि सब हो, उसके साथ पुरुषार्थ होता है। वह क्रमबद्ध पुरुषार्थपूर्वक होता है। जिसे पुरुषार्थ लक्ष्यमें नहीं है, उसका क्रमबद्ध ऐसा ही होता है। और जिसे पुरुषार्थ अन्दर रुचता है उसीका क्रमबद्ध मोक्ष-ओरका होता है। मुक्ति ओरका क्रमबद्ध उसीका होता है कि जिसे अन्दर पुरुषार्थ रुचता है। जिसे पुरुषार्थकी ओर लक्ष्य नहीं है, उसे संसार-ओरका क्रमबद्ध है। परन्तु जिसने उसकी दृष्टि की कि आत्मा ज्ञायक है। ऐसी पुरुषार्थपूर्वककी जिसकी दृष्टि है, उसीका क्रमबद्ध (यथार्थ है)। पुरुषार्थपूर्वकका क्रमबद्ध, वह क्रमबद्ध सच्चा है।

मुमुक्षु :- साथमें पुरुषार्थ करना पड़े।

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थ तो साथमें ही होता है। क्रमबद्धके साथ पुरुषार्थ होता है। पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। सब भाव साथमें होते हैं। उसे अमुक प्रकारका क्षयोपशम होता है, उसे स्वभाव आदि पाँच लब्धियाँ आती हैं न? उसमें साथमें पुरुषार्थ होता है। देशनालब्धि होती है। अन्दरसे गुरुदेवकी देशना ग्रहण हो, पुरुषार्थ, स्वभाव आदि सब साथमें होता है। विशुद्धिलब्धि। लब्धि हो उसमें पुरुषार्थ साथमें है। अकेला

क्रमबद्ध नहीं है। क्रमबद्धके साथ पुरुषार्थ होता है। .. क्रमबद्ध है, परन्तु अन्दर अपने भाव पलटना, उसमें साथमें पुरुषार्थ होता है।

मुमुक्षु :- बाहरमें कुछ भी हुआ हो, अन्दर समाधान हो जाय कि जिस काल नुकसान होनेवाला था या जो होनेवाला था वह हो गया।

समाधान :- जो होनेवाला हो वह होता है।

मुमुक्षु :- अब पुनः क्रोध करके नये कर्म बाँधना, उसके बजाय...

समाधान :- जो होता है क्रमबद्ध होता है।

मुमुक्षु :- ध्यान यानी चिंतवन। खास तो यह पूछना था कि ध्यान कैसे करना? बार-बार वही प्रश्न आकर खड़ा रहता है। जितना विकल्पोंसे दूर होना चाहिये, उतना हुआ नहीं जाता। इतने विकल्प आते हैं, जैसा हमारा जीवन है उस अनुसार। पूरी प्रोसेस एकदम शान्तिसे.. ऐसा कहें कि क्रमसे आगे बढ सके वैसे। धीरे-धीरे करके हम अन्दर ऊतर सके। और रास्ता वही है, ये तो ख्यालमें है कि ध्यानके सिवा छूटकारा नहीं है।

समाधान :- परन्तु पहले तो भेदज्ञान होना चाहिये न। भेदज्ञान हो, यथार्थ भेदज्ञान हो बादमें यथार्थ ध्यान हो। एकाग्रता कब हो? कि मूल वस्तुको पकड़े, ग्रहण करे कि मैं जाननेवाला ज्ञायक हूँ, मैं चैतन्यद्रव्य ज्ञायक हूँ, उसका अस्तित्व अंतरसे ग्रहण करे। ऊपर-ऊपरसे बुद्धिसे ग्रहण करे, लेकिन अन्दर उसकी परिणतिमेंसे ग्रहण करना चाहिये, उसका अस्तित्व ग्रहण करे। उसकी श्रद्धा बराबर यथार्थ अंतरसे हो तो उसमें एकाग्र हो। मूल वस्तुको ग्रहण किये बिना चित्त कहाँ स्थिर होगा? चित्त तो विकल्प.. विकल्प...

वस्तु जो स्थिर स्वरूप ज्ञायक स्वरूप वस्तु है उसे ग्रहण करे तो उसमें स्थिर हो, तो स्थिर हो। पहले मैं चैतन्यवस्तु-एक पदार्थ हूँ। जैसे ये सब पदार्थ दिखते हैं, वैसे चैतन्य भी एक पदार्थ है। उसमें अनन्त गुण और अनन्त शक्तियाँ भरी हैं, ऐसा चैतन्यपदार्थ है। उस पदार्थको पहले ग्रहण करे तो उसमें ध्यान हो। इसलिये प्रथम भेदज्ञान करे, ज्ञान करे।

शरीरके साथ एकत्वबुद्धि हो रही है। शरीर सो मैं और मैं सो शरीर। विकल्प सो मैं और मैं सो विकल्प। उसमें भिन्न कौन है? उस भिन्नका अस्तित्व कहीं दिखाई नहीं देता। अतः भिन्न अस्तित्वको पहले ग्रहण करना चाहिये। उसकी बुद्धिमें यथार्थ ग्रहण करे तो यथार्थ ध्यान हो। इसलिये पहले भेदज्ञान करनेकी जरूरत है कि क्षण-क्षणमें जो विकल्प आते हैं, वह विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप तो जाननेवाला, अन्दर जो जाननेवालाका अस्तित्व है वह मैं हूँ। उस जाननेवालाका अस्तित्व ग्रहण

करनेके बाद उसमें ध्यान हो।

उसकी यथार्थ रुचि हो तो वह ग्रहण होता है। रुचि बाहर हो, बाहरकी महिमा लगे (तो ध्यान हो नहीं सकता)। अन्दर चैतन्यमें महिमा लगे कि चैतन्य ही सर्वस्व है। और कुछ सारभूत नहीं है। ऐसे अन्दर यथार्थ ग्रहण करे तो ही उसमें ध्यान हो। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

पानी स्वयं स्वभावसे निर्मल है। उसे कीचड़के कारण मलिनता हुई। उसमें औषधि डाले तो उसकी निर्मलता भिन्न पड़े और वह कीचड़ भिन्न पड़ जाय। वैसे स्वभावसे आत्मा निर्मल है। अनादिसे एक पदार्थ (है)। जो पदार्थ हो वह पदार्थ कहीं स्वयं स्वभावसे मलिन नहीं होता। लेकिन उसमें मलिनता कीचड़के कारण अर्थात् विभावके कारण आयी है।

वैसे उसकी दृष्टि यथार्थ (करनी चाहिये)। जैसे औषधिसे पानी निर्मल होता है, वैसे स्वयं ज्ञानरूप औषधि द्वारा अपना स्वभाव जो निर्मल है, उसे निर्मलताको ग्रहण करे तो उसमेंसे निर्मलता प्रगट हो। उसे भेदज्ञान करना चाहिये। पहले यथार्थ ज्ञान करे तो यथार्थ ध्यान हो।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान करना चाहिये, परन्तु भेदज्ञान करना कैसे?

समाधान :- उसे पहले तो यथार्थ रुचि होनी चाहिये, तो भेदज्ञान हो। उसीमें चला जाता है, अनन्त कालसे विकल्पमें ही चला जाता है। परन्तु उसकी रुचि यथार्थ हो तो भेदज्ञान हो। उसका ज्ञान यथार्थ करना चाहिये। मैं कौन (हूँ)? वस्तु आत्मा अनादिअनन्त (है)। मैं कौन हूँ, मेरा क्या स्वभाव है, उसका स्वभाव क्या है, उसमें जो अनेक जातकी अवस्थाएँ होती हैं, वह क्या है? उसे यथार्थ समझना चाहिये। उसकी रुचि यथार्थ होनी चाहिये। ऐसी लगन लगे अंतरमेंसे तो भेदज्ञान हो। रात और दिन उसे आत्माके अलावा कहीं चैन न पड़े। मेरा आत्मा मुझे कैसे प्रगट हो? मुझे स्वानुभूति-आत्माका साक्षात्कार कैसे हो? ऐसी लगन अन्दरसे लगे तो भेदज्ञान हो। उसकी लगन लगनी चाहिये।

फिर तो स्वभावमेंसे स्वभाव प्रगट होता है। ये जो विकल्प हैं वह तो सब विभाव है। विभावमेंसे स्वभाव नहीं आता है, स्वभावमेंसे स्वभाव आता है। जैसे लोहेमेंसे लोहा ही हो और सुवर्णमेंसे सुवर्ण ही हो। वैसे चैतन्यस्वभावमेंसे स्वभाव प्रगट हो। ये विभावमेंसे तो विभाव ही प्रगट होता है। इसलिये अपना स्वभाव ग्रहण कर लेना। ऐसी रुचि प्रगट करनी चाहिये।

पहले ऐसी रुचि करे, उसका भेदज्ञान करे क्षण-क्षणमें कि यह मैं नहीं हूँ, मेरा चैतन्यस्वरूप भिन्न है। ऐसे बारंबार करे तो उसमें एकाग्रता होती है। नहीं तो समझे

बिनाका ध्यान तो यथार्थ जमता ही नहीं। विकल्प (होने लगे)।

मुमुक्षु :- नींद आ जाती है। ध्यान करने बैठे तो नींद आ जाती है। फिर कोई जगाये तब उठते हैं। सच्ची बात है।

समाधान :- समझ बिनाका ध्यान ऐसा (ही होता है)। स्वयंको पहिचाना नहीं है, स्थिर कहाँ होना? विकल्प कम करने जाय तो शून्यता जैसा हो जाय। शून्यतामें निद्रा जैसा हो जाय। क्योंकि अपना पदार्थ ग्रहण नहीं किया है। पदार्थ जो जागृतस्वरूप आत्मा है उसे ग्रहण करे तो उसमें ध्यान हो न। तो उसमें कुछ सुख दिखे, उसमें कुछ ज्ञान दिखे, उसमें कुछ अपूर्वता दिखे तो उसमें वह स्थिर रहे। कुछ दिखाई न दे और विकल्प करने जाय तो क्या हो? उसे नींद आ जाती है। इसलिये पहले यथार्थ भेदज्ञान करना कि ये मैं भिन्न (हूँ)। पदार्थको जाननेका प्रयत्न करना।

बाहरसे करनेसे कुछ नहीं होता। अंतरसे करनेसे ही होता है। अंतरमेंसे अपनी रुचि पलटनी चाहिये और उसे खोजनेका प्रयत्न करे। उसके लिये शास्त्रमें क्या कहते हैं? गुरु क्या कहते हैं? वह सब बारंबार विचारना। गुरुका आशय क्या है? वह सब विचारना चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१७५

... गुणमूर्तिना गुणों तणा स्मरणों हृदयमांही रह्या
महिमाभर्या गुरुदेवनी महिमा कथन हुँ शुं करुँ?
गुणमूर्तिना गुणों तणा स्मरणों हृदयमांही रह्या।
... थया आ स्वर्णगढ़ने धन्य छे, सद्गुरुजी आपना ते आपनो पण धन्य छे।
ज्यां वास गुरुजी आपना, मन्दिर, मकानो धन्य छे,
गुरुजी बिराज्या आप ज्यां ते आसनो पण धन्य छे।
चरणसेवा सांपडे ते जीवनने पण धन्य छे,
तुज दर्शने पावन बन्या ते लोकने पण धन्य छे।
तुज वाणीथी पावन बन्या ते लोकने पण धन्य छे।

समाधान :- ... उसे खटक रहा करे कि ये सब बाहरका तो जूठा ही है। भले अनुकूल संयोग हो और कोई प्रतिकूल, कोई वैराग्यका प्रसंग बने या कोई अच्छे प्रसंग बने तो भी ये कोई आत्माको सुखरूप नहीं है। ये तो कुछ अलग ही है। अन्दर चैतन्य आत्माकी वस्तु, आत्मा कोई अलग ही है। अन्दर खटक लगनी चाहिये। तो अंतरमेंसे उसे दिन और रात उसीके विचार आते रहे, उसीकी लगन लगे कि इसमें सुख नहीं है, ये सुख नहीं है। सुख आत्मामें ही रहा है। आत्मा कोई अनुपम है, जगतसे भिन्न है, वह आत्मा कैसे प्रगट हो?

मुमुक्षु :- मुझे क्या लगता है कि आत्म साक्षात्कार या आप जो भी कहो, उसमें ऐसी क्या वस्तु है कि जिसके लिये सब प्रवृत्त हो? उसकी कोई झलक न हो और अपने यह कहे कि ये सब असार है, असार है। शास्त्रोंमें या सबने कहा है, उसका मानकर। इसलिये किसी भी प्रकारकी, जो आप कहते हो कि लगन है या यह-वह, एक बार हमें मालूम पड़ा कि यह हीरा है। तो हमारे हाथमें रहे पत्थर अपनेआप छूट जाय। कोई छोड़ना नहीं पड़े। उसी प्रकार आत्म साक्षात्कार क्या है? उससे क्या मिलता है? वह कैसे? बातें सुनी हैं, कुछ भी अनुभूति न हो तो कैसे मने उसमें प्रवृत्त हो? एक बार यदि उसकी झलक हो जाय तो अपनेआप... उसमें किसीको

कहना भी नहीं पड़े कि आप इसके लिये प्रवृत्त हों। ये बात लंबाती रहती है, बरसों, भव, ऐसा मुझे लगता है।

समाधान :- परन्तु इतना तो स्वयंको लगे न कि ये कुछ सारभूत नहीं लगता। आस्तिक्यतामें स्वयंको उतना लगे कि ये कुछ सार(भूत नहीं है), इसमें कहीं सुख नहीं दिखता है। ये बाहरका चाहे जितना करते हैं संतोष नहीं होता। तृप्ति नहीं होती है। जीव व्यर्थ प्रयत्न करता रहता है कि यहाँसे सुख मिलेगा, यहाँसे सुख मिलेगा, यहाँसे सुख मिलेगा। ऐसे व्यर्थ प्रयत्न करता है। संतोष नहीं होता। संतोष नहीं हो रहा है ये यह बताता है कि सुखस्वरूप वस्तु कोई अंतरमें अलग है। इसलिये संतोष नहीं हो रहा है।

जो संतोषका धाम है, जिसमें तृप्ति होती है और जो सुखका धाम प्रगट होनेके बाद दूसरी कोई इच्छा ही नहीं होती, ऐसी कोई वस्तु अंतरमें रही है। इसलिये बाहरमें कहीं भी संतोष नहीं होता। इसलिये जीव इच्छा करता है कि कुछ दूसरा है। ऐसी इच्छा करता है। लेकिन वह प्रगट कब हो? कि स्वयं पुरुषार्थ करे तब। पहलेसे किसीको झलक नहीं दिखती।

लेकिन जिन महापुरुषोंने प्रगट किया है, वे उसे बताते हैं कि तू ये कर और हम उसका अनुभव करके तुझे कहते हैं कि उसकी स्वानुभूति होती है, साक्षात्कार होता है, आत्मा सुखका धाम है। उसका विश्वास करता है। उसका विश्वास तो करना चाहिये। माँ-बाप उसे बताये तो उसका पुत्र जैसे विश्वास करता है कि इस रास्ते पर चल। वैसे वे बताते हैं तो अपनी बुद्धिसे थोड़ा तो विचार करे। दुकान पर कोई माल लेना हो तो वह आदमी पूरी दुकान नहीं दिखाता। लेकिन उसके अमुक लक्षण परसे पहिचाने कि इसकी दुकान अच्छी लगती है। ऐसे लक्षणसे पहिचाने।

ऐसे लक्षणसे पहिचान लेना चाहिये। पहलेसे सब (दिखाई नहीं देता)। जो महापुरुष हों वे उनकी स्वानुभूति बाहर नहीं दिखाते। परन्तु उसके लक्षण बताते हैं। उस लक्षणसे विचार करना। क्योंकि स्वयंको सुख चाहिये, उतनी तैयारी तो चाहिये कि बाहर कहीं सुख नहीं है, संतोष नहीं है। मुझे कुछ दूसरा चाहिये। उतनी जिज्ञासा तो होनी चाहिये। फिर बताये उसका विश्वास करके, स्वयं उस मार्ग पर पुरुषार्थ करना चाहिये, तो प्रगट हो। इस तरह झलक नहीं है तो विश्वाससे (आगे बढे)। सब विश्वास नहीं, लेकिन बुद्धिसे विचार करे, परीक्षा करे कि, नहीं, यह वस्तु सच्ची है।

मुमुक्षु :- लेकिन उस विश्वासमें तो कितनी बार भटक जाते हैं। किसी भी गुरुके पीछे बरसों निकल जाय, फिर लगे कि ये बराबर नहीं है, ये बराबर नहीं। ऐसे तो एक प्रकारका भटकना ही हो जाता है। और हालत ऐसी त्रिशंकु जैसी हो जाती है।

क्योंकि जो सामने है उसकी मजा नहीं ले सकते, उसकी मजा नहीं ले सकते। आत्माकी तो कोई झलक नहीं है। इसलिये हालत दूसरे संसारी मनुष्य है, उससे भी बदतर है। और कुछ ज्यादा ही अकूलाहट होने लगती है।

समाधान :- सच्चे गुरु मिले हो और सच्ची प्रतीति हुयी हो तो उसकी प्रतीति दृढ़ ही रहती है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र जिसे मिले, अंतरसे सत्य ग्रहण हो तो उसे विश्वास ही रहता है कि इसी रास्तेसे साक्षात्कार होगा, दूसरा कोई रास्ता नहीं है। मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है, मैं नहीं कर सकता हूँ। लेकिन उसकी रुचि उसीमें रहती है। इसी मार्ग पर जानेका है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। रुचि बाहरसे मन्द पड़कर उसे हूँफ आ जाती है कि यही मार्ग है।

सच्चे गुरु मिले और अंतरसे विश्वास न आये, ऐसा तो बन ही नहीं सकता। इसलिये अभी भी विश्वास नहीं आता है तो स्वयंने पहिचाना नहीं है और सच्चे गुरु भी स्वयंको नहीं मिले हैं या स्वयंने अन्दरसे विश्वास नहीं किया है। स्वयंको विश्वास आना चाहिये। सच्चे गुरु मिले और विश्वास न आये ऐसा बने नहीं। स्वयं परीक्षा करके स्वीकार करे तो उसे भटकना न पडे। निश्चित हो जाय। क्योंकि आत्मामें उतनी शक्ति है निर्णय करनेकी कि, बस, यही मार्ग सत्य है। बुद्धिसे नक्की कर सकता है। गुरु कहे उसे बराबर नक्की कर सकता है।

यहाँ गुरुदेव विराजते थे। उनकी वाणीमें ऐसा धोध बरसता था, ऐसी अपूर्वता था कि सामनेवालेको नक्की हो जाय कि यही मार्ग है। बुद्धिसे विचार करे तो अन्दर निर्णय हो ही जाय। सच्चा मार्ग मिले और नक्की न हो, ऐसा बनता ही नहीं। सच्चे गुरु मिले तो अन्दरसे स्वयंको विश्वास आ जाता है, हूँफ आ जाती है। फिर भटकने जैसा लगे ही नहीं। उसे हूँफ आ जाय। फिर भले पुरुषार्थ मन्द हो, पुरुषार्थ न कर सके, लेकिन उसकी रुचि पूरी पलट जाती है। आत्मा भिन्न है, भले ही मुझे पकड़में नहीं आता, लेकिन मार्ग तो यही सत्य है। भेदज्ञानके मार्ग पर ही जाना है। अंतरमें ही मार्ग है। ऐसा अंतरमेंसे उसे विश्वास आ जाय। सच्चे गुरु मिले और स्वयं नक्की करे तो कहीं भटकना रहता ही नहीं।

मुमुक्षु :- महाविदेह क्षेत्र जहाँ कुन्दकुन्दस्वामी गये थे, उसे ब्रह्माण्डमें कहाँ रखना? वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखें तो उसकी कहीं तो असर दिखाई दे। महाविदेह क्षेत्र कहाँ है? बराबर न? जिसे अवकाशमें हम जाते हैं तो... जैसे अमेरिका जाते हैं, ओस्ट्रेलिया जाते हैं, अवकाशमें हम लोग चन्द्र तक गये हैं।

समाधान :- किस जगह है, ऐसा न? दूर है। यहाँसे जा सके ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- ब्रह्माण्डमें कहाँ?

समाधान :- ब्रह्माण्डमें इस पृथ्वी पर है। अभी जो पृथ्वीका गोला कहते हैं, ऐसा नहीं है। शास्त्रमें वह पृथ्वी (ऐसे नहीं है)। यह जम्बू द्वीप है। उस द्वीपमें एक महाविदेह क्षेत्र है, एक भरत क्षेत्र है, एक ऐरावत क्षेत्र है। उसमें महाविदेह क्षेत्र और भरत क्षेत्रके बीच थोड़े दूसरे क्षेत्र-जुगलियाका क्षेत्र है। ऐसे क्षेत्र हैं। बीचमें बड़े-बड़े पर्वत हैं। हिमवन्त, हरिवत, रमकवत ऐसे बड़े-बड़े पर्वत हैं। उसके बाद महाविदेह क्षेत्र है। बीचमें मेरु पर्वत है। उसके बाद महाविदेह क्षेत्र आता है।

मुमुक्षु :- जैसे ये रोकेट अवकाशमें जाता है, तो वह क्षेत्र तो हमे दिखता है न?

समाधान :- .. दृष्टिसे देख सकते हैं। ये क्षेत्र स्थूल है। जिसके हृदयमें आर्यता नहीं है, जो अनार्यवृत्ति है, वह ऐसे महान क्षेत्रोंको देख नहीं सकते। जहाँ भगवान विराजते हैं... जो अनार्यवृत्ति है, जो हिंसामें पड़े हैं, आर्यवृत्ति नहीं है। उसे यह चर्मचक्षुसे दिखाई नहीं देता। जिसकी अंतरदृष्टि निर्मल होती है, वही देख सकता है।

मुमुक्षु :- बहिन सब होता है, लेकिन यह वृत्ति है न वह बन्दर जैसी है। बैठती ही नहीं। पाँच मिनिट बैठे और नीचे टेलिफोन आ गया, भागे। आप जैसा कहते हो न कि पुरुषार्थ (करना)। पुरुषार्थ करने भी बैठते हैं। लेकिन बीचमें ऐसा कुछ आ जाता है कि वृत्ति नहीं टिकती, स्थिरता नहीं रहती, दृष्टि नहीं टिकती। ऐसे स्थलमें आये तो ऐसा लगे कि घरमें बच्चे क्या करते होंगे? विचार करनेका प्रश्न ही नहीं है, फिर भी ऐसा विचार आ जाता है। पुरुषार्थ करने पर भी यह वृत्ति है वह बहुत परेशान करती है। उसका कोई रास्ता?

समाधान :- अनादिका राग पड़ा है। स्वयंको रागका अभ्यास हो गया है। अन्दर सब राग, द्वेषके संस्कार पड़े हैं। गाढ़ हो गये हैं। उसमें मुंबईका जीवन और उसमें उतनी प्रवृत्ति, धमाल, उसमें कहीं शान्ति नहीं। और उतना राग और अन्दर सब एकत्वबुद्धि, रागके संस्कार इतने दृढ़ हो गये हैं। उसमें यह संस्कार इतने दृढ़ हो तो वह कम हो। यह संस्कार।

विचार करना, देवका, गुरुका ऐसे सब संस्कार जीवनमें हो तो वह दूसरे संस्कार कम हो जाय। बार-बार भगवानका स्मरण हो, मन्दिरका स्मरण हो, शास्त्र याद आये, गुरु यास आये, ऐसे संस्कार हो। आत्मा याद आये ऐसे संस्कार हो उसे वह दूसरे संस्कार कम हो जाते हैं। इसी संस्कारमें रचापचा है इसलिये वही संस्कार आते रहते हैं।

यहाँ देखो तो यहाँ सबके जीवनमें टेप, गुरु, मन्दिर और आत्माके विकल्प। यह संस्कार एकदम भिन्न और वह संस्कार एकदम भिन्न। इसलिये वह संस्कार दृढ़ हो गये हैं और उसमें स्वयंको बलपूर्वक पुरुषार्थ करना, उन सबके बीच रहकर पुरुषार्थ करना,

जीवकी उतनी शक्ति-उपादान नहीं है। कोई करे तो पुरुषार्थसे कर सके। बाकी साधारण जीव तो सत्संगमें रहे, सच्चे अच्छे माहोलमें रहे तो उसे पुरुषार्थ करना सहज-सहज होता है। मन्द पुरुषार्थी हो तो उसे उग्रता करनी पड़ती है। ऐसे संयोंगोंके बीच अत्यंत उग्रता करे तो स्वयं दृढ़ रह सकता है। अपने पुरुषार्थकी क्षति है। जहाँ होता है वहाँ पुरुषार्थसे होता है। लेकिन सत्संग हो उसमें फ़र्क़ पड़ता है। पुरुषार्थका बल होना चाहिये न। पुरुषार्थका बल हो तो हो सकता है।

जो सच्चा मुक्तिका मार्ग दर्शाते हो, सच्चे देव-गुरु.. जो देव अंतरमें केवलज्ञान प्राप्त करके कुछ विकल्प नहीं है और पूर्ण निर्मलता प्रगट की वह देव है। जिसे किसी जातका राग या कोई विकल्प नहीं है। आत्मामें समा गये, बस। समा गये और अपने अनन्त गुणोंको प्रगट किये, वे देव हैं। और ऐसे आत्माकी जो बारंबार स्वानुभूति कर रहे हैं, वे गुरु हैं और ऐसा मार्ग बताये वह गुरु है।

मुमुक्षु :- आज हम ऋषभदादाको मिलकर आये, तो उनको मिलनेसे हमारा मोक्ष हो सकता है?

समाधान :- मिलकर आये ऐसा नहीं..

मुमुक्षु :- उनके दर्शन कर आये, तो उनको माननेसे मोक्ष हो सकता है?

समाधान :- उनके आत्माको पहिचाननेसे मोक्ष होता है। मात्र बाह्य दर्शनसे शुभभाव हुआ या पुण्य बन्धे, पुण्य बन्धे, लेकिन उससे आत्माकी पहिचान नहीं होती। लेकिन उनका आत्मा क्या करता था? उन्होंने क्या प्रगट किया? वह आप समझो तो मोक्ष हो। उनका द्रव्य क्या? उनके गुण क्या? उन्होंने क्या प्रगट किया? उन्होंने कैसा पुरुषार्थ किया? वे किस मार्ग पर चले? वह आप समझो तो हो सकता है। मात्र बाहरसे दर्शन करे तो शुभभाव हो।

मुमुक्षु :- इसमें तो मिलान करनेको कहते हैं। अपने आत्माके साथ भगवानके आत्माका मिलान करना है।

समाधान :- मिलान करनेको कहते हैं। जैसा भगवानका आत्मा है, वैसा मेरा आत्मा है। ऐसे पहिचाने तो मोक्ष हो। भगवानने क्या किया? मेरा वैसा ही स्वभाव है। जैसा भगवानका स्वभाव है, वैसा ही मेरा स्वभाव है। जो भगवानको पहिचाने वह अपने आत्माको अवश्य पहिचानता है। लेकिन भगवानको यथार्थ पहिचाने तो। जो स्वयंको पहिचाने वह भगवानको अवश्य पहिचानता है।

पंचमकालके अन्दर यहाँ गुरुदेव विराजते थे। उन्होंने इतना मार्ग स्पष्ट कर दिया है, सबको अंतरदृष्टि दे दी है कि अंतरमें ही मुक्तिका मार्ग है। चारों ओरसे मोक्ष इतना खुल्ला-स्पष्ट कर दिया है। कितने ही लोग क्रियामें पड़े थे कि क्रियासे धर्म होता

है। अंतरमेंसे मोक्ष होता है। गुरुदेवने यहाँ विराजकर इतना स्पष्ट कर दिया है। किसीको कोई शंका न रहे। सब सुननेवालेको इतना संतोष है कि इसी मार्गसे मोक्ष होगा। सब लोग उसीकी रुचि और अभ्यास (करते हैं)। फिर पुरुषार्थ मन्द हो वह एक अलग बात है। बाकी उतना विश्वास और उतना संतोष है कि इसी मार्गसे मोक्ष होगा। सरलाबहिन पीछेसे आयी है तो भी उनको इतना विश्वास बैठता है।

मुमुक्षु :- मैंने सबको वही कहा। गुरुदेवके सिवा अब किसीको सुननेकी मेरी तैयारी नहीं है।

मुमुक्षु :- शहरी जीवनमें ... वह मार्ग दैनिक जीवनमें एकदम व्यस्त रहकर भी कैसे उसके समीप रहना, उसके लिये इतना धर्मलाभ दिया। तो कुछ नियमके तौर पर आप कुछ कह सकते हो कि इतने नियम पालन करना, जिससे निरंतर सान्निध्यमें रह सके। आत्म निरीक्षणकी जो हमारी झँखना है, उसके समीप आ सके।

समाधान :- उसका नियम, स्वयं अंतरमें रुचि बढाये तो हो। वहाँ कोई सत्संग हो तो सत्संगमें सुनने जाय। सच्ची वाणी मिलती हो वह सुने। साधर्मीका संग करे। शास्त्र अभ्यास करे तो स्वयं अपनेआप तो समझता नहीं है। वहाँ कुछ सुननेको मिले वहाँ सुने, विचार करे, रुचि करे, बहारका रस कम करे, ऐसा सब करे। ऐसे संयोग हो उसमें, करना कुछ अलग है, ऐसी खटक रखे, ऐसा सब करे तो हो। स्वयंको उतनी लगन लगनी चाहिये तो हो।

मुमुक्षु :- आप तीन-चार बार 'खटक' शब्द बोले, वह खटक क्या है? खटक लगनी चाहिये, खटक क्या है?

समाधान :- उसे अन्दरसे खटकना चाहिये कि मैं यह जो करता हूँ वह बराबर नहीं है। अन्दर खटकता है। अन्दर लीन नहीं हो जाता। अन्दर खटक लगनी चाहिये कि अरे..! ये सब अलग है और मुझे करनेका कुछ अलग है। मैं इसमें फँस न जाऊँ। मुझे करनेका कुछ अलग है, ऐसी खटक अंतरसे लगनी चाहिये।

मुमुक्षु :- .. बादमें मनमें ज्यादा विकल्प आते हैं। आप जिस सत्संगमें रहते हो, हमें उसके लिये भी प्रयास करना पड़ता है। यहाँ हम सत्संगके लिये हम सब तेरह जन यहाँ आये हैं, तो क्या है कि, उतना करनेमें भी हमें बहुत परिश्रम पड़ता है। लेकिन हमें मालूम है कि हम कुछ खोज रहे हैं। सबके मनमें एक ही भावना है। इसलिये ऐसा होता है कि आप जैसे किसीको मिलते हैं तो ऐसा लगता है कि ऐसे कोई नियम मिले कि जिससे हम दैनिक जीवनमें, रोजके रुटिनमें रहकर कहींसे रोज, आप जो कहते हो कि बाहरसे अलिप्त रहकर हम हमारे अन्दर समीप आ सके।

समाधान :- सब इकट्ठा होते हो वह ठीक है, बाकी रोज उठकर कुछ विचार

करना, कुछ वांचन करना, कुछ समझमें आये ऐसा, कुछ चिंतवन करना। आत्मा भिन्न है, यह शरीर मैं नहीं हूँ, ये विकल्प आकुलतारूप है। कुछ चिंतवन करना, रोज कुछ वांचन करना। वह सब रोजका नियम कर लेना। वहाँ रोज बाहर जाना बहुत मुश्किल पड़े, लेकिन स्वयंको अपने लिये कुछ नियम रखना। पढनेका, विचार करनेका, चिंतवन करनेका ऐसे सब नियम रखना चाहिये। यहाँ तो बरसोंसे गुरुदेवके सान्निध्यमें रहकर अंतरमें...।

समाधान :- .. व्यक्तिगत क्या कहना? वह तो सहज दशा.. (स्वानुभव होनेसे पहलेकी) दशा विकट होती है। आत्माको जाननेके बादवाली दशा तो सहज होती है। श्रीमद्में आता है, 'समझ पीछे सब सरल है, बिन समझे मुश्किल'।

मुमुक्षु :- आपके पूर्वजन्मका हमें कुछ (बताईये), जिससे हमें खरी तमन्ना लगे।

समाधान :- पूर्वजन्मका व्यक्तिगत क्या कहना?

मुमुक्षु :- महाविदेह क्षेत्रकी थोड़ी बात करीये। जिसमें उनको रस आये। कोई जाकर आया है, उनके दर्शन हमें हुए।

समाधान :- महाविदेह क्षेत्र जगत पर है। वहाँ भगवान साक्षात् विराजते हैं। वहाँ मुनिओंका समूह विराजता है। वहाँ सब भगवानकी वाणी छूटती है। भगवानका समवसरण है, रत्नका समवसरण है। भगवान वीतराग है। उनकी ध्वनि छूटती रहती है। सब मुनिओंका समूह, सब देव, सब हजारों श्रावक लाभ लेते हैं। यहाँ मनुष्यसे वह क्षेत्र अलग है। एकदम क्षणमात्रमें सब पलट जाते हैं, आत्म स्वरूपको प्राप्त करते हैं, भगवानकी वाणी सुनकर। यहाँका देह,.. वह क्षेत्र कुछ अलग ही है। एक क्षणमें सब आत्माका स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं। भगवानकी वाणी मूसलाधार बरसती है।

मुमुक्षु :- आपको अभी दिखाई देता है?

समाधान :- जो अंतरमें होता है वही कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री तो साक्षात् दर्शन करते होंगे, प्रतिक्षण।

समाधान :- जो बात स्पष्ट हो वही कहनेमें आती है। वह स्पष्ट ही है।

मुमुक्षु :- आपकी जगह वहाँ... पूर्व भवकी बात। देवकुमार आदि सब सुना... हमें कहते हैं, इसलिये हमको रस आता है। फिर पूरी बात पूछना चाहती है।

समाधान :- वह सब.. विश्वास करना, बाकी जैसा है वैसा ही है, यथार्थ है। गुरुदेव पूर्व भवमें राजकुमार थे, तीर्थंकर होनेवाले हैं, वह सब बात यथार्थ है।

मुमुक्षु :- पूरा समवसरणका जो स्वरूप है, उसमें कमलके ऊपर ही सीमंधर भगवान विराजते हैं?

समाधान :- हाँ, भगवान कमलके ऊपर विराजते हैं। अंतरीक्ष विराजते हैं।

मुमुक्षु :- तो फिर जो कमल होता है, वह कमल कैसा होता है? यहाँ जैसा

सादा कमल होता है वैसा होता है?

समाधान :- भगवान विराजे ऐसा बड़ा कमल होता है। सहस्त्रदल कमल। भगवानके पास सब रत्नका ही होता है। दिखे सच्चा, लेकिन होता है सब रत्नका भगवानके पास। सिंहासन, कमल आदि सब अतंरीक्ष, भगवान उससे ऊपर (रहकर) उसे स्पर्श भी नहीं करते, उस प्रकार निराधार रहते हैं। परन्तु कमलासन हो वैसे भगवान सिंहासन पर विराजते हैं।

मुमुक्षु :- और ॐ ध्वनि जो छूटती है, वह तो मुझे ऐसा लगता है कि ये तो बन्द होता है, परन्तु अन्दरसे...

समाधान :- होंठ हिलकर जो शब्द निकले ऐसे नहीं, ॐ ध्वनि निकलती है।

मुमुक्षु :- होंठ नहीं हिलते?

समाधान :- होंठ नहीं हिलते।

मुमुक्षु :- और नेत्र?

समाधान :- नेत्र नासाग्र (होते हैं), बन्द नहीं। जैसे प्रतिमाजीके नेत्र हैं, वैसे भगवानके नेत्र होते हैं।

मुमुक्षु :- आसपास कुछ नहीं, भगवान एक ही। और चारों ओर, यहाँ जो समवसरणकी रचना की है वैसा?

समाधान :- चारों ओर समवसरणकी रचना है। बीचमें भगवान विराजते हैं, पीठिका पर। भगवान कमलमें। ऐसे।

मुमुक्षु :- ऐसे अनेक समवसरण हैं या एक ही है?

समाधान :- सीमंधर भगवान महाविदेह क्षेत्र विराजते हैं, ऐसे बीस भगवान विराजते हैं।

मुमुक्षु :- वह सब महाविदेह क्षेत्रमें या..?

समाधान :- नहीं, ऐसे पाँच महाविदेह क्षेत्र हैं। पाँच महाविदेह क्षेत्रमें भिन्न-भिन्न खण्ड हैं। उसमें पुष्कलावती विजयमें सीमंधर भगवान विराजते हैं। और दूसरे-दूसरे क्षेत्रमें अन्य-अन्य विजय है, उसमें ऐसे बीस विजयमें, यहाँ जैसे भरतखण्ड है, वैसे वहाँ उसे विजय कहते हैं, ऐसे खण्ड हैं, उसके अन्दर ऐसे बीस खण्डके अन्दर बीस भगवान विराजते हैं। ऐसे पाँच महाविदेह क्षेत्र हैं। साक्षात् भगवान विराजते हैं, महाविदेह क्षेत्रमें।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१७६

मुमुक्षु :- बहिन! हम जैसे बालोंकी माँग निकालते हैं, वैसे आप जड़ और चेतनको बराबर लाईनसे देख सकते हो? शरीर और आत्माको ऐसे ही (देखते हो)? आपने जो भेदज्ञान और खटका कहा न, उसकी बहुत खटक लग गयी। इसलिये वह बात मैं आपको फिरसे पूछती हूँ। जैसे हम बाल बनाते हैं तो हमारी माँग दिखती है, वैसे?

समाधान :- हाँ, वैसे ही भिन्न दिखता है। जैसे यह मकान भिन्न और यह भिन्न है, वैसे ही भिन्न दिखता है।

मुमुक्षु :- आपको इतना सब दिखता है, तो आपके पास आनेवालोंमें उनके ओरा परसे आपको जरूर ख्यालमें आता होगा कि कौन-सी व्यक्ति किस जिज्ञासासे आती है? अथवा तो ऐसे ही आती है? अथवा उसका क्या है? वह तो आपको ख्यालमें आता होगा।

समाधान :- उसकी जिज्ञासा कैसी है उसका तो ख्याल आ जाय। लेकिन उसके जीवनके साथ क्या प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- नहीं, हमें प्रयोजन नहीं है, लेकिन आपको ख्यालमें आ जाय कि ये क्या है?

मुमुक्षु :- वह तो आपको आत्माकी दृष्टिसे ही देखेंगे। आप किसी भी...

मुमुक्षु :- ऐसा नहीं कहती हूँ, मैंने जो कहा वह समझ गये हैं।

समाधान :- पूर्व भवका आप कहते हो तो..

मुमुक्षु :- नहीं, मैं ऐसा नहीं कहती हूँ। हम आपके पास आये तब ओरा कहते हैं न, जो आपको दिखाई दे कि इस व्यक्तिकी चेतना, इस व्यक्तिका आत्मा क्या है?

समाधान :- इतना ख्याल आये कि आपकी दृष्टि कहाँ है, वह तो ख्यालमें आ जाता है कि आप किसी दृष्टिमें हो।

मुमुक्षु :- तो हमें आप थोड़ा ईशारा दीजिये।

समाधान :- आगे अभी बहुत बढ़ना बाकी है। अभी तो बहुत समझना बाकी है। समझना बाकी है। पूर्वभवकी जो बातें हैं, व्यक्तिगत तो (कुछ कहती नहीं हूँ),

फिर भी कहा गुरुदेव राजकुमार (थे), उतना भी बाहर नहीं बोलती। सब गुरुदेव कहते थे।

मुमुक्षु :- हमको कोकिलाबहिनने कहा कि आपको देखा तो बोले।

समाधान :- जिज्ञासा रखते हो। बाकी समझना तो बहुत है, समझना बहुत बाकी है। अन्दर बहुत करना बाकी है।

मुमुक्षु :- आपकी एक दृष्टि पड़ जाय तो कोई दिक्कत नहीं। फिर क्या दिक्कत है? कहते हैं न कि इतनी रूई हो उसे निकालते-निकालते मर जाय, लेकिन तिनका गिरा तो फट जाय। ज्यादा क्यों? फटका लग जाय तो कोई ज्यादा देर नहीं लगेगी। देर नहीं लगेगी, खटक लग जायगी। आप हमें आशीर्वाद दीजिये। हमें आशीर्वाद चाहिये।

समाधान :- सच्ची जिज्ञासा हो तो उसका पुरुषार्थ किये बिना रहता ही नहीं। अपनी जिज्ञासा सच्ची होनी चाहिये। अन्दरसे लगन लगनी चाहिये।

मुमुक्षु :- बस, आशीर्वाद दीजिये कि हमारा सब अच्छा हो जाय।

समाधान :- अच्छा हो जाय, जिज्ञासा हो उसे अच्छा ही होता है। भले पुरुषार्थ कम हो, लेकिन संतोष है कि मार्ग यह है।

समाधान :- .. इसलिये कहीं शान्ति नहीं है। यहाँसे वहाँ करे, ऐसा करे, कहीं शान्ति नहीं है। कितना संतोष है। मुझे तो ऐसा कहना था कि उसने तो कुछ ग्रहण भी किया है, लेकिन आप सब तो अनिश्चित हो। ... ज्ञान करनेको कहते हैं, समझना कहते हैं। लेकिन मार्ग ही वह है। समझे बिना अन्दर ध्यान कैसे होगा? समझे बिना। सच्चे ज्ञान बिना ध्यान कैसे होगा? सच्चा मार्ग बतानेवाले मिलना मुश्किल है। जीवको करना होता है, लेकिन जानता नहीं।

... पुरुषार्थ चालू किया तो अभी मुझे पूछते हैं, आप.. भूमिका कितनी विकसीत हो जाय, कितने साल हो गये। उसके पहले जिज्ञासाकी भूमिका थी। .. उम्रमें जिज्ञासाकी भूमिका थी। मैंने कहा, प्रथम भूमिका तो विकट ही होती है। ... फिर एक प्रश्नके बाद दूसरा प्रश्न। छोटीपीपरमें चरपराईके (लिये) घिसना ही पड़े। चनेको सेके तो अन्दरसे स्वाद आये। बारंबार उसके पीछे पड़ना चाहिये। पीछे पड़े बिना कुछ होता नहीं। ...

हिन्दुस्तानमें सब मुनि भी क्रियामें पड़े थे। सब कितने... मार्गके लिये प्रयत्न करता है। पुरुषार्थ करे तो अन्दर विश्वास तो आये कि सच्चे देव-गुरु मिले और मार्ग हमें अन्दरसे सच्चा मिला है। रुचि सच्ची है। इतना भी संतोष (हो)। ये तो कोई संतोष नहीं, अभी भी गोते ही खाते हैं। ... दुःख लगे तो अपनी ओर जाय।

मुमुक्षु :- दुःख लगता है इसलिये स्वरूपकी रुचि शुरू हुयी?

समाधान :- हाँ, रुचि शुरू हुयी।

मुमुक्षु :- क्योंकि विभावकी रुचिमें दुःख नहीं लगता था।

समाधान :- हाँ, उसमें दुःख नहीं लगता था। स्वभावकी रुचि ..

मुमुक्षु :- यह उसका दूसरा पहलू है।

समाधान :- स्वभावकी रुचि होती है तो उसमें दुःख लगता ही है।

मुमुक्षु :- दुःख लगता है क्योंकि स्वभावकी रुचि शुरू हुयी।

समाधान :- .. वेदन हो बादमें अल्प अस्थिरता रहती है। परन्तु पहले तो उसे रुचि हो इसलिये दुःख तो लगना चाहिये। फिर कितना लगे, वह उसकी उग्रता पर निर्भर करता है। कहाँ-कहाँ बेचारोंने मार्ग मान लिया हो, ऐसा हो जाता है। पंचमकालके महाभाग्य, गुरुदेवने यह मार्ग बताया। बाकी सब कहाँ-कहाँ अटके थे।

मुमुक्षु :- वह कहे, हमें सच्चे गुरुको पहिचानना कैसे? आप बारंबार कहते हो... आँखमें आँसु आ गये थे।

समाधान :- एक सद्गुरु मिलने चाहिये। देशनालब्धिमें ऐसा आता है। एक बार प्रत्यक्ष गुरु या देव, सजीवनमूर्ति मिले तो जीव अन्दरसे जागृत होता है। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है।

समाधान :- .. उनके गीत और सब,.. सबका हृदयका भेद हो जाय ऐसा तो उनका वैराग्य था। आत्मा कितना अन्दर समीप हो गया है। गुरुदेव भी कहते थे कि ... मोक्षगामी हो। गुरुदेव कहते थे। लोग कुछ समझे नहीं।

मुमुक्षु :- ऐसे हरिगीत बनाये हैं।

समाधान :- समयसारकी, समवसरणकी, वह मानस्तंभकी। उनको रुचता नहीं था फिर भी हरिगीत कैसा बनाया है! एक संस्कृत टीका नहीं है, इसलिये मेरेसे यह नहीं हो रहा है। टीका संस्कृत...

.. बैठे थे और हिंमतभाई गाते थे। हिंमतभाई क्या गाते थे! ऐसे भावसे गाते हो न, इसलिये गुरुदेवको ऐसा लगता। हीराभाईके बंगलेमें... हिंमतभाई नौकरी करते थे। क्या करें? आप तो वहाँ नौकरी (करते हो), नहीं तो आप जैसेको तो यहीं रख लें। समयसार भी नहीं लिखा था। उससे पहले भी, ... आप जैसेको तो यहाँ रख लेना चाहिये।

मुमुक्षु :- अनुभव कैसे हो?

समाधान :- आत्माका स्वरूप पहिचानकर आत्मा भिन्न है, उसका भेदज्ञान करके ज्ञायकको पहिचानकर उसमें एकाग्रता हो, एकाग्रताकी विशेषता हो वह ध्यान है। ध्यान यानी एकाग्रता। आत्माको पहिचानकर भेदज्ञान करके उसमें एकाग्रता, एकदम उग्र एकाग्रता करनेसे स्वानुभूति (होती है)।

मुमुक्षु :- एकाग्रता ऐसे तो नहीं हो जाती न? बहुत बरसोंका अभ्यास हो, ध्यानका आलंबन हो, बादमें होता है न? बोलनेसे या कहनेसे तो नहीं होता न?

समाधान :- एकाग्रता है वही ध्यान है। उसका उग्र अभ्यास करनेसे होता है। उसकी उग्रता हो तो बहुत जीवोंको अंतर्मुहूर्तमें होता है। किसीको अभ्यास करते-करते बरसों निकल जाते हैं। और किसीको थोड़े महिनोंमें हो जाता है। उसका अभ्यास जैसी उग्रता हो उस अनुसार होता है।

मुमुक्षु :- बहिनजी! अभी आपने कहा कि अनुभूतिसे जातिस्मरण होता है। परन्तु जातिस्मरण ज्ञान तो हमने बहुतोंके विषयमें सुना है कि उनको बचपनमें हुआ।

समाधान :- अनुभूतिसे होता है ऐसे नहीं, अनुभूतिसे होता है ऐसे नहीं होता है। अनुभूति नहीं भी हो तो भी जातिस्मरण तो बहुतोंको होता है। बहुतोंको होता है। परन्तु भवका अभाव तो अनुभूतिसे होता है।

मुमुक्षु :- हाँ, वह तो ठीक है।

समाधान :- अनुभूति हो वहाँ यह ज्ञान होता ही है ऐसा नियम नहीं है। अनुभूति नहीं होवे तो भी वह ज्ञान तो बहुतोंको होता है। बहुतोंको होता है। अनुभूतिके साथ वह होता है तो होता है।

मुमुक्षु :- ... वैसे तो हम सब धर्ममें जाय तो ऐसा लगे कि सभी धर्मोंमें ...मन हो जाय। कोई दूसरे देरासरमें जायें तो वहाँ भी ढोक देनेका मन हो। .. वहाँ जाये तो वहाँ भी ऐसा होता है। ऐसा होता है कि सत्य क्या है? वह समझमें नहीं आता। जहाँ जाये वहाँ ढोक देनेका मन हो। वैष्णवके मन्दिरमें जायें तो ऐसा हो कि ये भगवान हैं तो इनको भी...

समाधान :- अन्दर नक्की नहीं हुआ हो इसलिये।

मुमुक्षु :- .. सच्चे देव-गुरु-शास्त्र यही है, ऐसा निर्णय नहीं है।

मुमुक्षु :- इसलिये जहाँ भी जाये वहाँ सब भगवान .. लगे इसलिये हर जगह (माथा टिका देते हैं)। उसके लिये करना क्या?

समाधान :- मुक्तिका मार्ग क्या है? आत्माको पहिचाननेका प्रयत्न करना। आत्मा भिन्न है। शरीर तत्त्व भिन्न है और आत्मा भिन्न है। आत्मा जाननेवाला है, आत्मा ज्ञायक है। आत्मामें आनन्द है। ये विभाव विकल्प है वह आत्माका स्वरूप नहीं है। ऐसा आत्माका स्वरूप जो बताते हों और ऐसा भेदज्ञानका मार्ग जो स्पष्ट करके बताते हों, वह देव-गुरु-शास्त्र सच्चे हैं। उन्होंने जैसी साधना की हो, वह देव, वह गुरु और वह शास्त्र सच्चे हैं।

आत्माका स्वरूप पहिचाननेमें जो निमित्त बनते हैं, जो साधनामें निमित्त बने। होता

है अपने उपादान है, परन्तु उसमें जो निमित्त हो, वही सच्चे देव, वही सच्चे गुरु और वही शास्त्र है। बाकी ऊपर-ऊपरसे तो लगे कि सब धर्मकी बात (करते हैं)। परन्तु अन्दर आत्माका स्वरूप क्या है? आत्मा भिन्न, अन्दर आत्मा विकल्पसे भिन्ह, अतंर आत्मामें स्वानुभूति हो, किस मार्गसे होती है? वह सब किसने प्रगट किया है? जिसने प्रगट किया हो और जो मार्ग बताते हो, वह देव, वह गुरु और वह शास्त्र (हैं)। वह होने चाहिये।

उसे दृढ़ता ऐसी हो कि सत्य क्या है? इस जगतमें सत्य क्या है? सच्चा स्वरूप क्या है? किस मार्गसे आत्माको मुक्ति मिले और आत्माका स्वभाव और स्वभावमेंसे शान्ति मिले? ऐसी दृढ़ता करके फिर आत्माका सच्चा स्वरूप है। आत्माका स्वरूप जो बताते हो, वह सच्चे देव-गुरु-शास्त्र हैं।

और भवका अंत करनेके लिये आत्माको पहिचानना, आत्माका अभ्यास करना। उसके लिये अभ्यास, शास्त्रका वांचन, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। लेकिन वह देव कौन? गुरु कौन? उसकी पहिचान करनी पड़े। और आत्माका स्वरूप ज्ञायक-जाननेवाला है। उसे स्पष्टरूपसे बतानेवाला है? जो स्पष्ट बताये और उसकी जिसने साधना की, वही देव-गुरु-शास्त्र (सच्चे हैं)। और अन्दर आत्माको पहिचाननेका प्रयत्न करना। ये सब आकुलता स्वरूप है बाहर तो। अंतरमें सुख है, अंतरमें शान्ति है। अंतर दृष्टि करके आत्माको पहिचाननेका प्रयत्न करना।

मुमुक्षु :- ..आपके दर्शन करती रहती हूँ। शान्ति लगती है।

समाधान :- पुरुषार्थ स्वयंको करना है। पुरुषार्थ मन्द है। मार्ग गुरुदेवने बताया, उसकी रुचि हो। परन्तु पुरुषार्थ तो स्वयंको करना है। उसीका अभ्यास करते रहना, बारंबार आत्माको पहिचाननेका। आत्मा ज्ञायक है। प्रतिक्षण उसका चिंतवन करना। गुरुदेवने कहा न? छोटीपीपरको घिसने पर अन्दरसे चरपराई (प्रगट होती है)। आत्माका जो स्वरूप है उसका अभ्यास करता रहे। आत्माका स्वरूप ज्ञायक है, उसे पहिचाननेका प्रयत्न करे। उसकी लगन लगानी। काँच कौन है और हीरा और रत्न आदि क्या है? उसकी परीक्षा करनी पड़े। स्वयं विचार करके नक्की करे। बाहरमें तो करे, परन्तु अंतरमें करनेका है। आत्मा कौन है? उसे दर्शानेवाले कौन है?

गुरुदेवने कोई अपूर्व स्वरूप बताया है। और अन्दर आत्मा भी अपूर्व और आत्मा अनुपम है। उसे पहिचाननेका प्रयत्न करना। मनन, चिंतवन, उसकी महिमा आदि (करते रहना)। पुरुषार्थकी मन्दता (है)। उतनी तैयारी न हो इसलिये ये सब साधन दिखाई देते हैं, वहाँ रुचि हो जाती है। वहाँ ऐसे साधन नहीं होते। इसलिये उसीका बारंबार घोलन करते रहना।

(अनन्त कालमें ऐसा) मनुष्य भव मिले, उसमें ऐसे गुरु मिलना महा दुर्लभ है, इस पंचमकालमें सच्चा मार्ग बतानेवाले। मार्ग गुरुदेवने बताया। अंतरमेंसे स्वयं रुचि करके, नक्की करके पुरुषार्थ करने जैसा है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवको देखे तो ऐसा हो कि दस साल तक,.. गुरुदेवका स्वास्थ्य तो अपनेसे भी अच्छा है। तो अपने दो-पाँच साल खींचते हैं, और फिर आरामसे बैठेंगे। ऐसा कर-करके हम रह गये।

समाधान :- जिज्ञासुको ऐसे वादे नहीं होते।

मुमुक्षु :- वही कहता हूँ, उसीमें पीछे रह गये। इसीलिये अभी दुःख होता है।

समाधान :- अब उसका स्मरण, रटन करते रहना, गुरुदेवने बताया उसका।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें संस्कारकी बातें बहुत आयी हैं। संस्कार कैसे डले?

समाधान :- बारंबार उसका अभ्यास करते रहना। बारंबार जो गुरुदेवने मार्ग बताया उसका बारंबार चिंतवन, उसका मनन, उसकी महिमा, उसकी लगन, बारंबार। सत्संग, श्रवण, मनन बारंबार (करना)। जैसे छाछमें मक्खन। उसे बिलोते-बिलोते मक्खन बाहर आता है। बारंबार उसका मंथन करते रहना। जो गुरुदेवने बताया उसका।

बारंबार पुरुषार्थ (करना), मैं चैतन्य भिन्न हूँ, यह भिन्न है। परन्तु उसके लिये कितनी तैयारी करनी, बारंबार उसका (प्रयत्न करे)। बाहरके निमित्त देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य मिले, उनका सत्संग, श्रवण, मनन वह सब बारंबार करते रहना। तो बारंबार उसके संस्कार दृढ़ हो। रुचिको बारंबार तीव्र हो ऐसा करते रहना। अनादिका अभ्यास है। पुरुषार्थ करके बदलते रहना। बारंबार वह करते रहना। जितना समय मिले उतना करते रहना।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी टेप, यही वांचन, यही करती हूँ। फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि... आपके दर्शन करती रहती हूँ।

समाधान :- पुरुषार्थ स्वयंको करनेका है। पुरुषार्थ मन्द है। मार्ग गुरुदेवने बताया उसकी रुचि हो, परन्तु पुरुषार्थ स्वयंको करना है। उसीका अभ्यास करते रहना, बारंबार आत्माको पहिचाननेका। आत्मा ज्ञायक है। प्रतिक्षण उसका चिंतवन करना। गुरुदेवने कहा न? छोटीपीपरको घिसने पर अन्दर.. वैसे आत्माका जो स्वरूप है उसका अभ्यास करते रहना। आत्माका स्वरूप ज्ञायक है, उसे पहिचाननेका प्रयत्न करना। उसकी लगन लगानी।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१७७

समाधान :- .. निर्णय करना पड़े। काँच कौन है और हीरा, रत्न आदि क्या है, उसकी परीक्षा करनी पड़े। ... बाहरमें तो करता है, लेकिन अंतरमें करना है। आत्मा कौन? उसे बतानेवाले कौन? गुरुदेवने कोई अपूर्व स्वरूहप बताया है। और आत्मा भी अपूर्व और आत्मा अनुपम है। उसे पहिचाननेका प्रयत्न करना। मनन, चिंतवन, उसकी महिमा (करनी)। पुरुषार्थकी मन्दतासे उतनी तैयारी न हो इसलिये ये सब साधन दिखते हैं, उसमें रुचि हो जाती है। वहाँ ऐसे साधन नहीं होते न। बारंबार उसीका घोलन करते रहना। मनुष्यभव मिला, उसमें ऐसे गुरु मिलने इस पंचमकालमें महा मुश्किल है। सच्चा मार्ग बतानेवाले। मार्ग गुरुदेवने बताया। अंतरमेंसे स्वयं रुचि करके, नक्की करके पुरुषार्थ करने योग्य है।

मुमुक्षु :- आप अन्दरका सब जानते हो। हमारा कल्याण हो..

समाधान :- करनेका स्वयंको है।

मुमुक्षु :- वह तो हमको ही करना है। अंतर ज्ञानी हो न, इसलिये हम कहाँ है, क्या है, ... तो हमें जरा... वहाँ तक पहुँचे।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- मन्त्र गुरुदेवने एक ही दिया है, ज्ञायकका मन्त्र है। वह मन्त्र भी अन्दर ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमे। एकत्वबुद्धि अनादिकी है। उसका अभ्यास एकत्वताका है। उसे एकत्वबुद्धि हो रही है। उसे तोड़कर मैं ज्ञायकरूप हूँ। ज्ञायकरूप परिणति प्रगट करनी, वह अपने हाथकी बात है। स्वयंको शरीरके साथ एकत्व, विभावके साथ एकत्व, हर जगह एकत्वबुद्धि हो रही है। इसलिये उसे पूरे जीवनका-परिणतिका पलटा करना है। परिणति दूसरी हो गयी है। पूरा पलटा।

अन्दर मैं ज्ञायकरूप ही हूँ, उसका पूरा पलट जाना चाहिये। मैं ज्ञायक ही हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ। मेरेमें कुछ है ही नहीं। मैं तो अकेला ज्ञायक, अकेला ज्ञायक हूँ। ऐसी परिणतिका पूरा पलटा, उसकी दिशाका पलटा, उसकी दृष्किा पलटा। उसके पूरा आंतरिक जीवनका पलटा हो, वह उसे पुरुषार्थसे होता है। पूरा पलटा.. अभी तो दृष्टि, ज्ञान और अमुक प्रकारसे उसकी परिणतिका पलटा हो। आगे तो अभी स्वानुभूति

तो दूर रही, परन्तु अभी तो उसे पूरी दृष्टिका पलटा करना है। वह पलटा करनेके लिये उसे उतना अभ्यास करनेका है। पूरी दृष्टि बाहर है। उसका पूरा पलटा स्वयंको करनेका है। पूरी दिशा बदलनी है, दृष्टि पलटनी है। वह दृष्टि पलटे तो अन्दरसे परिणति प्रगट हो।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ करना यानी वांचन ज्यादा करना या मनन करना?

समाधान :- वांचन, विचार आदि सब करना, लेकिन एक चैतन्य-ओरकी दृष्टि प्रगट करनी। अंतरकी दिशा पलटनेके लिये। हेतु-ध्येय वह होना चाहिये। (जब तक) वह हो नहीं, वह परिणति तद्गतरूप, उस रूप तदाकार परिणति न हो तब तक वांचन, विचार आदि सब वही करना होता है। विचारमें टिके नहीं तो वांचन करे, वांचनमेंसे फिर विचार करे। जहाँ परिणति उसकी स्थिर हो, वह करता रहे। परन्तु करनेका एक ही है-उसकी दृष्टि पलटनी है। अन्दरकी दिशा पलटनी है।

मुमुक्षु :- दिशा तो पलटती हो ऐसा दिखाई नहीं देता। पीछे पड़े हैं..

समाधान :- उसके पीछे लगे रहना, उसके पीछे पड़ते रहना। जब तक न हो तब तक एक ही करना है। तो ही अन्दरसे ... ये तो अनादिका अभ्यास है। जिसे पलटता है उसे अंतर्मुहूर्तमें पलटता है, न पलटे उसे देर लगती है। गुरुदेवने मार्ग बताया। कितने ही लोगोंको तो मार्ग ही हाथमें नहीं आता। ये तो गुरुदेवने मार्ग बताया है। ये शरीर तू नहीं है, विभाव तू नहीं है, गुणके भेद, पर्यायके भेदमें रुकना नहीं। दृष्टि अखण्ड पर करनी। गुरुदेवने मार्ग कितना स्पष्ट कर दिया है। परको तू कर नहीं सकता। कर्ता, क्रिया, कर्मके भेदसे भी वह परको करता नहीं। तू तेरे स्वभावका कर्ता है। कितने प्रकारसे स्पष्ट करके बताया है। स्वयं अंतरसे भीगना वह भी अपने हाथकी बात है। सब अपने हाथकी बात है। गुरुदेवने तो मार्ग बताया है।

समाधान :- .. सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका, भेदज्ञान करना वह उसका उपाय है। बारंबार भेदज्ञान। आत्मा-ओरकी रुचि हो, उसकी महिमा हो, उसकी महिमा विशेष करनी, उसका भेदज्ञान करना वह उसका उपाय है। ये शरीर मैं नहीं हूँ। आत्मा चैतन्यतत्त्व अंतर भिन्न है। विभाविक पर्याय जो संकल्प-विकल्प वह भी आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा भिन्न है।

परद्रव्य जो है उसका उत्पाद-व्यय-ध्रुव (भिन्न है)। आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूपसे भिन्न है। अंतरमें उसे पहिचानना, बारंबार उसे पहिचाननेका प्रयास करना। मैं चैतन्यतत्त्व हूँ। मेरेमें ज्ञान है, मेरेमें आनन्द है। अनन्त गुणसे भरा मैं आत्मा हूँ। बारंबार उसका अभ्यास करनेसे वह प्रगट होता है। वह हो नहीं तो भी बारंबार उसका अभ्यास करनेसे वह प्रगट होता है।

जैसे चनेके सेकनेसे उसका स्वाद प्रगट होता है। वैसे बारंबार उसका प्रयास करनेसे प्रगट होता है। इसलिये बारंबार उसका अभ्यास करते रहना। तो प्रगट होता है। पानी स्वभावसे निर्मल है। कीचड़से मलिन हुआ। तो उसमें औषधि डालनेसे वह निर्मल होता है। वैसे आत्माका भेदज्ञान (करनेसे होता है)।

आत्मा तो अनादिअनन्त स्वभावसे द्रव्य स्वरूपसे निर्मल ही है। परन्तु मलिनता विभावके कारण हो गयी है। इसलिये जो विभावपर्याय होती है, वह विभाव भी आत्माका स्वभाव नहीं है। उसका स्वभाव चैतन्यका भिन्न ग्रहण करना। आत्मा ज्ञायक स्वभाव है, उसमें आनन्द है। आदि अनन्त गुणोंसे भरा आत्मा है। उस ओर दृष्टि करनी, उसकी प्रतीत करनी, उसमें लीनता करनेसे वह प्रगट होता है।

जो जिसमें हो उसमेंसे आता है। सुवर्णमेंसे सुवर्ण पर्याय ही होती है। वैसे आत्मामेंसे आत्मा ही प्रगट होता है। विभावमेंसे विभाव होता है। अनादि कालसे शुभाशुभ भावोंकी पर्याय करे तो उसमेंसे जन्म-मरण उत्पन्न होते हैं। आत्माकी शुद्ध निर्मल पर्याय प्रगट करनेसे उसमेंसे शुद्धता ही उत्पन्न होती है। इसलिये बारंबार उसका अभ्यास करनेसे प्रगट होता है।

मैं चैतन्य हूँ, ये विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसे बारंबार तद्रूप परिणति करनेसे, उसमें लीन होनेसे निर्विकल्प दशा होती है और स्वानुभूति होती है। और उसका बारंबार अभ्यास करनेसे चैतन्य जैसा है वह पूर्ण स्वभावसे प्रगट होता है। वह करने जैसा है। वही जन्म-मरण टालनेका उपाय है और वह गुरुदेवने बताया है। अपूर्व उपकार किया है। आत्माकी अपूर्वता गुरुदेवने बतायी है। उसे ग्रहण करने जैसा है।

आत्मा अनादिअनन्त ज्ञायक स्वरूप है। उसमें कोई भेदके विकल्प या आत्मामें अनन्त गुण हैं, परन्तु वह भेद स्वरूप नहीं है। उसके भेदके विकल्पसे भी लक्ष्य दूर करके एक अभेद पर दृष्टि करने जैसी है। ज्ञानमें सब लेना, लेकिन दृष्टि एक आत्मा पर करनेसे (प्रगट होता है)।

जैसे पानीमें कमल भिन्न निर्लेप रहता है। वैसे आत्मा निर्लेप स्वभावी प्रगट होता है। प्रगट होता है तब वह निर्लेप स्वरूप है न, निर्लेपता प्रगट कर सकता है। पुरुषार्थ करनेसे प्रगट होता है। वही जीवनका कर्तव्य है और वही जीवनमें करने जैसा है। आत्मा शाश्वत है और उसमेंसे पर्यायें प्रगट होती है, वह करने जैसा है।

स्वयं ही है। आत्मा जाननेवाला स्वयं ही है। शरीरसे भिन्न आत्मा (है)। शरीरके अन्दर स्वयं भिन्न है। शरीर कुछ जानता नहीं है। अन्दर जाननेवाला है वह आत्मा है। जो जानता रहता है अन्दर वह जाननेवाला आत्मा है। उसमें आनन्द और ज्ञान सब आत्मामें है। ये शरीर कुछ नहीं जानता। अन्दर जाननेवाला आत्मा भिन्न है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

मुमुक्षु :- मैं तो परिपूर्ण द्रव्यको पकड़कर बैठा हूँ। ऐसा उसमें आता है।

समाधान :- द्रव्यको ग्रहण किया है, पकड़कर बैठा है उसका अर्थ यह है। जो पूर्ण स्वभाव द्रव्य अनादिअनन्त पूर्ण भरा ही है पूर्ण स्वभावसे। उसे मैंने ग्रहण किया है, पकड़कर बैठा हूँ, उसका अर्थ यह है। उसे ग्रहण किया है। उसकी आगेपीछेकी नीति वैसी है न, पकड़कर बैठा हूँ। आगेपीछे क्या आता है?

मुमुक्षु :- आगेपीछे हो तो ज्यादा मालूम पड़े।

समाधान :- परिपूर्ण द्रव्यको मैंने ग्रहण किया है।

मुमुक्षु :- ग्रहण किया है, मतलब?

समाधान :- ग्रहण किया अर्थात् लक्ष्यमें लिया है। उस पर दृष्टिको स्थापित की है। मैंने दृष्टि बदलकर चैतन्य द्रव्य पर दृष्टि की है। उस पर दृष्टि की वह ग्रहण। उसका अवलम्बन लिया है-ग्रहण किया है।

मुमुक्षु :- अवलम्बन लिया माने?

समाधान :- शब्दके शब्द और उसके पीछे...

शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन प्राप्त हो (तो) अनेक जातकी शुद्ध पर्यायें, चारित्रकी पर्यायें सब द्रव्यदृष्टिके आलम्बनसे, द्रव्यको ग्रहण करनेसे सब प्रगट होता है। मूल वस्तु वह है। उसे ग्रहण करनेसे, उस पर दृष्टि स्थापित करनेसे सभी पर्यायें निर्मल होती हैं। दृष्टि ऊलटी है इसलिये सब पर्याय विभावकी पर्याय होती है। दृष्टि स्वभावकी ओर गयी तो स्वभावमेंसे फिर निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं। आत्मामेंसे सब शुद्ध पर्यायें प्रगट होती है। उस ओर दृष्टि जाय, उस ओर परिणति मुड़े इसलिये निर्मलता प्राप्त होती है।

मुमुक्षु :- .. में कहना है कि चारित्र बिना सम्यग्दृष्टि नहीं है।

समाधान :- चारित्र बिना सम्यग्दृष्टि नहीं है,.. सम्यग्दर्शन सच्चा न हो तो चारित्र नहीं है। उन लोगोंको हमें जवाब क्या देना, हम जवाब दे नहीं सकते हैं। चारित्र बिना सम्यग्दर्शन नहीं है, ऐसा है? सम्यग्दर्शन नहीं है तो चारित्र नहीं है। चारित्र यानी बाह्य चारित्र वहाँ नहीं कहा है। बाह्य चारित्र... अन्दर स्वरूप रमणतारूप चारित्र कब प्राप्त हो? सम्यग्दर्शन प्राप्त हो तो ही चारित्र प्राप्त होता है। स्वरूपकी रमणतारूप चारित्र, जो यथार्थ चारित्र है वह सम्यग्दर्शनके बिना होता नहीं। और वह चारित्र प्रगट हो, उसमें बीचमें मुनिपना आदि सब सहज ही आता है। लेकिन वह सम्यग्दर्शन पूर्वकका चारित्र वही चारित्र है। सम्यग्दर्शन बिनाका चारित्र तो बाह्य क्रिया मात्र और शुभभाव मात्र है। सम्यग्दर्शन बिनाका चारित्र तो शुभभावरूप क्रियामात्र है।

सम्यग्दर्शन हो तो ही सच्चा चारित्र है। अनन्त कालसे जो चारित्र सम्यग्दर्शन बिना अंगीकार किया वह द्रव्य मुनिपना तो अनन्त बार पाला। ऐसा द्रव्य मुनिपना पालकर अनन्त बार ग्रैवेयकमें गया। ऐसा चारित्र तो सम्यग्दर्शन बिनाका अनन्त कालमें बहुत पाला। उससे कहीं भवका अभाव नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन हो, अन्दरकी स्वानुभूति प्राप्त हो तो ही सच्चा चारित्र हो। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं है। चारित्र बिना सम्यग्दर्शन, वह तो बाह्य चारित्र समझना, शुभभावरूप। वह चारित्र नहीं है, उससे पुण्य बन्ध होता है। उससे नौंवी ग्रैवेयक तक जाता है।

जिसे सम्यग्दर्शन होता है उसे अवश्य क्रमशः चारित्र आता ही है। उस भवमें न आवे तो दूसरे भवमें (आता है)। जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, उसे अवश्य चारित्र होता है। गृहस्थाश्रममें सम्यग्दृष्टि होते हैं, चारित्र नहीं होता है, परन्तु सम्यग्दर्शन होता है। परन्तु सम्यग्दर्शन जिसे प्राप्त हुआ उसे अवश्य चारित्र उस भवमें अथवा दूसरे भवमें अवश्य चारित्र होता है। बाहरसे कपड़े छोड़ दिये इसलिये (हो गया) चारित्र। और फिर धर्मकी प्रतीति वह सम्यग्दर्शन। उसका क्या समझाये? ... वह भिन्न है। अंतरमें ऐसा हो, बादमें बाहरसे त्याग होता है। अंतरमें हो तो बाह्य त्याग आता है। छठवां-सातवां गुणस्थान हो तो ही मुनिपना (होता है)।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके शब्दोंके पीछे इतना गंभीर आशय रहा है...

समाधान :- कहनेका आशय अलग ही था।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके आशयको आप और मामा समझे हैं। बाकी सब तो..

समाधान :- कहनेका आशय, उसका रहस्य सब अलग ही था।

मुमुक्षु :- आपके ... गंभीर आशय समझ सकते हैं। .. माताजीका उपकार है।

समाधान :- गुरुदेवने सच्चा मार्ग बताया, उस मार्ग पर चलनेसे (प्राप्त होता है)।

मुमुक्षु :- गुरुदेव... गुरुदेवके मुखसे माताजीका नाम ... गुरुदेवको माताजीकी महिमा

करनेमें शब्द कम पड़े हैं।

समाधान :- स्वानुभूतिका मार्ग बताया वह गुरुदेवने ही बताया है। दूसरा कौन बतानेवाला था? इतने शास्त्रके रहस्य खोले। झाटकियाने सब लिखावटमें लिख लिया। लिखावटमें ले लिया। समझे बिना उसे ठीक पड़े वैसा लिख लिया।

समाधान :- आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। ऐसी बात करते थे। आत्मामें स्वभावको पीछाननेसे उसमेंसे धर्म होता है। धर्म बाहरमें सब मानते हैं कि इतनी क्रिया करके धर्म होता है। ऐसे धर्म होता है। धर्म आत्माका स्वभाव है, उस स्वभावको पीछाने और स्वभावमेंसे ही आत्माका धर्म प्रगट होता है।

यह शरीर तत्त्व जड़ तत्त्व है, आत्मा चैतन्य तत्त्व है। उस चैतन्यतत्त्वको पीछानो। वह अपूर्व अनुपम तत्त्व है। उसको पीछाननेसे उसमेंसे धर्म होता है। बाकी अनन्त कालमें सब किया। शुभभावसे पुण्यबन्ध होता है। देवलोक होता है, भवका अभाव तो होता नहीं। भवका अभाव तो आत्माको पीछाननेसे शुद्धात्माको पीछाननेसे होता है। शुभभाव बीचमें आते हैं। आते हैं तो पुण्यबन्ध होता है। परन्तु भवका अभाव आत्माकी स्वानुभूति शुद्धात्माको पीछाननेसे होती है।

उसका भेदज्ञान करना कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, शुभाशुभ भावसे भिन्न मैं चैतन्यतत्त्व हूँ। चैतन्यमेंसे स्वभाव धर्म और मुक्तिका मार्ग उसमेंसे होता है। सुवर्णके गहने (सुवर्णेसे बनते हैं), लोहेमेंसे लोहा होता है। ऐसे विभावमेंसे तो विभाव होता है। स्वभावमेंसे स्वभाव प्रगट होता है। आत्माको पीछाननेसे उसमेंसे यह ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब उसमेंसे प्रगट होता है।

समाधान :- गुरुदेव यहाँ बहुत साल विराजे। अब तो गुरुदेवका भव बदल गया। चतुर्थ काल हो तो यहाँ देव आते थे। अभी पंचमकालमें देवोंका आना मुश्किल है।

मुमुक्षु :- .. ऐसे जीव होते हैं, ऐसा बताना है।

समाधान :- लायकातवाले जीव होते हैं।

मुमुक्षु :- क्योंकि अब तो मेरा आयुष्य पूर्ण होने आया है। १०२ वर्ष चल रहा है। और पण्डितजी कहते हैं कि १०६ है, १०७में आपको छूट्टी लेनी है। ऐसा पण्डितजी कहते हैं।

समाधान :- यहाँ भाई है तो अच्छा है न।

मुमुक्षु :- अरे..! बहुत अच्छा है। .. भाई है तो अच्छा है न। हम सबको आधार रहे। ...

समाधान :- अपनी भावनासे जाना होता है। ऐसे पुण्य बन्धते हैं इसलिये। ऐसे भावसे पुण्य बन्ध हो तो जाना होता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके पास तो अपनी भावनासे जाय। वहाँ गुरुदेवको पीछानना कठिन पड़े। वहाँ गुरुदेवको पहिचानना कठिन पडे कि यही कानजीस्वामी है। वहाँ तो देवका रूप होगा। अवधिज्ञानका उपयोग रखे... तब मालूम पडे न। ऐसा अवधिज्ञान तो है नहीं। देवमें तो अवधिज्ञान तो होता ही है।

मुमुक्षु :- भले ही देवमें हो, लेकिन देव उसका उपयोग करे ही ऐसा कुछ है? माताजीकी तो बात ही क्या करनी। दो मिनिट तो उपदेश दीजिये।

समाधान :- उपदेश क्या देना? गुरुदेवने कहा है वह आपने हृदयमें ग्रहण किया है, वही करनेका है। दुसरा क्या?

मुमुक्षु :- गुरुदेवने क्या कहा है, उसका संक्षेपमें..

समाधान :- गुरुदेवने ज्ञायक आत्माको पीछाननेको कहा है। ज्ञायक ज्ञायक आत्मा, ज्ञायक आनन्दसे भरा चैतन्यतत्त्व भिन्न है, उसे पीछानना। सबसे भिन्न तत्त्व शाश्वत आत्मा, उसे पीछाननेको कहा है। वह करना है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१७८

समाधान :- .. आत्मा है ऐसा अन्दर लगे तो पुरुषार्थ हो। उसकी महिमा लगे तो। उसका स्वभाव पहिचाननेका प्रयत्न करना। चारों पहलूसे समझाया है, कहीं किसीको भूल रहे ऐसा नहीं है। लगन लगाने जैसा है।

मुमुक्षु :- .. सहज शुरू हो जाता है?

समाधान :- रुचि बढे, उसका पुरुषार्थ करे, पीछाननेका प्रयत्न करे तो होता है। रुचि बढे तो प्रयत्न हो। अंतरमें ऐसा लगना चाहिये कि कोई अपूर्व वस्तु है। ये सब अपूर्व नहीं है। ये तो अनन्त कालसे बहुत बार मिला है। एक आत्मा नहीं प्राप्त नहीं हुआ। आत्मा अपूर्व है, ऐसी अपूर्वता लगे तो प्रयत्न हो।

गुरुदेव अपूर्वता बताते थे। उनकी वाणीमें आत्मा कोई अपूर्व है ऐसा ही आता था। उसका भेदज्ञान करके आत्माको भिन्न पीछान लेना। आत्मा शाश्वत है। जन्म-मरण करे तो भी आत्मा तो स्वयं शाश्वत है। देह नहीं है, आत्माको जन्म-मरण कुछ नहीं है। आत्मा विभावसे भी भिन्न है। जन्म-मरण कहाँ आत्माको है? आत्मा आनन्दसे भरा है, ज्ञायक स्वरूप है।

मुमुक्षु :- छठ्ठी गाथामें जो ज्ञायकदेव कहा। ज्ञायकदेवको प्राप्त करनेके लिये हमें क्या करना?

समाधान :- उसकी भावना करनी, उसकी लगन करनी, उसकी महिमा करनी। उसको पीछाननेका, स्वभाव ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। आत्मा प्रज्ञासे ग्रहण करना, प्रज्ञासे भिन्न करना। प्रज्ञासे करके अंतरमें लीनता करनी, वही गुरुदेवने मार्ग बताया है। आत्मामें एकाग्रता करनी। वह न हो तो तब तक उसकी लगन, उसकी महिमा, उसका अभ्यास, बारंबार चिंतवन, मनन, शास्त्रका चिंतवन करना, मनन करना वह करना।

आत्मा तो शाश्वत आनन्दसे भरा है। उसका विचार करना। गुरुदेवने कोई अपूर्व और अद्भुत मार्ग बताया है और आत्मा अद्भुत स्वरूप है। बारंबार उसका अभ्यास करना। सार वस्तु आत्मा ही है। बाकी सब जगतमें प्राप्त हो गया है, एक आत्मा अपूर्व है, वह नहीं मिला है। उसका प्रयत्न करना। और ऐसे गुरु मिले अपूर्व मार्ग बतानेवाले, इसलिये अपूर्व आत्माको ग्रहण करनेका प्रयत्न करना।

मुमुक्षु :- .. फिरसे वहीं पहुँच जाते हैं। उसका कोई मार्ग बताईये।

समाधान :- बदल देना, बारंबार बदल देना। बारंबार उपयोग पलटकर गुरुदेवने जो कहा है, उसीका मनन, उसीका चिंतवन, वही करना। आत्मा अपने स्वभावसे शाश्वत रहनेवाला, उसका स्वभाव शाश्वत ध्रुव, उसका उत्पाद-व्यय सब उसमें है। दूसरे परद्रव्यके परद्रव्यमें हैं। उससे भिन्न-न्यारा है। उसे पीछान लेना। संयोग परसे दृष्टि उठाकर अंतरमें दृष्टि करना। अंतरको देखनेकी अंतरचक्षुको प्रगट करना। बाह्य चक्षुसे नहीं दिखेगा।

मुमुक्षु :- .. व्यक्तिको वह करना चाहिये, ऐसा मैं मानता हूँ। परन्तु अन्दरमेंसे स्थिर नहीं हुआ जाता। आप कोई रास्ता बतायेंगे?

समाधान :- आत्माको ग्रहण करके अंतरमें.. गहरी गुफा यानी चैतन्यतत्त्वको पहिचान। उसका स्वभाव पीछानकर अन्दर लीनता करे तो जा सकता है। पुरुषार्थकी मन्दता हो तो जा नहीं सकता। पुरुषार्थकी उग्रता हो तो जा सकता है। आत्माको पीछानना कि आत्मा कौन?

पहले भेदज्ञान करे कि ये शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न। विभावस्वभाव अपना नहीं है। ऐसे भेदज्ञान करे। चैतन्यतत्त्वको पहले न्यारा-भिन्न पीछाने कि मैं चैतन्यतत्त्व भिन्न हूँ। मैं ज्ञायक स्वभाव, आनन्द स्वभावसे भरा हुआ एक तत्त्व हूँ। उस तत्त्वको बराबर अंतरमेंसे ग्रहण करके फिर उसमें लीनता करे तो उसमें जा सकता है। पहले अमुक प्रकारसे जा सकता है, क्योंकि अमुक प्रकारकी पहले एकत्वबुद्धि टूटती है। भेदज्ञान होता है कि मैं भिन्न हूँ और यह विभावस्वभाव भिन्न है। उसका भेदज्ञान करके उसमें एकाग्रता करे, ध्यान करे तो उसमें उसे शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु जब तक अमुक प्रकारसे अस्थिरता हो तो वह बाहर आता है। परन्तु बारंबार-बारंबार उसमें जानेका अभ्यास करे तो जा सकता है। पुरुषार्थ करे।

पहले आत्माका अस्तित्व ग्रहण करे। तो उसमें स्थिर हो। अस्तित्व ग्रहण किये बिना स्थिर कहाँ होगा? इसलिये पहले अपना अस्तित्व ग्रहण करे कि मैं यह चैतन्य ज्ञायकतत्त्व सो मैं हूँ। इस प्रकार उसका अस्तित्व बराबर ग्रहण हो तो उसमें स्थिरता हो, तो उसमें ध्यान हो।

मुमुक्षु :- दूसरी एक बात यह है कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीन वस्तु मोक्षका मार्ग है। दर्शन और ज्ञान। तो वांचन, सत्समागम और उस प्रकारसे आत्माको प्राप्त कर सकते हैं। बाह्य रीतसे अर्थात् मैं ऐसा कहता हूँ कि आगमके वांचनसे, शास्त्रोंके वांचनसे और सत्पुरुषोंके समागमसे वह हो सकता है। और चारित्र है.. अपने यहाँ मुझे ऐसा लगा है कि चारित्र पर कम वज़न दिया जाता है।

समाधान :- यथार्थ सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। चारित्र यानी बाहरकी

मात्र क्रियाएँ बहुत बार की है। क्रिया करी, सब त्याग किया, छोड़ दिया ऐसा जीवने अनेक बार किया। और मुनि बनकर जंगलमें रहा। परन्तु यदि आत्माका ज्ञान नहीं हुआ है तो ऐसी क्रिया करके, शुभभाव करके देवलोक प्राप्त हुआ, बहुत मिला परन्तु भवका अभाव नहीं हुआ।

अतः गुरुदेवने ऐसा मार्ग बताते थे कि तू यथार्थ अपूर्व आत्मा है, उसे पीछान। उसको पीछानकर अन्दर जो चारित्र प्रगट होगा वह यथार्थ अंतरमेंसे होगा। बाह्य क्रिया और बाह्य चारित्र तूने अनन्त बार किया है। और करके नौंवी ग्रैवेयक गया है, देवलोकमें। परन्तु भवका अभाव या आत्माकी प्राप्ति, सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये तू आत्माको पीछान। अंतरमें सम्यग्दर्शन और ज्ञान भी बाहरसे नहीं आता है। उसके समझनेके लिये देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य होते हैं, उसके निमित्त होते हैं, परन्तु करना तो स्वयंको पड़ता है। मात्र बाहरका ज्ञान वह कोई ज्ञान नहीं है, वह तो विशेष जाननेके लिये, शास्त्रज्ञान आत्माको पीछाननेके लिये बीचमें वह शास्त्रज्ञान होता है।

निश्चय तो अंतरमें आत्माको पीछाने, अंतरमें आत्माको भिन्न करके सम्यग्दर्शन (प्रगट करे)। मैं यह चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ, ऐसे स्वयं भेदज्ञान करे, उसका ज्ञान करे। अंतरमें आत्माको पीछाने वह ज्ञान और आत्माकी स्वानुभूति हो वह दर्शन। ऐसे दर्शन और ज्ञान अनन्त कालमें प्राप्त नहीं हुए। इसलिये उसकी मुख्यता रखकर दर्शन, ज्ञान अंतरमेंसे कैसे प्राप्त हो, वह यदि अंतरमेंसे प्राप्त हो वह अपूर्व वस्तु है, तो उसमें चारित्र यथार्थ आता है। और वह चारित्र उसे अंतरमें सहज पुरुषार्थसे ऐसे प्राप्त होता है कि अंतरमें स्वानुभूति ऐसी प्राप्त हो कि क्षण-क्षणमें अंतरमें चला जाय, बाहर रुकना भी उसे मुश्किल हो जाय। फिर उसे गृहस्थाश्रम भी सुहाता नहीं, इसलिये वह मुनि बनकर चला जाता है। इस प्रकार अंतरमें स्वानुभूतिमें बारंबार झुलते-झुलते ऐसी चारित्रदशा प्राप्त होती है। और वही वास्तविक चारित्र है।

वर्तमानमें जो बातें करते हैं, आत्मा कोई अपूर्व है, उसकी प्राप्ति कैसे हो उसकी बातें चलती है। क्योंकि चारित्रदशा बाहरसे क्रियाका त्याग तो अनेक बार हुआ है। परन्तु अंतरमें जो अपूर्वता आत्माकी लगनी चाहिये वह लगी नहीं। इसलिये दर्शन, ज्ञानको मुख्यता की, उसका कारण यह है कि उससे भवका अभाव होता है। फिक्षर चारित्र जो आता है वह यथार्थ चारित्र आता है। मात्र बाहरका चारित्र अनन्त कालमें बहुत बार किया है।

और ये जो दर्शन और ज्ञान है, उसके साथ अमुक जातका चारित्र स्वरूपाचरण तो आता है। जिसे अंतरमें आत्मा रुचे उसे बाहरका रुचता नहीं। उसे अंतरमेंसे विरक्ति आ जाती है। बाहरका सब कार्य करे तो उसका मर्यादित होता है। उसके कषाय आदि

सब बाहरका मर्यादित हो जाता है। वह एकत्वबुद्धि तन्यमतासे वह नहीं करता है, उसका रस, रुचि टूट जाता है। उसे आत्माकी ही रुचि लगती है कि ये कुछकरने जैसा नहीं है। उसे उपादेय नहीं लगता है। आत्माको ही अंगीकार करना, ऐसी उसकी अंतरकी रुचि बदल जाती है।

इसलिये पहले मुख्य सम्यग्दर्शन आत्माकी स्वानुभूति हो तो उसमें यथार्थ चारित्र आता है। और वह चारित्र, सच्चा मुनिपना और सच्चा केवलज्ञान उसमेंसे प्रगट होता है। बाह्य क्रिया तो बहुत बार की है। अनन्त कालमें ऐसे वेष धारण कर लिया। अभी देखो तो त्याग लेकर बहुत लोग नीकल पडते हैं। परन्तु अंतरमें आत्माको पीछाने बिना मात्र बाह्य क्रिया, मात्र शास्त्रसे बोले। अभी जो बोलते हैं, आत्मा कैसे प्राप्त हो? उसकी सब बातें चलती हैं। और शास्त्रकी वह बातें करता है। अंतरमें करना (है)। क्योंकि सम्यग्दर्शन प्राप्त करना वह भी दुर्लभ है। इसलिये उसका पुरुषार्थ करनेके लिये उसकी भावना, उसका पुरुषार्थ, उसकी लगन और अंतरमें सब उसे निःसार लगे। सारभूत आत्मा है। रुचि पलट जाती है।

अंतरमेंसे उसे त्याग हो जाता है। अंतरका त्याग। फिर बाहरका त्याग आते-आते वह तो उसका जैसा पुरुषार्थ हो, वैसा हो। सम्यग्दर्शन जिसे प्राप्त हो, उसमें किसीको तुरन्त चारित्र आ जाय, किसीको देर लगे। कोई चक्रवर्ती गृहस्थाश्रममें हो उसे बाहरसे चारित्र न हो तो चारित्र आनेमें देर लगे। परन्तु अंतरमेंसे भिन्न ही होते हैं। फिर चारित्र आये तब छोड़कर चले जाते हैं। अंतरमेंसे स्वानुभूतिकी दशा ऐसी प्राप्त हो जाय कि सब छूट जाता है। ऐसा होता है। और वह सच्चा मुनिपना है।

ऐसा तो चक्रवर्ती छोड़कर चले जाते हैं, तीर्थंकर छोड़कर चले जाते हैं। परन्तु वह अंतरका चारित्र आता है कि जिससे भवका अभाव होता है। बाह्य त्यागसे तो क्या? ऐसे शुभभाव तो बहुत बार किया है और पुण्यबन्ध हुआ और देवलोकमें गया। उससे भवका अभाव नहीं होता। इसलिये गुरुदेवने मुख्य मार्ग बताया है कि भवका अभाव कैसे हो?

मुमुक्षु :- बहिनश्री! गुरुदेव, आप कदाचित् आप दो ही व्यक्ति ऐसी हैं कि जिन्होंने कुछ सिद्धि की है। तो वर्तमानमें जितने भी लोग इस विषयको मानते हैं, उसमेंसे दूसरे लोगोंको असर होनी चाहिये। लोहेमेंसे पारसमणि होना चाहिये। उस दृष्टिसे अपने विचार करे तो अभी जो असर हुयी है, उस विषयमें आपके क्या विचार हैं? इसकी असर, विचारणा,... धर्म है वह विचारणा है, और यह विचारणा जो महाराज साहबने की है, उसकी असर अन्दर ऊतरकर समाजमें देखें तो कोई खास विशेष हुयी हो ऐसा आपको लगता है? क्योंकि... मिलते होंगे।

समाधान :- गुरुदेव तो मार्ग बताये। जो साधना करते हैं वह मार्ग बताते हैं। उसमें जिसकी जितनी योग्यता हो उस अनुसार असर होती है। दूसरा कोई तीरे या न तीरे, सच्चा मार्ग... गुरुदेव जैसे जागे वे मार्ग बताये। दूसरोंको असर होनी, वह उसकी योग्यता आधारित है। बहुत जीव ऐसे हैं, जिसकी रुचि तो पलट जाती है। जो रुचि पलट जाती है, जो मान्यता पलट जाती है, अकेली क्रियामें धर्म मानते थे, उसमेंसे धर्म कोई अलग है, ऐसी रुचि तो बहुत लोगोंकी पलट जाती है। बाकी आचरण कैसा हो, वह (योग्यता पर निर्भर करता है)। परन्तु अंतर रुचि पलट जाय ऐसे तो बहुत जीव होते हैं।

मुमुक्षु :- ये जो जैनीझम है, उसमें इतनी तरहके हैं, कि हम जो युवा वर्ग है, हमें बहुत बार समझमें नहीं आता है। क्योंकि इतने गूट हो गये हैं कि हम युवा वर्गको समझमें नहीं आता है।

समाधान :- (जैनदर्शन) भिन्न-भिन्न नहीं है, गूट हो तो भी। बाहरके गूटको एक ओर रख दो। अंतरमें भेदज्ञान करके आत्माको पीछानना वह एक ही मार्ग है। गुरुदेवने वह कहा है और शास्त्रमें वह आता है। अन्दरमें स्वानुभूति करके आत्माको भिन्न जानना, भेदज्ञान करके उसमें लीनता करनी, उसमें प्रतीत करनी वही मुक्तिका मार्ग है। दूसरा कोई मुक्तिका मार्ग नहीं है। उसमें बीचमें सच्चे देव-गुरु-शास्त्र शुभ परिणाममें होते हैं। अन्दर शुद्धात्मा-आत्माको भिन्न पीछानना। उसकी प्रतीत, उसकी लीनता, उसकी स्वानुभूति कैसे हो, उसका प्रयत्न करना, वह एक ही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

मुमुक्षु :- लेकिन जैनिझममें क्यों सब एक नहीं सकते? क्योंकि जब तक हम एक नहीं होंगे, तब तक एक प्रकारसे सोसायटीमें असर तो होती ही है न। हम सोसोयटीके तौर पर, हम सब बनिये कहलायें, जैन कहलायें, जैनोंका एक पंथ हो जाय तो हमारे देशको फायदा होगा। .. उसमें तो कोई शंका है ही नहीं। परन्तु साथ-साथ सोसायटीमें जो लोग रहते हैं, उनका कुछ फायदा होना चाहिये न। हम लोग ही जैनमें गूट बनायेंगे और कहेंगे कि...

समाधान :- .. स्वयं अपना कर सकता है। बाहरका होना, नहीं होना वह (अपने हाथकी बात नहीं है)। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। कोई द्रव्यको बदलना अपने हाथकी बात नहीं है। बड़े महापुरुष हों, वे भी उपदेश देकर चले जाते हैं। किसीको बदलना अपने हाथकी बात नहीं है।

गुरुदेवने सबको उपदेश दिया। उनके उपदेशका ऐसा निमित्त कि कितनोंका उपादान बदल गया। दूसरेको कोई बदल सके, वह किसीके हाथकी बात नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। कोई समाजको हम बदल सके, वह कोई हाथकी बात नहीं है। वह तो

स्वतंत्र है। कैसे बदलना वह कोई द्रव्य किसीको कुछ कर नहीं सकता। मात्र स्वयं भाव करे। उसे उपदेश देकर छूट जाय, बाकी उसे बदल सके, किसीका नहीं कर सकता। स्वयं अपना कर सकता है। महा तीर्थंकर हो गये, वे उपदेश देते हैं। बाकी प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूपसे बदलते हैं। किसीको बदल नहीं सकते। कुछ बाहरका करना वह किसीके हाथकी बात नहीं है।

मुमुक्षु :- .. अशुद्ध है, ऐसा कहनेमें आता है। अनादिसे यानी उसकी शुरूआत नहीं है, तबसे वह अशुद्ध है। .. कोई कालमें, किसी परिस्थितिमें वह अशुद्ध हुयी और वह अशुद्ध हो गया है, उसे अपने प्रयत्न करे...

समाधान :- अनादिसे अशुद्ध है। द्रव्य शुद्ध है, परन्तु पर्यायमें अशुद्धता है। यदि शुद्ध हो और बादमें अशुद्ध हो, ऐसा नहीं होता। जो शुद्ध वस्तु हो वह अशुद्ध कैसे हो? द्रव्यसे शुद्ध है, परन्तु पर्यायमें अशुद्धता है। यदि शुद्ध हो और बादमें अशुद्ध हो तो फिर शुद्ध होकर अशुद्ध बन जाय, ऐसे ही शुद्ध और अशुद्ध चलता रहे।? मुक्ति होनेके बाद कभी अशुद्ध होता ही नहीं। अनादिका अशुद्ध। जैसे सुवर्ण, अनादि कालसे जैसे सुवर्ण और पाषाण दोनों खानमें इकट्ठे होते हैं। बादमें उसे ताप देनेसे भिन्न पड़ जाते हैं।

ऐसे जीव द्रव्यसे शुद्ध है, परन्तु पर्यायमें जो अशुद्धता है वह अनादिसे है। परन्तु उसका पुरुषार्थ करनेसे आत्माकी शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। पुद्गल वस्तु भी वैसे सुवर्ण और पाषाण इकट्ठे होते हैं तो उसे ताप देते-देते भिन्न हो जाते हैं।

वैसे आत्मा और कर्म अनादिसे साथमें हैं। उसमें जीवको पर्यायमें अशुद्धता हुयी है। परन्तु पुरुषार्थका ताप देनेसे वह शुद्ध पर्यायरूप (परिणमता है)। फिर शुद्ध सुवर्ण बन जाय फिर कभी पाषाणमें मिश्रित नहीं हो जाता। शुद्ध हो जानेके बाद, मुक्त होनेके बाद पुनः संसार नहीं होता।

मक्खन ऊपर जाय, फिर उसका घी बने तो फिरसे घीका मक्खन नहीं बनता। वैसे सुवर्ण और पाषाण एकसाथ है, वैसे जीव और कर्म अनादिसे साथमें ही हैं और जीवकी पर्यायमें अशुद्धता है। द्रव्य-वस्तु, मूल वस्तुमें अशुद्धताका प्रवेश नहीं हुआ है। तो-तो शुद्ध होवे ही नहीं। द्रव्य मूलमें अशुद्धता नहीं है, परन्तु पर्यायमें-उसकी अवस्थामें अशुद्धता है।

मुमुक्षु :- और वह अनादिसे है।

समाधान :- हाँ, अनादिसे है।

मुमुक्षु :- अनादिसे हो तो फिर पर्याय भी...

समाधान :- (पर्यायमें) अशुद्धता है, वस्तुमें नहीं है। पर्याय है इसलिये पलट सकती

है, बदल सकती है। सुवर्ण जो अशुद्ध है, लेकिन उसे ताप देनेसे सुवर्ण शुद्ध होता है। वैसे पुरुषार्थ करनेसे आत्मामें शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- इसलिये दूसरे धर्मसे यह एक अलग बात है।

समाधान :- हाँ, अलग बात है।

मुमुक्षु :- कि आत्मा ही, वेद धर्म गिनता है कि आत्मा ही है और अनादि है, अनन्त है, ऐसा गिनते हैं। परन्तु पर्याय...

समाधान :- पुरुषार्थ करके स्वानुभूति प्रगट हो और केवलज्ञान हो, बादमें अशुद्धता होती ही नहीं। ऐसा वस्तुका स्वभाव ही है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१७९

समाधान :- .. शुद्धात्माको कैसे पहचाने, ऐसी अंतर दृष्टि, मैं ज्ञायक चैतन्य हूँ, ऐसे निरंतर उसे लगन लगे तो उसे प्रतिक्षण उसका भेदज्ञान अंतरमेंसे प्रगट हो कि यह विकल्प मैं नहीं हूँ, मैं चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ, ऐसी धारा अंतरमेंसे ज्ञानधारा प्रगट हो तो उसका विकल्प टूटकर, स्वानुभूति हो ऐसी अपूर्व दशा (हो), उसे सम्यग्दर्शन कहनेमें आता है। और उसमें लीनता बढते-बढते स्वरूप रमणता हो तब चारित्रदशा (होती है)। वह अंतरमेंसे प्रगट होती है। बाकी शुभभावरूप हो वह पुण्यबन्ध होता है। लेकिन उससे भवका अभाव नहीं होता। ऐसे गुरुदेवकी वाणीमें बारंबार वह आता था। शास्त्रोंमें भी उसी प्रकारसे आता है। अनन्त जन्म-मरण किये लेकिन उसमें बहुत बार....

आत्मा भिन्न और शरीर भिन्न, दोनों भिन्न तत्त्व हैं, उस तत्त्वको पीछानना। संकल्प-विकल्प हो वह आत्माका स्वभाव नहीं है, सब विभावभाव हैं। उससे भिन्न आत्माका स्वभाव पीछानना वह करनेका है। चैतन्यतत्त्वका स्वभाव भिन्न है, उसे पीछानना। उसके लिये तत्त्व विचार, वांचन, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा एक आत्माको पीछाननेके लिये (होते हैं)। ध्येय एक होना चाहिये कि मुझे ज्ञायक आत्मा कैसे पहिचानमें आये? ज्ञायकतासे भरा हुआ है। उसमें आनन्दादि अनन्त गुण हैं, उससे पीछाननेका प्रयत्न करना। उसकी लगन, उसकी महिमा, उसका विचार, वांचन सब करने जैसा है।

गुरुदेवकी वाणीमें तो कोई अपूर्वता आती थी। आत्माकी अपूर्वता बताते थे। अनन्त कालमें बाहरका बहुत किया। क्रियाएँ की, ये किया लेकिन आत्माको पीछाना नहीं आत्मा कोई अपूर्व वस्तु है। एक सम्यग्दर्शन जीवने अनन्त कालमें प्राप्त नहीं किया है और जिनवरस्वामी मिले नहीं। अर्थात् स्वयंने पीछाना नहीं है। इसलिये मिले वह नहीं मिलनेके बराबर है। एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है और एक भगवान नहीं मिले हैं। सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको जो पीछाने वह स्वयंको पीछाने। स्वयंको पीछाने वह देव-गुरुको पीछानता है। इसलिये चैतन्यको पीछाननेका प्रयत्न करने जैसा है।

आत्मा जाननेवाला तत्त्व है। उसमें सुख, उसमें आनन्द सब है। बाहरमें जो माना है, बाहरमें कुछ नहीं है। बाहरसे आत्मामें आता नहीं। जिसको जो स्वभाव है, उसमेंसे

प्रगट होता है। ज्ञान ज्ञानमेंसे, आनन्द आनन्द स्वभावमेंसे प्रगट होता है। शुभभाव बीचमें आता है, लेकिन शुभभाव भी पुण्यबन्धका कारण है। शुद्धात्माको पीछाने तो अंतरसे शुद्ध पर्याय प्रगट हो और भवका अभाव हो। जब तक शुद्धात्माको न पीछाने, पूर्णता न हो तब तक शुभभाव आये, परन्तु वह चैतन्यका स्वभाव नहीं है, वह विभावभाव है। इसलिये चैतन्यको भिन्न पीछानना, वही सर्वस्व और वही सारभूत है। उसे पीछानने जैसा है।

मुमुक्षु :- उसके लिये क्या उपाय करना?

समाधान :- उपाय, बस एक ही अंतरमें लगन उसीकी लगानी, उसीकी महिमा। बाहरकी लगन कम करनी। वह एक ही करने जैसा है। जीवनमें सर्वस्व वही है। उसकी श्रद्धा, उसकी प्रतीति गृहस्थाश्रममें हो सकता है। अंतर पीछाननेका प्रयत्न (करना)। उसका भेदज्ञान, उसे भिन्न पीछानना, वह सब हो सकता है।

फिर, विशेष जब भिन्नता हो, भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, स्वानुभूति हो, मुनिदशा तो बादमें आती है। ये तो उसे गृहस्थाश्रममें भेदज्ञान, सच्ची प्रतीति (होती है)। गृहस्थाश्रममें हो तो अंतर दृष्टि करके स्वयं अंतरमेंसे भिन्न कर सकता है। लेकिन उसकी लगन, उतनी रुचि, उतना विचार, अंतरमें मंथन करके निर्णय करे पीछाननेका तो होता है।

जैसे शक्करका स्वभाव मीठास, पानीका स्वभाव ठण्डा है, स्फटिक स्वभावसे निर्मल है। वैसे आत्मा स्वभावसे निर्मल ही है। लेकिन उसे अनादिसे विभावभावकी भ्रान्ति हुयी है कि मैं मलिन हो गया, विभावका प्रवेश हो गया है। आत्मा स्वभावसे निर्मल अनादिअनन्त है। अनन्त भव हो गये फिर भी वह स्वभाव तत्त्व तो ज्योंका त्यों है। इसलिये वह तत्त्व वर्तमानमें ऐसा है और त्रिकाल वैसा है। इसलिये उसे प्रयत्न करके पीछान लेना। वही जीवनका सर्वस्व है। उसीके लिये, उसे पीछाननेका प्रयत्न करना।

मुमुक्षु :- आपके जो भी उद्‌गार यहाँ निकले हैं, बहुत सुन्दर हैं। आपने जो... बिना नहीं चलेगा। आप कितना अच्छा बोले।

समाधान :- नहीं चलेगा। स्वयं आत्माकी साधना करे उसमें देव-गुरु-शास्त्रको साथमें रखता है। अंतरका स्वभाव प्रगट हो उसमें देव-गुरु-शास्त्र साथमें होते ही हैं। कोई बार बोला होगा इसलिये लिख लिया होगा।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर आ गया है। चैतन्यके बिना नहीं चलेगा।

समाधान :- वैसे देव-गुरुके बिना भी नहीं चलेगा।

मुमुक्षु :- सब लिया है। शास्त्र लिया, फिर अपना श्रुतका चिंतवन, सब बोल आपने लिये हैं।

समाधान :- बोले हों, वह लिख ले।

मुमुक्षु :- आप तो महान हैं।

समाधान :- हमारे स्वयंवरमें आप पधारना। ऐसे देव-गुरु-शास्त्र आप पधारना। प्रवचनसारमें आता है।

मुमुक्षु :- हाँ, आपने लिखा है। बोले थे वह इसमें लिखा है।

समाधान :- साधना करने निकले वहाँ भावना तो ऐसी ही होती है न। देव-गुरु-शास्त्र साथमें हों। अभ्यास करनेसे प्रगट होता है। छोटीपीपरका गुरुदेव कहते थे न, घीसनेसे उसका स्वभाव प्रगट होता है। वैसे बारंबार ज्ञायकका अभ्यास करनेसे उसका स्वभाव प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- विचारधारामें बारंबार लेना?

समाधान :- बारंबार। अंतरमें, वास्तवमें तो अंतरसे ग्रहण करे तब हो ऐसा है। फिर भी जब तक नहीं होता तब तक विचारधारामें आता है।

मुमुक्षु :- अंतरमें अर्थात् माताजी कैसे?

समाधान :- उसका स्वभाव पीछानकर ग्रहण करना कि यह ज्ञायक स्वभाव सो मैं हूँ और यह विभाव सो मैं नहीं हूँ। ऐसे स्वभावमेंसे पीछानना। उसके अस्तित्वमेंसे पीछाने।

मुमुक्षु :- हाँ जी। अस्तित्व तो वर्तमान पर्याय जो ख्यालमें आती है..

समाधान :- वह पर्याय है, परन्तु मूल द्रव्यको पीछानकर। पर्याय है, लेकिन उसमें पीछाननेका आत्माको है। पर्याय जो दिखती है, क्षणमात्र मैं नहीं हूँ, मैं तो शाश्वत हूँ। जो ज्ञानकी पर्याय दिखती है उस पर्याय जितना ही मैं नहीं हूँ, परन्तु मैं तो शाश्वत हूँ। इस प्रकार स्वयंको अंतरमेंसे ग्रहण करे। निश्चय करे तो स्वयं अंतरमें सूक्ष्म होकर ग्रहण कर सकता है। अपना स्वभाव है इसलिये।

मुमुक्षु :- ऐसा होता है कि देव-गुरु-शास्त्र, वांचन, विचार आदि बहुत प्रिय लगता है, उसके सिवा कुछ रुचता नहीं। फिर भी आगे नहीं चलता है। ऐसा रहा करता है। उसके सिवा तो कहीं सुहाता नहीं ऐसा हो जाता है। पूरे दिनमें यदि कुछ स्वाध्याय नहीं हुआ हो तो ऐसा होता है आज कुछ नहीं हुआ, अपने कुछ बाकी रह गया, ऐसा लगे। परन्तु फिर आगे कुछ चलता नहीं।

समाधान :- आगे नहीं बढे तब तक एक ध्येय आत्माका (रखना)। उसका अभ्यास करते रहना, न हो तबतक। अभ्यास हो तो अंतरमें उसे आगे बढनेका अवकाश है।

मुमुक्षु :- विकल्प मैं नहीं हूँ, ऐसे...?

समाधान :- विकल्प आये, लेकिन वह मेरा स्वभाव नहीं है। पहले उसका अभ्यास कर सकता है। बाकी सच्चा भेदज्ञान तो उसे सहज पीछानकर प्रतीत हो तो होता

है। यथार्थ भेदज्ञान तो (तब होता है)। तब तक उसका अभ्यास करे। विकल्प भी मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो निर्विकल्प तत्त्व चैतन्य हूँ। परन्तु वह उसे यथार्थ ग्रहण न हो तब तक अभ्यास द्वारा होता है।

(गुरुदेवने) यथार्थ बता दिया है। किसीको कहीं भूल पड़ जाय ऐसा नहीं है। पुरुषार्थ तो स्वयंको करना है। यह पर्याय है, यह द्रव्य है, यह शुभभाव है, यह तेरा स्वभाव नहीं है। तू क्षणिक पर्याय जितना नहीं है। तेरे अनन्त गुणोंसे (भरपूर है)। गुणका भेद पड़े ऐसे भेदवाला तेरा स्वभाव नहीं है। तू अखण्ड है। तेरेमें गुण हैं, लेकिन उस भेद पर दृष्टि (करके) उसमें रुकनेसे भी चैतन्यका मूल स्वभाव है वह ग्रहण नहीं होता है। ज्ञानमें सब ज्ञान करे, परन्तु दृष्टि तो एक अखण्ड पर रखनी।

गुरुदेवने अनेक प्रकारसे स्पष्ट करके मार्ग बताया है, कहीं भूल पड़े ऐसा नहीं है। पुरुषार्थ स्वयंको करना है। जिन्हें गुरुदेवकी वाणी नहीं मिली है, उन सबकी दृष्टि तो कहाँ बाहर क्रियामें पड़ी होती है। गुरुदेव तो द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, उसके सूक्ष्म भाव बता दिये हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीका महान उपकार है। गुरुदेवका, आपका अनन्त-अनन्त उपकार है।

समाधान :- गुरुदेव दिशा बतायी, नहीं तो लोग कहाँ पड़े थे। स्वानुभूति तो बादमें होती है। पहले तो स्वभाव ग्रहण होता है। स्वानुभूतिका आनन्द तो निर्विकल्प तत्त्व जो प्रगट हो वह बादमें होता है। पहले तो उसे ग्रहण यथार्थ होता है, प्रतीत यथार्थ होता है, उसका ज्ञान हो, बादमें उसकी लीनता ज्यादा हो तो उसे स्वानुभूति होती है। इसलिये पहले तो यथार्थ ग्रहण-अंतरमेंसे ग्रहण करे।

मुमुक्षु :- ग्रहण तो ज्ञानसे करना न?

समाधान :- ज्ञानसे ग्रहण करना। प्रज्ञाथी भिन्न करना और प्रज्ञासे ग्रहण करना। ज्ञानसे ग्रहण होता है। कर्ता-परपदार्थका मैं कर सकता हूँ और पर मेरा कर सकता है। गुरुदेवने (बताया कि), तू ज्ञाता है, ये कर्तृत्व तेरेमें नहीं है। तू परका कर नहीं सकता। तू ज्ञाता-दृष्टा उदासीन ज्ञाता है। ऐसा स्वभाव स्वयंका अंतरमेंसे पीछाने तो उसे यथार्थ भेदज्ञान हो।

मुमुक्षु :- अंतरमेंसे पीछाने।

समाधान :- अंतरमेंसे पीछाने।

मुमुक्षु :- अंतरमेंसे पीछाननेके लिये रुचि बढानी?

समाधान :- रुचि बढाये। लगन, रुचि।

मुमुक्षु :- आप बोले होंगे वह आत्मधर्ममें आया है। तेरी कहाँ भावना है? ऐसी

रुचि हो तो हो न।

समाधान :- भावना रुचि हो तो होती है। धून हो तब एकसाथ सब बोलनेमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- लेकिन बहुत अच्छा बोले हैं। दोनोंको सन्धि-आत्माकी और देव-शास्त्र-गुरुकी आखिर तककी सन्धि। रुचि, भावनाकी बात साथमें ली थी।

समाधान :- भेदज्ञानकी धारा प्रगट करनी। मार्ग तो एक ही है। मार्ग एक ही है। पुरुषार्थ स्वयंको करना है। कैसे हो? पुरुषार्थ कैसे करना?

मुमुक्षु :- मार्गमें कैसे चलना, ऐसा हो जाता है। अनादिका अनजाना मार्ग। ये मार्ग कहाँ था? गुरुदेवश्रीने बताया।

समाधान :- कहीं नहीं था। उपवास करके धर्म माने, बस, ऐसा था।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ, ऐसा था। संप्रदायका... एकदम स्पष्ट। क्रिया तो कहाँ, शुभभाव भी तेरा स्वभाव नहीं है और द्रव्य-गुण-पर्यायमें भी तू अटकना मत, ऐसा कहते हैं। विकल्पमें मत अटक। तेरे मूल अस्तित्वको ग्रहण कर। ज्ञान सबका कर, परन्तु दृष्टि तो एक चैतन्य पर कर। मुश्किल है।

मुमुक्षु :- कुछ मुश्किल नहीं है।

समाधान :- .. अलग था। गुरुदेवके साथ जाना कुछ अलग था।

मुमुक्षु :- आप कैसा स्वागत करवाते थे। ऐसी महिमा किसीको नहीं आती, ऐसा लगता है। उनके स्वास्थ्यके सामने देखा है कभी?

समाधान :- कभी नहीं देखा। मूसलाधार बरसात बरसायी है।

मुमुक्षु :- हर गाँवमें जिनालय होते थे और करो यहाँ धर्मध्यान।

समाधान :- सब गाँवमें विहार किया।

मुमुक्षु :- काल लंबा हो जाय तब कभी-कभी धैर्य खत्म हो जाता है। माताजी! कभी निराशा भी हो जाती है। फिरसे आपके वचनके अवलम्बनसे बल आये। ऐसा हो कि माताजी जो कहते हैं वही करने जैसा है। अपनी भावनाकी कचास है।

समाधान :- अन्दर ज्ञायक आत्माका अभ्यास करना। वहाँ रहकर, दूसरा क्या हो? वांचन, विचार, लगन लगानी। ये छबलबहिन तंबोलीकी बहुत प्रतिकूलता थी। यहाँ कुछ खास नहीं है। .. आते नहीं है।

... स्वयंको करना है। मार्ग तो गुरुदेवने बहुत स्पष्ट किया है। कहीं किसीकी भूल रहे ऐसा नहीं है। .. ऐसा नहीं है। गुरुदेवने एकदम स्पष्ट किया है।

मुमुक्षु :- किसीको कोई जगह...

समाधान :- परिणति भिन्न पड़े। भिन्न नहीं करता है, साथमें एकत्व रहता है।

मुमुक्षु :- एकत्व तोडनेके लिये स्वभावका अवलम्बन?

समाधान :- स्वभावका अवलम्बन अंतरमेंसे ले तो हो। जितनी ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये, उतनी आती नहीं। अंतरमें ही सर्वस्व सारभूत है। उसीमें सबकुछ है। उतनी अंतरसे लगन लगे तो पुरुषार्थ क्षति है (वह दूर होकर) अंतरमें जाय। करनेका एक ही है। परिणति भिन्न करके भेदज्ञान करना।

मुमुक्षु :- माताजी! विचार ऐसा आता है कि अनेक ज्ञानी हो गये और उनको इस प्रकार उनके ज्ञानमें महिमा आयी और.. हमें उस प्रकारकी महिमा क्यों नहीं आती है? जितनी स्वरूपकी अगाधता अथवा गंभीरता है, उतनी स्वरूपकी गंभीरता ज्ञानमें आनी चाहिये अथवा महिमा आनी चाहिये, ऐसी सविकल्प दशामें महिमा क्यों नहीं आती कि जिससे परिणति अन्दर नहीं जाती? प्रयत्नमें तो जैसी हमारी समझ है उस प्रकारका प्रयत्न तो चालू ही है। कम-बेसी प्रमाणमें होता है। परन्तु रस कहीं और है ऐसा तो दिखता नहीं। फिर भी अटकता है यह भी ख्यालमें आता है। फिर भी एकान्त उसीमें रस पड़ा है,.. वह भी ख्यालमें आता है कि यह भूल है, दोष है। इतना भी ख्यालमें आता है। पुरुषार्थ करनेकी गंभीरता भी समझमें आती है। और उस तरह पुरुषार्थ करनेका प्रयत्न भी चलता है। फिर भी महिमा, ज्ञायककी महिमा जो आप कहते हो, जिस प्रकारसे अंतरसे आनी चाहिये, ऐसी महिमा, ऐसा लगता है कि उस प्रकारसे नहीं है। सविकल्प दशामें ऐसी कोई महिमा आ जाती होगी कि अनुभव हो तब ही वास्तवमें महिमा आये?

समाधान :- उसकी महिमा सविकल्पतामें भी आती तो है, नहीं तो वह अंतरमें जाय कैसे? महिमा आये। भले यथार्थ महिमा उसे जो अनुभवमें आये वह तो कोई अलग आती है। परन्तु पहले उसे आती है कि ये विभाव कोई महिमारूप नहीं है। स्वभाव ही महिमारूप है। ऐसी अन्दरसे दृढ़ प्रतीति तो पहले उसे आये तो ही स्वभावकी ओर झुकता है। ऐसी प्रतीति तो अंतरमेंसे आनी चाहिये। महिमा तो उसे (पहले) आती है। परन्तु वह नहीं आती है इसलिये रुक जाता है। उसकी मन्दता हो जाती है। परन्तु महिमा पहले भी आता तो है। परन्तु वह महिमा तो अलग है, स्वभावकी परिणति। अनुभव दशामें आये (वह)।

मुमुक्षु :- कल पण्डितजीने एक बात कही, अन्दरसे धार प्रगट हो और जितना उसका फोर्स ख्यालमें आये, अगाधता ख्यालमें आये, वह अनुभव होनेके बाद वह दोनों बात बहुत सुन्दर प्रकारसे (समझायी कि), आंशिक प्रगट होनेसे परिपूर्णताका ख्याल उस वक्त तो आ सकता है। क्योंकि वह प्रकार ही ऐसा होता है कि सर्वांगसे वह आनन्द

प्रगट होता है और उसका जोश भी उस प्रकारका होता है। ये दोनों बात उस प्रकारसे समझायी थी। तो कैसे, अभी तो आप कहते हो वैसे अन्दरसे समझमें तो बराबर है कि यही करने जैसा है, यह करनेसे सुख होगा, उसका प्रयत्न भी कम-बेसी प्रमाणमें चलता है। हो सकता है कि पुरुषार्थ कम हो। परन्तु कभी-कभी ऐसी उलझन हो जाती है कि इतना प्रयत्न करते हैं (फिर भी प्राप्त क्यों नहीं होता)?

समाधान :- उसकी महिमा अन्दर कैसी है, वह तो उसे स्वानुभूतिके अंश परसे पूर्णता कितनी उसका ख्याल आये। ये तो सविकल्पतामें निर्णय करता है। परन्तु उसमें उसके पुरुषार्थ क्षति है इसलिये जा नहीं सकता। पुरुषार्थकी मन्दता है। जिसमें पड़ा है अनादिके अभ्यासमें, उसीमें पड़ा है। उसमेंसे भिन्न नहीं पड़ता। थोड़ा ज्यादा पुरुषार्थ करे, परन्तु जितना चाहिये उतना पुरुषार्थ नहीं करता है, इसलिये भिन्न नहीं पड़ सकता है।

अनादिके अभ्यासमें उसी प्रवाहमें बह जाता है। उस प्रवाहको पीछे नहीं मोडता। मोडे तो अमुक प्रकारसे मोडता है। सर्व प्रकारसे मोडना चाहिये वैसे नहीं मोडता। भले एक अंशरूपमें लेकिन प्रतीतिमें तो उसे सर्व प्रकारसे, सर्वस्वरूपसे मोडना चाहिये। चारित्रका एक बाकी रहे, परन्तु प्रतीतिमें उतनी पूर्ण श्रद्धा, उतनी प्रतितका ज़ोर होता है कि यह द्रव्य वस्तु अखण्ड पूर्ण वह मैं हूँ और वही सर्वस्वरूपसे आदरणीय है। सर्व प्रकारसे वही आदरणीय है। सब करके उसीमें लीनता करने जैसी है और वही करने जैसा है। सर्वस्व प्रकारसे उतनी प्रतीतिका ज़ोर पहले उसे उतनी दृढ़ता आवे तो वापस मुडे। उस प्रवाहमें ऐसी ही बह जाता है।

मुमुक्षु :- पहले अशुभमें ज्यादा बहना होता था, अब शुभमें ऐसा लगता है कि शुभमें कहीं न कहीं अटकता है।

समाधान :- हाँ, कहीं न कहीं प्रवाहमें बह जाता है। फिर शुभ रहता है, अमुक अस्थिरता होती है, परन्तु उसकी प्रतीतिमें तो सर्व प्रकारसे सर्वांशसे यही करने जैसा है, ऐसी पूर्ण प्रतीतिमें दृढ़ता (आ जानी चाहिये)। प्रतीतिकी परिणति तो एकदम अपनी ओर दृष्टिका जोर पहले आये तो उसका अनादिका प्रवाह वापस मुडे। प्रवाहका पूरा बल स्वभावकी ओर मुड जाय। फिर थोड़ा खड़ा रहे वह अलग बात है। प्रवाह अनादिका है, वह पूरा प्रवाह स्वभावकी ओर उसकी दृष्टिकी दिशा पूरी बदल जाय। बाहर देखता है उसके बजाय देखनेकी दिशा चैतन्यकी ओर चली जाती है। दृष्टिको चैतन्य पर स्थापित कर देता है।

मुमुक्षु :- विभावभावसे मैं भिन्न हूँ और स्वभावकी महिमा...

समाधान :- दोनों एकसाथ ही होता है। स्वभावकी महिमा और इससे भिन्न हूँ।

स्वभावका अवलम्बन ले और विभावसे भिन्न हूँ। स्वभावका अस्तित्व ग्रहण करे और इससे मैं भिन्न हूँ। अस्तित्व ग्रहण करे वहाँसे भेद करता है। अस्तित्व ग्रहण करे उसमें स्वयंकी महिमा समा जाती है। अखण्ड ज्ञायक मैं हूँ, उस ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करे, विभावसे भिन्न (हो जाता है)।

खण्ड-खण्डरूप जो पर्याय दिखती है उतना भी मैं नहीं हूँ, मैं तो अखण्ड ज्ञायक हूँ। ऐसे अस्तित्वको ग्रहण करे। उसकी महिमा, उसका अस्तित्व, उसे ग्रहण करे तो विभावसे भिन्न पडे। स्वयंको ग्रहण करे और विभावसे भिन्न पड़ता है। भिन्न होनेके बाद दृष्टिके बलसे प्रतिक्षण भिन्न पड़ता रहता है। विभाव आये तो भी क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें भिन्न पडता है। अनादिका एकत्वबुद्धिका प्रवाह है उस प्रवाहमें बह जाता है। विचारसे नक्की करे कि मैं भिन्न हूँ, ये मेरा अस्तित्व इससे भिन्न है, ऐसा विचारसे (नक्की करे), ऐसा विचार करता रहे, परन्तु कार्यके अन्दर उसकी परिणतिका प्रवाह एकत्वमें चला जाता है। वह कार्य नहीं करता है।

कार्य जो स्वभावकी ओर जाना चाहिये, दृष्टिका बल, वह नहीं जाता है। प्रवाहमें बह जाता है। विचारसे चाहे जितना नक्की करे, फिर भी प्रवाह ज्योंका त्यों चलता है। वह मन्द, कभी उग्र-तीव्र ऐसा करता रहता है, लेकिन स्वभावकी ओर ज़ोरसे जो दृष्टि जानी चाहिये वह जाती नहीं। स्वभावका अस्तित्व बलपूर्वक महिमापूर्वक ग्रहण करे तो विभावसे भिन्न पड़ जाता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८०

मुमुक्षु :- अस्तित्वको ग्रहण करना वह स्वरूपकी महिमा है?

समाधान :- स्वभावका अस्तित्व ग्रहण करे उसमें महिमा (आ जाती है)। वह अस्तित्व ग्रहण कब करे? अपनी महिमा आये तब ही ग्रहण करता है। उसकी महिमा न आये और उसे रूखा लगे तो ग्रहण ही न करे। उसकी महिमा आये तो ही ग्रहण करता है। इस ज्ञायकमें ही सब भरा है। ज्ञायक स्वयं भगवान है।

जैसे जिनेन्द्र भगवानकी महिमा आये, गुरुकी महिमा आये, वैसे ज्ञायकदेवकी महिमा आये। वह भी-ज्ञायकदेव भी एक भगवान है। अनन्त शक्तियोंसे भरा हुआ। जैसे जिनेन्द्र भगवान प्रगटरूपसे भगवान है, वैसे यह शक्तिरूपसे भगवान ही है। ऐसे उसे अंतरमेंसे महिमा आये, उसकी गंभीरता भासे तो उसका अस्तित्व ग्रहण करे। तो महिमापूर्वक किया हुआ, ग्रहण किया हुआ अस्तित्व जोरपूर्वकका अस्तित्व उसे ग्रहण होता है। नहीं तो वह अस्तित्व ग्रहण नहीं कर सकता है। रूखा लगे कि ज्ञायक सिर्फ बोलनेमात्र हो तो वह वास्तविकरूपसे ग्रहण नहीं हो सकता। शक्तिरूपसे। गुरुदेव कहते थे कि तू भगवान है। तू चैतन्य भगवान है। शक्तिरूप। प्रगट बादमें होता है।

मुमुक्षु :- विचार करता है फिर भी परिणतिमें नहीं आता है अथवा लेता नहीं।

समाधान :- विचारमें नक्की करता है, लेकिन वह कार्यमें नहीं आता है। परिणति उस रूप अपनी ओर (आती नहीं)। मैं भिन्न हूँ, यह हूँ, ऐसा नक्की करता है। परन्तु भिन्नतारूप उसका जो कार्य आना चाहिये वह कार्य नहीं होता है, उसका कार्य नहीं करता है। इसलिये परिणति ज्योंकी त्यों एकत्वतारूप परिणमती रहती है।

मुमुक्षु :- अर्थात् ज्ञायकको ग्रहण नहीं करता?

समाधान :- ज्ञायकको ग्रहण नहीं करता है इसलिये परिणतिमें भेदज्ञान होता नहीं। स्वंयको ग्रहण करे तो विभावसे भेद पड़े कि यह मैं हूँ और यह नहीं हूँ।

मुमुक्षु :- इसलिये पुरुषार्थकी स्वयंकी ही कचास है।

समाधान :- स्वयंकी क्षति है, पुरुषार्थकी कचास है। स्वयंको ग्रहण करे, ज्ञायकको ग्रहण करे बलपूर्वक। उस दृष्टिके अवलम्बनसे वह आगे बढता है। और उसकी ऐसी भेदज्ञानकी धारा, ज्ञाताकी धारा उग्र हो तो ही उसे विकल्प टूटकर स्वानुभूति होती

है। पहले तो दृष्टिका बल उसे आता है। और अच्छी तरह स्वयंका ग्रहण, अवलम्बन करे ज्ञायकका। तो उसकी ज्ञाताकी धारा उग्र हो तो विकल्प टूटे।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन प्रगट होने पूर्व उपदेश देनेका प्रसंग आवे तो ज्ञानीकी भक्ति, ज्ञानीका उस प्रकारका उपदेश.. दूसरा कोई तत्त्वका उपदेश नहीं दे सकता, ऐसा कोई भाव है? ऐसा कहनेका क्या प्रयोजन है?

समाधान :- स्वयंको अभी प्रगट नहीं हुआ है इसलिये ज्ञानीकी भक्ति (प्ररूपित करनी)। ज्ञानीको हृदयमें (रखना)। ज्ञानीने जो मार्ग बताया, उस मार्ग पर चलना है। अर्थात् तुझे कोई स्वच्छन्द होनेका अवकाश न रहे। ज्ञानीकी भक्तिका उपदेश देना, ऐसा कहा है।

मुमुक्षु :- दूसरे जीवोंको यदि उपदेश तो इस प्रकारका देना। तत्त्वकी बात करनेके बजाय, उसे ज्ञानीके प्रति भक्ति, ज्ञानीके प्रति आगे बढे, उस प्रकारका उपदेश मुख्यपने (करना)।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको मुख्य रखकर फिर तत्त्वका..

समाधान :- तत्त्वका (उपदेश) नहीं देना ऐसा तो नहीं होता, तत्त्वका उपदेश तो देना, परन्तु उसमें ज्ञानीको मुख्य रखना, ऐसा उसका अर्थ है। तत्त्वका उपदेश.. तत्त्व मुख्य ग्रहण किये बिना आगे तो बढ नहीं सकता। दूसरोंको कहनेमें.. तत्त्व तो मुख्य है, परन्तु तत्त्वको समझानेवाले कौन है? कि ज्ञानी है। इसलिये ज्ञानीको आगे रखकर तू तत्त्वकी बात करना। ऐसा उसका अर्थ है। तत्त्व समझानेवाले कौन हैं? उनकी महिमा हृदयमें रखना। और वह तत्त्व जो समझाता है उसे आगे रखकर तत्त्वकी बात करना। आगे तो तत्त्वसे बढा जाता है, परन्तु उसे मार्ग दर्शानेवाले कौन हैं? उस ज्ञानीको तू मुख्य करके बात करना। ऐसे अर्थमें है।

मुमुक्षु :- (ज्ञानीपुरुषका) आश्रित ही उपदेश देनेका अधिकारी है।

समाधान :- कल्पनासे नहीं, परन्तु ज्ञानी क्या कहते हैं? उस मार्ग पर उपदेश देना, वे कहे उस अनुसार। तत्त्व तो बीचमें आता है।

मुमुक्षु :- मुख्य रखकर उसका अर्थ ऐसा है?

समाधान :- इस प्रकारका है, मुख्य रखकर। (मोक्षमार्ग) बतानेवाले कौन है, उन्हें लक्ष्यमें रखना। निमित्त-उपादानको साथमें रखना। अनादि कालका अनजाना मार्ग पहले स्वयं जाने तो ज्ञानीका उपदेश मिलता है तब उसे देशनालब्धि होती है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। भगवान अथवा गुरु मिले तब देशनालब्धि हो, ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। ज्ञानी द्वारा मार्ग समझमें आता है। इसलिये समझना अंतरमें उपादानसे है, परन्तु ज्ञानी साथमें होते हैं। इसलिये तू ज्ञानीकी बात साथमें रखकर,

मुख्य रखकर समझाना, ऐसा उसका अर्थ है।

उसका मतलब उसमें निमित्त कर देता है, ऐसा नहीं। होता है उपादानसे। परन्तु साथमें ज्ञानी तो होते हैं। अपनेसे होता है इसलिये ज्ञानीका कुछ नहीं, मेरेसे ही होता है, उस प्रकारके स्वच्छन्दमें चला न जाय। परन्तु ज्ञानी साथमें होते हैं, ज्ञानी क्या कहते हैं उसे तू लक्ष्यमें रखकर बात करना। उसे मुख्य रखकर।

मुमुक्षु :- इस बारके गुजराती आत्मधर्ममें भी आपकी बात जो आयी है, दो बात आपने (कही)। काम तो मुझे ही करना है, लेकिन साथमें आपके बिना तो नहीं चलेगा।

समाधान :- उस भावमें.. मैं स्वयं जाता हूँ, परन्तु देव-गुरु-शास्त्रके बिना मुझे नहीं चलेगा। आप साथमें आना। आपको साथमें ही रखता हूँ। साथमें रखे बिना मुझे नहीं चलेगा। मैं जाता तो हूँ स्वयंसे, लेकिन आपको तो साथमें ही रखना है। आपके साथके बिना मुझे चलेगा नहीं। ऐसा है।

देव-गुरु-शास्त्रके बिना मुझे चलेगा नहीं। देव-गुरु-शास्त्र बिनाका जीवन वह जीवन कुछ नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र साथमें हो और पुरुषार्थ... ऐसी भावना है। और देव-गुरु-शास्त्र साथमें होते ही हैं। स्वयं आगे बढता है उसमें देव-गुरु-शास्त्र होतो हैं। अन्दर अपना कल्पवृक्ष वह अपनी भावना, देव-गुरु-शास्त्रका कल्पवृक्ष उगायेगा, वह आता है। आप सब पधारिये, मुझे देव-गुरु-शास्त्रके बिना नहीं चलेगा। भले ही मैं पुरुषार्थ मुझसे करुँ, तो भी आपके बिना मुझे नहीं चलेगा। आपका साथ तो चाहिये। ऐसा है।

मुमुक्षु :- अत्यन्त सुन्दर। निश्चय-व्यवहारकी सन्धिपूर्वक।

समाधान :- .. मुझे गुरु तो साथमें चाहिये। मैं तत्त्वमें आगे विचार करता हूँ, मुझे गुरु तो साथमें चाहिये, गुरुके बिना मुझे नहीं चलेगा। वह तो एक प्रकारकी भावना है। गुरु कर देते हैं, ऐसा अर्थ नहीं है, परन्तु गुरु मेरे साथ ही चाहिये। मुझे गुरुके बिना नहीं चलेगा। मैं भले ही पुरुषार्थ मेरेसे करुँ, परन्तु गुरु तो मुझे साथमें ही चाहिये।

... उसे मैं साथमें रखता हूँ। अकेला करता हूँ तो अकेला ही करुँ, ऐसा नहीं। मुझे साथमें ही चाहिये। मुझे आत्मा भी चाहिये और मुझे देव-गुरु-शास्त्र चाहिये, मुझे सब साथमें चाहिये। सब पधारो! ऐसा।

मुमुक्षु :- विचार करता है और अस्तित्व ग्रहण नहीं करता है, तो क्या बाकी रह जाता है? ग्रहण नहीं करता है मतलब कहीं रुकता है इसलिये अस्तित्व ग्रहण नहीं हो रहा है?

समाधान :- कहीं रुकता है, उसकी परिणति रुकती है। बाहरमें रुकती है। पुरुषार्थकी मन्दतासे कचास (रहती है)। उतनी अन्दर स्वयंकी रुचि, स्व-ओरकी रुचिकी मन्दता

तो साथमें है ही। पुरुषार्थकी मन्दता, रुचिकी मन्दता। अनादिका जो प्रवाह है न, उस प्रवाहमें ऐसे ही बह जाता है। उस प्रवाहको मोडना उसे मुश्किल पड़ता है। रुचि हो, भावना हो, अमुक प्रकारसे उसके विचार आये, मंथन हो, निर्णय करे, परन्तु उसकी दिशा जो कार्यमें लेनी चाहिये, उस कार्यमें लेनेमें उसे देर लगती है।

अनादिका जो प्रवाह है, ऐसे ही चलता है। भावना होती रहे, लेकिन उसका पलटना, उसे कार्यमें लाना उसमें पुरुषार्थका बल चाहिये, और पूरी दृष्टि बदलनी पड़े। विचारमें वह सब निर्णय करता है, परन्तु उसका पलटना, अनादिका जो प्रवाह है उसमेंसे उसे पुरुषार्थ और उतनी तीव्रता, अन्दर लगन चाहिये तो होता है।

मुमुक्षु :- आपने कहा कि ग्रहण नहीं करता है, उसमें बहुत वज़न नहीं था। ग्रहण नहीं करता है। अस्तित्वको ग्रहण नहीं करता है।

समाधान :- अस्तित्वको ग्रहण नहीं करता है। उसके मूलको ग्रहण नहीं करता है। विचारमें लेता है, परन्तु अंतरमें ग्रहण नहीं करता है।

मुमुक्षु :- जितनी यथार्थ महिमा और उसकी अधिकता भासित होनी चाहिये उतना आता नहीं, इसलिये ग्रहण नहीं हो रहा है और कहीं न कहीं अटक जाता है।

समाधान :- अटक जाता है। उतनी महिमा, उतनी लगन, उतना पुरुषार्थ नहीं करता है।

मुमुक्षु :- बात तो.. ग्रहण नहीं करता है। नहीं करता है, उसके कारणमें रुचिकी मन्दता मुख्य कारण है। अधिकता जो भासित होनी चाहिये, सबसे मैं अधिक हूँ और उसकी जो महिमा आनी चाहिये, वह नहीं आती।

समाधन :- मैं अधिक हूँ और ये सब सारभूत नहीं है। यही सारभूत है, उतनी अंतरमेंसे रुचि लगनी चाहिये तो होता है।

मुमुक्षु :- बारंबार उसकी सन्मुखताका बल बढे...

समाधान :- बारंबार उसका अभ्यास करे, रुचि बढानेका, पुरुषार्थ बढानेका प्रयत्न करे। अस्तित्व ग्रहण करनेका, तो हो सकता है।

मुमुक्षु :- आपके एक बोलमें आता है कि इतना निस्पृह हो जाता है कि भेदको भी.. आपका एक बोल आता है न कि भेदको भी लक्ष्यमें लेता नहीं अथवा भेदमें रुकता नहीं।

समाधान :- भेदमें रुकता नहीं, कुछ नहीं चाहिये, बस! एक (अस्तित्व चाहिये)। उतना निस्पृह हो जा। कुछ नहीं चाहिये। आत्माका (अस्तित्व) चाहिये।

मुमुक्षु :- मूल बात है।

समाधान :- मूल वह है। कोई स्पृहा नहीं है, एक आत्माके अलावा। एक आत्मा

ही मुझे चाहिये। पर्यायभेद या कहीं नहीं रुककर मुझे मेरा एक अस्तित्व चाहिये।

मुमुक्षु :- निस्पृहताकी अंतिम पराकाष्टा है कि भेदमें भी नहीं रुकता।

समाधान :- भेदमें रुकता नहीं कि ये ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द गुण है या दूसरा गुण है, ऐसे कहीं भी नहीं रुककर एक अस्तित्वको ग्रहण (करता है), दृष्टि तो वहीं स्थापित कर देता है।

मुमुक्षु :- पर्यायमें तो न रुके लेकिन गुणभेदमें भी नहीं रुकता। विचार आ जाय, लेकिन रुकता नहीं। उतनी निस्पृहता (आ जाती है)।

समाधान :- रुकता नहीं, विचार आये तो भी दृष्टि तो एक अस्तित्व पर ही रखनी है। आत्मामें विचार करे लेकिन उस ओर रुकता नहीं। एक अपना अस्तित्व ग्रहण कर लेता है। इतना निस्पृह हो जाता है।

मुमुक्षु :- कितना.. विचारमें ले कि आत्मामें ज्ञानगुण है, ज्ञानमें ऐसी शक्ति है, ऐसा सामर्थ्य है। फिर भी वहाँ रुकता नहीं। उतनी निस्पृहता..

समाधान :- खड़े-खड़े विचार करता रहे तो अन्दर जा (नहीं सकता)। अन्दर उग्रता हो तो अन्दर जा सके। खड़े-खड़े विचार करना कि ज्ञायकका द्वार छोड़ना नहीं। देर लगे तो भी। भगवानके द्वारा पर खड़े-खड़े... तो भगवानके द्वार खुल जाय। वैसे ज्ञायकके द्वार पर खड़े-खड़े भले विचारको वहीं टिकाये रखे तो यदि अन्दर स्वयंको लगी है तो उसे ज्ञायक ग्रहण होनेका अवकाश है। अवकाश है। उसे उतनी महिमा है। वहाँ खड़ा है। भले भावनारूप खड़ा है।

मुमुक्षु :- विकल्पात्मकमें तो भावभासन है कि ज्ञायक कैसा मात्र जाननेवाला..

समाधान :- हाँ, तो ग्रहण होनेका अवकाश है। .. महिमा लगे, ज्ञायकदेव जिसने प्रगट किया, देव-गुरु-शास्त्र जिन्होंने साधना करके प्रगट किया, उनकी अनुमोदना, उनकी आराधना तो साथमें होती ही है, उनका साथ तो साथमें होता ही है। उनके बिना कैसे चले? मैं आगे तो बढ़ूँ, लेकिन आपको साथ रखता हूँ।

मुमुक्षु :- दोनों एकसाथ होते हैं।

समाधान :- साथमें हैं। उसे ऐसा नहीं होता कि मैं मुझसे करता हूँ। ऐसी भावना नहीं होती। सबको मैं साथमें रखता हूँ। सबका आदर है। स्वयंका आदर हुआ, उसे देव-गुरु-शास्त्रका आदर है। देव-गुरु-शास्त्रका आदर है, उसे स्वयंका आदर है। वास्तविक आदर ही उसे कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- .. उसमें स्वच्छन्द होनेका, अभिमान चढनेका..

समाधान :- मैं मुझसे करता हूँ, ऐसा नहीं होता। मुझसे भले होता है, परन्तु मैं देव-गुरु-शास्त्रको साथमें रखता हूँ। ...

मुमुक्षु :- आपको ऐसा लगे कि देव-गुरु-शास्त्रके बिना नहीं चलेगा, हमें ऐसा होता है कि आपके बिना नहीं चलेगा।

समाधान :- गुरुदेव मिले सबको, महान उपकार किया है। सन्धि बतायी है। उन्होंने निश्चय-व्यवहारकी सन्धि बहुत बतायी है। शास्त्रोंके रहस्य सब उन्होंने सूलझाये हैं। कोई जानता नहीं था, शास्त्रोंकी किसीकी चौंच डूबती नहीं थी। सब रहस्य उन्होंने खल्ले किये हैं।

मुमुक्षु :- मामा कितनी बार कहते थे, बहिन कहते हैं कि आत्मा शब्द बोलते हो तो गुरुदेवके प्रतापसे। कितनी बार, मामा ये शब्द (बोले थे)। बहिन ऐसा कहते हैं, बहिन ऐसा कहते हैं। .. ये शास्त्रका अनुवाद किया वह गुरुदेवके कारण।

समाधान :- उनके कारण अर्थ सूझे, नहीं तो अर्थ कहाँ-से सूझे? उनको गुरुदेवने मार्ग बताया, इसलिये वे संस्कृतमेंसे अर्थ मिला सकते हैं।

मुमुक्षु :- मामा कितनी बार बोलते थे, हाँ! पण्डित तो बहुत हैं, लेकिन ये तो गुरुदेवके कारण ही भाषांतर हुआ है।

समाधान :- गुरुदेवने दृष्टि बतायी, तो उसके अर्थ सूझे।

मुमुक्षु :- स्व-परका भेदज्ञान हो कि मैं ज्ञायक भिन्न हूँ। उसे आंशिक स्वरूप रमणता हो गयी। वह विरति हो, परन्तु बादमें उसे जो भूमिका बदल जाती है, चौथा गुणस्थान, बादमें पाँचवा, छठवां-सातवां (आता है), उस ज्ञानका फल विरति है। अन्दर ज्ञायकता, भेदज्ञान हो वह वास्तविक विरति है। वह वास्तविक विरति है। वांचन, विचार वह तो एक...

मुमुक्षु :- परन्तु उसके पहले तारतम्यतामें कोई भेद नहीं पड़ते? श्रीमद्जीने लिखा कि जो पढनेसे, विचार करनेसे आत्मा विभावसे, विभावभावसे पीछे नहीं मुडा, तो वह पढना, विचारना मिथ्या है।

समाधान :- पढना, विचारना उसमें विरति नहीं आती। वह नहीं है। वास्तविक विरति तो अन्दर भेदज्ञान हो तब (होती है)। सच्ची विरति तो उसका नाम है। जो पहले मन्द कषाय होता है वह सच्ची विरति नहीं है। वह तो मन्द कषायरूप है। सच्ची विरति उसका नाम कि सर्व विभावभावसे भेदज्ञान होकर और अंतरमें जितने ज्ञायकताके परिणाम, ज्ञातृत्वकी तीखास हो, अंतरमें जो निवृत्त परिणाम आवे उसका नाम विरति है। अंतर स्वरूपमें स्थिरता हो, स्वरूपमें लीनता हो, उसका नाम विरति है। उसे अंश-अंशमें जो गृहस्थाश्रमके भाव हैं, उसे अंतरमेंसे एकत्वबुद्धि छूटती जाय, उसका रस टूटता जाय, उसका नाम विरति है। अंतरमेंसे अकषायभाव टूटकर जो अंतरमें लीनता होती है, स्वरूपका आनन्द बढता जाय, स्वरूपकी लीनता बढती जाय, उसका

नाम विरति है।

.. वह तो अवश्य होती ही है। जिसे सम्यग्दर्शन होता है, उसे विरति अवश्य होती ही है। उसे स्वरूपकी लीनता क्रम-क्रमसे बढती जाती है। फिर उसमें क्रम पडे, किसीको देर लगे, किसीको तुरन्त होती है। परन्तु उसे विरति तो अवश्य आती ही है। ज्ञानका फल विरति तो आती ही है। और आंशिक स्वरूप रमणता तो जो ज्ञायकताको पीछानी, ज्ञाताधारा हुयी उसे स्वरूप रमणता तो चालू ही हो गयी। अनन्तानुबंधी कषाय टूट गया इसलिये उतनी विरति तो उस प्रकारसे आ गयी। परन्तु जो विरति चारित्रदशाकी होती है, उस चारित्रदशाकी विरति आनेमें देर लगे, परन्तु अवश्य आती है। वास्तविक विरति वह है। मन्द कषाय हो वह विरति नहीं है, वह तो मन्द कषाय है। वांचन करे, विचार करे उसमें मन्द कषाय होता है कि ये विभावभाव अच्छा नहीं है, ऐसी भावना हो, रुचि हो, परन्तु वह भी अभी वास्तविक नहीं है, वह तो भावना करता है। मन्द कषाय है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८१

मुमुक्षु :- मुमुक्षु सच्चे मार्ग पर है उसका चिह्न क्या है?

समाधान :- वह सच्चे मार्ग पर है, (उसमें ऐसा होता है कि), मुझे स्वरूप कैसे पहचानमें आये? मैं ज्ञायक भिन्न हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसी अंतरमेंसे प्रतीत हो, रुचि हो, उसे पीछाननेका प्रयत्न करे, उसका विचार करे, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और आत्मा कैसे पहचानमें आये, ऐसी रुचि अंतरमेंसे रहे कि मुझे ज्ञायककी ज्ञायकता कैसे प्रगट हो? तो वह सत्य मार्ग पर है। वह उसका लक्षण है।

निज स्वभावको पहिचाननेके पंथ पर, मुझे स्वभावकी पहचान कैसे हो? ऐसी अंतरमेंसे गहरी जिज्ञासा हो तो वह यथार्थ मार्ग पर है। बाहर कहीं-कहीं रुकता हो वह नहीं परन्तु अंतरमेंसे मुझे आत्म स्वभाव कैसे प्राप्त हो? भेदज्ञान कैसे हो? उस जातका विचार, उस जातका वांचन, उस जातकी तत्त्वकी महिमा वह सब अंतरमें हो तो वह सत्य मार्ग पर है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण किये हों, अंतर जो स्वभावको बताये ऐसे गुरु और देवको ग्रहण किये हों, ज्ञायककी रुचि अंतरमें तीव्रपने हो तो वह सत्य मार्ग पर है।

मुमुक्षु :- आप ज्ञायककी बात करते हो तो मैं मुझसे गुप्त रहूँ वह बात सहन नहीं होती। वह बात ही कोई गज़ब लगती है।

समाधान :- स्वयं अपनेसे गुप्त रहे वह एक आश्चर्यकी बात है। स्वयं ही है और स्वयं स्वयंको जानता नहीं, वह कोई आश्चर्यकी बात है। स्वयं अपनी ओर दृष्टि करता नहीं और बाहर दृष्टि करता है। स्वयं स्वयंको देखता नहीं। अनादि कालसे वह एक आश्चर्य है कि स्वयंको जानता नहीं। स्वयं स्वयंसे गुप्त रहता है।

मुमुक्षु :- विरह लगता है फिर भी ऐसा क्यों होता है? सहज क्यों नहीं हो रहा है?

समाधान :- अंतरमेंसे खरी उग्रता जागे तो जाने बिना रहे नहीं। उग्रता नहीं है, मन्दता है इसलिये। उतनी स्वयंकी मन्दता है। सच्चा विरह लगे तो स्वयं स्वयंसे३ गुप्त रहे नहीं। स्वयं जाने बिना रहे ही नहीं, अपनी अनुभूति हुए बिना रहे ही नहीं।

मुमुक्षु :- अशातारूप भाव है?

समाधान :- अशातारूप भाव नहीं, वह एक जातकी भावना है, उसकी रुचि है।

मुमुक्षु :- पूर्वमें आत्माका स्वरूप जाना नहीं है इसलिये गुप्त है?

समाधान :- आत्माका स्वरूप जाना नहीं है। गुरु बताते हैं और जाना नहीं है। अनादिसे स्वयंकी ओर दृष्टि ही नहीं की है और उसका प्रयत्न नहीं करता है। उसकी रुचि जितनी चाहिये उतनी करता नहीं, इसलिये गुप्त है।

मुमुक्षु :- स्वयंकी पहचान हो तो ज्ञानीको पहिचाने?

समाधान :- दोनों निमित्त-उपादान साथमें ही हैं। वास्तविक स्वयंको पहिचाने तो ज्ञानीकी पहचान हो। ज्ञानीको पहचाने वह स्वयंको पहचाने। वह निमित्त-उपादान (सम्बन्ध है)। यथार्थ पहचानना, जैसा वस्तुका स्वरूप है वैसी ज्ञानीकी दशा पहिचाननी, उसे पहिचाने। दोनों वास्तविकरूपसे साथमें हैं। और स्वयं पुरुषार्थ (करे)। स्वयं अपनेसे अनजाना है तो जिसने वस्तुका स्वरूप जाना है उसे तू पहिचान। ऐसे निमित्तकी ओरसे ऐसा कहनेमें आये कि ज्ञानीको तू पीछान तो तो तुझे पहचान पायगा। इसलिये ज्ञानी उसका निमित्त है और स्वयं उपादान है।

परन्तु वास्तविक कब पहिचाना कहा जाय? ज्ञानीको अमुक लक्षण परसे पहिचाने। परन्तु स्वयं स्वयंको पहिचाने तो ज्ञानीकी उसे बराबर पहिचान होती है। परन्तु बराबर पहिचाना कब कहा जाय? स्वयंको पहिचाने और ज्ञानीको पहिचाने, दोनों साथमें ही है।

पहले अमुक लक्षणोंसे ज्ञानीको पहचान ले। ज्ञानीकी वास्तविक दशा तो उसकी उतनी शक्ति नहीं है इसलिये उपादान-निमित्त दोनोंका योग हो तब पहिचानता है। परन्तु अमुक लक्षणोंसे पहले ज्ञानीको पहिचाने कि ये ज्ञानी हैं। ऐसे पहचानकर, फिर जो मार्ग बताते हैं, उस मार्गको जाननेका स्वयं प्रयत्न करे, अन्तरमें उतारनेका प्रयत्न करे। तो ज्ञानी उसका निमित्त होते हैं, उपादान स्वयं है।

गुरुदेवको लक्षणसे पहिचानकर, ये अपूर्व बात करते हैं। फिर जो आत्माका स्वरूप बताते हैं, वह कोई अपूर्व बताते हैं। ऐसे स्वयं अपूर्वतको ग्रहण करे, मार्गको स्वयंके उपादानसे ग्रहण करे। फिर वास्तविक स्वरूप तो स्वयंको पहिचाने तो ज्ञानीकी पहचान हो। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। परन्तु पहले ज्ञानीको लक्षण द्वारा पहिचान ले कि ये ज्ञानी ही हैं। जिसकी सत् जिज्ञासा होती है, उस जिज्ञासुके, श्रीमद् कहते हैं न, उसके हृदयके नेत्र ही ऐसे हो जाते हैं कि वह ज्ञानीको पहिचान लेता है।

मुमुक्षु :- कृपालुदेवने कहा है कि ज्ञानरूपी बड़ा वन है, जितनी ताकत हो उतनी पहचान हो तो लाभ हो। ऐसा लिखा है। जितनी पहिचान हो उतना लाभ है। पूर्ण पहिचान हो तो पूर्ण लाभ है।

समाधान :- उतना लाभ है, पूर्ण लाभ है। परन्तु अमुक लक्षणसे पहिचान ले

कि ये ज्ञानी हैं। फिर उनकी अपूर्वता जानकर स्वयं निज अपूर्व स्वरूप है उसे जाननेका प्रयत्न करे। अंतरसे आत्माका भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे। भेदज्ञान हो और स्वानुभूति हो तो यथार्थ दशाको जान सकते हैं।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें लिखा है कि ज्ञानीको शुभ है वह काले नाग जैसा दिखता है। जबकि ज्ञानी हैं वह तो दृष्टाभावसे जो है उसे सहज देखते हैं। तो ऐसा देखना तो बहुत निम्न कोटिकी दशा हो गयी हो तब ऐसा दिखता है? अच्छी दशा हो तो सहज ही दृष्टाभावसे उसका स्पर्श नहीं होता। वास्तवमें तो शुभका स्पर्श ही नहीं होता। तो वह वचन आपने कैसे लिखा है? किस अपेक्षासे?

समाधान :- उसकी ज्ञाता-दृष्टाकी दशा भेदज्ञानकी है कि ये विभाव है और यह स्वभाव है। तो उसे सहज ज्ञान होता है। ज्ञायक ज्ञायकरूपसे उसे अपनी परिणतिमें खड़ा है। ये भिन्न है और मैं भिन्न हूँ। परन्तु अल्प अस्थिरता है उसे जानता है, परन्तु उसकी भावना ऐसी हो कि मैं स्वरूपमें लीन हो जाऊँ, पूर्ण लीन कैसे हो जाऊँ, ऐसी भावनाके कारण उसे वह काला नाग लगता है। ऐसी अपेक्षा है, उस अपेक्षासे (बात है)। बाकी तो उसे..

मुमुक्षु :- द्वेषबुद्धि जैसा तो अर्थ नहीं होता है।

समाधान :- द्वेषबुद्धि नहीं है, वह तो जानता है, ज्ञायक है-ज्ञाता है। यह आता है उसका ज्ञाता-दृष्टा है, परन्तु उसे भावना तो ऐसी रहे कि यह अल्पता है। मुनिओं जैसे क्षण-क्षणमें स्वरूपमें जम जाते हैं अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें, ऐसी दशा नहीं है। ऐसी दशा मुझे कब हो कि मैं स्वरूपमें लीन हो जाऊँ? इसलिये यह विभाव है वह आदरणीय नहीं है। वह मेरा स्वभाव नहीं है। उस अपेक्षासे (कहा है)। मुझे कब वीतरागदशा हो जाय और मैं शाश्वत आत्मामें रह जाऊँ। इतना जो ज्ञेयरूपसे विभाव ज्ञात हो रहा है, वह विभाव मुझे न हो, मुझे पूर्ण स्वभाव हो। ऐसी उसकी भावना रहती है।

मुमुक्षु :- ... तारतम्यतासे भावमें फ़र्क़ पडनेवाला ही है। दशा बहुत अच्छी हो उस वक्त तो किसीका स्पर्श ही नहीं होता।

समाधान :- वह तो स्वानुभूति निर्विकल्प दशा हो उस वक्त तो उस ओर उसका उपयोग भी नहीं है। स्वयं तो निर्विकल्प दशामें आनन्दमें है। परन्तु जब उसका उपयोग बाहर आता है, भेदज्ञान हो, बाहर उपयोग आये तब जानता है कि इतनी न्यूनता है। इसलिये वह न्यूनता है, उस न्यूनताको जानता है। अतः पूर्णता कब हो, उस अपेक्षासे (ऐसी भावना रहती है कि) यह विभावभाव मुझे नहीं चाहिये। इतना विभाव भी मुझे पुसाता नहीं।

जैसे आँखमें कण नहीं समाता, वैसे भले द्रव्यदृष्टिमें पूर्ण निर्मल होऊँ, परन्तु पर्यायमें

इतनती भी कचास मुझे नहीं चाहिये। काला नाग अर्थात् वह मुझे आदरणीय नहीं है, इसलिये मैं पूर्ण हो जाउँ, ऐसी उसकी उग्र भावना वर्तती है। निर्विकल्प दशाके समय तो उस ओर उपयोग भी नहीं है।

मुमुक्षु :- हाँ, वह तो बाहर आनेके बाद तुरन्तकी दशा भी बहुत अच्छी होती है।

समाधान :- उस वक्त भी उसे भेदज्ञानकी ही दशा होती है। बाहर आये तो एकत्वबुद्धि होती नहीं। एकत्व हो तो-तो उसकी दशा ही न रहे। भेदज्ञान, अंतरमें आंशिक शांतिधारा और समाधिकी धारा उसकी वर्तती रहती है। निर्विकल्प दशाकी आनन्द दशा एक अलग बात है, परन्तु बाहर आये तो भी शांतिकी धारा और समाधिकी धारा, ज्ञायकधारा वर्तती ही है। परन्तु अल्प (विभाव) है तो सही, अल्प भी न हो तो-तो केवलज्ञान (होना चाहिये)। अल्प है, वह अल्प भी मुझे नहीं चाहिये। इतना भी मुझे नहीं चाहिये। आँखमें रजकण जितना भी नहीं चाहिये। मैं पूर्ण हो जाऊँ, इसलिये कहता है कि वह काला नाग है। मुझे यह कुछ नहीं चाहिये।

मुमुक्षु :- शब्द काला नाग है, इसलिये किसीको ऐसा लगे, ऐसा? किसीको ऐसा लगे कि द्वेषभाव है?

समाधान :- भावना है। वीतरागताकी भावना है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको तो आगे-पीछे करनेकी वृत्ति नहीं होती, तो ऐसा भाव भी क्यों होता है?

समाधान :- वीतरागताकी भावना तो होती है न कि मैं वीतराग कैसे होऊँ? वीतरागताकी भावना है। इतना राग भी मुझे नहीं चाहिये। मुझे वीतरागता प्रगट होओ। कुछ न हो तो उसे पुरुषार्थ कैसा? तो कृतकृत्य हो गया, तो केवलज्ञान हो जाय। उसकी साधककी दशा है, पुरुषार्थकी धारा है। इसलिये मेरे पुरुषार्थकी उग्रता कैसे हो, ऐसी भावना है। उस भावनाके ज़ोरमें कहता है कि यह काला नाग है, यह मुझे नहीं चाहिये। उसकी आदरणीय बुद्धि नहीं है, मुझे स्वभाव ही आदरणीय है। मुझे स्वभाव चाहिये, यह नहीं चाहिये, इतना भी नहीं चाहिये।

बाहुबली मुनि ऐसे ध्यानमें थे, छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते थे। तो उन्हें अल्प विभाव रहा कि मैं भरतकी भूमि पर खड़ा हूँ, उतना अन्दर रहा तो केवलज्ञान नहीं हुआ। अर्थात् ज्ञानीको इतना रजकण जितना भी मुझे नहीं चाहिये। बाहर आये तब। उतनी भावनाकी उग्रता है। शांतिकी धारा है, समाधिकी धारा है, सब है, परन्तु इतना है (वह भी नहीं चाहिये)। पुरुषार्थ है, केवलज्ञान नहीं है इसलिये वह कहता है कि मुझे इतना भी नहीं चाहिये।

मुमुक्षु :- उत्पन्न हुयी भावनाको वह जानता है कि करता है?

समाधान :- भावना उसे अंतरमेंसे होती है। स्वभाव-ओर जिसकी परिणति झुक गयी, जिसे निर्विकल्प दशा, स्वभावरूप परिणमन हो गया उसे मेरी पूर्ण परिणति कैसे हो, ऐसी भावना उसे आये ही। जिसे स्वभाव-ओर दृष्टि गयी, उसे पूर्णकी भावना साथमें (होती ही है)। मैं पूर्ण द्रव्यसे हूँ, परन्तु पर्यायसे अभी अधूरा हूँ। इसलिये उसे पूर्णताकी भावना अन्दर आती ही है। श्रीमद् कहते हैं न कि 'क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो, सर्व सम्बन्धनुं बन्धन तीक्षण छेदीने, विचरशुं कव महत् पुरुषने पंथ जो।' ऐसी भावना तो आती ही है।

मुमुक्षु :- यदि भावना न हो तो सविकल्प पुरुषार्थ होगा कैसे?

समाधान :- हाँ, तो पुरुषार्थ ही न रहे। भावना तो अन्दर रहती है।

मुमुक्षु :- क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ तो चालू है।

समाधान :- तो साधकदशाका पुरुषार्थ कहाँ गया? भेदज्ञानकी धाराका पुरुषार्थ, समाधि-शान्ति, ज्ञायकता, भेदज्ञानकी धारा कैसे उग्र हो? ज्ञायककी ज्ञाताधारा कैसे उग्र हो? ऐसी उग्र हो कि जिसमें विभाव हो ही नहीं। ऐसी उग्रता हो जाय, ऐसी भ भावना रहती है।

मुमुक्षु :- क्षायिक समकितीके धनी लड़ाईके मैदानमें तलवार लेकर लोगोंको काटते हो, उसका आश्चर्य नहीं लगता?

समाधान :- उतनी उसकी न्यूनता है। भावना तो उग्र है। उसकी न्यूनता है। अन्दर भेदज्ञानकी धारा वर्तती है, एकत्वबुद्धि नहीं है, अल्प राग है, राजका राग है, इसलिये वह लड़ाईके मैदानमें खड़ा है। फिर भी उसका वर्तन न्यायसे होता है। परन्तु वह होता है। ऐसी बाहरकी क्रिया होती है। अंतरकी परिणति,.. हाथीके दिखानेके दाँत अलग और अंतरके अलग होते हैं। ऐसा लगे कि कैसे कर सकते होंगे? लड़ाईमें कैसे खड़े रहते होंगे? ऐसे संयोगमें आ जाय।

मुमुक्षु :- वास्तवमें तो ज्ञानी अपने स्वभावमें ही खडे हैं, बाहर कहाँ खड़े ही हैं?

समाधान :- स्वभावकी परिणतिमें स्वयं खड़े हैं। बाहर..

समाधान :- खड़े हो ऐसा लोगोंको दिखे।

समाधान :- दिखे, अल्प राग है, अल्प राग है। फिर भावना हो तो मुनि बनकर चले जाते हैं। ऐसा हो जाता है।

मुमुक्षु :- माताजी! अभी तो पुरुषार्थ नहीं उठता है।

समाधान :- .. सब स्पष्ट करके बता दिया है। सबको दृष्टि तो दे दी है। पुरुषार्थ

करनेका बाकी है। पुरुषार्थ, भेदज्ञानकी धारा तो स्वयंको ही करनी है। कहीं किसीको भूल न रहे इतना सूक्ष्म-सूक्ष्म करके पूरा मार्ग आखिर तक बता दिया है। शरीर भिन्न, विभाव स्वभाव तेरा नहीं है, शुभभाव भी तेरा स्वभाव नहीं है। ये क्षणिक पर्यायोंमें तू अटकना मत। तू तो शाश्वत है। गुणभेदके विकल्पमें (अटकना मत)। तेरेमें अनन्त गुण हैं, तेरी स्वभाव पर्याय, उसके भेदमें भी तू अटकना मत। उस विकल्पके भेदमें (मत अटकना)। जानना सबको, लेकिन दृष्टि तो एक अखण्ड पर स्थापित करना। गुरुदेवने तो बहुत स्पष्ट करके बताया है। एक अखण्ड चैतन्य पर दृष्टि स्थापित करके विभावका भेदज्ञान करके तू स्वभावमें दृष्टि स्थापित करके उसकी लीनता कर। उसका भेदज्ञान कर। बारंबार मैं चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, (ऐसा) अंतरमेंसे प्रतिक्षण होना चाहिये। एक बार करके छोड़ दिया, ऐसे नहीं होताा। उसकी भावना करे वह बराबर है, परन्तु अंतरमें क्षण-क्षणमें स्वभावको पहिचानकर, जो वस्तु है उसका स्वभाव पहिचानकर तद्गत परिणति हो, उस रूप हो तो उसका प्रतिक्षण भेदज्ञान करते-करते उसकी भेदज्ञानकी धारा, ज्ञाताधाराकी उग्रता हो तो विकल्प छूटे और स्वानुभूति हो।

यह जीवन विभावका उसका कैसा सहज हो गया है। सहज विकल्प, सब सहज। ऐसे स्वभावका जीवन सहज होना चाहिये। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। ऐसी सहज धारा अंतरमेंसे हो तो हो। ऐसी सहज शांतिकी, समाधिकी धारा उसकी सहज होनी चाहिये। तो होता है। पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना है। स्वयं ही है, कोई अन्य नहीं है। स्वयंको ही करना है। उसका भेदज्ञान क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें मैं चैतन्य हूँ, सब कार्य करते हुए कोई भी विकल्प आये, विकल्प भी मैं नहीं हूँ।

क्षण-क्षणमें विकल्प (चल जाये), फिर याद करे कि मैं भिन्न हूँ (ऐसे नहीं)। जो विकल्प आये उसी क्षण ऐसा होना चाहिये कि मैं ज्ञायक हूँ। जिस क्षण विकल्पकी मौजूदगी है, उसी क्षण ज्ञायककी मौजूदगी, ज्ञायकके अस्तित्वकी मौजूदगी, उसी क्षण पुरुषार्थ, उसी क्षण स्वयंकी मौजूदगी हो ऐसी उसकी सहज धारा तो वह आगे बढे। एकत्वबुद्धि हो और बादमें याद करे तो वह बादमें याद करे ऐसे नहीं। क्षण-क्षणमें उसी क्षण अपना अस्तित्व मौजूद रखे, ऐसी अंतरसे उग्रता हो तो आगे बढे। गुरुदेवने मार्ग तो एकदम स्पष्ट किया है। ऐसा अपूर्व मार्ग बताया है।

मुमुक्षु :- मोक्ष अधिकारका १८०वां कलश है। यह कलशटीका है। कटशटीकामें भावार्थ है, उसमें लिखते हैं कि '**भावार्थ इस प्रकार है कि करोंतके बारबार चालू करनेसे पुद्गलवस्तु काष्ठ आदि दो खण्ड हो जाता है, उसी प्रकार भेदज्ञान द्वारा जीव-पुद्गलको बारबार भिन्न भिन्न अनुभव करनेपर भिन्न-भिन्न हो जाते**

हैं। इसलिये भेदज्ञान उपादेय है'। यहाँ मेरा मुख्य प्रश्न यह है कि बारबार भिन्न-भिन्न अनुभव करनेपर भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। बारंबार भिन्न-भिन्न यानी थोड़ा भिन्न हो उसका उसे ख्याल आता है? क्योंकि इसमें लिखा है कि बारंबार भिन्न-भिन्न अनुभव करनेपर। भिन्न-भिन्न करके वह बारबार अनुभव करता है। उसका अर्थ कि पहले, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पूर्व भी उसे भेदज्ञान होता है? क्योंकि यहाँ यह शब्द पडा है।

समाधान :- भावार्थमें है न?

मुमुक्षु :- हाँ जी। मूल पढ़ूँ?

समाधान :- हाँ, मूलमें क्या है? ... ऐसा कहते हैं। जो भेदज्ञान हुआ उस भेदज्ञानको बारबार ऐसे ही उग्र रखता है। बारबार भेदज्ञान, मैं यह नहीं हूँ और यह नहीं हूँ, ऐसे तत्काल प्रज्ञाछैनीसे भेदज्ञान हो गया कि मैं यह चैतन्य हूँ और यह मैं नहीं हूँ। यह विभावभाव मैं नहीं हूँ, परन्तु यह स्वभाव मैं हूँ। प्रज्ञाछैनीसे भेदज्ञान किया। उसकी तीक्ष्णता करनेसे बारबार उसकी उग्रता करनेसे। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- अर्थात् विकल्पात्मक उसे अनुभवका अंश प्रगट होता है? विकल्पात्मक वह ऐसा करता रहे कि यह मैं हूँ और यह नही हूँ, ऐसा?

समाधान :- उसे भेदज्ञानकी धारा कहते हैं। उस भेदज्ञानकी धारा द्वारा स्वानुभूति होती है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञानकी धारा प्रगट होती है?

समाधान :- पहले भेदज्ञानकी धारा प्रगट होती है, फिर स्वानुभूति होती है।

मुमुक्षु :- विकल्पात्मक भेदज्ञानकी धारा प्रगट होती है और उसीमें विशेष तीक्ष्णता..

समाधान :- उसमें बारबार तीक्ष्णता करनेसे स्वानुभूति होती है। किसीको तत्काल उग्रता हो जाय तो शीघ्रतासे हो जाता है। उसी क्षण। और उसका अभ्यास करनेसे, उग्रता करनेसे स्वानुभूति होती है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- हाँ, मूल कलशमें तो प्रज्ञाछैनी अर्थात् स्वानुभूतिकी बात ली है। उसमें तो स्वानुभूति (ली है)। प्रज्ञाछैनीकी करोंत द्वारा, प्रज्ञाछैनी द्वारा तत्काल भेद हो जायगा और उसमें तुझे स्वानुभूति होगी। कलशमें तो ऐसा ही लिया है कि तत्काल भेद होनेसे तुझे तत्काल स्वानुभूति हो जायगी। परन्तु इसमें बारंबार अभ्यास अर्थात् उसकी उग्रता बारंबार करनेसे तुझे स्वानुभूति होगी, ऐसा कहना चाहते हैं। विकल्प है, परन्तु विकल्प है वह मैं नहीं हूँ, परन्तु मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी ज्ञाताधाराकी उग्रता, उसकी उग्रता द्वारा तुझे स्वानुभूति होगी।

मुमुक्षु :- उस समय भी उसे विकल्प स्पष्ट भिन्न दिखता होगा न?

समाधान :- हाँ, स्पष्ट भिन्न दिखता है। भिन्न दिखता है लेकिन उपयोग जो अन्दर लीन होना चाहिये वह लीनता नहीं है। लीनताकी उग्रता करनेसे तुझे विकल्प टूटकर निर्विकल्प दशा होगी। उसकी उग्रता, बारबार उसकी उसकी उग्रता करनेसे विकल्प टूट जायगा और स्वानुभूति होगी।

मुमुक्षु :- तबतक विकल्पात्मक भेदज्ञान है?

समाधान :- हाँ, विकल्पात्मक है।

मुमुक्षु :- तबतक विकल्पात्मक भेदज्ञान है। अनुभवपूर्वकका, थोड़ा अनुभवपूर्वकका भेदज्ञान है और वह स्वयं भी..

समाधान :- भिन्न देखता है लेकिन उसकी उग्रता नहीं है।

मुमुक्षु :- उग्रताके लिये बारबार वही अभ्यास करनेसे, उग्रता होनेपर निर्विकल्पता हो।

समाधान :- फिर निर्विकल्पता होती है। और लीनताकी उग्रता होती है। ज्ञायककी उग्रता करनेसे स्वानुभूति होती है। है तो सही, लेकिन नहीं है। भिन्नता तो हो ही गयी है, लेकिन उसकी उग्रता नहीं है।

मुमुक्षु :- मात्र विकल्पात्मक, बुद्धिपूर्वकका विकल्पात्मक नहीं है।

समाधान :- नहीं, बुद्धिपूर्वक नहीं है।

मुमुक्षु :- रागकी तो बात ही नहीं है।

समाधान :- वह नहीं है। लेकिन उसकी उग्रता करनेको कहते हैं। बारबार उसकी उग्रता करनेसे, लीनता करनेसे स्वानुभूति होती है। और कितनोंको तो उग्रता, उन्होंने कहा है कि तत्क्षण हो जाती है। उसे ऐसी उग्रता अंतर्मुहूर्तमें हो जाती है कि शीघ्र स्वानुभूति हो जाती है।

मुमुक्षु :- किसीको समय भी लगे, लंबा समय लगे।

समाधान :- हाँ, किसीको समय लगे। उसकी उग्रता नहीं है। बाकी भेदज्ञान, कोई भी सूक्ष्म विकल्प अथवा स्थूल विकल्प, सबमें भेदज्ञान वर्तता है। उसे ज्ञायक तो भिन्न है, परन्तु उसे उग्रताकी क्षति है।

मुमुक्षु :- उग्रताकी क्षतिके हिसाबसे निर्विकल्पता पर्यंत पहुँचता नहीं है।

समाधान :- निर्विकल्पता पर्यंत पहुँचा नहीं। परन्तु सम्यग्दर्शन तो तभी कहनेमें आता है, जब स्वानुभूति हो, बादमें जो सहज दशा होती है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। निर्विकल्प हो बादमें।

मुमुक्षु :- उसके पहले तो नाम प्राप्त होता ही नहीं न?

समाधान :- नहीं, उसके पहले नाम प्राप्त नहीं होता। वह तो अभ्यास है, अभ्यास है।

मुमुक्षु :- नाम तो नहीं प्राप्त होता। पूर्ण रूप जबतक न देखे तबतक नाम कैसा? वह तो आंशिक देखा है, पूर्ण स्वरूप कहाँ देखा है? पूर्ण तो निर्विकल्पमें ही देखता है।

समाधान :- निर्विकल्प स्वानुभूति नहीं हुई है, तबतक सम्यग्दर्शन नहीं है। ये तो सविकल्प धारामें भेदज्ञान है, परन्तु पहले थोड़ा और बादमें अधिक, ऐसे नहीं। भेदज्ञान तो हो गया, परन्तु उग्रता नहीं है।

मुमुक्षु :- उग्रता नहीं है। ये तो अस्तित्वका प्रतिभास हो गया। प्रतिभासके जोरमें वह लीनता करेगा।

समाधान :- हाँ, लीनता नहीं करता है और उपयोग बाहर है। उपयोग जो अंतरमें स्थिर होना चाहिये, बारबार उसे लीनता करनेकी क्षति है।

मुमुक्षु :- परन्तु उसे प्रतिभास तो है।

समाधान :- हाँ, प्रतिभास हुआ है। प्रतीति है, दृष्टि है, अमुक प्रकारसे परिणति भी है। अमुक प्रकारसे तो भेदज्ञान है, परन्तु उग्रता नहीं है।

मुमुक्षु :- उग्रता हो तो निर्विकल्पतामें पलट जाय।

समाधान :- तो ही निर्विकल्पता होती है।

मुमुक्षु :- तीव्र लीनता हो तो..

समाधान :- हाँ, तो स्वानुभूति होती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८२

समाधान :- .. चेतन स्वभाव, मेरा स्वभाव ऐसी क्षण-क्षण उसकी लगन लगे, क्षण-क्षण उसका भेदज्ञान, उसकी भावना चालू रखनी। सहज तो बादमें होती है। मैं यह चैतन्य हूँ, यह मैं (नहीं हूँ)। स्वतःसिद्ध चैतन्य एक द्रव्य है। उस द्रव्यमें आनन्द, ज्ञान आदि सब उसमें भरा है। बारबार उसकी पहिचान करनी चाहिये। पहले यथार्थ ज्ञान करे, उसकी यथार्थ श्रद्धा करे फिर उसकी परिणति भिन्न पड़े। यथार्थ प्रतीत पहले अन्दरसे होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- उसकी यथार्थ प्रतीति कैसे करनी कि यह वस्तु यही है?

समाधान :- अंतरमें विचार करके। गुरुदेवने जो मार्ग बताया है, गुरुदेवने जो कहा कि आत्मा भिन्न है, उसका विचार करके, अन्दर तत्त्वका विचार करके यह चैतन्य है वही मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ये चैतन्य स्वभाव, ये ज्ञायक जो अंतरमें अपना अस्तित्व है वही मैं हूँ, परद्रव्य मैं नहीं हूँ। ऐसी उस पर दृष्टि स्थापित करके, उसकी प्रतीति दृढ़ करके फिर उसका भेदज्ञान करे तो उस भेदज्ञान करनेमें उसे बल आता है, दृढ़ता होती है। नहीं तो प्रतीतिके बिना दृढ़ता आती नहीं। इसलिये यथार्थ प्रतीति करनी कि यह चैतन्य है वही मैं हूँ। ये सब पर है। उसका विचार करके, तत्त्वका विचार करके उसका स्वभाव पहिचाने और यथार्थ प्रतीति करनी।

मुमुक्षु :- बहिन! सम्यग्दृष्टि आत्माकी स्थिति उस वक्त कैसी होती है?

समाधान :- उसकी स्थिति कोई अलग ही होती है। उसकी दृष्टि पूरी बदल गयी, उसकी दिशा बदल गयी। उसे अन्दर भेदज्ञानकी धारा सहज होती है। उसे याद नहीं करना पड़ता। जिस क्षण विभाव होता है, उसी क्षण उसे उसका स्वभाव भिन्न भासित होता है। उसकी धारा ही अलग चलती है। उसकी ज्ञायककी परिणति अलग ही चलती है। और उपयोग अंतरमें जाय तो उसे स्वानुभूति होती है। आत्माकी अनुभूति जो जगतसे भिन्न है। जगतमें उसका कोई नमूना या कुछ नहीं है। आत्मा कोई अलग ही है, उसकी स्वानुभूति उसे होती है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, ऐसी उसे आंशिक स्वानुभूति होती है। उसकी दशा पूरी अलग होती है। और बाहर उपयोग हो तो भेदज्ञानकी धारा तो उसे सहज वर्तती है। उसे खाते-पीते, निद्रामें, स्वप्नमें हर वक्त प्रतिक्षण भेदज्ञानकी

धारा सहज वर्तती है। उसकी दशा पूरी अलग होती है। उसके जीवनकी दिशा पलट गयी। अंतरमेंसे दिशा ही पलट गयी होती है।

मुमुक्षु :- उस वक्त उसे कहाँ सुहाता है?

समाधान :- उसे आत्माकी ओर ही सुहाता है, कहीं और नहीं सुहाता। उसकी परिणति आत्माकी ओर ही दौड़ती है। आत्माकी ओर ही उसकी परिणति जाती है। परिणति बाहर अल्परूपसे जाती है, परन्तु उसे पुरुषार्थके बलसे स्वरूप-ओर ही उसकी परिणति दौड़ती है। उसे स्वरूपमें ही रुचता है, कहीं और उसे रुचता नहीं। उसकी सब धारा स्वरूप-ओर ही जाती है।

अल्प अस्थिरता है तो उसका पुरुषार्थ सहजपने अपनी ओर बहता है, ज्ञायककी ओर ही मुड़ता है। आंशिक शान्ति-समाधि और ज्ञायकताकी धारा उसकी चालू ही रहती है। फिर जैसे उसकी उग्रता होती जाय, वैसे उसे स्वानुभूति बढ़ती जाती है। और बादमें उसकी भूमिका बदलती है। छठवां-सातवां गुणस्थान मुनिदशा आये तो क्षण-क्षणमें स्वरूपमें लीनता होती है।

मुमुक्षु :- स्वकी ओर आनेके लिये पुरुषार्थ कैसे करना?

समाधान :- अपनी ओर मैं चैतन्य हूँ और उसका रस बाहरका कम हो जाता है। स्वरूपकी रुचि और स्वरूप-ओरका रस बढ जाय तो बाहरकी परिणति कम हो जाय। उसका भेदज्ञान करे कि ये जो बाहर जाता है, वह विभाव है, मेरा स्वभाव ही नहीं है। वह मुझे सुखरूप नहीं है, वह आकुलतारूप है। सुख और शान्ति हो तो चैतन्यमें ही है। इसलिये चैतन्य-ओरकी ऐसी दृढ़ प्रतीति हो, उस ओर दृष्टि जाय, उसकी दिशा अमुक प्रकारसे भावनारूप भी बदले तो उसकी बाहर जो परिणति जाती है वह कम हो जाय। ये सब आकुलतारूप है, शान्ति और सुखरूप हो तो मेरा आत्मा ही है। ऐसी उसे यदि प्रतीति, रुचि हो तो अपनी ओर मुडे।

अनादिअनन्त निर्मल स्वभाव हूँ। ये सब जो विभाव दिखता है वह सब पर्याय है। अन्दर मूल स्वभावमें नहीं है। स्फटिकमें जो रंग-बेरंग दिखते हैं, गुलाबी, काला, हरा, वह उसके मूलमें नहीं है। वैसे ये जो विभावके रंग दिखाई देते हैं, वह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो निर्मल स्वभाव आत्मा हूँ। ऐसा अंतरमें ज्ञान, ऐसी प्रतीति, ऐसी दृष्टि हो तो अपनी ओर परिणति मुड़े। उतनी दृढ़ता हो तो।

मुमुक्षु :- बारंबार अन्दर यह विचार करते रहना?

समाधान :- बारंबार करना। और विचारमें दृढ़ता न रहे तो उस प्रकारका वांचन करना, उस प्रकारका विचार करना। एक ही जगह विचार न रहे तो उसे दृढ़ रखनेके लिये उस प्रकारका वांचन गुरुदेवने कहा है, शास्त्रका अभ्यास करना, अंतरमें विचार

करना। परन्तु एक चैतन्य कैसे पहचानमें आये और उसका भेदज्ञान कैसे हो, ध्येय वह एक ही होना चाहिये। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा (होनी चाहिये)। आत्मा एक महिमावंत कोई अलग वस्तु है। ऐसी महिमापूर्वक सब विचार वांचन करे।

मुमुक्षु :- वृत्ति परमें जाती है है।

समाधान :- अनादिका अभ्यास है और उस प्रकारका अभ्यास दृढ़ हो गया है। स्वभाव अपना है, सहज है। सरल है, लेकिन अभ्यास दूसरा-विभावका हो गया है। इसलिये उस ओर बाहरमें अनादिसे दौड़ जाता है। उस संस्कारको अनादिसे दृढ़ कर लिया है। इसलिये अपनी ओरके संस्कारको दृढ़ करे, बारंबार उसे दृढ़ करे तो विभाव ओरके संस्कार कम हो जाय।

कितने ही जीवोंको अंतरमें रुचि प्रगट हुयी। किसीको दिशा मालूम नहीं थी। गुरुदेवने दिशा बतायी है। सब कहाँ-के-कहाँ बाहर क्रियामें पड़े थे। थोड़ा बाहरका कर ले, थोड़ा उपवास कर ले, थोडा प्रतिक्रमण, सामायिक कर ले तो धर्म हो गया, ऐसेमें पड़े थे। गुरुदेवने कितनी गहरी दृष्टि बतायी।

ये विभावस्वभाव, शुभभाव भी पुण्यबन्धका कारण है। अन्दर तू अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि कर। गुरुदेवने तो कितनी सूक्ष्म गहरी बात बता दी है। बीचमें शुभभाव आये, परन्तु तेरा स्वभाव तो उससे निराला है। गुणका ज्ञानका कर, परन्तु दृष्टि तो एक अखण्ड पर स्थापित कर। गुरुदेवने सबकी दृष्टिकी दिशा पूरी बदल दी। करना तो स्वयंको है।

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्रका मुझे आदर है और सबको साथमें रखता हूँ। उनके दर्शन, उनकी वाणी आदि सब मेरे साथ हो। मैं जा रहा हूँ मेरे पुरुषार्थसे। जिनेन्द्र देवकी महिमा, भगवानकी, गुरुकी, शास्त्रकी। भगवानकी महिमा, जिनेन्द्र देवकी महिमा तो करने जैसी है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव और आपके प्रतापसे। ऐसी माँ कहीं और नहीं होती।

समाधान :- चैतन्यका अभ्यास बढ़ जाय, उसकी महिमा बढ जाय तो बाहरका रस कम हो जाय।

मुमुक्षु :- ... करनेके लिये मार्गदर्शन तो चाहिये। अपनेआप तो होता नहीं।

समाधान :- उसके लिये सत्संग हो, गुरु हो, उनका अपूर्व उपदेश हो। परदेशमें हो वहाँ समझनेका कम होता है। न हो वहाँ तो अपनेआप ही समझना पड़ता है। बाकी सत्संग, सच्चे गुरु, उनका अपूर्व उपदेश, वह सब उसके साधन हैं।

मुमुक्षु :- लंडनमें..

समाधान :- मार्ग जहाँ प्राप्त हो वहाँ...

मुमुक्षु :- कुटुम्ब प्रतिकी सब फ़र्ज हो तो भी चैतन्य स्वभावमें स्वयं आ सकता है?

समाधान :- पर जीवोंने कहाँ स्वयंको प्रतिबन्धमें रखा है? अपने रागके कारण रुकता है। कर सकता है। अंतरमें अपने परिणामको कोई रोक नहीं सकता। अंतरमेंसे आत्मा अपूर्व है, उसका रस तोड़ दे, सब करके स्वभावको पहिचाननेका प्रयत्न करे, विचार करे, वांचन करे उसमें रोक नहीं सकता, कोई रोकता नहीं। बाहरका कुटुम्ब कोई रोकता नहीं।

ये तो अभी समझनेकी बात है, (आगे तो) भेदज्ञान करनेकी बात है। उसकी लगन लगानेकी बात है। मुनि बननेकी बात अभी आगे है, अभी तो स्वानुभूति करके भवका अभाव हो वह बात है, वह तो हो सकता है। कुटुम्बमें पड़ा हो तो भी हो सकता है। अंतरका रस तोड़ना अपने हाथकी बात है। बाह्य संयोग उसे रोकते नहीं।

... एकत्वबुद्धि करके बाह्य कार्योंमें अपना कर्तव्य मान-मानकर स्वयं रचापचा रहे तो स्वयं रुकता है, कोई रोकता नहीं। स्वयं रस कम करके विरक्ति करके अंतरमें स्वयंका कर सकता है। राजाओं भी गृहस्थाश्रममें रहकर अन्दरसे भिन्न रहकर आत्माका कर सकते थे, आत्माकी स्वानुभूति कर सकते थे। सहज ही छूट जाते थे। बाहरके कार्य उसे रोकते नहीं थे, अंतरसे निर्लेप रहते थे।

... सामग्री कितनी हो तो भी अंतरसे तो भिन्न ही रहते थे। मेरा आत्मा वही मुझे सर्वस्व है। ... अंतरसे वांचन करना, विचार करना, ये सब तो...

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- वह कोई कर्मका उदय नहीं है। स्वयं करे तो होता है। संसारमें स्वयं ही रचापचा है और तोड़े तो स्वयं ही छोड़ सकता है। अंतरमें एकत्वबुद्धि करके, रस करके यह मुझे करना चाहिये, यह मुझे होना चाहिये और ये इतना कर लेना चाहिये, इतना यह चाहिये, इतना बाहरका चाहिये, स्वयं ही उसमें रुका है। कोई रोकता नहीं। उसे उदय नहीं रोकता है। स्वयं पुरुषार्थ करके बदल सकता है। (उदय) उसे रोकता नहीं। उदय रोकता हो तो कोई पुरुषार्थ कर ही न सके। गृहस्थाश्रममें रहकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, स्वानुभूति करे, भिन्न रहते थे, तो कोई कर ही न सके। उदयका कारण नहीं है। स्वयंका कारण है। अपनी भूलसे रखड़ा है और स्वयं छूट सकता है।

अनन्त कालमें सब मिला है। एक सम्यग्दर्शन जीवने प्राप्त नहीं किया है। वह अपूर्व है। अनादि कालमें भगवान नहीं मिले हैं। भगवान मिले तो स्वयंने पहिचाना नहीं है। वह दोनों अपूर्व हैं, दूसरा कुछ जगतमें अपूर्व नहीं है।

मुमुक्षु :- .. अपने कर्मका उदय आये..

समाधान :- उदयसे समझमें नहीं आता, परन्तु स्वयं पुरुषार्थ करे। उसका बारंबार

अभ्यास करे। जबतक समझमें न आये, जबतक प्रगट न हो, तबतक उसका अभ्यास करता ही रहे। मार्ग तो एक ही है-चैतन्यको पहिचानना, भेदज्ञान करना, उसकी-निर्विकल्प तत्त्वकी स्वानुभूति जबतक न हो, तबतक उसका अभ्यास करता ही रहे, उसमें थके नहीं। उसका विचार करे, उसका वांचन करे, बारंबार-बारंबार करता ही रहे, जबतक न हो तबतक।

मुमुक्षु :- इतने सारे पंथ और भिन्न-भिन्न संप्रदाय हैं, उसमें ऐसा है क्या कि अमुक ही लेना चाहिये? अमुकका ही वांचन करना चाहिये और दूसरेका नहीं करना चाहिये, ऐसा है उसमें?

समाधान :- सब संप्रदाय है, परन्तु मार्ग तो एक ही है। स्वानुभूतिका पंथ आत्माका जो प्रगट करनेका, आत्माका जो स्वभाव है, आत्माका सुख है उसे प्रगट करनेका पंथ तो एक ही है। ज्यादा पंथ हो, मतभेद होते हैं, उसमें सत्य क्या है वह स्वयंको नक्की करना पड़ता है। जिसे आत्माका करना है, जिसे जिज्ञासा जागी है, जिसे आत्माका सुख प्राप्त करना है, स्वयं ही नक्की करे कि किस मार्गसे आत्माका स्वरूप प्राप्त होता है? वह स्वयं ही नक्की करे। कौन-से गुरु और कौन-सा पंथ सत्य है, स्वयं ही नक्की करके उस मार्ग पर जाय। उसके लिये ज्यादा पंथ...

कोई कहाँ रुक गया होता है, कोई कहाँ रुक गया होता है। कोई पढनेमें, कोई रटनेमें, कोई त्याग करनेमें, कोई कहाँ-कोई कहाँ। परन्तु अंतरकी दृष्टि क्या? अंतरमें सत्य मार्ग क्या है, वह मार्ग तो एक ही होता है। स्वयंको ही उस ओर मुड़ना है, कोई कर नहीं देता। स्वतंत्र है, रखड़नेमें स्वयं स्वतंत्र और प्रगट करनेमें भी स्वयं स्वतंत्र है। स्वयं ही नक्की कर ले। जिसे जिज्ञासा जागे वह सत्य ग्रहण अमुक प्रकारसे कर ही लेता है कि यह मार्ग सच्चा है। उसे प्रगट भले बादमें हो, परन्तु पहले नक्की करे कि सत्य तो यही है। ये गुरु कहते हैं और ये गुरु जो मार्ग बताते हैं, वह सच्चा है। ऐसा स्वयं नक्की कर सकता है।

मुमुक्षु :- स्वाध्याय करनेके बाद अथवा अमुक उसका भाव करनेके बाद उसका कोई नाप आता है कि कहाँ तक उसका ज्ञान हुआ है?

समाधान :- जबतक स्वयं यथार्थ समझता नहीं है, (तबतक) स्वाध्या करता है, उसका कोई नाप नहीं होता। अंतरमें प्रयोजनभूत ज्ञान होना चाहिये। आत्मा कौन है? उसका स्वभाव क्या है? उसमें गुण क्या है? उसकी पर्याय क्या? उसका विभाव क्या? ये पुद्गल क्या? चैतन्य क्या? वह सब समझनेके लिये शास्त्रका अभ्यास होता है। अंतरसे यथार्थ समझन हो, समझनेके लिये है। उसका नाप नहीं होता कि इतना पढ़ना चाहिये और इतना धोखना चाहिये। प्रयोजनभूत तत्त्वकी पहिचान होनी चाहिये।

... आगे नहीं जाय तबतक शास्त्र अभ्यास, उसका चिंतवन, मनन होता ही है। इतना पढना ही चाहिये या इतना धोखना चाहिये, ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं है। अंतरसे समझना चाहिये। थोड़ा (प्रयोजनभूत) समझे तो भी अंतरसे प्रगट हो। उसे थोड़ा आता हो। शिवभूति मुनि थे, उन्हें कुछ याद नहीं रहता था। आत्मा भिन्न और यह विभाव भिन्न (है)। इतनी समझ हुयी तो अंतरमें ऊतर गये।

मुमुक्षु :- सबमेंसे एक आत्माको भिन्न कर लेना..

समाधान :- मा-रुष और मा-तुष कहा तो उतना भी याद नहीं रहा। गुरुदेवने क्या कहा, राग करना नहीं, द्वेष करना नहीं, वह याद नहीं रहा। बाई दाल धो रही थी। मेरे गुरुने कहा, ये दाल भिन्न, छिलका भिन्न। आत्मा भिन्न और विभावभाव भिन्न। ऐसा भाव ग्रहण कर लिया। अन्दरसे भेदज्ञान किया, आत्मा भिन्न और यह भिन्न है। ऐसा करके अंतरमेंसे (ग्रहण कर लिया)। मूल प्रयोजनभूत ग्रहण करना है।

मुमुक्षु :- ऐसा कुछ है कि मनुष्यको बचपनमें अथवा छोटी उम्रमें कम ख्याल आये और बड़ी उम्र हो तब उसे ज्यादा भाव हो?

समाधान :- ऐसा कोई नियम नहीं होता है। ऊलटा छोटी उम्रमें बहुतोंको ज्यादा होता है। किसीको बड़ी उम्रमें होता है, उसे उम्रके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उम्रके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आत्मा स्वतंत्र है।

जबतक न हो तबतक अभ्यास करते ही रहना। जिसे जो लगन लगी वह छूटती नहीं। लौकिकमें कोई रस हो तो उसके पीछे लगकर वह काम करता ही रहता है, न हो तो भी। कुछ भी हो, बाहरकी कोई कला सीखनी हो, कुछ सीखना हो तो वह करता ही रहता है, जबतक न आये तबतक। वैसे इसके पीछे पड़कर उसका अभ्यास करता ही रहे। उतना विश्वास और उतनी प्रतीति होनी चाहिये कि इसी मार्गसे आत्मा प्रगट होनेवाला है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८३

समाधान :- .. स्वभाव-ओरकी महिमा आनी चाहिये। चैतन्यतत्त्व ही अलग है, यह जड़ तत्त्व भिन्न है। दोनों भिन्न हैं, उसका भेदज्ञान कर। विभावस्वभावसे भिन्न है। वह निज स्वभाव नहीं है। अपना स्वभाव वर्तमान..

भेदज्ञानका अभ्यास करे तो हो। परन्तु वह अभ्यास कब हो? कि अंतरमें उतनी लगन लगे तो हो। उसके लिये विचार, वांचन, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा (होती है)। चैतन्य कोई अपूर्व तत्त्व, अनुपम तत्त्व है। उसकी महिमा आये तो उस ओर जाय। गुरुदेवने तो कोई अपूर्व मार्ग बताया, इस पंचमकालमें। न हो तबतक उसका अभ्यास करते रहना। बारंबार चैतन्यको पहिचाननेके लिये।

... दृष्टिमें रुका है। अंतर दृष्टि करके अंतरमें परिणति प्रगट करने जैसी है। अंतरसे स्वभावको पीछाने। चैतन्य ज्ञानस्वभाव सो मैं हूँ। उसके अलावा कोई वस्तु मेरी नहीं है। कोई परभाव मैं नहीं हूँ। अपने स्वभावको पीछाने। अंतरमेंसे भेदज्ञान करे तो होता है, तो मुक्तिका मार्ग प्रगट हो।

द्रव्य पर दृष्टि करे अंतरमेंसे तो मार्ग प्रगट होता है। अनन्त काल गया तो भी ज्योंका त्यों है। द्रव्यका कहीं नाश नहीं हुआ है। चैतन्यतत्त्व तो शाश्वत है। अनन्त शरीर धारण किये, परन्तु तत्त्व तो ज्योंका त्यों शाश्वत है। उस शाश्वत तत्त्वको अंतरसे पीछाने तो होता है।

.. उदयमें गया, .. अनन्त-अनन्त भव किये तो भी तत्त्व तो वैसाका वैसा शाश्वत है। अपूर्व तत्त्व है उसे पीछाने। बारंबार उसका अभ्यास करे तो होता है। उसकी जरूरत महेसूस हो, सारभूत वह है, सार ही वह है, ऐसी अंतरसे प्रतीति आये तो होता है। पुरुषार्थ करना अपने हाथकी बात है। कोई कर नहीं देता। अनन्त काल गया तो स्वयं अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे और विभावकी रुचिसे रखड़ा है। और स्वयं स्वयंके पुरुषार्थसे पलटता है। कोई कर नहीं देता।

देव-गुरु-शास्त्र निमित्त होते हैं। भगवानका अपूर्व निमित्त हो, गुरुदेवका निमित्त हो, परन्तु उपादान तो स्वयंको ही करना पडे, कोई कर नहीं देता। पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना है। अंतरमें स्वयंको ही परिवर्तन करना है। बाह्य कार्यमें जरूरत लगे तो

वहँ चाहे जैसे भी, कड़ी महेनत करके करता है। यहाँ इसकी जरूरत लगे तो स्वयं ही उसमें पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। उसे कोई रोकता नहीं है। स्वयं स्वतंत्र द्रव्य है। स्वतंत्र है। तू अपनेआप पुरुषार्थ करके कर तो होता है।

मोक्ष प्रगट करनेवाला भी तू और परिभ्रमण करनेवाला भी तू स्वयं ही है। ..

मुमुक्षु :- उनकी भावनासे ही हुआ।

समाधान :- उनकी भावनासे ही सब हुआ। योग हुआ, ये सब.. स्पष्ट कर दिया है। किस मार्ग पर जाना है, वह सबको बता दिया है, कहाँ जाना है वह। करनेका स्वयंको बाकी रहता है। ऐसी आत्माके प्रति रुचि और भक्ति आये तो वह हो। देव-गुरु-शास्त्रकी और अंतरमें आत्माकी।

मुमुक्षु :- वास्तविक रूपसे जो महिमा आनी चाहिये, वह नहीं आती। सुने, पढे, विचार करे तो ऐसा ही लगे कि यही करने जैसा है। फिर भी अंतरमेंसे जो लगन लगनी चाहिये, वह नहीं हो रही है।

समाधान :- उसे स्वयंको पुरुषार्थ करना है। स्वयंको करना चाहिये। उतनी अपूर्वता, उतनी महिमा, अंतरमेंसे स्वयं नक्की करके उसकी दृढ़ता करके स्वयंको करना है। पुरुषार्थ स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- आपको गुरुदेवकी बात सुनकर कौन-सी बातसे एकदम पुरुषार्थ करनेकी प्रेरणा मिली? आपको गुरुदेवकी बातमें किसी बातकी अपूर्वता लगी?

समाधान :- गुरुदेव कहते थे न कि कुछ अलग ही करना है अंतरमें। प्रथमसे ही आत्माका कुछ करना है, ऐसा अंतरमें था ही। और गुरुदेवने मार्ग बताया कि अंतरमें मार्ग है।

मुमुक्षु :- आपको बचपनसे ऐसा होता था कि मुझे आत्माका करना है?

समाधान :- बचपनसे ही होता है। कुछ मालूम नहीं था, परन्तु कुछ करना है (ऐसा होता था)। त्याग कर देना, सब छोड़ देना ऐसा होता था। मार्ग क्या है, वह मालूम नहीं था। मार्ग तो गुरुदेवने बताया। गुरुदेव पहलेसे कहते थे, अंतरमें आत्मा है। मनसे अतीत, वचनसे अतीत, कायासे, सर्वसे अतीत अन्दर आत्मा विराजता है। अंतरमें आत्मा कोई अलग है, ऐसा पहलेसे उनके व्याख्यानमें थोड़ा-थोड़ा आता था। पहलेसे।

इस मनुष्य जीवनमें कुछ कर लेना है। बरसों निकल गये ऐसा होता था। १८ साल पूरे हो गये, २० वर्ष चले गये, आहा..! इतने साल बीतनमें कहाँ देर लगेगी? जल्दी कर लेना है, ऐसा होता था। उतने साल हो गये वह तो बहुत लगता था कि इतने साल बीत गये, इतने साल बीत गये। .. स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- अभी वर्तमानमें तो हमारी कचास बहुत है।

समाधान :- अंतरमेंसे ऐसी भावना हो कि मुझे तैयारी ही होना है और मुझे आत्माका (हित) करना ही है। वह भले पुरुषार्थ न कर सके परन्तु स्वयं भावनाकी तैयारी, रुचिकी तैयारी तो स्वयंकी होनी ही चाहिये। मुझे यह करना ही है, ऐसी जिज्ञासा, ऐसी रुचि, ऐसी दृढ़ता, स्वयंको अंतरसे ऐसा होना चाहिये। भले पुरुषार्थ वह कर न सके, उतना अंतरसे विचार या उतना चिंतवन या स्वयं अंतरमें स्वभावको पीछाननेका उतना कर न सके, लेकिन उसकी भावना तो तीव्र होनी चाहिये।

भावना होनी चाहिये कि मुझे यह करना ही है। ये देव-गुरु-शास्त्र बता रहे हैं कि आत्मा कोई अपूर्व है और वह अपूर्वता मुझे प्रगट करनी है। वह अपूर्व क्या है, उसकी भावना, जिज्ञासा, आत्मदेवके दर्शन कैसे हो, उसकी भावना और जिज्ञासा, ऐसी जिज्ञासा तो स्वयंको होनी चाहिये। दूसरी तैयारी भले वह पुरुषार्थ न कर सके, आगे न बढ सके परन्तु उसकी भावना, लगन तो स्वयंको होनी चाहिये। तो वह पहुँच सकता है। दूसरी सब लगन, उसकी रुचि कम होकर आत्मा-ओरकी रुचि गहराईसे यदि हो तो वह पहुँच सकात है।

आता है न कि '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता**'। प्रीतिसे यदि इस तत्त्वकी बात भी सुनी है तो वह भावि निर्वाण भाजनम-भविष्यमें निर्वाणका भाजन होता है। ऐसी तत्त्वकी बात अंतरसे रुचिपूर्वक कोई अपूर्व भावसे सुनी हो तो वह भावि निर्वाण भाजनम्। इसलिये उसे अंतरमेंसे रुचि प्रगट होनी चाहिये। फिर वर्तमान पुरुषार्थ (करके) उतना आगे चल नहीं सकता हो, भेदज्ञान करके ज्ञाताधारा प्रगट करनी, स्वानुभूति करनी उसका पुरुषार्थ चलता न हो, परन्तु भावना तो.. अपूर्वता उसे अंतरमेंसे लगनी चाहिये कि ये कुछ अपूर्व है। ये बाहरका सब कुछ अपूर्व नहीं है। ये अंतरमें आत्मा है वही अपूर्व और आत्माका स्वभाव और आत्मा अनुपम है। जो देव-गुरु-शास्त्र बता रहे हैं, वही करने जैसा है और वे कुछ अलग ही बताते हैं और वही आदरणयी है, ऐसा अंतरमेंसे स्वयंको रुचि और प्रीति तो होनी चाहिये। तो भावि निर्वाण भाजनं। भविष्यमें निर्वाणका भाजन हो।

निमित्त प्रबल हो, परन्तु स्वयंकी रुचि उतनी जागृत (हो), स्वयंकी उतनी रुचि होनी चाहिये कि मुझे यह चाहिये। दूसरा कुछ नहीं चाहिये। मुझे यह एक आत्मा ही चाहिये। दूसरा विभावका रस टूट गया हो। वह छोड़ नहीं सकता है, परन्तु अन्दरसे रुचि आत्माकी लगनी चाहिये। आचार्यदेव कहते हैं कि प्रीतिसे उसकी वार्ता भी, उसका श्रवण भी प्रीतिपूर्वक अपूर्व भावसे किया है तो वह भविष्यमें निर्वाणका भाजन है। तत्त्वकी उतनी रसिकता अंतरसे होनी चाहिये।

समाधान :- .. कोई आनन्द आये। जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र जो बता रहे हैं, वह साधना, वह साधकभाव, साध्य स्वरूप आत्मा, अनादिअनन्त तत्त्व चैतन्य तत्त्व वह सब बातें, साध्य-साधककी बात, उन सब बातोंमें कुछ अपूर्वता लगे और शास्त्रमें जो आता है उस बातमें उसे कुछ चमत्कार जैसा लगे कि ये कुछ अलग है, ऐसी अपूर्वता लगनी तो वह भावि निर्वाणका भाजन है, ऐसा शास्त्रमें आता है।

जिसे जिसकी प्रीति लगे, रुचि लगे उस ओर उसका पुरुषार्थ मुडे बिना रहता नहीं। फिर उसे काल लगे वह अलग बात है। परन्तु अंतरमें उसकी रुचि उर ओर जाती है तो अवश्य उस ओर मुडे रहेगा नहीं। (विभावभाव आये) परन्तु वह आदरणीय नहीं है। जो देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं कि शुभभाव भी तेरा स्वरूप नहीं है। उससे भी तू भिन्न, तू निर्विकल्प तत्त्व है। यह शुभभाव भी अनन्त बार बहुत बार किया। परन्तु उससे कोई मुक्ति नहीं है। तू उसका भेदज्ञान कर। उससे भी तू भिन्न है। ऐसी बातमें जिसे रुचि लगे, अपूर्वता लगे तो वह तत्त्वकी प्रीति है।

आत्मा कोई अंतरमें (अपूर्व है)। बाह्य प्रवृत्ति हो उससे आत्मा, शुभभावसे भी उसका स्वरूप भिन्न है। उस बातकी उसे रुचि लगे। भले शुभभावना उसे आये, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये, शुभभावमें है इसलिये, वह अशुभमें नहीं जाता। शुभभाव आये लेकिन उसे आदरणीय एक निर्विकल्प तत्त्व ही लगे। शुभभावकी रुचि नहीं होती। वह अनन्त बार बहुत बार किया, द्रव्यलिंगी मुनि हुआ, सब हुआ लेकिन उसे शुभभावमे रुचि अंतरमें रह जाती है। महाव्रतादि शुभभावकी अंतरमें रुचि रहती है कि यह ठीक है, यह प्रवृत्ति ठीक है, ये शुभभाव ठीक है। ऐसी अन्दर मीठास रह जाती है।

जो गुरु कहते हैं, जो देव कहते हैं और तत्त्वका स्वरूप ही ऐसा है। ऐसे स्वयं बुद्धिसे विचार करके नक्की करे कि ये सब जो भाव हैं, उस भावसे भी मैं भिन्न हूँ। जैसे सिद्ध भगवान निर्विकल्प तत्त्व हैं, उन्हें किसी भी प्रकारके विकल्पकी आकुलता नहीं है। एकदम निर्विकल्प तत्त्व। आत्मामें आनन्द, आत्मामें ज्ञान। बस। एक निवृत्त परिणामरूप जो है और स्वरूपमें परिणति है। और परसे निवृत्ति है। ऐसे जो सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही आत्माका स्वरूप है। और वही आदरणीय है, दूसरा कुछ आदरणीय नहीं है। मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसी उसे रुचि और प्रीति अंतरमें होनी चाहिये।

कहीं-कहीं रुक गया है। बाह्य क्रियामें, कुछ शुभभावनामें, ऊँचे-ऊँचे शुभ विकल्प आये कि मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, ऐसे गुणभेद पड़े, वह विकल्प आये, वह विकल्प बीचमें आते तो हैं, परन्तु मेरा स्वरूप नहीं है, मूल स्वरूप नहीं है। मैं तो अभेद तत्त्व (हूँ)। ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुणभेदका विकल्प बीचमें आता है। सब गुण हैं आत्मामें, परन्तु आत्मा तो अखण्ड है, ऐसी उसे रुचि लगे। भले गहराईसे कम

समझमें आये, परन्तु उसे अंतरसे रुचि, प्रीति उस बातकी आये। .. होनी चाहिये, तो वह भावि निर्वाण भाजन है। भले समझे कम, लेकिन उस बातकी रुचि और प्रीति लगनी चाहिये। ऐसे निर्विकल्प तत्त्वकी कि जिसमें किसी भी प्रकारकी क्रियाकी प्रवृत्ति नहीं है, जिसमें कोई विकल्पकी जाल नहीं है। ऊच्चसे ऊच्च शुभभाव भी आत्माका स्वरूप नहीं है। ऐसी बातकी अंतरसे प्रीति लगनी चाहिये। प्रीति अपनी होती है। फिर कर न सके, उसका भेदज्ञान न कर सके, पुरुषार्थ न चले, भावना हो परन्तु पुरुषार्थ चले नहीं, परन्तु उसकी रुचि और प्रीति कोई अपूर्व हो तो वह भावि निर्वाण भाजन है। उसके उपादानमें उतना तो होना चाहिये, अपनी रुचि उस ओरकी होनी चाहिये।

लौकिकका सब गौण होकर आत्मा-ओरकी रुचि उसे मुख्य होनी चाहिये। आत्माकी बात हो, जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र उसे मुख्य होने चाहिये। .. परिणाम स्वरूप आत्मा.. सब छूट जाय तो भी आत्मामें-से कुछ प्रगट होता है, आत्मा लबालब भरा है। वह कहीं शून्य नहीं है। उसमें तो अनन्त गुण और अनन्त पर्यायसे भरा हुआ आत्मा-शुद्धात्मा उसमेंसे प्रगट होता है। उस बातका विश्वास, वैसी रुचि अंतरमेंसे उसे आये।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ, वह आया है। स्वरूपकी परिणति और विभावकी निवृत्ति हो जाय। एक आत्मा पर दृष्टि करे तो हर जगह पहुँच जाता है। फिर कहीं भिन्न-भिन्न रूपसे पहुँचना नहीं पड़ेगा। भिन्न-भिन्न विचार, ज्ञान, दर्शन, चारित्र भिन्न-भिन्न साधना नहीं करनी पड़ेगी, एक दृष्टि आत्मा पर रख तो सर्व गुण, सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन (होता है)। एक आत्मा पर दृष्टि करेगा तो तू हर जगह पहुँच जायगा। तेरे सर्व गुण और पर्याय प्रगट हो जायेंगे। परन्तु उस ओर दृष्टि स्थापित कर। निर्वृत्तस्वरूप आत्मा है, वह निर्विकल्प तत्त्व है।

मुमुक्षु :- ..एक आत्माको देखेगा तो..

समाधान :- हाँ, सब देख लेगा। एक आत्मा पर दृष्टि कर। मार्ग एक ही है। ज्ञानकी निर्मलताके सब आये, परन्तु एक मुख्य आत्माको ग्रहण किया तो उसमें सब आ जाता है। जो अन्दर पड़ा है, वह सब अन्दरसे अनन्त गुण और पर्यायें उछलेगी। हर जगह मैं चैतन्य, मैं चैतन्य। बाकी सब मुझसे भिन्न है, मैं एक चैतन्य हूँ। शरीर सो मैं नहीं, ये विभाव सो मैं नहीं, मैं एक चैतन्य हूँ। एक चैतन्य भगवान हूँ। जैसे महिमावंत भगवान हैं, वैसे मैं भी एक महिमावंत (तत्त्व हूँ)। गुरुदेव उसे आत्मभगवान कहते थे।

मुमुक्षु :- .. तो भी अमुक विचार करते हैं तब ऐसा लगता है कि इसमेंसे कब और कैसे पहुँचेंगे? इतना लम्बा-लम्बा लगता है, एकदम दुष्कर लगता है।

समाधान :- अनादिका अभ्यास बाहरका हो रहा है। अंतर दृष्टि .. पड़ी है। रुचि और भावना करे तो हो। अंतरमें दृष्टि जाय। दृष्टि अनादिसे बाहर है। ये सब बाहरका दिखता है, अंतरमें दिखता नहीं। ये विभाव दिखे, यह दिखे, बाहरका दिखे। लेकिन अंतर स्वकी ओर देखता नहीं। अंतर सूक्ष्म उपयोग करे कि अन्दर जो जाननेवाला है वह मैं हूँ। यह सब कौन जानता है? जाननेवाला मैं हूँ। जाननहार पर दृष्टि कर।

जिसे जाना वह नहीं, परन्तु जाननेवाला मैं स्वयं जाननेवाला हूँ। वह जानना कहीं बाहरसे नहीं आता, अंतर स्वयं जाननेवाला एक ज्ञायकतत्त्व है। उस ज्ञायकतत्त्वको तू देख। उस ज्ञायकमें सूक्ष्म दृष्टि करके देख, वह ज्ञायकता उसमें सबमें ज्ञायकता ही भरी है। बाहरका अनादिका अभ्यास है न, इसलिये वह सब ऐसे ही अनादिके प्रवाह अनुसार चलता रहता है।

भूतकालका जो बीत गया, वह सब याद (आता है)। लेकिन वह याद करनेवाला कौन है? अन्दर एक जाननेवाला तत्त्व है। वह जाननेवाला है वह अनादिअनन्त शाश्वत है। वह जाननेवालेका एक गुण ऐसा मुख्य है कि जाननेवाला ज्ञात हो रहा है, लेकिन उसमें आनन्दादि अनन्त गुण हैं, वह बाहर उपयोग है इसलिये उसे अनुभवमें (नहीं आ रहा है)। उपयोग बाहर रुक गया है। अंतरमें देखे तो वह जाननेवाला ही है। उस जाननेवालेको पीछान ले। उस जाननेवालेकी ओर उपयोग कर, दृष्टि दे। तो यह सब भिन्न ही है।

मुमुक्षु :- नूतन वर्षके दिन प्रातः कालमें आप स्वप्नमें आये थे और आपने ऐसा कहा कि, ज्ञानदृष्टिसे सब देखो। इतना आनन्द हो गया, नूतन वर्षके दिन, माताजी!

समाधान :- ज्ञायकदृष्टिसे देखना, ज्ञायकको देख। बस, जाननेवाला ज्ञाता बन जा। ये सब बाहरका... तू जाननेवाला अन्दर है, उस जाननेवालेको देख ले। ज्ञानदृष्टि कर, ज्ञानमें दृष्टि कर, ज्ञायकको देख ले। हर जगह ज्ञायक ही है। उस ज्ञायकमें सब भरा है। ज्ञायक पूरा अनन्त गुणोंसे भरपूर है। उसमें शुद्धात्माकी अनन्त शुद्ध पर्याय (पड़ी हैं)। परन्तु वह अंतरमें दृष्टि करे तो वह पर्यायें प्रगट हो। परन्तु पहले तो उसे लक्षणसे पहिचान ले कि ये जाननेवाला सो मैं। उस जाननेवाले पर विश्वास कर कि ये जाननेवाला है वही मैं हूँ। ये दूसरा सब कुछ मैं नहीं हूँ। ये जाननेवाला ही मैं हूँ। वह द्रव्य, वह गुण और उसमें जो परिणति हो वह पर्याय, बस! वह जाननेवाला है वही मैं हूँ। उसका विश्वास कर, उसकी प्रतीत कर तो उसमें सब आ जायगा। जाननेवालेको देख। जाननेवालेको देखा नहीं है। बाहरका ज्यादा जाननेकी आवश्यकता नहीं है, एक ज्ञायकको देख। ... अपना है। स्वयं ज्ञायक ही है, उस ज्ञायकको पीछानना है। मूल मन्त्र यही है। फिर उसे अलग-अलग प्रकारसे विचारना है। मूल तो उसका स्वभाव

ग्रहण कर लेना है। .. उसमें स्वानुभूति समायी है। उसमें ही सब समाया है। एक ज्ञायकको तू देख, उसके स्वभाव पर दृष्टि कर। उसमें भेदज्ञान आ जाता है। अपना अस्तित्व ग्रहण करे इसलिये अन्यसे भिन्न पड़ गया।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८४

मुमुक्षु :- आप ऐसा कहते हो न, जीवनमें देव-गुरु-शास्त्र वास्तवमें नहीं मिले हैं। एस समय भी दर्शन नहीं किये हैं।

समाधान :- वह तो शास्त्रमें ही आता है कि सब प्राप्त हो चूका है इस संसारमें। परन्तु एक सम्यग्दर्शन अपूर्व है उसकी प्राप्ति नहीं हुयी है। और एक जिनेन्द्र देव नहीं मिले हैं। और मिले तो स्वयंने पहिचाना नहीं है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको स्वयंने पीछाना नहीं है और अंतरमें एक अपूर्व सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है। बाकी जगतमें सब प्राप्त हो चूका है। कोई भी पदवी अपूर्व नहीं है। कोई देवलोककी पदवी, कोई राजाकी पदवी, कोई भी पदवी अपूर्व नहीं है। एक अपूर्व जगतमें हो तो एक सम्यग्दर्शन, जो स्वानुभूति है वह अपूर्व है और एक जिनेन्द्र देव, जिन्होंने सर्वोत्कृष्ट रूपसे आत्मा प्राप्त किया और स्वानुभूति प्रगट करके हमेंशा शाश्वत आत्मामें विराजमान हो गये, ऐसे जिनेन्द्र देव, जो पवित्रता और सर्व प्रकारसे पूर्ण हैं, ऐसे जिनेन्द्र देव नहीं मिले हैं और एक आत्मा नहीं मिला है। जगतमें वह अपूर्व है, वही करनेका जीवको बाकी रह गया है।

और जिनेन्द्र देव मिले तो स्वयंने पहिचाना नहीं, उनकी महिमा नहीं की है। साक्षात् स्वयं आत्माकी महिमा नहीं आयी है और जिनेन्द्र देवकी महिमा नहीं आयी है, गुरुकी महिमा आयी नहीं, शास्त्रकी महिमा नहीं आयी है। जो भगवानको पहिचाने वह स्वयंको पहिचाने और स्वयंको पहिचाने वह भगवानको पहिचानता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। इसलिये वास्तवमें स्वयंने भगवानको पीछाना नहीं। जो भगवानको पहिचानता है वह अवश्य स्वयंको पीछानता है। गुरुको पहिचाने वह स्वयंको पहिचानता है। इसलिये यथार्थ रूपसे स्वयं पहिचाने तो स्वयं आत्माके समीप हुए बिना रहता ही नहीं। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र मिले और स्वयं अंतरमें समीप न हो जाय तो स्वयंने पहिचाना ही नहीं है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है।

.. चैतन्य कल्पवृक्ष ऊगे तो बाहर देव-गुरु-शास्त्रका कल्पवृक्ष ऊगे बिना रहेगा नहीं। और बाहरसे कल्पवृक्षको स्वयं पहिचाने तो अंतर कल्पवृक्ष ऊगे बिना नहीं रहेगा। स्वयं पहिचाने तो।

मुमुक्षु :- फिर कहे कि मैं करुँगा अपनेआप। लेकिन मुझे आपके बिना नहीं चलेगा।

समाधान :- मैं जा रहा हूँ अपनेआप, परन्तु आप सब मेरे साथ बधारो, सबको साथमें रखता हूँ। पुरुषार्थ स्वयं करे उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि मैं अकेला जाऊँ। मैं सबको साथमें रखता हूँ। मुझे जैसे आत्माकी स्वानुभूतिका आदर है, वैसे मैं स्वानुभूति प्राप्त जो साधना करके सर्वोत्कृष्टता प्राप्त की हो, ऐसे देव-गुरु-शास्त्र सबको साथमें रखकर सबका आदर करता हूँ। सब पधारो, सब मेरी साधनामें साथमें पधारिये।

समाधान :- .. ज्ञायकदेव पधारे, ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। भगवान जिनेन्द्र देव पधारे, वैसे ज्ञायकदेव भी पधारो, आप भी पधारिये। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है।

उसमें तो ऐसा आता है न कि भगवानके बिना मुझे नहीं चलेगा, देव-गुरु-शास्त्रके बिना नहीं चलेगा। मैं जा रहा हूँ स्वयं, परन्तु मुझे देव-गुरु-शास्त्रके बिना नहीं चलेगा। मैं तो अंतरमें जाऊँ, अंतरमें जाऊँ वहाँ ज्ञायकदेवके दर्शन, बाहर आऊँ वहाँ मुझे भगवानके दर्शन, गुरुके दर्शन, शास्त्रका दर्शन, उसके बिना मुझे नहीं चलेगा। दृष्टि बाहर आये वहाँ जिनेन्द्र देव पर जाय और अंतरमें जाऊँ वहाँ ज्ञायक पर जाती है। दूसरा कुछ मुझे नहीं चाहिये। जहाँ बाहर उपयोग आये वहाँ भगवान जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्रके बिना नहीं चलेगा। मेरी दृष्टि बाहर आये तो देव-गुरु और शास्त्र, उनके ही मुझे दर्शन हों। मेरी दृष्टि वहाँ जाय। अंतरमें जाऊँ तो मुझे ज्ञायक पर.. ज्ञायक पर तो दृष्टि है ही, परन्तु उपयोग बदलता है। उपयोग अंतरमें ज्ञायकदेव पर और बाहर आये वहाँ जिनेन्द्र देव। दूसरी कोई भी चीज आदरणीय नहीं है। आदरणीय हो तो एक ज्ञायकदेव और देव-गुरु-शास्त्र। देव-गुरु-शास्त्रके बिना मुझे नहीं चलेगा। अंतरमें जाऊँ। शुभभावनामें मैं उनको भी साथमें रखता हूँ। जबतक वीतराग दशा केवलज्ञान प्राप्त न हो, तबतक जहाँ उपयोग बाहर आये तो भगवान मेरे हृदयमें है और मेरी दृष्टि भी वहाँ-मेरा उपयोग वहाँ जाता है। बाहर आता हूँ तब।

दृष्टि तो ज्ञायकदेवमें स्थापित की है, परन्तु उपयोग जो अंतरमेंसे बाहर आये वहाँ भगवान (हों)। मैं नज़रोंसे देखूँ तो भगवानके दर्शन हो, भगवानकी स्तुति हो, भगवान जिनेन्द्र, शास्त्रका श्रवण मुझे हो, मेरा पूरा उपयोग वहाँ जाय, बाहर आऊँ तब। और अंतरमें मुझे ज्ञायकदेव-ज्ञायकदेव, ज्ञायकदेव मेरे अंतरमें पधारिये। दृष्टि तो ज्ञायकदेव पर ही है, परन्तु बारंबार मेरे हृदयमें, मेरी परिणतिरूप मुझे स्वानुभूतिरूपसे बार-बार मेरे अंतरमें पधारिये। बाहरसे भगवान आप पधारिये, जिनेन्द्र देव पधारिये। गुरुदेवको भाव आ गया था।

गुरुदेवने साष्टांग नमस्कार किये। गुरुदेवकी आँखमेंसे आँसू चले जाते थे, जब भगवान पधारे थे तब। भगवान पधारे तब कुछ अलग ही हो गया था। उस वक्त तो पहली बार भगवान पधारे। स्थानकवासीमें कहीं भगवानको देखे नहीं थे। भगवान पधारे इसलिये मानो साक्षात् भगवान पधारे। गुरुदेवको ऐसी भावना हो गयी थी। भगवान मन्दिरमें पधारे तो ऐसे साष्टांग नमस्कार किये। आँखमेंसे आँसूकी (धारा बहने लगी)। जब भगवानकी प्रतिष्ठा हुयी उस वक्त भी गुरुदेवकी आँखमेंसे अश्रु चले जाते थे। मानो साक्षात् भगवान पधारे हों!

बाहरसे भगवानका स्वागत और अंतरमें ज्ञायकदेवका भी मुझे आदर है। ज्ञायकदेवके लक्ष्यसे सब होता है। अंतरमें ज्ञायक... बाहरसे भगवानको कहते हैं, भगवान! पधारो। जिनेन्द्र देव पधारो! मैं आपको किस विधिसे पूजुँ? किस विधिसे वंदूँ? अंतरमें ज्ञायकदेवकी ओर जाय तो मैं आपको किस विधिसे पूजुँ? किस विधिसे वंदूँ? ऐसी उसे भावना होती है। उतना अंतरमें आदर है, उतना बाहरमें आदर है।

अल्प अस्थिरता है, वह मुझे नहीं चाहिये, मुझे उसका आदर नहीं है। जैसे ज्ञायकदेवका आदर... बाहर जिनेन्द्र भगवानका आदर और अंतरमें ज्ञायकदेवका आदर है। जिन प्रतिमा जिन सारखी, नमें बनारसीदास। अल्प भवस्थिति जाकी, सो ही प्रमाणे जिन प्रतिमा जिन सारखी। जिन प्रतिमा माने साक्षात् भगवान हैं। भगवान और प्रतिमामें कोई फ़र्क़ नहीं है। जिन प्रतिमाको जिनेन्द्र समान जो देखते हैं, अल्प भवस्थिति। जिसकी भवस्थिति कम हो गयी है, जिसे मुक्ति समीप आ गयी है, अर्थात् जिसे ज्ञायकदेव समीप आ गया है, जिसकी ज्ञायककी स्वानुभूति समीप अंतरसे हो गयी है। भगवानको साक्षात् निरखता है। अंतरमेंसे उसे भावना होती है।

मुमुक्षु :- प्रभुदर्शनकी तो पूरी दृष्टि आपने अंतर्मुख कर दी।

समाधान :- अंतरमें देखे तो ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक भगवान होता है। अंतरमें दृष्टि स्थापित की है। ज्ञायकदेव, बारंबार ज्ञायकदेव पधारो मेरे अंतरमें, मैं आपका आदर करता हूँ। बाहर आये तो मुझे जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्रके सिवा कुछ नहीं चाहिये। जगतके अन्दर मुझे किसी भी वस्तुका आदर नहीं है। कोई वस्तुकी मुझे महिमा नहीं है, मुझे कोई नहीं चाहिये, बस! एक जिनेन्द्र भगवान मुझे मिले, गुरु मिले और शास्त्र मिले तो उसमें मुझे सब मिला है।

मैं स्वयं जाता हूँ, उसमें देव-गुरु-शास्त्रकी मेरी शुभभावना है, अभी न्यूनता है इसलिये मुझे देव-गुरु-शास्त्रके बिना नहीं चलेगा। मैं मेरी शुभभावनामें आपको साथमें रखता हूँ। आप दूर हों, तो भी आपको समीप आना ही पड़ेगा। मेरी भावना ऐसी प्रबल है कि आपको समीप आना ही पड़ेगा। मेरी भावनासे मैं आपको साथ ही

रखता हूँ।

...भावना है, उसे बाहरके देव-गुरु-शास्त्रके कल्पवृक्ष उगे बिना रहेगा नहीं। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। जिसका उपादान तैयार हो, उसे ऐसे निमित्त होते ही हैं। जो निमित्तको अंतरसे यथार्थ ग्रहण करता है उसे उपादान तैयार हुए बिना नहीं रहता।

भगवानको पूरी तरह भले ही बादमें पहिचाने, देव-गुरु-शास्त्रको, परन्तु अमुक प्रकारसे वह पीछान लेता है। जो जिज्ञासु हो उसके हृदयनेत्र ऐसे हो जाते हैं कि ये सच्चे देव हैं, सच्चे गुरु हैं, सच्चे शास्त्र हैं। उसे अंतरमेंसे ऐसी पहचान हो जाती है। फिर अंतरमें स्वयंको पहिचाने तब यथार्थ विशेष पहचानता है।

... ज्ञायक जो भेदज्ञान करके प्रगट हो, वह निर्मल स्वरूप आत्मा है। ज्ञायकदेव प्रगट हुआ। उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र शुभभावनामें होते हैं, वह जीवन ही जीवन है। दूसरा जीवन वह निःसार-सार रहित है। ऐसे अर्थमें वह सब कहा है।

.. प्रतिमाएँ जगतमें होती हैं। साक्षात् जिनेन्द्र देव, उनकी प्रतिमाएँ भी शाश्वत होती हैं। कुदरत उसके साथ परिणमित हुई है। भगवानकी प्रतिमाएँ भी शाश्वत होती हैं। अपने तो यहाँ स्थापना की है। मनुष्य तो स्थापना करते हैं। देवोंको तो शाश्वत रत्नकी प्रतिमाएँ होती हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेव तो साक्षात् महाविदेहसे पधारे, परन्तु भगवानको महाविदेहसे (ले आये)। ऐसे भगवान आये।

समाधान :- ... मेरे अंतरमें ज्ञायकदेव पधारो। मेरे महलमें पधारिये, मैं आपको विराजमान करता हूँ। आपका आदर करता हूँ, आपकी पूजा करता हूँ। किस विधि पूजुँ, किस विधि वँदूं? जहाँ भी देखुँ ज्ञायकदेव अनन्त गुणोंसे, अनन्त महिमासे भरा है। जैसे जिनेन्द्र देव प्रगट पर्याय प्रगट करके जिनेन्द्र देव जैसे महिमासे भरपूर है, वैसे ज्ञायकदेव भी उसकी शक्तिमें अनन्त गुणसे भरपूर है। मैं आपको महिमासे वंनद और पूजन कैसे करुँ? आप पधारो।

मुमुक्षु :- अनादि कालसे वही प्रतिमाएँ हैं?

समाधान :- बस, वही शाश्वत हैं। ऐसे रत्नरूप परिणमित हुए प्रतिमाएँ हैं। उसमें परमाणु आये, जाय। परन्तु प्रतिमाएँ शाश्वत हैं।

मुमुक्षु :- वही प्रतिमा..

समाधान :- वही प्रतिमा अनादि कालसे हैं। जगतमें सर्वोत्कृष्ट जैसे तीर्थंकर भगवान हैं, वैसे प्रतिमाएँ भी शाश्वत रचित हैं। कुदरतकी ऐसी रचना है। जगतमें सर्वोत्कृष्ट भगवान हैं। कुदरता बता रही है कि प्रतिमा-परमाणु भी उस रूप परिणमित हो गये हैं। जैसे

समवसरणमें विराजते हों ऐसे।

जो जिनेन्द्रको पहिचाने वह स्वयंको पहिचाने, वह आता है। जिनेन्द्रको पहिचाने। जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाएँ भी जगतमें हैं। प्रतिमा शाश्वत, मन्दिर शाश्वत। जगतमें आदरणीय क्या है, वह कुदरत बता रही है। आदरणी और महिमा किसकी करनी वह कुदरत बता रही है। मन्दिर शाश्वत और प्रतिमाएँ शाश्वत हैं।

मुमुक्षु :- भगवानका आदर वह तो..

समाधान :- निमित्त-उपादानका सम्बन्ध ऐसा है। भगवानने प्रगट किया। स्वयंको दार्शनिकरूपसे दर्शा रहे हैं कि यह प्रगट करके इस रूप चैतन्यबिंब हो गये। ऐसा करने जैसा है। भगवान मार्ग बता रहे हैं। वाणी द्वारा, दिव्यध्वनि द्वारा। किस मार्ग पर जाना? गुरुदेवने उसकी पहचान करवायी, गुरुदेवने वाणी द्वारा (दर्शाया कि) मार्ग कौन-सा सच्चा है?

... विहरमान भगवान भी शाश्वत। एकके बाद एक प्रवाहरूपसे शाश्वत ही रहते हैं। नये-नये, नये-नये भगवान तो होते ही रहते हैं। वह क्षेत्र ऐसा है कि वहाँ भगवान हमेंशा विराजमान ही रहते हैं। चैतन्यदेवको पहिचाननेके निमित्त भी जगतमें तैयार होते हैं। स्वयं तैयार हो तो सब तैयार ही है। अपनी तैयारी नहीं है। स्वयं तैयार हो तो जगतमें सब तैयार है। मार्ग दिखानेवाले भी तैयार है, सब तैयार है।

अनादि कालसे कहीं-कहीं भ्रममें, भूलमें (अटका है)। दूसरोंको भ्रमसे आदरणीय मान रहा है, विभावको आदरणीय मान रहा है। निःसार वस्तुको आदरणीय मान रहा है इसलिये रुक रहा है। सारभूत आत्मा ज्ञायक है वह आदरणीय है। और उसे बतानेवाले देव-गुरु-शास्त्र हैं, वे आदरणीय हैं। ज्ञायकको बता रहे हैं कि तू ज्ञायक भगवान है। तेरा यह स्वरूप है। हम प्रगट करके विराजमान हो गये, वैसे तेरा स्वरूप भी ऐसा है। तू भी प्रगट कर तो अंतरमेंसे वह प्रगट हो सके ऐसा है।

गुरुदेव, भगवान पधारे उस वक्त उनकी भावना कितनी थी। व्याख्यानमें उतना कहते थे। आँखमें आँसू आ जाय। रंगबेरंग छा गये। जिनेन्द्र भगवानके साथ कुदरत बँधी हुई है। 'अमीय भरी मूर्ति रची रे, उपमा न घटे कोई'। वह गाते थे। 'शांत सुधारस झिलती रे, निरखत तृप्ति न होय, सीमन्धर जिन दीठा लोयण आज, मारा सिझ्या वांछित काज, सीमन्धर जिन दीठा लोयण आज'। पूरी भक्ति गाते थे। भगवान बताऊँ, चलिये भगवान बताऊँ।

.. वह मार्ग गुरुदेवने बताया। भगवान कहते हैं, गुरुदेव कहते हैं, शास्त्र कहते हैं। .. उपयोग जाय तो मुझे आपके दर्शन हो, श्रवण शास्त्रका हो, मेरी वाणी आपकी, स्तुति आपकी, मेरा सब वर्तन देव-गुरु-शास्त्रमें जाओ, बाहर आओ। अंतरमें मेरा ज्ञायकदेव। बाहरका तो सब निःसार है।

... वह स्वयंको ही निहारता है, हटती ही नहीं। बाहर भगवान पर दृष्टि... इन्द्र एक हजार नेत्र करके देखता है तो भी उसे तृप्ति नहीं होती, भगवानको देखते हुए। भगवान! आपको देखकर मेरी आँखें तृप्ति नहीं होती। बाहर उपयोग आये तो भगवानके दर्शनसे तृप्ति नहीं होती। अंतरमें ज्ञायकदेवमें जो दृष्टि जमी सो जमी, वापस नहीं मुडती। वहीं जम गयी है। उपयोग बाहर जाता है। दृष्टि अंतरमें जम गयी है।

मुमुक्षु :- एकसाथ दोनों काम करते हैं। दृष्टि ज्ञायकमेंसे हटती नहीं और उपयोग भगवानसे हटता नहीं।

समाधान :- हाँ, उपयोग भगवानको देखता रहता है। दोनों हुआ। दृष्टि जम गयी और बाहर भगवानको देखता है। अंतरमें भेदज्ञान चालू है। दृष्टि ज्ञायकमें जमी है। जो परिणाम आये उसे भेदज्ञानकी धारा चलती है। दृष्टि अंतरमें जमी है, उपयोग बाहर है। भगवानको देखता है, तो भी भेदज्ञानकी धारा तो चालू है। भेदज्ञानकी धारा चालू है, अंतरमें दृष्टि है। शुभभावनामें देव, गुरु और शास्त्र है। मुनिओं भी अंतरमें क्षण-क्षणमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें जम जाते हैं। तो भी बाहर आये तब उन्हें देव-गुरु-शास्त्र का उपयोग होता है। मुनि शास्त्र लिखते हैं, भगवानका आदर करते हैं, गुरुका आदर करते हैं। मुनिओंको भी (ऐसा) होता है। श्रुतका जो विकल्प आये वह लिखते हैं। कितने ही मुनि जिनेन्द्र देवकी महिमा भी लिखते हैं। श्रुतज्ञान अनेक जातके उपयोगमें बाहर आये तो आता है।

.. अंतरमें चलता हो। भेदज्ञानकी धारा चलती है, ज्ञायककी धारा चलती है। स्वानुभूतिमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें जम जाय, उपयोग बाहर आये तो शास्त्र लिखते हैं। जाता हूँ स्वयं, परन्तु मेरे साथ आप रहना। निमित्त-उपादानकी ऐसी सन्धि है। ज़ोर अपना है, भगवानको साथमें रखता है। भावना ऐसी प्रबल है कि भगवान, देव-गुरु-शास्त्र आप साथमें रहना। ऐसी भावना है। स्वयं अपने पुरुषार्थसे जाता है। अन्दर दृष्टिमें समझना है। बाकी उसे परिणतिमें शुभभावनामें भगवान, देव-गुरु-शास्त्र साथमें रहते हैं। उसकी शुभभावनाकी परिणतिमें। दृष्टिमें समझता है कि मैं स्वयं अपनेसे जाता हूँ। परन्तु निमित्त-उपादानका सम्बन्ध समझता है। ज्ञानमें समझता है। आचरणमें भी शुभभावना है इसलिये देव-गुरु-शास्त्रको साथमें रखता है। अंतरमें ज्ञायकदेवकी वृद्धि करता जाता है, अन्दर परिणतिमें स्वानुभूतिमें।

... तैयार हो तो निमित्त-उपादान... अपनी रुचि साथमें चाहिये। जिनेन्द्र भगवानका प्रबल निमित्त होता है। जिसका उपादान तैयार होता है, उसे वह निमित्त कार्य करता है। उपादान तैयार हो तो होता है। अपनी रुचिकी तैयारी होनी चाहिये। जैसे निमित्त प्रबल, वैसे अपना उपादान साथमें चाहिये। परन्तु जिसकी भावना प्रबल होती है कि

मुझे आत्माका कुछ करना ही है, तो उसे लाभ हुए बिना रहता ही नहीं। उसे स्वयंको अंतरमेंसे ऐसी भावना जागृत होती है तो उसे लाभ (होता है)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८५

समाधान :- विचार और वांचन वहीका वही करे। बाकी जीवका अनादिसे पुरुषार्थ मन्द है इसलिये जो बाहरका निमित्त हो वैसी असर हो जाय। यहाँ माहोल अलग है इसलिये उसकी असर होती है, वहाँका माहोल अलग है, इसलिये उसकी असर होती है। अपनी तैयारी हो उस अनुसार रहे। वैसे संयोगमें पुरुषार्थ रखना पडे, तो हो। इसीलिये शास्त्रमें आता है न कि तू सत्संग कर। गुरुका उपदेश सुन, अच्छे सत्संगमें रह तो तुझे आत्माको समझना आसान होगा। ऐसा सब आता है। क्योंकि ऐसी तैयारी नहीं होती। इसलिये तू ऐसे निमित्तोंमें रह। (गुरुदेव) मिले और यह सब योग मिलना कितना दुर्लभ होता है।

मुमुक्षु :- पूरे मण्डलकी रोनक बदल गयी।

समाधान :- भगवान पधारे वह दिन भी कुछ अलग था। और आज कितने वर्ष बीत गये तो भी ऐसी ही भावना (रहती है)। सब याद आये इसलिये ऐसी भावना जागृत हो। वह तो कुछ अलग ही था। मानों साक्षात् भगवान पधारे हों। यहाँ भगवान साक्षात् पधारे, महाभाग्यसे। नानालालभाई और सबको ऐसे भाव थे, भगवान विराजमान (करना), मन्दिर बने। गुरुदेवने ऐसा मार्ग प्रकाशित किया कि चैतन्यका धर्म आत्मा.. भेदज्ञान करके आत्मा-ज्ञायक आत्माको पहचान।

जिनेन्द्र भगवान, मन्दिर, गुरुदेवके करकमलसे कितना प्रभावना योग, कितने मन्दिर, कितने प्रतिमा स्थापित हुए। उन्होंने मार्ग प्रगट किया कि जगतके अन्दर मन्दिर शाश्वत और भगवानकी स्थापना भी होती है। गुरुदेवने मार्ग (प्रकाशित किया)। स्थानकवासीमें तो कोई समझता नहीं था कि भगवानके प्रतिमाजी होते हैं, मन्दिर होते हैं। वीतरागभावका पोषण होनेका कारण बनता है। साक्षात् भगवानको देखनेसे, भगवानकी प्रतिमाजी देखने पर साक्षात् भगवान याद आये और अपना आत्मा भी जैसे भगवान हैं, वैसा अपना आत्मा है।

अपना एक ध्येय, लक्ष्य, भावना होनेका कारण बनता है। जो भगवानको पहचानता है वह स्वयंको पहचानता है, ऐसा सम्बन्ध है। स्वयंको पहचाने वह भगवानको पहचानता है। स्वरूप बताया, मार्ग प्रगट किया।

मुमुक्षु :- महाविदेह क्षेत्रसे सीमंधर भगवानको आप ही लाये हो।

समाधान :- ऐसा सब योग (बन गया)। गुरुदेवका और सब योग (बन गया)। पंचमकालके सभी जीवोंको लाभ मलिनेवाला होगा। ऐसे गुरुदेव पधारे इसलिये ऐसा मार्ग प्रगट किया।

मुमुक्षु :- आप सत्पुरुष यहाँ कहाँ? आपके प्रतापसे ही भगवान पधारे, नहीं तो कौन जानता कि ये सीमंधर भगवान.... गुरुदेवके करकमलोंसे प्रतिष्ठा हुयी, सब आपका और गुरुदेवका ही प्रताप है।

समाधान :- जगतमें भगवान सर्वोत्कृष्ट हैं। गुरुदेवने बताया, गुरुदेवने भगवानकी पहचान करवायी। चैतन्यका स्वरूप भी गुरुदेवने बताया। आत्मा स्फटिक जैसा है, निर्मल है। अन्दर जो लाल-पीला प्रतिबिंब उठता है वह उसका स्वभाव नहीं है। वैसे आत्मामें जो विभावका प्रतिबिंब उठता है, वह अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न आत्माको जान। ऐसा चैतन्यदेव विराजता है, उसे पहचान। वह दिव्यमूर्ति है। बाहरमें भगवान दिव्यमूर्ति है, देव है, जिनेन्द्र भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं। सर्वोत्कृष्टआत्माको पहचान। ऐसा गुरुदेवने बताया। गुरुदेवका परम उपकार है।

.. जिनेन्द्र भगवान, गुरु, शास्त्र सब मंगल हैं। अन्दर आत्मा मंगलस्वरूप है। उसकी मंगल पर्यायें कैसे प्रगट हों? वह भावना करने जैसी है। उसकी मंगलिकता (है)। जैसे भगवान मंगल हैं, वैसे आत्मा मंगल है। उसकी पर्यायें कैसे प्रगट हो, वह करने जैसा है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

समाधान :- कैसा क्या? मार्ग तो एक ही होता है। करना स्वयंको है। मार्ग एक ही है। किसीके लिये दूसरा और किसीके लिये दूसरा, ऐसा नहीं है, एक ही मार्ग है-स्वभावको पहचानना और भेदज्ञान करना। एक ही मार्ग है। मार्ग तो एक ही है। परन्तु अन्दर लगन स्वयंकी हो तो होता है। लगन और पुरुषार्थ स्वयंका हो तो

हो।

ज्ञायकको पहचानना, भेदज्ञान करना, प्रतिक्षण उसकी जागृति रखनी। वह सब (होना चाहिये)। अन्दर उतनी रात और दिन उतनी लगन हो तो हो। सुख लगे नहीं, अंतरमें स्वयं स्वयंको खोजे। अपना सुख अपनेमें है। ऐसे स्वयंको अंतरमेंसे उतनी लगन लगे तो होता है। मार्ग तो एक ही है।

गुरुदेव बारंबार-बारंबार बहुत ही सुनाया है। शरीर तू नहीं है, शुभाशुभ भाव तेरा स्वभाव नहीं है। भेदके विकल्पमें मत रुकना। तेरेमें गुण होनेके बावजूद उसके विकल्पमें मत रुकना। दृष्टि एक चैतन्य पर स्थापित करना। कहाँ तकका मार्ग बता दिया है। दृष्टि स्थापनी, भेदज्ञान करना, उसकी लगन लगानी, पुरुषार्थ, उसकी जागृति रखनी सब अपने हाथमें है। (पहले तो) एक ही संक्षेपमें कहते थे। फिर तो विस्तार होते गया। सब शास्त्र खुल्ले रूपमें पढना शुरू हो गया। पहले तो संक्षेपमें कहते थे। मन-वचन-कायासे आत्मा भिन्न है। विकल्पसे भिन्न है, उस पार है। ऐसा संक्षेपमें कहते थे।

पहले तो शास्त्र दूसरे होते थे हाथमें। ये तो मूल शास्त्र तो बादमें हाथ लगे। पहले तो हाथमें दूसरे शास्त्र हों और परिभाषा जो यथार्थ हो, वह करते थे। राजकोटमें पढते थे न? परदेसी राजाका अधिकार। उसमेंसे आत्मा पर उतारते थे। गुरुदेव स्वानुभूतिकी बात कर रहे हैं। उसमें ग्रहण स्वयंको करना है, स्वयंकी लगन लगानी, बारंबार पुरुषार्थ करना स्वयंको पड़ता है।

मुमुक्षु :- सबको भावना तो ऐसी रहती है। थोड़ा धक्का लगना चाहिये न, उसकी जरूरत पडती है, ऐसा लगता है।

समाधान :- करना तो स्वयंको है, कोई कर नहीं देता। गुरुए कहे वाक्य, बारंबार उनका उपदेश याद करना कि क्या मार्ग बताया है। धीरी गतिसे पुरुषार्थ करे तो धीरे हो, उग्र करे तो उग्र हो। अपने हाथकी बात है।

.. उतनी थी कि ये क्षण-क्षण जाय तो उसका दुःख लगे कि आहा..! कब यह होगा? उतनी अंतरमें उग्रता हो तो होता है। .. न हो तो धीरे-धीरे करे तो धीरे-धीरे होता है। कलका इंतजार करे तो कल और आज (करे तो आज हो)। दृष्टान्त देते थे न? जीमनका। आज जीमे बनिये, कल जीमे बारोट। ऐसे कल-कल करता रहे तो कल हो। आज करना है ऐसा करे तो आज हो जाय।

मुमुक्षु :- बनिये आज जिमे और बारोट कल। बारोटकी कल कभी आती नहीं।

समाधान :- हाँ। अपने पुरुषार्थकी गति जैसी हो वैसे होता है।

.. मनुष्य जीवनमें कुछ कर लेना है। गुरुदेवने मार्ग बताया। अतः अंतरमें करना है। इसलिये विचार आदि उस ओर चले। ऐसा ही था कि, यह सत्य है तो पुरुषार्थ

क्यों नहीं होता है? ऐसा कर-करके भावना चलती थी। यही सत्य है तो पुरुषार्थ क्यों नहीं हो रहा है? इस तरह भावना उग्र हो उस प्रकारसे।

... क्यों होती नहीं? झँखना क्यों नहीं होती? इतने साल बीत गये, अब बाकीके वर्ष जानेमें कहाँ देर लगनेवाली है? क्यों नहीं हो रहा है? ऐसी भावना रहा करे। पुरुषार्थ उस ओर ही चले, उसीके विचार चले। हर वक्त काम करते हुए, हर वक्त एक ही विचार रहे। जो करे उसे हो। सबको हो, परन्तु जो करे उसे हो। स्वभाव आत्माका है, सब कर सकते हैं। परन्तु जो करे उसे हो। स्वभावकी उग्रता जो करे उसे हो।

मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, उसकी उग्रता स्वयं (करे)। विकल्परूपसे भावना रूप हो वह अलग बात है, अन्दर सहजरूपसे उग्रता कैसे करनी, वह स्वयं करे तो हो। कहीं दूर नहीं है, स्वयं समीप ही है। परन्तु स्वयं ही नहीं जाता है। इसलिये दूर लगता है। अपना स्वभाव है, कहीं दूर नहीं है। स्वयंमेंसे ही प्रगट हो ऐसा है। कहीं लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है। बाहर कोई परद्रव्यमें नहीं है कि वहाँसे कोई दे नहीं। स्वयंमें ही है, स्वयं समीप ही है, स्वयं ही है। परन्तु स्वयं अन्दर जाय तो प्रगट हो। स्वयं ही नहीं जाता है।

'पोतानी आळसे रे, निरख्या नहि हरिने', गुरुदेव कहते थे। निज नयननी आळस। अपनी दृष्टिकी आलस्यके कारण स्वयं रुका है। दृष्टि निज चैतन्य हरि पर करता नहीं, इससिये स्वयं रुका है। अपनेमें ही पड़ा है और अपनेमें-से प्रगट होता है। स्वयं ही उस ओर दृष्टि करता नहीं। अपने नेत्रकी आलसके कारण स्वयं देखता नहीं है। दृष्टि बाहर घुमाता है, अन्दर देखे तो हो।

.. कहीं नहीं है। अपनेमें दृष्टि फेरनी है, परन्तु फेरता नहीं। गुरुदेवने कितना मार्ग बताया। दृष्टि स्वयंको फेरनी है। दृष्टिके बलसे ही प्रगट होता है। दृष्टि, ज्ञान और उसके साथ परिणतिकी लीनता हो तो स्वयंमें-से ही प्रगट होता है। छोटीपीपर घिसे तो उसमें जो चरपराई है उसीमेंसे प्रगट होती है। वैसे स्वयं अपने पर दृष्टि करे तो अपनेमें-से ही प्रगट होता है। बाहरसे कहींसे नहीं आता। उतना दृष्टिका बल, उतना प्रतीतका बल आये तो प्रगट हो। प्रतीत-दृष्टिका ज़ोर आये तो ही अन्दरसे प्रगट होता है। अन्दर प्रतीतके बल बिना तो उसकी परिणति उस ओर जोरसे जाती नहीं। दृष्टिका बल, प्रतीतका बल, उसका प्रतीतका जोर आये तो उस ओर परिणति जाय। ऐसे कहे कि प्रतीत है, परन्तु अन्दर जो भेदज्ञानके अन्दर ज्ञायककी प्रतीति जोरदार अंतरमेंसे आनी चाहिये वह आये तो प्रगट हो।

(ज्ञान) तो असाधारण गुण है। वह तो लक्ष्यमें आये ऐसा है। बाकी दूसरे अनन्त

गुण (हैं)। आनन्दादि गुण है, वह तो उसे स्वानुभूतिमें-अनुभवमें आयेगा। बाकी ज्ञायक तो उसका मुख्य गुण है। वह तो उसे प्रतीतमें आये ऐसा है। करना स्वयंको करना है। अन्दर गहराईसे विश्वास करके स्वयंको ही करना है।

मुमुक्षु :- लेकिन वह जो कहा न, थोड़ा धक्का मारनेकी जरूरत लगे। उपादान उसका काम करे, परन्तु निमित्तमेंसे थोड़ा धक्का लगे तो...

समाधान :- जो है वह प्रगट करना है, उसका प्रयत्न करनेमें थकना नहीं। करना स्वयंको हो। देव-गुरु-शास्त्र साथमें हो तो अपनेको ज्यादा लाभ होता है। वह स्वयं करनेवाला है।

मुमुक्षु :- भगवान पधारे तो आप कितनी महिमा करते हो।

समाधान :- भगवान सर्वोत्कृष्ट हैं। उनकी क्या बात करनी। गुरु साधना करे, शास्त्र सब बताये। वह सब तो आदर करने योग्य है। महिमारूप है। सर्वोत्कृष्ट जगतमें है। ज्ञायक आदरने योग्य है। भगवान सर्वोत्कृष्ट है। गुरु साधना करते हैं। वे भी आदरने योग्य हैं। पंच परमेष्ठी आदर करने योग्य हैं। अंतरमें ज्ञायकका प्रेम हो तो जो दिखे उनका दर्शन, जिन्होंने प्रगट किया उन पर उसे आदर आये बिना रहे ही नहीं। अन्दर आदर न आये तो उसे ज्ञायकका भी आदर नहीं है। आदर हो तो देव-गुरु-शास्त्रका आदर आये बिना रहे नहीं।

देव-गुरु-शास्त्रका आदर है वह ज्ञायकको प्रगट होनेका कारण है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। कल टेपमें आया था न? सब कारण आये थे। भगवान सम्यग्दर्शनका कारण, फिर पंच कल्याणक सम्यग्दर्शनका कारण, जिनबिम्ब सम्यग्दर्शनका कारण, देवलोककी ऋद्धि सम्यग्दर्शनका कारण, फिर क्षेत्र। भगवानके क्षेत्र हों, महापुरुषोंके क्षेत्र जहाँ विचरे हों, वह सब क्षेत्र सम्यग्दर्शनका कारण है। ऐसा सब आया था।

मुमुक्षु :- जातिस्मरण।

समाधान :- हाँ, जातिस्मरण, वेदना ऐसा सब आया था। वह कारणरूप। करना अन्दर स्वयंको है, परन्तु यह सब कारण हैं। गुरुदेवकी टेपमें ही आया था। यथार्थ ज्ञान हो तो ज्ञायकको पहचाने। परन्तु जिसने प्रगट किया, जिनबिंब, साक्षात् भगवान, उनके क्षेत्र वह सब आया था। पंच कल्याणक।

यह गुरुदेवका क्षेत्र है। गुरुदेव यहाँ रहे। कल क्षेत्रका आया था। करना स्वयंको है। अपना ज्ञायक कारण है। कारण स्वयं है। मूल वह है। ऐसा आया था। ये सब कारण हैं। स्वयं है। परन्तु ये सब व्यवहारके कारण है। फिर ऐसा आये कि अनन्त बार मिला, परन्तु हुआ नहीं। उसमें भी अपना ही कारण है। स्वयं तैयार नहीं हुआ। निमित्त तो निमित्तरूप था ही, परन्तु स्वयंने ग्रहण नहीं किया। निमित्तको जिस प्रकार

अन्दर उपादानमें स्वयंको ग्रहण करना चाहिये वैसे नहीं किया।

अर्ध पुद्गल परावर्तन आया था और भावमें अपूर्व करण और अधःकरण आया था। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब आया था। पंच कल्याणक आदि।

मुमुक्षु :- क्षेत्रमें अर्ध पुद्गल परावर्तनमें काल,..

समाधान :- कालमें अर्ध पुद्गल परावर्तन। उसकी स्थिति और रस कम हो जाय न। अर्ध पुद्गलका काल रह जाय।

.. अपनी ओर मुड जाता है। वेदनामेंसे किसीको ऐसा हो जाता है। पूर्व भवमेंसे ऐसा हो जाय, संसारका वैराग्य आ जाय। परन्तु यथार्थ ज्ञान बिना वह होता नहीं। अपना ज्ञान करे। वह मूल मार्ग (है)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८६

मुमुक्षु :- अतीन्द्रिय आनन्द ...

समाधान :- स्वानुभूति कहाँ है? प्रतीत है न, ज्ञायककी धारा। ज्ञायककी धारा ... विकल्प छूटकर स्वानुभूति हो, वह अलग बात है। ये तो भेदज्ञानकी धारा तो हुई है। भेदज्ञानकी धाराकी आंशिक शांति अनुभवमें आती है। उसकी भूमिका है उस अनुसार। उसकी दशा अनुसार। किसीको कब हो, किसीको कब हो, वह तो दशा अनुसार (होता है)। सविकल्प दशामें तो भेदज्ञानकी धारा तो उसकी भूमिका हो उस अनुसार शान्तिकी धारा रहती है। उससे भिन्न रहता है। एकमेक नहीं होता। ज्ञायक-ज्ञानकी परिणति भिन्न रहती है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ, उपयोग और परिणतिमें फ़र्क़ है। परिणति तो हमेशा उसकी चालू ही है। भेदज्ञानकी धारा। उपयोग बाहर जाये, उपयोग अंतरमें आये। स्वानुभिू हो तब उपयोग अंतरमें आये। उपयोग बाहर होता है तो भी परिणति तो चालू ही है। परिणति (और) उपयोगमें फ़र्क़ है। उसकी भेदज्ञानकी धारा तो चालू ही है। अमुक अंशमें जितनी दशा प्रगट हुयी, वह चालू है। उसे लब्ध अर्थात् शक्तिरूपसे नहीं है, परन्तु उसे प्रगट है वैसे, परिणति प्रगट है।

मुमुक्षु :- एक समयमें दो पर्याय?

समाधान :- जितनी दशा प्रगट हुयी, शुद्ध है उतनी शुद्ध है। जितनी अशुद्ध है उतनी अशुद्ध है। चारित्रकी दशा अमुक प्रकारसे शुद्धि हुयी, स्वरूपाचरण चारित्र आंशिक प्रगट हुआ है, बाकीकी जो न्यूनता है वह न्यूनता है। सर्वांशसे कहीं चारित्रदशा पूरी नहीं हुयी है। जितनी न्यूनता है, उतनी अशुद्ध पर्याय है। जितनी शुद्धता हुयी, शुद्धात्माकी शुद्ध पर्यायरूप परिणति सहजरूपसे चालू है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- निर्मलता तो उसे दृष्टिकी अपेक्षासे है। बाकी चारित्रकी निर्मलता तो मुनिकी ज्यादा है। चारित्रदशा, स्वानुभूति क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें स्वानुभूति होती है। मुनि तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें अंतरमें जाते हैं। चारित्रकी दशा मुनिकी विशेष

है। क्षयोपशम है उसका मलतब उसे लथडपथड नहीं है। वह तो दृढ़तारूप है। वह तो उसे क्षय नहीं हुआ है, उतना। बाकी वर्तमान वेदनमें तो उसे ऐसा कुछ.. उसकी दृढ़तामें न्यूनता नहीं है। वह तो उसकी अवगाढतामें फ़र्क़ है। क्षायिकका अवगाढ और यह क्षयोपशम है। चारित्रदशामें मुनि विशेष है।

क्षयोपशम अर्थात् उसकी प्रतीतमें कुछ उसे प्रगटरूपसे हलचल नहीं है, ऐसी अस्थिरता नहीं है। वह तो दृढ़रूप है। ज्ञायककी धारा जोरदार है और छठवे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। चारित्रकी अपेक्षासे मुनि विशेष है।

मुमुक्षु :- दृष्टिकी अपेक्षासे तो क्षायिक समकित हुअ।

समाधान :- उसे क्षायिककी अपेक्षासे कहनेमें आये, परन्तु वर्तमान तो उसकी चारित्रदशाकी निर्मलता है न। ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी विशेषता है यानी मुनि विशेष कहलाये। दृष्टिकी अपेक्षासे अलग बात है। दृष्टि यानी उन्हें दृष्टि विपरीत तो नहीं है। मुनि सम्यग्दृष्टि है और चारित्रकी निर्मलता है। मुनिकी दृष्टिकी अपेक्षासे अलग बात है। दृष्टिकी अवगाढतामें फ़र्क़ है। मुनि आगे बढे, चारित्रदशा बढ जाय तो उसे दृष्टि भी जोरदार हो जाती है। चारित्रदशामें मुनि विशेष हैं। दृष्टिकी अपेक्षासे उन्हें... दृष्टिका फ़र्क़ है।

मुमुक्षु :- चारित्रमें इतने आगे बढे और दृष्टिमें क्षायिक न कर सके उसका क्या कारण?

समाधान :- वह तो परिणाम पर है। परिणामकी गति अनेक जातकी होती है। अकारण पारिणामिक द्रव्य, अनेक जातके परिणामकी गति है। चारित्रकी अपेक्षासे मुनि विशेष है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनों आराध्य हैं, इसलिये मुनि विशेष हैं। चारित्रकी दशा विशेष प्रगट हुयी है। परिणामकी गति अनेक जातकी होती है, पुरुषार्थकी गति।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रममें हो, राजकाजमें हो और मुनिको क्षयोपशम हो तो भी मुनि हैं। मुनिका सब आदर करते हैं। पुरुषार्थकी वहाँ ...

मुमुक्षु :- दृष्टि .. करनेका पुरुषार्थ न करे?

समाधान :- करे, वे तो सर्व प्रकारका पुरुषार्थ करते हैं। क्षयोपशमका अर्थ उसमें ऐसी कोई मलिनता नहीं होती। उनका क्षयोपशम भी दृढ़ होता है। चारित्रकी गति विशेष बढ गयी है। सहजरूपसे वे तो सब करते ही हैं। दृष्टि उसकी निर्मल हो ही जायगी। वर्तमान उनकी चारित्रकी भूमिका विशेष है। अनेक प्रकार होते हैं। .. धारा हो तो उसे क्षायिक हो ही जायगा। क्षण-क्षणमें बाहर आये और अंतरमें जाय। ...

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- नहीं करता है क्या, उसमें उसे पुरुषार्थ तो होता ही है। कहा न, परिणामकी गति ही ऐसी है। वह उसे कोई ... एक दृष्टिका बल और चारित्र, साधनाके

पुरुषार्थमें सब पुरुषार्थ होता है। सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तो सर्व गुणोंके अंश शुद्ध होते हैं। एक दृष्टिका बल है और चारित्रकी दशा है। सर्व प्रकारका पुरुषार्थ होता है। पारिणामिक द्रव्य है। पुरुषार्थकी गति अनेक प्रकारकी होती है।

मुमुक्षु :- ... तो उसमें नया पुरुषार्थ करना होता है?

समाधान :- उसमें पुरुषार्थका निमित्त होता है। जो होना होता है वह होता है, ऐसा एकान्त नहीं है। उसमें स्वभाव, काल, पुरुषार्थ सब साथमें होता है। उसमें पुरुषार्थका निमित्त होता है। पर्याय प्रगट होती है, परन्तु उसमें पुरुषार्थ साथमें होता है। पुरुषार्थ बिना कोई पर्याय प्रगट नहीं होती। स्वभाव, काल, पुरुषार्थ आदि सब होता है।

मुमुक्षु :- भावना और वैसी धारणामें क्या अंतर है?

समाधान :- धारणामें तो धोख रखा है। भावना तो अंतरमें स्वयं भावपूर्वक करता है। भावना भावनामें भी फ़र्क़ होता है। भावना करता रहे कि मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ, उसमें अंतरमें गहराईमेंसे जो भावना हुयी हो वह अलग होती है। मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, ऐसी भावना.. गहरी अंतर्गत भावना अलग होती है। धारणामें तो रट्टा लगाता रहे वह धारणा है।

मुमुक्षु :- बारंबार उसी प्रकारके विचार, विकल्प चले वह भावना नहीं है?

समाधान :- विचार चले ऐसे नहीं, परन्तु उसे अंतरमेंसे गहराईसे होना चाहिये, वह भावना (है)। मात्र रटता रहे कि मैं त्रिकाल शुद्ध, शुद्ध ऐसे विकल्प करता रहे ऐसा नहीं। भावनामें भी विचार तो आते हैं। परन्तु अंतरमें हृदयका भेद होकर आना चाहिये। भावनाका मतलब वह है। गहराईमेंसे (होना चाहिये कि), मुझे यह विभाव नहीं चाहिये, मैं तो आत्मा हूँ, त्रिकाल शुद्ध आत्मा स्वयंसिद्ध ज्ञायक हूँ, ऐसे अंतरसे गहराईमेंसे हृदयका भेद होकर आना चाहिये। अंतरमेंसे गहराईमेंसे (होना चाहिये)।

मुमुक्षु :- ... तब ऐसा होता है कि विकल्प ... अन्दरसे कुछ-कुछ होता है, ऐसा भी दिखता है।

समाधान :- .. उसीमें आनन्द है, सब उसमें है। उसमें दृष्टिको स्थापित करके वही करने जैसा है। जितना यह ज्ञान है, उतना ही परमार्थ कल्याण है, ऐसा समयसारमें आता है। जितना यह ज्ञान है उतना ही परमार्थ कल्याण, उतना ही सत्य है, वही करने जैसा है। उसमें तू प्रीति कर, उसमें तो अनुभव कर, उसमें तू प्रीतिवंत बन, उसमेंसे उत्तम सुख प्रगट होगा। सब उसीमें है। वही करनेका है।

मुमुक्षु :- आपके आशीर्वादसे, आपकी कृपासे आगे..

समाधान :- अपूर्व आत्मा है। देव-गुरु-शास्त्र... गुरुदेवने वह सब प्रगट किया, भगवानने पूर्ण प्रगट किया, गुरुने साधना (करते हैं), शास्त्र सब बताते हैं। और वाणीमें

शास्त्रको कौन पहचानता था? गुरुने सब बताया है।

मुमुक्षु :- कुछ नहीं, हम तो कहाँ पड़े थे।

समाधान :- उस मार्ग पर अब तो स्वयंको पुरुषार्थ करना बाकी रहता है। सत्य तो वह है। मूल मार्ग एक ही है। भेदज्ञान करके चैतन्यद्रव्य पर दृष्टि स्थापित करना। जो अनन्त गुण हैं उसे लक्ष्यमें रखकर, उसमें पर्याय होती है वह लक्ष्यमें, ज्ञानमें लेकर दृष्टि एक अभेद चैतन्य पर स्थापित करने जैसी है। मैं यह चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ। सब विकल्पके भेद, विकल्परूप मैं नहीं हूँ। मैं उससे भिन्न हूँ। विकल्प आये लेकिन मैं उसका जाननेवाला हूँ। ज्ञान सब करना परन्तु दृष्टि एक चैतन्य पर स्थापित करनी है।

मुमुक्षु :- आपकी कृपा है, परन्तु मेरी कचास है।

समाधान :- .. साथमें रखकर आत्माका भेदज्ञान करना। 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।' जो सिद्ध हुएँ भेदविज्ञानसे ही हुए हैं और वही करनेका है। एक द्रव्य पर दृष्टि, एक ज्ञायक... ६ठ्ठी गाथा, '**नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं, जो एक ज्ञायकभाव है**'। एक ज्ञायकभावको पहचानना। पर्यायके भेदमें भी एक ज्ञायकको पहचानना।

एक ही मार्ग बताया है। सबमें एक ज्ञायकको पहचानना। चैतन्य, इस शरीरसे भिन्न अन्दर विकल्प है वह आत्माका स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न आत्माको पहचानना। आत्मा अन्दर एक चैतन्यतत्त्व है। यह शरीर तो एक जड़तत्त्व है। अन्दर आत्मा चैतन्य है। अंतर दृष्टि, गहरी दृष्टि करके उसे कैसे पहचानना? वही करनेका है। उसकी महिमा, उसकी लगन, जीवनमें वही करने जैसा है। बाकी बाहरका तो सब अनन्त कालमें बहुत बार किया है। यह जन्म-मरण करते हुए मनुष्यभव बड़ी मुश्किलसे मिलकता है। उसमें अंतरमेंसे स्वभाव प्रगट हो, ऐसा मार्ग गुरुदेवने बताया। करने जैसा वह है। उसकी कैसे पहचान हो? उसके लिये गुरुदेव क्या कहते हैं? गुरुदेवने क्या मार्ग बताया है? उसके लिये देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा क्यों है? आत्माको पहचाननेके लिये। एक ज्ञायक आत्मा कैसे पहचाना जाय?

वह कोई अपूर्व और अनुपम वस्तु है। अनन्त कालमें जीवको सब प्राप्त हो चूका है। परन्तु एक चैतन्यतत्त्व, एक स्वानुभूति-आत्माकी स्वानुभूति प्रगट नहीं की। वह कैसे प्रगट हो? उसके लिये उस प्रकारके विचार, वांचन, महिमा वह करने जैसा है। उसका भेदज्ञान करके अंतर दृष्टि करके देखे तो अंतर आत्मा चैतन्य अनन्त गुणसे भरा अनुपम तत्त्व है। इस जगतकी कोई वस्तु अनुपम नहीं है, एक आत्मा ही अनुपम है। देवलोकके देव भी अनुपम नहीं है। वह एक भव है। वह तो पुद्गल है। वह पुद्गल कर्मका फल है। आत्मा ऐसा अनुपम है, उसे पहचाने तो भवका अभाव हो।

जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा आत्मा है। सिद्ध भगवान जैसा अंतरमें अंश (प्रगट

होता है)। अंतरमें यदि स्वानुभूति हो तो ऐसा सुख उसे प्राप्त होता है। विकल्प टूटकर और निर्विकल्प तत्त्व आत्मा कोई अपूर्व है, उसकी स्वानुभूति प्रगट हो, ऐसा वह आत्मा है। लेकिन उसकी शुरूआत उसका भेदज्ञान करे, मैं ज्ञाता हूँ, मैं चैतन्य हूँ। ऐसे उसका स्वभाव पहचाने, उसकी रुचि करे, महिमा करे तो हो सके ऐसा है। उसका वांचन, विचार सब करने जैसा है। तो वह प्राप्त हो।

मुमुक्षु :- सूझ पड़े तो जल्दी प्राप्त हो। वह चाबी क्या है?

समाधान :- अन्दर स्वभाव, मैं कौन स्वभाव और ये विभाव क्या है? उसकी उसे बराबर पहचान होनी चाहिये कि ये जो जाननेवाला है, वही मैं हूँ, मैं यह नहीं हूँ। जितने विभाव आये, जितने ऊँचे भाव आये वह भी विकल्प है। उस विकल्पसे भी मैं भिन्न ज्ञायक हूँ। सब भाव बीचमें आते हैं, कहीं वीतराग नहीं हो गया है, आये परन्तु मेरा स्वभाव उससे भिन्न है। ऐसे स्वभावको बराबर पहचाने, वह उसकी चाबी है। बराबर उसकी सूक्ष्म दृष्टि करके प्रज्ञाछैनी, अन्दर सूक्ष्म प्रज्ञाछैनी द्वारा उसे भिन्न करे, वह उसकी चाबी है। प्रज्ञाछैनी अन्दरसे प्रगट करनी है। प्रज्ञाछैनी भिन्न पड़ता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानसे ज्ञान भिन्न पड़ता है?

समाधान :- ज्ञानसे ज्ञान भिन्न पड़े। यथार्थ ज्ञान। ज्ञायक आत्मा उसे भिन्न पड़ता है। ज्ञानसे ज्ञान भिन्न पड़ता है। उसमें उसकी प्रतीत, ज्ञान और आचरण सब उसमें समा जाते हैं। एक दृष्टि यथार्थ आत्मा पर उसे पहचानकर स्थापित करना। उसमें ज्ञानसे ज्ञान भिन्न पड़ा। उसमें उसका आंशिक आचरण आ गया। फिर चारित्रदशा तो...

मुमुक्षु :- ज्ञानमें आता है, लेकिन विश्वास नहीं आता है। विश्वास..

समाधान :- ज्ञानमें आये लेकिन प्रतीति ऐसी यथार्थ होनी चाहिये कि यह ज्ञायक है वही मैं हूँ, बस, मैं अन्य कुछ नहीं। ऐसी दृढ़ श्रद्धा, ऐसी दृष्टि स्वयं पर सथापित करके, फिर कोई भी भाव आये तो भी मैं तो चैतन्य ही हूँ, ऐसा अंतरमेंसे होना चाहिये। एक धोखनेरूप हो वह अलग बात है, परन्तु अंतरमेंसे (होना चाहिये)। रटे वह तो एक भावना है। अंतरमेंसे हो, ऐसा दृढ़ विश्वास आना चाहिये। प्रतीत, यथार्थ प्रतीत हो तो उसका यथार्थ पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- यथार्थ पहचान हो तो यथार्थ पुरुषार्थ चले?

समाधान :- हाँ, यथार्थ पुरुषार्थ हो, यथार्थ पहचान हो तो।

मुमुक्षु :- माताजी! आज..

समाधान :- यथार्थ उलझन हो तो उसे मार्ग प्राप्त हुए बिना रहे ही नहीं। वह तो वस्तुका स्वरूप है। जो उलझनमें आया है, वह उसे टिक नहीं सकता। मुझे कहाँ जाना है? मुझे अंतरमें जाना है, उसकी उलझन है। ये विकल्पकी जालमें उलझा

हुआ, जिसे शान्ति नहीं है, अशान्ति है वह क्षणभर भी टिक नहीं पाता। ऐसी जिसे अन्दरसे उलझन हो कि ये विकल्प अब चाहिये ही नहीं, विकल्पकी जालमें उलझा हुआ, विभावकी आकुलतामें उलझ गया है, अन्दरसे यथार्थरूपसे उलझा हो, व्यग्रता हो तो उसमें टिक नहीं पाये। तो अपनी ओर उसकी परिणति मुडे बिना रहे ही नहीं। ज्ञायकको पहचाने बिना रहे ही नहीं। ज्ञायकको ग्रहण किये बिना रहे ही नहीं, ज्ञायकका शरण लिये बिना रहे ही नहीं, यदि यथार्थ उलझा हो तो।

यथार्थरूपसे उलझा हुआ मनुष्य किसीका भी आधार लेना जाता है। वैसे ये अन्दरसे उलझनमें आया हुआ निज स्वरूपका आधार लिये बिना रहता ही नहीं। वह निज स्वभावको ग्रहण कर ही लेता है। इसलिये यदि यथार्थ उलझनमें आये और यथार्थ जिज्ञासा जागृत हो तो स्वभावका आधार वह अंतरमेंसे लिये बिना रहता ही नहीं। स्वभावको पहचान लेता है।

मुमुक्षु :- भावना-भावनामें बहुत अंतर होता है। एक भावना ऐसी है कि जो अंतरभेद कर देती है। आपने यह अंतिम बात कही थी।

समाधान :- भावना ऐसी हो को अंतरमें भेदज्ञान होकर ही छूटकारा हो। ऐसी भावना उग्र होती है। दूसरी तो मन्द-मन्द भावना, ऊपर-ऊपरसे भावना, मन्द-मन्द पुरुषार्थ रहा करे, वह भावना नहीं। परन्तु अंतरभेद करे अर्थात् अंतरसे भेदज्ञान कर दे, ऐसी भावना तो कोई अलग होती है कि अन्दरसे चैतन्य चैतन्यके मार्ग पर उसे परिणति प्रगट हो और विभाव परिणतिको भिन्न करता है।

विभाव परिणति भले हो, चैतन्यकी अल्पता, न्यूनताके कारण होती है। परन्तु वह भेदज्ञान करता है कि मैं तो चैतन्य हूँ। यह मेरा स्वभाव नहीं है। इसलिये चैतन्यकी ओर परिणति दौड़ जाती है और अपने स्वभावको ग्रहण कर लेती है। वह अंतरभेद कर देती है।

मुमुक्षु :- और आपके वचनामृतमें ऐसा भी आता है कि ऊपर-ऊपरसे कर, परन्तु चाहे जैसै उस मार्ग पर जा।

समाधान :- हाँ, उस मार्ग पर जा। अंतरमें तेरा लक्ष्य, भावना ऐसी रख कि गहराईमें जाने जैसा है। करना गहराईमें है, अभी बहुत न्यूनता है, ऐसा तू नक्की कर कि मुझमें न्यूनता है। परन्तु लक्ष्य गहराईसे (करना है)। परन्तु ऊपरसे हो तो उसको छोड़ नहीं देना। और अशुभमें आनेको नहीं कहते हैं। परन्तु तुझे तीसरी भूमिकामें आनेको कहते हैं। हम ऊपर-ऊपर जानेको कहते हैं, वहाँ तू नीचे क्यों गिर रहा है? ऐसा आचार्यदेव कहते हैं।

हमारे कहनेका आशय यह है कि तू तीसरी शुद्ध स्वभावकी भूमिका प्रगट कर।

शुभ तो बीचमें आता है, परन्तु शुभ तेरा स्वभाव नहीं है। वह शुभ एवं अशुभ समान कोटिके हैं, ऐसा तू समझ। और आत्मा तीसरी भूमिका अमृतकुम्भ है उसे ग्रहण कर। इसलिये ऊपर जानेको कहते हैं। अतः ऊपर-ऊपरसे तेरी भावना हो तो उसे छोड़नेको नहीं कहते हैं, परन्तु गहरी भावना प्रगट कर। शुद्ध स्वभावमें जा सके ऐसी भावना प्रगट कर।

इसलिये उसे छोड़कर फिर अशुभमें जाना, ऊपर-ऊपरकी भावना आये तो वह भावना कोई कामकी नहीं है, ऐसा कहकर छोड़नेको नहीं कहते हैं, परन्तु तू ऊँची (भावना) प्रगट कर, ऊँची परिणतिको प्रगट कर। ऐसा कहनेका आशय है। भगवानके मन्दिरमें दर्शन करता हुआ, भगवानके मन्दिर पर टहेल लगाता हुआ, टहेल लगाते हुए यदि भगवानके द्वारा न खूले तो थककर वापस मत आना, भगवानके द्वार खूल जायेंगे। तू टहेल लगाना छोड़ना मत।

चैतन्य-मन्दिरमें तू टहेल लगा, मैं चैतन्य हूँ, ऐसा ऊपर-ऊपरसे तुझे समझमें आये तो उसे छोड़ना मत। वह छोड़ना मत, यदि तुझे पहचान न हो तो। पहचान नहीं हो तबतक वहाँ टहेल लगाते ही रहना। उसमें लक्ष्य रखना कि मुझे अभी बहुत आगे जाना है। तो तेरा परुषार्थ उठने पर चैतन्य-मन्दिर खुलनेका तुझे अवकाश है। तू दूर जायगा तो ऊलटा दूर चला जायगा।

भगवानके मन्दिरसे तू दूर जायगा तो ऊलटा दूर चला जायगा। इसलिये दृष्टि बराबर रखना कि अभी मुझे अन्दर जानेका है। ऊपर-ऊपरकी भावनासे प्रगट नहीं होता, परन्तु अन्दरकी भावना प्रगट करनेके लिये तू समझना कि यह ऊपरका है। अभी अन्दरका करनेका मुझे बाकी है। ऐसे ज्ञान यथार्थ करना, तो आगे बढ़ सकेगा। ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा ऊपर-ऊपरसे हो तो भी अंतरमें जाना है, वह भावना मत छोड़ना। उसे छोड़नेको नहीं कहते हैं।

अन्दरकी भावना ऐसी आये कि भेदज्ञान हो जाय, अंतरभेद कर दे, चैतन्य-मन्दिरके द्वारा खोलकर चैतन्य भगवान प्रगट हो, वह भावना अलग होती है। परन्तू तू भावना दृढ़ करना तो कभी तेरा पुरुषार्थ उग्र होगा तो अन्दर जा सकेगा। इसलिये वह द्वार छोड़कर अशुभमें जानेको नहीं कहते हैं। शुभमें खड़ाहै, लेकिन दृष्टि शुद्ध पर रखना।

मुमुक्षु :- माताजी! कहा था न कि,

समाधान :- वह तो अपनी मन्दता देखकर पहचान सके, ये मन्द-मन्द चलता है, उग्रता नहीं हो रही है इसलिये उग्रताकी क्षति है। मन्द-मन्द, मन्द-मन्द चले। धीरी गतिसे चलनेवालेको देर लगती है। जिसे उग्रता हो, वह त्वारासे पहुँच जाता है। धीरी गतिसे चलनेवाला वहाँ खड़े रहकर चले तो कैसे पहुँचे? उसे ख्याल आये कि मैं नहीं

पहुँच पाता हूँ, इसलिये मेरी गति धीरी है। मैं जहाँ खड़ा हूँ, वहीं खड़ा हूँ, आगे नहीं बढ रहा हूँ। भावनगर जाना हो तो धीरी गतिसे चले। और चले भी नहीं और खड़ा रहे तो पहुँचनेमें देर लगे। त्वरित गतिसे चलनेवाला एकदम पहुँच जाता है। नहीं पहुँचता है वह, ये सूचित करता है कि धीरी गति है। ऊपर-ऊपरसे है। अन्दरसे प्रगट हो तो पहुँच जाय।

मुमुक्षु :- अपना ज़ोर तो ...

समाधान :- स्वयंको ही करना है, पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना है, कोई करवाता नहीं। रखड़नेवाला भी स्वयं और मोक्ष करनेवाला स्वयं स्वतंत्र है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८७

मुमुक्षु :- ... परन्तु माताजी! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है। एक वचनकी जो असर होती है, वह पढनेसे विचार नहीं आता।

समाधान :- परन्तु फिर भी स्वयं स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- कितना, माताजी! ..

समाधान :- गुरुदेवने मार्ग बताया है। स्पष्ट करके गये हैं। करनेका स्वयंको है।

मुमुक्षु :- ... कल्याण करना है ऐसी गरज नहीं है।

समाधान :- अपनी उतनी तीखी गरज लगे तो हुए बिना रहे ही नहीं।

मुमुक्षु :- सबमें निज अस्तित्वका ज़ोर लेना? माताजी!

समाधान :- सबमें निज अस्तित्वका ज़ोर। मैं ज्ञायक, मैं चैतन्य, ज्ञायकका अस्तित्व-अपना अस्तित्व। तेरा अस्तित्व तू ग्रहण कर तो तू स्वयं जैसा है वैसा प्रगट होगा। तेरा अस्तित्व तू ग्रहण कर तो तेरा जैसा स्वभाव है, वह स्वभाव प्रगटरूपसे परिणमित हो जायगा। तेरा अस्तित्व तूने ग्रहण नहीं किया है इसलिये विभावपर्याय प्रगट होती है। तेरा अस्तित्व तू स्वयं ग्रहण कर तो उसमेंसे स्वभावपर्याय प्रगट होगी। सबमें अपना अस्तित्व ग्रहण करना है।

मुमुक्षु :- माताजी! उपयोग बाहर जाय तो क्या लेना? उपयोग तो शुभ-अशुभमें जुड़ता है।

समाधान :- उपयोग बाहर जाय तो जिसकी सहज दशा है उसे तो अपनी परिणति चालू रहती है। इसे तो उपयोग बाहर जाय तो अन्दर ऐसा भाव रहे कि करनेका कुछ अलग है और ये बाहर जा रहा है, एकत्वबुद्धि होती है। मैं तो भिन्न चैतन्य हूँ, ऐसी भावना रख सकता है। जिसकी सहज परिणति हो उसकी तो अलग बात है। उसे तो ज्ञायककी धारा निरंतर चालू रहती है। उपयोग बाहर जाय तो भेदज्ञान क्षण-क्षण, क्षण-क्षण उसे याद नहीं करना पड़ता। एकबार एकत्व हो जाय और फिर याद करना पड़े कि मैं भिन्न हूँ, ऐसा उसे नहीं करना पड़ता। उसे तो जब भी उपयोग

बाहर जाय, उसी क्षण, दूसरी क्षण नहीं है, उसी क्षण उसे भिन्न ज्ञायककी धारा चलती ही है। ऐसी सहज दशा होती है। परन्तु जिसे दशा नहीं है उसे तो उपयोग बाहर जाय तो भावना रखे कि करना कुछ और है अंतरमें। उपयोग बाहर जाता रहता है। स्वयं भावना रखे। जिसकी भेदज्ञानकी धारा सहज हो उसे तो क्षण-क्षणमें वर्तती ही है। कोई बार तो विकल्प छूटकर स्वानुभूतिमें जाय, पुनः उपयोग बाहर आये तो भी एकत्व तो होता ही नहीं। भेदज्ञानकी धारा क्षण-क्षणमें चलती ही है।

मुमुक्षु :- आपने उसमें ऐसा भी लिया है कि कोई बार तो सहज-सहज ढेर लग जाय और कोई बार जैसा है वैसा रहे।

समाधान :- वह तो उसकी परिणामकी धारा जैसे उठे उस प्रकारसे होता है। परिणामकी धारा है, पुरुषार्थकी गति है। चौथे गुणस्थानमें, पाँचवे गुणस्थानमें उसकी जैसी पुरुषार्थ धारा प्रगट हो...

कोई बार चैतन्य भगवानकी कृपासे द्वार खुल जाते हैं।

मुमुक्षु :- आपकी कृपा है, माताजी! श्रीमद्जीने कहा है कि, ज्ञानीके एक-एक शब्दमें अनन्त आगम रहे हैं। आपका जितना है उतना हम पकड़ नहीं सकते हैं। वाणीमें तो बहुत आया है, बहुत आया है। सब तालेकी एक ही चाबी है। आप कहते तो तब मधुर-मधुर लगता है और जब पढते हैं तब उतना अन्दरसे... माताजी! इसलिये ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- तो उपशम सम्यग्दर्शन जो होता है, वह पुरुषार्थकी कमजोरी यदि छूट जाय तो उसका संसार भी अर्ध पुद्गलपरावर्तन ही ज्यादासे ज्यादा रहता है या फिर अनन्त संसारका बन्ध है?

समाधान :- अर्ध पुद्गल ही रहता है।

मुमुक्षु :- छूटनेके बाद? छूट जाय तब भी?

समाधान :- हाँ, तो भी अर्ध पुद्गल (ही रहता है)। शास्त्रमें अर्ध पुद्गल ही आता है।

मुमुक्षु :- ज्यादा तो नहीं होता?

समाधान :- नहीं, ज्यादा नहीं होता, अर्ध पुद्गल ही रहता है। शास्त्रमें ऐसा आता है। उपशम होवे, क्षयोपशम होवे, जो भी हो..

मुमुक्षु :- अगर पुरुषार्थकी कमजोरीसे छूट भी जाय तो भी उससे ज्यादा समय नहीं होता?

समाधान :- उससे ज्यादा नहीं होता। अर्ध पुद्गल ही रहता है। जब स्वरूपकी ओर वह परिणति गयी, बादमें उसे संसारका अंत आ जाता है। छूट जाता है तो

अर्ध पुद्गलसे ज्यादा नहीं रहता है। ऐसी वस्तुकी स्थिति नियम ही ऐसा है कि जब स्वभाव प्राप्त किया तो स्वभाव प्राप्त करनेके बाद वह संसारमें टिक नहीं सकता। जब स्वभावकी ओर परिणति गयी तो अर्ध पुद्गलसे ज्यादा वह रह नहीं सकता।

मुमुक्षु :- जो उपयोग परलक्ष्यको छोड़कर सीधा आत्माकी अनुभूति, आनन्द, शान्ति सहित परिणमन करे तो उसीका नाम आत्माका ज्ञान है क्या?

समाधान :- हाँ, आत्माका ज्ञान है। आत्माकी अनुभूति करता है वह आत्मज्ञान है। वही आत्मज्ञान है। उपयोग परसे छूटे और स्वभावकी अनुभूति करे वह आत्माका ज्ञान है। आत्माका ज्ञान कहो, आत्माकी अनुभूति कहो, सब एक ही है। उसको आत्मज्ञान कहते हैं। आत्मज्ञानके बाद उसकी धारा चालू रहती है। अनुभूतिकी स्थिति तो अंतर्मुहूर्तकी है, निर्विकल्प दशाकी। बादमें सविकल्प दशामें आता है तो ज्ञायककी धारा तो चालू रहती है।

मुमुक्षु :- शुद्ध परिणति?

समाधान :- हाँ, शुद्ध परिणति। तो उसको ज्ञान कहनेमें आता है। निर्विकल्प दशामें हो या सविकल्पमें हो, तो भी उसे आत्मज्ञान कहनेमें आता है। जब स्वानुभूति होवे बादमें जो सविकल्प दशा रहती है तो स्वानुभूतिको भी आत्मज्ञान कहते हैं और सविकल्प दशामें भी आत्मज्ञान कहनेमें आता है। क्योंकि वह ज्ञायककी धारा, भेदज्ञानकी धारा हमेंशा चलती है इसलिये।

मुमुक्षु :- तो इन्द्रियका अवलम्बन भी आता है उसमें?

समाधान :- नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द जब हुआ तब तो आलम्बन छूट जाता है। मनका विकल्प भी नहीं रहता है। निर्विकल्प दशा हो जाती है। फिर उपयोग बाहर आये तो आलम्बन भले हो अतीन्द्रिय ज्ञान, जो ज्ञायककी धारा अंतरसे भिन्न पड़कर जो परिणति हुयी तो आंशिक इन्द्रियका आलम्बन छूटकर भिन्न परिणमन ही रहता है। विकल्प होवे तो भी उसका भिन्न परिणमन रहता है।

मुमुक्षु :- वह परको जानेगा तब भी?

समाधान :- हाँ, उसी समय न्यारा परिणमन रहता है। उपयोग बाहर जावे, वह परको जानता है तो भी स्व छूटता नहीं। स्वकी परिणति नहीं छूटती। स्वको जानता है और परको भी जानता है। स्वकी परिणति छूटती नहीं है। ज्ञायककी धारा रहती है। जिस क्षण, जिस क्षण आत्माको जानता है ज्ञायककी धारा, जब उपयोग बाहर जाता है तो उसी क्षण आत्माकी परिणति उसी क्षण रहती है। फिर याद नहीं करना पड़ता है। आत्माके अस्तित्वरूप ज्ञायककी धारा आंशिक वेदन, आंशिक शान्तिकी धारा (उसी क्षण चालू है)। निर्विकल्प दशाका आनन्द दूसरा है, फिर भी सविकल्पमें भी

शान्तिकी धारा और ज्ञानकी ज्ञाताधारा रहती है। उपयोग परमें जाता है तो भी वह छूटता नहीं।

मुमुक्षु :- आनन्दका वेदन तो नहीं रहता।

समाधान :- आनन्दका वेदन नहीं रहता। शान्ति होती है। आनन्द जो अपूर्व आनन्द होता है वह निर्विकल्प दशामें होता है। सविकल्प दशामें शान्ति रहती है। शान्ति-समाधि और ज्ञाताकी धारा रहती है।

मुमुक्षु :- निराकूलता रहती है?

समाधान :- हाँ, निराकूलता रहती है और शान्ति, आंशिक शान्तिका परिणमन (होता है)। आंशिक स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट हुआ न, इसलिये शान्तिकी धारा रहती है।

मुमुक्षु :- द्रव्यका ही अशुद्ध-अशुद्ध परिणमन पर्यायकी अपेक्षासे होता है। तो उसी समय द्रव्य-गुणकी अपेक्षासे नित्य शुद्ध एकरूप ही रहता है?

समाधान :- अशुद्ध परिणाम तो.. पर्यायकी अपेक्षासे अशुद्धता रहती है न। और शुद्धता.. क्या कहा? वह तो नित्य है, एकरूप है। पर्यायकी अपेक्षासे अनित्य है।

मुमुक्षु :- तो उसीको अपरिणामी द्रव्य कहते हैं?

समाधान :- अपरिणामी द्रव्य? द्रव्यकी अपेक्षासे अपरिणामी कहनेमें आता है, वह तो एकरूप रहता है उसको अपरिणामी कहते हैं। उसमें फेरफार नहीं होता, इसलिये अपरिणामी। द्रव्य और गुण एक समान रहते हैं इसलिये अपरिणामी।

मुमुक्षु :- तो ये ध्रुव शुद्ध द्रव्यदृष्टिका विषय बनता है या दूसरा प्रमाणवाला द्रव्य?

समाधान :- नहीं, वह ध्रुव द्रव्यदृष्टिका विषय बनता है। अनादिअनन्त है वह द्रव्यदृष्टिका विषय बनता है। अनादिअनन्त पारिणामिकभाव है न। वह द्रव्य और गुण ध्रुव... परमपारिणामिकभाव उसमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- सहज स्वभाव?

समाधान :- हाँ। एकरूप रहता है। परमपारिणामिकभाव जो अनादिअनन्त है, वह द्रव्यदृष्टिका विषय है।

मुमुक्षु :- तो ये जो सामान्यचेतना भी कहते हैं?

समाधान :- हाँ, सामान्यचेतना कहते हैं।

मुमुक्षु :- सामान्यचेतना अनादिअनन्त रहती है।

समाधान :- हाँ, सामान्यचेतना रहती है। अनादिअनन्त सामान्य स्वरूप, एक स्वरूप रहती है, विशेष वह पर्यायमें फेरफार होता है।

मुमुक्षु :- ये जो चेतना अशुद्ध होती है, वह तो पर्यायवाली होती है।

समाधान :- वह पर्यायवाली होती है।

मुमुक्षु :- सामान्यचेतना?

समाधान :- सामान्यचेतना एकसरीखी होती है। विशेषचेतनामें तो उपयोग आ जाता है न। सामान्यचेतना एकसरीखी रहती है।

मुमुक्षु :- तो ये पर्याय जो होती है तो वह द्रव्यसे होती है कि प्रत्येक गुणोंसे भी अलग-अलग होती है?

समाधान :- क्या?

मुमुक्षु :- जो पर्याय होती है न? वह द्रव्यके आधारसे होती है कि प्रत्येक गुणके आधारसे?

समाधान :- मूल तो द्रव्यका ही आधार है। और जिस गुणकी जो पर्याय होती है उसको गुणका भी आधार है। मूल आधार तो द्रव्य है। गुणका आधार भी द्रव्य है। अनन्त गुणोंका आधार द्रव्य है। मूल तो द्रव्य आधार है। परन्तु कोई अपेक्षासे द्रव्यका आधार भी है, गुणका आधार भी है। गुण भी अनादिअनन्त है, द्रव्य भी अनादिअनन्त है। कोई अपेक्षासे जिस गुणकी जो पर्याय है, ज्ञानकी पर्याय ज्ञानमेंसे, दर्शनकी दर्शनमेंसे, चारित्रकी चारत्रमेंसे इसलिये गुणका आधार है। परन्तु मूल आधार तो द्रव्य है। भेदकी अपेक्षासे गुणका आधार है। अभेद मूल एक वस्तु अनादिअनन्त एक द्रव्यका आधार है। वह तो भेदका विकल्प है। वह मूल वस्तु नहीं है। मूल वस्तु तो द्रव्य है, द्रव्यका आधार है।

मुमुक्षु :- ये जो कहा गया कि पर्याय पर्यायसे ही होती है। तो वह षट्कारकसे होती है, तो वह उसकी स्वतंत्र दृष्टिसे कहा गया है?

समाधान :- पर्याय पर्यायसे, पर्याय स्वतंत्र है इसलिये।

मुमुक्षु :- इसलिये कहा गया?

समाधान :- हाँ, उस अपेक्षासे ऐसा भी कहनेमें आता है। वह अपेक्षा दूसरी है। पर्यायके कारक पर्यायमें हैं, द्रव्यके कारक पर्यायमें.. वह स्वतंत्र अपेक्षासे कहनेमें आता है। परन्तु जितना द्रव्य स्वतंत्र है, एक द्रव्यसे दूसरा द्रव्य स्वतंत्र परिणामी रहता है, उतनी स्वतंत्रता पर्यायकी (नहीं है)। पर्याय स्वतंत्र है, तो भी पर्यायको द्रव्यका आधार होता है। पर्यायको द्रव्यका आधार होता है। परन्तु द्रव्यको किसीका आधार नहीं होता। द्रव्यकी स्वतंत्रता दूसरे प्रकारकी है। द्रव्य तो निरपेक्ष है। उसके जो षट्कारक कहनेमें आये वह दूसरी अपेक्षा है, पर्यायकी अपेक्षा दूसरी है। परन्तु पर्याय स्वतंत्र है वह बात बतानेके लिये पर्याय स्वतंत्र है। पर्यायके षट्कारक पर्यायमें है, वह बात कहनेमें आती है।

पर्याय स्वतंत्र है इसलिये उसे कोई बना नहीं देता। पर्याय स्वतंत्र प्रगट होती है। पर्यायकी स्वतंत्रता बतानेके लिये उसके षट्कारक भी स्वतंत्र (कहनेमें आते हैं)। वह भी एक अपेक्षा है। पर्यायकी स्वतंत्रता है वह जाननेके लिये एक अपेक्षासे कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- प्रवचनसारमें आया न कि द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों सत् हैं। तो ये..

समाधान :- हाँ, तीनों सत् हैं। इसलिये तीनों स्वतंत्र हैं।

मुमुक्षु :- तीनों स्वतंत्र।

समाधान :- तीनों स्वतंत्र हैं। लेकिन उसकी अपेक्षा जाननी चाहिये।

मुमुक्षु :- यानी है द्रव्यके आधारसे।

समाधान :- हाँ, द्रव्यके आधारसे है। द्रव्यका आधार समझना चाहिये। नहीं तो पर्याय निराधार नहीं होती।

मुमुक्षु :- स्वयं ही आत्माको जाननेका कार्य करे और आत्माके सन्मुख होकर करे और परसे विमुख होकर। तो शान्ति, आनन्द जो प्रगट हुआ उसे ही वेदन कहते हैं?

समाधान :- उपयोग स्वका... क्या कहा? पर-ओरसे उपयोग हटकर स्वसन्मुख होवे, परकी सन्मुखता तोड़ दे और स्वसन्मुख उपयोग होवे, उपयोग आत्मामें लीन हो जाय और विकल्प टूट जाय, उपयोग स्वरूपमें आये, विकल्प टूट जाय, विकल्पकी आकूलता टूट जाय, उसका भेदज्ञान हो जाय, आत्मा आत्माकी ओर सन्मुख हो जाय, आत्मामें उपयोग लीन हो जाय तो आत्मामें उसका जो स्वभाव है-आनन्द आदि अनन्त गुण है वह प्रगट होते हैं। उसको आत्माकी स्वानुभूति और वेदन कहनेमें आता है। उपयोग परसे छूट जाय।

मुमुक्षु :- तो उसमें बार-बार स्थिरता क्यों नहीं होती?

समाधान :- क्या बार-बार?

मुमुक्षु :- स्थिरता क्यों नहीं होती?

समाधान :- स्थिरता तो उसकी जो दशा जितनी होवे वैसे होवे। क्योंकि उपयोग तो बाहर चले। अंतर्मुहूर्तकी उसकी स्थिति है। अंतर्मुहूर्तिकी स्थिति है उपयोगकी। अंतर्मुहूर्त स्वानुभूतिमें स्थिर होकर उपयोग बाहर जाता है। स्थिरता तो चारित्रदशाकी कमी है इसलिये स्थिरता नहीं होती है। स्वरूपकी परिणति ज्ञायककी धारा रहती है। ज्ञायककी भेदज्ञानकी धारा रहती है। अमुक अंशमें स्थिरता होती है। स्थिरता नहीं होता है, ऐसा नहीं। उसमें एकमेक नहीं हो जाता है। एकत्वबुद्धि नहीं होती। ज्ञायककी ज्ञाताधार और कर्मकी

धारा-उदयधारा दोनों भिन्न रहती है। उतनी स्थिरता उसको निरंतर रहती है। और विकल्प टूटकर निर्विकल्पकी स्थिरता वह कोई-कोई बार होती है। निर्विकल्प स्थिरता तो जैसी दशा होवे वैसी होती है।

मुमुक्षु :- तो अगर ये दशा न हो तो क्या सम्यग्दर्शन छूट जाता है?

समाधान :- जिसको भेदज्ञानकी धारा रहती है उसको निर्विकल्प दशा अमुक समयमें आती ही रहती है। उसकी पुरुषार्थकी दशा ऐसी है।

मुमुक्षु :- .. पुरुषार्थ होना चाहिये?

समाधान :- स्थिरताके लिये तो बारंबार ज्ञायककी धाराकी उग्रता करे, ज्ञाताधाराकी उग्रता करे तो स्थिरता होवे। ज्ञायकधाराकी उग्रता। फिर विशेष स्थिरता हो तो उसकी भूमिका भी पलट जाती है। चौथे गुणस्थानमें जो स्थिरता होती है, उससे पंचम गुणस्थानमें विशेष स्थिरता होती है। उससे विशेष छठवे-सातवेंमें होती है। छठवे-सातवें गुणस्थानमें उससे विशेष अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त आत्मामें उपयोग स्थिर हो जाता है। अंतर्मुहूर्त बाहर जाय, अंतर्मुहूर्त अंतरमें जाय। अंतर्मुहूर्तमें बाहर आवे। तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें उपयोग इतना स्थिर हो जाता है, छठवें-सातवें गुणस्थानें। उसका क्या पुरुषार्थ क्या, ज्ञाताधाराकी उग्रता (करे)। वह तो भूमिका पलट जाती है, विशेष स्थिरता होवे तो। चौथे गुणस्थानमें अमुक प्रकारकी स्थिरता होती है।

मुमुक्षु :- उसके लिये ज्यादा मननकी जरूरत रहती है?

समाधान :- स्थिरताके लिये मननकी जरूरत रहती है ऐसा नहीं। मनन तो श्रुतका चिंतवन रहता है। स्थिरताके लिये तो आत्मामें विशेष लीनता करना। उसकी विरक्ति बढकरके, विभाव परिणामसे विरक्ति होकर ज्ञाताधारामें तल्लीनता-लीनता होवे तो स्थिरता होवे, वही उसका पुरुषार्थ है। मनन तो बीचमें स्थिर न हो सके तो श्रुतका चिंतवन रहता है। वह ज्ञानकी परिणति है, पहलेवाली स्थिरता-लीनताकी परिणति है।

... के लिये मनन करे, विशेष ज्ञानकी निर्मलता करनेके लिये। शिवभूति और कुछ नहीं जानते थे। भेदज्ञानकी धारा उग्रता हो गयी तो उसमें लीनता बढ गयी। लीनता बढ गयी तो वीतराग हो गये, केवलज्ञान हो गया। ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- लीनताकी जरूरत है।

समाधान :- हाँ, लीतनाकी जरूरत है। जब लीनता नहीं होवे तब श्रुतका चिंतवन रहता है।

मुमुक्षु :- विचारधारा?

समाधान :- हाँ, विचारधारा रहती है।

समाधान :- .. अन्दर यथार्थ उलझन हो तो अन्दरसे मार्ग हुए बिना नहीं रहता।

सही उलझन हो तो अन्दरका मार्ग स्वयं ही कर लेता है। बाहर जैसे कोई उलझन हो तो उसका रास्ता जैसा निकालता है, ऐसे अंतरमें यदि सच्ची उलझन हो तो अंतर्भेद होकर अन्दर उलझन हो तो स्वयंका आधार स्वयं ही ले लेता है। अन्दर स्वयंके ज्ञायकक आश्रय स्वयं ही ले लेता है। ऐसा कहते थे।

अन्दरकी सच्ची उलझन हो तो अन्दरसे स्वयं ही आधार लिये बिना रहे नहीं और वह नहीं हो तबतक, भावना गहरी न हो तो भावना भले ऊपरसे हो तो भी सच्चा तो गहराईसे भावना करनी वही करना है। अन्दरसे प्रगट करना है। परन्तु वह प्रगट न हो तो आचार्यदेव समयसारमें कहते हैं कि हम ऊपर-ऊपर जानेको कहते हैं, शुद्ध भूमिकामें अर्थात् तू तीसरी भूमिकामें जा। इसलिये ऐसा नहीं कहते हैं कि तू नीचे ऊतर। नीचे-नीचे गिरनेको कहाँ कहते हैं, तू नीचे क्यों गिर रहा है? नीचे-नीचे क्यों गिर रहा है, ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। हम तो तीसरी भूमिकामें जानेको कहते हैं। अर्थात् जो प्रतिक्रमण, अप्रतिक्रमण.. उसे हमने अमृतकुंभ जो तीसरी भूमिका कही, और शुभकी भूमिकाको हम विषकुंभ कही तो शुभकी भूमिका छोड़कर अशुभमें जा ऐसा हम नहीं कहते हैं। तीसरी भूमिकामें जा। दोनों कोटिका (उल्लंघन करके) तीसरी कोटिमें जा। ऐसा जानेका कहते हैं। और वह न हो तबतक तू वहाँ खड़ा रह। परन्तु तेरी दृष्टि तो तू तेरे शुद्धात्मा पर रखना। मेरा चैतन्यदेव कैसे प्रगट हो? ऐसे।

इसलिये ऐसा कहा कि मन्दिरके द्वार बन्द हो तो मन्दिरके पास तू टहेल लगाना, टहेल लगाना मत छोड़ना। तेरेसे आगे न बढा जाय तो तेरी भावना गहराईसे न हो तो अमुक प्रकारसे तेरी भावना मन्द-मन्द पुरुषार्थकी हो तो मन्दिर आगे टहेल लगाता रह। द्वार नहीं खूल रहे हैं, अब छोड़ दूँ, ऐसे छोड़ना मत।

ऐसे चैतन्यदेव अन्दरसे प्रगट हो तो अन्दर तू टहेल लगाना छोड़ना मत कि मैं ज्ञायक हूँ। अंतर गहराईमेंसे तुझे ज्ञायककी पहिचान न हो तो भी तुझे भावना अमुक प्रकारसे मन्द-मन्द होती हो तो भी तू टहेल लगाना छोड़ना मत। चैतन्य भगवानके द्वार पर टहेल मारता रह, उसे छोड़कर अशुभमें जानेको आचार्यदेव नहीं कहते हैं। तीसरी भूमिकामें जानेको कहते हैं। वह न जाना हो तो तू चैतन्यभगवानके द्वार पर टहेल लगाता हुआ खड़ा रहना, उसे छोड़ना मत। थकना नहीं, ऐसा कहा। टहेल लगाता रह।

मन्दिरके द्वारा टहेल लगाता रह भगवानके आगे, तेरी खरी भावना होगी तो मन्दिरके द्वार (खूल जायेंगे)। इस चैतन्यके द्वार पर तू टहेल लगा तो कभी तो प्रगट होनेका तेरा पुरुषार्थ अन्दर जानेका अवकाश है। परन्तु यदि वहाँसे थककर कहीं और जगह गया-नीचे गया तो फिर कोई अवकाश नहीं है।

मुमुक्षु :- स्वयंको ऐसा लगे कि कुछ होता नहीं है तो भी छोड़ना नहीं।

समाधान :- नहीं हो रहा है तो भले वहींका वहीं खड़ा रह। लेकिन उसे छोड़ना मत। उसीमें लगे रहना कि प्रगट तो यह चैतन्यदेवको ही करना है। ज्ञायक पहचाना नहीं जाता, लेकिन छोड़ना मत। उसका मनन, उसका चिंतवन, वह विचार, वही वांचन, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, चैतन्य कैसे पहचानमें आये उस ध्येयपूर्वक। चैतन्यकी महिमापूर्वक चैतन्यका स्वभाव कैसे पहचानमें आये, उस ध्येयपूर्वक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, श्रुतका चिंतवन वह सब (करना)। गहराईसे न आता हो तो भी छोड़ना मत। छोड़ेगा तो उलझनमें अशुभमें मत जाना, ऐसा कहना था। रुचिको तू मन्द करके दूर मत जाना। परन्तु वहीं टहेल लगाना, ऐसा कहा था। स्वयंकी बात आये न इसलिये अच्छी लगे।

अपनी रुचि अंतरमें एकदम ऊतर गयी। स्वभावकी ओर रुचि एकदम उग्र हो गयी, पुरुषार्थ उग्र हो गया और बाहर कहीं रुचि टिक सके नहीं, बाहर कहीं टिक न सके, अंतरकी रुचि उग्र हो गयी, उसके पीछे पुरुषार्थ और आत्माका स्वभाव ग्रहण कर लिया एकदम। स्वभाव ग्रहण कर लिया और भेदज्ञान किया।

ये छिलका अलग और दाल अलग, वैसे मैं ज्ञायक भिन्न और ये विभाव भिन्न। करनेका एक-मूल प्रयोजनभूत आत्माको ग्रहण करना। विभाव भिन्न। उसके लिये, वह कर नहीं सकता है, अनादिका विभावका अभ्यास है इसलिये। इसलिये बारबार उसका चिंतवन, मनन करते रहना। उसमें थकना नहीं, ऐसा कहना था।

मुमुक्षु :- मन्दता हो जाय तो भी पुनः...

समाधान :- फिरसे उसे बार-बार दृढ़ करना, मन्दता हो जाय तो भी। चैतन्यदेवके द्वार पर तू टहेल लगाते रहना, छोड़ना मत।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८८

मुमुक्षु :- बहिन! उनका कहना है कि हम गृहस्थाश्रममें कर सकते हैं?

समाधान :- आत्माकी रुचि तो कर सकते हैं न। अन्दर रुचि रहनी चाहिये कि आत्माका कैसे हो? वांचन, विचार ऐसा तो हो सकता है। दूसरा विशेष करना हो तो अन्दरकी लगन लगानी। जो करना हो वह हो सकता है। प्रथम मूल नींव तो सम्यग्दर्शनका है। सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो, पहले तो वह करने जैसा है। इसमें बाहरसे करना है (ऐसा तो है नहीं)। अंतर दृष्टि करने जैसी है वह करने जैसा है। सम्यग्दर्शन कैसे हो? अनादिसे वह प्रगट नहीं हुआ है, दूसरा सब हो चूका है। बाहरका सब प्राप्त हो चूका है, एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। उसकी तैयारी तो गृहस्थाश्रममें हो सकती है। उसका तत्त्व विचार, वांचन, शास्त्र अभ्यास, आत्मा तत्त्व भिन्न है उसकी प्रतीत, दृढ़ता कैसे हो वह सब करना। वह सब तो गृहस्थाश्रममें हो सकता है।

मुमुक्षु :- ये तो मुंबईकी प्रवृत्तिमें..

समाधान :- प्रवृत्तिमें ऐसा हो जाय और उसमें भी मुंबईकी प्रवृत्तिमें अन्दर आत्माको पहिचानना, उस प्रवृत्तिमें कितना समय व्यतीत हो जाय उसमेंसे समय खोजना मुश्किल पडे ऐसा है। लेकिन उसमेंसे समय बचाकर कुछ विचार, कुछ वांचन, मन्दिर जाना आदि... पार्ला रहो वहाँ मन्दिर (नहीं है)। .. अनेक जातके विकल्प रहे।

मुमुक्षु :- यहाँ सुचारुरूपसे रुचि रहती है, वह मुंबईमें नहीं हो सकता।

समाधान :- प्रवृत्तिकी जाल सब दिमागमें आ जाय। ये तो गुरुदेवकी साधनाभूमि है और सब शान्ति (है)। तत्त्वविचारका माहोल है। यहाँ दूसरी बात है। विचार, वांचन, कुछ आना-जाना रखे तो हो।

मुमुक्षु :- मति-श्रुतको मर्यादामें लानेकी बात की और दृष्टि, उस मति-श्रुत और दृष्टिमें कुछ अंतर है?

समाधान :- मति-श्रुत है वह तो ज्ञानका उपयोग है। दृष्टि है वह सम्यग्दर्शनकी पर्याय है।

मुमुक्षु :- श्रद्धाकी?

समाधान :- हाँ, वह श्रद्धाकी पर्याय है। मति-श्रुतका उपयोग जो बाहर जाता

है, उसे अंतरमें लाना वह निर्विकल्प स्वानुभूतिकी बात है। बाहर जो मति और श्रुतका उपयोग जाता है, उसे समेटकर अंतरमें ला। इसलिये जो उपयोग बाहर जाता था, उसे अंतरमें स्थिर कर। दृष्टि तो चैतन्य पर स्थापित कर दे कि मैं चैतन्य अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य हूँ। उसकी दृष्टि चैतन्य पर स्थापित करके, फिर उपयोग जो बाहर जाता है, उस उपयोगको समेटकर अपनी ओर ले आ। इसलिये विकल्प छूट जाय। विकल्पकी जाल छूटकर उपयोग तेरेमें स्थापित कर दे। वह निर्विकल्प स्वानुभूतिके समयकी बात है। उपयोग बाहर जा रहा है उसे अंतरमें लाये।

मुमुक्षु :- यानी जो महेनत करते हैं उन सबको लागू पड़ता है।

समाधान :- सबको लागू पड़ता है। सम्यग्दर्शनके सन्मुख, अन्दर सन्मुखताकी बात है। अंतरमें निर्विकल्प स्वानुभूति हो उस वक्त मति-श्रुतका उपयोग अपनेमें आ जाता है। इसलिये उसका उपाय बताया है कि जो पर प्रसिद्धिका कारण मति-श्रुत है, उसे अपने सन्मुख कर। आत्म प्रसिद्धि यानी अपनेमें स्थिर कर। इसलिये विकल्प छूटकर स्वानुभूति प्रगट होगी, ऐसा कहते हैं।

पहले उसकी प्रतीति यथार्थ करके, मति-श्रुतका उपयोग भी तेरे सन्मुख कर दे। उसका उपाय बताया है। सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति होने पूर्वका वह उपाय बताया है। उपाय बताया है। निर्णय करके मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी दृढ़ प्रतीति, निर्णय करके मति-श्रुतका उपयोग भी तेरे सन्मुख कर। बाहर, मति-श्रुतका पर प्रसिद्धिका जो कारण, दूसरी ओर जो उपयोग जाता है, उसे तेरे सन्मुख (कर)। तू तेरेमें स्थापित कर दे, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- बहिन! उसकी अति तीव्र रुचि हो तभी अन्दर दृष्टि हो न। वह रुचि कैसी होती है?

समाधान :- परपदार्थ और विभावकी ओर उसे एकदम विरक्ति आकर अपने स्वभावको ग्रहण कर लेता है। वह तो उसकी तीव्र रुचि हो तो ही हो न, बिना रुचि कहाँसे हो?

मुमुक्षु :- वह रुचिकी जात कैसी है?

समाधान :- वह जात ही अलग होती है। भेदज्ञान करके जो रुचि प्रगट हो, यथार्थ रुचि, उसे रुचि कहो, प्रतीति कहो, यथार्थ दृष्टि कहो, वह सब सम्यग्दर्शनकी पर्याय है। सम्यग्दर्शन होने पूर्वकी यथार्थ रुचि है। भेदज्ञान करनेकी यथार्थ रुचि। विभावसे छूटकर स्वभावको ग्रहण करता है। वह यथार्थ रुच है।

आत्माका करना है, आत्माका करना है, वह अमुक प्रकारकी रुचि है। परन्तु जो स्वभावको ग्रहण करता है वह तो यथार्थ रुचि है। .. पहचान लेता है। यह मैं

चैतन्य हूँ और यह मैं नहीं हूँ, ऐसे यथार्थ भेदज्ञान करता है।

मुमुक्षु :- फिर तो उसे अपनेआप उसे अन्दर मार्ग मिल जाता है?

समाधान :- मार्ग स्वयं ही खोज लेता है। जो गुरु द्वारा मार्ग मिला है, वह मार्ग अनुसार अंतरमेंसे स्वभावको ग्रहण करता है, भेदज्ञान करता है कि ये शुभाशुभभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है। शुभ बीचमें आता है, परन्तु चैतन्यका मूल स्वरूप नहीं है। इसलिये अपना यथार्थ स्वभाव, जो गुरुदेवने कहा, देव-गुरु-शास्त्र जो कहते हैं, उस अनुसार स्वयं ग्रहण करके अपना मार्ग स्वयं ही अन्दरसे खोज लेता है। यह स्वभाव है, यह विभाव है उसका लक्षण पहिचान लेता है।

अनुपम मार्ग है, अनादिका अनजाना है। अनादि कालसे बाह्य क्रियामें धर्म मानता है, शुभभाव थोड़ा किया तो धर्म मान लिया। लेकिन वह तो पुण्यबन्धका कारण है। मुक्तिका मार्ग तो अंतरमें रहा है।

मुमुक्षु :- गुरुके पास उपदेश सुने और सम्यग्दर्शन ओर तुरन्त चारित्र जिन जीवोंको होता होगा, उन जीवोंको पहले तो रुचि नहीं थी, एक शब्द सुनने पहले रुचि भी नहीं थी। फिर एकदम ऐसी रुचि भी हो गयी, वह तो कितना उसे बल आता होगा।

समाधान :- स्वभाव-ओरका बल। रुचि अर्थात् यथार्थ प्रतीति। प्रथम तो जो गुरु कहते हैं उसे सुनता है। गुरुने क्या कहा उसका आशय ग्रहण करता है। गहराईसे आशय ग्रहण करता है। उस जीवको आत्माका करना है, ऐसी रुचि होती है, परन्तु जो यथार्थ रुचि अन्दर स्वभाव ग्रहण हो, ऐसी रुचि तो अन्दर पहचान हो तब उसे होती है। परन्तु वह अंतर्मुहूर्तमें सब कर लेता है।

शिवभूति मुनिने अंतर्मुहूर्तमें कर लिया। गुरुने कहा, मातुष और मारूष भूल गये। कोई राग करना नहीं, द्वेष करना नहीं। वह तेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा गुरुका आशय था। वह शब्द भूल गये। गुरुने क्या कहा, वह भूल गये। वह औरत दाल और छिलका भिन्न-भिन्न करती थी। मेरे गुरुने यह किया कहा है, भिन्नता करनी। ये दाल और छिलका भिन्न-भिन्न है। वैसे यह स्वभाव भिन्न है और विभाव भिन्न है। ऐसे उसने आशय ग्रहण कर लिया और अंतरमें भेदज्ञान हो गया। पुरुषार्थसे भेदज्ञान कर लिया। भेदज्ञानकी उग्रता करते-करते अंतरमें लीनता बढी, यथार्थ मुनिदशा हो गयी, सम्यग्दर्शन हो गया। यथार्थ मुनिदशा हो गयी। अंतर्मुहूर्तमें पहुँच गये।

मुमुक्षु :- वह तो इतना जल्दी हो गया..

समाधान :- अपना स्वभाव है न। यदि अन्दर पुरुषार्थसे पहुँचे तो देर नहीं लगती। और जो अनादिका अभ्यास है उसीमें तनीजता है तो कितना काल निकाल देता है। और यदि स्वभाव ग्रहण करे तो अंतर्मुहूर्तमें (हो जाता है)।

... उसका रस अंतरमेंसे ऊतर जाय और स्वभावकी महिमा प्रगट हो। स्वभाव कैसे पहचानमें आये? उस जातका यथार्थ ज्ञान, यथार्थ समझन, यथार्थ विरक्ति, यथार्थ चारित्र अंतरमेंसे यथार्थ कैसे प्रगट हो? ये तो अभी भावनारूपसे ... ग्रहण किया उसमें यथार्थता कैसे प्रगट हो? यथार्थ त्यागस्वरूप आत्मा, यथार्थ ज्ञान, यथार्थ दर्शन, यथार्थ चारित्र कैसे प्रगट हो? जो गुरुदेवने बताया वह मार्ग ग्रहण करने जैसा है। उसकी वृद्धि कैसे हो?

.. तत्त्वविचार, मूल रहस्य क्या? आचार्य, गुरुदेव क्या मार्ग बताते हैं, उसका विचार करना, उसका वांचन करना, आत्माकी महिमा करना और देव-गुरु-शास्त्रने जो प्रगट किया है, शास्त्र जो बताते हैं, उन सबका विचार करना। मार्ग तो.. पहले तो मार्गका यथार्थ ज्ञान करना कि मार्ग कैसा है, ऐसे। ज्ञान करनेके बाद उसका भेदज्ञान करना, उसकी प्रतीत करना, लीनता करनी। भीतरमें जो जाननेवाला जो है वह आत्मा है। ये शरीर कुछ जानता नहीं। विकल्प आता है, वह भी कुछ जानते नहीं, जाननेवाला भीतरमें अलग है-भिन्न है, उसको पीछानना। भेदज्ञान करना। मैं स्फटिक जैसा निर्मल अनादिअनन्त आत्मा हूँ।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान करनेके लिये, मतलब युग ऐसा है कि हर चीज बढ गयी है, हर जगह पर अशान्ति है। तो क्या मन्दिरमें ही हो सकता है? मन्दिरमें बैठकर ही कर सकते हैं?

समाधान :- नहीं, मन्दिरमें हो सकता है ऐसा नहीं है। उसका सच्चा ज्ञान करनेसे होता है। मन्दिर तो शुभभाव करनेका, देव-गुरु-शास्त्र.. जब आत्माकी पहचान नहीं होती है, तो देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आती है, मन्दिरमें जाता है, तो मन्दिरसे नहीं होता है। उसका सच्चा ज्ञान करनेसे होता है। उसका विचार करना, तत्त्व विचार करना, मूल वस्तु क्या है? उसका विचार करनेसे, उसकी लगन लगाये, उसकी महिमा करे, जिज्ञासा करे। विभावमें कुछ नहीं है, मेरे आत्मस्वभावमें सबकुछ है। ऐसी प्रतीत करनेसे, ऐसा विचार करनेसे होता है।

मुमुक्षु :- हमारा ध्यान तो पल-पलमें टूटता है। जैसे अभी बिजली गूल हो जाय, पंखा बन्द हो जाय तो हमारा..

समाधान :- लगन होनेसे होता है। बाहर लक्ष्य जानेसे नहीं होता है। लगन लगानी चाहिये। जैसे विभावकी लगन है, वैसे आत्माकी लगन लगानी चाहिये। परमें उपयोग जाता है, वैसे स्वमें उपयोग लगाना चाहिये। तो हो सकता है। भेदज्ञान करनेसे होता है।

मुमुक्षु :- निश्चयमें कैसे कूदना? व्यवहारको पकड़ने जाय तो व्यवहार ही पकड़में रहता है। निश्चयकी आराधना करने जाते हैं तो शुष्कता हो जाती है।

समाधान :- ध्येय निश्चयका रखना। व्यवहारमेंसे निश्चयमें जाना नहीं होता। निश्चयकी दृष्टि, निश्चयकी ओर परिणति करे तो निश्चयमें जाय। जो व्यवहारमें सर्वस्व मानते हैं कि व्यवहारसे ही धर्म होता है, उसे तो कोई अवकाश नहीं है। परन्तु व्यवहारके साथ ध्येय निश्चयका होना चाहिये कि आत्मा स्वयं अनादिअनन्त तत्त्व है। ये विभाव स्वभाव मेरा नहीं है। मैं चैतन्यतत्त्व हूँ। ऐसा अन्दर ध्येय, अन्दर ऐसी दृष्टि, ऐसी प्रतीत ऐसा ध्येय होना चाहिये। ऐसा ध्येय रखकर उसमें पलटे। ऐसा ध्येय हो, ऐसी भावना हो, ऐसी उसे खटक रहती हो तो उसमें उसे पलटनेका अवकाश, पुरुषार्थ शुरू हो तो होता है। व्यवहारसे निश्चय होता नहीं, परन्तु उसका ध्येय रखे, उस ओर दृष्टि रखे, उसकी भावना रखे तो उसे पलटनेका अवकाश है। व्यवहार तो व्यवहार ही है, परन्तु उसके साथ उसे ध्येय होना चाहिये कि इसमें सबकुछ नहीं है। सर्वस्वभूत तो आत्मामेंसे शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। ये तो शुभ तो शुभ ही है। परन्तु उसका ध्येय वह होना चाहिये। वह नहीं होता है तबतक शुभमें खडा रहता है। उस जातका ज्ञान, दर्शन... भावना करता रहे। यथार्थ ज्ञान, दर्शन तो चैतन्यको ग्रहण करनेसे होता है। आत्मामेंसे ही दर्शन प्रगट होता है और आत्मामें ज्ञान और आत्मामें चारित्र प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- चैतन्यको ग्रहण करनेमें वांचन, मनन या सत्पुरुषका मिलन, इसमें खास ज्यादा उपयोगी कौन होता है?

समाधान :- सब साथमें होना चाहिये। वांचन, मनन समझ पूर्वक होना चाहिये। आत्मा कैसे ग्रहण हो, वह ध्येय होना चाहिये। उसमें सत्पुरुषका ग्रहण, सत्पुरुषका समागम, वाणी सब साथमें होना चाहिये। सत्पुरुषका आश्रय... गुरुदेवने क्या कहा है? क्या मार्ग बताया है? उस प्रकारसे अपनी विचारकी शैली (होनी चाहिये)। स्वयं विचार करे, आत्माका स्वभाव ग्रहण करना, उसमें गुरुदेवने क्या कहा है? उसके साथ मेल करके स्वयं आगे बढे। समझता है, ज्ञानसे समझमें आता है, परन्तु उसमें गुरुदेवने क्या मार्ग बताया है, उसका साथमें रखकर विचार करे।

मुमुक्षु :- इस बातकी पुष्टि होनेके लिये ज्यादा एकान्त चाहिये?

समाधान :- एकान्तकी भावना आये तो उसमें कोई... भावना आये तो एकान्त ज्यादा होना ही चाहिये, ऐसा नहीं, परन्तु एकान्त हो तो उसे उस जातका विचार करनेका, वांचन करनेका साधन बनता है। परन्तु एकान्त होना ही चाहिये, ऐसा नहीं। योग्यता अनुसार होता है। किसीको वांचन रुचता है, किसीको एकान्तमें रुचता है, उसकी परिणति अनुसार (होता है)। एकान्त हो तो विचार करनेका, मनन करनेका, उस प्रकारसे ज्यादा समय मिलता है।

... दर्शन, ज्ञान, चारित्र.. मुनिओंको चारित्रकी भावना होती है तो एकान्तमें चले

जाते हैं। एकान्तसे होता नहीं है, परन्तु ऐसी भावना आये बिना नहीं रहती। वैसे जिसे आत्माका करना हो उसे ऐसी भावना आये बिना नहीं रहती। उससे बनता नहीं है, वह करवा देता है ऐसा नहीं है। परन्तु ऐसी भावना उसे आती है।

मुमुक्षु :- क्रममें आ पड़े उदयिका भावको आगे-पीछे नहीं कर सकते हैं। उस वक्त इस ओरका मनन, विचार .. उस वक्त क्या करना?

समाधान :- क्रममें आ पड़े उसे आगे-पीछे (नहीं होता)। उसमें पुरुषार्थ करना अपने हाथकी बात है। आगे-पीछे नहीं कर सकता। जिसकी भावना हो वह पुरुषार्थ करके पलट सकता है। यदि पलट न सकता हो तो अनादि कालसे कोई पुरुषार्थ करके, भेदज्ञान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त ही न हो। वह सब पर्याय हैं। पर्यायको पलटनेका स्वभाव है। विभावपर्यायमेंसे स्वभाव-ओर भावना करके स्वभावको ग्रहण करना, वह पलटा, जो पर्याय इस ओर है उस पर्यायको (पलटकर) स्व-ओर दृष्टि करनी वह अपने हाथकी बात है।

वह क्रमबद्ध पुरुषार्थके साथ जुड़ा है। अकेला क्रमबद्ध होता ही नहीं, पुरुषार्थके साथ जुड़ा हुआ क्रमबद्ध है। उस क्रमबद्धके अन्दर स्वभाव, पुरुषार्थ आदि उसके साथ जुड़ा हुआ है। जिसकी पुरुषार्थकी गति.. विभाव सर्वस्व लगे, विभावमेंसे छूटना जिसे रुचता नहीं है, उसका क्रमबद्ध ऐसा है। जिसे विभाव रुचता नहीं है और स्वभाव ही रुचता है, उसका क्रमबद्ध उस प्रकारका होता है, उसके पुरुषार्थकी गति उस ओर होती है। पुरुषार्थके साथ जुड़ा हुआ क्रमबद्ध होता है।

मुमुक्षु :- ... निषेध समकितीको वर्तता है और उनको ही खूब अर्पणता होती है। ऐसा कहते थे, जिसे निषेध वर्ते ही उसे सच्ची अर्पणता है। यह बात बहुत विचित्र है।

समाधान :- स्वभावमें वह नहीं है। स्वभावमें उसे शुभभावका आदर (नहीं है)। वस्तु स्थिति वह नहीं है, उसकी दृष्टिमें आदर नहीं है। एक चैतन्यतत्त्वको ग्रहण किया, परन्तु बीचमें आये बिना नहीं रहता। इसलिये जो शुभभावना आये,.. उसे चैतन्यकी इतनी महिमा है कि ये चैतन्य ही सर्वस्व अंगीकार करने जैसा है। दूसरा कुछ इस जगतमें सारभूत नहीं है। ये विभाव है वह आत्माका स्वभाव नहीं है, दुःखरूप-आकुलतारूप है। तो ऐसे स्वभावको जिसने प्राप्त किया, संपूर्णरूपसे जो पुरुषार्थ करके स्वरूपमें लीन हो गये और केवलज्ञान प्राप्त किया और जो स्वरूपमें बार-बार लीन होते होंगे ऐसे मुनिवर क्षण-क्षणमें उन सबका उसे इतना आदर होता है। क्योंकि उसे स्वयंको स्वभावका उतना आदर है कि ये विभाव है वह हेयरूप ही है, मेरा स्वभाव ही आदरणीय है। इसलिये स्वभाव आदरणीय..

अंतर्गत परिणतिमेंसे यथार्थ दृष्टि और यथार्थ प्रतीति ऐसी हुयी है कि जिसने वह प्रगट किया, उस पर उसे उतनी ही महिमा आती है। शुभभाव आदरणीय नहीं मानता है, तो भी शुभभावमें जब वह खड़ा है, तब उसे हेयबुद्धि (वर्तती है) कि ये मेरा स्वभाव भिन्न और ये विकल्प भिन्न है। तो भी उस शुभभावमें जो निमित्त हैं ऐसे देव-गुरु-शास्त्र पर उसे महिमा भी उतनी ही आती है। क्योंकि उसे स्वभावकी उतनी महिमा है और विभाव तुच्छ लगा है। इसलिये उसने जो प्रगट किया है और जो उसकी साधना करते हैं, उस पर उसे महिमा भी उतनी ही आती है। उसकी महिमाका कारण है कि स्वयंको स्वभावकी महिमा है। इसलिये जिन्होंने स्वभाव प्राप्त किया उस पर उसे महिमा, यथार्थ महिमा आती है।

अंतर दृष्टिमें (ऐसा है कि) शुभभाव मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा मानता है। उसी क्षण भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। तो भी उसे शुभभावमें पुण्य आदरणीय नहीं है। शुभभावका रस उसे बहुत पडता है और स्थिति कम पडती है।

मुमुक्षु :- आपने ही बात कही थी कि जिसे अपनी महिमा आयी है, उसे ही सच्चे निमित्तका पूरी महिमा आती है।

समाधान :- यथार्थ अपनी महिमा आये उसे देव-गुरु-शास्त्रकी यथार्थ महिमा आती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१८९

मुमुक्षु :- पत्रमें आता है कि मुमुक्षुके नेत्र महात्माको पीछान लेते हैं। तो समकित तो हुआ नहीं है, वह कैसे पहचान सके?

समाधान :- उसे सत्-ओरकी रुचि लगी है कि यथार्थ वस्तु क्या है? आत्माका करना है। आत्माका स्वरूप कौन बताये? ऐसी उसे अंतरसे भावना हुयी है। तो जो सत्पुरुष आत्माकी बातें करते हों, स्वानुभूतिकी बातें करते हों, तो उसे अंतरकी ऐसी जिज्ञासा जागृत हुयी है कि उसके परीक्षा करनेके नेत्र ऐसे हो गये हैं कि ये सत्पुरुष हैं और स्वानुभूतिकी बात करते हैं और मुक्तिके मार्गकी बात करते हैं। उसके ज्ञानमें ऐसी निर्मलता अमुक प्रकारकी आ जाती है कि वह पकड़ सकता है। उसे जिज्ञासा, सत् ओरकी अंतरमेंसे ऐसी रुचि प्रगट हुयी है इसलिये वह ग्रहण कर लेता है। उसे प्रगट नहीं हुआ है, परन्तु जिसे प्रगट हुआ है, उसे पहचान लेता है। उसकी रुचि वैसी है।

मुमुक्षु :- धर्म प्राप्त करनेमें परिणाम पर आधार है?

समाधान :- अंतर दृष्टि, अंतरके परिणाम पर आधार है। बाह्य क्रिया पर आधार नहीं है, अंतर दृष्टि पर आधार है। उसकी दृष्टि सत्-ओर होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- स्वभावकी रुचि हुई है, परन्तु वह स्वभावकी रुचि यथार्थ नहीं हुयी होगी?

समाधान :- अपने आत्माको अन्दर विश्वास आ जाय कि ये रुचि हुयी है, रुचि ऐसी हो कि आत्माके बिना मुझे कहीं चैन पड़े ऐसा नहीं है। आत्मा मिले तो ही शान्ति है। ऐसी यदि अंतरसे यथार्थ प्रकारसे ऐसी भावना और लगन हो तो... आत्माके बिना मुझे संतोष नहीं होगा। ऐसा अंतरमें हो तो उसकी रुचि यथार्थ है। उसके पुरुषार्थकी गति ओर गये बिना रहेगी नहीं, भले काल लगे। वह स्वयं ही पकड़ सकता है कि मुझे आत्माके बिना कहीं चैन पड़े ऐसा नहीं है, आत्माके बिना मुझे शान्ति हो ऐसा नहीं है। अंतरमेंसे शान्ति प्रगट न हो, तबतक मुझे कहीं शान्ति लगे ऐसा नहीं है। ऐसा स्वयंको अंतरमेंसे होता हो तो स्वयंकी रुचिको स्वयं पकड़ सकता है।

आत्माकी स्वभाव परिणतिके बिना कहीं संतोष नहीं होगा। ऐसा अंतरमेंसे यदि

होता हो तो उसकी रुचि वह स्वयं ही ग्रहण और पकड़ सकता है कि यह रुचि ऐसी है कि आत्मा प्रगट करके ही छूटकारा है। अपनी रुचिको स्वयं पकड़ सकता है। उसमें काल लगे, वह एक अलग बात है।

गुरुदेवने अंतर दृष्टिका कैसा मार्ग बताया। सब बाहरसे यात्रा करनेको पैदल आते हैं। मानों उसमेंसे कहीं धर्म प्राप्त हो जायगा। लेकिन वह धर्म कहीं दूर रह जाता है, और बाहरसे सब करता रहता है कि ऐसा करनेसे मिलेगा, ऐसा करनेसे मिलेगा।

गुरुदेवने अंतरकी दृष्टिमें मार्ग बताया (कि) अंतर परिणति पलट दे। पैदल चलकर दो-दो महिनेसे यात्रा करते हैं। (मार्ग तो) दूर ही रह जाता है। ऐसे अनन्त कालमें जीव ऐसा ही करता है। पर्वत पर जाकर आताप सहन करे, सर्दीमें ठण्ड सहन करे, तो भी आत्मा तो दूर ही दूर रह जाता है। अंतर सत्की रुचि प्रगट हुए बिना, अन्दर पुरुषार्थकी गति आत्माकी ओर जाती नहीं और बाहरसे कुछ आ जाता है, ऐसा मान लेते हैं।

मुमुक्षु :- .. सब भ्रमणा निकाल दी।

समाधान :- सब भ्रमणा निकाल दी और मार्गको ऐसा स्पष्ट कर दिया है कि कहीं किसीकी भूल न रहे, उतना स्पष्ट कर दिया है।

मुमुक्षु :- तू क्रोड़ो मन्दिर बना, तेरा कुछ कल्याण नहीं होगा। मैं तो चमक गया था। क्या बात है ये सब! अद्भुत बात!

समाधान :- दृष्टि बाहर ही बाहर। अंतर चैतन्यकी ओर दृष्टि न जाय तबतक कुछ नहीं मिलता है। गुरुदेवने सबको यथार्थ मार्ग, दृष्टि बता दी है। चलना स्वयंको है।

मुमुक्षु :- यथार्थरूपसे गुरुदेवकी भक्ति तो आपके पास..

समाधान :- अभी तो दीक्षा यथार्थरूपसे किसीको समझमें नहीं आती। छोड़ दिया इसलिये आत्माका कल्याण हो गया, ऐसा मानते हैं। पुण्य बान्धे, दूसरा कुछ नहीं। परिणाम अच्छे हो तो पुण्य बन्धे, बाकी कुछ नहीं। जो किया वही चक्कर। घाँचीका बैल जहाँ छोड़े तो वहींका वहीं चक्करमें खड़ा हो।

मुमुक्षु :- पूरा मार्ग..

समाधान :- हाँ, दृष्टि अंतरमें कर तो अंतरमेंसे प्रगट हो। शुद्धात्माको पहिचाने। उसमें शुद्धात्माकी पर्याय प्रगट हो, उसमेंसे स्वानुभूति, सब उसमें होता है। भेदज्ञान प्रगट होता है। वही भावना रखने जैसी है, वही करनेका है। ध्येय तो एक ही-ज्ञायक प्रगट हो। वही करनेका है। वांचन, विचार सबमें लक्ष्य तो एक ही, ध्येय तो एक ही करना है।

मुमुक्षु :- अनन्त जीव ऐसे ही पुरुषार्थ करके मोक्ष पधारे। गुरुदेवने कहा कि

तू वर्तमानमें...

समाधान :- पुरुषार्थ करनेवाले सब साथ ही हैं। गुरुदेवने उसका अर्थ किया है। सबने आराधना की है, सब आराधना करते हैं, अनन्त जीवोंने इस मार्गका आराधन किया है। आत्मा ही आराधने (योग्य है)। साध्य भी वह है और साधकदशा भी वही है। ऐसी साधान अनन्त जीवोंने की है, करते हैं। भविष्यमें करेंगे, भूतकालमें की थी।

... गुरुदेवने मार्ग बताया है। .. स्थिति तो ऐसी है। अन्दर आत्मामें संस्कार पड़े हों, वह काममें आते हैं। जो आत्माके संस्कार हों वह साथमें आते हैं। शरीरका तो ऐसा है, वेदनाकी मूर्ति है। कब क्या हो जाय मालूम नहीं। इसलिये आत्माके संस्कार डालने चाहिये। गुरुदेवने जो कहा उस मार्गको ग्रहण करना चाहिये। ऐसे अनन्त जन्म-मरण जीवने कितने किये हैं। किसीको छोड़कर स्वयं गया, स्वयंको छोड़कर दूसरे चले गये। ऐसा अनन्त कालमें बहुत बार हुआ है। अनन्त बार सब हुआ है। गुरुदेवने यह मार्ग बताया है वही ग्रहण करने जैसा है।

आत्मा शाश्वत है। आत्माको कोई जन्म-मरण नहीं होते। शरीर छूट जाता है, आत्मा तो शाश्वत है। आत्माको भिन्न करके,.. प्रथमसे ही उसे भिन्न कर देना। शरीर छूटे तब तो आत्मा चला जाता है। परन्तु प्रथमसे ही उसका भेदज्ञान कर लेने जैसा है। भिन्न तो पड़ता ही है, तो प्रथमसे ही आत्मा भिन्न है। ये विभाव भिन्न और ये शरीर तो भिन्न ही है। ये विभाव स्वभाव भी अपना नहीं है। उसका भेदज्ञान करने जैसा है।

अनन्त जन्म-मरण किये, कितने ही। एक-एक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ऐसे अनन्त-अनन्त किये। आकाशके एक क्षेत्रमें कितनी बार जन्म-मरण कर चूका। कितने द्रव्य, इस लोकमें जितने थे सबको ग्रहण करके छोड़े। ऐसे अनन्त परावर्तन किये, उसमें यह मनुष्यभव मिले, उसमें पंचमकालमें गुरुदेव मिले, वह महाभाग्यकी बात है। उसमें आत्माका कर लेने जैसा है। रुचि करने जैसा है, बारंबार उसीका अभ्यास करने जैसा है। बाहरकी लगन लगी है। लगन अंतरकी लगे तो हो। बारंबार उसे फेरे, बारंबार फेरे। बारंबार उसका अभ्यास करना। अनादिका अभ्यास है इसलिये वहाँ दौड़ा जाता है। अपनी ओरका अभ्यास दृढ़ करना चाहिये।

मुमुक्षु :- इसमें प्रयत्न करते हैं तो भी नहीं होता है, उसमें बिना प्रयत्नसे दौड़ा जाता है।

समाधान :- हाँ, बिना प्रयत्नसे जाता है, अनादिका अभ्यास है न इसलिये। मार्ग गुरुदेवने बताया है। आत्माको भिन्न करके अन्दर श्रद्धा करके, ज्ञान करके वह परिणति प्रगट करने जैसा है।

.. प्रगट हो, स्वानुभूति करते हैं। .. चैतन्य पर करे तो ही पर्याय प्रगट हो। पर्याय प्रगट होती है, चैतन्य पर दृष्टि अखण्ड शाश्वत आत्मा है, उस पर दृष्टि करे, चैतन्यको पहचाने तो ही पर्याय प्रगट हो। परन्तु जैसा चैतन्यका स्वरूप है, वह चैतन्य प्रकाशमें कब आये? चैतन्य जैसा है वैसा ज्ञात हो, वेदनमें कब आये? कि उसे पर्याय प्रगट हो, वह पर्याय वेदनमें आये, तभी चैतन्य जैसा है वैसा ज्ञात होता है और वह स्वानुभूतिमें आता है। इसलिये पर्याय है वह आत्मा है, ऐसा अपेक्षासे (कहते हैं)। आत्मा जैसा है वैसा कार्य करे। उसके गुण जैसा स्वयं है वैसा कार्य करे, स्वयं जैसा है वैसा प्रगट हो, इसलिये वह पर्याय आत्मा है।

एवंभूत नयवाला ऐसा कहे कि जो केवलज्ञानस्वरूप आत्मा परिणमे तब ही केवलज्ञानी कहनेमें आये। प्रगटरूपसे परिणमे तब। एवंभूत नयकी दृष्टिसे ऐसा कहनेमें आये। और नैगमनयसे ऐसा कहे कि शक्तिरूपसे जो आत्मामें केवलज्ञान है, उसे केवलज्ञान कहनेमें आता है। ऐसी सब अपेक्षाएँ होती हैं। तीर्थंकर होनेवाले हो तो तीर्थंकर हैं ऐसा कहनेमें आये। और जो एवंभूत दृष्टिसे (ऐसा कहे कि), तीर्थंकरकी पर्याय जब प्रगट हो, समवसरणमें विराजते हो तब तीर्थंकर कहनेमें आये। ऐसी सब अपेक्षा होती है।

आत्मा सच्चा कब कहलाये? कि आत्मा अपनी स्वानुभूति करे, उसके आनन्दकी स्वानुभूति करे तब वह पर्याय स्वरूप परिणमे तब पर्यायको आत्मा कहें। ऐसे उसकी अपेक्षा अलग होती है। अभी तो स्वानुभूतिका अंश है तो उसे.. एवंभूत दृष्टिवाला जैसा है वैसा कहे। केवलज्ञान स्वरूप परिणमे आत्मा, स्वानुभूतिरूप पूर्ण परिणमे तब वह निश्चय स्वरूपमें आया, तब वह केवलज्ञानी कहा जाय। ऐसे पर्यायकी अपेक्षासे...

आत्मामें अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र (आदि)। परन्तु ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप आत्मा परिणत हुआ, तब वह सच्चा ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप कहनेमें आये। .. ऐसा कार्य तो किया नहीं है। कार्य नहीं किया है तो वह आत्मा किस जातका? कार्यरूप परिणमे तब वह आत्मा है। ऐसे। आत्मा नहीं है ऐसा नहीं, द्रव्य स्वरूपसे आत्मा अनादिअनन्त है। उस कार्यरूप आत्मा, स्वानुभूतिरूप आत्मा परिणमा तब आत्मा कहे।

दृष्टान्त आता है, राजाका कुँवर हो तो उसे राजा-राजा (कहे)। परन्तु कार्य करता नहीं तो राजा कैसे कहे? कार्यरूप परिणमे, राजारूप परिणमे तब वह सच्चा राजा कहलाये। ऐसे शक्तिरूप आत्मा है, वह शक्तिरूप नहीं, परन्तु वह कार्यरूप परिणमे तब वह आत्मा है। ऐसे।

.. दृष्टि ही नहीं रखनी। द्रव्य पर दृष्टि करे तो ही कार्य प्रगट हो। तो पर्याय वह आत्मा, कहाँसे आया? .. आत्मा पर दृष्टि करनेसे ही आत्मा प्रगट हो। शाश्वत आत्मा पर दृष्टि करनेसे ही कार्य प्रगट होता है। परन्तु उस कार्यरूप आत्मा परिणमा

नहीं तो उसे आत्मा कैसे कहे? कार्य करे तो आत्मा। इसलिये कार्यरूप परिणमा वह आत्मा है, ऐसा कहते हैं। कार्यरूप परिणमा तब सच्चा आत्मा है। आनन्दरूप परिणमे वह आत्मा। आत्माकी दृष्टि करे तो ही परिणमे। ध्रुवकी दृष्टि करे तो ही कार्य होता है। ज्ञायक पर दृष्टि करे तो ही कार्य होता है।

... बातमें पूरा वस्तुका स्वरूप आ जाता है। पर्यायमें आत्मा खोजने जाय तो ऐसे नहीं मिलता। आत्माको द्रव्यमें खोजे तो ही मिलता है। उसका यथार्थ स्वरूप जब वेदन हो तब मालूम पड़े। सच्चे आत्माका स्वरूप। .. करे तो ही आत्मा ग्रहण हो। ज्ञान करनेका है। .. उसे समझाते हैं।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- द्रव्य-गुणसे समान।

मुमुक्षु :- द्रव्य-गुणमें समानता है, ऐसे लेना है।

समाधान :- द्रव्य-गुणसे समान है। आत्माका स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्याय.. भगवानने तो प्रगट पर्याय की है। ये तो प्रगट नहीं है। प्रगटतामें समान नहीं है। शक्तिरूपसे समान है। प्रगटतामें वेदनमें समान नहीं है। शक्तिमें समान है। पारिणामिकभावसे समान है। द्रव्य और गुणरूपसे समान है। पर्यायकी प्रगटतारूपसे समान नहीं है। परन्तु द्रव्य पर दृष्टि करके आगे जाना है। द्रव्य पर दृष्टि कर। भगवानका आत्मा वैसा ही तेरा आत्मा है। इसलिये जैसे भगवान हैं, वैसा ही तू है। इसलिये द्रव्य पर दृष्टि कर तो साधनाकी पर्याय उसीमें प्रगट होगी। शुद्धात्माकी पर्याय।

द्रव्य अपेक्षासे समान ही है। उसमें कुछ फ़र्क़ नहीं है। द्रव्य तू स्वयं ही है। द्रव्यमें कुछ फेरफार नहीं हुआ है। इसलिये द्रव्यको पहचान ले और दृष्टिको द्रव्य पर स्थापित कर दे। तो जैसे भगवान हैं, वैसा तू प्रगटमें भी हो सकेगा। इसलिये मूल वस्तु जैसी भगवानकी है ऐसी ही तेरी है। तेरे पास सब पडा है। इसलिये तू उसमें दृष्टिको स्थापित कर दे, तो भगवान जैसा प्रगटरमें हो जायगा। शक्तिरूपसे तो तू भगवान जैसा ही है। शक्तिमें जैसे भगवान हैं, वैसा ही तू है। इसलिये तू तेरे पर दृष्टि कर।

मुमुक्षु :- .. समान है, उस अपेक्षासे निश्चयसे समान है।

समाधान :- उस अपेक्षासे समान है। कहीं बाहर लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है। जैसे भगवान हैं, वैसा ही तू है। तेरेमेंसे ही प्रगट हो ऐसा है। जैसा भगवानका आत्मा, वैसा ही तेरा आत्मा है। इसलिये तू उसमें साधना कर, उसमें दृष्टि स्थापित कर तो प्रगट हो, वेदनमें आये।

(जो भगवानको जाने वह) स्वयंको जाने, स्वयंको जाने वह भगवानको जानता है। जैसे भगवान हैं, वैसा ही तू है। सर्व प्रकारसे प्रगटतामें समान हो तो साधना

करनी कहाँ रहती है। अनेक प्रकारसे आचार्यदेव कहते हैं। भिन्नरूपसे उपासित होता हुआ ज्ञायक है। तू भगवान आत्माको जान तो ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। यहाँ मूल वस्तु बतानी है, तेरा ज्ञायक भिन्न है। वस्तु बता रहे हैं-ज्ञायकको। उसमें तो (ऐसा है कि), कैसे ज्ञात हो? तू अपनेआप अन्दर दृष्टि कर। ऐसे ज्ञात न हो तो तू भगवानको देख। भगवान जैसे हैं वैसा ही तू है। जैसा तेरा निमित्त है, वैसा ही तू है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। भगवानको यथार्थ जाने तो तुझे ज्ञात हो जायगा, तू तुझे ज्ञात हो जायगा तो भगवानको पहचान लेगा। उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध है। ऐसा वहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताते हैं।

यहाँ ज्ञायकको भिन्न करके बताते हैं। परद्रव्यसे भिन्नरूपसे उपासित करनेमें आता हुआ मैं ज्ञायक भिन्न हूँ। दोनों अपेक्षासे समझनी। निश्चय और व्यवहारका क्या सम्बन्ध है, गुरुदेवने बताया है। ज्ञायक आत्माको भिन्न उपासने पर आत्मा प्रगट होता है। उसका निमित्त देव-गुरु-शास्त्र है। जैसा भगवानका आत्मा, वैसा अपना आत्मा है।

मुमुक्षु :- भगवान यहाँ है नहीं और भगवानको जानना, ऐसा आचार्य भगवान कहते हैं। हमें कैसे जानना?

समाधान :- भगवानको पहचान। भगवानने क्या प्रगट किया है? विचार कर। गुरु तो साक्षात् विराजते थे। सब स्वरूप बताया है। गुरुने ऐसा ही कहा है कि तू तेरे आत्माको पहचान। भगवानका आत्मा जैसा है, वैसा तेरा आत्मा है। ऐसा कहकर, तेरे आत्माको पहचान, ऐसा कहना है। बाह्य दृष्टि मत रखना, अंतर दृष्टि कर। जैसा भगवानका आत्मा है, ऐसा ही तू है। अंतरमें दृष्टि कर, ऐसा ही तेरा ज्ञायक है।

वह ज्ञायक शुद्ध ज्ञायक है। उसमें किसी भी प्रकारके विभावने प्रवेश नहीं किया है। कोई परद्रव्यका प्रवेश नहीं है, क्षणिकमात्र नहीं है। परन्तु वह अखण्ड अनादिअनन्त है, ऐसे ज्ञायकको तू पहचान ले। जिसमें गुणके भेद, पर्यायके भेद पर दृष्टि नहीं करना। उसे ज्ञानमें जान ले, परन्तु अकेले ज्ञायकको ग्रहण कर ले, ऐसा तू ज्ञायक है।

लेकिन वह ज्ञात कब हो? कि अंतरमें उतनी लग लगी हो। भले बुद्धिसे जानकर भी अंतरमें उसे ग्रहण करनेमें उतनी लगन हो तो वह ग्रहण होता है। उसे तू भेदज्ञान करके ग्रहण कर। ग्रहण होता है, बादमें वेदनमें आता है।

मुमुक्षु :- ग्रहण यानी मन द्वारा जान ले, वह ग्रहण?

समाधान :- पहले बुद्धिसे नक्की किया, परन्तु मन द्वारा जानकर, वह मन यानी अंतर सूक्ष्म उसका स्वभाव पहचानकर ग्रहण कर ले। मन तो बीचमें निमित्त आ जाता है। परन्तु अंतरमेंसे तू स्वभावको पहचानकर उसे ग्रहण कर ले। भेद करके ग्रहण कर ले। ये विभाव वह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं अन्दर भिन्न ज्ञायक हूँ। अंतर दृष्टि करके

पहचान ले। विकल्प तो उसके बादमें छूटते हैं। पहले उसे यथार्थ प्रतीत करता है, यथार्थ भेदज्ञान करके। फिर उसमें लीनता करे, भेदज्ञान करे, उग्रता करे तो उसके विकल्प छूट जाते हैं।

मुमुक्षु :- अनुभव होने पूर्व प्रतीत हो जाती है?

समाधान :- अनुभव पूर्व उसे प्रतीत होती है। वह उस गाथामें आता है, मति-श्रुत द्वारा निश्चय करता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान द्वारा निश्चय करे कि यही ज्ञानस्वभाव है। ज्ञानस्वभावको नक्की करके फिर जो उपयोग बाहर जाता है, उसे अंतरमें लीन करके उपयोगको अंतरमें स्थिर करे तो विकल्प टूट जाते हैं। १४४ गाथा। बुद्धिसे नक्की करता है, परन्तु वास्तवमें तो अंतरमें ही करनेका है। अंतरमें गहराईमें जाकर स्वभावको ग्रहण करना है। पहले, यही ज्ञानस्वभाव हूँ, ऐसा नक्की करके, फिर पर प्रसिद्धिके कारण जो उपयोग बाहर जाता है उसे तू अंतरमें ला। अंतरमें उपयोगको स्थिर कर, मति-श्रुतज्ञानकी बुद्धिको अंतरमें स्थापित कर, तो तेरे विकल्प टूट जायेंगे। पहले यथार्थ प्रतीत करता है। अलौकिक मार्ग अंतरमें है। अलौकिक आत्मा, उसका मार्ग अलौकिक। और देव-गुरु-शास्त्र बताते हैं वह अलौकिक। उन्होंने जो प्रगट किया है, (वह अलौकिक है)। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९०

समाधान :- ... भगवानकी पर्याय, वह गुण कैसे हो? भगवान .. बेचैनी है, आकुलता है, अभी छूटा नहीं है, परन्तु उसे अंतरमेंसे ऐसा निर्णय हो कि मार्ग हाथमें आया, इसलिये बेचैनी कम हो जाती है। यही स्वभाव है, दूसरा नहीं है। ऐसे। यह स्वभाव है और यह मैं हूँ, ऐसे भावभासन हुआ इसलिये उसकी बेचैनी कम होती है।

मुमुक्षु :- ऐसा आता है न कि शरीर छूट जाय तो विकल्प छूट जाय। ऐसी जो तीखी भूमि है उसमें उसकी बेचैनी कम हो जाती है।

समाधान :- बेचैनी कम होती है। वह क्या कहा? शरीर छूट जाय, विकल्प..

मुमुक्षु :- द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें आता है न कि शरीर छूट जाय या विकल्प टूट जाय, ऐसी स्थिति आ गयी है।

समाधान :- भावभासन हो तो बेचैनी कम हो जाती है।

मुमुक्षु :- आपके वचनामृतमें आता है, मार्गकी उलझन टल जाती है।

समाधान :- हाँ, मार्ग मिलने पर उलझन टल जाती है।

मुमुक्षु :- भावभासनकी कचास थी वह...

समाधान :- निर्णयमें डगमगा जाय तो भावभासनकी कचास है। भावभासन यथार्थ हो तो निर्णय दृढ़रूप रहे। ये जो भाव मुझे भासनमें आया वह यथार्थ है। तो निश्चय भी यथार्थ रहे। ज्ञान और श्रद्धाका ऐसा सम्बन्ध है। श्रद्धा यथार्थ हो उसके साथ ज्ञान यथार्थ हो। श्रद्धा यथार्थ हो उसके साथ ज्ञान यथार्थ होता है। ज्ञान यथार्थ हो तो श्रद्धा उसके साथ दृढ़ रहे।

.. जो लक्ष्यमें आया वह बराबर ही है। तो अंतरसे उसे शान्ति हो कि बराबर यही भाव है। ऐसा अन्दरसे निश्चय हो तो उसे भावभासन यथार्थ हुआ है। निश्चय न हो और भावभासन हो, तो भावभासनमें कचास है, निश्चय हो रहा है तो। अंतर ही कह दे कि यह बराबर है।

मुमुक्षु :- निश्चय नहीं है तो भावभासन नहीं है, ऐसा ही हुआ न?

समाधान :- हाँ, तो भावभासन नहीं है। अन्दर कचास है।

मुमुक्षु :- ख्यालमें आये कि परिणति मार्ग पर जा रही है या नहीं, कैसे स्वरूपकी ओर जाती है, कितने प्रमाणमें जाती है, वह सब उसे ख्यालमें आ जाता है?

समाधान :- उसे ज्ञानमें ख्याल आ जाता है। यथार्थ ज्ञान हो तो ख्यालमें आ जाय। ... दृष्टि और ज्ञान साथमें ही रहते हैं। साथमें काम करते हैं। दृष्टि मुख्य हो, परन्तु ज्ञान उसके साथ यथार्थपने रहता है। ज्ञान यथार्थ (हो तो) उसके साथ दृष्टि होती ही है। ऐसे दृष्टि और ज्ञान साथमें रहे हैं। उसके विषयमें फ़र्क़ है। ज्ञान सब भेद करके जानता है। दृष्टिका विषय अभेद है।

जो सम्यक् पंथ पर जाता है, उसमें दृष्टि मुख्य होती है और उसके साथ ज्ञान जुड़ा रहता है। .. काम करता हो तो दृष्टि उसमें साथमें होती ही है। पहले अभी निर्णय नहीं हुआ हो तो विचारके लिये ज्ञान हो, अभी दृष्टि यथार्थ नहीं हुई हो तो ज्ञानमें थोड़ी कचास होती है। जो मुख्य प्रयोजनभूत ज्ञान है उसमें। अभी उसे अंतरमेंसे जो प्रगट होना चाहिये उसमें। बुद्धिसे नक्की किया वह एक अलग बात है।

मुमुक्षु :- दोनों साथमें ही होते हैं, सिर्फ विषयमें फ़र्क़ है।

समाधान :- सुमेल है। साथ-साथ होते हैं।

समाधान :- ... बाह्य संयोगको स्वयं बदल नहीं सकता। स्वयं अपने भाव... क्या योग्य है, उसका विचार करके स्वयं करना। दूसरेको तो स्वयं कुछ नहीं कर सकता। स्वयं अपना भाव कर सकता है। योग्य क्या है, उसका प्रयत्न कर ले, फिर न हो तो शान्ति (रखे)।

मुमुक्षु :- अच्छा हो और धारणा की हो कि हमारी जो इच्छा है वह हो तो अच्छा है। परन्तु ऐसा होता नहीं है। वह सिद्धान्त उसमें ज्यादा प्रबल होता है।

समाधान :- बाहरमें इच्छानुसार कुछ होता नहीं। स्वयं अपना कर सकता है। .. यह पावन भूमि है, यहाँ गुरुदेव विराजते थे। स्वयं विचार करके अपना करना है। यहाँ विराजते थे, जन्मजयंति मनाते थे, वह प्रसंग अलग था। ये तो विचार और अभिप्रायके मतभेद है। कहाँ करना और क्या करना वह। समाजमें क्या.. दो पत्रिकासे लगे, जो होना होगा वह होगा। अच्छा होगा, ऐसा मानना। गुरुदेवका प्रताप है, विशेष प्रभावना होगी, ऐसा मान लेना। सुलटा अर्थ लेना।

मुमुक्षु :- सबको जैसा लगे वैसा।

समाधान :- जो भी लगे। सब स्वतंत्र हैं, सबके अभिप्रायमें।

मुमुक्षु :- कहीं नुकसान होनेवाला ही नहीं है। पूर्ण भरा है।

समाधान :- स्वयं लबालब भरा है। बाहरमें देव-गुरु-शास्त्रमें स्वयंको कहाँ विवेक करना वह अपने हाथकी बात है। देव-गुरु-शास्त्रके प्रसंगोंमें विवेक कैसे करना, वह

मुमुक्षुके अपने हाथकी बात है। बाकी आत्मामें तो बाहरसे कुछ नुकसान नहीं होता है। देव-गुरु-शास्त्रके प्रसंगोंमें उसे विवेक आये बिना नहीं रहता। जिसे आत्माकी लगी है, और देव-गुरु-शास्त्रके कैसे प्रसंगमें कैसे वर्तन करना, उसे विवेक आये बिना रहता ही नहीं। .. एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको लाभ-नुकसान नहीं करता है, परन्तु उसका विवेक उसे हो जाता है, देव-गुरु-शास्त्रके प्रसंगोंमें।

मुमुक्षु :- .. पत्रिका-लेखन तो हो गया है, ये तो मात्र उस वक्त...

समाधान :- मंगलस्वरूप ही है। देव-गुरु-शास्त्रके सब प्रसंग मंगलरूप है। वह सब आत्माके ध्येयपूर्वक करने योग्य है। सब मंगलरूप है। आत्माका स्वरूप कैसे प्रगट हो, आत्माकी अंतरमें निर्मलता और अंतरकी मंगलिकता कैसे प्रगट हो? शुभभावमें गुरुदेव मंगल और इस पंचमकालमें गुरुदेव वर्तमानमें पधारे। उनका द्रव्य कोई अपूर्व था कि सबको तारनेमें महासमर्थ निमित्त था। गुरुदेव मंगल और सब मंगल ही है। देव-गुरु-शास्त्र मंगल और आत्मा मंगल है, उसकी प्राप्तिके करनेके ध्येयसे वह स कार्य मंगलरूप है। गुरुदेवका प्रभावना उदय महा कल्याणकारी है।

समाधान :- ... आत्मा भिन्न है, ये चैतन्यतत्त्व भिन्न है। ये शरीर भी भन्न है और भीतरमें विकल्प होता है वह भी आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्मा चैतन्य तत्त्व है, उसमें ज्ञान, आनन्द, सब उसमें भरा है। बाहरमें कुछ नहीं है। अंतरमें दृष्टि करनेसे प्रगट होता है। अंतरमें जाकर भेदज्ञान करके उसमें लीन होनेसे स्वानुभूति होती है। ऐसे बाहर मात्र क्रियासे नहीं होता। अंतर दृष्टि करनेसे मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। बाहरसे नहीं होता है। जो स्वभाव है उस स्वभावमेंसे प्रगट होता है। बाहरसे नहीं होता है। जिसका जो स्वभाव है उसमेंसे वह (प्रगट होता है)। ज्ञानस्वभाव आत्मामेंसे प्रगट होता है। दर्शन, चारित्र सब आत्मामेंसे होता है। बाहरसे नहीं होता है। ऐसे जो वस्तुका स्वभाव है उसमेंसे वह प्रगट होता है। जो चैतन्यका स्वभाव है उसमें दृष्टि करनेसे प्रगट होता है। स्वानुभूति करना वह मुक्तिका मार्ग है।

भेदज्ञान करनेसे स्वानुभूति (होती है)। गुरुदेवने वही कहते थे। मार्ग एक ही होता है जन्म-मरण टालनेका। विभाव स्वभाव अपना नहीं है। शुभभाव बीचमें आता है, पुण्यबन्ध होता है, स्वर्ग मिलता है। परन्तु शुभभाव भी आत्माका स्वभाव नहीं है। जैसा सिद्ध भगवानका स्वरूप है वैसा आत्माका है। निर्विकल्प तत्त्व है। शुभभाव बीचमें आता है, परन्तु वह तो पुण्यबन्ध होता है। वह आत्माका स्वभाव नहीं है। इसलिये उससे भी भिन्न आत्माको पीछानो, ऐसा गुरुदेव कहते थे। ये पुण्यबन्धका कारण है। ऐसी श्रद्धा करना, ऐसा ज्ञान करना। ऐसा करनेसे स्वानुभूति प्रगट होती है। मुक्तिका मार्ग एक ही होता है, दूसरा नहीं होता है।

मुमुक्षु :- शुद्ध भाव प्रगट करना।

समाधान :- सच्चा ज्ञान करना, सच्ची श्रद्धा करनी, यथार्थ। ऐसी लगन लगे। सच्चा ज्ञान करना उसके लिये, तत्त्वका विचार करना। मैं भिन्न हूँ, ये स्वभाव मेरा नहीं है। ऐसी सच्ची श्रद्धा करना, सच्चा ज्ञान करना और शुद्धात्माको पीछानना। उसके लिये वह करना।

... स्वभानुभूति होती है। सम्यग्दर्शन होवे फिर मुनिदशा भी छठवे-सातवें गुणस्थानमें झुलते हुए क्षण-क्षणमें स्वानुभूति होती है। मुनिको भी स्वानुभूति बारंबार-बारंबार स्वानुभूति होती है। सच्चे मुनि भी तब होते हैं, जब स्वानुभूति यथार्थ बारंबार होती है तब होती है। उसमें ही केवलज्ञान होता है। विशेष-विशेष प्रगट होनेसे, स्वानुभूति होनेसे मुनिदशा, केवलज्ञान, सब उसमें होता है। सम्यग्दर्शन सब इसमें होता है। सम्यग्दर्शनसे लेकर मुनिदशा, केवलज्ञान सब स्वानुभूतिमें होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान तो हो गया, आत्मा अलग है..

समाधान :- सच्चा भेदज्ञान होता है, उसमें आगे क्या करना वह उसमें आ जाता है। भेदज्ञान हुआ, शरीर भिन्न आत्मा भिन्न। उसमें जो विकल्प होता है न? आकुलता-विकल्प उससे भी भेदज्ञान करना। शरीर तो स्थूल है। भीतरमें जो विकल्प होता है उसका भी भेदज्ञान होता है। विकल्प भी मैं नहीं है, विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भी भेदज्ञान होना, क्षण-क्षणमें जो विकल्प होते हैं, उससे भेदज्ञान होना। उसमें मैं ज्ञायक हूँ और ज्ञाताधाराकी उग्रता होती है। भेदज्ञान ऐसे बोलनेसे नहीं होता है। भेदज्ञान, विकल्पसे भी भेदज्ञान करना। विकल्पसे भेदज्ञान करके इसमें ज्ञायक जो है, मैं ज्ञायक हूँ, उसमें लीनता करना, स्थिरता करना, उसमें बारंबार-बारंबार बाहरसे उपयोग हटाकर आत्मामें लीन होना, बारंबर आत्मदर्शन होना, वह करनेका है। भेदज्ञान करनेसे (होता है)। जिसको आत्माका स्वरूप बारंबार-बारंबार आत्मदर्शन होता है। उसमें आ जाता है, भेदज्ञानमें सब आ जाता है। उपयोग आत्मामें लीन होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानलक्षण, अन्य द्रव्य अन्य द्रव्यके भाव और अवस्थामें हो रहे विकारी परिणाम, उससे पृथक् हो, लक्षणका अस्तित्व वह उसके ज्ञानमें स्पष्ट ख्यालमें तो आना चाहिये न? ज्ञानमें भिन्नरूपसे पकड़में तो आना चाहिये न। और उस परसे ऐसा त्रिकाल ज्ञानमूर्ति परिपूर्ण मैं हूँ, ऐसे अन्दरमें अहंभाव करे तो, अभी तो बहुत बार ऐसा लगता है कि राग और ज्ञान मिश्ररूपसे ख्यालमें (आते हैं), स्पष्टरूपसे ये स्वच्छतामात्र सो ज्ञान, चैतन्य स्वच्छतामात्र सो ज्ञान और यह राग, वृत्तिका .. राग, वह भी बहुत स्पष्टरूपसे देखे तो उपयोगकी सूक्ष्मता न हो तो वह आभासमें ख्याल नहीं आता है। धारणासे तो बोल ले कि आत्माका जानपना है वह आत्माका ज्ञान है, वह आत्माका

लक्षण है। परन्तु फिर अहंभाव वास्तविक हो सके कि मैं यही हूँ और यह नहीं हूँ। ऐसा होना कठिन लगता है।

समाधान :- परिणति विभाव-ओर है। परद्रव्य, परद्रव्यके भाव, विभावभाव उसके साथ जो ज्ञान है, उसे उपयोग स्थूल हो गया है। और उपयोगकी ओर चैतन्यको सूक्ष्मरूपसे ग्रहण करना वह उसे बुद्धिसे ग्रहण करे, लेकिन उस तरह टिकाना कि यह अस्तित्व ही मैं हूँ, चैतन्यका अस्तित्व ज्ञानलक्षण सो मैं हूँ, ऐसा त्रिकाल शाश्वत मैं हूँ कि यह ज्ञानलक्षण अस्तित्व सदाके लिये स्वतःसिद्ध है। उसे ग्रहण करके टिकाना वह उसे ओर अंतरकी परिणति स्वकी ओर अमुक प्रकारसे परिणति मुडे तो दृढ़ रहे, नहीं तो बुद्धिमें ग्रहण हो। परन्तु परिणति तो उसकी विकल्पके साथ एकमेक हो रही है। एकमेक हो रही है इसलिये उसे ज्ञानको भिन्न करना दुष्कर पडता है।

उसे यह ज्ञान सो मैं और यह मैं नहीं हूँ। वैसा ही मैं हूँ, यही मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ, ऐसी परिणति हमेशा प्रगट करनी उसके लिये पुरुषार्थ हो तो होता है। नहीं तो उसका जो अनादिका वेग है, उस वेगमें वह चला जाता है। बुद्धिमें ग्रहण किया कि यह ज्ञान सो मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, उसे बुद्धिमें भूल जाय तो बारंबार ग्रहण करता रहे। परन्तु परिणति तो विकल्पके साथ एकमेक हो रही है। उस परिणतिको वह भिन्न नहीं करता है, तबतक उसे यथार्थ प्रकारसे भेदज्ञान नहीं होता है। भेदज्ञानकी परिणति नहीं होती है। बुद्धिसे ग्रहण करता है। परन्तु भेदज्ञानकी परिणति यदि हो तो ही उसका भेदज्ञान यथार्थ है। तो उसने अपना अस्तित्व यथार्थ ग्रहण किया है। नहीं तो वह बुद्धिमें ग्रहण करता है, परन्तु परिणति तो उसके साथ एकमेक-एकमेक होती ही रहती है। जो अनादिका प्रवाह है उसीमें चला जाता है।

राग और ज्ञान, राग और ज्ञान एकसाथ-एकसाथ ऐसे ही चलता ही है। परन्तु जिस समय राग और ज्ञान साथमें है, उसी क्षण यह मैं नहीं हूँ, यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ, ऐसी परिणति करनेके लिये उसे उस जातका सूक्ष्म उपयोग और वैसे उसे अन्दरसे ग्रहण होना चाहिये। वह उसे एकबार ग्रहण हो ऐसे नहीं, बारंबार वह ग्रहण करता ही रहे, तो उसे सहजता हो तो अन्दरसे कुछ यथार्थ भेदज्ञान होनेका अवसर आये। परन्तु एकबार बुद्धिमें बारंबार करता रहे, परन्तु परिणति भिन्न न पड़े तबतक यथार्थ भेदज्ञान नहीं होता। परिणति तो साथ ही साथ चलती रहती है। बुद्धिमें ग्रहण करे परन्तु परिणति तो ऐसे ही काम करती रहती है। राग और ज्ञान, राग और ज्ञान साथ-साथ, साथ-साथ होता ही रहता है।

जिस समय राग और ज्ञान साथमें होते हैं, उसी क्षण यह मैं ज्ञान हूँ और यह मैं नहीं हूँ, यह ज्ञान सो मैं हूँ, और यह मैं नहीं हूँ। इस प्रकार प्रतिक्षण उसकी

परिणति भिन्न करता हुआ अपने अस्तित्वको बारंबार ग्रहण करे और उसमें ऐसे दृढ़ता करे तो उसे सहज होनेका प्रसंग आये। बारंबार उसे इस तरह ग्रहण करे तो हो।

मुमुक्षु :- परिणति एकमेक हो रही है, उस वक्त ज्ञान भिन्न पड़े तो यह राग भिन्न है, यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ, वह यथार्थपने सच्चा अभ्यास हो।

समाधान :- सच्चा हो कि यह ज्ञान सो मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ।

मुमुक्षु :- इस अभ्यासमें थोड़ी दिक्कत होती है। उतनी सूक्ष्मता है.. क्योंकि अव्यक्त है, उपयोग तो व्यक्त है और अस्तिरूप है। और वह ऐसे अस्तिरूप है कि रागसे भिन्न है। इसलिये जिस प्रकारसे है उस प्रकारसे ग्रहण करनेका प्रयत्न अथवा तो उपयोग सूक्ष्मता हो तो हुए बिना रहे नहीं। फिर भी अभी भी नहीं हो रहा है, इसलिये उतनी रुचिकी कचास, उपयोगकी सूक्ष्मताकी कचास, अभ्यासकी कचास अथवा चटपटी उतनी कम है?

समाधान :- चटपटी कम है, सूक्ष्मता कम है, प्रयत्न कम है, सब साथमें है। यथार्थ लगन लगे तो यथार्थ अन्दरसे पुरुषार्थ हुए बिना रहे नहीं, भिन्न हुए बिना रहे नहीं। अन्दर सब साथमें है, सब कचास साथमें है।

मुमुक्षु :- अभ्याससे भिन्न तो पड़ सकता है।

समाधान :- पड़ सकता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान उपयोग, ज्ञानमें ख्यालमें तो पकड़में आता है कि यह ज्ञानउपयोग और यह वृत्ति भिन्न है, यह राग भिन्न है और यह मैं भिन्न हूँ, ऐसा अभ्यास करे तो भिन्न तो पड़ सकता है।

समाधान :- भिन्न पड़ सकता है। अभ्यास बारंबार करे तो भिन्न पड़ सकता है। परन्तु वह बारंबार अभ्यास करता नहीं है। बुद्धिसे नक्की करके छोड़ देता है। बारंबार अभ्यास करनेमें उसे श्रम पड़ता है, उसे मेहनत पड़ती है, बारंबार वैसी उतनी तीखी रुचि नहीं है कि यह मेरी जरूरत ही है, ऐसा तीखा नहीं है इसलिये वह प्रयत्न कम करता है, नहीं करता है। उसके लिये सूक्ष्मता करके क्षण-क्षणमें मैं यह भिन्न ही हूँ, ऐसा प्रयत्न तो हो सकता है, परन्तु वह करता नहीं है।

मुमुक्षु :- आधा घण्टा, एक घण्टा लगातार बैठकर इसीको ज्ञानको भिन्न ज्ञानमें लेनेके लिये एकाद घण्टा बैठा, फिर भी उस ज्ञानको जैसे ज्ञानमें भिन्न लेना है उस प्रकारसे ज्ञानमें भिन्नरूपसे नहीं आता है। और पहलेसे मैं भिन्न हूँ, ऐसा ऊपर-ऊपरसे चला जाता है।

समाधान :- थोड़ी देर उसे विचारमें आवे, फिर जो भी हो विचारोंमें अमुक प्रकारकी स्थूलता हो जाती है इसलिये चला जाता है। ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- कोई बार तो ऐसा लगता है कि ऐसे ही काल व्यतीत हो जायगा।

समाधान :- ऐसे स्थूल हो जाय तो भी बारंबार उसका अभ्यास करता रहे तो हो सकता है। थोड़ी देर करे, उतनेमें उपयोग स्थूल हो जाय, टिक सके नहीं। थोड़ा विचार करने उतनेमें।

मुमुक्षु :- नहीं तो ऐसी स्थिति है कि बाहरमें जो कुछ काम है उतना विकल्प आये, घर बैठनेमें तो दूसरा कोई विचार नहीं है, कुछ नहीं है, इसलिये धून भी यह रहती है। फिर भी जितना चाहिये उस जातका, अभी भी ऐसा लगता है कि ज्ञान ज्ञानमें भिन्न पड़े तो कुछ गरमी आ जाय कि यह मैं हूँ और यह भिन्न है। तो वह अभ्यास ज्यादा करनेका..

समाधान :- ज्यादा करनेकी उसे अन्दरमें गरमी आये। विचार करनेसे उपयोग फिरसे स्थूल हो जाय। स्थूल हो जाय इसलिये उसे बार-बार सूक्ष्म करनेके लिये बारंबार दृष्टि करनी पडे। थक जाय, प्रयत्न कम हो जाय, बारंबार करे...

मुमुक्षु :- एक घण्टा, दो घण्टा चला.. फिर

समाधान :- थकान, बाहरसे थकान नहीं, अंतरमेंसे। आगे चले नहीं इसलिये दूसरे विचार आ जाय। भले जाननेके विचार आये, परन्तु ग्रहण करनेमें उसे उपयोग सूक्ष्म करना पड़े, उतना धीरा होकर ग्रहण करना पड़े तो होता है। ऐसी मेहनत तो उसे प्रथम भूमिकामें चलती ही रहे। क्योंकि जब तक ग्रहण नहीं हुआ है, श्रीमद् कहते हैं न, प्रथम भूमिका विकट होती है। इसलिये पहले उसे जिज्ञासाकी भूमिकामें मेहनत चलती रहे। जबतक ग्रहण नहीं हो जाता तबतक।

मुमुक्षु :- ज्ञान भिन्न पड़ जाय, ज्ञान ज्ञानमें अभ्यास-प्रयत्न करे तो ..

समाधान :- प्रयत्नसे भिन्न पड़ सकता है। स्वयं ही है, अपना स्वभाव है। इसलिये भिन्न तो पड़ सकता है। अनन्त मोक्षमें गये, भेदज्ञान करके ही गये हैं। भेदज्ञानके अभ्याससे। भेदज्ञानके अभ्यासमें द्रव्य पर दृष्टि, भेदज्ञान आदि सब उसमें समा जाता है। द्रव्य पर दृष्टि करे इसलिये उसमें भेदज्ञान आ जाता है। यह मैं चैतन्य हूँ और यह मैं नहीं हूँ। ऐसे दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें आ जाते हैं। मैं यह चैतन्य हूँ, मेरा अस्तित्व स्वतःसिद्ध यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। दोनों उसमें साथमें आ जाते हैं। अभ्यास करनेसे हो सकता है। एकदम हो जाय वह किसीको ही होता है। बहुभाग अभ्यास करनेसे होता है।

छोटीपीपर घिसते-घिसते गुरुदेव कहते थे कि चरपराई प्रगट होती है। छाछ और मक्खन सब इकट्ठा हो तो मंथन करते-करते मक्खन बाहर आता है। छाछको बिलोने पर मक्खन अन्दरसे भिन्न पड़ जाता है। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

अमृत वाणी (भाग-५)

(प्रशममूर्ति पूज्य बहेनश्री चंपाबहेन की आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा)

ट्रेक-१९१

मुमुक्षु :- ज्ञानउपयोग भिन्न लक्ष्यमें आये, ख्यालमें आये तो फिर लक्ष्यको पकड़नेमें देर न लगे। ऐसा त्रिकाल जो है वह मैं हूँ।

समाधान :- उपयोग भिन्न पड़े और स्वयंको पकड़में आये वह सब साथमें ही होता है। परन्तु यथार्थ ग्रहण हो तो अपना अस्तित्व और उपयोग आदि सब उसे पकड़में आ जाता है। परन्तु यथार्थपने उसे सूक्ष्मतासे ग्रहण हो तो सब साथमें हो जाता है।

मुमुक्षु :- .. लक्षण और लक्ष्य साथमें..

समाधान :- साथ ही ग्रहण हो जाता है। इसलिये वह करनेका निश्चय करे तो कर सकता है।

मुमुक्षु :- भिन्नताके प्रयोगमें शरीरसे भिन्नताका प्रयोग तो कहीं नहीं आता है।

समाधान :- विभावसे भिन्न, उसमें शरीरकी भिन्नता साथमें आ जाती है। वह तो उसका क्रम लिया है कि पहले शरीरसे मैं भिन्न हूँ, वह तो.. शरीरको अपना माननेवाला एकदम स्थूल उपयोग है। इसलिये शरीरसे भिन्न मान। उसका क्रम प्रथम इससे भिन्नता कर, फिर इससे भिन्नता कर। शरीरको स्वयं एक मानता है, उसे ऐसा कहते हैं कि तू शरीरसे भिन्न है। शरीरसे भिन्न ग्रहण कर और फिर विकल्पसे भिन्न

ग्रहण कर। विकल्पसे भिन्न करनेवालेको तो ऐसा कहते हैं कि तू शरीरसे भिन्न है वह तो पहले उसमें साथमें आ ही जाता है।

विकल्पसे भिन्नता करे उसमें शरीरसे भिन्नता तो पहले है। शरीर... इसलिये शरीरका तो पहले है। शरीरको अपना माने वह तो एकदम स्थूल है। शरीरसे भिन्न मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। फिर विकल्पसे, विभावकी मलिनतासे भिन्न हूँ। सुबुद्धिको विलास.. उसमें जो शुभभाव आये, श्रुतज्ञान और विकल्प शुभभावसे मिश्रित हो उससे भिन्न तेरा स्वभाव है।

शुभभाव मिश्रित जो भाव हों, वह भी तेरा मूल अनादिअनन्त स्वभाव नहीं है। वह शुभभाव है। अधूरी ज्ञानकी पर्याय दिखे उतना ही तू नहीं है। तू तो शाश्वत है। विभावसे भिन्न किया इसलिये उसमें द्रव्यकर्मसे भिन्न वह तो साथमें आ ही गया। और ये शरीर तो स्थूल है। शरीरको एक माने उसे तो बहुत दूर जाना है। शरीरसे भिन्न हूँ, वह तो अभी स्थूल है। विकल्पसे भिन्नता करे वह सच्चा है। फिर उसमें शुभ और अशुभ दोनों भावसे।

मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ ऐसे विकल्पके भेद आये, गुणभेद आये, वह गुणभेद आये ऐसा भी तेरा अखण्ड स्वरूप नहीं है, भेदवाला (नहीं है)। तेरे गुण अन्दर कहीं खण्ड खण्ड टूकड़ेरूप नहीं है, तू तो अखण्ड है। उस भेदको गौण करके अखण्ड पर दृष्टि कर। अंतरमें दृष्टि करे, उस दृष्टिके बलसे भेदज्ञानकी उग्रता हो, ज्ञायककी उग्रता हो तो विकल्प टूटनेका प्रसंग आता है। .. उसे आसान पड़ता है, लेकिन विकल्पसे भिन्न पड़ना (कठिन लगता है)।

मुमुक्षु :- अंतरंग और बहिरंग ऐसे दो भेद अथवा सामान्य और विशेष, ऐसे कोई भेद हो सकते हैं कि इसे जाने, इसे जाने, इसे जाने अथवा तो यह मतिज्ञान, यह श्रुतज्ञान वह बहिरंग अंग है और जानपना.. जानपना... जानपना वह अंतरंग अंग है। ऐसे जानपने परसे यह जाननेवाला सो मैं, ऐसा कहीं कोई शास्त्रमें आता है?

समाधान :- मति-श्रुतज्ञानका लक्षण तो आता है। मति सामान्य प्रकारसे जानता है और विशेष भेद करता है वह श्रुतज्ञान। उसके उपयोगमें वह फ़र्क़ पड़ता है। सामान्य चेतना दर्शनउपयोग है वह अलग है। वह तो एक अभेद ग्रहण करता है, भेद नहीं पड़ता है। इस मतिमें भेद पड़ता है परन्तु सामान्य प्रकारसे मति ग्रहण करता है। और विशेषमें भेद करके सूक्ष्म-सूक्ष्म जानता है वह श्रुतका उपयोग है। मति और श्रुतमें वह फ़र्क़ पड़ता है।

वह अंतरमें जाये तो सामान्यपने जो ग्रहण करे वह मति और विशेष भेद करता है कि मैं यह ज्ञान हूँ, ऐसे सामान्य प्रकारसे मति ग्रहण करे और विशेष प्रकारसे ग्रहण करे कि यह ज्ञान है वही मैं हूँ। यह ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ऐसे भेद

करके जाने वह श्रुतज्ञानका उपयोग है। लेकिन उन दोनोंमें जानपना-ज्ञान, अखण्ड ज्ञायक जानपना है वह मैं हूँ। मति-श्रुतके दो भेद पड़े वह भेद मूल स्वरूपमें तो नहीं है। वह तो क्षयोपशमज्ञानके भेद हैं। उसमें उपयोग जो हो रहा है, उस उपयोगसे आत्माको एक शाश्वत ग्रहण करनेका है। अखण्ड ज्ञायक ग्रहण करता है। ज्ञायक तो अखण्ड है। उसमें मति-श्रुतके दो भेद नहीं पडते। वह तो क्षयोपशमज्ञानके भेद है।

अंतर तरफ जाय तो सामान्य प्रकारसे मति ग्रहण करता है कि मैं यह ज्ञानस्वरूप है वह मैं हूँ। वह ज्ञानलक्षण कैसा है? ज्ञानका विशेष भेद करके जाने वह श्रुतज्ञानका उपयोग है। मति-श्रुतके भेद तो बीचमें आते हैं। परन्तु ग्रहण एकको करना है कि जो अखण्ड ज्ञायक शाश्वत अस्तित्व स्वरूप है, ज्ञायक जिसका अस्तित्व है, ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण होता है। ज्ञायक अस्तित्व असाधारणरूप है। उसमें अनन्त गुण हैं, परन्तु ये ज्ञायकता है वह असाधारण लक्षण है। उस ज्ञायकतासे ग्रहण होता है। मति-श्रुतका उपयोग बीचमें आते हैं, मति और श्रुत बीचमें आता है, परन्तु ग्रहण एकको करना है। दो भेद नहीं, एकको ग्रहण करनेका है।

मुमुक्षु :- शास्त्रमें ऐसा आता है, वह वास्तवमें तो परप्रकाशक है। वह आत्माका लक्षण नहीं है। उस ज्ञानका अभाव होकर अतीन्द्रिय ज्ञान अन्दर आत्माको पकड़ता हुआ ज्ञान, वह वास्तवमें लक्षण है। ये जो अभी जानपना हो रहा है उसमें तो परप्रकाशकपना ही ख्यालमें आता है। ये जानता है, यह जानता है, यह ज्ञात होता है।

समाधान :- बाहर उपयोग है न। बाहर उपयोग होनेसे वह मति-श्रुतका उपयोग इन्द्रियोंकी ओर मुडा है। मन तरफ, इन्द्रियोंकी ओर उपयोग (है)। परन्तु उसमें जो जाननेवाला है वह मैं हूँ। ऐसे लक्ष्य अपनी ओर करना है। उसमें स्वयंको छोड़कर स्वयं कहीं अकेला भिन्न पडा रहता है और यह ज्ञान कहीं ओर पडा रहता है, ऐसा नहीं है। उसका उपयोग बाह्य हो गया है इसलिये परप्रकाशक ज्ञेयोंकी ओर हो गया है। स्वयं ज्ञायककी ओर जाता नहीं। उसमें वह जाननेवाला है, ज्ञेयोंको ग्रहण नहीं करके मैं जाननेवाला हूँ, ऐसे अपनी ओर मुडे तो उसमें ज्ञान ग्रहण होता है। और ज्ञेयोंकी ओर लक्ष्य जाय तो ज्ञेय ग्रहण होते हैं। उपयोग बाहर जाता है तो बाहरको ग्रहण करे तो बाह्य ज्ञेय ग्रहण होते हैं। अंतर दृष्टि करे तो अपना ज्ञान ग्रहण होता है।

जानपना है वह जानपना मात्र नहीं, परन्तु वह जाननेवाला जो पूरा है वह मैं हूँ। क्षयोपशम ज्ञानके भेद, शास्त्रमें आता है न कि बादलके पटलमें हीनाधिकतारूप जो किरण दिखाई देते हैं, वह किरण कहाँ-से आये हैं? किरणोंका संचार वह मूल वस्तु है। अतः एक भेद पर खड़े नहीं रहकरके उसका मूल कहाँ है, उस मूलको ग्रहण करना है। क्षयोपशमज्ञानके भेद हीनाधिकतारूप दिखे वह हीनाधिकता जितना ही

मैं नहीं हूँ, परन्तु उसका मूल कहाँ है? उसका स्वभाव मूल वस्तु क्या है? उसे ग्रहण करना है। वह उसे आधार देनेवाला है, तोड़नेवाला नहीं है। शास्त्रमें आता है कि उसके किरण जो बादलके पटलमें जो सूर्यके किरण दिखते हैं, उस किरणके पीछे पूरा सूर्य है उसे ग्रहण करना है। भेदको ग्रहण नहीं करके अखण्डको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- वर्तमान ज्ञानउपयोग, उसे जानते हुए यह ज्ञान इसे प्रकाशता है, इसे प्रकाशता है, ऐसे लक्ष्यमें नहीं लेते हुए, ज्ञानत्व लक्ष्यमें लेकर उस परसे त्रिकालीका लक्ष्य करना?

समाधान :- त्रिकालीका लक्ष्य (करना)। जानपनाका मूल कहाँ है? उसका मूल अस्तित्व ग्रहण करना। ये ज्ञेय ज्ञात हुए, ये ज्ञात हुआ, ये ज्ञात हुआ इसलिये मैं, ऐसे नहीं, परन्तु जानपना मूल सामान्य जानपना। और उस जानपनेका आश्रय लेकर उसका मूल अस्तित्व कहाँ है, उस मूलको ग्रहण करना है।

मुमुक्षु :- ऐसा सामान्य जानपना-जानपना कहाँसे आ रहा है? वह जो त्रिकाली अस्तित्व है..

समाधान :- त्रिकाली अस्तित्वको ग्रहण करना है। .. अखण्डको ग्रहण करना है। दूसरेको प्रकाशता है ऐसा नहीं देखकरके, उस किरणोंका आश्रय लेनेवाली मूल वस्तु कौन है? जानपनेका आश्रय मूल अस्तित्व उसका कहाँसे है, उसे ग्रहण करना है। मूल अस्तित्व कहाँ है, वह ग्रहण करना है।

मुमुक्षु :- ये जानपना.. जानपना.. जानपना कहाँसे हो रहा है, उस पर लक्ष्य..

समाधान :- जानपनेका मूल अस्तित्व कहाँ है, अखण्ड अस्तित्वको ग्रहण करना है।

मुमुक्षु :- २९७ गाथामें प्रज्ञासे किस प्रकार ग्रहण करना, उसे समझाते हुए ... मैं मेरे द्वारा, मुझे मेरे द्वारा, मेरे लिये, मेरेमें, मेरेसे और मेरे आधारसे मुझे जानता हूँ। प्रयोजनकी सिद्धिमें वह कुछ उपयोगी है?

समाधान :- उसकी साधकदशा अभी शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं हुयी है, इसलिये बीचमें भेद आते तो हैं। मूल तो अस्तित्व जो है वह है। वह तो जो अखण्ड अनादिअनन्त वस्तु तो जो है सो है। वह कोई छूट नहीं गयी या दूसरेमें गयी नहीं या दूसरेमेंसे आती नहीं। ज्ञायकका अस्तित्व तो जो है वह है। लेकिन वह स्वयंको ज्ञानमें प्रगटपने ग्रहण नहीं हुआ है। इसलिये उसमें बीचमें मैं, मेरे लिये, मुझे ही ग्रहण करता हूँ, इसलिये परका आश्रय नहीं है। ऐसे स्वयं अपनी स्वाधीनता पर दृष्टि करता है, उसमें बीचमें आता है।

उसकी दृष्टि ऐसे भेद पर नहीं है। दृष्टि तो एक अखण्डको करनेकी है। परन्तु उसका प्रयोजन, किसके लिये, उसका साधन कौन ऐसे अपनी स्वतंत्रताके लिये बीचमें

ऐसे भाव, ऐसा ज्ञान उसे बीचमें आ जाता है। दृष्टि तो एक अखण्ड पर है। फिर भी ज्ञानमें साधनामें ये सब उसे आ जाता है। परके जो साधन हैं, वह साधन मेरा मूल साधन नहीं है। मेरा साधन मुझे है, मेरा आश्रय मुझे है, मेरा कर्म-कार्य मुझमेंसे प्रगट होता है। मेरा आधार मुझे है। मुझे दूसरेका आधार नहीं है। ऐसा बीचमें आ जाता है। मैं मेरे द्वारा ही, मेरे ही लिये, मुझमेंसे मैं प्रगट होता हूँ। मेरी शुद्धि मुझमेंसे प्रगट होती है। परमेंसे नहीं आती है।

अनादिका भूला है, मानों परमें से सब आता है, परके आश्रय बिना मुझे चलता नहीं, परके आधारसे मैं टिकता हूँ, ऐसा भ्रम हो गया है। उसका पलटा होता है तब दृष्टिके साथ ज्ञान भी ऐसा कार्य करता है। मुझे परका आधार नहीं है, मुझे मेरा ही आधार है। मुझे मेरा ही साधन है। मैं मेरे लिये, मुझमेंसे प्रगट होता है। ज्ञान ऐसा कार्य किये बिना नहीं रहता। उसकी परिणति भी उस प्रकारसे काम करती है। बीचमें साधकदशा है। साध्य एकदम पूर्ण हो और कुछ करना ही न हो तो बीचमें कुछ नहीं आता। उसमें दृष्टि अपेक्षासे जैसी है वैसी अनादिअनन्त वस्तु है। परन्तु उसमें साधनाकी शुद्ध पर्याय प्रगट करनी है। सम्यग्दर्शनकी पर्याय प्रगट हो, उसमें चारित्रकी निर्मलता, स्वरूपाचरण चारित्र, ज्ञानकी निर्मलता आदि सब प्रगट होता है। इसलिये बीचमें ऐसे भाव आये बिना नहीं रहते। ज्ञान ऐसा कार्य किये बिना नहीं रहता।

परका कारकोंसे भिन्न पड़कर अपने कारकोंको ग्रहण किया। मैं मुझे मेरे लिये, मेरे कार्यके लिये मुझे जानता हूँ। ज्ञान स्वपरप्रकाशक है, ख्यालमें है। परन्तु निश्चय ओरकी दृष्टिको प्रगट करता हुआ... यथार्थ ज्ञान तो उसे निश्चय और व्यवहार दोनों साथमें ही रहे हैं। निश्चयको मुख्य रखकर व्यवहार साथमें रहता है। ज्ञान यथार्थ हो और दृष्टि सम्यक् हो उसके साथ ज्ञान ऐसा सम्यक् साथमें होता है। निश्चय और व्यवहारका विवेक करता हुआ ज्ञान साथमें ही होता है।

मुमुक्षु :- और निर्विकल्प अनुभव होता है।

समाधान :- .. छूट जाता है। मैं परको नहीं जानता हूँ, मुझे मेरे लिये जानता हूँ, वह सब विकल्प है। बाकी उसे ऐसा ज्ञान वर्तता है कि मैं स्वयं अनादिअनन्त स्वभाव पर दृष्टि करके मैं मुझे जानता हूँ, परके साथ एकत्वबुद्धि नहीं होती है, परसे भिन्न ज्ञानमें रहकर स्वयं मैं अपने आत्माको जानता हूँ, उसमें पर बीचमें आ जाता है। ऐसा ज्ञान उसे सहज वर्तता है। उसमें उसे विकल्प नहीं करना पड़ता। परन्तु ये तो सब ज्ञानका विस्तार करते हैं न, उसमें सब आता है। ऐसे विकल्प बीचमें करना पडता है ऐसा नहीं होता, ऐसा ज्ञान उसे होता है। मैं मेरेसे स्वतंत्र हूँ। परका आधार नहीं है। स्वयं स्वपरप्रकाशक मेरा स्वभाव है। मैं अनादिअनन्त स्वयं वस्तु हूँ। वह सब

उसके ज्ञानमें, जहाँ सम्यग्दृष्टि होती है, वहाँ सब सहज आ जाता है। ज्ञानके प्रकार हैं, इसलिये उसमें बीचमें इस प्रकारका जानना आता है।

पहले ज्ञेयसे छूटा, फिर अन्दर स्वतंत्र हुआ, फिर स्वभाव पर जहाँ दृष्टि हुयी, वहाँ उसे दृष्टि, ज्ञान दोनों साथमें होते हैं। उसमें उसे परका भेद, शरीरसे भिन्न, विभावसे भिन्न, साथमें आ जाता है। अपनेसे स्वयं कैसे है, गुणभेद, पर्यायभेद वह सब उसे ज्ञानमें साथमें आ जाता है।

समाधान :- .. अंतरमें गुरुदेवने जो कहा है, वह सब स्मरण करते रहना। उसकी लगन लगानी, उसके विचार करना, वांचन करना। विचार, वांचन, उसकी लगन, उसे बार-बार याद करते रहना-स्मरण करते रहना, विचार करते रहना। तत्त्व सम्बन्धित सब विचार करना। बाह्य प्रवृत्तिमें स्वयं एकमेक न हो जाय उसके लिये अपनी ओरकी रुचि बढाते रहना। करनेका तो अंतरमें है वही सत्य है।

मुमुक्षु :- कोई जगह अपने करना न चाहे तो भी सहज हो जाता है।

समाधान :- प्रवृत्तिकी गठरीयाँ होती है, मुंबईमें तो। तो भी अंतरमें स्वयं अपनी रुचि रखे, चाहे जैसे बाह्य संयोग हो तो भी।

मुमुक्षु :- रुचि बढानेके लिये क्या करना?

समाधान :- कारणका कारण क्या? स्वयं तैयार होना। रुचि बढानेके लिये स्वयं तैयार होना। रुचि बढानेके लिये सत्संग, सत्पुरुषकी वाणी आदि होता है। जहाँ सत्संग मिले, सत्पुरुषकी वाणी मिले ऐसे सब साधनोंमें स्वयं रहे। रुचि बढानेके लिये अपना उपादान तैयार करना। उसका कारण स्वयं ही है। कोई करवाता नहीं है, स्वयं करे तो होता है। उसके बाह्य कारणोंमें सत्पुरुषकी वाणी, सत्पुरुष साक्षात् हो या सत्संग आदि सब बाह्य कारणोंमें (है)। अंतरमें स्वयं रुचि बढानेमें कारण है। स्वयं अपनेसे बढानी।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९२

मुमुक्षु :- अनुभूतिके पहले कैसे...?

समाधान :- अनुभूतिके पहले तो उसकी उस जातकी लगन, उस प्रकारकी चटपटी हो, लगन हो, ज्ञायकको ग्रहण करने ओरकी उसकी परिणति हो। यह ज्ञायक ही है, अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। ऐसा ज्ञायक ओरका निश्चय दृढ़ करना चाहिये। भेदज्ञानकी परिणति दृढ़ करनी चाहिये। ये सब मैं नहीं हूँ, मैं तो चैतन्य हूँ। अपना स्वभाव अंतरमेंसे ग्रहण होना चाहिये। स्वभावको ग्रहण करे, बारंबार-बारंबार चैतन्यकी धून लगे, चैतन्यके अलावा कहीं रुचे नहीं। एक चैतन्यमय जीवन कैसे हो जाय, ऐसी अपनी दृढ़ परिणति उस ओरकी होनी चाहिये। चैतन्यकी ही धून लगनी चाहिये। जागते-सोते चैतन्य-चैतन्य ओरकी परिणति ही जागृत रहनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- विभावकी ओर दुःख और स्वभावका ग्रहण, दोनों साथमें (होते हैं)। स्वभावको ग्रहण करनेका प्रयत्न (होना चाहिये)। स्वभावमें ही सर्वस्व है, ऐसा निश्चय। स्वभाव ग्रहण करनेकी उसकी प्रतीति जोरदार होनी चाहिये और विभावकी ओर दुःख लगे, दोनों साथमें होते हैं।

मुमुक्षु :- सभी आत्माओंको इसी प्रकारकी विधि, विभाव परिणतमें दुःख लगे और स्वभाव ओर मुडे?

समाधान :- स्वभाव ग्रहण करनेकी परिणति। निज स्वभाव ओरका निश्चय और विभावमें दुःख लगे। विभाव तो आकुलतारूप ही है, स्वयंको आकुलता लगती नहीं है। उसका स्वरूप पहचाने कि ये तो आकुलता ही है। स्वभाव है वही शान्तिरूप है। ऐसा निश्चय स्वयंको होना चाहिये। विभाव ओर उसकी परिणति टिक न सके, अंतरकी ओर अंतरमें ही सुख है। विभाव होता है, परन्तु उसकी एकत्वबुद्धिको तोड़ता जाता है, स्वभावकी ओर मुडता जाता है।

मुमुक्षु :- अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आने पूर्व उसे शुभभावरूप परिणतिमें उसे आकुलताका वेदन होता है?

समाधान :- शुभभावकी परिणति होती तो है, परन्तु यह मेरा स्वभाव नहीं है,

ऐसा उसे निश्चय होता है। उसे आकुलता तो लगती है। ये सब मेरा स्वभाव नहीं है। सबमें आकुलता है तो आकुलता ही लगती है।

मुमुक्षु :- युक्तिसे आकुलताका वेदन लगे या वास्तवमें मन्द कषायमें भी आकुलताका (वेदन होता है)?

समाधान :- नहीं, युक्तिसे ग्रहण करे लेकिन उसे वेदनमें भी ऐसा लगे कि यह आकुलता है। उसमेंसे छूट नहीं सकता है, परन्तु उसे वेदनमें लगे कि ये आकुलता है।

मुमुक्षु :- मन्दमें मन्द कषाय हो तो भी उसे उस प्रकारका वेदन होता है?

समाधान :- हाँ, वह आकुलता है। .. किया कि यह आकुलता है और यह स्वभाव है। ऐसा निश्चय किया उतना ही नहीं, अपितु उसे अन्दर वेदनमें भी लगता है कि यह आकुलता है।

मुमुक्षु :- खटकका भी वही प्रकार, आकुलताका वेदन होता है इसलिये खटक रहा करे।

समाधान :- खटक रहा करे कि यह आकुलता है। लेकिन वह बीचमें आये बिना नहीं रहता। अभी शुद्धात्माका स्वरूप प्रगट नहीं हुआ है, वहाँ बीचमें आता है। अभी पूर्णता नहीं है, भले भेदज्ञानकी परिणति चालू हो तो भी बीचमें शुभभाव आते हैं। परन्तु वह समझता है कि आकुलता है। आकुलता आकुलतारूप वेदनमें आती है, स्वभाव स्वभावरूप वेदनमें आता है।

मुमुक्षु :- प्रश्न तो इतना होता है कि साधकको तो वैसा होना बराबर है, क्योंकि उन्होंने तो अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद चखा है, इसलिये आकुलता प्रत्यक्ष लगे। परन्तु उसके पहले भी मिथ्यादृष्टिकी भूमिकामें भी मन्द कषायमें भी वेदनमें आकुलता लगती है।

समाधान :- उसे लगे। खटककी तीव्रता हो जाय तो उसे लगे कि यह आकुलता है। नक्की करता है। वह प्रगट नहीं हुआ है तो वह अंतरमें अमुक प्रकारका वेदन पहचानकर नक्की करे तो अपनेसे नक्की किया ऐसा कह सकते हैं। ये अभी वेदनमें आता है, ये सब प्रवृत्तिरूप भाव आकुलतारूप है। ये ज्ञान है वह शान्तिरूप है। अमुक प्रकारसे वह युक्तिमें लेता है, अपने वेदन परसे नक्की करे तो उसने कुछ यथार्थ नक्की किया कहनेमें आये। ऊपर-ऊपरसे नक्की करे वह यथार्थरूपसे नक्की नहीं हुआ है।

स्वयं अपना स्वभावको पहचानकर, अपना वेदन अंतरसे पहचानकर नक्की करे तो उसने कुछ यथार्थ नक्की किया है। इसलिये उसे वेदनमें आता है कि यह आकुलता है, यह स्वभाव ज्ञान है वह शान्तिरूप है। लेकिन वह उससे छूट नहीं सकता है, भेदज्ञान नहीं होता है, परन्तु वह अमुक प्रकारसे निश्चय तो कर सकता है। उसके

स्वयंके वेदनमें भी ज्ञात हो सके ऐसा है कि ये आकुलता है, ये शान्ति है, ज्ञान है। ज्ञायकता है वह शान्ति है। ऐसे।

मुमुक्षु :- ज्ञानी धर्मात्माको-भगवानको कैसा सुख होगा, वह भी नक्की हो सकता है? वेदनसे, अनुमानसे।

समाधान :- वेदनसे नक्की नहीं (कर सकता), परन्तु वह अनुमानसे नक्की कर सकता है। सुख कैसा हो? उस सुखका वेदन स्वयंको नहीं है।

मुमुक्षु :- स्वयंको दुःखका वेदन है, इससे विरूद्ध..

समाधान :- इससे विरूद्ध सुख (है), वह अनुमानसे नक्की कर सके। आकुलतासे विरूद्ध निराकुलता, उतना वह नक्की करे। परन्तु वह आनन्द गुणको नक्की करना वह अनुमानसे नक्की कर सके। आनन्दगुण उसे कहीं वेदनमें नहीं आता है। अनुमानसे अमुक प्रमाण परसे वह नक्की कर सकता है। युक्तिसे, स्वभावसे अमुक नक्की कर सकता है। उसके वेदनमें नहीं आता है।

मुमुक्षु :- आकुलताका तो वेदन होता है, इसलिये ज्ञानकी सूक्ष्मता होने पर उसे पकड़में आता है।

समाधान :- उसे पकड़में आता है। सुख पकड़में आये कि निराकुलता वह सुख, आकुलता वह दुःख। परन्तु आनन्दगुण है वह उसे अनुमानसे, अमुक प्रमाण परसे नक्की करे। जीव आनन्दको इच्छता है, इसलिये आत्मामें ऐसा कोई आनन्दगुण है कि जिसकी वह इच्छा करता है वह मिलता नहीं है। आत्मामें ऐसा आनन्दगुणका स्वभाव है।

मुमुक्षु :- माताजी! अन्दर जो शुभाशुभ भाव होते हैं, वह तो ..

समाधान :- भाव जो होते हैं उसे समझकर, वह भाव है वह आकुलताका वेदन है। अन्दर जाननेवाला है वह भिन्न है। शुभाशुभ भावोंको जाननेवाला भिन्न है और शुभाशुभ भाव भिन्न है। वेदन होता है वह तो आकुलतारूप है। उससे भिन्न मैं चैतन्य हूँ, उसे जाननेवाला भिन्न है।

मुमुक्षु :- ख्यालमें आता है न कि ये भाव हुआ, यह भाव हुआ। जो भाव होते हैं वह पकड़में आते हैं कि ऐसे भाव हुए। जिसे मालूम पड़ता है वह मैं हूँ, ऐसे?

समाधान :- हाँ, वह जो मालूम पड़ता है वह मैं हूँ। परन्तु वह मालूम पड़ता है वह उसकी पर्याय है, मूल तत्त्वको ग्रहण करनेका है। जो मालूम पड़ता है वह बराबर, मालूम पड़ता है वह ज्ञानकी पर्याय है। जो ये शुभाशुभ भाव होते हैं कि यह भाव आया, यह भाव आया, यह भाव आया। वह सब ज्ञानकी पर्याय है। परन्तु उसमें मूल वस्तु जो अनादिअनन्त है वह ज्ञायक परिपूर्ण है। एक-एक वस्तुको जाने,

एक-एक विकल्पको जाननेवाला पर्यायें हुयी, परन्तु मैं एक अखण्ड ज्ञायक शाश्वत हूँ। ऐसे अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करना। जो मालूम पड़ता है, उस परसे उसका पूर्ण अस्तित्व ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- जो मालूम पड़ता है वह पदार्थ मैं हूँ।

समाधान :- हाँ, जो मालूम पड़ रहा है, वह पदार्थ मैं हूँ। जो खबर करनेवाला है वह मूल वस्तु अनादिअनन्त स्वतःसिद्ध मैं हूँ। जो शुभाशुभ भावोंको जाननेवाला है, वह खबर करनेवाला है, उसका जो मूल शाश्वत अस्तित्व है वह मैं हूँ। वह अस्तित्व पूर्ण ज्ञायक है। उस ज्ञायकमें अनन्त शक्तियाँ भरी हैं।

मुमुक्षु :- मालूम पड़नेमें अस्तित्व मालूम पड़ता है, बाकी दूसरे गुण इतने मालूम नहीं पड़ते हैं कि दूसरे-दूसरे गुण है, उसका उतना ख्याल नहीं आता है। मालूम पड़ता है इसलिये .. ज्ञात होता है। परन्तु दूसरे भी अनन्त गुण हैं, वह मालूम नहीं पड़ते।

समाधान :- वह दिखाई नहीं देते हैं। परन्तु जो शक्तिवान पदार्थ है, जो ज्ञायक है वह अनन्त शक्तिसे भरपूर हो। जो द्रव्य हो वह खाली नहीं होता, उसमें अनन्त गुण ही होते हैं। द्रव्य उसका नाम कहें कि जिसमें अनन्त शक्तियाँ हो। जिसमें अमर्यादित वस्तु है, चाहे जितना परिणमे तो भी खत्म न हो, ऐसी अनन्ततासे भरा द्रव्य है। फिर उसके युक्ति, प्रमाणसे नक्की होता है।

मुमुक्षु :- शान्तिका तो ख्याल आता है कि जब अन्दर जाते हैं तब सुख लगता है, बाहरमें .. उतना मालूम पड़ता है। शान्ति मालूम पड़ती है कि अन्दर जाते हैं तो थोडी..

समाधान :- शान्ति लगती है। अनन्त गुण तो दिखाई नहीं देते, परन्तु वह अनन्त शक्तिवान पदार्थ है। जिसमेंसे जो अनन्त पर्याय (होती है)। ज्ञान है वह अधूरा नहीं होता। जो स्वतः ज्ञान, स्वयं स्वतःसिद्ध वस्तु है, वह वस्तु अनादिअनन्त है। उस ज्ञानकी कोई मर्यादा नहीं होती। ऐसा ज्ञान अमर्यादित है। इसलिये अमर्यादित ज्ञान हो वह अनन्त शक्तिसे भरा हुआ ज्ञान है। ऐसे उसमें अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनन्त गुण हैं। वैसे उसमें आनन्दगुण है। वह भी अनन्तासे भरा है। इस तरह द्रव्य अनन्त-अनन्त शक्तिओंसे भरा है। वह दिखता नहीं है, वेदनमें नहीं आता है, परन्तु उसका अनुमान हो सकता है। और वह युक्ति ऐसी होती है कि यथार्थ होती है। वह स्वयं नक्की कर सकता है।

मुमुक्षु :- अस्तित्वका भी ख्याल आता है कि मेरी मौजूदगी है। ... उसका ख्याल आये, अस्तित्वका ख्याल आये।

समाधान :- अस्तित्व, परन्तु वह अस्तित्व अनन्ततासे भरा है। ऐसा स्वयं नक्की

करे तो हो सकता है। आचार्योंने युक्तिसे, दलीलसे (सिद्ध किया है)। जो अस्तित्व हो वह अधूरा नहीं होता। पूर्ण अनन्त स्वभावसे भरा है।

समाधान :- ... अनादिअनन्त जैसा है वैसा ज्ञायक है। दृष्टि तो ऐसी कर। उसकी कृतकृत्य दशा पूर्ण पर्याय प्रगट हो तब हो। नहीं तो अनादिअनन्त.. दृष्टि तो चैतन्य पर स्वयं जैसा है वैसा ही है। उसमें कोई फेरफार नहीं हुआ है। ऐसे द्रव्य पर दृष्टि कर। स्वयं जाननेवाला है। साधकभाव भी व्यवहार है। इसलिये उस प्रकारसे स्वयं विभाव कर्ता नहीं है। अधूरी पर्याय जितना भी स्वयं नहीं है। अधूरी पर्यायें हों, वह भी अपना मूल स्वरूप नहीं है। इसलिये तू द्रव्य पर दृष्टि कर। क्षयोपशमभाव और उपशमभाव भी अधूरी पर्यायें हैं। इसलिये तू पूर्ण पर दृष्टि कर। तू जाननेवाला ज्ञायक है। आगे-पीछे मैंने कुछ सुना नहीं है, परन्तु उसका आशय यह है।

साधकभाव भी व्यवहार है। दृष्टि तो अखण्ड होती है। साधकभाव बीचमें आये बिना रहता नहीं। साधकभाव व्यवहार है। इसलिये तू अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि कर। वह अखण्ड है उसमें साथमें पुरुषार्थ आ जाता है। पुरुषार्थ उसमें (है)। दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार पर्याय तो अधूरी है, इसलिये उसमें पुरुषार्थ तो करना ही है, परन्तु तू वह सब कर्ताबुद्धि छोड़ दे। तू ज्ञाता है। वह कर्ताबुद्धि छोड़ दे। तो भी पुरुषार्थ तो उसमें करनेका रहता है।

निश्चय और व्यवहार दोनों जानने योग्य है। दृष्टि एक चैतन्य पर रख। आदरणीय एक चैतन्य है। दृष्टिके बलसे पुरुषार्थ होता है। इसलिये तू अखण्ड ज्ञायक है। साधकभाव व्यवहार है। वह बीचमें आये बिना रहता नहीं। तू कोई भी पर्याय है, उस पर्यायका निश्चय दृष्टिसे तेरा अकर्तास्वभाव है, तेरे स्वभावका कर्ता अनादिअनन्त पारिणामिकभावसे है। ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- अर्थात् वहाँ ज्ञायककी दृष्टि करानेको...।

समाधान :- ज्ञायककी दृष्टि करनेको। बन्ध-मोक्षके जो विकल्प आये, वह विकल्प भी शुभभाव है। वह बन्ध-मोक्षकी जो पर्याय हैं, वह पर्याय भी प्रगट होती है मोक्षकी। इसलिये तू पर्याय पर दृष्टि मत करना। वह साधकभाव बीचमें आता है। मोक्ष है वह भी एक पर्याय है। इसलिये तू ज्ञायक जाननेवाला है, अखण्ड शुद्धात्मा है। ऐसा कहना है। पर्याय जितना ही तेरा स्वरूप नहीं है। तेरा स्वरूप अखण्ड है।

जो बादमें प्रगट होता है, तेरा मूल स्वरूप तो अनादिअनन्त है। परन्तु उसमें द्रव्यदृष्टि करे तो ही शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। साधकभाव तो बीचमें आता है। साधकभाव व्यवहार है, ऐसा कहना है। सब अधूरी पर्याय व्यवहार है।

मुमुक्षु :- यानी वहाँसे लक्ष्य छुड़ाना है।

समाधान :- लक्ष्य छुड़ाते हैं। लक्ष्य छुडाकर अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि करवाते हैं। ज्ञान तो सबका (होता है)। अनादिअनन्त है उस पर दृष्टि कर, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी उस पर बहुत प्रसन्नता थी। इसलिये लगा, गुरुदेवका जाननेपर बहुत (वज़न था)।

समाधान :- तू सब जान, तू कर्ता नहीं है। जान, ज्ञायक हो। सब जान। अधूरी पर्याय, पूर्ण पर्याय उन सबका तू जाननेवाला ज्ञायक है। तू सब जान।

मुमुक्षु :- जाननेकी पर्यायको भी करनी नहीं है, ऐसे लिया। उसका जाननेवाला है, ऐसे लिया। इसलिये बहुत..

समाधान :- जाननेवाली पर्यायका भी तू जाननेवाला है। इसलिये उसमें व्यवहार नहीं है, ऐसा कहनेका आशय नहीं है। परन्तु वस्तुदृष्टि करवानी है। वस्तुका मूल स्वरूप बताते हैं। इसलिये वह पर्याय आत्मामें नहीं है, ऐसा नहीं। वह जाननेकी पर्याय उसमें होती नहीं, ऐसा नहीं है। वह सब व्यवहार है, लेकिन तू दृष्टि... मूल वस्तुका स्वरूप बताते हैं। अकेला ऐसा हो तो ये बन्धके विभावभाव होते ही नहीं। तो अकेली मोक्षकी पर्याय हो। यदि ऐसा हो तो ये जाननेका स्वभाव जो दिखता है, वह भी... आत्मा कुछ जान सके नहीं। यदि जाननेका स्वभाव ही न हो तो। वह सब जाननेकी पर्याय है। परन्तु तू दृष्टि तेरे स्वकी ओर कर, ऐसा कहना है।

तेरा स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, परन्तु दृष्टि तेरे द्रव्य पर कर, ऐसा कहना है। आचार्यदेव, गुरुदेव सब एक ही बात करते हैं। दृष्टि तू शुद्धात्मा पर कर। पर्याय उसमें होती है, साधकदशा उसमें होती है, स्वपरप्रकाशक तेरा स्वभाव है। परन्तु दृष्टि तू परसे हटाकर एक अखण्ड ज्ञायक पारिणामिकभाव पर कर। पारिणामिकभाव अर्थात् एक भाव पर नहीं, लेकिन अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि कर।

मुमुक्षु :- इतना तत्त्व मिला, हम हमसे हो सके उतना प्रयत्न, चिंतन, मंथन सब करते भी हैं, परन्तु हमारे व्यवहारिक जीवनमें चलते-फिरते, कोई जूठ बोलनेका भाव, मायाचारीके भाव होते हो, अथवा सामनेवाले जीवको दुःख होगा ऐसा जाननेकी दरकारका भाव न रहता हो, वह सब तो बाह्य है। तो वह आत्मसाधनामें कुछ अवरोधरूप हो या पात्रताकी (क्षति है)?

समाधान :- स्वयं समझ लेना कि कैसे भाव आते हैं। मुमुक्षुकी भूमिकामें आत्मार्थका प्रयोजन मुख्य (होता है)। आत्मार्थीको न शोभे ऐसे मर्यादा तोड़कर ऐसे विचार आत्मार्थीको होते नहीं। ऐसे कार्य भी आत्मार्थीको नहीं होते। जो आत्मार्थका पोषण हो, आत्मार्थताकी मुख्यता रहे ऐसे भाव आत्मार्थीको होते हैं। अपनी आत्मार्थताकी मर्यादा टूट जाय ऐसे भाव आत्मार्थीको होते नहीं। फिर कैसे आते हैं, उसका विचार स्वयंको करना रहता

है। उसमें कचास हो तो अपनी पात्रता बढानी। आत्मार्थताका मुख्य प्रयोजन (होना चाहिये)। आत्मार्थताको कोई हानि पहुँचे ऐसी मर्यादा तोड़कर ऐसे विचार आत्मार्थीको होते नहीं।

मुमुक्षु :- .. जब मोक्षमें जाते हैं, वहाँ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायका अंत आ जाता है, वहाँसे आगे नहीं जा सकते। बराबर? धर्मास्तिकाय जो गतिमें उदासीन सहायतारूप होता है, वहाँ स्थिर हो जानेके बाद धर्मास्तिकाय कैसे मदद करता है?

समाधान :- वह तो ऐसा है कि जो चलते हुए गतिमान हो उसे निमित्त होता है। गतिमान न हो उसे निमित्त होता है, ऐसा नहीं है। जो गतिमें हो उसे निमित्त होता है। जो चलनेके बाद स्थिर हो उसे अधर्मास्तिकाय निमित्त बने। गतिमानको धर्मास्तिकाय निमित्त होता है। ऐसा होता है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। ...

मुमुक्षु :- विहार करते हैं तब एक भाई छटपटाते हैं, गर्मीका दिन था, छटपटाता है और कहता है कि बचाओ, बचाओ, बचाओ, मुझे थोड़ा पानी दो। भावलिंगीके पास कमंडलु उपकरण होता है, उसमें पानी था। तो उन्हें देना योग्य है या अयोग्य है? पानी देना चाहिये कि नहीं देना चाहिये? विचित्र प्रश्न पूछ रहा हूँ।

समाधान :- भावलिंगी मुनि स्वयं तो भिन्न होकर स्वरूपमें लीन होकर बसते हैं। सर्व प्रकारके विकल्प छूट गये हैं। भिन्न हो गये हैं। सर्व कार्योंसे छूट गये हैं। लौकिज्ञक कार्योंसे छूट गये हैं। ऐसे कार्योंमें उन्हें उस प्रकारका विकल्प नहीं आता है। उनका उपयोग बाहर नहीं होता है। उस जातके कार्योंमें वे जुड़ते नहीं। छूट जाते हैं। यथार्थ मुनिदशा छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। ऐसे कार्योंसे छूट गये हैं। वह सब कार्य गृहस्थोंके हैं। उस कार्यसे छूट गया है।

जिसने यथार्थ मुनिपना अंगीकार किया, छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हुए, केवलज्ञानकी तलहटी, केवलज्ञान पूर्ण कृतकृत्य दशाकी तलहटीमें खड़े हैं, मुनिदशा यानी छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते मुनिराज हैं। ऐसे बाह्य कार्योंसे छूट गये हैं। और उस जातका विकल्प नहीं होता है, भिन्न हो गये हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९३

मुमुक्षु :- ... स्वाध्यायमें भी बार-बार सुनते हैं कि ... ज्ञाता-दृष्टापना रखना चाहिये। तो ज्ञाता-दृष्टापना कैसे रखना?

समाधान :- स्वाध्यायमें न? ज्ञाता-दृष्टा तो अन्दर ज्ञायककी परिणति प्रगट हुयी हो तो ज्ञाता-दृष्टापना रहता है। जिसे ज्ञायकपना प्रगट नहीं हुआ है, उसे ज्ञातापन रहना मुश्किल है। ज्ञायकको पहचाने, भेदज्ञान करे और एसी ज्ञाताकी भेदज्ञानकी परिणति प्रगट हुयी हो तो उसे प्रत्येक शुभभावके कोई भी विकल्प हो, शुभाशुभ प्रत्येक भावमें उसे ज्ञातापन सहजरूपसे रहता है। शुभके विकल्प हो तो भी ज्ञाता रहता है। शुभाशुभ प्रत्येक भावमें, सर्व विकल्पमें उसे ज्ञातापना, भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो गयी, ऊच्चसे ऊच्च शुभभाव हो तो भी उसे भेदज्ञान सहजपने, उसकी पुरुषार्थकी गति क्षण-क्षणमें मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ ऐसे सहजपने ज्ञाताके अस्तित्वमें उसकी परिणति उस ओर रहती ही है। कोई भी विकल्प आये उसे भेदज्ञानकी धारा चलती है। उसे श्रुतका चिंतवन हो, शास्त्रका अभ्यास हो तो भी उसे ज्ञातापना सहज रहता है।

लेकिन जिसे एकत्वबुद्धि है, जिज्ञासुकी भूमिका है, उसे ज्ञातापना रहे ऐसा होता नहीं। उसे तो मात्र भावना रहती है कि मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे। भावना करनी रहती है, वह परिणति प्रगट करनी रहती है।

परन्तु जिसे ज्ञायककी दशा प्रगट हुयी है, स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हुयी है, वह फिर सविकल्पमें आये तब उसे भेदज्ञानकी धारा रहती है। चाहे जैसे शुभके विकल्प हो तो भी उसे भेदज्ञानकी (चालू रहता है)। भगवानका दर्शन करे, पूजा करे, शास्त्र अभ्यास करे, कुछ भी करे तो भी उसे भेदज्ञानकी धारा चालू ही रहती है। शुभभावमें उसे एकत्वबुद्धि नहीं होती। उसे बाहरसे भगवानकी बहुत भक्ति दिखे, श्रुतका चिंतवन बहुत दिखे तो भी उसे एकत्वबुद्धि नहीं होती, उसे ज्ञायककी धारा भिन्न ही रहती है। उसे अमुक प्रकारका रस दिखे, लेकिन एकत्वबुद्धि नहीं है। उसे स्थिति अल्प पड़ती है, रस बहुत पड़ता है, परन्तु उसे भेदज्ञानकी धारा है, उसे स्थिति लंबी नहीं पड़ती। वह भिन्न रहता है, न्यारा ही रहता है। सहज दशा भेदज्ञानकी धारा रहती है।

मुमुक्षु :- उतना ही सत्य आत्मा है, जितना यह ज्ञान है।

समाधान :- वह बात आयी।

मुमुक्षु :- ज्ञानसे ज्यादा लेनेमें मुख्य हेतु कोई है?

समाधान :- पहले अपनी ओर मुडता है। उतना निश्चय कर कि जितना यह ज्ञान है। निश्चय करनेमें तो बीचमें ज्ञान आता है न। मुख्य तो दृष्टि है। अनादिअनन्त आत्मा है उस पर तू दृष्टि कर। परन्तु दृष्टिके साथ ज्ञान तो होता ही है। जिज्ञासाकी भूमिकासे आगे बढना हो तो इतना निश्चय कर। निश्चयके साथ दृष्टि होती है। दृष्टि प्रगट नहीं हुयी है, निश्चय तो पहले करना होता है कि जितना यह ज्ञान है, उतना तू है। इतना जो ज्ञान दिखता है वह ज्ञायक है। उसे तू ग्रहण कर, उसमें रुचि कर, उसमें संतुष्ट हो। कहनेकी शैलीमें, आगे बढनेकी शैलीमें उसे विचारोंमें तो सब ज्ञान आता है। दृष्टि तो उस पर स्थिर करनी। दृष्टिका विषय तो एक अभेद है।

दृष्टि तो मुख्य है, ऐसा कहकर यह कहना है कि तू दृष्टि आत्मा पर कर। आत्मा ऐसा है और वही ग्रहण करने जैसा है। उसे तू ग्रहण कर। वह अनादिअनन्त आत्मा, उसे अभेदरूपसे एक चैतन्य आत्मा वही मैं हूँ, उस पर दृष्टि स्थापित कर। दृष्टि प्रगट करनेकी दृष्टि है। परन्तु उसे निश्चय करनेमें तो बीचमें ज्ञान आता है।

मुमुक्षु :- जितना यह ज्ञान है उतना ही आत्मा है।

समाधान :- गुण और गुणी अभेद है। जो यह ज्ञान दिखता है-ज्ञानलक्षण उतना आत्मा है। ज्ञानके अलावा जो भी है वह सब विभाव, सब पर है। एक ज्ञानलक्षण जो दिखता है, ज्ञानलक्षणसे पहचान ले। वह जो लक्षण दिखता है वह ज्ञानलक्षण है उतना ही आत्मा है। उतना ही गुणी है। लक्षण और लक्ष्य दोनों एक ही है, उसे तू ग्रहण कर। पूरा ज्ञायक ग्रहण कर ले।

मुमुक्षु :- ग्रहण करवानेका वहाँ हेतु है।

समाधान :- हाँ, ग्रहण करवानेका हेतु है। जितना यह ज्ञान है उतना आत्मा है। जितना ज्ञानस्वभाव जिसके लक्ष्यमें आये, ज्ञानस्वभाव लक्षण है वह आत्मा है। बाकी सब जो दिखे वह सब विभाव है। एक ज्ञानलक्षण आत्माको पहचान ले अर्थात् एक ज्ञायकको पहचान ले। उस पर दृष्टि कर। गुण और गुणी अभेद है। उस पर दृष्टि स्थापित कर।

उसमें तृप्त हो, उसमें रुचि कर, उसीमें सर्वस्व है। बाकी बाहर कुछ नहीं है। और उस पर तू दृष्टि स्थापित करके उसका ज्ञान कर। उसीमें संतुष्ट होगा, तृप्ति होगी, सब उसीमें है। अपूर्व सुख उसमें प्रगट होगा। सब ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही सब भरा है। ज्ञायकमें ही सब भरा है। ऐसा हो कि अकेले ज्ञानमें क्या है? परन्तु अकेले ज्ञानमें अनन्त भरा है। जितना यह ज्ञान है, वह आत्मा है, उसे ग्रहण कर।

मुमुक्षु :- बहुत भेद न पडे, परन्तु अभेद ही मुख्य है न?

समाधान :- ग्रहण अभेदको करनेका है। ग्रहण तो एक आत्माको (करना है)। भेद परसे दृष्टि उठा ले। ग्रहण करे एक अभेदको। परन्तु उसका ज्ञान बीचमें आ जाता है। भेद पर दृष्टि नहीं रखनी है। दृष्टि एक अभेद पर कर। बाकी सबका ज्ञान कर। दृष्टि एक अभेद पर कर। दृष्टि उसमें स्थापित की इसलिये उसमेंसे शुद्ध पर्याय प्रगट होगी, स्वयं प्रगट होगी। पहले तू यथार्थ निश्चय कर कि यह ज्ञानस्वरूप आत्मा है वही मैं हूँ। ऐसे निश्चय कर उसका और यथार्थ दृष्टि प्रगट कर। दृष्टि मुख्य है, परन्तु ज्ञान साथमें आता है। भेद परसे दृष्टि उठा ले, दृष्टि एक आत्मा पर कर।

मुमुक्षु :- .. उसके पहले ज्ञानसे आत्माके स्वरूपको भेदपूर्वक विचारता है कि मैं ऐसा ज्ञान सामर्थ्यका पिण्ड हूँ, ऐसे सुख सामर्थ्यका पिण्ड हूँ, ऐसी प्रभुता .. हूँ।

समाधान :- उसके विचारमें ऐसा निश्चय बीचमें आये बिना नहीं रहता। निश्चय किये बिना... वह बीचमें आता है। भेदके विचार (आते हैं), परन्तु दृष्टि एक अभेद पर करनी है। दृष्टि अभेद पर गयी और उसमें लीन हुआ तो विकल्प छूट जाता है। तो उसमेंसे उसे स्वानुभूति प्रगट होती है। परन्तु पहले वह निश्चय करे तब भेदके विकल्प आते हैं।

मुमुक्षु :- .. भेदके ग्रहणपूर्वक ही उसे यथार्थ निश्चय होता है और फिर भेदको छोड़कर अभेदको ग्रहण करता है?

समाधान :- अभेदको ग्रहण करता है। (बीचमें) व्यवहार आये बिना रहता नहीं। विकल्प द्वारा नक्की करके फिर मति-श्रुतकी बुद्धिओंको समेटकर स्वयं निर्विकल्प होता है। ऐसा गाथामें आता है, उसकी टीकामें। .. है उसे थोड़ा-थोड़ा जवाब देती हूँ। उस प्रश्नके जवाब लगभग कैसेटोमें वही आये हैं। वही होता है। कैसे करना? क्या करना? वही प्रश्न बहुभाग सबके होते हैं।

.. बहुत सुननेका है। बिना पूछे कितने ही ऊतारकर ले गये हैं। मुझे तो मालूम नहीं है, कौन ऊतारकर ले गया है। पीछेसे बोलूँ उसे ऊतारा है। पहले मैं वांचन करती थी, उसकी तो मैं स्पष्ट ना कहती थी। किसीने ऊतारा नहीं है। बहुत समय बाद ऊतारा तो ऐसे ढककर ऊतारा। अभी भी सभी बहनोंको ऊतारनेकी ना ही कहती हूँ। सब बहनें नहीं ऊतारती है। सब बहनें नहीं ऊतारती। यहाँ कोई लेकर बैठा होता है। बाकी सब बहनें नहीं ऊतारती है। सबके पास नहीं है।

... अकेली बैठी होऊँ तब धूनमें कुछ बोलना होता है। शास्त्रके अर्थमें कुछ धूनमें ही धूनमें उस दिन बोलती थी। विकल्प तुम भाग जाओ ऐसा सब। अब सब जाईये, ऐसा सब बोलती थी। शास्त्रके साथ कोई मेल नहीं हो, ऐसा कुछ बोलती हूँ।

मुमुक्षु :- वही शास्त्र है, उससे ऊच्च शास्त्र कौन-सा होगा? मस्तीकी तो सबसे ज्यादा क़ीमत है न।

समाधान :- तन-मन-धन। गुरुदेवके चरणमें मन-विकल्पको छोड़ दिये। गुरुदेवके चरणमें अब तुम्हारा यहाँ स्थान नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ। विकल्प गुरुदेवके चरणमें रख दिये। अब चले जाओ। गुरुके चरणमें.. उसका अर्थ कोई पूछे कि गुरुदेवके चरणमें विकल्प, वह क्या? वह तो भावमें ही बोलना होता है। गुरुदेवको कहाँ विकल्प चाहिये? और किसीको कहाँ चाहिये?

मुमुक्षु :- शब्दोंके अर्थ करने जाय तो तकरार हो जाय।

समाधान :- ऐसा ही है। ज्ञायकमें विकल्प नहीं है। मेरे हृदयमें एक ज्ञायक है। विकल्प अब चले जाओ, मुझे नहीं चाहिये। विकल्पको खड़े रहनेका स्थान नहीं रहता है। या ज्ञायक या गुरु। मेरे हृदयमें गुरु हैं। दूसरा कोई स्थान नहीं है। तुम अब चले जाओ। तन तो गुरुदेवके चरणमें, मन कैसे? विकल्प जाओ, अब मेरे गुरुदेवके चरणोंमें जाओ, ऐसा सब बोलती थी। ऐसा हो कि यह सब ऊतारकर उसका अर्थ क्या करना? ऐसा हो जाता है कोई बार।

मुमुक्षु :- अपने कहाँ अर्थ करके समझ लेना है?

समाधान :- चले गये। ... सब ठीक करके देना पड़े न। सब भिन्न-भिन्न हो उसे एकट्ठा करके देना पड़े।

मुमुक्षु :- अच्छा आता है।

मुमुक्षु :- किस प्रकार..

समाधान :- शुद्धात्मा, ऐसा है न?

मुमुक्षु :- शिर्षक ऐसा है।

समाधान :- ध्रुव अनादिअनन्त है। ध्रुव है वह तो शुद्ध ही है, शुद्धात्मा शुद्ध है। बाकी शब्दोंका मेल तो शास्त्र... प्रवचनसारमें बहुत जगह ज्ञान अपेक्षासे कहते हैं, कोई जगह दृष्टि अपेक्षासे कहते हैं। दृष्टि और ज्ञानमें साथमें होते हैं। वहाँ दो द्रव्यको भिन्न किया और यहाँ दृष्टि और ज्ञान साथमें रखे। स्वधर्मसे एकत्व स्वयंसे और परसे भिन्न है-विभक्त। परधर्मसे भिन्न और स्वधर्ममें एकत्व। अपनेमें एक है इसलिये शुद्ध है। इसलिये वह उपलब्ध करने योग्य है। वह ध्रुव है। इसलिये दृष्टि तो तू ऐसी कर। और परसे भिन्न इसलिये उसमें ज्ञान साथमें आया, दृष्टि साथमें आती है। इसलिये दृष्टि और ज्ञान साथमें रखते हैं।

आचार्यदेव बहुत जगह दृष्टि मुख्य करके ज्ञानको साथमें रखते हैं। और ज्ञानका विषय हो तो यहाँ दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें रखे। इसलिये ऐसा लगे कि यह दृष्टि

है या ज्ञान है? कोई जगह दृष्टि और ज्ञान दोनोंकी साथमें बात करते हैं। ध्रुवत्वके कारण वह उपलब्ध करने योग्य है। वह एक है, परसे भिन्न है। परधर्मसे भिन्न और स्वधर्मसे एकत्व है। यह विभाव है, उससे तू भिन्न कर। स्वधर्ममें एक है, अपनेमें एक है, ध्रुव है, ऐसा कहकर यहाँ दृष्टि साबित करते हैं कि तू अपनी ओर देख। और परसे भिन्न होता है इसलिये उसमें ज्ञान भी साथमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- दोनों बात..

समाधान :- दोनों बात एकमें आ जाती है। तू दृष्टि यथार्थ कर, उसके साथ ज्ञान भी साथमें आ जाता है। परसे भिन्न और स्वमें तू एकत्व है। अपनेमें एकत्व साबित करता है। तू दृष्टिको मुख्य कर। ज्ञान साथमें रखता है। .. ज्ञानको गौण करते हैं और यहाँ प्रवचनसारमें बहुत जगह दृष्टि-ज्ञान साथमें होते हैं। ऐसा है। कमर कसी है, ऐसा सब आता है। उसी गाथामें कहीं पर आता है। प्रवचनसारमें आगे आ गया है। ८०वीं गाथामें ऐसा आया कि यह द्रव्य है, गुण है, पर्याय है। ऐसा मनसे नक्की करके फिर स्वयंमें संक्षेप करके विकल्पको तोड़ दे। कर्ता-कर्मका विभाग विलय हो जाता है और स्वयं अपनेमें एकत्व हो जाय, निर्विकल्प हो जाय। उसमें ऐसे लिया है। उसमें दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें ले लिया कि ऐसी दृष्टि कर। फिर ज्ञानसे नक्की करता है। विकल्प तोडकर अपनेमें लीन हो जाता है।

मुमुक्षु :- एक ही गाथामें दो बात ली है।

समाधान :- हाँ, एक गाथामें दो बात ली है।

मुमुक्षु :- यथार्थ निर्णय होता है, अनुभव पूर्व यथार्थ निर्णय होता है और उस यथार्थ निर्णयमें एक धारणारूप निर्णय होता है और एक भावभासनरूप निर्णय होता है। सविकल्प दशाकी बात करता हूँ। धारणारूप निर्णयमें तो केवल शास्त्रसे, आगमसे उसने नक्की किया होता है कि आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है। और भावभासनरूप निर्णयमें तो अंतर सन्मुख झुककर लक्षणसे कुछ आभास होता हो कि ऐसा ज्ञानमय आत्मा अन्दरमें है और वह मैं हूँ। उस निर्णयका फल, उस निर्णयके बाद आगे बढने पर उस निर्णयका अभाव होकर निर्विकल्पता हो, वह बराबर है?

समाधान :- भावभासनका निर्णय यथार्थ हो तो उस निर्णयकी विशेष दृढ़ता वह परिणतिरूप हो तो निर्विकल्प दशा होती है। सहजरूपसे हो तो निर्विकल्प दशा हो।

मुमुक्षु :- परिणतिरूप होनेमें तो केवल अभ्यास ही मुख्यरूपसे (होता है)?

समाधान :- बारंबार उसका अभ्यास करे। उसमें ज्यादा तदाकार हो जाय। भावभासन है उसे ज्यादा दृढ़तारूप करता जाय। ज्यादा दृढ़तारूप करके उस रूप परिणमता जाय तो विकल्प छूटनेका प्रसंग आवे।

मुमुक्षु :- धारणारूप निर्णयकी तो क़ीमत ही नहीं है। वह तो केवल शास्त्रसे और..

समाधान :- शास्त्रसे निर्णय किया है।

मुमुक्षु :- धारणा कर ली है।

समाधान :- धारणा की है। उतना कि कुछ जानता नहीं था, वह उसने कुछ जाना है, उतना। बाकी अंतर भावभासनमें तो अलग ही होता है।

मुमुक्षु :- भावभासनमें शुद्धात्माका स्वरूप जैसा है वैसा आता जाता है। फिर भी निर्णय न हो ऐसा भी बनता होगा? निर्णय, विकल्पात्मक निर्णय न हो। भावभासनमें स्वरूप ख्यालमें आता हो, फिर भी निर्णयरूप न हो सके।

समाधान :- भावभासन हो तो उसे निर्णय तो होता है। दोनोंका अविनाभावी सम्बन्ध है। भावभासनमें आये कि यह भाव है, तो निर्णय भी साथमें होता है कि ऐसे ही है। निर्णय न हो तो भावभासनमें उसकी कचास है। .. इसलिये तो निर्णयमें दृढ़ता नहीं आती है।

मुमुक्षु :- भावभासनरूप निर्णय पर ही पूरा वज़न है। मुख्य तो उसको वही पुरुषार्थ (करना है)।

समाधान :- भावभासन हो तो ही वह भावभासनसे आगे बढता है। स्वानुभूतिकी जो सविकल्प दशा है वह तो उसकी सहज धारारूप है। परन्तु उसके पहले है वह तो उसने भावभासनसे निर्णय किया है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९४

समाधान :- ... इसलिये पीछेसे कितने ही...

मुमुक्षु :- कितने दिन तक वह चलता रहता है।

समाधान :- फिर थकान लगती है। चार-छः दिन तक हड्डियाँ दुःखने लगती है। ऐसा हो जाता है।

गुरुदेवके संस्कार और गुरुदेवकी बात पूरी अलग है। वह तो अन्दरसे भक्ति आये बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु :- ऐसी अपूर्व बात दी। उनके लिये क्या करे और क्या न करे,..

समाधान :- हाँ, सच्ची बात है। वह बात सच्ची है। कहाँ पड़े थे, उसमेंसे कहाँ... कैसा अंतरका स्वरूप गुरुदेवने बताया! कहाँ क्रियामें धर्म मानते थे, उसमेंसे कहाँसे कहाँ (ले आये)। शुभभाव पुण्यबन्धका कारण, परन्तु अंतरमें तू चैतन्य अखण्ड तत्त्वको ग्रहण कर। कितनी गहरी बात बतायी है! गुणभेद, पर्यायभेद सबका ज्ञान कर, परन्तु अंतरमें दृष्टि तो अखण्ड पर (कर)। कितनी गहरी बात बतायी! दूसरे लोग तो कहाँ दृष्टिमें पड़े हैं। गुरुदेवने तो कोई अपूर्व आत्माकी स्वानुभूति अंतरमें हो, कैसा मार्ग बताया है।

मुमुक्षु :- दूसरी जगह एक अंश भी दिखे नहीं।

समाधान :- कहीं नहीं मिलता। कहीं नहीं है।

मुमुक्षु :- सोनगढ़में और आप विराजते हो तो हमें गुरुदेव जो कह गये हैं, वह लाभ आपसे सीधा प्राप्त होता है।

समाधान :- .. सब किया है। आत्माको कोई जानता नहीं था।

मुमुक्षु :- माताजी कहते हैं। स्वीकार करना वह अपनी लायकात चाहिये।

समाधान :- (इस पंचमकालमें) गुरुदेव पधारे वह महाभाग्यकी बात है।

... स्वभाव बताया। ... ज्ञायक है। वाणीसे जीवको अंतरमें ... ऐसा सम्बन्ध है कि देवकी, गुरुकी वाणी जीवको देशनालब्धिरूप परिणमती है तब उसे ज्ञायककी पर्याय प्रगट होती है। ज्ञायककी पर्याय प्रगट होती है, उसमें गुरुकी वाणी निमित्त बनती है। गुरुकी वाणी और जिनेन्द्र देवकी वाणी जगतमें शाश्वत (है)। जैसे आत्मा शाश्वत

है, वैसे जगतमें जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र सब शाश्वत हैं। ये वाणी टंकोत्कीर्ण अक्षरमें उत्कीर्ण हो, इसलिये उसका अधिक शाश्वतपना होता है।

आत्माको और वाणीको ऐसा सम्बन्ध है-निमित्त-उपादान। ज्ञायक ज्ञायक स्वभावरूप परिणमता है, परन्तु उसमें निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। अनादि कालसे जीव न समझे, परन्तु वह समझे तब उसे देशनालब्धि होती है। उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध है। निमित्त निमित्तरूप है, उपादान उपादानरूप है। फिर भी निमित्त और उपादानका सम्बन्ध हुए बिना नहीं रहता।

निमित्तमें प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र होने पर भी उसकी उपस्थिति तो होती ही है। निमित्त-उपादानका ऐसा सम्बन्ध है। स्वतंत्र (हैं), इसलिये उसकी उपस्थिति न हो ऐसा नहीं बनता। निमित्त-उपादानका सम्बन्ध ऐसा है। अनादि कालसे ऐसा वाणी और आत्माका सम्बन्ध है। सर्व प्रथम देशनालब्धि होती है तब उसे ऐसा सम्बन्ध हुए बिना रहता ही नहीं। निमित्त-उपादान।

ज्ञायकदेव अन्दरसे भेदज्ञान करके जब स्वयं अपने चैतन्यघरमें बसता है, तब वाणीका निमित्त बनता है। ज्ञायक ज्ञायकको ज्ञान द्वारा पहचाने, प्रज्ञाछैनी द्वारा। परन्तु उसमें वाणी-देव-गुरुकी वाणी और शास्त्र निमित्त साथमें होता है। ऐसा सम्बन्ध है। अनादि ऐसा वस्तुस्थितिका सम्बन्ध है। वाणीका निमित्त, उपादानके साथमें होता है। सर्व प्रथम ऐसा सम्बन्ध होता ही है। देशनालब्धिका। सर्व कारण इकट्ठे हों, उसमें देशनालब्धिका एक कारण बनता है।

... सब विकल्पको छोड़ता जाता हूँ। विकल्प उसकी भूमिका अनुसार सब छूटते जाते हैं, गृहस्थाश्रमके विकल्प। पाँचवी भूमिकामें अमुक प्रकारके विकल्प, चतुर्थ भूमिकामें आये तो अनन्तानुबन्धी जाय, इसलिये सम्यग्दर्शन हो, स्वानुभूति हो तो अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी जो-जो परिणाम थे वह छूट गये। फिर उसे चतुर्थ भूमिकामें तारतम्यता अनुसार उसकी भूमिका अनुसार, पाँचवी भूमिकामें अमुक जातके उसके विकल्प छूट गये। छठवें-सातवें गुणस्थानमें उसे एकदम... छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलता है। फिर भी उसे देव-गुरु-शास्त्रके विकल्प तो उसके साथ ही साथ रहते हैं। उसके गृहस्थाम सम्बन्धीके दूसरे विकल्प छूटते जाते हैं।

चौथे गुणस्थानमें हो तो भी अमुक प्रकारके (होते हैं)। विकल्पको छोडता जाता हूँ और मेरी स्वानुभूतिमें जाता हूँ। विकल्पका साथ मुझे नहीं चाहिये। वह छूटता जाता है। परन्तु देव-गुरु-शास्त्रके विकल्प तो वहाँ रहते हैं। चतुर्थ गुणस्थानमें रहते हैं, पाँचवेमें रहते हैं और छठवें-सातवें गुणस्थानमें भी वह विकल्प तो रहता है। उसके कार्योंमें फ़र्क़ पड़ता है। चौथे गुणस्थानमें देव-गुरु-शास्त्र और बाहर जो .. अमुक जातके होते

हैं, उसके कार्योंमें फ़र्क़ पड़ता है। परन्तु विकल्पमें फ़र्क़ नहीं पड़ता, विकल्प तो ऐसे ही साथमें रहते हैं।

मुनिके अमुक कार्य होते हैं। दर्शन और अमुक जातके शास्त्रकी रचनाक करते हैं। मन्दिर और ऐसा सब मुनिओंको होता है। दर्शन करे। गृहस्थाश्रमके कार्य अमुक प्रकारके होते हैं, प्रभावनाके। परन्तु देव-गुरु-शास्त्रके विकल्प तो मुनिराजको भी साथ-साथ होते हैं। अबुद्धिपूर्वकमें उसके अमुक विकल्प अबुद्धिपूर्वकके रह जाय तो शुक्लध्यानकी श्रेणी चढते हैं तो भी आखिर तक श्रुतका विकल्प उन्हें साथें ही होता है।

जब अंतरमें एकदम शाश्वत जम गये, स्वयं ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित हो गया, तब उसे श्रुतका रागमिश्रित विचार था अबुद्धिपूर्वकका वह छूट गया। वह विकल्प आखिर तक साथमें रहता है। बाकी सब विकल्प छूटते जाते हैं। उसकी भूमिका अनुसार सब छूटते जाता है। परन्तु यह विकल्प तो (होता है), इसलिये उसका साथ तो आखिर तक रहता है। आखिरमें शुक्लध्यानकी श्रेणि चढे तो श्रुतका विकल्प भी उसे अबुद्धिपूर्वकका होता है। फिर जब एकदम जम जाय, केवलज्ञान हो तब उसके विकल्प छूटते हैं। इसलिये वह तो आखिर तक होता ही है। नहीं चले उसमें वह आ ही जाते हैं। विकल्प, आपके बिना सब चलेगा, मैं आपको निकालना चाहता हूँ। ज्ञायक तो मेरे साथ ही है। ज्ञायककी स्वानुभूतिमें मैं विशेष बढता जाता हूँ। परन्तु बाहर आता हूँ वहाँ देव-गुरु-शास्त्रके विकल्प ऐसे ही होते हैं।

उसके कार्योंमें फ़र्क़ होता है, चौथे-पाँचवें गुणस्थानें। छठवें-सातवें गुणस्थानमें कार्य अमुक जातके होते हैं। परन्तु विकल्प तो उसके साथ ही होते हैं। उसकी भूमिका अनुसार। छठवें-सातवें गुणस्थानमें संज्वलनके विकल्प हो जाय तो भी यह विकल्प तो उसके साथ ही होते हैं।

आचार्य कैसे शास्त्र रचते हैं। जिनेन्द्र देवकी भक्तिके कैसे शास्त्र रचते हैं। अमुक जातके शुभभाव तो बाहर आते हैं तब आते ही हैं। श्रुतका चिंतवन करे तो शास्त्रोंकी रचना करते हैं। केवलज्ञान हो तब उसे अबुद्धिपूर्वकका विकल्प हो (वह छूट जाते हैं)। नहीं तो साथमें ही होते हैं। मुझे आपके बिना नहीं चलेगा, उसका अर्थ यह है कि वह तो उसका साथ लेकर जाता है। स्वतंत्र अपने पुरुषार्थसे होता है, परन्तु बाहर आये वहाँ यह होता है। बाहर आकर कहाँ खड़े रहते हैं? देव-गुरु-शास्त्रके परिणामोंमें खड़े रहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र और शुभके अमुक जातके उनके व्रतके विकल्पमें खड़े रहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र और उसके आचरणके व्रतके विकल्पमें खड़े हैं। दूसरे विकल्प छूटते जाते हैं। दूसरे सब विकल्प छूटते जाते हैं। सब क्रमशः घटते जाते हैं। संज्वलनका रह जाता है।

अन्दर तो दृष्टि स्थिर हुयी है। शुद्धात्माकी साधना करनेवाले, शुद्धात्मा जिसने प्रगट किया,.. मूर्तिमंत दिखता है उस पर उसकी दृष्टि जाती है। भगवान दिखे, भगवानकी प्रतिमा दिखे, गुरु, गुरुकी वाणी मूर्तमान रूपमें दिखता है और अन्दर स्वानुभूतिमें और ज्ञायकमें उतनी स्थिरता नहीं होती है तो बाहर शुभ विकल्पमें वहाँ जाता है। शास्त्र आदिमें। .. दर्शनमें दिखता है। दृष्टि स्थिर हो गयी है, उपयोगमें भी (अंतर्मुख हो गया है)।

.. ज्ञायककी भेदज्ञानकी धारा खड़ी है। उपयोग वहाँ बाहर जाता है। ... शुद्धात्माको खोजता है। अंतरमें तो शुद्धात्मा उसके पास है। परन्तु उसे प्रेम है इसलिये वह बाहर भी वही खोजता है। .. उसे हेय मानता है। परन्तु शुद्धात्माका जो प्रेम अन्दर परिणति वहाँ लगी है न, इसलिये बाहर जाता है तो उसे खोजता है। बीचमें शुभ आ जाता है। वह तो आये बिना रहता ही नहीं। इसलिये वह तो बीचमें आ जाता है। उसे शुभरागको रखनेकी इच्छा नहीं है। परन्तु उसके साथ आ जाता है। बाहर आये तब, उसे शुद्धात्माका प्रेम है इसलिये शुद्धात्मा खोजता रहता है। इच्छा नहीं है, लेकिन वह बीचमें आता है।

मुमुक्षु :- महा मंगलकारी जन्म जयंति है। शासनके सब भक्त सम्यक्त्वकी महिमा .. कर रहे हैं, ऐसे प्रसंगमें सम्यक्त्वका ... कृपा कीजिये। और वह कैसे प्राप्त हो, वह समझानेकी कृपा कीजिये।

समाधान :- वह तो गुरुदेवने बहुत प्रकारसे बताया है। गुरुदेवका परम उपकार है। गुरुदेवने यह मार्ग बताया। सब लोग कहाँ पड़े थे। गुरुदेवका परम उपकार है।

सम्यक्त्व अर्थात् क्या? कोई जानता नहीं था। बाहरमें कुछ श्रद्धा की इसलिये सम्यग्दर्शन (है), ऐसा मानते थे। उसमें गुरुदेवने स्वानुभूतिका मार्ग (प्रगट किया)। स्वानुभूति हो वही सम्यग्दर्शन है। गुरुदेवने यह मार्ग बताया है। और वह सम्यग्दर्शन अंतर चैतन्यमें भेदज्ञान करके मैं ज्ञायक हूँ, उसके अलावा बाकी सब है वह मैं नहीं हूँ, अपितु मैं एक ज्ञायक हूँ। ऐसी उसकी प्रतीत और श्रद्धा यथार्थ करे, उसके विकल्प टूटकर अनन्दर लीन हो तो स्वानुभूति हो, वही सम्यग्दर्शन है। बाकी सम्यग्दर्शन बाहरमें नौ तत्त्वकी श्रद्धा यानी सम्यग्दर्शन, शास्त्र जान लिये वह ज्ञान, ऐसा मानते थे। ऐसेमें गुरुदेवका परम-परम उपकार है। कोई जानता नहीं था। उस मार्ग पर चढाया हो, उसकी दृष्टि दी हो, और स्वरूप एकदम स्पष्ट करके बताया हो तो गुरुदेवने।

सम्यग्दर्शनकी लगन लगे, कहीं उसे चैन पड़े नहीं। एक ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक आत्माके अलावा कहीं सुख नहीं है। कोई विभावमें, कहीं बाहरमें सुख नहीं है। सुख हो तो आत्मामें ही है। शास्त्रमें आता है कि उतना ही परमार्थस्वरूप आत्मा है कि

जितना यह ज्ञान है। उस ज्ञानमात्र आत्माका निश्चय कर कि ज्ञानमात्र आत्मामें सबकुछ है। उसीमें रुचि कर। बाहरमें कहीं नहीं है। सब आकुलतास्वरूप-दुःखस्वरूप है। ज्ञानमात्र आत्मामें सब कैसे आ जाता है, उसीकी रुचि कर, उसकी श्रद्धा कर। उसीमें संतुष्ट हो, उसीमें तृप्त हो, तो उसमेंसे तुझे मार्ग प्रगट होगा।

अंतरमें जो स्वानुभूति होती है उसका पहले वेदन नहीं होता है, पहले उसका निश्चय होता है। इसलिये यह जो ज्ञानमात्र आत्मा है, उसका निश्चय कर। उतना ही सत्य कल्याण है कि जितना यह ज्ञान है। उतना ही परमार्थस्वरूप आत्मा है कि जितना यह ज्ञान है। वह ज्ञान अर्थात् पूरा ज्ञायक समझ लेना। किसीको ऐसा हो कि ज्ञानमें क्या रुचि, क्या प्रीति, क्या संतोष करना? ज्ञानमें सब आ गया? ज्ञान अर्थात् ज्ञायक है। ज्ञायकमें अनन्त गुण हैं। ज्ञायक पर दृष्टि कर, उसमें संतोष कर, उसमें तृप्त हो, तो उसमेंसे वचनसे अगोचर ऐसा कोई सुख तुझे प्राप्त होगा। उसमें अनन्त गुण भरे हैं।

तू स्व-परका विभाग कर कि ये जो विभावका भाग है, वह ज्ञान-ओरका नहीं है। जो शुभाशुभ दोनों भाग हैं, वह सब भाग विभाव-ओरके हैं। शुभ बीचमें आये बिना नहीं रहता। शुभ बीचमें आये, लेकिन वह सब भाग पर-ओरका है। निज स्वभावका भाग नहीं है। इसलिये तू स्वभावको पहचान ले कि ये जितना भाग ज्ञान-ओरका है, जो ज्ञायक है वह भाग चैतन्यका है और ये जो विभाव है, वह सब पर-ओरका है। उसका विभाग कर। ज्ञायक स्वरूप आत्मा जो अखण्ड शाश्वत अनादिअनन्त आत्मा है। शाश्वत आत्माकी दृष्टि कर, उसका ज्ञान कर, उसमें लीनता (कर)। उसका विभाग करके चैतन्यकी ओर परिणतिको झुका। तो उसमें जो है वह प्रगट होगा।

उसमें ज्ञान भरा है, उसमें आनन्द भरा है, उसमें अनन्त गुण भरे हैं। वह ज्ञान है वह खाली नहीं है, परन्तु लबालब भरा है। वह ज्ञान शून्य है, परन्तु लबालब है। इसलिये तू ज्ञानमात्र आत्माका ही विश्वास कर, उसीका निश्चय कर कि उसमें ही सब है, उसीमें संतुष्ट हो, उसीमें तृप्त हो। और ऐसा निश्चय करके यदि तू अंतरमें जायगा तो तुझे उसीमें तृप्ति होगी, उसमें ही संतोष होगा। तुझे बाहर जानेका मन नहीं होगा। उसी क्षण विकल्प टूटकर तत्क्षण तेरे आत्माका अनुभव तुजे होगा। इसलिये तू उसका निश्चय कर। सदाके लिये उसीकी प्रीति कर और उसीका संतोष कर और उसीमें रुचि कर। बाहरकी सब रुचि छोड़ दे। सब विभाव-ओरकी रुचि छोड़कर अंतर स्वभावकी रुचि कर।

वह ज्ञानमात्र जो दिखता है, वह सूखा नहीं है, लबालब भरा है। इसलिये ज्ञानमात्र आत्मा-ज्ञायकमात्र आत्माका निश्चय कर। निर्विकल्प स्वरूप आत्मा है। ज्ञायककी उग्र

धारा कर, ज्ञाताधारा-मैं चैतन्य हूँ, मैं चैतन्य हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ। मैं एक अनुपम तत्त्व हूँ। उस ओर बार-बार परिणतिको झुकाता रह, वह तत्कल न हो तो उसकी भावना कर, उसकी लगन लगा और उसके स्वभावको पहचाननेका प्रयत्न कर। स्वभाव अलग है और यह विभाव भिन्न है।

जैसे स्फटिक रत्न स्वभावसे निर्मल है, ऐसे आत्मा निर्मल स्वभाव है। ये सब विभाव दिखता है वह सब पर-निमित्तसे है, अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। परन्तु वह निज स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न हो। तू अंतरमें जायगा तो अंतरमें अनन्त गुण भरे हैं, वह सब तुझे (प्रगट होंगे)। स्वभावमेंसे ही स्वभाव आयेगा, विभावमेंसे स्वभाव नहीं आयेगा। इसलिये स्वभाव-ओर दृष्टि कर, उसीमेंसे सब प्रगट होगा। उसीमें संतुष्ट हो, उसीमें तृप्त हो, उसीमें-से सब प्रगट होगा। तुझे अंतरमें-से ऐसा प्रगट होगा कि तुझे स्वयंको ही ऐसा लगेगा कि यही मेरा स्वभाव है और यही मेरा आनन्द है, अन्य कुछ नहीं है। निर्विकल्प तत्त्वस्वरूप मैं स्वयं ही आत्मा हूँ। उसीमें-से तुझे स्वयंको ऐसी प्रतीति-विश्वास, अनुपम सुख दृष्टिगोचर होगा। और उसमें-से तुझे साधना बढ़ते-बढ़ते उसमें ही तुझे केवलज्ञान प्रगट होगा।

सुखका यह एक ही उपाय है। उसके लिये अनेक प्रकारसे उसका द्रव्य क्या, उसके गुण क्या, उसकी पर्यायें क्या? उसका विचारके निश्चय करे। पहले यथार्थ निश्चय कर और बादमें उसका प्रयत्न (कर)। ऐसा मार्ग है और वह मार्ग गुरुदेवने प्रगटरूपसे बताया है और वही करना है।

जीवनमें उसकी लगन, उसका पुरुषार्थ, उसके लिये एक आत्मा, ज्ञायकस्वभाव आत्मा मुझे चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। एक ही चाहिये। उसके ध्येयसे उसे सब करना होता है। बाहरमें श्रुतका चिंतवन, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। मुझे एक आत्मा-ज्ञायक आत्मा चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। उसीमें सब है। ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही सब है। वही सर्वस्व है।

मुमुक्षु :- ९५वीं मंगलकारी जन्म जयंति मनानेके लिये, आपकी आज्ञा और आशीर्वाद लेने आये हैं। आप हम बालकोंको आप आशीर्वाद देकर ... आभारी करें। हम तो आत्म-प्राप्ति करें ऐसे आशिष हमें अधिक-अधिक उपकारी है।

समाधान :- गुरुदेवके लिये तो जितना करें उतना कम है। गुरुदेवका तो महान उपकार है। गुरुदेवने तो .. ये जन्म-मरण मिटकर.. आत्माका स्वरूप अपूर्व बताया। गुरुदेवके लिये जितना करें उतना कम है।

गुरुदेव तो नित्य सोनगढ़में ही (विराजते थे)। सोनगढ़का कण-कण पावन किया है। महापुरुष जहाँ विचरे, जहाँ रहते हों वह भूमि भी तीर्थस्वरूप है। शास्त्रमें आता

है, जो तीर्थ, जिनेन्द्र देव विचरे हों, मुनिराज विचरे हों, जहाँ रहते हों वह सब भूमि पावन तीर्थ कहलाती है। वैसे गुरुदेव यहाँ कितने ही वर्ष नित्य बसे। और वाणी बरसायी। मुनिराज तो जंगलमें होते हैं। गुरुदेवने तो मुमुक्षु भक्तोंके बीच रहकर वाणी बरसायी। तीन वक्त उनकी वाणी बरसती रही। जैसे साक्षात् तीर्थंकर भगवान समवसरणमें वाणी बरसाये। उसी तरह नियमरूपसे गुरुदेवकी वाणी इस सोनगढ़में बरसती थी। नियमरूपसे बरसती थी।

गुरुदेव कोई अपूर्व... तीर्थंकरका द्रव्य अपूर्व! यहाँ मानों सबको तारनेके लिये आये हों, वैसे यहाँ भरतक्षेत्रमें पधारे। उनके लिये जितना करें उतना कम है। यहाँ नित्य विराजे। ये तीर्थस्वरूप भूमि है। इसलिये जितना गुरुदेवका करें उतना कम है। उनका उपकार कोई अनुपम है।

मुमुक्षु :- उनकी जन्म जयंति ही सबसे अधिक यहाँ शोभा देती है।

समाधान :- गुरुदेवकी भूमि यह तीर्थस्वरूप भूमि है। गुरुदेव जहाँ विराजे वह सर्वोत्कृष्ट है। वह क्षेत्र मंगल, वह काल मंगल, वह भाव मंगल। गुरुदेव कहते थे, सम्मेदशिखरकी यात्रा करते समय, तीर्थंकर भगवानका द्रव्य और जहाँ विचरे वह क्षेत्र मंगल, जिस कालमें उन्हें और निर्वाण-प्राप्ति हुयी वह काल मंगल, जो भाव प्रगट किये वह भाव मंगल हैं। वैसे यहाँ भी गुरुदेव विराजे, उन्होंने साधना की, वह मंगलस्वरूप ही है।

मुमुक्षु :- पूरा सोनगढ़ मंगलस्वरूप हो गया।

समाधान :- गुरुदेवके प्रतापसे सब मंगलस्वरूप (है)। गुरुदेव स्वयं ही मंगलमूर्ति थे। यहाँ विराजकर पूरे हिन्दुस्तानमें उन्होंने विहार करके सब जीवोंको यह मार्ग बताया और हजारों जीवोंको यह दृष्टि बतायी है। अंतर दृष्टिका मार्ग बताया है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९५

समाधान :- ... दो तत्त्व भिन्न हैं। चैतन्यतत्त्व भिन्न है और यह जड़ तत्त्व भिन्न है। दो द्रव्य ही भिन्न हैं। द्रव्यको भिन्न-भिन्न जाने, उसका भेदज्ञान करे तो अतरमें उसे जो एकत्वबुद्धि है, उस कारणसे उसे जो आकुलता होती है, वह आकुलता छूट जाय। आकुलतास्वरूप आत्मा है ही नहीं। आकुलता भिन्न और आत्मा भिन्न है। आत्मा तो शान्तिस्वरूप है। ऐसे उसका भेदज्ञान कर।

मैं भिन्न चैतन्य ज्ञायक हूँ। शान्ति मेरेमें है, बाहर कहीं नहीं है। शान्ति, आनन्द, ज्ञान आदि अनन्त गुणोंसे भरपूर आत्मा है, उसका भेदज्ञान कर। ज्ञायककी धून लगाकर ज्ञाताधाराकी उग्रता कर। उसीमें लीनता, उसीमें प्रयत्न। अनन्त कालसे जो यह एकत्वबुद्धि है इसलिये यह बन्ध और जन्म-मरण है। एकत्वबुद्धि टूटकर, अंतरमें भेदज्ञान करके चैतन्यको भिन्न जानना, वही जीवनका कर्तव्य है। और वही एक ध्येय रखने जैसा है। ज्ञायक आत्मा कैसे पहचानमें आये, वही करने जैसा है।

उस ज्ञातामें सब भरा है। ज्ञायक सहज स्वभाव है। वह स्वभाव उसे कहीं बाहर लेने नहीं जाना पड़ता। बाहरसे लेने जाता है वह अपनेमें कुछ नहीं आता। वह तो परवस्तु है। परवस्तुमें-से कुछ नहीं आता। परमें शान्ति नहीं है, परमें आनन्द नहीं है, परमें ज्ञान नहीं है। जो है, वह निज स्वरूपमें है। उस स्वरूपमें-से प्रगट हो ऐसा है। परकी कर्ताबुद्धि-मानों मैं परको कर सकता हूँ, पर मेरा कर सकता है, मैं उसमें फेरफार कर सकता हूँ, वह सब भ्रमणाबुद्धि है। परका तो जैसा होना होता है वैसे होता है। जो वेदना आनी है वह आती है। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

स्वयं निज स्वभावका कर सकता है। स्वयं ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुणोंसे भरपूर आत्मा है, उसे प्रगट कर सकता है। उसे प्रगट करनेमें देव-गुरु-शास्त्र निमित्त होते हैं। परन्तु वह जागृत, स्वयं उपादान तैयार हो तो हो। अनन्त कालसे जीव आत्माको पहचानता नहीं है। ऐसेमें कोई गुरु अथवा देव मिले, उनकी देशना मिले उसे स्वयं ग्रहण करे और अंतरमें-से स्वयं पुरुषार्थ करे तो वह प्रगट हो सके ऐसा है।

जीवनमें एक ज्ञायक आत्मा वही ग्रहण करने जैसा है। गुरुदेव तो वहाँ तक कहते थे कि अनेक जातके जो गुणभेद पड़ते हैं, पाँच ज्ञानके भेद पड़े, पाँच भावोंके भेद

पड़े, एक पारिणामिकभावस्वरूप मैं हूँ, एक ज्ञानस्वरूप मैं हूँ। भेद पर दृष्टि मत कर। उन सब भेदोंको गौण कर। ज्ञानमें तू सब जान। परन्तु एक अखण्ड चैतन्य पर दृष्टि कर, उसका ज्ञान कर और उसमें लीनता कर। चैतन्यमें शान्ति, आनन्द सब भरा है। और वही प्रगट करने जैसा है। वह कैसे प्रगट हो? तदर्थ उसका विचार, वांचन, उसकी लगन, उसका अनेक जातका श्रुतका चिंतवन आदि करके अन्दर यथार्थ निश्चय करके कि मैं भिन्न ही हूँ और ये सब परपदार्थ हैं। विभावभाव होते हैं वह भी निज स्वभाव नहीं है। पर्याय भी प्रतिक्षण बदलती है। शाश्वत स्वरूप आत्मा अखण्ड द्रव्य है उस पर दृष्टि करने जैसी है। पर्याय, गुण ज्ञानमें जाने। परन्तु दृष्टि तो एक आत्मा पर करने जैसी है और वही जीवनका (कर्तव्य), वही ध्येय होना चाहिये। वही मुक्तिका मार्ग। गुरुदेवने परम उपकार किया है। और वही सारभूत आत्मा है, उसे ग्रहण करने जैसा है।

मुमुक्षु :- माताजी! आपकी मुद्र देखते हैं, आपकी वाणी सुनते हैं तब तो ऐसा लगता है, मानों आत्मा हमें प्राप्त हो जाता हो, ऐसा..

समाधान :- पुरुषार्थ स्वयंको करना है। उसकी रुचि हो, उसकी महिमा हो परन्तु पुरुषार्थ तो उसको स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- क्षेत्रसे इतने दूर आये हैं, फिर भी सभी मुमुक्षुओंको इसकी मुख्यता तो हमें देखने मिलती है।

समाधान :- गुरुदेवने जो यह मार्ग बताया है, वही करना है।

मुमुक्षु :- यह बात ही कहाँ थी।

समाधान :- यह बात ही कहाँ थी।

मुमुक्षु :- जिस संप्रदायमें हो, वहाँ धर्म माने, इसमें धर्म माने, उसमें धर्म माने।

समाधान :- बाहरसे धर्म माना था।

मुमुक्षु :- एक बार आप कहते थे, हमें तो जो भी मिला है, सोनगढ़से गुरुदेवसे ही प्राप्त हुआ है, कहीं औरसे हमें नहीं मिला है।

समाधान :- गुरुदेवने ही सबको दिया है। और गुरुदेवने यहाँ साधना की तो यह क्षेत्र... शास्त्रमें आता है न? क्षेत्र भी मंगल है।

मुमुक्षु :- यह भूमि भी मंगल है।

समाधान :- हाँ, मंगल है। तीर्थ है। वह भूमि तीर्थ कहलाती है। गुरुदेव तो सर्वोत्कृष्ट थे। करना तो वही है, गुरुदेवने कहा वह। ये शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, सब गुरुदेवने बताया है। दो द्रव्य भिन्न हैं। विभावस्वभावसे भी भिन्न पड़नेका गुरुदेवने कहा है।

ज्ञायक आत्मा अंतर ज्ञान और आनन्दसे भरा है, उसे पहचानो, उसमें दृष्टि करो, उसमें लीनता करो। जो कहा है वह करनेका है। वह न हो तबतक उसका विचार, वांचन, मनन, उसकी लगन सब वही करनेका है। बाहर शुभभाव आये तो देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि। अंतरमें ध्येय एक आत्माका कि आत्मा कैसे पहचानमें आये? आत्माका भेदज्ञान कैसे हो? वह करनेका है। आत्मा अंतरमें निर्विकल्प तत्त्व है, उसे कैसे पहचाना जाय? स्वानुभूति कैसे प्रगट हो? बहुत लोग आफ्रिकामें बहुत हैं न?

मुमुक्षु :- हाँ, हमारे ज्यादा ... आफ्रिकामें हैं। पहले हमारे पासे स्वाध्याय होल नहीं था, कुछ नहीं था। मकानमें बैठकर स्वाध्याय करते थे, बस। फिर यह सब हो गया। गुरुदेवने सभी पर करुणा बरसाकर लाभ दे रहे हैं। इस उम्रमें, ९० सालकी उम्रमें।

समाधान :- सब पर करुणा बरसायी।

मुमुक्षु :- एक महिना नाईरोबीमें जयकार, चारों ओर बस्तीमें उल्लास, उल्लास, उल्लास।

समाधान :- कहाँ आफ्रिका, वहाँ गुरुदेव पधारे वह तो बहुत लाभका कारण हुआ।

मुमुक्षु :- ... बात करते थे। सहज-सहज सत्यमें आ गये, बहुत अभिनंदन। जेठाभाई कहे तो ही हो, न कहे तो ...

समाधान :- हाँ। उनका..

मुमुक्षु :- जेठाभाई हैं और उनकी हाँ है तो ही...

समाधान :- .. आत्माके लिये है।

मुमुक्षु :- एक-एक जगह, एक-एक घरमें...

मुमुक्षु :- यह क्षेत्र-भूमि है न, अपने लिये तो .. भूमि है। गुरुदेवने सबको बताया है।

समाधान :- .. सम्बन्ध होता है न। महापुरुषोंकी भूमि भी (ऐसी होती है कि) अन्दर आत्माके विचारोंकी स्फुरणा हो।

मुमुक्षु :- हम लोग जिस देशमें रहते हैं, उन लोगोंके विचार, गुजरातीओंके विचार भी हमारे जैसे सादा, सीधा, सरल। बहुत सरल विचार सबके। एक ही मतसे, एक ही विचारसे जो करना है करो। आफ्रिकामें कहाँ यह बात मिले? कहाँ मन्दिर बनाये? स्वाध्याय मन्दिर बनाये, .. बनाये। लेकिन समय समयका कार्य करता है।

मुमुक्षु :- मध्यस्थता, सरलता और जितेन्द्रियपना तत्त्व प्राप्त करनेका उत्तम पात्र है।

मुमुक्षु :- ... सत् साहित्य मिले, सत्य वाणी मिले, तत्त्वज्ञानकी बात मिले। परन्तु कुटुम्ब-परिवारका मोह है न।

समाधान :- जैसी अपनी तैयारी हो वैसे हो। जिज्ञासा तैयार करते रहना।

मुमुक्षु :- ... रहा करे कि हर साल वहाँ लाभ लेनेको जाना। लेकिन बहुत

बार शरीर-प्रकृतिके कारण (आना नहीं होता)।

मुमुक्षु :- त्रिकालीका अनुभव नहीं होता। पर्यायका अनुभव होता है। इन लोगोंका जूठा लगता है।

समाधान :- द्रव्य अपेक्षासे त्रिकाल मुख्य है, वस्तु अपेक्षासे। वेदनकी अपेक्षासे वह मुख्य है। दृष्टि तो शाश्वत पर ही मुख्य है। दृष्टि तो शाश्वत पर, दृष्टि तो एक चैतन्य पर रखनेसे ही शुद्धपर्याय प्रगट होती है। दृष्टि तो पहलेसे आखिर तक उसकी दृष्टि तो शुद्धात्मा द्रव्य पर (होती है)। जो शाश्वत द्रव्य है, जो पलटता नहीं, जिसमें फेरफार होता नहीं, ऐसे द्रव्य पर ही दृष्टि, उसकी मुख्यता है।

फिर पर्यायको मुख्य अपेक्षासे (कहते हैं)। उसे वेदनमें, अनुभवके समय वेदनमें स्वानुभूति मुख्य होती है, तो भी उसकी द्रव्य पर दृष्टि है वह तो साथ ही रहती है। तो पर्यायके वेदनकी अपेक्षासे उसे मुख्य कहनेमें आया है। इसलिये उसमें दृष्टिको निकाल नहीं देनी है, परन्तु उस वक्त उसे पर्याय वेदनमें मुख्य है, इसलिये वेदनकी अपेक्षासे उसे मुख्य कहनेमें आया है।

वेदनमें पर्याय आती है इसलिये। वेदनमें द्रव्य नहीं आता है। तो भी दृष्टि तो द्रव्य पर ही रहती है। दृष्टि छूट जाय तो मुक्तिका मार्ग ही छूट जाय। तो मोक्षका मार्ग जो प्रगट हुआ है, वही छूट जाय। दृष्टि तो द्रव्य पर हमेंशा रहनी चाहिये। वेदनकी अपेक्षासे पर्यायको उस वक्त मुख्य कहनेमें आया है। वेदन अपेक्षासे। अनुभूति-वेदन, पर्यायकी अनुभूति होती है इसलिये।

द्रव्यका स्वरूप कैसा है, आत्माके गुण कैसे हैं, उसकी स्वानुभूति कैसी है, वह सब वेदनमें आता है। उस अपेक्षासे वेदनको मुख्य कहा है। इसलिये उसमें द्रव्यका लक्ष्य छोड़ना, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- वह रखकर है, दृष्टि और लक्ष्यको रखकर है।

समाधान :- वह रखकर है।

मुमुक्षु :- मर्यादित बात है।

समाधान :- मर्यादित बात है। दृष्टि अपेक्षासे दृष्टि मुख्य है और ज्ञान उसे जानता है इसलिये ज्ञानकी अपेक्षासे ज्ञान मुख्य है, उस वक्त।

मुमुक्षु :- वेदन मुख्य कहकर (पुरुषार्थको) उत्थान करनेका कोई प्रकार है?

समाधान :- उत्थान करनेका नहीं है। उसे वेदनमें पर्याय ही आती है। वेदनमें उसे द्रव्यका वेदन नहीं होता। परन्तु पर्यायका वेदन होता है। उन पर्यायोंका वेदन होता है, उसका ज्ञान करवानेको और वेदनका ज्ञान करनेके लिये है। उत्थान तो द्रव्यदृष्टिसे ही उत्थान होता है।

मुमुक्षु :- मुख्य करना, वह किसके साथ मिलान करके मुख्य करना? जो वेदनको मुख्य कहा, वैसे दृष्टि तो मुख्य है तो उसमें तो पर्यायके साथ मिलान करके कहें कि दृष्टि द्रव्य पर मुख्य है। तो अब, जो वेदनको मुख्य कहा, तो वह किसके साथ मिलान करके कहा?

समाधान :- उसे मुख्य कहा (क्योंकि), द्रव्य जो है वह वेदनमें नहीं आता है। इसलिये वेदनकी अपेक्षासे उसे मुख्य कहा। द्रव्य वेदनमें नहीं आता है, इसलिये वेदनकी अपेक्षासे मुख्य है।

मुमुक्षु :- क्योंकि द्रव्य वेदनमें आता नहीं।

समाधान :- द्रव्य वेदनमें नहीं आता है, इसलिये वेदनकी अपेक्षासे (उसे मुख्य कहा)। बाकी दृष्टि तो हर जगह साथ ही रहती है। द्रव्य वेदनमें नहीं आता है, इसलिये वेदनकी अपेक्षासे वह मुख्य है। आत्मा कब ज्ञात हुआ? आत्मा कब कहा जाय? कि वेदनमें आया तब। वेदनमें आया तब वास्तविक आत्मा। ऐसा कहनेमें आता है। केवलज्ञानरूप परिणमा तब। वास्तविक आत्मा कब कहलाया? कि जैसा है वैसा प्रगट हुआ तब। इसलिये वेदनकी अपेक्षासे उसे मुख्य कहनेमें आया। उस अपेक्षासे दृष्टिको गौण की। परन्तु दृष्टि तो साथमें मुख्य रहती है। वेदनकी अपेक्षासे दृष्टिको गौण की। दृष्टमें तो आया जैसा था वैसा। परन्तु वह जैसा है वैसा कार्यरूप परिणमित नहीं हुआ है तो आत्मा जैसा है वैसा कार्य नहीं किया है। तो वह किस कामका? इसलिये जैसा है वैसा जब प्रगट हुआ, तब वह वास्तविक आत्मा है।

वेदनमें आया वही वास्तविक आत्मा। वहाँ आंशिक अनुभव हुआ, वहाँ ऋजुसूत्रनय कहते हैं, वहाँ पूर्ण हुआ तो एवंभूतनयकी अपेक्षासे कहते हैं। बाकी साधनामें ... दृष्टि द्रव्य पर है तो भी कैसे स्वरूप रमणता प्राप्त करुँ, वीतरागता प्राप्त करुँ, आत्माकी स्वानुभूतिकी विशेषता प्राप्त करुँ, ऐसी सब भावना उसे होती है। साधकदशामें आती है। परन्तु उसके साथ दृष्टि होनी चाहिये। दृष्टि बिना सिर्फ भावना करे तो भावनाका ज़ोर, दृष्टि बिना उसका ज़ोर आगे नहीं चलता। दृष्टि साथमें हो तो ही भावनाका बल (रहता है)। दृष्टिके साथ भावना। ऐसी पर्याय प्रगट होनेकी भावना हो। कैसे चारित्रदशा प्राप्त हो, कैसे केवलज्ञान प्राप्त हो, स्वानुभूतिकी विशेषता कैसे हो, ऐसी सब भावना, पर्याय प्रगट करनेकी भावना होती है। परन्तु दृष्टिको साथमें रखकर आती है।

मुमुक्षु :- दृष्टि बिनाकी भावना तो रूखी भावना हो गयी।

समाधान :- हाँ, वह भावना ज़ोर नहीं कर सकती। ज़ोर नही कर सकती। अंतिम बोलमें लिया न? वास्तविक आत्मा कब? कि पर्याय प्रगट हुयी वह आत्मा। अंतिम बोलमें वह है न। अलिंगग्रहणमें वह आता है।

मुमुक्षु :- द्रव्यसे नहीं आलिंगित ऐसी शुद्ध पर्याय वह आत्मा है।

समाधान :- हाँ, ऐसी शुद्ध पर्याय वह आत्मा है, ऐसा कहा है। क्योंकि जैसा है वैसा, गुण-पर्याय जैसे हैं वैसे अनुभवमें आये, इसलिये वह वास्तविक आत्मा है। दृष्टि तो उसने लब्धरूपमें स्थापी है, परन्तु प्रगट उपयोगात्मकरूप नहीं है। इसलिये जो उपयोगात्मकरूप परिणमा वह आत्मा है।

मुमुक्षु :- .. उसकी विशेषता..

समाधान :- हाँ, उसकी विशेषता उस प्रकारसे। विशेषता तो है। दृष्टि तो हुयी, परन्तु दृष्टिको कार्य प्राप्त करनेके साथ भावना रहती है। दृष्टिसे करे, दृष्टिमें साथमें साधनाका बल आये वही सच्ची दृष्टि है। साधनाका बल साथमें न आये तो सच्ची दृष्टि ही नहीं है।

दृष्टिका हेतु क्या है? कि वह शुद्धात्मा प्राप्त कैसे हो? वह हेतु है। आत्माको पहचाननेका हेतु क्या? ये विभावपर्याय छूटकर शुद्धात्माकी पर्यायें प्राप्त हों, ऐसा उसका हेतु है। द्रव्य पर दृष्टि करनेका।

मुमुक्षु :- प्रयोजनकी मुख्यता है।

समाधान :- हाँ, प्रयोजनकी मुख्यता वही है कि द्रव्य पर दृष्टि स्थापकर उसका कार्य वह आना चाहिये कि स्वानुभूति प्राप्त हो। उसका कार्य वह आना चाहिये। दृष्टि दृष्टिरूपसे उसका कुछ कार्य न आये, तो वह दृष्टि ही नहीं है। उसे दृष्टिके साथ कार्य आना चाहिये। उसे निश्चय हुआ उसके साथ आंशिक व्यवहार तो उसे प्राप्त होना चाहिये, पर्यायको, शुद्धात्माकी पर्याय प्राप्त होनी चाहिये। फिर उसके पुरुषार्थ अनुसार (होता है)। कोई बार वह व्यवहार पर्यायको मुख्य करके (कहते हैं)। जो प्रगट हुआ वह आत्मा। दृष्टिको गौण करते हैं उस वक्त। उसका विषय मुख्य है। कार्य अपेक्षासे इसे मुख्य कहे। जैसा दृष्टिमें, जो उसका ध्येय था वह कार्य आया, इसलिये उस कार्यको मुख्य कहा।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर।

समाधान :- मुनिदशाकी प्राप्ति हो, चारित्रदशा, ज्ञान-दर्शन-चारित्रकी एकता हो, वह प्रगट हुआ। तब भी दृष्टि तो है, परन्तु वह पूजनिक... प्रगटतामें पूजनिकतामें तब आये कि जब उसे प्रगट चारित्रका परिणमन होता है तब।

मुमुक्षु :- आचरण..

समाधान :- आचरण प्रधानता। आचरणमें आवे तो उसे कार्य आया। दृष्टि तो है, परन्तु कार्य आया। (दंसण मूलो) धम्मो। सम्यग्दर्शन मूल है। वहाँ चारित्र खलू धम्मो आया। चारित्र वह धर्म है। आचरणकी अपेक्षासे। दृष्टिका कार्य आये।

मुमुक्षु :- चारित्र है वह दृष्टिका कार्य है?

समाधान :- हाँ, दृष्टिका कार्य वह आना चाहिये।

मुमुक्षु :- गज़ब बातें हैं ये सब।

समाधान :- हाँ। ऐसा है। .. काल लगे, परन्तु दृष्टिका कार्य वह आना चाहिये। तो ही यथार्थ दृष्टि है। तो ही उसका सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति (यथार्थ है)। उसका कार्य आना ही चाहिये। राजा राजाके कार्यरूप परिणमे तो राजा, ऐसे। वैसे आत्मा आत्माके कार्यरूप परिणमे वह आत्मा।

मुमुक्षु :- एक ओर ऐसा कहे कि, परद्रव्यमें, परभावं, हेयं इति। और दूसरी ओर ऐसा कहे इसलिये...

समाधान :- वह सब सन्धि है।

मुमुक्षु :- पर्यायको उतनी गौण करवायी! क्षायिकभाव आदि चारों भाव परभाव, हेय?

समाधान :- दृष्टिमें सब निकाल दिये। क्षायिकभाव भी। केवलज्ञान भी एक पर्यायका भेद है। एक द्रव्य पर दृष्टि करनी। उदयभाव, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। एक पारिणामिकभाव पर दृष्टि कर। दृष्टिमें उतना ज़ोर है कि कोई अपेक्षा.. जिसमें अपूर्ण-पूर्ण पर्यायकी भी अपेक्षा नहीं है। ऐसा अनादिअनन्त द्रव्य जो शाश्वत कृतकृत्य द्रव्य है, दृष्टि वैसी है।

(फिर भी, पर्यायमें) जो शुद्धता, अशुद्धता है उसका ख्याल है। शुद्धता प्राप्त करनी है। पर्यायमें ज्ञानमें सब ख्याल है। दृष्टि, ऐसा अखण्ड, मैं पूर्ण द्रव्य हूँ, ऐसी दृष्टि है। केवलज्ञानकी पर्याय पर भी दृष्टि नहीं है। क्योंकि वह बादमें प्रगट होती है। यह अनादिअनन्त द्रव्य जो शक्तिरूप है, वही मैं (हूँ)। दृष्टि ऐसी जोरदार है। कोई पर्यायमें अटकता नहीं, परन्तु वेदनमें सब आता है कि ये पर्याय मुझे प्रगट हुयी, या वह हुयी, उसमें दृष्टि कहीं नहीं अटकती। सब जो अपूर्ण पर्याय निकल जाय, शुद्ध पर्याय प्रगट हो उसमें पूर्ण शुद्ध पर्याय प्रगट हो, उन सबका वेदन होता है। उस वेदनरूप परिणमा वह वास्तविक आत्मा है। अपना मूल स्वरूप था, वह उसने प्रगट किया।

... एक द्रव्य पर दृष्टि करके, फिर वह दृष्टि करके करना क्या? साधना करनेके लिये वह दृष्टि है। द्रव्य पर दृष्टि करके, फिर मैं शुद्धात्मा अनादिअनन्त हूँ। ये विभाव (मैं नहीं हूँ)। अपूर्ण, पूर्ण पर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ, मैं तो पूर्ण शुद्धात्मा हूँ। दृष्टि करके फिर कार्य तो शुद्ध पर्यायको प्रगट करनेका कार्य लाना है। कार्य न आये तो दृष्टि नहीं है।

मुमुक्षु :- (कार्य न आये तो) उसका कोई अर्थ नहीं है।

समाधान :- उसका कोई अर्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- कार्य आये तो ही वह सच्ची दृष्टि है।

समाधान :- कार्य आये तो ही सच्ची दृष्टि है। अंतरसे शान्ति प्रगट हो।

मुमुक्षु :- फिर भी लक्ष्य कार्य पर नहीं होता।

समाधान :- लक्ष्य कार्य पर नहीं है कि ये पर्याय प्रगट हुयी और वह पर्याय प्रगट हुयी, उसमें दृष्टि रुकती नहीं। उसका वेदन होता है, परन्तु मैं पूर्ण भरा हुआ, पूर्ण भरा हूँ। एक-एक पर्याय प्रगट हो, पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो, उससे भी अनन्त मेरे द्रव्यमें भरा है। केवलज्ञानकी पर्याय क्षण-क्षणमें परिणमती रहती है। एक वर्तमान समयकी पर्याय प्रगट हो, तो यह मुझे प्रगट हुयी, ऐसे उसमें रुकता नहीं। उससे अनन्तगुना द्रव्यमें भरा है। द्रव्य पर, दृष्टि तो द्रव्य पर है। केवलज्ञानकी पर्याय एक समयकी है, उससे अनन्तगुनी शक्ति द्रव्यमें भरी है। क्योंकि वह तो क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें परिणमता रहता है, द्रव्य तो।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९६

मुमुक्षु :- ... सत् सरल है, सुगम है, सत्पुरुष मिलने चाहिये। उसमें सत्पुरुषका...

समाधान :- इस कालमें ऐसे सत्पुरुष गुरुदेव मिले, महाभाग्य!

मुमुक्षु :- यह मार्ग बताया।

समाधान :- उनकी वाणी कोई अद्भुत थी।

मुमुक्षु :- भगवान आत्मा, भगवान आत्मा.. दादरवालोंने लिखा है न? भगवान आत्माकी पुकार है, हम तो पामर हैं। भगवान आत्माकी पुकार सुनकर पधारना। हम तो कोई नहीं है, पामर हैं।

समाधान :- .. गुरुदेव मिले और वस्तुका स्वरूप (दर्शाया कि) तू चैतन्य भगवान है। ऐसा कहनेवाले इस कालमें मिले, महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- क्रियाकाण्डमें चढ गया था, बहिनश्री बार-बार कहते हैं। क्रियाकाण्डमें चढ गया था, उसमें भावप्रधान, शुद्ध परिणतिप्रधान और ज्ञायकप्रधान, वहाँ तक।

समाधान :- सब क्रियामें ही धर्म मानते थे, अंतर पर दृष्टि कहाँ थी। थोड़े उपवास कर ले, थोड़ा धोख ले और पढ ले, ऐसा कर ले तो धर्म हो गया, ऐसा मानते थे। गुरुदेवने कहाँ अंतर दृष्टि करवायी। बाह्य क्रिया, वह तो नहीं, परन्तु अन्दर शुभ परिणाम हो वह भी तेरा स्वभाव नहीं है। बीचमें शुभ परिणाम आते तो है, लेकिन वह तेरा स्वभाव नहीं है। तू शुद्धात्मा है। अंतरमें गुणके भेद पड़े उसे जानना, ज्ञान सब करना, पर्यायके, गुणके भेदका सब ज्ञान करना, दृष्टि एक आत्मा पर रखनी, एक अभेद आत्मा पर। जानना, गुणका भेद, आत्मामें अनन्त गुण हैं, उसका ज्ञान करना, पर्यायका ज्ञान करना, लेकिन भेद पर रुकना मत। दृष्टि आत्मा पर करना। गुरुदेवने कितनी सूक्ष्म बात करके अपूर्व रीतसे सबको बताया है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने निहाल कर दिया। ... ये बात समझानी और इतना प्रकाश जागृत किया। नहीं तो सब संप्रदायमें पड़े थे।

समाधान :- हाँ। संप्रदायमें चढे थे।

मुमुक्षु :- क्रियाकाण्डमें धर्म माना था।

समाधान :- क्रियाकाण्डमें धर्म (माना था)। शुभभावकी भी किसीको मालूम नहीं

था, मात्र क्रिया, इतना ही मालूम था।

मुमुक्षु :- कमजोर है, नहीं तो ऐसा क्यों बने?

समाधान :- पंचमकाल है।

मुमुक्षु :- इतने लोग आते हैं, सुनते हैं, देखते हैं कि गुरुदेवकी वाणी अथवा गुरुदेवका तत्त्व क्या था। फिर भी दूसरी प्रवृत्तिमें पड़ जाते हैं।

समाधान :- गुरुदेवने तो एक शुद्धात्मा पर दृष्टि करनेको कहा है। एक आत्मा अन्दर तू देख, कोई अपूर्व है। पंचमकाल है न, सब चलता है। भगवानकी और मुनिओंकी वाणी सुनकर क्षण-क्षणमें अंतर्मुहूर्तमें सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले। क्षण-क्षणमें, अंतर्मुहूर्तमें। कोई मुनिदशा प्राप्त कर ले, ऐसा काल था। वह काल अलग था। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शनका नाम और उसकी बात सुनने मिलना मुश्किल, बात सुने तो प्राप्त करना दुर्लभ, ऐसा यह काल हो गया है। महापुण्यके कारण गुरुदेवसे बात सुनने मिली, सम्यग्दर्शनकी और स्वानुभूतिकी। उसकी रुचि, अनेक जीवोंको गुरुदेवके प्रतापसे रुचि जागृत हुयी। .. मुश्किल, गुरुदेवके प्रतापसे रुचि जागृत हुयी।

मुमुक्षु :- पहले तो इस ओर मुड़ना मुश्किल था। गुरुदेवके प्रतापसे कितने जीव इस ओर मुडे।

समाधान :- कितने मुड गये।

मुमुक्षु :- फिर भी अपने .. बैठे हैं... है, पंचमकाल तो अनादि कालका है। विशेषता यह है, विशेषता इसकी है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव देकर गये हैं, गुरुदेव कह गये हैं कि माताजी विराजते हैं, तब तक स्पष्टीकरण आता है। आपके लिये अभी भी एक मौका है। अपने लिये तो ... ऐसा है।

समाधान :- गुरुदेवने सबको जागृत किया है। पूरे हिन्दुस्तानमें, भारतमें सबको जागृत कर दिया।

मुमुक्षु :- परदेशमें।

समाधान :- हाँ, देश-विदेश, आफ्रिकामें हर जगह, विलायतमें हर जगह। कितना प्रचार हुआ। पहले वह आते थे, समयसार आदि पढते हैं तो नींद आती है। ऐसा बोलते थे। पहले शुरूआतमें। और वह पण्डित तो ऐसा कहे कि आत्माकी बात आये उसे हम छोड़ देते थे। चिदानन्द आदिकी बात आये।

मुमुक्षु :- कैलाशचन्द्रजी भाषणमें बोले थे।

समाधान :- हाँ, कैलाशचन्द्रजी पण्डितने भाषणमें बोले। एक कोई भाई थे, वह कहते थे, समयसार पढे तो नींद आती है। ऐसा कोई कहता था। कैलाशचन्द्रजी पण्डित

कहते थे, चिदानन्द आत्मा ऐसा आये तो हम छोड़ देते थे। यहाँ इसकी बात है, ये तो आत्माकी बात है।

मुमुक्षु :- वह तो वर्णन किया है।

समाधान :- हाँ, ऐसा करके (छोड़ देते थे)।

मुमुक्षु :- तिर्यक् प्रचय और ऊर्ध्व प्रचय, वह आये तो उसका वर्णन करते। ज्ञानघन आनन्दकंद आये तो चलने दे। ये तो वर्णन किया है।

समाधान :- गुरुदेवके प्रतापसे अभी सबको अध्यात्मकी इतनी रुचि (हो गयी है)। सब वांचन करने (लगे)। सब स्त्रियां वांचन करे। भगवानजीभाईकी औरत बेचारे वांचन करे। उतना वांचन करे उतनी रुचि है न। .. चले जाते। टेप आदि...

आत्मा अन्दर चैतन्य स्वरूप आत्मा है, ज्ञायक है। अनन्त गुणसे भरा आत्मा है। उस आत्मामें आनन्द, अनन्त गुण सब आत्मामें भरा है। वह कैसे पहचानमें आये और कैसे प्रगट हो, उसके लिये यह सब करनेका है। यह शरीर भिन्न है। अन्दर विभावस्वभाव आत्माका नहीं है। अंतरमें आत्माकी पहचान कैसे हो? बार-बार उसका विचार, वांचन वह सब करने जैसा है। उसकी लगन, महिमा आदि।

शास्त्रमें आता है न? स्फटिक तो स्वभावसे निर्मल है, परन्तु उसमें लाल-पीले फूल दिखते हैं इसलिये मलिन दिखता है। वैसे आत्मा स्वभावसे तो निर्मल है। मूल वस्तुमें तो कहीं मलिनता होती नहीं। परन्तु विभावको निमित्त है, कर्मका निमित्त है। पुरुषार्थकी मन्दतासे स्वयं उसमें जुड़ता है इसलिये विभाव होता है, अपना मूल स्वभाव तो नहीं है। परन्तु उसकी दृष्टि,.. आत्मा निर्मल स्वभाव है, उस पर दृष्टि करे, उसका भेदज्ञान करे तो विभाव छूट जाता है। पहले उसका भेदज्ञान हो, फिर उसमें लीनता बढते-बढते वह छूट जाता है। उपाय तो एक ही है।

शिवभूति मुनिको ज्यादा नहीं आता था। भूल जाते थे। मातुष और मारुष। गुरुने कहा, कहीं राग नहीं करना, द्वेष नहीं करना। भूल गये। फिर गुरुने क्या कहा था? वह भाई दाल धो रही थी। गुरुने कहा, दाल भिन्न और छिलका भिन्न। वह दाल धो रही है। ऐसा गुरुने कहा था कि, आत्मा भिन्न और ये विभाव भिन्न, मेरे गुरुने ऐसा कहा था। ऐसा करके अंतरमें भेदज्ञान करके अंतरमें इतनी उग्रता की, ज्ञायककी धाराकी इतनी उग्रता करी। और उग्रता करके अन्दर दृष्टि ऐसी स्थापित कर दी, उग्रतामें भेदज्ञान और उसमें उनकी परिणति ऐसी उग्र हो गयी कि, केवलज्ञान प्रगट कर लिया। उतना पुरुषार्थ अंतरमें, अंतर्मुहूर्तमें उतना पुरुषार्थ किया।

शुभभाव, शुभाशुभ दोनों भाव आत्माका स्वभाव नहीं है, तो मुनिपना मुनिओं किसके आश्रयसे पालेंगे? उसमें आता है। पंच महाव्रत आदि सब शुभ कहते हो तो पंच

महाव्रतके आधारके बिना मुनिपना कैसे पाले? मुनिओं अपने चैतन्यके आधारसे मुनिपना पालते हैं। उनकी स्वानुभूतिके आधारसे (पालते हैं)। बारंबार अपने स्वानुभवमें-अमृतरसमें लीन होते हैं। उसके आश्रयसे मुनिपना पालते हैं। उसमें उन्हें शुभभाव पंच महाव्रत तो बीचमें आते हैं। परन्तु उसका आश्रय हो तो ही मुनिपना पले, ऐसा नहीं है। लेकिन स्वानुभूतिका जो आनन्द है, जो स्वानुभूति क्षण-क्षणमें प्रगट होती है, उसके आश्रयसे मुनिपना पालते हैं।

अतः पहले श्रद्धा तो बराबर ऐसी करनी कि दोनों भाव हैं, उससे मैं भिन्न निर्विकल्प तत्त्व हूँ। बीचमें ये शुभभाव आते तो हैं, लेकिन वह मेरा स्वभाव नहीं है। दृष्टि तो चैतन्य पर स्थापित करके, मैं तो सर्वसे भिन्न चैतन्य भिन्न हूँ। दृष्टि तो बराबर ऐसे दृढ़ करनी। फिर बीचमें शुभभाव आये वह दूसरी बात है। ऐसे प्रारंभमें देव-गुरु-शास्त्र, वह सब परिणाम तो साथमें होते हैं। परन्तु मैं चैतन्य सर्वसे भिन्न निराला हूँ। दृष्टि तो वह करने जैसी है।

मुमुक्षु :- .. जीवको क्यों ... यह हमारे बलुभाई कहते हैं।

समाधान :- अनादिका अभ्यास है। बाहरकी एकत्वबुद्धि हो रही है। इसलिये उसमेंसे भिन्न होना मुश्किल पड़ता है। बुद्धिसे नक्की करता है कि मैं भिन्न हूँ। परन्तु अंतरमेंसे परिणति भिन्न नहीं करता है। उससे परिणतिको भिन्न नहीं करता है। इसलिये ऐसे ही चला जाता है।

... तू भगवान आत्मा, तू भगवान आत्मा बारंबार कहते थे। परन्तु वह अन्दरमें दृढ़ करना, प्रतीत भले ही स्वयंको आवे, परन्तु अन्दरसे भिन्न करना आत्माकी परिणति भिन्न करके, वह स्वयंको करना है। यह द्रव्य चैतन्य है, ये उसके गुण हैं, ये उसकी पर्याय है। कहते हैं न, जो भगवान आत्माको जाने,.... जो जिनवरको जाने वह स्वयंको जानता है। ऐसे नक्की करे कि मैं यही हूँ। ऐसा दृढ़ निश्चय करके उसका पुरुषार्थ करे कि जैसा भगवानका आत्मा है, वैसा ही मेरा आत्मा है। ऐसा नक्की करके पुरुषार्थ करे तो हो। नक्की करके, बुद्धिमें नक्की किया, परन्तु पुरुषार्थ तो करना पड़ता है। उसकी परिणतिको भिन्न करना बाकी रहता है। एकत्वबुद्धि हो रही है।

निज चैतन्यमें दृष्टिको स्थापित करना बाकी रहता है। पुनः, एक बार करके छोड़ दे, ऐसा नहीं। क्षण-क्षणमें उसे याद करता रहे, उसे महिमासे याद करता रहे। उसे शुष्क हो जाय, ऐसे नहीं। उसे अंतरसे महिमा आनी चाहिये। यह चैतन्य ही महिमावंत है। ऐसे।

मुमुक्षु :- यह मिला है वह अपूर्व है। सुननेवाले हैं, परन्तु सुननेवाले सुनते हैं, लेकिन अंतर परिणमन नहीं करते हैं। बाहर निकलते ही, शोरगुलमें लग जाते हैं।

मुमुक्षु :- जिसे जिसकी रुचि हो वहाँ कितना पुरुषार्थ करता है। करता है कि नहीं? संसारमें। यहाँ इसका पुरुषार्थ (करना)। रुचिकी क्षति है।

समाधान :- .. तो सब मुडे हैं। रुचि तो एक आत्माका करने जैसा है, यह सब बाहरमें धर्म नहीं है। सर्व शुभाशुभ भावसे आत्मा भिन्न है। उस दृष्टि और उस रुचिकी ओर तो मुडे हैं। अब स्वयंको पुरुषार्थ करना है। स्वयंको करना है। फिर कोई कहाँ रुके, कोई कहाँ रुके। लेकिन करनेका तो यह एक ही है। गुरुदेवने मार्ग तो बताया है।

मुमुक्षु :- थोड़ा कुछ काम करे तो फँस जाय कि मैंने आज बहुत बड़ा काम किया। कर्ताबुद्धि पडी है न।

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ, भूल जाता है। मैं तो जाननेवाला हूँ। बाहरका जो बननेवाला हो वैसा बनता है, मैं तो मात्र निमित्त बनता हूँ। मेरे रागके कारण, रागके कारण, मेरा जो राग होता है, अज्ञानअवस्थामें रागका कर्ता है। बाहरका तो कर सकता नहीं। राग वह अपना स्वभाव नहीं है। लेकिन उस रागका अज्ञान अवस्थामें कर्ता है। परन्तु मैं कुछ कर नहीं सकता, मैं तो ज्ञायक हूँ। वह भूल जाता है। ज्ञाता होनेके बाद अल्प अस्थिरता आवे, उसे राग आता है। परन्तु वह बाहरका तो कुछ कर नहीं सकता। बाहरके फेरफार करना वह तो उसके हाथकी बात ही नहीं है। मात्र भाव करता है। भाव करे।

मुमुक्षु :- कुछ याद नहीं आता। वहाँ जाय तो शोरगुलमें यहाँ जाना है, वहाँ जाना है। बाहर निकले कि भूल गये। सहज परिणाम जो यहाँ हो, ऐसे वहाँ...

समाधान :- यहाँ दर्शन हो, वहाँ सब भूल जाते हैं। ये भूमिमें ऐसा है। गुरुदेवने बहुत वर्षों तक वाणी बरसायी, यहाँ विराजते थे। यहाँ (आकर) परिणाम बदल जाय। घर भूल जाय और ये सब याद आये।

मुमुक्षु :- यह भूमि भी मंगल है।

समाधान :- आता है न, द्रव्य मंगल, क्षेत्र मंगल, काल मंगल और भाव मंगल। महापुरुषका द्रव्य-गुरुदेवका द्रव्य मंगल, वे जहाँ विराजे वह क्षेत्र मंगल, उन्होंने जो काल अन्दरसे प्रगट किया वह काल मंगल, उनका भाव मंगल। अन्दर जो शुद्ध प्रगट की वह भाव मंगल। सब मंगल ही है।

महावीर भगवान मोक्षमें गये वह काल मंगल कहनेमें आता है न? महावीर भगवानका जन्म-दिन था, चैत शुक्ला-१३। उस १३को मंगल काल कहनेमें आता है न। उनका जहाँ जन्म हुआ वह क्षेत्र मंगल।

मुमुक्षु :- ये कहीं सुनने नहीं मिलता। कहीं नहीं। कहीं सुनने नहीं मिलता।

मुमुक्षु :- गुरुदेव बार-बार कहते थे न, यह बात कहीं और जगह नहीं है। कोई संप्रदायमें यह बात नहीं है। गुरुदेवने सबकी दिशा तो बदल दी। रुचिकी दिशा सबकी बदल दी।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९७

मुमुक्षु :- विधि-उपाय बताओ? ऐसा सूक्ष्म विकल्प जो रह जाता है।

समाधान :- विकल्पसे भेदज्ञान करना। विकल्प सो मैं नहीं हूँ, मेरा स्वरूप विकल्प नहीं है। विकल्प भिन्न है और मैं भी भिन्न हूँ। मैं स्वभाव निर्विकल्प तत्त्व हूँ, मैं ज्ञायक हूँ। विकल्पसे भेदज्ञान करे, पहले यथार्थ श्रद्धा-प्रतीत करे कि मैं ज्ञायक हूँ। उस ज्ञायककी दृढ़ प्रतीत। ज्ञायकको भीतरमेंसे पीछानकर, ज्ञायकका स्वभाव पीछानकर ज्ञायकको भिन्न करे कि यह ज्ञायक मैं हूँ, यह विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है। मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, परन्तु वह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं उससे भिन्न हूँ। उस विकल्पसे पहले भेदज्ञान करे कि मैं ज्ञायक निर्विकल्प तत्त्व हूँ। ऐसे विकल्पका भेदज्ञान करे। फिर ज्ञायकमें लीनता करे तो विकल्प टूटे।

पहले ऐसे विकल्पसे भेदज्ञान करे। विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि हो रही है। विकल्पके साथ जो एकत्वबुद्धि हो रही है, उस एकत्वबुद्धिको तोड़ देना। ये विकल्प मैं नहीं हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, जाननेवाला हूँ। मैं मेरे स्वभावका कर्ता, ज्ञानका कर्ता मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा भेदज्ञान करना। विकल्प तोडनेका यही उपाय है कि विकल्प विकल्पसे टूटता नहीं। विकल्प तोडूँ-तोडूँ, वह भी विकल्प होता है। विकल्पसे भेदज्ञान करना कि मैं ज्ञायक हूँ। विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी ज्ञायककी परिणति दृढ़ करे। ज्ञायककी परिणति दृढ़ करनेसे जो भेदज्ञान होता है, वह भेदज्ञान करनेसे, ज्ञायकमें लीनताकी उग्रता करे तो विकल्प टूटे।

मुमुक्षु :- ऐसा बहुत सोचता हूँ, ज्ञायक ही हूँ, ज्ञायक हूँ।

समाधान :- ऐसा भीतरमेंसे (होना चाहिये)। धोखनेसे तो वह भावनारूप होता है कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। परन्तु भीतरमेंसे मैं ज्ञायक (हूँ)। मैं ज्ञायक हूँ, विकल्प मैं नहीं हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, विकल्प मैं नहीं हूँ, विकल्प स्वरूप मेरा नहीं है। मैं ज्ञायक निर्विकल्प तत्त्व हूँ। मैं ज्ञायक। ऐसे ज्ञायकका बल प्रगट करना। विकल्पसे भेदज्ञान करना।

मुमुक्षु :- ... प्रयास करता हूँ, प्रगट नहीं होता है। खूब प्रयास करता हूँ, वह नहीं आता है। ऐसा आता है कि ज्ञायककी खूब महिमा आनी चाहिये, वह नहीं आ पाती।

समाधान :- ज्ञायककी महिमा नहीं आती है। ज्ञायकमें.. सबकुछ ज्ञायकमें है। विकल्पमें कुछ महिमा नहीं है। ज्ञायककी महिमा आनी चाहिये। ज्ञायकमें शान्ति लगनी चाहिये। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे भीतरमेंसे ज्ञायकमें सुख-शान्ति ज्ञायकमें लगनी चाहिये। ऐसे ज्ञायक.. ज्ञायक। विकल्पसे भेदज्ञान करना और ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करके मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा बारंबार अभ्यास करे तो विकल्प टूटता है। विकल्पका भेदज्ञान करे और ज्ञायकका अभ्यास करे, भीतरमेंसे महिमापूर्वक ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करके, ऐसा बारंबार अभ्यास करे तो विकल्प टूटे।

मुमुक्षु :- ज्ञायकके अस्तित्वका जोरदार महिमाका संक्षेपमें उपाय.. शास्त्रसे स्वीकार होकर.. जबतक परिणति न हटे, तो ज्ञायकके अस्तित्वको किस विधिसे ख्यालमें लेंगे? ... जम जाय, उसमें...

समाधान :- ऐसा पुरुषार्थसे होता है। ज्ञायकके स्वभावका लक्षण, वह ज्ञायक। यह मैं नहीं हूँ, ये विभाव-आकुलता मैं नहीं हूँ। मैं निराकूल तत्त्व ज्ञायक हूँ। भीतमेंसे ग्रहण करना चाहिये। सूक्ष्म उपयोग करके धीरा होकर भीतरमें-से सूक्ष्म उपयोग करके, ऐसे धैर्यसे अपना स्वभाव ग्रहण करना चाहिये। ग्रहण करनेके लिये उसका अभ्यास करना चाहिये। एक बार ग्रहण किया कि मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे नहीं। बारंबार उसका अभ्यास करना (कि) मैं ज्ञायक हूँ। भीतरमें-से धीरा होकर ऐसे शान्तिसे उसको ग्रहण करना चाहिये तो होता है।

मुमुक्षु :- सूक्ष्म उपयोग करके।

समाधान :- हाँ, सूक्ष्म उपयोग करके।

मुमुक्षु :- फिर भावभासन (होता है)?

समाधान :- विकल्प टूटकर अन्दर स्थिर होनेके बाद। परन्तु पहले तो अस्तित्वको दृढ़तासे ग्रहण करे, भेदज्ञान करके कि मैं भिन्न ही हूँ। जैसे स्फटिक निर्मल उसके लाल, पीले फूलसे भिन्न उसका अस्तित्व स्फटिकका भिन्न है, ये सब तो ऊपरके हैं। वैसे जो विभावपर्यायें होती हैं, वह निमित्तका कारण है, उसमें उपादान स्वयंका है कि स्वयं उसमें जुड़ता है, निमित्त नहीं करवाता है, स्वयं जुड़ता है। परन्तु वह स्वभाव मेरा नहीं है। मेरा अस्तित्व उससे भिन्न नहीं है। त्रिकाल अस्तित्व शाश्वत अनादिअनन्त हूँ, ऐसे अपने अस्तित्वको ग्रहण करे।

मुमुक्षु :- अस्तित्व पर ही चला जाता है आखिर तक?

समाधान :- अस्तित्व-ज्ञायक अस्तित्व। मैं हूँ ज्ञायक।

मुमुक्षु :- लेकिन फिर उसे धीरे-धीरे जैसे अभ्यास बढता जाय, वैसे उसे शक्ति भी विशेष-विशेष आती जाय?

समाधान :- उसका अभ्यास होना चाहिये। अंतरमेंसे हो तो उसे ज्यादा बल प्रगट हो। उसे अपनेआप ही दृढ़ता आ जाय कि मार्ग यही है। अपना अस्तित्व ग्रहण करे। विकल्प, चाहे जैसे ऊँचे विकल्प हो, तो भी विकल्प ही है, मेरा स्वभाव उससे भिन्न है। विकल्प सब आकुलतारूप है, मेरा स्वभाव भिन्न है। ऐसे भेदज्ञान करके स्वयंको ग्रहण करे और उसमें लीनता करे तो वह आगे जाता है। उसमें स्थिर हो, उसके अस्तित्वको ग्रहण करके। शुभ विचार तो बीचमें आते हैं, परन्तु मेरा अस्तित्व जो निराला अस्तित्व है वह तो भिन्न ही है, ऐसे स्वयंको ग्रहण करे।

मुमुक्षु :- सामान्यतः तो ऐसे आ ही जाता है..

समाधान :- मैं हूँ, ऐसे सामान्यरूपे (आ जाय), परन्तु उसका स्वभाव ग्रहण होना चाहिये न। सामान्यरूपसे तो मैं हूँ। मैं हूँ तो कौन हूँ? किस स्वभावसे हूँ? मेरा स्वभाव क्या है? ऐसे तो विकल्पमें अपना अस्तित्व अनादिसे माना है, शरीरमें अस्तित्व (माना है)। शरीर तो स्थूल है, उससे भिन्न। विकल्पमें अपना अस्तित्व मानता है। तो ज्ञान और ज्ञेय एकाकार हो गये, उसमें अपना अस्तित्व मानता है। मेरी ज्ञायकता भिन्न ही है।

क्षण-क्षणमें पर्याय होती है उसमें अपना अस्तित्व माना है। परन्तु मेरा अस्तित्व तो शाश्वत है। ऐसे तो सामान्यरूपसे तो मैं हूँ, ऐसा ग्रहण किया, लेकिन उसका स्वभाव ग्रहण होना चाहिये। वह तो उतनी उसकी लगन हो, उतनी महिमा लगे तो, अंतरमें उतना गहराईमें जाकर पुरुषार्थ करे तो ग्रहण हो।

.. धीरे करे या जल्दी करे, लेकिन उसे करनेका एक ही है। उसकी जिज्ञासा, उसकी महिमा, तत्त्वके विचार वही करनेका है। वह न हो तबतक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, श्रुतका चिंतवन करता रहे, तत्त्वविचार (करे)। करनेका एक ही है। दूसरे लौकिक जीव कहाँ पडे होते हैं। गुरुदेवने यह मार्ग बताया है। क्रियामें पड़े होते हैं। अभी यात्रामें, पैदल यात्रा करनेका कितना चला है। सबको उसीमें महत्ता लगी है। पैदल यात्रा, पैदल यात्रा। यात्रा माने मानो क्या... परन्तु अंतरमें करनेका है। गुरुदेवने यह बताया है।

मुमुक्षु :- .. दूसरा-दूसरा करता रहता है।

समाधान :- हाँ, दूसरा-दूसरा करता रहता है। स्वयंमें सुख है, बाहर सुख है ही नहीं। बाहर तो सब आकुलता है। कोई भी विकल्प लो, सब विकल्प ही है। सब विकल्प आकुलतारूप है। सब विकल्प आकुलता है। निराकुल स्वभाव आत्मामें ही आनन्द भरा है।

आनन्द स्वरूप आत्माका, ज्ञायक स्वरूप आत्माका प्रगट न हो, तबतक देव-गुरु-शास्त्रने जो प्रगट किया, उसकी जिसने साधना की उसकी महिमा आये कि ये स्वरूप जिसने प्रगट किया, वह करना है। उसका उसे आदर आये। करनेका स्वयंको

ही है। ग्रहण तो स्वयंको ही करना है।

मुमुक्षु :- पूरा समय उसके लिये देना पड़े।

समाधान :- समय देना पड़े और उसीके पीछे लगना पड़े तो होता है।

मुमुक्षु :- अनन्त काल स्वयंने क्यों ध्यान नहीं रखा? उसमें फिर माताजी! ऐसा लगता है कि...

समाधान :- बाहर ही बाहर भटका है। स्वयंकी वस्तुको स्वयंने पहचाना नहीं, पुरुषार्थकी मन्दता करता है।

मुमुक्षु :- जब द्रव्यलिंगी साधु हुआ होगा, तब भावलिंगी मुनिओंके समूहमें गया होगा, कदाचित्।

समाधान :- बना हो।

मुमुक्षु :- वह जब होता है, तब बहुत दुःख हो जाता है कि ये..?

समाधान :- स्वयंको अपूर्वता नहीं लगी हो।

मुमुक्षु :- नुकसान.. नुकसान.. नुकसानीका ही धंधा किया।

समाधान :- भावलिंगीकी महिमा स्वयंको नहीं आयी हो। इसलिये मैंने बहुत किया है, ऐसे संतोष माना। .. न करता हो, बाकी अन्दरसे कुछ-कुछ स्वयंको ठीक लगे वह करता हो।

मुमुक्षु :-..

समाधान :- स्वयंको ग्रहण नहीं करता है। वैराग्य तो उसने किया है, ऐसा तो उसमें है। वह कोई कपटी मनुष्य है, ऐसा तो नहीं कह सकते। सरलता आदि अमुक तो होता है। विशालबुद्धि। विशालबुद्धिका अर्थ तत्त्व पकड़नेकी शक्ति कितनी है, वह देखना है। बाकी तो अमुक वैराग्य धारण किया हो, सब छोड़ दिया हो, अमुक प्रकार तो होता है। अमुक साधारण तो होता है। सरलता आदि तो होता है। अमुक मध्यस्थता, कोई माथापच्चीमें पड़ता नहीं।

विशालबुद्धि अर्थात् तत्त्व ग्रहण करनेकी शक्ति होनी चाहिये न। सब बोल (-गुण) अन्दर न हो, कोई-कोई तो होते हैं। अमुक प्रकारकी भूमिका.. परन्तु जिस जातिका होना चाहिये उस जातका होना चाहिये न। अमुक भूमिका तो वैराग्य धारण किया हो तो कुछ तो ऐसा होता है। अंतरमें-से जो होना चाहिये वह नहीं हुआ हो। स्वयंको तत्त्व ग्रहण करनेकी शक्ति, विशालबुद्धि, सरलता, तत्त्व ग्रहण करे ऐसी शक्ति, ऐसी भिन्नता, अंतरमें तत्त्व ग्रहण हो, ऐसी शक्ति होनी चाहिये। ऐसा बाहरसे तो जीव अनेक बार करता है।

मुमुक्षु :- वह तो हमें कैसे मालूम पडे?

समाधान :- क्या मालूम पडे? वह तो उसकी योग्यता। वह तो स्वयं ही जाने, दूसरा कौन जान सके?

मुमुक्षु :- गुरुदेव भी नहीं है कि गुरुदेवको कुछ पूछें? ...

समाधान :- .. कुछ पूछना होता नहीं, इसलिये उसे स्वयंको लगे वैराग्य आ गया।

मुमुक्षु :- हमें ख्याल आवे कि ये महाराजसाहब अर्थात् कानजी महाराजने ऐसी सब बातें की है?

समाधान :- ज्ञान कर, लेकिन दृष्टि एक आत्मा पर कर। गुरुदेवने एकदम सूक्ष्म बात करी। और चारों ओरसे सूक्ष्म करके बता दिया है। युक्तिसे, दलीलसे बताकर सबको (सरल कर दिया)।

मुमुक्षु :- आत्माको ऐसे हथेलीमें दे दिया है।

समाधान :- हथेलीमें दिखा दिया है।

मुमुक्षु :- एक प्रश्न, दूसरे लोग-अभ्यासी लोग, दूसरे जो सामान्य.. हम लोग ऐसा कहते हैं कि चतुर्थ गुणस्थानमें जो अनुभव होता है, वह प्रत्यक्ष अनुभव होता है। हम लोग प्रत्यक्षवत् भी कहते हैं। ये लोग अभी ऐसी बात करते हैं, दिगंबर संतों, कि चौथे गुणस्थानमें अनुभव है ही नहीं। जबकि ये सब तो खाणिया चर्चामें भी..

समाधान :- (चौथे गुणस्थानसे) स्वानुभूति शुरू होती है। सातवेंकी तो कहाँ बात करनी? सातवेंमें तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें होती है। छठवें-सातवें मुनिओंको तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें होती है। ... मालूम ही नहीं होता। बाह्य क्रियाएँ और त्यागमें, क्रिया और त्यागमें माननेवाले होते हैं। त्याग कर दिया और शास्त्र पढ लिये, इसलिये क्रिया और शास्त्र पढ लिये इसलिये सब आ गया। अन्दरमें अनुभूतिको कुछ समझते नहीं।

... कहते हैं उसका विश्वास नहीं है। वर्तमान जो सत्पुरुष गुरुदेव जैसे हुए, उनका विश्वास नहीं है। आचार्य जो शास्त्रमें कह गये, समयसारमें आदिमें, उसे गहराईसे पढते नहीं।

समयसारमें जगह-जगह आता है, गहराईसे पढते नहीं। स्वानुभूतिकी बात समयसारमें कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य, दोनोंने लिखी है। (रहस्य) खोले, समयसारके रहस्य भी गुरुदेवने खोले हैं। समयसार कोई समझता नहीं था। उसके रहस्य भी गुरुदेवने खोले हैं।

मुमुक्षु :- अभी तो जो लोग..

समाधान :- हम कुछ जानते हैं, कुछ जानते हैं उसमें रह गये।

.. गुरुदेवने कहा, यह शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है। अन्दर चैतन्यतत्त्व अनन्त

शक्तिसे भरपूर है। उसमें अनन्त ज्ञान भरा है, अनन्त आनन्द भरा है। अनन्त-अनन्त शक्तियोंसे भरा आत्मा है। उस पर दृष्टि जाय तो उसमें जो अनन्त शक्तियाँ हैं, वह प्रगट होती हैं। वह अपना स्वभाव ही है। सहज ज्ञानसे भरा आत्मा है। उस पर दृष्टि करके उसमें लीनता करे तो उसमेंसे सब प्रगट होता है। .. ग्रहण करना वह वास्तविक है। उसीमें अनन्त शक्तियाँ भरी हैं। आनन्द कहीं बाहरसे प्रगट नहीं होता, अपनेमें-ही प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- ... दिन-प्रतिदिन वर्धमान होती जाती है, वैसे बाह्य ज्ञान भी दिन-प्रतिदिन .. होगी न?

समाधान :- बाह्य ज्ञान.. अन्दरकी ज्ञायककी उग्रता। ज्ञायककी निर्मलता, ज्ञायककी धारा, अंतरमें-से निर्मल स्वानुभूतिकी धारा, ज्ञायककी निर्मल धारा,... बाहरका ज्ञान यानी...

मुमुक्षु :- बाहरका ज्ञान तो क्षयोपशमिक ज्ञान है।

समाधान :- वह तो क्षयोपशमज्ञान है। बाहरका मति और श्रुत, वह भी उसका उपयोग बाहर आये तो वह भी निर्मल होता है। बाहर उपयोग हो तो वह भी निर्मल हो, अंतरमें उपयोग हो तो अंतरकी निर्मलता होती है। बहुत ज्यादा जाने ऐसा नहीं, परन्तु निर्मलता बढती जाती है।

मुमुक्षु :- .. दोषित हो जाय ऐसा नहीं?

समाधान :- उपयोग बाहर जाय तो ज्ञान दोषित नहीं होता। उसमें राग आवे तो दिक्कत है। उसमें एकत्वबुद्धि हो उसकी दिक्कत है। दोषित नहीं होता, ज्ञानका जाननेका स्वभाव है। ज्ञान सब जान सकता है। ज्ञानमें ऐसी मर्यादा बांधनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि ज्ञान इतना जाने और इतना ज्ञान नहीं जानता। ज्ञान तो अनन्त महिमासे भरपूर है। जानना उसका नाम कि जो सब जाने। ज्ञानमें ऐसी मर्यादा न होती कि इतना जाने और इतना न जाने। ज्ञान अनन्त शक्तिसे भरा है। सब जाननेकी ज्ञानमें शक्ति है। लेकिन उसका उपयोग बाहर जाय, उसमें राग आवे, वह रागका दोष है। उसमें ज्ञानका दोष नहीं है। राग तोड़नेको कहा जाता है। तू वीतरागता प्रगट कर, तेरी दिशा बदल। सहज ज्ञान अंतरमें है, वह अंतरमेंसे सब प्रगट होता है। उसमें तू लीनता कर।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९८

मुमुक्षु :- .. मैं ज्ञायक हूँ और ज्ञानके भेदमें इस प्रकार विचार करे कि मैं मेरे द्वारा, मुझे जानता हूँ। प्रथम भूमिकामें ऐसे विचार अंतर सन्मुख होनेके लिये ऐसे भेद बीचमें आते हैं, और उसके बाद ही उसे अनुभव या निर्णय..

समाधान :- बीचमें विचार आये। ज्ञेय निमग्नताको छोड़ दे और स्वयं ज्ञायककी ओर जाय। इसलिये उसमें स्वपरप्रकाशक मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा नहीं है। उसका राग तोड़ता है। ज्ञेयकी जो निमग्नता है, उस निमग्नताको तोड़कर उसका भेदज्ञान करता है कि मेरा ज्ञान बाहर नहीं जाता है अथवा मेरा ज्ञान मुझे छोड़कर ज्ञेयमें छिन्न-भिन्न, खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता है। मैं तो मेरे ज्ञानसे, स्वयं मेरा अस्तित्व मेरेसे जीवित हूँ, मेरे अस्तित्वसे रहनेवाला हूँ। इसलिये मेरा ज्ञान मुझे स्वयंको अपनी ओर ही मेरे अस्तित्वमें रहनेवाला मेरा ज्ञान है। ऐसे।

मुमुक्षु :- जिसमें एकत्वपना किया है, उस एकत्वको..

समाधान :- हाँ, एकत्वपनेको तोड़ता है। ज्ञायक ही मेरा स्वभाव है। तोड़कर फिर बाहरका ज्ञान हो, शास्त्रमें आता है न? इसे निकाल दो, निकाल दो, ऐसा उसे नहीं होता। क्योंकि उसमें एकत्वबुद्धिको तोड़नी है। एकत्वबुद्धि तोड़नी है। एकत्वबुद्धि तोड़कर भेदज्ञान करता है कि मैं मेरे ज्ञानको प्रकाशित करनेवाला स्वयं, मैं स्वयं ज्योति ज्ञान प्रकाशमान हूँ। ऐसे अपनी ओर मुड़ता है। फिर जो सहज उसमें आता है उसका ज्ञान करता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानकी परिणति रागके साथ एकमेक हो गयी, ... तो वह कैसे भिन्न पड़े? उसमें शुरूआत कैसे करनी? बीचमें क्या आये? उसके बाद क्या होता है? ....

समाधान :- क्या? बीचमें क्या आये..?

मुमुक्षु :- भेदज्ञान करनेकी शुरूआत कैसे करनी? बादमें कैसे आगे बढना?

समाधान :- ज्ञान है उसे पहचान लेना कि यह ज्ञान है और यह राग है। राग और ज्ञानका लक्षण पहचान लेना कि यह लक्षण ज्ञानका है, यह लक्षण रागका है। परन्तु परिणति एक हो रही है, उसे भिन्न करनेके लिये, यह ज्ञानलक्षण है वही मेरा स्वभाव है और वही मुझे सुखरूप है। जो ज्ञान है वही सुखरूप है, राग है वह

सुखरूप नहीं है, वह तो विभाव है। ऐसी अपनी प्रतीत यथार्थ हो, उसकी महिमा आये तो उसमेंसे भिन्न होनेका स्वयं प्रयत्न करे। ऐसा विश्वास आना चाहिये कि यह लक्षण ज्ञानका ही है और ज्ञानलक्षण जो है वही मैं हूँ। और उसीमें शान्ति है, उसीमें सुख है। और बाहर इस रागमें सुख और शान्ति नहीं है। ऐसा यदि उसे विश्वास आये, प्रतीत आये तो वह भिन्न पड़नेका प्रयत्न करता है।

यह स्व सो मैं, यह पर है। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। और उसे उसमें सुखका सुखका विश्वास आना चाहिये, उसे अपने स्वभावका विश्वास आना चाहिये तो भिन्न पड़े।

मुमुक्षु :- विश्वासमें समझसे विश्वास आये ऐसे?

समाधान :- समझपूर्वक ही आये न कि यह ज्ञान जो है वही सुखका कारण है, मेरा स्वभाव हो वही सुखरूप हो। ये राग कोई सुखरूप नहीं है। उसका वेदन भी आकुलतारूप होता है। और ज्ञानका विचार करे तो उसका वेदन आकुलतारूहप नहीं है। (राग) आकुलतारूप है। ऐसे पहले तो विचारसे नक्की करे। शुरूआतमें तो उसे अनुभव या वेदन होता नहीं। इसलिये विचारसे ही उसे नक्की करनेका रहता है।

लक्षण पहचानकर विचार करनेका, विचारसे नक्की करनेका रहता है। ... वह लक्षण पूरा अखण्ड द्रव्य है। वह लक्षण मात्र पर्याय तक सीमित नहीं, परन्तु पूरा द्रव्य स्वतःसिद्ध अखण्ड तत्त्व हूँ। ऐसे उसे निर्णय करनेका अंतरमें रहता है। जो दिखता है वह मात्र पर्याय दिखती है, उसके ख्यालमें आती है। परन्तु उस परसे पूरे द्रव्य पर दृष्टि करनी है।

मुमुक्षु :- लक्षणको भिन्न करनेमें ही तकलीफ पड़ती है। लक्षणको भिन्न करनेमें ही दिक्कत होती है। राग और ज्ञान, ये दोनों..

समाधान :- दोनों एकमेक दिखते हैं।

मुमुक्षु :- जानपना वह ज्ञान। ऐसे विचारमें तो ले सकते हैं। परन्तु उससे आगे कुछ भावभासन जैसा हो, ऐसा कुछ नहीं बनता।

समाधान :- जानपना वह ज्ञान। लेकिन जानपना मात्र नहीं, जो जाणकस्वभाव ही है, जो जाणकस्वभाव है वह मैं हूँ। ऐसे स्वयं अंतरमें गहराईमें दृष्टि करे तो जाणकस्वभाव है वह मैं हूँ। ये जड़स्वभाव कुछ जानता नहीं। जाननेवाला स्वभाव है वह मैं हूँ। स्वभाव पर जाना रहता है। मात्र जानपना नहीं। जाननेवाला है, उस पर दृष्टि करनी है।

मुमुक्षु :- ऐसा विचार करनेपर राग छूटकर परज्ञेयसे भिन्न...

समाधान :- सहज ही भिन्न पड़ जाता है। ज्ञायक, जाननेवाला ज्ञायक ही ज्ञानरूप परिणमता है। अपने स्वभावरूप, ज्ञायक ही ज्ञानस्वभावरूप परिणमित हुआ है। ऐसा उसे लक्ष्यमें आये, ऐसी प्रतीत हो, ज्ञानमें लक्षणसे बराबर पहचाने तो रागसे और ज्ञेयोंसे

सहज ही भिन्न पड़ जाता है। अपना अस्तित्व ज्ञायकरूपमें अस्तित्व ग्रहण हो तो उसमें दूसरा जो है वह सहज ही भिन्न पड़ जाता है। यह मैं हूँ, इसलिये ये मैं नहीं हूँ, उसमें साथमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- विकल्पात्मक दशामें जबतक ऐसी प्रतीति न हो, तबतक ऐसा घोलन अर्थात् ऐसे विचार, यथार्थ विचारमें लेना?

समाधान :- ऐसे विचार उसे घोलनमें चलते रहे, जबतक उसे ज्ञायकका अस्तित्व अंतरमें-से ग्रहण न हो, तबतक विचार चलते रहे कि ये राग मैं नहीं हूँ। मेरा स्वभाव ज्ञेय नहीं है, मैं तो ज्ञानस्वभाव हूँ। ऐसे विचार चलते रहे। परन्तु भिन्न कब पड़े? अपना ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण हो तो उसका भेदज्ञान उसमें सहज आ जाता है।

मुमुक्षु :- ज्ञायक ही ज्ञानमें ज्ञात हो रहा है, अर्थात् ज्ञानकी पर्याय जाननेरूप परिणमती है। वह जो आपने कहा न कि, उससे परज्ञेयसे और रागसे भिन्न पडे और अपना .. अस्तित्व उसके ख्यालमें आवे, उसके बाद उत्पाद-व्ययको गौण करके सामान्यको..

समाधान :- सामान्यको लक्ष्यमें ले। .. परिणमनेवाला हूँ, पर स्वभावरूप नहीं। ऐसे लक्ष्यमें लिया। मैं सामान्य ध्रुव अनादिअनन्त ज्ञायक हूँ, उसमें साथमें आ जाता है। उसमें उसे कालकी ओर दृष्टि नहीं करनी पड़ती। कालको खोजने नहीं पडता। परन्तु ये जो अस्तित्व है, वह अस्तित्व त्रिकाल है, ऐसी प्रतीति उसे उसमें साथ आ जाती है।

सहज स्वतःसिद्ध अस्तित्व ऐसा ही होता है कि जो त्रिकाल होता ही है। सहज अस्तित्व ज्ञायकका है। वह किसीने बनाया हुआ कृत्रिम नहीं है, सहज अस्तित्व है, अनादिअनन्त है।

मुमुक्षु :- मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसे तो विभाग करके परसे भिन्न पड़नेका प्रयत्न..

समाधान :- ज्ञायक ज्ञानरूप परिणमता है। उसकी विचारकी विधिमें कुछ भी आये, परन्तु उसे एक ज्ञायक ग्रहण करना है। विचार-विधिमें उसे क्रम पड़े कि ये ज्ञेय मैं नहीं हूँ। ये राग मैं नहीं हूँ। फिर प्रशस्त भावका गुणभेद, उसमें विकल्प साथमें रहते है। यह ज्ञान, यह दर्शन, यह चारित्र। अथवा मेरा ज्ञान है वह परिणमता है, ये पररूप नहीं परिणमता। ऐसे उसे गुण-गुणीका भेद पड़े, विचारकी विधिमें वह आये, उसका क्रम पड़े, लेकिन ग्रहण एकको करना है। किसीको द्रव्य-गुण-पर्यायरूपसे आते हैं, किसीको उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूपसे आये, किसीको ये ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय ऐसा भेद करके आये, ऐसे किसी भी प्रकारसे, कोई भी शब्द भाषामें हो, परन्तु उसे मूल एकको ग्रहण करनेका है।

ज्ञेयसे भिन्न करना, विभावसे भिन्न करना, और गुणभेद, पर्यायके भेद वह भी विकल्प है। उसमें वास्तविक गुणभेद या पर्यायभेद मूल वस्तुमें नहीं है। ग्रहण एकको करना है। क्रम उसे विचारकी विधिमें उस तरह आगे-आगे क्रम पड़ते हैं। पहले स्थूल होते-

होते, सूक्ष्म-सूक्ष्म होता जाता है। ज्ञेयसे भिन्न पड़ा, वह स्थूल। फिर रागसे भिन्न पड़ा, थोडा आगे चला तो गुणभेद, पर्यायभेद, उससे उपयोग सूक्ष्म किया। उससे सूक्ष्म एक द्रव्यको ग्रहण करना वह है।

मुमुक्षु :- पहले द्रव्य-पर्यायरूप वस्तुका यथार्थ स्वरूप सविकल्प दशामें प्रतीतिरूप आये और फिर मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा प्रतीतिमें आवे, ऐसा कोई क्रम है?

समाधान :- उसे विचारकी विधिमें ऐसा क्रम पड़ता है। ज्ञायक हूँ, ऐसे ग्रहण हो वह अलग है। वास्तवमें तो वह ग्रहण करनेका है। उसके विचारकी विधिमें ऐसा नक्की करे। शास्त्रमें भी आता है न कि प्रथम सुदृष्टि सो विचार किजे भिन्न। सूक्ष्म शरीर भिन्न जाने और विकल्पकी उपाधि भिन्न जाने। सुबुद्धिका विलास भिन्न जाने। वह क्रम आता है, लेकिन ग्रहण तो एकको करनेका है।

सच्चा ग्रहण किया उसे कहें कि जो एकको ग्रहण किया वह। उपयोग धीरे-धीरे सूक्ष्म-सूक्ष्म होता जाता है, आगे जाता है तब। ज्ञायक ग्रहण हो तो सब क्रम उसे एकसाथ आ जाता है। स्थूल और सूक्ष्म। एकदम हो जाय, एकदम ज्ञायक ग्रहण हो जाय, जल्दी हो जाय..

मुमुक्षु :- ऐसा भी बने?

समाधान :- हाँ।

मुमुक्षु :- सीधा ज्ञायकको ग्रहण करे और दूसरा ज्ञान यथार्थ हो जाय।

समाधान :- हाँ, ... हो जाय। उसे साथमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- किसीको कम विचारणा चले।

समाधान :- कम विचारणा चले। मैं कौन हूँ? ऐसा विचार करते-करते मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे ग्रहण हो जाय। तो उसमें उसे विकल्पके भेद, रागसे भेद सब एकसाथ आ जाता है। भेद सो मैं नहीं हूँ, परन्तु मैं एक अखण्ड द्रव्य हूँ।

मुमुक्षु :- पूर्व संस्कारका कारण बनता होगा?

समाधान :- नहीं, पूर्व संस्कार नहीं बनता। किसीकी वर्तमान तैयारी हो तो बने। चौथे कालमें ऐसा बन जाता। एकदम ग्रहण हो जाय। इस पंचमकालमें तो दुर्लभ है। जिसे अंतर्मुहूर्तमें हो जाता है, उसे एकदम ग्रहण हो जाता है।

मुमुक्षु :- आपको सहज लगता है, और हमें बहुत उलझन होती है। कोई बार विचार करते समय उलझनका अनुभव हो, कोई बार ऐसा लगे कि नहीं, ये तो सहज है। बारंबार वही प्रश्न कैसे पूछे?

समाधान :- ऐसी निराशा होनेका कोई कारण नहीं है। भावना हो, इसलिये वह विचार चलते रहे। भावना हो इसलिये प्रश्न भी आते रहे। जबतक अंतरमें स्वयंको जिज्ञासा

हो और कैसे प्रयत्न करना, इसलिये प्रश्न आते रहे।

मुमुक्षु :- भावनाके प्रकरणसे ही अनजाने हैं। कितना सुन्दर प्रकरण खुल गया है।

समाधान :- तबतक वह सब आता ही रहे, विचार, प्रयत्न सब चलता ही रहे। उस दिन बोला गया होगा, इसलिये उसमें सब आ गया। गुरुदेवके प्रतापसे...

मुमुक्षु :- प्रवचनमें बोला गया?

समाधान :- वांचनमें बोल गया हो, किसीने प्रश्न पूछा हो, उसमें बोला गया हो।

मुमुक्षु :- रागके अतिरिक्त दूसरा ऐसा क्या है कि .. होने नहीं देता? राग तो स्पष्ट समझमें आता है। दूसरी कोई दशामें ग्रन्थिभेदकी कोई निर्मलता नहीं है, उसके पहले तो रागकी प्रधानता तो है ही, ऐसा कौन-सा दूसरा तत्त्व भावनामें है कि जो भावनाको सफल करता है?

समाधान :- भावनाके साथ राग जुड़ा होता है। परन्तु परिणति अपनी ओर जोरदार (होती है कि) एक आत्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ मुझे नहीं चाहिये। वह भावना अन्दरसे जोर (करती है)। परिणति, ऐसी योग्यता अंतरमेंसे जीवकी प्रगट होती है। अपने पुरुषार्थ, रुचि उस ओरकी जागृत होती है कि मुझे ये कुछ नहीं चाहिये। उसकी रुचि कहीं टिकती नहीं। रुचि एक आत्माकी ओर ही जाती है कि अन्दर आत्मामेंसे कोई अपूर्वता, अंतरमेंसे अपूर्व शान्ति या अपूर्व आनन्द आ जाय। आत्मामेंसे कुछ अंतरमें-से प्रगट हो। ऐसी अपनी रुचि आत्माकी ओर जाती है। राग है, परन्तु रागके साथ अपनी भावनाकी ऐसी परिणति जोरदार होती है।

मुमुक्षु :- आत्मा चाहिये, ऐसे?

समाधान :- आत्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। अंतरमें-से आत्माकी कोई अपूर्वता प्राप्त हो, कि जिसके बिना उसे कहीं शान्ति नहीं होती। उसे प्राप्त हुए बिना रहे ही नहीं। अंतरमें-से ऐसी भावना जागृत हुयी हो तो।

मुमुक्षु :- खास पात्रतामें... बहुत सुन्दर विषय आया है।

समाधान :- अपनी अंतरमें-से ऐसी पात्रता हो कि स्वयंको आत्मा प्राप्त होकर ही छूटकारा हो। ऐसी परिणति अपनी ओर, रुचिकी परिणति ऐसे मुड़ती है। परिणति ही स्वयंको जोरसे खींँचकर आत्माकी ओर लाती है। रुचि ही स्वयंकी (ऐसी हो जाती है कि) उसे बाहर कहीं शान्ति नहीं होती। उसकी परिणति ही जोरदार स्वयंको प्रगट हुए बिना रहती ही नहीं।

.. उसमें आ गया है न कि तो जगतको शून्य होना पड़े। अपनी परिणति ही स्वयंको प्रगट हुए बिना रहे ही नहीं। ऐसा कुदरतका स्वभाव है। परिणति ही स्वयंकी

ओर लाती ही है। जगतको शून्य (होना पड़े अर्थात्) अपना स्वभाव कार्य किये बिना रहे ही नहीं। जगतको शून्य (होना पडे)। तो वस्तु ही न रहे, यदि स्वयं अपनी परिणति प्रगट न करे तो।

मुमुक्षु :- राग है, फिर भी राग तो वहाँ देखता नहीं।

समाधान :- राग देखता नहीं। राग साथमें आये लेकिन राग देखता नहीं। राग रहित वस्तु मुजे चाहिये। ऐसी भावना है। अपनी परिणति अंतरमें-से स्वयं ही प्रगट किये बिना रहे नहीं। जगतको शून्य होना पडे। द्रव्यका नाश हो जाय। लेकिन द्रव्यका नाश तो होता ही नहीं। स्वयं अपनी परिणति प्रगट किये बिना नहीं रहता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-१९९

समाधान :- ... शरीर भिन्न, भिन्न तत्त्व, अन्दर विभावपर्याय वह अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न आत्माका स्वभाव है, उसका भेदज्ञान करके ज्ञायकको पहचानना वही है।

मुमुक्षु :- ... बहुत कम टिकता है न? वह टिकनेके लिये क्या करना? ज्ञायकको ही ज्ञेय बना दे, वह कैसे करना? वह चाबी बताईये आप।

समाधान :- उसकी लगन लगे, उसकी जिज्ञासा जागे, पुरुषार्थ बारंबार-बारंबार उसकी ओर जाय। विचार करे अन्दर की ये जो ज्ञायक जाननेवाला है वही मैं हूँ। अन्दर जो विचार आते हैं कि यह ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ऐसे गुणभेदके विचार भी आये। परन्तु मैं तो एक अखण्ड ज्ञायक हूँ। उसमें टिकनेके लिये, न टिके तो बारंबार उसका विचार करे, बारंबार अभ्यास करे। अभ्यास करते-करते अन्दर जो स्वभाव है वह ग्रहण होता है कि ये ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ। ज्ञायक स्वभाव जो दिखे, रागके साथ मिश्रता दिखती है, लेकिन वह ज्ञान भिन्न है। ज्ञान जो दिखता है वह द्रव्यके आधारसे है। द्रव्यके आधारसे वह स्वभाव है। वहाँ उसकी दृष्टि जाय तो वह ग्रहण हो।

मुमुक्षु :- भावक, भावकरूपसे टिकता नहीं।

समाधान :- भावक स्वयं टिकता नहीं है, पुरुषार्थसे टिके। छाछमें मक्खन मिश्र होता है। लेकिन उसका मन्थन करते-करते भिन्न पडता है। वैसे अनादिसे भ्रान्ति ऐसी हो रही है कि मानो मैं विभावके मिश्र हो गया। परन्तु अनादिसे तत्त्व तो भिन्न ही है। लेकिन भ्रान्तिके कारण मिश्र भासता है। बारबार स्वभावको ग्रहण करके, मैं भिन्न हूँ, ऐसी दृष्टि करे, ऐसी प्रतीत करे तो उस ओर परिणति-लीनता प्रगट हो। ऐसा स्वयंको पुरुषार्थ करना चाहिये। वह न हो तबतक, मक्खन भिन्न न पड़ जाय तब तक बारंबार-बारंबार उसका अभ्यास, मंथन करते ही रहना है।

मुमुक्षु :- इसलिये ऐसा ही करता रहता हूँ कि प्रमत्त नहीं हूँ, अप्रमत्त नहीं हूँ। मैं एक ज्ञायकभाव हूँ।

समाधान :- प्रमत्त भी नहीं है, अप्रमत्त भी नहीं है, एक ज्ञायकभाव है। दृष्टि

तो आचार्यदेवने बतायी कि छठवें-सातवें गुणस्थानमें मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य झुलते थे। तो भी कहते हैं कि ये प्रमत्तदशा या अप्रमत्तदशा, दोनों दशासे भिन्न मैं तो एक ज्ञायक हूँ। दोनों पर्यायके भेद हैं। दृष्टि तो वहाँ करनी है।

आचार्यदेव सम्यग्दर्शनकी भूमिकासे आगे गये। चारित्रकी भूमिका, मुनिकी दशामें हैं। छठवें-सातवें गुणस्थानमें उन्हें बारंबार स्वानुभूति प्रगट होती है। निर्विकल्प दशा मुनिराजको, कुन्दकुन्दाचार्यको, जो मुनिराजोंको छठवे-सातवें गुणस्थानमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तके कालमें क्षण-क्षणमें स्वानुभूति प्रगट होती है। क्षणमें अंतरमें आये, क्षणमें बाहर आये। क्षणमें अंतरमें जाय, क्षणमें बाहर आते हैं। बाहर आये तब शुभके विचार आते हैं, या शास्त्र लिखनेका, या देवका, या गुरुका।

मुमुक्षु :- उन सबको विकल्प कहते हैं?

समाधान :- वह विकल्प हैं। बाहर आये वह विकल्प है। हाँ। जो शुभभाव आये वह विकल्प हैं। और अंतरमें विकल्प छूटकर निर्विकल्प दशा (होती है), विकल्प छूट जाय और अंतरमें निर्विकल्प दशा होती है तब कोई विकल्प नहीं रहते।

मुमुक्षु :- विकल्प है वही कर्ता है, विकल्प ही कर्म है। अमृतचन्द्राचार्यदेवने कहा है न? विकल्प कर्ता, विकल्प कर्म, एक श्लोक है।

समाधान :- विकल्प कर्ता, विकल्प कर्म, सब विकल्प है। परन्तु उस विकल्पसे छूटकर अंतरमें जाय, वहाँ उन्हें स्वानुभूति होती है। तो वह निर्विकल्प दशा है। वह निर्विकल्प दशा शून्य नहीं है। परन्तु वह अन्दर स्वभावसे लबालब भरा है।

मुमुक्षु :- वह टिकती है?

समाधान :- हाँ। वह टिके। उन्हें अंतर्मुहूर्त दशा टिकती है। फिर बाहर आते हैं। अंतर्मुहूर्त यानी अमुक क्षण टिकती है। फिर बाहर आते हैं। विकल्पमें फिर बाहर आये वहाँ शास्त्रके, गुरुके, देवके ऐसे विकल्प (आते हैं)। मुनिराजको तो ऐसे विकल्प (होते हैं)। गृहस्थाश्रममें हो, उसे अनेक जातके विकल्प (आते हैं)। मुनिराजको तो देव-गुरु-शास्त्रका (विकल्प आता है)।

मुमुक्षु :- मुनिराजसे आगे...?

समाधान :- मुनिदशासे आगे जाय तो उसे केवलज्ञान हो जाय।

मुमुक्षु :- वह निर्विकल्प दशा।

समाधान :- बस। मुनिदशामें क्षण-क्षणमें निर्विकल्प दशा होती है। स्वानुभूति। और उस निर्विकल्प दशामें यदि टिक जाय, निर्विकल्प दशा क्षणमात्र होती है, क्षणमें बाहर आते हैं। स्वानुभूति क्षणमें हो और क्षणमें बाहर आये। तो यदि वे स्वानुभूतिमें ऐसे ही शाश्वत टिक जाय तो केवलज्ञान हो जाता है। तो पूर्ण-पूर्ण दशा पराकाष्टा (हो

जाती है)। फिर उससे आगे (कोई दशा) नहीं है। पूर्ण आनन्दसागरमें डोले और केवलज्ञान प्रगट हो जाय कि जो लोकालोकका ज्ञान (करता है)। वहाँ जानने नहीं जाता, परन्तु सहज जाननेमें आ जाता है। वह दशा प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- जो क्षण-क्षणमें विकल्पमें आये, निर्विकल्पमें चले जाय, उसे केवलज्ञान क्षणमें... जिस क्षण निर्विकल्प दशामें हो उस वक्त केवलज्ञान होता है?

समाधान :- नहीं, उस समय केवलज्ञान नहीं होता है। निर्विकल्प दशाके समय (नहीं होता)। केवलज्ञान तो जो पूर्ण वीतराग हो उसे केवलज्ञान होता है। जिसकी दशा बाहर आनेकी होती है, उसे केवलज्ञान नहीं होता। उसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान होता है। किसीको अवधिज्ञान, किसीको मनःपर्ययज्ञान ऐसा होता है। परन्तु केवलज्ञान तो जो वीतरागी होते हैं, उनको ही केवलज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- तो फिर वह तो बारहवेंके बाद ही आये न?

समाधान :- बारहवें गुणस्थानके बाद केवलज्ञान होता है। परन्तु छठवें-सातवें गुणस्थानमें मुनिदशामें झुलते हों, उसमें श्रेणि लगा दे। लेकिन वह श्रेणी ऐसी होती है कि अंतर्मुहूर्तमें दो घडीमें उसे पूर्ण अनुभव हो जाता है। ये आंशिक है। मुनिको विशेष अनुभव (है)। और गृहस्थाश्रममें जो सम्यग्दृष्टि हो, जिसे सम्यग्दर्शन हो, उसे स्वानुभूति कोई-कोई बार होती है। और मुनिको क्षण-क्षणमें स्वानुभूति होती है। मुनिको जल्दी-जल्दी होती है। और गृहस्थाश्रममें सम्यग्दृष्टि हो, उसे आत्माकी स्वानुभूति होती है। जिसे सम्यग्दर्शन हो (उसे)। परन्तु उसे स्वानुभूति कभी-कभी होती है। और जो मुनि होते हैं, उनको जल्दी-जल्दी होती है। और जिसे केवलज्ञान होता है, उसे टिक जाता है।

मुमुक्षु :- गृहस्थीको जो सम्यग्दर्शन होता है, वह प्रत्यक्ष होता है कि परोक्ष होता है?

समाधान :- सम्यग्दृष्टिको? केवलज्ञानकी अपेक्षासे वह परोक्ष है, परन्तु उसका वेदन जो स्वानुभूति है, उसे वेदन तो प्रत्यक्ष है। उसे स्वानुभूति ऐसी होती है कि किसीको पूछना न पड़े। उसे आत्मामें ऐसा ही होता है कि, यही स्वानुभूति है। उसे आंशिक, जो सिद्ध भगवानको पूर्ण आत्माका स्वाद, आत्माका अनुभव पूर्ण होता है, उसका अंश उसे प्रगट होता है, पूर्ण नहीं है। जैसे दूजका चन्द्रमा होता है वह पूरा होता है, परन्तु उसकी दूज उगती है। वैसे सम्यग्दृष्टिको एक अंश प्रगट होता है। आंशिक स्वानुभूति होती है। पूर्ण स्वानुभूति नहीं है। आनन्दका सागर पूर्ण हो उसमें-से उसे अंश प्रगट होता है, गृहस्थाश्रममें।

मुमुक्षु :- उस अंशको पूर्ण बनाना हो तो..

समाधान :- हाँ, तो बारंबार-बारंबार उसकी स्वानुभूति (करता है)।

मुमुक्षु :- गृहस्थाश्रममें गिर जाय, सम्यग्दर्शनमें-से मिथ्यादर्शनी हो जाय, हो सकता है?

समाधान :- कोई हो जाता है। कोई पलट जाय, पुरुषार्थ मन्द हो जाय तो पुनः मिथ्यादर्शन हो जाय। परन्तु जिसे पुरुषार्थ एकदम तीव्र हो, उसे पलटता नहीं।

मुमुक्षु :- राजचन्द्रजीने कहा है कि एक बार यदि सम्यग्दर्शन हुआ तो वह गिरता नहीं।

समाधान :- हाँ, बहुभाग नहीं गिरता। गिरता नहीं है उसका अर्थ क्या?

मुमुक्षु :- उसे पंद्रह भवमें जाना ही पड़े।

समाधान :- एकबार जिसे सम्यग्दर्शन होता है, वह पंद्रह भवमें अवश्य मोक्ष जाता है। वह गिरता नहीं है, उसके लिये। और उससे ज्यादा बार गिर जाय तो अर्ध पुद्गल परावर्तन कालमें तो अवश्य मोक्षमें जाता है। एक बार जिसे सम्यग्दर्शन होता है वह। इसलिये वह तो अर्ध पुद्गल परावर्तन। और जो नहीं गिरता है, वह पंद्रह भवमें जाता है। और जो गिर जाता है अर्ध पुद्गलपरावर्तनें, फिरसे उसे प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- पंद्रह भव करना ही पड़े, ऐसा है? दो-तीन भवमें...

समाधान :- नहीं, करना ही पड़े ऐसा नहीं। उसे ज्यादा-से ज्यादा पंद्रह भव होते हैं। और उससे पुरुषार्थ अधिक चल जाय तो तीन भवमें जाय, कोई एक भवमें जाय।

मुमुक्षु :- एक भवमें जा सकता है?

समाधान :- हाँ, जा सकता है, जा सकता है। यह पंचमकाल है, इसलिये यहाँ केवलज्ञान अभी नहीं है। इसलिये एक भव देवका करके, फिर मनुष्यका भव होकर फिर मोक्षमें जाय। और यहाँ जब महावीर भगवानके समयका चतुर्थ काल था, उस वक्त तो उसी भवमें भी होता था। लेकिन अभी यह ऐसा दुषमकाल है। स्वयं पुरुषार्थ उतना उत्पन्न नहीं कर सकता है।

मुमुक्षु :- दुषमकालमें धर्मध्यान या शुक्लध्यान नहीं हो सकता।

समाधान :- नहीं, धर्मध्यान हो सकता है, शुक्लध्यान नहीं होता।

मुमुक्षु :- नहीं होता?

समाधान :- शुक्लध्यान नहीं होता। धर्मध्यान होता है। सम्यग्दर्शन हो, मुनिदशा हो, परन्तु केवलज्ञान नहीं होता। अभी शुक्लध्यान नहीं है।

मुमुक्षु :- शुक्लध्यान केवलज्ञानीको ही होता है?

समाधान :- हाँ, जिसे केवलज्ञान प्रगट हो...

मुमुक्षु :- मुनिको नहीं होता?

समाधान :- मुनिको धर्मध्यान होता है। शुक्लध्यानके दो भाग हैं-एक प्रथम भाग और एक दूसरा भाग। दूसरा भाग शुक्लध्यानका एकदम उज्जवल होता है। जिसे केवलज्ञान होता है उसीको शुक्लध्यान होता है। और ये सम्यग्दर्शन तो गृहस्थाश्रममें होता है। और उसकी स्वानुभूति, सम्यग्दर्शन वह गिरता नहीं है तो पंद्रह भवमें, तीसरे भवमें ऐसे जाता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते हैं न कि सम्यग्दर्शनके बाद ही धर्म शुरू होता है। जैन किसे कहते हैं? जिसे सम्यग्दर्शन हुआ हो वह।

समाधान :- सम्यग्दर्शन हुआ हो वही सच्चा जैन कहलाता है। सच्चा जैनत्व तब कहनेमें आता है। सम्यग्दर्शन न हो तबतक भावना करे, विचार करे कि मैं ज्ञायक हूँ, ये स्वरूप मेरा नहीं है। उसका भेदज्ञान करे। यह शरीर मैं नहीं हूँ, ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। यह ज्ञान, दर्शन, चारित्र ऐसे विकल्प बीचमें आये, लेकिन ये सब बीचमें राग है। उस रागसे भी मैं भिन्न चैतन्य अखण्ड द्रव्य हूँ। इस प्रकार अपने ज्ञायकका अस्तित्व भिन्न विचारे। ज्ञायकके अन्दर अनन्त गुण हैं। उसकी पर्यायें परिणमती है। ऐसा उसका स्वभाव (है)। उसका विचार करे, उसका निर्णय करे। जबतक प्रगट न हो, तबतक उसका विचार, वांचन, महिमा, लगन करता रहे। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, जबतक न हो तबतक करता रहे।

मुमुक्षु :- समयसार तो मुझे निश्चितरूपसे लगा कि, सम्यग्दर्शन न हो तबतक वह समझमें आये ऐसा नहीं है।

समाधान :- अपनी परिणति प्रगट हो, भेदज्ञान, स्वानुभूति उसे सम्यग्दर्शन कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- मिथ्यादर्शनको निकालना वह सम्यग्दर्शन।

समाधान :- सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, इसलिये मिथ्यादर्शन चला जाता है। वह तो आमनेसामने है। ... अलग वस्तु है। शास्त्रसे विचार करे वह अलग बात है। अंतरमें परिणति प्रगट करनी, वह अलग वस्तु है।

मुमुक्षु :- ज्ञानका अर्थ ही गुरुदेवने इतना सुन्दर समझाया है। ज्ञान माने क्या? शास्त्रोंका ज्ञान वह ज्ञान ही नहीं है। आत्माका परिणमन वह ज्ञान है। उस ज्ञानमें परिणमे वह..

समाधान :- ... ज्ञान तो अंतरमें (होता है वह है)।

.. उसके सब क्रम आते हैं। गुणकी भूमिका। सम्यग्दर्शन, उसके बाद उसमें अधिक लीनता हो तो पाँचवी भूमिका आये, फिर छठ्ठीस-सातवीं भूमिका मुनिओंकी आये, ऐसे-ऐसे अन्दर श्रेणि बढती जाय, सम्यग्दर्शनके बाद उसकी चारित्रदशा अंतरकी स्वानुभूति

बढती जाती है, ऐसे।

मुमुक्षु :- फिर भी उन सबको जड़में डाल दिया।

समाधान :- हाँ, वह आता है। वह जड़में (कहा), परन्तु...

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- दृष्यि यथार्थ कर, ज्ञान यथार्थ कर। परन्तु बीचमें पुरुषार्थ करनेका तो आता है। अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य है, उस द्रव्यके अन्दर कुछ मलिनता नहीं हुयी है या अपूर्ण-पूर्णकी अपेक्षा नहीं है। गुणस्थान सब जड़ है, ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। परन्तु तेरी साधनामें बीचमें आये बिना नहीं रहते।

निश्चय और व्यवहारकी सन्धि ऐसी है कि उसे सुलझाना, वह तो उसकी यथार्थ दृष्टि हो तो सुलझा सकता है। उसे जड़ कहा और तेरे चैतन्यमें अन्दरकी अनुभूति होती है। तेरे अन्दर चारित्रदशा आती है, ऐसा कहा। चारित्रका विकल्प आये वह सब विभाव है, ऐसा कहा। मति-श्रुतज्ञान, अवधि, मनःपर्यय वह सब ज्ञानके भेद हैं। वह भेद भी तेरा पूर्ण स्वरूप नहीं है। तू तो ज्ञायक है। फिर बीचमें भेद तो आते हैं। मतिज्ञान हो, श्रुतज्ञान हो, केवलज्ञान हो, सब होता है। फिर कहते हैं कि तू केवलज्ञान पर दृष्टि मत करना। केवलज्ञान तो एक पर्याय है। इसलिये तू अखण्ड पर दृष्टि कर। लेकिन वह प्रगट हुए बिना रहता नहीं। निश्चय-व्यवहारकी ऐसी सन्धि है। दृष्टि तो अखण्ड द्रव्य पर कर, परन्तु बीचमें ज्ञानकी पराकाष्टा तो प्रगट होती है। उसका ज्ञान कर। प्रतीति यथार्थ कर, उसका ज्ञान कर कि ऐसे पर्यायके भेद अन्दर प्रगट होते हैं।

मुमुक्षु :- क्योंकि आत्मा अनन्त धर्मात्मक है। इसलिये व्यवहारनय और द्रव्यनय, वह तो साथमें रहेंगे ही।

समाधान :- हाँ, व्यवहार तो पर्यायका भेद है, वह साथमें होता है, उसका ज्ञान कर। पर्यायके जो भेद है,.. क्या द्रव्य अनन्त कहा?

मुमुक्षु :- धर्मात्मक। आत्मा अनन्त धर्मात्मक..।

समाधान :- हाँ, हाँ, अनन्त धर्मात्मक। अनन्त धर्म आत्मामें हैं, उसका ज्ञान कर। परन्तु तू ऐसे विकल्प करता रह कि ये ज्ञान है, ये दर्शन है, ये चारित्र है, यह है, यह है। ऐसे तू उसका ज्ञान कर, परन्तु विकल्पमें रुकनेसे तो राग होता है। इसलिये तू दृष्टि निर्विकल्प पर कर। परन्तु निर्विकल्प दशा प्रगट नहीं हुयी है इसलिये विकल्प तो बीचमें आते हैं, इसलिये उसका ज्ञान बराबर कर। इसलिये उसमें गुण नहीं है, ऐसा नहीं है। उसमें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, सब है। परन्तु वह अभेद है, ऐसे। उसमें कोई टूकड़े नहीं हैं।

मुमुक्षु :- जीवनमें ये दो वस्तु तो रहेगी।

समाधान :- वह है। परन्तु उसके टूकडे, उसके भेद-टूकडे नहीं करना। है तो सही, लेकिन टूकड़ा नहीं करना।

मुमुक्षु :- परन्तु दृष्टि उस पर..

समाधान :- दृष्टि अखण्ड पर रखनी। एक आम हो, वह हरा है, पीला है या खट्टा है, या मीठा है, उन सबका तू ज्ञान कर, परन्तु वह तो एक अखण्ड वस्तु है। उसमें कोई टूकड़े नहीं है। रसका या रंगका टूकड़ा नहीं होता। वह सब तो अखण्ड है। ऐसे तू गुणका ज्ञान कर। उसमें भेद करके उसमें रुकना मत। रुकनेसे तो राग होगा। ... मीठा है, दूध ऐसा है। वैसे आत्मा ज्ञान है, आत्मामें दर्शन है, आत्मामें चारित्र है। ऐसे सब विचार कर, लेकिन वह सब तो एकमें है। रागको जड़ कह दिया। और एक बार कहा, तेरी अपनी पर्यायमें होता है। दोनों अपेक्षा (समझनी चाहिये)।

मुमुक्षु :- समयसारमें बहुत बार उलझ जाते हैं। एक बार जड़में रखा, एक बार (कहा) जीवका ही भाव है वह। शान्तिसे उसे... न बैठे तो उसे पकड़ नहीं पाते।

समाधान :- वैसे स्फटिक निर्मल है। उसमें प्रतिबिंब उठते हैं। वैसे आत्मा निर्मल है, उसमें प्रतिबिंब लाल-पीले उठते हैं, वह निमित्त ओरसे है। निमित्त-ओरसे विभाव हो वह तेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे (होता है)। द्रव्य आत्मा तो निर्मल है। ऐसे आत्मामें गुणके भेद पड़े कि आत्मा ज्ञान है। वह तो विभावका भेद पडा। लेकिन जैसे स्फटिक श्वेत है, स्फटिक प्रकाशवाला है। ऐसे आत्मा निर्मल है, आत्मा ज्ञानमय है। द्रव्यमें ही, तेरी वस्तुमें भेद पड़ा। उसमें तू अखण्ड दृष्टि कर। वह तो रागका भेद पड़ा। रागको जड़ कहा, ये तो गुणका भेद पड़ा। उसमें भी तेरी दृष्टि तो अखण्ड पर कर।

ऐसे गुणस्थानका भेद पड़ा। केवलज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वह सब ज्ञान तो आत्मामें प्रगट होते हैं। तो उसमें भेद पर दृष्टि नहीं करना, दृष्टि अखण्ड पर तू कर। लेकिन ज्ञान सबका कर। वह निश्चय-व्यवहारकी सन्धि ऐसी है कि उसमें बराबर समझे तो (समझमें आये)। ऐसा है।

मुमुक्षु :- बहुत उलझ जाय ऐसा है। हमारे जैसे उसमें बहुत उलझ जाते हैं। परन्तु जाननेवाला उसे उसके गुणसे जानता नहीं, यहाँ रखा हो तो काला लगे, यहाँ रखो तो अलग लगे।

समाधान :- अलग लगे, काला लगे, लाल लगे। उसकी दृष्टि स्थूल है। जिसकी दृष्टि आत्मा पर है, उसे आत्मा स्फटिक जैसा लगता है। दूसरोंको रागी, द्वेषी, क्रोधी लगता है। भेदज्ञान करे वह तो कहे, मैं तो भिन्न हूँ। लेकिन वह होता है, वह सिर्फ जड़ नहीं है, मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। परन्तु मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव उससे भिन्न है। उसे जानता है कि यह होता है। मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है, उसे तोड़नेका

प्रयत्न करता है। यदि बिलकूल जड़में डाल दे तो फिर पुरुषार्थ किस बातका? जड़में डाल दो तो ऐसा हो।

मैं स्फटिककी भाँति भिन्न हूँ। परन्तु ये जो राग खड़ा है वह मेरेमें नहीं है। लेकिन मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे खड़ा रहता है। इसलिये मेरी परिणित पुरुषार्थ करनेका बाकी रहता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२००

समाधान :- .. तब ऐसा हो कि गुरुदेवका जन्म-दिवस आये तो क्या करें? जितना करें उतना कम है। भगवानके और सबके जन्म कल्याण मनाते हैं। चैत शुक्ल-१३ आती है। वैसे गुरुदेव इस पंचमकालमें जन्मे, उनका जन्म-दिन भी ऐसा ही मंगलकारी है। सबको...

मुमुक्षु :- आता है न? द्रव्य मंगल, क्षेत्र मंगल, काल मंगल।

समाधान :- हाँ, द्रव्य मंगल, क्षेत्र मंगल, काल मंगल, भाव मंगल, सब मंगल है। इस पंचमकालमें भावि तीर्थंकरका द्रव्य माने जितना करें उतना कम है। और इस पंचमकालमें आकर वाणीकी वर्षा बरसायी है। भगवान जैसा कार्य किया है। निरंतर वाणी बरसायी है। भगवानकी जैसे नियमितरूपसे वाणी बरसा करती है, वैसे गुरुदेवकी वाणी बरसती रहती थी। ... गुरुदेवने मार्गका परिवर्तन किया। विचार करके यह सच्चा लगा, इसलिये हीराभाईके बंगलेमें (परिवर्तन किया)।

मुमुक्षु :- चार दिनके बाद चैत शुक्ल-१३ है।

समाधान :- हाँ। .. स्वीकार किया था, लेकिन बाहरसे।

समाधान :- .. उस ज्ञायक आत्मामें सब भरपूर भरा है। वही महिमावंत है। ऐसे बारंबार उसका अभ्यास, उसका विचार, चिंतवन, मनन (करते रहना)। बाहरमें तो श्रावकोंको देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा होती है। अंतरमें चैतन्य कैसे पहचानमें आये, चैतन्यकी महिमा, आत्माकी महिमा करने जैसी है। उसका भेदज्ञान कैसे हो, उसका स्वभाव कैसे पहचानमें आये? ज्ञायकस्वरूप आत्मामें ही शान्ति भरी है, उसीमें आनन्द है। बाहरको सब विकल्प तो आकुलतारूप है।

मुमुक्षु :- शान्ति ही लगती है।

समाधान :- शान्ति लगे ऐसा है।

मुमुक्षु :- विशेष तो भेदज्ञान...

समाधान :- भेदज्ञानके बिना तो... यथार्थ शान्ति तो भेदज्ञान करके, निर्विकल्प अनुभव हो तब ही खरी शान्ति, खरा आनन्द तो तभी स्वानुभूतिमें आता है। बाकी पहले उसकी श्रद्धा करे, भेदज्ञान करे, प्रतीत करे। भेदज्ञानमें आंशिक शान्ति (लगती

है)। बाकी तो स्वानुभूतिकी शान्ति अपूर्व है, वह आनन्द अपूर्व है। खरा आनन्द तो स्वानुभूतिमें है। भेदज्ञानमें ज्ञायकको भिन्न करे तो उसमें अमुक प्रकारसे शान्ति है। बाकी विकल्पकी एकत्वता वह सब तो आकुलता है।

मुमुक्षु :- दूसरा कोई विकल्प न करे और मैं चैतन्य ही हूँ, ऐसा करे तो?

समाधान :- विकल्प न करे तो (ऐसा नहीं होता), विकल्प आये बिना रहते ही नहीं। मैं चैतन्य हूँ, वह भी एक शुभभावका विकल्प है। विकल्प न करे (ऐसे नहीं होता)। पहले विकल्प नहीं छूटते, विकल्पसे मैं भिन्न हूँ, ऐसी श्रद्धा-पहले तो प्रतीत हो, पहले तो भेदज्ञान हो, बादमें विकल्प छूटते हैं। विकल्प न करें तो? विकल्प तो बीचमें आते हैं। उसकी कर्ताबुद्धि तोड़नी है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं कोई विभावका कर्ता नहीं हूँ। मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ। परन्तु विभाव परिणति तो बीचमें आती है। मैं चैतन्य हूँ, ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ सब विकल्प है।

मुमुक्षु :- तो फिर अन्दरकी शान्ति नहीं कहलाती?

समाधान :- अन्दरकी शान्ति कहलाती। ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, ऐसे शुभभावके कारण मन्दता हो, आकुलता कम हो, इसलिये उसकी शान्ति लगे। परन्तु वह कोई अंतर स्वभावकी शान्ति नहीं है। विकल्प मन्द हुए, शुभभाव कषाय मन्द हुआ, शुभभावका आश्रय लिया इसलिये शान्ति लगे। अप्रशस्तमें-से प्रशस्तमें आया-देव-गुरु-शास्त्रमें उसे शान्ति लगे और अंतरमें जाय, श्रुतका चिंतवन करे कि मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, ऐसे विचार करे तो भी उसे शान्ति लगे। लेकिन वह शान्ति स्वभावकी शान्ति नहीं है।

स्वभावकी शान्ति तो भेदज्ञान करे, यथार्थ भेदज्ञान करे, अभी तो पहले श्रद्धा होती है, भेदज्ञानकी परिणति यथार्थ हो तो उसमें शान्ति हो। आनन्द तो विकल्प छूटकर निर्विकल्प हो, तब वह आनन्द आता है। अभी तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र (आदि विकल्प) मिश्रित है, वह कोई निर्विकल्प (दशा) नहीं है।

मुमुक्षु :- इसमें आनन्द तो आता है, बहुत शान्ति लगती है।

समाधान :- विकल्प मिश्रित है, शुभभावका आनन्द है। प्रशस्त भावका आनन्द है। वह तो बीचमें आये बिना नहीं रहता। जबतक आत्माकी निर्विकल्प शान्ति, आनन्द नहीं आता तबतक मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, ऐसे विकल्प आये बिना नहीं रहते। आचार्यदेव कहते हैं कि मैं आगे जानेका कहता हूँ, वहाँ अटकनेको नहीं कहते हैं, उसे छोड़नेका नहीं कहते हैं, परन्तु तू आगे बढ़। तेरा स्वभाव तो विकल्प रहित निर्विकल्प आनन्दस्वरूप है, ऐसा कहते हैं।

मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, वह बीचमें आता है। लेकिन वह कोई मूल

स्वभाव नहीं है। भिन्न चैतन्य हूँ। अखण्ड चैतन्य पर दृष्टिको स्थापित करनी, भेदज्ञानका प्रयत्न करना, वह शान्ति-स्वभावमें-से शान्ति (आनेका उपाय है)। अभी शान्ति उसमें प्रगट नहीं हुयी है, परन्तु उसका भेदज्ञान करना वह उसका उपाय है। ये सब विचार तो बीचमें आते हैं-ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ। लेकिन उसमें शान्ति नहीं मान लेना। वह कोई स्वभावकी शान्ति नहीं है। वह तो स्वभाव पहचाननेके लिये बीचमें आता है। लेकिन मैं चैतन्य हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी दृष्टि करके यथार्थ ज्ञायकको ग्रहण करनेका प्रयत्न करे। ज्ञायक यथार्थपने ग्रहण तो भेदज्ञान हो। ज्ञायकको ग्रहण करे, भेदज्ञानका प्रयत्न करना, यथार्थ शान्ति प्रगट करनेके लिये। अंतरमेंसे सूक्ष्म ग्रहण करे, आत्माका स्वभाव पहचाने तो यथार्थ शान्ति हो। वह शान्ति तो विकल्प मिश्रित है, वह विकल्प रहित शान्ति नहीं है। प्रशस्त भाव है।

मुमुक्षु :- इतना कहाँ मालूम पड़ता है, आत्माकी शान्ति तो...?

समाधान :- क्या?

मुमुक्षु :- चिड़ीयाको, मेंढकको।

समाधान :- उसे मालूम पड़ जाता है। उसे ज्ञान, दर्शन, चारित्रके नाम भी नहीं आते, नौ तत्त्वके नाम नहीं आते। लेकिन यह ज्ञानस्वभाव मैं, यह हूँ, ऐसे उसे विचार आते हैं। लेकिन वह समझता है कि यह सब आकुलता है, मैं उससे भिन्न चैतन्य हूँ। ऐसे अस्तित्वको ग्रहण कर लेता है। उसे नामकी जरूरत नहीं पड़ती, भाव ग्रहण कर लेता है।

उसे कहीं सुख नहीं है, ऐसे कोई भाव उसे प्रगट होते हैं। ये सब आकुलता है। विभावोंकी आकुलता भास्यमान होकर, अन्दरमें-से ऐसा भावभासन हो जाता है कि मैं कौन हूँ? और यह सब क्या है? मेरा स्वभाव क्या? और यह सब क्या है? उसमें-से उसे स्वभाव ग्रहण हो जाता है कि यह चैतन्य मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। ऐसा भावभासन हो जाता है। उसमें स्वयंको ग्रहण कर लेता है। सूक्ष्म-सूक्ष्म भाव भी आकुलतारूप है और विकल्प रहित मेरा आत्मा वही शान्ति और आनन्द है, ऐसी प्रतीति और ऐसा भावभासन हो जाता है।

मुमुक्षु :- मनुष्यसे उसकी शक्ति ज्यादा है?

समाधान :- शक्ति ज्यादा नहीं है। उसे ऐसे कोई संस्कार (होते हैं), पूर्व भवमें सुना होता है, उसमें-से आत्मा जाग उठता है। मनुष्योंकी शक्ति ज्यादा है, लेकिन जो पुरुषार्थ करे उसे हो।

मुमुक्षु :- भावभासन।

समाधान :- भावभासन होता है। उसे पूर्वके संस्कार (होते हैं), सुना होता है,

कोई गुरुके पास, कोई देवके पास सुना होता है, उसमें-से उसे संस्कार जाग उठते हैं।

मुमुक्षु :- पहले सुना होता है?

समाधान :- पहले सुना होता है।

मुमुक्षु :- फिर आयुष्यका बन्ध पड़ गया हो, इसलिये..

समाधान :- इसलिये तिर्यंच हो जाता है।

मुमुक्षु :- वहाँ फिर ऐसा भाव प्रगट करता है।

समाधान :- ऐसा भाव प्रगट कर लेता है।

मुमुक्षु :- किसीको अभ्यास करनेकी शक्ति हो, और किसीको कम हो, उसे रुचिका भाव हो, तो उसे पकड़ सकता है न?

समाधान :- अभ्यास करनेकी अर्थात् श्रुतज्ञान कम हो, ऐसे। किसीको शास्त्रका कम हो लेकिन भावभासन हो जाय कि मैं यह चैतन्य हूँ। लंबे समय अभ्यास करना पड़े ऐसा नहीं होता, अभ्यास करनेकी शक्ति ऐसे नहीं, किसीको लंबा समय अभ्यास करना न पड़े, एकदम पुरुषार्थ उत्पन्न हो जाय। किसीको लंबे समय तक अभ्यास करे तो होता है। किसीको एकदम पुरुषार्थ (उत्पन्न हो जाता है)। मन्द-मन्द पुरुषार्थ करे तो लंबे समय अभ्यास करे। एकदम पुरुषार्थ उत्पन्न हो तो अल्प समयमें हो जाता है।

मुमुक्षु :- एकदम उत्पन्न हो, उसका कारण क्या?

समाधान :- उसका कारण स्वयंकी योग्यता। अकारण पारिणामिक द्रव्य है। चैतन्यद्रव्यकी ऐसी कोई योग्यता उसे होती है कि उसे प्रगट हो जाता है। किसीको अन्दर..

मुमुक्षु :- योग्यता कारण है।

समाधान :- अपना पुरुषार्थ कारण है। ऐसी स्वयंकी योग्यता, तैयारी अपने कारणसे है।

मुमुक्षु :- आत्मधर्ममें आया कि कारणमें, पुरुषार्थमें.. तीन-चार कारण हैं न? तो वहाँ क्या कारण लेना? कारणमें कुछ कचास हो? पुरुषार्थमें कचास है? रुचिमें कचास है?

समाधान :- उसे सबकी कचास है। आत्मधर्ममें...

मुमुक्षु :- अन्दरमें कारण तो त्रिकाली है न?

समाधान :- हाँ, स्वयं स्वयंका कारण है। उसे बाहरके कारण-काल, स्वभाव, स्वभाव तो अपना है, काललब्धि है उसमें पुरुषार्थ साथमें होता ही है। सबमें पुरुषार्थ तो साथमें होता ही है। अपना पुरुषार्थ कारण बने। क्षयोपशम-वैसा उघाड हो, वैसा काल पक गया हो, और निज पुरुषार्थका कारण बनता है। पुरुषार्थ तो सबमें होता

ही है। पुरुषार्थकी कचाससे सबमें कचास है। तू तैयार हो और तेरा पुरुषार्थ तैयार हो तो सब कारण प्राप्त हो जाते हैं। कोई कारण बाकी नहीं रहते। तेरे पुरुषार्थकी कचाससे कचास है।

मैं पुरुषार्थ करुँ और काल पका नहीं है, और मेरा स्वभाव नहीं है या मुझे कुछ सुनने नहीं मिला है, देशनालब्ध नहीं हुयी है, कोई कारण तुझे बाकी नहीं रहेंगे। तेरा पुरुषार्थ यदि जागृत हुआ होगा तो उसमें सब कारण तुझे प्राप्त हो जायेंगे। और यदि तेरे पुरुषार्थकी कचास है तो दूसरे कारण होंगे तो भी पुरुषार्थकी कचास होगी तो तुझे (प्राप्त) नहीं होगा। पुरुषार्थकी कचाससे सब कचास है।

तुझे यदि अंतरमें-से करना हो तो तुझे देशना नहीं मिली है और.. लेकिन मैं किये बिना रहूँगा ही नहीं। (ऐसेमें) देशना प्राप्त हुयी ही होती है। जिसके पुरुषार्थका उत्थान हुआ हो उसे देशना, काल सब होता ही है। ऐसा पुरुषार्थके साथ प्रत्येक कारणोंका सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- हमें ऐसा होता है कि अपने यह सब योग मिला है तो आत्माका तो शीघ्रतासे कर लेना है। और उतना पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता है।

समाधान :- पुरुषार्थकी कचास उतनी कचास है।

मुमुक्षु :- रुचिमें भी कचास है न?

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थकी कचास तो रुचिमें भी कचास है। दोनों कचास है।

मुमुक्षु :- अन्दरमें ऐसा है कि चाहे जैसे भी, मरकर भी यही करना है, दूसरा तो कुछ नहीं करना है।

समाधान :- भावना होती है, लेकिन वह कार्यान्वित नहीं होती तबतक नहीं होता है। चाहे जैसे भी करना है, लेकिन कार्यान्वित नहीं होता है।

मुमुक्षु :- कार्यान्वित नहीं होता है, तो फिर भावनाका फल क्या है?

समाधान :- भावनामें कचास है। भावनाका फल नहीं आता है, ऐसा नहीं है। चाहे जैसे भी करना है और करता नहीं है, अपनी कचास है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- अपनी ही कचास है।

मुमुक्षु :- तो भावनाका क्या हुआ?

समाधान :- भावनाका क्या हुआ? भावना कचासवाली है। भावना कचासवाली है। भावना उग्र हो तो कार्य हुए बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु :- ऐसा है ही।

समाधान :- स्वयं ऐसा करता रहा कि चाहे जैसे भी करना है, फिर छोड़ दिया।

मुमुक्षु :- छोड़तो तो नहीं है।

समाधान :- नहीं, अन्दर निरंतर पुरुषार्थ चालू नहीं रखता है। थोड़ी देरके छोड़ दिया। फिर थोड़ी देरके बाद उग्र हो, पुनः छोड़ दिया, मन्द हो जाय, तीव्र हो जाय, मन्द हो जाय, तीव्र हो जाय, एकसरीखा पुरुषार्थ तो करता नहीं है। अतः स्वयंकी भावनामें कचास है।

मुमुक्षु :- एकसरीखा कैसे हो? ज्ञायककी धून लगे?

समाधान :- ज्ञायकमें करने जाय कि ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, भावसे करे फिर पुनः रूखा हो जाय तो भी नहीं होता। ऐसे विकल्पसे धोखता रहे तो भी नहीं होता।

मुमुक्षु :- ऐसा..

समाधान :- अंतरमें-से होना चाहिये तो हो।

मुमुक्षु :- अंतरमें-से कैसे हो? बात तो बहुत बार होती है।

समाधान :- एक बार भावनासे करे कि बस, यह करना ही है। फिर मन्द हो जाय और फिर धोखनेरूप हो जाय कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। तो ऐसे नहीं होता।

मुमुक्षु :- परन्तु माताजी! आपके चरणमें, गुरुदेवके चरणमें बरसोंसे रहनेकी भावना तो यही है कि चाहे जितनी प्रतिकूलता पड़े यह करनेसे ही लाभ है, दूसरा कोई लाभ नहीं है।

समाधान :- भावना ऐसी हो, वह बात सच्ची है। परन्तु अन्दरसे उतना स्वयंको करना चाहिये। तो हो। भावना हो, परन्तु वह करता नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसा भी लगता है कि करना चाहिये और करनेपर ही छूटकारा है।

समाधान :- हाँ, करने चाहिये, ऐसा भाव आये। कोई-कोई बार आये कि करना चाहिये, होता नहीं, ऐसा भाव आये, और करता नहीं है वह बात भी उतनी ही सत्य है। जितनी अपनी कचास है, उतना ही लंबा होता है। अपनी मन्दतासे ही लंबा होता है। कोई कारण उसे रोकते नहीं।

मुमुक्षु :- फिर ऐसा होता है कि..

समाधान :- देशना तो इतनी प्राप्त हुयी और स्वभाव अपना ही है, पुरुषार्थ करे और काललब्धि परिपक्व न हो ऐसा बनता ही नहीं। पुरुषार्थकी कचासको और काललब्धि, दोनोंको सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- ऐसा होता हि इतना सुनते हैं, और फिर बार-बार माताजीके पूछे उसमें शर्म आती है। माताजीने हमें सब कह दिया है, गुरुदेवने बहुत कहा है। फिर हम पूछते रहें, उसमें शर्म आती है। तो भी पूछनेका मन हो जाता है।

समाधान :- होता नहीं, इसलिये कैसे करना? कैसे करना? ऐसा हो। मार्ग तो

एक ही है।

मुमुक्षु :- माँके पास आये, भूख लगी हो तो माँ भोजन देती ही है। वैसे आप हमें इतना देते हों तो ऐसा हो जाता है कि माताजीके पास कुछ सुन ले।

समाधान :- भावना हो, लेकिन करना स्वयंको है।

मुमुक्षु :- ऐसा योग मिल?

समाधान :- ऐसा योग इस पंचमकालमें मिलना मुश्किल है। गुरुदेवने इतना धोध बरसाया। दृष्टि कहाँ बाहर थी, उसमेंसे अंतर दृष्टि करवायी। अंतरमें सब है।

मुमुक्षु :- चार गतिमें, भवभ्रमणमें...

मुमुक्षु :- इतनेमें शान्ति संतोष मान ले तो भी कार्य रह जाता है। इसलिये वास्तवमें अन्दरसे ही वीर्य उछले और काम हो, तो ही शान्ति हो।

समाधान :- कारण स्वयंका ही है। भावना ऐसी हो कि करना है, करना है। जो चाहिये वह मिलता नहीं, इसलिये शान्ति तो लगे नहीं। जो विभाव है वह कोई शान्ति है। और शान्तिकी इच्छा है, शान्ति मिलती नहीं। इसलिये उसकी भावना ऐसी रहा करे, इसलिये शान्ति तो.. जब अंतरमें-से प्रगट हो तब शान्ति हो।

लेकिन जिसने ऐसा नक्की किया है कि यह प्रगट करना ही है, उसका पुरुषार्थ उसे पहुँचे बिना रहेगा नहीं। उसे समय लगे, परन्तु उसे ग्रहण किये बिना नहीं रहेगा। जिसे अंतरमें-से लगी है कि यह ग्रहण करना ही है और इसे प्रगट करना ही है। तो वह धीरे-धीरे भी पुरुषार्थ उठता है, लेकिन उसे यदि लगी ही है अंतरमें-से कि दूसरा कुछ नहीं चाहिये और यही चाहिये तो काल लगे, लेकिन वह प्रगट किये बिना नहीं रहेगा। स्वयं ही है, अन्य कोई नहीं है। इसलिये स्वयंको जो लगी है, वह तो पहुँचेगा ही, समय लगे तो भी। अंतरकी रुचि प्रगट हो वह पहुँचे बिना रहता ही नहीं। भले समय लगे। लेकिन अंतरमें जिसे लगन लगी वह पहुँचे बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- जो समय लगता है वह रुचता नहीं।

समाधान :- रुचे ही नहीं।

मुमुक्षु :- इतने सालसे यहाँ रहते हैं और इतने सालके बाद काम हो जाना चाहिये। किसीको श्रवण होते ही प्राप्त हो जाय, शास्त्रोंमें कितने दृष्टान्त आते हैं। और बहुत जीव, आप जैसे, गुरुदेवके थोडे प्रवचन सुननेमें हो गया तो हमने तो कितने प्रवचन सुने। इतने साल हो गये, फिर समय लगे उसका दुःख लगे, शर्म लगे। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि माताजीके पास मैं जाऊँ कैसे? माताजीको पूछुँ कैसे? शर्म लगती है। माताजीने तो मुझे सब कह दिया है। सर्व प्रकारसे, कितने प्रकारसे गुरुदेवने सब कहा है, आपने बहुत कहा है।

समाधान :- भावना है न इसलिये पूछना हो जाता है। गुरुदेवने तो मार्ग बताया है। करनेका स्वयंको है। गुरुदेवने सब तैयार करके दिया है, स्वयंको एक पुरुषार्थ करनाही बाकी रहता है, कुछ खोजनेका बाकी नहीं रहता कि कहाँ खोजना? कहाँ प्राप्त करना? जगतके जीवोंको सत् खोजनेमें दिक्कत होती है कि क्या सत् है? क्या आत्मा? सुख कहाँ है? आत्मा क्या है? सत् खोजना मुश्किल हो जाता है। यहाँ तो खोजनेकी कोई दिक्कत नहीं है।

गुरुदेवने खोजकर, तैयार करके, स्पष्ट कर-करके दिया है। एक पुरुषार्थ करना वही स्वयंको बाकी रहता है। खोजकर दिया है। बाहर दृष्टि थी, बाह्य क्रियामें उसमें-से छुडाकर, अंतर विभाव परिणाम होते हैं वह तेरा स्वभाव नहीं है। शुभभाव सूक्ष्मसे सूक्ष्म, ऊँचेसे ऊँचा हो, वह भी तेरा स्वभाव नहीं है। तू अन्दर शुभभावमें भेदमें रुके वह भी तेरा मूल शाश्वत स्वरूप नहीं है। तुझे अंतरमें एकदम दृष्टि गहराईमें चली जाय, उतना स्पष्ट करके (दिया है)। कहीं खोजना न पड़े, ऐसा बताया है।

जबकि जगतको जीवोंको सत् खोजना (पड़ता है), सत् प्राप्त नहीं होता, सत् कहाँ खोजना? कोई कहाँ फँस जाता है और कोई कहाँ फँस जाता है। कहीं खोजना नहीं है। एक पुरुषार्थ करना (बाकी है)। तैयार करके दिया है। स्वयंको एक पुरुषार्थ करना ही बाकी रहता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२०१

मुमुक्षु :- .. वह प्रश्न होता है कि आत्मा है, तो सब व्यक्तिमें भिन्न-भिन्न आत्मा है कि सृष्टिमें एक ही आत्मा है और उसका अंश है?

समाधान :- सब भिन्न-भिन्न आत्मा हैं, अंश नहीं है। सब द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। जगतमें जो आत्मा हैं, सब स्वतंत्र हैं। यदि एक अंश हो तो एकको दुःखका परिणाम हो, दूसरेको दूसरा परिणाम हो, दूसरेको दूसरा परिणाम हो, सबके परिणाम एक समान नहीं होते। एकको दुःख हो तो सबको दुःख होना चाहिये। एक मोक्षमें जाय, कोई स्वानुभूति करे, कोई अंतर आत्माको पहचाने तो कोई नहीं पहचानता है, किसीको जन्म-मरण खड़े रहते हैं, किसकी मुक्ति होती है। अतः ऐसे भेद पड़ते हैं। प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र हैं, अंश नहीं है।

सब स्वतंत्र आत्मा हैं, किसीका अंश नहीं है। एक अंश है और एक पूर्ण वीतराग है, उसके सब अंश हैं, ऐसा नहीं है। जो वीतराग होते हैं वह स्वतंत्र स्वयं राग-द्वेष छोड़कर सर्वज्ञ होता है। फिर उसे विभाव होता ही नहीं, निर्मल होता है। फिर उसके थोड़े अंश रखड़े और थोड़े निर्मल रहे, ऐसा नहीं होता। वह स्वतंत्र स्वयं... प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। स्वयं राग-द्वेष करे स्वतंत्र और वीतरागता करे स्वतंत्र, दोनों स्वतंत्र वस्तु हैं। स्वयं अपने पुरुषार्थसे करता है। स्वयं वीतराग हो, स्वयं राग-द्वेष छोड़े। किसीका अंश हो तो एक मोक्षमें जाय तो एक संसारमें रहे, ऐसा नहीं बनता। इसलिये प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं।

मुमुक्षु :- योगवसिष्ठ मैंने पढ़ा। उसमें ऐसा होता है कि आत्मा एक ही है। इसलिये मुझे द्विधा हुयी कि वह भी आत्माकी बात है, यह भी आत्माकी बात है। तो दोनों भिन्न-भिन्न कैसे हो सकते हैं? धर्म भले भिन्न प्रकारसे बतायें, परन्तु होना चाहिये एक ही। आत्माकी बात है तो एक ही वस्तु होनी चाहिये न? भिन्न-भिन्न कैसे हो ही सकती है? इसलिये द्विधा होनेसे योगवसिष्ठका तो किसे पूछने जाना? मैं किसीको ऐसा जानती नहीं। आपके पास समाधान कर सकुँ इसलिये यहाँ दौड़ी आयी।

समाधान :- ऐसा है कि अलग दृष्टिमें अलग बात आये। उसमें यथार्थ क्या है, स्वयं विचार करके नक्की करना। सभी द्रव्य यदि एक ही हों, एक ही अंश हों तो

जीवकी स्वयंकी स्वतंत्रता रहती नहीं। स्वयं परतंत्र हो गया। वस्तुमें ऐसा अन्याय कुदरतमें नहीं होता।

स्वयंको पुरुषार्थ करना हो तो एक अंश पुरुषार्थ करे और दूसरा अंश संसारमें रखड़े, ऐसा तो हो सकता नहीं। इसलिये प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। इसलिये उसमें जो आया उसकी दृष्टि अलग है, ऐसा समझ लेना। स्वयंको न्यायसे क्या बैठता है, यथार्थ वस्तुस्थिति क्या है, अपना स्वभाव क्या है, वह स्वयं अपनेसे नक्की कर लेना कि इसमें ऐसा है और उसमें वैसा है, तो यथार्थ क्या होना चाहिये? सब एक ही हो तो जीवकी स्वतंत्रता कहीं नहीं रहती। स्वयं स्वतंत्रपने कर सके ऐसा होना चाहिये। उसके बजाय सब अंश एक हों तो स्वतंत्रता नहीं रहती।

मुमुक्षु :- मेरे मनमें निश्चय तो यही हुआ। फिर भी इसमें यह पढ़ा, उसमें ऐसा है। मुझे ऐसा हुआ कि मेरी अज्ञानता हो सकती है, मेरी समझमें फ़र्क़ पड़ सकता है। आप ज्ञानी हो, आप यहाँ तक पहुँचे हो तो आपके पास (समाधान करने आयी हूँ)।

समाधान :- प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। ईश्वर कर्ता है, ईश्वर सब करता है। ईश्वर कर्ता हो नहीं सकते। वीतराग हो जाय वह कर्ता हो तो उसमें रागादि सब आ गया। जो वीतराग हो वह स्वयं अपनेमें ही होते हैं। और उसके अंश नहीं होते। उसके अंशका अर्थ यह कि स्वयं एक चैतन्यद्रव्य आत्मा है, उसमें उसकी पर्यायें, उसकी अवस्थाएँ, उसमें अनन्त गुण और उसकी अनन्त अवस्थाएँ वह उसके अंश हैं। बाकी दूसरे द्रव्य उसके अंश नहीं हैं।

स्वयं निज स्वभावका कार्य करे, स्वयं ज्ञानरूप, आनन्दरूप उसका कार्य करे, वह उसके अंश समझना। बाहरके अंश वह उसका अंश नहीं है। अपने अंश हैं वह स्वयंके अंश है। बाहरके अंश, दूसरे जीवोंके अंश वह उसके अंश नहीं है।

एक द्रव्यके अन्दर अनन्त स्वभाव होते हैं, अनन्त जातके कार्य होते हैं, जीव विभावमें हो तो राग-द्वेषके विकल्पके अनेक जातके वह कार्य करता है। वह उसके अंश हैं। और स्वभावमें तो ज्ञानरूप, आनन्दरूप, अपनी निर्मलतारूप, विकल्प रहित अकेली निर्विकल्प अपूर्व स्वानुभूति, लौकिकमें जिसका अंश भी नहीं है, ऐसी अपूर्व, जिसे किसीके साथ मेल भी नहीं है, ऐसे अनुपम आत्माका कार्य करे वह उसके अंश हैं। ये बाहर द्रव्यके अंश वह अंश नहीं है। अन्दर स्वयं अपने अंशस्वरूप परिणमता है। दूसरेके अंशरूप स्वयं नहीं परिणमता।

मुमुक्षु :- प्रत्येक आत्माका स्वभाव एक है, उसका अर्थ यह हुआ न?

समाधान :- स्वभाव एक जातिका है। एक जात है। जाननेवाला है। सब जीव

जानते हैं। ये पुद्गल कुछ जानता नहीं। ये पुद्गल एक जातिके हैं। इसमें वर्ण, गन्ध, रस ऐसा सब हो, वह एक जात। वह सब एक जात है। और जो जाननेवाला-जाननेवाला है, वह जाननेकी अपेक्षासे सब जाननेवाले एक जातिके। परन्तु उसकी जात यानी सब एक नहीं हो जाते।

मुमुक्षु :- हम सिर्फ एक ध्यान रखे कि मेरा आत्मा करवाता है और इस शरीरसे मैं करता हूँ, तो अपना अहंभाव चला जाय न? मैं करता हूँ, ऐसा जो हम लोगोंको लगता है, वह अज्ञान है। हमें ऐसा लगता है कि ये सब मैं करता हूँ। घरमें कुछ भी काम करते हो, तो मैंने किया, मैंने किया। वह अहंभाव, यदि आत्मा करता है, आत्मा करवाता है और इस शरीरसे करता हूँ, तो अहंभाव चला जायगा?

समाधान :- आत्मा करवाता नहीं, आत्मा जाननेवाला है। परपदार्थकी कर्ताबुद्धि, कुछ करना वह उसका स्वभाव नहीं है। ये तो शरीर है, बीचमें निमित्त और विकल्प आते हैं। इसलिये विकल्पोंसे होता है। विकल्पमें आत्मा जुड़ता है इसलिये होता है। लेकिन ऐसा करना उसका स्वभाव नहीं है, ऐसा सब करनेका।

मैं तो जाननेवाला ज्ञायक हूँ। ये सब कर्ताबुद्धि (है)। परद्रव्यका मैं कैसे कर सकूँ? मैं कोई करनेवाला नहीं है। लेकिन इस शरीरके साथ अनादिका सम्बन्ध है और विकल्प, राग-द्वेषमें पड़ा है। अतः कर्ताबुद्धि है इसलिये होता है। बाकी मैं जाननेवाला हूँ। किसीका मैं कुछ कर नहीं सकता। परपदार्थका मैं कुछ नहीं कर सकता। अहंभाव छोड़ दों दूसरेका कुछ नहीं कर सकता, मेरे आत्माका कर सकता हूँ। मैं परपदार्थरूप होता नहीं। मैं तो स्वभावरूप होऊँ वह मेरा स्वभाव है। ये बाहरका करना वह मेरा स्वभाव नहीं है।

ऐसे स्वभावका विचार करे। विकल्प आये इसलिये यह सब करनेका होता है। विकल्पके कारण। मैं कोई अन्यरूप हो जाऊँ तो मैं घररूप हो जाऊँ। यदि मैं घररूप होऊँ तो। मैं तो भिन्न हूँ। मैं कहीं घररूप भी नहीं हूँ और इस शरीररूप भी नहीं हूँ। शरीरसे भी मैं तो भिन्न हूँ। इसलिये ये सब करना तो स्वतंत्र होता है। मैं तो मात्र विकल्प मेरा हो, राग-द्वेषका इसलिये इसमें कार्यमें जुड़ता हूँ, कर्ताबुद्धिके कारण। बाकी मैं तो जाननेवाला हूँ।

मुमुक्षु :- अलिप्तपना आ सकता है?

समाधान :- आ सकता है। पुरुषार्थ करे तो आ सकता है। अंतरमें क्षण-क्षणमें ऐसा हो कि मैं तो जाननेवाला हूँ। ये सब एकमेक जो विकल्पकी जालमें (हो रहा हूँ), वह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो जाननेवाला हूँ, साक्षी हूँ। यह मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसे अंतरसे विरक्ति आये और निर्लेप हो सकता है।

ये कोई सुखका कारण नहीं है, ये कोई महिमावंत नहीं है। महिमावंत हो तो मेरा आत्मा है। ये कुछ महिमारूप नहीं है। ऐसे निर्लेपता आ सकती है। ऐसा सब करके अनन्त आत्माओंने ऐसे कार्य किये हैं, महापुरुष गृहस्थाश्रममें रहकर निर्लेप रह सके हैं। प्रत्येक आत्मा ऐसा शक्तिमान है कि जो कर सकता है।

मुमुक्षु :- लेकिन वह परमात्मामें मिल जाता है। आत्मामें जब वीतरागता आ जाय, सब छोड़ सके, आत्माका ज्ञान हो तो आखिरमें वह परमात्मामें मिल जाता है?

समाधान :- मिल न जाय, वह स्वयं स्वतंत्र रहे। ऐसे अनन्त द्रव्य हैं, ऐसे आत्मा परमात्मारूप हुए हैं। सिद्धालय है उसमें प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपनी स्वानुभूति स्वतंत्र करते हैं। वीतराग होकर स्वयं स्वतंत्र रहता है, किसीमें मिल नहीं जाता। उसकी जात एक है। एक जातके हो जाते हैं। एक जातके, स्वानुभूति एक जातकी करे, लेकिन प्रत्येक स्वतंत्र हैं। स्वयं अपनेमें (रहता है)। वह अरूपी है ऐसा कि उसे कोई ज्यादा क्षेत्र नहीं चाहिये। इसलिये आकाशके अमुक क्षेत्रमें अनन्त जीव रह सके, ऐसा परमात्मा बन जाय। जात एक, परन्तु प्रत्येक स्वतंत्र रहते हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवको समर्पण करनेसे आत्माका ज्ञान हमें हो, वह बात सत्य है? गुरुदेवको अपना अहंभाव अर्पण कर दे, मैं हूँ ही नहीं, आत्मा ही हूँ, जो आपके अन्दर है वही मेरेमें है, लेकिन आपने सब प्राप्त कर लिया, आपने सब समझ लिया, अनुभव हो गया। हम समझे, हमें अनुभव नहीं हुआ है। अनुभव आपकी कृपासे हो या हमारे पुरुषार्थसे ही होता है? आपकी कृपा भी चाहिये? गुरुदेवकी? जिसे गुरु माना उनकी कृपा और अपना पुरुषार्थ दोनों चाहिये या अकेला पुरुषार्थ ही चाहिये?

समाधान :- जो पुरुषार्थ करता है उसे साथमें कृपा होती ही है। निमित्तमें गुरु होते हैं और उपादानमें स्वयं होता है। दोनों साथमें होते हैं। गुरुकी कृपा तो उसमें साथमें होती ही है। वस्तुस्थिति-से स्वयं पुरुषार्थ करे तब होता है, परन्तु गुरुकी कृपा तो साथमें होती है।

मुमुक्षु :- अब, आपको मैंने गुरु माना। अब, यहाँ रोज तो नहीं आ सकती। मुंबई रहती हूँ, बच्चे हैं... श्रद्धापूर्वक यह मानती हूँ। तो संसारमें रहकर संसारसे अलिप्त रहकर, मनसे अलिप्त रहकर, संसारके कार्य चलते रहे, अलिप्त रहकर भी आपको गुरु मानकर, मैं आपके वचन पढ़कर, करके मैं प्राप्त कर सकती हूँ? या प्रत्यक्ष गुरु चाहिये ही?

समाधान :- स्वयं प्राप्त कर सकता है। स्वयं कहीं भी बैठकर पुरुषार्थ करके सच्चा समझे तो प्राप्त कर सकता है। प्राप्त कर सकता है। ऐसा है कि अनादि कालमें जीव जन्म-मरण करते-करते उसे एक बार गुरु अथवा देव कोई मिलते हैं। उनकी प्रत्यक्ष

वाणी सुने, वह प्रत्यक्ष वाणी सुनकर अन्दर ऊतर जाय, फिर कहीं भी हो, वह प्रकट कर सकता है। गुरुदेव मुंबईमें पधारते थे, मालूम नहीं होगा?

मुमुक्षु :- नहीं, पहले मैं एक बार गई थी।

समाधान :- गये थे? वहाँ मुंबईमें।

मुमुक्षु :- हमको स्वयंको लगे, श्रद्धा बैठ जाय कि यह सत्य है, मुझे इस मार्ग पर जाना है।

समाधान :- श्रद्धा, स्वयं अंतरमें श्रद्धा करे कि यह मार्ग सच्चा है। फिर अंतरमें स्वयंको भेदज्ञान करना बाकी रहता है। यह शरीर मेरा स्वरूप नहीं है। अन्दर विभाव होते हैं, वह भी मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो अंतरमें ज्ञायकस्वभाव जाननेवाला उसमें आनन्द भरा है। ऐसी श्रद्धा अंतरसे करके, अन्दर जो एकत्वबुद्धि हो रही है उसे तोड़कर भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे कि मैं तो ज्ञायक हूँ। ऐसे बारंबार प्रयत्न करे, यथार्थ समझकर।

प्रयत्नका अभ्यास बारंबार करे तो उसे प्रगट हो। उसका अभ्यास यथार्थ होना चाहिये। उसकी श्रद्धा यथार्थ होनी चाहिये। जो गुरुने कहा है, उस मार्ग पर स्वयं बराबर चले तो अपने पुरुषार्थसे प्रगट कर सकता है। स्वयं कहीं भी हो, पुरुषार्थसे करे तो हो सकता है।

जीवनमें जो गुरुदेवने मार्ग बताया है, उस मार्ग पर जाना है। कोई अपूर्व वाणी गुरुदेवकी बरसती थी। उस मार्ग पर जाना है। उस मार्ग पर स्वयं तैयार हो तो प्राप्त हुए बिना (रहता नहीं)। गुरुके वचन ग्रहण करे तो उसमें गुरुकी कृपा आ जाती है। जो गुरुने जो वचन कहे उस स्वयं अन्दर यथार्थ समझे, समझपूर्वक, बिना समझ नहीं, समझपूर्वक ग्रहण करे और पुरुषार्थ करे तो उसे प्रगट हुए बिना नहीं रहता। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है।

... सब कम है। चैतन्यको पहचानना, चैतन्यको पहचानना। पूरा जीवन बदल जाता है। दृष्टि बाहर क्रियाओंमें थी, उसमेंसे चैतन्य पर दृष्टि करवायी। .. उसके पहले दादरमें था, वह कौन-सा वर्ष था? ८७वीं। भावसे करे उसमें .... गुरुदेवका प्रताप वर्तता है।

मुमुक्षु :- चिन्ता रहती है। जैसे आपने गुरुदेवको सब सौंप दिया, हमने आपको सौंप दिया।

समाधान :- गुरुदेवने भाव... जहाँ भावप्रधान है, वहाँ बाह्य संयोग आड़े आते ही नहीं। जहाँ भावप्रधानता होती है वहाँ। मार्ग इतना सरल कर दिया। दूसरोंको सत् खोजना मुश्किल पड़ जाता है कि क्या स्वरूप है? और किस मार्ग पर जाना? ऐसा-

ऐसा जो एकदम अनाजने हैं, वह पूछते हैं।

गुरुदेवने सत् क्या? वह तो एकदम स्पष्ट करके बताया है कि किस मार्ग पर जाना है। फिर पुरुषार्थ करना ही बाकी रहता है। बाकी मार्ग तो एकदम स्पष्ट करके बता दिया है। विभाव तेरा स्वभाव नहीं है। द्रव्य, गुण, पर्याय उसके भेद पर भी दृष्टि मत कर। अखण्ड पर दृष्टि कर। एकदम सूक्ष्मतासूक्ष्म करके मूल तक जाकर सब समझा दिया है, गुरुदेवने।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- सबको भगवान कहते थे। अरे..! भगवान! भगवान कहते थे। तू मूल शक्तिसे तो भगवान है। आज टेपमें भी (आया था)। ... कोई भेद नहीं दिखता। .. विराजते थे तब बढ़ता ही जाता था। और अभी भी उनकी प्रभा ऐसी ही वर्धमान हो रही है।

मुमुक्षु :- आपके आशीर्वाद है, ऐसे ही होगा।

मुमुक्षु :- असल मानस्तंभ कैसा होगा समवसरणमें?

समाधान :- उस मानस्तंभकी क्या बात करनी?

मुमुक्षु :- विचार आया कि कुछ जानने मिले तो।

समाधान :- अनेक जातके मानस्तंभ होते हैं। इन्द्र द्वारा रचित, उस मानस्तंभको देखकर मान गल जाता है। जो रत्न और अनेक जातके...

मुमुक्षु :- पूरा मानस्तंभ रत्नका?

समाधान :- विविध रत्नों द्वारा रचित है।

मुमुक्षु :- चौमुखी प्रतिमाजी जैसी हम लोगोंने यहाँ रखी हैं, वैसे ही ऊपर-नीचे (होती हैं)?

समाधान :- उसमें तो अनेक जातकी रचना होती है, मानस्तंभमें। इतनी छोटी जगह हो, उतनेमें पूजा कर सके, भगवानको इतने छोटे देवालयमें विराजमान करना पड़े ऐसा नहीं होता। उसकी रचना कोई अलग जातकी होती है। सब यहाँ आकर पूजा करते हैं।

मुमुक्षु :- ये तो बहुत छोटी प्रतिकृति है।

समाधान :- हाँ, छोटा है न।

मुमुक्षु :- वह तो योजनोंके विस्तारमें होगा।

समाधान :- हाँ, सब योजनमें होता है, विशाल है। समवसरण कितना है, उसका मानस्तंभ वैसा होता है। ऊँचा उतना होता है, चौड़ा उतना होता है। उसका सब नाप आता है।

मुमुक्षु :- आज सीमंधर भगवानका जन्मकल्याण दिवस है? हमारे एक भाई ऐसा कहते थे। जन्म कल्याणक नहीं, केवलज्ञान कल्याणक।

समाधान :- शास्त्रमें सीमंधर भगवानका केवल कल्याणक या ऐसा कुछ नहीं आता है।

मुमुक्षु :- वह भाई तो श्वेतांबर थे।

समाधान :- होगा उनके हिसाबले। लेकिन यहाँका सब अलग है।

.. नारदने वहाँ जाकर भगवानका जन्म कल्याणक देखा, भगवानका केवल कल्याणक देखा। नारदने देखा ऐसा आता है, परन्तु उसका दिन कौन-सा ऐसा नहीं आता है। नारदजी यहाँ-से सीमंधर भगवानके पास गये थे और यहाँ आकर बात करते हैं कि मैंने सीमंधर भगवानका जन्म कल्याणक या केवल कल्याणक देखा। ऐसा कहते हैं आकर। उसमें आता है।

फिर वहाँ महाविदेह क्षेत्रमें बड़े-बड़े मन्दिर हैं। भगवानका मैंने कल्याणक देखा, ऐसा आकर कहते हैं। मनुष्यके हिसाबसे मन्दिर बड़े होते हैं। पाँचसौ धनुषका हो उससे मनुष्य कम होते हैं, परन्तु होते तो हैं न। सब नापकी बात है। लेकिन मनुष्य बड़े होते हैं।

समाधान :- ... संयोग है, सब लेकर आये थे। इसलिये उन्हें तो संस्कार जागृत हो गये। जो था वह प्रगट किया। .. दीक्षा यहाँ ली, लेकिन बदल गया कि यह मार्ग सच्चा नहीं है। अन्दरसे विचार स्फूरे। कोई कुछ जानता नहीं था। अकेली क्रिया ही थी। और दिगम्बरोंमें भी मार्ग (होने पर भी) दृष्टि तो ऐसी क्रियामें (थी)।

मुमुक्षु :- सौराष्ट्रमें तो दिगंबरका तो बहुत कम स्थान है।

समाधान :- दिगंबरका नाम भी किसीने सुना नहीं था। कुछ नहीं। स्वप्न भी आया था कि मैं राजकुमार हूँ। दीक्षा लेनेके बाद। शरीर कोई अलग ही है। स्वप्न बराबर उन्हें हूबहू (आता था)। इस भवका शरीर नहीं, शरीर अलग ही था, ऐसा कहा था। बड़ा शरीर था।

मुमुक्षु :- ... पक्का हो गया। गुरुदेव..

समाधान :- तीर्थंकर हूँ, तीर्थंकर होनेवाला हूँ, ऐसा अंतरमें-से (आता था)। ऐसी प्रतीत आती थी।

मुमुक्षु :- ऐसी प्रतीत आती हो तो अपने द्रव्यके कारण ऐसा ख्याल आता होगा?

समाधान :- अपना द्रव्य ऐसा है, इसलिये अंतरमें-से प्रतीत होती थी। सुना हो वह तो बराबर है, लेकिन अन्दरसे निज द्रव्यकी ऐसी योग्यता है इसलिये प्रतीत आती थी। .. प्रतीत अंतरमें कब हो? कि अपनी योग्यता अन्दर साथमें है, इसलिये प्रतीत आती है। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२०२

समाधान :- .. ऐसी ज्ञानकी महिमा है। जो भूतकालमें बन गया उसे भी जानता है। प्रत्यभिज्ञान, वह भी जाने। वर्तमान जाने, भविष्यमें जो (होगा), (अभी) प्रगट नहीं है, उसे भी जाने। ज्ञानकी ऐसी महिमा है। जो अभी प्रगट नहीं है, उसे भी ज्ञान जान सके, ऐसी ज्ञानकी महिमा ऐसी ही है। अनन्त-अनन्त भरा है। स्वभाव ही उसका नाम कि जिसमें मर्यादा न हो। उसकी दिशा बदलनी है। उसकी दृष्टि बदलनी है। स्वसन्मुख उपयोग कर, तेरी दृष्टि बदल। लेकिन उसे प्रतीतमें ऐसा नहीं होना चाहिये कि, ज्ञान इतना जाने और इतना न जाने। ज्ञान सब जान सकता है। जो अनन्त कालमें बना उसे ज्ञान जान सकता है। भविष्यमें जो होनेवाला है, उसे भी ज्ञान जानता है। जो अभी प्रगट नहीं है, उसे भी ज्ञान जाने। ऐसी ज्ञानकी महिमा अनन्त-अनन्त है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें दिशा बदलनी माने क्या?

समाधान :- बाहर बुद्धि है, उसका उपयोग बहिर्मुख होता है। उसका उपयोग बहिर्मुख है, उसे स्वसन्मुख कर। तेरी दृष्टिको स्वमें ला कि मैं यह ज्ञायक हूँ। मैं परके साथ एकत्वबुद्धि करके ज्ञेय-ओर जो दृष्टि हो रही है कि ज्ञेय और मैं दोनों एक हैं। उसकी एकता तोड़। मैं ज्ञान हूँ और वह ज्ञेय है। उसकी एकता तोड़। तेरी दृष्टि तेरी ओर ला कि मैं चैतन्य हूँ।

मैं ज्ञायक स्वयं ज्ञायक हूँ। ऐसे दृष्टि बदलनी। उसकी ज्ञेय-ओरकी एकताबुद्धि तोड़नी। एकत्वबुद्धि। परको जानने-से परके अस्तित्व से मेरा अस्तित्व है, ऐसी तेरी दृष्टिको तोड़। मेरा अस्तित्व स्वयं है। स्वयं ज्ञानसे ज्ञान है। मेरा अस्तित्व स्वयं है। ज्ञेयका मेरेमें नास्तित्व है। ऐसे दृष्टिको बदल।

मुमुक्षु :- वीर्य शक्ति जो उसीका उपयोग है न?

समाधान :- ज्ञानस्वभावका उपयोग है।

मुमुक्षु :- अनन्त वीर्य जो है..

समाधान :- वीर्यगुण-पुरुषार्थ गुण अलग है, ज्ञानगुण अलग है। ज्ञानगुण अलग और वीर्यगुण अलग। उसमें बीचमें वीर्य आ जाता है, ज्ञानके साथ। तेरा पुरुषार्थ बाहर मत कर, अंतरमें कर। वह पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु :- वह वीर्यका काम।

समाधान :- हाँ, तेरा पुरुषार्थ बदल। पुरुषार्थ तेरा बाहर है, उसे अंतरमें ला।

मुमुक्षु :- ... अनन्त कालको जानना वह तो स्वभाव ही है। उसकी बात करनेमें क्या दिक्कत है?

समाधान :- बात करनेमें माने?

मुमुक्षु :- जातिस्मरणज्ञान।

समाधान :- स्वभाव ही है। वह तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके संयोग अनुसार बात की जाती है। बातके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वभाव है इसलिये बात करनी चाहिये, नहीं करनी चाहिये, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके संयोगके साथ सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव ऐसा फरमाते थे कि जातिस्मरण होने पर वैराग्यमें उग्रता आ जाती थी, वह कैसे?

समाधान :- जीवने ऐसे जन्म-मरण किये हैं। वह बात स्मरणमें आये, वह वैराग्यका कारण बनती है। उसे प्रतीतमें हो, लेकिन ज्यादा ख्यालमें आनेपर वैराग्यका कारण बनता है। शास्त्रोंमें भी आता है कि, जातिस्मरण वैराग्यका कारण होता है। प्रवृत्तिके कारण दिखे तो न भी कहनेमें आये, उसे बातके साथ सम्बन्ध नहीं है।

... अनेक कारण आते हैं न? उसमें एक जातिस्मरण भी वैराग्यका कारण आता है। सम्यग्दर्शन होनेके कारण आते हैं। देव, ऋद्धि, जातिस्मरण आदि आता है। जिनबिंब वह सब आता है। किसीको उसमें-से पुरुषार्थ शुरू हो जाता है। सब जीवकी योग्यता अनेक प्रकारकी होती है।

... दृढ़ता होनेका, प्रतीत होनेका कारण बनता है। आत्मा ऐसे मुक्त है। अपना अस्तित्व सदा नित्य ही है। अनेक जन्म-मरण करते-करते जीव स्वयं शाश्वत नित्य ही है। शाश्वत अस्तित्व है। अनेक जन्म-मरण किये, अनेक-अनेक प्रसंग बने। कोई दुःखका, कोई अनुकूलताका, कोई प्रतिकूलताका। अनेक प्रसंग याद आनेपर उसे वैराग्यका कारण बनता है।

किसीको जातिस्मरण होनेपर, अनुमति माँगता है, अरे..! मैंने तो संसारमें ऐसा बहुत देखा है। ऐसा करके दीक्षा लेता है। कोई कहता है, ये देवलोककी ऋद्धि, ऐसा तो मैंने बहुत देखा है। ये संसार है। ऐसा नर्कका दुःख, ऐसा देवलोक सब देखकर वैराग्य होता है।

मुमुक्षु :- नर्कमें तो अनन्त दुःख हैं।

समाधान :- वह तो सुन न सके ऐसे हैं। जीव स्वयं अनन्त कालमें भोगकर

आया है। फिर भी सुन न सके ऐसे हैं। कुम्हारकी भट्ठीमें जो अग्नि लगे उससे अनन्तगुनी तापकी वेदना नर्कमें है। गुरुदेव कहते थे।

मुमुक्षु :- क्रोड़ भवमें, क्रोड़ जीभसे...

समाधान :- हाँ, क्रोड़ जीभसे और क्रोड़ मुखसे कह न सके ऐसा उसका दुःख है। गरमी, ठण्डी, भूख, प्यासके अनन्त दुःख जीवने सहन किये हैं। फिर भी जहाँ आया सब विस्मृत करते आया है। देवलोकमें जीव अनन्त बार गया है। अनुकूलतामें रहा है। तो भी आत्माका कुछ न कर सका। वह भी सुख नहीं है, आकुलता है। देववोकमें। सुख एक आत्मामें ही है।

मुमुक्षु :- जातिस्मरण हो, माताजी! उन बको वैराग्य प्राप्त हो, ऐसा है?

समाधान :- हो, वैराग्य तो होता है। जैसी उसकी योग्यता हो वैसा हो।

समाधान :- ... सब बोलमें वही आता है। ... अन्यका नास्तित्व है। अनादिसे भूल हो रही है। या तो अन्यके अस्तित्वमें मेरा अस्तित्व अथवा अन्यका अस्तित्व मेरेमें। अथवा अन्यका नास्तित्व करे तो ऐसा करे कि अपना नास्तित्व करे। ये मेरेमें नहीं है तो अपने गुण भी उसमें नहीं लेता। वह ज्ञान और ज्ञेय मिश्र हो गया। ऐसे। द्रव्य समझनेमें भूल की, क्षेत्र समझनेमें, काल समझनेमें, भाव समझनेमें सबमें भूल ही की है।

अपने गुण समझनेमें भूल की है। दूसरा मेरेमें आ गया है, उसे निकाल दू। ये सब तो आकुलता लगती है। ऐसा करके अपना स्वभाव निकाल देता है। ऐसे निकालने जाय, नास्तित्व करने जाता है तो सबका नास्तित्व कर देता है। और अस्तित्व (मानता है) दूसरेमें मेरा अस्तित्व (है)। सर्व प्रकारसे अपनी हयातीको खो बैठता है, मानों मैं कुछ हूँ ही नहीं। अपने गुणका नास्तित्व करे, अपने द्रव्यका नास्तित्व करे, अपनी पर्याय मानों अन्यमें मेरी पर्याय होती है। ऐसे दूसरेमें मेरा अस्तित्व अथवा मेरा नास्तित्व। मैं दूसरेमें प्रवेश करता अथवा दूसरा मेरेमें प्रवेश करता है। ऐसा ही करते रहता है।

सत्य समझे कि मैं मेरे द्रव्यमें (हूँ)। मेरा द्रव्य मुझसे ही है, मेरा अस्तित्व मेरेसे ही है। अन्यका मेरेमें नास्तित्व है। अन्यका मेरेमें प्रवेश नहीं है। मेरे गुणका अस्तित्व मेरेसे है। मेरे गुण अन्यमें जाते नहीं। मेरे गुण ज्ञेयमें जाते नहीं। ज्ञेय मेरेमें आता नहीं। अन्य ज्ञेयोंका मेरेमें नास्तित्व है। ज्ञेयोंका नास्तित्व होनेसे उसके साथ मेरा नास्तित्व नहीं होता है। ज्ञेयोंका मेरेमें नास्तित्व, उसका मतलब मेरा नास्तित्व उसमें नहीं आता। मेरा अस्तित्व मुझसे और मेरा परसे नास्तित्व है।

मेरी पर्याय मेरेसे परिणमती है। दूसरेके कारण मेरा परिणमन नहीं होता है। वह कहता है, दूसरेके कारण मेरा परिणमन होता है। दूसरा परिणमे उसके साथ मैं परिणमता

हूँ। ऐसा कितना ही विपरीत मानता है।

मैं सहज ज्ञानपुंज आत्मा आनन्द स्वरूपसे भरा हुआ हूँ। क्षेत्र, मेरा घर, मेर स्वघरमें रहनेवाला हूँ। परघरमें रहनेवाला नहीं हूँ। अन्यका स्थान, अन्यका रहनेका क्षेत्र मेरेमें प्रवेश नहीं करता। मेरा क्षेत्र उसमें जाता नहीं। अन्यका क्षेत्र देखकर, यह सब कलंक है, ऐसे निकालने जाता है तो स्वयंको निकाल देता है। ऐसी अनेक प्रकारसे बात है। यदि अपनेमें-से दूसरेको निकालने जाता है तो स्वयंको भी निकाल देता है। अमुक कालमें परिणमन करे तो उस कालमें मैं परिणमा तो उसी क्षण मेरा नाश हो गया। दूसरेकी पर्याय परिणमे तो मैं परिणमूं और मेरा नाश हो जाय।

अथवा ऐसा कहे कि उसके आलंबनकालमें ही मेरा अस्तित्व है। जब ज्ञेयोंका आलम्बन हो तो ही मेरा अस्तित्व है। ज्ञेयोंका आलम्बन लूँ तो ही मेरा अस्तित्व टिके। तो उसका आलम्बन लेता ही रहता है। उसके आलम्बन बिना मेरा नाश हो जायगा। तो आलम्बन लेनेमें आकुलता-आकुलता करता रहता है। ज्ञेय.. ज्ञेय.. ज्ञेय.. मानों ज्ञेयोंके साथ एकत्व (हो जाता है)। ज्ञेयोंका आलम्बन न हो तो (मैं कैसे टिकूँगा)? मेरा ज्ञान मेरे ज्ञानसे (होता है)। मैं स्वावलंबी हूँ। मेरा ज्ञान स्वयं परिणमनेवाला है। उसका-ज्ञेयका आलम्बन हो तो ही मेरा ज्ञान है, ऐसा नहीं है। मैं मेरे ज्ञानसे, स्वयं सहज ज्ञानका पुंजस्वरूप स्वतःसिद्ध हूँ। मेरा सहज स्वतःसिद्ध ज्ञानके पुंजस्वरूप हूँ। ऐसे मेरा अस्तित्व है।

अपने अस्तित्वको ग्रहण करता है। केवलज्ञानी भगवान प्रगटरूपसे परिणमे। परन्तु मैं मेरी शक्तिरूप हूँ, मेरा अस्तित्व मुझसे है। कार्य है तो कारण है, ऐसा नहीं। कारण स्वयं स्वतःसिद्ध है। परन्तु जाननेके लिये कार्य पर दृष्टि करता है कि कार्य ऐसा प्रगट होता है। कारण तो सब अंतरमें पड़े हैं। कार्य है तो कारण है, (ऐसा नहीं), कारण स्वतः है। वह ज्ञान करता है कि ऐसा कार्य है। मेरेमें ऐसी शक्ति हैं।

एक स्वतः असाधारण ज्ञानगुण उसमें है। उस ज्ञानगुणसे उसे नक्की होता है कि ऐसे अनन्त गुण हैं। ऐसा असाधारण ज्ञानगुण जीवमें है। उससे वह अपना अस्तित्व ग्रहण कर सकता है। जो द्रव्य हो, वह अनन्त शक्तिवंत हो। मेरेमें ऐसी अनन्त शक्ति भरी है। ऐसे ज्ञान तो असाधारण (है), इसलिये वह प्रगट होनेसे उसे ख्यालमें आये ऐसा है। उसके अलावा दूसरे अनन्त गुण जीवमें हैं। अनन्त शक्तिसे भरपूर मैं भरा हूँ। स्वयं अपनी प्रतीत कर सकता है।

मूल भूल अपनी अस्तित्व ग्रहण करनेमें होती है। अस्तित्व और नास्तित्वमें भूल करता है। द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, भावसे। गुणका अस्तित्व मेरेसे, ज्ञानका अस्तित्व मेरेसे, ज्ञेयसे नहीं। ऐसे अनेक प्रकारसे स्याद्वादी है वह यथार्थ जानता है। उसे भेदज्ञान यथार्थ

होता है। मेरी वस्तु स्वयं है। मेरा क्षेत्र मेरेमें है। मैं स्वयं मेरे घरमें रहनेवाला हूँ। मैं मेरे ज्ञानगुणरूप परिणमनेवाला हूँ। ज्ञेय ज्ञात जरूर होता है, परन्तु मैं मेरे ज्ञानसे परिणमनेवाला हूँ, ज्ञेयसे परिणमनेवाला नहीं हूँ। ज्ञेयके कारण परिणमनेवाला नहीं हूँ। ज्ञेय परिणमे तो मैं परिणमूं ऐसा नहीं है। अथवा ज्ञेयका आलम्बन लूँ तो परिणमुं, ऐसा नहीं है। मैं स्वयं मेरे ज्ञानसे परिणमनेवाला हूँ। मैं स्वयं मेरे ज्ञानसे परिणमनेवाला, मेरे गुण स्वतःसिद्ध हैं। मेरी पर्यायें, ज्ञानका परिणमन होकर पर्याय होती है। ज्ञेय परिणमन करके पर्याय नहीं आती है, मेरा ज्ञान परिणमन करके पर्याय आती है। परन्तु उसमें ज्ञात होता है, ज्ञेयोंका स्वरूप ज्ञात है, परन्तु मेरा ज्ञान परिणमन करके वह पर्याय आती है।

ज्ञेय परिणमन करके मेरेमें पर्याय नहीं आती है, ज्ञेयकी पर्याय ज्ञेयमें है। मेरे ज्ञानकी पर्याय मेरेमें है। ज्ञान परिणमन करके पर्याय आती है। परन्तु उसमें ज्ञान ज्ञेयको जानता है। परिणमनेवाला मैं हूँ। (ज्ञान) स्व-पर दोनोंका होता है, परन्तु ज्ञान स्वयं परिणमन करके वह पर्याय आती है। ज्ञेय परिणमन करके मेरेमें पर्याय नहीं आती है, मैं स्वयं परिणमता हूँ।

.. भावरूप परिणमनेवाला हूँ। मेरे भाव मुझसे होते हैं। .. अपनी अचिंत्य शक्तिकी महिमा है। ऐसे भेदज्ञानरूप परिणमनेवाला हूँ। मैं एक स्वरूप रहनेवाला हूँ। अनेकरूप होनेवाला नहीं हूँ। अनेक ज्ञेयोंको पर्याय ज्ञात हो, पर्यायकी अपेक्षासे मेरेमें अनेकता होती है, बाकी मैं स्वभावसे तो एक हूँ। पर्यायकी अनेकतामें मैं पूरा खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता हूँ। वह तो पर्याय है, वस्तु स्वरूपसे मैं एक हूँ।

ऐसा यथार्थ ज्ञान हो स्वरूपमें, स्वयंको ग्रहण हो, ऐसी भेदज्ञानकी धारा हो तो उसे स्वानुभूतिकी पर्याय प्रगट हो। ज्ञान परिणमन करके पर्याय आती है। लेकिन उसमें ज्ञात होता है, स्व-पर दोनों ज्ञेय ज्ञात होते हैं। स्व और पर। लेकिन ज्ञान परिणमन करके पर्याय आती है। ज्ञेय परिणमन करके मेरेमें पर्याय नहीं आती है।

.. ज्ञेयका जानपना होता है, परन्तु परिणमन ज्ञानका है। जानपना ज्ञेयको जानता है, परन्तु परिणमन ज्ञानका है। जानपना होता है। जानपना अपना। स्वका, परका जानपना है, परन्तु परिणमन ज्ञानका है। मैं मेरे ज्ञानरूप परिणमता हूँ। ऐसा जानना होता है। स्वपरप्रकाशक पर्याय (होती है)। परिणमन दूसरेका नहीं है, परिणमन मेरा है। जानपना स्वपरप्रकाशक है।

.. पर्यायें हुयी, उसमें ज्ञानने क्या जाना? स्व-पर दोनोंका स्वरूप है। छद्मस्थको एक जगह उपयोग हो वह (जाने), प्रगट उपयोगात्मरूपसे तो वह ऐसा जाने। लब्धमें उसे सब जानपना होता है। प्रगटपने जहाँ उपयोग हो वह जानता है। छद्मस्थ। केवलज्ञानी

एकसाथ दोनों जानते हैं-स्वपर।

साधकदशा है और भेदज्ञानकी परिणति है। उसकी परिणति-ज्ञानकी परिणति तो यह मैं हूँ और यह पर है, मैं और पर, मैं और पर, ऐसी ज्ञानकी परिणति तो चालू ही है। लब्धात्मक ज्ञान यानी वह जो अनादिका क्षयोपशम, अमुक उघाड़ है वह नहीं। परन्तु उसे तो प्रगट हुआ है लब्ध और उपयोगात्मक। प्रगट भेदज्ञानकी धारा, लब्ध भी प्रगट है। वह कहीं अनादिका लब्ध होता है ऐसा लब्ध नहीं है। अनादिका शक्तिरूप अथवा अमुक क्षयोपशम जीवको प्रगट हो, फिर थोड़ा उपयोग और फिर थोड़ा लब्ध रहा करे, वह नहीं।

यह लब्ध तो प्रगट होकर लब्ध हुआ है। उपयोगात्मक ज्ञान अन्य-अन्य ज्ञेयमें जाय। प्रगट होकर लब्ध हुआ। ऐसी ज्ञानकी स्वपरप्रकाशककी परिणति है। यह मैं और यह पर, यह मैं और यह पर, ऐसी ज्ञानकी परिणतिकी धारा सहज (चलती है)। भेदज्ञानकी परिणतिकी धारा वह आंशिक स्वपरप्रकाशक है। भले उपयोगात्मक नहीं है, परन्तु लब्धात्मक भेदज्ञानकी परिणतिमें स्वपरपना आ ही जाता है। भेदज्ञानकी परिणतिमें यह मैं और यह पर, यह मैं हूँ, यह नहीं हूँ, यह हूँ, यह नहीं, ऐसी भेदज्ञानकी परिणतिकी धारा चलती ही रहती है। वह परिणति है। लब्ध है वह... भेदज्ञानकी धारा, वेदनरूप परिणति होती है। स्वानुभूति नहीं, परन्तु उसे भेदज्ञानका अमुक प्रकारकी शक्ति प्रगट हुयी है। भेदज्ञानकी परिणतिकी वह शक्ति है। अमुक शान्तिकी धारा प्रगट हुयी है। उसमें साथमें स्वपरप्रकाशक ज्ञान परिणतिरूपसे आ जाता है।

केवलज्ञानी कहाँ उपयोग नहीं रखते हैं। परिणतिरूपसे ज्ञान उनका सहज हो गया है, परिणतिरूप हो गया है। एकके बाद एक उपयोग नहीं रखना पड़ता। सहज उपयोगात्मक हो गया है। एकसरीखा उपयोग हो गया है। गुरुदेव कोई अपेक्षासे उसे परिणति कहते थे। क्योंकि एकके बाद एक उपयोगका क्रम नहीं है। परिणतिरूप हो गया है। केवलज्ञान अक्रम (है)।

.. भेदज्ञानकी परिणति है। भेदज्ञानकी परिणतिमें क्या जाना? स्व और पर दोनों। भेदज्ञानकी परिणतिमें स्व-पर दोनों छद्मस्थको आ जाता है। उपयोगात्मक भले एकके बाद एक जाने। परिणति एक ओर पड़ी है ऐसा नहीं है, कार्य करती है उसकी परिणति। जिसका कोई वेदन नहीं है (ऐसा नहीं है)। उसका ख्याल नहीं आता कि अमुक क्षयोपशम खुला है और थोड़ा लब्ध और थोड़ा उपयोग है, ऐसा नहीं है। उसका तो उसे वेदन नहीं है। ये तो उसका वेदन है। भेदज्ञानकी परिणति है।

... यह मैं हूँ और यह नहीं हूँ, यह मैं हूँ और यह नहीं हूँ। उघाड़ उसका कार्य करता है। ऐसा उसका उघाड़ है। क्षण-क्षणमें सहज है। इसलिये कहते हैं, आंशिकरूपसे

उसका स्वपरप्रकाशकपना चालू हो गया है। केवलज्ञानी तो लोकालोक (जानते हैं)। ये तो उसे स्वयंका अपने लिये स्वपरप्रकाशक चालू हो गया है। उसके वेदनमें विभाव-स्वभावका भेद करता रहता है। गुणभेद, विभाव सबका ज्ञान करता रहता है। स्वभाव और विभावका तो भेद करता है कि यह मैं और यह पर, यह मैं और यह पर, ऐसा करता रहता है।

.. प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। ये उसके वेदनमें था, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। स्वपरप्रकाशक। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२०३

मुमुक्षु :- .. भावभासन उसे पहले करना चाहिये, उस पर आपका वज़न ज्यादा होता है। उस भावभासनमें ये जानता है वह मैं, ये जानता है, जाननेवाला है वह मैं हूँ, ऐसे अनेक प्रकारसे युक्तिसे विचार करते हैं। भावभासन अर्थात् ज्ञानके वेदनरूप आना चाहिये (वह नहीं आती है)। ऐसे अनुमान लगता है। अज्ञानीको तो अनुमान ज्ञान है, अनुभव ज्ञान तो है नहीं। अनुमान ज्ञानमें तो इस प्रकार विचार होता है कि ये जानता है वह मैं हूँ। अथवा ये सब किसमें ज्ञात होता है? किसकी सत्तामें ज्ञात होता है? उस प्रकारसे ज्ञानसत्ताका विचार करके त्रिकाली ज्ञानसत्ताको पकड़े वह बराबर है या उसमें कुछ ज्ञानका वेदन आना चाहिये? ज्ञानका वेदन ज्ञानमें पकड़में आये, उसके बाद अन्दर जा सके, ऐसा कुछ है?

समाधान :- युक्तिसे निर्णय करता है कि ये जाननेवाला है वह मैं हूँ। वह अभी उसे अमुक प्रकारसे निर्णय हुआ है कि ये जाननेवाला है वह मैं हूँ। ज्ञायककी अस्ति है वह मैं हूँ, वह निर्णय हुआ है। परन्तु आगे जानेके लिये अंतरमें ज्ञायक जो ज्ञायकरूप परिणमता है, जाननेवाला, वह जाननेवाला जाननरूप ही है, ऐसा उसका अस्तित्व उसे अंतरमेंसे (होना चाहिये), ऐसा भावभासन उसे अंतरसे होना चाहिये।

पहले तो युक्तिसे नक्की करता है कि यह जाननेवाला है वह मैं हूँ। विभाव है वह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं विकल्प रहित निर्विकल्प तत्त्व हूँ। (ऐसा) बुद्धिसे निर्णय किया परन्तु अंतरमें-से उसे भावभासन, जैसे आगे बढ़े वैसे आना चाहिये कि जो विकल्प रहित ज्ञायक है, वही मैं हूँ। ऐसा अंतरमें-से उसका अस्तित्व ग्रहण होना चाहिये।

और अस्तित्व ग्रहण होनेके बाद वह अंतरमें टिकना चाहिये। अन्दर अस्तित्व जो ग्रहण हुआ उसे टिकाकर, फिर क्षण-क्षणमें यह जो मैं हूँ, वही मैं हूँ और यह नहीं हूँ, ऐसा भावभासन अन्दर टिके, उसकी दृढ़ता रहे, बारंबार क्षण-क्षणमें ज्ञायकका अस्तित्व है वही मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, ऐसा उसे टिके और उसकी दृढ़ता और उसकी उग्रता हो तो वह आगे जाता है। मात्र विकल्पसे निर्णय करके छूट जाय, उतना ही नहीं, परन्तु अंतरमें-से जाननेवाला सो मैं, ऐसा अस्तित्व ग्रहण करे। उसे अंतरमें टिकाये।

मुमुक्षु :- टिकानेका अर्थ?

समाधान :- उसे ज्ञायकका ज्ञायकरूप वेदन अर्थात् स्वानुभूति नहीं, परन्तु मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसी अंतरमें-से दृढ़ता, ज्ञायक ग्रहण होकर ऐसी दृढ़ता अंतरमें-से आनी चाहिये। ये शरीर और ये विभाव, विभावका विकल्पका वेदन हो वह नहीं, परन्तु ज्ञायक ज्ञायकरूप है। उस ज्ञायककी दृढ़तारूप ज्ञायकका भावभासन उसकी अंतरकी परिणतिमें आना चाहिये। और उसे वह टिकाये तो वह आगे जाता है। वेदन अर्थात् स्वानुभूतिका वेदन वह नहीं, परन्तु ज्ञायकका ज्ञायकतारूप वेदन।

मुमुक्षु :- सविकल्प दशामें ज्ञायककी परिणति ज्ञानमें ग्रहण होनी चाहिये।

समाधान :- हाँ, ज्ञानमें ग्रहण होनी चाहिये कि ये ज्ञायक ज्ञायकरूप है। वह उसे ज्ञानमें ग्रहण होनी चाहिये और उसकी दृढ़ता होनी चाहिये अंतरमें। उसकी दृष्टि वहाँ स्थापित हो जानी चाहिये। उसकी दृष्टि उसमें दृढ़ होनी चाहिये। ज्ञायक ज्ञायकरूप है, वही मैं हूँ। इसलिये उसकी अतंरकी परिणतिकी पूरी दिशा पलट जाती है।

मुमुक्षु :- पकड़में आये वह ज्ञानका वेदन?

समाधान :- वह ज्ञानका वेदन है। वह ज्ञायकका वेदन है। स्वानुभूतिका नहीं, परन्तु ज्ञायकका भावका भासन है। भावभासन है।

मुमुक्षु :- उसे राग और इस ज्ञायककी परिणति दोनोंका भेद ज्ञानमें पकड़में आता है।

समाधान :- ज्ञानमें पकड़में आता है, यह राग है और यह ज्ञान है। उसे अंतरमें-से पकड़में आ जाना चाहिये।

मुमुक्षु :- ऐसी प्रतीतिकी दृढ़ता हो वह उसका टिकना है?

समाधान :- हाँ, वह टिकना (है)। प्रतीतिकी दृढ़ता होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें पकड़में आता जाय, वैसे रागका जो स्वामीत्व अथवा रागका वेदन पतला पड़ता जाता है, कैसे होता है?

समाधान :- उसका स्वामीत्व अन्दरसे छूटता जाय। राग मैं नहीं हूँ और यह मैं हूँ। ऐसे। यथार्थ सहजरूप बादमें होता है, परन्तु उसे उस प्रकारसे छूटता जाता है। मैं इसका स्वामी नहीं हूँ, मैं मेरे ज्ञायकरूप हूँ। भिन्नका भिन्नरूप उसे भावभासन होता है। अभी उसकी दृढ़ता करता जाता है, उसे सहजरूप नहीं हुआ है। उसकी परिणतिमें वह ग्रहण करते जाता है कि मैं इससे भिन्न ही हूँ, मैं इसका स्वामी नहीं हूँ। मेरा चैतन्यतत्त्व इस विभावसे भिन्न तत्त्व है, निराला हूँ। ऐसा उसे अंतरमें-से भिन्नताका भावभासन होता जाता है।

मुमुक्षु :- अनेक जगह ऐसा आया है कि इसके संस्कार डाले तबसे सम्यक् सन्मुखता है। संस्कार डलनेके बाद तो दूसरे भवमें, इस भवमें प्राप्त नहीं करेगा तो दूसरे भवमें

भी प्राप्त करेगा। तो उतना आयुष्यका लंबा काल और दूसरे भवमें भी अमुक काल जाय, फिर संस्कारकी जागृति हो। तो उतनी लंबी सम्यक् सन्मुखता (रहती है)?

समाधान :- अन्दर संस्कार पड़े हैं न कि मैं ज्ञायक हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ऐसी ज्ञायककी अन्दर गहरी रुचि और प्रतीति हुयी है। ज्ञायक, एक ज्ञायकके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये और मैं ज्ञायक ही हूँ। ज्ञायककी उसे महिमा आयी है, ज्ञायककी अपूर्वता लगती है। ज्ञायक माने उसे रूखा नहीं है, परन्तु अपूर्व रुचिपूर्वक उसे ज्ञायक ग्रहण हुआ है। तो उसे अंतरमें जो संस्कार पड़े हैं, परिणति अभी भेदज्ञानरूप सहज नहीं हुयी है, परन्तु ऐसे संस्कार पड़े हैं तो भले ही दूसरे भवमें जाय तो अंतरमें-से स्फूरित हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- तब तकका का काल सम्यक् सन्मुखताका कहलायगा?

समाधान :- वह सम्यक्त्व सन्मुख है। भले अभी उसे भेदज्ञानकी परिणति चालू नहीं हुयी है, परन्तु अभी सन्मुखता है। सन्मुखता अभी कार्यरूप नहीं हुयी है। कारण, यथार्थ कारण कारणरूप रह गया है, कार्य आनेमें देर लगे।

मुमुक्षु :- सचमुचमें उसे लगन लगे तो छः मासमें हो जाय। और ऐसे संस्कार पड़े हो तो लंबा काल निकल जाय।

समाधान :- वह उत्कृष्टकी अपेक्षासे बात है।

मुमुक्षु :- दोनों अपेक्षा भिन्न-भिन्न हैं।

समाधान :- वह उग्र पुरुषार्थ करे तो पहले तो अंतर्मुहूर्तमें हो जाय। परन्तु उससे अमुक प्रकारसे करे और एक धारावाही प्रयत्न करता है तो ऐसे छः महिने (कहा)।

मुमक्षु :- धारावाही प्रयत्न चले।

समाधान :- उग्र प्रयत्न हो तो छः महिने (लगते हैं)। और ये तो अभी मन्द-मन्द पुरुषार्थ है, इसलिये लंबा समय लगता है। अपना पुरुषार्थ चालू ही है। वह एकदम उग्र करे तो अंतर्मुहूर्तमें जाता है। ये अमुक प्रकारसे करे तो छः महिने लगते हैं। और वह जिसे संस्कार पड़े, लेकिन वह ऐसा पुरुषार्थ नहीं करता है। इसलिये उसे संस्कार पड़े हैं, कार्यरूप नहीं हुए हैं। ... पुरुषार्थ करता नहीं है, इसलिये लंबा काल निकल जाता है। करे, मन्द करे, ऐसा करते-करते उसे लंबा काल निकल जाता है।

मुमुक्षु :- छोटे बालककी भाँति, खड़े होना सीखे, गिरे, फिरसे खड़ा हो..

समाधान :- हाँ, वैसे करता है। .. काल ऐसे ही चला जाता है। करता नहीं है। उत्कृष्टमें उत्कृष्ट इस तरह अर्ध पुद्गल परावर्तन चला जाय। परन्तु अन्द संस्कार पड़े हैं न। ऐसे पीठ नहीं फेरी है, लेकिन मन्दता है तो दूसरे भवमें भी प्राप्त होता है।

मुमुक्षु :- हमें तो ऐसा था कि ब्रह्मचारी बहनोंने..

समाधान :- सूचना दी हो।

मुमुक्षु :- श्री डायमेन्शनसे गहराई हो, माताजी! एकदम मानो कितना दूर-दूर हो, होलमें मानों गुरुदेव दूर बैठे हों, इतना बड़ा लगे। चित्र छोटा हो, परन्तु अन्दर गहराई बहुत लगे। दूरसे प्रवचनमें बैठे हों और देखे तो ये क्या! साक्षात् दूरसे गुरुदेव प्रवचन दे रहे हो। धोध और किरणें...

मुमुक्षु :- जो धोधका है वह बहुत सुन्दर था।

समाधान :- सूचना दी हो, फिर सबने किया। पेइन्टरने (किया)। इतने सालसे कोई मेल नहीं खा रहा था, इस साल मेल बैठ गया।

मुमुक्षु :- प्रिन्टरने यहाँ रहकर ही किया। बहुत सुन्दर।

समाधान :- .. करवाया था। करते-करते अच्छा हो जाता है। फिर कहा, ऐसा कुछ करते हैं। गत वर्षसे हो रहा था, इस साल हो गया। .. काम करते रहते हैं। ऐसे तो कितने प्रसंग बने हों। ये तो संक्षिप्तमें कैसे आ जाय (उतना)। सब तो चित्रित नहीं कर सकते। गुरुदेवने कितने विहार किये हैं, कोई विद्वान आये हों, कुछ-कुछ प्रसंग बने हों, सब तो चित्रित नहीं कर सकते। संक्षेपमें आ जाय, उस प्रकारसे खास-खास (लिये हैं)।

... सब प्रसंग चित्रित नहीं कर सकते। दीक्षाके बाद तुरन्त परिवर्तनका चित्र लिया है। गुरुदेव पढते हैं।

मुमुक्षु :- धूली निशाल। आपने सब समाविष्ट कर लिया है।

समाधान :- गुरुदेव थोड़ा फिरे हैं, बादमें उन्होंने नक्की किया। बोटाद संप्रदायमें हीराजी महाराजके पास दीक्षा लेनेका (निश्चित किया)।

मुमुक्षु :- ट्रेईन रखकर आपने बहुत अच्छा दिखाया है। फिरते हैं।

समाधान :- गुरुदेवने कितनो बरसों तक वाणीकी वर्षा की है। मूसलाधार वाणी बरसायी है। इसलिये पानीका धोध उसमें बताया है। वह कुछ हाथसे नहीं करना होता है, सूचना देनी होती है। तत्त्वके भी आये और सब आये। गुरुदेवके प्रतापसे सब होता है।

मुमुक्षु :- एक ओरसे भावनाका उल्लास बताना और दूसरी ओर ऐसा कहना काले सर्प जैसा दिखता है।

समाधान :- .. जो राग हो वह तो देव-गुरु-शास्त्रकी ओर होता है। (मुनिराज) छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते हैं। तो भी बाहर आते हैं तो शास्त्रकी रचना करते हैं, श्रुतका चिंतवन करते हैं और भगवानकी भक्तिके श्लोक रचते हैं। पद्मनंदी आचार्यने कैसे श्लोक रचे हैं! प्रभु! आपकी भक्ति करते हुए इन्द्रने हाथ ऊपर किये तो बादलोंके दो टूकड़े हो गये। ऐसा श्लोक आता है।

(आप दीक्षा लेकर गये तो) नदी कल-कल (आवाज करती है), उस बहाने नदी रो रही है। ऐसे सब श्लोक रचे हैं। उस क्षण भेदज्ञान, ज्ञायककी परिणतिकी उग्रता, सब मुनिओंको प्रतिक्षण वर्तता ही है। एक क्षण भूल जाय और दूसरी क्षणमें आये, ऐसा नहीं होता। उसी क्षण उन्हें ज्ञायककी परिणति भिन्न (वर्तती है) और उसी क्षण श्रुतका चिंतवन, भक्तिके श्लोक रचते हैं, सब करते हैं। एक क्षण भूल जाते हैं और दूसरी क्षण याद आता है, ऐसा नहीं है। उसी क्षण ज्ञायककी धारा भिन्न और ये प्रशस्त भाव आयें वह धारा भिन्न है। दोनों धारा साथमें वर्तती है।

मुमुक्षु :- और ज्ञायककी धारा तो अविच्छिन्न जो चलती है...

समाधान :- ज्ञायककी धारा अविच्छिन्न रहती है, वह तो अखण्डित है। रागकी धारा तो टूट जाती है। स्वरूपमें उपयोग जाय, निर्विकल्प दशा होती है, वहाँ वह राग तो टूट जाता है। दृष्टिमें वह अखण्ड रहता है। वह तो टूटती नहीं।

... कोई तत्त्वके, अध्यात्मके लिखे। कोई धवलके शास्त्र लिखे। अनेक जातके विकल्प बाहर आते हैं तब होते हैं।

मुमुक्षु :- वह सब ऐसे तो लिखते हैं, सब क्रम रहता होगा? क्योंकि तोड़पत्र जो लिखे होते हैं, वह तो अपने पास रखते नहीं। तो उसमें क्रम संख्या देते होंगे? कैसे होगा?

समाधान :- क्रम तो कुछ करते होंगे। वे तो छोड़ देते हैं। क्रम मिल जाय ऐसे लिखते हों न। श्लोककी संख्या आदि आता है। शास्त्रकी प्रीति है उन्हें। श्लोक संख्याका मेल आये ऐसा लिखते होंगे। श्रुतकी भक्ति है, इसलिये सुमेल पूर्वक लिखते हैं। कितने शास्त्र लिखे। ये तो इतने बाहर आये, इसके अलावा ऐसा कहा जाता है कि कितने ही लिखे हैं। अप्रमत्त-प्रमत्त दशामें झुलते-झुलते बाहर आये, वहाँ कलम चलती है। फिर लिखकर वनमें विचरते हैं। फिरसे लिखते हैं।

मुमुक्षु :- शास्त्र लिखकर जब चले जाते हैं, तो फिर ताड़पत्री...

समाधान :- कुछ कलम करते हैं। कहीं रखते हों, गुफामें या कहीं भी रखते हों। फिर वापस आकर लिखते हों, कुछ भी करते हों।

मुमुक्षु :- सम्यग्दृष्टि ... पेश करे कि किसी भी प्रकारसे जीवको..

समाधान :- आत्माकी पहचान हो। अनेक प्रकारसे उसका विस्तार करते हैं। एक आत्मा-शुद्धात्माको पहचाननेके लिये। उसका मूल स्वरूप पहचाननेके लिये उसकी साधना कैसी होती है, उसकी साधकदशा कैसी होती है, उसका साध्य, उसे दृष्टि कहाँ रखनी, आदि अनेक प्रकारसे विस्तार करते हैं।

मुमुक्षु :- .. ज्यादा निद्रा नहीं होती। एकसाथ पौन सैकंडसे ज्यादा निद्रा नहीं

होती या पूरे दिवस दरम्यान?

समाधान :- एकसाथ ऐसी निद्रा नहीं होती। पौन सैकण्ड निद्रा होती है। पीछली रयन। पूरे दिनमें तो उन्हें निद्रा होती नहीं। पीछली रयन पौन सैकण्ड यानी एकसाथ उतनी निद्रा नहीं होती। पौन सैकण्ड होते ही जागृत हो जाय।

मुमुक्षु :- पीछली रयनमें एक बार ऐसे नहीं, ज्यादा बार भी..

समाधान :- ऐसा अर्थ होना चाहिये। पौन सैकण्ड होते ही जागृत हो जाय। एकसाथ निद्राधीन हो जाय, ऐसा नहीं। पौन सैकण्डमें जागृत हो जाय।

समाधान :- .. पुण्यबन्ध होता है (तो) देवलोक होता है। उससे भवका अभाव तो नहीं होता। भवका अभाव तो शुद्धात्माको पीछानने-से होता है। शुभभाव बीचमें आते हैं, देव-गुरु-शास्त्रके। परन्तु शुद्धात्मा तो विकल्पसे भिन्न है। भावना अच्छी न हो तो अच्छा नहीं होता है। तैयारी अपनेको करनी है। कहीं-से आया तो होगा और कहाँ जाना होगा, परन्तु भावना अच्छी करना। आत्माको पीछानने से अच्छा होता है।

मुमुक्षु :- चतुर्थ गुणस्थानमें कितने-कितने दिनोंमें आता रहता है? या लंबा टाईम खींच लेते हैं?

समाधान :- उसका कोई नियम नहीं होता है। किसीको जल्दी होता है, किसीको देरसे भी होता है। लेकिन होता तो है। होता तो जरूर है। किसीको लंबा समय लगे उपयोग बाहर रहता हो तो। किसीको जल्दी होता है। जिसकी अंतरकी दशा जैसी हो वैसे होता है। चतुर्थ गुणस्थानमें स्वानुभूति तो होती है।

मुमुक्षु :- टाईम वाईस बारह महिना, तीन महिना..

समाधान :- टाईम बारह महिना ऐसा नहीं होता है, ऐसा नहीं होता है। इतना लंबा समय नहीं निकलता है। ऐसा लंबा समय नहीं होता है।

मुमुक्षु :- अन्दरकी क्या स्थिति होती है, जिसमें निर्विकल्प..

समाधान :- उसको भेदज्ञानकी धारा रहती है। क्षण-क्षणमें उपयोग बाहर जाय तो भी भेदज्ञानकी परिणति उसको रहती है। उसको विचार नहीं करना पड़ता है, सहज रहता है। पहले एकत्व हो जाय, बादमें विचार करे कि मैं जुदा हूँ, ऐसा विचार करके नहीं, वह तो सहज रहती है। बाहर उपयोग होवे, विकल्प होवे, तो भी उसका क्षण-क्षण भेदज्ञान रहता है।

मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी परिणति सहज रहती है। ज्ञायककी आंशिक शान्ति उसको रहती है। एकत्व नहीं हो जाता है। ऐसी दशा, कोई अलग, जगतसे जुदी-न्यारी उसकी दृष्टिकी दिशा बदल जाती है।

मुमुक्षु :- जिस समय अन्दरमें निर्विकल्प ज्ञानका आनन्द होता है, उसकी क्या

धारा है? मतलब क्या रूप है उसका?

समाधान :- विकल्प छूटकर स्वानुभूति (होती है)। जो आत्माका स्वरूप है वह उसे वेदनमें आता है। उसका कोई अपूर्व आनन्द है, वह वचनमें नहीं आता है। जो अनुभूति होती है उसे वह जानता है। वह वचनमें नहीं आता।

वह तो कोई अपूर्व है, जगतसे न्यारी है। उसकी दृष्टि, स्वानुभूति-वेदन पलट जाता है। बाहरका कुछ ख्याल नहीं है उसको। बाहर क्या होता है, उसका उसे ध्यान नहीं रहता। विकल्पसे छूट जाता है और स्वानुभूतिमें भीतरमें चला जाता है। और भीतर गहरा चैतन्यमें चला जाता है।

मुमुक्षु :- कितना समय?

समाधान :- उसको अंतर्मुहूर्त रहता है। थोड़ा लंबा, कम,... अंतर्मुहूर्त रहता है। उसकी स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है।

मुमुक्षु :- आनन्द .. तो उसके लिये पुरुषार्थ क्या?

समाधान :- वह तो सहज भेदज्ञानकी धारा उसको रहती है। वह सहज रहती है। बाहर आये तो एकत्व नहीं होता, भिन्न ही रहता है। उसकी धारा ही रहती है। ज्ञाताधार और उदयधारा दोनों भिन्न चलती है। वह उसका कारण है। भेदज्ञानकी धारा इसका कारण है। द्रव्य पर दृष्टि रहती है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दृष्टिकी पहचान हो सकती है क्या?

समाधान :- जिसको यथार्थ जिज्ञासा होती है वह पीछान सकता है। जिसकी दृष्टि और आत्माको पीछाननेमें जिसकी जिज्ञासा लगती है, मेरा यथार्थ स्वरूप क्या है? आत्मा क्या है? ज्ञानी कौन है? उसका क्या स्वरूप है? उसकी जिसको जिज्ञासा लगती है, वह पीछान सकता है। यथार्थ जिज्ञासा होनी चाहिये। तो पीछान सकता है। गुरुदेवने सब मार्ग प्रगट किया है।

मुमुक्षु :- आपकी भी कृपा है। अब तो आप ही (हमारे लिये हों)।

समाधान :- .. स्वरूपको पीछाने, सबको यथार्थ दृष्टि (करवायी), मार्ग बता दिया है।

मुमुक्षु :- मार्ग बता दिया।

समाधान :- मार्ग बता दिया।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२०४

समाधान :- ... जाननेवाला है, ज्ञायक है। लेकिन विकल्प ही नहीं है, विकल्प रहित आत्मा है। वह तो आनन्दसे भरा, आनन्दसे भरा है। उसमें उलझनमें नहीं आ जाना। मैं तो जाननेवाला ज्ञायक आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ। कोई विकल्प मेरे स्वरूपमें नहीं है। मैं तो सिद्ध भगवान जैसा आत्मा हूँ। सिद्ध भगवान जैसे आत्माके आनन्दमें विराजते हैं, वैसा मैं शक्तिरूप चैतन्य परमात्मा हूँ। कोई विकल्प मेरेमें नहीं है, विकल्प रहित आत्मा हूँ। जाननेवाला हूँ और मैं सुखसे भरा (हूँ)। बाहर कहीं सुख नहीं है।

अनन्त कालमें जन्म-मरण करते-करते मुश्किलसे मनुष्यभव मिलता है। और उस मनुष्यभवमें जीव जो करना चाहे वह कर सकता है। पुरुषार्थसे भरा है। उसे कोई नहीं रोकता है। उसे कर्म नहीं रोकते, कोई नहीं रोकता है। आत्मा आनन्दसागरसे भरा जाननेवाला है। उसमें कोई विकल्प ही नहीं है। मैं विकल्प रहित जाननेवाला आत्मा हूँ। मैं जाननेवाला हूँ।

गुरुदेवने कहा कि तू चैतन्य (है)। भगवान जैसा तेरा स्वरूप शक्तिसे है। अतः उलझनमें नहीं आ जाना। शान्ति रखकर परिणाम बदलते रहना कि मैं जाननेवाला हूँ। कोई विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। सुख और महिमा मेरेमें है। बाहर कहीं सुख और महिमा नहीं है। दुःखस्वरूप है।

अनन्त कालसे जीवने जन्म-मरण किये हैं। उसमें-से अनेक जातके नर्कके, निगोदके, देवलोकके अनन्त (भव) किये, सब किये। उसमें कभी ऐसे गुरु नहीं मिले हैं। इस पंचम कालमें ऐसे गुरु मिले। ऐसा मनुष्यभव मिला। गुरुदेवने कहा, तू शक्तिसे भगवान जैसा आत्मा है। मैं तो भगवान जैसा हूँ। कोई विकल्प मेरेमें नहीं है। मैं तो ज्ञायक हूँ। ऐसे आत्मामें शान्ति रखनी। उलझनमें नहीं आना। शान्ति रखनी। मैं जाननेवाला हूँ। अच्छा-अच्छा वांचन करना, भगवानके मन्दिरमें जाना। भगवान जैसा चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ, कोई विकल्प मेरेमें नहीं है। शान्ति रखनी।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- उसे अन्दर आत्मा-आत्माकी लगन लगे, कहीं चैन पड़े नहीं। अन्दरसे आत्माकी, अंतरमें-से शान्ति न आवे, अंतरमें-से सुख प्रगट न हो, तबतक उसे कहीं

चैन न पड़े। आत्मा कैसे समझमें आये? आत्मा कैसे पहचानमें आये? उसीकी धून, उसकी बार-बार लगन लगनी चाहिये। वस्तु क्या है? तत्त्व क्या है? आत्माका स्वभाव क्या है? उसका बारंबार चिंतवन, मनन उसे अंतरमें चलता रहे। अंतरमें खोजना, ग्रहण करना स्वयंको है। गुरुदेवने मार्ग तो बता दिया है। ग्रहण, स्वभावको कैसे ग्रहण करना? जो विभाव हो रहा है, उसमेंसे सूक्ष्म उपयोग करके अंतर आत्माको ग्रहण करना, वह पुरुषार्थ स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- .. उसका एकत्व मिथ्या है और ज्ञानस्वभाव अपना है, वही एकत्व यथार्थ है, इसप्रकार उसे बारंबार अपने संवेदनमें प्रयत्न करना पड़ता होगा? कैसे है?

समाधान :- बारंबार उसका प्रयत्न करे कि ये जो है वह यथार्थ नहीं है। यह एकत्वबुद्धि है विभावकी, वह यथार्थता नहीं है। वह तो मिथ्या है। क्योंकि वह पर विभाव अपना स्वभाव नहीं है, आकुलतारूप है। उसकी एकत्वबुद्धि टूटे कैसे? और स्वभावमें कैसे एकत्वता हो? स्वभावको ग्रहण करे तो स्वयंका एकत्व प्रगट हो। स्वरूपका एकत्व और परसे विभक्त कैसे हो, उसका बारंबार अभ्यास करे तो प्रगट हो।

(स्वभावसे) एकत्व और विभावसे विभक्तकी वार्ता जीवने सुनी नहीं है। गुरुदेवने वह सब स्वरूप बताया है। अंतरका स्वरूप भी गुरुदेवने प्रगट करके सबको बताया। (बाकी सब) श्रुत-सुननेमें आयी, अनुभवमें सब आया। यह वार्ता जीवने सुनी नहीं, उसका परिचय नहीं किया है, शास्त्रमें आता है। तो सुननेमें तो गुरुदेवके प्रतापसे आ गयी। अन्दर विचारमें, अंतरमें ऊतारनी स्वयंको बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- .. ज्ञानमें जिसे क़ीमत देनी चाहिये उसकी क़ीमत आती नहीं और जिसकी क़ीमत देने जैसी नहीं है, उसकी क़ीमत आती है, ऐसे कैसे गहरे विपरीत संस्कार डाले होंगे कि बारंबार ऐसा ख्याल आता है कि वासत्वमें तो क़ीमती चीज तो शुद्धात्मा है कि जिसमें ऐसे अनन्त गुण ऐसे अनन्त सामर्थ्यसे भरे हैं। क्षयोपशमज्ञानमें सब ख्यालमें आता है। फिर भी क़ीमत पैसा हो तो पैसेकी, दूसरी कोई चीज हो तो वहाँ क़ीमत दी जाती है और उसकी अधिकता हो जाती है। ऐसे कैसे गहरे संस्कार डाले हैं कि जिससे वह साफ नहीं हो रहे हैं?

समाधान :- अनादि कालके वह संस्कार विपरीत पड़े हैं, इसलिये बारंबार उसकी स्फूरणा होती रहती है। और अन्दर विचारमें निर्णयमें ऐसा आये कि ये सब तो जूठा है, तुच्छ है, महिमावंत तो आत्मा है कि जो अनन्त गुणसे भरा अनुपम है, वह है। फिर भी अनादिसे जो परिणति है उसमें परिणति दौड़ती रहती है। उसमें उसकी एकत्वबुद्धि है। उसमें चला जाता है। परन्तु प्रयत्न करके, क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ करके उससे स्वयं भिन्न हो, तो वह टूट जाय।

मुमुक्षु :- पर्याय एक समयकी, मताजी! दूसरे समय तो उस पर्यायका व्यय हो जाता है। और वह गहरे संस्कार ऐसे कैसे डल जाते हैं कि इतना लंबा अभ्यास, विचार करते हैं, फिर भी क़ीमत वहाँ दे देते हैं और इसकी क़ीमत अभी भी नहीं आ रही है?

समाधान :- पर्याय पलट जाती है, परन्तु आत्मा तो नित्य है। आत्मा नित्य है तो वही संस्कार ऐसे ही स्फूरित होते रहते हैं। पर्याय तो क्षण-क्षणमें पलटती है। पर्याय अनित्य है, आत्मा नित्य है। उसमें जो विभावके संस्कार हैं, वह स्फूरित होते रहते हैं।

परन्तु ज्ञानस्वभाव ऐसा है कि वह ज्ञानस्वभाव तो स्वयंका ही है। वह कोई पराया नहीं है। यदि स्वयं प्रगट करे तो वह सहज है। पराया नहीं है कि बाहर लेने जाना पड़े। क्षणमें प्रगट हो ऐसा है और स्वयंका है और सहज है, परन्तु उसमें वह दृष्टि नहीं रखता है। इसलिये अनादिका जो वह ऐसे ही स्फूरता रहता है।

मुमुक्षु :- एक बात कही न, निराश होने जैसा तो कुछ है नहीं। वह बात बहुत अच्छी लगती है।

समाधान :- निराश होने जैसा है ही नहीं। स्वयंका ही है, अपना स्वभाव है। अंतरमें-से ही प्रगट हो ऐसा है। स्वयं अंतरमें दृष्टि रखे तो जो उसमें-से ही, जो स्वभाव है उसमें-से ही स्वभाव प्रगट होता है।

गुरुदेव कहते थे, छोटीपीपर घिसते-घिसते उसमें-से प्रगट होता है। ऐसे स्वयंके स्वभावका अभ्यास करने-से उसमें-से ही स्वयं प्रगट होता है। उसीमें सब भरा है, उसीमें-से प्रगट होता है। ये संस्कार तो विभावके हैं। वह तो जब टूट जाते हैं, तब ऐसे टूट जाते हैं कि फिरसे उत्पन्न नहीं होते। जो अपना स्वभाव तो शाश्वत है, (इसलिये) जो प्रगट हुआ सो प्रगट हुआ, सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुखमें (रहता है)। प्रगट हुआ सो प्रगट हुआ, फिर बदलता नहीं। और वह स्वभाव तो अनन्त काल पर्यंत परिणमता ही रहता है। वह संस्कार, वह स्वभाव तो ऐसा है। और ये संस्कार टूट जाय, नाश हो जाय तो फिर उसका उद्भव नहीं होता। क्योंकि वह तो विभाव है। परन्तु वह तोड़ता नहीं है तबतक उत्पन्न होते रहते हैं। टूट जाय तो फिर उत्पन्न ही नहीं होते।

मुमुक्षु :- शुरूआतमें विश्वास नहीं आता है।

समाधान :- विश्वास नहीं आता है। अपनी ओर दृष्टि गयी तो सम्यग्दर्शन होता है। और उसे यदि मूलमें-से नाश हो तो फिरसे एकत्वबुद्धिके संस्कार पुनः उत्पन्न नहीं होते। भिन्न हुआ सो हुआ, फिर भिन्नकी ओर ही उसकी परिणति चली। फिर टूट

गया सो टूट गया, नाश हो गया। फिरसे वह एकत्वबुद्धिके संस्कार उसे उत्पन्न ही नहीं होते। स्वभावकी एकत्वता प्रगट हुयी सो प्रगट हुयी, सादिअनन्त (रहती है)।

उसके बाद स्वरूपकी रमणता-वीतराग दशा अधूरी है, वह वीतराग दशा प्रगट हुयी तो रागका अंकुर उत्पन्न ही नहीं होता है। इस तरह वह संस्कार नाश हो जाते हैं। फिर अपने स्वभावमें-से स्वभाव ही प्रगट होता रहता है। क्योंकि स्वभाव है उसका नाश तो कभी होता नहीं।

अनन्त काल गया, इतने विभाव हुए, अनन्त काल पर्यंत विभाव ऐसे ही करता आया तो भी जो स्वभाव है उसका नाश नहीं हुआ है। और फिर वह जब प्रगट होता है, फिर अनन्त काल पर्यंत प्रगट होता ही रहता है। विभावका नाश हो, फिर उसका अंकुर उत्पन्न ही नहीं होता।

परन्तु वह स्वयं पुरुषार्थ करके उसे तोड़ता नहीं है, इसलिये वह संस्कार अनन्त कालके हैं, वह बार-बार उत्पन्न होते रहते हैं। यदि उसका नाश हो जाय तो फिर उत्पन्न ही नहीं होते। क्योंकि वह विभाव है। अपना नहीं है, निकल जाता है।

स्फटिक मणि स्वभावसे शुद्ध है, उसमें निर्मल पर्याय ही प्रगट होती है। जो लाल, पीले फूल हैं, वह तो अन्य निमित्तसे (प्रतिबिंब उठा है), भले परिणमन अपना है, परन्तु वह तो निकल जानेके बाद होते ही नहीं।

ऐसे चैतन्यमें मलिनता टूट जाय, फिर आती ही नहीं। लेकिन वह संस्कार स्वयं तोड़ता नहीं है, इसलिये उत्पन्न होते रहते हैं। स्वयं अनादि कालसे भिन्न ही है, तीनों काल। परन्तु उस भिन्नकी परिणति प्रगट हुयी और स्वानुभूतिकी दशाकी ओर मुड़ा, भेदज्ञानकी दशा प्रगट हुयी, और यदि उसे दृढ़ हो गयी एवं एकत्वबुद्धिके संस्कार नाश हुए, तो पुनः उत्पन्न ही नहीं होते। ऐसा वस्तुका (स्वरूप है)।

जो स्वभाव है वह तो सहज है। अंतरमें-से फिर स्वभाव स्वभावकी गतिमें ऐसे ही सहजरूप परिणमता है। और वह सहज है। (विभाव) दुष्कर है। लेकिन विभाव है वह सहज हो गया है और स्वभाव मानों दुष्कर हो, ऐसा उसे हो गया है। परन्तु स्वभाव तो सहज है, स्वयंका है। प्रगट होनेके बाद फिर उसमें-से सहज प्रगट होता ही रहता है। वह तो नाश हो जाता है।

मुमुक्षु :- एक बार प्रगट हुआ सो हुआ, फिर नाश नहीं होता।

समाधान :- हाँ, प्रगट हुआ सो हुआ, फिर नाश नहीं होता। उस ओर उसकी गति चली सो चली। विभाव नाश हो जाता है।

मुमुक्षु :- अर्थात् विभावके संस्कारमें ज़ोर है ही नहीं, स्वभावमें ही ज़ोर है।

समाधान :- उसमें ज़ोर ही नहीं है, स्वभावमें ज़ोर है। अनन्त काल गया तो

भी स्वभाव ज्योंका त्यों है। स्वभावके संस्कार तो गये ही नहीं, स्वभाव तो स्वभावरूप ही है। परन्तु विभावमें स्वयं जुड़ा है, इसलिये उसके संस्कार उत्पन्न होते रहते हैं। यदि उसे तोड़ दे तो फिर-से आते ही नहीं। तोड़ दे तो स्वभाव स्वभावरूप परिणमता है।

मुमुक्षु :- क्षयोपशमका अभाव हुआ तो क्षायिक ही होता है।

समाधान :- क्षायिक ही होता है। अपना है, कहीं लेने नहीं जाना है, इसलिये सुलभ है।

मुमुक्षु :- शास्त्रमें एक ओर ऐसी बात आये कि जिस प्रकारसे पुरुषार्थ कर अथवा तेरी पर्याय करनेमें तू स्वतंत्र है। और दूसरी ओर ऐसा आये कि प्रत्येक पर्याय उसके स्वकालमें होती है, दोनोंका मेल कैसे है? शास्त्रमें ऐसा आता है कि प्रत्येक पर्याय उसके स्वकालमें होती है।

समाधान :- उसके स्वकालमें होती है?

मुमुक्षु :- जी हाँ। और दूसरी ओर ऐसा आये कि तू स्वतंत्र है। किसी भी प्रकारकी पर्याय प्रगट करनी वह तेरे अधीन है यानी तू स्वतंत्र है। जैसा पुरुषार्थ तू कर, वैसा तू कर सकता है।

समाधान :- तेरी परिणति तेरे हाथकी बात है। जिस ओर तेरे पुरुषार्थकी गति है, उस ओर तेरी पर्याय परिणमेगी, और उस ओरका काल है, ऐसा समझ लेना। जैसी तेरे पुरुषार्थकी गति है, उस ओरका स्वकाल समझ लेना। स्वकालमें हो अर्थात् स्वकालमें पुरुषार्थकी डोर साथमें होती है। जिस ओर तेरे वीर्यकी गति-पुरुषार्थकी गति, उस ओरका तेरा काल है। विभावकी ओर तेरी डोर है तो उस ओरका काल है। यदि तेरा पुरुषार्थ स्वभावकी ओर गया तो उस ओरका काल है।

मुमुक्षु :- स्वभावकी दृष्टि हो तो उस ओरका काल है। निर्मल पर्याय प्रगट होनेका काल है।

समाधान :- हाँ, वह काल है।

मुमुक्षु :- और पर्यायदृष्टि हो तो विभावपर्याय प्रगट होनेका काल है।

समाधान :- हाँ, विभावपर्याय प्रगट होनेका काल है।

मुमुक्षु :- उसे और जो पुरुषार्थ तू करना चाहे वह कर सकता है। उसमें इस तरह लेना?

समाधान :- हाँ, इस प्रकार लेना। उसमें पुरुषार्थका सम्बन्ध सबके साथ लेना है। पर्यायके साथ। उसकी पुरुषार्थकी दिशा किस ओर है (उस पर निर्भर करता है)। तू ज्ञायक-ओर गया तो ज्ञायक-ओरकी ही सब पर्याय प्रगट होगी। और तेरी दृष्टि पर्याय-ओर है तो उस-ओरकी सब पर्यायें प्रगट होगी।

मुमुक्षु :- स्वतंत्ररूपसे तू कर्ता है, अर्थात् कोई परद्रव्य करवाता नहीं है, ऐसे लेना?

समाधान :- परद्रव्य तुझे करवाता नहीं, तू स्वयं स्वतंत्र पर्याय कर रहा है। स्वतंत्रता (है)। स्वतंत्रता अर्थात् कोई दूसरा द्रव्य तुझे नहीं करवाता है। क्योंकि तू अन्यका नहीं करता और तुजे कोई अन्य नहीं करता है। इस तरह तेरी स्वतंत्रता है। परन्तु पर्याय ऐसी स्वतंत्र नहीं है कि पर्याय ऐसी स्वतंत्र हो कि द्रव्यके आश्रय बिना पर्याय परिणमे, ऐसी पर्याय होती नहीं। द्रव्यके आश्रयसे पर्याय परिणमती है। द्रव्यके आश्रय बिना पर्याय स्वतंत्र परिणमे तो-तो वह स्वयं एक द्रव्य हो जाती है। इसलिये उसकी स्वतंत्रता उसके परिणमन तक सिमीत है कि वह पर्याय कैसे परिणमे। ऐसे स्वतंत्र है। लेकिन उसे द्रव्यका आश्रय तो होता है।

मुमुक्षु :- इस बातकी ही अभी तकरार चलती है।

समाधान :- .. इस तरह स्वयं परिणमन करके, स्वयं अपने द्रव्यमें-से स्वतंत्ररूपसे परिणमन करके कार्य लावे, इसलिये वह पर्याय स्वतंत्र (है)। परन्तु उसे द्रव्यका आश्रय है। द्रव्यके आश्रय बिनाकी पर्याय नहीं है।

मुमुक्षु :- उसमें तो दो बात आयी न कि, षट्कारक, द्रव्यके षट्कारक द्रव्यमें है, इसलिये पर्यायको और द्रव्यको अभेद करके षट्कारक (कहे), कर्ता द्रव्य, करण द्रव्य सब द्रव्य। और उसे रखकर पर्यायके षट्कारक लेने हों तो इस तरह लेना कि परिणमन उस समयका..

समाधान :- वह परिणमन द्रव्यके आश्रयसे है, उस तरह उसके षट्कारक लेने। पर्याय स्वतंत्र है। उसका करण, संप्रदान, अपादान, सब। उसकी स्वतंत्रा भी द्रव्यके आश्रययुक्त है। अकेली पर्याय, बिना द्रव्याश्रय निराधार नहीं होती है।

मुमुक्षु :- स्पष्टीकरण करूँ कि पर्याय स्वतंत्रपने होती है, अर्थात् कोई अन्य द्रव्य उसकी पर्यायको करता नहीं, उतना ही उसका अर्थ है।

समाधान :- हाँ, उतना अर्थ है।

मुमुक्षु :- और स्वतंत्रपने होती है अर्थात् जैसी दृष्टि हो, स्वभावकी ओर दृष्टिका झुकाव हो तो उसकी पर्यायमें निर्मलता सहजरूपसे होती रहती है।

समाधान :- हाँ, वह सहज प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- स्वकालमें जो होनेवाली है वह होती रहती है।

समाधान :- हाँ, ज्ञानकी ज्ञानरूप, दर्शनकी दर्शनरूप, चारित्रकी चारित्ररूप, वह स्वतंत्र उसकी होती रहती है।

मुमुक्षु :- पर्यायदृष्टि हो तो इस तरह (होती है)।

समाधान :- हाँ, पर्यायदृष्टि हो तो इस तरह (होती है)। स्वभाव-ओर दृष्टि गयी तो सब निर्मल पर्यायें स्वतंत्र होती हैं। (द्रव्यका) आश्रय रहता है। स्वतंत्रता है, वह एक सत् है, परन्तु उसे द्रव्यके आश्रयकी अपेक्षा है।

मुमुक्षु :- उसे रखकर बात है।

समाधान :- वह बात रखकर (बात) है। और वह शास्त्रमें भी आता है। कोई जगह पर्याय स्वतंत्र है ऐसा आये और कोई जगह द्रव्यका आश्रय है, ऐसा भी आता है, दोनों बात आती हैं।

मुमुक्षु :- वहाँ द्रव्यका आश्रय अर्थात् यहाँ जैसे स्वभावका आश्रय है वैसे नहीं। द्रव्यका आश्रय माने द्रव्यका स्वयंका परिणमन है, उसे द्रव्यका आश्रय है, यह कहना है?

समाधान :- द्रव्यका जैसा परिणमन है, जिस ओर उसकी परिणति (झुकती है), जैसी अपनी दृष्टि है वैसी उसकी पर्याय है। .. स्वभाव-ओर दृष्टि गयी तो स्वभाव पर्याय (होती है)। सब गुणकी स्वतंत्र पर्याय (होती है)। ज्ञानकी ज्ञान, दर्शनकी दर्शन, चारित्रकी चारित्र, ऐसे स्वतंत्र पर्यायें होती हैं। एक द्रव्यके आश्रयसे है।

मुमुक्षु :- उन सबका आधारभूत द्रव्य एक ही है।

समाधान :- आधारभूत द्रव्य है।

मुमुक्षु :- ऐसा वस्तुका स्वरूप है, तो स्वतंत्रपने तू कर सकता है, वह दोनों बात कैसे? पर्यायके उसके स्वकालमें होती है। और दूसरी ओर ऐसा कहना है कि तू स्वतंत्रपने पर्यायका कर्ता है।

समाधान :- पर्यायका स्वतंत्रपने तू कर्ता है और वह स्वकालमें होती है। उसमें द्रव्यका आश्रय और उसकी स्वतंत्रता, दोनों बताते हैं। उसकी स्वतंत्रता कोई अपेक्षासे स्वतंत्रता भी है और कोई अपेक्षासे उसे द्रव्यका आश्रय भी है। ऐसे दोनों बात बताते हैं। उसमें किस प्रकार उसकी अपेक्षा समझनी वह अपने हाथकी बात है। कोई अपेक्षासे पर्यायको स्वतंत्र भी कहनेमें आती है कि पर्यायका स्वकाल स्वतंत्र है। और उसे द्रव्यका आश्रय भी है। दोनों अपेक्षाओंका मेल करना अपने हाथकी बात है। निश्चय वस्तु स्वभाव है और व्यवहार है। निश्चय-व्यहारकी सन्धि कैसे करनी, वह अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- अपने हाथकी बात..

समाधान :- स्वयंको मेल करना है।

मुमुक्षु :- अज्ञानी कैसे मेल करे।

समाधान :- उसका मेल स्वयंको करना है। स्वकाल और पुरुषार्थ दोनोंका स्वयंको मेल करना है। क्योंकि दोनों सामने-सामने विरोध आता है। एक ओर पुरुषार्थ और

एक ओर काल। जिस समय जो होना होगा वह होगा। तो कोई ऐसा कहे कि पुरुषार्थ जब होना होगा तब होगा, ऐसा उसका अर्थ हो जाय। उसका मेल करना। एक ओर पुरुषार्थ खड़ा रखना और एक स्वकालको खड़ा रखना, उसका मेल स्वयंको करना रहता है। पुरुषार्थ रखकर (बात है)। जिसे पुरुषार्थ करना हो उसे ऐसा ही होता है कि मैं जब पुरुषार्थ करुँगा तब होता है। जो होनेवाला होगा वह होगा, ऐसा लेने-से आत्मार्थीको वह कोई लाभका कारण नहीं होता।

मैं पुरुषार्थ करुँ, ऐसी ही काललब्धि होती है। मैं पुरुषार्थ करुँ, ऐसी ही काललब्धि होती है। और जिसे आत्माका नहीं करना है, उसे ऐसा हो कि जैसे होना होगा वह होगा। ऐसा है। आत्मार्थीको ऐसा ही होता है कि मैं पुरुषार्थ करुँ, ऐसा ही काल है। ऐसा काल हो ही क्युँ? मैं पुरुषार्थ करुँ, ऐसा ही मेरा काल हो। आत्मार्थीको हितकी ओर ऐसा ही आये कि पुरुषार्थपूर्वककी मेरी काललब्धि ऐसी है कि मेरे पुरुषार्थकी गति ही ऐसी हो, ऐसा ही मेरा काल है। दूसरा काल हो ही नहीं।

मुमुक्षु :- मुख्यता पुरुषार्थकी रखे।

समाधान :- हाँ। आत्मार्थीओंको पुरुषार्थकी मुख्यता रखकर काललब्धि लेनी। अकेली काललब्धि लेने-से उसे आत्माका हित होनेका कोई कारण नहीं रहता। अकेला काल कब लेना? कर्ताबुद्धि छोड़नेमें। मैं परपदार्थको कर सकता नहीं। जैसे होना होगा, होगा। मैं उसका ज्ञाता हूँ। ज्ञायकताकी धाराके लिये, जैसे बनना होगा वैसा बनता है। ऐसे स्वयं कर्ताबुद्धि तोड़कर कहता है, मैं ज्ञायक हूँ।

परन्तु जहाँ आत्म-हितकी बात आये, मेरे पुरुषार्थसे होता है। मेरे पुरुषार्थकी कचासके कारण मैं रुकता हूँ। मेरे पुरुषार्थका कारण है। इसलिये काल वैसा ही है। मैं पुरुषार्थ करुँ तो काल भी पलट जाय। पुरुषार्थ, कालका ऐसा अर्थ उसके हितकी ओर आता है।

मुमुक्षु :- आत्मार्थी पुरुषार्थको मुख्य रखकर देखता है।

समाधान :- पुरुषार्थको मुख्य रखकर कालको ग्रहण करता है, कालको..

मुमुक्षु :- कालका मेल करता है।

समाधान :- कालका मेल करता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थका उपचार काल पर आये, परन्तु कालका उपचार पुरुषार्थ पर नहीं आता।

समाधान :- नहीं। कालका उपचार पुरुषार्थ पर नहीं आता। वह हितका कारण नहीं है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२०५

समाधान :- .. अंतर दृष्टि करवायी है। अंतर आत्मा भिन्न और ये सब भिन्न हैं। शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, विभावस्वभाव अपना नहीं है। भिन्न आत्मा कैसे पहचानमें आये? शुभभावसे पुण्य बन्धे। पुण्यसे देवलोक हो, परन्तु भवका अभाव नहीं होता। सब बीचमें आता है, सब पुण्यभाव, लेकिन आत्माका स्वभाव शुद्धात्मा तो उससे भिन्न है। उसे ग्रहण करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा शुभभावमें, श्रुतचिंतवन, जिनेन्द्र देव, गुरुदेवने जो मार्ग बताया और अंतरमें ज्ञायक आत्मा कैसे पहचानमें आये, वही जीवनमें करने जैसा है।

मुमुक्षु :- माताजी! कल जो आपने कहा...

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

देव-गुरु-शास्त्र मंगल हैं, पंच परमेष्ठी मंगल हैं। अरिहंत भगवान, सिद्ध भगवान, आचार्य, उपाध्याय, साधु सब मंगलस्वरूप है। आत्मा मंगल, गुरुदेव मंगलमूर्ति। इस पंचमकालमें कोई अपूर्व तीर्थंकरका द्रव्य यहाँ विराजते थे। उन्होंने मार्ग बताया। बस, उसी मार्ग पर चलने जैसा है। पुरुषार्थकी धारा उसी ओर, जीवन पर्यंत आत्माकी ओर दृष्टि करके (पुरुषार्थ करना)। बस, बाहरमें शुभभावमें जिनेन्द्र देव, गुरु और श्रुतका चिंतवन, उस मय जीवन व्यतीत करने जैसा है। अंतर दृष्टि करने जैसा है।

समाधान :- .. परन्तु अभी यह भूमि, पुरुषार्थकी प्रेरणा करनेवाली भूमि है। मानों

यह भूमि पुरुषार्थकी प्रेरणा करती हो। गुरुदेव यहाँ विचरे हैं।

मुमुक्षु :- आपका प्रताप जयवन्त वर्तता है।

समाधान :- .. मुनिदशाकी तो क्या बात करनी!

मुमुक्षु :- आपने तो साक्षात् भगवाने जैसे ही हों।

मुमुक्षु :- आज समस्त मुमुक्षु समाज पूज्य गुरुदेवकी जन्म जयंति मनानेको एकत्रित हुआ है। पूज्य गुरुदेवका हम सभी पर अत्यंत उपकार है। सबको अंतरंगमें पूज्य गुरुदेवकी बहुत महिमा है। आपके श्रीमुखसे पूज्य गुरुदेवकी महिमा बहुत ही सुनी है। परन्तु हमें तृप्ति होती नहीं। जब-जब कोई प्रसंग आये, तब हमारी भावनाकी दृढ़ताके लिये आपके पास आते हैं और गुरुदेवकी महिमा अत्यंत दृढ़ करते हैं।

समाधान :- क्या प्रश्न है?

मुमुक्षु :- गुरुदेवके विषयमें कुछ कहीये।

समाधान :- गुरुदेवकी महिमा क्या करनी? महिमा तो जितनी करे उतनी कम है। गुरुदेवकी महिमा क्या करें? उनकी वाणी अपूर्व, उनका आत्मा अपूर्व था। वे तो भरतक्षेत्रमें जन्मे और मुमुक्षुओंके महाभाग्य कि उनकी वाणी सबको मिली। उनका आत्मा कोई अलग और भवका अभाव होनेका मार्ग उन्होंने बताया।

आत्मा अपूर्व है, आत्मा कोई अपूर्व वस्तु है, बाहरसे धर्म नहीं होता है, अंतर दृष्टि करने-से धर्म होता है। ऐसा भेदज्ञानका, स्वानुभूतिका गुरुदेवने मार्ग बताया। उनके उपकारका क्या वर्णन करना? वह तो वाणीसे कह सके ऐसा नहीं है। वह तो सहज जो आये वह आये।

मुमुक्षु :- स्वाध्याय मन्दिरमें इस बार आये, पूज्य गुरुदेवके जीवन-दर्शनके फोटो देखकर, मानों गुरुदेवका पूरा जीवन प्रत्यक्ष होता हो, ऐसा लगा। और आपने जिस तरह सब फोटोका आयोजन किया है, उसके भाव जाननेकी हमें भावना है। तो सब चित्र चेतनवंत बन जायेंगे।

समाधान :- गुरुदेवका जीवन तो गुरुदेव बचपनसे वहाँ कैसे पढे, पढ़ते थे तो भी उनको बचपनसे आत्माकी लगन थी। जगतसे उन्हें वैराग्य था। संसारसे वैराग्य था। आत्माका स्वरूप कैसे प्राप्त हो? जगतमें कुछ नया करना ऐसी भावना थी। पढ़ने जाते थे तो भी, यह पढ़ाई मुझे अच्छी नहीं लगती है। जिस पढ़ाईमें कुछ समझना नहीं आता है, जहाँ आत्माका कुछ नहीं आता है, वैसा मुझे कुछ पढ़ना नहीं है। ऐसा उनका वैराग्य था।

कोई वैरागी-त्यागी दिखे तो वहाँ दौड़ जाते थे। वैराग्यकी धुन थी। वैसे भजन सुने तो भजनकी धुन लगती। सत्य समझनेकी उन्हें अन्दरसे पीपासा था। गुरुदेवके जीवनमें

तो अनेक प्रसंग बने होते हैं। अनेक जातके उनके जीवनमें (प्रसंग हुए हैं), उसे तो क्या कहें?

गुरुदेव अपूर्व ही थे। बचपनसे उन्हें वैराग्यकी धुन थी। वहाँ पालेजमें पढ़ते (थे)। वहाँ पालेजमें उन्हें दुकानमें रस नहीं था। शास्त्र पढ़ने बैठते तो एक ओर शास्त्र ही पढ़ते रहते थे। उन्हें दुकानमें रस नहीं आता था। संसार छोड़कर दीक्षा लेनी (ऐसा भाव था)। उन्हें वैराग्यकी धुन थी। नाटक देखने जाय तो नाटकमें एक काव्य बनाया था। 'शिवरमणी रमनार तू, तू ही देवनो देव'। वह पूरा काव्य बनाया था। उसमें-से दो पक्तियाँ बच गयी। ऐसी वैराग्यकी धुन उन्हें थी। दीक्षा लेनेके लिये (निकले)। यह संसार छोड़ देना है, इस संसारमें कुछ नहीं है।

गुरुकी खोज करनेके लिये कुछ मारवाड़ी साधुओंको मिले। उसमें-से हीराजी महाराज उन्हें ठीक लगे तो उनके पास दीक्षा ली। दीक्षित अवस्थामें संप्रदायमें कितने ही साल आत्माकी ही बातें उन्होंने की है। उनके प्रवचनोंमें आत्माकी बातें ही आती थी। शास्त्र लेकर बैठते थे तो आत्माकी ही बातें करते थे।

उसमेंसे सत्य स्वरूप अन्दरसे सत् प्रगट हुआ और फिर परिवर्तन किया। परिवर्तन हीराभाईके बंगलेमें किया। वहाँ तीन साल हुए, फिर स्वाध्याय मन्दिरमें (निवास किया)। हीराभाईके बंगलेमें शास्त्रका अभ्यास और ज्ञान-ध्यानमें लीन रहते थे। फिर यहाँ स्वाध्याय मन्दिरमें पधारे। वह तो सबने देखा है।

वहाँ भी वे शास्त्र स्वाध्याय, ज्ञान-ध्यानमें रहते थे। कितने साल। कितना विहार किया है, उस जीवनको चित्रित करने बैठे तो पार आये ऐसा नहीं है। यहाँ सौराष्ट्र, गुजरात, मुंबई और चारों ओर वाणीका धोध बरसाया दिया है। श्रुतका धोध (बहाया)। शास्त्र, तो थे कहीं शास्त्र? शास्त्रोंके भण्डार (खोल दिये)। उनके प्रतापसे इतने शास्त्र प्रकाशित हुए। सब शास्त्रके भण्डार खुल गये, गुरुदेवके प्रतापसे।

उतने जिन मन्दिर इस ओर नहीं थे। जिन मन्दिर उनके प्रतापसे, पंच कल्याणक उनके प्रतापसे, सब जिन मन्दिर उनके प्रतापसे कितने हुए। और यात्रा करके पूरे हिन्दुस्तानमें चारों ओर वाणीकी अपूर्व वर्षा की। पूरी जीवनी करने बैठे तो पार न आए उतना है। सम्मेदशिखर, पावापूरी, राजगृही, दक्षिणमें उतनी यात्रा की। लोगोंने गुरुदेवका स्वागत किया और गुरुदेवने वाणीकी वर्षा भी उतनी ही की। देश-परदेशमें उनकी वाणीका प्रकाश चारों ओर फैल गया।

पूर्व भवसे पधारे। राजकुमार थे। सीमंधर भगवानकी वाणी और कुन्दकुन्दाचार्यकी वाणीको ग्रहण किया और चारों ओर वाणीका धोधा बरसा दिया। उस कारण चारों हरियाली (छा गयी)। सब लोग जागृत हो गये कि एक आत्मामें ही धर्म है, बाहर

कहीं नहीं है। ऐसी आत्माकी रुचि गुरुदेवके प्रतापसे प्रगट हुयी। जगतमें उनका ही सब प्रताप वर्तता है।

मुमुक्षु :- अपने अन्दर धोधका जो दिखाव दिया है, वह बहुत सुन्दर दिखता है।

समाधान :- धोध, वाणीका धोध बरस गया। कोई अपूर्व धोध! ऐसी वाणीकी वर्षा करनेवाले भरतक्षेत्रमें अभी कोई इतने सालोंमें था नहीं, उन्होंने ऐसा धोध बरसाया।

मुमुक्षु :- हरियाली छा गयी।

समाधान :- हाँ, हरियाली छा गयी।

मुमुक्षु :- नेमिनाथ भगवानके बाद सौराष्ट्रकी भूमिमें गिने तो गुरुदेवके निमित्तसे ही तत्त्वका प्रचार (हुआ)।

समाधान :- तत्त्वका प्रचार गुरुदेवके प्रतापसे ही हुआ है। इस तरह समाजमें वाणीका धोध बरसानेवाले इस कालमें, गुरुदेव इतने वर्षोंमें गुरुदेवका जन्म हुआ, भरतका भाग्य। दूसरे तो कितने ही प्रसंग उनके जीवनमें बने। गुरुदेवकी उपस्थितिमें ये सब धवल शास्त्र, कितने शास्त्र, हजारों शास्त्र बाहर आये हैं। समयसार आदि तो कितने ही प्रकाशित हुए। अध्यात्मके सब शास्त्र उनके प्रतापसे बाहर आये हैं। उतने जिन मन्दिर (बने), सब उनके प्रतापसे।

इस ओर कोई कुछ जानता नहीं था। मन्दिर या अध्यात्मकी बात कोई जानता नहीं था। उस ओर सब क्रियामें पड़े थे। उन सबकी दृष्टि अध्यात्मकी ओर करवानेवाले गुरुदेव ही है।

मुमुक्षु :- तुज पादथी स्पर्शाई एवी धूलीने पण धन्य छे। सोनगढ़की भूमिका माहात्म्य तो लोगोंको था, परन्तु स्वाध्याय मन्दिरमें जगह-जगह गुरुदेवके चरणकमल देखनेसे भूमि गौण हो गयी और लक्ष्य चरण पर चला गया। और उसमें अभेदभावसे गुरुदेव ही मुख्य हो गये। क्या चरण और धूलिका सुन्दर मेल है! इतने सुन्दर चरण बने हैं सब कि देखते ही मानों साक्षात् गुरुदेव हों, ऐसा स्मरण होता है। और ऐसा लगता है कि इस बारकी जन्म जयंति महोत्सवकी आपकी तैयारी, आपकी भावना देखते हुए, सामूहिक रूपसे पूरे समाजको ऐसी भावना होती है, सबके हृदयमें ऐसा होता है कि गुरुदेव यहाँ जरूर दर्शन देने पधारेंगे।

समाधान :- सब कुदरती गुरुदेवके प्रभावना योगसे ऐसे विचार आये और यह सब हो गया है। वह सब करनेवाले कारीगर आदि मिल गये।

मुमुक्षु :- कल रात्रिमें कितना सुन्दर बोले, करने जाते हैं कुछ और गुरुदेवका प्रताप कैसा है, चरणमें-से कलशका भाव कल रात्रिको बहुत अच्छा प्रकारसे भाव आया।

समाधान :- वह सब करते-करते हो गया। कमल और चरण, बीचमें ऐसा ऊँचा, चित्र भी करते-करते करनेवाला अच्छा मिल गया, इसलिये सब ऐसा हो गया। विचार हो, लेकिन बाहरका अच्छा करनेवाला हो तो हो। अभी तो चित्रमें भी कितना संक्षेपमें किया है।

मुमुक्षु :- समवसरण स्तुतिका स्मरण आ गया। देव स्वयं ही रचना करे और स्वयंको ही आश्चर्य लगे कि ऐसी रचना कैसे हो गयी! तीर्थंकरका कोई अलग ही द्रव्य है, इसलिये उनके पुण्यसे सब सहजरूपसे सुचारुरूपसे बन जाता है।

समाधान :- गुरुदेवका प्रभावना योग ऐसे वर्तता ही रहता है। गुरुदेवने मार्ग बताया, भेदज्ञान प्रगट कर, स्वानुभूति कर। तू भिन्न, आत्मा भिन्न। तू चैतन्य है, तू ज्ञान, आनन्दादि अनन्त गुणोंसे भरपूर है। उसे भिन्न-न्यारा जान। ये सब कर्ताबुद्धि छोड़ और चैतन्यकी ओर दृष्टि कर। पुरुषार्थ करनेकी गुरुदेवने अनेक प्रकारसे (प्रेरणा दी है)। अनेक प्रकारसे स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, भेदज्ञान स्पष्ट सूक्ष्म कर-करके कोई अपूर्व रीतसे बताया है।

मुमुक्षु :- आपने कहा न, आत्मा शब्द बोलना भी पूज्य गुरुदेवने हम लोगोंको सीखाया है।

समाधान :- गुरुदेवने सीखाया है। कोई आत्मा जानता नहीं था। बाहर थोड़ी क्रिया की तो धर्म हो गया। ऐसा मानते थे। थोड़ी सामायिक करे, थोड़ा त्याग करे इसलिये धर्म हो गया। परन्तु अन्दर आत्मा है और आत्माके स्वभावमें ही धर्म है। धर्म कहीं बाहर नहीं है। स्वभावमें धर्म है और स्वभावमें-से ही प्रगट होता है। आत्मा शब्द बोलना गुरुदेवने सीखाया है।

दूसरे कितने ही लोग धर्म बाहरमें खोजते हैं कि कहीं बाहरसे धर्म मिल जाय। गुरुदेवने मार्ग तो यथार्थ बता दिया, पुरुषार्थ स्वयंको करना है। तू इस मार्ग पर जा। तू चैतन्यको पहचान, उसे ग्रहण कर, भेदज्ञान कर। वह मार्ग बताया, फिर पुरुषार्थ करना बाकी रहता है। वह मार्ग बराबर बता दिया।

मुमुक्षु :- आपने कहा है कि वीतराग मार्गमें तो कदम-कदम पर पुरुषार्थकी जरूरत पड़ती है, उसके सिवा कहीं चले ऐसा नहीं है।

समाधान :- पुरुषार्थकी जरूरत पड़ती है।

मुमुक्षु :- अकेले पुरुषार्थसे होता है या गुरुदेवके प्रति भी थोड़ी-बहुत अर्पणता चाहिये।

समाधान :- पुरुषार्थ करे उसमें अर्पणता साथमें होती है। पुरुषार्थ कैसे करना, किसको पहचानकर करना? चैतन्यको पहचानकर। चैतन्यका स्वभाव कैसे प्रगट हो? औ

गुरुदेवने कौन-सा मार्ग और कौन-सा स्वभाव कैसे बताया है, ऐसे गुरुकी अर्पणताके बिना, गुरुदेवने जो कहा है उस मार्ग पर पुरुषार्थ किये बिना होता नहीं। गुरुदेवने जो कहा है, उसमें अर्पणता साथमें आ जाती है।

मुमुक्षु :- ते तो प्रभुए आपीयो, वर्तूं चरणाधीन।

समाधान :- गुरुदेवने जितना दिया, चरणाधीन वर्तूं, दूसरा क्या कर सकते हैं? कुछ हो सके ऐसा नहीं है। 'आ देहादि आजथी वर्तो प्रभु आधीन'। बस, प्रभुके आधीन यह देह वर्तो। देहादि सब। 'दास, दास, हूँ दास छूँ, आप प्रभुनो दीन।' दूसरा कुछ कर सके ऐसा नहीं है। उन्होंने जो आत्मा दिया, उससे सब हिन है। इसलिये आत्माके आगे सब तुच्छ है। गुरुदेवने जो दिया उसके आगे। इसलिये चरणाधीन वर्तता हूँ।

गुरुदेवकी सातिशय वाणी, उनका अतिशयता युक्त ज्ञान, उनका आत्मा अतिशयता युक्त, वे इस पंचम कालमें पधारे वह कोई अहोभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- .. स्वानुभूतिकी बहुत ही महिमा की है। और सब मुमुक्षुओंको स्वानुभूति कैसे है, ऐसी भावना है। गुरुदेवने तो बहुत समझाया है। परन्तु फिर भी जबतक कार्य नहीं हो जाता, तबतक अन्दर उलझन होती हो, इसलिये कुछ न कुछ मार्ग कैसे खोजना (ऐसा भाव आ जाता है)।

समाधान :- मार्ग तो गुरुदेवने स्पष्ट कर दिया है। पुरुषार्थ स्वयंको करना है। मार्ग एक ही है। गुरुदेवने कहा, शास्त्रमें एक ही बात आती है कि आत्माकी ओर दृष्टि कर, भेदज्ञान कर। 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।' जो भी सिद्ध हुए, सब भेदविज्ञानसे हुए। जो नहीं हुए हैं, वे भेदविज्ञानके अभावसे नहीं हुए। इसलिये तू भेदविज्ञान प्रगट कर।

ये विभाव और स्वभावका भेद कर कि यह स्वभाव है और यह विभाव है। स्वभाव पर दृष्टि कर। मैं अनादिअनन्त आत्मा चैतन्य हूँ। उस पर दृष्टिका स्थापित कर और उसका भेदज्ञान कर। मैं चैतन्य अखण्ड हूँ और यह जो विभाव है, वह मेरा स्वभाव नहीं है। स्वभाव-विभावका भेदज्ञान करके स्वभावमें दृढ़ता कर, उसमें लीनता कर। उसे ग्रहण कर और उसीकी परिणति प्रगट कर, तो उसीमें स्वानुभूतिक प्रगट होगी। मार्ग वह एक ही है, दूसरा मार्ग नहीं है।

मैं निर्विकल्प तत्त्व हूँ, ये विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। इसलिये उसीमें बारंबार लीनता, दृढ़ता, सब उसीमें कर। तो उसके बारंबार अभ्याससे उसीमें स्वानुभूति प्रगट होती है, वही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। अंतरमें ही मार्ग रहा है।

मुमुक्षु :- इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।

समाधान :- उसीमें प्रीति कर, उसमें संतुष्ट हो कि जितना यह ज्ञान है, उतना

ही सत्यार्थ है। .. विकल्पमें संतोष न हो। जितना ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसीमें तू संतुष्ट हो, उसीमें तृप्त हो, उसीमें सब है। ज्ञान माने सिर्फ जानना ऐसा नहीं, परन्तु ज्ञानस्वरूप आत्मा है वही तू है। उसीमें। बस, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। एक ज्ञानस्वरूप आत्मा ही चाहिये। उसीमें तृप्त हो, उसीमें-से सब प्रगट होगा।

उसमें ऐसा मत मान कि एक ज्ञानमें सब आ गया? ज्ञानमें ही सब आ जाता है। तू ज्ञायक ही है और उसमें अनन्त गुण हैं। इसलिये उसमें अनन्त सुख है। सब उसीमें-से प्रगट होगा। उसीमें तू तेरी प्रतीति दृढ़ कर, उसीमें तुझे अनुभूति होगी। जितना यह ज्ञान है, उतना ही कल्याण और वह परमार्थ सत्य है।

मुमुक्षु :- ऐसा समझानेके बावजूद कार्य न हो तो तत्त्वकी रुचिकी क्षति है या वैराग्यकी क्षति है?

समाधान :- वह तो परस्पर एकदूसरेको सम्बन्ध है। रुचिकी भी क्षति, वैराग्यकी भी क्षति, पुरुषार्थकी क्षति, सब क्षतियाँ उसमें होती है, तभी आगे नहीं बढ़ सकता। स्वयं स्वयंको यथार्थ ग्रहण नहीं करता है, उस ओर रुचिकी उग्रता नहीं करता है। रुचिके साथ वैराग्यकी भी क्षति है। सबकी क्षति है। परस्पर एकदूसरेको सम्बन्ध होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२०६

मुमुक्षु :- आत्मामें संतोष हो, ऐसी प्रतीति इस जीवको कैसे उत्पन्न हो?

समाधान :- आत्मामें संतोष हो, ऐसी प्रतीति आत्मामें ही सबकुछ है, ऐसा स्वयं विचार करके निर्णय करना चाहिये। उसीमें उसे महिमा लगनी चाहिये। विभाव है उसकी महिमा टूट जाय और स्वभावकी महिमा आये कि ज्ञानमें ही सर्वस्व है। उसे विचारसे, उसे युक्तिसे नक्की करना चाहिये कि ज्ञानमें सब है। ऐसा गुरुदेवने बताया है, शास्त्रमें आता है, लेकिन तू विचारसे स्वयंसे नक्की कर।

स्वयं नक्की कर कि जो गुरुदेवने बताया, उसे बुद्धिसे, स्वभावको पहचानकर नक्की कर कि ये जो ज्ञान दिखता है, उस ज्ञानमें ही सब है। ऐसा विचार करके, उसके कारण-कार्यसे तू नक्की कर कि ज्ञानमें ही सब है, कहीं और नहीं है। ज्ञानमें-से ही प्रगट होनेवाला है। उसकी यथार्थ प्रतीति करनी अपने हाथकी बात है। विचारसे, कारण-कार्यकी युक्तिसे, ऐसी उसकी युक्ति और दलील हो कि टूटे नहीं, ऐसी यथार्थ दलीलसे, युक्तिसे उसकी बराबर प्रतीति कर और उसमें दृढ़ता कर। उसीमें है।

क्योंकि पहले अनुभूति नहीं होती। पहले तो वह नक्की करता है। विचारसे, उसके अमुक लक्षण दिखे उस लक्षणसे नक्की करता है। नक्की करे कि उसीमें सब है। वह ज्ञान रूखा नहीं है। परन्तु ज्ञानमें सब है। ज्ञान महिमावंत है, सुखसे भरा शिव है। सुखसे भरा आत्मा है। अनन्त गुणोंसे (भरपूर) कोई अपूर्व अनुपम आत्मा है। बाहर किसीके साथ उसे मेल नहीं है। वह भी स्वयंको लक्षणसे नक्की करना पड़ता है। गुरु बताये, शास्त्र बताये, लेकिन स्वयं नक्की करे तो ही स्वयंको महिमा आती है। स्वयंको नक्की करना है।

समाधान :- .. ऐसी भावना करनेसे।

मुमुक्षु :- ऐसी भावना करनेसे?

समाधान :- भावना करे कि मैं तो जीव हूँ। मैं तो ज्ञायक चैतन्यतत्त्व हूँ, यह शरीर मेरा नहीं है, परद्रव्य है। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न हैं, मेरे भिन्न हैं। (दोनों) भिन्न हैं। ऐसा विचार करना। ऊपर-ऊपरसे विकल्प आवे, फिर छूट जाय। बारंबार अभ्यास करना, बारंबार उसका अभ्यास करना। वह छूट जाय तो भी बारंबार रुचि, महिमा

सब करना तो यही है। यह मेरा स्वरूप है, ऐसा बारंबार करना। छूट जाय तो भी विचार करना। ऐसे विचार करनेसे स्थिर न हो तो शास्त्रमें देखना, शास्त्र पढ़ना। जहाँ चित्त स्थिर हो वहाँ लगाना।

मुमुक्षु :- कौन-से शास्त्रजीका अध्ययन करना चाहिये? कौन-से शास्त्रजी पढ़ने चाहिये?

समाधान :- शास्त्र जो समझमें आये। मूल भेदज्ञान तो समयसार ही है। समयसार पढ़नेमें आवे, न समझमें आवे तो गुरुदेवके प्रवचन-समयसार पर हुए प्रवचन सुने। बाकी मूल शास्त्र है, नियमसार, प्रवचनसार, जो समझमें वह पढ़ना। ऐसे अध्यात्म शास्त्र, जिसमें आत्माकी बात आती हो।

... महा उपकार और महा प्रताप है। गुरुदेवने सबको बताया है कि अंतर दृष्टि करनी। बाह्य दृष्टि तोड़कर अन्दर जाना। अंतरमें ही मुक्तिका मार्ग है। स्वभावमें-से स्वभाव प्रगट होता है। विभाव तो आत्माका स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न करके स्वभाव कैसे प्रगट हो? चैतन्यतत्त्व अनादिअनन्त एक अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि करके, मैं इन सबसे भिन्न हूँ। करना यही है। ध्येय वह है। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र और अंतरमें शद्धात्मा कैसे पहचानमें आये? इस ध्येयसे सब करना है। ध्येय एक ही-चैतन्यतत्त्व कैसे प्रगट हो? उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान, उसमें लीनता कैसे हो? वह करना है। गुरुदेवने मार्ग सूक्ष्मतासे, चारों ओरसे स्पष्ट करके बताय है।

ये जन्म-मरण करते-करते,.. इस पंचमकालमें गुरुदेव पधारे, उनका जन्म हुआ, वह महाभाग्यकी बात है कि सबको ऐसी अपूर्व वाणी मिली। ऐसी वाणी मिलनी मुश्किल है। चैतन्य कोई अपूर्व है, यह उनकी वाणी बताती थी कि आत्मा कोई अलग है। उन्हें अंतरमें-से ऐसी वाणी आती थी। वाणीका प्रभाव ऐसा था। उनकी वाणी कोई अतिशयतापूर्ण, उनका ज्ञान अतिशयतापूर्ण, उनका आत्मा वैसा था। इसलिये आत्मा अनुपम है और वह कोई अपूर्व है, उसीमें अपूर्व सुख और अपूर्व आनन्द है। वह प्रगट करने जैसा है।

सब लोग कहाँ पड़े थे। गुरुदेवने अंतर दृष्टि करवायी, आत्मामें। पुरुषार्थ स्वयंको करना है। बाकी दृष्टि तो उन्होंने दी कि करना अंतरमें है, सब बताया, दिशा बतायी। ... अतिशय है, इस भूमिमें गुरुदेव विचरे हैं, इसलिये...

मुमुक्षु :- तपोभूमि है यह।

समाधान :- तपोभूमि है। गुरुदेवने कितने साल यहाँ रहे हैं। परिवर्तन किया उसके बादसे। फिर विहार करे वह अलग। बाकी हमेशा तो यहीं रहे न। पहले शुरूआतमें तो विहार भी कम करते थे। पीछले वर्षोंमें हर साल विहार करते थे। परन्तु हमेशा तो यहीं रहते। इस पंचमकालमें...

मुमुक्षु :- ... बहुत जीव यहाँ-से गये, लेकिन किसीको विकल्प नहीं है। स्वर्गमें गये होंगे। तो किसीको ऐसा विकल्प नहीं है कि यहाँ पर भगवानकी वार्ता करें, बताये। लेकिन अब हमारे मनमें ऐसा कई बार विकल्प उठता है कि गुरुदेव गये...

समाधान :- स्वयंको तो प्रभावनाका विकल्प था, बाकी यहाँका विकल्प आना मुश्किल, यहाँके पुण्य हो तो विकल्प आये। .. भरतक्षेत्रमें थे और यहाँ-से गये। इस पंचमकालमें ऐसा बनना बहुत मुश्किल हो गया है। जहाँ तीर्थंकर भगवान विचरे, वहाँ देवोंके समूह आता है। यहाँ सब मुश्किल हो गया है।

मुमुक्षु :- मुमुक्षुजीवको मार्गदर्शन दिया गया और वह परिणतिमें कैसे उपकारी होता है? परमार्थमें वह कैसे उपकारी होता है, यह समझाईये।

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्र, भगवान सर्वोत्कृष्ट (हैं)। भगवानने सर्वोत्कृष्ट दशा प्रगट की है। जैसा भगवानका आत्मा है, वैसा अपना आत्मा है। भगवानका जो स्वरूप है, जो भगवानने प्रगट किया, वैसा ही अपनेमें शक्तिरूप है। भगवानको पहचाननेसे स्वयंको पहचानता है। इसलिये भगवानका जो स्वरूप है, वैसा अपना स्वरूप है।

भगवान पर बहुमान आनेसे चैतन्यका स्वरूप पहचानमें आता है। और गुरु तो मार्ग बताते हैं कि तेरा चैतन्य स्वरूप है। तू ही स्वयं चैतन्य अनन्त गुणसे भरपूर है। वे मार्ग बताते हैं कि तू स्वानुभूति प्रगट कर, भेदज्ञान प्रगट कर। पूरा मार्ग गुरु बताते हैं। और शास्त्रमें उसका वर्णन आता है। परन्तु शास्त्रको सूलझानेवाले गुरु हैं।

देव-गुरु-शास्त्रके प्रति जिसे भक्ति होती है, (उसमें) स्वयंको ध्येय आत्माका होता है कि जैसा मेरा आत्मा, वैसा भगवानका। भगवानकी पहचान करवानेवाले गुरु हैं। इसलिये गुरु पर जिसे बहुमान आये, वह अपने आत्माको पहचाने। देवको पहचाने, वह अपने आत्माको पहचाने। और श्रुतका जो स्वरूप है, वह श्रुत तो गुरु बताते हैं। गुरु मार्ग बताते हैं।

इसलिये देव-गुरु-शास्त्र, उसकी परिणतिमें उसके शुभभावमें उनकी महिमा आये बिना नहीं रहती। उनकी महिमा जिसके हृदयमें होती है, वह स्वयंको पहचानता है। और स्वयंको पहचानता है, वह देव-गुरु-शास्त्रको पहचानता है। ऐसा देव-गुरु-शास्त्रका चैतन्यके साथ सम्बन्ध है। और श्रुतकी परिणति तो स्वयं आगे बढ़ता है, वहाँ श्रुतकी परिणति तो साथमें होती ही है। श्रेणी चढे तो उसमें द्रव्य, गुण, पर्याय आदिका विचार उसे होता है। अबुद्धिपूर्वक होते हैं। परन्तु श्रुतका चिंतवन तो साथमें (होता ही है)। मैं चैतन्य कौन? प्रथमसे ही चैतन्य कौन? मेरा स्वरूप क्या? वह सब समझनेके लिये श्रुतकी परिणति साथमें होती है। परन्तु उसका यथार्थ मार्ग दर्शानेवाले गुरु है। श्रुतकी परिणति तो जीवको अन्दर विचार उसमें साथमें होती ही है।

इसलिये देव, गुरु, शास्त्र उसके शुभ परिणाममें बीचमें आये बिना रहते ही नहीं। और देव-गुरु-शास्त्र आत्माको दर्शाते हैं। और जो आत्माको पहचाने, वह देव-गुरु-शास्त्रको पहचाने। देव-गुरु-शास्त्रको पहचाने वह आत्माको पहचानता है। ऐसा सम्बन्ध ही है। अतः यथार्थ ज्ञायकको पहचाने उसमें देव-गुरु-शास्त्र साथमें होते ही हैं। और साधना प्रगट हो, उसमें उपयोग बाहर आये तो उसे शुभ परिणाममें देव-गुरु-शास्त्र होते हैं। और अंतरमें जाय तो शुद्धात्मा (है), शुद्धात्मा पर दृष्टि होती है। शुद्धात्माकी पर्याय प्रगट होती है, और जहाँ न्यूनता है, उस शुभ भावनामें उसे देव-गुरु-शास्त्र साथमें होते ही हैं। इसलिये साधनाके साथ देव-गुरु-शास्त्रका सम्बन्ध साथमें रहता ही है।

प्रथम जिज्ञासाकी भूमिकासे देव-गुरु-शास्त्रका सम्बन्ध जिज्ञासुको शुरूआतसे होता ही है। और जब पूर्ण हो, तबतक देव-गुरु-शास्त्रके विकल्प उसे शुभ भावनामें होते हैं। उसे शुद्धात्मा... भेदज्ञानके साथ, शुभभावके साथ देव-गुरु-शास्त्रका ऐसा सम्बन्ध होता ही है। और देव-गुरु-शास्त्र उसे इस तरह उपकारभूत हैं। देव-गुरु-शास्त्र उसके शुभ परिणाममें आते हैं। पुरुषार्थकी प्रेरणा मिलती है। देव-गुरु-शास्त्रकी ओर लक्ष्य जानेसे अनेक जातके विचार (आते हैं)। गुरुने कैसी साधना की? देव कैसे होते हैं? शास्त्रमें क्या कहते हैं? उसे पुरुषार्थकी प्रेरणा मिलती है। करता है स्वयं, परन्तु उसमें प्रेरणा मिलती है।

साधनाके साथ देव-गुरु-शास्त्रका सम्बन्ध, ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है। आखिर तक, जब श्रेणि चढता है, वहाँ अबुद्धिपूर्वक द्रव्य-गुण-पर्यायके विचार उसे होते हैं। श्रुतका चिंतवन आखिर तक होता है। परन्तु करना है निर्विकल्प उपयोग, शुद्धात्माकी स्वानुभूति। उसकी दृष्टि वहाँ होती है। वह शुभभाव, स्वयंका-चैतन्यका-शुद्धात्मका-स्वरूप नहीं है, परन्तु वह बीचमें आये बिना नहीं रहता। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- साधककी भूमिकामें तो आपने कहा ऐसा मेल हो रहा है। उसे तो दृष्टि यथार्थ प्रगट हुयी है, दृष्टिने स्वरूपका कब्जा लिया है इसलिये शुभराग आता है, तो उसे हेयरूप जानता है। परन्तु जिज्ञासुकी भूमिकामें जो आपने बात कही कि जिज्ञासुकी भूमिकामें दोनों साथमें रहते हैं, हमें तो ऐसा लगता है कि देव-गुरु-शास्त्रको साथमें रखने जाते हैं तो अनादिसे व्यवहारका पक्ष तो है, व्यवहारकी रुचि तो है। उसमें व्यवहारकी रुचि हो जानेकी संभावना है? नहीं होती?

समाधान :- उसे देव-गुरु-शास्त्र रुचिवालेको बीचमें आये बिना रहता ही नहीं। मुझे मेरा स्वरूप कैसे पहचानमें आये? मुझे गुरु क्या मार्ग दर्शाते हैं? गुरुने क्या कहा है? ऐसे विचार उसे आये बिना नहीं रहते। उसे व्यवहारका पक्ष उसमें नहीं होता। परन्तु उसे भावना ऐसी रहती है, उसे भक्ति आये बिना रहती ही नहीं। गुरु ऐसा

कहते हैं कि, तू तेरे शुद्धात्माको पहचान। तू सर्व शुभभावसे भिन्न तेरा शुद्धात्मा है, ऐसा गुरु कहते हैं। परन्तु जिज्ञासुको भी शुभभाव आये बिना नहीं रहते। उसमें कोई व्यवहारका पक्ष नहीं हो जाता। उसे व्यवहारका पक्ष ऐसे नहीं हो जाता। उससे लाभ माने, उसमें सर्वस्व माने, उससे मोक्ष माने तो उसमें व्यवहारपक्ष होता है। बाकी शुभभाव आये उसमें व्यवहारका पक्ष नहीं हो जाता। ऐसी उसमें श्रद्धा नहीं हो जाती। शुभभावना आये तो ऐसी श्रद्धा नहीं हो जाती कि इससे मुझे लाभ होता है या मोक्ष होता है। ऐसी श्रद्धा जिज्ञासुको साथमें हो जाय, ऐसा नहीं होता।

उसे बुद्धिपूर्वक ऐसा निर्णय होता है कि गुरुने कहा है कि तेरा शुद्धात्मा विकल्प रहित निर्विकल्प है। शुभभाव भी तेरा स्वरूप नहीं है। गुरुने कहा। और उसे विचारसे ऐसा बैठा है। इसलिये उसमें श्रद्धा नहीं हो जाती है कि शुभभाव आया इसलिये उसमें व्यवहारका पक्ष हो गया और श्रद्धा ऐसी हो गयी। ऐसा नहीं होता।

व्यवहारका पक्ष किसे हो जाता है? कि ऐसी श्रद्धा है साथमें कि इससे मुझे लाभ होता है। देव-गुरु-शास्त्र मुझे कर देते हैं, वे करे ऐसा हो, मेरे पुरुषार्थसे नहीं होता, ऐसी जिसे मान्यता है, उसे व्यवहारका पक्ष होता है। उसकी श्रद्धा ऐसी हो कि मैं मेरे-से करुँगा तब होगा। गुरु मुझे उपकारभूत हैं, गुरुने सब दिया है। ऐसी शुभभावना आये उसमें व्यवहारका पक्ष नहीं हो जाता। उसकी श्रद्धा तो भिन्न रहती है। यथार्थ श्रद्धाकी अलग बात है, जो सहज भेदज्ञान और श्रद्धा (होती है वह)। परन्तु ये उसे जो बुद्धिपूर्वक श्रद्धा है, उसमें श्रद्धाकी भूल नहीं होती। गुरुकी भक्ति करे उसमें श्रद्धाकी भूल नहीं होती है, उसमें व्यवहारका पक्ष नहीं हो जाता। भगवानकी भक्ति करे, गुरुकी करे, शास्त्रकी करे तो उसमें जिज्ञासुको पक्ष नहीं हो जाता। उसमें सर्वस्वता माने तो होता है।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण आपने किया।

मुमुक्षु :- शुभभावको हेय समझता है और आये बिना रहे नहीं, ऐसा भी समझता है। दोनों बात होती है।

समाधान :- ऐसा समझता है, दोनों समझता है। उसे श्रद्धा है कि शुभभाव तो हेय है। तो भी वह जिज्ञासुको भी आये बिना नहीं रहता। शुभभाव आये इसलिये श्रद्धाकी भूल हो जाय, ऐसा कुछ नहीं होता। शुभभावमें वह भक्ति करे, इसलिये उसे व्यवहारका पक्ष हो गया, ऐसा नहीं है। उसकी श्रद्धा तो अंतरमें वह स्वयं जानता है कि गुरुने ऐसा कहा है कि शुद्धात्मा तेरा भिन्न है, शुभभाव तेरा स्वरूप नहीं है और स्वयंने भी नक्की किया है। इसलिये उसमें श्रद्धाकी भूल नहीं होती।

मुमुक्षु :- महिमा करे तब तो ऐसे करे कि आप ही मेरे सर्वस्व हो।

समाधान :- हाँ, ऐसे महिमा करे। आप सर्वस्व हो, आपने सब दिया है। आप यहाँ पधारे, आपने मार्ग बताया तो हम जागृत हुए हैं। आपने ही हमें पुरुषार्थ करना सीखाया है, ऐसा बोले। लेकिन वह समझता है कि, करना तो मुझे है। परन्तु गुरुका परम उपकार है, ऐसा समझता है कि यह दिशा बदली हो तो गुरुने बदली है। उपकारबुद्धिमें, उसके शुभभावमें ऐसा आता ही है।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण किया। जिज्ञासुकी भूमिकामें, उस भूमिकामें भी शुभभाव साथमें होता है, वह आये बिना नहीं रहता। यह स्पष्टीकरण बहुत सुन्दर आया। किसीको भय लगे कि उसमें पक्ष आकर अटक तो नहीं जायेंगे न?

समाधान :- व्यवहारका पक्ष होकर अटक नहीं जाता। स्वयं श्रद्धामें समझता है, उसमें अटकता नहीं।

मुमुक्षु :- माताजी! आज टेपमें ३८वीं गाथा चली थी। उसमें ऐसा आया था, अप्रतिहत भावकी बात उसमें थी। और गुरुदेव भी कभी-कभार कहते थे कि बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानमें क्षायिक जोड़णीकी बात आयी थी। तो कृपा करके क्षायिक जोड़णीका स्वरूप क्या है अथवा वह किसे प्राप्त होता है, उस विषयमें कुछ स्पष्ट करें।

समाधान :- जोड़णी क्षायिक तो जो अप्रतिहत धारा होती है, उसमें प्रगट होता है। वह तो बहुत आगे गया हो उसे। जिसमें शुद्धात्माकी साधनाकी पर्याय विशेष-विशेष अप्रतिहत धारासे जुड़ती है, उसे जोड़णी क्षायिक कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- बराबर स्पष्ट नहीं हुआ, माताजी! फिरसे ज्यादा स्पष्ट करिये तो...। वर्तमानमें इस कालमें तो क्षयोपशम समकित होता है। अमृतचन्द्राचार्यदेवका पूरा ध्वनि ऐसा था कि क्षयोपशम समकित गिरेगा ही नहीं और हम क्षायिक लेकर ही रहेंगे तो गुरुदेव अप्रतिहतभावकी बात भी करते थे और साथ-साथ आपकी यह बात भी लेते थे। तो उसके साथ उसका क्या मेल है? कैसे है? यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :- क्षयोपशम भी ऐसा होता है कि अप्रतिहत होता है कि जो गिरता नहीं, ऐसा। और उसमें उसकी सब पर्याय अप्रतिहतभावसे, शुद्धात्म स्वरूपकी पर्यायें अप्रतिहत धारासे प्रगट होती है। ऐसी उसकी धारा ही प्रगट होती है, जोड़णी क्षायिकमें।

मुमुक्षु :- धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान प्रगट करनेके लिये एक तो भेदविज्ञानकी पद्धतिकी बात शास्त्रमें बहुत सुन्दर आती है। दूसरी ओर ज्ञायककी प्रतीत करनेकी बात भी समयसार, नियमसार आदि ग्रन्थोंमें आती है। तो उन दोनोंमें एक ही बात है अथवा कोई अंतर है? अथवा उन दोनोंका मेल कैसे है, यह समझानेकी कृपा कीजिये।

समाधान :- दोनों एक ही बात है। भेदज्ञान, ज्ञायककी प्रतीति करनी वह अलग नहीं है। ज्ञायककी प्रतीति करनी कि मैं ज्ञायक हूँ। अनादिअनन्त शाश्वत चैतन्यतत्त्व हूँ।

जो परमपारिणामिकभावस्वरूप अनादिअनन्त ज्ञायक हूँ। उस ज्ञायककी प्रतीति करनी और उसके साथ भेदज्ञान अर्थात् मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ और परपदार्थसे भिन्न, विभावसे भिन्न ऐसा मैं आत्मा हूँ। मेरा स्वभाव भिन्न है। उसमें भेदज्ञान और ज्ञायककी प्रतीति दोनों साथमें आ जाते हैं। उसमें कोई अलग बात नहीं आती है, दोनों एक ही बात आती है।

मुमुक्षु :- पात्र शिष्यके मुख्य-मुख्य लक्षण सम्बन्धित थोड़ा मार्गदर्शन दीजिये।

समाधान :- पात्र हो तो उसे अंतरसे उसे आत्माकी लगन ही लगी हो। मुझे एक चैतन्य चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। आत्माका ही जिसे प्रयोजन है। प्रत्येक कार्यमें उसे आत्माका प्रयोजन होता है। अन्य सब प्रयोजन उसे गौण हो जाते हैं। एक आत्माको मुख्य रखकर उसके सब कार्य होते हैं। शुभभावके कार्य हो तो उसे आत्माका प्रयोजन होता है। दूसरा बाहरका कोई प्रयोजन उसे नहीं होता।

उसे शुभभावना हो तो देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना कैसे हो, ऐसा शुभभावमें उसे आता है। आत्माका प्रयोजन उसे साथमें होता है, दूसरा कोई प्रयोजन नहीं होता। उसमें कोई लौकिक प्रयोजन या दूसरा कोई प्रयोजन साथमें नहीं होता। लौकिक प्रयोजनसे वह बिलकूल न्यारा (होता है)। उसे आत्माकी ही लगन लगी होती है। उसे लौकिका, बाहरका या बडप्पन या बाहरका कोई प्रयोजन नहीं होता। मेरे आत्माको कैसे लाभ हो, यह एक ही प्रयोजन आत्मार्थीको होता है।

जिसने साधना की, ऐसे गुरु, ऐसे उपकारी गुरु, जिनेन्द्र देव, शास्त्रकी प्रभावना कैसे हो? जिसे स्वयंकी प्रीति है, ऐसा जिसने मार्गदर्शन दिया, जिन्होंने मार्ग बताया, उनका परम उपकार है। उनकी प्रभावना कैसे हो, ऐसा हेतु होता है। बाकी दूसरा कोई हेतु उसे होता नहीं। पात्र जीवका ऐसा लक्षण होता है। दूसरा सब उस उसे गौण हो जाता है, एक आत्मा ही मुख्य रहता है।

मुमुक्षु :- संस्थाके कार्य करनेका प्रयोजन?

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना होती हो और उसको स्वयंको विकल्प आता हो तो उसमें जुड़ता है। जुड़ता है। देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना हेतु और निजात्मा हेतु जुड़ता है। दूसरा कोई प्रयोजन नहीं होता।

मुमुक्षु :- उसमें भी मुख्यपने तो आत्मा ही मुख्य होता है।

समाधान :- आत्मा ही मुख्य होता है। मेरे आत्माको कैसे (लाभ हो)? निजात्माको कैसे संस्कार डले? आत्माके संस्कार कैसे दृढ़ हो? मैं चैतन्य न्यारा हूँ, ऐसा ही उसे प्रयोजन होता है। उसे धर्मकी प्रीति है इसलिये धर्मकी प्रभावना कैसे हो? गुरुकी कैसे प्रभावना हो? उनकी शोभा हो, उनको लोग जाने, शुभभावमें उसे ऐसा विकल्प आता

है। जिसकी स्वयंको प्रीति है, स्वयंको जिस स्वभावकी प्रीति है, जो गुरुने मार्ग बताया, उस गुरु पर भक्ति आये बिना नहीं रहती। इसलिये वह शुभकार्यमें जुड़ता है। परन्तु उसे हेतु आत्माका ही होता है।

मुमुक्षु :- किसीको ऐसा हो जाय कि संस्थाकी मुख्यता हो जाय और आत्माकी गौणता हो जाय, तो वह पात्रतामें आता है?

समाधान :- आत्माकी तो मुख्यता ही होनी चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२०७

मुमुक्षु :- एक समयकी ज्ञानकी पर्यायको कोई बार शास्त्रमें ज्ञेय कहनेमें आती है, कोई बार पर्याय है इसलिये हेय है, ऐसा भी वर्णन आता है। कोई बार प्रगट करनेकी अपेक्षासे उपादेय कहनेमें आती है। एक पर्याय सम्बन्धि बहुत प्रकार शास्त्रमें आते हैं। तो उसमें भेदविज्ञानकी ज्योति प्रगट करनेके लिये कौन-सी बात मुख्य करनी? हेय है, ऐसे मुख्य करना? ज्ञेय है, ऐसे मुख्य करना? अथवा उपादेय है, ऐसे मुख्य करना?

समाधान :- दृष्टिकी अपेक्षासे उसे हेय कहनेमें आता है। क्योंकि जो चैतन्य स्वभाव अनादिअनन्त अखण्ड ज्ञान परिपूर्ण स्वभाव भरा है। उसके दर्शनगुण, चारित्र आदि अनन्त गुण जो हैं, सहज दर्शन, सहज ज्ञान, सहज चारित्र, सहज आनन्द स्वभावसे भरा है। परिपूर्ण है। वह परिपूर्ण है और अखण्ड पर दृष्टि करनेमें अधूरी जो पर्यायें हैं, वह अधूरी पर्याय आत्माका मूल स्वरूप नहीं है। इसलिये उसे उस दृष्टिसे हेय कहनेमें आता है। परिपूर्ण स्वभावकी अपेक्षासे, दृष्टिकी अपेक्षासे उसे हेय कहनेमें आता है।

उसे जानने योग्य कहनेमें आता है। परन्तु जो अधूरी पर्याय, साधनाकी पर्याय जो है, वह बीचमें आये बिना नहीं रहती। इसलिये वह ज्ञानमें जानने योग्य है।

और वह आदरने योग्य है। क्योंकि अधूरी पर्याय (है)। दर्शन और ज्ञान दोनों प्रगट हो तो चारित्र कहीं परिपूर्ण साथमें हो नहीं जाता। इसलिये उसे साधना करनी बाकी रहती है, स्वरूपमें लीनता बाकी रहती है। इसलिये वह पर्याय उसे आदरणीय भी होती है। ज्ञानमें उसे आदरणीय कहते हैं। दृष्टिकी अपेक्षासे उसे हेय कहनेमें आता है।

वह जैसे है वैसे निश्चय-व्यवहारकी सन्धि समझे तो उसकी साधना आगे बढ़ती है। दृष्टिमें एक ज्ञायकको मुख्य रखे। परिपूर्ण ज्ञान.. उसमें पूर्ण-अपूर्ण पर्यायोंको गौण करनेमें आती है कि पूर्ण-अपूर्ण पर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ। मैं तो अखण्ड ज्ञायक हूँ। केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट हो तो भी वह पर्याय है। मैं तो एक द्रव्य हूँ। परन्तु साधनामें बीचमें सम्यग्दर्शनसे लेकर जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है, वह सब साधनामें आती है। इसलिये उस अपेक्षासे उसे उपादेय (कहनेमें आता है)। केवलज्ञानकी पर्याय भी उसे साधना करनेसे प्रगट होती है। इसलिये उसकी अपेक्षासे उपादेय है, परन्तु दृष्किी

अपेक्षासे उसे हेय कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- प्रगट करनेकी अपेक्षासे उपादेय कहा?

समाधान :- प्रगट करनेकी अपेक्षासे उपादेय है। उसे पुरुषार्थ करना रहता है। दृष्टि और ज्ञान प्रगट हुए। लीनता अभी कम है। स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हुयी, परन्तु स्वानुभूति क्षण-क्षणमें उसकी वृद्धि हो और स्वानुभूतिरूप ही स्वयं हो जाय, जैसा आत्मा है वैसा शाश्वत स्वानुभूतिरूप हो जाय, ऐसी दशा प्रगट नहीं होश्रती है, इसलिये उस अपेक्षासे आदरणीय है।

मुनि छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें अन्दर जाय और बाहर आते हैं। तो भी उन्हें अधूरी पर्याय है। इसलिये उनकी साधनाकी पर्याय बारंबार चलती ही रहती है। मैं प्रमत्त या अप्रमत्त नहीं हूँ, ऐसी दृष्टि होनेके बावजूद वे साधनाकी पर्यायमें झुलते हैं। ऐसा करते-करते श्रेणी चढते हैं।

मैं ज्ञायक सो ज्ञायक हूँ। तो भी साधनाकी पर्यायें बीचमें होती है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें अप्रमत्त दशामें, पुनः प्रमत्त दशामें आते-आते श्रेणी लगाकर केवलज्ञान प्रगट होता है। साधनामें वह आये बिना नहीं रहता। परिणतिकी डोर स्वभावकी ओर, ज्ञान ज्ञानको खींचता हुआ, स्वानुभूतिकी ओर (जाता है)। भेदज्ञानकी धाराको उग्र करे, दृष्टिका ज़ोर वृद्धिगत करता जाता है और स्वानुभूतिकी दशा प्रगट करता जाता है। साधनामें वह होता है। दृष्टि सबको हेय मानती है, दृष्टि सबको गौण करती है।

मुमुक्षु :- उसमें ज्ञान ज्ञानको खींचता हुआ, माने क्या?

समाधान :- ज्ञान अर्थात् पुरुषार्थकी डोर... ज्ञायककी ओर जो परिणति गयी है, वह परिणति स्वयंको अपनी ओर खींचती है। ज्ञान ज्ञानको खींचता हुआ, ज्ञायककी ओर जो ज्ञान गया, ज्ञायककी ओर जो ज्ञान परिणमा वह ज्ञान स्वयं अपनी ओर अपनी परिणतिको खींचता है। जो विभावकी ओर परिणति जाती है, उसे स्वभावकी खींचता हुआ स्वयं साधनाको वृद्धिगत करता जाता है, भेदज्ञानकी धारा उग्र करता जाता है।

मुमुक्षु :- अत्यंत सुन्दर स्पष्टीकरण है। ऐसा मेल करना भी बहुत मुश्किल पड़ता है। कभी इस ओर खींच जाता है, कभी पर्याय-ओर खींच जाता है। द्रव्यकी ओर एकान्त खींच जाता है तो पर्याय (छूट जाती है)।

समाधान :- सब छोड़ देना है, एक ही द्रव्य है, ऐसा हो जाय। अथवा तो पर्याय पर चला जाता है।

मुमुक्षु :- यह स्पष्टीकरण तो अत्यंत सुन्दर है और आत्मधर्ममें मुमुक्षुओंको बहुत मार्गदर्शन मिले ऐसा सुन्दर है।

समाधान :- दृष्टि प्रगट हो गयी, फिर कुछ करना ही नहीं रहता, ऐसा नहीं

है। दृष्टि होनेके बाद सम्यग्दर्शन एवं ज्ञान प्रगट हुआ, परन्तु अभी लीनता प्रगट करनी बाकी रहती है। भेदज्ञानकी धाराको उग्र करके दृष्टिका बल वृद्धिगत करता जाता है। अपनी परिणतिको अपनी ओर एकदम झुकाता जाता है। विभावकी ओर जा रही परिणतिको स्वभावकी ओर खींचता जाता है। वह हेय मानता है, फिर भी पुरुषार्थकी डोर चालू है। मैं तो अखण्ड हूँ तो भी विभावकी पर्याय जो हो रही है और स्वभावपर्याय कम है, उसे जानता है और पुरुषार्थकी डोरको अपनी ओर खींचता जाता है।

मुमुक्षु :- साधककी ऐसी विचक्षणता भी असाधारण सूक्ष्म है।

समाधान :- दोनों ऐसे ही हैं। कल कहा, जिज्ञासुको उसमें व्यवहाराक पक्ष नहीं आ जाता? ऐसे नहीं आ जाता। स्वयंने नक्की किया हो कि बस, इससे धर्म नहीं है। ऐसा निश्चय किया हो तो उस कार्यमें जुड़े तो उसमें व्यवहारका पक्ष आ नहीं जाता। कोई प्रयोजनके कारण ऐसे व्यवहारके कार्योंमें जुड़नेका प्रसंग बने। कोई भक्तिमें स्वयंको उल्लास आवे और जुड़ना हो, इसलिये उसमें कोई व्यवहारका पक्ष नहीं आ जाता। जिसे भेदज्ञान प्रगट हुआ, उन्हें ऐसे प्रसंग बने। कोई आचार्य धवल शास्त्र लिखते हैं और कोई अध्यात्मके लिखते हैं, तो उसमें उन्हें कोई पक्ष हो जाता है? कोई मुनि भक्तिके शास्त्र लिखे, पद्मनंदि आचार्य, इसलिये उसमें व्यवहारका पक्ष नहीं हो जाता। भेदज्ञानकी धारा चलती है।

वैसे, जिज्ञासुने नक्की किया है कि ये सब विभावसे भिन्न मैं चैतन्यद्रव्य हूँ। भले ही बुद्धिसे नक्की किया है तो भी किसीको स्वयं ऐसी परिणति हो और भक्तिके भाव आये, उसमें जुड़े और कोई ऐसे प्रयोजनमें पड़े और उसमें जुड़े तो उसमें भक्ति करनेसे व्यवहारका पक्ष नहीं हो जाता।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण। जिज्ञासुकी नक्की करनेमें कचास है, वह तो अपना कारण है। ऐसे परिणाम आते हैं और उसके पक्षमें खींच जाता है, ऐसा नहीं है।

समाधान :- भक्तिके कार्योंमें भक्तिके भाव आये तो उसमें वह जुड़े तो वह कोई पक्ष नहीं है। उसमें यदि नक्की करे कि इसमें सर्वस्व है और इसीमें-से मुझे लाभ होगा, ऐसा माने तो उसे पक्ष है। परन्तु मेरा स्वभाव तो सब शुभभावसे मेरा स्वभाव तो भिन्न है। परन्तु उसे शुभभावकी भक्तिकी परिणति ऐसी कोई आये और कुछ प्रयोजन पड़े तो उसमें जुड़े, इसलिये उसे पक्ष नहीं हो जाता।

मुमुक्षु :- कल आपको प्रश्न पूछा उसके बाद..

समाधान :- बहुत लोगोंको ऐसा हो जाय कि ये व्यवहारमें ज्यादा जुड़ता है, इसलिये इसे व्यवहारका पक्ष हो गया है। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसे शास्त्र-भाषामें हम लोग ऐसा कहें कि प्रगट करनेकी अपेक्षासे उपादेय है। परन्तु आपने जो स्पष्टीकरण जिस प्रकारसे किया वह सुन्दर है। भाषामें तो सब बोल लेते हैं। प्रगट करनेकी अपेक्षासे पर्याय उपादेय है। परन्तु साधनामें साधकको ऐसे परिणाम आते ही हैं।

समाधान :- उसे साथमें होते ही हैं। उसकी दृष्टि तो ज्ञायक पर स्थापित दृष्टि ज्ञायकसे भिन्न नहीं पड़ जाती है। मैं ज्ञायक हूँ। उस ज्ञायकका अस्तित्व जो उसने ग्रहण किया, विभावसे न्यारा, पूर्ण-अपूर्ण पर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ, गुणके भेद भी मेरेमें नहीं है, वह जो दृष्टि ज्ञायक पर स्थापित हुयी, वह दृष्टि तो हटती नहीं। परन्तु उसे ज्ञानमें है कि ये विभाव खड़ा है। अभी पर्याय अधूरी है। स्वभावका वेदन आंशिक है। स्वानुभूतिकी दशा प्रगट होकर, ज्ञायककी सविकल्प धारामें आंशिक शान्तिका वेदन होता है, परन्तु अभी पूर्ण नहीं है, अपूर्ण है। अभी ये विभावकी, विकल्पकी जाल चलती है, उसे जानता है। उसमें-से अपनी परिणतिको स्वयं भिन्न करता हुआ, पुरुषार्थ करता हुआ, दृष्टिके साथ उसकी पुरुषार्थकी डोर साथ ही साथ रहती है।

वह विभावमें एकत्व होता नहीं। और जितनी उसकी उग्रता हो, उस अनुसार करता जाता है। ऐसा करते-करते ही उसकी भूमिका पलटती है। चौथी भूमिकामें हो, उसमेंसे पाँचवी, छठवीं, सातवीं भूमिकामें वह निज स्वभावकी डोरको खींचता हुआ (आगे बढ़ता है)। ऐसी उसकी विरक्ति, ज्ञानकी उग्रता, ज्ञाताकी-ज्ञाताधाराकी तीव्रता और विरक्ती बढ़ती जाय, इसलिये उसके स्वभावकी एकदम निर्मलता होती जाती है। स्वानुभूतिकी दशा बढ़ती जाती है, वह साथमें ही रहती है। वह ऐसा विचार नहीं करता है कि प्रगटकी अपेक्षासे ऐसा है। परन्तु उसकी पुरुषार्थकी डोर चालू ही है। दृष्टि चालू है और पुरुषार्थकी डोर भी साथमें चालू ही है।

मुमुक्षु :- ... ऐसी कोई विशेषता होगी कि एक ही विषयको चारों ओरसे स्पष्ट करनेकी ऐसी ही कोई... बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण आपने आज किया।

समाधान :- जिसे सादकदशा प्रगट होती है, वह तो अपने मार्ग पर चला जाता है। कोई बाहर कहे या न कहे, परन्तु साधककी दशामें उसकी ऐसी ही दशा होती है। गुरुदेवको तो कोई अपूर्व वाणीका योग था तो एकदम स्पष्ट कर-करके सबको निश्चय और व्यवहार, ज्ञान, दर्शन आदि सबको स्पष्ट करके बता दिया है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीके प्रथम दर्शन संप्रदायमें आपको कहाँ हुए थे?

समाधान :- पहले वढ़वाणमें ही हुए। नारणभाईने दीक्षा ली थी, तब दीक्षाका प्रसंग था। पहले वढ़वाणमें, बादमें वींछिया, सब जगह।

मुमुक्षु :- वींछिया आप पधारे थे?

समाधान :- हाँ, वींछिया आयी थी। नारणभाईने दीक्षा ली, उसके बाद उन्होंने समाधि आदि कुछ किया था।

मुमुक्षु :- हाँ, संथारा करनेवाले थे।

समाधान :- हाँ, तब।

मुमुक्षु :- उस वक्त आप पधारे थे?

समाधान :- हाँ। तब आयी थी। बाकी पहले नारणभाईकी दीक्षा थी न? वढ़वाणमें दीक्षा थी न, उस वक्त गुरुदेवके दर्शन हुए थे। उसके पहले हिम्मतभाई आदि सब बात करते थे।

मुमुक्षु :- उस समय प्रवचनमें सम्यग्दर्शनकी बात आती थी?

समाधान :- हाँ, सम्यग्दर्शनकी बात आती थी। मन, वचन, कायासे उस पार विराजता है, स्वानुभूति होती है। तब पंद्रह सालकी उम्र थी। उस समय। वढ़वाणमें गुरुदेवके दर्शन हुए उस समय।

मुमुक्षु :- पहली बार?

समाधान :- हाँ, पहली बार। इनकी वाणी ही अलग है, ये अलग कहते हैं और आत्माका स्वरूप बता रहे हैं। बात तो पहले हिम्मतभाई और वजुभाईके पाससे सुनी थी, परन्तु दर्शन नहीं किये थे। वे तो गुरुदेवके प्रवचनमें-से लिखते थे। पहले मैं कराँची रहती थी, इसलिये दर्शन नहीं हुए थे।

मुमुक्षु :- पहले तो वजुभाईने... गुरुदेवका प्रथम परिचय आपको? हिम्मतभाईसे पहले।

समाधान :- हाँ, उन्होंने नोट बूक लिखी थी। पूरी नोटबुक लिखी थी, अभी भी है। प्रवचन।

मुमुक्षु :- ऐसा, उस वक्त प्रवचनमें-से!

मुमुक्षु :- मैं तो पढ़ता था। परीक्षा देकर वे निवृत्त थे। अभी नौकरी नहीं मिली थी।

मुमुक्षु :- आप कहाँ पढ़ते थे?

मुमुक्षु :- मैं अहेमदाबादमें। उनका इन्जीनयरींग पूरा किया, अभी नौकरी नहीं मिली थी। पूरा चौमासा उन्हें नौकरी नहीं थी, इसलिये निवृत्त थे।

समाधान :- फिर उन्होंने कहा कि, यहाँ महाराज आये हैं, कुछ अलग बात करते हैं।

मुमुक्षु :- वे लिखते थे। महाराज आये हैं। ... कहते हैं, समकित अर्थात् जैन धर्म सच्चा है और सामायिक, प्रतिक्रमण करते हैं, इसलिये पाँचवां गुणस्थान है। ये

महाराज तो कहते हैं कि सिद्ध भगवान जैसा आनन्द आता है। न्यायसे विचारने पर सच्चा लगता है।

मुमुक्षु :- आपको गुरुदेवका परिचय कब हुआ?

मुमुक्षु :- बस, फिर ... की छूट्टीयाँ होती है, दिवालीकी छूट्टी होती थी, तब जाते थे। भाईको उसके पहले .. कालमें भी परिचय हुआ था।

मुमुक्षु :- मूलमें पहले वहाँ-से शुरूआत की। बादमें आपको और बहिनको।

समाधान :- बादमें मैं आयी न। नारणभाईकी दीक्षाका प्रसंग था, तब दर्शन हुए। पंद्रह वर्षकी उम्रमें। बचपनसे कराँचीमें बड़ी हुयी न।

मुमुक्षु :- कराँचीमें आप चार साल रहे।

मुमुक्षु :- बड़ेको बड़ा लाभ और जल्दी लाभ मिला।

समाधान :- फिर गुरुदेव बोलते, उनका प्रवचन अलग था। इसलिये तुरन्त ही आश्चर्य लगता कि ये कुछ अलग ही कहते हैं। श्वेतांबर संप्रदायमें एक अक्षर बोले, बाकी सब ऊपरसे बोलते हों। उसमें तो अर्थ ऊपरसे करते हों।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते थे कि, पूरा प्रवचन घर जाकर लिख लेते हैं। अक्षरशः। वह भावनगर?

समाधान :- हाँ।

मुमुक्षु :- वांकानेर आप बादमें गये?

समाधान :- वांकानेर बादमें। फिर तो मैं थोड़ा समय वढ़वाणमें रही, उसके बाद वांकानेर गयी।

मुमुक्षु :- भाईको उस वक्त भावनगरमें नौकरी थी। सबसे पहले अहेमदाबाद, फिर भावनगर, फिर वांकानेर।

समाधान :- भावनगरमें नौकरी थी न, इसलिये मैं वहाँ गयी थी।

मुमुक्षु :- हाँ, भाईको नौकरी वहाँ थी, इसलिये आप वांकानेर रहे। आप वहाँ नौकरी पर लगे तो वहाँ आये।

मुमुक्षु :- भावनगर, लींबडी, ... करवाते थे।

मुमुक्षु :- हाँ, गुरुदेव कहते थे। बहिनको दूरसे देखा तबसे लगा कि ये शक्ति कुछ अलग है। गुरुदेव खुश हुए। गुरुदेवको ख्याल आ गया।

समाधान :- ... मेरे साथ चर्चा करते। इसलिये मुझे ऐसा लगता कि जहाँ जन्म लिया वह सच्चा नहीं होता। फिर विचार करके नक्की ऐसा ही होता था कि गुरुदेव जो कहते हैं, वही सच्चा है। आप भले कुछ भी कहो, परन्तु यही सत्य है। मुझे ऐसा ही नक्की होता था कि, आप यह सत्य, यह सत्य ऐसा कहो, लेकिन सत्य

तो यही है। विचार करके... गुरुदेव ऐसा अपूर्व रीतसे कहते थे। यही सत्य है। नक्की विचारसे होता था, परन्तु ऐसा लगता था कि यही सत्य है।

मुमुक्षु :- आप बहुत तर्कमें नहीं ऊतरते थे।

समाधान :- यही बात सत्य है। शक्करका स्वभाव और काली जिरी, दोनों भिन्न-भिन्न हैं। ऐसे आत्माका स्वभाव भिन्न है और विभाव भिन्न है। बराबर ऐसा ही है, ऐसे ही भेदज्ञान होता है। ऐसे विचार आ जाते थे। गुरुदेव कहते कि आत्मा भिन्न, विकल्प भिन्न, उससे आत्मा भिन्न है। दो स्वभाव ही भिन्न हैं, इसलिये वह भिन्न है।

मुमुक्षु :- सीधा ऐसा आनेका कारण, पूर्वका कारण?

समाधान :- विचार तो बहुत आते थे। उसमेंसे ऐसा नक्की हो गया। पूर्वका कारण...

मुमुक्षु :- समकित ले लेगी, और ये कहते कि कितना दूर है। हाथ बताकर।

समाधान :- बहुत भावना हो न, उस परसे मैं कहती थी कि इतना दूर है। ऐसे कुछ मालूम नहीं पड़ता, परन्तु मेरे भावसे (कहती थी)।

मुमुक्षु :- दूसरी बार वेकेशनमें आया, कहा, समकित कहाँ फ़िजूल पड़ा है। चंपा! अब समकित कितना दूर है? मुझे लगा, उतना ही कहेगी। तो आधा कहा। इतना। तीसरी बार तो ले लिया था।

समाधान :- अन्दरसे ऐसा लगे न कि ये शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न। ऐसी-ऐसी भावना अन्दर आती रहे, उस परसे ऐसा लगे। लेकिन ऐसे थोड़े ही नक्की होता है। परन्तु मेरा भाव ही ऐसा कहता था।

मुमुक्षु :- भावनगर सच्ची..

समाधान :- अन्दरसे ऐसी हूँफ आ जाती थी।

मुमुक्षु :- अन्दरका ज़ोर बताता है कि इतना दूर है।

समाधान :- गुरुदेवका प्रताप है। उन्होंने कहा तो मार्ग मिला, अन्यथा मार्ग कहाँ मिले? गुरुदेवकी कहनेकी शैली और ऐसे भावसे (कहते थे)। वे स्वयं ही कोई अपूर्व तीर्थंकरका द्रव्य, इसलिये कुछ अलग ही कहते थे। उनका जन्म सबको तारनेके लिये हुआ।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२०८

मुमुक्षु :- आज चर्चा सुनते समय मनमें एक विचार आ गया कि जैसे समयसारके साथ प्रवचनसारका मेल है। तो ... उसका सच्चा ज्ञान बराबर ज्ञानप्रधान .... । ऐसे गुरुदेव और आपको दोनोंको सुने तो उसे जो चाहिये, जो क्षति हो तो वह आपके परिचयसे उसे स्पष्ट हो। दोनोंका सुमेल हो ऐसा लगे। गुरुदेवके पास बहुत सुना है, फिर भी आपसे जब दूसरा प्रकार जाननेको मिले तब मानों सन्धि होती हो, ऐसा लगे।

समाधान :- ... दृष्टि-ज्ञानकी सन्धि आती थी। परन्तु पकड़ना (कठिन पड़ता था)। आदमीकी जैसी दृष्टि हो, वैसा पकड़े।

मुमुक्षु :- दृष्टिका विषय और ज्ञानका विषय, दोनोंके मेलमें बहुत सूक्ष्मता है।

समाधान :- उसमें भूल हो ऐसा है।

मुमुक्षु :- आज तो बहुत सुन्दर (स्पष्टीकरण आया)।

समाधान :- दृष्टान्त है। लोगोंको पूरनपूरीका होता है न, इसलिये पूरनपूरीका दृष्टान्त दिया। बाकी चैतन्यका अपूर्व आनन्द अलग और पूरनपोरी तो जड़ है। परन्तु लोगोंको समझाना कैसे? इसलिये गुरुदेवने दृष्टान्त दिया।

मुमुक्षु :- वह आनन्द हमें मालूम पड़े, उस प्रकारसे भाषामें आ सकता है?

समाधान :- भाषामें न आये। वह तो अनुपम है। जगतकी कोई वस्तुकी उसे उपमा नहीं दे सकते। वह तो अपूर्व है। चैतन्य वस्तु अलग, उसके गुण अलग, उसका आनन्द अलग। सब अलग है। वह तो उसे समझानेके लिये अनेक प्रकारसे उपमा दी है। गुरुदेवने भिन्न-भिन्न प्रकारकी उपमा दी। पूरनपूरीकी दे, घीकी दे, अनेक जातकी दे। घीका स्वाद कैसा? गुरुदेव बहुत बार कहते थे, उसका वर्णन करने जाय तो कर न सके। वैसे आत्माका आनन्द अपूर्व है।

चारों ओरसे लोगोंको उसका स्वाद होता है, उस दृष्टिसे। बाकी चैतन्य वस्तु अलग है और यह जड़ वस्तु अलग है। बाकी उसे कोई जड़की उपमा लागू नहीं पड़ती। देवलोककी ऋद्धिकी उपमा भी उसे लागू नहीं पड़ती। इन्द्रका इन्द्रासन और देवलोककी ऋद्धि... 'रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी, सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो।' सब

पुद्गलके स्वभाव है। वह स्वभाव और चैतन्य स्वभाव दोनों अलग वस्तु है। चैतन्यका आनन्द अपूर्व है। वह तो अनुपम है। उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- चैतन्य मेरा देव है, उसे ही मैं देखता हूँ। दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं।

समाधान :- चैतन्यकी ओर दृष्टि गयी, वह दृष्टि वहाँ स्थापित हो गयी। तो दृष्टि अब चैतन्यको ही देखती है, दूसरा विभाव दिखता नहीं। दृष्टिके आगे विभाव गौण हो जाता है। उसे सब ज्ञान है कि अभी अधूरी अवस्था है, अभी पूर्ण केवलज्ञान हुआ नहीं है, अभी बाकी है। वह सब ज्ञानमें जानता है। परन्तु दृष्टि चैतन्यकी ओर गयी, वह दृष्टि वहाँ स्थापित हो गयी तो मैं मेरे चैतन्यदेवको ही देखता हूँ, बाकी सब उसके आगे गौण हो जाता है।

मैं अकेला चैतन्य अनन्त महिमासे, अनन्त स्वभावसे भरा हुआ चैतन्य, दिव्य शक्तिसे भरा ऐसा चैतन्यदेव, उसे ही मैं देखता हूँ। अंतरमें जहाँ जाता हूँ तो चैतन्यदवे ही दिखता है। विभाव मुझे दिखता नहीं। उसकी दृष्टिकी अपेक्षासे (कहा है)। मेरी नज़र वहीं थँभ गयी है, बाहर कहीं मेरी दृष्टि जाती नहीं। ज्ञानका उपयोग जाता है, उस बातको गौण करके दृष्टि चैतन्यको ही देखती है।

मुमुक्षु :- दृष्टि अर्थात् श्रद्धा, उतना ही नहीं? नज़र भी वहाँ थँभ गयी है?

समाधान :- नज़र वहाँ थँभ गयी है। श्रद्धा मात्र बुद्धिसे कर ली, ऐसे श्रद्धा नहीं। चैतन्यका अस्तित्व पहचानकर उस पर दृष्टि थँभ गयी है, नज़र वहाँ थँभ गयी है।

मुमुक्षु :- ऐसा आता है कि विभाव परिणाम होते समय ही तेरेमें निर्मलता भरी है, परन्तु तू विभावमें तन्मय हो रहा है। अज्ञानी विभावमें तन्मय हो रहा है।

समाधान :- उस समय निर्मलता स्वभावमें तो है, परन्तु अज्ञान अवस्थामें वह विभावमें तन्मय हो गया है। परन्तु विभावमें तन्मय हो गया, इसलिये उसकी निर्मलताका नाश नहीं हो गया। उसकी स्वभाव-शक्तिमें निर्मलता तो भरी है। जिस क्षण वह तन्मय हो रहा है, उसी क्षण निर्मलता उसमें शक्तिरूपसे भरी है। उसका नाश नहीं हुआ है। उस समय यदि तू तेरी दृष्टि बदल तो तेरे स्वयंमें तू निर्मलताका पिण्ड है और शक्तिसे भरा है। उसी वक्त दृष्टि बदल तो तेरा अस्तित्व मौजूद ही है। कहीं खोजने जाना पड़े ऐसा नहीं है, तू स्वयं ही है। इसलिये दृष्टि बदल तो उसी क्षण तेरेमें निर्मलता भरी है। दृष्टि बदलता नहीं है, इसलिये विभावमें तन्मय हो रहा है, दृष्टि बाहर है इसलिये।

मुमुक्षु :- अज्ञानी हो उसे भी अस्तित्वका उतना ही ख्याल आ सकता है?

समाधान :- अस्तित्वका ख्याल आ सके, फिर उसकी यथार्थ प्रतीति और परिणमन नहीं है। ख्याल तो आये। जो पलटता है वह सब विभावमें-से पलटता है न। पहले तो कोई स्वभावका ज्ञान होता नहीं। जो पलटता है, जो स्वभाव-ओर जाता है, वह अज्ञान अवस्था हो उसमें-से ज्ञान होता है। इसलिये अस्तित्वका ज्ञान हो सकता है। परन्तु उसकी यथार्थ परिणति और भेदज्ञान बादमें होते हैं। परन्तु उसे अस्तित्वका ख्याल आ सकता है कि मैं यह चैतन्य हूँ, यह विभाव है। ऐसे ख्यालमें ले सकता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान परसे ज्ञायक पर कैसे जाना? ज्ञानगुण प्रगट दिखता है, तो ज्ञायक पर कैसे जाना?

समाधान :- ज्ञानगुण है वह एक पर्यायमात्र नहीं है। वर्तमान जाने उतना ज्ञान, ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञान, एक ज्ञायक अस्तित्व, ज्ञानका अस्तित्व ग्रहण करना। ज्ञान ज्ञानरूप.. वर्तमान जाने इसलिये ज्ञान, उसने कुछ जाना इसलिये ज्ञान है, ऐसा नहीं। परन्तु वह पूरा ज्ञानका अस्तित्व है। द्रव्यरूप ज्ञानका एक अस्तित्व है। ऐसे ज्ञायकको ग्रहण करना। बाहरसे जाना, ज्ञेयको जाना इसलिये ज्ञान, पर-ओर उसकी दृष्टि गयी और जो जाननेमें आया वह ज्ञान, ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञायक स्वयं, ज्ञान स्वयं अस्तित्व स्वतःसिद्ध है। ऐसे ज्ञायकको ग्रहण करना।

जितना ज्ञानमात्र वह मैं। कुछ जाना इसलिये ज्ञान, ऐसा नहीं। स्वयं जाननेवाला जो ज्ञायक स्वभाव है वही मैं हूँ। ऐसे ज्ञायक-ओर, अखण्ड अस्तित्वकी ओर दृष्टि देनी कि यह जो जाननेवाला है वह मैं हूँ। इसे जाना, इसे जाना इसलिये ज्ञान, ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञायकका अस्तित्व जाननस्वरूप है, वह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- ज्ञेयोंका जाननरूप ज्ञान उतना ही ज्ञान नहीं।

समाधान :- उतना ही ज्ञान नहीं, परन्तु स्वयं ज्ञान है। ज्ञायकता अनन्ततासे भरी ज्ञायकता है, अनन्त अगाधतासे भरी ज्ञायकता वह मैं ज्ञायक हूँ। कोई कार्य करे, प्रकाश हो तो प्रकाशका कार्य करे, ऐसा नहीं। प्रकाशका पुंज है वही प्रकाश है। बर्फका पुंज है वही बर्फ है। परन्तु ठण्डेका कार्य इसलिये बर्फ है, ऐसा नहीं। परन्तु वह वस्तु स्वयं ही ठण्डस्वरूप है। वस्तु स्वयं ही प्रकाशका पुंज है। ऐसे चैतन्य स्वयं ही ज्ञायक जाननस्वभावसे भरी वस्तु है। ऐसे ज्ञायकको ग्रहण करना। वह कार्य करता है इसलिये ज्ञान, ऐसा नहीं। परन्तु स्वयं ज्ञानरूप ही है।

मुमुक्षु :- पर्याय परसे द्रव्य पर जाना..

समाधान :- हाँ, पूरा ज्ञायक स्वयं है।

मुमुक्षु :- उस जीवको अस्तित्वका ख्याल आये, उसका अर्थ ज्ञायकका ख्याल आये?

समाधान :- ज्ञायकका, अखण्ड ज्ञायक अनन्ततासे भरा ज्ञायकका अस्तित्व ख्यालमें आये।

मुमुक्षु :- मार्गकी युक्ति सूझ जाय तो मार्ग मिल जाय। उसमें युक्तिमें क्या कहना है?

समाधान :- स्वयंको ज्ञायक कैसे ग्रहण करना वह युक्ति है। यह ज्ञान है और यह राग है, ऐसी भेदज्ञानकी युक्ति सूझ जाय। ये राग विभाव है, जो शुभाशुभ भाव है, वह मैं नहीं हूँ। परन्तु मैं ज्ञायक हूँ। ऐसे स्वयंको ज्ञान द्वारा-प्रज्ञाछैनी द्वारा भिन्न करे, निज ज्ञानलक्षणको ग्रहण कर ले, वह युक्ति है। इसमें ज्ञानलक्षण कौन-सा और विभावका लक्षण कौन-सा, उन दोनोंके लक्षणको पहचानकर, मैं यह ज्ञायक हूँ और यह विभाव है, ऐसे भिन्नता करे। युक्ति सूझ जाय अर्थात् स्वयं अपना लक्षण पहचान ले, अंतरमें गहराईमें जाकर।

मुमुक्षु :- आप बोलते हो तो तब ऐसा लगता है, मानों एकदम सरल है। ऐसा लगता है। तो इतना कठिन क्यों हो गया होगा?

समाधान :- अनादिका अभ्यास है। उसमें विभावमें ऐसा तन्मय हो गया है कि उसे ज्ञानको भिन्न करना मुश्किल पड़ता है कि मैं यह ज्ञायक हूँ और यह विभाव है। इस प्रकार उसे भिन्न करनेमें (कठिन पड़ता है)। स्वयं अनादिके अभ्याससे इतना तन्मय हो गया है, इसलिये अंतरमें जानेमें और सूक्ष्म होनेमें उसे मुश्किल पड़ता है, इसलिये उसे कठिन लगता है। बाकी वस्तु तो दोनों भिन्न ही हैं।

ज्ञायक वह ज्ञायक है और विभावकी पर्यायें वह स्वयंका मूल स्वभाव नहीं है। वस्तु तो वस्तु ही है। इसलिये वह तो सहज है। अपना स्वभाव है इसलिये सहज और सुगम है, परन्तु अनादिके अभ्यासके कारण उसे दुर्लभ हो गया है। दृष्टि बाहर दौड़ती रहती है। इसलिये अंतरमें उसे स्थिर करनी, स्वयंको ग्रहण करना उसे मुश्किल हो गया है।

निज नयननी आळसे,.. गुरुदेव कहते थे न? निरख्या नहि हरिने जरी। निज नेत्रकी आलसके कारण स्वयं देखता नहीं है। उसमें अनादि काल व्यतीत कियाा। बाहरसे कहींसे प्राप्त होगा, इसमें-से प्राप्त होगा, क्रियामें-से प्राप्त होगा, कुछ बाहरका करके प्राप्त होगा, ऐसा मान-मानकर काल व्यतीत किया। परन्तु अंतर दृष्टि करके निज स्वभावको पहचाना नहीं।

गुरुदेवने बड़े धोध बहाये हैं। सबको सरल और सुगम कर दिया। आत्माकी उतनी महिमा बतायी, आत्मा कोई अपूर्व, उसका भेदज्ञान कैसे हो? उनकी वाणीमें उतना जोरदार आता था। परन्तु करनेका स्वयंको बाकी रह जाता है। कहीं किसीकी भूल न रहे, इतना जोरदार कहते थे और उतना सरल और सुगम करके कहते थे।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने तो बहुत बताया, लेकिन भूलमें-से आपने हमें बाहर निकाला। आपके प्रतापसे हम... नहीं तो हम बहुत बड़ी भूलमें पड़े थे।

मुमुक्षु :- कोई बार तो अंतरमें ढेरके ढेर लग जाय और कभी सहज जैसा हो वैसा रहता है। इन दोनोंमें अंतर क्या है?

समाधान :- कोई बार पुरुषार्थकी गति ऐसी जातकी हो तो अंतरमें-से ढेरके ढेर लग जाय। कोई बार सहज दशा हो ऐसा आये। अभी जबतक वीतराग दशा नहीं हुयी है, क्षायिक वीतरागपर्याय नहीं हुयी है तो पुरुषार्थकी गति अभी क्षयोपशम भावरूप है न? इसलिये कभी ढेर लग जाय, कभी मध्यम दिखे, कभी ऐसा दिखे, इस अर्थमें है।

मुमुक्षु :- कोई बार आनन्द अधिक आये, कभी कम आये, ऐसा?

समाधान :- आनन्द अधिक आये ऐसा नहीं। उसकी दशा बढ़ती जाय। उसकी सविकल्पतामें भी दशा बढ़ती जाय और निर्विकल्पतामें भी दशा बढ़ती जाय। मुनि छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हो, तो क्षयोपशम चारित्र है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें लीन होते हैं। तो उनकी चारित्रकी दशा तो छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुले ऐसी है। तो भी उन्हें कोई विशेष गाढ़पना (होता है)। सविकल्पतामें विशेषता दिखे, निर्विकल्पतामें विशेषता दिखे, ऐसे अनेक प्रकारका दिखे। कोई ज्ञानकी निर्मलता दिखे, दर्शनकी अवगाढ़ता, कोई चारित्रमें विशेषता दिखे। दर्शन तो एक प्रकारका होता है, परन्तु अवगाढ़ता (बढ़ती है)। ज्ञान, चारित्र आदि अनेक प्रकार दिखे।

मुमुक्षु :- ... 'मैं हूँ' ऐसा स्वयंको स्वयंसे अस्तित्वका ज़ोर आये। उसमें 'मैं हूँ' ऐसे दो अक्षर ही हैं। मैं कैसा हूँ? कितना हूँ? ऐसा कुछ नहीं। मैं हूँ।

समाधान :- अपना अस्तित्व ग्रहण करनेमें कहीं भेद नहीं पड़ता। स्वयं अपना अस्तित्व (ग्रहण करता है)। दृष्टि कहीं भेद नहीं करती। अपना अस्तित्व 'मैं हूँ', अपना अस्तित्व उसे ज्ञायकरूप-से ग्रहण होता है। उसमें यह ज्ञानगुण है और यह द्रव्य है, गुण और गुणी ऐसा कोई भेद नहीं पड़ता। स्वयं अपना अस्तित्व, चेतनका अस्तित्व चैतन्यरूप-से ग्रहण होता है। दृष्टिमें कोई भेद नहीं होता। इसलिये मैं हूँ, ऐसे स्वयंका अस्तित्व स्वयंको अंतरमें-से ग्रहण होना चाहिये। दृष्टिके विषयमें उसका पूरा अस्तित्व उसे ग्रहण होना चाहिये। ऐसे अर्थमें है।

फिर ज्ञानमें भेद पड़ते हैं। ज्ञान दृष्टिको ग्रहण करे, ज्ञान दृष्टिका विषय जाने और ज्ञान भेदको भी जाने। सब ज्ञानमें आता है। दृष्टि तो अपना अस्तित्व-सामान्य अस्तित्व ग्रहण करती है। उसमें गुण-गुणीका भेद भी नहीं होता। स्वयंका अस्तित्व स्वतःसिद्ध है उसे ग्रहण करती है। मैं हूँ, ऐसे। मैं यह हूँ।

मुमुक्षु :- सीधा अभेद।

समाधान :- हाँ, अभेद मैं चैतन्य हूँ। सबसे भिन्न मैं चैतन्य हूँ। उसका विस्तार करनेमें... मैं चैतन्य हूँ, जो विभावभाव आदि हैं, वह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं चैतन्य हूँ। उसे स्वयंको मैं चैतन्य हूँ, इस प्रकार अपना अस्तित्व ग्रहण होता है। मैं अन्य कुछ नहीं हूँ, मैं एक चैतन्य हूँ। मेरेमें ज्ञान है, मेरेमें आनन्द है, वह सब भेद ज्ञानमें आते हैं। (दृष्टि) उसका अस्तित्व ग्रहण करती है। मैं हूँ सो हूँ, मैं चैतन्य अस्तित्व हूँ।

मुमुक्षु :- .. भावमें सीधा अभेद आता है। आपकी तो वाणीमें भी अभेद आता है। आज तो बहुत सुन्दर (आया)।

समाधान :- सच्चा तो दृष्टिमें अभेद आये। वाणी बोले उसमें भेद पड़ता है। परन्तु दृष्टि क्या कार्य करती है? वह कह सकते हैं। दृष्टिका कार्य ऐसा है कि अभेद ग्रहण करती है। स्वयं स्वयं ग्रहण हो गया, स्वयं स्वयंसे, अपना चैतन्य अस्तित्व-मैं यह हूँ। ऐसा उसे बल आ गया कि मैं चैतन्य ही हूँ। चैतन्य सो चैतन्य ही हूँ। किसीको पूछने नहीं जाना पड़ता। मैं चैतन्य हूँ, इस प्रकार अंतरमें-से ग्रहण हो गया।

जो मार्ग गुरुदेवने बताया, वही मैं चैतन्य हूँ। जो देव-गुरु-शास्त्र बताते हैं, वह मैं चैतन्य हूँ। उसकी परिणति अंतरमें-से अस्तित्व ग्रहण कर लेती है। अंतरमें-से ग्रहण करे वह अलग होता है।

मुमुक्षु :- .. फिर अंतरमें-से ग्रहण करे तो कितनी हूँफ लगे।

समाधान :- हाँ, उसकी हूँफ तो (अलग ही है)। चारों ओर व्यर्थ प्रयत्न करता था, उसे अंतरमें-से चैतन्य ग्रहण हो जाय, तो उसे हूँफ ही आये न।

ट्रेक-२०९

समाधान :- .. ऐसे गुरुदेव थे। वह लब्धरूप अलग है और यह लब्धरूप अलग है। उसे स्वयंको चैतन्य निज अस्तित्वमें ग्रहण हुआ है। और वह अस्तित्व स्वयं ग्रहण करके फिर स्वानुभूतिमें जो वेदन हुआ है, वह वेदन उसे... वह परोक्ष है उसमें और यह परोक्ष है, इसमें फ़र्क़ है। दोनों लब्धरूप (हैं), लेकिन उस लब्ध-लब्धमें फ़र्क़ है।

मुमुक्षु :- वह तो स्मरणमात्र है कि..

समाधान :- स्मरणमात्र है। ये तो चैतन्यको स्वयं चैतन्यका वेदन (हुआ है)। उपयोग बाहर है। उसकी स्वानुभूति अभी नहीं है, लेकिन चैतन्यका जो अस्तित्व है वह अस्तित्व तो उसके हाथमें है। सविकल्प दशामें भी उसका अस्तित्व तो उसके हाथमें है। और उपयोग अपनी ओर आये तो शीघ्र उसका वेदन हो सके ऐसा है। वह उसे स्मरणमात्र नहीं है। वह परोक्ष और यह परोक्षमें फ़र्क़ है।

मुमुक्षु :- आप कल ऐसा बोले थे कि नज़रमें प्रत्यक्ष है।

समाधान :- उसकी नज़र स्थापित है, चैतन्य पर नज़र स्थापित है। ये तो समीप है। गुरुदेवका है वह दूरवर्ती है, चैतन्य तो स्वयंको समीप ही है। और उपयोग बदले तो भी स्वानुभूतिका वेदन तुरन्त उसके हाथमें है, डोर उसके हाथमें है। वह परोक्ष और इस परोक्षमें अंतर है। लब्ध है, लेकिन उघाड़रूप है। उसे उघाड़ ऐसा है कि अन्दर उपयोग लीन हो तो उसे स्वानुभूतिका वेदन उसी क्षण हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- उपयोग लड़ाईका हो तो भी स्वानुभूतिका वेदन..

समाधान :- उपयोग लड़ाईमें (भले हो), लेकिन डोर अपने हाथमें है। उपयोग उस ओर है, लेकिन उपयोग पलट सके ऐसा है। स्वयं परिणति पलटे तो स्वयं अपनेमें लीन हो सके ऐसा है। डोर अपने हाथमें है। अस्तित्व अपना ग्रहण (किया है)। भेदज्ञानकी धारा चालू है। डोर उसके हाथमें ही है।

मुमुक्षु :- नींदमें हो तो भी नज़र वहाँ स्थापित है?

समाधान :- नज़र चैतन्य पर स्थापित है। चैतन्यको छोड़कर स्वयं एकदम बाहर नहीं चला गया है। उसका उपयोग बाहर गया है। परन्तु दृष्टि तो उसमें स्थापित ही

है। घरमें खड़े हुअे मनुष्यकी दृष्टि बाहर (है), घर छोड़कर नहीं गया है। घरके बाहर खड़ा हो तो, एक पैर घरके अन्दर और एक पैर घरके बाहर, ये तो स्थूल दृष्टान्त है। वैसे घर छोड़कर बाहर नहीं चला गया है, उसका उपयोग बाहर गया है। उसका उपयोग पलटे तो उसका कदम अपनी ओर आ सके ऐसा है। लेकिन पुरुषार्थकी कमज़ोरीके कारण उसका उपयोग बाहर गया है। और सविकल्पकी धारा, ज्ञाताकी धारा चालू है। उपयोग पलटे तो स्वयं अपनेमें स्वानुभूतिका वेदन कर सके ऐसा है। लेकिन उसकी दशा अनुसार होता है। उसकी जैसी भूमिका हो, उस अनुसार होता है। दृष्टि अन्दर चैतन्यमें है, उपयोग बाहर गया है।

मुमुक्षु :- छठवें गुणस्थानमें दृष्टि अन्दर चैतन्यमें है। उपयोग बाहर है।

समाधान :- दृष्टि तो चैतन्यमें है। चौथे गुणस्थानमें दृष्टि चैतन्यमें है और छठवें गुणस्थानमें दृष्टि चैतन्यमें है। छठवें गुणस्थानमें उपयोग बाहर है, लेकिन उसमें उनकी लीनता, दृष्टिके साथ लीनता अधिक है। चतुर्थ गुणस्थानमें दृष्टिके साथ उसकी लीनता, स्वरूपाचरण चारित्र जितना प्रगट हुआ उतनी लीनता है। और छठवें गुणस्थानमें उसकी लीनता बढ गयी है। दृष्टिके साथ लीनता भी है। लेकिन उपयोग बाहर गया है, उतनी लीनता (कम है), अभी केवलज्ञान नहीं है, इसलिये उतनी लीनतामें क्षति है। परन्तु छठवें गुणस्थानकी लीनता तो है।

सविकल्पतामें भी दृष्टि है, उसके साथ लीनता भी है। छठवें गुणस्थानमें उसकी भूमिका छठवें गुणस्थानकी है, इसलिये उतनी लीनता, सविकल्पतामें भी उतनी लीनता है, लेकिन उपयोग बाहर (गया है)। अंतरमें जाय तो वह सातवीं भूमिका होती है। परन्तु सविकल्पतामें भी छठवीं भूमिकामें जितनी दृष्टि स्थापित है, उसके साथ लीनता भी है। छठवें गुणस्थानमें अकेली दृष्टि है ऐसा नहीं है, उसके साथ लीनता भी है। उतनी चारित्रकी दशा साथमें है।

मुमुक्षु :- आप जो कहते हो कि परिणति गाढ़ होती जाती है, तो वह लीनता बढ़ती जाती है।

समाधान :- लीनता बढ़ती जाती है। और अमुक प्रकारसे लीनता, छठवें गुणस्थानमें छठवीं भूमिकाकी लीनता है। ऐसी लीनता है कि उपयोग अंतर्मुहूर्त बाहर जाय, फिर अंतर्मुहूर्तके बाद अंतरमें आता ही। ऐसी उसकी उग्र लीनता है। बारंबार उपयोग अंतरमें आता है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें। चतुर्थ भूमिकामें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें अन्दर नहीं आ सकता है। क्योंकि उसकी भूमिका अमुक है। और छठवें-सातवेंमें तो अंतर्मुहूर्तमें अंतरमें आता है।

मुमुक्षु :- .. यह छठवाँ है, वह कैसे मालूम पड़े? उसकी लीनता परसे ख्याल

आता है?

समाधान :- उसकी लीनता परसे। उसकी स्वानुभूतिकी दशा और सविकल्पताकी लीनता अमुक प्रकारकी (होती है)। छठवें गुणस्थानकी लीनता प्रगट हो तो उसे गृहस्थाश्रमके विकल्प भी छूट जाते हैं। छठवीं भूमिकामें मुनिकी दशा प्रगट होती है। पाँचवीं भूमिका आये तब उसके विकल्प अमुक प्रकारके हो जाते हैं और लीनता भी अंतरमें विशेष होती है। दृष्टिके साथ लीनता बढ़ जाती है।

मुमुक्षु :- अर्थात् जितनी निर्विकल्प दशा हुयी, उतनी ही लीनता हुयी, ऐसा नहीं।

समाधान :- निर्विकल्प दशा पर भी उसका नाप है, परन्तु उसकी वर्तमान जो लीनता है उस पर उसका नाप है। उसकी भूमिका पूरी पलट जाती है। छठवीं भूमिका हो गयी। छठवें-सातवें गुणस्थानमें ऐसी उसकी दशा (पलट जाती है)। वर्तमान निर्विकल्प दशा तो बढ़ती गयी, लेकिन वर्तमान जो सविकल्प धारा है, उस सविकल्पतामें भी उसकी लीनता विशेष है। भेदज्ञानकी ज्ञायकताकी उग्रता और लीनता विशेष है। उसे जो अमुक प्रकारके विकल्प (होते हैं), वह विकल्प अमुक प्रकारके ही आते हैं। ज्ञायककी उतनी लीनता बढ़ जाती है, सविकल्पतामें भी।

मुमुक्षु :- छठवें गुणस्थानमें दो जीव हों तो दोनोंकी लीनतामें फ़र्क़ होगा।

समाधान :- उसकी भूमिका एक है। इसलिये भूमिका पलटे... वर्तमानमें तारतम्यता होती है, लीनतामें तारतम्यता हो सकती है। स्वरूपाचरण चारित्रमें उसकी तारतम्यतामें फेरफार हो सकता है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दृष्टि जीवकी प्रशंसा करते हो तो वह लीनताकी अपेक्षासे प्रशंसा करते हैं? कि इनकी लीनता विशेष है, इनकी लीनता कम है।

समाधान :- गुरुदेव क्या कहते हों, वह गुरुदेवका अभिप्राय...

मुमुक्षु :- वचनामृतमें जगह-जगह भावनाका महत्व बहुत आता है। तो भावना पर्याप्त है?

समाधान :- वह तो प्रथम भूमिकामें भावना आती है। फिर तो सम्यग्दर्शन, चारित्र दशा बढ़ती जाती है। पहले जिसने कुछ प्राप्त नहीं किया है, उसे भावना (आती है)। स्वयं यथार्थ भावना करे तो फल आये। भावना हो तो उसे पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं।

उसकी भावना उग्र हो कि मुझे चैतन्य ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये, ऐसी अंतरमें से भावना हो तो उसके साथ पुरुषार्थ भी प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं। यदि उसे उस जातकी भावना नहीं है, अंतर चैतन्यकी ओर रुचि नहीं है, भावना नहीं है तो उसका पुरुषार्थ भी उस ओर जाता नहीं। रुचि हो, भावना हो तो ही

उसका पुरुषार्थ (उस ओर जाता है)।

बाहरकी रुचि और बाहरकी भावना हो तो पुरुषार्थ अपनी ओर मुड़ता नहीं। इसलिये भावना, जिज्ञासा उग्र करे तो अपनी ओर पुरुषार्थ मुड़ सकता है। अपनी रुचिके बिना कार्य होता नहीं। रुचि और भावना हो तो पुरुषार्थ होता है। शुरूआतकी भूमिकामें वह भावना आती है। तेरी भावना यथार्थ होगी तो कार्य होगा।

मुमुक्षु :- भावना उग्र हो तो दूसरे कारण स्वतः प्राप्त हो जाते हैं?

समाधान :- तो कारण प्राप्त हो जाते हैं। तेरी भावना उग्र हो तो सब कारण अंतरमें प्राप्त हो जायेंगे। तेरी भावना... यदि तुझे अंतरमें चैन न पड़े कि मुझे चैतन्य प्राप्त हो तो ही शान्ति होगी, चैतन्यके बिना शान्ति न हो, चैतन्यका स्वभाव प्रगट न हो तबतक उसे चैन न पड़े ऐसी भावना हो तो उसे सर्व कारण प्राप्त हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- बाहरमें दुःख लगे तो अन्दर आये बिना रहे नहीं और दूसरी जगह ऐसा है कि एकान्त दुःखके बलसे भिन्न पड़े ऐसा नहीं है।

समाधान :- बाहरमें यदि उसे रुचि लगती हो और बाहरमें सुख लगे तो वह वापस ही नहीं मुड़ता। इसलिये बाहर कहीं सुख नहीं है। बाहरमें आकुलता और दुःख ही है। इस प्रकार दुःख लगे तो वापस मुड़े। लेकिन अकेला दुःख-दुःख करता रहे और अपना अस्तित्व ग्रहण न करे तो भी अंतरमें आ नहीं सकता। अपना अस्तित्व ग्रहण करे कि बाहर तो दुःख है, लेकिन सुख कहाँ है? सुख मेरे आत्मामें है। एक ज्ञायकको ग्रहण करे, स्वभाव ग्रहण करे तो वापस मुड़े।

सब आस्रव आकुलतारूप है, विपरीत है, दुःख है, दुःखका कारण है, ऐसा उसे अंतरमें हो। परन्तु मैं कौन हूँ? ऐसे यदि निज अस्तित्व ग्रहण न हो तो ये सब दुःख है, दुःख है ऐसा करते रहनेसे, एकान्त ऐसा करनेसे नहीं होता। उस दुःखके पीछ निज अस्तित्व ग्रहण हो तो प्रगट हो। दुःख भी लगे और अपना स्वभाव क्या है, उसे भी ग्रहण करे, तो प्रगट हो।

लेकिन परस्पर सम्बन्ध है। जिसे दुःख लगे वह स्वयंको अंतरमें खोजे बिना नहीं रहता। और जो निज अस्तित्व यथार्थ रूपसे ग्रहण करता है, उसे बाहरमें दुःख लगे बिना नहीं रहता। ऐसा अस्ति-नास्तिका सम्बन्ध ही है। अपना अस्तित्व ग्रहण करे तो बाहरसे यह मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसा नास्तित्व आ जाता है। और ये विभाव है वह दुःखरूप है, मेरा स्वभाव नहीं है। इस प्रकार उसे अस्तिपूर्वक नास्ति आये। यथार्थ अस्तिको ग्रहण करे तो उसमें विभावकी नास्ति आ ही जाती है। एकदूसरेको सम्बन्ध है।

लेकिन यह विभाव मुझे नहीं चाहिये, वह अस्तिपूर्वक यदि ग्रहण करे तो उसे

यथार्थपने दुःख लगा है। यदि अस्तित्व ग्रहण नहीं करता है तो यथार्थ दुःख नहीं लगा है। अनन्त कालसे ऐसा तो किया कि ये सब दुःख है, दुःख है। ऐसे छोड़नेका प्रयत्न किया। परन्तु अंतरसे यदि सच्चा दुःख लगे तो उसे अस्तित्व ग्रहण हुए बिना रहता नहीं। यथार्थ लगना चाहिये। तो अस्तित्व ग्रहण हो, तो ही वह दुःखसे भिन्न पड़ता है।

अनन्त कालसे बहुत बार यह दुःख है, ऐसा वैराग्य किया, लेकिन अस्तित्व ग्रहण नहीं किया। अस्तित्व ग्रहण करे तो वह दुःख लगे। यथार्थ दुःख लगे तो अस्तित्व ग्रहण करे। उसका अर्थ यह है कि अनन्त कालसे दुःख लगा, लेकिन सच्चा दुःख ही नहीं लगा है। सच्चा दुःख लगे तो अस्तित्व ग्रहण करता ही है।

मुमुक्षु :- दोनोंको परस्पर सम्बन्ध है।

समाधान :- परस्पर सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- .. आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा स्वीकार करना। और दूसरी ओर ऐसा कहना कि राग-द्वेषके परिणाम मेरे हैं, ऐसा स्वीकार करना।

समाधान :- मेरे नहीं है, मेरे हैं ऐसा नहीं। ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसे ग्रहण (कर)। मेरे हैं अर्थात् मेरी अशुद्ध परिणतिमें होते हैं, परन्तु वह मेरा स्वभाव नहीं है। मेरे हैं, वह अहंपना तो अनादि कालसे है। स्वामीत्वबुद्धि नहीं, परन्तु मेरी अशुद्ध परिणतिमें वह होता है। मैं मेरा स्वभाव उससे भिन्न है, मैं ज्ञायक हूँ। ये मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसे उसका भेदज्ञान करे। मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, परन्तु वह मेरा है ऐसा नहीं। उसका स्वामीत्व छोड़ना है। मेरा है, ऐसा नहीं। वह मेरा स्वभाव नहीं है। मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, परन्तु मेरा स्वभाव नहीं है। उसका भेदज्ञान करे कि मैं ज्ञायक हूँ और ये विभाव है।

मुमुक्षु :- (रागादि) परिणाम पुद्गलका है।

समाधान :- पुद्गलका है ऐसे नहीं, वह तो पुद्गलके निमित्तसे होता है। पुद्गलका है अर्थात् स्वयं कुछ करता नहीं और स्वयं शुद्ध है और वह पुद्गल है, ऐसा नहीं। अपनी अशुद्ध पर्यायमें होता है। लेकिन अपना स्वभाव नहीं है। मेरा है ऐसे ग्रहण नहीं करना है। वह मेरा और मैं उसका, ऐसे एकत्वबुद्धि नहीं (करनी है)। एकत्वबुद्धि तोड़नी है। मैं ज्ञायक और वह मेरा स्वभाव नहीं है। मुझसे भिन्न है। लेकिन मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है।

भेदज्ञान करना। जड़का ही ऐसा नहीं। परन्तु मेरे पुरुषार्थकी मन्दतासे, पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है। सिद्ध भगवान जैसे शुद्ध निर्मल हैं, वैसा मैं शाश्वत द्रव्य निर्मल हूँ। परन्तु वह मेरा स्वभाव नहीं है। लेकिन होता है वह मेरी पर्यायमें होता है, परन्तु वह मेरा स्वभाव नहीं है। उसे स्वयंमें एकत्वरूप मानना नहीं, तथापि जड़का है ऐसा

भी नहीं। परन्तु अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, मेरा स्वभाव नहीं है।

(पुद्गलके) निमित्तसे होता है इसलिये पुद्गलका। परन्तु अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, इसलिये अपनी पर्यायमें, चेतनकी पर्यायमें होता है। परन्तु स्वभाव अपना नहीं है।

मुमुक्षु :- प्रीति चित्तेन सुनी है, वह भावि निर्वाण भाजनम्, उसमें हम आ गये कि नहीं?

समाधान :- जिसने प्रीतिसे सुना वह सब आ जाते हैं। अंतरकी प्रीतिसे सुना वह सब आ ही जाते हैं। ऐसे गुरुदेव मिले, ऐसी अपूर्व वाणी बरसायी। अंतर प्रीतिसे जिसने बात सुनी, उसका स्वयंका हृदय कह दे कि मैं आ गया कि नहीं आ गया। जिसने स्वयंने अंतर प्रीतिसे वार्ता सुनी वह आ ही जाता है। उसका स्वयंका आत्मा ही बोलता है। स्वयंको कितनी प्रीति है, तत्त्वकी रुचि है, गुरुदेवकी वाणी जो तत्त्व बताती है, उसकी रुचि स्वयंको कितनी है, वह स्वयं ही स्वयंका आत्मा बता देता है।

... अनादिका अभ्यास है। करनेका यह तत्त्व गुरुदेवने बताया, ऐसा अपूर्व तत्त्व समझनेका अभी अवसर है। गुरुदेवने जो बताया है, वह महिमावंत तत्त्व है। पुरुषार्थको बदल देना। अनादिका अभ्यास है उसमें पलट जाय तो भी बदल देना। करनेका एक ही है।

मुमुक्षु :- द्रव्य और पर्यायकी भिन्नताकी बातें बहुत करते थे। और आप द्रव्य एवं पर्यायकी अभिन्नताकी बातें बहुत करते हो, अभिप्राय तो दोनोंका एक है।

समाधान :- अभिप्राय तो एक ही है। गुरुदेव बहुत करते थे ऐसा नहीं, प्रवचनमें जब वह विषय आये तब वे कहते थे। और जब द्रव्य-पर्याय, प्रवचनसारके प्रवचन हों तो गुरुदेव उसमें दूसरे प्रकारसे कहते थे। जिस प्रकारका विषय हो, प्रवचनमें जो गाथा आयी हो, उस अनुसार गुरुदेव कहते थे। गुरुदेवका आशय वैसा ही था।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१०

समाधान :- ... उसका स्वरूप ज्ञात होता है, परन्तु मेरा ज्ञान परिणमित होकर वह पर्याय होती है। ज्ञेय परिणमित होकर मेरेमें पर्याय नहीं होश्रती, ज्ञेयकी पर्याय ज्ञेयमें है। मेरे ज्ञानकी पर्याय मेरेमें है। ज्ञान परिणमित होकर पर्याय होती है। ज्ञान ज्ञेयको जानता है, परन्तु परिणमनेवाला मैं हूँ। (ज्ञान) स्व-पर दोनोंका होता है, परन्तु ज्ञान स्वयं परिणमित होकर वह पर्याय होती है। ज्ञेय परिणमित होकर मेरेमें पर्याय नहीं होती है। मैं स्वयं परिणमता हूँ। भावरूप परिणमनेवाला हूँ। मेरे भाव मुझसे होते हैं।

.. अपनी अचिंत्य शक्तिकी महिमा है। भेदज्ञानरूप परिणमनेवाला (हूँ)। मैं एक स्वरूप रहनेवाला हूँ, अनेकरूप होनेवाला नहीं हूँ। अनेक ज्ञेयोंकी पर्याय ज्ञात हो, पर्यायकी अपेक्षासे मेरेमें अनेकता होती है, बाकी स्वभावसे तो मैं एक हूँ। पर्यायकी अनेकतामें मैं पूरा खण्ड खण्ड नहीं होता हूँ, वह तो पर्याय है। वस्तु स्वरूपसे मैं एक हूँ। ऐसा यथार्थ ज्ञान हो, स्वरूपमें स्वयंका ग्रहण हो, ऐसी भेदज्ञानकी धारा हो तो उसे स्वानुभूतिकी पर्याय प्रगट हो।

.. ज्ञान परिणमित होकर पर्याय होती है। लेकिन उसमें स्व-पर ज्ञेय दोनों ज्ञात होते हैं। स्व और पर। परन्तु ज्ञान परिणमित होकर पर्याय होती सहै। ज्ञेय परिणमित होकर मेरेमें पर्याय नहीं आती है। .. ज्ञेयका जानपना आता है, परन्तु परिणमन ज्ञानका है। जानपना ज्ञेयको जानता है। परन्तु परिणमन ज्ञानका है। जानपना होता है। जानपना अपना है। स्व-परका जानपना होता है, परन्तु परिणमन ज्ञानका है।

मैं मेरे ज्ञानरूप परिणमता हूँ। स्वपरप्रकाशक ज्ञान मेरा है। ... परिणमन दूसरेका नहीं है, परिणमन मेरा है। परन्तु जानपना स्वपरप्रकाशक होता है। पर्याय हुयी उसमें ज्ञानने क्या जाना? स्व-पर दोनोंका स्वरूप। छद्मस्थको जहाँ एक जगह उपयोग होता है वह, प्रगट उपयोगात्मकपने तो वह ऐसा जानता है। लब्धमें जीवको सब जानपना होता है। प्रगटपने जहाँ उपयोग हो वहाँ छद्मस्थ जानता है। केवलज्ञानी दोनों एकसाथ जानता है, स्वपर। साधकदशा है और भेदज्ञानकी परिणति है। उसकी परिणति, ज्ञानकी परिणति तो, यह मैं हूँ और यह पर है, मैं और पर, मैं और पर ऐसी ज्ञानकी परिणति तो चालू ही है।

लब्धात्मक ज्ञान अर्थात् अनादिका जो क्षयोपशम, अमुक उघाड़ ऐसा अर्थ नहीं है। परन्तु उसके अन्दर प्रगट हुआ है। लब्ध और उपयोगात्मक प्रगटरूपसे भेदज्ञानकी धारा लब्धरूपसे प्रगट है। अनादिका जो लब्ध होता है ऐसा लब्ध नहीं है। अनादिका शक्तिरूप अथवा अमुक क्षयोपशम जीवको प्रगट हो और फिर थोड़ा उपयोग और थोड़ा लब्ध रहे, वह नहीं है।

यह लब्ध तो प्रगट होकर लब्ध हुआ है। फिर उपयोगात्म ज्ञान अन्य-अन्य ज्ञेयमें जाता है। प्रगट होकर लब्ध हुआ है। वह ज्ञानकी परिणति ऐसी परिणति है, स्वपरप्रकाशककी। यह मैं और यह पर, मैं यह और यह पर, मैं यह और यह पर, ऐसी ज्ञानकी परिणतिकी धारा, भेदज्ञानकी परिणतिकी धारा सहज (होती है)। वह आंशिक स्वपरप्रकाशक है। भले उपयोगात्मक नहीं है, परन्तु लब्धात्मक भेदज्ञानकी परिणति है। (उसमें) स्वपरपना आ ही जाता है। भेदज्ञानकी परिणतिमें। यह मैं और यह पर, यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ, ऐसी भेदज्ञानकी परिणतिकी धारा निरंतर चलती है। वह परिणति है।

... भेदज्ञानकी धारा वह वेदनरूप परिणति है। स्वानुभूति नहीं, परन्तु उसकी भेदज्ञानकी अमुक प्रकारकी शक्ति प्रगट हुयी है। भेदज्ञानकी परिणतिकी शक्ति है। अमुक शान्तिकी धारा प्रगट हुयी है। उसमें साथमें स्वपरप्रकाशक ज्ञान परिणतिरूप आ जाता है। केवलज्ञानी कहीं उपयोग नहीं रखते हैं। वह भी परिणतिरूप उनका ज्ञान सहज हो गया है। परिणतिरूप हो गया है। एकके बाद एक उपयोग नहीं रखते। सहज उपयोगात्मक हो गया है। एकसमान उपयोग हो गया है।

गुरुदेव कोई अपेक्षासे उसे परिणति कहते थे। क्योंकि एकके बाद एक उपयोगका क्रम नहीं है। परिणतिरूप हो गया है। केवलज्ञान अक्रम (है)। भेदज्ञानकी परिणति है। भेदज्ञानकी परिणतिमें क्या जाना? स्व और पर दोनों। भेदज्ञानकी परिणतिमें छद्मस्थको स्व-पर दोनों आ जाते हैं। ... परिणति एक ओर पड़ी है ऐसा नहीं है, कार्य करती है। कि जिसका कोई वेदन नहीं है कि उसे ख्याल नहीं आता है। अमुक क्षयोपशम उघड़ा है और फिर थोड़ा लब्ध और थोड़ा उपयोग (चल रहा है), ऐसा नहीं है। उसे तो उसका वेदन नहीं है। इसका तो वेदन है। भेदज्ञानकी परिणति है। यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ, यह मैं हूँ और यह नहीं हूँ, ऐसा उघाड़ उसका कार्य करता है। ऐसा उसका उघाड़ है। क्षण-क्षणमें सहज (है)।

इसलिये कहते हैं न, उसका आंशिक स्वपरप्रकाशकपना चालू हो गया है। केवलज्ञानी तो लोकालोकको (जानते हैं)। ये तो अपना अपने लिये स्वपरप्रकाशकपना चालू हो गया। उसके वेदनमें विभाव-स्वभावका भेद करता रहता है। गुणका भेद, विभाव आदिका ज्ञान करता रहता है। स्वभाव और विभावका तो भेद किया है कि यह मैं और यह

पर, यह मैं और यह पर, ऐसा चलता ही है। .. स्थापित ही है। .. प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। ये इसके वेदनमें था, उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। स्वपरप्रकाशक। ... अपनेको स्वयं परिणति परिणमती है। उसमें आता है क्या? यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ।

समाधान :- .. बात बता दी। स्वयंको स्वभाव ग्रहण करना बाकी रहता है। यह शरीर तो भिन्न है, ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। विभावस्वभाव अपना नहीं है। गुणभेद पर दृष्टि न कर, पर्यायभेद पर दृष्टि न कर, दृष्टि तो एक चैतन्य अनादिअनन्त है, उस पर कर। ज्ञान सबका कर। गुण, आत्मामें अनन्त गुण हैं। उसे ज्ञानमें लक्ष्यमें रख। शुद्धात्माकी जो पर्याय प्रगट हो, वह भी पर्याय होती है। उसका तू ज्ञान कर, परन्तु दृष्टि एक आत्मा पर स्थापित कर। गुरुदेवने मार्ग एकदम स्पष्ट कर दिया है।

मैं चैतन्यद्रव्य हूँ। यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। अपना चैतन्यस्वभाव जो अनादिअनन्त है, उसे ग्रहण कर। अखण्ड ज्ञायकतत्त्वको। अपूर्ण-पूर्ण पर्याय पर भी लक्ष्य मत कर। लक्ष्य एक चैतन्य पर कर। परन्तु बीचमें साधनाकी पर्याय जहाँ है, उसे वहाँ साधना और पुरुषार्थ बीचमें रहता है। साधना उसकी बढ़ती जाती है। मैं चैतन्य हूँ, परन्तु अभी अधूरी पर्याय है, विभाव है। उसका भेदज्ञान कर। दृष्टि चैतन्य पर कर और विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं चैतन्य हूँ। ऐसे चैतन्य पर-स्वभाव पर दृष्टि करके ज्ञाताकी धाराकी उग्रता करनी। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी ज्ञाताधाराकी उग्रता करके, भेदज्ञान करके, उसकी उग्रता करके चैतन्यमें विशेष-विशेष उग्रता करनी वही मुक्तिका मार्ग है। उसमें दर्शन, ज्ञान और लीनता तीनों आ जाते हैं। स्वयंको अपनी परिणति अपनेमें लीन करनी। उसका ध्यान रखना कि अधूरी पर्याय है इसलिये पुरुषार्थ करना बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- आपने जो उग्रता कहा, वह पुरुषार्थ है?

समाधान :- हाँ, उग्रता यानी पुरुषार्थ। परन्तु किसकी उग्रता? अपनी ज्ञाताधाराकी उग्रता। मैं ज्ञायक हूँ, उसकी उग्रता। भेदज्ञानकी उग्रता कि यह मैं हूँ और यह मैं हूँ, ऐसे ज्ञाताधाराकी उग्रता कर। ज्ञाताधाराकी उग्रता करे, चैतन्य पर दृष्टि स्थापित कर, उसकी उग्रता कर, उसमें लीनताकी उग्रता कर। परन्तु भेदज्ञान जबतक प्रगट न हो तबतक उसका अभ्यास कर। दृष्टि स्थापनी, भेदज्ञानकी उग्रता करनी, वह तो जिसे सहज प्रगट हुआ हो, उसे भेदज्ञानकी धारा उग्र करनी रहती है। जिसे प्रगट नहीं हुआ है, उसे अभ्यास करना रहता है।

चैतन्य पर दृष्टि स्थापित करनी रहती है, बारंबार उसकी दृढ़ता करनी, भेदज्ञानका अभ्यास बारंबार करना कि मैं चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। मैं चैतन्य स्वभावी, मेरा ज्ञानस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव ऐसे बारंबार अभ्यास करना।

प्रज्ञाछैनीसे स्वयंको भिन्न करना और स्वानुभूति कैसे प्रगट हो, उसका अभ्यास करना। उसे अभ्यास करना रहता है।

उसके लिये उसकी जिज्ञासा, उसकी लगन, उसकी महिमा, चैतन्यकी ही महिमा, जहाँ प्रगट नहीं हुआ है, वहाँ बाहर शुभभावनामें देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और अंतरमें चैतन्यकी महिमा। वह चैतन्य कैसे पहचानमें आये? गुरुदेवने जो मार्ग बताया, उस मार्गको ग्रहण करके स्वयं अंतरसे नक्की करके अपने पुरुषार्थसे आगे बढ़ना है।

मुमुक्षु :- चैतन्यकी महिमाके साथ देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आती है।

समाधान :- उसे साथमें होती ही है। जिसे चैतन्यकी महिमा आये कि मेरा चैतन्यस्वरूप ऐसा है, उसे देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये बिना रहती ही नहीं। जिनेन्द्र देवने पूर्ण स्वरूप प्रगट किया, महिमावंत देव हैं। गुरु साधना कर रहे हैं और गुरुने वह प्रगट किया है और विशेष साधना कर रहे हैं। और शास्त्र सब बताते हैं। उनकी महिमा उसे आये बिना नहीं रहती। जिसे अपना प्रेम है उसे, जिन्होंने प्रगट किया उसकी महिमा आये बिना नहीं रहती। जो मार्ग बताये और जो गुरु अपूर्वरूपसे मार्ग बताया है, उनकी महिमा आये बिना नहीं रहती।

मुमुक्षु :- माताजी! कोई कार्य निष्फल नहीं होता। पूज्य गुरुदेवश्रीसे ४५ साल जो उपदेश मिला, आपकी भी उपस्थिति थी, इसलिये हमारा ऐसा मानना है कि बहुत जीवोंका कार्य हो गया होगा। आपका ज्ञान अति स्पष्ट है।

समाधान :- हो गया होगा अर्थात् बहुत जीवोंको रुचि तो हुयी है। अन्दर भेदज्ञान करके अन्दर सहज दशा प्रगट करनी, वह अलग बात है। रुचि बहुत जीवोंको हुयी हो। जो क्रियामें धर्म मानते थे, एकत्वबुद्धि, शुभभावमें धर्म मानते थे, उससे पुण्यबन्ध होता है, धर्म नहीं होता। शुभभावमें धर्म मानते थे, थोड़ा कुछ किया, थोड़ा पढ़ लिया, थोड़ा विचार किया तो बहुत कर लिया, ऐसी मान्यता थी। उन सब मान्यता परसे रुचि छूटकर बहुत जीवोंको चैतन्यकी रुचि गुरुदेवके उपदेश द्वारा (हुयी है)। गुरुदेवके प्रतापसे ऐसी रुचि उनके निमित्तसे प्रगट हुयी है। वह बात सच्ची है। रुचि बहुत जीवोंको प्रगट हुयी है।

मुमुक्षु :- आत्मदर्शन नहीं हुआ हो और ऐसी रुचि प्रगट हुयी हो, वह कितने अंशमें कार्यकारी होती है?

समाधान :- वह रुचि उग्र हो तो जल्दी हो और रुचिकी मन्दता हो तो देर लगे। यथार्थ रुचि, अंतरमें-से लगन बारंबार (लगे), उसे कहीं चैन न पड़े, ऐसी लगन हो तो शीघ्र हो। और ऐसी लगन उग्र न हो तो उसे देर लगे।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- उसकी यथार्थ रुचि हो तो हुए बिना रहे नहीं। ऐसी अंतरकी भावना हो तो (प्राप्त होता है)। उसकी लगन, अपनी परिणतिमें उसीकी लगन (हो तो जल्दी होता है)।

समाधान :- .. भेदज्ञानका मार्ग प्रगट करना। नहीं हो तबतक उसका अभ्यास करना। शुद्धात्मा पर दृष्टि करे, भेदज्ञान कैसे होवे? ऐसी यथार्थ प्रतीत करनी और शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र और भीतरमें शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो? नहीं होवे तो शुभभाव तो आते हैं। उसमें देव-गुरु-शास्त्र और भीतरमें शुद्धात्मा पर दृष्टि और भेदज्ञान। ज्ञायककी धारा कैसे प्रगट हो? जबतक नहीं हो तबतक उसका अभ्यास करना, वही करना। गुरुदेवने मार्ग बहुत स्पष्ट करके बताया है।

मुमुक्षु :- ऐसा बहुत स्पष्ट विषय सामने आने पर भी जो स्वस्वामीपनेकी बुद्धि है, वह टूट नहीं पाती। .. जल्दी टूटे।

समाधान :- स्वामीत्वबुद्धि तो अपने पुरुषार्थसे टूटती है। भीतरमें नक्की कर सके ऐसा मार्ग है। परन्तु भीतरमेंर जो एकत्वबुद्धि हो रही है, एकत्वबुद्धि तोड़नेका प्रयत्न करना। विकल्प है वह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो निर्विकल्प तत्त्व हूँ। ऐसा भीतरमें जाकर उग्र पुरुषार्थ करे, उसकी लगन लगाये, उसकी महिमा लगे तो भेदज्ञान होता है।

मुमक्षु :- हमको हो सकता है?

समाधान :- सबको हो सकता है। सब आत्मा है।

मुमुक्षु :- आप अकेलेको? हमको निकाल दिया।

समाधान :- सब आत्मा है। जो पुरुषार्थ करे उसको होता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव फरमाते थे कि सम्यक्त्वके आँगन तक जीव अनेक बार आया, परन्तु सम्यक्त्वसे आँगनसे फिर वापस चला गया, आगे नहीं आया।

समाधान :- सम्यक्त्व सन्मुख आता है, परन्तु भीतरमें यथार्थ दृष्टि नहीं करता है। भीतरमें पुरुषार्थ नहीं करता है इसलिये रुक जाता है। आगे आता है क्या, ऐसा क्षयोपशम होवे, चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करनेकी ऐसी योग्यता होवे, तब ऐसा होता है। परन्तु भीतरमें चैतन्यतत्त्वको ग्रहण नहीं करता है। समीप आकर छूट जाता है। उसका अर्थ ऐसा है कि ग्रहण भीतरमें नहीं करता है। इसलिये आगे आकर छूट जाता है।

मुमुक्षु :- वह जो सूक्ष्म भूल रहती है, वह किस प्रकारकी सूक्ष्म रह जाती है?

समाधान :- सूक्ष्म भूल, शुभभावमें कुछ लाभ होता है, शुभभावमें मीठास रह जाती है और बाहरमें कुछ होता है, विकल्पमें रुचि रह जाती है, विकल्प रहित निर्विकल्प तत्त्व है उसकी महिमा नहीं आती है। निर्विकल्प एक ज्ञानस्वभाव आत्मा, उसमें सबकुछ भरा है। उसकी भीतरमें महिमा नहीं आती है। उसकी अनुपमता नहीं लगती है। वह

अनुपम तत्त्व है, ऐसा विश्वास नहीं बैठता है। और भीतरमें स्थूल-स्थूल करके, मैंने सबकुछ कर लिया, ऐसा मान लेता है।

शुभभावमें भीतरसे रुचि रह जाती है। थोड़ा-थोड़ा करके, त्याग करके, ऐसा करके, शास्त्रका अध्ययन करके, ऐसा करके सब मान लेता है कि मैंने सबकुछ कर लिया है। भीतरमें ऐसी एकत्वबुद्धि रह जाती है। शुभभावके साथ एकत्वबुद्धि रह जाती है। मैं न्यारा तत्त्व हूँ, ऐसी परिणति प्रगट नहीं होती है, इसलिये रुक जाता है।

मुमुक्षु :- शुभभावके एकत्वका कोई सरल दृष्टान्त आता है कि किस प्रकारसे?

समाधान :- शुभभाव मैं हूँ और शुभभाव मेरा स्वरूप है। उससे मैं भिन्न-न्यारा तत्त्व हूँ, मैं ज्ञायकतत्त्व हूँ, ये शुभभाव मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसी भीतरमें परिणति न्यारी होनी चाहिये वह नहीं होती है। शुभभाव बीचमें आता है, उससे पुण्यबन्ध होता है। परन्तु शुभभाव मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसी यथार्थ प्रतीति भीतरसे होनी चाहिये, वह नहीं होती है। भीतरमें उसकी रुचि रह जाती है। गहराईमें।

मुमुक्षु :- ये जो तत्त्वचिंतनकी जो धारा होती है, वह अकेला शुभभाव है या उसमें किसी प्रकारकी...?

समाधान :- श्रुतचिंतनकी धारा...?

मुमुक्षु :- तत्त्व चिंतनकी जो धारा होती है, इसमें अटकते हैं, इसमें कहीं मीठास लगती है?

समाधान :- कहीं-कही रुक जाता है। कोई श्रुतचिंतवनमें, भीतरमें उसकी महिमा आ जाती है, भीतरमें कहीं-कहीं रुक जाता है। कोई त्याग कर लिया तो मैंने कुछ कर लिया, श्रुतका चिंतवन किया तो मैंने कुछ कर लिया। श्रुतके चिंतवनमें भी शुभभाव मिश्रित है। शुभभाव मिश्रित है। वह आत्माका मूल स्वरूप तो नहीं है। वह क्षयोपशमभाव है। इसलिये उसमें रुक जाना वही भूल है। उसमें कुछ सर्वस्व नहीं है। क्षयोपशमभाव आत्माका सर्वस्व नहीं है। एक ज्ञायकतत्त्व अनादिअनन्त है, वह आत्माका स्वरूप है। उसकी अधूरी पर्याय है वह आत्माका मूल स्वरूप नहीं है। उसमें श्रुतका चिंतवन करके रुक जाना कि मैंने कुछ कर लिया, वह उसमें भी रुक जाता है।

मुमुक्षु :- .. कैसे .. उसके लिये आप कुछ लोगोंको...

समाधान :- स्वभावधर्म आत्माका है। आत्माके स्वभावको पीछाने। धर्म ही आत्मा है, उसका स्वभाव पीछाने तो उसकी धर्मस्वरूप पर्याय प्रगट होती है। उसको पीछानो। जो स्वभाव आत्मा है, उसको पीछाने और उसकी परिणति प्रगट करे। उसकी श्रद्धा करे, उसमें परिणति प्रगट करे तो आत्माका धर्म प्रगट होता है। उसकी प्रतीत कर ली और उसका भेदज्ञान करना। नहीं होवे तबतक उसका अभ्यास करना। श्रुतका चिंतवन

बीचमें आता है, महिमा आती है, जो ज्ञानीने मार्ग बताया ऐसे देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा भी आती है, श्रुतका चिंतवन भी आता है। परन्तु उसमें दृष्टि ऐसी रखना कि मैं मूल तत्त्व चैतन्य निर्विकल्प तत्त्व हूँ, ये सब तो बीचमें आता है। उसमें रुक जाना कि मैंने सब कुछ कर लिया, ऐसे नहीं। ऐसा गुरुदेवने बताया नहीं है। जिज्ञासुको ऐसा नक्की, प्रतीत होनी चाहिये कि मैं निर्विकल्प तत्त्व चैतन्य ज्ञायकतत्त्व हूँ। बीचमें सब आता है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, श्रुतका चिंतवन, सब आता है। लेकिन उसमें रुकना नहीं है। रुक जाता है तो अटक जाता है।

मुमुक्षु :- प्रमाणज्ञानसे परिणतिको देखता है कि मेरी परिणतिमें जो निर्विकल्प शान्ति होनी चाहिये, परिणतिमें वह निर्विकल्प शान्ति नहीं है। इसलिये उसको वहाँ गमता नहीं है। तो फिर आगे बढ़ता है।

समाधान :- निर्विकल्प शान्ति नहीं है तबतक तो प्रगट नहीं हुआ। जब भीतरमें-से शान्ति आवे, ज्ञायकतत्त्वमें-से शान्ति आवे, विकल्प टूटकर जो शान्ति, आनन्द आवे वह तो कोई अनुपम है। विकल्प टूटकर उपयोग भीतरमें स्थिर हो जाय, बाहरका लक्ष्य न रहे, वह आनन्द तो कोई अपूर्व है। परन्तु जो भेदज्ञानकी धारा जिसको प्रगट होती है, न्यारा आत्मा, उसमें भी कुछ शान्ति होती है। भीतरमें शान्ति होती है। जबतक शान्ति नहीं लगती तबतक तो निर्विकल्प स्वरूप प्रगट नहीं हुआ। भीतरमें जब आकुलता रहती है तो आत्माका स्वरूप प्रगट नहीं हुआ।

लेकिन कषाय मन्द हो और कोई शान्ति मान ले, मन्द कषायमें, कि मुझे शान्ति हो गयी, ऐसी शान्ति नहीं। आत्माके अस्तित्वमें-से शान्ति होनी चाहिये। न्यारा, आत्माको न्यारा पीछानने-से आत्मामें-से शान्ति होनी चाहिये। विकल्प मिश्रित शान्ति नहीं। विकल्प मन्द हो और शान्ति होवे, ऐसी शान्ति नहीं। मन्द विकल्प। विकल्प टूटकर उसका भेदज्ञान करके जो शान्ति होवे वह यथार्थ शान्ति है।

मुमुक्षु :- जबतक भेदविज्ञानकी धारा जो है, तबतक निर्विकल्प शान्ति तो नहीं है।

समाधान :- निर्विकल्प शान्ति नहीं है।

मुमुक्षु :- आंशिक शान्ति है। तो वह आंशिक शान्ति उल्लंघकरके निर्विकल्प शान्तिके लिये क्या पुरुषार्थ करना?

समाधान :- ज्ञाताधाराकी उग्रता करे। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी उग्रता करे (तो) निर्विकल्प शान्ति प्रगट होती है। परन्तु निर्विकल्प होवे तब यथार्थ भेदज्ञान होता है। सहज भेदज्ञान, जिसको निर्विकल्प आनन्द प्रगट हुआ, स्वानुभूति (हुयी), उसको यथार्थ सहज भेदज्ञान होता है। उसके पहले जब निर्विकल्प आनन्द नहीं हुआ, तबतक जो भेदज्ञान करता है तो अभ्यासरूप है। वह सहज नहीं है, वह तो अभ्यासरूप है। उसको भीतरमें-

से सहज भेदज्ञान करके जो शान्ति आती है, वैसी शान्ति नहीं आती। वह तो अभ्यासरूप है। पहले तो अभ्यास होता है।

ट्रेक-२११

मुमुक्षु :- द्रव्यदृष्टि पर्यायका स्वीकार नहीं करती है। परन्तु प्रयोजन तो पर्यायमें पूर्ण शुद्ध होना वह है, तो क्या दृष्टिको प्रयोजनके साथ भी सम्बन्ध नहीं है?

समाधान :- दृष्टि वस्तु स्वरूपको स्वीकारती है। मूल जो अनादिअनन्त वस्तु है, अनादिअनन्त जैसी वस्तु असल स्वरूप है, असल स्वरूपको दृष्टि स्वीकारती है। और उसे साधना करनी है, (उसमें) दृष्टिका विषय अलग है और ज्ञानका विषय अलग है। ज्ञानमें ऐसा आता है कि पर्याय अधूरी है, पर्यायको पूर्ण करनी है। इसलिये दृष्टिका वह विषय नहीं है। दृष्टिका विषय अखण्ड द्रव्य है। असली स्वरूप ग्रहण करना, वस्तुका जैसा है वैसा स्वरूप ग्रहण करना वह दृष्टिका विषय है।

और ज्ञानका विषय, उसमें पर्यायके भेद, गुणके भेद, उसका अखण्ड स्वरूप, असली स्वरूप सब स्वरूप ज्ञानमें आता है। वह ज्ञानका विषय है। दृष्टिका विषय एक असली स्वरूप ग्रहण करना वह उसका विषय है। सामान्यको ग्रहण करना-असली स्वरूपको, वह उसका विषय है। और ज्ञानमें सामान्य, विशेष सब ग्रहण करना वह उसका विषय है। उसमें पुरुषार्थका प्रयोजन तो सबमें रहता ही है। परन्तु जो असली स्वरूप ग्रहण करना वह दृष्टिका विषय है। ज्ञानमें दोनों विषय आ जाते हैं।

मुमुक्षु :- अर्थात् दृष्टि अपना प्रयोजन साधती है और ज्ञान दोनों साधता है?

समाधान :- दोनों। ज्ञानमें दोनों ग्रहण होते हैं।

मुमुक्षु :- दृष्टिमें क्या गुण है, वह ज्ञानको मालूम है।

समाधान :- हाँ, ज्ञानको मालूम है।

मुमुक्षु :- और दृष्टि कैसे काम करती है, वह भी ज्ञानको मालूम है।

समाधान :- वह भी मालूम है। दृष्टि क्या काम करती है? पर्यायके क्या भेद है? ज्ञानको सब मालूम पड़ता है। परन्तु दृष्टिकी मुख्यता बिना आगे नहीं बढ़ा जाता। वस्तुका असली स्वरूप ग्रहण किये बिना आगे नहीं बढ़ा जाता। उसका मूल स्वरूप यदि ग्रहण हो तो उसीमें-से सब पर्यायें प्रगट होती हैं। पर्याय कहीं बाहरसे नहीं आती है। जो वस्तु स्वभाव है उसीमें-से प्रगट होती है। अतः असली स्वरूपको ग्रहण करे तो ही प्रगट होती है।

इसलिये दृष्टिका विषय भले असली स्वरूप है, परन्तु उसके बलमें, उसका प्रयोजन यह है कि उसके बलसे-दृष्टिके बलसे पर्याय सहजरूपसे सधती है, पर्यायमें सहजरूपसे शुद्धता प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- स्वयं प्रयोजनकी सिद्धि (होती है)।

समाधान :- उसका प्रयोजन स्वयं आ जाता है, दृष्टिमें।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर।

समाधान :- दृष्टिकी मुख्यता हो और दृष्टिका बल हो तो उसमें स्वयं उसका प्रयोजन आ जाता है। दृष्टिके बिना तो आगे नहीं बढ़ा जाता। ज्ञान सब जानता है, परन्तु दृष्टिके बलके बिना आगे नहीं बढ़ा जाता। दृष्टिका प्रयोजन उसमें स्वयं आ जाता है। जो दृष्टिकी मुख्यता है, उसमें पुरुषार्थका बल सहज ही आ जाता है। अतः दृष्टिका जहाँ विषय है, उसका प्रयोजन पर्यायको शुद्धरूप प्रगट करनी है, वह उसमें आ ही जाता है। दृष्टि उस पर लक्ष्य नहीं करती है,

मुमुक्षु :- फिर भी।

समाधान :- दृष्टि उसका विषय नहीं करती है। दृष्टि पर्यायको गौण करती है। दृष्टि साधनाकी पर्यायको भी गौण करती है। दृष्टि स्वयंको एकको मुख्य रखती है। तो भी उसमें साधनाकी पर्याय आ ही जाती है और उसका प्रयोजन उसमें सिद्ध हो जाता है। ऐसा दृष्टिका बल है।

मुमुक्षु :- माताजी! एक बार दृष्टि प्रगट हो, फिर उसका बल बढ़ता है?

समाधान :- हाँ, उसका बल बढ़ता है। मैं यह चैतन्य हूँ, मैं अन्य कुछ नहीं हूँ, मैं अखण्ड स्वरूप हूँ। ये अपूर्ण-पूर्ण पर्याय हो, वह भी मेरा मूल असल स्वरूप नहीं है। विभाव, निमित्तका अभाव-सद्भावकी अपेक्षा और अपूर्ण-पूर्ण पर्यायकी अपेक्षा उसमें आती है, इसलिये जो मूल स्वरूप है वह नहीं है।

अतः असली स्वरूपको ग्रहण करे और उसके बलमें फिर उसकी निर्मल पर्याय प्रगट होती है। दृष्टिका विषय हो तो ही शुद्धताकी पर्याय प्रगट होती है। परन्तु उसके साथ ज्ञान सब विवेक करता है कि यह अपूर्ण पर्याय है और पूर्ण साधनाकी पर्याय बाकी है। ऐसे विवेक करता है, परन्तु बल दृष्टिका होता है। दृष्टिके विषयमें-से ही स्वभावकी निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं। उसका बल बढ़ता जाता है।

मुमुक्षु :- आपसे स्पष्टीकरण तो यह करवाना था कि, एक बार सम्यक् दृष्टि होनेके बाद उसका बल बढ़ता है? और उसमें पर्यायमें निर्मलता विशेष-विशेष होती जाती है।

समाधान :- हाँ, उसका बल बढ़ता जाता है। अर्थात् दृष्टिका बल बढ़ता है।

उसके साथ चारित्रकी पर्याय, लीनताकी पर्याय बढ़ती जाती है। एक गुणकी विशेषता हो, दर्शनकी निर्मलतामें ज्ञानकी निर्मलता और चारित्रकी निर्मलता (होती है)। परस्पर गुणोंको सम्बन्ध है। सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन। एक सम्यग्दर्शनकी पर्यायमें समस्त गुणोंके निर्मल अंश प्रगट होते हैं। एकदूसरेकी पर्याय एकदूसरेको सहकारी रूपसे आगे बढ़ती है। उसमें दृष्टि मुख्य रहती है।

दृष्टि मुख्य रहे इसलिये उसमें ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं। ज्ञान भी साथमें रहता है, पुरुषार्थ साथमें रहता है, चारित्रकी निर्मल पर्याय भी प्रगट होती है। प्रत्येक गुण अपना-अपना कार्य करता है। परन्तु दृष्टिका बल साथमें रहता है।

मुमुक्षु :- बल देनेमें दृष्टिका विशेष योगदान है।

समाधान :- हाँ, बल देनेमें दृष्टि विशेष है। मैं यह हूँ, यह मेरा ज्ञायकका अस्तित्वका वही मैं हूँ। अन्य सबको गौण करती है। परन्तु उसमें उसकी विरक्तिकी पर्यायें, लीनताकी पर्यायें, विभावसे विरक्ति और स्वभावकी लीनता बढ़ती जाती है। और ज्ञान उसका विवेक करता है कि इतना अधूरा है, इतना प्रगट हुआ है। अभी प्रगट करना बाकी है। ज्ञान सब जानता है। यदि ज्ञानमें न जाने तो उसका पुरुषार्थ करना, स्वयं पूर्ण ही है तो फिर पुरुषार्थ क्या करना? इसलिये ज्ञान विवेक करता है कि अभी अपूर्ण पर्याय है, अभी पूर्णता करनी बाकी है। ऐसा ज्ञानमें विवेक है। दृष्टिका बल साथमें है और चारित्रकी लीनता, परिणति विशेष प्रगट होती जाती है। सब साथमें ही रहते हैं। दृष्टिके साथ ज्ञान, लीनता आदि सब साथमें रहते हैं। स्वरूपाचरण चारित्र पहले प्रगट होता है, फिर चारित्रकी विशेष पर्यायें प्रगट होती हैं। उसकी स्वानुभूतिकी दशा, अमुक भूमिका हो तो अमुक प्रकारसे (होती है), फिर वृद्धिगत होती है।

मुमुक्षु :- उसमें ज्ञानमें ऐसा मालूम पड़े कि पुरुषार्थ बाकी है, इसलिये पुरुषार्थ चले, वह कैसे?

समाधान :- ज्ञानमें जानता है कि पुरुषार्थ बाकी है। पुरुषार्थ तो,... वह ज्ञानमें जानता है। पुरुषार्थ हो गया ऐसा जाने तो पुरुषार्थ उठना (रहता नहीं), वह जानता है कि पुरुषार्थ बाकी है। पुरुषार्थ उठता है स्वयं पुरुषार्थसे, परन्तु ज्ञान उसमें जानता है कि यह बाकी है, उसमें ज्ञान कारण बनता है। पुरुषार्थ बाकी है, ऐसा जानता है, तो पुरुषार्थ उठनेका कारण बनता है। पुरुषार्थ उठता है स्वयं पुरुषार्थसे। पुरुषार्थके गुणसे उठता है। उसकी उतनी विरक्तिसे और पुरुषार्थके बलसे वह उठता है। ज्ञान उसका विवेक करता है।

मुमुक्षु :- सब उठनेका मूल कारण दृष्टि? दृष्टिका बल। जितना दृष्टिका बल बढ़ता जाय उतना पुरुषार्थमें उस अनुसार...

समाधान :- पुरुषार्थ वृद्धिगत होता है, ज्ञान तो विवेक करता है। ज्ञानमें अधिक जाने ऐसा नहीं, परन्तु उसकी उग्रता होती जाती है। दृष्टिका बल बढ़े, उसमें विरक्ति बढ़ती जाती है। जो अमुक-अमुक भूमिका पलटती है, उसमें विभावसे विरक्ति और स्वभावकी परिणति बढ़ती जाती है।

दृष्टि तो अखण्ड हो गयी। दूसरी अपेक्षासे उसे ऐसा कहनेमें आये कि उसे चारित्रमें विरक्ति कम है, इसलिये अभी लीनता कम है। चारित्रकी लीनता कम है। परन्तु दृष्टिका बल साथमें रहता है। कोई अपेक्षासे ऐस कहनेमें आये कि दृष्टिका विषय पूरा है। परन्तु अभी चारित्रकी लीनता कम है। चारित्रकी लीनता बढ़े तो वह विशेष आगे बढ़ता है। परन्तु दृष्टि तो साथमें ही रहती है।

मुमुक्षु :- चारित्रमें जैसे-जैसे वृद्धि हो, उसका नाम विरक्ति बढ़ती है?

समाधान :- हाँ, चारित्रमें लीनता, स्वरूपमें विशेष लीनता होती जाय, आचरण वृद्धिगत होता जाय तो विरक्ति बढ़ती जाती है। विभावसे विरक्ति। भेदज्ञानकी धाराकी उग्रता हो, विभावसे विरक्ति और स्वभावकी परिणति, लीनता वृद्धिगत होती है।

मुमुक्षु :- आशंकामें यह है कि एक बार दृष्टि सम्यक् हो गयी, फिर तो दृष्टिका कार्य पूर्ण हो गया। आपने कहा कि दृष्टिका बल वृद्धिगता होता है, वैसे चारित्रकी निर्मलतामें फ़र्क़ पड़ता जाता है, वह बराबर है।

समाधान :- फ़र्क़ पड़ता है। दृष्टिका विषय तो पूरा हो गया, परन्तु उसका बल बढ़ता जाता है। दृष्टिका बल और चारित्रमें पुरुषार्थ बढ़ता जाता है। दूसरी अपेक्षासे ऐसा कहते हैं कि चारित्र मन्द है, उसे उस प्रकारका पुरुषार्थ मन्द है, इसलिये चारित्रका पुरुषार्थ बढ़ता जाता है, ऐसा भी कहनेमें आता है। और दृष्टि साथमें है, परन्तु दृष्टि मुख्य रहती है। इसलिये दृष्टिका बल बढ़ता जाता है।

मुमुक्षु :- दृष्टि मुख्य रहती है, परन्तु ऐसा कहनेमें आता है कि ज्ञानीको एक समयमें पूर्ण हुआ जाता हो तो दूसरे समयका अभिप्राय नहीं है, इतनी पूर्णताकी उग्र भावना है। तो भी दृष्टिमें पर्यायदृष्टि होती ही नहीं, इतनी उग्र भावना है।

समाधान :- भावना है अभी पूर्ण हुआ जाता हो तो पूर्ण हो जाऊँ। उतनी दृष्टिमें भावना उतनी उग्र रहती है। परन्तु पुरुषार्थ नहीं उठता। पुरुषार्थकी ओरसे ऐसा लिया जाता है कि पुरुषार्थ उठता नहीं।

मुमुक्षु :- पर्यायकी पूर्णताकी ऐसी भावना होने पर भी दृष्टि पर्यायदृष्टि नहीं होती। दृष्टि तो...

समाधान :- पर्यायदृष्टि नहीं होती।

मुमुक्षु :- दृष्टि द्रव्यदृष्टि ही रहती है।

समाधान :- दृष्टि द्रव्यकी रहती है और भावना ऐसी उग्र होती है।

मुमुक्षु :- एकदूसरेका कैसा विषय विरोध है।

समाधान :- विषयका विरोध है। दृष्टि कहती है, मैं दृष्टिमें द्रव्य अपेक्षासे पूर्ण हूँ, फिर भी भावना ऐसी रहती है कि मैं पर्यायमें कैसे पूर्ण हो जाऊँ? भावना ऐसी रहती है।

मुमुक्षु :- भावना तो चारित्रकी पर्याय है न?

समाधान :- भावना चारित्रकी पर्याय है, परन्तु दृष्टिने ऐसा जाना कि पूर्ण है, फिर भी कब पूर्ण हो जाऊँ, भले चारित्रकी भावना है, परन्तु दृष्टि उसके साथ ही रहती है।

मुमुक्षु :- दृष्टिका विषय तो कृतकृत्य है।

समाधान :- हाँ, वह तो कृतकृत्य है। दृष्टिका विषय तो कृतकृत्य है। कृतकृत्य है, परन्तु दृष्टिका बल आता है इसलिये उसकी..

उत्तर :- भावनाकी सिद्धि होती है।

समाधान :- शुद्धात्माकी पर्याय बढ़ती है। अनन्त कालसे दृष्टि प्रगट नहीं हुयी है तो भावना होती है कि चारित्र कैसे हो? परन्तु मूल वस्तुको ग्रहण किये बिना चारित्र यथार्थ नहीं हो सकता। अन्दर दृष्टि प्रगट होनेके बाद ही उसकी यथार्थ धारा उठती है। शुद्ध पर्यायकी।

मुमुक्षु :- इसमें जिज्ञासुकी क्या स्थिति होगी? जो जिज्ञासु हो और जिसका अंतर झुकनेका भाव उत्पन्न हुआ हो, उसे अभी दृष्टि प्रगट नहीं हुयी है, अनुभव नहीं हुआ है, परन्तु अनुभव होने पूर्व भी उसकी स्थिति क्या होती है?

मुमुक्षु :- मेलवाली स्थिति कैसी होती है? इस लाईनकी।

समाधान :- उसे, मैं आत्मा चैतन्य हूँ, ऐसी भावना रहे। उसकी बुद्धिसे नक्की किया है कि मैं चैतन्य हूँ। चैतन्य हूँ, मूल वस्तु स्वरूपसे मैं शुद्ध हूँ। परन्तु अधूरी पर्याय है, उसे कुछ प्रगट नहीं हुआ है। ज्ञानमें विवेक करे कि भावना तो है, परन्तु अभी कुछ प्रगट नहीं हुआ है। भिन्न हूँ, लेकिन भिन्नकी परिणति प्रगट नहीं हुयी है। अभी प्रगट करनी बाकी है। ऐसा ज्ञानमें विवेक करता है।

परन्तु मेरा आत्मा तो शुद्ध है। ऐसा बुद्धिसे नक्की किया है, परन्तु शुद्धताका कोई अनुभव नहीं है, इसलिये उसका पुरुषार्थ करता रहता है। शुद्ध हूँ, परन्तु शुद्धताका किसी भी प्रकारका अनुभव नहीं है। इसलिये शुद्धताका अनुभव कैसे हो, उसका प्रयत्न, उसका अभ्यास करता रहता है।

मुमुक्षु :- उसे भावमें शुद्धताकी कुछ हूँफ जैसा लगता होगा?

समाधान :- अंतरसे तो हूँफ नहीं लगती है, परन्तु उसकी बुद्धिसे ऐसा लगे कि मैं शुद्ध हूँ। अंतरसे, अन्दर वेदन होकर जो हूँफ आनी चाहिये ऐसी नहीं लगती। परन्तु उसने ऐसा नक्की किया कि मैं शुद्ध हूँ और मार्ग यही है, इसी मार्ग पर जाना है, भेदज्ञान प्रगट करना है, मार्ग यह है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है, बाहर कहीं जाना नहीं है, सब अंतरमें है, इस कारणसे हूँफ लगे। मार्गका निर्णय हुआ है, इसलिये। परन्तु अंतरकी स्वानुभूति होकर अंतर ज्ञायककी धारा (होती है), ऐसी हूँफ उसे नहीं है। ... दृष्टिके बलके कारण, परस्पर सब गुण इस प्रकार सहकारी हैं। सबका विषय अलग है, परन्तु अन्दर सहकारीरूपसे कार्य करते हैं।

मुमुक्षु :- एक प्रश्नका चारों पहलू-से आप बहुत सुन्दर (स्पष्ट करते हो)।

मुमुक्षु :- जिज्ञासु जीव किस साधनसे आगे बढ़े?

समाधान :- निर्णय करे कि मैं यह चैतन्य ही हूँ, मैं अनादिअनन्त शुद्ध स्वरूप हूँ। ये विभावस्वभाव मेरा नहीं है। इस तरह स्वभावको ग्रहण करनेका प्रयत्न करे कि यह स्वभाव मेरा है, यह विभाव है। उसका भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे। स्वभावको ग्रहण करनेका प्रयत्न करे। नक्की करे कि मैं यह चैतन्य ही हूँ। ऐसा बुद्धिसे नक्की करे फिर उसे भिन्न करनेका प्रयत्न करे। उसके लिये उसकी जिज्ञासा, चैतन्यकी महिमा करे। वह सब करे। अंतरकी लगन लगाये, भेदज्ञान कैसे हो? स्वभाव-विभाव कैसे भिन्न हो? उसका साधन। बुद्धिसे नक्की करके उसका अभ्यास करे।

बुद्धिसे ऐसा निर्णय करने पर उसे सहज प्रगट होनेका पुरुषार्थ उत्पन्न हो तो उसे यथार्थ पुरुषार्थ उत्पन्न होनेका कोई प्रकार होता है। मार्ग तो यही है, स्वयंको ही निर्णय करना है। पहले बुद्धिसे नक्की करे कि यह ज्ञानस्वभाव मैं हूँ, ऐसा शास्त्रमें आता है। ऐसा प्रतीतसे नक्की करे, फिर प्रगट करनेका प्रयत्न करे। मति और श्रुतसे निर्णय करे कि यह ज्ञानस्वभाव सो मैं हूँ, अन्य नहीं हूँ। फिर उसकी प्रगट प्रसिद्धि कैसे हो, उसका बारंबार प्रयास करे।

उसे शुभभावनामें देव-गुरु-शास्त्र और अंतरमें मैं शुद्धात्मा हूँ, उसका बारंबार अभ्यास करता रहे। शुद्धात्माका। अन्दर जाकर देखे, अन्दर प्रवेश करके देखे कि मैं शुद्ध (हूँ)। प्रवेश करके तो देख नहीं सकता है, यथार्थ प्रगट नहीं हुआ है इसलिये बुद्धिसे नक्की करे।

उसमें आता है न कि भूतार्थ दृष्टिसे देखे, अन्दर प्रवेश करके नक्की करे, उसके समीप जाकर नक्की करे कि भूतार्थदृष्टिसे मैं यह शुद्ध हूँ। अभूतार्थसे सब यथार्थ है, और भूतार्थदृष्टि आत्मा भूतार्थ है। शुद्धात्मा अनादिअनन्त है, उसके समीप जाकर अन्दर प्रवेश करे। प्रवेश कर नहीं सकता है, बुद्धिसे नक्की करे।

मुमुक्षु :- वही उसका पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु :- वर्तमानमें तो भगवानकी साक्षात् वाणी नहीं है, आचार्योंके आगम हैं, फिर भी श्रीमद्जीने तो ऐसा कहा कि प्रत्यक्ष गुरु, प्रत्यक्ष सत्पुरुषकी मुख्यता इतनी है कि परोक्ष जिन उपकार भी उसके आगे गौण है, तो उसमें उतना क्या रहस्य है?

समाधान :- भगवानने क्या कहा है, उसका रहस्य जानना, वह तो प्रत्यक्ष गुरु हो वही जान सकते हैं। और उनकी वाणीमें जो आता है उसे सीधा ग्रहण करनेमें आता है, वह अलग ही ग्रहण करनेमें आता है। सीधा शास्त्र लेकर बैठे तो उसमें-से स्वयं कुछ (नहीं समझ पाता)। गुरुदेव पधारे और इतनी वाणी निकली तो सबको समझने मिला। सीधा शास्त्र लेकर पहले कोई बैठता था, तो उसमेंसे कोई उसका अर्थ नहीं समझता था।

श्रीमद्के शब्दोंका रहस्य गुरुदेवने खोला कि वे क्या कहते हैं? समयसार शास्त्र लेकर पहले बैठते थे, किसीके हाथमें आया, तो उसमें भी कोई समझता नहीं था। शास्त्रोंमें-से सीधा रहस्य खोलना बहुत मुश्किल है।

उसमें प्रत्यक्ष सद्गुरु जो बताये, क्योंकि उन्हें अंतर आत्मा प्रगट हुआ है, उसमेंसे बताये और उनकी जो वाणी आये और जो असर हो (वह अलग होती है)। वे चैतन्य हैं, चैतन्यको चैतन्यकी असर हो वह कोई अलग ही होती है।

मुमुक्षु :- चैतन्यको चैतन्यकी असरका रहस्य है इसमें?

समाधान :- हाँ, वह रहस्य है। चैतन्य कोई चमत्कारी वाणी गुरुदेवकी थी। गुरुदेवका तो अनुपम उपकार है। उनकी वाणी अनुपम। उनको तो अन्दर शुद्धात्माकी शुद्ध पर्यायें प्रगट हुई थी। उनकी शुद्ध पर्यायें, उसमें उनकी ज्ञान विरक्ति आदि जो अन्दरमें छा गयी थी, वह बाहर उनकी मुद्रामें छाया था। उनकी वाणीमें वह था।

उनका द्रव्य अलौकिक! मंगलमय सब मंगलता करनेवाले और दिव्य एवं अलौकिक द्रव्य था उनका। उन्हें अन्दर श्रुतज्ञानके दीपक, चैतन्यरत्नाकरको स्पर्शित होकर श्रुतज्ञानके दीपक प्रकाशित हुए थे। (ऐसा) श्रुतज्ञान, वह सातिशय वाणी, सातिशय श्रुतज्ञान, सातिशय वाणी चैतन्यदेवका चमत्कार बता रही थी। वह सबको असर करता था।

गुरुदेवका तो अनुपम उपकार है। उसका वर्णन क्या कहें? इस आत्माकी प्रत्येक पर्यायमें उपकार हो तो गुरुदेवका ही है। सब पर्यायमें। गुरुदेव तो निस्पृह, नीडरतासे जो स्पष्ट मार्ग था वैसा प्रकाशित किया। अंतरमें जो था, अन्दर जो स्वानुभूतिकी दशा और अंतर आत्मरत्नको प्रगट करके, स्वानुभूति कैसे प्रगट हो, वह सबको बताया। लाखों जीवोंको। मुक्तिका मार्ग चारों ओर-से प्रकाशित किया। उनके उपकारको क्या वर्णन हो? उनकी सातिशय वाणी, उनकी सेवा और उनकी महिमा हृदयमें रहे, बस! वही करना है। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१२

मुमुक्षु :- आज तो उमरालाकी यात्रा...

समाधान :- गुरुदेवका वहाँ जन्मे। भरतक्षेत्रके महाभाग्य। भरतक्षेत्रकी एक महान विभूति, भरतके बेजोड़ रत्न गुरुदेव जगतमें पधारे थे। उनकी वाणीमें चमत्कार, उनके आत्मामें-ज्ञानमें-चमत्कार भरा था।

मुमुक्षु :- हिम्मतभाईने थोड़ी गुरुदेवकी महिमा, उस भूमिकी महिमा-जन्म भूमिकी महिमा सुनायी। हिम्मतभाईने दस-पंद्रह मिनट अच्छा वक्तव्य दिया। गुरुदेवकी जन्म भूमिकी महिमा बहुत अच्छी गायी।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी जन्म भूमि है, उसकी धूली भी धन्य है। सुवर्णपुरीकी धूल भी।

समाधान :- उनके उपकारको क्या गाना? बचपनमें वे ओढते थे। झरीकी हरी टोपी गुरुदेव ओढते थे। ऐसी मखमलकी। झरीका पहनावा वड़ाके दरबारमें-से आया था, वह गुरुदेवने पहना था। सर पर पघड़ी बान्धी थी। दो जन चँवर ढोते थे। यह गंगाबहिनको पूछा था। दो जन हाथीकी अँबाड़ी पर चँवर ढोते थे। इस प्रकार गुरुदेवने दीक्षा ली थी। गंगाबहन कल आये थे, वे कहते थे। उनको पूछा था। जो जन चँवर ढोते थे। और झरीका पहनावा वड़ाके दरबारमें-से आया था। और सर पर पघड़ी बान्धी थी।

मुमुक्षु :- एक ... भोळाभाई थे और एक प्रेमचन्द लक्ष्मीचन्द, लाठीवाले लेकिन गढ़डावाले, ये दो जन चँवर ढोते थे। ...

समाधान :- गंगाबहन तो बेचारे रोते थे।

मुमुक्षु :- गुरुदेव स्वाध्याय मन्दिरमें चक्कर लगा रहे हो तब हाथीकी अँबाड़ी इत्यादि बताये कि ये यह है, ये यह है।

मुमुक्षु :- माताजी आपको जो गुरुदेवके प्रति भक्ति है, वैसी हम सबको..

समाधान :- करना एक ही है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। गुरुदेवकी जन्म जयंति इस बार बहुत अच्छी (मनायी गयी)। आप सबके भाव थे और ये सब यहाँ सोनगढ़में बहुत सुन्दर हो गया। मेरा तो ठीक है, मैं तो उनका दास हूँ। आप सबकी भावना थी।

मुमुक्षु :- आपकी बात सच्ची है, गुरुदेवने हमको आज्ञा की है कि हम माताजीके प्रति जितनी भावना भाये और जितनी उनकी शरण ले सके उतना लेना, ऐसी गुरुदेवकी हमें आज्ञा है।

मुमुक्षु :- फिर भी कम है, फिर भी कम है। कभी भी कहो। हम कुछ नहीं करते हैं। हमारे जो भी अल्प भाव हैं, उसे आपके पास व्यक्त करते हैं। अतः आप सहर्ष स्वीकृति दीजिये और हम सबको...

समाधान :- मैं तो उसमें क्या कहूँ? मेरा स्वास्थ्य ऐसा है। आप लोगोंकी जैसी इच्छा और भावना हो। बाकी गुरुदेवका मनाये उसका मुझे आनन्द है।

मुमुक्षु :- आज भावना भाते हैं कि गुरुदेवकी सूर्यकीर्ति तीर्थंकरकी यहाँ स्थापना करनी।

समाधान :- अच्छी भावना है। सब बोले, कोई कुछ राशि भी बोले।

मुमुक्षु :- वैसे तो शास्त्रमें तो आता ही है। भावि तीर्थंकर..

समाधान :- शास्त्रमें तो आता है। तीन कालके तीर्थंकरोंकी स्थापना तो आती है।

मुमुक्षु :- बहुत समयसे विचार आ रहे थे। आज कहा, बोलूँ।

समाधान :- शास्त्रमें आता है, तीन कालके तीर्थंकरोंकी प्रतिष्ठा होती है, स्थापना होती है। परन्तु ये अभी वर्तमान संयोगमें... परन्तु भावना तो अच्छी करनी। और वह भावना पूरी हो, ऐसी सबकी इच्छा है।

मुमुक्षु :- अब ऐसा होनेवाला है कि जो जीएगा वह देखेंगे, गुरुदेवके शब्द है।

समाधान :- गुरुदेवकी यहाँ भावि तीर्थंकरके रूपमें स्थापना हो, उसके जैसा ऊँचा, उच्चसे उच्च है। वे स्वयं यहाँ विराजे हैं।

मुमुक्षु :- ... आनेसे पहले मुझे बात की, मैंने कहा, बहुत अच्छा विचार है। आपके आशिष हमें प्राप्त हो गये।

समाधान :- भरत चक्रवर्तीने स्थापना की थी।

मुमुक्षु :- लोग जाने कि यहाँ ऐसे सन्त विचरे थे और भविष्यमें जो तीर्थंकर होनेवाले हैं। तीर्थंकरकी वाणी तो उस वक्त सुनने मिलेगी, परन्तु यहाँ भी तीर्थंकरकी वाणी बरसती थी।

समाधान :- तीर्थंकर जैसी ही वाणी बरसती थी। ऐसी जोरदार बरसती थी कि जिसमें अकेली अमृतधारा ही बरसती थी।

मुमुक्षु :- मृत आत्मा जीवित हो जाय।

समाधान :- जागृत हो जाय।

मुमुक्षु :- माताजी! पूज्य गुरुदेवका नंदीश्वर जिनालयमें जो ... भावना है, उसके

लिये जगदीशभाईके पुत्र जीगिशभाईकी ओर-से एक लाख रूपयेकी घोषणा की जाती है। आगे भी बढ़ सकते हैं। एक लाख रूपया।

समाधान :- सबकी भावना गुरुदेवके प्रति...

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

समाधान :- .. स्वयंको पुरुषार्थ करना बाकी रहता है। गुरुदेवने अंतरमें चैतन्यरत्न प्रगट करके उन्हें अंतरमें श्रुतकी लब्धि प्रगट हुयी। सबको एकदम जैसे मूसलाधार बरसात बरसे उतना दिया है। अंतरमें करना स्वयंको है। गुरुदेवको तो हम क्या करें और क्या न करें। जितना करें उतना कम है। उनकी पूजना, वंदना क्या करें? गुरुदेवने बहुत दिया है।

गुरुदेवने एक ही मार्ग बताय है कि तू आत्माको भिन्न जान। ज्ञायक आत्माको पहचान। एक ही करना है। सबको एक ही ध्येय रखना है। मार्ग एक ही है। उसके लिये विचार, वांचन आदि हो, परन्तु मार्ग एक ही है। ध्येय तो एक ही रखना है कि चैतन्यद्रव्यको तू पहचान। चैतन्यद्रव्य किस स्वरूप है? उसके गुण, उसकी पर्याय उसे तू पहचान और एक शाश्वत चैतन्यद्रव्य पर दृष्टि कर, उसीमें दृष्टि स्थापित कर। इस विभाव जो दृष्टि अनादिकी दृष्टि है, उस परसे उठाकर दृष्टिको द्रव्य पर लगा दे। जो शाश्वत अस्तित्व है, उस पर दृष्टि स्थापित कर और उसीमें-से सब प्रगट होता है। स्वभावमें-से स्वभावपर्याय प्रगट होती है। विभाव पर दृष्टि करने-से उसमें-से प्रगट नहीं होता।

दृष्टि बाहर तो भी बाहरसे जिसमें नहीं है, उसमें-से नहीं आता है, जिसमें है उसमें-से प्रगट होता है। इसलिये चैतन्य पर दृष्टि कर तो उसीमें-से सब प्रगट होता है। उस पर दृष्टि, ज्ञान, लीनता सब उसीमें करना है। आत्मा स्वभावसे निर्मल है। उसकी निर्मलताका उसे ख्याल नहीं है। निर्मलताकी यथार्थ प्रतीति करके ये जो विभाव

हो रहा है उसमें-से पुरुषार्थको पलटकर अपनी ओर पुरुषार्थ करना वही जीवनका कर्तव्य है, करना वह है। उसके लिये देव-गुरु-शास्त्रने जो किया है, उसे हृदयमें रखनी, उनकी महिमा हृदयमें रखनी और एक आत्मा कैसे पहचाना जाय, बस, ज्ञायक आत्मामें ही सब भरा है। निवृत्तस्वरूप आत्मामें ही सब भरा है। उसके आश्रयमें-से ही सब प्रगट होता है। एक चैतन्यका आलम्बन करने-से उसके आलम्बनमें-से सब प्रगट होता है। उसमें-से स्वानुभूति, निर्विकल्प दशा सब उसमें-से प्रगट होता है। ऐसी भेदज्ञानकी धारा प्रगट करके क्षण-क्षणमें मैं चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ। चैतन्य हूँ, उसीकी महिमा, उसीका रटन बारंबार उसका अभ्यासक करना चाहिये। करना यही है।

मुमुक्षु :- पूरे जीवनमें सब जीवोंको यही एक मात्र करना है?

समाधान :- करनेका ध्येय तो एक ही है। करनेका एक है। कुछ भिन्न-भिन्न नहीं करना है। कहीं पर्याय भिन्न करनी, यह भिन्न करना, वह भिन्न करना ऐसा नहीं है। ध्येय एक ही है। एक आत्म स्वभाव पर दृष्टि करे तो उसमें-से अनन्त गुणकी जो पर्याय है वह प्रगट होती है। उसे भिन्न-भिन्न करने नहीं जाना पड़ता अथवा उसे ऐसी आकुलता करनेकी आवश्यकता नहीं है। एक चैतन्यको पहचाने तो उसमें-से अनन्त गुण-पर्याय प्रगट होती है। एक चैतन्य पर दृष्टि स्थापित करे तो उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द जो अनन्त गुण हैं, वह सब उसीमें-से प्रगट होते हैं। करना एक है। उसके लिये यह सब श्रुतका चिंतवन, मनन, लगन, महिमा आदि सब एक के लिये करना है।

एकको जाना उसने सब जाना। एक ज्ञात नहीं हुआ तो (उसने कुछ नहीं जाना)। इसलिये एक चैतन्य कैसे पहचानमें आये, वह करना है। भगवानको जाने वह अपने आत्माको जाने। भगवान कैसे हैं? जैसा भगवानका आत्मा वैसा ही अपना आत्मा है। इसलिये आत्माको पहचानना। एक ही करना है। उसके लिये उसका अभ्यास अनन्त कालसे किया नहीं है इसलिये उसे दुर्लभ हो गया है। बारंबार उसीका अभ्यास करना जैसा है। दिन-रात उसीकी खटक, उसकी लीनता वही करने जैसा है। उसीका विचार, उसीका चिंतवन, वह सब करने जैसा है। करना एक ही है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवका उपकार तो है ही, वह अनन्त उपकार है। परन्तु साथ-साथ विशेष मार्गदर्शनके लिये हमें आपकी आवश्यकता है। अतः आप भी हमें अनन्त उपकार कर रहे हैं और वह अनन्त उपकार हम भी इच्छते हैं कि पर्याय-पर्यायमें वह उपकार बढ़ता जाय और हमें आत्म-प्राप्तिकी भावना हो, ऐसे आशीर्वाद हम पर सदा बरसते रहें, ऐसी भावना है।

समाधान :- सम्यग्दर्शनका मार्ग गुरुदेवने बताया। पूर्वमें जीवने बहुत किया परन्तु

एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है। वह अपूर्व है। बाकी सब किया है। और उस अपूर्व सम्यग्दर्शनका स्वरूप गुरुदेवने बताया है। बाहरका सब किया है, परन्तु भवका अभाव जो सम्यग्दर्शन प्रगट हो तो ही होता है। वह सम्यग्दर्शन अपूर्व है, वह स्वानुभूति अपूर्व है।

लक्षणसे आत्माको पहचानकर, विभावका लक्षण और स्वभाव लक्षण भिन्न करके अंतरमें स्वभाव लक्षण पहचानकर उसमें दृढ़ता करके अपूर्व ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त हो तो भवका अभाव हो। और वही करने जैसा है। गुरुदेवने वही कहा है। बाहरका बहुत किया है, परन्तु एक सम्यग्दर्शन बिना भवका अभाव नहीं हुआ है, सुखकी प्राप्ति नहीं हुयी है, आनन्दकी प्राप्ति नहीं हुयी है। अन्दरसे ज्ञानसे भरपूर आत्मा भरा है, वह ज्ञायकदशा प्राप्त नहीं हुयी है।

स्वयं लक्षणसे पहचानकर द्रव्यको ग्रहण करे। लक्षणसे लक्ष्य जो द्रव्य, उसे पहचाने तो उसकी प्रतीति दृढ़ करके उसमें लीनता करके भेदज्ञान करके वह प्राप्त करने जैसा है। और गुरुदेवने वह बताया है। देव-गुरु-शास्त्र जो कहते हैं उसकी महिमा करके, लक्ष्य जो आत्मा उसे ग्रहण करना, जो अनादिअनन्त शाश्वत है। वही करनेका है।

सम्यग्दर्शनके बिना जीवने परिभ्रमण किया है। वह सम्यग्दर्शन ही अपूर्व है। चैतन्यकी जो विभूति है उसीमें-से प्रगट होता है। वही करना है।

मुमुक्षु :- माताजी! सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति और अनुभूतिके बारेमें कुछ कहें।

समाधान :- कहा तो सही, वही तो कहा। सम्यग्दर्शन और अनुभूति दोनों एक ही है, कोई अलग नहीं है। सम्यग्दर्शन जो अनादिसे जीवने प्राप्त नहीं किया है। अन्दर स्वानुभूतिकी दशा वह सम्यग्दर्शन है। विभाव लक्षणको पहचानकर, स्वभाव लक्षणको पहचानकर स्वभावको प्रगट करे और उस स्वभावमें लीनता करे तो उसमें स्वानुभूति प्राप्त होती है।

विकल्प टूटकर जो निर्विकल्प दशा हो, वह स्वानुभूति और सम्यग्दर्शनका लक्षण है। और उसीमें अपूर्व आनन्द और अपूर्व ज्ञान सब उसमें ही प्राप्त होता है। भेदज्ञानकी दशा प्राप्त करनी कि जिसमें-से स्वानुभूति प्राप्त होती है। ऐसी सहज दशा अंतरसे हो तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है। इसलिये उसीका अभ्यास और उसकी लगन बारंबार भेदज्ञान कैसे हो, स्वभाव कैसे पहचानमें आये, वही करना है।

मुमुक्षु :- ऐसा ही प्राप्त करनेके लिये आपके आशीर्वाद..

समाधान :- करना वही है।

समाधान :- ... समवसरणमें (जाते समय) यह भरतक्षेत्रमें आता होगा, सब जानते होंगे। बाकी यहाँ आते होंगे तो भी किसीको दर्शन नहीं होते हैं।

मुमुक्षु :- किसीको भले न हो, आपको हो जाय तो आपके साथ हमको भी हो जायगा।

समाधान :- .. समसवरणमें जाते हैं तो महाविदेह क्षेत्र और भरत क्षेत्र मनुष्य क्षेत्रमें है तो ऊपरसे जाय तो उनको सब दिखता है। भरतक्षेत्र तो बीचमें भी आता है। वे तो सब जानते हैं। आते भी हों, ऊपरसे देखते हों तो भी सबको दिखाई नहीं देता। गुरुदेव तो सब देखते हैं। और यहाँ आते भी हैं तो भी सबको देखना बहुत मुश्किल पड़ता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्री पहले ऐसे बोलते थे कि कोई दव यहाँ आते नहीं है। गुरुदेवश्रीको कितना प्रेम था, आपको बारंबार याद करते थे।

समाधान :- पंचमकाल है। बाहरमें आना बहुत मुश्किल होता है।

मुमुक्षु :- एक बखत आप ऐसा कुछ भाव प्रगट करो कि एकदम ऊतर जाय।

समाधान :- ... और ऐसा हो गया।

मुमुक्षु :- स्वप्नमें भी

समाधान :- स्वप्नमें तो आवे, परन्तु स्वप्नकी क्या बात है? सपना तो आये। बहुत बरसोंको सान्निध्य, बहुत सालोंका है, स्वप्नमें तो आये।

मुमुक्षु :- स्वप्नमें तो हमें भी आते हैं, बहुत बार आते हैं. समाधान :- स्वप्नमें तो बहुत आवे।

मुमुक्षु :- ...स्वप्नमें संबोधन भी देते हैं।

मुमुक्षु :- माताजीके पास तो देवके रूपमें पधारे न। हमें तो गुरुदेवके रूपमें आये और माताजीको देवके रूपमें आये।

मुमुक्षु :- ऐसा।

मुमुक्षु :- यह नहीं आते।

मुमुक्षु :- यह बात तो आपने कुछ अलग की, उषाबहन। यह आपने खास बात कही।

मुमुक्षु :- अपने तो गुरुदेवके रूपमें आये न।

मुमुक्षु :- वह तो सच्ची बात है। ... वह तो सच्ची बात है। बहिन बोले न, किसीको दिखते नहीं। बहिनको दिखते हैं। ... हम तो यहाँ हाजिर रहेंगे, एक बार तो दर्शन करने हैं। हमारी यह नाड़ भी जाती हो तो हम दे देंगे, हमें दर्शन करवा दो। मेरी तो बिलकूल ठीक है। आपको तो आते हैं जरूर। बात निकल गयी न, उषाबहन, आपने बराबर खुलासा कर दिया कि उनको आते हैं।

मुमुक्षु :- स्वप्नमें तो सबको आये, परन्तु किस रूपमें आते हैं?

समाधान :- समवसरणमें गुरुदेव दिव्यध्वनि सुननेको जाते हैं। वे तो देवके रूपमें जाते हैं समवसरणमें।

मुमुक्षु :- बोले न कि आते हैं, किसीको दिखते नहीं। वह तो बराबर स्पष्ट हो गयी बात।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव आपश्रीके बारेमें फरमाते थे कि जब आपश्रीको अनुभूति प्राप्त हुयी, तब क्षायिक सम्यग्दर्शन लेकर ही छूटकारा है, ऐसा उग्र पुरुषार्थ आपका था। ऐसा गुरुदेव कई बार फरमाते थे। परन्तु उस समयकी आपकी जो उस प्रकारकी भेदविज्ञानकी धारा थी, उसकी थोड़ी-सी प्रसादी हमको मिल सके तो बड़ी...

समाधान :- भीतरमें अप्रतिहतधाराकी उग्रता होती है तो ऐसी भावना आती है। कोई भेदज्ञानकी धारा उग्र होवे, अपडिवाही-अप्रतिहत धारा उसमें ऐसी भावना उग्र (होती है)। उग्र धारा, भेदज्ञानकी सहज धारा।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१३

समाधान :- ... गुरुदेव शाश्वत विराजे, सबको विरह क्यों हुआ? कोई कुछ कर नहीं सकता। इस भरतक्षेत्रमें गुरुदेवका विरह हो गया। कोई किसीको कर नहीं सकता।

मुमुक्षु :- बहन! करुणा होवे तो करुणाके कारण कार्य बन जाता है।

समाधान :- क्षेत्रसे दूर हो गये। ऐसा क्यों होवे? भावना, हृदयमें गुरुदेवको रखनेसे गुरुदेव भविष्यमें मिल जाते हैं। भावना हृदयमें रखो कि ऐसे गुरुदेव जो भाविके तीर्थंकर हैं, ऐसी तीर्थंकर जैसी वाणी बरसायी, ऐसे गुरुदेवको हृदयमें विराजमान करने-से भविष्यमें उनका योग बनता है।

मुमुक्षु :- माताजी! भविष्यमें तो मिलेंगे ही मिलेंगे, हम तो इस भवमें भी आपके साथमें दर्शन करेंगे। यह पक्की बात है। हमारी भावना ऐसी है।

मुमुक्षु :- आज मैंने देखे गणधरदेव, आज मैंने सुन लिये गणधरदेव। बोलो भगवती मातनो जय हो!

समाधान :- सब अंतरमें ही करनेका है। बाहरसे दृष्टि उठानी, वह एक ही करना है। शास्त्रोंमें अनेक-अनेक रीतसे बात आती है, करनेका एक ही है। गुरुदेवने जो कहा वह एक ही करना है। बारंबार अंतर दृष्टि करनी। बस! अंतरमें ज्ञायकको पहचानना। उसका लक्षण पहचानना कि मैं चैतन्य कौन? और यह विभावलक्षण, चैतन्यलक्षण उसे भिन्न करके, अपने लक्षणसे स्वयंको पहचानकर और अन्दर स्थिर होना, उसकी दृढ़ता करनी, उसकी प्रतीत करनी, वह करना है, एक ही करना है।

वांचन, विचार आदि सब करना, लगन लगानी, महिमा करनी, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। अन्दर चैतन्यकी महिमाके ध्येयसे सब करना है, एक ही करना है। क्षण-क्षणमें बस आत्मा.. आत्मा.. अंतर आत्माकी लगन लगानी, वही करना है।

अनन्त काल गया जीवने यह अपूर्व सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है, बाकी सबकुछ प्राप्त हो चूका है, दूसरा कुछ नया नहीं है। अनन्त बार देवलोकमें गया, बाहरकी सब वस्तु प्राप्त हो चूकी है, कुछ नया नहीं है। एक नया चैतन्यका स्वरूप वह अपूर्व है, वह प्राप्त नहीं हुआ है। वह प्राप्त कैसे हो, वह करने जैसा है।

शास्त्रमें आता है, एक जिनेन्द्र भगवान और एक सम्यग्दर्शन, दो जीवने प्राप्त नहीं

किया है। जिनेन्द्र भगवान तो मिले, लेकिन स्वयंने स्वीकार नहीं किया है। इसलिये नहीं मिले, ऐसा शास्त्रमें आता है। मिले लेकिन स्वयंने स्वीकार नहीं किया है और सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। ये दो जीवको दुर्लभ (हैं)। सम्यग्दर्शन अनन्त कालमें कभी प्राप्त नहीं किया है, वह प्राप्त करने जैसा है। उसकी अनुपमता और उसकी अपूर्वता हृदयमें लाकर वही करने जैसा है। वही एक अद्भुत वस्तु है।

मुमुक्षु :- माताजी! मुझे तो गुरुदेव यानी सोनगढ़ और सोनगढ़ यानी गुरुदेव। यह सब मुमुक्षुओंने नक्की किया है। यह साधनाभूमि है, गुरुदेवकी तपोभूमि है उसे जीवनमें उत्कीर्ण कर दी है।

समाधान :- गुरुदेवकी साधनाभूमि है। इस पंचमकालमें इतने-इतने साल, ४५-४५ साल निरंतर वाणी बरसायी, वह कोई महा योग (हुआ कि) इस पंचमकालमें ऐसे गुरुदेव यहाँ पधारे और चारों ओर वाणी बरसायी। सोनगढ़में निरंतर निवास किया, वह सोनगढ़की भूमि महा पवित्र है।

मुमुक्षु :- क्षेत्र पवित्र और द्रव्य पवित्र।

समाधान :- हाँ, दोनों पवित्र-द्रव्य मंगल और क्षेत्र मंगल। और गुरुदेवका भाव मंगल। ... वह क्षेत्र मंगल, गुरुदेवका द्रव्य मंगल, उन्होंने जो अन्दर प्रगट किया वह भाव मंगल। जिस कालमें वह प्राप्त हुआ वह काल मंगल है। भावना ऐसी हो तो... बाकी कोई माहोल... सोनगढ़को भावमें कुछ नहीं है। (बाहरका) माहोल चलता रहे, बाकी यहाँ रहनेवालोंको भावमें कुछ नहीं है। .. प्रधानता करके सब यहाँ करते रहते हैं। .. अपने द्रव्य पर दृष्टि करके, भावको प्रधान करके सब करना है।

मुमुक्षु :- एक महिनेका महोत्सव। भारतके सोलह भागके लोग वहाँ पधारे थे।

समाधान :- ... सब ब्रह्मचारी बहनोंने जीवन इस प्रकार अर्पण किया है। सबको भावना है तो सब करते हैं। यहाँ गुरुदेवके प्रभावना-योगसे सब हो रहा है। गुरुदेव कब पधारे? गुरुदेव पधारे वह एक आश्चर्य लगे। आफ्रिका पधारे।.. इसलिये यहाँ आना मुश्किल पड़े।

मुमुक्षु :- रहते हैं वहाँ, लेकिन भाव यहाँ है।

समाधान :- भाव यहाँ है। पहले आये थे, उसके बाद... महिनों तक।

समाधान :- .. जाणन स्वभाव जाननेमें आ रहा है। जाननरूप जाननेवाला परिणमन कर रहा है। जाननेवाला स्वभाव ... नहीं हुआ है। जाननेवालेको लक्ष्यमें ले तो यथार्थ जाननेमें आवे। तो जाननेवाला जाननरूप है, उसको जानो। जाननेवालेको जानो ऐसा आचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु :- यानी परको मत जानो, ज्ञायकको जानो।

समाधान :- परको मत जानो ऐसा नहीं, परका राग करके परमें लक्ष्य मत करो।

मुमुक्षु :- तो परको जाननेसे फायदा क्या है?

समाधान :- फायदा कुछ नहीं है। राग करने-से क्या फायदा है? ज्ञानका स्वभाव है तो स्वयं जाननेमें आता है।

मुमुक्षु :- जाननेमें आ जाता है, जानता तो नहीं है न?

समाधान :- जानता है। राग आत्माका स्वभाव नहीं है। एकत्वबुद्धि तोड़नी। ज्ञेय और ज्ञान एक है, ऐसी एकत्वबुद्धि तोड़नी। मैं ज्ञायक ही हूँ। ज्ञायककी दिशा पलट देना। जाननेका स्वभाव है उसका नाश नहीं होता। जाननेका स्वभावका नाश नहीं होता। जाननेका स्वभावन नाश कर दूँ। तो जानन स्वभाव नाश नहीं होता। एकत्वबुद्धि तोड़ देना, उसका राग तोड़ना। दृष्टि पर ओर जाती है, उसको पलट देना।

मुमुक्षु :- जबतक पर जाननेमें आता है, तो दृष्टि अन्दर कैसे जायगी?

समाधान :- पर जाननेमें आता है (इसलिये) दृष्टि नहीं जायगी ऐसा नहीं होता। दृष्टि अपनेमें जाती है। रोकता नहीं है, ज्ञेय अपनेको रोकता नहीं है। स्वयं दृष्टि पलट देना, तो दृष्टि तो पलट जाती है। उपयोग तो बाहर जाता है। अपनी ओर उपयोग लाना अपने हाथकी बात है।

ज्ञानका स्वभाव ऐसा है, जाननेमें अनन्त है, जाननेके स्वभावकी मर्यादा नहीं होती है। जो जाननेवाला है उसका स्वभाव अनन्त है। उसकी मर्यादा नहीं होती कि इतना जाने, इतना जाने। जाननेका स्वभाव है वह स्वको जानता है, परको भी जानता है। उसकी महिमा अनन्त है कि जो अनन्तको जानता है। ऐसे महिमा अनन्त है। परन्तु उसका राग नहीं करना, ज्ञेयके साथ एकत्वबुद्धि नहीं करना। अपने स्व-ओर दृष्टि करके और स्व-ओर उपयोग करना। स्वयं सहज जाननेमें आवे उसमें नुकसान नहीं होता। सहज जाननेमें आ जाता है, केवलज्ञानीको सहज जाननेमें आ जाता है। तो उसको नुकसान नहीं होता। वह तो आत्माका स्वभाव है।

मुमुक्षु :- केवली भगवानको तो आत्मा जाननेमें आता है। ... कहाँ परको जानते हैं?

समाधान :- नहीं, केवलज्ञानी भगवान परको जानते हैं। अपनेको जानते हैं और ज्ञेयको भी जानते हैं। उसमें राग नहीं होता, उस ओर उपयोग नहीं होता। सहज जाननेमें आ जाता है। ज्ञानका परिणमन अपनेको जानता है, परको भी जानता है। ज्ञेयको जानता है।

मुमुक्षु :- हमारा प्रयोजन तो अपनेको जाननेका है, हमारा प्रयोजन परको जाननेका तो है नहीं।

समाधान :- प्रयोजन भले नहीं है, परन्तु स्वयं जाननेका स्वभाव है, उसका नाश

नहीं होता। प्रयोजनकी क्या बात है? प्रयोजन अपनेको जाने उसमें स्वयं जाननेका आ जाता है। उसके स्वभावका नाश नहीं होता। जो छद्मस्थ है उसका उपयोग एक तरफ जाता है। स्वको जानता है तो पर-ओर उपयोग नहीं जाता है। परन्तु उसका जाननेका नाश नहीं होता है। अपनी स्वानुभूतिमें उपयोग जाता है (तो) परको जाननेमें लक्ष्य नहीं होता। जाननेका नाश नहीं होता है। नहीं जानता है ऐसा नहीं, जाने तो उसमें क्या दोष आता है? उसके स्वभावका नाश नहीं होता है।

मुमुक्षु :- अंतिम भूल कौन-सी है जिससे अनुभव नहीं हो पाता है?

समाधान :- एकत्वबुद्धि होती है। पर मैं हूँ, मैं पररूप हो जाता हूँ और पर मेरे रूप हो जाता है। और विभाव है, आकुलता जो विकल्पकी जाल है, उस रूप मैं हो जाता हूँ, विकल्प मेरेमें आ जाता है। ऐसी एकत्वबुद्धि हो गयी है, इसलिये अनुभव नहीं होता है। भेदज्ञान करने-से अनुभूति होती है। एकत्वबुद्धि है।

मैं चैतन्य हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य हूँ। उस पर दृष्टि करनेसे, उसका ज्ञान करनेसे, उसमें लीनता करनेसे स्वानुभूति होती है। भेदज्ञानका अभाव होनेसे स्वानुभूति नहीं होती है।

मुमुक्षु :- अनुभव लक्षण तो दिखता है परन्तु लक्ष्य क्यों नहीं दिखता?

समाधान :- लक्षण कहाँ देखनेमें (आता है)? यथार्थ लक्षण देखनेमें आवे तो लक्ष्य देखनेमें आता है। यथार्थ लक्षण कहाँ देखनेमें आता है?

मुमुक्षु :- उसका उपाय क्या है देखनेका?

समाधान :- अपनी जिज्ञासा, महिमा, अपनी लगनी लगाना और बाहरसे महिमा तोड़कर स्वभावकी महिमा, उसकी लगन उसका उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा स्वभावको ग्रहण करना, वह उसका उपाय है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते थे, मैं ज्ञाता, मैं ज्ञान, मैं ज्ञेय। ... ये क्या है?

समाधान :- ज्ञायक ही मैं, ज्ञाता मैं, ज्ञेय मैं। ज्ञेय यानी ज्ञानकी पर्याय जो परिणमती है, वह ज्ञेय। उसका मतलब पर वस्तु नहीं है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय अपनेमें परिणमन होता है। पररूप नहीं परिणमता है। पर परमें है, आप अपनेमें है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय सब अपनेमें है। इसलिये परद्रव्य नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। आत्मा अनन्त कालसे परिभ्रमण करते-करते जो प्रत्यभिज्ञानका कारण आत्मा है तो यदि परको नहीं जानता हो तो, परको कोई जानता है वह कैसे जाननेमें आ जाता है? आत्मा पररूप परिणमता नहीं है। ज्ञान तो अपना स्वभाव ही है।

जो अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य है, ऐसा ज्ञानस्वभाव अनादिअनन्त अनन्त महिमासे भरपूर है। उसमें मर्यादा नहीं होती है। सबको जानता है। एकत्वबुद्धि तोड़े, ज्ञेयके साथ

एकत्वबुद्धि तोड़कर ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप स्वयं परिणमता है। परज्ञेय रूप नहीं परिणमता है।

मुमुक्षु :- आपकी पुस्तकमें आता है, हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे। तो वह उपयोग ज्ञानका लेना या चारित्रगुणकी पर्याय लेना?

समाधान :- ज्ञानका उपयोग जो परमें जाता है, उसको पलट दे। रुचि पलट दे। मैं चैतन्य (हूँ)। कहीं न रुचता हो, कहीं सुहाता न हो तो उपयोग आत्मामें लगा दे। ज्ञानका उपयोग पलट दे। रुचि पलटे तो उपयोग पलटे। रुचि परमें होती है। रुचि पलट जाय तो उपयोग पलट जाय।

मुमुक्षु :- परकी रुचिको दुःखका कारण जानना या हमारा ज्ञान परको जानता है उसको दुःखका कारण जानना?

समाधान :- ... रुचि परमें होती है, एकत्वबुद्धि वह दुःखका कारण है। जानना दुःखका कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- तो फिर आप क्यों कहते हो कि उपयोग पलटाओ। फिर ऐसा क्यों कहते हो?

समाधान :- उपयोगके साथ अपना राग रहता है इसलिये। उपयोग पलटनेका अर्थ तेरा राग परमें जाता है, रागको पलट... उपयोग पलटनेका अर्थ ज्ञानका नाश कर ऐसा उसका अर्थ नहीं है। ज्ञानका नाश करनेका (ऐसा उसका अर्थ) नहीं है। अपने स्वकी ओर दृष्टि ला।

मुमुक्षु :- उपयोग और राग, अलग-अलग चीज ख्यालमें नहीं आती है। उपयोग और राग दोनों चीज ख्यालमें नहीं आती है।

समाधान :- (भले ख्यालमें) नहीं आता है, परन्तु दोनों साथमें रहते हैं। सूक्ष्म करके यह ज्ञान है, यह राग है, उसका भेदज्ञान करो। शास्त्रमें आता है, प्रज्ञाछैनी करके सूक्ष्म दृष्टि करके उसका भेदज्ञान करना। नहीं ख्यालमें आता है तो ख्यालमें लाकर सूक्ष्म बुद्धिसे पकड़ लेना कि यह ज्ञान है, यह राग है। ज्ञान-ज्ञायक मैं हूँ, उसका भेदज्ञान करना। यह ज्ञायक है, यह राग है।

मुमुक्षु :- प्रवचनसारमें आता है, इन्द्रियज्ञान दुःखरूप है, उसका अर्थ क्या है?

समाधान :- इन्द्रियज्ञान दुःखका कारण है, तो ज्ञान दुःखका कारण है। ज्ञान दुःखका कारण है, परन्तु उसमें खण्ड खण्ड उपयोग रागमिश्रित है न, वह दुःखका कारण है।

मुमुक्षु :- .. फिर परिणतिको पहचान लेता है। जघन्य है या उत्कृष्ट है, पहचानकर वैसा व्यवहार करे। वह जाननेका साधन बाह्यके सिवा तो कुछ नहीं है। तो अंतर परिणतिको एक दूसरे कैसे जानते होंगे? सम्यग्दर्शनपूर्वक उसका एक बाह्य द्रव्यलिंगका व्यवहार, भावलिंग पूर्वक, वह कैसे भिन्न करता है?

समाधान :- उसके परिचयसे जाने, उसकी वाणीसे ज्ञात हो। उसे ज्ञात होता है। उसकी वाणी कैसी आती है? उसका हृदय कैसा है? उसका अमुक परिचय होता है इसलिये जान सकते हैं कि इसकी परिणति भावलिंगरूप है या मात्र द्रव्य है। क्रियाकी ओर कितना वज़न जाय, शुभभावकी ओर कितना जाय, अंतरकी भेदज्ञानकी परिणति, उसकी वाणी कैसी आती है, उस परसे हृदयको पहचाना जाता है। उसका परिचय हो तो पकड़ सकते हैं। .. उसके परिचयमें आवे, उसका बोलना, वाणी परसे पकड़ सकते हैं कि कहाँ-कहाँ उसकी वाणी गहराईमें जाती है या स्थूलमें अटक गया है या बाह्य क्रियामें थोड़ा करके, महाव्रत धारण करके उसमें संतोष माना है, या अंतर परिणति है, भेदज्ञानकी धारा किस जातकी है, वह सब, वह बोले उस परसे ख्यालमें आ जाता है।

मुमुक्षु :- बहिन! हम गुरुदेवका प्रवचन पढें या सुने, गुरुदेवको प्रत्यक्ष सुना है। उसमें आत्माका स्वभाव ज्ञान, वह तो बारंबार आता है। कर्तृत्व वह आत्माका स्वभाव नहीं है। परन्तु ऐसा ख्यालमें लेते हैं तो भी आत्मानुभव नहीं होता है। तो उसमें क्या त्रुटि (रहती होगी)?

समाधान :- आत्माका ज्ञानस्वभाव (है)। परन्तु वह ज्ञानस्वभाव मात्र बुद्धिसे, विचारसे ग्रहण किया होता है। अंतर उसका जो ज्ञानस्वभाव है, स्वभावमें-से स्वभाव ग्रहण करे तो हो। कर्ता यानी परका कर्ता नहीं है, विभाव उसका स्वभाव नहीं है। परन्तु स्वयं अपने स्वभावरूप परिणमन कर सकता है। परन्तु वह ज्ञानमात्र आत्मा ऐसा आये, परन्तु ज्ञानको ज्ञानरूप पहचानना, वह अंतर गहराईमें जाकर पहचानना चाहिये। मात्र बुद्धिसे जाने तो उसमें अंतर परिणति नहीं होती। अंतर परिणति करे तो यथार्थ अन्दरसे दशा प्रगट होती है।

ऐसी परिणति कि यह ज्ञान है सो मैं हूँ और यह विभाव भिन्न और यह ज्ञान माने ज्ञायक। मात्र जाने-जाने वह ज्ञान (ऐसे नहीं), परन्तु उसके पीछे पूरा द्रव्य है। उस द्रव्यको अंतरमें जाकर ग्रहण करे तो हो। वह आता है न? ज्ञानके जो जाननेका किरण दिखता है, वह ज्ञानमात्र भेद-भेद दिखाई देता है उतना ही मैं नहीं हूँ, अपितु पूरा ज्ञायक, जाननेवाला तत्त्व है वह जाननेवाला तत्त्व है सो मैं हूँ। ऐसे द्रव्यको अंतरमें जाकर पहचाने तो होता है। मात्र बुद्धिसे... जो द्रव्य है, उस द्रव्यके मूलमें-से उसे पहचानना चाहिये।

मुमुक्षु :- आत्माका स्वभाव तो ज्ञान है, ऐसा आता है। तो फिर ज्ञान जानता है, वह भी व्याजबी बात है, तो फिर उसमें...?

समाधान :- जाने वह व्याजबी बात है, परन्तु वह किस जातका जानता है?

जानता है यह बराबर, परन्तु जानना-जाननेवाला तत्त्व कौन है? जाननेका स्वभाव किस तत्त्वमें है, उस तत्त्वको पहचानना चाहिये। जाने यानी यह जाना, यह जाना, बाहरका जाना (इसलिये जाननेवाला ऐसा नहीं)। जाननेवाला तत्त्व कौन है? जाननेवाली वस्तु कौन है, उसे पहचानना चाहिये। मात्र उसकी पर्याय भेद-भेद, या ज्ञेयको जाना इसलिये ज्ञान, ऐसे नहीं। ज्ञानकी पर्यायके भेद हो इसलिये जाननेवाला, ऐसे नहीं। परन्तु जाननेवाला पूरा तत्त्व उसे पहचानना चाहिये।

जो तत्त्व जाननस्वभावरूप है, उसे पहचानना चाहिये। जाननेवाला बराबर है, परन्तु जाननहार तत्त्वको जानना चाहिये। वस्तुको पहचाननी। (वस्तुको) पहचाने तो उसमें-से उसकी शुद्धात्माकी पर्याय प्रगट हो। शुद्धात्माको पहचाने, मूलमें जाकर पहचाने तो उसे प्रगट हो। ऊपर-ऊपरसे पहचाने कि जाननेवाला (है), ऐसे जाननेवाला यथार्थरूपसे पहचानमें नहीं आता।

लक्षणसे पहचानमें आये कि यह जाननेवाला सो मैं, यह जाननेवाला सो मैं और यह विभाव सो मैं नहीं, परन्तु वह जाननेका स्वभाव किसका है, उस चैतन्यतत्त्वको पहचानना चाहिये।

... मीठास कि यह शक्कर है, यह स्वाद शक्करका है, वह वस्तु कौन-सी? वह शक्कर क्या है? शक्कर पदार्थको पहचानना चाहिये। यह ठण्डक बर्फकी है, बर्फ पदार्थ कौन है, उसे पहचानना चाहिये। मूलको पहचानना चाहिये। ऐसे जानना-जानना हो रहा है, परन्तु जाननेवाला पदार्थ कौन है? (उसे मूलमें-से पहचानना चाहिये)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१४

समाधान :- .. मैं ऐसा हूँ, यह उसे बैठता नहीं है। पुरुषार्थमें कमजोरी आ गयी है और ऐसे बड़ा होना अच्छा लगता है।

मुमुक्षु :- उसे बड़प्पन अच्छा लगता है।

समाधान :- एक ओर ऐसा हो गया है कि मैं कुछ नहीं हूँ, ऐसा हो गया है। तू भगवान है, ऐसा कहे तो जल्दीसे (बैठता नहीं)। गुरुदेवने सबको संस्कार डाले हैं कि तू भगवान है, भगवान है। पहले तो सबको ऐसा होता था कि अपने भगवान? भगवान हो वह भगवान होते हैं। ऐसा था। गुरुदेवने ऐसे संस्कार डाल दिये हैं कि तू भगवान है। गुरुदेव बारंबार-बारंबार कहते हैं, तू भगवान है। अंतरमें सबको भगवान...

मुमुक्षु :- गुरुदेवके प्रवचनमें गिनती करें तो कमसे कम पाँच-सात लाख बार भगवान आत्मा, भगवान आत्मा कहा होगा।

समाधान :- बहुत बार कहा है। व्याख्यानमें बहुत बार बोलते हैं, भगवान है, तू भगवान है।

मुमुक्षु :- 'आत्मा' शब्द आये तो भगवान आत्मा ऐसा ही गुरुदेवके मुखमें आता था।

समाधान :- हाँ, भगवान आत्मा।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके मुखमें आत्मा शब्द ही नहीं आता था। भगवान आत्मा। इतनी महिमा।

समाधान :- भगवान आत्मा ऐसा ही आता था।

मुमुक्षु :- पीछले वर्षोंमें तो समझमें आता है, उसके बजाय भगवान आत्मा, विश्रामरूप (वाक्य) ऐसा ही आता था।

समाधान :- समझमें आता है, वह कम होकर आहा..! बहुत आता था। आश्चर्यके शब्द बहुत आते थे। भगवान आत्मा आये तो आहा..! आचार्यदेव कैसा (कहते हैं)। इस प्रकार आहा.. शब्द बहुत आता था।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीको अन्दरसे महिमा उछलती थी।

मुमुक्षु :- पीछले वर्षोंमें तो समझमें आता है, उसके बदले आहा.. आता था।

समाधान :- उसके बदले आहा.. शब्द बहुत आता था। बहुत बार, थोड़े-थोड़े वाक्यमें आहा.. ऐसा ही आता था।

मुमुक्षु :- एक-दो वाक्य बोले और आहा... आता था।

समाधान :- हाँ, आहा.. ऐसा ही आता था। कोई न्याय आये तो आहा.. आत्माकी बात करते-करते आहा.. ऐसा ही आता था। वह तो कुछ अलग ही लगता था। आहा.. कहते थे वह। ऐसा लगे कि गुरुदेवको कितनी इस तत्त्वकी, आत्माकी आश्चर्यता लगती है कि आहा.. शब्द बार-बार आता है। श्रुतका इतना आश्चर्य, न्यायका और अन्दर आत्माका उतना आश्चर्य, आहा.. शब्द बहुत आता था। यहाँ थोड़ेमें पढ़ते तो भी आहा.. शब्द बहुत बार आता था।

मुमुक्षु :- प्रवचनमें अन्दरसे महिमा जैसे स्वयंको उछलता, वैसे भाषामें आता था।

समाधान :- उनके भाव ऐसे और उनका पूरा जीवन ऐसा था।

मुमुक्षु :- अभी टेपमें सुने तो जब भावके साथ सुनते हो तब भूल जाते हैं कि गुरुदेव यहाँ नहीं है, ऐसा लगता ही नहीं।

समाधान :- गुरुदेव है ऐसा लगे।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्री मानों साक्षात् विराजते हों।

समाधान :- उनकी ललकार टेपमें भाव खोलकर आती है तो ऐसा ही लगता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके हावभाव प्रत्यक्ष दिखते हों, ऐसा लगे। वाणीमें ऐसा आ गया है।

समाधान :- टेपमें ऐसा आता है। व्याख्यानमें पढ़ने आते हैं और फिर चले जाते हैं ऐसा कहते थे। गुरुदेव पढ़ते हैं, ऐसा ही लगता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- गुरुदेवको तो श्रुतका बहुत ही है। उन्हें श्रुतकी तो लब्धि थी। वहाँ देव इकट्ठे होकर शास्त्रसभा करते हैं। वांचन भी करते हैं। शास्त्रसभा होती है। गुरुदेवका तो सहज है तो ऐसा बन सकता है कि देवोंकी सभामें भी... देव चर्चा-वार्ता करते हैं, शास्त्रसभा देवोंमें होती है। देव भगवानके दर्शन करे, पूजन करे, शास्त्रसभा होती है। उन्हें अंतर श्रुतकी लब्धि (थी)। वे बोले वह सबको असरकारक ऐसा उनका प्रभावनाका योग और अंतरका सब ऐसा था। देवोंमें तो होता है, शास्त्रसभा होती है, प्रश्न चर्चा होती है, सब होता है। देव तत्त्व चर्चा करते हैं। देव भगवानके समवसरणमें जाते हैं, भगवानकी ध्वनि सुनने जाते हैं। देवलोकमें भी शास्त्रसभा होती है।

मुमुक्षु :- अहेमदाबादवाले शान्तिभाई कामदार है न? उनके छोटे भाई कांतिभाई कामदार चल बसे हैं, उनकी पत्नी आदि सब आये हैं। हार्ट फेईल हो गया। बोटादवाले शान्तिभाई कामदार। ... शान्तिभाईके भाई कान्तिभाई। ये कान्तिभाईके पुत्र हैं और ये

शान्तिभाईके पत्नी है। अभी आठ दिन पहले हार्ट फेईल हो गया।

समाधान :- मनुष्यपना मिले उसमें गुरुदेवने यह मार्ग बताया वह ग्रहण करने जैसा है। शान्ति रखने जैसी है। गुरुदेवने कहा है, आत्मा शाश्वत है। उस शाश्वत आत्माका शरण ग्रहण करने जैसा है। जन्म-मरण, जन्म-मरण चलते रहते हैं। वहाँ कोई उपाय नहीं है। एक शान्ति रखनी वही एक (उपाय है)।

मुमुक्षु :- एकदम सो गये, कुछ नहीं था। एकदम सो गये।

समाधान :- पलट जाय, कब आत्मा चला जाय और शरीर पड़ा रहता है। आत्माकी शरण ग्रहण करने जैसा है। मनुष्यभवमें आत्माका करने जैसा है। संसार ऐसा है। अनन्त जन्म-मरण ऐसे हुए हैं। किसीको छोड़कर स्वयं गया, स्वयंको छोड़कर दूसरे चले जाते हैं। ऐसा यह क्षणभंगुर संसार (है)।

गुरुदेवने मार्ग बताया वह ग्रहण करने जैसा है। आत्मा शाश्वत है। आयुष्यके अनुसार कब फेरफार हो जाय कुछ मालूम नहीं। जन्म-मरण कैसे मिटे, वह उपाय गुरुदेवने बताया है। उसे ग्रहण करने जैसा है। गुरुदेवके प्रतापसे अन्दर जितने संस्कार डले हों वह साथमें आते हैं। दूसरा कुछ साथमें नहीं आता है। मैं भिन्न, सब भिन्न दिखाई देता है। गुरुदेवने कहा, सब भिन्न ही है। कोई शरण नहीं है। अन्दर विकल्प भी अपना शरण नहीं है तो शरीर कहाँ शरण है? आत्माकी शरण वही सत्य शरण है। अंतरमें सत्य शरण वह है। शान्ति रखनी सुखदायक है।

मुमुक्षु :- एक पर्यायको दूसरी पर्यायके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। फिर भी संस्कार, भाव, उसका बल हो उसे आत्मज्ञान होता है, ऐसा देखते हैं। परन्तु अगली-पीछली पर्यायको एकदूसरेको साथ सम्बन्ध नहीं है, फिर संस्कार और लगन जीवको कैसे काम आते हैं?

समाधान :- एकदूसरेको सम्बन्ध नहीं है और है भी। जो पर्याय होती है वह द्रव्यके आश्रय होती है। द्रव्यके आश्रय बिना निराश्रय पर्याय नहीं होती है। एक पर्यायका व्यय होता है, दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है। एक पर्यायको दूसरी पर्यायके साथ एकदूसरेको सम्बन्ध नहीं है। परन्तु द्रव्यके आश्रयसे पर्याय होती है। जो द्रव्य वस्तु है, उस वस्तुके आश्रयसे पर्याय होती है। वह पर्याय ऐसी कोई स्वतंत्र नहीं है कि निराधार होती है। एक पर्यायको दूसरी पर्यायके साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो तो बीचमें नित्य द्रव्य है। वह नित्य द्रव्य कहाँ गया? पर्याय तो क्षण-क्षणमें पलटती है। वह तो अनित्य (है), पर्याय तो अनित्य है। वस्तु नित्य है। जिसमें संस्कार आदि (होते हैं), वह तो नित्य द्रव्य है। उस द्रव्यके आश्रयसे पर्याय होती है।

मुमुक्षु :- वह बात बराबर है। परन्तु संस्कारको व्यवहारमें लिया है..

समाधान :- भले व्यवहारमें लिया हो, परन्तु द्रव्यके आश्रयसे पर्याय होती है।

मुमुक्षु :- नयी पर्याय होती है वह सभी पूर्व पर्यायके संस्कार लेकर आती है? तो संस्कार काममें आते हैं, ऐसा कह सकते हैं? या संस्कार सांत्वनके लिये शब्द इस्तमाल किया जाता है कि तू यह करेगा तो तुझे यह संस्कार डलेंगे।

समाधान :- नहीं, सांत्वनके लिये नहीं है। मूल वस्तु तो शुद्ध है। फिर भी वह संस्कार भी एक व्यवहार है सही। वह कोई ऊपर-ऊपरसे जूठ नहीं कहनेमें नहीं आता है।

मुमुक्षु :- संस्कारको किसमें डालेंगे, व्यवहारमें या निश्चयमें?

समाधान :- वह व्यवहार है, वह भी व्यवहार है। परन्तु वह व्यवहार ऐसा व्यवहार नहीं है कि जूठा व्यवहार है। ऐसा व्यवहार नहीं है। जो प्रत्यभिज्ञान कहनेमें आता है। जो आत्मा अनन्त कालसे जन्म-मरण करता आ रहा है, तो भी उसे पूर्वजन्मके संस्कारसे उसे इस भवमें कुछ ख्यालमें भी आता है, तो पूर्वजन्मके संस्कार है। संस्कार कोई जूठी वस्तु नहीं है, व्यवहार होनेके बावजूद।

मुमुक्षु :- उसी प्रकार हम लगन शब्दका भी अर्थ कर सकते हैं, लगन एक पर्याय भले दूसरी पर्यायसे भिन्न होती है...

समाधान :- हाँ, भिन्न होती है..

मुमुक्षु :- फिर भी लगनकी सातत्यता चालू रहती है। आखिरमें आत्मज्ञान और केवलज्ञान प्राप्त करवाती है। ऐसा ले सकते हैं न?

समाधान :- आत्मज्ञान, केवलज्ञान, हाँ। लगन जो अंतरमें लगती है वह कारण बनती है। व्यवहार कारण है परन्तु एकदम लगन अंतरकी गहरी हो, अन्दरकी गहरी लगन हो कि मुझे आत्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये तो उसे व्यवहार कारण बनता है। कार्य भले मूल वस्तुमें-से पर्याय प्रगट होती है, पर्यायका कारण द्रव्य है तो भी उसमें संस्कारका कारण बनता है। व्यवहार कारण कहते हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने भी बहुत बार कहा है कि संस्कार लेकर जायगा। इस जन्ममें भले तुझे प्राप्ति नहीं होगी, तो कालान्तरमें भी..

समाधान :- कालान्तरमें संस्कार साथमें लेकर जाता है।

मुमुक्षु :- तब मुझे यही प्रश्न हो रहा था कि एक पर्यायको दूसरी पर्यायके साथ सम्बन्ध नहीं है। फिर भी संस्कार चालू रह सकते हैं, इस प्रकार व्यवहारके कारण।

समाधान :- हाँ, संस्कार चालू रह सकते हैं। जिस जातके इस भवमें उसने संस्कार डाले हों, अंतिम मरणके समय उसके जो भाव हो, वह जहाँ दूसरे भवमें जाता है वहाँ उस जातके स्फूरित होते हैं। अंतरमें जो जातके अंतरमें ज्ञानके, दर्शनके, चारित्रके, आराधनाके, जिज्ञासाके, लगनके जो-जो भाव उसके आत्मामें घूले हुए हों, वह दूसरे

भवमें उसे प्रगट होते हैं। गहरे या ऊपरसे। ऊपरसे हो तो उसे कुछ ख्यालमें नहीं होता। परन्तु गहरे संस्कार हो तो प्रगट होते हैं।

मुमुक्षु :- चाहे जितना संस्कारको व्यवहारमें डाले तो भी वह निश्चयमें सहायभूत होता है, ऐसा उसका अर्थ हुआ।

समाधान :- व्यवहार कारण बनता है। यथार्थ हो, यथार्थ गहराईसे हो तो कारण बनता है। ऊपर-ऊपरसे स्थूल हो तो कारण नहीं बनता। व्यवहारसे किसीको धर्मके भाव ऊपर-ऊपरसे हो, ऐसा हो वह बात अलग है, बाकी अंतरका जो होता है वह तो उसे कारणरूप बनता है।

मुमुक्षु :- श्रीमद्के एक पत्रमें आया है, ज्ञानमार्ग दूराराध्य है और भक्तिमार्ग वह सामान्य क्रम है। तो उनका कहनेका आशय क्या है? ज्ञानमार्ग यानी अभ्यास महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं है, परन्तु भक्ति करनी वह महत्त्वपूर्ण वस्तु है, ऐसा कहना चाहते हैं?

समाधान :- ज्ञानमार्ग यानी सब मनुष्य ऐसे गहरे विचार नहीं कर सकता, इसलिये भक्तिमार्ग (कहा है)। अर्थात् वह भक्ति ऐसी नहीं है कि वह भक्ति कोई कर देता है ऐसा नहीं है। उसकी महिमा तू ला, ऐसा। सत्पुरुषकी महिमा ला। सत्पुरुषोंने जो प्रगट किया है ऐसा आत्मा आराधने योग्य है। भक्ति यानी महिमा करने योग्य है। सत्पुरुषकी महिमा अर्थात् आत्माकी महिमा, उसे सम्बन्ध है। तू भगवाको पहचान या आत्माको पहचान, ऐसे। जिसने भगवानको नहीं पहचाना, उसने आत्माको नहीं पहचाना है। तू आत्माको पहचान तो भगवानकी पहचान होगी। और भगवानको पहचान तो आत्माकी पहचान होगी। भगवानकी महिमा ला। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्याय कैसे हैं? ऐसे महिमा आने पर वह विचार आयेंगे कि भगवान कैसे हैं? ऐसे सत्पुरुष कैसे हैं, कैसे हैं, ऐसे उसके विचार करते-करते उनका आत्मा क्या काम करता है? ऐसा विचार करते-करते तुझे आत्माकी ओर लक्ष्य जानेका कारण बनेगा।

ज्ञानमार्ग यानी शुष्कज्ञान ऐसे नहीं। ज्ञानमार्ग दूराराध्य है अर्थात् जिसे बहुत क्षयोपशम न हो, ज्यादा बात जान न सके परन्तु मूल प्रयोजनभूत ज्ञान तो होना चाहिये। प्रयोजनभूत न जाने तो फिर आगे ही नहीं बढ़ सकता।

मुमुक्षु :- भक्तिमार्गमें भी प्रयोजनभूत ज्ञान तो चाहिये ही।

समाधान :- प्रयोजनभूत ज्ञान तो समाया ही है। अकेली भक्ति, समझे बिना भक्ति करना, ऐसा अर्थ नहीं है। प्रयोजनभूत ज्ञानको लक्ष्यमें लेना। मैं चैतन्य हूँ, यह सब भिन्न है। ऐसा सब प्रयोजनभूत ज्ञान तो होना चाहिये। भले ज्यादा न जानता हो।

मुमुक्षु :- .. शास्त्रमें भी भक्तिकी इतनी महिमा है कि बात मत करो। श्रीमद्में भी भक्तिकी महत्ता बहुत दी है। परन्तु भक्तिका यही अर्थ लेना चाहिये। सामान्य पैर

पकड़नेकी बात नहीं लेनी चाहिये।

समाधान :- बिना समझकी भक्ति ऐसा अर्थ नहीं है। समझपूर्वककी भक्ति, ज्ञानीको पहचानकर भक्ति, उनकी महिमा और वस्तु स्वरूप क्या है, उसका मूल प्रयोजनभूत ज्ञान तो होना चाहिये, भान तो होना चाहिये। ज्ञानपूर्वककी भक्ति ही यथार्थ भक्ति है। बिना समझकी भक्ति ऐसी भक्ति तो अनन्त कालमें बहुत बार की है। समझनपूर्वककी भक्ति होती है।

और ज्ञान यानी एकदम रुखा ज्ञान, सिर्फ बातें करे और अंतरमें उसके हृदयमें गहराईमें यह सब भिन्न है, मैं भिन्न हूँ, अंतरमें-से उसे विरक्ति न आये और ऐसी बातें करे, उसके बजाय प्रयोजनभूत ज्ञानपूर्वककी भक्ति, ऐसा होना चाहिये। सब लोग ज्यादा जान न सके इसलिये (कहा), ज्ञानमार्ग दूराराध्य (है) अर्थात् ज्यादा जान न सके, परन्तु मूल प्रयोजनभूत ज्ञान तो होना चाहिये। ज्ञानीकी महिमा करे अर्थात् उसमें तेरे आत्माकी महिमा समायी है। तेरे आत्माकी ओर मुड़नेका कारण होगा।

मुमुक्षु :- पात्रता प्रगट करनी, वह व्यवहारमें आता है या निश्चयमें? श्रीमद्में भी बहुत जगह पात्रता, आत्मार्थीके लक्षण ऐसा आता है, तो पात्रता प्रगट करनी उसमें आत्मतत्त्व विशेष विकसीत होता है या व्यवहारमें उस जातका भाव आता है?

समाधान :- वह है तो व्यवहार, लेकिन उसमें आत्माका लक्ष्य होना चाहिये। निश्चय तो एक वस्तु मूल शुद्धात्मा वह निश्चय है। उसमें बीच-बीचमें जो भेदके भाव आये वह सब व्यवहार है। परन्तु वह व्यवहार किस जातका है, यह समझना है। निश्चयके लक्ष्यपूर्वकका व्यवहार होता है। बीचमें साधना क्रम आता है वह भी व्यवहार है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रके भेद पड़े वह भी व्यवहार है। लेकिन वह साधना तो बीचमें आये बिना रहती नहीं। मूल वस्तु शुद्धात्माको पहचान। उसमें दर्शन प्रगट होता है, ज्ञान प्रगट होता है, चारित्र प्रगट होता है। वह सब व्यवहारके भेद हैं। परन्तु ऐसी साधना व्यवहार तो बीचमें आये बिना नहीं रहता। परन्तु निश्चयपूर्वकका व्यवहार। आत्माका यथार्थ लक्ष्य करके, यथार्थ आत्माको लक्ष्यमें लेकर जो गुण प्रगट हो, वह सब व्यवहार ही है। गुणोंकी पर्याय प्रगट हो (वह व्यवहार है)।

ऐसे प्रारंभमें जो पात्रता आदि है वह सब व्यवहार है। एक मूल अभेद वस्तुके अलावा जो-जो भेद पड़े वह सब व्यवहार है। उसमें सद्भूत व्यवहार, असद्भूत व्यवहार वह सब व्यवहार है। बीचमें जो भेद पड़े, पात्रता आये वह भी व्यवहार है। लेकिन वह पात्रता ऐसी होनी चाहिये, जिसमें आत्मा प्रगट हो, ऐसी पात्रता होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- पात्रता न हो तो आत्मज्ञान नहीं होता, यह कथन सत्य है?

समाधान :- सत्य है, पात्रता न हो तो आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता।

मुमुक्षु :- सिर्फ बातें करे, शास्त्र अभ्यास करे ... नहीं तो निश्चयाभास होनेकी संभावना रहती है न?

समाधान :- हाँ, पात्रता बिना वस्तु प्रगट नहीं होती। पात्रता तो होनी चाहिये। प्रयोजनभूत जिसमें आत्मज्ञान प्रगट हो, ऐसी पात्रता तो होनी चाहिये। पात्रताके बिना यथार्थ ज्ञान प्रगट नहीं होता। यथार्थ भेदज्ञान प्रगट नहीं होता। कारण यथार्थ हुए बिना कार्य प्रगट नहीं होता।

मुमुक्षु :- मोक्षमार्ग प्रकाशकमें आता है, निश्चयाभास और व्यवहारभासी। उसमें निश्चयको भी मानता है और व्यवहारको मानता है, जो उभयको मानता है उसको कैसे जूठा कह सकते हैं?

समाधान :- दोनोंको मानता है,...

मुमुक्षु :- व्यवहार व्यवहारकी अपेक्षासे सच्चा है, निश्चय निश्चयकी अपेक्षासे सच्चा है, फिर भी दोनों माननेवालेको हम जूठा कहते हैं, ऐसा कैसे?

समाधान :- दोनों माने तो भी जूठा है। यह भी सच्चा है और यह भी सच्चा। समझे बिना दोनोंको सच्चा माने वह जूठा है। निश्चय किस प्रकारसे सच्चा है? मूल वस्तु स्वभावसे निश्चय सच्चा है। और व्यवहार पर्याय एवं भेदकी अपेक्षासे सच्चा है। जिस प्रकारसे निश्चय सत्य है, उसी प्रकारसे व्यवहार सत्य है। दोनों समानरूपसे सच्चा मानता है। दोनोंकी अपेक्षाएँ समझता नहीं है। दोनोंकी कोटि कैसी है, उसे समझता नहीं है और दोनों समानरूपसे सच्चा है, ऐसा मानता है वह जूठा है।

दोनोंको सच्चा माननेवाला दोनों पर समान वज़न देता है। यह भी सच्चा और यह भी सच्चा। दोनोंको समान वज़न देता है। किस अपेक्षासे निश्चय मुख्य और व्यवहार गौण है? और प्रयोजनभूत व्यवहार बीचमें आता है। व्यवहारकी अपेक्षा समझता नहीं है और निश्चय मूल वस्तु समझता नहीं है, दोनोंको समान वज़न देता है। यह भी सच्चा है और यह भी सच्चा है। वह भी जूठा है। समझे बिना दोनों सच्चा माने वह जूठा है।

दोनों किस प्रकारसे सच्चे हैं, वह समझना चाहिये। दोनोंको समझना चाहिये। मूल वस्तु स्वभावसे निश्चय सच्चा है। व्यवहार उसकी पर्याय अपेक्षासे सच्चा है। क्षणिक पर्याय, जो साधनाकी पर्याय, बीचमें विभाव आये, सद्भूत शुद्धात्माकी शुद्ध ... ऐसे सच्चा है। पर्याय नहीं है ऐसा नहीं, पर्याय भी है। उसकी अपेक्षासे व्यवहार सच्चा है। वह मूल वस्तुकी अपेक्षासे सच्चा है। ये तो दोनोंका समान वज़न देता है। दोनों मानों कैसे हो, ऐसे वज़न देता है, वह दोनों जूठे हैं। एक भी सत्य नहीं है, एक भी समझता नहीं है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१५

मुमुक्षु :- अन्दरसे विचार करने पर बहुत बार ऐसा लगता है कि ... फिर सांसारिक काममें लगने पर अस्त हो जाता है..

समाधान :- स्वयंकी कचास है। अन्दर लगन ऐसी होनी चाहिये कि कहीं चैन पड़े नहीं। अंतरमें-से मुझे जो प्रगट करना है वह होता नहीं है। बाहर कहीं सुख न लगे। सुख अंतरके स्वभावमें है। उसे खटक रहनी चाहिये, दृष्टि कहीं थँभे नहीं, कहीं चैन पड़े नहीं। ऐसी लगन होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ... अनुभव नहीं हुआ है, उसकी लगन कैसे लगे? आत्माके आनन्दकी लगन लगे, आत्मिक आनन्दका अनुभव नहीं हुआ है। प्रत्यक्ष देखे, सोनगढ़ देखा तो मैं कह सकता हूँ कि सोनगढ़में इतनी-इतनी चीज अच्छी है। सोनगढ़ देखा नहीं है। वैसे आत्माका अनुभव नहीं हुआ है, अनजानी वस्तुकी लगन कैसे लगानी?

समाधान :- उसका अनुभव नहीं हुआ है। उसके लक्षणसे नक्की करे। कहीं सुख नहीं है, ऐसा तो उसे अंतरसे लगना चाहिये कि सुख कहीं नहीं है। तो सुख कहाँ है? सुख अंतर आत्मामें अंतरमें होना चाहिये। उसका विचार करके लक्षणसे नक्की करे। महापुरुष कहते हैं, उसे स्वयं विचारसे नक्की करे कि अंतरमें ही सुख है, बाहर कहीं नहीं है।

सुख है ही नहीं, ऐसा तो विश्वास आना चाहिये। अंतरमें-से विचार करके उसे लगे कि अंतरमें देखे तो सुख कहीं नहीं है। वह स्वयं नक्की कर सके ऐसा है। सुख अन्दर आत्मामें भरा है। अपने विचारसे नक्की हो ऐसा है। उसके लक्षण परसे। अनुभव नहीं है तो भी।

मुमुक्षु :- पहले लक्षणसे विशेष स्पष्टता होगी, अनुभवसे, पहले तो विकल्पमें ही निर्णय होगा, बादमें..

समाधान :- पहले तो विकल्पसे निर्णय करे। बादमें अनुभव होता है।

मुमुक्षु :- निवृत्ति नहीं ली है, उस सम्बन्धित आपका कोई आदेश? लगन तो आप कहते ही हो।

समाधान :- सबकी रुचि। निवृत्तस्वरूप आत्मा है। गुरुदेवने आत्माको बहुत बताया

है। जिसे लगन लगती है वह छूटता है। लगन नहीं है, जिसे अंतर आत्माकी लगी नहीं है, वह नहीं छूटता है। अंतरमें-से न्यारा होना वही मार्ग है-भेदज्ञान।

मुमुक्षु :- संसारके प्रलोभन आगे स्थिर नहीं रहा जाता, उस वक्त उसके सामने लड़नेके लिये कौन-सा शस्त्र आजमाना चाहिये, लगनीके अलावा?

समाधान :- लगनके अलावा स्वयंको अंतरमें नक्की हो जाना चाहिये, इसमें कहीं सुख ही नहीं है। अपनी रुचि लगनी चाहिये, अन्दरसे उतना श्रद्धाका बल आना चाहिये। वही उसका शस्त्र है। अपनी श्रद्धा और वैसी विरक्ति और ऐसा निश्चय अन्दरसे अमुक लक्षण परसे नक्की होना चाहिये कि इसमें कहीं सुख नहीं है, सुख मेरे आत्मामें ही है। वही उसका अन्दर (शस्त्र है)। इस तरह वह न्यारा रह सकता है। स्वयंकी रुचिसे ही भिन्न रह सकता है।

मुमुक्षु :- (योग्यता) ज्ञानप्राप्तिके लिये बलवान कारण है, तो योग्यता कैसी होनी चाहिये?

समाधान :- योग्यता अंतरमें आत्माकी ओर लगन होनी चाहिये। मुझे आत्माकी कैसे प्राप्ति होवे? और आत्मज्ञान कैसे होवे? आत्माके अलावा कहीं चैन न पड़े। मुझे आत्मस्वरूपकी कैसे प्राप्ति होवे? ऐसी लगन लगनी चाहिये। और बाहरसे सब विरक्ति हो जाय और स्वभावमें ही लगन होनी चाहिये। ऐसी पात्रता होनी चाहिये।

श्रीमद्में आता है न? कषायकी उपशांतता मात्र मोक्ष अभिलाष। मात्र मोक्षकी अभिलाष। मात्र मुझे मोक्ष यानी आत्मस्वभावकी प्राप्तिकी भावना होवे और कुछ नहीं। जो अनन्तानुबन्धी कषाय जो अनन्त-अनन्त रुकनेवाला है बाहरमें एकत्वबुद्धि होती है, उसे ऐसी कषायकी उपशान्तता होनी चाहिये। और आत्मस्वभावकी एकदम जिज्ञासा होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें एक बोल आता है, माताजी! बन्ध समय जीव चेतीए, उदय समय शा उचाट? उसका भाव क्या है? माताजी!

समाधान :- उदय समय क्या उचाट? उदय तो आ गया, तो उस समय शान्ति रखनी। जो पूर्वमें बान्धकर आया था, वह उदय तो आ गया। तो उस समय शान्ति रखना कि उदय तो आ गया। अब ज्ञाता-दृष्टा होकर शान्तिसे (वेदना)। बन्ध समय चेतना चाहिये। जब बन्ध होता है तब परिणाम कैसा होता है, उस समय ध्यान रखना। और उदय आ गया तो अब क्या चिन्ता करनी, अब तो शान्ति रखनी, ज्ञायकता प्रगट करनी। और बन्ध जब होता है, तब परिणाम जो एकत्वबुद्धि और तन्मयता, एकदम चीकनापन होता है, उस समय ध्यान रखना कि मैं ज्ञाता हूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है। उस समय ध्यान रखना। बन्ध हो गया, उदय आ गया, फिर क्या चिन्ता (करनी)? अतः शान्ति रखनी। ज्ञायकता प्रगट करनी।

मुमुक्षु :- माताजी! पूज्य गुरुदेव कहते थे, अपनी शुद्ध पर्याय भी परद्रव्य है, हेय है, तो अब दशा तो प्रगट हुयी नहीं है और उसके परद्रव्य और हेय कैसे स्वीकार करे?

समाधान :- पर्याय परद्रव्य तो अपेक्षासे (कहा है)। परद्रव्य है और आत्माकी पर्याय है। उसका एक अंश है, इसलिये परद्रव्य कहनेमें आता है। वास्तवमें परद्रव्य है ऐसा (नहीं है)। दो द्रव्य भिन्न हैं, छः द्रव्य जैसे भिन्न-भिन्न हैं, ऐसे पर्याय उस तरह भिन्न नहीं है। वह तो द्रव्यके आश्रयसे होती है। शुद्धात्माकी पर्याय है। परन्तु शुद्धात्मा त्रिकाल है, वह अंश है। इसलिये परद्रव्य कहनेमें आता है। उस पर दृष्टि करनेसे भेद होता है। ऐसा भेद विकल्प नहीं करना और अभेद पर दृष्टि करना, ऐसा कहते हैं। उसमें कोई कर्मकी अपेक्षा, अपूर्ण पर्याय, पूर्ण पर्याय ऐसी अपेक्षा आती है। आत्मा तो अनादिअनन्त है। इसलिये परद्रव्य कहनेमें आता है। वास्तविकमें जैसे छः द्रव्य है, वैसा परद्रव्य नहीं है।

मुमुक्षु :- रागकी पर्यायको तो परद्रव्य कहेंगे।

समाधान :- परके निमित्तसे होती है इसलिये परद्रव्य। परन्तु पुरुषार्थकी मन्दतासे होती है, इसलिये विभावसे होती है, अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होती है। दृष्टि पलट दे तो छूट जाती है। कर्मके निमित्तसे होती है इसलिये उसको परद्रव्य कहनेमें आता है। उसमें तो अपूर्ण, पूर्ण पर्याय कर्मकी अपेक्षा आती है, अपूर्ण, पूर्ण, कर्मका अभाव हुआ इसलिये उसको परद्रव्य कहनेमें आता है। भेद-भेद विकल्प करनेसे विकल्प मिश्रित होता है इसलिये उसको परद्रव्य कहनेमें आता है। वास्तविक वह शुद्धात्माके आश्रयसे होती है और क्षणिक है। अपेक्षा समझनी चाहिये।

मुमुक्षु :- माताजी! वर्तमान ज्ञान पर्याय है। लक्षण द्वारा लक्ष्य आत्माकी प्रसिद्धि करना। वर्तमानमें जो मतिज्ञानकी पर्याय है, उससे लक्ष्य आत्माकी प्रसिद्धि हो जायगी?

समाधान :- वर्तमान ज्ञानकी पर्याय है, उस लक्षणसे लक्ष्य पीछानना। द्रव्य पर दृष्टि करके द्रव्यमें-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। परन्तु मतिज्ञान लक्षण है, लक्ष्यको पीछानना। लक्षणसे लक्ष्य चैतन्यद्रव्यको ग्रहण करना। ऐसा कहनेमें आता है।

मतिज्ञान खण्ड है, अधूरा ज्ञानसे पूरा ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। द्रव्यके आश्रयसे पूरा ज्ञान होता है। पूरी पर्याय, शुद्ध पर्याय द्रव्यके आश्रयसे शुद्ध पर्याय होती है। ऐसे मतिज्ञान तो बीचमें आता है। मतिज्ञानके लक्षणसे आत्माको पीछानना।

मुमुक्षु :- कल जो टेपमें आता है, गुरुदेव कह रहे थे कि खरेखर तो परद्रव्यको जानता ही नहीं है।

समाधान :- परद्रव्यको जानता नहीं है अर्थात् अपना ज्ञानस्वभावको (जानता है)।

इसलिये परको जाननेका स्वभाव नहीं है, उसका स्वपरप्रकाशक स्वभाव ही नहीं है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। जानता नहीं है अर्थात् उस ओर उपयोग नहीं करता है, उसमें परिणति एकत्वता नहीं करती है। और इस ओर उपयोग अपने स्वभावमें परिणति लीन हो जाय तो सहज जाननेमें आता है। इसलिये परको जानता नहीं है। निश्चयदृष्टिसे अपने ज्ञानको जानता है, परद्रव्यको नहीं जानता है। उसमें परका ज्ञान नहीं होता है, ऐसा नहीं है। परको जाननेका स्वभाव है आत्माका। परका ज्ञान आत्मामें नहीं आता है, परको बिलकूल जानता ही नहीं है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उपयोग उस ओर नहीं करता है।

मतिज्ञानसे केवलज्ञान होता है, वह तो साधक पर्याय जो स्वानुभूति होती है, वह मतिज्ञान-श्रुतज्ञानमें होती है। साधकपर्यायसे पूरी पर्याय (होती है), ऐसा कहनेमें आता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान केवलज्ञानको लाता है, ऐसा भी कहनेमें आता है। इसलिये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान जो स्वानुभूतिकी पर्याय प्रगट हुयी उससे पूरी पर्याय प्रगट होती है, ऐसा भी कहनेमें आता है। द्रव्यदृष्टिसे पूर्णता होती है और मतिज्ञान स्वानुभूतिका एक अंश प्रगट हुआ तो उससे पूर्णता होती है। साधक पर्याय बढ़ते-बढ़ते, उसकी वृद्धि होते-होते पूर्णता होती है, ऐसा कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- माताजी! जैसे श्रद्धा और चारित्रगुणकी पर्यायमें विधविध परिणमन चल रहा है अनादिसे, तो वैसे ज्ञानकी पर्यायमें भी विपरीत परिणमन हो गया है?

समाधान :- श्रद्धा और चारित्रमें विपरीतता होती है, ऐसे ज्ञानमें विपरीतता, ज्ञान विपरीत नहीं होता है। ज्ञानमें जाननेमें विपरीतता होती है। ऐसे। श्रद्धाके कारणसे उसमें विपरीतता कहनेमें आती है। जानना तो जानना है, परन्तु श्रद्धा विपरीत है इसलिये ज्ञान भी विपरीत कहनेमें आता है। श्रद्धाकी विपरीतताके कारण ज्ञान भी विपरीत कहनेमें आता है। श्रद्धा यदि सम्यक् हो जाय तो ज्ञान भी सम्यक् हो जाता है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें एक बोल आता है कि चैतन्यके परिणामके साथ कुदरत बन्धी हुयी है, ऐसा वस्तुका स्वभाव है। कैसे है माताजी?

समाधान :- जो चैतन्यका परिणाम है, जो भावना होती है कि मुझे आत्माका स्वभाव प्रगट करना है, तो ऐसी परिणति होती ही है। जिसकी जो भावना होती है, वैसे कुदरत परिणमती ही है। यदि परिणमे नहीं तो द्रव्यका नाश हो जाय। जो द्रव्यकी भावना होती है, उस रूप परिणमन होता है। अपना और दूसरेका। स्वयं उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध है।

जैसी भावना होती है वैसे कुदरत परिणमती है। नहीं तो द्रव्यका नाश होता है। ऐसा वस्तुका स्वभाव ही है। इस तरह ज्ञान, दर्शन, चारित्र जैसी भावना हो वैसे परिणमती

है। ऐसे बाहरमें भी निमित्त भी स्वयं परिणमता है, उपादान भी परिणमता है। ऐसा कुदरत-ऐसा स्वभाव है। परन्तु यथार्थ होना चाहिये।

मुमुक्षु :- एक बोल और आता है, माताजी! कि जागता जीव विद्यमान है, कहाँ जाय? जागता जीव माने कैसा?

समाधान :- आत्मा तो जागृत ही है। वह सदाके लिये शाश्वत जागृत ही है। ज्ञानस्वरूप जागृत ही है। उसका नाश नहीं हुआ है। नहीं जानता है ऐसा जड़ नहीं हो गया है। जागता जीव जागृत ही है, विद्यमान है। स्वयं लक्ष्य करे तो प्रगट हो ऐसा है। जागृत ही है। जागता जीव विद्यमान ही है, शाश्वत विद्यमान है। उस पर दृष्टि करके जाने तो अवश्य प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- .. पुरुषार्थ करनेकी युक्ति सूझ जाय तो मार्गकी उलझन टल जाय।

समाधान :- भीतरमें ज्ञायकस्वभाव आत्माका ज्ञानलक्षण पीछान ले कि यह लक्षण मेरा है, यह लक्षण विभाव लक्षण है, यह स्वभाव लक्षण है। स्वभाव लक्षणको पीछानकरके परिणति उसमें दृढ़ करे, दृढ़ प्रतीत करे, उसका ज्ञान दृढ़ करे, उसमें लीनता करे। ऐसे पुरुषार्थकी कल सूझ जाय ऐसी कला सूझ जाय। भीतरमें जानेका रास्ता उसे हाथमें आ जाय तो उलझन टल जाय। ऐसे।

स्वभावके लक्षणको पीछान ले। भीतरमें गहराईमें जाकर, गहरे जाकर लक्षणको ग्रहण कर ले और भीतरमें परिणति दृढ़ करे तो उसकी उलझन टल जाय। कला सूझ जाती है। परन्तु धीरा होकर आत्माको ग्रहण करना चाहिये।

मुमुक्षु :- राजचन्द्रजीके वचनामृतमें आता है कि ज्ञानी गुरुको पहचाने तो अपनी आत्माकी पहचान हो ही हो। तो ज्ञानी गुरु कैसे पहचाने?

समाधान :- ज्ञानी गुरु पीछानमें आ जाते हैं। जिसको सत् स्वरूपकी जिज्ञासा लगती है कि मुझे सत् कैसे प्रगट हो? तो उसे ज्ञानी, ये सत् ज्ञानी है, ऐसा उसको पीछानमें आ जाता है। ज्ञानी है, आत्मा न्यारा कोई अपूर्व काम कर रहा है, उनकी वाणी अपूर्व है, ये अपूर्व है। उसे पीछान ले तो मार्ग हाथमें आ जाता है। ज्ञानीको पीछान लेता है।

जिसको सत्की जिज्ञासा प्रगट होती है, वह ज्ञानीको पीछान लेता है। उसका नेत्र ऐसा निर्मल हो जाता है, वह ज्ञानीको पीछान लेता है। और जो ज्ञानीको पीछान ले वह अपने आत्माको पीछान लेता है।

मुमुक्षु :- शरीर, रागसे एकत्वबुद्धि वर्त रही है, तो ये एकत्वबुद्धि कैसे तोड़े?

समाधान :- एकत्वबुद्धि भेदज्ञानसे टूट जाती है। भेदज्ञान करे तो एकत्वबुद्धि टूट जाय। भेदज्ञान करनेसे एकत्वबुद्धि टूट जाती है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शनका विषयभूत आत्मा कैसा है?

समाधान :- सम्यग्दर्शनका विषयभूत? आत्मा अनादिअनन्त शाश्वत है। उस पर दृष्टि करे। अनन्त गुणसे भरपूर आत्मा शाश्वत है। गुण पर दृष्टि नहीं है, कोई भेद पर दृष्टि नहीं है। अभेद आत्मा पर दृष्टि करना। एक चैतन्यतत्त्व पर, अभेद पर दृष्टि करना। वह सम्यग्दर्शनका विषयभूत आत्मा है। परसे विभक्त कर स्वभावमें एकत्वबुद्धि करके, गुणका भेद नहीं, पर्यायका भेद नहीं एक चैतन्य ज्ञायक अस्तित्व पर उसकी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शनका विषयभूत आत्मा है।

मुमुक्षु :- .. कभी तो ऐसा लगता है कि ये परप्रकाशक है ही नहीं। कभी ऐसा लगता है कि स्वपरप्रकाशक है। उसमें आप स्पष्ट खुलासा...

समाधान :- गुरुदेव तो अपेक्षासे सब बोलते थे। परप्रकाश नहीं है, तो वह निश्चयकी अपेक्षासे कहते हैं। ज्ञान ज्ञानको जानता है, ज्ञान परको नहीं जानता है। उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि जाननेका स्वभाव नहीं है। स्वभावका नाश नहीं होता है। गुरुदेव तो ऐसा कहते हैं, स्वमें जब उपयोग जाता है, आत्मामें परिणति होती है तो ज्ञान ज्ञानको जानता है। परमें जाता ही नहीं है। इसलिये ज्ञान ज्ञानको ही जानता है। ज्ञानकी परिणति ज्ञानमें होती है। इसलिये परको नहीं जानता है, ऐसा इसका अर्थ है।

परन्तु ज्ञानका स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, उस स्वभावका नाश नहीं होता। ज्ञान उसका नाम है कि जो अनन्तको जाने। इसलिये जाननेकी मर्यादा नहीं होती है। ज्ञान उसका नाम कहनेमें आता है कि जो पूर्ण जाने। इतना जाने और इतना नहीं जाने, ऐसा ज्ञानका स्वभाव नहीं है। ज्ञान तो पूर्ण जानता है। इसलिये ज्ञानमें परको जाननेका आता नहीं है ऐसा नहीं है। ज्ञानका स्वभाव सब ज्ञेयको जानता है। अनन्त काल गया, अनन्त द्रव्य परिणमन करते हैं। अनन्त द्रव्यके गुण, अनन्त गुणकी पर्याय, अनन्त चैतन्य द्रव्य, उसके अनन्त गुण, उसकी अनन्त पर्याय सब ज्ञानमें आ जाता है। ज्ञानकी पर्यायमें सब आ जाता है। केवलज्ञान सबको जानता है।

इसलिये परप्रकाशक नहीं है उसका अर्थ अपना ज्ञानका उपयोग परमें नहीं जाता है, ज्ञान ज्ञानमें परिणमन करता है। इसलिये परको नहीं जानता है। ज्ञान ज्ञानमें है, अपना स्वभाव अपनेमें रहता है, परमें नहीं जाता है। इसलिये ज्ञान ज्ञानरूप परिणमन करता है, इसलिये परको नहीं जानता है। उसका ऐसा स्वभाव नहीं है कि ज्ञान परको जानता ही नहीं है, जाननेका स्वभाव ही नहीं है। जाननेका स्वभाव है आत्माका, स्वपरप्रकाशक है, परको जानता है, नहीं जानता है ऐसा नहीं।

गुरुदेव दोनों बात करते है। दोनों बातमें मेल करना चाहिये। नहीं जानता है ऐसा कहते हैं तो कोई अपेक्षासे कहते हैं। नहीं जानता है, बिलकूल नहीं जानता है ऐसा

उसका अर्थ नहीं है। जाननेका उसका स्वभाव ही नहीं है, ऐसा नहीं है। जानता है। ज्ञान अनन्तको नहीं जाने तो उस ज्ञानकी महिमा (क्या)? ज्ञान अनन्तको जानता है। सबको जानता है। ज्ञानमें कुछ गुप्त नहीं रहता है। सब ज्ञेयोंको जानता है, अनन्त ज्ञेयोंको जानता है, ज्ञान तो। इसलिये स्वपरप्रकाशक ज्ञानका स्वभाव है। उसका उपयोग परमें नहीं जाता है, अपनेमें परिणमन करता है।

मुमुक्षु :- स्वपरप्रकाशक शक्ति तो एक है।

समाधान :- हाँ, स्वपरप्रकाशक शक्ति एक है।

मुमुक्षु :- एक ही है?

समाधान :- हाँ, एक ही है। स्वरूपमें परिणमन करता है। स्वको जानता है, परको जानता है। सब एकसाथ जानता है। उसमें क्रम नहीं पड़ता है। स्व और पर दोनोंको एकसाथ जानता है। ऐसा ज्ञानका स्वभाव है। एकसाथ जानता है। जाननेका स्वभावका नाश नहीं होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१६

मुमुक्षु :- ११४ गाथा प्रवचनसारमें आता है, परको जानना सर्वथा बन्द कर दिया। ऐसी प्रक्रिया बताते हैं। पर्यायचक्षुको सर्वथा बन्द कर दे, तब द्रव्यचक्षु उघड़ता है।

समाधान :- सर्वथा बन्द कर दे उसका अर्थ है कि उसका उपयोग परमें जाता है न? उस उपयोगको स्वमें लाओ। छद्मस्थका उपयोग बाहरमें जाता है तो क्रम-क्रमसे जानता है। इसलिये तू उपयोग अपनी ओर ला। सर्वथा बन्द करनेका अर्थ ऐसा है कि उपयोग अपनेमें ला। राग आता है, उसमें एकत्वबुद्धि होती है इसलिये राग मत कर, ऐसा कहना है। जाननेका बन्द कर, उसका अर्थ राग बन्द कर। राग टाल दे, ऐसा उसका अर्थ है। तू स्वभावमें लीन हो जा। बादमें केवलज्ञान प्रगट होता है तो वह सबको जानता है। वीतरागता प्रगट कर दे, ऐसा उसका अर्थ है। तू जाननेका स्वभावका नाश कर दे ऐसा अर्थ नहीं है। तेरे स्वभावका नाश कर दे ऐसा अर्थ नहीं है। राग टाल दे और उपयोग स्वरूपमें ला, ऐसा।

छद्मस्थ तो एक बार जाने तो एक तरफ जान सकता है। इसलिये स्व-ओर उपयोग आवे तो पर-ओर उपयोग जाता नहीं है। इसलिये परको जाननेका सर्वथा बन्द कर दे। एक तरफ जाने, उपयोग तो एक तरफ जाता है। परिणति सब ओर रहती है। ज्ञानका उपयोग तो फिरता रहता है। स्वानुभूतिमें उपयोग जाय तो परको जानना छूट जाता है। और स्वानुभूतिमें लीन हो जाय तो पर-ओर उपयोग जाता नहीं है। आत्माका वेदन स्वानुभूतिमें होता है। इसलिये परको जाननेका स्वभाव नाश नहीं होता है।

मुमुक्षु :- एक प्रश्न था कि भगवान ऐसा कहते हैं कि हम अपनेको देखते हैं, तुम भी अपनेको देखो, परको मत देखो।

समाधान :- भगवान क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :- भगवान कहते हैं, हम अपनेको देखते हैं, तुम भी अपनेको देखो, परको मत देखो।

समाधान :- परको मत देखो अर्थात् पर-ओर उपयोग, परका राग मत करो। अनादि कालसे उपयोग बाहर भ्रमण कर रहा है। अपना अवलोकन करो, उसमें सब आ जाता है। अपनेको अवलोकन (करे)। जो स्वभाव है वह सब उघड़ जाता है। पर जाननेकी

क्या चिन्ता? ऐसी आकुलता क्या करता है? यह जानुँ, यह जानुँ, यह जानुँ ज्ञेयको जाननेकी आकुलता मत करो। आकुलता करनेसे जाननेमें नहीं आता। ज्ञेय जाननेकी आकुलता नहि कर। जो एकको जानता है, वह सबको जानता है। सब जाननेकी आकुलता करता है, वह अपनेको नहीं जानता है, परको नहीं जानता है। एक आत्माको जानो, बस! उसमें सब आ जाता है।

जाननेका राग मत करो। स्वरूपमें लीन हो जाओ तो स्वभावका नाश नहीं होता है। उसमें जो ज्ञान है वह प्रगट हो जाता है। निर्मल ज्ञान। एक आत्माको जानो। ज्ञेय जाननेकी आकुलता मत करो। एक आत्माको जानो। उसमें सब आ जाता है।

मुमुक्षु :- ३१वीं गाथामें (आता है), जे इन्दिय जिणित्ता-इन्द्रियोंको जीतनेवाला जिन है। खण्ड ज्ञानको जीतनेवाला कैसा? भावइन्द्रियको जीतनेवाला कैसा? उसका खुलासा।

समाधान :- बाहर खण्ड खण्ड उपयोग जाता है। वह उपयोग जो है, वह खण्ड खण्ड जाता है तो आकुलता होती है। अधूरा ज्ञान अपना स्वभाव नहीं है। अखण्ड आत्मा पर दृष्टि करो। मैं अखण्ड हूँ। खण्ड खण्ड आत्माका पूरा स्वभाव नहीं है। वह तो क्षयोपशम ज्ञान है। क्षयोपशम ज्ञानसे दृष्टि उठा ले। वह तो क्षयोपशम ज्ञान है। क्षायिक ज्ञान भी एक पर्याय है। एक पारिणामिकभाव अनादिअनन्त चैतन्य ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि करो, बस! वही जितेन्द्रिय, जिन है। ज्ञायक स्वभाव पर दृष्टि करो। क्षयोपशमभाव परसे दृष्टि उठा ले। एक क्षयोपशम ज्ञानकी क्या महिमा है? वह तो आकुलता है, क्रमवाला ज्ञान है। इहा, अवाय और धारणा ऐसे ज्ञानमें आकुलता होती है। ऐसे ज्ञान पर दृष्टि मत करो। एक अखण्ड पर दृष्टि करो। बीचमें तो आता है, उसको जान लो। खण्ड खण्ड उपयोग तो, जबतक पूर्ण नहीं हो जाता, तब क्षयोपशम ज्ञान तो रहता है। क्षयोपशम ज्ञान तो मुनिओंको भी रहता है। परन्तु उस पर दृष्टि नहीं करते। अखण्ड ज्ञान पर दृष्टि देते हैं। फिर मुनिओंको श्रुतज्ञान प्रगट होता है। उस पर दृष्टि नहीं करते हैं तो श्रुतज्ञानकी लब्धि प्रगट होती है। चौदह पूर्व ग्यारह अंगका ज्ञान प्रगट हो जाता है, भावलिंगी मुनिको। क्षयोपशम ज्ञान पर वे दृष्टि नहीं देते हैं, तो भी उघाड हो जाता है। बीचमें ऐसी श्रुतज्ञानकी लब्धि (प्रगट होती है)। उसमें जो शक्ति भरी है तो निर्मलता प्रगट होती है, उसमें सब प्रगट होता है।

उसका नाश नहीं होता है, परन्तु उस परसे दृष्टि हटा दे, उसकी महिमा हटा दो, उसको जाननेकी आकुलता छोड़ दो। फिर सहज हो जाता है तो हो जाता है। अखण्ड पर दृष्टि देनेसे केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। केवलज्ञान पर भी दृष्टि मत दो, वह तो प्रगट हो जाता है। बीचमें आत्माकी जो विभूति है वह सब प्रगट हो जाती है। उसका नाश नहीं होता।

मुमुक्षु :- परको जाननेकी आकुलता नहीं करे, लेकिन परको नहीं जाननेकी भी आकुलता करना ठीक है कि नहीं?

समाधान :- हाँ, नहीं जाननेकी आकुलता भी... मैं मलिन हो गया, निकाल दो, ऐसा भी नहीं करना चाहिये। शास्त्रमें समयसार कलशमें आता है कि मुझे मलिनता हो गयी, तो निकाल दो, निकाल दो। परन्तु राग निकालनेका है, जाननेका कहाँ निकाल दो, निकाल दो। ऐसा शास्त्रमें कलशमें आता है। जाननेकी आकुलता नहीं करना। जाननेमें आ जाय तो निकाल दो, नाश कर दो। ज्ञानका नाश करना है क्या? ज्ञानका नाश नहीं होता।

अनन्त कालमें जो प्रत्यभिज्ञान पड़ा है, तो सब जाननेमें पड़ा है। बचपनसे बड़ा हुआ तो वह सब ज्ञानमें पड़ा है। ज्ञानको निकाल दो। कैसे निकालना? स्वभाव कैसे निकल जाता है? पूर्व भवमें-से आया, सब जो-जो हुआ वह ज्ञानमें पड़ा है। ज्ञानमें आता है तो ऐसे कैसे निकल जाता है। बचपनसे अभी तकका ज्ञान हुआ तो ज्ञानका नाश कर दे, ज्ञान कैसे निकल जाता है? ज्ञान निकलता नहीं है। राग निकलता है, ज्ञान निकलता नहीं है। उसका कैसे नाश होता है?

मुमुक्षु :- पहले अपने यहीं-से-सोनगढ़-से बात चलती थी। हम लोग तो दूर-दूर रहते हैं। और जयपुरसे वही बात चलने लग गयी। हम लोगोंकी बुद्धि तो इतनी है नहीं। अभी तक तो यही जानते थे कि जो यहाँ बात चलती है, वही वे चलाते हैं। क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि माल भी गुरुदेवका है, मार्केट भी गुरुदेवका है। उसमें फ़र्क़ क्या डलता है, वह हमारी पकड़में नहीं आया था। सो आपसे प्रश्न किया। अब भी कोई विशेष बात हो कि जिससे बचके रहे। हमारे कानमें तो वही पड़ना है। हमें तो जाना वहीं है और वहीं सुनना है। क्या फ़र्क़की बात है?

समाधान :- अपनेको विचार करना। विचार करना, अपनी बुद्धिसे विचार कर लेना कि क्या फ़र्क़ होता है। गुरुदेवके प्रवचनमें दोनों बात आती है। उसका मेल करना चाहिये। गुरुदेव एक बात नहीं कहते हैं, गुरुदेव दोनों बात करते हैं। उसका मेल करना चाहिये।

मुमुक्षु :- सुनना था आपसे, मेल करना क्योंकि गुरुदेवके प्रवचन आ जाते हैं, प्रवचन गुरुदेवके ही आते हैं। उनकी बात पर चलती है।

समाधान :- सबकी सन्धि करनी चाहिये। शास्त्रमें भी दोनों बात आती है। शास्त्रमें उसका भी मेल करना चाहिये। निश्चयकी बात आये, व्यवहारकी बात आये। जो अपेक्षासे निश्चय है उसको निश्चय। असली स्वरूपमें क्या है, व्यवहार उसमें साथमें कैसे रहता है, सबको जानना चाहिये। वस्तु स्वरूप अनादिअनन्त वस्तु शुद्ध है। बीचमें साधक

दशा आती है। ज्ञान, दर्शन, चारित्रके भेद पर दृष्टि मत कर। तो भी बीचमें भेद तो आता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब बीचमें आता है। तो उसका सब मेल करना चाहिये। निश्चय-व्यवहारका मेल करना चाहिये। समझना चाहिये।

मुमुक्षु :- अब तो आपने जो कहा उस पर हम अभ्यास करेंगे और आपकी जयंति पर आयेंगे, जो कुछ बात होगी तो कर लेंगे। माताजी! .. हम पामर प्राणिओंको संबोधनेके लिये पधारी। आज पूज्य गुरुदेव नहीं है यहाँ पर, फिर भी आपश्री विद्वान हैं तो ऐसा लगता है कि मानों साक्षात् गुरुदेव ही विद्यमान हैं और गुरुदेवका ही सब कुछ हमको मिल रहा है। बडे भाग्यशाली हैं कि आपके दर्शन, आपकी बात सुननेको मिली। यह तो जन्म-मरणका अभाव करनेवाली है, माताजी! दुनियामें कहीं भी चले जायें राग-रंगकी बात (चलती है)। यह बात कहीं नहीं है।

समाधान :- गुरुदेवका प्रताप है। गुरुदेवने सब समझाया है। मैं तो उसका दास हूँ। उन्होंने जो समझाया है वह कहते हैं।

मुमुक्षु :- हम लोग कल चल जा रहे हैं। जो गलती हुयी हो, क्षमा करना आप।

समाधान :- ... ऐसा ही मानना, मुझे ऐसा विचार आया कि मानना परन्तु ये सब माहोल... विचार आया इसलिये हो जाय ... गुरुदेव तो विचार भी जानते थे। अन्दर भावना हो कि गुरुदेव पधारो, पधारो विनंती करनेका भाव आया तो गुरुदेव समाधान कर दिया कि मैं हूँ ऐसा ही मानो। ये सब बेचारे.. तो सबको शान्ति हो जाय।

मुमुक्षु :- आपके विचार और आपकी भावना अनुसार गुरुदेवने कर दिया।

समाधान :- स्वर्गमें बैठे हैं फिर भी मानों उनकी शक्ति चारों ओर फैल जाती है। गुरुदेवको पधारना... मैं हूँ, ऐसा ही मानना। गुरुदेव पधारे ऐसा भी किसीको कहना नहीं रहा, सबको ऐसा हो गया कि गुरुदेव है। ... ये सबका क्या होगा? ऐसा मुझे हो जाय। गुरुदेव इसमें कैसे पधारे?

... पहले देखा था न। थोड़ा स्वप्न आया। कहो तो सही सबको। ... ये सजावट कैसी? ये तो सजावट है। ... ऐसी सजावट! गुरुदेव पधारे ऐसी भावना अन्दर हुयी। गुरुदेव पधारो। गुरुदेव मानों देवके रूपमें हाथ करते हैं कि ऐसा ही रखना कि मैं यहीं हूँ। ... ये सजावटी कैसी! ये तो सजावट है। गुरुदेव पधारो। ये कैसी सजावट है। उसी दिन जल्दी सुबह ऐसा हुआ कि ऐसी सजावट, गुरुदेव पधारे ऐसी भावना अन्दर हुयी कि गुरुदेव पधारो। गुरुदेव मानों देवके रूपमें हाथ करते हैं कि ऐसा ही रखना कि मैं यहीं हूँ।

मुमुक्षु :- ऐसा स्वप्न आया माताजी?

समाधान :- हाँ। देवके रूपमें। .. रातको मिलने आयी थी। कहा, ये सजावट कैसी है! ये तो सजावट है। गुरुदेव पाधारो, ये कैसी सजावट है। उसी दिन जल्दी सुबह ऐसा हुआ कि ऐसी सजावट, गुरुदेव पधारे ऐसी भावना अन्दर हुयी कि गुरुदेव पधारो। गुरुदेव मानों देवके रूपमें हाथ करते हैं कि ऐसा ही रखना कि मैं यहीं हूँ। ऐसा ही रखना कि मैं यहीं हूँ। मेरे मनमें उस वक्त ऐसा हुआ कि ऐसे कैसे रखना? सबको कैसे रखना? परन्तु सबका... गुरुदेव है ही, ऐसा माहोल... .. प्रकाशमान है, मैं यहीं हूँ ऐसा मानना। देवके रूपमें गुरुदेव ही...

समाधान :- ... और पूर्ण प्रगट हो वह .. आंशिक प्रगट हो ... उसमें निश्चय और व्यवहार दोनों आ जाते हैं। निश्चयमें स्व, व्यवहारमें जो गुरुको प्रगट हुआ वे गुरु। सर्वज्ञदेव परमगुरु। स्व और गुरु दोनों आ गये। जिन्हें पूर्ण प्रगट हुआ... सहजात्म अर्थात् स्वयं। सर्वज्ञ गुरु। जिसे प्रगट हुआ वे।

मुमुक्षु :- सत्पुरुषके योगमें मुमुक्षुको क्या लाभ होता है? सत्पुरुषके योगसे प्रथम भूमिकामें मुमुक्षुको क्या लाभ होता है?

समाधान :- अपनी तैयारी हो तो बहुत लाभ होता है। गुरु जो मार्ग बताते हैं, उनकी अपूर्व वाणी, प्रथम भूमिकामें स्वयंकी अंतरकी पात्रता और मुमुक्षुताकी विशेषता करनेमें गुरु (निमित्त होते हैं)। पूरा मार्ग प्रगट हो, जितनी स्वयंकी पुरुषार्थकी तैयारी उस अनुसार लाभ होता है। गुरुका तो प्रबल निमित्त है। उनकी वाणी अपूर्व, उनका योग अपूर्व, सब अपूर्व। उनका समागम अपूर्व है। अपनी पुरुषार्थकी तैयारी हो उस अनुसार लाभ होता है। उनका तो सर्वस्व लाभका ही निमित्त है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके अंशसे पूर्णता पर्यंत लाभ हो ऐसा गुरुके निमित्तमें तो है, परन्तु स्वयंकी तैयारी हो उस अनुसार लाभ होता है। अपनी मुमुक्षुता विशेषतासे स्वयंको मार्ग मिले, स्वयं आगे बढ़ सके, स्वानुभूति प्रगट हो, स्वयंका पुरुषार्थ हो अनुसार लाभ होता है। जिसकी स्वयंकी पुरुषार्थ तैयारी हो, उस अनुसार लाभ होता है। यथार्थ रुचि प्रगट हो, यथार्थ मार्ग मिले, यथार्थ निश्चय हो, चारों ओरकी पात्रता हो, स्वयंका पुरुषार्थ हो तो लाभ होता है।

अपने उपादानकी तैयारी हो उस अनुसार लाभ होता है। निमित्त तो प्रबल है। अपनी तैयारी होनी चाहिये। यथार्थ ज्ञान हो, यथार्थ प्रतीत हो, यथार्थ लीनता हो, सब होता है। अपने पुरुषार्थ अनुसार होता है। .. स्पष्ट हो जाय उनके निमित्तसे। पुरुषार्थकी तैयारी, अपनी तैयारी हो तो लाभ हुए बिना रहता ही नहीं।

जीवनमें एक ही करना है, आत्माकी रुचि कैसे प्रगट हो? आत्मा कैसे समझमें आये? भेदज्ञान कैसे हो? आत्माको मुक्तिका मार्ग कैसे मिले? स्वानुभूति कैसे हो?

वह सब जीवनमें एक ही करना है। चैतन्यका ध्येय रखकर देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और एक ज्ञायक चैतन्य कैसे पहचानमें आये? उसका स्वानुभव कैसे हो? वह भावना रखने जैसी है।

समाधान :- ... उसमें चला जाता है, परन्तु बारंबार-बारंबार मैं तो भिन्न चैतन्य ज्ञायक हूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है। एकत्वबुद्धि तोड़ना। बारंबार उसका अभ्यास करना। जैसे बारंबार बाहरमें जाता है, वैसे बारंबार अंतरमें अंतरदृष्टि करना। बारंबार प्रयत्न करना। छूट जाय तो भी बारंबार प्रयत्न करना चाहिये। उसका रटन दृढ़ करना चाहिये। बारंबार।

समाधान :- .. बाहरसे सब छोड़ दिया। आचरणमें-से छोड़ दिया। बाहरसे अर्थात् अंतर और बाह्य दोनों एकसाथ हो गया। अंतरमें भगवानरूप स्वयं ही परिणमता है। ..अंतरपूर्वक बाहर। भावलिंग, अन्दरसे भाव प्रगट हो और बाहर हो, वह अलग होता है। वैराग्य देखकर ...

... अगाध जिसकी जाननेकी शक्ति है। जाननेवाला यानी जाननेवाला ही। उसमें नहीं जानना ऐसा आता ही नहीं। अनन्त-अनन्त जाननेसे भरा ही है। ऐसा जाननेवाला कौन है? मात्र इतना जाना, इतना जाना, उतना जाननेवाला नहीं, परन्तु वह जानन स्वभाव अनन्त स्वभावसे भरा है। जाननेमें नहीं जानना ऐसा आता नहीं। ऐसा अनन्त-अनन्त जानन स्वभावसे भरा ऐसा वह जाननेवाला कौन है?

ये जड़। तो जड़के जितने भाग करो उसमें नहीं जानना ऐसा ही आयगा। वह जानता ही नहीं। और जाननेवाला है उसमें इतना जाना ऐसा नहीं, जाननेवाला अर्थात् सब जाननेवाला ही है। ऐसा अगाध जाननेवाला वह स्वयं है। वह स्वयं स्वको जाने, निज अनन्त गुण-पर्यायको जाने और अनन्त लोकालोकको जाने। ऐसी अनन्त जाननेकी शक्ति जिसमें है वह (मैं हूँ)। वर्तमान तो विभावमें उसकी दृष्टि है इसलिये जान नहीं सकता है, परन्तु अनन्त-अनन्त जाननेकी, अगाध जाननेकी शक्ति है। ऐसा जाननेवाला वह मैं हूँ। वह मूल है, तत्त्व मूल पदार्थ वह है।

मुमुक्षु :- स्वभाव है, उस पर लक्ष्य जाय तो कार्यसिद्धि हो।

समाधान :- हाँ, तो कार्यसिद्धि हो। अनन्त जाननेका स्वभाव है, कि जिसकी मर्यादा नहीं है। असीम जाननेका स्वभाव है। ऐसा जो तत्त्व, उस पर दृष्टि जाय तो कार्य हो।

मुमुक्षु :- ये वर्तमान वर्तता जो जानपना है,..

समाधान :- वर्तमान वर्तता जो क्षणिक जानपना है वह नहीं, अगाध जाननेवाला। जो जाननहार ही है, जिसमें नहीं जानना ऐसा कुछ है ही नहीं, ऐसा अनन्त जाननेवाला। भले वर्तमानमें पूरा जानता नहीं है, परन्तु उसकी शक्ति जानन-जानन (स्वभावसे) भरी

है। ऐसा जो पदार्थ, उस पर दृष्टि जाय तो वह यथार्थ तत्त्वको पहचानता है। जाननेवालेका अस्तित्व, जाननेवाला ज्ञायकका अस्तित्व पहचानमें आये तो उसने स्वयंके पदार्थको पहचाना है।

मुमुक्षु :- क्योंकि जब जाननेकी बात आती है तब लक्ष्य.. प्रथमसे हमारी ऐसी भूल होती है कि यही ज्ञात होता है, यही ज्ञात होता है। इसलिये जाननेकी बात आती है तब यह सब ज्ञात होता है। भले करते नहीं है, परन्तु ज्ञात होता है।

समाधान :- हाँ, सब ज्ञात होता है, किसके अस्तित्वमें ज्ञात होता है? ऐसा स्वतःसिद्ध जाननेवाला, जो अनादिअनन्त है, जिसे किसीने बनाया नहीं है, ऐसा स्वतःसिद्ध जाननेवाला तत्त्व है। ऐसा अगाध जाननेवाला वह मैं हूँ। यह जाना, यह जाना, यह जाना ऐसा नहीं। अगाध अस्तित्व, जानन अस्तित्वसे भरा ऐसा जाननेवालेका अस्तित्व ग्रहण करना चाहिये।

मुमुक्षु :- .. होनेसे लक्षणको जानने-से लक्षणकी प्रतीति करनेसे लक्ष्य ज्ञानमें आ जाता है?

समाधान :- लक्षण द्वारा लक्ष्यकी पहचान होती है। परन्तु लक्षणमें मात्र अटक जाय तो... यह लक्षण है वही मैं हूँ, ऐसा नहीं। लक्षण द्वारा लक्ष्यको पहचानना चाहिये। ये लक्षण जिस पदार्थका है वह पदार्थ मैं हूँ। वह पूर्ण पदार्थ मैं हूँ।

मुमुक्षु :- लक्षणमें नहीं अटकना।

समाधान :- लक्षणसे लक्ष्य पहचानना चाहिये। ये जानन तत्त्वको पहचाने तो होता है। ये जाननेवाला अगाध शक्तिसे भरा, ऐसा जाननेवाला अनन्त शक्ति, ऐसी अनन्त शक्ति उसमें है। ऐसा जाननेवाला आनन्द आदि अनन्त शक्तिसे भरा ऐसा ज्ञायक अस्तित्व, उसे पहचाने और ये सब विभावसे भिन्न पड़े कि ये जाननेवाला सो मैं हूँ, ये विभाव मैं नहीं हूँ। सब प्रकारके विभाव है वह विभाव ही है। शुभाशुभ सब विभाव है। उससे भिन्न पड़कर मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायकको पहचाने, ऐसे निर्विकल्प तत्त्वकी प्रतीत करे, उसका ज्ञान करे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१७

मुमुक्षु :- ... कोई अद्‌भुत अलौकिक कार्य किया है। जिसके लिये बड़े-बड़े इन्द्र, चक्रवर्ती जैसे महान पुरुष भी नमन करते हैं और जिसके बिना हम पामर प्राणी अनादि कालसे संसारमें परिभ्रमण करते हुए अनेक दुःखोंको भोग रहे हैं, उन दुःखोंका अभाव कैसे हो, ऐसा कृपा करके वह विधि बताईये कि जिससे हम आप जैसी दशाको प्राप्त कर सके।

समाधान :- एक आत्माका स्वभाव पीछानना। तत्त्वको पीछानना। चैतन्य तत्त्व कैसा है? उसका स्वभाव, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय कैसे हैं, उसको पीछानना। ये शरीरादि तो जड़ तत्त्व है। द्रव्य भिन्न है। उसका द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न है, अपना द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न है। दोनों तत्त्वको भिन्न पीछानना। और विकल्प जो विभाव होता है, वह भी अपना स्वभाव तो नहीं है। मूल शुद्ध स्वभाव शुद्धात्मा है उसको पीछानो। उसका भेदज्ञान करनेसे भीतरमें-से सुख प्रगट होता है।

आत्मद्रव्य चैतन्य तत्त्व है उस पर दृष्टि, उसका ज्ञान, उसकी लीनता, उसका अभ्यास करनेसे यदि भेदज्ञान यथार्थ प्रगट होवे तो भीतरमें-से सुख और आनन्द प्रगट होता है। बाकी अनादि कालसे बाह्य क्रियामें और शुभभावमें धर्म मानता है तो पुण्यबन्ध होता है। उससे कहीं शुद्ध स्वभाव प्रगट नहीं होता है। पुण्य बान्धे तो देवलोक होता है, भवका अभाव नहीं होता है।

भवका अभाव तो शुद्धात्मा तत्त्व, निर्विकल्प तत्त्व उसको पीछानने-से भवका अभाव होता है। तो भेदज्ञान करके ज्ञाताधाराकी उग्रता करनी, उसमें लीनता करनेसे जो स्वानुभूति होती है, निर्विकल्प स्वानुभूति (होती है), उससे भवका अभाव होता है। उससे आनन्द होता है, सुख होता है और दुःखका अभाव होता है। इस प्रकार दुःखका अभाव अपने स्वभावको पीछाननेसे होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! वचनामृतमें आता है कि द्रव्य उसे कहतें है जिसके कार्यके लिये अन्य साधनोंकी राह नहीं देखना पड़ती। इस बातका भाव आपके मुखसे सुनना चाहते हैं।

समाधान :- द्रव्य स्वतंत्र है तो उसका कार्य करनेके लिये बाहरका साधन मिले

या बाहरका कोई निमित्त ऐसा होवे तो कार्य हो, ऐसा नहीं होता है। जो द्रव्यका स्वभाव है तो (उसके) कार्यके लिये राह नहीं देखनी पड़ती। उसको निमित्त अपनेआप मिल जाता है। जिसको अपना स्वभावका कार्य प्रगट करना है, जिसका अपनी ओर पुरुषार्थ जाता है कि मैं आत्मतत्त्व कैसे पीछानुँ? और स्वभाव परिणति कैसे प्रगट होवे? उसका कार्य जिसे करना हो तो अपनेआप बाहरका निमित्त भी मिल जाता है। और जिसका पुरुषार्थ प्रगट होता है उसे राग नहीं देखनी पड़ती है। जिसको भावना प्रगट हुयी, जिज्ञासा और पुरुषार्थ प्रगट हुआ उसे, मैं कैसे करुँ? ऐसा निमित्त नहीं है, ऐसा संयोग नहीं है, ऐसे राह नहीं देखनी पड़ती कि निमित्त मिले तो होवे, या बाहर शरीर ऐसा है, कोई साधन मिले तो हो, (ऐसा नहीं होता)।

जिसको पुरुषार्थ प्रगट होता है, उसको राह नहीं देखनी पड़ती है। उसको अपनेआप सब संयोग मिल जाते हैं। उसे राह नहीं देखनी पड़ती है। द्रव्य उसको कहनेमें आता है कि जिसका कार्य करनेके लिये किसीकी राह नहीं देखनी पड़ती। अपनेमें-से जो उग्रता हुयी, अंतर भीतरमें-से जो उछलता है, उसके लिये कोई निमित्तकी राह नहीं देखनी पड़ती। भीतरमें-से ज्ञानकी पर्याय, दर्शनकी पर्याय, चारित्र पर्याय उसकी जो परिणति प्रगट हुयी तो भीतरमें बाहरका साधन मिले तो प्रगट हो, ऐसा नहीं होता। अपने आपसे स्वयं चैतन्यकी परिणति चैतन्यमें-से उछले। ज्ञानरूप परिणति, दर्शन, चारित्र अपने आप स्वयं परिणमन हो जाता है। उसको निमित्तकी राह नहीं देखनी पड़ती। स्वतंत्र कार्य होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! प्रज्ञाछैनी पड़ते ही ज्ञान और राग दोनों जुदा-जुदा हो जाते हैं, तो प्रज्ञाछैनी क्या है और वह कैसे पड़ती है? और कैसे ज्ञान और राग जुदा-जुदा होते हैं, उसका ...?

समाधान :- प्रज्ञाछैनी, जो चैतन्य स्वभाव है उसको, जो सूक्ष्म स्वभाव है उसको सूक्ष्म करके जहाँ सन्धि है, वहाँ प्रज्ञाछैनी उसको एकदम पीछान लेती है कि यह ज्ञान है और यह राग है। उसको सूक्ष्म उपयोग करके भीतरमें-से ऐसे जान लेती है, भीतरमें तीक्ष्णता करके, तो अपनेआप भेदज्ञान हो जाता है कि मैं चैतन्य हूँ। यह (विभाव) है।

ऐसा भेदज्ञान होनेसे स्वयं परिणति अपने आप स्वयं हो जाती है और स्वानुभूति हो जाती है और विभावका भेद हो जाता है। ऐसी प्रज्ञाछैनी तीक्ष्ण प्रज्ञाछैनी होने-से स्वानुभूति प्रगट हो जाती है। स्वभावमें दृष्टि-ऐसी प्रतीत, ज्ञान और लीनता तीनों साथमें होनेसे, सूक्ष्म उपयोग होनेसे प्रज्ञाछैनी काम करती है। अपने स्वभावको ग्रहण कर लेती है कि यह स्वभाव है, यह विभाव है। तीक्ष्ण उपयोग करके अपने (स्वभावको)

ग्रहण कर लेती है और भीतरमें परिणति चली जाती है तो भेदज्ञान हो जाता है।

मुमुक्षु :- माताजी! ज्ञानीकी एक-एक बातमें, एक-एक शब्दमें अनन्त आगम समाहित है, यह कैसे है? माताजी!

समाधान :- अनन्त आगम (इस तरह है), मुक्तिकी पर्याय, अंतरकी पर्याय जो प्रगट होती है कि यह स्वभाव है, यह विभाव है, यह स्वानुभूति है, पूर्ण क्या है, अल्प क्या है, अखण्ड क्या है, स्वानुभूतिमें ज्ञानमें सब आ जाता है। तो वह सब जानता है। साधक क्या है, साध्य क्या है, लक्षण-लक्ष्य क्या है, ज्ञानीके ज्ञानमें यह सब आ जाता है। इसलिये प्रयोजनभूत मूल तत्त्व, मोक्षमार्ग मुक्तिका मार्ग क्या है, यह सब सम्यग्दृष्टिके ज्ञानमें आ जाता है। इसलिये उसके शब्दमें अनन्त आगम आ जाते हैं। मूल प्रयोजनभूत तत्त्व आनेसे सब आ जाता है।

एक जानने-से सब जाननेमें आ जाता है। एक चैतन्यको जाना उसने सब जाना। एक चैतन्यद्रव्यको जाना, उसका अंश प्रगट हो गया। एक अंश जो प्रगट हुआ तो सर्वको जान लेता है। पूर्णताके लक्ष्य से शुरूआत। उसमें पूर्ण आ जाता है। जो बीज प्रगट होता है, उसमें पूर्ण चन्द्र क्या है, अंश क्या है, सब आ जाता है। इसलिये ज्ञानीके ज्ञानमें सब आ जाता है तो शब्दमें भी आ जाता है। उसके ज्ञानमें सब है तो उसकी वाणीमें सब आ जाता है। मूल प्रयोजनभूत तत्त्व सब आ जाता है।

मुमुक्षु :- माताजी! श्रीमद्जी कहते हैं कि यदि यह जीव सत्पुरुषके चरणोंमें सर्व भाव समर्पण कर देवे और मोक्षकी प्राप्ति न होवे तो हमसे ले जाय, यह कैसे है? माताजी! कैसे सर्व भाव ज्ञानीके चरणोंमें समर्पण कर दे?

समाधान :- जो ज्ञानी कहते हैं वह सब यथार्थ है। उसने जो मुक्तिका मार्ग बताया, जो कहा, सब यथार्थ है। इसलिये अपने स्वभावमें उसे ग्रहण कर लेना। जो ज्ञानी कहते हैं, सब यथार्थ है। ऐसी अपनी परिणति प्रगट करना। सर्व भाव अर्पण कर देना। जो विकल्प है वह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं उससे भिन्न हूँ। विकल्प, सर्व विकल्पको ज्ञानीके चरणमें छोड़ देना अर्थात् ज्ञायक हो जाना। ज्ञायक हो जाना, तो मुक्ति अपनेआप हो जाती है। जो ज्ञायककी धारा प्रगट हुयी तो स्वानुभूति हो जाती है। विकल्पसे भेदज्ञान कर देना। सब भाव ज्ञानीके चरणमें छोड़ देना। मैं इसका स्वामी नहीं हूँ और मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक हो गया तो सब भाव ज्ञानीके चरणमें आ गये। ज्ञानीको कुछ चाहिये नहीं, परन्तु स्वामीत्वबुद्धि छोड़कर ज्ञायक हो जाना, इसलिये मुक्ति अपनेआप हो जाती है।

मुमुक्षु :- माताजी! ४५ वर्षोंसे अनेक बहनोंने-ब्रह्मचारी बहनोंने और बहुत-से मुमुक्षु भाईओंने पूज्य गुरुदेवके चरणोंमें और आपश्रीके चरणोंमें सर्व भाव अर्पण किया है।

फिर भी परिणाममें कुछ ऐसा देखने नहीं मिलता जो आना चाहिये। तो उसका कारण क्या है? माताजी!

समाधान :- परिणाममें क्या..?

मुमुक्षु :- .. अर्पण करके यहाँ बहुत भाई-बहनें, ब्रह्मचारी बहनें अर्पण करके तो बैठे हैं, तो क्यों नहीं मिला? आप कहते हो मेरे पास-से ले जाना। ४५ सालसे तो करके बैठे हैं।

समाधान :- उसमें कुछ क्षति होती है इसलिये। कुछ क्षति रह जाती है।

मुमुक्षु :- तो फिर सर्व भाव अर्पण नहीं किया, माताजी! इसका मतलब हुआ।

समाधान :- मूल वस्तु स्वरूपसे नहीं किया। जैसा ज्ञायकभाव प्रगट करना चाहिये वह नहीं किया। ऐसे सर्व भाव अर्पण किये। जो ज्ञानीके ... ऐसे तो अर्पण किया। स्थूल रूपसे तो कर दिया। भीतरमें भेदज्ञान करके करना चाहिये वह नहीं किया।

मुमुक्षु :- वह नहीं किया, वह कमी रह गयी।

समाधान :- वह कमी रह गयी।

मुमुक्षु :- माताजी! अनुभव होनेके पहले और अनुभवके कालमें और अनुभवके बादमें जो जीवादि सात तत्त्व हैं, उनका किस प्रकारसे चिंतवन चलता है?

समाधान :- अनुभवमें चिंतवन नहीं चलता है। स्वानुभूतिमें विकल्प छूट जाता है। वह तो अपनी एक चैतन्यकी परिणति (होती है)। चैतन्य पर दृष्टि और उसकी परिणति सहज रहती है। स्वानुभूतिके कालमें सात तत्त्वका चिंतवन नहीं रहता है। बाहर उपयोग आवे तब भी भेदज्ञान रहता है। तो सहज नौ तत्त्व आ जाते हैं। मैं जीव हूँ, भेदज्ञानकी धारा (चलती है उसमें) यह अजीव है, यह आस्रव है, जो भाव आता है वह पुण्य है, जो आंशिक शुद्ध पर्याय प्रगट हुयी वह संवर है, उससे विशेष उग्रता निर्जरा है और मोक्ष तो आंशिक मोक्ष है पूर्ण मोक्ष तो जब होवे तब होता है। ऐसे बाहर उपयोग आवे तब रहता है। स्वानुभूतिमें ऐसा विकल्प नहीं रहता।

मुमुक्षु :- सात तत्त्वोंको जानते नहीं अनुभवके कालमें? माताजी!

समाधान :- सात तत्त्वोंको नहीं जानता है अर्थात् ऐसे विकल्परूप नहीं जानता है। विकल्पात्मक नहीं है। निर्विकल्प है।

मुमुक्षु :- माताजी! ऐसा आता है कि जितना कारण देवे उतना कार्य होता है। तो इसका क्या मतलब है? जितना कारण देवे उतना कार्य होता है।

समाधान :- जितना कारण देवे उतना ही कार्य होता है। कोई माने कि मेरेके क्यों प्रगट नहीं होता है? तो लगन, महिमा और पुरुषार्थकी कमी होवे तो नहीं प्रगट होता है। जितना कारण-पुरुषार्थकी कमी होवे तो कार्य नहीं होता है। जितना पुरुषार्थ

होवे उतना कार्य होता है। जितना कारण दे उतना कार्य होता है, विशेष नहीं होता है। मेरी तो रुचि बहुत है, मैं ऐसा करता हूँ तो भी नहीं होता है। तो कारण पुरुषार्थकी कमी है इसलिये नहीं होता है। कारणकी कमी है तो कार्य नहीं होता है।

मुमुक्षु :- कारण कैसे दें? माताजी! कारण कैसा होना चाहिये?

समाधान :- कारण यथार्थ होना चाहिये। जैसा स्वभाव है उस स्वभावको पीछानकरके और यह विभाव है, मैं स्वभाव हूँ, ऐसा कारण प्रगट करना चाहिये। पुरुषार्थ ऐसा करना चाहिये।

मुमुक्षु :- माताजी! धवलमें आता है कि मतिज्ञान केवलज्ञानको बुलाता है। तो ये कैसे बुलाता है? माताजी!

समाधान :- मतिज्ञान जिसको प्रगट होवे तो उसको अवश्य केवलज्ञान प्रगट होता ही है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान जिसको प्रगट हो गया, निर्विकल्प स्वानुभूति (हुयी) तो उसको अवश्य केवलज्ञान प्रगट होनेवाला है। मतिज्ञान केवलज्ञानको बुलाता है कि तू अब आ जा। अनन्त काल हो गया, अब तो मैं प्रगट हो गया, मति-श्रुत कहता है कि आओ केवलज्ञान। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान.. अपने स्वभावकी ओर परिणति गयी, मति-श्रुतने अपने स्वभावको उपयोगमें ले लिया तो केवलज्ञानको बुलाते हैं, आओ, जल्दी आओ। अब मैं तुमको बुलाता हूँ। स्वभावकी ओर जाकर उसको बुलाता है। .. उसको केवलज्ञान हो जाता है।

मुमुक्षु :- माताजी! .. रागादि भावोंका किस प्रकारसे वमन करानवाले हैं?

समाधान :- .. निकले हुए वचन हैं न? तो यथार्थ वचन निकलता है कि भेदज्ञान करो, एकत्वबुद्धि तोड़ो। ऐसा ज्ञानीका वचन है तो ज्ञानी मिथ्यात्वको वमन कर देता है। उसके वचन कोई अपूर्व, ज्ञानमें-से निकले हुए वचन मिथ्यात्वका वमन कर देते हैं। जिज्ञासुको मिथ्यात्वका वमन कर देता है।

मुमुक्षु :- ... कुटुम्बसे पहले या संयोगसे पहले या शरीरसे या रागसे, शुरू कहाँ-से करना चाहिये?

समाधान :- शुरू तो ऐसे होता है, ये सब तो स्थूल है। कुटुम्बसे भिन्न करना, शरीरसे भिन्न करना वह सब तो स्थूल है। भीतरमें यथार्थ तो विकल्पसे भिन्न करना वह यथार्थ होता है। ऐसे कुटुम्बसे तो मान ले कि ये जुदा है, मैं भिन्न हूँ। ऐसा तो मान ले। शरीर भी स्थूल है। एकक्षेत्रावगाह है तो भी ऐसा तो आता है कि प्रथम सुदृष्टि सो शरीररूप कीजे भिन्न, सूक्ष्म शरीर भिन्न जाने। पहले यह शरीर भिन्न है, स्थूल है, सूक्ष्म शरीर कार्मण शरीर भी आत्माका नहीं है। विभावसे भी भिन्न जानीये।

विकल्प जो आता है उससे भी, सुबुद्धिको विलास भिन्न जानीये। उसमें प्रशस्त

भाव आता है वह भी आत्माका मूल स्वभाव नहीं है, वह तो शुभभाव है। ऐसे भी भिन्न है। उसमें भेद पड़ता है कि मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, यह हूँ ये सब भाव तो आते हैं तो भी विकल्प मिश्रित है। वह भी आत्माका मूल स्वभाव तो नहीं है।

जैसे सिद्ध भगवान निर्विकल्प आनन्दमें विराजते हैं, ऐसा आत्माका स्वरूप है। ऐसी श्रद्धा करना। बीचमें विकल्प तो आता है। परन्तु श्रद्धा ऐसी करना कि सबमें मैं भिन्न हूँ। मेरा स्वभाव सबसे भिन्न, ज्ञायक स्वभाव-ज्ञान स्वभाव ऐसा मेरा स्वभाव है। ज्ञानस्वभावको ग्रहण कर लेना। ये जो जाननेवाला ज्ञानस्वभाव है वह मैं हूँ। पर्यायमात्र, क्षणिक पर्यायमात्र मैं (नहीं हूँ)। मैं अखण्ड शाश्वत जो अनादिअनन्त तत्त्व हूँ, जो ज्ञायकका अस्तित्व है वही मैं हूँ। उसको ग्रहण कर लेना।

उसकी प्रतीति दृढ़ करना, उसका ज्ञान दृढ़ करना, उसमें लीनता करनी ऐसे भेदज्ञान होता है। परन्तु भेदज्ञान करनेके लिये उसकी महिमा, उसकी लगन, बारंबार उसका विचार, मनन करे तो होवे। उपयोग तो स्थूल हो रहा है। उसको सूक्ष्म करके ज्ञानस्वभाव कौन है? और विकल्प कौन है? ये भेद पड़ते हैं, ज्ञान, दर्शन, चारित्र। वह भेद तो गुणका भेद है। कोई वास्तवकि टूकड़े नहीं है। ये तो जाननेमें आता है। इसलिये भेद पड़ता है वह भी मूल स्वरूप तो नहीं है। मैं अखण्ड तत्त्व हूँ। ऐसे सूक्ष्म उपयोग करके उसको ग्रहण करना।

परन्तु ग्रहण करनेके लिये तैयारी करनी पड़ती है। उसको रात-दिन लगन लगे, बारंबार उसका विचार, मनन होवे तब होवे। उसके लिये शास्त्रका चिंतवन, शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र और भीतरमें शुद्धात्मा मुझे कैसे प्रगट होवे? उसका ध्येय रखना। निर्विकल्प तत्त्व आत्मा, उसमें आनन्द है, उसमें ज्ञान है, सब उसमें है। उसकी बारंबार प्रतीति, भेदज्ञान, बारंबार नहीं होवे तब तक बारंबार-बारंबार नहीं होवे, भूल जाय तो भी बारंबार उसको ग्रहण करना चाहिये। भूल जाय तो भी बारंबार करना। रात-दिन कैसे प्रगट होवे?

मुमुक्षु :- आत्माकी लगन बारंबार लगनी चाहिये?

समाधान :- हाँ, बारंबार।

मुमुक्षु :- उसीकी महिमा आनी चाहिये।

समाधान :- हाँ, उसकी महिमा आनी चाहिये।

मुमुक्षु :- विकल्पोंसे, संयोगसे हटाकरके आत्माकी लगनी लगनी चाहिये।

समाधान :- हाँ, आत्माकी लगनी लगनी चाहिये। परमें एकत्वबुद्धि है उसे तोड़ना चाहिये। स्वमें एकत्वबुद्धि करनी चाहिये। बारंबार अभ्यास दृढ़ होवे, बारंबार-बारंबार उसमें

दृढ़ता होने-से भेदज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- बाहरमें ... आत्मामें ही सुख है। अन्दरसे तो आत्मा जवाब नहीं देता है कि सुख यहीं है। शास्त्रके न्यायसे आत्माके अन्दर संतुष्टि नहीं होती।

समाधान :- शास्त्रमें तो आता है, लेकिन अपने अंतरमें ऐसा दृढ़ करना चाहिये। शास्त्रमें आता है कि आत्मामें सुख है। तो विचार... गुरुदेव भी कहते थे, बहुत कहते थे कि आत्मामें सुख है। शास्त्रमें आता है। तो भीतरमें ऐसा नक्की करना चाहिये। विचारसे, युक्तिसे नक्की करना कि ये सब आकुलता है। भीतरमें यदि उपयोग सूक्ष्म करके देखे तो सब विकल्प-विकल्प आकुलता है। जो शुभभाव है तो भी आकुलतारूप है। सब आकुलता है। सुख तो आत्मामें है।

सुख-सुख, सुख तो इच्छता है, तो बाहर सुख तो मिलता नहीं है। तो सुख जो तत्त्वमें है, वह तत्त्व मैं हूँ। सुख आत्मामें है, बाहरमें नहीं है। ऐसा भीतरमें यथार्थ नक्की करना चाहिये और प्रतीत दृढ़ करने-से भीतरमें-से सुख प्रगट होता है। आत्मामें-से होता है। जो सुखका भण्डार भरा है, आनन्दका भण्डार है। आनन्दका सागर आत्मा भरा है, परन्तु वह भूल गया है। इसलिये बाहरमें सुख-सुख लगता है।

जो तत्त्व, जिसका स्वभाव है आनन्द, उसमें कोई मर्यादा नहीं होती। ऐसा अनन्त आनन्दका सागर है। अनन्त ज्ञानका सागर है। ऐसा आत्मा है। उसकी प्रतीति करना चाहिये। प्रतीति करने-से परिणति भी उस ओर जाती है। लगनी लगानी, प्रतीति करनी, परिणति भी उसकी ओर ले जानी चाहिये। अनन्त आनन्द, अनन्त-अनन्त स्वभाव-से आत्मा भरा है। जिसका स्वभाव है, उसमें मर्यादा नहीं है। अनन्त स्वभावसे भरा है। परन्तु वह अपनी दृष्टिमें और प्रतीतमें आना चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१८

मुमुक्षु :- ... पहले किस प्रकारसे लक्षण द्वारा...?

समाधान :- भेदज्ञानसे यह मैं हूँ, यह नहीं हूँ। तो दर्शन...?

मुमुक्षु :- किस लक्षणसे?

समाधान :- ज्ञान लक्षणसे ग्रहण होता है। भेदविज्ञानमें ऐसा आता है, यह मैं हूँ। यह ज्ञानलक्षण जिसका है, वह आत्मा मैं हूँ। और विभाव लक्षण है वह मैं नहीं हूँ। जो आकुलता लक्षण है वह विभावका है और जो ज्ञान लक्षण है वह मैं हूँ। उसका लक्षण ज्ञायक लक्षण है। ज्ञायकका जाननेवाला लक्षण वह मैं हूँ। ज्ञानमें शान्ति है, ज्ञानमें सुख है, सब ज्ञानमें है।

शास्त्रमें आता है कि इतना ही सत्यार्थ कल्याण है, इतना ही परमार्थ आत्मा है, जितना यह ज्ञान है। इसमें संतुष्ट हो, इसमें रुचि कर, इसमें तृप्त हो। कोई कहे, अकेले ज्ञानमें सुख और आनन्द? ज्ञानमें सुख और आनन्द भरा है। इसमें तू रुचि कर, इसमें प्रीति कर, इसमें तृप्त हो। जितना ज्ञान है उतना परमार्थ स्वरूप आत्मा है। उसमें कल्याण है। सब इसमें प्रगट होता है। इसलिये जो आकुलता है वह मैं नहीं हूँ, वह विभाव लक्षण है। ज्ञान लक्षण है वह आत्मा है। एक कल्याण स्वरूप है, सत्यार्थ पदार्थ आत्मा है, वही है। ज्ञान, जितना ज्ञान है वह आत्मा है। उसमें दृष्टि करनेसे, भेदज्ञान करनेसे इसमें सुख और इसमें-से आनन्द प्रगट होता है। इसलिये इसमें ही तृप्त हो, इसमें ही रुचि कर, इसमें प्रीति कर। शास्त्रमें आता है।

आत्मामें सब भरा है, संपूर्ण सब इसमें भरा है।

इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे,
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे।।२०६।।

इसमें सदा प्रीति कर, रुचि कर, संतुष्ट हो, उसमें तृप्त हो। उसमें-से उत्तम सुख प्रगट होगा। अंतर-से प्रगट होगा, किसीको पूछना नहीं पड़ेगा। तेरे अंतरमें-से सुख प्रगट होगा।

समाधान :- .. परिणामका ज्ञान होता है, परिणामको जानता है। मैं स्वयं ज्ञानस्वरूप आत्मा ही हूँ, ऐसा ज्ञान होता है। परिणामको जाने वह ज्ञान, ऐसे तो जानता है

तो एक लक्षण जाननेमें आया कि यह परिणाम है, यह परिणाम है, यह परिणाम है। परिणामको जानता है वह आत्मा स्वयं ज्ञायक अस्तित्व है, वही मैं आत्मा हूँ। जो जाननेका अस्तित्व ज्ञायक आत्मा वही मैं हूँ। परिणाम परिणामको जानता है वह तो क्षण-क्षणकी पर्याय होती है, क्षणिक ज्ञान ऐसा नहीं। मैं अखण्ड ज्ञायक स्वभाव हूँ। उसको ...

सबको एक धारावाही अखण्ड जाननेवाला है वह मैं हूँ। ज्ञायक स्वभाव मैं (हूँ)। परिणाम चले जाते हैं। बचपनसे बड़ा हुआ, ऐसा हुआ, वह सब परिणाम चले गये। जाननेवाला तो वही है, जो जाननेवाला है, बचपनका, उसके बादका, उसके बादका जाननेवाला तो वही का वही है। जाननेका अस्तित्व जो धरनेवाला है, जाननेका अस्तित्व जिसमें वह ज्ञायकका अस्तित्व मैं ही हूँ। विभावपर्याय, विभावको जाननेवाला और एक-एक ज्ञेय खण्ड-खण्ड ज्ञेयको जाननेवाला वह मैं नहीं हूँ, अखण्ड ज्ञायक स्वभाव मैं हूँ। ज्ञायक जाननेका अस्तित्व धरनेवाला वह मैं हूँ।

जाननेवाला परिणामको जानता है, कोई जाननेवाला तत्त्व (है)। परन्तु खण्ड खण्डको नहीं ग्रहण करना, अखण्डको ग्रहण करना। द्रव्य पर दृष्टि करना। विभावपर्याय नहीं हूँ, भेदका विकल्प भी मेरा मूल स्वभाव नहीं है। केवलज्ञानकी पर्याय, अधूरी पर्याय वह भी पर्याय प्रगट होती है, ज्ञानमें जाननेमें आता है, परन्तु मैं अखण्ड शाश्वत अनादिअनन्त द्रव्य हूँ। इसमें कोई विभाव आनेसे उसकी शक्ति मन्द हो गयी, ऐसा नहीं। मैं तो अनन्त शक्ति(वान), जैसा है वैसा ही मैं अनन्त शक्तिस्वरूप आत्मा ही हूँ। साधनाकी पर्याय प्रगट होती है, वह जाननेमें आती है कि इसमें अधूरी, पूरी पर्याय सब होती है। परन्तु मैं अखण्ड ज्ञायक स्वभावी आत्मा हूँ, ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

मुमुक्षु :- ... उसके पूर्व कैसे विचार होते हैं? किसका चिंतवन, घोलन रहता होगा? भावना कैसी होती होगी कि जिससे हमारी साधनामें पुष्टि हो?

समाधान :- सबको एक जातिका हो ऐसा नहीं होता। अनेक प्रकार (होता है)। आत्माका ध्येय होना चाहिये। आत्माकी प्राप्ति कैसे हो? आत्मामें-से सुख कैसे प्राप्त हो? यह अंतरमें रहना चाहिये। वांचन किसका होता है? विचार कैसे होते हैं? उस वक्त तो कहाँ दिगंबरके इतने शास्त्र बाहर नहीं आये थे। विचार तो, तत्त्व क्या है? वस्तु क्या है? आत्मा क्या है? आत्मामें सुख है, ये विभावमें सुख नहीं है। उस सम्बन्धित, आत्मा सम्बन्धित विचार होते हैं।

गुरुदेव व्याख्यानमें कोई अपूर्व बात कहते थे कि आत्मा भिन्न है, यह शरीर भिन्न है। ये विकल्प भिन्न, अन्दर आत्मा विराजता है, उसमें निर्विकल्प आनन्द प्रगट होता है। ऐसी बातें गुरुदेव अनेक प्रकारकी करते थे। तू पुरुषार्थ कर तो होता है। कर्म

रोकता नहीं है, निज उपादानसे ही होता है। ऐसी अनेक प्रकारकी प्रवचनमें बात आती थी, उस परसे विचार (आते थे)।

मैं कौन हूँ? मेरा स्वरूप क्या है? ऐसे अनेक प्रकारके विचार आते थे। एक ही प्रकारके आये ऐसा नहीं होता। वस्तुका क्या स्वरूप है? तत्त्व क्या है? आत्मा शाश्वत कैसे है? पर्यायमें अनित्यता कैसे है? अनेक प्रकारके विचार आते हैं। जिसे जिस प्रकारकी अंतरमें शंका होती है, उस जातके विचार आते हैं।

मूल आत्माकी प्राप्ति कैसे हो? आत्मामें-से सुख कैसे हो? उस जातका ध्येय होना चाहिये। फिर किसीको किस प्रकारके विचार आये, वह स्वयंकी योग्यता पर आधारित है। मूल तत्त्व सम्बन्धि विचार होने चाहिये। आत्मा वस्तु क्या है? उसकी पर्याय क्या है? उसके गुण क्या है? ये विभाव है, विभावमें सुख नहीं है, विभावमें आकुलता है। इस स्वभावमें सुख है। ऐसे, उस सम्बन्धित विचार आने चाहिये। उस जातका घोलन, उस जातका मनन, उस जातकी प्रतीतिकी दृढ़ता करनेका प्रयास वह सब (होता है)। उसीकी लगनी, क्षण-क्षणमें उसके विचार, क्षण-क्षणमें उसका ध्यान, विचार आदि लंबे समय उसीकी एकाग्रता चलती रहे, उसीके विचार चलते रहे। दो-तीन घण्टे, पूरा दिन और रात वही चलता रहता था।

मुमुक्षु :- हम लोग वढ़वाण गये थे। मामाने सब बात कही कि आपकी मामाके साथ चर्चा होती थी। तो उस चर्चामें मुख्य विषय क्या था? कि जिससे हमें पुष्टि मिले।

समाधान :- अभी आप लोगोको गुरुदेव-से कितना मिला है! अन्दर एक प्रयत्न करना ही बाकी रहा है। भेदज्ञानका क्या स्वरूप है? ये दो तत्त्व भिन्न, द्रव्य-गुण-पर्याय क्या, उत्पाद-व्यय-ध्रुव क्या, सब गुरुदेवने ऐसा स्पष्ट कर दिया है। आत्मा नित्य कैसे? द्रव्य नित्य कैसे? पर्यायमें अनित्यता है, गुणके भेद पर दृष्टि नहीं करनी, पर्यायभेद पर दृष्टि नहीं करनी, अखण्ड पर दृष्टि करनी। सब ज्ञान करना। अभी तो बहुत मिला है।

उन दिनोंमें तो यह कोई बात थी नहीं। अभी तो क्या सत्य है? उसके विचार चलते थे। वस्तु तत्त्व क्या सत्य है? जगतमें अनेक जातके मतभेद हैं, उसमें यथार्थ क्या है? ऐसी चर्चा चलती थी। उसमें हिंमतभाईको तो बहुत जातके विचार (आते थे), उन्हें भी उतने विचार चलते थे, मुझे भी उतने विचार चलते थे। प्रयत्न चलता रहता था कि सत्य क्या है? अनेक जातके मत जगतमें है, उसमें यथार्थ क्या है? उस जातकी चर्चा चलती थी। उसमेंसे नक्की (किया)।

उसमें गुरुदेव क्या कहते हैं? उस प्रकारसे विचार चलते थे। परन्तु यथार्थ तत्त्व क्या है? उसके विचार चलते थे। हिंमतभाई भी उतने विचार करते थे, यहाँ मुझे भी

इतने विचार चलते थे। गुरुदेवने प्रवचन करके इतना स्पष्ट कर दिया है कि किसीको कहीं शंका रहे ऐसा नहीं रहा है। अन्दर भेदज्ञान (करना बाकी रहता है)। सब तैयार करके गुरुदेवने माल दिया है। अन्दर स्वयंको परिणति करनी बाकी रहती है। उन दिनोंमें तो अनेक जातके विचार (आते थे)।

शास्त्रमें क्या आता है? इतने शास्त्र नहीं पढ़े थे। तत्त्व क्या सच्चा है, अभी तो यह निर्णय करना बाकी था। शुभमें धर्म नहीं है, शुभमें आकुलता है। ऊच्चसे उच्च शुभभाव पुण्यबन्ध आकुलता कैसे है? उन दिनोंमें अभी तो यह नक्की करना था। बाह्य क्रियामें धर्म नहीं है, शुभभावमें धर्म नहीं है। देवलोक मिले वह भी आकुलता है। यह सब किस प्रकारसे है? यह सब निर्णय करना था, अभी तो स्थूल निर्णय करना था। अभी तो सूक्ष्ममें आगे जाना बाकी था।

उसमें-से मैं ज्ञायक हूँ, यह विभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है। यहाँ तक अन्दर पहुँचना था। विचार कर-करके निर्णय करना था। शुभभावमें धर्म नहीं है। अनन्त बार देवलोक मिला, वहाँ-से वापस आया। गुरुदेव कहते थे, चमड़ी उतारकर नमक छिड़के ऐसी क्रिया की, तो भी उसे धर्म नहीं हुआ है। तो भी उसे स्वभाव प्रगट नहीं हुआ। यह सब कैसे है? अभी तो विचार करके यह सब नक्की करना था। ऐसी सब चर्चा चलती थी।

उसमें-से निर्णय करके यह भेदज्ञान, यह स्वभाव, चैतन्य ज्ञायक स्वभाव वह मैं हूँ और यह विभाव मैं नहीं हूँ, उसमें-से नक्की-दृढ़ता करके, उस मार्ग पर दृढ़ता करके आगे उसीकी दृढ़ता, उसीका ध्यान दो-तीन घण्ट तक वही चला करता था। और पूरा दिन और रात वही चलता था। मैं ज्ञायक हूँ और यह मैं नहीं हूँ। अंतरमें-से ही यह चलता रहता था।

अभी तो दर्शन कौन-सा सत्य है? अभी तो श्वेतांबर-दिगंबर क्या? अभी तो वह भी पूरा बाहर नहीं आया था। उसमें-से मूल तत्त्व ग्रहण करना था। किसीको पूछने जाय, सागरानंदको पूछने जाय, रामविजयको पूछने जाय, देरावासी साधुको पूछने जाय, कहाँ-कहाँ सबको पूछते थे। मैं तो अन्दरसे प्रश्न-चर्चा करती थी। पहलेकी बात और अभीकी बात (अलग है)। आपको तो सब पूरा-पूरा मिल गया है। अन्दर करनेका है।

मुमुक्षु :- रतनबहिनको पूछने जाते थे।

समाधान :- हाँ, रतनबहिनको पूछने जाते थे। कुछ नया हो, कोई आया हो अथवा कोई ध्यान करता है और कोई आत्मा (सुनाता है), देखने जाते थे। अभी तो सब नया लगता था।

मुमुक्षु :- उनको वढ़वाणकी बातें बहुत अच्छी लगी। कल कहते थे। वढ़वाणकी

बातसे मुझे दृढ़ हुआ कि सोनगढ़में ही रहना। ... 'मानादिक शत्रु महा निज छन्दे न मराय, जाता सद्गुरु शरणमां...' सत्पुरुषके शरणमें रहना वह मुझे दृढ़ हो गया। पहले विचार आता था, परन्तु आपकी बचपनकी बातें सुनकर.. ये दोनों भाईओंने कहा, ... मुझे छोड़कर आ जाना है। कल कहते थे।

समाधान :- (चर्चा) चलती थी, उसमें-से नक्की करते थे कि सत्य क्या है? लेकिन गुरुदेव कुछ अपूर्व कहते हैं, ऐसा मुझे भी लगता था और हिंमतभाईको भी लगता था कि यह कोई अपूर्व बात है। इस रास्तेसे नक्की हो सके ऐसा है। सम्यग्दर्शन कोई अलग वस्तु गुरुदेव बताते हैं। सब शास्त्रोंमें तो, उस वक्त तो श्वेतांबरके शास्त्र थे न, नौ तत्त्वको जान लिया वह श्रद्धा, और यह सब जूठा है। गुरुदेव तो कुछ अंतरकी श्रद्धा कहते हैं। फिर नक्की करके उसकी चर्चा करते, उसमें-से नक्की हो गया कि बस, यह ज्ञायक स्वभाव... सुख अन्दरसे प्रगट करना। ये ज्ञायकस्वभाव जाननेवाला सो मैं और यह विभाव मैं नहीं हूँ। गुरुदेव कहते थे, ऊच्चसे उच्च शुभभाव भी पुण्यबन्धका कारण है। देवलोक हो, परन्तु वह आत्माका स्वभाव नहीं है।

उस वक्त कहते थे कि, भगवानको दया नहीं होती। ऐसा कहते थे तो ऐसा लगता था कि ये क्या कहते हैं? आश्चर्य लगता था। दया वह शुभभाव है। दया शुभभाव कैसे होगा? एकदम शुरूआत थी न। इसलिये ऐसा लगता था।

मुमुक्षु :- ..कुमारके भवका प्रख्यात दृष्टान्त था।

समाधान :- हाँ। ऐसे भगवान अनन्त करुणावन्त कहलाये और ऐसे भगवानको दया-शुभभाव भगवानको नहीं होता। इसलिये दयाका भाव नहीं होता और ऐसे भगवान अनन्त करुणावंत कहलाये। ये सबका कैसे मेल है? ऐसा होता था।

फिर ऐसा कहते थे कि शुभभाव वह विकल्प है, पुण्यबन्धका कारण है। करुणा तो भगवानको अकषाय करुणा है, उनकी वाणी बरसती है। विभावसे आत्मा भिन्न है, यह नक्की करना था। फिर गुणभेद, पर्यायभेद वह सब तो उससे भी आगे थे। आत्मामें अनन्त गुण हैं, पर्याय क्षण-क्षणमें परिणमती है। उस भेद पर भी दृष्टि करके अभेद ज्ञायक पर दृष्टि करनी। यथार्थ सम्यग्दर्शन तो आत्मा पर दृष्टि करे तो ही प्रगट हो। वह आगे था।

परन्तु एक ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण होने पर उसमें सब आ जाता है। उसमें एक ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करने पर उसमें भेदज्ञानकी धारा (चलती है कि), यह मैं हूँ और यह नहीं हूँ। ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करे उसमें अभेद दृष्टि उस पर जाये तो उसमें सब समाविष्ट हो जाता है। एक अंश प्रगट हुआ, स्वरूपकी ओर गया, शुद्धात्माकी एक पर्याय सम्यग्दर्शन (प्रगट हुयी)। स्वभाव-ओरका अपना एक अंश प्रगट

हुआ। उसमें उसे सब ज्ञात हो जाता है। एक ज्ञायकको जानने पर उसमें सब आ जाता है।

फिर गहरी-गहरी स्पष्टता तो गुरुदेवके प्रवचनमें धीरे-धीरे आती थी। पहले तो आत्मा भिन्न, अन्दर निर्विकल्प स्वानुभूति होती है, विकल्पसे भिन्न, शुभभावसे भिन्न। समयसार शास्त्र सभामें राजकोटमें पढ़ा। उसके पहले तो श्वेतांबर पढ़ते थे न, उसमें-से सब आत्मा पर कहते थे।

सहज स्वभाव है, उस पर दृष्टि करे। उस पर दृष्टि करके विकल्पसे भिन्न हो तो अंतरमें स्वानुभूति होती है। अन्दर आनन्द सागर प्रगट होता है, ऐसा गुरुदेव बोलते थे तब ऐसा लगता था कि ये आनन्द सागर अन्दर प्रगट होता है, गुरुदेव ये कैसी बात करते हैं? आनन्द सागर प्रगट होता है (तो) अन्दर आत्मामें कैसा आनन्द सागर होगा? ज्ञानका सागर और आनन्दका सागर बोलते थे।

मुमुक्षु :- आनन्द सागर.. किस प्रकारसे उसमें...?

समाधान :- वह तो अन्दरकी स्वयंकी जिज्ञासासे ही सब आगे चलता है। मैं इस ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करुँ, उसमें सब है। ज्ञायकमें सब भरा ही है। स्वयं विचार करे, अन्दरसे प्रतीतिकी दृढ़ता स्वयंको आ जाती है कि इस ज्ञायकके अस्तित्वमें सब (भरा है), ज्ञायक स्वभावमें सब भरा ही है। ऐसा अन्दरसे विचार करके अन्दरसे ऐसी दृढ़ता आ जाती है। ये विभाव मैं नहीं हूँ। स्वभावमें जो हो वह प्रगट होता है। बस, मुझे एक स्वभाव चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। स्वभावका अस्तित्व ही ग्रहण कर लेना। उसीमें सब भरा है।

एक ज्ञायक अस्तित्व मेरा स्वभाव मुझे चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। अन्य सब स्पृहा जिसे छूट जाय। ऐसा निस्पृह होकर एक ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण कर लेता है। उसमें लंबे विचार, विकल्पकी जालको छोड़कर अस्तित्वको ग्रहण करके अन्दर लीन हो जाय तो जो हो वह उसे प्रगट होता है। अन्दर आनन्द सागर भरा है। उसमें प्रतीतिमें दृढ़ हो जाता है कि इसीमें सब भरा है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२१९

मुमुक्षु :- सोनगढ़ पूरा दिन आये-जाय, यहाँ रहते हों इसलिये सबका आना होता है कि चलिये, एक महिना, दो महिना जिसको जैसी अनुकूलता हो, सब रहने आ जाते थे।

मुमुक्षु :- ...

मुमुक्षु :- हाँ, कोई-कोई आता ही है। आखिरमें समयसारकी गाथा सुनते थे। पण्डितजीने रचना की है, ये उपोद्घात आदि, अपूर्व बात भरी है। ऐसा बोलते थे। गुजरातीमें भाव... समयसारजीका पद्यानुवाद.. बहुत अच्छा लगता था।

मुमुक्षु :- ... बारंबार पद्यानुवाद बोलते थे। इतना अच्छा लगता था। ... पण्डितजीके लिये कितना अहोभाव। ज्योत्सना आयी तो पूछा, बापूजी! मेरे ससुरको कुछ कहना है? बहुत रोने लगे। बुधवारको। शनिवारको देह छोड़ दिया। बहुत रोये।

समाधान :- उन्होंने बहुत वर्ष लाभ लिया, आप सबको संस्कार दिये। करना यह एक ही है। गुरुदेवने कहा उस मार्ग पर जाना है। संसारका स्वरूप ऐसा ही है। मनुष्यभव प्राप्त करके अंतर जो आत्माके संस्कार पड़े वह लाभरूप है। कितने जन्म-मरण करते-करते गुरुदेवका मिले और यह भेदज्ञान करनेका मार्ग बताया। वह करना है।

ये शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न है। आत्मा तो शाश्वत है। उसके जैसे भाव हो, उस अनुसार आत्मा तो जाता है और शरीर पड़ा रहता है। प्रत्यक्ष दिखता है। शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न। भेदज्ञान प्रथम ही कर लेने जैसा है। विकल्प भी आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्माको पहचान लेने जैसा है।

ऐसे कितने जन्म-मरण किये। स्वयंने किसीको छोड़ दिया और किसीने (स्वयंको छोड़ दिया)। शुद्धतासे भरा आत्मा है। एक परमाणुमात्र भी अपना नहीं है। एक रजकण भी अपना होता नहीं और हुआ नहीं। एक रजकणका भी स्वयं स्वामी नहीं है और वह अपना नहीं है। उससे अत्यंत भिन्न आत्मा है। एक परमाणुमात्र भी अपना नहीं है।

'कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणुमात्र नहीं अरे!' परमाणुमात्र अपना नहीं है। स्वयं उससे अत्यंत भिन्न है, उसे पहचान लेने जैसा है। अनन्त कालमें बहुत रिश्ते और सम्बन्ध बनाया, लेकिन वह सब पूरे हो जाते हैं। आत्मा स्वयं जो अनन्त गुणसे

भरा, उसका रिश्ता और उसका सम्बन्ध शाश्वत रहता है।

अनन्त कालमें सब प्राप्त हुआ। गुरुदेव कहते थे न, एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। जीवनमें उसीके संस्कार पड़े और उसका कुछ पुरुषार्थ हो तो वह अपूर्व है। कहते हैं न, जिनवर नहीं मिले हैं और सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। जिनवर मिले तो स्वयंने पहचाना नहीं। और सम्यग्दर्शन तो प्राप्त नहीं हुआ है। गुरुदेवने मार्ग बताया। और इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले और सम्यग्दर्शनका मार्ग बताया तो उसी मार्ग पर जाने जैसा है।

'मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे'। मैं एक स्वरूप शुद्ध और अरूपी आत्मा ज्ञान-दर्शनसे भरा हूँ। कोई अन्य परमाणुमात्र मेरा नहीं है। एक परमाणुमात्र अपना नहीं है। ऐसा गुरुदेव कहते थे, ऐसा भेदज्ञान करने जैसा है।

याद आये परन्तु संसारका स्वरूप ऐसा है। बारंबार आत्माका स्मरण करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्र और आत्मा हृदयमें रखने जैसा है। जीव जन्मता अकेला है, मरता अकेला है, सुख-दुःखका वेदन करनेवाला अकेला है और चार गतिमें भ्रमण करनेवाला अकेला और मोक्ष जाय तो भी अकेला ही है। पुरुषार्थ करके, स्वयं अकेला ही स्वतंत्रपने पुरुषार्थ करके स्वानुभूति प्रगट करनेवाला (है)। शुभाशुभ परिणाम करके जन्म-मरण करनेवाला अकेला है। ऐसी अंतरमें एकत्व भावना करने जैसी है। बाकी सब सम्बन्ध और रिश्ता संसारमें बहुत किये, मानों सब सम्बन्ध ऐसा ही रहेगा, परन्तु वह सब शाश्वत नहीं है। शाश्वत एक आत्मा है। ऐसा सब सम्बन्ध अनन्त कालमें बहुत किये और बहुत बिछड़ जाते हैं।

समाधान :- .. ज्ञान तो अमर्यादित है। ज्ञानको कोई मर्यादा नहीं है कि ज्ञान इतना ही जाने। ज्ञान उसीका नाम कहते हैं कि जो ज्ञान असाधारण गुण है। ज्ञान पूर्ण जानता है। स्वयं अपनेको जानने पर, पर ज्ञात हो जाता है। उसमें सहज ज्ञात हो जाता है।

ज्ञेयमें एकत्वबुद्धि तोड़नेको कहा जाता है, परन्तु उसका जाननेका स्वभाव चला नहीं जाता। एकत्वबुद्धि तोड़कर तू तेरे आत्माको जान। परन्तु उसमें उसका जाननेका स्वभाव चला नहीं जाता। रागसे एकत्वबुद्धि तोड़नी है। रागके साथ, ज्ञेयके साथ एकत्वबुद्धि (है)। भेदज्ञान करके मैं ज्ञायक हूँ (ऐसा अभ्यास करना है)। उसका जाननेका स्वभाव है, उस स्वभावका कहीं नाश नहीं होता है। उसमें ज्ञात हो जाता है। ज्ञानकी मर्यादा नहीं होती, ज्ञान पूर्ण जानता है। स्वयं अपनमें स्व-ओर उपयोग कर। छद्मस्थ है उसका उपयोग एक बारमें एकको जानता है। छद्मस्थका क्रमसर उपयोग (चलता है)। अपनी ओर उपयोग होता है तो पर-ओर उपयोग नहीं है, इसलिये ज्ञात नहीं होता है। बाकी

उसके स्वभावका नाश नहीं होता है। केवलज्ञान, वीतरागी ज्ञान होता है उसमें पूर्ण ज्ञात हो जाता है। उसका स्वभाव जाननेका है।

मुमुक्षु :- छद्मस्थको निर्विकल्पताके समय पर ज्ञात नहीं होता है। वह तो उसका क्रमसर उपयोग है, इसलिये एक बारमें एक ज्ञात होता है, दूसरा ज्ञात नहीं होता है। अतः जाननेका स्वभाव नाश नहीं होता है। जाननेका स्वभाव नाश नहीं हो जाता। उसका उपयोग स्वकी ओर है, इसलिये दूसरा ज्ञात नहीं होता है। स्वयं अपने स्वरूपमें लीन है इसलिये ज्ञात नहीं होता है। अपूर्ण ज्ञान है इसलिये क्रमसर (जानता है)। छद्मस्थका ज्ञान क्षयोपशम ज्ञान है। एक बारमें एक ज्ञात होता है। परिणतिमें तो जो प्रत्यभिज्ञान है, अनन्त काल व्यतीत हुआ वह प्रत्यभिज्ञान, वह ज्ञान तो उसमें पड़ा है। बचपनसे बड़ा होता है, अनेक प्रकारका ज्ञान उसमें लब्धरूपसे होता है। उसे उपयोगरूप नहीं होता। परन्तु वह सब तो उसमें होता है। जाननेका नाश नहीं होता है। उसे याद आये तो सब याद कर सकता है। उसमें राग तोड़नेको कहा जाता है। उसमें कहीं ज्ञानका नाश नहीं होता है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें एक बोलमें आता है कि ज्ञानीकी दृष्टि सतत द्रव्य सामान्य पर रहती है। सतत भेदविज्ञानकी धारा चलती है। भेदविज्ञानकी धारा चले और ज्ञानीकी दृष्टि द्रव्य सामान्य पर एक कालमें रहे। दो बात एकसाथ बने? द्रव्य सामान्य पर ज्ञानीकी दृष्टि रहती है और उस कालमें भेदविज्ञानकी धारा सतत लिखा है, सतत चलती है। ये दो बात...

मुमुक्षु :- दोनों एक समयमें बन सकता है? द्रव्य पर दृष्टि रहनी और भेदज्ञानकी धारा सतत रहनी, दोनों एकसाथ होता है।

समाधान :- एकसाथ हो सकता है। दृष्टि और ज्ञान दोनों एकसाथ रहते हैं। सामान्य स्वभाव पर दृष्टि रहती है और भेदज्ञानकी धारा रहती है। दोनों साथमें रहते हैं। ज्ञान और दृष्टि दोनों एकसाथ कार्य करते हैं। दृष्टि स्व पर जमी है और स्वको जानता और यह मैं नहीं हूँ, ऐसा भी जानता है।

मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ और यह विभाव सो मैं नहीं हूँ। यह स्वभाव सो मैं, और विभाव सो मैं नहीं हूँ। ऐसी ज्ञातृत्व धारा चालू रहती है। और दृष्टि, मैं अखण्ड शाश्वत द्रव्य हूँ, ऐसी दृष्टि भी रहती है। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें रहते हैं। दृष्टि और ज्ञान साथमें रहनेमें कोई विरोध नहीं है। दोनों साथमें रहते हैं, एकसाथ

मुमुक्षु :- भेदविज्ञान तो विकल्प है। तो विकल्प है और निर्विकल्प रहे?

समाधान :- नहीं, निर्विकल्प और विकल्पकी बात नहीं है। दृष्टि तो सविकल्पमें भी रहती है और दृष्टि निर्विकल्पमें भी रहती है। दृष्टि निर्विकल्प स्वानुभूतिके समय

ही हो और बाहर आये तब न हो, ऐसा नहीं है। दृष्टि तो बाहर उपयोग हो तो भी चैतन्य पर दृष्टि स्थापित ही रहती है। दृष्टि कहीं अन्दर स्वानुभूतिके कालमें दृष्टि हो और बाहर आये तब दृष्टि न हो, ऐसा नहीं है। दृष्टि तो उसका उपयोग बाहर है तो भी दृष्टि तो स्वभावकी ओर होती ही है। दृष्टि और ज्ञान दोनों होते हैं।

दृष्टि निर्विकल्पके समय हो और बाहर आये तब विकल्पकी धारा हो, ऐसा नहीं है। दृष्टि स्वभावकी ओर रहती है और ज्ञान भी स्वभावकी ओर रहता है। यह मैं हूँ और यह मैं हूँ, ये दोनों बात साथमें होती है। और दृष्टि भी रहती है। सविकल्पमें भी रहती है। निर्विकल्पमें तो दृष्टि ज्योंकी त्यों रहती है। विकल्प-ओरसे उपयोग छूट जाता है, निर्विकल्प स्वानुभूतिके (कालमें)। विकल्प-ओर उपयोग (नहीं है), विकल्प छूट जाता है। बाहर आये तो विकल्प है तो भी दृष्टि रहती है। विकल्प न हो तो भी दृष्टि रहती है। बाहर तो विकल्पके साथ दृष्टि और ज्ञान दोनों है। और स्वानुभूतिमें भी दृष्टि और ज्ञान दोनों है, परन्तु विकल्प-ओर उपयोग नहीं है। विकल्प छूट गया है।

मुमुक्षु :- आता है कि समस्त ज्ञानियोंका अभिप्राय द्रव्य सामान्यको लक्ष्यमें लो, द्रव्य सामान्य पर दृष्टि करो, ऐसा लिखा है। समस्त ज्ञानियोंका कहनेका यह मंतव्य है कि द्रव्य सामान्यको लक्ष्यमें लो। द्रव्य सामान्यको लक्षगत करनेका जो भाव है वह विकल्प है, ऐसा लगता है। करो, करनेका भाव तो विकल्प है। अनुभवका आनन्द ऐसे करनेमें कैसे आवे?

समाधान :- उपदेश ऐसा आवे न। उपदेश ऐसा आता है, यह करो, ऐसे पुरुषार्थ करो, ऐसे साधकदशा करो, ऐसे दृष्टि करो, ऐसे निर्विकल्प स्वानुभूति करो। उपदेशमें क्या होता है? उपदेशमें तो करो ऐसा आता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि निर्विकल्प स्वानुभूतिमें विकल्प टूट जाता है, तो सहज परिणति होती है। ऐसे तू बराबर ज्ञान करके सहजरूप परिणमित हो जा। ऐसा कहते हैं। करो-करो, पुरुषार्थ प्रेरक वाक्य तो ऐसा ही होता है न। पुरुषार्थकी प्रेरणा (देते हैं)। उपदेशमें क्या होता है?

ऐसे विकल्प तोड़ दे, स्वरूप-ओर उपयोग कर, स्वरूप-ओर दृष्टि कर, ऐसे पुरुषार्थकी बात आवे। पुरुषार्थके बिना कैसे होता है? करो-करो यानी विकल्प तो साथमें होता है, परन्तु कहनेका आशय ग्रहण करना कि, तू सहजपने अंतरमें परिणम जा। विकल्प तो साथमें (होता है)। कर्तृत्व-वह करनेका तो बीचमें आता है। मैं ऐसा करुँ, मैं ऐसा करुँ, मैं ज्ञानकी ओर उपयोग करुँ, मैं ज्ञाता हूँ, करनेकी बुद्धि बीचमें आये, परन्तु तू सहजरूपसे परिणमित हो जा, ऐसा कहनेका आशय है। ऐसे आशय ग्रहण कर लेना। कहनेमें तो ऐसा ही आये कि तू ऐसा कर। स्वयंको भावनामें ऐसा आये

कि मैं स्वरूपकी ओर दृष्टि करुँ, ऐसा करुँ, भावनामें ऐसा आये। परन्तु सहज दशा है, मैं सहजरूप कैसे परिणमित हो जाऊँ? भावना ऐसी होती है, परन्तु बीचमें पुरुषार्थ करुँ-करुँ ऐसा विकल्प तो बीचमें आये बिना रहता ही नहीं। विकल्प तो बीचमें आता ही है। सहज पर दृष्टि करनी। मैं कैसे सहजरूप परिणमित हो जाऊँ? सहज दशा कैसे प्रगट हो? ऐसे। बीचमें आता है। ऐसे ही सहज नहीं हो जाता।

ऐसी भावना आये बिना (नहीं रहती) कि मैं ऐसे भावना करुँ, मैं दृष्टि प्रगट करुँ, चारित्रदशा प्रगट करुँ। ऐसे भावना आये बिना कहीं सहज नहीं हो जाता। सहजको और पुरुषार्थ एवं भावनाके साथ सम्बन्ध है। दोनों साथमें होते हैं। करुँ-करुँके विकल्पके साथ सहज पर परिणति करके सहजरूपसे परिणम जाता है। सहजके साथ सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- जब अंतर्मुख होनेका प्रयत्न करते हैं तो विकल्प पकड़में आता है, फिर आगे कुछ नहीं चलता है। तब क्या करना?

समाधान :- आगे पकड़में न आये तो आगे पकड़नेका प्रयत्न करना। और क्या? अन्दर गहराईमें ऊतरना। विकल्प बीचमें आये, लेकिन अन्दर गहराईमें स्वभाव क्या है, उस स्वभावको ग्रहण करना।

मैं सहज ज्ञाता स्वभाव, सहज ज्ञायक हूँ। सहजको ग्रहण कर लेना। विकल्प तो बीचमें आते ही रहते हैं। जबतक सहज प्रगट नहीं हुआ है, तबतक विकल्प बीचमें आते हैं। सहज स्वभावको ग्रहण करनेका प्रयत्न करना कि मैं सहज स्वभाव ज्ञायक हूँ। उस पर दृष्टि परिणति प्रगट करनेका प्रयत्न करना। (निर्विकल्प) दशा प्रगट करुँ, सम्यग्दर्शन प्रगट करुँ, दृष्टि प्रगट करुँ, ऐसे करना ही आये न। पुरुषार्थमें तो करनेकी बुद्धिके सिवा क्या है?

अन्दर सहज प्रगट करनी है, (ऐसा) स्वयं उसका ध्येय रखना। विकल्प भावनाको और सहज परिणतिको सम्बन्ध है। बीचमें आये बिना नहीं रहता। मैं ज्ञायक कौन हूँ? ऐसे ग्रहण कर लेना। विकल्प तो विकल्पकी दशामें है, इसलिये विकल्प-विकल्प बीचमें दिखे, परन्तु स्वभावको ग्रहण करना।

समाधान :- .. पुरुषार्थ होना चाहिये। करना स्वयंको है। अनादिसे विभावमें दौड़ जाता है। विभावके संस्कार अनादिके है। ये सब आकुलताके, शरीरके, धनके, कुटुम्बके, विकल्पके, रागके, द्वेषके संस्कार अनादिसे है। उस संस्कारको पलटकर स्वयं आत्मा-ओरकी रुचिके संस्कार करना, वह अपने पुरुषार्थकी बात है। मैं आत्मा हूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे स्वयं महिमासे (पुरुषार्थ करे)। ऐसे रुखा-रुखा नहीं, सिर्फ बोलनेमात्र नहीं। अन्दरसे उसे महिमा लगनी चाहिये। ज्ञायकमें ही सब है, आत्मामें सब है, आत्मामें आनन्द है, आत्मामें सुख है। ऐसी महिमापूर्वक स्वयं अपने

संस्कार बदले। वह संस्कार जैसे अनादिके पड़े हैं वैसे, मैं चैतन्य हूँ, मैं यह नहीं हूँ, ऐसे स्वयं बारंबार उस संस्कारको दृढ़ करे तो उस जातके संस्कार उसे प्रगट होते हैं।

एक जिनेन्द्र देव, एक गुरु और एक शास्त्र, वही उसे सर्वोत्कृष्ट लगे। उनके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये। संसार पर-से उसे ममत्व (कम हो जता है)। संसारमें हो तो ममत्व कम हो जाय। सर्वोत्कृष्ट जगतमें हो तो एक जिनेन्द्र भगवान, एक गुरु, जो आत्माका स्वरूप दर्शाते हैं ऐसे गुरु और शास्त्र, जो आत्मस्वरूपका मार्ग बताये। जिस शास्त्रमें गहरीसे गहरी बातें हो, आत्माको मुक्तिका मार्ग मिले ऐसे शास्त्र। जगतमें सर्वोत्कृष्ट हों तो वह है, अन्य सबकी महिमा उसे छूट जाय। जगतमें अन्य कुछ सर्वोत्कृष्ट या आश्चर्यकारी नहीं है। एक आश्चर्यकारी जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र है। अन्दर एक आत्मा आश्चर्यकारी है, आत्माका स्वभाव आश्चर्यकारी है और देव-गुरु-शास्त्र आश्चर्यकारी हैं। दूसरा कुछ भी जगतमें (आश्चर्यकारी) नहीं है। अन्य सब महत्ता और महिमा उसे छूट जाय। उसे हर जगह धर्म, देव-गुरु और शास्त्रकी मुख्यता रहे, उसे आत्माकी मुख्यता रहे। उसे संसारकी सब गौणता हो जाती है। ऐसी रुचि उसे अन्दरसे होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- यह सब बराबर लगता है, गुरुदेवकी महिमा (आती है), फिर भी रागके परिणाम छूटते नहीं है।

समाधान :- अनादिके संस्कार है न, उसे बदलते रहना।

मुमुक्षु :- बारंबार अभ्यास करना?

समाधान :- हाँ, बारंबार अभ्यास करना।

मुमुक्षु :- मुनिओंको इतना उपसर्ग पड़ता है तो उन्हें अन्दरसे विकल्प ही नहीं आता है कि मुझे इतना दुःख (हो रहा है)? गजसुकुमालके मस्तक पर अग्नि जलाई, तो उन्हें विकल्प भी नहीं उत्पन्न होता?

समाधान :- उन्हें अन्दर भेदज्ञान प्रगट हो गया है। भेदज्ञानके साथ चारित्रकी दशा (प्रगट हुयी है)। उन्हें, मैं ज्ञायक भिन्न और जो विकल्प आता है कि इस शरीरमें दुःख है, उस रागके विकल्पसे उन्होंने आत्माको भिन्न जाना है। और वे अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें लीन होते हैं। ज्ञानमें जान लिया कि शरीरमें उपसर्ग (हो रहा है) और यह शरीर जल रहा है। ऐसा सहज रागका विकल्प आये वहाँ आत्माको भिन्न कर देते हैं कि मेरा आत्मा भिन्न है, यह विकल्प आता है वह भी मुझसे भिन्न है। ये शरीरमें जो होता है वह होता है, मेरे आत्मामें नहीं होता है। ऐसी परिणति उनको दृढ़ है। और वे क्षण-क्षणमें स्वरूपमें डूबकी लगाते हैं। स्वरूपमें आनन्दमें लीन होते हैं, इसलिये बाहरसे उनका उपयोग छूट जाता है और अंतरमें लीन हो जाते हैं। अतः बाहर-से उपसर्ग आया, परन्तु वे अंतरमें (लीन हो जाते हैं)। बाहर उपयोग आवे

तो जान लेते हैं कि ये शरीर जल रहा है।

और (उनको) सम्यग्दर्शन तो है, लेकिन उससे भी आगे बढ़ गये हैं। चारित्र दशा है। जो गृहस्थाश्रममें सम्यग्दर्शन हुआ है, उन्हें भेदज्ञान तो हुआ है, आत्माको तो भिन्न जाना है-न्यारा जानते हैं। उन्हें गृहस्थाश्रममें कोई भी रोग आये तो आत्मा भिन्न है ऐसा जानते हैं। परन्तु अल्प अस्थिरता है, उन्हें रागके और दूसरे विकल्प आते हैं, यह ठीक नहीं है, ऐसी अस्थिरता हो तो भी आत्मामें शान्ति रखते हैं। विकल्प आये, अमुक अस्थिरता हो तो भी शान्ति रखते हैं।

और मुनि तो उससे भी आगे बढ़ गये हैं। मुनि तो चारित्रदशामें अन्दर क्षण-क्षणमें स्वरूपमें लीन होते हैं। और गृहस्थाश्रममें कोई बार लीन हो, बाकी उन्हें भेदज्ञानकी धाराकी लीनता है। भेदज्ञानकी धाराकी लीनता चालू है। इसलिये वे भी भिन्न हैं, परन्तु मुनि तो विशेष आगे हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें चले जाते हैं। इसलिये इस उपसर्गमें उन्हें पुरुषार्थ विशेष वृद्धिगत हो गया। गजसुकुमालको अन्दर लीनता होते-होते ऐसे लीन हो गये कि बाहर ही नहीं आये, केवलज्ञान प्रगट किया। केवलज्ञान प्रगट हो गया तो इस शरीरमें क्या होता उसका ख्याल भी नहीं है।

मुमुक्षु :- उपसर्ग था तभी केवलज्ञान हुआ?

समाधान :- उपसर्ग था, बाहरसे शरील जल रहा था, परन्तु अन्दर केवलज्ञान हो गया। और आत्मा अन्दर एकदम केवलज्ञान होकर आत्मा मोक्षमें चला गया। उतनी लीनता प्रगट हो गयी।

मुमुक्षु :- मुनिको इतनी पुण्य प्रकृतिका उदय है, इतना..?

समाधान :- पुण्य प्रकृति नहीं, पुरुषार्थ।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ, तो भी उनको इतना उपसर्ग आता है?

समाधान :- पूर्वके जो उदय हो वह उदय आये बिना नहीं रहता। मुनि हो तो मुनिओंको भी उदय आते हैं, परन्तु वे शान्ति रखते हैं। अन्दरमें उन्होंने ऐसा पुरुषार्थ प्रगट किया कि केवलज्ञान प्रगट किया। मुनि शान्ति (रखते हैं)। उन्हें एक भव हो तो देवलोकमें जाते हैं। गजसुकुमालने तो केवलज्ञान प्रगट किया। ऐसे लीन हो गये कि ये शरीर जल रहा है, वह भी ध्यान नहीं रहा। आत्मामें ऐसे डूब गये कि केवलज्ञान हो गया।

मुमुक्षु :- उग्र पुरुषार्थ।

समाधान :- उतना उग्र पुरुषार्थ। उतना पुरुषार्थ हो सकता है।

मुमुक्षु :- विचार यह आता है कि मुनि इतने बढ़ गये हैं, चारित्रदशा इतनी है, फिर भी उपसर्ग आता है, पूर्व भवके ..

समाधान :- पूर्व भवके उदय तो आते हैं। चतुर्थ कालमें भी आते थे। ऋषभदेव भगवान जैसे तीर्थंकर..

मुमुक्षु :- उनके पुरुषार्थसे कर्म जल जाये, ऐसा कुछ?

समाधान :- पुरुषार्थसे अन्दर कर्म जल जाते हैं। परन्तु बाहरमें कुछ एक छूट जाते हैं, परन्तु कुछ नहीं छूटे तो उदयमें आते हैं। कुछ एक जो बाहरके कर्म होते हैं शरीरके आधीन रोगके, कोई बाह्य उपसर्गका, कोई सिंह-बाघका, कोई मनुष्य उपसर्ग करे, ऐसे कोई कर्म हो तो कुछ एक छूट जाते हैं और कुछ नहीं भी छूटते हैं। और अन्दरमें राग-द्वेष छूटकर वीतराग दशा प्रगट करनी वह अपने हाथकी बात है। राग-द्वेषके जो उदय आये उसे तोड़कर स्वयं वीतराग दशा करे। परन्तु बाहरसे जो उपसर्ग आते हैं, वह किसीको पलट जाते हैं, किसीको नहीं भी पलटता है।

तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव भगवान सर्वोत्कृष्ट भगवान, तीन लोकके नाथ, जिनकी इन्द्र आकर पूजा करते थे, उनके जन्म समय मेरु पर्वत पर ले गये। जब उन्होंने दीक्षा ली, तब उनको बारह महिना आहर नहीं मिला है। वे आहार लेने जाते थे, तो कोई आहार (देनेकी) विधि नहीं जानता था। कोई हीरा, मोती, माणक लेकर आते हैं, तो वापस चले जाते हैं। ऐसा उदय उनको भी था। बारह महिने तक था। तो स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। फिर बाहर आये, योग्य दिखाई न दे, आहारका योग न हो तो जंगलमें वापस आकर आत्मामें लीन (हो जाते हैं)।

मुमुक्षु :- फिर विकल्प भी नहीं आता।

समाधान :- फिर विकल्प नहीं आता। स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। फिर वापस विकल्प आये तो नगरमें जाते हैं, कैसा योग बनता है? जुगलिया जानते नहीं है। बस, हीरा-मोती लेकर आते हैं। आखिरमें श्रेयांसकुमारने आहार दिया।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२०

समाधान :- ... स्वभावको स्वयं (पहचाने)। मैं ज्ञायक, जो जाननेवाला है वह स्वयं है। जाननेवालेमें आनन्दादि अनन्त गुण हैं। ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुण। उसका स्वभाव कैसे पहचानमें आये? पहचाननेके लिये शास्त्रका अभ्यास, गुरु प्रत्यक्ष हो तो उनकी वाणी सुननेसे बहुत फ़र्क़ पड़ता है। क्योंकि वे तो अपूर्व बात (कहते हैं)। गुरुदेवकी प्रत्यक्ष वाणीमें आये, ऐसा शास्त्रमें-से समझमें नहीं आता। परन्तु स्वयं विचार करके उसमें-से क्या वस्तु है? अभी कोई उपाय न हो तो शास्त्रमें-से, कोई मुमुक्षु हो तो उसका सत्संग करने-से जानना कि आत्माका स्वभाव क्या? ये विभाव क्या? ये पुद्गल भिन्न, विभावस्वभाव आत्माका नहीं है, ज्ञायक स्वभाव स्वयं हैं। उसका विचार, उसका वांचन, उसकी लगन, उसकी महिमा, पर पदार्थ परसे उसकी महिमा कम हो जाय और चैतन्यकी महिमा लगनी चाहिये, तो हो। करने जैसा एक ही है। चैतन्यको पहचाने तो उसमें-से आनन्द आदि अनन्त गुण प्रगट होते हैं। भेदज्ञान करनेका उपाय करे। परन्तु उसके लिये उसका विचार, वांचन करना चाहिये, उसकी लगन लगानी चाहिये।

मुमुक्षु :- निरंतर लगन चालू रहे, उसके लिये यह सब पुरुषार्थ करना?

समाधान :- पुरुषार्थ करना। उसका विचार, उसका वांचन, बस! महिमावंत चैतन्य ही है, ऐसा निश्चय करना चाहिये कि आत्मामें ही सब सर्वस्व है, बाहर कहीं नहीं है। ऐसा यदि स्वयंको निश्चय और प्रतीत हो तो स्वयं उस ओरका विचार, वांचन कर सके। उतना निश्चय होना चाहिये कि आत्मामें ही सब है, बाहरमें कहीं नहीं है।

गुरुने क्या कहा है? शास्त्रमें क्या आता है? सबका विचार करना। गुरुने क्या मार्ग बताया है? वह समझनेके लिये कोई मुमुक्षुका सत्संग करना। गुरुने क्या कहा है? शास्त्रमें क्या (कहा है)?

मुमुक्षु :- अनुभूतिमें आत्मा दिखाई देता है?

समाधान :- आत्माकी अनुभूति होती है। आत्माका स्वभाव है उसका वेदन होता है। आत्मा अनन्त गुणसे भरा है। उसमें ज्ञान, आनन्दादि अनन्त गुण हैं। आत्माके दर्शन होते हैं, आत्माका वेदन होता है।

मुमुक्षु :- अरूपी है तो ..

समाधान :- अरूप है। लेकिन यह रूपी वर्ण, गन्ध इत्यादि सब नहीं है। अरूपी अर्थात् स्वयं वस्तु है न? अपने स्वभावको स्वयं देख सकता है। अरूपी अर्थात् स्वयं अपने ज्ञान-से स्वयंको पहचान सकता है। उसका वेदन कर सकता है।

.. केवलज्ञानी भगवान भी, सम्यग्दृष्टि भी उसकी स्वानुभूतिमें उसे देख सकश्रते हैं, उसका वेदन कर सकते हैं। स्वानुभूतिके समय उसका वेदन कर सकते हैं, उसे प्रत्यक्ष देख सकते हैं। अनुभूतिमें वह प्रत्यक्ष ही है, ऐसा उसे दर्शन होता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- कर्म छूट जाते हैं। पहले आंशिक स्वानुभूति होती है। इसलिये अमुक प्रकारसे कर्मोंका नाश होता है। फिर जैसे आगे बढ़े वैसे अधिक कर्मोंका नाश होता है। केवलज्ञान होता है तब पूर्ण कर्मोंका नाश होता है। सम्यग्दर्शन हो, स्वानुभूति हो तब थोड़े कर्मोंका। स्वानुभूति जब होती है, इसलिये जो अनन्त भव उसके होते थे, उस अनन्त भवका अभाव होता है, ऐसे कर्मका नाश हो जाता है। फिर थोड़ा ही बाकी रहता है। अनन्त भवका नाश हो जाय, ऐसे कर्मका नाश हो जाता है। लेकिन स्वानुभूति हो तब।

उसकी दृष्टि कर्म पर नहीं है। निज स्वभाव पर ही दृष्टि है। स्वभावका वेदन हो, उसी पर दृष्टि है-स्वभाव पर। कर्म तो स्वयं छूट जाते हैं। अनन्त भवका अभाव हो जाय। ऐसे कर्मका नाश हो जाता है। फिर तो अल्प-थोड़े रहते हैं।

... विकल्पको तो स्वयं जानता है न? जो विकल्प हो रहे हैं, राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प, पूरे दिन भरके विकल्प, सब धमालके विकल्प, व्यापार-व्यवसायके जो-जो विकल्प आते हो, उस विकल्पको तो स्वयं जानता है न? कि ये विकल्प मुझे हुए। कितने? सुबहसे शाम तक जो विचार आये, उस विचारको तो जानता है। वह जाननेवाला कौन है? सब विचार तो चले जाते हैं। बचपनसे बड़ा हुआ, उसमें जो विचार, विकल्प आये वह विकल्प तो चले गये। परन्तु उसका जाननेवाला विद्यमान है। उसे याद करे तो उसे सब याद आता है। वह जाननेवाला है। जाननेवाला है वह जान रहा है। वह जाननेवाला अन्दर विद्यमान है।

चर्म चक्षुसे दिखे ऐसा नहीं, परन्तु अन्दर जाननेवाला है वह सब याद करता है। उसका अस्तित्व है-जाननेवालेका। उसकी मौजूदगी है, उसका अस्तित्व है? वह जाननेवाा कौन है? विकल्प तो सब चले गये, परन्तु उसे याद करे तो, मुझे ऐसे-ऐसे विचार आये थे, जाननेवाला अन्दर है। यह शरीर कुछ जानता नहीं है। वह तो जानता नहीं, विकल्प तो सब आकर चले गये, अन्दर जाननेवाला एक तत्त्व विद्यमान है। वह जाननेवालेका अस्तित्व है अन्दर, वह जान रहा है।

... विकल्पकी जाल तो अन्दर चलती है। सूक्ष्म होकर देखे तो विकल्पकी जालमें जाननेवाला विद्यमान है। आँख बन्द करके बैठे तो भी विकल्प-विकल्पकी जाल चलती है। अन्दर देखे तो अन्दर जाननेवाला विद्यमान है। वह जाननेवाला सब जान रहा है। वह जाननेवालेका अस्तित्व है। जाननेवालेका अस्तित्व है वह आत्मा है। लेकिन अन्दर वह उसे पहचानता नहीं है। जाननेवाला है उसमें अनन्त गुण हैं। भेदज्ञान करे, विकल्पसे भिन्न आत्मा है। उसका यथार्थ सूक्ष्म होकर भेदज्ञान करे तो स्वयं स्वयंको देख सकता है, स्वयं स्वयंको वेद सकता है। वह अरूपी होनेके बावजूद वह जाननेवाला जाननस्वरूप है, वह ख्यालमें ले तो जाननेवालेका अस्तित्व उसे ख्यालमें आ सकता है। वह जाननेवालेका वेदन चला नहीं जाता। जो-जो विचार आये उसका जाननेवाला ज्यों का त्यों विद्यमान रहता है।

मुमुक्षु :- ध्यानसे ज्ञात होता है? आत्माको प्राप्त करनेके लिये..?

समाधान :- समाधि, परन्तु उसे ज्ञानपूर्वक समाधि होनी चाहिये। भले अधिक शास्त्र जाने ऐसा नहीं, परन्तु प्रयोजनभूत तो जानना (चाहिये)। बिना जाने ध्यान करे अथवा कुछ समझे बिना ध्यान करे तो स्वयंको स्वयं पहचानता नहीं है। विकल्प-विकल्प छोड़े, फिर कहाँ खड़े रहना वह मालूम नहीं। स्वयंको पहचाने कि मैं जाननेवाला हूँ, ये सब विकल्प है। इस प्रकार भेदज्ञान करके यदि ध्यान करे तो उसका ध्यान यथार्थ हो। भेदज्ञान बिना ऐसे ही ध्यान करे तो उसे शून्य जैसा, शून्याकार जैसा हो जाय, तो वह आगे नहीं बढ़ सकता।

मुमुक्षु :- ऐसे मान लिया कि आत्मा वस्तु सच्ची है, फिर कैसे प्राप्त करना?

समाधान :- सच्ची है, लेकिन उसने ऊपर-ऊपरसे जाना, अन्दरसे उसे उसका स्वभाव पहचानकर जानना चाहिये। ऊपर-ऊपर-से जान लिया ऐसा नहीं, परन्तु अंतरमें उसे भेदज्ञान होना चाहिये। उसे क्षण-क्षणमें जो-जो विकल्प जो-जो कार्य हो, उन सबमें मैं जाननेवाला भिन्न, भिन्न, भिन्न हूँ, ऐसी धारा उसे होनी चाहिये। मैं जाननेवाला भिन्न ही हूँ। ऐसा उसे अन्दरसे भेदज्ञान होना चाहिये, तो उसका ध्यान यथार्थ हो। नहीं तो सब एकत्व (हो रहा है)। भिन्न जानता नहीं है और ध्यान करे तो उसे शून्य जैसा हो जाय। सूक्ष्म-सूक्ष्म विकल्प आवे और उसे भ्रम हो जाय कि मेरे सब विकल्प छूट गये, ऐसा उसे लगे। परन्तु भेदज्ञान करके मैं भिन्न हूँ, इस प्रकार उसे ज्ञान हो तो सच्चा ध्यान हो।

भेदज्ञान करके ध्यान करे। स्वयंको पहचानकर, अपना अस्तित्व ग्रहण करके, तो उसे यथार्थ ध्यान हो। ध्यान सच्चा परन्तु ज्ञानपूर्वकका ध्यान होना चाहिये। स्वयंको यथार्थरूपसे ध्यान होना चाहिये। पहचान किये बिना ध्यान (करे), वह गधे सींगकी भाँति, पहचान

किये बिना ध्यान करे उसका फल यथार्थ नहीं आता।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान प्राप्त करनेके लिये सत्पुरुषका समागम न?

समाधान :- हाँ, सत्समागम चाहिये। गुरुदेव क्या कहते हैं, उस तत्त्वका विचार चाहिये। सत्समागम, तत्त्व विचार, शास्त्रका अभ्यास, अभ्यास अर्थात् प्रयोजनभूत स्वयंको पहचाननेका ऐसा (अभ्यास) चाहिये। उसकी महिमा चाहिये, उसकी लगन चाहिये।

मोक्षकी प्राप्ति हो अर्थात् आत्मा चैतन्य अकेला निराला हो जाय और अन्दर जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि भरे हैं, वह सब उसके स्वभाव प्रगट होते हैं। अनन्त शक्ति-से भरा आत्मा है। वह स्वयं अंतरमें अपने गुण सहित प्रगट होता है। अनन्त पर्यायें प्रगट होती हैं, अनन्त निर्मलता, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल अनन्त स्वरूप उसका प्रगट होता है। उसकी दृष्टि अलग हो जाय। स्वयं चैतन्य स्वरूपमें चैतन्यलोकमें चला जाता है। चैतन्य स्वरूपमें-से उसे अनन्त गुण प्रगट होते हैं। अनन्त-अनन्त स्वभाव प्रगट होता है।

मनुष्य गतिमें, प्रगट मनुष्य गतिमें होता है। परन्तु कहीं उसने उपदेश सुना हो। अनन्त कालमें जीवने एक बार कोई देवका, गुरुका उपदेश सुना हो और उसे अन्दर ग्रहण किया हो तो उतना अंतरमें हो तो उसे प्रगट होता है। फिर दूसरे भवमें उसे कोई भी गतिमें प्रगट होता है, तैयारी करे तो। बाकी केवलज्ञान तो मनुष्यगतिमें ही होता है। .. गतिमें प्रगट होता है। इस मनुष्य गतिमें तैयारी करे।

समाधान :- ... पहले श्रद्धा यथार्थ करनी कि पुण्यभाव और पापभाव दोनों विभावभाव है। ऐसे श्रद्धा यथार्थ करनी। एक ज्ञायक स्वभाव निर्विकल्प तत्त्व, जिसमें कोई विकल्प नहीं है। ऐसा ज्ञायकतत्त्व मैं हूँ, उसकी श्रद्धा करके उसमें लीनता करनी, उसीसे धर्म है। श्रद्धा यथार्थ ऐसी होनी चाहिये। फिर जबतक अतंरमें स्वयं लीन नहीं हुआ है और उस जातकी परिणति नहीं हुयी है, तबतक बीचमें शुभ परिणाम आते हैं। परन्तु वह शुभ परिणाम अपना स्वभाव नहीं है। वह आकुलतारूप है, ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये। परन्तु जबतक उसे अंतरमें उतनी परिणति प्रगट नहीं हुयी है, तबतक बीचमें शुभभाव-देवके, गुरुके, शास्त्रके ऐसे शुभभाव आते हैं। परन्तु वह उसे ऐसा नहीं मानता है कि इसीसे मुझे लाभ, सर्वस्व लाभ होता है, ऐसा नहीं मानता है।

श्रद्धा उसे ऐसी होनी चाहिये कि दोनों भावसे न्यारा मैं चैतन्य निर्विकल्प तत्त्व हूँ। परन्तु जबतक अंतरमें प्रगट नहीं हुआ है, तबतक बीचमें देव-गुरु-शास्त्रके विचार आये बिना नहीं रहते। अशुभभावसे बचनेके लिये शुभभावमें जिनेन्द्र देव, गुरु और श्रुतके विचार, शास्त्रके विचार उसमें बीचमें आते हैं। परन्तु वह आत्माका मूल स्वभाव नहीं है। ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये। प्रथमसे ही सब छूट नहीं जाता, परन्तु उसे श्रद्धा होती

है, उसका भेदज्ञान होता है।

.... रखकर सब बात की है। अनन्त कालसे जीवने दृष्टि प्रगट नहीं की है। दृष्टि मुख्य रखकर गुरुदेव कहते थे। उसमें जिसकी जो रुचि और जिसकी ग्रहण करनेकी शक्ति हो, उस अनुसार ग्रहण कर लेता है। जिज्ञासुको स्वयंको क्या ग्रहण करना उसके हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- .. की बात भी उतनी ज़ोरसे करते थे।

समाधान :- हाँ, गुरुदेव वह बात आये तो वह भी ज़ोरसे कहते थे और यह बात आये तो यह ज़ोरसे कहते थे। उसमें गुरुदेवका क्या अभिप्राय और आशय है, उसे समझना पड़ता है। सब बात करते थे। दोनों पहलूसे बात आती थी।

पर्याय द्रव्य बिना निराधार नहीं होती। तथापि द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप समझानेके लिये, गुणका यह स्वरूप, द्रव्यका और पर्यायका अंशका स्वरूप, उसका भिन्न-भिन्न स्वरूप वर्णन करनेमें आये तब ऐसा आये। बाकी द्रव्य और पर्याय एकदम टूकड़े (नहीं है)। दो द्रव्य स्वतंत्र हैं, वैसे पर्याय और द्रव्य उस प्रकारसे स्वतंत्र हो तो दो द्रव्य हो जाय। तो उसे पर्याय ही नहीं कह सकते। तो फिर दो द्रव्य हो जाते हैं। परन्तु पर्यायको द्रव्यका आश्रय होता है।

जितनी स्वतंत्रता दो द्रव्यकी है, उतने ही पर्याय और द्रव्य स्वतंत्र हो तो उसे पर्याय ही नहीं कहते। उसके स्वरूपसे उसका अंश स्वतंत्र है। परन्तु वह पर्याय द्रव्यके आश्रयसे (होती है)। किसकी पर्याय है? चैतन्यकी पर्याय है। इसलिये पर्यायको चैतन्यका आश्रय है।

मुमुक्षु :- स्वप्नमें बहुत बार आये तो ... ?

समाधान :- ऐसी व्यक्तिगत बात क्या पूछनी? स्वप्न भी आये, गुरुदेव प्रवचन करते हो ऐसा भी आये, अनेक जातका आये। इतने वर्ष यहाँ व्यतीत किये हो तो वह तो आये न। ऐसा दिखाव, माहोल ऐसा हो जाता है कि गुरुदेव विराजते ही हैं, ऐसा हो गया। सबके भावमें ऐसा हो गया। स्वर्गमें तो विराजते हैं। क्षेत्रसे दूर है। यहाँ सबको भावमें ऐसा आरोप हो गया था कि गुरुदेव यहाँ विराजते हैं। उपयोग रखे तो ज्ञानमें तो सब ज्ञात होता है। अवधिज्ञानका उपयोग रखे तो सब ज्ञात हो। यह भरतक्षेत्र और महाविदेह क्षेत्र सब उन्हें दिखता है। गुरुदेवको तो सब ख्याल होता है। यहाँ सबको ऐसा हो गया कि गुरुदेव यहाँ विराजते हैं। ऐसा हो गया था। .. किसीको देखनेमें आ गये हो तो किसीने देखा हो। आ गये हो तो विराजते तो हैं, किसीको मालूम थोड़ा ही पड़ता है, आ गये हो तो।

मुमुक्षु :- किसीको दिखाई दिये हो और किसीको दिखाई न दिये हो।

समाधान :- पंचमकाल है, किसीको कहाँ दिखाई दे।

समाधान :- ... शुद्धात्मा मेरा आत्मा, सब विकल्पसे भिन्न आत्मा कैसे प्रगट होवे? ऐसा आत्माका भेदज्ञान न्यारा जब होवे तब भवका अभाव होता है।

मुमुक्षु :- ...?

समाधान :- तब होता है। अनन्त कालमें .. भवका अभाव होता है। तो भीतरमें सुख और आनन्द प्रगट होता है। ... है नहीं। मैं तो वीतराग स्वभाव हूँ, ये कषायभाव है। वह कोई मेरा स्वभाव नहीं है। भिन्नताका ऐसा विचार करना। पुरुषार्थकी मन्दतासे, एकत्वबुद्धिसे आवेगसे आ जाता है तो पुरुषार्थ पलट देना, आत्माका विचार करना।

मुमुक्षु :- हम तो आत्माको..

समाधान :- रुचि करना। आत्मा-ओरकी रुचि मन्द है। रुचि बाहर जाती है, कषायमय हो जाती है। रुचि करना। आत्माका स्वभाव है वही कल्याणकारी है। और सब दुःखरूप आकुलतामय है। ऐसा विचार करना, निर्णय करना। ऐसी प्रतीत करना।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- आत्माकी रुचि नहीं है। अनादिका अभ्यास है, चला जाता है। रुचि नहीं है। इसलिये भीतरमें जो विचार आता है, आ जाता है। उतनी आत्माकी रुचि नहीं है, देव-गुरु-शास्त्र पर उतना भाव नहीं है। और भीतरमें आत्माकी रुचि नहीं है, इसलिये दूसरा विचार आ जाता है।

मुमुक्षु :- अपना गृहस्थ जीवन भी ऐसा होना चाहिये कि दिन भर वातावरण धार्मिक ही रहे। परन्तु गुरुका (समागम) नहीं मिलता है। गुरु बिना ज्ञान नहीं होता।

समाधान :- ऐसा समागम नहीं मिले तो भीतर-से तैयारी करना, अपने आत्माकी रुचि बढ़ाना। जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र हृदयमें रखना और आत्माकी रुचि प्रगट करना।

मुमुक्षु :- प्रवचन सनते हैं, शास्त्र सुनते हैं तो सुनते हैं तो एकदम अलग ही भाव लगते हैं। ऐसा नहीं, ऐसा करना चाहिये।

समाधान :- रुचि कम है न। सच्चा श्रवण मिलता है वह सुनना और आत्माका विचार करना। अपनेआप करना मुश्किल है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२१

समाधान :- ... बारंबार उसका अभ्यास करने-से स्वानुभूति प्रगट होती है। वही मोक्षका मार्ग है। और वह स्वानुभूति बढ़ते-बढ़ते मुनिदशा और केवलज्ञान (प्रगट होता है)। स्वानुभूतिकी दशा बढ़ते-बढ़ते ही होता है।

इस कालमें गुरुदेव... भगवानके समवसरणमें दर्शन करने जाते हैं। सीमंधर भगवानके। उन्हें तो भगवानका बहुत था तो भगवानके समवसरणमें दिव्यध्वनि (सुनने जाते हैं)। इस कालमें साक्षात् देवोंका आगमन होना बहुत मुश्किल है। स्वप्न हो सकते हैं। आये तो दूसरोंको देखना मुश्किल पड़े। दूसरे देखे कैसे कि... पहले गुरुदेव आये तो दूसरोंको दिखना मुश्किल पड़े।

मुमुक्षु :- थोड़ी देर तो दिखते हैं।

समाधान :- अभी तो देवोंका आगमन मुश्किल है। ... करना है, उस मार्ग पर जाना है। गुरुदेव समीप ही है। गुरुदेव स्वर्गमें विराजते हैं, इसलिये क्षेत्रसे दूर है। बाकी समीप ही है, ऐसी भावना रखकर वह करने जैसा है। गुरुदेवने मार्ग बताया है वह।

गुरुदेव पधारे, इतनी वाणी बरसायी, वह महाभाग्यकी बात है। इस पंचमकालमें यहाँ पधारे। गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य यहाँ पधारे और सबको लाभ मिला, महाभाग्य! गुरुदेवने जो कहा उस मार्ग पर (चलना है)। गुरुदेवसे क्षेत्रसे समीप होना हो जाता है, गुरुदेवके मार्ग पर चलने-से।

मुमुक्षु :- मार्ग पर चलनेमें भी कोई साथीदार चाहिये न।

समाधान :- गुरुदेव कहते थे, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। स्वयं उपादानसे कर सकता है। साथीदार निमित्त तो होता है, करना तो स्वयंको है। देव-गुरु-शास्त्रका निमित्त होता है। करना तो स्वयंको पड़ता है, उपादान तो स्वयंका है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- अर्थात् तुझे मिलेगा ही। तेरा उपादान ऐसा तैयार है तो तुझे मिलनेवाला ही है। ज्ञानीकी अर्पणता तेरी उतनी है कि तेरे चैतन्यका स्वभाव पहचानकर अर्पण हो जा कि मोक्ष प्राप्त होगा ही। बाहरसे गुरुको अर्पण और अन्दर चैतन्य स्वभावको

अर्पण हो जा तो मोक्ष प्राप्त होगा ही। सब परसे राग छोड़कर, कर्ताबुद्धि छोड़कर गुरु पर श्रद्धा करके अर्पणता कर और चैतन्य पर अंतरमें श्रद्धा करके लीनता कर तो मोक्ष प्राप्त होगा ही।

मुमुक्षु :- शहरके वातावरणमें रहकर कैसे आत्म-कल्याण करना?

समाधान :- शहरका वातावरण हो तो भी करना तो स्वयंको है। वह वातावरण आत्माको कहीं नुकसान नहीं करता है। अपना उपादान तैयार करकेत तत्त्वका विचार, वांचन, लगन, विशेष पुरुषार्थ करके जो क्षेत्र है उस क्षेत्रकी असर नहीं लेकर अपना विचार करना। अपनी लगन लगाना, तत्त्व विचार करना, ऐसा करना। जिसका पुरुषार्थ मन्द है उसको सत्समागम निमित्त आदि होता है, परन्तु यदि नहीं मिलता है और दूर रहता हो तो अपनी तैयारी करना, भीतर-से तैयार रहना।

देव-गुरु-शास्त्रका समागम मिले तो विशेष अच्छा है। तो अपना उपादान पुरुषार्थ करनेमें सुलभ रहता है। तो भी नहीं होवे तो अपना पुरुषार्थ विशेष करना। जहाँ भी करना है, अपने-से करना है। जिसका पुरुषार्थ मन्द है उसको निमित्त देव-गुरु-शास्त्र होते हैं, निमित्त-उपादानका सम्बन्ध होता है। परन्तु नहीं होवे तो पुरुषार्थ विशेष करना। तत्त्व विचार करना, सत्संग करना सब करना। जहाँ सत्संग मिले वहाँ जाना। ऐसा करना।

मुमुक्षु :- ... निमित्त कुछ करे नहीं। मन्द पुरुषार्थ हो तो सत्पुरुषका निमित्त उसे कुछ करे।

समाधान :- निमित्त कुछ करता नहीं, परन्तु अपना पुरुषार्थ मन्द है इसलिये उसे निमित्त कहनेमें आता है, करना तो स्वयंको है।

मुमुक्षु :- ये तो इस बार मैंने डेढ महिनेमें देखा कि यहाँ रहकर जो पुरुषार्थ जो विचार चलते हैं, एक महिना वहाँ गये तो वहाँ फ़र्क़ पड़ जाता है, ऐसा लगता है। सिद्धान्तकी ... नहीं है। लेकिन ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध देखे तो ऐसा लगे कि यहाँ रहते हैं एक ही विचार आते हैं, और वहाँ अनेक प्रकारके विचारमें उलझना पड़ता है, ऐसा बनता है।

समाधान :- ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। असर स्वयं ग्रहण करता है। निमित्तकी असर स्वयं ग्रहण करता है। अच्छे निमित्तमें स्वयं ही असर ग्रहण करता है, ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। इसीलिये कहनेमें आता है, तू सत्संगमें रहना, सद्गुरुका श्रवण, मनन इत्यादि करना। क्योंकि निमित्त-उपादाका सम्बन्ध है। निमित्त करता नहीं है, परन्तु स्वयं उपादान उसे ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- सत्समागममें स्वयं ग्रहण करता है।

समाधान :- स्वयं ग्रहण करता है। अपनी रुचि जिस ओरकी है उस तरफका ग्रहण कर लेता है। अन्य निमित्तोंमें उसका पुरुषार्थ मन्द है इसलिये स्वयं ही ग्रहण करता है। निमित्त नहीं करवाता है, लेकिन स्वयं ही वैसा ग्रहण कर लेता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, क्षेत्र वैसा, काल, ऐसे ज्ञानी, सत्संग आदि हो तो स्वयंको विचार करनेमें अपनी रुचि उस ओरकी है न, इसलिये स्वयंके पुरुषार्थका झुकाव उस ओर होता है। दूसरेमें अपना मन्द पड़ता है।

... सोनगढ़ छोड़कर कहीं जानेका मन नहीं होता है। कुछ मन ही नहीं होता है।

समाधान :- सम्यग्दृष्टिको यथार्थ ज्ञान होता है न, भेदज्ञान। ज्ञायक-ज्ञायककी परिणति जो प्रगट होती है, द्रव्य पर दृष्टि, उसका ज्ञान, उसमें लीनता और क्षण-क्षणमें भेदज्ञान- मैं न्यारा हूँ-ऐसी भेदज्ञानकी परिणति रहती है। यथार्थ ज्ञान रहता है। और वैराग्य ऐसा रहता है। विरक्ति-विभावसे विरक्ति रहती है, विभावमें एकत्वबुद्धि नहीं होती है। विभाव और मेरा स्वभाव दोनों भिन्न हैं। इसलिये विभावसे उसको विरक्ति रहती है। क्षण-क्षणमें मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। विभावमें एकत्वबुद्धि, कोई रागादि भावोंमें एकत्वबुद्धि नहीं रहती है, विरक्ति रहती है। उसमें तल्लीनता नहीं होती है। स्वभावमें स्वभावकी ओर लीनता रहती है और विभावसे विरक्ति होती है। ऐसी ज्ञान-वैराग्यकी शक्ति सम्यग्दृष्टिको होती है।

गृहस्थाश्रममें होवे तो भी बाह्य कार्योंमें और विभाव परिणाम होवे तो भी एकत्व नहीं होता। उसमें तल्लीन नहीं होता, उससे भिन्न रहता है। मैं चैतन्य हूँ, ऐसा अस्तित्व ग्रहण करे, विभावसे नास्ति-विभावस्वरूप मैं नहीं हूँ, ऐसी न्यारी परिणति रहती है, उसको विरक्ति-वैराग्य भाव रहता है। ऐसी ज्ञान-वैराग्यकी शक्ति, क्षण-क्षणमें भेदज्ञान रहता है।

ऐसी कोई ज्ञान-वैराग्य अद्भुत शक्ति उसको रहती है। इसलिये उसको बन्ध नहीं है। अल्प बन्द होता है उसकी गिनती नहीं है। और एकत्वबुद्धि नहीं होती है। अज्ञान दशामें विभावमें एकत्व हो जाता है, ऐसा एकत्व नहीं होता है। क्षण-क्षणमें मैं चैतन्य हूँ, मैं चैतन्य हूँ, ऐसी न्यारी परिणति उसको रहती है। बाह्य कोई कार्यमें, कोई प्रसंगोंमें, कोई रागादिमें एकत्व नहीं हो जाता है, भिन्न रहता है।

ऐसा उसको वैराग्य रहता है, उसका ज्ञान रहता है। राजकार्य, घर, कुटुम्ब, परिवार सब होता है, सब कार्यमें बाहरसे देखनेमें आता है तो भी भीतरमें वैराग्य-विरक्ति रहती है। उसमें एकत्व नहीं होता है। क्षण-क्षणमें उसकी परिणति ज्ञायककी ओर जाती है। ज्ञायककी लीनताकी ओर परिणति जाती है, राग-ओर नहीं जाती है।

मुमुक्षु :- परिणति ज्ञायक तरफ जाती रहती है।

समाधान :- क्षण-क्षणमें ज्ञायक तरफ जाती है। बाह्य कार्योंमें अन्दर जो विकल्प आये तो परिणति ज्ञायककी ओर जाती है, विकल्पमें एकत्व नहीं होता है। तन्मय नहीं हो जाता।

मुमुक्षु :- बाहरमें... फिर भी वीतराग परिणति तो उसका कार्य रहती है।

समाधान :- परिणति कार्य करती है। बाहर-से दिखे कि बाहरके कार्योंमें वह जुड़ा है। उसमें मानों एकत्व हो रहा है। ऐसा दिखे। उसकी परिणति तो भिन्न-न्यारी कार्य करती है।

मुमुक्षु :- उपयोगरूप परिणमन और लब्धरूप परिणमन, इन दोनोंमें लब्धरूप परिणाममें ऐसा कार्य चलता रहता है?

समाधान :- लब्धरूप परिणाममें ऐसा कार्य होता है। लब्ध अर्थात् उघाड़ एक ओर पड़ा रहा है ऐसा नहीं है। परन्तु कार्य चलता रहता है। उपयोगरूप तो स्वानुभूति दशा, परन्तु ऐसा लब्धरूप कार्य भी चलता ही रहता है। क्षण-क्षणमें विरक्ति, अंतरमें न्यारा रहता है। कोई भी कार्य, कोई भी विकल्प (हो), वह क्षण-क्षणमें भिन्न रहता है। उतने अंशमें शान्तिका वेदन, ज्ञायककी धारा वह सब उसे वेदनमें रहता है। लब्ध यानी एक ओर पड़ा है ऐसा नहीं। ज्ञायकका, शान्तिका वेदन चलता है। इसलिये उसे बन्ध नहीं होता है, ऐसा कहनेमें आता है। अल्प बन्ध होता है उसे गिनतीमें नहीं लिया है।

भिन्नत्व बढ़ते.. बढ़ते.. बढ़ते उसमें-से उसकी भूमिका पलटती है। पाँचवी, छठ्ठी, सातवीं (भूमिकामें) आसक्ति कम होती है और विरक्ति बढ़ते-बढ़ते उसकी भूमिका बदलती है। छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान, उसमें-से भूमिका पलट जाती है। अन्दरकी विरक्ति बढे, अन्दर लीनता बढ़े इसलिये स्वानुभूतिकी दशा बढ़ती है। उन सबका मेल है। ज्ञाताधाराकी उग्रता होती जाती है। उसमें शास्त्रका ज्ञान ज्यादा हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है, परन्तु अन्दरकी विरक्तिके साथ सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- विरक्तिके साथ लीनताका मेल है?

समाधान :- हाँ, उसके साथ मेल है।

समाधान :- ... तत्त्वके विचार होते हैं, सम्यग्दृष्टिकी अलग बात है, वह तो यथार्थरूपसे न्यारा हो गया है, परन्तु भूमिकामें भी उसे आसक्ति (कम हो जाती है)। उसे रुचि परपदार्थोंकी, विभावकी महिमा कम हो जाय, उसमें तल्लीनता कम हो जाय। अभी उसे ज्ञाताधारा नहीं है, परन्तु उसे अन्दर कम हो जाती है, तल्लीनता कम हो जाती है, उसकी महिमा कम हो जाती है। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक ही सर्वस्व है, वही

महिमा करने योग्य है और वही महिमारूप है। ऐसी अंतरमें रुचि होनी चाहिये। रुचि उसकी ओर होनी चाहिये। अभी परिणति प्रगट नहीं हुयी है, परन्तु वैसी रुचि, ज्ञान-वैराग्य, तत्त्वके विचार, मैं ज्ञायक हूँ, ये सब मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसे तत्त्वके विचार होने चाहिये और उस ओरकी लीनता-तन्मयता कम होनी चाहिये। उस ओरकी रुचि कम हो जाय।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन होने पूर्व भी ऐसा होता है।

समाधान :- ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- सविकल्प भावभासन हो..

समाधान :- उसे रुचिरूप है, परिणतिरूप ज्ञायककी धारा नहीं है। रुचि (है)। करनेका यह है, ज्ञायकता प्रगट करनी है, महिमारूप ज्ञायक है, ये स महिमारूप नहीं है। अतः बाहरकी रुचि उठ जाती है।

मुमुक्षु :- रुचिमें ऐसे कोई प्रकार पड़ते होंगे कि .... भाव-से प्राप्त कर ले? ऐसी सविकल्प दशामें रुचि..

समाधान :- ऐसा यथार्थ कारण हो तो यथार्थ कार्य आये। वैसा रुचिका कारण प्रगट करे तो जिसमें अवश्य सम्यग्दर्शनका कार्य प्रगट हो। ऐसा यथार्थ कारण हो, स्वसन्मुखता, उस जातका मार्गानुसारीपना हो तो प्रगट होता है। कारण उसका यथार्थ हो तो कार्य आवे।

मुमुक्षु :- वह करते-करते आयुष्य पूर्ण हो जाय तो?

समाधान :- तो उसे ऐसी धारा अप्रतिहत हो तो दूसरे भवमें होता है। पुनः स्फूरायमान होता है। ऐसी अंतरकी गहरी रुचि की हो तो पुनः स्फूरायमान होती है। ऐसे विचार स्फूरायमान हो, ऐसे साधन प्राप्त हो कि जिससे पुनः पुरुषार्थ जागृत हो। यथार्थ कारण हो तो कार्य आवे। देर लगे किन्तु आये।

मुमुक्षु :- वर्तमान ज्ञान तो भव प्रत्ययी कहनेमें आता है। यह पूरा होते ही..

समाधान :- अन्दर यदि रुचि यथार्थ की हो तो वह रुचि (जागृत होती है)। उसकी कारणरूप रुचि हो तो प्रगट होता है। तत्प्रती प्रीति चित्तेन, आता है न? प्रीति-से भी वार्ता सुनी है, अंतरकी रुचिपूर्वक, कोई अपूर्व रुचिपूर्वक उसने यदि अंतरमें वार्ता ग्रहण की है तो भावि निर्वाण भाजनम्। तो भविष्यमें वह अवश्य निर्वाणका भाजन है। इतना धारणा की हो या इतना रटा हो ऐसा नहीं, परन्तु अन्दर प्रीति-से वार्ता सुनी, अन्दर रुचिपूर्वक यदि ग्रहण किया है तो भविष्यमें वह निर्वाणका भाजन है।

मुमुक्षु :- धारणाज्ञान ..

समाधान :- रुचि, अंतरकी रुचि (होनी चाहिये)। उसके साथ ज्ञान होता है।

समझपूर्वककी रुचि होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- प्रयोजनभूत ज्ञान यथार्थ हो..

समाधान :- हाँ, प्रयोजनभूत ज्ञान होना चाहिये।

सम्यग्दृष्टि भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्ति, आता है न? सम्यग्दृष्टिको ऐसी ज्ञान-वैराग्यकी शक्ति प्रगट हुयी है कि वह अंतरसे कहीं लिप्त नहीं होता। ऐसा विरक्तका विरक्त रहता है। पूर्वभूमिकामें भी वह तैयारी कर सकता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- चटपटी लगी हो तो मार्ग खोज ही लेता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- मार्गको खोजता ही रहे, चैन-से बैठे नहीं। मार्ग क्यों प्राप्त नहीं होता है? अंतरमें क्यों प्राप्त नहीं होता है? बारंबार-बारंबार अंतर-से स्फूरणा होती ही रहे, क्यों अभी मार्ग प्राप्त नहीं होता है? ऐसी चटपटी अंतर-से लगे कि चैनसे बैठे नहीं, अंतरसे उसे उठती ही रहे। इसलिये मार्ग प्राप्त हुए बिना रहे ही नहीं।

मुमुक्षु :- .. विचार भी बहुत आते हैं, पर..

समाधान :- उसमें धीरा होकर, उसमें आकुलताका काम नहीं है, परन्तु धैर्यसे स्वयं विचार करे तो मार्ग प्राप्त हो। भावना जिज्ञासापूर्वक।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- निराश होनेकी बात ही नहीं है। स्वयं तैयारी करे और प्राप्त न हो, ऐसा बनता ही नहीं। स्वयं ही है, स्वयंका मार्ग है और अपनेमें-से ही प्राप्त हो ऐसा है। कहीं दूर नहीं है, अपना स्वभाव है, परन्तु वह भूल गया है। स्वयं अंतरमें दृष्टि करके यथार्थपने खोजे तो उसे चैन पड़े नहीं, तो अंतरमें-से प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। कहीं बाहर-से प्राप्त नहीं होता है, अपना स्वभाव है और अपने पास है। अपनेमें-से प्राप्त हो ऐसा है। परन्तु स्वयंको मार्ग नहीं मिलता है।

ऐसे गुरुदेव मिले, ऐसा मार्ग बताया। मार्ग बतानेवाले मिले और स्वयंको प्राप्त न हो, ऐसा बनता ही नहीं। स्वयं तैयारी करे तो अंतरमें-से प्राप्त हो, प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। मार्गको जानता नहीं हो तो गोते खाता है। गुरुदेवने ऐसा मार्ग बताया है कि तेरे आत्माको ग्रहण कर। तू असाधारण ज्ञानस्वभावी आत्मा है, आत्मामें ही सब है, उसमें-से ग्रहण कर। मार्ग बताया है और न मिले ऐसा बनता ही नहीं। स्वयं तैयार हो तो प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। ... स्वयं भूल गया है। स्वयं ही है, अन्य कोई नहीं है। दृष्टि अनादिसे बाहर है इसलिये बाहर देखता रहता है, अंतरमें देखता नहीं है। अंतरमें देखना उसे मुश्किल पड़ता है, इसलिये दुष्कर हो गया है।

... स्वभाव उसमें वह देख नहीं सकता है। ज्ञायकमें सब भरा है। लेकिन वह उसे पकड़ नहीं सकता है। निष्कारण विकल्प तो अनादि अभ्यासके कारण ऐसे ही दौड़ते रहते हैं। उसका कोई कंट्रोल उस पर (नहीं है)। चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण नहीं किया है कि वह मर्यादामें आवे। वहाँ दौड़ जाता है। .. सहज याद आ जाय। ज्ञायकको याद करना। उसे अंतरसे याद करना मुश्किल पड़ता है। उसके पीछे लगना, बारंबार-बारंबार वही करता रहे तो उसे समीप जानेका अवकाश है। अस्तित्व ग्रहण हो तो उसका भेदज्ञान हो तो विकल्प... बाकी तो विचार करके पुरुषार्थ करके मन्द करता रहे, परन्तु स्वभावको पहचानकर करे वह यथार्थ होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२२

मुमुक्षु :- स्वरूपको पहचानकर जो महिमा आनी चाहिये, सहज महिमा, ऐसी महिमा नहीं आनेमें ज्ञान लंबाता नहीं होगा या परकी रुचिमें ....

समाधान :- बाहरकी रुचिमें अटक जाता है, इसलिये महिमा नहीं आती है। उसके स्वभावकी महिमा (नहीं आती है)। स्वभाव ही महिमारूप है, परन्तु रुचि बाहरकी लगी है इसलिये वह रुचि मन्द पड़ जाती है। रुचिका कारण है। ज्ञान लंबाये, उसके विचार लंबाये, परन्तु रुचि जो ज्ञायककी महिमा आये, उग्र महिमा आये तो वह रुचि कम हो जाय। अपनी ओर अधिक झुकता जाय, अधिक महिमा आये तो। फिर पुरुषार्थ कम है। निज ज्ञायक स्वभावका आलम्बन नहीं है। सब साथमें है।

लौकिक परिणाम है वह, गुरुदेव कहते थे न? वह शामकी संध्या है। सुबहकी संध्या देव-गुरु-शास्त्रकी (है)। परन्तु उसमें भी ज्ञायकको पहचानना बाकी रहता है। सुबह सूर्य ऊगे.. ज्ञायकको ग्रहण करे तो। लौकिक विचार हैं, वह शामकी संध्या है। देव-गुरु-शास्त्रके विकल्प सुबहकी संध्या है। उसमें भी ज्ञायकको ग्रहण करे तो अंतर चैतन्यसूर्य ऊगे।

मुमुक्षु :- अपने आपसे तो स्वयंको ऐसा लगे कि मुझे सत्समागम हुआ है और मैं सब समझ गया हूँ। लेकिन उसके बाद कितना समझने जैसा है वह तो जब विशेष ज्ञानीका परिचय करे तब उसे ख्याल आये कि अपने तो अभी बहुत (बाकी है)।

समाधान :- परिचय हो, चर्चा-प्रश्न हो उसमें आपको स्वयंको ग्रहण (होता है)। जैसे यह ग्रहण होता है, वैसे ग्रहण हो जाता है। दूसरा कुछ सीधी तरहसे कुछ कहनेका बाकी नहीं रहता है।

मुमुक्षु :- समयसार, नियमसार.... गाथा-२०४। कर्मके क्षयोपशमके निमित्त-से ज्ञानमें ... होने पर भी, स्वरूपसे देखनेमें आये तो ज्ञान ... और वही मुख्य उपाय है। गाथा इस तरह है। ... उसमें पर्यायकी बात ली है। कर्मका क्षयोपशम अर्थात् पर्यायमें जो पाँच भेद पड़ते हैं, वह भेद होनेके बावजूद ज्ञानको उसके स्वरूप-से देखनमें आये तो ज्ञान एक ही है। और वही मोक्षका उपाय है, ऐसा कहा है। तो उसमें क्या कहना चाहते हैं?

समाधान :- सूर्यके किरण आदि आता है। उसमें जो ज्ञान है, उस ज्ञानको ही ग्रहण करना। जो क्षयोपशमके भेद है, उन भेदोंको ग्रहण नहीं करके एक ज्ञानमात्र मैं ज्ञायक हूँ, उसे ग्रहण करना। उसके प्रकाशके किरण जो हीनाधिकतारूप है, वह उसका मूल नहीं है, मूल नहीं है। उसका जो मूल तल है वह ज्ञायकता ग्रहण करनी, ज्ञानपदको ग्रहण करना। वह तो कर्मके निमित्त-से अपने कम-बेसी उघाड़के कारण मति, श्रुत, अवधि आदि दिखाई दे, केवलज्ञान पर्यंत, परन्तु उसका मूल अस्तित्व जो ज्ञायकता है, वह ग्रहण करनी। ज्ञानपद परमार्थ है।

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल वह सब उसके भेद हैं। परन्तु उसका मूल क्या है? प्रकाशके सब किरण दिखे, परन्तु उसे पूरा देखो तो पूरा सूर्य जो है, वह सूर्य कहाँ है? उस सूर्यको ग्रहण करने जैसा है। बादलमें वह किरण आये कहाँ-से? उसका तल कहाँ है? वह किरण जो दिखाई देते हैं, उसके पीछे क्या है? कि पूरा अस्तित्व है, पूरी चैतन्यता, ज्ञायकता भरी है। उस ज्ञायकताको ग्रहण करना है।

मुमुक्षु :- पर्याय परसे तू पर्यायवानको लक्ष्यमें ले।

समाधान :- हाँ, पर्यायवान। उसको धारण करनेवाला अस्तित्व कौन है? ज्ञायकताको ग्रहण कर। मूलको ग्रहण कर। वह उसे तोड़ते नहीं है, उसे अभिनन्दन देते हैं। वह सब पर्याय दिखती है उस पर्यायके पीछे पूरा द्रव्य है, उस द्रव्यको ग्रहण कर।

मुमुक्षु :- सामान्य ज्ञानका आविर्भाव और विशेष ज्ञानके तिरोभावसे जब ज्ञानमात्रका अनुभव करनेमें आता है, तब ज्ञान प्रगटरूपसे अनुभवमें आता है। अब, वहाँ गुरुदेव बारंबार ऐसा कहते थे कि यहाँ द्रव्यकी बात नहीं है। यहाँ पर्यायकी बात है। तो ऐसा कहकर क्या कहना था? और उसका सार क्या है?

समाधान :- भेद-भेदमें विशेषमें रुकता था, फिर सामान्य पर दृष्टि करता है, तो सामान्य ज्ञानका आविर्भाव (होता है)। आविर्भाव अर्थात् प्रगटपना होता है। प्रगट होता है, इसलिये वह पर्याय प्रगट होती है। सामान्य ज्ञान पर दृष्टि देने-से, सामान्य ज्ञान जो अनादिसे शक्तिरूप था वह प्रगट होता है। वह प्रगट होता है इसलिये उसका आविर्भाव हुआ। और विशेष जो भेद-भेदमें रुकता था, उस भेदमें-से उसकी दृष्टि अभेद, एक सामान्य पर दृष्टि करनेसे सामान्य ज्ञानका आविर्भाव होता है। इसलिये वहाँ द्रव्यदृष्टि प्रगट होती है। जैसा द्रव्य है, वैसी उसकी दृष्टि-पर्याय प्रगट होती है, उसकी स्वानुभूति प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- माताजी! आगे लवणका दृष्टान्त दिया है। सब्जीके सम्बन्धसे लवण देखनेमें आये तो सब्जी खारी है, ऐसा ख्यालमें आता है। और मात्र लवणका स्वाद लेनेमें आये तो सीधा लवणका स्वाद है कि लवण खारा है। ऐसे यहाँ सामान्य ज्ञानका आविर्भाव

और विशेषज्ञानका तिरोभाव अर्थात् ज्ञेयाकार ज्ञान, ज्ञेयाकार ज्ञानको वहाँ विशेष ज्ञानका गिना है। और ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान सामान्य ऐसे सामान्य ज्ञानका आविर्भाव कहा है। और उसमें विशेष गुरुदेव ऐसा कहते थे कि यहाँ द्रव्य ... नहीं लेना।

समाधान :- .. अनुभूति होती है। विशेषमें जो सब्जीमें लवण मात्र सामान्य ख्यालमें लेता है, वैसे ज्ञान..ज्ञान.. ज्ञान.. सामान्य लक्ष्यमें लो तो वह सामान्य ज्ञायक-ज्ञानकी अनुभूति है। विशेष जो ज्ञेयाकार ज्ञान है उसमें सब मिश्रित स्वाद आता है। मात्र सामान्य पर दृष्टि करे, सामान्य ज्ञान पर-ज्ञायक पर दृष्टि करे तो उसे सामान्यकी अनुभूति अर्थात् अनुभूति तो विशेषकी होती है, पर्यायकी अनुभूति होती है, वह पर्यायकी बात है, उस अपेक्षासे अनुभूति पर्यायकी होती है।

मुमुक्षु :- पर्यायमें सामान्य-सामान्य लेना ऐसा नहीं? पर्यायमें सामान्य जानना.. जानना.. जानना..

समाधान :- पर्यायका विषय सामान्य है कि यह ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. उसका विषय सामान्य है, परन्तु अनुभूति पर्यायकी होती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमात्र कहने पर आत्माका अनुभव करने पर सम्यग्ज्ञान पर्यायमें प्रगट होता है।

समाधान :- सम्यग्ज्ञान पर्यायमें प्रगट होता है। ज्ञान सो मैं। उसका विशेष जो मिश्रित स्वाद आये, रागमिश्रित वह मैं नहीं, अकेला जो ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान सो मैं हूँ। उतना दृष्टिमें आया फिर उस रूप अनुभूति होती है। अर्थात् वह पर्यायकी अनुभूति है। दृष्टि, ज्ञानमें दृष्टिमें उसने अकेला सामान्य लिया है। अनुभूति पर्यायकी होती है।

मुमुक्षु :- सामान्य लक्ष्यमें लेने पर अनुभूति..

समाधान :- अनुभूति पर्यायकी होती है। निर्विकल्प हो गया, विकल्प छूट गये, न्यारा हो गया। दृष्टि सामान्य पर रखकर उसमें लीनता हो गयी। इसलिये स्वानुभूति हुयी। वह स्वानुभूति पर्यायमें होती है। अनुभूति पर्यायकी (होती है), विषय सामान्य है। सामान्यका आविर्भाव हुआ, विशेषका तिरोभाव अर्थात् जो मिश्रित स्वाद था, उसका तिरोभाव हुआ। और सामान्यका आविर्भाव अर्थात् उसकी दृष्टि सामान्य पर गयी इसलिये उसका आविर्भाव (हुआ)। आविर्भाव यानी प्रगटपना हुआ वह प्रगट तो पर्याय हुयी। अनुभूति पर्यायकी है।

मुमुक्षु :- विशेषज्ञानका तिरोभाव हुआ अर्थात् ये ज्ञात होता है, ज्ञात होता है उसका तिरोभाव हुआ और जानना.. जानना.. जानना..

समाधान :- हाँ, उसका आविर्भाव हुआ।

मुमुक्षु :- .. विचारनेमें आये तो विशेषके आविर्भावसे अनुभवमें आ रहा ज्ञान

और सामान्यके आविर्भावसे अनुभवमें आता हुआ ज्ञान एक ही है।

समाधान :- सामान्यके आविर्भावसे अनुभवमें आता हुआ ज्ञान और विशेष...?

मुमुक्षु :- आविर्भावसे अनुभवमें आता हुआ ज्ञान..?

समाधान :- उसमें एक सामान्य ज्ञान.. ज्ञान लेना। विशेषको गौण करके अकेला सामान्य लेना।

मुमुक्षु :- ज्ञानके विशेषको गौण करके पर्यायके सामान्यको अर्थात् जानना.. जानना ऐसा कहना है या ज्ञायकको ही पर्यायमें लक्ष्यमें लेना?

समाधान :- पर्यायमें अकेला ज्ञान.. ज्ञान यानी द्रव्य ही ले लेना। द्रव्य लक्ष्यमें आवे तो ही सामान्यका आविर्भाव होता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य लक्ष्यमें आये तो सामान्यका आविर्भाव होता है?

समाधान :- तो सामान्यका (आविर्भाव) होता है।

मुमुक्षु :- वह बहुत अच्छी बात कही। जबतक द्रव्य लक्ष्यमें नहीं आता, तबतक सामान्यका आविर्भाव नहीं होता।

समाधान :- सामान्यका आविर्भाव नहीं होता।

मुमुक्षु :- द्रव्य लक्ष्यमें आये अर्थात् शब्दोंमें तो आवे कि लक्ष्यमें आवे, परन्तु अनुभूति जो पर्याय है वह वर्तमानमें अनुभूति वेदनमें आती है। उसीमें-से पकड़ना है। आप बहुत बार कहते हो, तलमें जा, तलमें जा, तलमें जा। तलमें जा, मतलब क्या? उसकी रीत क्या?

समाधान :- दिखती है पर्याय सब, परन्तु अन्दर जो वस्तु है, अस्तित्व-आत्माका अस्तित्व ज्ञायकका अस्तित्व, उसे ग्रहण करना, उसके मूलको ग्रहण करना कि जो यह ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ये जाना, ये जाना, ये जाना ऐसा नहीं, परन्तु जाननेवाला कौन है? जाननेवालेका अस्तित्व क्या है? जाननेवालेका मूल अस्तित्व है उसे ग्रहण करना, तलमें जानेका अर्थ वह है। ज्ञायकको ग्रहण करना।

जाननेवाला पूरा जाननेवाला तत्त्व है, पूरा जाननेवाला तत्त्व है उसे ग्रहण करना। ये जाना, ये जाना वह सब भेद-भेद नहीं, परन्तु वह जाननेवाला कौन है? जाननेवालेको ग्रहण करना। ज्ञेयसे भेद करके मैं जाननेवाला मैं ही हूँ, अपना अस्तित्व ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- उसमें ... ग्रहण करना? वर्तमान परिणामको एकाग्र करना, भावमें जो पकड़में आये...

समाधान :- उसे पहचान लेना कि यह जाननेवाला मैं हूँ और ये जो भेद पड़े, राग मिश्रित भेद पड़े वह मेरा मूल स्वभाव नहीं है। वह रागमिश्रित है। परन्तु मूल स्वभावको पहचान लेना। पहचानकर उसकी श्रद्धा यथार्थ करनी-प्रतीत करनी कि यही

मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। यह विभावभाव मैं नहीं हूँ, परन्तु ये जो स्वभाव है जाननेवाला वह मैं हूँ, इस प्रकार यथार्थ श्रद्धा करके फिर लीनता करनी। श्रद्धा यथार्थ हो, ज्ञान यथार्थ हो तो लीनता यथार्थ हो।

उसकी श्रद्धामें बराबर न हो कि यह मैं या यह मैं, इस तरह श्रद्धा ठीक न हो तो उसकी लीनता नहीं होती। श्रद्धा तो यथार्थ (होनी चाहिये कि), यह है वही मैं हूँ। यह ज्ञायकका अस्तित्व वही मैं हूँ, ये जो विभावभाव और रागमिश्रित भाव है वह मेरा मूल स्वभाव नहीं है। मूल स्वभाव जो ज्ञायक अकेला निर्मल ज्ञायक जाननेवाला, उसमें कोई भेदभाव या राग या उसमें कहीं अटकना नहीं, अकेला निर्मल जाननेवाला है वही मैं हूँ, इस प्रकार अस्तित्व ग्रहण करना और ऐसी श्रद्धा यथार्थ करनी, तो उसमें लीनता हो।

मुमुक्षु :- लक्ष्यके साथ लक्षणके भावभासनके विषयमें विचार करें कि लक्षणका भावभासन। जानता है, यह जानना.. जानना.. जानना हो रहा है वह कोई जड़में नहीं होता, ऐसा अनुमान (होता है), ज्ञानका वेदन होता है परन्तु वह है तो अनुमान ज्ञान, अनुभव ज्ञान तो नहीं है, अनुमान ज्ञान है कि यह जानना-जानना हो रहा है, उस परसे जाननेवाला जो है वह मैं हूँ, तो इसे ज्ञायकका भावभासन कह सकते हैं?

समाधान :- उसे बराबर पहचाने तो भावभासन हो, उसके भावको पहचाने तो वह भावभासन है। उसके स्वभाव परसे पहचाने, भावभासन यानी उसका स्वभाव है उसे पहचाने तो वह भावभासन कहलाता है।

मुमुक्षु :- यहाँ माताजी! स्वभाव यानी ज्ञान लेना?

समाधान :- हाँ, ज्ञानको पहचाने।

मुमुक्षु :- ज्ञानका स्वभाव अर्थात् जानना.. जानना.. जानना। विशेष लें तो स्वको जानना और परको जानना। ऐसा जानपना वैसे तो वह अतीन्द्रिय है अथवा तो अमूर्तिक है इसलिये इन्द्रियका विषय होता नहीं। अभी तो मानसिक ज्ञानमें उसके स्वरूपका ख्याल आता है कि ये जानना.. जानना हो रहा है, वह जहाँसे उत्पन्न हो रहा है, वह जाननेवाला एक अभेद ध्रुव तत्त्व सो मैं हूँ, ऐसा विचार आये उसे सविकल्प भावभासन कहते हैं?

समाधान :- बुद्धिपूर्वकका भावभासन है। बुद्धिपूर्वक विकल्पयुक्त भावभासन है।

मुमुक्षु :- हाँ, विकल्प-विकल्पात्मक।

समाधान :- बुद्धिपूर्वक युक्तिसे नक्की किया है।

मुमुक्षु :- वह भावभासन तो निर्विकल्प अनुभव कालमें होता है। उस प्रकारका तो होता है, परन्तु इसमें भी उसे स्पष्ट .... ज्ञानभावमें .. उसमें उसे ख्यालमें है कि

ये सब ज्ञेय मूर्तिक हैं, ये शरीर भी मूर्तिक हैं। और उसके अलावा जानन तत्त्व है वह मैं हूँ।

समाधान :- वह मैं हूँ, जाननेवाला। वह अनुमान ज्ञान है, भले युक्तिसे है, परन्तु वह विचार करे तो जाननेवाला स्वयं अंतरमें स्वयंको ज्ञात हो रहा है अर्थात् स्थूलतासे ज्ञात हो रहा है। जाननेवाला भले अमूर्तिक है परन्तु वह जाननेवाला स्वयं ही है। इसलिये उसे ख्यालमें आ सके ऐसा है कि ये जाननेवाला सो मैं हूँ। जाननेवाला जाननरूप परिणमे अर्थात् जाननेवाला उसके मूल स्वभावरूप से वेदनमें नहीं परिणमता है, परन्तु जाननेका जो असाधारण गुण है उस रूप उसका अस्तित्व हो रहा है, वह उसे ख्यालमें अनुमानसे आ सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- मतलब ज्ञान उपयोगमें अस्तित्व परोक्षपने नज़राता है।

समाधान :- हाँ, परोक्षपने वह ग्रहण कर सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- परोक्षपने तो नजराता है, भाईने कहा वैसे, मनके संग जहाँसे कल्लोल उत्पन्न होते हैं, उसका सामान्यपना...

समाधान :- ये जाननेवाला है वह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- उसके बाद कोई भूमिका?

समाधान :- जाननेवाले से ऐसा नक्की करे कि यह जाननेवाला है वही मैं हूँ। और वह अकेला जाननेवाला कैसा है? कि उस जाननेवालेमें ये राग, संकल्प, विकल्प आदि जो भी भाव हैं, वह भाव जाननेवालेमें नहीं है। जाननेवाला उससे भिन्न है। जाननेवालेमें ऐसा नहीं होता कि जाननेवाला अकेला जाननेवाला ही होता है, वही सच्चा जाननेवाला है। बाकी उसमें जो राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प आदि और मैं कर सकता हूँ, ऐसी जो विकल्पकी जाल है, उस जाल रहित निर्विकल्प तत्त्व वह जाननेवाला सो मैं हूँ। ऐसा न्यारा जाननेवाला हूँ। ये सब मिश्ररूप जाननेवाला ऐसा मैं नहीं हूँ। ऐसा अपना न्यारा अस्तित्व ग्रहण करे और उस जाननेवालेमें टिका रहे कि यह जाननेवाला है वही मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। यह जाननेवाला मैं और यह मैं नहीं हूँ, ऐसी उसकी भेदज्ञानकी बुद्धि उसमें-से उत्पन्न करे। यदि उसे बराबर निर्णय हुआ हो तो क्षण-क्षणमें वह जाननेवाला मैं और यह विकल्प आये वह मैं नहीं हूँ, मैं उससे भिन्न हूँ। भले विकल्प आता है, परन्तु वह मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव मात्र जानना सो मैं हूँ। उस जाननेवालेमें ही सब है।

जाननेवालेमें अनन्त गुण हैं। भले उसे वेदनमें नहीं है, परन्तु द्रव्य अनन्त शक्तिसे भरा जाननेवाला वही मैं हूँ और ये जो राग-द्वेष आदि कषायकी कालिमा वह सब मैं नहीं हूँ। मैं उससे (भिन्न) निर्मल जाननेवाला हूँ। जाननेवाला जाने उसमें भेदज्ञान

आ जाता है। यथार्थ जाने तो। आगे जाय तो इस प्रकार नक्की करना है।

मुमुक्षु :- आपने कहा था न कि सविकल्प दशामें ऐसे भावभासनमें टिका रहे।

समाधान :- हाँ, टिका रहे कि यह मैं नहीं हूँ, यह मैं हूँ। इस प्रकार टिका रहे। निर्णय करके छोड़ दे तो छूट जाय। बाकी यह मैं और यह मैं नहीं हूँ।

मुमुक्षु :- टिका रहे तब उसे सच्चा विकल्पात्मक निर्णय कह सकते हैं?

समाधान :- अभी उसे विकल्पात्मक है।

मुमुक्षु :- हाँ, विकल्पात्मक है। परन्तु उसमें भी ज्ञानकी सूक्ष्मता-से ऐसा विकल्पात्मक भावभासन हुआ। फिर भी अभी रुचि पूर्ण न हो तो अभी भी उसे यथार्थ निर्णय होनेमें देर लगे, ऐसा है?

समाधान :- उसे रुचि न हो तो निर्णय करके छूट जाय। इसलिये रुचि प्रबल हो तो निर्णयको टिकाये रखे तो उसका निर्णय यदि आगे कार्य करे कि यह मैं हूँ और यह नहीं हूँ। यह हूँ और यह नहीं हूँ। इस प्रकार उसका निर्णय यदि उसकी रुचि हो तो दृढ़तापूर्वक निर्णय उसका कार्य करता रहे कि यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। ऐसा भले उसे अभ्यासरूप यथार्थ नहीं है, तो भी उसका कार्य करता रहे तो उसे अभ्यास करते-करते यथार्थ होनेका अवकाश है।

मुमुक्षु :- लेकिन वह भी अभी तो सविकल्प लेना न?

समाधान :- वह सविकल्प है। विकल्पात्मक है। सहज नहीं है। अभी वह बुद्धिपूर्वक करता है।

मुमुक्षु :- आपका ऐसा कहना है न कि सविकल्प निर्णय यथार्थ इस प्रकार टिका रहे और रुचिमें पूर्णरूपसे आत्माको ले तब उसे सविकल्प निर्णय यथार्थ होनेका अवकाश है?

समाधान :- हाँ, सविकल्प होनेका अवकाश है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प तो विकल्प टूटकर अंतरमें जाय तबकी बात है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२३

मुमुक्षु :- आपने एक बोलमें कहा है कि उत्कृष्ट मुमुक्षुको मार्ग न मिले तो उलझनमें नहीं आ जाता। वहीं चक्कर लगाता रहे। वहाँ यही रीत है?

समाधान :- वहीं टहेल लगाता रहे।

मुमुक्षु :- यही रीत न?

समाधान :- हाँ, यही रीत। यथार्थ निर्णय करके वहीं अभ्यास करता रहे कि यह ज्ञायकका अस्तित्व जो निर्मल अस्तित्व है वही मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। जो शुद्धतासे भरा है वही मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ज्ञायककी महिमा लगी हो, ज्ञायक वही मैं, उसीमें सर्वस्वता लगी हो तो बारंबार वहाँ अभ्यास करता ही रहे, बारंबार टहेल लगाता ही रहे।

मुमुक्षु :- ऐसा सब मेरेमें है, वही स्वरूपकी महिमा?

समाधान :- मेरा सर्वस्व मेरेमें है, बाहर कुछ नहीं है।

मुमुक्षु :- भले उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य न कर सकता हो, तो भी प्रतीतिमें, इसीसे मुझे लाभ है, वह वर्तमान पात्र है। तो जीवन आत्मामय बना लेना, यह अनुभव होने पूर्वकी आप बात करते हो। जिज्ञासुकी भूमिकामें जीवन आत्मामय बना लेना उसका अर्थ क्या?

समाधान :- एक आत्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। आत्मामय यानी उसमें ज्ञायकका अस्तित्व वह मैं, वह मुझे कैसे ग्रहण हो? बस, उसीका अभ्यास करते रहना। आत्मामय जीवन। दूसरा कुछ नहीं चाहिये। एक आत्मा चाहिये। इसलिये आत्मा कैसे प्राप्त हो? ज्ञायक कैसे ग्रहण हो? उस मय जीवन-आत्मामय। सर्व कार्यमें उसे प्रयोजन आत्माका है। मुझे आत्मा कैसे प्राप्त हो? वह आत्मामय जीवन।

मुमुक्षु :- सर्व कार्यमें आत्माका प्रयोजन रहना चाहिये?

समाधान :- प्रयोजन आत्माक रहना चाहिये।

मुमुक्षु :- आत्माका (प्रयोजन) रहना वह, जीवन आत्मामय करे लेनेका अर्थ है।

समाधान :- जीवन आत्मामय कर लेना।

मुमुक्षु :- उपयोग सूक्ष्म होकर..

समाधान :- उसे ग्रहण करनेमें देर लगे, परन्तु उसका हेतु यह है। यह ज्ञायक

कैसे ग्रहण हो? ज्ञायकका अस्तित्व कैसे ग्रहण हो?

मुमुक्षु :- ज्ञानके निर्णयमें ऐसा होना चाहिये कि इस कार्यसे ही मुझे लाभ है। वह वर्तमान पात्र है।

समाधान :- इससे मुझे लाभ है, इस प्रकार बारंबार उसका अभ्यास रहे, घोलन चलता रहे। ज्ञायक कैसे ग्रहण हो? ज्ञायककी महिमा लगती रहे।

मुमुक्षु :- ... तब तक तत्त्वका घोलन, तत्त्व विचार करना। तत्त्व विचार माने बाह्य विचार नहीं परन्तु जो आप कहते हो वह?

समाधान :- प्रयोजनभूत तत्त्व विचार।

मुमुक्षु :- क्योंकि बाह्य शास्त्रका घोलन हो, उसे तो कोई रास्ता ही नहीं है। चाहे जितना शास्त्रज्ञान क्षयोपशम हो, वह घोलन नहीं है।

समाधान :- वह घोलन नहीं। मूल तत्त्वका घोलन, चैतन्यका घोलन। अन्दरका घोलन, तत्त्व विचार। फिर उसमें ज्यादा टिक न सके तो शास्त्रके विचार आये वह अलग बात है। परन्तु प्रयोजनभूत यह तत्त्व विचार। मैं चैतन्य द्रव्य, मेरे गुण, मेरी पर्याय वह मैं। मैं सबसे न्यारा हूँ, कैसे न्यारा होऊँ? मुझे अंतरमें-से भेदज्ञान कैसे प्रगट हो? ऐसे विचार।

.. भगवानके, गुरुके आँगनमें टहले लगाये, उस प्रकार ज्ञायकको ग्रहण करनेके लिये ज्ञायककी ओर बारंबार टहेल लगाता रहे। बारंबार उसीका अभ्यास करता रहे।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- भगवानके दर्शनके लिये, जिसे भगवानके दर्शनकी भावना है, बाहरसे, तो वह भगवानके मन्दिर पर, भगवानके द्वार पर टहेल लगाता है कि भगवानके द्वार खुले और दर्शन हो। ऐसे गुरुके दर्शन हेतु गुरुके आँगनमें टहेल लगाये। ऐसे चैतन्यके आँगनमें टहेल लगाता रहे कि चैतन्यके दर्शन कैसे हो? चैतन्यका स्वभाव क्या? चैतन्य कैसे स्वभावका है? उसकी महिमा क्या? इस प्रकार बारंबार टहेल-उसका अभ्यास करता रहे।

मुमुक्षु :- बहुत बातें आती हैं।

समाधान :- वहाँ भगवानके द्वारसे छूट जाय, थक जाय तो कुछ नहीं होता। इसलिये कहते हैं, अन्दरसे थकना नहीं।

मुमुक्षु :- थकना नहीं चाहिये, निराश नहीं होना चाहिये।

समाधान :- निराश नहीं होना चाहिये। गुरुकी महिमा लगे तो गुरुके आँगनमें गुरुके दर्शनके लिये टहेल लगाता है। इस प्रकार यह चैतन्यके आँगनमें बारंबार चैतन्यके विचार, चैतन्यका अभ्यास, उसीका रटन होना चाहिये। यह दृष्टान्त देव-गुरु-शास्त्रका।

अंतरमें आत्मा। .. ग्रहण नहीं होता है इसलिये छोड़ नहीं देना। अंतरमें जो संस्कार डाले हैं, वह अन्दरमें-से उसे कार्य किये बिना नहीं रहेंगे।

मुमुक्षु :- ... उतनी व्यवहारु श्रद्धा रखकर उसे शुरूआत करनी चाहिये।

समाधान :- बाहरसे। अंतरमें ज्ञायक।

मुमुक्षु :- उन्हें साथमें रखना है, कार्य स्वयं अपनेसे करना है।

समाधान :- कार्य स्वयंको करना है, अंतरमें करना है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- बारंबार आत्माका विचार करना। मैं आत्मा कौन हूँ? मेरा स्वभाव क्या है? बारंबार रुचि आत्मा-ओर करते रहना। आत्मा सर्वस्व है, ये सब कुछ नहीं है, इसमें कुछ सार नहीं है, सारभूत आत्मा है। अनादिका अभ्यास है इसलिये विकल्प आता है। तो बारंबार उसको पलट देना, अभ्यास करके। आकुलता नहीं करना। रुचि पलटकरके पुरुषार्थ करके पलट देना। तत्त्वका विचार करना, शास्त्रका विचार करना, आत्माका विचार करना, विकल्प..

मुमुक्षु :- ऐसा मनमें होता है कि इतने दिन अपने निकल गये, अब क्या करें? कब ध्यान आयेगा? ऐसा विचार आता है। फिर क्या करना?

समाधान :- बारंबार अभ्यास करना, बारंबार करना। सत्संग करना, श्रवण करना, मनन करना। जो समझमें आवे वह पढ़ना। कोई बार प्रवचन..

मुमुक्षु :- नहीं, बड़ा शास्त्र पढ़ते हैं तो दो दिनमें दिमागसे निकल जाती है, ध्यानमें नहीं रहती है।

समाधान :- गुरुदेवके प्रवचन (सुनना)।

समाधान :- दृष्टि पर-ओर है। उपयोग बाहर जाता है। दृष्टि आत्मा ओर करे कि मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक पर दृष्ट करे तो ज्ञायकका अनुभव होवे। ज्ञायकमें जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण है। दृष्टि बाहर जाती है, उपयोग बाहर जाता है। इसलिये उसका अनुभव होता है। दिशा बदल दे, दिशा पलट दे। मैं तो आत्मा हूँ, ये सब मैं नहीं हूँ। विभावभाव मैं नहीं हूँ। परज्ञेय जो परद्रव्य है वह भी मैं नहीं हूँ। जो ज्ञेय देखनेमें आते हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है। वह तो पर है, मैं चैतन्यतत्त्व हूँ। इसलिये उपयोग पलट दे, बदल दे। दृष्टि अपनी ओर स्थापित करे तो अपना अनुभव होता है।

.. बाहर भटकता है। चैतन्यमें उपयोग स्थिर करे तो अपना अनुभव होता है। उसका भेदज्ञान करे। मैं चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ये परद्रव्य है, सब ज्ञेय हैं। विभावभाव मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न आत्माको पीछानना।

मुमुक्षु :- पकड़में तो आता नहीं।

समाधान :- पकड़में तो भीतरमें उसकी रुचि, महिमा करे तो पकड़में आवे। अपना स्वभाव है, पकड़में नहीं आवे ऐसा तो नहीं है। पकड़में तो आ (सकता है)। सूक्ष्म उपयोग करे, उसकी महिमा करे, रुचि करे तो पकड़में आवे। वह ज्ञान द्वारा पकड़में आता है। यदि यथार्थ ज्ञान करे तो पकड़में आवे। उसको ग्रहण करके अनन्त जीव मोक्षमें गये हैं और जाते हैं, जानेवाले हैं। अपने पकड़में आता है। जो उसकी रुचि करे उसको पकड़में आता है, उसकी महिमा करे तो पकड़में आता है।

भूतकालमें अनन्त जीव (मोक्षमें) गये, सब आत्माकी आराधना करके, ज्ञायकका ध्यान करके, ज्ञायककी प्रतीत करके और उपयोग अपनेमें स्थिर करके आनन्दका अनुभव करते-करते वीतराग दशा प्रगट होकर मोक्ष गये। अनन्त कालमें वह मार्ग तो एक ही है। वर्तमानमें महाविदेह क्षेत्रमें भी यही मार्ग है। चैतन्यमें उपयोग स्थिर करे, उसकी दृष्टि उसमें स्थापित करे तो मुक्तिका अंश प्रगट होता है। उसमें विशेष आराधना करे तो वीतराग दशा होती है। भविष्यमें इसी मार्गसे जायेंगे।

बाह्य क्रिया अनन्त कालमें करी, शुभ राग किया, पुण्य बन्ध हुआ, देवलोक हुआ लेकिन मुक्तिका मार्ग नहीं हुआ। मुनिपना लिया, सब लिया, बाह्य क्रिया करी, परन्तु अंतर स्वभाव ज्ञानका परिणमन प्रगट नहीं किया, इसलिये स्वानुभूति प्रगट नहीं हुयी। अंतर चैतन्यको पीछानकर स्वभावका परिणमन, स्वभावकी क्रिया प्रगट करे, स्वभावमें लीन होवे तो प्रगट होता है। स्वानुभूति प्रगट होती है। उससे मुक्तिका मार्ग मिलता है। स्वानुभूति बढ़ते-बढ़ते मुनिदशा आती है और उसीमें वीतराग दशा होती है, उसीमें केवलज्ञान होता है। मार्ग एक ही है।

मुमुक्षु :- शुद्धात्माके साधक धर्मात्माकी एक ही समयमें आस्रवरूप, संवररूप और निर्जरारूप भाव प्रवर्तते हैं। तो उसमें आस्रवरूप भावोंका षट्कारक परिणमन किसके आधारसे होता है? और संवररूप भावोंका एवं निर्जरारूप भावोंका षट्कारक परिणमन किसके आधारसे होता है? यह कृपा करके हमें समझाईये।

समाधान :- आस्रव और संवर। संवर तो शुद्धात्माकी ओर दृष्टि स्थापे तो शुद्धात्माकी पर्याय शुद्धात्मामें-से होती है। शुद्धात्माकी ओर पुरुषार्थ करे तो शुद्धात्माका ज्ञान करे, उसमें दृष्टि करे, उसमें लीनता करे। शुद्धात्माकी पर्याय शुद्धात्मामें-से प्रगट होती है। आस्रवकी पर्याय विभावभाव है। अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे (होता है)। जितने अंशमें संवर हुआ, उतना संवर है। जितनी अशुद्धता है, उतने अंशमें अशुद्धता आस्रव है। और जितने अंशमें वीतराग दशा हुयी, उतने अंशमें संवर है।

संवरकी पर्याय शुद्धात्माके आश्रयसे होती है। और अभी अल्प है, पूर्ण नहीं है, इसलिये आस्रव भी अल्प है, संवर भी है और निर्जरा भी है। सब होता है। सब

एक साथ साधकदशाकी पर्यायमें रहते हैं। (आत्मामें) लीन होते-होते केवलज्ञान होता है। अंश होवे तो संवर और विशेष शुद्धि होनेसे निर्जरा होती है और अल्प विभाव है इसलिये आस्रव होता है। सब एक साथ होते हैं।

ज्ञानधारा और उदयधारा साथमें रहती है। अभी पूर्ण नहीं हुआ है, इसलिये आस्रव भी अल्प रहता है, संवर भी होता है, निर्जरा भी होती है, सब होता है। आस्रव कोई ऊपर-ऊपर नहीं होता और संवर भी ऊपर-ऊपर नहीं होता। शुद्धात्माकी दृष्टि करने-से, मैं अनादिअनन्त शाश्वत हूँ, ऐसी दृष्टि करने-से, उसका ज्ञान करने-से, उसमें लीनता करने-से संवर होता है। उसकी अल्पता है, पूर्ण शुद्धि नहीं हुयी है इसलिये आस्रव भी रहता है।

विभावका निमित्त कर्म है और अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। पुरुषार्थकी मन्दतासे उतना विभाव होता है। जितना पुरुषार्थ हुआ, ज्ञानधारा प्रगट हुयी उतना संवर होता है। साधकदशा है न। द्रव्य पर दृष्टि है। अनादिअनन्त द्रव्य शुद्ध है तो साधक दशामें शुद्धि, अशुद्धि ये सब साथमें रहते हैं। ज्ञानधारा और उदयधारा। भेदज्ञानकी धारामें सब रहता है। पूर्णता होवे तो अकेली वीतराग दशा (होती है)। साधक दशामें दो धारा रहती है, दो धारा चलती है।

पर्याय स्वतंत्र है। लेकिन पर्याय ऊपर-ऊपर नहीं होती है, द्रव्यके आश्रयसे होती है। पर्याय ऊपर-ऊपर होवे तो पर्याय द्रव्य हो जाय। द्रव्यके आश्रयसे पर्याय होती है। पर्याय स्वतंत्र है तो भी द्रव्यके आश्रयसे पर्याय होती है।

मुमुक्षु :- हमारे यहाँ मन्दिर नहीं है, तो श्वेतांबर मन्दिरमें जाये तो हमारा क्या नुकसान होता है? ... श्वेतांबर मन्दिरमें नहीं है, तो उसमें हमारा क्या अहित होता है? हम देव-गुरु-शास्त्रकी, आत्माकी बात सुनते हैं, समझते हैं, फिर भी उसमें हमारा क्या नुकसान होता है?

समाधान :- बाहरमें क्या करना वह आपोआप समझमें आयगा। और ज्ञायक मैं हूँ, यह चैतन्य स्वभाव मैं हूँ और विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। ये जड़तत्त्व है। शरीर भिन्न है, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ। ऐसी भेदज्ञानकी बात समझो, फिर यथार्थ देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं, वह अपनेआप आ जायगा। फिर नुकसान क्या होता है, उसका विशेष विचार करने से अपनेआप समझमें आ जायगा। मूल प्रयोजनभूत ज्ञायकको समझो। उसमें सच्चे देव-गुरु-शास्त्र आते हैं।

देव कैसे होते हैं? वीतरागी होते हैं। जो समवसरणमें देव विराजते हैं, वे वीतरागी होते हैं। विकल्प नहीं है, कुछ नहीं है। स्वरूपमें लीन हो गये हैं। उनकी नासाग्र दृष्टि है और वे वीतराग हैं। समवसरणमें बैठे हैं भगवान तो, उसमें कोई राग नहीं

है। उसमें कोई जातका (राग नहीं है)। भगवान तो मुनि जैसे वीतरागी हैं। उनकी प्रतिमा भी, जैसे समवसरणमें विराजे हैं, वैसी प्रतिमा होनी चाहिये। जैसी भगवानको वीतराग दशा हुयी, फिर जैसा भाव हुआ उसकी प्रतिमा वैसी होती है। जैसे भगवान हैं, वैसी प्रतिमा। और प्रतिमामें फेरफार करना वह यथार्थ तो है नहीं।

इसलिये क्या करना? अपनेआप समझमें आ जायगा। जो यथार्थ होता है.. वह यथार्थ है। बाकी तो उसमें भूल है। भगवान समवसरणमें बैठे हैं वे तो वीतराग हैं। उनकी दृष्टि नासाग्र है। मुनि जैसे हैं, वैसे पूर्ण वीतराग। मुनि तो साधक दशा है, ये तो पूर्ण हो गये हैं। समवसरणमें भगवान हैं, वैसी प्रतिमा होनी चाहिये। उसमें श्वेतांबरोंने फेरफार कर दिया। इसलिये जैसा सच्चा भावमें होवे, ऐसा बाहरमें नमस्कार भी उनको होता है। परन्तु ऐसा समझमें नहीं आवे तो तब आपोआप समझमें आ जायगा। यथार्थ तत्त्व समझने से सब समझमें आ जायगा। उसका व्यवहार भी सच्चा होता है।

जैसे ज्ञायकको समझता है, वैसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको समझे। ऐसा व्यवहार भी सच्चा होता है। यथार्थ भगवान जैसे हैं, वैसी स्थापना होवे उसको नमस्कार होता है। ... भाव अपनेआप समझमें आ जायगा। जब अपने भावमें सच्चा समझमें आ जायगा निश्चय और व्यवहार, तब अपनेआप छूट जायगा। अब नहीं छूटता है तबतक विचार करना कि सच्चा क्या है? जब सच्चा समझमें आयगा कि इसमें क्या नुकसान है, समझमें आयगा तो अपनेआप छूट जायगा। और नहीं छूटता हो तो अपनी इच्छा। जैसे निश्चय यथार्थ, वैसे व्यवहार यथार्थ होता है।

मुमुक्षु :- जीव समझता हो, फिर भी ऐसी कोई सामाजिक कार्य वश ऐसे आयतनके अन्दर जाना हो, नमन न करे, परन्तु जाना पड़े, ऐसे कोई सामाजिक बन्धनमें हो तो जाने-से कोई (नुकसान है)? दृष्टान्त ... ऐसे स्थानमें जाना पड़े, हमारे जैसे गृहस्थोंको, तो उसमें दोष है?

समाधान :- अपने भाव पर है। स्वयंके संयोग स्वयं समझ लेना। वैसे संयोगमें अपनी उतनी शक्ति न हो लोकव्यवहार जीतनेकी, तो अपने संयोगको स्वयं समझ लेना। बाकी न हो तो अपने लिये जान लेना। मार्ग तो ऐसा नहीं होता, परन्तु अपनी शक्ति न हो तो संयोगवश जाय वह एक अलग बात है। अपने लिये बात अलग है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- ..

मुमुक्षु :- स्वयंकी इतनी कचास है कि लोकव्यवहारको जीत (नहीं सकता है)।

समाधान :- अपने लिये स्वयंको समझ लेना। संयोगवश जाना पड़े। राग-द्वेष हो ऐसा हो, ऐसे संयोगको स्वयं समझ लेना। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२४

मुमुक्षु :- गुरुदेव मिल, आपकी इतनी कृपा है, इस ..

समाधान :- सब क्रियासे धर्म होगा, इसमें पड़े थे। थोड़ी सामायिक करे और प्रतिक्रमण करे इसलिये धर्म हो गया, ऐसा मानते थे। और कोई उपवास करे तो धर्म हो गया, ऐसा मानते थे। गुरुदेवने अंतरकी दृष्टि बतायी।

मुमुक्षु :- समाजकी यही स्थिति थी।

समाधान :- समाजमें ऐसा ही था। स्थानकवासी, देरावासी, दिगंबरोंमें भी ऐसा था। थोड़ी बाहरसे क्रिया आदि करे, शुद्धि-अशुद्धि, इसलिये उसमें धर्म मान लेते थे।

मुमुक्षु :- तीनों संप्रदायमें ऐसा ही था। दिगंबर नाम मात्र था शास्त्रमें। वे लोग भी क्रियाकाण्डमें चड़ गये थे।

समाधान :- उसमें समयसार था, लेकिन कोई देखता नहीं था। पढ़ना गुरुदेवने सीखाया। उसके अर्थ गुरुदेवने सुलझाये। तत्त्वार्थ सूत्र आदि पढ़ते थे। देरावासीमें रट लेते थे। नौ तत्त्व और गुणस्थान आदि रट लेते थे।

मुमुक्षु :- श्वेतांबरमें भी वही था। रट लेते थे, पाठ कंठस्थ कर लेते थे।

समाधान :- हाँ, पाठ कंठस्थ कर लेते थे।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने तो बहुत खुल्ला कर दिया।

समाधान :- बहुत खुल्ला किया। अंतरकी दृष्टि बतायी। उत्पाद, व्यय, ध्रुव आदि सब शास्त्रमें आता था, कोई समझता नहीं था। आत्मा जाननेवाला है, ज्ञायक है, भेदज्ञान होता है, स्वानुभूति होती है, कोई समझता नहीं था।

मुमुक्षु :- शब्द किसीने सुने नहीं थे। भावको एक ओर रखो।

समाधान :- मोक्ष तो ऊपर सिद्ध शिलामें जाय तब मोक्ष हो, ऐसा सब मानते थे। मोक्ष होता है। स्वानुभूतिका अंश प्रगट हो, वही मोक्ष है। और पूर्ण हो तब अंतरमे भावसे मोक्ष हो जाता है।

मुमुक्षु :- बातें सुनी है, लेकिन हमारे लिये कोई प्रयोजन नहीं है। आपने कहा, उसके आसपास टेल लगानी। उसका विस्तृतिकरण। हमें तो वही चाहिये, हमारी भूमिकामें।

समाधान :- स्वानुभूतिका अंश प्रगट होता है, वह निर्विकल्प दशा होती है तब

होता है। उसके पहले मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा बारंबार उसका रटन करते रहना। वह टहेल मारनी है। विकल्प जो आता है, वह विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। विकल्पसे भी मैं भिन्न हूँ। शुभ मन्द या तीव्र जो-जो विभाव आये उन सबसे भिन्न मैं चैतन्य हूँ। मैं चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ, बारंबार उसकी महिमा, उसकी लगन। बारंबार अंतरमें वह रटन रहना चाहिये कि मैं ज्ञायक हूँ। मैं विकल्प रहित निर्विकल्प तत्त्व हूँ और विकल्प छूट जाट तो भी मेरेमें ही सब भरा है। बाहरमें नहीं है। विकल्प छूट जाय इसलिये स्वयं शून्य नहीं हो जाता है। परन्तु अंतरमें जो भरा है वह प्रगट होता है। इसलिये मेरेमें एक ज्ञानमात्र-ज्ञायकमात्र आत्मामें सब सर्वस्व है। ऐसे बारंबार उसकी भावना, उसका रटन, उसका विचार, उसका वांचन आदि करने जैसा है। ज्ञायकके आँगनमें टहेल लगाने जैसी है, बारंबार।

मुमुक्षु :- वांचन, विचार करने पर पुनः भेदके रास्ते पर चढ़ जाता है। अनादिकी आदत है उस पर जानेकी।

समाधान :- भेदके रास्ते पर चढ़ जाय तो भी बारंबार अपनी ओर लक्ष्य करते रहना। क्योंकि कहीं न कहीं रुकता तो है। जबतक अंतरमें लीन नहीं हुआ है, अंतरमें दृष्टि नहीं गयी है, तबतक उसे कहीं न कहीं घुमता रहता है। इसलिये कहीं खड़ा तो रहता है। परन्तु श्रद्धा और रुचि उस ओर रखनी कि ज्ञायक, ज्ञायकमें सब है। इन सबमें रुकने जैसा नहीं है। वह तो बीचमें आये बिना नहीं रहता। परन्तु श्रद्धा तो ज्ञायककी रखनी कि निर्विकल्प तत्त्व शुद्धात्मा ज्ञायक मैं हूँ। ये सब तो उसमें रह नहीं पाता हूँ, इसलिये वह सब आये बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- अंतरमें वह प्रतीति नहीं आती है। मैं परिपूर्ण हूँ, मेरेमें सब है। यह विश्वास, ना जाने क्यों विश्वास नहीं आता है। दूसरी सब वस्तुओंका विश्वास (आता है), सोनेका, झवाहरातका, फलानेका सबका विश्वास आता है, परन्तु इसी क्षणमें मेरेमें सब भरा है, (यह विश्वास नहीं आता है)।

समाधान :- दूसरा सब दिखता है, यह दिखाई नहीं देता है। (इसलिये) उसे अन्दरमें विश्वास ऊड़ जाता है। परन्तु उसमें सब है। स्वयं विचार करके, गुरुदेव कहते हैं, देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं, परन्तु स्वयं विचार करके नक्की करे तो उसीमें सब भरा है।

गुरुदेव कहते थे न? छोटीपीपर घिसते-घिसते उसमें-से चरपराई निकलती है। वैसे ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ करे, उसीमें सब भरा है, उसमें-से स्वभाव प्रगट होता है। छाछको बारंबार बिलोता रहे तो उसमें-से मक्खन भिन्न हो जाता है। ऐसे बारंबार भेदज्ञान (करे)। बारंबार मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, ऐसा बारंबार करे तो, जैसे मक्खन भिन्न हो जाता है,

वैसे भिन्न तो है ही, परन्तु प्रगटरूपसे भिन्न पड़ जाता है।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर बात है। बारंबार यह अभ्यास करके भिन्न पड़नेका प्रयत्न (करना), सब आगमका सार कहें तो यह एक ही है।

समाधान :- यह एक ही है।

मुमुक्षु :- प्रयोजनभूत द्रव्य-गुण-पर्यायका ज्ञान करके, ज्ञानके पहलू अधिक स्पष्ट न करे, .. ज्ञानमें हो जाती हो, सूक्ष्मपने तत्त्वज्ञानका कोई भी विषय हो उसका निर्णय न कर सकता हो अथवा उसका वह विश्लेषण नहीं कर सकता हो, परन्तु मूलभूत तत्त्वको जानकर उससे भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे तो हो सकता है?

समाधान :- हो सकता है। मूलभूत प्रयोजनभूत तत्त्व-मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा नक्की करके ये विभाव मैं नहीं हूँ, मैं अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य अनन्त गुणसे भरा हुआ और क्षण-क्षणमें पलटे वह पर्याय, बस! इतना ज्ञान करके अपनी ओर जाय तो उसमें कोई विशेष ज्ञान न हो तो उसमें कुछ जरूरत नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- गोते ही खाते हैं न। हम वहाँ है। हम यानी हमारे सब भाई। क्षयोपशम ज्ञानमें खड़े हैं, ...

समाधान :- सबका प्रयोजन एक ही है कि भेदज्ञान करना।

मुमुक्षु :- भाई कहते हैं, जूठे ही गोते खाते हैं। विषय बनाते हैं, परन्तु इतना तो गुरुदेव देकर गये हैं।

समाधान :- कितना दिया है। भेदज्ञानका प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- वह करता नहीं है और बातें करता रहता है।

समाधान :- हाँ, ऐसा है, वैसा है, ऐसा है, ऐसा है।

मुमुक्षु :- क्रमबद्धपर्यायमें उलझ जाय। उसे उलझना है, अटकना है इसलिये कहीं न कहीं...

समाधान :- कहीं-कहीं अटक जाता है। प्रयोजन ज्ञायकको प्रगट करना वह है।

मुमुक्षु :- समय-समय उसका..

समाधान :- उसका रटन रखने जैसा है।

मुमुक्षु :- क्या बाकी है? उसमें क्या समझना है?

समाधान :- समयसारमें आता है कि ज्ञानमात्र आत्मा, ऐसी तू रुचि कर, ऐसी प्रीति कर, उसमें उसीका अनुभव कर तो उसमें-से प्रगट (होता है)। जितना ज्ञानमात्र है उतना ही मैं हूँ। जितना ज्ञानमात्र वही मैं हूँ। 'इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।' उसमें तू संतुष्ट हो। उसीमें सब है, उसमें संतुष्ट हो। उसमें सदा संतुष्ट हो, उसीमें-से सब प्रगट होगा। 'इससे ही बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे।' उसमें

तू तृप्त हो, उसीमें सब है।

फिर निर्णय न हो तो चारों ओरका विचार करे, परन्तु प्रयोजन तो एक ज्ञायकका है। जो होगा सब आ जायगा। उसमें शुद्धात्माकी पर्याय शुद्ध परिणमेगी। अंश परिणमेगा, उसमें भेदज्ञान होगा, उसमें आस्रव, संवर सब आ जायगा। वह तो सहज आ जायगा। परन्तु एक ज्ञायकको ग्रहण कर तो उसमें सब आयगा।

साधकदशामें जो हो वह सब आ जाता है। उसकी विशेष शुद्धि होती है, निर्जरा होती है और उसमें विशेष लीन हो तो वीतरागता केवलज्ञान होता है। उसमें मुनिदशा (आती है)। ज्ञायकमें ही सब है। स्वानुभूतिमें। और वह स्वानुभूति भी ज्ञायकको ग्रहण करने-से ही होती है। ज्ञायकको ग्रहण करके उसकी भेदज्ञानकी धारा, ज्ञायककी धारा सहज करता जाय तो उसमें स्वानुभूति भी उसी मार्गमें होती है-ज्ञायकको ग्रहण करनेसे। ग्रहण नहीं होता है, इसलिये उसके चारों ओर विकल्प दौड़ते रहते हैं। ज्ञायकको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- वर्तमानमें, हम सब भाई यहाँ बैठे हैं, हम जो कुछ सुनते हैं, ... सुनते हैं परन्तु ऐसे मुखसे सुनते हैं कि जो ज्ञानी नहीं है। उसमें हम दूसरे रास्ते पर चढ़ जायें (तो)? क्योंकि हमें सामने जो प्ररुपणा (करते हैं), हम जिनको सुनते हैं, वह प्ररूपणा करनेवाले ज्ञानी तो है नहीं, ज्ञानीके वचनामृत है, परन्तु ज्ञानीके वचनामृत सिर्फ पढ़ते नहीं है, उसके हृदयमें जो कुछ विचार आते हैं वह हमारे सामने प्रदर्शित करता है। क्योंकि गुरुदेवकी वाणी स्वतंत्र रूपसे विचारनेकी शक्ति किसीकी होती है, सबकी नहीं होती। ... आध्यात्मिक प्ररूपणा होती हो और उसमेंसे..

समाधान :- जो सच्चा मुमुक्षु होता है, जिसे सत् ग्रहण करना है वह कहीं रुकता नहीं। वह सच्चा निर्णय कर लेता है। वह सुनने आये उसमें जिसे जिज्ञासा होती है कि मुझे आत्माका (हित) करना है, ज्ञायकका भेदज्ञान करना है, वह कहीं रुकता नहीं, सत्य ग्रहण कर लेता है।

मुमुक्षु :- आपने कहा था, मुमुक्षु भले सच्चा मुमुक्षु न कहें, मैं जो बात करता हूँ, परन्तु वह मुमुक्षु ज्ञानके लोभसे, गुरुदेवने कहा है कि वह स्वयं तो नया है अथवा पुराना हो, जो भी हो, परन्तु अभी उसे ज्ञानमें पूरा पकड़में नहीं आया हो। और प्ररूपणा ऐसी आती हो कि उसे ऐसा लगे कि यह गुरुदेवकी ही वाणी है और ज्ञानका लोभ है। करने जैसा तो आपने कहा उतना ही, अधिक जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे तो ऐसा लगता है, कुछ सुननेकी जरूरत नहीं है, गुरुदेवकी टेपके अलावा और आपने कहा कि अपने अन्दर आसपास चक्कर लगाता रह, वही काम करने जैसा है। चौबीस घण्टे एक ही काम, जितना समय मिले उसमें सत्का संग अर्थात् अंतरका

जो संग है उसीका संग करने जैसा है। ज्ञानके लोभसे अनादिकी आदत है, कुछ-कुछ नया-नया जाननेकी, नये न्याय उसमें फिसल जाता है। ... स्पष्ट कहूँ तो हम तो बन्द कर देना चाहिये। मुझे तो ऐसा होता है कि बन्द कर देना चाहिये। यदि ऐसा लगता हो तो। मुमुक्षुमें उतनी लायकात न हो कि उसमें-से वह सत्य निकाल सके। उतना ज्ञानका क्षयोपशम भी न हो।

समाधान :- बाहरके संयोगमें मैं क्या कहूँ? स्वयं अपना समझ लेना। स्वयंको नुकसान होता है ऐसा लगे तो स्वयंको अपना समझ लेना। ऐसा लगे कि मुझे नुकसान हो रहा है, व्यक्तिगतरूपसे, तो स्वयंको नुकसान होता हो तो छोड़ देना। बाकी बाहरके संयोगमें सबको रुचे ऐसा करे, उसमें मैं हाँ-ना कैसे कहूँ? स्वयंको अपने लिये समझ लेना कि मुझे नुकसान होता है। सच्चा जिज्ञासु कहे कि मैं जहाँ-तहाँ रुक जाता हूँ कि यहाँ-से जानू, यहाँ-से जानू ऐसा कर-करके रुक जाता हूँ, मुझे उलझन हूँ, उसके बजाय गुरुदेवकी वाणीमें-से मैं सत्य समझु, इस तरह सिर्फ अपने लिये हो तो स्वयं छोड़ देना, अपने लिये।

समाधान :- ... प्रकाश और अन्धकार, कितना फ़र्क़ है। प्रकाश प्रकाश .. अग्निकी क्रिया उष्णतारूप ही होती है। बर्फकी क्रिया ठण्डकरूप होती है, दोनों एक नहीं हो सकते। पानीकी शीतलता और अग्निकी उष्णता एक नहीं होते। स्थूल दृष्टान्त है।

वैसे ज्ञान ज्ञानरूप और क्रोध क्रोधरूप (रहते हैं)। लेकिन स्वयं ही उसमें तन्मय है। परन्तु स्वयं स्वयंको जान नहीं सकता है। पर्याय ऐसी बाहर भटकती रहती है। बाहरकी परिणतिके कारण अंतरमें देखता नहीं है। डोर, ज्ञानकी डोर कहाँ-से आयी है उस मूल तलको देखता नहीं है। ... देखनेमें तन्मय हो जाता है। भले आकुलता आकुलतामें बाहरका देखता रहता है।

लोग दर्पणमें देखे न कि दर्पणमें क्या दिखता है? उसमें चित्र-विचित्रता देखते हैं। परन्तु दर्पण एकसमान है, उस एकसमान दर्पण पर दृष्टिके जानेके बजाय लोग दर्पणमें क्या-क्या दिखता है, (वह देखनेमें रुक जाते हैं)। जीवको अनादिसे ऐसा भ्रम हो गया है कि ये ज्ञेय क्या है? परन्तु उसमें एकसमान क्या है? किसमें यह ज्ञात होता है? यह वस्तु क्या है? उसका लोग विचार करनेके बजाय, दर्पणमें दिखता क्या है? अनेक जातकी वस्तुएँ दिखती है, उन वस्तुओंको देखनेमें पड़ जाता है।

चिड़िया उसमें देखे तो दूसरी चिड़िया कहाँ-से आ गयी? चिड़ियाको देखने लग जाता है। लेकिन यह बीचमें दर्पण जड़ है, उसे नहीं देखता। चिड़िया उसीमें चोँच मारता है। अन्दर क्या दिखता है, उसीमें भटकता रहता है। परन्तु किसमें दिखता है और क्या वस्तु है? उसे कोई नहीं देखता। उसमें अनेक प्रकारके ज्ञेयोंको देखनेके भ्रममें,

किसमें दिखता है और यह वस्तु क्या है? ऐसी कौन-सी क़िमती वस्तुमें दिखाई देता है? उसे नहीं देखता। ये सब दिखता है उसके भ्रमके घोटालमें पड़ा है।

चिड़िया आये तो ये दूसरा क्या दिखता है? चिड़ियाकी बुद्धि काम नहीं करती है। उसके साथ झघड़ा कर-करके मानों दूसरी चिड़िया आ गयी है, ऐसा उसे हो जाता है। वस्तु है कि जिसमें यह सब दिखाई देता है।

... जाननेका है उसे नहीं देखता है, ये सब चित्र-विचित्रतामें तन्मय हो गया है। चित्र-विचित्रतामें भले ही थक जाय, आकुलता हो, तो भी उसीमें लगा रहता है। ... लेकिन कुछ मालूम नहीं पड़ता है कि यह मैं। बाहर सब.... तू ही है, लेकिन तेरे ज्ञानको तू बाहर लेने जा रहा है। आनन्द तेरा है और तू लेने जा रहा बाहर, ऐसा करता है।

आदमी जितना देख सके उतना तन्मय होकर एक-एक देखे उतना देख नहीं सकता। भिन्न हुआ आदमी, न्यारा हुआ है वह ज्यादा देख सकता है। शीखर पर आदमी खड़ा हो वह ज्यादा देख सकता है। वैसे ज्ञानके शिखर पर खड़ा है, वह भिन्न हो तो ज्यादा देख सकता है, लेकिन वह जानता नहीं है। शिखर पर आ नहीं पाता। ज्ञानमें महिमा नहीं आती है। ज्ञेयकी महिमा आती है, ऐसी ज्ञानकी महिमा नहीं आती है। ज्ञान अर्थात् जानना। ज्ञानकी महिमा नहीं आती है। वह विभिन्नता दिखती है उसकी महिमा आती है। विभिन्नता (देखता है), लेकिन अन्दर खड़ा तो रह, उसमें कैसा है? उसका तू निश्चय तो कर। उसीमें सब है, सब विभिन्नता उसमें है। लेकिन वह बाहर (जाता है), उसे विश्वास नहीं आता है। अरूपी चैतन्यद्रव्यका विश्वास नहीं आता है।

... कुछ अज्ञात नहीं रहेगा। जाननेके लिये व्यर्थ प्रयत्न करता है। अन्दरका स्वघर भी ज्ञात होगा और सब ज्ञात होगा। कुछ अज्ञात नहीं रहेगा, लेकिन उसे बाहर ही व्यर्थ प्रयत्न करना है। जाननेका स्वभाव है इसलिये सब जानना है। ज्ञेयके भेद कर-करके जानना है। इतना बाहरका जाननेका (रस है), बाहरसे जाननेको आकुल-व्याकूल (होता है)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२५

मुमुक्षु :- उपयोग जब इसे जाने, उसे जाने उस वक्त भी ऐसा लेना कि मैं ज्ञायक ही हूँ और यह ज्ञात हो रहा है, वह मैं नहीं हूँ। ऐसे भेदज्ञानकी प्रक्रिया है?

समाधान :- ऐसा विकल्प नहीं होता, परन्तु यह ज्ञायक है वह मैं हूँ, यह ज्ञेय है वह मैं नहीं हूँ। मैं ज्ञायक हूँ, मैं जाननेवाला हूँ। ये ज्ञेय ज्ञानमें ज्ञात हो रहा है। ये ज्ञेय परपदार्थ है, वह मैं नहीं हूँ। ज्ञेय सो मैं नहीं हूँ, ज्ञान सो मैं हूँ। ज्ञायक सो मैं हूँ।

जो ज्ञेय दिखता है वह मैं नहीं हूँ। और ज्ञान है वह तो द्रव्यका गुण है। ज्ञान गुण है और गुणीको पहचानना-ज्ञायक सो मैं हूँ। ज्ञान एक गुण है। उसमें लक्ष्य-लक्षणका भेद है। ज्ञेयको जाननेवाला ज्ञान और ज्ञान जिसमें रहा है वह द्रव्य मैं हूँ। द्रव्यके अन्दर ज्ञान रहा है। परन्तु ज्ञान जिसमें रहा है, ऐसे ज्ञायकका अस्तित्व है वह मैं हूँ। पूरा ज्ञायक ग्रहण करे। मात्र ज्ञान मैं नहीं, पूरा ज्ञायक सो मैं हूँ। ज्ञान है वह ज्ञायकका गुण है।

... अंतरमें शुद्धात्मा आवे, परन्तु उसे ऐसी भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो कि ज्ञायक है वही मैं हूँ। ऐसा बारंबार उसका अभ्यास करे तो उसे स्वानुभूति हो। ऐसा बारंबार अभ्यास, क्षण-क्षणमें ऐसा अभ्यास करता जाय कि मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायककी उसे महिमा आये। एक ज्ञानमात्रमें क्या? उसे कुछ रुखा नहीं हो जाता कि ज्ञानमें कुछ नहीं है। ज्ञायकमें ही सब भरा है। ज्ञानमात्र आत्मामें सब भरा है। ऐसी महिमापूर्वक उसे ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण हो और बारंबार उसका अभ्यास करे तो उसे स्वानुभूति होती है।

... ज्ञान सो मैं, ज्ञान सो मैं उसमें ज्ञायक सो मैं हूँ, ऐसा आना चाहिये। मात्र ज्ञान यानी सिर्फ गुण नहीं, ज्ञायक सो मैं हूँ।

मुमुक्षु :- अनन्त गुणका पिण्ड ऐसा जो ज्ञायक है वह मैं। वहाँ ले जाना।

समाधान :- वहाँ ले जाना। अनन्त गुणका उसे भेद नहीं आता है, परन्तु उसकी महिमामें ऐसा आता है कि अनन्त गुणसे भरा जो ज्ञायक है, अनन्ततासे (भरा) ज्ञायक सो मैं हूँ।

... पीलापन है, चीकनापन है, सुवर्ण ऐसा है, अथवा हीरा ऐसा है, ऐसा उसका प्रकाश है, श्वेत है, वह सब गुण है। परन्तु पूर्ण हीरा सो मैं, पूर्ण सुवर्ण सो मैं। ऐसे ज्ञानमें एक ज्ञानगुण जाने वह मैं, ऐसा नहीं, जाननेवालेका पूर्ण अस्तित्व है वह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण आया। बहुत समयसे ऐसा लगता था कि गुरुदेव आत्माका स्वभाव ज्ञान तो कहते हैं, परन्तु उसे कोई कार्यसिद्धि तो होती नहीं, परन्तु यह एक बहुत बड़ी भूल होती है।

समाधान :- मात्र ज्ञेयको जानने वह ज्ञान, इस तरह ज्ञान नहीं, परन्तु पूरा द्रव्य ज्ञायक। वह ज्ञान किसके आधारसे रहा है? उस ज्ञानको आधार किसका है? पूरा द्रव्य है। ज्ञान एक पूरा अस्तित्व है, ज्ञायक अनन्त गुणसे गुँथा हुआ ज्ञायकका पूरा अस्तित्व है वह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- मात्र एक गुण मैं नहीं, परन्तु अनन्त गुणका पिण्ड ऐसा जो द्रव्य, ऐसा मेरा अस्तित्व है, वह मैं हूँ।

समाधान :- ऐसा मेरा अस्तित्व है वह मैं हूँ। पीला उतना सोना नहीं, परन्तु सोनेमें दूसरे बहुत गुण हैं, ऐसा सोनेका पूरा अस्तित्व है वह सोना है। ऐसे ज्ञायक है वह अनन्त गुणसे भरा हुआ एक द्रव्य है, वह मैं हूँ। ज्ञान कहकर गुरुदेवको, आचार्यदेवको ज्ञान कहकर ज्ञायक कहना है। ज्ञानगुण असाधारण है इसलिये ज्ञान द्वारा पहचान करवाते हैं कि ज्ञान सो मैं। ज्ञान है वह तू है, ऐसे पहचान करवाते हैं। लक्षणसे लक्ष्यकी पहचान करवाते हैं। आचार्यदेव और गुरुदेवको यही कहना है कि ज्ञान है वह तू है अर्थात् ज्ञायक है वह तू है, ऐसा कहना चाहते हैं।

मुमुक्षु :- कहनेका भावार्थ यह है कि ज्ञायक सो मैं।

समाधान :- ज्ञायक है वह तू है, ऐसा कहना चाहते हैं, ज्ञान कहकर। क्योंकि ज्ञान सबको ज्ञात हो सकता है, ज्ञान असधारण गुण है इसलिये लक्षण द्वारा लक्ष्यकी पहचान करवाते हैं। गुरुदेव ऐसा कहते थे और शास्त्रोंमें भी (ऐसा ही कहना है)। गुरुदेवने शास्त्रोंके रहस्य खोले हैं। ज्ञान कहकर ज्ञायक कहना चाहते थे।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर बात आयी। ज्ञान कहकर गुरुदेव भी ज्ञायक ही कहते थे।

समाधान :- हाँ, गुरुदेव, ज्ञान कहकर ज्ञायक कहते थे। आता है, 'इसमें सदा रतिवंत बन'। जितना ज्ञानमात्र है उतना तू है। उसमें सदा रुचि कर, उसमें संतुष्ट हो, उसमें तृप्त हो। जितना ज्ञानमात्र आत्मा उतना तू। जितना परमार्थ ज्ञानस्वरूप आत्मा है वह तू है। ज्ञानमात्र कहकर ज्ञायक है वह तू है, ऐसा कहना चाहते हैं।

मुमुक्षु :- उतना सत्यार्थ..

समाधान :- उतना ही सत्यार्थ परमार्थ है, जितना ज्ञान है। उसमें तृप्त हो, उसमें संतुष्ट हो।

मुमुक्षु :- इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे। ऐसी गाथा है।

समाधान :- हाँ, 'इससे ही बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे।' और गुरुदेव भी यही कहते थे कि ज्ञान है वह तू है। अर्थात् ज्ञायक सो तू है। ज्ञानमात्रमें सब आ गया। ज्ञानमात्रमें आचार्यदेव कहते हैं, सब आ गया। उसमें तृप्त हो, उसमें संतुष्ट हो, तुझे सुख (प्राप्त होगा)। ज्ञानमात्र कहकर ज्ञायक कहते हैं। उसमें अनन्त गुण भरे हैं, उसमें अनन्त आनन्द भरा है। सब उसमें भरा है। अतः असाधारण आत्माका ज्ञानगुण जो लक्षण तुझे पहचानमें आता है, उस लक्षण द्वारा लक्ष्यको पहचान ले। बस! उसीमें सब भरा है।

मुमुक्षु :- अकेले ज्ञानको मुख्य करके बात की है, परन्तु अनन्त गुणका पिण्ड ऐसा जो ज्ञायक, उसे दृष्टिमें लेनेके लिये वह दर्शाया है।

समाधान :- हाँ, उसे दृष्टिमें लेनेके लिये, पूरा ज्ञायक ग्रहण करनेके लिये। अनन्त गुणका अस्तित्व ज्ञायकरूप है, उसे ग्रहण कर। ज्ञायक, उसमें पूरा द्रव्य आ जाता है।

मुमुक्षु :- पहले विकल्प हो, बादमें विकल्पका अभाव हो जाता है?

समाधान :- पहले निर्विकल्प तत्त्वकी यथार्थ प्रतीति होती है कि यह ज्ञायक है वह मैं हूँ। ऐसी यथार्थ प्रतीति होती है। बीचमें विकल्प तो होते हैं, परन्तु बारंबार उसका अभ्यास करे, उसकी लीनता करे, उसकी प्रतीतिको दृढ़ करे तो निर्विकल्प होता है। बारंबार उसकी भेदज्ञानकी धारा उग्र करे तो निर्विकल्प हो।

मुमुक्षु :- उतावलीसे..

समाधान :- उतावलीसे नहीं। धैर्य, शान्ति, भावनासे और जिज्ञासासे। आकुलतासे नहीं, परन्तु उसकी भावना उग्र हो, जिज्ञासा हो, परन्तु धैर्यसे पुरुषार्थ करे। आकुलता करने-से नहीं होता। बारंबार गुरुदेवके उपदेशमें वही आता था।

मुमुक्षु :- कुछ भी पढ़े, दस पंक्ति पढ़े, लेकिन उसमें-से मुख्य बात यह आये, पूरा प्रवचन पढ़े तो भी यही बात आये। कर्तृत्वकी बात कहीं आये ही नहीं। ज्ञानकी बात आये। इसमें-से पद्धति क्या? आज बहुत अच्छा स्पष्टीकरण हुआ।

समाधान :- तू कर्ता नहीं है, परन्तु ज्ञाता है ऐसा आये। तू ज्ञानको ग्रहण कर।

मुमुक्षु :- ... वैसे तो कर्ताबुद्धि मन्द पड़ती है। परन्तु जानता हूँ, वह तो मेरा स्वभाव है। फिर भी कोई कार्यसिद्धि तो होती नहीं है। बहुत समयसे यह अभ्यास करते हो। लेकिन यह बात सत्य है कि गुरुदेवने ज्ञान द्वारा ज्ञायकको ही दर्शाया है। बहुत सुन्दर।

समाधान :- ज्ञायक दर्शाया है। कर्ताबुद्धि, उसे स्थूलपने लगे कि मैं कर नहीं सकता हूँ। परन्तु अन्दरमें जबतक ज्ञायक ज्ञायकरूप नहीं हुआ है, तबतक उसे अंतरमें कर्ताबुद्धि पड़ी है। उसके अभिप्रायमें। जो-जो विकल्प आये, विकल्पके साथ उसकी कर्ताबुद्धि जुड़ी है। जब यथार्थ ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमे, ज्ञाता हो, तब उसे कर्तृत्व छूटता है। तब उसकी स्वामित्वबुद्धि यथार्थ रूपसे अंतरमें-से तब छूटती है। पहले उसे विचारसे छूटे कि मैं कर्ता नहीं हूँ। मैं जाननेवाला हूँ। परन्तु अंतरमें जब यथार्थ परिणमन हो-ज्ञायक ज्ञायकरूप हो-तब उसका कर्तृत्व छूटता है।

मुमुक्षु :- सबको जाननेवाला ज्ञान आत्माका लक्षण है?

समाधान :- वह आत्माका लक्षण तो है, ज्ञेयको जानता है वह ज्ञान तो है, परन्तु वह दृष्टिकी भूल है कि मैं ज्ञेयको जानता हूँ। दृष्टिकी भूल है। ज्ञान तो ज्ञान है, उसमें दृष्टिकी भूल है। आत्माका लक्षण तो है, लेकिन दृष्टिकी भूल है कि मैं ज्ञेयको... रागमिश्रित हो जाता है। उसमें रागको दूर करके, ज्ञेयको भिन्न करके अकेले ज्ञानको ग्रहण करे तो ज्ञान लक्षण तो आत्माका है।

मुमुक्षु :- उससे भिन्नता कैसो होगी ज्ञेयाकार ज्ञानसे? जो सामान्य ज्ञान है। आपका कहना ऐसा है कि सामान्य ज्ञान आत्माका लक्षण है। ज्ञेयाकार ज्ञेयमिश्रित जो है वह आत्माका लक्षण नहीं है।

समाधान :- नहीं। भिन्न-भिन्नतावाला ज्ञान, वह ज्ञान मेरा मूल लक्षण नहीं है। मूल लक्षण तो एक जाणक तत्त्व, जाननेवाला तत्त्व है वह मैं हूँ। उसको ग्रहण करना। जाननेवाला जो सामान्य जाननेवाला.. जाननेवाला.. जाननेवाला जो वस्तुका मूल स्वभाव है उसको ग्रहण करना, उसका अस्तित्व ग्रहण करना। उसमें इस ज्ञेयको जाना, इस ज्ञेयको जाना ऐसा नहीं। स्वतःसिद्ध जाननेवाला है। अनन्त शक्ति जिसमें जाननेकी है, वह जाननेवाला तत्त्व है वह मैं हूँ। उसको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- जो जाननेवाला तत्त्व है, वह तो लक्ष्य हो गया।

समाधान :- हाँ, लक्ष्य।

मुमुक्षु :- और लक्षण क्या है? ज्ञानसामान्य, ज्ञेयाकार ज्ञान नहीं? ज्ञेयाकारमें जो सामान्य ज्ञान है (वह)?

समाधान :- सामान्यको ग्रहण करना। विशेष ग्रहण नहीं करके, विशेष द्वारा सामान्यको ग्रहण करना। जो दृष्टान्त आता है न? बादलमें जो प्रकाशके किरण दिखाई देते हैं, उस किरणके पीछे पूरा सूर्य अखण्ड है, उसको ग्रहण करना। क्षयोपशम ज्ञानका भेद जो देखनेमें आता है, उस भेदको ग्रहण नहीं करके मूल सूर्यको ग्रहण करना। बादलमें जो किरणें हैं, वह है तो सूर्यके किरण, परन्तु भेद-भेद किरण मात्र मूल वस्तु नहीं

है। मूल वस्तु पूरा द्रव्य (नहीं है)। वह किरण कहाँ-से निकलता है? उस द्रव्यको ग्रहण करना।

जो बादल है, उसमें जो प्रकाशकी किरणें दिखती हैं, (वह मूल वस्तु नहीं है)। मूल सूर्यको ग्रहण करना। प्रकाशके किरण उसे छिन्न-भिन्न नहीं करते। वह प्रकाश सूर्यको दिखाते हैं। उसको दिखाते हैं। ऐसे क्षयोपशमज्ञानके भेद हैं, वह मूल वस्तुको दिखाते हैं। उसको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- खण्ड खण्ड ज्ञान भी अखण्ड वस्तुको दिखाता है।

समाधान :- हाँ, अखण्ड वस्तुको दिखाता है, उसको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- तो खण्ड खण्ड ज्ञानको ना देखकरके अखण्ड आत्माको देखना।

समाधान :- अखण्ड आत्माको देखना चाहिये।

मुमुक्षु :- खण्ड खण्ड ज्ञानके द्वारा अखण्ड आत्मा देखा जा सकता है?

समाधान :- देख सकता है। दृष्टि अखण्ड पर (जाती है)। देख सकता है। उसका अभिनन्दन करते हैं, अखण्डको तोड़ता नहीं है, वह अखण्डको दिखा सकता है। लक्षण द्वारा लक्ष्य देखनेमें आता है।

मुमुक्षु :- खण्ड खण्ड ज्ञानके द्वारा अखण्ड आत्मा जाना जा सकता है?

समाधान :- जान सकता है। लक्षणसे लक्ष्य पीछाननेमें आता है। खण्ड खण्ड ज्ञानसे दिखनेमें न आवे तो स्वयं.. लक्षण और लक्ष्य, वह तो ज्ञानका लक्षण है। वह तो स्वतःसिद्ध अपने-से अपनेको जानना। खण्डको गौण करके जानो तो अपने आपसे अपनेको जाना। परन्तु व्यवहार-से लो तो खण्डसे अखण्ड जाना जाता है। व्यवहारसे ऐसा बीचमें खण्ड आता है।

समाधान :- ... वेदना भिन्न और आत्मा भिन्न है। आत्माका स्मरण करना। ज्ञायक आत्मा है उसका भेदज्ञानका प्रयत्न करना। यह करनेका गुरुदेवने कहा है। विकल्पसे भिन्न आत्मा है उसे पहचाननेका प्रयत्न करना। वेदना शरीरमें आती है, आत्मामें आती नहीं है। आत्मा तत्त्व अत्यंत भिन्न है। देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें तो आप पहले-से रहे हो। और वही संस्कार (है), सचमूचमें तो वही करनेका है।

मुमुक्षु :- उनकी शरण है और आपकी शरण है।

समाधान :- ये सब वाणी मिली, वह महाभाग्यकी बात है। ऐसी वाणी मिलनी और ऐसा मार्ग बतानेवाले गुरु मिलना मुश्किल है। गुरुदेवने कहा, एक चैतन्य आत्माका आलम्बन करना। बाकी सब तो विभाव है, विकल्प है। उसका आलम्बन (छोड़ना)। उसमें ज्ञान, आनन्द सब भरा है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

समाधान :- ... फिर उसमें लीनता हो, उसमें स्थिर हो जाय तो विकल्प टूटकर स्वानुभूति होती है। लेकिन उसका भेदज्ञान करना चाहिये। अनादि कालसे एकत्वबुद्धिका अभ्यास है। यह शरीर मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसी एकत्वबुद्धि है। विभाव मैं हूँ, विभाव मेरा स्वभाव है, ऐसी एकत्वबुद्धि हो रही है। सब विकल्प देखनेमें आते हैं, चैतन्य देखनेमें नहीं आता है। चैतन्यको देखना चाहिये। चैतन्यकी प्रतीति और चैतन्य अपना स्वभाव, उसको ख्यालमें लेना चाहिये।

उसका-चैतन्य तत्त्वका कैसे दर्शन होवे? ऐसी प्रतीति कर, ऐसा भरोसा कर, उसमें स्थिर हो जाना तो चैतन्यतत्त्वकी स्वानुभूति और उसका दर्शन होता है। ऐसा प्रयोग है। उसकी प्रतीति करना, ज्ञान करना, भेदज्ञान करना। भेदज्ञानका बारंबार अभ्यास करना। मैं चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ ऐसा भीतरमें-से तत्त्वमें-से पीछान करके उसका अभ्यास करना चाहिये। तो स्वानुभूति होती है।

मुमुक्षु :- विचार, विकल्पमें तो मैं चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ, जैसा आपने फरमाया, ध्यानके कालमें बैठनेके लिये करते हैं। चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ सूक्ष्म अन्दरमें वहीका वही रटन चलते रहता है। परन्तु जो अनुभूति आपने की है, ऐसा (कुछ होता नहीं)।

समाधान :- यथार्थ स्वभावमें-से होना चाहिये। विकल्प तो बीचमें आता है, परन्तु विकल्प तो स्थूल है। भीतरमें जो चैतन्यका स्वभाव है वह मैं हूँ। चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण करना चाहिये। मैं चैतन्यतत्त्व, उसका अस्तित्व ग्रहण करके उसमें स्थिर होना चाहिये। विकल्पमात्र विकल्प-विकल्प तो बीचमें आता है, परन्तु वास्तवमें उसका अस्तित्व ग्रहण करके उसमें स्थिर होना चाहिये।

वह नहीं होवे तबतक उसका बारंबार-बारंबार अभ्यास करना चाहिये। उसके लिये तत्त्वका विचार, शास्त्र स्वाध्याय आदि सब चैतन्यतत्त्वको पीछाननेके लिये करना चाहिये। भेदज्ञानका अभ्यास। चैतन्यकी स्वानुभूति कैसे हो, उसके लिये करना चाहिये।

मुमुक्षु :- दूसरा एक उसमें आता है, ज्ञान परको जानता है, ज्ञान स्वको जानता है और ज्ञान स्व-परको जानता है। तो तीन प्रकारका ऐसा ज्ञानका परिणमनके कालमें (होता है)। तो स्वानुभवके अन्दर जो छद्मस्थ अवस्था है, तो स्वपरप्रकाशकपना तो स्वानुभवमें नहीं बन पायगा, वह कैसे होगा?

समाधान :- पर-ओर उपयोग नहीं है। इसलिये परज्ञेयको नहीं जानता है। परन्तु अपने स्वमें उपयोग है, स्व पदार्थको जानता है। अपने अनन्त गुण और अपनी पर्यायको जानता है। इसलिये स्वपरप्रकाशक अपनेमें होता है। ज्ञेय तो बाह्य उपयोग नहीं है इसलिये नहीं जानता है। अपनेमें जो अनन्त गुण और अपनी पर्यायको जानता है। पदार्थ और अपने गुण-पर्याय, ऐसा स्वपरप्रकाशक अनुभवके कालमें ऐसा स्वपरप्रकाशक होता है।

मुमुक्षु :- उस कालमें स्व ही आया।

समाधान :- स्व आया। परन्तु गुणको और पर्यायको जानता है, इसलिये उसको स्वपरप्रकाशक कहनेमें आया। इस अपेक्षासे कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- लोकालोकका और स्वका ज्ञानचेतना अनन्त गुणमयका तो केवलज्ञानादि प्रत्यक्ष..

समाधान :- वह तो केवलज्ञानमें होता है। छद्मस्थका उपयोग बाहरमें जाय तो भीतर अंतरमें आता है। तो बाहरका उपयोग नहीं है। इसलिये परको नहीं जानता है, स्वको जानता है। परन्तु अपने गुण-पर्यायको जानता है। केवलज्ञान तो वीतराग हो गया इसलिये अपने अनन्त गुण-पर्याय और परके अनन्त गुण-पर्याय, सबको जानता है। उसको उपयोग देना नहीं पड़ता, वह तो सहज जानता है। सहज परिणति हो गयी, अपनेमें लीन हो गया। ज्ञानका जैसा स्वभाव है, वैसा जाननेका स्वभाव प्रगट हो गया। तो क्रम-क्रमसे उपयोग देना पड़ता है (ऐसा नहीं रहा), क्रम-क्रमसे उपयोग केवलज्ञानीको देना नहीं पड़ता। इसलिये सहज अपने स्वरूपमें रहकर सब सहज जानता है। उपयोग देना नहीं पड़ता। उपयोग नहीं देते हैं, तो भी जानते हैं। ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया। क्रम-क्रम उपयोग नहीं देना पड़ता।

छद्मस्थको क्रम-क्रमसे उपयोग देता है, इसलिये ऐसा क्रम पड़ता है। बाह्यको जाने, बाहर लक्ष्य नहीं होवे तब भीतरको जानता है। छद्मस्थको उपयोग क्रम-क्रमसे होता है न। एक क्रम पड़ता है तो बाहरको जानता है। अंतरमें जाने तो बाहर उपयोगमें क्रम पड़ता है। केवलज्ञानीको क्रम नहीं पड़ता है। लेकिन उसका स्वभाव जो स्वपरप्रकाशक है उसका नाश नहीं होता। वह तो केवलज्ञानमें प्रत्यक्ष हो गया। परन्तु छद्मस्थ अवस्थामें स्वपरप्रकाशकका नाश नहीं होता है। बदलता है। बाहरमें जाय तो बाहरको जाना, अंतरमें जाय तो अंतरको जाना।

मुमुक्षु :- क्रमिकरूपसे कार्य करता है।

समाधान :- हाँ, क्रमरूप कार्य करता है, क्रमरूप कार्य करता है। एकसाथ कार्य करता है तो स्व-पर दोनोंका जानता है। इसमें क्रम पड़ता है, इसलिये नहीं जानता है। परन्तु भीतरमें अपने अनन्त गुण और अनन्त पर्याय जो स्वानुभूतिमें होते हैं गुण-पर्याय, उसको तो जानता है। उसका वेदन होता है। वह तो जानता है, स्वानुभूतिमें।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२६

मुमुक्षु :- आप कहते हो, अन्दरसे चैतन्यका भरोसा आना चाहिये। वह कैसे आवे?

समाधान :- अंतरमें-से अपनी तैयारी हो, निज स्वभावकी महिमा आये कि यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ, ऐसी महिमा आये तो विश्वास आवे।

मुमुक्षु :- मोक्षमार्ग प्रकाशकमें टोडरमलजी साहबने पीछे स्वानुभवके विषयमें दिया है कि जब ज्ञानी स्वरूप ध्यानमें जाता है, तब बाहरमें शब्दादिका विकार आदि जाननेमें नहीं आता है। तो मान लो, बन्दुक की आवाज हो रही है या बाहरमें कोई मनुष्य बोल रहा हो, यदि स्वरूप ध्यान लग गया हो तो उसको उस समयमें आवाजका सम्बन्ध टूट जाता होगा। अगर ख्यालमें आता है तो शुद्धउपयोग नहीं बन पाया।

समाधान :- बाहर कुछ होवे तो, शुद्धउपयोगमें लीन हो तो उसको कुछ मालूम नहीं पड़ता। बाहर उपयोग नहीं है इसलिये मालूम नहीं पड़ता। ऐसा लीन हो जाता है, स्वभावमें ऐसा लीन हो जाता है कि बाहरमें कुछ भी होवे उसको ख्याल नहीं रहता। और स्वानुभूतिमें इतना लीन हो जाता है कि बाहर कुछ भी होवे, तो ख्याल नहीं रहता। मालूम नहीं पड़ता है। स्वभावमें लीन हो जाता है।

छद्मस्थका उपयोग जहाँ जाता है, स्वमें जाता है तो स्वमें लीन हो गया है। स्वभाव चैतन्यमूर्ति ज्ञान, आनन्दसे भरा है उसका वेदन होता है। बाहरका ख्याल नहीं रहता है। कोई आवाज होती है, ऐसा होता है तो भी ख्याल नहीं रहता।

मुमुक्षु :- काल थोड़ा होता है, उससे पलट जाता है तो फिर ख्यालमें आ जाता होगा?

समाधान :- हाँ, फिर ख्यालमें आता है। अंतर्मुहूर्तका काल है। फिर पलट जाय तो ख्यालमें आता है।

मुमुक्षु :- मुनिको संयम, नियम और तप सबमें आत्मा समीप ही रहता है।

समाधान :- 'संयम, नियम ने तप विषे आत्मा समीप छे'। आत्मा समीप रहता है।

मुमुक्षु :- यहाँ संयमका अर्थ क्या अंतर्मुख स्वसन्मुखताका वेदन या बाहरका कैसे बैठता है?

समाधान :- अंतरका संयम है। 'संयम नियम तप विषे आत्मा समीप'। आत्माकी जो मुख्यता, आत्माकी ऊर्ध्वता, आत्माकी समीपता, आत्मा द्रव्यदृष्टि तो साथमें रहती है। द्रव्यदृष्टिके साथमें आचरण, उसका संयम, तप सब साथमें रहता है। शुद्धरूप संयम, शुद्धात्माका संयम, नियम सब साथमें रहता है। शुभ परिणाम होवे तो भी उसको द्रव्यदृष्टि रहती है। संयम, वास्तविक संयम तो स्वरूपमें लीनता हो, वह संयम है। स्वरूपमें उग्रता हो वह तप है, वास्तविक तप। संयम, नियममें आत्माकी समीपता जिसमें रहती है। आत्माका आचरण जिसमें रहता है, आत्माका तप जिसमें रहता है उसको संयम, नियम, तप सब कहनेमें आता है। आत्मा जिसमें मुख्य रहता है।

मुमुक्षु :- बाहरका जो शुभभाव आदि होता है, उसको इसके अन्दर शामिल नहीं किया।

समाधान :- वह शामिल नहीं है। वह साथमें रहता है। पारिणामिकभाव द्रव्यदृष्टिज्ञके साथमें संयम, नियम, तप, स्वरूपमें लीनता सब उसके साथ (होता है)। सम्यग्दर्शनपूर्वक जो संयम, नियम, तप होवे उसको संयम, नियम, तप (कहते हैं)। सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है उसको कहनेमें आता है। आत्मामें-से संयम प्रगट होता है। आत्मामें-से नियम, आत्मामें-से तप ये सब होता है। उसके साथ शुभ परिणाम उसकी भूमिका अनुसार शुभ परिणाम रहता है। पंच महाव्रत, अणुव्रत उसके साथ रहते हैं। तो उपचारसे संयम, नियम कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- उन पर उपचारसे कथन आता है।

समाधान :- उपचारसे कथन है।

मुमुक्षु :- एक जगह और आपने लिखा है उसमें, मुझे परकी चिन्ता नहीं, मुझे परकी चिन्ताका क्या प्रयोजन है? मेरा आत्मा सदैव अकेला ही है। ऐसा ज्ञानी जानते हैं। भूमिका अनुसार शुभभाव आते हैं। यहाँ भूमिका अनुसार शुभभाव आते हैं, तो ज्ञानीको तो शुभ-अशुभ दोनों बनते हैं। यहाँ सिर्फ शब्दमें शुभभाव आते हैं तो यहाँ पर तो मुनिका ही लगना पड़े।

समाधान :- भूमिकाके अनुसार शुभभाव आता है। वह ... तो उसकी भूमिकाके अनुसार, इसलिये शुभभावकी बात की है। इसलिये वह मुनिका अर्थ नहीं है। मुझे क्या प्रयोजन है?

मुमुक्षु :- भूमिका अनुसार शुभाशुभ दोनों आते हैं।

समाधान :- हाँ, वह तो दोनों आते हैं। एक शुभभाव आता है ऐसा नहीं है, दोनों आते हैं। परन्तु शुभभावकी बात की है। आते तो दोनों हैं। वह बात आती है न? मुझे क्या प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- ८७ बोलमें।

समाधान :- शुभसे बात की है। मुझे उसके साथ क्या प्रयोजन है? मुझे आत्माके साथ प्रयोजन है, बाहरके साथ प्रयोजन नहीं है। शुभ भूमिकाके अनुसार होते हैं। उसकी विशेषता नहीं है। वह तो भूमिका अनुसार होते हैं। जीव अटक जाता है तो शुभमें अटक जाता है। मुझे किसीका प्रयोजन नहीं है। मुझे आत्माका प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- आपके जातिस्मरण ज्ञानमें हम पामरोंका भी उद्धार आया होगा।

समाधान :- जो स्वरूप समझे उसका उद्धार होता है। जो आत्माका स्वरूप समझे, भेदज्ञान करे, उसका उद्धार-उसका भवका अभाव होता है। आत्माका स्वरूप समझे, उसमें लीनता करे तो उसको आनन्दका वेदन होता है, स्वानुभूति होती है। आंशिक मुक्ति तो जब स्वानुभूति होती है तब आंशिक मुक्ति होती है। विशेष मुक्ति तो आगे बढ़े तो मुनिओंको छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं तो उन्हें विशेष आनन्दका (वेदन होता है), विशेष मुक्त दशा होती है। पूर्ण मुक्ति तो केवलज्ञान होता है तब होती है। बादमें सिद्ध दशा होती है। जो आत्माका करता है, उसको भवका अभाव होता है।

मुमुक्षु :- त्रिकाल स्वभावको उपादेयपने ग्रहण करता है या त्रिकालको मात्र जानता है? अनुभवके कालमें ज्ञान स्वसन्मुख हुआ। स्वसन्मुख ज्ञायक स्वभावको पकड़ता है तो ज्ञायक स्वभावको उपादेयपने ग्रहण करता है या मात्र त्रिकाली ज्ञायकको ज्ञान जानता है?

समाधान :- उपादेयपने जानता है, उपादेयपने। दृष्टि और ज्ञान दोनों उपादेयपने (ग्रहण करते हैं)। ज्ञान दोनों जानता है। ज्ञान अपने त्रिकाल स्वभावको और जो गुणभेद, पर्याय है उसको भी जानता है। और ज्ञान अपनेको उपादेयपने जानता है।

मुमुक्षु :- ... जानना हुआ?

समाधान :- हाँ। ज्ञान जानता है।

मुमुक्षु :- रागका ज्ञान तो दूसरे नंबरमें पड़ता है। क्योंकि शुद्धोपयोगमें तो ज्ञान त्रिकालीकी ओर चला जाता है। तो उपादेयपने स्वको ग्रहण, ज्ञानमें ज्ञेय करके जाननेमें स्वसन्मुखता ले लेता है। तो फिर रागको भी जानता है, ऐसा शास्त्रमें लिखाननमें आता है। तो फिर दूसरे समयके उपयोगके परसन्मुखताके कालका वर्णऩ है?

समाधान :- सविकल्प दशामें जानता है। निर्विकल्पतामें तो राग है नहीं। उपयोगात्मक तो नहीं है। ख्यालमें नहीं आता है राग, तो अबुद्धिपूर्वक हो जाता है। अबुद्धिपूर्वक हो जाता है।

मुमुक्षु :- अबुद्धिपूर्वक वह हो जाता है, मतलब ज्ञानीका उपयोग स्वको ज्ञेय करनेमें एकाग्र हो जाता है? जनानेमें आता नहीं इसलिये अबुद्धिपूर्वक हो जाता है। बुद्धिपूर्वकका तो होता नहीं।

समाधान :- उपयोग अपना चला जाय, इसलिये राग भी अबुद्धिपूर्वक हो जाता है। उपयोग गया तो राग भी मन्द हो गया है। बाहर उपयोग आवे तो राग भी आता है।

मुमुक्षु :- तीव्रता ले लेता होगा?

समाधान :- हाँ।

मुमुक्षु :- मतिज्ञान, श्रुतज्ञानके अन्दर पुरुषार्थ है? रुचिमें स्वभावका ज़ोर रहता है, बोलनेमें बहुत बार आता है। लेकिन उपयोग हटे तो न।

समाधान :- बोलना, विचारमें आना और करना...

मुमुक्षु :- अलग बात हो गयी।

समाधान :- जानना दूसरी बात है और करना दूसरी बात है।

मुमुक्षु :- ग्यारह अंगमें नौ पूर्वका ज्ञान जाननेमें खुला, लेकिन अनुभूति बिना .. रह गये, कोरेके कोरे।

समाधान :- जाननेकी बात दूसरी होती है, करनेकी बात (दूसरी है)।

मुमुक्षु :- जीव हमारा ठगा ना ऐसे, ज्ञानका क्षयोपशम बहुत देखा, बहुत धर्मात्मा होंगे, ऐसा होंगे, ऐसा भव-भवमें, या क्रियाकाण्डमें देखकर ठगा गया। लेकिन अंतरकी दृष्टि और अनुभवके कार्यकी कला तो बिलकूल रह गयी।

समाधान :- रुचि यथार्थ होवे तो अपनी ओर आये बिना रहता नहीं। रुचि होवे तो।

मुमुक्षु :- आजकल एक ऐसा वातावरण-माहोल चलता है, बहुत-से ऐसा कहते हैं, जब मेरेको आपके प्रताप-से कहीं बाहर जानेका बन जाता है, तब प्रवचन आदिके योगमें बड़ा दुःख लगता है। तो ऐसा एक प्रश्न खड़ा है कि हम तो कानजीस्वामी गुरुदेवके पास गये हुए हैं। ऐसा कहते हैं। कानजीस्वामीका दर्शन किया है, प्रवचन सुना है, ऐसा। और कानजीस्वामी गुरुदेवकी जय भी सब लोग बोलते हैं। ऐसा एक वातावरण-सा माहोल आता है। तो उस समय मैं कहता हूँ, वचनामृत आदि चलता है, और भी बातें चलती है। तो मैंने कहा, अगर गुरुदेवश्रीके पास आ पहुँचे हैं तो गुरुदेवश्रीको आपने देखा है तो क्या देखा? क्या गुरुदेवको शरीर देखा? क्या उनकी ..देखी? क्या उनके वस्त्र देखे? क्या उनकी वाणी देखी? शैली देखी? ज्ञानका क्षयोपशम देखा? कानजीस्वामी किसे कहते हैं? ये पहले मेरेको आप बता दो। उसके बादमें आपसे बात करुँ। मेरा अभिप्राय तो.. मैं बालक हूँ, आपका बच्चा हूँ, लेकिन फिर भी ज्ञानीका क्या देखना कि जो देखा हुआ सच्चा देखा कहनेमें आवे? जिसका दर्शन करने-से वास्तवमें कानजीस्वामी मिले हैं, मेरी सन्धि जुड़ जाय। ऐसा मेरा निवेदन है।

समाधान :- अंतर-से देखना चाहिये। उनका आत्मा क्या कार्य करता था? वह

देखना चाहिये। उनकी वाणीमें क्या आता था? वह अपूर्वता कैसे आती थी? उनका आत्मा क्या कार्य करता है? भेदज्ञानकी धारा कैसी थी? वे अपूर्व आत्माकी कैसी बात करते थे? वह देखना चाहिये। बाहरसे देखने-से देखना (नहीं हुआ)। उनका अंतर देखना चाहिये। उनकी अंतरकी शैली-अंतरकी परिणति-जो काम करती थी उसको देखना चाहिये। अंतर परिणति जो काम करती थी वह उनकी वाणीमें आता था। वाणीके पीछे वे क्या कहते थे, उसका आशय समझना चाहिये। वह देखना चाहिये।

मुमुक्षु :- निकटमें एक क्षेत्रमें रहते हुए भी, ऐसे परम कृपालु महान गुरुदेव, चैतन्य हीरा हिन्दुस्तानका था। जिनका अंतरंगका अभिप्राय... दर्शन और मिलन हुआ है। बाकी तो..

समाधान :- उनका अभिप्राय नहीं समझा तो कहाँ मिले हैं। हिन्दुस्तानमें वे महान प्रतापी थे। सबको जगा दिया। सबकी रुचि पलट गयी, उनकी वाणीके निमित्तसे। वे क्या कहते थे, वह समझना चाहिये। हज़ारों, लाखों जीवोंकी रुचि पलट गयी। सब क्रियामें धर्म मानते थे। (उसके बजाय) अंतरमें करना है, यह सबको बता दिया। परन्तु विशेषरूपसे वे क्या कहते थे, यह समझना चाहिये। उनकी परिणति कैसी थी और मार्ग क्या बताते थे? वह समझना चाहिये।

समाधान :- .. स्वयंको यथार्थ विश्वास करना चाहिये। विश्वास करना चाहिये कि यही मैं हूँ, अन्य मैं नहीं हूँ। ऐसे विश्वास आवे तो हो। अन्दर शंकाशील हो तो कुछ होता नहीं। यही मैं हूँ, ऐसा विश्वास होना चाहिये। यह मैं चैतन्य तो चैतन्य ही हूँ, यह मैं नहीं हूँ। यह ज्ञान या यह ज्ञेय या यह ज्ञान या सामान्य, विशेष ऐसे शंकाशील होता रहे तो कुछ नक्की नहीं होता। स्वयंको अन्दर यथार्थ होना चाहिये कि यह ज्ञायक स्वभाव है वही मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। परन्तु विकल्पात्मक नहीं, अंतरमें स्वभाव ग्रहण करे तो हो। स्वभावको ग्रहण किये बिना नहीं होता है।

मुमुक्षु :- ... ज्ञायक। और ज्ञायक माने अनन्त गुणका अभेद पिण्ड।

समाधान :- उसे अनन्त गुण-अनन्त गुण ऐसे विकल्प नहीं आते हैं। उसे श्रद्धामें ऐसा आ जाता है कि मैं अनन्त शक्तिसे भरा द्रव्य हूँ। एक-एक गुण पर भिन्न-भिन्न दृष्टि नहीं करता कि यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह चारित्र है। विचार करे वह अलग बात है, परन्तु उसे दृष्टिमें तो अखण्ड ज्ञायक, ज्ञायकका पूरा अस्तित्व आ जाता है। पूरा अस्तित्व अंतरमें-से ग्रहण होना चाहिये। और वह कब ग्रहण हो? कि अंतरमें जब लगनी लगे कि मैं मेरा स्वभाव कैसे ग्रहण करुँ? ऐसी अंतर-से लगे तब उसे स्वभाव ग्रहण होता है। बाकी विचारसे ग्रहण करे वह एक अलग बात है। अंतरमें-से ग्रहण करे तब यथार्थ होता है।

बाहर अनन्त कालसे रुका, बाह्य क्रियामें रुका, शुभभावसे धर्म होता है ऐसा माना। परन्तु उस शुभभावसे पुण्य बन्ध हुआ, देवलोकमें गया, परन्तु स्वभाव ग्रहण नहीं किया। गुरुदेवने स्वभाव ग्रहण करनेका मार्ग बताया। कि तू चैतन्य है उसे ग्रहण कर। बाकी सब विभाव है, तेरा स्वभाव नहीं है। चैतन्यको अंतरमें-से ग्रहण कर तो ही यथार्थ मुक्तिका मार्ग है। और उसमें स्वभावको ग्रहण करने-से ही यथार्थ मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। धर्म उसमें है, मुक्तिका मार्ग उसमें है। पहले आंशिक होता है, फिर उसकी साधक दशा बढ़ते-बढ़ते विशेष होता है।

मुमुक्षु :- छठवीं गाथा है उसमें प्रथम पैरेग्राफमें भी ज्ञायक आता है और दूसरे पैराग्राफमें भी ज्ञायक आता है। तो प्रथममें प्रमत्त-अप्रमत्तसे रहित कहा और दूसरेमें परको जानने पर ज्ञायकपना प्रसिद्ध है, ऐसे बात ली। तो उसमें...?

समाधान :- सबमें ज्ञायक ही है। प्रमत्त-अप्रमत्तमें भी तू ज्ञायक रहा है। और परको जाननेमें भी तू ज्ञायक रहा है। पररूप नहीं हुआ है। तू ज्ञायक है। प्रत्येक अवस्थामें तू ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ज्ञायक पर दृष्टि कर। तू ज्ञायक ही है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञायक माने त्रिकाली ध्रुव द्रव्य या...?

समाधान :- त्रिकाल अनादिअनन्त ज्ञायक है वह। उसे ग्रहण कर। पर ऊपर-से दृष्टि उठाकर तू ज्ञायकको ग्रहण कर। कोई भी साधक दशाकी पर्यायमें भी तू ज्ञायक ही है। विभावकी पर्यायमें, साधककी पर्यायमें, ज्ञेय ज्ञात हो उस दशामें भी तू ज्ञायक है।

ज्ञायक कब ज्ञात हो? उसे साधककी पर्याय प्रगट हो तब ज्ञायक ज्ञात होता है। ज्ञायक तो अनादिका है, परन्तु वह ज्ञायक ज्ञायकरूप-से वेदनमें कब आवे? कि उसकी साधक दशाकी पर्याय प्रगट हो तो। स्व सन्मुख उसकी दृष्टि जाय, स्व सन्मुख अपनेको देखे तो ज्ञायक ज्ञायकरूप है। स्व प्रकाशनकी दशामें भी ज्ञायक, बाहर जाये तो भी ज्ञायक। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।

मुमुक्षु :- एक बार जिसको स्व प्रकाशन हो गया, उसे फिर पर प्रकाशनमें भी ज्ञायक प्रसिद्ध है, ऐसे लेना?

समाधान :- सर्व प्रकारसे। वहाँ तो साधक दशाकी बात है। सर्व प्रकाररसे तू ज्ञायक ही है। स्व प्रकाशनमें ज्ञायक और बाहर जाय तो ज्ञायक। ज्ञायकताको छोड़ता नहीं। साधक दशामें बाहर जाय तो भी ज्ञायक है और अंतरमें ज्ञायक है। ज्ञायक तो ज्ञायक है।

अनादिअनन्त... तो भी ज्ञायक ही है। बाहर जाये तो एकत्वबुद्धि हुयी, परन्तु वह ज्ञायक ज्ञायकता छोड़ता नहीं। उसके वेदनमें ऐसा आता है कि मैं पररूप हो गया। परन्तु ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ज्ञायक अपना स्वभाव छोड़ता नहीं।

मुमुक्षु :- उस ज्ञायकको दृष्टिमें लेना?

समाधान :- उस ज्ञायकको दृष्टिमें लेना।

मुमुक्षु :- माताजी! अरूपीको विषय बनानेके लिये किस माध्यम-से.. आत्मा है, रूपी तो है नहीं, अरूपीको किस तरह विषय बनाया जाय?

समाधान :- अरूपी है, लेकिन वस्तु तो है न। अरूपी अर्थात् ज्ञानस्वभावी है। अरूपी अर्थात् उसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। ज्ञानस्वभाव उसका स्वरूप है। ज्ञानस्वभावी तो है। वह तो असाधारण गुण है। तो ज्ञानस्वभाव तो ख्यालमें आता है। वह लक्षण तो ख्यालमें आता है। इसलिये ज्ञानस्वभावसे पीछान लेना कि जो ज्ञान लक्षण है वह ज्ञायक है। ज्ञानलक्षणसे अखण्ड द्रव्यको ग्रहण कर लेना। अरूपी है तो भी ग्रहण होता है।

वस्तु है, अरूपी कहीं अवस्तु तो नहीं है। वस्तु है। विभाव देखनेमें नहीं आता है, भीतरमें जो विकल्प आते हैं वह देखनमें कहाँ आते हैं? वह तो वेदनमें आते हैं। कोई विकल्प आवे, अनेक प्रकारके विकल्प आँख-से देखनेमें नहीं आते। विकल्प देखनेमें नहीं आते हैं। वेदनमें आते हैं। तो उसी प्रकार ज्ञान भी देखनेमें नहीं आता। ज्ञान वेदनमें आता है कि ज्ञानस्वभावी मैं हूँ। जाननेवाला, जो जानता है वह मैं हूँ। यथार्थ वेदन नहीं, परन्तु ज्ञानका स्वभाव ख्यालमें आ सकता है कि यह ज्ञानस्वभाव है। विकल्पको जाननेवाला मैं हूँ, उसको ख्यालमें लेने-से, विकल्पको जानता है उतना मात्र उसका स्वभाव नहीं है। मैं अनन्त ज्ञायक स्वभाव, अनन्त जाननेवाला स्वभाव है वह मैं हूँ। अखण्डको ग्रहण करना।

अरूपी है तो भी ख्यालमें आता है। विकल्प ख्यालमें आता है तो ज्ञानस्वभाव क्यों ख्यालमें नहीं आवे? जाननेवाला भी ख्यालमें आता है। विकल्पको जो जानता है, विकल्प सब चले जाते हैं और जाननेवाला तो रहता ही है। जो विकल्प चला गया, उसका ज्ञान तो रहता है। ऐसा-ऐसा, ऐसा-ऐसा विकल्प आया, उसका जाननेवाला रहता है। वह जाननेवाला है वह मैं हूँ। अखण्ड जाननेवाला-जाननेवाला ज्ञायकका अस्तित्व है वह मैं हूँ।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२७

मुमुक्षु :- आप जो अस्तित्वका ग्रहण कहते हो कि निज अस्तित्वका ग्रहण करना। और त्रिकाल ज्ञायककी दृष्टि करनी, दोनों एक ही बात है?

समाधान :- दोनों एक ही बात है। एक ज्ञायकमें त्रिकाल आ गया। वर्तमान जिसका अस्तित्व ज्ञायकरूप है, वह उसका त्रिकाल अस्तित्व है। वर्तमान जो सत्‌रूप अखण्ड ज्ञायक है वह तो त्रिकाल अखण्ड ज्ञायक ही है।

मुमुक्षु :- .. उसका कोई सरल उपाय?

समाधान :- वह दृष्टि तो स्वयं अंतरमें-से जागृत हो तो हो। दृष्टि मात्र विकल्प वह तो भावना करे, लगन लगाये। अंतर-से जिसको लगी हो उसकी दृष्टि अंतरमें जाती है। जिसे अंतरमें लगन लगे, बाह्य दृष्टि और बाह्य तन्मयतासे जो थक गया है, जिसे अंतरमें कहीं चैन नहीं पड़ता। बाह्य दृष्टि और बाह्य उपयोग, बाहरकी आकुलतासे जिसको थकान लगी है और अंतरमें कुछ है, अंतरके अस्तित्वकी जिसे महिमा लगी है। अंतरमें ही सब है, ऐसी जिसको अंतरसे महिमा लगे तो उसकी दृष्टि बदल जाती है। तो वह स्वयं चैतन्यको ग्रहण कर लेता है। जिसे लगे वह ग्रहण किये बिना नहीं रहता। नहीं तो वह ऊपर-ऊपर से विचार करता रहे। बाकी दृष्टि पलटनेके लिये अंतरमें-से लगन लगे तो दृष्टि पलटती है।

मुमुक्षु :- ... तो ज्ञात होगा, ऐसा कह सकते हैं?

समाधान :- परको जानना बन्द करना ऐसा नहीं। एक क्षण विभावमें-से तन्यता छोड़कर उसका भेदज्ञान करे तो स्व ज्ञात होगा। जानने ओर नहीं। पर-ओर जो उपयोग (तन्मय हो रहा है, उसे छोड़कर), राग और विकल्पकी एकत्वबुद्धि तोड़कर स्वमें जा तो स्वका वेदन होगा।

जाननेका तो उपयोग पलटता है। अन्दर जो जाननेका स्वभाव है, उसका नाश नहीं होता। जाननेका स्वभाव है उसका नाश नहीं होता। रागके साथ एकत्वबुद्धि है, उसे क्षणभरके लिये तोड़ दे। क्षणबर यानी अन्दरमें-से ऐसी प्रज्ञाछैनी द्वारा उसका ऐसा भेदज्ञान कर तो स्वकी स्वानुभूति होगी। एक क्षणभरके लिये। स्वभाव और विभावमें ऐसी तीक्ष्ण प्रज्ञाछैनी द्वारा स्वयं स्वसन्मुख हो जाय, तो स्वका वेदन होगा। उसका

राग तोड़नेका है, उसकी एकत्वबुद्धि तोड़नी है। जानना तो, अनेक जातके विकल्प आ गये तो भी अन्दर जो प्रत्यभिज्ञान जाननेका स्वभाव है उसका नाश नहीं होता। वह नाश नहीं होता। राग छूट जाता है।

मुमुक्षु :- जो परिभ्रमण हो रहा है वह एकत्वबुद्धिके कारण है।

समाधान :- एकत्वबुद्धिके कारण है, जाननेके कारण नहीं। एकत्वबुद्धिके कारण परिभ्रमण खड़ा है। केवलज्ञानी लोकालोक जानते हैं। जानना रागका कारण नहीं होता। वीतराग दशा, भेदज्ञान करे, एकत्वबुद्धि तोड़ दे। वह तो उपयोग वहाँ जाता है, रागके साथ एकत्व (है), इसलिये तू अन्यको जाननेके बजाय स्वको जान, ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु जाननेका स्वभाव तोड़ दे, ऐसा नहीं कहना है। उसमें रागमिश्रित उपयोग है, उस उपयोगको बदल दे। ऐसा। ज्ञेय-ओरकी एकत्वबुद्धिको तोड़ दे। तेरी जाननेकी दिशा स्वसन्मुख कर दे। ऐसा कहना है। इसलिये राग टूट जाता है। तेरे उपयोगकी दिशा बदल दे, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- जहाँ स्वको अपनेरूप जाना तो उसका समस्त ज्ञान सम्यक्ज्ञान नाम प्राप्त करता है।

समाधान :- हाँ, सम्यक्ज्ञान नाम प्राप्त करता है।

मुमुक्षु :- और उसके पहले जबतक परमें एकत्वबुद्धि है, तबतक मिथ्याज्ञान नाम प्राप्त होता है।

समाधान :- मिथ्याज्ञान नाम प्राप्त होता है। दिशा पूरी पलट गयी न। पूरी दिशा, पर सन्मुख दिशा (थी, वह) स्व सन्मुख जाननेकी दिशा हो गयी, उसका समस्त ज्ञान सम्यक् रूप हो गया। उसके समस्त अभिप्राय पलट गये। (पहले) जानता था उसमें अभिप्रायमें भूल होती थी। जहाँ सम्यक् भेदज्ञान हुआ तो ज्ञानकी दिशा पलट गयी। उसका पूरा ज्ञान सम्यक् रूप परिणमित हो गया। भेदज्ञान रूप ज्ञान परिणमित हुआ इसलिये उसकी जाननेमें कहीं भूल नहीं होती। उसके पहले एकत्वबुद्धि थी, दिशा अलग थी इसलिये जाननेमें भूल होती थी।

समाधान :- .. द्रव्यके षट्कारक और एक द्रव्य और दूसरे द्रव्यके षट्कारक वह षट्कारक एवं पर्यायके षट्कारक, वह षट्कारक एकसमान नहीं होते। वह षट्कारकमें फ़र्क़ होता है। पर्याय तो क्षणिक है, द्रव्य तो त्रिकाल है। पर्याय स्वतंत्र होने पर भी पर्यायके षट्कारक और द्रव्यके षट्कारकमें अंतर है। पर्यायको द्रव्यका आश्रय तो रहता है। स्वतंत्र होने पर भी उस पर्यायको द्रव्यका आश्रय होता है। जितना द्रव्य स्वतंत्र, उतनी ही पर्याय स्वतंत्र कहनेमें आये तो वह पर्याय नहीं रहती, वह द्रव्य हो जाय। इसलिये पर्यायको द्रव्यका आश्रय है। इसलिये उसके षट्कारक और द्रव्यके षट्कारकमें

फ़र्क़ है। उसे स्वतंत्र कहनेके बावजूद उसके षट्कारक, जैसे द्रव्यके हैं, वैसे पर्यायके, ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु :- क्षणिक षट्कारक है। परिणामके जो षट्कारक है, वह क्षणिक है।

समाधान :- वह क्षणिक है। पर्यायको द्रव्यका आश्रय है। वह क्षणभरके लिये है। प्रमाणमें तो द्रव्य और पर्याय, दोनों एकसाथ आ जाते हैं।

मुमुक्षु :- पर्याय स्वयं स्वतंत्रपने द्रव्यका आश्रय लेती हुयी प्रगट होती है। आप जो कहते हो कि उसे द्रव्यका आश्रय है। पर्याय प्रगट होती है स्वतंत्र, परन्तु वह द्रव्यका आश्रय लेती हुयी, अपने षट्कारकसे परिणमती है। आपने जो कहा बराबर है। ऐसे ही है।

समाधान :- द्रव्यके आश्रयसे प्रगट होती है, स्वतंत्र। कारण द्रव्य त्रिकाल है और पर्याय क्षणिक है।

मुमुक्षु :- और परका आश्रय लेती हुयी प्रगट होती है, तबतक दशामें आस्रव, बन्ध है और जब ज्ञायकका आश्रय लेती हुयी प्रगट होती है, तब संवर, निर्जरा, मोक्ष प्रगट होते हैं।

समाधान :- संवर, निर्जरा, मोक्ष (प्रगट होते हैं)। परके आश्रय-से तो आस्रव होता है। निज शुद्धात्माके आश्रयसे शुद्ध पर्याय प्रगट हो तो संवर, निर्जरा है।

समाधान :- ... भीतरमें-से उसको-ज्ञायकदेवको ग्रहण करना। अनन्त गुणकी मूर्ति दिव्यमूर्ति चैतन्यदेव। उसको पीछानता है वह, जिनेन्द्र देव, गुरु सबको पीछानता है। जो भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको पीछानता है, वह अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको (पीछानता है)।

मुमुक्षु :- भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायकी पहचानमें तो अपने द्रव्य-गुण-पर्यायकी पहचान होवे तो वापस वही ... लग जायगी, स्वानुभकी। अनन्त बार भगवानके दर्शन करने गये, समवसरणमें गये, साक्षात् सर्वज्ञदेवका भी किया, लेकिन अंतर दृष्टि और अनुभव बिना दर्शन नहीं हुआ।

समाधान :- अंतरमें भगवानका द्रव्य क्या है? क्या करता है? स्वानुभूति भगवानने वीतराग दशा प्रगट की, उसे पीछाना नहीं और बाहरसे दर्शन किया, इसलिये... जो यथार्थ पीछान करे तो अपने द्रव्य-गुण-पर्यायकी पीछान लेता है।

मुमुक्षु :- भगवानका तो परद्रव्य, गुण, पर्याय उनकी पहचान करनेमें तो उपयोगकी तो परसन्मुखता रहती है। फिर अपनी पहचानके लिये तो वापस स्वसन्मुखताका ज़ोर हो।

समाधान :- दृष्टि तो अपने पर देनी है। परन्तु निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। इसलिये शास्त्रमें ऐसा कहा है। निमित्त और उपादानका सम्बन्ध है। भगवान तरफ लक्ष्य

करे अपनी ओर जाता है तो भगवान-ओरका लक्ष्य छूट जाता है और स्वसन्मुखता हो जाती है। भगवान-ओरका राग छूट जाय और अपनी ओर अपनी श्रद्धा हो तब अपनेको (पीछानता है)। राग तो वीतराग दशा हो तबतक रहता है, परन्तु भेदज्ञान होता है। भगवानकी ओर यह राग (जाता है, वह) और मैं भिन्न हूँ, ऐसा भेदज्ञान हो जाता है। उसका भेदज्ञान हो जाता है।

मुमुक्षु :- केवली भगवानको तो प्रत्यक्ष आत्माके प्रदेश वगैरह अनुभवमें जाननेमें .. आदि प्रत्यक्ष लगते हैं। उनको तो केवलज्ञान हो जानेसे ... लेकिन अपने तो स्वानुभवके कालमें आत्माके प्रदेश आदिका प्रत्यक्षरूप (नहीं होता)।

समाधान :- भगवानको केवलज्ञान है, इसलिये प्रत्यक्ष जानते हैं। प्रदेश और सब द्रव्य, गुण, पर्यायको प्रत्यक्ष जानते हैं। लोकालोक सबको प्रत्यक्ष (जानते हैं)। स्वानुभवके कालमें और वेदन प्रत्यक्ष है। अपना स्वानुभव प्रत्यक्ष है। प्रदेश उसको प्रत्यक्ष नहीं होते हैं। अनुभव प्रत्यक्ष है न। अपना आनन्द और स्वानुभूति प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- स्वानुभवको आपने प्रत्यक्ष फरमाया तो...

समाधान :- परोक्ष कहनेमें आता है। केवलज्ञानकी अपेक्षासे परोक्ष (कहनेमें आता है)। क्योंकि मति-श्रुत है वह परोक्ष है। इसलिये परोक्ष कहनेमें आता है। परन्तु स्वानुभूति है वह प्रत्यक्ष है। अपने वेदन हुआ वह प्रत्यक्ष है। तो अपेक्षासे प्रत्यक्ष कहनेमें आता है, उसको परोक्ष भी कहनेमें आता है। मति-श्रुत तो मनका अवलम्बन रहता है इसलिये परोक्ष कहनेमें आता है। परन्तु परोक्ष ऐसा नहीं है कि कुछ जाननेमें नहीं आता। वेदन तो प्रत्यक्ष है।

मुमुक्षु :- कोई एक दृष्टान्त।

समाधान :- मिशरी खाता है तो उसका स्वाद अपनेको आता है, वह स्वाद कहीं ऐसा नहीं है कि परोक्ष है, कोई अनुमान नहीं करता है। मिशरीका स्वाद है वह स्वाद तो प्रत्यक्ष है। अन्धेको मिशरी खिलाओ तो कैसा आकार है? कैसा वर्ण है? वह नहीं जानता। परन्तु जो स्वाद होता है वह स्वाद तो प्रत्यक्ष होता है। अन्धेको मिशरी (खिलायी) वह स्वाद तो प्रत्यक्ष होता है।

ऐसे स्वानुभूतिमें असंख्यात प्रदेश गिनतीमें नहीं आते। परन्तु उसका जो वेदन होता है वह तो प्रत्यक्ष होता है। जैसे अन्धेको मिशरी (खिलायी)। तो स्वाद, शक्करकी मीठास है वह तो उसे प्रत्यक्ष होती है। वैसे स्वानुभूतिके कालमें आनन्द और उसके अनन्त गुण-पर्यायका वेदन (होता है), वह वेदन प्रत्यक्ष होता है।

मुमुक्षु :- कल आपश्रीने फरमाया था कि जैसे विकल्पोंको जान लेता है, वैसे ही अरूपी ज्ञानको ज्ञान जान लेता है। कैसे?

समाधान :- विकल्प भी जाननेमें आता है कि विकल्प आया, विकल्प आया, विकल्प आया। वैसे ज्ञान भी जाननेमें आता है। अरूपी है तो भी जाननेमें आता है कि यह ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान है। अरूपी होवे तो भी ज्ञान जाननेमें आता है।

... प्रत्यक्ष कर लिया है। उनको द्रव्य-गुण-पर्याय, असंख्यात प्रदेश सब प्रत्यक्ष ज्ञान (गोचर) है। इसलिये उनकी वाणी निमित्त होती है। अपनेको तो उपादान-से होता है। उपादान अपना और भगवानकी वाणी निमित्त होती है। लक्ष्य अपनेको देना है। बाहर लक्ष्य करे कि भगवान ऐसे हैं, ऐसे हैं तो स्वसन्मुख दृष्टि नहीं होती। परन्तु भगवान है वैसा मैं हूँ, ऐसे दृष्टि अंतर्मुख करे तो स्वानुभूति होती है। स्वानुभूति, केवलज्ञान जैसा नहीं है कि केवलज्ञान सब प्रत्यक्ष जानता है, ऐसा। परन्तु उसका वेदन और आनन्द और उसके अनन्त गुण आदि वेदनमें आता है वह प्रत्यक्ष है। देखनेमें नहीं आता है कि ऐसे असंख्य प्रदेश है।

मुमुक्षु :- इतना दुर्लभ क्यों पड़ रहा है? आपके निकटमें, गुरुदेवश्रीके पासमें हम सब भाई-बहन बहुत समयसे (रहते हैं)।

समाधान :- पुरुषार्थ अपनेको करना पड़ता है। अनादिका अभ्यास है और बाहर उपयोग जाता है। दिशा पलट देनी है। दिशा पलटनी है। अपना स्वभाव है इसलिये सुलभ है। परन्तु अनादिका अभ्यास है इसलिये बाहर दौड़ता है। बार-बार दौड़ता है, अंतरमें नहीं जाता है। इसलिये दुर्लभ हो रहा है। ऐसे-ऐसे चक्कर खाता है। अपनी ओर नहीं जाता है, इसलिये दुर्लभ हो जाता है।

स्वभाव है इसलिये सुलभ है। जिसको होता है उसको अंतर्मुहूर्तमं होता है, नहीं होता है उसको काल लगता है। भगवानके समवसरणमें अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है, कोई मुनि बन जाता है, किसीको सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा अंतर्मुहूर्तमें भी होता है। किसीको अभ्यास करने-से होता है। यह तो पंचमकाल है। इसलिये दुर्लभता देखनेमें आती है। परन्तु स्वभाव है अपना तो पुरुषार्थ करने-से हो सकता है।

मुमुक्षु :- प्रश्न लिया है राजमलजी पाण्डे साहबने कि केवली भगवानके ज्ञानमें-नोंधमें कौन जीव कब मोक्ष जायगा। और ऐसा भी आया कि ढाई पुद्गल परावर्तन काल जिसका शेष रह जायगा, उसके बाद वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा। तो फिर ऊधर ज़ोर क्यों दिया गया? इधर स्वभाव पर पुरुषार्थका ज़ोर होगा तो स्वानुभव होगा।

समाधान :- भगवानके ज्ञानमें, भगवानके केवलज्ञानका स्वभावको बताते हैं कि भगवानके ज्ञानमें सब है। कब, कौन-सा जीव मोक्ष जायगा। भगवान तो सब जानते हैं। भगवानके केवलज्ञानकी बात कही है कि केवलज्ञानमें तो सब आ गया है। परन्तु भगवानने ऐसा जाना है कि यह जीव पुरुषार्थ करने-से मोक्ष जायगा। बिन पुरुषार्थ-

से मोक्ष जायगा ऐसा भगवानके ज्ञानमें नहीं आया है। भगवानके ज्ञानमें ऐसा आया है कि यह जीव इतने कालके बाद पुरुषार्थ करेगा और मोक्ष जायगा। पुरुषार्थ करेगा, आत्माकी स्वानुभूति करेगा और वीतरागता, मुनिदशा प्रगट करेगा और मोक्ष जायगा। पुरुषार्थ करने-से मोक्ष जायगा, ऐसा भगवानके ज्ञानमें आया है। बिन पुरुषार्थ-से मोक्ष जायगा ऐसा भगवानके ज्ञानमें नहीं आया है।

मुमुक्षु :- भगवानकी वाणी सुनते हैं और ऐसा जाननेमें आता है तो फिर अंतरमें-से यह तो नक्की हो जाता है कि हमारा जीव, केवली भगवानने निर्वाण होनेका और सम्यग्दर्शन होनेका समय देख लिया है, उस समय जरूर हमारा पुरुषार्थ स्वभावके सन्मुख होगा, होगा और होगा। तो फिर विश्वास आता है कि हम ऐसे शरणमें आ गये हैं, पूज्य माताजी अनुभूति देवीके, तो ऐसी बात सुननेको मिल रही है तो ये भी कोई उपादान हमारा जागृत है।

समाधान :- विश्वास आता है, लेकिन पुरुषार्थ तो अपनेको करना पड़ता है। जिसको अपूर्व रुचि होती है उसकी मुक्ति होती है। गुरुदेव कहते थे कि तत्प्रति प्रीति चित्तेन वार्ता पि ही श्रुताः। अंतर प्रीतिसे वार्ता भी सुनी, अंतर अपूर्वतासे (सुनी) तो भावि निर्वाण भाजनम। अपनी कैसी परिणति है वह स्वयं जान सकता है कि कैसे मेरी परिणति होती है, मुझे कैसी अपूर्वता लगती है, मेरी कैसी रुचि है, अपने आप अपना निर्णय कर सकता है कि मैं पुरुषार्थ करुँगा, ऐसा करुँगा।

मुमुक्षु :- अनुभूतिको विषय बनानेके लिये .. वेदनमें सुख आता है, ऐसा आत्मा भी ज्ञानमें आता है? ऐसा प्रश्न रह जाता है कि पर्याय जो है, भावमन है, वह स्थानविशेष-से ही आत्माको पकड़ता है या सर्वांग जो पूरे आत्म प्रदेशोंमें पर्याय व्याप्त है, तो पर्याय पूरा सर्वांग आत्माको पकड़ती है या स्थानविशेष-से पर्याय पकड़ती है?

समाधान :- यहाँ तो मन है न, इसलिये ऐसा कहते हैं कि यहाँ-से पकड़ता है। परन्तु वह पकड़ती तो है द्रव्यको न, अखण्ड द्रव्यको पकड़ती है, ग्रहण करती है। अखण्डको ग्रहण करती है। जहाँ-से पकड़े वहाँ-से पकड़ना तो अपनेको है न।

मुमुक्षु :- ज्ञानपर्याय सर्वांग है न। असंख्य प्रदेशमें ज्ञानपर्याय भी है। ज्ञानपर्याय सर्वांगसे आत्माको ज्ञानमें पकड़ती है या भावमन स्थानविशेष-से ही पकड़ती है?

समाधान :- भावमन आया तो उसमें सब आ जाता है। भावमन मुख्य रहा तो उसमें सर्वांग आ जाता है। वह मुख्य रहता है तो एक तरफ-से नहीं पकड़नेमें आता है, एक तरफ-से पकड़नेमें आता है ऐसा नहीं होता। भावमन तो निमित्त बनता है और वहाँ-से ग्रहण करे तो सर्वांग पक़डता है अपने आत्माको।

मुमुक्षु :- उसमें ऐसा कहना है इनका कि जैसे आँख-से देखते हैं तो किसी

पुरुषको देखना हो तो आँख-से ही देखेंगे, यहाँ-से नहीं देख सकते न। ऐसा। ... करता है, किसी पुरुषको देखना हो, वस्तुको देखना हो तो आँखका प्रदेश खुला हुआ है तो वहाँ-से वह उस पुरुषको देख सकता है। उसी प्रकार जब आत्माको ग्रहण करने जाते हैं तो इधर तो वह भावमन है नहीं, इधर है नहीं, इधर है नहीं। जहाँ जिसका स्थान है, उस स्थान-से ही ग्रहण करता है या सर्व प्रदेशोंसे वह ग्रहण करता है?

समाधान :- भावमन तो निमित्त है। ज्ञानसे ग्रहण करना है न। ज्ञानसे ग्रहण करना है। तो ज्ञान तो सर्वांग होता है। ... इसलिये वहाँ-से कहनेमें आता है। भावमन निमित्त बनता है। परन्तु ग्रहण तो सर्वांग-से होता है। ज्ञान-से ग्रहण करना है। मन-से ग्रहण करना है (उसमें) मन तो निमित्त होता है। आँख है वह तो... भावमनके निमित्तमें ज्ञान-से ग्रहण करना है। ज्ञान तो सर्वांग-से ग्रहण करता है। निमित्त भावमन बनता है, परन्तु ग्रहण सर्वांग-से होता है।

मुमुक्षु :- पर्याय सर्वांग ग्रहण करके आत्माको पकड़ती होगी? सर्वांग आत्मा है तो सर्वांग ज्ञानपर्याय भी है। ज्ञानपर्याय वहीं के वहीं आत्माको स्वीकार करती है? पूरी पर्याय समुच्चय आत्माको वहीं के वहीं स्वीकार करती होगी?

समाधान :- पर्याय सर्वांग आत्माको ग्रहण करती है।

मुमुक्षु :- भावमन निमित्तमात्र है।

समाधान :- भावमन निमित्त बनता है। इसलिये कहनेमें आता है कि मन-से होता है। ऐसा कहनेमें आता है। शास्त्रमें भी आता है। थोड़ा ग्रहण हुआ, इधर-से हुआ, इधर-से नहीं हुआ। इधर-से एकत्वबुद्धि हो रही है और इधर-से ग्रहण हो गया है, ऐसा नहीं। भावमन निमित्त बनता है, परन्तु ग्रहण सर्वांग होता है।

मुमुक्षु :- आत्माके प्रदेशोंमें आनन्दकी .. देता है, उस अपेक्षासे उसको घटा सकते हैं। लेकिन निमित्तकी अपेक्षा तो भावमन ही निमित्त पड़ता है। उसी दरवाजेके माध्यम-से अन्दर ज्ञानकी पर्याय स्वसन्मुख अन्दरमें जाकर सर्वांगमें आनन्द देती है। उस अपेक्षासे। लेकिन यहाँ-से भी जान लेता होगा, यहाँ-से भी जानता होगा। नहीं, असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक तो स्वानुभूति करनेकी योग्यता ही नहीं खुली है, माताजी! इसलिये मैंने कहा।

समाधान :- भावमन निमित्त होता है। ... ग्रहण उससे होता है। मनके द्वारा होता है, भावमन-मनके निमित्तके द्वारा अपनेको भीतरमें जाता है। मन निमित्त होता है।

समाधान :- ... स्वरूप पीछानना। आत्मा क्या है? उसका क्या स्वरूप है? शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है। भीतरमें आत्मा ज्ञानस्वभाव ज्ञायक है, उसको पीछानना। विकल्प भी आत्माका स्वभाव नहीं है। उससे भेदज्ञान करना। भेदज्ञानके लिये बारंबार आत्माक रटन करना। शास्त्र स्वाध्याय, विचार, चिंतवन, जन्म-मरण करते-करते शुभभाव

बहुत किये, पुण्यबन्ध हुआ, देवलोक हुआ लेकिन आत्माका भवका अभाव नहीं हुआ, मुक्ति नहीं हुयी। मुक्ति तो भीतरमें है। भीतरमें-से स्वानुभूति होती है, बाहर-से होता नहीं। पुण्यबन्ध होता है, देवलोक होता है। भवका अभाव नहीं होता। भवका अभाव तो आत्माको पीछानने-से होता है। इसलिये उसको पीछानना चाहिये।

अनुभवके पहले मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वभाव है? उसकी लगन लगनी चाहिये। उसकी महिमा होनी चाहिये। सबकुछ आत्मामें है, सर्वस्व आत्मामें है। बाहरमें कुछ नहीं है। बाहरमें सुख नहीं है, बाहरमें-से कुछ आता नहीं है। सुख, ज्ञान सब आत्माके स्वभावमें है। जो जिसमें होवे उसमें-से निकलता है, उसमें-से प्रगट होता है। जिसका जो स्वभाव हो उसमें दृष्टि दे तो निकलता है।

छोटीपीपर है उसको घिसते-घिसते, गुरुदेव कहते थे, चरपराई प्रगट होती है। वैसे आत्माका स्वभाव पीछाने तो स्वभावमें-से ज्ञान, आनन्द सब आत्मामें-से प्रगट होता है। बाहर-से नहीं आता है। अंतरमें-से आता है। पहले उसका भेदज्ञान करना। उसका बारंबार अभ्यास करना। बादमें विकल्प तोड़करके स्वभावमें स्वानुभूति होती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२८

मुमुक्षु :- दृष्टि करनी, तो दृष्टि करनी कैसे?

समाधान :- दृष्टि बाहर जाती है, उसको पलटकर मैं अनादिअनन्त शाश्वत आत्मा हूँ। अनादिअनन्त एक चैतन्यद्रव्य, उसमें कुछ... अनन्त भव किये, निगोदमें गया, अनन्त-अनन्त जन्म-मरण किये, तो भी आत्मा तो वैसा ही, जैसा है वैसा ही (रहा है)। उसमें कुछ स्वभावका नाश नहीं हुआ। इसलिये दृष्टि पलटकर आत्मामें दृष्टि देना कि मैं तो चैतन्य आत्मा ही हूँ। मैं शुद्धात्मा हूँ। शुद्ध तरफ दृष्टि देने-से शुद्धात्माकी शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। और विभावमें दृष्टि देने-से विभावकी पर्याय होती है।

सुवर्णमें-से सुवर्णके झेवर होते हैं। सुवर्णके झेवर। लोहमें-से लोहेके झेवर होते हैं। विभावमें-से विभाव होता है, स्वभावमें-से स्वभाव होता है। इसलिये अंतर दृष्टि करना, स्वभाव तरफ दृष्टि करना।

मुमुक्षु :- करनी कैसे?

समाधान :- पुरुषार्थ करने-से होती है। दृष्टि तो स्वयं अंतरमें करे तो हो। कोई कर नहीं देता है। अपना पुरुषार्थ करने-से (होती है)। देव, गुरु, शास्त्र मार्ग बताते हैं, उस मार्ग पर चलने-से क्या मार्ग है? गुरुने कैसा मार्ग बताया? जिनेन्द्र देव कैसा कहते हैं? शास्त्रमें कैसा आता है? वह विचार करके, यथार्थ निर्णय करके आत्मामें दृष्टि पुरुषार्थ द्वारा करना। कोई कर नहीं देता है। अनन्त काल हुआ तो कोई करता नहीं है, अपने पुरुषार्थ-से होता है। दृष्टि अपना पुरुषार्थ करके स्वभाव तरफ ले जाना।

जैसे स्फटिक निर्मल है, वैसे आत्माका स्वभाव निर्मल है। स्फटिकमें ऊपर लाल-पीला रंग देखनेमें आता है। काले-लाल फूलके निमित्तसे काला-लाल दिखाई देता है, परन्तु भीतरमें सफेद है।

वैसे आत्मा मूल स्वभावसे स्फटिक जैसा निर्मल है और विभावकी कालिमा दिखाई देती है वह पुद्गलके निमित्तसे और पुरुषार्थकी मन्दतासे विभाव होता है। उसका मूल स्वभाव नहीं है। स्वभाव तो निर्मल है। उस निर्मल तरफ दृष्टि करके उसमें निर्मल पर्याय प्रगट होती है। ऐसा भेदज्ञान करने-से निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। वह स्वानुभूति बढ़ते-बढ़ते मुनिदशा होती है तो क्षण-क्षणमें स्वानुभूति आत्मामें लीन होता है। मुनिराज

तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वभावमें लीनता करते हैं। ऐसे लीनता करते-करते केवलज्ञान होता है। बाहरसे नहीं होता है। बाहरसे तो क्रिया (करे), शुभभाव-से पुण्य होता है। भीतरमें अंतर दृष्टि और अंतरमें ज्ञान, श्रद्धा और लीनता करने-से स्वानुभूति प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- श्रीमद्में आता है, अपूर्व अवसर ऐसा कब आयगा? ज्ञानी .. मोक्षकी भावना भाते हैं। समयसारकी .. गाथामें आता है, ज्ञानी उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकरूप शुद्ध भावना है, उसमें ऐसा भाते हैं कि मैं अखण्ड हूँ। दोनों भावोंमें क्या अंतर है?

समाधान :- मैं अखण्ड ज्ञायक तत्त्व हूँ और विभावभाव मेरा स्वभाव नहीं है, अधूरी पर्याय जितना मैं नहीं, पूरी पर्याय नहीं, मैं तो अखण्ड शाश्वत द्रव्य हूँ। ऐसी भावना, ऐसी दृष्टि यथार्थ करते हैं तो भी पर्यायमें तो अधूराश है। ज्ञान ऐसा रहता है, ज्ञान रखता है कि मैं शाश्वत द्रव्य तो हूँ, पर्यायमें अधूराश है। पर्याय कहीं पूर्ण नहीं हुयी है। वीतराग स्वभाव है, लेकिन वीतरागताकी पर्याय और वीतरागताका वेदन नहीं हुआ है। केवलज्ञान नहीं हुआ है, इसलिये उसकी भावना होती है।

अपूर्व अवसर ऐसा कब आयगा? कब ऐसा अपूर्व अवसर आये कि मैं आत्माका ध्यान करुँ, निर्विकल्प स्वानुभूति (करके) बारंबार आत्मामें लीनता करुँ, मुनिदशा प्रगट होवे, एकान्तवासमें आत्माका ध्यान करके केवलज्ञान प्रगट करुँ, ऐसे पर्यायकी शुद्ध करनेके लिये भावना आती है। और द्रव्य अपेक्षासे मैं शुद्ध हूँ।

समयसारमें ऐसा आता है कि द्रव्य अपेक्षासे मैं शुद्ध हूँ परन्तु पर्यायकी शुद्धिके लिये मैं कब केवलज्ञान प्राप्त करुँ? कब मुनिदशा प्राप्त करुँ? ऐसी भावना आती है। द्रव्य और पर्यायकी अपेक्षासे। पर्याय तो शुद्ध पूर्ण नहीं हुयी है, द्रव्य अपेक्षासे पूर्ण है।

मुमुक्षु :- इसे खण्डकी भावना कह सकते हैं?

समाधान :- भावना तो आवे, पर्यायकी शुद्धिकी भावना आये। आचार्यदेव अमृतचन्द्राचार्यने कहा है न, मम परमविशुद्धि चिन्मात्र... मैं तो चैतन्य शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति हूँ, परन्तु मेरी परम विशुद्धिके कारण मैं यह शास्त्र रचता हूँ। शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति द्रव्य अपेक्षासे हूँ और पर्यायमें मेरी परम विशुद्ध होओ। ऐसी भावना तो साथमें आती है। पर्यायकी शुद्धिकी भावना आती है।

पर्यायकी शुद्धिकी भावना आती है। पर्यायमें मेरी पूर्णता नहीं है। द्रव्य भले शक्तिसे परिपूर्ण है, परन्तु प्रगट वेदन पूर्णताका नहीं है। जैसा द्रव्य है वैसी पर्याय पूर्ण हो जाय, पूर्ण वेदन वीतरागका (हो जाय)। जैसा द्रव्य, वैसी पर्याय भी हो जाय। पर्यायमें विभाव है, पर्यायमें पूर्णता नहीं है। द्रव्य अपेक्षासे पूर्ण है। पर्यायमें न्यूनता है तो भावना भाते हैं कि कब मुनिदशा प्राप्त हो? ऐसी भावना आती है।

द्रव्य-पर्यायका मेल है। निश्चय-व्यवहारकी सन्धि साधकोंको आती है। गृहस्थाश्रममें

आत्माकी स्वानुभूति थी, निर्विकल्प स्वानुभूती (थी)। न्यारे रहते थे, निर्लेप रहते थे। तो भी भावना आती थी, मैं कब आत्मामें लीन हो जाऊँ? मुनिदशा प्राप्त करुँ, (ऐसी) भावना आती है।

पूर्ण हूँ यानी पूर्ण ही हूँ, अतः कुछ करना नहीं है, ऐसा नहीं आता। जिसे यथार्थ द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी, जिसको आत्माका संपूर्ण... द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी, (उसे) पर्यायकी भावना साथमें रहती ही है। यदि भावना न रहे तो उसकी द्रव्यदृष्टि भी यथार्थ नहीं है। जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी उसे भावना साथमें होती ही है। मैं कैसे आत्मामें लीनता करुँ, ऐसी भावना होती ही रहती है। द्रव्य पूर्ण और पर्यायकी शुद्धि, ये दोनों साथमें रहते हैं। पर्यायकी शुद्धि, आंशिक शुद्धि तो होती है, परन्तु पूर्ण शुद्धि कैसे हो, ऐसी भावना आती ही रहती है।

मुमुक्षु :- निरंतर चलती है?

समाधान :- चलती है, पुरुषार्थ चलता है। कोई बार भावना उग्र हो जाय। दशा नहीं प्रगट हुयी है, परन्तु भावना आती है। पुरुषार्थकी डोर चालू ही है। शुद्धि कैसे हो? उसे जैसे पुरुषार्थ उत्पन्न हो उस अनुसार शुद्धि होती है। भावना रहती है।

मुमुक्षु :- सहज ..

समाधान :- सहज चलती है। मैं द्रव्य अपेक्षासे पूर्ण हूँ और पुरुषार्थकी डोर चालू है। भावना कोई बार जोरदार तीव्रपने भावना रहे, वह अलग बात है।

मुमुक्षु :- ... आनन्द न हो तो वह पुरुषार्थ दूसरे कोई भी भवमें कैसे उत्पन्न होता है?

समाधान :- पुरुषार्थ करे.. बारंबार उसके संस्कार डाले, अन्दर गहरे हो तो उसे अवश्य भेदज्ञान होता ही है। परन्तु यथार्थ हो तो। मैं यह चैतन्य हूँ, दूसरा कुछ मुझे नहीं चाहिये। चैतन्य तरफकी ऐसी अपूर्व रुचि और ऐसी महिमा हो, और बारंबार उसकी लगन लगे, तत्त्वका विचार करे कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, अन्य कुछ मेरा नहीं है। ऐसी भावना रखे, बारंबार उसका अभ्यास रखे, बारंबार उसका चिंवतन करे। ऐसी भावना हो तो उसे.. अंतरमें-से हो, भेदज्ञानका पुरुषार्थ बारंबार करता हो तो उसे अवश्य होता है। उसका कारण यथार्थ हो तो कार्य आता है। उसका फल आये बिना नहीं रहता। पुरुषार्थ बारंबार (करे)। वह थके नहीं। उसकी भावना, जिज्ञासा अंतरमें-से रहा ही करे बारंबार, तो उसका फल अवश्य आता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- मात्र मोक्ष अभिलाष। एक अभिलाष मोक्षकी है, दूसरी कोई अभिलाषा नहीं है। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिये, एक आत्माके अलावा कोई प्रयोजन नहीं है।

मुमुक्षुके जो-जो कार्य हो वह एक आत्माके लिये (होते हैं)। मात्र मोक्षकी अभिलाष, दूसरी कोई अभिलाषा नहीं है। मात्र मोक्ष अभिलाष। आत्माका स्वरूप मुझे कैसे प्रगट हो? मोक्ष यानी अंतरमें-से मुक्तिकी दशा (कैसे प्रगट हो)?

कषायकी उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष। मात्र मोक्षकी अभिलाष। उसे ऐसे तीव्र.. विभावमें उतनी तन्मयता नहीं होती, विभावका रस मन्द पड़ गया हो, चैतन्य तरफके रसकी वृद्धि हुयी हो। चैतन्य तरफकी महिमा, रुचि अधिक होती है। एक मात्र मोक्षकी अभिलाषा-से, मोक्षके हेतु-से आत्माके हेतु-से, मुझे आत्माकी कैसे प्राप्ति हो? इस हेतु-से उसके प्रत्येक कार्य हो। उसकी जिज्ञासा, रुचि, लगनी सब आत्माके हेतु-से (होता है)। शास्त्र स्वाध्याय, वांचन, मनन मुझे आत्माकी कैसी प्राप्ति हो? (इस हेतुसे होता है)। 'मात्र मोक्ष अभिलाष, भवे खेद अंतर दया, त्यां आत्मार्थ निवास।' जहाँ आत्मार्थका प्रयोजन है।

समाधान :- ... (गुरुदेवने) कितना स्पष्ट कर दिया है। कहीं किसीकी भूल न रहे ऐसा नहीं है। मार्ग सरल और सुगम कर दिया है। मात्र स्वयंको पुरुषार्थ करना बाकी रहता है। कोई क्रियामें रुके (बिना), शुभभाव, गुणभेद, पर्याय सब परसे दृष्टि (उठाकर) एक चैतन्य पर दृष्टि कर। फिर बीचमें सब आता है, ज्ञानमें जान। दृष्टि आत्मा पर करके जो पर्यायमें शुद्धि है, उस शुद्धिका पुरुषार्थ उसके साथ रहता है। पर्यायमें भेदज्ञान करके विशेष शुद्ध करने हेतु उसका प्रयत्न उसके साथ ही रहता है। वह करना है। पहले आत्माको पहचानना, उसका भेदज्ञान करना। भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करना।

... अगाधता उसे मालूम नहीं है, वह स्वयं स्वानुभूतिमें जाय तो मालूम पड़े। उपयोग बाहर हो तो कहाँ मालूम पड़ता है। दृष्टान्त कैसा देते हैं। 'जे मार्गे सिंह संचर्या, रजो लागी तरणा'। घास नहीं चरेगा। चैतन्य जैसा सिंह, स्वयं ही जहाँ पलटा, उसके पुरुषार्थ-से सब कर्म, विभाव ढीले पड़ जाते हैं। (सिंह) जिस रास्ते पर चला हो, वह चला हो उसकी रज ऊड़े, वहाँ बेचारा हिरन खड़ा नहीं रह सकता। ऐसा सिंहका पराक्रम होता है। सिंह जैसा आत्मा, पराक्रमी साधक आत्मा ऐसे महापुरुष जिस मार्ग पर चले, उस मार्ग पर कायरोंका काम नहीं है। दूसरे कायरोंका काम नहीं है। यह मार्ग वीरोंका है। जिस मार्ग पर चले, भगवान जिस मार्ग पर चले वह मार्ग तो वीरोंका है, कायरोंका काम नहीं है, ऐसा कहते थे। हिरन जैसे आप कोई खड़े नहीं रह पाओगे, ऐसा कहते थे। अन्दर आत्मा.. महापुरुष जिस मार्ग पर चले, उस मार्ग पर तुम कायर खड़े नहीं रह पाओगे, ऐसा कहते हैं। जोरदार कहते थे। सुननेवाले एकदम...

महावीर भगवान ऊपर जाते हैं, गौतम स्वामी.. बहुत साल पहले ऐसा जैन प्रकाशमें

किसीने छापा था। प्रभु! खड़े रहो, ये मेरा कपड़ा इसमें अटक रहा है। ऐसे सब श्वेतांबरमें (कथन आते हैं)। अरे..! गुलाममार्गी! ऐसा कहे। उसमें ऐसा आता है। ये तेरा मार्ग नहीं है। तेरा कपड़ा अटक रहा है, कपड़ेको छोड़। ऐसा सब आता था। ... छोड़ सब। विकल्प नहीं उत्पन्न होता है। हम आज ही धर्म अंगीकार करेंगे। ऐसा जोरदार। आज ही अंगीकार करेंगे। असरकारक। सब डोल उठे, पूरी सभा डोले। उतना भाववाही। तीर्थंकरका द्रव्य, उनकी वाणी ऐसी, अन्दर भाव ऐसे। भाव और वाणी, सब। ...

आहार लेने निकलते तो ऐसे लगते, सिंह जैसे। सब काँपे। पधारो, पधारो भावसे कहे। ऐसे महापुरुष हमारे आँगनमें पधारे, हमारा महाभाग्य। लेकिन थोड़ा फेरफार हो तो सिंहकी भाँति चले जाते, सामने तक नहीं देखते थे। सब ऐसे देखते रह जाते, और आँखमें-से आँसु चले जाय, सामने कौन देखता है? ऐसे थे। आहार लेने निकलते। थोड़ा फेरफार हो जाय, मालूम पड़े कि मेरे लिये आपने बनाया है, खड़ा कौन रहता है? क्यों बनाया, इतना भी पूछने खड़े नहीं रहते। बिजलीका चमकारा हो, वैसे चले जाते। आज अपने आँगनमें कानजीस्वामी आकर वापस चले गये। कितना दुःख हो। हूबहू साधु दिखे, स्थानकवासी संप्रदायके। एक नमूना, साधुका नमूना दिखता हो वैसे दिखते थे।

समाधान :- ... नक्की स्वयंको करना है। यह शरीर तो प्रत्यक्ष जड़ दिखता है, जो कुछ जानता नहीं। अन्दर विभाव होता है, उसे भी जाननेवाला तो स्वयं है। विभाव जितने हो वह सब चले जाते हैं। वह खड़े नहीं रहते। सब विभाव, विकल्प चले जाते हैं और जाननेवाला खड़ा रहता है। वह जाननेवाला जो है, उस जाननेवालेको जानना। वास्तवमें तो वही करना है। उसीकी महिमा करनी, उसीकी प्रतीति करनी। मैं भिन्न, मेरा स्वभावमें ही अनन्त शक्ति और अनन्त महिमासे मैं भरा हूँ। विभाव तो निःसार-सारभूत नहीं है। विचार करे तो वह आकुलतारूप है, दुःखरूप है। वह कहीं सुख नहीं है और सुखका कारण भी नहीं है। ऐसे स्वयं नक्की करना चाहिये।

पानी स्वभावसे शीतल है, परन्तु अग्निके निमित्त-से उष्णता हो तो वह उष्णता पानीका स्वभाव नहीं है। स्वभाव-से शीतल है। ऐसे आत्मा अन्दर शीतलतासे भरा हुआ, ज्ञान और आनन्दसे भरा है, ऐसा नक्की करना चाहिये। यह विभाव परिणति मेरे स्वरूप-स्वभाव-ओरकी नहीं है। निमित्त है, उस निमित्तके कारण पुरुषार्थकी मन्दतासे होती है। कोई पर करवाता नहीं, परन्तु अपने पुरुषार्थकी मन्दतासे होता है, इसलिये मैं उससे कैसे भिन्न होऊँ? इस प्रकार पुरुषार्थ करके स्वयं ही अपनी ओर मुड़ना है, कोई मोड़ता नहीं है।

समाधान :- ... अनन्त तीर्थंकर मोक्ष गये, इसी मार्ग-से गये हैं। आत्मस्वभावको

पहचानकर, ज्ञायकको पहचानकर अनन्त तीर्थंकरों, मुनिवरों सब मोक्ष गये वे, भेदज्ञानसे और स्वभावको-ज्ञायक स्वभावको पहचानकर ही गये हैं। परन्तु जो पुरुषार्थ करता है वह जाता है, जो पुरुषार्थ नहीं करता है वह नहीं जाता। पुरुषार्थ करे वह जाता है। भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन। भेदविज्ञान-से, जो सिद्धिको प्राप्त हुए वे उसीसे प्राप्त हुए। आत्मस्वभावको पहचानकर। जिसने प्राप्त नहीं किया, उसके अभाव-से नहीं प्राप्त हुए।

मुमुक्षु :-... न्यूनता लगती है कि ऐसा नहीं चलेगा।

समाधान :- उसका कारण स्वयंका ही है। स्वयं रुक गया है। अनादिके अभ्यासमें अटक गया है। जितना अपनी ओरका अभ्यास चाहिये उतना करता नहीं है। गहराईमें जाता नहीं है और बाहर ही बाहर रुक गया है। इसलिये अपनी कचासके कारण ही स्वयं आगे नहीं जा सकता है।

मुमुक्षु :- सत्पुरुषका लाभ लेना हो, उसमें कोई..

समाधान :- ..होता हो तो उसमें अपना कारण है। स्वयंको सत्संगकी भावना हो, सत्पुरुषकी वाणी-श्रवणकी भावना हो, परन्तु बाह्य संयोग ऐसे हो तो शान्ति रखनी। दूसरा क्या कर सकता है? भावना भाये तो योग बराबर बन जाता है।

मुमुक्षु :- क्षति अपनी भावनाकी है, ऐसा ही मानना।

समाधान :- अपनी भावनाकी क्षति है। (बाह्य संयोग) अपने हाथकी बात नहीं है, परन्तु भावना रखे। ... अपने हाथकी बात नहीं है, स्वयं अपने भावको बदल सकता है। ऐसा कोई पुण्यका योग हो तो संयोग बदल जाय। अपनी भावना उग्र करे तो।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२२९

समाधान :- .. गुरुदेवने भवका अभाव कैसे हो उसका (मार्ग बताया)।

मुमुक्षु :- भरत क्षेत्रके जीवोंको तो .. अभी देखने नहीं मिलता, परन्तु ... देखने मिला है। ये तो महाभाग्य है। जीवंत..

समाधान :- गुरुदेव इस भरत क्षेत्रमें पधारे, भरत क्षेत्रके महाभाग्य! ऐसी वाणी बरसायी और चैतन्यदेवका स्वरूप बताया। देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं? चैतन्य कैसा है? आत्मा कैसा है? यह सब बताया। सच्चे देव-गुरु-शास्त्रका स्वरूप बताया।

समाधान :- ... भवका अभाव हो, वह करने जैसा है। गुरुदेवने मार्ग बताया है, भवका अभाव होनेका। संसारका स्वरूप ही ऐसा है। जीवने ऐसे तो अनन्त जन्म-मरण किये हैं। अनन्त जन्म-मरण करते-करते मनुष्य भव मिलता है। अनन्त भव जीवने देवके किये, नर्कके किये, निगोदके किये, तिर्यंचके किये, मनुष्यके किये। इसमें यह मनुष्य भव दुर्लभता-से मिलता है। उसमें गुरुदेव मिले तो आत्माका कर लेने जैसा है।

आत्मा भिन्न और यह शरीर भिन्न है। शरीर और आत्मा, जब उसका आयुष्य पूरा होता है तब भिन्न पड़ते हैं। आत्माका कहीं नाश नहीं होता है, आत्मा तो शाश्वत है। इसलिये आत्मा भिन्न है, वह भिन्न कैसे पड़े? भिन्न तो उसका आयुष्य पूरा होता है तब पड़ता ही है, परन्तु पहले-से ही ऐसा भेदज्ञान करके आत्मा कैसे भिन्न पड़े, पहले तो यह करने जैसा है।

आत्मा भिन्न और अंतर आत्मामें स्वानुभूति कैसे हो? उसका भेदज्ञान कैसे हो? गुरुदेवने वह मार्ग बताया है, वह करने जैसा है। जीवको अनन्त कालमें सब प्राप्त हुआ है, एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। एक जिनवर स्वामी नहीं मिले हैं। भगवान मिले तो स्वयंने पहचाना नहीं है। इसलिये भगवान कैसे पहचानमें आये? गुरु कैसे पहचानमें आये? आत्मा कैसे पहचानमें आये? वह जीवनमें करने जैसा है। सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो? स्वानुभूति कैसे हो? उस जातका रटन, मनन वह करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और आत्मा कैसे पहचानमें आये, वह करने जैसा है।

बाकी जन्म-मरण, जन्म-मरण तो संसारमें होते ही रहते हैं। जो मनुष्य भव धारण करता है, जो जन्मता है, उसका मरण होता है। इसलिये आयुष्य पूरा होने पर सब

जीव चले जाते हैं। अतः आत्माको कैसे भिन्न करना और भेदज्ञान करना, आत्माका ज्ञान और आनन्द सब आत्मामें है। उसे पहचान लेना। करना वह है।

समाधान :- ... गुरुदेव राजकोट बहुत बार पधारते।

मुमुक्षु :- पूरा लाभ लेते थे, मातुश्री हमेशा लाभ लेते थे।

समाधान :- देह और आत्मा भिन्न पड़ते हैं। दिखता है कि आत्मा चला जाता है, शरीर पड़ा रहता है। इसलिये प्रथम-से ही आत्माका भेदज्ञान कर लेना कि अन्दर आत्मा भिन्न जाननेवाला है, ये विकल्प भिन्न है, उससे भी आत्मा भिन्न है, वह कैसे जाननेमें आये? उसकी पहचान कैसे हो? उसकी स्वानुभूति कैसे हो? ऐसी भावना करने जैसी है। जीवनमें यह एक अपूर्व है, बाकी कुछ अपूर्व नहीं है संसारमें।

शान्ति रखनी। ऐसे जन्म-मरण संसारमें होते हैं। राग आये उतना दुःख होता है, परन्तु मनको बदल देना, शान्ति रखनी। अनन्त भवोंमें कितनोंको स्वयं छोड़कर आया है, स्वयंको छोड़कर दूसरे चले जाते हैं। ऐसा कितने भवोंमें करता आया है, होता आ रहा है। इसलिये शान्ति रखनी। करनेका यह है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो तब बराबर समझमें आता है, .. समझमें आता है। फिर एकदम जब आपत्ति आती है या दुःख आये, तब बदल जाता है।

समाधान :- करनेका वह है, भूलने जैसा नहीं है। गुरुदेवने कहा है, वही करनेका है। उसका पुरुषार्थ करने जैसा है, भूलने जैसा नहीं है। ऐसे प्रसंगोंमें अधिक स्मरण आये, आत्माकी ओर अधिक वैराग्य आये और वह करने जैसा है। वही पुरुषार्थ करने जैसा है। गुरुदेवने खूब उपदेश दे-देकर अपूर्व मार्ग बताया है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके प्रताप-से...

समाधान :- सबको मृत्युके समय शान्ति रखती है और सुनानेवालेको भी शान्ति रहती है। गुरुदेवके प्रतापसे छोटे-बड़ोंको कितनोंको ऐसे संस्कार पड़ गये हैं कि ऐसा प्रसंग आवे तब शान्ति रहती है।

मुमुक्षु :- सब भाईओंको-बहनोंको एक साथ भाव आया कि अपने माताजीके दर्शन कर आते हैं, उसके बाद सब बिछडेंगे।

समाधान :- गुरुदेवकी वाणी अपूर्व थी। गुरुदेव आत्मा बता रहे थे। फिर भी अन्दर जाननेवाला भिन्न है। पुरुषार्थ यह भेदज्ञान करना है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो, हम समझते हैं, फिर भी..

समाधान :- आत्मा भिन्न जाननेवाला है उसका स्वभाव पहचानना कि यह जाननेवाला है, वह मैं हूँ और उस जाननेवालेमें ही सब भरा है। जाननेवालेमें अनन्त शक्ति और अनन्त गुण और आनन्द सब जाननेवालेमें भरा है। ये सब विकल्पकी जाल आती

है, जो राग-द्वेषकी जाल है, वह मैं नहीं हूँ, परन्तु उसके अन्दर जाननेवाला जो आत्मा है वह मैं हूँ। वह जाननेवाला कैसे पहचानमें आये? तदर्थ उसकी भावना, रटन, महिमा, तदर्थ शास्त्र स्वाध्याय, विचार सब उसके लिये करना है। क्षण-क्षणमें उसका रटन और उसकी भावना रखनी कि यह शरीर, विकल्प आदि सबसे आत्मा अन्दर भिन्न है। चैतन्य तत्त्व, चैतन्यका अस्तित्व कैसे ग्रहण हो? वह करने जैसा है।

अन्दर शाश्वत आत्मा चैतन्यदेव विराजता है। गुरुदेव कहते हैं न? जैसे भगवान हैं, वैसा तू है। ऐसा आत्मा चैतन्यदेव अनन्त महिमावंत आत्मा है। वह आत्मा अन्दर विराजता है, उसे पहचाननेका प्रयत्न करना। उसीका बारंबार विचार, वांचन, बार-बार वह करने जैसा है। विस्मृत हो जाय तो भी बार-बार वह करने जैसा है। उसीका विचार, वांचन सब वही करने जैसा है। देव-गुरु-शास्त्रमें कैसा (आता है), गुरुदेवने कैसा कहा है, भगवानने कैसा (कहा है), मुनिओं कैसी आराधना कर रहे हैं, क्यों, कैसे पुरुषार्थ करना, भेदज्ञान करना? गुरुदेवने सम्यग्दर्शनका मार्ग बताया। वह सब बारंबार स्मरणमें लाकर एक आत्मा कैसे पहचानमें आये, वह करने जैसा है। बारंबार एक ही करने जैसा है। शास्त्रमें आता है न? भेदज्ञान, प्रज्ञाछैनी द्वारा स्वयंको अंतरमें भिन्न करना।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

समाधान :- स्वरूपमें समा गये। जो चैतन्य स्वरूप है, अनन्त गुणसे भरपूर, उसमें भगवान ऐसे समा गये कि फिर बाहर ही नहीं आते हैं। चतुर्थ गुणस्थानमें सम्यग्दर्शन हो उसे शान्ति हो। अंतर्मुहूर्तमें बाहर आवे तो बाहर उपयोग जाये। फिर उसे भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। परन्तु उपयोग बाहर जाता है। भगवानका उपयोग फिर बाहर नही जाता। मुनिदशा आवे, उसमें छठवें-सातवें गुणस्थानमें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूतिमें जाते हैं। अंतर्मुहूर्त बाहर आते हैं, अंतर्मुहूर्तमें अंतरमें जाते हैं। बाहर आये, अन्दर जाय, इस प्रकार छठवें-सातवें गुणस्थानमें क्षण-क्षणमें स्वानुभूति (होती है)। क्षणमें बाहर आवे,

क्षणमें अंतरमें जाते हैं। ऐसे छठवें-सातवें गुणस्थानमें (चलता है)। ऐसा करते-करते श्रेणि लगाते हैं। छठवें-सातवें गुणस्थानमें मुनि झुलते हैं। ऐसा करते-करते जब श्रेणि लगाते हैं और केवलज्ञान होता है, फिर आत्मामें ऐसे स्थिर हो जाते हैं कि पुनः बाहर ही नहीं आते। आत्मामें ऐसे जम जाते हैं।

अनन्त आनन्दका सागर जो पड़ा है, आनन्द सागर उछल रहा है, उसमें भगवान समा जाते हैं। और अनन्त गुण हैं, उसमें लवलीन हो जाते हैं। आत्माका कोई अपूर्व अद्भुत आनन्दका वेदन करते हैं और ज्ञान ऐसा निर्मल प्रगट हो जाता है कि आत्मा तो जाननेवाला ज्ञायक है। उसमें कुछ नहीं जाने, ऐसा बनता नहीं। स्वयं अपनेमें जम जाते हैं, परन्तु उपयोग बाहर (नहीं आता)। जाननेकी इच्छा नहीं है कि ये बाहर क्या है? कुछ जाननेकी इच्छा नहीं है। इच्छा नहीं है तो भी अंतरमें सहज ज्ञात हो जाता है।

मुमुक्षु :- पर्याय तो होती ही है।

समाधान :- हाँ, पर्याय तो होती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानकी पर्याय।

समाधान :- ज्ञानकी पर्याय ऐसी निर्मल हो जाती है कि उसमें स्वयं स्वयंको जाने, स्वयं अपना वेदन करे, अनन्त आनन्दका, अनन्त गुणको जाने और बाहरमें लोकालोकको जाने। जो अनन्त द्रव्य, जो अनन्त आत्मा है, अनन्त सिद्ध है, जो-जो भूतकालमें हो गये, वर्तमानमें हो रहे हैं, नर्कमें, स्वर्गमें जहाँ-जहाँ है, सबको जानते हैं। अनन्त परमाणुको जाने। भूतकालमें जीवने अनन्त भव किये उसे जाने। वर्तमान जाने। भविष्यमें अनन्त भव कैसे करेगा, वह जाने। ऐसा भगवान एक समयमें सब जानते हैं। उन्हें विकल्प नहीं करना पड़ता, उपयोग रखना नहीं पड़े। निज स्वरूपमें स्थिर हो गये हों, फिर भी सहज ज्ञात हो। उनका ज्ञान ऐसा निर्मल है।

मुमुक्षु :- ज्ञान..

समाधान :- हाँ, ज्ञान उतना विशाल हो जाता है कि उपयोग रखे नहीं, क्रम पड़े नहीं, खेद हो नहीं, विस्मृत नहीं हो, परन्तु सहज जाने।

मुमुक्षु :- तदर्थ बहुत प्रयत्न करना पडे।

समाधान :- हाँ, वह तो प्रयत्न करे तो जाने।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- लेकिन प्रयोजनभूत ज्ञान हो तो वह स्वरूपको पहचाने कि मैं चैतन्य हूँ और यह भिन्न है। विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो चैतन्य ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसे प्रयोजनभूत जानकर अपनेमें लीन हो तो लीन होते-होते जो अन्दर स्वभाव है वह

प्रगट होते हैं। उसे लोकालोकको जाननेका प्रयत्न नहीं करना पड़ता, परन्तु अपनेमें स्थिर हो और स्वयंको पहचाने तो सबको (जाने)। एक स्वयंको जाने वह सबको जान सकता है। स्वयंको जाने। लेकिन जो दूसरोंको जाननेका प्रयत्न करे वह स्वयंको भी नहीं जानता और परको भी नहीं जानता। लेकिन जो स्वयंको जाने वह सब जान सकता है।

मुमुक्षु :- कितना आनन्द आता है। स्वरूप थोड़ी देर सुनकर कितना आनन्द आता है। सुनना अच्छा लगता है।

समाधान :- उस स्वरूपकी क्या बात! अद्भुत स्वरूप है!

मुमुक्षु :- अभी बहुत आवरण हैं।

समाधान :- अभी आवरण है। परन्तु प्रयोजनभूत गुरुदेवने मार्ग बताय है। उस मार्गको पहचाने कि मैं चैतन्य भिन्न हूँ। उस चैतन्यमें स्थिर हो जाय, विकल्प टूट जाय और यदि स्वानुभूतिके मार्ग पर जाय और स्वानुभूति हो तो वह अपनेमें लीनता करते-करते, श्रद्धा, ज्ञान और लीनता करते-करते वह केवलज्ञानको प्राप्त करता है।

मुमुक्षु :- प्रथम तो शरीर-से भिन्न मानना।

समाधान :- शरीर-से भिन्न, शरीर और विकल्प-से भिन्न। शरीर स्थूल है। यह शरीर तो जड़ है, कुछ जानता नहीं। उससे तो भिन्न है। प्रथम ऐसा (करे)।

मुमुक्षु :- उससे तो भिन्न मानता ही नहीं।

समाधान :- वह शरीरसे भी (भिन्नता) नहीं मानता है तो विकल्प-से कहाँ माने? शरीर और मैं एक हूँ, ऐसा मानता है। शरीरसे भिन्न मैं जाननेवाला हूँ। प्रथम शरीरसे भिन्न। अन्दर गहराईमें जाय तो विकल्पसे भिन्न। जो-जो अनेक जातके विकल्प आये, आकुलता हो, वह सब विकल्प आये...

मुमुक्षु :- विकल्पसे तो अभी भी जान सकते हैं, परन्तु शरीर-से तो भिन्नता नहीं मान सकता हैं, वह कैसे?

समाधान :- विकल्प-से भिन्न मानना मुश्किल है।

मुमुक्षु :- शरीर-से तो भिन्न कहाँ मानता ही है। थोड़ा भी शरीरको कुछ हो तो..

समाधान :- रागके कारण। यह शरीर भिन्न है। क्षण-क्षणमें अपना भेदज्ञान तैयार रखना चाहिये कि ये जो रोग होता है, वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। एक बार धारणा कर ली, विचार कर लिया और फिर छोड़ दे, ऐसा नहीं। जब-जब स्वयंको प्रसंग पड़े तब ज्ञान हाजिर हो कि यह शरीरमें जो होता है वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं भिन्न हूँ। मैं चैतन्य हूँ। ऐसी क्षण-क्षणमें अपनी तैयारी रखे तो क्षण-क्षणमें उससे भेदज्ञान निरंतर भाने जैसा है।

मुमुक्षु :- विकल्प-से तो ऐसा माने, इतना सुने तो ऐसा लगे कि शरीर-से मैं

भिन्न हूँ, ऐसा मानता है। किसीका मरण हो तो मान लेता है कि यह जड़ है और चेतन आत्मा है। विकल्पसे मान लेते हैं, परन्तु शरीरसे एकत्वबुद्धि तो बहुत है।

समाधान :- रागके कारण। शरीरसे भी कहाँ छूटा है और विकल्प-से भी नहीं छूटा है। यथार्थ छूटे तो दोनों-से छूटे। विकल्प-से भी नहीं छूटा है और शरीर-से भी नहीं छूटा है। शरीर सो मैं और मैं सो शरीर, उसमें अपना ज्ञायक उसे भिन्न नहीं दिखता है। परन्तु उसका प्रयत्न करे कि ये जो जाननेवाला है, जो-जो विकल्प हुए सब विकल्प चले गये, लेकिन उनके बीच जो जाननेवाला है वह जाननेवाला मैं हूँ। वह जाननेवाला शरीरमें नहीं आता है। शरीर तो जड़ है, वह कहाँ जानता है। शरीरमें रोग हो तो शरीर कहाँ जानता है कि मुझे रोग हुआ है कि ये रोग अच्छा नहीं है, निरोगता अच्छी और रोग खराब, ऐसा शरीर नहीं जानता। जाननेवाला अन्दर है। उसे राग हो कि यह रोग अच्छा नहीं है, मुझे दुःखरूप है। ये निरोगता अच्छी है, मुझे सुखरूप है। जाननेवालेमें स्वयं राग-द्वेष करता है। शरीर कुछ नहीं जानता है, वह तो जड़ है।

मुमुक्षु :- दुःख आवे तब इसके साथ एकत्वबुद्धि हो जाती है।

समाधान :- उस वक्त तैयारी रखनी चाहिये। गुरुदेव कहते हैं न कि सुना उसे कहे कि मौके पर ज्ञान हाजिर होना चाहिये। मैं आत्मा भिन्न शाश्वत है, यह शरीर भिन्न है। इस प्रकार अंतरमें-से ऐसी भावना (हो), यथार्थ तो बादमें होता है, परन्तु पहले ऐसी भावना तैयार करे, ऐसी रुचि तैयार करे, ऐसे विचार करे। यथार्थ भेदज्ञान हो उसे तो क्षण-क्षणमें हाजिर होता है कि मैं तो भिन्न जाननेवाला हूँ। परन्तु ऐसा विचार करे, भावना करे तो भी अच्छा है। ऐसी रुचि करे।

ये शरीर बेचारा तो कुछ जानता नहीं। जाननेवाला अन्दर राग-द्वेष (करता है)। उससे भी मैं (भिन्न हूँ), राग-द्वेष भी मेरा स्वरूप नहीं है। परन्तु जाननेवाला राग-द्वेषमें जुड़ता है। शरीर तो कुछ जानता नहीं, वह तो जड़ है। लेकिन वह स्वयं मान लेता है कि ऐसा शरीर हो, ऐसा हो, वैसा हो, वह मैं हूँ। ऐसा चले, बोले, वह सब मैं हूँ, ऐसा मानता है। ऐसी भाषा निकले वह मैं हूँ। वह सब मैं-मैं मानता है। भाषा भी जड़ है, सब जड़ है, लेकिन स्वयं अन्दर एकत्वबुद्ध कर रहा है। स्वयं प्रयत्न करके विचार करना चाहिये कि मैं तो शाश्वत हूँ।

इतने साल बीत गये, उसमें जाननेवाला ऐसे ही विद्यमान है, विकल्प आकर चले गये। लेकिन मैं तो जाननेवाला भिन्न हूँ, मैं तो अन्दर भिन्न हूँ। ये शरीर तो जड़ बेचारा कुछ जानता नहीं। वह कुछ नहीं जानता है। सोया हो तो निंदमें अनेक जातकी जाल आती है, शरीर सोया हो तो स्वप्नमें मैं कहीं जाता हूँ और आता हूँ, वह

सब (चलता है)। अन्दर ऐसे संस्कार है। जाननेवाला है, उसमें जो राग-द्वेष होते हैं, उससे भिन्न पड़नेकी जरूरत है। शरीर तो जड़ है। ये हाथ-पैरा कहाँ कुछ जानते हैं। जाननेवाला अन्दर राग-द्वेखकी कल्पना खड़ी करता है।

मुमुक्षु :- कल्पनामें भी ज्ञान ही परद्रव्य पर..

समाधान :- हाँ, उसका लक्ष्य पर-ओर जाता है, अन्दर एकत्वबुद्धि है।

मुमुक्षु :- तीर्थंकर भगवानको ही ॐ ध्वनि छूटती है?

समाधान :- हाँ, तीर्थंकर भगवानको ॐ ध्वनि छूटती है, केवली भगवानको ॐ ध्वनि छूटती है। जिसको केवलज्ञान हो उन सबको ॐ ध्वनि छूटती है। कोई केवलज्ञानी भगवान जिसे वाणी हो उन्हें ॐ ध्वनि छूटे। कोई केवली भगवानको वाणी न निकले तो न छूटे। केवलज्ञानी भगवानको ॐ ध्वनि छूटती है। तीर्थंकर भगवानको ॐ ध्वनि छूटती है। तीर्थंकर भगवानको समवसरणकी रचना होती है, सब होता है। केवली भगवानको समवसरणकी रचना हो या न हो, परन्तु सब सभा होती है। केवली भगवानको भी ॐ ध्वनि छूटती है।

मुमुक्षु :- तीर्थंकर गोत्र.. उसके बाद..

समाधान :- हाँ, जो तीर्थंकर होते हैं, उन्हें पहले शुभभाव होता है। उसमें पुण्यबन्धता है, तीर्थंकर गोत्र। वह भी पुण्य है। लेकिन वह उन्हें हेयबुद्धि-से (होता है) कि यह आदरणीय नहीं है। सम्यग्दृष्टि हो उसको ही तीर्थंकर गोत्र बन्धता है, कोई मुनिको बन्धता है, कोई सम्यग्दृष्टिको (बन्धता है), लेकिन वह मानता है कि यह शुभराग है, मेरा स्वरूप नहीं है। उसे भावना आ जाती है कि अहो! ऐसा धर्म! ऐसा चैतन्यका स्वरूप कोई अद्भुत! यह स्वरूप सब कैसे समझे? सर्व जीव करु शासन ..। सब जीव यह धर्म कैसे प्राप्त करे? ऐसा करुणा भाव उत्पन्न होता है, उसमें उसे पुण्यबन्ध हो जाता है। लेकिन यह पुण्यभाव आदरणीय नहीं है। ऐसे उसे हेयबुद्धि-से पुण्य बन्ध हो जाता है। तीर्थंकर गोत्र बान्धते हैं और उसका उदय आता है। भगवानका जन्म होता है तब इन्द्र आते हैं, पंच कल्याणक होते हैं। केवलज्ञान होता है तब समवसरणकी रचना होती है। भगवान गर्भमें आये, भगवान जन्मे तब इन्द्र आकर उनका जन्म कल्याणक करते हैं। पंच कल्याणकमें भगवान जन्मते हैं।

मुमुक्षु :- साधारण जीव ... तो उसे ऐसा कोई भाव नहीं होता। तो फिर उसका...

समाधान :- साधारण जीव हो उसे...?

मुमुक्षु :- भव्य जीव साधारण हो, वाणी सुनकर तिर जाय। सबको तीर्थंकर गोत्रका शुभभाव नहीं होता है न?

समाधान :- सबको तीर्थंकर गोत्र नहीं बन्धता। साधारण जीव हो तो वाणी सुनकर..

ओहो..! भगवानकी ऐसी वाणी! आत्माका स्वरूप समझमें आये, भेदज्ञान हो, मुनिदशा हो और केवलज्ञान हो जाय। सबको तीर्थंकर गोत्र बन्धे ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- मुनिदशाके बाद ही..

समाधान :- मुनिदशा अवश्य आती है, मुनि हो, केवलज्ञान हो। केवलज्ञान हो तो किसीको वाणी छूटे, किसीको नहीं छूटती। फिर मोक्ष हो जाता है। गजसुकुमाल मुनि गये, स्मशानमें गये और सर पर अग्नि रखी। उसने अग्नि रखी, उपसर्ग आया तो अंतरमें ऊतर गये। केवलज्ञान हो गया और मोक्ष हो गया।

मुमुक्षु :- अपने यहाँ चैबीसीमें अंतिम महावीर भगवान, अब आगामी चौबीसीके श्रेणिक राजा प्रथम तीर्थंकर होंगे। उन्हें दिव्यध्वनि छूटेगी?

समाधान :- हाँ, उन्हें दिव्यध्वनि छूटेगी। महावीर भगवानकी जैसी दिव्यध्वनि छूटती थी, वैसी श्रेणिक राजाकी दिव्यध्वनि छूटेगी। उन्होंने तीर्थंकर गोत्र बान्धा है। श्रेणिक राजाने तीर्थंकर गोत्र बान्धा है। ऐसे चौबीस भगवान होते हैं। वर्तमान चौबीस, भविष्यमें चौबीस, भूतकालमें चोबीस (हुए)। चौबीस भगवान, यह भरतक्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र सबमें चौबीस-चौबीस भवगान होते हैं। और महाविदेहमें बीस विहरमान भगवान हैं। वहाँ महाविदेहमें हमेशा भगवान विराजते हैं। अच्छा काल हो उस समय विदेहक्षेत्रमें हर जगह भगवान होते हैं।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन सबको क्यों नहीं हो जाता?

समाधान :- पुरुषार्थ करे तो हो। करना स्वयंको है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, गुरुदेवने कहा न, जो पुरुषार्थ करे उसे होता है। कोई किसीको कर नहीं देता। अनन्त तीर्थंकर हुए, मुनिवर हुए, गुरुदेव जैसे जागे तो गुरुदेव कहते थे कि तू कर तो होगा। कोई किसीको कर नहीं सकता। कोई किसीको जबरन नहीं (करवा देता)। स्वयंको रुचि हो और स्वयंको रुचे नहीं कि ये विभाव अच्छा नहीं है, ये संसार महिमावंत नहीं है, महिमा तो मेरे आत्मामें है। सर्वस्व मेरे आत्मामें है, ये सब तुच्छ और निःसार है। ऐसा स्वयंको अंतरमें लगे और जीव पुरुषार्थ करे, भेदज्ञान करे उसे सम्यग्दर्शन होता है।

मुमुक्षु :- भवका दुःख लगना चाहिये?

समाधान :- हाँ, दुःख लगना चाहिये कि ऐसे जन्म-मरण करते-करते जीव अनन्त बार दुःखी हुआ। अनन्त बार नर्कमें, निगोदमें ऐसे जन्म-मरण होते रहते हैं। मैं आत्मा शाश्वत हूँ, ऐसे स्वयंको पहचाने, वैराग्य करके, तो सम्यग्दर्शन होता है।

मुमुक्षु :- दिन-रात उसीका रटन।

समाधान :- वही रटन। उसका गहरा बेसब्री-से रटन होना चाहिये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३०

समाधान :- ... तो भी बारंबार उसीको याद करते रहना। एकत्वबुद्धि अनादिकी है तो बाहर लग जाता है तो भी बारंबार उसे अपनी ओर दृढ़ करना। महिमा और लगन।

मुमुक्षु :- वैराग्य और ज्ञान दोनों साथमें (होते हैं)।

समाधान :- हाँ, ज्ञान-वैराग्य दोनों साथमें (होते हैं)।

मुमुक्षु :- वैराग्य पहले आता है न? बादमें ज्ञान होता है न?

समाधान :- दोनों साथमें होते हैं। स्वयंने अपना अस्तित्व ग्रहण किया कि मैं ज्ञायक हूँ और परसे भिन्न पड़ता है। ज्ञान और वैराग्य दोनों साथमें होते हैं।

मुमुक्षु :- शुभाशुभ तो चलते ही रहते हैं।

समाधान :- शुभाशुभ अनादिका जुड़ा है। उससे भिन्न पड़े, भेदविज्ञान करे। मूलमें-से बादमें जाता है, पहले उसका भेदज्ञान करे। स्वभाव पहचाने कि मैं भिन्न हूँ और ये भिन्न है। अपना अस्तित्व पहचाने और मैं पर-से भिन्न, ऐसे विरक्ति। ज्ञान और वैराग्य साथमें होते हैं।

मुमुक्षु :- दृष्टि बदलनी है।

समाधान :- दृष्टि बदलनी है।

समाधान :- .. जगतमें भगवान सर्वोत्कृष्ट हैं और उनकी प्रतिमाएँ शाश्वत हैं। नंदिश्वरमें, मेरु पर्वतमें, देवलोकमें बहुत जगह (हैं)। रत्नके मन्दिर और रत्नकी प्रतिमा हैं। भगवान मानो बोले या बोलेंगे, ऐसे दिखे। ऐसे रत्नकी प्रतिमाएँ होती हैं। एक वाणी नहीं होती, बाकी सब है। मानों समवसरणमें बैठे हों।

मुमुक्षु :- अष्टाह्निकाकी पूजा करनेमें अपनेको क्या लाभ होता है?

समाधान :- भगवानकी पूजासे भगवानकी महिमा, जिनेन्द्र देवकी महिमा आये। भगवान वीतराग हैं, वीतरागी देवकी महिमा आये। आठ दिन देव करते हैं। और यहाँ मनुष्य भी करते हैं। उसमें एक जातकी जिनेन्द्र भगवानकी महिमा है। जगतमें सर्वसे जिनेन्द्र देव सर्वोत्कृष्ट हैं। इसलिये जिनेन्द्र भगवानका जितना करे उतना कम है। उसमें नित्य नियममें श्रावकोंको पूजा होती है। उसमें अष्टाह्निकामें तो आठ दिन देव करते

हैं और मनुष्य भी करते हैं।

भगवान जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं। श्रावकोंको देव, गुरु और शास्त्रकी पूजा, भक्ति गृहस्थाश्रममें होती है। स्वयं अपनेको पहचानता नहीं है, परन्तु भगवान जो सर्वोत्कृष्ट हैं, भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचानता है। भगवानका स्वरूप यदि उसके ख्यालमें आये, महिमा करते-करते, अपना ध्येय हो तो स्वयंको पहचाननेका कारण बनता है। यदि अपना ध्येय हो तो। नहीं तो पूजा,.. भगवानकी महिमा आये, भगवानका स्वरूप पहचाननेका कारण बनता है। जगतमें महिमा करने योग्य हो तो जिनेन्द्र देव हैं। प्रत्येक आदमी संसारमें सांसारिक प्रसंग और उत्सव मनाते हैं, परन्तु भगवानका उत्सव मनाये वह तो सर्वोत्कृष्ट है। गृहस्थाश्रममें अन्य प्रसंग-से भगवानका उत्सवन मनाना, वह श्रावकोंके लिये ऊँचा है, उत्तम है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- देवोंकी तो बहुत शक्ति होती है न, इसलिये..

मुमुक्षु :- अवधिज्ञान..

समाधान :- हाँ, उन्हें तो अवधिज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- हम जाकर आ गये।

समाधान :- देवलोकमें भी समझे बिना जाकर आये। गुरुदेवने कहा न कि तू भगवानका स्वरूप पहचान। समझे बिना ओघे-ओघे किया। पुण्य बन्ध हो। जाकर आया जीव, बहुत बार जाकर आया। परन्तु समझे बिना जाकर आया। भगवान किसे कहते हैं, वह समझे बिना जाकर आया। सच्ची रुचि और सच्ची जिज्ञासा, भगवान पर जो अंतर-से भावना आये और भक्ति आये, ऐसे भावसे नहीं गया। सम्यग्दर्शन बिना गया और भावभक्ति बिना, अंतरकी रुचि बिना गया। इसलिये पुण्य बन्ध हुआ।

समाधान :- .. ध्वनि छूटनेका काल और वहाँ एक क्षण पहले तो गौतमस्वामी... वहाँ इन्द्र देवका रूप लेकर जाता है तो आश्चर्य होता है। देवलोक... कौन है? द्रव्य कितने होते हैं? आपने कहाँ-से समझा? और कौन है? उसे आश्चर्य लगा। पात्रता है न। नहीं तो स्वयं मानों सर्वज्ञ है, ऐसा मानते थे। मेरे जैसा कोई नहीं है। शिष्योंको पढ़ाते थे। ये कौन है, ऐसा कहनेवाला? आश्चर्य लगा। थोड़े प्रश्नोंमें आश्चर्य लगा। देखने आते हैं। आपके गुरु कौन हैं? मुझे दर्शन करना है। दूर-से देखा। सरल हृदय है और पात्र है, दूसरा कोई विचार नहीं आता। मानस्तंभ देखकर आश्चर्यमें डूब जाते हैं। ये कौन है? मैं तो ऐसा समझता था कि मैं सर्वज्ञ हूँ। ये कौन है? मानस्तंभ देखकर (ऐसा लगता है), ये मानस्तंभ! ऐसे कौन भगवान है कि जिसके आगे ऐसी रचना होती है। ये क्या है? आश्चर्यमें डूब जाते हैं। उस आश्चर्यमें उन्हें आत्माका आश्चर्य

(लगा) और उसमें भेदज्ञान हो गया। यह सब कैसा? मानते थे अद्वैत और भेदज्ञान हो गया।

मानस्तंभको देखकर सम्यग्दर्शन हो गया। एक क्षणमें पलट गया। लंबा पुरुषार्थ नहीं करना पड़ा। क्योंकि अन्दर तैयारी थी। विचार कर-करके सब वेदान्तका बिठाया था। रुचि इस धर्म ओरकी परन्तु बैठा था दूसरा। परन्तु हृदय इतना सरल था कि क्षणमें पलट गये। नहीं तो इस कालमें तो बैठा हो, विपरीत अभिप्राय निकालना मुश्किपल है। वे तो क्षणमें पलट गये। अभी तो भगवानकी वाणी नहीं छूटी नहीं है वहाँ हो गया। आगे-आगे समवसरणमें चलते जाते हैं पात्रता बढ़ती जाती है। ... आगे गये वहाँ तो मुनिदशा और जहाँ भगवानकी ध्वनि छूटी तो चार ज्ञान (प्रगट हो गया)। कितनी देरमें सब परिवर्तन! कैसी आत्माकी योग्यता!

मुमुक्षु :- देवोंकी लायकात..

समाधान :- उसके लिये ध्यान करने बैठे या आराम-से बैठे, ऐसा कुछ नहीं। मात्र देखते जाते हैं और पलट जाते हैं। सबको पढ़ानेवाले। तीन भाई थे। इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति। उसमें मुख्य ये हैं।

मुमुक्षु :- लायकात कैसी!

समाधान :- आत्मा अंतर्मुहूर्तमें पलटता है कैसे! मैं जानता हूँ और मैं सर्वज्ञ (हूँ)। मैं मानता था वह सब जूठा है, ऐसा हो गया। मैं सर्वज्ञ हूँ ऐसा मानता था, और वह जूठा? इसलिये मेरा सब जूठा। ऐसा अन्दर विश्वास आ गया। मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ। सर्वज्ञ भगवान कोई अलग हैं, ऐसा लगता है। मेरे पास नहीं है। उसमें एक जूठा है तो सब जूठा है। ऐसे उनकी पात्रता बदल गयी। अन्दर लायकात है न! परिणति बदल गयी। क्षणमें मेरा जूठा है, ऐसे परिणति बदल गयी। देख-देखकर अन्दर-से पात्रता ऐसी है कि भेदज्ञान और अन्दर सब (हो गया)।

द्रव्य कितने? तत्त्व कितने? ऐसा पूछा न (तो लगा) ये सब क्या पूछा? ऐसा नहीं कहा कि तेरा जूठा है। विचारमें पड़ गये। कैसा परिवर्तन हो गया! लंबा विचार किया या भगवान कहते हैं और मैं विचार करुँ फिर मैं बिठाऊँ, या मैं ध्यान करुँ, चौथा आये, फिर छठवाँ-सातवाँ आया, ऐसा कुछ नहीं। वैसे तो उनको धर्म-ओर वृत्ति थी। परन्तु धर्मकी ओर हो तो अभी पंचमकालमें हो तो विपरीत अभिप्राय घुस गये हो। स्वयंको बड़ा मान लिया हो। ... दिव्यध्वनिका धोध बहा। ... उपादान-निमित्तका सम्बन्ध ऐसा है। ध्वनि ध्वनिके कारण (छूटी)। गौतमस्वामीकी योग्यता उनके कारण, गणधर गणधरके कारण, भगवान भगवानके कारण। आनन्दसे बरसे। वाणी नहीं छूटती थी उसमें-से वाणी छूटी तो आनन्द-आनन्द हो गया। भरतक्षेत्रमें सबको आनन्द

हो गया। आज भगवानकी ध्वनि छूटी।

भरतक्षेत्रमें हर जगह ख्याल हो ना कि भगवान विराजते हैं, वाणी नहीं छूटती है। तृषातुर सब राह देखकर बैठे थे। भगवान कब बोले? भगवानकी वाणी कब छूटे? मुनिओं, श्रावक, श्राविका, राजा, चातक पक्षीकी भाँति भगवानकी ध्वनि... उस समय कितने ही मुनि बन गये, श्रावक, श्राविका, सब पलट गये। भगवानकी ध्वनिके साथ सम्बन्ध है।

... बीचमें ... था, इसलिये कितने समय बाद भगवानकी वाणी छूटी। पार्श्वनाथ भगवानके बाद कुछ काल गया, उसके बाद महावीर भगवान हुए। ... लेकिन ध्वनि नहीं छूटती थी। द्वादशांगकी रचना होती है। वाणीका धोध... कितने ऋद्धिधारी मुनि हो गये, किसीको मनःपर्ययज्ञान, किसीको अवधिज्ञान, किसीको चार ज्ञान,किसीको ऋद्धि (प्रगट हो गयी)। भगवानकी वाणी छूटी वहाँ उपादान-निमित्तका सम्बन्ध हो गया। कितने ही मुनि (बन गये)। चारणऋद्धिधारी, अनेक जातकी ऋद्धि आती हैं, वह सब कितनोंको प्रगट हो जाती है। ... ऐसा प्रबल निमित्त है। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है।

श्वेतांबरमें ऐसा कहते हैं कि, भगवानकी ध्वनि खाली गयी, कोई गणधर नहीं था इसलिये। ऐसा नहीं बनता, भगवानकी वाणी खाली नहीं जाती। ध्वनि छूटे नहीं ऐसा हो सकता है। भगवानकी वाणी प्रबल निमित्त है, कभी खाली नहीं जाती। भगवानकी ध्वनि छूटे। सामने उतने उपादान तैयार होते हैं। कितने ही मुनि और कितने ही श्रावक (बन जाते हैं)। किसीको कोई ज्ञानकी लब्धि, ... भगवानका ऐसा निमित्त प्रबल था। ... कितनी ऋद्धि, कितने मुनिवर, कोई केवलज्ञानी, ... ये सब हुए तब शिवभूति, वायुभूति वे सब गणधर बन गये।

गौतमस्वामीने परिवर्तन किया तो सबने परिवर्तन किया। ... कितने समय-से बादल होते थे, लेकिन वर्षा नहीं हो रही थी। ... भगवानको केवलज्ञान हुआ तबसे बादल हुए, लेकिन वर्षा नहीं हुयी। इन्द्रको अवधिज्ञान (का उपयोग) रखनेका विचार आया, क्यों ध्वनि छूटती नहीं? भगवान हैं न, तीर्थंकर भगवान। छूटेगी, छूटेगी, ऐसे आशामें दिन निकालते थे। फिर एकदम विचार आया कि ये क्या कारण बना है? ... वाणी छूटती नहीं है। .... समवसरणमें श्रेणिक राजा, राजगृही नगरीमें मुख्य राजा, सब आये, वापस चले जाय। इंतजार करे। किसीको ऐसा हो जाता है न, बहुत भाविक हो, हम घर जा रहे हैं और पीछे-से भगवानकी ध्वनि नहीं छूटेगी न? ऐसा हो जाता है। ... गुरुदेवका प्रवचन समय पर चलता था। कुछ ऐसा हो तो ऐसा हो जाय। सबको बैठे रहनेका मन हो जाता था।

... केवलज्ञान प्राप्त किया है। जगतसे अलग ही लगे। इसलिये भगवानका दर्शन

करना अच्छा लगे। लौकिकसे अलौकिक मुद्रा हो गयी है। अन्दर आत्मामें समा गये हैं। नासाग्र ... कुछ हिलना-चलना नहीं दिखता। केवलज्ञानीकी मुद्रा देखनी हो, उनके दर्शन करना हो ... अंतरमें ऊतरे हुए, ... अलौकिक, जगत-से अलग ही मूर्ति लगे। मनुष्य जैसी नहीं, वह तो अलौकिक मूर्ति! अंतरमें समा गये हैं। सभा भरी है तो भी भगवान अंतरमें, किसीके सामने देखते नहीं। किसीका सुनते भी नहीं। भगवान बोलो। कुछ जवाब भी नहीं देते हैं और सुनते भी नहीं है। कौन कहे? भगवान बोलो, ऐसा कहे तो भी भगवान तो अंतरमें विराजते हैं। उनके दर्शन करनेमें कोई अपूर्वता लगे। बोलते नहीं है। वे कहाँ ध्यान देते हैं। ...

कोई पूजा करे, कोई ऐसा सब करते हो, परन्तु भगवानकी ध्वनि नहीं छूटती है। श्रावक आये। वाणी छूटती नहीं है। छत्र, चँवर, दुन्दुभी सब है, लेकिन दिव्यध्वनि... अष्ट प्रातिहार्यमें दिव्यध्वनि नहीं छूटती है। ... सभामें बैठे हो ... ठीक न हो और बाहर आकर बैठे हो, गुरुदेव बोलेंगे तो? बोलेंगे इसलिये किसीको घर जानेका मन नहीं होता था।

जिनके जन्म समय इन्द्र हज़ार नेत्र करके भगवानको देखता है। समवसरणके अन्दर आत्मामें समा गये हैं और भगवानकी मुद्रा अलग हो गयी है। ...

१५:५० मिनट पर्यंत। (नोंध :- अवाज स्पष्ट नहीं है)।

ट्रेक-२३१

समाधान :- ... सौराष्ट्र, गुजरात, हिन्दीमें तो सब तैयार (हो गये)। आत्माकी ओर मुड़ गये। आत्माकी रुचि प्रगट हुयी। अंतरमें मार्ग है, बाहर नहीं है। वह सब दृष्टि गुरुदेवने बतायी। कितने ही क्रियामें रुके थे, क्रियासे धर्म होता है, शुभभाव करे तो धर्म होता है, इससे धर्म होता है। शुभभाव-से पुण्य बन्धता है, धर्म तो होता नहीं। धर्म तो शुद्धात्मामें होता है। पूरा मार्ग गुरुदेवने बताया। स्वानुभूति अंतरमें (होती है), यह गुरुदेवने बताया।

स्वानुभूतिका स्वरूप, मुनिदशाका स्वरूप सब गुरुदेवने बताया। मुनि छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हो, क्षणमें अंतरमें, क्षणमें बाहर ऐसी दशा मुनिओंकी होती है। सब गुरुदेवने बताया। .. रुके थे, कोई शुद्धि-अशुद्धिमें रुके थे। अंतरमें भेदज्ञान करने-से धर्म होता है। शरीर भिन्न, विकल्प भिन्न, सबसे भिन्न आत्मा न्यारा है उसे पीछान। ज्ञायक स्वरूप आत्माको पहचान। अंतर भेदज्ञान (करके) स्थिर हो जा, अन्दर यथार्थ प्रतीति करके स्थिर हो जा। अंतरमें गुरुदेवने मुक्तिका मार्ग प्रगट किया। स्वयंने प्रगट करके दूसरोंको दर्शाया।

प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रता, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। कोई किसीका कुछ नहीं कर सकता। स्वयं अपना उपादान करता है। उसके साथ निमित्त-उपादानका सम्बन्ध कैसा होता है, सब गुरुदेवने बताया। पहले-से आखिर तकका, सम्यग्दर्शनसे लेकर केवलज्ञान पर्यंत सब गुरुदेवने बताया।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- शास्त्र अभ्यास तो बीचमें आता है। जबतक स्वयं अंतरमें यथार्थ जानता नहीं है कि क्या ज्ञायक स्वरूप है? भेदज्ञान नहीं होता। गुरुदेवकी वाणी अन्दर याद करता रहे। गुरुदेवने क्या मार्ग बताया है? स्वयं अन्दर विशेष स्थिर न हो सके (तो) शास्त्राभ्यास तो बीचमें आता है।

मुमुक्षु :- ... लेकिन यहाँ-से जाते हैं तब...

समाधान :- शास्त्र अभ्यास करना। गुरुदेवने शास्त्रके अर्थ कैसे किये है, उसके अनुसार शास्त्रका स्वाध्याय करना। शास्त्र स्वाध्याय तो बीचमें होता है। अंतरमें एक ज्ञायक

भिन्न (है, उसका) भेदज्ञान कैसे हो? और बाहरमें शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्र होते हैं। श्रुतका चिंतवन, देव-गुरुकी महिमा। मुनिओंको भी श्रुतका चिंतवन होश्रता है। छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हो तो भी। स्वानुभूतिमें अंतरमें जाते हैं और अंतर्मुहूर्त बाहर आते हैं तो श्रुतके विचार होते हैं। बीचमें शास्त्रका अभ्यास होता है। लेकिन आत्माके लक्ष्य-से, आत्मा कैसे पहचानमें आये? आत्मा भिन्न है, उसका भेदज्ञान कैसे हो? यह लक्ष्य होना चाहिये।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन तो नहीं हुआ है, परन्तु दृढ़ निश्चय किया है कि इस भवमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही है। दूसरे कोई कार्यमें रस नहीं आता। परन्तु इस भवमें यदि प्राप्त न कर सके तो यह रस, रुचि दूसरे भवमें काम (आता है)? भविष्यमें काम आता है कि नहीं?

समाधान :- अपूर्व रुचि। अंतर-से ऐसी प्रगट हुयी हो तो वह रुचि अपने साथ आती है। वह आती है। उसके संस्कार जो गहरे पड़े हों, तो जहाँ जाय वह अन्दरमें-से स्फुरते हैं। आत्मा भिन्न है, वह भिन्न कैसे प्राप्त हो? ऐसी गहरी रुचि और संस्कार हो, भले दृढ़ निश्चय हो, परन्तु पहुँचा नहीं हो तो वह संस्कार उसे प्रगट होते हैं। यथार्थ हो तो प्रगट होते हैं।

अनन्त कालमें देव-गुरु-शास्त्रका उपदेश मिला। गुरुका उपदेश मिला, देवका मिला। अंतरमें ग्रहण हो गया कि ये कुछ अपूर्व कहना चाहते हैं। लेकिन अभी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ हो तो उसे दूसरे भवमें भी होता है।

मुमुक्षु :- सच्ची श्रद्धा अन्दरमें दृढ़ की होगी तो वह भविष्यमें काम आती है?

समाधान :- हाँ, काम आती है।

मुमुक्षु :- ... ऐसा योग मिला, फिर भी अभी तक नहीं हुआ है, इसलिये...?

समाधान :- नहीं हुआ है तो अंतरमें स्वयं विचार कर लेना कि पहलेकी जो रुचि अनन्त कालमें की, परन्तु गहराई-से स्वयंने रुचि नहीं की है। सब ऊपर-ऊपरसे ग्रहण किया है। सब स्थूल-स्थूल (किया)। यथार्थ प्रकारसे देव और गुरुको स्वयंको पहचाना नहीं है। और अंतरमें जो आत्माका स्वरूप कहना चाहते हैं, उसकी अपूर्वता नहीं आयी है। इसलिये अनन्त कालमें बहुत किया है, लेकिन हुआ नहीं है। अब, स्वयंको अंतरमें कैसी रुचि है, वह स्वयं पहचान सकता है। यदि अन्दरमें गहरी रुचि हो तो भविष्यमें वह प्रगट हुए बिना रहती ही नहीं।

अन्दरमें ऐसी गहरी रुचि हो कि स्वयंको ऐसी खटक रहती है कि विभावमें कहीं चैन नहीं पड़ती। ये विभाव मुझे चाहिये ही नहीं। मुझे स्वभाव चाहिये। स्वभावकी महिमा अंतरमें-से रहा करे, ऐसी गहरी महिमा रहा करे तो वह साथमें आये बिना नहीं रहता।

अनन्त कालमें कोई अपूर्व रुचिने स्वयंने नहीं की है। सुना है लेकिन अपूर्व रुचि नहीं की है। शास्त्रमें आता है न? तत्प्रति प्रीति चित्तेन, वार्तापि श्रुताः। वह वार्ता भी स्वयंने सुनी तो भावि निर्वाण भाजनम्। भविष्यमें निर्वाणका भाजन (है)। लेकिन वह वार्ता कैसे सुनी? कोई अपूर्व रुचिसे सुनी होनी चाहिये। वह अपूर्व रुचि स्वयंको हो तो वह प्रगट हुए बिना नहीं रहती।

अपूर्व रुचिसे स्वयंने सुना नहीं है, इसलिये अनन्त कालमें सुना लेकिन वह चला गया। अपूर्व रुचि स्वयंकी हो, अन्दर दृढ़ निश्चय हो कि आत्मा प्रगट करना ही है और उतना पुरुषार्थ हुआ न हो तो वह रुचि उसके साथ आये बिना नहीं रहती। रुचि उसे काम आती है। ऐसे गुरुदेव मिले, इतनी अन्दरकी रुचि हो, ऐसे गुरुदेव मिले, ऐसा उपदेशका धोध बहाया, कोई अपूर्वता बताकर अंतरमें स्वयंको लगी हो तो हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- नियमसारमें कलश है कि कारण और कार्य दोनों शुद्ध है। उसका क्या अर्थ होता है? कारण भी शुद्ध है और कार्य शुद्ध है।

समाधान :- कौन-सा कलश आता है कारण-कार्यका? कारण दृष्टि जो प्रगट हुयी वह भी शुद्ध है। यदि कारण शुद्ध है तो उसका कार्य भी शुद्ध है। कारण-कार्य दोनों शुद्ध हैं। कारण जो द्रव्य स्वरूप आत्मा वह कारण है, वह भी शुद्ध है। उसकी दृष्टिकी पर्याय प्रगट हुयी वह भी शुद्ध है। कारण अशुद्ध हो और कार्य शुद्ध हो, ऐसा नहीं बनता। कारण-कार्य दोनों शुद्ध होते हैं।

मुक्तिका मार्ग जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र है वह भी शुद्ध है और मुक्तिकी पर्याय प्रगट होती है, वह भी शुद्ध है। द्रव्य स्वरूप आत्मा है वह भी शुद्ध है। उसकी दृष्टि प्रगट होती है, विषय भी शुद्ध है, उसकी पर्याय शुद्ध है। और मुक्तिका मार्ग जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट होता है वह मुक्तिका कारण है। तो वह भी शुद्ध है। उसकी पर्याय प्रगट होती है वह भी शुद्ध है। कारण भी शुद्ध है और कार्य भी शुद्ध है। द्रव्य अपेक्षासे भी शुद्ध है, पर्याय अपेक्षासे भी शुद्ध है। .. वह भी शुद्ध है, मुक्तिकी पर्याय होती है वह भी शुद्ध है। द्रव्यस्वरूप आत्मा भी शुद्ध है। उसकी जो दृष्टि होती है, वह भी शुद्ध है।

मुमुक्षु :- कारण-कार्य द्रव्य-पर्यायमें भी है और कारण-कार्य पर्याय-पर्यायमें भी है।

समाधान :- हाँ, पर्याय-पर्यायमें है। मुक्तिका मार्ग और मुक्ति-पूर्ण मुक्ति। वह भी कारण-कार्य। और द्रव्य कारण, पर्याय कार्य। वह भी शुद्ध है। द्रव्यमें भी द्रव्य और पर्याय उसमें भी कारण-कार्य है। पर्याय-पर्यायमें भी कारण-कार्य होता है। ऐसा भी व्यवहार होता है। मुक्तिका मार्ग कारण और मुक्तिकी पर्याय कार्य, ऐसा भी होता है।

व्यवहारमें मुक्तिका मार्ग भी कारण है और मुक्तिकी पर्याय कार्य है। ऐसा भी कारण-कार्य होता है।

मुमुक्षु :- कारण शुद्ध और कार्य अशुद्ध ऐसा नहीं होता।

समाधान :- ऐसा नहीं होता। मूल तो द्रव्य शुद्ध है। इसलिये द्रव्यकी दृष्टि... द्रव्य कारण और पर्याय कार्य है। वह मुक्तिका मार्ग है। बादमें व्यवहारमें मुक्तिका मार्ग कारण है और मुक्तिकी पर्याय (कार्य है)। परन्तु कारण अशुद्ध और कार्य शुद्ध, ऐसा नहीं होता है। कारण अशुद्ध नहीं होता है। पंच महाव्रत कारण होता है और उसका कार्य शुद्ध होता है, ऐसा नहीं होता। पंच महाव्रत शुभ परिणाम कारण होता है और उसका चारित्र शुद्ध होता है, ऐसा नहीं होता है। अणुव्रत, महाव्रत शुभ परिणाम है। वह तो बीचमें आता है। शुभभावका कारण-कार्य जो कहनेमें आता है वह व्यवहार है। शुभ कारण और शुद्ध कार्य, ऐसा नहीं होता। अशुद्धका कारण-कार्य नहीं होता। शुभ कारण और शुभ कार्य, ऐसा होता है। साधक पर्याय शुद्ध है, पूर्णता शुद्ध है। द्रव्य शुद्ध है, उसकी पर्याय शुद्ध, दृष्टिकी पर्याय शुद्ध है। ऐसा शुद्ध होता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य-पर्यायमें कारण-कार्य ले (तो) कारण तो सबके पास शुद्ध है। तो कार्यमें अशुद्धता क्यों रहती है? कारण तो सबके पास शुद्ध है अनादिअनन्त, तो कार्यमें अशुद्धता क्यों रहती है?

समाधान :- कारण क्या? मोक्षका कारण क्या? द्रव्यमें अशुद्ध परिणति अनादि-से होती ही है। द्रव्य उसका कारण नहीं होता है। वह मुक्तिका कारण-कार्य कहाँ है? वह तो विभाविक पर्याय है। विभावमें उसका द्रव्यका कारण नहीं होता है। शुद्ध कारण और अशुद्ध विभाव पर्याय, ऐसा नहीं होता। पुरुषार्थकी मन्दतासे विभाव परिणति होती है। वह कारण है। मुक्तिका कारण नहीं है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीके सारे भाव ज्ञानमय होते हैं। उसका स्वरूपका खुलासा।

समाधान :- ज्ञानीकी दिशा और दृष्टि पलट गयी। द्रव्य तरफ दृष्टि हो गयी, उसकी परिणति भी द्रव्य तरफ हो गयी। इसलिये ज्ञानीका सब कार्य ज्ञानमय होता है। विभाव अल्प होता है-अस्थिरता, तो वह गौण है। इसलिये उसका सब कार्य ज्ञानमय ही होता है।

ज्ञाताकी धारा उसको चलती है। स्वानुभूति तो होती है, परन्तु वर्तमान ज्ञाताकी धारा, भेदज्ञानकी धारा रहती है। जो-जो विभाव आवे तो क्षण-क्षणमें ज्ञाताकी धारा, ज्ञायककी धारा न्यारी रहती है। इसलिये ज्ञानीकी सब परिणति ज्ञानमय होती है, ज्ञातामय होती है, साक्षीमय होती है। विभावको गौण कहनेमें आता है। इसलिये ज्ञानीका सब कार्य, उसकी सब परिणति ज्ञानमय होती है। वह अज्ञानमय नहीं होती है, एकत्वबुद्धिरूप नहीं होती है। विभाव होता है तो उससे न्यारा रहता है। इसलिये उसका सब कार्य,

अंतरकी जो परिणति है वह सब ज्ञानमय होती है।

ज्ञानीकी सब परिणति, सब कार्य, सब पर्याय ज्ञानमय होती है, अज्ञानमय नहीं होती है। ज्ञानमय होती है। उसकी दिशा पलट गयी। ज्ञायक जो आत्मा, उसकी तरफ उसकी दृष्टि चली गयी तो परिणति उस तरफ चली गयी। इसलिये सब परिणति ज्ञानमय होती है। एकत्वबुद्धि है वह अज्ञान है। ज्ञायककी धारा नहीं है, इसलिये उसके सब कार्य अज्ञानमय होते हैं। ज्ञायककी धारा प्रगट हो गयी, इसलिये उसके सब कार्य ज्ञानमय होते हैं। ज्ञायककी धारा चालू ही रहती है। विभाव जो-जो आये तो उसमें ज्ञायककी धारा भिन्न ही रहती है। इसलिये सब परिणति ज्ञानमय होती है।

मुमुक्षु :- .. सविकल्प होती है या निर्विकल्प?

समाधान :- ज्ञायककी धारा-ज्ञानधारा सविकल्प भी होती है और निर्विकल्पमें तो विकल्प नहीं है। निर्विकल्पमें भी ज्ञानधारा है और सविकल्पमें भी ज्ञानधारा है। दोनोंमें ज्ञानधारा होती है।

मुमुक्षु :- एक-सी होती है दोनोंमें ज्ञानधारा? सविकल्पमें भी और निर्विकल्पमें भी?

समाधान :- ज्ञायककी धारा उग्र है। निर्विकल्पमें है तो विकल्प नहीं है। ज्ञायक ज्ञायकरूप लीन हो गया है। बाहर आवे तो विकल्पके साथमें है तो भिन्न भेदज्ञानकी धारा रहती है। और स्वानुभूतिमें निर्विकल्प धारा है। सविकल्पमें विकल्पवाली धारा है परन्तु ज्ञानधारा है। उदयधारा और ज्ञानधारा भिन्न-भिन्न है।

समाधान :- .. ज्यादा शुभभाव कर लूँ या ज्यादा क्रिया कर लूँ, बहुत उपवास कर लूँ, ऐसा कर लूँ, उससे जन्म-मरण नहीं टूटता। जन्म-मरण भेदज्ञान करने-से, आत्माको पीछानने-से टूटता है। बीचमें शुभराग आता है तो पुण्यबन्ध होता है। जबतक शुद्धात्मामें लीन नहीं होता है तो शुभराग आता है, लेकिन वह अपना स्वभाव नहीं है। वह हेयबुद्धिसे बीचमें आता है। वह अपना स्वभाव नहीं है। उसका भेदज्ञान करे। और जब लीनता करे तो भी शुभभाव आता है, लेकिन वह अपना स्वभाव नहीं है। उससे जन्म-मरण नहीं टूटता है।

मुनिको भी पंच महाव्रत, श्रावकको अणुव्रत आता है, वह शुभभाव है। वे उसका भेदज्ञान करते हैं। सम्यग्दर्शनपूर्वक जो मुनिदशा होती है, वह मुनिदशा है। सम्यग्दर्शनपूर्वक। स्वानुभूति मुनिओंको क्षण-क्षणमें आत्मामें लीन होते हैं। ऐसे स्वरूपकी प्राप्ति होती है। चारित्र दशा वीतराग दशा केवलज्ञान होता है तब रागका क्षय, वीतराग दशा होती है।

पहले उसका भेदज्ञान होता है कि राग मैं नहीं हूँ, ऐसा श्रद्धान करना, उसका भेदज्ञान करना। सम्यग्दृष्टिको भी गृहस्थाश्रममें स्वानुभूति होती है। स्वानुभूति है वही मुक्तिका मार्ग है, जन्म-मरण उससे (टलते हैं)। बाहर रुकने-से नहीं होता है। अनन्त कालमें

शुभभाव भी बहुत किये। परन्तु वह तो पुण्यबन्धका कारण बना।

आचार्यदेव कहते हैं कि हम तो आगे बढ़नेको, शुद्धात्मा तीसरी भूमिकाकोग्रहण करनेको (कहते हैं), पीछे गिरनेको नहीं कहते हैं। शुभको छोड़कर अशुभ करनेको नहीं कहते हैं। परन्तु शुभ-से (भिन्न) तीसरी भूमिका, शुभभाव-से (भिन्न) तीसरी भूमिका शुद्धात्मा, उसको ग्रहण करो। वह अमृतस्वरूप है उसको ग्रहण करो। शुभभाव शरणरूप नहीं है, बीचमें आता है।

मुमुक्षुको देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, भक्ति, मन्द कषाय मुमुक्षुको होता है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा होती है, परन्तु शुद्धात्माका ध्येय होना चाहिये। मैं शुद्धात्माको कैसे (ग्रहण करुँ)? मेरा आत्मा न्यारा है, ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! जैन धर्म ही सत्य है, ऐसा आपने किस प्रकार-से ... किया?

समाधान :- जैन धर्म ही सत्य है, क्योंकि जैन धर्ममें यथार्थ स्वरूप है। अनेकान्त स्वरूप (है)। आत्मा कोई अपेक्षासे नित्य है, कोई अपेक्षासे अनित्य है, कोई अपेक्षासे एक, कोई अपेक्षासे अनेक (है)। ये जो जैन धर्ममें जो स्वरूप है,.... जैन धर्म कोई वाडा नहीं है, यथार्थ मुक्तिका मार्ग है। वह यथार्थ मुक्तिका मार्ग बताता है। दूसरे अन्य-अन्य मतोमें कोई मात्र क्षणिक मानता है, कोई क्रियामें धर्म मानता है, कोई एकान्त नित्य, कूटस्थ मानता है, कोई ऐसा मानता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप नहीं है।

वस्तुका स्वरूप भीतरमें विचार तो कोई अपेक्षासे आत्मा नित्य (है)। स्वभाव द्रव्य अपेक्षासे नित्य है, पर्याय अपेक्षासे अनित्य है। उसमें गुण अनेक हैं, तो गुण कहीं खण्ड-खण्ड, खण्ड-खण्ड नहीं है। एक वस्तुमें अनन्त गुण है। ऐसा जो भगवानने वीतराग मार्गमें कहा है, वैसा अन्यमें नहीं है। यही मार्ग सत्य है। आत्मामें अशुद्धता तो पर्यायमें है। वास्तविक द्रव्य तो शुद्ध है। तो कोई कहता है कि एकान्त शुद्ध है। पर्यायमें अशुद्धता है और द्रव्य अपेक्षासे शुद्ध है। ऐसा जो जैन दर्शनमें जो वस्तुका स्वरूप भगवानने बताया है, ऐसा कीधर भी नहीं है।

उसका रहस्य गुरुदेवने प्रगट किया है कि वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है। और आत्मामें स्वानुभूतिमें आत्माका अस्तित्व ग्रहण करो, उसका भेदज्ञान करो। उससे आत्मामें स्वानुभूति होती है। ऐसा जैन धर्ममें है, वैसा कीधर भी नहीं है। यथार्थ यही मार्ग है। अनेकान्त स्वरूप-द्रव्य अपेक्षासे नित्य, पर्याय अपेक्षासे अनित्य। यह जैनदर्शनमें है, ऐसा किसीमें नहीं है। कोई एक-एक, एक-एक वस्तुको कहता है। कोई क्षणिक सर्वथा, कोई सर्वथा नित्य, कोई सर्वथा अनेक, कोई कहता है, परको जानता है, अपनेको नहीं जानता है, कोई कहता है, अपनेको जानता है, परको नहीं जानता है, ऐसे अनेक मतमतांतर

(चलते हैं)। जो वस्तु स्वरूप है, जैसा भगवानने कहा ऐसा शास्त्रमें आता है। गुरुदेवने ऐसा मार्ग प्रगट किया, ऐसा कीधर भी नहीं है। ये अपूर्व स्वरूप है।

आत्मा कोई अचिंत्य अनेकान्तमयी मूर्ति, अनेकान्तमय मूर्ति आत्मा है। चारों ओर-से, सब पहलू-से देखो तो वह अनेकान्त स्वरूप है। जो अपेक्षा-से नित्य है, वही अपेक्षा-से अनित्य नहीं है। अनित्यकी अपेक्षा भिन्न और नित्यकी अपेक्षा जुदी है। द्रव्य अपेक्षा-से नित्य और पर्याय अपेक्षासे अनित्य, ऐसा है। ऐसा कोई कहता है, व्यवहार भी है, निश्चय भी है। व्यवहारकी अपेक्षा जुदी है और निश्चयकी अपेक्षा जुदी है। निश्चय वस्तु स्वरूप है और व्यवहार पर्याय अपेक्षा है। दोनों अपेक्षा भिन्न-भिन्न है। जैसा है ऐसा समझना चाहिये। तो मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। एकान्त शुद्ध मान ले तो कछ करना नहीं रहता है। (एकान्त) अशुद्ध मान ले तो अशुद्ध शुद्ध कैसे होवे? जो शुद्ध है द्रव्य अपेक्षासे, तो भी अशुद्ध सर्वथा नहीं है तो पुरुषार्थ किसका करना? इस अपेक्षासे पर्यायमें अशुद्धता है और द्रव्यमें शुद्धता है। द्रव्य पर दृष्टि करके पर्यायमें अशुद्धता है वह टूटती है। और श्रद्धा-ज्ञान करके जो स्वभावमें-से प्रगट होता है, विभावमें-से नहीं आता है। स्वभावकी दृष्टि करने-से पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती है। ऐसे मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। अनेकान्त समझे बिना मुक्तिका मार्ग प्रगट नहीं होता। आत्मामें सुख नहीं होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३२

मुमुक्षु :- अनेकान्तका आश्रय कैसे करना?

समाधान :- अनेकान्तका आश्रय तो यथार्थ स्वरूप समझने-से होता है। पहले ज्ञानमें यथार्थ समझना चाहिये कि वस्तुका स्वरूप ऐसा है। यथार्थ विचार करके निर्णय करना चाहिये। भीतरमें जो स्वभाव है उसको लक्ष्यमें लेना चाहिये। मैं चैतन्य स्वरूप हूँ, ये मेरा ज्ञायक स्वभाव है। ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। विभाव तो है, पर्याय अपेक्षा-से है। द्रव्य अपेक्षासे नहीं। ऐसा यथार्थ वस्तु स्वरूपका निर्णय करना चाहिये। युक्ति, दलील यथार्थ रीतसे नक्की (करना चाहिये)। युक्ति, दलीलसे ऐसे नक्की करना कि जो वस्तु है, वैसे यथार्थ नक्की करना चाहिये।

जो गुरुदेवने कहा, जो भगवान कहते हैं, शास्त्रमें आता है उसके साथ मिलान करके, अपने विचार करके युक्तिके अवलम्बन-से नक्की करना चाहिये। पहले युक्तिके अवलम्बन-से आगमके आश्रय-से, देव-गुरु-शास्त्रकी जो प्रत्यक्ष वाणी सुने उसके आश्रय-अवलम्बन-से, युक्तिके अवलम्बन-से फिर उसका भेदज्ञान करके स्वानुभूति-से नक्की होता है। पहले युक्तिके आलम्बन-से नक्की होता है, विचार करने-से। देव-गुरु-शास्त्र और युक्तिका आलम्बन।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें आता है कि तुझे कहीं अच्छा न लगे तो आत्मामें रुचे।

समाधान :- कहीं न रुचे आत्मामें... तेरेको यदि बाहरमें अच्छा न लगे तो, कोई कहता है कि मुझे अच्छा नहीं लगता है। तो अच्छा आत्मामें है। तो आत्मामें दृष्टि कर। उसमें आनन्द पड़ा है। आत्मामें अच्छा है। आत्मामें ऐसा आनन्द और आत्माका स्वभाव, तेरा स्वभाव तुझे अच्छा लगेगा। बाहर तो आकुलता ही आकुलता है। जहाँ देखो वहाँ आकुलता ही है। बाहरमें कुछ शान्ति तो है नहीं। इसलिये तू आत्मा तरफ दृष्टि कर, आत्माको पीछान और आत्मामें लीनता कर। तो इसमें आनन्द भरा है। तो उसमें तुझे अच्छा लगेगा। अपना स्वरूप है इसलिये तुझे अनुकूल और तुझे आनन्द स्वरूप लगेगा, तू उसमें रुचि कर।

अपना स्वघर है, तेरा स्वभाव है, इसलिये वह आनन्द दायक है। उसमें तू जा। उसकी प्रतीत कर, ज्ञान कर, उसमें जा तो तुझे अच्छा लगेगा। शास्त्रमें आता है न?

इसमें सदा प्रीति कर, रुचि कर, तुझे उत्तम सुख प्राप्त होगा। तुझे आश्चर्यकारी उत्तम सुख तेरे आत्मामें-से प्रगट होगा। आत्मामें रुचि कर, प्रीति कर और आत्मामें सुख प्रगट होगा। आत्मामें-से सुख प्रगट होगा। ज्ञानस्वरूप आत्मा, ज्ञायकस्वरूप आत्मामें प्रीति कर। आत्मामें सब कुछ भरा है, बाहरमें कुछ नहीं है। ज्ञानस्वरूप आत्मामें सब भरा है। वह संतुष्टरूप है। उसमें तुझे संतोष होगा। उसमें तुझ तृप्ति होगी। बाहर जानेकी इच्छा भी नहीं होगी। इसलिये तू तेरे आत्मामें अच्छा लगा। उसमें आनन्द भरा है।

मुमुक्षु :- अनेकान्त वस्तुके स्वरूपको दर्शाता है। उसमें द्रव्यका आश्रय आ जाता है?

समाधान :- अनेकान्त स्वरूपमें? हाँ, द्रव्यका आश्रय आ जाता है। अनेकान्त स्वरूप, जिसको यथार्थ अनेकान्त स्वरूप प्रगट होता है, अनेकान्तका निर्णय होता है तो उसको द्रव्य पर दृष्टि होती है। द्रव्यसे शुद्ध हूँ, ऐसे द्रव्य पर दृष्टि करे। ज्ञानमें सब अनेकान्त स्वरूप आ जाता है। तो ऐसी दृष्टि सम्यक् होती है। अनेकान्त उसको ख्यालमें नहीं रहता तो दृष्टि सम्यक् नहीं होती है। ज्ञान और दृष्टि दोनोंको सम्बन्ध है। दृष्टि एक द्रव्य पर करने-से कि मैं शुद्ध हूँ, तो ज्ञानमें ख्याल रहता है कि मैं अशुद्ध किस अपेक्षासे हूँ, शुद्ध किस अपेक्षासे है, ऐसा अनेकान्त स्वरूप उसके ज्ञानमें रहता ही है। उसको सम्यक्ज्ञान कहते हैं। दृष्टि भी सम्यक् होती है।

दृष्टिमें भले मैं शुद्धात्मा हूँ, दृष्टिमें ऐसा आवे, परन्तु ज्ञानमें सब अनेकान्त स्वरूप आता है। दृष्टिके साथ अनेकान्त स्वरूप प्रगट हो जाता है। दृष्टिके साथ अनेकान्तका ज्ञान प्रगट हो जाता है। अनेकान्त स्वरूप तो है। उसका ज्ञान आ जाता है, दृष्टिके साथ। दृष्टि सम्यक् होती है तो ज्ञान सम्यक् हो जाता है। सब अपेक्षा ज्ञानमें आ जाती है। एक द्रव्य और पर्याय, ये दो अपेक्षामें सब अपेक्षा आ जाती है। अनेकान्त सब इसमें आ जाता है। द्रव्य-पर्यायका ज्ञान करनेसे। द्रव्य-गुण-पर्याय, उसमें सब अपेक्षा आ जाती है।

मुमुक्षु :- सम्यक् एकान्त यानी द्रव्यका आश्रय सहजपने आ जाता है? ये थोड़ा विस्तारसे आप समझाईये। अनेकान्तके निर्णयमें दृष्टिष्टि सम्यक् हो जाती है, इसका स्पष्टीकरण थोड़ा विस्तारसे (समझानेकी कृपा करें)।

समाधान :- अनेकान्तका निर्णय करे तो दृष्टि सम्यक् हो जाती है। दृष्टि, जहाँ उसे अनेकान्त ख्यालमें आया कि मैं शुद्धात्मा, द्रव्य अपेक्षासे शुद्ध हूँ और पर्याय अपेक्षासे अशुद्धता है। तो उसमें उसे दृष्टि द्रव्य पर (होती है कि) मैं चैतन्यका आश्रय ग्रहण करुँ, इस प्रकार चैतन्यका आश्रय लेने-से उसे दृष्टि सम्यक् हो जाती है। और ख्याल रहता है कि पर्यायमें अशुद्धता है। पर्यायमें अशुद्धता है इसलिये उसे पुरुषार्थका ख्याल आदि सब साथ रहता है। नहीं तो अकेला ज्ञान (करे कि) मैं द्रव्य अपेक्षासे शुद्ध

हूँ, पर्याय अपेक्षासे अशुद्ध, मात्र ऐसा करता रहे तो वह तो मात्र उसे विचारका अनेकान्त हुआ। विचारमें अनेकान्तका ऐसा विचार करता रहे कि द्रव्य अपेक्षासे शुद्ध हूँ, पर्याय अपेक्षासे अशुद्ध हूँ। ऐसा विचार करता रहे तो विचार मात्र अनेकान्त रहता है।

परन्तु वह सम्यक् अनेकान्त कब होता है? कि दृष्टि सम्यक् हो तो ही सम्यक् अनेकान्त (होता है)। परिणतिरूप अनेकान्त तब होता है कि दृष्टि सम्यक् हो तो परिणतिरूप अनेकान्त होता है। नहीं तो विचार विचाररूप, अनेकान्तका विचार करता रहे कि द्रव्यसे ऐसा, पर्यायसे ऐसा, वह विचारमें आया, निर्णय किया लेकिन दृष्टि द्रव्य पर स्थापित नहीं होती है तो उसका अनेकान्त विचारमात्र है।

मुमुक्षु :- अनेकान्तका निर्णय भी सच्चा निर्णय नहीं है।

समाधान :- हाँ, मात्र विचार करता है। परिणतिरूप नहीं है। दृष्टि द्रव्य पर और पर्यायका ख्याल रहता है, ऐसी जहाँ परिणति होती है, तो उसके साथ दृष्टि और प्रमाण दोनों साथमें परिणमे तो उसका अनेकान्त ज्ञान (बराबर है), अनेकान्तके साथ दृष्टि सम्यक् एकान्त (होती है), वह दोनों साथमें आ जाते हैं। एकान्त (और) अनेकान्त। अनेकान्तका मात्र विचार करता रहे वह तो मात्र विचार है। निर्णय करनेरूप है, अभ्यासरूप है।

मुमुक्षु :- वह नहीं।

समाधान :- वह नहीं। परिणति हो जानी चाहिये। द्रव्य पर दृष्टि जाय और पर्यायका ख्याल रहे, अन्दर स्वयंकी पुरुषार्थकी डोर चालू हो जाय तो अनेकान्तने अनेकान्तरूप कार्य किया है। उसमें तो अनादिकी एकत्वबुद्धि है, उसमें-से स्वयं भेदज्ञान करके स्वभाव-ओर जाय और पर्यायका ख्याल रखे तो उसे अनेकान्तकी परिणति प्रगट हुयी है।

समाधान :- ... जन्म-मरण, जन्म-मरण संसारमें चलते रहते हैं। आत्मा शाश्वत है। गुरुदेवने बहुत सुनाया है। ग्रहण करने जैसा वह एक ही है। शाश्वत आत्माका शरण, वही सच्चा शरण है। जन्म-मरणमें अनन्त कालमें स्वयंने बहुतोंको छोड़ा और स्वयंको छोड़कर बहुत चले जाते हैं। एक शाश्वत आत्मा ही सर्वोत्कृष्ट है और वही सुखरूप है। उसीका शरण ग्रहण करने जैसा है। बाकी तो संसारमें ऐसा सब चलता ही रहता है।

अनन्त कालमें जीवको सब प्राप्त हो चूका है। गुरुदेवने जो मार्ग बताया-सम्यग्दर्शन-स्वानुभूतिका मार्ग-जो है वह प्राप्त नहीं हुआ है। बाकी कुछ जीवको अपूर्व नहीं है, बाकी सब प्राप्त हो चूका है। आचार्यदेव कहते हैं न, एक सम्यग्दर्शन और जिनवर स्वामी नहीं मिले हैं। बाकी सब जीवको मिला है। जिनवर स्वामी मिले तो स्वयंने पहचाना नहीं है। इसलिये सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो और भवका अभाव कैसे हो, वह करने जैसा है।

भवका अभाव करने (हेतु) अंतरमें आत्मा क्या है? ज्ञायक आत्मा भिन्न कैसे

हो? उसकी परिणति कैसे प्रगट हो, वही पुरुषार्थ करने जैसा है। बाकी शान्ति रखनी। संसार तो ऐसा ही है, संसारका स्वरूप (ऐसा ही है)। जीवने बहुत जन्म-मरण किये हैं। कितने? अनन्त-अनन्त किये हैं। अनन्त (भव) देवके, अनन्त नर्कके, तिर्यंचके, मनुष्यके (किये)। इसमें इस भवमें-मनुष्य भवमें गुरुदेव मिले, वह महाभाग्यकी बात है कि गुरुदेवने यह मार्ग बताया। वह ग्रहण करने जैसा है, वही शान्तिरूप है। जीवों कहाँ पड़े थे बाह्य दृष्टिमें, क्रियाओंमें, उसमें-से गुरुदेवने अंतर दृष्टि करनेको कहा। ज्ञायक आत्माको पहचाननेको कहा।

भेदज्ञान (करे)। यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न। अंतरमें भेदज्ञान करके विभाव आत्माका स्वभाव नहीं है, उससे भिन्न-न्यारा आत्माको पहचानना, वह पुरुषार्थ कैसे हो, वह करने जैसा है। वही सुखका उपाय और शान्तिका उपाय है। शुभ भावनामें देव-गुरु-शास्त्र (और) अंतरमें शुद्धात्माकी पहचान कैसे हो? सच्चा वही है।

मुमुक्षु :- मन्द कषायरूप समाधान तो रहे, परन्तु यथार्थ इस लक्ष्यपूर्वकका समाधान हो तो उसीको समाधान कहें। ऊपर-ऊपर-से तो सब करते हैं कि ऐसा होनेवाला होगा क्रमबद्धमें उस अनुसार हो रहा है। परन्तु लक्ष्यपूर्वकका यथार्थ समाधान कैसे करना?

समाधान :- उसका अभ्यास करना, लक्ष्यपूर्वकके समाधान (के लिये)। ज्ञायक आत्मामें-से कैसे शान्ति प्रगट हो? मेरा आत्मा भिन्न, इन सब विकल्पों-से भी भिन्न आत्मा स्वयं अकेला ही है। उसे कोई परपदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है। इस शरीरके द्रव्य-गुण-पर्यायसे आत्मा भिन्न है। किसीके साथ सम्बन्ध नहीं है। अंतरमें-से इस प्रकार भिन्नता करके अंतरमें-से शान्ति आवे, उसका अभ्यास करना।

सब चीज अनुभवमें, परिचयमें आ गयी है। एक आत्माका स्वभाव परिचयमें नहीं आया है, अनुभवमें नहीं आया है। वह कैसे हो? वह करने जैसा है। इतना समाधान भी गुरुदेवके प्रताप-से सब लोग करना सीखे हैं। ज्ञायकके लक्ष्यसे हो, ज्ञायककी परिणति प्रगट होकर हो, वह अलग बात है, परन्तु इस प्रकारसे समाधान (होना भी) गुरुदेवके प्रताप-से सीखे हैं।

मुमुक्षु :- बापू बहुत कहते थे कि गुरुदेवके प्रताप-से ऐसा सत्य धर्म बाहर आया है। इतना सत्य धर्म बाहर आया है कि गुरुदेवके अलावा किसीने अभी तक बाहरमें प्रगटरूपसे किसीने सुना नहीं है।

समाधान :- .. उसकी यदि रुचि लगे, उसे ग्रहण करे तो भिन्न पड़ जाते हैं। स्वयं ही एकत्वबुद्धि करके उसे ग्रहण करके खड़ा है। फिर कहता है, वह भिन्न नहीं पड़ते हैं। स्वयंने ही ग्रहण किया है। स्वयं ही छोड़े तो छूटे। उसका भेदज्ञान करके चैतन्यको ग्रहण करे तो वह भिन्न पड़ते हैं। उसने स्वयंने ग्रहण किया है। तू उसे छोड़कर

चैतन्यको ग्रहण कर। चैतन्यका अस्तित्व (ग्रहण कर) तो वह भिन्न पड़ जायेंगे।

मुमुक्षु :- दृष्टिका ज़ोर आने-से वह भिन्न पड़ जाता है कि उसे भिन्न करनेकी प्रक्रिया करनी पड़े?

समाधान :- चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण हो इसलिये वह भिन्न पड़ जाते हैं। एकका ग्रहण हो इसलिये वह भिन्न पड़ जाते हैं। उसे छोड़नेकी क्रिया नहीं करनी पड़ती। चैतन्यको ग्रहण करनेका पुरुषार्थ करे। चैतन्य ग्रहण हो-चैतन्य द्रव्य, इसलिये वह भिन्न पड़ते हैं। उसका भेदज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानियोंको तो अनन्त करुणा होती है तो हम जैसे पामर जीवोंको भी... इतने प्रयत्नमें कहीं कचास लगती है।

समाधान :- अपने पुरुषार्थकी क्षति है। कोई किसीको कर नहीं देता। गुरुदेव कहते थे, किसीका कोई कर नहीं सकता। तीर्थंकर भगवान या गुरुदेव, कोई कर नहीं सकता। मार्ग बताते हैं, करनेका स्वयंको है। गुरुदेव करुणा कर-करके, चारों ओर-से स्पष्ट कर-करके मार्ग बताया है। करना स्वयंको है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीकी निश्रामें रहे जीवोंको ज्ञानी, मुमुक्षुके दोष भी बताये। हमारा क्या दोष हो सकता है? अंतिम प्रज्ञाछैनी अन्दरमें पटक नहीं सकते हैं।

समाधान :- अपनी क्षति (है)। स्वयं दूसरेमें रुककर पुरुषार्थ नहीं करता है। कहीं-कहीं रुक ही जाता है। बाहरमें प्रमादके कारण अथवा बाह्य रुचिके कारण, प्रमादके कारण, अनेक कारणोंसे बाहर रुका रहता है। बाह्य प्रवृत्तिओंमें, बाहरमें उसे रुचि और रस लगता है। चैतन्य, अकेला चैतन्य, उसकी अंतरमें-से उसे जितनी रुचि और लगन लगनी चाहिये उतनी नहीं लगती है। इसलिये कहीं भी रुका रहता है।

मुमुक्षु :- आपको देखते हैं तब बहुत आनन्द-आनन्द होता है। लेकिन हमारा आनन्द प्रगट नहीं होगा तो यह आनन्द तो कहाँ चला जायगा।

समाधान :- करना स्वयंको है। स्वयंको ही प्रगट करना है। स्वयं करे तो ही छूटकारा है। आचार्यदेव कहते हैं, उग्र अभ्यास कर तो छः महिनेमें तुझे प्रगट होगा। लेकिन वह उग्रपने करता नहीं है, मन्द-मन्द, मन्द-मन्द करता है इसलिये उसे समय लगता है। पुरुषार्थ कर-करके थोड़ा-थोड़ा करके छोड़ देता है। अंतरमें-से उग्र नहीं करता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानका फल विरति है। जो पढ़ने-से, जो विचार करने-से, जो समझने-से आत्मा विभाव-से, विभावके कार्यों-से रहित नहीं हुआ वह पढ़ना-विचारना मिथ्या है। मुमुक्षुकी भूमिकामें भी थोड़ा इस प्रकार-से रहित होना तो जरूरी है न? उस जातका...

समाधान :- यथार्थ ज्ञान जिसे हो, ज्ञायककी धारा प्रगट हो उसका फल विरति

है। जिसे ज्ञायककी धारा प्रगट हो, उसे विरक्ति आ ही जाती है। वह भिन्न पड़ जाता है। अन्दर स्वरूप रमणता आंशिक प्रगट होती है। अनन्तानुबन्धी कषाय छूटकर स्वरूप रमणता (प्रगट होती है)। उस ज्ञानका फल विरति है। ज्ञायककी धारा प्रगट हो उसमें विभाव अमुक अंशमें छूट ही जाते हैं। वह ज्ञानका फल विरति है।

मुमुक्षुको यह लेना कि उसे जिज्ञासा प्रगट हुयी तो वहाँ विचार, वांचन करे उसमें उसे अमुक वैराग्य आदि तो साथमें होता ही है। यदि नहीं है तो उतनी रुचि ही नहीं है। आत्माकी ओर रुचि जाय और विभावका रस न छूटे तो उसे तत्त्वकी रुचि ही नहीं है। विभावका रस तो छूटना चाहिये। यथार्थ विरति तो ज्ञायककी धारा प्रगट हो, वह यथार्थ विरति है। लेकिन उसे अभ्यासमें भी, जिसे आत्माकी रुचि जागृत हो, उसे विभावका रस छूटना ही चाहिये। तत्त्व विचार करे, वांचन करे परन्तु अन्दरसे उतना वैराग्य नहीं आता है तो यथार्थ रुचि ही नहीं है। रुचिके साथ थोड़ी विरक्ति तो उसे अंतर-से रस छूट जाना चाहिये।

मुमुक्षु :- सच्ची बात है, वह साथ-साथ प्रगट होना ही चाहिये।

समाधान :- साथ-साथ हो तो ही उसकी रुचि है।

मुमुक्षु :- अन्यथा शुष्क ज्ञान हो जाय।

समाधान :- अन्यथा तो रुखा ज्ञान है।

मुमुक्षु :- श्रीमद्जीने तो बहुत लिखा है। एक जगह तो लिखा है, हे आर्य! द्रव्यानुयोगका फल सर्व भाव-से विराम पामनेरूप संयम है। यह कभी मत भूलना। द्रव्यानुयोगका फल..

समाधान :- द्रव्यानुयोगका फल संयम आता है। जहाँ द्रव्यानुयोग यथार्थ परिणमित हो गया, उसे संयम, क्रम-क्रमसे संयम आ ही जाता है। और उस वक्त अमुक अंशमें तो संयम आ ही जाता है। द्रव्यानुयोग, जिसे अंतरमें स्वानुभूति प्रगट हुयी, उसे आंशिक संयम तो आ गया है। स्वरूप रमणता प्रगट हो गयी, स्वरूपाचरण चारित्र हो गया है। मुमुक्षु दशामें भी उसे अमुक प्रकार-से रुचि छूट जाती है। बाहर-से वैराग्य आ जाता है।

मुमुक्षु :- .. करोड़ों कोहिनूर हीरासे वधाये तो भी कम है। सचमूच कहता हूँ। यह बात कोई गज़ब बात है, कहीं भी समझने मिले ऐसा नहीं है। यहाँ-से तो करीब-करीब लोग ... पर्यायमें जायेंगे। क्योंकि यह काल ही ऐसा विचित्र है। आत्माकी लगन लगाकर भी प्राप्त न करें तो.... बहुत गज़ब बात है।

समाधान :- स्वयंको उस ओर चलना है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने बात कही कि हमारी ओर देखने-से भी राग होगा।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३३

मुमुक्षु :- ... ज्ञेयरूप परद्रव्य, ऐसे जो उपाधिरूप विभावभाव..

समाधान :- उसको?

मुमुक्षु :- उसमें क्या लेना? इसका वाच्य क्या है?

समाधान :- आत्माका स्वभाव शुद्ध है। वह शुद्धता-से भरा है। शुद्धता-से भरपूर है। विभावभाव तो ज्ञेय है, वह ज्ञायक है। वह विभावभाव है। विभावभाव उपाधिरूप है। उपाधि भाव-से आत्मा भिन्न है। उसका भेदज्ञान करके और स्वभाव मैं शुद्धात्मा हूँ, ऐसी दृष्टि करके शुद्ध पर्याय प्रगट करना वह आत्माका स्वभाव है। शुद्ध दृष्टि कर, शुद्ध पर्याय प्रगट कर। और वह तो विभावभाव है, विभावसे भेदज्ञान करना।

ज्ञेयसे एकत्वबुद्धि तोड़कर उसका भेदज्ञान करना। भेदज्ञान करके, अपने स्वरूपमें दृष्टि करके शुद्ध पर्याय प्रगट करना। एकत्वबुद्धि ज्ञेयके साथ है उसे तोड़ देना। एकत्वबुद्धि हो रही है। एकत्वबुद्धि विभावभावके साथ है। एकत्वबुद्धि हो रही है, एकत्वबुद्धिको तोड़ना। वह ज्ञेय है, मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक तरफ दृष्टि करके उसका भेदज्ञान करना। तो शुद्धात्मामें दृष्टि करने-से, परिणति प्रगट करने-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ज्ञेयके साथ एकत्व हो गया है।

समाधान :- एकत्वबुद्धि हो गयी है। एक तो होता नहीं, एकत्वबुद्धि हो रही है। ज्ञेय मैं हूँ और मैं वह हूँ, एकत्वबुद्धि तोड़ना। स्वभावको ग्रहण करना। मैं चैतन्य हूँ, ये विभावभाव मैं नहीं हूँ। मैं अनादिअनन्त शाश्वत स्वरूप ज्ञायक हूँ। ज्ञायक जो जाननेवाला है वह मैं हूँ। ज्ञायक है, ज्ञायकमें अनन्त गुण-अनन्त शक्ति, अनन्त-अनन्त शक्तिओं-से भरपूर मैं आत्मा हूँ और यह विभाव मैं नहीं हूँ। ऐसा भेदज्ञान करके दृष्टिकी दिशा पलट देना।

जो सिद्ध हुए वे भेदविज्ञान-से हुए हैं। जो सिद्ध नहीं हुए हैं वे भेदज्ञानके अभाव-से। जो बन्धे हैं, वे भेदविज्ञानके अभाव-से बन्धे हैं। भेदविज्ञान परसे, विभावसे भेदज्ञान और स्वभावका ग्रहण करना। स्वभावको ग्रहण और विभाव-से भेद करना। भेदज्ञान कैसे भाना? कि अविच्छिन्न धारा-से भाना। उसमें छेद न पड़े। अविच्छिन्न धारा-से भेदविज्ञानको भाना वह मुक्तिका उपाय है, वह मुक्तिका मार्ग है।

चैतन्य अखण्ड शाश्वत है, उसमें अशुद्धता नहीं हुयी है। शुद्धात्माको ग्रहण करना और विभावसे विभक्त करना। वह मुक्तिका मार्ग है। इसको मैं जानता हूँ, नहीं जानता हूँ, वह तो बीचमें जाननेकी बात हुयी, पहले विभावसे भेदज्ञान करनेकी विधि है। मुक्तिके मार्गमें भेदज्ञान करनेकी विधि है। एकत्वबुद्धि तोड़े देना। मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ। (इस प्रकार) दृष्टिकी दिशा पलट देना। और विभाव, समस्त विभावभाव मैं नहीं हूँ। शुभभाव बीचमें आते हैं तो भी शुभभाव भी मेरा स्वरूप नहीं है। बीचमें तो आते हैं, परन्तु मेरा स्वरूप नहीं है। उसको विभक्त करना और स्वभावमें एकत्व करना। मैं अनन्त गुण-से भरपूर ज्ञायकतत्त्व हूँ। उस ज्ञायकको ग्रहण करनआ। शरीर-से, विभाव, नोकर्म मन-वचन-काया, सबसे भिन्न मैं आत्मा हूँ। ऐसी स्वभावमें एकत्वबुद्धि करना और विभाव-से विभक्त करना। यह मुक्तिके मार्गकी विधि है।

ज्ञायक तो अनन्त जाननेवाला है। अनन्त शक्तिओं-से भरपूर है। ज्ञायक ऐसा है कि अनन्त-अनन्त पदार्थको जानता है। ज्ञायककी शक्ति अनन्त है। लेकिन उसकी दृष्टि बदल देना। पर-ओर दृष्टि है, दृष्टि स्वभावमें कर देना। वह मुक्तिका मार्ग है। शुद्धात्माको ग्रहण करके शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। उसमें दृष्टि करके, भेदज्ञान इस तरह अविच्छिन्न धारा-से भाना (कि) ज्ञान ज्ञानमें स्थिर न हो जाय, ज्ञान ज्ञानमें स्थिर हो जााय, तबतक अविच्छिन्न धारासे भेदविज्ञान भाना।

स्वभावमें एकत्व और परसे विभक्त। चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण करके परसे विभक्त करना। यथार्थ भेदज्ञान तभी होता है, स्वभावका अस्तित्व ग्रहण करे तब पर-से विभक्त होता है। मैं आत्मा हूँ और बाकी सब उपाधि है। बाहरकी सब उपाधि है, मैं एक ज्ञायक आत्मा हूँ।

मुमुक्षु :- मैं आत्मा हूँ, यह विकल्प उपाधि है?

समाधान :- आत्मा हूँ, यह विकल्प भी उपाधि है। वह विकल्प भी राग है। बीचमें विकल्प आते हैं। ज्ञान ज्ञानको ग्रहण करे। बीचमें विकल्प आये बिना रहते नहीं। ज्ञायकको ग्रहण करनेमें विकल्पको गौण कर देना। मैं निरविकल्प तत्त्व हूँ। ज्ञान ज्ञानमें स्थिरो हो जाय, जब स्वानुभूति निर्विकल्प दशा होवे, तब विकल्प छूटता है। विकल्प पहले तो नहीं छूटता, उसका भेदविज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- उपाधि क्यों कहा उसे?

समाधान :- उपाधि है, विभावभाव है वह उपाधि है।

मुमुक्षु :- मैं ज्ञायक हूँ, ये विभावभाव है?

समाधान :- ज्ञायक हूँ, ज्ञायकका रागमिश्रित विकल्प है वह उपाधि है। ज्ञायक उपाधि नहीं है। रागमिश्रित विकल्प जो आया वह उपाधि है। ज्ञायक है वह तो निराकुल

है। ज्ञायक शान्तिरूप है, आनन्दरूप है। रागमिश्रित विकल्प उपाधिरूप है। विकल्पसे भेदविज्ञान करना। मैं ज्ञायक हूँ, मैं आनन्द हूँ, ये सब विकल्प उपाधिरूप है। परन्तु वह बीचमें आता है तो उससे भेदविज्ञान करना कि ये मैं नहीं हूँ।

ज्ञायक उपाधि नहीं है। सहज परिणति ज्ञानकी-ज्ञायककी उपाधि नहीं है। विकल्प उपाधि है। मैं हूँ, तो विभक्त (होता है)। मैं यह हूँ, यह नहीं हूँ। तो विभक्त यथार्थ होता है। (अन्यथा) विभक्त नहीं होता है। मैं स्वयं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक स्वभाव अनादिअनन्त है। आनन्दसे (भरा है)। ज्ञायक चैतन्य जो ज्ञायक है वह मैं हूँ। बीचमें विकल्प आता है-मैं ज्ञायक हूँ, वह विकल्प भी मेरा स्वरूप नहीं है। बीचमें आता है, वह उपाधि है, आकुलता है, विपरीत है, तो भी बीचमें आता है। परन्तु मैं तो निर्विकल्प तत्त्व हूँ। ऐसी श्रद्धा पहले तो बुद्धि-से होती है, परन्तु ऐसी परिणति हो जाये कि मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसी सहज परिणति होवे तब ही यथार्थ भेदज्ञान होता है। सहज परिणति होवे। क्षण-क्षणमें मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी सहज परिणति होवे तो यथार्थ भेदज्ञान होता है। और उपयोग पलट जाय तो निर्विकल्प स्वानुभूति भी इसमें होती है। उपयोग बाहर होता है, भीतरमें... स्वानुभूतिकी दशा तो अंतर्मुहूर्तकी होती है। बाहर आवे तब तो भेदज्ञानकी धारा चलती है। ज्ञायक हूँ। परन्तु ज्ञायककी परिणतिमें उसमें शान्ति, निर्विकल्पता आनन्द वह दूसरी बात है। वह तो अपूर्व है। परन्तु आंशिक शान्ति, ज्ञायककी परिणति ऐसी सविकल्प दशामें भेदविज्ञानकी धारामें भी उसको रहती है। चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण करे उसको यथार्थ भेदविज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान।

समाधान :- हाँ, अतीन्द्रिय ज्ञान होता है। वह ज्ञान, मैं ज्ञायक हूँ, उसमें अतीन्द्रिय आ जाता है। पर तरफ इससे जानता हूँ या बाहरसे जानता हूँ, ज्ञेयसे जानता हूँ, ऐसा नहीं। मैं स्वयं ज्ञायक हूँ। मैं स्वयं जाननेवाला हूँ। अतीन्द्रियका वेदन तब होता है, (जब) विकल्प छूटे तब स्वानुभूति अतीन्द्रिय आनन्द आता है। उसके पहले उसकी श्रद्धाकी परिणति होती है। भेदज्ञानकी परिणति होती है। ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी परिणति होनी चाहिये। ज्ञेयसे भेदज्ञान करना। वह जाननेका छूटता नहीं है, परन्तु उससे भेदविज्ञान होता है, मैं ज्ञायक हूँ।

मुमुक्षु :- और सहज परिणति होनेके बाद भी भेदज्ञान होता है?

समाधान :- सहज परिणति तो यथार्थ होती है। उसके पहले भेदज्ञानका अभ्यास होता है। वास्तविक भेदज्ञान तो नहीं है। सहज दशा जब होवे तब यथार्थ भेदज्ञान तो तभी होता है। जिसको निर्विकल्प स्वानुभूति होती है, बादमें उसकी भेदविज्ञानकी धारा चलती है, उसको सहज परिणति भेदज्ञानकी होती है। उसके पहले भेदज्ञानका

अभ्यास होता है, यथार्थ भेदज्ञान नहीं होता है।

विकल्प और बुद्धि द्वारा, भावना द्वारा ऐसा अभ्यास होता है। यथार्थ नहीं होता। परन्तु पहले अभ्यास होता है। बुद्धिपूर्वक विचार करता है, मैं भिन्न हूँ। ये मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसी भावना करता है, ऐसी महिमा करता है, बीचमें ऐसा अभ्यास करता है।

मुमुक्षु :- ... यथार्थ भेदज्ञान हो जाता है।

समाधान :- अस्तित्वका ग्रहण होवे तो यथार्थ होता है। आत्मामें अपूर्वता लगे कि मैंने अस्तित्व ग्रहण किया।

मुमुक्षु :- अस्तित्वरूप परिणमित हो, उसके बाद वास्तविक भेदविज्ञान होता है?

समाधान :- अस्तित्वरूप परिणति हो जाय, मैं यह चैतन्य हूँ, तो यथार्थ होता है। नहीं तो भेदज्ञानका अभ्यास होता है। विभावकी परिणति हो रही है, उससे भिन्न पड़ना वह कार्य करना है। वही मुक्तिका मार्ग है। चैतन्य अनादिअनन्त शाश्वत है, उसको ग्रहण करता है तो प्रज्ञा-से जैसे भिन्न किया, वैसे प्रज्ञा-से ग्रहण करना। प्रज्ञा-ज्ञान द्वारा प्रज्ञाछैनी द्वारा उसको ग्रहण करना, तो भेद हो जाता है। स्वानुभूति उसमें होती है।

मुमुक्षु :- शुद्ध स्वरूपमें अविचलित चैतन्य परिणति, वह वास्तवमें ध्यान है। वह ध्यान प्रगट होनेकी विधि अब कहनेमें आती है। जब वास्तवमें योगी, दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयका विपाक पुद्गल कर्म होने-से, उस विपाकको यानी स्वयं-से भिन्न ऐसे अचेतन कर्मोंमें समेटकर, विपाकको कर्ममें समेटकर, तद्नुसार परिणति-से उपयोग-से व्यावृत्त करके यानी उस विपाकके अनुरूप परिणमनेमें उपयोगको निवृत्त करके, मोही-रागी और द्वेषी नहीं होकरके, ऐसे उस उपयोगको अत्यंत शुद्ध आत्मामें निष्कंपपने लीन करता है तब, उस योगीको कि जो अपने निष्क्रिय चैतन्य स्वरूपमें विश्रांत है। वचन, मन और कायाको भाता नहीं और स्व कर्मोंमें व्यापार नहीं करता है, उसे सकल शुभाशुभ कर्मरूप इँधनको जलानेमें समर्थ होने-से, अग्नि समान ऐसा, परम पुरुषार्थ सिद्धिके उपायभूत ध्यान प्रगट होता है।

समाधान :- चैतन्य स्वरूपमें एकदम स्थिर हो गया, विकल्प छूट जाय। शुभाशुभ परिणति जो होती है, उससे व्यावृत्त करके। चैतन्यकी परिणति.. कोई अपेक्षासे उसे जड़ (कहते हैं), जड़ अर्थात् होती है चैतन्यमें, कर्मका निमित्त (है), इसलिये वह मेरा स्वरूप नहीं है। उससे भिन्न होकर एकदम स्वरूपमें लीन-अपनेमें विश्रांत हो जाता है। विकल्प छूटकर अंतरमें एकदम निष्कंप हो जाता है। ऐसी निर्विकल्प दशा हो, वह ध्यानका स्वरूप है। ऐसी उग्रता, जिसमें विकल्प भी उत्पन्न नहीं होता, व्यावृत्त हो गया, विकल्प-से भी न्यारा हो गया, भिन्न हो गया, ऐसी निष्कंप ध्यान दशा योगिओंको प्रगट होती है। जो छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलनेवाले मुनिवर (हैं, वे) अंतर्मुहूर्तमें निर्विकल्प

दशामें (आते हैं) और बाहर आये तब छठवें गुणस्थानमें विकल्प आता है। सातवें गुणस्थानमें निर्विकल्प दशामें ऐसे जम जाते हैं और उसीमें लीन हो जाय तो उसमें केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। उसीमें श्रेणि चढते हैं।

ऐसा व्यावृत्त, उससे न्यारा, श्रद्धासे तो न्यारा हो गया था, प्रतीतमें ज्ञाताकी धारारूप सम्यग्दर्शनमें न्यारा तो हो गया था, परन्तु ये तो विशेष व्यावृत्त-न्यारा हो गया। चारित्रदशा-से लीन हो गया, विशेष लीन हो गया। ऐसा लीन हो गया कि ध्यानकी उग्रता हो गयी। पहले तो सम्यग्दर्शनमें स्वरूपाचरण चारित्र था। ये तो विशेष लीन हो गया। ऐसा निष्कंप हो गया। अपने स्वरूपमें विश्रांति लेता है। सब कर्मों-से भिन्न पड़ गया। जो विभाव परिणति थी, उससे दूर हो गया और स्वरूपमें विभाव परिणति भी उठे नहीं, ऐसा स्वरूपमें लीन हो गया। ऐसा ध्यान करते-करते ऐसे योगीको केवलज्ञान प्रगट होता है। वह ध्यानका स्वरूप है। जिस ध्यानमें विकल्प भी उत्पन्न नहीं होते। वह ध्यान है।

वह सम्यग्दर्शनकी बात (थी), ये तो मुनिदशाकी बात (है)। उग्र ध्यान हो गया। मुनिदशामें छठवें-सातवें गुणस्थानमें मुनिओंको ध्यान (होता है उसमें) उपयोग ज्यादा बाहर नहीं सकता। अंतर्मुहूर्त होते ही स्वरूपमें लीन हो जाते हैं। उपयोग बाहर जाय तो भी भेदज्ञानकी धारा तो वर्तती है, परन्तु बाहर जाय तो टिक नहीं सकते। अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें लीन (होकर) निर्विकल्प दशा प्राप्त होती है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें। ऐसा करते-करते विशेष ध्यान हो तो ऐसे जम जाते हैं कि फिर बाहर ही नहीं आते। ऐसा ध्यान लगाते हैं, श्रेणि चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। ऐसा ध्यान प्रगट हुआ है। ऐसे उग्र ध्यानकी बात करते हैं।

मुमुक्षु :- ऐसा ध्यान साधकको नहीं होता है? श्रावक।

समाधान :- ऐसा ध्यान मुनिको होता है।

मुमुक्षु :- मुनिको होता है?

समाधान :- सम्यग्दर्शनका ध्यान वह अलग बात है। ये योगीका ध्यान लिया है। सम्यग्दर्शनमें ध्यान होता है। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ज्ञायककी उग्रता करके ज्ञायकमें लीन हो जाय, विकल्प टूट जाय, निर्विकल्प दशा हो जाय, परन्तु बाहर आये तो उसको गृहस्थाश्रमके विकल्प उठते हैं। वह तो गृहस्थाश्रममें रहता है न, उसका विक्प उठता है। उसकी भूमिका गृहस्थाश्रमकी है। तो उसको ऐसा उग्र ध्यान मुनि जैसा नहीं होता है।

उसमें लिया है न? तरंग छोड़ देता है। सब तरंग छूट जाते हैं। मुनि तो अबुद्धिपूर्वक... निर्विकल्प दशामें सम्यग्दर्शन (होने पर) बुद्धिपूर्वक (विकल्प) छूट गया। अबुद्धिमें तो है। बाहर आवे तो गृहस्थाश्रमका विकल्प उठता है। इसलिये उसका ध्यान उग्र नहीं

होता है, मुनिका ध्यान उग्र होता है।

मुमुक्षु :- ध्यानकी प्रक्रिया तो दोनोंकी एक ही है न?

समाधान :- प्रक्रिया उसमें उग्र है। विधि एक है, परन्तु मुनिकी ध्यानकी दशा उग्र ध्यान दशा है। उसमें एक संज्वलनका कषाय अल्प है। और इसको (-सम्यग्दृष्टिको) तो प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी सब है। इसलिये उग्र लीनता, इनको उग्र लीनता है। गृहस्थाश्रममें उतनी उग्रता नहीं है। अंतर्मुहूर्तमें बाहर आता है। और मुनिकी दशा बहुत उग्र है। उग्र है। ध्यानकी दशा... विधि एक है। भेदज्ञानकी धारा दोनोंको है। उसकी लीनता विशेष है। स्वरूपमें स्थिर होते हैं वह लीनता विशेष है। सम्यग्दृष्टिको ऐसी लीनता नहीं है। मुनिकी लीनता विशेष है। मुनि तो बाहर आवे तो एक अंतर्मुहूर्तसे ज्यादा टिक नहीं सकते। भीतरमें चले जाते हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें ऐसी भूमिका कोई अलग है। (सम्यग्दृष्टि) तो बाहर आये तो टिक सकता है। (मुनिराज) बाहर आवे तो टिक नहीं सकते। भीतरमें चले जाते हैं। उनकी निरंतर ध्यानकी दशा ऐसी चलती है, चलते-फिरते बाहर आवे तो उपयोग टिकता नहीं है, भीतरमें चला जाता है। ऐसी ध्यानकी दशा निरंतर चलती है। और बादमें कोई उग्रता हो जाय तो केवलज्ञान प्रगट करे ऐसी उग्रता हो जाती है। ध्यानकी दशा उनको निरंतर चलती है। छठवें-सातवें गुणस्थानमें ... सम्यग्दृष्टिको ऐसी उग्रता नहीं है। ज्ञायककी धारा और भेदज्ञान उसको रहता है। उसकी ध्यानकी दशा मुनि जैसी उग्र नहीं होती। मुनिकी उग्रता अलग है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञानमें इतनी ताकत है, सम्यग्दृष्टिके भेदज्ञानमें इतनी ताकत है कि उसकी श्रद्धा अविचलित बनी रहती है।

समाधान :- हाँ, श्रद्धा अविचलित बनी रहे। ज्ञायककी धारा न्यारा-न्यारा, वह सहज न्यारा रहता है। उसको विचार नहीं करना पड़ता। मैं न्यारा चैतन्य हूँ, वह चैतन्यकी कोई शान्ति वेदता है। ऐसी ताकत है, उसकी परिणतिमें। परन्तु मुनि जैसी लीनता नहीं है। निर्विकल्प दशा, मुनिकी भाँति अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें नहीं होती है।

मुमुक्षु :- दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयका विपाक। तो मुनिके दर्शनमोहनीय तो नहीं है, चारित्रमोहनीय है। तो दोनों विपाक क्यों लिये?

समाधान :- कोईको दर्शनमोहका विपाक... किसीको क्षायिक होवे, किसीको क्षयोपशम होवे, ऐसा है न। इसलिये दर्शनमोह, चारित्रमोह दोनों लिये। कोई सत्तामें होवे तो उसके विपाकके छोड़ देता है। दर्शनमोह, चारित्रमोह। पूर्ण वीतरागता .. किसीको सत्तामें होवे, किसीको क्षायिक होवे, किसीको क्षयोपशम होवे, इसलिये लिया है।

समाधान :- .. दूसरोंको कहनेके बजाय अपना कर लेना।

मुमुक्षु :- बराबर, सही बात है, बिलकूल बराबर है। उसके लिये तो है यह

जीवन।

समाधान :- अपना मनुष्य जीवन सार्थक कर लेना।

मुमुक्षु :- बहुत मुश्किल-से मिलता है। आपके चरणोंमें, बस उसमें सार्थकता है। आपका हाथ ऊपर हो, बस! और कुछ नहीं (चाहिये)।

समाधान :- मेरी तबियत ऐसी रहती है। सब आते हैं, जाते हैं।

मुमुक्षु :- इतना मिलता है वही बहुत है।

समाधान :- जीवनमें आत्माका कल्याण करना, बस! वही है। एक हेतु आत्माका लक्ष्य। कैसे अंतर आत्माको पीछानूँ। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और आत्माका ध्येय रखना। भीतरमें न्यारा आत्मा कैसे पीछानूँ? और श्रुतका स्वाध्याय। साथमें वह करना। एक आत्म प्रयोजन, दूसरा कोई प्रयोजन नहीं। वही महिमावंत है, उसीमें सब भरा है। बाहरमें सब निःसार तुच्छ-तुच्छ है। आत्मामें सबकुछ भरा है। आत्माको नहीं पीछाना। अनंत कालमें सब क्रिया करी, सबकुछ किया, परन्तु आत्माको पीछाना नहीं। वह आत्मा, गुरुदेवने मार्ग बताया। पंचमकालमें कोई जानता नहीं था। कोई क्रिया करे, ऐसा करे उसमें धर्म मान लेते हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३४

मुमुक्षु :- कोई पहलू बाकी न रहे, समझानेके लिये।

समाधान :- सभी पहलूओँ-से समझाया है। शरीर-से भिन्न, विकल्पों-से, शुभाशुभ-से भिन्न, अन्दर क्षणिक पर्यायोंमें भी तू अटकना मत। तू शाश्वत चैतन्य (है) उसे तू ग्रहण कर। बीचमें शुभभाव आये लेकिन वह तेरा स्वरूप नहीं है। तू कोई गुणोंके भेद या कोई भेदमें अटकना मत। भले तेरेमें अनन्त गुण हैं, परन्तु तू कोई भेदमें अटकना मत। अखण्ड चैतन्य पर दृष्टि कर। सब ज्ञानमें ग्रहण कर (-जान), परन्तु तू एक अखण्ड चैतन्यको ग्रहण कर। चारों ओर-से समझाया है।

... जाननेवाला है। सब विकल्पके बीच जो जाननेवाला है वह मैं हूँ। उसका भेदज्ञानका प्रयत्न करना। ये सब विकल्प, कोई भी विकल्प हो, विकल्पके बीच मैं एक जाननेवाला ज्ञायक एक चैतन्य तत्त्व हूँ, शाश्वत एक आत्मा हूँ। उसे पहचाननेका प्रयत्न कर। उपयोग बाहर जाय तो देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, जिनेन्द्र देव, गुरुने क्या कहा है, कोई अपूर्व मार्ग बताया, शास्त्रमें क्या कहना है? और अंतरमें जाय तो एक आत्मा। आत्माके ध्येयपूर्वक सब होना चाहिये।

चाहे जैसे ऊँचे शुभभाव हो, परन्तु शुभभाव भी आत्माका स्वरूप नहीं है। बीचमें शुभभाव आते हैं, परन्तु वह स्वरूप-आत्मा उससे भिन्न है। सिद्ध भगवान जैसे निर्विकल्प तत्त्व है, वैसा ही आत्मा निर्विकल्प तत्त्व है, उसे पहचाननेका प्रयत्त् कर। उसकी लगन, महिमा, उसका विचार, उसका वांचन सब करना। उसका भेदज्ञान कैसे हो? चैतन्य अखण्ड तत्त्व है, उसे ग्रहण करना, उसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करना और परके साथ जो एकत्वबुद्धि हो रही है, विभावके साथ, उस विभावसे कैसे भिन्न पड़े और आत्मा ग्रहण कैसे हो, यह करने जैसा है।

आत्माका अस्तित्व कैसे ग्रहण हो? और ये विभावसे विभक्त-भिन्न कैसे पड़े? यह करनेके लिये विचार, वांचन आदि सब करना है। अनन्त जन्म-मरण किये लेकिन बाहर कहीं-कहीं क्रियाओंमें इससे धर्म होगा, इससे धर्म होगा (ऐसा माना)। धर्म अंतरमें रहा है। अंतर आत्माको पहचाने उसीमें धर्म है। धर्म आत्माका स्वभाव है, वह स्वभाव कैसे पहचानमें आये?

आत्माका एक ज्ञानस्वभाव है वह ऐसा असाधारण है कि वह जान सके ऐसा है। ये सब विकल्पोंके बीच जो है, सब विकल्प चले जाते हैं, परन्तु जाननेवालेका अस्तित्व विद्यमान रहता है, वह जाननेवाला मैं हूँ। उस जाननेवालेमें अनन्त आनन्दादि भरे हैं। परन्तु वह विकल्पके साथ जुड़ा रहता है इसलिये उसकी अनुभूति उसे नहीं हो रही है। उसका भेदज्ञान करके स्वरूपमें लीन हो तो निर्विकल्प स्वरूप आत्मा है, उसकी अनुभूति हो।

स्वभावमें-से स्वभाव प्रगट होता है। विभावमें-से स्वभाव नहीं आता है। स्फटिक स्वभाव-से निर्मल है। उसमें लाल और पीले फूल रखने-से लाल और पीला दिखता है, परन्तु वह वास्तविक रूप-से निर्मल है। ऐसे आत्मा स्वभाव-से निर्मल है। विभावकी परिणतिके कारण वह विकल्पवाला दिखता है। लेकिन उसका भेदज्ञान करके अंतरमे जाय तो उसकी निर्मल पर्याय प्रगट होती है।

स्वभाव-से तो वह वर्तमान द्रव्यदृष्टि-से निर्मल है। वर्तमान अवस्थामें मलिनता दिखती है। परन्तु अंतर दृष्टि करे तो निर्मलता प्रगट होती है। बारंबार उसका अभ्यास करते रहना। वह प्रगट न हो तबतक उसकी महिमा, लगनी, विचार, चिंतवन सबका बारंबार अभ्यास करते रहना। जबतक प्रगट न हो तबतक।

(छाछको बिलोते-बिलोते) मक्खन भिन्न पड़ जाता है। ऐसे बारंबार अभ्यास करने-से अन्दर भेदज्ञान होकर आत्मा जैसा है वैसा प्रगट होता है। परन्तु उसका अभ्यास और पुरुषार्थ पूरा हो तो होता है। अंतरमें स्वयं जितना रखे उतना होता है, बाकी बाहर तो सब वातावरण अलग होता है।

.. आत्माका कर सकता है। अन्दर पुण्य-पापके उदय अनुसार होता है। चाहे जितना करे तो वह हाथकी बात नहीं रहती। मात्र राग हो कि इसकी दवाई की, यह करे, वह करे, राग हो। बाकी उसका शरीर उसके कारण परिणमता है। आत्मा स्वयं अपना स्वभाव प्रगट कर सकता है। और वह एक अद्‌भुत स्वरूप, अद्‌भुत चीज आत्मा है। अंतर दृष्टि करे तो प्रगट हो ऐसा है।

... स्वानुभूति होने पर सिद्ध भगवान जैसा अनुभव उसे अंतरमें लीन हो तो आंशिकरूप होता है। फिर तो विशेष साधना करने पर आगे बढ़ता है। पहले तो उसकी सच्ची प्रतीति और अनुभूति होती है। फिर विशेष लीनता हो तब आगे बढ़ता है।

मुमुक्षु :- .. करनेकी सूझ आये? आपकी आज्ञा अनुसार अभ्यास और प्रयत्न करता रहता हूँ, परन्तु वह सूझ भी अंतरमें आनी चाहिये न कि अंतरमें... वह मालूम कैसे पड़े कि अंतरमें दृष्टि (हुयी है)?

समाधान :- अपना यथार्थ हो तो स्वयंको आत्मामें मालूम पड़ जाता है कि

मेरी दृष्टि यथार्थ प्रगट हुयी है। मुझे आत्मा जहाँ विभाव-से भिन्न, चैतन्य भिन्न स्वयं अपनेको ग्रहण हो तो स्वयं अपने-से गुप्त नहीं रहता। स्वयं चैतन्य है और उसकी स्वानुभूति या उसका ज्ञान और उसकी प्रतीति हो वह गुप्त नहीं रहता। स्वयंको मालूम पड़े बिना रहे ही नहीं। अपना आत्मा ही अन्दर साक्षी (देता है), उसे ख्याल आ जाता है कि यह यथार्थ मुक्तिका मार्ग है और यथार्थ स्वानुभूति है।

परन्तु जबतक वह न हो तबतक उसकी रुचि, महिमा, उसके पीछे लगे। जबतक न हो तबतक थके नहीं। तबतक वांचन, विचार, अन्दर महिमा, लगनी करता रहे। उसकी भावना रखे, उसका प्रयत्न करता रहे तो भी अच्छा है। उसकी दृष्टि होनेमें देर लगे तो उलझ न जाय, परन्तु अन्दर उसकी भावना करे, उसकी अपूर्वता लगे कि आत्मा कोई अपूर्व है। ये कुछ अपूर्व नहीं है, बाह्य वस्तुएँ। ऐसी अपूर्वता करे, ऐसी रुचि लगाये तो भी अच्छा है। तो उसे आगे प्रयत्न करनेका, आगे बढ़नेका अवकाश है।

... अपने आत्मा-से ही स्वयंको मालूम पड़ जाता है कि यह वस्तु यथार्थ है। नहीं तो उसे संतोष नहीं होता। और जबतक अन्दर-से स्वयंको प्रगट न हो तबतक रुचि, महिमा, विचार करता रहे तो भी अच्छा है। अपूर्व है, ऐसी अपूर्वता अंतरमें-से लगे तो उसकी महिमा बदल जाय, बाहर-से रुचि बदल जाय, तो भी अच्छा है।

.. प्रगट न हो, मन्दिरके द्वारा बन्द हो तो मन्दिरके द्वार पर तू टहेल लगाते रहना। वैसे यह चैतन्य ज्ञायक भगवान प्रगट न हो तो उसके द्वार पर टहेल लगाते रहना, तो भी अच्छा है। तो कुछ आगे जानेका अवकाश है। अभ्यास करते रहना।

समाधान :- ... उसके साथ ज्ञान काम करता है कि मैं अखण्ड शाश्वत हूँ, परन्तु पर्याय अधूरी है, शुद्ध पर्याय अभी प्रगट नहीं हुयी है। प्रमाणज्ञान... साधकदशा उसीको कहते हैं कि दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें रखे। प्रमाणज्ञान और सम्यक् नय जो प्रगट हुयी,...

मुमुक्षु :- नय और प्रमाण हमेशा साथमें ही होते हैं।

समाधान :- जो परिणतिरूप है वह तो हमेशा साथमें ही है। हमेशा साथ है।

मुमुक्षु :- दोनोंके विषय भिन्न-भिन्न है।

समाधान :- विकल्पात्मक नयके विचार करे प्रमाण और.. लेकिन ये परिणतिरूप जो सहज है, उसमें क्रमभेद नहीं होता, दोनों साथ ही होते हैं। अनुभवमें जो शुद्ध परिणति प्रगट हुयी, उस अपेक्षा-से शुद्धनय कहनेमें आता है और द्रव्य-पर्याय दोनोंकी अनुभूति है इसलिये उसको प्रमाण भी कहनेमें आता है। उसे नय भी कहते हैं और प्रमाण भी कहनेमें आता है।

द्रव्य और पर्याय दोनों साथमें हैं, इसलिये प्रमाण है। प्रमाणज्ञान साथमें है। ज्ञान

भी काम करता है और दृष्टि भी निर्विकल्पपने अनुभूतिमें काम करती है। इसलिये प्रमाणज्ञान... उसे अनुभूति हुयी उसे शुद्धनय कहनेमें आता है। शुद्ध पर्याय प्रगट हुयी, शुद्धताका विषय ग्रहण किया, उस रूप परिणति है, इसलिये शुद्धनय कहनेमें आता है, शुद्ध अनुभूति है इसलिये। और उसे प्रमाण भी कहते हैं। केवलज्ञान प्रगट हुआ उसे प्रमाण भी कहनेमें आता है। केवलज्ञान पूर्ण हो गया। द्रव्य और पर्याय सब.. पर्याय पूर्ण हुयी, केवलज्ञानको प्रमाण कहनेमें आता है। और साथमें नय तो है ही, परन्तु निर्विकल्प.. अनुभूतिमें भी नय और प्रमाण साथमें होते हैं। सविकल्प धारामें जितनी परिणति प्रगट हुई, उसमें भी नय और प्रमाण साथ होते हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! जब अनुभव हो तभी लागू पड़े न, सच्चा प्रमाणज्ञान तो।

समाधान :- अनुभव हो तभी लागू पड़ता है। सविकल्प, उसका उपयोग बाहर है तो भी उसका ज्ञान काम करता है। जितनी द्रव्य पर दृष्टि है और ज्ञान साथमें, ये विभाव होते हैं वह मैं नहीं हूँ, मैं चैतन्यरूप हूँ। यह मैं नहीं हूँ, मैं चैतन्यरूप हूँ। ऐसी जातकी भेदज्ञानकी धारा चलती रहती है। सविकल्पतामें जितनी भूमिका चौथी, पाँचवी, छठ्ठी, सातवींको ज्ञान जानता है। जाननेका कार्य तो उसका साथ ही है। द्रव्यको भी जानता है, पर्यायको भी जानता है। जाननेका काम साथ ही है।

मुमुक्षु :- वह अनुभवके बादका प्रमाणज्ञान हुआ न?

समाधान :- हाँ, वह अनुभव होनेके बादका।

मुमुक्षु :- उसके पहले तो प्रमाणज्ञान नहीं कह सकते न?

समाधान :- सच्चा प्रमाणज्ञान (नहीं है)।

मुमुक्षु :- लागू नहीं पड़ता है न?

समाधान :- नहीं। अनुभवके बाद ही सचमूचमें नय और प्रमाण तब लागू पड़ता है। अनुभवके बाद भले सविकल्पमें हो या निर्विकल्पमें हो, अनुभवके बाद, तभी सच्चा प्रमाण और सच्ची नय लागू पड़ती है। उसके पहले तो सब निश्चय, विचार करता है। प्रमाणकी सच्ची परिणति या नयकी सच्ची परिणति उसके पहले प्रगट नहीं हुयी है। मात्र वह अभ्यास करता है।

.. नय और प्रमाण साथमें ही होते हैं। और निर्विकल्पमें तो विकल्प रहित निर्विकल्पपने है।

मुमुक्षु :- नय और प्रमाणसे रहित है, निर्विकल्प अनुभवके कालमें।

समाधान :- हाँ, निर्विकल्प अनुभवके कालमें। उसे अपेक्षा-से शास्त्रमें शुद्धनय कहो, शुद्ध अनुभूति कहो, उसे प्रमाण कहो। वह सब कहनेमें आता है। वह निर्विकल्परूप है। गुरुदवने महा उपकार किया है। चारों ओर-से स्पष्ट कर-करके बताया है।

मुमुक्षु :- अब तो न करे तो अपनी ही मूर्खता है।

समाधान :- हाँ। स्वयं न समझे तो अपना ही कारण है।

मुमुक्षु :- आयुष्यके तीसरे भागमें पड़े ऐसा कोई नियम है?

समाधान :- हाँ, तीसरे भागमें पड़ता है। आयुष्य हो उसके तीसरे भागमें पड़ता है। फिर न पड़े तो बीचमें पड़ता है। आखिरमें आयुष्य पूरा होनेवाला हो उसके पहले पड़े। ऐसा भी होता है।

मुमुक्षु :- उसके तीसरे समयमें।

समाधान :- हाँ, ऐसे पड़ता है। अष्टमी, चौदसी ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :- आठ भव ही हो, ऐसा कोई नियम है?

समाधान :- हाँ, ऐसा नियम है।

मुमुक्षु :- लगातार आठ बार ही मिले।

समाधान :- हाँ, आठ। उससे ज्यादा नहीं होते।

समाधान :- ... एक ही करना है। उसके लिये सब (करना है)। आत्मा भिन्न, शरीर भिन्न। दो तत्त्व भिन्न हैं, अनादिअनन्त। आत्मा ज्ञानस्वभाव-से भरा ज्ञायक वस्तु है। उसमें आनन्दादि गुण भरे हैं। उस आत्माको कैसे पहचाने? ये सब विकल्प राग-द्वेष कषाय आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्माको उससे भिन्न करना। ये शरीर तो जड़ कुछ जानता नहीं। उन सबका भेदज्ञान कैसे हो, वह करने जैसा है।

जैसे पानी स्वभाव-से शीतल है, परन्तु अग्निके निमित्त-से उष्ण दिखता है। परन्तु उसका शीतल स्वभाव चला नहीं जाता। वैसे आत्मा स्वभाव-से निर्मल स्वभावी है। निर्मल स्वभाव है, परन्तु विभावमें जाता है न, इसलिये उसे राग-द्वेष कलुषितता दिखती है। परन्तु अंतरमें दृष्टि करे तो आत्मा वीतरागस्वरूप निर्मल स्वभाव शीतल स्वभाव है। उसे कैसे पहचानना? बस, वह करने जैसा है।

यथार्थ ज्ञान करे, यथार्थ विचार करके उसकी महिमा लगाये, लगन लगाये, उसका भेदज्ञान करे तो अंतरमें आगे जाना होता है। उसके लिये विचार, वांचन आदि करने जैसा है। शुभभाव जीवने अनन्त बार किये हैं, पुण्य बान्धा, देवलोकमें गया। परन्तु देवमें-से वापस आया। परिभ्रमण खड़ा रहा। अनन्त जन्म-मरण किये चार गतिमें, लेकिन भवका अभाव कैसे हो?

भवका अभाव तो शुद्धात्माको पहचाने तो होता है। अनन्त कालमें क्रियाएँ बहुत की, मुनिपना लिया, परन्तु अंतर आत्माको पहचाना नहीं, तो बाहर-से त्याग किया, सब किया। परन्तु आत्माको पहचाना नहीं। इसलिये मात्र पुण्यबन्ध हुआ, देवलोक हुआ। शुभभाव आये तो पुण्यबन्ध होता है, तो देवलोक होता है। परन्तु परिभ्रमण छूटता नहीं।

पुण्यभाव है, बीचमें पुण्यभाव आता है, परन्तु वह आत्माका स्वरूप नहीं है, ऐसे श्रद्धा बराबर करनी चाहिये। फिर देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आवे, शुभभाव आवे परन्तु मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसी श्रद्धा अंतरमें होनी चाहिये।

जैसा सिद्ध भगवानका स्वरूप है, वैसा मेरा स्वरूप है। वैसा मैं चैतन्य आत्मा हूँ। जैसा भगवानका स्वरूप है, वैसा चैतन्यका स्वरूप है। ऐसे पहचान करनी चाहिये। उसकी पहचान करे, उसमें लीनता करे तो मुक्तिका मार्ग प्रगट हो। अंतरमें आत्माकी स्वानुभूति हो। और वह स्वानुभूति बढ़ते-बढ़ते फिर मुनिदशा आती है। ऐसे ही त्याग कर दे, मुनि हो जाय, सब करे, ऐसी क्रियाएँ अनन्त बार की, लेकिन भवका अभाव नहीं होता। भवका अभाव आत्माको पहचाने तो ही होता है।

... सब किया, लेकिन सम्यग्दर्शन कोई अपूर्व है। सम्यग्दर्शन हो, अंतरमें स्वानुभूति हो, आत्माका अनुभव हो, आत्माके आनन्दका वेदन हो। जैसा सिद्ध भगवानके आत्माका स्वरूप है, वैसा आंशिक वेदन सम्यग्दृष्टिको गृहस्थाश्रममें होता है। परन्तु वह अंतर-से न्यारा हो और अन्दर-से विरक्त हो, आत्माको पहचाने तो हो।

मुमुक्षु :- इतनी-इतनी महेनत करते हैं..

समाधान :- महेनत तो अंतरमें स्वयंको करनी पड़ती है। अंतरमें स्वयं विभाव-से भिन्न पड़े, बाहरकी एकत्वबुद्धि टूटे, बाहरका रस टूट जाय, अंतरमें ही लगन लगे तो हो। बाहर जहाँ-तहाँ एकत्वबुद्धि और बाहरमें सब सर्वस्व मान ले, बाहर कैसे अच्छा हो? शरीरका कैसे अच्छा हो? कुटुम्बका, यह-वह, सबमें एकत्वबुद्धि है। एकत्वबुद्धि टूटे, अंतरमें वीतराग... बाहरसे सब छूट नहीं जाता, परन्तु अंतरमें-से वह न्यारा हो जाता है। रस कम हो जाय।

तप, सच्चा तप तो अंतरमें आत्माका सच्चा स्वरूप है, उसे पहचाने। आत्मा जाननेवाला है उसे पहचानकर अन्दर तीक्ष्णता (करे), अन्दर लीनता और तीक्ष्णता करे तो वह तप होता है। और उसके साथ शुभभाव आवे, इसलिये मैं यह त्याग करुँ, आहार छोडूँ, ऐसा विकल्प आये, उस शुभभाव-से पुण्यबन्ध होता है। परन्तु अंतरमें स्वानुभूति होकर अंतरमें आत्माको पहचाने और आत्माकी अन्दर उग्रता हो, आत्माका स्वरूप समझमें आये और अन्दरमें लीनता हो तो वह सच्चा तप अंतरमें होता है। बाहर-से मात्र आहार छोड़ दे और विकल्प तो कहाँ-कहाँ भटकते हो। तो वह सच्चा तप नहीं होता है। शुभभाव, अच्छे भाव करे तो पुण्यबन्ध होता है। तो अच्छा भव मिले।

... तप किया था, वे अंतरमें ऊतर गये। आत्माकी स्वानुभूतिपूर्वक। फिर आहारका विकल्प भी नहीं आता है। आत्माके आनन्दमें ऐसे रहते हैं कि उन्हें विकल्प भी नहीं आता है। विस्मृत हो जाता है। शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न। आहारका भी

विकल्प नहीं आता है। आत्माके आनन्दमें रहे, वह सच्चा तप कहनेमें आता है। बाकी अन्दर जबरजस्ती करता रहे, क्रिया छोड़ता रहे तो वह तो मात्र बाहरका तप होता है। सच्चा तप नहीं होता है। ऐसे समझना चाहिये कि सच्चा तप अंतरमें है।

भगवानने जो तप किया वह, आत्माके आनन्दमें (रहकर किया)। विकल्प भी नहीं आता। शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न। उन्हें ख्याल भी नहीं है, इस तरह आत्मामें ऊतर जाते हैं। उसका नाम अंतरमें समरस प्रगट हुआ, उसका नाम सामायिक। सब अंतरमें होता है। बाहर-से क्रिया करके बैठे और मन बाहर भटकता हो तो वह सच्ची सामायिक नहीं होती।

सामायिक तो अंतरमें भेदज्ञान करके आत्माको पहचाने और अंतरमें स्थिर हो तो सच्ची सामायिक होती है। .. परिणाम हो उस पर पड़ता है। मन कहीं दूसरेमें भटकता हो, तो उस सामायिकका फल नहीं आता। जैसा भाव हो वैसा बन्धन होता है। परन्तु उससे भिन्न आत्माको पहचाने तो उसे मोक्ष होता है। मनुष्यभव मुश्किलसे मिले, उसमें आत्माको पहचाने तो सफल है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३५

समाधान :- सच्चा प्रयत्न नहीं होता है। प्रयत्न, मन्द-मन्द प्रयत्न हो उसमें पहचान नहीं होती। उसकी रुचि होनी मुश्किल है। उसकी रुचि करे, महिमा करे कि आत्मा कोई अपूर्व चीज है। जगतकी कोई वस्तु अनुपम नहीं है। सबसे अनुपम हो तो आत्मा ही है। ऐसी आत्माकी अनुपम महिमा लगनी चाहिये कि मेरा आत्मा भिन्न है और यह सब भिन्न है। उसकी महिमा लगे। फिर उसका प्रयत्न करे।

रुचिके साथ प्रयत्न होता है। रुचिके बिना प्रयत्न होता ही नहीं। सम्यग्दर्शन हो, अन्दर आत्माकी पहचान हो, उसीको सच्चा मुनिपना आता है। बाहर-से छोड़ दे वह सच्चा मुनिपना नहीं आता। सच्ची सामायिक, सच्चा तप अंतरमें प्रगटे तो ही उसके साथ सब शुभभाव होते हैं। तो ही पुण्य बन्ध होता है। बाकी अंतरमें सच्चा तप आदि सब अंतरमें होता है।

मुमुक्षु :- ... समझमें नहीं आता।

समाधान :- विशेष समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। कोई समझता हो उसका किसीका परिचय करके विशेष समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। शास्त्रमें जो आता है उसका रहस्य क्या है, वह सब अन्दरमें स्वयं आत्माके साथ समझकर विचार करना चाहिये। आत्माका क्या स्वभाव है, शास्त्रमें क्या आता है, गुरुने क्या कहा है, वह मार्ग समझनेका प्रयत्न करना चाहिये।

पहले सच्च समझ करे तो फिर आगे बढ़े। जो मार्ग नहीं समझता है, वह आगे नहीं बढ़ सकता है। समझे बिना कहाँ डग भरेगा? ध्येय हो कि भावनगर जाना है तो उसका रास्ता मालूम हो कदम वहाँ चलेंगे। सच्ची समझ पहले करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- समझ गुरुके अलावा नहीं आयेगी न? गुरु रास्ता बताये तब...

समाधान :- गुरु रास्ते बताये, परन्तु..

मुमुक्षु :- गुरुका समागम करे तो ही इसमें आगे बढ़ सके?

समाधान :- गुरुका समागम, गुरु तो महा प्रबल निमित्त है। उनका समागम हो तो विशेष समझनेका कारण बनता है। अपनेआप समझना बहुत दुष्कर है। अनादि कालमें एक बार कोई गुरुके ऐसे वचन मिले तो जीव तैयार होता है। ऐसा उपदेश मिले

तो गुरु जो मार्ग बताये वह कोई अपूर्व रीत-से स्वयं ग्रहण करे तो आगे बढ़ सकता है।

मुमुक्षु :- आत्मा-से भी, दर्शन करने-से भी आपके शब्द हमें जो असर करते हैं, ऐसी असर पढ़नेमें नहीं आती। इसलिये हम लोग निकले। दूसरे लोग नहीं आये हैं। पढ़ते हैं, समझते हैं कि आत्मा है। लेकिन पहचान होती नहीं, जीवतत्त्व... दर्शन किया, सत्समागमके सिवा समझमें नहीं आता।

समाधान :- आत्माका स्वभाव अनन्त गुण-से भरा, वह करनेका है। परन्तु उसे समझनेके लिये कितना सत्संगका परिचय चाहिये। आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय, पुद्गलके द्रव्य-गुण-पर्याय, ये दोनों भिन्न हैं। दो तत्त्व भिन्न है। अनादिअनन्त है, वह कैसे है? ये विभाव क्या? स्वभाव क्या? सब जाननेके लिये थोड़ा परिचय चाहिये। सत्संग हो न तो (समझमें आये)।

आत्माका भेदज्ञान करना। ये विभाव भिन्न, आत्मा भिन्न। शुभभाव पुण्यबन्धका कारण है, बीचमें आता है। परन्तु वह अपना स्वरूप नहीं है। उससे आत्मा भिन्न है। लेकिन वह समझनेके लिये उसे विशेष, यह पूछा न? तप किसे कहते हैं? सामायिक किसे कहते हैं? उसका रहस्य समझनेके लिये सत्संग हो तो समझमें आये ऐसा है।

(सम्यग्दर्शन) प्राप्त नहीं किया है, वही करना है। सम्यग्दर्शन अनादि काल-से अपूर्व है वह नहीं किया है। वह करना है। कैसे हो? तदर्थ सत्संग आदि, विशेष समझनेकी आवश्यकता है।

समाधान :- ... आत्मामें तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनन्त गुण है। अनादिअनन्त है। गुणोंका नाश नहीं हुआ है। विभाव हुआ तो भी उन गुणोंका नाश नहीं हुआ है। निगोदमें गया तो भी उसकी सब शक्तियाँ ज्योंकी त्यों है। केवलज्ञान शक्तिरूप है, उसका प्रयास करे तो प्रगट हो ऐसा है। वर्तमानमें पर्याय विभाव हो रही है। जो पलटती है वह पर्याय है। और यदि स्वयं स्वभाव-ओर पलटे तो स्वभावपर्याय हो। विभाव-ओर पलटे तो विभावकी पर्याय होती है। परन्तु विभाव (स्वभाव नहीं है)।

विचार, वांचन सब करना है। जिनेन्द्र भगवान, देव-गुरु-शास्त्र सच्चे कौन है? उसे पहचानना। और अंतर आत्मा है उसे पहचानना। जिनेन्द्र देव, जिन्होंने वीतराग दशा प्राप्त की है। जिन्होंने केवलज्ञान (प्रगट हुआ है), जो स्वरूपमें लीन हो गये हैं। पूर्ण वीतरागता (प्रगट हुयी है), जिन्हें विकल्प रागका अंश उत्पन्न नहीं होता। केवलज्ञानी भगवान पूर्ण वीतराग हैं। भगवानको पहचाने वह स्वयंको पहचानता है और जो स्वयंको पहचानता है वह भगवानको पहचानता है। भगवानको पहचाना सच्चा कब कहा जाय? जब स्वयंको पहचाने तब भगवानको पहचाना कहनेमें आये। भगवानका द्रव्य क्या? भगवानके अनन्त गुण, भगवान केवलज्ञान आदि अनन्त गुणोंमें विराजते हैं। स्वयंका भी वैसा ही

स्वरूप है-भगवान जैसा, वह कैसे प्राप्त हो?

और गुरु साधना कर रहे हैं। स्वरूपमें क्षण-क्षणमें लीन हो रहे हैं। ऐसे गुरु किसको कहते हैं? आत्माकी साधना करे और स्वरूपमें लीन होते हो, वह गुरु है।

और शास्त्र, जिसमें आत्माकी बात आती हो, वह शास्त्र है। वह सब यथार्थ समझकर, आत्माकी पहचान कैसे हो? ध्येय आत्माका होना चाहिये। अनन्त काल-से भगवान बहुत बार मिले, गुरु मिले, शास्त्र मिले, लेकिन स्वयंको पहचाना नहीं। बाहरमें रुक गया। स्वयंकी पहचान कैसे हो? और जबतक पहचान न हो, अन्दर लीनता न हो तब शुभभावोंमें देव-गुरु-शास्त्र शुभ भावनामें होते हैं। ध्येय एक आत्माका रखना। करना वह है।

बाहर कहीं सर्वस्व नहीं है। आत्मामें सर्वस्व सुख और सर्वस्व आनन्द आत्मामें है। उसे प्रगट करना वह करना है। अनन्त शक्तियाँ आत्मामें हैं। वह कोई बाहर ज्यादा क्रिया करे, या ज्यादा त्याग करे, तो अंतरमें प्रगट हो, ऐसा नहीं है। परन्तु अंतरमें स्वयंको पहचाने और अंतर-से विरक्ति हो, अंतर-से विभावका त्याग हो तो सच्चा त्याग है। बाहरका हो वह तो शुभभावना है मात्र। अंतर-से वास्तवमें छूट जाय, अंतरमें-से रागसे भिन्न होकर स्वयंको पहचाने वह वास्तवमें अंतरमें त्याग है। वह अंतरमें करना है।

सच्चा त्याग अंतरमें है, सच्चा संवर अंतरमें होता है, सच्ची निर्जरा अंतरमें होती है, सब अंतरमें होता है। बाकी बाहरका जो मानते हैं कि अपने तप करें तो निर्जरा होगी, वह सब बाहरका है। ऐसा तप बहुत बार किया, ऐसी निर्जरा की, लेकिन वास्तवमें निर्जरा नहीं होती है। नये-नये कर्म बान्धते हैं। सच्चा तो अंतर-से छूटे तो वास्तवमें बन्ध-से छूटे और वास्तवमें अंतर-से भिन्न होकर सच्चा मोक्ष अंतरमें होता है। करना वह है।

जैसा सिद्ध भगवानका स्वरूप है, ऐसा अपना स्वरूप है। और वह गृहस्थाश्रममें उसकी स्वानुभूति कर सकता है। गृहस्थाश्रममें आंशिक और मुनिदशामें बारंबार स्वानुभूति कर सकता है। जो उसका स्वभाव है उसमें-से प्रगट होता है। छोटीपीपर हो उसे घिसते-घिसते चरपराई (प्रगट होती है, वह) उसमें भरा है वह प्रगट होता है। वैसे आत्मामें ज्ञान है, बारंबार उस पर दृष्टि करे, उसमें रमणता करे तो प्रगट होता है। बाहर-से नहीं आता। बाहरमें तो मात्र शुभभावनारूप कर सकता है।

... स्वभाव-से भरा हुआ, वैसे आत्मा आनन्द-से और ज्ञान-से भरा है। ऐसे अनन्त गुण-से भरा है। परन्तु अंतरमें दृष्टि प्रगट हो, तो काम आये ऐसा है। भेदज्ञान करके आत्माको पहचानना। आत्माके उत्पाद-व्यय-ध्रुव और पुद्गलके उत्पाद-व्यय-ध्रुव क्या? अपने द्रव्य-गुण-पर्याय, दूसरोंके द्रव्य-गुण-पर्याय, दोनोंको भिन्न करे, वह करना है।

मुमुक्षु :- जितना आदर देव-गुरु-शास्त्रके प्रति आता है, इस भूमिमें, दूसरी जगह आता नहीं।

समाधान :- गुरुदेव यहाँ कितने साल रहे हैं। ४५ साल गुरुदेव यहीं रहे हैं। और ये सब कुदरती उनके प्रताप-से ऐसा हो गया है कि...

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- वास्तविक उपाय वही है-स्वानुभूति। गुरुदेवने वही (उपदेश दिया है कि) स्वानुभूति प्रगट करो। बाहरमें जीव अनन्त कालमें हर जगह जहाँ-तहाँ रुक जाता है। परन्तु अंतरमें करनेका एक ही है-स्वानुभूति कैसे हो? भेदज्ञान कैसे हो? आत्मा कैसे ग्रहण हो? वह है। बाहर रुक जाता है।

अनन्त कालमें (क्रियाएँ) की, बाह्य त्याग किया, मुनिपना लिया, परन्तु अंतर एक आत्माको पहचाना नहीं। सब बाहरका जाना, लेकिन आत्माको जाने बिना। एक आत्माको जाने उसने सब जाना है। ऐसा गुरुदेव कहते थे, एक आत्मामें दृष्टि दे तो उसमें सब आ जाता है। अनन्त काल ऐसे ही व्यतीत किया। बाहर थोड़ी क्रिया कर ली तो धर्म मान लिया, अथवा कुछ त्याग कर दिया तो मैंने बहुत किया, परन्तु अंतरमें त्याग क्या है और कैसे है, उसका विचार नहीं किया है।

स्वानुभूतिका मार्ग गुरुदेवने (बताया)। स्वानुभूति अंतरमें होती है। नहीं तो समयसार पढ़कर, इसमें तो आत्माके आनन्दकी बात है, आनन्दकी बात है, ऐसा करके छोड़ देते थे। दिगंबरोंमें सब छोड़ देते थे। गुरुदेवने उसमें-से रहस्य खोले कि इसमें तो कोई अपूर्व बात भरी है। समयसारमें।

(गुरुदेवने संप्रदायमें) दीक्षा लेकर छोड़ दिया कि मार्ग तो कोई अलग है। अंतरमें है। सबको प्रकाश किया। यहाँ तो ठीक, पूरे हिन्दुस्तानमें सबको जागृत कर दिया कि अंतरमें है सब। स्थानकवासीमें या दिगंबरमें, सब बाह्य क्रियामें धर्म मानते थे। वह कहे, सामायिक, प्रतिक्रमण कर ले तो धर्म (हो गया), थोड़ी भक्ति-पूजा कर ले तो धर्म (हो गया), यहाँ दिगंबरमें थोड़ी शुद्ध-अशुद्धि कर ले तो धर्म (हो गया), ऐसे धर्म (मानते थे)। बाहर-से थोड़ा कर ले, फिर पूरा दिन कुछ भी करते हो, थोड़ा कर ले तो धर्म (हो गया)। उसमें शुभभाव रखे तो पुण्यबन्ध हो। बाह्य प्रसिद्धिके हेतु-से करे तो पुण्य भी नहीं बन्धता। शुभभावना रखे तो पुण्यबन्ध होता है।

गुरुदेव कहते हैं, पुण्यभाव भी तेरा स्वभाव नहीं है। उससे देवलोक होता है, भवका अभाव नहीं होता है। तू उससे भिन्न है। शुभभाव भी तेरा स्वरूप नहीं है। उससे तू भिन्न है। शुभभाव सब बीचमें आते हैं। देव-गुरु-शास्त्र, दान, दया, तप सब आये, लेकिन वह तेरा स्वभाव (नहीं है)। शुभभावना तेरा स्वरूप नहीं है।

पहले शुरूआत सच्ची समझने करनी है। यथार्थ ज्ञान हो तो यथार्थ चारित्र हो। बिना ज्ञानके बाहर-से चारित्र ले लेना, वह तो समझे बिना चलना है। कहाँ चलना है? मार्ग तो खोज। अन्दर यथार्थ श्रद्धा और यथार्थ ज्ञान करके, यहाँ जाना है, उसका ज्ञान करके अन्दर रमणता कर तो चारित्र (होता है)। बाहर-से चारित्र नहीं आता है। बाह्य क्रियाओंमें चलने लगा। लेकिन वह स्थूल दृष्टि है, अंतर दृष्टि नहीं की। मुनि होकर त्याग किया, उपवास किये, व्रत धारण किये, सब किया, कंठस्थ किया, पढ़ लिया, लेकिन आत्मा अन्दर कैसे भिन्न है, वह जाना नहीं। सब रट लिया, पढ़ लिया, शास्त्र धोख लिये, परन्तु अंतरमें आत्मा भिन्न और ये भिन्न है, ऐसा अंतरमें (जाना नहीं)। अंतरमें-से प्रगट करना, अंतरमें-से भिन्न होना, वह कुछ नहीं किया।

... जीवको अनन्त बार प्राप्त हुआ है। परन्तु देवमें-से पुनः परिभ्रमण होता है। सिद्ध दशा तो अंतरमें (होती है)। विचार दशा हो, अंतरमें-से ज्ञान ज्ञानरूप परिणमे, ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमे, एक ज्ञायक स्वभावमें सब भरा है, उसमें अनन्त शक्ति भरी हैं, वह अंतरमें-से प्रगट होती है।

मूल स्वभाव, मूल जो तना है-आत्म स्वभाव-चैतन्य-उसे ग्रहण नहीं किया और सब शाखा और पत्तोंको पकड़ लिया। शाखा-पत्तोंसे... मूलमें जाकर उसमें ज्ञान-वैराग्य रूपी जलका सिंचन करे तो उसमें-से वृक्ष पनपे। मूल बिनाके शाखा और पत्ते सूख जायेंगे।

.. ध्यान करनेमें विकल्प-विकल्प मन्द करे, फिर शून्याकार जैसा (हो जाता है)। आत्माको ग्रहण किये बिना ध्यान भी सच्चा नहीं होता।

समाधान :- ... जैसा सत् पूरा द्रव्य है, अनन्त गुण और पर्याय-से भरा हुआ, द्रव्य-गुण-पर्याय... ऐसे सत् नहीं है। उसका कार्य भिन्न, उसका लक्षण भिन्न है। इसलिये उसे भी सत् उस तरह कहनेमें आता है। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। और अहेतुक अर्थात् वह अकारणयी है। अहेतुक है। वह स्वयं स्वतंत्र है। स्वयं अपना कार्य करनेमें स्वतंत्र है। स्वयं अपने स्वभावमें स्वतंत्र है। ऐसे उसकी स्वतंत्रता है, ऐसे उसका सत् है। परन्तु वह सत् ऐसा नहीं है कि जैसे द्रव्य सत्, गुण-पर्याय-से भरा पूरा द्रव्य सत् है, ऐसे गुण-पर्याय, ऐसा सत् नहीं है। लक्षण-से और कार्यों-से उस प्रकार-से वह सत् है।

मुमुक्षु :- दो पदार्थोंकी भाँति दो सत् भिन्न-भिन्न नहीं है।

समाधान :- हाँ। वैसे सत् नहीं है। दो पदार्थ भिन्न-भिन्न सत् हैं, वैसा सत् नहीं है। उसके लक्षण-से, उसके कार्य, उनके कार्य भिन्न-भिन्न है, उस अपेक्षासे उन्हें सत् कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- उस अपेक्षासे सत्को भिन्न किया जाता है।

समाधान :- उस प्रकार-से भिन्न पड़ते हैं। और लक्षण एवं कार्य, उसके स्वयंके हैं। कोई उसे करता नहीं। स्वयं उसके कार्य है। तो भी उसे द्रव्यका आश्रय रहता है। द्रव्यकी परिणति, स्वयं स्वभाव-ओर लक्ष्य करे, दृष्टि करे तो उस ओरकी परिणति होती है। पर्याय होती है स्वतंत्र, लेकिन वह द्रव्यके आश्रय-से रहती है।

अखण्ड द्रव्यका जैसा सत् है ऐसी दृष्टि कर तो वैसी तेरी परिणति होगी। परन्तु वह द्रव्य ऐसा है कि द्रव्य अनन्त गुण और अनन्त पर्याय-से भरा है। द्रव्य ऐसा नहीं है कि द्रव्यमें कोई शक्ति नहीं है या द्रव्य कोई कार्य नहीं करता है, ऐसा नहीं है। द्रव्यमें अनन्त शक्ति, अनन्त गुण और अनन्त पर्यायें हैं। ऐसा कहना चाहते हैं। ऐसा कहकर पदार्थ अलग नहीं करना चाहते हैं। द्रव्यका स्वरूप बताते हैं, ऐसा कहकर।

द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत् ऐसा कहकर द्रव्यका स्वरूप बताते हैं कि द्रव्य ऐसा है। वह द्रव्य कैसा है? कि उसमें अनन्त गुण हैं और अनन्त पर्याय हैं। और वह सत्रूप है। वह द्रव्य स्वयं ही वैसा है। ऐसा कहनेका आशय है। उसमें दो टूकड़े नहीं करना चाहते, लेकिन द्रव्यका स्वरूप बताते हैं। द्रव्यमें जो गुण हैं, वह सत्रूप है, पर्याय सत्रूप है। सत् अर्थात् उसका अस्तित्व है। लेकिन उसका अस्तित्व ऐसा नहीं है कि द्रव्यका अस्तित्व अनन्त शक्तियाँ-अनन्त गुणोंसे भरपूर है, ऐसा गुणका सत् और पर्यायका सत् ऐसा नहीं है। वह तो एकका है, एक गुणका, एक पर्यायका है। वह सत् ऐसा नहीं है। इस प्रकार द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत् कहकर द्रव्यका स्वरूप बताते हैं। भिन्नता करनेको नहीं बताते हैं, परन्तु ऐसी दृष्टि और स्वयंको ऐसी महिमा आये कि यह द्रव्य अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों-से भरा है। ऐसा तू यथार्थ ज्ञान कर। ज्ञान करके उस ओर दृष्टि और उस जातकी परिणति प्रगट कर। ऐसा कहनेका आशय है।

तेरेमें अनन्त गुण और तेरेमें अनन्त पर्याय हैं। और वह सत्रूप है। तू द्रव्य ऐसा नहीं है कि एक ऐसा पिण्ड है कि जिसमें कोई कार्य नहीं है, जिसमें भिन्न-भिन्न जातकी पर्यायें नहीं है, ऐसा नहीं है। तेरेमें अनेक जातकी पर्यायें और अनन्त जातके गुण भरे हैं, उसका तू ज्ञान कर। ऐसा कहना चाहते हैं। अतः प्रत्येक सत् भिन्न-भिन्न है, वह एक-एक टूकड़े हैं, ऐसी दृष्टि कर, ऐसा नहीं कहना चाहते हैं। परन्तु उसका तू ज्ञान कर। तेरा द्रव्य अनन्त गुण और अनन्त पर्याय-से भरा है और वह अनन्त गुण और अनन्त पर्याय सत्रूप हैं। सत् अर्थात् तेरा द्रव्य जैसे अनन्त शक्तियों-से भरा है ऐसा सत् नहीं, अपितु एक-एक मर्योदित सत् है। एक ज्ञानलक्षण जाननेका, ऐसे। एक-एक अंशका है। पूरा अंशीका सत् है, वैसा अंशका सत् नहीं है। और

अंशका सत् है वह स्वयंसिद्ध है। लेकिन द्रव्यका स्वरूप द्रव्यके आश्रय-से है।

मुमुक्षु :- उसे रखकर बात है।

समाधान :- वह बात रखकर उसका स्वयंसिद्ध सत् इस प्रकार समझना।

मुमुक्षु :- तीनों मिलकर एक सत् है। ... परद्रव्य-से भेदज्ञान हो। और द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय सत् ऐसा ज्ञान करवाकर पर्यायका लक्ष्य छुड़ाना है और गुणकी दृष्टि करवानी है, ऐसा कोई प्रयोजन है?

समाधान :- तू परद्रव्य-से भिन्न हो जा। तेरेमें पर्याय हैं, तू कूटस्थ नहीं है, परन्तु तेरेमें भी पर्याय हैं। तेरी परिणतिको बदल, ऐसा कहना है। तेरेमें पर्याय हैं, तेरेमें गुण हैं। अपने स्व गुण और स्व पर्यायोंका उसका ज्ञान होता है। तेरी परिणति पलटन स्वभावी है। तू ऐसा नहीं है कि कूटस्थ है। अकेला कूटस्थ है और उसमें कुछ है ही नहीं, सर्व अपेक्षा-से कूटस्थ है ऐसा नहीं है। तेरेमें परिणति-पर्याय भी है और वह पर्याय सत्रूप है। तेरेमें अनन्त गुण हैं। ऐसे द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत् सबका ज्ञान कर।

.. दृष्टि तो अभेद करनी है, परन्तु यह सब ज्ञान करना है। तेरा द्रव्य अखण्ड कैसा है, उसका ज्ञान कर। पर्यायदृष्टि छुड़ाकर... दृष्टि अपनी ओर जाती है तो पर्याय अपनी ओर मुड़ती है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- द्रव्यका लक्ष्य होता है इसलिये पर्याय स्वयं पलटती है। कोई द्रव्य कूटस्थ मानते हो, द्रव्यमें गुण नहीं है, ऐसा मानते हो। उसमें अखण्ड अनेकान्त स्वरूप आ जाता है। तेरेमें गुण अनन्त हैं, तेरेमें पर्याय हैं। सबका ज्ञान कर। पर्याय न हो तो साधक दशा भी न हो। तो साधक दशा पर्याय है। गुणोंका वेदन होता है। ज्ञानका ज्ञानरूप, चारित्रका चारित्ररूप, आनन्दका आनन्दरूप। वह सब वेदन होता है। इसलिये तेरेमें गुण हैं, तेरेमें पर्याय हैं। और वह सब स्वद्रव्य है। वह सब ज्ञान करनेके लिये है। और उसमें परिणति, उस रूप अपने पुरुषार्थकी परिणति भी उस अनुसार होती है।

दृष्टि और ज्ञान यथार्थ न हो तो उसका पुरुषार्थ भी यथार्थ नहीं होता। द्रव्य पर अखण्ड दृष्टि कर, परन्तु ये गुण और पर्यायके भेदमें रुकना नहीं है, परन्तु उसका ज्ञान कर। तुझे चारित्रकी पर्याय प्रगट हो, वह भी पर्याय है, तुझे ज्ञान प्रगट हो, वह भी एक पर्याय है। लेकिन वह सब तेरेमें गुण हैं।

मुमुक्षु :- एक अखण्ड वस्तुमें ऐसे अनन्त गुण..

समाधान :- पर्यायरूप सत् भी तेरे द्रव्यमें सब भरा है। उसका ज्ञान कर। यथार्थ श्रद्धा हो, स्वानुभूति हो। तो भी चारित्रदशा अभी बाकी रहती है। इसलिये ऐसे गुणके

भेद अन्दर है, पर्यायके भेद पड़ते हैं, उन सबका ज्ञान कर।

मुमुक्षु :- उन सबको जैसा है वैसा जान।

समाधान :- जैसा है वैसा तू जान। तो तुझे वीतराग दशाकी प्राप्ति होगी, तो तेरी साधक दशा आगे बढ़ेगी। दृष्टि हुयी इसलिये सब परिपूर्ण हो गया, ऐसा नहीं है। अभी तेरी दशा अधूरी है। वीतराग दशाकी प्राप्ति (नहीं हुयी है), पूर्णता अभी बाकी है। दृष्टि भले पूर्ण पर है, लेकिन अभी अधूरा है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- उसका मतलब कि जैसा द्रव्य सत् है, वैसे गुण एवं पर्याय उस जातके सत् नहीं है। इसलिये वैसा सत् नहीं है, एक ही सत् है। उस अपेक्षा-से एक ही सत् है। लक्षण... जो शास्त्रमें आता है, वह अस्तित्व रखता है, गुण और पर्याय अपना अस्तित्व रखता है, इसलिये सत्।

मुमुक्षु :- इस अपेक्षा-से शास्त्रमें द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय सत्का..

समाधान :- वह अपना अस्तित्व रखता है। गुण और पर्याय। बाकी द्रव्य-गुण-पर्याय मिलकर पूरा द्रव्य (है)। द्रव्य जैसा अखण्ड सत् है, वैसे गुण और पर्याय वैसे स्वतंत्र सत् नहीं है जगतमें, ऐसा। और दृष्टिमें मैं पूर्ण वीतराग स्वरूप हूँ, वह दृष्टिका प्रयोजन है। और पर्यायकी साधना अभी बाकी है, इसलिये उसमें वीतरागताका, पूर्णताका प्रयोजन, केवलज्ञान पर्यंत पहुँचना, वह प्रयोजन है। गुण और पर्याय...

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३६

मुमुक्षु :- दृष्टिमें पूर्णताका लक्ष्य और प्रयोजनमें ऐसा कहे कि अभी न्यूनता है, पूर्णता प्राप्त करनी है।

समाधान :- अभी न्यूनता है, चारित्र बाकी है-लीनता बाकी है। द्रव्यपने अभेद है, परन्तु अभी पर्याय स्व-ओर पूर्णरूपसे शुद्ध नहीं हुयी है। शुद्धताकी पर्याय जो प्रगट होनी चाहिये वह पूर्ण शुद्ध (नहीं है)। द्रव्य और गुण अनादिअनन्त एकसाथ है। पर्याय तो क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें पलटती रहती है। पर्याय जो विभाव-ओर थी, वह स्वभाव-ओर गयी, इसलिये आंशिक शुद्ध तो हुयी, परन्तु अभी लीनता बाकी है। दृष्टिके साथ जुड़ी जो पर्याय है वह पर्याय उतनी शुद्ध हुयी, परन्तु अभी लीनताकी बाकी है।

मुमुक्षु :- उतना भेद पड़ता है।

समाधान :- हाँ, उतना भेद पड़ता है। नहीं तो तुरन्त केवलज्ञान हो जाना चाहिये। स्वानुभूतिमें तुरन्त केवलज्ञान नहीं हो जाता। स्वानुभूति अंशरूप है। केवलज्ञान, वीतरागता तुरत्न नहीं होती। किसीको अंतर्मुहूर्तमें हो जाती है, वह अलग बात है। तो भी उसमें क्रम तो पड़ता ही है।

मुमुक्षु :- .. द्रव्यका अवल्मबन है...

समाधान :- पुरुषार्थकी कचास है। किसीकी परिणति ऐसी है कि अंतर्मुहूर्तमें एकदम पुरुषार्थ उत्पन्न हो जाता है। किसीकी परिणति ऐसी है कि धीरे-धीरे उत्पन्न होती है। जो अपनी ओर मुड़ा, स्वानुभूति प्रगट हुयी, उसे अवश्य वीतराग दशा होनेवाली ही है। किसीको धीरे होती है, किसीको जल्दी होती है।

मुमुक्षु :- कम-ज्यादा समय तो गौण है।

समाधान :- हाँ, कम-ज्यादा (समय गौण है)। पुरुषार्थकी उतनी परिणतिकी क्षति है, पुरुषार्थकी क्षति है।

मुमुक्षु :- ...पुरुषार्थकी मुख्यता..

समाधान :- पुरुषार्थकी मुख्यता रखनी।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- कोई ऐसा कहे कि क्रमबद्धमें ऐसा होनेवाला था। परन्तु पुरुषार्थकी

मुख्यतापूर्वकका क्रमबद्ध है। जिसके लक्ष्यमें पुरुषार्थ नहीं है, वह आगे नहीं बढ़ सकता। क्रमबद्ध भले साथमें हो, परन्तु जिसके लक्ष्यमें पुरुषार्थ नहीं है (वह आगे नहीं बढ़ सकता)। क्रमबद्ध पुरुषार्थके साथ जुड़ा है।

मुमुक्षु :- पर्याय शुद्ध हो जाती है? क्रमबद्धके साथ पुरुषार्थ आये तो पर्याय शुद्ध हो जाती है?

समाधान :- पुरुषार्थ उत्पन्न हो, इसलिये उसका क्रमबद्ध हो जाता है। पुरुषार्थ अपनी ओर-ज्ञायक ओर करे तो क्रमबद्ध जैसा है वैसा हो जाता है। उसकी दृष्टि पुरुषार्थ पर होनी चाहिये, उसका लक्ष्य पुरुषार्थ पर होना चाहिये। उसे खटक रहनी चाहिये कि मेरी मन्दता है, मैं आगे नहीं बढ़ पाता हूँ। यदि ऐसा उसके ख्यालमें रहे कि क्रमबद्धमें जैसा होनेवाला होगा वह होगा, मैं क्या करुँ? होनेवाला होगा, होनेवाला होगा, ऐसा करता रहे तो उसे होनेवाला होगा, ऐसा ही रहेगा। परन्तु जिसकी भावनामें खटक रहे तो ही उसका क्रमबद्ध पुरुषार्थके साथ जुड़ा है। ऐसा क्रमबद्ध और पुरुषार्थका सम्बन्ध है। स्वभाव, काल, पुरुषार्थ आदि सब जुड़े हैं।

मुमुक्षु :- पाँचों समवायका मेल है। उसमें पुरुषार्थकी मुख्यता है।

समाधान :- उसमें पुरुषार्थकी मुख्यता (है)। साधकको, रुचिवालेको सबको पुरुषार्थ-ओर, अपनी ओर, अपनी भूल तरफ उसकी दृष्टि रहनी चाहिये कि मेरी क्षति है। क्रमबद्ध और कर्मका उदय (लेकर) जो अपनी क्षति नहीं गिनता है, उसको धीरापन और कचास रहेगी ही। जो अपनी क्षतिकी ओर जाता है, फिर भले कर नहीं सकता, परन्तु अपनी क्षतिकी ओर ही उसकी दृष्टि रहती है, वही आगे बढ़ता है। ऐसा पुरुषार्थ और क्रमबद्धका सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- क्षति है, उसमें कोई ऐसा कहे कि इसमें तो दोष पर दृष्टि रहती है।

समाधान :- दोष पर दृष्टि,.. गुण पर दृष्टि गयी, परन्तु जो साधक दशा है, उसकी भावनामें सब आता है कि मैं परिपूर्ण चैतन्यस्वरूप ज्ञायक हूँ। परन्तु मेरी न्यूनता है। न्यूनताकी ओर उसे विचार आये बिना नहीं रहते। भावना हुए बिना नहीं रहती। कैसे ये सब विभाव छूटे, मैं स्वभावमें रहूँ। विभाव छूटे, पुरुषार्थ करुँ ऐसी भावना ही न हो, ऐसा नहीं होता। दोनों प्रकारकी भावना तो होती है। उसे दोषसे कैसे छूटे? और मैं स्वभाव तरफ दृष्टि करुँ, लीन होऊँ तो छूटेगा, ऐसा समझता है। मेरी लीनताकी क्षति है। इसलिये यह क्षति है। मेरे गुण प्रगट हो तो दोष टले। ऐसा वह बराबर समझता है। परन्तु भावना तो सब प्रकारकी आती है।

मेरी क्षति है, मेरा दोष है, मैं लीनता करुँ तो हो। ऐसी भावना तो आती है। ये राग कैसे छूटे? यह कैसे छूटे? चारित्र दशा कैसे आये? कब वीतराग होऊँ? ऐसी

भावना तो आये बिना नहीं रहती। भावना तो सब आती है। उसके ज्ञानमें वह ऐसा समझता है और दृष्टिका ज़ोर अपने द्रव्य पर है कि यह द्रव्यकी दृष्टष्टि है वह जोरदार है। लेकिन वह ज्ञानमें समझता है कि मैं लीन होऊँ तो यह छूट जाय ऐसा है। मेरी लीनताकी क्षति है। स्व तरफ देखता हूँ तो मेरी लीनताकी क्षति है। इस ओर देखूँ तो मेरे पुरुषार्थकी क्षति है। सर्व प्रकारकी भावना तो आती है। एक जातकी भावना (नहीं होती)। साधक दशामें एक प्रकारकी नहीं होती, सर्व प्रकारकी भावना आती है।

मुमुक्षु :- साधकको दृष्टिके ज़ोर पूर्वक दोषका ज्ञान भी बराबर होता है।

समाधान :- हाँ, दोषका ज्ञान हो, गुणका ज्ञान हो, स्वका ज्ञान हो, परका ज्ञान हो। सब ज्ञान होता है। राजकाज करते चक्रवर्ती हो, अरे..! मेरी क्षति है, मैं इसमें-से कब छूटूँ? मैं कब लीन होऊँ? मुनि कब होऊँ? ऐसी सब भावना, वैराग्यकी भावना तो आती ही है। धन्य मुनिदशा! जो मुनि बनकर चले जाते हैं। मैं अभी इसमें खड़ा हूँ। ऐसी भावना तो आती है।

मुमुक्षु :- सविकल्प दशामें ऐसे सब विकल्प आते हैं।

समाधान :- विचार (आते हैं)।

मुमुक्षु :- ... दृष्टिका ज़ोर तो ज्योंका त्यों है।

समाधान :- हाँ, दृष्किा ज़ोर होने पर भी साधक दशामें ऐसे विचार आते हैं। नहीं तो वीतराग हो जाय। अकेले गुण पर हो तो गुणकी परिणति प्रगट होनी चाहिये। मात्र गुण तरफ ही रहता हो तो गुणकी परिणति गुणरूप हो जानी चाहिये। अन्दर विभाव होता है और उसे टालनेका विचार न आये, ऐसा नहीं बनता। मैं लीन होऊँ, स्व तरफ जाऊँ तो सहज ही छूटता है। सहज दशा हो तो सहज छूटता है, ऐसा उसे ख्याल है। तो भी भावना सब आती है। उस पर उसे वज़न नहीं है। ऐसी वस्तु स्थिति नहीं है कि दोष तरफ दृष्टि रखनी। ऐसी वस्तु स्थिति नहीं है। निज द्रव्य पर दृष्टि है। ज्ञान स्व-ओरका होता है। परन्तु सब जानता तो (है)। दिशा अपनी ओर मुड़ गयी है, लीनता अपनी ओर करता है, परन्तु भावना तो सब आती है।

मुमुक्षु :- फिर यह सहज ज्ञानमें यह सब भी..

समाधान :- यह सब आता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- सब, भावना तो सब आती है। दृष्टिके ज़ोरमें द्रव्य तो जैसा है वैसा है। मैं पुरुषार्थका पिण्ड हूँ, ऐसा दृष्टिमें आये इसलिये पुरुषार्थ करना ही नहीं, ऐसा उसका अर्थ नहीं होता।

मुमुक्षु :- परिणतिमें ऐसा नहीं होता।

समाधान :- परिणतिमें ऐसा नहीं होता। उसे सब विवेक तो होना चाहिये।.. दोष पर वज़न चला जाय, ऐसा नहीं है। दृष्टिका ज़ोर साथमें है। फिर न हो तो आकुलता हो कि उलझनमें आ जाय, ऐसा उसे नहीं होता। परन्तु समझता है कि मेरी क्षति है। मैं लीन होऊँ तो यह सब छूट जाय। परन्तु मुझे लीनता कैसे हो? ऐसी भावना रहती है।

मुमुक्षु :- महिमा नहीं आती, ... दोषका ख्याल है, दृष्टिका ज़ोर तो ज्ञायक हूँ, वह है।

समाधान :- .. दृष्टिका कहे और चारित्रकी बात हो तो चारित्रका कहे। सर्व प्रकारकी बात आये। गुरुदेव, अनन्त कालसे जीव भ्रममें पड़े हैं, उन्हें दृष्टिकी बात ज़ोर-से बताये, स्व-पर एकत्व-विभक्तकी बात दुर्लभ है, जीवने सुनी नहीं है। स्वमें एकत्व और परसे विभक्त, वह बात (दुर्लभ है)। गुरुदेव तो दृष्टिकी बात करे। परन्तु प्रसंग पर सब बात गुरुदेवके प्रवचनमें सब बात आती थी। चारों ओरकी बातें आती थी। जब पर्याय-ओरकी आये तो इतने ज़ोर-से (कहे) और दूसरे रंग जाय, ऐसी बात पर्याय-ओरकी आती थी।

मुमुक्षु :-

समाधान :- चारों तरफकी बात गुरुदेवके (प्रवचनमें) आती थी। वैराग्य तरफकी बात ऐसी आये कि दूसरे लोग डोलने लगे। मुनिकी बात, बच्चोंकी करते थे, गुरुदेव कैसी बात करते थे। गुरुदेव चारों तरफकी बात (करते थे)। हम आज ही धर्म अंगीकार करेंगे, हम आज ही मुनिपना लेंगे। गुरुदेवकी सर्व प्रकारकी बात आती थी।

समाधान :- वह आगे बढ़नेमें उलझ जाता हो तो एक जाननेकी बात है कि क्रमबद्ध है। मेरी क्षति है, ऐसा स्वयंको पुरुषार्थका लक्ष्य तो रहना चाहिये।

.. द्वेष अरोचक भाव। परकी रुचि तोड़ते-तोड़ते उसे पसीना निकल जाता है। ऐसे उसको रुचि होती है कि आत्माका करने जैसा है। परन्तु एकत्वबुद्धि तोड़ते-तोड़ते उसे मुश्किल हो जाता है। अनन्त कालका अभ्यास है न इसलिये। प्रयास कर-करके खेद हो जाय, थक जाता है। वहाँ जाय, प्रयास करे, अभी भी प्राप्त नहीं हो रहा है, प्रयास करते-करते थक जाय, खेद हो जाता है। ... ऐसा होता नहीं है, परन्तु उसके विश्वासमें चलायमान हो जाता है। पुरुषार्थकी क्षति है।

... कैसी कर दी है। वह स्वयं है भिन्न, परन्तु स्थूल हो गया है। स्वयंने ही एकत्व अभ्यास कर-करके (किया है)। जितना अभ्यासका ज़ोर किया, उतना अनन्त काल उस अभ्यासमें रहा। अब उसे क्षण भर तो ज़ोर करना ही पड़े न। इस अनन्त

कालके अभ्यासके (सामने)। अनन्त कालका अभ्यास किया, उसके सामने अनन्त काल अभ्यास करनेमें नहीं जाता है। भले अभ्यास करे धीरे-धीरे तो थोड़ा समय लगे, परन्तु उग्र करे तो छः महिने लगता है। परन्तु अंतिम क्षणोंमें उसे एक क्षण तो ज़ोर करना ही पड़ता है, अनादिका अभ्यास तोड़नेको। जितना काल उसका अभ्यास करनेमें व्यतीत किया, उतना काल नहीं लगता है। परन्तु क्षण भर तो ज़ोर करना ही पड़ता है।

... करके थक जाता है, खेद हो जाता है। भय और अरोचक भावको वह पकड़ नहीं सकता है। गहराईमें जाय तो अन्दर रुचि भले आत्माकी हो, परन्तु एकत्वबुद्धि तोड़ते-तोड़ते उसे तकलीफ होती है। एकत्वकी परिणति हो गयी है। रुचि अपनी ओर है, परन्तु एकत्वकी परिणति हो गयी है, उसे तोड़नेमें तकलीफ होती है।

.... गुण-पर्याय कहो, उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहो। ये उत्पाद-व्यय-ध्रुव मेरे, .. उसे बराबर पहचानकर भेदज्ञान करे। प्रज्ञाछैनी, उसकी सन्धि देखकर उसे बराबर तोड़ना। कोई जगह सूक्ष्म सन्धि भी नहीं रहती। एक समान भाग हो जाता है। उसकी सन्धि देखकर विभाग करे तो सूक्ष्म सन्धि नहीं रहती। तो ही विभाव हुआ ऐसा कहनेमें आये। सूक्ष्म सन्धि रहे तो उतना चीपका रहे, तो दो भाग भिन्न नहीं हो जाते। पत्थर हो, उसमें सूक्ष्म सन्धि हो तो भी पत्थर एक जगह चीपका रहता है। तो भी चीपका रहता है। वहाँ भी सूक्ष्ममें वह चीपका नहीं।

सूक्ष्ममें गुणके भेद, पर्यायके भेद, जो रागमिश्रित भाव जहाँ-जहाँ आये, वहाँ-से भिन्न पड़ जाता है। ज्ञानमें सब हो। परन्तु एकत्वबुद्धि जहाँ-जहाँ हो, वहाँ-से भिन्न पड़ जाता है। दूसरे शुभभाव, जहाँ स्वयंको बहुत रस आये ऐसे भाव, गुणके भेद, पर्यायके भेद, उसमें रागमिश्रित जो-जो सूक्ष्म-सूक्ष्म आते हो, सबमें प्रज्ञाछैनी चारों तरफ-से पटकती है। और एक समान दो विभाव कर देती है। यह चैतन्यका भाग और यह विभावका भाग है। उतना ज्ञान करे, इतना करे तो भी कहीं-कहीं शुभभावोंमें मीठास रह जाती है।

मुमुक्षु :- ... पर्याय तो व्यय हो गयी है।

समाधान :- पर्याय दूसरी हो गयी, परन्तु द्रव्यमें योग्यता है। सर्वथा भिन्नता तो नहीं है। सबमें अपेक्षासे समझनी। प्रत्यभिज्ञानका कारण जो सामान्य स्वभाव है, प्रत्यभिज्ञानका कारण जो द्रव्य है, उसमें-से उसे स्फूरणा होती ही रहती है। संस्कार होते हैं।

मुमुक्षु :- संस्कार द्रव्यमें योग्यता रूप रहते हैं?

समाधान :- हाँ, योग्यता रूप रहते हैं।

मुमुक्षु :- पर्याय तो व्यतिरेक है।

समाधान :- पर्याय तो चली गयी है, व्यतिरेक हो जाती है। सब पर्याय भिन्न-

भिन्न हैं। वह सब स्वतंत्र हैं और एक ओर कहें कि द्रव्यके आश्रय-से है। द्रव्यका आश्रय न हो तो अनन्त कालमें जो-जो उसे बना है, वह सब कहाँ-से (आता है)? अन्दर उसे स्फूरणामें आता है। अन्दर संस्कार है। पर्याय चली गयी है तो भी।

मुमुक्षु :- संस्कार रह जाते हैं।

समाधान :- संस्कार रह जाते हैं। उस पर्यायने काम किया, इस पर्यायको कोई भी मेल नहीं है, उसे कोई मेल नहीं है। तो फिर द्रव्य बिलकूल भिन्न हो गया। तो स्वयं जो मुक्तिका मार्ग प्रगट करता है, यह विभाव मेरा नहीं है, स्वभाव प्रगट करो, एक पर्यायको दूसरी पर्यायके साथ मेल ही नहीं है तो फिर करना कहाँ रहता है? कुछ नहीं रहा। टूकड़े हो गये। बीचमें एक नित्य शाश्वत द्रव्य है। पर्याय पलट जाती है। द्रव्य है। सर्व अपेक्षाका मेल करके साधना करने जैसी है। कब, कहाँ, किसका वज़न देकर करना है (वह समझना चाहिये)।

मुमुक्षु :- .. और कथंचित् उसकी स्वतंत्रता द्रव्यसे..

समाधान :- वह भी है। कथंचित् स्वतंत्रता है और उसके आश्रयसे होती है वह भी है। दोनों अपेक्षा (समझनी)।

मुमुक्षु :- ... और परका द्रव्य स्वतंत्र है, उन दोनोंमें कथंचित्.. जिस अपेक्षा-से द्रव्यका आश्रय है, उस अपेक्षा-से द्रव्यका आश्रय है ही और जिस अपेक्षा-से पर्याय द्रव्य-से स्वतंत्र है, उस अपेक्षा-से पर्याय स्वतंत्र है, ऐसा लेना है?

समाधान :- द्रव्यका आश्रय है। पर्यायको द्रव्यका आश्रय भी है, वह अपेक्षा भी है। और कथंचित् स्वतंत्र है, वह अपेक्षा भी है। प्रत्येक पर्याय स्वतंत्र परिणमती है। परस्पर एकदूसरेके आश्रय-से परिणमती है, ऐसा नहीं है। स्वतंत्र परिणमती है। परन्तु द्रव्यके आश्रय-से परिणमती है, ऐसी अपेक्षा भी है। बिलकूल सर्वथा स्वतंत्र हो तो जितनी पर्याय, उतने द्रव्य हो जाय। बिलकूल स्वतंत्र (हो तो) जितनी पर्याय, उतने द्रव्य बन जाय।

द्रव्य है वह त्रिकाल है, शाश्वत है। शक्तिओं-से भरपूर द्रव्य है। पर्याय तो एक क्षणके लिये है। जिस क्षण परिणमित होकर आये, उतना है उसमें। एक क्षण पर्याय परिणमे, उससे तो अनन्त शक्ति-से भरपूर द्रव्य है। विभाव पर्याय अलग बात है, स्वभाव पर्यायमें तो अनन्त शक्ति-से भरपूर स्वभावपर्याय तो उसमें अनन्त जो आये, उससे अतिरिक्त द्रव्यमें अनन्त भरा है। पर्यायकी शक्ति तो अमुक है और द्रव्य तो अनन्त शक्तिओं-से भरपूर है। ... ऐसे पर्यायके षट्कारक अमुक अपेक्षासे है। बाकी जैसा स्वतंत्र द्रव्य है, ऐसी पर्याय (स्वतंत्र नहीं है)। पर्यायको तो द्रव्यका आश्रय है, वह अपेक्षा तो साथमें है।

मुमुक्षु :- द्रव्यका एक अंश रहकर, फिर उसमें षट्कारक ..

समाधान :- हाँ, आंशिक षट्कारक है। वह तो त्रिकाली स्वतंत्र द्रव्य ही है। उसकी स्वतंत्रता अलग है। पर्यायको तो द्रव्यका आश्रय है। क्योंकि वह तो एक अंश है। ... वह पर्याय स्वयं स्वतंत्र परिणमती है। वह भी एक परिणमन शक्तिवाला एक अँश है। इसलिये वह स्वतंत्र है। उसका अर्थ यह नहीं है कि वह द्रव्यके आश्रय बिना निराधार होती है, ऐसा नहीं है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३७

समाधान :- ... ज्ञात हो जाय तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव योग्य लगे तो कहे, अन्यथा नहीं भी कहे। स्वयं समझ ले।

मुमुक्षु :- ज्ञानी कहते ही नहीं है न। ज्ञानिओं कहते नहीं है।

समाधान :- जिसमें लाभ दिखे उसमें कहे, न दिखे (तो नहीं कहे)। .. तो कुछ कहे भी, प्रसंग न दिखे तो न कहे। पुण्यकी कचास कहो, जो भी कहो, करना स्वयंको है। वह मालूम पड़े या न पड़े, स्वयंको तो स्वयंकी तैयारी करनी है। मालूम पड़े तो भी स्वयंको पुरुषार्थ-से करना है। मालूम पड़े तो भी स्वयंको पुरुषार्थ करना है और न मालूम पड़े तो भी स्वयंको पुरुषार्थ करना है।

मुमुक्षु :- उसमें थोड़ा ज़ोर आये।

समाधान :- तो भी पुरुषार्थ तो स्वयंको करना है। मालूम पड़े तो बैठे नहीं रहना है। पुरुषार्थ तो स्वयंको ही करना है। पुरुषार्थ करनेका है, ऐसा कोई कहे तो भी भले और उस वक्त ... बाकी पुरुषार्थ तो स्वयंको करना है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- .. सबके लिये सुगम पंथ तैयार कर दिया है। उस पंथ पर चलने-से सब मोक्षपुरीमें जा सके, ऐसा पंथ सबको प्रकाशित कर दिया है, ऐसा पंथ गुरुदेवने बता दिया है। उस पंथ पर जाने-से सब मोक्षपुरीमें जा सकते हैं। तबियत ऐसी है, लेकिन सब मन्दिरके दर्शन.. गुरुदेव विराजते थे, वह बात अलग थी।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! हमारे प्रश्न तो वही हैं, परन्तु आप जब उत्तर देते हो तब हमें वह सब उत्तर नये-नये लगते हैं। हमारा यह प्रश्न है कि आबालगोपाल सर्वको सदा काल स्वयं ही स्वयंको अनुभवमें आ रहा है, ऐसा समयसारकी १७-१८ गाथाकी टीकामें आचार्यदेव कहते हैं। वहाँ आचार्यदेवका आशय क्या है? वहाँ ज्ञानका स्वपरप्रकाशक स्वभाव बताना चाहते हैं या शिष्यकी जो दृष्टिकी भूल है, वह समझाना चाहते हैं?

समाधान :- उसमें तो दृष्टिकी भूल कहते हैं। आबालगोपालको अनुभवमें आ रहा है, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वह अनुभूति, उसे आनन्दकी अनुभूति हो रही है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसका अर्थ ऐसा है कि आत्मा स्वयं अस्तित्व रूप-से,

अपना ज्ञायकका अस्तित्व छोड़ा नहीं है और ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमता है। लेकिन उसे उसका ज्ञान और श्रद्धान नहीं है। उसकी दृष्टि बाहर है।

वह ऐसा है कि, जैसे जड़ अपने स्वरूपको छोड़ता नहीं है, वैसे चैतन्य अपने स्वरूपको छोड़ता नहीं है। स्वयं अनुभूतिस्वरूप ही है। ज्ञान असाधारण लक्षण है कि ज्ञान ज्ञानस्वरूप स्वयं परिणमता है। लेकिन उसे उसकी अनुभूति नहीं है। अनुभूति अर्थात् उसे आनन्दकी अनुभूति नहीं है। परन्तु स्वयं अपने अनुभूतिस्वरूप अर्थात् चैतन्य चैतन्यरूप परिणमता है। अर्थात् ज्ञान ज्ञानरूप-से अनुभवमें आ रहा है। लेकिन उसको स्वयंको वह मालूम नहीं है कि मैं चैतन्य स्वयं अस्तित्व स्वरूप हूँ। उसका अस्तित्व उसने ग्रहण नहीं किया है, लेकिन अस्तित्वका नाश नहीं हुआ है। वह अनुभूतिस्वरूप ही है। आत्मा स्वयं अनुभूतिस्वरूप है। लेकिन उस अनुभूतिका स्वयंने अनुभव नहीं किया है। ऐसा उसका अर्थ है।

मुमुक्षु :- दृष्टिकी भूल है, यह बताना है।

समाधान :- दृष्टिकी भूल है, यह बताना है। उसकी दृष्टिकी भूल है। उसकी दृष्टि बाहर है। जैसे दूसरोंकी गिनती करता है कि यह आदमी है, यह आदमी है, लेकिन स्वयंको गिनना भूल जाता है। ऐसे स्वयं सब बाहर देख रहा है। बाहरका है, लेकिन मैं स्वयं चैतन्य हूँ, उसके अस्तित्वका नाश नहीं हुआ है, लेकिन वह स्वयंको भूल गया है। अपना अस्तित्व अनुभवमें आ रहा है। परन्तु उस अस्तित्वकी आनन्दकी अनुभूति नहीं है।

अनुभूतिस्वरूप स्वयं होने पर भी उसे आनन्दकी अनुभूति नहीं है। ज्ञान असाधारण लक्षण है कि जिस लक्षण-से स्वयं अपनेको पहचान सके ऐसा है। वह ज्ञान-ज्ञायकताका नाश नहीं हुआ है, ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। लेकिन स्वयं उस ज्ञायकतारूप नहीं हुआ है। इसलिये उसकी ओर दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, उसका आचरण करे तो उसे आनन्दकी अनुभूति प्रगट होती है। उसकी श्रद्धा नहीं करता है, स्वयं स्वयंका यथार्थ ज्ञान नहीं करता है।

यदि प्रतीति निःशंक हो तो उसका आचरणका बल भी बढ़ जाता है। तो उसका आचरण भी जोरदार अपनी ओर होता है। लेकिन निःशंकता नहीं है। दृष्टि बाहर है, इसलिये स्वयं स्वयंको भूल गया है। देखे तो ज्ञान असाधारण लक्षण है। उसका नाश नहीं हुआ है। तो भी स्वयं स्वयंको देखता नहीं। वह अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्माका स्वयं आनन्दरूप अनुभव नहीं करता है। अतः अनुभवमें तो आ रहा है, परन्तु वह आनन्दरूप अनुभवमें नहीं आ रहा है। ज्ञान ज्ञानरूप, उसका अस्तित्व अस्तित्वरूप परिणमता है। ऐसा उसका अर्थ है।

मुमुक्षु :- मतलब वहाँ अस्तित्व .. कहना है और अपना ध्यान नहीं रहता है और अपना आनन्दका अनुभव नहीं कर रहा है, ऐसा ही न?

समाधान :- आनन्दकी अनुभूति नहीं है। वहाँ अनुभवका अर्थ ऐसा नहीं है कि उसे स्वानुभव है। ऐसा अर्थ नहीं है। स्वयं अपने स्वभावरूप परिणमता है। बस! ऐसा उसका अर्थ है। आनन्दकी अनुभूतिका अर्थ नहीं है। ज्ञानका नाश नहीं हुआ है, परन्तु ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। उसका अस्तित्व अस्तित्वरूप है। परन्तु उस अस्तित्वकी उसे प्रतीति नहीं है। अस्तित्व ज्ञान ज्ञानरूप है, परन्तु उस अस्तित्वकी उसे स्वयंको प्रतीति नहीं है। अपनी तरफ यदि लक्ष्य करे तो स्वयंको अस्तित्व ग्रहण हो ऐसा है। ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है, लेकिन वह देखता नहीं है। उसका स्वभाव ही अनुभूतिस्वरूप है। वह स्वयं वेदनस्वरूप आत्मा है। परन्तु उसे वह प्रगटरूपसे वेदता नहीं है।

मुमुक्षु :- वहाँ तो प्रथम आत्माको जानना ऐसा कहा है, श्रद्धान बादमें, ऐसा लिया है।

समाधान :- जब वह स्वयं अपनी तरफ जाय (उसमें) पहले स्वयंको ज्ञान-से पहचाने। वस्तु स्वरूप-से उसे प्रतीत यथार्थ नहीं है। पहले ज्ञान यथार्थ करना, फिर प्रतीत करनी, फिर आचरण करना, क्रम ऐसा लिया है। अनादि-से स्वयंको सच्ची समझ ही नहीं है। इसलिये व्यवहारमें ऐसा कहे कि स्वयंने अपना ज्ञान यथार्थ नहीं किया है, इसलिये तू यथार्थ कर तो श्रद्धा यथार्थ होगी, ऐसा कहनेमें आता है।

बाकी वास्तवमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणी मोक्षमार्ग (है)। यथार्थ प्रतीत हो तो ही मोक्षमार्गका प्रारंभ होता है। लेकिन उसे पहले ज्ञान करना चाहिये। उसके मार्गमें ऐसा आता है कि तू यथार्थ ज्ञान कर, फिर श्रद्धा होती है। इसलिये प्रथम ज्ञान करनेका आता है। अनादिका अनजाना..

मुमुक्षु :- उसका अर्थ यह है कि प्रथम श्रद्धा करनी तो ही ज्ञान हुआ ऐसा कहनेमें आये।

समाधान :- हाँ, श्रद्धा यथार्थ हो तो ही यथार्थ ज्ञान होता है। परन्तु प्रथम समझ जूठी है, इसलिये प्रथम समझन यथार्थ कर। व्यवहार-से ऐसा आता है। कथन ऐसा है कि व्यवहारमें पहले ज्ञान यथार्थ कर। सिर्फ कथन है ऐसा नहीं, पहले उसे जाननेका बीचमें आता है। प्रतीति बादमें यथार्थ होती है। ज्ञान यथार्थ न हो तो प्रतीति यथार्थ नहीं होती है। परन्तु प्रतीति यथार्थ हो तो ही ज्ञानको यथार्थ कहनेमें आता है। निश्चय दृष्टि-से ऐसा है।

मुमुक्षु :- दो बात आती है।

समाधान :- दो बात है, दो बात ऐसी है।

मुमुक्षु :- दो बातमें हमें गड़बड़ बहुत होती है। एक कह तो हमें ठीक रहता है। श्रद्धा करनी है तो श्रद्धा पर ज़ोर दें।

समाधान :- सच्ची समझ बिना श्रद्धा यथार्थ होती नहीं और यथार्थ श्रद्धा बिना ज्ञान यथार्थ होता नहीं।

मुमुक्षु :- दोनों संलग्न है ऐसे लेना?

समाधान :- दोनों साथमें संलग्न है।

मुमुक्षु :- तो हमें ज्ञान भी करना और श्रद्धा भी करनी।

समाधान :- ज्ञान और श्रद्धा दोनों साथ ही है। यथार्थ श्रद्धा हो उसे यथार्थ ज्ञान हुए बिना रहता नहीं और जिसे यथार्थ ज्ञान हो उसे श्रद्धा यथार्थ होती ही है।

मुमुक्षु :- पात्र शिष्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करने हेतु कैसा चिंतवन, मनन करे कि जिससे उसे प्रयोजनकी शीघ्र सिद्धि हो? चिंतवन, मनन कैसा होना चाहिये?

समाधान :- निरंतर ज्ञायकका चिंतवन होना चाहिये कि मुझे ज्ञायक ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। सब शुभाशुभ भाव जो विभावभाव है, विभावभावमें जिसे शान्ति नहीं लगती, मेरा स्वभाव ज्ञायक स्वरूप आत्मा ही सुखरूप और आनन्दरूप है। उसका चिंतवन, उसका मनन, उसके लिये उसे बारंबार उसीका अभ्यास, उस जातके श्रुतका चिंतवन, द्रव्य-गुण-पर्याय, आत्माका द्रव्य क्या? गुण क्या? और पर्याय क्या? उस जातका चिंतवन, मनन (चलना चाहिये)। अनेक प्रकार-से जो प्रयोजनभूत तत्त्व है, उसके विचार, निमित्त-उपादान आदि अनेक प्रकार-से उस तरफका चिंतवन मनन होता है।

मैं ज्ञायक हूँ, परपदार्थका कर्ता नहीं हूँ, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं, अनेक जातका चिंतवन (चले)। लेकिन (वह सब) एक ज्ञायककी सिद्धिके लिये (होता है)। मेरा ज्ञायक चैतन्यतत्त्व, ज्ञायक ज्ञायकरूप कैसे परिणमे, ऐसी भावना उसे निरंतर होती है। चिंतवन, मनन बारंबार उसीका होता है। क्षण-क्षणमें उसका चिंतवन, मनन कैसे रहे, ऐसा उसका प्रयत्न होता है। उसमें वह थकता नहीं है। बारंबार उसीका चिंतवन, मनन होता है।

मुमुक्षु :- मैं एक ज्ञायक हूँ, ऐसा हमें बारंबार विचार करना?

समाधान :- विचारना नहीं, ज्ञायकका स्वभाव पहचानकर विचार करना। ऐसे रटनमात्र-से नहीं होता। परन्तु अंतरमें स्वभावको ग्रहण करने-से होता है। प्रज्ञा-से भिन्न किया, प्रज्ञा-से ग्रहण किया। अंतरमें-से ग्रहण करने-से उसकी सूक्ष्म सन्धिमें-से चैतन्यको भिन्न करनेका बारंबार प्रयत्न करे तो वह भिन्न पड़ जाता है। उसकी प्रज्ञाछैनी-से भिन्न पड़ता है। बारंबार उसीका प्रयत्न करे। उसकी पूरी दिशा बदल जाय, ज्ञायक तरफ (हो जाती है)। जो दृष्टि बाहर जाती थी, उस दृष्टिको बारंबर ज्ञायक तरफ, ज्ञायक ओर ही उसकी

परिणति बारंबार मुड़ती रहे, अभ्यास रूप-से, यथार्थ तो बादमें होता है।

मुमुक्षु :- प्रत्येक विचारका बहाव ज्ञायक-ओर ही होता है।

समाधान :- ज्ञायक तरफका ही होता है। ज्ञायककी सिद्धि कैसे हो? ज्ञायककी प्रसिद्धि कैसे हो? उस ओर ही (प्रयत्न रहता है)।

मुमुक्षु :- प्रज्ञाछैनी अर्थात् भेदज्ञान करना?

समाधान :- हाँ। भेदज्ञान करना। प्रज्ञा-से चैतन्यको ग्रहण करना और प्रज्ञा-से भिन्न करना। विभाव-से भिन्न और स्वभावका ग्रहण करना। एकत्व और विभक्त। पर-से विभक्त, विभाव-से विभक्त और स्वभावमें एकत्व।

मुमुक्षु :- पर-से विभक्त ऐसा चिंतवन करे तो भी उसका स्व तरफ जानेका प्रयत्न है।

समाधान :- पर-से विभक्त चिंतवन करे, यथार्थपने विभक्त चिंतवे तो उसमें स्वकी एकत्वता आ जाती है। लेकिन स्व-तरफका, अस्तित्व तरफके ग्रहणका लक्ष्य नहीं है, और बाहर यह सब अनित्य है, यह सब दुःखरूप है, ऐसा करता रहे (और) अपने अस्तित्वका ग्रहण नहीं है तो वह विभक्तपना भी यथार्थ नहीं है। एकत्व अस्तित्व ग्रहण किये बिनाका विभक्तपना यथार्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- एकत्व-विभक्त कहनेमें आता है, लेकिन शुरूआत एकत्व-से ही होती है।

समाधान :- शुरूआत एकत्व-से ही होती है।

मुमुक्षु :- उसमें विभक्त आ जाता है।

समाधान :- उसमें विभक्त आ जाता है।

मुमुक्षु :- एक द्रव्य-से दूसरे द्रव्यकी भिन्नता, ये तो गुरुदेवके और आपके प्रताप-से थोड़ा-थोड़ा मुमुक्षुओंको ख्यालमें आता है कि यह द्रव्य भिन्न और यह द्रव्य भिन्न है। परन्तु द्रव्य-गुण और पर्याय, उसमें किस प्रकार भिन्नता करके अनुभव करना, इस विषयमें हमें मार्गदर्शन दीजिये।

समाधान :- एक द्रव्य और दूसरा द्रव्य अत्यंत भिन्न हैं, उन्हें प्रदेशभेद है। वह तो भिन्न है। विभाव अपना स्वभाव नहीं है। शास्त्रमें भेदज्ञान करनेका आता है, विभाव-से विभक्त हो। गुण-पर्यायसे भेदज्ञान करनेका नहीं आता है। भेदज्ञान तो विभाव-से करना है। गुण और पर्यायके लक्षण पहचानकर और आत्मामें अनन्त गुण और पर्याय क्या है, उसका ज्ञान करके, उसके भेदमें अटकना नहीं। उसके भेद विकल्पमें नहीं रुककर, एक अखण्ड चैतन्य पर दृष्टि रखने-से उसमें जो उसके अनन्त गुण और शुद्ध पर्याय है, वह प्रगट होती है।

उसका-गुण-पर्यायका-भेदज्ञान नहीं करना है, अपितु उसका ज्ञान करना है कि अनन्त गुण आत्मामें (हैं)। आत्मा अनन्त गुणों-से गुँथा हुआ अभेद तत्त्व है। उसमें

अनन्त गुण किस तरह है? ज्ञानका ज्ञान लक्षण, आनन्दका आनन्द लक्षण, चारित्र चारित्ररूप है, (ज्ञान) जाननेका कार्य करे, आनन्द आनन्दका कार्य करे। उसके कार्य पर-से, उसके लक्षण पर-से पहचान सकता है। उसे पहचानकर गुणभेदमें रुकना वह तो विकल्प और रागमिश्रित है। वह तो बीचमें आये रहता नहीं। इसलिये एक चैतन्य पर अखण्ड दृष्टि करके और उस दृष्टिमें स्वयं स्थिर हो तो उसमें-से उसे स्वानुभूति प्रगट होती है। विकल्प टूटकर मैं निर्विकल्प तत्त्व हूँ, ऐसे सामान्य अस्तित्व पर, निज ज्ञायकके अस्तित्व पर दृष्टिको निःशंक करके उसमें यदि स्थिरता, लीनता, आचरण करे तो स्वानुभूति होती है।

दो द्रव्य भिन्न हैं, ये तो दिखता है। परन्तु भेदज्ञान तो विभाव-से करना है। ये तो ज्ञान करना है। आत्मा अनन्त-अनन्त शक्तिओं-से भरपूर, अनन्त द्रव्य उसके पास आये तो भी अपना अस्तित्व रखता है, ऐसी अनन्त शक्ति है। इससे अतिरिक्त उसमें अनन्त गुण है, अनन्त धर्म हैं, उन सबका ज्ञान करनेके लिये, उसका लक्षण और कार्य पर-से पहचान सकता है। फिर उसके भेद विकल्पमें रुकना नहीं है। वह गुण तो अपना स्वरूप है। अपने स्वरूपसे गुण भिन्न नहीं है। इसलिये उसका ज्ञान करके, गुणभेदमें नहीं रुककर, पर्यायभेदमें नहीं रुककर स्वयं निज चैतन्य पर दृष्टि रखे। मात्र जान ले कि यह गुण है, यह पर्याय है। गुणभेदमें रुकनेका कोई प्रयोजन नहीं है। उसे जाननेका प्रयोजन है। स्वयं अपनेमें स्थिर हो तो स्वानुभूति प्रगट होती है।

जो विभाव है, शुभभाव ऊँचे-से ऊँचा हो तो भी अपना स्वरूप नहीं है। उससे स्वयंको भिन्न करता है। लेकिन इसे तो वह जानता है कि यह पर्याय एक अंश है, ये गुण हैं वे स्वयं एक-एक भेद है, उसे जान लेता है। चैतन्य पर अखण्ड दृष्टि करे, सामान्य पर दृष्टि करे। उसमें जो विशेष पर्याय है वह प्रगट होती है। उसमें दर्शन, ज्ञान और चारित्र उसमें सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन, सर्व गुणके अंश प्रगट होते हैं। और उसमें विशेष लीनता हो, लीनता होने-से मुनिदशा आये। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वरूपमें स्वयं निर्विकल्प दशामें बारंबार जमता है, उसमें-से वीतराग दशा होती है। उन सबमें भिन्न-भिन्न प्रकार-से अटकनेकी आवश्यकता नहीं है। उसका प्रयोजनभूत जान ले, फिर स्वयं अपनी निःशंक प्रतीति-से लीनता करके आगे बढ़े तो उसमें-से उसे सम्यग्दर्शन (होता है)। सम्यग्दर्शनके बिना तो कुछ होता नहीं। आगे बढ़कर लीनता और वीतराग दशा उसीमें प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर बात आपने कही। एक तो ऐसा कहा कि राग-से भिन्नता (करनी है)। भेदज्ञान राग-से करनेका है। द्रव्य-गुण और पर्यायके भेदको जानकर अवलम्बन ज्ञायकका करने-से भेदका सहज ज्ञान रह जायगा, उसमें अटकना नहीं है।

समाधान :- उसमें अटकना नहीं है। उसका भेदज्ञान नहीं करनेका है। उसका

ज्ञान, उसका लक्षण पहचानकर (कि) वह अंश है, मैं अंशी हूँ। वह अंश चैतन्यके अंश हैं। उसका ज्ञान करके स्वयं अपनेमें दृष्टिको स्थापित करके उसमें लीनता करनेका प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान अर्थात् विभाव-से बारंबार भिन्न करना।

समाधान :- विभाव-से भिन्न करना वह भेदज्ञान है।

मुमुक्षु :- प्रज्ञाछैन उसी पर पटकनी है न? विभाव और चैतन्यके बीच।

समाधान :- चैतन्य और विभावके बीच प्रज्ञाछैनी (पटकनी नहीं है)।

मुमुक्षु :- गुण और द्रव्यके बीच नहीं पटकनी है।

समाधान :- गुणके बीच प्रज्ञाछैनी नहीं पटकनी है।

मुमुक्षु :- पर्याय और द्रव्यके बीच..

समाधान :- उसमें प्रज्ञाछैनी नहीं है।

मुमुक्षु :- ज्ञान करना।

समाधान :- उसका तो ज्ञान करनेका है।

मुमुक्षु :- पर्याय क्षणिक है, द्रव्य ध्रुव त्रिकाल है ऐसा ज्ञान करना।

समाधान :- ज्ञान करना। पर्याय प्रगट होती है, अंश-अंशमें परिणमति है। आत्मामें अनन्त गुण हैं। सबका ज्ञान करना। उससे भेदज्ञान नहीं करना है।

मुमुक्षु :- सब नया लगता है।

मुमुक्षु :- सत्य है। जैसा कहना हो वैसा कहो।

मुमुक्षु :- परम सत्य। परन्तु इस तरह गुण-पर्याय... भेदज्ञान तो राग-से करना है।

मुमुक्षु :- विभाव यानी उसमें राग और इन्द्रिय ज्ञान दोनों ले सकते हैं?

समाधान :- इन्द्रिय ज्ञान अर्थात् उसमें रागमिश्रित ज्ञान आ गया। रागमिश्रित ज्ञान। ज्ञानगुण अपना स्वभाव है। अधूरा ज्ञान है वह रागमिश्रित है। वह उसमें आ जाता है। उसमें ज्ञानका भाग इस ओर लो तो इस ओर आ जाता है, रागका भाग उसे चला जाता है। ज्ञानका भाग चैतन्यकी ओर आ जाता है, रागका भाग विभाव ओर चला जाता है।

मुमुक्षु :- इस ओर, उस ओरमें कुछ...

समाधान :- ज्ञानका भाग चैतन्य तरफ आ जाता है। रागका भाग विभाव तरफ जाता है, पर तरफ जाता है। रागका भाग पर तरफ जाता है, ज्ञानका भाग स्व तरफ आ जाता है। उसमें अपूर्ण या पूर्णका लक्ष्य नहीं रखकर, मैं ज्ञायक ही हूँ। वैसे ज्ञान सो ज्ञान ही है और विभाव सो विभाव ही है। पर तरफ विभावका भाग जाता है।

मुमुक्षु :- रागमिश्रितमें वास्तवमें रागपना है उससे भिन्न पड़ना है। ज्ञान तो मूल

तो स्वभावका अंश है।

समाधान :- ज्ञान तो स्वभावका अंश है।

मुमुक्षु :- ये तो ज्ञान-से भी भिन्न करता है। भूल हमारी ऐसी होती है। ज्ञान-से भिन्न ज्ञायक।

समाधान :- अपूर्ण ज्ञान जितना मैं नहीं हूँ। पूर्ण शाश्वत हूँ। ये क्षयोपशम ज्ञान, मति-श्रुत पर्याय, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान आदि जो भेद पड़ते हैं, वह भेद जो अपूर्ण पड़ते हैं वह मेरा पूर्ण स्वभाव नहीं है। पूर्णको ग्रहण करना, अपूर्णको ग्रहण नहीं करना। जिसमें रागके कारण, निमित्तके कारण अपूर्ण पर्याय है, उसे ग्रहण नहीं करके स्वयंका पूर्ण स्वरूप, जिसे स्वयंका चैतन्यका स्वरूप ग्रहण करना है, उसे पूर्ण स्वरूप ग्रहण करना चाहिये। अपूर्ण ग्रहण करे तो भी पूर्ण स्वरूप ग्रहण नहीं किया है। इसलिये पूर्ण स्वरूप ग्रहण करना। फिर ये सब तो अपूर्ण पर्यायें हैं। केवलज्ञान होता है वह पूर्ण पर्याय है। परन्तु पर्याय है, ऐसा उसका ज्ञान करना। पर्याय है, लेकिन वह चैतन्यकी साधनामें प्रगट होती पर्याय है, उसका ज्ञान करना। परन्तु है पर्याय, उसका ज्ञान करना। उससे कहीं भेदज्ञान नहीं करना है।

मुमुक्षु :- चैतन्यकी साधनामें प्रगट होती पर्यायें हैं।

समाधान :- चैतन्यकी साधनामें प्रगट होती पर्याय केवलज्ञान है।

मुमुक्षु :- फिर भी उस अपूर्णका आश्रय नहीं करना है, आश्रय तो एकका ही करना है।

समाधान :- आश्रय तो पूर्णका करना है। आश्रय अनादिअनन्त द्रव्यका आश्रय है। आश्रय करने-से उसमें शुद्ध पर्यायें प्रगट होती हैं।

मुमुक्षु :- स्वभावकी ही महिमा।

समाधान :- स्वभावकी महिमा, पूर्णकी महिमा। अपूर्णकी महिमा नहीं, पूर्ण स्वभावकी महिमा।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३८

मुमुक्षु :- आंशिक आचरण हो...

समाधान :- आंशिक आचरण पहले नहीं होता है। पहले श्रद्धान-ज्ञान हो तो ही आचरण होता है। तो ही आचरण यथार्थ होता है।

मुमुक्षु :- श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक।

समाधान :- श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक आचरण यथार्थ होता है। आंशिक आचरण होता है।

मुमुक्षु :- श्रद्धाकी प्रधानता, ऐसा? जैनदर्शनमें श्रद्धान मुख्य तत्त्व है।

समाधान :- श्रद्धानकी प्रधानता है।

मुमुक्षु :- भले ज्ञान द्वारा श्रद्धान होता है।

समाधान :- ज्ञान बीचमें आता है। बीचमें आता है, इसलिये प्रथम ज्ञान करना, ऐसा आता है। श्रद्धा करता है, उसमें ज्ञान बीचमें आता है। अतः प्रथम ज्ञान करना, ऐसा कहनेमें आये। परन्तु श्रद्धा यथार्थ हो तो ही मुक्ति मार्गका प्रारंभ होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान करना, वह भी समकिती-ज्ञानीके समीप रहकर यथार्थ ज्ञान हो सके। धर्मात्माका योग हो तो ही उसको उस जातके संस्कार दृढ़ हो सके।

समाधान :- गुरुदेवने जो मार्ग बताया, उस मार्गको स्वयं ग्रहण करे। गुरुदेवका आशय समझे, उस आशयको ग्रहण करे, वैसी स्वयं तैयारी करे तो उसे मार्ग प्रगट होता है। उसकी समीपता अर्थात् समीपता यानी अंतरमें उनकी समीपताको ग्रहण करनी। ऐसा अर्थ है।

मुमुक्षु :- भावकी निकटता।

समाधान :- हाँ, भाव-से निकटता ग्रहण करनी। अनादि कालसे देव-गुरु सच्चे नहीं मिले हैं। इसलिये उसे यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ है। परन्तु उपादान तैयार हो तो निमित्त मौजूद होता ही है।

मुमुक्षु :- निमित्तको खोजना, ऐसा नहीं?

समाधान :- निमित्त उसे प्राप्त हो ही जाता है, उनका सान्निध्य प्राप्त हो ही जाता है। समीपता यानी उनका सान्निध्य, समीपता प्राप्त हो जाती है। मुमुक्षुको ऐसे भाव आये बिना रहते ही नहीं। देव-गुरु-शास्त्रकी समीपता कैसे प्राप्त हो? उनका सान्निध्य

कैसे प्राप्त हो? मेरा पुरुषार्थ कैसे हो? मुझे मार्ग कैसे ग्रहण हो? उनका सान्निध्य तो, निश्चय और व्यवहार दोनों सान्निध्यकी उसे भावना होती ही है।

मुमुक्षु :- व्यवहार भी बीचमें आवश्यक है सही।

समाधान :- हाँ, व्यवहार बीचमें आता है। उसे भावना होती है। फिर बाहर-से योग कितना बने, वह अलग बात है। परन्तु उसे भावना होती है। सान्निध्यकी, समीपताकी सब भावना होती है।

मुमुक्षु :- रागकी भूमिकामें ऐसे ही भाव आये।

समाधान :- ऐसे भाव आये। मुमुक्षुकी भूमिकामें ऐसे भाव आये। सम्यग्दर्शन होनेके बाद मुक्तिका मार्ग प्रारंभ हो तो भी, चारित्र दशा हो तो भी देव-गुरु-शास्त्रके शुभ विकल्प तो साथमें होते ही हैं। जबतक वीतराग दशा नहीं हुयी है तबतक। मुमुक्षुको तो ऐसा होता है कि देव-गुरु-शास्त्रकी समीपता हो, उनका श्रवण, मनन आदिकी भावना होती है। परन्तु सम्यग्दृष्टिको, चारित्रवान मुनिको सबको देव-गुरु-शास्त्र तरफकी शुभभावना आये बिना नहीं रहती। बीचमें साथमें होता है। अणुव्रत, महाव्रतके शुभ परिणाम आते हैं। साथमें देव-गुरु-शास्त्रके शुभ परिणाम आते हैं।

मुमुक्षु :- भावनका अर्थ आपने यह किया कि ऐसे विकल्प आते हैं।

समाधान :- हाँ, ऐसे विकल्प आते हैं। स्वयं आगे जाय, वहाँ देव-गुरु-शास्त्र मुझे सान्निध्यतामें हो, मुझे उनकी समीपता हो, ऐसी भावना उसे आये बिना नहीं रहती। बाहरका योग कितना बने वह अलग बात है, लेकिन उसकी भावना ऐसी होती है।

समाधान :- ...देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, अन्दर शुद्धात्मा, मेरा चैतन्य स्वरूप कैसा है, उसकी पहचान करनी। गुरुदेव बारंबार वही कहते थे। गुरुदेवके प्रवचनमें तो गुरुदेवने बहुत मार्ग बताया है, वाणी बरसायी है। वह करना है। स्वानुभूतिका मार्ग गुरुदेवने बताया। अंतरमें स्वानुभूति होती है, बाहरमें कहीं नहीं है। बाहर-से कुछ नहीं मिलता, अंतरमें है, सब आत्मामें भरा है उसमें-से प्रगट होता है।

अनन्त काल-से जन्म-मरण करते-करते मनुष्यभव मिला। इस मनुष्य भवमें ऐसे गुरुदेव मिले, उन्होंने मार्ग बताया तो वह एक ही करने जैसा है। आत्म स्वरूपकी पहचान कैसे हो? वह।

समाधान :- ...लेकिन वह व्यवहार है। वास्तविक रूपसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्षमार्गः। सम्यग्दर्शन-से शुरूआत होती है।

मुमुक्षु :- वहाँ तकका जो ज्ञान है, वह विकल्पवाला कहा जाय, व्यवहारवाला कहा जाय। प्रयोजनभूत वस्तु तबतक प्राप्त नहीं होती, श्रद्धा होनेके बाद ही प्राप्त होती है।

समाधान :- मूल अपनी परिणति, भेदज्ञानकी धारा, निर्विकल्प स्वानुभूति सम्यग्दर्शन

हो तो... उसके पहले जो ज्ञान है, उसे यथार्थ नाम नहीं दे सकते। सम्यग्दर्शन हो तब उस ज्ञानको यथार्थ कहते हैं। उसके पहले व्यवहार बीचमें आता है। जाननेके लिये ज्ञान आता है, परन्तु प्रतीति यथार्थ हो, तभी ज्ञानको सम्यक्ज्ञान नाम कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- सर्व गुणोंकी शुद्धि होती ही जाती है। शुद्धिकी वृद्धि होती जाती है। ऐसी बात आये, वह कैसे होती है?

समाधान :- केवलज्ञान होनेके बाद नहीं। केवलज्ञान तो पूर्ण हो गया।

मुमुक्षु :- ज्ञानगुण तो होता है। आज जैसा गुण है, उससे कल ज्यादा हो।

समाधान :- केवलज्ञानमें ऐसा नहीं होता। वह तो साधक दशामें है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद शुद्धिकी वृद्धि होती है। उसकी भूमिका बढ़ती जाय। उसे चतुर्थ गुणस्थान हो, फिर पाँचवा होता है, लीनता बढ़ती जाय, ऐसे-ऐसे ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी निर्मलता, अनन्त गुणोंकी निर्मलता बढ़ती जाती है। सम्यग्दर्शन-यथार्थ दृष्टि हुयी इसलिये उसमें जब चारित्र प्रगट होता है, फिर सर्व गुणोंकी शुद्धि होती है। सम्यग्दर्शन-से ही शुद्धि होती है।

सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन। उसे शुद्धि हुयी। फिर विशेष आगे बढ़ता है तो चारित्र दशा आती है। पाँचवी भूमिका, छठ्ठी-सातवीं मुनिदशा आये। इसलिये उसकी अधिक शुद्धि हुयी। उसे वीतराग दशाकी प्राप्ति (हुयी)। पूर्ण वीतराग नहीं है, वीतरागताकी वृद्धि हुयी। फिर मोहका, रागका क्षय होकर अंतर वीतराग दशा पूर्ण वीतराग हो, तब उसे संपूर्ण होता है। केवलज्ञान होता है। वीतराग होता है इसलिये केवलज्ञान होता है। केवलज्ञान होता है, इसलिये सर्व गुण संपूर्णरूपसे प्रगट हो गये। फिर समय-समयमें उसकी जो परिणति होती है, उस परिणतिमें वृद्धि-वृद्धि होती है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :- केवलज्ञान होने पर सर्व गुण खील गये न?

समाधान :- केवलज्ञान होता है तो सर्व गुण परिपूर्ण हो गये। फिर जो परिणमन होता है, वह एकके बाद एक, अनन्त गुण स्वयं शुद्धिरूप परिणमते ही रहते हैं। वीतरागरूप परिणमते रहते हैं। उसका स्वभाव ऐसा है कि पारिणामिक स्वभाव है। इसलिये वह अनन्त काल पर्यंत परिणमता रहता है आनन्दरूप, ज्ञानरूप, परन्तु उसका नाश नहीं होता है या कम नहीं हो जाता। वह परिणमता रहता है, एकरूप परिणमता रहता है। उसमें तारतम्यता अगुरुलघु स्वभावके कारण हो, परन्तु वह एकरूप है। उसमें व-वृद्धि नहीं कहते। केवलज्ञान हुआ इसलिये पूर्ण हो गया।

मुमुक्षु :- तो फिर उसे अगुरुलघुकी दृष्टि-से कैसे कहते हैं?

समाधान :- उसे वृद्धि नहीं होती। वह तो एकरूप परिणमता है। तारतम्यता (होती है)। वह तो पारिणामिकभाव है। उसकी वृद्धि-हानि तो उसका स्वभाव है। जैसे हीरामें

चमक होती है, अनेक प्रकारसे जो चमक होती है, वैसे उसे पारिणामिकभावकी हानि-वृद्धि कहते हैं। उसकी वृद्धि, वस्तु स्थिति-से वृद्धि, वीतरागताकी वृद्धि, केवलज्ञानकी वृद्धि नहीं कह सकते।

मुमुक्षु :- .. परन्तु पारिणामिकभावकी दृष्टि-से अगुरुलघुत्वकी..

समाधान :- अगुरुलघुका स्वभाव ही ऐसा है। पानीमें जैसे तरंग उठते हैं, वैसे उसे पारिणामिकभाव परिणमता रहता है। हानि-वृद्धि...

मुमुक्षु :- वह तो उस भावका ही है न?

समाधान :- पारिणामिकभावका ही है। वृद्धि-हानि नहीं कह सकते, पूर्ण हो गया। एकरूप परिणमन रहता है। उसे वृद्धि-हानि नहीं कहते। ... वृद्धि होती है। साधक सीढी चढ़ता है। पूर्ण वीतरागता हो, केवलज्ञान हो तो कृतकृत्य हो गया। जो करना था वह कर लिया, अब कुछ करना बाकी नहीं रहा। पुरुषार्थकी पूर्णता हो गयी। करना कुछ नहीं है। सहज स्वभावरूप द्रव्य परिणमता रहता है। फिर करना कुछ नहीं है। करना कुछ नहीं है, वह तो निज स्वभावरूप परिणमता रहता है।

मुमुक्षु :- कलकी चर्चामें ऐसा आया कि भेदज्ञान राग और स्वभावके बीच करना है। द्रव्य और पर्यायके बीच नहीं। समयसार गाथा-३८में ऐसा आता है कि नौ तत्त्व-से आत्मा अत्यंत भिन्न होने-से शुद्ध है, ऐसा कहा। तो उसमें तो संवर, निर्जरा और मोक्ष भी आ गये। द्रव्यदृष्टि करनी और पर्यायदृष्टि छोड़नी, उसमें भी द्रव्य और पर्यायके बीच भेदज्ञानका प्रसंग आया। वैसे ही ध्रुव और उत्पाद रूप चलित भाव, निष्क्रिय और सक्रिय भाव। इन सबमें द्रव्य और पर्यायके बीच तफावत करना पड़ता है। तो राग और स्वभावके बीचके भेदज्ञानको क्यों प्राधान्यता दी जाती है?

समाधान :- राग और स्वभाव दो हैं (उसमें) विभाव है और यह स्वभाव है, इसलिये उसकी प्राधान्यता है। गुण-पर्यायका भेद भी दृष्टिकी अपेक्षा-से कहनेमें आता है। सर्व अपेक्षा-से (नहीं)। गुण और पर्याय जो है वह अंश-अंश है। लेकिन वह अंश है वह द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से... जैसे साधकदशा। जो-जो भेद पड़े गुणस्थान,... उन सब भागको द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से सबको गौण करके ... द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से। कारण आश्रय तो द्रव्यका लेना है। पर्यायका आश्रय या गुणका आश्रय नहीं लेना है। कारण कि उन सबको ... आता है। लेकिन वह भिन्न ऐसा नहीं है कि जैसा राग-से भिन्न है, वैसा यह भिन्न नहीं है। भिन्नता-भिन्नतामें फ़र्क़ है। इसलिये उस अपेक्षा-से कहा था कि राग-से भेदज्ञान (करना है)। क्योंकि स्वभाव और विभावका भेदज्ञान है। यह भेदज्ञान है, वह अपेक्षा अलग है। उसमें आश्रय चैतन्य पूर्ण ऐश्वर्यशाली है उसका आश्रय लेना है। पर्याय और गुण एक अंश है। उसका आश्रय नहीं लेना है।

द्रव्य पर दृष्टि करने-से उसका आश्रय होता है और गुण एवं पर्याय गौण हो जाते हैं। द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से। इसलिये उसमें सब साधक दशा और सब उसमें गौण हो जाता है। जैसे एक राजा पूर्ण शक्तिशाली राजा हो।.. कोई अपेक्षा-से भिन्न है। राजा पूर्ण ऐश्वर्यशाली है, यह तो एक अंश है। परन्तु जैसा उसके दुश्मन-से भिन्न पड़ता है, उस तरह उसके रिश्तेदारों-से उस जातकी भिन्नता नहीं है। भले राजा और प्रधान आदि सब भिन्न वस्तुएँ ही हैं। परन्तु वह भिन्न और उसके दुश्मन-से भिन्नता, उस भेदज्ञानमें फ़र्क़ है। इसलिये दृष्टिके बलकी अपेक्षा-से...

दृष्टि सब भिन्न करती है। मैं कृतकृत्य पूर्ण हूँ। वह साधकदशाको भी गौण करती है कि मैं पूर्ण हूँ। कृतकृत्य हूँ। मेरे द्रव्यमें कुछ भी अशुद्धता नहीं हुयी है। मैं तो पूर्ण हूँ और यह विभाव मुझ-से अत्यंत भिन्न है। ऐसे भिन्नता करता है। बीचमें जो साधकदशा, अपूर्ण पर्याय, पूर्ण पर्याय सबको गौण करती है। तो भी ज्ञान है वह उसे लक्ष्यमें रखता है कि ये गुण और पर्याय है, वह चैतन्यके लक्षण हैं। चैतन्यकी अवस्थाएँ हैं। उसकी शुद्ध पर्याय उसे वेदनमें आती है और ज्ञान उसका विवेक करता है। उस अपेक्षा-से भेदज्ञान राग-से करना है। क्योंकि गुण और पर्यायका भेदज्ञान वह भेद ऐसा है कि दृष्टिका आश्रय द्रव्य पर जाता है, इसलिये उन सबका भेद करना है।

परन्तु जैसा भेद राग-से करना है, वैसा भेद गुण-पर्यायका, वैसा भेद नहीं है। भेद-भेदमें फ़र्क़ है। इसलिये राग-से भेदज्ञान करना है। वह भेद है, परन्तु भेद-भेदमें फ़र्क़ है। उसका विवेक करना है। चैतन्यके गुण हैं-ज्ञान, दर्शन, चारित्र वह सब एक-एक अंश हैं। चैतन्य तो अखण्ड पूर्ण शक्तिवान है। एक-एक अंश वैसे नहीं है, अतः उसका आश्रय नहीं करना है। वह अंश है। इसलिये उन सबको गौण करना है। और दृष्टि तो उन सबको निकाल देती है। निमित्तकी अपेक्षा-से अपूर्ण-पूर्ण पर्याय हुयी, इसलिये दृष्टि सबको भिन्न करती है। मैं तो एक पूर्ण हूँ, कृतकृत्य हूँ। इस तरह दृष्टिके बलमें सब निकल जाता है। मैं पूर्ण हूँ।

लेकिन यदि पूर्ण ही हो तो बीचमें साधकदशा नहीं रहती। उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि सब अवस्थाएँ तो होती हैं। अतः ज्ञान उसका विवेक करता है कि कोई अपेक्षासे ये गुण हैं, वह चैतन्यके हैं। चारित्रकी पर्याय प्रगट होती है वह चैतन्यमें (प्रगट होती है)। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब चैतन्यमें प्रगट होती है। परन्तु द्रव्य पर दृष्टि करने-से प्रगट होती है। इसलिये मैं नौ तत्त्वकी परिपाटी छोड़कर मुझे एक आत्मा प्राप्त होओ। नौ तत्त्वकी परिपाटी पर दृष्टि नहीं रखनी है, दृष्टि एक आत्मा पर रखनी है। आत्मा पर दृष्टि करने-से सब निर्मल पर्याय प्रगट होती है। परन्तु उसका आश्रय नहीं लेना है। परन्तु वह पर्याय, जैसे विभाव भिन्न है, वैसे पर्याय उस तरह (भिन्न)

नहीं है। उसका वेदन चैतन्यमें होता है, उसकी स्वानुभूतिका वेदन होता है, उसकी वीतराग दशाका वेदन होता है। इसलिये उस विभाव-से (जैसे) भिन्न पड़ना है, वैसे इससे भिन्न नहीं पड़ना है। इस अपेक्षा-से कहा था।

मुमुक्षु :- राग है वह भिन्न होकर चला जाता है और इसकी अन्दरमें अधिक-अधिक वृद्धि होती है।

समाधान :- वृद्धि होती है। अन्दर चैतन्यमें शुद्धात्मामें पर्याय प्रगट होती है। परन्तु उस पर दृष्टि देने-से या उसका आश्रय करने-से वह प्रगट नहीं होता। आश्रय द्रव्यका ले तो ही वह शुद्धात्माकी पर्याय प्रगट होती है। इसलिये दृष्टि तो एक पूर्ण पर ही रखनी है। पर्याय पर या गुण पर या उसमें रुकना, उस पर दृष्टि नहीं रखनी है। परन्तु ज्ञानमें रखना है कि ये पर्याय चैतन्यके आश्रय-से प्रगट होती है। वह कहीं जड़की है ऐसा (नहीं है)। ज्ञान यथार्थ करना। दृष्टि पूर्ण पर रखनी, परन्तु ज्ञान यथार्थ हो तो उसकी साधकदशाकी पर्याय यथार्थपने प्रगट होती है।

ज्ञान भी वैसा ही हो सर्व अपेक्षा-से, उसकी दृष्टिमें ऐसा ही हो कि मैं पूर्ण ही हूँ, अब कुछ करना नहीं है, तो उसमें भूल पड़ती है। दृष्टि पूर्ण पर होती है, द्रव्य पर, परन्तु ज्ञानमें ऐसा होता है कि मेरी पर्याय अभी अधूरी है। वह सब ज्ञानमें हो तो साधक दशा प्रगट होती है। नहीं तो उसकी दृष्टि जूठी होती है। सर्व अपेक्षा-से पूर्ण ही हूँ और राग एवं अपूर्ण पर्याय, वह राग तो मुझ-से भिन्न है, परन्तु होता है चैतन्यकी पुरुषार्थकी कमज़ोरी-से। वह सब ख्यालमें रखे तो पुरुषार्थ उठता है। उसमें आनन्द दशा, वीतराग दशा सब प्रगट होता है। पहले दृष्टिकी अपेक्षा-से दो भाग होते हैं। ज्ञान उसका विवेक करता है। गुरुदेवने अनेक प्रकार-से समझाया है। गुरुदेवने परम उपकार किया है। सब अपेक्षाएँ गुरुदेवने समझायी हैं।

मुमुक्षु :- दूसरा प्रश्न :- आत्मा ज्ञानस्वरूप है और उसका लक्षण ज्ञान। तथा आत्मा अनुभूतिमात्र है। उसमें तो मात्र वेदनरूप लक्षणसे पहचान करवायी है। तो पहचान करनेके लिये कौन-सी पद्धति सरल है?

समाधान :- अनुभूति लक्षण यानी उसमें ज्ञान लक्षण कहना चाहते हैं। अनुभूति अर्थात् वेदनकी अपेक्षा यहाँ नहीं है। वह तो ज्ञान लक्षण है। ज्ञान लक्षण है वह असाधारण है। ज्ञान लक्षण-से ही पहचान होती है। अनुभूति अर्थात् ज्ञान लक्षण कहना चाहते हैं। ज्ञान लक्षण-से ही उसकी पहचान होती है। ज्ञान लक्षण उसका ऐसा असाधारण लक्षण है कि उससे चैतन्यकी पहचान होती है। इसलिये अनुभूतिमें वेदन अपेक्षा नहीं लेनी है। वेदन तो वर्तमानमें उसकी दृष्टि विभाव तरफ है। वहाँ-से स्व-ओर मुड़ना। ज्ञान लक्षण-से पहचान होती है। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२३९

मुमुक्षु :- वचनामृत बोल-४०१में विभावभावमें परदेसत्वकी अनुभूति व्यक्त की है और अनन्त गुण-परिवार हमारा स्वदेश है, उस और हम जा रहे हैं। इस प्रकार एक ही द्रव्यमें एक स्थान-से दूसरे स्थानकी गतिक्रिया, भिन्न-भिन्न अनुभव हो, ऐसा अनुभव किस तरह होता है?

समाधान :- वह तो एक भावनाकी बात है। विभाव मेरा देश नहीं है। द्रव्य पर दृष्टि है। चैतन्यदेश हमारा है। परन्तु अभी अधूरी पर्याय है। इसलिये यह विभाव हमारा देश नहीं है। इस देशमें हम कहाँ आ पड़े? देश तो हमारा चैतन्य स्वदेश हमारा है। ये तो विभाव तो परदेश है, यहाँ कहाँ आ गये? वह सब तो विभाव-विभाव (है), यहाँ हमारा कोई नहीं है। हमारा सब हमारे स्वदेशमें हमारे गुण हैं वह हमारे हैं।

दृष्टि भले अखण्ड पर है, परन्तु उसके ज्ञानमें उसकी भावनामें आगे बढ़नेके लिये उसकी चारित्रकी पर्यायमें आगे बढ़नेके लिये अनेक जातकी भावना आती है। ये सब तो परदेश है, मेरा स्वदेश तो मेरे गुण हैं, वह मेरा स्वदेश है। स्वदेशकी ओर, हमारे पुरुषार्थकी गति उस तरफ हो। हमें इस विभावकी ओर नहीं जाना है। दृष्टि अपेक्षा-से तो भले स्वदेशको ग्रहण किया। परिणति अमुक प्रकार-से स्व तरफ गयी हो, परन्तु विशेष-विशेष हम स्वदेशमें जायें, हमारे पुरुषार्थकी गति स्वदेशमें जाय, ये विभाव हमारा देश नहीं है। ऐसा भावनामें आ सकता है।

साधकको सब जातकी भावना आती है। वहाँ दृष्टि रखे तो विभाव तरफ जाने-से वहाँ हमारा कोई दिखाई नहीं देता। चैतन्यके स्वदेशमें जाते हैं, वह सब हमारे हैं। ये सब तो विभाव है। विभाव परभाव हैं। ऐसा भावनामें आ सकता है।

मुमुक्षु :- तो वहाँ सब हमारा है, परिचित है, हमेशा रहनेवावले हैं, क्या लगता होगा?

समाधान :- स्वयंने जो स्वदेश देखा है, जो देखा है वह कह सकते हैं कि ये सब हमारे हैं। ये गुण हमारे साथ रहनेवाले शाश्वत हैं, वह सब हमारे हैं। अनन्त गुणों-से भरपूर, जिसमें अनन्त शुद्धकी पर्याय-शुद्धात्माकी प्रगट होती हैं, जो अनन्त गुणों-

से भरपूर ऐसा चैतन्यद्रव्य, उसकी स्वानुभूति होती है तो उसे ऐसा लगता है कि ये सब हमारे हैं। द्रव्य, अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि है, तो भी ये सब गुण उसके ज्ञानमें वर्तता है कि ये सब हमारा है, ये कोई हमारा नहीं है। उसकी भावनामें वह सब आता है।

दृष्टि, ज्ञान, चारित्र, अनेक प्रकारकी अपेक्षाएँ साध्य-साधक भावमें होती है। अनेकान्तमयी मूर्ति नित्यमेव प्रकाशताम्। अनेकान्त स्वभाव है। एक तरफ-से देखो तो क्लेश-कालिमा दिखे। एक तरफ-से शुद्धात्मा दिखे, एक तरफ साधकदशा हो। अनेक जातकी पर्याय दिखे। अतः वह अनेकान्त स्वरूप है। अनेक अपेक्षाएँ साधक दशामें होती हैं। और पूर्ण हो तो भी उसमें अनन्त गुण और अनन्त पर्यायें,...

मुमुक्षु :- .. भेदज्ञान वर्तता है और संवेदनमें तो स्वभावके साथ अभेद ज्ञान होता है, तो भेदज्ञानकी व्यवस्था क्या?

समाधान :- विकल्प है वह तो अभ्यासरूप भेदज्ञान है और स्वानुभूतिमें भेदज्ञानका विकल्प नहीं है, निर्विकल्प दशा है। बीचकी साधकदशामें भेदज्ञानकी धारा, वह उसे सहज परिणतिरूप होती है। उसे विकल्परूप नहीं है। उसे, मैं भेदज्ञान करुँ, ऐसा नहीं है। परन्तु उसे सहज ज्ञायककी धारा और उदयकी धारा, दोनों भिन्न धारा साधकदशामें वर्तती है। उदयधारा और ज्ञानधारा-ज्ञायककी धारा। दोनों जातकी भेदज्ञानकी धारा उसे वर्तती ही है।

शास्त्रमें आता है कि भेदज्ञान तबतक अविच्छिन्न धारा-से भाना कि जबतक ज्ञान ज्ञानमें स्थिर न हो जाय। इसलिये अमुक अंशमें स्थिर न हो जाय और पूर्ण स्थिर न हो जाय, वीतराग दशा न हो तबतक भेदज्ञान अविच्छिन्न धारा-से भाना। उसमें त्रुटक न पड़े ऐसा। ऐसी सहज भेदज्ञानकी धारा, सम्यग्दृष्टिको सहज भेदज्ञानकी धारा होती है। ज्ञायककी ज्ञायकधारा और विभावकी विभावधारा। अल्प अस्थिरता होती है वह विभावधारा है। और ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमता है, वह विकल्परूप नहीं है, परन्तु सहज है। जैसे एकत्वबुद्धिकी धारा सहज अनादि कालसे चल रही है, उसमें उसे कुछ याद नहीं करना पड़ता या उसे धोखना नहीं पड़ता, एकत्वबुद्धिकी धारा (वर्तती है)। वैसे उसे भेदज्ञानकी धारा ऐसी सहज हो गयी है कि ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमता रहता है और विभाव विभावरूप। उसकी अल्प अस्थिरता है इसलिये विभावधारा और ज्ञायकधारा दोनों धारा रहती है। फिर वीतरागदशा होती है, तब दो धारा नहीं रहती। स्वानुभूतिमें दो धारा नहीं होती।

मुमुक्षु :- दोनों धारा भिन्न-भिन्न परिणमती है, वही भेदज्ञानका अस्तित्व..

समाधान :- वह भेदज्ञान है।

मुमुक्षु :- पर्यायमें द्रव्यत्व नहीं है और द्रव्यमें अर्थात् ध्रुवमें पर्यायत्व नहीं है।

तो पर्याय द्रव्यके साथ एकत्वका अनुभव कैसे करती है?

समाधान :- द्रव्यमें पर्याय नहीं है, पर्यायमें द्रव्य नहीं है। वह दृष्टिकी अपेक्षा-से कहनेमें आता है। द्रव्य पर दृष्टि करने-से दृष्टिके विषयमें एक द्रव्य आता है। बाकी सर्व अपेक्षा-से द्रव्यमें पर्याय नहीं है और पर्यायमें द्रव्य नहीं है, वह सर्व अपेक्षा-से नहीं है। पर्यायको द्रव्यका आश्रय है और द्रव्य पर्यायरूप परिणमता है। इस प्रकार दूसरी एक अपेक्षा है। सर्व अपेक्षा-से पर्याय द्रव्य नहीं है और द्रव्य पर्याय नहीं है, वह सर्व अपेक्षा-से नहीं है। पर्याय सर्वथा भिन्न हो तो पर्याय स्वयं द्रव्य बन जाय। सर्व अपेक्षा-से ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- यहाँ द्रव्य यानी ध्रुव भाव। यहाँ द्रव्य यानी ध्रुव भाव और पर्याय भाव। ऐसे दो भाव लेने हैं।

समाधान :- ध्रुव भाव तो वह अकेला ध्रुव नहीं है। ध्रुवको उत्पाद-व्ययकी अपेक्षा है। उत्पाद-व्यय बिनाका ध्रुव नहीं है। अकेला ध्रुव नहीं हो सकता। उत्पाद-व्ययकी अपेक्षावाला ध्रुव है। कोई अपेक्षा-से अंश भिन्न हैं, परन्तु एकदूसरेकी अपेक्षा रखते हैं।

मुमुक्षु :- पहले निरपेक्ष-से जानना चाहिये और फिर सापेक्षाता लगानी चाहिये अर्थात् ध्रुव ध्रुव-से है और पर्याय-से नहीं है। अथवा पर्याय पर्याय-से है और ध्रुव-से नहीं है। इस प्रकार निरपेक्षता सिद्ध करके, फिर सापेक्षता अर्थात् द्रव्यकी पर्याय है और पर्याय द्रव्यकी है, ऐसे लेना चाहिये? ऐसा समझनमें क्या दोष आता है?

समाधान :- पहले निरपेक्ष और फिर सापेक्ष। जो निरपेक्ष यथार्थ समझे उसे सापेक्ष यथार्थ होता है। उसमें पहले समझनेमें पहला-बादमें आता है, परन्तु यथार्थ प्रगट होता है, उसमें दोनों साथमें होते हैं। जो यथार्थ निरपेक्ष समझे, उसके साथ सापेक्ष होता ही है। अकेला निरपेक्ष पहले समझे और फिर सापेक्ष (समझे), वह तो व्यवहारकी एक रीत है। अनादि काल-से तूने स्वरूपकी ओर दृष्टि नहीं की है, इसलिये द्रव्यदृष्टि कर। ऐसे द्रव्यदृष्टि कर। पहले तू यथार्थ ज्ञान कर, ऐसा सब कहनेमें आता है।

इस प्रकार तू पहले निरपेक्ष द्रव्यको पहचान। निरपेक्ष पहचानके साथ सापेक्ष क्या है, वह उसके साथ आ ही जाता है। यदि अकेला निरपेक्ष आये तो वह निरपेक्ष यथार्थ नहीं होता।

मुमुक्षु :- अकेला निरपेक्ष है, वह एकान्त हो गया।

समाधान :- वह एकान्त हो जाता है।

मुमुक्षु :- आपका कहना यह है कि समझनेमें पहले निरपेक्ष और बादमें सापेक्ष, ऐसे समझनमें दो प्रकार पड़ते हैं। वास्तवमें तो दोनों साथ ही हैं।

समाधान :- वास्तवमें दोनों साथ हैं। समझनेमें (आगे-पीछे) होता है।

मुमुक्षु :- जीवको रागके परिणामका परिचय है। ज्ञान अस्पष्टरूपसे ख्यालमें आता है। और वह भी परविषय हो, इस तरह। इस स्थितिमें आगे कैसे बढ़ना? इस सम्बन्धित मार्गदर्शन देनेकी कृपा करें।

समाधान :- रागका परिचय अनादि-से है। ज्ञानका परिचय नहीं है। तो ज्ञानस्वरूप आत्माका परिचय ज्यादा करना। ज्ञान भले अस्पष्ट (मालूम पड़े), अपनी दृष्टि बाहर है, इसलिये ज्ञात नहीं हो रहा है, परन्तु जो ज्ञात हो रहा है वह ज्ञान ही है। उस ज्ञानको विभाव-से भिन्न जानकर, अकेला ज्ञायक-ज्ञानको ग्रहण करना। ज्ञानको ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। उसका परिचय करना, उसका बारंबार अभ्यास करना। उसका परिचय ज्यादा करने-से उसका स्वभाव समीप जाकर पहचानने-से वह प्रगट होता है। भले वह ज्ञान अस्पष्ट दिखाई दे या जैसा भी दिखाई दे, परन्तु वह चैतन्यका लक्षण है। इसलिये उस लक्षण-से लक्ष्यको पहचानना।

पर तरफ उसकी दृष्टि जाती है, इसलिये मानों ज्ञेय-से हो ऐसी भ्रमणा हो गयी है। तो उस भ्रमणाको छोड़कर जो अकेला ज्ञान है, उस ज्ञानको ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। ज्ञान भले अस्पष्ट मालूम पड़े, परन्तु वह ज्ञान ही है। ऐसे ज्ञानको ग्रहण करनेका प्रयत्न करना और बार-बार प्रयत्न करना। उसका परिचय करना, उसका अभ्यास करना। जो रागका परिचय है, वह छोड़कर ज्ञानका परिचय करना, ज्ञाताका परिचय करना। बार-बार उसका अभ्यास करना। वह उसका उपाय है।

मुमुक्षु :- ज्ञानपर्याय पर-से ज्ञानस्वभावका ख्याल कैसे आ जाता है?

समाधान :- पर्याय पर-से, दृष्टि तो द्रव्य पर करनी है, परन्तु पर्याय बीचमें आती है। पर्यायका आश्रय नहीं आता, परन्तु पर्याय आती है। पर्याय साथमें आती है। द्रव्यका विषय करना है, परन्तु वह विषय तो पर्याय करती है। पर्याय तो साथमें आती ही है। दृष्टिकी दिशा पलटती है। पर्याय इस ओर जाती है, उसकी दिशा पलटती है। उसका विषय द्रव्य पर जाता है। पर्याय तो बीचमें आती ही है।

मुमुक्षु :- पर्याय आती है वह बराबर, परन्तु पहले जैसे राग जाननेमें आता था, वैसे ज्ञानकी पर्याय जाननेमें आती है, फिर उसमें-से ज्ञानस्वभाव ज्ञात होता है या सीधा ज्ञानस्वभाव ज्ञात होता है।

समाधान :- ज्ञानकी पर्याय भले जाननेमें आये, परन्तु ज्ञानस्वभाव ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। पर्याय ग्रहण करनेका प्रयत्न नहीं करना। परन्तु ज्ञान ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। वह अंश जो दिखता है, उस अंशको ग्रहण करनेका प्रयत्न नहीं करना। ये जो क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें जो दिखता है वह मैं, ऐसा प्रयत्न नहीं करना, परन्तु वह जाननेवाला कौन है? ऐसी जाननेकी शक्ति धारण करनेवाला कौन है? उस द्रव्यको

ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। जो क्षण-क्षणमें जान रहा है, जो क्षण-क्षणमें सबका ज्ञान कर रहा है, जो भाव चले गये उन भावोंका भी ज्ञान करनेवाला है, सबका ज्ञान करनेवाला है, ज्ञेयका करनेवाला शक्तिवान कौन है? उसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। यह जाना, वह जाना ऐसे पर्यायको ग्रहण करनेका प्रयत्न नहीं करके अखण्ड ज्ञान ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। पर्याय-से ग्रहण होता है, उसके लक्षण-से ग्रहण होता है। पर्याय बीचमें आती है। पर्याय पर दृष्टि छोड़कर ज्ञान ग्रहण कर।

गुरुदेवने बहुत समझाया है और गुरुदेवका परम उपकार है। इस पंचम कालमें गुरुदेवका जन्म हुआ और सबको तारनेका गुरुदेवका महान निमित्तत्व था। उनकी वाणी कोई अपूर्व थी। उनकी वाणीके पीछे पूरा मुक्तिका मार्ग, आत्मा-अद्भुत आत्मा दिखे ऐसी उनकी वाणी थी। सब उन्होंने समझाया है। वस्तु स्थितिके चारों तरफके पहलू उन्होंने समझाये हैं। आत्माकी स्वानुभूति कैसे हो? साधक दशा क्या? द्रव्यदृष्टि क्या? पर्याय क्या? गुण क्या? सब गुरुदेवने समझाया है।

समाधान :- ... ऐसा कैसा है? तत्त्वका स्वभाव कैसा है? यह सब विचारना चाहिये। ऐसा तत्त्वका विचार होना चाहिये, यह सब करना चाहिये। बारंबार-बारंबार, बारंबार-बारंबार इसका मनन, चिंतवन, आत्माके बिना उसको चैन न पड़े, मैं आत्मा कैसे प्राप्त करुँ? विभावमें रस नहीं लगे और चैतन्य स्वभावमें रस होना चाहिये। ऐसी अंतरमें-से तैयारी होनी चाहिये। ऐसी पात्रता होनी चाहिये। तब वह स्वभाव तरफ जा सकता है।

अनादि काल-से विभावमें एकत्वबुद्धि हो रही है। उसमें सबकुछ माना है और बाह्य क्रियामें धर्म मान लिया है। और शुभभाव-से तो पुण्यबन्ध होता है, स्वर्ग होता है। आत्म स्वरूप, शुद्धात्माकी पर्याय तो नहीं होती। स्वानुभूति नहीं होती। शुभभाव-से तो पुण्यबन्ध होता है। उससे मेरा स्वभाव तो शुभभाव-से भी भिन्न है। शुभभाव बीचमें आता है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा सब आता है। परन्तु शुभ परिणाम अपना स्वभाव नहीं है। ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये। ऐसी श्रद्धा, उसका चिंतवन, मनन निरंतर ऐसा होना चाहिये। तो आत्माकी प्राप्ति हो सकती है। मैं उससे भिन्न हूँ। मैं भिन्न हूँ, ऐसा भीतरमें-से होना चाहिये। पहले तो वह विचार करता है, परन्तु ऐसा भीतरमें-से होना चाहिये। स्वभावमें-से आत्माको ग्रहण करना चाहिये। प्रज्ञा-से ग्रहण करना चाहिये और प्रज्ञा-से भिन्न करना चाहिये। ऐसा होने-से उसको निर्विकल्प स्वानुभूति हो सकती है। बारंबार उसका मनन, मैं न्यारा चैतन्य हूँ, शरीर भी मैं नहीं हूँ, विभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है। भिन्न आत्माको पीछानना चाहिये।

मुमुक्षु :- ये सब तो विकल्पमें जायगा। ये तो विकल्पमें आयगा।

समाधान :- विकल्पमें आयगा, लेकिन भीतरमें-से परिणति तो हुयी नहीं है। विकल्प तो बीचमें आता है। परन्तु ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये कि भीतरमें-से मेरा स्वभाव कैसे प्रगट होवे? ऐसी भावना होनी चाहिये। विकल्प तो बीचमें आता है। विकल्प-से होता नहीं है। विकल्प-से कुछ होता नहीं है, वह तो बीचमें आता है। परन्तु भीतरमें-से ऐसी परिणति प्रगट करनी चाहिये। परिणतिका प्रयास करना चाहिये। ऐसे विकल्प तो आते हैं। विकल्प-से होता (नहीं)। विकल्प तो है, तो क्या करना? भीतरमें तो गया नहीं है। तो विकल्प तो बीचमें आता है। विकल्प-से मैं भिन्न हूँ, ऐसी श्रद्धा करनी चाहिये। मैं भिन्न हूँ, ये भी विकल्प होता है। मेरा स्वभाव भिन्न है, ये भी विकल्प होता है। ऐसा जान लेता है कि मैं भिन्न हूँ। ऐसे भिन्न हो नहीं जाता है, विकल्प होता है। परन्तु यथार्थ भिन्नता तो ऐसी परिणति न्यारी होवे तब भिन्नता तो होती है। परिणति न्यारी हुए बिना भिन्नता हो सकती नहीं।

मैं अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य हूँ, अनादिअनन्त। ऐसा विकल्प नहीं, परन्तु ऐसी परिणति होनी चाहिये। बीचमें भावना करता है तो विकल्प तो आता है। परन्तु श्रद्धा उसकी ऐसी होनी चाहिये कि मेरी परिणति कैसे न्यारी होवे? परिणति न्यारी होवे तब भेदज्ञान होता है, तब निर्विकल्प दशा होती है। ऐसे तो नहीं होता, विकल्पमात्र-से तो नहीं होता।

पूछा न कैसा चिंतवन करना? चिंतवन तो बीचमें ऐसा आता है कि मैं चैतन्य द्रव्य हूँ। मेरा स्वभाव भिन्न है। उसकी लगन, महिमा सब भीतरमें-से होना चाहिये, तो हो सकता है। परिणति तो न्यारी होवे तब कार्य होता है। परिणति हुए बिना नहीं होता है। स्वभाव भीतरमें-से यथार्थ ग्रहण करे तब होता है। बाहर स्थूल विकल्प-से नहीं होता है। विकल्प-से तो होता ही नहीं। विकल्प-से निर्विकल्प दशा हो सकती नहीं। तो क्या करना? भावना करनी। विकल्प तो बीचमें आता है। परन्तु परिणति कैसे न्यारी होवे? अपने भीतरमें जाकर ऐसी श्रद्धा करना। भीतरमें जाकर ऐसी परिणति प्रगट करनेका प्रयास करना चाहिये।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प दशा माने क्या? निर्विकल्प दशामें क्या होता है? विचारशून्य दशा होती है? या क्या होता है?

समाधान :- विचारशून्य नहीं होता है, शून्य दशा नहीं होती है। चैतन्यतत्त्व है, शून्यता नहीं होती। विचार शून्य हो जाय (ऐसा नहीं है)। चैतन्यतत्त्व है। चैतन्यका स्वानुभव होता है। अनन्त गुण-से भरा चैतन्य पदार्थ है, उसकी उसको स्वानुभूति होती है। उसका आनन्द होता है। ऐसे अनन्त गुण-से भरा चैतन्य पदार्थ है। जागृति होती है, शून्यता नहीं होती है। शून्यता नहीं होती, जागृति होती है।

अनन्त काल-से जो नहीं हुआ ऐसा अनुपम तत्त्व, ऐसा अनुपम आनन्द और अनन्त गुण-से भरा चैतन्यद्रव्य, उसकी स्वानुभूति होती है। शून्यदशा नहीं होती है, जागृति होती है। विभावमें जो था, उससे उसका जीवन पलट जाता है। उसकी परिणति न्यारी हो जाती है। उसकी दशा कोई अद्भुत हो जाती है। शून्यता नहीं होती। अपना चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण करे, उसका भेदज्ञान करके भीतरमें जाय तो उसकी प्राप्ति होती है।

मुमुक्षु :- स्वानुभव तो पर्यायमें होता है। तो संपूर्ण आत्मा उस पर्यायमें आ जाता है? पर्याय तो एक समयकी है, तो संपूर्ण आत्मा उसमें कैसे आता है?

समाधान :- एक समयकी पर्याय है। परन्तु आत्मा तो अखण्ड है। एक पर्याय अंश है, वह पलट जाती है। आत्मा स्वयं अखण्ड है। वह अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य है। एक पर्याय जो अंश है, उसमें पूरा अंशी नहीं आ जाता। पर्याय तो अंश है। स्वानुभूति होती है, स्वानुभूति पर्यायमें होती है, परन्तु उसमें द्रव्य अखण्ड है। पूरा द्रव्य पर्यायमें घूस जाता है, ऐसा नहीं है। पर्यायमें पूरा द्रव्य आ जाता है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :- उसकी अनुभूति होती है? पर्यायमें अनुभूति होती है।

समाधान :- पर्यायकी अनुभूति होती है।

मुमुक्षु :- लेकिन समय तो बहुत ही कम रहता है। मालूम नहीं पड़ता होगा।

समाधान :- मालूम नहीं पड़ता है, ऐसा नहीं है। समय अंतर्मुहूर्त होता है। जिसकी दशा बदल जाती है, उसको वेदन-स्वानुभूति होती है। चैतन्यद्रव्य है, कोई दूसरी वस्तु नहीं है। स्वयं स्व ही है। स्वका अनुभव स्व करता है तो उसको ख्याल नहीं आता है, ऐसा नहीं होता। उसको ख्यालमें आता है, उसका वेदन होता है। पर्याय अंश है, वह अंश पलट जाता है, परन्तु द्रव्य तो शाश्वत रहता है। द्रव्य तो अनादिअनन्त शाश्वत है।

मुमुक्षु :- स्वानुभव होनेके पहले दशा किस प्रकारकी होती है?

समाधान :- उसके पहलेकी दशा तो वह भेदज्ञानका अभ्यास करता है। स्वानुभूतिके बाद भेदज्ञानकी सहज धारा रहती है। ज्ञायककी धारा, उदयधारा दोनों भिन्न रहती है। स्वानुभूतिके पहले वह अभ्यास करता है कि मैं चैतन्य भिन्न हूँ, मैं ज्ञायक हूँ। मैं अनादिअनन्त शाश्वत तत्त्व हूँ। ये पर्याय तो क्षण-क्षणमें बदलता हुआ अंश है। मैं अंशी अखण्ड हूँ। ऐसे उसकी दृष्टि द्रव्य पर रहती है। उसका-दृष्टिका विषय द्रव्य रहता है और ऐसा अभ्यास करता है। यथार्थ तो स्वानुभूतिके बाद होता है। स्वानुभूतिमें यथार्थ होता है। उसके पहले उसकी प्रतीत करता है, उसका अभ्यास करता है। बारंबार मैं चैतन्य हूँ, ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ, ऐसा अभ्यास करता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानधारा चलती है।

समाधान :- ज्ञानधारा चलती है, लेकिन अभ्यासरूप चलती है। सहजरूप नहीं होती। उसको ज्ञानधारा कहनेमें नहीं आती है, क्योंकि अभ्यास है।

मुमुक्षु :- बुद्धिपूर्वक होता है।

समाधान :- बुद्धिपूर्वक, विकल्पपूर्वक होता है, सहज नहीं होता है। सहज नहीं होता है। एकत्वबुद्धि टूटी नहीं है, उसका अभ्यास करता है। इसलिये उसको यथार्थ कहनेमें नहीं आता, अभ्यास करता है।

मुमुक्षु :- आगे चलकर?

समाधान :- आगे चलनेके बाद यथार्थ हो सकता है। यदि कारण यथार्थ होवे तो कार्य हो सकता है। उसका कारण जो भेदज्ञानका अभ्यास यथार्थ होवे तो कार्य आ सकता है। उसका उपाय भेदज्ञानका अभ्यास है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञानका अभ्यास?

समाधान :- अभ्यास करता है।

मुमुक्षु :- पहले तो बुद्धिपूर्वकका ही रहेगा।

समाधान :- बुद्धिपूर्वक। विभावसे भिन्न हूँ, शुभाशुभ भाव-से भी मेरा स्वभाव भिन्न है। बीचमें शुभभाव आता है। मैं उससे चैतन्य पदार्थ भिन्न हूँ। और अनादिअनन्त तत्त्व हूँ। गुणका भेद और पर्यायका भेद होता है, वह गुणभेद भी मेरे स्वभावमें नहीं है। विकल्प बीचमें आते हैं, मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, तो भी ऐसे गुणका टूकड़ा और भेद, मेरेमें ऐसा गुणभेद भी नहीं है। ऐसे अखण्ड दृष्टि द्रव्य पर स्थापित करता है। उसका अभ्यास करता है। यथार्थ बादमें होता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४०

मुमुक्षु :- अखण्ड किस प्रकार-से आत्माको जानना? क्योंकि खण्ड खण्ड हो गया तो ज्ञान ज्ञान नहीं होता।

समाधान :- वास्तवमें खण्ड खण्ड नहीं हुआ है। खण्ड तो क्षयोपशम ज्ञान है। तो क्रम-क्रम-से जानता है। वास्तविकमें खण्ड हुआ ही नहीं है। पदार्थ तो अखण्ड शाश्वत है, अखण्ड है। इसलिये अखण्डको अखण्ड जान लेना। और खण्ड तो उसका क्षयोपशम ज्ञान क्रम-क्रमसे जानता है। इसलिये खण्ड दिखनेमें आता है। वास्तवमें एक ज्ञान पर दृष्टि रखे कि मैं ज्ञायक जाननेवाला हूँ। इसको जाना, इसको जाना, इसको जाना ऐसे नहीं, परन्तु मैं जाननेवाला स्वतःसिद्ध ज्ञायक हूँ। वह अखण्ड ही है। अखण्ड स्वभाव है उसका। भेद-भेद, वास्तविकमें भेद हुआ ही नहीं है। अनादिअनन्त द्रव्यका भेद होता ही नहीं है। वास्तविक भेद नहीं है। खण्ड तो क्षयोपशमज्ञानके कारण खण्ड हुआ है।

मुमुक्षु :- स्वपरप्रकाशक वह कब कहनेमें आये? उसे स्वपरप्रकाशकका अनुभव हो? किस कक्षामें? और स्वपरप्रकाशकका समय (क्या है)? एक ही समयमें स्वको जानता है, तभी परको जानता है? अथवा कैसे जानता है?

समाधान :- स्वपरप्रकाशक उसका स्वभाव ही है। कब क्या? स्वपरप्रकाशक उसका स्वभाव है। स्व और पर दोनों साथमें ही जानता है, उसमें क्रम नहीं पड़ता। अज्ञानी परको जानता है, स्वको नहीं जानता है। ज्ञानदशा होनेके बाद स्वपरप्रकाशकपना है। और प्रत्यक्ष स्वपरप्रकाशक केवलज्ञानी हैं।

जिसे स्वभावकी अस्तिका ज्ञान हुआ, विभाव मेरेमें नहीं है, ऐसा दोनों ज्ञान उसे साथमें वर्तता है। तो वह स्वपरप्रकाशकपना है। स्वपरप्रकाशक उसका स्वभाव है। वह स्वानुभूतिमें जाता है तब पर-ओर उपयोग नहीं है, इसलिये स्वानुभूतिका वेदन है। बाहर उपयोग आये तब दोनों जानता है। स्वको जानता है, परको जानता है। परिणति उसकी स्वपरप्रकाशक रहती है, ज्ञानदशा होनेके बाद। उपयोग एक तरफ रहता है। छद्मस्थका उपयोग क्रम-क्रमसे होता है। केवलज्ञानी एकसाथ स्वपरप्रकाशक है। बाकी सम्यग्दृष्टिज्ञकी परिणति स्वपरप्रकाशक रहती है।

समाधान :- .. वह स्वयं कर सकता है। तू अपनी ओर जा, तेरी महिमा कर, परकी महिमा छोड़ दे, तत्त्वका विचार कर। स्वयं पुरुषार्थ करे तो अपना उपादान तैयार हो। मैं ज्ञायक हूँ। पर तरफ-से लगनी छोड़कर स्वकी ओर जाना, वह उसका पुरुषार्थ है। कैसे करना? स्वयं ही करे। उसकी विभावकी महिमा टूट जाय, बाहरकी महिमा टूट जाय। अंतरकी महिमा प्रगट करे। वह स्वयं कर सकता है। देव-गुरु-शास्त्र। गुरुने जो उपदेश दिया, उस अनुसार स्वयंका परिणमन हो जाना और ऐसा पुरुषार्थ करना, तो अपना उपादान तैयार हो।

मुमुक्षु :- अटक कहाँ है? इतना सुननेके बाद भी उसके ध्यानमें मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्पमें आता है, फिर भी अभी अटकता है कहाँ?

समाधान :- विकल्प-से तो अभी धोखनेरूप है। अभी अन्दर परिणति प्रगट करनी चाहिये। अटकता ही है। परिणति प्रगट नहीं हुयी है तो धोखना है, ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, स्वपरप्रकाशका स्वरूप यथार्थ समझना चाहिये। अभी वह समझता नहीं है, यथार्थ ज्ञान नहीं है, यथार्थ प्रतीति नहीं है। भावना यथार्थ करे, विकल्प-से भावना करे, परन्तु अभी अंतरमें परिणति प्रगट करनी है। अभी उसे अन्दरमें बहुत करना बाकी रह जाता है। यथार्थ प्रगट नहीं हुआ है। रटना हो रहा है। अन्दर तैयारी, अपनी महिमा प्रगट करनेकी आवश्यकता है। तत्त्वविचार करके चैतन्यको कैसे ग्रहण करना? वह पुरुषार्थ करनेकी आवश्यकता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- ... ईधर आना दूसरी बात है। गुरुदेव भगवानके पास गये, दिव्यध्वनि सुनते हैं। ... भगवानका दर्शन करनेके लिये आते हैं।

मुमुक्षु :- ... हमारे सामने बोलते थे कि पुरुष देह हो तो मैं एक सैकन्ड अलग नहीं रहता। ऐसा हमारे सामने बोले हैं।

समाधान :- ... भाव दूसरी बात है।

मुमुक्षु :- आपने बहुत खुलासा किया। आपने इतने कलश चढाये, बहुत खुलासा हुआ। आपकी घणी कृपा हुयी।

समाधान :- आत्माको न्यारा बताया। न्यारा आत्माको ग्रहण करे और देव-गुरु-शास्त्रको हृदयमें रखे तो गुरुदेवका योग मिल जाता है। ... ज्ञायकको अंतरमें ग्रहण करने-से देव-गुरु-शास्त्र भी मिल जाते हैं। शुभभावना ऐसी होती है।

मुमुक्षु :- आपका आशीर्वाद मिला हमें।

समाधान :- गुरु मिल जाते हैं।

समाधान :- .. स्वभावसे साक्षी है। उसका द्रव्य, ज्ञायकका स्वभाव तो साक्षी

है, परन्तु साक्षीरूप परिणमन जो होना चाहिये, वह परिणमन नहीं है और राग-द्वेषके साथ एकत्वबुद्धि है। मैं रागरूप हो गया, द्वेषरूप हो गया। ऐसी परिणति और ऐसी मान्यता, ऐसी एकत्वबुद्धि हो गयी है। परिणति पलटकर मैं ज्ञायक अनादिअनन्त शाश्वत हूँ। ऐसी प्रतीत और ऐसी परिणति अंतरमें होनी चाहिये कि मैं साक्षी ही हूँ, ज्ञायक ही हूँ। ज्ञातारूप परिणति प्रगट करे और वह परिणति प्रगट करनेका अभ्यास करे, वह जबतक सहज न हो जाय तबतक। सहज हो, तब उसका वास्तविक साक्षीपना होता है। सहज दशा हो तो साक्षी हो। पहले उसका प्रयत्न करे कि मैं अनादिअनन्त शाश्वत ज्ञायक हूँ। किसीके साथ एकत्वबुद्धि, एकमेक होना उसका स्वभाव नहीं है, परन्तु एकत्वबुद्धि मान्यतामें भ्रम हो गया है। परिणति एकत्व हो गयी है, उसे भिन्न करके, मैं ज्ञायक ही हूँ, पहले उसकी प्रतीति दृढ़ करे कि मैं ज्ञायक ही हूँ। अंतर-से समझकर प्रतीति करे। ज्ञायककी धारा यदि प्रगट हो तो उसे क्षण-क्षणमें ज्ञायककी धारा सहज रहे तो साक्षीभाव रहे। लेकिन वह ज्ञायकधारा रहती नहीं, साक्षीभाव रहता नहीं और राग-द्वेषके साथ एकत्वबुद्धि हो जाती है, इसलिये साक्षी नहीं रहता। मात्र कल्पना-से रटन करके साक्षी माने तो वह रहता नहीं। सहज साक्षीपना हो तो रहे। सहज नहीं है, इसलिये रहता नहीं।

मुमुक्षु :- अंतर-से समझकर करे तो। अंतर-से समझकर करे उसका अर्थ?

समाधान :- अंतर-से समझकर करे (अर्थात्) वह परिणति प्रगट करे तो होता है। स्वानुभूति होनेके बाद जो सहज परिणतिकी दशा हो, जो साक्षी ज्ञायकधाराकी, वह सहज है। उसके पहले उसे अभ्यासरूप होता है कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। अभ्यासरूप करे। रटनमात्र करे तो वह (वास्तविक नहीं है)। क्षण-क्षणमें जब राग-द्वेष हो, उस क्षण ज्ञायक यदि मौजूद रहे तो एकत्व नहीं होता। उसी क्षण ज्ञायक रहता नहीं और दूसरी क्षणमें याद करे तो उस क्षणमें तो उसे एकत्व हो जाता है। क्षण-क्षणमें उसकी परिणतिको भिन्न करनेका अभ्यास करे। क्षण-क्षणमें मैं ज्ञायक ही हूँ, मैं साक्षी ही हूँ, ऐसा अभ्यास करे तो भी अभी अभ्यासरूप है। सहज तो बादमें होता है।

मुमुक्षु :- पहले तो आपने प्रश्नमें एक भूल निकाली कि बात-बातमें राग-द्वेष हो जाते हैं। वास्तवमें तो स्वभाव अपेक्षा-से राग-द्वेष होते नहीं है, परन्तु एकत्वता करता है।

समाधान :- एकत्वबुद्धि होती है, एकत्वता होती है। वस्तु स्वभावमें राग-द्वेष नहीं होते, परन्तु उसकी एकत्वबुद्धि हो रही है। वर्तमानमें तो, मैं रागरूप हो गया, द्वेषरूप हो गया, ऐसे उसकी परिणति, ऐसी मान्यता हो गयी है।

मुमुक्षु :- एकत्वबुद्धिका नाश, ज्ञायकका बारंबार अभ्यास करे तो शुरूआतमें उस प्रकार-से भिन्नता हो।

समाधान :- तो शुरूआतमें उसे भिन्न पड़नेका अवकाश है। उतनी महिमा स्वयंको ज्ञायकपनाकी आवे तो हो। पर-ओरकी, विभावकी महिमा छूटे, अपनी महिमा आवे, निज स्वभाव पहचाने कि मैं यह ज्ञायक हूँ, यह विभाव है। स्वभावकी महिमा तो उस तरफ उसका पुरुषार्थ बारंबार चले।

परमार्थ स्वरूप जो ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र वह मैं। ज्ञानमात्रमें पूरा ज्ञायक लिया है। जितना ज्ञानस्वभाव वह मैं, अन्य मैं नहीं। ज्ञानस्वभाव जितना मैं, परन्तु ज्ञानमें सब भरा है। उसमें पूरा ज्ञायक लिया है। पूरा महिमावंत ज्ञायक अनन्त शक्ति-से भरा पूरा ज्ञायक है। जितना ज्ञानमात्र, ज्ञायक सो मैं, ज्ञानमात्र सो मैं। उसमें प्रीति कर, उसमें रुचि कर तो उसमें-से अहो! उत्तम सुखकी प्राप्ति होगी। उसमें प्रीत कर, उसमें रुचि कर। उसमें संतुष्ट हो जा। उसमें रुचि, प्रीति, संतुष्ट और उसमें लीन हो, उसमें-से ही तुझे संतोष होगा। कहीं और तुझे जाना नहीं पड़ेगा। स्वानुभूति हो तो उसमें संतोष आदि सब होता है। और पहले उसीमें रुचि कर, उसमें प्रीति कर, उसमें संतोष मान। ज्ञानमात्रमें सब है। ज्ञायकमात्र आत्मामें सब है। ज्ञान अर्थात् गुण नहीं, पूरा ज्ञायक।

मुमुक्षु :- ज्ञानमात्र कहने-से पूरा ज्ञायक लेना।

समाधान :- पूरा ज्ञायक लेना। जितना परमार्थ स्वरूप आत्मा, जितना यह ज्ञान है। ज्ञानमात्र आत्मामें रुचि, प्रीति, संतोष मान। दूसरी सब जगह-से छूट जा। पहले प्रतीत-से छूटे परिणति, फिर उसमें लीनता-चारित्रकी विशेषता हो। पहले उसकी प्रतीत कर, रुचि कर, लीनता कर। पहले स्वरूपाचरण चारित्र होता है, बादमें विशेष होता है।

मुमुक्षु :- पूरा ज्ञायक लेना मतलब?

समाधान :- ज्ञानमात्र आत्मा उसमें पूरा ज्ञायक (आता है)। उसमें रुचि कर, प्रीति कर। जितना यह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वह मैं। जितना यह ज्ञान है, ज्ञान माने पूरा ज्ञायक, एक गुण नहीं लेना है।

मुमुक्षु :- महावीरके बोधके पात्र कौन? उसमें सबसे पहले कहा कि सत्संगका इच्छुक। दस प्रकार कहे हैं, उसमें प्रथम सत्संगका इच्छक कहा है। इतनी प्रधानता देनेका क्या प्रयोजन है? गुरुदेव तो उसे निश्चयमें खताते थे। सत्पुरुष, सत्संग यानी तेरा सत् आत्मा, उसका संग करो तो तुझे... श्रीमद्जीको तो निमित्तरूप-से सत्पुरुष कहना है, ऐसा लगता है। उसमें क्या विशेषता है कि दसमें भी पहले उसे मुख्य कहा। उसमें क्या कहना चाहते हैं?

समाधान :- सत्संगमें निश्चय-व्यवहार दोनों अन्दर आ जाते हैं। अनादि कालसे

सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। अनादिकालमें (प्रथम) देशनालब्धि होती है। उसमें एक बार देवका, गुरुका प्रत्यक्ष उपदेश मिलता है तो जीवको देशनालब्धि (मिलती है)। उपादान अपना है। उपदेश मिले, देशनाके साथ सम्बन्ध है। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है। उपादान अपना है, परन्तु ऐसा निमित्तका योग बनता है और अन्दरसे स्वयंकी तैयारी होती है। ऐसे सत्संगमें भी सत्संगको पहचाने तो तेरा उपादान तैयार हो उसमें सत्संग हाजिर होता है। सत्संगको खोजे, तेरी तैयारी कर। निमित्त-उपादान दोनों (साथमें होते हैं)।

मेरी उपादानकी तैयारी हो उसमें मुझे सत्संग सत्पुरुष मेरे साथ हाजिर रहो। मेरी साधनामें मुझे सत्पुरुष हाजिर रहो। मुझे निमित्तमें वे हो। मेरे उपादानमें मुझे आत्माका स्वरूप प्राप्त करना है, उसमें सत्पुरुष मेरे साथ हो। वे कर देते हैं, ऐसा अर्थ नहीं है। परन्तु निमित्त होता है, ऐसा उपादानका सम्बन्ध है। और निमित्त होता है और मुमुक्षुको ऐसी भावना भी होती है। और आगे जानेवालेको सम्यग्दर्शन हो तो भी देव-गुरु-शास्त्र तरफकी भावना तो रहती ही है। वह मानता है कि शुभभाव मेरा स्वरूप नहीं है, परन्तु बीचमें वह शुभभाव आये बिना रहता नहीं। इसलिये मैं आगे बढ़ूँ उसमें देव-गुरु-शास्त्र मेरे साथ हो।

प्रवचनसारमें आता है न? मेरे दीक्षाके उत्सवमें सब पधारना। भगवान पधारना, आचार्य भगवंतो, उपाध्याय, साधु आदि सब पधारना। ऐसा कहते हैं। मैं जा रहा हूँ मेरे-से स्वयं-से, परन्तु मेरे साथ सब पधारना, यहाँ आना। ऐसे भावना भाता है। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है। उसमें रुचि असत्संगकी नहीं होती, सत्संगकी रुचि होती है। फिर बाहरका योग कितना बने वह अपने हाथकी बात नहीं है। परन्तु उसकी भावना ऐसी होती है कि मैं आत्माकी साधना करुँ उसमें मुझे देव-गुरु-शास्त्र समीप हो, उनकी सान्निध्यता हो, ऐसी भावना उसे बीचमें रहती है।

मुमुक्षु :- उसे ऐसी भावना तो निरंतर (रहती है)। निरंतर सत्पुरुषको इच्छता है।

समाधान :- भावना रहती है। पुरुषार्थ मेरे-से होता है। कोई कर देता है, ऐसी उसे प्रतीत नहीं होती। परन्तु भावनामें ऐसे निमित्त हो कि साधना करनेवाले, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त की, जो आत्माकी साधना करते हैं, उनका मुझे सान्निध्य हो, ऐसी भावना उसे होती है।

मुमुक्षु :- निश्चय और व्यवहारकी ऐसी सन्धि होती है?

समाधान :- ऐसी सन्धि होती है।

मुमुक्षु :- और सत्संग करनेका भाव हो तो निमित्तरूपसे निरंतर सत्पुरुषका सत्संग करनेका भाव आवे।

समाधान :- हाँ, उसे भावना आवे। मुझे जाना है अन्दर, पुरुषार्थकी गति मुझ-से करनी है, परन्तु बाहरमें भी मुझे निमित्त सत्पुरुषका निमित्त हो, ऐसी भावना (होती है)। मुझे मार्ग बताये, मुझे कहाँ जाना है, वह सब मार्ग बतानेवाले सच्चे निमित्त मेरे पास हो, ऐसी भावना होती है। प्रत्यक्ष सत्पुरुषके सत्संगकी भावना रहती है। फिर बाहरका योग कितना बने वह अलग बात है, परन्तु ऐसी भावना उसे होती है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- .. गुरुदेव देवके रूपमें ही थे। ये गुरुदेव हैं, ऐसे पहचाना। और गुरुदेवके सब कपड़े देवके थे। गुरुदेवने ऐसा कहा कि, ऐसा कुछ नहीं रखना। मैं यहीं हूँ। फिर, दूसरी बार कहा। गुरुदेव ऐसा कहते हैं, मैं यहीं हूँ। गुरुदेवने फिर-से कहा, मैं यहीं हूँ। कहा, पधारो गुरुदेव! अहो..! अहो! सद्गुरु.. मैंने क्या कहा वह याद नहीं है। पधारो गुरुदेव! ऐसा कहा। फिर गुरुदेवने कहा, मैं यहीं हूँ। फिर कहा, मुझे कदाचित् ऐसा लगे, लेकिन ये सब बेचारे गुरुदेव, गुरुदेव करते हैं। सबको कैसे (समझाना)? गुरुदेव कुछ बोले नहीं। गुरुदेवने इतना कहा कि मैं यहीं हूँ। आपको ऐसा कुछ नहीं रखना, मैं यहीं हूँ।

मुमुक्षु :- हम सबको ऐसा ही लगता था कि गुरुदेव यहीं है। परन्तु गुरुदेवकी अनुपस्थिति मालूम ही नहीं पड़ती।

समाधान :- गुरुदेव... कौन जाने ऐसा अतिशय हो गया। सबको ऐसा हो गया। मैंने तुरन्त किसीको नहीं कहा था। फिर सबके मनमें ऐसा हो गया था कि गुरुदेव यहाँ है। स्वप्नमें ऐसा लगे कि गुरुदेव ही है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- ऐसा रखना ही नहीं। मैं यहीं हूँ। दो बार ऐसा कहा। फिर किसी औरने कहा, गुरुदेव ऐसा कहते हैं कि मैं यहीं हूँ। गुरुदेव कुछ बोले नहीं, परन्तु गुरुदेवने इतना कहा, मैं यहीं हूँ। मैं यहीं हूँ, बहिन! मैं यहीं हूँ। मनमें ऐसा चलता था न, इसलिये। .. आये हो न, ऐसा देवका पहनावा। और मुद्रामें गुरुदेव जैसा लगे और दूसरी तरफ-से देव जैसा लगे। मुगट आदि, देवका रूप होता है न, देवका रूप।

मुमुक्षु :- पंचमकालमें देव आते हैं।

समाधान :- ... इसलिये मैं कहती थी कि गुरुदेव सब देखते हैं। उपयोग रखे तो गुरुदेवको सब दिखता है। गुरुदेव यहाँ-से भगवानके पास जाते हैं। ऊपर-से सब दिखता है। विमानमें जाते हैं। महाविदेह, भरतक्षेत्र सब समीप ही है। यहाँ बगलमें महाविदेह क्षेत्र है। परन्तु यहाँ बीचमें पहाड़ आ गये इसलिये कुछ दिखता नहीं है। सबकी शक्ति कम हो गयी है।

जंबूद्वीपका महाविदेह, पुष्कलावती, पुंडरगिरी, भरत आदि सब नजदीक है। देवमें-से सब दिखता है। धूल ही दिखे, दूसरा कुछ नहीं दिखे। और रत्नके पहाड़ हैं, रत्नोंके पहाड़ दिखे नहीं, कुछ दिखे नहीं। सब धूल दिखती है। उसे देखनेकी शक्ति नहीं है। भरत चक्रवर्तीके आँखमें ऐसी शक्ति थी, उनकी आँखमें पुण्य था तो उन्हें आँखमें-से दिखता था। सूर्यके अन्दर भगवानकी प्रतिमा और मन्दिर दिखते थे। यहाँके लोगोंको... जिसे चश्मा आया हो, उसे कहे कि यह सूई है और उसका छेद है, चश्मा हो उसे कुछ दिखता नहीं। वह कहे, नहीं है, तो वह जूठा है। ऐसे अभी शक्ति कम हो गयी। नेत्रमें तेज नहीं है, कुछ दिखाई न देता, धूल ही दिखे न, और क्या दिखे? रत्नके पहाड़ कहाँ-से दिखे? ऊपर देवलोक है वह कहाँ-से दिखे? उसका प्रकाश-रत्नोंका प्रकाश देखकर उसके नेत्र चौंध जाते हैं।

गुरुदेव आये ऐसा स्वप्न आया। गुरुदेव पधारो, पधारो ऐसा कहा। गुरुदेव एकदम.. गुरुदेव आये।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

अमृत वाणी (भाग-६)

(प्रशममूर्ति पूज्य बहेनश्री चंपाबहेन की आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा)

ट्रेक-२४१

मुमुक्षु :- आपको आत्मानुभूति भी है, थोड़ा-सा आत्मानुभूति करनेका सरलतम रीति क्या है? हम पर दया करके (बताईये)।

समाधान :- पहले मैं आत्मा चैतन्यतत्त्व हूँ, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। विभाव आकुलतास्वरूप है, उसमें कहीं सुख नहीं है। उसकी सुखबुद्धि टूटनी चाहिये। परमें लक्ष्य जाता है, परसे एकत्वबुद्धि होती, परमें कर्ताबुद्धि होती है, ये सब तोड़कर आत्मामें ज्ञायकमें, मैं ज्ञायक ही हूँ, ज्ञायकमें ही सब है, सबकुछ ज्ञायकमें है, बाहरमें नहीं है, ऐसा भेदज्ञान करना।

इसलिये बारंबार मैं भिन्न हूँ, मैं चैतन्यतत्त्व हूँ, विभाव मैं नहीं हूँ। चैतन्यको लक्षणसे पीछान लेना कि ये चैतन्यलक्षण मेरा है, रागका लक्षण भिन्न है। उसका लक्षण भिन्न है। मैं निराकूल स्वभाव हूँ, ये आकुललक्षण है। उसको भिन्न-भिन्न करके चैतन्यमें दृष्टि करना। उसका क्षण-क्षणमें भेदज्ञान करना कि मैं चैतन्य अनादिअनन्त हूँ। चैतन्यको ग्रहण करना और पर तरफ-से दृष्टि उठा लेना। ऐसा बारंबार करना। ऐसी दृष्टि स्थिर न हो तो भी बारंबार उसको ग्रहण करना चाहिये कि मैं चैतन्य हूँ, मैं चैतन्य हूँ, ऐसा बारंबार भीतरमें-से भेदज्ञान करना चाहिये। तो विकल्प टूटते हैं और स्वानुभूति होती है।

पहले तो चैतन्यको ग्रहण करना चाहिये। उसे लक्षण-से पीछानना चाहिये। जन्म-

मरण करते-करते बाहर क्रियामें रुक जाता है, कहाँ-कहाँ रुक जाता है। मुक्तिका मार्ग तो भीतरमें है और स्वानुभूति आनन्द आत्मामें-से प्रगट होता है, बाहर-से तो आता नहीं। इसलिये भीतरमें जाता है तो भीतरमें-से चैतन्यदेव प्रकाशमान होता है, वह बाहर-से नहीं होता है।

मुमुक्षु :- मातेश्वरी! ये वचनामृतमें आया है कि रुचि अनुयायी वीर्य है और हम सब इसीलिये यहाँ आये हैं और आते रहते हैं, फिर भी हमारा सही दिशामें ... क्यों नहीं चलती है?

समाधान :- यहाँ रुचि होती है, लेकिन पुरुषार्थ नहीं होता है। रुचि तो होती है, लेकिन उस जातका पुरुषार्थ होना चाहिये। पुरुषार्थ मन्द है। रुचि, आत्माकी रुचि करना। जो आत्मा है उसको पीछानना। उसके पीछे प्रयत्न, बारंबार प्रयत्न करना चाहिये। रुचिकी तीव्रता करनी चाहिये। कहीं चैन न पड़े, मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ, कहीं चैन न पड़े, विभावमें चैन नहीं पड़ना चाहिये और भीतरमें चैतन्यमें बारंबार दृष्टि, उपयोग बारंबार उस तरफ जाना चाहिये। तो पुरुषार्थ करने-से प्रगट होता है।

जैसे स्फटिक निर्मल है, जल निर्मल है, वैसे आत्मा निर्मल ही है। पर तरफ दृष्टि, उपयोग जाता है तो उसमें मलिनता दिखनेमें आती है। भीतरमें तो मलिनता है नहीं, तो भीतरमें जो जाता है कि मैं शुद्ध हूँ, तो शुद्धात्मा तरफ जाने-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। बाहरमें उपयोग देने-से अशुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें आया है कि ज्ञायकके लक्ष्य-से तमाम लौकिक कार्य करना। खाते-पीते, उठते-बैठते ज्ञायकका लक्ष्य करना। थोड़ा-सा स्पष्ट कीजिये।

समाधान :- खाते-पीते (हर वक्त) एक ज्ञायकका ही (लक्ष्य रखना)। उसमें एकत्व नहीं होना। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, यह पहले तो अभयासरूप-से होता है। यथार्थ परिणति ज्ञान होनेके बाद ज्ञानीको यथार्थ परिणति होती है। उसको खाते-पीते उसकी भेदज्ञानकी धारा रहती है, मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। पहले तो अभ्यास रहता है खाता-पीते कि मैं ज्ञायक हूँ। ये खानेका स्वभाव मेरा नहीं है, ये शरीर भी मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा तत्त्व नहीं है, मैं तो भिन्न तत्त्व हूँ। और विभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है। इसलिये खाते-पीते, चलते-फिरते, सोते सबमें मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा अभ्यास करना चाहिये।

ज्ञानीकी तो ऐसी सहज दशा रहती है। खाते-पीते, सोते, स्वप्नमें ज्ञायक हूँ, ऐसी ज्ञायककी परिणति-भेदज्ञानकी धारा उसको निरंतर चलती रहती है। उसमें त्रुट नहीं पड़ती। पहले तो उसका अभ्यास होता है कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। ऐसे रटन करने मात्र नहीं परन्तु भीतरमें ऐसी तैयारी होनी चाहिये कि मैं ज्ञायक हूँ।

ज्ञानमें-ज्ञायकमें सब कुछ है, सर्वस्व ज्ञायकमें है, पर बाहरमें कुछ नहीं है। पहले तो अनुभूति होवे तब उसका वेदन होता है। पहले तो मैं ज्ञायक हूँ, उसका लक्षण पीछानना चाहिये कि जो ज्ञायक जाननेवाला है, वह मैं ही हूँ। ये जो ज्ञानलक्षण है, उसको धरनेवाला ज्ञायक है। ऐसे मूल तत्त्वको ग्रहण करना चाहिये। गुणके पीछे जो गुणी है, उस गुणीको ग्रहण करना चाहिये। मात्र गुण एक लक्षणको पीछानकर गुणीको लक्ष्यमें ले लेना चाहिये कि मैं ज्ञायक हूँ। ऐसे।

एक पर्यायमात्र या बाहरको जानता है इसलिये मैं जाननेवाला नहीं, मैं स्वतः ज्ञायक हूँ, स्वतःसिद्ध ज्ञायक हूँ। ऐसे स्वतःसिद्ध तत्त्वको ग्रहण कर लेना चाहिये। उसको कोई आलम्बन-से ज्ञायक है या जानता है इसलिये ज्ञायक है, ऐसा नहीं है। वह स्वतः जाननेवाला ज्ञायक वही मैं ज्ञायक हूँ।

शास्त्रमें आता है न कि जितना ज्ञानमात्र है उसमें रुचि कर, उसमें संतुष्ट हो, उसमें तुझे सुख और अनुभव प्राप्त होगा। जितना ज्ञान है उतना तू है। जितना ज्ञायक-जो ज्ञानस्वरूप आत्मा है वही तू है। 'इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।' उसमें प्रीति कर, उसमें रुचि कर, उसमें संतुष्ट हो, उसमें तुझे सुख-अनुपम सुखकी प्राप्ति होगी। ऐसे ज्ञानमात्र-ज्ञायकमात्र आत्मामें संतुष्ट हो। उसके लिये सब विचार, वांचन, ज्ञायकका अभ्यास करनेके लिये है। उसका द्रव्य, उसका गुण, उसकी पर्याय क्या है, वह सब यथार्थ समझमें लेना चाहिये।

मुमुक्षु :- इन्द्रिय ज्ञान आत्मानुभूतिमें किस प्रकार बाधक है, थोड़ा-सा स्पष्ट कीजिये।

समाधान :- इन्द्रिय ज्ञान तो भीतरमें आत्मानुभवमें साथमें आता नहीं। अतीन्द्रिय ज्ञान जो ज्ञान-से ज्ञान परिणमता है, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वही आत्माका मूल स्वरूप है। मूल स्वरूपको ग्रहण करना चाहिये। बाहर रुकने-से, बाहर रुकने-से तो सब क्षयोपशम ज्ञान है। उसमें इन्द्रियोंका निमित्त होता है। बाहर उपयोग जाता है तो बाधक होता है, परन्तु भीतरमें जो उपयोग होवे, भीतरमें जो परिणति होवे तो अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है।

अपनी दृष्टिका दोष है कि दृष्टि बाहरमें जाती है, दृष्टि एकत्वबुद्धि करती है तो वह बाधक होती है, एकत्वबुद्धि करने-से। परन्तु अपने स्वरूपमें दृष्टि जाय और स्वरूपमें लीनता होती है तो अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है। बाहर उपयोग होने-से इन्द्रिय ज्ञान रहता है। एकत्वबुद्धि होने-से वह बाधक होता है। एकत्वबुद्धि टूट जाय तो अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है। उसमें लीनता होने-से वह आगे बढ़ता है। पहले स्वानुभूति होती है, फिर उसमें लीनता बढ़ते-बढ़ते दशा बढ़ती जाती है तो मुनिओंको तो क्षण-क्षणमें स्वरूप अनुभूति होती है। ऐसे अनुभूति बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान होता है। ऐसे स्वरूपमें

लीनता करने-से अतीन्द्रिय ज्ञान बढ़ते जाता है। अतीन्द्रियका अनुभव बढ़ते जाता है। बाहर एकत्वबुद्धि होने-से इन्द्रिय ज्ञान रहता है, भीतरमें उपयोग जाय तो अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है। एकत्वबुद्धिका दोष है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! ये एकत्वबुद्धि तो परपदार्थों-से करना नहीं चाहते, फिर भी लेकिन फिर भी उस तरफ लक्ष्य क्यों बार-बार जाता है?

समाधान :- करना नहीं चाहता है तो भी परिणति तो ऐसी अनादि-से हो रही है एकत्वबुद्धि। भावना नहीं है। एकत्वबुद्धि नहीं करना, नहीं करना (ऐसा होता है, लेकिन) भीतरमें हो रही है तो उसको तोड़ देना चाहिये। विचार करे, सूक्ष्म उपयोग करे, प्रज्ञाछैनी तैयार करके उसको तोड़ देना चाहिये।

जो विकल्पकी जाल चल रही है, उस विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि हो रही है। वह एकत्वबुद्धि तोड़ देनी चाहिये। इच्छा नहीं होवे तो तोड़ देना चाहिये। सच्ची भावना उसे कहनेमें आती है कि जो उसे तोड़नेका प्रयत्न करे। उसको-एकत्वबुद्धि तोड़नेका प्रयत्न करना चाहिये। स्वमें एकत्व और पर-से विभक्त। स्वमें एकत्वबुद्धि करना चैतन्यमें और पर-से विभक्त हो जाना। एकत्वबुद्धिका दोष है, मिथ्यात्व, भूल है वह वही है।

स्वमें एकत्वबुद्धि नहीं की और परमें एकत्वबुद्धि की, इस भूलके कारण सब भूल चलती है। सब परिणति विभाव तरफ जाती है। अपनी एकत्वबुद्धि हुयी तो अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट हुआ, लीनता प्रगट हुयी, तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र सबकी अपनी ओर परिणति हुयी। पर तरफ दृष्टि है तो दृष्टि भी मिथ्या, ज्ञान भी मिथ्या और चारित्र भी मिथ्या। और अपनी तरफ दृष्टि गयी तो ज्ञान सम्यक् हुआ और चारित्र भी सम्यक् हुआ। सब सम्यक् हुआ।

सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन। सर्व गुणोंका अंश सम्यग्दर्शनमें प्रगट हो जाता है। स्वरूप अनुभवमें। और विभावमें है तो सब विभावकी परिणति है। .. बाहरमें मान लिया कि नौ तत्त्वका श्रद्धान करते हैं या छः द्रव्यका श्रद्धान करते हैं, उसमें सम्यग्दर्शन नहीं हो जाता है। वह तो विकल्प मात्र है। भूतार्थ नय-से चैतन्यको ग्रहण करता है तो सम्यग्दर्शन होता है, तो स्वानुभूति होती है। और भेद विकल्पमें रुकने-से कहीं सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता है। वह तो बीचमें आता है। गुणका भेद विचारमें आते हैं। उसमें रुक जाय तो स्वानुभूति नहीं होती है। विकल्प टूट जाय, उसमें लीनता होवे तब स्वानुभूति होती है। चैतन्यमें लीनता, चैतन्य तरफ दृष्टि (करे) तो स्वानुभूति होती है। ज्ञान सबका होता है। गुणका, पर्यायका, सब ज्ञानमें आता है।

समाधान :- यथार्थ भावना, लगनी और पुरुषार्थ हो तो प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं। देर लगे, लेकिन उस तरफका प्रयत्न हो और वह ऐसे ही पुरुषार्थ चालू

रखे तो प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- लगनी आदि करने जैसा है। ऐसा पुरुषार्थ हो तो प्राप्त हुए बिना रहता ही नहीं। क्षण-क्षणमें चैन पड़े नहीं अन्दर आत्माके बिना, आत्माकी प्राप्ति बिना चैन पड़े नहीं। दिन और रात ऐसी लगन लगे अंतरमें तो ऐसी चैतन्यकी धारा हो तो अंतरमें प्राप्त होता है। और तो उसे स्वानुभूति होती है। वह तो स्वयंको ही मालूम पड़ता है। स्वयं कहीं टिक नहीं सकता हो, बाहरके कोई प्रसंगोंमें कोई विकल्पोंमें उसे कहीं चैन पड़े नहीं, आकुलता लगे-दुःख लगे। वह स्वयं ही स्वयंको ग्रहण कर सके कि अंतरमें ही जाने जैसा है, बाहर कहीं सुख नहीं है। मेरा चैतन्य ज्ञायक स्वभाव, वही ग्रहण करने जैसा है। ये सब आकुलतारूप है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- जानना-देखना नहीं होवे तो भी वह लक्षण-से निश्चय करे कि बाहरमें तो कहीं सुख है नहीं, आकुलता है। सुख तो चैतन्यतत्त्वमें है, बाहरमें तो नहीं है। ऐसा विचार करके नक्की करना, प्रतीत करना चाहिये कि आनन्द स्वभाव तो मेरा है। आनन्द-आनन्द, सुख-सुखकी इच्छा करता है, लेकिन बाहरमें सुख तो मिलता नहीं। विकल्पमें सूक्ष्म दृष्टि-से देखे तो आकुलता है। उसमें कहीं सुख नहीं है।

शुभ या अशुभ दोनों (भावमें) आकुलता ही है। सुख तो अंतरमें है। ऐसी प्रतीत करनी चाहिये। ज्ञायक स्वभाव आत्मामें आनन्द और ज्ञान भरा है, ऐसा लक्षण-से पीछानना चाहिये। दिखनेमें नहीं आता है तो भी विचार-से नक्की करना चाहिये। नक्की करके प्रयत्न करना चाहिये। देव-गुरु-शास्त्र बताते हैं कि तेरे आत्मामें सुख है, आनन्द है। ऐसा प्रगट करके अनन्त जीव मुक्तिको प्राप्त हुए हैं। आत्मा स्वानुभूति करता है, क्षण-क्षणमें आत्मामें लीन होता है। ऐसा जो देव-गुरु-शास्त्र बताते हैं, उनकी वाणीकी प्रतीत करना। और विचार करके अपने लक्षण-से नक्की करके प्रतीत करना चाहिये। परीक्षा करके नक्की करना चाहिये कि ज्ञायक आत्मामें ही सुख है, बाहरमें नहीं है। सुख अपने स्वभावमें है, बाहरमें-से आता नहीं। ज्ञायक जो जाननेवाला है उसमें निराकूलता है। ऐसा कोई आत्मामें आनन्द गुण है, स्वतंत्रपने। ऐसा लक्षण-से नक्की करना चाहिये। दिखनेमें नहीं आता, पहले कहीं स्वानुभूति नहीं होती, पहले तो प्रतीत होती है।

ज्ञानलक्षण जाननेमें आता है, आनन्द तो जाननेमें नहीं आता है, तो भी विचार करके नक्की करना चाहिये। महापुरुष जो कहते हैं, उनके वचन पर विश्वास करके, परीक्षा करके नक्की करना चाहिये। बादमें उसका पुरुषार्थ करना चाहिये। बाहरमें तो सब आकुलता है। विकल्पमें भी, विचार करे तो सब आकुलता है। थकावट है। विश्रांति

तो है नहीं। विश्रांति और आनन्द आत्मामें है।

जो ज्ञानस्वभाव है, जो द्रव्य है वह अनन्त स्वभाव-से भरा हुआ है। ऐसा द्रव्यका स्वभाव पीछानना चाहिये। आनन्द कोई जड़में तो है नहीं। तो आनन्द-आनन्द जो भीतरमें उठता है, वह आनन्द कोई चैतन्यतत्त्वका है, कोई जड़ पदार्थका तो है नहीं। तो आनन्द अपने स्वभावमें है। क्योंकि स्वानुभूति पहले नहीं होती, उसकी प्रतीत पहले होती है। तो प्रतीत-ऐसा दृढ़ निश्चय करके अपनी ओर प्रयत्न करना। ऐसी प्रतीत यदि दृढ़ होवे तो प्रयत्न होता है। रुचि, प्रतीत दृढ़ होती है तो प्रयत्न अपनी तरफ जाता है। रुचि और प्रतीत दृढ़ नहीं होती तो प्रयत्न भी नहीं होता।

मुमुक्षु :- यहाँ .. ऐसा हुआ कि पहले वेदनमें ख्यालमें आना चाहिये कि मुझे जो बाहरमें वृत्ति जाती है वह आकुलतारूप है। तो यहाँ दुःख लगे और यहाँ-से कैसे हठे और कहाँ ढूँढे? कहाँ सुख मिलेगा? ऐसी प्रक्रिया शुरू-से ही होती है?

समाधान :- आकुलता तो वेदनमें आती है, परन्तु सुख कहाँ है, ये तो उसको स्वानुभूति नहीं होती है। ये दोनों साथमें होता है। स्वरूपको ग्रहण करे और परसे छूटता है। वास्तवमें तो स्वभावको ग्रहण करते ही विभाव-से छूट जाता है। परन्तु विचार करे, आकुलता लक्षण है, ऐसा विचार करे, ख्यालमें ले, लेकिन आनन्दकी स्वानुभूति नहीं है, इसलिये ख्यालमें नहीं आता। परन्तु विचार-से नक्की करता है कि आनन्द आत्मामें है, बाहरमें नहीं है। यथार्थ स्वभावको ग्रहण करे तब आकुलता छूटती है। स्वानुभूति होती है तो विभाव-से भेद हो जाता है। वास्तवमें तो ऐसा है। परन्तु पहले ऐसा क्रम पड़ता है। भावना, रुचि और नक्की करता है तो ऐसा नक्की करता है कि यह आकुलता है, मेरे आत्मामें सुख है।

वास्तविकपने तो अस्तिको ग्रहण करता है तो नास्तित्व हो जाता है। यथार्थपने अस्ति ग्रहण करे तो उसको ... परन्तु ये देखनेमें नहीं आता, क्या करना? आकुलता वेदनमें आती है कि ये तो आकुलता है। आकुलतामें सुख लगे तो उसमें सुख मान-मानकर उसमें अनन्त कालसे खड़ा है। यथार्थपने यदि तुझे दुःख लगे तो सुख तेरेमें है, तेरी ओर प्रतीत करके मुड़ जा कि सुख मेरेमें ही है। ऐसा नक्की करके स्वभाव तरफ मुड़कर उसमें भेदज्ञान करके उसमें स्थिर हो जा। स्वभावकी अस्तिको ग्रहण कर ले। व्यवहार-से ऐसा क्रम आता है। बाकी स्वभावकी अस्ति ग्रहण करे तो नास्ति हो जाती है। द्रव्य ज्ञायक, अखण्ड ज्ञायकको ग्रहण करता है, द्रव्य पर दृष्टि करता है। वह अस्तिको ग्रहण करता है। गुणका भेद भी नहीं, वह द्रव्य पर दृष्टि करता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ करनेके लिये दृढ़ प्रतीति होनी चाहिये कि मेरेमें ही सुख है। वहाँ-से...

समाधान :- दृढ़ प्रतीति होनी चाहिये। सुख मेरेमें ही है, सर्वस्व मेरेमें ही है, ऐसा नक्की करना चाहिये। जितना यह ज्ञान है, उसमें संतुष्ट हो, उसमें सुख मान, उसमें तृप्त हो। तो तुझे अनुपम सुखकी प्राप्ति होगी। दिखता है .. ज्ञानमें ही सब है। उसमें तृप्त हो, उसमें संतोष मान, उसकी प्रतीत कर, उसमें रुचि कर। तो तुझे अनुपम सुखकी प्राप्ति होगी। वास्तवमें निश्चयमें दोनों साथमें होते हैं, परन्तु उसका क्रम आता है।

मुमुक्षु :- बहुत .. आपने कहा, पहले प्रतीति कर, तो ही पुरुषार्थ शुरु होगा।

समाधान :- तो ही शुरु होगा।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ नहीं उठनेका कारण यह है कि दृढ़ प्रतीति उस प्रकारकी नहीं होती है।

समाधान :- प्रतीतिमें मन्दता रहती है, दृढ़ता नहीं आती है।

मुमुक्षु :- आत्माकी तीव्र जरूरत लगे। तीव्र जरूरत लगे तो अपनेआप..

समाधान :- पुरुषार्थ उस तरफ मुड़ता जाता है। रुचि अनुयायी वीर्य। प्रतीति दृढ़ हो तो प्रयत्न भी उस ओर चलता है। मुझे इसकी की जरूरत है, इसकी जरूरत नहीं है। ऐसा दृढ़ हो तो प्रयत्न भी उस ओर चलता है। जगतकी मुझे कोई जरूरत नहीं है। मेरी जरूरत आत्मामें ही है। प्रयोजन हो तो सब आत्माके साथ प्रयोजन है। मुझे आत्माका प्रयोजन है। और आत्माका महान साधन ऐसे देव-गुरु-शास्त्रका प्रयोजन बाहरमें, अंतरमें आत्माका प्रयोजन।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४२

समाधान :- ... आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है। विभावस्वभाव अपना नहीं है। उनसे भिन्न आत्मा है। उससे भेदज्ञान करना और आत्माको ग्रहण करना। ... आत्माका लक्षण पीछानकर उसकी श्रद्धा-प्रतीत और उसमें लीनता करना वही मुक्तिका मार्ग है। बाहरमें क्रिया और शुभभाव तो पुण्यबन्धका कारण है। बीचमें आता है तो पुण्यबन्ध होता है, भवका अभाव नहीं होता। देवलोक होता है। भवका अभाव तो शुद्धात्माको पीछानने-से होता है। शुद्धात्माकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसमें लीनता और स्वानुभूति करने-से मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। जन्म-मरण टालनेका वही उपाय है।

जन्म-मरण करते-करते अनेक दुःख संसारमें (भोगे)। भीतरमें आत्माका स्वभाव ग्रहण करना चाहिये। वह करने लायक है। और सब तो तुच्छ है। सर्वस्व साररूप तो आत्मा ही है। वही कल्याणस्वरूप है, वही मंगलस्वरूप है। और जीवनमें सर्वस्व साररूप आत्म पदार्थ है। उसके लिये वांचन, विचार सब आत्माको पीछाननेके लिये करना चाहिये।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन कैसे करना?

समाधान :- वह भी भेदज्ञान करने-से होता है। जो देव-गुरु-शास्त्रने जो मार्ग बताया है, वह मार्ग ग्रहण करके आत्माको पीछानना। जैसा भगवानका स्वरूप है, वैसा अपना स्वरूप है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको पीछानता है, वह अपनेको पीछानता है। अपनेको पीछानता है, वह भगवानको पीछानता है। अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको पीछानना। मैं द्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत हूँ। उसमें शुद्धता भरी है। अनन्त काल गया तो भी उसमें-मूल पदार्थमें अशुद्धता हुयी नहीं, पर्यायमें अशुद्धता है। इसलिये मेरा आत्मस्वभाव अनादिअनन्त शुद्ध है। इसमें अनन्त गुण हैं। उसकी पर्यायमें अशुद्धता है तो उसका भेदज्ञान करके और मैं शुद्धात्मा हूँ, उसकी दृष्टि-प्रतीत करके विभाव-से अलग होना। उसका भेदज्ञान करके शुद्धात्माकी पर्याय प्रगट करना। बारंबार उसकी लगन, महिमा लगाना। वही जीवनका कर्तव्य है।

आत्मा अनादिअनन्त शुद्ध है। उसमें कोई अशुद्धता भीतरमें नहीं आयी। पर्यायमें अशुद्धता हुयी है। जैसे पानी स्वभाव-से शीतल है। अग्निके निमित्त-से उसकी उष्णता

पर्याय होती है। ऐसे आत्मा स्वभाव-से शीतल ही है। उसका ज्ञान करना, वही स्वानुभूतिका उपाय है। उसकी प्रतीत करना, ज्ञान करना, लीनता करना वही स्वानुभूति करनेका उपाय एक ही है।

स्वभावमें-से स्वभाव आता है, विभावमें-से स्वभाव नहीं आता है। सोनेमें-से सोनेके गहने बनते हैं और लोहेमें-से लोहोके गहने बनते हैं। ऐसे स्वभावमें-से स्वभावकी पर्याय होती है, विभावमें-से विभाव होता है। शुभभाव करे तो भी पुण्यबन्ध होता है, स्वभाव नहीं प्रगट होता। पुण्य तो बीचमें आता है। और स्वभावको ग्रहण करने-से स्वभावकी पर्याय (प्रगट होती है), शुद्धात्माको ग्रहण करने-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। वह ग्रहण करने योग्य है।

पहले नक्की करना कि अनादि काल-से अगृहित भी एकत्वबुद्धि है। गृहीत तो छोड़ना। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कैसे होनो चाहिये, यह नक्की करना चाहिये। जिनेन्द्र देव और गुरु जो यथार्थ आत्माकी साधना करते हैं और शास्त्रमें जो मार्ग बताया है, ऐसे देव-गुरु-शास्त्र यथार्थ है, उसको ग्रहण करना चाहिये। उसका स्वरूप समझना। और उसमें जो विपरीत मान्यता है वह छोड़ देना। यह गृहीत मिथ्यात्व छूटनेका उपाय है।

ऐसा नक्की करना चाहिये कि सच्चे वीतरागी देव ही देव है। सच्चे आत्माकी साधना मुनिराज करते हैं वे गुरु हैं, शास्त्रमें जो स्वानुभूतिका मार्ग बताया वही शास्त्र यथार्थ है। उसको बराबर नक्की करना चाहिये। जिसको आत्माकी लगी, आत्माका कल्याण करना है, उसको गृहीत मिथ्यात्व छूट जाता है। आत्माका कल्याण करना है, भवभ्रमण-से छूटना है तो उसको गृहीत मिथ्यात्व छूट जाता है। भीतरमें जिसको अगृहीत भी छोड़ना है तो गृहीत तो छूट ही जाता है। अगृहीत अनादिका है वह छोड़ने लायक है। वह छूटे तब स्वानुभूति होती है।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करके उसका यथार्थ व्यवहार करना, वह तो स्थूल है। वह तो-गृहीत मिथ्यात्व तो-आसानी-से छूट जाता है। अगृहीत छूटना मुश्किल है। बाहर-से सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करना चाहिये। वह तो स्थूल है, वह छूटना तो (आसान है)। अनन्त कालमें जीवने वह भी छोड़ा है। अगृहीत नहीं छूटा है।

समाधान :- .. ग्रहण करनेकी रुचि लगे। उसकी लगन, उसकी महिमा, वस्तुका विचार होना चाहिये। मैं चैतन्यद्रव्य अनादिअनन्त हूँ। .. द्रव्य है, उसके गुण कैसे हैं, उसकी पर्याय कैसी है? ऐसा विचार, मंथन भीतरमें होना चाहिये। दिन और रात उसकी लगन लगनी चाहिये। बारंबार-बारंबार मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ, ये सब मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसा अभ्यास होना चाहिये। बारंबार क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें चैतन्यका अभ्यास होना चाहिये। सच्चा भेदज्ञान तो परिणतिरूप तो बादमें

होता है, पहले उसका अभ्यास होता है। इसलिये इसका अभ्यास होना चाहिये।

मैं चैतन्य हूँ, ज्ञायक हूँ। ये सब विभाव है। मैं उसका कर्ता नहीं हूँ। परिणति, अपनी विभाव परिणति चैतन्यकी पुरुषार्थकी कमज़ोरी-से होती है। लेकिन वह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं चैतन्य अनादिअनन्त शुद्धात्मा हूँ। शुद्ध स्वरूपमें दृष्टि करने-से ज्ञान, उसकी लीनता करने-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। इसके लिये बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये। बारंबार-बारंबार।

मुमुक्षु :- ... विचार या भावना.. ये कैसा पता लगे कि ... या मन्द रागका स्वरूप है? ये पता कैसे लगेगा?

समाधान :- मन्द राग, विकल्प मन्द होवे तो भी शुभभाव आकुलतारूप है। विशेष सूक्ष्म दृष्टि-से देखना चाहिये, उसका लक्षण पीछानना चाहिये कि ये विकल्पका लक्षण है, ज्ञानका लक्षण नहीं है। शुभभाव होवे तो भी आकुलतारूप है।

मुमुक्षु :- मैं तो.. विकल्प पकड़में नहीं आता है तो निर्विकल्प या ... ऐसा कुछ है? कैसे पता लगे? समझमें नहीं आता है कि विकल्प है या कोई राग है, ऐसा पकड़में नहीं आता। तब ... आनन्द या शान्तिका वेदन जो होता है, वह आत्मिक है या रागका है, ...

समाधान :- जिसको सच्चा निर्विकल्प होता है, वह ग्रहण कर लेता है कि यह निर्विकल्प है। उसको विकल्प टूट जाता है। विकल्प, शुभभाव भी टूटकर निर्विकल्प स्वभावमें लीन हो जाता है। उसके आत्माका भेदज्ञान हो जाता है। उग्रपने पुरुषार्थ करके वह स्वरूपमें ऐसा लीन हो जाता है कि उसे बाहर विकल्पका ख्याल भी नहीं रहता। उपयोग बाहर-से हट जाता है और स्वरूपमें ऐसा लीन हो जाता है कि अपने स्वरूपमें अनन्त ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंका वेदन स्वानुभूति हो जाती है, अपने आप उसे ख्यालमें आ जाता है। जैसा सिद्ध भगवानका स्वरूप है, ऐसा आंशिक रूपसे उसको वेदनमें आता है। उसका उग्रपने ज्ञान करने-से, उग्रपने निर्विकल्प स्वानुभूति हो जाती है। उसका आत्मा उसको जवाब दे देता है कि यह स्वानुभूति ही है, यह विकल्प नहीं है। उसको शंका भी नहीं रहती है। उसको भेद पड़ जाता है और स्वरूपमें लीन हो जाता है। बाहर उपयोग रहता ही नहीं।

कोई अपूर्व दुनियामें चला जाता है, चैतन्यकी दुनियामें चला जाता है, उसको ख्याल... उसका आत्मा नक्की कर देता है कि यह स्वानुभूति है और यही मोक्षका पंथ है। भीतरमें-से ऐसा निश्चय और वेदन हो जाता है। यह स्वानुभूति है, यथार्थ है। यह स्वानुभूति और भगवान कहते हैं, एक ही स्वरूप है, दूसरा नहीं है। ऐसा आत्मामें-से ऐसा ज़ोर और ऐसी प्रतीति उसको आ जाती है।

मुमुक्षु :- अनुभूति पूर्व उमंग, उल्लास, रोमांचित होना यह घटता है? या नहीं घटता है?

समाधान :- वह तो शुभभावका रोमांच आता है। पूर्वभूमिकामें गुणका भेद, मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ ऐसे भेद पर उसका लक्ष्य नहीं है। दृष्टि तो शाश्वत चैतन्य पर है। परन्तु भीतरमें जो रोमांच होता है, वह शुद्धात्माका रोमांच नहीं है। वह तो शुभभावका है। शुद्धात्माका रोमांच नहीं आता, वह तो अपने स्वरूपमें लीन हो जाता है। स्वानुभूतिमें तो भीतरमें-से अपूर्व आनन्द होता है। पहले-से धीरे-धीरे आनन्द आता जाय, बादमें विशेष आनन्द आवे, ऐसा नहीं है।

जिस क्षण वह स्वरूपमें लीन होता है, जिस क्षण विकल्प टूटता है, उसी क्षण आनन्द आता है। पहले रोमांच होता है वह रोमांच आत्माका नहीं है। वह रोमांच तो शुभभावका है। वह रोमांच आत्मा तरफका नहीं है। उल्लास आता है कि मैं भीतरमें जाता हूँ, वह शुभभावका है।

पहले आनन्दकी शुरूआत हो जाती है वह भीतरका नहीं है। जब विकल्प टूटता है, उसी क्षण आनन्द आता है। जिस क्षण विकल्प टूट गया और स्वरूपमें लीन हुआ, उपयोग स्वरूपमें जम गया तो उसी क्षण आनन्द आता है। पहले-से आनन्द शुरू हो जाता है, ऐसा नहीं होता। वह तो शुभभावका आनन्द है। और उल्लास आता है वह शुभभावका है, वह शुद्धात्माका नहीं है। उसी क्षण आनन्द आता है।

मुमुक्षु :- शान्ति और आनन्द... शीतलता और शान्तिका वेदन कुछ प्रदेशोंमें ...

समाधान :- नहीं, ऐसा नहीं। सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन। ऐसा होता है तो मनके द्वारा कहनेमें आता है। क्योंकि मनका निमित्त वहाँ होता है। परन्तु उसको आनन्द तो असंख्य प्रदेशमें खण्ड नहीं पड़ता। पूरे चैतन्यमें आनन्द होता है। उसको ऐसा ख्याल नहीं रहता कि इधर-से आनन्द आया, इधरस-से (आया)। वह तो अपने स्वरूपमें लीन हो जाता है। अखण्ड प्रदेशमें उसको आनन्द होता है। मनका निमित्त तो जो विकल्प टूटता है, मन इधर है इसलिये उसको ऐसा लगता है कि इधरसे आया या शुरूआत इधर-से हुयी। परन्तु अखण्ड आत्मामें आनन्द (आता) है।

द्रव्यमन है न, वह ऐसा निमित्त बनता है। विकल्प इधर-से उठता है तो विकल्प भी टूटता है, इसलिये उसको ऐसा लगता है कि इधर-से आया। उसका निमित्त है। बाकी असंख्य प्रदेशमें आनन्द आता है। जब अन्धकार होता है उसमें प्रकाश होता है तो यह अन्धकार जब टूटा तो उसी क्षण प्रकाश हुआ। जब प्रकाश हुआ, विकल्प टूटा उसी क्षण आनन्द आता है।

जबतक शुभभावना है, विकल्प मन्द है तबतक तो वह अन्धकार ही है। जब

स्वरूपमें गया तो प्रकाश (हुआ)। प्रकाशका तो दृष्टान्त है, परन्तु वह प्रकाश कोई बाहरका प्रकाश नहीं है। वह तो चैतन्यस्वरूप है। काली जिरी होती है वह कड़ुवी-कड़ुवी होती है। शुभभावना आकुलता.. आकुलता.. आकुलता उसका भाव है। काली जिरी ऐसी होती है। जो शक्करका स्वभाव है वह पूरा मीठा है। विकल्प टूटता है उसी क्षण आनन्द आता है।

समाधान :- ... सर्वांग आनन्द। चैतन्य स्वरूपमें चैतन्यघनमें चला गया। चैतन्य स्वरूपमें चला गया। बाहर दृष्टि, बाह्य उपयोग छूट गया, अंतरमें उपयोग चला गया। अंतरमें स्वानुभूति असंख्य प्रदेशमें होती है। मनका द्वार कहनेमें आता है, परन्तु मन निमित्त है। बाकी पूरे प्रदेशमें (आनन्द आता है)।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- पहले नक्की करे। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान द्वारा नक्की करता है कि मैं यह आत्मा ही हूँ। ये विभाव है वह मैं नहीं हूँ। मैं आत्मा ही हूँ, ऐसा नक्की करता है। मैं आत्मा ही हूँ, ये सब मुझ-से भिन्न है। ऐसा निर्णय करके अंतरमें स्थिर होता है। जिस क्षण विकल्प टूटे, उसी क्षण स्वानुभूति होती है। दोनों एक ही क्षणमें हैं। पहले विकल्प टूटता-टूटता जाता है, बादमें स्वानुभूति होती है, ऐसा नहीं होत। सूक्ष्ममें सूक्ष्म विकल्प और ऊच्च-से उच्च विकल्प, वह विकल्प ही है। मन्द या तीव्र, वह सब विकल्प है। जिस क्षण वह टूटता है, उसी क्षण निर्विकल्प (होता है)। यहाँ निर्विकल्प होता है, उसी क्षण टूटता है। उसी क्षण आनन्द और उसी क्षण स्वानुभूति। सब साथमें ही है।

मुमुक्षु :- विकल्प टूटे तब एकका ध्यान रहता होगा न?

समाधान :- अकेला चैतन्य, अनन्त गुणसे भरा अकेला चैतन्य। ज्ञान अर्थात् अकेला गुण नहीं, पूरा ज्ञायक।

मुमुक्षु :- उपयोग अंतरमें रखा तो एकका ही ध्यान रह जाता है न? राग छूट जाय तो।

समाधान :- राग छूट जाये तो अकेला ज्ञायक रहता है। ज्ञानस्वरूप आत्मा।

समाधान :- ... दृष्टि पर तरफ है इसलिये विभाव दिखनेमें आता है। दृष्टि और उपयोग दोनों पर तरफ है, इसलिये विभाव दिखनेमें आता है। अनादि ऐसी विभावकी परिणति हो रही है। आत्मा तरफ दृष्टि नहीं है। अनादि काल-से दृष्टि हुयी नहीं। विभाव.. विभाव, विभावमें एकत्वबुद्धि (हो रही है)। विभाव मेरा और विभाव मैं हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि मिथ्या भ्रम हो रहा है। निर्मल है, निर्मल है तो भी देखनेमें नहीं आता। उसका स्वानुभव नहीं है। देखनेमें भी नहीं आता, प्रतीत भी नहीं है। कुछ नहीं है,

इसलिये परपदार्थ तरफ दृष्टि, पर मैं, पर मेरा, ऐसी प्रतीत, ऐसा ज्ञान और ऐसा आचरण सब ऐसा हो रहा है। दृष्टि, ज्ञान और सब (विपरीत है)। दृष्टि विपरीत है इसलिये ज्ञान भी ऐसा हो गया और आचरण भी ऐसा हो गया। सब ऐसा अनादि काल-से विभाव हो रहा है। स्वभाव तरफ दृष्टि करे तो निर्मलता ही भरी है। निर्मलता तरफ दृष्टि नहीं देता।

जैसे स्फटिकके भीतरमें देखो तो निर्मल ही है। ऊपर-ऊपर सब लाल, काला दिखनेमें आता है। तो सब ऐसा देखनेमें आता है। भीतरमें निर्मलता भरी है। भीतरमें दृष्टि दे, मैं निर्मल स्वभावी अनादिअनन्त शाश्वत चैतन्य हूँ, द्रव्य शाश्वत है, उसमें कोई बिगाड़ नहीं होता है। विभाव परिणतिमें सब होता है, पर्यायमें होता है, द्रव्यमें तो होता ही नहीं है। ऐसी दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। अनादि कालमें ऐसा किया ही नहीं।

मुमुक्षु :- सुननेमें तो उपयोग लगता है, पर अन्दरमें उपयोग लगता नहीं। विकल्प ही विकल्प (चलते हैं)।

समाधान :- किसमें उपयोग लगता है? बाहरमें?

मुमुक्षु :- सुननेमें।

समाधान :- सुननेमें उपयोग (लगता है)। भीतरमें अनादि काल-से दृष्टि नहीं दी। बाहरमें तो उपयोग स्थूल है तो स्थूल कर लेता है। परन्तु सूक्ष्म करनेमें उसको बहुत प्रयत्न लगता है। प्रयत्न करता नहीं, उसकी लगन नहीं है, महिमा नहीं है। उपयोग सूक्ष्म करे तो अपनी ओर दृष्टि जाती है। उपयोग सूक्ष्म करता नहीं है। स्थूल-स्थूल उपयोग बाहर भटकता है। अशुभमें-से शुभमें आता है। परन्तु शुद्धात्मा तरफ दृष्टि करनी है। वह सूक्ष्म दृष्टि करे तो अपना चैतन्यस्वरूप ग्रहण होता है, तो पकड़में आवे। दृष्टि बाहर ही बाहर रहती है। उपयोग सूक्ष्म, धीरा करके अंतर दृष्टि तो पकड़में आता है। सूक्ष्म दृष्टि करता नहीं।

मुमुक्षु :- सूक्ष्म दृष्टि करनेके लिये ...

समाधान :- सूक्ष्म दृष्टि करनेके लिये उसकी लगनी, महिमा, वह सर्व सुखरूप है, बाकी सब दुःखरूप है, दुःख लगे और अपनेमें सुखकी प्रतीति होवे कि भीतरमें ही सुख है, सर्वस्व भीतरमें है, बाहरमें कुछ नहीं है। ऐसी यदि प्रतीत करे, ऐसा निर्णय करे तो भीतरमें उपयोग जाता है, तो दृष्टि सूक्ष्म होती है।

बाहरमें अच्छा नहीं लगे, चैन नहीं पड़े, ये सब मेरे स्वभाव-से विपरीत है, यह मेरा स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है इसलिये आकुलतारूप (है), आकुलताका वेदन होता है। सुख न लगे, धीरा होकर देखे तो सब आकुलतारूप है। निराकुल स्वरूप

आत्मा यदि लगे, उसमें आनन्द लगे तो अपनी तरफ जाय। उसकी महिमा लगे। जगतमें सर्वस्व होवे तो मैं आत्मा ही हूँ। ऐसा अनुपम तत्त्व, जिसमें किसीक उपमा लागू नहीं होती। ऐसा अनुपम तत्त्व मैं हूँ। बाहरकी कोई वस्तु अनुपम नहीं है। महिमा नहीं आवे तो भीतरमें जाये कैसे? भले यथार्थ महिमा तो जिसकी परिणति यथार्थ हो, उसे यथार्थ महिमा होती है। परन्तु पहले उसका अभ्यास तो हो सकता है। अभ्यास करे कि मैं चैतन्य महिमावंत हूँ। ये कोई महिमावंत नहीं है। ऐसा पहले भी हो सकता है। ऐसा कारण तैयार होता है, बादमें कार्य आता है।

भेदज्ञानका अभ्यास करे, यथार्थ भेदज्ञान तो बादमें होता है, परन्तु पहले उसका प्रयास होता है। उसकी महिमा, लगन, उसका भेदज्ञानका अभ्यास होता है। क्षण-क्षणमें मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ, ये सब मेरा नहीं है, मैं चैतन्य हूँ, मेरे चैतन्यमें सर्वस्व भरा है, ऐसा भेदज्ञानका अभ्यास पहले होता है। भेदज्ञान बादमें होता है, परन्तु पहले अभ्यास होता है। पहले महिमा, अभ्यास सब हो सकता है।

मुमुक्षु :- माताजी! विचार करने-से अभ्यास होता है?

समाधान :- विचार करे, विचारके साथ अंतरमें लगन होनी चाहिये। मात्र विचार-विचार नहीं, परन्तु चैतन्यकी लगन और चैतन्यकी महिमा लगे, महिमापूर्वक विचार करे तो आगे बढ़े। उसे जरूरत लगे कि करने योग्य तो बस, एक आत्मा ही है। जगतमें तो करने योग्य हो तो एक आत्माका स्वरूप ही प्राप्त करने योग्य है। ऐसी जरूरत लगनी चाहिये। तो जरूरत पूर्वक यदि विचार करे, यथार्थ समझन करे, उसकी जरूरत लगे तो वह विचार करे। तत्त्व विचार साधन है, परन्तु रुचिपूर्वक होना चाहिये।

प्रथम भूमिका विकट लगती है, परन्तु अपना स्वभाव है, वह तो सहज है। तो सहजपने प्रगट हो तो ज्ञायककी धारा सहज (हो जाती है)। फिर परिणति उसके स्वभाव तरफ ही, साधककी परिणति स्वभाव तरफ दौड़ती रहती है। उसका पुरुषार्थ उस ओर जाता है। अपना स्वभाव (है)।

प्रथम भूमिकामें अभ्यास करे तो उसे कठिन लगता है। बाकी तो अपना स्वभाव है इसलिये सहज है और सुगम है। जिसे स्वभाव प्रगट हो, उसे सहज धारा प्रगट हो जाती है। ज्ञायककी धारा, स्वानुभूति, उसकी पुरुषार्थकी धारा सहजपने, सुगमपने प्राप्त होती है। स्वभाव है इसलिये वह दुर्लभ नहीं है। दुर्लभ अनादि कालमें स्वयं पर तरफ गया है इसलिये उसे दुर्लभ हो गया है। परन्तु स्वभाव तरफ दृष्टि करे और स्वभाव तरफ प्रयास करे तो वह सुगम और सरल है। आचार्यदेव कहते हैं न, तू उग्रता-से छः महिने पुरुषार्थ कर। फिर यदि प्राप्त न हो (ऐसा नहीं है), उसे प्राप्त हुए बिना रहता ही नहीं। परन्तु स्वयं प्रयास नहीं करता है। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४३

मुमुक्षु :- ... सत्पुरुषकी सब आज्ञा मानना चाहिये। तो आज्ञा कितनी-कितनी प्रकारकी होती है? क्योंकि वे कहते हैं कि कोई प्रकारकी भी अपात्रता रह जाती है तो मुमुक्षु कल्याणके योग्य नहीं होता है।

समाधान :- कितने प्रकारकी आज्ञा क्या? सत्पुरुषकी आज्ञा तो अपनी पात्रता देखकर आज्ञा करते हैं। आज्ञा कितने प्रकारकी होती है? .. ज्ञानीका आशय ग्रहण करना चाहिये। ज्ञानी कहते हैं, क्या कहते हैं? आशय ग्रहण करके अपनी परिणति प्रगट करना चाहिये। अनेक जातमें कहाँ-कहाँ जीव रुक जाता है। स्वच्छन्द, मताग्रह, अपनी मानी हुयी कल्पनाओंमें (अटक जाता है)। सत्पुरुषका आशय३ क्या है, वह आशय ग्रहण करके वस्तुका स्वरूप समझना चाहिये। यथार्थ समझकरके क्या करना चाहिये उसका आशय ग्रहण करना चाहिये। वे क्या कहते हैं?

स्वयं निर्णय करे उसे सत्पुरुषके आशयके साथ मिलान करना। ज्ञानीका क्या आशय है? मैं क्या मानता हूँ? आशय यथार्थपने जो निर्णय करता है, उसके साथ मिलान करता है। क्या कहते हैं, यह समझना चाहिये। उस प्रकार अपनी परिणति प्रगट करनी चाहिये। वे कहते हैं, उस प्रकार-से। ... ग्रहण करके अपनी परिणति प्रगट करना चाहिये। पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थकी मन्दता होवे तो ज्ञानी जो कहते हैं उस पर प्रतीत करनी चाहिये। और भावना रखनी चाहिये कि मैं कैसे आगे जाऊँ? ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये।

अपने मतमां कहीं न कहीं अटक जाता है। ज्ञानीका आशय क्या है? देव-शास्त्र-गुरु क्या कहते हैं? उसे ग्रहण करके उस अनुसार अपनी परिणतिको, अपने पुरुषार्थको उस अनुसार चालू करे तो यथार्थ मार्ग उसे प्रगट होता है। उसका आशय ग्रहण करना चाहिये। चारों तरफ-से ज्ञानी क्या कहते हैं? उनका आशय क्या है? उसे ग्रहण करके अपनी परिणति कर लेनी चाहिये।

... वह ज्ञानीका आशय ग्रहण कर लेता है। देव-गुरु-शास्त्र क्या कहते हैं, वह ग्रहण कर सकता है। उसकी पात्रता ऐसी होती है। यदि पात्रता नहीं होवे तो अपनी मति कल्पना-से रुक जाता है।

मुमुक्षु :- ४७ शक्तिओंका स्मरण करते हैं। अपने स्वभावकी महिमा लानेके लिये क्या बारंबार शक्तियोंका स्मरण करना चाहिये? उससे स्वभावकी महिमा...

समाधान :- ... स्मरण करता है... मुमुक्षुको क्या करना? ज्ञानी क्या कहते हैं, उसका आशय ग्रहण करना चाहिये। वे ऐसा करते थे, इसलिये हमें भी ऐसा करना चाहिये, ऐसा अर्थ नहीं है। शक्तियोंको ग्रहण करनेमें तो उसका लाभ है, कोई नुकसान नहीं है। ४७ शक्तिका स्मरण करके उसका अभ्यास करे तो आत्म स्वरूपकी महिमा आती है। ऐसा करनेमें कुछ (दिक्कत नहीं है), कर सकता है। उसमें कोई ऐसा नहीं होता।

गुरुदेव ऐसा करते थे, इसलिये ऐसा करना, ऐसा कुछ नहीं है। जिसको जो रुचे सो करना। कोई ज्ञायक-ज्ञायक करता है, तो भेदज्ञान करनेका अभ्यास करना। उसके साथ शास्त्रमें क्या (कहा है)? स्वयंको शंका हो तो निःशंक होनेके लिये कोई तत्त्व विचार स्वयंको जो रुचे सो करना। गुरुदेव ऐसा करते थे इसलिये ऐसा करना, उसका कोई अर्थ नहीं है। स्वयंको यदि उसमें महिमा आती है तो वह करना। उसमें तो लाभ है। अपनेको लाभ लगे तो वह करना। मुझे किसमें रस आता है, उस अनुसार करना।

मुझे क्या स्मरण करना? मुझे ज्ञायकका अभ्यास करनेके लिये किसका स्मरण करना? चैतन्यकी शक्तियाँ विचारनी। ४७ शक्तियाँ विचारनी, ज्ञायकका विचार करना, उसका सत्य स्वरूप क्या? शास्त्र अनेक प्रकार क्या आते हैं? स्वयंको जहाँ रुचि हो वह करना।

गुरुदेव तो महापुरुष था। उनकी परिणतिमें जो उन्हें लगता था वह करते थे, इसलिये दूसरोंको ऐसे ही करना, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उनका श्रुतज्ञान तो अपूर्व था। उन्हें तो श्रुतकी धारा अपूर्व थी। अनेक जातकी उन्हें श्रुतकी लब्धियाँ प्रगट हुयी थी। उन्हें उसमें रस आता था तो ऐसा करते थे। इसलिये सबको ऐसा करना ऐसा उसका अर्थ नहीं है। वे तो ऐसा विचार करते थे, बाकी तो अनेक जातका चिंतवन उन्हें चलता था। वह एक ही चिंतवन था, ऐसा नहीं है। उन्हें तो अनेक जातका (चिंतवन चलता था)। उन्होंने तो शास्त्रोंके शास्त्र खोल दिये। शास्त्रोंका रहस्य खोल दिया। उन्हें तो अन्दर शास्त्रोंका समुद्र खुला था।

उसमें-से वे बारंबार उसका स्मरण करते थे। उन्हें उसमें रस आता था। उन्हें अन्दर शास्त्रमें-से आनन्द आता था। एक ४७ शक्तियोंके लिये नहीं, कितनी गाथाओंका उन्हें आनन्द आता था।

मुमुक्षु :- बहुत गाथामें कहते थे, यह गाथा तो अपूर्व है, यह गाथा तो अपूर्व है।

समाधान :- हाँ, उन्हें तो बहुत गाथाओंका आनन्द आता था।

मुमुक्षु :- बहुत अपेक्षाएँ आती हैं, ... बुद्धि तो थोड़ी है, अपेक्षाएँ बहुत हैं,

उसके लिये क्या उपाय है?

समाधान :- अपेक्षाएँ बहुत हैं। मूल द्रव्यदृष्टिका प्रयोजन, मुक्तिका मार्ग जिससे सधे वह ग्रहण करना। द्रव्य-पर्यायका, निश्चय-व्यवहारका सम्बन्ध कैसे है, वह विचारना। मैं शाश्वत अनादिअनन्त द्रव्य हूँ, उसमें पर्यायकी साधना कैसे होवे? पर्याय अधूरी है, द्रव्य पूर्ण है, उसका मेल कैसे होवे? यह सब सन्ध करके, शास्त्रमें बहुत अपेक्षाएँ आती है, उन सब अपेक्षाओंका सम्बन्ध करके आत्मामें जैसे लाभ हो, वैसा करना। द्रव्यानुयोगमें बहुत आता है। उसको यथार्थ समझ लेना चाहिये।

अनादि-से भ्रम हो रहा है, एकत्वबुद्धि-पर्यायमें दृष्टि है। द्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत शुद्ध है, उसमें पर्यायकी अशुद्धता कैसे है? उसकी साधना कैसे होवे? साध्य पूर्णका लक्ष्य करके और पर्यायकी साधना-शुद्धात्मामें शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन होवे तो तुरन्त केवलज्ञान नहीं होता है। बीचमें साधकदशा रहती है। तो द्रव्यदृष्टि प्रगट करके स्वानुभूति और सम्यग्दर्शन प्रगट होवे तो भी लीनता बाकी रहती है। केवलज्ञान (होने तक)। साधक और साध्यका कैसे मेल है? यह सब समझकर सब अपेक्षा समझनी चाहिये। द्रव्य-गुण-पर्यायकी सब अपेक्षा समझकर, मुख्य मुक्ति मार्ग कैसे है वह ग्रहण करना चाहिये।

द्रव्यदृष्टिके प्रयोजनके साथ निश्चय-व्यवहारका सम्बन्ध कैसे है, यह समझकर सब समझना चाहिये। द्रव्यदृष्टि मुख्य रखकर उसमें पर्याय भी अशुद्ध है, कैसे स्वानुभूति होवे? उसकी पूर्णता होवे, उसकी लीनता होवे, यह केवलज्ञान तक ऐसा सब मेल करके सब समझना चाहिये।

मुमुक्षु :- पर्याय गौण करके भिन्न कही जाती है या वास्तवमें वह भिन्न होकरके दृष्टिके विषयको विषय बनाती है?

समाधान :- वास्तविक भिन्न नहीं है। द्रव्यदृष्टि मुख्य होती है तो उसमें पर्याय गौण हो जाती है। वह (-पर्याय) अंश है, वह (-द्रव्य) अंशी है। अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि जाने-से पर्यायका लक्ष्य गौण हो जाता है। द्रव्य और पर्याय बिलकूल भिन्न होवे तो पर्याय द्रव्य हो जाती है। पर्याय ऐसे नहीं होती है कि द्रव्यका कोई आश्रय नहीं है पर्यायको और पर्याय निराधार है, ऐसा तो नहीं है।

पर्याय एक अंश है इसलिये स्वतंत्र है। परन्तु वह अंश अंशीका अंश है। इसलिये उसको गौण रखकरके समझना चाहिये।

मुमुक्षु :- गौण रखे?

समाधन :- गौण रखे। दृष्टिके ज़ोरमें द्रव्य मुख्य है तो पर्याय गौण है। पर्याय और द्रव्य वैसे स्वतंत्र नहीं है। वह अंशरूप-से स्वतंत्र है। पर्यायको द्रव्यका आश्रय

रहता है। कैसे स्वतंत्र है, यह अपेक्षा समझनी चाहिए।

मुमुक्षु :- ... फरमाया कि सम्यग्दर्शनके विषयमें सम्यग्दर्शनकी पर्याय नहीं है।

समाधान :- सम्यग्दर्शन पर्याय विषयमें नहीं है?

मुमुक्षु :- हाँ, विषयमें।

समाधान :- सम्यग्दर्शनका विषय नहीं है, परन्तु उसमें गौण रह जाती है। विषय तो द्रव्य है। विषय द्रव्य है। पर्यायको विषय नहीं करती, दृष्टि विषय नहीं करती है। ज्ञानमें गौणपने रह जाता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें रहता है, गौणपने।

समाधान :- ज्ञानमें रहता है। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें रहते हैं। दृष्टि अलग और ज्ञान अलग (ऐसा नहीं)। दृष्टि सम्यक् हुयी उसके साथ ज्ञान भी रहता है। दृष्टि और ज्ञान साथमें रहते हैं, ज्ञानमें वह पर्याय गौण रहती है। दृष्टिका विषय द्रव्य है तो भी दृष्टि और ज्ञान दोनों भिन्न-भिन्न नहीं है। दृष्टिके साथ जो ज्ञान रहता है तो ज्ञानमें वह पर्याय ख्यालमें रहती है। विषय भले द्रव्य होवे, तो भी पर्याय रहती है। पर्यायका ज्ञान उसके साथ रहता है। ज्ञान, द्रव्य और पर्याय दोनोंको जानता है। ज्ञानमें द्रव्य और पर्याय दोनों साथमें रहते हैं।

समाधान :- ... सब करने लायक सर्वस्व हो तो आत्मामें सब कुछ है। बाहरमें कुछ है नहीं। बाहरमें तो एकत्वबुद्धि, अभ्यास बाहरका है इसलिये भीतरमें जाता नहीं है। तो पुरुषार्थ अपने करना पड़ता है। पुरुषार्थ करे, पुरुषार्थ करने-से होता है। अपना प्रमाद है, किसीका दोष नहीं है। गुरुदेवने तो बहुत बताया है, करना तो अपनेको पड़ता है।

मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब विभाव है। विभावमें सुख नहीं है, सुख आत्मामें है। ये सब आकुलतारूप है-दुःखरूप है। ऐसी प्रतीत, दृढ़तापूर्वक प्रतीत करनी चाहिये। प्रतीत करे और पुरुषार्थ करे तो होता है। बारंबार-बारंबार उसका अभ्यास करना पड़ता है। एक दफे करे ऐसा नहीं, बारंबार (करे)।

गुरुदेवने जो बताया है, जो शास्त्रमें आया है। पुरुषार्थ तो कोई रोकता नहीं है। कर्म रोकते नहीं है, कोई पदार्थ रोकते नहीं, अपने कारण-से रुक जाता है। बाहरमें रुचि है। स्वरूपमें रुचि करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- कुछ लोग कहते हैं कि क्रमबद्धपर्यायके बहाने, जो होना है वही होगा। पुरुषार्थ तो हम बहुत करते हैं, लेकिन नहीं होता है तो क्रमबद्धपर्यायमें नहीं है। होने योग्य नहीं है तो कैसे होगा? उसका क्या किया जाय? उसका समाधान क्या है?

समाधान :- क्रमबद्ध ऐसे क्रमबद्ध नहीं होता है। क्रमबद्ध तो, पुरुषार्थके साथ

क्रमबद्ध होता है। गुरुदेव कहते हैं कि ज्ञायक तरफ दृष्टि करो। ज्ञायकको जिसने समझा, उसने क्रमबद्धको समझा। जो ज्ञायक नहीं समझता है, उसको क्रमबद्ध भी समझमें नहीं आया है। क्रमबद्धके साथ पुरुषार्थका सम्बन्ध है। पुरुषार्थ बिना क्रमबद्ध नहीं है। जिसके लक्ष्यमें पुरुषार्थ नहीं है, उसका क्रमबद्ध यथार्थ नहीं होता। वह तो संसारका क्रमबद्ध है।

जिसे पुरुषार्थकी दृष्टि होती है, उसका क्रमबद्ध मोक्षके तरफ जाता है। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्धको सम्बन्ध है। ऐसे काल, स्वभाव आदि, पाँच लब्धियाँ साथमें होती है तब अपना कार्य होता है। क्रमबद्ध अकेला समझने-से नहीं होता, पुरुषार्थ पूर्वक क्रमबद्ध समझना।

मुमुक्षु :- माताजी! जब पर्यायमें अल्पज्ञता है तो सर्वज्ञ स्वभावका विश्वास कैसे आयेगा?

समाधान :- पर्यायमें अल्पज्ञता भले होवे। अपना स्वभाव सर्वज्ञ है। पर्याय अल्पज्ञ होवे तो भी विश्वास हो सकता है। सर्वज्ञकी परिणति प्रगट करनेमें तो देर लगती है। सर्वज्ञकी प्रतीत तो हो सकती है। प्रतीत होनेमें अल्पज्ञ पर्याय उसमें रोकती नहीं है। सर्वज्ञकी प्रतीत तो हो सकती है कि मैं सर्वज्ञ हूँ। ऐसी प्रतीति हो सकती है। मैं ज्ञायक, संपूर्ण ज्ञायक हूँ। मैं सर्वज्ञ शक्ति-से सर्वज्ञ हूँ। प्रगट नहीं हुआ, परन्तु ऐसी प्रतीत हो सकती है।

मुमुक्षु :- स्वानुभूतिके लिये हमको इन्द्रियज्ञान बाधक लगता है। इन्द्रिय ज्ञान .. तो अनुभूति होगी।

समाधान :- अपने करने-से होता है, इन्द्रियका ज्ञान रोकता नहीं है। अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट करनेमें अपनी रुचि बदल देनी। स्वरूप तरफ रुचि करे, उसमें लीनता करे, प्रतीत करे। जिसका स्वभाव मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञानमात्र स्वभाव है उतना मैं हूँ। उसमें विश्वास करके उसमें स्थिर हो जाय, लीनता करे तो अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है। इन्द्रिय ज्ञान उसमें रोकनेवाला नहीं है। भीतरमें-से प्रगट करना अपने हाथकी बात है। कोई इन्द्रियज्ञान उसमें रोकता नहीं है। इन्द्रियज्ञान होवे इसलिये अतीन्द्रिय नहीं होता है, ऐसा नहीं है।

भीतरमें-से प्रगट करना स्वयंसिद्ध अपना स्वभाव है। अपनेआप, अपारिणामिक द्रव्य अपनेआप प्रगट कर सकता है। देव-गुरु-शास्त्र उसका निमित्त होता है। उपादान अपना है। जो जिनेन्द्र देवने बताया, जो गुरुदेवने बताया, जो शास्त्रमें होता है, सब अपने करना पड़ता है। अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट करे, उसमें स्वानुभूति प्रगट करना अपने हाथकी बात है। कोई कर नहीं देता है। उसमें कोई रोकता नहीं है। इन्द्रिय ज्ञान उसमें रुकावट नहीं करता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते थे कि ज्ञान परको जानता ही नहीं है। तो हम करें क्या?

समाधान :- गुरुदेव ऐसा नहीं कहते थे, परको नहीं जानता है ऐसा नहीं कहते थे। गुरुदेव कहते थे, स्वपरप्रकाशक ज्ञान है। शास्त्रमें ऐसा आता है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानका स्वभाव है। पर तरफ तेरी एकत्वबुद्धि है। परमें उपयोग लगता है तो परको मैं जानता हूँ, स्वको भूल गया है। स्वका ज्ञान प्रगट कर। परको तू जानता नहीं है ऐसा नहीं है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानका स्वभाव है। जाननेका हटाना नहीं है, अपनी रुचि बदलनी है। उपयोग पलट दे। उपयोग स्व तरफ कर ले। मैं ज्ञायक स्वभाव हूँ। उसमें जो सहज स्वभाव स्वपरप्रकाशक है, केवलज्ञानमें स्वपरप्रकाशक स्वभाव प्रगट होता है।

उपयोग बाहर ज्ञेयमें लग जाता है, ज्ञेय उपयुक्त (होता है), ज्ञेयमें एकमेक हो जाता है। ज्ञेयमें एकमेक नहीं होना। भेदज्ञान करके अपने स्वरूपमें लीन होना। तो अपना स्वपरप्रकाशक ज्ञान प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! आबालगोपाल सभीको भगवान आत्मा जाननेमें आ रहा है। थोड़ा-सा स्पष्टि किजीये।

समाधान :- आबालगोपालको जाननेमें आ रहा है उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि जाननेमें आ रहा है इसलिये उसकी अनुभूति हो रही है, उसकी स्वानुभूति हो रही है (ऐसा नहीं है)। अनुभूति ऐसी हो रही है कि स्वयंसिद्ध आत्मा है। उसका असाधारण ज्ञानस्वभाव है। वह ज्ञानस्वभाव अपने स्वभावरूपसे परिणमता है, विभावरूप नहीं हुआ है। द्रव्यदृष्टि-से स्वभावरूप परिणमता है। आबालगोपाल सब ज्ञानमें जान सकते हैं। उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि उसकी अनुभूति अर्थात् सम्यक्ज्ञान हो गया, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

ज्ञानस्वभाव सबको लक्ष्यमें आ सकता है। असाधारण ज्ञानस्वभाव है। सब जान सकते हैं कि मैं ज्ञानस्वभाव आत्मा हूँ। ये जड़ कुछ जानते नहीं। मैं जाननेवाला हूँ, ऐसी प्रतीत सब आबालगोपाल कर सकते हैं। मैं जाननेवाला हूँ, ये जड़ नहीं जानता है, मैं जाननेवाला हूँ। अपने स्वभावरूप ज्ञानस्वभाव अनादिअनन्त है। वह ज्ञान जड़ नहीं हुआ। वह ज्ञानस्वभाव आबालगोपाल सब जान सकते हैं। ज्ञानकी अनुभूति होती है। यथार्थ स्वभावमें लीन होकर स्वानुभूति हो रही है, ऐसा अर्थ नहीं है। अनुभूति अर्थात् ज्ञान सबको है। ऐसा असाधारण ज्ञानस्वभाव सबको जाननेमें आता है। उसका अर्थ ऐसा है। जड़ नहीं है। ज्ञानस्वभाव सबको अनुभवमें आ रहा है, ऐसा ज्ञानस्वभाव अनुभवमें आ रहा है। सम्यक्रूप-से (आ रहा है), ऐसा नहीं। उसका लक्षण, जो लक्षण है वह आबालगोपाल सब जान सकते हैं। ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४४

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! शुद्ध द्रव्यका चिंतवन किस प्रकार-से करना चाहिये? थोड़ा-सा (स्पष्ट कीजिये)।

समाधान :- शुद्ध द्रव्यका चिंतवन तो मैं शुद्ध स्वभाव अनादिअनन्त (हूँ)। अनन्त काल गया, जन्म-मरण हुए, असंख्यात प्रकारके विभाव हुए और जन्म-मरण तो अनन्त हुए। उसके परिणाम भी अनेक प्रकारके हुए। तो भी वह द्रव्य पलटकरके अशुद्ध नहीं हुआ। द्रव्यका स्वभाव शक्तिरूप-से वैसा ही है। ऐसा मैं अनादिअनन्त शुद्धात्मा हूँ। अनन्त काल गया तो भी नाश नहीं हुआ। नाश होनेवाला नहीं है। वह स्वानुभवमें आ सकता है। ऐसा मैं स्वभाव अनादिअनन्त स्वयंसिद्ध आत्मा हूँ। उसका अस्तित्व ग्रहण करना। मैं ज्ञायक स्वभाव हूँ। ये विभाव है वह आकुलतारूप है। मैं निराकुल आत्मा ज्ञायक हूँ। ऐसा ज्ञायक स्वभाव मैं शुद्धात्मा हूँ। ऐसा विचार करना।

भीतरमें-से जब उसका अस्तित्व यथार्थ ग्रहण करे तो यथार्थ ग्रहणमें आता है। बाकी विचार करता है, अभ्यास करता है। यथार्थ ग्रहण तो भीतरमें जाकर उसका स्वभाव ग्रहण करे, उसका अस्तित्व ग्रहण करे तो यथार्थ ग्रहण होता है। बाकी विचार करे, प्रतीत करे, अभ्यास करे। मैं अनादिअनन्त शुद्धात्मा ज्ञायक हूँ और विभाव शुभभाव होता है वह पुण्यबन्धका (कारण), वह भी विभाव है। ऊँचा शुभभाव आवे, ज्ञान-दर्शन-चारित्रका भेद आवे तो भी शुभभाव रागमिश्रित है। मैं शुद्धात्मा हूँ। गुणका भेद होवे तो भी वह जान लेता है कि स्वभावमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब है। तो भी उसका जो विकल्प आता है, वह विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। लक्षणभेद है। वास्तविकमें अनादिअनन्त अखण्ड चैतन्य हूँ, ऐसे शुद्धात्माको ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- माताजी! स्वानुभव कालमें क्या द्रव्य-पर्याय दोनों एकसाथ अनुभवमें आते हैं?

समाधान :- द्रव्य-पर्याय दोनों (अनुभवमें आते हैं)। वास्तवमें पर्यायकी अनुभूति होती है और द्रव्य पर दृष्टि तो रहती है, निरंतर दृष्टि रहती है। अनुभूति पर्यायकी होती है, परन्तु द्रव्य और पर्याय दोनों ज्ञानमें आ जाते हैं। ज्ञानमें द्रव्य-पर्याय दोनों आ जाते हैं। द्रव्य और पर्याय, दोनोंकी अनुभूति। इस अपेक्षा-से द्रव्य-पर्याय दोनोंकी

अनुभूति होती है। प्रगट पर्याय हुयी इसलिये पर्यायका अनुभव हुआ। ऐसा कहते हैं। परन्तु द्रव्य-पर्याय दोनोंका ज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- मातेश्वरी! ये सब विकल्प, मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ करते-करते निर्विकल्पताका आनन्द नहीं आ रहा है।

समाधान :- विकल्प.. विकल्प... विकल्प-से निर्विकल्प नहीं होता है। उसका अभ्यास रहता है कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। विकल्प तो विकल्प ही है। वह शुभ विकल्प है। परन्तु अभ्यास तो पहले ऐसे ही होता है। विकल्प, रागमिश्रित भाव साथमें रहता है कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। विकल्प-से निर्विकल्प नहीं होता। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी परिणति प्रगट होवे और विकल्प टूट जाय।

मैं ज्ञायक ही ज्ञायक हूँ। स्वयंसिद्ध अनादिअनन्त ज्ञायक हूँ। ज्ञायक स्वभावी शुद्धात्मा ज्ञायक हूँ। ऐसी प्रतीत दृढ़ करके उसकी लीनता होवे, इस तरहकी परिणति प्रगट होवे तो निर्विकल्प होता है, तो विकल्प टूट जाता है। बाकी विकल्प बीचमें आता है, परन्तु विकल्प-से वह निर्विकल्प नहीं होता है। भीतरकी लीनता, उसकी एकाग्रता, उसकी प्रतीतिकी दृढ़ता होवे, लीनताकी दृढ़ता होवे तो निर्विकल्प होता है। विकल्प-से निर्विकल्प नहीं होता है।

मुमुक्षु :- आचार्य कहते हैं कि युक्तिके अवलम्बन-से अन्दरमें जाना। तो कौन-सी प्रबल युक्ति है जिससे अन्दर जाय?

समाधान :- युक्तिके अवलम्बन-से। दृढ़ युक्ति-से ऐसा निर्णय करना चाहिये कि मैं शुद्धात्मा ही हूँ और कुछ मैं नहीं हूँ। युक्ति-से, आगम-से ऐसे सबसे यथार्थ निर्णय करना, बादमें स्वानुभूति होती है। जो आगम बताता है, जो युक्ति-से (नक्की किया) कि स्वभाव है उसका नाश नहीं होता है। स्वभाव तो अनादिअनन्त जो स्वयंसिद्ध वस्तु है, उसका नाश नहीं होता है। ऐसी अनेक तरहकी युक्ति-से निर्णय करना चाहिये।

मैं ज्ञानस्वभाव हूँ। ज्ञान तो ज्ञान ही रहता है। जो पानी शीतल है, वह शीतल ही रहता है। अग्निकी उष्णताका स्वभाव है, उष्ण ही रहता है। ये तो दृष्टान्त है, स्थूल दृष्टान्त है। अनादिअनन्त परमाणु परमाणु रहता है, आत्मा आत्मा ही रहता है। वस्तुका नाश नहीं होता। ऐसी अनेक तरहकी युक्ति-से मैं चैतन्य स्वभाव आत्मा, शुद्धात्मा हूँ। उसमें अशुद्धता नहीं होती है। अशुद्धता पर्यायमें होती है। एक द्रव्यमें दूसरा द्रव्य प्रवेश नहीं करता। अनेक तरहकी युक्तिके बल-से और जो आचार्य भगवंत कहते हैं, गुरुदेव कहते हैं, उन सबका मिलान करके युक्तिके अवलम्बन-से दृढ़ प्रतीति करके आगे जाये कि मैं ज्ञायक हूँ, यथार्थ मैं ज्ञायक हूँ। स्वयंसिद्ध शुद्धात्मा हूँ। ऐसी बारंबार प्रतीति दृढ़ करके लीनताकी दृढ़ता करना। बारंबार उसका अभ्यास करना। युक्ति अनेक

तरहकी, यथार्थ युक्ति ऐसी दृढ़ होती है कि जो टूटती नहीं। ऐसी सम्यक् युक्ति-से निर्णय करना चाहिये।

मुमुक्षु :- माताजी! वचनामृतमें आता है, खण्ड खण्ड उपयोग परवशता है। रागको परवशता समझना है कि ज्ञानको? खण्ड खण्ड उपयोग परवशता है तो वहाँ रागको समझना कि ज्ञानको?

समाधान :- राग परवश है। रागके साथ अधूरा ज्ञान है, अधूरा ज्ञान। इसलिये अधूरे ज्ञानको उपचार-से परवश कहनेमें आता है। रागमिश्रित क्षयोपशम ज्ञान भी परवश है। अधूरा ज्ञान भी परवश है। क्रम-क्रम प्रवर्तता है, खण्ड खण्ड प्रवर्तता है। पूर्ण केवलज्ञान है वह एक साथ प्रवर्तता है। राग परवशता है, लेकिन क्षयोपशम ज्ञानको भी परवश गिननेमें आता है। उसको भी उपचार-से परवश कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- .. वचन हमेशा अनुभवपूर्ण होते हैं, ऐसे हम आप चरणोंकी सेवामें हमेशा बने रहेंगे, यही भावना भाते हैं। ... बताया, उसमें और आपके बतलानेमें कुछ भी अंतर नहीं है।

समाधान :- बहुत स्पष्ट किया है, पूरे हिन्दुस्तानको जगा दिया। कोई जानता नहीं था, मार्ग बताया सबको। सब क्रियामें पड़े थे। सब बाहरमें पड़े थे, दृष्टि बाहर थी। कोई थोड़ा स्वाध्याय कर ले, कोई थोड़ी क्रिया कर ले, थोड़ा उपवास कर ले (उसमें) धर्म मान लेते थे। गुरुदेवने ...

मुमुक्षु :- ... समवसरणके साथ जा रहे हैं। समवसरणमें जा रहे हैं। तो वे बोले, क्या तीर्थंकरके पास? तीर्थंकर भी विराजमान हैं, दोनों विराजमान हैं। परमागम मन्दिर हमको गुरुदेवकी याद दिलाता है और वचनामृत भवन बन रहा है, वह माताजीकी याद दिलाता है।

समाधान :- ४५ वर्ष गुरुदेव यहाँ विराजमान रहे। बरसों तक निरंतर वाणी बरसायी। वाणी बरसानेवाले कोई महाभाग्य-से निरंतर वाणी बरसानेवाले। ऐसे अध्यात्मके निरंतर...

मुमुक्षु :- गुरुदेव तो कहते थे कि मेरु सम पुण्यका उदय हो तब ज्ञानीके वचन सुननेको मिलते हैं। हम लोगोंका महाभाग्य, बहिनश्री! आपकी छत्रछाया हम लोगोंके ऊपर है।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! गुरुदेवने टेपमें फरमाया था कि प्रमाण पूज्य नहीं है, नय पूज्य है। थोड़ा-सा स्पष्टीकरण।

समाधान :- गुरुदेव ऐसा कहते थे कि नय पूज्य है। मुक्तिके मार्गमें नय मुख्य होता है। शुद्धनय शुद्धात्माको ग्रहण करो, द्रव्यदृष्टि करो, इसलिये नय पूज्य है। इस अपेक्षा-से। प्रमाण पूज्य है वह नयकी अपेक्षा-से नहीं, ऐसा कहते थे। परन्तु प्रमाण

ऐसे साथमें रहता है। जिसको नय प्रगट होती है उसके साथमें प्रमाण होता है। प्रमाणज्ञान साथमें रहता है। द्रव्य-पर्याय दोनोंका प्रमाण-से मिलान होता है। इसलिये जो केवलज्ञान प्रगट होता है, जो मुनिदशा प्रगट होती है, साधक दशा-साधना वह सब पर्यायमें होती है। इस अपेक्षा-से नय और प्रमाण दोनों पूज्य हैं। गुरुदेव कोई जगह कहते थे, नयको मुख्य करते थे।

यदि प्रमाण पूज्य नहीं होवे तो मुनिदशा भी पूज्य नहीं होवे, तो केवलज्ञान भी पूज्य नहीं होवे। पर्याय प्रगट होती है तो नय और प्रमाण दोनों (साथमें रहते हैं)। साधक दशामें द्रव्यदृष्टि मुख्य करके साधनाकी पर्याय जो प्रगट होती है, चौथी भूमिका, पाँचवी, छठ्ठी-सातवीं भूमिका सब भूमिका होती है। उसमें सब पर्याय प्रगट होती है। इसलिये दोनों साथमें (होते हैं)।

परन्तु नयकी अपेक्षा-से अनादि काल-से जीवने शुद्धनयका पक्ष किया नहीं। शुद्धनयके बिना मुक्ति प्रगट होती नहीं। इसलिये नय पूज्य है, प्रमाण पूज्य नहीं है। वह तो पर्यायको गौण करनेके लिये कहा है। परन्तु साधक दशामें पर्याय तो आती है। इसलिये मुनिको पूज्य कहते हैं, केवलज्ञान (पूज्य है)। दोनों अपेक्षा समझनी चाहिये।

गुरुदेवकी बातमें दो अपेक्षा आती थी। दूसरी जगह प्रमाण और नयका सबका सम्बन्ध आता था। गुरुदेव भक्तिका अधिकार, दानका अधिकार सब पढ़ते थे तो उसमें निश्चय-व्यवहारका मिलान करते थे। दोनों समझना चाहिये।

नय मुख्य है। अनादि काल-से जीवने उसे ग्रहण नहीं किया। मुक्तिके मार्गमें शुद्धात्माकी दृष्टि मुख्य रहती है। परन्तु पर्यायकी शुद्धता होती है। इसलिये नय और प्रमाण साथमें रहते हैं। प्रमाण पूज्य नहीं है। परन्तु नय-प्रमाण दोनों पूज्य हैं, कोई अपेक्षा-से। तो मुनिदशा पूज्य नहीं होती, तो केवलज्ञान पूज्य नहीं होता। यदि प्रमाण पूज्य नहीं होता तो, पर्याय पूज्य नहीं होती तो।

मुमुक्षु :- आज टेपमें आया था, माताजी! कि ध्रुवके षट्कारक अलग है, पर्यायके षट्कारक अलग हैं। तो हमें गभराहट होती है।

समाधान :- नहीं, अलग ऐसे नहीं है। ध्रुवके षट्कारक अलग, वह दूसरी अपेक्षा है। दोनों द्रव्य अलग-अलग हैं। ध्रुवका षट्कारक और दूसरे द्रव्यका अलग है। और पर्यायके षट्कारककी अपेक्षा दूसरी है।

जितना द्रव्य स्वतंत्र है, उतनी पर्याय स्वतंत्र नहीं है। पर्याय द्रव्यके आश्रयमें होती है। पर्याय यदि इतनी स्वतंत्र होवे तो द्रव्य और पर्याय दोनों द्रव्य हो जाय। यदि इतनी पर्याय स्वतंत्र हो तो पर्याय ही द्रव्य हो जाय, दोनों द्रव्य हो जाय। इसलिये पर्याय द्रव्यके आश्रय-से होती है। परन्तु पर्याय एक अंश है। वह स्वतंत्र है। यह बतलानेके

लिये उसके षट्कारक भिन्न बताये। परन्तु इतनी अपेक्षा समझनी चाहिये कि द्रव्यके आश्रय-से पर्याय रहती है। द्रव्यके आश्रयमें पर्याय रहती है। इसलिये द्रव्य जितना स्वतंत्र है, उतनी पर्याय स्वतंत्र नहीं है। ऐसा समझना चाहिये। गुरुदेवकी अपेक्षा अनेक प्रकारकी (आती थी)।

मुमुक्षु :- ... पूरा सार आ गया। भविष्यका चित्रण बताना तेरे हाथकी बात है। उसको ही संभालकर रहे। परद्रव्यकी सँभाल करते-करते अनन्त काल बीत गया। लेकिन आत्मद्रव्य भीतर विराजमान है, उसकी सँभाल एक समयमात्र नहीं करी। ये मार्ग मिला कहाँ-से? ये रग-रगमें भरा हुआ है। रोम-रोममें। क्या वचनामृत है! अनमोल-अनमोल वचन हैं, जिसकी क़ीमत नहीं आंकी जा सकती। अगर उसको पान कर ले, .. चिंतन कर ले, वही सच्चा भक्त है, नहीं तो क्या है? सब सेवा करी, लेकिन आपके वचनोंको पालन करके एक तरफ बैठकरके अंतर मनन कर ले, तेरा कल्याण हो जायगा। वही सच्चा भक्त है। गुरुदेव कहेंगे कि मेरे मार्गमें आया, मेरा सच्चा भक्त है। एक बातको धारण करके ... एक-एक बोल... एक आया न? विकल्प हमारा पीछा नहीं छोड़ते। तो विकल्प तेरेको नहीं लगा, विकल्पको तू लगा है। तू विकल्पको छोड़ दे न। इतनी-सी बात। इतनेंमें सारा सार समा गया। ... छेदन हो गया। विकल्पका ज्ञायक हूँ, विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। धन्य हो!

मुमुक्षु :- हमारे कहते हैं कि जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि।

मुमुक्षु :- मेरे रोम-रोममें समाया हुआ है, वचनामृतका एक-एक बोल। धन्य है! अगर एक बार उसने पढ़ लिया आत्म चिंतन-से एक बार मनन कर लिया, उसका कल्याण नहीं होवे ये बात बन सकती नहीं। .. मैं कहता हूँ ... वचनामृत पूरा-शुरू-से आखिर तक। अभिप्राय तेरा कहाँ पड़ा हुआ है? रुचिको पलट दे। तेरेको कहीं न लगे तो जा।

मुमुक्षु :- कहीं न रुचे तो अन्दर जा।

मुमुक्षु :- विश्वका अद्‌भुत तत्त्व तूं ही है। कौन कहनेवाला है? अद्‌भुत तत्त्वको पहचानकरके, जिसको जानकरके जिन्होंने बता दिया कि विश्वका अद्‌भुत तत्त्व तू ही है। सारा सार, जो देखो वह उसमें भरा है। निकालनेवाला होना चाहिये, खोजनेवाला होना चाहिये। और अपन नहीं खोजेंगे तो क्या फायदा? आपके बताये हुए मार्ग पर चलकर, एक सत्पुरुषको खोज ले और उसके चरणकमलमें सर्व अर्पण कर दे। तो तेरा कल्याण हो जायगा। धन्य हमारा भाग्य! ऐसे शब्द कहाँ मिलते थे? कौन जानता था? आज हमारा भाग्य खिल गया। आहाहा..!

जन-जनमें यह बात, आत्मा-आत्मा कौन जानता था? आज तो सरल मार्ग बता

दिया। हलवा रख दिया सामने परोसकर, उठाकर खा ले। पर ऊतारना पड़ेगा। नहीं खाये तो ... अब तो ऊतार।

समाधान :- ... तीर्थंकर भगवान छद्मस्थ अवस्थामें होते हैं।

मुमुक्षु :- सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर ही होते हैं।

मुमुक्षु :- पहले ऐसा लिखा है कि श्रावक, सम्यग्दृष्टि, मुनिवर और बादमें लिखा है कि छद्मस्थ तीर्थंकर।

समाधान :- छद्मस्थ कहनेमें आता है। जबतक केवलज्ञान नहीं होता तबतक कहनेमें आता है। भगवानको कहनेमें आता है। अभी अधूरा ज्ञान होता है तबतक छद्मस्थ कहनेमें आता है। अरिहंत-अरिहंत सब अरिहंत कहलाते हैं, परन्तु तीर्थंकर भगवान विशेष पुण्यशाली होते हैं। इसलिये पुण्यवंत अरिहंत कहनेमें आता है। उनका प्रभावना उदय, उनका पुण्य विशेष होता है तीर्थंकर भगवानका। दूसरे अरिहंत भगवानके पुण्य होता है। उसमें तीर्थंकर भगवान सातिशय पुण्यशाली विशेष होते हैं। इसलिये पुण्यशाली अरिहंत कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- ... पात्रता। यह विशेष इसमें लिया है-निर्भ्रान्त दर्शनकी पगदण्डी पर। उसमें ऐसा लिखा है। गर्भित पात्रता है, वह ज्ञानी ही जान सकते हैं। तो हमें कैसे मालूम पड़े?

समाधान :- गर्भित पात्रता-अन्दर अव्यक्त पात्रता हो। वह स्वयं न जान सके तो स्वयंको अपनी पात्रता प्रगट करनी। अन्दरमें स्वयं अपनेको जान सकता है कि मेरी पात्रता किस प्रकारकी है। अन्दर अव्यक्त पात्रता हो वह स्वयंको पकड़मे न आये तो स्वयं अंतरकी जिज्ञासा, लगन तैयार करके स्वयं पुरुषार्थ करके पात्रता प्रगट करनी। अन्दर अव्यक्त हो वह सबको पकड़में आ जाय, ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु :- प्रगट हो जाय उसके बाद तो जानना कहाँ रहा? वह तो ज्ञात हो गया।

समाधान :- इतनी जिज्ञासा हो कि मेरी पात्रता किस जातकी है। मुझे क्यों मालूम नहीं पड़ती। तो पात्रता अन्दर-से प्रगट करनी।

मुमुक्षु :- तबतक हुयी नहीं है।

समाधान :- हाँ, तबतक नहीं हुयी है। स्वयं प्रगट करनी। उतनी अंतरमें स्वयंको भावना होती हो तो।

मुमुक्षु :- कोई-कोई ज्ञानिओंको, गर्भित पात्रताका ख्याल कोई-कोई ज्ञानियोंको आ जाता है। गर्भित पात्रताका ख्याल कोई-कोई ज्ञानियोंको आ जाता है।

समाधान :- आ जाय, उसकी अमुक जातकी लायकात देखकर ख्यालमें आ जाता

है कि इस जीवकी किस प्रकारकी लायकात है। वह जान सकते हैं। स्वयं जान न सके तो कोई ज्ञानी उसे जान सकते हैं। सबकी जान सके ऐसा नहीं, कोई-कोईकी जान सकते हैं। उसके परिचय-से किस जातके परिणाम और किस जातकी उसकी गहराई और किस जातका है, उस पर-से जान सकते हैं।

मुमुक्षु :- पात्रताके परिणाम तो अनुभव-से अधिक स्थूल है।

समाधान :- हाँ, स्थूल है।

मुमुक्षु :- अनुभवका जान सके तो पात्रता तो...

समाधान :- अनुभूति तो स्वयंकी है। अनुभूति तो, स्वयं स्वानुभूति करे वह स्वानुभूति तो स्वसंवेदन ज्ञान है। स्वयं ही उसका अनुभव करनेवाला है। इसलिये वह उसका अनुभव कर सकता है। ये तो दूसरेकी पात्रता। बाकी तो स्वयं ही है, स्वानुभूति है तो। स्वानुभूतिमें स्वयं स्वसंवेद्यमान स्वयं है। इसलिये तो उसका वह अनुभव कर सकता है। दूसरेका जानना, उसमें सबका जान सकते हैं, ऐसा नहीं है। किसीको ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान हो तो जान सकता है। किसीको मति-श्रुतकी निर्मलता हो, कोई अवधिज्ञानी हो वह जान सकता है। बाकी कोई जीव परिचयमें आया हो तो (जान सकते हैं)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४५

समाधान :- ... उसे धर्म हो, थोड़ा सामायिक या उपवास कर ले तो धर्म हो जाय, ऐसा सब मानते थे। उसमें ऐसी अंतर दृष्टि बतानेवाले ऐसे गुरुदेव (मिले)। ज्ञायक आत्माको पहचान, यह सब कहनेवाले मिले। स्थानकवासी, देरावासी, दिगंबर सबकी दृष्टि बाहर थी। दिगंबरोंमें भी इतना पढ़ ले, इतना रटन कर ले तो धर्म होगा या तत्त्वार्थ सूत्र (पढ़ लें), उसमें धर्म मानते थे। ऐसेमें गुरुदेवने दृष्टि दी। समयसार तो कोई पढ़ते नहीं थे। गुरुदेवने समयसारके रहस्य खोले। पण्डित लोग कहते थे न? हम लोग समयसार पढ़ते थे, उसमें आत्माकी बात आती थी उसे छोड़ देते थे। कितने लाखों जीवोंको (मार्ग बताया)। सच्चा यथार्थ होना वह पुरुषार्थकी बात है। परन्तु अंतरमें कुछ करनेका है, ऐसा मार्ग गुरुदेवने बताया, ऐसा मार्ग बता दिया।

मुमुक्षु :- .. आते ही पाप तो जैसे दूर ही भाग जाते हैं और मिथ्यात्व थर-थर काँपने लगता है। ऐसा मुझे अटूट विश्वास हुआ है कि आपके चरणोंकी कृपा-से ही मेरे भवका अंत आनेवाला है। कृपा करके यह बताईये कि सामान्य ज्ञानका आविर्भाव और विशेष ज्ञानका तिरोभाव कैसे करें?

समाधान :- सामान्य स्वरूप आत्मा है, अनादिअनन्त। वही स्वरूप सामान्य स्वरूप (है)। विशेष, पर-से दृष्टि उठाकर सामान्य पर दृष्टि स्थापित करने-से सामान्यका आविर्भाव होता है, विशेषका तिरोभाव होता है। दृष्टि बाह्य है, दृष्टि विभावमें एकत्वबुद्धि है। बाहरमें विभावके विशेष पर है तो सामान्य स्वरूप जो आत्मा, अखण्ड आत्मा उसके भेद पर लक्ष्य नहीं करके, एक सामान्य पर दृष्टि करने-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। तो सामान्यका आविर्भाव होता है, विशेषका तिरोभाव होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! ये भेद पर-से दृष्टि क्यों नहीं हटती है?

समाधान :- अपने पुरुषार्थकी मन्दता-से नहीं हटती है। पुरुषार्थ मन्द है और रुचि बाहरमें है, एकत्वबुद्धि है। इसलिये नहीं हटती है। भीतरमें रुचि, महिमा (आये)। आत्माका स्वरूप सर्वस्व है और ये सर्वस्व नहीं है-विभाव सर्वस्व नहीं है। आत्मा ही सर्वस्व है, ऐसा भीतरमें लगने लगे, इसकी महिमा लगे तो दृष्टष्टि (वहाँ-से) उठ जाय, तो दृष्टि अंतरमें आती है।

मुमुक्षु :- स्वानुभवमें चित्चमत्कार स्वरूप भासता है, इसका अर्थ कृपा करके बताईये।

समाधान :- सामान्य स्वरूप पर नहीं है, भेद-भेद पर दृष्टि है। विशेष यानी भेद-भेद पर दृष्टि है, वह दृष्टि उठाकर सामान्यमें दृष्टि स्थापित कर दे तो सामान्य पर दृष्टि करने-से चैतन्य चमत्कार, निर्विकल्प तत्त्व (की) निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। इसमें चित्चमत्कार आत्मा, जो चैतन्यका चमत्कार है वह स्वानुभूतिमें आता है। इसका उपाय एक ही है कि द्रव्य पर दृष्टि करने-से चैतन्य चमत्कार प्रगट होता है। विशेष पर जो दृष्टि है, वह विशेष गौण होकर आत्माका सामान्य स्वरूप प्रगट होता है।

चैतन्य चमत्कार निर्विकल्प स्वरूपमें प्रगट होता है। विकल्प-से एकत्वबुद्धि तोड़कर आत्माकी प्रतीति करने-से विकल्प छूट जाता है और निर्विकल्प स्वरूपमें स्वानुभूतिमें चैतन्य चमत्कार प्रगट होता है। निर्विकल्प स्वानुभूति होने-से चैतन्य चमत्कार होता है। सामान्य स्वरूप आत्माको लक्ष्यमें लेने-से, उसकी प्रतीत करने-से, उसमें लीनता करने-से वह प्रगट होता है। सामान्यमें प्रगट होता है। भेद पर दृष्टि करने-से नहीं प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- भिन्न उपासता हुआ ज्ञायक शुद्ध होता है, इसका क्या अर्थ है?

समाधान :- पर भावों-से भिन्न उपासता हुआ...?

मुमुक्षु :- ज्ञायक शुद्ध..

समाधान :- शुद्ध ज्ञायक। पर भावों-से भिन्न है आत्मा। पर भाव अपना स्वरूप नहीं है। पर भाव-से भिन्न उपासना, चैतन्यकी उपासना करे। चैतन्यकी सेवा, आराधना चैतन्यकी करे। बारंबार मैं चैतन्य हूँ, ऐसा अभ्यास करे। प्रगट तो यथार्थ बादमें होता है। (पहले तत) बारंबार उसकी उपासना करे। मैं ज्ञायक हूँ। पर द्रव्य, पर भाव, गुणका भेद, पर्यायका भेद परसे दृष्टि उठाकर, आत्मा ज्ञायककी उपासना करे। बारंबार मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। ज्ञायककी परिणति प्रगट करे।

ज्ञायक स्वरूप है, ऐसा बोलने मात्र नहीं, रटन मात्र नहीं, परन्तु यथार्थ परिणति करे। इसकी उपासना करे, इसकी आराधना करे। इसमें तद्रूप होवे तो उसमें ज्ञायक प्रगट होता है। शुद्ध ज्ञायक, मैं शुद्धात्मा ज्ञायक हूँ। ऐसे लीनता करने-से प्रगट होता है। यह मैं नहीं हूँ, विभाव मैं नहीं हूँ, स्वभाव मैं ज्ञायक हूँ। इसकी उपासना करना।

मुमुक्षु :- प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन कितने काल टिकता है?

समाधान :- अंतर्मुहूर्त टिकता है। अंतर्मुहूर्त, कितना अंतर्मुहूर्त इसका कोई माप नहीं है। सम्यग्दर्शनका काल अंतर्मुहूर्त ही होता है। अंतर्मुहूर्त टिकता है। उसको ख्यालमें आ जाता है। स्वानुभूति हुयी, वह उसे पकड़में आ जाती है। उपयोग बाहर-से छूटकर

भीतरमें लीन हो जाता है। स्वरूपकी प्रतीति, ज्ञान उपयोग उसमें लीन हो जाता है। ख्यालमें आ जाता है। उपयोगका काल अंतर्मुहूर्त है। बादमें बाहर आ जाता है।

स्वानुभूति हुयी तो वह ख्यालमें आ जाता है। जगत-से जुदी ऐसी स्वानुभूति, दुनिया-से अनुपम, विभाव-से अनुपम ऐसी स्वानुभूति होती है तो उसको ख्यालमें आ जाता है, ज्ञानमें आ जाता है। स्वानुभूति अंतर्मुहूर्त टिकती है। बाहर आकर ज्ञायककी धारा रहती है। ज्ञायकधारा। उदयधारा और ज्ञायकधारा दोनों चलती हैं। स्वानुभूतिमें अंतर्मुहूर्त रहता है।

मुमुक्षु :- .. दुःख लगता नहीं और आत्माका पता नहीं है। कैसे जानेकी वर्तमान पर्याय दुःखरूप है और आत्मा चैतन्य त्रिकाली है। उसका अनुभव करने-से सुख होता है। कैसा आत्मा, यह पता नहीं चलता है।

समाधान :- वर्तमान पर्यायमें दुःख लगता है?

मुमुक्षु :- नहीं लगता है।

समाधान :- नहीं लगे तो भीतरमें कैसे जाय? जिसको अंतरमें जाना है, उसको विभाव अच्छा नहीं है, मेरा स्वभाव अच्छा है, ऐसी रुचि तो होनी चाहिये। रुचिके बिना भीतरमें नहीं जा सकता। रुचि होनी चाहिये। यह करने लायक नहीं है, यह यथार्थ नहीं है, यह दुःखरूप है। मेरा स्वभाव सुखरूप है। ऐसी रुचि तो होनी चाहिये। यथार्थ स्वभावको बादमें ग्रहण करे, परन्तु रुचि तो होनी चाहिये।

विपरीतता, अशुचिरूप, दुःखरूप, दुःखके कारण, ये सब दुःखरूप है, दुःखका कारण है, ऐसा तो होना चाहिये। जो आत्मार्थी होता है, आत्माका जिसको प्रयोजन है, उसको विभाव अच्छा नहीं लगता है। ये दुःखरूप है, ये अच्छा नहीं है, ये विभाव अच्छा नहीं है। मेरा स्वभाव ही सुखरूप है। ऐसी रुचि तो होनी चाहिये। बादमें ऐसा ज्ञान और प्रतीत, विचार करके दृढ़ करे। परन्तु रुचि तो होनी चाहिये। रुचि नहीं होती है तो आगे नहीं बढ़ सकता। मुझे आत्माका करना है। आत्मामें सर्वस्व है, ये विभाव अच्छा नहीं है। ऐसा होना चाहिये।

मैं आत्मा त्रिकाल शाश्वत हूँ। विचार करके, लक्षण-से नक्की करता है कि ज्ञान है वह सुखरूप है, ज्ञानमें आकुलता नहीं है, ज्ञान सुखरूप है। गुरु कहते हैं, देव कहते हैं, शास्त्रमें आता है। विचार करके युक्ति-से, न्याय-से ज्ञान लक्षण-से पीछान लेना चाहिये। रुचि तो होनी ही चाहिये। स्व तरफकी रुचिके बिना आगे नहीं बढ़ सकता। दुःख तो आत्मार्थीको लगता ही है। ये अच्छा नहीं है। वर्तमान पर्यायजो चलती है वह अच्छी नहीं है। स्वभाव अच्छा है, उसकी रुचि तो होनी चाहिये। जिसको विभाव अच्छा लगता है, वह आगे नहीं बढ़ सकता।

चैतन्य तत्त्व ही हूँ। विशेष भेदभाव गौण करके शुद्धात्माकी पर्याय प्रगट होती है। विभावकी पर्याय गौण हो जाती है। मैं चैतन्य शुद्धात्मा हूँ, ऐसी प्रतीत तो दृढ़ करनी चाहिये, ऐसा ज्ञान करना चाहिये, उसकी लीनता होनी चाहिये। तो स्वानुभूति होती है। बारंबार मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा विचार करके, लक्षण पीछानकर (आगे बढ़ना)। यथार्थ पीछान होवे तो भी उसका अभ्यास करना चाहिये। ये अच्छा नहीं है, मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ। सामान्य स्वरूप अनादिअनन्त (हूँ)। गुणका भेद, पर्यायका भेद पर दृष्टि नहीं करके, मैं चैतन्य हूँ। उसमें गुण है, पर्याय है तो भी दृष्टि तो अखण्ड पर रखनी चाहिये। ज्ञान सबका होता है, परन्तु दृष्टि एक अखण्ड चैतन्य सामान्य पर होती है। द्रव्यदृष्टिके बल-से उसमें लीनता (होती है)।

दृष्टि-सम्यग्दर्शन होने-से सब नहीं हो जाता है। लीनता-चारित्र, स्वरूप रमणता-लीनता बाकी रहता है। मुनिओं छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। लीनता विशेष हो जाती है। सम्यग्दृष्टिको इतनी लीनता नहीं होती। तो भी उसको स्वानुभूति होती है। स्वरूपाचरण चारित्र होता है। भेदज्ञानकी धारा चलती है। स्वानुभूति-से बाहर आवे तो भेदज्ञानकी धारा क्षण-क्षण, क्षण-क्षण, क्षण-क्षणमें खाते-पीते, जागते, स्वप्नमें भेदज्ञानकी धारा (चलती है)। ज्ञायकधारा और उदयधारा दोनों भिन्न चलती है। कोई-कोई बार स्वानुभूति होती है। निर्विकल्प स्वानुभूति-से बाहर आवे तो भेदज्ञानकी धारा (चलती है)।

उसके पहले उसकी महिमा करनी चाहिये, उसकी लगनी करनी चाहिये, तत्त्वका विचार करना चाहिये, आत्माका स्वभाव पीछानना चाहिये। आत्माका ज्ञान लक्षण (पहचानकर) मैं ज्ञायक हूँ, मैं अखण्ड ज्ञायक हूँ, उसको विचार करके ग्रहण करना चाहिये। उसके भेदज्ञानका अभ्यास करना चाहिये। मैं चैतन्य अखण्ड हूँ। मैं विभाव-से (भिन्न हूँ)। गुणभेद, पर्यायभेद आदि भेदमें विकल्प आता है। वास्तविक भेद आत्मामें नहीं है। आत्मा अखण्ड है। इसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब है। लक्षण भिन्न-भिन्न है, तो भी वस्तु एक है। उसका निर्णय करके उसकी प्रतीत करनी चाहिये। उसमें लीनता करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- .. बाहरमें तो अच्छा लगता नहीं है। अन्दर जानेमें कितना समय लगेगा?

समाधान :- क्या कहते हैं? बाहरमें अच्छा नहीं (लगता)। स्वभावकी पीछान करे तो, स्वभावका लक्षण पीछानकर उसकी प्रतीत दृढ़ होवे, बारंबार अभ्यास करे। जिसको यथार्थ पुरुषार्थ उठता है तो अंतर्मुहूर्तमें हो जाता है। और विशेष पुरुषार्थ करे तो, आचार्यदेव कहते हैं, छः महिनेमें हो जाता है। परन्तु इतना अभ्यास नहीं करता है। अच्छा नहीं लगता है, दुःख लगता है तो भी स्वरूपका लक्षण पीछानकर उसका

अस्तित्व ग्रहण करना चाहिये। उसका अस्तित्व ग्रहण करके यह मैं नहीं हूँ और यह मैं हूँ। चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण करके बारंबार क्षण-क्षणमें उसका अभ्यास (करे)। मैं ज्ञायक हूँ। जितना ज्ञानस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप उतना मैं हूँ, विभाव मैं नहीं हूँ। बारंबार निरंतर इसका अभ्यास करे और उसका उग्र अभ्यास करे तो देर नहीं लगती। अपना स्वभाव है। क्षणमें हो जाता है। पुरुषार्थकी उग्रता होवे तो उत्कृष्ट छः महिने लगते हैं, देर नहीं लगती है। परन्तु अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। दुःख-दुःख करे, लेकिन सुख स्वभाव क्या है? उसको ग्रहण करे, उसमें प्रतीत दृढ़ करे, बारंबार उसकी परिणति प्रगट करे तो होवे।

दुःख लगे तो भी अपना स्वभाव ग्रहण करना चाहिये। स्वभाव ग्रहण करे तो विभाव-से छूट जाता है। स्वभावको ग्रहण करे बिना दुःख-दुःख करे तो भी नहीं छूट सकता है। स्वभावको ग्रहण करे तो छूट जाता है। तो भेदज्ञान हो जाता है। स्वभावको ग्रहण करना चाहिये, अपने अस्तित्वको ग्रहण करना चाहिये। मैं यही हूँ और यह मैं नहीं हूँ, ऐसे बारंबार उसको ग्रहण करनेका अभ्यास करे तो होवे।

मुमुक्षु :- श्रद्धागुण तो निर्विकल्प है...

समाधान :- श्रद्धा निर्विकल्प है, परन्तु पहले विचार-से निर्णय करना चाहिये। पहले तो ऐसा विचार आता है, पहले प्रतीत दृढ़ नहीं होवे तो विचार करना चाहिये। विचार-से अपना स्वभाव पीछानना चाहिये कि ज्ञानलक्षण, असाधारण ज्ञान लक्षण है। अखण्ड द्रव्यको पीछानना चाहिये। ज्ञान-से विचार करे। प्रतीत तो दृढ़ (बादमें होती है)। पहले विचार आता है। तत्त्वका विचार। बारंबार मैं भिन्न हूँ, यह मैं नहीं हूँ। स्वभावको भीतर-से उसका लक्षण पीछानकरके नक्की करना चाहिये।

श्रद्धा भले निर्विकल्प हो, ज्ञान काम करता है। ज्ञानमें विचार (करके), नक्की करके श्रद्धाको दृढ़ करना चाहिये। मुक्तिका मार्ग सम्यग्दर्शन-से प्रगट होता है। परन्तु जब पहले सम्यग्दर्शन नहीं होवे तब विचार, यथार्थ ज्ञान करना चाहिये। ज्ञान बीचमें आता है। प्रतीतको दृढ़ करना।

समाधान :- ... गुरुदेवको सब शोभा दे। वहाँ स्टेजमें बैठना, करना आदि... गुरुदेवकी छत्रछायामें अपने तो बोल लेते हैं।

मुमुक्षु :- हम तो गुरुदेवकी आज्ञाका पालन करते हैं। गुरुदेव कहकर गये हैं...

समाधान :- चित्र आदि सब था न, इसलिये वहाँ मनमें ऐसी भावनाका घोटना होता था कि ये सब है, गुरुदेव पधारे। ऐसी भावना (होती थी)। बस, ऐसे ही घोटन चलता था कि गुरुदेव पधारे तो अच्छा। प्रातः कालमें स्वप्नमें ऐसा आया कि गुरुदेव ऊपर-से पधार रहे हैं। ऐसा कहा, पधारो गुरुदेव। गुरुदेव देवके रूपमें थे। देवके वस्त्र

पहने थे। देवके रूपमें थे। ऐसे पहचानमें आये कि ये गुरुदेव हैं। गुरुदेव देवके रूपमें ही थे।

गुरुदेवने कहा कि ऐसा कुछ नहीं रखना, मैं यहीं हूँ। देवमें विराजता हूँ, (लेकिन) मैं यहीं हूँ, ऐसा रखना। ऐसा गुरुदेवने कहा। ऐसा हाथ करके कहा। ऐसा हुआ कि ये सब कैसे (समाधान करे)? गुरुदेवने जवाब नहीं दिया। गुरुदेवने दो-तीन बार कहा कि मैं यहीं हूँ, ऐसा ही मानना। मैं यहीं हूँ, ऐसा गुरुदेवने कहा।

... स्वप्न वैशाख शुक्ल-२का था। बादमें कहा। गुरुदेवने कुछ जवाब नहीं दिया, सुन लिया। गुरुदेवने कहा, मनमें ऐसा नहीं रखना, मैं यहीं हूँ। मेरा अस्तित्व है, ऐसा ही मानना। हाथ ऐसे करके कहा। गुरुदेव देवके रूपमें थे। हूबहू देवके रूपमें। देवके वस्त्र, मुगट सब देवके रूपमें था।

मुमुक्षु :- तो भी पहचान लिया कि ये गुरुदेव ही हैं।

समाधान :- हाँ, गुरेदव ही हैं, देव नहीं है। मैं यहीं हूँ, ऐसा मानना। मैं कदाचित् मानूं, लेकिन ऐसे कैसे मान लें? ऐसा विचार तो आये। ये सब कैसे (माने)? ये बेचारे कैसे माने? गुरुदेव कुछ बोले नहीं। परन्तु गुरुदेवका अतिशय प्रसर गया। उस वक्त सबको ऐसा हो गया। नहीं तो हर साल सबके हृदयमें दुःख होता था। उस वक्त एकदम उल्लास-से सब करते थे।

गुरुदेवने कहा, ऐसा मनमें नहीं रखना। उस वक्त स्वप्नमें बहुत प्रमोद था। उस एकदम ताजा था न। मैं यहीं हूँ। गुरुदेवकी आज्ञा हुयी, फिर कुछ...

गुरुदेव शाश्वत रहे, महापुरुष... अलग थी। मैं तो उनका शिष्य हूँ। उन्होंने जो मार्गका प्रकाश किया, वह कहनेका है। साक्षात् गुरुदेव ही लगे, देवके रूपमें। ऐसा कुछ नहीं रखना। मैं यहीं हूँ, ऐसा मानना। कैसे पधारे? कैसे पधारे? गुरुदेव पधारो, पधारो ऐसा मनमें होता था। पूरी रात अन्दर ऐसी भावना रहा करती थी, गुरुदेव पधारो, पधारो। फिर प्रातःकालमें गुरुदेव ऊपर-से देवके रूपमें पधारे हों, ऐसा (स्वप्न आया)। गुरुदेव पधारे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४६

समाधान :- गुरुदेवकी आज्ञा हुयी। फिर मनमें ऐसा हुआ कि मैं तो कदाचित् मान लूँ, परन्तु ये सबको बेचारोंको... सबको दुःख हो, उसका क्या? गुरुदेवने कोई जवाब नहीं दिया। परन्तु उस दिन सबको ऐसा हो गया था कि मानों गुरुदेव विराजते हों। गुरुदवने बहुत प्रमोद-से कहा, मैं यहीं हूँ, ऐसा मानना। ऐसा कुछ नहीं रखना, ऐसा कहा। स्वप्न इतना ही था। स्वप्नमें ऊपर-से पाधरे हों, ऐसा स्वप्न था।

मुमुक्षु :- आपकी भावना-से गुरुदेवकी दूज अलौकिक रूप-से मनायी गयी। वैशाख शुक्ला-दूज।

समाधान :- वैशाख शुक्ल-दूज, बहुत अच्छी तरह-से मनायी गयी।

मुमुक्षु :- .. स्वयं भी पधारे हो, ऐसा बन सकता है।

समाधान :- बन सकता है, अपनेको लगे गुरुदेव स्वप्नमें पधारे। गुरुदेव गये तब भी थोड़े महिने पहले भी देवका ऐसा स्वप्न आया था। गुरुदेवके रूपमें। मैं यहीं हूँ, ऐसा मानना। वह भक्तिमें जोड़ा है न? इन्द्र सरीखा शोभी रह्या छे..

मुमुक्षु :- वह स्वप्नके अनुसंधानमें है?

समाधान :- स्वप्न और अंतर-से सब जुड़ा है। मुझे तो ऐसा भावना होती है कि गुरुदेव यहाँ-से विमानमें जाते हो, .. पधारते हैं। गुरुदेव सीमंधर भगवानकी वाणी सुनने (जाते हैं)। ऐसी भावना हो, देवोंकी तो शक्ति है, सीधे महाविदेहमें जाये। परन्तु ये भरत और महाविदेह दोनों समीप है। सीमंधर भगवान जहाँ विराजते हैं, वह महाविदेह और यह भरत, घातुकी खण्ड दूर है, परन्तु भगवान विराजते हैं वह महाविदेह औरयह भरतक्षेत्र दोनों समीप है। ये भरतक्षेत्र तो बीचमें आता है। देवोंको तो बीचमें आये या न आये, वे तो अवधिज्ञान-से जान सकते हैं।

मुमुक्षु :- इस बार आपको फोटोमें कुछ प्रकाश जैसा लगता था।

समाधान :- सब लोग कहते थे कि गुरुदेव साक्षात् विराजते हैं। फिर इन लोगोंने विडीयो दिखाया तो विडीयमों कौन जाने ऐसा प्रकाश, ऐसा कुछ लगा कि मानों गुरुदेव है। मैंने तो वहाँ मात्र दर्शन किये, मैं तो इस ओर बैठी थी। दूसरे लोग कहते थे। दर्शन करते समय ... उतनी बात है। परन्तु ये विडीयोमें मुझे ऐसा लगा कि ये किस

जातका लगता है? गुरुदेव साक्षात् विराजते हैं, ऐसा भाव आया। उस जातका विडीयोका कोई प्रकाश आ गया है।

मुमुक्षु :- प्रसंग इतना सुन्दर रूप-से मनाया गया कि ऐसा थोड़ा अनुमान हो कि गुरुदेव साक्षात् यहाँ पधारे हों।

समाधान :- हाँ, पधारे हो ऐसा लगे।

मुमुक्षु :- आशीर्वादका फोटो ही ऐसा लगता था कि मानो आशीर्वाद दिये हों। साक्षात् पधारे हों।

समाधान :- गुरुदेवका मस्तक और ये सब अलग दिखता था, मानों साक्षात् क्यों न हो! ऐसा दिखे। मुझे तो कुछ मालूम नहीं था, सब कहते थे। लेकिन कौन-सा फोटो और क्या लगता है, विडीयोमें अचानक देखा तो ऐसा ही लगा।

मुमुक्षु :- आपकी गुरुदेव प्रति भक्ति ही ऐसी है।

समाधान :- ऐसा हो। बाकी गुरुदेव तो देवमें विराजते हैं।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- कोई-कोई बार बोलू वह आये। बाकी..

मुमुक्षु :- हमे तो उतना ही चाहिये।

समाधान :- प्रसंग हो तब आ जाता है।

मुमुक्षु :- मध्यस्थ लोगोंको तो बहुत लाभ हुआ है। ... कहते हैं कि बहुत..

समाधान :- तत्त्व चर्चा करते हो उस वक्त धूनमें भले यथार्थ आता हो, बाहर प्रकाशित करनेमें चारों पहलू आने चाहिये। वह सब उसमें ध्यान रखना पड़े। विडियो तो कभी-कभी लेते हैं।

मुमुक्षु :- आपको तो सहज होता है, उसमें आपको ध्यान रखना पड़े...

समाधान :- वह तो सहज आता है।

मुमुक्षु :- चर्चामें चारों पहलूओंको आप समाविष्ट करी ही देते हो। आप कहते हो, लेकिन उस चर्चामें उस विषयमें आप चारों पहलूओंको दूसरे-तीसरे प्रकार-से आ ही जाता है। भाई ऐसा नहीं कहते हैं कि किसीको शंका पड़े और दूसरा अर्थ निकाले। ऐसा भी नहीं होता।

समाधान :- पहले दिन चर्चा प्रश्नमें भेदज्ञानकी धून थी तो भेदज्ञानका बोली, फिर दूसरी बार आपने पूछा। फिर चारों पहलूसे स्पष्ट आया। पहले भेदज्ञान पर वज़न आया, फिर आपने प्रश्न किया तो ज्यादा स्पष्ट हो गया।

मुमुक्षु :- परन्तु समझनेवाला आत्मा समझ जाता है।

समाधान :- हाँ, वह तो समझ (जाय), आशय समझ जाना चाहिये।

मुमुक्षु :- अपेक्षाओँकी खीँचतान-से जो कुछ उलझनें उत्पन्न हुयी है, आप स्पष्टीकरण करते हो तो सबको एक जातका समाधान भी हो जाता है।

मुमुक्षु :- सबके पक्ष ऐसे हो गये हैं। जिसे जिज्ञासा हो वह समझता है। बाकी सबकी दृष्टि अनुसार सब खींचते हैं। .. बात ऐसी है, सबकी दृष्टि अनुसार खीँच लेते है। जिसे जिज्ञासा यथार्थ हो, उसे बराबर समझमें आये ऐसा है। ऐसा बहुत बार होता है। तो भी कोई प्रसंग हो तो तब आप विडीयो लाते ही हो।

मुमुक्षु :- हमें तो आप फरमाते हो, इसलिये वह प्रसंग ही बन जाता है।

समाधान :- .. गुरुदेवने तो चारों ओर बरसात बरसा गये हैं। मैं तो ठीक, प्रश्न पूछे उसके जवाब देती हूँ। गुरुदेवने चारों ओर मूसलाधार बारीश बरसा दी है। हर जगर अंकुर उत्पन्न हो गये, ऐसी बरसात बरसायी है। आम बोये हैं।

मुमुक्षु :- बारीश बरसनेके बाद किसीने अंगीकार कर लिया हो, उसमें-से भी नदी, झरने आदि बहते हैं न। उसका भी लाभ तो मिलना चाहिये न। ... देते होंगे, उसका लाभ तो हम लेनेवाले हैं।

समाधान :- आप आते हो तब प्रश्न तो पूछते ही हो।

मुमुक्षु :- बालक हो तो उसकी एक आदत होती है कि माताको थोड़ा परेशान करे। और माताको ऐसा होता है कि बालक परेशान करे तो भी मनमें उसे आनन्द होता है कि भले बालक परेशान करे। इसलिये हम बालक जैसे हैं।

समाधान :- प्रश्न-चर्चा होती है, बाकी स्वास्थ्य ऐसा रहता है, इसलिये थोड़ी दिक्कत होती है। गुरुदेवने बहुत (समझाया है)। बहुत प्रश्न हो गये हैं।

मुमुक्षु :- .. स्वपरप्रकाशक है ऐसा भी कहनेमें आता है। दोनोंकी विवक्षा क्या है? कहाँ वज़न है?

समाधान :- स्वप्रकाशक अर्थात् स्वयं परमें जाता नहीं है, पर पदार्थके साथ एक नहीं हो जाता है। स्व और पर। जो भी जानता है, वह स्वयं ज्ञानके स्वभाव-से जानता है। पर-से स्वयं जानता नहीं है। इसलिये स्वप्रकाशक कहनेमें आता है। बाकी स्वपरप्रकाशक उसका स्वभाव है।

स्वप्रकाशक यानी स्वको ही जाने और परको जानता ही नहीं, उसे परका कुछ ज्ञान ही नहीं होता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। तो-तो उसका ज्ञानस्वभाव मर्यादित हो जाय। स्वप्रकाशक यानी परको जानता ही नहीं, ऐसा हो तो ज्ञान मर्यादित हो जाय। वास्तवमें स्वयं अपनी परिणतिमें रहे, स्वभावमें रहे और सहज ज्ञात हो जाय। अर्थात् ज्ञान ज्ञानको जानता है, ज्ञान परको नहीं जानता है, उस अपेक्षा-से ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु ज्ञान ज्ञानको जाने यानी वह दूसरे का कुछ स्वरूप जानता नहीं है,

ऐसा नहीं है।

वह ज्ञेयोंका स्वरूप जानता है। ज्ञानमें सब ज्ञेयोंका स्वरूप आता है। अनन्त ज्ञेय जो जगतमें हैं, छः द्रव्य, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, उसका भूत-वर्तमान-भविष्य सब उसके ज्ञानमें आता है। यदि ज्ञानमें न आये तो उसे ज्ञानस्वभाव कैसे कहें? ज्ञानगुण उसे कहते हैं कि जिसमें मर्यादा न हो, ऐसा गुण हो। इसलिये वह पूर्ण जानता है। ज्ञानमें उसे सब आता है। उपयोग बाहर नहीं जाता, अपनी परिणतिमें रहकर, ज्ञान ज्ञानमें रहकर सब जानता है। ऐसा उसका स्वभाव है। इसलिये स्वपरप्रकाशक इस तरह है।

परमें जाकर, उसका क्षेत्र छोड़कर बाहर नहीं जाता है। अपने क्षेत्रमें रहकर जाने, यानी ज्ञान ज्ञानके स्वरूपको जाने, ज्ञान ज्ञानको जाने, ऐसा कहनेमें आता है। लेकिन वह ज्ञान ज्ञानको जाने इसलिये उसमें दूसरेका ज्ञान आता ही नहीं है, ऐसा नहीं है। पूरे लोकालोकका ज्ञान, नर्क, स्वर्ग, पूरे लोकालोकका ज्ञान, छः द्रव्य, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, भूत-वर्तमान-भविष्य कुछ न जाने, यदि वह नहीं जानता हो तो। ज्ञानमें सब आता है। अतः ज्ञान स्वपरप्रकाशक है।

केवलज्ञान होता है तब सहज ज्ञात होता है, उसका स्वभाव ही है। नहीं होता तबतक उसका अधूरा ज्ञान है। स्वयं अपने स्वरूपमें रहे इसलिये उसका उपयोग बाहर नहीं होता, इसलिये निर्विकल्पताके समय उसे बाहरका उपयोग नहीं है। बाकी उसके ज्ञानका नाश नहीं हुआ है। ज्ञानकी शक्ति तो अमर्यादित है।

मुमुक्षु :- मतलब उपयोगात्मक रूपसे बाहरका जानना उस वक्त नहीं होता।

समाधान :- नहीं है, उपयोगात्मक नहीं है। बाकी उसमें ऐसी जाननेकी शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है। प्रत्यभिज्ञान... ज्ञान तो है, ऐसा स्वभाव है। तो भूतकालका कुछ जाने ही नहीं, भविष्यका कुछ जाने ही नहीं। ऐसा नहीं है। केवलज्ञान होने-से पहले पूर्वका सब जाने ऐसा उसका .. है। नहीं है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :- पूर्वका जानता है, वर्तमान जानता है और भविष्यका..

समाधान :- भविष्यका जाने, सब जान सकता है। ऐसा उसका स्वभाव है। उसकी दिशा पर तरफ-ज्ञेय तरफ (है)। तेरी दिशा बदल दे। तेरी दिशा स्वसन्मुख कर दे। तेरे स्वद्रव्य तरफ तेरी दिशा बदल दे। बाकी कुछ ज्ञात नहीं होता है, ऐसा नहीं है। अपनी परिणति स्व-ओर गयी और उपयोग स्वयं निर्विकल्प स्वरूपमें स्थिर हुआ, इसलिये बाहरका उपयोग नहीं है, इसलिये ज्ञात नहीं होता। उसका स्वभाव नाश नहीं हुआ। वह अधूरा ज्ञान है इसलिये क्रम-क्रम-से ज्ञान जानता है। उपयोग अन्दर स्थिर हो गया, इसलिये बाहरका ज्ञात नहीं होता।

मुमुक्षु :- उपयोगात्मक स्थिति अलग है और स्वभावकी स्थिति..

समाधान :- स्वभावकी परिणति... सम्यग्दृष्टि अपने अस्तित्वकी जो प्रतीत हुयी, उसे ज्ञायककी धारा है। वह परिणति ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमती है। और मैं इस स्वरूप हूँ और इस स्वरूप नहीं हूँ, ऐसी परिणति तो उसे सहज चलती है। मैं चैतन्य ज्ञायक स्वरूप हूँ और इस स्वरूप नहीं हूँ। यह हूँ और यह नहीं हूँ। ऐसी दो जातकी उसकी परिणति, ऐसा सहज ज्ञान उसे वर्तता ही रहता है। उपयोगरूप नहीं है। वह लब्ध है उसका मतलब एक ओर पड़ा है, ऐसा नहीं। उसे वेदनमें ऐसा आता है कि मैं यह हूँ और यह नहीं हूँ। यह मैं हूँ-ज्ञायक हूँ और यह नहीं हूँ। ऐसा सहज ज्ञान निरंतर उसे ज्ञायककी धारा रहती ही है। सविकल्प दशामें ऐसी ज्ञायकधारा वर्तती रहती है।

मुमुक्षु :- अहंपना रूप वृत्ति अथवा व्यापार निरंतर चलता ही रहता है।

समाधान :- वह निरंतर चलती है। मैं यह हूँ, इसलिये उसमें मैं नहीं हूँ, ऐसा आ जाता है। मैं यह हूँ, इसलिये परसे भिन्न यह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- यह मैं हूँ, ऐसी परिणति (वर्तती है तो) वहाँ उसे स्वप्रकाशक कहना है?

समाधान :- स्वप्रकाशक और पर, दोनों साथमें आ गया। स्वपरप्रकाशक है। उसकी परिणति स्वपरप्रकाशक है। प्रतीति-यह मैं हूँ-ऐसा दृढ़ है। प्रतीति निर्विकल्प है, परन्तु ज्ञानकी धारा है कि यह मैं हूँ और यह नहीं हूँ, वह स्वपरप्रकाशक है। अस्ति और नास्ति दोनों ज्ञानमें आ गया है। प्रतीतिमें मैं यह हूँ, दृष्टिमें यह मैं हूँ, ऐसा (है)। बाकी ज्ञानकी-ज्ञायककी धारा चलती है। यह मैं हूँ और यह नहीं हूँ। उस जातकी सहज परिणति है।

मुमुक्षु :- दिशा स्व तरफ करनी है, वह एक अलग बात है। बाकी स्वभाव तो ऐसा ही है।

समाधान :- स्वभाव तो ऐसा ही है। दिशा स्व तरफ पलटनी है।

समाधान :- द्रव्य-गुण-पर्याय तो वस्तुका स्वभाव है। पर्याय एक अंश (है)। अंश जितना अंशी नहीं है। (अंशी) अखण्ड है, वह तो अंश है। दृष्टिकी अपेक्षा-से पर्याय मेरेमें नहीं है। पर्याय है ही नहीं, ऐसा तो नहीं है। द्रव्य-गुण-पर्याय वस्तुका स्वभाव है।

ज्ञान सबका होता है। द्रव्य-गुण-पर्याय सबका। पर्याय जितना, एक अंश जितना क्षणिक, ऐसा क्षणिक स्वभाव आत्माका नहीं है। आत्मा शाश्वत है। पर्याय क्षण-क्षण पलटती रहती है। ऐसे ज्ञान करना। पर्याय नहीं होवे तो पर्याय ऊपर-ऊपर नहीं होती है, पर्याय द्रव्यके आश्रयसे होती है।

मुमुक्षु :- शिखरजीमें चर्चा हुयी थी गुरुदेवकी वर्णीजीके साथ, उसमें उन्होंने कहा था कि ... होता है। तो गुरुदेवने कहा था, रागकी पर्याय .. होती है।

समाधान :- किसके साथ चर्चा हुयी थी?

मुमुक्षु :- वर्णीजीके साथ।

समाधान :- हाँ, अपने पुरुषार्थकी मन्दता-से रागकी पर्याय होती है। शुद्धात्माकी शुद्ध पर्याय शुद्धात्माके आश्रय-से होती है। और पुरुषार्थकी कमज़ोरी-से रागकी पर्याय होती है। कर्म करवाता नहीं। कर्म जबरजस्ती नहीं करवाता। आत्मा स्वयं रागरूप परिणमता है।

जैसे स्फटिक हरा, पीला रूप परिणमता है, वह स्फटिक परिणमता है। लाल-पीले फूल उसमें नहीं आते। वह तो निमित्त है। परिणमन स्फटिकका है। वैसे परिणमन चैतन्यका है। और मूल स्वभाव जो स्फटिकका है, उसका नाश नहीं होता। आत्माके मूल स्वभावका नाश नहीं होता है। उसके शुद्ध स्वभावका नाश नहीं होता है।

मुमुक्षु :- पर्याय द्रव्यमें-से निकलती है तो निकलते-निकलते कुछ कम नहीं होती है? अन्दर-से निकलती है तो?

समाधान :- तो-तो द्रव्यका नाश हो जाय। राग भीतरमें नहीं है, रागरूप आत्मा परिणमता है। शुद्धात्माकी शुद्ध पर्याय शुद्धात्माके आश्रय-से होती है। भीतर-से निकलते-निकलते (कम हो जाय) तो द्रव्यका नाश हो जाय। ऐसा नहीं है। द्रव्य तो अनन्त शक्ति (संपन्न है)। अनन्त काल द्रव्य परिणमन करता है तो भी द्रव्य तो ऐसाका ऐसा है।

ज्ञानकी पर्याय एक समयमें लोकालोक जानती है। तो भी अनन्त काल परिणमन करे तो उसमें कम नहीं होता है। ऐसा कोई द्रव्यका अचिंत्य स्वभाव है। उसमें त्रुट नहीं पड़ती। अनन्त काल परिणमे तो भी।

समाधान :- ... कोई कारण-से द्रव्य उत्पन्न हुआ है या कोई कारण-से उसका नाश होता है, ऐसा नहीं है। द्रव्य अकारण स्वतःसिद्ध अनादिअनन्त है। और उसका जो परिणमन है, वह स्वतः परिणमता है। वह किसीके आश्रय-से परिणमता है या कोई उसे मदद करे तो परिणमता है, कोई उसे विपरीत करे तो विपरीत हो और सुलटा करे तो सुलटा हो, ऐसा नहीं है। अकारण पारिणामिक द्रव्य-उसे कोई कारण लागू नहीं पड़ता। वह स्वयं परिणमता है।

स्वयं अनादिअनन्त स्वभावमें परिणमे उसमें विभाव अन्दर उसके स्वभावमें प्रवेश नहीं करता। ऐसा अकारण स्वयं अपने स्वभाव-से परिणमता है, ऐसा उसका स्वभाव है। और विभाव हो तो भी वह स्वयं स्वतंत्र परिणमता है। और स्वयं स्वभावको प्रगट करे तो भी स्वतंत्र है। उसमें निमित्त कहनेमें आता है, परन्तु वास्तवमें स्वयं परिणमता है। उसमें कोई कारण लागू नहीं पड़ता। तो ही उसे द्रव्य कहा जाय कि जिसे कोई कारण लागू नहीं पड़ता। कोई निमित्तके आश्रय-से परिणमे, किसीकी मदद-से परिणमे तो उस द्रव्यकी द्रव्यता ही नहीं रहती।

द्रव्य ही उसे कहते हैं कि जिसे किसीकी सहायताकी जरूरत न पड़े। उसका नाम द्रव्य है। वह द्रव्य अनादिअनन्त स्वतःसिद्ध अकारण परिणमता है। वह उसका स्वभाव है। स्वयं अपना स्वभाव किसी भी प्रकार-से तोड़ता नहीं है। ऐसे तो परिणमता है, परन्तु विभावमें भी कर्मका निमित्तमात्र है। स्वयं परिणमता है। स्वभावमें पलटता है वह स्वयं-से पलटता है, स्वभाव तरफ भेदज्ञान करके। उसमें देव-गुरु-शास्त्र निमित्त होते हैं। परन्तु उपादान स्वयंका है।

वह अकारण पारिणामिक द्रव्य है कि जिसे कोई कारण लागू नहीं पड़ता। अभी तक जीव स्वभाव तरफ क्यों पलटता नहीं? वह उसका स्वयंका कारण है, किसीका कारण नहीं है। उसे कोई दूसरेका कारण लागू नहीं पड़ता। स्वयं अपने ही कारण-से विभावमें परिणमे, अपने कारण स्वभावमें परिणमे। ऐसा अकारण पारिणामिक द्रव्य है। ऐसा उसका परिणमन स्वभाव स्वतःसिद्ध है। कोई उसे परिणमन करवाता नहीं और किसी अन्य-से उसका नाश नहीं होता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४७

मुमुक्षु :- परमपारिणामिकभावमें पारिणामिक शब्द तो परिणाम सूचक लगता है। तो ध्रुव निष्क्रिय स्वभावरूप जानपना जो है, उसमें परिणाम माने क्या? जानपनामें परिणाम क्या?

समाधान :- अनादिअनन्त है। पारिणामिकभाव ... स्वयं स्वभावरूप परिणमता है। उसमें जो विभावकी क्रिया, निमित्तकी क्रियाओंका परिणमन नहीं है। परन्तु स्वयं निष्क्रिय (है), परिणामको सूचित करता है। निष्क्रिय अपने स्वभावको सदृश्य परिणाम-से जो टिकाये रखता है। परिणाम है, परन्तु वह परिणाम ऐसा परिणाम नहीं है कि जो परिणाम दूसरेके आधार-से या दूसरे-से परिणमे ऐसा परिणाम नहीं है, निष्क्रिय परिणाम है। वह परिणाम शब्द है, परन्तु मूल स्वभाव-से उसे कोई अपेक्षा-से निष्क्रिय कहनेमें आता है। निष्क्रिय परिणाम कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- कूटस्थ शब्द इसमें इसके साथ कैसे बिठाना?

समाधान :- कोई अपेक्षा-से उसे कूटस्थ कहनेमें आता है। पारिणामी स्वभाव है वह कार्यको सूचित करता है। इसलिये .. टिकाये रखता है। इसलिये वह ध्रुव है। और ध्रुव होने पर भी जो उत्पाद-व्ययरूप परिणमता है। ऐसे उत्पाद-व्यय और ध्रुव, तीनोंका सम्बन्ध है। तीनों अपेक्षायुक्त हैं। अकेला ध्रुव नहीं होता, अकेले उत्पाद-व्यय नहीं होते। उत्पाद किसका होता है? जो ध्रुव, जो है उसका उत्पाद है। व्यय भी जो नहीं है, उसका व्यय क्या? इसलिये उसकी पर्यायका व्यय होता है। उत्पाद भी जो है उसका उत्पाद होता है। इसलिये है, उसमें तो बीचमें सत् तो साथमें आ जाता है। ध्रुव तो सत् है।

जो नहीं है उसका उत्पाद नहीं होता। जो नहीं है उसका व्यय होता नहीं। जो है उसमें कोई परिणामका उत्पाद और कोई परिणामका व्यय होता है। है उसका होता है। इसलिये ध्रुवता टिकाकर, उत्पाद और ध्रुवता टिकाकर व्यय होता है। जो असत्- जो जगतमें नहीं है, उसका उत्पाद नहीं होता। जो नहीं है, उसका कहीं नाश नहीं है। जो सत् है, उस सत्का उत्पाद और जो है उसमें व्यय होता है। इसलिये उसमें ध्रुवमें उत्पाद-व्ययकी अपेक्षा साथमें है।

मुमुक्षु :- ध्रुव बिना अकेले उत्पाद-व्ययका विचार करना भी व्यर्थ है।

समाधान :- व्यर्थ है। ध्रुव बिना अकेला उत्पाद-व्यय क्या? कहीं असत्का उत्पाद नहीं होता। जो नहीं है, उसका व्यय नहीं होता, जो है उसका व्यय होता है। ध्रुवता टिकाकर उत्पाद और व्यय होते हैं। पर्यायका उत्पाद-व्यय है और द्रव्य स्वयं टिकता है।

मुमुक्षु :- वस्तुका बंधारण पहले जानना चाहिये। तो वह बंधारण कैसा? वस्तुका बंधारण किसे कहते हैं?

समाधान :- वस्तु किस स्वभाव-से है? वह किस प्रकार-से नित्य है? किस प्रकार-से अनित्य है? किस अपेक्षा-से नित्य है? किस अपेक्षा-से अनित्य? उसका उत्पाद-व्यय क्या? उसका ध्रुव क्या? उसका द्रव्य क्या? उसे गुण क्या? उसकी पर्याय क्या? द्रव्य कैसा स्वतःसिद्ध अनादिअनन्त है? वह सब उसका बंधारण है। द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय और स्वतःसिद्धपना अनादिअनन्त, आदि सब उसका बंधारण है। फिर द्रव्य, उसमें विभाव कैसे हुआ? उसका स्वभाव कैसे प्रगट हो? मूल वस्तु, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय उसका-द्रव्यका बंधारण है। उसका कोई कर्ता नहीं है, स्वयं स्वतःसिद्ध वस्तु है। वह उसका बंधारण है।

मुमुक्षु :- कोई पर्याय शुद्ध हो या अशुद्ध हो, वह ध्रुवमें-से तो निकलती नहीं है। निकले तो ध्रुव खाली हो जाय। तो फिर स्वभाव पर दृष्टि जाय तो ही पर्यायमें शुद्ध अंश प्रगट हो, उसका क्या कारण?

समाधान :- ध्रुवमें-से नहीं निकलती है अर्थात् जो वस्तु स्वयं अनन्त शक्ति-अनन्त गुण-से भरी वस्तु है। दृष्टि स्वभाव पर जाय, उसमें गुण पारिणामिकभाव है, उसमें पर्याय प्रगट होती है। ध्रुव खाली नहीं हो जाता। अनन्त काल परिणमे तो भी द्रव्य कहीं खाली नहीं हो जाता। परिणमे तो भी ज्योंका त्यों रहता है। ऐसी द्रव्यकी कोई अचिंत्यता है। उसमें अनन्त गुण हैं। उन गुणोंकी पर्याय-उसका कार्य होता ही रहता है। यदि कार्य न हो तो वह गुण कैसा? वह ऐसा कूटस्थ नहीं है। तो फिर द्रव्य पहचानमें ही न आये। द्रव्य अकेला कूटस्थ हो और परिणमे ही नहीं, तो वह द्रव्य पहचानमें नहीं आता कि यह चेतन है या जड़ है। द्रव्य यदि परिणमे नहीं तो पहचान ही नहीं हो। अकेला कूटस्थ हो तो।

कूटस्थ तो (इसलिये कहते हैं कि) तू पर्याय पर या भेद पर दृष्टि न कर। दृष्टि एक अखण्ड जो एकरूप वस्तु है उस पर दृष्टि कर। द्रव्यका जो पारिणामिक स्वभाव है उसका नाश नहीं होता। द्रव्यकी द्रव्यता कहीं चली नहीं जाती। द्रव्य परिणमता है। उस पर दृष्टि करे तो द्रव्य जिस स्वभावरूप हो उस स्वभावरूप परिणमता है। उसकी दृष्टि विभाव तरफ है तो विभावकी पर्याय होती है और स्वभाव पर दृष्टि जाय तो

स्वभावकी पर्याय हो। तो भी उसका जो स्वभाव है, द्रव्य द्रव्यत्व छोड़ता नहीं, द्रव्य द्रव्यरूप तो परिणमता ही है। अकेला कूटस्थ हो तो द्रव्यकी पहचान ही न हो। द्रव्य द्रव्यका कार्य करता ही रहता है। स्वभाव पर दृष्टि जाय तो स्वभावका कार्य होता रहे। स्वयं सहज होता रहता है। उसे बुद्धिपूर्वक या विकल्पपूर्वक करना नहीं पड़ता सहज ही होता है। द्रव्य परिणमता ही रहता है।

मुमुक्षु :- पहले जो आपने कहा कि कथंचित् परिणामी है, उसके आधार-से यह...

समाधान :- कथंचित् परिणामी और कथंचित् अपरिणामी। परिणामी है, द्रव्य परिणमता है। स्वभाव पर दृष्टि जाय तो वह स्वतः स्वयं स्वभावरूप परिणमता है।

मुमुक्षु :- पदार्थका ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप प्रति समय बिना प्रयत्न परिणमन तो होता ही रहता है। क्योंकि परिणमना वह तो सिद्धांतिक बात है। तो शुभाशुभ रूप अथवा शुद्धरूप, किस प्रकार परिणमना उसमें जीवका कोई अमुक गुण निमित्त पड़ता है, अर्थात् ज्ञान या वीर्य?

समाधान :- उसमें उसका ज्ञायक जो असाधारण गुण है, उस ज्ञानको पहचाने, ज्ञायकताको पहचाने। और उस रूप प्रतीतको दृढ़ करे। दृष्टि अर्थात् प्रतीत। द्रव्य पर दृष्टि-प्रतीत करे, उस प्रकारका ज्ञान करे और उस जातका उसकी आंशिक परिणति होती है। इसलिये उसमें उसे ज्ञान, दर्शन और चारित्र तो (होते ही हैं)। विशेष चारित्र तो बादमें होता है। लेकिन उसमें दृष्टि, ज्ञान और उसकी आंशिक परिणति हो तो उसकी शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

दृष्टि तो एक द्रव्य पर है, उसके साथ उसे ज्ञान भी सम्यक् होता है। और परिणति भी उस तरफ झुकती है। तो उसमें-से शुद्ध पर्याय, द्रव्यमें-से सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आज आया था न? द्रव्य किसे कहते हैं? जो द्रवित हो सो द्रव्य। गुरुदेवकी टेपमें आया था।

मुमुक्षु :- जी हाँ, आज सुबह प्रवचनमें आया था।

समाधान :- हाँ, आज सुबह (आया था)। जो द्रवित हो उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य परिणमता है। स्वभाव पर दृष्टि जाय तो स्वभावरूप परिणमता है। विभावमें दृष्टि है तो विभावकी पर्यायें होती हैं। स्वभाव पर दृष्टि जाय तो स्वभावकी पर्यायें होती हैं। बाकी वस्तु तो पारिणामिकभाव-से अनादिअनन्त एकरूप सदृश्य परिणाम-से परिणमता है। वह कोई अपेक्षा-से कूटस्थ और कोई अपेक्षा-से परिणामी, कोई अपेक्षा-से अपरिणामी है।

मुमुक्षु :- अकेला कूटस्थ मानें तो सब भूल होती है।

समाधान :- अकेला कूटस्थ हो तो उसमें कोई वेदन भी नहीं होगा, स्वानुभूति

भी नहीं होगी। किसी भी प्रकारका गुणका कार्य (नहीं होगा)। जो केवलज्ञान प्रगट होता है वह भी नहीं होगा, चारित्र नहीं होगा, कुछ नहीं होगा। यदि अकेला कूटस्थ हो तो कोई कार्य ही द्रव्यमें नहीं होगा। अकेला कूटस्थ हो तो। कथंचित् परिणामी, अपरिणामी है।

सिद्ध भगवान केवलज्ञान प्राप्त करके, स्वरूपमें उन्हें परिणामीपना, परिणाम परिणमते ही रहते हैं। उन्हें प्रत्येक गुण पूर्ण हो गये। तो भी प्रत्येक गुणका कार्य अगुरुलघु स्वभावके कारण सब परिणमते ही रहते हैं। अनन्त काल पर्यंत परिणमे तो भी उसमें-से खाली ही नहीं होता, उतनाका उतना रहता है। ज्ञान अनन्त काल पर्यंत परिणमे, आनन्द अनन्त काल पर्यंत आनन्दका सागर परिणमता है, तो भी उसमें-से कम होता ही नहीं, उतनाका उतना रहता है। ऐसी द्रव्यकी अचिंत्यता है। ऐसा ही कोई द्रव्यका अचिंत्य पारिणामिक स्वभाव है। और साथमें अपरिणामी है कि जिसमें-से कुछ कम नहीं होता, परिणमे तो भी।

मुमुक्षु :- प्रमाणके विषयका द्रव्य लें तो कथंचित् कूटस्थ और कथंचित् परिणामी कह सकते हैं, परन्तु जो ध्रुवत्व भाव है उसे भी कथंचित् कूटस्थ और कथंचित् परिणामी कह सकते हैं?

समाधान :- दृष्टि एक द्रव्य पर जाती है, उसमें कोई भेद नहीं पड़ता है। इसलिये दृष्टिकी अपेक्षा-से तो... दृष्टि जहाँ जाय वहाँ ज्ञान सम्यक् होता है। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें ही होते हैं। अकेली दृष्टि हो तो दृष्टि सम्यक् होती ही नहीं। दृष्टि का विषय ही ऐसा है कि एक पर दृष्टि करे। ज्ञानका विषय ऐसा है कि वह दोनोंको जाने। परन्तु दृष्टि सम्यक् तब होती है कि जब उसके साथ ज्ञान हो तो। ज्ञान दूसरा काम करे और दृष्टि दूसरा काम करे, ज्ञान मिथ्या हो और दृष्टि सम्यक् हो ऐसा नहीं बनता।

प्रमाणज्ञानका मतलब वह कोई जूठा नहीं है। वह यथार्थ ज्ञान है। दृष्टिका विषय ऐसा है। दृष्टि एक पर ही होती है। परन्तु ज्ञान उसके दोनों पहलूओंका विवेक करता है। दोनों पहलूओंका विवेक साधक दशामें साथमें ही होता है। साधक दशामें दोनोंका विवेक न हो तो उसकी साधक दशा ही जूठी होगी। एक पर ही दृष्टि हो तो उसमें चारित्रदशा या केवलज्ञान या कुछ नहीं होगा। दृष्टि-सम्यग्दर्शन जहाँ हुआ वहाँ सब पूरा हो जायगा। अभी साधक दशा अधूरी है। ज्ञान सब विवेक करता है। दृष्टिको पूजनिक कहनेमें आता है।

प्रमाणको पूजनिक कहोगे तो ये सब चारित्रकी पर्याय, केवलज्ञानकी पर्याय कोई पूजनिक नहीं होगी। मुक्तिके मार्गमें दृष्टि मुख्य है, इसलिये उसे पूजनिक (कहते हैं)। (क्योंकि) मुक्तिका मार्ग उससे प्रारंभ होता है। अतः उसे पूजनिक (कहकर, ज्ञानको

गौण) करनेमें आता है। परन्तु व्यवहारमें तो केवलज्ञानकी कैवल्य दशा, वीतराग सर्वज्ञदेव (हैं)। साधक दशा जिसने पुरुषार्थ करके प्रगट की, वह सब पूजनिक कहनेमें आता है। मुनि दशा पूजनिक कहनेमें आती है। अतः दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें ही होते हैं। अकेली दृष्टि हो और ज्ञान यदि विवेक न करे तो वह दृष्टि जूठी ठहरेगी।

दृष्टिका विषय ऐसा है कि एक पर, एकको विषय करे। और ज्ञान सब विवेक करे। और दृष्टि बिनाका ज्ञान भी यथार्थ नहीं है। दृष्टि मुख्य हो, परन्तु उसके साथ ज्ञान हो तो उन दोनोंका सम्बन्ध है। यदि अकेला होगा तो गलत होगा। दृष्टिमें कूटस्थ आया इसलिये वह सच्चा और ज्ञानमें कथंचित् परिणामी और अपरिणामी आया, इसलिये वह जूठा, ऐसा नहीं है।

कूटस्थ तो (इसलिये कहते हैं कि), दृष्टि मुक्तिके मार्गमें मुख्य है इसलिये। तूने अनादि काल-से यह सच्चा और यह सच्चा, यह भी सच्चा और यह भी सच्चा, ऐसा किया और यथार्थ समझा नहीं, इसलिये उस प्रमाणको ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु दृष्टिपूर्वकका जो प्रमाणज्ञान है वह तो यथार्थ है। दृष्टिने विषय किया अखण्डका, अखण्डकी दृष्टि बिना मुक्तिका मार्ग होता नहीं। परन्तु साथमें जो ज्ञान रहता है, वह दोनोंका-द्रव्य और पर्यायका विवेक करता है। इसलिये वह प्रमाण भी यथार्थ है। उसके पहलेका प्रमाण कोई ऐसा कहता हो कि निश्चय सच्चा और व्यवहार भी सच्चा, ऐसा करता हो तो वह यथार्थ नहीं है। परन्तु दृष्टिपूर्वकका ज्ञान है वह यथार्थ है।

मुमुक्षु :- राग-द्वेष होते हैं, वह न हो उसका उपाय बताईये।

समाधान :- राग-द्वेष न हो,.. पहले उसका भेदज्ञान करना पड़ता है। जबतक वह रागकी दशामें खड़ा है, उसकी रागकी रुचि कम हो जानी चाहिये। मेरा वीतरागी स्वभाव मैं जाननेवाला हूँ। ये राग मेरा स्वरूप नहीं है। और चैतन्यका ज्ञायक स्वभाव है वह मेरा स्वभाव है। ऐसे स्वभावको पहचानकर रागकी रुचि कम करे तो वह मन्द होता है। बाकी उसका नाश पहले नहीं होता, पहले उसका भेदज्ञान होता है कि ये राग मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न जाननेवाला, मैं वीतरागी स्वभाव हूँ। इसलिये उसे भिन्न करनेका प्रयत्न करे। भिन्न करनेका प्रयत्न करे तो वह मन्द होता है। पहले उसका भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करना कि मैं ज्ञायक हूँ और ये राग-द्वेष हैं। उसकी एकत्वबुद्धि तोड़नेका प्रयत्न करना।

मुमुक्षु :- दूसरा प्रश्न है कि स्वाध्याय करने बैठे तो थोड़ी देर मन पिरोता है, परन्तु बीचमें दूसरे विकल्प आते हैं, तो वह विकल्प न आये उसका उपाय क्या है?

समाधान :- उसे बदलते रहना बारंबार, विकल्प आये उसे (बदलकर) बारंबार स्वाध्यायमें चित्त लगाना। अनादिका अभ्यास है इसलिये दूसरे विकल्प आ जाय तो

उसे बारंबार बदलते रहना। श्रुतके चिंतवनमें उपयोगको लगाना। विचारमें लगाना, उसीमें स्थिर न रहे तो भले ही शुभभावमें (रहे), विचारको बदलते रहना। उसका प्रयत्न करना। अनादिका अभ्यास है इसलिये बीचमें आ जाय तो उसे बदलते रहना। बदलनेका प्रयत्न करना कि यह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। इस प्रकार बारंबार उसे बदलते रहना और शास्त्रके अध्ययनमें चित्त लगाना। एकमें ही स्थिर न रहे तो गुरुदेवके, जिनेन्द्र देवके, श्रुतके विचारोंको बदलते रहना, एकमें चित्त स्थिर न रहे तो। ध्येय एक (होना चाहिये कि) मैं शुद्धात्माको कैसे पहचानूँ।

मुमुक्षु :- उलझन मिटनेका यह एक ही स्थान है?

समाधान :- गुरुदेवने बहुत मार्ग बताया है, परन्तु ग्रहण स्वयंको करना पड़ता है। अपूर्व रुचि अंतरमें जागे और गुरुदेवने कहा वह आशय ग्रहण हो तो अंतरमें पलटा हुए बिना रहे नहीं। शास्त्रमें आता है, तत्प्रति प्रीति चित्तेन, वार्तापि ही श्रुता। वह वार्ता भी अपूर्व रीत-से सुनी हो। गुरुदेवने जो वाणीमें (कहा), उनका जो आशय था (उसे ग्रहण करे) तो वह भावि निर्वाण भाजन है। परन्तु जो मुमुक्षु हो उसे ऐसे भी संतोष नहीं होता। मैं अंतरमें कैसे आगे बढ़ूँ? जिसे रुचि जागृत हो, उसे आत्मा अंतरमें मिले नहीं तबतक संतोष नहीं होता। भले वार्ताकी अपूर्वता लगी, परन्तु स्वयंको अन्दर जो चाहिये वह प्राप्त न हो तबतक मुमुक्षुको संतोष नहीं होता।

जिसने गुरुदेवको ग्रहण किया, उनका आशय समझा वह भावि निर्वाण भाजनं। परन्तु मुमुक्षुको अंतरमें संतोष नहीं होता। जबतक अन्दर आत्म स्वरूप जो संतोषस्वरूप है, जो तृप्तस्वरूप है, जिसमें सब भरा है, ऐसा चैतन्यदेव प्रगट न हो तबतक उसे पुरुषार्थ होता नहीं, तबतक उसे शान्ति नहीं होता। और करनेका वह एक ही है। अभ्यास उसीका करना है, बारंबार उसका अभ्यास (करना)। मन्द पड़े तो भी बारंबार उसका अभ्यास करना। बारंबार उस तरफ ही जाना है। अनादिका अभ्यास है इसलिये उस अभ्यासमें जाय तो भी अंतरमें तो स्वयंको ही पलटना है।

अंतरके अभ्यासको बढ़ा दे और दूसरे अभ्यासको गौण करे तो अंतरमें-से प्रगट हुए बिना नहीं रहता। बारंबार मैं ज्ञायकदेव हूँ, ये विभाव मेरा स्वभाव ही नहीं है। ऐसे अंतरमें यदि स्वयं जाय, बारंबार ज्ञायकदेवका अभ्यास करे तो ज्ञायकदेव प्रगट हुए बिना नहीं रहता। उसका अभ्यास बारंबार छूट जाय, मन्द पड़ जाय तो भी बारंबार करता रहे। अनादिका अभ्यास है, पुरुषार्थकी मन्दता-से उसमें जुड़ जाय तो एकत्वबुद्धिको बारंबार तोड़ता रहे। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे बारंबार अभ्यास करता रहे। दिन और रात उसीका अभ्यास, उसके पीछे पड़े तो वह प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४८

मुमुक्षु :- परम उपकारी, परम पवित्र आत्मा, परम पूज्य भगवती मातानी पवित्र सेवामां। हे भगवती माता! आ भरत सदाय आपना दर्शन करवा खूब-खूब उत्सुक रहता है। यह जीव आपके मुख-से धर्मके दो शब्द सुननेके लिये अत्यंत तरसता रहता है। आपकी मुलाकातके वक्त खड़े होनेका मन नहीं होता। हमारा प्रेम अति भावावेशमें आपको दर्शा नहीं सकते। नेत्र अश्रु-से भर जाते हैं। इसलिये आज अत्यंत गद्गदित होकर मेरे भावावेशको इस पत्र द्वारा दर्शाये बिना रह नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेव द्वारा जो अपूर्व प्रेम ज्ञानी भगवंतोंके प्रति प्रगट हुआ है, वह अब हृदयके पातालको तोड़कर बाहर आया है। लाचार हूँ, भगवंत! मैं लाचार हूँ। मैं कोई अवज्ञा, अविनय करता होऊँ तो हाथ जोड़कर प्रथम ही क्षमायाचना करता हूँ।

ऐसे तो आश्चर्य जैसा है कि मन-से तो सदा ही आपको साक्षात् दंडवत् प्रणाम ही होते हैं। पूज्य गुरुदेवकी सातिशयता युक्त वाणी-से मोहकी केलेके वृक्षकी पुष्ट हुयी गाँठ इतनी कमज़ोर होने लगी है कि अहंकार, अभिमान, घमंड इत्यादि सब मेरेमें चूर-चूर हो रहे हैं। इसलिये तनकर चलनेकी शक्ति वहाँ सोनगढ़में कहाँ है? ज्ञानियोंके चरणोंमें छोटे पिल्लूकी भाँति लोट लूँ, ऐसे भाव निरंतर वेदनमें आते हैं। कमाल है, माता!

धन्य हो माता! चौदह ब्रह्माण्डके अनन्ता अनन्त जीव सुखके नाम पर जो सरासर दुःख भोगते हैं, ऐसेमें आप स्व ब्रह्माण्डमें आनन्दकी घूंट पी रहे हो। जो अनन्त जीव नहीं कर सके, उस कार्यको आपने सहज साध्य किया। पूज्य गुरुदेव तो कहते थे कि आपको ऐसी स्वरूपधारा वर्तती है कि यदि आपका पुरुषका देह होता तो भावलिंगी सन्त बनकर वनमें विचरते होते। अहो..! आपकी यह स्वानुभव दशाके प्रेमी, हमें अत्यंत प्रेम प्रगट होता है।

एक स्त्री पर्याय होनेके बावजूद गज़ब पुरुषार्थका प्रारंभ किया है। पुरुष नाम धारण करनेवाले हमको अत्यंत-अत्यंत धिक्कार उत्पन्न होता है कि ऐसा नाम धारण करनेके लायक हम वास्तवमें नहीं है। जगतकी रचना भी, माता! अहो! भगवती माता! कितनी विचित्र है कि जिन्हें अणुमात्र नहीं चाहिये, उनके आँगनमें पुद्गलोंके ठाठकी रचना

हो गयी है। त्रेसठ शलाका पुरुषोंको जगतका अलभ्य वैभव सहज ही प्राप्त होता है कि जो नियम-से मोक्ष जानेवाले हैं।

श्री तीर्थंकरके जन्मके समय रत्नोंकी वृष्टि सहज ही बरसती है। गज़बका सिद्धान्त हुआ कि ये पुद्गल जिन्हें नहीं चाहिये, वह उनके पास ही है। उनके सच्चे स्वामी तो समकिती भगवंत ही हैं। माता! हमारे पास जो धन-दौलत, वैभव जो कुछ भी है, वह सब आपका ही है, आपका ही है। हम पापी इस बातको समझते नहीं है और झहरीले नागकी भाँति धन-दौलतको हमारा समझकर, उसके मालिक बनकर रक्षा करनेकी कोशिष करते हैं। अरे..! पश्चातापसे भरे नेत्र-से आपके समक्ष क्षमा चाहता हूँ, क्षमा चाहता हूँ। इस बालकका सर्वस्व आपका है।

इसलिये मुमुक्षु जन आपको हीरे-रत्नसे वधाते हैं। अरेरे..! मैं तो आपको अनन्त कोहिनूर हीरे-से वधाऊँ तो भी कम है। मेरी शक्ति होती तो आपकी वाणी जहाँ भी खीरे वहाँ रत्नोंकी वृष्टि सदा करता रहता। ऐसे भाव आये बिना नहीं रहते। परन्तु पूज्य गुरुदेव द्वारा जाना है कि मेरी सम्यक् रत्नकी पर्याय प्रगट करुं, तभी आपको सत्यरूपसे वधाने जैसा आनन्द होगा। अद्भुत अद्भुत बातें हैं।

इस सुवर्णपुरीकी ... निश्चय-व्यवहारकी परिपूर्ण सिद्धि है। सूक्ष्म भेदरूप बातें तो यहीं सुनने मिली है। जिसने भगवान आत्माको उपादेय माना है, लक्ष्यमें लिया है, जिसे संपूर्ण वीतरागता अपना ध्येय लगता है, उस मुमुक्षुको वीतरागके ऐसे प्रतिकोंके प्रति अद्भुत प्रेम उत्पन्न होता है। अरे..! पागल हो जाते हैं।

नंदीश्वर द्वीपमें समकिती पैरमें घुँघरुं बान्धकर भगवान समक्ष नाच उठते हैं। हमें तो इस घोर कलिकालमें, गहनतम अन्धकारमें आप ही एक दीपक समान हों। भारतके एक कोने-से दूसरे कोने-में जाओ, अरे..! पूरी दुनिया फिर लो, आप जैसे ज्ञानी भगवन्त कहीं मिले ऐसा नहीं है। निमित्तकी इतनी विरलतामें आपको देखकर हम पागल-पागल हो जाते हैं। कोई अबूध जीव उसे व्यक्तिमोह भी कहते हैं। परन्तु हमारी यह परिणति विद्वत्तासे पारको प्राप्त हो ऐसा नहीं है। अनुभवप्रधान परिणति है। जो समझेगा वह भाग्यशाली होगा।

अरे..! ऐसे तो माता! समाजमें सिद्धान्तके भेद भी उत्पन्न होने लगे हैं। वस्तुको विपरीत रूपसे प्ररूपित की जाती है। हम सब मान छोड़कर आप जैसे श्रुतकेवलीके समक्ष बैठें तो क्षणमात्रमें सब समझमें आ जाय। परन्तु प्रतिष्ठाका मोह और क्षयोपशमके अभिमानमें इस तरह सबका इकट्ठा होना मुश्किल है। परन्तु हमें तो यह बात समझमें आ गयी है कि सूईकी नोंक पर रहे .... असंख्यात शरीरमें-से मात्र एक शरीरके जीव भी मोक्षको प्राप्त नहीं होनेवाले हैं, ऐसेमें आपने अभूतपूर्व विरल ऐसे मोक्षमार्गको

टिकाया है, यह कोई कम आश्चर्यकी बात है?

ऐसे निकृष्ट कालमें भावलिंगी संतोंके दर्शन भी जहाँ नहीं होते हैं, वहाँ आप एकमात्र ऐसे समकिती भगवंतको हम कैसे छोड़ सकते हैं? हम तो आपके चरणोंमें ही आयुष्य पूर्ण करनेकी इच्छा रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवने कहा है कि तू तेरे भगवान आत्माकी शरण ले ले। वह भगवान आत्मा फिर एक समयमात्र भी विरह नहीं करवायेंगे। माता! वह भगवान आत्मा ग्रहण नहीं हो रहा है और हमारी उलझनका कोई पार नहीं है। कहीं रुचता नहीं है, हर जगह ज़हर-ज़हर लगता है। अरे..! महा भावलिंगी सन्त गजसुकुमाल पर तो अंगारेकी सिगडी मात्र चार-छः घण्टेके लिये होगी, हमारे सर पर तो इन विकल्पोंकी भट्ठी जल रही है, जलाती है, हैरान-परेशान करती है। हम वह गजसुकुमालकी सिगडी इच्छते हैं, परन्तु यह भट्ठी नहीं चाहिये, नहीं चाहिये। बचाओ उसके त्राससे, माता! बचाओ। ज्ञानी भगवंतके प्रति अपूर्व प्रेम प्रगट हुए बिना इस भट्ठीसे बचनेका उपाय प्राप्त नहीं होगा।

हमारी यह पामर दशा ही ऐसी सूचित करती है कि हमें आपके प्रति सच्ची भक्ति उत्पन्न नहीं हुयी है। धन्य हो वीतराग मार्ग! धन्य हो! शास्त्रमें मार्ग है परन्तु मर्म तो आप ज्ञानियोंके हृदयकमलमें विराजता है। सुवर्णपुरीके मुमुक्षु आप द्वारा प्रकाशित मर्मको प्राप्त हों, ऐसी भावना होती है। सन्त बिना अंतकी बातका अंत प्राप्त नहीं होता।

पूज्य गुरुदेव द्वारा मार्ग समझमें आनेके बाद यह मस्तक आप समकिती भगवंतको अर्पण हो गया। सच्चे देव-गुरु और धर्मके सिवाय प्राणान्त होने पर भी कहीं नमन हो सके ऐसा नहीं है। अरे..रे..! ऊपरका ३१ सागरोपमवाला देव आकर चक्रवर्ती जैसी ऋद्धि-सिद्ध दे तो भी कुछ नहीं हो सकता। क्योंकि आपके चरणोंमें नमा हुआ मस्तक कहीं और नहीं नमेगा।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यको आप मिले थे। भगवान त्रिलोकीना। सीमंधर भगवानकी भी आपने भेंट की थी। इन सब बातों-से नेत्र अश्रान्वित हो उठते हैं। इसलिये समयसार आदि शास्त्रोंके प्रति अपूर्व-अपूर्व प्रेम आता है। ऐसे अभूतपूर्व कर्ताका प्रमाण देकर हम पर जो अनन्त उपकार हुआ है, पूज्य गुरुदेवकी पहचान भी आपने ही करवायी कि यह तीर्थंकर द्रव्य है। हम पामर आपके अलावा यह बात कैसे जान पाते?

श्री तीर्थंकरके गमनमें देव एकके बाद एक कमलकी रचना करते हैं। हम मुमुक्षु आपके उपकारके बदलेमें आपके गमनके समय एकके बाद एक ... मुलायम पंथ बनाये तो भी कम है।

माता! लिखनेमात्र यह शब्द नहीं है। आपके परम उपकार-से भीगे हुये ये शब्द

हैं। बहुत लिख लिया। हमारी उलझन चाहे जितनी भी हो, परन्तु परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना चैन-से बैठ सके ऐसा नहीं है। इसलिये हम कहीं भी संतुष्ट हो ऐसा नहीं है। आपका दिलासा शान्ति देता है। परन्तु भगवान त्रिलोकीनाथको वश किये बिना चैन-से बैठ सके ऐसा नहीं है। इस संसार-से अब बस होओ, बस होओ। पूज्य श्रीमद्जी लिखते हैं कि प्राणियोंको मृत्युकालमें यम जितना दुःखदायक लगता है, उससे भी अधिक दुःखदायक हमें संग लगता है।

यह भावना भाकर मुझ-से हुआ अविनय, अशातना, अभक्ति हुयी हो तो उसके लिये सच्चे हृदय-से आपकी क्षमा चाहता हूँ। आपकी दीर्घायु इच्छता हूँ।

समाधान :- ... अंतरमें ज्ञायकदेव प्रगट न हो तबतक उसे संतोष नहीं होता। परन्तु शान्ति रखकर प्रयत्न करे। स्वयं बारंबार ज्ञायकदेवको ग्रहण करके उसका ही अभ्यास (करे)। उसका स्वभाव अंतरमें-से कैसे ग्रहण हो? बारंबार उसका अभ्यास करे। उलझनमें आकर ऐसी उलझनमें न आ जाय कि एकदम उलझ जाय। एकत्वबुद्धि तोड़नेका शान्ति रखकर प्रयत्न करना। प्रयत्न स्वयंको ही करनेका है।

अपनी भूल-से स्वयं विभावमें दौड़ जाता है। अपनी मन्दता-से। स्वयं पुरुषार्थ करे तो अपनी ओर आता है। इसलिये बारंबार गहराईमें जाकर स्वभावको ग्रहण करनेका बारंबार प्रयत्न करे। जैसे अनादिका अभ्यास सहज हो गया है, वैसे चैतन्यका अभ्यास उसे सहज जैसा, बारंबार सहज जैसा हो जाय ऐसा करे तो अंतरमें-से ज्ञायक प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

यथार्थ बादमें होता है, परन्तु पहले उसे दुष्कर पड़े ऐसे नहीं परन्तु बारंबार करे तो सहजपने पहचान होती है। ये अनादिका अभ्यास उसे सहज हो गया है। परन्तु चैतन्य तो अपना सहज स्वभाव है, परन्तु वह दुष्कर हो गया है। अपना सहज अपनेमें-से प्रगट हो ऐसा है, तो भी उसे दुष्कर हो गया है। परन्तु बारंबार उसका अभ्यास करे तो वह प्रगट हुए बिना नहीं रहता। उसका अभ्यास, उसका परिचय बारंबार ज्ञायकका करे तो प्रगट हुए बिना नहीं रहता। बाहर-से देव-गुरु-शास्त्रका परिचय और अंतरमें चैतन्यका परिचय।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको भी मार्गके क्रमका सेवन करना पड़ता है। तो मुमुक्षुओंको ऐसे क्रमका सेवन करना पड़ता होगा? या शीघ्र प्राप्त हो जाय ऐसा भी है?

समाधान :- शीघ्र प्राप्त हो सकता है, लेकिन उसके पुरुषार्थकी मन्दता है। एक ही उपाय है-भेदज्ञानका। जो एकत्वबुद्धि हो रही है उसे, चैतन्य ज्ञायक मैं भिन्न हूँ और यह भिन्न है। विभाव और स्वभाव दोनोंको भिन्न-भिन्न करना। उसमें यथार्थ रुचि, यथार्थ महिमा, लगन लगनी चाहिये। अंतरमें तत्त्व विचार करके स्वयंको स्वभाव ग्रहण

करनेकी ऐसी शक्ति अन्दर-से परीक्षक शक्ति प्रगट करनी चाहिये कि यह स्वभाव है, यह विभाव है। लेकिन वह हुये बिना नहीं रहता, अन्दर लगन लगे तो।

देव-गुरु-शास्त्र, गुरुदेव क्या कहते हैं, उस आशयको ग्रहण करनेके लिये स्वयं अन्दर तैयारी करे और अंतरमें चैतन्यका स्वभाव ग्रहण करनेकी ऐसी अपनी तीक्ष्ण तैयारी करे तो हुए बिना नहीं रहता। उपाय तो एक ही है। ज्ञायक तत्त्व भिन्न और यह विभाव स्वभाव भिन्न। मैं अखण्ड ज्ञायक हूँ। उसमें गुणभेद, पर्यायभेदका ज्ञान उसमें समा जाता है। यथार्थ दृष्टि हो तो उसमें सब ज्ञान समा जाता है। वह भेद, वास्तविक भेद गुणभेद, पर्यायभेदका ज्ञान करता है। बाकी विभाव है वह अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न पड़ जाता है।

मैं चैतन्यतत्त्व भिन्न हूँ। उसमें अनन्त गुण-से भरा हुआ अखण्ड चैतन्य हूँ। उसमें कोई भेदभाव नहीं है। परन्तु वह लक्षणभेद और पर्यायभेदका ज्ञान करता है। मार्ग तो एक ही है-भेदज्ञान करनेका उपाय। परन्तु उसके लिये उसे तैयारी और अपनी पात्रता तैयार करनी पड़ती है।

एक आत्मार्थका प्रयोजन है। बाकी सब लौकिक प्रयोजन उसके आगे गौण हो जाते हैं, छूट जाते हैं। एक आत्मार्थका प्रयोजन रहता है।

मुमुक्षु :- .. इस कालमें आपकी बात ऐसी है। लेकिन परिणमन नहीं हो रहा है।

समाधान :- स्वयंको करना है। बारंबार उसका घोलन, मनन आदि करना है।

मुमुक्षु :- ऐसे पूजा करनी चाहिये, ऐसा ही करना चाहिये। सर्व प्रथम दृष्टिका विषय ही ग्रहण करना?

समाधान :- रुचि तो स्वभावको ग्रहण करनेकी होती है। परन्तु जबतक नहीं होता है, तबतक बाहरमें अशुभभाव-से बचनेके लिये शुभभाव आये बिना रहते नहीं। वह कहाँ खड़ा रहेगा? अंतरमें तो स्थिर होता नहीं, दृष्टि भी प्रगट नहीं हुयी है, तो लीनताकी बात तो बादकी है। दृष्टि अथवा लीनता अंतरमें जानेका कुछ प्रगट नहीं हुआ है, मात्र रुचि करता है। रुचि स्वभावको ग्रहण करनेकी है, परन्तु उसका उपयोग कहाँ स्थिर रहेगा? इसमें नहीं रहेगा तो अशुभमें जायेगा। शुभभावमें वह खड़ा रहता है।

स्वयंको प्रगट नहीं हुआ है, परन्तु जिसने प्रगट किया है (ऐसे) जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र पर उसे महिमा और भक्ति आये बिना नहीं रहती। महिमा और भक्ति आये इसलिये (कहता है कि) मैं किस तरह आपकी पूजा करुँ? किस तरह मैं भक्ति, सेवा करुँ? मैं मेरेमें तो कुछ प्रगट नहीं कर सकता हूँ, परन्तु आपने जो किया उसका मुझे आदर है। इसलिये उसे बीचमें पूजा, भक्ति आदि आता है। अमुक ऐसा करना ही चाहिये, ऐसा नहीं, परन्तु उसे ऐसी भावना आती है। उसे अशुभकी रुचि नहीं

है, इसलिये शुभभावमें आता है। उसे शुद्धात्माका ध्येय होता है। शुभको सर्वस्व मान ले तो वह गलत है। उसे श्रद्धा (हो जाय कि) शुभमें सब आ गया और उसमें मेरा धर्म हो गया। ऐसा माने तो गलत है। परन्तु अन्दर शुद्धात्मा प्रगट करनेका (ध्येय है)। शुभभाव-से भी मैं भिन्न हूँ। श्रद्धा तो ऐसी है, परन्तु उसमें वह टिक नहीं पाता, इसलिये शुभभावमें, जिस पर स्वयंको प्रेम है, जिसने प्रगट किया, भगवानने संपूर्ण प्रगट किया, गुरुदेव साधना करते हैं और शास्त्रोंमें उसकी-आत्माकी सब बातें आती हैं। उनके लिये मैं क्या करुँ? क्या करुँ और क्या न करुँ? इसलिये उसे पूजा, भक्ति, सेवा इत्यादि सब आता है। गुरु-सेवा, जिनेन्द्र पूजा आदि आता है। स्वाध्यायादि आता है। वह खड़ा रहे तो कहाँ खड़ा रहेगा?

मुमुक्षु :- अशुभमें चला जायगा।

समाधान :- अशुभमें चला जायगा। इसलिये वह महिमामें खड़ा रहता है। जिनेन्द्रकी महिमा, गुरुकी महिमा। स्वयंको चैतन्यकी महिमाके पोषणके लिये उसमें खड़ा रहता है। उस राग-से अंतर कुछ प्रगट होता है, ऐसी उसकी श्रद्धा नहीं है। परन्तु वह बीचमें आता ही है, आये बिना नहीं रहता। उसे ऐसे तीव्र कषाय नहीं होते, मन्द पड़ जाते हैं। इसलिये जिनेन्द्र पूजा, गुरु-सेवा आदि सब आता है। जिसे गृद्धि नहीं होती। जो सब विभाव छोड़नेके लिये तैयार होता है, उसे वह सब मन्द पड़ जाता है। मुझे आत्मा कैसे प्रगट हो? ऐसी रुचि है। मैं शुद्धात्मा निर्विकल्प तत्त्व हूँ, मुझे कोई विकल्प नहीं चाहिये। निर्विकल्प तत्त्व कैसे प्रगट हो? वह प्रगट नहीं हुआ है। उसकी श्रद्धा यथार्थ रूप-से जो होनी चाहिये, वह भी नहीं है। मात्र बुद्धि-से (नक्की) किया है। तो उसे शुभभावमें जिनेन्द्र पूजा या गुरु-सेवा आदि सब आता है। स्वाध्याय।

शास्त्रमें आता है न? श्रावकके कर्तव्य। स्वाध्याय, ध्यान आदि। परन्तु वह ध्यान यथार्थ ध्यान नहीं होता। शुभभावरूप होता है। (शुभभाव-से) धर्म होता है ऐसा वह नहीं मानता। परन्तु श्रावक बहुभाग पूजा, भक्ति, सेवा आदिमें जुड़ते हैं।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेवको तो सुवर्णपुरीके प्रति बहुत प्रेम था। तो आपके पास तो देवके भवमें-से आते होंगे। हमें तो बहुत विरह लगता है कि गज़ब हो गया। तीर्थंकरका द्रव्य इस कालमें हमारे नसीबमें कहाँ? हमारे भाग्यमें कहाँ?

समाधान :- महाभाग्य भरतक्षेत्रका। गुरुदेवका यहाँ अवतार हुआ। इतना उपदेश उनका आया, कोई अपूर्व वाणी बरसी। उनका तीर्थंकरका कोई अपूर्व द्रव्य था। कितने लाखों, क्रोड़ो जीवोंको मार्ग बताया। गुजराती, हिन्दी सबको। (कितनोंका) निवास यहाँ सुवर्णपुरीमें हो गया। बरसों तक यहाँ ४५-४५ साल (वाणी बरसायी)। विहार हर जगह करते थे।

मुमुक्षु :- देवके भवमें रागकी भूमिकामें उन्हें हमारा स्मरण नहीं आता होगा?

समाधान :- वह तो उपयोग रखे तो देखे कि ये सब भक्त यहाँ भरतक्षेत्रमें थे। ... गुरुदेव देवके रूपमें ही थे। पहनावट देवके रूपमें थी। देवके रूपमें पहचान सके कि ये गुरुदेव ही हैं। और गुरुदेवने कहा। ऐसी भावना हो कि गुरुदेव.. चित्र आदि.. स्वाध्याय मन्दिर गयी थी। गुरुदेव यहाँ नहीं है। गुरुदेव कैसे आये? गुरुदेव मानों देवके रूपमें स्वप्नमें यहाँ पधारे। भाव ऐसा हुआ कि गुरुदेव! पधारो, पधारो। गुरुदेवने ऐसा कहा कि, ऐसा कुछ नहीं रखना, मैं तो यहीं हूँ। गुरुदेवने कहा, बहिन! मैं तो यहीं हूँ, ऐसा कुछ नहीं रखना।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२४९

मुमुक्षु :- .. वह स्वरूप सुननेको हम बहुत उत्सुक हुए हैं। तो कृपा करके विस्तार-से वह स्वरूप समझाइये।

समाधान :- आचार्यदेवने तो बहुत बताया है। आचार्यदेवकी तो क्या बात करनी। गुरुदेवने उसका रहस्य खोला। गुरुदेवने तो महान उपकार किया है। गुरुदेवने जो स्वानुभूतिकी बात प्रगट करी, पूरे हिन्दुस्तानके-भारतके जीवोंको जागृत किया है। गुरुदेवका परम-परम उपकार है। मैं तो गुरुदेवका दास हूँ। गुरुदेवने बहुत समझाया है। गुरुदेवने तो इस भरतक्षेत्रमें आकर महा-महा उपकार किया है। गुरुदेव तो कोई... उनकी वाणी अपूर्व थी। उनकी वाणीमें अकेला आत्मा ही दिखता था। वे आत्माका स्वरूप ही बताते थे। गुरुदेवका द्रव्य तीर्थंकरका द्रव्य था। और इस भरतक्षेत्रमें आकर महान-महान उपकार किया है।

आचार्यदेवकी तो क्या बात करनी? एकत्व-विभक्त आत्माका स्वरूप, आत्माका एकत्व और परसे विभक्त, ऐसे आत्माको जानना वही मुक्तिका मार्ग है। स्वरूप-से एकत्व है और विभाव-से विभक्त है, ऐसे आत्माको पहचानना। ऐसे आत्माको पहचाननेका जीवने प्रयत्न नहीं किया है। और आत्मामें ही सर्वस्व है। और जगतमें कोई वस्तु आश्चर्यभूत नहीं है। आश्चर्यभूत एक आत्मा ही है। अतः एक आत्माको ही ग्रहण करना। और उसे ही ग्रहण करनेका अभ्यास करना। वही जीवनमें कर्तव्य है।

आत्मा एकत्व शुद्धात्माको ग्रहण करनेका अभ्यास करना। प्रत्येक कार्यमें शुद्धात्मा कैसे ग्रहण हो? एक शुद्धात्माको ग्रहण करनेका अभ्यास करना। वह शुद्धात्मा ऐसा है। छः द्रव्यमें भी एक शुद्धात्मा, नव तत्त्वमें एक शुद्धात्मा, दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें एक शुद्धात्मा, हर जगह एक शुद्धात्माको ही ग्रहण करना। और वह पर-से विभक्ति, विभाव-से विभक्त है। भेदभावों-से भी वह भिन्न है। तो भी उसमें बीचमें साधकदशाकी पर्यायें आये बिना नहीं रहती। उसका ज्ञान करना।

शुद्धात्माको ग्रहण करके यथार्थ प्रतीति करनी। उसमें लीनता करने-से स्वानुभूति प्रगट होती है। और वह स्वानुभूति आत्माका निज वैभव है। और वह वैभव पहले आंशिकरूपसे प्राप्त होता है, बादमें पूर्ण वीतराग दशा हो तब पूर्ण वैभव प्रगट होता है।

आत्मा अनन्त-अनन्त शक्तियों-से भरा है। उसमें कोई अद्भुत वैभव भरा है। वह वैभव तो जब स्वानुभूति होती है तब प्राप्त होता है। पहले बारंबार शुद्धात्माको ग्रहण करनेका अभ्यास करना। वही कर्तव्य है। आचार्यदेव कहते हैं कि भेदज्ञान ऐसे भाना कि अविच्छिन्न धारा-से भाना, ऐसा भेदज्ञान। शुद्धात्माका एकत्व और पर-से विभक्त। ऐसी भेदविज्ञानकी धारा स्वयंको ग्रहण करके, परसे विभक्त, ऐसी भेदज्ञानकी धारा ग्रहण करने-से अंतरमें आत्माका वैभव प्रगट होता है।

पहले सम्यग्दर्शन हो तो भी अभी लीनता करनी बाकी रहती है। चारित्रदशा बाकी रहती है। चारित्रदशामें तो मुनिराज क्षण-क्षणमें अंतर स्वानुभूतिमें बारंबार लीन होते हैं और लीनता बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान प्रगट होता है। आत्माकी विभूति कोई अद्भुत है। आत्मा एक समयमें पहुँचनेवाला, स्वयं अपने क्षेत्रमें रहकर पूर्ण लोकालोकका ज्ञान, उस ओर उपयोग नहीं रखता, परन्तु सहज ज्ञात हो जाता है। ऐसा आत्माका वैभव अनन्त ज्ञानसागर, अनन्त आनन्दसागर-से भरा हुआ, ऐसी अनन्त शक्तियोंसे भरा हुआ आत्मा (है)। उस आत्माको ग्रहण करना, शुद्धात्माको ग्रहण करना। वही जीवनका कर्तव्य है। और गुरुदेवने वही बताया है। वही करनेका है।

बाह्य क्रियाकाण्डमें जीव अनन्त काल-से रुक गये हैं। गुरुदेवने अंतर दृष्टि बतायी। अंतर दृष्टि प्रगट करनी। एक शुद्धात्माको ग्रहण करना। ज्ञान सबका करना। और चारित्र-लीनता करनेका प्रयत्न (करना)। दृढ़ प्रतीति करके (उसमें लीनता करनी)। आत्मा स्वयं स्वरूपमें लीन हो जाय तो अशरण नहीं है, वह तो शरणरूप है। आचार्य देव कहते हैं कि बाहर-से सब छूट जाय तो अंतरमें किसका शरण है? आत्मा शरणरूप है। आत्मामें अनन्त विभूति भरी है। वह विभूति तुझे प्रगट शरणरूप, आश्चर्य करनेरूप, जगतमें आश्चर्य करनेरूप हो तो आत्मा ही है। बाकी बाहरका सब आश्यर्च छूट जाना चाहिये।

'रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी, सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो।' वैमानिक देवकी ऋद्धि भी पुद्गलका स्वभाव है। जगतमें कोई भी वस्तु आश्चर्यभूत नहीं है। अद्भुत वस्तु हो तो एक आत्मा ही है। ऐसी स्वभावकी महिमा, स्वभावका ज्ञान कर। पर-से विभक्त और स्व-से एकत्व, ऐसा यथार्थ ज्ञान करके, चारों पहलू-से ज्ञान करके प्रतीति करनी। उसकी लीनता करनेका प्रयत्न करना, उसका अभ्यास करना। वही जीवनका कर्तव्य है और वही करने जैसा है। गुरुदेवने बताया है और वही बताया है। गुरुदेवका परम उपकार है। गुरुदेवने चारों तरफ-से स्पष्ट करके बताया। निज वैभव, अन्दरमें जाय तब निर्विकल्प स्वरूपमें निर्विकल्प परिणति जो प्रगट होती है, उसमें आत्माकी अनन्त विभूति है वह प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ... और आपके मुख-से स्पष्टता भी बहुत हुयी। फिर भी बहुभागको ऐसा लगे कि करने जैसा है वह सरल भाषामें हमें समझमें ऐसी कोई बात कहीए, तो हम हमारा काम कर सके।

समाधान :- गुरुदेवने बहुत स्पष्ट और सरल करके बताया है। बहुत सूक्ष्मरूपसे भेद कर-करके बहुत स्पष्ट किया है। किसीको कहीं कोई भूल रहे ऐसा (नहीं है)। बरसों तक वाणी बरसायी है। गुरुदेवका तो अपूर्व उपकार है। उनका उपकार तो... उसकी अवेजमें कुछ देना महा असंभव है। उनका उपकार तो परम उपकार है।

गुरुदेवने कहा है कि एक आत्मतत्त्व चैतन्यतत्त्व भिन्न है उसे पहचानना। यह चैतन्यतत्त्व अनादिअनन्त शाश्वत है। अनन्त जन्म-मरण करते-करते जन्म-मरण हुए तो भी आत्मा तो ज्योंका त्यों शाश्वत ही है। वह आत्मा कैसे पहचानना, वह मार्ग गुरुदेवने बताया। सर्व-से भिन्न आत्मा (है)। शरीर-से भिन्न, विभावस्वभाव-विभावसे भिन्न, अन्दर जो चैतन्यतत्त्व है उसका स्वभाव भिन्न है। विभाव-से चैतन्यका स्वभाव भिन्न है। उसे पहचाननेका प्रयत्न करना और वह कोई अपूर्व और अनुपम वस्तु है। जगतमें कोई अनुपम नहीं है, एक आत्मा ही अनुपम है। उस अनुपम तत्त्वकी अंतरमें अपूर्वता लगे और गुरुदेवने ऐसी अपूर्व वाणी बरसायी है कि वह अपूर्व तत्त्व एकदम ग्रहण हो जाय।

उस अपूर्व तत्त्वके लिये रुचि, लगन, महिमा आदि सब करने जैसा है। वह कैसे पहचानमें आये उसके लिये। अंतर चैतन्य पर दृष्टि करके, गुणके भेद, पर्यायके भेद पड़े लेकिन उसमें नहीं रुककर, एक शाश्वत चैतन्य पर दृष्टि करनी। सबका ज्ञान रखना। ज्ञान आत्मामें-से प्रगट होता है, सम्यग्दर्शन आत्मामें-से प्रगट होता है, चारित्र आत्मामें-से प्रगट होता है। आत्माका जो स्वभाव है उसहीमें-से प्रगट होता है, बाहर-से कुछ आता नहीं।

बाहर-से उसका साधन देव-गुरु-शास्त्र उसके साधन हैं। परन्तु गुरुदेवने बताया, तेरे चैतन्य पर दृष्टि कर तो उसमें-से सब प्रगट होता है। उसमें अनन्त भरा है। आत्माका ज्ञान स्वभाव अनन्त है। वह अनन्त, जिसका नाश न हो, ऐसा अनन्त स्वभाव, अपार स्वभाव आत्मामें है। आत्माका जो स्वभाव-ज्ञायक स्वभाव है, उसे पहचान। आनन्द उसमें भरा है। सब उसमें ही भरा है और उसमें-से ही प्रगट हो ऐसा है। बारंबार उसीका अभ्यास करने जैसा है। उसका रटन, उसका मनन, सब वही करने जैसा है।

एक चैतन्य कैसे पहचानमें आये? जागते-सोते, स्वप्नमें एक चैतन्य-चैतन्यकी पहचान कैसे हो? ऐसी भावना और बारंबार वही करने जैसा है। बाकी जगतमें कुछ भी सर्वस्व नहीं है। शुभभावनामें एक देव-गुरु-शास्त्र और अन्दर शुद्धात्माका ध्येय। वही जीवनमें होना चाहिये, बाकी सबकुछ गौण है। उसके साथ कोई प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन एक

आत्माके साथ होता है, अन्य किसीके साथ प्रयोजन नहीं है। एक देव-गुरु-शास्त्रका प्रयोजन और अन्दर शुद्धात्माका प्रयोजन, यह एक प्रयोजन रखने जैसा है, बाकी कुछ रखने जैसा नहीं है।

गुरुदेवने जो उपाय है वह एकदम सरल करके बताया है। बाह्य क्रियामें बाहरमें कहीं भी धर्म नहीं है। धर्म जिसमें है उसमें-से ही प्रगट होता है। स्वभावमें-से स्वभाव प्रगट होता है। बाहर विभावमें-से नहीं आता है, स्वभावमें-से स्वभाव आता है। जिसका जो स्वभाव हो, उसमें-से ही प्रगट होता है।

पानी स्वभाव-से शीतल है, परन्तु अग्निके निमित्त-से उसमें उष्णता दिखती है। परन्तु निमित्तके संयोग-से उसमें ऐसी उष्णताकी परिणति होती है। वैसे आत्मा स्वयं स्वभाव-से शीतल चैतन्य शीतलता-से भरा है। विभावके निमित्त-से, परका निमित्त है इसलिये उसमें अनेक जातकी राग-द्वेष आदि कालिमा दिखती है। परन्तु अंतर दृष्टि करे तो वह शीतल स्वभाव-से भरा है।

जितना ज्ञानस्वभाव आत्मा है उतना ही स्वयं है। उसके अलावा सबकुछ उससे भिन्न है। ऐसा आत्माका स्वभाव, चैतन्यका स्वभाव ग्रहण कर लेना। सूक्ष्म उपयोग करके आत्माको ग्रहण करना, वही करने जैसा है। उसमें ही आनन्द, उसमें ही सुख, सब उसमें ही भरा है।

मुमुक्षु :- अन्दरमें जाय तो अकेला शुद्धात्मा और बाहर आये तो देव-शास्त्र-गुरु, दोनोंको खड़ा रखा।

समाधान :- हाँ, बस, दोको खड़ा रखा। बाकी किसीके साथ कुछ प्रयोजन नहीं है। दूसरा सब तो लौकिक है, लौकिक चलता रहे। बाहरमें देव-गुरु-शास्त्र। जिनेन्द्र जगतमें सर्वोत्कृष्ट हैं। गुरुदेव सर्वोत्कृष्ट और शास्त्र सर्वोत्कृष्ट हैं। वह श्रुतका चिंतवन। बाकी अंतरमें एक शुद्धात्मा सर्वोत्कृष्ट, वह सर्वोत्कृष्ट है। बाकी किसीके साथ कोई प्रयोजन नहीं है।

आचार्यदेव कहते हैं न? मुझे किसीके साथ प्रयोजन ना रहे। एक आत्मा और मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ वहाँ देव-गुरु-शास्त्र। आलोचना पाठमें (कहते हैं कि), मेरे गुरुने मेरे हृदयमें जो उपदेशकी जमावट की है, उस जमावटके आगे इस पृथ्वीका राज मुझे प्रिय नहीं है। पृथ्वीका राज तो नहीं है, परन्तु तीन लोकका राज मुझे प्रिय नहीं है। एक गुरुका उपदेश। वही मेरे हृदयमें, उपदेशकी जमावट है। उस उपदेश अनुसार मेरी परिणति हो जाय, बस। गुरुदेवने ऐसी उपदेशकी जमावट (की है), उतनी वाणी बरसायी है। उस उपदेशकी जमावटको स्वयं परिणतिमें प्रगट करे तो उसमें सब आ जाता है। उसके आगे पृथ्वीका राज या तीन लोकका राज, आचार्यदेव कहते हैं कि, मुझे कुछ

नहीं चाहिये।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रका विवेक कौन-से गुणस्थान तक रहता होगा?

समाधान :- आखिर तक रहता है। मुनिओंको देव-गुरु-शास्त्रका प्रयोजन रहता है। बुद्धिपूर्वकमें छठवें (तक और) सातवें गुणस्थानमें अबुद्धिपूर्वक हो जाता है। सातवें-से आठवें, नौंवेमें अबुद्धिपूर्वक (होता है)। वीतराग दशा होती है बादमें छूट जाता है। तबतक रहता है।

देव-गुरु-शास्त्रका प्रयोजन, जिसे आत्माकी रुचि हो, रुचिवालेको देव-गुरु-शास्त्रका प्रयोजन होता है। सम्यग्दर्शनमें भी देव-गुरु-शास्त्रका प्रयोजन होता है। और चारित्र दशा मुनिको प्रगट हो तो भी उसे देव-गुरु-शास्त्रका प्रयोजन होता है। महाव्रत और अणुव्रत, श्रावकोंको अणुव्रत और मुनिओंको महाव्रत (होते हैं)। तो उसके साथ भी देव-गुरु-शास्त्रका प्रयोजन होता है।

आचार्यदेव प्रवचनसारमें कहते हैं, मैं जो दीक्षा लूँ, उसके साथ पंच परमेष्ठी भगवंत मेरे साथ रहना। मैं आप सबको बुलाता हूँ, आप मेरे साथ रहना। आचार्य भी ऐसा ही कहते हैं। मुनिओं और आचार्य भी देव-गुरु-शास्त्रको साथ ही रखते हैं। अंतर छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुले तो भी उन्हें शुभभावनामें देव-गुरु-शास्त्र होते हैं। उनकी भावनामें होते हैं। बाहरका संयोग (न भी हो, परन्तु) उनकी भावनामें ऐसा होता है कि देव-गुरु-शास्त्र मेरे साथ रहना। ऐसा कहते हैं। तो सम्यग्दर्शनमें तो होते ही हैं और रुचिवालेको भी होते हैं।

मुमुक्षु :- सब परमात्माको युगपद् और एक-एकको, प्रत्येकको-प्रत्येकको नमस्कार किये हैं।

समाधान :- हाँ, प्रत्येक-प्रत्येकको, युगपद्को। प्रत्येक-प्रत्येक, भिन्न-भिन्न। सबको साथमें और सबको भिन्न-भिन्न नमस्कार करता हूँ। ऐसी आचार्यदेवको अंतरमें भक्ति आ गयी है। छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं तो भी।

मुमुक्षु :- साधककी भूमिकामें, आपके बोलमें तो लिया है कि ज्ञान एवं वैराग्य साथमें होते हैं। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सब साथमें लेते हो।

समाधान :- सब साथमें होता है।

मुमुक्षु :- सब साधकोंको सब साथमें होता है?

समाधान :- प्रत्येक साधकको साथमें होता है। प्रारंभमें ज्ञान, वैराग्य, विभाव-से विरक्ति, स्वभावका यथार्थ ज्ञान करके ग्रहण करना। दृष्टि, ज्ञान और विरक्ति, उसके साथ भक्ति भी होती है। शुभभावनामें उसे भक्ति होती है। जिसने जो प्रगट किया, सर्वोत्कृष्टि जिसने वीतराग दशा प्रगट की, उसका स्वयंको आदर है। उन पर उसे आदर

आता है। गुरु जो साधना करते हैं, उन पर उसे आदर है। और शास्त्रमें जो मार्ग बताया है, उन सब पर उसे आदर रहता है। उसे शुभभावनामें रहता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी साधना, गुरुदेवकी साधनाभूमि..?

समाधान :- सब पर भाव रहता है। भगवंतोंने जो साधना करी, वह साधना। भगवान, गुरु और शास्त्र सब पर (भाव रहता है)। जहाँ वे रहे, जहाँ उन्होंने साधना की, उन सब पर भाव रहता है। जैसे तीर्थक्षेत्र हैं, जहाँ-से तीर्थंकर मोक्ष पधारे, उसे तीर्थक्षेत्र कहते हैं कि जहाँ उन्होंने केवलज्ञान प्रगट किया, जहाँ-से निर्वाणको प्राप्त हुए, वह सब तीर्थक्षेत्र सम्मेदशीखर आदि कहनेमें आते हैं।

इस पंचमकालमें गुरुदेव सर्वस्व थे। गुरुदेवने इस पंचमकालमें पधारकर उन्होंने जो मार्ग बताया, वे गुरु जहाँ विराजे, उन्होंने जहाँ साधना करी, वह भूमि भी वंदनीय है। वह भी आदरने योग्य है। वह सब। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका सबका उसे आदर होता है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शनके बिना सब (शून्य है), तो सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं? और उसे गृहस्थ दशामें संसारमें मग्न जीव क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं?

समाधान :- सम्यग्दर्शनके बिना बाहरका बहुत किया। क्रियाएँ करे, बाहरका आत्माको पहचाने बिना सब करे, बिना अंकके शून्य हैं। मूलको पहचानता नहीं है। वस्तु कौन है? आत्मा कौन है? मोक्ष किसका करनेका है? क्या है? सबको पहचाने बिना बाहरका अनन्त काल बहुत किया। व्रत लिये, मुनिपना लिया, सब लिया परन्तु अंतर आत्माको पहचाना नहीं तो बाहरकी क्रिया, मात्र शुभभाव किये तो पुण्यबन्ध हुआ। परन्तु आत्माको पहचाने बिना आत्माकी मुक्ति नहीं होती और स्वानुभूति सम्यग्दर्शन बिना सब व्यर्थ है।

मुक्ति तो अंतर आत्मामें ही होती है। कहीं बाहर जाय इसलिये मोक्ष हो, ऐसा नहीं है। अंतर आत्मा मुक्त स्वभाव है उसे पहचाने, उसे भिन्न करे। उसका भेदज्ञान करे तो उसकी मुक्ति होती है। और सम्यग्दर्शन भी वही है। भेदज्ञान करके आत्माकी स्वानुभूति हो वही सम्यग्दर्शन है। स्थूलपने माने कि नौ तत्त्वकी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है। नौ तत्त्वकी श्रद्धा अर्थात् आत्माकी पहचान करनी चाहिये। ऐसे भेद-भेद करके विकल्प-से आत्माको पहचाने ऐसा नहीं। ये जीव, ये अजीव, आस्रव, संवर, बन्ध (ऐसे नहीं)। मूल आत्माका स्वभाव पहचानना चाहिये।

आत्मा कौन है? एक अभेद चैतन्यतत्त्व है। अनन्त गुण-से भरा आत्मा, उसे विभाव-से भिन्न, शरीर-से भिन्न, सब-से भिन्न एक आत्मा है। विभाव, विकल्प जो है वह भी आत्माका स्वभाव नहीं है। उससे भी आत्मा भिन्न है। वह ज्ञानस्वभाव-ज्ञायक स्वभाव आत्मा है, उसे भिन्न करके उसका भेदज्ञान करे। और अंतरमें विकल्प रहित निर्विकल्प

तत्त्व आत्मा है, उसकी स्वानुभूति हो वह सम्यग्दर्शन है। और वह सम्यग्दर्शनकी श्रद्धा, सम्यग्दर्शनकी श्रद्धा उतना ही नहीं परन्तु उसकी स्वानुभूति-आत्माकी स्वानुभूति वह सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन हो, फिर उसमें लीनता बढ़ती जाय तो उसमें केवलज्ञान प्रगट होता है।

सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्माकी स्वानुभूति। जैसा आत्मा है वैसा अनुभव हो, स्वानुभूति हो, आत्मदर्शन हो उसका नाम सम्यग्दर्शन। आत्मदर्शन बिना बाहरका सब करे उसमें पुण्यबन्ध होता है, देवलोक हो, परन्तु भवका अभाव नहीं होता। इसलिये सम्यग्दर्शन ही मुक्तिका उपाय है। आत्माकी स्वानुभूति हो, आत्माका दर्शन हो, वह प्रगट हो तो ही मुक्ति हो, अन्यथा आत्माको पहचाने बिना मुक्ति होती नहीं।

भेदज्ञान करे कि मैं भिन्न हूँ। मैं चैतन्य भिन्न हूँ, ये सब मेरे-से भिन्न है। मैं भिन्न हूँ, ऐसा भेदज्ञान करके अंतरमें जो स्वानुभूति हो वही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना जीव अनन्त काल रखड़ा है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२५०

मुमुक्षु :- शून्य क्या? एक अंक तो हुआ ही नहीं है। फिर ऊपरके शून्य क्या है? सब शून्य व्यर्थ हैं। बिना एकके सब शून्य व्यर्थ है, उसका अर्थ क्या?

समाधान :- मूल एक तो सम्यग्दर्शन है। वह यदि हो तो ही यथार्थ है। शून्य अर्थात् मात्र शून्य ही हुए। मूल जो वस्तु है उसकी पहचान नहीं की और अकेले शुभभाव किये, पुण्यबन्ध हुआ। आत्माका स्वभाव तो पहचानाच नहीं। इसलिये जो अंतरमें आत्माकी प्राप्ति होनी चाहिये वह तो होती नहीं। मात्र शून्य-ऊपरके शुभभावरूप शून्य किये। बिना एकके शून्य। बिना एकके शून्य किये तो उसे एक नहीं कहते, वह तो मात्र शून्य है। वह गिनतीमें नहीं आता।

एक हो तो उसके ऊपर शून्य लगाओ तो गिनतीमें आता है। बाकी अकेले शून्य गिनतीमें नहीं आते। वैसे शुभभाव किये, पुण्यबन्ध (हुआ), देवलोक हुआ। परन्तु आत्माकी पहचान, जो स्वानुभूति होनी चाहिये, वह आत्मा प्रगट नहीं हुआ तबतक सब शून्य हैं। आत्मा प्रगट हो तो ही वह यथार्थ है और तो ही मुक्ति होती है। आत्माकी पहचान बिना कहीं मुक्ति नहीं होती।

सम्यग्दर्शन होता है तो आंशिक मुक्ति होती है। फिर आगे बढ़े तो अन्दर चारित्र-लीनता बढ़ती जाय। बाहर-से चारित्र आये ऐसा नहीं, अंतरमें लीनता बढ़ती जाय तो वीतराग दशा और केवलज्ञान प्रगट होता है। बाहर-से त्याग किया, वैराग्य किया, परन्तु आत्माको पहचाना नहीं। आत्माको पहचाने बिना सब बिना एक अंकके शून्य जैसा है। मूलको पहचाना नहीं। वृक्षकी डाली, पत्ते सब इकट्ठा किया, परन्तु मूल जो है, उस मूलमें पानी नहीं डाला। तो वृक्ष पनपता नहीं।

मूल जो है, मूल चैतन्य स्वभाव-चैतन्य है उसे पहचानकर उसमें ज्ञान-वैराग्य प्रगट हो तो ही आत्मामें-से ज्ञान एवं चारित्र सब आत्मामें-से प्रगट होते हैं। बाहर-से प्रगट नहीं होता। अतः मूलको पहचाने बिना पानी पिलाना, उसमें वृक्ष पनपता नहीं। सब ऊपरके डाली-पत्ते ही हैं। डाली-पत्तेको पानी पीलाने-से वृक्ष नहीं होता, मूलको पीलाने-से होता है। बीज जो बोया, बीजको पानी पीलाने-से होता है। परन्तु बाहर ऊपर-से पानी पीलाये, सिर्फ पानी पीलाता रहे तो कहीं वृक्ष पनपता नहीं। अन्दर भेदज्ञान

करे तो आत्मा ज्ञानस्वभाव (है)।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ। आनन्दादि सब आत्मामें-से प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन हो इसलिये आत्माकी स्वानुभूति (होती है)। आत्माका ज्ञान, आत्माका आनन्द, आत्माके अनन्त गुणका वेदन जिसमें होता है। सुख, जो अनन्त सुख (प्रगट होता है), जगतके कोई पदार्थमें सुख नहीं है, ऐसा अनुपम सुख आत्मामें है। बाहरका सुख उसने कल्पितरूप-से माना है। वह तो आकुलता-से भरे हैं। अंतरका जो आत्माका सुख वह कोई अनुपम है। उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ता। ऐसा अनुपम सुख और आनन्द आत्मामें-से प्रगट होता है, वह सम्यग्दर्शनमें प्रगट होता है। वह बाहर-से नहीं आता।

मुमुक्षु :- भगवान-भगवान कहकर संबोधन करते थे। तो भगवान बनने-से पहले भगवान कहकर क्यों संबोधन करते होंगे?

समाधान :- भगवानस्वरूप ही आत्मा है। आत्मा अनादिअनन्त स्वभाव-शक्ति अपेक्षा-से भगवान ही है। प्रगट होता है अर्थात् उसकी पर्याय प्रगट होती है। बाकी वस्तु अपेक्षा-से आत्मा भगवान ही है। भगवानका स्वभाव है। उसकी शक्तिका नाश नहीं हुआ है। अनन्त काल गया तो भी उसमें अनन्त शक्तियाँ, ज्ञानादि अनन्त गुण उसमें भरे हैं, उसका नाश नहीं हुआ है। इसलिये आत्मा भगवान है, उसे तू पहचान। तू स्वयं शक्ति अपेक्षा-से भगवान ही है, ऐसा गुरुदेव कहते थे।

उस भगवानको तू भूल गया है, उसे तू पहचान। उसमें तू जा, उसमें लीनता कर, उसकी श्रद्धा कर-प्रतीत कर, ज्ञान कर तो वह प्रगट होगा, ऐसा कहते थे। वह प्रगह होता है, वह प्रगट भगवान होता है। बाकी शक्ति अपेक्षा-से तू भगवान ही है।

मुमुक्षु :- बिना पढ़े, अनपढ़ आदमीको भी सम्यग्दर्शन हो सकता है?

समाधान :- उसमें कहीं बाहरकी पढाईकी आवश्यकता नहीं है या ज्यादा जाने या ज्यादा शास्त्रोंका अभ्यास करे या उसे ज्यादा पढ़ाई हो तो हो, ऐसा कुछ नहीं है। मूल आत्माका स्वभाव पहचाने कि मैं ज्ञानस्वभाव ज्ञायक हूँ और ये सब मुझ-से भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान करके आत्माको पहचाने, मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको पहचाने तो उसमें पढाई कोई आवश्यकता नहीं है।

मूल वस्तु स्वभावको अंतरमें-से पहचानना चाहिये। उसकी रुचि, उसकी महिमा, उसकी लगन अंतरमें लगे और विभावमें कहीं चैन पड़े नहीं, बाहरमें (चैन) पड़े नहीं। ऐसी लगनी और महिमा यदि आत्मामें लगे तो अपने स्वभावको पहचानकर अंतरमें जाय तो उसे बाह्य पढाईकी आवश्यकता नहीं है।

शिवभूति मुनि कुछ नहीं जानते थे। गुरुने कहा, मारुष और मातुष। तो शब्द भूल

गये कि गुरुने क्या कहा था? औरत दाल दो रही थी। मेरे गुरुने ये कहा था, छिलका अलग और दाल अलग। ऐसे मासतुष-ये छिलका भिन्न और अन्दर (दाल भिन्न है)।

ऐसे आत्मा भिन्न है और ये विभाव जो रागादि हैं, वह सब छिलके हैं। उससे मैं भिन्न हूँ। ऐसा गुरुने कहा था। इस प्रकार आशय ग्रहण कर लिया। गुरुने जो शब्द कहे थे वह भी विस्मृत हो गये। परन्तु आशय ग्रहण किया कि मेरे गुरुने भेदज्ञान करनेको कहा था। राग भिन्न और आत्मा भिन्न। इसप्रकार अंतरमें मैं आत्मा भिन्न हूँ और ये विभाव भिन्न है, सब भिन्न है। ऐसा करके अंतरमें भेदज्ञान करके अंतरमें सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति कर लीन हो गये, स्वानुभूति प्रगट की। और अंतरमें इतने लीन हो गये कि उसीमें लीन होने-से केवलज्ञान प्रगट कर लिया। उसमें पढाईकी आवश्यकता नहीं है। प्रयोजनभूत तत्त्वको पहचाने उसमें पढाईकी आवश्यकता नहीं है।

भगवानका द्रव्य, भगवानके गुण। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्याय और मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय। जैसे भगवानके द्रव्य-गुण-पर्याय हैं, वैसे ही मेरे हैं। इस प्रकार भगवानको पहचाने, वह स्वयंको पहचाने। और स्वयंको पहचाने वह भगवानको पहचानता है। मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको पहचाने तो उसमें सब आ जाता है। एकको पहचानने-से सब ज्ञात हो जाता है। बाहरका सब जानने जाय और एकको नहीं जानता है तो कुछ नहीं जाना। एक आत्माको पहचाने तो उसमें सब ज्ञात हो जाता है।

मुमुक्षु :- शुभका विश्वास छोड़, माने क्या? शुभका विश्वास छोड़ना उसका अर्थ क्या?

समाधान :- शुभमें-से मुझे धर्म होगा। शुभमें-से मुझे कुछ लाभ होगा, ऐसी जो मान्यता है, वह विश्वास छोड़ दे। शुभ-से धर्म नहीं होता, शुभ बीचमें आता है। परन्तु शुद्धात्मा जो आत्मा है उससे धर्म होता है। धर्म अपने स्वभावमें रहा है, विभावमें धर्म नहीं है। धर्म स्वभावमें-से (प्रगट होता है)। जो वस्तु है, उसमें-से धर्म प्रगट होता है। शुभमें-से धर्म प्रगट नहीं होता, इसलिये उसका विश्वास छोड़ दे। बीचमें शुभभावना आती है।

अंतर आत्माकी जहाँ रुचि प्रगट हो, उसे देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति, महिमा आती है। जिनेन्द्र देव पर भक्ति, गुरु पर भक्ति, गुरुदेवने ऐसा मार्ग बताया, गुरुदेव पर भक्ति, शास्त्र पर भक्ति आती है। शुभभावना आती है। परन्तु मेरा स्वभाव शुद्धात्मा, उस शुद्धात्माका स्वभाव और ये शुभभाव दोनों भिन्न-भिन्न वस्तु है। ऐसी उसे श्रद्धा और रुचि होनी चाहिये। उसका विश्वास, उसमें सर्वस्वता नहीं मानता। परन्तु वह बीचमें आता है। देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति, महिमा बीचमें आये बिना नहीं रहती।

सम्यग्दर्शन हो तो भी देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और भक्ति होती है। और रुचिवानको

भी देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा होती है। मुनिराज होते हैं, छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूति और अंतर्मुहूर्तमें बाहर (आते हैं), ऐसी दशा होती है। तो भी उन्हें शुभभावना (आती है)। अभी न्यूनता है तो देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा मुनिराजको भी होती है। परन्तु उस पर वे विश्वास नहीं करते हैं कि इसमें धर्म होता है। धर्म मेरे स्वभावमें, स्वानुभूतिमें धर्म रहा है, स्वभावमें धर्म रहा है। परन्तु शुभभाव तो... देव-गुरु-शास्त्र तो साथ ही रहते हैं। देव-गुरु-शास्त्रकी भावना उसे साथमें रहती है, परन्तु पुरुषार्थ स्वयं-से करता है।

मुनिराज कहते हैं, मैं आत्मामें जा रहा हूँ। मैं दीक्षा लेता हूँ। उसमें सब पधारना। पंच परमेष्ठी भगवंतों मैं आप सबको निमंत्रण देता हूँ। मैं पुरुषार्थ करुँ उसमें मेरे साथ रहना। ऐसी शुभभावना आती है। परन्तु वीतराग दशाकी परिणति-से मुझे धर्म होता है, ऐसी मान्यता है। परन्तु भावना ऐसी आती है। उनकी लीनता, उनकी श्रद्धाकी परिणति तो विशेष है, मुनिराजकी। सम्यग्दर्शन है और स्वानुभूतिकी दशा क्षण-क्षणमें अंतर्मुहूर्तमें लीन होते हैं और अंतर्मुहूर्तमें बाहर आते हैं। तो भी शुभभावना ऐसी होती है।

मुमुक्षु :- सर्वज्ञकी स्थापना की है। जैनकुलमें जन्म लिया इसलिये सर्वको माने बिना भी नहीं चलता है। परन्तु सर्वज्ञको कैसे बिठाना, वही ख्यालमें नहीं आता है। आपने तो देखे हैं, तो कुछ..?

समाधान :- स्वयंको नक्की करना चाहिये। सर्वज्ञ तो जगतमें होते हैं। सर्वज्ञ स्वभाव आत्माका है। पूर्ण दशा जिसे प्रगट हो, उसे सर्वज्ञ-पूर्ण ज्ञान प्रगट हुए बिना नहीं रहता। पूर्ण साधना जो करे, ज्ञानस्वभावी आत्मा है। वह ज्ञान ऐसा है कि जो अनन्तको जाने। ज्ञानमें कहीं अपूर्णता नहीं होती कि इतना ही जाने और इतना न जाने, ऐसा तो नहीं होता।

यह ज्ञायक स्वभाव आत्मा पूर्णता-से भरा है। जिसे पूर्ण साधना प्रगट हुयी और पूर्ण कृतकृत्य दशा हो, उसकी ज्ञानदशा पूर्ण हो जाती है, उसमें कोई अल्पता नहीं रहती। एक समयमें लोकालोकको जाने, ऐसी साधना करते-करते ऐसी वीतराग दशा प्रगट हो, उसमें पूर्ण दशा प्रगट होती है कि जो सर्वज्ञता (है)। एक समयमें लोकालोकको जानते हैं। स्वयंको जानते हैं और अन्यको। अनन्त द्रव्यको, अनन्त आत्माको, अनन्त पुद्गलको, उनका भूत-वर्तमान-भविष्य सबको एक समयमें सबको जाने, ऐसा ही ज्ञानका कोई अपूर्व अचिंत्य सामर्थ्य है।

ऐसी सर्वज्ञता जगतमें होती है और ऐसा सर्वज्ञ स्वभाव जिसे प्रगट हुआ है, ऐसे महाविदेह क्षेत्रमें तीर्थंकर भगवंत, केवली भगवान विचरते हैं। अभी इस पंचकालमें सर्वज्ञता देखनेमें नहीं आती। बाकी महाविदेह क्षेत्रमें साक्षात् तीर्थंकर भगवान, सीमंधर भगवान

आदि बीस भगवान और केवली भगवंत सर्वज्ञपने विचरते हैं। पूर्ण ज्ञान जिसे प्रगट होता है। मुनिदशामें जो पूर्ण साधना करते हैं, उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुए बिना नहीं रहता। जिसकी साधना पूर्ण होती है, उसकी ज्ञानदशा भी पूर्ण हो जाती है।

आत्मा जब वीतराग होता है, तब पूर्ण स्वभाव प्रगट हो जाता है। अनन्त-अनन्त, जिसे कोई मर्यादा या सीमा नहीं होती। ऐसा अमर्यादित ज्ञान आत्मामें-से (प्रगट होता है) कि जो एक समयमें सब जान सकता है। स्वयंको जानता है और दूसरोंको भी जानता है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन प्रगट होने पूर्व तो सर्वज्ञको ओघे ओघे मानने जैसा लगता है।

समाधान :- ओघे ओघे अर्थात् विचार-से जान सकता है। सम्यग्दर्शनमें तो वह यथार्थ प्रतीत करता है कि मैं सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा ही हूँ और पूर्ण स्वभाव मेरे आत्माका है और वह प्रगट हो सकता है।

उसके पहले रुचिवाला भी विचार करके समझ सकता है। ओघे ओघे नहीं। जैसे आत्मा कोई अपूर्व वस्तु है। गुरुदेवने ऐसा मार्ग बताया। विचार-से ऐसा नक्की करता है कि आत्म स्वभाव कोई अलग है, सम्यग्दर्शन कोई अलग वस्तु है, ऐसे केवलज्ञानको भी वह विचार-से नक्की कर सकता है। ओघे ओघे नहीं, विचारसे, युक्तिसे, दलीलसे नक्की कर सकता है कि सर्वज्ञता जगतमें है।

मुमुक्षु :- विचार करने पर ऐसा बैठ सकता है?

समाधान :- हाँ, बैठ सकता है। शास्त्रमें दृष्टान्त आता है कि सर्वज्ञ नहीं है, ऐसा तू (किस आधार-से कहता है)? नहीं है, ऐसा कैसे नक्की किया? तुझे कोई सर्वज्ञता है? सर्वज्ञ है जगतमें।

सर्वज्ञ स्वभाव आत्माका है। जो ज्ञानस्वभावी आत्मा है, वह पूर्णको क्यों न जाने? जिसका स्वभाव ही जाननेका है, उसमें नहीं जानना आती ही नहीं। जो जाननेका स्वभाववान है, वह पूर्ण आराधना करे तो पूर्ण जानता है। उसमें नहीं जानता है, ऐसा आता ही नहीं। जो जाने वह पूर्ण जानता है। उसे सीमा, मर्यादा होती नहीं। सीमा नहीं होती, स्वभाव अमर्यादि है। जिसका जो स्वभाव हो, वह स्वभाव अमर्यादित होता है।

मुमुक्षु :- ... सर्वज्ञकी प्रतीत हो ऐसा है?

समाधान :- दर्शन करने-से प्रतीत हो वह अलग बात है। अभी सर्वज्ञके दर्शन, साक्षात् दर्शन होना पंचकालमें मुश्किल है। जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमाका दर्शन है। साक्षात् दर्शन, वह तो एक प्रतीतका कारण बने। परन्तु वह नहीं हो उस समय विचार, रुचिसे, विचारसे नक्की कर सकता है। भगवानके दर्शन, वह तो एक प्रतीतका कारण बनता है।

वह पुरुषार्थ करे तो भगवानका दर्शन तो कोई अपूर्व बात है। साक्षात् सर्वज्ञदेव

भगवानके दर्शन हो (अपूर्व है)। जो वीतराग हो गये हैं। जो जगत-से भिन्न, जिनकी ज्ञानदशा प्रगट हो गयी। वीतराग दशा, जिनकी मुद्रा अलग हो जाय, जिसकी .. अलग हो जाय, जिसकी वाणी अलग हो जाय, जो जगत-से अलग ही हैं। उनके दर्शन तो कोई अपूर्व वस्तु है। वह तो प्रतीतका कारण बनता है। वीतराग दशा, जो अंतर आत्मामें परिणमती है, जिन्हें बाहर देखनेका कुछ नहीं है। जिनकी मुद्रा अलग, जिनकी वाणी अभेद ॐ ध्वनि निकलती है। जिनकी चाल अलग हो जाती है। सबकुछ अलग। भगवान जगत-से न्यारे हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- राग हो इसलिये विचार आये। जो बनना होता है, वहाँ कोई उपाय नहीं है। जो बनना होता है वह बनता है। ऐसा हो कि ऐसा किया होता तो? ... परन्तु आयुष्य उस प्रकार पूर्ण होनेवाला था। उसमें किसीका उपाय कुछ काम नहीं आता। कोई चाहे जो करे। आयुष्य हो तो किसी भी प्रकार-से बच जाता है और यदि न हो तो किसीकी होशियारी कहीं काम नहीं आती।

मुमुक्षु :- यहाँ आकर बहुत समाधान हो गया।

समाधान :- (समाधान) किये बिना छूटकारा नहीं है। गुरुदेवने कहा है वही मार्ग ग्रहण करना। गुरुदेवने जो उपदेश दिया है, वही ग्रहण करने जैसा है। गुरुदेवने जो उपदेशकी जमावट की है, वह याद करने जैसा है।

समाधान :- ... ये जैनधर्म, जिनेन्द्र भगवानके .... इससे तो राजपदवी नहीं होती तो अच्छा था। .... भगवानका स्तोत्र आता है (उसमें आता है कि) जैनधर्मके बिना मैं जैनधर्म विहीन... जैनधर्म विहीन मेरा जीवन नहीं होता। धर्म तो मेरे हृदयमें हो। धर्म बिनाका जीवन तो ... जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्रकी भक्ति, भगवानके उत्सव, गुरुके उत्सव, शास्त्रका स्वाध्याय, वही जीवनका कर्तव्य है। और अन्दर आत्मा, आत्माका रटन, अध्यात्मकी बात, आत्माकी बातें, ऐसी अपूर्व बात, उसका स्मरण। वही जीवनका कर्तव्य है। सच्चा तो वह है।

बाकी सब बने, परन्तु वह सब भूलने जैसा है। अचानक बने इसलिये लगे, राग हो उतना, परन्तु भूलने जैसा है। राग हो इसलिये लगे। भाईको, बहनको सबको लगे, परन्तु बदलने जैसा है। शान्ति रखने जैसा है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- .. उसे कोई परिचय नहीं है, इसलिये अन्दर समाधान करनेकी शक्ति नहीं होती। गुरुका आश्रय और देवका आश्रय तो बड़ा आश्रय है। ... इसलिये अन्दर-से समाधान करनेका बल नहीं आया। ... कहाँ जाना? वहाँ कहीं सुख पड़ा है?

वह गति ही है। कौन-सी गति मिलेगी और कहाँ जाना है? वहाँ सुख थोड़ा ही है। .. श्रद्धा हो तो अन्दर समाधान रहे। आत्मा जहाँ भी जाय, वहाँ आत्मा तो शाश्वत ही है। कर्म जो है, वह कहीं भी साथमें ही आनेवाला है। दूसरे भवमें जाय इसलिये यहाँ जो कर्मका उदय आया वह उदय यहाँ पूरा हो जायगा? कर्मका उदय तो साथमें ही रहनेवाला है। इसलिये कर्मका उदय यहाँ भोगना या दूसरे भवमें भोगना, सब समान है। अतः यहाँ शान्ति-से भोग लेना।

कहते हैं न? बन्ध समय जीव चेतीये, उदय समय शा उचाट? जिस समय तेरे परिणाममें बन्ध होता है, उस वक्त तू विचार करना कि यह परिणाम मुझे न हो। मुझे देव-गुरु-शास्त्रके परिणाम हो। उस वक्त तू विचार करना। परन्तु जब कर्मका उदय आता है, जब बाहरमें उसका संयोग आवे, फेरफार हो प्रतिकूलताका, तब तू बदल नहीं सकता। तब तो शान्ति और समाधानके अलावा कोई उपाय नहीं है। अब-से मुझे ऐसे परिणाम न हो उसका ध्यान रख। बाकी उदय आनेके बाद हाथमें कुछ नहीं रहता।

ऐसा जीवन होना चाहिये कि देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति एवं आराधना, आत्माकी आराधना कैसे हो, उसके साथ। आत्माकी आराधना। गुरुदेवने, शास्त्रमें जो कहा, उसे आराधना कहते हैं। ऐसा जीवन होना चाहिये। इस पंचमकालमें ऐसे गुरु मिले, ऐसा मार्ग मिले, ऐसा समझना (मिले), आत्माकी बात कोई समझता नहीं था, आत्माकी बात गुरुदेवने समझायी। गुरुदेवने भगवानकी पहचान करवायी। भगवानका स्वरूप वीतराग होता है आदि सब गुरुदेवने (समझया)। पुण्यके कारण ऐसा योग मिला। उसमें स्वयंको अपनी आत्म आराधना करने जैसी है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२५१

समाधान :- ... गुरुदेवने धोध बरसाया है। इस पंचमकालमें इतना उपदेशका धोध इतने साल तक बरसाया, वह तो कोई महाभाग्यकी बात है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- सबको उस मार्ग पर ले आये। नानालालभाईको तो गुरुदेवका कितना था। उनके साथ ही रहते थे। यहाँ सब ऐसे ही आते हैं। गुरुदेवके प्रताप-से। सब बचपन-से ही ऐसे हैं। छोटे थे तब-से। वे कहते हैं, मुझे ऐसा लगता है। पूर्व और भविष्यके विशिष्ट व्यक्ति। गुरुदेवके प्रताप-से सब ऐसा ही है, समझ लेना। गुरुदेव स्वयं भगवानके पास-से आये। कोई विशिष्ट, गुरुदेव स्वयं ही विशिष्ट (थे)। तो उनके शिष्य विशिष्ट हों।

ये सब पूछते हैं। गुरुदेवकी वह सजावट की थी न? चित्र आदि देखने गयी थी। फिर वहाँ-से आकर पूरी रात (भाव हो रहे थे कि), यह सब सजावट की है, लेकिन गुरुदेव विराजते हों तो कैसा लगे! ऐसे विचार आते थे, ऐसे ही रटन चलता रहा। गुरुदेव हो, गुरुदेव हो तो यह सब शोभता है। फिर प्रातःकालमें स्वप्न आया, गुरुदेव देवके रूपमें ही थे। देवके रूपमें पधारे। फिर देवके वस्त्र, देवका रत्नमय पहनावट (था)। मुझे (ऐसे) हाथ करके कहा, बहिन! मैं तो यहीं हूँ, ऐसा मानना। तीन बार कहा। मैं तो यहीं हूँ, ऐसे ही मानना। तीन बार कहा। गुरुदेव देवके वस्त्रमें थे।

मैंने कहा, गुरुदेव! मुझे आपकी आज्ञा है ऐसा रखूँ, लेकिन ये सब दुःखी हो रहे हैं। गुरुदेव तब मौन रहे। फिर मैंने किसीको कुछ कहा नहीं था। परन्तु दूजके दिन वातावरण ही ऐसा हो गया था। सब आनन्दमय वातावरण हो गया था। गुरुदेव मानों विराजते हों, ऐसा वातावरण हो गया था। फिर कहा। ... गुरुदेव हैं, ऐसे पहचान ले। ज्ञानमें ऐसा होता है न कि गुरुदेव है, ऐसे देवके रूपमें पहचाने जाय। सब कहते थे, मुझे लगा कौन जाने? उसमें (विडीयोमें) ऊतरा उसमें ऐसा लगता था। मुझे लगा विडीयोमें ऐसा साक्षात् जैसे क्यों लगता है? ऐसा होता था। विडीयोमें ऐसा लगता था। मानों साक्षात् विराजते हों! ऐसा लगता था। परन्तु विडीयोमें मुझे कोई विचार नहीं था, ऐसे ही देखते-देखते गुरुदेवके फोटो आ रहे थे। उसमें एक फोटो ऐसा आया

तो, मानों साक्षात् गुरुदेव हैं! ऐसा विकल्प एकदम आ गया।

मुमुक्षु :- आपका विकल्प भी...

समाधान :- ऐसा हो गया। यहाँ आये, परन्तु इस पंचमकालमें दर्शन दुर्लभ है, ऐसा है।

समाधान :- ... विशिष्ट व्यक्ति हो, कुछ विशेषतावाली हो ऐसा समझ लेना। उसमें जो विशिष्टता है, उसमें कुछ विशिष्टता भरी है, भविष्यकी और भूतकालकी सब विशिष्टता है। ... पूर्व भवके संस्कार लेकर ही आये हैं। .. गुरुदेवके सान्निध्यमें ऐसी विशिष्टता उनमें रही है। गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य, महान समर्थ गुरुदेव हैं, उनके सान्निध्यमें जो विशिष्ट व्यक्तिके रूपमें है, तो उनमें कुछ विशिष्टता है ही, ऐसा आपको समझ लेना। गुरुदेव...

समाधान :- .. पुरुषार्थ हो न। स्वभावको जाने बिना कहाँ-से हो? स्वभाव क्या है यह जानना चाहिये। .. प्रत्येकमें अपना प्रयोजन होना चाहिये। ओघे ओघे बहुत बार किया है। परन्तु आत्माका ध्येय प्रत्येकमें होना चाहिये। प्रयोजन बिना सब किया है। आत्माका प्रयोजन होना चाहिये।

जैसा भगवानका आत्मा है, वैसा अपना आत्मा है। अपना स्वभाव जैसा भगवानका है, वैसा अपना है। ऐसा समझनेका प्रयोजन होना चाहिये। महिमावंत उन्होंने सब प्रगट किया-वीतराग दशा, केवलज्ञान (आदि)। भगवान महिमावंत हैं, ऐसा शक्ति-से अपना स्वभाव है, वह कैसे पहचाना जाय? शास्त्रमें द्रव्य-गुण-पर्यायकी बात आये। मैं चैतन्यद्रव्य हूँ। मेरेमें अनन्त गुण हैं, मेरेमें पर्याय हैं, वह किस तरह है? ऐसे अपना चैतन्यद्रव्य पहचाननेका प्रयोजन होना चाहिये।

चैतन्य भगवान, तू भगवान आत्मा है। तू तुझे देख, तू भगवान आत्मा है। शास्त्रमें आता है न कि आओ, यहाँ आओ। यह अपद है, तुम्हारा पद नहीं है। यह चैतन्यपद आत्माका है, उसे पहचानो।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रके बिना स्वयंको चले नहीं, यह तो आपने गज़बा बात कही।

समाधान :- मार्ग पर चलता हो, दूसरे गाँव जाता हो, चलता है अपने-से, परन्तु साथीको साथमें रखता है। ऐसे मैं भले ही मेरे-से प्रयत्न करुँ, परन्तु पंच परमेष्ठी भगवंत मेरे साथ पधारिये, मैं आपको साथमें रखता हूँ। आप जिस मार्ग पर चले उस मार्ग पर मुझे चलना है। मार्ग दर्शानेवालेको साथमें रखता है।

जिनेन्द्र भगवान, जिन्होंने मार्ग देखा है, गुरु जो मार्ग बता रहे हैं, आचार्य, उपाध्याय आदि सब साधना करते हैं, उन सबको मैं साथमें रखता हूँ। मैं मार्ग पर जाऊँ, मार्ग

दर्शनेवाले सबको मैं साथमें रखता हूँ। उनके बिना मुझे नहीं चलेगा। कोई कर नहीं देता, फिर भी मैं सबको साथमें रखता हूँ, आपके बिना नहीं चलेगा। जिनेन्द्र देव, गुरु मार्ग बताते हैं। आचार्य साधना करते हैं। मैं उन सबको साथमें रखता हूँ। मेरे हृदयमें विराजमान करके मैं मार्गको साधता हूँ।

(चैतन्य) द्रव्य शाश्वत है, उसे लक्ष्यमें लेकर उसकी प्रतीत, ज्ञान और चारित्रकी लीनता (हो), उन सबमें मैं देव-गुरु-शास्त्र भगवानको साथमें रखता हूँ। पहले सम्यग्दर्शन-से लेकर आखीर तक पंच परमेष्ठी भगवंत अपनी भावनामें साथमें होते हैं। सम्यग्दृष्टिको होते हैं, मुनिओं भी पंच परमेष्ठी भगवंतोंका स्मरण करते हैं। आचार्यदेव कहते हैं न कि, मैं दीक्षा लेने जा रहा हूँ, मैं सबको निमंत्रण देता हूँ। आचार्य, मुनिवर सब देव-गुरु-शास्त्रको साथमें ही रखते हैं।

शुभभावनामें पंच परमेष्ठी भगवंत। स्वरूपमें लीन हो जाय निर्विकल्प दशामें, बाहर आये तो उन्हें ऐसी भावना होती ही है। लीनता होती है, परन्तु शुभभावनामें यह होता है। पूरी दिशा बदल गयी है। अंतरमें चैतन्य तरफ दिशा हो गयी है, बाहरमें देव-गुरु-शास्त्र तरफ उसकी दृष्टि बदल गयी है। लौकिक पर-से दृष्टि छूटकर देव-गुरु-शास्त्र पर उसकी शुभभावना उस ओर आ गयी है। अंतरमें चैतन्य तरफ दिशा बदल गयी है।

मुमुक्षु :- विचार करते हैं तब ऐसा लगता है कि आप कुछ नयी बात करते हो, अलग ही बात लगती है। हमें ऐसा लगता है कि आपका अनन्त उपकार है।

समाधान :- जो पहचानता है, वह उसे भिन्न करता है। क्षयोपशम ज्ञानमें ऐसी शक्ति है कि वह भिन्न कर ले। उसमें क्या फ़र्क़ पड़ा, उसका विस्तार नहीं कर सकता है। लेकिन उसे (लगता है कि), यह बराबर ही है। यह आदमी अलग ही है, ऐसा कह देता है। अन्दर सब विकल्प आये, उसमें मैं जाननेवाला हूँ, उस जाननेवालेको पहचान ले। बाहर कैसे पहचान लेता है। वैसे अंतर तरफ दृष्टि करके तू तेरे ज्ञायक स्वभावको उस लक्षण द्वारा लक्ष्यको पहचान ले। ज्ञायकको पहचान ले। ज्ञानमें ऐसी पहचाननेकी शक्ति है। बाहर रूपीको पहचाने तो अरूपी स्वयं ही है, स्वयंको क्यों नहीं पहचाने?

जैसे कोई परिचयमें आये मनुष्यको कितने समय बाद देखे तो भी उसे पहचान लेता है। उसमें थोड़ा बदलाव आया हो तो अमुक जातके लक्षण पर-से ज्ञान उसे पकड़ लेता है कि यह वही मनुष्य है। किस लक्षण-से पहचाना वह कह नहीं सकता. उसकी मुद्रा परसे मैं पहचानता हूँ। उसके मुद्रामें क्या फ़र्क़ पड़ा? वह तो सब मनुष्यकी मुद्रामें थोड़ा-थोड़ा, बारीक-बारीक कुछ न कुछ फर्क़ तो होता ही है। लेकिन वह ग्रहण कर लेता है।

वैसे क्षयोपशम ज्ञान स्थूल है कि वह आश्रयवाला है। तो भी इसप्रकार सूक्ष्मता-से ग्रहण करनेकी ज्ञानमें शक्ति है। मनवाला है, इन्द्रियोंका आधार लेता है। तो फिर जो ज्ञान बाहर-से ग्रहण करता है, वैसे अपने ज्ञान लक्षणको क्यों नहीं पहचान सके? कितने जातके विकल्प है, यह ज्ञान है और मैं ज्ञायकस्वभावी आत्मा हूँ। स्वयंको पहचाननेकी शक्ति है, लेकिन वह सूक्ष्म होकर देखता ही नहीं है।

मुमुक्षु :- दृष्टान्त इतना सरल लगता है। मनुष्यकी पहचान होती है। क्यों पहचानता है, उसे कह नहीं सकते। फिर भी वह निश्चितरूप-से पहचानमें आता है।

समाधान :- निश्चितरूप-से, निःशंकपने बिना तर्कके पहचानमें आता है। कोई दूसरा कहे कि यह नहीं है, तो भी माने नहीं। उतना निःशंकपने पहचानता है। वैसे ही निःशंकपने आत्माकी पहचान होती है, परन्तु वह पहचानता नहीं है।

मुमुक्षु :- वैसे ही निःशंकपने आत्माकी पहचान होती है।

समाधान :- वैसे ही निःशंकपने आत्माकी पहचान होती है। फिर कोई कुछ भी कहे तो भी उसमें उसे तर्क या और कुछ नहीं आता। ऐसे निःशंकपने आत्माकी पहचान हो सकती है, परन्तु वह पहचानता नहीं है। ऐसे ही लक्षण द्वारा वह आत्माकी (पहचान कर सकता है)। स्वयं ही है, इस तरह पहचान सकता है। उसके अस्तित्व-से, ज्ञायकता-से पहचान सकता है। वह पहचानता नहीं है, प्रयत्न नहीं करता है। सूक्ष्म उपयोग करके अन्दर देखता नहीं है।

हज़ारों लोगोंके तर्कके बीचमें भी वह स्वयं निःशंकपने कोई तर्कको माने नहीं इस प्रकार निःशंकपने स्वयंको पहचान सकता है। सब बताते हैं, परन्तु देखना स्वयंको है कि इस लक्षण-से पहचान। उसका लक्षण बताते हैं। तेरा ज्ञान लक्षण है, उस लक्षणमें पूरा ज्ञायक है उसे पहचान। परन्तु स्वयं देखता नहीं है।

सम्यग्दर्शन होनेके बाद पूरा ब्रह्माण्ड फिर जाय तो भी वह फिरता नहीं, ऐसी निःशंकता उसे अन्दर (होती है)। चैतन्यकी स्वानुभूतिमें उसे ऐसी निःशंकता आ जाती है। ज्ञायक लक्षणको पहचाने। प्रतीतमात्रमें भी उतनी निःशंकता होती है, तो स्वानुभूतिमें तो अलग ही हो जाता है। ग्रहण करनेमें भी उसे कितनी शक्ति (होती है)। ये तो अरूपी आत्मा स्वयं ही है। स्वयंको ग्रहण कर सकता है।

मुमुक्षु :- अपनी है इसलिये। विचार करने पर ऐसा ही लगता है कि रुचिकी क्षतिके कारण नहीं होता है, बाकी तो निश्चितपने काम हो सकता है।

समाधान :- रुचिकी ही क्षति है। रुचि बाहर जाती है। अन्दर रुचि इतनी लगे, इतनी लगन लगे तो स्वयं स्वयंको पहचाने बिना रह नहीं सकता। चैन पड़े नहीं, चैतन्यका स्वभाव प्रगट हुए बिना तो स्वयं अपनेको ग्रहण किये बिना रहता ही नहीं। रुचिकी

मन्दता, पुरुषार्थकी मन्दता।

जबतक अंतरमें उसकी पहचान नहीं होती, तबतक उसकी रुचिकी तीव्रता करे, भावना रखे। शुभभावनामें मेरे हृदयमें जिनेन्द्र देव होओ, मुझे दर्शन जिनेन्द्र देवके, मुझे दर्शन गुरुके, मेरे हृदयमें गुरु, हृदयमें शास्त्र, मेरी वाणीमें वह होओ, ऐसी भावना उसे होती है। दूसरा कुछ नहीं चाहिये। एक आत्मा और देव-गुरु-शास्त्र। जबतक आगे नहीं बढ़ता है तबतक।

आत्माका ध्येय (हो), तबतक शुभभावनामें खड़ा रहे। परन्तु उसे शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो, ऐसी लगनी तरफ उसका प्रयत्न होता है। ऐसी रुचि बढ़ाने तरफ उसका प्रयत्न होता है। ज्ञानमात्र ज्ञायकमें ही सब भरा है। ज्ञानमें उसे ऐसा लगता है कि ज्ञानमें सब भरा है? ज्ञानके अन्दर ही सब भरा है। वह ज्ञायक वस्तु है पूरी। और अनन्त शक्तियों-से भरी वस्तु है। अनन्त महिमाका भण्डार और अनन्त सुखका, आनन्दका और अनन्त ज्ञानका भण्डार है। ज्ञानमात्रमें ही सब भरा है। ज्ञानमात्र अर्थात् पूरी ज्ञायक वस्तु है। ज्ञान अर्थात् कोई एक गुण ऐसा नहीं है। ज्ञान अर्थात् पूरी वस्तु ज्ञायक है। उसे पहचान और उस तरफ जा। उसमें सब भरा है। अनन्त शक्तियाँ भरपूर भरी है।

मुमुक्षु :- पूरे ज्ञायकका ग्रहण (हो जाता है)।

समाधान :- पूरे ज्ञायकका ग्रहण करना। ज्ञान अर्थात् सिर्फ जाननामात्र नहीं, पूरी अखण्ड वस्तु ग्रहण करनी।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

ट्रेक-२५२

मुमुक्षु :- स्वभाव-से ही अमूर्तिक पदार्थ आत्मा, उसका लक्षण अमूर्तिक। मूर्तिक पदार्थ तो इन्द्रिय गोचर होता है, इसलिये उसका ज्ञान भी होता है और प्रतीति भी आये। ये अमूर्तिक पदार्थ है, उसका लक्षण भी अमूर्तिक है। अभी तो लक्षण पकड़नेमें देर लगती है, वैसेमें उस लक्षण पर-से लक्ष्य पर जाना और वह भी अनुभव पूर्व ऐसा नक्की करना कि मैं यही हूँ, ये तो बहुत कठिन लगता है।

समाधान :- वह मूर्तिक है, यह अरूपी है। अरूपी है लेकिन स्वयं ही है। वह रूपी है लेकिन पर है। वह तो पर पदार्थ है। उसका वर्ण, गन्ध, रस सब दिखता है। रूपी-दृश्यमान होते हैं। परन्तु यह जो है वह, भले स्वयंको दृश्यमान होता नहीं, परन्तु वह उसे अनुभूतिमें आये ऐसा है। उसका स्वानुभव-वेदन वह अलग बात है, परन्तु उसका लक्षण अरूपी होने पर भी, अरूपी लक्षण भी पहचान सके ऐसा है।

जैसे अन्दरमें स्वयंको विभावके परिणाम हैं, वह विभाव परिणाम, जैसे यह रूपी दृश्यमान होते हैं, वैसे विभाव परिणाम कहीं दृश्यमान नहीं होते हैं। उसे वह वेदन-से पहचान लेता है कि यह राग है और यह कलुषितता है और यह क्रोध है। उसके वेदन पर-से पहचान सकता है कि ये सब भाव कलुषिततावाले हैं। ऐसे पहचान सकता है।

वैसे स्वभावके लक्षणको भी उसके लक्षण-से पहचाना जा सकता है कि यह ज्ञान लक्षण है, यह शान्तिवाला लक्षण है। यह कलुषित लक्षण है। उस कलुषित लक्षणको वह देख नहीं सकता है। उसे वेदन-से पहचानता है।

मुमुक्षु :- वह अच्छा न्याय दिया। क्योंकि कलुषित परिणाम भी अमूर्तिक है और वह दिखाई नहीं देते, फिर भी उसे नक्की किया जा सकता है।

समाधान :- हाँ, वह नक्की करता है, उसके वेदन-से नक्की करता है। वैसे ज्ञान लक्षणको भी पहचान सकते हैं, अरूपी लक्षण है तो भी। जाननेका लक्षण, वह स्वयं जो जान रहा है कि यह राग है, यह क्रोध है, यह माया है, यह लोभ है ऐसा जैसे पहचान सकता है, तो वह पहचाननेवाला कौन है? ये सब भाव हैं, उसे पहचाननेवाला, जो जाननेवाला है वह कौन है? उस जाननेवाले पर-से, जानन लक्षण पर-से जाननेवालेको पहचान सकता है कि यह जाननेवाला है कौन कि जो यह सब जान लेता है? जानन

लक्षण पर-से वह पदार्थको पहचान सकता है।

अरूपी होने पर भी उसका लक्षण ऐसा है कि पहचान सके ऐसा है और स्वयं ही है, अन्य नहीं है। वह तो क्षण-क्षणके भाव पलट जाते हैं। फिर भी जाननेवाला तो ऐसे ही खड़ा रहता है। जानन लक्षण तो ज्योंका त्यों है। इसलिये वह उसे पहचान ले कि यह जाननेवाला तो ज्योंका त्यों है, बाकी सब भाव तो चले जाते हैं। जो कलुषिततावाले भाव वेदनमें आनेवाले हैं वह चले जाते हैं। परन्तु जाननेलवशापला ज्योंका त्यों रहता है। वह जाननेवाला कौन है? उसे पहचान सके ऐसा है। अरूपी होने पर भी उसके स्वरूपसे पहचाना जाता है।

मुमुक्षु :- दिक्कत कहाँ आती है कि राग-द्वेषके परिणाममें आकुलतारूप वेदनमें आते हैं इसलिये ख्यालमें आता है। ज्ञान निर्विकल्प है। अतः वेदनमें आता होने पर भी वेदनमें नहीं आने जैसा दिखता है।

समाधान :- वह सूक्ष्म उपयोग नहीं करता है। वह स्थूल है इसलिये स्थूल वेदनको पकड़ लेता है। परन्तु यह तो शान्तिका लक्षण है, जिसमें आकुलता नहीं है, मात्र जानना ही है। उसमें कुछ करना ऐसा नहीं आता है। मात्र विचार करे तो वह सूक्ष्म है, परन्तु उसमें मात्र जानना ही रहा कि ये सबको जाननेवाला कौन है? उस जानन लक्षणमें शान्ति भरी है। परन्तु वह सूक्ष्म होकर देखे तो उसे पहचान सकता है। वह स्थूलता युक्त है इसलिये स्थूलता-से पहचान लेता है।

इसमें अन्दर गहराई-से देखे तो जाननेमें आकुलताका वेदन नहीं है, परन्तु यदि देखे तो जाननेवालेमें शान्तिका लक्षण रहा है कि जिसमें आकुलता नहीं है। जिसमें कुछ करना नहीं है, मात्र जानना है, ऐसा शान्तिका लक्षण, निराकुलता लक्षण है। उसे पहचान सकता है। स्वयं सूक्ष्म होकर देखे तो पहचान सके ऐसा है। लक्षण पर-से लक्ष्यको पहचाने कि यह जानन लक्षण जो है वह किसके आधार-से है? किसके अस्तित्वमें है? चैतन्यके अस्तित्वमें। जो अस्तित्व अनादिअनन्त शाश्वत है कि जिसका नाश नहीं होता। ऐसा अनादिअनन्त अस्तित्व वह चैतन्यद्रव्य मैं हूँ। और उसमें ही सब भरा है। उसमें अनन्त धर्म आदि सब बादमें नक्की कर सकता है। लक्षण-से यदि लक्ष्यको पहचाने तो।

मुमुक्षु :- लक्षण तो शान्त लक्षण यानी निर्विकल्परूप-से ख्यालमें लेने जाते हैं वहाँ तो उससे पार लक्ष्यभूत पदार्थको लक्ष्यमें लेता हूँ, उतनेमें तो उपयोग (छूट जाता है)। मुश्किल-से रागको भिन्न करे, प्रगट ज्ञानका थोड़ा ख्याल आया नहीं आया, उतनेमें तो उपयोग पलट जाता है।

समाधान :- वह उसे बुद्धिपूर्वक लक्ष्यमें लेता है कि यह स्थूल लक्षण सो मैं।

सूक्ष्म लक्षण ज्ञानका, वह मैं हूँ। उस तरफ जाय, उसे लक्ष्यमें ले तो बुद्धिपूर्वक है। अभी निर्विकल्परूप परिणति नहीं है, निर्विकल्प स्वानुभूति भी नहीं है, परन्तु उसे लक्षण-से पहचाने-नक्की करे कि जिसमें विकल्प नहीं हैं, मात्र जानना निराकुल लक्षण है, उसे पहचाने। भले ही उपयोग पलट जाय तो भी बारंबार ग्रहण करनेका प्रयत्न करे। बुद्धि-से नक्की करने जाय और उपयोग पलट जाय तो उसे बारंबार नक्की करनेका प्रयत्न करे कि ये जो ज्ञान लक्षण है वही मैं हूँ और उसे धारण करनेवाला चैतन्य द्रव्य पदार्थ सो मैं हूँ, इसप्रकार स्वयंके अस्तित्वको नक्की करनेके लिये प्रयत्न करे।

निर्विकल्प परिणति तो बादमें होती है। पहले तो उसे प्रतीत करता है कि यह अस्तित्व है सो मैं हूँ। यह विभाव मैं नहीं हूँ। निर्विकल्प स्वानुभूतिमें जो आनन्द वेदनमें आये वह अलग अनुभवमें आता है। यहाँ ज्ञानमें तो मात्र उसे शान्ति, यह ज्ञान लक्षण शान्तिवाला है, उतना ही उसे ग्रहण होता है। आनन्दकी अनुभूति तो उसे निर्विकल्प स्वानुभूतिमें प्रगट होती है। आत्मा पूरा ज्ञान, आनन्द सागर-से भरा, ज्ञान-से भरा है। वह उसे स्वानुभूतिमें वेदनमें आता है। यह तो मात्र उसे लक्षण-से प्रतीतमें आता है। उपयोग पलट जाय तो बारंबार नक्की करनेका प्रयत्न करे। वह सहज न हो तबतक उसका प्रयत्न करना।

मुमुक्षु :- अनुभव होने-से पहले ऐसा सहज होगा?

समाधान :- अनुभव पूर्व उसे बारंबार पलट जाता है तो बारंबार अभ्यास करे तो दृढ़ता तो हो। वास्तविक सहजता बादमें होगी, लेकिन एक दृढ़तारूप हो सकता है।

मुमुक्षु :- अपूर्व अवसरमें मुनिपदकी भावना भायी है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि है और आत्माको देखा है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पूर्व जीव आगे बढ़ता है, वह अस्तित्वकी अव्यक्त पक्कड़-से आगे बढ़ता है? मिथ्यादृष्टिने तो कुछ देखा नहीं है। सम्यग्दृष्टिने अस्तित्व देखा है और मुनिपदकी भावना भाते हैं। मिथ्यादृष्टिने अस्तित्व नहीं देखा है, तो अव्यक्तपने उसके अस्तित्वके विश्वास-से आगे बढ़ता है?

समाधान :- है ही, ऐसे वह नक्की करता है। उसके लक्षण-से पहचान सकता है। अस्तित्व देखा नहीं है, परन्तु उसे अन्दर भाव होता है कि यह लक्षण किसका है? यह चैतन्यका लक्षण है। इसप्रकार मति-श्रुत द्वारा नक्की करनेकी उसमें वैसी योग्यता है कि पहले वह नक्की कर सकता है। सहज बादमें होता है, परन्तु नक्की तो कर सकता है।

मुमुक्षु :- इस ओर अस्तित्व और इस ओर विभाव-से भिन्न नास्तित्व, इसप्रकार आगे (बढ़ता है)?

समाधान :- ऐसा अभ्यास करता है। अनादि काल-से उसने बाहर-से मुनिपना

ले लिया वह अलग बात है। परन्तु जो जिज्ञासाकी भूमिकामें है, वह उसका अभ्यास करता है। बाकी जो कुछ समझते नहीं है कि अंतरमें आत्माका अस्तित्व है, ये विभाव-से भिन्न है, उसकी बात नहीं है। वे सब तो क्रियामें पड़े हैं। परन्तु जिसे रुचि हुयी है कि आत्मा कोई अपूर्व चीज है और मुक्तिका मार्ग अंतरमें रहा है, ऐसी रुचि है, जिज्ञासा है, तो वह बारंबार अभ्यास-से आगे बढ़ता है कि यह चैतन्यका अस्तित्व भिन्न है, विभाव भिन्न है। चैतन्य अनन्त गुण-से भरा है। उस प्रकारके अभ्यास-से विचार करके, नक्की करके आगे बढ़ता है।

बाकी जो क्रियामें पड़े हैं, जिन्हें कुछ रुचि नहीं है, अंतरमें कुछ अपूर्वता नहीं लगी है, वे तो बाहर क्रियामें पड़े हैं। गुरुदेवने ऐसा मार्ग बताया कि अन्दर कोई वस्तु अलग है और मुक्तिका मार्ग अंतरमें है। स्वानुभूति अंतरमें प्रगट होती है। उसका अभ्यास करके आगे बढ़ता है कि मैं चैतन्य भिन्न, यह विभाव भिन्न है। द्रव्य-गुण-पर्याय अनन्त मेरेमें हैं। मैं एक अखण्ड चैतन्य हूँ। गुणभेद नहीं है, सब लक्षणभेद है। अनेक प्रकार-से नक्की करके तत्त्वका स्वरूप समझकर आगे बढ़ता है।

सम्यग्दर्शनके बाद तो उसे आगे बढ़नेके लिये उसे मुनिदशाकी भावना आती है। वह तो स्वरूपकी दशा कैसे बढे? स्वरूपकी दशा बढ़ने पर बाहर ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि उसे मुनिपना आ जाता है। अंतरमें चैतन्यकी परिणतिकी दशा कैसे आगे बढ़े, ऐसी भावना होती है।

मुमुक्षु :- जिज्ञासुकी भूमिकामें चाहे जितने सवाल आपको पूछते हैं और जवाब आते हैं, उसमें नवीनता आती हो, सुनते ही रहे, ऐसा होता है। भले ही प्रश्न एक जातके हो, परन्तु ... कुछ कहते हैं।

समाधान :- प्रश्न एक जातके हों, जवाब उसी जातके होते हैं।

मुमुक्षु :- जवाब तो हमें भिन्न-भिन्न लगते हैं। ... ऐसे जवाब आते हैं। शल्य असंख्य प्रकारके हैं तो बहुत प्रकारके ...

समाधान :- गुरुदेवके प्रताप-से गुरुदेवने सबको अंतर दृष्टि करवायी कि अंतरमें मार्ग है, और कहीं नहीं है। बाकी तो सब व्रतके दिवस आये तो बाहर-से कुछ होता है। बाहरके व्रत और उपवास आदि बहुत करें तो अपने धर्म हो जाता है, ऐसा सब माननेवाले जीव होते हैं। परन्तु गुरुदेवने अंतर दृष्टि करवायी। अंतरमें हो, उसके साथ सब शुभ परिणाम होते हैं। रुचिवालेको भी होते हैं। सम्यग्दर्शन होनेके बाद भी शुभभाव होते हैं। मुनिदशा होनेके बाद भी पंच महाव्रतादि होते हैं। परन्तु वह हेयबुद्धि-से आते हैं। अपनी परिणति न्यारी हो गयी है। स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हुयी है।

मुमुक्षु :- शुभभावकी मर्यादा उसे ख्यालमें आ गयी।

समाधान :- ख्यालमें आ गयी है।

समाधान :- ... देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें आत्मा कैसे प्रगट हो? आत्माका सान्निध्य कैसे प्रगट हो, वह करना है। आत्मा स्वयं ही है। वह कैसे ग्रहण हो, वह करने जैसा है। बाकी बहुत सुना है, बहुत साल पर्यंत। गुरुदेवने बहुत सुनाया है और बहुत दिया है उसे पिघलाना है। बहुत साल बीत गये। करनेका एक ही है। देव-गुरु-शास्त्रके सान्निध्यमें आत्मा कैसे ग्रहण हो?

मुमुक्षु :- .. यही भावना है। आप एकका आधार है अभी तो।

समाधान :- गुरुदेव मिले, बड़ा आधार (है)। गुरुदेवने सबको बहुत दिया है। स्वाश्रय-आत्माका आश्रय (लेना) और शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रका आश्रय।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! आत्मा सम्बन्धित ऐसी कौन-सी बात है, जो पूर्वमें कभी सुनी नहीं है और जो आपको अनुभवमें आ गयी है। आपके श्रीमुख-से प्रत्यक्ष सुननेकी जिज्ञासा है।

समाधान :- गुरुदेव समक्ष बहुत बातें सुनने मिली है। जीवने अनन्त कालमें सुना है वह मात्र बाह्य दृष्टि-से ही सुना है। शास्त्रमें आवे, भगवानकी वाणीमें आवे, परन्तु जीवने अंतरमें जो उसका आशय है उसे ग्रहण नहीं किया। गुरुदेवकी वाणीमें तो बहुत स्पष्ट आया है। अनुभवकी बात गुरुदेव स्पष्ट कर-करके कहते थे। मुक्तिका मार्ग एकदम स्पष्ट बताते थे। परन्तु उसका आशय ग्रहण करना वह अपने हाथकी बात रहती है।

जीवने बाह्य दृष्टि-से क्रिया-से धर्म हो, ऐसा मान लिया है। इतने शुभभाव करें या बाहरके व्रत करें या नियम करें, यह करें, वह करें उसमें-शुभभावोंमें धर्म माना है। परन्तु शुभभाव-से भी आत्मा भिन्न एक शुद्धात्म तत्त्व है, उसे पहचाना नहीं है। और शुद्धात्मामें सब भरा है। उसमें ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त-अनन्त शक्तियाँ उसीमें भरी है। उसकी उसे अपूर्वता नहीं लगी है। सुना तो कुछ अपूर्व है, यह चैतन्य वस्तु कोई अपूर्व है और उसमें सब अपूर्वता भरी है। और गुरुदेव कहते हैं वह कोई अपूर्व बात कहते हैं, अपूर्व आत्माकी बात कहते हैं। ऐसी अपूर्वता अन्दर-से जो लगनी चाहिये, वह उसे लगी नहीं है।

आत्मा अपूर्व है, उसकी बात भी अपूर्व है। उसकी अपूर्वता लगे और चैतन्य स्वभावकी अपूर्वता लगनी चाहिये कि आत्मा चैतन्य कोई अद्‌भुत वस्तु और अपूर्व वस्तु है। वह अपूर्वता लगे और उस ओर दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे और उसमें लीनता करे तो वह प्रगट होता है।

शास्त्रमें आता है, अनन्त कालमें वह बात परिचयमें नहीं आयी है, अनुभवमें नहीं

आयी है। क्योंकि उसका स्वयंने परिचय नहीं किया है। सुना तो उसे ऊपर-ऊपर-से चली गयी है। उसकी जो अपूर्वता लगनी चाहिये वह नहीं लगी। आत्मा कोई अपूर्व है। उसमें कोई अपूर्वता भरी है और वह कोई अपूर्व वस्तु है। जगतकी आश्चर्यभूत अपूर्व वस्तु हो तो आत्मा है। और आत्माकी दृष्टि करनी, आत्माकी पहचान करनी, आत्माका ज्ञान अंतरमें-से करना वह कोई अपूर्व है।

शुभभावमें, विभाव भावमें एकत्वबुद्धि कर रहा है, उसीका अभ्यास किया है। उसीका परिचय किया है। परन्तु जो आत्माकी अपूर्वता लगनी चाहिये (वह नहीं लगी)। उससे आत्मा भिन्न है। सब विकल्पों-से आत्मा भिन्न निर्विकल्प तत्त्व है। उसे उसने न्यारा ग्रहण नहीं किया है। अंतरमें न्यारा ग्रहण करे तो उसकी अपूर्वता उसके अनुभवमें आये बिना नहीं रहती। आत्मा कोई अपूर्व है। उसके स्वरूपमें स्थिर हो जाय तो वह अपूर्व वस्तु प्रगट होती है। परन्तु वह स्थिर कब हो? स्वयंको यथार्थ पहचान करे, उसकी यथार्थ प्रतीति हो तो उसमें स्थिर होता है और तो उसमें-से उसे अपूर्वता प्रगट होती है।

बाहरका सब ग्रहण किया है, परन्तु अंतर चैतन्यका स्वभाव ग्रहण नहीं किया है। उसे ग्रहण करना। अंतरका वह कोई अलग पुरुषार्थ करे। उसने बाहर-से सब प्रयत्न किया है। बाहर-से अशुभमें-से शुभमें आया, परन्तु शुभ-से भी भिन्न मैं एक चैतन्य न्यारा तत्त्व है, उसे ख्यालमें नहीं लिया। उसे न्यारा ख्यालमें तो उसमें-से अपूर्वता प्रगट हो ऐसा है। उसमें शान्ति, उसमें आनन्द, सब उसमें है।

बाह्य क्रिया सब छूट जाय तो अंतरमें क्या होगा? इस प्रकार अनन्त काल-से प्रवृत्तिके अलावा अन्दर निवृत्तस्वरूप आत्मा है, उस निवृत्तमें सब भरा है। ऐसी उसे अपूर्वता नहीं लगती है। यह छूट जायेगा तो अंतरमें शून्यता (हो जायगी)। शून्यता नहीं है, अपितु अंतरमें भरचक भरा है, वह उसे प्रगट होता है।

मुनि किसके आश्रय-से मुनिपना पालेंगे? मुनिको महाव्रतका आश्रय (नहीं है)। महाव्रत तो बीचमें आते हैं, उन्हें आश्रय तो आत्माका है। आत्मा जो अपूर्व वस्तु है, उसमें ही उन्हें शरण लगता है, उसका ही उन्हें आश्रय है। विकल्प छूटने-से वह निष्क्रिय नहीं हो जाता। परन्तु अंतरमें-से उसकी स्वरूप परिणति प्रगट होती है और स्वरूपमें जो भरा है, वह उसे प्रगट होता है।

ये सब छूट जाने-से उसमें क्या होगा? ऐसी उसे अंतरमें-से अपूर्व प्रतीति नहीं होती है। अंतरमें सब भरा है। ज्ञानस्वरूप आत्मा, ज्ञानमात्र आत्मा उसमें ही सब भरा है। और उसे भिन्न ग्रहण करने-से उसमें-से प्रगट होता है। कर्ताबुद्धिका रस, बाह्य प्रवृत्तिका रस, अंतरमें-से उसे छूटता नहीं है, कहीं न कहीं मीठास रह जाती है। परन्तु उन सब-से न्यारा कोई कर्ता-क्रिया-कर्मका रस नहीं, कोई प्रवृत्तिका रस नहीं,

अन्दर चैतन्य एक स्वरूप आत्मा है, उसमें स्थिर हो जाना। उसकी प्रतीत, उसका ज्ञान, उसकी उसे यदि अपूर्वता लगे तो उसमें-से प्रगट हुए बिना नहीं रहता। अंतरमें जाने-से उसकी स्वभाव परिणति-स्वभाव क्रिया प्रगट होती है। परन्तु बाह्यकी प्रवृत्तिका और बाह्य विकल्प प्रवृत्तिका उसे रस लग गया है। उसमें एकत्वबुद्धि हो गयी है, उसमें-से वह छूट नहीं सकता है। कर्ताबुद्धिमें-से ज्ञायक होना, ज्ञायकता-ज्ञायकरूप परिणमन करना, वह उसे पुरुषार्थ करके सहजरूप करना मुश्किल हो गया है।

समाधान :- ... अनुभूतिको (गुरुदेवने) स्पष्ट करके बता दिया है। समयसारमें विभिन्न प्रकार-से मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है। आचार्यदेव कहते हैं, मुझे अंतरमें-से वैभव प्रगट हुआ है, भगवानके पास-से, गुरुके पाससे, वह मैं सबको कहता हूँ। विभिन्न प्रकार-से (कहा), गुरुदेवने उसे स्पष्ट किया। नहीं तो कोई समयसारको समझता नहीं था। ज्ञायक हो जा। भेदज्ञान प्रगट कर। अबद्धस्पृष्टमें तू अकेले आत्माको ग्रहण कर। इस प्रकार विभिन्न प्रकार-से मुक्तिका मार्ग, स्वानुभूतिका मार्ग आचार्यदेवने कहा और गुरुदेवने स्पष्टि किया।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२५३

समाधान :- .. पलटना तो स्वयंको (पड़ता है), परिणति स्वयंको पलटनी है। अपनी ओर आना, स्वसन्मुख होना, अपनी ओर दृष्टि करनी, अपनी ओर ज्ञान और अपनी ओर लीनता करनी, वह स्वयंको ही करना है, स्वयंको हो पलटना है।

मुमुक्षु :- उसका कोई क्रम, विधि?

समाधान :- विधि और क्रम एक ही है। उसकी लगनी, उसकी महिमा। गुरुदेवने जो मार्ग बताया उसे अंतर-से यथार्थ समझना, यथार्थ ज्ञान करना। गुरुदेवका क्या आशय था? स्वभाव ग्रहण करनेका प्रयत्न करना।

मुमुक्षु :- स्वरूपकी महिमा नहीं आनेका कारण उपयोग उतना अंतर तरफ मुड़ता नहीं होगा और पर विषयमें रुचि है, इसलिये नहीं आती होगी?

समाधान :- रुचि पर तरफ जाती है, अंतरमें परकी महिमा है। अपनी स्वकी महिमा कम है और दूसरेकी महिमा लगती है। स्व तरफ प्रयत्न नहीं जाता है। प्रमाद है, महिमा कम है, रुचि कम है। उसे जरूरत लगे तो चाहे जैसे भी वह प्रयत्न किये बिना नहीं रहता। मुझे यह करना ही है (ऐसा हो) तो स्वयं अंतरमें-से पलटे बिना रहता ही नहीं। परन्तु उतनी स्वयंकी मन्दता है इसलिये पलटता नहीं है।

मुमुक्षु :- मन्दतामें-से तीव्रता होनेके लिये भी स्वयं उसकी रुचि बढ़ाये। रुचि बढ़ानेके लिये क्या करना?

समाधान :- स्वयं ही रुचि (करे कि) स्वभावमें ही सर्वस्व है, बाहर कहीं नहीं है। जो अनन्त भरा है वह स्वभावमें है। बाहर-से कुछ नहीं आता। बाहर लेने जाता है, लेकिन बाहर-से कुछ प्राप्त नहीं होता। जिसमें भरा है, जिसमें स्वभाव भरा है उसमें-से प्रगट होता है। जिसमें है उसमें-से प्रगट होता है। जिसमें अपना अस्तित्व है, उसमें सब है। उसमें-से ही प्रगट होगा। ऐसा स्वयं दृढ़ निर्णय करे। ऐसी दृढ़ प्रतीत करे तो अपनी तरफ अपना पुरुषार्थ झुकता है।

अनन्त काल-से बाहर-से प्राप्त करनेके लिये व्यर्थ प्रयत्न किये, क्रियाएँ की, सब किया। शास्त्रमें आता है न? व्रत, नियम धारे, तप, शील आदरे परन्तु परमार्थ-से बाह्य है इसलिये स्वयंको मोक्ष ... सब किया। मुनिव्रत धारे, सब किया परन्तु अंतरमें पलटा

नहीं। मेरेमें-से ही सब आनेवाला है। ऐसी प्रतीत और ऐसा ज्ञान स्वयंने नहीं किया। उस जातका अपने स्वभावकी महिमा नहीं आयी है। शुभमें करके संतुष्ट हो गया है। शुभभावमें संतुष्ट हो जाता है। अशुभमें-से शुभमें पलटा किया, परन्तु जो तीसरी भूमिका है, उसमें नहीं जाता है। जो शुद्धात्माकी भूमिका है, उस तरफ नहीं जाता है। इन दोनोंकी ओर पलटता रहता है, तीसरेमें नहीं जाता है।

मुमुक्षु :- तीसरी भूमिका आत्मा..

समाधान :- अन्दर भूमिका है उसमें नहीं जाता है। बारंबार उसका अभ्यास, उसीकी आदत, बारंबार करता रहे तो उसमें-से उग्र पुरुषार्थ जागृत होता है, तब वह पलटता है। पर तरफ जाय, परन्तु बारंबार अपनी ओर प्रयत्न करता रहे, बारंबार उसकी आदत, रटन, प्रयत्न करता रहे तो उस ओर पलटनेका उसे अवकाश है।

मुमुक्षु :- अपूर्वता लगे तो सहज है। परन्तु उसके पहले जो अपूर्वता लगनी चाहिये कि जिससे पुरुषार्थ परसन्मुख-से हटकर स्वसन्मुख हो। वह किस प्रकारकी अपूर्वता है और वह कैसे लगे?

समाधान :- जो गुरुका उपदेश आवे, गुरु कोई अपूर्व बात करते हो कि आत्माका स्वरूप ऐसा है, कुछ अलग है, ऐसा जो उपदेश गुरुदेवकी वाणीमें आवे, उस वाणीकी अपूर्वताका भास स्वयंको लगे कि ये कुछ अपूर्व कहते हैं और आत्माका स्वरूप कोई अपूर्व है। ऐसी अपूर्वता (लगे)। उसे गुरुकी वाणीमें-से कोई अपूर्वता उसे ग्रहण हो, अपनी रुचि-से, यह विभाव है वह तो आकुलतारूप है, परन्तु आत्मा कोई अपूर्व है। गुरुदेवकी वाणीमें-से ऐसी अपूर्वता उसे ग्रहण हो। अपूर्व प्रगट नहीं हुआ है, परन्तु प्रत्यक्ष गुरुकी वाणीमें जो आता है, उसकी अपूर्वता अंतरमें (लगे)। स्वयंकी पात्रता हो उसे ऐसी प्रतीत हो जाती है अप्रगटपने कि आत्मा कोई अपूर्व है। ऐसी उसे रुचि और प्रतीत (हो जाती है)।

सम्यग्दर्शनकी प्रतीति अलग बात है। परन्तु पहले उसे ऐसी रुचि, अपूर्वताकी रुचि हो जाती है कि ये आत्मा वस्तु कोई अपूर्व है। यह बात अपूर्व है, परन्तु आत्मा वस्तु ही अपूर्व है। देव-गुरुकी वाणीमें-से उसे अपूर्वता (लगती है), निमित्त-उपादानका ऐसा सम्बन्ध है। उसे अपूर्वता ऐसी भासित हो जाती है कि ये कोई अपूर्व वस्तु है और अपूर्व पुरुषार्थ करने तरफ उसे अंतरमें रुचि प्रगट होती है। देखा नहीं है, किया नहीं है, परन्तु जिसे प्रगट हुआ ऐसे प्रत्यक्ष गुरु बताते हैं और उसे अपूर्वता भासित हो जाती है।

मुमुक्षु :- देव-गुरुका निमित्त ऐसा है कि जिसमें उसे अपूर्वता भासित होती है।

समाधान :- अपूर्वता भासित होती है। देशना लब्धि प्रगट होती है, इस प्रकार।

उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- कोई बार माताजी! (ऐसा लगता है कि) शुरुआतमें गुरुदेवको सुनते तो तब अत्यन्त आनन्द और उल्लासपूर्वक (सुनते थे)। उसके बाद इतने निर्लज हो गये हैं। एक बार निर्लज्ज हो जानेके बाद वह शब्द असर नहीं करते। ऐसी स्थिति हो गयी हो ऐसा लगता है। वही शब्द बार-बार सुनते हो, इसलिये पहले वही शब्द सुनते वक्त जो अपूर्वता लगती थी, (वह अपूर्वता नहीं लगती है)।

समाधान :- अपूर्वता लगती थी। अपना पुरुषार्थ उतना चलता नहीं, इसलिये ऐसा हो कि सुनते रहते हैं। पुरुषार्थ आगे गति करे नहीं, इसलिये ऐसा हो जाता है कि पहले सुनते वक्त एकदम आश्चर्य लगनेके बजाय मध्यम जैसा हो जाता है।

मुमुक्षु :- उसका मतलब यह है कि सुनते ही उसका पुरुषार्थ अन्दर चालू रहे तो उस जातकी अपूर्वता लगे और अपूर्वता-से विशेष उल्लास आये।

समाधान :- विशेष उल्लास आये। अपना पुरुषार्थ आगे नहीं बढ़ता है, इसलिये वह मध्यम प्रकार-से सुनता रहता है। ऐसा हो जाता है।

मुमुक्षु :- प्रत्येक समय सुनते वक्त आश्चर्यचकित हो जाय, तो ऐसा कहा जाय कि इसमें नवीन-नवीन (लगता है)।

समाधान :- तो अपनी विशेष तैयारी होनेका कारण बने। पुरुषार्थ अधिक जागृत होता है।

मुमुक्षु :- आपने कहा न कि आशय नहीं ग्रहण किया। सुनने पर भी उसका आशय ग्रहण नहीं करता है।

समाधान :- उन्हें गहराईमें क्या कहना है? या गुरुदेव क्या कहते हैं? वह आशय ग्रहण करके फिर प्रयत्न नहीं किया है। पहले तो वह आशय ग्रहण नहीं करता है। आशय ग्रहण करके फिर जो पुरुषार्थ अपना चलना चाहिये, वह पुरुषार्थ उठता नहीं। गुरुदेवने मार्ग बताया कि मार्ग यह है। उसे बुद्धिमें ग्रहण हुआ, परन्तु अंतरमें उसे ऊतारकर आगे बढ़ना चाहिये, वह आगे नहीं बढ़ता। तो ऐसे ही मध्यममें खड़ा रहता है। जिस जातकी रुचि है उसमें विशेष आगे नहीं बढ़ता है, इसलिये ऐसे ही खड़ा रहता है।

अनादि काल-से तो कुछ सुनने नहीं मिला। कोई बार मिला तो उसने ग्रहण नहीं किया। और ग्रहण करे तो पुरुषार्थ नहीं करता है। आशय ग्रहण करे तो भी आगे नहीं बढ़ता। उसे बुद्धिमें ऐसा नक्की होता है कि गुरुदेवने यह मार्ग कहा है। विकल्प-से आत्मा भिन्न है, आत्मा शाश्वत है, आत्माका स्वभाव इस विभाव-से भिन्न है। गुणभेद, पर्यायभेद वह भेद भी वास्तविकरूप-से आत्मामें नहीं है। वह तो अखण्ड स्वरूप है। ये सब लक्षणभेद है। ऐसा बुद्धिमें ग्रहण करता है, परन्तु अंतरमें जो परिणति

करनी चाहिये वह नहीं करता है। मात्र बुद्धि-से निर्णय करता है। आगे नहीं बढ़ता। उसे उतनेमें संतोष हो जाता है कि करेंगे-करेंगे, ऐसा अन्दर प्रमादभाव रहता है, इसलिये आगे नहीं बढ़ता।

मुमुक्षु :- वह अपूर्वता पूरी-पूरी भासित नहीं हुयी है।

समाधान :- वास्तवमें ऐसा ले सकते हैं। परन्तु उसे स्थूल दृष्टि-से अपूर्वता लगे तो भी पुरुषार्थ नहीं करता है। और यदि सच्ची अपूर्वता लगे तो उसे चैन पड़े नहीं कि ये सब अपूर्व नहीं है, परन्तु अंतरमें अपूर्व है। इसप्रकार वास्तविक अंतरमें ज्यादा दृढ़ हो तो ज्यादा आगे बढ़े। स्थूलरूप-से ऐसा कह सकते हैं कि उसे अपूर्वता भासी है, परन्तु पुरुषार्थ नहीं करता है। बुद्धि-से निर्णय किया वह भी सत्य निर्णय कब कहा जाय? कि परिणति हो तो। परन्तु पहले उसने अमुक प्रकार-से निर्णय किया है, जिज्ञासाकी भूमिका अनुसार।

मुमुक्षु :- सच्चा निर्णय भावभासनरूप नहीं होता है। सच्चा निर्णय यानी कि मैं ज्ञायकमात्र हूँ, ऐसा हो जाना चाहिये, उसमें भावभासनरूप जिस प्रकार होना चाहिये कि ये चैतन्य सो मैं, ऐसा (नहीं होता है)।

समाधान :- सच्चा निर्णय होवे तो अन्दर परिणति हुए बिना नहीं रहती। वह बुद्धि-से निर्णय (करता है)। और अपूर्वता बुद्धि-से लगती है। अन्दर सचमूचमें अपूर्वता लगे तो वह उसे प्रगट हुए बिना नहीं रहता। अंतरमें भावभासन हो तो उसकी परिणति प्रगट हुए बिना नहीं रहती।

मुमुक्षु :- इतने पुरुषार्थ पर्यंत भी नहीं पहुँचता है।

समाधान :- पुरुषार्त पर्यंत नहीं पहुँचता है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! आपने वचनामृतमें ४७ नंबरके बोलमें एक दृष्टान्त दिया है कि 'मकड़ी अपनी लारमें बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घरमें रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्योंमें, उपाधियोंमे, जंजालमें फँसा है परन्तु मनुष्यरूपसे छूटा है'। इस दृष्टान्त पर-से सिद्धान्त जो आपने कहा कि त्रिकाली ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। यह दृष्टान्त ही समझमें नहीं आ रहा है। मनुष्यरूप-से छूटा है और उपाधिमें बँधा है, इसमें कैसे ऊतारना?

समाधान :- दृष्टान्त सर्व प्रकार-से लागू नहीं पड़ता। उसका आशय ग्रहण करना। मनुष्य तो एकदम छूटा है। उपाधिमें बँधा है, वह दृष्टान्त तो स्थूल है। बाहर-से बँधा है, अन्यथा नहीं बँधा है। दृष्टान्त यहाँ तक सीमित है कि चैतन्यद्रव्य वास्तविकरूप-से परद्रव्यके साथ बँधा नहीं है। द्रव्य अपेक्षासे छूटा ही है। चैतन्यद्रव्य इस पुद्गलद्रव्यके साथ बँधनमें नहीं आया है। पुद्गल तो जड़ है और स्वयं चैतन्य है। चैतन्य चैतन्यरूप-

से छूटा है और पुद्गल पुद्गलरूप-से छूटा है। दोनों भिन्न द्रव्य हैं। फिर भी स्वयं भ्रमणा-से विकल्पकी परिणतिमें मान लिया है कि मैं बँध गया हूँ। मैं शरीररूप हो गया, मैं विकल्परूप हो गया, ऐसा स्वयंने मान लिया है। परन्तु वास्तविक द्रव्य कहीं परद्रव्यरूप नहीं हुआ है, भिन्न है।

भिन्न है, उस भिन्नको तू भिन्न जान ले। और जो कल्पना हो गयी है कि मैं इसमें बँध गया हूँ, शरीररूप हो गया, विकल्परूप हो गया, ऐसा हो गया, उसमें-से तेरी मान्यता-भ्रमणा छोड़कर, तू भिन्न ही है, उस भिन्नको ग्रहण कर ले। भिन्न है वह बंधनमें आ गया हो तो उसे बंधन कैसे तोडुँ ऐसा हो, लेकिन तू वास्तविकरूप-से बँधा ही नहीं है। इसलिये तू भिन्न ही है। ऐसा आशय उसमें-से ग्रहण करना।

तू वास्तविकरूप-से भिन्न है। भिन्नको भिन्नरूप ग्रहण कर। परिणतिमें बन्धनमें ऐसी भ्रमणा-से उसकी मान्यता ऐसी हो गयी है। इसलिये तेरी मान्यताको बदल दे कि मैं छूटा हूँ। ये जो परिणति होती है विभावमें, लेकिन उस विभाव तरफ दृष्टि नहीं देकर मैं भिन्न हूँ, उसे ग्रहण करना। पर्यायमें जो परिणति हो, उस पर्यायको गौण करके मैं द्रव्य अपेक्षा-से भिन्न हूँ, ऐसे ग्रहण कर ले।

मकड़ी मकड़ीरूप-से भिन्न है। तेरी पर्यायकी जो परिणति हो... परन्तु द्रव्य अपेक्षा-से तू भिन्न ही है। इसलिये द्रव्यको ग्रहण कर। द्रव्य न्यारा है, इतना उसमें साबित करना है। तू स्वयं भिन्न है। अतः तू भिन्नको ग्रहण कर ले। तू बँधा नहीं है। तू मुक्त ही है तो मुक्तको ग्रहण कर ले। ऐसा कहना है।

मनुष्यरूप-से बँधा और छूटा, वह स्थूल है। परन्तु कहना यह है कि तू द्रव्य रूप-से भिन्न है। आत्माने अनादि काल-से चाहे जितने भव किये, चाहे सो विभाव हुए, तो भी तू तो द्रव्यरूप-से शुद्धात्मा भिन्न ही है, इसलिये तू उसे ग्रहण कर। उस ओर देख तो तू द्रव्यदृष्टि-से भिन्न है। मैं बँध गया, बँध गया (मानता है)। खँभेको गले लगाकर कहता है, मुझे छोड़। तूने ही उसे ग्रहण किया है, तू छोड़ दे। वैसे स्वयंने परिणति-पर्यायकी परिणतिमें भ्रमणा-से, अपनी परिणति पुरुषार्थकी मन्दता-से विभावकी परिणति स्वयंने की है। अब तू मुझे छोड़। परन्तु तू छूटा ही है, तू छोड़ दे। तेरी एकत्वबुद्धिको तू ही तोड़ दे तो तू छूटा ही है।

एक दृष्टि बदलनेमें वह दृष्टि नहीं बदल सकता है। उसमें बाहर-से कुछ करना नहीं है। उसे दूसरे किसी भी प्रकारकी महेनत नहीं है। परन्तु अन्दर स्थूलतामें-से सूक्ष्म उपयोग करके अन्दर दृष्टि बदलनेमें उसे इतनी दिक्कत हो जाती है। स्थूल उपयोग हो गया है। स्थूल परिणतिमें उसे सब ग्रहण होता है। विकल्प, शरीर आदि। उसमें-से सूक्ष्म दृष्टि करके दिशा बदलनेमें उसे मुश्किल हो जाता है। बाहरका सब करने जाता

है। सब स्थूल-स्थूल। उपवास करना हो तो कर दे, बाहर-से महेनत करनी हो तो वह करनेको तैयार है, परन्तु अंतरमें दूसरा कुछ नहीं करना है, दृष्टि बदलकर निज चैतन्यको ग्रहण करना है, वह मुश्किल पड़ जाता है। उपयोग सूक्ष्म करके, सूक्ष्म परिणति करके अंतरमें जाना मुश्किल हो गया है। उसमें उसका अनन्त काल चला गया। दिशा नहीं बदलता है।

मुमुक्षु :- एक दृष्टि बदलनेमें अनन्त परावर्तन हो गये।

समाधान :- हाँ, अनन्त परावर्तन किये।

मुमुक्षु :- इतना किया तो भी उसे दृष्टि बदलना नहीं आया।

समाधान :- हाँ, दृष्टि बदलना नहीं आया। शुभभावकी रुचिमें कहीं-कहीं अटक जाता है। शुभभाव-से कुछ लाभ हो, गहरी-गहरी रुचिमें, कोई प्रवृत्तिके रसमें, कोई क्रियाके रसमें, बिना प्रवृत्ति कैसे रहना? विकल्प बिना कैसे रहना? ऐसे कहीं-कहीं रुचिमें अटक जाता है। परन्तु अंतरमें दृष्टि नहीं बदलता है।

मुमुक्षु :- इतना सरल मार्ग आप बताते हो, इतना सरल बताते हो कि ऐसा होता है कि इतना आसान है? इतना आसान है? और इतना काल ऐसे ही (व्यतीत कर दिया)।

.. बोलमें आपने फरमाया है कि पूज्य गुरुदेवके वचनामृतका विचारका प्रयोग करना। विचारका प्रयोग, उसका अर्थ क्या?

समाधान :- गुरुदेवके वचन...?

मुमुक्षु :- वचनामृतके विचारका प्रयोग करना।

समाधान :- गुरुदेव जो कहते हैं, गुरुदेवकी जो वाणी है, गुरुदेवने जो वचन कहे, गुरुदेवने जो उपदेश दिया उसे तू अन्दर ऊतार, प्रयोग करका (अर्थ यह है)। गुरुदेव जो उपदेश देकर मार्ग बताते हैं, जो गुरुदेवके वचन है, गुरुदेवने जो उपदेश दिया और गुरुदेवने जो आज्ञा की हो, उसका तू अन्दर प्रयोग कर अर्थात् तू तेरे पुरुषार्थमें ऊतार। तो तुझे परिणति प्रगट होगी।

गुरुदेव जो कहते हैं उसे मात्र सुन लेना, ऐसे नहीं। परन्तु उसका तू अंतरमें प्रयोग कर। गुरुदेवने ऐसा कहा कि तू भिन्न शुद्धात्मा है। ये शुभाशुभ भाव-से भिन्न अन्दर चैतन्य है, ये जो गुरुदेवने उपदेश दिया, उस अनुसार तू प्रयोग कर, उसका पुरुषार्थ कर। अन्दर तेरी परिणतिमें ऊतार।

मुमुक्षु :- इसे श्रद्धाका प्रयोग कहें या चारित्रका भी?

समाधान :- श्रद्धाका प्रयोग है। अभी उसने विकल्प-से श्रद्धा की है। अंतरमें यथार्थ श्रद्धा कब कहे? कि जब न्यारी परिणति हो तो श्रद्धाका प्रयोग (कहे)। चारित्रका

प्रयोग किस कहते हैं? जो प्रतीत हो उसके साथ, जो यथार्थ प्रतीत हो उसके साथ अमुक जातकी परिणति तो साथमें होती है। स्वरूपाचरण चारित्र साथमें होता है। उसे चारित्रमें गिना नहीं जाता। विशेष लीनता हो उसे चारित्र कहते हैं। इसलिये यह श्रद्धाका ही प्रयोग है। अन्दर परिणति प्रगट करनी वह श्रद्धाकी परिणति प्रगट करनी है।

श्रद्धा अर्थात् यथार्थ जो आत्माका स्वरूप है, उसकी अन्दर यथार्थ परिणति, ज्ञायककी ज्ञायकरूप परिणति कैसे प्रगट हो, वह श्रद्धाकी ही परिणति है-प्रतीतकी परिणति है। उस प्रतीतके साथ अमुक जातकी लीनता साथमें होती है। उसे चारित्रकी कोटिमें नहीं कहते हैं।

मुमुक्षु :- श्रद्धाका ऐसा प्रयोग है।

समाधान :- हाँ, ऐसा प्रयोग है।

मुमुक्षु :- दृढ़ता बढ़ती जाती हो।

समाधान :- हाँ, दृढ़ कर कि मैं चैतन्य ही हूँ, यह मैं नहीं हूँ। इस प्रकार उसकी दृढ़ता करनी।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२५४

समाधान :- ... वह भी अपूर्व नहीं है। वह सब अनादि कालमें परिचयमें आया, अनुभवमें आया। आत्माका स्वभाव परिचयमें, अनुभवमें आया नहीं। गुरुदेवकी वाणीमें वह बात आती थी। वह कोई अपूर्व वस्तु है। जगत-से कोई .. अपूर्व (है)। ज्ञायकमें अनन्त शक्तियाँ भरी है, अनन्त आनन्द भरा है। अनन्त धर्मों-से आत्मा भरा ही है। कोई अपूर्व तत्त्व है। उसकी कोई उपमा जगतमें नहीं है। वह तो अनुपम है।

आत्मतत्त्व तो कोई अपूर्व है। उसकी ज्ञायकता अनन्त काल जाने और अनन्त लोकालोकको जाने तो भी उसका ज्ञानस्वभाव खत्म नहीं होता। लोकालोकको एक समयके अन्दर एक अणुरेणुवत् जान लेता है तो उसमें कोई वज़न नहीं हो जाता। जैसा ज्ञायकका स्वभाव कोई जाननेका अपूर्व है, ऐसा आनन्दका स्वभाव कोई अपूर्व है। अनन्त काल तक जाने तो उसमें-से कम नहीं होता। उसमें अनन्त शक्ति है। एक समयमें अनन्त द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, अनन्त भाव अपनेको, परको, सबके अनन्त भावोंको सबको एक समयमें स्वरूपमें जब लीन होता है, केवलज्ञान होता है तो एक समयमें जान लेता है। उसकी ज्ञायककी शक्ति कोई अपूर्व, अपूर्व अनुपम है।

एक समयमें लोकालोकके अनन्त द्रव्य, अनन्त पुद्गल, चैतन्य, धर्मास्ति, अधर्मास्ति सबके अनन्त धर्म, उसका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सबको एक समयमें जान लेता है। ऐसी कोई शक्ति अपूर्व है। अनन्त शक्ति-से ज्ञायक स्वभाव ...

ज्ञायकको पीछानना। वह परको जानता है इसलिये अपूर्व नहीं, उसकी शक्ति ही ऐसी अपूर्व है। अमर्यादित, अमाप शक्ति है। ज्ञायककी महिमा लगनी चाहिये, अनुपमता लगनी चाहिये। उसका आनन्द स्वभावका जगतमें कोई मेल नहीं है। उसकी उपमा नहीं है। ऐसा कोई अपूर्व आनन्द है कि जिसकी जगतमें तुलना नहीं (हो सकती)। ऐसा अनुपम आनन्द, अनुपम ज्ञान, अनन्त धर्म (हैं)। ज्ञायकतत्त्व अपूर्व है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- ऐसे शुभभाव तो बीचमें आता है। स्वरूपमें लीन हो जाना, मुनि स्वानुभूतिमें बारंबार लीन होते हैं। बीचमें शुभभावमें ... होता है, वह अपवाद मार्ग है।

मुमुक्षु :- प्राप्ति उत्सर्ग मार्ग-से ही है।

समाधान :- प्राप्ति तो उत्सर्ग मार्ग-से होती है, तो भी बीचमें आता है। उत्सर्ग-अपवादकी मैत्री होती है। जबतक केवलज्ञान नहीं होता तबतक शुभभाव बीचमें ... ऐसा आता है। शुभभाव-से मुक्ति नहीं होती, मुक्ति तो उत्सर्ग स्वानुभूति-से होती है। मुक्ति इससे होती है, केवलज्ञान इससे होता है। परन्तु वह बीचमें आता है। जबतक उत्सर्गरूप परिणमन नहीं होता, तबतक बीचमें अपवाद होता है। परन्तु अपवाद अपनेको लाभ करता है, ऐसी श्रद्धा नहीं होनी चाहिये। बीचमें उत्सर्ग और अपवाद दोनों साथमें होते हैं। शुभभाव बीचमें आता है। प्राप्ति तो शुद्धउपयोग-से होती है। यथार्थरूप-से तो शुद्धउपयोग-से पोसना होता है। व्यवहार-से शुभभाव-से पोसना होता है।

मुमुक्षु :- ध्याये बनाया हो तो हमको तो..

समाधान :- ध्येय शुद्धात्माका रखना चाहिये और बीचमें शुभभाव आता है। अशुभमें नहीं जाना। जबतक तीसरी भूमिका शुद्धात्माकी प्राप्त नहीं होती तबतक शुभभाव बीचमें आता है। वह भूमिका रहती है। व्यवहार-से उसका पोसना कहनेमें आता है। वास्तविक पोसना तो शुद्धात्मा... व्यवहार-से पोसना ... व्यवहार बीचमें आता है।

बारंबार मुझे ज्ञायककी प्राप्ति होवे, मुझे ऐसी स्वानुभूति होवे। ऐसा अभ्यास बारंबार, गहरी लगन, बारंबार मुझे ज्ञायकतत्त्व कैसे प्राप्त हो, ऐसी भावना रहे। देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्यका शुभभाव, बीचमें शुद्धात्माकी भावना रहे, उसके संस्कार रहे। वह संस्कार साथमें आते हैं। गहरे संस्कार (डाले), ज्ञायकका अभ्यास करे वह संस्कार रहते हैं। बीचमें जो शुभभाव होता है, देव-गुरु-शास्त्रके, उससे जो पुण्यबन्ध होता है तो उसके योग्य बाहरमें साधन मिल जाते हैं-देव-गुरु-शास्त्र। भीतरमें ज्ञायकका संस्कार डालने चाहिये। शुभभाव बन्धता है, उससे बाहरमें साधन मिलता है और भीतरमें शुद्धात्माका संस्कार।

मुमुक्षु :- कैसा पुरुषार्थ (होता है)?

समाधान :- सबका एक ही उपाय है-शुद्धात्माको पहचानना।

मुमुक्षु :- पहचानना कौन-से पुरुषार्थ-से? कैसे?

समाधान :- यह पुरुषार्थ-स्वयंको शुद्धात्माकी लगनी लगे। जो कार्य करनेके पीछे लगे तो होता है। व्यवहारमें कोई कार्य करना हो तो उसके पीछे लगता है। तो शुद्धात्माका स्वभाव पहिचाननेके लिये स्वयं बाहरमें रुकता है, अन्दरमें ... मुझे शुद्धात्मा कैसे प्राप्त हो? उसकी लगन, उसके पीछे लगे। उसका स्वभाव पहचाननेके लिये बारंबार-बारंबार, बारंबार-बारंबार (प्रयत्न करे)। छूट जाय तो भी बारंबार-बारंबार उसके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। एक ही उपाय है-शुद्धात्माको पहिचानना, उस पर दृष्टि करनी, उसका ज्ञान करना, उस ओर परिणति करनी। उपाय एक ही है।

मुमुक्षु :- .. उपयोग आत्माकी तरफ पहुँचकर एकाग्र नहीं हो सकता।

समाधान :- रुचि होवे तब होवे न। रुचि बाहर होवे तो उपयोग कहाँ-से लगेगा? रुचि स्व तरफ जाय तो उपयोग लगे। रुचि बदल देनी। आत्मा ही प्राप्त हो, आत्मा ही प्राप्त हो, ऐसी रुचि होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- माताजी! हम स्वाध्याय करते हैं, वांचन-विचार करते हैं, मंथन करते हैं, फिर भी आत्मानुभूति होती नहीं है। तो हमें ऐसा कोई उपाय बताओ कि जिससे हम आत्मानुभूति करके अपना ... कर ले।

समाधान :- विचार, वांचन सब होवे तो भी परिणति भीतरमें पलटनी चाहिये न। पुरुषार्थ करके परिणति पलटनी। परिणतिको पलटाना चाहिये। विचार, वांचन (करे)। मैं कौन हूँ? यह विभाव है। मैं चैतन्यतत्त्व हूँ। मेरा स्वभाव क्या है? उसको लक्षण-से पीछानना चाहिये। लक्षण-से पीछाने बिना, भीतरमें-से पीछान किये बिना वह होता नहीं। बाहर-से विचार, वांचन सब होता है तो भी लक्ष्य तो मुझे शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो, ऐसा ध्येय होना चाहिये। ऐसा पुरुषार्थ होना चाहिये। बारंबार पुरुषार्थ करना चाहिये। मैं चैतन्य हूँ, ज्ञायक हूँ। परद्रव्यका कर्ता होता है, विभावकी कर्ताबुद्धि टूटकर ज्ञायक-ज्ञाताकी परिणति होनी चाहिये। परिणति तो अपनेको करनी है, वह कोई कर नहीं देता। अनादि काल-से परिभ्रमण हुआ, एकत्वबुद्धि-से हुआ है। और चैतन्यको विभक्त-मैं उससे विभक्त-भिन्न हूँ, ऐसा भिन्नताका ज्ञान, भिन्नताकी परिणति होनी चाहिये। तो हो सकता है।

मुमुक्षु :- पर-से भिन्न आत्माकी रुचि ..

समाधान :- रुचि तो अपनेको करनी पड़ती है। रुचि कौई नहीं कर देता है। परमें रुचि रहती है, परमें सर्वस्व मान लेता है, सबकुछ परमें है। ऐसी रुचि रहती है। मेरे आत्मामें सर्वस्व है। परमें नहीं है। सबकुछ ज्ञान, आनन्द सब मेरे आत्मामें है, बाहरमें नहीं है। भीतरमें ऐसी प्रतीत होनी चाहिये तो परिणति पलटती है। रुचि तो अपनेको करनी पड़ती है।

बाहरमें सुख नहीं है। बाहरमें आकुलता-आकुलता है। विभावमें आकुलता है। परद्रव्यमें दृष्टि करनेमें सब आकुलता है। निराकुल स्वभाव और आनन्द स्वभाव मेरा है। तो रुचि पलटती है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीके प्रवचनमें आया है, समयसार १७-१८ गाथामें, कि ज्ञानका स्वभाव स्वपरप्रकाशक होने-से आबालगोपालको सबको भगवान आत्मा जाननेमें आता है। तो अज्ञानीको कैसे स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, वह ख्यालमें नहीं आया?

समाधान :- अज्ञानीको भी स्वपरप्रकाशक स्वभाव कहीं नाश नहीं होता है। आत्माका

स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। अपनेको भी जानता है, परको भी जानता है। परन्तु आबालगोपाल आत्माका असाधारण लक्षण है। ज्ञानस्वभाव है वह असाधारण है। ज्ञानस्वभाव... सबको यथार्थ ज्ञान नहीं है, परन्तु उस ज्ञानस्वभावका नाश नहीं हुआ है। ये सब जाननेवाला जो ज्ञान है, वह ज्ञान ज्ञानरूप (रहा है)। अनुभूति है, वह ऐसी स्वानुभूति नहीं है, उसका वेदन नहीं है। तो भी ज्ञान ज्ञानरूप रहता है, ज्ञान ज्ञानरूप परिणमन करता है। वह यथार्थ नहीं। परन्तु ज्ञानका नाश नहीं हुआ। ऐसे ज्ञायक स्वभावका ग्रहण सब आबालगोपाल कर सकते हैं।

ज्ञानस्वभावका नाश नहीं हुआ है। ज्ञानस्वभाव तो जैसा है वैसा ही है। परन्तु अपनेको भ्रान्तिके कारण पर तरफ दृष्टि करता है, पर तरफ जाता है, परका ज्ञान करता है, पर तरफ आचरण करता है, सब पर तरफ करता है। स्वसन्मुख होता नहीं है इसलिये ख्यालमें नहीं आता है। ज्ञान ज्ञानरूप रहता है। ज्ञान कहीं जड़ नहीं हो जाता है। ज्ञान ज्ञानरूप रहता है।

अनादि काल हुआ तो भी ज्ञान ज्ञान ही है। ज्ञान, चेतन चेतन ही है, जड़ नहीं हुआ। जो विभाव होता है उसमें देखना चाहिये कि इसमें ज्ञानस्वभाव क्या है? रुचि करे, प्रतीत करे तो सब आबालगोपाल जान सकते हैं। ज्ञानस्वभाव ज्ञानस्वभाव ही है, उसका अज्ञान नहीं हुआ।

मुमुक्षु :- गुरुदेव तो ऐम फरमाते थे कि भगवान आत्मा सबको जाननेमें आता है।

समाधान :- हाँ, भगवान आत्मा सबको जाननेमें आता है। जो उस तरफ दृष्टि करे तो जाननेमें आता है। भगवानस्वरूप आत्मा, शक्तिरूप भगवान आत्मा है। सबकुछ जान सकता है। ऐसा नहीं है कि यह जान सकता है और यह नहीं जान सकता है। जो आत्मा तरफ रुचि करे वह सब जान सकते हैं। ज्ञान ज्ञानरूप है। ज्ञान जड़ नहीं हुआ है। सब जान सकते हैं, भगवान आत्माको सब जान सकते हैं। जो पुरुषार्थ करे वह जान सकता है। नहीं करे तो नहीं जान सकता है।

... लाल-पीले फूल-से वह लाल-पीला हो नहीं जाता है। स्फटिक तो स्फटिक ही है। वैसे ज्ञायक ज्ञायक ही है। परन्तु पर तरफ उपयोग, दृष्टि सब पर तरफ है। इसलिये उसको ख्यालमें नहीं आता है। अपनी तरफ यदि दृष्टि करे तो जान सकता है। ज्ञान ज्ञानरूप ही है। वह जड़ नहीं हुआ है। आबालगोपाल सबको ज्ञान ज्ञानरूप ही है। वह जड़ नहीं हुआ है। भगवान आत्मा जैसा है वैसा है, जड़ नहीं होता है। जैसा है वैसा ही परिणमता है। प्रगटरूप नहीं, शक्तिरूप। परन्तु वह ज्ञान ऐसा है कि असाधारण लक्षण सबको जाननेमें आ सकता है।

समाधान :- .. क्षमा, आर्जव, मार्दव धर्म सब दस धर्म मुनि आराधते हैं। दस

धर्म-क्षमा, आर्जव, मार्दव सब मुनि दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमते हैं। मुमुक्षु जिज्ञासुकी भूमिकामें वह पात्रतारूप होते हैं। पात्रतामें ऐसा आता ही है। मुमुक्षुकी भूमिकामें शुद्धात्माका ध्येय रखे और शुभभाव बीचमें आता ही है। ऐसा पात्रतामें होता है। पात्रता विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान। पात्रता होने-से सब हो सकता है।

ज्ञायक स्वभाव मुझे कैसे प्रगट होवे ऐसा ध्येय रहता है। और शुभभाव बीचमें आता है तो सब पात्रतामें आता है। तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र अनन्तानुबंधी तीव्र रसरूप होता ही नहीं। मन्द हो जाता है। जिसकी रुचि आत्मा तरफ जाती है, उसको सब मन्द हो जाता है। उसको देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, शुद्धात्माका ध्येय, क्षमा, आर्जव, मार्दव सब उसकी भूमिकामें आता ही है। सब आता है। मुनि तो चारित्रदशामें छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। उनकी आराधना तो बहुत प्रबल है। सम्यग्दृष्टिको भी होता है और पात्रतामें भी होता है।

... अशुभमें जाना ऐसा अर्थ नहीं है। शास्त्रमें आता है कि हम तो तीसरी भूमिकामें जानेको कहते हैं। इसलिये अशुभमें जानेको नहीं कहते हैं। शुभभाव पुण्यबन्धका कारण है। तीसरी शुद्धात्माकी भूमिकाको प्रगट करो, ऐसा कहना है। इसलिये बीचमें शुभभाव आता है।

मुमुक्षु :- तीसरी भूमिका?

समाधान :- तीसरी भूमिका-अमृतकुंभ भूमिका-शुद्धात्माकी भूमिका। वह प्रगट हो, मोक्षमार्ग तो वही है। तो भी शुभभाव बीचमें आता है। श्रद्धा ऐसी रहती है कि पुण्यबन्धका कारण है तो भी शुभभाव बीचमें आता है। तुझे ऊपर-ऊपर चढनेको कहते हैं, शुद्धात्माकी भूमिकामें-अमृतकुंभ भूमिकामें। इसलिये अशुभमें जानेको नहीं कहते हैं, परन्तु शुभ बीचमें आता है। तो तीसरी भूमिकाका ध्येय करो, दृष्टि करो, ज्ञान, आचरण सब उसका करो। बीचमें शुभभाव आता है। मार्दव धर्म तो पात्रतामें भी होता है। मुनिको तो शुभस्वरूप परिणमन क्षमा, आर्जव, मार्दव, शुद्धपर्यायरूप और शुभभाव मुनिको भी होता है, पंच महाव्रतमें।

मुमुक्षु :- आत्मामें कर्ता-कर्मका अभिन्नपना कैसा है? और कर्ता-कर्मका भिन्नपना कैसा है?

समाधान :- वह विभावका, परद्रव्यका कर्ता नहीं है। परद्रव्य जड़ द्रव्यको कर नहीं सकता। जड़का कार्य, क्रिया नहीं कर सकता है। जड़का कर्म आत्मा नहीं कर सकता है। विभावका भी अज्ञान अवस्थामें कर्ता कहनेमें आता है। राग उसके पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है। इसलिये अज्ञान अवस्थामें कर्ता है। और ज्ञान स्वभावमें ज्ञानस्ववभाका कर्ता है। ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। ज्ञानरूपी ज्ञानकी क्रिया होती है, ज्ञानका कर्म

होता है। ज्ञायककी पर्याय प्रगट होती है। ज्ञान-ज्ञायकमें परिणति प्रगट होती है। ये कर्ता-क्रिया-कर्म आत्मामें होते हैं, अपने-से अभिन्न होते हैं। परद्रव्यका कर्ता-कर्म जड़का तो होता नहीं। विभावका अज्ञान अवस्थामें (होता है)। फिर अस्थिर परिणति रहती है तो उसको कर्ताबुद्धि, स्वामीत्वबुद्धि नहीं है। अस्थिर परिणतिरूप है, वह परिणति होती है। परन्तु वह मेरा स्वभाव है और मेरा कार्य है, ऐसा वह मानता नहीं। पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है, अपना स्वभाव वह नहीं है।

ऐसे कर्ता-क्रिया-कर्म आत्मा-से भिन्न है। आत्माका स्वभावका कर्ता-क्रिया-कर्म स्वभावमें होता है। कर्ता-क्रिया-कर्मका भेद दृष्टिमें नहीं होता है। वह ज्ञानमें जानता है। तो भी अपनी परिणति, क्रिया, पर्याय शुद्धात्मा तरफ शुद्धपर्याय प्रगट होती है, उसकी शुद्ध परिणति होती है, वह अपना कर्ता-क्रिया-कर्म है, वह विभावका है। जड़का तो आत्मा कर ही नहीं सकता। विभावका अज्ञान अवस्थामें कर्ता कहनेमें आता है। ज्ञान अवस्थामें स्वामीत्वबुद्धि टूट गयी। विभावका मैं कर्ता नहीं हूँ। तो भी अस्थिर परिणति होती है उसको जानता है। जबतक पूर्ण ज्ञायककी धारा नहीं हुयी, केवलज्ञान नहीं हुआ तबतक अल्प अस्थिर परिणति रहती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२५५

मुमुक्षु :- ... एक-एक शक्ति अनन्त शक्तियोंमें व्यापक ... एक-एक शक्ति अनन्त शक्तियोंमें निमित्त है। तो .. स्पष्ट समझाईये।

समाधान :- आत्मा अखण्ड है तो उसमें अनन्त शक्ति एकदूसरेमें व्यापक है। आत्माकी शक्ति है। आत्मा अखण्ड एक द्रव्य, एक द्रव्य आत्मा है एक द्रव्य है, उसमें अनन्त शक्ति है। तो प्रत्येक शक्तिका स्वभाव भिन्न-भिन्न है। इसलिये भिन्न-भिन्न कहनेमें आता है। परन्तु प्रत्येक आत्मामें है। भिन्न-भिन्न, जुदा-जुदा द्रव्य नहीं है। प्रत्येक शक्ति, अनन्त शक्ति एक आत्मामें है। इसलिये अभिन्न है। प्रत्येक शक्ति प्रत्येकमें व्यापक है। एक द्रव्यमें सब है। एकमें अनन्त शक्ति है। इसलिये अनन्त धर्मात्मक वस्तु, अनन्त शक्तियों-से भरपूर आत्मा अखण्ड अभिन्न है।

प्रत्येक शक्तिका स्वभाव भिन्न-भिन्न है। इसलिये भिन्न-भिन्न कहनेमें आता है। अपेक्षा-से भिन्न और अपेक्षा-से अभिन्न है। ज्ञान ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि सब। ज्ञप्ति, दर्शि शक्ति आदि आती है न? सब एकदूसरेमें व्यापक है। तो भी सबका स्वभाव भिन्न-भिन्न है। इसलिये स्वभाव अपेक्षा-से भिन्न-भिन्न हैं। एक द्रव्यकी अपेक्षा-से अभिन्न है।

दृष्टि अखण्ड पर जाय तो एक अखण्ड आत्माको ग्रहण करती है। उसमें अनन्त शक्ति आ जाती है। अनन्त धर्मात्मक वस्तु एक चैतन्य ज्ञायकको ग्रहण करे तो उसमें अनन्त शक्ति आ जाती है। भिन्न-भिन्न दृष्टि नहीं करनी पड़ती है। आत्मा अनन्त स्वभाव-से भरपूर है। ऐसी महिमा ज्ञान सब जान लेता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव ऐसा भी लेते थे कि एक गुणमें अनन्त गुणका रूप है।

समाधान :- वह तो चैतन्य अखण्ड है, इसलिये एकदूसरेका एकदूसरेमें रूप है। बाकी वह चर्चा तो बहुत बार गुरुदेव समक्ष चलती थी।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें सत्-अस्तित्वपना, ज्ञानमें अस्तिपना ऐसा कहकर अस्तित्वगुणका रूप उसमें है।

समाधान :- हाँ, उसमें है। एक अस्तित्व गुण है तो ज्ञान अस्तित्व, चारित्र अस्तित्व इस प्रकार परस्पर एकदूसरेमें रूप है। ज्ञान भी अस्तित्वरूप है, चारित्र अस्तित्वरूप है, बल भी अस्तित्वरूप है। ज्ञान भी बलवान है, ज्ञान भी सामान्य, विशेष है। इस प्रकार

ज्ञानमें, दर्शनमें। अभेद है इसलिये एकदूसरेका एकदूसरेमें रूप है। ज्ञानमें आनन्द है, ज्ञान आनन्दरूप है। आनन्द गुण भिन्न भी है, परन्तु ज्ञानमें आनन्द है। आनन्दमें ज्ञान है।

मुमुक्षु :- अमुक स्पष्टीकरण गुरुदेव करते थे और अमुक स्पष्टीकरण करनेमें ऐसा कहते थे, ऐसा .. घटित होता है, परन्तु ऐसे नहीं घटता है। ऐसे दोनों प्रकार-से बात करते थे।

समाधान :- हाँ, ऐसा कहते थे। उसमें साधनामें तो दृष्टि एक आत्मा पर करे, उसमें सब आ जाता है। आत्मा कैसा शक्तिवान? कैसा अनन्त महिमावंत, अनन्त धर्मात्मक कैसा है, वह जाननेके लिये (आता है)। उसकी महिमा, आत्मा कैसा महिमावंत है, वह जाननेके लिये है। अनन्त गुणों-से भरा हुआ, अनन्तमें अनन्तका रूप है। अनन्त अनन्तरूप परिणमता है। उसकी महिमा कैसी है (वह जाननेके लिये है)।

वह पुस्तकमें आता है। एकदूसरेका एकदूसरेमें रूप है। एक प्रदेश इस रूप, इस रूप, ऐसे उसकी महिमा, एक चैतन्यकी महिमा (करनी है)।

मुमुक्षु :- चिद्विलासमें दीपचन्दजी (कहते हैं)।

समाधान :- हाँ, चिद्विलासमें आता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव बारंबार आधार देते थे।

समाधान :- अचिंत्य शक्तिवान आत्मा, कैसा चैतन्य द्रव्य है। उसमें बुद्धि-से काम करने जाय तो अमुक युक्ति-से बैठे, बाकी तो स्वानुभव गम्य है। अमुक युक्ति-से बैठे कि अनन्त गुणमें अनन्तका रूप है। अनन्तमें एक आनन्दरस वेदे, यह वेदे, वह वेदे, ऐसा करके कितने प्रकार लिये हैं।

अचिंत्य द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप है। और चेतनका स्वरूप कैसा महिमावंत है, वह उसमें जानना है। अपूर्वता भासे कि आत्मा कैसा महिमावंत है। अगुरुलघुकी बातमें ऐसा है। वह अगुरुलघु स्वभाव कैसा है! हानिवृद्धि रूप परिणमता होने पर भी ज्योंका त्यों है। वास्तविक हानिवृद्धि नहीं होती, उसमें तारतम्यतामें ज्योंका त्यों रहता है, उसकी परिणमन शक्ति कैसी है! अनन्त अनन्तरूप परिणमे फिर भी ज्योंका त्यों। तो भी उसमें कुछ कम नहीं होता, कुछ बढ़ता नहीं। फिर भी परिणमन उस प्रकार हानि-वृद्धिरूप होता है।

मुमुक्षु :- वह भी गुरुदेव बादमें केवलीगम्य कहकर निकाल देते थे।

समाधान :- हाँ, केवलीगम्य कहते थे। तत्त्वका स्वरूप कैसा सूक्ष्म स्वरूप है! केवलीके केवलज्ञानमें आये। चेतनागुणमें ज्ञान-दर्शन कोई अपेक्षा-से कहनेमें आता है। और ज्ञान-दर्शन गुणको अलग भी कहते हैं। चेतनागुणके अन्दर सामान्य और विशेष दोनों साथमें (कहते हैं)। कोई अपेक्षा-से ज्ञान, दर्शनको अलग कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- निर्णय यथार्थ है, वह कैसे मालूम करना? यथार्थ निर्णयमें ऐसा क्या होता है कि जो अनुभवको लाता है?

समाधान :- पहले जो बुद्धिपूर्वक निर्णय होता है, वह गुरुदेवने जो अपूर्व मार्ग बताया, उसका निर्णय वह रुचि-से स्थूलता-से करता है वह अलग है। अंतर-से जो निर्णय करता है, वह निर्णय स्वयंको ही ख्यालमें आ जाता है कि यह निर्णय ऐसा यथार्थ है कि उसके पीछे अवश्य स्वानुभूति होगी। वह स्वभावको पहचानकर अंतरमें निर्णय होता है कि ये जो चैतन्य स्वभाव है वह मैं हूँ, यह ज्ञायक स्वभाव है वह मैं हूँ, यह विभाव मैं नहीं हूँ।

उसका स्वभाव, अन्दर-से अपना भाव-स्वभाव पहचानकर निर्णय होता है। वह निर्णय ऐसा होता है कि उसे ख्याल आता है कि यह कारण ऐसा है कि अवश्य कार्य आनेवाला है। विकल्प-से अंशतः भिन्न होकर, स्वानुभूतिकी बात अलग है, परन्तु उसे अंतर-से ऐसी प्रतीत होती है कि यह ज्ञायक है वही मैं हूँ। यह विभाव मैं नहीं हूँ। ये जो शाश्वत चैतन्य स्वभाव, उसका अस्तित्व उसे यथार्थपने अंतरमें-से ग्रहण हो जाता है। वह भले ही अभी निर्विकल्प नहीं है, तो भी बुद्धिमें उसे ऐसा ग्रहण हो जाता है।

बाकी स्थूलता-से निर्णय करे वह अलग बात है। स्वयंको रुचि हो कि मार्ग यही है, दूसरा मार्ग नहीं है, यह वस्तु कोई अपूर्व है। ऐसी रुचि हो वह अलग बात है। परन्तु अंतरमें-से जो निर्णय होता है वह स्वभावको पहिचानकर होता है कि ये जो चैतन्य ज्ञायक है, जितना यह ज्ञान है उतना ही मैं हूँ, यह विभाव मैं नहीं हूँ। ऐसा अंतरमें-से उसे निर्णय होता है। और बारंबार उसे उसकी दृढ़ता होती है। बारंबार उसकी परिणति उस तरफ मुड़ती है कि यह है वही मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। इस प्रकार उसे स्वभावको पहचानकर निर्णय होता है।

जो स्वभावको पहचानकर निर्णय होता है, उसके पीछे उसे अवश्य स्वानुभूति हुए बिना नहीं रहती। उसका अंतर ही कह देता है कि यह निर्णय ऐसा है कि यह स्वभाव-ज्ञायक स्वभाव ही मैं हूँ, दूसरा कुछ मैं नहीं हूँ। ये निर्विकल्प स्वभाव है वही मैं हूँ। उसकी लीनताकी क्षतिके कारण अभी निर्विकल्प होनेमें देर लगती है। तो भी वह निर्णय ऐसा होता है कि अवश्य उसमें उसे स्वानुभूति हुए बिना नहीं रहती।

मति-श्रुतज्ञानकी बुद्धि जो बाहर जा रही थी। वह स्वयं अपना निर्णय करता है कि यह ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ। अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। ऐसा निर्णय करके फिक्षर अपनी तरफ, उपयोग अपनी तरफ मुड़कर उसमें लीनता करे तो स्वानुभूति होती है। पहले ज्ञानस्वभावको पहचानकर निर्णय करे कि यह जो ज्ञान है वही मैं हूँ।

शास्त्रमें ऐसा आता है, गुरुदेव भी ऐसा ही कहते थे कि यथार्थ निर्णय, यथार्थ कारण हो तो यथार्थ कार्य आये बिना नहीं रहता। ऐसा शुद्धात्माका अंतरमें-से उसे निर्णय होता है। उसका अंतर ही कह देता है कि इसमें अवश्य स्वानुभूति होगी ही।

मुमुक्षु :- माताजी! आपका वज़न स्वभावको पहिचानकर निर्णय हो, वह यथार्थ निर्णय है। ऐसा आपका वज़न आया है।

समाधान :- हाँ, स्वभावको पहिचानकर निर्णय होता है कि यह ज्ञान है वही मैं हूँ। ये विभाव है वह मैं नहीं हूँ। ऐसा बुद्धि-से स्थूलता-से हो वह अलग है, परन्तु अंतरमें-से उसे ग्रहण करके निर्णय होता है कि यह स्वभाव है वही मैं हूँ। अंतरमें-से भाव ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- ऐसा यथार्थ निर्णय हो, उसे अनुभूति उसके पीछे आती ही है?

समाधान :- उसके पीछे आती ही है। फिर उसमें कितना काल लगे उसका नियम नहीं है, परन्तु अवश्य होती ही है। (क्योंकि) उसका कारण यथार्थ है।

मुमुक्षु :- स्वभावको पहचानकर निर्णय हो, वह यथार्थ निर्णय है। यह बात आपने बहुत सुन्दर कही।

समाधान :- स्वभावको पहचानकर निर्णय होता है कि यह ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ, अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। मति और श्रुत द्वारा वह निर्णय करता है। फिक्षर मति-श्रुतका उपयोग जो बाहर प्रवर्तता है, उसे अंतरमें लाये और लीनता हो तो निर्विकल्प होता है। परन्तु पहले उसका यथार्थ निर्णय होता है।

मुमुक्षु :- स्वभावका यथार्थ निर्णय होने-से पहले क्या होता होगा?

समाधान :- पहले तो उसे स्वभाव तरफ मुड़नेकी रुचि होती है कि आत्माका स्वभाव कोई अपूर्व है। करने जैसा यही है। ये सब विभाव है। ऐसी रुचि अंतरमें रहती है कि मार्ग यही है। गुरुदेवने बताया वह एक ही मार्ग है, दूसरा नहीं है। ऐसा उसने स्थूल बुद्धि-से स्थूलता-से निर्णय किया होता है। परन्तु स्वभावको पहिचानकर अंतरमें-से निर्णय होता है, वह निर्णय अभी नहीं होता, परन्तु रुचि उस तरफकी होती है। मार्गकी रुचि होती है। उसके पहले भी कोई अपूर्व रुचि होती है। परन्तु वह रुचि होती है।

मुमुक्षु :- जबतक स्वभावकी पहिचान नहीं होती है तबतकका निर्णय सच्चा निर्णय ही नहीं है। स्वभावको पहिचानकर जबतक निर्णय होता, तबतक तो वह निर्णय निर्णय नहीं है।

समाधान :- वह निर्णय नहीं है। यथार्थ कारण प्रगट नहीं हुआ है।

.. ऐसा है कि जिसे कोई अपूर्व रुचि हो तो अवश्य वह रुचि उस तरफ जाती

है। अपूर्व रुचि हो तो। परन्तु उसे वर्तमानमें कोई संतुष्टता हो जाय, ऐसा वह निर्णय नहीं है। वर्तमान संतोष कब आवे? स्वभावको पहिचानकर निर्णय हो तो। बाकी रुचि होती है उसे। अंतरमें-से अपूर्व रुचि होती है कि मार्ग यही है। यह पुरुषार्थ करने पर ही छूटकारा है और यही करना है। ऐसी रुचि होती है।

मुमुक्षु :- ... ऐसा पुद्गल और अमूर्त ऐसा जीव, उसका संयोग कैसा है?

समाधान :- अनादिका है। रूपी और अरूपी। आता है न? ग्रहे अरूपी रूपीने अे अचरजनी वात। आत्मा तो अरूपी है। ये तो रूपी है। परन्तु विभावपर्याय ऐसी होती है कि जिस कारण रूपी और अरूपीका सम्बन्ध होता है। ऐसा वस्तुका स्वभाव है। दोनों विरोधी स्वभाव होने पर भी अनादिका उसका सम्बन्ध है। विरूद्ध स्वभाव होने पर भी अनादि-से उसका सम्बन्ध चला आ रहा है। उसे विभाविक भावके कारण वह सम्बन्ध होता है।

मुमुक्षु :- उसे कम करनेके लिये कुछ...?

समाधान :- अनादिका वह है।

मुमुक्षु :- उसे कम कैसे करना? अभाव कैसे करना?

समाधान :- उसका उपाय यह है कि स्वयं अपने स्वभावको पहचानना, तो वह सम्बन्ध छूटे। अपने स्वभाव तरफ जाय, अरूपीको ग्रहण करे और रूपी तरफकी दृष्टि, रूपी तरफ जो एकत्वबुद्धि हो रही है उसे तोड़ दे और अरूपी जो चैतन्यस्वभाव है, उस ओर उसकी प्रीति, उसकी रुचि हो तब हो।

गुरुदेव तो बारंबार कहते थे कि तू भिन्न है, यह शरीर भिन्न है, ये विभाव तेरा स्वभाव नहीं है, तू अन्दर शाश्वत है। कोई भेदभाव भी तेरा मूल स्वरूप नहीं है। ऐसा बारंबार कहते थे। उनका उपदेश तो अन्दर जमावट हो जाय ऐसा उपदेश था, परन्तु परिणति तो स्वयंको पलटनी है, पुरुषार्थ स्वयंको करना है। स्वयं दिशा न बदले तो क्या हो? दिशा बाह्य दृष्टि वह स्वयं ही रखता है। अन्दर अपूर्वता लगे, रुचि करे तो भी परिणति तो स्वयंको पलटनी है। स्वयंको ही करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- रुचि तो स्वयं करे, फिर भी परिणति पलटे नहीं तो रुचि...?

समाधान :- उसे अपनी मन्दता है। रुचिकी मन्दता। उग्र रुचि हो तो परिणति पलटे बिना रहे नहीं। परन्तु रुचिकी मन्दता है। ऐसी रुचि हो कि बाहरमें उसे कहीं चैन पड़े नहीं। ऐसी रुचि अन्दर उग्र हो तो स्वयं पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२५६

मुमुक्षु :- स्वरूपका अर्थात् ध्रुवका भावभासन जिसे कहते हैं, वह वर्तमान जो ज्ञान परिणति है, उसका भाव निर्विकल्पपना और स्वपरप्रकाशकपना .... उसके ख्यालपूर्वक जानपनामात्र जो पूरी वस्तु है, वह मैं हूँ, उस प्रकार-से पहचान तो हुई, पहले उस प्रकार-से पहचान नहीं होती थी। ये कोई जाननेवाली सत्ता है कि नहीं? परन्तु उस जाननेवालेकी सत्ताका प्रगट ख्याल स्पष्टरूप-से नहीं आता था। इस स्पष्ट ख्यालपूर्वक पूरा ध्रुव स्वरूप, उसका लक्षण-से ख्याल किया कि ऐसा अणूर्तिक, मूर्तिक शरीर-से बिलकूल भिन्न अमूर्तिक ज्ञानमय आत्मा मैं हूँ, ऐसा निर्णय करना है। वह निर्णय करना है वहाँ तक तो बराबर है। परन्तु वह निर्णय हो नहीं रहा है, निर्णय टिकता नहीं है, विचारमें मैं यह हूँ, ऐसा करे, फिर रागका परिणाम हो जाय, उसमें ठीक-अठीकपना तुरन्त वेदनमें आकर उसकी अधिकता भासित हो जाय, फिर निर्णय तो जो था वही रहता है। यहाँ-से भी आगे बढ़ना हो तो किस प्रकार-से करना चाहिये? और क्या करना चाहिये?

समाधान :- अंतरमें भावभासन हो कि ज्ञायक है वही मैं हूँ। ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण करके और बारंबार उसे यथार्थ निर्णय हो तो उसे टिकाये रखना चाहिये। वह टिकाता नहीं और पलट जाता है। बुद्धिपूर्वक निर्णय किया कि मैं भिन्न हूँ, ऐसा निर्णय किया कि मेरा अस्तित्व भिन्न है, ये सब विभावभाव-से मैं भिन्न हूँ। अकेला ज्ञानमात्र स्वभाव-ज्ञायक (हूँ)। ज्ञान माने अकेला गुण नहीं, परन्तु मैं पूरा ज्ञायक हूँ। ऐसे ग्रहण किया, बुद्धिमें नक्की किया परन्तु मैं भिन्न हूँ.. एकत्व परिणति जो स्वयंकी हो रही है, उस वक्त भी मैं भिन्न ज्ञायक हूँ, उस वक्त भी मैं भिन्न ज्ञायक हूँ, ऐसी उसकी दृढ़ता और ऐसी उसकी परिणति बारंबार टिकाता नहीं है। पलटकर वह मुख्य हो जाता है और यह गौण हो जाता है। अपने अस्तित्वको स्वयं भूल जाता है और जो विभावका अस्तित्व है, उसे मुख्य (हो जाता है)। मेरा अस्तित्व मानो विभावमें है। अपना अस्तित्व भूल जाता है। एक बार, दो बार, तीन बार वह नक्की करता है, परन्तु जो विकल्पकी धारा वर्तती है, उसमें एकत्व हो जाता है।

अन्दर स्वयं भिन्न है, ऐसा यथार्थ निर्णय किया कि मैं भिन्न ही हूँ, ऐसा नक्की

किया तो भिन्नता अनुसार स्वयं भिन्न कार्य करता नहीं है। मात्र बुद्धिमें निर्णय करता है। परन्तु भिन्नताका अभ्यास नहीं करता है। बारंबार उसे टिकाता नहीं है। और वह बुद्धिपूर्वक विकल्प-से करने जाय तो उपाधि और आकुलता हो जाय कि इसे कैसे टिकाना? एक जातका प्रयास वह नहीं कर सकता है। परन्तु वह सहजपने कैसे हो, उसकी बारंबार लगनी, अभ्यास बारंबार टिकाये रखे।

निर्णय किया उसका कार्य लाता नहीं है। मैं भिन्न हूँ, ऐसा नक्की किया लेकिन भिन्नतारूप कार्य नहीं लाता है। जो-जो परिणतिका उदय आता है, उसी वक्त मैं भिन्न हूँ, भिन्न रहनेका, उस प्रकार-से अपनी प्रतीतिको टिकानेका वह उद्यम नहीं करता है और कार्य लाता नहीं। इसलिये आगे नहीं बढ़ता है। निर्णय करके छोड़ देता है, निर्णय करके छोड़ देता है।

मुमुक्षु :- छूट जाता है, माताजी!

समाधान :- भले छूट जाता है। उतना प्रयास उसका आगे चलता नहीं है, छूट जाता है। छूट जाता है, बारंबार उसे टिकता नहीं है। परन्तु विकल्परूप-से, अभ्यास-रूप-से भी टिकाता नहीं है। विकल्परूप-से या अभ्यासरूप-से टिकाये तो उसे आगे जाकर सहज होनेका अवकाश है। परन्तु वह उसे टिकता नहीं है, छूट जाता है। इसलिये जो परिणति है उस तरफ दौड़ा जाता है। विकल्पमें, भावमें उसे रुचिमें लगे कि मैं भिन्न हूँ। परन्तु भिन्नका भिन्नरूप कार्य तो होता नहीं। बुद्धिमें रहता है और कार्य होता नहीं।

मुमुक्षु :- रागमें एकता तो तुरन्त दिखती है कि एकता यहाँ हो गयी।

समाधान :- हाँ, एकता हो जाती है। भिन्न भिन्नरूप कार्यरूप होता नहीं। इसलिये वह कार्य नहीं होता है। वह दूर जाय तो उसे भिन्नतारूप कार्य लानेका है। भिन्नताकी परिणति करके कार्य लानेका है, वह कर नहीं सकता है। बारंबार ऐसे ही खड़ा रहता है। उसमें उसे महेनत पड़ती है, इसलिये वह करता नहीं।

मुमुक्षु :- उसमें महेनत किस प्रकारकी?

समाधान :- उसे सहज (नहीं होता)। वह सहज है इसलिये वहाँ दौड़ा जाता है, अनादिका अभ्यास है वह सहज हो जाता है। इसमें उसे दिशा पलटनी है वह छूट जाता है। बुद्धिपूर्वक करके छूट जाता है, बारंबार छूट जाता है। इसलिये उतनी रुचिकी मन्दता है, पुरुषार्थकी मन्दता है। इसलिये वह छूट जाता है।

उतनी लगन लगी हो कि बस, यह चैतन्य ही (चाहिये), चैतन्य बिनाकी परिणति मुझे चाहिये ही नहीं। मुझे चैतन्यका ही अस्तित्व चाहिये। यह अस्तित्व मुझे नहीं चाहिये। उतनी अन्दर-से लगन, महिमा और रुचिकी उग्रता हो तो उसका पुरुषार्थ टिका रहता

है। नहीं तो उसका पुरुषार्थ बार-बार छूट जाता है। वह मात्र विकल्प-से नहीं टिकता। अन्दर-से सचमूचमें लगे तो वह टिके। वास्तवमें लगे तो टिके। तो उसका कार्यरूप आये। निर्णयका कार्य आये तो प्रतीति प्रतीतिरूप कार्य लाये।

मुमुक्षु :- पहले तो क्या होता था कि कोरा विकल्प था। भावभासन जिसे कहें ऐसा नहीं था। अब इतना ख्यालमें आता है कि इस प्रकार-से यह ज्ञायक है, उसमें अहंपना करना। परन्तु उसमें आधा घण्टा, एक घण्टा, दो घण्टा अभ्यास किया हो, परन्तु दूसरा प्रसंग आये इसलिये तुरन्त ऐसा लगे कि रागमें एकता हो जाती है।

समाधान :- अभी सहज नहीं है, इसलिये उसमें फिर-से एकता हो जाती है। उसे बारंबार अभ्यास करना चाहिये तो होता है। और रसपूर्वक अभ्यास हो और उसीकी महिमा लगे तो वह अभ्यास बारंबार हो।

मुमुक्षु :- इसीमें उग्र अभ्यास, रुचि, पुरुषार्थ और महिमा। इतना उसे बढ़ना चाहिये।

समाधान :- हाँ, वह बढ़ना चाहिये। अभ्यास, पुरुषार्थ, रुचि, महिमा सब बढ़ना चाहिये।

मुमुक्षु :- .. निर्णय तो निर्णय है। निर्णय हो तो फिर क्यों हट जाय?

समाधान :- निर्णयमें इतना कि यह मैं हूँ, इतना। परन्तु यह मैं हूँ, इससे भिन्न हूँ। परन्तु भिन्न भिन्नतारूप कार्य करे तो प्रतीतिने कार्य किया कहनेमें आये। भिन्नतारूप कार्य नहीं आता है, तबतक प्रतीति ज्योंकी त्यों बुद्धिपूर्वक रह जाती है।

मुमुक्षु :- भिन्नतारूप कार्य आवे तो उसे अतीन्द्रिय आनन्दका आवे, ऐसा कहना है?

समाधान :- भिन्नतारूप कार्य लाकर वह यदि सहज हो तो उसे अतीन्द्रिय आवे।

मुमुक्षु :- उसके पहले भिन्नतारूप कार्य किस प्रकार-से?

समाधान :- उसे भेदज्ञानका कार्य सहज होना चाहिये। फिर वह कितनी बार हो, वह उसके पुरुषार्थ (आधारित है)। किसीको तुरन्त अतीन्द्रिय निर्विकल्प स्वानुभूति हो, किसीको थोड़ी देर लगे। परन्तु उसे सहज भेदज्ञानकी धारा होनी चाहिये, तो उसे होता है। उसका कारण यथार्थ हो तो कार्य आता है।

मुमुक्षु :- अनुभवके पहले भी ऐसा कोई जुदा कार्य दिखता है?

समाधान :- भिन्न कार्य उसे आना चाहिये, भेदज्ञानकी धाराका कार्य आना चाहिये। भेदज्ञानका कार्य... निर्विकल्प दशाका जो यथार्थ कारण है वह कारण उसे यथार्थ होना चाहिये।

मुमुक्षु :- उस जातका कार्य...

समाधान :- हाँ, उस जातका कार्य। निर्विकल्प दशाका कारण है उस जातका। उसके पहले तो अभ्यास करता रहे। अभ्यास छूट जाय (तो बार-बार करे)।

मुमुक्षु :- कोई बार तो ऐसा लगे कि मानो सहज ख्याल आता हो ऐसा लगे। और कई बार घण्टों तक बैठे हों तो सामान्य स्पष्टता भी नहीं रहती हो, ऐसा भी बनता है।

समाधान :- भिन्न-भिन्न प्रकार-से परिणति कार्य करे। कोई बार सूक्ष्मरूप-से करे, कोई बार स्थूलरूप-से करे। इसलिये उसमें उसका प्रयत्न कोई बार तीव्र हो जाय। सूक्ष्म ग्रहण करे, कोई बार स्थूल (हो जाय), इसलिये उसमें उसे फेरफार होता रहता है।

मुमुक्षु :- .. कार्यमें आपने ऐसा कहा कि विकल्पात्मक भेदज्ञान अन्दरमें ऐसे कार्यरूप हो कि जिसका फल अनुभूतिरूप आये। ऐसी एक स्थिति भी बनती है।

समाधान :- हाँ, ऐसी स्थिति बनती है। उसे सहज धारा हो कि जिसका कार्य निर्विकल्प दशा आवे। अभी उसे, वास्तविक निर्विकल्पताके बाद जो सहज होता है, ऐसा नहीं कह सकते, परन्तु निर्विकल्प दशा पूर्व उसका कारण ऐसा प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- उस जातका आप ईशारा करना चाहते हैं कि इस प्रकारका होना चाहिये?

समाधान :- हाँ। ... करते-करते यदि उसे उग्र पुरुषार्थ हो तो उसे यथार्थ कारण प्रगट होनेका बन जाता है। अन्दर-से लगा रहे तो। छोड़ तो कोई अवकाश नहीं है।

मुमुक्षु :- ... अपनेको देखने-से ऐसा तो लगता है कि पुरुषार्थकी मन्दता है। जितनी उग्रता चाहिये उतनी नहीं है।

समाधान :- अपनेको ख्याल आये।

मुमुक्षु :- .. फिर भी ऐसा लगे कि पुरुषार्थ मन्द है। ऐसा ख्याल आये तो करता रहे।

समाधान :- बाहरमें निवृत्ति हो तो भी अंतरमें करना तो स्वयंको रहता है।

मुमुक्षु :- अब ऐसा लगता है कि थोड़ा-थोड़ा भावभासनमें आता जाता है। लेकिन अभी तो बहुत रुचि इत्यादिका पुरुषार्थ बाकी है।

समाधान :- भावभासन होकर उसको टिकाना, उस प्रकारका अभ्यास करना वह बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- १७वीं गाथामें आया कि पहले जानना और फिर श्रद्धान करना, वह कैसे जानना? आत्मा तो अरूपी है।

समाधान :- अरूपी जाननेमें आता है। अरूपी है परन्तु कोई अवस्तु नहीं है। वस्तु है इसलिये ज्ञात होती है। ज्ञानको ज्ञान-से जाना जाता है, ज्ञायकको ज्ञान-से जाना जाता है। ज्ञायक अरूपी और ज्ञान भी अरूपी। इसलिये ज्ञायक ज्ञान-से ज्ञात होता है। उसे जाननेके लिये रूपी वस्तुकी जरूरत नहीं पड़ती। अरूपी अरूपी-से ज्ञआत होता है। ज्ञान अरूपी और ज्ञायक अरूपी है। ज्ञान-से ज्ञायक ज्ञात होता है। उसे

रूपी वस्तुकी मददकी आवश्यकता नहीं है। बीचमें निमित्त होता है उतना। बाकी स्वयं उसके लक्षण-से जान सकता है। देव-गुरु-शास्त्रका निमित्त होता है, परन्तु उपादान स्वयं तैयार करके जाने तो स्वयं अपनेको ज्ञान द्वारा ज्ञायक ज्ञात होता है।

मुमुक्षु :- विकल्प द्वारा नहीं?

समाधान :- विकल्प-से ज्ञात नहीं होता। विकल्प बीचमें आता है, परन्तु विकल्प-से ज्ञात नहीं होता, ज्ञायक ज्ञान-से ज्ञात होता है।

मुमुक्षु :- सलाह देनेवाला मिथ्यादृष्टि है उसे रागका ही स्वभाव वर्तता है, ज्ञायकका ज्ञान नहीं वर्तता, तो उसका कैसे करना?

समाधान :- नहीं वर्तता है उसे प्रयत्न करके जानना चाहिये। रागका ज्ञान उससे भिन्न होकर, पुरुषार्थ करके स्वयं स्वसन्मुख दिशा बदलनी चाहिये, तो ज्ञात होता है। अनादिका जो अभ्यास है उसमें चला जाता है। अंतरमें देखता नहीं, इसलिये मात्र रागका ज्ञान वर्तता है। स्व तरफ उपयोग करके स्व तरफ मुड़ना चाहिये, तो ज्ञात हो। उसकी दिशा बदलनी चाहिये, उसे पलटना चाहिये तो ज्ञात हो।

दिशा बदलता नहीं है, एक ही दिशामें चला जाता है। उसे पलटना चाहिये। मार्ग पर चलता हुआ मनुष्य ऊलटी दिशामें चलता हो, वह पलटे तो दूसरी दिशामें मुड़ सकता है। गुरुदेवने तो बहुत बताया है। कौन-सी दिशा, किस ओर मुड़ना वह बताया, परन्तु मुड़ना अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- कोई आसान तरीका बताईये न।

समाधान :- वह आसान ही है। आसानमें आसान वह-ज्ञान लक्षण-से आत्माको पहचानना। वह सरल-से सरल है। उसमें बाहरका कुछ करना नहीं होता, या उसमें कुछ बाहर-से कष्ट करना या दूसरा कुछ नहीं आता। तेरे स्वसन्मुख उपयोग करके, सूक्ष्म दृष्टि करके अंतरकी लगनी और महिमा लगाकर तू अंतरमें जा। अंतरमें देख, उसका भेदज्ञान कर कि यह भिन्न है, राग भिन्न और ज्ञान भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान कर, अंतर-से न्यारा हो जा, वह सरल-से सरल उपाय है। उसकी लगन लगा, महिमा लगा, वह सब कर। वह सरल उपाय है।

बाहरका सब है वह उसे सरल लगा है। वह तो पर पदार्थ है। उसे अपना करनेके लिये प्रयत्न किया तो भी वह अपने होते नहीं। उस सर्व उपाय निष्फल है। वह उसे सरल लगता है वह दुर्लभ है, और यह अपना सरल है वह उसे दुर्लभ हो गया है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- जाननेवाला है। ऐसा पूरा जाननेवाला मैं हूँ। जो जाणकतत्त्व है पूरा जानन स्वभाव-से भरा है। जिसमें नहीं जानना ऐसा कुछ नहीं है। ऐसा जाननेवाला

तत्त्व है वही मैं हूँ। यह जड़ तत्त्व है और यह जाननेवाला तत्त्व है। वह जाननतत्त्व अनन्त-अनन्त शक्ति-से भरा हुआ, ऐसा जाननतत्त्व मैं हूँ। मात्र वर्तमान जाना उतना नहीं, परन्तु अखण्ड जाननेवाला है वह मैं हूँ। पूर्ण जाननेवाला वह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- .. श्रद्धामें नक्की करना ना?

समाधान :- यह मैं ही हूँ, ऐसा श्रद्धा-से, विचार-से नक्की करना। लक्षण पहिचानकर, विचार करके उसकी प्रतीत-श्रद्धा करे कि यही मैं हूँ, अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। ऐसे प्रतीत तो स्थूलता-से की, परन्तु अंतर-से जब प्रतीत हो तब उसे अन्दर-से सत्य ग्रहण होता है। पहले बुद्धिपूर्वक विचार करे, फिर अंतर-से विचार करे।

मुमुक्षु :- ऐसा होकर फिर छूट जाता है।

समाधान :- विचारपूर्वक नक्की करे, अभ्यास करे, परन्तु अंतर-से जो होना चाहिये, वह स्वयं पलटे तो होता है।

मुमुक्षु :- उस दिन आपने .. बात कही तो दो-तीन दिन-से..

समाधान :- स्वयं तो भिन्न ही है। अभ्यास करना, छूट जाय तो। अनादिका अभ्यास है इसलिये बारंबार उसमें चला जाता है। छूट जाये तो बारंबार अभ्यास करना। बारंबार उसकी लगनी, महिमा, विचार, बारंबार प्रतीत करनेका अभ्यास बारंबार करना, छूट जाय तो। छूट जाय तो बारंबार करना। थकना नहीं। बारंबार करना।

... आचार्यदेव कहते हैं, अविच्छिन्न धारा-से भानी। केवलज्ञान हो तबतक भेदज्ञानकी धारा ज्ञानदशामें सहजपने चलती है। तो पहले उसका अभ्यास करना। वह अभ्यास छूट जाय तो बारंबार करना।

मुमुक्षु :- थोड़े समयमें क्या करना?

समाधान :- सबको एक ही करनेका है। आचार्यदेव कहते हैं न, आबालगोपाल सबको एक ज्ञायक आत्मा पहचानना है।

मुमुक्षु :- हमारी तो बहुत उम्र हो गयी है।

समाधान :- बहुत साल सुना है। बस, वह एक ही करनेका है। एक ज्ञायक आत्माको पहिचानना वही करनेका है। ज्ञायक आत्माको पहिचानना। ज्ञायक जुदा है और शरीर जुदा है। सब भिन्न है। विभाव स्वभाव अपना नहीं है, उससे स्वयं भिन्न है। आत्मा शाश्वत (है)। ये उम्र आदि शरीरको लागू पड़ता है, आत्माको कुछ लागू नहीं पड़ता। आत्मा तो शाश्वत है। आत्माको पहिचानना, आत्मा ज्ञायक है।

देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा अंतरमें और अंतरमें शुद्धात्माको पहिचाननेका प्रयत्न करना। सबको एक ही करना है। एक ज्ञायक आत्माको पहिचानना। मैं ज्ञायकदेव भगवान आत्मा हूँ। मेरे आत्मामें ही सर्वस्व है। मैं अद्‌भुत आत्मा, अनुपम आत्मा आनन्द-से भरा,

ज्ञान-से भरा, अनन्त प्रभुता-से भरा मैं चैतन्य हूँ। ऐसा अद्‌भुत तत्त्व मैं हूँ। सबको एक ही करना है। मैं ज्ञायक आत्मा जाननेवाला, शाश्वत आत्मा हूँ। शरीरकी कोई भी अवस्था हो, वह मैं नहीं हूँ। मैं उससे भिन्न हूँ। मैं चैतन्य स्वरूप आत्मा शाश्वत हूँ।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२५७

मुमुक्षु :- आपको तो नारियलके गोलेमें जैसे गोला भिन्न पड़ गया है, वैसे अनुभव तो हो गया है। और हमें तो एकतारूप परिणमन है, उसका क्या करना?

समाधान :- भिन्न पड़नेका प्रयत्न करना। सबको एक ही करनेका है। न्यारा होनेका प्रयत्न करना। न्यारेकी रुचि हो तो न्यारा होनेका प्रयत्न करना। न्यारा जो आत्मा है, उसमें ही आनन्द और उसमें ही ज्ञान है। वही आनन्दका सागर, ज्ञानका सागर है। न्यारा पड़नेकी जिसे रुचि हो उसे न्यारा होनेका प्रयत्न करना। एकता हो तो न्यारा होनेका प्रयत्न करना। वह एक ही (उपाय) है।

स्वयं एकत्वबुद्धि कर रहा है और न्यारा भी स्वयं ही हो सकता है। जन्म-मरण करनेवाला स्वयं ही है और मोक्ष जानेवाला भी स्वयं ही है। स्वयं स्वतंत्र है। अनादिके अभ्यासमें स्वयं कहीं-कहीं बाहरमें रुक गया है। अंतरमें ऐसा अभ्यास, वह जैसे सहज हो गया है, वैसा चैतन्यका अभ्यास (करे), स्वयं ऐसा चैतन्यका गाढ़ अभ्यास करे तो भिन्न पड़े बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- परका सहज हो गया है।

समाधान :- परका सहज हो गया है। यह तो स्वयं है, वह स्वयंका दुष्कर हो गया है। स्वयंको सहज करे, सहज होनेका प्रयत्न करे तो हो।

मुमुक्षु :- आप तो बहुत मदद करते हो। रुचि करनेमें आप ऐसी मदद नहीं कर सकते?

समाधान :- रुचि तो स्वयंको ही करनी पड़ती है न। रुचि तो अपने हाथकी बात है। रुचि कोई करवा नहीं देता। गुरुदेव मार्ग बताये कि ये चैतन्य और ये विभाव। सुख आत्मामें है, बाहर नहीं है। ऐसा बताये कि सुख तेरे आत्मामें है, बाहर नहीं है। गुरुदेव कहते हैं कि हम तुझे बताते हैं कि आत्मा कोई अनुपम है। उसकी रुचि तुझे लगे तो कर। समझनके अन्दर रुचि आ जाती है कि यह दुःख है और यह सुख है, ऐसा गुरुदेवने बताया। यदि तुझे सुख चाहिये तो आत्माकी रुचि कर। तुझे परिभ्रमण करना हो और रुचि नहीं करनी हो तो तेरे हाथकी बात है।

तुझे यदि आत्मामें-से सुख प्रगट करना हो तो उसकी रुचि कर। और समझनपूर्वक

उस मार्ग पर रुचि करके जा तो तुझे मार्ग सहज है, सुगम है। रुचिके साथ समझन आती है। समझनपूर्वक रुचि कर। (परका) सब सरल हो गया है और आत्मा समझना उसे दुष्कर हो गया है। स्वयं ज्ञानस्वभावी आत्मा ही है, ज्ञायकस्वभावी आत्मा है। सहज-सहज सब करता है। अंतरमें मुड़नेमें उसे महिनत पड़ती है।

मुमुक्षु :- .. फिर बाहर आ जाता है।

समाधान :- बाहर आ जाता है, (क्योंकि) अनादिका अभ्यास है। रुचि मन्द पड़े इसलिये बाहर चला जाता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- करना तो स्वयंको है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- उपाय एक ही है। उपाय अनेक हो तो (दिक्कत हो)। वस्तुका स्वभाव एक ही उपाय है। अनेक उपाय हो तो मनुष्यको उलझनमें आना होता है। उपाय तो एक ही है, लेकिन स्वयं करता नहीं है।

वस्तुका स्वभाव आसान, सुगम और सरल है। गुरुदेव एक ही मार्ग कहते थे, मार्ग वस्तु स्वभाव-से एक ही है। गुरुदेव ऐसा कहते थे और वस्तुका स्वभाव भी वह है। उपाय एक ही है, करना स्वयंको है। होता नहीं इसलिये प्रश्न उत्पन्न होते हैं, कैसे करना? क्या करना? परन्तु अनादिके अभ्यासके कारण बाहर चला जाता है, इसलिये अंतरमें मुड़ नहीं सकता, अपनी मन्दताके कारण। मुड़े तो भी पुनः बाहर चला जाता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ नहीं करता है। इसलिये वापस बाहर..

समाधान :- पुरुषार्थ नहीं करता है।

समाधान :- ... अपना करने जैसा है। (परिभ्रमण करते हुए) मुश्किल-से मनुष्यभव मिले। उसमें इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले, ऐसा संयोग मिला, ऐसा सब मिला। सबको लगे लेकिन शान्ति रखनेके अलावा कोई उपाय नहीं है। शान्ति रखनी। मौके पर शान्ति रखनी।

अनन्त जन्म-मरण किये, उसमें मुश्किल-से मनुष्यभव मिला। कितनी बार देवमें गया, कितनी बार मनुष्य (हुआ)। भावमें कितने ही विभावके भावोंमें परिवर्तन किया। उसमें बड़ी मुश्किल-से यह मनुष्यभव मिला, उसमें आत्माका करने जैसा है। जितना सम्बन्ध हो उतना लगे, परन्तु पूर्व भवमें कितनोंको छोड़कर आया, स्वयंको छोड़कर दूसरे चले जाते हैं। संसारका स्वरूप ही ऐसा है।

पूर्वमें कोई परिणाम किये हो उसके कारण सब सम्बन्धमें आते हैं। फिर जहाँ

आयुष्य पूरा होता है वहाँ सब बिछड़ जाते हैं। संसारका स्वरूप है। कोई कहाँ-से आता है, कोई कहाँ-से आकर परिणामका मेल आकर इकट्ठे होते हैं। फिर-से बिछड़ जाते हैं। ऐसे जन्म-मरण कितने जीवने किये।

वर्तमान सम्बन्धके कारण दुःख लगे। ऐसे जन्म-मरण जीवने बहुत किये हैं। शास्त्रमें आता है, जन्म-मरण एक ही करे, सुख-दुःख वेदे एक। चार गतिमें भटकनेवाला एक और मोक्षमें जीव अकेला जाय। सब अकेला ही करनेवाला है। स्वयं अन्दर-से परिणाम (बदल देना)। गुरुदेव कहते हैं न? देव-गुरु-शास्त्र और आत्मा, ये दो करने जैसा है।

मुमुक्षु :- बारंबार-बारंबार इसीका रटन चाहिये, इसीका चिंतन चाहिये। ऐसा चाहिये, माताजी!

समाधान :- वही करने जैसा है। उसीका अभ्यास बारंबार करने जैसा है। चाहे जो प्रसंगमें वैराग्यमें आना, वैराग्यकी ओर मुड़ना वही आत्मार्थीका कर्तव्य है। यहाँ गुरुदेव भी ऐसा ही कहते थे कि, शरण हो तो एक आत्मा और देव-गुरु-शास्त्र है। (राग हो) इसलिये सबको ऐसा लगे।

... ऐसा हो जाय कि ऐसी ही कर लें। संसार ऐसा है। याद आवे परन्तु बारंबार समाधान करना वही एक उपाय है। वह एक ही उपाय है। बारंबार पुरुषार्थ। आत्मा सब-से न्यारा है। पूर्व भवके कारण सम्बन्ध बाँधे तो सम्बन्धके कारण ऐसा लगे कि ऐसा हुआ, ऐसा हुआ। परन्तु सम्बन्ध वर्तमान भव तक होते हैं। उस पर-से बार-बार विकल्प उठाकर अपनी तरफ मुड़ने जैसा है। मैं चैतन्य हूँ। पंचम कालमें ऐसे गुरु मिले। भगवान, शास्त्र आदि सबको याद करने जैसा है।

याद आये तो बार-बार बदल देना। भगवानको आहारदान... जुगलियाके भवमें तिर्यंच थे, आहारदानकी अनुमोदना की तो सबके भाव एक समान हो गये। तो समान भव हुए। किसीके परिणाम अलग हो जाते हैं तो कोई कहाँ, कोई कहाँ, ऐसा होता है। संसारका स्वरूप ही ऐसा है।

(मैं) आत्मा जाननेवाला हूँ। शाश्वत आत्मा (हूँ)। आत्मा तो शाश्वत है, देह बदलता है। बाकी आत्मा तो शाश्वत है। जहाँ जाय वहाँ आत्मा शाश्वत है। देह बदलता है। देह एकके बाद एक अन्य-अन्य देह जीव धारण करता है, अपने परिणाम अनुसार। आयुष्य पूरा हो जाय तो एक देहमें-से दूसरा देह धारण करता है। आत्मा तो वही शाश्वत है। दूसरा देह धारण करता है।

चार गतिमें जीव अनेक जातके देह धारण करता है। आत्मा तो शाश्वत रहता है। आत्माको बाहरकी वेदना या शरीरमें कुछ हो, कोई बाहरके ऐसे प्रसंग बने, आत्माको कुछ लागू नहीं पड़ता। आत्मा तो वैसाका वैसा है। आत्माको कुछ हानि नहीं होती

या आत्मामें-से कुछ जाता नहीं, मात्र शरीर बदलता है। वर्तमान क्षेत्र-से दूर होता है, इसलिये ऐसा हुआ ऐसा लगे। आत्मा तो वैसाका वैसा है। आत्मामें कुछ हानि नहीं होती। आत्माके कोई गुणोंकी या किसी भी प्रकारकी आत्माकी हानि नहीं होती।

करना अन्दरमें है। अन्दर-से भाव कैसा उग्र हो गया। स्वतंत्र है। सबके परिमाम स्वतंत्र हैं। ऐसे गुरु मिले और घरमें सब ऐसा वातावरण। नानालालभाई कैसे थे, ऐसा हो। लेकिन प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। क्या हो? ऐसे भाव हो गये। आयुष्य वैसे ही पूरा होनेवाला था। जैसी अपनी रुचि हो वह अपने साथ आता है। गुरुदेवने उपदेश दिया वह ग्रहण करनेका है।

मुमुक्षु :- तुरन्त यही विकल्प आया कि माताजीके दर्शन करने पहुँच जाते हैं, भगवानके दर्शन करने पहुँच जाते हैं।

समादान :- उपदेशकी जमावट की है। शास्त्रमें आता है कि मेरे गुरुने जो उपदेशकी जमावट की, उसके आगे मुझे सब तुच्छ है। जगतका राज या तीन लोकका राज भी मुझे तुच्छ लगता है। गुरुदेवके उपदेशकी जमावटके आगे चाहे जो भी प्रसंगमें, उस उपदेशके आगे सब गौण है। एक गुरुदेवका उपदेश हृदयमें रखकर, एक ज्ञायक आत्माको मुख्य रखने जैसा है।

समाधान :- ... लक्ष्मणजीने तीर्थंकर गोत्र बाँधा है तो गति अलग-अलग हो गयी। रामचंद्रजी मोक्ष पधारे, लक्ष्मणजी कहाँ गये, सबके परिणाम अनुसार (चले जाते हैं)। लक्ष्मणजी तीर्थंकर होनेवाले हैं। सबके परिणाम (अनुसार सब) इकट्ठे हो, फिर बिछड़ जाय। सबके परिणाम अनुसार सब बिछड़ते हैं।

मुमुक्षु :- जिसके बिना एक क्षण जी नहीं पाऊँगा ऐसा था, उसके बिना अनन्त काल बीत गया। उसके सामने नहीं देखूँगा, ऐसा उसका क्रोध था, उसके घर पुत्र बनकर जन्मा।

समाधान :- जिसके बिना एक क्षण जी नहीं पाऊँगा उसके बिना जीवने अनन्त काल व्यतीत किया है।

मुमुक्षु :- जिसका नाम नहीं लूँगा, ऐसा क्रोध था। उसके घर पुत्र बनकर जन्मा।

समाधान :- पुत्र बनकर जन्मता है। ऐसा श्रीमद्में आता है।

मुमुक्षु :- हाँ, श्रीमद्में आता है।

समाधान :- ... स्वयं भिन्न नहीं जानता है। अनादिके भ्रमके कारण एकत्व कर रहा है। उसे भिन्न नहीं करता है। भिन्न करना अपने हाथकी बात है। कितने जन्म-मरण किये हैं। ऐसेमें इस भवमें गुरुदेव मिले, ऐसा उपदेश मिला। गुरुदेवने समाजके बीच, सबके बीच रहकर जो उपदेश दिया है, वह इस पंचमकालके अन्दर क्वचित् (ही

बनता है)।

कोई मुनिवर जंगलमें हो। गुरुदेव तो इस पंचमकालका महाभाग्य कि सब मुमुक्षुओंको बरसों तक उपदेश बरसाया है। वह उपदेश मिला है। .. पंचमकालमें गुरुदेवका योग मिल गया। उनकी अपूर्व वाणी.. महापुरुषकी वाणी थोड़ी (होती है), ये वाणी तो बरसों तक मिली है। कोई बार मिले तो भी महाभाग्यकी बात है। ये तो बरसों तक मिली।

मुमुक्षु :- नयी दृष्टि मिली हो, गुरुदेवका उपेदश किस प्रकार ग्रहण करना? किस प्रकार सुनना? ऐसा लगना।

समाधान :- गुरुदेवने बाह्य दृष्टि छोड़कर अंतर दृष्टि करनेको कहा है। बाकी जगतको तू भूल जा और तेरे आत्मामें दृष्टि कर। आत्माको याद कर। आत्मा भिन्न है। आत्माकी दुनिया याद कर। जगतकी दुनिया विस्मृत करने जैसी है। आत्मा कोई अपूर्व है, वह अलौकिक वस्तु है। उसे याद कर, उसकी पहचान कर।

आत्माकी दुनिया कोई अलग है। चैतन्य अनन्त गुण-से भरपूर वस्तु है। सर्वोत्कृष्ट भगवान, गुरु और शास्त्र जगतमें मिलना ही दुर्लभ है। पंचमकालमें मिले और अन्दर आत्मा अपूर्व है उसकी बात गुरुदेवने बतायी। कोई वस्तु अपूर्व नहीं है। अनन्त बार देवलोकमें गया। जगतमें सब पदवी प्राप्त हो गयी है, परन्तु एक आत्माकी पदवी, सम्यग्दर्शनकी पदवी प्राप्त नहीं हुयी। वह अपूर्व है। वह कैसे प्राप्त हो, उसकी भावना करने जैसी है।

जिनवर स्वामी मिले परन्तु स्वयंने पहचाना नहीं। और सम्यग्दर्शन एक दुर्लभ है, वह अपूर्व है। जगतमें वह अपूर्व वस्तु है। बाकी सब जगतमें प्राप्त हो गया है। (अनादि-से स्वयंको) भूलता आया है। उसे भूलकर पुण्य देखकर उसे ऐसा लगता है कि कुछ नया है। वह नया नहीं है। परन्तु आत्मा वस्तु ही नवीन है। ऐसेमें पंचमकालमें गुरुदेव मिले, उनकी वाणी मिली, उनका सान्निध्य मिला। वह कोई महाभाग्यकी बात है कि इस पंचमकालमें ऐसा मिले।

समाधान :- ... मुझे देव-गुरु-शास्त्रके बिना नहीं चलेगा। प्रभु! मैं आपको साथमें रखता हूँ। पंच परमेष्ठी भगवंतोंको मैं साथमें रखता हूँ। आपके बिना नहीं चलेगा। मैं आपको साथमें रखकर पुरुषार्थ करुँगा, मुझ-से करुँगा, लेकिन आपको साथमें रखूँगा। माँ-बापको साथमें रखता है, वैसे पंच परमेष्ठी भगवंत, आप पधारो, मैं आपको साथमें रखता हूँ, आपके बिना नहीं चलेगा।

दीक्षा उत्सवमें सब पधारो। सबको निमंत्रण देते हैं। तीर्थंकरोंको, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु सब पधारो। सबको मैं निमंत्रण देता हूँ। मैं दीक्षा लेता हूँ, मेरे पुरुषार्थ-से मैं जाता हूँ, परन्तु आप मेरे साथ आओ। आपके बिना नहीं चलेगा।

ऐसे मुमुक्षुको भी ऐसा होता है कि मुझे आत्मा प्राप्त करना है, उसमें देव-गुरु-शास्त्रके बिना मुझे नहीं चलेगा। मैं साथमें रखता हूँ।

.. इस दुनियाको भूलकर चैतन्यकी दुनिया और देव-गुरु-शास्त्रकी दुनिया, उसे याद करने जैसा है, वह स्मरणमें रखने जैसा है। जगतमें दूसरा कुछ विशेष नहीं है।

.. उसमें-से आकर वाणी बरसाये। और तीर्थंकर भगवानकी वाणी निरंतर बरसे। गुरुदेवने भी तीर्थंकर भगवान जैसा ही काम अभी किया है। उनकी वाणी निरंतर बरसती रही, बरसों तक।

मुमुक्षु :- .. आलोचनाका पाठ बोला था।

समाधान :- आचार्यदेव खुद कहते हैं और गुरुदेव आलोचना पढ़ते थे। गुरुदेवने उपदेशकी जमावट बरसों तक की थी। हृदयमें वह रखने जैसा है। ये पृथ्वीका राज प्रिय नहीं है, परन्तु तीन लोकका राज प्रिय नहीं है, वह सब मुझे तुच्छ लगता है। गुरु-उपदेशकी जमावट ही मुझे मुख्य है, कि जिसमें-से ज्ञायक प्रगट हो। वही मुझे मुख्य है। बाकी सब मुझे जगतमें तुच्छ है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२५८

मुमुक्षु :- माताजीके वचनामृतमें गुरुदेवने रसकस-से गुरुदेव स्वयं ही इतने ही रस-से बात करते हो, इस उपदेशकी जमावट (होती है), इतनी नवीनता (लगती है), ऐसे सुनते हों, परन्तु आपके कहनेके बाद सुनते हैं तो बहुत फ़र्क़ लगता है। नयी बात ही लगे।

समाधान :- हाँ। गुरुदेव स्वयं शास्त्रकी बात कहते हो, स्वयं भी ऐसा कहते थे।

मुमुक्षु :- शुरूआतमें आपके द्वारा लिखे गये समयसारके प्रवचन है, उसमें पहले पढ़ा था। गुरुदेवका एक वचन आता है।

समाधान :- हमें रुचता है उसका गीत गाते हैं। दूसरेके लिये नहीं। हमको जो रुचता है उसका गीत हम गाते हैं। शास्त्र पढ़ते वक्त गुरुदेव आहाहा..! स्वयं रंग जाते थे। वही शास्त्र हम पढ़े और गुरुदेव पढ़े, वह कुछ अलग ही होता है। गुरुदेव स्वयं एकदम रंगमें आकर पढ़ते थे। उनकी स्वयंकी महिमाको मिलाकर जो निकालते थे, उनको जो महिमा आती थी, वह कुछ अलग ही प्रकार-से पढ़ते थे। अपने आप पढ़ें और गुरुदेव पढ़ें, वह कुछ अलग ही प्रकार-से पढ़ते थे।

जीवको देशनालब्धि होती है। जीव अनादिकाल-से जो समझा नहीं है। उसे एक बार जिनेन्द्र देव या गुरु, कोई उसे मिलता है। देशना सुनकर अंतरमें-से देशनालब्धि प्रगट होती है। आत्माका स्वरूप अप्रगटपने भी ग्रहण होता है। वह अपनेआप अनादि काल-से (प्रयत्न करता है)। जो चैतन्य-स्पर्शी वाणी आती है, उस वाणीके साथ उपादानका सम्बन्ध होता है। आत्माको जागृत होनेमें ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है। पुरुषार्थ भले अपने-से हो, जीव स्वतंत्र पुरुषार्थ करे तो भी निमित्त और उपादानका ऐसा सम्बन्ध है।

चैतन्यकी जो वाणी निकलती है वह अन्दर-से घुलमिलकर, अंतरमें जिसे प्रगट हुआ है, वह प्रगट जिनको हुआ है उनकी वाणी नीकले, उस वाणीकी असर उसके उपादान उपर (होती है)। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। इसलिये गुरुदेवकी चैतन्य-स्पर्शी वाणी आये, वह दूसरेको जागृत होनेमें निमित्त होती है। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है।

अपनेआप शास्त्र पढ़े और जो गुरुदेव स्वयं कहे उसकी जो असर हो, वह असर अलग ही होती है। ग्रहण करके स्वयं पढ़े तो उसे दृष्टिमें कुछ समझमें आये, परन्तु पहले तो गुरुदेव समक्ष, जिन्हें साक्षात् चैतन्य प्रगट हुआ है, उनकी वाणी ही चैतन्यको प्रगट होनेमें निमित्त होती है, ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है। जीव स्वतंत्र होने पर भी स्वतंत्र पुरुषार्थ करता है तो भी उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध है। गुरुके साथ और देवके साथ।

उनका आत्मा किस प्रकार कहता है? वह स्वयं आत्मा है न, इसलिये उसे एकदम ग्रहण होता है। टेपमें भी .. सबको उस जातके संस्कार है न। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका सम्बन्ध हो जाता है। टेप अलग होती है, सब अलग होता है।

स्वयंको चैतन्यको ग्रहण करना है, परन्तु गुरुकी वाणी चैतन्य बताये कि तू आत्मा है। बारंबार कहे। वह धोबीका वस्त्र गलती-से ओढकर सोया है। उसे बारंबार गुरु कहते हैं, ये वस्त्र तेरा नहीं है, तेरा नहीं है। तब उसे मालूम पड़ता है कि ये मेरा नहीं है। वैसे गुरुदेवने बारंबार उपदेशमें कहा कि तू आत्मा भिन्न है। ये शरीर भिन्न है, ये विभाव तेरा स्वभाव नहीं है, सब भिन्न है। भिन्न है-भिन्न है। कितने साल वाणी बरसायी। अन्दर दृढ़ संस्कार, गुरुकी वाणी-से दृढ़ संस्कार पड़ते हैं।

बाकी अनादि-से क्षयोपशम ज्ञान ऐसा है कि बाहरका सब ग्रहण करता है, परन्तु अपनेको ग्रहण करनेमें गुरुकी वाणी मिले तो उपादान और निमित्तका ऐसा सम्बन्ध है। क्षयोपशम ज्ञान बाहरका सब ग्रहण करे। एक जातिके लोग हो तो खुदने थोड़ा-सा देखा हो तो उस मनुष्यको पहचानता है। उसे स्थूल उपयोग कहते हैं, उसमें सूक्ष्मता-से भेद कर सकता है।

बहुत सालके बाद आदमीको देखे तो ऐसा कहे, यह वही आदमी है। उसमें क्या फ़र्क़ पड़ा? उस वह कह नहीं सकता कि उसके आँखें अलग है, या उसका चहेरा अलग है, यह अलग है, ऐसा भेद तो करता है, परन्तु वह बोल नहीं सकता। थोड़ा-थोड़ा फेरफार हो तो उसका ज्ञान क्षयोपशम ज्ञान चारों ओर पहुँच सकता है। यह फलाना आदमी, फलाना आदमी। ऐसे दूर-से भी पहचान सकता है। क्षयोपशम ज्ञान ऐसे भेद करता है। ऐसे स्थूल कहनेमें आता है, परन्तु सूक्ष्म भेद बाहरमें करता है।

अंतरमें स्वयंको पहचानना हो, वह भेद ज्ञान ही करता है। परन्तु वह ज्ञान अपनी ओर मुड़कर स्वयंको पकड़नेमें (सक्षम नहीं होता)। अनादिका बाहरका अभ्यास हो गया है, स्वयंको पकड़ नहीं सकता। पुरुषार्थ करे तो पकड़े। गुरुकी वाणी आवे। उस वाणीके साथ उपादानका (सम्बन्ध है)। तू भिन्न है।

ज्ञान ज्ञानको ग्रहण करे, ज्ञायकको ग्रहण करे ऐसा उसका स्वभाव है। परन्तु वह

ग्रहण करनेमें स्वयं पुरुषार्थ करे तो उसकी दिशा बदलती है। बाहरका ग्रहण करनेमें उसे सहज-सहज ग्रहण करता है। उसमें उसे उपाधि नहीं लगती, बोझ नहीं लगता। कुछ नहीं लगता। परन्तु अंतरमें जाय तो उसे उपाधि-बोझ लगता है। गुरुदेवने वाणी बरसाकर सरल कर दिया है। परन्तु पुरुषार्थ स्वयंको करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- अंतर पुरुषार्थ ... बाहर-से भिन्न-भिन्न व्यक्तिको पहचान सकते हैं, ऐसे आत्माको भी पहचान सकता है?

समाधान :- आत्माको पहचान सकता है। स्वयं ही है। स्वयं ही है। ज्ञान ज्ञानको पहिचान सकता है। ऐसा सूक्ष्म भेद करता है।

मुमुक्षु :- बाहरमें तो वह ख्यालमें आता है, आप कहते हो वैसा। साधारण तो...

समाधान :- क्या भेद है वह बोल नहीं पाता। उसकी आँखें अलग है, चहेरा अलग है, यह अलग है, दिखनेमें सब एक समान लगता है। तो भी क्षयोपशमज्ञान भेद तो करता ही है कि यह मनुष्य यह है और यह मनुष्य यह है। ज्यादा लोगोंमें क्षयोपशम ज्ञान भेद कर देता है। इतना सूक्ष्म होकर भी भेद करता है। उसी तरह अपनी ओर मुड़े तो स्वयंको पहचान सके, परन्तु मुड़ता ही नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसा अपनेको स्पष्ट पहचान सकता है?

समाधान :- हाँ, स्पष्ट पहचान सकता है। उसमें उसे बाहरमें शंका भी नहीं पड़ती। कोई उसे तर्क करे कि ये मनुष्य वह नहीं है। तो भी कहता है, ना, वही है। बिना विचार किये, तर्क बिना नक्की करता है कि यह वही मनुष्य है। दूसरे लोग कहे तो भी जूठा ही है।

वैसे स्वयंको नक्की कर सकता है कि यह मैं ही हूँ, यही मेरा अस्तित्व है। ऐसे तर्क बिना निःशंकपने स्वयंको ग्रहण कर सकता है कि यही मैं हूँ। अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। ये रागादि मैं नहीं हूँ, यही मैं हूँ। निःशंकपने ग्रहण कर सकता है।

मुमुक्षु :- अद्‌भुत बात करते हो, परन्तु कितनी बार ऐसा प्रयत्न करने-से हो और क्या होता है... पीछली बार कहा था कि भावभासन होनेके बाद विकल्पात्मक भेदज्ञान-से उसे टिकाये रखना चाहिये। तो उसे टिकाये रखनेमें ऐसा विचार आता है कि परिणतिमें रसका वेदन तो हो जाता है, तत्त्वका रस वेदनमें आता है, उस वक्त मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, ऐसा अभ्यास करते रहना उसका नाम टिकना है? विकल्पात्मक भेदज्ञान (उसे कहते हैं)?

समाधान :- विकल्पमें उसे ऐसा गाढ़ अभ्यास हो गया है, इसलिये उसे बीचमें विकल्प आते ही रहते हैं। परन्तु अंतरमें जो अपना गुण है, उस गुण द्वारा पूरे ज्ञायकको ग्रहण करना कि यह ज्ञान जितना, वर्तमान जाने उतना ही मैं नहीं हूँ, परन्तु मैं पूर्ण

जाननेवाला ही हूँ, जो जाननेवालेका अस्तित्व है वही मैं हूँ। यह जाना, वह जाना ऐसा पर्यायमात्र जाना वह नहीं, परन्तु जाननेवालेका पूरा अस्तित्व है वही मैं हूँ। परन्तु जाननेवालेका पूरा अस्तित्व है, वही मैं हूँ। ऐसा उसे अन्दरमें ऊतरकर उसकी परिणति अन्दरसे अपने अस्तित्वमें-से ग्रहण होनी चाहिये।

उसे विकल्प साथमें आते हैं, इसलिये बार-बार विकल्प छूट जाता है और दूसरा विकल्प आता है। इसलिये उसका अनादिका अभ्यास ऐसे ही चालू रहता है। परन्तु बारंबार (भेदज्ञानको) दृढ़ करता रहे तो सहज होता है।

मुमुक्षु :- शुरूआतमें दृढ़ यानी इसप्रकार विकल्पपूर्वक दृढ़ करता रहे?

समाधान :- विकल्प तो साथमें आये बिना नहीं रहता है। परन्तु विकल्पके पीछे जो ज्ञान काम करता है, विकल्पके पीछे जो प्रतीत काम करती है, उस प्रतीत और ज्ञानको दृढ़ करते रहना। विकल्प तो साथमें आता ही रहेगा। जबतक विकल्पकी स्थितिमें है इसलिये विकल्प साथमें आता है।

मुमुक्षु :- विकल्पके पीछे जो ज्ञान और प्रतीति है, उसे दृढ़ करते रहना?

समाधान :- उसे दृढ़ करना। चैतन्यका आश्रय-द्रव्यका आश्रय-अस्तित्व है वही मैं हूँ। विकल्पका अस्तित्व वह मैं नहीं, परन्तु ज्ञायकका अस्तित्व है वह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- ज्ञान और प्रतीतिमें दृढ़ता तो इसप्रकार बाहरमें क्षयोपशम ज्ञानमें अनेक लोग हो और स्पष्ट ख्यालमें आये, ऐसा अपने आत्माका ख्याल आ जाता है?

समाधान :- हाँ, अपने आत्माका ख्याल आता है कि मैं आत्मा हूँ। वह तो रूपी है। ये अरूपी है, अरूपी है लेकिन खुद है। वह तो दूर है, वह मनुष्य दूर है। ये तो स्वयं और स्वयं समीप है। फिर भी पहचान नहीं सकता है।

मुमुक्षु :- आप कहते हो ... वह अमूर्तिक है। इसलिये हमें तो इस मूर्तिक पदार्थोंमें ऐसा लगता है कि बराबर, क्षयोपशम ज्ञान-से ख्याल आ जाता है, इसका कैसे ख्याल आये?

समाधान :- अरूपीमें स्वयं दृढ़ता, एकाग्रता करे, अपना अस्तित्व ग्रहण करे उसमें बारंबार दृढ़ता करे तो स्वयं अपनेको ग्रहण हुए बिना नहीं रहता। उसे ऐसा हो गया है, गुरुदेव कहते थे न, नौ-दस लोग हो तो ये है, ये है, ऐसा करके स्वयंको गिनतीमें भूल जाता है। वैसे यह सब, यह सब है, परन्तु जाननेवाला कौन है? यह सब है (जानता है)। वह स्वयंको भूल जाता है। मैं कौन हूँ? ऐसा स्वयंको दृढ़ करना चाहिये कि यह मैं हूँ।

मुमुक्षु :- आप कहते हो, अंतर निवृत्ति (कहते हो), बाह्य-से तो निवृत्ति ली, परन्तु अंतर निवृत्ति लेकर ऐसा कर, अंतर निवृत्ति माने क्या?

समाधान :- अंतर निवृत्ति माने अंतरमें अनेक जातकी विकल्पकी जालमें रुकता हो, अनेक जातके विकल्पमें रुकता हो, उसमें-से स्वयं छूटकर बारंबार चैतन्य तरफ जाना, वह अंतर निवृत्ति है। अनेक जातकी जालमें रुकता हो, (उसमेंसे बाहर निकलकर) चैतन्य तरफका विचार करना, चैतन्य तरफ यह मैं हूँ, ऐसे अपनेको ग्रहण करना। विकल्पकी जालकी प्रवृत्ति आड़े वह बार-बार आती है, इसलिये वह उसे गौण हो जाता है। इसलिये विकल्पकी जालकी प्रवृत्ति कम करके अपनी ओरका अभ्यास बढ़ाये, वह अंतर निवृत्ति है।

वास्तविक निवृत्ति तो स्वयं ज्ञायकका ज्ञायकरूप परिणमन हो जाय तो वास्तविक निवृत्ति है। परन्तु अन्य विकल्प कम करके चैतन्य तरफका अभ्यास बढाये तो भी अंतर निवृत्ति है।

मुमुक्षु :- आपके पास-से यह मार्गदर्शन बहुत सुन्दर मिलता है कि अनुभव पूर्व किस प्रकार आगे बढ़ना, यह बहुत सुन्दर रीत-से आपसे ख्यालमें आता है।

मुमुक्षु :- न्याय उतना गंभीर और दृष्टान्त इतना सरल। पहचानमें आता है, और कह नहीं सकता कि कैसे पहचाना? सब एक सरीखे दिखते हैं फिर भी कैसे अलग करता है?

समाधान :- उसके लक्षण-से पहचाना ऐसा कहे। परन्तु क्या लक्षण, वह कह नहीं सकता। किसीकी आवाज़ पर-से (पहचान करता है)। सबके आवाज़ बारीक हो तो आवाज़ पर-से कहता है कि यह फलाना मनुष्य है। आवाज़में क्या फ़र्क़ पड़ा उसे कह नहीं सकता है। स्वयं ज्ञानमें ग्रहण कर लेता है कि इसकी आवाज़ यह है, इसलिये यह मनुष्य है। इस प्रकार स्वयं ग्रहण कर लेता है। ऐसे लक्षण-से रूपीको पहचान लेता है।

परन्तु अपने ज्ञानलक्षण-से ज्ञायकको पहचाननेमें मुश्किल पड़ती है। उसमें बिना विकल्प, बिना तर्क पहचान लेता है, निःशंकपने पहचान लेता है। बारंबार चैतन्यका अभ्यास करे, उसमें उलझनमें न आ जाय, उसमें आकुलता न हो, परन्तु भावना रखे। बहुत आकुलता करे कि क्यों होता नहीं? तो उसे बहुत उलझन हो तो आगे नहीं बढ़ सकता। परन्तु अमुक प्रकारकी भावना-से आगे बढ़ता है। उलझनमें आ जाय तो दिक्कत हो जाय।

मुमुक्षु :- उलझनमें न आ जाय। मार्ग निकालता जाय।

समाधान :- मार्ग निकालता जाय। बाहरकी तकलीफमें-से जैसे मार्ग निकालता है, वैसे अंतरमें स्वयं रास्ता निकालता है। कोई विकल्पकी जालमें नहीं उलझकर स्वयं रास्ता निकालकर चैतन्यका अभ्यास कैसे बढ़े? इस तरह स्वयं रास्ता निकालता है।

मुमुक्षु :- मालूम पड़ जाता होगा कि मुझे सम्यग्ज्ञान होनेवाला है?

समाधान :- सबको मालूम पड़े या न पड़े। सबको मालूम ही पड़ जाय ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- बहुतोंको मालूम पड़ जाता है?

समाधान :- बहुतोंको मालूम पड़े। परिणति एकदम पलट जाय तो मालूम पड़ जाय। भावना उग्र हो, पुरुषार्थ उग्र हो, एकदम अंतर्मुहूर्तमें पलट जाय तो पहले-से मालूम नहीं भी पड़ता, किसीको मालूम पड़ता है, किसीको नहीं पड़ता है।

मुमुक्षु :- विचार दशा लंबी चली हो तो?

समाधान :- लंबी चली हो तो किसीको मालूम पड़ता है। सबको मालूम पड़ जाता है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :- ज्ञानी होनेके बाद ऐसा मालूम पड़े कि अब इस बार निर्विकल्प दशा होगी?

समाधान :- इस बार होगी, ऐसे विकल्प होते ही नहीं। इस वक्त होगी या इस समय होगी (ऐसा विकल्प नहीं होता)। वह स्वयं अंतर परिणतिमें स्वरूप लीनताका प्रयास करता है। काल ऊपर, कब होगी उस पर उसका ध्यान नहीं है। उसे परिणति भिन्न होनेकी, ज्ञाताधाराकी उग्रता होनेकी, उस पर उसकी दृष्टि होती है।

निर्विकल्पता कब होगी, वैसी उसकी (दृष्टि) नहीं होती। उस जातका उसको विकल्प नहीं होता। अपनी परिणति भिन्न करता जाता है। भिन्न परिणतिमें उसे सहज धारा उठे तो (निर्विकल्प) होता है।

मुमुक्षु :- विकल्प भले न करे, परन्तु मालूम नहीं पड़ता होगा कि अब दो दिनमें या चार दिनमें निर्विकल्प दशा होगी?

समाधान :- उस पर उसकी दृष्टि ही नहीं है। उसकी दृष्टि निज चैतन्य पर स्थापित हो गयी है। उसकी परिणति पर ही उसका (ध्यान है)। ध्यान अपनी परिणति, लीनता पर, ज्ञाताधाराकी उग्रता पर है। उसकी ज्ञाताधाराकी उग्रता पर ही (उसका ध्यान है)।

मुमुक्षु :- ज्ञाताधाराकी उग्रता पर ध्यान हो तो सहज निर्विकल्प दशा होती है?

समाधान :- तो सहज होती है।

मुमुक्षु :- इतना दूर है, ऐसा किसके ज़ोर-से कहते थे।

समाधान :- ज्ञायकके ज़ोरमें कहती थी। वह कुछ निश्चित नहीं था, ज्ञायकके ज़ोरमें कहती थी। ज्ञायकके ज़ोर-से ऐसा लगता था कि समीप है। यह परिणति ऐसी है कि आखिर तक पहुँचकर ही छूटकारा करेगी। यह पुरुषार्थकी धारा ऐसी है कि आखिर तक पहुँच जायगी। अपनी उग्रता-से कहती थी। कब होगा, ऐसा कुछ मालूम

नहीं था। अंतरकी ज्ञायककी उग्रता-से कहती थी। अपनी भावना, पुरुषार्थके ज़ोरमें कहती थी।

मुमुक्षु :- अनुभव पूर्वका विश्वास भी गज़बका!

समाधान :- इस पुरुषार्थका ज़ोर ऐसा है कि आखिर तक पहुँचकर ही छूटकारा करेगा।

मुमुक्षु :- .. पढा था, उसमें आया था कि भरत चक्रवर्ती सुबह उठकर रोज पहले अनुभव करते थे, निर्विकल्प दशामें एक बार आते थे। उसके बाद ही प्रातःकालमें आगे बढ़ते थे।

समाधान :- ऐसी ध्यानधारा स्वयं करते हैं, इसलिये निर्विकल्प दशा आती है। ऐसा। उस जातकी अपनी वर्तमान परिणतिकी उग्रता करते हैं तो निर्विकल्प दशा आती है। भूमिका सम्यग्दर्शनमें पलटती है वह उसकी वर्तमान चारित्र लीनताकी दशाकी उग्रता वह वर्तमानमें करता है। स्वानुभूति कैसे जल्दी करुँ, उसके बजाय उसकी वर्तमान विरक्त दशा बढ़ जाती है कि वह गृहस्थाश्रममें भी रह नहीं सकते। ऐसी उसकी लीनता उतनी बढ़ जाती है कि वर्तमान लीनता बढ़ने-से स्वानुभूति त्वरा-से होती है। इसलिये छठवें-सातवें गुणस्थानें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें उनकी दशा त्वरा-से होती है। उनकी लीनता, वर्तमान लीनता उतनी बढ़ जाती है।

वर्तमान चारित्रकी दशा, विरक्तिकी दशा उनकी सविकल्पतामें लीनताका ज़ोर उतना बढ़ जाता है कि निर्विकल्प दशा उन्हें शीघ्रता-से आती है। निर्विकल्प दशा, उनकी वर्तमान चारित्रदशा, उनकी वर्तमान ध्यानकी उग्रता चारित्रका वह कार्य है। अपनी चारित्रदशाकी उग्रताके कारण वह शीघ्रता-से होती है। अंतरकी उग्रता, अंतरमें वर्तमानकी जो उग्रता होती है उससे उसका कार्य होता है। वीतराग दशा उन्हें छठवें-सातवें गुणस्थानमें बढ़ती जाती है वर्तमानमें, अतः उसमें श्रेणी लगाते हैं। श्रेणी लगाऊँ ऐसा उन्हें नहीं होता। उन्हें वीतराग दशाकी उग्रता होती जाती है। इसलिये श्रेणी चढते हैं। उनकी स्थिति ऐसी हो जाती है कि अंतरमें गये सो गये, फिर बाहर ही नहीं आते हैं। इतनी उग्रता हो जाती है इसलिये श्रेणी चढते हैं। उतनी वीतराग दशा बढ़ जाती है।

वैसे गृहस्थाश्रममें उनकी वर्तमान ज्ञाताधाराकी उग्रता, उनकी लीनता, दशाकी विरक्तिमें उतनी गति होती है, इसलिये स्वानुभूतिकी दशा उन्हें होती है। उनकी लीनताके कारण वह कार्य आता है। स्वरूपाचरण चारित्र चतुर्थ गुणस्थानमें होता है। परन्तु उसकी भी तारतम्यता होती है। किसीको उग्र होती है। भूमिका पलटे उसमें तो लीनताकी उग्रता अधिक बढ़ जाती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२५९

मुमुक्षु :- वह लीनता तो चौबीसों घण्टे चलती होगी। उग्रता बढ़ जाय..

समाधान :- चौबीसों घण्टें उनकी भूमिका अनुसार होता है। जो उनकी सम्यग्दर्शन सम्बन्धित लीनता हो वह चौबीसों घण्टे (होती है)। उनकी विशेष लीनता, तारतम्यता उनके पुरुषार्थ अनुसार होती है। भूमिका पलटे वह लीनता विशेष होती है। पाँचवा, छठवाँ, सातवाँ वह लीनता उनकी अलग होती है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूतिमें प्रवेश करते हैं। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें विकल्प छूटकर स्वानुभूतिमें जाते हैं। उसकी लीनता एकदम उग्र होती है। खाते-पीते, निद्रामें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें स्वानुभूतिमें प्रवेश हो जाता है। बाहर रह नहीं सकते हैं। अंतर्मुहूर्त-से ज्यादा बाहर रह ही नहीं सकते हैं। इतना अपने स्वरूपमें एकदम प्रवेश हो जाता है। लीनताका प्रवेश हो जाता है।

दृष्टि एवं ज्ञान तो प्रगट है ही, परन्तु ये लीनता-चारित्र दशा बढ़ती है छठवें-सातवें गुणस्थानमें। चतुर्थ गुणस्थानमें स्वरूपाचरण चारित्र होता है। पाँचवें गुणस्थानमें उससे विशेष होती है। पाँचवे गुणस्थानकी भूमिकाके स्टेज अमुक-अमुक बढ़ते जाते हैं। उसमें उसे स्वरूपकी लीनता बढ़ती जाती है। उस अनुसार उसके शुभ परिणाममें बाहरके स्टेजमें भी फेरफार होता जाता है। अंतरमें स्वानुभूतिकी दशा बढ़ती जाती है।

मुमुक्षु :- मुनि महाराजको खाते-पीते, चलते-फिरते ऐसी दशा हो जाय, वैसे चतुर्थ गुणस्थानमें कोई बार होती होगी?

समाधान :- कोई बार हो, उसका नियम नहीं है। छठवें-सातवेंमें तो नियमसे होती है। स्वरूपाचरण चारित्रमें ऐसा हो, परन्तु वह नियमित नहीं होती। इन्हें तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें नियमित होती है। चतुर्थ गुणस्थानकी लीनता कब विशेष बढ़ जाय, होती ही नहीं ऐसा नहीं है, लेकिन उसका नियम नहीं है।

मुमुक्षु :- ध्यानमें बैठे तभी निर्विकल्प दशा हो, ऐसा नहीं होता चतुर्त गुणस्थानमें?

समाधान :- ध्यानमें बाहर-से बैठे या न बैठे। कोई बार बाहर-से बैठे और हो। कोई बार न बैठे तो अंतरमें अमुक प्रकारका ध्यान तो उसे प्रगट हो ही गया है। जो ज्ञाताका अस्तित्व उसने ग्रहण किया है, ज्ञायककी धारा वर्तती है, उतनी एकाग्रता तो उसे चालू ही है। इसलिये उस प्रकारका ध्यान तो उसे है ही। ध्यान अर्थात् एकाग्रता।

उस जातकी एकाग्रता उसे छूटती ही नहीं। अमुक प्रकारकी एकाग्रता तो उसे है। उस एकाग्रतामें कुछ विशेषता हो जाय तो उसे बाहर-से ध्यानमें बैठे तो ही हो, ऐसा नियम लागू नहीं पड़ता।

मुमुक्षु :- ऐसा बन्धन नहीं है।

समाधान :- ऐसा बन्धन नहीं है कि बाहर-से शरीर ध्यानमें बैठे, ऐसा बन्धन नहीं है। शरीर बैठ जाय ऐसा बन्धन नहीं है। अंतरमें एकाग्रता (होती है)। अमुक एकाग्रता तो है ही, परन्तु विशेष एकाग्रता कब बढ़ जाय, शरीर बैठा हो ऐसा हो तो ही बढ़े ऐसा न्याय नहीं है। मुनिको तो है ही नहीं, परन्तु चतुर्थ गुणस्थानमें ऐसा नियम नहीं है। सब बार ऐसा नियम नहीं होता। कोई बार ऐसा भी बनता है कि ध्यानमें बैठा हो तब हो। बाहर-से ध्यानमें बैठा हो। कोई बार कोई भी स्थितिमें शरीर हो और ध्यान हो जाय। बाहरका बन्धन नहीं है। अमुक प्रकार-से सहज दशा हो जाती है।

अनादिका सर्व प्रथम हो उसे पलटनेमें थोडी मुश्किली होती है, किसीको अंतर्मुहूर्तमें भी हो जाता है। उसमें भी अंतर्मुहूर्तमें हो जाता है। फिर तो उसकी दशा सहज है। इसलिये बाहरमें अमुक प्रकार-से बैठे तो ही हो, ऐसा बन्धन नहीं है।

मुमुक्षु :- एक बार निर्विकल्प दशा हो गयी इसलिये अमुक काल राह देखनी पड़े ऐसा नहीं होता न? फिरसे तुरन्त भी हो सकती है।

समाधान :- राह देखनी नहीं पड़ती। जिसकी अंतर दशा चालू है, जिसे भेदज्ञानकी दशा चालू है, उसे अमुक समयमें हुए बिना रहती ही नहीं। उसे समयका बन्धन नहीं है। उसे अमुक समयमें हुए बिना नहीं रहती। जिसे अंतरकी दशा है, भेदज्ञानकी धारा वर्तती ही है, उसे हुए बिना नहीं रहती।

जो अंतर-से भिन्न पड़ गया, जिसका उपयोग बाहर गया, वह अमुक समयमें अंतरमें आये बिना नहीं रहता। उस उपयोगमें बाहर कुछ सर्वस्व नहीं है। भेदज्ञानकी धारा तो वर्तती ही है। स्वयं जुदा-न्यारा वर्तता है, क्षण-क्षणमें न्यारा वर्तता है। न्यारी परिणति तो है ही। उपयोग तो पलट जाता है। जैसी परिणति है वैसा उपयोग वापस हुए बिना नहीं रहता। परिणति अलग काम करती है, उपयोग बाहर जाता है।

परिणतिकी डोर उसे-उपयोगको वापस लाये बिना नहीं रहती। परिणति तो न्यारी है। भेदज्ञानरूप भेदज्ञानकी धारा निरंतर क्षण-क्षणमें विकल्पके बीच उसकी न्यारी डोर क्षण-क्षणमें सहजरूप है। परिणतिकी डोर न्यारी है, वह उपयोगको वहाँ टिकने नहीं देती। अमुक समयमें उपयोग वापस आ ही जाता है। स्वरूपमें लीन हुए बिना, निर्विकल्प दशा हुए बिना उसे नहीं रहती। परिणति उपयोगको वापस अपनेमें लाती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीकी सविकल्प दशा इतनी मज़बूत है कि निर्विकल्प उपयोगकी लाचारी करनी नहीं पड़ती, वह अपनेआप होता है।

समाधान :- उसकी लाचारी नहीं करनी पड़ती। उसकी दशा ही ऐसी है। उसे शान्ति और हूँफ है ही। अपनी दशा ही ऐसी है। स्वयं कहीं एकत्वबुद्धि-से वर्तता नहीं है। भिन्न ही वर्तता है। उसकी न्यारी परिणति ही उस उपयोगको वापस लाती है। वह उपयोग बाहर लंबे समय बाहर टिक नहीं पाता। वह उपयोग अपने स्वरूपमें फिर-से लीन हुए बिना नहीं रहता। उसकी न्यारी परिणति ही उसे वापस लाती है। उसकी लाचारी नहीं करनी पड़ती।

स्वयंको अपनी हूँफ है। अपनी परिणति ही उस उपयोगको वापस लाती है। उसे ऐसा नहीं है कि निर्विकल्प दशा कब आयेगी? उसकी राह देखकर बैठना नहीं है। उसकी उसे कोई शंका नहीं होती। परिणति ही उस उपयोगको वापस खींचकर लाती है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प दशा ज्यादा हो तो ज्याता मज़बूत बने, ऐसा नहीं है?

समाधान :- परिणति जोरदार होती है तो निर्विकल्प दशा हो जाती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको तो चौबीसों घण्टे अवलम्बन होता है।

समाधान :- चौबीसों घण्टे आत्म स्वभावका अवलम्बन है। उसका उपयोग बाहर एकमेक होता ही नहीं। उपयोग बाहर जाये तो भी भिन्न ही है। वह वापस स्वरूपमें जमे बिना नहीं रहता। उसकी रुचि उसे वापस (ले आती है), उसकी परिणति उसे वापस लाती है। ऐसा सहजपने है।

मुमुक्षु :- च्यूत हो जाता है, उसका क्या कारण?

समाधान :- उसकी परिणतिमें दिक्कत है, उसका पुरुषार्थ छूट जाता है, उसकी न्यारी परिणति छूट जाती है। एकत्वबुद्धि हो जाती है। ज्ञायक भिन्न, विभाव भिन्न वह परिणति जो ज्ञाताकी धारा क्षण-क्षणमें आंशिक ज्ञाताधारा, आंशिक शान्तिधारा (चलती रहती है)। आत्माकी स्वानुभूतिका आनन्द अलग है। बाकी अंतरमें जो न्यारी शान्तिधारा और ज्ञायकधारा थी, उसकी परिणति छूट जाती है। उसकी परिणति एकमेक हो जाती है। इसलिये स्वानुभूति चली जाती है। वर्तमान परिणति छूटकर एकत्वबुद्धि हो जाती है। परिणति पलट जाती है।

समाधान :- ज्ञान-से रचित एक चैतन्य वस्तु ही है। ज्ञान बाहर-से नहीं आता है। वह जाननेवाली पूरी वस्तु ही है। द्रव्य जाननेवाला, उसका गुण जाननेवाला, उसकी पर्यायमें जाननेवाला, सर्व प्रकार-से वह जाननेवाला ही है, ऐसी एक वस्तु ही है। जैसे यह जड़ है, वह जड़ कुछ जानता नहीं। वह स्वयं जानता ही नहीं है। तब एक जाननेवाली वस्तु है कि सर्व प्रकार-से जाननेवाली ही है।

उष्णता बाहर-से नहीं आती है, अग्नि स्वयं ही उष्ण है। बर्फ स्वयं ही ठण्डा है। उसकी ठण्डक बाहर-से नहीं आती। वैसे जानना बाहर-से नहीं आता है, जाननेवाली वस्तु ही स्वयं है। उसमें बाहरके सब निमित्त हैं। इसे जाना, उसे जाना। जाननेवाली वस्तु स्वयं है।

समाधान :- ... आत्माको ज्ञानके साथ एकमेक सम्बन्ध है। ज्ञान बिनाका आत्मा नहीं है, आत्मा बिनाका ज्ञान नहीं है। तादात्म्य सम्बन्ध है। ऐसे अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अस्तित्व, वस्तुत्व सबके साथ, द्रव्यको सबके साथ ऐसा तादात्म्य सम्बन्ध है। अनन्त गुण-से भरा हुआ, अनन्त गुणस्वरूप ही द्रव्य है। अनन्त गुण आत्मामें एकमेक हैं। जड़में भी वैसे अस्तित्व, वस्तुत्व इत्यादि जो जड़के-पुद्गलके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श सब एकमेक तादात्म्य है। उसमें-से कुछ अलग नहीं पड़ता। एकमेक है।

मुमुक्षु :- द्रव्यको और गुणोंको एकमेक सम्बन्ध है न? गुणको और गुणको भी ऐसा सम्बन्ध है? जैसे आपने कहा कि द्रव्य और गुणका तादात्म्यसिद्ध सम्बन्ध डै। वैसे एक गुणको बाकीके अनन्त गुण जो हैं, उसके साथ तादात्म्यसिद्ध सम्बन्ध नहीं है?

समाधान :- उसका लक्षणभेद-से भेद है। सबका लक्षण भिन्न पड़ता है। बाकी वस्तुतः सब एक है। परन्तु उसके लक्षण अलग हैं। ज्ञानका लक्षण जानना, दर्शनका देखनेका, प्रतीत करना, चारित्रका लक्षण लीनताका, आनन्दका आनन्द स्वरूप, इसप्रकार सबके लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। द्रव्य अपेक्षा-से सब एकमेक हैं। बाकी एकदूसरेके लक्षण अपेक्षा-से उसके भेद हैं। वस्तुभेद नहीं है, परन्तु लक्षण अपेक्षा-से भेद हैं। उसके लक्षण अलग, उसके कार्य अलग। ज्ञानका जाननेका कार्य, दर्शनका देखनेका, चारित्रका लीनताका, सबका कार्य कार्य अपेक्षा-से भिन्न-भिन्न है। वस्तु अपेक्षा-से एक है।

मुमुक्षु :- जब ज्ञानगुण ज्ञानगुणका काम करे, उस वक्त कर्ता गुण क्या करता है? (जैसे) ज्ञान करता है, वैसे कर्ता नामका गुण है, वह क्या करता होगा?

समाधान :- वह कर्ता स्वयं कार्य करता है। ज्ञान जाननेका कार्य करे तो कर्तागुण उस रूप परिणमन करके उसका कार्य लानेका काम करता है। ज्ञान जानता है तो उसमें परिणमन करके जो जाननेका कार्य होता है, वह जाननेका कार्य वह कर्तागुण कहलाता है। कार्य करता है। कर्तागुणमें.. कर्ता, क्रिया और कर्म। वह कर्ताकी परिणति है।

मुमुक्षु :- ये जो आपने सम्बन्ध कहा, वह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध नही है? एकरूपता रूप सम्बन्ध है।

समाधान :- हाँ, एकरूप सम्बन्ध है, परन्तु उसमें लक्षणभेद है, कार्यभेद है। निमित्त-नैमित्तिक नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक तो दो द्रव्यमें होता है, ये तो एक ही द्रव्य है।

एक द्रव्यके अन्दर लक्षणभेद और कार्यभेद आदि है।

मुमुक्षु :- ... रखनेके लिये कहा होगा या ... न हो जाय इसलिये गुण इसप्रकार है? स्वतंत्रता बतानेके लिये।

समाधान :- प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र ही हैं। परन्तु गुणोंकी स्वतंत्रता है। परन्तु वस्तु-से एक है। उसमें अन्यत्व भेद है, परन्तु उसमें वस्तुभेद नहीं है। परस्पर एकदूसरे-से लक्षण-से भिन्न पड़ते हैं, परन्तु वस्तु अपेक्षा-से एक हैं। वह स्वतंत्रता ऐसा नहीं है, एक द्रव्य जैसे दूसरे द्रव्य-से स्वतंत्र है, जैसे पुद्गल और चैतन्य स्वतंत्र है, दो द्रव्य अत्यंत भिन्न हैं, वैसे गुण और द्रव्य, प्रत्येक गुण-गुण उस प्रकार-से अत्यंत भिन्न नहीं हैं। वस्तु-से एक है और लक्षण-से भिन्न हैं। उसकी भिन्नता अत्यंत भिन्नता नहीं है। प्रत्येक गुणोंकी अत्यंत भिन्नता नहीं है। वस्तु अपेक्षा-से एक है, परन्तु लक्षण-से भिन्न हैं।

मुमुक्षु :- अन्योन्य भेद हुआ?

समाधान :- अन्योन्य अर्थात् लक्षण-से भिन्न हैं। उसकी स्वतंत्रता... एक द्रव्य-से दूसरा द्रव्य स्वतंत्र है, वैसे प्रत्येक गण उस प्रकार-से स्वतंत्र नहीं हैं। उसकी स्वतंत्रता लक्षण तक है और कार्य तक है। बाकी वस्तु अपेक्षा-से वह सब एक है। एक ही वस्तुके सब गुण हैं। अनन्त गुण-से बनी एक वस्तु है। अनन्त गुणस्वरूप ही एक वस्तु है। वस्तु अपेक्षा-से एक है, लक्षण अपेक्षा-से भिन्न-भिन्न है। एक द्रव्यके अन्दर अनन्त शक्तियाँ-अनन्त गुण हैं। सबके कार्य सब करते हैं और सबके लक्षण, कार्य एवं प्रयोजन भिन्न-भिन्न है। वह स्वतंत्रता उस जातकी है कि द्रव्यकी स्वतंत्रता है ऐसी स्वतंत्रता नहीं है।

वह तो, जैसे सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शनका गुण प्रगट हो, दृष्टि विभाव तरफ, दृष्टि पर तरफ थी और स्व तरफ दृष्टि जाती है (तो) सम्यग्दर्शन गुण प्रगट होता है। तो उन सबका अविनाभावी सम्बन्ध ऐसा है कि एक सम्यग्दर्शन प्रगट हो तो उसके साथ सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन (होता है)। सर्व गुणकी शुद्धि आंशिक होती है। सर्व गुणकी दिशा बदलकर अपनी तरफ परिणति होती है। अनन्त गुणकी दिशा बदलकर शुद्धरूप परिणति होती है। एककी शुद्ध होती है सब शुद्धतारूप परिणमते हैं। ऐसा सम्बन्ध है। क्योंकि वस्तु एक है इसलिये।

एक सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तो उसमें ज्ञान भी सम्यक् हुआ। चारित्र भी, मिथ्याचारित्र था तो चारित्र भी सम्यक् हुआ। सब गुणकी दिशा बदल गयी। क्योंकि एक वस्तुके सब गुण है। ऐसा उसका हो तो दूसरे गुणकी परिणति बदल जाती है। ऐसा अविनाभावी एकदूसरेके साथ सम्बन्ध है।

समाधान :- ... पच्चीस साल होनेमें कहाँ देर लगेगी? क्यों अन्दर कुछ होता नहीं? क्यों परिभ्रमणकी थकान लगती नहीं? क्यों कपकपी होती नहीं? ऐसा होता था। अनेक जातका होता था। अन्दरमें जो स्वयंने किया है, वह अपना है, बाकी काल तो चला जा रहा है। देवलोकका सागरोपमका काल भी पूरा हो जाता है, तो इस मनुष्य भवका काल तो क्या हिसाबमें है?

इस पंचमकालमें गुरुदेव मिले और गुरुदेवने जो उपदेशकी जमावट की, वही याद करने जैसा है और उसमें-से ग्रहण करने जैसा है। उपदेश क्या? गुरुदेवने इतना उपदेश बरसाया। जिसे ग्रहण करके अंतरमें जमावट करनी, ऐसा उपदेश दिया है। जैसे भगवानकी दिव्यध्वनिकी वर्षा होती है, वैसे गुरुदेवकी (वाणीकी) वर्षा हुयी है। दोनों वक्त नियमरूप से।

जहाँ गाँव-गाँवमें सौराष्ट्रमें कहीं मन्दिर नहीं था, हर जगह मन्दिर बन गये। शास्त्र उतने प्रकाशित हुए। कितने ही भण्डारमें थे सब बाहर आ गये।

मुमुक्षु :- टेप भर गयी।

समाधान :- टेप भर गयी।

मुमुक्षु :- यहाँ सुनते हैं तो ऐसा लगता है कि मानों गुरुदेव साक्षात् विराजते हों ऐसा ही लगता है।

समाधान :- गुरुदेवका यह क्षेत्र, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और टेप सब ऐसा है। वह स्थान और वह टेप यहाँ बजती है वह अलग है, वह स्थान, गुरुदेव जहाँ बैठते थे वह पाट, क्षेत्र आदि सब वह, इसलिये मानों गुरुदेव बोलते हो ऐसा लगे। टेप बोले उसके साथ ....

कैसे समझमें आये, ऐसा विचार आये न। सहज जो अन्दरमें लगता हो वह सहज आता है। कुछ शास्त्रका हो, लेकिन गुरुदेवने शास्त्रोंका अर्थ करनेमें कहाँ कुछ बाकी रखा है। गुरुदेवने बहुत दिया है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- पद्मनंदी जब पढ़ते थे, तब ऐसा ही पढ़ते थे। पद्मनंदीमें जिनेन्द्र भगवानका अधिकार जब आवे, तब ऐसा ही पढते थे। दानका अधिकार आये तब ऐसा पढ़ते। हे जिनेन्द्र! ऐसा कहकर पढ़ते थे। टेपमें आया था न? माता! आपका पुत्र हमारा स्वामी है। माता! जतन करके रखना। ... इन्द्राणी भगवानको लेने आती है, तब वह बात आती थी। हृदय-से बोलते थे। सबका कलेजा काँप ऊठे, ऐसे कहते थे। वह भक्ति अधिकार पढ़े, दान अधिकार पढ़े.... (तब ऐसा ही आता था)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६०

मुमुक्षु :- नमस्कार मंत्र बोलते हैं या जब ध्यान करते हैं, उस वक्त वास्तवमें तो ऐसा विचार करना चाहिये कि भगवानका स्वरूप कैसा है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ? नव नमस्कार मंत्र बोलते समय अथवा ... बोलते समय, एक-दो बार ऐसा ख्याल आता है, बाकी सब तो ऐसे चला जाता है।

समाधान :- शब्द बोल लेता है। शुभभाव-से भगवान... णमो अरहंताणं, भगवानको नमस्कार करता हूँ, सिद्ध भगवानको नमस्कार करता हूँ। परन्तु भगवान कौन और..

मुमुक्षु :- वह सब हर वक्त आना चाहिये?

समाधान :- हर समय आना चाहिये ऐसा नहीं परन्तु विचार-से समझना चाहिये कि भगवान किसे कहते हैं? सिद्ध भगवान, आचार्य भगवान, उपाध्याय भगवान, साधु भगवान। जो साधना करे सो साधु। आचार्य छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं, सिद्ध भगवानने पूर्ण स्वरूप प्राप्त किया, भगवानने केवलज्ञान प्राप्त किया। उसका स्वरूप तो समझना चाहिये।

हर बार विचार आये ऐसा नहीं, परन्तु उसका स्वरूप समझमें तो लेना चाहिये न। तो उसे सहजपने ख्याल आवे, णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं यानी भगवान कैसे है, वह सहज उसे ख्यालमें आये कि भगवान ऐसे होते हैं। ऐसा विचार-से समझा हो तो।

ओघे ओघे नहीं समझकर, विचारपूर्वक समझे कि भगवान किसे कहते हैं। हर बार बोलते समय विचार करता रहे ऐसा नहीं, परन्तु उनका स्वरूप तो स्वयंको समझ लेना चाहिये। हर बार एकदम बोले, परन्तु स्वरूप तो ख्यालमें लेना चाहिये। हर बार विचार करे ऐसा नहीं।

अन्दर पूर्ण स्वरूपमें जम गये हैं। सहज स्वरूपमें लोकालोकको जानने नहीं जाते, सहज ज्ञात हो जाता है। ऐसी कोई ज्ञानकी अपूर्व शक्ति, आत्माकी अपूर्व शक्ति प्रगट हुयी है। भगवानका स्वरूप विचार करके जाने। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, चारित्र अनन्त भगवानको प्रगट हुआ।

(आत्माका स्वरूप) ऐसा भगवानका, भगवानका स्वरूप ऐसा आत्माका स्वरूप

है। सिद्ध भगवान तो पूर्ण हो गये। आचार्य भगवान तो साधना (करते हुए) छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं, वे सब मुनिराज (हैं)।

... ऐसा कुछ नहीं है। एक जातकी अन्दर भावना है, उस जातकी परिणति, एक जातका अभ्यास होकर अन्दर भावना रहती है स्वयंको कि ...

मुमुक्षु :- .. और पुरुषार्थको कोई सम्बन्ध है?

समाधान :- व्यवहार-से सम्बन्ध कहनेमें आये। ऐसा कहनेमें आये कि पूर्वके संस्कारीको पुरुषार्थ जल्दी उठता है। ऐसे व्यवहार सम्बन्ध कहनेमें आता है। बाकी तो वर्तमान पुरुषार्थ करे तब होता है। बहुतोंको संस्कार हो तो भी पुरुषार्थ तो वर्तमानमें ही करना पड़ता है। पुरुषार्थ करे तब संस्कारको कारण कहनेमें आता है।

पूर्वमें जो कोई संस्कार डाले हो, उसकी योग्यता पड़ी हो। फिर वर्तमानमें स्वयं पुरुषार्थ करे तो उसे कारण होता है। पुरुषार्थ न करे तो कारण नहीं होता। वर्तमान पुरुषार्थ तो नया ही करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- संस्कार डालने-से उसे क्या लाभ हुआ? एक जीव संस्कार बोता है और एक जीव संस्कार बोता है, उसमें उसे यदि पुरुषार्थ-से ही प्राप्त होता हो तो...?

समाधान :- संस्कार उसे पुरुषार्थ उत्पन्न होनेका कारण बनता है। वह लाभ है। लेकिन उसे कारण कब कहें? कि कार्य आवे तो। यथार्थ रीत-से अन्दर वह कार्य हो तो कार्य आवे और पुरुषार्थ उत्पन्न हो। परन्तु वह कारण अन्दर यथार्थ होना चाहिये। यथार्थ रीत-से हो तो पुरुषार्थ उत्पन्न होता है, ऐसा सम्बन्ध है।

पुरुषार्थ उत्पन्न हो वह पुरुषार्थ स्वतंत्र है और संस्कार भी स्वतंत्र है। पुरुषार्थ उत्पन्न हो तो उसे कारण कहनेमें आये। उसे कारण बनता है, इसलिये तू संस्कार डाल, (ऐसा कहते हैं)। वह कहीं पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं करवा देता। स्वयं पुरुषार्थ करे तो उसे कारण होता है।

मुमुक्षु :- ऐसा भी आता है कि जोरदार संस्कार पड़े होंगे तो इस भवमें कार्य नहीं होगा तो दूसरे भवमें कार्य हुए बिना नहीं रहेगा।

समाधान :- यथार्थ कारण हो तो कार्य आता ही है। ऐसे। कारण कैसा, वह स्वयंको समझना है। कारण यथार्थ हो तो कार्य आता ही है। तो पुरुषार्थ उत्पन्न होगा ही। कारण तेरा यथार्थ होगा तो भविष्यमें पुरुषार्थ उत्पन्न होगा। परन्तु पुरुषार्थ उत्पन्न करनेवालेको ऐसी भावना होनी चाहिये कि मैं पुरुषार्थ उत्पन्न करुँ। मुझे संस्कार होंगे तो पुरुषार्थ उत्पन्न होगा, ऐसी यदि भावना रहती हो तो पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता। पुरुषार्थ उत्पन्न करनेवालेको तो ऐसा ही होना चाहिये कि मैं पुरुषार्थ करुँ। तो उसे वह कारण बनता है। पुरुषार्थ करनेवालेको तो ऐसी ही भावना रहनी चाहिये कि मैं

पुरुषार्थ करुँ। मुझे संस्कार होंगे तो अपनेआप उत्पन्न होगा, ऐसी भावना नहीं होनी चाहिये।

उसके संस्कार यथार्थ कारणरूप हों तो उसे पुरुषार्थ उत्पन्न होता ही है। ऐसा एक सम्बन्ध होता है। परन्तु पुरुषार्थ करनेवालेको ऐसा नहीं होना चाहिये कि मुझे संस्कार होंगे तो पुरुषार्थ उत्पन्न होगा। यदि ऐसी भावना हो तो पुरुषार्थ उत्पन्न ही नहीं होता। भावना ऐसी होनी चाहिये कि मैं प्रयत्न करुँ। मैं ऐसा करुँ, ऐसे स्वयंको भावना रहे तो कारण-कार्यका सम्बन्ध होता है। स्वयंको ऐसी भावना होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- (इस भवमें) आत्माका अनुभव न हो तो संस्कार लेकर तो जायेंगे। तब ऐसा लगता है कि संस्कार और पुरुषार्थकी एक जात हो, ऐसा लगता है।

समाधान :- एक जात नहीं है। प्रयत्नमें उसे बहुत उलझन होती हो, प्रयत्न चलता नहीं हो.. पहले तो ऐसा होता है कि तू आखिर तक पहुँच जा। ऐसा तेरा प्रयत्न चलता हो तो तू प्रयत्न कर। परन्तु नहीं होता तो तू संस्कार तो डाल। परन्तु संस्कार यानी पुरुषार्थका सब कार्य संस्कारमें आ नहीं जाता।

यदि तू प्रतिक्रमण कर सकता है तो ध्यानमय करना। न कर सके तो श्रद्धा करना। ऐसे। तुझ-से बन सके तो आखिर तक ध्यान करके केवलज्ञान पर्यंत, मुनिदशा और केवलज्ञान प्रगट करना। परन्तु यदि नहीं होता है तो तू श्रद्धा कर, सम्यग्दर्शन प्राप्त कर। परन्तु सम्यग्दर्शन पर्यंत पहुँच न सके तो उसकी रुचि, भावना और संस्कार करना। परन्तु करनेका ध्येय तो, अपना प्रयत्न उत्पन्न हो तो पूरा करना।

आचार्य कहते हैं कि, तुझ-से बन सके तो पूर्ण करना। न बन सके और तुझे उलझन होती हो तो तू इतना तो करना। अंततः तू रुचिका बीज तो ऐसा बोना कि जो रुचि तुझे कारणरूप हो। ऐसी रुचि तो करना, न बन सके तो। उसमें रुचिमें सब आ नहीं जाता। तेरी अन्दर ऐसी गहरी भावना होगी तो भविष्यमें तुझे ऐसी भावना अन्दर-से उत्पन्न होगी और तुझे पुरुषार्थ बननेका (कारण होगा)।

परन्तु वहाँ भी तुझे ऐसा ही होना चाहिये कि मैं पुरुषार्थ करुँ। वहाँ भी ऐसा ही होता है कि भावना उत्पन्न हो तो पुरुषार्थ करुँ, अन्दर जाऊँ। अभी न होता हो तो अभ्यास करना। उसकी दृढ़ता करना। बारंबार उसका घोलन करना। मैं ज्ञायक हूँ। मैं यह नहीं हूँ। ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव भिन्न है। बारंबार उसे तू दृढ़ करना। तेरी दृढ़ता होगी तो तुझे भविष्यमें, अन्दर वह दृढ़ता होगी तो तुझे स्फूरित हो जायगी, तो तुझे पुरुषार्थ होनेका कारण बनेगी। उसमें सब आ नहीं जाता।

मुमुक्षु :- .. निमित्त रूप-से संस्कारको लेना?

समाधान :- निमित्त रूप-से।

मुमुक्षु :- संस्कारको निरर्थक करनेवाला है,..

समाधान :- वह अपेक्षा अलग है। द्रव्य-से निरर्थक करनेवाला है। संस्कार सार्थक करे, द्रव्य अपेक्षा-से संस्कार निरर्थक है। वस्तुमें वह नहीं है। मूल स्वभाव... पर्यायकी बात है। पर्याय पलट जाती है, परन्तु व्यवहार यानी कुछ नहीं है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- तू पुरुषार्थ-से काम करे तो संस्कारको निमित्त कहें। ...

समाधान :- निगोदमें-से निकलकर तुरन्त वह होते हैं और फिर मनुष्य बनकर तुरन्त... उसमें संस्कार कहाँ थे? तेरा स्वभाव ज्ञायक है, वही तेरा संस्कार है। तेरा स्वभाव है वह। तेरा स्वभाव ही ज्ञायकरूप रहनेका है। तो ज्ञानस्वभावी है, वह तेरा ज्ञानस्वभाव ही तुझे तेरी परिणति ही ... तुझे यदि अंतरमें-से ऐसा होगा तो तेरा स्वभाव है वह स्वभाव ही संस्काररूप है।

तू चेतनता-से भरा है, कहीं जड़ तेरा स्वभाव नहीं है। चेतन तरफ तेरी परिणति, चेतनद्रव्य है वह तेरी परिणति, उसे तेरी ओर खींँचेगी। तेरा स्वभाव है। द्रव्य ही पर्यायको प्रगट होनेका कारण बनता है। द्रव्य पर दृष्टि गयी। तेरी पर्याय यथार्थ सम्यक्रूप परिणमित हो जायेगी। तेरा स्वभाव ही सम्यक्रूप है। यथार्थ ज्ञानस्वभाव है। वह स्वभाव ही उसका कारण है। सीधी तरह-से द्रव्य ही उसका कारण बनता है।

संस्कार एक परिणति है। परिणति उसका कारण हो, वह व्यवहार हुआ। द्रव्य ही उसका मूल कारण, द्रव्य ही कारण है। निश्चय-से तेरा मूल स्वभाव ज्ञायक ही है, वह स्वभाव ही उसका कारण बनता है। निगोदमें-से निकलता है, वह उसका स्वभव है। वह स्वभाव नहीं है, मैं तो यह चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ। स्वभाव पर दृष्टि गयी, वहाँ परिणति पलट जाती है। वहाँ पहले संस्कारको दृढ़ करना पड़ा या मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा अभ्यास करना पड़ा, ऐसा कुछ नहीं है। सब अभ्यास एकसाथ ही हो गया। मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसा एकदम जल्दी दृढ़ता हो गयी तो अंतर्मुहूर्तमें हो गया। और संस्कार अर्थात् बार-बार, बार-बार देर लगे, मन्द पुरुषार्थके कारण देर लगे, मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी परिणति सहजरूप-से दृढ़ नहीं हुयी, इसलिये बार-बार, बार-बार अधिक काल अभ्यास किया, इसलिये उसे संस्कार कहा। उसमें तो अभ्यास करना कुछ रहा ही नहीं, तुरन्त एकदम पुरुषार्थ किया तो एकदम हो गया। उसमें संस्कार बीचमें लानेकी जरूरत नहीं पडती। मूल स्वभाव, ज्ञायक स्वभाव, अपना स्वभाव ही कारणरूप बनता है। फिर परिणतिके संस्कार करनेका बीचमें कोई अवकाश ही नहीं है। जिसका तीव्र पुरुषार्थ उत्पन्न हो, उसे कहीं बीचमें संस्कारकी जरूरत ही नहीं होती, द्रव्य ही उसका कारण बनता है।

मुमुक्षु :- उस अपेक्षा-से स्वभावको संस्कार निर्रथक करनेवाला कहा।

समाधान :- निरर्थकर करनेवाला, द्रव्य संस्कारको निरर्थक करनेवाला है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- संस्कार डाले। उसमें द्रव्य कारण बनता है और एकदम अंतरमें जाते हैं। निगोमें-से निकलकर मनुष्य होकर, तुरन्त मैं ज्ञायक स्वभाव ही हूँ, ऐसे अंतर्मुहूर्तमें प्राप्त कर लेते हैं। बीचमें संस्कारकी कोई जरूरत ही नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- वैसे जल्दी काम हो, उसका कोई रास्ता बताओ तो काम आये।

समाधान :- स्वयं जल्दी पुरुषार्थ करे तो जल्दी हो जाय। धीरे-धीरे अभ्यास करता रहे कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, उसके बजाय मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे एकदम दृढ़ता-से ... स्वयं एकदम विभाव-से छूटकर जाय तो जल्दी हो। पुरुषार्थ धीरे-धीरे करे इसलिये उसमें संस्कार बीचमें आते हैं। जल्दी करे तो बीचमें संस्कार आते ही नहीं। अभ्यास करे इसलिये संस्कार हुए। उसमें जल्दी किया। एकदम द्रव्य पर दृष्टि गयी और हो गया। कमर कसकर तैयार हुए हैं। प्रवचनसारमें (आता है)। ऐसे स्वयं तैयार होकर अंतरमें जाये तो एकदम हो जाता है।

मुमुक्षु :- प्रवचनसारमें (आता है), हमने कमर कसी है।

समाधान :- हाँ, कमर कसी है।

मुमुक्षु :- एक बार कहा था, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विश्वास ला तो लंबा काल नहीं लगता।

समाधान :- लंबा काल नहीं लगता। एकदम दृढ़ताके साथ। यदि विश्वासरूप-से परिणति एकदम दृढ़ हो जाय कि मैं ज्ञायक ही हूँ। विश्वास है ऐसी ही परिणति, मैं ज्ञायक हूँ, उसकी दृढ़ता हुयी। मोहग्रन्थिका मैंने घात कर दिया है। अंतरमें तुरन्त हो जाता है। मोहग्रन्थिका घात करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करके चतुर्थ कालमें कितने ही अंतरमें लीनता कर दी, तो एकदम सम्यग्दर्शनका कार्य लीनतारूप एकदम हो जाता है, जो जल्दी करता है उसे।

विभावके संस्कार भी चले आते हैं। आता है, क्रोधादि तारतम्यता सर्पादिक मांही। विभावका संस्कार होते हैं, वैसे यह स्वभाव तरफकी रुचिके संस्कार वह भी उसे पूर्व भवमें आते हैं। परन्तु वह पुरुषार्थ करे तब उसे कारणरूप कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ करे उसे उपयोगी कहनेमें आये, न करे उसे..

समाधान :- पुरुषार्थ तीव्र हुआ और द्रव्य पर दृष्टि गयी तो संस्कारका वहाँ प्रयोजन नहीं रहा। अभ्यास करता रहे तो बीचमें संस्कार आते हैं। कितने ही जीव ऐसा अभ्यास करते-करते (आग जाते हैं)। एकदम अंतर्मुहूर्तमें हो जाय ऐसा कोई विरल होता है। बाकी अभ्यास करते-करते (आगे जाते हैं)। चतुर्थ कालमें जल्दी हो जाय ऐसे बहुत

होते हैं। तो भी अंतर्मुहूर्तमें हो जाय ऐसे तो कोई विरल होते हैं। अभ्यास करते-करते (बहुभाग होता है)।

नींव खोदते-खोदते निधान प्राप्त हो जाय, ऐसा तो किसीको ही होता है। बाकी तो महेनत करते-करते होता है। उसमें भी यह तो पंचमकाल है।

मुमुक्षु :- पूर्णता प्रगट कर। वास्तवमें तो तुझे यह सिखाते हैं। वह नहीं हो तो श्रद्धा प्रगट कर, और श्रद्धा भी न कर सके तो गहरे संस्कार तो डाल।

समाधान :- संस्कार तो डाल। उपदेशकी ऐसी शैली (है)। कोई सुनाये तो उसे मुनिपनाका उपदेश देते हैं। फिर मुनि न हो सके तो श्रावकका उपदेश देते हैं। पहले उतनी शक्ति न हो तो श्रावकका उपदेश (देते हैं)। सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक।

यह पंचमकाल है। सम्यग्दर्शन पर्यंत परिणति प्रगट करनेका उतना पुरुषार्थ न हो तो रुचिके संस्कार डाल (ऐसा कहते हैं)। यथार्थ रुचि (कर कि), आत्मा ज्ञायक है, ये सब भिन्न है। उसमें तो शुभभावमें, क्रियामें, थोड़ा शुभभाव हुआ उसमें धर्म मान लिया, उसकी तो श्रद्धा भी जूठी, उसका सब जूठा है।

मुमुक्षु :- उसके संस्कार भी जूठे।

समाधान :- हाँ, सब जूठा है।

मुमुक्षु :- असत्के संस्कार।

समाधान :- धर्म दूसरे प्रकार-से माना। कोई कर देगा ऐसा माने। ऐसी कुछ-कुछ भ्रमणाएँ होती हैं। ये गुरुदेवके प्रताप-से वह सब भ्रमणा दूर हुयी है, गुरुदेवने सबको उपदेश दे-दे कर। भगवान कर देंगे, मन्दिरमें जायेंगे तो होगा, ऐसा करेंगे तो होगा, ऐसी सब भ्रमणा (चलती थी)। गुरुदेवने कहा, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। तू कर तो होगा। शुभभाव आये देव-गुरु-शास्त्र तरफके, भक्ति आवे वह अलग बात है। परन्तु अंतरमें करना तो तुझे है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६१

मुमुक्षु :- प्रत्येक पर्यायका परिणमन स्वतंत्र है। वह संस्कार आगे-पीछे...

समाधान :- परिणमन स्वतंत्र है, परन्तु संस्कार, वस्तु अपेक्षा-से संस्कार नहीं है, परन्तु पर्याय अपेक्षा-से संस्कार है। जो प्रत्यभिज्ञान होता है या पूर्वका जो याद आता है, वह सब प्रत्यभिज्ञान है, अतः वह संस्कार ही है। इसलिये संस्कार इस प्रकार काम करते हैं। स्वयं अन्दर ज्ञायकका बार-बार, बार-बार अभ्यास करे तो वह संस्कार पर्याय अपेक्षा-से उसे काम करते हैं। पर्याय नहीं है, सर्वथा नहीं है, ऐसा नहीं है।

वस्तुमें वह संस्कार वस्तु अपेक्षा-से नहीं कह सकते, परन्तु पर्याय अपेक्षा-से संस्कार है। और पर्याय सर्वथा है ही नहीं ऐसा नहीं है। इसलिये संस्कार काम करते हैं। ज्ञायक स्वयं शुद्धात्मा है। जैसे विभावके संस्कार पड़ते हैं, जो अनादिके (हैं), जैसे क्रोधका संस्कार और विभावका संस्कारका जैसे चला आता है, ऐसे स्वभाव तरफके संस्कार डाले तो वह संस्कार भी जीवको काम आते हैं। जैसे मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसे जो संस्कार अन्दर गहराई-से डले हो तो वह संस्कार उसे प्रगट होनेका कारण बनता है।

गुरुदेवने तो अपूर्व उपकार किया है। बारंबार आत्माका स्वरूप समझाया है। गुरुदेव तो इस जगतमें एक प्रभातस्वरूप सूर्य समान थे। उन्होंने ज्ञायक स्वरूपकी पहचान करवायी। और बारंबार उपदेशकी जमावट की है। वह तो कोई अपूर्व है। वह संस्कार स्वयं अन्दर डाले, अंतरमें-से जिज्ञासापूर्वक अन्दर बारंबार उसका अभ्यास करके (डाले) तो वह संस्कार सर्व अपेक्षा-से काम नहीं करते हैं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- ... उसमें धर्मकी अशातना बहुत की हो, ऐसा कारण होता है? बहुत बार तो ऐसा होती है कि सत्पुरुषको प्राप्त करनेकी अर्थात् मिलनेकी बहुत इच्छा हो और संयोग भी ऐसे ही हो कि बन नहीं पाता। तो उसमें पुरुषार्थकी कमी तो नहीं है, उसकी इच्छा तो है किसी भी प्रकार-से आनेकी।

समाधान :- सत्पुरुषको मिलनेकी?

मुमुक्षु :- ... परन्तु सत्पुरुष नहीं मिल सकते उसमें ऐसे ही कोई कारण बन जाते हैं कि उसमें पुरुषार्थका ...

समाधान :- उसमें पुरुषार्थका कारण नहीं है। सत्पुरुष बाहर-से मिलना वह पुण्यका

कारण है। वह बाहर-से नहीं मिलते। वह पुरुषार्थ-से नहीं मिलता। अपने चैतन्यमें पुरुषार्थ काम करता है। क्योंकि चैतन्य स्वयं स्वतंत्र है, उसमें स्वभाव प्रगट करना वह अपने हाथकी बात है। सत्पुरुष मिलना वह पुण्यका प्रकार है। वह वस्तु पर होती है। इसलिये उस जातके पुण्य हो तो सत्पुरुष मिलते हैं।

स्वयं भावना भाता रहे, उसमें ऐसा पुण्य बँध जाय तो सत्पुरुष मिलते हैं। वह पुण्य-से मिलता है, पुरुषार्थ-से नहीं मिलता है। स्वयं भावना भाता रहे कि मुझे सत्पुरुष मिले, मिले, परन्तु ऐसा कोई पुण्यका योग हो तो मिलते हैं। पुरुषार्थ-से नहीं मिलते। पुण्य है वह अलग वस्तु है और अन्दर पुरुषार्थ-से आत्माकी प्राप्ति करनी वह अलग है और सत्पुरुष मिलना वह पुण्यका कारण है।

मुमुक्षु :- सत्पुरुष नहीं मिलना वह पापका कारण है?

समाधान :- हाँ, वह पापका कारण है। नहीं मिलते हैं वह अपना उस जातिका पुण्यका योग नहीं है अथवा उस जातिका पापका उदय है। पंचमकालमें जन्म हो और जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्रकी दुर्लभता हो, सच्चे गुरु मिलने, जिनेन्द्र देव साक्षात् मिलने, सच्चे शास्त्र हाथमें क्वचित् ही मिले, ऐसा सब हो उसमें अपनी क्षति है। दुषमकालमें जन्म हुआ वह भी अपने पुण्यकी क्षति है। उस जातका पापका उदय है कि इस कालमें जन्म होता है। वह पुण्य-पापका संयोग है, अपने हाथकी बात नहीं है। परन्तु अपनी भावना हो तो उस जातका पुण्य बँध जाता है कि उस पुण्य-से सत्पुरुष मिलते हैं।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ सिर्फ चेतनमें-अपनेमें करे।

समाधान :- अपनेमें पुरुषार्थ काम करता है। बाह्य वस्तुएँ प्राप्त होनी वह सब पुण्यका कारण है। वह स्वयं नहीं कर सकता।

इस कालमें-पंचमकालमें गुरुदेव पधारे वह महापुण्यका योग था। इसलिये सबको उस जातका गुरुदेवका योग प्राप्त हुआ, सत्पुरुषका योग प्राप्त हुआ। उनकी वाणी मिलनी, दर्शन मिलना, सान्निध्य मिलना, सत्समागम मिलना वह सब पुण्यका प्रकार है। लेकिन वह ऐसी शुभभावना भाये तो वैसा पुण्य बँधता है।

बाह्य संयोग मिलना, शरीरमें फेरफार होना, बाह्यका कुछ मिलना, नहीं मिलना वह सब पुण्यके कारण है। शाता वेदनीय (होनी) वह पुण्यका प्रकार है। अंतरमें पुरुषार्थ करना और आत्माको पहिचानना वह सब पुरुषार्थका कार्य है। परन्तु अनन्त काल-से जीवको सच्चा मिला नहीं है अथवा यथार्थ गुरुका योग नहीं मिला है, उसका कारण अपनी उस जातकी भावना, जिज्ञासा, ऐसा पुण्य नहीं था। उपादान तैयार हो तो उसे निमित्त मिले बिना रहता ही नहीं। ऐसी यदि अपनी जिज्ञासा तैयार हो तो बाहरका ऐसा पुण्य हो जाता है कि जिससे ऐसा योग प्राप्त हो जाता है।

और अनादि कालसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करे उसमें कोई गुरुका वचन या देवका वचन, वाणी उसे प्राप्त होती है और अंतरमें आत्मा जागृत हो जाता है। अपने उपादानकी तैयारी हो तो वह निमित्त बनते हैं। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। जिनेन्द्र देव अनेक बार मिले हैं, परन्तु स्वयंने पहचाना नहीं।

भगवानकी वाणी मिली, गुरु मिले और अपना उपादान तैयार हो तो उपादान-निमित्तका ऐसा सम्बन्ध है कि स्वयंको अंतरमें ऐसी देशनालब्धि होती है। अनादि-से समझा नहीं, ऐसेमें उसे ऐसे गुरु या देव मिले तब उसकी तैयारी हो। ऐसा उपादान-निमित्तका सम्बन्ध है। पुरुषार्थ अपने-से करता है। परन्तु ऐसा निमित्त उसे मिलता है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। पुरुषार्थ करे अपने-से, परन्तु उसे ऐसा पुण्य बँधता है कि ऐसे जिनेन्द्र देव अथवा गुरु, गुरु-सत्पुरुष मिले वह अन्दर जागृत हो जाता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र होने पर भी ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। उसकी वैसी शुभभावना-से ऐसे गुरुका योग हो जाता है और अपने पुरुषार्थ-से जागृत होता है।

मुमुक्षु :- अनन्त काल हुआ, अनन्त बार भगवानके समवसरणमें गया। जैसे गुरुदेव कहते थे, ऐसा हुआ फिर ऐसा ही कोरा रह गया?

समाधान :- हाँ, भगवानको पीछाना नहीं। भगवान बहुत अच्छे हैं। उनकी वाणीका रहस्य क्या है उसे पीछाना नहीं। भगवान समवसरणमें बैठे हैं, इन्द्र आते हैं, सब बाहर-से देखा।

मुमुक्षु :- अन्दर-से नहीं।

समाधान :- अन्दर-से नहीं। ये भगवान कुछ अलग कहते हैं। उनका आत्मा कुछ अलग है और कुछ अलग स्वरूप बताते हैं, कुछ अपूर्व बताते हैं, ऐसे पहिचाना नहीं। भगवान अंतर चैतन्यमें क्या करते हैं? ऐसे अंतर-से भगवानको पीछाना नहीं। बाहर-से भगवान समवसरणमें बैठे हैं, वाणी बरसाते हैं, इन्द्र आते हैं, ऐसे बाहर-से देखा।

भगवान कुछ वीतरागी मार्ग कहते हैं, आत्माकी कोई अपूर्व बात कहते हैं, भगवान आत्मामें स्थिर हो गये हैं, वीतराग दशा प्राप्त की है, जगत-से भिन्न हैं, ऐसा कुछ पीछाना नहीं। मेरा आत्मा.. अन्दर कुछ अलग करनेको कहते हैं, ऐसा कुछ गहरी दृष्टि-से देखा नहीं। इसलिये ऐसे ही वापस आ गया।

मुमुक्षु :- अव्यक्तमें बहुत सूक्ष्म बात करी। चित्सामान्यमें चित्व्यक्तियाँ अंतरनिमग्न है। भूत, भावि पर्याय अन्दर निमग्न है।

समाधान :- निमग्न है। चित्सामान्यके अन्दर, वह चित्स्वरूप सामान्य होने पर

भी उसकी भूतकी, भविष्यकी सब योग्यता है। वह पर्यायरूप परिणमती नहीं, परन्तु उसकी शक्तिओंमें वह सब है। सामान्य स्वरूप-से है।

मुमुक्षु :- पर्याय द्रव्यमें-से आती है ऐसा कहनेमें आता है, वह बराबर है?

समाधान :- हाँ, पर्याय द्रव्यमें-से आती है। द्रव्यमें-से अर्थात् द्रव्य परिणमकर ही पर्याय होती है। पर्याय कहीं ऊपर-से नहीं आती है। पर्याय उसमें परिणमनरूप नहीं है, सामान्यरूप है, परन्तु द्रव्य परिणमकर ही पर्याय होती है। द्रव्य स्वयं परिणमित होकर पर्याय होती है। पर्याय निराधार नहीं होती, द्रव्यके आश्रय-से पर्याय होती है।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेव इस बार सुप्रभातके दिन बहुत सुन्दर बात लेते थे और अन्दरमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य कैसे प्रगट हो, उसका सुन्दर कलश लेते थे। परन्तु आज देखा, पीछले कलशमें जिसे ज्ञाननय औ क्रियानयकी परस्पर मैत्री हो, उसको ही ऐसा परिणमन होता है, ऐसी बात ली। तो ज्ञाननय और क्रियानयका मैत्रीका सम्बन्ध क्या होगा?

समाधान :- गुरुदेव तो कुछ अलग (थे), उनकी बात तो अलग है। ज्ञाननय और क्रियानय, जो उसकी मैत्री करे कि मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे अंतरमें-से जिसने ग्रहण किया, अपना अस्तित्व जिसने ग्रहण किया, वह अन्दर-से राग-से निवृत्त हो और स्वयं अपनेमें लीनता करे कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायकरूप परिणमन करे तो वह ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्री है। ज्ञायककी ज्ञायकरूप परिणति न करे और मात्र मैं ज्ञायक हूँ, सब उदयाधीन है, सब विभाव है, ऐसे मात्र वह बोलता रहे और अंतरमें-से यदि भेदज्ञान न हो और ज्ञायक हूँ (ऐसी) ज्ञायकरूप परिणति न हो, ज्ञायकरूप परिणति न हो तो मात्र वह ज्ञान बोलनेरूप होता है। और क्रियामें शुभ परिणाम करके उसमें संतुष्ट हो जाय तो भी वह क्रियामें रुक जाता है। परन्तु अपना अस्तित्व ग्रहण करके मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा जानकर रागसे भिन्न पड़कर ज्ञायकका ज्ञायकरूप परिणमन करे तो वह ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्री है। तो अनेकान्तपने उसने यथार्थ आत्माको ग्रहण किया है।

मैं चैतन्यद्रव्य अखण्ड शाश्वत हूँ। जैसा ज्ञायक है उस रूप परिणति करनेका पर्यायमें भी वैसा अभ्यास करता है। राग-से निवर्तता है और अपनेमें स्वरूपकी परिणति प्रगट करता है। तो उसे वास्तवमें भेदज्ञान और ज्ञायककी परिणति प्रगट हुयी है। मात्र अकेली क्रियामें संतुष्ट हो जाय और बोलनेमें मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा करता रहे और सब उदयाधीन है और अंतरमें राग-से निवर्तता नहीं और भेदज्ञानकी परिणति करता नहीं है तो उसे ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्री नहीं है।

द्रव्यदृष्टि उसे कहते हैं कि स्वयं चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण करके ज्ञायककी परिणति

प्रगट करे तो उसने द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट की है। ऐसी ज्ञायककी परिणति अंतरमें-से प्रगट करे तो वह ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्री है। तो उसमें-से उसे आत्माका स्वरूप जो आनन्द स्वरूप है, आनन्द जिसका रूप है, ऐसा जो चैतन्य जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शनस्वरूप है ऐसा जो आत्मा, उसमें उसे वह प्रगट होता है। ऐसी भेदज्ञानकी जिसे प्रगट हो, बारंबार मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा अभ्यास अंतर-से परिणति प्रगट करके विकल्प टूटकर अंतरमें ज्ञायक हूँ उस रूप लीनता करे, तो आनन्द जिसका रूप है, आनन्दस्वरूप जिसका एक रूप है, ऐसा ज्ञानस्वभाव उसे खील उठता है। वह स्वयं निर्विकल्प स्वरूपमें लीन हो तो उसमें-से खील उठता है।

गुरुदेव वही कहते थे कि उसमें ज्ञायक प्रकाशित हो उठे, उस प्रकार-से उसकी ज्ञाननय, क्रियानयकी मैत्री-से चैतन्यको उस तरह वह ग्रहण करता है और उस प्रकार वह अभ्यास करता है तो वह प्रगट होता है। ऐसा अनन्त ज्ञान जिसका स्वरूप है, अचल जिसकी ज्योत है, कि जिसकी ज्योत, जिसका वीर्य अनन्त है, जो अन्दरमें सुस्थितपने संयमरूप वर्ते ऐसा आत्मा प्रगट होता है।

पहले अंश प्रगट हो, स्वानुभूति हो, उसका प्रभात हो और फिर स्वयं अखण्ड अनन्त शक्तियोँ-से भरपूर पूर्ण स्वरूप है। परन्तु उसका प्रभात होने-से पूर्ण केवलज्ञान प्रगट होता ही है। इसलिये पूर्ण केवलज्ञान उसमें-से प्रगट होता है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल, और आनन्द जिसका रूप है, जिसका रूप आनन्द है ऐसा आत्मा प्रगट होता है। स्वानुभूतिमें भी जिसका आनन्द रूप है ऐसा आत्मा प्रगट होता है। और पूर्ण दशामें जिसका आनन्द रूप है, वैसा आत्मा प्रगट होता है। अनन्त ज्ञान-से भरा आत्मा है कि जिसका कोई पार नहीं है ऐसा अनन्त ज्ञान है, ऐसा अनन्त दर्शन है, ऐसा अनन्त बल है, ऐसा अनन्त वीर्य है। ऐसा अनन्त-अनन्त उसे प्रगट होता है।

बाकी प्रगट नहीं होता है, (क्योंकि) वह बाहरमें रुक गया है। ज्ञाता और ज्ञेयकी एकताबुद्धि (कर रहा है)। जो ज्ञेय ज्ञात होता है और मैं, उसे भिन्न नहीं करता है। एकतामें रुक गया है। बाहरमें कर्ताबुद्धिमें, बाह्य क्रियाओँमें मानों मैंने बहुत किया, उसमें रुक गया है। ऐसे सबमें रुक गया है। रागकी क्रियाओंमें राग और मैं दोनों एक हैं, ऐसे रुक गया है। उससे भिन्न पड़े कि मैं ज्ञायक हूँ। जो ज्ञेय ज्ञात हो उससे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ। जो राग होता है उससे भेदज्ञान करता है। मैं परपदार्थका कुछ कर नहीं सकता, परन्तु मैं तो ज्ञायक हूँ। ज्ञायकमें मेरी परिणति हो, ज्ञायकरूप मैं परिणति करुँ वही मेरी क्रिया है। ये बाहरका करना वह मेरी क्रिया नहीं है, वह तो परद्रव्यकी है। उससे भिन्न पड़ता है तो उसमें-से अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्दरूप

है वह प्रगट होता है। वह मार्ग गुरुदेवने बताया है। उस भेदज्ञानके मार्ग पर चैतन्य स्वरूप अपूर्व है, जिसके साथ किसीका मेल नहीं है, ऐसा अपूर्व (आत्मा है)।

मुमुक्षु :- ज्ञायककी परिणति प्रगट करे उसे ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्री होती है।

समाधान :- हाँ, ज्ञायककी परिणति प्रगट करे तो ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्री है। ज्ञायककी परिणति प्रगट नहीं हुई है तो वह मैत्री नहीं है। विकल्प-से नक्की करे कि यह ज्ञान, यह क्रिया। अन्दर परिणति नहीं है तो ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्री नहीं है। कोई क्रियामें रुक जाता है, कोई ज्ञानमें रुक जाता है। और कोई मुमुक्षु आत्मार्थी हो तो ऐसा माने कि मुझ-से होता नहीं, परन्तु यह ज्ञायककी परिणति ही प्रगट करने योग्य है। वस्तु स्वरूप ऐसा है कि द्रव्य वस्तु स्वभाव-से भिन्न है। उसे भिन्न करने-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। ऐसा विकल्प-से ज्ञान करे। आत्मार्थी हो वह ऐसा ज्ञान करे परन्तु ज्ञान-क्रियाकी मैत्री तो अन्दर ज्ञायक दशा प्रगट हो तो ही ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्री होती है।

पहले वह समझे कि करना यह है। बाकी जो नहीं समझता है वह एकान्तमें चला जाता है। मात्र बोलता रहता है, आत्मा ज्ञायक है। और कोई थोड़ा शुभभाव करे तो मैं बहुत करता हूँ, ऐसा मानता है। यथार्थ आत्मार्थी हो, जिसे आत्माका प्रयोजन है, वह बराबर समझता है कि यह द्रव्य वस्तु स्वभाव-से भिन्न है। परन्तु यह राग उसका स्वभाव नहीं है। लेकिन उस ज्ञायकरूप मैं कैसे परिणमूँ, ऐसी उसकी भावना रहती है। और वह ऐसा निर्णय करता है कि करनेका यही है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६२

मुमुक्षु :- कोई क्रियाजड़ थई रह्या, शुष्कज्ञानमां कोई, वह तो छोड़ दे। ज्ञान और वैराग्यकी मैत्री, ज्ञान और वैराग्य जो साधकको साथमें होते हैं तो वैराग्यमें और क्रियानयमें एक सरीखा भाव है या थोड़ा सूक्ष्म अंतर होगा?

समाधान :- वैराग्य और क्रिया न? क्रियामें वह मात्र क्रियामें रुकता है। और जो वैराग्य है, वैरागी है वह अकेला वैराग्यमें रुकता है। क्रिया और वैराग्यमें, बहुभाग वह मात्र बाह्य क्रियामें रुकता है। दूसरा है वह वैराग्य-वैराग्य करता रहता है। उतना फ़र्क़ है।

मुमुक्षु :- ज्ञान और क्रियानयकी मैत्री जहाँ है, वह तो साधककी भूमिका है। तो क्रियानयको लें तो और वैराग्यकी बात ले, दोनों एक सरीखी बात है या दोनोंके बीच थोड़ा फ़र्क़ होगा?

समाधान :- ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्रीमें क्रियानयमें वैराग्य साथमें आ जाता है। उसमें वैराग्य साथमें हो तो ही उसकी क्रियाकी परिणति होती है। मैं ज्ञायक हूँ और उसमें निवर्तनेकी जो क्रिया होती है, स्वरूपकी लीनताकी जो क्रिया होती है, वह वैराग्यके बिना नहीं होती। इसलिये उसमें क्रियानयमें वैराग्य साथमें आ जाता है। उसमें विरक्ति साथमें आ जाती है।

मुमुक्षु :- संवेग निर्वेग जैसा है? क्रियानयमें अस्ति भाव-से वीतरागता प्रगट करनी और वैराग्यमें राग-से पीछे मुड़ना, ऐसा भाव होगा?

समाधान :- हाँ, वैराग्य अर्थात् विरक्ति-नास्ति करके स्वरूपमें परिणतिकी अस्ति करता है। अस्ति-नास्ति। परन्तु वास्तविक अस्ति तो चैतन्यको ग्रहण किया वह अस्तित्व है। द्रव्यको ग्रहण किया वह। परन्तु यह परिणति प्रगट की, उस परिणतिकी अपेक्षा-से वह अस्ति है और विरक्ति हुयी वह नास्ति है। क्रियावाला जो बाह्य क्रियामें है वह भी वैराग्यकी क्रियामें उस तरह रुकता है। उसमें गर्भित वैराग्य है वह वैराग्य समझ बिनाका है। आत्माको समझता नहीं, अस्तित्व ग्रहण नहीं किया है।

मुमुक्षु :- रुंधा हुआ कषाय।

समाधान :- हाँ। वह ऐसा है।

मुमुक्षु :- साधकको दोनों साथमें होते हैं, परन्तु शुरूआतमें थोड़ा-बहुत मुख्य-गौण रहता होगा कि नहीं?

समाधान :- जो साधककी परिणति है, वह शुरूआतमें रहे ऐसा नहीं, उसका मार्ग ही वह है। द्रव्यदृष्टि-से द्रव्यकी दृष्टि मुख्य रहती है। उसमें जो पुरुषार्थ होता है वह, पर्यायमें मुझे विभाव है, उससे भिन्न होकर और स्वरूपकी परिणति प्रगट करता है। द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से उसे गौण रहता है और परिणति अपेक्षा-से उसे कोई बार मुख्य कहते हैं। इस प्रकार मुख्य-गौण कहते हैं। परन्तु द्रव्यदृष्टि तो सदाके लिये उसे मुख्य ही रहती है। लीनताकी भावना करे, मुझे लीन होना है, ऐसी भावना हो, चारित्रकी भावना हो, ऐसे पर्याय अपेक्षा-से उसे मुख्य कहें। परन्तु अन्दर जो दृष्टि है, उस दृष्टिकी अपेक्षा-से कोई मुख्य नहीं होता।

मुमुक्षु :- सुप्रभात-से लेकर केवलज्ञान पर्यंतकी सब बातमें स्वयमेव प्राप्त हुआ। स्वयंभूपना लिया। दूसरेका कुछ थोड़ा-बहुत अवलम्बन होगा कि नहीं?

समाधान :- नहीं, अन्य किसीका नहीं। एक स्वयंभू आत्माका ही अवलम्बन। स्वयंभू आत्मा स्वयं अपने-से स्वतःसिद्ध है, उसीका अवलम्बन, अन्य किसीका आलम्बन नहीं।

मुमुक्षु :- देव-शास्त्र-गुरु थोड़ी मददमें-सहायमें (होते होंगे)?

समाधान :- चैतन्यद्रव्यका ही आलम्बन, अन्य किसीका नहीं। शुभभावनामें उसे आलम्बनरूप कहनेमें आता है। देव-गुरु-शास्त्रका शुभभावमें आलम्बन (होता है)। मेरे साथ रहना, मैं मेरे आत्मामें जाता हूँ। क्योंकि मेरी न्यूनता है। इसलिये शुभभाव मुझे आता है तो आप मेरे साथ रहना। मुझे आपका आदर है। मेरे स्वभावका जैसे मुझे आदर है, वैसे मुझे आपका आदर है। इसलिये मेरे साथ रहना। मैं आपका आदर करता हूँ। मैं जहाँ आगे बढ़ूँ वहाँ मुझे साथीदारके हिसाब-से मुझे मददमें देव-गुरु-शास्त्र रहना, ऐसी भावना करे। बाकी आलम्बन द्रव्यका है।

मुमुक्षु :- काम अन्दरमें स्वयंको करना है।

समाधान :- काम स्वयंको करना है। देव-गुरु-शास्त्रके प्रति शुभभावनामें भक्ति उसे पूरी आती है कि मेरे साथ ही रहना। उसे ऐसा नहीं होता कि वह सब बाहरका है, करना तो अन्दरमें है न, ऐसे भाव नहीं आते।

उसे ऐसा भाव होता है कि मैं अन्दर जाऊँ और शुभभाव खड़ा है, अभी वीतराग नहीं हुआ है, शुभभावनामें आप मेरे साथ रहना। ऐसे भक्तिभाव आता है। गुरुदेव मुझे सहायरूप हो, मुझे उपदेश दे। ऐसी सब भावना होती है। भावना ऐसी होती है। गुरुके प्रताप-से ही मैं आगे बढ़ा, गुरुदेवने ही सब दिया है, इस प्रकार देव-गुरु-शास्त्र पर

उसे भक्ति आये बिना नहीं रहती।

पुरुषार्थ स्वयं करता है, परन्तु उपकार गुरु, देव-गुरु-शास्त्रका आये बिना नहीं रहता। अनादिकाल-से अनजाना मार्ग, वह गुरुदेवने बताया है। जो पर्यायमें... द्रव्य अनादिअनन्त शुद्ध होने पर भी पर्यायमें जो परिणति पलटनेमें उसे जो पुरुषार्थ होता है, उसमें देव-गुरु-शास्त्रका निमित्त होता है। और अनादिका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी ऐसा है कि अनादि-से जो स्वयं समझा नहीं है, उसमें पहली बार समझता है उसमें देशनालब्धि होती है। उसमें देव या गुरुका प्रत्यक्ष निमित्त होता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। होता अपने-से ही है, परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हो ही नहीं तो ऐसा सम्बन्ध है कि अनादिमें सर्वप्रथम देशनालब्धि होती है। और प्रत्यक्ष देव-गुरु हो उस प्रकार-से देशनालब्धि होती है। इसलिये प्रत्यक्षका उपकार कहनेमें आता है। जो, प्रत्यक्ष सद्गुरु सम, आता है। प्रत्यक्षका उपकार है। क्योंकि अनादि-से चैतन्यद्रव्य शुद्ध होने पर भी जब उसकी पर्याय पलटनेका पुरुषार्थ होता है तब देव और गुरुका निमित्त होता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है।

प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र होने पर भी ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध होता है। पर्यायका निमित्त-नैमित्तिकका कैसा सम्बन्ध है उसे ज्ञानमें रखकर प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, ऐसी उसकी द्रव्य पर दृष्टि और उस जातका उसका ज्ञान काम करता है। दृष्टि और ज्ञान दोनों मैत्रीरूप-से काम करते हैं। जैसे ज्ञाननय क्रियानयकी मैत्री है, वैसे दृष्टि और ज्ञान मैत्री-से काम करते हैं।

मुमुक्षु :- जैनदर्शनकी ऐसी अटपटी बात दूसरोंको समझमें नहीं आती। कभी ऐसा कहना, कभी वैसा कहना।

समाधान :- उन दोनोंको सम्बन्ध है। दृष्टि और ज्ञानकी मैत्री है। द्रव्यदृष्टि अखण्डको ग्रहण करती है, ज्ञानमें दोनों आते हैं। इसप्रकार मैत्री है। वस्तुका स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्याय है। इसलिये सबमें दो-दो आते हैं। वस्तु स्वभाव-से अभेद है और उसमें गुणके भेद, पर्याय भेद (भी है)। भेद-अभेद दोनों अपेक्षा एक द्रव्यमें होती है। इसलिये हर जगह दोनोंकी मैत्री होती ही है।

मुमुक्षु :- दृष्टि और ज्ञान साथमें ही रखना।

समाधान :- दृष्टि और ज्ञान साथमें होते हैं। ज्ञान और क्रियानय जैसे साथमें होते हैं, वैसे दृष्टि और ज्ञान साथमें होते हैं। वस्तु अनादिअनन्त है तो उसमें अनन्त गुण नहीं है, ऐसा नहीं है। वस्तु स्वभाव-से उसे अभेद कहते हैं, तो भी लक्षण भेद-से उसमें कोई भेद नहीं है अथवा उसमें पर्याय नहीं है, या सर्व अपेक्षा-से कूटस्थ है ऐसा नहीं है। उसमें कोई गुण नहीं है और एक अखण्ड द्रव्य है, परन्तु उसमें

गुण नहीं है ऐसा नहीं है। एक वस्तुके अन्दर, एक अभेदमें अनकान्तमय मूर्ति है। दो अपेक्षाएँ एक द्रव्यमें ही होते हैं तो उसकी साधनामें भी सबमें दो-दो अपेक्षाएँ होती है। वस्तु स्वरूप ही अनेकान्तमय मूर्ति है।

मुमुक्षु :- ज्ञाननयमें लिया था, स्याद्वादकी प्रवीणता-से। पहली बात ली।

समाधान :- हाँ, पहली बात ली, स्याद्वादकी प्रवीणता-से।

समाधान :- .. उसकी रुचि जिस ओर काम करती है, उस ओर वह पलटती है। रुचिमें जो उसे योग्य लगे उस अनुसार पलटता है। स्वयं ही, कोई निमित्त नहीं करवा देता। मुनिओंका निमित्त बनता है, परन्तु पलटना स्वयं-से होता है।

... पुरुषार्थ करता है वह सब वर्तमानमें करता है। अमुक जातके संस्कार है, उसमें-से एकदम पलटता है। उन्नति क्रममें आता है। पहले अमुक जातके संस्कार ब्राह्मण तरफके थे वह चले आते हैं। उसमें-से पलटा होता है। पुरुषार्थकी मन्दताके कारण ऐसे ही संस्कार चले आते हैं।

.. मालूम था, ऋषभदेव भगवानके समयमें मरिचीकुमार...

महाभाग्यकी बात है। जीव अनादि कालमें परिभ्रमण करते-करते कहाँ-कहाँ परिभ्रमण करता है और पुरुषार्थकी मन्दता-से कहाँ-कहाँ भटकता है। थोड़ेके लिये कहाँ-कहाँ अटकता है। वह सब अपने लिये जानने जैसा है। ... दूसरेको कितनी सावधानी रखने जैसी है। महावीर-वीरताके कार्य करते हैं (इसलिये) महावीर कहलाते हैं। परिषह सहन किये। अतिवीर, वीर, अतिवीर, महावीर ऐसे सब नाम (आते हैं)। सन्मति। मुनिओंकी शंका दूर हो जाती है तो सन्मति कहलाते हैं।

पूरे लोकमें दिपावली मनाते हैं। निर्वाण उत्सव। भगवानने सिद्ध दशा प्राप्त की परन्तु जगतमें एक उत्सव रह गया। सबको आनन्द, आनन्द, आनन्द ही हो ऐसा उत्सव हो गया। किसीको दुःख होनेके बदले दिपावली आये तो मानो दिपोत्सव आया। सबको आनन्द मंगल होता है। भगवानको आनन्द मंगल हो गया, सबको आनन्द मंगल हो गया। जगतमें ऐसा हो गया है। अंतिम तीर्थंकर। विरहका काल आया तो भी हर जगह आनन्द मंगल हो गया। ऐसा ही कोई दिपावलीका उत्सव हो गया। चौबीसवें अंतिम भगवान। सब लोकमें, अन्य लोक दिपावली (मनाते हैं)। (नूतन) वर्ष बहुत मनाते हैं। अपना नूतन वर्ष अच्छा जाय। नूतन वर्ष। तेरस आये तो महावीर भगवान अंतिम भगवान है। दिव्यध्वनिका दिवस आये।

मुमुक्षु :- किस विधि-से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो?

समाधान :- गुरुदेवने बहुत रास्ता बताया है। गुरुदेवने विभिन्न प्रकार-से बताया है कि मार्ग आत्माको पहिचानना वह एक ही है। और उसका मार्ग भी गुरुदेवने बताया

है। अपने पुरुषार्थकी क्षतिके कारण कर नहीं सकता है। रुचि उसकी, लगन उसकी, महिमा उसकी सब उसका हो, बारंबार उसका अभ्यास करे तो हो सके ऐसा है।

मितज्ञान और श्रुतज्ञान-से निर्णय किया कि मैं आत्मा यही हूँ और अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। मैं आत्मा चैतन्य, जितना ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ, अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। चैतन्यका लक्षण ज्ञायक है। वह ज्ञायक लक्षण ऐसा कोई असाधारण लक्षण है कि जो लक्षण दूसरे द्रव्यमें नहीं है। ऐसा उसका असाधारण लक्षण ज्ञायक लक्षण है। उस लक्षण-से उसे पीछानना कि जो ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ। दूसरा जो विभाव लक्षण है वह लक्षण चैतन्यका नहीं है। वह तो विभावका, पर निमित्तका लक्षण है। कोई जड़ पदार्थ या कोई अरूपी पदार्थ, आत्मा अरूपी होने पर भी उसका ज्ञानलक्षण कोई असाधारण लक्षण है। वह असाधारण लक्षण-से पहचाना जाय ऐसा है। उस लक्षण-से उसे पीछानना।

ज्ञायकके अन्दर अनन्त गुण भरे हैं और अनन्त महिमावंत ज्ञायक अनुपम तत्त्व है और उसमें अपूर्व आनन्द भरा है। उसे पीछानना और नक्की करना कि ये जो ज्ञायक है वही मैं हूँ। अन्य कोई वस्तु मैं नहीं हूँ। ये परपदार्थ जो बाह्यमें दिखे वह भी मैं नहीं हूँ, अन्दर जो विभाव दिखते हैं वह भी मैं नहीं हूँ, अनेक प्रकारके विकल्प हो वह भी अपना स्वरूप नहीं है। स्वयं अखण्ड चैतन्य ज्ञायक स्वभाव है वही मैं हूँ। उसमें जो अधूरी पर्याय या पूर्ण पर्याय हो, वह पर्याय जितना भी आत्मा नहीं है। पर्याय, शुद्धात्माकी पर्याय उसमें शुद्ध पर्याय हो, तो भी उसका अखण्ड लक्षण तो एक ज्ञायक लक्षण है। उसका वह पूर्ण लक्षण है, उस लक्षण-से उसे पीछानना।

साधनाकी पर्यायें प्रगट हो, उसमें जो पूर्ण पर्याय प्रगट हो, वह सब उसकी साधनामें पर्यायें प्रगट होती हैं। परन्तु उसे ज्ञायक लक्षण-से पीछानना। उसे पीछानकर उसकी दृढ़ प्रतीत करनी, उसका ज्ञान करना, उसमें लीनता करनी। तो उसमें-से उसे स्वानुभूति प्रगट हो, आनन्द प्रगट हो, सब उसमें प्रगट होता है। और उसमें आगे बढ़ते-बढ़ते रत्नत्रय दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी प्राप्ति होने-से उसमें ही साधना अभ्यास, उसकी साधना करने-से केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है।

परन्तु प्रारंभमें उसे नक्की करना कि जो ज्ञायक लक्षण, ज्ञायक है वही मैं हूँ। अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। बारंबार उसीका अभ्यास करने जैसा है कि जो ज्ञायक है वह मैं हूँ। ऐसा विकल्प-से नक्की किया, पहले वह विकल्प-से होता है, परन्तु उसे अंतरमें-से मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा सहजरूप-से मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी अंतरमें-से प्रतीत हुयी और उसका भेदज्ञान बारंबार उसका अभ्यास करता रहे, फिर उसमें सहजता होने पर निर्विकल्प दशा मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। मुक्तिका मार्ग ही वह है।

परपदार्थको स्वयं कर नहीं सकता। और दूसरा कोई अपना कर नहीं सकता, स्वयं दूसरेको कर नहीं सकता। उसे परपदार्थ-से अत्यंत अभाव है। उसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धके कारण ऐसा लगता है कि मैं दूसरेका करता हूँ। वह मात्र उसे रागके कारण लगता है। बाकी चैतन्यद्रव्य अन्य-से अत्यंत भिन्न है। ऐसी प्रतीति, अन्यका कुछ कर नहीं सकता। अपने स्वभावका कर्ता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अनन्त गुणकी पर्यायें प्रगट हों उसका कर्ता है। परपदार्थका वह कर्ता नहीं है।

चारों ओर-से चैतन्यलक्षणको नक्की करके उसमें ही उसकी प्रतीत, उसका ज्ञान और उसमें लीनता करके आगे बढ़े तो वही मुक्तिका मार्ग है। उसमें ही उसकी आनन्दकी पर्यायें प्रगट होती हैं, ज्ञानकी पर्यायें प्रगट होती हैं, चारित्रकी, अनन्त शक्तियों-से भरा गुणका भण्डार ऐसा आत्मा, उसमें-से प्रगट होता है।

गुरुदेवने वह बताया, बारंबार बताया वह गुरुदेवका परम उपकार है। और वह उपकार ऐसा है कि जीवको भवका अभाव हो जाय। अंतरमें गुरुदेवने अंतर दृष्टि करवायी, सबको रुचि करवायी। परन्तु उस रुचिकी बारंबार उग्रता करके बारंबार उसीका प्रयत्न करने जैसा है। जीवनमें वही एक करने जैसा है कि ज्ञायक मैं कौन हूँ? ज्ञायकको पीछानना, वही करना है। उसके लिये शुभभाव आये। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति वह सब उसे शुभभावमें होता है। शुद्धात्मामें एक ज्ञायक। बस, एक ज्ञायक उसके जीवनमें वह होना चाहिये। उसीका अभ्यास और उसीका रटन, उसकी महिमा।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६३

मुमुक्षु :- देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा बहुत आती है, गुरुदेवकी भी बहुत महिमा आती है, आपकी भी बहुत महिमा आती है। परन्तु उसमें अमुक अपेक्षित आनन्द आता है। परन्तु आप जो कहते हो, अन्दरमें अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा आनन्द तो अब तक ज्ञात नहीं होता है, उसमें क्या मेरी क्षति होगी? मनमें तो इतना होता है कि उछल पड़ते हैं। आपके चरणोंमें आजीवन समर्पण कर दे, इतना अन्दरमें भाव आता है। अपना चले तो आजीवन ज्ञानीके पीछे सोनगढ़में रहें। फिर भी अन्दर आनन्द नहीं आ रहा है। अंतरमें जो अतीन्द्रिय कहते हैं, सम्यग्दर्शन होनेके समय जो आनन्द आता है, ऐसा आनन्द आता नहीं। उसमें कहाँ (अटकना होता है)?

समाधान :- अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। पुरुषार्थकी मन्दता है। अंतरमें जो अतीन्द्रिय अनुपम आना चाहिये, विकल्प छूटकर निर्विकल्प हो तब वह आनन्द आता है। वह आनन्द उसे कोई विकल्प सहित वह आनन्द नहीं आता है। जो महिमाका आनन्द आता है, वह शुभभावका आनन्द है। आत्मा कोई भिन्न है, ऐसा गुरुदेवने बताया। जिनेन्द्र देव कोई अलग है, गुरु कोई अलग है, ऐसे जो देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये वह सब शुभभावका आनन्द है। परन्तु विकल्प छूटकर जो आनन्द आये वह कोई अनुप आनन्द है।

वह आनन्द कोई विकल्पवाली पर्यायमें वह आनन्द नहीं होता। विकल्प छूटकर चैतन्यमें-से जो आनन्द आये, जो चैतन्यका स्वभाव है, उस स्वभावमें परिणमित होकर जो आनन्द आवे वह आनन्द कोई अनुपम होता है। और प्रगट नहीं होनाका कारण अपनी मन्दता-पुरुषार्थकी मन्दता है। महिमा आये, लेकिन वह स्वयं पुरुषार्थ नहीं करता है। प्रमादके कारण उसे आनन्द नहीं आ रहा है।

उसकी परिणति जो पर तरफ जा रही है, उसे स्वयं वापस नहीं मोड़ता है। जो अनादिका अभ्यास है उसीमें परिणति दोड़ जाती है। उसे अन्दर महिमा आवे कि यही सत्य है, यही करने जैसा है ऐसे महिमा आये तो भी उसकी परिणतिको पलटना वह अपने हाथकी बात है। स्वयं परिणति पलटता नहीं है। इसलिये पुरुषार्थकी मन्दताके कारण वह आगे नहीं बढ़ पाता है। पुरुषार्थकी मन्दताके कारण। अटका है वह अपनी

मन्दताके कारण। रुचिकी ऐसी उग्रता करके जो पुरुषार्थ अपनी तरफ मुड़ना चाहिये, उस पुरुषार्थको स्वयं मोड़ता नहीं। इसलिये उसमें अटक जाता है।

पुरुषार्थ जो बाहरमें काम करता है, उसे स्वयं पलटता नहीं है। विकल्पमें जो पुरुषार्थ जाता है, उस पुरुषार्थको पलटकर निर्विकल्पताकी पर्यायमें स्वयं पलटता नहीं है। इसलिये उसे वह आनन्द नहीं आता है। वह आनन्द अन्दर चैतन्यमें जाय तो ही वह आनन्द उसमें-से प्रगट होता है। विकल्पमें खड़ा हो, तबतक आनन्द नहीं आता है। सविकल्प दशामें भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, सम्यग्दर्शन हो, उसे आंशिक शान्ति होती है। परन्तु विकल्पवाली दशामें जो निर्विकल्पताका आनन्द होता है वह आनन्द तो निर्विकल्प दशामें ही होता है।

सम्यग्दृष्टिको भेदज्ञानकी धारा सहज होती है। उसमें आंशिक शान्ति, ज्ञायककी धारा, शान्तिकी दशा होती है। परन्तु अपूर्व आनन्द तो निर्विकल्प दशामें ही होता है। और वह भेदज्ञानकी धारा भी, अभी जो जिज्ञासु है, उसे सहज धारा नहीं है। वह तो अभी अभ्यास करता है। एकत्वबुद्धि है। एकत्वताको तोड़े, उसका प्रयास करे। वह एकत्वता तोड़नेका पुरुषार्थ नहीं करता है। जितनी एकत्वता विभावके साथ है, क्षण-क्षणमें उसे एकत्वबुद्धि हो रही है, क्षण-क्षणमें, ऐसी उग्रता ज्ञायककी धारा क्षण-क्षणमें प्रगट हो, ऐसा पुरुषार्थ तो नहीं है। वह क्षण ज्यादा है, विकल्पके साथ (एकत्वकी) क्षण तो दिन-रात चलती है, ज्ञायकका अभ्यास तो कोई बार करता है। अतः उसे ज्ञायककी परिणति सहज होनी चाहिये। तो विकल्प टूटकर आनन्द हो। वह तो करता नहीं। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे रुचि करे, महिमा करे, कोई बार अभ्यास करे तो मात्र क्षणभर थोड़ी देर करे वह उसे सहज नहीं टिकता है और (एकत्वता) तो उसकी टिकी है, वह तो उसे चौबीसों घण्टे चलती है। यह उसे.. तीव्र पुरुषार्थ करके तीव्र पुरुषार्थ करता नहीं है। इसलिये निर्विकल्प दशा होकर जो आनन्द आना चाहिये वह नहीं आता है।

वह जीवन एकत्वतामें एकमेक हो गया है और यह भेदज्ञानका जीवन तो मुश्किल-से अभ्यास करे तो। वह तो है नहीं। इसलिये उसे आनन्द नहीं आता है। भावना रहे, रुचि रहे, महिमा रहे, परन्तु पुरुषार्थकी धारा उस ओर जाती नहीं इसलिये नहीं होता है।

मुमुक्षु :- वह आनन्द कैसा होगा? क्योंकि हमें तो गुरुदेवके प्रति या आपके प्रति भावना आये, अर्पणताका भाव आये तो हमें ऐसा लगता है कि हमें लगता है हमें बहुत आनन्द-अनन्द आया, ऐसा लगता है। फिर आप जो कहते हो वह आनन्द कैसा होगा?

समाधान :- उस आनन्दका किसीके साथ उसका मेल नहीं है। वह बोलनेमें आये

ऐसा नहीं है। वह तो स्वभावमें लीन हो, स्वभावको पीछाने तो उसमें सहज प्रगट होता है। वह तो अनुपम है, उसे किसीकी उपमा लागू नहीं पड़ती। कोई विकल्पाश्रित भावोंकी उपमा उसे लागू नहीं पड़ती। विकल्पमें जो आनन्द आता है वह आकुलता मिश्रित आनन्द है। उस आनन्दमें आकुलता रही है और वह विभाव भाव है। चैतन्यका आनन्द निर्विकल्प है, आकुलता रहित है, स्वभावमें-से सहज प्रगट होता आनन्द है। उसे कहीं-से लाना नहीं पड़ता, वह तो सहज प्रगट होता है। उसे किसीकी उपमा लागू नहीं पड़ती। वह तो अनुपम है। आत्मामें जो स्वभाव भरा है, उसमें परिणति होने-से, लीनता होने-से प्रगट होता है। उसे किसीकी उपमा नहीं है। उसे कोई दृष्टान्त लागू नहीं पड़ता।

मुमुक्षु :- कथंचित् व्यक्तव्य है।

समाधान :- समझ लेना। जगतके कोई विभावभावमें वह आनन्द नहीं है। जगत-से भिन्न न्यारा ही है। चैतन्य अनुपम तत्त्व, उसका आनन्द अनुपम। उसके सब भाव अनुपम। वह अलग दुनियाका आनन्द है ऐसा समझ लेना। उसे कोई दृष्टान्त लागू नहीं पड़ता। जो सुख-सुख इच्छता है, वह सुख अपनेमें भरा है, बाहर-से नहीं आता है। वह कोई अपूर्व है, उसे जगतकी कोई उपमा लागू नहीं पड़ती, वह कोई अनुपम है।

मुमुक्षु :- हम कुछ दूसरी इच्छा रखते हैं। ऐसी सब बातें.. और एक परमपारिणामिकभाव। उसका विचार करते हैं तब थँभ जाते हैं। इसमें करना क्या है? स्वभाव ... तू है, स्वभाव है। तो फिर शान्ति क्यों नहीं होती है? स्वभावमें शान्ति भरी है, स्वभावका विचार करने पर दूसरा कोई विकल्प आने नहीं देता। स्वभाव। वाच्यार्थका विचार ... उसमें कुछ करना नहीं है। हमारी मति कहाँ उलझती है, यह समझमें आया है। ...

समाधान :- कहीं न कहीं स्वयं ही रुक जाता है।

मुमुक्षु :- वह तो हक़ीकत है।

समाधान :- उत्पाद-व्यय-ध्रुवको यथार्थ समझे तो विकल्प छूटे। करनेका कुछ नहीं रहता। वास्तविक रूप-से कर्ताबुद्धि छोड़ दे, ज्ञायक हो जाय तो करना कुछ नहीं है। मैं परपदार्थका कर सकता हूँ अथवा विकल्पका कर्ता मैं हूँ अथवा मैं रागका कर्ता हूँ, वह सब छूट जाय। वास्तविक रूप-से यदि ज्ञायक हो जाय, ज्ञायककी परिणति हो तो उसमें बाहरका कुछ करना नहीं रहता है। वह सहज ज्ञाता बन जाय, सहज जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप वस्तु है, उस रूप स्वयं परिणमित हो जाय तो बाहरका कुछ करना नहीं रहता।

स्वयं जिस स्वरूप है, उसमें दृष्टिको थँभाकर उसका ज्ञान और लीनता करे तो

कुछ करनेका नहीं रहता है। स्वयं ज्ञायक हो जाय तो। ज्ञायको होता नहीं है और कर्तृत्वबुद्धि खड़ी रहती है कि मैं कुछ करुँ, मैं कुछ करुँ, बाहरका करुँ, ऐसा करुँ, वैसा करुँ, ऐसी कर्तृत्वबुद्धिमें वह बाहरका कुछ नहीं कर सकता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव सहज स्वभाव है, उस रूप स्वयं हो जाय तो कुछ करना नहीं रहता है।

अपनी रुचि नहीं है उस रूप होनेकी, स्वयं निष्कर्म निवृत्तिरूप परिणति करनी और स्वभावरूप परिणमित हो जाना, ऐसी रुचिकी क्षति है। स्वयंको कुछ बाहरकी प्रवृत्ति रुचती है। निवृत्त स्वरूप आत्मा है उसमें ही शान्ति और उसमें ही आनन्द भरा है। उस जातकी स्वयंकी रुचि नहीं है इसलिये बाहरका कुछ करना, ऐसी उसकी परिणति चलती रहती है।

मुमुक्षु :- रुचि नहीं है?

समाधान :- वास्तविक रुचि वैसी हो, अंतरमें वैसी उग्र रुचि हो कि मैं निवृत्त स्वरूप ही हूँ और निवृत्तरूप परिणम जाऊँ, ऐसी रुचिकी यदि उग्रता हो तो पुरुषार्थ हुए बिना रहे नहीं। जहाँ चैन न पड़े, जिस विकल्प भावमें स्वयं एक क्षण मात्र भी टिक न सके, तो-तो वह छूट ही जाता है। स्वयं टिक सकता है, वह ऐसा सूचित करता है उसके पुरुषार्थकी मन्दता है। वहाँ वह टिका है।

मुमुक्षु :- रुचिकी जातमें क्षति है या मात्रामें क्षति है?

समाधान :- वह स्वयं समझ लेना कि जातमें क्षति है या मात्रामें। अपना हृदय समझ लेता है कि यथार्थ चैतन्य स्वरूप है वह एक ही मुझे चाहिये, फिर भी मैं बाहर जाता हूँ, मेरी रुचिकी मन्दता है। रुचिकी जातमें क्षति है। गुरुदेवने इतना मार्ग बताया, फिर जातमें क्षति रहे तो वह तो स्वयंकी ही क्षति है। जातमें क्षति नहीं रहती। गुरुदेवने ऐसा उपदेश दिया और यथार्थ मुमुक्षु बनकर सुना हो तो उसकी जातिमें क्षति रहे ऐसा कैसे बने? परन्तु मात्रामें उसकी दृढ़तामें क्षति है। उसके पुरुषार्थकी मन्दता, उसकी रुचिकी मन्दता। वह बाहरमें टिकता है।

मुमुक्षु :- दूसरेमें तो कहें कि उसकी श्रद्धा अलग है। दूसरी श्रद्धा देखते हुए, यह वस्तु सुहाती है या नहीं? क्योंकि श्रद्धाका कार्य तो एक ही प्रकारका है, उसमें कोई भंग-भेद नहीं पड़ते। तो यह रुचता है, ऐसा हम कहते हैं। दूसरा रुचता नहीं है, यह हक़ीकत है।

समाधान :- रुचिका कार्य आता नहीं है। रुचता है वह, और कार्य करे दूसरा। कार्य बाहरका होता है। अंतरमें यदि आत्माकी रुचि हो तो उस जातका कार्य नहीं होता है। उतनी रुचिकी मन्दता है और पुरुषार्थकी मन्दता है। जिसे यथार्थ प्रतीति हो, अन्दर दृढ़ता हो उसे पुरुषार्थकी गति उस ओर मुड़ती है। फिर कितने मुड़े वह दूसरी

बात है। पुरुषार्थ और प्रतीतमें थोड़ा अंतर रह जाता है। जिसे प्रतीति हो-सम्यग्दर्शन हो और तुरन्त चारित्र हो जाय ऐसा नहीं बनता। परन्तु प्रतीति हो उसका अमु कार्य तो आता ही है। जिसकी यथार्थ प्रतीति हुयी, उसे अमुक भेदज्ञानकी धारा निर्विकल्प दशा तो प्रगट हुयी है, परन्तु उसकी लीनतामें देर लगती है।

मुमुक्षु :- सन्मुख जो कहनेमें आता है कि यह सन्मुख हुआ है। सन्मुखता और प्रतीतमें क्या फ़र्क़ है? इसे प्रतीति है और इस सन्मुखता है।

समाधान :- प्रतीत तो यथार्थ प्रतीति। सहज भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो गयी वह प्रतीति। स्वसन्मुख हुआ उसमें अमुक जातकी रुचि है। उसे अभी यथार्थ प्रतीति नहीं हुयी है।

मुमुक्षु :- किसके सन्मुख हुआ है, उसे मालूम है?

समाधान :- आत्माके सन्मुख हुआ है।

मुमुक्षु :- सन्मुख माने क्या?

समाधान :- सन्मुख अर्थात् आत्मा तरफ उसकी परिणति मुड़ती है कि यही मुझे चाहिए। समीप आ गया है, विकल्प, विभाव तो उसे एकदम नहीं रुचता है। मुझे सहज ज्ञायकता रुचती है, अंतरमें ज्ञायक तरफ उसकी बार-बार गति जाती है। अभी यथार्थ नहीं हुआ है, वह सन्मुखता है।

मुमुक्षु :- यथार्थ नहीं हुआ है, वह सन्मुखता है। सन्मुखता अर्थात् उसे ख्याल है कि यह, इसके सन्मुख हूँ, यह, उसे ख्यालमें आया है?

समाधान :- हाँ, उसे अमुक प्रकार-से आया है। वास्तविक तो ऐसा ही है कि जब यथार्थ हुआ तब हुआ। उसके पहलेका है वह सब तो योग्यतावाला कहा जाता है। फिर उसमें समीप कितना, दूर कितना वह स्वयं समझ लेना। वहाँ तक तो उसके दो भाग ही है। यथार्थ जब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, तभी यथार्थ प्रतीति, तभी सम्यग्दर्शन। उसमें भाग नहीं है।

उसके पूर्वका सब मन्द और तीव्रतावाला ही कहनेमें आता है। वह सब विशेषण, यथार्थ विशेषण सब सम्यग्दर्शनमें लागू पड़ते हैं। उसके पहले उसकी रुचि और जिज्ञासा उस तरफकी है। वह उसे उस प्रकार-से कारणरूप-से यथार्थ कहनेमें आता है। वह कारणरूप (कहा जाता है)।

मुमुक्षु :- जब ऐसा विचार करते हैं कि बहिनको इतने अल्प समयमें सम्यग्दर्शन हो गया और हम इतने-इतने साल-से महेनत करते हैं तो भी परिणति होती नहीं। पुरुषार्थके प्रकारमें कुछ क्षति होगी?

समाधान :- महेनत की, वह महेनत भी कैसी की, वह समझना पड़ेगा न। पुरुषार्थकी

क्षति है। रुचिमें फ़र्क़ है ऐसा नहीं, परन्तु अपनी रुचिकी मन्दता है। बाहर कितना रुका है? बाहरमें कितनी रुचि जाती है?

मुमुक्षु :- उसमें समयका सवाल है? ज्यादा वक्त उसमें रुकता है और इसमें कम समय रुकता है।

समाधान :- समय-से भी अंतरकी क्षति है, समयकी नहीं।

मुमुक्षु :- ज्यादा समय रुकता है ऐसा?

समाधान :- समय ज्यादा ऐसा नहीं, अंतरमें-से पलटता नहीं है। समय नहीं।

मुमुक्षु :- रुचिकी मन्दता तो है। ऐसी इच्छा तो रखते हैं कि सम्यग्दर्शन हो। नितांतरूप-से, नहीं तो इतने साल निकालेका क्या प्रयोजन क्या? परन्तु प्रयोजनमें कुछ ऐसी क्षति लगती है कि वह दूर होनी चाहिये, तो त्वरा-से काम कर सके।

समाधान :- क्षति हो तो ही अपने पुरुषार्थकी मन्दता रहती है।

मुमुक्षु :- स्वयंको खोजना चाहिये।

समाधान :- अपनी क्षति अपनेको (मालूम पड़े)।

मुमुक्षु :- सब घोटाला है।

समाधान :- स्वयंको समझना है। उसमें कोई उसे खोजकर नहीं दे देता। कारण यथार्थ हो तो कार्य यथार्थ आवे। परन्तु कैसा कारण प्रगट हुआ, वह स्वयंको खोजना है। सन्मुखता आदि सब स्वयंको खोजना है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव-से भी अभी प्रभावनाका काल कुछ विशेष त्वरा-से और विशेष विकसीत हो रहा हो, ऐसा लगता है।

समाधान :- तीर्थंकरका द्रव्य था इसलिये उनका पुण्य और उस जातका प्रताप कार्य करता ही रहता है। वर्तमानमें भी करे और भविष्यमें भी करता रहे। गुरुदेवने जो वाणी बरसायी है, जो उपदेशकी जमावट की है वह जीवोंके हृदयमें समायी है। इसलिये सबको गुरुदेव पर भक्ति है, अतः गुरुदेवको क्या अर्पण करें, ऐसी भावना सबको होती है। गुरुदेवके उपकारके बदलमें क्या करना, ऐसी भावना सबको होती है।

मुमुक्षु :- उस दिन आप जब शिलान्यास करते थे, पाटिया लगाते थे, तब ऐसा हुआ कि बहिनश्री क्या करते हैं!

समाधान :- ... पानी रहेगा तबतक गुरुदेवकी वाणी रहेगी। उपदेशखी जमावट छोटे-से लेकर बडोंको ऐसी की है और किसीको ऐसी रुचि उत्पन्न हो गयी। इसलिये गुरुदेवको क्या अर्पण करें? उनके उपकारका बदला कैसे चूकाये? इसलिये सब उनका ही प्रताप है। गुरुदेवके चरणोंमें क्या दें, ऐसा सबको हो जाता है।

मुमुक्षु :- ऐसा ही है, ऐसा ही है। बात सच्ची है। हमको बहुत बार लज्जा

आती है।

समाधान :- वाणी बरसाकर सबको जागृत किया। इसलिये गुरुदेवका उपकारका बदला कैसे चूकाये, ऐसी सबको भावना होती है। उनका प्रभावना योग ही वर्तता है।

मुमुक्षु :- एकदम सच्ची बात है। अक्षरशः सच्ची बात है। उसमें भी आपकी पवित्रता, आपकी निर्मलता, आपकी निस्पृहता। निस्पृहता जबरजस्त काम कर रही है। बहिनश्रीको कहाँ किसीकी पड़ी है। गुरुदेव कहते थे न। स्वयं कहते थे, आपको क्या है? आप तो बैठे रहो। लोगोंको जो करना है करने दो। बराबर वही स्थिति आ गयी है। आनन्द हुआ। आप दीर्घायु हो और स्वास्थ्य कुशल रहो।

समाधान :- गुरुदेवकी वैशाख शुक्ला दूज थी न, उस वक्त यहाँ सब सजावट की थी। यहाँ स्वाध्याय मन्दिरमें चित्र एवं चरण आदि लगाया था। जीवन दर्शन किया था। वहाँ स्वाध्याय मन्दिरमें गयी थी। तब मुझे ऐसे ही विचार आते थे कि यह सब हुआ, लेकिन गुरुदेव यहाँ पधारे तो (कितना अच्छा होता)। ऐसे ही विचार रातको भी आते रहे। गुरुदेव पधारो, पधारो।

प्रातःकालमें स्वप्न आया कि गुरुदेव मानों देवलोकमें-से पधारते हैं, देवके रूपमें। रत्नके आभूषण, हार, मुगट इत्यादि। गुरुदेवने कहा, बहिन! ऐसा कुछ नहीं रखना, मैं तो यही हूँ। ऐसा तीन बार (हाथ करके बोले)। मैंने कहा, मैं तो कदाचित् मानूँ, ये सब कैसे माने? गुरुदेव कुछ बोले नहीं। लेकिन उस दिन सबको ऐसा ही हो गया, मानों उल्लास-उल्लास हो गया।

मुमुक्षु :- गुरुदेव यहाँ थे उस वक्त भी अपनी इतनी चिंता करते थे, तो वहाँ जानेके बाद तो अधिक समृद्धिमें गये हैं, साधु-संतोंके बीच (रहते हैं)। इसलिये कुछ तो करते होंगे न। उनको भी विकल्प तो आता होगा। नहीं तो भगवानको पूछ ले कि वहाँ हो रहा है।

समाधान :- गुरुदेवका सब प्रभाव है।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर। पूरे शासनके भाग्यके योगसे पूरे भारतवर्षमें...

समाधान :- अंतरमें रुचि रखनी। वहाँ व्यापार-व्यवसाय हो तो भी शास्त्र स्वाध्याय करना, कुछ विचार करना कि आत्मा भिन्न है। यह मनुष्य जीवन ऐसे ही प्रवृत्तिमें चला जाता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६४

समाधान :- लगनी लगी हो तो (पुरुषार्थ) उत्पन्न होता है। अंतरमें उतनी लगनी चाहिये, उतनी रुचि चाहिये। यही करना है। उसीकी लगनी बारंबार यह लगता रहे कि मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ। ज्ञायककी परिणति ही प्रगट करने जैसा है। उतनी अन्दर लगन लगे तो पुरुषार्थ उत्पन्न होता है। रुचि मन्द हो, बाहरमें जुड़ता रहे तो उसका पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता है। लगनी लगे तो ही उत्पन्न होता है। गुरुदेवने तो बहुत कहा है, मार्ग बताया है। करनेका स्वयंको है। परिणतिको कैसे पलटना, वह अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- हम भाईओं तो आपके पास ज्यादा नहीं बैठ सकते हैं। परन्तु हमारे भाग्य-से हमें पण्डितजी अच्छे मिल गये हैं।

समाधान :- (गुरुदेव-से) बहुत मिला है। स्वयंको सिर्फ पुरुषार्थ ही करना बाकी है। गुरुदेव-से सबने जान लिया है। और गुरुदेवने ही सब मार्ग बताया है। सब लोग बाह्य क्रियाओंमें कहाँ पड़े थे। अंतर दृष्टि गुरुदेवने करवायी कि अंतरमें देख, अंतरमें ही मार्ग है। स्वानुभूतिका मार्ग गुरुदेवने बताया।

मुमुक्षु :- विभावमें राग ही लेना या दूसरे गुण भी आते हैं?

समाधान :- विभावमात्र अर्थात् विभावमें जितने जो भाव आये वह सब। विभावमें सब कषाय, नोकषाय विभावमें आ जाते हैं।

मुमुक्षु :- पर्यायमात्र-से भिन्न ऐसे लेना या सिर्फ विभाव-से भिन्ने ऐसे लेना?

समाधान :- पर्यायमात्र यानी विभाव पर्याय-से। स्वभाव पर्याय जितना स्वयं नहीं है, परन्तु स्वभाव पर्याय-से सर्वथा भिन्न है ऐसा नहीं लेना। स्वयं अपनेआपको ग्रहण करता है। पर्याय-से कथंचित् (भिन्न)। स्वभाव पर्याय तो अपनी परिणति है। उससे सर्वथा भिन्न नहीं ले सकते। पर्याय स्वभाव तरफ जाय और अपनेको ग्रहण करती है।

मुमुक्षु :- विभावके विकृत गुणोंमें सर्वथा भिन्न?

समाधान :- उसमें तो सर्वथा भिन्न। अशुद्ध परिणति अपने पुरुषार्थकी मन्दता-से होती है, परन्तु वह अपना स्वभाव नहीं है। इसलिये विभाव परिणति-से सर्वथा भिन्न (लेना)। परद्रव्यके निमित्त-से होनेवाले जो भाव है, उन सबसे सर्वथा भिन्न है। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म सबसे भिन्न है।

स्वयं अनादिअनन्त शाश्व द्रव्य है। उसमें क्षयोपशम भाव, सब अधूरी-पूर्ण पर्यायें, वह सब पर्याय अपनेमें (होती है)। अनादिअनन्त अपना स्वभाव नहीं है इसलिये उसे कोई अपेक्षा-से भिन्न कहनेमें आता है। परन्तु वह सर्वथा भिन्न ऐसे नहीं है।

मुमुक्षु :- द्रव्यमें तो राग और विभाव, अशुद्धि-से भिन्न, ...?

समाधान :- हाँ, अशुद्धि-से भिन्न। द्रव्यदृष्टि करे, अपने स्वभावको ग्रहण करे, वहाँ शाश्वत द्रव्यको ग्रहण करता है। इसलिये उसमें गुणभेद, पर्यायभेद सब उसमें-से निकल जाता है। परन्तु ज्ञानमें वह समझता है कि ये गुणका भेद, लक्षणभेद (है)। पर्याय जो प्रगट हो वह मेरे स्वभावकी पर्याय है। ऐसे ज्ञानमें ग्रहण करता है। दृष्टिमें उसके गुणभेद पर वह अटकता नहीं। दृष्टि एक शाश्वत द्रव्यको ग्रहण करता है। ग्रहण करे तो उसमें-से प्रगट हो। जो उसमें स्वभाव है, वह स्वभाव पर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ। मैं अशुद्धि-से भिन्न शुद्धात्मा हूँ। शाश्वत द्रव्य हूँ।

मुमुक्षु :- श्लोक आता है, 'तत्प्रति प्रीति चित्तेन, वार्तापि हि श्रुता'। वह भी संस्कारकी ही बात है? रुचिपूर्वक 'तत्प्रति प्रीति चित्तेन, वार्तापि हि श्रुता'। भगवान आत्माकी बात प्रीतिपूर्वक, रुचिपूर्वक सुने तो भावि निर्वाण भाजन। बात सुनी हो वह संस्कारकी बात है?

समाधान :- भावि निर्वाण भाजन। संस्कार नहीं, अंतरमें ऐसी रुचि यदि प्रगट की हो, अंतरमें ऐसी रुचि हो तो भावि (निर्वाण भाजन है)। तत्प्रति प्रीति चित्तेन। अंतरकी प्रीति, अंतरकी रूचिपूर्वक यदि वह ग्रहण की हो, उसमें संस्कार समा जाते हैं।

संस्कारका मतलब वह है कि स्वयंको जिस प्रकारकी रुचि है, उस रुचिकी अन्दर दृढ़ता होनी, उस तरफ अपना झुकाव होना, जो रुचि है उस जातका, वह रुचिका संस्कार है। वह संस्कार अपेक्षा-से। रुचि, गहरी रुचि है उस रुचिके अन्दर एकदम जमावट हो जाना, वह संस्कार ही है।

मुमुक्षु :- वहाँ तो ऐसा कहा न, निश्चित्म भावि निर्वाण भाजन। नियम-से वह भविष्यमें मुक्तिका भाजन होता है।

समाधान :- मुक्तिका भाजन होता है।

मुमुक्षु :- संस्कारमें भी उतना बल हो तो..

समाधान :- संस्कारमें रुचि साथमें आ जाती है। संस्कार अर्थात् रुचि। अंतरकी गहरी रुचिपूर्वकके जो संस्कार हैं, संस्कार उसीका नाम है कि जो संस्कार अंतरमें ऐसी गहरी रुचिपूर्वकके हो कि जो संस्कार फिर जाये ही नहीं। संस्कार निरर्थक न जाय, ऐसे संस्कार। ऐसे रुचिपूर्वकका हो तो भावि निर्वाण भाजन है। यथार्थ कारणरूप होता है।

मुमुक्षु :- रुचिपूर्वकके ऐसे संस्कार पड़े कि जो नियम-से मुक्तिका कारण हो।

समाधान :- नियम-से मुक्तिका कारण हो।

मुमुक्षु :- .. प्रगट हो।

समाधान :- पुरुषार्थ प्रगट हो। पुरुषार्थ करे तब उसे ऐसा ही होता है कि मैं पुरुषार्थ करुँ। भावना ऐसी होती है। परन्तु रुचिपूर्वकके जो संस्कार डले वह यथार्थ भावि निर्वाण भाजन होता है। निर्वाणका भाजन होता है। ... संस्कार वही काम करते हैं, विपरीत रुचि है इसलिये मिथ्यात्व-विपरीत दृष्टिके संस्कार चले आते हैं। यथार्थ अन्दर रुचि हो कि ये कुछ अलग है। आत्मा कोई अलग है, मार्ग कोई अलग है। ऐसी रुचि अंतरमें-से हो, प्रीति-से वाणी सुने तो अंतरमें ऐसी अपूर्वता लगे कि ये आत्मा कोई अपूर्व है। वाणीमें ऐसा कहते हैं, गुरुदेव ऐसा कहते हैं तो अंतरमें आत्मा कोई अपूर्व है। ऐसी आत्माकी अपूर्वता तरफकी रुचि जगे और उसके संस्कार अंतरमें डले, वह भावि निर्वाण भाजन होता है।

मुमुक्षु :- वर्तमानमें अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ हो, तो भी उसके लिये..

समाधान :- हाँ, संस्कार काम करते हैं।

मुमुक्षु :- ख्याल आ सकता है कि यह जीव भावि निर्वाणका भाजन होगा। उसकी रुचि पर-से अथवा उसकी चटपटी पर-से, लगनी पर-से (ख्याल आता होगा)?

समाधान :- उसके अनुमान-से उसकी कोई अपूर्वता पर-से ख्याल आ सकता है।

मुमुक्षु :- 'स्वभाव शब्द सुनते ही शरीरको चीरता हुआ हृदयमें उतर जाय, रोम-रोम उल्लसित हो जाय-इतना हृदयमें हो, और स्वभावको प्राप्त किये बिना चैन न पड़े,.. यथार्थ भूमिकामें ऐसा होता है।' ऐसा कहकर आपको क्या कहना है?

समाधान :- अंतरमें गहराईमें चीरकर उतर जाय। अन्दर आत्माकी परिणतिमें इतना अंतरमें दृढ़ हो जाय कि यह कुछ अलग ही है। ऐसी गहराईमें उसे रुचि लगती है कि यही सत्य है। ये सब विभाव निःसार है, सारभूत वस्तु कोई अपूर्व है। ऐसा अंतरमें उसे लगे।

यथार्थ अर्थात् जिसे अंतरमें आत्माका ही करना है, दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है। एक आत्माका जिसे प्रयोजन है, उस प्रयोजन-से ही उसके सब कार्य, आत्माके प्रयोजन अर्थ ही हैं। ऐसी आत्मार्थीकी भूमिका-प्रथम भूमिका है।

मुमुक्षु :- आत्मार्थीकी भूमिकामें ऐसा होता है।

समाधान :- हाँ, ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- ... इसलिये उसे उल्लास आता होगा। चीरकर हृदयमें उतर जाय अर्थात् उसे उस जातका उत्साह (आता होगा)?

समाधान :- अन्दर हृदयमें उसे ऐसा हो जाय कि मैं भिन्न हूँ और यह सब भिन्न है। यही करना है, सत्य यही है, ऐसा अंतरमें अपनी ओर उसे उतनी महिमा, उतना उल्लास, अपनी ओर अंतरमें झुकाव हो जाय। रुचि, उस जातका झुकाव हो जाता है।

.. अलग ही बात है। मुक्तिका मार्ग कोई अलग ही है। यह स्वानुभूति .. भिन्न ही है। ऐसी अपूर्वता लगे। तत्त्व विचार करे, उस ओर रुचि जाय। राग-से, गुणभेद और पर्यायभेद-से मैं भिन्न किस अपेक्षा-से हूँ, वह सब जो जिज्ञासु है उसे निर्णय होता है। यथार्थ तत्त्व दृष्टिमें वह सब आ जाता है। द्रव्य पर दृष्टि करे उसमें सब आ जाता है।

उसे राग-से भिन्न पड़ना बाकी रहता है। मैं ज्ञायक हूँ। परन्तु ज्ञानका गुणभेद, पर्यायभेद आदि किस अपेक्षा-से है और कैसे है, उसकी वस्तु स्थिति कैसे है, वह सब उसके ज्ञानमें आ जाता है। यथार्थ ज्ञान करे उसे। मैं तो अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य हूँ। द्रव्य हूँ तो उसमें अशुद्धता (हो रही है)। मैं शुद्धात्मा हूँ तो ये अशुद्धता किस कारण-से (होती है)? क्या है? अंतरमें साधक पर्याय प्रगट हो, ये बाधक दशा, साधक दशा, अधूरी पर्याय, पूर्ण पर्याय, गुणका भेद, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि सब भेद क्या? उन सबका यथार्थ ज्ञान उसे होता है। दृष्टि एक अखण्ड द्रव्य मैं शाश्वत हूँ। उसमें पूर्ण-अपूर्णकी कोई अपेक्षा नहीं है। तो भी पूर्ण-अपूर्ण जो परिणति होती है, वह किस कारण-से (होती ही)? वह सब ज्ञान यथार्थ हो जाता है। उसे निश्चय-व्यवहारकी सब सन्धि उसके ज्ञानमें आ जाती है।

भले राग-से भिन्न पड़ना है, कार्यमें उसे वह करना है कि मैं ज्ञायक हूँ, कोई भी विभाव (मैं नहीं हूँ)। क्योंकि विरूद्ध स्वभावी है। रागसे भिन्न पड़नेका प्रयोग करना रहता है। मैं ज्ञायक भिन्न हूँ। परन्तु उसके ज्ञानमें यह सब साधकता (आदि रहता है)। कृतकृत्य हूँ, ऐसी दृष्टि है और कार्य करनेका रहता है। दृष्टि-से मैं शाश्वत द्रव्य हूँ और शुद्ध हूँ, पूर्ण शुद्ध हूँ। फिर भी अशुद्धता हो रही है, उसमें अपूर्ण-पूर्ण पर्यायका भेद (पड़ता है)। इसलिये उसे ज्ञान सब होता है, परन्तु कार्य विभाव-से भिन्न पड़नेका रहता है। प्रयोगमें वह है। मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक दशाकी उग्रता होती है। कृतकृत्य होनेके बावजूद करनेका रहता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें सब रहता है।

समाधान :- ज्ञानमें सब अपेक्षाएँ रहती है। अभेद होने पर भी भेदकी अपेक्षा रहती है। उसी प्रकार कृतकृत्य होने पर भी कार्य करना बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- पर्यायमें अधूरापन है तो..

समाधान :- हाँ, ऐसा है। पर्यायमें अधूरा, द्रव्य-से पूर्ण हूँ।

मुमुक्षु :- .. ऐसा दृष्टिमें लिया है, उसी वक्त पर्यायमें कार्य करना बाकी रहता है।

समाधान :- उस समय ख्याल है, कार्य करनेका है। कहीं भूल रहे ऐसा है ही नहीं। स्वयं आगे बढ़ नहीं सकता है, इसलिये सब प्रश्न उत्पन्न होते हैं। बाकी गुरुदेवने इतना कहा है कि कहीं भूल न रहे, इतनी स्पष्टता की है। सब स्पष्टीकरण किया है। जिसे कोई प्रश्न उत्पन्न हुआ हो, उसीका स्पष्टीकरण उनकी वाणीमें आता था। किसीको ऐसा लगे कि यह कहाँ-से आया? जिसे जो प्रश्न होते थे, उन सबका उत्तर आ जाता था।

मुमुक्षु :- तीर्थंकर जैसा योग था।

समाधान :- हाँ, ऐसा योग था। उनकी वाणीका योग ही ऐसा था।

समाधान :- .. अंतरमें स्वभावमें सब भरा है। अंतर दृष्टि कर तो अंतरमें-से सब निकले ऐसा है। उसके लिये सब विचार, वांचन आदि (है)। आत्मा एक अनादिअनन्त वस्तु है। एक तत्त्व है। अगाध समुद्र, अगाध गुणों-से भरा है। सब विभावभाव है वह आत्माका स्वभाव नहीं है। वह तो पुरुषार्थकी मन्दता-से, कर्मके निमित्त-से अपने पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है। स्वयं पुरुषार्थ पलटकर आत्मा तरफकी रुचि करके उसीका बार-बार मनन, चिंतवन, सब आत्माका कैसे हो, वही करने जैसा है। उसीकी रुचि बढाने जैसा है।

अनादि कालमें सब किया, लेकिन एक आत्मा अपूर्व है (ऐसा जाना नहीं)। गुरुदेवकी वाणी अपूर्व थी। कितने साल वाणी बरसायी है। यहाँ ४५-४५ साल निवास किया है। सुबह और दोपहरको वाणी ही बरसाते थे। उनका तो परम उपकार है। इतनी तो टेप हुई हैं। उन्हें तो वाणीका योग कोई प्रबल और उनका प्रभावना योग, और उनकी वाणी कुछ अलग जातकी थी। वे तो महापुरुष थे। यहाँ तो जो उनसे प्राप्त हुआ है, वह सब कहनेमें आता है। उन्होंने तो बरसों वाणी बरसायी है।

मुमुक्षु :- इतना कहा है तो हम जैसे जीवोंको इतना उपकारी है कि जिसकी कोई क़ीमत नहीं हो सकती।

समाधान :- गुरुदेव मानों साक्षात् बोलते हो, ऐसा टेपमें लगता है। .. तो हूबहू सिंहकी दहाड लगती थी। उनका जो प्रवचन था, वह अलग था। उनकी करुणा उतनी थी। कोई आदमी आये तो करुणा-से ही बुलाते थे। शरीरका कोई घ्यान नहीं था।

... तो अंतरमें दृढ़ हो। आत्मा सर्वसे भिन्न ज्ञायक है, उसीका अभ्यास और उसीका वांचन, उसका विचार, बार-बार विचार और वांचनमें दृढ करने जैसा है। एक ज्ञायक आत्माको पहचाननेके लिये।

और शुभ परिणाममें देव-गुरु-शास्त्र क्या कहते हैं? उनका आशय क्या है? और उसे आत्मामें कैसे ऊतारकर ग्रहण करना? उसीका बार-बार घोलन, मनन करने जैसा है। बाकी सब (निःसार है)। संसारमें जीवनमें करने जैसा हो तो यह है, एक ज्ञायक आत्माको कैसे पीछानना। स्वानुभूतिका मार्ग गुरुदेवने बताया है। लोग इतना जानने लगे हैं वह गुरुदेवका प्रताप है। उन्होंने ही सबको यह दिशा बतायी है कि आत्मा कैसा है और उसका स्वरूप क्या है? प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। तू तेरा कर सकता है। बारंबार-बारंबार ऐसा ही कहते थे।

समाधान :- ... अन्दर-से ग्रहण कर ले। उसे ग्रहण करके फिर उसे छोड़ना ही मत। ऐसे ग्रहण कर लेना। अनन्त कालमें भगवान हाथमें आनेके बाद उसे कैसे छोड़े? अंतरमें उसे ग्रहण कर ले कि यह मेरा आत्मा और यह विभाव। दोनोंको भिन्न करना। ये सब काँचके टूकडे हैं। उसमें-काँचके टूकडेमें चैतन्यका चमत्कार नहीं दिखता। चैतन्यका चमत्कार तो इस हीरेमें है। उस हीरेको पीछान लेना, चैतन्य हीरेको। वह सब तो काँचके टूकड़े हैं। आता है न? '...., कस्तूरी तुझ पास है, क्या ढूँढत है।' हे मृग! तेरी खुश्बु-से यह वन सुगन्धित हुआ है और तू बाहर-से खोजता है कि यहाँ-से खुश्बु आती है, इस वृक्षमें-से, इसमें-से, उसमें-से। कहीं खुश्बु नहीं है। यहाँ दृष्टि कर तो तेरी सुगन्ध है।

चैतन्यका चमत्कार, ज्ञानकी प्रभा तूने ज्ञेयमें स्थापित कर दी है। वह ज्ञानकी प्रभा तेरी है, तू तेरेमें देख। ये चैतन्यका चमत्कार तूने जड़में स्थापित कर दिया है। तू स्वयं चैतन्य-हीरा है। उसमें सब है, उसे खोज ले। उसकी ओर दृष्टि कर, उसमें ही सब भरा है।

समाधान :- .. लगनी लगी हो तो उत्पन्न हो। अंतरमें उतनी लगनी चाहिये, स्वयंको उतनी रुचि होनी चाहिये। यही करना है। उसीकी बारंबार लगन लगती रहे कि मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ। उस ज्ञायककी परिणति ही प्रगट करने जैसी है। उतनी अन्दर लगनी लगे तो पुरुषार्थ उत्पन्न हो। रुचि मन्द हो, बाहर जुड़ता रहे तो उसे पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता है। लगनी लगे तो ही उत्पन्न होता है। गुरुदेवने तो बहुत कहा है, बहुत मार्ग बताया है। करना स्वयंको है। परिणति कैसे पलटनी वह अपने हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- हम भाईओं आपके पास ज्यादा नहीं बैठ सकते, परन्तु हमारे भाग्य-से हमें पण्डितजी भी अच्छे मिल गये हैं।

समाधान :- .. बहुत मिला है, पुरुषार्थ स्वयंको करना है। गुरुदेव-से ही सबने जाना है और गुरुदेवने ही मार्ग बताया है। सब बाह्य क्रियाओंमें और कहाँ पड़े थे। अंतर दृष्टि गुरुदेवने करवायी कि अंतरमें देख, अंतरमें ही मार्ग है। स्वानुभूतिका मार्ग गुरुदेवने बतया। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६५

मुमुक्षु :- ज्ञानीको जो वास्तवमें पहचानता है, वह ज्ञानी हुए बिना नहीं रहता।

समाधान :- वास्तवमें उनका अंतर पहिचाने तो वह स्वयं ज्ञानी हुए बिना नहीं रहता। अंतर परिणतिको पहिचाने तो अपनी परिणति भी वैसी ही हो जाती है।

मुमुक्षु :- अंतर परिणति यही न? अभी जो अपनी बात हुयी, बाहरमें इस प्रकार राग होने पर भी अंतर ज्ञान तो ऐसा ही काम करता रहता है, दो द्रव्यकी भिन्नता है इसलिये रागका कुछ कार्य बाहरमें आवे या परद्रव्य अपनेमें कुछ करवाये ऐसा नहीं बनता।

समाधान :- परद्रव्यका कोई कार्य रागके कारण नहीं होता है। उससे भिन्न, शरीर-से भिन्न परिणमन वर्तता है और विभाव अपना स्वभाव नहीं है, उससे भी उनका परिणमन भिन्न वर्तता है। राग हो, उस रागके कारण बाहर होता नहीं है और रागके कारण शरीरका कुछ नहीं होता है। और वह राग अपना स्वभाव नहीं है, इसलिये राग-से भी स्वयं भिन्न परिणमता है। रागका भी उन्हें स्वामीत्व नहीं है। उससे भी भिन्न परिणमता है, उसका उन्हें स्वामीत्व नहीं है।

उसकी ज्ञायककी धारा क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें भिन्न परिणमती है। उसे वह भूलता नहीं है। वह उनका अंतर परिणमन है। राग-से बाहरका तो कुछ होता नहीं, परन्तु राग-से भी स्वयं भिन्न परिणमता है। ऐसा करुँ, वैसा करुँ, ऐसा राग आये, फिर भी वह राग होता है, उस समय भी स्वयं भिन्न परिणमते हैं। रागरूप वे नहीं परिणमते।

मुमुक्षु :- उस वक्त उसका स्वामीत्व नहीं है।

समाधान :- उस वक्त उस रागका स्वामीत्व भी उसे नहीं है। ऐसी क्षण-क्षणमें ज्ञायककी भिन्न धारा, ज्ञाताधारा (वर्तती है)। कर्ताबुद्धि नहीं है और ज्ञाताधारा वर्तती है। आंशिक शान्ति धारा, ज्ञाता धारा क्षण-क्षणमें वर्तती ही रहती है।

मुमुक्षु :- ये तो ज्ञानीका अलौकिक अंतर परिणमन है, कि जो अज्ञानी जीवोंको ख्यालमें नहीं आता है और कर्ताबुद्धिका सेवन करता है।

समाधान :- बाहर-से ऐसा लगे कि मानों करते हों। मानों सब करते हो ऐसा लगे। अंतर-से उसका भिन्न ज्ञायकरूप परिणमन है। ज्ञाता है, बाकी दिखे ऐसा, बोले

ऐसा। परन्तु उसका परिणमन अन्दर भिन्न है।

मुमुक्षु :- इसीलिये अज्ञानीको भ्रम हो जाता है।

समाधान :- इसीलिये अज्ञानीको भ्रम हो जाता है।

मुमुक्षु :- .. उसकी कर्ताबुद्धि छूट जाय, ऐसी यह बात है। अन्यथा ऐसी शंका हो कि इतनी शरीरकी क्रिया (होती है), उसी वक्त समय-समयमें भेदज्ञान चलता होगा?

समाधान :- अंतर दृष्टि-से देख, ऐसा श्रीमद्में आता है न? स्वयंको उस जातका ख्याल नहीं है, स्वयं एकत्वबुद्धिमें परिणमता है। इसलिये देखनेके लिये दृष्टि कहाँ-से लाये? इसलिये उसे ऐसा होता है कि एकत्वबुद्धिमें तो यह मैं करुँ, यह मैं करुँ। वैसा ही वे कहते हैं। उनके अभिप्रायमें क्या फ़र्क़ है, उनकी परिणतिमें वह कैसे पकड़ना? उसको स्वयंको उस जातका अनुभव ही नहीं है कि भिन्नता कैसे रहे? ये सब बोलते हैं, परन्तु अन्दर परिणति भिन्न कैसे रहती है? उस जातका उसे अनुभव नहीं है, इसलिये उसे पकड़ना मुश्किल पड़ता है।

मुमुक्षु :- जबतक अनुभव नहीं होता, तबतक धारणाज्ञानमें स्पष्टरूप-से ऐसा विचार किया होता है। फिर भी शंका पड़े कि ज्ञानीको ऐसा निरंतर रहता होगा?

समाधान :- हाँ, निरंतर रहता होगा? ऐसा होता है। जैसे उसे एकत्वबुद्धि निरंतर रहती है, अज्ञान दशामें एक क्षण भी खण्ड नहीं पड़ता। एकत्वबुद्धि, क्षण-क्षणमें जो-जो रागकी धारा, विभावकी धारा, विकल्पकी धारामें एकत्वबुद्धि उसे निरंतर रहती है। उसमें-से वह भिन्न नहीं पड़ता है, शरीर-से एकत्वबुद्धि-से। कोई भी विकल्पमें एकमेक एकत्वबुद्धि जैसे उसकी रहती है, वैसे ही भेदज्ञानकी परिणति (ज्ञानीकी) रहती है। उसमें उसे खण्ड नहीं पड़ता। उसमें उसे विभावके साथ एकत्वबुद्धि नहीं होती। जैसे (अज्ञान दशामें) एकत्व रहता है, वैसे ही वह भिन्न रहता है। भिन्न रहने-से जो रागकी परिणति होती है, उससे भिन्न रहता है।

रागमें जो भाव आये, उसमें वह तन्मय नहीं हो जाता। परन्तु अमुक प्रकारके भाव उसे आते हैं, इसलिये वह बोलता है, इसका ऐसा करना, उसका वैरा करना। ऐसा बोले। जो गृहस्थाश्रममें हो वह उस सम्बन्धित बोले और जो देव-गुरु-शास्त्रके प्रसंग हो, उसमें ऐसा बोले, भगवानका ऐसा करो, गुरुका ऐसा करो, ऐसा शास्त्रका करो। ऐसा बोले। इसलिये उसे ऐसा लगता है कि एकत्वपने (बोलते हैं)। परन्तु उनकी एकत्वबुद्धि नहीं है। जैसी उसे रागकी एकत्वबुद्धि चलती है, वैसे उनकी भेदज्ञानकी परिणति भिन्न है। परन्तु बीचमें जो राग आता है, उस रागमें वैसे भाव आते हैं। उस भावके कारण उस प्रकारका बोलना होता है। परन्तु उसी क्षण वह भिन्न रहता है।

मुमुक्षु :- अंतर दृष्टि-से, आपने कहा कि, श्रीमद्जीने कहा है कि अंतर दृष्टि-

से देख। अंतर दृष्टि-से देखना तो किस प्रकार-से देखनेका प्रयत्न करना?

समाधान :- अमुक जातकी युक्ति, दलील-से नक्की कर सके। बाकी तो कर नहीं सकता। बाकी उनके परिचय-से, उनकी बात-से ऐसे नक्की करे। युक्ति, दलील, न्याय-से, सिद्धान्त-से नक्की करे। बाकी उसे उस जातका ख्याल नहीं है इसलिये उसे नक्की करना मुश्किल पड़ता है।

परन्तु विचार करे तो उसे ख्याल आये कि भेदज्ञानकी परिणति हो सकती है। भेदज्ञानमें प्रतिक्षण अपना अस्तित्व ग्रहण करे तो भेदज्ञानकी परिणति प्रगट हो सके ऐसा है। यदि न हो तो वह भिन्न ही नहीं पड़ सकता। वह भिन्न पड़ता है, स्वानुभूति होती है। जो सिद्ध होते हैं, वे भेदविज्ञान-से ही होते हैं। अतः भेदविज्ञान अंतरमें हो सकता है। उसकी भावना ऐसी होती है कि दूसरेको शंका पड़े कि ये सब भावना ऐसी दिखे कि मानों कर्ताबुद्धि जैसी दिखती है।

मुमुक्षु :- इसीलिये आज विचार आया कि आपको ही पूछ लूँ।

समाधान :- हाँ, दिखे वैसा। पूजामें ऐसा दिखे, देव-गुरु-शास्त्रके प्रसंगमें ऐसा दिखे तो भी प्रतिक्षण वह क्षण-क्षणमें न्यारा ही होता है। जैसे मक्खन भिन्न पड़ जाता है, फिर-से वह पहलेकी भाँति एकमेक नहीं हो जाता। छाछके साथ रहे तो भी वह मक्खन भिन्न ही तैरता है।

मुमुक्षु :- एक बार भिन्न पड़नेके बाद एकमेक नहीं होता।

समाधान :- एकमेक नहीं होता। .. ज्ञान जो है, उस ज्ञानको-ज्ञायकको भिन्न किया। अनादि-से ज्ञान तरफ देखता नहीं है और विभाव तरफ देखता रहता है। ज्ञान-ज्ञायक तरफ दृष्टि और परिणति है। इसलिये वह उसी तरफ देखता है। विभाव तरफ उसका अल्प हो गया है। उसकी परिणति ज्ञायक तरफ, पूरा चक्र ज्ञायक तरफ हो गया है। अल्प विभाव तरफ थोड़ा रहा है।

मुमुक्षु :- अज्ञानीको स्थूल ज्ञान है इसलिये उसे राग ही दिखता है, ज्ञान दिखाई नहीं देता।

समाधान :- राग दिखता है, ज्ञान नहीं दिखाई देता।

मुमुक्षु :- हमें दुःख हो ऐसी बात है। परन्तु गुरुदेवका इतना सुना है कि उसीसे समाधान करते हैं। फिर भी आपके शब्द सुनने हैं।

समाधान :- अचानक हो जाय और छोटी उम्र हो इसलिये ऐसा लगे। गुरुदेवने कहा है, शान्ति रखने अलावा उपाय नहीं है। संसारका स्वरूप (ऐसा ही है)। जहाँ कोई उपाय नहीं है, वहाँ शान्ति रखनी ही श्रेयरूप है।

अनन्त जन्म-मरण, जन्म-मरण करते-करते भवका अभाव हो ऐसा मार्ग गुरुदेवने

बताया। कितनोंके साथ सम्बन्ध करके स्वयं आया, स्वयंको छोड़कर कितने ही चले गये और स्वयं किसीको छोड़कर आया है। ऐसे जन्म-मरण (किये हैं)। कभी लम्बा आयुष्य, कभी छोटा आयुष्य, ऐसे अनेक जातके जन्म जीवने धारण किये हैं। उसमें यह मनुष्यभव मिला। इस मनुष्यभवके अन्दर एक आत्माकी पहिचान हो वह नवीन है। बाकी जन्म-मरण, जन्म-मरण जगतमें चलते रहते हैं।

राग हो उतना दुःख हो, तो भी बदलकर अन्दरमें समाधान करना वही श्रेयरूप है। उसका दूसरा कोई उपाय नहीं है। संसार ऐसा है, संसारका स्वरूप ऐसा है। जीवने इतने जन्म-मरण किये हैं कि जितने जगतके परमाणु है, उसे स्वयंने ग्रहण करके छोड़े हैं। इतने जगतके परमाणुको (ग्रहा है)।

प्रत्येक आकाश प्रदेशमें एक-एक आकाश प्रदेश पर अनन्त बार जन्म-मरण किये। जितने विभावके अध्यवसाय हैं, सब हो गये। उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी कालके जितने समय हैं, उतनी बार स्वयं अनन्त बार जन्म-मरण कर चूका। अनन्त बार निगोदमें गया, अनन्त बार देवलोकके देवके भव किये। नर्कमें अनन्त भव किये, तिर्यंके अनन्त भव, मनुष्यके अनन्त भव किये। इतने भव जीवने किये हैं। उसमें कितनोंके साथ सम्बन्ध जोड़ा है और छोड़ा है। जीवको ऐसे अनन्त जन्म-मरण हुए हैं।

उसमें इस पंचम कालमें यह मनुष्यभव मिला, उसमें गुरुदेवकी वाणी मिली और गुरुदेवने जो यह मार्ग बताया, उस मार्गको ग्रहण करना वही उपाय है। वही शान्ति और सुखका उपाय है। इस जीवनमें कुछ अपूर्वता प्रगट हो और भवका अभाव हो, ऐसे संस्कार डले तो वह श्रेयरूप है। बाकी जीवने अनेक जन्म-मरण किये हैं। नटुभाईको बहुत रुचि थी। अंतरमें वह रुचि लेकर गये हैं। आप सबको रुचि है। गुरुदेवने कहा है वही ग्रहण करना है।

जगतमें कुछ अपूर्व नहीं है, कोई पदवी अपूर्व नहीं है। एक सम्यग्दर्शनकी पदवी (प्राप्त नहीं की)। जिनवरस्वामी जीवको मिले हैं, परन्तु उसने पीछाना नहीं है। इसलिये मिले हैं वह नहीं मिलने बराबर है। एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है। एक वह अपूर्व है। इसलिये उसे प्राप्त करनेके लिये जीवको भेदज्ञान कैसे हो, आत्माकी पहिचान कैसे हो (उसका प्रयत्न करना चाहिये)।

इस जगतमें शाश्वत आत्मा है। यह शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न, दोनों भिन्न-भिन्न वस्तु है। आत्मा तो शाश्वत है। एक देह छोड़कर दूसरा देह धारण करता है। आत्माका तो कहीं मरण होता नहीं। जन्म-मरण आत्माके नहीं है। नटुभाईका आत्मा तो शाश्वत है। आत्माका मरण नहीं होता, आत्मा तो शाश्वत है। आत्मा भिन्न शाश्वत है, उसे ग्रहण कर लेना। वही सच्चा है।

जीवनमें भेदज्ञान कैसे हो? कि यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, ये विभाव अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न आत्माको पहिचान लेना। एक ज्ञायक आत्माको पहिचानना वही श्रेयरूप है। उसीमें आनन्द है, उसीमें सुख है। आत्मा शाश्वत है। उसे ग्रहण करने-से वह शाश्वत स्वयं ही है। आत्माका सम्बन्ध ही सच्चा सम्बन्ध है। जगतके अेन्दर दूसरे सम्बन्धमें फेरफार होते रहते हैं।

बड़े मुनिश्वर और राजेश्वरोंके आयुष्य पूर्ण होता है। चक्रवर्ती राजा भी अंतमें मुनिपद धारण करके इस मार्गको ग्रहण करते हैं। उनकी पदवीमें ऋद्धिका पार नहीं था, फिर भी छोड़कर चले जाते हैं। संसारका स्वरूप ऐसा है। इसलिये एक आत्माको ग्रहण करना वही श्रेयरूप है। और गुरुदेवने कोई अपूर्व मार्ग बताया है। कोई क्रियामें पड़े थे, कोई कहाँ पड़े थे। उसमें-से आत्माका सुख कैसे प्राप्त हो और आत्मा कैसे प्रगट हो, वह गुरुदेवने बताया है।

शास्त्रमें आता है,

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे,
कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणु मात्र नहीं अरे! ३८.

कोई परमाणुमात्र अपना नहीं है। स्वयं शुद्ध स्वरूप अरूपी आत्मा है। शरीर अपना नहीं है। एक शुद्ध सदा ज्ञान-दर्शनसे भरा हुआ आत्मा है, कोई परमाणु मात्र अपना नहीं है। किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जितना राग हो, वह स्वयंको याद आता है। राग आये तो उसे बदलकर शान्ति रखनेके अलावा कोई उपाय नहीं है। ऐसा प्रसंग बने इसलिये एकदम सदमा लगे तो भी शान्ति रखनेके अलावा कोई उपाय नहीं है।

मुमुक्षु :- इतनी सारी ऋद्धि और ऐसा मिलता हो तो भी उन्हें ऐसा कौन-सा बन्धन आ गया कि उन्हें रास्तेमें ऐसा हो गया। न धर्मका कुछ सुन सके, ना और कुछ कर सके।

समाधान :- ऐसा है कि आयुष्य कैसे पूर्ण हो वह तो पूर्वका होता है। वर्तमान जो रुचि हो वह तो इस भवमें प्रगट की। और आयुष्यका बन्ध हुआ वह तो पूर्वका है। इसलिये पूर्वका आयुष्य बन्धका उदय ऐसा ही था कि इसी तरह-से आयुष्य पूर्ण हो। अतः उसमें तो कुछ (हो नहीं सकता)। आयुष्यका बन्ध कैसा पड़ा हो, उसमें जीव फेरफार नहीं कर सकता। अपने भावको बदल सकता है। भावमें अन्दर राग-द्वेषकी एकत्वबुद्धि तोड़ सकता है। बाकी बाहरके संयोग बदल नहीं सकता। बाहरका, शरीरका, रोगका या आयुष्य कैसे पूर्ण हो, कोई जीव उसको नहीं बदल सकता। पूर्वका जो उदय हो वह उदय आते ही रहते हैं। बाहरका कोई कार्य बदल नहीं सकता, वह तो उदय अनुसार होता है।

अंतरमें कैसे साधना करनी, आत्माको पीछानना, अन्दर-से भेदज्ञान करना, वह सब अपने हाथकी बात है। बाहरका कुछ अपने (हाथमें नहीं है)। उनको जो रुचि थी वह उनके साथ लेकर गये। बाकी आयुष्य कैसे पूर्ण हो, वह तो किसीके हाथकी बात नहीं है। आपके घरमें तो सबको पहले-से संस्कार है और उनको भी संस्कार थे। वे तो संस्कार लेकर गये। आयुष्य उसी प्रकार पूरा होनेवाला था, वैसे ही होता है।

मुमुक्षु :- ऐसी कोई आशातना की हो या दूसरा कुछ हुआ हो, इसलिये आखिरमें ऐसा होता है?

समाधान :- नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। वह तो पूर्वमें आयुष्यका बन्ध वैसे पड़ा होता है। आयुष्य अमुक प्रकार-से, अमुक जातका बँधा हो उस प्रकार-से आयुष्य पूरा होता है। कोई ऐसे परिणाम-से आयुष्यका बँध पडा हो। छोटा आयुष्य, लंबा आयुष्य वह सब आयुष्यका बँध है, पूर्वका है। वर्तमानका कुछ नहीं होता।

ऐसा है कि कितनोंको सम्यग्दर्शन होता है। आयुष्यका बन्ध जुगलियाका आयुष्यका बन्ध पड़ गया हो तो जुगलियामें जाता है। इसलिये आयुष्यका बन्ध है उसको बदला नहीं जाता। ऐसा कहते हैं कि आयुष्यका बन्ध ऐसा पड़ा? उनको इतनी रुचि थी तो भी इस तरह देह छूटा? कहा, उसमें कोई वर्तमानका कारण नहीं है। वह तो पूर्वमें आयुष्यका बन्ध उस प्रकारका पड़ा होता है।

मुमुक्षु :- ....रास्तेमें हो गया। कोई संयोग नहीं मिले।

मुमुक्षु :- कोई सुनाये तो ही भाव रहता है?

समाधान :- कोई सुनाये तो ही भाव रह सके ऐसा नहीं है, स्वयं खुद रख सकता है। अन्दर याद आ जाय। जिसे रुचि हो उसे अंतरमें याद ही आ जाता है, वेदना आये इसलिये।

मुमुक्षु :- इतना प्रेम था...

समाधान :- सबको देखा था न, इसलिये अपनेको ऐसा लगे कि ये चुनिभाईके पुत्र है। ऐसा हो न। वहाँ प्राणभाईके घर आते-जाते थे, इसलिये देखा था। वहाँ जामनगर जाते थे तब इन सबको छोटे थे उस वक्त देखा था। सबको रुचि। चुनिभाईको उतनी रुचि थी, इसलिये सब लड़कोंको भी (रुचि हुयी)।

मुमुक्षु :- बुद्धिवान थे। बराबर परख करे।

समाधान :- जन्म-से यह रुचि, क्योंकि चुनिभाईको रुचि थी इसलिये घरमें सबको वही रुचि।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- पूर्वका हो उस अनुसार। पूर्व उदयका कारण है। ऐसे ही कोई संयोग

बँधे थे। जीवने अनन्त जन्म-मरण किये। उसमें कितने जातके कर्मबन्ध पड़ा होता है। किसीका कोई समयमें उदय आता है। अनेक जातके उदय आते हैं। अंतर आत्माकी रुचि रखनी वह एक अलग बात है और बाहरके उदय एक अलग बात है। दोनों वस्तु भिन्न-भिन्न हैं। अन्दर दुःख लगे, परन्तु समाधान किये बिना कोई उपाय नहीं है।

मुमुक्षु :- उनकी रुचि तो बहुत थी। कभी-कभी मेरे साथ बात करते थे। तब कहती थी, अचानक कुछ हो जायगा तो नटवर कैसे करेंगे? हमें कौन सुनायेगा? तो ऐसा कहते थे, ऐसी ढीली बातें क्यों करते हो? जागृति तो अपनी है न, ऐसी ढीली बातें नहीं करनी।

समाधान :- ऐसी बात करते थे?

मुमुक्षु :- हाँ, ऐसी बात करते थे। मैं कभी कहती थी..

समाधान :- स्वयंको अन्दर याद आ गया हो। अन्दर दबाव बढ़ता है न, इसलिये याद आ जाय।

मुमुक्षु :- तत्त्व समझे, प्रमोदवाले थे।

समाधान :- कितने जन्म-मरण किये। कितनोंके साथ सम्बन्ध बाँधे, छोडे। मनुष्य जीवनमें आत्माका कर लेना। ऐसे प्रसंग देखकर वैराग्य उत्पन्न हो ऐसा है। कैसे प्रसंग बनते हैं। वैराग्य आये ऐसी बात है। सुनकर ऐसा हुआ, ये क्या अचानक हो गया?

मुमुक्षु :- मामाका पत्र आया..

समाधान :- अन्दर अपनी रुचि और संस्कार हो। आत्माकी पहचान कैसे हो, ऐसी गहरी रुचि हुयी हो, उतनी अंतरमें गहरी भावना हो, तो उसे भविष्यमें पुरुषार्थ उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। यदि अन्दरमें गहरी रुचि हो तो। शास्त्रमें आता है कि तत्प्रति प्रीति चित्तेन वार्तापि ही श्रुताः। भावि निर्वाण भाजनम्, ऐसा आता है। प्रीति-से यदि इस तत्त्वकी बात सुनता है तो भविष्यमें निर्वाणका भाजन है। प्रीति-से बात सुनता है उसका मतलब उसे अन्दर अपूर्वता लगे। गुरुदेव ऐसी बात बतायी, उसे अपूर्व रीते-से सुनकर जिसने ग्रहण की हो, उसे अंतरमें वर्तमानमें पुरुषार्थ न कर सके तो भी भविष्यमें उसका पुरुषार्थ चालू होता है। जिसने अंतरमें ऐसे संस्कार डाले हैं कि मुझे एक आत्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। एक आत्मा तरफकी ही जिसे रुचि है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और अन्दर आत्मा, उसकी जिसे रुचि है, उसे भविष्यमें पुरुषार्थ उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। सबको रुचि है। आयुष्यके आगे किसीका कुछ नहीं चलता। समाधान किये बिना कोई उपाय नहीं है। देव-गुरु-शास्त्रको हृदयमें रखकर आत्मा ज्ञायककी पीछान कैसे हो, वह करने जैसा है। चक्रवर्ती और राजा भी संसार छोड़कर आत्माका शरण ग्रहण करते हैं। आत्माका शरण ही सच्चा है।

चत्तारी मंगलं, अरिहंता मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपणत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारी लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारी शरणं पवज्जामि, अरिहंता शरणं पवज्जामि, सिद्धा शरणं पवज्जामि, केवली पणत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी तरे ते सकळ कर्मनो आणे अंत। मोक्ष तणा सुख ले अनंत, भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मुक्तिए जाय। संसारमांही शरण चार, अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी आदरे तेने अक्षय अविचल पद होय। अंगूठे अमृत वरसे लब्धि तणा भण्डार। गुरु गौतमने समरीए तो सदाय मनवांछित फल दाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६६

समाधान :- शरीर तत्त्व भिन्न, यह जड़ तत्त्व भिन्न, ऐसा उसे सहज रहता है, निरंतर। उसकी कोई क्रियाको मैं कर नहीं सकता। ऐसा सहज रहता है।

मुमुक्षु :- समय-समयमें अपनेमें विभआव परिणाम होते हैं और वह सब विभावके परिणाम परमें अकिंचित्कर है, ऐसा स्पष्ट उसके ज्ञानमें आता है?

समाधान :- विभावके परिणाम और शरीर जड़ क्रिया, वह दोनों तत्त्व त्यंत भिन्न हैं। और विभाव परिणाम उसके ज्ञानमें वर्तता है कि ये मेरा स्वभाव नहीं है। वह स्वभाव मुझ-से अत्यंत भिन्न है। परन्तु जो विभावका परिणमन होता है, वह मेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है। ऐसा उसे ज्ञान वर्तता है। परन्तु उसे सहज ज्ञायकरूप परिणमन वर्तता है कि ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। अपना भिन्न अस्तित्व ग्रहण करता है, उसे निरंतर वर्तता है। विभाव है वह मेरा स्वभाव नहीं है। इसलिये उससे उसे भिन्न भेदज्ञान वर्तता है। परन्तु वह जानता है कि ये जो विभावका परिणमन होता है, वह मेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है।

मुमुक्षु :- मेरा प्रश्न ऐसा है कि समय-समयमें राग तो, ऐसा करुँ, फलाना करुँ ऐसा होता है और उसी क्षण सम्यग्दृष्टिका ज्ञान ऐसा जाने कि इस रागकी अर्थक्रिया बाहरमें कुछ नहीं है।

समाधान :- हाँ, ऐसा होता है। फिर भी बाहरका जो बने वह कहीं हाथकी बात नहीं है, वह उसे वर्तता ही रहता है।

मुमुक्षु :- निरंतर निःशंकपने ऐसा वर्तता है?

समाधान :- निःशंकपने वर्तता रहता है। ये राग जो होता है, उस अनुसार बाहर बने ही, ऐसा नहीं होता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। बाहरका सब स्वतंत्र, रागकी क्रिया स्वतंत्र, सब स्वतंत्र है। निःशंकपने सहजपने वर्तता ही रहता है।

मुमुक्षु :- ये जो ज्ञानीका अंतर परिणमन ख्यालमें आता नहीं, इसलिये अनेक बार ऐसी शंका हो जाय कि सर्व प्रकारका राग तो होता है कि ऐसा करुँ, वैसा करुँ, वह सब होता रहता है, फिर भी ऐसा भी रहता होगा?

समाधान :- हाँ, वह कहे, ऐसा बोले कि ऐसा करो, इसका ऐसा करो, उसका

वैसा करो। फिर भी उसे ऐसी एकत्वबुद्धि नहीं होती कि ऐसा करने-से ऐसा ही होगा। ऐसी उसे एकत्वबुद्धि नहीं है। उससे भिन्न परिणमन (वर्तता है)। वह समझता है कि जैसा होना होगा वैसा ही होगा। ऐसा सहज वर्तता है। फिर भी वह कहे ऐसा कि, ऐसा करो। विकल्प भी ऐसा आये कि यह करने जैसा है। ऐसा विकल्प आये। परन्तु वह जैसा बनना होता है, वैसा ही बनता है। उसे सहज वर्तता है।

मुमुक्षु :- कोई भी परद्रव्यकी जो क्रिया हो रही है, वह तो उससे ही हो रही है। रागका कोई कार्य नहीं है, ऐसा स्पष्टपने उसके ख्यालमें रहता है।

समाधान :- स्पष्टपने ख्याल रहता है। रागका मात्र निमित्त बनता है। उसका मेल हो जाय तो हो जाय। मेल न खाय तो वह स्वतंत्र है। जो बननेवाला होता है वही बनता है। ऐसी एकत्वबुद्धि उसे होती ही नहीं कि ऐसा राग हुआ तो ऐसा होना ही चाहिये। उसे बराबर ख्याल है कि जो बननेवाला है वैसे ही बनता है। धारणा अनुसार कुछ होता ही नहीं। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र परिणमता है।

बाहरके सब अनेक जातके प्रसंग, वह कोई कार्य रागके अधीन हो ऐसा नहीं है। शरीरका परिणमन भी अपने अधीन नहीं है। कोई रागके अधीन नहीं है। इसका ऐसा, इसका ऐसा करो, वह भी हाथकी बात नहीं है। वह भी कोई दवाईसे मिटे या उससे मिटे वह कोई हाथकी बात नहीं है। स्वतंत्र निःशंकपने उसे प्रतीत वर्तती ही रहती है। उसे याद नहीं करना पड़ता। उसे एकत्वबुद्धि ऐसी तन्मयता नहीं होती कि ऐसा करने-से ऐसा होगा ही। ऐसी एकत्वबुद्धि ही नहीं होती, उससे न्यारा ही रहता है।

समाधान :- .. दो द्रव्यकी स्वतंत्रताकी प्रतीति साथमें हो तो ही मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी उसे दृष्टि (रहे), तो ही उसका अभ्यास हो सकता है। दो द्रव्यकी स्वतंत्रता जो स्वीकार नहीं करता, उसे ज्ञायक हूँ, ऐसा कब आये? कि मैं परसे भिन्न हूँ। ये परपदार्थ है उससे मैं भिन्न मैं एक चैतन्यद्रव्य स्वतंत्र ज्ञायक हूँ। विभाव स्वभाव भी मेरा नहीं है और मैं एक ज्ञायक हूँ, ऐसा स्वयंको भिन्न कब भासित हो? कि परद्रव्य-से भिन्न स्वयंको प्रतीति हो और मैं स्वतंत्र द्रव्य हूँ और ये परद्रव्य स्वतंत्र है, दोनोंकी स्वतंत्रता लगे तो ही ज्ञायक द्रव्यकी प्रतीति हो। इन दोनोंका सम्बन्ध है। भेदज्ञान जिसे हो, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे बारंबार अपने निज अस्तित्वको ग्रहण करे, उसे दो द्रव्यकी स्वतंत्रताका निर्णय हुए बिना रहता ही नहीं। उसे सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- उस सम्बन्धित अनेक प्रकारके विकल्प आते हैं। मैं मेरी बात आपको करता हूँ। संस्थाका ... मुझे ऐसा होता है कि दो द्रव्यकी स्वतंत्रता है। जो होनेवाला है वह होगा। अथवा प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूप-से परिणमते हैं। रागके कारण कोई फेरफार

होनेवाला नहीं है। ऐसी दृढ़ता नहीं रहती है। ऐसा लगे कि दृढ़ता नहीं रहती है। तो फिर जो अपने ज्ञायकका अभ्यास करते हैं, इतना तो विकल्पात्मक ज्ञानमें निर्णय होना चाहिये कि राग आता है, फिर भी परिणमन तो जो होनेवाला है वही होगा।

समाधान :- उसे ऐसा निर्णय रहना चाहिये, जो होनेवाला है वही होगा। परन्तु रागके कारण इसका ऐसा हो तो ठीक, ऐसा हो तो ठीक, ऐसी उसे भावना रहे। फिर उसके राग अनुसार न हो तो उसका उसे आग्रह नहीं रहता है। फिर उसे समाधान हो जाय कि जैसे होना होगा वैसा होगा। रागके कारण ऐसा हो तो ठीक, ऐसा करुँ तो ठीक, ऐसा हो, ऐसे सब विकल्प आये। तो भी यदि उसकी इच्छा अनुसार बने तो वह समझे कि ऐसा बननेवाला था और न बने तो भी वही बननेवाला था। इसलिये उसे समाधान हो जाता है कि रागके कारण कुछ होता नहीं है। परन्तु राग आये बिना नहीं रहता। वह रागको समझता है कि ये राग है। बाकी प्रत्येक द्रव्य तो स्वतंत्र है। जो बननेवाला होता है वही बनता है। रागके कारण, उसे सब विचारणा रागके कारण चलती है। उसे जो देव-गुरु-शास्त्रके प्रति जो राग है, उस रागके कारण है।

मुमुक्षु :- संयोगाधीन दृष्टि है इसलिये संयोगसे देखते हैं कि ऐसा किया तो ऐसा हुआ। ऐसा नहीं होता है तो ऐसा नहीं हुआ। विकल्पात्मकमें भी ऐसा ... हो जाता है।

समाधान :- उसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। रागका और बाह्य कार्योंका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका मेल बैठ जाय तो ऐसा होता है कि मैंने ऐसे भाव किये, ऐसा किया इसलये ऐसा हुआ। परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धके कारण ऐसा मेल हो जाता है। परन्तु वह मैल ऐसे निश्चयरूप नहीं होता है। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। कोई बार फेरफार होता है। परन्तु उसके निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धके कारण ऐसा होता है कि, मैंने ऐसा किया तो ऐसा हुआ, ऐसा न करुँ तो ऐसा होता। उसका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धके कारण ऐसा हो इसलिये उसे ऐसा लगता है कि ऐसा करुँ तो ऐसा होगा, ऐसा करुँ तो ऐसा होगा। उसका सम्बन्ध ऐसा है।

बाकी जिसे प्रतीत है उसे बराबर ख्यालमें है कि मैं ज्ञायक भिन्न हूँ। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र स्वतः परिणमन करते हैं। मैं उसका परिणमन करवा नहीं सकता। स्वतंत्र द्रव्य है। तो भी ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धके कारण ऐसा मेल दिखता है। परन्तु वह स्वयं कर नहीं सकता।

जिसे यथार्थ प्रतीति हो वह बराबर समझता है कि उसके मेलके कारण ऐसा होता है, रागके कारण नहीं होता है। उसका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धके मेलके कारण ऐसा दिखे कि ऐसा हो रहा है। ऐसा अनुकूल उदय हो तो वैसा ही होता है। ऐसा सम्बन्ध

है। ऐसा अनुकूल उदय न हो तो वैसा नहीं भी बनता। ऐसा बनता है।

मुमुक्षु :- दोनों प्रकार भजते हैं।

समाधान :- ऐसा बनता है। लेकिन उसे निर्णय बराबर होता है कि स्वतंत्र द्रव्य है। फिर उसे आकुलता नहीं होती, समाधान हो जाता है कि जैसा बनना होता है वैसे ही बनता है। उसकी रागकी मर्यादा (है), मर्यादा बाहर नहीं जाता। उसकी भावना अनुसार अमुक राग उसकी मर्यादामें (होता है)। जो मुमुक्षुकी मर्यादामें राग हो उस अनुसार उसे भावना आती है।

प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। मैं ज्ञायक भिन्न, परद्रव्य भिन्न, कोई किसीको कर नहीं सकता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका, कोई चैतन्य चैतन्यका कर नहीं सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं। सबके परिणाम स्वतंत्र, सबकी परिणति स्वतंत्र, सब स्वतंत्र हैं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धके कारण बने, इसलिये इच्छा अनुसार हुआ ऐसा दिखता है। बाकी कोई किसीका कर नहीं सकता। ऐसा दिखता है इसलिये विचार-विचार चलते रहते हैं।

बाकी जिसे सहज प्रतीति होती है वह समझता है कि जो बनना है वही बनता है। स्वयंको जो राग आता है, इच्छा होती है, वह मात्र राग होकर छूट जाता है। बाकी उसकी विचारणा उसे लंबी नहीं चलती। जैसे बनना होता है वैसे ही बनता है। अपने ज्ञायकको भिन्न जानता है। ज्ञायककी प्रतीत और ज्ञायकका परिणमन भिन्न है और ये परद्रव्यका परिणमन भिन्न है। विकल्पात्मक प्रतीति है इसलिये उसे विचारणा चलती है कि इच्छा अनुसार बनता है। इच्छानुसार बनता नहीं है। वह स्वतंत्र परिणमन है।

मुमुक्षु :- कभी-कभी उलझन हो जाती है। पक्का निर्णय है इसलिये कोई बार अन्दर उलझन हो जाती है, एक प्रकारकी आकुलता हो जाती है। बाहरमें गलत हो रहा है ऐसा लगे, फलाना होता हो तो ऐसा लगे कि ऐसा क्यों? फिर शंका पड़े। तत्त्व अपनेको बैठा नहीं है इसलिये ऐसा होता है।

समाधान :- उसने विकल्प-से नक्की किया है न, इसलिये ऐसे विचार आते हैं। बाकी वस्तु स्वरूप-से जो बनना होता है ऐसा ही बनता है। जिसे सहज ज्ञायककी प्रतीति (हुयी है), सहज भेदज्ञानकी धारा है, उसे ऐसे विचार नहीं आते हैं। जो है उसे जानता है। राग आये उसे भी जानता है। उसे राग आता है, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आदि सब उसे आता है, परन्तु जो भी होता है उसे जानता है, उसे लंबे विचार नहीं चलते। सहज ज्ञायककी धारा, भेदज्ञानकी धारा वर्तती रहती है।

मुमुक्षु :- अनुभव होने पूर्व आपने किस प्रकारका अभ्यास किया कि जिससे विकल्पात्मक ज्ञानमें ऐसा निर्णय एकदम मजबूत हो गया? क्योंकि हम हमारी परिणति देखते हैं तो हमें तो ऐसा ही लगता है कि ये परिणति डोलमडोल होती है। शास्त्र

पढ़ते हैं, शास्त्र-से नक्की करते हैं तो ऐसा लगता है, बराबर, ऐसा ही वस्तुका स्वरूप है। अपनी परिणति-से देखते हैं तो ऐसे विचार चलते रहते हैं। कोई बार वैसा भाव बैठता है, कोई बार ऐसे लंबे विचार भी आते हैं।

समाधान :- विकल्पात्मक प्रतीति है न, इसलिये उसमें डोलमडोल होता है। बाकी दृढ़ निर्णय हो और मैं ज्ञायक ही हूँ और जो बनना है वह बनता है, ऐसी प्रतीतिकी दृढ़ता, ऐसे अभ्यासकी दृढ़ता हो तो उसे ऐसे विचार लंबाते नहीं। बाकी सहज धारा तो स्वानुभूतिके बाद ही होती है। इसलिये अभ्यासकी दृढ़ता रखे तो उसे वैसे विचार लंबाये नहीं। उसकी मन्दताके कारण विचार लंबाते हैं।

मुमुक्षु :- अभ्यासकी दृढ़ता रखे तो फ़र्क़ पडता है?

समाधान :- उसकी प्रतीतिमें उसे विचार लंबाते हैं। उसकी मन्दताके कारण।

मुमुक्षु :- उस प्रकारके अभ्यासकी मन्दताके कारण।

समाधान :- अभ्यासकी मन्दताके कारण विचार लंबाते हैं। बाकी सहज धारा जिसे होती है, उसे ऐसे विचार लंबाते नहीं। स्वानुभूतिकी बादकी धारामें उसे वैसा नहीं होता। उसे ज्ञायककी धारा ही रहती है।

समाधान :- ... वैसा बनना था तो वैसा हुआ। चक्रवर्ती तो पुण्य लेकर आये हैं। बाकी कुछ राजा हार जाते हैं।

मुमुक्षु :- भरत चक्रवर्ती बाहुबलीके आगे हारे।

समाधान :- हाँ, परन्तु उनका चक्रवर्ती पद लेकर आये थे। उस वक्त हारे, उस प्रकार-से हारे। परन्तु उन्हें कुछ होता नहीं है। उनकी लड़ाईमें हार गये।

मुमुक्षु :- जिसे ज्ञायककी सच्ची दृष्टि प्रगट हुयी है, वह दृष्टि अपेक्षा-से तो रागको अपने-से भिन्न जानता है। उसी क्षण ज्ञान ऐसा जानता है कि यह परिणमन मेरा है। मेरा प्रश्न यहाँ है कि वह परिणमन मेरा है, उस क्षण अशुभरागमें जितना ऊलटा पुरुषार्थ हुआ है, उसमें भी ऐसा ज्ञान करता है कि ये मेरे ऊलटे पुरुषार्थपूर्वक ही ऐसा हुआ है। ऐसा भी जानता है या स्वकालमें हुआ है, उसकी मुख्यता रखता है?

समाधान :- ज्ञान दोनोंको जानता है। स्वपरप्रकारशक। ये ज्ञायक सो मैं हूँ और ज्ञान ऐसा भी जानता है कि मेरी इतनी ज्ञायककी परिणति है। दृष्टिके साथ ज्ञायककी परिणति भी वर्तती है-ज्ञानधारा। और शेष न्यूनता है उतनी रागधारा है। रागाधारा मेरे पुरुषार्थकी कमज़ोरीके कारण इन कार्योंमें-शुभाशुभ भावोंमें जुड़ना हो जाता है। बाकी इसी क्षण मैं ज्ञायक हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये। एक ज्ञायकता मुझे प्रगट हो उतनी पुरुषाार्थ धारा बढ़े तो मुझे वीतराग ही होना है। ऐसी भावना है। परन्तु पुरुषार्थकी मन्दताके कारण उसमें जुड़ता है। उसमें वह जानता है कि ये शुभाशुभ परिणाम (होते

हैं)।

मुमुक्षु :- मेरा प्रश्न तो यह है कि शुभराग या रागधारा-कर्मधारा जो चलती है, उसमें जो राग उत्पन्न होता है, वह राग होनेमें पुरुषार्थकी मुख्यता लेता है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दताके कारण अथवा ऊलटे पुरुषार्थके कारण ये राग उत्पन्न हुआ है ऐसे लेता है? क्योंकि पाँचो समवाय हैं। शुभरागमें वह किसकी मुख्यता करता है? ऊलटे पुरुषार्थकी मुख्यता (करता है)?

समाधान :- मेरी मन्दता है। पुरुषार्थकी मन्दता है। मैं ज्ञायक हूँ, यह मेरा स्वभाव नहीं है, उसका स्वतंत्र परिणमन है, यह सब जानता है। परन्तु उसके साथ मुख्य उसे ऐसा है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है। मुख्य ऐसा रहता है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है। यह मेरा स्वभाव नहीं है, परन्तु मेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से (होश्रता है)। पुरुषार्थ मेरे स्वभावकी ओर जाय तो ये सब छूट जाय ऐसा है। लेकिन उसको उसकी आकुलता नहीं है। मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है, मैं कैसे अंतरमें जाऊँ, ऐसी भावना रहती है।

ज्ञानमें जानता है कि ये जो है वह मेरा स्व परिणमन है और यह विभाव है। चारित्रमें ऐसा जानता है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है। पुरुषार्थकी मन्दता उसके ख्यालमें मुख्य (रूप-से रहती है)।

मुमुक्षु :- स्वप्न तो वैशाख शुक्ल दूज थी न, उस दिन आया था। स्वाध्याय मन्दिरमें सब सजावट और चरणचिह्न, जीवन दर्शन आदि सब था न, इसलिये देखकर ऐसा हुआ कि गुरुदेव यहाँ विराजते हों तो कैसा लगता? वहीके वही विचार चलते थे। रातको ऐसा होता था, गुरुदेव पधारो, पधारो। ऐसा होता था। इसलिये प्रातःकालमें स्वप्न आया कि गुरुदेव देवलोकमें-से पधारे हैं, देवके रूपमें। रूप देवका था और पहनावट सब देवकी थी, रत्नके आभूषण, रत्नका मुगट आदि था। पहचानमें आ जाय कि गुरुदेव हैं, देवके रूपमें।

गुरुदेवने ऐसा कहा कि बहिन! ऐसा कुछ रखना नहीं, मैं तो यहीं हूँ, ऐसा तीन बार कहा कि मैं तो यही हूँ। देवलोकमें है। परन्तु मैं तो यहीं हूँ। ऐसा भाव-से गुरुदेवने कहा। मनमें ऐसा हुआ कि गुरुदेवकी आज्ञा है, स्वीकार कर ले कि गुरुदेव यहाँ है। परन्तु ये सब जीवोंको दुःख होता है। गुरुदेव मौन रहे। परन्तु गुरुदेवने ऐसा ही कहा कि मैं यहीं हूँ। ऐसा दो-तीन बार कहा।

उस ऐसा उत्सव हो गया कि सबको आनन्द ही बहुत था। स्वप्न तो उतना था, परन्तु आनन्द था। गुरुदेव देवलोकमें विराजते हैं, देवके रूपमें यहाँ पधारे। ऐसा स्वप्न आया।

मुमुक्षु :- हमें तो आपके सातिशय ज्ञानमें आपका..

समाधान :- विराजते हैं, क्षेत्र-से दूर है। बाकी गुरुदेव जहाँ विराजे वहाँ शाश्वत ही है। अलौकिक आत्मा, तीर्थंकरका द्रव्य कुछ अलग ही है। गुरुदेवका प्रभाव हर जगह वर्तता है। गुरुदेवका श्रुतज्ञान (ऐसा था)। गुरुदेवके प्रभावना योग-से तो सब अपूर्व था। गुरुदेव यहाँ विराजे तो भी क्षेत्र-से दूर (हैं)। बाकी गुरुदेवने ऐसा कहा कि मैं तो यहीं हूँ।

समाधान :- ... शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, विभाव स्वभाव अपना नहीं है। बाह्य संयोग तो पूर्व कर्मका उदय-से होता है। बाकी स्वयं अंतरमें शान्ति रखकर, गुरुदेवने जो वाणी बरसायी, उनके उपदेशके जो संस्कार है, उसे दृढ़ करना कि आत्मा भिन्न शाश्वत है। वास्तवमें तो वही करनेका है। उसीका वांचन, उसका विचार, अभ्यास वह, श्रुतका विचार, उसीकी महिमा सब वही करने जैसा है। संसारके अन्दर बाकी सब गौण है। आत्माको मुख्य करके आत्माकी रुचि कैसे बढ़े, वह करने जैसा है।

... महाभाग्यकी बात है। ऐसे पंच कल्याणक प्रसंग उजवाते हैं। साक्षात् पंच कल्याणक तो भगवानके होते हैं। अपने प्रतिष्ठा करके पंच कल्याणक मनाते हैं। स्थापना करके। जिनेन्द्र भगवानकी महिमा कोई अपूर्व है। देव महिमा, गुरु महिमा, शास्त्र महिमा। जीव अन्दर शुद्धात्माका लक्ष्य करके जो कुछ हो वह करने जैसा है। शुभभावनामें श्रावकोंको यह होता है। अन्दर शुद्धत्मा कैसे प्रगट हो और बाहरमें शुभभावनामें यह होता है। देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना कैसे हो, वह होता है। अपनी शक्ति हो उस अनुसार। उपकारका बदला चूकाना असमर्थ है। उस उपकारके आगे कुछ भी करे सब कम ही है।

मुमुक्षु :- उनकी महिमा आप बताते हो।

समाधान :- ४५ साल यहाँ रहकर जो उपदेश बरसाया है, सबकी रुचि (हो गयी), अंतरमें सबको जागृत किया।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६७

समाधान :- .. सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका गुरुदेवने कितना स्पष्ट करके मार्ग बताया है। करनेका स्वयंको बाकी रहता है। अपनी पुरुषार्थकी क्षतिके कारण अटका है। स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। जो अटका है, वह स्वयंकी क्षतिके कारण। अपनी परिणतिकी क्षतिके कारण अटका है। बाकी मार्ग तो एक ही है, मार्ग कहीं दूसरा नहीं है। मार्ग तो एक ही है।

एक ज्ञायक आत्माको पीछानना, वही एक मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। मार्ग कहीं ज्यादा नहीं है कि उसे आकुलता हो कि इस मार्ग पर जाना, इस मार्ग पर जाना या इस मार्ग पर जाना। ऐसा नहीं है। मार्ग तो एक ही है। एक चैतन्य पदार्थ है। स्वतःसिद्ध अनादिअनन्त आत्मा है, उस आत्माको पीछानना। आत्मा अपनेआपको भूल गया वह एक आश्चर्यकी बात है कि स्वयं होने पर भी स्वयंको स्वयं देखता नहीं है। स्वयं स्वयंको पहिचाने, भिन्न करके।

ये शरीर अपना स्वरूप नहीं है। उसके साथ एकत्वबुद्धि, अन्दर विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि, सब शुभाशुभ भाव, सबके साथ एकत्वबुद्धि कर बैठा। उससे भिन्न अपना ज्ञायक स्वरूप ज्ञान लक्षण-से पूर्ण ज्ञायकको पहिचानना। उसे पहिचानकर उसका भेदज्ञान करके, उस परिणतिको दृढ़ करके स्वयं उसमें प्रतीति दृढ़ करके, ज्ञान करके, उसमें लीनता करे तो सम्यग्दर्शन होता है। परन्तु करना स्वयंको है। स्वयं करता नहीं है। स्वयं अपनी मन्दता-से रुका है।

मुमुक्षु :- इसमें श्रद्धाका दोष लें, ज्ञानका दोष लें या पुरुषार्थका दोष लें या रुचिकी क्षति लें?

समाधान :- सब दोष है। श्रद्धाकी क्षति है, रुचिकी क्षति है, पुरुषार्थकी क्षति है। सब एकसाथ मिले हैं। ज्ञान यथार्थ कब कहा जाय? कि ज्ञान ज्ञानरूप परिणमे तब। तबतक वह बुद्धिपूर्वकका ज्ञान करता है कि वस्तु ऐसी है। फिर भी वह ज्ञान ज्ञायकरूप परिणमता नहीं है। इसलिये वह ज्ञान भी यथार्थ नहीं है। विचार करके ज्ञान करे कि यह वस्तु ऐसे ही है। परन्तु ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमे नहीं, तबतक ज्ञानको भी यथार्थ विशेषण लागू नहीं पड़ता। इसलिये सब दोष है।

मुमुक्षु :- सब गुणोंका दोष है।

समाधान :- सबका दोष है। एक पलटने-से सब पलट जाते हैं। एक सम्यक् हो तो सब सम्यक् होता है। एक-से अटका है। रुचि मन्द है, पुरुषार्थ मन्द है। उस अपेक्षा-से प्रतीतिमें, ज्ञानमें सबमें क्षति है।

मुमुक्षु :- विकल्प भी सहज है, निर्विकल्प भी सहज है और मैं भी सहज हूँ। तो फिर विकल्पमें दुःख लगना चाहिये, तो सहजमें दुःख लगना चाहिये, उसमें फ़र्क़ नहीं पड़ा?

समाधान :- विकल्प सहज है, मतलब अपने पुरुषार्थकी परिणतिके बिना कोई जबरन करवा नहीं देता। विकल्प सहज है, वह तो अपेक्षा-से है। खुद ऐसा रखे कि विकल्प सहज है, इसलिये अपनेआप जो होनेवाला है वह होता है, तो उसकी पुरुषार्थकी गति अपनी ओर मुड़ेगी नहीं। जो अटका है वह अपने पुरुषार्थकी गति नहीं है, उस तरफ उसकी विपरीत परिणति जाती है, इसलिये अटका है। विकल्प सहज है, ऐसा यदि रखे, उस एक अपेक्षाको ग्रहण करे और पुरुषार्थकी मन्दताको ग्रहण नहीं करेगा तो वह आगे नहीं बढ़ेगा।

सब कार्यमें अपने पुरुषार्थकी क्षतिको यदि देखेगा तो ही वह पलटेगा, अन्यथा पलटेगा नहीं। ... सहज है। परन्तु विकल्प सहज है, इसलिये अपनेआप होनेवाला होता है, तो-तो फिर अशुभमें-से शुभ भी नहीं होगा। वह कुछ बदल ही नहीं पायेगा। शुभमें-से शुद्ध भी नहीं होगा। जैसे होनेवाला हो, वैसा होगा। वह कोई आत्मार्थीका लक्षण नहीं है।

जहाँ आत्मार्थ है, वहाँ उसे ऐसा ही लगता है कि मेरी मन्दता-से मैं अटका हूँ। मेरी पुरुषार्थकी (क्षति है)। फिर भले ही वह उतनी आकुलता न करे, परन्तु वह समझे कि मेरी अपनी मन्दता-से मैं अटका हूँ। अपनी मन्दता उसके ध्यानमें हो तो पलटना होगा। मन्दता ही ध्यानमें नहीं है और किसी और पर डाले तो उसे बदलनेका अवकाश नहीं है।

मुमुक्षु :- मैं सहज हूँ, ज्ञायक सहज है।

समाधान :- हाँ, ज्ञायक अनादिअनन्त वस्तु सहज है। परन्तु उसकी परिणति पलटनेमें पुरुषार्थका काम है। .. अपेक्षा-से सहज है, परन्तु पुरुषार्थ पलटना अपने हाथकी बात है। जिसे ज्ञायक दशा प्रगट हुई है, जिसे भेदज्ञानकी धारा प्रगट हुयी है, उसे सहज परिणति (है)। जिसे भेदज्ञानकी सहज परिणति प्रगट हुयी है, उसे भी ऐसा रहता है कि मेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से, मेरी लीनताकी मन्दता-से मैं चारित्रमें, वीतराग दशामें, छठ्ठी-सातवीं भूमिकामें पहुँचा नहीं हूँ। मेरी अपनी मन्दताके कारण। उसके ज्ञानमें भी

ऐसा होता है।

यह तो अभी उससे भी पहलेकी भूमिकामें खड़ा है, भेदज्ञान प्रगट नहीं हुआ है और सहज दशा तो प्रगट नहीं हुयी है, और सहज मान ले तो आगे बढ़नेका अवकाश नहीं है। सहज दशा ही प्रगट नहीं हुयी है। और कर्तृत्वबुद्धिमें खड़ा है और सहज मान ले तो आगे बढ़नेका अवकाश नहीं है। इसे तो कर्ताबुद्धि छूट गयी है, स्वामीत्वबुद्धि छूट गयी है, ज्ञायक दशा प्रगट हुयी है, तो भी उसमें पुरुषार्थकी अपेक्षा उसके ध्यानमें रहती है कि मेरे चारित्रकी मन्दता-से लीनताकी मन्दता-से छठ्ठी-सातवीं भूमिकामें जा नहीं पाता हूँ। वह उसके ख्यालमें है। तो भी उसे ऐसा रहता है। सर्व अपेक्षा-से ऐसा ही माने कि सब सहज है, तो आगे बढ़नेका अवकाश नहीं रहता है।

मुमुक्षु :- इसमें क्रमबद्ध आ गया न?

समाधान :- सब सहज माने उसमें क्रमबद्ध आ गया। परन्तु क्रमबद्ध पुरुषार्थपूर्वक होना चाहिये। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्ध जुड़ा है। सच्चा क्रमबद्ध तब कहा जाय कि जिसकी कर्ताबुद्धि छूट गयी, सहज ज्ञायक दशा प्रगट हुयी है तो भी पुरुषार्थके साथ वह क्रमबद्ध सम्बन्ध रखता है। पुरुषार्थकी जैसी परिणति हो उस जातका उसका क्रमबद्ध होता है। उस जातके क्रमबद्धकी रचना उसे होती है। वह पुरुषार्थके साथ जुडा है।

उसकी पुरुषार्थकी गति अपनी तरफ जाय, ज्ञायकरूप (परिणमे) तो उसका क्रमबद्ध मोक्ष तरफ जाता है। और बाहरमें खड़ा है, विभावमें एकत्वबुद्धि करके (मानता है कि) जैसे होना होगा वैसा होगा, उसका क्रमबद्ध उस जातका है। अपनी तरफ जाय उसका क्रमबद्ध उस जातका है।

मुमुक्षु :- ज्ञानको किस प्रकार-से धीरा करें?

समाधान :- ज्ञानको धीरा करके तू देख, ज्ञायक क्या है? वस्तु क्या है? पर क्या है? क्या स्व है? ऐसे धीरा होकर विचार तो यथार्थ ज्ञान होगा। आकुलता, रागमिश्रित ऐसे ज्ञानमें विशेष आकुलतामें यथार्थ स्वभाव तुझे ग्रहण नहीं होगा। इसलिये धीरा होकर, रागको गौण करके धीरा होकर विचार। तो यथार्थ होगा। यथार्थ वस्तु ख्यालमें आयेगी। ज्ञानको धीरा करके, राग-से भिन्न उसे गौण करके देख तो तुझे यथार्थ ग्रहण होगा।

मुमुक्षु :- विपरीत श्रद्धा हो तो ज्ञान धीरा नहीं होता है?

समाधान :- उसमें जो विशेष आकुलता हो, उस आकुलता-से धीरा पड़ सकता है। यथार्थमें धीरा हो, वह अलग बात है। जिज्ञासाकी भूमिकामें भी धीरा होकर देख तो सकता है।

मुमुक्षु :- विकल्पात्मक भेदज्ञान हुआ?

समाधान :- विकल्पात्मक है।

मुमुक्षु :- दिगंबर केवलज्ञान शक्तिरूप-से स्वीकारते हैं, सत्ता और शक्तिमें क्या अंतर है?

समाधान :- सत्ता अर्थात् अग्निकी भाँति अन्दर वैसाका वैसा पड़ा है। अग्नि अन्दर है, ऊपर-से ढक दी है। वैसे सत्ता-से केवलज्ञान (है), उस (मान्यतामें) केवलज्ञान अन्दर पड़ा है और ऊपर-से ढक गया है, ऐसा अर्थ है। और शक्ति-से केवलज्ञान अर्थात् उसकी परिणति, उसकी परिणतिकी शक्ति कम हो गयी है। उस अर्थमें है।

स्वभाव उसका अखण्ड है। परन्तु अन्दर ढका हुआ, सूर्य पूरा प्रकाशमान है, बादलों-से ढक गया है। ऐसे केवलज्ञान तो अन्दर वैसाका वैसा भरा है, परन्तु ऊपर-से ढकम गया है, ऐसे सत्ता-से केवलज्ञान (मानता है)। दिगंबर ऐसा कहता है, अन्दर पूरा केवलज्ञानका सूर्य परिणति रूप-से वैसाका वैसा पड़ा है, ऐसे नहीं है। परन्त उसकी शक्ति-स्वभाव-से है। परन्तु उसकी शक्ति परिणतिरूप नहीं है। उसकी शक्ति कम है। पर्यायमें शक्ति कम हो गयी है। जबकि सत्ता अर्थात् पर्यायकी परिणति भी वैसीकी वैसी है, ऐसा कहना चाहते हैं।

मुमुक्षु :- वे लोग परिणतिरूप मानते हैं।

समाधान :- हाँ, परिमतिरूप-से सत्ता मानते हैं। परिणतिरूप-से नहीं है, शक्तिरूप-से है। ऐसा अंतर है। स्वभाव है, स्वभावका नाश नहीं हुआ है, परन्तु उसे प्रगट नहीं है। जैसे छोटीपीपरमें चरपराईकी शक्ति है, परन्तु उसे घीसते-घीसते चरपराई प्रगट होती है। वैसे उसकी केवलज्ञानकी शक्ति परिपूर्ण भरी है, परन्तु उसे प्रगट पर्यायरूप नहीं है।

मुमुक्षु :- सत्तारूप नहीं है।

समाधान :- हाँ, शक्तिरूप-से है, सत्तारूप-से नहीं है। अन्दर वैसाका वैसा भरा है अर्थात् वेदन मानो प्रगट पड़ा हो, ऐसा सत्तामें अर्थ होता है। प्रगट पड़ा हो वैसे। प्रगट नहीं पड़ा है, शक्तिमें है। सत्ताका अर्थ ऐसा है कि मानों प्रगट कैसे पड़ा हो। वैसे प्रगट नहीं है।

... होनेकी शक्ति है, परन्तु वह कहीं वृक्षरूप नहीं है। वैसा है। केवलज्ञानकी शक्ति है, परन्तु उसे परिणतिरूप-से प्रगट करे तो वह प्रगट होता है। बीजमें जैसे वृक्ष होनेकी शक्ति है। ... ऊपर ढका हुआ हो, पूरा है।

मुमुक्षु :-

समाधान :- स्वभावको पहिचाने तो हो। श्वेतांबर-दिगंबर... अपना स्वभाव पहिचानना चाहिये।

मुमुक्षु :- स्वभाव तो दिगंबर शास्त्रमें ही यथार्थ बताया है।

समाधान :- यथार्थ मार्ग तो दिगंबर शास्त्रोंमें ही है। वह तो यथार्थ है ही कहाँ? उसमें यथार्थ नहीं है। उसमें कितने ही जातके फेरफार है। वह यथार्थ नहीं है। .. कितने ही फेरफार है। यथार्थ मार्ग तो दिगंबरमें ही है। प्रारंभ-से लेकर पूर्णता पर्यंतका दिगंबरमें ही है। श्वेतांबरमें तो बहुत फेरफार है। सत्ता और शक्तिके अलावा भी दूसरे बहुत फेरफार है। बहुत फेरफार हैं। (गुरुदेवने) कितना अभ्यास करके, खोज-खोजकर, विचार करके परिवर्तन किया था कि यह मार्ग सत्य है।

मुमुक्षु :- श्रीमद्जीने उतनी स्पष्टता नहीं की है। अन्दरमें थी, परन्तु लिखावटमें उतनी स्पष्टता (नहीं है)। गुरुदेवने जितनी की है उतनी नहीं है।

समाधान :- गुरुदेवने तो पूरा मार्ग प्रकाशित कर दिया। सूक्ष्म रूप-से भी कहीं किसीकी भूल न रहे ऐसा कर दिया है।

मुमुक्षु :- जन्म-मरण करते-करते मुश्किल-से मनुष्यभव मिला, उसमें ऐसा सुनने मिला। उसमें ऐसा मार्ग गुरुदेवने बताया। उसमें आत्मा भिन्न है, उसका क्या स्वभाव है, उसे पीछानना है। ये विभावस्वभाव तो दुःखरूप और आकुलतारूप है। वह कहीं अपना स्वभाव नहीं है, आकुलता है। शुभाशुभ भाव आकुलता है। अन्दर सुखरूप एक आत्मा है। उसे कैसे पीछानना, उसका प्रयत्न करना। उसके लिये उसके विचार, वांचन, सब करना। और देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा। एक शुद्धात्माकी पहचान कैसे हो, उस ध्येयपूर्वक। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा-शुभभावनामें वह। जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र। और अंतरमें शुद्धात्माकी पहचान कैसे हो, वह करना है। जीवनमें उसके लिये यह सब प्रयत्न, उसके लिये अभ्यास, सब उसीके लिया करना है।

बाकी सब तो अनादिकाल-से सब किया है। जीवको सब प्राप्त हो चूका है। वह कहीं अपूर्व नहीं है। देवलोकका भव और देवलोककी संपत्ति प्राप्त हुयी, और बाहरकी संपत्ति भी जीवको अनन्त बार मिली है। अपूर्व तो सम्यग्दर्शन अपूर्व है। इसलिये गुरुदेवने अपूर्व वस्तु बतायी। वह कैसे प्राप्त हो, वह करना है।

जीवको अनन्त कालमें सब प्राप्त हुआ है। एक जिनेन्द्र देव नहीं मिले हैं उसका अर्थ स्वयंने पहिचाना नहीं है। अनन्त कालमें मिले हैं, परन्तु पहिचाना नहीं है। इसलिये नहीं मिलने बराबर है। और एक सम्यग्दर्शन अपूर्व है। वह कैसे प्राप्त हो, उसकी भावना, लगन, महिमा आदि सब करने जैसा है। उसका विचार, वांचन सब करना है।

अंतरमें कोई अपूर्व वस्तु है, अनुपम वस्तु है। सुखरूप वस्तु है। उसकी प्रतीत, उसका ज्ञान, उसमें लीनता, वह सब कैसे प्राप्त हो, उसका प्रयत्न करने जैसा है। ऐसा मानते थे, इतना शुभभाव किया अथवा इतनी क्रियाएँ की तो धर्म हो जाय, ऐसा माना था। ऐसेमें गुरुदेवने अंतर दृष्टि बतायी कि अंतरमें धर्म है। बाहर-से कुछ

नहीं आता है। जब तक शुद्धात्मा प्रगट न हो, तो उसका ध्येय रखे। तबतक देव-गुरु-शास्त्र तरफखे शुभभाव आये। बाकी धर्म तो आत्माके स्वभावमें रहा है। वह मार्ग पूरा गुरुदेवने बताया है।

मुमुक्षु :- माताजी! आपके निमित्त-से जो स्पष्टीकरण हो वह भी उतना सुन्दर होता है कि लोगोंको जो कुछ अस्पष्ट हो, वह स्पष्ट हो जाता है।

समाधान :- अंतरमें शीघ्रता-से पुरुषार्थ उत्पन्न हो... उत्पन्न न हो तो उसका संस्कार डाले। एकत्वबुद्धि तोड़कर मैं चैतन्य ही हूँ, ऐसे बारंबार दृढ अभ्यास करता रहे। उसका विचार, उसका वांचन, देव-गुरु-शास्त्रने जो बताया है, वह सब स्वयं बारंबार उसका मंथन कर-करके उसके संस्कार डाले तो भविष्यमें भी संस्कार गहरे तो वह प्रगट होनेका कारण बनता है। जो पुरुषार्थ करे, उग्र करे तो उसे अंतर्मुहूर्तमें होता है, उससे भी उग्र करे तो उसे छः महिनेमें होता है। न हो तो उसका अभ्यास बारंबार करता रहे। अभ्यास करे तो भी भविष्यमें उसे प्रगट होनेका कारण बनता है। यदि अन्दर यथार्थ गहरे संस्कार डाले तो।

वह आता है न, तत्प्रति प्रीति चित्तेन वार्तापि ही श्रुताः। प्रीति-से भी तत्त्वकी-आत्माकी बात सुनी है कि आत्मा कोई अपूर्व है, ऐसा गुरुदेवने बताया है। अंतरकी गहरी रुचि-से सुने तो वैसे संस्कार यदि उसे दृढ़ हो जाय तो भविष्यमें उसे वह प्रगट हुए बिना नहीं रहते। वैसा पुरुषार्थ भविष्यमें फिर-से उत्पन्न होनेका उसे कारण बनता है। अतः ऐसा कारण डाले, यदि प्रगट न हो तो बारंबार ऐसा अभ्यास करता रहे। अभ्यास करता रहे तो भी अच्छा है।

मैं चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ, ये सब मैं नहीं हूँ। जो एकत्वबुद्धि अनादिकाल-से दृढ़ हो रही है, क्षण-क्षणमें शरीर-से भिन्न मैं हूँ, वह तो उसे मालूम नहीं है, वह मात्र विचार-से नक्की करता है। परन्तु क्षण-क्षणमें मैं भिन्न ही हूँ। ये विकल्प हो वह भी मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसे क्षण-क्षणमें उसे भिन्न करनेका, अंतर-से महिमापूर्वक (करे)। रुखे भाव-से नहीं। आत्मा कोई अपूर्व और अनुपम वस्तु है। ऐसी उसको महिमा आकर अंतरमें-से बारंबार मुझे यही ग्रहण करने योग्य है और यही वस्तु सर्वस्व है। इसप्रकार वह बारंबार परिणति दृढ़ करता रहे। उसका विचार, उसका वांचन सब करता रहे तो वह अभ्यास करने जैसा है।

गुरुदेव कहते थे, छोटीपीपरको घिसते-घिसते चरपराई प्रगट होती है। वैसे बारंबार अभ्यास करने-से अंतरमें-से प्रगट होनेका कारण बनता है। छाछमें मक्खन होती है। उसे बिलोते-बिलोते मक्खन बाहर आता है। वैसे बारंबार यदि यथार्थ अभ्यास हो, अपना अस्तित्व ग्रहण करके कि मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे बारंबार अभ्यास करे तो भेदज्ञान प्रगट

होनेका कारण बनता है। यथार्थ कारण हो तो कार्य आता ही है। बाकी आत्मा भिन्न है।

जैसे स्फटिक स्वभाव-से निर्मल है, वैसे आत्मा स्वभाव-से-वस्तु-से तो निर्मल है। उसमें लाल-पीला प्रतिबिंब उत्पन्न होता है, वह तो बाहरके फूलका उठता है। ऐसे कर्मके निमित्त-से जो विभाव भाव होता है, उसमें परिणति अपनी होती है, पुरुषार्थकी मन्दता-से। वह जड़ नहीं करवाता। अपनी परिणतिकी मन्दता-से होती है। परन्तु उसे वह पलट सकता है कि मैं तो चैतन्य हूँ और यह मेरा स्वभाव नहीं है। इसप्रकार परिणतिको भिन्न करके, मैं तो एक शुद्धात्मा हूँ, ये सब विभावभाव है, उसे प्रयास करके अंतरमें उसका भेदज्ञान करे। बारंबार उसकी दृढ़ता करे।

आत्मामें ज्ञान और आनन्द भरा है, वह अपनेमें-से प्रगट होता है, बाहर-से कहीं-से नहीं आता है। बाहरमें-से कुछ आ जाता है या बाहरमें-से आनन्द या ज्ञान नहीं आते। देव-गुरु-शास्त्र मार्ग बताये। वह ज्ञान प्रगट होनेका कारण बनता है। परन्तु पुरुषार्थ स्वयंको करना रहता है।

अनादिकाल-में जो देशनालब्धि होती है (उसमें) कोई गुरु मिले, कोई देव मिले तो अंतरमें स्वयं ग्रहण करता है। परन्तु ऐसे गुरुके उपदेशका निमित्त बनता है। उपादान अपना है। परन्तु ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि गुरुके उपदेशका निमित्त बनता है। पुरुषार्थ स्वयंको करना पड़ता है। ज्ञायकको ग्रहण करना। ज्ञायकको ग्रहण कैसे करना? उसका मार्ग भिन्न-भिन्न नहीं है। एक ज्ञायकको ग्रहण करना। वस्तु-मार्ग एक ही है। उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान, उसकी लीनता। उसके लिये सब लगनी, महिमा, उसका अभ्यास बारंबार वही करनेका है।

मुमुक्षु :- पहले ज्ञानलक्षण-से, ये जो पंद्रहवी गाथामें आया कि ज्ञानलक्षण-से..

समाधान :- ज्ञानलक्षण-से आत्माकी पहिचान होती है। ज्ञानलक्षण-से पूरे ज्ञायकको ग्रहण करना। ज्ञानलक्षण एक सामान्य आत्माका लक्षण कि जिसमें भेद नहीं है, ऐसा ज्ञायक। कोई पर्यायका भेद, पर्यायके भेद पर भी दृष्टि नहीं रखकर मैं पूर्ण ज्ञायक हूँ, उस ज्ञायकको ग्रहण करे तो ज्ञायक ग्रहण होता है।

इतना जाना, इतना जाना, इतना जाना वह मैं, ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञायक जो जाननेवाला है, वही मैं हूँ। उसे ग्रहण करना। ज्ञानकी अनुभूति-ज्ञायककी अनुभूति है वही मैं हूँ। विभावकी जो अनुभूति हो रही है वह मैं नहीं हूँ। ज्ञायककी अनुभूति है वही मैं हूँ। रागमिश्रित जो स्वाद आये वह मैं नहीं। परन्तु मैं एक ज्ञायक, अकेला ज्ञायक, जिसमें अकेला ज्ञायक ही है, चारों ओर ज्ञायक ही है, वह मैं हूँ। .. मैं स्वयं ज्ञायक हूँ। ऐसे ज्ञायकको ग्रहण करना वही (उपाय है)। रागमिश्रित जो ज्ञान होता है-विकल्पमें, वह विकल्प मैं नहीं हूँ, अपितु मैं ज्ञान हूँ। इसप्रकार ज्ञानको ग्रहण करना।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६८

मुमुक्षु :- राग और ज्ञानको भिन्न करके, एक ज्ञायक है वही मैं हूँ, ऐसा देखना?

समाधान :- रागको भिन्न करता है वहाँ ज्ञान भिन्न पड़ ही जाता है। इसलिये मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा ग्रहण करे तो राग भिन्न पड़ जाता है। वास्तविक रूप-से दोनों साथमें ही है। अपना अस्तित्व ग्रहण करे कि मैं ज्ञान हूँ, इसलिये राग भिन्न पड़ ही जाता है।

मुमुक्षु :- मैं ज्ञान हूँ अर्थात् मैं ज्ञायक हूँ?

समाधान :- मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञान अर्थात् मात्र जानपना इतना ही नहीं, परन्तु मैं स्वयं ज्ञायक हूँ। मैं ज्ञायक हूँ, सर्व प्रकार-से ज्ञायक ही हूँ।

समाधान :- ... आत्माको पीछानना। विभाव भिन्न और आत्मा भिन्न, प्रयोजन तो वह सिद्ध करनेका है। अध्यात्म पद्धतिमें भेदज्ञान करना है। भेदज्ञान करनेका प्रयोजन है। उस प्रयोजनको देखना। प्रयोजन वह है। उसमें रुकना नहीं कि इसका यह अर्थ है या वह अर्थ है, भाव-आशय ग्रहण कर लेना। जहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हो, परकी मुख्यता हो उसमें विभावकी गौणता आ ही जाती है। विभावकी बात हो उसमें निमित्तकी अपेक्षा आ जाती है। इसलिये जो भेदज्ञान, विभाव-से भेदज्ञान करना है, वह एक ही प्रयोजन है। उसमें जड़-चैतन्यको गौण करके विभाव-से भेदज्ञान करना, एक ही बात है। उस प्रकार-से विचार करना है।

आचार्य भी ऐसा कहते हैं, ऐसा कहकर यह कहना चाहते हैं कि तू भेदज्ञान कर। गुरुदेव भी ऐसा कहते हैं कि तू भेदज्ञान कर। विभाव तेरा स्वभाव नहीं है। निमित्तकी अपेक्षा-से निमित्तका है, निमित्तकी अपेक्षा-से निमित्तका है और तेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है इसलिये तेरा है। उसमें भी निमित्तकी अपेक्षा है। और निमित्तकी मुख्यता-से बात करके जड़में डाल दे तो वह एकान्त जड़ है, उसमें तेरी विभावकी अपेक्षा साथमें आ जाती है। और तुझ-से होता है ऐसा कहे, उसमें निमित्तकी अपेक्षा आती है। और तुझ-से होता है ऐसा कहनेमें निमित्तकी अपेक्षा आती है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध क्या है उसका विचार करके भेदज्ञान करनेका प्रयोजन है।

शास्त्रमें अध्यात्म दृष्टि-से प्रयोजन है, उस प्रयोजनको सिद्ध करना है। बाहर नहीं।

उसमें रुकनेका कोई प्रयोजन नहीं है। भेदज्ञान कर, ऐसा गुरुदेवका कहनेका है। आचार्योंको यह कहना है। सब विभाव तेरा स्वभाव नहीं है, तू उससे भिन्न है। विभाव निमित्तकी अपेक्षा-से होता है। निमित्त-की अपेक्षा-से निमित्तका है। तेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से तेरेमें होता है। एक ही (बात है कि) तू उससे भिन्न पड़ जा। विभाव पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है और तेरा स्वभाव नहीं है। स्वभावभेद-से उसका भेद है। इसलिये उसका भेदज्ञान कर, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- किसी भी प्रकार-से आत्माकी मुख्यता (रखनी)।

समाधान :- आत्माकी मुख्यता रखनी। भेदज्ञान करनेका प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- या तो तेरा स्वभाव नहीं है ऐसे तू ले अथवा निमित्तमें डाल दे। प्रयोजनकी सिद्धि..

समाधान :- हाँ, प्रयोजनकी सिद्धि वह है। तू भिन्न है और जो विभाव होता है उसे निमित्तमें डाल दे। अथवा तेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से तेरेमें होता है। उस अपेक्षा-से चेतनमें होता है। इसलिये तू उसे पुरुषार्थ करके टाल। तू भिन्न है, भेदज्ञान करके जो अस्थिरता रहे उसे भी तुझे तोड़नी है। इसलिये पुरुषार्थ करनेका, भेदज्ञान करनेका प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- प्रयोजनको मुख्य रखना।

समाधान :- प्रयोजनको मुख्य रखना है। कोई अपेक्षा-से निमित्तकी मुख्यता-से और जड़की अपेक्षा-से जड़के कहनेमें आता है। चेतनकी अपेक्षा-से चेतनका कहनेमें आता है। अपने पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है। चेतनकी अपेक्षा-से चेतनमें होता है (ऐसा कहनेमें) निमित्तकी गौणता होती है और जड़ तरफ, निमित्त तरफकी बात आये उसमें गौणता होती है। दोनोंमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ही। इसलिये तू उससे भिन्न पड़। भेदज्ञान करनेका प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- जूठे वादविवादमें अटकना नहीं, प्रयोजनको..

समाधान :- जूठे वादविवादमें अटकना नहीं, प्रयोजनको सिद्ध करना। अध्यात्म दृष्टिमें एक भेदज्ञान करनेका प्रयोजन है। आचार्यको यह कहना है कि तू भेदज्ञान कर, गुरुदेवका ऐसा कहना है, तू भेदज्ञान कर। एकान्त जड़का हो तो फिर पुरुषार्थ करना कहाँ रहता है? परन्तु तेरा स्वभाव नहीं है, इसलिये जड़ तरफ जाता है। और जड़ तरफ जाय, परन्तु तेरेमें नहीं होते हो तो तुझे कुछ करना नहीं रहता। इसलिये उस अपेक्षा-से तेरेमें होता है। दोनों अपेक्षाका मेल करके निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कैसे है (यह समझ लेना)।

कोई अपेक्षा-से किसीकी मुख्यता और किसीकी गौणता होती है। प्रयोजन भेदज्ञान

करनेका है। उसके वादविवादमें अटकना नहीं। भेदज्ञान करके आत्मा अन्दर चैतन्य अनन्त गुणोंसे भरा है उसको प्रगट करना है। वह करना है। विपरीत स्वभाव है, दुःखरूप है, दुःखका फल है, उसे छोड़कर आत्मा (भिन्न है), उससे भेदज्ञान करना है। जड़से भी भेदज्ञान करना है और विभाव-से भी भेदज्ञान करना है। विभाव भी तेरा स्वभाव नहीं है। दुःख है, दुःखका फल है। उससे भिन्न पड़। अकेले ज्ञानमें ज्ञान ही दिखता है, क्रोधमें क्रोध दिखता है। दोनों भिन्न हैं। दोनोंका स्वभावभेद है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- पुरुषार्थ स्वयंको करना है। मैं चैतन्य हूँ। वह कहीं रोकता नहीं है, कर्म या अन्य कोई रोकता नहीं है। चैतन्य आत्मा, मैं ज्ञायक हूँ। वह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसे पुरुषार्थ करना, रुचि करना, लगनी, महिमा आत्माकी करना, पर तरफ-से रुचि हटाकर आत्माकी रुचि करनी चाहिये। उसकी तरफ पुरुषार्थ करना। उसका विचार, सब उसका करना चाहिये। आत्माका भेदज्ञान कैसे प्रगट हो और स्वानुभूति कैसे हो, ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये। शुभभाव बीचमें आता है, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा और शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो, ऐसा ध्येय होना चाहिये। शुद्धात्मा कैसे प्रगट होवे?

मुमुक्षु :- ज्ञान लक्षण द्वारा आत्माको ग्रहण करना, ऐसा शास्त्रमें आता है। ज्ञान अंतरमें वेदनपने रहा है, फिर भी वह वेदन पकड़में नहीं आता है, यह ज्ञात होता है, यह ज्ञात होता है, ऐसा ख्यालमें आता है। परन्तु अंतरमें जो ज्ञानका परिणमन हो रहा है, जबतक वह ज्ञानमें ग्रहण न हो तबतक आगे कैसे बढ़ना?

समाधान :- ज्ञेय-से ज्ञान ग्रहण होता है, परन्तु ज्ञान-से ज्ञान ग्रहण नहीं होता है? ज्ञान-से ज्ञान ग्रहण हो, करना वह है। उसीका अस्तित्व ग्रहण करना। वह नहीं हो तबतक उसका प्रयत्न करते रहना। ज्ञेय तरफ दृष्टि (जाती है), ज्ञेयको जाननेवाला जो ज्ञान है, उस ज्ञानका अस्तित्व कैसे ग्रहण हो, उसका प्रयत्न करना। ज्ञानगुण एक नहीं, परन्तु ज्ञानका अस्तित्व एक चैतन्यद्रव्यने धारण किया है, उस चैतन्यद्रव्यको ग्रहण करना है। जबतक न हो तबतक प्रयास करना।

मुमुक्षु :- माताजी! चैतन्यद्रव्यको ग्रहण करना, परन्तु अभी तो उसका लक्षण ही अज्ञानमें ग्रहण नहीं हो रहा है, तो फिर द्रव्यको तो (कैसे ग्रहण होगा)?

समाधान :- प्रयत्न करना, लक्षण भी ग्रहण करनेका प्रयत्न करना। एक ही उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। आत्माका लक्षण ग्रहण करना। ज्ञान लक्षण कैसे ग्रहण हो? और उस लक्षण-से ज्ञायक कैसे ग्रहण हो, वह एक ही उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मुमुक्षु :- विचारकी युक्तिमें विचार करें कि ये सब ज्ञेय किसको प्रसिद्ध करते

हैं? कि ज्ञानको प्रसिद्ध करते हैं। वह ज्ञान देहप्रमाण आत्मा है तो वहाँ परिणमन हो रहा है। परन्तु जिस प्रकार-से स्पष्टपने उसके स्वरूप-से ख्यालमें आना चाहिये कि जो ख्यालमें आने-से सीधा ज्ञायक भावभासनरूप हो, ऐसा नहीं होता है।

समाधान :- उसका प्रयत्न करना। युक्ति-से, विचार-से नक्की करे लेकिन उसमें जो अस्तित्व है, वह कैसे ग्रहण हो, उसका विचार, प्रयत्न, मंथन सब उसीका, उसकी लगनी, महिमा सब वही करना है। बाहर-से कुछ नहीं होता है। अंतरमें अंतर दृष्टि करनी। गुरुदेवने बहुत कहा है। अंतर-से ही वह ग्रहण कैसे हो? उसे ही ग्रहण करना है। सबको गुजराती भाषामें ख्याल आता है? गुरुदेवने तो चारों ओर-से प्रचार किया है।

मुमुक्षु :- पर्यायें प्रगट हुयी हैं, उसके साथ तत्पना है या अतत्पना?

समाधान :- अपनी पर्यायोंके साथ? कोई अपेक्षा-से तत् है, कोई अपेक्षा-से अतत् है। अपनी पर्यायके साथ तन्मय है और पर्याय तो क्षणिक है। इसलिये उसे अतत् भी कहनेमें आता है। पर्याय पलटती है। और पर्याय तो द्रव्यके आश्रय-से होती है। इसलिये पर्याय उसके साथ तत्रूप है और कोई अपेक्षा-से अतत् भी है।

मुमुक्षु :- ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी परिणति उसका स्वभाव होने-से उसे सहज कहा।

समाधान :- वह सहज है। उसका स्वभाव है।

मुमुक्षु :- और पुरुषार्थपूर्वक प्राप्त होता है, इसलिये पुरुषार्थ-से प्राप्त होता है ऐसा कहनेमें आता है।

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थ-से प्रगट होता है। जगतमें जो कुछ वस्तुके स्वभावमें नहीं है ऐसा कुछ उत्पन्न नहीं होता है। उसके स्वभावमें है वह उत्पन्न होता है। परन्तु वह पुरुषार्थ-से प्रगट होता है। परिणति जो अनादि-से विभावमें है, वह अपनेआप स्वभावमें आ जाती है, पुरुषार्थके बिना, ऐसा नहीं है। पुरुषार्थ-से अपने स्वभाव तरफ आती है। परन्तु जो स्वभाव है पलटनेका और उसका स्वभाव है ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि उसके स्वभावमें-से प्रगट होता है, इसलिये सहज है।

ऐसा हो कि जैसे होना होगा वैसे होगा, तो ऐसे प्रगट नहीं है। करनेवालेकी दृष्टि, जिसे स्वभाव प्रगट करना है, उसके ख्यालमें तो (ऐसा होता है कि) मैं पुरुषार्थ करके पलटा करुँ। मैं ज्ञायक तरफ दृष्टि करुँ, उसकी भावना वैसी होता है। करनेवालेको ऐसा नहीं होता कि जैसे होना होगा वैसे होगा। जैसे परिणति होनेवाली होगी वैसे होगी, ऐसा करनेवालेके लक्ष्यमें नहीं होता।

ज्ञायकको ग्रहण करके परिणति अपनी तरफ आती है तो ज्ञायकमें जो स्वभाव है वह उसे प्रगट होता है। वह सहज है। उसका स्वभाव प्रगट होता है, स्वभावकी परिणति प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- सहजका अर्थ ऐसा नहीं है कि पुरुषार्थ किये बिना प्राप्त हो जाय।

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थ किये बिना प्राप्त हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ करे तो सहज है।

समाधान :- पुरुषार्थ करे तो सहज होता है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन पहले पात्रता प्रगट करनेके लिये भी उसे अपेक्षित पुरुषार्थ करना पड़ता है?

समाधान :- हाँ, पुरुषार्थ करना पड़ता है। भावना करे, अभ्यास करे। उसे ऐसी भावना हुए बिना रहती ही नहीं। जिसे अपनी लगनी लगती है, विभावमें जिसे सुख और शान्ति नहीं है, उसे अपनी ओर पुरुषार्थ आये बिना रहता ही नहीं। वह आता है। भले यथार्थ बादमें हो, परन्तु भावनामें उसे वह कारण प्रगट करनेके लिये उसे भावना आती ही है।

मुमुक्षु :- माताजी! पात्रतामें अशुभको टालकर शुभके परिणाम उसे होते हैं। उसमें कर्तृत्वबुद्धि नहीं आ जाती?

समाधान :- कर्तृत्वबुद्धि तो मैं परपदार्थका कर्ता हूँ। परद्रव्यका मैं कर्ता हूँ, ऐसा आये तो कर्तृत्वबुद्धि होती है। वास्तविक रीत-से कर्तृत्वबुद्धि कब छूटती है? जब ज्ञायकता प्रगट हो, तब उसकी कर्ताबुद्धि छूटती है। तब उसकी कर्तृत्वकी परिणति वास्तविक रूप-से छूटती है। जबतक ज्ञायकता-साक्षी भाव अंतरमें-से सहज जो ज्ञाताकी-साक्षीकी दशा है, वह दशा प्रगट नहीं हुयी है तबतक उसे कर्तृत्वकी परिणति खड़ी है। परन्तु वह बुद्धिमें नक्की करे कि मैं परपदार्थका तो कर नहीं सकता। पर पदार्थके द्रव्य-गुण-पर्यायको मैं कर नहीं सकता।

अब जो विभाव होता है, विभावकी रागकी परिणतिमें मैं मेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से जुड़ता हूँ। उस जातके पुरुषार्थको मैं बदलूँ, उस प्रकारकी कर्तृत्वबुद्धि आती है। परन्तु वास्तविकरूप-से कर्ताबुद्धि अभी छूटी नहीं है। जिसे अंतरमें-से छूटे उसे परद्रव्यमें-से छूटे, विभावमें-से भी छूटे, सब छूट जाता है। वास्तविक छूटी नहीं है, परन्तु स्थूलबुद्धि-से मैं परपदार्थको कर नहीं सकता, जैसे होना होता है वैसे होता है। अन्दर अपने परिणामको पलटे उसमें तो पुरुषार्थका कर्तृत्व आये बिना वह पुरुषार्थ पलटता नहीं।

लेकिन ज्ञायकदशामें राग मेरा स्वभाव नहीं है, इसलिये मैं रागको कर नहीं सकता। ऐसे उसकी कर्ताबुद्धि ज्ञायक दशामें छूट जाती है। मैं उसकी उत्पत्ति कर नहीं सकता हूँ, परन्तु मेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से वह होता है। उसकी कर्ताबुद्धि वास्तविक रूप-से ज्ञातृत्वमें छूटती है। ज्ञायकदशा नहीं है तबतक कर्ताबुद्धि खड़ी ही है। जहाँ भी, शुभ या अशुभमें जहाँ उसकी परिणति जाय, वहाँ हर जगह उसकी कर्ताबुद्धि खड़ी

है। जबतक ज्ञायकता नहीं है, तबतक कर्ताबुद्धि खड़ी ही है।

मुमुक्षु :- कर्ताबुद्धि अशुभ परिणाममें भी है और शुभ परिणाममें भी है।

समाधान :- दोनोंमें है, दोनोंमें कर्ताबुद्धि खड़ी है।

मुमुक्षु :- उसे समझकर अशुभको टालकर शुभके पुरुषार्थमें आत्मार्थी जीव ऐसी पात्रता प्रगट करनेका भाव भी लाता है?

समाधान :- हाँ, उसे भाव आता है, आते रहते हैं। अशुभमें या शुभमें दोनोंमें कर्ताबुद्धि खड़ी है। एकमें खड़ी है उसे दोनोंमें खड़ी है। ज्ञायकता हो, सहज भेदज्ञान दशा हो तब उसे ऐसा होता है कि ये जो परिणति होती है, वास्तविक रूप-से स्वभाव-से मैं उसका कर्ता नहीं हूँ। ये राग-द्वेषके परिणाम जो होते हैं, वह होते हैं। परन्तु वह समझता है, मेरे पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है। कर्मके उदयकी जबरजस्ती-से यानी मुझे जबरन करवाता है, ऐसा नहीं है। वह जानता है कि पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है। परन्तु वास्तविक रूप-से मेरी ज्ञायकता छूटकर उस जातकी उसकी कर्ताबुद्धि नहीं होती। ज्ञायकता उसके साथ ही रहती है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थकी मन्दता भी पुरुषार्थपूर्वक है, ऐसा वह जानता है।

समाधान :- वह जानता है। पुरुषार्थकी मन्दता है।

मुमुक्षु :- उस प्रकारका ऊलटा पुरुषार्थ...

समाधान :- ऊलटा पुरुषार्थ भी उसमें है ऐसा समझता है। बाकी जहाँ सहज नहीं है, वहाँ तो सबमें कर्ताबुद्धि खड़ी है। बुद्धिपूर्वक नक्की करे कि मैं उसका कर्ता नहीं हूँ। पर पदार्थका कर्ता नहीं हूँ, राग-द्वेषका वस्तु स्वभाव-से मैं उसका कर्ता नहीं हूँ, ऐसा बुद्धि-से नक्की करे, बाकी कर्ताबुद्धि खड़ी है।

मुमुक्षु :- कर्ताबुद्धि खड़ी है। बुद्धिपूर्वक ऐसा नक्की करता है फिर भी उसे सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग प्राप्त करना है, इसलिये अशुभको टालकर शुभमें भी आता है।

समाधान :- शुभमें जुड़ता है, आत्माका लक्ष्य करनेका प्रयत्न करता है, ऐसा करता है। ... दशा प्रगट हो, वस्तु अनादिअनन्त सहज है। और उसकी ज्ञायकता जो सहज है, वह सहजकी परिणति जब उसे स्वभावदशा प्रगट हो, ज्ञायकता हो तब कर्ताबुद्धि छूटी ऐसा कहनेमें आता है। जब सहजता प्रगट हो, तब कर्तृत्व छूटा ऐसा कहनेमें आये।

अन्दर सहज दशा, सहज ज्ञायक परिणति नहीं है, तबतक कर्ताबुद्धि छूटी नहीं है। फिर उसे अल्प पुरुषार्थकी मन्दताकी परिणति रहती है। ज्ञानीके लिये ऐसा कहनेमें आता है कि वह होता है, वह करता नहीं है, अपितु होता है।

मुमुक्षु :- और फिर भी वास्तविक रूप-से देखा जाय तो उतनी पुरुषार्थकी मन्दता

है, वह भी अपने-से हुयी है।

समाधान :- हाँ, करने-से हुयी है।

मुमुक्षु :- वह भी ज्ञानमें साथ-साथ है।

समाधान :- ज्ञानमें जानता है।

मुमुक्षु :- और फिर भी वह सहज है, इसलिये उसे आकुलता भी नहीं होती है।

समाधान :- आकुलता नहीं होती।

मुमुक्षु :- उस पहलूका भी उसे ज्ञान है।

समाधान :- अपने स्वभावकी सहज दशा खड़ी रखकर वह होता है। और अपनी मन्दताके कारण (होता है)। ... उससे स्वयं भिन्न पड़ गया है इसलिये मैं उसका कर्ता नहीं हूँ। उसका चैतन्यका अस्तित्व जो है, वह अपनी परिणति-से भिन्न कर दिया है। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे अपने सहज स्वभावको भिन्न कर दिया है। एकत्वबुद्धि टूट गयी है, इसलिये मैं उसका कर्ता नहीं हूँ, परन्तु वह होता है। मेरी मन्दताके कारण वह होता है।

मेरी ज्ञायकदशा सहज है, मेरी मन्दताके कारण यह होता है। मेरी ज्ञायक दशाकी न्यूनता है और पुरुषार्थकी मन्दता है इसलिये होता है। उसके ख्यालमें उसकी मुख्यता रहती है। पुरुषार्थकी परिणति उठे तो सब छूट जाय ऐसा है। तो अंतरकी दशा प्रगट होकर सब विभाव टल जाय, ऐसा है। पुरुषार्थकी मन्दताके कारण ही वह खड़ा है। कोई काललब्धि उसे रोकती है या दूसरे कोई समवाय उसे रोकता है, कोई उसे रोकता नहीं है। अपनी मन्दताके कारण वह सब खड़ा है, ऐसा वह बराबर जानता है। परन्तु उतनी स्वयंकी पुरुषार्थकी डोर उठती नहीं है, ऐसा वह जानता है।

अमुक समय चक्रवर्ती गृहस्थाश्रममें रहकर फिर भावना भाकर मुनि होते हैं। जब पुरुषार्थ उत्पन्न होता है तब सब छूट जाता है। ऐसी परिणति है कि कर्ता दिखे, फिर भी उसे ज्ञाता कहते हैं। उसे होता है, होता है ऐसा कहते हैं और कर्ता नहीं है। ऐसा किया, ऐसा बोले। उसकी बोलनेकी भाषामें ऐसा आये। फिर भी कहते हैं कि ज्ञाता है। ऐसी कर्ता, ज्ञाताकी परिणति (है)।

(अज्ञानीको) तो एकत्वबुद्धि है इसलिये वह करता ही है। वह छोड़कर बैठा हो तो भी उसे कर्ता कहनेमें आता है। (ज्ञानी) गृहस्थाश्रममें हो तो भी उसे ज्ञाता कहनेमें आता है। समयसारमें आता है न कि, मुनि हो गया, परन्तु अन्दर कर्ताबुद्धि खड़ी है तो कर्ता ही है। छोड़ा तो भी कर्ता है। (ज्ञानी) गृहस्थाश्रममें है तो भी ज्ञाता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२६९

समाधान :- .. जिसका अस्तित्व अनादिअनन्त है, वह त्रिकाल वस्तु है।

मुमुक्षु :- वही त्रिकाल वस्तु है?

समाधान :- वही त्रिकाल (वस्तु है)। जो जाननेवालेका अस्तित्व है, वह त्रिकाल वस्तु है। और वह जाननेमात्र नहीं, अनन्त शक्तिओं-से भरा है। असाधारण ज्ञान (गुण) है, इसलिये ज्ञान द्वारा ग्रहण होता है। वह जाननेवाला है अनन्त शक्तियों-से भरा है।

मुमुक्षु :- ... कभी आये तब बहुत आता है।

समाधान :- कोई बार उग्र हो जाय तो सहज ऐसा हो जाय। परन्तु है अभी अभ्यासरूप, सहजरूप नहीं है। कोई बार उसे प्रयत्न कर-करके भी कृत्रिमता-से (करता है), वह तो पुरुषार्थकी गति उस जातकी है न। हानि-वृद्धि, हानि-वृद्धि होती रहती है।

मुमुक्षु :- उस वक्त क्या करना? जब बहुत प्रयत्न करते हैं लानेका, उस वक्त नहीं होता हो तो?

समाधान :- समझना कि कुछ मन्दता है इसलिये (नहीं हो रहा है)। फिर-से भावना उग्र हो जाय तो सहज आवे।

मुमुक्षु :- न आये उस वक्त पढना या ऐसा कुछ करना?

समाधान :- हाँ, वह न आये तो एक जगह उपयोग स्थिर न हो तो वांचनमें उपयोग जोड़ना, विचारमें जोड़ना, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमामें, इस प्रकार अलग-अलग प्रकार-से उपयोगको जोड़ना। एक जातका कार्य अंतरमें न हो सके तो अनेक प्रकार-से उपयोगको शुभभावमें जोड़े। परन्तु वह समझे कि यह शुभ है। तो भी जबतक अंतरमें शुद्धात्मा प्रगट नहीं हुआ है, तो उसे शुभभाव आये बिना नहीं रहते। इसलिये शुभके कार्योंको, शुभकी भावनाओंको बदलता रहे। परन्तु ध्येय एक (होना चाहिये कि) मुझे शुद्धात्माकी पहचान कैसे हो? ध्येय तो एक होना चाहिये।

भेदज्ञान हो तो भी शुभभाव तो खड़े रहते हैं। परन्तु वह समझता है कि य ह मैं नहीं हूँ। ऐसे भेदज्ञानकी धारा उसे सहज चलती है। एक ही जगह उपयोग टिक नहीं पाता, अतः उपयोगको बदलता रहे। पूरा दिन भेदज्ञान करता हो और कृत्रिम जैसा

हो जाता हो तो वांचन करना, विचार करना। अनेक प्रकार-से उपयोगको बदलते रहना।

मुमुक्षु :- आपकी वाणी बहुत मीठी और सरल लगती है। इतनी सरल लगती है कि अन्दरमें सब समझमें आता है।

समाधान :- कोई बार उग्र हो, कोई बार धीरे हो, जिज्ञासुको ऐसा होता रहता है। ... बीचमें होता है। निमित्त-उपादानका ऐसा सम्बन्ध है। इसलिये जितना सत्समागम हो उस प्रकारका प्रयत्न करना। और अपनी तैयारी करनी। करनेका स्वयंको ही है। उसका स्वभाव है वह सहज है। परन्तु परिणतिको पलटना वह पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ और सहज, ऐसा है।

मुमुक्षु :- अभी तक गुरुदेवश्रीको सुनते थे, सब करते थे, परन्तु उसमें अपेक्षा ज्ञान, गुरुदेवका हृदय गांभीर्य क्या है, वह हमें बराबर समझमें नहीं आता था। इसलिये गुरुदेव बहुत अपेक्षाएँ लेते थे। परन्तु हम शब्दोंमें ही ले जाते थे और समझमें नहीं आता था। आपके प्रताप-से हमें थोड़ा समझमें आने लगा। महिमा भी आती है, लगता है कि अहो! यही सत्य है। ऐसा मार्ग है, पहले ... जैसे आपने कहा, जिसे लगी है उसीको लगी है, पिहू पिहू पुकारता है। उसके लिये वैसी उत्कंठा जागृत नहीं होती है, तो उसमें हमारी क्या भूल होती होगी? अथवा हमें किस प्रकार-से वैसा लगे, आप दर्शाईये।

समाधान :- अंतरमें उतनी पुरुषार्थकी मन्दता रहती है, बाहरमें अटक जाता है इसलिये। अंतरमें बस, यही करनेका है, सत्य यही है। स्वभावमें ही सुख है, सब स्वभावमें भरा है। बाहर कहीं नहीं है। उतनी अंतरमें रुचिकी तीव्रता नहीं है। इसलिये पुरुषार्थकी मन्दता है। रुचि है, परन्तु रुचिकी मन्दताके कारण, पुरुषार्थकी मन्दताके कारण वह तीव्रता नहीं हो रही है। तीव्रता हो तो पुरुषार्थ उत्पन्न हुए बिना रहे नहीं। मन्दता रहती है, अपनी ही मन्दता रहती है। उसका कारण अपना है, अन्य किसीका कारण नहीं है। अपनी रुचि मन्द है और अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। इसलिये उसमें रुक गया है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें आता है कि सूक्ष्म उपयोग करके ज्ञायकको पकड़ना। सूक्ष्म उपयोगमें क्या गूढ़ार्थ है? प्रयोगात्मक पद्धति-से सूक्ष्म उपयोग (करना)?

समाधान :- उपयोग बाहरमें स्थूलरूप-से बाहर वर्तता रहता है। स्वयं स्थूलता-से बाह्य पदार्थोंको जाननेका प्रयत्न करे, विकल्पको पकड़े वह सब स्थूल है। परन्तु अन्दर आत्माको पकड़ना वह सूक्ष्म है।

आत्माका जो ज्ञानस्वभाव, ज्ञायकस्वभावको पकड़ना वह सूक्ष्म उपयोग हो तो पकड़में आता है। क्योंकि वह स्वयं अरूपी है। वह कहीं वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाला नहीं

है। अरूपी आत्माको पकड़ना। उपयोग सूक्ष्म करे तो पकड़में आता है। ये विकल्प, जो विभावभाव है, उससे भी आत्मा तो सूक्ष्म है। ज्ञानस्वभाव-ज्ञायकस्वभाव, उस ज्ञानमें पूरा ज्ञायक समाया है। उस ज्ञायकको स्वयं सूक्ष्म उपयोग करे तो पकड़में आता है। सूक्ष्मताके बिना पकड़में (नहीं आता)। स्थूलता-से और रागमिश्रित भावों-से पकड़में नहीं आता। परन्तु उससे भिन्न होकर पकड़े तो पकड़में आये ऐसा है।

मुमुक्षु :- भिन्न पड़कर माने क्या?

समाधान :- भिन्न पड़कर अर्थात् अन्दर ज्ञायकको ग्रहण करके विकल्पके भावों-से भिन्न पड़े तो वास्तविक पकड़में आता है। पहले शुरूआतमें तो उसे विकल्प साथमें होता है। विकल्प-से भिन्न पड़े तो अंतरमें निर्विकल्प दशा हो जाय, वह तो वास्तविक पकड़में आता है। शुरूआतमें, प्रथम भूमिकामें तो विकल्प साथमें होता है। वास्तविक पकड़में आये तो विकल्प-से भिन्न पड़ता है। परन्तु पहले शुरूआतमें विकल्पको गौण करके और आत्माको अधिक रखकर यदि पकड़े तो पकड़में आता है। विकल्प-से बिलकूल भिन्न तो निर्विकल्प दशा हो तो वह विकल्प-से भिन्न पड़ता है। विकल्पको गौण करके और अंशतः आत्माको मुख्य करके पकड़े तो पकड़में आता है।

भेदज्ञानकी धारा हो तो उसमें विकल्प-से भिन्न पड़े। भिन्न पड़े अर्थात् विकल्प है ऐसा उसे ख्याल रहता है कि परन्तु परिणतिको भिन्न करता है। वह सब तो वास्तविक है। शुरूआतकी भूमिकामें विकल्प साथमें होता है, परन्तु विकल्पको गौण करके आत्माको मुख्य रखकर, यह मैं ज्ञायक हूँ और यह विकल्प है, इस तरह पकड़ सकता है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें आता है कि आत्माको मुख्य रखना। परन्तु कार्योंकी गिनती करने जैसा नहीं है। फिर भी परिणामोंमें कार्यकी गिनती हो जाती हो तो वहाँ मुख्य कारण क्या बनता होगा? और उससे बचने हेतु प्रयोगात्मक पद्धति-से क्या करना?

समाधान :- कार्योंकी गिनती नहीं करना, आत्माको मुख्य रखना। कार्योंकी गिनती तो उसे बाहरमें उस जातका उसे राग है इसलिये गिनती होती है। उसके लिये एक आत्मा तरफकी ही लगन लगाये, दूसरेकी महिमा टूट जाय कि दूसरे कार्योंकी क्या महिमा है? आत्मा ही मुझे सर्वस्व है और आत्मामें ही सर्वस्व है। तो आत्माको मुख्य रखे, आत्माकी महिमा आये तो वह सब उसे गौण हो जाता है। उसे किसी भी प्रकारकी गिनती नहीं होती। मेरा आत्मा ही सर्वस्व है। आत्माकी ही महिमा, आत्माकी लगन, आत्मा ओर ही उसे सर्वस्वता लगे और दूसरेका रस टूट जाय। दूसरेकी महिमा टूट जाती है।

मुमुक्षु :- इतना पढ़ता हूँ, इतनी भक्ति करता हूँ, मैं इतने घण्टे ऐसा करता हूँ। इतना-इतना मैं करता हूँ, ऐसा गिनती (होती है)।

समाधान :- मैंने इतना किया तो भी कुछ होता नहीं है। इतने विचार किये, इतना स्वाध्याय किया, इतना वांचन किया, इतनी भक्ति की। उसे आत्मा मुख्य रहता है। उसे गिनती नहीं होती, मुझे आत्मा ही सर्वस्व है। बाहर-से जो भी हो, उसके बजाय अंतरमें मुझे भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, मैं ज्ञायकको ग्रहण करुँ, ज्ञायकमें लीनता हो, उस पर उसकी दृष्टि होती है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें आता है कि शुद्ध द्रव्य स्वभावकी दृष्टि करके तथा अशुद्धताको ख्यालमें रखकर पुरुषार्थ करना। वहाँ ख्याल माने उपयोगात्मक ज्ञानगुणकी पर्याय लेनी या लब्धात्मक ज्ञान लेना?

समाधान :- आत्मा शुद्ध है। बाहर उपयोग है वह उसे लब्धात्मक, ख्यालमें रहता है। ज्ञानमें लब्धात्मक ख्याल नहीं उसे उपयोगात्मक ख्याल रहता है। लब्धात्मक ख्याल तो है, परन्तु उपयोगमें उसे ख्याल रहता है कि यह अशुद्ध है, यह शुद्ध है। उपयोगमें भी रहता है और लब्धमें भी रहता है।

मुमुक्षु :- इतनी अशुद्धता है, यह है, वह है।

समाधान :- हाँ, इतनी अशुद्धता है, इतनी शुद्धता है। लब्धमें रहता है कि इतना ज्ञायक है, यह विभाव है। परन्तु उपयोगमें भी उसे ख्यालमें रहता है कि इतनी अशुद्धता है, यह शुद्धात्मा है, ऐसा उपयोगमें रहता है। जबतक उसका उपयोग बाहर है, तबतक सब ख्यालमें रहता है। यह अशुद्धता है, यह शुद्ध है ऐसा।

मुमुक्षु :- निर्विकल्पताके समय नहीं होता।

समाधान :- निर्विकल्पताके समय नहीं होता। वह तो एक स्वरूपमें जम जाता है। आनन्द दशामें बाहरका कुछ ध्यान नहीं है। एक आनन्द, अनन्त गुण-से भरा आत्मा आनन्दस्वरूप अनुपम है। वहीं उसकी लीनता है, इसलिये दूसरा कुछ ख्याल नहीं है। सब अबुद्धिपूर्वक हो जाता है। उसे ख्याल ही नहीं है, अपने स्वरूपका ही वेदन है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकको परिणाममें पकड़ना, ऐसा वचनामृतके प्रवचनमें पूज्य गुरुदेवश्रीने फरमाया कि परिणाममें ज्ञायकपने अहंपना करना। जैसे शास्त्रज्ञान धारणाज्ञानमें अहंपना है, उसके बदले ज्ञायकमें अहंपना करना। और बहुत बार ऐसा भी आता है कि ज्ञायकको रुचिगत करना। तो पर्यायमें ज्ञायककी महिमा आनी, इन दोनोंमें क्या अंतर है? अहंपना करना, महिमा करनी, रुचि करनी उसमें क्या अंतर है?

समाधान :- यह ज्ञायक है वह मैं हूँ। अहंपना अर्थात् यह ज्ञायक है वह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। शास्त्रका अहंपना, ये शास्त्र पढ़ा वह नहीं, ये ज्ञायक वह मैं हूँ। यह मैं हूँ, उसमें उसकी रुचि भी आ जाती है और उसकी उस जातकी प्रतीति भी आ जाती है। उस जातका ज्ञायकमें अहंपना, मैं ज्ञायक हूँ। ऐसे।

मुमुक्षु :- यानी वही महिमा हुयी, वही रुचि हुयी, सब हो गया।

समाधान :- हाँ, सब उसमें आ गया। रुचि, महिमा सब उसमें आ जाता है। यह ज्ञायक है सो मैं हूँ। ज्ञायकका अहंपना करना। विभावका अहंपना-एकत्वबुद्धि तोड़कर विभावके कोई भी कार्योंमें एकत्वबुद्धि करे, उसके बजाय मैं उससे भिन्न ज्ञायक हूँ। भले अभी विकल्पात्मक है, परन्तु ज्ञायकमें अहंपना करना। वह अहंपना नहीं करना कि ये शास्त्र इत्यादिकी एकत्वबुद्धि तोड़कर ज्ञायकका अहंपना करना। अभी वास्तविक-रूप-से उसे टूटा नहीं है, परन्तु मैं ज्ञायक हूँ, इस प्रकारसे भी उसे विकल्पात्मक है, तो भी मैं ज्ञायक हूँ, उस जातकी परिणति दृढ़ करनी। प्रतीतमें लाना, रुचिमें लाना, महिमामें लाना।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें आता है कि अनुभूतिके लिये स्वयंको परपदार्थ-से भिन्न पदार्थ नक्की करे, अपने ध्रुव स्वभावकी महिमा लाये और सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका प्रयास करना चाहिये। वहाँ परद्रव्य-से भिन्नता विचार करने पर लगता है कि स्वयं परद्रव्य-से भिन्न है। परन्तु स्वयं ध्रुव ज्ञायकस्वभावी महिमावंत है, ऐसा लगता नहीं है। तो प्रयोगात्मकपने क्या करना चाहिये?

समाधान :- परद्रव्य-से भिन्न है तो उसका अस्तित्व ग्रहण करना है कि ये चैतन्यका अस्तित्व ध्रव स्वरूप है वह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। यह मैं नहीं हूँ, परद्रव्य सो मैं नहीं हूँ, मेरा स्वरूप नहीं है, तो मैं कौन हूँ? अपनी महिमा आये बिना वास्तविक परद्रव्य तरफकी एकता टूटती ही नहीं। इसलिये मैं कौन हूँ? उसका विचार करे। मेरा अस्तित्व क्या है? मैं एक ध्रुव ज्ञायकस्वरूपी अनादिअनन्त एक वस्तु हूँ और ये जो विभाव पर्याय है वह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। मेरा वास्तविक स्वरूप ज्ञायक स्वरूप है। इस प्रकार अपना अस्तित्व ग्रहण करके नास्तित्व आये तो वह बराबर होता है। अकेला नास्तित्व आये कि परद्रव्य मैं नहीं हूँ, अकेला नास्तित्व वास्तविक नहीं होता। अस्तित्वपूर्वकका नास्तित्व हो तो वह बराबर होता है। इसलिये अस्तित्व तरफका (प्रयत्न करना)।

ये सब मैं नहीं हूँ, ये सब अच्छा नहीं है, परन्तु अच्छा क्या है? ज्ञायक स्वभाव महिमावंत है। उसका अस्तित्व ग्रहण करके नास्तित्व आये तो उसे वास्तविक भेदज्ञान होनेका उसमें अवकाश है।

मुमुक्षु :- उसकी विशेष महिमा कैसे आये?

समाधान :- ध्रुवमें, ज्ञायकतामें-ज्ञायकस्वभावमें ही सब भरा है। उसका विचार-से, उसका स्वभाव पहिनकर नक्की करे कि ये कुछ महिमावंत नहीं है तो महिमावंत कौन है? मैं चैतन्य ज्ञायक महिमावंत स्वरूप हूँ। उसे विचार-से, उसका स्वभाव पहिचानकर

नक्की करे कि ये ज्ञायकता है वह अनन्त ज्ञायकता है। वह ज्ञायकता, इतना जाना इसलिये ज्ञायक है, ऐसा नहीं। स्वतःसिद्ध ज्ञायक जिसमें नहीं जानना ऐसा आता ही नहीं, ऐसा अनन्त-अनन्त ज्ञायकता-से भरा जो स्वभाव और जो सुखको बाहरमें इच्छता है, वह सुखका स्वभाव, सुखका समुद्र स्वयं ही है। ऐसा अनन्त स्वभाववाला, अनन्त आनन्द जिसमें भरा है, अनन्त ज्ञान जिसमें भरा है और अनन्त स्वभाव-से जो भरा है ऐसा मैं चैतन्य हूँ। उस चैतन्यकी महिमा विचार करके लावे कि वह वस्तु अनन्त धर्मात्मक और महिमावंत कोई अनुपम है। उसका विचार करके महिमा लाये। शास्त्रोंमें आता है, आचार्यदेव कहते हैं, गुरुदेव कहते हैं कि ये वस्तु कोई अनुपम महिमावंत है। जो अनुभवी हैं, गुरुदेव कहते हैं, मुनि कहते हैं कि आत्मा कोई अनुपम है। तो स्वयं विचार करके नक्की करे।

स्वयंको तो एक ज्ञानस्वभाव ही दिखता है, दूसरा कुछ दिखता नहीं है। तो स्वयं विचार करके अन्दर-से स्वतःसिद्ध अनन्त धर्मात्मक है, अनन्त अचिंत्य महिमा-से भरी है, उसका विचार करके नक्की करे तो स्वयंको प्रतीत आवे। देव-गुरु-शास्त्र जो कहते हैं कि कोई अपूर्व वस्तु है, तेरी वस्तु अपूर्व है, तू उसमें जा। तो वह अपूर्व कैसे है? उसका विचार करके स्वयं प्रतीत करे तो हो। उसका लक्षण तो अमुक दिखता है, परन्तु स्वयंसे नक्की करना पड़ता है।

बाहरमें सब जगह आकुलता है। तो निराकुलता और आनन्द-से भरा एक आत्मा है। ऐसा गुरुदेव कहते हैं, आचार्य कहते हैं, सब कहते हैं। अंतरमें है वह किस प्रकार-से है, वह स्वयं विचार करके, स्वभावको पहिचानकर नक्की करे कि उसीमें सब है। तो उसे महिमा आये।

मुमुक्षु :- अनन्त गुणात्मक है वह सब विचार द्वारा नक्की हो सकता है?

समाधान :- विचार द्वारा नक्की हो सकता है। उसे दिखता नहीं है, परन्तु नक्की हो सकता है। जो अनादिअनन्त वस्तु हो वह मापवाली नहीं हो सकती। वह अनन्त अगाध स्वभाव-से भरी है। विचार-से नक्की कर सकता है। उसकी महिमा ला सकता है।

मुमुक्षु :- मुमुक्षुके नेत्र सत्पुरषको पहिचान लेता है। वहाँ मुमुक्षुके नेत्रका अर्थ सत्पुरुषकी वाणीमें आ रही आत्माकी सहज महिमा और अन्यकी उसी शब्दोंमें आ रही कृत्रिम महिमा, उसके बीचका भेद करता है, ऐसा कह सकते हैं?

समाधान :- उसके नेत्र ऐसे ही हो गये हो। पात्रता अंतरमें-से उसे सत्य ही चाहिये। सत्पुरुषकी वाणीमें कोई अपूर्वता रही है, कोई आत्माका स्वरूप बता रहे हैं। दूसरेकी वाणी और उनकी वाणीका भेद कर सकता है। उसका हृदय ही ऐसा हो गया है कि मुझे जो चाहिये, कोई अपूर्व वस्तु, ये कुछ अपूर्व बता रहे हैं। वह भेद

कर सकता है। सच्चा मुमुक्षु हो वह भेद कर सकता है। सच्चा मुमुक्षु हो वह भेद कर सकता है। उनके परिचय-से, उनकी वाणी-से भेद कर सकता है। परीक्षा करके भेद कर सकता है।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रकी महिमाके वक्त आत्माकी खटक रखनेका आप फरमाते हो, तो वह दोनों एक परिणाममें प्रयोगात्मक रूप-से कैसे करना?

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्रकी महिमाके समय आत्माकी (खटक होनी चाहिये)। उस महिमाका हेतु क्या है? देव-गुरु-शास्त्र, जिनेन्द्र देवने आत्मा प्रगट किया है, वे केवलज्ञान स्वरूप, पूर्णरूप-से विराजमान हो गये, गुरुदेव साधना करते हैं, शास्त्रोंमें भी वह आता है, इसलिये उसकी महिमाका हेतु क्या है कि उन्होंने जो चैतन्यका स्वरूप प्रगट किया, इसलिये उनकी महिमा आती है। उसका अर्थ वह है कि उन्होंने वह स्वरूप प्रगट किया इसलिये उनकी महिमा आती है। तो उस स्वरूपकी स्वयंको रुचि है और वह रुचि वैसी होनी चाहिये कि वह स्वरूप मुझे प्रगट हो।

अतः रूढ़िगतरूप-से वह अच्छा है ऐसे नहीं। उन्होंने जो प्रगट किया वह आदरने योग्य कोई अनुपम वस्तु प्रगट की है। और वह वस्तु मुझे चाहिये। इसलिये उसमें रुचि और देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा दोनों साथ होते हैं। जिसे महिमा, ऐसी समझपूर्वक महिमा आये उसे आत्माकी रुचि साथमें होती ही है। ओघे ओघे करता हो (ऐसा नहीं)। समझपूर्वक जिसे महिमा आती है उसे रुचि साथमें होती ही है कि यह स्वरूप मुझे चाहिये। ये विभाव अच्छा नहीं है, परन्तु स्वभाव अच्छा है। अतः जो देव-गुरु-शास्त्रने प्रगट किया है, उसकी उसे महिमा आती है और वह मुझे चाहिये। ऐसा अन्दर-से समाया है। ऐसी रुचि साथमें होती ही है। ऐसी समझपूर्वक जिसे महिमा आये, उसे आत्माकी रुचि साथमें होती ही है।

आत्माकी रुचि साथमें न हो और अकेली महिमा करे तो वह सब समझे बिनाका है। अनादि काल-से जो मात्र रुढ़िगतरूप-से किया वैसा। देव-गुरु-शास्त्र आदरने योग्य क्यों है? कि उन्होंने आत्माका स्वरूप कोई अपूर्व प्रगट किया है, इसलिये। इसलिये उनका स्वयंको आदर है। अंतरमें अपना आदर अन्दर आ जाता है।

मुमुक्षु :- आत्माकी खटक रहती हो और महिमा आती हो, वही सच्ची महिमा है?

समाधान :- वही सच्ची महिमा है। उसे खटक रहती ही है। जिसे सच्ची महिमा आये उसे आत्माकी खटक साथमें होती ही है। तो सच्ची महिमा है।

गुरुदेवने मार्ग कितना स्पष्ट किया है। प्रश्न पूछे उसका उत्तर देती हूँ।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके शब्द बहुत गंभीर, इसलिये कुछ समझ ना सके। उनका गंभीर आशय समझ न सके, आपने गुरुदेवका हृदय खोला इसलिये हम बच गये।

समाधान :- गुरुदेवने बताया है। यही करने जैसा है। जीवनमें अपूर्व वस्तु कैसे प्राप्त हो और वह अपूर्वता कैसे प्राप्त हो? अपूर्व पुरुषार्थ, आत्मा अपूर्व, उसका अभ्यास कोई अपूर्व। बाकी सब रूढिगत रूपसे बहुत बार किया है। अपूर्व प्रकार-से प्राप्त हो वह करना है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७०

मुमुक्षु :- गुरुदेवको कोई बार प्रवचन देते समय मानोंकी निर्विकल्प दशा हो गयी हो, तो हम जो बाहर प्रवचनमें बैठे हों, उन्हें ख्याल आ सकता है?

समाधान :- आ सके और न भी आ सके, दोनों बात हैं। देखनेवाला चाहिये। अपनी वैसी दृष्टि हो तो मालूम पड़े, नहीं तो नहीं।

मुमुक्षु :- ऐसे दिखाव पर-से तो ख्याल न आये न?

समाधान :- अपनी ऐसी देखनेकी शक्ति चाहिये न।

मुमुक्षु :- बाहरमें कुछ ख्याल आ सकता है?

समाधान :- जो देख सके वह देख सकता है, सब नहीं देख सकते। उसकी परीक्षक शक्ति होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- बीचमें थोड़ा समयका अंतर रहता होगा?

समाधान :- पड़े, लेकिन बाहर पकड़ना मुश्किल पड़े। एक आदमी कुछ काम करता हो, तो काम करते वक्त उसके विचारोंका परिणमन कहाँ चला जाता है। हाथकी क्रिया कहीं चलती है, तो बाहरका मनुष्य कहीं पकड़ नहीं सकता कि उसके विचारकी परिणति कहाँ जाती है। एक आदमी किसीके साथ बातचीत करता हो, धीरे-धीरे शान्ति-से करता हो, उसकी परिणति कहाँ जाती हो वह बाहरका मनुष्य पकड़ नहीं सकता। वह तो स्थूल विभावकी परिणतिमें भी ऐसा होता है। कोई काम करता हो, कुछ करता हो और उसके विचार कहीं चलते हैं और काम कुछ होता हो।

मुमुक्षु :- दृष्टान्त तो बराबर है। उस प्रकार वांचन करते-करते उनके परिणाम हो जाय तो ख्यालमें न आये।

समाधान :- ऐसी परिणति पकड़नी मुश्किल है। योगकी क्रियामें कुछ दिखे तो मालूम पड़े, नहीं तो पकड़ना मुश्किल पड़े।

मुमुक्षु :- योगकी क्रियामें कुछ फ़र्क़ तो पड़ता होगा।

समाधान :- देखनेवालेकी दृष्टि पर (निर्भर करता) है।

मुमुक्षु :- माताजी! वाणीमें कुछ फेरफार होता है?

समाधान :- वाणीकी सन्धि चलती है।

मुमुक्षु :- अत्यंत आश्चर्य हो ऐसी बात है। हमने तो आपसे सविकल्प दशाका वर्णन सुना तो ऐसा होता है कि अभी तक तो बाहरके राग-द्वेषके परिणाम-से ही माप निकालनेका प्रयत्न करते थे। जबकि ज्ञानीका परिणमन तो पूरा भिन्न है।

समाधान :- जगत-से भिन्न परिणमन है। कोई व्यक्तिके प्रश्न पूछनेके बजाय समुच्चय प्रश्न पूछना। छठवें-सातवें गुणस्थानमें मुनिराज अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें झुलते हैं। बाहर आये तो मुनिराजको सब सन्धि होती है। शास्त्र लिखते हों तो भी सन्धि तो ऐसे ही चलती है। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें भी बहुत फेरफार होते हैं। कौन-सा अंतर्मुहूर्त, कैसा अंतर्मुहूर्त... ज्ञानीकी दशा क्षण-क्षणमें भेदज्ञानकी वर्तती है। ज्ञायकदशाकी परिणति पूरी भिन्न होती है।

मुमुक्षु :- मुनि महाराजको ऐसा विकल्प नहीं होता है कि मैं श्रेणि लगाऊँ। उनकी तीव्रता इतनी बढ़ गयी है कि सहज ही श्रेणि लगाते हैं।

समाधान :- विकल्प नहीं होता है, मैं श्रेणि लगाऊँ ऐसा विकल्प नहीं होता। उनकी परिणतिकी गति ही ऐसा हो जाती है कि बार-बार स्वरूपमें लीनता (हो जाती है)। अंतरमें लीनताके अलावा बाहर टिक नहीं सकते हैं। ऐसी तो दशा है कि अंतर्मुहूर्तसे ज्यादा तो बाहर नहीं सकते हैं। अंतर्मुहूर्त बाहर जाय उतनेमें अंतरमें परिणति पलट ही जाती है। उससे ज्यादा देर वे बाहर टिक नहीं पाते। परिणति उतनी अपने स्वरूपकी ओर चली गयी है कि अपनेमें इतनी लीन परिणति है कि बाहर टिक नहीं सकते।

ऐसा करते-करते उनकी परिणति इतनी जोरदार स्वरूप ओर जाती है कि उसमें-से उनको श्रेणि लगती है। ऐसा विकल्प नहीं करते हैं कि मैं श्रेणि लगाऊँ। स्वरूपमें इतनी लीनता बढ़ जाती है, निर्विकल्प दशामें इतनी लीनता हो जाती है कि उसमें-से उन्हें श्रेणि लग जाती है। वह अंतर्मुहूर्तकी दशा है। ऐसी दशा हो जाय कि विकल्प तो निर्विकल्प दशामें बुद्धिपूर्वक हो जाय, परन्तु उन्हें स्वरूप लीनताकी ऐसी जोरदार परिणति हो जाती है कि उसमेंसे श्रेणि लगाकर और वह लीनता ऐसी होती है कि फिर बाहर ही नहीं आते। ऐसी क्षपक श्रेणि लगा दे तो अन्दर लीनता हुई सो हुई, सर्व विभावका क्षय हो जाता है। विभाव परिणतिका क्षय हो जाता है इसलिये कर्मका भी क्षय हो जाता है। और अंतरमें परिणति गई सो गई, फिर बाहर ही नहीं आते। ऐसी लीनता हो जाती है कि अंतर्मुहूर्त भी बाहर आ जाते थे, वे उतना भी बाहर टिक नहीं सकते। अन्दर ऐसी लीनता हो गयी। सादिअनन्त (काल) उसमें-ही टिक गये। उसमें टिक गये, परिणति टिक गयी तो सादिअनन्त आनन्द दशा प्रगट हुई। और ज्ञानकी निर्मलता हो गयी। ज्ञानकी परिणतिमें एक अंतर्मुहूर्तमें जाना जाता था, वह ज्ञान एक समयमें सब जान सके ऐसी परिणति, वीतराग दशा हुई इसलिये ज्ञान भी वैसा निर्मल हो गया।

उसका स्वभाव जो है एक समयमें जाने, ज्ञान दूसरेको जानने नहीं जाता, परन्तु अपनेमें ज्ञानकी परिणति स्व तरफ ही मुड़ गयी। स्वयं अपनेको जानते हुए पर सहज ही ज्ञात हो जाता है। पूर्ण लोकालोक और स्वयं आत्मा, आत्माके अनन्त गुण-पर्याय और दूसरेके स्वयंको जानते हुए सब ज्ञात हो जाता है। ऐसी सहज परिणति (हो जाती है)। विकल्प नहीं होता कि मैं श्रेणि लगाऊँ, केवलज्ञान नहीं हो रहा है। मुझे वीतराग दशा हो, मेरे स्वरूपमें लीनता करुँ, मुझे बाहर कहीं नहीं जाना है। विभाव परिणति सुहाती नहीं। इसलिये स्वरूपमें ऐसी लीनता हो गयी। आत्माके अलावा मुझे कहीं चैन नहीं है। आत्मामें उतनी लीनता हो गयी कि फिर बाहर ही नहीं आते। अन्दर गये सो गये, स्वरूपमें समाये सो समाये, बाहर ही नहीं आये। ऐसी परिणति होती है इसलिये वीतराग दशा और केवलज्ञानकी दशा प्रगट हो जाती है।

मुमुक्षु :- कोई भी दशाकी इच्छा नहीं करी, आत्मामें ही लीनता की।

समाधान :- कोई दशाकी इच्छा नहीं है। एक आत्माकी लीनता, आत्म स्वरूपमें स्थिर हो जाऊँ, स्वरूपके अलावा कहीं नहीं जाना है। विभावमें कहीं नहीं जाना है। एक स्वरूपमें ही रहूँ। परिणति ऐसी जम गयी कि उसमें केवलज्ञान हो गया।

सम्यग्दर्शनमें उसकी प्रतीति इतनी जोरदार है कि इसीमें लीनता करुँ। परन्तु वह लीनता अमुक प्रकार-से टिकती है और थोड़ा बाहर आते हैं। वह लीनताका ज़ोर बढ़ते-बढ़ते उसकी भूमिका बढ़ती है। और भूमिका बढ़ते-बढ़ते मुनिदशा आकर फिर श्रेणि लगाते हैं।

ज्ञायककी धारा, भेदज्ञानकी धारा सहजपने वर्तती है। उसमें उन्हें स्वरूपमें लीनता निर्विकल्प दशा होती है, ऐसा करते-करते उसकी भूमिका बढ़ जाती है। स्वरूपकी लीनता बढ़ते-बढ़ते उसकी भूमिका चौथेमें-से पाँचवी हो जाती है। लीनता बढ़ती है इसलिये। उसके अनुकूल जो जातके शुभभाव होते हैं, वह भाव आते हैं। उसमें अमुक व्रतादिके आते हैं। ऐसा करते-करते लीनताकी-स्वरूपमें रहनेकी भूमिका बढ़ती जाती है इसलिये छठवां-सातवां गुणस्थान और मुनिदशा हो जाती है। फिर ऐसी दशा हो जाती है कि अंतर्मुहर्त-से ज्यादा बाहर टिक नहीं सकते हैं। इसलिये मुनिदशा आती है। और मुनिदशामें रहते-रहते बाहर ही नहीं जाय ऐसी लीनता हो जाती है इसलिये श्रेणि लगाते हैं।

मुमुक्षु :- चतुर्थ गुणस्थान-से आखिर तक लीनताका एक ही पुरुषार्थ है।

समाधान :- बस, वह लीनताका पुरुषार्थ है। पहले सम्यग्दर्शनकी प्रतीति का बल होता है। उस प्रतीतिके बलपूर्वक लीनताकी परिणति होती है। लीनता अर्थात् चारित्रकी दशा प्रगट होती है। सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूपका आलम्बन है, प्रतीतमें स्वरूपका-द्रव्यका

आलम्बन है। उस आलम्बनपूर्वक लीनताका ज़ोर बढ़ता जाता है।

मुमुक्षु :- अज्ञानीको भी ऐसा द्रव्यका ज़ोर आता है, अज्ञान दशामें?

समाधान :- सम्यग्दृष्टिको जैसा ज़ोर आता है, ऐसा ज़ोर-द्रव्यका आलम्बन नहीं होता है। परन्तु उसकी भावनापूर्वक होता है। वह अभ्यास करता है।

जो सम्यग्दर्शनका ज़ोर होता है वह तो यथार्थ है। उसे द्रव्यका आलम्बन बराबर होता है। अपने अस्तित्वको ग्रहण करके यथार्थपने जो आलम्बन लिया, भेदज्ञान होकर आलम्बन लिया, विभाव-से भिन्न पड़कर मैं यह ज्ञायक हूँ, ऐसा आलम्बन यथार्थपने आ गया, उस आलम्बनका बल उसे अलग होता है। वह आलम्बन ऐसा होता है कि पूरा जगत डोल उठे तो भी उसका आलम्बन अन्दर-से टूटता नहीं। सदाके लिये वह आलम्बन टिका रहता है, ऐसी उसकी भेदज्ञानकी दशा हो जाती है।

(मुमुक्षुको) तो अभ्यासपूर्वक है। इसलिये ऐसा आलम्बन उसे नहीं होता। आलम्बनका अभ्यास करता है। आलम्बन ले, फिर छूट जाय, ऐसा सब होता है।

मुमुक्षु :- ये तो धारावाही और उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है।

समाधान :- वृद्धि पामता है, धारावाही आलम्बन है। जैसी विभावकी एकत्वबुद्धि (होती है), ऐसा जोरदार उसे छूटता ही नहीं। सदाके लिये ऐसा (रहता है)। उसे द्रव्यके आलम्बनका खण्ड नहीं है। ज्ञायककी परिणतिका खण्ड नहीं है। सब विकल्पमें, क्षण-क्षणमें, सब कार्योंमें, जागते-सोते द्रव्यका आलम्बन सदाके लिये छूटता नहीं। ऐसा उसे सहज आलम्बन होता है। सहज प्रतीति, सहज आलम्बन, सहज ज्ञायककी धारा, चैतन्यकी महिमा उसे ऐसी सहज हो गयी कि उसे छूटता ही नहीं। चैतन्यके अलावा कुछ नहीं, बस, एक उसका ही आलम्बन दृढ़पने हुआ है। और उसमें लीनता बढ़ता जाता है।

चैतन्य एक महा पदार्थ आत्मा कोई अपूर्व अनुपम है। वह उसे ग्रहण हो गया। ज्ञायककी ज्ञायकरूप परिणति हो गयी। वह सदाके लिये चालू ही है। जो च्यूत हो गये उसकी कोई बात नहीं है। जिसकी सहज धारा वर्तती है, जो आगे जानेवाला है, उसे सदाके लिये आलम्बन होता है। और वही उसकी दशा है। तो ही वह सम्यग्दृष्टिकी दशा है। भेदज्ञानकी धारा हो तो ही वह दशा है। और भेदज्ञानकी धाराके कारण, उसे स्वानुभूति भी उसी कारण-से होती है। भेदज्ञान ज्ञायककी धारा हो तो स्वानुभूति होती है। स्वानुभूतिकी दशा उसीमें प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- समकितीको शरीर-से भिन्न, ऐसा तो धारावाही लगता ही होगा न?

समाधान :- सहज है। विकल्प-से भिन्न वह सहज है तो शरीर-से भिन्न तो उससे भी ज्यादा सहज है। शरीर तो स्थूल है। स्थूल शरीर-से भिन्न (लगता ही है)। विकल्प-से भिन्न, जो क्षण-क्षणमें विकल्प आते हैं, विकल्प और विभाव परिणतिकी धारा जो

क्षण-क्षणमें होती रहती है, अन्दर जो एकके बाद एक विकल्पकी जाल चलती है, उससे क्षण-क्षणमें भिन्न, धारावाही रूप-से भिन्न रहता है तो उसमें शरीर-से भिन्न तो आ ही जाता है। शरीर-से भिन्नता वह तो एक स्थूल है। उससे भी ज्यादा सूक्ष्म विकल्प-से भिन्नता है।

मुमुक्षु :- मानों कोई दूसरा विकल्प कर रहा हो, उतना भिन्न लगता है?

समाधान :- विकल्प-से मेरा स्वभाव भिन्न है। पुरुषार्थकी मन्दता-से होता है, परन्तु यह मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न भेदज्ञान, ज्ञाताकी परिणति वर्तती है।

मुमुक्षु :- स्वभावमें एकत्व है इसलिये..

समाधान :- स्वभावमें एकत्व है, विभाव-से विभक्त है। जो विभाव-से विभक्त हुआ, वह शरीर-से विभक्त हो ही गया है। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म। भावकर्म-से भिन्न वर्तता है, वह द्रव्यकर्म, नोकर्म-से भिन्न ही वर्तता है। स्थूलता-से शरीर-से भिन्न, भिन्न ऐसा करे, और अन्दर-से भिन्न नहीं पड़ा तो वह वास्तविक भिन्न ही नहीं हुआ। कोई स्थूलता-से ऐसा कहे कि मैं शरीर-से भिन्न-भिन्न (हूँ)। परन्तु यदि विकल्प-से भिन्न नहीं परिणमता है तो शरीर-से भिन्न, वह मात्र अभ्यासरूप है।

मुमुक्षु :- तो चारित्रके दोषको अन्दर थोड़ा भी नहीं गिनना? समकित प्राप्त होनेमें श्रद्धानका ही दोष है?

समाधान :- सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेमें श्रद्धाका ही दोष है। चारित्रका दोष तो उसके साथ-श्रद्धान सम्बन्धित स्वरूपाचरण चारित्र है वह आ जाता है। परन्तु उसे चारित्रमें गिननेमें नहीं आता है। वह श्रद्धामें ही कहनेमें आता है। चारित्रका दोष श्रद्धाको नहीं रोकता। श्रद्धाको श्रद्धाका दोष ही रोकता है। अनन्तानुबन्धी जो कषाय है, उस कषायको श्रद्धाके साथ सम्बन्ध है। वह श्रद्धा जिसकी बदले, उसे अनन्तानुबन्धी कषाय टल ही जाता है। उसे श्रद्धाके साथ सम्बन्ध है। इसलिये अनन्त काल-से श्रद्धाका दोष है।

मुमुक्षु :- तो संयम और नीतिको बिलकूल बीचमें लाना ही नहीं?

समाधान :- जिसे आत्माकी रुचि लगे, जिसे आत्मा ही चाहिये दूसरा कुछ नहीं चाहिये, उसे नीति आदि सब होता ही है। अमुक पात्रता तो उसे होती है। जिसे श्रद्धा पलट जाती है उसे अमुक जातका श्रद्धाके साथ जिसे सम्बन्ध है, ऐसी पात्रता तो होती है। पात्रताके बिना नहीं होता।

मुमुक्षु :- अविनाभावी कहें तो उसमें क्या दिक्कत है?

समाधान :- अविनाभावी तो है, परन्तु वह अनन्तानुबन्धी कषायके साथ सम्बन्ध है। उसे अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानीके साथ सम्बन्ध नहीं है। अनन्तानुबन्धी कषायके साथ सम्बन्ध है। इसलिये अमुक जातकी उसे पात्रता होती है। उसकी रुचि जहाँ पलटती

है, कि एक आत्मा ही चाहिये, जहाँ आत्मार्थीता होती है, एक आत्माका ही प्रयोजन है, उसके कषाय मन्द होते हैं। उसे विषय कषायोंकी लालसा टूट जाती है। एक आत्मा चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। ऐसी उसकी अंतर-से परिणति हो जाती है। उसका नीति, न्यायके साथ सम्बन्ध होता है।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन होनेके बाद नीति ज्यादा बढ़ती है, ऐसा है?

समाधान :- नीतिका सम्यग्दर्शनके साथ जितना सम्बन्ध है उतनी होती है। व्यवहार-से अयोग्य हो ऐसी अनीति उसको नहीं होती। सम्यग्दर्शनके साथ भी नीतिका सम्बन्ध है। सम्यग्दर्शन होने पूर्व भी नीतिका सम्बन्ध होता है। सम्यग्दर्शन होनेका बाद कहीं अनीतिके कार्य करे ऐसा नहीं होता। सम्यग्दर्शन होनेके बाद चाहे जैसा आचरण करे तो कोई दोष नहीं है, ऐसा नहीं है। उसे चाहे जैसा आचरण होता ही नहीं।

जिसे स्वरूप मर्यादा हो गयी है, स्वरूप-से जो बाहर नहीं जाता है, स्वरूपको छोड़कर विभावके साथ एकत्वबुद्धि नहीं करता है, जो स्वरूपकी मर्यादामें ही रहता है, अंतरमें उतनी मर्यादा आ गयी है, उसे स्वरूपाचरण चारित्र और भेदज्ञानकी धारा वर्तती है, ज्ञायककी धारा (वर्तती है), जो कर्ता नहीं होता, स्वरूपमें इतनी मर्यादा आ गयी, उसे बाहरकी मर्यादा, उसे विभावमें मर्यादा आ ही जाती है। जो स्वरूपमें-से बाहर नहीं जाता है, उसे अमुक मर्यादा होती है। तो उसे विभावकी, रागकी सबकी मर्यादा है। उसे नीतिके अमुक कार्य होते ही हैं। उसे सबमें मर्यादा आ जाती है।

जिसे अन्दरमें मर्यादा हो गयी, ज्ञायकको छोडकर कहीं जाता नहीं, ज्ञायककी धाराके अलावा उसकी परिणति कहीं एकत्व नहीं होती, तो उसके प्रत्येक कार्यमें मर्यादा होती है। मर्यादा रहित नहीं होता। उसकी भूमिकाके योग्य उसे सब होता ही है।

मुमुक्षु :- सिंहके भवमें महावीर भगवानको जो समकित प्राप्त हुआ, तो मुँहमें तो अभी मांस था।

समाधान :- वह छूट जाता है। फिर तो उसने छोड़ दिया। मुँहके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अंतर-से परिणति पलट गयी और छूट गया, आहार-पानीका त्याग कर दिया है। जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ सिंहने आहारका त्याग कर दिया है। त्याग करके संथारा किया है और देवलोकमें गया है। उसने छोड दिया, आहार ही छोड़ दिया है। जहाँ सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति हुयी, परिणति पलट गयी वहाँ आहार छोड़ दिया।

मुमुक्षु :- मेरा कहना ऐसा है कि जो सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, उसके पहले हेय और उपादेयका विवेक करने जाय कि उसके पहले आत्माका स्वसंवेदन करनेका प्रयत्न करे?

समाधान :- जो स्वसंवेदन ओर मुड़ा उसमें हेय-उपादेय साथमें ही होता है। सब

साथमें हो जाता है। सिंहके भवमें सब साथमें आ गया। परिणति एकदम नर्म हो गयी, अन्दर पात्रता प्रगट हो गयी, अरे..! ये मैं क्या कर रहा हूँ? ऐसा हो जाता है। अंतर स्वरूप ओर मुड़ जाता है। सब साथमें हो जाता है। अरे..! ये विभावदशामें मैं कहाँ आ गया? स्वभाव ओर परिणति पलट जाती है। सब साथमें (हो जाता है)।

यथार्थ पलटना कब कहा जाय? कि अन्दर भेदज्ञान हुआ तब। और उस यथार्थ पलटनेके साथ सबका अविनाभावी सम्बन्ध है। उसके पहले उसे पात्रताके अमुक भाव आते हैं, अरे..! ये मैं क्या कर रहा हूँ? ऐसा विकल्प आये। परन्तु यथार्थ प्रकार-से जब छूटता है तब एकसाथ छूट जाता है।

मुमुक्षु :- आपने कहा कि तीखा और उग्र पुरुषार्थ करना पड़ेगा। उसमें ज्यादा वांचन करना? ज्यादा सत्संग करना? ज्यादा ध्यान करना?

समाधान :- अंतर परिणतिका ज्यादा पुरुषार्थ करना। उसमें जहाँ उसकी रुचि लगे, उसे वांचनमें परिणतिको ज्यादा लाभदायी दिखे तो वांचनमें जुडे, विचारमें ज्यादा लाभ लगे तो उसमें जुडे, उसे सत्संगमें लाभ होता हो तो उसमें जुडे। उसे जहाँ लाभ होता हो वह करे। परन्तु अन्दर पुरुषार्थ, अन्दर ज्ञायककी उग्रता कैसे हो, ज्ञायकधाराकी और मैं कैसे मेरे चैतन्यकी ओर मेरी परिणति दृढ़ हो, मेरी प्रतीति दृढ़ हो, मैं चैतन्य ही हूँ, यह मैं नहीं हूँ, उसके पुरुषार्थका ध्येय एक ही है। उस ध्येयके साथ जहाँ-जहाँ उसके परिणामको ठीक पड़े, जहाँ उसके परिणाम टिक सके और वृद्धि हो, ऐसे कार्योंमें जुड़े।

ध्यानमें उसे ठीक लगे तो ध्यानमें जुडे। परन्तु ध्यानके साथ यथार्थ ज्ञानके विचार, यथार्थ ज्ञानपूर्वक ध्यान होता है। अपने स्वभावको पीछाने विचार करके कि यह ज्ञायक है वही मैं हूँ। फिर उसमें एकाग्र होनेका प्रयत्न करे। वह एकाग्रता उसका ध्यान है। उसमें ध्यान-से उग्रता होती हो तो ध्यान करे। परन्तु वह ध्यान ज्ञानपूर्वकका ध्यान होना चाहिये। बिना समझे ध्यान करे या विकल्प छोड़े, कहाँ खड़े रहना? अपना अस्तित्व ग्रहण किये बिना, समझ बिना ही ध्यान करे तो कोई लाभ नहीं है। समझकर ध्यान करे कि मैं यह चैतन्य हूँ और यह मैं नहीं हूँ। फिर उसमें एकाग्र होनेका तीखा पुरुषार्थ करे तो लाभ हो। लेकिन वह यथार्थ समझपूर्वक होना चाहिये।

एकाग्रताकी उग्रता करके विभाव-से भिन्न पड़नेका प्रयत्न करे। परन्तु उसको यथार्थ ज्ञान करनेके लिये विचारके साथ वांचन, सत्संग, यथार्थ ज्ञान करनेके लिये वह होता है। फिर एकाग्रता करनेके लिये वह ध्यान करे, परन्तु समझपूर्वकका ध्यान होना चाहिये। ज्ञानपूर्वकका ध्यान होना चाहिये।

मुमुक्षु :- जो वांचन करने-से, जो विचार करने-से आत्मा विभावसे, विभावके

कार्योंसे भिन्न नहीं हुआ वह वांचना, पढ़ना मिथ्या है। तो हमारी समझके साथ-साथ हेय और उपादेयका विवेक क्यों प्रगट नहीं होता है? या हम सिर्फ दिखाव करनेके लिये यहाँ आते हैं या फिर आत्मप्राप्तिकी कुछ इच्छा नहीं हो रही है? भवभ्रमणका त्रास नहीं लगता है?

समाधान :- पुरुषार्थकी मन्दता है।

मुमुक्षु :- आप ज्ञानी हों इसलिये आपके पास बैठते हैं।

समाधान :- दिखानेके लिये नहीं परन्तु अपनी रुचिकी मन्दता है, पुरुषार्थकी मन्दता है। अन्दर उतनी लगी नहीं है कि यह छूटकर अन्दर जाना है। उतनी उग्रता नहीं है। उतनी उग्रता नहीं होती है तबतक विचार, वांचन, सत्संग करता रहे, परन्तु अंतरमें करना वही है। भेदज्ञानकी परिणति करना वह है, उसकी एकाग्रता करनी। चारित्रपूर्वकका ध्यान बादमें मुनिदशामें हो, परन्तु ये सम्यग्दर्शन सम्बन्धित ध्यान, या भेदज्ञान हो ऐसा ध्यान पहले होता है। परन्तु वह ध्यान ज्ञानपूर्वकका ध्यान होना चाहिये। यथार्थ ज्ञान हो तो वह ध्यान यथार्थ होता है। परन्तु उतनी स्वयंकी मन्दता है। विचार, वांचन, सत्संग करके बारंबार नक्की करे, उसे दृढ़ करे। जबतक न हो तबतक सत्संग, विचार, वांचन करता रहे। नहीं हो रहा है उसका कारण अपनी मन्दता है। दिखानेके लिये करता है ऐसा नहीं, परन्तु मन्दता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७१

मुमुक्षु :- ज्ञानीके आश्रयमें रहे हुए जीवको ज्ञानी जरूर समझाते हैं, ऐसा शास्त्रमें आता है। श्रीमद्जीने भी लिखा है। कहीं अटकता हो तो। तो हम कहाँ अटके है?

समाधान :- वह अटकता है अपने पुरुषार्थकी मन्दता-से। अपनी तैयारी हो तो स्वयं समझे बिना रहता ही नहीं। गुरुदेवने कितने उपदेशकी धारा बरसायी है। निरंतर स्पष्ट कर-करके दिया है। कहीं भूल न रहे इतना समझाया है। परन्तु अपने पुरुषार्थकी मन्दताके कारण अटका है, दूसरा कोई कारण नहीं है। अपनी मन्दता (है)। गुरुदेव कहते थे, 'निज नयननी आळसे निरख्या नहीं हरिने'। अपने नयनकी आलसके कारण स्वयं अन्दर देखता नहीं है। अपना ही कारण है। सुने, विचार करे, वांचन करे, परन्तु अंतरमें देखता नहीं है वह अपना कारण है। अपनी आलस है।

मुमुक्षु :- ज्ञानी सम्बन्धित आता है कि ज्ञानीको आसक्ति है, परन्तु रुचि नहीं है। तो आसक्ति और रुचिमें क्या फ़र्क़ है? हमें भी आसक्ति नहीं हो सकती?

समाधान :- ज्ञानीको रुचि नहीं है, परन्तु आसक्ति है, ऐसा आता है न?

मुमुक्षु :- हाँ, वह आता है। कलके शीलपाहुड़में आया था।

समाधान :- रुचि नहीं है, रुचि उठ गयी है। भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो गयी है। रुचि परपदार्थकी सर्व प्रकार-से उठ गयी है। चैतन्य तरफकी परिणति एकदम प्रगट हो गयी है। परन्तु आसक्ति (है)। अभी उसे उतनी वीतराग दशा नहीं है, इसलिये अमुक जातका रागका, द्वेषका परिणाम उत्पन्न होता है। रुचि छूट गयी है। रुचि कैसी? सम्यग्दर्शनकी भूमिकाकी रुचि नहीं, ये तो सम्यग्दर्शनमें जिसे रुचि कहते हैं, सम्यग्दर्शनके साथ रुचि-प्रतीति कहनेमें आती है, ऐसी रुचि उसे सम्यग्दर्शनमें पलट गयी है। अतः मात्र आसक्ति है।

जिज्ञासुकी भूमिकामें अभी उसे रुचि जो यथार्थ रूपसे, जो सम्यग्दर्शनमें रुचि-प्रतीति होती है, वैसी नहीं है, उसे जिज्ञासाकी रुचि है। उसे तो रुचि एवं आसक्ति दोनों खड़े हैं। इसे तो रुचि पलट गयी है। आसक्ति मात्र खड़ी है। जिज्ञासुकी भूमिकामें रुचि, आसक्ति दोनों है। वह मन्दता करता रहता है। उसकी भावना करता है, अभ्यास करता है।

मुमुक्षु :- मन्दता है या विपरीतता गिननी?

समाधान :- मन्दता कहनेमें आती है। गुरुदेवने बहुत समझाया है, स्वयंने विचार किया है। मन्दता है। आचार्य, गुरुदेव उपदेशमें कहे कि इतना उपदेश देनेके बाद भी तू जागृत नहीं हो रहा है, तेरी कितनी विपरीतता है। ऐसा उपदेशमें कहे। उपदेशमें ऐसा आये। उपदेशमें ऐसा कहे, उपदेशमें ऐसा आये। अपनी मन्दताके कारण स्वयं अटका है।

इतना गुरुदेवका उपदेश, आचार्य इतना कहे फिर भी तू उसीमें पड़ा है, यह तेरी कितनी विपरीतता है। विपरीतताका अर्थ यह कि तेरी कितनी मन्दता है कि तू जागृत नहीं हो रहा है। उसकी प्रतीति-रुचि-जूठी है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। मन्दता है।

सम्यग्दृष्टिको आसक्ति कहनेमें आती है, परन्तु उसे अनन्त टूट गया है। अनन्त संसारकी जो एकत्वबुद्धि, अनन्तता टूट गयी है। अब अल्प रहा है उसे आसक्ति मात्र कहनेमें आता है। उसे वास्तवमें कुछ आदरने योग्य नहीं है। उसे श्रद्धामें-से तो सब निकल गया है। करना, करवाना, अनुमोदन सब श्रद्धामें-से छूट गया है। उसे किसी भी प्रकारकी आसक्ति उसकी श्रद्धामें नहीं है। विभावका उसने नौ-नौ कोटि-से त्याग किया है कि ये आदरने योग्य नहीं है, अनुमोदन करने योग्य नहीं है, उसमें जुड़ने योग्य नहीं है, कुछ नहीं है। उतनी उसकी जोरदार प्रतीति ज्ञायकधाराकी है कि उसे सब कुछ छूट गया है। अनन्त-अनन्त रस उसका टूट गया है। उसकी श्रद्धामें उतना बल है कि उसका त्याग किया है। उसकी दृष्टि, पूरी दिशा स्वरूप तरफ चली गयी है। स्वयंको हो निहारता है। अल्प पर ओर जाता है तो दृष्टि अपनी ओर चली गयी है। लेकिन अभी उसमें खड़ा है इसलिये उसे उतनी अस्थिरताकी आसक्ति है। एकत्वबुद्धिकी आसक्ति नहीं है, वह टूट गयी है।

श्रद्धामें-से उसका पूरा परिणमन चक्र चैतन्य स्वभाव तरफ चला गया है। विभाव तरफ उसकी परिणतिका चक्र था वह स्वभाव ओर चला गया है। अभी अल्प अस्थिरता है। उसके अमुक जो भव होते हैं, उसकी अस्थिरताकी परिणति (है)। अनन्त रस टूट गया। अनन्त भवका जो था वह अनन्तता टूट गयी है।

मुमुक्षु :- तीव्रता करनेके लिये क्या करना?

समाधान :- तीव्रता करनेके लिये स्वयंको ही करना है। अपनी जरूरत अपनेको लगे कि मुझे मेरे स्वभावकी जरूरत है। ये कोई जरूरत नहीं है, ये सब जरूरत बिनाका है। अपनी जरूरत लगे कि मुझे मेरे स्वभावकी जरूरत है। और मुझे स्वभाव चाहिये। उसकी जरूरत है। उसमें ही सब भरा है। उसकी यदि जरूरत लगे तो उसकी तीव्रत हो।

ऐसे मनुष्य भवमें ऐसे गुरुदेव मिले, इसलिये तुझे पलटा करके ही छूटकारा है। इस तरह अपनी जरूरत लगे तो उसकी रुचिकी तीव्रता हो। एकत्वबुद्धि नहीं टूटती

है। उसे तोड़नेका अभ्यास करे। बारंबार-बारंबार वह करे तो स्वयं जागृत हुए बिना रहता ही नहीं; उसका अभ्यास करे तो।

बालक हो वह चलना सीखे, ऐसा करे, वैसा करे। बालक भी ऐसा करता है। वैसे बारंबार वह समझपूर्वक अभ्यास करे कि मैं ज्ञायक हूँ। वह तो बालक है, समझता नहीं है। वैसे अपनी ओर स्वयं बार-बार अभ्यास करे कि ये कुछ नहीं चाहिये। गुरुदेवने कहा कि तू चैतन्य है, उस चैतन्यको पहिचान, उसमें तू लीन हो। वही करने जैसा है। बारंबार उसकी जरूरत लगे तो वह करता ही रहे। उसमें-से उसका फल आये बिना रहता ही नहीं, यदि यथार्थ अभ्यास करे तो।

मुमुक्षु :- ... गुफा तक जाना हो तो सवारी काम आये, फिर उसे छोड़कर अन्दर जाना पड़ता है। वैसे धारणाज्ञानको छोड़कर अन्दर कैसे कूदना?

समाधान :- वह अभ्यास करता रहे। उसकी परिणतिका पलटा स्वयं ही खाती है। स्वयं अभ्यास करता है।

मुमुक्षु :- कभी लगता है, सामान्य मेंढकको सम्यग्दर्शन हो जाता है। तो वह कैसी बुद्धि है?

समाधान :- उसकी परिणति उतनी जोरदार शुरू होती है कि अंतर्मुहूर्तमें पलट जाती है। अंतर्मुहूर्तमें उतना उग्र प्रयत्न, उग्र परिणति ऐसी होती है कि एक अंतर्मुहूर्तमें पलट जाय। और किसीको अभ्यास करते-करते पलटती है। चैतन्यका चक्र, पूरी दिशा जो पर ओर थी, उसकी पूरी दिशा अंतर्मुहूर्तमें पलट जाती है। उपयोग अभी थोड़ा बाहर जाता है, परन्तु क्षणभरके लिये तो उसे निर्विकल्प दशामें पूरा चक्र अपनी तरफ पलट जाता है। वह चैतन्यकी ऐसी कोई अद्भुत शक्ति है। अचिंत्य चैतन्यदेव ही ऐसा है कि पलटे तो अपने-से अंतर्मुहूर्तमें पलट जाता है। और न पलटे तो अनन्त काल व्यतीत हो जाता है। ऐसा है।

मुमुक्षु :- शास्त्रका अभ्यास, सत्संग, वैराग्य इत्यादि साधक किस प्रकार-से? और बाधक किस प्रकार-से?

समाधान :- गुरुदेवने बहुत समझाया है। गुरुदेवने तो मार्ग बताया है। वस्तु स्वरूप क्या है? साधक क्या? बाधक क्या? सब बताया है। परन्तु वह साधक तो जबतक अंतरमें स्वरूपको समझता नहीं है, अंतरमें स्थिर नहीं होता है, इसलिये वह बीचमें आता है। बाकी वह ऐसा माने कि ये सब सर्वस्व है और इसीमें धर्म है, ऐसा माने तो, सर्वस्व माने तो वह नुकसानकर्ता है।

बाकी ऐसा माने कि ये तो राग है। वह राग कहीं आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा तो उससे जुदा और अत्यंत भिन्न है। आत्मा तो वीतरागस्वरूप है। श्रद्धा तो

उसकी ही करनी है, ध्येय तो उसीका रखना है कि मैं सर्व प्रकारके राग-से भिन्न ही हूँ। मेरा चैतन्य स्वभाव भिन्न और ये भिन्न हैं। परन्तु बीचमें श्रुतका अभ्यास, सत्संग, वैराग्य आदि मुमुक्षुकी भूमिकामें उसे आये बिना नहीं रहता। इसलिये वह बीचमें होता है। जबतक वह समझता नहीं है, सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है और सम्यग्दर्शन हुआ हो तो भी बीचमें वह शुभभाव तो आते हैं। सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें उसे श्रद्धामें-से छूट गया है। मैं तो वीतराग स्वरूप हूँ, ज्ञायक हूँ, राग स्वभाव कहीं आत्माका नहीं है। राग-से आत्मा अत्यंत भिन्न है। सम्यग्दर्शनमें तो उसे वह प्रतीति हो गयी है। स्वानुभूति हो गयी है। राग वह कहीं आत्माका स्वरूप नहीं है, वह तो विभाव है। इसलिये उसे बाधक कहनेमें आता है।

विभाव है इसलिये बाधक है, परन्तु बीचमें आये बिना नहीं रहता। इसलिये अशुभ परिणाम-से बचनेको शुभभाव आते हैं। स्वभावकी जिससे पहिचान हो ऐसा श्रुतका अभ्यास, गुरुकी वाणीका श्रवण, जिनेन्द्र देवकी भक्ति आदि सब बीचमें आये बिना नहीं रहता। बीचमें आता है तो भी जब निर्विकल्प दशा होती है, वह सब विकल्पकी जाल है, इसलिये उसमें अटकना नहीं है कि इतना श्रुतका अभ्यास कर लूँ कि यह कर लूँ, उसमें यदि रुके तो वह राग आत्माका स्वरूप नहीं है। यदि निर्विकल्प दशा होती हो तो वह सब छूट जाता है। उसमें वह नहीं रहता। वीतराग दशा होती है। उसमें राग-शुभभाव रखने जैसा नहीं है। वीतराग होना वही आत्माका स्वरूप है। ध्येय तो वही रखनेका है।

मुनिओंको कहनेमें आता है न कि शुभ आचरण या अशुभ आचरणरूप कर्म, वह तो विभाव अवस्था है। तो निष्कर्म अवस्थामें मुनि कुछ न करे, आचरण न हो तो वे कहीं अशरण नहीं हो जाते, वे तो स्वरूपमें अमृत पीते हैं। जो स्वरूपकी साधना और निर्विकल्प दशा होती हो और चारित्रकी लीनता, निर्विकल्प दशा होती हो, चारित्रकी लीनता होती हो और वह छूट जाय तो वह तो आत्माका स्वरूप ही है, वीतराग दशा है। उन्हें वह होता हो और उसमें रुके तो वह तो बाधक है। परन्तु अशुभ-से बचनेके लिये वह शुभभाव बीचमें आये बिना नहीं रहते। प्रारंभमें भी आते हैं। सम्यग्दर्शन हुआ, अभी वीतराग दशा नहीं हुयी है तो आता है। मुनिओंको भी बीचमें होता है। परन्तु छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते मुनि जब बाहर आते हैं तब शुभभाव होते हैं। अंतरमें स्थिर होते हैं तो निर्विकल्प दशामें तो छूट जाता है। इसलिये कोई अपेक्षा-से उसे बीचमें आता है और वह अपना स्वरूप नहीं है, विभावभाव है, इसलिये वह बाधक है।

मुमुक्षुको तो ध्येय वह रखनेका है कि मैं वीतराग स्वभाव हूँ, मैं चैतन्य हूँ। ये

सब मेरा स्वरूप नहीं है। तो भी उस भूमिकामें श्रुतका अभ्यास, गुरु-वाणीका श्रवण, गुरु-सेवा, गुरु-भक्ति, जिनेन्द्र भक्ति इत्यादि (सब होता है)। जिन्होंने वह स्वरूप प्रगट किया, ऐसे पंच परमेष्ठी भगवंतोंकी भक्ति उसे आये बिना नहीं रहती। उसकी श्रद्धामें ऐसा होना चाहिये कि ये राग मेरा स्वरूप नहीं है, मैं राग-से अत्यंत भिन्न हूँ।

परन्तु जिस स्वरूपकी स्वयंको प्रीति हो, वह जिसने प्रगट किया, उस पर उसे भक्ति आये बिना नहीं रहती। और प्रथम भूमिकामें उसका अभ्यास, चिंतवन, मनन करे, आत्माका स्वरूप प्रगट करनेके लिये। मेरी आनन्द दशा कैसे प्रगट हो, इसलिये वह बीचमें आये बिना नहीं रहता। श्रद्धामें ऐसा होना चाहिये कि मैं इससे अत्यंत भिन्न हूँ। मेरे स्वभावकी पहिचान कैसे हो, ऐसे श्रद्धामें होना चाहिये। परन्तु वह आचरणमें आये बिना नहीं रहता। रागदशा है तबतक।

इस क्षण वीतराग हुआ जाता हो, ये छूट जाता हो, तो वीतराग दशा ही आदरणीय है। विकल्पकी जाल छूट जाती हो तो निर्विकल्प दशा-आनन्द और स्वानुभूतिकी दशा ही आदरणीय है।

मुमुक्षु :- आचरणमें आवे, परन्तु उसका निषेध करनेकी... जो श्रद्धामें पड़ा है, इसलिये उसका निषेध होता रहता है। तो जैसा उसे बाहरका निषेध श्रद्धामें है, वैसा उसे विकल्पमें भी निषेध आता है?

समाधान :- श्रद्धामें उसे क्षण-क्षणमें (ऐसा होता है कि) मैं इससे भिन्न हूँ। ऐसा विकल्पमें निषेध नहीं, श्रद्धामें निषेध हुआ इसलिये सब निषेध आ गया। उसे श्रद्धामें अत्यंत निषेध है। कोई अपेक्षा-से आदरणीय नहीं है। उसकी श्रद्धामें सर्व प्रकार-से वह निषिध्य ही है।

विकल्पमें तो ऐसा होता है कि मैं वीतराग हो जाऊँ तो मुझे ये कुछ नहीं चाहिये। ऐसा भावनामें है। ये विकल्प जाल मुझे चाहिये ही नहीं, ऐसा उसकी भावनामें रहता है। बाकी श्रद्धामें (ऐसा होता है कि) ये मेरा स्वरूप ही नहीं है। विकल्पमें अर्थात् उसे बुद्धिमें तो ऐसा रहता है कि ये कुछ आचरने योग्य नहीं है, परन्तु श्रद्धामें तो परिणतिरूप रहता है। वह तो एक ज्ञानमें रहता है। परिणतिरूप ऐसा ही रहता है कि मैं इससे अत्यंत भिन्न हूँ, ऐसी भेदज्ञानकी परिणति क्षण-क्षण निरंतर वर्तती है कि चाहे सो राग आये, मैं उससे अत्यंत भिन्न हूँ। उसकी परिणति उसे क्षण-क्षणमें सहज रहती है। परन्तु अशुभ परिणाम-से बचनेको शुभभाव (बीचमें आते हैं)।

जो स्वभाव स्वयंने प्रगट किया, वह जिसने प्रगट किया ऐसे देव-गुरु-शास्त्र पर उसे भक्ति आये बिना नहीं रहती। ज्ञानमें भी उसे ख्याल है कि ये कुछ आदरने योग्य नहीं है। विकल्पमें और ज्ञानमें ऐसा है कि दोनों आदरने योग्य नहीं है। मात्र आचरणमें

आता है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें आता है कि रागका रस फ़िका पड़ जाता है। राग तो रहता है, लेकिन सम्यग्दृष्टिको रस फ़िका पड़ जाता है।

समाधान :- उसे, रागका स्वामीत्व (नहीं है)। राग मेरा स्वरूप नहीं है, अस्थिरताका राग खड़ा रहता है, परन्तु राग पर प्रीति नहीं है। ये राग आदरणीय नहीं है, यह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो वीतरागस्वरूप हूँ। इसलिये रागका रस फ़िका पड़ जाता है। उसकी एकत्वबुद्धि टूट जाती है।

ये राग मेरा स्वरूप ही नहीं है। उससे अत्यंत भिन्न परिणति रहती है। उसमें अनन्त रस निकल जाता है। उसकी स्वामित्व बुद्धि, उसका रस (टूट गया है)। राग खड़ा रहे तो भी रागका राग नहीं है। राग रखने योग्य नहीं है और राग मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसी ज्ञायक दशा उसे प्रतिक्षण वर्तती ही है।

जब वैसी परिणति अन्दर हो तो विकल्प टूटकर स्वानुभूतिकी दशा परिणमित हो जाती है। रागका रस तो ऊतर गया है, परन्तु अस्थिरताके कारण वह रागमें रुखे भाव-से जुड़ता है। उसे भेदज्ञानकी परिणति (चलती होने-से) भिन्न भाव-से जुड़ता है। न्यारी परिणति है।

मुमुक्षु :- आत्मामें सुख भरा पड़ा है, तो उसका निर्णय करनेकी रीत क्या है?

समाधान :- आत्मामें सुख है। आचार्यदेवने, गुरुदेवने अनेक प्रकार-से उसका स्वभाव बताकर अनेक युक्ति-से, दलील-से आचार्यदेव कहते हैं, गुरुदेव कहते हैं कि हम स्वानुभूति करके कहते हैं कि आत्मामें सुख है। फिर उसका निर्णय करना वह तो अपने हाथकी बात है, निर्णय कैसे करना वह।

उसकी अनेक युक्तियोँ-से, दलीलों-से सर्व प्रकार-से। आगम, युक्ति और स्वानुभूति, सर्व प्रकार-से गुरुदेव और आचार्य कहते हैं। गुरुदेवने तो उपदेश देकर बहुत स्पष्ट (किया है), सब सूक्ष्म प्रकार-से अपूर्व रीतसे समझाया है। निर्णय तो स्वयंको ही करना है।

मार्ग बताये, कोई मार्ग पर जा रहा हो उसे मार्ग बताये, चलना तो स्वयंको है। निर्णय तो स्वयंको ही करना है। जो सुखकी इच्छा करता है, जहाँ-तहाँ सुखकी कल्पना करनेवाला है। किसी भी भावोंमें, किसी भी रागमें, किसी भी कार्यमें जो सुखकी कल्पना करनेवाला, सुखकी कल्पना करके जो सुख मानता है, वह सुखकी कल्पना करनेवाला स्वयं सुखस्वभावी है। इसलिये कल्पना करता है। जो सहज सुखस्वभावी, जो सहज आनन्द स्वभावी है। अपनी ओर दृष्टि नहीं है, सहजरूप परिणमता नहीं है। जो अन्यमें सुखकी कल्पना करनेवाला है, जो चैतन्य है, जहाँ-तहाँ सुखकी कल्पना (करनेवाला है), जहाँ सुख नहीं है, वहाँ कल्पना करके सुखको स्वयं वेदता है, सुख मान रहा

है, वह स्वयं सुखस्वभावी है। इसीलिये सुख मान रहा है।

वह जड़ नहीं मानता है। सुख स्वभाव अपना है, इसलिये जहाँ-तहाँ आरोप करके सुखकी कल्पना करता रहता है। वह स्वयं सुखका भण्डार है, इसलिये परमें सुखकी कल्पना करता है। परन्तु परमें सुख नहीं है। दृष्टि विपरीत है, बाहर सुख माना है। अन्दर अपना स्वतःसिद्ध, अनादिअनन्त सहज सिद्ध स्वभाव सुख अपना है। जैसे ज्ञान अपना है, जो जानन स्वभाव हर जगह जाननेवाला ही है, वैसे सुखस्वभाव भी सहज स्वरूप-से अपना ही है। इसलिये जहाँ-तहाँ कल्पना करके शान्ति मानता है, सुख मानता है। वह स्वयं ही मान रहा है।

जैसे जाननेवाला हर जगह जाननरूप ही रहता है, वैसे सुखकी कल्पना स्वयं ही कर रहा है। वह स्वयं सुखका भण्डार है, वही सुखकी कल्पना करनेवाला है। इसलिये सुख अपनेमें रहा है। इसलिये जहाँ-तहाँ (सुखकी कल्पना करता है)। आचार्यदेव अनेक बार कहते हैं, गुरुदेव कहते हैं, सुख अपनेमें है। मृगकी नाभिमें कस्तूरी (है)। (कस्तूरीकी) सुगन्ध हर जगह आ रही है, उसे चारों ओर ढूँढता है।

वैसे स्वयं सुखस्वभावी सुखकी कल्पना जहाँ-तहाँ बाहरमें कर रहा है। वह स्वयं ही सुखका भण्डार स्वतःसिद्ध आनन्द वस्तु वह स्वयं ही है। वह स्वतःसिद्ध है, परन्तु वह जहाँ-तहाँ मान रहा है। गुरुदेवने बताया है, आचार्यदेवने बताया है।

मुमुक्षु :- कल्पनाके पीछे सुख पड़ा है।

समाधान :- कल्पनाके पीछे सुखस्वभाव अपना है। वह स्वयं कल्पना कर रहा है। जहाँ-तहाँ खाकर, पी कर, घूमकर, जहाँ-तहाँ मानमें, इसमें-उसमें यहाँ-वहाँ सुख माननेवाला वह सुखस्वभावी स्वयं है।

मुमुक्षु :- सुख कहीं दूर नहीं है।

समाधान :- सुख दूर नहीं है। स्वयं, अपनेमें सहज स्वभावमें सुख है। विकल्पकी जाल और विभावको छोड़े, विकल्प ओरकी दृष्टि, आकुलता-से वापस मुडे, भेदज्ञान करे और स्वयं निर्विकल्प स्वरूपमें जाय तो सुख जो सहज स्वभाव है, वह सुखका सागर अपनेमें-से प्रगट हो ऐसा है। वह बाहर कल्पना करता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७२

मुमुक्षु :- आत्माका ज्ञानस्वभाव अनन्त है, वह तो अनन्त ज्ञेय पर-से ख्याल आता है कि एक समयमें तीन काल तीन लोकको जाने उतना परिपूर्ण सामर्थ्य भरा है। अनन्त सुख हम कहते हैं, परन्तु अनन्त यानी उसका कोई ख्याल नहीं आता है। अनन्त यानी कितना और किस प्रकार-से? जैसे ज्ञानका थोड़ा विचार करते हैं तो ज्ञानमें थोड़ा विचार लंबाता है। परन्तु सुखमें उतना लंबाता नहीं है।

मुमुक्षु :- ज्ञानकी बाहर-से कल्पना करी कि चाहे जितने ज्ञेयोंको जाने, एक समयमें जाने, वह बाहर-से निर्णय हुआ है। परन्तु वह ज्ञेय-से ज्ञान है, ऐसा नहीं है, ज्ञान तो स्वतः है। ज्ञान अनन्त-अनन्त भण्डार है। चाहे जितना तो भी खत्म नहीं होता। ज्ञेयों-से ज्ञान है, ऐसा नहीं। अनन्त काल पर्यंत परिणमे तो भी ज्ञान खत्म नहीं होता और अनन्त जाने तो भी ज्ञान खत्म नहीं होता, ऐसा अनन्त ज्ञान है।

वैसे सुख भी स्वतःसिद्ध है। अनन्त काल पर्यंत सुखरूप परिणमे तो भी सुख खत्म नहीं होता है। और वह सुख जो प्रगट होता है वह स्वयं अनन्त (है)। इतना सुख और उतना सुख, ऐसे नहीं, परन्तु सर्व प्रकार-से सर्व अंश-से पूरे असंख्य प्रदेशमें अनन्त-अनन्त, जिसकी कोई सीमा नहीं है ऐसा सुखका स्वभाव स्वयं ही है। उसे बाहर-से नक्की करना वह स्वतःसिद्ध वस्तु नहीं है।

जैसे ज्ञानको बाह्य ज्ञेयों-से नक्की करनेमें आये, वह तो स्वतःसिद्ध है, वह तो ज्ञेयों-से जाननेमात्र नक्की करनेके लिये है। जैसे ज्ञान स्वतःसिद्ध है, वैसे सुख भी स्वतःसिद्ध अनन्त ही है। उसके अनन्त गुण, अनन्त सामर्थ्य-से भरा हुआ, ऐसा सुख भी अनन्त काल पर्यंत खत्म नहीं होता और जो प्रगट होता है वह भी अनन्त है। उसके अनन्त-अनन्त अंशों-से भरा है। उसके अविभाग प्रतिच्छेद आदि सब अनन्त ही है। जो प्रगट हो उसके अंशमें अनन्त है और उसके अविभाग प्रतिच्छेद सब अनन्त ही हैं।

मुमुक्षु :- वर्तमानमें आकुलताका स्वाद आता है। इसलिये सुखकी एक कल्पना (करनी पड़ती है कि) अनाकुलता लक्षण सुख। परन्तु वास्तविक स्वाद नहीं आया है, इसलिये उसकी मात्र कल्पना होती है। ज्ञानमें तो अंश प्रगट है, इसलिये उसे तो अनुमान-से स्पष्ट (ज्ञानमें) लिया जाता है कि यह ज्ञान और ऐसा परिपूर्ण ज्ञायक वह आत्मा।

ऐसा सुखमें ख्याल नहीं आता है।

समाधान :- ज्ञान है वह ऐसा असाधारण गुण है, वह चैतन्यका ऐसा विशेष गुण है कि उसे उस प्रकार-से नक्की किया जा सकता है। यह सुख है, वह ज्ञानकी भाँति, जैसे ज्ञेयोंको जानने-से (ज्ञान) नक्की होता है, वैसे वह सुखगुण ज्ञानकी भाँति वैसा असाधारण उस जातका गुण नहीं है। इसलिये उसे नक्की करना मुश्किल पड़ता है। तो भी उसका एक वेदन स्वभाव है। बाहर जहाँ-तहाँ सुखकी कल्पना कर रहा है, उस पर-से भी जिसे जानना हो, जिस मुमुक्षुको सुखका स्वभाव जानना हो, तो बाहर जो सुखकी कल्पना करनेवाला है वह स्वयं सुखस्वभावी है। इस प्रकार उसे नक्की किया जा सकता है, यदि वह करना चाहे तो।

उसका लक्षण उतना ही दिखता है कि सुखकी कल्पना बाहर कर रहा है। वह उसका लक्षण है। बाकी ज्ञानकी भाँति, जैसे ज्ञानगुण असाधारण है, वैसा वह नहीं है। तो भी जड़में कहीं सुखगुण नहीं है। सुखगुण एक चैतन्यमें ही है। जड़ जैसे जानता नहीं है, वैसे जड़में सुखका कोई स्वभाव भी नहीं है। सुखका स्वभाव आत्मामें ही है। इसलिये वह कल्पना कर रहा है, अतः वह सुख स्वभाव आत्माका है। ऐसे नक्की किया जा सकता है। परन्तु अंतर-से स्वयं बराबर बिठाये तो नक्की कर सकता है।

मुमुक्षु :- समयसारकी प्रथम गाथामें श्री गुरु अपने आत्मामें और श्रोताओंके आत्मामें अनन्त सिद्धोंकी स्थापना करते हैं। तो श्रोताको अनन्त सिद्धोंकी स्थापना करनी, उसमें क्या करनेको कहनेमें आता है?

समाधान :- जो गुरुदेव समझाये और आचार्य ऐसा कहते हैं कि मैं तेरे आत्मामें अनन्त सिद्धोंकी स्थापना करता हूँ अर्थात् तू सिद्ध भगवान जैसा ही है। जैसे अनन्त सिद्ध है, वैसा ही तू है, ऐसा हम तुझे स्थापना करके कहते हैं, इसलिये तू स्वीकार कर कि तू सिद्ध भगवान जैसा ही है। और सिद्ध भगवानके स्वभाव जैसा तेरा स्वभाव है, अतः तू उस रूप परिणमन कर और पुरुषार्थ कर सके ऐसा है। ऐसा तू स्वीकार कर। ऐसा आचार्यदेव एवं गुरुदेव ऐसा कहते हैं कि हम तेरे आत्मामें सिद्ध भगवानकी स्थापना करते हैं कि तू सिद्ध भगवान जैसा है। ऐसा तू स्वीकार कर।

ऐसा श्रोताओंको स्वयंको स्वीकार करना है। जो गुरु कहते हैं, सामने श्रोता ऐसे हैं कि स्वीकार करता है कि मैं सिद्ध भगवान जैसा हूँ। इसलिये जो गुरु कहते हैं, उसका मैं स्वीकार करके परिणमित हो जाऊँ। ऐसा स्थापना करनी है। जैसे अनन्त सिद्ध है, वैसा ही मैं सिद्ध भगवान जैसा ही हूँ। मेरा स्वभाव वैसा ही है, इसलिये मैं उस रूप हो सकू ऐसा हूँ। मेरेमें कुछ नहीं है और मैं कैसे करुँ, ऐसा नहीं है।

गुरुदेव और आचार्यों सिद्ध भगवानकी स्थापना करते हैं। श्रोताके आत्मामें (स्थापना

करके कहते हैं कि) तू सिद्ध भगवान जैसा है, तू स्वीकार कर। जैसे सिद्ध भगवान है, वैसा ही तू है। ऐसे स्थापना (करते हैं)। आचार्यदेव और गुरुदेव कृपा करके शिष्यको सिद्ध भगवान जैसा कहते हैं कि तू सिद्ध है, तू भगवान है, ऐसा स्वीकार कर। अतः यदि पात्र श्रोता हो तो वह स्वीकार कर लेता है कि हाँ, मैं सिद्ध भगवान जैसा हूँ। उसे यथार्थ परिणमन भले बादमें हो, परन्तु पहले ऐसा नक्की करे कि हाँ, मझे गुरुदेवने कहा कि तू सिद्ध भगवान (जैसा है), तो मैं सिद्ध भगवान जैसा हूँ। ऐसा तू स्वीकार कर, ऐसा स्थापना करके कहते हैं। हम तुझे सिद्ध भगवान जैसा मानकर ही उपदेश देते हैं। तू नहीं समझेगा ऐसा मानकर नहीं कहते हैं। तू सिद्ध भगवान जैसा ही है, ऐसा तू नक्की कर। तो तेरा पुरुषार्थ प्रगट होगा।

मुमुक्षु :- अंतरमें मनोमंथन करके व्यवस्थित निर्णय करनेमें क्या-क्या आवश्यकता है?

समाधान :- वह तो अपनी पात्रता स्वयंको ही तैयार करनी है। स्वयं कहीं अटकता हो, स्वयंको कुछ बैठता न हो। मुख्य तो है, तत्त्वविचार करना। उपादान-निमित्त, स्वभाव-विभाव, क्या मेरा स्वभाव है, क्या विभाव है, मेरे चैतन्यके द्रव्य-गुण-पर्यायके क्या है, परद्रव्यके द्रव्य-गुण-पर्याय, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय, मैं विभाव स्वभाव-से कैसे भिन्न पड़ूँ, सब स्वयंको अपने आप नक्की करना है। उसका मंथन करके एकत्वबुद्धि कैसे टूटे, आत्मा भिन्न कैसे हो, भेदज्ञान कैसे हो, उसका अंश कैसा होता है, उसकी पूर्णता कैसी होती है, उसकी साधक दशा कैसी होती है।

गुरुने जो अपूर्व रूप-से उपदेश दिया, गुरुको साथ रखकर स्वयं नक्की करे कि ये स्वभाव मेरा है, ये विभाव भिन्न है। ऐसा बराबर मंथन कर-करके अपने-से नक्की करे। ऐसा दृढ़ नक्की करे कि किसी-से बदले नहीं। ऐसा अपने-से नक्की करे। अपनी पात्रता ऐसी हो तो स्वयं नक्की कर सकता है।

मुमुक्षु :- ... स्वभावकी पहचान होती है या सीधी पहचान होती है? विस्तारपूर्वक समझानेकी कृपा कीजिये।

समाधान :- गुरुदेवने द्रव्य-पर्यायका ज्ञान बहुत दिया है, बहुत विस्तार किया है। सूक्ष्म रूप-से सर्व प्रकार-से कहीं भूल न रहे, इस तरह समझाया है। परन्तु स्वयंको पुरुषार्थ करनेका बाकी रह जाता है। बात तो यह है। पर्यायकी पहिचान, पर्यायको कहाँ पीछानता है?

जो द्रव्यको यथार्थ पहचानता है, वह द्रव्य-गुण-पर्यायको पीछानता है, वह सबको पीछानता है। पर्यायको स्वयं पीछानता नहीं है। द्रव्यका ज्ञान करनेमें पर्याय बीचमें आती है। इसलिये पर्याय द्रव्यको ग्रहण करती है। पर्याय द्वारा द्रव्य ग्रहण होता है। परन्तु

उसमें पर्यायको नहीं देखना है, द्रव्यको देखना है।

वह पर्याय द्रव्यको ग्रहण करे ऐसी शक्ति है। ज्ञानकी ऐसी शक्ति है कि स्वयं द्रव्यको ग्रहण कर सके। लोकालोक प्रकाशक ज्ञान एक समयका ज्ञान हो, वह एक समयकी पर्याय जो ज्ञानकी है, वह एक समयमें लोकालोकको जाने। ऐसा उसका एक पर्यायका स्वभाव है। वह तो निर्मल ज्ञान हो गया है। इसका ज्ञान तो कम हो गया है। परन्तु पर्याय अपनेको ग्रहण कर सके ऐसी उसमें शक्ति है। परन्तु स्वयं अपनी तरफ देखता ही नहीं। अपनी क्षति है, स्वयं देखता नहीं है। स्वयं द्रव्यको पीछाननेका प्रयत्न नहीं करता है। मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञायक हूँ। ज्ञानलक्षण द्वारा स्वयं अपनेको पीछान सकता है, प्रयत्न करे।

जितना ज्ञान लक्षण दिखता है, उस लक्षण द्वारा ज्ञायककी पहिचान होती है। गुण द्वारा गुणीकी पहिचान होती है। उसमें बीचमें पर्याय आती है, परन्तु पर्याय ग्रहण करती है द्रव्यको। विषय द्रव्यका करना है, ग्रहण द्रव्यको करना है। पर्याय पर-से दृष्टि छोड़कर द्रव्य पर दृष्टि करनी है। भेदज्ञान करनेका है कि ये विभाव है वह मेरा स्वभाव नहीं है। ये सब विभाविक पर्यायें, उससे मैं अत्यंत भिन्न शाश्वत द्रव्य हूँ। गुणका भेद पड़े या पर्यायका भेद पड़े, वह भेद जितना मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो अखण्ड द्रव्य हूँ। उसमें अनन्त गुण है। उसकी पर्यायें हैं। परन्तु उसके भेद पर दृष्टि नहीं देकरके एक अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करना वही यथार्थ मार्ग है और वही सम्यग्दर्शन है। उसे यदि ग्रहण करे और विभाव-से भेदज्ञान करके ज्ञायककी परिणति प्रगट करे और ज्ञायकके भेदज्ञानकी धारा यदि प्रगट करे तो विकल्प छूटकर स्वानुभूति होती है और वही मुक्तिका मार्ग है और गुरुदेवने वही बताया है और वही करनेका है।

ग्रहण तो पर्याय द्वारा होता है, परन्तु वह स्वयं ग्रहण करे तो हो। पर्याय बीचमें आती है। पर्यायको ग्रहण नहीं करनी है। पर्याय पर दृष्टि नहीं करनी है, परन्तु दृष्टि द्रव्य पर करनी है। ग्रहण तो द्रव्यको ही करना है। अखण्ड द्रव्य ज्ञायक स्वभाव, उसको ग्रहण करना है।

उसे ग्रहण करे वही मुक्तिका मार्ग है। अनन्त कालमें जीवने सब किया लेकिन एक द्रव्यको ग्रहण नहीं किया। वह करना है। शुभाशुभ भाव भी चैतन्यका स्वभाव नहीं है। साधकदशामें वह शुभभाव बीचमें आते हैं। पंच परमेष्ठी भगवंतोंकी भक्ति, देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति, जिन्होंने उसे प्रगट किया उसकी भक्ति आती है। परन्तु वह शुभभाव है, उससे ज्ञायकका परिणमन भिन्न है। ऐसी श्रद्धा, प्रतीति और ऐसी ज्ञायककी परिणति प्रगट हो सकती है। वही मुक्तिका मार्ग है। फिर वीतराग दशा होती है तब वह सब छूट जाता है।

आचार्यदेव, गुरुदेव शुद्धात्मामें परिणति प्रगट करनेको कहते हैं। शुद्धात्माको तू ग्रहण कर। परन्तु बीचमें शुभभाव आये बिना नहीं रहते। शुभभाव तो जबतक पूर्णता नहीं होती तबतक आते हैं। परन्तु उसकी परिणति शुद्धात्मा तरफकी ही होती है, साधक दशा।

मुमुक्षु :- उपदेशमें ऐसा आये कि अपने छोटे अवगुणको पर्वत जितना गिनना और दूसरेके छोटे गुणको बड़ा करके देखना। ऐसा भी आये कि पर्यायकी पामरताको गौण करके स्वयंको परमात्मस्वरूप देखना। ऐसे दोनों कथनका तात्पर्य क्या है?

समाधान :- चैतन्य अखण्ड द्रव्य पूर्ण-परिपूर्ण है, शाश्वत है। उस द्रव्यकी दृष्टि करनी और पर्यायमें न्यूनता है उसका ज्ञान करना। साधक दशामें दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें होते हैं। मैं द्रव्यदृष्टि-से पूर्ण हूँ। मेरा जो द्रव्य है उस द्रव्यका नाश नहीं हुआ है। अनादिअनन्त परिपूर्ण प्रभुतास्वरूप मैं हूँ। आत्माकी प्रभुताको लक्ष्यमें रखकर पर्यायमें मैं अधूरा हूँ, उस न्यूनताका उसे ज्ञान रहता है।

पुरुषार्थ कैसे हो? स्वरूपमें लीनता कैसे हो? स्वानुभूतिकी विशेष-विशेष दशा कैसे हो? अन्दरमें ज्ञायककी परिणति विशेष कैसे हो? पर्यायमें पुरुषार्थ पर उसका ध्यान होता है। इसलिये पर्यायमें मैं पामर हूँ और द्रव्य वस्तु स्वभाव-से मैं पूर्ण हूँ। दृष्टि और ज्ञान दोनों साधक दशामें साथ ही रहते हैं। उसे कोई अपेक्षा-से मुख्य और कोई अपेक्षा-से (गौण कहनेमें आता है)। साधक दशामें दोनों जातकी परिणति साथमें ही होती है।

मैं दृष्टि-से पूर्ण हूँ और पर्यायमें अधूरा हूँ। दोनों उसकी साधक दशामें साथ ही होते हैं। इसलिये दूसरे पर दृष्टि (नहीं करनी है)। जो ज्ञाता हो वह ज्ञाता तो जानता रहता है। दूसरेका गुण देखने-से स्वयंको लाभका कारण होता है। दोष देखना तो नुकसानका कारण है। इसलिये वह गुणको मुख्य करके दोषको गौण करता है। स्वयंको पुरुषार्थ करना है, इसलिये स्वयं अपने अल्प दोषको (मुख्य करके समझता है कि) मुझे अभी बहुत पुरुषार्थ करना बाकी है। इसलिये अपने दोष पर दृष्टि करके गुणको गौण करता है। स्वयंको पुरुषार्थ करना है। दूसरेका दोष देखना, उसमें अटकना वह कोई साधकका कर्तव्य नहीं है।

प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र परिणमती है। वह तो ज्ञायकरूप रहना, ज्ञायकका ज्ञाता स्वभाव है, ज्ञातारूप-से जानते रहना। परन्तु साधक दशामें अपने गुणको गौण करके जो दोष है उसको मुख्य (करता है)। अपनी अल्पताको मुख्य करके, मुझे बहुत करना बाकी है, ऐसे स्वयं देखता है, उस जातका पुरुषार्थ करता है। दूसरेके गुणको देखे उसे मुख्य करता है और दूसरेको दोषको गौण करता है। दूसरेके दोषके साथ उसे कोई प्रयोजन

नहीं है।

स्वयं आगे बढ़नेके लिये गुण ग्रहण करता है। अपने स्वभाव पर दृष्टि करके मैं स्वभाव-से पूर्ण हूँ। अपने गुणको ग्रहण करता है वह दूसरेके गुण (ग्रहण करता है)। परन्तु अपने गुण तो स्वभाव दृष्टि-से (देखता है)। बाकी अपनेमें कितनी अल्पता है, उस अल्पता पर दृष्टि करके पुरुषार्थ कैसे बढे, वीतराग कैसे होऊँ, मेरी साधक दशा कैसे आगे बढ़े, ऐसी भावना उसे होती है। इसलिये अपने गुणको गौण करके दोषको मुख्य करता है। दूसरेके गुणको मुख्य करता है। दूसरेके दोषके साथ कुछ प्रयोजन नहीं है। दूसरेके गुण-से अपनेको लाभ होता है। इसलिये उसे मुख्य करके स्वयंको आगे बढनेके लिये साधकदशामें साधकका वह प्रयोजन है।

आत्मार्थीओंको भी वही प्रयोजन है कि दूसरेके गुण ग्रहण करना, परन्तु दोषको ग्रहण नहीं करना। आत्मार्थीको भी होता है। दूसरेके दोषको गौण करके गुण मुख्य करना। और स्वयं कहाँ भूलता है और स्वयं कहाँ अटकता है, अपने दोष पर दृष्टि करके और पुरुषार्थको आगे बढ़ाये। स्वभाव-से पूर्ण हूँ, उसका ख्याल रखे। परन्तु अभी बहुत पुरुषार्थ करना बाकी है। ऐसी खटक उसे अन्दर होनी चाहिये।

मुनिओं भी वीतरागदशा (की भावना भाते हैं कि) वीतराग कैसे होऊँ? पंच परमेष्ठी-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य भगवंत आदि, उनके गुण पर दृष्टि करके स्वयं आगे बढ़ता है। मुनिराज, साधक सब। पंच परमेष्ठी जिन्होंने साधना की, जो पूर्ण हो गये, उन पर भक्ति करके स्वयं अपना पुरुषार्थ, अपने पुरुषार्थकी डोर शुद्धात्मा तरफ जोड़कर आगे बढता है। इसलिये करनेका वही है।

करना एक है-शुद्धात्माको (पीछानना)। आचार्यदेव कहते हैं, हम तुझे आगे बढ़नेको कहते हैं तीसरी भूमिकामें। उसका मतलब तुझे अशुभमें जानेको नहीं कहते हैं। परन्तु तीसरी भूमिका कहकर, तू तीसरी भूमिकामें जा। आगे बढ़नेको कहते हैं। उसमें-से अशुभमें जानेको नहीं कहते हैं। बीचमें शुभभाव तो आते ही हैं। इसलिये वहाँ भी नहीं अटकना है। तीसरी भूमिकामें जानेको आचार्यदेव कहते हैं। तीसरी भूमिकामें निर्विकल्प दशामें स्थिर होकर बाहर आये तो शुभभाव, पंच परमेष्ठी भगवंतोंकी भक्ति, गुणग्राहीपना वह सब आता है। और अपने दोष देखने तरफ दृष्टि और अपने पुरुषार्थकी डोर बढाकर आगे जाता है। मैं पूर्ण हूँ, फिर भी पर्यायमें न्यूनता है। ऐसी उसे भावना रहती है। पुरुषार्थ-से अपनी गति विशेष लीनता तरफ जोड़ता है और आनन्द एवं अनुभूतिकी दशा, चारित्र दशाको विशेष वृद्धिगत करता है।

मुमुक्षु :- परमागमसारमें निम्न रूपसे बात आती है। उसमें पहले जिज्ञासुका प्रश्न है कि ज्ञान विभावरूप परिणमता है? उसके उत्तरमें गुरुदेवश्रीने ऐसा कहा कि ज्ञानमें

विभावरूप परिणमन नहीं है। ज्ञान स्वपरप्रकाशक स्वभावी है। परन्तु जो ज्ञान स्वको प्रकाशे नहीं, सिर्फ परको ही प्रकाशे तो वह ज्ञानका दोष है। यहाँ विभाव और दोषके बीच क्या अंतर है, यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :- वह तो श्रद्धामें उसकी भूल पड़ी है, वहाँ ज्ञानमें उसे भूल होती है। श्रद्धामें भूल (है)। सर्व गुणांश सो सम्यग्दर्शन। जिसे अपनी ओर यथार्थ प्रतीति हुयी, उसका ज्ञान भी यथार्थ है। जहाँ श्रद्धामें भूल है इसलिये ज्ञान भी मिथ्या नाम प्राप्त करता है।

विभावकी कषायकी जो कालिमा हो रही है, वह कालिमा और इस ज्ञानमें अंतर है। ज्ञान जो स्थूल रूप-से व्यवहारमें जानता है, वैसे जाननेमें भूल नहीं है। परन्तु स्वयंको जानता नहीं है, ज्ञान स्वपरप्रकाशक (होने पर भी) वह परको यथार्थ नहीं जानता है। जो परको जानता है और स्वको नहीं जानता है, वह तो उसकी बड़ी भूल है। इसलिये स्वपूर्वक परको जाने तो वह ज्ञान यथार्थ है। स्वको नहीं जानता है, वह ज्ञानका दोष है, ज्ञानकी भूल है।

जैसे दर्शनकी भूल है, वैसे ज्ञानकी भी भूल है। परन्तु विभावकी जो परिणति (है), कषायकी कालिमाकी जो परिणति है वैसी ज्ञानकी परिणति नहीं है। ज्ञानकी परिणति उसे मिथ्यारूप परिणमी है। जो जाने, व्यवहारमें जो जाने वह स्थूलरूप-से जानता है, ऐसा कहनेमें आता है। परन्तु उसकी श्रद्धाके साथ उसके ज्ञानमें भी भूल है। स्वयंको नहीं जानता है, वह उसकी भूल है। उसे भी मिथ्याज्ञान कहनेमें आता है। अपने स्वपदार्थको नहीं जानता है। स्वयंको नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। और स्वयंको जाने उसने सब जाना है। परको जाने परन्तु उसे यथार्थ नहीं कहते हैं। अपनेको जाने तो वह यथार्थ ज्ञान कहलाता है।

मुमुक्षु :- पूज्य गुरुदेवश्री ऐसा फरमाते थे कि, जिससे लाभ माने उसे अपना माने बिना रहे नहीं। यहाँ परपदार्थोंमें इष्ट-अनिष्ट बुद्धि तो जीवको है। तो क्या अनिष्टपनेमें अपनत्व नहीं है? अथवा पूज्य गुरुदेवकी यहाँ क्या आशय है, उसे स्पष्टि कीजिये।

समाधान :- परपदार्थको इष्ट मानता है, अनिष्ट माने उसे अनिष्ट मान रहा है, परन्तु अन्दरमें तो, यह मुझे नुकसान करता है, नुकसान करता है, ऐसा जो उसने माना है वह जूठा है। उसने अपनत्व माना है। अनिष्ट-से मुझे नुकसान होता है, इष्ट-से मुझे लाभ होता है। वह दोनों भाव उसके यथार्थ नहीं है। इष्ट-अनिष्ट ज्ञाताकी परिणतिमें एक भी नहीं है। वस्तु स्वभाव-से इष्ट-अनिष्ट कुछ है ही नहीं। परन्तु इष्टपना माना वह कहता है, मुझे ठीक है। और अनिष्ट माना कि मुझे ठीक नहीं है, उसमें वह नुकसान करता है। ऐसा माना उसमें अपनी परिणतिके साथ उसे कुछ एकत्वपना

हो, ऐसी भ्रान्ति अन्दर साथमें आ जाती है।

कोई नुकसान नहीं करता है और कोई लाभ भी नहीं करता है। दोनोंमें उसकी जूठी मान्यता है। विभावका कारण.... परिणतिमें जो दुःखका कारण विभाव परिणतिमें है, उसके कार्यमें उसे अनिष्ट आदि सब फलमें आते ही रहता है। उसका कारण ऐसा है। अंतरमें उन दोनोंके साथ अन्दर एकत्वबुद्धि है ही। नुकसान माने तो भी एकत्वबुद्धि है और लाभ माने तो भी एकत्वबुद्धि ही है। दोनोंके साथ एकत्वबुद्धि है।

परन्तु दोनों इष्ट-अनिष्ट-से छूटकर मैं ज्ञायक हूँ, मुझे कोई परपदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं करता। मेरा ज्ञायक है वही मुझे लाभरूप है। उस तरफ परिणति जाय तो उस ओर शुभभाव आये, परन्तु शुभभाव कहीं आदरने योग्य नहीं है। आदरणीय तो एक चैतन्यतत्त्व ही आदरणीय है। इष्ट-अनिष्ट-से छूट जाना और एक ज्ञायककी परिणति प्रगट करनी वही लाभरूप है। अनिष्टमें भी अपनत्व हो गया और इष्टमें अपनत्व आ ही जाता है। दोनोंमें आ जाती है। लाभ-नुकसान दोनोंमें माना इसलिये दोनोंमें अपनत्व आ जाता है। उसने मुझे नुकसान किया, इसलिये उसमें उसे एकत्वबुद्धि हो गयी है। दोनों-से भिन्न पड़कर अंतरमें ज्ञायककी परिणति प्रगट करके इष्ट-अनिष्ट मुझे कुछ नहीं है। अन्दर ज्ञायक है वही मुझे उपादेय है, ये सब त्यागने योग्य है।

साधकदशामें शुभभावना साथमें आ जाती है। ज्ञायक परिणति यथार्थ जो है सो है। यथार्थ परिणति प्रगट करके उसे शुभभावना (आती है)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७३

समाधान :- गुरुदेव तो अनेक प्रकार-से सब स्पष्ट करके कहते थे। मुक्तिका मार्ग गुरुदेवने कोई अपूर्व रीत-से सबको समझाया है और उनकी वाणी अपूर्व थी। कितनों जीवोंको तैयार कर दिये हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेव-से लाभ हुआ तो फिर एकत्व हो गया।

समाधान :- गुरुदेव-से लाभ हुआ उसमें एकत्व नहीं होता है। एकत्व परिणति एकत्व दृष्टि हो तो होता है, ऐसे एकत्व नहीं होता है। भेदज्ञानपूर्वककी परिणति हो वहाँ एकत्व होता ही नहीं। एकत्वबुद्धि हो वहाँ एकत्व होता है। गुरुदेव-से लाभ हुआ ऐसा माने इसलिये उसकी एकत्व परिणति नहीं है। वह बोले ऐसा और वह कहे भी ऐसा कि गुरुदेव-से लाभ हुआ, गुरुदेव आप-से लाभ हुआ, आपने ही सब किया, आप-से ही सब प्राप्त किया है, ऐसा कहे।

मुमुक्षु :- शब्द एक ही हों, फिर भी दृष्टिमें फ़र्क़ होने-से अभिप्रायमें फ़र्क़ है।

समाधान :- दृष्टिमें फ़र्क़ होने-से पूरा फ़र्क़ है। एकत्वबुद्धि-से कहे और भेदज्ञान-से कहे उसमें फ़र्क़ है।

मुमुक्षु :- एकत्वबुद्धिवाले-से भी ज्यादा विनय करे।

समाधान :- हाँ, ज्यादा विनय करे, ज्यादा विनय करे।

मुमुक्षु :- भाषामें तो अनन्त तीर्थंकरों-से अधिक है, ऐसा कहे।

समाधान :- हाँ, आपने यहाँ जन्म नहीं धारण किया होता तो हम जैसोंका क्या होता? ऐसा कहे। ज्यादा विनय करे। क्योंकि अंतरमें स्वयंको जो स्वभाव प्रगट हुआ है, उस स्वभावकी उसे इतनी महिमा है कि जो स्वभाव जिसने प्रगट किया और समझाया, उस पर उसे महिमा आती है। अंतरमें जो शुभभाव वर्तता है, उसके साथ भेदज्ञान वर्तता है और शुभ भावनामें जो आता है, उसमें उसे उछाला आता है कि मेरी परिणति प्रगट करनेमें गुरुदेवने ऐसा उपदेश देकर जो गुरुदेव मौजूद थे, उन पर उसे उछाला आता है। अतः दूसरे-से ज्यादा उत्साह आकर भक्ति आती है। उसका ऐसा दिखे कि दूसरे-से कितनी (भक्ति है)। बाहर-से ऐसा लगे मानों एकत्वबुद्धि-से करता हो ऐसा दिखे। परन्तु शुभभावनामें उसे भेदज्ञान वर्तता है, उस शुभभावों-से और शुभभावमें जो

उसे उछाला आता है, वह अलग प्रकारका आता है।

मुमुक्षु :- कितना विचित्र लगे। अन्दर उसी भाव-से भेदज्ञान करता है।

समाधान :- अन्दर उसी भाव-से भेदज्ञान है और उस भावमें उछाला ऐसा है कि मानों गुरुदेवने ही सब कर दिया, ऐसा बोले। और ऐसी भावना उसे होती है। जूठ नहीं बोलते हैं, भाव आता है। उसके साथ भेदज्ञान है और उछाला ऐसा आता है।

मुमुक्षु :- दोनों एकसाथ है।

समाधान :- दोनों एकसाथ है। भिन्नता होने पर भी उछाला ऐसा आता है, मानों दूसरे-से उसकी भक्ति ज्यादा हो। इसलिये शास्त्रोंमें आता है न कि उस शुभभावनामें उसकी स्थिति कम पड़ती है, रस ज्यादा होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको सब मंजूरी दी गयी है। अज्ञानी वही शब्द बोले तो कहे तेरी एकताबुद्धि है।

मुमुक्षु :- मुफ्त है? भेदज्ञान चलता है।

मुमुक्षु :- फावाभाई कहते थे कि आप सम्यग्दृष्टिका पक्ष करते हो।

समाधान :- एकत्वबुद्धि है उसे कहते हैं।

मुमुक्षु :- भक्ति और भेदज्ञान दोनोंका मेल होता है, ऐसा है?

समाधान :- हाँ, दोनोंका मेल है। भेदज्ञानके साथ भक्तिका मेल है। और स्वभावकी महिमा जहाँ आयी है, स्वभावकी परिणति (हुयी है), शाश्वत आत्मा, उसकी स्वानुभूति, उसकी महिमा आयी। वह पूरा अन्दर स्थिर नहीं हो सकता है, इसलिये बाहर जो शुभभावना आये, उस भावमें उसके सामने जो जिनेन्द्र देव, गुरु और शास्त्र, जो साधक और पूर्ण हो गये, उन पर (भाव आता है कि) अहो! ऐसी पूर्णता, ऐसी साधक दशाको देखकर उसे एकदम उल्लास और उछाला आता है। और जिन्होंने उपदेश दिया और उपकार किया, उन पर एकदम उछाला आता है। भेदज्ञान और भक्ति दोनों साथमें होते हैं।

मुमुक्षु :- दो विषय कहे-एक तो पूर्णता देखी और एक तो जिन्होंने उपकार किया। उन दोनों पर उछाला आता है।

समाधान :- दोनों पर उछाला आता है। साधक दशा, उपकार किया, उपदेश दिया और पूर्णता, उन सब पर। और शास्त्र जो सब दर्शाते हैं, उन सब पर उछाला आता है। जितने साधकके और पूर्णताके बाहर जितने साधन हो, उन सब पर उसे उल्लास आता है। फिर भी उसी क्षण भेदज्ञान वर्तता है। दोनों परिणति भिन्न-भिन्न काम करती है। ज्ञायककी और शुभभाव दोनों परिणति।

मुमुक्षु :- पहले प्रश्नके जवाबमें आपने ऐसा कहा कि पर्याय बीचमें आती है।

बीचमें आती है उसका अर्थ क्या? प्रगट पर्यायको ज्ञानमें जानता है और उस पर-से ज्ञायकको ग्रहण करता है, ऐसा आपको कहना है? पर्याय बीचमें आती है माने क्या?

समाधान :- बीचमें पर्याय द्रव्यको ग्रहण करती है। द्रव्यको ग्रहण करनेमें पर्याय साथमें होती है। सीधा द्रव्य ग्रहण नहीं होता। ग्रहण करनेमें पर्याय साथमें होती है।

मुमुक्षु :- द्रव्यको ग्रहण करनेमें पर्याय साथमें होती है।

समाधान :- पर्याय साथमें होती है।

मुमुक्षु :- और पर्याय ग्रहण करती है।

समाधान :- हाँ, पर्याय द्रव्यको ग्रहण करती है। द्रव्यको ग्रहण करे अर्थात् वह सम्यक् पर्याय प्रगट हुयी। पर्याय होती है। तो ही उसने द्रव्यको ग्रहण किया कहा जाय। यदि उसे सम्यक् पर्याय प्रगट हो तो।

अनादि-से द्रव्य तो है, परन्तु उसने ग्रहण नहीं किया है। स्वयं उस रूप प्रगटरूप-से परिणमा नहीं है। द्रव्य तो अनादि-से स्वभावरूप है, परन्तु उसने उस रूप परिणति प्रगट नहीं की है। इसलिये पर्याय उसे ग्रहण करती है और पर्याय उस रूप प्रगटरूप-से परिणमती है। इसलिये पर्याय साथमें होती है। पर्याय उसके साथ प्रगट होती है, सम्यक् रूप-से।

मुमुक्षु :- पर्याय सम्यक् रूप-से साथमें प्रगट होती है, इसलिये पर्याय बीचमें होती है।

समाधान :- पर्याय बीचमें होती है।

समाधान :- .. प्रत्येक विजयमें तीर्थंकर भगवान विराजते हैं, अच्छे कालमें। वर्तमानमें वीस विहरमान भगवान विराजते हैं। जब चारों ओर तीर्थंकर होते हैं, जितने विजय है, विदेहक्षेत्रके ३२ विजय हैं। सबमें एक-एक विजयमें तीर्थंकर भगवान विराजते हैं। उतने तीर्थंकर विराजते हैं।

मुमुक्षु :- ... लाखों, उसकी संख्याका तो पार नहीं है।

समाधान :- वह तो संख्यातीत है। अच्छे कालमें तो केवलज्ञानीका समूह, मुनिओंका समूह (होता है)। वर्तमानमें महाविदेह क्षेत्रमें भगवान विराजते हैं। केवलज्ञानीका समूह, मुनिओंका समूह, सब समूह है। विदेहक्षेत्रमें तो चतुर्थ काल वर्तता है। श्रावक, श्राविकाएँ, सम्यग्दृष्टि अनेक होते हैं। यहाँ तो भावलिंगी मुनि दिखना मुश्किल है। सम्यग्दृष्टिकी भी दुर्लभता है। इस भरतक्षेत्रमें तो ऐसा पंचमकालमें हो गया है।

मुमुक्षु :- ऐरावतमें भी लगभग ऐसा ही होगा?

समाधान :- ऐरावतमें भी ऐसा ही है। जैसा भरतमें, वैसा ऐरावतमें। दोनों आमनेसामने है। सदा चतुर्थ काल, मोक्ष और केवलज्ञान सदा रहता है। भावलिंगी मुनि, सब ज्ञान चतुर्थ कालमें महाविदेह क्षेत्रमें सब है। वहाँ कितना है और यहाँ उसमें-से कुछ भी

नहीं है, थोड़ा रहा है। ऐसा है।

मुमुक्षु :- कल्पना करनी भी मुश्किल पड़े ऐसा हो गया है।

समाधान :- हाँ, थोड़ा रहा है। ये तो गुरुदेवके प्रताप-से इतना प्रचार हो गया। और सबको ऐसा हो गया कि अंतरमें कुछ अलग करना है, ऐसी सबकी दृष्टि हुयी कि करना अंतरमें है। चारों ओर हिन्दुस्तानमें इतना प्रचार हो गया। नहीं तो एकदम (क्षीण) हो गया था। बाह्य क्रियामें धर्म मनाते थे। ...

समाधान :- .. प्रयत्न और भावना तो रहते ही हैं, अंतरमें जबतक नहीं हो तबतक।

मुमुक्षु :- बहुत बार विचार आता है कि गहरी जिज्ञासा, आप कहते हो, गहरी जिज्ञासा चाहिये। तो गहरी जिज्ञासा किस प्रकारकी होगी? वैसी गहरी जिज्ञासा अपनेमें क्यों प्रगट नहीं होती है?

समाधान :- (उसके बिना) उसे चैन पड़े नहीं। अंतरमें उसकी परिणति वहाँ जाकर ही छूटकारा हो, ऐसी अंतरमें-से उग्र परिणति प्रगट हो तो हो।

मुमुक्षु :- वह निरंतर अखण्ड रहनी चाहिये।

समाधान :- निरंतर अखण्ड रहे तो प्रगट होता है। एक अंतर्मुहूर्तमें किसीको प्रगट हो वह बात अलग है। बाकी अभ्यास करते-करते बहुभाग होता है।

मुमुक्षु :- जितनी गहराईमें जाये, उसका गहरा भाव ग्रहण होकर परिणमन हो जाना चाहिये, उसमें अभी बहुत देर लगती है।

समाधान :- जितनी अन्दर भावना हो उस अनुसार उसका पुरुषार्थ (चलता है)। और वह सहजरूप-से अन्दर हो जाय तो उसे हुए बिना रहे नहीं। जैसे दूसरा सब सहज हो गया है, वैसे अपनी तरफका पुरुषार्थ भी उसे सहज एकदम उग्ररूप-से हो तो हो। बार-बार उसे छूट जाय और करना पड़े, उसके बजाय उसे सहज उस तरफकी उग्रता, भावना, उस ओर तीखा पुरुषार्थ रहा ही करे तो होता है।

दूसरा सब सहज अभ्यास जैसा हो गया है, विभावका तो। वैसे यह उसे सहज (हो जाना चाहिये)। मैं ज्ञान-ज्ञायकमूर्ति हूँ, वैसा सहज अंतरमें-से उस जातकी परिणति बन जाय, भले अभ्यासरूप हो, तो उसे अंतरमें आगे बढ़नेका कुछ हो सकता है।

मुमुक्षु :- वेदन ऐसा होना चाहिये कि जिससे वह प्राप्त न हो तबतक चैन न पड़े।

समाधान :-हाँ, चैन न पड़े, ऐसा वेदन उसे अन्दर-से आना चाहिये। अपना स्वभाव ग्रहण करे, परन्तु वह मन्द-मन्द नहीं होकरके ऐसा वेदन अन्दर-से प्रगट हो कि वह प्राप्त न हो तबतक चैन न पड़े। ऐसा हो तो उसे अन्दर-से उग्र आलम्बन और उग्र परिणति अपनी तरफ जाय तो वह प्रगट हुए बिना रहे ही नहीं। आकुलतारूप नहीं,

परन्तु उसे अन्दर-से वेदन ही ऐसा होता है कि परिणति बाहर टिकनेके बजाय, एकत्वबुद्धि टूटकर अंतरमें ज्ञायक परिणति हो, ऐसी उग्रता होनी चाहिये। फिर विशेष लीनताकी बात बादमें रहती है। परन्तु ये ज्ञायककी परिणति उसे भिन्न होकर एकदम परिणमनरूप हो, ऐसा उग्र वेदन उसे अन्दर-से आना चाहिये।

मुमुक्षु :- उतना हो तो भी बहुत है। उतना हो। फिर आगे चारित्रकी एकाग्रता अलग बात है।

समाधान :- उसका अंतरमें बार-बार अभ्यास करता रहे। वह उग्र कैसे हो, ऐसी भावना करते-करते उग्र हो तो काम आये। परन्तु अभ्यास करनेमें थकना नहीं। अभ्यास तो करते ही रहना। उसे छोड़ना नहीं। उसकी सन्मुखता तरफका प्रयत्न छोड़ना नहीं।

मुमुक्षु :- सन्मुखतामें थोड़ा ख्याल आये, माताजी! फिर तो छूटे नहीं। परन्तु मूलमें जो भावभानसरूप-से ज्ञायक लक्ष्यमें आना चाहिये, वह कोई बार आये, फिर तो कितने ही समय तक ऐसा लगे कि ये तो जो ख्याल आता था वह भी नहीं आता है, ऐसा भी हो जाता है। वह ग्रहण होकर टिका रहे तो-तो उल्लास बढ़े, सब हो और आगे बढ़ना हो। परन्तु ऐसी परिस्थिति कभी-कभी हो जाती है कि कभी दो-चार-छः महिनेमें थोड़ा ख्याल आया...

समाधान :- फिर-से स्थूल हो जाता है न, इसलिये बाहर स्थूलतामें चला जाता है। इसलिये उसे सूक्ष्मता होनेमें देर लगती है। ऐसा हो जाय। वैसा उसे अंतरमें-से फिर-से लगनी लगे तो हो सकता है।

मुमुक्षु :- सत्पुरुषोंको धन्य है कि उन्होंने ऐसी परिणतिको धारावाही टिकाकर अपना कार्य कर लिया।

समाधान :- .. वह अंतरमें-से आगे जाता है। धारावाही परिणति तो बादमें होती है, परन्तु ये उसका अभ्यास।

मुमुक्षु :- अभ्यासमें धारावाही।

समाधान :- धारावाही। खण्ड पड़ जाय और स्थूल हो जाय, इसलिये फिर-से सूक्ष्म होनेमें और ज्ञायकको ग्रहण करनेमें देर लगती है। ऐसे बार-बार चलता है। परन्तु ऐसे ही बारंबार ऐसा उग्र अभ्यास करे तो उसे हो।

मुमुक्षु :- परिणति संयोगाधीन हो जाती है।

मुमुक्षु :- .. श्रद्धागुण और ज्ञानगुण दोनोंका साथमें होना वह श्रद्धा है? वह पक्का निर्णय?

समाधान :- प्रतीतकी श्रद्धा भी कहते हैं और ज्ञानमें दृढ़ता, दोनों कहते हैं। विचार करके निर्णय करे। ज्ञानकी दृढ़ता और श्रद्धाकी दृढ़ता, दोनों। दोनों कहनेमें आता है।

पक्का निर्णय, लेकिन अन्दर विचार-से निर्णय करे वह अलग है। अन्दर स्वभाव परिणतिमें-से निर्णय आवे वह अलग है। ये तो विकल्पात्मक निर्णय है। धारणा अर्थात् रटा हुआ, स्मरणमें रखा हुआ, गुरुदेवके उपदेश-से ग्रहण किया हुआ, विचार-से नक्की करे कि बराबर ऐसा ही है, वह पक्का निर्णय। वह निर्णय ज्ञान-से भी होता है और प्रतीतमें भी होता है।

मुमुक्षु :- फिर तो अनुभूति हो तभी पक्का निर्णय कहा जायेगा न?

समाधान :- अनुभूति हो तब कहा जाय। परन्तु अनुभूति होने पूर्व उसे यथार्थ कारण प्रगट हो तब भी निर्णय होता है। परन्तु ये तो अभी विकल्पात्मक, पहलेका निर्णय है वह स्थूल है। उसके बाद जो अनुभूतिपूर्वकका निर्णय होता है वह यथार्थ है।

मुमुक्षु :- और जिनवाणीमें सबमें ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनों गुणकी मुख्यता-से ज्ञायकको कैसे प्राप्त करना वह आता है, तो ज्ञायकमें अनन्त गुण है, जीवमें तो अनन्त गुण है तो फिर ये तीन गुण ही विभाव परिणतियुक्त हैं? कि उनकी शुद्धता-से ज्ञायककी प्राप्ति होती है?

समाधान :- अनन्त गुण विभावरूप नहीं परिणमे हैं। साधक दशामें तीन आते हैं-दर्शन, ज्ञान और चारित्र। दर्शन यथार्थ होता है तो ज्ञान भी यथार्थ होता है। फिर चारित्र बाकी रहता है। फिर लीनता होती है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन हो तो सब शुद्ध होता है। अनन्त गुण सब अशुद्ध नहीं हुए हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी.... एक सम्यग्दर्शन होता है तो सर्व गुणोंकी परिणति सम्यक्रूप हो जाती है। एक चक्र फिरे, दिशा पर तरफ है, स्व तरफ आये तो पूरा चक्र स्व तरफ होता है।

मुमुक्षु :- थोड़ा कठिन लगता है।

समाधान :- न हो तबतक... छोड़ देनेसे (क्या होगा)? रुचि करते रहना, भावना करते रहना, करना तो एक ही है-आत्माको ग्रहण करना वही है।

मुमुक्षु :- मुनिराजको तीन कषायकी चौकड़ी (गयी है), उतनी शुद्धता होती है और थोड़ी अशुद्धता होती है, तो चारित्रगुणकी एक पर्यायमें शुद्धता-अशुद्धता दोनों साथमें रहती है?

समाधान :- दोनों साथ रहते हैं। उसके अमुक अंश शुद्ध होते हैं और थोड़ी अशुद्धता है। मुनिराजको वीतराग दशा नहीं हुयी है, इसलिये थोड़ा संज्वलनका कषाय है। चारित्र बहुत प्रगट हुआ है। थोड़ी अशुद्धता रहती है।

मुमुक्षु :- और वह शुद्धिकी वृद्धि शुद्धोपयोग होता जाय तभी होती है?

समाधान :- हाँ, शुद्धोपयोग (होने-से) अन्दर शुद्धिकी परिणति होती जाती है। विरक्त दशा, अंतर-से विशेष-विशेष अंतरमें लीनता होती जाती है, लीनता बढ़ती जाती

है। इसलिये आगे जाते हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञान सो आत्मा। भेद पड़ा इसलिये ११वीं गाथा अनुसार सद्भुत व्यवहारनय हुआ, अभूतार्थ यानी परद्रव्य जैसा हुआ, तो ज्ञानकी पर्याय पूरा आत्मा स्वद्रव्य ज्ञात होता है? अनुभूति होती है?

समाधान :- गुण-गुणीका भेद पड़ता है इसलिये सद्भुत व्यवहार है। अभूतार्थ यानी उसमें आप जैसे कहते हो वह नयका स्वरूप है, ऐसा नहीं है। द्रव्यदृष्टि-से पर कहनेमें आता है। वह पर्याय अपनी ही है। उसे द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से भेद आत्मामें नहीं है, आत्मा तो अखण्ड है। अखण्ड वस्तु है। उसमें भेद करना, पूर्ण और अपूर्णका भेद पड़े उस अपेक्षा-से उसे पर कहनेमें आता है। वास्तविक रूप-से वह जड़ है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। वह जड़ नहीं है, चैतन्यकी पर्याय है।

मुमुक्षु :- अपनी?

समाधान :- है अपनी पर्याय, परन्तु उसमें भेद पड़ता है इसलिये द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से उसे पर कहनेमें आता है। वह आपने क्या कहा अभूतार्थ? ... बाकी उस अशुद्ध पर्यायको कोई अपेक्षा-से अपनी कहनेमें आती है। इसलिये उसे असद्भुत व्यवहार कहनेमें आता है। व्यवहारके बहुत भंग है।

... कोई अपेक्षा-से अपनी कहनेमें आती है। द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से उसे पर कहनेमें आता है और भेद पड़े, अपनी पर्याय है इसलिये अपनी कहनेमें आती है।

मुमुक्षु :- और जिस समय अनुभूति हो, उस वक्त तो पर्याय रहित द्रव्य ज्ञायक, एकरूप ज्ञायक ही...

समाधान :- पर्याय रहित द्रव्य नहीं हो जाता।

मुमुक्षु :- नहीं, वर्तमान पर्याय तो बाहर रह जाती है न?

समाधान :- पलट जाती है। अशुद्ध पर्याय पलटकर शुद्ध पर्याय होती है। द्रव्य पर दृष्टि देने-से शुद्ध परिणति प्रगट होती है। पर्याय रहित द्रव्य नहीं हो जाता, पर्यायकी शुद्ध परिणति होती है। ... परन्तु ज्ञानमें सब ध्यान रखना। पर्याय रहित कोई द्रव्य होता नहीं। परन्तु उसका अस्तित्व ग्रहण करके उसका भेद पड़ता है, उसे लक्ष्यमें लेने-से विकल्प आता है। इसलिये उसे लक्ष्यमें नहीं लिया जाता। परन्तु उसकी परिणति तो होती है। उसकी स्वानुभूति प्रगट होती है, वही पर्याय है। परिणति तो होती है। द्रव्य स्वयं पर्यायरूप परिणमता है, परन्तु उस पर लक्ष्य नहीं रखना है। पर्याय उसमें-से निकल नहीं जाती, पर्याय परिणमती है। द्रव्यकी दृष्टि प्रगट करनी है। बाकी ज्ञानमें तो पर्याय है, ऐसा रखना है और वह परिणति द्रव्यकी ही होती है, स्वानुभूतिमें।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७४

मुमुक्षु :- कषायकी कालिमा है, ज्ञानमें नहीं है। ज्ञानमें कालिमा नहीं है?

समाधान :- ज्ञानमें कालिमा नहीं है, विभावकी जो परिणति राग-द्वेषवाली होती है, वैसी राग-द्वेषकी परिणति ज्ञानमें नहीं है। ज्ञानमें जाननेका दोष होता है। ज्ञानमें जाननेका दोष है। जो स्वरूप हो उससे अन्यथा जाने, विपरीतपने जाने। श्रद्धाके कारण ज्ञानमें दोष आता है। श्रद्धा अलग है और ज्ञान भी अलग है। उसे मिथ्याज्ञान कहते हैं।

मुमुक्षु :- चारित्रगुण जैसे विपरीतपने परिणमता है,...

समाधान :- विपरीतपने परिणमे ऐसा विपरीत नहीं है। परन्तु उसे श्रद्धाकी विपरीतता है। जाननेमें विपरीतता है। कषायकी कालिमा है ऐसा नहीं है। इसलिये विपरीत-विपरीतमें फ़र्क़ है। इसकी विपरीतता जाननेकी है और उसमें रागकी परिणतिकी है। कषायकी कालिमा मलिन है और उस जातका मलिन ज्ञानको कहनेमें आये, जाननेकी अपेक्षा-से। दोनोंकी परिणति अलग है। रागकी परिणति अलग और श्रद्धा और ज्ञानकी परिणति अलग प्रकार-से काम करती है। है वह भी विपरीत है। श्रद्धा मिथ्या है इसलिये ज्ञान भी मिथ्या है।

मुमुक्षु :- आपने ऐसा कहा था कि आत्माको नहीं जानता है, वह उसका-ज्ञानका दोष है। परन्तु जैसे चारित्रमें कषायकी कालिमा है, वैसी कालिमा इसमें नहीं है।

समाधान :- जाननेका दोष है। वैसी कालिमा नहीं है, जाननेका दोष है।

मुमुक्षु :- .. ज्ञान है वह भी एक प्रकार-से स्वभावका अंश कहलाता है न?

समाधान :- स्वभावका अंश अर्थात् इन्द्रियज्ञान स्वको नहीं जानता है इसलिये पर तरफ जाता है, परन्तु वह स्वभाव छोड़कर कहीं बाहर तो जाता नहीं। वह तो मानता है कि मैं बाहर चला गया। स्वभाव छोड़कर कहीं बाहर नहीं जाता है। परन्तु मान्यता ऐसी है कि मानों अपना ज्ञान बाहर चला जाता है और बाहर-से ज्ञान आता है, ऐसा मानता है। स्वभावको छोड़कर तो कहीं नहीं जाता।

... पड़े ही हैं। भले निगोदमें हो। स्वभावका अंश तो है, उसका कहीं नाश नहीं होता। स्वभावका अंश हो, वह ज्ञानपने स्वयं जानता है कहाँ? मानों बाहर-से ज्ञान आता है और मानों मैं बाहर जाता हूँ। मान्यता जूठी है।

मुमुक्षु :- मान्यताकी भूल-से ज्ञानमें भूल होती है।

समाधान :- हाँ, मान्यताकी भूल-से ज्ञानमें भूल होती है। बाकी स्वयं तो जाननेवाला ज्ञायकस्वभावी है। जाननेवाला तो जाननेवाला है, परन्तु उसकी मान्यताकी भूल होती है। जूठ मानता है। ज्ञानका जाननेका जूठा हो रहा है, मानों परमें-से ज्ञान आता है और स्वयं मानों बाहर जा रहा है। मैं स्वयं ज्ञायकरूप हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं है। मैं स्वभावरूप-ज्ञानस्वभावरूप ही हूँ। स्वभावरूप है सही, लेकिन स्वभावरूप ही हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं है।

मुमुक्षु :- अज्ञानीको जो इन्द्रियज्ञान है और ज्ञानीका इन्द्रियज्ञान, ये दोनों इन्द्रिय ज्ञानमें कुछ फ़र्क़ है?

समाधान :- ज्ञानीको यथार्थ ज्ञान है। इसलिये उसे ज्ञान भेदज्ञानपूर्वकका ज्ञान होता है, एकत्व नहीं होता। उसे जाननेकी अपेक्षा-से, बाहरका जाने उस जाननेकी अपेक्षा-से समान है, परन्तु इसकी दिशा अलग है, उसकी दिशा अलग है। ज्ञानी अलग दिशामें रहकर जानता है। उसकी दिशा स्व तरफकी है, स्वकी दिशामें रहकर, स्वको रखकर पर तरफ जाता है, परन्तु स्वको छोड़ता नहीं है। उसकी दिशा अलग और इसकी दिशा अलग है। (अज्ञानी) मानों बाहर चला गया इस तरह जानता है। बाहरका जानना कि ये किवाड़ है या ये है, वो है, जाननेकी अपेक्षा-से सरीखा है, परन्तु उसकी दिशा अलग है। अलग दिशामें खड़ा रहकर जानता है। और वह अलग दिशामें खड़ा रहकर जानता है (अर्थात्) एकत्व करके जानता है। (ज्ञानी) भिन्न रहकर जानता है। उसकी दिशा पूरी अलग है। देखने-देखनमें अंतर है।

इसीलिये कहते हैं, ज्ञानकी परिणति सब ज्ञानरूपी ही परिणमती है। उसकी दिशा ही अलग है। ज्ञायक रहकर ही (जानता है), एकत्व नहीं होता है, भिन्न ज्ञायक रहकर जानता है। स्वयं स्व तरफ परिणति रखकर पर तरफ जो उपयोग जाता है, वह भिन्न रहकर जानता है। जाननेकी पूरी दिशा अलग है। इसलिये इसका जाना हुआ ज्ञान कहलाता है, उसका जानना अज्ञान कहलाता है। स्वको जानता नहीं है, एकत्व करके जानता है।

स्वयं भिन्न रहकर (जानता है)। इन्द्रियों-से मुझे लाभ होता है, उसके आश्रय-से मैं जानता हूँ, ऐसी उसकी श्रद्धा है। भिन्न रहकर जानता है। स्वयं अपने स्वतः परिणमनको भिन्न रखता है। इस तरह जानता है।

मुमुक्षु :- जाननेकी अपेक्षा-से दोनों इन्द्रियज्ञान सरीखा?

समाधान :- जाननेकी अपेक्षा-से। परन्तु उसकी परिणति पूरी अलग दिशामें है।

मुमुक्षु :- अतीन्द्रिय ज्ञानकी परिणति प्रगट हो गयी है।

समाधान :- प्रगट हुयी है, उस पूर्वक (जानता है)। अभी अधूरा है इसलिये

वह बाहर जाता है। अतः उतना उसे जाननेमें आश्रय आता है। इन्द्रियोंका, मनका आश्रय आता है। अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट हो गया है, उस रूप परिणति है। परन्तु अभी अधूरा है, इसलिये उतना बाहर जाता है। (अज्ञानीको) मात्र इन्द्रिय तरफका ज्ञान है, स्वका ज्ञान ही नहीं है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीका इन्द्रिय ज्ञान वृद्धिगत होता हुआ दिखता है। जबकि अज्ञानीका इन्द्रिय ज्ञान वृद्धिगत हो रहा हो ऐसा दिखाई नहीं देता, सामान्यतः।

समाधान :- इन्द्रिय ज्ञानका क्या प्रयोजन है? वृद्धिगत या नहीं वृद्धिगत। इसे अतीन्द्रिय ज्ञानकी परिणति बढ़े वही वास्तविक वृद्धि है। साधनाकी वृद्धिमें वही वृद्धि है। बाहरका वृद्धिगत दिखाई दे वह सब तो बाहर-से देखना है। उसकी वृद्धि हो उसका कोई अर्थ नहीं है। अन्दर अतीन्द्रियका परिणमन, ज्ञायककी परिणति बढ़ती जाय, स्वानुभूति भेदज्ञानकी धारा अंतर-से जो परिणति बढ़ती जाय, वही वास्तविक वृद्धि है। बाहरकी वृद्धि वृद्धि नहीं है।

बाहर-से बढ़ता दिखाई दे और नहीं दिखाई दे, वह कोई देखनेकी दृष्टि नहीं है। वह कोई परीक्षा ही नहीं है। बाहर-से इतना सुना या इतना पढ़ा, या इतनी धारणा की, ऐसा सब बाहर-से देखना, वह कहीं परीक्षा नहीं है, वृद्धि दिखाई दे वह। वैसे तो उसे वृद्धि दिखे, इसको नहीं भी दिखे। बाहर-से तो ऐसा दिखे। परन्तु अंतरकी परिणति बढ़े वही वास्तविक वृद्धि है।

बाहर-से किसीको इन्द्रियाँ कमज़ोर पड़ गयी हो तो बाहर-से दिखाई न दे। अतः बाहरकी वृद्धि वृद्धि नहीं है। अंतरकी परिणतिकी वृद्धि हो, वही वास्तविक वृद्धि है। देखना, सुनना, बोलना वह सब तो बाह्य आश्रय है। एक मन काम करे वह अलग बात है। मन-से आत्मा भिन्न है।

मुमुक्षु :- इन्द्रिय ज्ञान बढ़े उसमें कुछ महत्ता नहीं है, महत्ता गिननी भी नहीं।

समाधान :- उसमें कुछ महत्ता नहीं है। उसमें महत्ता गिनना भी नहीं। उसमें महत्ता नहीं है। वह परीक्षाका टोटल भी नहीं है। अंतरकी परिणति क्या काम करती है, यह देखना है। अंतर श्रद्धा-ज्ञान, लीनता वह सब परिणति क्या कार्य करती है, यह देखना है।

मुमुक्षु :- लोगोंको बाहरकी विस्मयता लगती है, धर्मात्माको अंतरकी विस्मयता होता है।

समाधान :- हाँ। अंतरमें ही वास्तविक परिणति है। मुक्तिका पूरा मार्ग अंतरमें है। अनादि काल-से बाहर देखनेकी दृष्टि है इसलिये बाहर देखता है। बाहरकी विस्मयता वह सच्ची नहीं है, वह परीक्षा भी नहीं है। फिर जिसे भक्ति हो, वह गुरुदेव प्रति

(भक्ति करता है)। गुरुदेवकी अंतरंग दशा (देखकर कहे), उनका बाहरका भी ऐसा और अंतर (भी अलौकिक) ऐसा भक्तिभाव-से (कहे)।

भगवान समवसरणमें बैठे हो (तो कहता है), प्रभु! आपकी अंतरमें भी ऐसी परिणति और आपकी बाह्य शोभा भी अद्भुत और सबकुछ अद्भुत! भक्तिमें सब आवे। सब भक्तिमें आवे। परन्तु अंतरंग देखनेकी दृष्टि अंतरमें है। भक्तिभावमें सब आवे।

मुमुक्षु :- भक्तिमें तो वाणीकी महिमा भी करे, शरीरकी करे।

समाधान :- हाँ, शरीरकी करे, सब करे। गुरुदेवका प्रभावना योग कैसा, गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य, आपकी मुद्रा कैसी, आपकी वाणी कैसी, वह सब भक्ति है। अंतरकी दशा अमुक देहातीत दशा दिखती हो, वह सब अमुक परीक्षा करके कहे वह अलग बात है। ... गुरुदेव, भगवान, मुनिश्वर अंतरमें क्षण-क्षणमें लीन होते हैं, जगत-से अलग दिखे, गुरुदेव जगत-से अलग दिखते थे। ऐसी परीक्षा करे वह अलग बात है।

मुमुक्षु :- कहनेमें आता है कि तू ज्ञानलक्षणको खोज। तो खोजनेके लिये उसके पास तो वर्तमानमें इन्द्रिय ज्ञान ही है। तो उसमें-से ही खोज ले न।

समाधान :- उसे दृष्टि अंतरमें करनी पड़ती है। इन्द्रिय ज्ञान भले हो, परन्तु स्वयं है न? अपना नाश तो हुआ नहीं है। इन्द्रिय ज्ञान हो तो वह ज्ञान कहीं उसमें घूस तो गया नहीं है। वह तो उस तरफ उसने मान्यता की है। उसमें परमें अपना घूस नहीं गया है। स्वयंका अस्तित्व कहीं नाश नहीं हुआ है। उसमें-से खोज ले, अर्थात् तू स्वयं ही है। तेरी परिणतिको अंतर झुकाकर तू कौन है, यह खोज ले। उसमें बीचमें मन, इन्द्रियाँ सब आता है, उसे गौण करके तेरे ज्ञानको मुख्य करके तू ज्ञानलक्षण-से पूरे ज्ञायकको पहिचान ले।

उसे तू साथमें रख उसका मतलब इससे ज्ञात हुआ, इससे ज्ञात हुआ, ऐसी दृष्टि क्यों करता है? मुझे मेरे ज्ञान-से जानना होता है और ज्ञानलक्षण-से अन्दर देखनेका है। इसलिये उससे देखा वह तो साथमें आता है। इसलिये ऐसा कहनेमें आये कि इन्द्रिय ज्ञान-से जाना। परन्तु तू अंतर दृष्टि कर, तू स्वयं ही है, तू कहीं खो नहीं गया है। दूसरा साधन अर्थात् स्वयं ही है, स्वयं ही अपना साधन है। अपना कहीं नाश नहीं हुआ है।

मुमुक्षु :- अपनी सत्ताका ही स्वीकार नहीं करता है। मूलमें ही तकलीफ है।

समाधान :- इससे देखना है न, इससे देखना है न। परन्तु तू स्वयं तेरे-से ही देख रहा है, वह तू देखता नहीं है। और इससे देखना है, इस आँख-से देखना रहा, मन-से देखना रहा, परन्तु तू स्वयं ही है। वह तुझे कहाँ ज्ञान करवाते हैं? तेरे ज्ञान-से, तेरे क्षयोपशम ज्ञान-से सब ज्ञात होता है। तू तेरे ज्ञानको तेरी ओर मोड़ तो तू

स्वयं ही तुझे ज्ञात होगा। इससे जानना होता है, उससे जानना होता है, पर्याय-से जानना होता है, पर्याय-से जानना होता है, ऐसे क्यों लक्ष्य करना? तेरा ही अस्तित्व है और तू स्वयंको खोज ले।

ज्ञानलक्षण-से ज्ञायकको खोज ले। उसमें बाह्य आलम्बनके सब साधन गौण हो जाते हैं। साथमें हो तो तुझको स्वयंको मुख्य कर ले, उसको गौण कर दे, वह तेरे हाथकी बात है। किससे खोजूँ? पहले तो बाह्य आलम्बन होता है, निरालम्बन तो होता नहीं, कहाँ-से लाऊँ? परन्तु तू निरालम्बन है उसका नाश ही नहीं हुआ है। तू उसे मुख्य करके उस तरफ जा तो तू स्वयं ही है। ऐसी सब बातें करता है, तेरी मन्दताकी सब बातें हैं। तू पुरुषार्थ कर तो तू स्वयं ही है। तू तुझे मुख्य कर ले कि मैं ज्ञायक ही हूँ। मैं जाननवाला स्वयं ही हूँ। मेरा नाश नहीं हुआ है। तो ज्ञानलक्षणको मुख्य करके तू ज्ञायकको पहिचान ले। वह सब आलम्बन तो गौण हो जाते हैं। तू तेरा आलम्नब ले ले।

वह जब भी कर, उसे गौण तो करना ही है और वह तुझे ही करना है। वह पहले-से तो हुआ नहीं होता अनादिका। जब होता है तब तुझे ही गौण करना है और तुझे ही मुख्य होना है, इसलिये तू ही उसे मुख्य करके उसके आलम्बनको गौण करके और ढीला करके, तू मुख्य होकर अपने आपको खोज ले। जब भी कर, तुझे ही करना है। उसका आलम्बन पहले इससे करना पडेगा, उससे करना पडेगा, ऐसा क्यों? तू स्वयं ही है। उससे कहाँ करना है, जब कर तुझ-से ही करना है। ज्ञानलक्षणको तुझको स्वयंको ही मुख्य करना है। तू उसे मुख्य करके तू तेरे ज्ञायकको पीछान ले। आलम्बनको मुख्य क्यों करता है? आलम्बन आया तो निराल्मबन कैसे हुआ जाय? आलम्बनको गौण कर दे, तू स्वयं ही मुख्य है। वह कहाँ मुख्य थे। वह कहाँ जानते हैं। जाननेवाला तो तू है। वह तो बीचमें आते हैं।

मन भी कहाँ जानता है और नेत्र भी कहाँ जानते हैं और कहाँ कौन जानता है? जाननेवाला तू और उसे तू बड़ा करके कहता है, उसके आलम्बन बिना ज्ञात नहीं होता। तू स्वयं ही जाननेवाला है, अपनी ओर मुड़ जा। बाहर जा रहा है उसके बदले तू तेरे द्रव्यको ज्ञानलक्षण-से खोज ले। तू स्वयं ही है।

मुमुक्षु :- स्वयंको ही खोजना है और स्वयं हाजिर ही है।

समाधान :- स्वयं हाजिर है और स्वयंको ही खोजना है। वह सब कहँ उसे रोकते हैं। वह रोकते नहीं है। तू स्वयं रुका है। तू ही स्वयं भिन्न पड़कर अन्दर जा। अन्दर स्वयं परिणमित हो जाय, फिर निरालम्बन होता है, पहले कैसे हो? परन्तु जो निरालम्बन हुए वे पहले ऐसे ही थे, उसे गौण करके निरालम्बन हुए हैं। अतः आलम्बनको

गौण करके स्वद्रव्यका आलम्बन ले-ले, तेरे हाथकी बात है। पलटना तेरे हाथकी बात है।

मुमुक्षु :- सहज है, हठपूर्वकका निश्चय नहीं है, सहज है। ज्ञानस्वरूपको पकड़ो इसलिये वह गौण हो ही जाता है।

समाधान :- वह गौण हो ही जाता है। ज्ञानको पकड़नेका प्रयत्न ही करना है। इसका आलम्बन आता है, आलम्बन आता है, आलम्बन है ही कहाँ? तूने ही आलम्बन लिया है। तू स्वयं तुझ-से जान रहा है, उसे स्व तरफ मोड़ दे, पर तरफ मुड़ा है उसको। 'पर परिणति भागे रे, अक्षय दर्शन ज्ञान वैराग्ये आनन्दघन प्रभु जागे रे'। आलम्बन त्यागकर निरालम्बन होना अपने हाथकी बात है।

स्वयंको कुछ करना हो, निश्चय किया हो कि ऐसा ही करना है तो दूसरेका आलम्बन तोड़ देता है कि मुझे ऐसे ही करना है। वहाँ तोड़ देता है, यहाँ नहीं तोड़ता।

मुमुक्षु :- वहाँ सबको छोड़ देता है, अपने निर्णय अनुसार करता है।

समाधान :- हाँ, वहाँ सबको छोड़ देता है। निर्णय अनुसार करता है। वह सब तो उदयाधीन है, तो भी स्वयं ऐसा निर्णय करता है। और इसमें आलम्बन-आलम्बन करता रहता है।

मुमुक्षु :- इसमें आलम्बन खोजता है।

समाधान :- आलम्बन जो देव-गुरु-शास्त्रने बताया, उस अनुसार करना है। वह महासमर्थ आलम्बन है। उन्होंने कहा कि निरालम्बन हो जा। तो स्वयंको निरालम्बन होना है।

समाधान :- ... आत्माका स्वरूप कैसे प्राप्त हो? वह एक ही रटन रहे, एक ही भावना रहे, एक ही उग्रता रहे। यह मनुष्य जीवन चला जाय, इतने साल बीत गये, इतने साल गये, क्यों प्राप्त नहीं होता है? अंतरमें कैसे क्यों इस भवभ्रमण-से थकान नहीं लगता है? अनेक जातके विचार आते थे। क्यों विकल्पकी जालमें खड़ा है? उससे क्यों छूटता नहीं? अनेक जातकी भावनाएँ उग्रपने आती है। बारंबार उसीकी उग्रता और उसीका विचार, जागते-सोते, स्वप्नमें एक ही रटन रहा करे, उतनी उग्रता हो तो होता है।

क्षण-क्षणमें कोई भी कार्य करता हो, एक ही भावना अन्दर उग्रपने रहा करे, कहीं चैन पड़े नहीं, ऐसा अंतरमें हो तब जीवका अंतर पुरुषार्थ उतनी उग्रता हो तो पलटता है। अंतर्मुहूर्तमें बहुतोंको पलट जाता है। बाकी तो उतनी उग्रता होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- उस वक्त बचपनमें वैराग्यकी भावना थी, परन्तु इस प्रकार-से संसार-से छूटना है, ... दीक्षा लेनी है या मुनि बना जाना है, साधु बन जाना है। श्वेतांबरके

हिसाबसे। उसकी भावना थी।

समाधान :- अंतरमें विकल्प-से छूटना उसमें तो पुरुषार्थ चाहिये।

मुमुक्षु :- वह अत्यंत कठिन लगता है।

समाधान :- वह तो पुरुषार्थ-से (होता है)। वैसा पुरुषार्थ प्रगट होना, उतनी उग्रता हो तो होता है।

मुमुक्षु :- कैसी उग्रता?

समाधान :- उग्रता ही चाहिये। कहीं चैन न पड़े, विकल्पमें उसे चैन न पड़े। कहीं चैन न पड़े तो होता है। विकल्पकी जालमें भी चैन न पड़े, ऐसा होना चाहिये। कहीं सुख न लगे। अंतरमें-से प्राप्त न हो तबतक चैन न पड़े, उतनी उग्रता अंतरमें होनी चाहिये।

.. मुझे बहुत आनन्द लगता है, मुझे बहुत ऐसा लगता है, ऐसे जो विकल्प आते हैं, वह विकल्पमें ही खड़ा है। मुझे अंतरमें बहुत भावमें बहुत आनन्द आता है, मुझे इसका बहुत रस आता है, मुझे ऐसा बहुत होता है। वह सब विकल्प ही है, अन्दर विकल्पका आनन्द है। चैतन्यका अस्तित्व-द्रव्यमें-से आनन्द चाहिये, वह आनन्द अलग है, वह तो सहज आनन्द है। उसे विकल्प-से आनन्द नहीं होता, वह तो सहज आनन्द है। विकल्प नहीं है कि मुझे बहुत आनन्द आया या मुझे यह प्राप्त हुआ, ऐसा विकल्प भी जहाँ छूट जाता है। जो सहज आनन्द प्रगट होता है, वह अंतर-से भिन्न पड़ जाता है। अन्दर भिन्न होकर जो आनन्द आता है, सहज आनन्द जो आता है। उसे कृत्रिमता नहीं होती कि मुझे इसमें बहुत आनन्द आया।

जिसकी आनन्द पर भी दृष्टि नहीं है, परन्तु सहज आनन्द आता है। एक अपना अस्तित्व ग्रहण करता है। आनन्द सहज अन्दरमें-से प्रगट होता है। विकल्प करके आनन्द नहीं वेदना पड़ता। ... तो प्रगट होता है। विकल्पकी दिशा है, उसकी पूरी दिशा पलट जानी चाहिये।

भिन्न पड़ना वह पुरुषार्थ अलग रह जाता है। अभी तो क्षण-क्षणमें भेदज्ञान (करे कि) विकल्प-से भी मैं भिन्न हूँ। पहले तो ऐसा भेदज्ञान होना चाहिये कि विकल्प-से भी मैं भिन्न हूँ, ऐसी ज्ञायककी धारा पहले होनी चाहिये, तो निर्विकल्प हो। विकल्प-से भी मैं तो भिन्न हूँ। ऐसी अंतरमें-से ज्ञायककी धारा (प्रगट होनी चाहिये)।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७५

मुमुक्षु :- उसके पहले भेदज्ञानकी परिणति कैसे उत्पन्न हो?

समाधान :- वह करे तो हो। जब-जब क्षण-क्षणमें विकल्प आवे, आनन्द आवे, शुभभाव हो, सबसे मैं भिन्न ही हूँ। ऐसी भेदज्ञानकी परिणति होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- अभी हम ऐसे विचार करे...

समाधान :- बीचमें आये बिना नहीं रहता। जबतक स्वयं अभी शुभभावकी भूमिकामें है, शुभभाव तो आते हैं, भक्ति आवे, उल्लास आवे, ज्ञान-से भरा, आनन्द-से भरा हुआ एक तत्त्व है। जैसे ये पुद्गल वस्तु है, वैसे एक चैतन्य भी वस्तु है, परन्तु वह ज्ञानस्वभाववाला है, आनन्द स्वभाववाला, अनन्त गुणवाला है। उसे पीछाननेके लिये अनादि-से तो विभावमें एकत्वबुद्धि की है, राग-द्वेष इत्यादिमें, और धर्म बाहरसे माना है कि बाहर-से कुछ शुभभाव करें, कुछ क्रियाएँ करें तो धर्म होता है, ऐसा माना है। ऐसा तो अनन्त कालमें किया है। उससे शुभभाव बँधकर पुण्य बँधे तो देवलोक होता है। भवभ्रमण तो मिटता नहीं।

भवभ्रमण तो अन्दर आत्माको पीछाने तो मिटे। अंतर दृष्टि करके आत्माका भेदज्ञान करे तो वह मिटता है। अन्दर भेदज्ञान करनेका उपाय एक गुरुदेवने बताया है। उसका बारंबार विचार करे, उसकी गहरी लगन लगाये, उसकी महिमा करे तो हो। उसका गहरा विचार करना चाहिये, उसकी जिज्ञासा जागृत करनी चाहिये कि आत्मा कैसे समझमें आये।

जो महापुरुष हुए, इस पंचमकालमें गुरुदेव पधारे और उन्होंने मार्ग बताया कि अंतर दृष्टि करना। बाकी बाहर-से थोड़ा कर ले और थोड़ा त्याग कर ले, उसमें धर्म मान लिया। शुभभाव यदि अंतरमें हो, शुभभाव रहे तो पुण्य बँधे। पुण्य बाँधकर देवलोकमें गया। ऐसा देवलोक अनन्त बार प्राप्त हुआ है। परन्तु भवका अभाव हो, आत्माका अंतर अनुपम आनन्द, आत्मा मुक्त स्वरूप ही है, ऐसे आत्माको उसने पीछाना नहीं है। विभाव-से भिन्न पड़े कि मैं तो ज्ञायक आत्मा जाननेवाला साक्षीस्वरूप हूँ। उसे अंतरमें आत्माकी महिमा आये तो आत्माकी पहिचान हो। विचार, वांचन, पुरुषार्थ, रुचि, लगनी उसीकी लगनी चाहिये। कितनोंको अंतर दृष्टि करवायी, रुचि जागृत करवायी।

मुमुक्षु :- .. वह तो ख्यालमें आता है। विषय जो बाह्य पदार्थोंको जानता है। परन्तु जो भावेन्द्रिय है, वह तो ज्ञानकी पर्याय है, उसे कैसे भिन्न जाननी? उसका उपाय क्या?

समाधान :- क्षयोपशम ज्ञान अधूरा ज्ञान राग मिश्रित है न। अधूरा ज्ञान रागमिश्रित है। रागमिश्रित जो है वह अपना मूल स्वभाव नहीं है। रागमिश्रित भाव जो अंतरमें होते हैं, वह क्षयोपशमज्ञान अधूरा ज्ञान है, वह अधूरा ज्ञान है उतना आत्मा नहीं है। आत्मा तो पूर्ण स्वरूप है। उस पूर्णको पीछानना, पूर्ण पर दृष्टि रखनी। वह ज्ञान भले क्षयोपशम ज्ञान आत्माका उघाड है, परन्तु वह अधूरा ज्ञान है और वह रागमिश्रित है। वह रागमिश्रित है। रागमिश्रित है इसलिये वह अपना मूल नहीं है, शुद्धात्माका मूल स्वभाव नहीं है। अधूरी पर्याय जितना वह नहीं है। उसका ज्ञान करना।

मुमुक्षु :- अधूरी पर्यायको ज्ञेय समझना?

समाधान :- हाँ, वह अधूरी पर्याय ज्ञेय है। उसे जानना कि ये अधूरी है। मैं तो पूर्ण स्वरूप हूँ। अधूरा है वह मेरा मूल स्वरूप नहीं है। वह जानने योग्य है। अधूरी पर्याय है उसे जाननी। उसका ज्ञान बराबर करे तो आगे बढे। पूर्ण चैतन्य पर दृष्टि करे, अखण्डको पहिचाने। मैं तो शाश्वत अखण्ड द्रव्य हूँ। क्षयोपशम ज्ञान जितना भी नहीं हूँ, साधनाकी अधूरी पर्याय हो उतना भी मैं नहीं हूँ, पूर्ण वीतराग दशा हो वह पूर्ण पर्याय हैं, बाकी स्वयं अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य अखण्ड है। फिर उसमें साधनाकी पर्याय बीचमें आती है, नहीं आती ऐसा नहीं, परन्तु उसका ज्ञान करे कि ये आती है, परन्तु उसकी दृष्टि पूर्ण पर है। पूर्ण स्वभाव पर और पूर्ण वीतरागता कैसे हो, वह उसे लक्ष्यमें है, उपादेयरूप है। पूर्ण हो जाय इसलिये वह सब साधनाकी पर्यायें छूट जाती है, पूर्ण वीतराग हो जाता है।

शुद्ध पर्याय, शुद्धात्माकी पर्याय सर्वथा भिन्न कहाँ है? शुद्धात्माकी शुद्ध पर्यायें सर्वथा भिन्न नहीं है।

मुमुक्षु :- द्रव्यकी अपेक्षा-से?

समाधान :- द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से वह क्षणिक है। लेकिन वह चैतन्यके आश्रय-से पर्याय होती है। उसे सर्वथा भिन्न नहीं कह सकते, कोई अपेक्षा-से भिन्न है। सर्वथा भिन्न नहीं कह सकते, अपेक्षा-से भिन्न है। उतना भेद पड़ा उस अपेक्षा-से है। मूल स्वभावमें भेद नहीं है। भेदकी अपेक्षा-से उसे (भिन्न कहा)। पूर्ण और अपूर्णकी अपेक्षा रखता है, निमित्तके सद्भाव-अभावकी अपेक्षावाली पर्याय है, उस पर्याय जितना आत्मा नहीं है। आत्मा तो अखण्ड शाश्वत है। इसलिये उसे कथंचित् भिन्न कहते हैं, सर्वथा भिन्न नहीं कहते। द्रव्यमें ही पर्याय होती है, द्रव्य-से भिन्न निराधार नहीं होती।

मुमुक्षु :- विकारी पर्यायको भी ... नहीं कह सकते न?

समाधान :- वह अपेक्षा और यह अपेक्षा भिन्न-भिन्न है। उसका स्वभाव भिन्न है। विभाव पर्याय भले सर्वथा भिन्न नहीं है, स्वयं उसमें जुड़ता है। तो भी उसका भावभेद है। स्वभावपर्यायका भावभेद नहीं है। उसमें और इसमें फ़र्क़ है।

... वह तो वैशाख शुक्ला दूज थी न? गुरुदेवकी सब सजावट, जीवन चरित्र इत्यादि था न। उसे देखने गयी थी। उसमें-से फिर ऐसे विचार आये कि ये सब सजावट की है, ऐसेमें गुरुदेव पधारे हो तो बहुत सुन्दर दिखे। गुरुदेव पधारे ऐसा ही यह सब हो रहा है। वही विचार और भावना रहती थी, इसलिये प्रातःकालमें स्वप्न आया कि गुरुदेव देवलोकमें-से देवके रूपमें पधारे। सब पहनावट देवकी, रत्नका हार, मुगट इत्यादि देवके रूपमें थे। गुरुदेव पधारो, पधारो ऐसा आया। ऐसा बोलनेमें आया। फिर गुरुदेवने कहा, ऐसा कुछ रखना नहीं, मैं तो यहीं हूँ, बहिन! मैं तो यहीं हूँ। ऐसा तीन बार कहा।

फिर मैंने कहा, मैं तो ऐसा रखूँ, परन्तु ये सबको बहुत दुःख होता है। तो गुरुदेव कुछ बोले नहीं। लेकिन उस वक्त वातावरण ऐसा हो गया था कि मानों गुरुदेव विराजते ही हों। मैंने तो किसीको कुछ कहा नहीं था, परन्तु माहोल ऐसा हो गया था। परन्तु इतना स्वप्न आया था। गुरुदेव देवमें-से आये और ऐसा ही कहा, मैं यहीं हूँ, ऐसा कुछ रखना नहीं। बहिन! मैं तो यहीं हूँ, यहीं हूँ ऐसा तीन बार कहा। बस, उतना। स्वप्न उतना आया था। गुरुदेव है, शरीर देवका था, पहनावट देव की थी। दिखाव सब देवका ही था।

... वे तो हर जगह अलग ही हैं। सर्वसे अलग दिखे ऐसे कुछ अलग ही हैं। तीर्थंकरका द्रव्य, उनके जैसा कोई नहीं था। ऐसा उनका प्रभाव था। चले जाते हो तो मानों भव्य... दूर-से कोई उन्हें भगवान ही कह दे, ऐसे लगते थे। देव हो गये इसलिये अधिक दिव्यमूर्ति हो जाते हैं। .. चले तो ऐसा लगे। दूसरे लोग देखे तो माहोल बदल जाय। दिव्यमूर्ति वही है।

... जानेकी शक्ति नहीं होती। देवके शरीरमें हर जगह जानेकी शक्ति होती है। उनका वैसा वैक्रियक शरीर है, हर जगह जा सके। भगवानके पास जा सके, समवसरणमें जाये। और इस लोकको वे अवधिज्ञान-से देखते हैं। तो लोकमें जहाँ जानेकी भावना आये वहाँ जा सकते हैं। भाव आवे भी, और दूर-से भी देखते हों। अवधिज्ञानमें प्रत्यक्ष देखते हों। भगवानकी उन्हें बहुत भावना थी तो भगवानके पास समवसरणमें जाये। यहाँ आनेकी उन्हें भावना (हो), अवधिज्ञानमें उपयोग रखे तो वे तो प्रत्यक्ष देखते हैं। लोकका अमुक भाग दिखाई दे। जम्बू द्विप, विदेहक्षेत्र आदि सब जम्बू द्वीपमें

ही आया है। सीमंधर भगवान आदि।

.. इतना क्षेत्र ऊपर, नीचे जो उसका हो, उस अनुसार प्रत्यक्ष दिखता है। उनके क्षेत्रमें रहकर उपयोग रखकर देखे तो सब प्रत्यक्ष देखते हो। जैसे नजदीक-से देखते हैं, वैसे प्रत्यक्ष दूर-से दिखता है।

.. उस अनुसार स्वप्न आये, कुछ दूसरा आये, कोई स्वप्न यथातथ्य हो, कोई स्वप्न संस्कारके कारण आये। भूतकालके जो संस्कार हो कि गुरुदेव पधारते हैं और गुरुदेव प्रवचन करते हैं, वह सब संस्कार होते हैं। कोई स्वप्नमें यथातथ्य स्वप्न भी हो और कोई संस्कारके कारण आये। अन्दर जो रटन हो उस अनुसार आते रहते हैं।

मुमुक्षु :- यथातथ्य भी कोई आये।

समाधान :- हाँ, यथातथ्य स्वप्न भी आवे। ... यथातथ्य है या भावनाका है, क्या है? माताको स्वप्न आते हैं, सोलह स्वप्न। वह सब आगाही लेकर आते हैं।

मुमुक्षु :- यथातथ्य।

समाधान :- यथातथ्य स्वप्न आता है। .. कोई देव आते भी हैं, परन्तु दूसरेको दिखे भी नहीं। प्रसंग पड़े, कोई मन्दिरके दर्शन हेतु या कोई प्रतिमाका उत्सव, कोई देव आते भी है, परन्तु आवे ही ऐसा नहीं। आते हैं, देव नहीं आते हैं ऐसा नहीं है।

... जो अपनी भूल है वह भूल है। स्व-परकी एकत्वबुद्धि ही बड़ी भूल है। परपदार्थको अपना मानना और अपनेको अन्य मानना। स्वयं अन्यरूप एकत्व हो जाय और अन्यको अपना मानता है, वह एकत्वबुद्धिकी बड़ी भूल है। विभावस्वभाव अपना नहीं है, उसे अपना मानता है वह उसकी बड़ी भूल है। बड़ी भूल वही है। एकत्वबुद्धिकी भूल है। फिर विचारमें द्रव्य-गुण-पर्यायकी (भूल हो)। वह निर्णय करनेमें भूल करता हो, अपने विचारमें, निर्णयमें भूल करे। बाकी एकत्वबुद्धिकी भूल अनादिकी चली आ रही है।

सम्यग्दर्शनका विषय तो एक द्रव्यको ग्रहण करना उसका विषय है। चैतन्य पदार्थ अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य है उसे ग्रहण करना। उसमें कोई अपेक्षा (नहीं है)। स्वतःसिद्ध द्रव्य है। उसमें कोई अपूर्णकी, पूर्णकी कोई अपेक्षा नहीं है। वह अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य है। उस द्रव्यको ग्रहण करना। फिर पर्यायमें अल्पता है उसे ज्ञानमें जानना है कि पर्यायमें अधूरापन है, अभी विभाव है। भेदज्ञान करके पूर्णता करनी अभी बाकी रहती है, लीनता बाकी रहती है। वह सब ज्ञानमें जानना। ज्ञान यथार्थ करना। दृष्टमें एक द्रव्यको ग्रहण करना। दृष्टिका विषय एक द्रव्य है। और ज्ञानमें सब ज्ञात होता है। निश्चय-व्यवहार सब ज्ञानमें ज्ञात होता है।

ज्ञान एवं दर्शन साथमें ही होते हैं। जिसे दर्शन सम्यक् हो, उसका ज्ञान भी सम्यक्

होता है। यथार्थ द्रव्यको ग्रहण किया तो ज्ञानमें द्रव्य और पर्याय दोनों ज्ञानमें ग्रहण होते हैं। दर्शन एवं ज्ञान साथमें ही होते हैं। इसलिये विषय तो एक चैतन्यको ग्रहण करनेका है। ज्ञान सब करता है। परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त करने हेतु भेदज्ञान करे वह एक ही उसका उपाय है। और उसके लिये स्वयं तैयारी (करे)। चैतन्य कोई अपूर्व वस्तु है, कोई अनुपम है। उसकी महिमा आये, उसकी लगन लगे, बारंबार उसीका अभ्यास करे, वही उसका उपाय है।

उसे एकत्वबुद्धि टूटकर भेदज्ञान हो। द्रव्यकी दृष्टि, द्रव्य पर दृष्टि (करे)। स्वसे एकत्व और परसे विभक्त। विभाव-से विभक्त होना और अपनेमें एकत्व होना। वह उसका उपाय है, दूसरा कोई नहीं है। ऐसी भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो, मैं ज्ञायक हूँ। उसे याद नहीं करना पड़ता, ऐसी सहज ज्ञायकधारा, सहज ज्ञाताकी धारा-ज्ञायकधारा प्रगट हो तो उसमें विकल्प छूटकर निर्विकल्प दशा हो। वह उसका उपाय है। परन्तु उसके लिये बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये। चैतन्यका द्रव्य, गुण, पर्याय क्या है? वह शाश्वत द्रव्य कैसे हो? उसकी पर्याय क्या है? वह सब नक्की करके बारंबार अभ्यास करे कि मैं भिन्न ही हूँ। ये शरीर मैं नहीं हूँ, ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। विभावकी परिणति होती है, परन्तु उससे भिन्न मेरा स्वभाव है। उससे भिन्न पड़नेका प्रयत्न करे कि मैं ज्ञायक हूँ। वह एक ही उपाय है। ज्ञाताधारा प्रगट करनी, वह एक ही उपाय है।

मुमुक्षु :- ज्ञाताधारा द्रव्यके आश्रय-से प्रगट होती है। तो आश्रयका क्या अर्थ बताना चाहते हो?

समाधान :- आश्रय अर्थात् अपना अस्तित्व, चैतन्यका अस्तित्व ग्रहण करना कि यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ। अपना अस्तित्व ग्रहण करके उसमें स्थिर खड़ा रहता है कि मैं यही हूँ। अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। इस तरह उसकी दृष्टि विभाव तरफ-से उठाकर ज्ञायकका जो अस्तित्व चैतन्य जो है, वह मैं हूँ। इसप्रकार अपने ज्ञानस्वभावको ग्रहण कर ले। ये विभावके साथ जो ज्ञान है, वह विभावमिश्रित ज्ञान नहीं, परन्तु अकेला जो ज्ञान है, वह ज्ञानस्वरूप ही मैं हूँ। वह ज्ञान ज्ञायकके आधार-से है। वह गुण है परन्तु वह गुण ज्ञायकके आधार-से है। इसलिये द्रव्यको ग्रहण करे। ज्ञानलक्षण द्वारा लक्ष्यको ग्रहण करे। द्रव्यको ग्रहण करे कि ये ज्ञान, ज्ञान-से भरा जो द्रव्य है वही मैं हूँ। इसप्रकार अपने अस्तित्वको ग्रहण करे। उसमें दृष्टिको स्थापित करे और उसमें लीनता करे। उसका आलम्बन वह द्रव्य है, अन्य कोई आलम्बन नहीं है।

भगवानने, गुरुदेवने एक ही उपाय (बताया है)। जो मोक्ष गये, वे इस एक ही उपाय-से गये हैं। दूसरा कोई उसका उपाय नहीं है। चैतन्यका आश्रय ग्रहण करे। बाहर

विभावकी परिणति जाती है। बारंबार मैं चैतन्य हूँ, (ऐसे) अपना अस्तित्व ग्रहण करे कि ये ज्ञायक सो मैं। वह ज्ञानगुण ऐसा है कि असाधारण है। वह लक्ष्यमें आये, ख्यालमें आये ऐसा ज्ञानगुण है। दूसरे कुछएक गुण असाधारण है जो स्वयंको जल्दी लक्ष्यमें नहीं आते हैं। परन्तु ये ज्ञानलक्षण है, दूसरेमें जाननेका लक्षण नहीं है। वह जाननेका लक्षण एक आत्मामें ही है। जानन लक्षण पर-से अपना अस्तित्व ग्रहण करे कि ये जानन लक्षण जो है, उस लक्षणवाला मैं चैतन्य हूँ। उस ज्ञानके साथ जीवमें ऐसे अनन्त गुण हैं। परन्तु ज्ञानगुण-से पूरा आत्मा ग्रहण करे। उसमें अनन्त आनन्द गुण, सुख गुण सब उसमें है। परन्तु आनन्द ऐसा विशेष गुण नहीं है, उससे पकड़में नहीं आता। परन्तु ज्ञान ऐसा स्वभाव है कि उससे ग्रहण होता है। इसलिये ज्ञान द्वारा आत्मा ग्रहण हो सकता है। ज्ञानलक्षण यानी ये बाहरका जाना वह ज्ञान, ऐसे नहीं। उस ज्ञानको धरनेवाला कौन है? ज्ञेय जाना, यह जाना, वह जाना वह ज्ञान, ऐसा नहीं। परन्तु वह ज्ञान कहाँ-से आता है? उस ज्ञानको धरनेवाला, ज्ञानका अस्तित्व किस द्रव्यमें रहा है, उस द्रव्यको ग्रहण करना। ये जाना, ज्ञेय-से ज्ञान ऐसा नहीं, परन्तु मैं स्वयं ज्ञानस्वरूप हूँ। उस ज्ञानको धरनेवाला कौन चैतन्य है? उसे ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- यह मुद्देकी बात आयी। ज्ञान स्वयं अपने-से जानता है, ज्ञेय-से नहीं।

समाधान :- उस ज्ञानको धरनेवाला मैं चैतन्य हूँ।

मुमुक्षु :- ज्ञानको धरनेवाला हूँ।

समाधान :- ज्ञानको धरनेवाला मैं चैतन्य हूँ। पहले मूल अस्तित्वको ग्रहण करनेका प्रयत्न करे कि मैं यह चैतन्य हूँ।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७६

मुमुक्षु :- द्रव्य पर्यायमें आता नहीं, वह कैसे?

समाधान :- द्रव्य पर्यायमें नहीं आता अर्थात् द्रव्य है वह द्रव्यस्वरूप ही है। द्रव्यका स्वरूप शाश्वत अनादिअनन्त है और पर्याय है वह क्षणिक है। वह पर्याय पलट जाती है। द्रव्य, पर्यायकी भाँति क्षण-क्षणमें पलटे ऐसा द्रव्य नहीं है। द्रव्य पर्यायमें आता नहीं अर्थात् द्रव्य कहीं क्षण-क्षणमें पलटता नहीं है। द्रव्य तो एक सरीखा रहता है और पर्याय तो पलटती है। इसलिये द्रव्य पर्यायमें इस तरह नहीं आता।

बाकी पर्याय है वह द्रव्यका स्वरूप है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों मिलकर द्रव्यका स्वरूप है। लेकिन वह पर्याय प्रतिक्षण पलटती है। परन्तु द्रव्य पलटता नहीं है। इसलिये द्रव्य पर्यायमें नहीं आता। द्रव्य अनादिअनन्त है और पर्याय पलटती रहती है। परन्तु वह पर्याय द्रव्यके आश्रय-से होती है। पर्याय कहीं निराधार नहीं होती है। पर्याय द्रव्यके आश्रय-से ही होती है, पर्याय द्रव्यमें ही होती है।

स्वभावपर्याय जो द्रव्यके आलम्बन-से होती है, जो अनन्त गुणोंकी ज्ञानकी पर्याय हो, आनन्दकी पर्याय हो वह सब शुद्धात्माके-द्रव्यके आश्रयसे होती है। और विभाव जो होता है वह अपने पुरुषार्थकी मन्दता-से होती है, विभाविक पर्याय। परन्तु वह विभावकी पर्याय अपना स्वभाव नहीं है। उसका और स्वयंका भावभेद है। अपना स्वभाव अलग और विभावपर्यायका स्वभाव भिन्न है। इसलिये उसका भावभेद है। इसलिये उससे भेदज्ञान करता है कि ये जो विभावका आकुलतायुक्त भाव है, वह मेरा स्वभाव नहीं है। स्वभाव भिन्न है। पुरुषार्थकी मन्दता-से उसकी पर्याय होती है, परन्तु वह पर्याय विभाव है, वह भाव भिन्न है। उसका भाव भिन्न है और मेरा भाव भिन्न है। उससे भेदज्ञान करता है। पुरुषार्थ तीव्र हो तो वह विभावपर्याय छूट जाती है और स्वभाव पर्याय प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ अर्थात् जैसा हूँ वैसा अहंभाव होना चाहिये?

समाधान :- स्वभाव जैसा है, वैसा उसे ग्रहण करना चाहिये कि यह मैं हूँ। उसका अस्तित्व ग्रहण करना चाहिये। विकल्परूप-से कि यह मैं हूँ, ऐसा नहीं, परन्तु जो ज्ञानकी धारा चल रही है, वह ज्ञान चल रहा है, उस ज्ञानको धरनेवाला एक

चैतन्य है, उस चैतन्यको ग्रहण करना।

जो अन्दर मैं, मैं हो रहा है, विकल्परूप नहीं, परन्तु वह जो ज्ञानका अस्तित्व है, जो सबको जाननेवाला है, जो अनन्त काल गया अथवा स्वयं छोटे-से बडा हुआ, वह सब भाव तो चले गये, परन्तु उसको जाननेवाला तो वैसा ही है। धारावाही जाननेवाला है। छोटा था, फिर क्या हुआ, जो विचार आये, गये, उन सबको जाननेवाला तो धारावाही ऐसा ही है। उस जाननेवालेका जो अस्तित्व है वह मैं हूँ। जाननेवाला मैं हूँ। बाहरका जाना इसलिये जाननेवाला हूँ, ऐसा नहीं, परन्तु मैं जाननेवाला स्वयं जाननेवाला ही हूँ। जाननेवालेका अस्तित्व ग्रहण करना।

.. आश्रय-से होती है, परन्तु पर्याय जितना द्रव्य नहीं है। पर्याय क्षणिक है, अंश है। और द्रव्य है सो तो अंशी है। अनन्त पर्यायरूप द्रव्य परिणमता है और पर्याय तो पलटती रहती है। और द्रव्य तो अनादिअनन्त एकसरीखा है। अतः अंश जितना द्रव्य नहीं है। द्रव्य तो पूरा अंशी अनादिअनन्त अनन्त-अनन्त स्वभाव-से भरा है। अनन्त स्वभाव-से भरा है।

मुमुक्षु :- अनन्त गुण जो कहनेमें आता है, वह क्या है?

समाधान :- अनन्त गुण कहो, अनन्त स्वभाव कहो, वह सब एक है।

मुमुक्षु :- द्रव्य निष्क्रिय कैसे है?

समाधान :- द्रव्य निष्क्रिय अर्थात् पारिणामिकभावकी अपेक्षा-से वह क्रियावान है। उसमें परिणति होती है। प्रत्येक गुणोंकी पर्याय (होती है)। ज्ञानका कार्य ज्ञानरूप आये, आनन्दका कार्य आनन्दरूप आता है। प्रत्येक गुणका कार्य उसमें आते ही रहता है। केवलज्ञानीको केवलज्ञान होता है, लोकालोकको जाने वह सब ज्ञानका कार्य आता है। केवलज्ञानी आनन्दरूप परिणमते हैं, आनन्दका कार्य आवे। उस अपेक्षा-से द्रव्य सक्रिय है। परन्तु वह क्रिया ऐसी नहीं है कि वह द्रव्य सर्व प्रकार-से क्रियात्मक है।

स्वयं अनादिअनन्त निष्क्रिय है। स्वयं अपनी अपेक्षा-से द्रव्य निष्क्रिय है। मर्यादामें उसकी क्रियाएँ होती है। अपना द्रव्य पलट जाय ऐसी क्रिया उसमें नहीं होती है। अपना स्वभाव रखकर वह क्रिया उसमें होती है। उस अपेक्षा-से द्रव्य निष्क्रिय है। पर्याय अपेक्षा-से सक्रिय है और द्रव्य अपेक्षा-से निष्क्रिय है। सर्वथा निष्क्रिय नहीं है।

मुमुक्षु :- वहाँ द्रव्य अकेला ध्रुव लेना?

समाधान :- हाँ, अकेला ध्रुव द्रव्य। द्रव्य एकसरीखा रहता है।

मुमुक्षु :- जो दृष्टिका विषय बनता है वह?

समाधान :- हाँ, जो दृष्टिका विषय बनता है, वह द्रव्य एकसरीखा निष्क्रिय रहता है। जिसमें कोई फेरफार नहीं होते। अनादिअनन्त एकरूप रहता है। अपना नाश नहीं

होता, ऐसा अनादिअनन्त निष्क्रिय द्रव्य है। परन्तु द्रव्य अपेक्षा-से निष्क्रिय, पर्याय अपेक्षा-से सक्रिय है। यदि निष्क्रिय हो तो केवलज्ञानकी पर्याय नहीं हो, आनन्दकी पर्याय नहीं हो, उसमें साधक दशा नहीं हो, मुनि दशा नहीं हो। यदि कोई क्रिया होती ही न हो तो (कोई दशा ही नहीं हो)। पर्याय अपेक्षा-से सक्रिय और द्रव्य अपेक्षा-से निष्क्रिय है।

.. द्रव्य शून्य नहीं है। जागृतिवाला है और कार्यवाला है। द्रव्य अपेक्षा-से निष्क्रिय। अपना स्वभाव उसमें रहता है। ऐसा नित्यरूप ध्रुव रहता है, वह निष्क्रिय है। पर्याय अपेक्षा-से कार्यवाला है।

.. तो उसे ज्ञान कैसे कहें? आनन्द आनन्दरूप कार्य न लावे तो वह आनन्दका गुण कैसे कहें? ज्ञानका जाननेका कार्य यदि ज्ञान न करे तो उसे ज्ञान कैसे कहें? आनन्द आनन्दका कार्य, शान्ति शान्तिका कार्य न करे तो वह शान्ति और आनन्दका लक्षण कैसे कहें? यदि किसी भी प्रकारकी क्रिया ही नहीं होती हो द्रव्यमें तो जाननेका कार्य भी न हो और शान्तिका कार्य भी न हो और पुरुषार्थ पलटनेका कार्य न हो, तो कोई कार्य ही न हो, सर्वथा निष्क्रिय हो तो।

दो पारिणामिक भाव नहीं है, पारिणामिकभाव तो एक ही है। पारिणामिकभाव अनादिअनन्त द्रव्यरूप जैसा है वैसा, एकरुप ध्रुवरूप द्रव्य रहता है, वह पारिणामिकभावरूप, अपने स्वभावरूप पारिणामिकभाव रहता है। वह पारिणामिकभाव है। और पर्यायमें जिसमें उपशम या क्षायिक ऐसी अपेक्षा लागू नहीं पड़ती, इसलिये वह पर्यायरूप ऐसा कहनेमें आता है। .. अपेक्षा-से और पर्याय भी पारिणामिकभावकी अपेक्षा-से। ध्रुवरूप एकसरीखा रहता है, इसलिये परमपारिणामिकभाव। और पर्याय भी पारिणामिकभावरूप है। जिसमें उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक ऐसी अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। इसलिये उसे ऐसी पर्याय कहनेमें आती है।

मुमुक्षु :- .... भूमिका किसे कहते हैं?

समाधान :- स्वभावकी लगन अन्दर लगनी चाहिये कि मुझे स्वभाव चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। उसके लिये उसकी धून, लगनी, विचार, वांचन, उसकी महिमा लगे, बाहर सब रस ऊतर जाय, बाहरमें जो तीव्रता हो वह सब मन्द पड़ जाय। बाहरका लौकिक रस उसे मन्द पड़ जाय। एक अलौकिक दशा प्राप्त (हो)। अलौकिक महिमारूप आत्मा है। लौकिक कार्यका रस उसे मन्द पड़ जाय। उसमें खड़ा हो, लेकिन सब मन्द पड़ जाता है। उसका रस, विभावका सर्व प्रकारका रस उसे मन्द पड़ जाता है।

शुभभावमें उसे देव-गुरु-शास्त्र होते हैं और शुद्धात्मामें एक आत्मा। शुद्धात्मा कैसे प्राप्त हो? जो भगवानने प्राप्त किया, जो गुरुदेवने साधना की और जो शास्त्रमें आता है, उस पर उसे भक्ति आती है। शुभभावमें वह होता है और अंतरमें शुद्धात्मा कैसे

प्राप्त हो, वह होता है। बाकी सब रस उसे ऊतर जाता है। एक आत्मार्थका प्रयोजन (होता है)। मुझे कैसे आत्माकी प्राप्ति हो? प्रत्येक कार्यमें उसे वह प्रयोजन होता है। शुभभाव आये, देव-गरु-शास्त्रकी भक्ति (आये)। बाकी सब उसे मन्द पड़ जाता है। शुभभाव तो शुद्धात्मा प्राप्त हो तो भी आते हैं, परन्तु उसका भेदज्ञान वर्तता है। भेदज्ञान हो तो भी शुभभाव होते हैं। परन्तु वह अपना स्वभाव नहीं है। शुद्धात्माकी पहचान कैसे हो? शुद्धात्माकी भावना, उसकी लगन, उसकी महिमा, उसके लिये विचार, वांचन सब होता है। दूसरा सब रस कम हो जाता है। एक देव-गुरु-शास्त्र तरफकी शुभभावना रहती है और आत्मा कैसे प्राप्त हो, उस तरफकी लगन रहती है।

मुमुक्षु :- अनुभूति दशाका अंतरंग स्वरूप कैसा होता है?

समाधान :- अंतरंग तो वाणीमें आता नहीं। विकल्प छूटकर अंतरमें जो वेदन हो, वह तो स्वयं अनुभव कर सकता है। जिसमें अकेला आत्मा ही है। विकल्प तरफका उपयोग छूट जाता है, विकल्प छूट जाता है। वीतराग नहीं हुआ है इसलिये अबुद्धिपूर्वक होता है। बाकी अंतर्मुहूर्तमें उपयोग फिर-से बाहर आता है। क्षणभरके लिये उपयोग अपनेमें जम जाता है। जो स्वरूप अपना अस्तित्व चैतन्यका है, ज्ञायकका अस्तित्व है उसमें उसका उपयोग जम जाता है। चैतन्य जिस स्वभाव-से है, अनन्त गुण-से भरपूर और आनन्द-से भरा हुआ आत्मा, आनन्द गुण स्वयंसिद्ध उसीका है। ज्ञानगुण उसका है, ऐसे अनन्त गुण-से भरा हुआ आत्मा, उसमें उसका उपयोग लीन हो जाता है, विकल्प छूट जाता है। विकल्पकी आकुलता छूटकर उसका उपयोग स्वरूपमें जम जाता है।

स्वानुभूति तो वचनमें (आती नहीं), वह स्वयं वेदन करके जान सकता है। वचनमें तो अमुक प्रकारसे आता है। उसकी दिशा पूरी बदल जाती है। जो विभावकी बाहरकी दिशा थी, वह पलटकर स्वभावकी दिशा कोई अलग ही दुनियामें चला जाता है। वह उसकी स्वानुभूति है। ये विभावकी दुनिया नहीं, ये लौकिक दुनिया नहीं, परन्तु अलौकिक दुनियामें वह चला जाता है और स्वभावमें एकदम लीनता हो जाती है। उसमें जो उसका स्वभाव है, उस जातकी परिणति हो जाती है, वह उसे अनुभूतिमें वेदनमें आती है और वह उसे जान सकता है, अनुभव कर सकता है। आनन्दसे भरा, ज्ञानसे भरा, चैतन्य चमत्कार देव, चमत्कारी देव स्वयं विराजता है। उसकी उसे स्वानुभूति होती है।

मुमुक्षु :- जो कुछ कह सको वह आप कह सकते हो। बाकी उसका अंतरंग स्वरूप तो...

समाधान :- अमुक प्रकार-से आये। विकल्प छूटकर निर्विकल्प दुनियामें चला जाता है। और उसमें अपना जो चैतन्यका अस्तित्व है, वह उसे स्वानुभुतिमें आता है। अनन्त गुणका भण्डार आत्मा है, वह उसे स्वानुभूतिमें आता है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वह

सिद्ध भगवानका अंश उसे स्वानुभूतिमें आता है। उसकी दिशा पलट जाती है, उसकी परिणति पलट जाती है। स्वसन्मुख होकर स्वरूपमें जम जाता है। अनुपम गुणका भण्डार, अनुपम आनन्द-से भरा आत्मा, उस अनुपम आनन्दका वेदन करता है। जगतकी विभावदशामें जो आनन्द नहीं है, विभावदशामें जो ज्ञान है वह आकुलतायुक्त ज्ञान है। स्वयं निराकुल स्वरूप आत्मा और अनुपम आनन्द-से भरा, ऐसे आत्माका वह वेदन करता है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प ध्यानका स्वरूप और ये दोनों एक ही है? निर्विकल्प ध्यानका स्वरूप कहो या अंतरंग अनुभूतिस्वरूप कहो, (दोनों एक ही है)?

समाधान :- दोनों एक ही है। निर्विकल्प ध्यान यानी स्वरूपकी स्वानुभूति है।

मुमुक्षु :- दृष्टिका विषय जो है वह तो शुद्ध-अशुद्ध पर्याय रहित सामान्य द्रव्य स्वभाव है। जबकि ज्ञानका विषय सामान्य-विशेष तथा सर्व पहलूसे आत्माको जानना है। अब, जितना ज्ञानका विषय सामान्य पहलू है, उतना तो दृष्टिका विषय है ही। फिर भी दृष्टि सम्यक् हो तभी ज्ञान सम्यक् हो, ऐसा क्यों?

समाधान :- ज्ञानका विषय है। परन्तु दृष्टि है वह भेदमें रुकती नहीं, एक सामान्य पर ही दृष्टिको स्थापित कर दी है। उसका ज़ोर एक सामान्य पर ही है। ज्ञान सामान्य और विशेष दोनोंको जानता है। जाननेमें भेद आते हैं। दृष्टिमें एक सामान्यका जो बल आता है, ऐसा बल ज्ञानमें नहीं है। दृष्टि बलवान है। एक सामन्यको ग्रहण करती है, एकको ग्रहण करनेवाली है। उस एक पर ही ज़ोर करके आगे बढती है।

चैतन्य जो सामान्य अनादिअनन्त है वह मैं हूँ। उसमें भेद पर उसकी नज़र नहीं है, पर्याय पर नज़र नहीं है, गुणभेद पर नज़र नहीं है। एक सामान्य चैतन्यका अस्तित्व जो ज्ञायक, वह मैं हूँ। उस पर दृष्टिका बल, जो सामर्थ्य है वैसा बल ज्ञानमें नहीं है। ज्ञान जाननेका कार्य करता है। सामान्य और विशेष दोनोंका जानकर, जैसा ज्ञान हो वैसी उसकी परिणति होती है। ज्ञान यथार्थ हो तो परिणति यथार्थ होती है। परन्तु दृष्टि अधिक बलवान है। दृष्टिमें बल है। पूरे सामान्यको ग्रहण किया है इसलिये।

मुमुक्षु :- मूल्यवान दृष्टि है?

समाधान :- मूल्यवान दृष्टि है।

मुमुक्षु :- दृष्टि जो काम करती है वह ज्ञानमें ज्ञात होता है।

समाधान :- ज्ञानमें ज्ञात होता है, परन्तु दृष्टि बलवान और जोरदार है। एक पर स्थापित करके उस अनुसार उसकी परिणति, लीनता होती है। आदमीने एक नक्की किया हो कि ऐसा करना है। एकके सिवा दूसरा कुछ देखे नहीं और दृढ़तासे वह कार्य करता है। वैसे यह एक (कार्य दृष्टि करती है)। फिर बीचमें जो सब भेद और प्रकार है, उस पर दृष्टि नहीं देकर एक सामान्य, एक आत्माको (ग्रहण करती है)। बस,

आत्माकी परिणति कैसे प्रगट हो? उस बसपूर्वक दृष्टिकी परिणति होती है। आदमीने निर्णय किया कि यह एक ही (करना है)। आजुबाजुका कुछ नहीं, एक ऐसा ही करना है। वैसे उसके बल-से लीनताका और चारित्रका बल उसमें आता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान भी वही बल करेगा न? ज्ञानमें भी वैसा ही बल होना चाहिये न?

समाधान :- ज्ञानमें बल है। ज्ञानमें सब जाननेमें आता है। ज्ञानमें बल आता है, दृष्टिमें बल आता है, परन्तु दृष्टिका बल अधिक आता है। अधिक है। ज्ञान सब पहलूको जानता है, जाननेका कार्य सब पहलूओंमें होता है कि यह अधूरा है, यह पूरा है, यह केवलज्ञान है, यह साधकदशा है, यह चारित्र है, ये गुणभेद है, ये पर्यायभेद है। ज्ञान सब जानता है, ये एक अखण्ड है। अखण्डका बल है ज्ञानमें, परन्तु वह सब जानता है। लेकिन जिसने एक ही ग्रहण किया है, ऐसी दृष्टि बलवान है।

मुमुक्षु :- अकारण पारिणामिक द्रव्य और केवलज्ञानमें सर्व पदार्थोंकी पर्याय उत्कीर्ण हो गयी है, इन दोनोंका मेल कैसे करना?

समाधान :- अकारण पारिणामिक द्रव्य, वह तो स्वतःसिद्ध जो अनादिअनन्त द्रव्य पारिणामिक स्वरूप है। स्वभाव जो है अनादिअनन्त स्वभावरूप है वह पारिणामिक स्वरूप है। और केवलज्ञान तो प्रगट पर्याय है। उसमें तो सामान्य पारिणामिक स्वभाव सामान्य रूप-से अनादिअनन्त कि जिसमें कोई भेद नहीं पड़ते, ऐसा पारिणामिकभाव अनादिअनन्त है। केवलज्ञान है वह प्रगट पर्याय है, लोकालोकको जानती है। निर्मल पर्याय केवलज्ञानकी लोकालोकको जानती है। भले उसे क्षायिक पर्याय कहते हैं, उसमें पारिणामिक साथमें है, परन्तु क्षायिक पर्याय कहते हैं, केवलज्ञानकी पर्याय है। पारिणामिकभाव तो अनादिअनन्त है और क्षायिक पर्याय केवलज्ञानकी पर्याय बादमें प्रगट होती है। वह अनादिअनन्त नहीं होती। ये तो अनादिअनन्त है, पारिणामिकभाव है।

निगोदमें गया तो भी पारिणामिकभाव तो अनादिअनन्त है। पारिणामिकभावरूप जो चैतन्य है, वह अनादिअनन्त है। और केवलज्ञान तो उसमें शक्तिरूप है। पुरुषार्थकी साधना-से केवलज्ञान प्रगट होता है। वह क्षायिक पर्याय है। वह लोकालोकको जानती है। स्वरूपमें वीतराग दशा हो गयी इसलिये उसका ज्ञान पूर्ण प्रगट हो गया। स्वरूपमें रहकर, स्वभावको जानता हुआ, लोकालोककी सर्व पर्यायें उसमें सहज ज्ञात होती है। वह उसकी प्रगटरूप-से सादिअनन्त पर्यायें प्रगट होती है। पारिणामिकभाव है वह तो अनादिअनन्त है।

मुमुक्षु :- पूछनेका प्रश्न यह था कि अकारण पारिणामिक द्रव्य यानी स्वतंत्र द्रव्य है या जैसे परिणाम करना चाहे वैसा स्वयं कर सकता है? उसका और केवलज्ञानका दोनोंका मेल कैसे है?

समाधान :- जैसा भाव करने हो वैसे कर सकता है। अकारण-उसमें कोई कारण

नहीं लागू पड़ता। केवलज्ञानमें भी कोई कारण नहीं है। वह जो भाव करे उसमें कोई कारण लागू नहीं पड़ता। सब अकारणरूप-से परिणमते हैं।

मुमुक्षु :- केवलज्ञानीने जाना हो वैसा हो न। अकारण पारिणामिक कैसे रहा? अकारण पारिणामिक द्रव्य स्वतंत्र है और केवलज्ञानीने जाना हो वैसे परिणमे तो बँध गया।

समाधान :- केवलज्ञानीने जाना... केवलज्ञानीने इसलिये कहीं बँध नहीं गया। वह तो स्वतः परिणमता है। केवलज्ञानमें ऐसा ही ज्ञात हुआ है। केवलज्ञानीने जाना इसलिये स्वयं परिणमन न कर सके ऐसा नहीं है। स्वयं तो स्वतंत्र परिणमता है। केवलज्ञान उसे रोकने नहीं आता। केवलज्ञान केवलज्ञानमें है और स्वयं अपनेमें है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। केवलज्ञानीने जाना इसलिये वैसे परिणमना ही पड़े, ऐसे द्रव्य कहीं पराधीन नहीं हो गया। केवलज्ञानने जाना इसलिये स्वयं उसके अधीन हो गया, ऐसा कुछ नहीं है। स्वयं स्वतंत्र परिणमता है। अपनी परिणति अपने-से होती है, केवलज्ञान उसे परिणमन नहीं करवाता। अपनी परिणति, कैसा परिणमन करना वह अपने हाथकी बात है।

स्वयं स्वभाव तरफ परिणमे, विभाव तरफ जाता है, वह सब अपनी परिणति तो स्वतः बदलता है। इसलिये पुरुषार्थ-से पलटना वह अपने हाथकी बात है। केवलज्ञानने जाना इसलिये उसके हाथमें है, ऐसा नहीं है। केवलज्ञानने जाना इसलिये उसके हाथमें है, ऐसा नहीं है। वह जिस स्वरूप पलटता है, वैसा केवलज्ञान जानता है। भले केवलज्ञानमें पहले-से ज्ञात हुआ हो, परन्तु पलटता है वह स्वयं अपने-से पलटता है। केवलज्ञानने जाना इसलिये वैसे ही परिणमना पडे, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

भले केवलज्ञानमें ज्ञात हुआ कि यह परिणमन ऐसे होगा। तो भी स्वयं ही परिणमता है। अपने पुरुषार्थकी गति-से स्वयं परिणमता है। स्वयं ऐसा माने के केवलज्ञानमें जैसा जाना वैसा होगा। ऐसा जो मानता है, उसका पुरुषार्थ उठता नहीं। जो ऐसा माने कि जैसे होना होगा वैसे होगा, उसका पुरुषार्थ (उठता नहीं)। पुरुषार्थपूर्वक जिसके ख्यालमें ऐसा रहता है कि मुझे पुरुषार्थ करना है, मुझे चैतन्यकी दशा प्रगट करनी है, ऐसी जिसे भावना रहे उसे ही केवलज्ञान और सब सुलटा जाना है। जिसके भावमें ऐसा रहे कि जैसे होना होगा वैसे होगा, उसकी परिणति केवलज्ञानीने वैसी ही जानी है।

जो परिणति पलटती है, उसे पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। पुरुषार्थके सम्बन्ध बिना वह ऐसा माने कि पुरुषार्थ हो या न हो, ऐसे ही पलट जायगी। जो सहज परिणति प्रगट होती है अकारणरूप-से, वह पुरुषार्थपूर्वक पलटती है। उसे पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। क्रमबद्ध और पुरुषार्थ दोनोंको सम्बन्ध है। अकेला क्रमबद्ध (नहीं है)। क्रमबद्धको पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है। पुरुषार्थ बिना क्रमबद्ध नहीं होता, वह सम्बन्धवाला है।

और जो पुरुषार्थ पर दृष्टि रखकर पलटता है, उसका केवलज्ञानीने ऐसा देखा है कि इसका सुलटा पलटना होगा, ऐसा जाना है। और जो पुरुषार्थ नहीं करता है, उसका वैसा जाना है। वह जाने इसलिये स्वयं पलट न सके ऐसा नहीं है। वह पुरुषार्थ-से पलटेगा ऐसा केवलज्ञान जानता है। यह जीव पुरुषार्थ-से इस प्रकार पलटेगा ऐसा केवलज्ञानी जानते हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७७

मुमुक्षु :- आपके वचनामृतमें ऐसा आता है कि शुद्ध द्रव्य स्वभावकी दृष्टि करके तथा अशुद्धताको ख्यालमें रखकर तू पुरुषार्थ करना। अशुद्धतारूप पर्यायका घूटन तो अनादि-से जीवने किया है, अब पुनः उसका ख्याल रखनेका क्या प्रयोजन है?

समाधान :- शुद्ध द्रव्यकी दृष्टि करनी कि मैं अनादिअननन्त शुद्धात्मा हूँ। परन्तु पर्यायमें अशुद्धता है, उसे तू ज्ञानमें रखना। तेरे ज्ञानमें ऐसा हो गया कि मैं पर्यायमें भी मेरी शुद्धता है, तो तुझे पुरुषार्थ करना ही नहीं रहेगा। भले अनादि-से अशुद्धता पर दृष्टि है, परन्तु उसने शुद्धताकी दृष्टि की ही नहीं है। परन्तु शुद्धताकी दृष्टि यदि करे तो अशुद्धता जो है उसका तू ज्ञान रखना। कहीं केवलज्ञान नहीं हो जाता है। तूने शुद्धता पर-शुद्धात्मा पर दृष्टि की तो द्रव्य-से पूर्ण है, पर्यायमें अधूरा है। इसलिये जैसा है वैसा वस्तुका स्वभाव बराबर चारों तरफ-से जानना। तो तेरी पुरुषार्थकी गति स्वभाव तरफ होगी। अशुद्धताका ख्याल रखना कि अभी पर्यायमें अशुद्धता है। और उसके लिये मैं स्वभावमें लीनता करुँ तो मेरी विशेष लीनता हो तो वह अशुद्धता टलती है। ऐसा ख्याल रखना। पर्यायमें अशुद्धता नहीं है, तो फिर तुझे कुछ पुरुषार्थ करना नहीं रहता। तू सर्वथा शुद्ध हो, द्रव्य और पर्याय सर्व प्रकार-से शुद्धता हो तो तुझे पूर्ण शुद्धताका वेदन होना चाहिये। तुझे केवलज्ञान होना चाहिये। वह तो है नहीं।

अतः द्रव्यदृष्टि-से मैं शुद्ध हूँ परन्तु पर्यायमें अभी मेरी अशुद्धता है तो शुद्ध पर्याय प्रगट करनेका तू ज्ञान रखना, तो तेरी परिणति स्वभाव तरफ जायेगी। दृष्टि अनादि-से अशुद्धताकी करी है, परन्तु मैं सर्वथा अशुद्ध ही हूँ ऐसा माना है। शुद्धताकी कुछ खबर ही नहीं है। पर्याय पर दृष्टि करके मैं मानो अशुद्ध ही हो गया हूँ और मेरा स्वभाव शुद्ध है, यह मालूम नहीं है। मैं सर्वथा अशुद्ध हूँ। वह तो महापुरुष हो वे कर सके, अपनेमें कुछ नहीं है। मेरा स्वभाव सिद्ध भगवान जैसा है, ऐसा कुछ माने नहीं और मैं तो सर्वथा अशुद्ध हो गया हूँ, ऐसी मान्यता है। वह मान्यता जूठी है। परन्तु मैं द्रव्यदृष्टि-से शुद्ध हूँ, पर्यायमें अशुद्धता है। उसका विवेक करके समझना चाहिये। अनादि-से माना है वह सर्वथा पूरा अशुद्ध माना है। उसकी बात है। उसे पलटनेके लिये मैं द्रव्य-से शुद्ध पूर्ण हूँ, द्रव्य पूर्ण शुद्ध है, परन्तु पर्यायमें अशुद्धता है, ऐसा

विवेक करना।

जो अशुद्धता दिखती है वह है तो सही। तेरी कुछ मलिनता है। वह क्या है? द्रव्य-से शुद्ध हूँ, द्रव्य तेरा शुद्ध है, परन्तु अभी मलिनता तो दिखती है। वह पर्यायकी है। इसलिये पर्यायका ख्याल रखकर शुद्ध पर्याय प्रगट कर। तेरी द्रव्यदृष्टिके ज़ोरमें लीनता (करके) शुद्ध पर्याय प्रगट कर तो अशुद्धता टल जायेगी। ऐसे विवेक करनेका है। तो पुरुषार्थ उठेगा।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! शुद्धता तो त्रिकाल द्रव्यमें त्रिकाल रहती है और अशुद्धता पर्यायमें होती है। तो क्या द्रव्य और पर्याय ऐसी सीमावाले दो भाग द्रव्यमें है?

समाधान :- नहीं, वस्तु तो अनेक स्वभाववान है। द्रव्य जो मूल वस्तु है उसमें अशुद्धताका प्रवेश हो जाय तो द्रव्यस्वभावका नाश हो जाय। मूल वस्तुमें कहीं अशुद्धताका प्रवेश नहीं होता। परन्तु वह अशुद्धता ऊपर-ऊपर है। जैसे स्फटिक निर्मल है, लाल-पीला (रंग) उसके अन्दर प्रवेश हो जाय तो स्फटिक ही न रहे। परन्तु लाल-पीला जैसे ऊपरका प्रतिबिम्ब है, वैसे परिणमता स्फटिक, परन्तु वह ऊपर है। अन्दर तद्गतरूपसे प्रवेश नहीं होता, उसके मूलमें-तलमें।

वैसे द्रव्य स्वयं शुद्ध रहता है, परन्तु उसकी पर्यायमें ऊपर-से सब मलिनता होती है। अनादिका जो उसे कर्मका संयोग और पुरुषार्थकी कमज़ोरीके कारण पर्यायमें मलिनता होती है। ऐसा द्रव्य-पर्याय वस्तुका स्वभाव है। द्रव्य-गुण-पर्याय। मूल वस्तुमें शुद्धता रहती है और पर्यायमें अशुद्धता होती है। अनादि-से ऐसे ही है। पानी स्वभाव-से निर्मल है। फिर भी उसमें कीचड़के निमित्त-से मलिनता होती है। मूलमें उसकी शुद्धता जाती नहीं। मूलमें-से शुद्धता नहीं जाती है। ऊपर-से सब मलिनता होती है। मूल जो वस्तु है उसमें शुद्धताका प्रवेश नहीं होता। ऊपर-ऊपर रहती है। परन्तु वह मान लेता है कि मेरेमें प्रवेश हो गया है। ऐसा बनता है।

इसलिये दो भाग इस प्रकार-से है। मूल तल और ऊपर-ऊपर सब पर्याय है। उसकी परिणति भले लाल-पीली हो, परन्तु मूल वस्तुमें उसका प्रवेश नहीं होता। वैसे ज्ञायक स्वभाव ऐसा है। उसके मूलमें मलिनता नहीं होती। परन्तु उसकी परिणति ऐसी अशुद्धरूप होती है। उसको पलट सकता है। भाग नहीं है। वह अंश है और यह अंशी है। उसके अंशमें ऐसा होता है।

मुमुक्षु :- तो फिर सब सरल हो जाय। लेकिन द्रव्य हाथमें नहीं आता।

समाधान :- मूल उसका तल हाथ लग जाय तो सब सरल है। (विभावभाव) सब ऊपर तिरते हैं, मूल अधिक आत्माको जाने कि मैं अधिक हूँ, मैं ज्ञायक स्वभाव हूँ। वह सब भिन्न है। मूल उसके हाथ लग जाय तो सब सरल है। उसका स्वभाव

हाथ लग जाय तो।

स्वयं ही है, कोई अन्य नहीं है कि उसे दुष्कर पड़े। स्वयं ही है। स्वयं अपने-से अपनेआपको भूला है। मूल यदि हाथ लग जाय तो सब सरल है। अपनी तरफ परिणति मुड़े तो मलिनता छूट जाय, उसका भेदज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- ऐसी विद्या आप दीजिये।

समाधान :- अंतरमें ऐसी लगन लगे तो युक्ति हाथ लग जाय। उसे चैन पड़े नहीं, युक्ति हाथ लगे बिना। ये विभावस्वभाव, ये सब भेदभाव, मैं अखण्ड द्रव्य हूँ, कैसे है? उसे अंतरमें कहीं चैन न पड़े। इसलिये स्वयं अपनेआपको अंतर-से खोज लेता है। गुरु तो मार्ग दर्शाते हैं, करना अपने हाथमें है। गुरुदेवने तो उपदेशका धोध बहाया है। करना स्वयंको बाकी रह जाता है।

मुमुक्षु :- जिसका अंतरलक्ष्यी जीवन है, वे जब बाहरमें विकल्प होते हो, तब देव-गुरु-शास्त्रके विकल्प हो या बारह भावना हो या दूसरे कोई शुभभाव हो, उसमें कोई प्रधानता देने योग्य विकल्प है कि नहीं? जैसे, देव-गुरु-शास्त्रकी प्रधानता देनी, बारह भावनाकी प्रधानता देनी, द्रव्य-गुण-पर्यायकी प्रधानता देनी, विकल्पात्मक?

समाधान :- उसे जिस प्रकारका चिंतवन चलता हो, उसकी जिस प्रकारकी परिणति हो, उस जातके भाव आते हैं। देव-गुरु-शास्त्रके आये, कभी बारह भावनाके आये, शास्त्रमें तो द्रव्य-गुण-पर्याय सब आ जाता है। उसे शुभभाव तो अनेक प्रकारके आते हैं। जिसे जहाँ जिस प्रकारकी रुचि हो, उस जातके भाव आते हैं। उस जातके भाव अमुक भूमिकामें होते हैं।

सब उसे अमुक प्रकार-से शुभभावनामें साथमें होता है। कभी कुछ मुख्य हो जाता है, कभी कुछ मुख्य होता है। प्रसंग अनुसार कभी बारह भावना मुख्य हो जाय, और देव-गुरु-शास्त्र तो उसके हृदयमें होते हैं तो वे मुख्य हो जाते हैं। प्रसंग अनुसार कभी बारह भावना (होती है), कभी श्रुतका चिंतवन (चलता है)। उसमें उसे जिस प्रकारका रस आता हो, वैसा उसे ज्यादा रहता है। और प्रसंग अनुसार वह बढ़ भी जाता है। ऐसा भी बनता है।

मुमुक्षु :- तीर्थंकर दीक्षा लेने-से पहले बारह भावनाका चिंतवन करते हैं, वैराग्य वृद्धिके लिये।

समाधान :- उसे दीक्षाके साथ सम्बन्ध है। एकदम वैराग्य आ गया है, बारह भावनाके साथ सम्बन्ध है। उसे दीक्षा लेनेकी जो भावना हुयी, उसके साथ उस प्रकारकी वैराग्यकी बारह भावना उत्पन्न होती है। वैराग्यका चिंतवन उन्हें आता है, मुनिदशा अंगीकार करते हैं इसलिये। उसके साथ उसका सम्बन्ध है।

वे गृहस्थाश्रममें होते हैं। उन्हें वैराग्य भी होता है। अमुक कार्योमें जुड़ा है। इसलिये देव-गुरु-शास्त्रके प्रशस्त भावोंमें होता है। मुनि हो तो उसे देव-गुरु-शास्त्रका शुभ विकल्प होते हैं। परन्तु दीक्षा लेते समय उन्हें बारह भावना मुख्य होती है। क्योंकि उन्हें उस वक्त दीक्षाकी भावना आयी है। एकदम वैराग्य दशा हो गयी है। उस वैराग्यके साथ बारह भावनाका सम्बन्ध है।

देव-गुरु-शास्त्रके विकल्प देव-गुरु-शास्त्रकी भक्तिके साथ सम्बन्ध है। शास्त्रका श्रुतके साथ सम्बन्ध है। जैसी उसकी परिणति हो उस प्रकारके उसे भाव आते हैं। कोई जातके प्रसंगानुसार मुख्य हो जाता है। करनेका एक ही है, अपने पुरुषार्थकी मन्दता हो, इसलिये आगे नहीं बढ़ सकता। पुरुषार्थकी तीव्रता हो, अन्दर लगन, महिमा बढ़ जाय तो स्वयं आगे बढ़ता है। जबतक लगनी, महिमा बढ़ते नहीं है, पुरुषार्थकी मन्दता हो तो बाहरमें कोई भी प्रसंगमें वह खड़ा रहता है। अमुकमें (विकल्पमें) ही खड़ा हो ऐसा नहीं है। कोई भी प्रसंगमें खड़ा रहता है। कोई शुभभावनामें खडा रहता है।

वह स्वयंको विचार लेना। या तो निर्णयमें या ज्ञानमें.. उसका स्वयं विचार करके अपनी दृढ़ता करे। अपनी लगनी, महिमा बढाये, पुरुषार्थकी तीव्रता करे, अपनी परिणतिको वह स्वयं ही जान सकता है।

समाधान :- .. ज्ञायक जाननेवाला है। उसकी मुक्ति कैसे हो? अनादि काल-से मुक्ति क्यों नहीं हुयी है? अनन्त काल-से सब किया, जीवने बाहरकी क्रियाएँ की है, सब शुभभाव किये तो देवमें गया। देवमें-से भी वापस आया है। परिभ्रमण तो खड़ा है। उसका कारण क्या? अभी तक मुक्ति क्यों नहीं हुयी है? मुक्ति नहीं होनेका कारण क्या है? इसलिये मुक्तिका मार्ग अंतरमें रहा है।

लोग अभी जो बाहरमें पडे हैं कि बाहर-से इतना कर ले या इतना त्याग कर ले या इतने उपवास कर ले, ये कर ले, वह सब बाहर-से (करते हैं), परन्तु अंतर पलटना चाहिये (वह नहीं करते)। धर्म तो अंतरमें रहा है। इसलिये आत्माको पीछानना। आत्मा वस्तु क्या है? जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा आत्माका स्वरूप है। ये शरीर वस्तु अलग है और आत्मा अलग है। ये देह और आत्मा भिन्न हैं। आत्मा तो शाश्वत है, दूसरी गतिमें जाता है। जो भाव किये उस अनुसार उसे गति मिलती है। परन्तु परिभ्रमण मिटता नहीं है, उसका कारण क्या? स्वयंने आत्माको पीछाना नहीं है।

अन्दर जो विकल्प आये, वह विकल्प भी आत्माका स्वरूप नहीं है। उससे आत्मा भिन्न है। आत्माकी पहिचना कैसे हो? और आत्माकी बात किसमें आती है? और आत्माका स्वरूप कौन बताता है? वह कोई महापुरुष होते हैं, वे आत्माका स्वरूप बताते हैं। ऐसे कोई अध्यात्म शास्त्र होते हैं, उसमें आत्माकी बातें होती हैं। आत्माकी

बात जिसमें आती हो और ऐसे आत्माका उपदेश जहाँ मिलता हो, उसका विचार करनेकी आवश्यकता है।

आत्मा भिन्न है और ये सब भिन्न है। आत्मा भिन्न ज्ञात हो तो फिर बाहरका संप्रदाय कौन-सा होता है, वह बादमें मालूम पड़ता है। संप्रदायमें-से मोक्ष नहीं होता। परन्तु अंतरमें-से मोक्ष होता है। परन्तु अंतरमें-से जब मोक्ष होता है, तब अमुक जातका ही मार्ग होता है। वह मार्ग कौन-सा है, उसका बादमें विचार करना। परन्तु पहले आत्मा भिन्न है। आत्माका मोक्ष अभी तक क्यों नहीं हुआ? इसलिये अंतरमें कोई मार्ग ही अलग है। उस मार्गका पहले विचार करने जैसा है। किसी भी संप्रदायमें-से मोक्ष नहीं होता, परन्तु अंतरमें-से मोक्ष होता है। अतः अंतरमें देखना है। अंतर दृष्टि करनी है।

जिसमें आत्माकी बात आती हो, जिसमें आत्माका कोई अपूर्व अनुपम स्वरूप आता हो, जिसमें आत्माकी स्वानुभूतिकी बात आती हो, जैसे सिद्ध भगवान है, वैसा आत्माका स्वरूप है, उसकी स्वानुभूति अन्दरमें स्वयं आत्माको पीछाने तो उसकी स्वानुभूति होती है, वह बात कौन करता है? उसके उपदेशमें कोई अपूर्वता होती है। श्रीमद्की वाणी, गुरुदेवकी वाणी, वह कोई अपूर्व वाणी है। उस वाणीमें अन्दर कुछ अलग ही होता है। उसका विचार करनेकी आवश्यकता है।

बाकी जीव बाहरका बहुत बार करता है। वह शुभभाव भी करता है, बाह्य क्रिया (करता है), पुण्य बाँधे, देवमें जाये, फिर देवमें-से परिभ्रमण खड़ा ही रहता है। इसलिये आत्मा अन्दर भिन्न है और वह अंतरमें-से भिन्न पड़ जाय तो अंतरमें मुक्ति होती है। पहले आंशिक होती है, बादमें पूर्ण होती है।

पहले सम्यग्दर्शन होता है। अनादि काल-से जीवने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है। ये वाड़ाका माना हुआ सम्यग्दर्शन वह सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन अंतरमें रहा है। जीव, अजीव सब ऊपर-से मान लिया, वह सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन अंतरमें भिन्न पड़कर आत्माकी अपूर्व प्रतीति करके अन्दर स्वानुभूति हो तो वह सम्यग्दर्शन है। और वह सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है और अंतरमें चारित्र प्राप्त होता है। अन्दरमें लीनता रूप चारित्र हो तो उसमें उसके केवलज्ञान और उसमें उसे मुनिदशा अंतरमें-से आती है। और फिर बाहरका परिवर्तन (होता है)। अंतर पलटे तो बाहरका परिवर्तन होता है। बाहरका परिवर्तन कैसा होता है, वह उसको स्वयंको मालूम पड़ता है। परन्तु पहले सम्यग्दर्शन हो और अंतर दृष्टि, अध्यात्मकी आत्माकी बात किसमें आती है, समझनेकी जरूरत है। और आत्माकी बातें जिन्होंने की हो, जिस महापुरुषने, वह समझनेकी जरूरत है। संप्रदायकी बातमें पड़नेके बजाय अन्दर आत्माकी बात कौन करता है? ऐसे शास्त्र

होते हैं, ऐसे सद्गुरुकी वाणी होती है, कोई अलग ही स्वरूप बताते हैं। बाहर-से सब कर लिया, छोड़ दिया, त्याग कर दिया, सब किया परन्तु अन्दर समझ बिना, यथार्थ ज्ञान बिनाकी क्रियाएँ सब व्यर्थ जाती है।

शुभभाव-से पुण्य बँधे और पुण्य-से स्वर्ग मिले। वह समझे बिनाकी (क्रिया है)। अंतरमें यथार्थ समझपूर्वक जो परिणति प्रगट हो वह अलग होती है। इसलिये समझ करनी। पहले आत्माको पीछाननेकी जरूरत है। यथार्थ सत् वस्तु आत्मा क्या है, उसे पीछाननेकी जरूरत है। बाहर संप्रदायमें जीव अनन्त काल जन्मा है, बाहरका मुनिपना अनन्त बार लिया है। सब किया है, परन्तु मोक्ष नहीं हुआ है।

उनका उपदेश जिन्होंने सुना है, ऐसे बहुत मुमुक्षु हैं। उन्हें पूछ लेना। बरसों तक उन्होंने वाणी बरसायी है। उन्होंने क्या स्वरूप कहा है? उन्होंने क्या बात कही है? उनके मुमुक्षु हर गाँवमें होते हैं, उन्हें पूछ लेना। सबको जागृत किया है। तो भी कोई-कोई बेचारे रह गये। पीछे-से जागे।

जन्म-मरण, जन्म-मरण चलते रहते हैं। उसमें मनुष्य भवमें अपने आत्माका कुछ हो तो कामका है। बाकी तो सब जन्म-मरण अनन्त-अनन्त किये। उसमें गुरुदेव मिले और यह मार्ग बताया। यह मार्ग तो कोई अपूर्व है। अंतर दृष्टि करके आत्माको अन्दर-से ग्रहण कर लेना वही मार्ग है। सच्चा तो वह है। अंतरमें शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, सब भिन्न है। अन्दर आत्मा अनन्त ज्ञान-से भरा, अनन्त आनन्द-से भरा ऐसा आत्मा है। अनन्त गुण-से भरा है।

सब विकल्प है, विकल्प-से भी आत्मा भिन्न है। आत्माको पीछाननेका प्रयत्न करनेकी जरूरत है, इस मनुष्य जीवनमें। उसके लिये जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र, उन पर भक्ति एवं महिमा आये और चैतन्यकी महिमा आये वह करना है। जन्म-मरण जीवने अनन्त किये हैं। जीवने, एक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है और एक जिनेन्द्र नहीं मिले हैं। मिले तो स्वयंने पहिचाना नहीं है। लेकिन वह एक सम्यग्दर्शन अपूर्व है। बाकी सब पदवी जगतमें प्राप्त हो चूकी है, देवलोककी और सब। परन्तु एक आत्मा प्राप्त नहीं किया है और गुरुदेवने आत्माका स्वरूप बताया और करने जैसा वह है।

इस लोकमें जितने परमाणु जीवने ग्रहण करके छोडे, सब क्षेत्र पर जन्म-मरण किये, सब कालका परिवर्तन किया, विभावके सब भाव कर चूका, परन्तु एक आत्मा प्राप्त नहीं किया है। (आत्मा) एक अपूर्व है। मनुष्य जीवनमें हो तो वह नया है, बाकी कुछ नया नहीं है। बाकी बाहरमें जीवने क्रियाएँ बहुत की, शुभभाव किये, पुण्य बाँधा, देवलोकमें गया, परन्तु भवका अभाव नहीं किया। भवका अभाव हो, वह मार्ग गुरुदेवने बताया। आत्माको भिन्न पीछान लेना। करना वह है।

भेदज्ञान करके आत्माकी पहचान कैसे हो? और उसके लिये वांचन, विचार (आदि)। आप लोग सुनते हो न। याद नहीं रहे उसका कुछ नहीं, अन्दर सच्ची भावना और रुचि जागे कि ये कुछ अपूर्व है और आत्माका ही करने जैसा है। याद न रहे तो कोई दिक्कत नहीं है। परन्तु समझमें आये, ग्रहण हो (वह जरूरी है)।

मुमुक्षु :- पढ़ना नहीं होता है इसलिये याद भी नहीं रहता।

समाधान :- पढ़ना न हो तो सुनना। किसीको कुछ नहीं आता है तो भी अन्दर-से (प्राप्त कर लेते हैं)। शिवभूति मुनि थे, उनको कुछ नहीं आता था। गुरुदेवने कहा, रोष करना नहीं, द्वेष करना नहीं। मातुष, मारुष ऐसा कहा तो वह भी याद नहीं रहा। फिर बाई दाल धो रही थी। (उन्हें याद आ गया कि) मेरे गुरुने कहा था कि, छिलका अलग है और दाल अलग है।

वैसे आत्मा भिन्न है और विभाव भिन्न है। गुरुने कहा वह आशय ग्रहण कर लिया। मासतुष हो गया। आत्मा भिन्न। दाल अलग, छिलका अलग। वैसे आत्मा भिन्न और विभाव भिन्न है। ऐसा करके भेदज्ञान करके अंतरमें ऊतर गये। मूल प्रयोजनभूत ग्रहण (होना चाहिये), याद न रहे, परन्तु प्रयोजनभूत ग्रहण हो और अपूर्व भावना जागे, प्रयत्न जागे तो भी लाभ होता है। उसमें ज्यादा याद रहे, या ज्यादा पढ़े, उसकी कोई जरूरत नहीं है। अपनी अन्दर-से तैयारी हो तो थोड़ेमें भी लाभ हो जाता है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७८

मुमुक्षु :- कार्य होनेमें पुरुषार्थकी क्षति है, या समझकी क्षति है, या दोनोंकी क्षति है?

समाधान :- पुरुषार्थकी क्षति है। और समझ भी जबतक यथार्थ नहीं हुयी है तबतक समझकी भी क्षति है। बुद्धि-से तो जाना है। गुरुदेवने कहा उसे बुद्धि-से तो बराबर ग्रहण किया है। परन्तु अन्दर-से जो यथार्थ समझ, यथार्थ ज्ञान जो परिणतिरूप होना चाहिये, वह नहीं हुआ है। इसलिये उस तरह ज्ञानकी परिणतिमें भी भूल है। परिणति प्रगट नहीं हुयी है। बुद्धि-से तो ग्रहण किया है, जो गुरुदेवने कहा वह। परन्तु पुरुषार्थकी मन्दताके कारण (कार्य नहीं हो रहा है)।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ कैसे करना?

समाधान :- यदि रुचिकी उग्रता हो तो पुरुषार्थ हुए बिना रहे नहीं। रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि जिस तरफ जाय, उस तरफ पुरुषार्थ जाय। परन्तु अपनी रुचि ही मन्द हो, वहाँ पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता है। हो रहा है, होगा, ऐसा अपनेको होता है, उग्र भावना नहीं होती। इसलिये पुरुषार्थ नहीं होता है। रुचि उग्र हो तो हो।

बाहरमें रुकना (रुचे नहीं)। उसे क्षण-क्षणमें बस, आत्माकी लगन लगे, रात और दिन कहीं चैन न पड़े, ऐसा उसे अन्दर हो तो अपना पुरुषार्थ आगे बढे। मन्द-मन्द रहता है इसलिये आगे नहीं बढ़ता। उग्र नहीं हो रहा है।

मुमुक्षु :- अंतर सन्मुख पुरुषार्थ रुचिके जोरमें होता है?

समाधान :- हाँ, रुचिके जोर-से होता है।

मुमुक्षु :- रुचि उग्र हो तो अंतर सन्मुख पुरुषार्थ सहज होता है?

समाधान :- हाँ, सहज होता है। रुचि अपनी तरफ जाय तो पुरुषार्थ भी उस तरफ जाता है।

मुमुक्षु :- तो पुरुषार्थ करना नहीं रहा, रुचि करनी रही।

समाधान :- दोनोंका सम्बन्ध है, सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- दोनों साथमें होते हैं।

समाधान :- दोनों साथ होते हैं। रुचि हो तो पुरुषार्थ साथमें होता है।

मुमुक्षु :- दोनोंमें मुख्यता किसकी है?

समाधान :- रुचिकी।

मुमुक्षु :- रुचि गहराईसे जागृत होनेके लिये क्या करना?

समाधान :- स्वयंको ही करनी है। स्वयं ही विभाव-से छूटकर करे कि नक्की करे कि ये स्वभाव ही आदरणीय है, ये आदरणीय नहीं है। विभाव आदरणीय नहीं है। विभावमें सुख नहीं है। उसके साथ एकत्वबुद्धि (चलती है)। सब जूठा अयथार्थ है। यथार्थ तो आत्मा तत्त्व उससे भिन्न होने पर भी एकत्व मान रहा है, वह जूठ ही माना है। स्वयंने माना है उसे, यथार्थ ज्ञान और निश्चय करके स्वयं रुचिको दृढ़ करता जाय। उसमें ज्ञान, रुचि, पुरुषार्थ सबका सम्बन्ध है। यथार्थ ज्ञान-से निश्चय करना चाहिये कि बाहरमें कहीं सुख नहीं है। सुख आत्मामें है। दोनों तत्त्व भिन्न है। ये तत्त्व भिन्न है, ये तत्त्व भिन्न है। ऐसे यथार्थ निश्चय करके रुचिका ज़ोर बढ़ाये।

मुमुक्षु :- ये सब विकल्पमें बैठनेके बावजूद रुचि ज़ोर करे? सिर्फ विकल्पमें बैठे उतना चलेगा नहीं।

समाधान :- पहले तो विकल्प होता है। निर्विकल्प तो बादमें होता है। अतः पहले तो वह अभ्यासरूप ही होता है। विकल्परूपसे अभ्यास हो परन्तु गहराई-से हो, उसका ध्येय ऐसा होना चाहिये कि ये अभ्यास विकल्पका है, अभी अन्दर गहराईमें जाना बाकी है। इस प्रकार ध्येय ऐसा रखना चाहिये। तो गहराईमें जानेका प्रयत्न करे। विकल्पमात्रमें अटक जाय कि मैंने बहुत किया तो आगे नहीं बढ़ सकता। अभी गहराईमें जाना बाकी है। ये विकल्पमात्र अभ्यास है, उससे भी आगे बढ़ना है। ऐसा यदि ध्येय रखे तो आगे बढ़ना हो।

मुमुक्षु :- विकल्पमें ध्येय ध्रुवका रखकर अभ्यास करना?

समाधान :- हाँ, ध्रुवका ध्येय रखना चाहिये, तो आगे होता है।

मुमुक्षु :- तो ध्रुवका लक्ष्य रखकर सुननेकी जो बात है, वह विकल्पात्मक भूमिका ही है न?

समाधान :- है तो विकल्पात्मक भूमिका, परन्तु ध्येय ध्रुवका होना चाहिये। ध्येय ध्रुवका होना चाहिये। आगे बढ़नेके लिये। निर्विकल्प होना है। ऐसा होना चाहिये।

मुमुक्षु :- अकेला ध्रुवका ध्येय रखकर श्रवण करे तो भी कार्य होनेमें विलंब होनेका कारण क्या?

समाधान :- सबमें एक ही कारण है। अपने पुरुषार्थकी मन्दताके सिवाय..

मुमुक्षु :- रुचि कम पड़ती है।

समाधान :- सब अपना कारण है। अपने पुरुषार्थकी मन्दता है। सबका कारण

एक ही है। वह कारण-पुरुषार्थ नहीं करता है, इसलिये खड़ा है, वहीं खड़ा है।

मुमुक्षु :- विभावमें कहीं न कहीं अटक जाता है।

समाधान :- कहीं न कहीं अटक जाता है।

मुमुक्षु :- वह पकड़में आती है कि विभावमें मेरी अटक रह जाती है?

समाधान :- वह स्वयं पकड़े कि मैं यहाँ रुकता हूँ। मेरी गति यहाँ बाहरमें रुकती है, मैं आगे नहीं बढ़ सकता हूँ।

मुमुक्षु :- अपने परिणामकी जाँच करनी।

समाधान :- अपने परिणाम-से पकड़ सकता है।

मुमुक्षु :- क्योंकि कितनी ही बार तो ऐसा होता है कि इतना-इतना मिला और कार्य नहीं हुआ तो क्या होगा? ऐसा हो जाता है।

समाधान :- भावना तो ऐसी रहे न कि इतना हुआ, फिर भी आगे क्यों नहीं बढ़ता है?

मुमुक्षु :- गुरु मिले।

समाधान :- गुरु मिले, अन्दर रुचि होती है, सत्य लगता है तो भी आगे नहीं बढ़ता है।

मुमुक्षु :- अन्दरसे कहीं शंका नहीं होती है। इतना अन्दर-से सत्य लगता है।

समाधान :- परन्तु परिणतिका पलटना अभी बाकी है। भेदज्ञानकी परिणति प्रगट करनी, उसका पलटा हो, स्वानुभूति हो तो भी उसका चारित्र तो बाकी रहता है। चारित्र बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- प्रथम सीढीमें तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करना..

समाधान :- सम्यग्दर्शन। वह मुख्य है। वह मार्ग पर चढ गया, बस। वह पलट गया।

मुमुक्षु :- इतना-इतना उत्साह होने पर भी कार्य नहीं हो रहा है तो जितना भी थोड़ा-बहुत अन्दरमें आगे बढ़ा है, वह भाविमें कार्यकारी हो कि न हो?

समाधान :- अपने संस्कार वैसे गहरे हो तो भाविमें हो सकता है।

मुमुक्षु :- हो ही अथवा न भी हो?

समाधान :- स्वयंने यथार्थ कारण दिया हो तो होता ही है। कारणमें फ़र्क़ हो, ऊपर-ऊपर-से हो तो नहीं होता। बाकी स्वयं अन्दर गहराई-से (करता हो), यह करना ही है और यह करने पर ही छूटकारा है, ऐसे संस्कार अन्दर दृढ़ हो तो भाविमें कार्य हुए बिना रहता ही नहीं।

देशना ग्रहण होती है। देशनालब्धि अन्दर यथार्थ ग्रहण हुयी हो, तो कभी भी

अन्दरमें-से पलटे बिना नहीं रहता। वैसे गहरे संस्कार डाले तो वह पलटे बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु :- वहाँ फिर कालका कोई कारण नहीं रहता। कभी भी हो। किसकी जल्दी हो, किसीको विलंब हो, परन्तु होता जरूर है।

समाधान :- होता जरूर है।

मुमुक्षु :- उसमें ज्यादा-से ज्यादा अमुक काल लगता है, ऐसा है?

समाधान :- जिसे रुचि हुयी, गहरी रुचि हुयी, उसे कालका माप नहीं है। लेकिन उसका काल मर्यादित हो जाता है, उसे अनन्त काल तो नहीं लगता। उसे मर्यादामें आ जाता है। गहरे संस्कार हो तो आ जाता है।

मुमुक्षु :- भूल होती हो तो हमें किसके पास हमारी भूल पकड़वाने जाना, यह समझमें नहीं आता।

समाधान :- गुरुदेवने तो स्पष्ट करके बताया है, करनेका स्वयंको बाकी रह जाता है।

मुमुक्षु :- क्योंकि ज्ञानीके बिना ज्ञान गम्य नहीं है। ज्ञानियोंकी भेंट हुयी, तीर्थंकरकी हुयी तो भी ये परिस्थिति क्यों रह गयी?

समाधान :- स्वयंने ज्ञानीको, गुरुको पहिचाना नहीं है। सब मिले, भगवानको पीछाना नहीं। स्वयंने बाहर-से पीछाना है। अंतर कोई अपूर्व रीत-से ये अलग है, कुछ अलग कहते हैं, उस प्रकार-से पीछाना नहीं।

ये तो पंचम कालमें गुरुदेव पधारे और कुछ अलग प्रकार-से बात कही, इसलिये सबको ख्याल आया कि ये कुछ अलग कहते हैं। बाकी स्वयंने स्थूल दृष्टि-से हर बार पीछाना है। भगवान समवसरणमें बैठे हो, भगवानकी वाणी (छूटती है), भगवानके ये अतिशय है, भगवानके पास इन्द्र आते हैं, ऐसे बाहर-से सब ग्रहण किया है। भगवानका आत्मा क्या है और वे क्या कहते हैं? वह कुछ ग्रहण नहीं किया।

मुमुक्षु :- बाह्य विभूति देखनेमें अटक गया।

समाधान :- बाह्य विभूति देखी।

समाधान :- मनुष्योंमें ऐसी शक्ति नहीं होती, देवमें तो सब शक्ति है, सब क्षेत्रमें जानेकी। देवमें भी वही करते हैं। भगवानके पास जाते हैं। हर जगह जा सकता है। गुरुदेव भगवान-भगवान करते थे। साक्षात् भगवानके पास जा सके, समवसरणमें दिव्यध्वनि सुनने। वहाँ शाश्वत मन्दिर हैं, स्वर्गमें मन्दिरोंमें पूजा, धर्म चर्चा आदि सब होता है, देवलोकमें स्वाध्यायादि सब होता है। यहाँ गुरुदेव आजीवन कोई महापुरुष बनकर रहे, वहाँ देवमें भी वही करते हैं। क्षेत्र-से दूर हुए हैं, बाकी गुरुदेव तो विराजते हैं स्वर्गमें। यहाँ बहुत साल विराजे हैं।

मुमुक्षु :- ... कुछ प्रयोग करके आगे बढ़ा जा सकता है?

समाधान :- ध्याता तो आत्मा स्वयं ध्येय अपना रखना है। और ध्यान साधनामें स्वयं कर सकता है। परन्तु वह पीछानकर, आत्माको पीछानकर कर सकता है। मैं आत्मा जाननेवाला एक ज्ञायकतत्त्व हूँ। ये जो विभाव, विकल्प आदि हैं, वह मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न मैं एक तत्त्व हूँ। शाश्वत द्रव्यको ग्रहण करके उस पर दृष्टि करके फिर उसमें एकाग्रता यदि हो तो ध्यान होता है। परन्तु पहले उसे बराबर आत्माको ग्रहण करना चाहिये।

ये शरीर भिन्न, अन्दर जो विकल्प आये वह विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, उससे भी मेरा स्वभाव भिन्न है। उसे भिन्न ग्रहण करके मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे उसकी ज्ञायकता ग्रहण करके ज्ञायकरूप परिणति करे, उसे ध्येयमें रखे कि मैं यह चैतन्य हूँ। उसे बराबर ग्रहण करके फिर उसमें लीनता करे तो ध्यान होता है। तो एकाग्र होता है। ध्याता और ध्येय दोनों स्वयं ही है। ध्यान जो करनेका है एकाग्रता, उसमें एकाग्रता होता है। परन्तु ध्येयको बराबर ग्रहण करना चाहिये। ध्याता ध्यान करनेवाला स्वयं, परन्तु ध्येय आत्मा है, उस आत्माको बराबर ग्रहण करे तो ध्याता, ध्यान और ध्येयका भेद अंतरमें लीन होता है तो सब अभेद हो जाता है।

मुमुक्षु :- ध्यानमें लीन होता है उस वक्त द्रव्य-गुण-पर्यायकी क्या स्थिति होती है?

समाधान :- अंतरमें लीन हो तब? द्रव्य-गुण-पर्याय आत्मामें है। द्रव्य और गुण। अनादिअनन्त शाश्वत द्रव्य है, उसमें अनन्त गुण भरे हैं। और परिणति जो है, वह विभाव तरफ थी, वह स्वभाव तरफ परिणति जाय तो स्वभावकी पर्याय प्रगट होती है। वह पर्याय है। स्वभाव परिणति। अनन्त गुणोंकी अनन्त पर्याय प्रगट होनी, वह उसकी पर्याय है। उसमें गुण अनन्त हैं।

सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन जहाँ तो उसके सर्व गुणोंकी पर्याय स्वरूप तरफ जाती है अर्थात् सम्यक्रूप-से परिणमती है। द्रव्य-गुण-पर्याय आत्माकी स्वानुभूति हो तो पर्याय स्वयं स्वरूपरूप परिणमती है। विभावमें-से पलटकर स्वभावरूप परिणमती है। द्रव्य-गुण-पर्याय उस प्रकार परिणमते हैं। द्रव्य और गुण तो अनादिअनन्त शाश्वत है।

मुमुक्षु :- प्रथम एकत्वबुद्धिका अभाव हो, उस जातका...

समाधान :- परपदार्थमें उसे इष्ट-अनिष्ट बुद्धि होती है। इसलिये रागमें वह कोई न कोई निमित्तको स्वयं ग्रहण कर ही लेता है कि ये मुझे ठीक है और ये मुझे ठीक नहीं है। इसप्रकार स्वयं ही ग्रहण करता रहता है। कोई भी निमित्तको (ग्रहण कर लेता है कि) ये ठीक है और ये ठीक नहीं है। इस प्रकार रागमें किसीको ग्रहण करके स्वयं राग और द्वेषकी वैसी परिणति करता रहता है। एकत्वबुद्धि है तबतक ऐसा

राग होता है।

परन्तु भेदज्ञान हो तो अल्प अस्थिरता रहती है। परन्तु वह समझता है कि मेरी अस्थिरताके कारण है। वास्तविक रूप-से कोई इष्ट नहीं है, कोई अनिष्ट नहीं है। वह सब तो परपदार्थ है। इसलिये वह स्वयं पुरुषार्थकी मन्दताके कारण गृहस्थाश्रममें खड़े हो, तो भी अस्थिरताको जाने कि ये सब मेरी मन्दताके कारण होता है। वास्तविक कोई इष्ट नहीं है, कोई अनिष्ट नहीं है। उसे भेदज्ञान वर्तता है।

मिथ्यात्वमें जो राग-द्वेष होते हैं, वह उसे एकत्वबुद्धिरूप (होते हैं कि) ये मुझे ठीक है और ठीक नहीं है, ठीक है, ठीक नहीं है। वह स्वयं राग ही उस जातका ग्रहण कर लेता है। कोई निमित्त मुझे ठीक है, अठीक है। उसके मिथ्यात्वके कारण, ऐसी बुद्धि-एकत्वबुद्धिके कारण ऐसा चलता ही रहता है।

उसकी एकत्वबुद्धि टूटे कि वास्तविक कोई इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं, मैं चैतन्य भिन्न ज्ञायक हूँ। ये कोई अच्छा नहीं है, बूरा नहीं है। मात्र अपनी कल्पना-से ऐसी बुद्धि होती रहती है। मैं उससे भिन्न हूँ। इसप्रकार भिन्न होनेका प्रयत्न करे। फिर अल्प राग रहता है वह उसके पुरुषार्थकी मन्दताके कारण। एकताबुद्धिको तोड़नेका प्रयत्न करे। बाहर उसे कुछ नहीं हो तो स्वयं ही अन्दर ऐसे विकल्प उत्पन्न करता है, एकत्वबुद्धिके कारण।

मुमुक्षु :- सत्य बात है, अपनेआप उत्पन्न होते रहते हैं। परपदार्थ हो भी नहीं, तो भी (उत्पन्न होते हैं)।

समाधान :- स्वयं ही अन्दर-से उत्पन्न होते रहते हैं।

मुमुक्षु :- .... उस वक्त विभावरूप क्यों परिणमता है?

समाधान :- ज्ञप्तिक्रिया, परन्तु वह ज्ञप्तिक्रिया यथार्थरूप कहाँ है? ज्ञप्ति ज्ञप्तिरूप स्वयं रहता नहीं। करोति क्रिया हो जाती है। मैं ये सब करता हूँ और मुझसे ये सब होता है। ज्ञायकरूप रहे तो ज्ञप्तिक्रिया बराबर कहें। परन्तु वह ज्ञप्तिक्रिया कहीं स्वयंको जानता नहीं है। स्वयंको जानता हो, स्वको जाननेपूर्वक पर जाने तो वह बराबर हो। परन्तु स्वको नहीं जानता है और ये पर स्थूलरूप-से जानता है। जो स्वको नहीं जानता, वह दूसरोंको यथार्थ नहीं जानता। इसलिये ज्ञप्तिक्रिया होती है, परन्तु वह ज्ञप्तिक्रिया भी उसे करोतिक्रिया है। वह साक्षी नहीं रहता है। मानों मैं उसको कर देता हूँ, इसके कारण ऐसा होता है। जानना अर्थात् वह स्थूलरूप-से जानता है। वह यथार्थ नहीं जानता है।

स्वको जाने तो ही उसने यथार्थ जाना कहनेमें आये। स्वको जाने बिना जानना वह यथार्थ नहीं जानता। स्वको छोड़कर सबको जाने वह कुछ जानना नहीं है। स्वपूर्वक

यदि जाने तो उसे ज्ञप्तिक्रिया प्रगट हुयी है। नहीं तो ज्ञप्तिक्रिया नहीं है। 'जो जाने सो जाननहारा'। जो जानता है वह करता नहीं और जो करता है वह जानता नहीं। परके साथ एकत्वबुद्धिके कारण मैं करूँ, मैं करूँ ऐसा होता है। यथार्थ जाने तो उसे ज्ञप्तिक्रिया यथार्थ होती है। बाकी स्थूलरूप-से तो सब जानता ही रहता है।

जाननेका उसका स्वभाव है, वह कहीं नाश नहीं जाता। जानता तो है, परन्तु स्वयंको नहीं जानता है। वह जानना यथार्थ नहीं है। अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको नहीं जानता, इसलिये वह दूसेरका भी यथार्थ नहीं जानता।

मुमुक्षु :- मोक्षार्थीको प्रयोग करना चाहिये। तो वह ध्यान यानी भेदज्ञानका अभ्यास?

समाधान :- भेदज्ञानका अभ्यास वह ध्यान। क्योंकि पहले वह अभ्यास करे। यद्यपि यथार्थ ध्यान तो ज्ञायककी धारा प्रगट हो और उसमें लीनता करे तो यथार्थ ध्यान हो। परन्तु पहले उसका अभ्यास होता है। भेदज्ञानका अभ्यासरूप ध्यान करना है। क्योंकि अपना अस्तित्व ग्रहण किये बिना कहाँ स्थिर होगा? जहाँ स्थिर होना है, वह जो द्रव्य है उस द्रव्यको ग्रहण करे। जो शाश्वत द्रव्य है उसमें स्थिर हुआ जाय। पर्याय पर स्थिर नहीं हुआ जाता। पर्याय तो पलटती रहती है। स्थिर तो द्रव्यको पीछाने तो हुआ जाता है। परन्तु द्रव्यको पीछाननेका प्रयत्न करे, उस जातके अभ्यासका प्रयत्न करे। तो उस जातका ध्यान होता है।

भेदज्ञानका अभ्यास करनेका प्रयत्न करे कि मैं भिन्न हूँ। ये विभाव मैं नहीं हूँ, शरीर मैं नहीं हूँ। उसका क्षण-क्षणमें भिन्न पड़नेका अभ्यास करे। उसकी एकाग्रता करे कि मैं यह ज्ञायक हूँ। ऐसा ध्यान करे कि मैं यह ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, महिमावंत शुद्धात्मा हूँ। ऐसा भाव-से उसे यथार्थ पहिचानकर करे। विकल्परूप-से ऐसे शुष्कपने नहीं, परन्तु ज्ञायक महिमावंत है, ऐसे उसे ग्रहण करके बारंबार उसका ध्यान करे तो वह अभ्यासरूप ध्यान है। बारंबार उसीका ध्यान करता रहे।

यथार्थ परिणतिरूप तो उसे जब ज्ञायककी धारा प्रगट हो, तब उसे यथार्थ परिणतिरूप ध्यान होता है। यह ध्यान वह अभ्यासरूप करे। समझ बिनाका ध्यान तरंगरूप हो जाता है। इसलिये अपनेको ग्रहण करके, चैतन्यको पीछानकर उसमें एकाग्रता करे कि मैं यह चैतन्य हूँ, विभाव-से भिन्न हूँ। ऐसे बार-बार भिन्न पड़नेका अभ्यास करे और स्वयंको ग्रहण करनेका प्रयत्न करे।

स्वयंको भिन्न करना, विभाव-से स्वयंको भिन्न करना, उसका अभ्यास करना। उसकी परिणतिरूप जिसे सम्यग्दर्शन हो, वह भी भेदज्ञान-से ही मुक्ति पाते हैं। और वह भेदज्ञान ही आखिर तक रहता है। उसे यथार्थ होता है। उस भेदज्ञानसे ही स्वानुभूति होती है। और उस भेदज्ञानकी उग्रतामें ही उसे लीनता बढानी है। फिर लीनता बढ़ाता है,

भेदज्ञान प्रगट होनेके बाद। परन्तु पहले-से एक ही उपाय है, भेदज्ञानका अभ्यास करना।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन। भेदज्ञानका अभ्यास। मैं चैतन्य शाश्वत द्रव्य हूँ। शुद्धात्मा चैतन्य हूँ। ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न पड़नेका प्रयत्न करे। उसकी महिमा, उसकी लगनी, बारंबार उसका विचार, एकाग्रता (करे)। उसमें बारंबार स्थिर न हुआ जाय तबतक बाहर श्रुतका अभ्यास करे, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा करे। परन्तु बार-बार करनेका एक ही ध्येय-ज्ञायकको ग्रहण करना वह।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२७९

समाधान :- .. मन-से हो ऐसा नहीं है, संवर तो सहज है। जिसकी सहज दशा है उसे सहज संवर ही है। मनको रोकना, मनको रोकना वह तो व्यवहार-से परिभाषा है। अन्दर संवरस्वरूप जो स्वयं परिणमित हो गया है, भेदज्ञानरूप, उसे सहज संवर ही है। विग्रहगतिमें जो सम्यग्दर्शन लेकर जाय तो उसे जो सहज भेदज्ञान है, उसे मनके साथ सम्बन्ध होता है, ऐसा तो कुछ नहीं है। इसलिये उसे संवर तो साथमें होता है। ... संवर तो होता है। संवर तो विग्रहगतिमें होता है। मुनिओंको विशेष संवर (होता है)। चारित्र अपेक्षा-से संवरकी बात है। गुप्ति-से संवर होता है।

मुमुक्षु :- ... आनन्दका अनुभव क्या होगा? फिर आठ ही दिन वहाँ पर क्यों रहे?

समाधान :- आठ दिन उसे तो भगवान मिल गये। उनका शरीर अलग, विदेहक्षेत्रका शरीर अलग, वहाँ-के संयोग अलग, उनकी मुनिदशा, मुनिदशा तो अंतरमें-से पालनी है, परन्तु उनका शरीर कितना? पाँचसौ धनुषका शरीर, वहाँ महाविदेह क्षेत्रमें कितने बड़े शरीर होते हैं। उन सबके साथ.. मुनिदशा पालनी वह सब मेल (नहीं बैठता)। आठ दिन-से ज्यादा रह नहीं सके। देव ही उन्हें वापस यहाँ छोड़ गये, ऐसा कहा जाता है।

चारित्रदशा अन्दर मुनिदशा है न। ज्यादा रहना मुश्किपल है, आहार-पानीकी दिक्कत हो जाय। एक बालक जैसे दिखे। इतने बड़े शरीर होते हैं। मुनि हैं, अन्दरमें छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। पंच महाव्रतका पालन करना, सब दिक्कत होती है। मुनिदशाके योग्य,.. वहाँका आहार हजम होना ही मुश्किल पड़े, ऐसे शरीरवालेको।

मुमुक्षु :- संवर, निर्जरा और मोक्षको पर्याय बोला है। तो पर्याय बोला है तो आत्मा तो शुद्ध त्रिकाली ध्रुव स्वभाव जो है, वह तो मुक्तिरूप-स्वरूप ही है, तो उसको पर्यायकी अपेक्षा-से संवर, निर्जरा, मोक्ष कहनेमें आता है?

समाधान :- शुद्धात्मा तो द्रव्यदृष्टि-से देखो तो शुद्धात्मा तो अनादिअनन्त मोक्षस्वरूप-मुक्तस्वरूप है। उसमें संवर, निर्जरा साधककी पर्याय कहनी वह व्यवहार है। परन्तु वह उसकी पर्याय है। क्योंकि संवर, निर्जरा सब साधककी पर्याय है। उसमें पहले संवर

सम्यग्दर्शनरूप होता है, फिर चारित्रदशा आती है। उसमें विशेष निर्जरा होती है। पहले अमुक निर्जरा होती है, विशेष निर्जरा मुनिदशामें होती है। वह सब पर्याय है।

परन्तु द्रव्य अपेक्षा-से शुद्धात्मा अनादि (मुक्तस्वरूप ही है)। ऐसा द्रव्य और पर्याय दोनों वस्तुका स्वभाव ही है। जो प्रगट पर्याय होती है मुक्तिकी, उसे पर्याय कहते हैं। और अनादिअनन्त द्रव्य तो मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप द्रव्य है, परन्तु वेदन नहीं है। उसका स्वयंको स्वानुभूतिका वेदन नहीं है, पर्याय प्रगट नहीं हुयी है। द्रव्य तो शुद्ध है, द्रव्यमें कहीं अशुद्धताका प्रवेश नहीं हुआ है। द्रव्य तो शुद्ध है। परन्तु पर्यायका वेदन नहीं है। स्वानुभूतिका वेदन कहाँ है? पर्याय प्रगट हुए बिना वेदन नहीं होता। इसलिये जब उसकी स्वानुभूतिकी दशा प्रगट होती है, स्वानुभूतिका वेदन होता है।

वह स्वानुभूति विशेष बढ़ने पर वीतरागता होती है इसलिये उसे पूर्ण वेदन होता है। वह प्रगट मुक्त दशा है। ये शक्तिरूप मुक्त दशा है। वह व्यक्तिरूप मुक्तदशा है। इसलिये द्रव्य और पर्यायका मेल है। द्रव्य और पर्याय वस्तुका स्वरूप है। इसलिये शुद्ध पर्याय नहीं है, तबतक वेदन नहीं है। शुद्धपर्याय प्रगट हुयी, इसलिये उसे स्वानुभूति, वीतरागदशाका वेदन होता है। इसलिये वह प्रगट मुक्त दशा है, यह शक्तिरूप मुक्त दशा है।

समाधान :- .. उस वक्त यहाँ सजावट आदि की थी, स्वाध्याय मन्दिरमें बहुत सुन्दर था। गुरुदेवका जीवन-दर्शन, गुरुदेवके चरण, सब बहुत अच्छा लगता था। वहाँ देखने गयी तो वह सब सजावट देखकर ऐसा लगा कि गुरुदेव यहाँ विराजते हो तो ये सब शोभे। ऐसे विचार आते थे, भावना होती रही। उस दिन घर आकर पूरी रात ऐसा हुआ, गुरुदेव पधारो, पधारो ऐसा भावनामें रहा। फिर प्रातःकालमें ऐसा स्वप्न आया कि गुरुदेव देवलोकमें-से देवके रूपमें पधारे। सब देवका ही रूप था। झरीके वस्त्र, हार रत्नके, रत्नके वस्त्र थे।

गुरुदेवने कहा कि ऐसा कुछ नहीं रखना, बहिन! मैं तो यहीं हूँ। मैं यही हूँ, ऐसा दो-तीन बार कहा। आप यहाँ हो ऐसे आपकी आज्ञा-से मान लें, परन्तु ये सब दुःखी हो रहे हैं। उसका क्या? गुरुदेव तो मौन रहे। स्वप्न तो इतना ही था। परन्तु उस वक्त सबको इतना उल्लास था कि मानों गुरुदेव विराजते हों और उत्सव होता हो, ऐसा था। गुरुदेव देवके रूपमें पधारे। ऐसा स्वप्न था। पहचाने जाते थे, गुरुदेव देवके रूपमें भी गुरुदेव ही है, ऐसा पहचाना जाता था।

मुमुक्षु :- मुख गुरुदेवका?

समाधान :- मुख देवका था। परन्तु पहचान हो जाय कि गुरुदेव देव हुए हैं और देवके रूपमें पधारे हैं। ऐसा कुछ नहीं रखना, बहिन! मैं तो यहीं हूँ, यहीं हूँ, यहीं हूँ। ऐसा तीन बार कहा। देवमें तो ऐसी शक्ति होती है कि जहाँ जाना हो वहाँ

जा सकते हैं। परन्तु यह पंचमकाल है इसलिये कुछ दिखता नहीं है। मनुष्य कहीं जा नहीं सकते हैं, परन्तु देव तो जा सकते हैं।

देव तो भगवानका दर्शन करने, वाणी सुनने, भगवानका कल्याणक जहाँ होते हों वहाँ देव जाते हैं। जहाँ प्रतिमाएँ, मन्दिर हों वहाँ दर्शन करने (जाते हैं)। शाश्वत प्रतिमा है, वहाँ दर्शन करने जाते हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! साक्षात् पधारे हो तो भी आपको स्वप्न लगे और साक्षात् पधारे हो, ऐसा भी हो सकता है न।

समाधान :- अपनेको तो स्वप्न लगे। गुरुदेव तो...

मुमुक्षु :- साक्षात् पधारे।

समाधान :- देवके रत्नमय वस्त्र था, ऐसे थे।

मुमुक्षु :- वातावरण तो ऐसा हो गया था कि मानों गुरुदेव साक्षात् पधारे हो।

समाधान :- वातावरण तो ऐसा हो गया था। उस दिन दूज थी, परन्तु सबका उल्लास ऐसा था।

मुमुक्षु :- खास तो आपको विरहका वेदन हुआ और उसी रात गुरुदेव साक्षात् पधारे।

समाधान :- गुरुदेव तो मौजूद ही है, क्षेत्र-से दूर है। शरीर बदल गया, बाकी गुरुदेव तो गुरुदेव और उनका आत्मा तो मौजूद ही है। देवमें है।

समाधान :- बहुत सुना है वह करना है। आत्माकी पहचान कैसे हो? ये शरीर.. आत्मतत्त्व एक अंतरमें भिन्न है। जो ज्ञानसे भरा है, जिसमें आनन्द भरा है, अनन्त गुण भरे हैं, ऐसा आत्मा है। उसकी महिमा, उसकी लगन लगाने जैसा है। उसके लिये उसका वांचन, विचार सब वही करना है। उसकी अपूर्वता लाकर। बाकी रूढिगतरूप-से जीवने बहुत बार सब किया, परन्तु कुछ अपूर्वता नहीं लगी। कुछ अपूर्व करना है। इस प्रकार उसकी लगन लगाकर, उसका वांचन, विचार, अभ्यास करने जैसा है।

बाकी आत्मा, एक आत्माको लक्ष्यमें रखकर, आत्मा पर दृष्टि करके, उसे पीछानकर सब आत्मामें-से प्रगट होता है। आत्मा ही अनन्त निधि-से भरा है। जो भी प्रगट होता है वह आत्माके आश्रय-से प्रगट होता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्रसब आत्माके आश्रय-से प्रगट होता है। उसे बाहर-से निमित्त देव-गुरु-शास्त्र होते हैं। भगवान मार्ग बताये। गुरुदेवने इस पंचमकालमें मार्ग बताया। निमित्तमें मार्ग बतानेवाले होते हैं, करना स्वयंको है। शास्त्रमें वह सब है, परन्तु शास्त्रका रहस्य भी गुरुदेवने खोला है।

मुमुक्षु :- कहीं न कहां माताजी! अटक जाते हैं। आपकी तरह धारावाही .. नहीं होता, ..

समाधान :- उतनी स्वयंकी मन्दता है। जीवको कहीं-कहीं संतोष हो जाता है। इसलये आगे नहीं बढ़ सकता।

मुमुक्षु :- आगे कैसे बढ़ना?

समाधान :- जबतक आगे नहीं बढ़ता, तबतक उसीमें उसीका अभ्यास करना। उसका अभ्यास करते-करते तीव्रता होती है तब वह आगे जाता है।

समाधान :- गुरुदेवने तो बहुत स्पष्ट कर-करके मार्ग सूक्ष्म-सूक्ष्म रीत-से समझाया है। कोई अपूर्व बात समझायी है। सब बाहर-से धर्म होता है, ऐसा मानते थे। शुभभाव-से, बाह्य क्रिया करने-से धर्म होता है, ऐसा मानते थे।

गुरुदेवने अंतर दृष्टि बतायी। धर्म अंतरमें रहा है। अंतरमें आत्माको पीछाने। आत्मा किस स्वभावरूप है? आत्माका स्वरूप क्या? आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? ये विभाव क्या? ये परद्रव्य क्या है? पुद्गलके द्रव्य-गुण-पर्याय, आत्माके द्रव्य-गुण-पर्याय, उसे यथार्थ पहिचाने। और शरीर-से भिन्न, विभावस्वभाव अपना नहीं है, उससे स्वयंको भिन्न करे। भिन्न करके अंतर आत्मा एक अपूर्व अनुपम वस्तु है, उसे पहिचाननेका प्रयत्न करे। तो उसमें-से ही धर्म रहा है।

धर्म अन्दर आत्मामें है। बाहर-से देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, शुभभाव आये उससे पुण्य बँधता है। परन्तु अन्दर शुद्धात्मामें धर्म रहा है। और उस शुद्धात्माके ध्येयपूर्वक शुभभावमें जिनेन्द्र देव, गुरु, शास्त्र उनकी महिमा आये, चिंतवन करे, शास्त्र अभ्यास करे। ऐसा सब करे। परन्तु एक आत्माका ध्येय होना चाहिये कि मुझे शुद्धात्माकी पहचान कैसे हो? आत्मा कैसे भिन्न पड़े? अनादिका भिन्न है, परन्तु वह परिणति-से कैसे न्यारा हो? वह कैसे हो? उसकी लगन, उसकी महिमा लगनी चाहिये। बाकी संसार तो ऐसे ही अनादिका चलता है।

गृहस्थाश्रममें रहकर भी आत्माकी रुचि हो, आत्मा कोई अपूर्व है, उसकी अनुपमता लगे तो वही करना है। गुरुदेवने कोई अपूर्व मार्ग बताया है। उनकी वाणी कोई अपूर्व थी, उनका आत्मा अपूर्व था। उन्होंने अलग प्रकार-से सबको दृष्टि दी है और मार्ग बताया है। करनेका वही है।

मुमुक्षु :- हमें ये शुभभाव यात्राके भाव आये, आपका दर्शनका भाव आये, गुरुदेव प्रत्ये अनन्य भक्ति आवे। वह तो आते ही हैं।

समाधान :- शुभभाव तो आयेंगे। शुभभाव तो आये, परन्तु ध्येय शुद्धात्माका होना चाहिये। शुभभाव तो जिज्ञासाकी भूमिकामें आवे। सम्यग्दृष्टिको शुभभाव आते हैं, मुनिओंको शुभभाव आते हैं। परन्तु सम्यग्दृष्टिको अन्दर भेदज्ञान होता है कि शुभभाव और आत्मा भिन्न है। उसकी ज्ञायककी परिणति भिन्न रहती है। मुनिओंको शुभभाव आते हैं। वे

तो शास्त्र रचते हैं, भगवानके दर्शन करते हैं। मुनिओंको भी शुभभाव आते हैं। परन्तु वे तो छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हुए आत्माकी स्वानुभूति प्रतिक्षण करते हैं। और सम्यग्दृष्टिको शुभभाव आवे तो (उसे) भेदज्ञानकी धारा वर्तती है और स्वानुभूति उसे भी होती है।

जिज्ञासाकी भूमिकामें भी शुभभाव आते हैं। जिनेन्द्र देवकी भक्ति, गुरुकी भक्ति, शास्त्र स्वाध्याय आदि तो होता है। परन्तु ध्येय एक आत्माका होना चाहिये। ये सब होता है, परन्तु पुण्यबन्ध है। उससे आत्माका स्वरूप भिन्न है। यह ध्येय होना चाहिये। परन्तु वह नहीं हो तबतक साथमें तो होता ही है। शुभभाव तो शुद्धात्मामें पूर्णरूप-से स्थिर न हो जाय, तबतक शुभभाव होते हैं। परन्तु उसे श्रद्धा ऐसी यथार्थ होनी चाहिये कि मेरा आत्मा इन सब भावों-से भिन्न है। ये सब भाव आकुलतारूप हैं, मैं शुद्धात्मा भिन्न हूँ। ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये।

मुनिओं और आचार्योंको भी भगवानकी भक्ति आती है। स्तोत्रकी रचना करते हैं, शास्त्रकी रचना करते हैं। वह सब होता है। गृहस्थाश्रममें हो वहाँ अशुभभाव-से बचनेको शुभभाव तो आते हैं। परन्तु ध्येय एक आत्माका होना चाहिये-शुद्धात्माका।

गुरुदेवने जो साधना की, भगवानने जो पूर्ण स्वरूप प्राप्ति किया, शास्त्रमें जो वस्तुका स्वरूप कोई अपूर्व रीत-से आता है, उसका विचार, वांचन सब होना चाहिये।

मुमुक्षु :- हमारा ध्येय तो आत्मा है। परन्तु प्राप्त करनेके लिये कोई सरल विधि? कोई विशेष?

समाधान :- उसकी सरल विधि तो उसका ध्येय होना चाहिये। अंतरमें उसकी लगनी, महिमा, पुरुषार्थ, बारंबार उसका अभ्यास होना चाहिये। वह न हो तबतक देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा, वह सब होता है। परन्तु उसे बारंबार पुरुषार्थ, अभ्यास होना चाहिये। आत्मा कैसे प्राप्त हो? उसकी लगनी, महिमा, खटक (लगे)। बाहरमें कहीं उसे रुचि या रस अंतरमें तन्मयपने आता नहीं। अन्दरमें आत्मा जिसे महिमारूप लगे, बाहरमें कहीं महिमा न लगे। बाहर उसे महिमा नहीं आती। अंतर आत्मामें ही कोई अपूर्वता है, ऐसी उसे श्रद्धा होनी चाहिये।

(गुरुदेवने स्पष्ट करके) बता दिया है, कहीं भूल न पडे ऐसा। तैयारी स्वयंको करनी है, पुरुषार्थ स्वयंको करना है। बारंबार उसीका अभ्यास, उसीका रटन, उसका मनन करना है।

समाधान :- .. पहले-से सातवें-से एकदम ज़ोर-से चढते हैं, परन्तु क्षय करते हुए नहीं चढते हैं। एकदम वीतराग दशा हो जाती है। परन्तु ढका हो ऐसा। फिर वह सातवेमें आ जाते हैं। कोई चौथेमें आ जाय। ऐसे आते हैं। परन्तु वे चढ जाते हैं।

उपशांत।

जिसे सम्यग्दर्शन है, जो छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं, वास्तविक भावलिंगीकी दशा है, उस वक्त भले उपशांत श्रेणि हुयी, परन्तु वह तो केवल लेनेवाले हैं, अवश्य। भले एक बार उपशम श्रेणि हो गयी, बादमें भी कोई बार क्षपकश्रेणि चढकर केवलज्ञान अवश्य उसे होनेवाला है। छठवें-सातवें गुणस्थानमें भावलिंगी मुनिदशा है तो क्षपकश्रेणी तो होती है। उस भवमें या दूसरे भवमें क्षपण श्रेणी तो होती है। जिसको भावलिंगीकी दशा है, भीतरमें मुनिदशा है, छठवें-सातवेंमें स्वानुभूति अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्तमें जाते हैं, अंतर्मुहूर्तमें बाहर आते हैं, ऐसी स्वानुभूतिकी दशा प्रगट हो गयी। उसको अवश्य केवलज्ञान होनेवाला है। जिसको सम्यग्दर्शन हुआ, उसको भी अवश्य केवलज्ञान होनेवाला है। और मुनिदशा यथार्थ हुयी उसको भी अवश्य केवलज्ञान होनेवाला है। वीतराग दशा होनेवाली है। उसका ऐसा पुरुषार्थ अवश्य-अवश्य प्रगट होता है। उसकी परिणतिकी दशा स्वरूप ओर चली गयी है, ज्ञायककी धारा है और वह तो मुनिदशा है, स्वरूपमें लीनता बहुत बढ़ गयी है। अवश्य वीतराग दशा होती है, केवलज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- मुख्यपने तो क्षपकश्रेणी ही होती है न? उपशम श्रेणी तो कोई-कोईको होती है।

समाधान :- हाँ, कोई-कोईको होती है।

मुमुक्षु :- .. ज्ञायक हूँ, ऐसा खण्ड पड़ता है। कर्ता-हर्ता नहीं है, मैं तो स्वयंसिद्ध अपने-से ही हूँ।

समाधान :- मैं ज्ञाता हूँ, दृष्टा हूँ ये सब गुणोंका भेद पड़ता है।

मुमुक्षु :- विकल्प आ जाता है।

समाधान :- विकल्प गुणोंका भेद है। परन्तु दृष्टि तो जो ज्ञायक हूँ सो हूँ, मेरा अस्तित्व, ज्ञायकका अस्तित्व ग्रहण कर लिया है, बस। फिर वह तो जाननेके लिये है कि मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ, ये सब विकल्प है। विकल्पकी दशा जबतक निर्विकल्प दशा पूर्ण नहीं है, तबतक विकल्पकी दशा तो है, परन्तु दृष्टि चैतन्य पर स्थापित है। उसकी दृष्टि अखण्ड रहती है। सम्यग्दृष्टिकी दृष्टि चैतन्य पर जमी है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- फिर लीनता होती है। स्थिरता बादमें होती है। पहले यथार्थ दृष्टि होवे, भेदज्ञानकी धारा होवे, मैं ज्ञायक ज्ञायक हूँ। उसमें स्वानुभूति होवे सम्यग्दर्शनमें, विशेष लीनता बादमें होती है।

जिज्ञासुको तो पहले दृष्टि यथार्थ करनी चाहिये। मैं चैतन्य ज्ञायक ही हूँ। जो हूँ सो हूँ। विकल्पका भेद वह मैं नहीं हूँ। निर्विकल्प तत्त्व मैं हूँ। ऐसा उसका निर्णय

करके दृष्टि चैतन्य पर स्थापनी चाहिये। विकल्पका भेद तो जाननेके सब आता है। परन्तु दृष्टि तो चैतन्य पर होनी चाहिये।

... तो दृष्टि छूटे। बाहरमें जिसको महत्व लगे, उसकी दृष्टि भीतरमें चिपकती नहीं। भीतरमें महत्व लगे तो दृष्टि वहाँ चिपके।

.. कौन जानता था? किसीको कहाँ मालूम था।

मुमुक्षु :- अभी कर लेने जैसा है। देह छूटनेके बात तो कहाँ...

समाधान :- बाहरमें सब धर्म मान बैठे थे।

मुमुक्षु :- गृहीत मिथ्यात्वमें धर्म मानते थे।

समाधान :- हाँ, उसमें मानते थे। उसका अर्थ भीतरमें-से खोल-खोलकर गुरुदेवने बहुत बताया है। सूक्ष्म-सूक्ष्म करके। कोई जानता ही नहीं था। पंचास्तिकायका अर्थ कौन कर सकता था?

मुमुक्षु :- समयसारके लिये तो बोलते थे कि वह तो मुनियोंका ग्रन्थ है, गृहस्थोंका है ही नहीं।

समाधान :- गृहस्थोंका है ही नहीं ऐसा कहते थे।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८०

समाधान :- रुचि बदले तो उपयोग बदले। रुचि हो तो ही उपयोग बाहर जाता हो वह (अन्दर आता है)। रुचि बदलनी। सब असार है। सारभूत तत्त्व हो तो एक चैतन्य ही है। सारभूत तत्त्वको ग्रहण करनेकी रुचि उत्पन्न हो तो उपयोग पलटता है। अनन्त काल-से सब किया है बाहरका, परन्तु अंतरमें दृष्टि नहीं की है। अंतर दृष्टि करे, अंतरकी रुचि करे तो ही उपयोग अपनी ओर जाता है।

मुमुक्षु :- उसके पहले सिर्फ पापमें पड़े हो तो कषायकी मन्दता करनी, ऐसा होता है या सीधी रुचि पलट जाती है?

समाधान :- रुचि पलटे तो ही कषायकी मन्दता होती है। कषायकी मन्दता तो बीचमें (हो जाती है)। जिसे आत्मा तरफकी रुचि हो, उसे तीव्र कषाय नहीं होते। उसके कषाय मन्द पड़ जाते हैं। उसे जो अन्दर आत्मा तरफ रुचि जागे, उसे सर्व कषाय, राग-द्वेष आकुलता सब फ़िका पड़ जाता है।

जिसे अंतरकी रुचि नहीं है, वह बाहर-से कषाय कदाचित् मन्द करे या यह अच्छा नहीं है, ये हितरूप नहीं है, ऐसे ओघे ओघे करे, कषाय फ़िके पड़े ऐसा तो जीवने अनन्त कालमें बहुत किया है। शुभभाव किये हैं। कषाय फ़िके किये, त्याग किया, उपवास किये, मुनिपना लिया। सब आत्माके लक्ष्य विहीन बहुत क्रियाएँ की, शुभभाव किये, सब किया, परन्तु वह सब बिना एक अंकके शून्य जैसा हुआ है। क्योंकि आत्मा क्या है, उस तरफकी रुचि बिना कषाय मन्द करे तो उसे कहीं धर्मका लाभ या स्वभाव प्रगट नहीं होता। मात्र बँधता है, पुण्य-से देवलोक मिले। तो देवलोक-से कहीं भवका अभाव नहीं होता। वैसे देवके भव जीवने अनन्त किये हैं। उसमें कहीं आत्मा नहीं है। देवलोकमें भी आकुलता है।

इसलिये समझे बिना कषाय मन्द करना, (उससे) पुण्यबन्ध होता है। उसमें-से कहीं आत्माकी प्राप्ति नहीं होती। आत्माकी प्राप्ति तो स्वभावके लक्ष्य-से मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? धर्म कहाँ रहा है? वह सब विचार करके निर्णय करे, अंतरकी रुचि करे तो धर्म होता है। बाहरके कषाय मात्र मन्द करने-से धर्म होता नहीं। ऐसा तो जीवने अनन्त कालमें कषाय मन्द किये, त्याग किया, सब बहुत किया है। इसमें सुख

नहीं है, यह हित नहीं है, यह धर्म नहीं है, ऐसा करके कषाय फ़िके किये।

जिसे आत्माकी रुचि हो उसके कषाय सहज ही फ़िके पड़ जाते हैं। जिसे आत्मा ही रुचता है, दूसरा कुछ रुचता नहीं, आत्मा ही जिसे इष्ट है, उसे बाह्य कषाय सुखरूप नहीं लगते। वह तो उसे फ़िक पड़ ही जाते हैं। जो आत्मार्थी हुआ, जिसे आत्माका प्रयोजन है उसे कषायोंमें तीव्रता नहीं रहती, मन्दता हो जाती है। वह उससे पीछे हट जाता है।

मुमुक्षु :- अर्थात् पहले-से ही ज्ञायकके लक्ष्यकी शुरूआत...?

समाधान :- हाँ, ज्ञायकके लक्ष्य-से शुरूआत होती है। वही शुरूआत है। उसमें सब समा जाता है। रुचि, कषायकी मन्दता, सब उसमें समा जाता है। ज्ञायकके लक्ष्य-से शुरूआत करनी है। मैं कौन हूँ? मैं तत्त्व कौन हूँ? उस तत्त्वका निर्णय करना। विचार करके उसका निर्णय करे। ज्ञायकके लक्ष्य बिना अनन्त कालमें बहुत कुछ किया, परन्तु मूल तत्त्व ग्रहण किये बिना बिना अंकके शून्य जैसा हुआ। किसके लिये करता हूँ? चैतन्यतत्त्वका अस्तित्व ग्रहण नहीं किया, मात्र शुभभाव हुए हैं।

.. लक्ष्य करे तो अंतरमें आनन्द भरा है। अनन्त ज्ञान अंतरमें है। स्वानुभूति सब अंतरमें रही है। भेदज्ञान करे। विकल्प टूटकर आत्मा निर्विकल्प तत्त्व है, उसकी स्वानुभूति अंतर दृष्टि करने-से होती है, बाहर-से नहीं होता। बाहर-से सब किया। सब रट लिया, पढ़ लिया, समझे बिना ध्यान किया, सब किया। परन्तु आत्माका अस्तित्व ग्रहण किये बिनाका वह सब मात्र शुभभावरूप हुआ।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान कैसे करना?

समाधान :- भेदज्ञान चैतन्यको पीछानने-से होता है। मैं यह चैतन्य (हूँ)। अपना अस्तित्व ग्रहण करे कि मैं यह ज्ञायक ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। यह सब मुझ-से भिन्न है। ये शरीर और विभावभाव जो अंतरमें भाव होते हैं, वह स्वभाव भी मेरा नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसे ज्ञायक, मैं चैतन्य ज्ञायक ही हूँ, ऐसा निर्णय करके उसका अस्तित्व ग्रहण करे। फिर उसका अभ्यास करे। पहले तो अभ्यासरूप होता है। सहज दशा तो बादमें होती है।

अभ्यास करे कि मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायककी ही उसे महिमा आये, बाकी सब महिमा छूट जाय। ज्ञायकमें सब भरा है। उसे अनुभूतिके पहले वह वेदनमें नहीं आता, परन्तु वह निर्णय करता है कि ज्ञायकमें ही सब है। ज्ञान-ज्ञायक पदार्थ पूरा महिमावंत है। ज्ञायकका अभ्यास करे कि मैं सर्वसे भिन्न, भिन्न, भिन्न ऐसा क्षण-क्षणमें उसीका अभ्यास करे। तो उसमें उसे भेदज्ञान होता है। उसका अभ्यास करे। और शुभभावमें सच्चे देव-गुरु और शास्त्र उसे शुभभावनामें होते हैं। अंतरमें ज्ञायकका भेदज्ञान कैसे हो? बारंबार

ज्ञायकका अभ्यास करे। .. परद्रव्यका क्या? सब नक्की करके फिर ज्ञायकका अभ्यास करे।

मुमुक्षु :- वस्तुका बंधारण समझनेमें कुछ क्षति रह जाय तो ज्ञायकको पकड़ना मुश्किल पड़े या ज्ञायकके झुकावमें वह क्षति सुधर जाती है?

समाधान :- उसकी ज्ञानमें भूल हो तो ... परन्तु रुचि यदि उसे बराबर हो कि मुझे ज्ञायक ही ग्रहण करना है। विचार करके भी उसकी ज्ञानमें भूल हो तो ज्ञानकी भूल निकल जाती है, उसकी रुचि यथार्थ हो तो।

मुझे चैतन्य क्या पदार्थ है, यह नक्की करना है। बाहर कहीं उसे रुचि लगे नहीं, स्वभावकी ही रुचि लगे। तो विचार करके ज्ञानमें भूल हो तो भी निकल जाती है, यदि उसे यथार्थ लगन लगी हो तो। ज्ञानमें भूल हो तो निकल जाती है।

.. बाहर-से मिलेगा, बाहर-से खोजता है। अंतरमें सब है। उसकी उसे प्रतीति नहीं है, रुचि नहीं है, इसलिये बाहर-से खोजता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- (क्या) पदार्थ है, क्या वस्तु है? किसमें धर्म है? किसमें ज्ञान है? किसमें दर्शन है? सम्यग्दर्शन किसमें है? चारित्र किसमें है? सब नक्की करे। चारित्र मात्र बाहर-से नहीं आता। चारित्र चैतन्यके स्वभावमें है।

मुमुक्षु :- चैतन्यमें यदि रुचि हो तो आगे बढे।

समाधान :- तो आगे बढे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र सब आत्मामें भरा है। बाहर तो मात्र शुभभाव होते हैं। वह तो पुण्यबन्धका कारण है। अन्दर स्वभावमें-से सब प्रगट होता है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि सब।

समाधान :- .. रुचि लगाने जैसी है, पुरुषार्थ वह करने जैसा है, सब करने जैसा है। परन्तु स्वयं बाहरमें रुक जाता है।

मुमुक्षु :- आत्मा प्राप्त करने-से जो आनन्द हो, उसका शब्दमें वर्णन हो सके ऐसा आनन्द है?

समाधान :- शब्दमें वर्णन नहीं होता। आत्माका स्वभावका आनन्द तो अनुपम है। उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती, जगतके कोई पदार्थकी। क्योंकि ये बाहरका है वह तो रागमिश्रित जड़ पदार्थ नज़र आते हैं। आत्माका जो स्वभाव चैतन्यमूर्ति, उसमें जो चैतन्यका आनन्द है और चैतन्यका आनन्द जो अंतरमें आनन्द सागर स्वतः स्वभाव ही उसका भरा है। उस पर दृष्टि करके, उसका भेदज्ञान विभाव-से भिन्न होकर, विकल्प छूटकर अन्दर जो निर्विकल्प तत्त्व प्रगट हो, उसकी कोई उपमा बाहरमें नहीं है। वह अनुपम है। उसकी कोई उपमा नहीं है।

जगत-से जात्यांतर अलग ही आनन्द है। उसकी जात किसीके साथ मिलती नहीं। कोई देवलोकका सुख या चक्रवर्तीका राज या किसीके साथ उसका मेल नहीं है। वह सब विभाविक है, सब रागमिश्रित है। जिसके साथ राग रहा है, उसके साथ मेल नहीं है। अन्दर ऊच्चसे ऊच्च शुभभाव हो तो भी वह शुभभाव है। शुभभावके साथ भी उसका मेल नहीं है। शुभभाव-से भी भिन्न शुद्धात्मा है।

मन्द कषाय हो। मैं ज्ञान हूँ, मैं दर्शन हूँ, मैं चारित्र हूँ। पहले शुरूआतमें वह सब विकल्प आते हैं, आत्म स्वभावको पहिचाननेके लिये, तो भी वह विकल्प मिश्रित जो राग है, उसके साथ आत्माके आनन्दका मेल नहीं है। आत्माका आनन्द तो उससे अलग है।

मुमुक्षु :- अपने-से तिर्यंचका कुछ ज्यादा पुरुषार्थ होगा तभी उसे अनुभूति होती होगी।

समाधान :- उस अपेक्षा-से, अनुभूति उसने प्राप्त की उस अपेक्षा-से उसका पुरुषार्थ ज्यादा है ऐसा कह सकते हैं।

मुमुक्षु :- उसे तो क्षयोपशमका उतना उघाड भी नहीं है।

समाधान :- उघाडके साथ उसे सम्बन्ध नहीं है। प्रयोजनभूत तत्त्वको जाने इसलिये आत्माकी स्वानुभूति प्रगट होती है। ज्यादा शास्त्रका ज्ञान हो या ज्यादा शास्त्र पढ़े हो, उसके साथ (सम्बन्ध नहीं है)।

.. आत्माका स्वरूप मैं चैतन्य पदार्थ, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और परपदार्थके, उतना मूल प्रयोजनभूत जाने तो उसमें स्वानुभूति होती है। उसका भेदज्ञान करे कि यह शरीर सो मैं नहीं हूँ, ये विभाव शुभाशुभभाव भी मेरा स्वरूप नहीं है। मैं उससे भिन्न, अनन्त गुण-से भरपूर, अनन्त शक्तियों-से भरा आत्मतत्त्व हूँ। ऐसा विकल्प नहीं, परन्तु ऐसे अपने अस्तित्वको ग्रहण करके उसका भेदज्ञान करे। उस भेदकी सहज दशा प्रगट करके अन्दर विकल्प छूटकर स्थिर हो जाय, उसकी श्रद्धा-प्रतीत करके, ज्ञान करके उसमें स्थिर हो जाय तो उसे भेदज्ञान निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। उसमें ज्यादा शास्त्र अभ्यासकी जरूरत नहीं है।

वह तो नहीं हो तबतक उसे शुभभावमें रहनेके लिये विशेष ज्ञानकी निर्मलता हो, इसलिये शास्त्रका अभ्यास करे। परन्तु ज्यादा जाने तो ही हो, ऐसा सम्बन्ध नहीं है। उसे क्षयोपशमके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उसे अपनी अंतर परिणति पलटनेके लिये प्रयोजनभूत तत्त्वको जाने, उसकी श्रद्धा करे और उसमें स्थिर हो तो उसे होता है।

शिवभूति मुनि कुछ नहीं जानते थे। गुरुने कहा कि मातुष और मारुष। राग-द्वेष मत कर। वह शब्द भूल गये। गुरुने क्या कहा था वह शब्द भूल गये। फिर एक बाई

दाल धो रही थी। मेरे गुरुने यह कहा था। ये छिलका अलग और दाल अलग। वैसे आत्मा भिन्न है और ये विभाव भिन्न है। ऐसे गुरुका आशय पकडकर अन्दर भेदज्ञान करके अंतरमें स्थिर हो गये तो स्वानुभूति तो हुयी, अपितु इतने आगे बढ़ गये कि उन्हें केवलज्ञान प्रगट हो गया। मूल प्रयोजनभूत तत्त्व जाने, इसलिये आगे निकल जाता है।

मुमुक्षु :- मैं तलोद हमेशा जाता हूँ। एक भाई कहते हैं, सोनगढ़में कुछ नहीं है। इसलिये मैंने कहा, चलिये सोनगढ़में। क्या है, क्या नहीं है। आप कुछ बताईये कि सोनगढ़में क्या है?

समाधान :- सोनगढ़में गुरुदेव बरसों तक रहे। गुरुदेवकी पावन भूमि है। गुरुदेव जब विराजते थे तब तो कुछ अलग ही था। ये गुरुदेवकी भूमि है। यहाँ देव-गुरु-शास्त्रका सान्निध्य है। और चैतन्यको जो पहिचाने, उसकी रुचि करे तो वह रुचि हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- यहाँ अनुभूति पुरुष स्वयं ही विराजमान है। माताजी स्वयं ही है। उससे विशेष क्या होगा। लोग विरोध करते हैं, तो वास्तवमें उसे अनुभूतिका ज़ोर नहीं है, यह नक्की होता है।

समाधान :- सबके भाव स्वतंत्र है। प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है। सबके भाव सबके पास।

मुमुक्षु :- .. और पण्डितोंने..

समाधान :- सब शिष्योंने सुना है, सबने स्वीकार किया है। सबने प्रमोद-से स्वीकृत किया है।

मुमुक्षु :- फूलचन्दजी एकबार ऐरोप्लेनकी बात करते थे कि मैं ऐरोप्लेनमें बैठा था। फिर जब हिलने लगा तो मेरे पास गुरुदेवका फोटो था। मैंने कसकर गुरुदेवका फोटो पकड़ लिया, उतनेमें तो प्लेन एकदम स्थिर हो गया। फूलचन्दजी स्वयं कहते थे।

समाधान :- जात-जातका कहे।

मुमुक्षु :- जब गुरुदेव यहाँ विराजते थे तब।

समाधान :- हाँ, विराजते थे तब। प्रभावना योग, गुरुदेवकी वाणी और उनका ज्ञान ऐसा था कि उसे देखकर लोगोंको आश्चर्य होता था कि ये कोई तीर्थंकरका जीव ही है। ऐसा होता था।

मुमुक्षु :- उपादान-निमित्तकी बात गुरुदेवने जो अंतरमें-से प्रकाशित की, वह बात ही कहाँ थी।

समाधान :- कहाँ थी। सब बात स्पष्ट की। उपादान-निमित्त, द्रव्य, गुण, पर्याय,

आत्मा भिन्न, धर्म क्रिया-से नहीं है, धर्म अंतरमें है, शुभभाव पुण्यबन्ध है। अन्दर शुद्धात्मामें परिणति प्रगट होने-से धर्म होता है। सब उन्होंने प्रकाशित किया है। समयसारका अर्थ कौन समझता था? एक-एक शब्दका अर्थ करनेवाला कौन था? कोई भी शास्त्र ले, उसके एक-एक शब्दका अर्थ खोलनेवाला था कौन? कोई खोल नहीं सकता था।

अभी गुरुदेवके प्रताप-से सब शास्त्र पढ़ने लगे। एक शब्दका अर्थ खोलकर, एक-एक शब्दका अर्थ खोलकर कितना समय, उसमें कितना विस्तार करते थे। वह किसीमें शक्ति नहीं है। अभी कोई पण्डित ऐसा कर नहीं सकते हैं। समयसार या अध्यात्म शास्त्रोंको कौन जानता था।

मुमुक्षु :- दिगंबर तो ऐसा समझते थे कि हम तो जन्म-से ही सम्यग्दृष्टि है। फिर तो बात ही कहाँ रही।

समाधान :- जन्म-से हो सकता है? वाडा मात्र कहीं सम्यग्दर्शन देता नहीं। सम्यग्दर्शन तो आत्मामें प्रगट होता है। अनन्त काल-से जीवने.. कहते हैं न कि पंचमकालमें तीर्थंकरका जीव आये तो भी माने नहीं। अनन्त कालमें समवसरणमें-से जीव ऐसे ही वापस आता है। समवसरणमें भगवान मिले तो भी स्वंय अपनी इच्छानुसार परिणति प्रगट करता है। सब स्वतंत्र है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने प्रकाशमें रखा तो यही पण्डित लोग चूँ.. चूँ.. करते थे। येही पण्डित थे। गुरुदेवने तत्त्व प्रकाशित किया तब भी इतना ही उहापोह करते थे। जहाँ-तहाँ पेम्पलेट फेंकते थे। उनके विरूद्धमें लिखते थे, ऐसे है, वैसे है, कितना लिखते थे।

समाधान :- स्वयंको सुधरना है (और) दूसरेको सुधारना है। पहले अपने आत्माका कल्याण करे। दूसरेको सुधारनेके लिये मानों कोई मार्ग नहीं जानते हैं, हम ही जानते हैं। ऐसा उन लोगोंको हो गया है।

मुमुक्षु :- आपके आशीर्वाद-से पंच कल्याणक बहुत अच्छी तरह उजवाये। सब तन-मन-से ऐसे जुड़ जाय कि सोनगढ़में रोनक हो जाय।

समाधान :- सबकी भावना है, भावना-से सब किया है और गुरुदेवका प्रताप है।

समाधान :- जीव वापस आता है। मात्र बाह्य दृष्टि-से देखता है। अंतर दृष्टि-से देखा नहीं है, भगवानको पीछाना नहीं है। तेरे आत्मामें ही सब है। अन्दर गहराईमें ऊतरकर देख। समवसरणमें जैसे भगवान हों, वैसे शाश्वत नंदीश्वरमें शाश्वत भगवान हैं। कुदरतकी रचना ऐसी बनी है। परमाणुकी रचना भगवानरूप हो गयी है। जिनेन्द्र देवकी जगतमें ऐसी महिमा है कि परमाणु भी जिनेन्द्र देवरूप परिणमित हो गये हैं, तीर्थंकररूप परमाणु परिणमित हो जाते हैं। रत्नके रजकण वैसे परिणमित हो जाते हैं।

.. शास्त्रमें आता है न? भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको पहिचाने तो अपने द्रव्य-

गुण-पर्यायको पहचानता है। अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको पहचाने तो भगवानको पहिचानता है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान किससे करना?

समाधान :- अंतरमें ज्ञान-से भेदज्ञान करना। शास्त्रमें आता है, प्रज्ञा-से ग्रहण करना, प्रज्ञा-से भिन्न करना, सब प्रज्ञा-से करना। परन्तु वह प्रज्ञा काम कब करे? अंतरमें स्वयंको उतनी लगे तो हो। मात्र बोलनेरूप या नक्की करनेरूप या विकल्परूप हो तो वह प्रज्ञा अन्दर काम नहीं करती है। परन्तु अंतरमें स्वयंको लगी हो कि भिन्न ही पड़ जाना है। एकत्वबुद्धि मेरा स्वभाव नहीं है, ये एकत्वबुद्धि जूठी है। मैं चैतन्य भिन्न-न्यारा ही हूँ। उस न्यारेको न्यारारूप ग्रहण करना है। उतनी अंतर-से लगनी लगे तो उसकी प्रज्ञा काम करे। मात्र बुद्धि-से जाने तो वह ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता नहीं।

ज्ञान ज्ञानरूप कार्य कब करे? कि स्वयंको अंतरमें उतनी अपनी ओर आनेकी तीक्ष्णता जागे कि ये चैतन्य ही महिमारूप है और ये एकत्वबुद्धि और ये विभाव आकुलतारूप है, उतना यदि उसे अंतरमें हो तो वह अंतरमें-से वापस मुड़े। परन्तु उसका साधन ज्ञान (है)। ज्ञान-से ग्रहण होता है, ज्ञान-से भिन्न पड़ता है। सब ज्ञान-से होता है। परन्तु परिणति पलटे कब? अंतरमें स्वयंको उतनी थकान लगी हो, अन्दर-से स्वयंको स्वभाव ग्रहण करनेकी उतनी तमन्न लगी हो तो हो। नहीं तो बुद्धि-से ग्रहण कर ले कि मैं भिन्न, यह भिन्न। परन्तु उसका तीव्र अभ्यास कब हो? यदि स्वयंको लगे तो हो।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८१

मुमुक्षु :- ज्ञानसत्ता अनुमान-से ख्यालमें आती है कि ये सब ज्ञात हो रहा है तो कोई जाननेवाला भी है। संवेदन, अज्ञानीको संवेदनरूप-से ख्यालमें नहीं आता है। राग-से भिन्न कर सके या अन्य ज्ञेयों-से भिन्न कर सके, ऐसा संवेदनरूप-से ख्यालमें नहीं आता है। इसलिये लक्षण ख्यालमें नहीं आता है तो फिर लक्ष्य पर कैसे जाना?

समाधान :- वह अपनी क्षति है। अनुमान ज्ञान भी ऐसा होता है कि वह अनुमान ज्ञान भी सत्य अनुमान होता है। पहले यथार्थ अनुमान करके लक्षणको ग्रहण करे तो संवेदन तो अन्दर निर्विकल्प दशा होती है तब संवेदन होता है। उसके पहले जो ज्ञान लक्षण विद्यमान ही है, असाधारण ज्ञानलक्षण स्वयं ही है, अन्य नहीं है, वह ज्ञानलक्षण असाधारण रूप है, वह ज्ञानलक्षण तो स्वयंको लक्ष्यमें आये ऐसा ही है। परन्तु वह उसे ग्रहण नहीं होता है, मात्र अनुमान-अनुमान होता है। वह मात्र (इसलिये कि) यथार्थ प्रकार-से उसे ग्रहण नहीं करता है।

निर्विकल्प दशामें यथार्थ संवेदन होता है। उसके पहले भी स्वयं ज्ञायकरूप-से स्वयं विद्यमान ही है, उसका कहीं नाश नहीं हुआ है, उसके अस्तित्वका नाश नहीं हुआ है और उसकी ज्ञायकता तो ज्ञात हो ही रही है। परन्तु वह स्वयं जानता ही नहीं है। परन्तु अंतरमें उसे उतनी लगे तो ग्रहण होता है, उसे लगती ही नहीं। बुद्धि-से अनुमान करता है। परन्तु वह अनुमान भी वह यदि यथार्थ प्रकार-से अनुमान, युक्ति-से ग्रहण करे तो (हो सकता है)। अनुमान, युक्ति सब यथार्थ होता है, परन्तु उसके साथ-साथ वह आगे जानेका प्रयत्न करे कि मैं ज्ञायक रूप ही विराजमान हूँ। तो ग्रहण हो सके ऐसा है। परन्तु वह करता नहीं है इसलिये होता नहीं है। बुद्धि-से करके छोड़ देता है, परन्तु अपना अस्तित्व ग्रहण नहीं करता है और करने जाय तो स्वयं सामान्य क्षणिक ग्रहण करके छोड़ देता है। उसका अभ्यास लंबाता नहीं।

ज्ञायकरूप अभ्यासका जीवन अपना बनाता ही नहीं। जो अनादिका एकत्वबुद्धिका जीवन है और विभावमय, शुभाशुभ परिणामकी धारारूप जो जीवन चला जाता है, वैसे ही अनादिका जैसे चलता है, वैसे चला जाता है। तीव्रमें-से मन्द, तीव्र-मन्द, तीव्र-मन्द ऐसे चला जाता है, परन्तु उसका जीवन जो ज्ञायकरूप पलटना चाहिये, वह

पलटता ही नहीं, उसमें स्वयंका ही कारण है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकका जीवन नहीं जीता है, उसका अर्थ क्या?

समाधान :- ज्ञायकरूप परिणति नहीं करता है। मैं ज्ञायक हूँ, उस जातकी अंतर परिणति। जैसे विभावकी परिणति सहज हो रही है, ऐसे ज्ञायककी परिणति स्वयं सहजरूप करता ही नहीं, जीवन जीता नहीं उसका अर्थ यह है। उस जातका अभ्यास करे तो जीवन सहज हो न। अभ्यास ही थोड़ा करके छोड़ देता है। फिर अनादिका प्रवाह है उसमें चला जाता है। उसकी खटक रखे, रुचि रखे, ऐसा करता है परन्तु अभ्यास नहीं करता है। रुचि ऐसी रखता है कि यह ज्ञायक है वही करने जैसा है, ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा बुद्धिमें रखता है, लेकिन उस रूप परिणति या अभ्यास नहीं करता है, छोड़ देता है।

(कोई) कर नहीं देता है। उलझनमें-से स्वयंको पलटना पड़ता है। स्वयंको ही करना है। भूख लगे तो खानेकी क्रिया स्वयं ही करता है। उसमें किसीका इंतजार नहीं करता है। उसे भूखका दुःख सहन नहीं होता है। खानेका प्रयत्न स्वयं ही करता है। जिस जातका अन्दर स्वयंको वेदन होता है, (तो प्रयत्न भी) स्वयं ही करता है। वैसे यदि वास्तविक वेदन जागे तो उसका पुरुषार्थ स्वयं ही करता है। किसीका इंतजार नहीं करता।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी जन्म जयंतिके समय आपश्रीने गुरुदेवको स्वप्नमें देखा।

समाधान :- (गुरुदेवका) जीवन-दर्शन, चरण आदि सब था (तो ऐसा हुआ), इतना सुन्दर है, ऐसेमें गुरुदेव पधारे तो बहुत अच्छा लगे। ये स्वाध्याय मन्दिरकी शोभा कुछ लगे। गुरुदेव विराजते हो तो कुछ अलग लगे। ऐसे ही विचार आते थे। गुरुदेव पधारे, पधारे, पधारो ऐसा होता था। इसलिये प्रातःकालमें ऐसा हुआ कि मानों गुरुदेव स्वप्नमें देवमें-से पधारे। देवमें-से देवके रुपमें और देव जैसे वस्त्र। रत्नका मुगट, हार, वस्त्र आदि देवके रूपमें ही थे। इसलिये कहा, गुरुदेव पधारो। तो गुरुदेवने कहा, बहिन! ऐसा कुछ रखना नहीं, मैं तो यहीं हूँ। मुझे तीन बार कहा, मैं यहीं हूँ, ऐसा कुछ रखना नहीं।

मुमुक्षु :- तीन बार कहा?

समाधान :- हाँ, तीन बार कहा। गुरुदेवकी आज्ञा है तो मान लूँ। इन सभीको बहुत दुःख है। गुरुदेव उस वक्त कुछ बोले नहीं। सुन लिया। उस दिन माहोल ऐसा हो गया था कि मानों गुरुदेव है। स्वप्न तो उतना ही था। गुरुदेव देवके रूपमें पधारे।

मुमुक्षु :- वस्त्र सब देवके ही पहने थे।

समाधान :- देवके वस्त्र, देवके रूपमें ही थे।

मुमुक्षु :- सर पर मुगट पहना था।

समाधान :- हाँ, मुगट आदि।

मुमुक्षु :- आकृति, मुखाकृति...

समाधान :- देवके रूपमें, परन्तु स्वप्नमें पहचान ले कि ये गुरुदेव हैं। आकृति आदि सब देव जैसा। यहाँ-से थोड़ा फ़र्क़ होता है। यहाँ भी ऐसे ही थे। परन्तु रूप देवका था। परन्तु पहचान हो जाय कि गुरुदेव देवके रूपमें पधारे हैं। गुरुदेव देव हुए हैं और देवके रुपमें पधारे हैं। ऐसे स्वप्नमें जान सकते हैं।

मुमुक्षु :- आपका वार्तालाप तीर्थंकर और गुणधरका हो वैसा वार्तालाप स्वप्नमें हुआ होगा?

समाधान :- माहोल ऐसा हो गया कि गुरुदेव है। उसके बाद माहोल (ऐसा हो गया कि), सूर्यकीर्ति भगवान पधारे, वह सब उसके बाद हुआ। मैंने तो किसीको कुछ कहा नहीं था। उसके बाद हुआ। प्राणभाई आदि सबने घोषणा की, उसके बाद हुआ।

मुमुक्षु :- उसके बाद हर गाँवमें सूर्यकीर्ति भगवान पधारे।

मुमुक्षु :- प्राणभाई एक-डेढ साल-से सूर्यकीर्ति भगवानका कहते थे।

समाधान :- पहले नहीं कहा था। उस दिन रथयात्रा निकली। सबको गुरुदेव विराजते हों और कैसा हो, ऐसा सबको मनमें तो होता है, परन्तु वातावरण ऐसा हो गया। नहीं तो हर साल तो...

मनुष्यमें शक्ति नहीं होती। देवोंको तो सब शक्ति होती है। हर जगह जानेकी, आनेकी, भगवानके पास जाय, गुरुदेव सीमंधर भगवानके पास जाते हैं। उन्हें तो अवधिज्ञान-से सब जाननेकी शक्ति (है)। उपयोग रखे तो भरतक्षेत्र, विदेहक्षेत्र यहाँ बैठकर भी देख सकते हैं। अवधिज्ञान-से जान सके ऐसी देवोंकी शक्ति होती है। गुरुदेव तो विराजते ही हैं। देवमें तो भगवानके पास जाते हैं।

मुमुक्षु :- आपकी मंगल छत्रछायामें .. उजवायेगा। आपको आशीर्वाद दे जाय और सबको सुनने मिले ऐसी भावना भाते हैं। बार-बार उन्हें स्वप्नमें दर्शन दे और हमको उनके मुख-से सुननेको मिले।

समाधान :- भगवानके रूपमें गुरुदेव पधारनेवाले हैं। अपने भाव-से स्थापना करते हैं।

जिनप्रतिमा जिन सारीखि। विचरते होंगे उस दिन तो पूजा, भक्ति होगी, अभी तो देर है, परन्तु यहाँ अभी स्थापना करके पूजा, भक्ति गुरुदेवकी करनी है। यहाँ पधारेंगे तब भरतक्षेत्रकी पूरी दिशा बदल जायगी। पूरा भरतक्षेत्रका वातावरण यहाँ तीर्थंकर भगवान (होंगे)। छठ्ठा काल जायगा और उसमें-से एकदम परिवर्तन आयेगा। भरतक्षेत्रमें उत्सर्पिणी काल आयेगा। सब बढ़ता हुआ आयेगा। वृद्धिगत होता जायेगा। महापद्मप्रभु भगवान

जब पधारेंगे तब। अमुक ज्ञान आदि जो अभी नहीं है, वह सब उस वक्त प्रगट होगा। मुनि, श्रावक, श्राविका सब। भगवान भरतक्षेत्रमें पधारेंगे तब। अभी पंचमकाल (चल रहा है), छठ्ठा काल आयेगा, फिर महापद्मप्रभु भगवान पधारनेवाले होंगे तब इस भरतक्षेत्रकी दिशा पूरी बदल जायेगी।

... यहाँ दिशा पलटकर गये हैं। सब क्रियामें धर्म मानते थे। गुरुदेवने पूरी दिशा बदल दी। सबको अंतर दृष्टि करवाकर सबको मुक्तिके मार्ग पर चढ़ा दिया। गुरुदेव तीर्थंकरका द्रव्य था। उन्होंने तीर्थंकर जैसा काम इस पंचमकालके भाग्य-से कर गये।

मुमुक्षु :- .. कितनी करुणा थी और फिर वह राग एकदम कैसे (छूट गया)?

समाधान :- वहा राग उनका एकत्वबुद्धिका नहीं था। करुणा-कृपा थी कि ये सब जीव आत्माका स्वरूप समझे। बार-बार कहते थे, समझो, समझो। उन्हें सबको समझानेकी करुणा थी। निस्पृह और एकदम विरक्त थे। उन्हें एकत्वबुद्धि थी नहीं। समाजका प्रतिबंध हो तो वे ऐसा कहते थे, मैं पूरा समाज छोड़कर अकेला चला जाऊँगा। ऐसी उनकी निस्पृह परिणति थी।

स्थानकवासीमें कहते थे न, संप्रदाय छोड़ दूँगा। मैं कहीं संप्रदायके बन्धनमें रहनेवाला नहीं हूँ। उन पर कोई प्रतिबन्ध करे तो (चलता नहीं था)। गुरुदेव तो अप्रतिबन्ध थे। उन पर किसीका प्रतिबन्ध नहीं था। वात्सल्य-करुणा थी सब जीवों पर। सब जीव कैसे समझे?

मुमुक्षु :- अभी सूर्यकीर्तिनाथ भगवानको जिनालयमें पूजनेकी भावना हुयी। उसके फलमें साक्षात् पूजनेका लाभ समवसरणमें मिलेगा।

समाधान :- मिल जायगा। भावना अभी-से तैयार हो तो साक्षात् लाभ मिल जाय। यहाँ समीप लाकर भगवानके रूपमें पूजते हैं। जो कालकी बात है, कालकी समीप स्थापना करके पूजा करते हैं। गुरुदेव साक्षात् भगवान होंगे तब दूसरी बार लाभ मिलेगा।

मुमुक्षु :- अभी भावका अंतर टूटा, उस वक्त कालका टूटेगा।

समाधान :- हाँ। दूसरी बार समवसरणमें सान्निध्यमें दिव्यध्वनि सुननेका योग मिलेगा। अभी उनकी वाणी सुननेका योग तो था ही। सीमंधर भगवानकी जैसे अमुक कालमें वाणी छूटती है, वैसे गुरुदेवकी वाणी छूटती ही रहती थी। नियम अनुसार। महापद्म प्रभु भगवान यहाँ प्रथम तीर्थंकर होंगे। बीचमें इस पंचमकालमें ऐसा अच्छा काल आ गया। गुरुदेव पधारे वह (काल आ गया)।

मुमुक्षु :- गुरुदेव ..

समाधान :- कोई आश्चर्य है इस पंचमकालमें ऐसे पुरुष पंचमकालमें जागे, वह

एक अचंभा आश्चर्य है। इस पंचमकालमें ऐसे तीर्थंकर भगवानका द्रव्य यहाँ आये और ऐसी वाणी बरसाये, वह कोई आश्चर्यकी बात है। विदेहक्षेत्रमें भगवानकी ध्वनि सुननेवाले, जो भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं, और ऐसे हुंडावसर्पिणी पंचमकालमें यहाँ गुरुदेव पधारे, एक अचंभा, आश्चर्यकी बात है। जीवोंका महाभाग्य कि यहाँ पधारे।

ऐसी उनकी वाणी, ऐसा उनका श्रुतज्ञान वह एक महाअचंभा, आश्चर्यकी बात है इस पंचमकालमें। बहुत मुनि होते हैं, परन्तु गुरुदेव तीर्थंकर स्वरूपमें पूरे समाजके बीच रहकर ऐसी वाणी इतने साल बरसायी, वह तो कितने समय बाद महाभाग्य-से बनता है। मुनिओं तो जंगलमें (हों या नगरमें) आये तब वाणी बरसाये। ये तो समाजके बीच रहकर ऐसी वाणी बरसायी। ये तो कोई आश्चर्यकी बात है। भरतक्षेत्रमें आये। भरतक्षेत्रका महाभाग्य कि गुरुदेव यहाँ पधारे।

मुमुक्षु :- गणधर आदि मुनि भगवंत आदि हो, देशनाका काल न हो तो ऐसे कालमें दूसरोंको देशना देते होंगे?

समाधान :- वहाँ होता है। मुनिओंके साथ प्रश्न-चर्चा करे। ऐसा सब करे। जब देशनाका काल नहीं हो तब। .. चारों (संघ) आवे ऐसा नहीं होता। जैसे भगवानमें चारों (संघ) आता है, श्रावक, श्राविका, मुनि, आर्जिका दिव्यध्वनि सुननेको इकट्ठे होते हैं, वैसा समय निश्चित होता है, ऐसा दूसरेका होता है, परन्तु अमुक-अमुक लोगोंको उपदेश दे, किसीके साथ चर्चा-प्रश्न करे।

मुमुक्षु :- कुन्दकुन्दाचार्य दूसरे मुनिओंके साथ चर्चा की, तो समवसरणमें या समवसरणके बाहर?

समाधान :- समवसरणमें चर्चा-प्रश्न करनेमें कोई दिक्कत नहीं है। चर्चा-प्रश्न करे। भगवानकी ध्वनिका काल न हो तब।

मुमुक्षु :- भाषा तो यहाँकी अलग, वहाँकी अलग (होती है तो..)?

समाधान :- भाषा अलग यानी आर्य भाषा होती है। भाषा कोई नवीन जातकी नहीं होती। जो अमुक जातकी भाषा है कि इतनी आर्य भाषा और इतनी अनार्य भाषा, इसलिये आर्य भाषा होती है, ऐसी आर्य भाषा होती है। ये सब भाषा हिन्दी, गुजराती सब आर्य भाषा है। अनार्य भाषा नहीं होती। संस्कृत, मागधी सब शास्त्रिय भाषा है। ये सब बोलनेका भाषा है वह आर्य भाषा है। ऐसी आर्य भाषा (होती है)। महाविदेह क्षेत्रमें सब आर्य भाषा होती है।

भगवानका उपदेश तो अलग ही होता है। दिव्यध्वनि तो एकाक्षरी ध्वनि (होती है)। कोई अलग जातका भगवानका उपदेश है। दूसरेके साथ प्रश्न-चर्चा करे वह भेदवाली भाषा होती है। क्षयोपशम ज्ञानमें-से निकली हुयी भाषा वह भेदवाली भाषा है। बाकी

होती आर्य भाषा। भगवानकी भाषा, वीतरागी ध्वनि, केवलज्ञानमें विराजते भगवानकी ध्वनिमें अन्दर अनन्त रहस्य आते हैं। और भेद नहीं होकर, अमुक प्रकारकी भाषा (होती है)। भगवानकी दिव्यध्वनि अलग बात है। भगवानके उपदेशकी शैली अलग। उनकी वाणी इच्छा बिना निकले कोई अलग जातकी।

समाधान :- दर्शन, ज्ञान, चारित्र अंतरमें है, बाहर नहीं है। सम्यग्दर्शन, मात्र जीव, अजीव आदिका पाठ बोल लिया अथवा उसकी श्रद्धा की इसलिये तत्त्व दर्शन ऐसे नहीं होता। अथवा मात्र सब सीख लिया इसलिये ज्ञान हो गया ऐसा नहीं है। अथवा महाव्रत पाले इसलिये व्रत आ गये ऐसा नहीं होता। परन्तु अन्दर आत्मामें दर्शन है। आत्माका जो स्वभाव है, वह स्वभाव पहिचनाकर उसकी श्रद्धा करे तो सम्यग्दर्शन है। आत्माको पहिचाने तो सच्चा ज्ञान होता है। आत्मामें लीनता करे तो सच्चा व्रत होता है। मात्र बाहर-से नहीं होता है। बाहर-से मात्र शुभभाव होते हैं।

मुमुक्षु :- लीनता करनी कैसे?

समाधान :- उसकी पद्धति तो अन्दर भेदज्ञान करे तो हो। सच्चा ज्ञान करे, उसका विचार करे, उसका वांचन करे, सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको पहिचाने। वह कहे उस मार्ग पर चले। अन्दर उसकी लगन लगाये, उसकी महिमा लगाये, उसका विचार करे, वांचन करे, उसका अभ्यास करे आत्माका तो होता है। सच्चा स्वरूप पहिचाने तो हो।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८२

मुमुक्षु :- प्रशममूर्ति पूज्य भगवती माताको अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार। शास्त्रमें आता है कि श्रुतज्ञान अर्थात् अपरिणामी ध्रुव ज्ञान बन्ध-मोक्षको करता नहीं। यह बात तो समझमें आती है। परन्तु फिर ऐसा आता है कि श्रुतज्ञान परिणत जीव भी बन्ध-मोक्ष नहीं करता है। यह बात समझमें नहीं आती है। परिणत अर्थात् परिणमनयुक्त कहना और पुनः बन्ध-मोक्षको करता नहीं है ऐसा कहना, वह कैसे है?

समाधान :- गुरुदेवने तो बहुत विस्तार किया है। गुरुदेवने समझानेमें कुछ बाकी नहीं रखा है। सूक्ष्म-सूक्ष्म करके शास्त्रका रहस्य गुरुदेवने खोला है। गुरुदेवका अनन्त-अनन्त उपकार है। यदि उसे समझकर अन्दर पुरुषार्थ करे तो प्रगट हो ऐसा है।

गुरुदेवने इसका तो कितना विस्तार किया है। परिणत ज्ञान तो... अनादिअनन्त जो वस्तु है, वह वस्तु तो स्वयं बन्ध-मोक्षको करती नहीं है। वह वस्तु स्वभाव है और परिणत अर्थात् जो साधक अवस्थारूप जो जीव परिणमित हुआ है, वह बन्ध-मोक्षको नहीं करता है। जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी है, वह बन्ध-मोक्षको नहीं करता है। जिसने वस्तुका स्वरूप जाना है, वही वास्तवमें बन्ध-मोक्षको करता नहीं है। क्योंकि उसने द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से द्रव्यको बराबर ग्रहण किया है। द्रव्य पर दृष्टि की है। इसलिये वह द्रव्य अपेक्षा-से बन्ध-मोक्षको करता नहीं है।

परिणत कहकर आचार्यदेव ऐसा कहते हैं कि जो परिणामी है, परिणामी और अपरिणामी दोनों साथमें होते हैं। अपरिणामी द्रव्य है और परिणत वह पर्याय है। वह पर्याय वस्तुको ग्रहण करती है। साधक अवस्थारूप परिणमित हुआ जीव है, वही वास्तविकरूप-से वस्तु स्वरूपको जानता है और वही बन्ध-मोक्षको करता नहीं है और बन्ध-मोक्षकी साधना, मोक्षकी साधना भी वही करता है। वास्तविकरूप-से जो जीव परिणमित हुआ है, वही वस्तु स्वरूपको जानता है और द्रव्य अपेक्षा-से वह बन्ध-मोक्षको करता नहीं है।

वस्तु स्वरूप अनादिअनन्त जैसा है वैसा, परिणतिवाले जीवने ही जाना है कि मेरा स्वरूप जो है, वस्तु है वह बँधती नहीं है और बन्धन नहीं है तो मुक्ति किस अपेक्षा-से? इसलिये वस्तु स्वभाव-से बन्ध और मुक्ति, वह वस्तु स्वभाव-से नहीं है। और वह नहीं है, जो ज्ञान परिणतवाला जीव है, उसीने जाना है। और जाननेके बावजूद

उसकी पर्यायमें साधनाकी पर्याय तो चालू ही रहती है। ऐसा कोई वस्तुका स्वरूप है कि अपरिणामी और परिणत दोनों साथमें ही रहते हैं।

उसमें आगे आता है कि द्रव्य और पर्याय दोनों युग्म है। वह दोनों साथमें ही रहते हैं। परिणामी और अपरिणामी दोनों साथमें होते हैं और उसमें साधना होती है। बन्ध-मोक्षको नहीं करता है, वह साधक अवस्थावाले जीवने ही बराबर जाना है। बुद्धि-से जाना वह अलग बात है। ये तो अंतर परिणतिरूप-से जाना है। द्रव्य अपेक्षा-से उसका आत्मा, उसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी, द्रव्य पर जो दृष्टि स्थापित की इसलिये वह वास्तविक रूप-से वह बन्ध-मोक्षका कर्ता नहीं है। तो भी साधनाकी पर्याय तो उसे चालू है।

इसलये आचार्यदेव ऐसा कहते हैं, परिणत, परिणत अर्थात् जीवका एक स्वभाव परिणामी भी है और अपरिणामी भी है। दोनों वस्तु स्वभावको आचार्यदेव साबित करते हैं। जो अपरिणामी है उसे परिणतवाले जीवने ही जाना है। और उसने ही साधनाकी पर्याय शुरू की है। वास्तविक रूप-से परिणत और अपरिणतके बीच जो साधक जीव है वही उसे बराबर जानता है। और द्रव्यदृष्टिमें तो मति-श्रुत ज्ञानके भेद नहीं है, या उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक आदिके भेद भी उसमें नहीं है। द्रव्यदृष्टि तो ऐसी अखण्ड अभेद है। फिर भी वह अखण्डको ग्रहण करे तो भी भेद उसमें होते हैं। उस भेदको ज्ञान जानता है। भेद और अभेद साथमें रहते हैं। फिर भी द्रव्य अपेक्षा-से वस्तु अखण्ड और गुण अपेक्षा-से उसमें भेद, पर्याय अपेक्षा-से भेद (है)। वह दोनों अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न हैं।

परिणामी, अपरिणामी विरुद्ध होने पर भी दोनों साथमें रहते हैं। और उन दोनोंकी अपेक्षाएँ अलग-अलग है। मुक्तिके मार्गमें वह दोनों साथमें ही होते हैं। अपरिणामी पर ज़ोर और उस पर उस जातकी दृष्टि स्थापित की है तो भी साधना भी वैसे ही होते हैं। साधनाका जो परिणामीपना है वह भी अपरिणामी तरफकी मुख्यता-से ही परिणामी साधना होती है। ऐसा उसका सम्बन्ध है। और ज्ञान उसे बराबर ग्रहण करता है।

द्रव्य और पर्याय दोनों साथमें ही होते हैं। इसलिये आचार्यदेवने कहा है कि जो परिणतवाला जीव है, वही बन्ध-मोक्षको नहीं करता है। जो परिणामी है, जो साधनारूप परिणमा है, उसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी है। और वही ज्ञायक है। वह वास्तवमें ज्ञायक है और परिणामी जीव है, जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, वह परिणामीपना जिसे है, उसे द्रव्यदृष्टि साथमें ही रहती है। उसे द्रव्यदृष्टिपूर्वक साधनाकी पर्याय साथमें होती है। वह द्रव्यमें-से सर्व भेदको निकाल देता है तो भी, वह निकाल देता है उसीमें

साधना शुरू होती है। ऐसा ही वस्तुका स्वरूप है।

जिस अपेक्षा-से वस्तु अपरिणामी है और जो परिणामी है, उसकी अपेक्षा अलग है। परन्तु द्रव्य और पर्यायका युग्म साथमें ही होता है। उसमें-से एक भी निकल नहीं सकता। दोनोंकी अपेक्षा अलग है। और साधनामें वह दोनों साथमें ही होते हैं। एक मुख्यपने होता है, एक गौणपने होता है।

मुमुक्षु :- दोनों बात उसे अपने लक्ष्यमें रखनी चाहिये?

समाधान :- एक मुख्य होती है। द्रव्यदृष्टि अनादि-से जीवने की नहीं है, इसलिये द्रव्यदृष्टि मुख्य है। तो भी पर्याय तो उसके साथ होती है। वह द्रव्य पर्याय रहित नहीं होता और पर्यायको द्रव्यका आश्रय होता है। ऐसा सम्बन्ध तो द्रव्य और पर्यायका होता है। वह उसे साथमें होता है। उसकी दृष्टि अनादि-से पर्याय पर है। दृष्टि पलटकर द्रव्य पर दृष्टि मुख्य करके उसके साथ पर्याय गौण होती है। पर्याय निकल नहीं जाती। पर्याय साथमें होती है। साधनामें दोनों साथमें होते हैं। द्रव्यदृष्टि मुख्य और साधना पर्यायमें होती है। दोनों साथमें होते हैं।

मुमुक्षु :- छठ्ठी गाथामें प्रमत्त-अप्रमत्त रहित ध्रुव ज्ञायक कहा, वह तो समझमें आता है। परन्तु दूसरे पैरेग्राफमें कहते हैं कि ज्ञेयाकार अवस्थामें जो ज्ञायकपने ज्ञात हुआ वह स्वरूप प्रकाशनकी अवस्थामें भी कर्ता-कर्मका अनन्यपना होने-से ज्ञायक ही है। तो यहाँ ध्रुव ज्ञायककी बात चलती है, फिर भी दूसरे पैरेग्राफमें अवस्थाकी बात क्यों ली? क्या अवस्था समझानी है या त्रिकाली ज्ञायक समझाना है? इसमें पहले और दूसरे पैरेग्राफका ज्ञायक एक ही है या भिन्न-भिन्न है?

समाधान :- ज्ञायक एक ही है। आचार्यदेवको ज्ञायक ही साबित करना है। ज्ञायक जो अनादि-से ज्ञायक है, वह अनादिका ज्ञायक है। विभाव अवस्थामें जो ज्ञायक है और प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्थामें जो ज्ञायक है, वही ज्ञायक, स्वरूप प्रकाशनकी अवस्थामें वही ज्ञायक है।

आचार्यदेव कहते हैं कि अनादि-से जो विभावकी पर्याय है, उसमें अनादि-से वह ज्ञायक ही रहा है। ज्ञायकपना उसका बदला नहीं। स्वतःसिद्ध ज्ञायक है। वह ज्ञायक ही रहा है। प्रमत्त-अप्रमत्तकी जो उसकी चारित्रकी दशा है, वह चारित्रकी जो दशा है, उसमें भी वह ज्ञायक ही रहा है। चारित्रमें जो छठवें-सातवें गुणस्थानमें मुनि झुलते हैं, क्षणमें स्वानुभूति और क्षणमें बाहर आते हैं, ऐसी पर्यायोंकी जो साधनाकी दशा है, जो मुनिकी चारित्रकी दशा है, उसमें भी ज्ञायक तो द्रव्यरूप, द्रव्य ज्ञायकरूप ही रहा है। वह द्रव्य रहा है।

उसमें तो ज्ञायक अशुद्ध नहीं हुआ है। अनादि-से अशुद्ध नहीं हुआ है। ज्ञानकी

अपेक्षा-से। दूसरा चारित्रकी अपेक्षा-से है। इस तरह शुद्ध उपासित होता हुआ शुद्ध ही है। वह दर्शनकी अपेक्षा-से-द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से ज्ञायक है। वह द्रव्य अनादि-से स्वभाव-से भी ज्ञायक है। द्रव्यदृष्टि प्रगट की इसलिये वह ज्ञायक है। चारित्रकी अवस्थामें भी वह ज्ञायक है। ज्ञानकी अवस्थामें ज्ञेयाकार हुआ तो भी वह ज्ञायक है। वह ज्ञेयोंको जानता है तो भी वह ज्ञायक ज्ञायकरूप-से पलटता नहीं।

स्वरूपमें निर्विकल्प दशामें जाय तो भी वह ज्ञायक है और ज्ञेयोंको जाने तो भी वह ज्ञायक है। उन ज्ञेयोंको जाननेमें उसे अशुद्धता नहीं आती है। जैसे विभाव अवस्थामें अथवा प्रमत्त-अप्रमत्तमें हो तो भी ज्ञायकको कोई अशुद्धता नहीं है। वह भेद पड़ा तो पर्यायका भेद होता है, द्रव्यमें नहीं होता। ऐसे वह स्वतःसिद्ध ज्ञायक है। बाहर जानने गया इसलिये उसका ज्ञान वृद्धिगत हो गया या ज्ञानमें कुछ अशुद्धता आ गयी ऐसा नहीं है। और अंतरमें गया, स्वरूप प्रकाशनकी स्वानुभूतिकी दशामें गया तो भी वह ज्ञायक द्रव्य अपेक्षा-से ज्ञायक ही है।

एक पर्यायकी शुद्धता-लीनता हो, वह एक अलग बात है। बाकी ज्ञायक तो ज्ञायक है। ज्ञेयको जाने तो भी ज्ञायक है। कर्ता-कर्म पर्याय प्रगट हुयी, स्वरूप प्रकाशनकी, इसलिये उसमें पर्याय नहीं साबित करनी है, ज्ञायकको साबित करना है। उसकी स्वरूप प्रकाशनकी निर्विकल्प दशामें गया, तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक है। भले उसकी साधनाकी पर्याय, वेदनकी पर्याय स्वानुभूतिरूप हुयी तो भी वह ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।

ज्ञान बाहर ज्ञेयोंको जानता है तो वह तो भिन्न रहकर जानता है। उसमें ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं आती है। तो भी वह ज्ञायक ही है। शुद्धि-अशुद्धि तो उसकी पर्यायमें चारित्रकी अपेक्षा-से होती है। जाननेकी अपेक्षा-से कहीं ज्ञानमें शुद्धता-अशुद्धता आती नहीं। वह बाहर भिन्न रहकर ज्ञायक अपनी तरफ ज्ञायककी धारा रखकर जानता है। उसमें अशुद्धता आती नहीं।

परन्तु अनादि-से ज्ञेयको एकमेक होकर जानता था। तो भी द्रव्यमें कहीं अशुद्धता आ नहीं जाती। वह जाने तो भी ज्ञायक है। प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्थामें भी ज्ञायक है। विभाव अवस्थामें अनादि-से है तो भी ज्ञायक है। द्रव्य अपेक्षा-से वह सर्व अपेक्षा-से ज्ञायक है। दर्शन, ज्ञान, चारित्रका भेद पड़े तो भी वह ज्ञायक ही है।

कर्ता-कर्ममें पर्यायकी बात नहीं करनी है। पर्याय कहकर ज्ञायकको बताना है। ज्ञायक स्वानुभूतिमें गया, स्वरूपका निर्विकल्प दशामें वेदन करे तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ज्ञायक जो अनादिका वस्तु स्वरूप-से है, वह ज्ञायक है। उसमें जो मूल वस्तु है, द्रव्य और पर्याय ऐसे दो प्रकार (जरूर है), फिर भी मूल वस्तु जो है, वह ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। पर्याय पलटे वह एक अलग बात है। ज्ञायक ज्ञायक ही है। ज्ञानमें

बाहरका जाना इसलिये कुछ कम हो गया और अन्दर गया तो बढ़ गया अथवा बाहर ज्यादा जाना तो बढ़ गया और अन्दर कम हो गया, ऐसा कुछ नहीं है। अथवा ज्ञेयाकार अशुद्ध हो गया ऐसा नहीं है। द्रव्य अपेक्षा-से ज्ञायक सो ज्ञायक ही है।

उसकी जो द्रव्यदृष्टि हुयी और द्रव्यकी परिणति जो प्रगट की, द्रव्य तो अनादिका है, उसमें जो दृष्टि स्थापित की, वह ज्ञानकी पर्यायमें हो या चारित्रकी पर्यायमें हो, कोई भी पर्यायमें हो, दर्शनकी पर्यायमें तो द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी है। तो सर्व अवस्थामें ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। अनादि-से ज्ञायक है। वह ज्ञायकरूप परिणमित अनन्त-अनन्त शक्तियों-से भरा है। वह ज्ञायक सदाके लिये ज्ञायक ही रहता है। वह अंश है, यह अंशी है। सदाके लिये ज्ञायक सो ज्ञायक ही है। पर्याय कोई भी परिणमे तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक है। ऐसा आचार्यदेवको कहना है।

कर्ता-कर्म कहकर पर्याय नहीं बतानी है। ज्ञायक ही बताना है। स्वरूप प्रकाशनमें ज्ञायक और ज्ञेयाकारमें ज्ञायक, प्रमत्तमें ज्ञायक और अप्रमत्तमें ज्ञायक, विभावकी कोई भी अवस्था हो, उसमें ज्ञायक सो ज्ञायक है। अनादि-से ज्ञायक सो ज्ञायक है। उसकी साधनाकी पर्याय प्रगट हुयी तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक है। ऐसा आचार्यदेवको कहना है।

कर्ता-कर्मका अनन्यपना अर्थात् कर्ता स्वयं और कर्म उसकी पर्याय है। अनन्यपना अर्थात् पर्यायकी अपेक्षा-से उसे अनन्यपना है। पर्याय उसमें नहीं है ऐसा नहीं है, पर्याय प्रगट हुयी है। स्वरूप प्रकाशनकी भले पर्याय प्रगट हुयी है, स्वानुभूतिकी पर्याय प्रगट हुयी है। कर्ता-कर्मका अनन्यपना है, तो भी ज्ञायक है। क्योंकि कर्ता-कर्ममें स्वरूप प्रकाशनकी पर्याय कर्मपने प्रगट की, वह कर्म पर्याय उससे बिलकूल भिन्न नहीं है। कोई अपेक्षा-से उसका अनन्यपना है। अमुक अपेक्षा-से अनन्यपना है। तो भी पर्यायका अनन्यपना हो तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक है। पर्यायका वेदन स्वयंको होता है। तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक है, ऐसा कहना है।

अपेक्षा समझनी चाहिये। मूल वस्तु है। पर्यायको कोई अपेक्षा-से अनन्य कहनेमें आती है, कोई अपेक्षा-से उसे भिन्न कहनेमें आती है, कोई अपेक्षा-से अभिन्न कहनेमें आती है, उसकी अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न हैं।

मुमुक्षु :- इसमें जो प्रमत्त-अप्रमत्त कहा वह चारित्र विवक्षा-से कहा। और कर्ता-कर्म कहा वह ज्ञान-ज्ञेय विवक्षा-से कहा। उसमें ज्ञान-ज्ञेय विवक्षाकी अपेक्षा-से भले स्वको जानता होने पर भी वह अनन्यपना हुआ तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है, ऐसा कहना है?

समाधान :- हाँ, ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। कर्ता-कर्म अपेक्षा-से स्वयं जाननेवाला और वह उसका कर्म हुआ। तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक है। क्योंकि कर्म वह परिणति

प्रगट हुयी। तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक है। पर्याय प्रगट हुयी, उस पर्यायमें भी ज्ञायक तो ज्ञायक है। स्वयंको जानता हुआ ज्ञायक तो ज्ञायक है। जो अनादिका ज्ञायक है वह ज्ञायक ही है।

स्वरूप प्रकाशनकी (बात कही तो) वहाँ पर्यायकी बात हो गयी और प्रमत्त-अप्रमत्तमें लो तो वहाँ भी साधनाकी ही पर्याय आयी। प्रमत्त-अप्रमत्तमें। अप्रमत्त दशा है वह भी साधनाकी पर्याय है। प्रमत्त-अप्रमत्तमें मुनि झुलते हैं। मुनिको द्रव्यदृष्टि तो मुख्य होती है। उसमें भी दृव्यदृष्टि-से ज्ञायक भिन्न रहता है। वैसे ज्ञानकी जो पर्याय प्रगट हुयी उसमें भी वह ज्ञायक वैसे ही रहता है। ज्ञायक जो द्रव्य अपेक्षा-से ज्ञायक है, वह ज्ञायक ही है। स्वतः ज्ञायक है। ज्ञानकी पर्याय परिणमे वह भी पर्याय है। प्रमत्त-अप्रमत्तकी पर्याय है, वह भी पर्याय है। सब पर्यायमें ज्ञायक ज्ञायक रहता है। भले कर्ता-कर्मका अनन्यपना हो। अप्रमत्त दशा है वह साधनाकी पर्याय है। साधनाकी पर्यायका उसे वेदन है। उसमें वह परिणमता है, तो भी वह ज्ञायक है। ज्ञानकी पर्यायमें परिणमे तो भी ज्ञायक है। ज्ञानकी पर्यायमें परिणमे तो भी ज्ञायक है।

मुमुक्षु :- प्रमत्त-अप्रमत्त-से तो रहित कहा और कर्ता-कर्मका अनन्यपना (कहा)। उसमें रहित शब्दप्रयोग नहीं किया। तो वह दोनों कैसे?

समाधान :- कर्ता-कर्म स्वरूप प्रकाशनमें ज्ञान स्वयं प्रकाश करता है-ज्ञान जानता है, जाननेकी अपेक्षा ली न, इसलिये जानता है। जाननेकी अपेक्षा-से अनन्य है तो भी ज्ञायक है, ऐसे। ज्ञायकको जाननेको कहा। ज्ञायक तो जाननेवाला है। इसलिये जाननेवाला जानता है। जानता है तो भी उसके साथ, उस पर्यायके साथ द्रव्य तो द्रव्य ही रहता है। जाननेकी अपेक्षा आयी तो उसे ज्ञायक कहते हैं, जाननेकी अपेक्षाके कारण उसे अनन्य कहा। परन्तु वह अप्रमत्तकी साधनाकी पर्याय है, इसलिये उससे भिन्न उपासित होता हुआ कहा। अनन्य (कहा), क्योंकि वह जाननेकी पर्याय है, इसलिये उसे अनन्य कहा। दृष्टान्त देकर भी सिद्धान्त साबित करते हैं।

ज्ञायकमें जाननेकी मुख्यता आयी। ज्ञायक जाननेका कार्य करे इसलिये ज्ञायक जानता हो तो? ज्ञायक जो जाननेका काम करे, वह जानने-से उसे भिन्न कैसे मानना? प्रमत्त-अप्रमत्त तो एक साधनाकी पर्याय हुयी। परन्तु ये जाननेकी पर्याय तो उसका स्वभाव है, ज्ञायक स्वतः (है), वह जाननेकी पर्याय तो उसका स्वभाव है। जाननेकी पर्याय-से अशुद्ध नहीं होता, ऐसा कैसे मानना? जाननेवाला है और जानता है। परन्तु जाननेवालेकी पर्याय जानती है तो उतनी पर्याय जितना नहीं हो जाता। वह अखण्ड ही रहता है। उसमें अनन्य हो तो भी उतनी पर्याय जितना नहीं हो जाता।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८३

मुमुक्षु :- पर्यायका कारण पर्याय है, द्रव्य-गुण नहीं। इस कथनका आशय क्या समझना?

समाधान :- पर्यायका कारण पर्याय है और द्रव्य-गुण नहीं है। द्रव्य जैसे अनादिअनन्त स्वतःसिद्ध है, जैसे द्रव्य अनादिअनन्त स्वतः है, जगतके अन्दर जो वस्तु है वह स्वतःसिद्ध है, ऐसे द्रव्य-गुण स्वतःसिद्ध है। वैसे पर्याय है वह भी स्वतःसिद्ध है। वह किसीसे बनायी गयी, किसीके द्वारा उत्पन्न नहीं की गयी है। जो द्रव्यमें पर्याय है वह स्वतःसिद्ध है। द्रव्यके कारण पर्याय है, ऐसा नहीं। पर्याय स्वतःसिद्ध है।

अकारण पारिणामिक द्रव्य है। जैसे द्रव्य स्वतःसिद्ध है, वैसे पर्याय भी स्वतःसिद्ध है। उस पर्यायको परिणमनेमें आसपासकी पर्यायका कारण लागू पड़े, इसलिये वह प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। वस्तुस्थिति-से वह पर्याय स्वतःसिद्ध है। इसलिये पर्यायका कारण पर्याय कहनेमें आता है।

पर्याय है वह स्वतःसिद्ध है। जैसे द्रव्य-गुण स्वतःसिद्ध है, वैसे पर्याय स्वतःसिद्ध है। परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि कोई द्रव्य पर्याय रहित है और पर्यायको कोई द्रव्यका आश्रय नहीं है, और पर्याय निराधार होती है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। परन्तु पर्याय है वह स्वतःसिद्ध है। वह स्वतःसिद्ध परिणमती है, वह अकारण है। जैसे द्रव्य-गुण अकारण है, वैसे पर्याय भी स्वतःसिद्ध अकारण है। ऐसा उसका अर्थ है। लेकिन पर्याय निराधार है, द्रव्य बिलकूल कूटस्थ है, द्रव्यमें कोई परिणाम नहीं है और पर्याय कोई द्रव्य रहित है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

उसका स्वतःसिद्धपना और वह स्वयं स्वतंत्र है, उसके सर्व कारक स्वतंत्र, वह स्वतंत्र परिणमता है, ऐसा उसका समझनेका अर्थ है। पर्याय भी एक वस्तु अकारण है, ऐसा कहना है। परन्तु जो द्रव्यदृष्टि करे, उस द्रव्यदृष्टिके अन्दर द्रव्य जैसे स्वतःसिद्ध है, वैसे पर्याय स्वतःसिद्ध है। तो भी द्रव्यदृष्टिमें वह पर्याय आती नहीं है। द्रव्यदृष्टिमें पर्याय नहीं आती है। अर्थात् पर्याय द्रव्यदृष्टिके विषयमें नहीं आती। इसलिये पर्याय द्रव्य-से एकदम भिन्न हो गयी और निराधार है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। तो भी पर्याय परिणमती है, जैसा द्रव्य हो उस जातकी पर्याय परिणमती है। जड़ द्रव्य हो और चेतनकी

पर्याय परिणमे अथवा दूसरे द्रव्यकी पर्याय दूसरे द्रव्यमें परिणमे ऐसा नहीं है। जिस द्रव्यकी जो पर्याय हो, उस द्रव्यके आश्रय-से ही पर्याय परिणमती है। ऐसा उसका सम्बन्ध उसमें-से टूटता नहीं। वह स्वतः होने पर भी, वह स्वतंत्र होने पर भी, उसका सम्बन्ध जो द्रव्यके साथ है, वह पर्यायका द्रव्यके साथका सम्बन्ध छूटता नहीं।

द्रव्यदृष्टिके विषयमें वह भेद आता नहीं। द्रव्यदृष्टिका विषय अखण्ड है। इसलिये उसमें वह भेद आते नहीं। तो भी वह पर्याय कोई अपेक्षा-से,... द्रव्यमें गुणका भेद, पर्यायका भेद है, और उस भेदके कारण पर्यायको द्रव्यका आश्रय होता है। और द्रव्य कोई पर्याय रहित नहीं होता। (यदि सर्वथा) कूटस्थ हो तो उसे साधना नहीं हो, कोई वेदन नहीं हो, संसार-मोक्षकी कोई अवस्था नहीं। अतः स्वतंत्र कहनेका अर्थ यह है कि वह स्वतःसिद्ध अकारण पारिणामिक है। इसलिये उसका स्वरूप स्वतंत्र बतानेके लिये है। परन्तु जहाँ द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी, उसमें वह नहीं होती। तो भी साधनामें वह दोनों साथमें होते हैं। द्रव्यदृष्टि मुख्य होती है और जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुयी है, उसे उस साधनाके साथ पर्यायकी शुद्धि होती है।

वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि जिसकी द्रव्य पर दृष्टि हो, यथार्थपने दृष्टि हो उसे ही वह पर्याय शुद्धरूप साथमें परिणमती है। और जिसे यथार्थ ज्ञान साथमें हो वह अंशी और अंशका करवाता है। अंशी स्वयं अखण्ड है। उसमें अनन्त गुण और अनन्त पर्याय है। परन्तु वह एक अंश है। उस अंशका सामर्थ्य कहीं अंशी जितना नहीं है। तो भी वह स्वतः है। वह स्वतः परिणमती है और स्वतंत्र है। ऐसा कहनेका आशय है।

द्रव्यके विषयमें आता नहीं है, इसलिये उसे भिन्न करके उसे ऐसा कहनेमें आता है कि वह स्वतंत्र परिणमती है। द्रव्यदृष्टिका विषय नहीं है और वह स्वतः है इसलिये। और उसे स्वतंत्र कहनेमें एक पर्याय भी है और द्रव्यके साथ पर्याय होती है। ऐसा भी साबित होता है। पर्यायको स्वतंत्र कहनेमें पर्याय है और पर्याय द्रव्यका एक भाग है, ऐसा उसमेंसे साबित होता है। पर्यायकी स्वतंत्रता बतानेमें पर्याय नहीं है ऐसा साबित नहीं होता। परन्तु पर्याय है और पर्याय द्रव्यका एक भाग है। परन्तु वह स्वतंत्र स्वतःसिद्ध है। पर्याय भिन्न है ऐसा उसका अर्थ उसमें नहीं है। उसमेंसे पर्याय साबित होती है।

पर्यायको स्वतंत्र बतानेमें कोई ऐसा मानता हो कि पर्याय है ही नहीं (तो ऐसा नहीं है)। पर्यायको स्वतंत्र बतानेमें पर्याय है और पर्याय द्रव्यका एक भाग है और वह स्वतंत्र परिणमती है। और द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतामें उसे गौण करनेमें आता है। परन्तु पर्याय, जिस जातिका द्रव्य हो, उस जातिकी पर्याय द्रव्यके आश्रय-से परिणमती है। उसमें बिलकूट टूकडे नहीं हो जाते, वह अपेक्षा साथमें समझनी है। यथार्थ समझे तो

ही साधनाका प्रारंभ होता है।

मुमुक्षु :- ... ज्ञानीको इच्छा नहीं होने-से परिग्रह नहीं है। इसलिये आहारको ग्रहते नहीं। और साथमें दर्पणमें उठ रहे प्रतिबिंबकी भाँति आहारको जानते हैं। यहाँ दर्पणका दृष्टान्त देकर कहा, उसमें क्या आशय समझना?

समाधान :- द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा-से वह मात्र जानता है। आहारको ग्रहण नहीं करता है, आहारको छोड़ता नहीं। ज्ञायकमें कोई आहार नहीं है। ज्ञायक उसे ग्रहण नहीं करता है, मात्र जानता है। जैसे प्रतिबिंबमें कुछ ग्रहण करना या छोड़ना ऐसा प्रतिबिंबमें होता नहीं, वैसे ज्ञायकको कुछ ग्रहण नहीं करता और कुछ छोड़ता नहीं है। द्रव्यदृष्टिमें वह ज्ञायक ज्ञायक ही रहता है।

ज्ञातामें कुछ आता नहीं। और जो आहार है वह, उसकी चारित्रकी अल्पता है, इसलिये पुरुषार्थकी कमज़ोरी-से होता है, वह उसके ज्ञानमें है। परन्तु ज्ञायककी दृष्टिमें, द्रव्यदृष्टिमें वह मात्र उसे प्रतिबिंबकी भाँति जानता ही है। प्रतिबिंब अर्थात् उसे ग्रहता नहीं और छोड़ता नहीं। ऐसा उसका आशय है, उसमें दूसरा कोई आशय नहीं है।

द्रव्यदृष्टिमें तो, द्रव्यदृष्टिका स्वरूप या द्रव्यका स्वरूप आप जितना कहो उतना ऊँचे-से ऊँचा होता है। तो भी उसमें-से पर्याय निकल नहीं जाती। उसमें पुरुषार्थकी मन्दता, साधनाकी पर्याय आदि सब साथमें होता है। द्रव्यदृष्टिका जितना ऊँचा कहो, उतना स्वरूप द्रव्यदृष्टिमें आता है। और वस्तुका स्वरूप ऐसा है। तो भी उसमें-से पर्याय जाती नहीं। पुरुषार्थकी मन्दता होती है। चारित्रकी दशा अधूरी है, वह ज्ञानीके ज्ञानमें है। उसे पामर जानता है। ज्ञायककी अपेक्षा-से प्रभु होने पर भी पर्यायमें वह पामर जानता है। इसलिये वह प्रतिबिंब होने पर भी उसमें कुछ है ही नहीं, ऐसा द्रव्यकी अपेक्षा-से उसका अर्थ है। बाकी उसकी चारित्रकी मन्दता है, वह उसे बराबर जानता है। ऐसा उसका अर्थ है।

समाधान :- ... जो निर्णय किया कि ये शरीर भिन्न है, विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है, मैं ज्ञायक हूँ। ऐसा निर्णय किया। सच्ची समझमात्र नहीं, परन्तु अन्दर ज्ञायककी परिणति होनी चाहिये, अन्दर भेदज्ञान होना चाहिये। स्वयं अन्दर-से भेदज्ञानरूप परिणमे और वह भेदज्ञानकी परिणति ज्ञाताकी उग्रता करके उसमें लीनता करे तो उसमें वह प्रयत्न आ जाता है।

स्वयं प्रतीति करके अन्दर लीनताका प्रयत्न करनेका रहता है। अलग जातका नहीं रहता है, लीनताका करनेका प्रयत्न रहता है। समझन यानी मात्र समझन करे उतना ही नहीं, उसके साथ भेदज्ञान हो। भेदज्ञानकी उग्रता हो, उसमें लीनताकी उग्रता हो वह प्रयत्न रहता है। भिन्न प्रयत्न नहीं, भेदज्ञानकी उग्रताका प्रयत्न, उसमें लीनताका

प्रयत्न रहता है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञानकी उग्रता माने क्या?

समाधान :- स्वयं चैतन्य भिन्न ही है, मैं ज्ञायक भिन्न हूँ, ऐसा सहज भेदज्ञान होकर अन्दर लीनता, उग्रताके साथ लीनताका प्रयत्न होता है। विकल्प तरफ जो उपयोग जाता है, परिणति अस्थिर होती है, वह उपयोग अपने स्वरूप तरफ लीन हो, उस लीनताका प्रयत्न होना चाहिये।

एक चारित्रदशा-लीनता वह अलग है, परन्तु ये तो अभी एक समझा नहीं है और स्वरूपाचरण चारित्र मात्र है, वह प्रगट होनेके लिये उसे लीनताका प्रयत्न (होता है)। भेदज्ञानपूर्वक लीनताका (प्रयत्न)। अकेली लीनता करे, समझे बिना विकल्प छोड़े ऐसे नहीं। अपना अस्तित्व ग्रहण करके भेदज्ञानपूर्वक लीनताका प्रयत्न।

मुमुक्षु :- भेदज्ञानके साथ-साथ लीनता सहज बनती जाती है या प्रयत्न करना पड़ता है?

समाधान :- जिसे भेदज्ञानकी धारा वर्तती है, उसे साथमें लीनता (होती है)। परन्तु जिसे सच्ची परिणति प्रगट हुयी, उसे लीनता हुये बिना रहती ही नहीं। वह उसमें अटकता नहीं, उसमें आगे जाता है। कितनोंको निर्णय, प्रतीत होनेके बाद अभी भेदज्ञान सहज नहीं होता, तबतक उसे निर्विकल्प दशा होती नहीं। भेदज्ञान सहज परिणमें उसमें लीनता हो तो निर्विकल्प दशा होती है। सच्चे ज्ञानपूर्वक सच्चा ध्यान होना चाहिये तो होता है।

वह ध्यान, जो चारित्रदशाका ध्यान है, फिर पाँचवे, छठ्ठो (होता है), वह ध्यान नहीं है। ये तो अभी सम्यग्दर्शनमें होता है, वह ध्यान। सच्चे ज्ञानपूर्वक सच्चा ध्यान होना चाहिये। उसे भेदज्ञानकी उग्रता कहो, उसे ध्यान कहो, उसे लीनता कहो।

मुमुक्षु :- भेदज्ञानकी उग्रताका ..

समाधान :- ज्ञान तो है, परन्तु वह सहज है। बुद्धिमें मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, भिन्न हूँ, ऐसे विकल्पमात्र नहीं, अपना अस्तित्व ग्रहण करता है। और अस्तित्व ग्रहण करे उसे सहज होता है। विकल्पपूर्वक अभ्यास करता है, अभ्यास मात्र ऊपर-ऊपर नहीं, अंतरमें-से सहज अभ्यास, अभ्यासकी परिणति सहजरूप हो जाय और उसकी भेदज्ञानकी धारा सहज हो और सहज लीनता हो। भेदज्ञानकी धाराके साथ उसकी उग्रताके साथ सहज लीनता होती है। दोनों साथ होते हैं। वह उग्रता है वह सम्यग्दर्शनपूर्वक उग्रता है।

.. सहज दशा कहो, सहज होना चाहिये। विकल्पपूर्वक अभ्यास करता है (उतना ही नहीं)। अंतरमें अस्तित्व ग्रहण करके सहजरूप परिणमित हो जाय, सहज भेदज्ञानरूप

और सहज उसमें लीनता-स्वयं उसमें स्थिर हो जाय। दूसरी भाषामें कहो तो स्थिर हो जाना, ज्ञायकमें स्थिर हो जाना। बाहर उपयोग है, वह उपयोग स्वरूपमें लीन हो जाना, स्थिर हो जाना। ऐसी सहज दशा हो तो निर्विकल्प दशा होती है।

... अटकना नहीं है, परन्तु सहज दशा प्रगट करके, सहज उसकी लीनता सहज ध्यान करता है। उस जातका एकाग्र होता है। सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ श्रद्धाका बल और आंशिक एकाग्रता अर्थात् स्वरूपाचरण चारित्र साथमें प्रगट होता है। वह चारित्र अलग है। उस जातकी एकाग्रता, उस जातका ध्यान प्रगट होता है तो निर्विकल्प दशा होती है। श्रद्धाके बल द्वारा एकाग्रता होती है। और वह श्रद्धा ऐसी सहज दशावाली होती है। अंतरमें-से ज्ञायकको ग्रहण करके स्वरूपका आश्रय, अस्तित्व ग्रहण करके अंतरमें होता है।

समाधान :- ... परप्रकाशक तो मात्र ये सब बाहरका जानता है। और जहाँ वीतराग होता है, वहाँ स्वयंको तो जानता है, परन्तु दूसरेमें उसे जाना नहीं पड़ता, वह तो अपनेमें रहकर, अपने क्षेत्रमें रहकर अपने आत्माका अनुभव करे और लोकालोक सहज ज्ञात होता है। ज्ञान निर्मल है। निर्मल ज्ञान हुआ इसलिये ज्यादा जानता है। जैसे निर्मल ज्ञान हो, वैसे ज्यादा जाने। आता है न? अवधिज्ञानी, केवलज्ञानी वे सब ज्यादा जानते हैं। और अज्ञानी तो गृहादि स्थूल (जानते हैं)। जितना दिखाई दे, नेत्र-से दिखाई दे उतना ही देखते हैं। ज्ञान अन्दर-से आत्माको उघाड हुआ है जानते हैं ऐसा नहीं है। ऊलटा ज्यादा जानते हैं।

कितने जीवको तो, आता है न? उस भवका जाने, इस भवका जाने, वह सब तो परप्रकाशक हुआ तो अंतर-से जानता है न? केवलज्ञानीको तो एकदम निर्मलता हो गयी। इसलिये वे तो अनन्त भवोंका, सबके द्रव्य-गुण-पर्याय, नर्क, स्वर्ग, सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय केवलज्ञानी वीतराग हुए इसलिये ज्यादा ज्ञात होता है। वे वहाँ जाते नहीं है, वहाँ उपयोग भी नहीं देते। परन्तु ज्ञात होता है। परन्तु उन्हें राग-द्वेष नहीं होते। मात्र जानते हैं, वीतराग रहते हैं।

केवलज्ञान हो तो ज्यादा जानते हैं। अन्दर स्वरूपकी अनुभूति करे और सहज ज्ञात हो जाता है। जैसे दर्पण निर्मल है, उसमें सहज झलकता है, वैसे उनको सहज ज्ञात होता है, केवलज्ञानीको। केवलज्ञानीको पूर्ण ज्ञात होता है। अज्ञानी तो मात्र जूठा जानता है। एकत्व होकर जानता है। गृहादि सब मानों एकमेक मिश्र होकर जानता है। शरीरादि मैं हूँ, ऐसा हो गया है। कुछ भिन्न ज्ञात नहीं होता।

ज्ञान हो तब भिन्न जानता है कि मैं भिन्न, ये शरीर भिन्न, ये सब भिन्न है। सच्चा तो अंतर आत्माको पीछाने वह सब जानता है। स्वको जाने वह सब जानता

है। स्वयंको जो नहीं जानता है, वह कुछ यथार्थ नहीं जानता। उसे भेदज्ञान कैसे हो? उसकी स्वानुभूति कैसे हो? आत्माको पीछानना वही जीवनमें करना है।

.. भगवानके द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, वह अपना जाने। जो अपना जाने वह भगवानके जाने।

मुमुक्षु :- एकको जाने।

समाधान :- एकको जाने वह सर्वको जाने।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- हाँ।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८४

मुमुक्षु :- मुमुक्षुओंको रुचि क्यों नहीं होती? यह समझमें नहीं आता।

समाधान :- जिसे अपना करना है, लगी है कि मनुष्यजीवनमें कुछ करना है, उसे रुचि होती है। जिसे कुछ करना नहीं है, जिसे बाहरकी-संसारकी रुचि है, उसे कुछ लगता नहीं।

मुमुक्षु :- उसका क्या कारण? चक्रवर्ती हो, तो फिर वे लड़ाईमें क्यों भाग लेते हैं? उसमें-से बाहर निकलकर मुझे यह करना ही नहीं, मुझे यह लड़ाई नहीं चाहिये, ऐसा करके स्वयं वापस क्यों नहीं मुड़ सकते?

समाधान :- जिसने अन्दर-से ज्ञायक आत्माको पहिचाना है कि आत्मा भिन्न ज्ञायक है। वह अन्दर-से विभाव-से छूट गया है और थोड़ी अस्थिरता है। उसे जो विभावके परिणाम आते हैं, वह वस्तु स्वभाव-से मेरा स्वभाव नहीं है, वह स्वभाव नहीं है ऐसा परिणति अंतरमें-से हो गयी है। क्षण-क्षणमें ज्ञायककी धारा रहती है कि मैं ज्ञायक हूँ। जो परिणाम आये उसका ज्ञायक रहता है। परन्तु पुरुषार्थकी मन्दता (है)। पूर्ण नहीं है, वीतरागता नहीं है इसलिये थोड़ी अस्थिरता है। उस कारण उसमें जुड़ता है। परन्तु उसकी स्वामीत्व बुद्धि नहीं है। मैं तो ज्ञायक जाननेवाला हूँ। ऐसा बोलनेमात्र नहीं, परन्तु अंतरमें ऐसी परिणति ही हो गयी है। क्षण-क्षणमें ऐसी भेदज्ञानकी धारा ही वर्तती है।

परन्तु वे राजमें खड़े हैं, राजको छोड़ नहीं सकते हैं। अंतरमें-से कोई भी विभावका भाव आदरणीय नहीं है, ऐसी अंतरमें-से परिणति हो गयी है। अंतरमें परिणति भिन्न पड़ गयी है। तो भी पुरुषार्थकी मन्दता-से राजमें खड़े हैं, इसलिये राजके जो कार्य हैं, उस कार्यमें वे खड़े रहते हैं। उसमें-से छूट नहीं सकते। यदि पुरुषार्थ करे तो छूट जाय ऐसा है। परन्तु उनकी पुरुषार्थकी मन्दताके कारण उसमें जो-जो राजाके हिसाब-से फ़र्ज हो, वह सब फ़र्जमें वे खड़े रहते हैं।

राजमें खड़े हैं इसलिये लड़ाई आदि सब कार्यमें जुड़ते हैं। अंतरमें-से वैराग्य आवे तो सब छोड़कर निकल जाते हैं। चक्रवर्तीका छः खण्डका राज होता है। परन्तु वैराग्य आता है तो एक क्षणमें छोड़कर मुनि बन जाते हैं। मुझे ये कुछ नहीं चाहिये। ऐसा

पुरुषार्थ उत्पन्न हो तो सब छोड़ देते हैं। अंतरमें-से छूट जाता है, मुनि बन जाते हैं। फिर तो क्षण-क्षणमें आत्मामें स्वरूपमें लीन रहते हैं। क्षण-क्षणमें बाहर आये, अन्दर जाय ऐसी अंतर्मुहूर्तकी दशा हो जाती है।

परन्तु गृहस्थाश्रममें है इसलिये उसे उस जातका राग पुरुषार्थकी मन्दताके कारण छूटा नहीं है। अंतरमें-से छूट गया है कि ये विभाव मुझे किसी भी प्रकार-से आदरणीय नहीं है। ऊँचे-से ऊँचा शुभभाव भी मेरा स्वरूप नहीं है। उससे भी भिन्न रहते हैं। परन्तु वे राजके राग-से छूटे नहीं है। इसलिये उसमें खड़े रहते हैं। वे छोड़ना चाहे, पुरुषार्थ करे तो क्षणमें छूट जाय ऐसा है।

कुछ राजा लड़ाईमें होते हैं और ऐसा होता है कि ये क्या? लड़ाईमें खड़े हो, वहीं वैराग्य आता है, वहीं मुनि बन जाते हैं। ऐसी भी कोई राजा होते हैं। शास्त्रमें दृष्टान्त आता है। लड़ाई करते हो, वैराग्य आता है। हार-जीत ये सब क्या है? वहाँ लड़ाईमें ही लोंच करके मुनि बन जाते हैं, सब छोड़ देते हैं। ऐसा भी पुरुषार्थ उत्पन्न होता है। और किसीका ऐसा पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता है, इसलिये लडाईमें, राजकी व्यवस्थामें सबमें जुड़ते हैं।

सम्यग्दृष्टिकी अंतरकी गति कुछ अलग होती है, बाहरकी अलग होती है। हाथीके दिखानेके दाँत अलग और अंतरके अलग होते हैं। वैसे उसकी अंतरकी परिणति एकदम न्यारी होती है। परन्तु बाहर ऐसे सब कार्यमें जुड़ता है। इसलिये परीक्षा करनी मुश्किल है। लड़ाईमें खड़े हो और उसकी परीक्षा करनी, गृहस्थाश्रममें खड़े हो उसकी परीक्ष करनी बहुत मुश्किल है। परन्तु वह अंतर-से कैसे न्यारे हैं, वह उनका परिचय हो तो ख्यालमें आये ऐसा है।

मुमुक्षु :- तभी उसकी ज्ञानधारा चालू ही होती है? और कर्मधारा चलती है?

समाधान :- कर्मधारा भिन्न, ज्ञानधारा भिन्न। दोनों भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। ये शरीर भिन्न, उसके हथियार भिन्न, राग आवे वह भिन्न। सबसे भिन्न धारा वर्तती है। प्रतिक्षण धारा वर्तती है। वह सब कार्य उसके न्यायपूर्वक होते हैं। कोई अन्यायमें नहीं जुड़ते। मर्यादित होते हैं। परन्तु उसमें वे खड़े होते हैं, लड़ाईके कार्योंमें।

पहलेके राजा, चक्रवर्ती, भरत चक्रवर्ती, रामचन्द्रजी सब लड़ाईके कार्योंमें खड़े थे। वैराग्य आया तब मुनि बनकर चल दिये। भरत चक्रवर्ती तो अरीसा भुवनमें एकदम वैराग्यको प्राप्त हुए हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी एक टेपमें सुना कि ज्ञानमें ऐसी ताकत है कि भूत, भविष्य और वर्तमान सब पर्यायोंको जान सके। ऐसा भगवानके लिये ही है?

समाधान :- भगवानको प्रत्यक्ष ज्ञान है, इसलिये तीनों कालका प्रत्यक्ष जानते हैं।

और जो मति-श्रुतज्ञानी है वह प्रत्यक्ष नहीं जानता। इसलिये भूत, वर्तमान, भविष्यका प्रत्यक्ष नहीं जानता। वह भगवानके लिये है-भूत, वर्तमान, भावि। सम्यग्दृष्टि हो अथवा मति-श्रुतज्ञानी हो, वह भी थोड़ा जान सकता है। उसे भूतका अनन्त, भविष्यका अनन्त और वर्तमान वह सब अनन्त कालका नहीं जानता। किसीको ऐसा ज्ञान प्रगट हो तो मर्यादित ज्ञान जान सकता है।

बचपन-से बड़ा हुआ तो बचपनका हो उतना याद कर सके। भविष्यमें ऐसा होनेवाला है, ऐसा अनुमान प्रमाण-से जान सकता है। ऐसे भूत, वर्तमान, भविष्यको जाने। वर्तमानका जान सके, ऐसे जान सकता है। परन्तु केवलज्ञानी तो प्रत्यक्ष ऐसा ही होगा, ऐसा निश्चित जान सकते हैं। बाकी मति-श्रुत जिसे है, वह बचपन-से अब तक बड़ा हुआ, बचपनमें क्या बना वह सब जानता है, जो उसकी स्मरण शक्ति हो उस अनुसार। और अनुमान-से भविष्यमें ऐसा होगा, ऐसा अनुमान-से जानता है। कितनोंको ऐसा ज्ञान होता है कि भविष्यमें ऐसा होनेवाला है। ऐसा भी किसीको होता है कि थोड़े समय बाद ऐसा होनेवाला है। ऐसा ज्ञान उसका सच्चा भी हो। ऐसा भी किसीको होता है। परन्तु वह सब मर्यादित होता है और परोक्ष होता है। केवलज्ञानीको प्रत्यक्ष होता है।

केवलज्ञानी तो जहाँ वीतराग दशा हुयी तो उसका ज्ञान निर्मल हो जाता है। भूतका अनन्त और भविष्यका अनन्त काल पर्यंतका अनन्त द्रव्योंका, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, चैतन्य, जड़, जगतमें जितनी वस्तु है, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, समय-समयमें क्या परिणमन चल रहा है, वह सब एक समयमें केवलज्ञानी जानते हैं। अपना जानते हैं। स्वयं भूतकालमें कैसे परिणमे? वर्तमानमें कैसे परिणमते हैं, भविष्यमें क्या परिणति होनेवाली है? अपने द्रव्यकी। अनन्त गुण और पर्याय कैसे परिणमेंगे, ऐसा भविष्यमका अपना जाने। और अन्य अनन्त द्रव्य। यह जीव इतने समय बाद मोक्ष जायगा। नर्कका, स्वर्गका सब जीवोंके भाव, उसके भव, अनन्त-अनन्त कालका केवलज्ञानी जानते हैं। उन्हें ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान है। इच्छा नहीं करते हैं, इच्छा बिना जानते हैं। ऐसा उनका स्वपरप्रकाशक ज्ञान है।

मुमुक्षु :- उस ज्ञानका माहात्म्य बताईये।

समाधान :- ज्ञानकी ऐसी महिमा और ज्ञानका ऐसा स्वभाव है। मात्र महिमा नहीं बतानी है, परन्तु उसका स्वभाव ही ऐसा है। उसका नाम कहें कि उसमें मर्यादा नहीं होती। ज्ञानस्वभाव आत्माका है, उसकी मर्यादा नहीं है कि इतना ही जाने और उतना न जाने। वह जब निर्मल हो, तब पूर्ण जाने। अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, अनन्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब अनन्त जाने। उसका नाम ज्ञान कहनेमें आता है।

वस्तुका स्वभाव जिसमें ज्ञान है, उसमें नहीं जानना ऐसा नहीं आता कि इतना ही जाने और इतना न जाने। पूर्ण जाने। अपना पूर्ण, दूसरेका, सबका जाने। परन्तु वीतराग दशा-से जानते हैं। अज्ञानदशामें तो ऐसा थोड़ा अनुमान-से जाने। मति-श्रुतज्ञानी स्वानुभूतिमें जाने। बाकी परोक्ष जाने, परन्तु वह थोड़े कालका जानता है। अवधिज्ञानी अमुक प्रत्यक्ष जानता है, मनःपर्ययज्ञानी अमुक प्रत्यक्ष जानता है, परन्तु केवलज्ञानी तो पूर्ण जानते हैं। ऐसा ज्ञानका स्वभाव ही है। ज्ञानको मर्यादा नहीं होती।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है। तो उसमें नहीं जानना ऐसा आता ही नहीं। पूर्ण जाने। उसमें ऐसी मर्यादा नहीं बँध सकती कि इतना जाने और उतना न जाने। पूर्ण जाने। स्वको जाने, परको जाने। परन्तु इच्छा बिना। उसमें एकत्वबुद्धि किया बिना जानता है।

समाधान :- .. यथार्थ भावना भावे, वह भावना उसकी फलवान होकर ही छूटकारा हो। यदि वह भावना अंतर-से उत्पन्न हुयी भावना हो कि मुझे आत्मा ही चाहिये। ऐसी भावना यदि हुयी और चैतन्यकी परिणति प्रगट न हो तो जगतको शून्य होना पड़े। अर्थात् भावना फलती ही है। तो द्रव्यका स्वभाव नाश हो जाय अथवा द्रव्यका नाश हो जाय। जगतको शून्य होना पड़े। द्रव्यका नाश हो अर्थात् जगतको शून्य होना पड़े।

जो भावना अंतर-से प्रगट हुयी हो, जो भावना अंतरमें-से प्रगट हो, वह भावना अपनी परिणतिको लाये बिना रहती ही नहीं। यदि परिणति न आवे तो उस द्रव्यका नाश हो जाय। जो द्रव्य स्वयं अन्दर-से परिणतिको इच्छता है, जो उसे चाहिये, वह अंतर-से न आये तो जगतको शून्य होना पडे अर्थात् द्रव्यका नाश हो जाय। अपने द्रव्यका नाश हो, अपनी भावना सफल न हो, किसीकी न हो, इसलिये जगतको शून्य होना पड़े।

अपनी भावना सफल नहीं होती है तो अपने द्रव्यका नाश होता है। वैसे किसीकी भावना सफल नहीं हो तो जगतको शून्य होना पड़े। इसलिये स्वयंकी भावना अंतर-से उत्पन्न हुयी हो, वह अंतर-से प्रगट होकर ही छूटकारा है। यदि स्वयंको अन्दर-से आत्मा प्रगट होनेकी इच्छा हो, अंतर-से, तो वह अन्दर प्रगट हो ही। ऐसा नियम है। जो अंतरकी उत्पन्न हुयी भावना हो, वह भावना सफल हुए बिना रहती ही नहीं।

शुभ-अशुभ सब भावनाओंका फल आता है। ऐसे चैतन्य तरफकी भावना अंतरमें-से हुयी, वह भावना अंतर-से हुयी, उस रूप द्रव्यको परिणमना ही पड़े। यदि द्रव्य परिणमे नहीं तो जगतको शून्य होना पड़े, द्रव्यका नाश हो। द्रव्यका नाश होता ही नहीं। इसलिये द्रव्य उस रूप परिणति किये बिना रहता ही नहीं।

मुमुक्षु :- अंतरकी भावना कैसे उत्पन्न हो?

समाधान :- उसे उत्पन्न करनेके लिये स्वयंको उतनी लगन हो, जरूरत लगे कि बस, कोई वस्तुमें उसे रस नहीं है, एक चैतन्य तरफका रस लगे। चैतन्यमें अन्दर अपूर्वता लगे। ऐसी अपूर्वता लगे। उसके बिना स्वयंको चले ही नहीं। चैतन्यकी परिणतिके बिना कैसे चले? ऐसा यदि अंतरमें-से हो तो अंतरमें-से परिणति प्रगट हुए बिना रहे ही नहीं।

समाधान :- .. जो मार्ग बताया, उस मार्गके बिना अंतरमें कहीं संतोष हो सके ऐसा नहीं है। ध्यान करे तो समझ बिनाका ध्यान (करे तो) अन्दर-से कुछ प्रगट नहीं होता। ज्ञानपूर्वकका ध्यान हो तो वह सच्चा ध्यान हो, अपना स्वभाव पहिचानकर। श्रीमद् कहते हैं न, तरंगरूप हो जाता है। ज्ञान बिनाका ध्यान तो।

जो जान रहा है वह स्वयं ही है। स्वयं अपनेको जान नहीं सकता है। विभावमें जो सबको जाननेवाला है, उस जाननेवालेका अस्तित्व ग्रहण करना। जाननेवालेका असाधारण गुण ज्ञात होता है। बाकी अनन्त अनुपम शक्तियों-से भरा (है)। परन्तु ज्ञानस्वभाव उसका ऐसा असाधारण है कि वह ग्रहण हो सके ऐसा है। परन्तु स्वयंकी उतनी तैयारी हो तो वह ग्रहण कर सकता है। परन्तु वह जबतक न हो तबतक उसकी अपूर्वता लगे और उस तरफ परिणति जाय तो भी अच्छा है। उसकी भावना हो तो भी।

मुमुक्षु :- ऐसा होता है कि ऐसा कैसा अनुभव? ऐसा कैसा आनन्द? क्या होता है? उस वक्त अपनेको क्या दिखाई देता है? ऐसा होता है कि जाननेवालेको जानना है, वह सब बात बराबर। तो फिर उसमें आनन्द आता है तो कैसा आनन्द है? उसका क्या स्वरूप है?

समाधान :- जबतक विकल्पमें खड़ा है, तबतक आनन्द प्रगट नहीं होता। विकल्प-से भिन्न पड़े तो प्रगट होता है। परन्तु पहले भेदज्ञान हो तो विकल्प-से भिन्न पड़े। और वह भेदज्ञान भी यथार्थ परिणतियुक्त होना चाहिये। पहले तो अभ्यासरूप होता है, फिर उसकी परिणति प्रगट होती है। विकल्पमें खड़ा है तबतक आनन्द होता नहीं। उसकी श्रद्धा करे, अपूर्वता करे तो हो। ऐसा पहले हो, बादमें हो। पहले तो यथार्थ प्रतीत करे कि आत्मामें आनन्द है। शास्त्रमें आता है, तुझ-से न हो सके तो श्रद्धा तो करना।

समाधान :- .. शाश्वत मन्दिर है। शाश्वत रत्नके मन्दिर और शाश्वत प्रतिमाएँ पाँचसौ-पाँचसौ धनुषकी। जैसे समवसरणमें भगवान बैठे हों, वैसे रत्नकी प्रतिमाएँ। नासाग्र दृष्टि है। एक दिव्यध्वनि नहीं है, बाकी जैसे भगवान हों, वैसा पद्मासन और ऐसे पाँचसौ धनुषकी, ऐसी १०८ प्रतिमाएँ। ५२ जिनालय है। वह पूरा द्वीप मानों भगवानके मन्दरोंका

ही हो ऐसा द्वीप है।

मुमुक्षु :- ऐसी कुदरती रचना होती है?

समाधान :- कुदरती रचना। ये सब पुद्गलकी रचना भगवानरूप ही परिणमित हो गयी है। वहाँ सब भगवान ही हैं।

मुमुक्षु :- विहरमान तीर्थंकर?

समाधान :- नहीं, तीर्थंकर नहीं, प्रतिमाएँ हैं। (तीर्थंकर) तो विदेहक्षेत्रमें हैं।

मुमुक्षु :- विहरमान तीर्थंकरकी प्रतिमाएँ या (दूसरी)?

समाधान :- कोई विहरमानकी या चौबीस तीर्थंकरकी प्रतिमाएँ ऐसा कुछ नहीं, बस, भगवान ही। नाम नहीं। जैसे भगवान समवसरणमें बैठे हों, वैसे भगवान। समवसरणमें बैठे हों वैसे। कौन-से भगवान ऐसा कुछ नहीं, तीर्थंकर भगवान। चौबीस भगवान या बीस विहरमान भगवान, ऐसा नहीं। तीर्थंकर भगवान। पद्मासनमें (बैठे हों), अशोकवृक्ष होता है, सिंहासन होता है, समवसरण जैसी रचना होती है। नाम नहीं है। किसीकी प्रतिष्ठा नहीं की है, कुदरती है। कुदरती, पुद्गलके परमाणु जैसे पहाड़ आदि कुदरती होते हैं, दुनियामें जैसे पहाड़ आदि होता है, वैसे कुदरती प्रतिमाएँ, रत्नमय प्रतिमाएँ होती हैं। किसीके द्वारा निर्मित नहीं होती।

मुमुक्षु :- कैलास पर्वत पर भी है न?

समाधान :- भरत चक्रवर्तीने वहाँ प्रतिओंकी स्थापना की है। भूतकालकी चौबीसी, वर्तमान चौबीसी और भविष्यकी चौबीसी, ऐसे बहत्तर बिंबकी स्थापना भरत चक्रवर्तीने कैलास पर्वत पर की है। कैलास पर्वत अभी किसीको हाथ नहीं लगता है। वह रत्नमय प्रतिमाएँ भरत चक्रवर्तीने करवायी हैं।

समाधान :- ..विभावभाव-से अपना स्वभाव भिन्न है। उसका अस्तित्व ग्रहण करके उस रूप अंतरमें-से परिणति करे तो होता है, तो स्वानुभूति होती है। जो भाव-विकल्प आये उससे भिन्न आत्मा ज्ञायक है, उसे पीछानना।

... केवलज्ञान हो तब वह क्षय होता है। बाकी पहले भेदज्ञान है। उसका भेदज्ञान करना। तो विकल्प छूटकर अन्दर समा जाय तो स्वानुभूति होती है। तो स्वानुभूति होती है। .. तो विकल्प छूट जाय।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८५

समाधान :- ... अनन्त काल-से बाह्य क्रियामें सब मान बैठा है, परन्तु बाहरमें-से, कोई विभावमें-से वह स्वभाव नहीं आता है। परन्तु स्वभावमें-से स्वभाव आता है। इसलिये उसका भेदज्ञान करे कि विभावभाव मेरा स्वभाव नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसी अंतरमें भिन्न श्रद्धा-प्रतीति करे, उसका ज्ञान करे और उस रूप परिणति करे तो प्रगट हो।

उसे करनेके लिये उसकी लगन, उसकी महिमा, सब वही करनेका है। उस जातका विचार, वांचन, वह जबतक न हो तबतक शास्त्रका अभ्यास करे, वांचन करे, लगनी, महिमा करे। गुरुदेवने कहा है उसी मार्ग पर जाना है। उसकी अपूर्वता लगनी चाहिये, अंतरमें उसकी महिमा लगनी चाहिये। ये सब बाहर कुछ अपूर्व नहीं है। अनन्त कलमें सब किया, परन्तु एक आत्माका स्वरूप नहीं जाना है। बाहरमें उसे सब अपूर्वता लगी, बाहरकी अपूर्वता वह अपूर्वता नहीं है। अंतरकी अपूर्व वस्तु अंतरमें है। बाहरमें कुछ नवीनता है ही नहीं। बाहरकी जो महिमा लगती है, वह छूटकर अंतरकी महिमा होनी चाहिये।

..स्वभावमें-से प्रगट होता है, चारित्र अपनेमें-से प्रगट होता है, सब अपनेमें-से ही प्रगट होता है। सुवर्णमें-से सुवर्णके ही गहने होते हैं, होलेमें-से लोहेका होता है। वैसे स्वभावमें-से ही स्वभाव प्रगट होता है। उसे बाहरमें देव-गुरु-शास्त्र निमित्त होते हैं। परन्तु उपादान स्वयंको तैयार करना है। अनन्त कालमें जीवने धर्म सुना नहीं है और सुनानवाले जिनेन्द्र देव, गुरु मिले और यदि अपूर्वता लगे तो अंतरमें उसे देशनालब्धि होती है। ऐसा निमित्त-उपादाका सम्बन्ध है। परन्तु करनेका स्वयंको है। करना स्वयं, अंतरमें स्वयंको पुरुषार्थ करना है।

मुमुक्षु :- अन्दर-से उसे जिज्ञासा जागृत होनी चाहिये।

समाधान :- अन्दर स्वयंको लगना चाहिये कि मुझे करना ही है। भवका अभाव कैसे हो? ऐसा स्वयंको लगना चाहिये तो हो। उसे बाहरमें कहीं सुख लगे नहीं, शान्ति लगे नहीं, शान्ति अन्दरमें-से कैसे प्रगट हो? उसकी जिज्ञासा जागनी चाहिये।

महिमा करनी, लगनी करनी, विचार करना, वांचन करना, शास्त्र अभ्यास (करना),

उसका अभ्यास करना। भेदज्ञान कैसे हो, उसका अभ्यास करना। पहले भेदज्ञानका अभ्यास (करना)। अन्दर रुचि लगनी चाहिये। रुचि लगे तो वह अभ्यास करे। स्वयंको वह करना है। उसकी रुचि लगनी चाहिये। अंतरमें-से यथार्थ परिणति तो बादमें होती है, पहले उसका अभ्यास करे। वह नहीं हो तबतक।

समाधान :- .. भेदज्ञान करनेके लिये उतनी लगनी, उतनी महिमा, श्रुतका वांचन, विचार सब होता है। तैयारी हो तो हो। भेदज्ञानकी परिणति हो तो स्वानुभूति हो। तैयारी करनी।

अनन्त कालमें बाहरका सब बहुत किया है, एक अंतरमें दृष्टि करके आत्माका पहिचानना वह करना है। क्रियाएँ की, शुभभाव किये, सब किया, देवलोक मिला, सब मिला परन्तु भवका अभाव नहीं हुआ। भवका अभाव होनेका मार्ग गुरुदेवने बताया है। मुक्तिका मार्ग अंतरमें है। गुरुदेवने कोई अपूर्व मार्ग बताया है। दृष्टि करे तो मालूम पड़े ऐसा है। गुरुदेवने चारों पहलूओं-से समझाया है। आत्माका द्रव्य-गुण-पर्याय क्या? विभाव क्या? पुद्गल क्या? सब बताया है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीके बिना अकेले तो कुछ समझमें आता नहीं।

समाधान :- गुरुदेवने बहुत समझाया है। उसका मूल आशय ग्रहण कर लेना, गुरुदेवने क्या कहा है, वह। उसके लिये सत्संग और स्वयंको जहाँ-से समझमें आये, गुरुदेव विराजते थे वह बात अलग थी, परन्तु गुरुदेवने जो समझाया है उसका आशय ग्रहण करना। मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको ग्रहण करना। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय, चैतन्यके चैतन्यमें। परद्रव्यके परद्रव्यमें है। वह समझना।

जो भगवानको, गुरुको पहचाने वह स्वयंको पहचानता है। ऐसा सम्बन्ध है। गुरुने क्या किया? गुरुदेव क्या कहते थे? ऐसे यथार्थपने जाने तो अपने स्वरूपको जाने। ऐसा सम्बन्ध है। इसलिये मैं कौन हूँ? जो स्वयंको पहिचाने वह देव-गुरुको पहिचाने और देव-गुरुको पहिचाने वह स्वयंको पहिचानता है। इसलिये चैतन्यका द्रव्य, चैतन्य वस्तु क्या? उसके गुण क्या? उसकी पर्याय क्या? उसकी परिणति कैसी (होती है)? अंतरमें कैसा आत्मा है? उसका विचार करे। जो गुरुदेवने कहा उस मार्ग पर, आशय ग्रहण करके वह विचार करे। वह न हो तबतक उसका बारंबार अभ्यास करे।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- मनुष्य जीवनमें ये कुछ नवीन करना है, ये कुछ नवीन नहीं है। अनन्त काल ऐसे ही व्यतीत हो गया, ऐसे भव अनन्त हुए। उसमें इस भवमें पंचमकालमें गुरुदेव मिले। इस कालमें ऐसी वाणी सुनानेवाले, ऐसा मार्ग समझनेवाले मिलना दुर्लभ है। इसलिये आत्मा ही सर्वस्व है, उस तरफका पुरुषार्थ और खटक होनी चाहिये।

मैं ज्ञायक हूँ, मैं चैतन्य हूँ, ज्ञाता हूँ ऐसी भेदज्ञानकी परिणतिका अभ्यास करना। मूल वस्तु यह है। एकत्वबुद्धिको तोड़ना। एकत्व तोड़कर स्वरूपका एकत्व करे। चैतन्यमें एकत्व, परसे विभक्त हूँ, उसका अभ्यास करना। सूक्ष्म रूपसे बहुत समझाया है, करनेका स्वयंको हो। ... आत्मा है। बाहरमें कुछ अनुपमता है ही नहीं, अनुपमस्वरूप आत्मा है। उसीमें-से प्रगट हो ऐसा है।

समाधान :- .. अनुयायी और शिष्योमें कुछ फ़र्क़ नहीं है। गुरुदेवके हर गाँवमें शिष्य हैं। यहाँ भी है, सब गुरुदेवके शिष्य ही हैं। (गुरुदेव) अलौकिक पुरुष थे, महापुरुष। गुरुदेव जैसा तो कोई है ही नहीं। गुरुदेव तो कोई अद्‌भुत व्यक्ति इस पंचमकालमें हुए। गुरुदेवकी वाणी बहुत लोगोंने ग्रहण की है।

... तीर्थंकरदेवको जो समवसरणकी रचना होती है, भगवानकी दिव्यध्वनि छूटे, उसका अतिशय, उनकी वाणी, समवसरणमें कितने ही जीव (होते हैं), चतुर्विध संघ वाणी सुनते हैं। तीर्थंकर भगवानका अतिशय अलग ही होता है। उनके प्रताप-से अनेक मुनिवृंद होते हैं। तो भी कोई मुनि, तीर्थंकरकी तुलनामें उनके जैसा अतिशय किसीका नहीं होता। उसमें ऐसा कहे कि तीर्थंकरके बाद कौन? तीर्थंकर तीर्थंकर ही होते हैं, उनके जैसा कोई नहीं होता। तीर्थंकरके बाद किसकी स्थापना करनी, ऐसा होता ही नहीं। तीर्थंकरके बाद कोई होता ही नहीं। मुनिओंका समूह होता है, परन्तु तीर्थंकर जैसी वाणी किसीकी नहीं होती।

.. उनकी कोई स्थापना नहीं होती। उनकी ध्वनि छूटे, परन्तु तीर्थंकरका अतिशय तो तीर्थंकरको ही होता है। उनके बाद कौन? ऐसी कोई स्थापना नहीं होती कि तीर्थंकरके बाद किसको स्थापना। मुनि आदि होते हैं, उनकी स्थापना नहीं होती। क्योंकि तीर्थंकर जैसा कोई होता ही नहीं।

मुमुक्षु :- गणधर तो होते हैं न।

समाधान :- तीर्थंकर जैसा कोई होता ही नहीं। वह सब तो छद्मस्थ होते हैं। तीर्थंकर जैसा कोई होता ही नहीं। उनके बाद कौन? ऐसा कुछ होता ही नहीं। वह तो जिन्होंने वाणी ग्रहण की, तो ऐसे ही मार्ग चलता है। वाणी ग्रहण की और आत्माकी साधना करनेवाले बहुत जीव होते हैं। आत्माकी साधना करे उसीमें मार्ग चलता है। ऐसे साधक जीव बहुत होते हैं।

मुमुक्षु :- सिद्ध होकर उनके जैसा बन सकते हैं, परन्तु बाहर अतिशयमें कोई समानता नहीं होती।

समाधान :- अतिशयमें समान हो ही नहीं सकता। उनके बाद उनके जैसा कोई होता ही नहीं। साधना करनेवाले बहुत मिलेंगे, परन्तु उनके जैसा कोई नहीं मिलता।

मुमुक्षु :- गुरुदेवका ही मार्ग चल रहा है।

समाधान :- मुनिओं-से, उनकी साधना-से सब चले। परन्तु उनके जैसी वाणी किसीकी नहीं होती।

मुमुक्षु :- ... तीर्थंकरका था, तो उनकी वाणीमें ऐसी सातिशयता थी या उनको सुननेवालोंमें भी बहुत मार्गको प्रवर्तानेवाले उनके पीछे (होते हैं)?

समाधान :- उनकी वाणीमें ऐसा अतिशय था। कुछ तैयार होते हैं, आत्मामें तैयार हो जाते हैं। उनका अतिशय ऐसा था। अनेक जीव जागृत हो जाय, आत्मामें। उसका पुण्यका मेल नहीं होता। .. परन्तु भगवान जैसी वाणीका अतिशय और वैसी जो रचना होती है, वह नहीं होता। वीतरागी वाणी (होती है), वाणीमें वीतरागता बरसती है। .. वाणी बरसाये, मार्ग बताये, सब करे।

मुमुक्षु :- केवलज्ञान प्राप्त कर ले वह अलग बात है।

समाधान :- हाँ, केवलज्ञान प्राप्त कर ले, परन्तु बाहरका सब वैसा ही हो ऐसा नहीं। उसके साथ किसीका मेल नहीं होता।

आचार्यके बाद आचार्य, ऐसे स्थापना हो सकती है। भगवानके साथ किसीकी स्थापना नहीं हो सकती। गुरुदेव तीर्थंकर जैसे वर्तमानकालमें हुए, वह द्रव्य ही ऐसा था।

मुमुक्षु :- तीर्थंकरका द्रव्य और वैसा ही योग।

समाधान :- तीर्थंकरका द्रव्य था। आचार्यके बाद आचार्य होते हैं, मुनिके बाद मुनि होते हैं। ऐसा होता है। .. वैसा अतिशय या वृंदका वृंद तैयार हो, ऐसा नहीं होता। गुरुदेव-से सब समूह तैयार हुआ, ऐसा सब नहीं हो सकता।

समाधान :- विकल्प रहित जो आनन्द आवे, वह आनन्द और विकल्प रहित आनन्द, अन्दर राग छूटकर जो आनन्द आवे, उस आनन्दमें फ़र्क़ होता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- वह तो अंतर्मुहूर्तकी ही स्थिति होती है। .. फिर तो दशा तो स्वयं अधिक पुरुषार्थ करे तो होती है। पुरुषार्थ करे। अभी द्रव्य और पर्यायका मेल समझना चाहिये कि द्रव्य और पर्याय क्या है।

मुमुक्षु :- परिणामी आत्मा और अपरिणामी।

समाधान :- परिणामी है। किस अपेक्षा-से परिणामी है? किस अपेक्षा-से नहीं है। वह सब अपेक्षा समझकर उसका मेल करना चाहिये। विकल्प-से रहित आत्मा है। आत्मामें है ही नहीं ऐसा नक्की किया, परन्तु उसकी गौणतामें देखे तो विकल्प है। परन्तु विकल्प मूल स्वरूपमें नहीं है।

जैसे स्फटिक मणि है वह स्वभाव-से निर्मल है। निर्मल है, परन्तु लाल-पीले फूलका

संयोग हो तो वह लाल दिखता है। परन्तु वह लाल बाहर-से नहीं आया है, परन्तु स्फटिक स्वयं परिणमित हुआ है।

वैसे जीव स्वयं परिणमता है। कुछ नहीं है अर्थात् मात्र भ्रान्ति ही है और अज्ञान है, वह अपेक्षा-से बराबर है। परन्तु दूसरी अपेक्षा-से देखे तो उसे अनादि कालसे वेदन होता है, रागका, दुःखका वेदन किसको होता है? मुझे दुःख-से छूटना है, यह मुझे दुःख होता है, मुझे आकुलता होती है। वह वेदन अन्दरमें होता है। तो वह वेदन एक पर्यायमें है, मूल वस्तुमें नहीं है। वेदन पर्यायमें है, वस्तुमें तो नहीं है। परन्तु वस्तुमें नहीं है, ऐसा नक्की किया। फिर भी बाहर उसके वेदनमें अमुक खड़ा रहता है। इसलिये वह श्रद्धा बराबर करके, भेदज्ञानकी धारा ऐसी ही रहनी चाहिये कि क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें जैसे विकल्पकी धारा चलती है, उतनी ही उसके सामने धारा चलनी चाहिये। ... अन्दरसे चलनी चाहिये।

ज्ञायकधारा ऐसी चले तो उसमें-से स्वानुभूति हो। तो उसकी दशा चालू हो। स्वानुभूति नहीं हो तो उसकी दशा चालू नहीं होती। उसकी धारा चलनी चाहिये। अन्दर-से ऐसी भावना करे कि मैं भिन्न, मेरेमें कुछ नहीं है, मैं तो भगवान जैसा हूँ। अन्दर ऐसी भावना, वैराग्य हो जाय। परन्तु उस जातका वेदन होकर उसे स्वानुभूति होनी चाहिये। और उसकी धारा अन्दरमें (चलनी चाहिये)। बाहरमें कुछ भी काम करे तो क्षण-क्षणमें (चलनी चाहिये)। फिर भूल जाय और याद करे, भूल जाय और याद करे ऐसे नहीं, परन्तु उसे अन्दर धारा ही चलनी चाहिये। धारा चले और स्वानुभूति बार-बार हो तो उसे विकल्प छूटकर आनन्द आये। विकल्प छूटे बिना आनन्द नहीं होता।

मुमुक्षु :- विकल्प छूटे नहीं तो ऐसा अपूर्व आनन्द प्रगट ही नहीं होता।

समाधान :- हाँ, तो अपूर्व आनन्द प्रगट ही नहीं हो।

मुमुक्षु :- मुझे तो ध्रुव जैसा निश्चय है। बस, ..

समाधान :- ध्रुव, अचल... ध्रुव भी सिर्फ ध्रुव नहीं है, परन्तु ज्ञायक ध्रुव है। ज्ञायकतासे भरा हुआ ध्रुव है। ऐसा ध्रुवका निश्चय बराबर, फिर पर्यायमें क्या है? वह स्वयं नक्की करना चाहिये।

मुमुक्षु :- मैं कहती हूँ, ऐसा ही निश्चय है कि आत्मा प्राप्त करके रहूँगी। पूर्ण वीतराग होना, उस प्रकारका .. कभी छूटे नहीं ऐसा।

समाधान :- वह तो अच्छी बात है। स्वयं ज्यादा आगे बढ़ना। ज्यादा आगे बढ़ना बाकी रहता है।

मुमुक्षु :- आगे जाना है, इसीलिये किस प्रकार...

मुमुक्षु :- वह कहती है, पूर्णपने प्रगट हो..

समाधान :- वह तो केवलज्ञान हुआ।

मुमुक्षु :- ऐसा है कि होना ही है।

समाधान :- होना है, वह पूर्ण केवलज्ञान है और अभी तो द्रव्यदृष्टि कर सकता है, ज्ञायककी धारा कर सकता है। उतना कर सकता है। और स्वानुभूति कर सकता है। ज्यादा तो अन्दर सहज दशा हो तो होता है।

मुमुक्षु :- आपको ख्याल नहीं आ सकता?

समाधान :- आपके परिचय-से (ऐसा लगता है कि) अभी आपको आगे बढ़नेकी जरूरत है।

मुमुक्षु :- हाँ, वह बराबर। परन्तु स्वानुभूति हुयी है या नहीं, ऐसा ख्यालमें आये कि नहीं?

समाधान :- आपका आप नक्की कर सकते हो। मैं कैसे कहूँ?

मुमुक्षु :- अपने-से ऊपर कोई हो और अपनेको कहे तो कितना फ़र्क़ पड़ता है।

समाधान :- आपका पहलेका जीवन, बादका जीवन मुझे कुछ मालूम नहीं है। मैं ऐसे कैसे कह सकूँ? ये ब्रह्मचारी बहने यहाँ हमेशा परिचयमें रहती है तो मैं जान सकती हूँ कि इसमें क्या फ़र्क है। आगे बढो, इतना कहूँ। आगे बढ़नेमें कोई दिक्कत नहीं है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- आगे बढ़नेमें तो कोई दिक्कत नहीं है। द्रव्य-पर्यायका मेल करना, उसमें कोई दिक्कत नहीं है। द्रव्यमें नहीं है, पर्यायमें है। पर्याय कैसे (प्रगट हो), उसमें स्वयं विशेष आगे बढ़े। उसका ... ज्ञायककी धारा कैसे चालू हो? बारंबार वह करते रहना। ज्ञायककी धारा चले। ... गई तो वापस कैसे आयी? आखिर तक पुरुषार्थ तो करना ही रहता है। पुरुषार्थ छूट जाय तो वही दशा होती है। पुरुषार्थ तो आखिर तक करना रहता है। इसलिये पुरुषार्थ करते रहना।

आपको लगे कि मुझे है। परन्तु मैं कैसे कह सकूँ? आपको पुरुषार्थ करते रहना। हो गया हो तो अच्छी बात है, नहीं हुआ हो तो पुरुषार्थ करना। ... मैं कैसे कह सकूँ?

मुमुक्षु :- मैं किसीको पूछती नहीं। आप पर मुझे श्रद्धा है।

समाधान :- मानो कि हो गया है, तो अच्छी बात है। नहीं हुआ हो तो पुरुषार्थ ज्यादा करना। भेदज्ञानकी धारा प्रगट करके स्वानुभूति (प्रगट करनी)। अब वह उपशम चला गया तो फिर-से प्रगट करना तो रहता ही है। अभी पूर्णतामें तो देर है। अभी तो सम्यग्दर्शनकी दशाको ही चालू रखनेकी जरूरत है। सम्यग्दर्शनकी दशा ही चालू रखनी

मुश्किल है। हो जाय फिर उसे चालू रखनी मुश्किल है।

... दिखता नहीं, पर्यायमें देखे तो दिखता है। उन दोनोंका मेल करके उस प्रकारका पुरुषार्थ करना। उस तरह पुरुषार्थकी धारा प्रगट करनी। मार्ग निकालना वह अपने हाथकी बात है। .. पुरुषार्थ-से होता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- परिपूर्ण हूँ। परन्तु विभाव अनादिका है, उसका बराबर ज्ञान करके आगे जाय तो कहीं भूल नहीं पड़ती। उसका यथार्थ ज्ञान करना है। स्वयं जानता है कि ये विभाव है। विभावका ज्ञान रहना चाहिये कि ये एक विकल्पकी धारा भले ही मुझमें नहीं है, परन्तु ये सब विकल्प खड़े हैं। घरका, बाहरका, सब विकल्प खड़े हैं। विकल्प है, .. उसमें-से विकल्प उत्पन्न होते हैं। इसलिये विकल्प तो है, विभाव तो खड़ा है। इसलिये उसका उसे ज्ञान वर्तता है। ... इसलिये ज्ञायककी उग्रता हो तो वह छूटे।

पहले तो श्रद्धा और प्रतीतमें आये। स्वानुभूति तो हो, परन्तु उसके बाद तो कितनी उग्रता हो तब मूलमेंसे छूटता है। केवलज्ञान, मुनिदशा वह तो अंतर्मुहूर्तका उपयोग कि जो एक समयका उपयोग हो तो एकदम हो। अभी तो वह स्वानुभूति तक पहुँचता है। भेदज्ञानकी धारा प्रगट करनी है।

मुमुक्षु :- मेरेमें रागका उदय ही नहीं होता है, ज्ञानका उदय होता है।

समाधान :- ज्ञानका उदय होता है, बराबर है। रागका उदय है ही नहीं वह द्रव्यदृष्टि-से बराबर है। पर्यायमें है उसका ज्ञान करना। उसकी महिमा आये वह बराबर है कि रागका उदय नहीं है, ज्ञानका उदय हो रहा है। उसकी महिमा आये, उस जातकी भावना आये, उस जातका वैराग्य हो, परन्तु उसका ज्ञान तो होना चाहिये। तो पुरुषार्थ आगे बढे। नहीं तो पुरुषार्थ आगे नहीं बढ़े। मुझमें कुछ है ही नहीं, ऐसी महिमा करता रहे, पुरुषार्थ आगे नहीं बढ़ता। ऐसा ज्ञान करे तो पुरुषार्थ आगे नहीं बढ़ता। अभी इतना बाकी है, उसे ज्ञानमें न रखे तो पुरुषार्थ आगे नहीं बढ सकता। ... मेरेमें कुछ नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ। कुछ है ही नहीं तो पुरुषार्थ कैसे आगे बढे?

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८६

समाधान :- .. वह ग्रहण करके तैयारी करे। गुरुदेव जो कहे वह बराबर है। ऐसा अर्पणताका भाव अन्दर आये और स्वयं विचारूपर्वक नक्की करे, वही मार्ग ग्रहण करने जैसा है। स्वयं अपनेआप मार्ग नहीं जान सकता है। गुरुदेवने बताया तो विचार करके नक्की करे और वह स्वयं नक्की कर सकता है। आत्मा स्वयं अनन्त शक्तिवान है। स्वयं नक्की करे इस मार्ग पर जा सकता है।

मुमुक्षु :- तो फिर उसे शंका ही न हो।

समाधान :- ... आगे नहीं जा सकता, मुख्य तो प्रतीत है।

मुमुक्षु :- यह ऐसा ही है, ऐसा नक्की तो हो गया, परन्तु अनुभवमें नहीं आता।

समाधान :- यह ऐसा ही है, वह भी अभी अन्दर-से स्वभाव-से नक्की हो कि यह ज्ञानस्वभाव ही है, ऐसी अंतरमें-से प्रतीति जब आवे तब अंतरकी परिणति प्रगट हो। अन्दर गहराई-से स्वभाव ग्रहण करके प्रतीत करे। विश्वास किया, गुरुदेवने कहा उस पर विश्वास किया, विचार किया, विचार-से नक्की किया। नक्की किया लेकिन अंतरमें जो स्वभाव ग्रहण करके नक्की करना चाहिये के यह आत्मा और यह विभाव, ऐसे नक्की करे, उस जातकी प्रतीति करे तो आगे बढ़ा जाता है। अभी अन्दर गहराईमें नक्की करना बाकी रह जाता है। अन्दर गहराईमें सूक्ष्म उपयोग धीरा होकर नक्की करे। अंतरमें-से भेदज्ञान करना चाहिये वह बाकी रह जाता है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञानकी कोई रीत है?

समाधान :- अंतर भेदज्ञानकी रीत, भेदज्ञान यानी भेदज्ञान स्वयं भिन्न पड़ता है। जो क्षण-क्षण एकत्वबुद्धि चल रही है, शरीरादि, विभावके साथ, सबके साथ एकत्वबुद्धि हो रही है, वह एकत्वबुद्धि अंतरमें ऊतरकर तोड़े, ज्ञानस्वभावको ग्रहण करे तो एकत्वबुद्धि टूटे, तो भेदज्ञान हो। सबका एक ही उपाय है कि ज्ञायकको ग्रहण करे तो भेदज्ञान हो। ज्ञायकको ग्रहण करने-से सच्ची प्रतीत, ज्ञान सब ज्ञायकको ग्रहण करने-से हो। सबका एक ही उपाय है। चारों और अनेक मार्ग नहीं होते, मार्ग एक ही है। ज्ञायकको ग्रहण करना। फिर किसी भी प्रकार-से ज्ञायकको ग्रहण करना। विचार करके नक्की करे, शास्त्र-से, गुरुदेवके आशय-से सर्व प्रकार-से एक ज्ञायकको ग्रहण करना, एक ही मार्ग

है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। ज्ञायकको ग्रहण करके अन्दर लीनता करे तो प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकको ग्रहण करना, एक ही उपाय।

समाधान :- एक ही उपाय है। ज्ञायकको स्वभावमें-से ग्रहण करे तो भेदज्ञान हो। मूल वस्तुको ग्रहण करनी।

मुमुक्षु :- इसमें याद रखने जितना कितना? याह रहता नहीं है..

समाधान :- ज्ञायकको याद रखना। ज्ञायक वस्तु... फिर विचार करनेके सब पहलू आये। अनन्त गुण है, अनन्त पर्याय है, द्रव्य-गुण-पर्याय सब विचार करनेके लिये सब सब पहलू है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव, द्रव्य-गुण-पर्याय, साधक, साध्य ज्ञाता, ज्ञेय विचार करनेके लिये सब है। याद रखना एक ज्ञायक।

मुमुक्षु :- ध्येय।

समाधान :- ध्येय एक ज्ञायकका। विचार करनेके लिय सब पहलू। सब विचार करके नक्की करे। शास्त्रों-से, गुरुदेवके आश्रय-से विचार करके नक्की करनेके बहुत पहलू हैं। मूल तत्त्वका विचार करना। याद एक ज्ञायकको रखना।

मुमुक्षु :- मेरु पर्वतमें भी रत्नके हैं?

समाधान :- अंजनगिरी, दधिगिरी सब रत्के पहाड़ और रत्नकी प्रतिमाएँ हैं।

मुमुक्षु :- अंजनगिरी भी पूरा रत्नका पहाड़?

समाधान :- हाँ, रत्नका। वह सब रत्नके पहाड़ हैं।

मुमुक्षु :- आप देवस्वरूपमें जाकर आये? या सम्यग्दृष्टि ही जा सकते हैं? कोई भी जा सकता है?

समाधान :- सब देव जा सकते हैं। देवलोकमें जाय, वहाँ-से नंदीश्वरमें सब देव (जा सकते हैं), इन्द्र तो जाते हैं, परन्तु इन्द्र सबको साथ लेकर जाता है। जाय, परन्तु सब बार भाव-से नहीं गया हो। अनन्त बार देवलोकमें गया है। ऋद्धि थी तो जाकर आ गया कि हम देवोंका जानेका नियम है इसलिये जाते हैं। उस प्रकार जाकर आया। भाव-से जाये उसकी बात अलग होती है। इन्द्र हमें आज्ञा करते हैं इसलिये हमें जाना पड़े, ऐसा करके जाय। उत्सव करनेके लिये इन्द्र लेकर जाय तो इन्द्रोंके साथ जाय कि हमें आज्ञा है तो हम जाते हैं। भावना-से जाय उसकी बात अलग है। कोई देव भाव-से भी जाते हैं।

मनुष्य जा नहीं सकते। .. हम नहीं जा सकते, देव ही जा सकते हैं। पाँचसौ-पाँचसौ धनुषके भगवान जैसे समवसरणमें विराजते हों, ऐसे भगवान (होते हैं)। अंजनगिरी श्याम कलरके रत्नके पहाड़े हैं। दधिगिरी सफेद है और रतिकर लाल है, ऐसा आता है। ऐसे रत्नके पहाड़ हैं।

मुमुक्षु :- रतिकर, दधिगिरी, अंजगिरी सबमें पाँचसौ धनुषके होते हैं?

समाधान :- पहाड़ नहीं, प्रतिमाजी पाँचसौ धनुषके।

मुमुक्षु :- तीन पर्वतोंमें दधिगिरी, रतिकर और अंजनगिरी तीनोंमें पाँचसौ धनुषके?

समाधान :- ऐसा आता है। उसके माप अलग-अलग आते हैं। कोई जगह मध्यम है, कोई जगह .. है, कोई जगह पाँचसौ धनुषके हैं।

मुमुक्षु :- पाँच मेरुमें तो अस्सी प्रतिमाएँ है, ऐसा पहले सामान्यतया ख्यालमें था। फिर पूजा जब होने लगी तो तब ऐसा लगा कि एक-एक मेरुमें तो कितनी प्रतिमाएँ हैं! सब मिलाकर ३९२ होती है न?

समाधान :- मूल मेर पर्वतमें तो ऐसे है। एक मेरुमें चार-चार जिनालय हैं। ऐसा है। उसके बगलमें शाल्मलि वृक्ष और जम्बू वृक्ष है। उसके अगलबगलके जो पहाड़ और वृक्ष हैं, उसकी प्रतिमाएँ हैं वह सब। उसकी .. पर्वतोंकी निकली है। उसके पर मन्दिर हैं। उसके ऊपर तो एक-एकमें सोलह जिनालय है। मेरु पर्वतमें। फिर उसके बगलमें वृक्ष हैं। उसमें है। ऐसा तो आता है न? अगलबगलमें विजयार्ध और वैताल आदि सब अगलबगलमें हैं, उसके ऊपर मन्दिर है। उसका पूरा परिवार बगलके पहाड़का है। मूल मेरुमें तो सोलह जिनालय है।

उसमें-से उसका कुछ भाग निकला है उसमें है। देव जा सकते हैं। मन्दिर पर और सब पर बहुत भाव था। पाँचसौ धनुषकी (प्रतिमा) है इसलिये पहाड तो उससे भी बडे होते हैं। ज्यादा ऊँचे होते हैं।

... शास्त्रमें आता है। वह सुवर्ण रत्नमिश्रित है। अमुक भाग रत्नका और अमुका सुवर्णका है। मेरु पर्वत पूरा वैसे है। सुवर्णका भाग और रत्नका भाग। मेरु पर्वत तो कितना ऊँचा है। यहाँ-से सुधर्म देवलोककी जो धजा है, पाण्डुक वनके मन्दिरकी, उसमें बालाग्र जितना ही अंतर है। बस, उतना ही अंतर है। पहला सुधर्म देवलोक है, वहाँ तक ऊँचा है। बीचमें एक बालाग्र जितना अंतर है। पाण्डुक वनमें आकर भगवानका जन्माभिषेक करते हैं। सुधर्म इन्द्र, शक्रेन्द्र, सब देव वहाँ आते हैं।

समाधान :- ... जितना ज्ञान है वही मैं हूँ। ज्ञान यानी उसमें पूरा ज्ञायक आ जाता है। जितना ज्ञान है, उतना ही मैं हूँ। ज्ञायकको ग्रहण करे और विकल्प-से भिन्न पड़े, उसका भेदज्ञान करे, वह एक ही मार्ग है।

मैं शाश्वत द्रव्य हूँ, उस द्रव्य पर दृष्टि करे और विकल्प-से भिन्न पड़े, वह एक ही मार्ग है। परन्तु उसके लिये उसे उतनी गहरी लगनी नहीं है, इसलिये वह ग्रहण नहीं करता है। मार्ग तो एक ही है और गुरुदेव वह बताते थे। मार्ग तो एक ही है कि आत्माको ज्ञानलक्षण-से पहिचानकर द्रव्यको ग्रहण करे कि यह द्रव्य है सो

मैं हूँ और यह विभाव है वह मैं नहीं हूँ। उसके बाद पुरुषार्थकी गति-से भेदज्ञानकी धारा प्रगट करे तो वह भेदज्ञानकी धारा सहज होते-होते उसे विकल्प छूटे बिना नहीं रहता। परन्तु उतनी स्वयंको अन्दरसे अपनी परिणति जागे तो होता है। भावना हो, परन्तु उस जातकी पुरुषार्थकी गति स्वयं प्रगट करे तो होता है।

मुमुक्षु :- .. तो ही विकल्प टूटे या इन्द्रिय ज्ञान-से विकल्प टूटता है?

समाधान :- अतीन्द्रिय ज्ञान अर्थात् मैं ज्ञायक हूँ। ज्ञायक ही स्वयं अतीन्द्रिय ज्ञान है। ज्ञायकको ग्रहण करे। बाहर-से इससे जाना, यह जाना, वह जाना, जाना वह ज्ञान ऐसे नहीं। परन्तु मैं ज्ञायक स्वभाव हूँ, ज्ञायकरूप परिणमित ज्ञायक, परिणमित अर्थात् प्रगट परिणमित नहीं हुआ है, ज्ञानस्वभावी है, उस स्वभावको ग्रहण करे तो प्रगट हो। यह ज्ञान, यह ज्ञान ऐसे भेद नहीं, परन्तु ज्ञानस्वभाव ही जो वस्तुका है, उसे ग्रहण करे तो होता है।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें ज्ञायक-ज्ञायक शब्द जगह-जगह आता है। तो ज्ञायकके आश्रय-से ही सब प्राप्त हो जानेवाला है या दूसरा कुछ करनेका है?

समाधान :- ज्ञायकके आश्रय-से ही सब प्रगट होनेवाला है। परन्तु ज्ञायकका आश्रय लेनेके लिये उसकी पहिचान करनी पड़े। ज्ञायक कौन है? ज्ञायकका स्वभाव क्या है? ये विभाव कौन? उसका लक्षण पहिचानना पड़े। और ज्ञायकको ग्रहण करनेके लिये गुरुदेव क्या कहते हैं? गुरुदेवने क्या मार्ग बताया है? वह प्रगट न हो तबतक, देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आये, गुरुदेवने क्या कहा है उस तत्त्वका विचार करे, वह सब आये, परन्तु ग्रहण एक ज्ञायकको करना है।

ज्ञायकको ग्रहण करने-से सब ग्रहण होता है। ज्ञायक अर्थात् स्वयं। स्वयंका अस्तित्व ज्ञायक ग्रहण किया तो विभाव-से भिन्न पड़ता है और भेदज्ञान होता है। और उस भेदज्ञानकी उग्रता, ज्ञायककी उग्रता होते-होते उसीमें लीनता बढ़ाता हुआ, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें लीनता, वह करते-करते उसीमें आगे जाता है। ज्ञायक ग्रहण करनेका एक ही मार्ग है। उसके लिये तत्त्व विचार, उतनी गहरी रुचि, गुरुदेव क्या कहते हैं उसका आशय ग्रहण करना, वह सब रहता है। ध्येय एक ज्ञायकको ग्रहण करनेका होना चाहिये।

मुमुक्षु :- आपको जब अनुभूति हुयी तब आप पण्डितजीको बारंबार लिखते थे कि अब इतना बाकी है, इतना बाकी है, इतना बाकी है, किसके आधार-से? ज्ञायकके आधार-से आप कहते थे?

समाधान :- अन्दर-से मुझे ऐसा लगता था। अन्दर ऐसा लगता था। यह ज्ञान कोई अलग है, अन्दर कोई अलग आत्मा है। आत्मा भिन्न है, ऐसा हुआ करता

था। आत्मा भिन्न है, भिन्न है, ऐसा ज्यादा-ज्याता भिन्न लगता जाय, इसलिये इतना-इतना ऐसा कहती थी। आत्मा भिन्न है, यह सब भिन्न है, आत्मा भिन्न है। ज्यादा-ज्यादा भिन्नता लगने लगती थी इसलिये इतना है, इतना है, ऐसा कहती थी। ऐसा कुछ मालूम नहीं पड़ता है कि इतने समयमें हो जायगा। उतना बल अन्दर-से आता था। ये भिन्न है तो भिन्न ही पड़ जायगा, ऐसा होता था।

मुमुक्षु :- माताजी! निश्चय-व्यवहारकी सन्धि आयी न? आपने कहा, ज्ञायकका रटन करना, देव-गुरु-शास्त्रमें यथार्थ श्रद्धा रखना। वह तो व्यवहार आया। तो निश्चय-व्यवहार दोनोंकी सन्धि साथमें ही है?

समाधान :- दोनों साथमें है। दोनों साथमें है। निमित्त और उपादान। पुरुषार्थ करनेका उपादान अपना और उसमें निमित्त देव-गुरु-शास्त्र होते हैं। वह शुभभाव-से भिन्न होने पर भी निमित्त-उपादानकी सन्धि होती ही है। अनन्त काल-से जो सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है, प्रथम बार हो तो उसमें देशनालब्धि होती है। कोई साक्षात् गुरु या साक्षात् देव हो तभी उसे देशनालब्धि होती है, ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। ज्ञायकको ग्रहण करनेका है, तो भी उसमें निमित्त देव-गुरुका होता है। प्रत्यक्ष देव-गुरु हो तो अन्दर-से प्रगट होता है। ऐसा निमित्त-उपादानका सम्बन्ध है। ऐसी निश्चय-व्यवहारकी सन्धि है।

मुमुक्षु :- ज्ञानी धर्मात्मा बाहरमें भक्ति आदि कार्योंमें जुड़ते हों ऐसा दिखता है, .. ऐसा लगता है। आप कहते हो कि वह बाह्य कार्यों-से अलिप्त है। ज्ञानीकी अन्दरमें जो परिणति चलती है उसे तू देख, परन्तु अन्दरमें देखनेकी दृष्टि तो हमें मिली नहीं है, तो हमें उस दृष्टिको प्राप्त करनेके लिये क्या करना, यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :- ज्ञानी कुछ भी करते हो, उसकी भक्ति हो तो भी उसकी भेदज्ञानकी धारामें ज्ञायक भिन्न ही परिणमता है। परन्तु उसे देखनेकी दृष्टि तो स्वयंको प्रगट करनी पड़ती है। सच्चा मुमुक्षु हो, जिसे सत्को ग्रहण करनेका नेत्र खुल गया हो, वह उसके वर्तन पर-से, अमुक (वाणी) पर-से समझ सके। उसे अमुक प्रकार-से समझ सके। बाकी तो अमुक प्रतीत रखे, बाकी उसकी सत् ग्रहण करनेकी शक्ति जो सच्चा जिज्ञासु हो उसे प्रगट होती है। ये सब करते हुए भी न्यारे दिखते हैं, ऐसा किसीको ग्रहण हो भी जाता है।

मुमुक्षु :- अर्पणता करनी, ज्ञानी धर्मात्माको पहिचानकर।

समाधान :- पहले अमुक परीक्षा-से नक्की करे। अमुक नक्की करे, फिर सब नक्की करनेकी उसकी शक्ति न हो तो वह अर्पणता करे। अमुक जितनी उसकी शक्ति हो उसे ग्रहण करे। उतना अमुक तो नक्की करे, फिर तो गुरुदेव दृष्टान्त देते थे कि तुझे

किसीकी दुकान पर माल रखना हो तो वह दुकान कैसी है, ऐसा पहले तू नक्की कर। फिर तू पूरी दुकानकी खातावही देखने जा तो ऐसे कोई दिखाता नहीं। वह ऐसा कहता है कि तू अमुक लक्षणों-से नक्की कर। गुरुदेव कहते थे कि यह यथार्थ है। ऐसे गुरुदेव एक सत्पुरुष है, ऐसा नक्की करनेके लिये उनकी वाणी, उनकी मुद्रा अमुक प्रकार-से नक्की कर। फिर उनकी दशा क्या है, वह ग्रहण करनेकी तेरी पूरी शक्ति न हो तो अर्पणता करना।

मुमुक्षु :- अंतिम प्रश्न है। सामान्य पर दृष्टि और भेदज्ञानमें क्या अंतर है, यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :- जिसकी सामान्य पर दृष्टि गयी कि मैं सामान्य एक वस्तु हूँ। उसमें भेद पर दृष्टि नहीं है। दृष्टि तो अखण्ड एक द्रव्य पर है। अपना अस्तित्व ज्ञायक पर दृष्टि है, परन्तु दृष्टिके साथ भेदज्ञान दोनों साथमें रहते हैं। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथ होते हैं।

एक सामान्य पर दृष्टि और विभाव-से भिन्न पड़े। अपने पर जहाँ दृष्टि गयी तो विभाव-से भिन्न पड़ता है। दोनों साथ ही रहते हैं। स्वयं सामान्यको ग्रहण करे, अस्तित्वको ग्रहण करे उसमें अन्य-से नास्ति उसमें साथ आ जाती है। स्वयंको ग्रहण किया इसलिये मैं विभाव-से भिन्न हूँ, ऐसा साथमें आ जाता है। दृष्टि कहीं भेद नहीं करती, परन्तु ज्ञान सब जानता है। ज्ञानमें सब आ जाता है कि मैं ये विभाव-से भिन्न और ये मेरा चैतन्यका अस्तित्व भिन्न है। ऐसे दृष्टि और ज्ञान साथमें ही रहते हैं। दृष्टि एक सामान्यको ग्रहण करती है, ज्ञान दोनोंको ग्रहण कर लेता है। दोनों साथ-साथ ही होते हैं। जिसकी दृष्टि सम्यक् हो, उसका ज्ञान सम्यक् होता है। दोनों साथ रहते हैं।

मुमुक्षु :- पहले दृष्टि सम्यक् हो, बादमें ज्ञान?

समाधान :- दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें ही सम्यक् होते हैं। उसमें क्रम नहीं पड़ता। परन्तु दृष्टि मुख्य है इसलिये दृष्टिको मुख्य कहनेमें आता है। बाकी दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें होते हैं। उसमें क्रम नहीं होता, दोनों साथमें होते हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८७

मुमुक्षु :- द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म, तीनों-से एकसाथ भिन्न पड़ना। तो उन दोनोंमें क्या अंतर है?

समाधान :- अंतरमें जहाँ एकत्वबुद्धि रहे, विभावके साथ एकत्वबुद्धि है वहाँ सब परपदार्थके साथ एकत्वबुद्धि है। स्थूलरूप-से एकत्व नहीं मानता है, परन्तु उसमें एकत्वबुद्धि (है)। एक भी परपदार्थके (साथ एकत्वबुद्ध है), तबतक सर्वके साथ एकत्वबुद्धि है। वह भिन्न नहीं पड़ा। क्योंकि राग है वह अपना स्वभाव नहीं है। द्रव्यकर्मके निमित्त-से भावकर्मरूप वह स्वयं परिणमता है, परन्तु वह अपना स्वभाव नहीं है।

द्रव्यदृष्टि-से देखो तो वह विभाव भी अपने-से भिन्न है। इसलिये उसके साथ जहाँ एकत्वबुद्धि है, एक तरफ जहाँ खड़ा है, पर तरफ दृष्टि करके, उसे ऐसा लगे कि मैं सबसे भिन्न पड़ गया और विभावके साथ एकत्वबुद्धि है, उतना ही बाकी है। परन्तु उसका उपयोग जहाँ एक जगह एकत्वबुद्धि कर रहा है, तो हर जगह वह एकत्वबुद्धि खड़ी ही है, ऐसा आ जाता है। और जब छूटा तब सब-से छूटा ही है। विभाव-से छूटे इसलिये सबसे छूट जाता है।

परन्तु स्थूलरूप-से शरीरादि-से, बाह्य परद्रव्यों-से उसे भिन्न पड़ा है ऐसा लगता है, परन्तु वह वास्तविकरूप-से भिन्न नहीं पडा है। क्योंकि दृष्टि जहाँ पर तरफ है, एक भी परपदार्थके साथ जहाँ एकत्वबुद्धि है, वहाँ सर्व पर उसमें आ ही जाते हैं।

मुमुक्षु :- आपका कहना ऐसा है कि विभावमें जहाँ दृष्टि है, वहाँ सब परमें दृष्टि है ही।

समाधान :- पर तरफ दृष्टि है ही। उसकी दृष्टिकी दिशा ही पर तरफ है। दृष्टिकी दिशा स्व तरफ नहीं आयी है, स्वको ग्रहण नहीं किया है, उसकी दृष्टिकी दिशा बदली नहीं है और यदि दृष्टिकी दिशा पर तरफ है तो उसमें सर्व पर आ ही जाते हैं।

मुमुक्षु :- ऐसा लगता है कि पर-से भेदज्ञान वर्तता है,...

समाधान :- वास्तवमें नहीं है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान होनेपर अन्दर विभाव-से भी भेदज्ञान हो जाता है।

समाधान :- अन्दर भेदज्ञान हुआ उसे सबसे (एकत्व) छूट जाता है। दृष्टिने जहाँ

दिशा बदली, अपना स्वपदार्थका आश्रय ग्रहण किया, वहाँ दिशा बदल गयी तो उसे सबसे दिशा बदल जाती है। एक तरफ-पर तरफ उसकी दिशा खड़ी है तो उसमें सब पर आ जाते हैं।

मुमुक्षु :- विभाव पर जबतक दृष्टि है, तबतक पर ऊपर उसे दृष्टि है।

समाधान :- हाँ, पर ऊपर दृष्टि है।

मुमुक्षु :- वह ज्ञान स्थूल है, इसलिये उसे ख्यालमें नहीं आता है।

समाधान :- ख्याल नहीं आता है। वैराग्य करे कि परपदार्थ मेरे नहीं है। ये सब घर, मकान, कुटुम्ब आदि मेरा नहीं है। ऐसा वैराग्य तो जीव अनेक बार करता है। ये शरीरादि परपदार्थ शरीर भी मेरा नहीं है। वह भी पर है। ऐसा विचार करे, विचार-से भिन्न पड़े, परन्तु उसकी परिणति है वह एकत्व कर रही है। तबतक एकत्व है ही। विभाव-विकल्पके साथ एकत्वबुद्धि है तो सबके साथ है ही।

उसे शरीरमें कुछ हो तो उसे एकत्वबुद्धि विकल्पके साथ है। विचार करे कि मैं शरीर-से भिन्न हूँ, परन्तु जो सहज भेदज्ञान रहना चाहिये वह उसे नहीं रहता है। इसलिये वह विचार-से भिन्न पड़ता है, इसलिये सहज परिणति नहीं है। इसलिये उसे वास्तविक भेदज्ञानकी परिणति नहीं है।

मुमुक्षु :- दूसरी तरह-से कहें तो ठगाता है।

समाधान :- दूसरी भाषामें कहें तो। परन्तु भावनामें वह नहीं कर सकता है इसलिये स्थूलरूप-से मैं शरीर-से भिन्न हूँ, ऐसे उसकी भावना करता रहे। विकल्प-से भिन्न हूँ, ऐसी भावना करता है। परन्तु परिणति भिन्न नहीं हुयी है।

मुमुक्षु :- इस ओर-से विचार करे तो बार-बार सुनते हैं कि अनन्त शक्तिका पिण्ड है। और एक गुण भी जिसे कहे कि एक ज्ञानगुण है, तो ज्ञानत्व क्या है, वह भी ख्यालमें नहीं आता है। तो ऐसी परिस्थितिमें उसे काम कैसे करना?

समाधान :- ज्ञानगुण लक्ष्यमें नहीं आता है। वह उसे यथार्थरूप-से देखता नहीं है, इसलिये नहीं आता है। उसकी शक्ति अनन्त है। अपनेको ग्रहण कर सके ऐसा है। परन्तु उसे नहीं ग्रहण करनेका कारण, उसकी दृष्टि और उपयोग पर तरफ है। इसलिये वह ग्रहण नहीं कर पाता है। नहीं तो ग्रहण करनेकी अनन्त शक्ति उसमें है। स्वयं अपनेको ग्रहण करे और स्वयं अपनेमें परिणमे तो वह अपने रूप हो जाय, ऐसी उसमें अनन्त शक्ति है।

पहले आंशिक रूपसे होता है, फिर पूर्ण होता है। ऐसी शक्ति, उतना बल उसमें है। स्वयं अपनी तरफ पलट सके ऐसा है। अनन्त बल, अनन्त शक्ति आत्मामें है, आत्मामें अनन्त गुण है। एक चैतन्यको ग्रहण किया उसमें उसे स्वभावरूप-से सब परिणमन

होने लगता है। सभी गुण अपनी ओर परिणमते हैं।

मुमुक्षु :- वचनामृतमें एक वचन आता है कि परपदार्थको जानते हुए मानों उसको जानता हूँ, ऐसा वेदन कर लेता है। अब, यहाँ विचार ऐसा है कि ज्ञान मेरेमें-से होता है, वह बात उसे उत्पन्न करनी है, अपने वेदनेमें उस बातको आगे लानी है। तो उसे कैसा प्रयत्न वहाँ करना चाहिये?

समाधान :- परपदार्थको जाने, परन्तु वह जाननेवाला है कौन? पदार्थको जाना वह जाननेवाला कौन है? उसका मूल कहाँ है? उस मूलको ग्रहण करने तरफ उसकी शक्ति ग्रहण करने तरफ, उसकी खोज (चले कि) उसका मूल कहाँ है? परपदार्थको जाना वह तो ज्ञेय है। तो उस ज्ञेयको जाननेवाला कौन है? आता है न? जो प्रकाश है, प्रकाशके किरण। परन्तु वह किरण किसके है? कहाँ-से आये हैं?

जो ज्ञान है वह जानता है। सब ज्ञात होता है वह खण्ड-खण्ड जानता है। परन्तु वह जाननेवाला कौन है? उसका मूल कहाँ है? मूल तरफ दृष्टि उसकी दृष्टि जानी चाहिये। उसका मूल कहाँ है? उसका तल कहाँ है कि जिसमें-से ये ज्ञानकी पर्याय परिणमती है? उसके मूल तरफ उसकी दृष्टि जानी चाहिये। ज्ञानको मैंने जाना, ऐसे जान लिया परन्तु जाननेवाला है कौन? ये ज्ञान आता है कहाँ-से? ज्ञेय ऐसा नहीं कहता है कि तू मुझे जान, ऐसा वह नहीं कहता है। स्वयं जानता है। तो वह जाननेवाला है कौन? उसका मूल कहाँ है?

मुमुक्षु :- तर्क-से तो ख्यालमें आता है कि पर पदार्थ है वह बाहर है, वेदन है वह यहाँ हो रहा है, जानना यहाँ हो रहा है। ऐसा तो ख्यालमें आता है। वह जो जानना यहाँ हो रहा है, तो यहाँ हो रहा है वह मुझे मेरा जानना हो रहा है, परपदार्थ द्वारा नहीं होता है, अपितु मेरे द्वारा वह जानना होता है, ऐसा उसके भावमें पकड़ाना चाहिये, उसके लिये उसका कैसा प्रयत्न होना चाहिये?

समाधान :- बारंबार गहराईमें ऊतरकर अपने स्वभावको ग्रहण करना चाहिये कि ये स्वभाव मेरा है और ये स्वभाव मेरा नहीं है। इस तरह गहराईमें ऊतरकर बारंबार क्षण-क्षणमें उसकी लगनी एवं महिमा लगाकर बारंबार उसको ग्रहण करना चाहिये। सब सर्वस्व मेरेमें ही है, बाहर कहीं नहीं है। उतनी अन्दर प्रतीति लाकर, उतनी महिमा लाकर उसकी जरूरत लगे तो वह अन्दर गहराईमें जाय। जरूरत इसीकी है, बाकी कुछ जरूरत नहीं है। इसलिये मैं मेरा स्वभाव है उसीको ग्रहण करुँ। उतना गहराईमें जाकर स्वभाव कहाँ है और किसके आश्रय-से रहा है, उसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करे।

मुमुक्षु :- उसकी सच्ची जरूरत लगे।

समाधान :- जरूरत अन्दर-से लगनी चाहिये। जरूरत इसीकी है, दूसरी कुछ जरूरत नहीं है। ये सब बाहरकी जरूरत वह वास्तविक जरूरत नहीं है। वह सब साररूप नहीं है। जरूरत स्वरूप वस्तु जो आदरने योग्य है और जो ग्रहण करने योग्य है, वह यही है। जो कल्याणस्वरूप और आत्माको आनन्दस्वरूप एवं सुखस्वरूप है वह यही है। उसे ज्ञानमें ज्ञायकमें सब भरा है, उतना विश्वास और उतनी महिमा आनी चाहिये। दिखता है ज्ञान, वह ज्ञान रुखा नहीं है, ज्ञान पूरा भरचक भरा हुआ, महिमा-से भरपूर है। उतनी उसे अन्दर-से महिमा आनी चाहिये।

मुमुक्षु :- अपनी जरूरत लगे और परकी भी जरूरत लगे तो वह वास्तवमें जरूरत नहीं लगी है।

समाधान :- अपनी जरूरत लगनी चाहिये। मुझे इसीकी जरूरत है। मेरे आत्म स्वभावकी ही जरूरत है।

मुमुक्षु :- पहले-से चली आ रही अन्य पदार्थकी जरूरत भासी है, उसके सामने अपना जो ज्ञानतत्त्व है, उसकी एकमात्र जरूरत उसे है और दूसरी कोई जरूरत नहीं है, ऐसा तुलनात्मकबुद्धिमें उसे..

समाधान :- ऐसा निर्णय होना चाहिये। कोई जरूरत नहीं है। ये सब बाहरके ज्ञेय पदार्थ हैं, वह कोई महिमारूप नहीं है, वह जरूरतवाले नहीं है। जरूरत एक आत्माकी, आत्म स्वभावकी ही है। और वह स्वभाव महिमावंत है। उतना उसे अंतरमें लगना चाहिये। उतनी उसे अनुपमता लगनी चाहिये। ये सब ज्ञेयोंका ठाठ दिखे, वह ज्ञेय उसे महिमारूप नहीं लगते। उसे महिमा एक आत्माकी ही लगती है। एक आत्मामें ही सब सर्वस्व है, कहीं ओर सर्वस्व नहीं है।

मुमुक्षु :- ऐसा विश्वास भी आता है कि मेरी वस्तुके आधार-से मुझे संतोष, शान्ति, विश्राम वेदनमें आयेगा वह मुझे नित्य अनुभवमें आयेगा। और वहाँ-से मुझे कभी वापस नहीं मुड़ना पडेगा। ऐसी उसे..

समाधान :- प्रतीत होनी चाहिये। वही सत्यार्थ कल्याणरूहप है, वही अनुभव करने योग्य है, वही तृप्ति, उसीमें उसे तृप्ति होगी, उसीमें उसे आनन्द होगा। उसमें प्रीतिवंत बन, उसमें संतुष्ट हो, उसमें तृप्त हो।

इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे ही बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे।।२०६।।

उसमें तुझे तृप्ति होगी, उसमें-से तुझे बाहर जानेका मन नहीं होगा। ऐसा तृप्तस्वरूप, संतोषस्वरूप आत्मा है, उसे ग्रहण कर।

मुमुक्षु :- अन्दर सब भरा है और खोजता है बाहर।

समाधान :- बाहर खोजता है, सब बाहर खोजता है। तुझे कहीं बाहर आनन्दका या ज्ञानका व्यर्थ प्रयत्न नहीं करना पडेगा, तुझे अन्दरमें-से ही सब प्रगट होगा। तुझे आनन्द और ज्ञान अपनेआप परिणमने लगेंगे। जिसमें थकान नहीं है या जिसमें कोई कष्ट नहीं है, ऐसा जो आत्मा सहज परिणामी है, वह सहज प्रगटपने परिणमेगा। परन्तु उस शुरूआतकी भूमिकामें पलटना कठिन लगता है। अपनी भावना है...

मुमुक्षु :- वचनामृतमें एक जगह आता है कि परसन्मुख जाने-से ज्ञान दब जाता है और अंतर्मुख होने-से ज्ञान खील उठता है, वहाँ क्या कहना है?

समाधान :- ज्ञान परसन्मुख जाता है तो एक ज्ञेयमें अटक जाता है। एक ज्ञेयकी उतनी मर्यादा आ जाती है। जो उपयोग जहाँ अटका, उतना ही उसे ज्ञात होता है। और अपने सन्मुख, स्वसन्मुख होता है, वहाँ ज्ञानकी निर्मलता विशेष होती है। वह एक जगह अटकता नहीं। ज्ञान सहज परिणमता है। वह ज्ञान खीलता है। अंतरमें जाता है वहाँ स्वभावरूप परिणमता है। जैसे-जैसे वीतराग दशा बढ़ती जाय, वैसे ज्ञान निर्मल होता जाता है। ज्ञानका विकास होता है। वह एक जगह अटक जाता है। ज्ञानकी अनन्त शक्ति है वह एक ज्ञेयमें अटक जाती है।

मुमुक्षु :- अटक जाता है कहो कि बँध जाती है ऐसा कहो। उसमें मुक्त हो जाता है।

समाधान :- ज्ञेय-से भिन्न पड़ता है, वहाँ स्वयं परिणमता है। ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। ज्ञान स्वयंको जाननेकी क्रियारूप परिणमता है। जैसा है वैसा परिणमता है। गुरुदेवने पूरा मुक्तिका मार्ग, स्वानुभूतिका मार्ग एकदम स्पष्ट किया है। करनेका स्वयंको बाकी रहता है। अन्दर-से जिसे लगी हो, तो पुरुषार्थकी दिशा बदलती है। गुरुदेवने तो एकदम स्पष्ट कर दिया है।

जहाँ अपनी तरफ गया तो उसकी निर्मलता स्वयं परिणमती है। इसमें ज्ञेयमें अटक जाता है। ज्ञानकी महिमा आयी। ज्ञान अपने क्षेत्रमें रहकर, उस क्षेत्रमें जाता भी नहीं, पर तरफ उपयोग रखने नहीं जाता है। स्वयं अपने क्षेत्रमें रहकर सब ज्ञेयोंको जाने। ज्ञेय उसे ज्ञात हो जाते हैं, अपने क्षेत्रमें रहकर। वह ज्ञानकी कोई अचिंत्य शक्ति है। स्वयं अपने क्षेत्रमें रहकर, पूरे लोकके जो ज्ञेय हैं, उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अनन्त अनन्त ज्ञेय, अपने क्षेत्रमें रहकर, अपनेमें रहकर लोकालोकको जान सकता है। उसके पहले, लोकालोकको जाने उसके पहले उसे स्वानुभूतिमें ज्ञानकी निर्मलता होती है। वह बाहरका जाने या न जाने, परन्तु उसे ज्ञानकी निर्मलता होती है।

मुमुक्षु :- सम्यक्ज्ञानकी निर्मलता स्व अनुभव होने-से हो जाती है।

समाधान :- ज्ञानकी निर्मलता होती है।

मुमुक्षु :- ... मेरा जीवन था, ऐसा उसे भासित होता था, उसके बदले अब मेरा जीवन मेरे आधार-से ही है।

समाधान :- मेरी ही आधार-से है, किसीके आधार-से नहीं है। पर-से मैं टिकता हूँ और पर-से मेरा जीवन है, उसके बदले स्वयं मेरा अस्तित्व है, मैं स्वयं ज्ञायक हूँ। मैं स्वयं एक पदार्थ हूँ। कोई पदार्थसे मैं टिकू या कोई बाहरके साधनों-से, या शरीरादि पदार्थसे टिकू ऐसा तत्त्व नहीं है। तत्त्व स्वयं स्वतःसिद्ध है। तत्त्व स्वयं अपने-से टिक रहा है। उसे कोई पदार्थके आश्रयकी आवश्यकता नहीं है। स्वयं स्वतःसिद्ध है। परन्तु वह एकत्वबुद्धि करके अटक रहा है।

आता है न? स्वतःसिद्ध तत्त्व, तत्त्व उसे कहे कि जिसे परके आश्रयकी जरूरत न हो। उसका नाम तत्त्व, उसका नाम स्वभाव कहनेमें आता है। जिस स्वभावको परके आश्रयसे वह स्वभाव परिणमे अथवा परके आश्रयके जरूरत पड़े, उसे स्वभाव नहीं कहते। जो स्वतःसिद्ध स्वभाव हो, वह स्वयं परिणमता है। और उस स्वभावमें मर्यादा भी नहीं होती कि ये स्वभाव इतना ही हो या इतना ही जाने। ऐसा नहीं होता। वह स्वभाव अमर्यादित होता है।

वैसे ज्ञान, वैसे आनन्द, वैसे अनन्त गुण (हैं)। जो स्वभाव हो उस स्वभावको मर्योदा नहीं होती। जो स्वतःसिद्ध स्वभाव है, वह अनन्त ही होता है। उसे मर्यादा नहीं होती या उसे इतना ही हो, या उतना ही हो, ऐसा नहीं होता। वह किसीके आश्रय-से परिणमे या कोई आश्रय न हो तो उसकी परिणति कम हो जाय, ऐसा नहीं है।

जो स्वतः परिणामी है, स्वयं ही स्वतःसिद्ध परिणामी है। स्वभावको कोई मर्योदा नहीं होती। परन्तु उसने सब मान लिया है अज्ञानता-से। उसका नाम३ स्वभाव, उसका नाम तत्त्व कहे कि जो स्वतःसिद्ध हो और जो अनन्त हो। ऐसे अपने स्वतःसिद्ध स्वभावकी उसे महिमा आये तो वह अपनी ओर जाता है।

बाहर-से उसे थकान लगे, विभाव परिणति-से उसे थकान लगे, उसे विकल्पकी जाल-से थकान लगे तो वह अपना चैतन्यका आश्रय ग्रहण करता है। वह थकता नहीं है तो उसे अपना आश्रय लेना कठिन लगता है। उसे थकान लगे कि ये परिणति तो कृत्रिम है, सहज नहीं है। जो-जो कष्टरूप है, दुःखरूप है। तो अपना जो स्वभाव है, उसका आश्रय ग्रहण करनेकी उसे अन्दर-से जिज्ञासा, भावना हुए बिना नहीं रहती।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८८

समाधान :- .. विचार करना, भगवानकी स्थापना करे, और स्थापित कर सकता है, इसलिये उसकी महिमा है। दूसरी अपेक्षा-से जब साक्षात् सम्यग्दर्शन होता है तब प्रत्यक्ष निमित्त होता है। देव-गुरुका प्रत्यक्ष निमित्त हो तभी सम्यक्त्वका निमित्त बनता है। स्थापनाकी इतनी महिमा है कि भगवानका विरह हो, जहाँ भगवान विराजते न हो, वहाँ उसे भगवानके मन्दिर आदि ही उसे लाभरूप होता है। इसलिये भगवानके मन्दिरमें तो जब भी जाना हो तब जा सकता है।

केवलज्ञानी भगवान विचरते हैं, तीर्थंकर भगवान विचरते हों, जहाँ भगवान विचरते हों वहाँ भी मन्दिर और प्रतिमाएँ होती हैं। क्योंकि निमित्त और उपादान... स्वयं लाभके लिये उसकी स्थापना करता है। इसलिये उसकी महिमा उस अपेक्षा-से ज्यादा है।

मुमुक्षु :- जो शाश्वत है, वह सब भी..

समाधान :- शाश्वत मन्दिर है वह तो कुदरत महिमा बता रही है। जगतमें सर्वोत्कृष्ट भगवान है, उनकी ऐसी महिमा है। जगतमें सर्वोत्कृष्ट हो तो भगवान ही है ऐसा कुदरत बताती है। कुदरतके परमाणु भी भगवानरूप परिणमते हैं। इसलिये जगतमें यदि कोई सर्वोत्कृष्ट वस्तु हो तो भगवान है। चैतन्यमूर्ति भगवान है, वह सर्वोत्कृष्ट है। कि परमाणु भी उस रूप, परमाणु भी प्रतिमाजीरूप परिणम जाते हैं, भगवानरूप परिणम जाते हैं। इसलिये भगवानकी महिमा कुदरत बता रही है। प्रतिमाएँ साक्षात् चैतन्यमूर्ति भगवानकी महिमा बता रही है और स्थापना निक्षेप भी महिमावंत ही है। कुदरतमें उस स्थापना निक्षेपकी महिमा, कुदरती प्रतिमा...

मुमुक्षु :- अनादिअनन्त है इसलिये?

समाधान :- अनादिअनन्त है।

समाधान :- ... यह ज्ञानस्वभाव है, उसका निर्णय करके, प्रतीत करके फिर मति और श्रुतका उपयोग जो बाहर जाता है, उसे मर्यादामें लाकर स्वरूप सन्मुख करता है। परन्तु पहले प्रतीत हुयी है। ज्ञानस्वभावकी प्रतीति करके, उसका ज्ञानस्वभावका आश्रय करके फिर मति-श्रुतका जो उपयोग बाहर जा रहा है, उसे मर्यादामें पलटाता है। पहले ज्ञानस्वभावकी प्रतीति की कि यह ज्ञान .. मति-श्रुतका उपयोग मर्यादामें आता है।

मुमुक्षु :- तो ही मर्यादामें आये।

समाधान :- तो ही मर्यादामें आये।

मुमुक्षु :- माताजी! अभी जो क्षयोपशम ऐसा भी हो सकता है कि क्षायिक लेकर ही बीचमें छूटे नहीं, ऐसा हो सकता है?

समाधान :- हाँ, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन ऐसा भी होता है।

मुमुक्षु :- आजके महामंगलकारी दिन, मंगलकारी सम्यक्त्वके कारणरूप भेदज्ञानका स्वरूप ..

समाधान :- गुरुदेवने परम उपकार किया है। गुरुदेवने तो भेदज्ञानका स्वरूप, स्वानुभूतिका स्वरूप भरतक्षेत्रमें था नहीं। गुरुदेवने परम उपकार किया है। गुरुदेवने स्पष्ट इतना किया है कि कोई प्रश्न उत्पन्न हो और पुरुषार्थ करना स्वयंको बाकी रहता है। सूक्ष्म-सूक्ष्म करके, गहरा-गहरा अनेक रीत-से गुरुदेवने चारों ओर-से समझाया है।

स्वानुभूतिका मार्ग, भेदज्ञानका मार्ग गुरुदेवने स्पष्ट करके बताया है। मुमुक्षुकी अन्दर-से गहरी भावना हो कि मुझे आत्माकी ही करना है। आत्मामें सर्वस्व है, बाकी कहीं नहीं है। आत्मा ही महिमावंत है। जगतमें सर्वश्रेष्ठ हो तो आत्मा है। बाहरकी वस्तु कोई विशेष नहीं है। एक आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, ऐसी जिसे भावना, महिमा, लगनी लगे तो भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करे।

अन्दर स्वयं गुरुके उपदेश-से और विचार करके नक्की करे। गुरुने बहुत समझाया है। तू भिन्न और ये शरीर भिन्न, विभावस्वभाव भी तेरा नहीं है। उससे भेदज्ञान कर। गुरुदेव बारंबार समझा रहे हैं। परन्तु स्वयं पुरुषार्थ करके अन्दर-से नक्की करे कि जो चैतन्यतत्त्व शाश्वत अनादिअनन्त है, जिसमें अनन्त काल गया, अनन्त जन्म-मरण किये तो भी वह द्रव्य ज्योंका त्यों शाश्वत है। उस शाश्वत द्रव्यको ग्रहण करनेके लिये प्रयत्न करना। उसमें कोई गुणके भेद-से भेदवाला, वास्तविक रूप-से भेदवाला (नहीं है)। चैतन्य तत्त्व तो अखण्ड ही है।

छः द्रव्यमें एक जीवतत्त्वको ग्रहण करना। नौ तत्त्वमें भी एक जीवतत्त्वको ग्रहण करना। भावोंमें भी एक पारिणामिकभावस्वरूप आत्माको ग्रहण करना। आत्मा जो अखण्ड अभेद तत्त्व अनादिअनन्त सहज तत्त्व है, उसे ग्रहण करना। उसे ग्रहण करके उसका भेदज्ञान करके, ये शरीर, विभाव आदि सब स्वभाव मेरा नहीं है। मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसे चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करके बारंबार उसका पुरुषार्थ करे।

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे,
कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणुमात्र नहीं अरे!।।३८।।

मैं एक शुद्ध स्वरूप आत्मा हूँ। मैं शुद्धात्मा ज्ञान-दर्शनसे भरा हुआ, ज्ञान-दर्शनसे

विशेष, सब परपदार्थों-से भिन्न, छः द्रव्य-से भिन्न मैं एक चैतन्यतत्त्व ज्ञान-दर्शन-से पूर्ण हूँ। ऐसे आत्मतत्त्वको अंतरमें ग्रहण करे। मैं सर्वसे भिन्न ऐसा प्रतापवंत हूँ। मेरी प्रताप संपदा सबसे भिन्न है। ऐसे चैतन्यतत्त्वको स्वानुभूतिमें ग्रहण करे।

पहले उसे द्रव्यदृष्टिमें ग्रहण करे, फिर उसका भेदज्ञानका बारंबार प्रयत्न करे। बारंबार, मैं यह चैतन्य ही हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ। और ज्ञानमें गुणोंके भेद, पर्यायके भेद ज्ञानमें ग्रहण करे। दृष्टि एक द्रव्य पर ही रखे। बाकी सब ज्ञानमें ग्रहण करके पुरुषार्थ करे। मैं द्रव्यदृष्टि-से पूर्ण हूँ, परन्तु पर्यायमें जो अधूरापन है उसकी साधना करे। उसकी साधना करके ज्ञाताधाराकी बारंबार उग्रता करे। भेदज्ञान करके उसकी उग्रता करे तो वह चैतन्यतत्त्व प्रगट हुए बिना नहीं रहता। क्योंकि स्वयं ही है, कोई अन्य नहीं है कि प्रगट न हो। स्वयं ही है। परन्तु स्वयं ऐसी ज्ञाताधाराकी उग्रता करे तो प्रगट हो।

आचार्यदेव कहते हैं कि जितना ज्ञान है उतना ही तू है। वही सत्यार्थ कल्याणरूप है। वही परमार्थ है और वही अनुभव करनेयोग्य है। उसीमें तुझे तृप्ति होगी और संतोष होगा। सब उसीमें भरा है। इसलिये उस ज्ञानमें अनन्त-अनन्त भरा है। अनन्त शक्तिओंका भरा हुआ अनन्त महिमावंत आत्माको ग्रहण करे तो वह प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

बारंबार उसके विकल्पके नयपक्षेमें अटके कि मैं शुद्ध हूँ या अशुद्ध हूँ, वह सब विकल्पात्मक (नयपक्ष है)। पहले विचारसे निर्णय करे कि ज्ञानस्वभाव मैं हूँ। किस अपेक्षा-से शुद्धता, किस अपेक्षा-से अशुद्धता? सब नक्की करके फिर उसका जो उपयोग बाहर जाता है, उस उपयोगको अपनी ओर मोड़े। और निर्विकल्प तत्त्व है, उसे बारंबार उसकी साधना करके ज्ञाताधाराकी उग्रता करे। विकल्प-से उसे थकान लगे और चैतन्यतत्त्वमें सर्वस्व लगे तो विकल्प छूटकर निर्विकल्प तत्त्व प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

वह सहज तत्त्व है। सहज तत्त्व पारिणामिकभावरूप परिणमता हुआ अपने आनन्द स्वभावरूप, ज्ञानस्वभावरूप अनन्त स्वभावरूप परिणमता हुआ वह तत्त्व उसे प्रगट होता है। शक्तिमें तो अनन्तता तो भरी है, परन्तु उसे प्रगट परिणमता हुआ प्रगट होता है। विकल्प तरफ-से उपयोग छूटकर, उसका भेदज्ञान करके, अपना अस्तित्व यदि वह ग्रहण करे तो वह प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं। ऐसी स्वभावकी महिमा गुरुदेवने बतायी है। और वह करने जैसा है। वह न हो तबतक उसकी भावना, बारंबार प्रयास करना। शुभभावमें देव-गुरु-शास्त्रका आश्रय रखे। अंतरमें शुद्धात्माका आश्रय करे।

शुद्धात्माका आश्रय प्रगट करनेके लिये देव-गुरु-शास्त्र क्या कहते हैं, उसके आश्रय-से चैतन्यतत्त्वका आश्रय ग्रहण करे। उपादान अपना तैयार करे तो निमित्त निमित्तरूप हुए बिना नहीं रहता। ऐसा गुरुदेवने बारंबार बताया है। और करने जैसा वही है।

जो ज्ञानस्वभाव दिख रहा है, कि जो क्षयोपशमके भेदमें भी भले अखण्डको ग्रहण

करना। आचार्यदेव कहते हैं न, प्रकाशका पुँज बादलमें है। लेकिन वह किरण कहाँ-से आया है, उसके मूलको ग्रहण करना। वैसे यह ज्ञानस्वभाव भेदवाला दिखे, परन्तु उसका मूल कहाँ है? उसकी डोर कहाँ है? उसका मूल कहाँ है? उस मूलको ग्रहण करे। अर्थात् पर्यायको ग्रहण नहीं करके मूल तत्त्व क्या है, उस तत्त्वको ग्रहण करके, मूल ग्रहण करके मूलका आश्रय करे। और बारंबार उसका भेदज्ञानका प्रयास करे कि ये विकल्पादि मैं नहीं हूँ, उससे मैं भिन्न हूँ और मैं ज्ञायक हूँ। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्परूप नहीं परन्तु ऐसी सहज परिणति। उसे सहज परिणति रूप जीवन ऐसा हो जाय, ज्ञायकरूप जीवन हो जाता है। तो उसे विकल्प छूटे बिना रहते ही नहीं।

ज्ञायकरूप जीवन। ये शरीररूप जीवन नहीं, विकल्परूप, विकल्पकी जालरूप एकत्वबुद्धिरूप जीवन नहीं, परन्तु बारंबार ज्ञायकरूप उसका जीवन हो तो ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमन किये बिना नहीं रहता। ऐसी सहज वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है।

मुमुक्षु :- आपने कहा उसमें तो बहुत-बहुत आ जाता है, ऐसे तो सब आ जाता है, परन्तु अभी भी सुनते ही रहे ऐसा लगता है। अंतरमें आत्माको कैसे प्रत्यक्ष करना वह जरा विशेष समझाईये।

समाधान :- उसके ज्ञानलक्षण-से प्रत्यक्ष हो ऐसा है। उसे जो ज्ञानलक्षण ज्ञात हो रहा है, वह कोई तत्त्व है। ज्ञान है वह निराधार नहीं है। कोई तत्त्व है। वह तत्त्व ही ज्ञानस्वरूप है। जैसे यह जड़ तत्त्व दिखता है, वैसे एक ज्ञानतत्त्व है। जो सहज है।

जो आनन्द सागरसे भरा हुआ, ज्ञानसागरसे भरा हुआ एक चैतन्यतत्त्व है। उसे स्वयं प्रतीत-से नक्की करे कि ये ज्ञान स्वभाव है वही मैं हूँ। फिर उसकी प्रगट प्रसिद्धिके लिये आचार्यदेव कहते हैं कि तेरा उपयोग जो बाहर जा रहा है, मति-श्रुतज्ञान, विकल्प जो तेरा उपयोग बाहर जाता है, उस उपयोगमें समा दे तो उसकी प्रगट प्रसिद्ध होती है।

पहले उसे प्रतीत-से उसका लक्षण पहिचानकर नक्की कर कि ये जो ज्ञानस्वभाव है वह ज्ञानतत्त्व है। ज्ञायकतत्त्व चैतन्यतत्त्व है, जो आनन्दसागर और ज्ञानसागर-से भरा हुआ एक तत्त्व है। उस तत्त्वकी तू प्रतीत करके फिर मति-श्रुतका उपयोग जो बाहर जाता है, उस उपयोगको तू अंतरमें समा दे। उपयोग अन्दर चैतन्यमें लीन कर दे तो उसकी प्रगट प्रसिद्धि स्वानुभूतिरूप होती है। वह जगतसे भिन्न विश्व पर तैरता हुआ भिन्न आत्मा उसे प्रगट होता है। परन्तु उसकी प्रतीति करे तो उसकी प्रगट प्रसिद्धि होती है।

वह प्रतीति, उसकी प्रतीति ऐसी होती है कि प्रत्यक्ष जैसी। भले प्रत्यक्ष प्रगट नहीं हुआ है, परन्तु वह प्रत्यक्ष जैसी प्रतीति, ऐसा दृढ़ निर्णय करके चैतन्यतत्त्वका आश्रयसे उसके बलसे आगे जाता है कि यही है, अन्य कुछ नहीं है। यही मार्ग है और इसी मार्ग पर जाना है। ऐसे ज्ञानस्वभावको, ज्ञायकतत्त्वको ग्रहण करके उसकी ओर मति-श्रुतका उपयोग मोडता है और बारंबार उसकी दृढ़ता करता है। तो उसकी प्रगट प्रसिद्धि हुए बिना नहीं रहती।

समाधान :- ... स्वतंत्र है। देव-गुरु-शास्त्र उसमें निमित्त होते हैं। परन्तु अपना पदार्थ .... निमित्त तो प्रबल होता है, गुरुका और देवका, परन्तु अन्दर-से... स्वयं अपने अपराधसे अनादि काल-से परिभ्रमण किया, विभाव परिणतिमें रुका, उसके कारण जन्म-मरण हुए। वह स्वयं अपने-से ही अटका है। उसमें कर्म तो मात्र निमित्त है। कर्म कोई जबरजस्ती जबरन करवाता नहीं, स्वयं स्वतंत्र है। वैसे पुरुषार्थ करनेमें भी स्वयं स्वतंत्र है। स्वयं अपने पुरुषार्थ-से पलटे, उसे गुरुन जो बताया है, उसे ग्रहण करके यदि स्वयं पलटे तो हो सके ऐसा है।

शास्त्रमें आता है न कि पानी मलिन हो, उसे कतकफल, कोई औषधि-से निर्मल करनेमें आता है, वह अपने पुरुषार्थ-से (करता है)। वैसे आत्मा भी स्वयं पुरुषार्थ करके अंतरमें, औषधि अर्थात् स्वयं अपने ज्ञान-से, ज्ञानरूप औषधिको अपने पुरुषार्थ-से जो निर्मल, आत्मा स्वभाव-से तो निर्मल ही है, परन्तु ज्ञानसे उसकी बराबर पहिचान करके ये ज्ञान भिन्न है और विभाव भिन्न है, उसे अपने पुरुषार्थ-से भिन्न करे तो भिन्न हो सके ऐसा है। स्वभाव-से तो निर्मल है, परन्तु प्रगट पर्यायमें निर्मल अपने पुरुषार्थ-से होता है।

वह स्वयं ही उससे भिन्न पड़ता है, भेदज्ञान करता है, स्वानुभूति करता है, वह सब वही करता है। अपनेको जरूरत लगे तो पलटता है। मुझे आत्मा ही चाहिये, आत्माकी स्वानुभूति और आत्माका स्वभाव जो ज्ञान, आनन्दादि अनन्त गुणों-से भरपूर है, वही मुझे चाहिये। ऐसी यदि अपनेको जरूरत लगे तो वह स्वयं ही पलट जाता है। तो वह बाहरमें अटक नहीं सकता। उसको खुदको जरूरत लगे तो स्वयं ही पलटता है और वह अपने पुरुषार्थ-से ही हो सके ऐसा है। कोई उसे जबरन करवाता नहीं। स्वयं करे तो हो सके ऐसा है।

मुमुक्षु :- वह कैसा पुरुषार्थ चाहिये? ऐसी जागृति उसे कैसे आये?

समाधान :- अन्दरमें ऐसी जागृति हो कि मैं यह चैतन्य हूँ और यह नहीं हूँ। अपना चैतन्यतत्त्व है उसे ग्रहण करे, ये शरीरादि पर ऊपर अपनी बुद्धि है, बाहरमें मैं-मैं हो रहा है, उसमें-से अहंपना छोड़कर चैतन्य सो मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, ऐसे

स्वयं चैतन्य तरफ ऐसी दृष्टि करे, अपना सहज अस्तित्व ग्रहण करे, ऐसा पुरुषार्थ करे तो हो। उसे ग्रहण करके भी उसे बारंबार, क्षण-क्षणमें भेदज्ञानकी धारा पुरुषार्थ-से प्रगट करे तो हो। प्रतीत-से निर्णय करे कि यह ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ। फिर उसका बारंबार भेदज्ञान करके उग्रता करके भिन्न पडे तो अपने-से हो ऐसा है।

गुरुदेवने तो बहुत बताया है। किसी भी जगह अटके बिना, पूर्णरूप-से, कहीं भी रुचि न रहे, एक आत्मामें ही रुचि सर्व प्रकार-से रहे तो होता है। हर जगह-से रुचि छूट जाय। कहीं रस न रहे, हर जगह-से रुचि छूट जाय। एक चैतन्य तरफ ही रुचि, चैतन्य ही ग्रहण हो, चैतन्य ही आदरणीय रखे, कहीं रुके नहीं, कहीं उसे रुचि लगे नहीं, सर्वांग सर्व प्रकार-से रुचि छूट जाय और चैतन्यकी ही रुचि लगे तो हो। फिर विभावमें खड़ा हो, परन्तु उसे सब रुचि छूट जाती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

ट्रेक-२८९

मुमुक्षु :- आपने कहा है न कि कहीं अच्छा न लगे तो आत्मामें रुचि लगा।

समाधान :- जिसको कहीं अच्छा नही लगता है, वह आत्मामें रुचि करता है। जिसे अच्छा लगता है, बाहर में जिसको रुचता है उसे आत्मामें अच्छा नहीं लगता। जिसकी बाहर-से रुचि उठ जाय, बाहरसे रुचि उठ जाय तो आत्मामें रुचि लगे और जिसको आत्मामें रुचि लगे उसको ही बाहरसे रुचि उठ जाती है। और जिसको कहीं अच्छा न लगे उसको आत्मामें रुचि लगे बिना रहती ही नहीं। आत्मामें रुचि लगे उसे बाहर कहीं अच्छा भी नहीं लगता।

मुमुक्षु :- ऐसा तो लगता है कि कहीं अच्छा नहीं लगता।

समाधान :- हाँ, अच्छा नहीं लगता है, लेकिन उसका उपाय नहीं ढूँढता है। रुचता नहीं है वह यथार्थ नहीं है। वास्तविकरूप-से रुचे नहि तो उसका रास्ता निकाले बिना वह रहता नहीं। उसको स्थूलरूप-से अच्छा नहीं लगता है, वैराग्य करता है, सब करता है कि स्थूल रूप-से उसे कहीं अच्छा नहीं लगता। यह ठीक नहीं है ऐसा स्थूल रूप-से लगता है। अंदरसे यदि ठीक न लगे तो ठीक वस्तु क्या है उसको ग्रहण किये बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- ...तो उसके पुरुषार्थसे उसकी प्राप्ति होती है?

समाधान :- तो पुरुषार्थ से स्वकी प्राप्ति होती है। पुरुषार्थ करे तो।

मुमुक्षु :- फिर तो गुरुदेव के साथ आप गणधर होनेवाले हैं, माताजी! तो हम भी गणधरके साथ उनके पीछे तो होगें या नहीं होगें ?

समाधान :- अपनी खुदकी तैयारी हो तो रहता है। गुरुदेवने जिस मार्गको ग्रहण किया उस मार्गको स्वयं ग्रहण करे ऐसी भावनावाले हो तो साथ ही रहते हैं। वह स्वयं अंदर तैयारी करे तो।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने जो मार्ग बताया है, वह मार्ग आप बता रहे हो, गुरुदेव अनुसार। और वह मार्ग परीक्षक बुद्धिसे ग्रहण किया है। वह छूट न जाये...

समाधान :- (पुरुषार्थ) अनुसार होता है। गुरुदेव भी कहते थे कि धीरे-धीरे चले उसमें कोई बाधा नहीं है, परन्तु मार्ग तू बराबर ग्रहण करना कि इस रास्ते-से भावनगर जा सकते हैं। तो वह रास्ता बराबर है कि इस मार्गसे आत्मा तरफ जा सकते हैं। उसके बदले दूसरा ऊल्टा रास्ता पकड़े तो नहीं जा सके। यह ज्ञान स्वभाव आत्मा है उसको ग्रहण करनसे, उसी मार्गसे स्वानुभूति और भेदज्ञान होता है। वह रास्ता बराबर पकड़ना। उसमें धीरे-धीरे चलना हो तो उसमें कोई दिक्कत

नहीं है, लेकिन उसका ध्येय बराबर रखना। हो सके तो ध्यानमय प्रतिक्रमण करना और न हो सके तो श्रद्धा तो अवश्य करना। आचार्यदेवने कहा है। हो सके तो तू दर्शन-ज्ञान-चारित्ररुप परिणमन करके केवलज्ञानकी प्राप्ति करना। ध्यानमय प्रतिक्रमण। ध्यानमें ऐसी उग्रता करना कि स्वरुपमें लीन होकर बाहर न आये ऐसी उग्रता करना। लेकिन उस प्रकारका ध्यानमय प्रतिक्रमण न हो सके तो श्रद्धा तो बराबर करना कि मार्ग तो यही है। न हो सके तो थक कर दूसरे, तीसरे कहीं थोड़ा करके मैंने बहुत किया, थोड़े शुभभाव करके मैंने बहुत किया ऐसा संतोष मत मान लेना। संतुष्ट मत हो जाना। (संतुष्य हो गया तो) तुझे आगे जानेका अवकाश नहीं रहेगा। लेकिन तूं ऐसी भावना रखना कि मार्ग तो यही है। संतोष तो अंदर आत्मामें-से संतोष आये और तृप्ति आये वही यथार्थ है। वह न हो तबतक उसकी श्रद्धा बराबर रखना कि मार्ग तो यही है। फिर धीरे-धीरे चलेना हो या जल्दी चले उसमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन मार्ग तो यथार्थ ग्रहण करना। आचार्यदेव ऐसा कहते हैं, गुरुदेव ऐसा कहते थे।

मुमुक्षु :- तृप्ति हुई, यह कैसे मालूम पड़े?

समाधान :- वह अपने आपको जान सकता है, अपनी रुचि और जिज्ञासासे। गुरुदेवने जो मार्ग बताया है, उस मार्गको अंदर गहराई-से विचार करके मार्ग यही है, ऐसा स्वयं निर्णय करके वह जान सकता है कि करना यही है। इस ज्ञानस्वभावको ही ग्रहण करना है। दूसरा कुछ ग्रहण नहीं करना है। वह स्वयं अपनी श्रद्धा और प्रतीतसे अपनेआपको पहचान सकता है, अपनी परिणतिको।

इतना करते हैं और कुछ होता नहीं, ऐसे थककर तू उससे पीछे मत हटना, थकना नहीं। तेरे उत्साहको मन्द मत करना। उत्साह तो ऐसा ही रखना कि सबकुछ आत्मामें ही है, कहीं और नहीं है। मैं कर नही सकता हूँ। उत्साह तो बराबर रखना। न बन पाये तो धीरे चलना हो, देर लगे उसमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन मार्ग दूसरा कोई पकड़ ले कि थोड़ी क्रिया करके धर्म माना, शुभभाव थोड़ा ज्यादा हुआ तो धर्म हो गया, ऐसा तू मत मान लेना।

शुद्धात्मा में हीं धर्म है। निर्विकल्प स्वरुप ही आत्मा है और शुद्धात्मामें ही सब कुछ भरा है, ऐसी श्रद्धा तो बराबर रखना। भेदज्ञान ही उसका उपाय है। आत्माके जो द्रव्य-गुण-पर्याय यथार्थ है, उस द्रव्य पर दृष्टि करना और ज्ञान सबका करना, अंदर परिणति करनी, वह श्रद्धा बराबर करना। न हो सके तो मेरे पुरुषार्थकी मन्दता है ऐसी तू भावना रखना। लेकिन थककर दूसरे तरफ मुडना नहीं।

आत्मामें ही सबकुछ है। सम्यग्दर्शन अपूर्व है गुरुदेवने बताया। अनंतकालमें सबकुछ प्राप्त किया लेकिन एक सम्यग्दर्शन दुर्लभ है। जिनवर स्वामी अनंतकालमें मिले नहीं और सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ नहीं। जिनवर स्वामी अनेक बार मिले लेकिन स्वयंने पहचान नहीं करी। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका सर्वोत्कृष्ट निमित्त जिनवर स्वामी है। निमित्त और उपादान दोनों लिया। अंदरमें सम्यग्दर्शन नहीं हुआ और बाहरमें उसका सर्वोत्कृष्ट निमित्त, उसे तूने बराबर पहचाना नहीं है। निमित्त-

उपादानका (सम्बन्ध)। अर्थात् सच्चे देव-गुरु तुझे मिले नहीं, और मिले तो तूने निमित्तको निमित्तरुप ग्रहण किया नहीं। इसलिये तुझे मिले नहीं है ऐसा कहते हैं, बहुत बार मिले तो भी।

लेकिन यह सम्यग्दर्शन दुर्लभ है। उपादान तैयार किया हो तो निमित्त-उपादान का सम्बन्ध हुए बिना रहता नहीं। इसलिये सम्यग्दर्शन दुर्लभ है। ऐसी भेदज्ञान की परिणति प्रगट करनी दुर्लभ है। द्रव्यदृष्टि आत्माकी, भेदज्ञान, उसकी साधक दशा, आत्माको लक्ष्यमें लेना, स्वानुभूतिकी प्राप्ति करनी वह सब दुर्लभ है। लेकिन वह न हो तबतक उसकी भावना, जिज्ञासा करना। जिज्ञासा बढाते रहना। उसके लिये आकुलता करके, खेद करके उलझना नहीं, परन्तु उत्साह रखना। न हो सके तो भी उत्साह रखना।

मुमुक्षु :- हो सके तो...

समाधान :- बन सके तो ध्यानमय... यदि कर सके तो तू... आचार्यदेव और गुरुदेव कहते थे, गुरुदेव और सब उपदेश तो ऐसा ही देते थे कि हो सके तो सम्यग्दर्शनसे लेकर पूर्णता प्राप्त करना। केवलज्ञान तक प्राप्त करना, तुझसे बन पाये तो। और न हो सके तो श्रद्धा करना। न हो सके तो। वह मुनि बनते हैं तो मुनिका उपदेश देते हैं। मुनि न हो सके तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करना, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन दुर्लभ हो और न बन पाये तो उसकी श्रद्धा करना। उसकी महिमा करना। अपूर्वता लाना।

मुमुक्षु :- ... वह कैसे जाने? बाहरका और अंदरका किस तरह जाने?

समाधान :- बाहरका जानना नहीं। अंदर स्वभाव जानना... जानना.. जो स्वभाव है वह। यह बाहर जाना ये ज्ञेय, यह जाना, वह जाना ऐसा नहीं। जाननेका जो स्वभाव है वह जानन तत्त्व है उसको जानना। बाहरका जानना ऐसा नहीं। जानना-जानना। यह जड़ पदार्थ कुछ जानता नहीं, अंदर जाननेवाला कोई भिन्न है। वह जाननेवाला जो जानता रहता है, मूल तत्त्व जो जानता है वह जाननेवाला तत्त्व, जाननेवाला जो पदार्थ है वह।

अब तकका, भूतकालका अथवा अपने जीवनके जो भी प्रसंग बने वह सब तो चले गये, फिर भी जाननेवाला तो ज्योंका त्यों खड़ा है। वह जाननेवाला तत्त्व जो है, वह जाननेवाला तत्त्व है। जानना.. जानना.. जाननेवालेमें जानना है। वह सबकुछ जानता है। जाननेवालेकी मर्यादा नहीं हो ऐसा सबकुछ जाने ऐसा जाननेका स्वभाव वह जाने।

मुमुक्षु :- अर्थात् अपना ज्ञानस्वभाव अंदर?

समाधान :- हाँ। ज्ञानस्वभाव।

मुमुक्षु :- जाननेसे उसका ज्ञानस्वभाव जाननेमें आ जाता है?

समाधान :- हाँ। अपना ज्ञानस्वभाव है। खुदका स्वभाव है जानना।

मुमुक्षु :- यह तो कठिन है, ऐसा लगता है। ज्ञानस्वभाव अर्थात् किस तरह ज्ञानस्वभाव कहते हैं? जानना मतलब जाननेवाली सब चीजें तो ज्ञात हो जाती है। जानना तो बाहरका सब

जाननेमें आता है। जाननेमें बाहरका ही जानता है। बाकी जो अंदर रहा वह क्या रहा?

समाधान :- अंदर तत्त्व ही जाननेवाला है, तत्त्व ही जाननेवाला है। बाहरका वह सब नहीं जानता है। वह तो उसका क्षयोपशमभाव, जितनी उसकी शक्ति है उतना ही जानता है। सब नहीं जानता है। जाननेवाला सब कहाँ जानता है? उसकी जाननेकी तो अनन्त शक्ति है। लेकिन सब जानता नहीं। वह तो अल्प जानता है। वह तो इन्द्रियोंका आश्रय लेकर, मनका आश्रय लेकर अल्प जानता है। जानता है वह स्थूल जानता है। वह कहीं सूक्ष्म नहीं जानता।

जानता है वह क्रम-क्रमसे जानता है। एकसाथ कुछ नहीं जानता। जाननेवालेका जो मूल स्वभाव है, वह मूल स्वभावरुप कुछ नहीं जानता। जानता है वह मात्र स्थूल जानता है। लेकिन वह जाननेवाला तत्त्व है उस जाननेवालेने सब नहीं जाना। जाननेवाला जो तत्त्व है उसको उसने नहीं जाना। जाननेवाला सब जानता है। वह जाननेवाला अनंत जानता है ऐसा उसका स्वभाव है।

जो जाननेवाला स्वयंको जानता है, जो जाननेवाला परको जानता है, ऐसा उसका सब जाननेका (स्वभाव है)। सबसे दूर रहकर, उसके क्षेत्रमें गये बिना स्वयं अपने क्षेत्रमें रहकर, चाहे जितना उससे दूर हो, लाख-करोड़ गाँव दूर हो, तो भी दूर रहकर सब जाने ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसा वह जाननेवाला तत्त्व है। जिसे आँखकी जरुरत पड़ती नहीं, जिसे मनकी जरुरत नहीं पड़ती, जिसे कानकी जरूरत नहीं पड़ती, कोई पदार्थकी जिसे जरुरत नहीं पड़ती कि आँखसे देखे, कानसे सुने, इसलिये वह जाने अथवा मनसे विचार करे तो जाने, ऐसे कोई आश्रयकी जिसको जरुरत नहीं है, लेकिन वह स्वयं हजारों गाँव दूर हो तो भी उसको जान सके। ऐसा जाननेवाला तत्त्व अंदर है कि वह स्वयं जाने, अपने ज्ञान स्वभावसे जाने। और वह दूसरेको जाने इतना ही नहीं, वह स्वयं अपनेको जाने। अपने अनंते गुणको जाने, खुदकी अनंती पर्यायको जाने। अनंतकालमें कैसी पर्याय हुयी और किस तरह द्रव्य परिणमन करके भविष्यमें कैसे परिणमन करेगा, वह सब जाने। ऐसा जाननेवाला तत्त्व है। जानना अर्थात् ऐसा जाननेका जिसका स्वभाव है, वह जाननेवाला तत्त्व है।

मुमुक्षु :- जो मूल तत्त्वको जाननेवाला है।

समाधान :- वह मूल तत्त्वको जाननेवाला तत्त्व है।

मुमुक्षु :- ज्ञानस्वभाव।

समाधान :- ज्ञानस्वभाव। वह ज्ञान स्वभाव है। ये तो उसको लक्षणकी पहचान होती है कि इतना जो जानता है, जो परके आश्रयसे जानता है वह जाननेवाला ऐसा तत्त्व है कि स्वयं जाने। आँखसे जाने, कानने सुने या मनसे विचार करे ऐसा जो जानता है, वह जाननेवाला तत्त्व ऐसा है कि स्वयं जाने। किसीके आश्रय बिना जाने। किसीके आश्रयसे जाने वह उसका स्वतः स्वभाव नहीं है। उसका स्वतः स्वभाव तो ऐसा हो कि जो अपनेसे जाने। जिसे किसीके आश्रयकी जरुरत न पडे वैसे जाने। ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव है। अपने-से जाने। जो ज्ञानरुप अपने-से परिणमे। जो आनंदरुप अपने-से परिणमे। जिसे किसीके आश्रयकी जरुरत न पड़े। ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसी

अनंती शक्तियाँ उसमें भरी है। सब शक्तियोंको वह ज्ञानसे जाने ऐसा ज्ञानस्वभाव है।

मुमुक्षु :- अपने ज्ञानस्वभावमें जो आत्माका आनंद है, उस आनंदका उसे कैसे पता चले?

समाधान :- वह आनंद तो उसको वेदनमें आये तब मालूम पड़े। वेदनसे। स्वयं अपनी तरफ उपयोग करके उसकी प्रतीत करके उसमें लीन होवे तो उसको वह आनंद वेदनमें आता है वह मालूम पड़ता है।

मुमुक्षु :- लीन होनेका कोई प्रयोग?

समाधान :- लीन होनेका प्रयोग तो पहले सच्चा ज्ञान हो बादमें सच्ची लीनता होती है। सच्चा ज्ञान... उसके मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको तो जानना चाहिये कि मैं यह तत्त्व पदार्थ जाननेवाला तत्त्व हूँ। दूसरा कुछ मैं नहीं हूँ। परपदार्थरुप मैं अनंत कालमें हुआ नहीं। अनंतकाल उसके साथ रहा। अनंतकाल उसके निमित्तोंमें बसा हूँ, लेकिन मैं पर पदार्थरुप हुआ नहीं। मैं चैतन्यतत्त्व भिन्न हूँ।

ये विभावस्वभाव, अनंतकाल विभाव परिणतिसे परिणमा फिर भी मैं विभावरुप हुआ नहीं। उसका मूल स्वभाव जाने, उसके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाने, उसका भेदज्ञान करे, यथार्थ ज्ञान करे तो उसकी लीनता होती है। अपने स्वभावको ग्रहण करे तो उसमें लीनता हो न? स्वभावको ग्रहण किये बिना खड़ा कहाँ रहेगा? उसकी लीनताका ज़ोर कहाँ देगा? लीन कहाँ होगा? बहुत लीनता करने जायेगा तो विकल्पमें लीन होगा। मैं चैतन्य हूँ... चैतन्य हूँ... चैतन्य हूँ... ऐसे विकल्प करेगा। लेकिन विकल्पकी लीनता वह लीनता नहीं है। स्वभावको ग्रहण करे और लीनता हो तो सच्ची लीनता है।

मुमुक्षु :- हज़ारों गाँव दूर अपने गुरुदेव, माताजी आपको तो ख्याल है कि गुरुदेव तो दूर वैमानिक देवमें हैं। फिर भी हमें विकल्प द्वारा ऐसा लगता है कि यहाँ गुरुदेव पधारें, हमें दर्शन दिये और हम कृतकृत हो गये। अपनेके तो आनंद हो। गुरुदेवश्री पधारकर दर्शन दे तो अपनेको अंदरसे आनंद हो। लेकिन वह स्वप्न यानी एक स्वप्न ही है या अपना अंदरका भाव है? वह क्या है?

समाधान :- स्वप्नके बहुत प्रकार होते हैं। कोई स्वप्न यथातथ्य होता है, कोई स्वप्न अपनी भावनाके कारण, अपनी शुभ भावना हो तो स्वप्न आये। कोई स्वप्न यथार्थ फल दे। स्वप्न यथार्थ हो तो। स्वप्नके बहुत प्रकार होते हैं। कुछ अपनेको भास होता है, कोई भास अपनी मनकी भावनाके कारण होता है, कई बार यथार्थ होता है। वह खुद नक्की कर सके कि यह यथार्थ है कि अपनी भावनाके कारण जो रटन करता है, वह रटनका स्वप्न है या यथार्थ है, वह खुदको नक्की करना है। स्वप्न के कई प्रकार होते हैं।

मुमुक्षु :- रटन किया हो, वह रातमें आ जाय।

समाधान :- जो रटन किया हो वही स्वप्न रातमें आये। इसलिये वह रटनके कारण आता है। कोई बार यथातथ्य भी आये। जो फलवान स्वप्न हो। माताको स्वप्न आये, भगवान पधारने

वाले हों, वह स्वप्न ऐसा होता है कि जिसका फल... भगवान पधारनेवाले हैं तो स्वप्न आता है। वह स्वप्न यथार्थ होते है। ऐसे कोई स्वप्न यथार्थ भी होते हैं। और कोई स्वप्न अपने रटनका स्वप्न होता है।

मुमुक्षु :- जो रटन करे उसका स्वप्न आये।

समाधान :- वह स्वप्न आये। किसी को .. लेकर स्वप्न आये, किसीको कुछ स्वप्न आये। स्वप्नके कई प्रकार हैं। वह स्वयं जान सके कि यह स्वप्न किस प्रकारका है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्री.. उस दिन मैंने जल्दीमें पूछा था। गुरुदेवश्री विराजमान हुए, आप पीछे विराजते हैं, ऐसा मैं देखती हूँ और गुरुदेवश्री पधारकर ऐसा कहते हैं कि हम यहाँ आराम करेंगे। यहाँ आहार लेंगे। सबको यहाँ आता है। तो यह किस प्रकारका स्वप्न कहा जाये? आप यहाँ विराजमान हो, और वहाँ मुझे दो बार...

समाधान :- (खुद ही) समज सके।

मुमुक्षु :- अब सच्चा ज्ञान है तो अपनेको ऐसा लगे कि जो प्राप्त करते हैं, वह सब सच्चा है। अब उसका भरोसा तो गुरु ही करवाये न? या सही-गलत का निर्णय खुद करे?

समाधान :- गुरु भरोसा करवाये और स्वयं भी भरोसा कर सके कि यह यथार्थ है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!